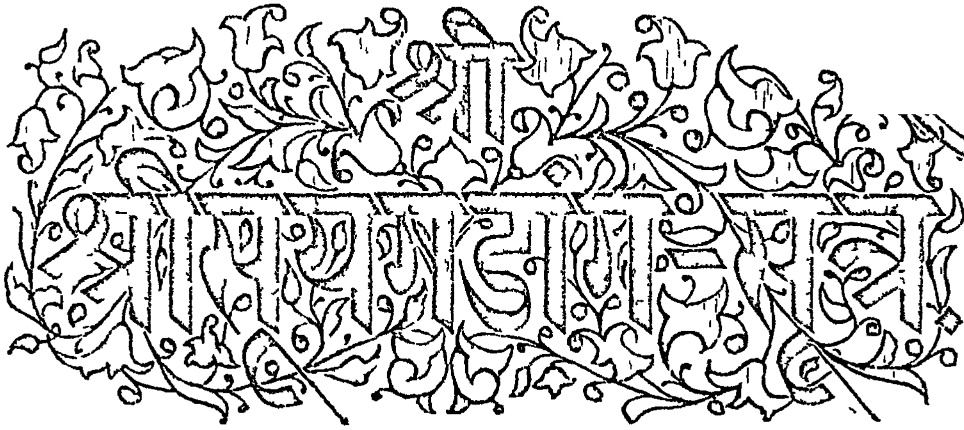


॥ द्वितीयांगम् ॥

अर्हद्ज्ञान क्षीराब्धि वीचिबिंदु प्राशित गणधरोद्गार रूपम्

टीका. दीपिका तथा वालाववोध सहितम्

स्वमत्यनुसार शुद्ध करीने

श्री मकशुदाबादनिवासी बाबुसाहेब

राय धनपतिसिंहजी प्रतापसिंहजी बाहादुरनी आज्ञाथी

श्री मुंबापुरीमध्यें

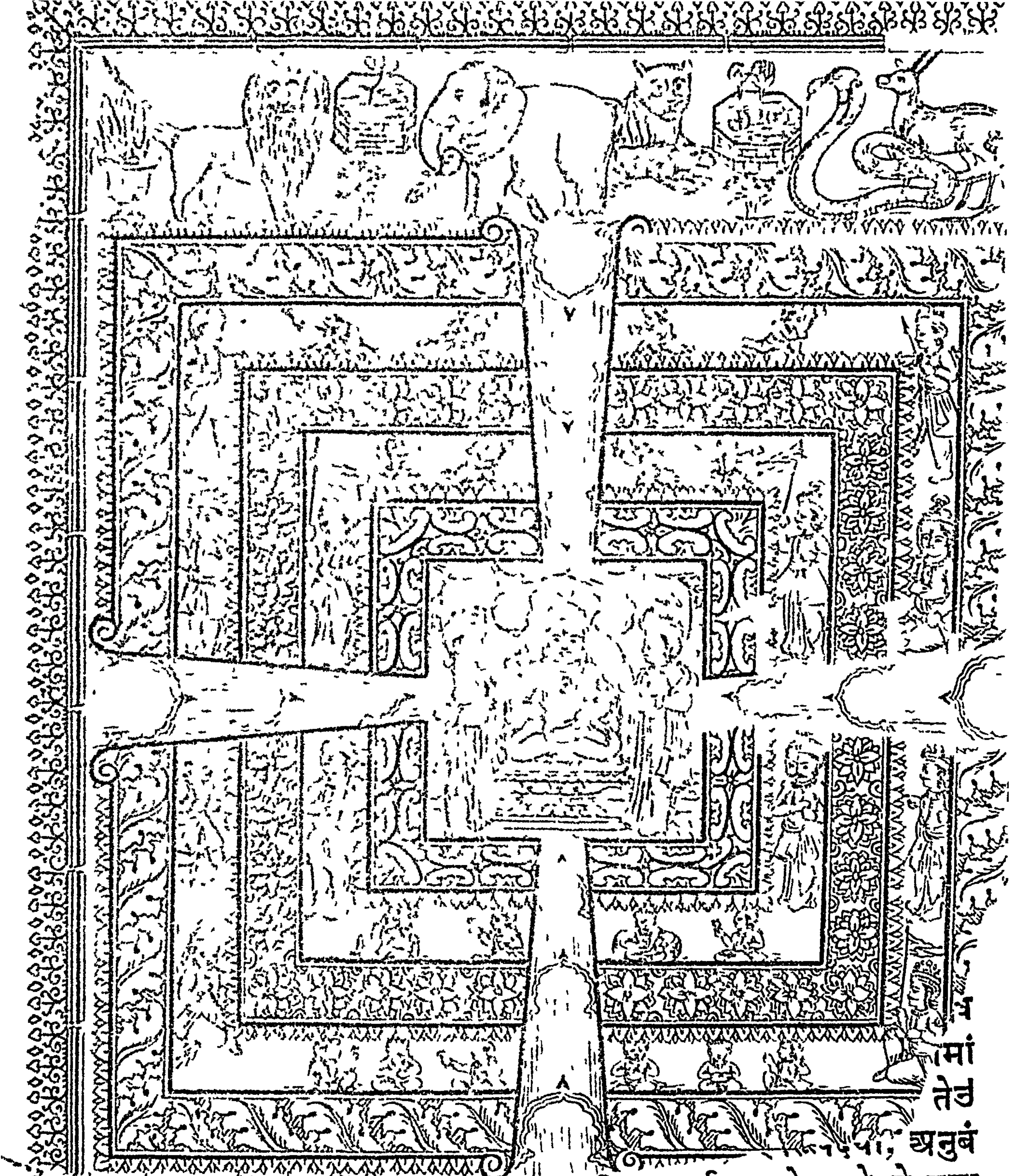
शा० भीमसिंह माणकाख्य श्रावकें प्रीतिपूर्वक

" निर्णयसागर " मुद्रायंत्रना अधिपति जावजी दादाजीनी पासेथी

छपावीने प्रसिद्ध कीधुं.

संवत् १९३६—शके १८०२

मिति पौष शुद्ध पूर्णिमा भोमवासर.



मां
तेउ
...पा, अनुबं

रा, [illegible] प्रकार, जनग्रंथोमां सविस्तर वर्णन करेला छे ते प्रमा
वर्त्ती दयानुं स्वरूप नयशैलीपूर्वक समजता नथी, एज तेउनी मतिमां विभ्रम छे

प्रस्तावना.



आ असार संसार समुद्रनेविषे संतत पर्यटन करनारा प्राणीउने जन्म मरणादिक अत्युग्र दुःखोमांथी मुक्त करे एवो तो मात्र एक धर्मज छे. अने एमज सर्व दर्शनीना शास्त्रमां पण कहेलुं छे, एवो जे धर्म तेनुं मूल तो सर्वांश युक्त दयाज छे. कहेलुं छे के "अहिंसा परमो धर्मः" दयावडे धर्मनी प्राप्ति थाय छे; अने परिपूर्ण धर्म प्राप्त थया पछी जीव मोक्षगामी थाय छे; माटें दया सर्वोत्कृष्ट पदार्थ छे. सर्व दर्शनीउ दयानो उपयोग करेछे खरा, परंतु सर्वांशें करता नथी. एटलाज माटें तेउने धर्म पदार्थनो जेवो जोइयें तेवो लाभ थतो नथी. दयानो सर्वांशें उपयोग तो मात्र जैन दर्शनमां स्वीकार्यो छे तेथीज जैनदर्शन धर्मधुरिसर कहेवाय छे, माटें दयानो सर्वांशें उपयोग करवानी अगत्य छे, जेम कांई भोजनार्थे पक्वान्न करवुं होय तो तेमां घृत, पिष्ट, शर्करादिक अगत्य वस्तुनुं एकत्रपणुं यथाविधि थाय त्यारेंज ते पक्वान्न स्वादिष्ट कहेवाय; पण जो उपर कहेली वस्तुउमांथी एक पण वस्तुनुं उंछा पणुं होय तो ते पक्वान्न स्वाद रहित बने. माटें दया पदार्थ सर्वांशें पलाय तोज तेथी धर्मोपलब्धि थाय, ते विना तो कदी पण थायज नहीं. सर्व दर्शनीउने दया मान्य छे खरी तथापि तेउनी समजमां फेर होवाथी तेउ श्रेष्ठता पूर्वक दयानो उपयोग सर्वांशें करी शकता नथी. ए वात आगलना व्याख्यान उपरथी सिद्ध थशे. जेमके कोइएक दर्शनी तो एम जाणे छे के पशुउनो प्राणघात करवो, एटले तेउ जन्मथी छूटे, एम कही दया मानी लिये छे; कोइएक कहेछे के प्राणीउ, ज्यां सुधी शरीरें सुखी होय त्यां सुधी तेमनी उपर दया करवी, पण ज्यारें तेउ व्याधिग्रस्त स्थितिमां पीडाता होय त्यारें तो ते प्राणीउनो वध करी तेमने थती पीडामांथी मुक्त करवा एज दयाछे; केटलाएक कहे छे के सूक्ष्म अथवा स्थूल प्राणीउ, जेउ मनुष्यने दुःख दीये छे, तेउने मारी नाखवा एज दया छे; केटलाएक तो यज्ञयागादिक करवामां प्राणीउनो नाश करी तेमांज धर्म धुरंधरता मानी बेठा छे, अने केटलाएक अति सूक्ष्मादि प्राणीउ जेनुं स्वरूप दृष्टिगोचर नथी तेनी चिंता लेश मात्र न राखतां मात्र स्थूल प्राणीउ उपरज दया करवामां दया माने छे. एम अनेक प्रकारें दयानो उपयोग अन्य दर्शनीउ करे छे तथापि तेउ स्वदया, परदया, द्रव्यदया, भावदया, निश्चयदया, व्यवहारदया, स्वरूपदया, अनुबंधदया, इत्यादि दयाना अनेक प्रकार, जैनग्रंथोमां सविस्तर वर्णन करेला छे ते प्रमाणें वर्त्ती दयानुं स्वरूप नयशैलीपूर्वक समजता नथी, एज तेउनी मतिमां विभ्रम छे

अने एवी भ्रमित मतिवाला दर्शनीओनुं मत क्यारें पण शुद्ध कहेवाय नहीं परंतु जे दर्शनमां पोताना आत्मानुं आत्मत्वपणुं जाणीने पूर्णपणे दयाने अंगीकार करी होय, एवुं तो एक श्री जैनदर्शन छे अने ते सर्व लोक प्रविदित छे. तेथी ए धर्म जगतमां सर्वोत्कृष्ट कहेवाय छे. ए धर्मना एक रीतें, आचारधर्म, दयाधर्म, क्रियाधर्म अने वस्तुधर्म, एवा चार भेद छे अने दान, शील, तप, तथा भाव, ए चार तेनां कारण छे. हवे धन बलें करी दान देवाय, मन बलवडे शील पलाय, शरीर बलवडे तप थाय अने सम्यक्ज्ञानबलवडे भावधर्मनी वृद्धि थाय. ए भावधर्म, दान, शील अने तप, ए त्रणे करतां अधिक छे, केमके भावधर्मनुं कारण ज्ञान बल छे; जेणे करी वस्तुनुं स्वरूप जाणीयें, तेने ज्ञान कहीयें. ते ज्ञानथकी आत्मधर्मनी वृद्धि तथा संरक्षण जेटलुं थायछे तेटलुं पेलां त्रण जे दान, शील ने तप, ते थकी थतुं नथी. एनुं कारण ए छे के नय, निक्षेप, प्रमाण, चार अनुयोगनो विचार, सप्तभंगी, षट्द्रव्यादिकनो विचार, आदि लइ ज्ञान बलवडे जीवने परिपूर्ण प्राप्त थायछे. वली श्री दशवैकालिक सूत्रमां पण प्रथम ज्ञानने पछी क्रिया कहीछे. ते उपरांत ज्ञान विनानी जे क्रिया करवी ते पण क्लेशरूप कहीछे. अर्थात् क्रिया तो ज्ञाननी दासी जेवीजछे. ज्ञानी पुरुषनी अल्प क्रिया पण अत्यंत श्रेष्ठ छे. वली श्री उत्तराध्ययनमां पण कह्युं छे के ज्ञान गुण संयुक्त जे होय तेनेज मुनि कहेवो. एथी पण ज्ञाननुं महात्म्य अत्युत्कृष्ट जणायछे. श्री महानिशीथमां ज्ञानने अप्रतिपाति वर्णव्युं छे. श्री मरुदेवी माताने हस्ती उपर बेठां छतां केवल ज्ञान उत्पन्न थयुं. वली श्री भरतेश्वरने आरीसा भुवनमां रह्यां छतां कर्मोनी विमुक्तता थइ ते पण ज्ञाननुंज प्राबल्य हतुं; अने श्री उपदेश मालामां कह्युंछे के ज्ञान रूपी नेत्रें करी उजमाल एवा मुनिने वंदन करवुं योग्य छे. देवाचार्य मल्लवादि प्रमुखोएं बौध दर्शनीओने जीतीने जगत्मां यशोवाद लीधो ते पण ज्ञाननोज प्रसाद जाणवो. ज्ञाननी जे तीक्ष्णता तेज अबंध चारित्र जाणवुं. जे निकाचित कर्मनो क्रोडो वर्षपर्यंत दान, शील तथा तप करवाथी विनाश थतो नथी ते ज्ञानथी एक श्वासोश्वासमां थायछे. एटलाज माटें क्रिया गुरुने पींपलाना पत्र जेवा गण्या छे. अने ज्ञानी गुरुने समुद्र समान गण्या छे. ज्ञान विना सम्यक्त्वपणुं रही शके नहीं, ज्ञान विना अहिंसानो मार्ग समजाय नहीं, सिद्धांतोक्त समस्त क्रियानुं मूल जे श्रद्धा छे तेनुं पण कारण ज्ञान छे केमके ज्ञान विना श्रद्धानी प्राप्ति थती नथी, एवुं जे ज्ञान तेना पांच प्रकार छे. मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव अने केवल. ए पांचने विषे पण श्रुतज्ञान सर्वथी अधिकोपयोगी छे श्रुतज्ञान पदार्थमात्रनुं प्रकाशक छे. स्वमत तथा परमतनुं परिपूर्ण प्रकाश करनारुं पण श्रुतज्ञानज छे. अज्ञानरूप तिमिर टालवाने सूर्यस

दशछे तथा दुस्सम कालरूप रात्रीने विषे तो दीपक समानछे बीजां चार प्रकारनां जे ज्ञान छे तेनुं पण कारण भूत श्रुतज्ञानज छे. परमेश्वरें कह्युं छेके श्रुतज्ञान संव्यवहारक छे. उद्देश, समुद्देश, आज्ञा इत्यादि व्यवहारनो लाभ श्रुतज्ञानथी थाय छे. वली स्वस्वरूपने परस्वरूप समजाववाने श्रुत ज्ञानज समर्थ छे. बीजां केवल ज्ञानादिक चारे ज्ञानथकी जाणेला पदार्थनुं स्वरूप पण श्रुत ज्ञानवडेज कहेवाय छे. माटें मत्यादिक चार ज्ञान स्थापवा योग्यछे पण तेणे करीने परजीवने उपदेश आपी उपकार करी शकाय नहीं; अने श्रुतज्ञानथी उपदेश थाय माटें उपकारी छे. श्रुतज्ञानना श्रवण करवाथी शुद्धात्मिक परमपदनी प्राप्ति थाय छे. माटें श्रुतज्ञान ते महोटुं निमित्त कारण छे. श्रुतज्ञानने सांभलवे करी जीवने शुद्धस्वरूप विशुद्ध श्रद्धान (प्रतीत) उपजे ने तेथी शुद्धात्मानुं आचरण, आसेवन तथा अनुभव उपजे तेज परमपद प्राप्ति जाणवी. श्रुतज्ञान सांभलवाना प्रभावथकी जीव, धर्मने विशेषें जाणे विवेकवंत थाय, दुर्मतिनो त्याग करे, ज्ञाननी प्राप्ति थाय अने अंतें मोक्ष पामे, माटें श्रुतज्ञाननो आदर अवश्य करवो. श्रुतज्ञाननो संयोग थवो जीवने अत्यंत दुर्लभ छे. श्रुतज्ञानने संयोगें करीने पूर्वें श्रीगौतमस्वामी, सुधर्मस्वामी, जंबुस्वामी प्रमुख घणा जीवो संसार समुद्रने तरी गया; अने वर्त्तमान कालें महाविदेह क्षेत्रने विषे विहरमान सीमंधरादिक वीश तीर्थंकरनी वाणी सांभलीने घणा जीवो तरेछे, तथा आगमिक कालें पद्मनाभादिक तीर्थंकरनी वाणी सांभलीने श्रीधर्मरुचि अणगार प्रमुख अनेक जीवो तरशे. तेमज आ भरतादिक क्षेत्रने विषे हमणा पण जे श्रुत ज्ञानने सांभलशे, भणशे, अंतरंग रुचिएं करीने जे श्रद्धा (प्रतीत) करशें, ते सुलभ बोधी थशे, कर्मथी विमुक्त थशे अने तेथी परंपराएं मुक्ति पामशे. एवुं श्रुतज्ञाननुं मूल द्वादशांगी छे. ते श्रुतज्ञाननी वांचना, पृच्छना, परावर्त्तना, अनुप्रेक्षा अने धर्मकथा थाय छे. ए धर्मकथा श्रीउववाइ सूत्रमां चार प्रकारनी कही छेः– आक्षेपिणी, विक्षेपिणी, निर्वेदिनी अने संवेदिनी. हवे जे थकी एक तत्वमार्गमां प्रवृत्ति थाय तेने आक्षेपिणी कहीएं; जे थकी मिथ्यात्वनी निवृत्ति थाय तेने विक्षेपिणी कहीएं; जे थकी मोक्षनी अभिलाषा उत्पन्न थाय, तेने निर्वेदिनी कहीयें अने जे थकी वैराग भावनी उत्पत्ति थाय तेने संवेदिनी कहीयें.

एवी ए श्रुतज्ञानरूप कथा श्री अरिहंत देवाधिदेव तीर्थंकर परमेश्वर समवसरणमां बेशीने त्रिपदी उच्चारण पूर्वक द्वादश पर्षदाना मध्यने विषे करेछे. अने तद्रूप दानथी श्रीगणधरो द्वादशांगीनी रचना करेछे, ते सूत्र कहेवायछे. ते प्रत्येक तीर्थंकरना शासनने विषे थाय छे; तथा ते तीर्थंकरोना शासनमां थयेला प्रत्येक बुध, चौद पूर्वधर, तथा दश पूर्वधर प्रमुख महत्पुरुषो जे निबंधोनी रचना करे छे तेने पण सूत्र संज्ञा

होवाथी द्वादशांगना बारमा दृष्टिवादमां तेनो समावेश थायछे. वर्त्तमान श्रीमहावी र परमेश्वरना शासनमां हाल प्रवर्त्तमान पीस्तालीश सूत्रो छे ते सर्व श्रुतज्ञाननाज भेद छे एम जाणवुं. बीजा पण अक्षर अनक्षरादिक चौद अने पर्याय पर्यायसमासादिक वीश भेद पण छे. हाल पंचम कालमां मात्र श्रुत ज्ञानज प्रगट पणे छे अने मति ज्ञान तो श्रुतज्ञान रूपज छे; केमके श्रुत ज्ञाननुं समवायिकारण, मतिज्ञान छे अने कार्यथी कारण भिन्न नथी, किंतु? अभिन्नज छे. बीजां अवधि, मनःपर्यव अने केव ल, ए त्रण ज्ञान आ समयमां क्षेत्र कालादिक भेदने लीधे आ क्षेत्रमां श्रीवीर तीर्थंकर ना शासनमां प्रवर्त्तमान नथी; मात्र मतिश्रुतरूप श्रुतज्ञाननोज प्रसार रह्यो छे. ए श्रुत ज्ञानना उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा अने अनुयोग, ए चार प्रकार थाय छे. सामान्य कथन करवुं, तेनुं नाम उद्देश; विशेषकथन करवुं, ते समुद्देश; आज्ञा अ थवा अनुमोदन ते अनुज्ञा; अने प्रश्न, पृच्छा, प्रार्थना प्रमुख करवुं तेने अनुयोग क हीयें. अटला कारण माटें व्याख्यान करवामां श्रुत ज्ञानज उपयोगी छे, पण बीजां ज्ञान नथी; माटें चालता समयमां श्रुतज्ञाननी वृद्धि तथा संरक्षण करवुं, ते धर्मनी वृद्धि तथा संरक्षण कर्या प्रमाणे छे. आ ठेकाणे ज्ञान कारण छे अने धर्म कार्य छे. हवे जेम राजा तथा प्रधान ए बेउ प्रजानी वृद्धि तथा संरक्षणने माटें तत्पर होय छे, तेम द्वादशांगीरूप श्रुतज्ञाननां मूलसूत्र, राजा समान छे अने तेना अर्थ रूप टीका, भाष्य, चूर्णी प्रमुख, प्रधान तुल्य छे. तेथी सूत्र अने टीका प्रमुख धर्मनी वृद्धि त था संरक्षणने माटे छे अने ते श्रुतज्ञानरूप छे तेथी श्रुत ज्ञाननी वृद्धि अने संरक्षण करवाना उपाय तथा तत्संबंधी उद्योगमां अस्मन्मतविजयाभिलाषी, सुज्ञजनोयें ब द्धपरिकर थइ तन, मन अने धनवडे आग्रह राखीने आदरवा, एना जेवुं बीजुं को इ पण धर्मवृद्धि करवानुं अत्युत्तम साधन नथी. श्रुतज्ञाननी सतत वृद्धि ने संरक्षण करवानुं साधन वर्त्तमान कालमां मुद्रायंत्र सर्वोत्तम छे. ते द्वाराएं ग्रंथो छपावीने तेना भंमारा करावववा, ए सर्वोत्तमोत्तम उपायछे. तेउमां प्रथम श्रुतज्ञानना आधारभू त एवा जे पिस्तालिश आगम छे, तेने शुद्ध करी छपावीने प्रसिद्ध करवा. एवा स र्वोत्कृष्ट उपायनो श्री मकशुदाबादेति नगरनिवासी "रायधनपतिसिंहजी प्रतापसिंह जी बहादुर" तेउएं पोतानां परलोक प्राप्त मातुश्री "महताब बाई" तेमना निरंत र नामस्मरण निमित्तें तथा पूर्ण पुण्योपार्जन निमित्तें तथा अस्मदीय दर्शनग त सुजन पुरुषोने श्रुतज्ञान वृद्धि थवाने निमित्तें, प्रारंभ कर्यो छे. उपर कह्या जे पी स्तालीश आगम तेमांथी हाल आ "श्री सूयगडांगसूत्र" छापवाने मने आज्ञा कर्याथी; में यथामति शुद्ध करीने छाप्युंछे. आ ग्रंथ, अत्युत्तम अने अद्भुत रचना

युक्त छे. एनुं सहज व्याख्यान प्रगट करुं बुं, ते वांचवाथी एनुं अतिशय श्रेष्टपणुं ते मज आवश्यकता ध्यानमां आवशे.

सूयगडांग एटले संस्कृत नाषामां सूत्रकृतांग एवुं नाम छे. सूत्र एटले जेमां सूत्र नी सूचना होय तथा स्वपरमतनी सूचना कराय ते सूत्र कहीयें. ते सूत्र बे प्रकारनुं होय छे. पहेलुं इव्यसूत्र अने बीजुं नावसूत्र जे कापासादिकथी उत्पन्न थयुं होय, ते इव्यसूत्र कहीयें, अने श्रुत ज्ञानरूप सूत्र ते नावसूत्र छे, एम जाणवुं. वली जे प दार्थनुं सूचक होय ते श्रुतज्ञान सूत्र जाणवुं. ते श्रुतज्ञान सूत्रना चार नेद छे संज्ञा सूत्र, संग्रहसूत्र, वृत्तबंधसूत्र, तथा जातिबंधसूत्र हवे जे स्वसंकेत पूर्वक बांधे लुं होय ते संज्ञासूत्र केवाय; जेमां घणा अर्थोनो संग्रह तथा धर्माधर्मइव्यनुं ग्रह ण होय ते संग्रह सूत्र केवाय; जे अनेक प्रकारना वृत्त छंदनी जातिथी बांधेलुं होय ते वृत्तबंधसूत्र केवाय अने जे जातिथी बांधेलुं होय ते जातिबंध सूत्र कहेवाय. ए जाति सूत्रना चार नेद छे. तेनां नाम कहीयें छैयें. जेम के, कथ्य, गद्य, पद्य, अने गेय. हवे जे उत्तराध्ययन तथा ज्ञाताधर्मकथादिकनी पेरें प्रायें पूर्व रूषिनां चरित्र प्रमुख कथा उनो विस्तार जेमां होय ते कथ्य; जे ब्रम्हचर्य अध्ययनादिकनी पेरें जेमां मुक्त नाषानुं विवेचन होय ते गद्य. जेमां छंदरचनावडे मनोहर वर्णन होय, ते पद्य अने कापिली अध्ययननी पठें स्वप्रीतिथी गायन करी जेनी रचना थइ होय ते गेय.

अथवा तीर्थंकरोना मुख थकी नव्य जीवोना मोक्षार्थें उत्पन्न थयेलो जे अर्थ ते सूत्र; अने तेनी जे गणधरें रचना करी तेने कृत कहीयें. एम सूत्र अने कृत ए बे मलीने सूत्रकृत एवुं पद थयुं. अथवा सूत्रने अनुसारें जेमां तत्वनो प्रबोध होय, ते पण सूत्रकृत कहेवाय; अने तेना कर्त्ता पण गणधरो छे. हवे गणधर कोने कहेवा? जे सामान्याचार्य होय ते गणधर कहेवाय; ते गौतमादिक जाणवा. ते गौतमादिक एकाद श गणधरोमांहेला पांचमा गणधर श्रीसुधर्मा स्वामी तेमणे पोताना श्रीजंबुप्रनृति शिष्योने उपदेश करवाने अर्थें आ ग्रंथनी रचना कीधी छे; अने ए कारण माटें आ ग्रं थनुं नाम सूत्रकृत छे एम जाणवुं. वली बीजुं नाम. द्वितीय सूत्रकृतांग एवुं पण छे, तेनुं कारणके पूर्वोक्त पिस्तालीश सूत्रांतर्गत एकादशांगमानुं ए द्वितीय अंगछे ते पूर्वो क्त गणधर विरचित एकादशांग मध्यें प्रथमांगनुं नाम आचारांग छे; तेमां जीवनी छ कायनुं स्वरूप जाणवुं, एनो सविस्तर उपदेश करेलो छे अने एमां ज्ञाननुं प्राधान्य छे. ज्ञाननी प्राप्ति थया पछी ज्ञान पूर्वक क्रिया करवी ते संबंधी आरंनमां (बुज्झिज्ज) एवी गाथा लखीने प्रथम आचारांग साथें आ द्वितीय सूत्रकृतांगनो संबंध मेलव्यो छे. एना बे श्रुत स्कंध छे. ते मध्यें प्रथम श्रुतस्कंधना शोल अने द्वितीय श्रुतस्कंधना सा

त, वली त्रेवीश अध्ययनो छे. अने तेमां तेत्रीश उद्देशाउ छे. एनी पद संख्या छत्रीश हजारनी छे. मूल सूत्रनी श्लोक संख्या (२१००) छे. एमां मुख्यत्वें द्रव्यानुयोग नी प्रधानता छे अने स्वमतानुसारी महान् साधु जनोनें उदासीनरूप क्रिया प्रवृत्ति आश्रयी उपदेश करतां थकां अन्य पाखंडी दर्शनीउना मतोनुं खंडन यथायोग्य कीधुं छे. ए शीवाय बीजा पण जे जे विषयोछे ते सर्वे अनुक्रमणिकामां सविस्तर दर्शावेला छे, ते जोवाथी स्पष्ट समजाशे.

ए ग्रंथनी टीका करनार पंडितोमां श्रेष्ठ एवा श्रीशीलंगाचार्य नामें पंडित हता, तेउ विक्रम संवत् छसोना सुमारमां थइ गया एवी दंतकथा छे. ए विषे कोइ ग्रंथ साक्षी आपे एवुं आज सुधी महारा जाणवामां आव्युं नथी. ए महान् टीकाकारनी जन्मभूमि वल्लभीपुर नगरी जे हाल वलानें नामें प्रख्यात छे त्यां हती, एवुं मने सांभलवामां आव्युं छे. सांप्रत कालना पंडितो एमनी टीका वांचीने तेनी वाक्यरचना तथा उत्तम सरलता साथें गांभिर्य अने शब्द चातुर्यथी मोह पामी स्तुति करवामां महोटो आनंद माने छे. ए टीकानी श्लोक संख्या बार हजार आवशो ने पचाश छे. ए महा पंडितें अन्यसूत्रो आचारांगादि उपर पण टीका करेली छे. ए स्तुतिपात्र टीकाकारनी टीका करवानी शैली एवी सरल अने सुगम छे के ते वांचतां वांचतां पंडितोने पदशःपरमानंदप्रादुर्भाव थातो रहेज नहिं तथा एनी मनोहर रचना अने अर्थ चमत्कृतिनी एवी सुंदर छटाथी वांचनार ते वाणी रसनेज अनुभवे. सूक्ष्म विषयनुं विवेचन एवी अलौकिक ढबथी कर्युं छे के वक्ता तेमज श्रोता उभयना मनने संपूर्ण संतोष उपजे अने क्यारें पण संशयतो लेश मात्र रहेज नहीं. प्रत्येक विषयनुं निरूपण साद्यंत नियम बंध कीधेलुं छे के जेथी आपोआप तेनी सर्वे मतलब ध्यान मां आवे ; जेम एक वार लखेली वातनो संबंध बीजे ठेकाणे लगाडवो होय, तो त्यां पूर्ववत् ए संकेतथी वांचनारने तुरत आगली वातनुं ज्ञान थाय. वली आ टीका वांचवा थकी जाणे टीकाकारें ग्रंथकर्तानो सर्वहृद्गत अभिप्राय सान्निध्यताथी निःशेष श्रवण कर्यो होय एम टीका वांचनारने उत्प्रेक्षा थाय छे. एम सूत्रनो अक्षरशः अर्थ न जाय एवी रीतें सनिर्युक्तिक टीका करी छे एवा अनेक प्रकार जेणे करीने टीकानी श्रेष्टता अने स्तुति पंडितो करे, ते आ महाविद्वान् पंडितनी टीकामां नजरें आवे छे. टुंकामां एटलुंज केवुं छे के जेटली खुबीउ ए टीकामां रही छे ते सर्वे विस्तारनी बार छे. मात्र वांचवाथीज तेनो आनंद प्राप्त थाय एम छे.

एनी दीपिका श्री हेमविमलसूरिएं विक्रम संवत् १५०२ ना वर्षमां करेली छे. तेनी श्लोक संख्या मूल सुधां सात हजार छेः कारणके "सप्त सहस्राणि किंचिन्न्यूना

नि" एवुं एमणे पोतेंज लख्युं छे. ए दीपिका पण घणी सरल सुरस, अने पदना य थायोग्य अर्थयुक्त अतिशय मनोहर छे. एनी शैली एवी बांधीछे के जेने थोडुं घणुं सं स्कृतनुं ज्ञान होय तेने पण सुगमताथी समज पडे अने एवी सरलरचनाने माटें ते वा जनो, ए पंमितनो अत्यंत आजार माने छे.

आ ग्रंथनो बालावबोध श्री पार्श्वचंद्र सूरियें करेलो छे. आ वात, बीजा श्रुतस्कंध ना अंतमां प्रगट करेली छे. ए बालावबोध टीका उपरथी कीधेलो छे. केमके दीपिका करनार करतां बालावबोध करनारनी उत्पत्ति पूर्वें छे, तो पण ज्यारें ते मारा वांचवामां आव्यो त्यारें ते एटलो तो अस्तव्यस्त देखायो के तेने सुधारवानी मारी हिम्मत चाली नहीं. तथापि ए कार्य अवश्य थवुंज जोइयें एवुं जाणी में मारी अल्पमत्यनुसार श्रम लइने सुधार्यो छे.

हवे ए सूत्ररूप कल्पवृक्षनो जे जन आश्रय ग्रहण करें छे, ते निज जावानुसार फल पामे छे. पण तेने अर्थें ए वृक्ष उपर आरोहण करवा माटें पूर्वाचार्योंएं निश्रे णियो करेली छे; जेम के टीका, जाष्य, निर्युक्ति, दीपिका, चूर्णी तथा बालावबोध प्रमुख. एमांथी वली टीकाकर्त्तायें टीकामांहेज निर्युक्तिनी गाथाउ लखीने तेनी पण टीका करेली छे तेथी निर्युक्तिनो समावेश टीकामां करेलो छे तथा दीपिका अने बा लावबोध रूप एवी चार नीश्रेणीउ जूदा जूदा चार आचार्योंनी करेली आ सूयगडां गसूत्ररूप कल्पवृक्षने लगाडी छे तेने उपयोगमां लइ उपर कह्युं एवुं जे आ सूयग डांग सूत्ररूपकल्पवृक्ष, तेनां फल ग्रहण करवा माटें जविक जनोएं अत्यानंद पूर्वक तत्पर थवुं, ए मारी सविनय प्रार्थना छे.

ए सूत्रमां सर्व जगतुने प्रमोद उपजावनारी श्री वीतरागनी वाणी छे. ते केवी छे तोके जव रूप वेलनी कृपाणी, संसार रूप समुद्रथी तारवा वाली, महामोहरूप अंधकार नो नाश करवाने दिनकरना किरणो जेवी प्रकाश वाली, क्रोधरूप दावानलनो उपशम करनारी, मुक्तिना मार्गने दर्शावनारी, कलिमलनो प्रलय करनारी, मिथ्यात्वने छेदन कर नारी, त्रिजुवननुं पालन करनारी, मन्मथनो रोध करनारी, अमृतरसनुं आस्वादन करावनारी अने हृदयने अत्याल्हाद करनारी एवां अनेक विशेषणोपयुक्त एवी जे श्री जिनवाणी ते सर्व सज्जनोनें मान्य थाउ.

कदापि निविड कर्मनी शृंखलायें प्रतिबद्ध थयेला एवा अजव्य दुर्जव्यने बोध कर वा माटें ए वाणी समर्थ नथी थती तो पण ए वाणीनुं असामर्थ्य समजवुं नहीं. केमके सूर्यना किरणो जेम घुवड पक्षीना नेत्रने प्रकाश करी शकतां नथी तो पण ते जगतुमां निंदानां आधिष्ठान थतां नथी. वली जलनी वृष्टि करनारो मेघ जो प

ए उषर क्षेत्रने विषे तृणादिक उत्पन्न करवा माटें असमर्थ छे ते छतां ते लोकने विषे निंदानें पात्र थतो नथी. तेमज जे पुरुषने ए वाणी गमती नथी ते तेनुं पोतानुंज दौर्भाग्य समजवुं. माटें कुशल बुद्धिवाला सज्जनोने आ जिनवाणी रूप प्राधान्य ग्रंथ महोत्सवरूप आनंद आपनारो थाउ अने तेमना चित्त रूप सरोवरने विषे प्रेम रूप जल नराउ, तथा तेने योगें तेउने मोक्ष रूप महा सुंदर कमलनी प्राप्ति थाउ. अस्तु.

शा० नी० मा०.

विज्ञापना.

परमेश्वरनी वाणी रूप अमृतरस जेमां रेलाइ रह्यो होय तेवा ग्रंथोने मुद्रित करी प्रसिद्ध करवा ए महा परमार्थ छे. एथी सुज्ञजनो आनंद पामेछे. विवेकी जनो पठन पाठन करीने जिनधर्म नावमां दृढता वधारे छे, सामान्य जीवो व्याख्यानादिक श्रवण करीने धर्मलाजने पामे छे. सज्जन पुरुषो वांचीने पोताना चित्तनें निर्मल राखी धर्मने विषे आदर करेछे. एवी उत्कृष्ट जिनवाणी जेमां मुख्य छे एवा श्रुतज्ञाननी वृद्धि, संरक्षण तथा विनय करवा जेवुं कोइ पण उग्र, पुण्यप्रकृति बांधनारुं बीजुं शुन कर्म नथी. तेनुं साधन वर्त्तमान समयमां उपर कह्या प्रमाणे मुद्रायंत्र घणुं सुलन अने मनोहर छे. एनी सहायताथी सर्व सूत्रो तथा सर्व ग्रंथो छपावी प्रसिद्ध करवा, ए श्रुतज्ञाननी वृद्धि, संरक्षण तथा विनय, हाल सर्वोत्कृष्ट गणाय एम छे खरुं पण ए कार्य, इव्यवान् गृहस्थथी बनी शके. जेम इव्यवान् तेमज वली श्रीजिन धर्म प्रसार उपर प्रीतिमान् पण संपूर्ण होवो जोइयें, एवो असाधारण पुरुष चतुर्विध संघमां कोइ विरलोज मली आवे. जेम हाल बाबु साहेब "राय धनपतिसिंहजी प्रतापसिंहजी" छे. एवो श्रावक आधुनिक वर्त्तमान कालमां बीजो कोइ पण नथी. एमणे उक्त रीति प्रमाणे प्रीतिसहित सर्व आगमो छपावी प्रसिद्ध करवानो उद्योग चालु कर्योछे.ए स्वधर्माग्रही बाबु साहेबें मने हाल श्री सूयगडांग सूत्र छापवानी आज्ञा करी ते में यथा बुद्ध्यनुसार सुधारीने मूल सूत्र, दीपिका, टीका तथा बालावबोध सहित छाप्युं छे. एमां दृष्टिदोषथी वा बुद्धिदोषथी अज्ञानरूप अंधकारना पराधीन पणाथी कोइ अशुद्धपद, वा शब्दनी योजना थइ होय तो सज्जन पुरुषोएं तेने माटे मने क्षमा करवी. यद्यपि आ मारो विवेक योग्य नथी केम के सज्जनोनो तो एवो स्वनावज होय छे के कोइ पण सत्कर्ममां दोष तेउनी दृष्टिगोचर थतो नथी, ते छतां पूर्वें श्रेष्ठ ग्रंथकारोएं एवी

पद्धति राखी छे तेने अनुगत थईने में पण ए विवक कीधो छे. सज्जनो पासें क्षमा मागी, तेना करतां विशेषपणें दुर्जनो पासें क्षमा मागुं छुं, केम के तेउनो स्वभावज एवो होय छे के कोइना हाथथी शुभ कृत्य थाय छे ते जोइ तेमने मनःसंताप उपजे छे अने बीजानी हानी थाय तेमां तेउ लाभ समजे छे. बीजाना दोष कहाडवामां महा पंमित होय छे. बीजाना कल्याणरूप घृतनी उपर माखी थइ बेसे छे इत्यादिक अगणित दीर्घदोषोयें करी युक्त दुष्टजनो होय छे, एवा दुष्टजनो उलूक समान छे तेथी तेउ आ जिनवाणी रूप सूर्यना प्रकाश थकी अंध थइने विपर्यासने पामशे, अने द्वेष बुद्धिथी ईर्ष्या करशे तेथी तेमना हृदयमां ताप उत्पन्न थशे तेने माटें हुं तेमनी पासें क्षमा मागुं छुं, कारणके, ते ताप उत्पन्न थवानुं कारण तेउ मने गणशे. अस्तु.

शा० भी० मा०.

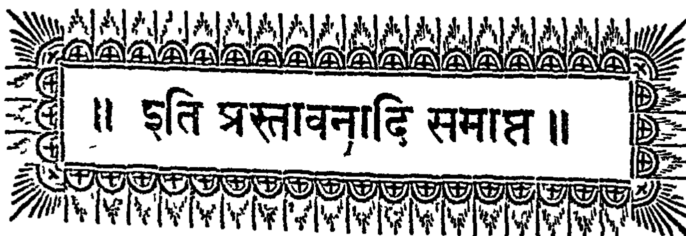
ज्ञान प्रसाररूप पुण्यकर्म उपार्जन करवामां प्रथम पंक्तिमां गणवा लायक महान्पुरुष जेणे लोकोपकारने अर्थें पिस्तालीश आगम मूल तथा तेउमांथी जेनी टीका प्रमुख जे अंग मले ते सहित मुद्रित करी प्रसिद्ध करवानो उद्योग आ समय मां प्रसार कीधो छे; तेवा सज्जन गृहस्थोनी उत्पत्ति विषे सहज लख्या विना मारी कलम अन्यकार्य करवामां चाली शकती नथी. तेथी यत्किंचित् लखुं छुं.

बंगाला इलाकामां बालोचर, मकसुदाबाद, अने मुरसिदाबाद एवा त्रण नामें उलखातुं सुंदर शहेर छे. ज्यां कृष्णगढथी आवी निवास करनारा उसवंशरूप नंदन वनमां कल्पवृक्ष समान दुगडगोत्रीय, धर्म, न्याय, विवक अने विनयादिक श्रेष्ठगुणें युक्त, तेमज सर्व सत्यवादिउमां अग्रेसर, महाबुद्धिनिधि, दीन जीवने तन, मन, धनवडे सहाय करनार, रूडा स्वभाववाला, पुण्य प्रभावरूप चंद्रना प्रकाशवडे दिशाउने प्रकाश करनारा एवा "राय बुद्धसिंहजी" नामें श्रावक श्रीजिनधर्म उपर महोटा श्रद्धावान् हता. तेमनी कुशालादे नामें पत्नीनी कुक्षिथकी संवत् १७३७ ना माघवदि एकमने गुरुवारने दिवसें राय प्रतापसिंहनामें कुलदीपक सुपुत्र उत्पन्न थया. तेउ सर्व धनाढ्योमां शिरोमणि अने महाधर्मनिष्ठ तेमज क्षमावान् तथा धर्माऽधर्मना निर्णय करनाराउमां अग्रेसर थया. तेमनी चतुर्थ पत्नीनुं नाम महताबबाई हतुं. तेमणे उसवंशमां मुकुटमणि, न्यायमार्गें लक्ष्मीनुं उपार्जन करनार तथा धर्म, अर्थ, काम, ए त्रिवर्गना साधनारा अने प्राणिमात्रने विषे दयार्द्रपणाएं युक्त, एवा महातेजस्वी बे पुत्रोने जन्म आप्यो. तेमां वडा पुत्रनुं नाम "रायलक्ष्मीपति सिंह बाहादुर" तथा जेमणे आवा ग्रंथो छपावी प्रसिद्ध करवानो उद्योग आरंभ्यो छे, ते कनिष्ठ पुत्रनुं नाम "रायधनपति सिंह बाहादुर" छे. ए बेहु सद् गृहस्थो, सद्गुणनिधान अने मनुष्य मात्रना कल्याणमां उत्सुक छे, माटें आ जिनधर्म

प्रेरक उत्तम ग्रंथ छपावी एमणे पोताना जन्मनुं सार्थक कर्युं छे. एवा परमार्थ कार्यो, ए भाग्यशालीओने हाथे प्रतिदिवस थाओ. एवी मारी वारं वार विज्ञापना छे.

॥ काव्य छंद ॥

जिनवच पियूष पान, करन जो अति अभिलाषी;
एहि रातिदिन ध्यान, चित्तमें रहत विभाषी ;
कथा सुनत युतप्रीति, रीति अद्भुत धरी हीमें;
ज्ञान वृद्धिके हेत, अधिक उत्सुक सबहीमें. १
जिहिँ मातुश्री प्रान, त्यागि गय सुरभव मांही;
सुमरन तिनके नाम, कीय निश्चय इक आंहीं ;
सबहीं आगम छापि, प्रसिद्ध करिय या जगमें;
बहुत प्रानि अवलोकि, बांचि सुनि वह ता मगमें. २
चलत सोइ उद्योग, करन मुद्रित सब आगम;
तिनमें इक मुद्रि दीन्ह, इतहिं जब भयो समागम ;
सूत्र कृतांग पवित्र, डुतिय जो अंग कहावै;
सब विधि अति उत्कृष्ट, सुनत बांचत मन भावै. ३
सो किय छापि प्रसिद्ध, होइ मनमें उल्लासा;
भयो एहउपकार, मोरि मति परम प्रकाशा ;
बाबु साब परताप, जानि यह अर्पण करहुं ;
सदा रहहुं जगमांहि, मनुष अस भावन धरहुं. ४
धर्म वृद्धि के हेत, बुद्धि अति उदार कीनी;
लीनी कीर्ति अखंड, सहाय तन मन धन दीनी;
सफल कीन नर देह, धन्य धनपतिसिंह जगमें,
अमर आपका नाम, रहो जिनधर्म ग्रंथमें. ५



॥ श्रीसद्गुरुभ्योनमः ॥

॥ अथ ॥

॥ श्रीसूयगडांगसूत्र द्वितीयांगानुक्रमणिका प्रारंभः ॥

॥ तत्र ॥

॥ प्रथम श्रुतस्कंधस्य षोडशाध्ययनानुक्रमणिका ॥

पहेलुं समयाख्य नामा अध्ययन छे, तेमां स्वसमय अने परसमयनी प्ररूपणा करी छे. ए अध्ययनना चार उद्देशा छे. तेमध्यें पहेला उद्देशामां छ. अर्थाधिकार छे, बीजा उद्देशामां चार अर्थाधिकार छे, त्रीजा उद्देशामां बे अर्थाधिकार छे अने चोथा उद्देशामां एकज अर्थाधिकार छे. ते मध्यें अनुक्रमें प्रथमाध्ययनना चार उद्देशामांहेला प्रत्येक अर्थाधिकारनी अनुक्रमणिका दर्शावियें छैयें.

॥ तत्र प्रथमोद्देशानुक्रमणिका ॥

१ पहेला उद्देशाना पहेला अर्थाधिकारनी प्रथम गाथामां आचारांग साथें आ सूयगडांगनो संबंध, एवी रीतें मेळव्यो छे के आचारांगमां छकायनुं स्वरूप जाणवुं, एटले ज्ञान कह्युं, ते ज्ञानप्राप्ति थया पछी ज्ञानपूर्वक क्रिया करवी. ते संबंधें आरंभमां (बुज्झिज्ज) ए गाथाथी संबंध छे. ते संबंध मेळवीने पछी पांचमी गाथा पर्यंत स्वसमयनुं स्थापन कर्युं छे. ते वार पछी आठमी गाथा पर्यंत परसमयी जे पंचमहाभूतवादी तेनुं मत कहेलु छे. ते आ प्रमाणे के पृथवी, अप्, तेज, वायु अने आकाश, ए पांचनुं सर्वत्र व्यापकपणुं छे माटें ए पांच महाभूतज सर्वत्र छे परंतु आत्मा छेज नही. ए रीतें एमनुं मत कहीने पछी तेनुं खंमन कर्युं छे.

२ पहेला उद्देशाना बीजा अर्थाधिकारमां चेतनाचेतन सर्वने विषे एक आत्मा वर्त्ते छे माटें सर्व पदार्थ एक आत्मरूपज छे परंतु शरीर शरीरने विषे जूदो जूदो अत्मा नथी. एवो आत्माद्वैतवादीनुं मत नवमी गाथा पर्यंत दर्शावीने पछी दशमी गाथामां तेनुं खंमन कर्युं छे.

॥ द्वितीयोद्देशानुक्रमणिका ॥

॥ तृतीयोद्देशानुक्रमणिका ॥

॥ चतुर्थोद्देशानुक्रमणिका ॥

॥ अथ द्वितीयाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

बीजुं वैतालीयनामा अध्ययन छे. एमां त्रण उद्देशक छे. प्रत्येक उद्देशकमां एकेक अर्थाधिकार छे तेनी अनुक्रमणिका करीयें छैयें.

॥ अथ तृतीयाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

त्रीजुं उपसर्ग परिज्ञानामें अध्ययन छे. एमां चार उद्देशक छे ते मध्यें त्रीजा उद्देशामां बे अर्थाधिकार छे अने बाकी ना त्रणे उद्देशामां प्रत्येकें एकेक अर्थाधिकार छे. तेनी अनुक्रमणिका करीयें छैयें.

॥ अथ चतुर्थाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

चोथुं स्त्रीपरिज्ञानामें अध्ययन छे. एमां बे उद्देशक छे, एकेक उद्देशकमां एकेको अर्थाधिकार छे. तेनी अनुक्रमणिका करीयें छैयें.

॥ अथ पंचमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

पांचमुं निरयविभक्ति नामें अध्ययन छे. एमां बे उद्देशा छे, प्रत्येक उद्देशामां एकेक अर्थाधिकार छे तेनी अनुक्रमणिका लखीयें छैयें.

॥ अथ षष्ठाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथ सप्तमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथाष्टमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथ नवमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथ दशमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथ एकादशाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथ द्वादशाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथ षोडशाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

॥ अथ ॥

॥ द्वितीय श्रुतस्कंधस्य सप्ताध्ययनानुक्रमणिका ॥



॥ तत्र ॥

॥ प्रथमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

ज्ञानप्राप्ति थती नथी तेथी ते पौंमरिक कहेवाय नहिं. ते
नुं सविस्तर वर्णन तथा जे सत्साधु छे ते सम्यक्दर्शनादिक
एवा मोक्षमार्गमां प्रवर्त्तता कर्मना मोचक जाणवा, ते
प्रतिपादन कर्युं छे. आ अध्ययनमां जूदा जूदा शाठ
आलावा छे, तेनी अनुक्रमणिका लखीयें छैयें.

॥ अथ द्वितीयाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

बीजुं क्रिया स्थानक नामा अध्ययन छे. एमां एक उद्देशक अने एकज अर्थाधिकार छे. एमां बार क्रियास्थानकें करी कर्म बंधाय छे अने तेरमा क्रियास्थानकें करी कर्म मूकाय छे. एवा तेर क्रिया स्थानकनुं स्वरूप कह्युं छे एमां पचाशी आलावा छे. तेनी अनुक्रमणिका लखीयें छैयें.

॥ अथ तृतीयाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

त्रीजुं आहारपरिज्ञानामा अध्ययन छे. तेनो एक उद्देशक तथा अर्थाधिकार पण एकज छे, तेना जूदा जूदा आ छत्रीश आलावा छे तेनी अनुक्रमणिका लखियें छैयें.

॥ अथ चतुर्थाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

चोथुं प्रत्याख्यान क्रियानामा अध्ययन छे एमां एकज उ देशक अने अर्थाधिकार पण एकज छे. एना जूदा जूदा अगीआर आलावा छे तेनी अनुक्रमणिका लखीयें छैयें.

॥ अथ पंचमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

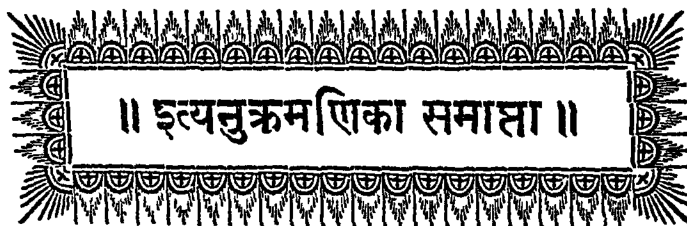
५ पांचमुं आचारश्रुत अने अनाचारश्रुत एवे नामें अध्ययन ले. तेमां एक उद्देशक अने एकज अर्थाधिकार ले. तेमां बधी मलीने तेत्रीश गाथाउ ले ते मध्यें आचारमां व्यवस्थित पुरुषें आचार अंगीकार करीने अनाचारनो त्याग करवो ते माटें आ अध्ययनमां अनाचारनो प्रतिषेध कर्यो ले, केम के अनाचारनो त्याग करवा थकी रूडा प्रकारनुं प्रत्याख्यान थाय ले माटें आ लोक शाश्वत ले अथवा नथी तथा न्हाना महोटा जीवोनी हिंसामां कांइ विशेष नथी तथा आहार आश्री आचार अनाचार कांइ पण नथी. इत्यादिक परदर्शनीना आगम आश्री बोलवुं ते अनाचार ले, माटें तेनो निषेध करीने पढी बारमी गाथाथी त्रेवीशमी

॥ अथ षष्ठाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

बहुं आर्द्रकीयनामा अध्ययन बे. एमां एक उद्देशक अ ने एकज अर्थाधिकार बे. ते मध्यें पच्चावन गाथाउं बे. तेनी अनुक्रमणिका लखीयें बैयें.

॥ अथ सप्तमाध्ययनस्यानुक्रमणिका ॥

सातमुं नालंदीय नामा अध्ययन छे. तेमां एकज उद्देशक अने एकज अर्थाधिकार छे, एमां जूदा जूदा चालीश आलावा छे पूर्वाध्ययनमां साधुना आचार कह्या तेम आ अध्ययनमां श्रावकना आचार कह्या छे तेनी अनुक्रमणिका लखीयें छैयें.


॥ इत्यनुक्रमणिका समाप्ता ॥

रायधनपतसिंघ बाहादुरका जैनागम संग्रह

नाग दुसरा.

॥ ॐनमो वीतरागाय ॥

अथ

॥ द्वितीयंसूत्रकृतांगं ॥

गुर्जरन्नाषासहितं श्रीहर्षकुलकृतदीपिकायुक्तं शीलंगाचार्यकृतटीकायुतंच प्रारन्यते.

तत्रमूलं ॥ बुझिज्जत्तितिउट्टिज्जा, बंधणं परिजाणिया॥किमाह बंधणं वीरो किंवा जाणंति उट्टई ॥ १ ॥ चित्तमंतमचित्तंवा. परिगिझ किसामवि ॥ अन्नंवा अणुजाणाइ एवं दुक्काणमुच्चइ ॥ २ ॥

प्रथम गुर्जर न्नाषामां अर्थकर्तानुं मंगलाचरण.

अर्थ–प्रणम्य सद्गुरून् नक्त्या बालानां बोधहेतवे ॥ किंचित् सूत्रकृतांगस्य लिख्यते वार्तिकं मया ॥ १ ॥ प्रथम श्रीआचारांग कहीने पढी सुयगडांग कह्युं तेनो संबंध मेलवेढे. जे कारण श्री आचारांग मांहे, (जीवो ढकाय परू, वणा य तेसिंव हेणबंधो त्ति) ॥ इत्यादि कह्युं ढे. ते सर्व परमार्थेने (बुझिज्जके०) जाणवुं जोइए. एम आचाराङ्गसाथे आ सुयगडांगनो संबंध जाणवो. ए अधिकारे बीजुं अंग सुयगडांग प्रारंनीए ढैए. अहींयां केटलाएक वादी ज्ञानेकरीनेज मुक्ति थायढे एम कहेढे, अने केटलाएक क्रियाए करी मुक्ति कहेढे. अने जैन तो एम कहेढे के ज्ञान अने क्रिया ए बन्ने थकी मुक्तिढे, ए अर्थ ए श्लोकमांहे देखाडेढे ते एमके.

(बुझिज्जत्ति) के० ढ कायनुं स्वरूप जाणे एटले ज्ञान कह्युं, अने ज्ञानपूर्वक क्रिया करवी ते सफलढे. तेकारण माटे आगल (तिउट्टिज्जा) एवो सूत्रपाठ कह्यो, ते (तिउट्टिज्जाके०) त्रोडे ते शुं जाणीने! शुं त्रोडे! ते कहेढे. (बंधणं) के० बांधीए जे जीवने प्रदेशें करी ते बंधन ज्ञानावरणादि अष्ट प्रकार कर्मरूप इत्यर्थः ते कर्मना हेतु मिथ्यात्व, अविरत, कषाय अने योग अथवा परिग्रह आरंन ए बंधनना कारणने (परिजाणिया) के० जाणे. पण एकला जाणपणाथकी वांढितार्थसिद्धिदुर्लनढे; ते माटे क्रिया देखाडेढे. ते बंधन ज्ञपरिज्ञाए करी जाणीने पढी प्रत्याख्यानपरिज्ञा जे संयमानुष्ठान तेणे करी बंधनने त्रोडे. एटले आत्माथकी कर्म दूर करे, एवुं वचन श्रीसुधर्मास्वामिनाषित सांनलीने जं

बूस्वामिप्रमुख शिष्य पूंबेबे के, (किमाहबंधणंवीरो) के० श्रीमहावीर देवे बंधन केवुं कह्युं बे! अथवा (किंवा जाणंतिउट्टइ) के० शुं जाणीने ते बंधन त्रोडे? इति प्रथम श्लोकार्थः॥१

हवे बंधननुं कारण कहेबे; ए जगतमांहे ज्ञानावरणीयादिक जे कर्म ते बंधन जाणवुं, ते कर्म बांधवानां कारण आरंन अने परिग्रहबे. तेमां पहेलुं परिग्रह देखाडेबे, (चित्तमंतमचित्तंवा) के० सचित्तते द्विपद चतुष्पदादिक अने अचित्तते सुवर्णरूप्यादिक ए वे प्रकारे परिग्रहबे, ते (परिगिज्ज किसामवि) के० थोडा तृण तुषादिक पोतानीपासे परिग्रहीने (अन्नंवा) के० अनेरा बीजा पासे परिग्रहावे तथा (अणु जाणाइ)के०परिग्रह करतांने अनुमोदे. एवो जीव, (एवं) के०एरीते (डुक्का णमुच्चइ) के० डुःखथकी न मूकाए ॥२॥

श्रीः ॥ अथ श्री द्वितीयांगदीपिका प्रारभ्यते ॥

॥प्रणम्य श्रीजिनं वीरं, गौतमादिगुरूंस्तथा ॥ स्वाम्योपकृतये कुर्वे द्वितीयांगस्य दीपिकां ॥१॥ इह हि प्रवचने चत्वारोऽनुयोगाः ॥ तथाहि चरणकरणानुयोगः १ ड्व्यानुयोगः २ धर्मकथानुयोगः ३ गणितानुयोगश्च ४ तत्र प्रथमं श्रीमदाचारांगं चरणकरणानुयोगप्राधान्येन व्याख्यातं ॥ अथेदं श्रीसूत्रकृताख्यं द्वितीयांगं ड्व्यानुयोगप्राधान्येन व्याख्यायते ॥ सूत्रकृतांगमिति कः शब्दार्थः ॥ उच्यते ॥ सूत्रं स्वपरसमयसूचनं कृतं येन तत्सूत्रं तदेवांगमिति ॥ तत्रश्रुतस्कंध द्वयं ॥ प्रथमश्रुतस्कंधे षोडशाध्ययनानि ॥ द्वितीये सप्त ॥ तत्र प्रथमश्रुतस्कंधस्य प्रथमाध्ययने चत्वारउद्देशकाः ॥ तत्रापि पूर्वं प्रथमोद्देशकः ॥ तस्यायमादिःश्लोकः ॥ (बुज्झिज्जत्ति०) ॥१॥ व्याख्या ॥ बुध्येत जानीयात् ॥ किंतत् ॥ बंधनं बध्यते जीवोऽनेन बंधनं ज्ञानावरणाद्यष्टप्रकारं कर्म ॥ तद्धेतवो मिथ्यात्वादयोवा परिग्रहारंनादयो वा बंधनं जानीयादित्युक्तं ॥ नच ज्ञानमात्रेण सिद्धिरित्याह ॥ (तिउट्टिज्जा) (परिजाणिआ) परिज्ञायत्रोटयेत् अपनयेत् आत्मनःपृथक्कुर्यादित्यर्थः ॥ अथजंबुस्वामी शिष्यः श्रीसुधर्मस्वामिनमाह ॥ (किमाहेति) ॥ श्रीवीरः किंबंधनं आह उक्तवान् किंवा जानन् बंधनं त्रोटयति ॥ उत्तरमाह ॥ १ ॥ (चित्तेति) ॥ चित्तवत् सचित्तं द्विपदचतुष्पदादि अचित्तं कनकरजतादि तद्द्वयमपि परिगृह्य परिग्रहं कृत्वा कृशमपि स्तोकमपि स्वयमन्यान्वा ग्राहयित्वा ॥ गृण्हतोवाऽन्याननुज्ञाय एवंडुखान्नमुच्यते॥ परिग्रहएव परमानर्थमूलमित्युक्तं ॥ परिग्रहतश्चावश्यंनावारंनस्तस्मिंश्च प्राणातिपात इति दर्शयति. ॥ २ ॥

॥ ॐनमःसिद्धाय ॥ अथ श्री शीलंगाचार्यकृत टीका ॥ आर्या वृत्तं ॥

स्वपरसमयार्थसूचकमनंतगमपर्ययार्थगुणकलितम् ॥ सूत्रकृतमंगमतुलं, विवृणोमि जिनान्नमस्कृत्य ॥ १ ॥ ॥ वसंततिलकावृत्तम् ॥ ॥ व्याख्यातमंगमिह यद्यपि सूरिमुख्यैः,

नक्त्या तथापि विवरीतुमहं यतिष्ये ॥ किं पक्षिराजगतमप्यवगम्य सम्यक्, तेनैव वांबति पथा शलनो न गंतुम् ॥ १ ॥ ॥ इंद्रवज्रावृत्तम् ॥ ॥ ये मध्यवज्ञां व्यधुरिद्धबोधा, जानंति ते किंचन तानपास्य ॥ मत्तोपि यो मंदमतिस्तथास्ति, तस्योपकाराय ममैष यत्नः ॥ ३ ॥ इहापारसंसारांतर्गतेनाऽसुमताऽवाप्याऽतिडुर्लनं मनुजत्वं सुकुलोत्पत्तिसमग्रेंड्रियसामग्र्यायुपेतेनाऽर्हद्दर्शनमशेषकर्मोच्छित्तये यतितव्यम् ॥कर्मोच्छेदश्च सम्यग्विवेकसव्यपेक्षोऽसावप्याप्तोपदेशमंतरेण न नवति ॥ आप्तश्चात्यंतिकाद्दोषक्षयात्सचार्हन्नेवातस्तत्प्रणीतागमपरिज्ञाने यत्नो विधेयः ॥ आगमश्च द्वादशांगादिरूपः सोप्यार्यरक्षितमिश्रैरैदंयुगीनपुरुषानुग्रहबुद्ध्या चरणकरणद्रव्यधर्मकथागणितानुयोगनेदाच्चतुर्धा व्यवस्थापित.।तत्राचारांगं चरणकरणप्रधान्येन व्याख्यातमधुनाऽवसरायातं द्रव्यप्राधान्येन सूत्रकृताख्यं द्वितीयमंगं व्याख्यातुमारन्यत इति । ननु चार्थस्य शासनाच्छास्त्रमिदं ।शास्त्रस्य चाशेषप्रत्यूहोपशांत्यर्थमादिमंगलं तथा स्थिरपरिचयार्थं मध्यमंगलं शिष्यप्रशिष्यविच्छेदार्थं चांत्यमंगलमुपादेयं तच्चेह नोपलन्यते । सत्यमेतत् । मंगलं हीष्टदेवतानमस्कारादिरूपं । अस्य च प्रणेतासर्वज्ञस्तस्य चापरनमस्कार्यानावान्मंगलकरणे प्रयोजनानावाच्च न मंगलानिधानं । गणधराणामपि तीर्थकृडुक्तानुवादित्वान्मंगलाकरणं । अस्मदाद्यपेक्षयातु सर्वमेव शास्त्रं मंगलं।अथवा निर्युक्तिकारएवात्रनावमंगलमनिधातुकामआह ॥ (तिच्छयरे जिनवरे, सुत्तकरे गणहरे पणमि ऊणं । सूयगडस्स नगवउ, णिज्जुत्तिं कित्तइस्सामि) ॥ १ ॥ गाथापूर्वार्द्धेनेहनावमंगलमनिहितं पश्चार्द्धेन तु प्रेक्षापूर्वकारिप्रवृत्त्यर्थंप्रयोजनादित्रयमिति । तडुक्तं–"उक्तार्थं ज्ञातसंबंधं, श्रोतुं श्रोता प्रवर्त्तते ॥ शास्त्रादौ तेन वक्तव्यः संबंधः सप्रयोजनः" । तत्र सूकृतस्येत्यनिधेयपदं । निर्युक्तिं कीर्त्तयिष्ये इति प्रयोजनपदं । प्रयोजनं तु मोक्षावाप्तिः । संबंधस्तु प्रयोजनपदानुमेय इति पृथक् नोक्तः ॥ तडुक्तं–"शास्त्रं प्रयोजनं चेति संबंधस्याश्रयावुनौ ॥ तडुक्त्यंतर्गतस्तस्माद्भिन्नो नोक्तः प्रयोजनादिति समुदायार्थः ॥ अधुनाऽवयवार्थ. कथ्यते ॥ तत्र तीर्थं द्रव्यनावनेदाद्द्विधा । तथापि द्रव्यतीर्थं नद्यादेः समः समुत्तरणमार्गः ॥ नावतीर्थं तु सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि॥संसारार्णवाडुत्तारकत्वात् तदाधारोवा संघः प्रथमगणधरोवा तत्करणशीलास्तीर्थकरास्तान्नत्वेति क्रिया । तत्रान्येषामपितीर्थकरत्वसंनवेत द्व्यवच्छेदार्थमाह (जिनवरानिति) ॥ रागद्वेषमोहजितो जिनाः । एवंनूताश्च सामान्यकेवलिनोऽपिनवंति त द्व्यवच्छेदार्थमाह–(वराः) प्रधानाश्चतुस्त्रिंशदतिशयसमन्वितत्वेन तान्नत्वेति ॥ एतेषां च नमस्कारकरणमागमार्थोपदेष्टृत्वेनोपकारित्वात् । विशिष्टविशेषणोपादानं च शास्त्रस्य गौरवाधानार्थं शास्तुः प्राधान्येनेह शास्त्रस्यापि प्राधान्यं नवतीति नावः । अर्थस्य सूचनात्सूत्रं तत्करणशीलाः सूत्रकारास्ते च स्वयंबुद्धादयोपि नवंतीत्यतआह (गणधरास्तांश्च नत्वेति) ॥ सामान्याचार्याणां गणधरत्वेपि तीर्थक

रनमस्कारानंतरोपादानाद्गौतमादय एवेह विवक्षिताः ॥ प्रथमश्चकारः सिद्धाद्युप लक्षणार्थो द्वितीयः समुच्चितः । क्त्वाप्रत्ययस्य क्रियांतरसव्यपेक्षतामाह–स्वपर समयसूचनं कृतमनेनेति सूत्रकृतस्तस्य महार्थवत्वाद्भगवांस्तस्यानेन च सर्वज्ञप्रणी तत्वमावेदितं भवति ॥ (निर्युक्तिं कीर्तयिष्ये) इति ॥ योजनंयुक्तिः । अर्थघटना निश्चये नाधिक्येन वा युक्तिर्निर्युक्तिः । सम्यगर्थप्रकटनमिति यावत् । निर्युक्तानां वा सूत्रेष्वेव प रस्परसंबंधानामर्थानामाविर्भवनं । युक्तशब्दलोपान्निर्युक्तिरिति । तां कीर्त्तयिष्येऽभिधास्य इति । इह सूत्रकृतस्य निर्युक्तिं कीर्त्तयिष्ये इत्यनेनोपक्रमद्वारमुपक्षिप्तं तच्चेहोद्देशोनिर्देशो इत्यादिनेपदनिर्हितमिति । तदनंतरं निक्षेपः ॥ सचत्रिविधः । तद्यथा–ओघनिष्पन्नो नामनिष्पन्नः सूत्रालापकनिष्पन्नश्चेति । तत्रौघनिष्पन्ने निक्षेपेऽगं नामनिष्पन्ने तु निक्षे पे सूत्रकृतमिति॥ १ ॥तत्र तत्त्वभेदपर्यायैर्व्याख्येत्यतः पर्यायप्रदर्शनार्थं निर्युक्तिकृदाह(सूय गडं अंगाणं, बितियं तस्स य इमाणि नामाणि ॥ सूयगडं सूत्तकडं,सूयगडं चेव गोणाइं ॥) ॥ २ ॥ सूत्रकृतमित्येतदंगानां द्वितीयं तस्य चामून्येकार्थिकानि । तद्यथा–सूत्रमुत्पन्नमर्थ रूपतया तीर्थकृद्भ्यः । ततः कृतं ग्रंथरचनया गणधरैरिति । तथा (सूत्रकृतमिति) । सूत्रा नुसारेणतत्वावबोधः क्रियतेऽस्मिन्निति । तथा सूचाकृतमिति । स्वपरसमयार्थसूचनं सूचा साऽस्मिन्कृतेति।एतानि चास्य गुणनिष्पन्नानि नामानीति॥ २॥सांप्रतं सूत्रकृतपदयोर्निक्षेपा र्थमाह (दव्वं तु पोंडयादी, भावे सुत्तमिह सूयतं नाणं । सण्णासंगहवित्ते, जातिणिबद्धेय कब्बादी) ॥ ३ ॥ (दव्वमित्यादि) । नामस्थापनेऽनादृत्य सूत्रं दर्शयति (पोंडया इति)। पोंडगं च वनीफलाद्रुत्पन्नं कार्पासिकं । आदिग्रहणादंडजवालजादेर्ग्रहणं । भावसूत्रंत्वि हास्मिन्नधिकारे सूचकं ज्ञानं श्रुतज्ञानमित्यर्थः ॥ तस्यैव स्वपरार्थसूचकत्वादिति । तच्च श्रुतज्ञानसूत्रं चतुर्धा भवति । तद्यथा–संज्ञासूत्रं संग्रहसूत्रं वृत्तबद्धं जातिनिबद्धं । तत्र संज्ञासूत्रं यत् स्वसंकेतपूर्वकं निबद्धं ॥ तद्यथा–जे एसागरियं नसेवे सवामगंधं परिण्ण यणिरामगंधो परिव्वए इत्यादि । तथा लोकेपि पुद्गलाः संस्कारक्षेत्रजाइत्यादि ॥ संग्रहसूत्रं तु यत्प्रभूतार्थसंग्राहकं ॥ तद्यथा द्रव्यमित्याकारिते समस्तधर्माऽधर्मादिद्रव्यग्रहइति । यदिवोत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सदिति ॥ वृत्तनिबद्धं सूत्रं पुनर्यदनेकप्रकारया वृत्तजात्या निब द्धं ॥ तद्यथा(बुज्झिज्जत्तितिउट्टिज्जेत्यादि)॥ जातिनिबद्धं तु चतुर्धा॥ तद्यथा कथनीयंकथ्य मुत्तराध्ययनज्ञाताधर्मकथादि पूर्वर्षिचरितकथानकप्रायत्वात्तस्य । तथा गद्यं–ब्रह्मचर्या ध्ययनादि तथा पद्यं–छंदोनिबद्धं तथा गेयं यत्स्वरसंचारेण गीतिप्रायं निबद्धं । तद्यथा– कापिलीयमध्ययनं अधुवेअसासयंमि संसारंमि डुक्खपउराए इत्यादि ॥३॥ इदानीं कृतप दनिक्षेपार्थं निर्युक्तिकृद्गाथामाह (करणं चकारउय, कडं च तिण्हंपि छक्कनिक्खेवी; दव्वे खित्ते काले, भावेणउ कारउ जीवो) ॥ ४ ॥ (करणंचेत्यादि) । इहकृतमित्यनेन कर्मोपात्तं

न चाकर्तृकं कर्म भवतीत्यर्थात्कर्तुराक्षेपो धात्वर्थस्य च करणस्यामीषां त्रयाणामपि प्रत्येकं नामादिः । षोढात्तिक्षेपस्तत्रगाथापश्चार्द्धेनाल्पवक्तव्यत्वात्तावत्करणमतिक्रम्यकारकस्य निक्षेपमाह–तत्र नामस्थापने प्रसिद्धत्वादनादृत्य द्रव्यादिकं दर्शयति (दव्वेइति ॥ द्रव्यविषये कारकश्चिंत्यः । सच द्रव्यस्य द्रव्येण द्रव्यभूतो वा कारको द्रव्यकारकः । तथा क्षेत्रे भरतादौ यः कारको यस्मिन् वा क्षेत्रे कारको व्याख्यायते सक्षेत्रकारकः । एवं कालेपि योज्यं ॥ भावेन तु भाव द्वारेण चिंत्यमानोत्र कारकोयस्मात्सूत्रस्य गणधरः कारकः ॥ एतच्चसूत्रकृदेवोत्तरत्र वक्ष्यति (णिइ अणुन्नावेत्यादौ)॥४॥सांप्रतं करणव्याचिख्यासया नामस्थापने मुक्त्वा द्रव्यादिकारणनिक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह ॥ (दव्वंपउंगवीससं, पउंगसामूल उत्तरे चेव ॥ उत्तरकरणं वंजण, अत्थो उउवरकरोसव्वो) ॥५॥ (दव्वइत्यादि) द्रव्ये द्रव्यविषये करणं चिंत्यते । तद्यथा द्रव्यस्य द्रव्येण द्रव्यनिमित्तंवा करणमनुष्ठानं द्रव्यकरणं । तत्पुनर्द्विधा । प्रयोगकरणं विस्त्रसाकरणं च । तत्र प्रयोगकरणं पुरुषादिव्यापारनिष्पाद्यं । तदपि द्विविधं । मूलकरणमुत्तरकरणं च । तत्रोत्तरकरणं गाथापश्चार्द्धेन दर्शयति–उत्तरत्र करणमुत्तरकरणं कर्णवेधादि । यदिवा तन्मूलकरणं घटादिकं येनोपस्करेण दंडचक्रादिना अभिव्यज्यते स्वरूपतः प्रकाश्यते तदुत्तरकरणं । कर्त्तुरुपकारकः सर्वोप्युपस्करार्थ इत्यर्थः॥५॥पुनरपि प्रपंचतो मूलोत्तरकरणे प्रतिपादयितुमाह॥(मूलकरणं सरीरा, णि पंचतिसुकसुखंदमादीयं । दव्विंदियाणि परिणा, मियाणि विसउंजहादीहिं) ॥६॥ (मूलकरणमित्यादि) । मूलकरणमौदारिकादीनि शरीराणि पंच । तत्र चौदारिकवैक्रियाहारकेषु त्रिषूत्तरकरणं कर्णस्कंधादिकं विद्यते । तथाहि सीसमुरोयर पिठी, दो बाहू ऊरुयाय अठंगत्ति; त्रयाणामप्येतन्निष्पत्तिर्मूलकरणं । कर्णस्कंधाद्यंगोपांगनिष्पत्तिस्तूत्तरकरणं ॥ कार्मणतैजसयोस्तु स्वरूपनिष्पत्तिरेव मूलकरणमंगोपांगाभावान्नोत्तरकरणं ॥ यदिवौदारिकस्य कर्णवेधादिकमुत्तरकरणं । वैक्रियस्यतूत्तरकरणमुत्तरवैक्रियं दंतकेशादिनिष्पादनरूपं वा आहारकस्यतु गमनाद्युत्तरकरणं ॥ यदिवौदारिकस्य मूलोत्तरकरणे गाथापश्चार्द्धेन प्रकारांतरेण दर्शयति–द्रव्येंद्रियाणि कलंबुकापुष्पाद्याकृतीनि मूलकरणं तेषामेव परिणामिनां विषौषधादिभिः पाटवाद्यापादनमुत्तरकरणमिति ॥६॥ सांप्रतमजीवाश्रितं करणमभिधातुकाम आह (संघायणेयपरिसा, डणाय मीसे तहेव पडिसेहो ॥ पडिसंखसगडथूणा, उट्टतिरिच्छादिकरणंच)॥७॥(संघायणेयइत्यादि)॥ संघातकरणं आतानविताभीभूततंतुसंघातेन पटस्य ॥ परिसाटकरणं करपत्रादिनाशंखस्य निष्पादनं ॥ संघातपरिसाटकरणंशकटादेस्तदुभयनिषेधकरणं स्थूणादेरूर्ध्वतिरश्चीनाद्यापादनमिति ७प्रयोगकरणमभिधाय विस्त्रसाकरणाभिधित्सयाह (खंधेसुदुपएसा,दिएसु अब्भेसुविज्जुमाईसु । णिप्पसुगाणिदवा,णि जाणतंवीससाकरणं) ॥८॥ (खंधेसु इत्यादि) । विस्त्रसाकरणं साद्यनादिभेदाद्द्विधा ।

तत्रानादिकं धर्माऽधर्माऽकाशानामन्योन्यानुवेधेनावस्थानं । अन्योन्यसमाधानाश्रयणाच्च सत्यप्यनादित्वे करणत्वाविरोधः । रूपिद्रव्याणां च द्व्यणुकादिप्रक्रमेण भेदसंघाताभ्यां स्कंधत्वापत्तिः । सादिकं करणं पुद्गलद्रव्याणां च दशधा परिणामः । तद्यथा बंधन गति संस्थान भेद वर्ण गंध रस स्पर्श अगुरुलघु शब्दरूप इति । तत्र बंधः स्निग्धरूक्षत्वात् गतिपरिणामो देशांतरप्राप्तिलक्षणः । संस्थानपरिणामः परिमंडलादिकः पंचधा । भेदपरिणामः खंडप्रतरचूर्णिकाऽनुतटिकोत्करिकाभेदेन पंचधैव । खंडादिस्वरूपप्रतिपादकं चेदं गाथाद्वयं । तद्यथा (खंडेहि खंडभेयं, पयरब्भेयं जहस्स पडलस्स ॥ चुन्नं चुन्नियभेयं, अणुतडियं वंसवक्कलियं) ॥१॥ (डुंडुंमि समारोहे, भेए उक्केरियाय उक्केरं ॥ वीसस पउगमीसग, संघाय विउगविविहगमो)॥ २ ॥ वर्णपरिणामः पंचानां श्वेतादीनां वर्णानां परिणतिर्द्व्यादिसंयोग परिणतिश्च । एतत्स्वरूपं च गाथाभ्योऽवसेयं । ताश्चेमाः (जइ कालगमेगगुणं, सुक्किलयंपि य हविज्ज बहुय गुणं । परिणामिज्जइ कालं सुक्केण गुणाहियगुणेणं ॥ १ ॥ जइ सुक्किलमेगगुणं कालगदव्वं तु बहुगुणं जइय । परिणामिज्जइ सुक्कं, कालेण गुणाहियगुणेणं ॥ २ ॥ जइ सुक्कं एक्कगुणं, कालगदव्वंपि एक्कगुणमेव । कावोयं परिणामं, तुल्लगुणत्तेण संभवइ ॥३ एवं पंचविवन्ना, संजोएणं तु वन्नपरिणामो, एकत्तीसं भंगा, सव्वेवि य ते मुणेयव्वा ॥४॥ एमेवय परिणामो, गंधाण रसाण तहय फासाणं, संठाणाणय भणिउ, संजोगेणं बहुविगप्पो) ॥ ५ ॥ एकत्रिंशद्भंगा एवं पूर्यंते । दशद्विकसंयोगा दशत्रिकसंयोगाः पंचचतुष्कसंयोगा एकः पंचकसंयोगः प्रत्येकं वर्णाश्च पंचेति । अगुरुलघुपरिणामस्तु परमाणोरारभ्य यावदनंतानंतप्रदेशिकाः स्कंधाः सूक्ष्माः । शब्दपरिणामस्ततविततघनसुषिरभेदाच्चतुर्धा । तथा ताल्वोष्ठपुटव्यापाराद्यभिनिवर्त्यश्च । अन्येपि पुद्गलपरिणामाश्छायादयो भवंति ते चामी (छाया य आयवो वा, उज्जोउ तहय अंधकारो य । एसो उ पुग्गलाणं, परिणामो फंदणा चेव ॥ १ ॥ सीयाणा य पगासा, छायाणाइच्चिया बहुविगप्पा । उह्णो पुणप्पगासो, णायव्वो आयवो नाम ॥ २ ॥ नविसीउ नविउह्णो, समोपगासोय होइ उज्जोउ । कालं मइलं तंपिय, वियाणतं अंधयारंति ॥ ३ ॥ दव्वस्स चलण पप्फं, दणाउ सापुण गईउ निद्दिठा । वीसस पउग मीसा, अत्तपरेणं तु उभउवी)॥ ४ ॥ तथाऽभ्रेंद्रधनुर्विद्युदादिषु कार्येषु यानि पुद्गलद्रव्याणि परिणतानि तद्विस्रसाकरणमिति॥ ७॥गतंद्रव्यकरणं इदानीं क्षेत्रकरणाभिधित्सयाऽह ॥ (णविणा आगासेणं,कीरइजं किंचि खेत्तमागासं। वंजण परियावन्नं,उच्छुकरणमादियं बहुहा) ॥८॥ (णविणेत्यादि) ॥ क्षिनिवासगत्योरस्मादधिकरणे ष्ट्रना क्षेत्रमिति । तच्चावगाहदानलक्षणमाकाशं । तेनचावगाहदानलक्षणयोग्येन विना न किंचिदपि कर्तुं शक्यत इत्यतः क्षेत्रकरणं । क्षेत्रकरणं नित्यत्वेपि चोपचारतः क्षेत्रस्यैव करणं क्षेत्रकरणं । यथा गृहादावपनीते कृतमाकाशं उत्पादिते विनष्टमि

ति । यदिवा व्यंजनपर्यायापन्नं शब्द द्वाराऽयातमिक्षुकरणादिकमितीक्षुक्षेत्रकरणं ॥ लांग लादिना संस्कारः क्षेत्रकरणं । तच्च बहुधा शालिक्षेत्रादि नेदादिति॥ए॥सांप्रतं कालकरणा निधित्सयाऽह ॥ (कालो जो जावइउ, जं कीरइ जंमि जंमि कालंमि । उहेण णामउ पुण, करणा एक्कारस हवंति) ॥१०॥ (कालोजोइत्यादि) । कालस्यापि मुख्यं करणं न संन्नवतीत्यौपचारिकं दर्शयति ॥ कालोयोयावानिति । यःकश्चिद्घटिकादिको नलिकादिना व्यवच्छिद्य व्यवस्थाप्यते तद्यथा । षष्ट्युदकपलमाना घटिका । द्विर्घटिकोमुहूर्त्तस्त्रिंशन्मुहूर्तैमहोरात्रमित्यादि तत्कालकरणमिति । य द्वा यत् यस्मिन् काले क्रियते यत्रवा काले करणं व्याख्यायते तत्कालकरणमेतदोघतः ॥१०॥ नामतस्त्वेकादशकरणानि तानि चामूनि (बवंच बालवं चैव, कोलवं तेत्तिलं तहा। गरादि वणियं चेव,विठी हवइ सत्तमा ॥११॥ सउणि चउप्पय नागं,किंसुग्घं च करणं नवे एयं । एते चत्तारि धुवा,अन्ने करणा चला सत्त ॥१२॥ चाउद्दसि रत्तीए, सउणी पडिवज्जए सदा करणं।तत्तो अहक्कमं खलु,चउप्पयं णागकिंसुग्घं) ॥१३॥ एतद्गाथात्रयं सुखोन्नेयमिति ॥११॥१२॥१३॥ इदानीं नावकरणप्रतिपादनायाह (नावे पउग वीसस, पउगसा मूल उत्तरे चेव । उत्तर कम सुय जोवण, वस्नादीनो अणादीसु) ॥१४॥ (नावे पउगेत्यादि) । नावकरणमपि द्विधा। प्रयोग विस्रसानेदात् । तत्र जीवाश्रितं प्रायोगिकं मूलकरणं पंचानां शरीराणां पर्याप्तिस्तानि हि पर्याप्तिनामकर्मोदयादौदयिके नावे वर्तमानो जीवः स्ववीर्यजनितेन प्रयोगेण निष्पादयति । उत्तरकरणं तु गाथापश्चार्द्धेनाह–उत्तरकरणं क्रमश्रुतयौवनवर्णादिचतूरूपं। तत्र क्रमकरणं शरीरनिष्पत्त्युत्तरकालं बालयुवस्थविरादिक्रमेणोत्तरोत्तरोऽवस्थाविशेषः। श्रुतकरणं तु व्याकरणादिपरिज्ञानरूपोऽवस्थाविशेषोऽपरकलानां परिज्ञानरूपश्चेति । यौवनकरणंकालकृतो वयोवस्थाविशेपो रसायनाद्यापादितोवेति ॥ तथा वर्णगंधरसस्पर्शकरणं विशिष्टेषु नोजनादिषु सत्सु यद्विशिष्टवर्णाद्यापादनमित्येतच्च पुजलविपाकित्वा द्वर्णादीनामजीवाश्रितमपिद्रष्टव्यमिति १४ इदानीं विस्रसाकरणानिधित्सयाऽह॥(वस्नादियायवस्ना,दिएसुजेकेइवीससा मेला ॥ ते हुंति थिरा अथिरा, बाया तवडुद्धमादीसु)॥१५॥ (वस्नाइत्यादि) वर्णादिका इति रूपरसगंधस्पर्शास्ते यदा परेषामपरेषां वा स्वरूपादिनां मिलंति ते वर्णादिमेलकाविस्रसाकरणं ॥ तेच मेलकाः स्थिरा असंख्येयकालावस्थायिनोऽस्थिराश्च क्षणावस्थायिनः संध्यारागाभ्रेंद्रधनुरादयोनवंति ॥ तथा बायात्वेनातपत्वेनच पुजलानां विस्रसा परिणामत एव परिणामो नावकरणं ॥ स्तनप्रच्यवनानंतरं डुग्धादेश्च प्रतिक्षणं कठिणाम्लादिनावेन गमनमिति १५सांप्रतं श्रुतज्ञानमधिकृत्य मूलकरणाऽनिधित्सयाऽह ॥ (मूलकरणं पुण सुते, तिविहे जोगे सुनासुने क्षाणे ॥ समसयसुएण पगयं, अज्ञवसाणेण य सुहेणं)॥ १६ ॥ (मूलेत्यादि) श्रुते पुनः श्रुतग्रंथे मूलकरणमिदं त्रिविधे योगे मनोवाक्का

यल्लक्षणे व्यापारे शुनाशुने च ध्याने वर्तमानैर्ग्रंथरचना क्रियते। तत्र लोकोत्तरैः शुना शुनध्यानावस्थितैर्ग्रंथरचना विधीयते ॥ लोकेत्वशुनध्यानाश्रितैर्ग्रंथग्रंथनं क्रियतइति ॥ लौकिकग्रंथस्य कर्मबंधहेतुत्वात् कर्तुरशुनध्यायित्वमवसेयं ॥ इहतु सूत्रकृतस्य तावत्स्व समयेन शुनाध्यवसायेनच प्रकृतं ॥ यस्माद्गणधरैःशुनध्यानावस्थितैरिदमंगं कृतमिति १६ तेषांच ग्रंथरचनांप्रति शुनध्यायिनां कर्म द्वारेण योऽवस्थाविशेषस्तद्दर्शयितुकामो निर्यु क्तिकृदाह ॥ (ठिइअणुनावे बंधण, निकायणनिहत्त दीहह्स्सेसु ॥ संकम उदीरणाए उदये वेदेउवसलेयं)॥१७॥(ठिइइत्यादि)। तत्र कर्मस्थितिं प्रति अजघन्योत्कृष्टकर्मस्थिति निर्गणधरैः सूत्रमिदं कृतमिति ॥ तथाऽनुनावो विपाकस्तदपेक्ष्या मंदानुनावैस्तथा बं धमंगीकृत्य ज्ञानावरणीयादिप्रकृतीर्मंदानुनावा बध्नद्भिस्तथाऽनिकाचयद्भिरेवं निधत्ता वस्थामकुर्वद्भिस्तथा दीर्घस्थितिकाः प्रकृतीर्ह्रसीयसीर्जनयद्भिस्तथोत्तरप्रकृतीर्बध्यमाना सु संक्रामयद्भिस्तथोदयवतां कर्मणामुदीरणां विदधानैरप्रमत्तगुणस्थैस्तु शाताऽशाताऽ यूंष्यनुदीरद्भिस्तथा मनुष्यगति पंचेंद्रिय जात्यौदारिक शरीर तदंगोपांगादिकर्मणा मुदये वर्तमानैस्तथावेदमंगीकृत्य पुंवेदेसति तथोवसमेति सूचनात्सूत्रमिति क्षायोपश मिकान्नावे वर्तमानैर्गणधारिनिरिदं सूत्रकृतांगं ग्रंथितमिति १७सांप्रतं स्वमनीषिकापरिहार द्वारेण करणप्रकारमनिधातुकामआह ॥ (सोऊण जिणवरमतं, गणहारी काउं तरक उवसमं ॥ अज्ञवसाणेण कयं, सूत्तमिणं तेणसूयगडं) ॥१८॥ (सोऊणेत्यादि) श्रुत्वा निशम्य जिनवराणां तीर्थकराणां मतमनिप्रायं मातृकादिपदं गणधरैर्गौतमादिनिः कृत्वा तत्रग्रंथरचने क्षयोपशमं तत्प्रतिबंधकर्मक्षयोपशमाद्दत्तावधानैरितिन्नावः ॥ शुनाध्यवसा येन वसता कृतमिदं सूत्रं तेनसूत्रकृतमिति॥१८॥इदानीं कस्मिन् योगे वर्तमानैस्तीर्थकृद्भि र्नाषितं कुत्रवा गणधरैर्दृब्धमित्येतदाह ॥(वइजोगेणपनासिय, मणेगजोगंधराणसाहूणं॥ तो वय जोगेणकयं, जीवस्स सन्नावियगुणेण) ॥ १९ ॥ (वइजोगेणेत्यादि)। तत्र तीर्थ कृद्भिः क्षायिकज्ञानवर्तिनिर्वाग्योगेनार्थः प्रकर्षेण नाषितः प्रन्नापितो गणधराणां ॥ तेच नप्राकृतपुरुषकल्पाः किंत्वनेकयोगधराः॥ तत्र योगः क्षीराश्रवादिलब्धिकलापसंबंधस्तं धारयंतीत्यनेकयोगधरास्तेषां प्रन्नाषितमिति सूत्रकृतांगाऽपेक्षया नपुंसकता ॥ साधवश्चा त्र गणधरा एव गृह्यंते तडद्देशेनैव नगवतामर्थप्रन्नाषणादिति ॥ ततोर्थं निशम्य गणधरै रपि वाग्योगेनैव कृतं तच्च जीवस्य स्वान्नाविकेन गुणेनेति ॥ अस्मिन्न्नावे नवः स्वान्नावि कः प्राकृतइत्यर्थः ॥ प्राकृतन्नाषयेत्युक्तं नवति ॥ नपुनः संस्कृतया लद्लिट्शप् प्रकृतिप्रत्य यादिविकारविकल्पनानिष्पन्नयेति ॥१९॥ पुनरन्यथा सूत्रकृतनिरुक्तमाह ॥ (अरकरगुण मतिसंघा; यणाएकम्मपरिसाडनाएय ॥ मडुनयजोगेण कयं, सुत्तमिणं तेण सूत्तगमं) ॥ २० ॥ (अरकरेत्यादि)। अक्षराणि अकारादीनि तेषां गुणोऽनंतगमपर्यायत्वमुच्चारणं

वाऽन्यथाऽर्थस्य प्रतिपादयितुमशक्यत्वात् ॥ मतेर्मतिज्ञानस्य संघटना मतिसंघटना अक्षर गुणेन मतिसंघटना ॥ भावश्रुतस्य द्रव्यश्रुतेन प्रकाशनमित्यर्थः ॥ अक्षरगुणस्य वा मत्या बुध्या संघटना रचनेति यावत् ॥ तया ऽक्षरगुणमतिसंघटनया ॥ तथा कर्मणां ज्ञानावरणा दीनां परिशाटना जीवप्रदेशेन्यः पृथक्करणरूपा तयाच हेतुनूतया सूत्रकृतांगं कृतमिति संबन्धः । तथाहि । यथा यथा गणधराः सूत्रकरणायोद्यमं कुर्वन्ति तथा तथा कर्मपरिशा टना नवति । यथा यथाच कर्मपरिशाटना तथा तथा ग्रंथरचनायोद्यमः संपद्यत इति । ए तदेव गाथापश्चार्धेन दर्शयति ।तडुनययोगेनेति ॥ अक्षरगुणमतिसंघटनायोगेन कर्मपरि शाटनायोगेन च ॥ यदि वा वाग्योगेन मनोयोगेन च कृतमिदं सूत्रं तेन सूत्रकृतमिति । इहा ऽनंतरं सूत्रकृतस्य निरुक्तमुक्तमधुना सूत्रपदस्य निरुक्तानिधित्सयाह । "सुत्तेण सुत्तियं चिय, अडा तह सूइयाय जुत्ताय ॥ तोबहुविहप्पउत्ता एया पसिद्धा अणादीया" ॥२१॥ सुत्तेणेत्यादि । अर्थस्य सूचनात्सूत्रं तेन सूत्रेण केचिदर्थाः साक्षात्सूत्रिता मुख्यतयो पात्तास्तथाऽपरे सूचिता अर्थापत्त्याक्षिप्ताः ॥ साक्षादनुपादानेपि दध्यानयनचोदनया तदा धारानयनचोदनावदिति । एवंच कृत्वा चतुर्दशपूर्वविदः परस्परं पट्स्थानपतिता नवंति । तथा चोक्तं । अरकरलंनेण समा, ऊणहिया हुंति मतिविसेसेहिं । तेविय मईविसेसा, सुयणाणप्निंतरेजाण ॥१॥ तत्र ये साक्षाडुपात्तास्तान् प्रति सर्वेपि तुल्याः ॥ ये पुनः सूचिता स्तदपेक्षया कश्चिदनंतनागाधिकमर्थं वेत्त्यपरोऽसंख्येयनागाधिकमन्यः संख्येयनागाधि कं तथान्यः संख्येयाऽसंख्येयाऽनंतगुणमिति तेच सर्वेपि युक्ता युक्त्युपपन्नाः सूत्रो पात्ताएव वेदितव्याः । तथा चानिहितं "तेवियमईविसेसे" इत्यादि । ननु किं सूत्रो पात्तेन्योऽन्येपि केचनार्थाः संति येन तदपेक्षया चतुर्दशपूर्वविदां पट्स्थानपतितत्वमुद्‍ घुष्यते । बाढं विद्यते । यतोऽनिहितं । पन्नवणिज्जानावा, अणंतनागोउ अणनिल प्पाणं । पन्नवणिज्जाणं पुण, अणंतनागो सुयनिबद्धो ॥ १ ॥ यतश्चैवं ततस्ते अर्था आगमे बहुविधं प्रयुक्ताः सूत्रैरुपात्ताः केचन साक्षात्केचिदर्थापत्त्या समुपलन्यन्ते । य दि वा क्वचिद्देशग्रहणं क्वचित्सर्वार्थोपादानमित्यादि । यैश्च पदैस्ते अर्थाः प्रतिपाद्यन्ते तानि पदानि प्रकर्षेण सिद्धानि प्रसिद्धानि न साधनीयानि । तथाऽनादीनि च तानि नेदानीमुत्पाद्यानि ॥तथा चेयं द्वादशांगी शब्दार्थरचना द्वारेण विदेहेषु नित्या नरतैराव तेष्वपि शब्दरचना द्वारेणैव प्रति तीर्थकरं क्रियते ऽन्यथा तु नित्यैव । एतेन चोच्चरित प्रध्वंसिनो वर्णा इत्येतन्निराकृतं वेदितव्यमिति॥२१॥सांप्रतं सूत्रकृतस्य श्रुतस्कंधाध्ययनादि निरूपणार्थमाह । "दोचेवसुयरकंधा, अज्झयणाइं च हुंति तेवीसं॥ तेत्तिसुदेसणकाला, आ याराड्‍ गुणमंगं" ॥२२॥ (दोचेवेत्यादि)। द्वावत्र श्रुतस्कन्धौ त्रयोविंशतिरध्ययनानि त्रय स्त्रिंशदुद्देशनकालास्ते चैवं नवंति । प्रथमाध्ययने चत्वारो द्वितीये त्रयस्तृतीये चत्वारः ॥

एवं चतुर्थपंचमयो र्द्वौ द्वौ तथैकादशस्वेकसरकेष्वेकादशैवेति । प्रथमश्रुतस्कन्धे तथा द्विती यश्रुतस्कन्धे सप्ताध्ययनानि तेषां सप्तैवोद्देशनकाला एवमेते सर्वेपि त्रयस्त्रिंशदिति। एतच्चा चारांगाद्विगुणमंगं षट्त्रिंशत्पदसहस्रपरिमाणमित्यर्थः ॥२१॥ सांप्रतं सूत्रकृतांगनिक्षेपानंतरं प्रथमश्रुतस्कंधस्य नामनिष्पन्ननिक्षेपाभिधित्सयाऽह । "निक्खेवोगाहाए,चउविहो छविहोय सोलसस्सु॥निक्खेवोयसुयंमिय,खंधेयचउविहो होइ"॥२२॥ (निक्खेवो इत्यादि) इहाद्यश्रुतस्कंधस्य गाथाषोडशक इति नाम। गाथाख्यं षोडशमध्ययनं यस्मिन् श्रुतस्कंधे सतथेति । तत्र गाथाया नामस्थापनाद्रव्यभावश्चतुर्विधो निक्षेपः ॥ नामस्थापनेप्रसिद्धे ॥ द्रव्यगाथा द्विधा ॥ आगमतो नो आगमतश्च ॥ तत्र आगमतो ज्ञाता तत्र चानुपयुक्तोऽनुपयोगो द्रव्यमिति कृत्वा । नोआगमतस्तु त्रिधा । ज्ञशरीरद्रव्यगाथा भव्यशरीरद्रव्यगाथा ताभ्यां विनिर्मुक्ता च ॥ 'सत्तछतरूविसामणसेद्दयाताण छहणद जलया ॥ गाहाएपब्बद्धे भेउं छहो त्ति इक्ककलो ' इत्यादिलक्षणलक्षिता पत्रपुस्तकादिन्यस्तेति ॥ भावगाथापि द्विविधा ॥ आगमत आगमभेदात् ॥ तत्रा ऽऽगमतो गाथापदार्थज्ञस्तत्र चोपयुक्तः । नोआगमतस्त्विद मेव गाथाख्यमध्ययनं ॥ आगमैकदेशत्वादस्य षोडशकस्यापि नामस्थापनाद् द्रव्यक्षेत्र कालभावभेदात् षोढा निक्षेपः ॥ तत्र नामस्थापने क्षुण्णे । द्रव्यषोडशकं ज्ञशरीरभव्य शरीरविनिर्मुक्तं । सचित्तादीनि षोडश द्रव्याणि । क्षेत्रषोडशकं षोडशाकाशप्रदेशाः ॥ कालषोडशकं षोडश समया एतत्कालावस्थापि वा द्रव्यमिति ॥ भावषोडशकमिदमेवाध्ययनषोडशकं क्षायोपशमिकभाववृत्तित्वादिति ॥ श्रुतस्कंधयोः प्रत्येकं चतुर्विधो निक्षेपः ॥ सचान्यत्र निक्षेपेण प्रतिपादित इति नेह प्रतन्यते ॥२३॥ सांप्रतमध्ययनानांप्रत्येकमर्थाधिकारदिदर्शयिषयाऽह ॥ "ससमय परसमयपरू, वणायणाऊण उज्झणा चेव ॥ संबुद्धस्सु वसग्गा थीदोसविवज्जणाचेव ॥ २४ ॥ उवसग्गभीरुणोथी वस्साणरएसु होज्ज उववाउ ॥ एवमहप्पावीरो जयमास तहा जएज्जाह ॥ २५ ॥ परिचत्तनिशीलकुशी,लसुशील स विग्गशीलवंचेव ॥ णाऊण वीरियडुगं पंडिय वीरियपहुज्ज पवयइ ॥ २६ ॥ धम्मोसमाहिमग्गो समोसढा चउसुसव्ववादीसु ॥ सीसगुण दोसकहणा गंथंमि सदा गुरुन्निवासो ॥२७॥ आदाणिय संकलिया आदाणीयंमि आदयचरित्तं ॥ अप्पग्गंथे पंडिय वयणेणंहा गहाइ अहिगारो" ॥२८॥ (ससमय इत्यादि गाथाःपंच)। तत्र प्रथमाध्ययने स्वसमयपरसमयप्ररूपणा । द्वितीये स्वसमयगुणान् परसमयदोषांश्च ज्ञात्वा स्वसमय एव बोधो विधेय इति ॥ तृतीयाध्ययने तु संबुद्धः सन्यथोपसर्गसहिष्णुर्भवति तदभिधीयते ॥ चतुर्थे स्त्रीदोषविवर्जना ॥ पंचमेत्वयमर्थाधिकारः ॥ तद्यथा ॥ उपसर्गाऽसहिष्णोः स्त्रीवशवर्तिनोऽवश्यं नरकेषु पात इति ॥ षष्ठे पुनरेवमित्यनुकूलप्रतिकूलोपसर्गसहनेन स्त्रीवर्जनेन च भगवान् महावीरो जेतव्यस्य कर्मणः संसारस्य वा पराभवेन जयमाह ॥

ततस्तथैव यत्नं विधत्त यूयमिति शिष्याणामुपदेशो दीयते ॥ सप्तमे त्विदमनिहितं ॥ त द्यथा ॥ निःशीला गृहस्थाः कुशीलास्त्वन्यतीर्थिकाः पार्श्वस्थादयो वा ते परित्यक्ता येन सा धुना स परित्यक्तनिःशीलकुशील इति ॥ तथा सुशीला उद्युक्तविहारिणः संविग्नाः संवे गमग्नास्तत्सेवाशीलः शीलवान् नवतीति । अष्टमे त्वेतत्प्रतिपाद्यते । तद्यथा । ज्ञात्वा वीर्य द्वयं पंमितवीर्ये प्रयत्नो विधीयत इति ॥ नवमे चार्थाधिकारस्त्वयं ॥ तद्यथा ॥ यथाऽवस्थि तोधर्मः कथ्यते ॥ दशमेतु समाधिः प्रतिपाद्यते ॥ एकादशेतु सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्म को मोक्षमार्गः कथ्यते ॥ द्वादशे त्वयमर्थाधिकारः ॥ तद्यथा । समवसृता अवतीर्णा व्य वस्थिताश्चतुर्षु मतेषु क्रियाऽक्रियाऽज्ञानवैनयिकाख्येष्वनिप्रायेषु त्रिषष्ट्युत्तरशतत्रय संख्याः पाषंडिनः स्वीयं स्वीयमर्थं प्रसाधयंतः समुत्थितास्तडुपन्यस्तसाधनदोषोद्भा वनतो निराक्रियंते ॥ त्रयोदशे त्विदमनिहितं ॥ तद्यथा ॥ सर्ववादिषु कपिलकणा दाक्षपादशौद्धोदनिजैमिनिप्रनृतिमतानुसारिषु कुमार्गप्रणेतृत्वं साध्यते ॥ चतुर्दशेतु ग्रंथाख्येऽध्ययनेऽयमर्थाधिकारः ॥ तद्यथा । शिष्याणां गुणदोषकथना तथा शिष्यगुणसंपडु पेतेन च विनेयेन नित्यं गुणानुरूपगुरुकुलवासो विधेय इति ॥ पंचदशे त्वादानीयाख्ये ऽध्ययनेऽर्थाधिकारोऽयं ॥ तद्यथा ॥ आदीयंते गृह्यंते उपादीयंते इत्यादानीयानि पदान्य र्था वा ते च प्राग्उपन्यस्तपदैरर्थैश्च प्रायशोऽत्र संकलिताः॥तथा आयतं चरित्रं सम्यक्चरित्रं मोक्षमार्गप्रसाधकं तच्चात्र व्यावर्ण्यत इति ॥ षोमशेतु गाथाख्येऽल्पग्रंथेऽध्ययनार्थोयं व्यावर्ण्यते। तद्यथा ॥ पंचदशनिरध्ययनैर्योर्थोनिहितः सोत्र पंमितवचनेन संक्षिप्तानिधा नेन प्रतिपाद्यत इति॥ 'गाहा सोलसगाणं पिंडबोवन्निउ समासेण ॥ इत्तो इक्किक्कं पुण अज्ञयणं कित्तयिस्सामि' ॥१॥ तत्राद्यमध्ययनं समयाख्यं तस्य चोपक्रमादीनि चत्वार्य नुयोगद्वाराणि नवंति ॥ तत्रोपक्रमणमुपक्रम्यते वाऽनेन शास्त्रं न्यासदेशं निक्षेपावसरमा नीयत इत्युपक्रमः। सच लौकिको नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालनावनेदेन षड्रूप आवश्यका दिष्वेवप्रपंचितः॥शास्त्रीयोप्यानुपूर्वीनामप्रमाणवक्तव्यतार्थाधिकारसमवताररूपः षोढैव । तत्रानुपूर्व्यादीन्यनुयोगद्वारानुसारेण ज्ञेयानि तावद्यावत्समवतारसूत्रैस्तदध्ययनमानु पूर्व्यादिषु यत्र यत्र समवतरति तत्र तत्र समवतारयितव्यं ॥ तत्र दशविधायामानुपूर्व्यांग णनानुपूर्व्यां समवतरति सापि त्रिधा। पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी अनानुपूर्वी चेति॥तत्रेदमध्य यनं पूर्वानुपूर्व्यां प्रथमं पश्चानुपूर्व्यां षोडशम्। अनानुपूर्व्यां तु चिंत्यमानमस्यामेवैकादिका यामेकोत्तरिकायां षोडश गच्छतायां श्रेण्यामन्योन्याभ्यासद्विरूपोनसंख्यानेदं नवति ॥ अना नुपूर्व्यांतु षोडशनेदसंख्यापरिज्ञानोपायोयं । तद्यथा । 'एकाद्या गच्छपर्यंताः परस्परसमाह ताः॥राशयस्तद्धि विज्ञेयं विकल्पगणिते फलं'॥१॥ प्रस्तारानयनोपायस्त्वयं॥पुव्वाणुपुव्विंहेठा

१ २ ३ ४ ५ इत्यादि॥तत्र।'गणितेंत्यविन्नक्ते तु लब्धं शेषैर्विन्नाजयेत्॥ आदावंते च तत्
२ १ ३ ४ ५ स्थाप्यं विकल्पगणिते क्रमात्'॥१॥ अयं श्लोकः शिष्यहितार्थं विव्रियते। त
१ ३ २ ४ ५ त्र सुखावगमार्थं षट् पदानि समाश्रित्य तावत् श्लोकार्थो योज्यते। तत्रैवं
३ १ २ ४ ५ षट् पदानि स्थाप्यानि। १ २ ३ ४ ५ ६। एतेषां परस्परताडनेन सप्तशतानि
२ ३ १ ४ ५ विंशत्युत्तराणि गणितमुच्यते। तस्मिन् गणितेंऽत्योत्र षट्कस्तेन न्नागे हृते विं
३ २ १ ४ ५ शत्युत्तरं शतं लन्यते तच्च षस्णां पंक्तीनामंत्यपंक्तौ षट्कानां न्यस्यते। तदधः
१ २ ४ ३ ५ पंचकानां विंशत्युत्तरमेवशतम्॥एवमधोधश्चतुष्कत्रिकद्विकैकानां प्रत्येकं विंश
त्युत्तरशतं न्यस्यमेवमंत्यपंक्तौ सप्त शतानि विंशत्युत्तराणि न्नवंत्येषा च गणितप्रक्रियाया आ
दिरुच्यतें। तथा यत्तद्विंशत्युत्तरं शतं लब्धं तस्य च पुनः शेषेण पंचकेन न्नागेनापहृते ल
ब्धा चतुर्विंशतिस्तावंतस्तावन्तश्च पंचकचतुष्कत्रिकद्विकैकाः प्रत्येकं पंचमपंक्तौ न्यस्या याव
द्विंशत्युत्तरं शतमिति॥ तदधोग्रतो न्यस्तमंकं मुक्त्वा येन्ये तेषां यो यो महत्संख्यः स सोध
स्ताच्चतुर्विंशतिसंख्य एव तावत् न्यस्यो यावत्सप्तशतानि विंशत्युत्तराणि पंचमपङ्क्तावपि
पूर्णानि न्नवंति॥ एषा च गणितप्रक्रियेत्यन्निधीयते॥ एवमनया प्रक्रियया चतुर्विंशतेः शे
षचतुष्ककेन न्नागे हृते षट् लन्यंते तावंतश्चतुःपंक्तौ चतुष्ककाः स्थाप्यास्तदधः षट्त्रिकाः
पुनर्द्विका न्नूय एककाः पुनः पूर्वन्यायेन पंक्तिः पूरणीया॥ पुनः षट्कस्य शेषत्रिकेण
न्नागे हृते द्वौ लन्येते तावन्मात्रौ त्रिकौ तृतीयपंक्तौ शेषं पूर्ववत्।शेषपंक्तिद्वये शेषमंकद्व
यं क्रमोत्क्रमान्यां व्यवस्थाप्यमिति॥ तथा नाम्नि षड्विधनाम्न्यवतरति। यतस्तत्र षड्
न्नावाः प्ररूप्यंते। श्रुतस्यच क्षायोपशमिकन्नाववर्तित्वात्। प्रमाणमधुना प्रमीयतेनेने
ति प्रमाणं॥तत् द्रव्यक्षेत्रकालन्नावन्नेदाच्चतुर्द्धा। तत्रास्याध्ययनस्य क्षायोपशमिकन्नावव्य
वस्थितत्वाद्भावप्रमाणेऽवतारः। न्नावप्रमाणं च गुण, नय, संख्या, न्नेदात्त्रिधा। तत्रापि गु
णप्रमाणे समवतारः। तदपि जीवाजीवन्नेदाद् द्विधा। समयाध्ययनस्य च क्षायोपशमिक
न्नावरूपत्वात्तस्य च जीवानन्यत्वाज्जीवगुणप्रमाणे समवतारः। जीवगुणप्रमाणमपि ज्ञान,
दर्शन, चारित्र, न्नेदात्त्रिविधं। तत्रास्य बोधरूपत्वात् ज्ञानगुणप्रमाणे समवतारः॥ तदपि
प्रत्यक्षानुमानोपमानागमन्नेदाच्चतुर्द्धा। तत्रास्यागमप्रमाणे समवतारः॥ सोपि लौ
किक, लोकोत्तर, न्नेदाद् द्विधा।तदस्य लोकोत्तरे समवतारस्तस्य च सूत्रार्थतदुन्नयरूपत्वा
त्त्रैविध्यं। त्रिष्वपि समवतारः। यदि वाऽत्मानंतरपरंपरन्नेदादागमस्त्रिविधस्तत्र तीर्थ
कृतामर्थापेक्षयाऽत्मागमो गणधराणामनंतरागमस्तच्छिष्याणां परंपरागमः। सूत्रापेक्षया
तु गणधराणामात्मागमस्तच्छिष्याणामनंतरागमस्तदन्येषां परंपरागमः। गुणप्रमाणानंत
रं नयप्रमाणावसरस्तस्य चेदानीं पृथक्त्वानुयोगे नास्ति समवतारो न्नवेद्वा पुरुषापे
क्षया॥ तथा चोक्तं॥ मूढनइयं सुयं का,लियंतुणणया समोरयंति इहं॥ अपु

हवे समुयारो णहि पुदुत्ते समोयारो ॥ १ ॥ तथा ॥ आसज्ज सोयारं नएनय विसारउ नूया' ॥ संख्याप्रमाणं त्वष्टधा ॥ नाम, स्थापना, इव्य, क्षेत्र, काल, परिमाण, पर्यव, नाव, नेदात् । तत्रापि परिमाणसंख्यायां समवतारः ॥ सापि कालिकदृष्टिवादनावात् द्विधा ॥ तत्रास्य कालिकपरिमाणसंख्यायां समवतारस्तत्राप्यंगानंगयोरंगप्रविष्टे समवतारः । पर्यवसंख्यायां त्वनंताः पर्यवाः ॥ तथा संख्येयान्यक्षराणि संख्येयाः संघाताः संख्येयानि पदानि संख्येयाः श्लोकाः संख्येया गाथाः संख्येया वेदाः संख्येयान्यनुयोग द्वाराणि । सांप्रतं वक्तव्यतायाः समवतारश्चिंत्यते ॥ साच स्व, पर, समय,तडुनयनेदात्रिधा । तत्रेदमध्ययनं त्रिविधायामपि समवतरति । अर्थाधिकारो द्वेधा॥ अध्ययनार्थाधिकार उद्देशार्थाधिकारश्च । तत्राध्ययनार्थाधिकारोऽनिहितः । उद्देशार्थाधिकारं तु गाथांतरितं निर्युक्तिकृ द्वक्ष्यति । सांप्रतं निक्षेपावसरः सच त्रिधा । उघनिष्पन्नो नामनिष्पन्नः सूत्रालापकनिष्पन्नश्च । तत्रौघनिष्पन्नेऽध्ययनं तस्यच निक्षेप आवश्यकादौ प्रबंधेनानिहित एव । नामनिष्पन्नेतु समय इति॥ २ ७॥नाम तन्निक्षेपार्थं निर्युक्तिकार आह॥ “नामंठवणा दविए खेत्ते काले कुतित्थसंगारे ॥ कुलगणसंकरगंडी । बोधव्वा नावसमएय” ॥२ए॥ (नामं ठवणाइत्यादि) । नाम, स्थापना, इव्य, क्षेत्र, काल, कुतीर्थ, संगार, कुल, गण, संकर, गंडी, नाव, नेदात् द्वादशधा समयनिक्षेपः । तत्र नामस्थापने क्षुस्से । इव्यसमयो इव्यस्य सम्यगयनं परिणतिविशेषः स्वनाव इत्यर्थः । तद्यथा । जीवइव्यस्योपयोगः पुजलइव्यस्य मूर्तत्वं धर्माधर्माकाशानां गतिस्थित्यवगाहदानलक्षणोऽथवा योयस्य इव्यस्यावसरो इव्यस्योपयोगकाल इति ॥ तद्यथा ॥ 'वर्षासु लवणममृतं शरदि जलं गोपयश्च हेमंते ॥ शिशिरे चामलकरसो घृतं वसंते गुडश्चांते' ॥ १ ॥ क्षेत्रसमयः क्षेत्रमाकाशं तस्य समयः स्वनावः । यथा ॥ ' एगेणविसेपुस्से दोहिंविपुणे सयंपि माएज्जा ॥ लरकसएणविपुस्सें, कोडिसहस्सं पि माएज्जा' ॥१॥ यदि वा देवकुरुप्रनृतीनां क्षेत्राणामीदृशोऽनुनावो यडुत तत्र प्राणिनः सुरूपा नित्यसुखिनो निर्वैराश्च नवंतीति क्षेत्रस्य वा परिकर्मणावसरः क्षेत्रसमय इति ॥ कालसमयस्तु सुषमादेरनुनावविशेषः । उत्पलपत्रशतनेदानिव्यंग्यो वा कालविशेषः कालसमय इति ॥ अत्र च इव्यक्षेत्रकालप्राधान्यविवक्षया इव्यक्षेत्रकालसमयता इष्टव्येति । कुतीर्थसमयः पाखंडिकानामात्मीयानात्मीय आगमविशेषस्तडुक्तं वानुष्ठानमिति ॥ संगारः संकेतस्तद्रूपः समयः संगारसमयः ॥ यथा सिद्धार्थसारथिदेवेन पूर्वकृतसंगारानुसारेण गृहीतहरिशवो बलदेवः प्रतिबोधित इति ॥ कुलसमयः कुलाचारो यथा शकानां पितृशुद्धिः आनीरकाणां मंथनिका शुद्धिः । गणसमयो यथा॥ मल्लानामयमाचारो यथा यो ह्यनाथोमल्लो म्रियते स तैःसंस्क्रियते पतितश्चोध्रियत इति । संकरसमयस्तु संकरोनिन्नजातीयानां मीलकस्तत्र च समये एकवाक्यता ॥ यथा वाममा

गंदावनाचारप्रवृत्तावपि गुप्तिकरणमिति । गंडीसमयो यथा शाक्यानां नोजनावसरे गंडीताडनमिति । नावसमयस्तु नो आगमत इदमेवाध्ययनमनेनैवात्राधिकारः शेषाणां तु शिष्यमतिविकासार्थमुपन्यास इति ॥ २९ ॥ सांप्रतं प्रागुपन्यस्तोद्देशार्थाधिकारान्निधित्सया ऽह ॥ "महपंचनूय एक्क, प्पएय तज्जीवतस्सरीरेय ॥ तहय अगार गवाती अत्तच्छो अफलवादी ॥ ३० ॥ बीए नियवाईउं, अन्नाणियतहय नाणवाईउं ॥ कम्मं च यन्नगच्छइ, चउव्विहं निरकुसमयंमि ॥ ३१ ॥ तइए आहाकम्मं, कडवाई जहयतेयवाईउं ॥ किच्चुवमा य चउत्ते, परप्पवाई अविरएसु" ॥ ३२ ॥ महपंचनूय इत्यादिगाथात्रयं । अस्याध्ययनस्य चत्वार उद्देशकास्तत्राद्यस्यषडर्थाधिकारा आद्यगाथयाऽनिहिताः ॥ तद्यथा । पंचनूतानि पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशाख्यानि महांति च तानि सर्वलोकव्यापित्वात् नूतानि च महानूतानि इत्ययमेकोऽर्थाधिकारः । तथा चेतनाचेतनं सर्वं मेकात्मविवर्त्त इत्यात्माऽद्वैतवादः प्रतिपाद्यत इत्यर्थाधिकारो द्वितीयः । स चासौ जीवश्च तज्जीवः कायाकारो नूतपरिणामस्तदेव शरीरं जीवशरीरयोरैक्यमिति यावदिति तृतीयोर्थाधिकारः । तथाऽकारको जीवः सर्वस्याः पुण्यपापक्रियाया इत्येवंवादीति चतुर्थोधिकारः ॥ तथात्मा षष्ठ इति पंचानां नूतानामात्मा षष्ठः प्रतिपाद्यत इत्ययं पंचमोर्थाधिकारः । तथा फलवादीति । न विद्यते कस्याश्चित् क्रियायाः फलमित्येव वादी च प्रतिपाद्यत इति षष्ठोर्थाधिकार इति । द्वितीयोद्देशकेचत्वारोर्थाधिकाराः॥तद्यथा । नियतिवादस्तथाऽज्ञानिकमतं ज्ञानवादी च प्रतिपाद्यते । कर्म च चयमुपचयं चतुर्विधमपि न गच्छति निक्षुसमये शाक्यागमे चतुर्थोर्थाधिकारः । चातुर्विध्यंतु कर्मणो ऽविज्ञोपचितं ॥ अविज्ञानमविज्ञा तयोपचितमनानोगकृतमित्यर्थः । यथा मातुः स्तनाद्याक्रमणेन पुत्रव्यापत्तावप्यनानोगान्नकर्मोपचीयते । तथा परिज्ञानं परिज्ञा केवलेन मनसा पर्यालोचनं तेनापि कस्यचित्प्राणिनो व्यापादनानावात् कर्मोपचयानाव इति । तथा ईरणमीर्यागमनं तेन जनितमीर्याप्रत्ययं तदपि कर्मोपचयं न गच्छति प्राणिव्यापादनानिसंधेरनावादिति । तथा स्वप्नांतिकं स्वप्नप्रत्ययं कर्म नोपचीयते । यथा स्वप्ननोजने तृप्त्यनाव इति तृतीयोद्देशकेत्वयमर्थाधिकारः । तथा आधाकर्मगतविचारस्तन्नोजिनां च दोषोपदर्शनमिति । तथा कृतवादी च नण्यते । तद्यथेश्वरेण कृतोयं लोकः प्रधानादिकृतो वा ॥ यथा च ते प्रतिवादिन आत्मीयं कृतवादं गृहीत्वोपस्थितास्तथा नण्यंत इति द्वितीयोधिकारः । चतुर्थोद्देशकाधिकारस्त्वयं । तद्यथा ॥ अविरतेषु गृहस्थेषु यानि कृत्यान्यनुष्ठानानि स्थितानि तैरसंयमप्रधानैः कर्तव्यैः परप्रवादी परतीर्थिक उपमीयत इति । इदानीमनुगमः सच द्वेधा । सूत्रानुगमो निर्युक्त्यनुगमश्च । तत्र निर्युक्त्यनुगमस्त्रिविधः । तद्यथा । निक्षेपनिर्युक्त्यनुगम उपोद्घातनिर्युक्त्यनुगमः सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगमश्च । तत्र निक्षेपनिर्युक्त्यनुगमोऽनु

गत उंघनामनिष्पन्ननिक्षेपयोरंतर्गतत्वात् । तथाच वक्ष्यमाणस्य सूत्रस्य निक्षेपावसरत्वा
त् । उपोद्घातनिर्युक्त्यानुगमस्तु षड्विंशति द्वारप्रतिपादकागाथा द्वयादवसेयस्तच्चेदं उद्देश
निद्देशेय इत्यादि । सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगमस्तु सूत्रे सति संनवति ॥ सूत्रं च सूत्रानुगमे
सचावसरप्राप्त एव । तत्राऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं ॥ बुज्जिज्जत्ति तिउट्टि
ज्जेत्यादिश्लोकः । अस्य संहितादिक्रमेण व्याख्या । (बुध्यतेत्यादि) । सूत्रमिदं सूत्रकृतां
गादौ वर्त्तते । अस्यच ऽऽचारांगेन सहायं संबंधः । तद्यथा आचारांगेनिहितं । ‘ जीवो छ
क्कायपरू, वणायतेसिं वहेणबंधोत्ति ’ इत्यादि तत्सर्वं बुध्येतेत्यादि । यदि चेह केषांचि
द्वादिनां ज्ञानादेवमुक्त्यवाप्तिरन्येषां क्रियामात्रात् । जैनानां तूनाभ्यां निश्रेयसाधिगम इत्ये
तदनेन श्लोकेन प्रतिपाद्यते । तत्रापि ज्ञानपूर्विका क्रिया फलवती नवतीत्यादि बुध्येते
त्यनेन ज्ञानमुक्तं॥त्रोटयेदित्येनेनच क्रियोक्ता॥तत्रायमर्थो बुध्येतावगच्छेत् बोधं विदध्यादित्यु
पदेशः । किंपुनस्तद्बुध्येत तदाह । बंधनं बध्यते जीवप्रदेशैरन्योन्यानुवेधरूपतया व्यवस्था
प्यत इति बंधनं ज्ञानावरणाद्यष्टप्रकारं कर्म तद्धेतवो वा मिथ्यात्वाऽविरत्यादयः परि
ग्रहारंनादयो वा । नच बोधमात्रादनिलषितार्थावाप्तिर्नवतीत्यतः क्रियां दर्शयति । त
च्च बंधनं परिज्ञाय विशिष्टया क्रियया संयमानुष्ठानरूपया त्रोटयेदपनयेदात्मनः पृथक्कुर्या
त्परित्यजे द्वा । एवं चाभिहिते जंबूस्वाम्यादिको विनेयो बंधादिस्वरूपं विशिष्टं जिज्ञासुः प
प्रच्छ ॥ किमाह किमुक्तवान् बंधनं वीरस्तीर्थकृत् किंवा जानन्नवगच्छंस्तद्बंधनं त्रोटयति
ततो वा त्रुट्यतीति श्लोकार्थः ॥ १ ॥ बंधनस्वरूपनिर्वचनायाह ॥ (चित्तमंतमचित्तं वे
त्यादि) ॥ इह बंधनं कर्म तद्धेतवो वाऽनिधीयंते ॥ तत्र न निदानमंतरेण निदानिनो
जन्मेति निदानमेव दर्शयति ॥ तत्रापि सर्वारंनाः कर्मोपादानरूपाः प्रायश आत्मात्मी
यग्रहोत्थानामिति कृत्वाऽदौ परिग्रहमेव दर्शितवान् ॥ चित्तमुपयोगो ज्ञानं तद्विद्यते य
स्य तच्चित्तवत् द्विपदचतुष्पदादि । ततोन्यदचित्तवत् कनकरजतादि तडुनयरूपमपि परि
ग्रहं परिगृह्य कृशमपि स्तोकमपि तृणतुषादिकमपीत्यर्थः । यदि वा कसनं कसः परिग्रह
ग्रहणबुध्या जीवस्य गमनपरिणाम इति यावत् । तदेवं स्वतः परिग्रहं परिगृह्यान्यान्वा
ग्राहयित्वा गृह्णतो वान्याननुज्ञाय डुःखयतीति डुःखमष्टप्रकारं कर्म तत्फलं वा असा
तोदयादिरूपं तस्मान्न मुच्यत इति । परिग्रहाग्रह एव परमार्थतोनर्थमूलं नवति । तथा
चोक्तं । ‘ममाहमिति चैष यावदनिमानदाहज्वरः कृतांतमुखमेव तावदिति न प्रशांत्युन्न
यः ॥ यशःसुखपिपासितैरयमसावनर्थोत्तरैः परैरपसदः कुतोपि कथमप्यपाकृष्यते’ ॥ १ ॥
तथाच ॥ द्वेषस्यायतनं धृतेरपचयः क्षांतेः प्रतीपो विधिर्व्याक्षेपस्य सुहृन्मदस्य नवनं ध्या
नस्य कष्टो रिपुः ॥ डुःखस्य प्रनवः सुखस्य निधनं पापस्य वासो निजः प्राज्ञस्यापि परिग्र
हो ग्रहइव क्लेशाय नाशायच’ ॥ १ ॥ २ ॥

सयं निवायए पाणे, अडुवाऽन्नेहिं घायए ॥ हणंतं वा णुजा
णाइ, वेरं वड्ढइ अप्पणो ॥३॥ जेस्सिं कुले समुप्पन्ने जेहिं वा सं
वसे नरे ॥ ममाइ लुप्पई बाले, अन्ने अन्नेहिं मुछिए ॥ ४ ॥

अर्थ—हवे ज्यां परिग्रह त्यां आरंज होय, अने ज्यां आरंज त्यां प्राणातिपात होय एवुं देखाडेछे. ते परिग्रहवंत पुरुष असंतोषी बतो ते परिग्रह उपार्जवाने अर्थे, अने उपार्जन करेलो परिग्रह राखवाने अर्थे सयंके० पोते, पाणेके० प्राणीउनो, निवायएके० निपात एटले विनाश करे, अडुवाके० अथवा अन्नेहि घायएके० अनेरा पासे प्राणीउनी घात करावे; वाके० अथवा हणंतं के० जे प्राणीउने हणतो होय अर्थात् प्राणीउनो विनाश करतो होय तेने अणुजाणाइके० अनुमोदवे करी. प्राणीउनी घात करतो थको अथवा करावतो थको अप्पणोके० आत्माने वेरंवड्ढइके० वैरनी वृद्धी करेछे. तेथी जे दुःख परंपरारूप बंधन तेथकी बुटे नहीं ॥३॥ वली पण बंधन आश्रयी कहेछे. जेस्सिं कुले समुप्पन्नेके० रागोडादिक जे कुलमां उत्पन्न थयो, अथवा जेहिंवा संवसे के० जेनीसाथे वास वसे, एटले पांसुक्रीडादिक करे. एवा नरेके० मनुष्य जे माता, पिता, जाई, बेहेन, जार्या, अने मित्रादिक तेने विषे ममाइके० ममत्वनो करनार एटले मातापितादिकनी साथे स्नेह करतो एवो बालेके० अज्ञानी जीवते लुप्पइके० कर्मे संसारचक्रमांहे जमतो थको पीडायछे, ते मनुष्य केवोछे तोके अन्नेअन्नेहिके० अन्य अन्य एटले प्रथम माता पिता, तदनंतर जाईने विषे, तदनंतर पुत्रपौत्रादिक, एम अन्य अन्यने विषे मुछिएके० मूर्छित एटले मूर्छा पामतो थको स्नेहे करी पीडायछे. ॥ ४ ॥

दीपिका ॥ अथवा प्रकारांतरेण बंधनमेवाह । सयंतीति ॥ सपरिग्रहवान् स्वयमात्मना प्राणानतिपातयेत् जीवान् हिंस्यात् । अथवा अन्यैः परैरपि घातयति घ्नतश्चान्याननुजानीते तदेवं कृतकारितानुमतिभिः प्राणिघातं कुर्वन्नात्मनो वैरं वर्धयति ततश्च बंधनान्न मुच्यते इति जावः ॥ ३ ॥ पुनर्बंधनमेवाश्रित्याह । जेस्सिंमित्ति । यस्मिन् कुले जातो यैर्वा मित्रैर्जार्यादिभिर्वा सह संवसेन्नरः तेषु मित्रपितृमातृजार्यादिषु ममायमिति ममत्ववान् लुप्यते ममत्वजनितेन कर्मणा बाध्यते । बालो मूर्खः विवेकरहितत्वादन्येषु च मूर्छितो ममत्वबहुल इत्यर्थः ॥ ४ ॥

टीका ॥ तथाच परिग्रहेष्वप्राप्तनष्टेषु कांक्षाशोकौ प्राप्तेषु च रक्षणमुपजोगे वाऽतृप्तिरित्येवं परिग्रहे सति दुःखात्मकाद्बंधनान्न मुच्यत इति परिग्रहवतश्चावश्यंजाव्यारंजस्तस्मिंश्च प्राणातिपात इति दर्शयितुमाह । सयंनिवायएपाणे इत्यादि । यदि वा प्रकारांत

रेण बंधनमेवाह । सयंतीत्यादि । स परिग्रहवानसंतुष्टो नूयस्तदर्जनपरः समार्जितोप द्रवकारिणि च द्वेषमुपगतस्ततः स्वयमात्मना त्रिन्यो मनोवाक्कायेन्य आयुर्बलशरीरेन्यो वा पातयेत् च्यावयेत् प्राणान् प्राणिनः । अकारलोपाद्वा अतिपातयेत् प्राणानिति । प्राणाश्चामी । पंचेंड्रियाणि त्रिविधं बलंच, उच्छ्वासनिश्वासमथान्यदायुः ॥ प्राणा दशैते नगवद्भिरुक्ता,स्तेषां वियोजीकरणं तु हिंसा ॥ १ ॥ तथा स परिग्रहाग्रही न केवलं स्वतो व्यापादयति अपरैरपि घातयति घ्नतश्चान्यान् समनुजानीते तदेव कृतकारितानुमतिनिः प्राण्युपमर्दनेन जन्मांतरशतानुबंध्यात्मनो वैरं वर्धयति । ततश्च डुःखपरंपरारूपबंधनान्न मुच्यत इति । प्राणातिपातस्य चोपलक्षणार्थत्वात् मृषावादादयोपि बंधहेतवो डष्टव्या इति ॥ ३ ॥ पुनर्बंधनमेवाश्रित्याह । (जेस्सिंमित्यादि) । यस्मिन् राष्ट्रकूटादौ कुले जातो यैर्वा सह पांसुक्रीमितैर्यैर्नार्यादिनिर्वा सह संवसेन्नरस्तेषु मातृपितृत्रातृनगिनीनार्यावयस्यादिषु ममायमिति ममत्ववान् स्निह्यन् लुप्यते विलुप्यते ममत्वजनितेन कर्मणा नारकतिर्यङ्मनुष्यामरलक्षणे संसारे भ्रम्यमाणो बाध्यते पीड्यते। कोसौ बालोऽज्ञः स दसद्विवेकरहितत्वादन्येष्वन्येषु च मूर्छितो गृद्धोध्युपपन्नो ममत्वबहुल इत्यर्थः । पूर्वं तावन्मातापित्रोस्तदनुनार्यायां पुनः पुत्रादौ स्नेहवानिति ॥ ४ ॥

वित्तं सोयरिया चेव, सव्वमेयं नताणइ॥ संखाए जीविअं चेवं,
कम्मुणा उ तिउट्टइ ॥५॥ एए गंथे विउक्कम्म, एगे समणमाह
णा ॥ अयाणंता विउस्सित्ता सत्ता कामेहि माणवा ॥ ६ ॥

अर्थ—हवे जे प्रथम कह्युं हतुंके, कहेवुं जाणतो थको बंधन त्रोडे ते कहेछे. वित्तं के० धनधान्यादिक सचित्त तथा अचित्त वस्तु अने सोयरियाके० नाइ प्रमुख कौटुंबिक स्वजनादिक चेवके० वली सव्वमेयंके० ए सर्व जे कुटुंबादिक स्नेहवंतछे, ते शारीरी, मानसी वेदना नोगवता थकां ए जीवने नताणइके० त्राण नणी न थाय. एवुं जाणीने जीवियंचके० जे प्राणीउंनुं जीवतव्य अल्पछे. एवंके० एवुं संखाएके० जाणीने, जीवितव्य प्राणीउंने एटले परिग्रह प्राणिघात अने स्वजन स्नेहादिक बंधननां स्थानकने ज्ञ परिज्ञाये जाणीने, प्रत्याख्यान परिज्ञाये छांमिने, कम्मुणाउ तिउट्टइके० कर्म थकी बूटे अर्थात् कर्म थकी वेगलो थाय. ॥ ५ ॥ हवे स्वसमयनो अधिकार कही परसमयनो अधिकार कहेछे. एएगंथेके० ए अरिहंतना नाषित ग्रंथ जे करुणारसमय छे. तेने छांमीने स्वेछायें रचित ग्रंथोने विषे विउक्कम्मके० आसक्त थका, एगेसमणके० एक शाक्यादिकना श्रमण; बीजा बृहस्पतिमतानुसारी एवा माहणा के० ब्राह्मण ए अयाणंताके० परमार्थेना अजाण थका विउस्सित्ता के० विविध प्रकारे उत्प्रबलपणे पोताना

ग्रंथनेविषे सत्ता एटले बंधाणा, एतावतां आपणा मतना कदाग्रही एवा छतां माणवाके० पुरुष जे छे, ते पोतपोताना मतना अनुरागेकरी, कामेहि के० इछामदनादिक तेनेविषे सत्ता के० आसक्त थका प्रवर्त्ते छे एटले पोतानो मार्ग लोकोमांहे प्रसिद्धपणे सारो करी देखाडे छे.

॥ दीपिका—किं जानन् बंधनं त्रोटयतीत्यस्योत्तरमाह । (वित्तमिति) । वित्तं द्रव्यं तच्च सचित्तमचित्तं वा । सोदर्या भ्रातृभगिन्यादयः सर्वमेतद्वित्तादिकं संसारे पीड्यमानस्य जंतोर्न त्राणाय न रक्षणाय भवतीति । एतत् संख्याय ज्ञात्वा तथा जीवितं स्वल्पमिति संख्याय ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वा प्रत्याख्यानपरिज्ञया प्रत्याख्याय कर्मणः सकाशात् त्रुटयति अपगच्छत्यसौ । तुर्निश्चये त्रुटयेदेव । यदि वा कर्मणा क्रियया संयमानुष्ठानरूपया बंधनात् त्रुटयति कर्मणः पृथग्भवतीत्यर्थः ॥ ५ ॥ स्वसमयं प्रतिपाद्य परसमयंप्रतिपादयितुकाम आह । (एएइति) । एतान् पूर्वोक्तान् ग्रंथान् सूत्रार्थान् व्युत्क्रम्य परित्यज्य एके केचित् श्रमणब्राह्मणाः श्रमणाः शाक्यादयो ब्राह्मणाश्च (अयाणंता) परमार्थमजानानाः (विउस्सित्ता) विविधमुत्प्राबल्येन सिता बद्धाः स्वसमयेषु प्रतिबद्धाः संतः कामेषु च सक्ता वर्ततइति ॥ ६ ॥

॥टीका—सांप्रतं यदुक्तं प्राक् किंवा जानन् बंधनं त्रोटयतीत्यस्य निर्वचनमाह । (वित्तमित्यादि) । वित्तं द्रव्यं तच्च सचित्तमचित्तं वा । तथा सोदर्या भ्रातृभगिन्यादयः सर्वमपि चैतद्वित्तादिकं संसारांतर्गतस्यासुमतोऽतिकटुकाः शरीरमानसवेदनास्समनुभवतो न त्राणाय रक्षणाय भवंतीत्येतत्संख्याय ज्ञात्वा । तथा जीवितं च प्राणिनां स्वल्पमपि तत्संख्याय ज्ञपरिज्ञया । प्रत्याख्यानपरिज्ञया तु सचित्ताचित्तपरिग्रहप्राण्युपघातस्वजनस्नेहादीनि बंधनस्थानानि प्रत्याख्याय कर्मणः सकाशात्त्रुटयति अपगच्छत्यसौ । तुरवधारणे । त्रुटयेदेवेति । यदि वा कर्मणा क्रियया संयमानुष्ठानरूपया बंधनात्त्रुटयति । कर्मणः पृथग्भवतीत्यर्थः ॥ ५ ॥ अध्ययनार्थाधिकाराभिहितत्वात्स्वसमयप्रतिपादनानंतरं परसमयप्रतिपादनाभिधित्सयाऽह । (एएगंथेविउक्कम्मेत्यादि) । एतानंतरोक्तान् ग्रंथान् व्युत्क्रम्य परित्यज्य स्वरुचिविरचितार्थेषु ग्रंथेषु सक्ताः सिताः बद्धा एके न सर्वे इति संबंधः । ग्रंथातिक्रमश्चैतेषां तदुक्तार्थानभ्युपगमात् । अनंतरग्रंथेषु चायमर्थोऽभिहितस्तद्यथा जीवास्तित्वे सति ज्ञानावरणीयादि कर्मबंधनं तस्य हेतवो मिथ्यात्वाविरतिप्रमादादयः परिग्रहारंभादयश्च । तत्त्रोटनं च सम्यक्दर्शनाद्युपायेन मोक्षसद्भावश्चेत्येवमादिकः । तदेवमेके श्रमणाः शाक्यादयो बार्हस्पत्यमतानुसारिणश्च ब्राह्मणा एतानर्हदुक्तान् ग्रंथानतिक्रम्य परमार्थमजानाना विविधमनेकप्रकारमुत्प्राबल्येन सिता बद्धाः स्वसमयेष्वभिनिविष्टाः । तथा च शाक्या एवं प्रतिपादयंति । यथा सुखदुःखेछाद्वेषज्ञानाधारभूतो नास्त्यात्मा

कश्चित् किंतु विज्ञानमेवैकं विवर्ततइति । क्षणिकाः सर्वसंस्काराइत्यादि । तथा सांख्या एवं व्यवस्थिताः । सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोहंकारस्तस्माद्गणश्च षोडशकस्तस्मात्षोडशकादपि पंचनूतानि चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपमित्यादि । वैशेषिकाः पुनराहुः । द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवायाः षट् पदार्थाइति । तथा नैयायिकाः प्रमाणप्रमेयादीनां पदार्थानामन्वयव्यतिरेकपरिज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमइति व्यवस्थिताः । तथा मीमांसकाश्चोदनालक्षणोधर्मो नच सर्वज्ञः कश्चिद्विद्यते मुक्त्यनावश्चेत्येवमाश्रिताः । चार्वाकास्त्वेवमनिहितवंतो यथा नास्तिकश्चित्परलोकयायी नूतपंचकाद्व्यतिरिक्तः पदार्थो नापि पुण्यपापे स्तइत्यादि । एवंचांगीकृत्यैते लोकायतिकाः । मानवाः पुरुषाः सक्ता गृद्धा अध्युपपन्नाः कामेष्विछामदनरूपेषु । तथाचोचुः । एतावानेव पुरुषो, यावानिंड्रियगोचरः ॥ नद्रेवृकपदं पश्य, यद्वदंत्यबहुश्रुताः ॥ १ ॥ पिब खाद च साधु शोनने, यदतीतं वरगात्रि तन्न ते ॥ नहि नीरु गतं निवर्तते, समुदयमात्रमिदं कलेवरं ॥ २ ॥ एवं ते तंत्रांतरीयाः स्वसमयार्थवासितांतःकरणाः संतो नगवदर्हडुक्तं ग्रंथार्थमज्ञातपरमार्थाः समतिक्रम्य स्वकीयेषु ग्रंथेषु सिताः संबद्धाः कामेषु च सक्ताइति ॥ ६ ॥

संति पंच महब्नुया, इहमेगेसि माहिया ॥ पुढवी आउ तेऊ वा,
वाउ आगासपंचमा ॥ ७ ॥ एए पंच महप्नूया, तेप्नो एगोत्ति
आहिया ॥ अहतोसिं विणासेणं, विणासो होइ देहिणो ॥ ८ ॥

अर्थ—हवे ग्रंथकार प्रथम चार्वाकनुं मत देखाडेढे. संतिपंचमहप्नूया के० ते चार्वाक एम कहेढे के जगत्मां सर्वलोकव्यापी पंचमहानूत ढे. इहके० आ लोकमांहे, एगेसिं के० कोइ एक नूतवादी तेना मतने विषे आहियाके० कह्याढे. ते कोण? तोके० पुढवी के० पृथ्वी कठिणरूप ढे, आउके० अप्प ते द्रव्य लक्षणढे, तेऊके० तेज उष्णरूप, वाउके० वायु चलन लक्षण अने पंचमाके० पांचमुं आगासके० आकाश अवकाश लक्षण ढे, ॥७॥ हवे एनुंज विशेष कहेढे. एएपंचमहप्नूयाके० ए पूर्वे कह्याते जे पंचमहानूत तेप्नो के० ते थकीज एगोत्ति के० कोइ एक चिडूप ते नूत थकी अव्यतिरिक्त एवो आहिया के० आत्मा होय ढे; परंतु जेम ए पांच नूत थकी पृथक् नूत एवो अन्य कोइ बीजो आत्मा ढे, एवी रीते जे बीजा दर्शनी कल्पना करेढे तेम नथी. केमके ए परलोकनो जनार, सुखडुःखनो नोगवनार जीव एवो पदार्थ कोइ बीजो नथी, एम ते चार्वाक कहेढे तेमने कोइ परवादी एम पूढे के, अहो चार्वाको जो ! तमारे मते पंचमहानूत थकी अन्य कोइ आत्मा एवो पदार्थ नथी, तो मरण पाम्यो एम कोण कहेवाय?

हवे एनो उत्तर चार्वाक दर्शनीओ कहेछे. अहएसिंके० अथ एटले हवे एसिं एटले ए पंच महाभूत जे छे तेना विणासेणं के० विनाश थकी, देहिणो के० जीवनो पण विणासो होइ के० विनाश होयछे. परंतु जे एवुं कहेछे के आत्मा चवीने अन्यत्र स्थाने जायछे. कर्मना वशथकी सुखी दुःखी थायछे, ते सर्व मुग्धरंजन जाणवुं ॥ ८ ॥

॥ दीपिका—सांप्रतं नास्तिकमतमाश्रित्याह । (संतीति) संति पंचमहाभूतानि इह अस्मिन् लोके एकेषां भूतवादिनामाख्यातानि तत्वार्थकृतानि । तैर्वा भूतवादिभिर्नास्तिकैराख्यातानि स्वयमंगीकृतानि । परेषां च प्रतिपादितानि तानि चामूनि । (पुढवीत्यादि)। पृथ्वी १ आपो जलं २ तेजो वन्हिः ३ वायुः ४ आकाशं पंचमं येषां तानि । ननु सांख्यादिभिरपि भूतानि मन्यंतएव । तत्कथं चार्वाकमतापेक्षयैव भूतोपन्यास इति चेदुच्यते । सांख्यादिभिर्हि प्रधानाहंकारादिकं तथा कालदिगात्मादिकं चान्यदपि वस्तुजातमंगीक्रियते । चार्वाकैस्तु भूतव्यतिरिक्तं नात्मादि किंचिन्मन्यतइति तन्मताश्रयेणैवायं सूत्रोपन्यास इति ॥७॥ चार्वाकमतांगीकारमेवाह । (एतइति) । एतानि पंचमहाभूतानि तेभ्यो भूतेभ्यः कायाकारपरिणतेभ्य एकः कश्चिच्चिद्रूपो भूताव्यतिरिक्त आत्मा भवति नतु कश्चिदपरः परलोकयायी जीवाख्यः पदार्थोस्तीत्येवमाख्यातवंतस्ते । ननु यदि भूतेभ्योन्यः कश्चिदात्मा नास्ति कथं तर्हि मृतइति व्यपदेशइत्याशंकायामाह । (अहतेसिंति) । अथ तेषां भूतानां विनाशेऽपगमे देहिनो देवदत्तादेर्विनाशो भवति ततश्च मृतइत्युच्यते न पुनर्जीवापगमइति । अत्रैतन्मतनिर्लोठनयुक्तयो वृत्तितोऽवसेयाः ॥८॥

॥ टीका—सांप्रतं विशेषेण सूत्रकार एव चार्वाकमतमाश्रित्याऽह । (संतिपंचमहभूयाइत्यादि) । संति विद्यंते महांति च तानि भूतानि च महाभूतानि । सर्वलोकव्यापित्वान्महत्वविशेषणं । अनेन च भूताभाववादिनिराकरणं द्रष्टव्यं । इहास्मिन् लोके एकेषां भूतवादिनामाख्यातानि प्रतिपादितानि तत्तीर्थकृता तैर्वा भूतवादिभिर्बार्हस्पत्यमतानुसारिभिराख्यातानि स्वयमंगीकृतान्यन्येषां च प्रतिपादितानि । तानि चामूनि । तद्यथा । पृथिवी कठिनरूपा । आपो द्रवलक्षणाः । तेज उष्णरूपं । वायुश्चलनलक्षणः । आकाशं सुषिरलक्षणमिति तच्च पंचमं येषां तानि । तथा । एतानि सांगोपांगानि प्रसिद्धत्वात् प्रत्यक्षप्रमाणावसेयत्वाच्च न कैश्चिदपह्नोतुं शक्यानि । ननु च सांख्यादिभिरपि भूतान्यभ्युपगतान्येव । तथाहि । सांख्यास्तावदेवमूचुः । तद्यथा । सत्वरजस्तमोरूपात्प्रधानान्महान् बुद्धिरित्यर्थः । महतोऽहंकारोऽहमितिप्रत्ययस्तस्मादप्यहंकारात्षोडशकोगण उत्पद्यते । सचायं । पंच स्पर्शादीनि बुद्धींद्रियाणि वाक्पाणिपादपायूपस्थरूपाणि पंच कर्मेंद्रियाणि । एकादशं मनः । पंचतन्मात्राणि । तद्यथा । गंधरसरूपस्पर्शशब्दत

न्मात्राख्यानि । तत्र गंधतन्मात्रात्पृथिवी गंधरसरूपस्पर्शवती । रसतन्मात्रादापो रस रूपस्पर्शवत्यः । रूपतन्मात्रात्तेजो रूपस्पर्शवत् । स्पर्शतन्मात्राद्वायुः स्पर्शवान् । शब्द तन्मात्रादाकाशं गंधरसरूपस्पर्शवर्जितमुत्पद्यतइति । तथा वैशेषिका अपि नूतान्यनि हितवंतः । तद्यथा । पृथिवीत्वयोगात्पृथिवी । साच परमाणुलक्षणा नित्या । द्व्यणुकादि प्रक्रमनिष्पन्नकार्यरूपतया त्वनित्या । चतुर्दशनिर्गुणैरूप, रस, गंध, स्पर्श, संख्या, परि माण, पृथक्त्व, संयोग, विनाग, परत्वा,परत्व, गुरुत्व, इवत्व, वेगाख्यैरुपेता । तथा प्त्वयोगादापस्ताश्च रूपरसस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविनागपरत्वापरत्वगुरुत्व स्वाजाविकद्रवत्वस्नेहवेगवत्यस्तासु च रूपं शुक्लमेव रसो मधुरएव स्पर्शः शीतएवेति । तेजस्त्वाजिसंबंधात्तेजः । तच्च रूपस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविनागपरत्वापरत्वनै मित्तिकद्रवत्ववेगाख्यैरेकादशनिर्गुणैर्गुणवत् । तत्र रूपं शुक्लं नास्वरं च । स्पर्शउष्णएवेति । वायुत्वयोगाद्वायुः । सचानुष्णशीतस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविनागपरत्वापरत्व वेगाख्यैर्नवनिर्गुणैर्गुणवान् । हृत्कंपशब्दानुष्णशीतस्पर्शलिंगं । आकाशमिति पारिनाषिकी संज्ञा एकत्वात्तस्य । तच्च संख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविनागशब्दाख्यैः षड्निर्गुणैर्गुण वत् । शब्दलिंगंचेत्येवमन्यैरपि वादिनिर्नूतसद्भावाश्रयणे किमिति लोकायतिकमतापेक्ष या नूतपंचकोपन्यासइत्युच्यते । सांख्यादिनिर्हि प्रधानात्साहंकारिकं तथा कालदिगात्मा दिकं चान्यदपि वस्तुजातमन्युपेयते । लोकायतिकैस्तु नूतपंचकव्यतिरिक्तं नात्मादिकं किं चिदन्युपगम्यते इत्यतस्तन्मताश्रयणेनैव सूत्रार्थो व्याख्यायतइति ॥ ७ ॥ यथा चैतत्त था दर्शयितुमाह । (एएपंचमहब्भूयाइत्यादि) । एतान्यनंतरोक्तानि पृथिव्यादीनि पंच महा नूतानि यानि तेन्यः कायाकारपरिणतेन्य एकः कश्चिच्चिद्रूपो नूताव्यतिरिक्त आत्मा नवति न नूतेन्यो व्यतिरिक्तोऽपरः कश्चित्परः परिकल्पितः परलोकानुयायी सुखडुःखनो क्ता जीवाख्यः पदार्थोस्तीत्येवमाख्यातवंतस्ते । तथाहि । एवं प्रमाणयंति । न पृथिव्यादि व्यतिरिक्त आत्माऽस्ति तद्ग्राहकप्रमाणाजावात् ॥ प्रमाणं चात्र प्रत्यक्षमेव नानुमानादिकं । तत्रेंद्रियेण साक्षादर्थस्य संबंधानावाद्व्यनिचारसंनवः । सति च व्यनिचारसंनवे सदृशे च बाधासंनवे तल्लक्षणमेव दूषितं स्यादिति सर्वत्रानाश्वासः । तथाचोक्तं । हस्तस्पर्शादि वांधेन, विषमे पथि धावता ॥ अनुमानप्रधानेन, विनिपातो न डुर्लनः ॥ १ ॥ अनुमानं चात्रोपलक्षणमागमादीनामपि । साक्षादर्थसंबंधानावाद्धस्तस्पर्शनेनैव प्रवृत्तिरिति । तस्मात्प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणं । तेन च नूतव्यतिरिक्तस्यात्मनो न ग्रहणं । यत्तु चैतन्यं ते षूपलन्यते तन्नूतेष्वेव कायाकारपरिणतेष्वनिव्यज्यते मद्यांगेषु समुदितेषु मदशक्तिवदि ति । तथा न नूतव्यतिरिक्तं चैतन्यं तत्कार्यत्वाद्घटादिवदिति । तदेवं नूतव्यतिरिक्तस्या त्मनोऽनावान्नूतानामेव चैतन्यानिव्यक्तिर्जलस्य बुद्बुदादिव्यक्तिवदिति । केषांचिल्लोकाय

तिकानामाकाशस्यापि भूतत्वेनाभ्युपगमाद्भूतपंचकोपन्यासो न दोषायेति । ननुच यदि भूतव्यतिरिक्तोऽपरः कश्चिदात्माख्यः पदार्थो न विद्यते कथं तर्हि मृतइति व्यपदेश इत्याशं क्याह । अथैषां कायाकारपरिणतौ चैतन्याभिव्यक्तौ सत्यां तदूर्ध्वंतेषामन्यतमस्य विनाशे ऽपगमे वायोस्तेजसश्चोभयोर्वा देहिनो देवदत्ताख्यस्य विनाशोऽपगमो भवति ततश्च मृ तइति व्यपदेशः प्रवर्तते न पुनर्जीवापगमइति भूताव्यतिरिक्तचैतन्यवादिपूर्वपक्षइति । अत्र प्रतिसमाधानार्थं निर्युक्तिकृदाह । "पंचण्हं संजोए,अण्णगुणाणंच चेयणाइगुणो । पंचिंदि यठाणाणं,णअण्णमुणियं मुणइ अण्णो ॥३३॥(पंचण्हंसंजोएइत्यादि)। पंचानां पृथिव्यादीनां भूतानां संयोगे कायाकारपरिणामे चैतन्यादिकः । आदिशब्दात् भाषाचंक्रमणादिकश्च गुणो न भवतीति प्रतिज्ञा । अन्यादयस्त्वत्र हेतुत्वेनोपात्ता. । दृष्टांतस्त्वभ्यूह्यः । सुलभत्वात्तस्यनो पादानं । तत्रेदं चार्वाकः प्रष्टव्यः । यदेतद्भूतानां संयोगे चैतन्यमभिव्यज्यते तत्किं तेषां संयो गेपि स्वातंत्र्यएवाऽहोस्वित्परस्परापेक्षया पारतंत्र्ये इति । किंचाऽतः ॥ न तावत्स्वातंत्र्ये यत आह । (अण्णगुणाणंचेति) चैतन्यादन्ये गुणा येषां तान्यन्यगुणानि । तथा ह्याधारकाठिन्य गुणा पृथिवी द्रव्यगुणा आपः पक्तृगुणं तेजः । चलनगुणो वायुः अवगाहदानगुणमा काशमिति । यदि वा प्रागभिहिता गंधादयः पृथिव्यादीनामेकैकपरिहान्याऽन्येगुणाश्चेत न्यादिति । तदेवं पृथिव्यादीन्यन्यगुणानि । च शब्दो द्वितीयविकल्पवक्तव्यतासूचनार्थः। चैतन्यगुणे साध्ये पृथिव्यादीनामन्यगुणानां सतां चैतन्यगुणस्य पृथिव्यादीनामेकैकस्या प्यभावान्नतत्समुदायाच्चैतन्याख्यो गुणः सिद्ध्यतीति । प्रयोगस्तत्र भूतसमुदायः स्वातंत्र्ये सति धर्मित्वेनोपादीयते न तस्य चैतन्याख्यो गुणोस्तीति । साध्यो धर्मः पृथिव्यादीनामन्यगुणत्वात् । योयोन्यगुणानांसमुदायस्तत्रतत्राऽपूर्वगुणोत्पत्तिर्न भवती ति । यथा सिकतासमुदाये स्निग्धगुणस्य तैलस्य नोत्पत्तिरिति घटपटसमुदाये वा न स्तंभाद्याविर्भावइति । दृश्यते च कार्ये चैतन्यं तदात्मगुणो भविष्यतीति न भूताना मिति । अस्मिन्नेवसाध्ये हेत्वंतरमाह । (पंचिंदियठाणाणंति) । पंच च तानि स्पर्शनर सनघ्राणचक्षुःश्रोत्राख्यानींद्रियाणि तेषां स्थानान्यवकाशास्तेषां चैतन्यगुणाभावान्न भूतसमुदाये चैतन्यं । इदमत्र हृदयं। लोकायतिकानां हि अपरस्य द्रष्टुरनभ्युपगमा दिंद्रियाण्येव द्रष्टॄणि । एतेषां च यानि स्थानान्युपादानकारणानि तेषामचिद्रूपत्वान्न भूत समुदाये चैतन्यमिति। इंद्रियाणां चामूनि स्थानानि। तद्यथा। श्रोत्रेंद्रियस्याकाशं सुषिरात्म कत्वात् । घ्राणेंद्रियस्य पृथिवी तदात्मकत्वात् । चक्षुरिंद्रियस्य तेजस्तद्रूपत्वात् । एवं र सनेंद्रियस्यापः । स्पर्शनेंद्रियस्य वायुरिति । प्रयोगश्चात्र नेंद्रियाण्युपलब्धिमंति तेषामचे तनगुणारब्धत्वात् । यद्यदचेतनगुणारब्धं तत्तदचेतनं। यथा घटपटादीनि। एवमपिच भू तसमुदाये चैतन्याभावएव साधितो भवति । पुनर्हेत्वंतरमाह । (ण अण्णमुणियंमुण

इत्यस्मीति)। इहेंद्रियाणि प्रत्येकं जूतात्मकानि तान्येवापरस्य द्रष्टुरजावाद्रष्टृणि तेषां च प्रत्येकं स्वविषयग्रहणादन्यविषये चाप्रऽवृत्तेर्नान्यदिंद्रियज्ञातमन्यदिंद्रियं जानातीत्यतो मया पंचापि विषया ज्ञाता इत्येवमात्मकः संकलनाप्रत्ययो न प्राप्नोत्यनुजूयते चायं तस्मादेकेनैव द्रष्ट्रा नवतिव्यम्। तस्यैव च चैतन्यं न जूतसमुदायस्येति। प्रयोगः पुनरेवं जूतसमुदाये चैतन्यं तदारब्धेंद्रियाणां प्रत्येकविषयग्राहित्वे सति संकलनाप्रत्ययाजावात्। यदि पुनरन्यगृहीतमप्यन्यो गृण्हीयाद्देवदत्तगृहीतं यज्ञदत्तेनापि गृह्येत न चैतद् दृष्टमिष्टं चेति। ननुच स्वातंत्र्यपक्षेऽयं दोषः। यदा पुनः परस्परसापेक्षाणां संयोगपारतंत्र्याज्युपगमेन जूतानामेव समुदितानां चैतन्याख्यो धर्मः संयोगवशादाविर्जवति। यथा किण्वोदकादिषु मद्यांगेषु समुदितेषु प्रत्येकमविद्यमानापि मदशक्तिरिति तदा कुतोऽस्य दोषस्यावकाशइति। अत्रोत्तरं। गाथायां चशब्दाक्षिप्तमजिधीयते। यत्तावडुक्तं। यथा जूतेज्यः परस्परसव्यपेक्षसंयोगजाग्ज्यश्चैतन्यमुत्पद्यते। तत्र विकल्पयामः। किमसौ संयोगः संयोगिज्यो जिन्नोऽजिन्नो वा। जिन्नश्चेत्षष्ठजूतप्रसंगो न चान्यत्पंचजूतव्यतिरिक्तसंयोगाख्यजूतग्राहकं नवतां प्रमाणमस्ति। प्रत्यक्षस्यैवैकस्याज्युपगमात्तेन च तस्याग्रहणात् प्रमाणांतराज्युपगमे च तेनैव जीवस्यापि ग्रहणमस्तु। तथाऽजिन्नो जूतेज्यो जूतानामेव संयोगस्तत्राप्येतच्चिंतनीयं।किंजूतानि प्रत्येकं चेतनावंत्यचेतनावंति वा। यदि चेतनावंति तदा एकेंद्रियसिद्धिस्तदा समुदायस्य पंचप्रकारचैतन्यापत्तिः। अथाचेतनानि तत्रोक्तो दोषो नहि। यद्यत्र प्रत्येकमविद्यमानं तत्समुदाये जवडुपलज्यते सिकतासु तैलवदित्यादिना। यदप्यत्र पूर्वोक्तं तथा मद्यांगेष्वविद्यमानाऽपि प्रत्येकं मदशक्तिः समुदाये प्राडुर्जवतीति। तदप्ययुक्तं। यतस्तत्र किण्वादिषु याच यावती शक्तिरुपलज्यते। तथाहि॥ किण्वे बुजुक्षापनयनसामर्थ्यं ज्रमिजननसामर्थ्यं चोदकस्य तृडपनयनसामर्थ्यमित्यादिनेति जूतानां प्रत्येकं चैतन्याऽनज्युपगमे दृष्टांतदार्ष्टांतिकयोरसाम्यं। किंच जूते चैतन्याज्युपगमे मरणाजावो मृतकायेपि पृथ्व्यादीनां जूतानां सद्भावात् नैतदस्ति। तत्र मृतकाये वायोस्तेजसो वाऽजावान्मरणसद्भाव इत्यशिक्षितस्योल्लापः। तथाहि। मृतकाये शोफोपलब्धेर्न वायोरजावः कायस्य च पक्तिस्वजावस्य दर्शनान्नाग्नेरिति। अथसूक्ष्मःकश्चिद्वायुविशेषोग्निर्वा ततोपगतइति मतिरित्येवं च जीव एव नामांतरेणाज्युपगतो जवति। यत्किंचिदेतत्। तथा न जूतसमुदायमात्रेण चैतन्याविर्जावः। पृथिव्यादिष्वेकत्र व्यवस्थापिते चैतन्यानुपलब्धेः। अथकायाकारपरिणतौ सत्यां तदाजिव्यक्तिरिष्यते।तदपि न। यतो लेप्यमयप्रतिमायां समस्तजूतसद्भावेऽपि जडत्वमेवोपलज्यते। तदेवमन्वयव्यतिरेकाज्यामालोच्यमानो नायंचैतन्याख्यो गुणो जूतानां जवितुमर्हति। समुपलज्यते चायं शरीरेषु। तस्मात् पारिशेषात् जीवस्यैवायमिति स्वदर्शनपक्षपातं विहायांगीक्रियतामिति।

यच्चोक्तं प्राक् न पृथिव्यादिव्यतिरिक्त आत्माऽस्ति तद्ग्राहकप्रमाणाभावात् । प्रमाणं चात्र प्रत्यक्षमेवैकमित्यादि तत्र प्रतिविधीयते । यत्तावदुक्तं प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणं नानुमानादिकमित्येतदनुपासितगुरोर्वचः । तथाहि । अर्थाविसंवादकं प्रमाणमित्युच्यते प्रत्यक्षस्य च प्रामाण्यमेव व्यवस्थाप्यते । कश्चित्प्रत्यक्षव्यक्तीर्धर्मित्वेनोपादाय प्रमाणयति । प्रमाणमेता अर्थाऽविसंवादकत्वादनुभूतप्रत्यक्षव्यक्तिवत् । नच ताभिरेव प्रत्यक्षव्यक्तिभिः स्वसंविदिताभिः परंव्यवहारयितुमयमीशस्तासां स्वसन्निविष्टत्वान्मूकत्वाच्च । प्रत्यक्षस्य नानुमानं प्रमाणमित्यनुमानेनैवानुमाननिरासं कुर्वंश्चार्वाकः कथं नोन्मत्तः स्यादेवं ह्यसौ तदप्रामाण्यं प्रतिपादयेत् । यथा नानुमानं प्रमाणं विसंवादकत्वादनुभूतानुमानव्यक्तिवदित्येतच्चानुमानमयपरप्रसिध्यैतदुच्यते । तदप्ययुक्तं । यतस्तत्परप्रसिद्धमनुमानं भवतः प्रमाणमप्रमाणं वा । प्रमाणं चेत्कथमनुमानमप्रमाणमित्युच्यते । अथाप्रमाणं कथमप्रमाणेन सता तेन परः प्रत्याय्यते । परेण तस्य प्रामाण्येनाभ्युपगतत्वादिति चेत्तदप्यसांप्रतं । यदिनाम परो मौढ्यादप्रमाणमेव प्रमाणमित्यवध्यस्यति । किं भवताऽतिनिपुणेनापि तेनैवाऽसौ प्रतिपाद्यते । यो ह्यन्यो गुडमेव विषमपि मन्यते किं तस्य मारयितुकामेनापि बुद्धिमता गुडएव दीयते । तदेवं प्रत्यक्षानुमानयोः प्रामाण्याप्रामाण्ये व्यवस्थापयतो भवतोऽनिच्छतोपि बलादायातमनुमानस्य प्रामाण्यं । तथा स्वर्गापवर्गदेवतादेः प्रतिषेधं कुर्वन् भवान् केन प्रमाणेन करोति न तावत्प्रत्यक्षेण प्रतिषेधं कर्तुं पार्यते । यतस्तत्प्रत्यक्षं प्रवर्तमानं वा तन्निषेधं विदध्यान्निवर्तमानं वा । न तावत्प्रवर्तमानं तस्याऽभावविषयत्वविरोधात् । नापि निवर्तमानं । यतस्तच्च नास्ति तेन च प्रतिपत्तिरित्यसंगतं । तथाहि । व्यापकविनिवृत्तौ व्याप्यस्यापि निवृत्तिरिष्यते ॥ न चार्वाकदर्शितप्रत्यक्षेण समस्तवस्तुव्याप्तिः संभाव्यते । तत्कथं प्रत्यक्षविनिवृत्तौ पदार्थव्यावृत्तिरिति । तदेवं स्वर्गादेः प्रतिषेधं कुर्वता चार्वाकेणाऽवश्यं प्रमाणांतरमभ्युपगतं । तथाऽन्याभिप्रायविज्ञानाभ्युपगमादत्र स्पष्टमेव प्रमाणांतरमभ्युपगतं । अन्यथा कथं परावबोधाय शास्त्रप्रणयनमकारि चार्वाकेणेत्यलमतिप्रसंगेन । तदेवं प्रत्यक्षादन्यमपि प्रमाणमस्ति तेनात्मा सेत्स्यति किंपुनस्तदिति चेदुच्यते । अस्त्यात्मा । असाधारणगुणोपलब्धेश्चक्षुरिंद्रियवत् । चक्षुरिंद्रियं हि न साक्षादुपलभ्यते । स्पर्शनादींद्रियाऽसाधारणरूपविज्ञानोत्पादनशक्त्या त्वनुमीयते । तथात्मापि पृथिव्याद्यसाधारणगुणोपलब्धेरस्तीत्यनुमीयते । चैतन्यं च तस्यासाधारणगुणइत्येतत्पृथिव्यादिभूतसमुदाये चैतन्यस्य निराकृतत्वादवसेयं । तथास्त्यात्मा समस्तेंद्रियोपलब्धार्थसंकलनाप्रत्ययसद्भावात् । पंचगवाक्षान्यंतर्न्योपलब्धार्थसंकलनाविधाय्येकदेवदत्तवत् । तथाऽत्माऽर्थद्रष्टा नेंद्रियाणि । तद्विगमे हि तदुपलब्धार्थस्मरणात् । गवाक्षोपरमेऽपि तद्द्वारोपलब्धार्थस्मर्तृदेवदत्तवत् । तथाऽर्था

पत्त्याप्यात्मास्तीत्यवसीयते । तथापि सत्यपि पृथिव्यादिभूतसमुदाये लेप्यकर्मादौ न सुखडुःखेछाद्वेषप्रयत्नादिक्रियाणां सद्भाव इत्यतः सामर्थ्यादवसीयते । अस्ति भूतातिरिक्तः कश्चित्सुखडुःखेछादीनां क्रियाणां समवायिकारणं पदार्थः सचात्मेति । तदेवं प्रत्यक्षानुमानादिपूर्विकाऽन्याप्यर्थापत्तिरभ्यूह्या । तस्यास्त्विदं लक्षणं । प्रमाणपट्कविज्ञातो, यत्रार्थो नान्यथा भवेत् ॥ अदृष्टं कल्पयेदन्यं, सार्थापत्तिरुदाहृता ॥ १ ॥ तथाऽगमादप्यस्तित्वमवसेयं । सचायमागमः । अत्थिमेआयाउववाइएइत्यादि । यदि वा किमत्राऽपरप्रमाणचिंतया सकलप्रमाणज्येष्ठेन प्रत्यक्षेणैवात्मास्तीत्यवसीयते । तद्गुणस्य ज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वात् । ज्ञानगुणस्य च गुणिनोऽनन्यत्वात् । प्रत्यक्षएवात्मा रूपादिगुणप्रत्यक्षत्वेन पटादिप्रत्यक्षवत् । तथा ह्यहं सुखमहं डुःख्येवमाद्यहंप्रत्ययग्राह्यऽस्त्यात्माप्रत्यक्षः । अहंप्रत्ययस्य स्वसंविद्रूपत्वादिति । ममेदं शरीरं पुराणं कर्मेति च शरीराद्भेदेन निर्दिश्यमानत्वादित्यादीन्यन्यान्यपि प्रमाणानि जीवसिद्धावभ्यूह्यानीति ॥ तथा यडुक्तं । न भूतव्यतिरिक्तं चैतन्यं तत्कार्यत्वात् घटादिवदित्येतदप्यसमीचीनं । हेतोरसिद्धत्वात् । तथाहि । न भूतानां कार्यं चैतन्यं तेषामतद्गुणत्वात् भूतकार्यचैतन्ये संकलनाप्रत्ययासंभवाच्चेत्यादिनोक्तप्रायमतोऽस्त्यात्मा भूतव्यतिरिक्तो ज्ञानाधारइत्युक्तं । ननुच किं ज्ञानाधारभूतेनात्मना ज्ञानाद्भिन्नेनाश्रितेन यावता ज्ञानादेव सर्वसंकलनाप्रत्ययादिकं सेत्स्यति किमात्मनांतर्गडुकल्पेनेति । तथाहि । ज्ञानस्यैव चिद्रूपत्वाद्भूतैरचेतनैः कायाकारपरिणतैः सह संबंधे सति सुखडुःखेछाद्वेषप्रयत्नक्रियाः प्राडुष्षंति तथा संकलनाप्रत्ययो भवान्तरगमनंचेति । तदेवं व्यवस्थिते किमात्मना कल्पितेनेत्यत्रोच्यते । नह्यात्मानमेकमाधारभूतमंतरेण संकलनात्र न्याय्या घटते । तथाहि । प्रत्येकमिंद्रियैः स्वविषयग्रहणे सति परविषये चाप्रवृत्तेरेकस्य च परिच्छेत्तुरभावात् । मया पंचापि विषयाः परिछिन्ना इत्यात्मकस्य संकलनाप्रत्ययस्याभावादिति । आलयविज्ञानमेकमस्तीति चेदेवं सत्यात्मनएव नामांतरं भवता कृतं स्यात् । नच ज्ञानाख्यो गुणो गुणिनमंतरेण भवतीत्यवश्यमात्मना गुणिना भाव्यमिति । सच न सर्वव्यापी तद्गुणस्य सर्वत्रानुपलभ्यमानत्वात् घटवत् । नापि श्यामाकतंडुलमात्रोंगुष्ठपर्वमात्रो वा । तावन्मात्रस्योपात्तशरीराव्यापित्वात् त्वक्पर्यंतशरीरव्यापित्वात् त्वचोपलभ्यमानगुणत्वात् । तस्मात्स्थितमिदमुपात्तशरीरत्वक्पर्यंतव्याप्यात्मेति । तस्य चानादिकर्मसंबद्धस्य कदाचिदपि सांसारिकस्यात्मनः स्वरूपेऽनवस्थानात् सत्यप्यमूर्तत्वे मूर्तेन कर्मणा संबंधो न विरुध्यते । कर्मसंबंधाच्च सूक्ष्मबादरैकेंद्रियद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियपर्याप्तापर्याप्तसाद्यवस्था बहुविधाः प्राडुर्भवंति । तस्य चैकांतेन क्षणिकत्वे ध्यानाध्ययनश्रमप्रत्यभिज्ञानाद्यभावः । एकांतनित्यत्वे च नारकतिर्यङ्मनुष्यामरगतिपरिणामाभावः स्यात्तस्मात्स्यादनित्यः स्यान्नित्यआत्मेत्यलमतिप्रसंगेन ॥ ८ ॥

जहा य पुढवीथूने, एगे नाणाहि दीसइ ॥ एवं नो कसिणे लोए विन्नू नाणाहि दीसइ ॥ ए ॥ एवमेगेत्ति जप्पंति, मंदा आरंनणि स्सिआ ॥ एगे किच्चा सयं पावं, तिव्वं डुक्खं नियहइ ॥ १० ॥

अर्थ–एम पंचनूतियागता एटले पंच नूतिक वादिनो मत कह्युं. हवे आत्माद्वैत वादिनो मत दृष्टांतेकरी कहिये छैयें. जहाय के० जेम पुढवीथूनेएगे के० पृथ्वीरूप थून एक छतां नाणाहिदीसइ के०नदी, समुद्र, पर्वत, नगर अने ग्राम इत्यादि रूप नाना प्रकारे देखायछे. परंतु विचाले पृथ्वीनुं अंतर कांइ देखातुं नथी एटले पृथ्वी एकज छे. एवंके० ए उक्त न्याये, नो ए वचन परने बोलाववाने अर्थेछे. एटले अहो ? दर्शनीउ तेम कसिणे लोएके० ए समस्त लोक चराचर स्वरूप एकज छे एटले आत्मारूप छे, परंतु विन्नू के० विद्वान् ते चराचररूप आत्मा. नाणाइ दीसइ के० नानाप्रकारे द्विपद चतुष्पद बहुप दादिरूप देखाय छे. परंतु जे एम कहे के, शरीर शरीरने विषे आत्मा जुदो जुदो छे ते मिथ्या छे. यडुक्तं । एकएवहि नूतात्मा, नूते नूते व्यवस्थितः ॥ एकधा बहुधा चैव, दृश्यते जलचंद्रवत् ॥ १ ॥ इत्यादि ॥ ए ॥ हवे जैन एनें उत्तर आपेछे. एवं के० ए पूर्वोक्त न्याये एगेत्ति के० एक एटले कोइ एक परवादी, पोताना छंदने बलात्कारे एम जप्पंति के०बोले छे. ते केवाछे, तोके मंदा के०मंद छे. एटले सम्यक् ज्ञान विकल छे; केमके, जो सर्वत्र आत्मा एकज छे, बीजो नथी तो जगत्मांहे एगेके० एकेक जीव करसणी प्रमुख आरंनणिस्सिआ के० जीवहिंसात्मक आरंननेविषे निस्सिया एटले आसक्त थका सयंके० पोते पावं के० पापने किच्चा के० करीने तिव्वंडुक्खं के० तीव्र डुःखने नियहइ के० पामेछे. पण अनेरा नथी पामता, तथा जे जीव जगत्मां कांइ असमंजस चौरादिक कर्म करे छे, ते छेदनचेदनादिक अनेक विटंबनाउ पामेछे. अने जे नलो समाचरेछे ते साता पामेछे. माटे जो सर्वजीवनो आत्मा एकज होय तो सर्व जीवने विटंबना अथवा साता केम न थवी जोइये ? माटे ए तमारुं वचन मिथ्या छे; केमके सर्व जीव पोतपोतानी करणीए सुख डुःखने पामेछे ॥ १० ॥ ए सव्वगतवादिगता एटले सर्वगत वादीनुं मत कह्युं.

॥ दीपिका– अथ एकात्माऽद्वैतवादमुद्दिश्याह । (जधायेति) यथा च शब्दोऽपिशब्दार्थे । सच निन्नः । पृथिव्याःस्तूपः पृथिव्येव वा स्तूपः पृथिवीसंघाताख्योऽवयवी । सच एकोपि यथा नानारूपः सरित्समुद्रपर्वतनगरग्रामाद्याधारतया विचित्रो दृश्यते । निम्नोन्नतमृडुकठिनरक्तपीतादिनेदेन वा दृश्यते । नच तावता पृथिवीत्वस्यैकस्य नेदो नवति । एवं नोऽइति परामंत्रणं । कृत्स्नोपि चेतनाचेतनरूपो लोक एको विद्वानेक एवात्मा विद्वान् ज्ञानपिंडः पृथिव्यादिनूताकारतया नाना दृश्यते । नच तावता तस्यैकस्यात्मतत्त्वस्य नेदो

नवति ॥ए॥ अस्योत्तरमाह । (एवमिति) एवमात्माद्वैतवादमाश्रिता एके जल्पंति । मंदा जडाः। मंदत्वं चैतेषां युक्तिविकलजीवाऽद्वैतपक्षाश्रयणात् । तथाहि। यद्येकएवात्मा स्या त्तदा एके कृषीवलादय आरंने जीवहिंसात्मके निःश्रिता आसक्ताः स्वयंपापं कृत्वा तीव्रं नारकादिडुःखं (निगछइत्ति) आर्षत्वाद्बहुवचनार्थे एकवचनं। निश्चयेन गछंति । तएवारं नसक्तानान्ये इत्येतन्न स्यात्। यद्येक एवात्मा स्यात्तदा एकेनाप्यशुने कर्मणि कृते सर्वेषां डुः खं स्यान्नचैवं दृश्यते । तस्मादेकएवात्मेति न युक्तं ॥ १० ॥

॥ टीका ॥ सांप्रतमेकात्माऽद्वैतवादमुद्देशार्थाधिकारप्रदर्शितं पूर्वपक्षयितुमाह । (जहापुढवीत्यादि) दृष्टांतबलेनैवार्थस्वरूपावगतेः पूर्वंदृष्टांतोपन्यासः । यथेत्युपदर्शने । च शब्दोऽपिशब्दार्थे । सचनिन्नक्रमएकेइत्यस्यानंतरं इष्टव्यः। पृथिव्येव स्तूपा पृथिव्या वा स्तूपः पृथिवीसंघातावयवी। सचैकोपि यथा नानारूपः सरित्समुद्रपर्वतनगरसन्निवेशाद्याधारतया विचित्रो दृश्यते निम्नोन्नतमृडुकठिनरक्तपीतादिन्नेदेन वा दृश्यते । नच तस्य पृथिवीतत्त्वस्यैतावताऽन्नेदेन न्नेदो नवत्येवमुक्तरीत्या । न्नोइत्यादिपरामंत्रणं। कृत्स्नोपि लोकश्चेतनाचेतनरूप एकोविद्वान् वर्तते । इदमत्र हृदयं । एकएव ह्यात्मा विद्वान् ज्ञानपिंडः पृथिव्याद्याकारतया नाना दृश्यते नच तस्यात्मनएतावताऽत्मतत्त्व न्नेदो नवति । तथा चोक्तं । एकएव हि नूतात्मा, नूते नूते व्यवस्थितः॥ एकधा बहुधा चैव, दृश्यते जलचंद्रवत् ॥ १ ॥ तथा पुरुषएवेदं सर्वं यन्नूतं यच्च नव्यं॥ उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति, यदेजति यन्नेजति यद्दूरे यदंतरस्य सर्वस्य यत्सर्वस्यास्य बाह्यत इत्यात्माद्वैतवादः ॥ए॥ अस्योत्तरदानायाह। (एवमेगे इत्यादि) एवमित्यनंतरोक्तात्माद्वैतवादोपदर्शनं। एके केचन पुरुषकारणवादिनो जल्पंति प्रतिपादयंति । किंनूतास्ते इत्याह। मंदा जडाः सम्यक्परिज्ञानविकलाः॥ मंदत्वं चैषां युक्तिविकलात्माऽद्वैतपक्षसमाश्रयणात्। तथाहि।यद्येकएवात्मा स्यान्नात्मबहुत्वं ततो ये सत्वाःप्राणिनःकृषीवलादय एके केचन आरंने प्राण्युपमर्दकारिणि व्यापारे निःश्रिता आसक्ताः संबद्धा अध्युपपन्नास्ते च संरंनसमारंनैः कृत्वोपादाय स्वयमात्मना पापमशुनप्रकृतिरूपमसातोदयफलं तीव्रं डुःखं तदनुनवस्थानं वा नरकादिकं नियच्छतीति। आर्षत्वाद्बहुवचनार्थे एकवचनमकारि। ततश्चायमर्थो निश्चयेन यछंत्यवश्यतया गछंति प्राप्नुवंति तएवारंनासक्ता नान्यइत्येतन्न स्यादपित्वेकेनापि अशुने कर्मणि कृते सर्वेषां शुनानुष्ठायिनामपि तीव्रडुःखानिसंबंधः स्यादेकत्वादात्मनइति । नचैतदेवं दृश्यते। तथाहि। यएव कश्चिदसमंजसकारी सएव लोके तदनुरूपाविडंबनाः समनुनवन्नुपलन्यते नान्यइति । तथा सर्वगतत्वे आत्मनो बंधमोक्षाद्यनावस्तथा प्रतिपाद्यप्रतिपादकविवेकानावाच्छास्त्रप्रणयनानावश्च स्यादिति । एतदर्थसंवादित्वात्प्राक्तन्येव निर्युक्तिकृगाथात्र व्याख्यायते । तद्यथा । पंचानां पृथिव्यादीनां नूतानामेकत्र

कायाकारपरिणतानां चैतन्यमुपलभ्यते । यदि पुनरेकएवात्मा व्यापी स्यात्तदा घटादिष्वेव चैतन्योपलब्धिः स्यान्नचैवं । तस्मान्नैकआत्मा भूतानां चान्योन्यगुणत्वं न स्यादेकस्मा दात्मनोभिन्नत्वात् । तथा पंचेंद्रियस्थानानां पंचेंद्रियाश्रितानां ज्ञानानां प्रवृत्तौ सत्याम न्येन ज्ञात्वा विदितमन्यो न जानातीत्येतदपि न स्याद्येकएवात्मा स्यादिति ॥ १० ॥

पत्तेअं कसिणे आया, जे बाला जे अ पंडिआ ॥ संति पिच्चा
न ते संति, नत्थि सत्तोववाइया ॥ ११ ॥ नत्थि पुण्णेच पावेवा,
नत्थि लोए इतो परे ॥ सरीरस्स विणासेणं, विणासो होइ देहिणो ॥१२

अर्थ—हवे तज्जीवतच्छरीरवादिनो मत कहेछे.—ते तज्जीवतच्छरीरवादी एम कहेछे के, जेम पंचभूत मली कायाने आकारें परिणामी चेतना उपजावेछे. तो ते कारणे प त्तेअंकसिणेआया के० शरीर शरीर प्रत्ये आत्मा जुदो जुदो छे. जगत्मां जे बालाके० बाल अज्ञानी तथा जेअपंडिआके० जे पंडित एटले विवेकी छे, ते सर्व जुदा जुदा छे. परंतु एक आत्मा सर्वव्यापी न जाणवो. एटले जैनमत अने तेमनो मत एकज थयो. हवे गाथानां उत्तरार्द्धवडे तेमनो भेद देखाडेछे. ते परवादी एम कहेछे के, आत्मा घणा छे, परंतु ज्यांसुधी शरीर छे त्यांसुधी संति के० छे. पण जेवारे शरीर नहीं, तेवारे आत्मापण नहीं. एटले गत्यंतर गामी आत्माउ नथी. ए प्रकारे करी भेद देखाडचो. वली तेहिज कहेछे. पिच्चानते संतिके० ते आत्माउ परलोकने विषे न जाय. एतावता शरीरथकी भिन्न आपणां कर्मनो भोगवनार एवो आत्मा नथी. तथापि न त्थिसत्तोववाइयाके० सत्व जे प्राणीउ ते उपपातिक नथी. एटले भवांतरमां जई उपजे नहीं अर्थात् गतागति पण नथी. अहीं शिष्य पूछेछे के, पूर्वे जे भूतवादि कह्या अने ए तज्जीव तच्छरीरवादी ए बेहुने मांहोमांहे शुं विशेषछे? तेवारें गुरु कहेछे के, भूतवा दीने मतें जे पंचमहाभूत तेहिज कायाने आकारे परिणमीने धावनवलनादिक क्रिया करे. अने एमने मतें पंचभूत कायाने आकारे परिणमी चैतन्य स्वरूप आत्मा उप जावे. परंतु भूतथकी आत्मा जुदो नथी. एटलुं विशेष छे. ॥ ११ ॥ हवे तेनी वक्त व्यता कहेछे, नत्थिपुण्णेचपावेवा के० तज्जीवतच्छरीरवादी एम कहेछे के, पुण्य नथी, पाप पण नथी, अने नत्थिलोएइतोपरे के० अतः उपरांत लोक पण नथी. जेटलुं दृष्टि गोचर आवेछे तेटलोज लोक छे. वली ग्रंथकार एनुं कारण कहेछे के; सरीरस्सविणासे णंके० शरीरने विनाशेकरी विणासोहोइ देहिणो के० आत्मानो पण विनाश थाय. ए कार ण माटे आत्माने अभावे पुण्य पाप तथा लोकनी संभावना क्यां थकी थाय? ॥१२॥ " तज्जीवतच्छरीरवादिगता " एटले तज्जीवतच्छरीरवादिनुं ए प्रमाणे मत कह्युं.

॥ दीपिका– सांप्रतं तज्जीवतच्छरीरवादिमतं पूर्वपक्ष्यन्नाह। (पत्तेअमिति)। प्रत्येकं प्रति शरीरमात्मानः कृत्स्नाः सर्वेपि ये बाला अज्ञा ये च पंडितास्ते सर्वेपि पृथग्व्यवस्थिताः नहि एकएवात्मा सर्वव्यापी स्वीकार्यो बालपंडितविनागानावप्रसंगात् । नन्वेवमात्मबहुत्वं जैनैरपि स्वीक्रियतएव तत्किमिति परमतमाश्रित्य सूत्रमिदमुच्यतइत्याशंकायामाह। (संतित्ति)। संतिविद्यंते जीवाः शरीरं यावत्। शरीरानावे तु न संति । एतदेवाह। (पिच्चानतेसंति) प्रेत्य परलोके ते जीवा न संति। तेषां मते शरीराद्भिन्नः परलोकयायी न कश्चिदात्माख्यः पदार्थोस्तीति जैनेन्यो नेदः किमित्येवं ते मन्यंत इत्याह। (नछिसत्तोववाइया) उपपातिका नवाद्भवांतरगामिनः सत्वाः प्राणिनो नछि न संति। ननु नूतवादिनोस्य च तज्जीवतच्छरीरवादिनः को नेद इत्यत्रोच्यते। नूतवादिनो नूतान्येव कायाकारपरिणतानि धावनवल्गनादिक्रियां कुर्वंति। अस्य तु कायाकारपरिणतेन्योनूतेन्यश्चैतनाख्य आत्मोपपद्यते अनिव्यज्यते वा तेन्यश्चानिन्न इत्यनयोर्विशेषः ॥ ११ ॥ तन्मतमेवाह। (नछीति) । नास्ति पुण्यं पापं च नास्त्यतोऽस्माल्लोकात्परोऽन्यो लोकः परलोको यत्र पुण्यपापानुनवइति। अत्र हेतुमाह। शरीरस्य विनाशेन देहिनो आत्मनोपि विनाशो ऽनावो नवति। तथाच दर्श्यते तन्मतलेशः। यथा स्वनावादेव जगद्वैचित्र्यं । यदुक्तं। कंटकस्य च तीक्ष्णत्वं, मयूरस्य विचित्रता ॥ वर्णाश्च ताम्रचूडानां, स्वनावेन नवंति हीति ॥ १२ ॥

॥ टीका– सांप्रतं तज्जीवतच्छरीरवादिमतं पूर्वपक्षयितुमाह । (पत्तेअमित्यादि)। तज्जीवतच्छरीरवादिनामयमन्युपगमः। यथा पंचन्यो नूतेन्यः कायाकारपरिणतेन्यश्चैतन्यमुत्पद्यते अनिव्यज्यते चैकैकं शरीरंप्रति प्रत्येकमात्मनः कृत्स्नाः सर्वेप्यात्मान एवमवस्थिताः॥ ये बालाअज्ञा ये च पंडिताः सदसद्विवेकज्ञास्ते सर्वे पृथग्व्यवस्थिताः । नह्येकएवात्मा सर्वव्यापित्वेनान्युपगंतव्यो बालपंडिताद्यविनागप्रसंगात्। ननु प्रत्येकशरीराश्रयत्वेनात्मबहुत्वमर्हतानामपीष्टमेवेत्याशंक्याह। संति विद्यंते यावच्छरीरं विद्यंते तदनावे तु न विद्यंते। तथाहि । कायाकारपरिणतेषु नूतेषु चैतन्याविर्नावोनवति नूतसमुदायविघट्टने च चैतन्यापगमो न पुनरन्यत्र गच्चचैतन्यमुपलक्ष्यते। तदेव दर्शयति। (पिच्चानते संतीति) प्रेत्य परलोके न ते आत्मानः संति विद्यंते। परलोकानुयायी ह्यात्मा शरीराद्भिन्नः स्वकर्मफलनोक्ता न कश्चिदात्माख्यः पदार्थोस्तीति नावः। किमित्येवमतआह। (नछिसत्तोववाइया)। अस्तिशब्दस्तिङंतप्रतिरूपको निपातो बहुवचने द्रष्टव्यस्तदयमर्थः। न संति न विद्यंते॥ तदनावेतु न विद्यंते सत्वाः प्राणिन उपपातेन निवृत्ता उपपातिका नवाद्भवांतरगामिनो न नवंतीति तात्पर्यार्थः। तथाहि। तदागमाः विज्ञानघनएवैतेन्यो नूतेन्यः समुछाय तान्ये

वानुविनश्यतीति नप्रेत्य संज्ञा अस्तीति । ननु प्रागुपन्यस्तभूतवादिनोऽस्य च तज्जीवतच्छरीर वादिनः को विशेष इत्यत्रोच्यते । भूतवादिनो भूतान्येव कायाकारपरिणतानि धावनवल्ग नादिकां क्रियां कुर्वंत्यस्य तु कायाकारपरिणतेभ्यो भूतेभ्यश्चैतन्याख्य आत्मोत्पद्यते ऽभिव्य ज्यते वा तेभ्यश्चाभिन्नइत्ययं विशेषः ॥११॥ एवंच धर्मिणोऽभावाद्धर्मस्याप्यभावइति दर्शयि तुमाह । (नब्बिपुसुेच पावेवा इत्यादि) । पुण्यमभ्युदयप्राप्तिलक्षणं तद्विपरीतं पापमेतद्धुभय मपि न विद्यते । आत्मनो धर्मिणोऽभावात् । तदभावाच्च नास्त्यतोऽस्माल्लोकात्परोऽन्यो लोको यत्र पुण्यपापानुभवइति । अत्रार्थेसूत्रकारः कारणमाह । शरीरस्य कायस्य वि नाशेन भूतविघटनेन विनाशेन देहिनआत्मनोप्यभावो भवति यतो न पुनःशरीरे विनष्टे तस्मादात्मा परलोकं गत्वा पुण्यं पापं वाऽनुभवतीत्यतोधर्मिणआत्मनोभावात्तद्धर्मयोः पुण्यपापयोरप्यभावइति । अस्मिंश्चार्थे बहवो दृष्टांताः संति । तद्यथा । यथा जलबुद्बु दो जलातिरेकेण नापरः कश्चिद्विद्यते तथा भूतव्यतिरेकेण नापरः कश्चिदात्मेति । तथाच यथा कदलीस्तंभस्य बहिस्त्वगपनयने क्रियमाणे त्वङ्मात्रमिव सर्वं नांतः कश्चित्सारोस्त्ये वं भूतसमुदाये विघटति सति तावन्मात्रं विहाय नांतःसारभूतः कश्चिदात्माख्यः पदा र्थ उपलभ्यते । यथावाऽलातं भ्राम्यमाणमतद्रूपमपि चक्रबुद्धिमुत्पादयत्येवं भूतसमुदायो पि विशिष्टक्रियोपेतो जीवभ्रांतिमुत्पादयतीति । यथा च स्वप्ने बहिर्मुखाकारतया विज्ञा नमनुभूयते आंतरेणैव बाह्यमर्थमेवमात्मानमंतरेण तद्विज्ञानं भूतसमुदाये प्रादुर्भवती ति । तथा । यथाऽदर्शे स्वच्छत्वात्प्रतिबिंबितो बहिःस्थितोप्यर्थोंतर्गतो लक्ष्यते नचासौ त था । यथाच ग्रीष्मे भौमेनोष्मणा परिस्पंदमाना मरीचयो जलाकारं विज्ञानमुत्पादयंत्ये वमन्येपि गंधर्वनगरादयः स्वस्वरूपेणाऽतथाभूता अपि तथा प्रतिभासंते तथात्मापि भू तसमुदायाकारपरिणतौ सत्यां पृथगसन्नेव तथा भ्रांतिं समुत्पादयतीत्यमीषां च दृष्टांता नां प्रतिपादकानि केचित्सूत्राणि व्याचक्षते । अस्माभिस्तु सूत्राऽदर्शेषु चिरंतनटीकायां चादृष्टत्वान्नालिंगितानीति । ननु च यदि भूतव्यतिरिक्तः कश्चिदात्मा न विद्यते तत्कृते च पुण्यापुण्ये न तत्कथमेतद्वैचित्र्यं घटते । तद्यथा कश्चिदीश्वरोऽपरो दरिद्रोन्यः सुभगो परोदुर्भगः सुखी दुःखी सुरूपो मंदरूपो व्याधितो नीरोगीत्येवं प्रकारा विचित्रता किन्नि बंधनेत्यत्रोच्यते । स्वभावात् । तथाहि । कुत्रचिच्छिलाशकले प्रतिमारूपं विद्यते तच्च कुं कुमागरुचंदनादिविलेपनानुभोगमनुभवति धूपाद्यामोदं च । अन्यस्मिंस्तु पाषाणखंडे पाद क्षालनादि क्रियते नच तयोः पाषाणखंडयोः शुभाशुभे स्तः । यदुदयात्स तादृगवस्था विशेष इत्येवं स्वभावाज्जगद्वैचित्र्यं । तथाचोक्तं । कंटकस्य च तीक्ष्णत्वं मयूरस्य विचि त्रता ॥ वर्णाश्च ताम्रचूडानां,स्वभावेन भवंति हीति॥ १॥तद्यावत्तच्छरीरवादिमतं गतं ॥१२॥

कुवं च कारयं चेव, सवं कुवं न विज्जई ॥ एवं अकारउ अप्पा, एवं
तेउ पगप्निआ ॥ १३ ॥ जे ते उवाइणो एवं, लोए तेसिं कउसिया ॥
तमाउ ते तमं जंति, मंदा आरंजनिस्सिया ॥१४॥ आत्मषष्ठवादीगतः ॥

अर्थ—हवे अक्रियावादिनो मत कहेछे. ते अकर्मवादी एम कहेछे के; आत्मा अमूर्त्तछे, नित्यछे, तथा सर्वव्यापी छे. ते कारणे कुवंचके० क्रियानो कर्त्ता नथी. तथा कारयंचेवके० अनेरा पासे करावनार पण नथी; एटले आत्मा पोते क्रियाने विषे न प्रवर्त्ते, तथा अनेराने पण प्रवर्त्तावे नही. पूर्वे चकार आव्योछे ते अतीत अनागतना कर्त्तीने निषेधवाने अर्थे छे. यद्यपि स्थितिक्रिया अने मुडाप्रतिबिंबोदयन्याये नोजनक्रिया पण करे. तथापि समस्त क्रिया कारकपणुं नथी. एहिज नाव देखाडेछे. सवंकुवंन विज्जई के० सर्व क्रियानें एटले देशथकी देशांतर गमनरूप क्रियाने आत्मा करतो नथी. एवंअकारउ अप्पाके० ए रीते आत्मा अकारक छे. एवंतेउपगप्निआके० एप्रकारे ते सांख्यवादी धृष्टपणुं करता थका, प्रकृति करे, पुरुष नोगवे, इत्यादिक अयोग्य वचन बोले एटले अक्रिया वादिनुं मत कह्युं. ॥१३॥ हवे जैन, एना मतनुं निराकरण करेछे. जेते उवाइणो एवंके० जे, आत्मा शरीरथकी जुदो नथी. तथा आत्मा अकर्त्ता छे एम कहेछे. तेसिंके० तेने लोएकउसियाके० चतुर्गतिक संसाररूप लोक क्यां थकी होय? निःकेवल ते लोकमांहे वाचालपणुं देखाडेछे. एवा छतां तमाउतें तमंजंतिके० ते अज्ञानरूप तम एटले अंधकार तेमांहेथकी निकलीने अनेरा तम एटले अंधकारमांहे जंति एटले जायछे, एटले ज्ञानवर्णादिक कर्म उपार्जनकरेछे. अथवा तमनेविषे द्विअर्थे नरक पृथ्वी एवो अर्थ थायछे. माटे त्यांपण जायछे. ते नरक पृथ्वीयें केम जाय, तेनुं कारण कहेछे. ते लोक मंदाके० मंद एटले मूर्ख छे, वली आरंजनिस्सियाके० आरंजनिश्रित एटले आरंज जे प्राणघात तेनां व्यापारे निश्रितछे, एकांते तेमां आसक्तछे, जे कारण माटे तेमना मते आत्मानो अनावछे, ते कारणे पुण्य पाप पण नथी. एवुं जाणीने ते नास्तिकवादी आरंज करतां थका शंका पामता नथी. तथा जे एवुं कहेछे के आत्मा क्रिया करे नहीं, तेपण एमनी पेरेज आरंजी जाणवा ॥ १४ ॥ अकिरियावाइगता एटले सांख्यनुं मत ए प्रमाणे कह्युं.

॥दीपिका—अथाऽक्रियावादिमतमाह।(कुर्वन्निति) कुर्वन् कारयंश्चाऽऽत्मा न नवति। आत्मनो व्यापकत्वादमूर्तत्वाच्च कर्तृत्वानुपपत्तिःअतएव कारयितृत्वमप्यात्मनो न युक्तं।एकश्च शब्दोऽतीतानागतकर्तृत्वनिषेधको द्वितीयः समुच्चयार्थः ॥ कर्तृत्वकारयितृत्वनिषेधादन्यापि क्रिया तस्य नास्तीत्याह । (सवंति)। सर्वां परिस्पंदादिकां देशाद्देशांतरप्राप्तिरूपां क्रियां

कुर्वन्नात्मा न विद्यते। सर्वव्यापित्वेनामूर्तत्वेन चाकाशस्येवात्मनो निष्क्रियत्वं सांख्यमते। (एवंतेउत्ति) एवमुक्तप्रकारेण ते सांख्याः प्रगल्भिताः प्रागल्भ्यवंतो धाष्ट्र्यवंतो विद्यंते॥१३॥ सांप्रतं तज्जीवतच्छरीराकारकवादिनोमतं निराकुर्वन्नाह। (जेतेइति)। ये तावच्छरीराऽव्यतिरिक्तात्मवादिन एवं पूर्वोक्तयुक्त्या भूताऽव्यतिरिक्तमात्मानमन्युपगतवंतस्ते निराक्रियंते। तेषां लोकश्चतुर्गतिजवरूपः सुभग, दुर्भग, सुरूप, कुरूपेश्वर, दारिद्र्या,दिगत्या जगद्वैचित्र्यरूपः कुतः स्यात्। आत्माऽनंगीकारे पुण्यपापाभावे कथं विश्ववैचित्र्यमित्यर्थः। तेच नास्तिकास्तमसोऽज्ञानरूपात् तमो यांति। ज्ञानावरणावृताः पुनर्ज्ञानावरणरूपं तमः प्रविशंति। अथवा सद्विवेकप्रध्वंसित्वात्तमोदुःखं तस्मात्तमो महादुःखं यांति। यतस्ते मंदा जडाः परलोकनिरपेक्षत्वाच्चाऽरंजनिश्रिताः। अयमेवश्लोकोऽकारकवादिमतमाश्रित्य किंचिद्विव्रियते। येवादिनोऽकारकाः सांख्याः संति तेषां लोको जरामरणशोकहर्षादिरूपो नारकतिर्यगादिरूपो निष्क्रिये सत्यात्मनि कुतः कस्माद्धेतोः स्या न्न स्यादित्यर्थः। ततश्चदृष्टेष्टबाधारूपात्तमसोऽज्ञानात्ते तमो वेदनास्थानं यांति। यतो मंदाश्चारंजनिश्रिताश्चेति सांख्यमतं निरस्तं॥ १४॥

॥टीका—इदानीमकर्मकवादिमताभिधित्सयाऽह। (कुव्वंचेत्यादि) कुर्वन्निति स्वतंत्रः कर्ताभिधीयते॥ अत्मनश्चामूर्तत्वात्सर्वव्यापित्वाच्च कर्तृत्वाऽनुपपत्तिः॥ अतएवहेतोः कारयितृत्वमप्यात्मनोनुपपन्नमिति। पूर्वश्चशब्दोऽतीतानागतकर्तृत्वनिषेधको द्वितीयः समुच्चयार्थः। ततश्चात्मा न स्वयं क्रियायां प्रवर्तते नाप्यन्यं प्रवर्तयति। यद्यपि च स्थितिक्रियां मुद्राप्रतिबिंबोदयन्यायेन च भुजिक्रियां करोतिं तथापि समस्तक्रियाकर्तृत्वं तस्य नास्तीत्येतद्दर्शयति। (सव्वंकुव्वंणविज्जइत्ति) सर्वां परिस्पंदादिकां देशाद्देशांतरप्राप्तिलक्षणां क्रियां कुर्वन्नात्मा न विद्यते। सर्वव्यापित्वेनामूर्तत्वेन चाकाशस्येवात्मनो निष्क्रियत्वमिति। तथा चोक्तं। अकर्ता निर्गुणो भोक्ता, आत्मा सांख्यनिदर्शन इति। एवमनेन प्रकारेणात्माऽकारक इति ते सांख्याः। तुशब्दः पूर्वेभ्यो व्यतिरेकमाह। ते पुनः सांख्या एवं प्रगल्भिताः प्रगल्भवंतो धाष्ट्र्यवंतः संतो भूयोभूयस्तत्र तत्र प्रतिपादयंति। यथा प्रकृतिः करोति पुरुष उपभुंक्ते यथा बुध्यवसितमर्थं पुरुषश्चितयते इत्याद्यकारकवादिमतमिति॥ १३॥ सांप्रतं तज्जीवतच्छरीराकारकवादिनो मतं निराचिकीर्षुराह। (जेतेउवाइणोइत्यादि) तत्र ये तावच्छरीराव्यतिरिक्तात्मवादिन एवमिति पूर्वोक्तया नीत्या भूतव्यतिरिक्तमात्मानमन्युपगतवंतस्ते निराक्रियंते। तत्र यत्तैस्तावदुक्तं। यथा न शरीराभ्निन्नोस्त्यात्मेति तदसंगतं। यतस्तत्प्रसाधकं प्रमाणमस्ति। तच्चेदं। विद्यमानकर्तृकमिदं शरीरमादिमत्प्रतिनियताकारकत्वात्। इह यद्यदादिमत्प्रतिनियताकारं तत्तद्विद्यमानकर्तृकं दृष्टं। यथा घटः। य

त्वाऽविद्यमानकर्तृकं तदादिमत्प्रतिनियताकारमपि न भवति यथाकाशं । आदिमत्प्रतिनियताकारस्य च सकर्तृत्वेन व्याप्तेः। व्यापकनिवृत्तौ व्याप्यस्य विनिवृत्तिरिति सर्वत्र योजनीयं। तथाविद्यमानाधिष्ठातृकानींद्रियाणि । करणत्वात् । यद्यदिह करणं तत्तद्विद्यमानाधिष्ठातृकं दृष्टं । यथा दंडादिकमिति । अधिष्ठातारमंतरेण करणत्वाऽनुपपत्तिः । यथाकाशस्य। हृषीकाणां चाधिष्ठाताऽत्मा सच तेभ्योऽन्य इति। तथा विद्यमानाधिष्ठातृकमिदमिंद्रियविषयकदंबकं । आदानादेयसद्भावात् । इह यत्र यत्राऽदानादेयसद्भावस्तत्र तत्र विद्यमान आदाता ग्राहको दृष्टः । यथा संदंशकायःपिंडयोस्तद्भिन्नोऽयस्कार इति । यश्चात्रेंद्रियैः करणैर्विषयाणामादाता ग्राहकः स तद्भिन्नआत्मेति। तथा विद्यमानभोक्तृकमिदं शरीरं भोग्यत्वादोदनादिवत् । अत्रच कुलालादीनां मूर्तत्वाऽनित्यत्वसंहतत्वदर्शनादात्मापि तथैव स्यादिति धर्मविशेषविपरीतसाधनत्वेन विरुद्धा शंका न विधेया। संसारिण आत्मनः कर्मणा सहान्योन्यानुबंधतः कथंचिन्मूर्तत्वाद्यभ्युपगमादिति। तथा यडुक्तं। नास्ति सत्त्वाऔपपातिका इति तदप्ययुक्तं। यतस्तदहर्जातबालकस्य यःस्तनाभिलाषः सोन्याभिलाषपूर्वको ऽभिलाषत्वात् कुमाराभिलाषवत् । तथा बालविज्ञानमन्यविज्ञानपूर्वकं विज्ञानत्वात् कुमारविज्ञानवत् । तथाहि। सदहर्जातबालकोपि यावत्सएवायं स्तन इत्येवं नावधारयति तावन्नोपरत रुदितो मुखमर्पयति स्तने इत्यतोऽस्ति बालके विज्ञानलेशः सचाऽन्यविज्ञानपूर्वकः। तथान्यद्विज्ञानं भवांतरविज्ञानं तस्मादस्ति सत्त्व उपपातिकइति। तथा। यदभिहितं विज्ञानघनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यतीति। तत्राप्ययमर्थो विज्ञानघनो विज्ञानपिंड आत्मा भूतेभ्य उत्थायेति प्राक्तनकर्मवशात्तथाविधकायाकारपरिणते भूतसमुदाये तद्द्वारेण स्वकर्मफलमनुभूय पुनस्तद्विनाशे आत्मापि तदनु तेनाकारेण विनश्यापरपर्यायांतरेणोत्पद्यते नपुनस्तैरेव सह विनश्यतीति । तथा यडुक्तं। धर्मिणो ऽभावात्तद्धर्मयोः पुण्यपापयोरभावइति तदप्यसमीचीनं। यतो धर्मी तावदनंतरोक्तिकदंबकेन साधितस्तत्सिद्धौ च तद्धर्मयोःपुण्यपापयोरपि सिद्धिरवसेया जगद्वैचित्र्यदर्शनाच्च।यत्तु स्वभावमाश्रित्योपलशकलं दृष्टांतत्वेनोपन्यस्तं तदपि तद्भोक्तृकर्मवशादेव तथा तथासंवृत्तइति डुर्निवारः पुण्यापुण्यसद्भावइति। येपि बहवः कदलीस्तंभादयो दृष्टांता आत्मनो ऽभावसाधनायोपन्यस्तास्तेप्यभिहितनीत्याऽत्मनोभूतव्यतिरिक्तस्य परलोकयायिनः सारभूतस्य साधितत्वात्केवलं भवतो वाचालतां प्रख्यापयंति इत्यलमतिप्रसंगेन। शेषं सूत्रं विव्रियतेऽधुनेति । तदेवं तेषां भूतव्यतिरिक्तात्मनिन्हववादिनां योयं लोकश्चतुर्गतिकसंसारो भवाद्भवांतरगतिलक्षणः प्राक् प्रसाधितः सुभगडुर्भगसुरूपमंदरूपेश्वरदारिद्र्यादिगत्या जगद्वैचित्र्यलक्षणश्च स एवंभूतो लोकस्तेषां कुतो भवेत् । कथोपपत्त्या घटेत । आत्मनोऽनभ्युपगमान्न किंचिदित्यर्थः । तेच नास्तिकाः परलोकयायिजीवा

ऽनभ्युपगमेन पुण्यपापयोर्भावमाश्रित्य यत्किंचनकारिणोऽज्ञानरूपात्तमसः सकाशाद न्यत्तमो यांति । भूयोपि ज्ञानावरणादिरूपं महत्तरं तमः संचिन्वंतीत्युक्तं भवति । यदि वा तमश्वतमो दुःखसमुद्घातेन सदसद्विवेकप्रध्वंसित्वाद्यातनास्थानं तस्मादेवंभूताच्च मसः परतरं तमो यांति । सप्तमनरकपृथिव्यां रौरव, महारौरव, काल, महाकालाप्र तिष्ठानाख्यं नरकावासं यांतीत्यर्थः । किमिति । यतस्ते मंदा जडा मूर्खाः सत्यपि यु क्त्युपपन्ने आत्मन्यसदननिनिवेशात्तदभावमाश्रित्य प्राण्युपमर्दकारिणि विवेकिजननिंदि ते आरंभे व्यापारे निश्चयेन नितरां चाश्रिताः संबद्धाः पुण्यपापयोरभाव इत्याश्रित्य परलो कनिरपेक्षतयाऽरंभनिश्रिताइति । तथा तज्जीवतच्छरीरवादिमतं निर्युक्तिकारोपि निराचिकी र्षुराह । “ पंचएहमित्यादिगाथा प्राग्वदत्रापि ” ॥ ३३ ॥ सांप्रतमकारकवादिमतमाश्रि त्यायमनंतरश्लोको भूयोपि व्याख्यायते । ये एते अकारकवादिन आत्मनोऽमूर्तत्वनि त्यत्वसर्वव्यापित्वेभ्यो हेतुभ्यो निष्क्रियत्वमेवाभ्युपपन्नास्तेषां यएषलोको जरामरणशोका क्रंदनहर्षादिलक्षणो नरकतिर्यङ्मनुष्यामरगतिरूपः सोयमेवंभूतो निष्क्रिये सत्यात्मन्य प्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावे कुतः कस्माद्धेतोः स्यान्न कथंचित्कुतश्चित्स्यादित्यर्थः । तत श्च दृष्टेष्टबाधारूपात्तमसोऽज्ञानरूपात्ते तमोंतरं निकृष्टं यातनास्थानं यांति । किमिति । यतो मंदाजडाः प्राण्यपकारकाऽरंभनिश्रिताश्च ते इति । अधुना निर्युक्तिकारोऽकारकवादि मतनिराकरणार्थमाह । “ कोवेएई य कयं, कयनासो पंचहा गई न वि ॥ देवमणुस्सग यागइ, जाईसरणा इयाणं च ” ॥ ३४ ॥ (कोवेएइत्यादि)। आत्मनोऽकर्तृत्वात्कृतं नास्ति ततश्चाकृतं को वेदयते । तथा निष्क्रियत्वे वेदनक्रियाऽपि न घटां प्रांचति । अथा ऽकृतमप्यनुभूयेत तथा सत्यकृतागमकृतनाशापत्तिः स्यात् । ततश्च एककृतपातकेन सर्वे प्राणिगणो दुःखितः स्यात् पुण्येन च सुखी स्यादिति । नचैतद्दृष्टमिष्टं वा । तथाव्यापि त्वान्नित्यत्वाच्चात्मनः पंचधा पंचप्रकारा नारक, तिर्यङ्,मनुष्या,मर, मोक्ष, लक्षणागति र्न भवेत् । ततश्च भवतां सांख्यानां काषायचीवरधारण,शिरस्तुंडमुंडन,दंडधारण, भिक्षाभोजित्व,पंचरात्रोपदेशानुसारयमनियमाद्यनुष्ठानं । तथा । पंचविंशतितत्त्वज्ञो, यत्र तत्राश्रमे रतः ॥ जटी मुंडी शिखी वापि, मुच्यते नात्र संशयइत्यादि सर्वमपार्थकमा प्नोति । तथा देवमनुष्यादिषु गत्याऽगती न स्यातां सर्वव्यापित्वादात्मनः । तथानित्यत्वा च्च विस्मरणाभावाज्जातिस्मरणादिका च क्रिया नोपपद्यते । तथा । आदिग्रहणात्प्रकृ तिः करोति पुरुषभ्पभुंक्तइति भुजिक्रिया या समाश्रिता सापि न प्राप्नोति । तस्या अपि क्रियात्वादिति । अथ मुद्राप्रतिबिंबोदयन्यायेन भोगइति चेदेतत्तु निरंतराः सुहृदः प्रत्ये ष्यंति । वाङ्मात्रत्वात् । प्रतिबिंबोदयस्यापि च क्रियाविशेषत्वादेव । तथा नित्ये चावि कारिण्यात्मनि प्रतिबिंबोदयस्याभावाद्यत्किंचिदेतदिति ॥३४॥ ननुच भुजिक्रियामात्रेण प्र

तिबिंबोदयमात्रेण च यद्यप्यात्मा सक्रियस्तथापि न तावन्मात्रेणास्माभिः सक्रिय त्वमिष्यते किं तर्हि समस्तक्रियावत्वे सतीत्येतदाशंक्य निर्युक्तिकृदाह । "णहु अफलवो चणि बित, कालफललक्खणमिहं अडुमहेउ ॥ णाडुहवोवडुय,त्ताणणगा वित्तणेहेक" ॥ ॥ ३५ ॥ (णहुअफलेत्यादि) नहु नैवाऽफलत्वं द्रुमाभावे साध्ये हेतुर्भवति । नहि यदैव फलवांस्तदेव द्रुमोऽन्यदात्वद्रुम इति भावः । एवमात्मनोपि सुप्ताद्यवस्थायां यद्य पि कथंचिन्निष्क्रियत्वं तथापि नैतावता त्वसौ निष्क्रियइति व्यपदेशमर्हति । तथा स्तोक फलत्वमपि न वृक्षाभावसाधनायालं । स्वल्पफलोपि हि पनसादिर्वृक्षस्य व्यपदेशभाग्भ वति । एवमात्मापि स्वल्पक्रियोपि क्रियावानेव ॥ कदाचिदेषा मतिर्भवतो भवेत् स्तोकक्रि यो निष्क्रियएव । यथैककार्षापणधनो न धनित्वमास्कंदत्येवमात्मापि स्वल्पक्रियत्वा दक्रियइत्येतदप्युपचारः । यतोयं दृष्टांतः प्रतिनियतपुरुषापेक्षया चोपगम्यते समस्तपुरुषा पेक्षया वा । तत्र यद्याद्यः पक्षस्तदा सिद्धसाध्यता । यतः सहस्रादिधनवदपेक्षया निर्धनए वासौ । अथ समस्तपुरुषा पेक्षया तदसाधु । यतोन्यान्जरच्चीवरधारिणोपेक्ष्य कार्षापणध नोपि धनवानेव । तथात्मापि यदिविशिष्टसामर्थ्योपेतपुरुषक्रियापेक्षया निष्क्रियोऽभ्युपगम्य ते । न काचित्क्षतिः। सामान्यापेक्षया तु क्रियावानेवेत्यलमतिप्रसंगेन । एवमनिश्चिताकालफ लत्वाख्यहेतुद्वयमपि न वृक्षाभावसाधकमित्यादि योज्यं।एवमडुग्धत्वस्तोकडुग्धत्वरूपावपि हेतू न गोत्वाभावत्वं साधयतः । उक्तन्यायेनैव दार्ष्टांतिकयोजना कार्येति ॥ ३५ ॥ १४ ॥

संति पंच महब्भूया, इहमेगेसि आहिया ॥ आयछ्ठो पुणो आहु,
आया लोगेय सासए ॥ १५ ॥ डुहउ ण विणस्संति, नोय उप्पज्ज
ए असं ॥ सव्वे वि सव्वहा भावा, नियतीभावमागया ॥ १६ ॥

अर्थ—हवे आत्मषष्ठवादिनो मत कहेछे. ते वादी एम कहेछे के, इहमेगेसिआहियाके० आसंसारनेविषे एक आत्मषष्ठवादिउना मते एम कह्युं के, संतिपंचमहब्भूयाके० पांच महा भूतछे. वली ते वादी एम कहेछे के, आयछ्ठोपुणोआहुके० जेम पंच महाभूत तेम आत्मा छ्ठोछे. वली अनेराने मते आत्मा अने पंच महाभूत अशाश्वताछे. तेम एने मते नथी, ते कहेछे के, आयालोगेयसासएके० आत्मा अने पृथिव्यादिकरूपजे लोक ते एने मते शा श्वता सर्वव्यापिछे. माटे अविनाशि रूपछे. ॥ १५ ॥ वली तेनुं नित्यपणुं देखाडेछे. ते आत्मषष्ठ पृथिव्यादिक पदार्थ, निःकारण विनाश अथवा सकारण विनाश, ए डुहउके० बन्ने विनासे करी, णविणस्संतिके० विनास पामे नही. पृथ्वी, अप्प, तेज, वा यु, अने आकाश. ए कदापि पोतानुं स्वरूप छांमे नही, ते कारणे शाश्वताछे. तथा कोइ ए जेनो आकार कर्यो नथी, ते कारणमाटे आत्मा शाश्वत छे. यडुक्तं।नैनं छिंदंति शस्त्राणि,

नैनं दहति पावकः ॥ नचैनं क्लेदयंत्यापो, नशोषयति मारुतः ॥१॥ अछेद्योयमभेद्योय, म विकारी सउच्यते, ॥ 'नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलो यं सनातनः ॥२॥ इत्यादिवचनात् ॥ तथा नोयउप्पज्जएअसंके० जे असत् एटले अविद्यमान होय ते उपजे नही. केमके अवि द्यमान पदार्थने विषे करनारनो व्यापार स्फुरे नहीं. जो अछती वस्तु उपजे तो आकाश कुसुमगर्दनशृंगादिक पदार्थ पण उपजवानो संजवछे. ए कारणे सव्वेविसव्वहाभावा के० सर्वकाळें पण पृथिव्यादिक सर्वे पदार्थों नियतिभावमागया के० नित्यभावे परिणाम पा म्याछे. ॥ १६ ॥ "आत्मषष्ठवादीगतः" एटले आत्म षष्ठवादीनुं मत ए प्रमाणे कह्युं.

॥ दीपिका— अथाऽत्मषष्ठवादिमतमाह । (संतित्ति) संति पंच महाभूतानि । इ हाऽस्मिन्संसारे एकेषामात्मषष्ठवादिनां सांख्यानां वैशेषिकाणां चैतदाख्यातं भूतान्या ख्यातानि वा । ते पुनर्वादिन एवमाहुः । यद्भूतानि आत्मषष्ठानि आत्मा षष्ठोयेषांतानि अत्मषष्ठानि । केषांचिद्वादिनामनित्यानि भूतानि आत्मा च न तथा एषामित्याह (आया) आत्मा लोकश्च पृथिव्यादिरूपः शाश्वतोनित्यः ॥ १५ ॥ शाश्वतत्वमेवाह । (दुहउत्ति) ते भूतपदार्था आत्मषष्ठा उभयतो निर्हेतुकसहेतुकविनाशाभ्यां न विनश्यं ति । बौद्धादिमते घटादिवस्तु हेतुं विनापि क्षणे क्षणेविनश्यति । वैशेषिकाणां तु लकु टादिहेतुयोगेन घटादीनां विनाशः । तेन द्विविधेनापि विनाशेन लोकात्मनोर्नेविनाशइ ति तात्पर्यार्थः । यदिवा द्विरूपाच्चेतनाचेतनस्वभावान्न विनश्यत्यात्मा पृथिव्याद्या लो काश्च चेतनस्वभावान्नविनश्यंतीति न चोत्पद्यते ऽसदविद्यमानं । सर्वेपिभावाः सर्वथा नियतिभावं नित्यत्वमागताः प्राप्ताः ॥ १६ ॥

॥ टीका—सांप्रतमात्मषष्ठवादिमतं पूर्वपक्षयितुमाह (संतीत्यादि) संति विद्यंते पंचमहा भूतानि पृथिव्यादीनि इहास्मिन्संसारे एकेषां वेदवादिनां सांख्यानां शैवाधिकारिणां च ए तदाख्यातमाख्यातानि च भूतानि तेच वादिन एवमाहुरेवमाख्यातवंतः । यथा । आत्म षष्ठानि आत्मा षष्ठो येषां तानि आत्मषष्ठानि भूतानि विद्यंतइति । एतानि चात्मषष्ठा नि भूतानि यथा न्येषां वादिनामनित्यानि तथा नामीषामितिदर्शयति । आत्मा लोक श्च पृथिव्यादिरूपः शाश्वतोऽविनाशी । तत्रात्मनः सर्वव्यापित्वादमूर्तत्वाच्चाकाशस्येव शा श्वतत्वं पृथिव्यादीनां च तद्रूपाप्रच्युतेरविनश्वरत्वमिति ॥ १५ ॥ शाश्वतत्वमेव भूयः प्र तिपादयितुमाह । (दुहउणविणस्संतीत्यादि) ते आत्मषष्ठाः पृथिव्यादयः पदार्था उभय तइति निर्हेतुकसहेतुकविनाशद्वयेन न विनश्यंति । यथा बौद्धानां स्वतएव निर्हेतुको विना शः । तथाच ते ऊचुः । जातिरेव हि भावानां, विनाशे हेतुरिष्यते ॥ यो जातश्च न च ध्वस्तो,

नश्येत्पश्चात्स केन च ॥ १ ॥ यथाच वैशेषिकाणां लकुटादिकारणसांनिध्ये विनाशः स हेतुकस्तेनोजयरूपेणापि विनाशेन लोकात्मनोर्न विनाशइति तात्पर्यार्थः। यदि वा (डुहृत्ति)। द्विरूपादात्मनः स्वज्ञावाच्चेतनाचेतनरूपान्न विनश्यतीति। तथाहि। पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानि रूपापरित्यागतया नित्यानि। न कदाचिदनीदृशं जगदिति कृत्वा आत्मापि नित्यएव कृतकत्वादिन्यो हेतुन्यः। तथा चोक्तं। नैनं छिंदंति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः॥ न चैनं क्लेदयंत्यापो न शोषयति मारुतः ॥ १ ॥ अच्छेद्योयमदाह्योयमविकार्योयमुच्यते॥ नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोयं सनातनः॥२॥ एवं च कृत्वा नासडुत्पद्यते सर्वस्य सर्वत्र सद्भावादसति च कारकव्यापाराज्ञावात् सत्कार्यवादः। यदि वा असडुत्पद्येत खरविषाणादेरप्युत्पत्तिःस्यादिति। तथा चोक्तं। असदकरणाडुपादानग्रहणात्सर्वसंजवाज्ञावात् शक्तस्य शक्यकरणात्कारणज्ञावाच्च सत्कार्यं। एवंच कृत्वा मृत्पिंडेपि घटोस्ति। तदर्थिनां मृत्पिंडोपादानात्। यदि वा ऽसडुत्पद्येत ततो यतःकुतश्चिदेव स्यान्नावश्यमेतदर्थिना मृत्पिंडोपादानमेव क्रियते इत्यतः सदेव कारणे कार्यमुत्पद्यतइति। एवं च कृत्वा सर्वेपि ज्ञावाः पृथिव्यादय आत्मषष्ठा नियतिज्ञावं नित्यत्वमागता नाज्ञावरूपतामनूत्वा च ज्ञावरूपतां प्रतिपद्यंते। आविर्ज्ञावतिरोज्ञावमात्रत्वाडुत्पत्तिविनाशयोरिति। तथा चाभिहितं। नासतो जायते ज्ञावो नाज्ञावो जायते सतइत्यादि। अस्योत्तरं निर्युक्तिकृदाह। "कोवेएइत्यादिप्राक्तन्येव गाथा,,। सर्वपदार्थनित्यत्वान्युपगमे कर्तृत्वपरिणामो न स्यात्ततश्चात्मनोऽकर्तृत्वे कर्मबंधाज्ञावस्तदज्ञावाच्च को वेदयति न कश्चि त्सुखडुःखादिकमनुज्ञवतीत्यर्थः। एवं च सति कृतनाशः स्यात्। तथा असतश्चोत्पादाज्ञावे येयं मया आत्मनःपूर्वज्ञावपरित्यागेनापरज्ञावोत्पत्तिलक्षणा पंचधा गतिरुच्यते सा न स्यात्। ततश्च मोक्षगतेरज्ञावाद्दीक्षादिक्रियानुष्ठानमनर्थकमापद्यते। तथाऽप्रच्युताऽनुत्पन्नस्थिरैकस्वज्ञावत्वेन त्वात्मनो देवमनुष्यगत्यागती तथा विस्मृतेरज्ञावात् जातिस्मरणादिकं वा न प्राप्नोति। यच्चोक्तं सदेवोत्पद्यते तदप्यसत्। यतो यदि सर्वथा सदेव कथमुत्पादः। उत्पादश्चेत्तर्हि सर्वदा सदिति। तथा चोक्तं। कर्मगुणव्यपदेशाः प्रागुत्पत्तेर्न संति यत्तस्मात्कार्यमसद्विज्ञेयं क्रियाप्रवृत्तेश्च कर्तृणां। तस्मात्सर्वपदार्थानां कथंचिन्नित्यत्वं सदसत्कार्यवादश्चेत्यवधार्यं। तथाचाभिहितं। सर्वव्यक्तिषु नियतं, क्षणे क्षणेऽन्यत्वमथ च न विशेषः। सत्यश्चित्यपचित्योराकृतिजातिव्यवस्थानात् इति। तथा। नान्वयः सहि जेदत्वा,न्न जेदोऽन्वयवृत्तितः॥ मृद्भेदद्वयसंसर्गे, वृत्तिजात्यंतरं घटः॥ १॥ १६॥

पंच खंधे वयंतेगे, बालाउ खणजोइणो॥ अन्नो अणन्नो णेवाहु, हेउयं च अहेउयं॥ १७॥ पुढवी आउ तेऊ य, तहा वाऊय एगउ॥ चत्तारि धाउणो रूवं, एवमाहं सु जाणया॥ १८॥

अर्थ—हवे अफलवादिनुं मत कहेछे. एगे के० कोइएक वादी एटले बौद्ध ते पंचखंघेव यंते के० पंचस्कंध बोलेछे, तेना नाम कहेछे. प्रथम विज्ञान ते रसनुं, विज्ञान सुखडुखवेदे ते वेदना, संज्ञा ते धर्मसमुदायने. पृथिव्यादिकते संस्कार, अने धातुरूपादिकते रूप, ए पांच पदार्थ जगतमांछे, पण एथकी अन्य आत्मादिक पदार्थ जगतमांहे कोइ नथी. एम ते बालाउके० बाल एटले अज्ञानी कहेछे. वलीते स्कंध केवा छे, खणजोइणोके० क्षणयोगीछे. एटले एक क्षण मात्र रहे, उपरांत रहे नहीं. एवीरीतना बोलनारा ते क्षणिकवादी जाणवा. हवे अनेरा दर्शनीउंथकी एमनो भेद जे छे, ते गाथाना उत्तरार्द्ध वडे देखाडेछे. अन्नोअणन्नो णेवाहुके० ते जेम आत्मषष्ठवादी सांख्यादिक भूत थकी आत्मा अन्य छे, एम कहेछे. तथा जेम चार्वाकमति भूतथकी आत्मा अनेरो नथी. एटले जे भूत तेहिज आत्मा एम कहेछे, तेम बौद्धमति कहेतां नथी. तथा हेउयंच के० हेतु एटले आत्मा कोणे नीपजाव्यो एम पण कहेता नथी. अने अहेउयं के० अहेतुक एटले अनादि अनंत शाश्वत आत्माछे. एम पण बौद्ध कहेता नथी. ॥ १७ ॥ अफलवादीगतः। तथा अनेरा बौद्धदर्शनी चतुर्धातुक जगत् कहेछे, ते देखाडेछे. पुढवीके० पृथिवी ते पाषाण पर्वत अने स्थलादिक ए प्रथमधातु, तथा आउके० अप्प ते पाणी ए बीजी धातु, तथा तेज के० अग्नि ए त्रीजी धातु, तथा वायु ए चोथी धातु, जे कारणे ए चारे पदार्थ जगत्रने धरे एटले पोषे ते कारणे एने धातु कहिये. ए केहवाछे? तोके एगउ के० ए चारे एकाकार पणे परिणमे, माटे एकाकारछे. तेथी ए चत्तारिधाउणोरूवं के० चारेधातुरूप जाणवां. एटले ए शरीर चतुर्धारूप छे. ते थकी अनेरो आत्मा एवो पदार्थ कोइ नथी, एवं के० एम ते बौद्ध कहेछे. ते केवा जाणवा? तोके आहंसु के०पोताने लोकमांहे जाणयाके० जाण कहेवराविये एवुं अभिमान धरेछे. परंतु ए सर्व क्षणिकवादिपणा थकी क्रियाना फलने संबंध मले नहीं तेकारणे एने अफलवादि कहियें.

॥ दीपिका—अथ बौद्धमतमाह। (पंचेति)। एके बौद्धाः पंचस्कंधान् वदंति। रूपस्कंधः १ वेदनास्कंधः २ विज्ञानस्कंधः ३ संज्ञास्कंधः ४ संस्कारस्कंधः ५। तत्र रूपस्कंधः पृथिवीत्वादयो रूपादयश्च। वेदनास्कंधः सुखा दुःखा अदुःखसुखा च वेदना। विज्ञानस्कंधो रूपविज्ञानं रसविज्ञानमित्यादि। संज्ञास्कंधः संज्ञानिमित्तोद्ग्रहणात्मिकः प्रत्ययः। सविकल्पसंज्ञानमित्यर्थः। संस्कारस्कंधः पुण्यापुण्यादिधर्मसमुदायः ५ नचैतेभ्योन्यः कश्चिदात्माख्यः पदार्थोस्तीति। बाला मूर्खाः। ते स्कंधाः किंभूताः क्षणयोगिनः क्षणेक्षणेविनश्वराइत्यर्थः। पूर्ववादिभ्यो बौद्धव्यतिरेकमाह। (अणोत्ति)। यथा सांख्यादयो भूतेभ्योऽन्यमात्मानमंगीकृतवंतः। यथा चार्वाका भूतेभ्योऽनन्यमभिन्नमा

त्मानमिष्टवंतस्तथा बौद्धा नैवाहुर्नोक्तवंतः । तथा हेतुभ्योजातोहेतुकः कायाकारपरिणतभूतनिष्पादितः तथा ऽहेतुकोनित्य इत्येवं तमात्मानं बौद्धा नांगीकृतवंतइति ॥१७॥ तथान्ये चतुर्धातुकं जगद् बौद्धा वदंतीत्याह । (पुढवीति) पृथिवीधातुः । आपोजलं धातुः । तथातेजो वायुश्चेति धातवः । एते चत्वारोपि धातवो यदा (एकउत्ति) एकाकारपरिणतास्तदाकारतयाजीवाख्यां लभंते । एवमाहुर्जानकाः पंडितंमन्या बौद्धाः । (एवमाहंसुआवरेइति) क्वचित्पाठः । तत्र आवरेत्ति । अपरे बौद्धा इत्यर्थः ॥ १८ ॥

॥ टीका—सांप्रतं बौद्धमतं पूर्वपक्षयन्निर्युक्तिकारोपन्यस्तमफलवादाधिकारमाविर्भावयन्नाह । (पंचखंधेवयंतेगेइत्यादि)। एके केचन वादिनो बौद्धाः पंच स्कंधान् वदंति । रूप,वेदना, विज्ञान, संज्ञा, संस्कारा,ख्याः पंचैव स्कंधाविद्यंते नापरः कश्चिदात्माख्यः स्कंधोस्तीत्येवं प्रतिपादयंति । तत्र रूपस्कंधः पृथिवीधात्वादयो रूपादयश्च ॥१॥ सुखा दुःखा अदुःखसुखाचेति वेदनावेदनास्कंधः ॥ २ ॥ रूपविज्ञानं रसविज्ञानमित्यादि विज्ञानं विज्ञानस्कंधः ॥३॥ संज्ञास्कंधः संज्ञानिमित्तोऽवग्रहणात्मकः प्रत्ययः ॥४॥ संस्कारस्कंधः पुण्यापुण्यादिधर्मसमुदाय इति ॥ ५ ॥ नचैतेभ्यो व्यतिरिक्तः कश्चिदात्माख्यः पदार्थोऽध्यक्षेणाऽध्यवसीयते । तदव्यभिचारिलिंगग्रहणाऽभावान्नाप्यनुमानेन । नच प्रत्यक्षानुमानव्यतिरिक्तमर्थाऽविसंवादिप्रमाणांतरमस्तीत्येवं बालाइव बाला यथाऽवस्थितार्थापरिज्ञानात् बौद्धाः प्रतिपादयंति । तथा ते स्कंधाः क्षणयोगिनः । परमनिकृष्टः कालः क्षणः । क्षणेन योगः संबंधः क्षणयोगः स विद्यते येषां ते क्षणयोगिनः । क्षणमात्राऽवस्थायिनइत्यर्थः । तथाच तेऽभिदधति । स्वकारणेभ्यः पदार्थउत्पद्यमानः किंविनश्वरस्वभावउत्पद्यतेऽविनश्वरस्वभावो वा । यद्यविनश्वरस्ततस्तद्व्यापिन्याः क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाया अभावात् पदार्थस्यापि व्याप्यस्याभावः प्रसज्जति । तथाहि । यदेवार्थक्रियाकारि तदेव परमार्थतः सदिति । सच नित्योर्थः क्रियायां प्रवर्तमानः क्रमेण वा प्रवर्तते यौगपद्येन वा । न तावत्क्रमेण । यतो ह्येकस्याऽर्थक्रियायाः काले तस्यापरार्थक्रियाकरणस्वभावो विद्यते वा न वा । यदि विद्यते किमिति क्रमकरणं । सहकार्यपेक्षयेति चेत् । तेन सहकारिणा तस्य कश्चिदतिशयः क्रियते न वा । यदि क्रियते किं पूर्वस्वभावपरित्यागेनापरित्यागेन वा । यदि परित्यागेन ततोऽतादवस्थ्यापत्तेरनित्यत्वं । अथ पूर्वस्वभावापरित्यागेन ततोऽतिशयाभावात्किं सहकार्यपेक्षया । अथाऽकिंचित्करोपि विशिष्टकार्यार्थमपेक्षते । तदयुक्तं । यतः । अपेक्षेत परं कश्चि,द्यदि कुर्वीत किंचन ॥ यदकिंचित्करं वस्तु, किं केनचिदपेक्ष्यते ॥ १ ॥ अथ तस्यैकार्थक्रियाकारणकाले ऽपरार्थक्रियाकरणस्वभावो न विद्यते। तथाच सति स्पष्टैव नित्यताहानिः । अथासौ नित्यो यौगपद्येनाऽर्थक्रि

यां कुर्यात्तथा सति प्रथमक्षणएवाऽशेषार्थक्रियाणां करणात् द्वितीयक्षणेऽकर्तृत्वमाया तं । तथाच सैवानित्यता । अथ तस्य तत्स्वभावत्वात्तएवार्थक्रिया भूयो भूयो द्विती यादिक्षणेष्वपि कुर्यात्तदसांप्रतं । कृतस्य करणाभावादिति । किंच द्वितीयादिक्षणसा ध्या अप्यर्थाः प्रथमक्षणएव प्राप्नुवंति । तस्य तत्स्वभावत्वात् । अतस्तत्स्वभावत्वे च तस्यानित्यत्वापत्तिरिति । तदेवं नित्यस्य क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरहान्न स्वकारणे भ्यो नित्यस्योत्पादइति । अथाऽनित्यः स्वभावः समुत्पद्यते । तथाच सति विनाशाभावा दायातमस्मदुक्तक्रमशेषपदार्थजातस्य क्षणिकत्वं । तथाचोक्तं । जातिरेव हि भावानां, विनाशे हेतुरिष्यते ॥ यो जातश्च नच ध्वस्तो नश्येत्पश्चात्स केन च ॥ १ ॥ ननु च स त्यप्यनित्यत्वे यस्य यदा विनाशहेतुसद्भावस्तस्य तदा विनाशः । तथा च । स्वविनाशका रणापेक्षाणामनित्यानामपि पदार्थानां न क्षणिकत्वमित्येतच्चानुपासितगुरोर्वचः।तथाहि । तेन मुद्गरादिकेन विनाशहेतुना घटादेः किं क्रियते । किमत्र प्रष्टव्यमभावः क्रियते । अत्र च प्रष्टव्यो देवानांप्रियः । अभाव इति किं पर्युदासप्रतिषेधोयमुत प्रसज्यप्रतिषेधइति । तत्र यदि पर्युदासस्ततोयमर्थो भावादन्यो भावो भावांतरं घटात्पटादिः सोऽभावइति । त त्र भावांतरे यदि मुद्गरादिव्यापारो न तर्हि तेन किंचिद्घटस्य कृतमिति । अथ प्रसज्यप्र तिषेधस्तदा यथार्थो विनाशहेतुरभावं करोति । किमुक्तं भवति भावं न करोतीति । ततश्च क्रियाप्रतिषेधएव कृतः स्यात् । नच घटादेः पदार्थस्य मुद्गरादिना करणं । तस्य स्वकारणैरेव कृतत्वात् । अथ भावाभावोऽभावस्तं करोतीति तस्य तुच्छस्य नीरूपत्वात् कुतस्तत्र कारणानां व्यापारोऽथ तत्रापि कारणव्यापारो भवेत् खरशृंगादावपि व्याप्रिये रन् कारणानीति । तदेवं विनाशहेतोरकिंचित्करत्वात् स्वहेतुतएवाऽनित्यताक्रोडीकृ तानां पदार्थानामुत्पत्तेर्विनाशहेतोश्चाभावात् क्षणिकत्वमवस्थितमिति । तुशब्दः पूर्वादिभ्यो ऽस्य व्यतिरेकप्रदर्शकः । तमेव श्लोकपश्चार्धेन दर्शयति । (अन्नोअणन्नोइति) । ते हि बौद्धा यथाऽऽत्मषष्ठवादिनः सांख्यादयो भूतव्यतिरिक्तमात्मानमभ्युपगतवंतो यथा चार्वाका भूताऽव्यतिरिक्तं चैतन्याख्यमात्मानमिष्टवंतस्तथा नैवाहुर्नैवोक्तवंतः । तथा हेतुभ्योजातो हेतुकः । कायाकारपरिणतभूतनिष्पादितइति यावत् । तथाऽहेतुको ऽनाद्यपर्यवसितत्वान्नित्यइत्येवमात्मानं ते बौद्धा नाऽभ्युपगतवंत इति ॥ १७ ॥ तथाऽपरे बौद्धाश्चतुर्धातुकमिदं जगदाहुरित्येतद्दर्शयितुमाह । (पुढवीत्यादि) पृथि वी धातुरापश्च धातुस्तथा तेजो वायुश्चेति धारकत्वात्पोषकत्वाच्च धातुत्वमेषां । (एगउत्ति) । यदैते चत्वारोप्येकाकारपरिणतिं बिभ्रति कायाकारतया तदा जीवव्यपदेशमश्नुवंतः । तथाचोचुः । चतुर्धातुकमिदं शरीरं न तद्व्यतिरिक्तआत्मास्तीति । (एवमाहंसुअवरेत्ति) अपरे बौद्धविशेषा एवमाहुरभिहितवंतइति । क्वचिज्जाणगा इतिपाठस्तत्राप्ययमर्थो जा

नका ज्ञानिनो वयं किलेत्यनिमानाग्निदग्धाः संत एवमाहुरिति संबंधनीयं । अफलवादि त्वं चैतेषां क्रियाक्षणएव कर्तुः सर्वात्मना नष्टत्वात् क्रियाफलेन संबंधानावादवसेयं । स र्वेएव वा पूर्ववादिनोऽफलवादिनो डृष्टव्याः कैश्चिदात्मनोऽनित्यस्याऽविकारिणोऽन्युपगत त्वात् कैश्चित्त्वात्मनएवानन्युपगमादिति । अत्रोत्तरपदार्थानां प्राक्तन्येव निर्युक्तिगाथा। कोवेएइत्यादि व्याख्यायते । यदि पंचस्कंधव्यतिरिक्तः कश्चिदात्माख्यः पदार्थो न विद्यते त तस्तदनावात्सुखडुःखादिकं कोऽनुनवतीत्यादिगाथा प्राग्व ह्याख्येयेति । तदेवमात्मनो नावाद्योयं स्वसंविदितः सुखडुःखानुनवः स कस्य नवत्विति चिंत्यतां । ज्ञानस्कंधस्यायमनु नवइति चेन्न । तस्यापि क्षणिकत्वात् । ज्ञानक्षणस्य चातिसूक्ष्मत्वात् सुखडुःखानुनवानावः । क्रियाफलवतोश्च क्षणयोरत्यंतासंगतेः कृतनाशाकृतान्यागमापत्तिरिति ज्ञानसंतान ए कोस्तीति । तस्यापि संतानिव्यतिरिक्तस्याऽनावाद्यत्किंचिदेतत् । पूर्वक्षणएव उत्तरक्षणे वासनामाधाय विनंक्ष्यतीति चेत् । तथाचोक्तं । यस्मिन्नेव हि संताने, आहिता कर्मवासना॥ फलं तत्रैव संधत्ते, कार्पासे रक्तता यथा ॥ १ ॥ अत्रापीदं विकल्प्यते । सा वासना किं क्षणेन्यो व्यतिरिक्ताऽव्यतिरिक्ता वा । यदि व्यतिरिक्ता वासकत्वानुपपत्तिरथाव्यतिरिक्ता क्ष णवत् क्षणक्षयित्वं तस्याः । तदेवमात्मानावे सुखडुःखानुनवानावः स्यादस्ति च सुखडुः खानुनवोऽतोस्त्यात्मेति । अन्यथा पंचविषयानुनवोत्तरकालमिंद्रियज्ञानानां स्वविषया दन्यत्राप्रवृत्तेः संकलनाप्रत्ययो न स्यात् । आलयविज्ञानाद्भविष्यतीति चेदात्मैव तर्हि सं ज्ञांतरेणान्युपगतइति । तथा बौद्धागमोप्यात्मप्रतिपादकोस्ति । सचायं । इतः । एकनवति में कल्पे, शक्त्या मे पुरुषो हतः ॥ तेन कर्मविपाकेन, पादे विद्धोस्मि निक्षवः ॥ १ ॥ तथा । कृतानि कर्माण्यतिदारुणानि, तनूनवंत्यात्मनिगर्हणेन ॥ प्रकाशनात्संवरणाच्च तेषा,मत्यंतमूलोद्धरणं वदामीत्येवमादि । तथा यडुक्तं । क्षणिकत्वं साधयता यथा पदार्थः कारणेन्य उत्पद्यमानो नित्यः समुत्पद्यते ऽनित्यो वेत्यादि । तत्र नित्येऽप्र च्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वनावे कारकाणां व्यापारानावादतिरिक्ता वाचोयुक्तिरिति नित्यत्वपक्षा नुत्पत्तिरेव । यच्च नित्यपक्षे नवतानिहितं नित्यस्य न क्रमेणार्थक्रियाकारित्वं नापि यौगप द्येनेति तत्क्षणिकत्वेपि समानं । यतः क्षणिकोप्यर्थक्रियायां प्रवर्तमानः क्रमेण यौ गपद्येन वाऽवश्यं सहकारिकारणसव्यपेक्षएव प्रवर्तते । यतः । सामग्री जनिका नह्येकं किंचिदिति । तेनच सहकारिणा न तस्य कश्चिदतिशयः कर्तुं पार्यते । क्षणस्यविवेकत्वेना ऽनाधेयातिशयत्वात् क्षणानां च परस्परोपकारकोपकार्यत्वानुपपत्तेः सहकारित्वानावः । सहकार्यनपेक्षायां च प्रतिविशिष्टकार्यानुपपत्तिरिति । तदेवमनित्यएव कारणेन्यः पदा र्थः समुत्पद्यत इति द्वितीयपक्षसमाश्रयणमेव । तत्रापि चैतदालोचनीयं । किं क्षणक्षयि त्वेनानित्यत्वमाहोस्वित्परिणामाऽनित्यतयेति । तत्र क्षणक्षयित्वे कारणकार्यत्वानावा

त् कारणानां व्यापारएवानुपपन्नः कुतः क्षणिकानित्यस्य कारणेन्य उत्पादइति । अथ पूर्वक्षणादुत्तरक्षणोत्पादे सति कार्यकारणनावो नवतीत्युच्यते तदयुक्तं । यतोसौ पूर्वक्षणो विनष्टो वोत्तरक्षणं जनयेदविनष्टो वा । न तावद्विनष्टस्तस्यासत्वाज्जनकत्वानुपपत्तेः । नाप्यविनष्ट उत्तरक्षणकाले पूर्वक्षणव्यापारसमावेशात्क्षणनंगनंगापत्तेः । पूर्वक्षणो विनश्यंस्तूत्तरक्षणमुत्पादयिष्यति तुलांतयोर्नामोन्नामवदितिचेत् । एवं तर्हि क्षणयोः स्पष्टैवैककालताश्रिता । तथाहि । यासौ विनश्यदवस्था साऽवस्था तु निन्ना । उत्पादावस्थातोप्युत्पित्सोस्ततश्च तयोर्विनाशोत्पादयोर्यौगपद्याभ्युपगमे तद्धर्मिणोरपि पूर्वोत्तरक्षणयोरेककालावस्थायित्वमिति । तद्धर्मतानभ्युपगमे च विनाशोत्पादयोरवस्तुत्वापत्तिरिति । यथोक्तं जातिरेव हि नावानामित्यादि । तत्रेदमन्निधीयते । यदि जातिरेवोत्पत्तिरेव नावानां पदार्थानामन्नावहेतुस्ततोऽन्नावकारणस्य सन्निहितत्वेन विरोधेनाघ्रातत्वादुत्पत्त्यन्नावोऽथोत्पत्त्युत्तरकालं विनाशो नविष्यतीत्यन्युपगम्यते । तथा सति उत्पत्तिक्रियाकाले तस्याऽनूतत्वात्पश्चाच्च नवन्नंतरायएव नवति न नूयसा कालेनेति । किमत्र नियामकं विनाशे हेत्वनाव इतिचेत् । यतउक्तं निर्हेतुकत्वाद्विनाशस्य स्वनावानुबंधितेत्येतदप्ययुक्तं । यतो घटादीनां मुजरादिव्यापारानंरमेव विनाशो नवन् लक्ष्यते । ननु चोक्तमेवात्र तेन मुजरादिना घटादेः किं क्रियत इत्यादि । सत्यमुक्तं । इदमयुक्तंतूक्तं तथाह्यनावइति । प्रसज्यपर्युदासविकल्पद्वयेन योयं विकल्पः पक्षद्वयेपि च दोषः प्रदर्शितः सोऽदोष एव । यतः पर्युदासपक्षे कपालाख्यनावांतरकारणे घटस्य च परिणामानित्यतया तद्रूपतापत्तेः कथं मुजरादेर्घटादीन् प्रत्यकिंचित्करत्वं । प्रसज्यप्रतिषेधस्तु नावं न करोतीति प्रतिषेधात्मकोत्र नाश्रीयते । किंतर्हि प्रागन्नाव,प्रध्वंसान्नावे,तरेतरा,त्यंतान्नावानां चतुर्णां मध्ये प्रध्वंसान्नावएवेहाश्रीयते । तत्र च कारकांतरणां व्यापारोन्नवत्येव । यतोसौ वस्तुतः पर्यायोऽवस्थाविशेषो न नावमात्रं । तस्य चाऽवस्थाविशेषस्य नावरूपत्वात्पूर्वोपमर्देन च प्रवृत्तत्वाद्यएव कपालादेरुत्पादः सएव घटादेर्विनाशइति विनाशस्य सहेतुकत्वमवस्थितं । अपिच कादाचित्कत्वेन विनाशस्य सहेतुकत्वमवसेयमिति । पदार्थव्यवस्थार्थं चाऽवश्यमन्नावचातुर्विध्यमाश्रयणीयं । तडुक्तं । कार्यद्रव्यमनादिः स्या,त्प्रागन्नावस्य निन्हवे ॥ प्रध्वंसस्य च नावस्य, प्रच्यवेऽनंततां व्रजेत् ॥ १ ॥ सर्वात्मकं तदेकं स्यादन्यापोहव्यतिक्रमे इत्यादि । तदेवं क्षणिकस्य विचाराक्षमत्वात्परिणामानित्यपक्षएव ज्यायानिति । एवं च सत्यात्मा परिणामी ज्ञानाधारो नवांतरयायी नूतेन्यः कथंचिदन्यएव शरीरेण सहाऽन्योन्यानुवेधादनन्योपि । तथा सहेतुकोपि नारकतिर्यङ्मनुष्यामरनवोपादानकर्मणा तथा तथा विक्रियमाणत्वात् पर्यायरूपतयेति । तथात्मस्वरूपाप्रच्युतेर्नित्यत्वादहेतुकोपीति ।

आत्मनश्च शरीरव्यतिरिक्तस्य साधितत्वाच्चतुर्हेतुकमात्रं शरीरमेवेदमित्येतदुन्मत्तप्रलपितमपकर्णयितव्यमित्यलं प्रसंगेनेति ॥ १७ ॥

अगारमावसंतावि, अरस्रा वा वि पव्वया ॥ इमं दरिसणमावन्ना सव्वदुक्का विमुच्चई ॥१ए॥ ते णावि संधिं णच्चा णं, न ते धम्मविऊ जणा ॥ जे ते उ वाइणो एवं, न ते उहंतराहिया ॥२०॥ ते णावि संधिं णच्चा णं, न ते धम्मविऊ जणा ॥ जे ते उ वाइणो एवं, न ते संसारपारगा ॥२१॥ ते णावि संधिं णच्चा णं, न ते धम्मविऊ जणा ॥ जे ते उ वाइणो एवं, न ते गप्नस्स पारगा ॥२२॥ ते णावि संधिं णच्चा णं, न ते धम्मविऊ जणा ॥ जे ते उ वाइणो एवं, न ते जम्मस्स पारगा ॥ २३ ॥ ते णावि संधिं णच्चा णं, न ते धम्मविऊ जणा ॥ जे ते उ वाइणो एवं, न ते दुःखस्स पारगा ॥ २४ ॥ ते णावि संधिं णच्चा णं, न ते धम्मविऊ जणा ॥ जे ते उ वाइणो एवं, न ते मारस्स पारगा ॥ २५ ॥

अर्थ—हवे ए पूर्वोक्त दर्शनी पोतपोतानां दर्शननेविषे मुक्तीनुं कारण जे कहेछे ते देखाडे छे. ते उपर कहेछेके ते सर्व दर्शनी अगारं के० घर तेनेविषे आवसंतावि के० निवास करनार एटले गृहस्थ, वा के० अथवा, अरस्रा के० अरण्यवासी तापसादिक अथवा पव्वयाके० प्रव्रजितशाक्यादिक ते एम नावना करेछे के, इमंदरिसणमावन्ना के० अमारा दर्शने आवन्ना एटले आव्या. एटले जे कोई अमे कहिये तेने माने तो, ते सव्वदुक्खाविमुच्चईके०सर्वे दुःखथकी मुक्त थाय. एवी रीते पोतपोताना दर्शननेविषे सर्वे कोई मुक्ति देखाडेछे ॥१ए॥ हवे ग्रंथकार कहेछे. तेणाविके० ते पंचनूतवादी प्रमुख दर्शनीउ तेने नैव के० नथी. संधिके० छिड् एटले ज्ञानावरणादिक कर्म तेनो विपर्ययनाव ते संधि जाणवी. ते अहीं ज्ञानावरणादिक कर्मना विवरण तेने णच्चाणंके० अजाणताथका बापडा दुःखथकी मूकाववाने अर्थे सावधान थयाछे. ते कारणे ते जणाके० जन एटले लोक, नतेधम्मविऊके० क्षांत्यादिक दशप्रकारनो जे यतिधर्म तेना जाण नथी. जेतेउवाइणो एवंके० ते वादी जे नास्तिकमति प्रमुख पूर्वे कह्या, ते असमंजस वचनना बोलनारछे. माटे नतेउहंतराहिया के० ते संसाररूप उंघ एटले प्रवाह, अर्थात् संसारसमुद्रना तारनार ते नथी. एम श्रीतीर्थंकरे तथा गणधरे कह्युंछे. ॥ २० ॥ ते पंचनूतवादी प्रमुख कर्म आववानां स्थानक जाणता नथी; वली ते जनके० लोक क्षांत्यादिक दशविध यतिधर्मने जाणता नथी. एवा ते पूर्वे कह्या जे नास्तिकप्रमुख वादी ते संसारना पा

रगामी नहोय. ए गाथानां पहेलां त्रण पदनो अर्थ प्रथम कह्यो तेप्रमाणेज छे.॥२१॥ जे एम बोले ते गर्भना पारगामी नहीं, एटले अनंता गर्भनां डुःख सहन करे. ॥२२॥ वली जे एम बोले ते जन्मना पारगामी नथी अर्थात् अनंता जन्मनुं डुःख सहन करे. ॥ २३ ॥ तथा जे एम बोले ते डुःखना पारगामि न होय, अनंतो काल चतुर्गति रूप संसारना डुःख सहन करे. ॥ २४ ॥ तथा जे एम बोले ते मरणना पारगामी न समजवा, अर्थात् अनंतिवार मरण पामे. ॥२५॥

॥ दीपिका–अथ पूर्वोक्तसर्वडुर्मतीनामफलत्वं स्वदर्शनांगीकारं च दर्शयन्नाह । (अगारेति) अगारं गृहमावसंतस्तिष्ठंतो गृहस्था आरण्या वा तापसादयः प्रव्रजिताश्च शाक्यादयः । अपि संजावने । इदं ते संजावयंति । यथा इदमस्मदीयं दर्शनं मतमापन्ना आश्रिताः सर्वडुःखेन्यो जीवाविमुच्यंतइति ते वदंति ॥ १ए ॥ अथ तेषां निष्फलत्वमाह । तेऽति षड्भिः । ते पंच पंचनूतवाद्याद्याः संधिज्ञानावरणादिकर्मविवररूपं नापि नैव ज्ञात्वा अज्ञात्वेऽत्यर्थः । एंवाक्यालंकारे । यथा जीवकर्मणोः संधिर्निन्नत्वं नवति तथा ज्ञात्वा मोक्षार्थं प्रवृत्ता इत्यर्थः ॥ संधिर्द्विविधः । इव्यसंधिः कुड्यादेः । नावसंधिः कर्मविवररूपस्तमुत्तरोत्तरपदार्थपरिज्ञानं वा संधिस्त मज्ञात्वा प्रवृत्ताः । ते किंनूताऽत्याह । (नतेत्ति)। ते जना लोका न सम्यक्धर्मविदः । येतु ते । एवंविधवादिनस्ते । उंघो नवौघः संसारस्तत्तरणशीला न आख्याता जिनैः ॥२०॥ अग्रेतनाः पंचश्लोका एवमेव व्याख्येयाः।परं संसार १ गर्न २ जन्म ३ डुःख ४ मारपारगा न नवंतीति ज्ञेयं ॥२१॥२२॥२३॥२४॥२५॥

॥ टीका–सांप्रतं पंचनूतात्माऽद्वैततज्जीवतच्छरीराकारकात्मषष्ठक्षणिकपंचस्कंधवादिनामफलवादित्वं वक्तुकामः सूत्रकारस्तेषां स्वदर्शनफलाज्युपगमं दर्शयितुमाह । (अगारेत्यादि) अगारं गृहं तदावसंतस्तस्मिंस्तिष्ठंतो गृहस्थाऽत्यर्थः । आरण्या वा तापसादयः प्रव्रजिताश्च शाक्यादयः । अपि संजावने । इदं ते संविजावयंति । यथेदमस्मदीयं दर्शनमापन्नाआश्रिताः सर्वडुःखेन्यो विमुच्यंते । आर्षत्वादेकवचनं सूत्रे कृतं । तथाहि । पंचनूततज्जीवतच्छरीरवादिनामयमाशयोयथेदमस्मदीयं दर्शनं ये समाश्रितास्ते गृहस्थाः संतः सर्वेन्यः शिरस्तुंडमुंडन,दंडाऽजिनजटाकाषायचीवरधारण, केशोल्लुंचन, नाग्न्यस्तपश्चरण,कायक्लेशरूपेन्यो डुःखेन्यो मुच्यंते । तथा चुः। तपांसि यातनाश्चित्राः, संयमो नोगवंचनं ॥ अग्निहोत्रादिकं कर्म, बालक्रीडेव लक्ष्यत इति । सांख्यादयस्तु मोक्षवादिनएवं संजावयंति यथा । येऽस्मदीयं दर्शनमकर्तृत्वात्माऽद्वैतपंचस्कंधादिप्रतिपादकमापन्नाः प्रव्रजितास्ते सर्वेन्यो जन्मजरामरणगर्नपरंपराऽनेकशारीरमानसातितीव्रतराऽसातोदयरूपे

भ्यो डुःखेभ्यो विमुच्यंते । सकलद्वंद्वविनिर्मोक्षं मोक्षमास्कंदंतीत्युक्तं भवति ॥ १९ ॥इदानीं तेषामेवाऽफलवादित्वाविष्करणायाह । (तेणावीत्यादि) ते पंचभूतवाद्याद्या नापि नैव संधिं छिद्रं विवरं। सचद्रव्यभावभेदाद्द्वेधा। तत्र द्रव्यसंधिः कुड्यादिर्भावसंधिर्ज्ञानावरणादिकर्मविवररूपस्तमज्ञात्वा ते प्रवृत्ताः। णमिति वाक्यालंकारे। यथा आत्मकर्मणोः संधिर्द्विधा भावलक्षणोभवति। तथा अबुधाइव ते वराका डुःखमोक्षार्थमभ्युद्यताइत्यर्थः। यथा तएवंभूतास्तथा प्रतिपादितं लेशतः प्रतिपादयिष्यतेच। यदि वा संधानं संधिरुत्तरोत्तरपदार्थपरिज्ञानं तदज्ञात्वा प्रवृत्ताइति। यतश्चैवमतस्ते न सम्यक्धर्मपरिछेदे कर्तव्ये विद्वांसो निपुणा जनाः पंचभूतास्तित्वादिवादिनो लोकाइति। तथाहि। क्षांत्यादिकोदशविधो धर्मस्तमज्ञात्वैवान्यथा च धर्मं प्रतिपादयंति। यत्फलाभावाच्च तेषामफलवादित्वं तडुत्तरग्रंथेनोद्देशकपरिसमाप्त्यवसानेन दर्शयति। ये तेत्विति। तुशब्दश्चशब्दार्थे यइत्यस्यानंतरं प्रयुज्यते। येच ते एवमनंतरोक्तप्रकारवादिनो नास्तिकादयोउघोभवौघःसंसारस्तत्तरणशीलास्ते न भवंतीति श्लोकार्थः ॥ २० ॥ तथा न ते वादिनः संसार, गर्भ, जन्म, डुःख, मारादिपारगा भवंतीति ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥

नाणाविहाइं डुःखाइं, अणुहवंति पुणो पुणो ॥ संसारचक्कवालंमि, मच्चुवाहिजराकुले ॥२६॥ उच्चावयाणि गछंता, गप्भमेस्संति णंतसो ॥ नायपुत्ते महावीरे, एवमाह जिणोत्तमे ॥२७॥ इति बेमि पढममज्झयणं पढमो उद्देसो समत्तो ॥ ७॥ ७ ॥

अर्थ—वली ते जे स्थितिने पामे ते कहेछे. नाणाविहाइंडुरकाइं के० नानाविध बहु प्रकारे छेदन भेदन ताडनादिक डुखोनें अणुहवंतिपुणोपुणो के० वली वली अनुभवेछे. परंतु ते डुःख क्यां पामे ? तोके संसार चक्कवालंमिके० संसारचक्रवालने विषे पामे. ते संसार केवो डुस्तरछे तो के, मच्चुवाहिजराकुले के० मृत्यु, व्याधि अने जरा तेणे करी आकुलव्याकुल छे. एवा संसारमांहे परिभ्रमण करतां अनंतो काल डुःखी थाय. ॥२६॥ ते दर्शनीउ वली असमंजस थका सूत्रविरोधना बोलनारा उच्चावयाणिगछंता के० उंचे नीचे स्थानके परिभ्रमण करतां आगामिक काले गप्भमेसंतिणंतसोके० अनंता गर्भनां डुःख पामसे. एवमाहके० एवुं वचन, नायपुत्तेमाहावीरेके० ज्ञातपुत्र श्रीमहावीरदेव जिणोत्तमेके० जिनोत्तम तेणे कह्युं. तेम अमे पण कहिये बैए ॥२७॥ इतिप्रथमाध्ययनस्य प्रथमोद्देशकः समाप्तः ॥ ए प्रथम उद्देशकमां भूतवादिप्रमुख परवादीना मत कह्या.

॥ दीपिका—ते यत्प्राप्नुवंति तदाह। (णाणेति)। नानाविधान्यनेकप्रकाराणि डुःखानि

अनुनवंति । पुनःपुनः संसारचक्रवाले व्याधिमृत्युजरानिराकुले व्याप्ते ॥ २६ ॥ तेषां दुःखफलमुपसंहारं चाह । (उच्चेति) । उच्चावचान्यधमोत्तमानि स्थानानि गछंतोऽत्र मंतोगर्नाज्जन्मेष्यंति यास्यंत्यनंतशः । (नायपुत्तेति) । ज्ञातः सिद्धार्थक्षत्रियस्तस्य पुत्रः श्रीमहावीरो जिन एवमुक्तवान् । इति ब्रवीमीति सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनं प्रत्याहेति ॥ २७ ॥ इति श्रीसूत्रकृते द्वितीयांगे प्रथमाध्ययनेप्रथमोद्देशकव्याख्या संपूर्णा ॥ ॥

॥ टीका–यत्पुनस्ते प्राप्नुवंति तद्दर्शयितुमाह (नाणाविहाइंइत्यादि) नानाविधानि बहुप्रकाराणि दुःखान्यासातोदयलक्षणान्यनुनवंति पुनः पुनः । तथाहि नरकेषु करपत्र दारण,कुंनीपाक,तप्तायःशाल्मलीसमालिंगनादीनि तिर्यक्षु च शीतोष्णादिदमनांकताडनाऽतिनारारोपणक्षुत्तृडादीनि । मनुष्येषु इष्टवियोगाऽनिष्टसंयोगशोकाक्रंदनादीनि देवेषु चाभियोगेर्ष्याकिल्बिषिकत्वच्यवनादीन्यनेकप्रकाराणि दुःखानि ये एवंनूता वादिनस्ते पौनःपुन्येन समनुनवंति।एतच्च श्लोकार्द्धं सर्वेषूत्तरश्लोकार्धेषु योज्यं।शेषं सुगमं यावदुद्देशक समाप्तिरिति ॥२६॥ नवरमुच्चावचानीति अधमोत्तमानि नानाप्रकाराणि वासस्थानानि गछंतीति गछंतोऽत्रमंतोगर्नाज्जन्मेष्यंति यास्यंत्यनंतशो निर्विछेदमिति ब्रवीमीति सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनं प्रत्याह । ब्रवीम्यहं तीर्थंकराज्ञया न स्वमनीषिकया सचाहं ब्रवीमि येन मया तीर्थंकरसकाशाछ्रुतं । एतेनच क्षणिकवादिनिरासो द्रष्टव्यः ॥२७॥ इति समयाख्यप्रथमाध्ययने प्रथमोद्देशकः समाप्तः ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

अथ प्रथमाध्ययनेद्वितीयउद्देशकः प्रारन्यते

आघायं पुण एगेसिं, उववन्ना पुढो जिया ॥ वेदयंति सुहं दुःखं, अदुवा लुप्पंति ठाणउ ॥ १ ॥ न तं सयं कडं दुक्खं, कउ अन्नकडं च णं॥सुहं वा जइ वा दुखं, सेहियं वा असेहियं ॥ २ ॥ सयं कडं न असेहिं, वेदयंति पुढो जिया ॥ संगइअं तं तहा तेसिं, इहमेगेसि आहिअं ॥३॥

अर्थ–पुणके० वली एगेसिंके० एक नियतवादिने मते, आघायंके० एम कह्युंछे. एटले तेनो जे अनिप्राय छे ते कहेछे. उववन्नापुढोजियाके० पृथक् पृथक् नारकादिकने नवे जे जीवछे, ते पोतपोताना देहस्थित थका सुहंदुक्खं के० सुखदुःखने वेदयंतिके० वेदेछे. अदुवाके० अथवा ते प्राणीउ सुख दुःख अनुनवता ठाणउके० ते स्थानकथी पोतानुं आयुष्य पूर्णकरीने लुप्पंतिके० स्थानांतरे संक्रमे. एम नियतवादी कहेछे. ॥ १ ॥ वली पण बेगाथाए नियतवादीनां मतनो अनिप्राय कहेछे. जे ते प्राणी सुख दुःख अनुनवेछे, एक स्थानक थकी बीजे स्थानके उपजेछे, नतंसयंकडंदुक्खंके० ते दुःखादिक ते जीवनुं पोतानुं कीधेलुं नथी. तेम कउअन्नकडंचणं के० अनेरा का

ज ईश्वर स्वभावादिकनुं करेलुं क्यांथी होय. जो स्वयंकृत सुख डुःख छे, तो सर्व जीव व्यापारादिक सरिखो व्यापार करतां सर्वे सरखाज केम नथी थता. माटे पुरुषाकारे कांइज नथाय, अने जो काल ईश्वरादिकना करेलां सुख डुःख होय तो जगतनी विचित्रता केम थाय? तेमाटे काल ईश्वरादिकनुं करेलुं पण सुख डुःख थतुं नथी. एटले जीवने सुहंवाजइवाडुस्कंके० सुख अथवा डुख जे छे ते केवां छे, तोके सेहियं वा असेहियं के० सैद्धिक अथवा असैद्धिक छे. तेमां स्रग् चंदन विनितादिक तेथकी उपनुं जे सुख तेने सैद्धिक कहिये. अने अंतरंग आनंदरूप जे सुख तेने असैद्धिक कहिये. एवीरीते बे प्रकारे डुःख पण जाणवुं, तेमां एक वध, बंधन, ताडनादिक क्रियाना करवाथीकरी अने बीजुं शूलज्वरादिरूप जाणवुं, एटले एक कारणे निष्पन्न अने बीजुं स्वाभाविक निष्पन्न छे. ॥ २ ॥ ए सुखडुःख जो कोइए कर्यां नथी, तो ए जीव सुखी डुःखी केम थायछे, ते कहेछे. सयंकडंनअसुहिंवेदयंति पुढोजियाके०सयं एटले पोतानुं करेलुं अथवा अनेरानुं करेलुं जे सुख डुःख ते जीव वेदतो नथी. किंतु संगइअंतंतहातेसिंके० भवितव्यतानुं करेलुं तेहिज जीवने सुख डुःख उपजेछे. तथाच तन्मतं। प्राप्तव्यो नियतिबलाश्रयेण योऽर्थः, सोवश्यं भवति नृणां शुभोशुभो वा ॥ भूतानां महति कृतेपिहि प्रयत्ने, नाभाव्यं भवति न भाविनोस्ति नाशः ॥ १ ॥ इति वचनात् ॥ ३ ॥ एप्रमाणे नियतवादीना मतनो अभिप्राय दर्शाव्यो.

॥ दीपिका—उक्तः प्रथमोद्देशकः । अथ द्वितीयोद्देशकः कथ्यते । तस्यायमर्थसंबंधः । आद्योद्देशके भूतवादादिमतं प्रदर्श्य निराकृतं । इहाप्यवशिष्टं तदेवोपदर्श्य निराक्रियत इत्यनेन संबंधेनागतस्यास्योद्देशकस्य सूत्रं यथा । (आघायमिति)। पुनः एकेषां नियतिवादिनामेतदाख्यातं । आख्यातमित्यत्र भावे क्तप्रत्ययःतद्योगेन वा क्लीबइति कर्तरिषष्ठी। ततश्च नियतिवादिभिरिदमाख्यातमित्यर्थः । किं तदित्याह । (उववसुत्ति) उपपन्ना युक्त्या घटमानाः पृथक् अनेके जीवाः। जीवसत्वे पंचभूततच्छरीरवादिमतं निराकृतं । पृथगित्यनेन आत्माऽद्वैतवादिनिरासश्च । तेऽनेके जीवाः सुखं डुःखं देवनारकादिभवेषु वेदयंत्यनुभवंति अनेनाऽकर्तृवादो निरस्तः (अडुवेत्ति)। अथवा लुप्यंते स्थानात् स्थानांतरं संक्राम्यंते। एतेनोपपातिकत्वमप्युक्तं ॥ १ ॥ नियतिवादमतमेवाह श्लोकद्वयेन । (नतमिति) यत्तैः प्राणिभिरनुभूयते सुखं डुःखं स्थानविलोपनं वा न तत्स्वयमात्मना पुरुषकारेण कृतं डुःखं। डुःखस्यचोपलक्षणात्सुखमपि ग्राह्यं । सुखडुःखानुभवः पुरुषकारकृतो न स्यादित्यर्थः। अनेन कालेश्वरस्वभावकर्मादिना च कुतः कृतं । णमित्यलंकारे। कालादिभिरपि न कृतमित्यर्थः । किंतु नियतेरेव निष्पद्यते सर्वमिति । ततः सुखं सैद्धिकं सिद्धौ मोक्षे भवं सै

द्धिकं । यदिवा दुःखमसैद्धिकं सांसारिकं । अथवा सैद्धिकमसैद्धिकं च सुखं यथा । स्रक्चंदनांगनाद्युपभोगक्रियासिद्धौ भवं सैद्धिकं । आंतरं सुखमानंदरूपमसैद्धिकं । तथा सैद्धिकमसैद्धिकं च दुःखं यथा । कशाताडनांकनादिक्रियासिद्धौ भवं सैद्धिकं । ज्वरशिरोर्तिशूलादिरूपमंगोद्भमसैद्धिकं दुःखं । एतदुभयमपि सुखं दुःखं च नपुरुषकारकृतं । नचान्यैः कालादिभिः कृतं वेदयंत्यनुभवंति पृथक्जीवाः । कथं तर्हि प्राणिनांसुखं दुःखं च स्यादित्याह । (संगइअंति) । सम्यक् स्वपरिणामेन गतिर्यस्याः यदा यत्र यत्सुखदुःखानुभवनं सा संगतिर्नियतिस्तस्याभवं सांगतिकं नियतिकृतमित्यर्थः । इहाऽस्मिन्सुखदुःखानुभववादे एकेषां नियतिवादिनामिदमाख्यातं । यदुक्तं तैः । प्राप्तव्योनियतिबलाश्रयेण योर्थः, सोऽवश्यं भवति नृणां शुभोऽशुभो वा ॥ भूतानां महति कृतेपि हि प्रयत्ने, नाभाव्यं भवति न भाविनोस्ति नाश इति ॥ ३ ॥

॥ टीका—उक्तः प्रथमोद्देशकस्तदनु द्वितीयोऽभिधीयते । तस्य चायमभिसंबंधः । इहाऽनंतरोद्देशके स्वसमयपरसमयप्ररूपणाकृता । इहाप्यध्ययनार्थाधिकारत्वात्सैवाभिधीयते । यदि चानंतरोद्देशके भूतवादादिमतं प्रदर्श्य तन्निराकरणं कृतं । तदिहापि तदवशिष्टनियतिवाद्यादिमिथ्यादृष्टिमतान्युपदर्श्य निराक्रियंते । अथवा प्रागुद्देशकेऽभ्यधायि यथा बंधनं बुध्येत तच्च त्रोटयेदिति तदेव च बंधनं नियतिवाद्यभिप्रायेण न विद्यतइति प्रदर्श्यते । तदेवमनेन संबंधेनायातस्यास्योद्देशकस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराणि व्यावर्ण्य सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं । (आघायमित्यादि) अस्य चाऽनंतरपरंपरसूत्रैः संबंधोवक्तव्यस्तत्राऽनंतरसूत्रसंबंधोयं । इहानंतरसूत्रे इदमभिहितं यथा । पंचभूतस्कंधादिवादिनोमिथ्यात्वोपहतांऽतरात्मनोऽसद्ग्राहाभिनिविष्टाः परमार्थाऽवबोधविकलाः संतः संसारचक्रवाले व्याधिमृत्युजराकुले उच्चावचानि स्थानानि गच्छंतो गर्भमेष्यंत्यन्वेषयंति वाऽनंतशइति । तदिहापि नियत्यज्ञानिज्ञानचतुर्विधकर्मोपचयवादिनां तदेव संसारचक्रवालभ्रमणगर्भान्वेषणं प्रतिपाद्यते । परंपरसूत्रसंबंधस्तु (बुज्झेज्जेत्यादि) । तेन च सहायं संबंधस्तत्र बुध्येतेत्येतत् प्रतिपादितमिहापि यदाख्यातं नियतिवादिभिस्तद्बुध्येतेत्येवं मध्यसूत्रैरपि यथासंभवं संबंधो लगनीयइति । तदेवं पूर्वोत्तरसंबंधसंबद्धस्यास्य सूत्रस्याऽधुनार्थः प्रतन्यते । पुनःशब्दः पूर्वादिभ्यो विशेषं दर्शयति । नियतिवादिनां पुनरेकेषामेतदाख्यातं । अत्र चाविवक्षितकर्मकाअपि अकर्मका भवंतीति ख्यातेधीतोर्भावे निष्ठाप्रत्ययस्तद्योगे कर्तरि षष्ठी । ततश्चायमर्थस्तैर्नियतवादिभिः पुनरिदमाख्यातं तेषामयमाशयइत्यर्थः । तद्यथा । उपपन्नो युक्त्या घटमानकाइत्यनेन च पंचभूततज्जीवतच्छरीरवादिमतमपाकृतं भवति । युक्तिस्तु लेशतः प्राग्दर्शितैव । प्रदर्शयिष्यते

च पृथक्पृथक्नारकादिन्नवेषु शरीरेषु चेत्यनेनाऽप्यात्माऽद्वैतवादिनिरासोऽवसेयः। के पुन स्ते पृथगुपपन्नास्तदाह।जीवाः प्राणिनः सुखडुःखन्नोगिनः। अनेन च पंचस्कंधातिरिक्तजीवा न्नावप्रतिपादकबौद्धमताऽपक्षेपः कृतोद्रष्टव्यः। तथा ते जीवाः पृथक्पृथक् प्रत्येकदेहे व्य वस्थिताः सुखं डुःखं च वेदयंत्यनुन्नवंति। न वयं प्रतिप्राणिप्रतीतं सुखडुःखानुन्नवं निह्नु महे। अनेन चाऽकर्तृवादिनोनिरस्तान्नवंति। अकर्तर्यविकारिण्यात्मनि सुखडुःखानुन्नवा नुपपत्तेरिति न्नावः। तथैतदस्मान्निर्नोऽपलप्यते। अडुवेत्यथवा। तेप्राणिनः सुखं डुःखं चानुन्नवंति विलुप्यंते ब्रिद्यंते स्वायुषः प्रच्याव्यंते स्थानात्स्थानांतरं संक्राम्यंत इत्यर्थः। ततश्चौपपातिकत्वमप्यस्मान्निस्तेषां न निषिध्यते इतिश्लोकार्थः॥ १॥ तदेवं पंचन्नूता स्तित्वादिवादिनिरासं कृत्वा यत्तैर्नियतिवादिनिराश्रीयते तल्लोकद्वयेन दर्शयितुमाह।

(नतंसयमित्यादि) यत् तैः प्राणिन्निरनुन्नूयते सुखं डुःखं स्थानविलोपनं वा न तत्स्वय मात्मना पुरुषकारेण कृतं निष्पादितं डुःखमिति। कारणेकार्योपचारात्। डुःखकारणमेवो क्तं। अस्य चोपलक्षणत्वात् सुखाद्यपि ग्राह्यं। ततश्चेदमुक्तं न्नवति। योयं सुखडुःखानुन्नवः सपुरुषकारकृतकारणजन्यो न न्नवतीति। तथा कुतोऽन्येन कालेश्वरस्वन्नावकर्मादिना च कृ तं न्नवेत्। णमित्यलंकारे। तथाहि। यदि पुरुषकारकृतं सुखाद्यनुन्नूयेत ततः सेवकवणि क्कर्षकादीनां समाने पुरुषकारे सति फलप्राप्तिवैसदृश्यं फलप्राप्तिश्च न न वेत्। कस्यचित्तु से वादिव्यापारान्नावेपि विशिष्टफलावाप्तिर्दृश्यत इत्यतो न पुरुषकारात्किंचिदासाद्यते किं त र्हिनियतेरेवेत्येतच्च द्वितीयश्लोकांतेऽन्निधास्यते। नापि कालः कर्ता। तस्यैकरूपत्वाज्जग ति फलवैचित्र्यानुपपत्तेः। कारणन्नेदे हि कार्यन्नेदोन्नवति नान्नेदे। तथा ह्ययमेवहि न्नेदो न्नेदहेतुर्वा घटते। यडुत विरुद्धधर्माध्यासः कारणन्नेदश्च। तथेश्वरकर्तृकेपि सुखडुःखे नन्न वतः। यथाऽसावीश्वरो मूर्तोऽमूर्तो वा। यदि मूर्तस्ततः प्राकृतपुरुषस्यैव सर्वकर्तृत्वान्नावः। अथाऽमूर्तस्तथा सत्याकाशस्यैव सुतरां निष्क्रियत्वं। अपिच यद्यसौ रागादिमांस्ततो ऽस्मदाद्यव्यतिरेकाद्विश्वस्याकर्तैव। अथासौ विगतरागस्ततस्तत्कृतं सुन्नगडुर्नगेश्वरद रिड्रादिजगद्वैचित्र्यं न घटां प्रांचति ततोनेश्वरः कर्तेति। तथा स्वन्नावस्यापि सुखडुः खादिकर्तृत्वानुपपत्तिः। यतोऽसौ स्वन्नावः पुरुषाद्भिन्नोऽन्निन्नोवा। यदि निन्नोन पुरुषा श्रिते सुखडुःखे कर्तुमलं तस्माद्भिन्नत्वादिति। नाप्यन्निन्नोऽन्नेदे पुरुषएव स्यात्तस्य चाक र्तृत्वमुक्तमेव। नापि कर्मणः सुखडुःखं प्रति कर्तृत्वं घटते। यतस्तत्कर्म पुरुषाद्भिन्नमन्नि न्नं वा न्नवेत्। अन्निन्नं चेत्पुरुषमात्रतापत्तिः कर्मणस्तत्र चोक्तो दोषः। अथ न्निन्नं तत्किं स चेतनमचेतनं वा। यदि सचेतनं एकस्मिन् काये चैतन्यद्वयापत्तिः। अथाचेतनं तथा सति कुतस्तस्य पाषाणखंडस्येवास्वतंत्रस्य सुखडुःखोत्पादनंप्रति कर्तृत्वमित्येतच्चोत्तरत्र व्यासेन प्रतिपादयिष्ये इत्यलं प्रसंगेन। तदेवं सुखं सैद्धिकं सिद्धावपवर्गलक्षणायां

नवं यदि वा डुखं आसातोदयलक्षणमसैद्धिकं सांसारिकं । यदिवोजयमप्येतत्सुखं डुःखं वा स्रक्चंदनांगनाद्युपजोगक्रियासिद्धौजवं तथा कशाताडनांकनादिसिद्धौ जवं सैद्धिकं । तथाऽसैद्धिकं सुखमांतरमानंदरूपमाकस्मिकमनवधारितबाह्यनिमित्तं । एवं डुःखमपि ज्वरशिरोर्तिशूलादिरूपमंगोद्भमसैद्धिकं । तदेतडुजयमपि न स्वयं पुरुषकारेण कृतं नाप्यन्येन केनचित् कालादिना कृतं वेदयंत्यनुजवंति पृथक्जीवाः प्राणिनइति । कथं तर्हि तत्तेषामनूदिति नियतिवादी स्वाजिप्रायमाविष्करोति (संगइयंति) सम्यक्स्वपरिणामेन गतिर्यस्य यदा यत्र यत्सुखडुःखानुजवनं सा संगतिर्नियतिस्तस्यां जवं सांगतिकं । यतश्चैवं न पुरुषकारादिकृतं सुखडुःखाद्यतस्तत्तेषां प्राणिनां नियतिकृतं सांगतिकमित्युच्यते । इहास्मिन् सुखडुःखानुजववादे एकेषां वादिनामाख्यातं तेषामयमन्युपगमः । तथाचोक्तं । प्राप्तव्यो नियतिबलाश्रयेण योर्थः, सोऽवश्यं जवति नृणां शुजोऽशुजो वा ॥ जूतानां महति कृतेपि हि प्रयत्ने नाजाव्यं जवति न जाविनोस्ति नाशः ॥ १ ॥ ३ ॥

एवमेयाणि जंपंता, बाला पंमिअमाणिणो ॥ निययानिययं संतं,
अयाणंता अबुद्धिया ॥ ४ ॥ एवमेगे उ पासत्था, ते जुजो विप्पग
प्निआ ॥ एवं उवट्ठिआ संता, ण ते डुःखविमोरकया ॥ ५ ॥

अर्थ—हवे ग्रंथकार एने उत्तर आपेछे एवमेयाणिजंपंता के० एवं पूर्वोक्त वचन नियतवादाश्रित बोलतां एवा ते बालाके०बाल अज्ञानी छतां पोताने पंमिअमाणिणोके० पंमित करी मानतां शा माटे मानेछे ते कहेछे के; निययानिययंके० ते अज्ञानी नियतिकृत सुख डुःख अथवा अनियतिकृत पुरुषकारादिकनुं करेलुं एवुं सुख डुःख ते संतं के० एकांते जवितव्यतायेज कर्युं एम कहेछे; ते कारणे तेने सुखडुःखादि कारणना अयाणंता अबुद्धियाके० अजाण, बुद्धिरहित कहिए. अने जैनतो नियतिकृतपणे तथा अनियतिकृतपणे ए बंने प्रकारे सुख डुःख मानेछे एटले स्याद्वादी कहिए. ॥ ४ ॥ हवे तेने एवी प्ररूपणानुं विपाक देखाडेछे एवमेगेके० एरीते कोइ एक नियतवादने विषे आश्रित परवादीछे ते केवाछे; तोके पासत्थाके० पार्श्वस्थ एटले न्यायपक्षथकी बाहेर अथवा पासत्था एटले पाशके० कर्मनुं बंधन तेने विषे स्थित जुजो के० तेवली पुनः विप्पगप्निायाके० विविध प्रगल्जित एटले अत्यंत धिगायका मुक्तिमार्गनेविषे प्रवर्त्ते; वली एवुं कहेछे के अमे एवी क्रिया करता थका मुक्तिपामीशुं परंतु एवंके० ए प्रकारे ते उवट्ठियासंताके० उठित एटले पोतानी क्रियानेविषे प्रवर्तता छतां णतेडुःखविमोरकयाके० पोताने डुःखथी मूकावनार न होय एटले मुक्ति पामेनहीं.॥५॥ एटले नियतवादी कह्या.

॥ दीपिका—अस्योत्तरमाह । (एवमिति) । एवमेतानि पूर्वोक्तानि वचनानि जल्पंतो

नियतिवादिनोबाला मूर्खाः पंडितमानिनः स्वयमपंडिताअप्यात्मानं पंडितं मन्यमानाः। किंभूताः नियताऽनियतमजानंतः किंचिन्नियतिकृतमवश्यंभावि नियतमात्मपुरुषकारेश्वरादिकृतं किंचिदनियतमेवं द्विविधं वस्तु अजानंतोनियतिकृतमेवैकांतेनाश्रयंतोऽतएवाबुद्धिकाबुद्धिरहिताभवंति । पुरुषकारादयोपि वस्तूत्पादकाः । यतः । न दैवमिति संचिंत्य, त्यजेडुद्यममात्मनः। अनुद्यमेन कस्तैलं तिलेभ्यः प्राप्तुमर्हति ॥ १ ॥ इत्याद्यजानंतोऽतएव निर्बुद्धिकाः ॥ ४ ॥ एतद्वादिनामपायमाह । (एवमिति)। एवमेके नियतिवादिनं पार्श्वस्थाः युक्तिसमूहाद्बहिस्तिष्ठंतीति पार्श्वस्थाः परलोकक्रियापार्श्वस्थावा । अथवा पाशः कर्मबंधनं तत्र स्थिताः । (तेज्जुज्जोत्ति)। ते भूयो विविधं प्रगल्भिता धाष्र्ष्यौपेतानियतिवादमंगीकृत्यापि एवं पुनरपि स्वकार्यपरलोकक्रियासु प्रवर्तमानाअतएव धाष्र्ष्यौपेतानते डुःखविमोचकाआत्मानं डुःखान्न मोचयंति ॥ ५ ॥ नियतिवादिनोगताः॥

॥टीका—एवं श्लोकद्वयेन नियतिवादिमतमुपन्यस्यास्योत्तरदानायाह । (एवमेयाणि इत्यादि) एवमित्यनंतरोक्तस्योपप्रदर्शने । एतानि पूर्वोक्तानि नियतिवादाश्रितानि वचनानि जल्पंतोऽनिदधतो बालाअज्ञाः सदसद्विवेवविकलाअपि संतः पंडितमानिनआत्मानं पंडितं मंतुं शीलं येषां ते तथा । किमिति तएवमुच्यंतइति तदाह । यतो (निययानियर्यंसंतमिति)। सुखादिकं किंचिन्नियतिकृतमवश्यं भाव्युदयप्रापितं तथाऽनियतमात्मपुरुषकारेश्वरादिप्रापितं सत् नियतिकृतमेवैकांतेनाश्रयंत्यतोऽजानानाः सुखडुःखादिकारणमबुद्धिकाबुद्धिरहिताभवंतीति । तथाह्यार्हतानां किंचित्सुखडुःखानि नियतितएव भवंति । तत्कारणस्य कर्मणः कस्मिंश्चिदवसरेऽवश्यंभाव्युदयसद्भावान्नियतिकृतमित्युच्यते । तथा किंचिदनियतिकृतं च पुरुषकालेश्वरस्वभावकर्मादिकृतं तत्र कथंचित्सुखडुःखादेः पुरुषकारसाध्यत्वमप्याश्रीयते । यतः क्रियातः फलं भवति क्रिया च पुरुषकाराऽयत्ता प्रवर्तते। तथाचोक्तं । न दैवमिति संचिंत्य, त्यजेडुद्यममात्मनः । अनुद्यमेन कस्तैलं तिलेभ्यः प्राप्तुमर्हति ॥१॥ यत्तु समाने पुरुषव्यापारे फलवैचित्र्यं दूषणत्वेनोपन्यस्तं तददूषणमेव । यतस्तत्रापि पुरुषकारवैचित्र्यमपि फलवैचित्र्ये कारणं भवति । समाने वा पुरुषकारे यः फलाभावः कस्यचिद्भवति सोऽदृष्टकृतः । तदपि चास्माभिः कारणत्वेनाश्रितमेव । तथा कालोपि कर्ता । यतो बकुलचंपकाशोकपुन्नागसहकारादीनां विशिष्टएव काले पुष्पफलाद्युद्भवोन सर्वदेति । यच्चोक्तं । कालस्यैकरूपत्वाज्जगद्वैचित्र्यं न घटतइति तदस्मान् प्रति न दूषणं । यतोऽस्माभिर्न कालएवैकः कर्तृत्वेनाभ्युपगम्यतेऽपितु कर्मापि ततो जगद्वैचित्र्यमित्यदोषः । तथेश्वरोपि कर्ता । आत्मैवहि तत्र तत्रोत्पत्तिद्वारेण सकलजगद्व्यापनादीश्वरः । तस्य सुखडुःखोत्पत्तिकर्तृत्वं सर्ववादिनामविगानेन सिद्धमेव । यच्चात्र मूर्तामू

तादिदूषणमुपन्यस्तं तदेवंनूतेश्वरसमाश्रयणे दूरोत्नेदितमेवेति । स्वनावस्यापि कथंचि त्कर्तृत्वमेव । तथा ह्यात्मनउपयोगलक्षणत्वमसंख्येयप्रदेशत्वं । पुजलानां च मूर्तत्वं ध र्माधर्मास्तिकाययोर्गतिस्थित्युपष्टंनकारित्वममूर्तत्वं चेत्येवमादिस्वनावापादितं । यदपि चा त्मव्यतिरेकाऽव्यतिरेकरूपं दूषणमुपन्यस्तं तददूषणमेव । यतः स्वनावआत्मनोऽव्यति रिक्तः । आत्मनोपि च कर्तृत्वमन्युपगतमेव तदपि स्वनावापादितमेवेति । तथा कर्मापि कर्तृ नवत्येव । तद्धि जीवप्रदेशैः सहान्योन्यानुवेधरूपतया व्यवस्थितं कथंचिच्चात्मनोऽनि न्नं तद्वशाच्चात्मा नरकतिर्यङ्मनुष्यामरनवेषु पर्यटन् सुखदुःखादिकमनुनवतीति । तदेवं नियत्यनियत्योः कर्तृत्वे युक्त्युपपन्ने सति नियतेरेव कर्तृत्वमन्युपगछंतोनिर्युक्तिकानवंतीत्य वसेयम्॥४॥तदेवं युक्त्या नियतिवादं दूषयित्वा तद्वादिनामपायदर्शनायाह।(एवमेगेउइत्या दि)। एवमितिपूर्वान्युपगमसंसूचकं । सर्वस्मिन्नपि वस्तुनि नियतानियते सत्येके नियतमेवा ऽवश्यंनाव्येव कालेश्वरादिनिराकरणेन निर्हेतुकतया नियतिवादमाश्रिताः । तुरवधार णे । तएव नान्ये । किंविशिष्टाः पुनस्ते इति दर्शयति । युक्तिकदंबकाद्बहिस्तिष्ठंतीति पा र्श्वस्थाः परलोकक्रियापार्श्वस्थावा । नियतिपक्षसमाश्रयणात्परलोकक्रियावैयर्थ्यं । य दि वा पाशइवपाशः कर्मबंधनं तच्चेह युक्तिविकलनियतिवादप्ररूपणं तत्रस्थिताः पाश स्थाः । अन्येप्येकांतवादिनः कालेश्वरादिकारणिकाः पार्श्वस्थाः पाशस्थावा डष्टव्याइ त्यादि । ते पुनर्नियतिवादमाश्रित्यापि नूयोविविधं विशेषेण वा प्रगल्भिताधाष्टर्योपग ताः परलोकसाधकासु क्रियासु प्रवर्तंते । धाष्टर्याश्रयणं तु तेषां नियतिवादाश्रयणे स त्येव । पुनरपि तत्प्रतिपंथिनीषु क्रियासु प्रवर्तनादिति ते पुनरेवमप्युपस्थिताः परलोक साधकासु क्रियासु प्रवृत्ताअपि संतोनात्मडुःखविमोक्षकाः । असम्यक्प्रवृत्तत्वान्नात्मानं डुःखाद्विमोचयंति । गतानियतिवादिनः ॥ ५ ॥

जविणो मिगा जहा संता, परिताणेण वज्जिआ ॥ असंकियाइं संकंति, संकिआइं असंकिणो ॥६॥ परियाणिआणि संकंता, पासिताणि असंकि णो ॥ अन्नाणनयसंविग्गा संपलिंति तहिंतहिं ॥ ७ ॥ अह तं पवेज्ज वक्षं, अहे वक्षस्स वा वए ॥ मुच्चेज पयपासाउ, तं तु मंदे ण देहए ॥ ८ ॥

अर्थ—हवे अज्ञानवादीना मत उपर दृष्टांत कहेछे. जहाके० जेम, मिगाके० मृग एटले अरण्यना पशु जविणो संता के० वेगवंत उतां ते केवांछे, तोके परिताणेणवज्जि याके० परित्राण एटले शरणेकरी वर्जित अर्थात् तेमनो कोइ राखनार नथी. एवा ते नयविव्हलनूत विवेकरहित थका असंकियाइं के० अशंकित स्थानक जे कूट पा शादिक रहित तेने संकंति के० शंकानुं स्थानक जाणे तथा जे संकिआइं के० शंकित

स्थानक जे वधनुं कारण ते स्थानक थकी असंकिणो के० शंका पामे नहीं. ॥ ६ ॥
वली एहिज कहेछे के, ते मृगादिक जीव परियाणिआणि के० परित्राण जे रक्षानुं स्थानक तेथी संकंता के० शंकाता अने पासिताणि असंकिणो के० पाशना स्थानक थकी अण शंकाता, अन्नाणजयके० अजाणपणे अथवा नयें करी, संविग्गा के० व्याकुल थका संपलिंति तहिं तहिं के० तेहिज तेहिज स्थानके जाय. ज्यां त्यां पाशादिक मांहेज पडे ॥ ७ ॥ वली एज दृष्टांत दिपावेछे. अह के० अथ एटले हवे तंके० ते मृगादिक जीव ते वागुरादिकनो जे बज्झपवेज्झ के० बंधपाशादिकनां स्थानक ने अहेबज्झस्सवाव ए के० नीचे अथवा उपर आक्रमीने जाय. जो एम करे तो ते मुच्चेज्जपयपासाउके० पगना पाशथकी मूकाय एटले छुटो थाय परंतु ते अनर्थ परिहरवानो उपाय तंके० ते, मंदे के० मंद अज्ञानी, णदेहएके० नदेखे. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–अथाज्ञानिमतमाह। (जविणोत्ति)। यथा जविनोवेगवंतः संतोमृगाः परित्राणेन शरणेन वर्जितारहिताः। अथवा परित्राणं वागुरादिबंधनं तेन तर्जितान्नयं प्रापिताः संतोऽशंकितानि स्थानानि शंकंते नयभ्रांताः संतोनिर्नयान्यपि स्थानानि सनयतया मन्यंते । शंकितानि च वागुरादीन्यशंकमानाः संपर्यंयंतइत्युत्तरसूत्रेण संबंधः ॥ ६ ॥ परित्राणं संजातं येषु तानि परित्राणितानि शरणभूतानि स्थानानि मूढत्वात् शंकमानाः सनयानि मन्यमानाः पाशितानि पाशयुक्तान्यशंकमानास्तेषु शंकामकुर्वाणाअज्ञानेन नयेन च (संविग्गत्ति) सम्यक्व्याप्तास्तत्र तत्र वागुरादिके बंधने संपर्यंयंते समेकीभावेन परिसमंतादयंते गच्छंतीति ॥ ७ ॥ इममेव दृष्टांतमाश्रित्याह। (अहेति)। अथानंतरमसौ मृगस्तत् (बज्झमिति) बंधोबंधनकारणं रज्जुवागुरादिबंधं वा यदि प्लवेतोपरिगच्छेत वा अथवा बंधस्याधोव्रजेत् तदा पदपाशात् वागुरादिबंधनान्मुच्यते। एवं संतमपि तमनर्थपरिहरणोपायं मंदोजडोन देहतीति न पश्यतीति ॥ ८ ॥

॥ टीका–सांप्रतमज्ञानिमतं दूषयितुं दृष्टांतमाह। (जविणोइत्यादि) यथा जविनोवेगवंतः संतोमृगाआरण्याः पशवः परिसमंतात् त्रायते रक्षतीति परित्राणं तेन वर्जिता रहिताः परित्राणविकलाइत्यर्थः। यदिवा परित्राणं वागुरादिबंधनं तेन तर्जितान्नयं ग्राहिताः संतोनयोद्भ्रांतलोचनाः समाकुलीभूतांतःकरणाः सम्यक्विवेकविकलाअशंकनीयानि कूटपाशादिरहितानि स्थानान्यशंकार्हाणि तान्येव शंकंते अनर्थोत्पादकत्वेन गृह्णंति। यानि पुनः शंकार्हाणि शंका संजाता येषु योग्यत्वात्तानि शंकितानि शंकायोग्यानि वागुरादीनि तान्यशंकिनस्तेषु शंकामकुर्वाणास्तत्र तत्र पाशादिके संपर्यंयंतइत्युत्तरेण संबंधः ॥६॥ पुनरप्येतदेवाऽतिमोहाविष्करणायाह। (परियाणीत्यादि) परित्रायते इति परित्राणं तज्जातं येषु तानि। यथा परित्राणयुक्तान्येव शंकमानाअतिमूढत्वाद्विपर्यस्तबु

ध्यस्यार्थेपि नयमुत्प्रेक्षमाणानि पाशितानि पाशोपेतान्यनर्थोपादकान्यशंकिनस्तेषु शंकामकुर्वाणाः संतोऽज्ञानेन नयेन च (संविग्गंति)। सम्यक्व्यापावशीनूताः शंकनीयमशंकनीयं वा तत्राऽपरित्राणोपेतं पाशाद्यनर्थोपेतं वा सम्यक्विवेकेनाऽजानानास्तत्र तत्राऽनर्थबहुले पाशवागुरादिके बंधने संपर्ययंते समेकीनावेन परिसमंतादयंते यांति वा गब्बंतीत्युक्तं नवति । तदेवं दृष्टांतं प्रसाध्य नियतिवादाद्येकांताऽज्ञानवादिनोदार्ष्टांतिकत्वेनाऽयोज्याः । यतस्तेप्येकांतवादिनोऽज्ञानकास्त्राणनूतानेकांतवादवर्जिताः सर्वदोषविनिर्मुक्तं कालेश्वरादिकारणवादान्युपगमेनाऽनाशंकनीयमनेकांतवादमाशंकंते शंकनीयं च नियत्यज्ञानवादमेकांतं न शंकंते । ते एवंनूताः परित्राणार्हेप्यनेकांतवादे शंकां कुर्वाणायुक्त्याऽघटमानकमनर्थबहुलमेकांतवादमशंकनीयत्वेन गृह्णंतोऽज्ञानावृतास्तेषु तेषु कर्मबंधस्थानेषु संपर्ययंत इति ॥ ७ ॥ पूर्वदोषैरतुष्यन्नाचार्योदोषांतरदित्सया पुनरपि प्राक्तनदृष्टांतमधिकृत्याह । (अहतंपवेज्जइत्यादि) अथानंतरमसौ मृगस्तत् (बज्ञमिति) बद्धं बंधनाकारेण व्यवस्थितं । वागुरादिकं वा बंधनं बंधकत्वाद्बंधमित्युच्यते । तदेवंनूतं कूटपाशादिकं बंधनं यद्यसावुपरिष्ठवेत् तदधस्तादतिक्रम्योपरिगब्बेत् तस्य वर्ध्रादेर्बंधनस्याधोगब्बेत्तत एवं क्रियमाणेऽसौ मृगः पदेपाशः पदपाशोवागुरादिबंधनं तस्मान्मुच्यते । यदि वा पदं कूटं पाशः प्रतीतस्ताभ्यां मुच्यते । क्वचित्पदपाशादीति पठ्यते । आदिग्रहणा द्वधताडनमारणादिकाः क्रियागृह्यंते । एवं संतमपि तमनर्थोत्पादकं परिहरणोपायं मंदोजडोऽज्ञानावृतोन देहतीति न पश्यतीति ॥ ७ ॥

अहिअप्पाऽहियप्पन्नाणे, विसमंतेणुवागते ॥ सबद्धे पयपासेणं, तब घायं नियच्छइ ॥ए॥ एवं तु समणा एगे, मिच्छदिठी अणारिआ ॥ असंकिआइं संकंति, संकिआइं असंकिणो ॥ १०॥ धम्मपन्नवणा जा सा, तं तु संकंति मूढगा ॥ आरंनाइं न संकंति, अविअत्ता अकोविआ ॥ ११ ॥ सवप्पगं विउक्कस्सं, सवंणूमं विहूणिआ ॥ अप्पत्तिअं अकम्मंसे, एयमठं मिगे चुए ॥ १२ ॥

अर्थ—हवे ते उपाय अण देखतो थको जे अवस्थाने पामे ते कहेछे. अहिअप्पा के० ते मृग आत्माने अहित तथा अहियप्पन्नाणेके० अहित जेनुं जाणपणु छे, एवा छता, विसमंते के० विषम कूट पाशादिक प्रदेशे, णुवागते के० आवे. एटले ते पाश मांहे पडे. सबद्धेपयपासेणं के० ते त्यां पडया छता बंधन पामे. तथा तछघायं के० त्यां ते विनाशने नियछइके० दुःखी थता पामे. ॥ ए ॥ हवे ए दृष्टांत परवादिसाथे

मेलवेछे. एवंतु के० एरीते जेम ते मृग अजाणतां थकां पाशमांहे पडेछे, तेम सम णाएगे के० कोइएक श्रमण शाक्यादिक दर्शनी ते केवाछे, तोके मिछदिठी के० मिथ्यादृष्टी तथा अणारिआ के० अनार्य अज्ञानपणे अनाचारना सेवनारा ते असंकिया ई के० अशंकित एवां जे रुडा धर्मनां अनुष्ठानछे, तेनेविषे संकंति के० अधर्मनी शंका आणे; अने संकियाई के० जे हिंसादिक शंकित स्थानकछे, तेथकी असंकिणो के० न शंकाय. ॥ १० ॥ वली ते दर्शनीउंनी जे विपरीत मति छे ते देखाडेछे. धम्मपसव णाजासा के० क्षांत्यादिक दशविध धर्मसहित प्ररूपणा जेनीछे. तंतुसंकंतिमूढगा के० तेथकी ते अज्ञानी शंकाय अने कहेके ए अधर्मनी प्ररूपणाछे, तथा जे आरंभाईके० आरंभादिक पापनां कारण छे. तेथकी नसंकंति के० न शंकाय अने तेनेज धर्म करी देखाडे. माटे ते केवा छे, अविअत्ता के० अव्यक्त, मुग्ध, विवेक, विकल तथा अकोविया के० अकोविद एटले अपंडित छे. ॥ ११ ॥ हवे तेने फल देखाडेछे. सवप्पगं के० सर्वात्मक ते लोभ, विउक्कस्सं के० मान, सव के० समस्त, णूमं के० माया, तथा अपत्तियं के० क्रोध ए चार कषाय विहूणिया के० खपावीने जीव अकम्मंसे के० अकर्मांश थाय, एटले कर्मांशरहित थाय. एयमठं के० एवो अर्थ ते मिगे के० मृगनी पेरे अज्ञान पष्ठवादी दर्शनी चूए के० छांमेछे. सारांश जेथकी जीव मुक्ति पामे ते अर्थ जाणता नथी॥ १२॥

॥ दीपिका—पाशमपश्यतोयाऽवस्था स्यात्तामाह । (अहिअप्पेति । स मृगोऽहितात्मा तथा अहितं प्रज्ञानं बोधोयस्य सोऽहितप्रज्ञानः विषमांतेन कूटपाशादियुक्तेन प्रदेशेनोपागतः । अथवा विषमांते कूटपाशे आत्मानमनुपातयेत् । तत्र चासौ बद्धः पादपाशादीननर्थबहुलान् अवस्थाविशेषान् प्राप्तस्तत्र बंधने घातं विनाशं निगछति प्राप्नोति ॥ ॥ ए ॥ दृष्टांतयोजनामाह । (एवमिति) । एवं पूर्वोक्तमृगदृष्टांतेन । तुरवधारणे । एकेश्रमणाः पाखंमाश्रितमिथ्यादृष्टयोऽनार्याअसदनुष्ठानाअशंकितानि धर्मानुष्ठानानि शंकमानास्तथा शंकितान्येकांतपक्षाश्रयणान्यशंकिनोमृगाइवाऽनर्थभाजः स्युः ॥ ॥ १० ॥ शंकिताशंकितविपर्यासमाह । (धम्मेत्ति)। धर्मप्रज्ञापना क्षांत्यादिदशविधधर्मप्ररूपणा या सा प्रसिद्धा तां शंकंते सद्धर्मप्ररूपणेयमिति मन्यंते । आरंभांश्च पापोपादानभूतान् शंकंते । यतोऽव्यक्तामुग्धाः सदसद्विवेकविकलाअकोविदाअपंडिताः सछास्त्रावबोधविधुराः ॥ ११॥ तेषां सत्फलाभावमाह । (सवप्पगमिति) सर्वात्मकोलोभस्तं । व्युत्कर्षोमानस्तं (सवंणूमंति) मायां तथा (अप्पत्तिअंति) क्रोधस्तं च विधूय अकर्मांशः न विद्यते कर्मांशोयस्य सोऽकर्मांशः स्यात् । अकर्मांशत्वं च ज्ञानाद्भवति नाऽज्ञानादित्याह । (एयमठंति) । एतमर्थं कर्माभावरूपं मृगइव मृगोऽज्ञानी (चुएत्ति) त्यजेत् ॥ १२॥

॥ टीका—कूटपाशादिकं चापश्यन् यामवस्थामवाप्नोति तां दर्शयितुमाह। (अहीत्यादि) स मृगोऽहितात्मा । तथाऽहितं प्रज्ञानं बोधोयस्य सोऽहितप्रज्ञानः। सचाहितप्रज्ञानः सन् विषमांतेन कूटपाशादियुक्तप्रदेशेनोपागतः । यदिवा विषमांते कूटपाशादिके आत्मानमनुपातयेत्। तत्र चासौ पतितो बद्धश्च तेन कूटादिना पदपाशादीननर्थबहुलानवस्थाविशेषान् प्राप्तस्तत्र बंधने घातं विनाशं नियच्छति प्राप्नोतीति ॥ ए ॥ एवं दृष्टांतं प्रदर्श्य सूत्रकारएव दार्ष्टांतिकमज्ञानविपाकं दर्शयितुमाह। (एवंतुइत्यादि) एवमिति यथा मृगाअज्ञानावृताअनर्थमनेकशः प्राप्नुवंति । तुरवधारणे । एवमेव श्रमणाः केचित्पाखंमविशेषाश्रिताः। एके न सर्वे । किंनूतास्ते इति दर्शयति । मिथ्या विपरीता दृष्टिर्येषामज्ञानवादिनां नियतिवादिनां वा ते मिथ्यादृष्टयः । तथा अनार्याः आराज्जाताः सर्व देयधर्मेन्यइति आर्याः न आर्याअनार्याअज्ञानावृतत्वादसदनुष्ठायिनइति यावत् । अज्ञानावृतत्वं च दर्शयति । अशंकितान्यशंकनीयानि सुधर्मानुष्ठानादीनि शंकमानास्तथा शंकनीयान्यपायबहुलान्येकांतपक्षसमाश्रयणान्यशंकिनोमृगाइव मूढचेतसस्तत्तदाऽरनंते यद्यदनर्थाय संपद्यंतइति ॥ १० ॥ शंकनीयाशंकनीयविपर्यासमाह । (धम्मपसुवणेत्यादि) । धर्मस्य क्षांत्यादिदशलक्षणोपेतस्य या प्रज्ञापना प्ररूपणा। तंत्विति । तामेव शंकंते असद्धर्मप्ररूपणेयमित्येवमध्यवस्यंति । ये पुनः पापोपादाननूताः समारंनास्तानाशंकंते । किमिति । यतोऽव्यक्तामुग्धाः सहजसद्विवेकविकलाः । तथा । अकोविदाअपंडिताः सच्चास्त्रावबोधरहिताइति ॥ ११ ॥ तेच अज्ञानावृतायन्नाप्नुवंति तद्दर्शनायाह। (सवप्पगमित्यादि) । सर्वत्राप्यात्मा यस्याऽसौ सर्वात्मको लोजस्तं विधूयेति संबंधः । तथा । विविधउत्कर्षोगर्वोव्युत्कर्षोमानइत्यर्थः। तथा (णूमंति) माया तां विधूय। तथा (अप्पत्तियंति) क्रोधं विधूय। कषायविधूननें च मोहनीयविधूननमावेदितं नवति तदपगमाच्च शेषकर्माजावः प्रतिपादितो नवतीत्याह। (अकर्मांशइति)। न विद्यते कर्मांशोऽस्येत्यकर्मांशः। सच कर्मांशोविशिष्टज्ञानान्नवति नाज्ञानादित्येव दर्शयति। एतमर्थं कर्माजावलक्षणं मृगः अज्ञानी (जुहत्ति)। त्यजेत्। विनक्तिपरिणामेन वा अस्मादेवंनूतादर्थात् च्यवेत् नश्येदिति ॥ १२॥

जे एयं नाभिजाणंति, मिछदिठ्ठी अणारिया ॥ मिगा वा पासबद्धा ते, घायमेसंति णंतसो ॥ १३॥ माहणा समणा एगे, सवे नाणं सयं वए॥ सवलोगे वि जे पाणा, न ते जाणंति किंचण ॥१४॥ मिलक्खू अमिलक्खुस्स, जहा वुत्ताणुभासए॥ ण हेउं से विजाणाइं, भासिअंतणु नासए ॥१५

एवमन्नाणिया नाणं, वयंतावि सयं सयं ॥ निछयछं न याणंति, मिलक्खुव अबोहिया ॥ १६ ॥

अर्थ– वली एनोज दोष देखाडेछे. जेएयंनाभिजाणंति के० जे अज्ञानवादी ए कर्म खपाववानो उपाय नथी जाणता, ते केवा छे, मिछदिठ्ठीअणारिया के० मिथ्यादृष्टी अनार्य एवा मिगावापासबद्धाते के० मृगलानी परे पाशमां बंधाणाछे. तेघायमेस्संति णं तसो के० आगामिक काले अनंताघात एटले मरणने पामशे; एटले मृगतो एकवार मरण पामीनेज बूटेछे परंतु ते अज्ञानी अनंते मरणे पण बूटसे नहीं. ॥ १३ ॥ हवे जे पोते एकवार ग्रह्युं एवुं जे पोतानुं कदाग्रह तेने कोइवारे मूकेनहीं ते उपर विशेष कहेछे. माहणासमणाएगे के० एक ब्राह्मण तथा एक श्रमण परिव्राजक विशेष ए सवे के० सर्वे, सयंके० पोत पोतानुं, नाणंके० जाणपणुं रुडुंछे एम वएके० वदे एटले कहेछे. वली ते जुदां जुदां ज्ञान परस्पर माहोमांहे विरुद्ध संदेह उपजावेछे; ते माटे अजाणपणुंज नलु छे जाणपणानुं कांइ काम नथी, ए रीते अज्ञानवादी कहेछे. तेमाटे सवलोगेविके० सर्व लोकमांहे, जे पाणा के० जे प्राणीउ छे, नतेजाणंतिकिंचणं के० ते कांइ जाणता नथी, एटले सर्व सम्यक्ज्ञान रहित जाणवा. यद्यपि तेने कांइ गुरुपरंपरागत जाणपणुं होय तथापि ते कांई परमार्थ जाणता नथी, माटे ते अज्ञानीज जाणवा. ॥ १४ ॥ हवे ते उपर दृष्टांत कहेछे. मिलक्खुअमिलक्खुस्स के० जेम म्लेछ आर्यभाषानो अजाण थको अम्लेछ जे आर्य भाषा तेने जहाचुत्ताणुभासए के० जेम भाषतानी परे बोले परंतु ते णहेउसेविआणाइं के० हेतु एटले परमार्थ कांइ जाणे नहीं, निःकेवल परमार्थें करी शून्य भासियंतणुभासए के० भाषाने केडे भाषे. ॥ १५ ॥ हवे ए दृष्टांत अज्ञानवादी साथे मेलवेछे. एवमन्नाणियाणाणं के० एरीते अज्ञानी सम्यक्ज्ञानरहित एवा श्रमण ब्राह्मणादिक पोतपोताना मतनुं ज्ञान प्रमाण करीने वयंताविसयंसयं के० पोतपोतानो मार्ग कहेछे पण ते निछयछंनयाणंति के० निश्चयार्थ नथी जाणता. मिलक्खुवअबोहिया के० ते म्लेछवत् एटले म्लेछनीपरे अबोधिक एटले ज्ञानरहित छे. ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–भूयोप्यज्ञानवादिनां दोषमाह। (जेएतमिति)। ये एतं कर्मक्षयोपायं न जानंति मिथ्यादृष्टयोऽनार्यास्ते मृगाइव पाशबद्धाघातं विनाशमेष्यंति यास्यंत्यन्वेषयंतिवा तद्योग्यक्रियाकरणात्। अनंतशोनिरंतरम् ॥ १३ ॥ अज्ञानवादिनामेव दूषणांतरमाह। (माहणाइति)। एके ब्राह्मणास्तथा श्रमणाः परिव्राजकाः सर्वे स्वकमात्मीयं ज्ञानं वदंति नच तानि सर्वेषां ज्ञानानि। अन्योन्यविरोधेन प्रवृत्तत्वात्। तस्मादज्ञानमेव श्रेयइत्याह। (सवेलोयेवित्ति)। सर्वस्मिन् लोके ये प्राणाः प्राणिनस्ते किंचन स

म्यक् न जानंति ॥ १४ ॥ अथ दृष्टांतमाह । (मिलक्कुइति) । यथा म्लेच्छोऽनार्यः अ म्लेच्छस्य आर्यस्य यदुक्तं भाषितं तदनुभाषते परमार्थशून्यं तद्भाषितमेवानुभाषते । नच हेतुं विजानाति ॥ १५ ॥ दार्ष्टांतिके योजयति (एवमिति) । एवमज्ञानिकाः स म्यक्ज्ञानरहिताः स्वकं स्वकमात्मीयं ज्ञानं प्रमाणत्वेन वदंतोपि निश्चयार्थं न जानंति । इव यथा म्लेच्छो निश्चयार्थमजानन् परोक्तमनुवदत्येवं तेप्यबोधिकाबोधरहिताः । ततोऽज्ञानमेव श्रेयइति ॥ १६ ॥

॥ टीका—नूयोप्यज्ञानवादिनां दोषानिधित्सयाह । (जेएयमित्यादि) । ये अज्ञान पक्षं समाश्रिताएनं कर्मक्षपणोपायं न जानंति । आत्मीयाऽसदग्राहाऽग्रहग्रस्तामि थ्यादृष्टयोऽनार्यास्ते मृगाइव पाशबन्धाघातं विनाशमेष्यंति यास्यंत्यन्वेपर्यंति वा । त द्योग्यक्रियानुष्ठानात् । अनंतशोविच्छेदेनेत्यज्ञानवादिनोगताः ॥ १३ ॥ इदानीमज्ञानवादिनां दूषणोद्भिनावयिषया स्ववाग्यंत्रितावादिनोन चलिष्यंतीति तन्मताविष्करणायाह । (मा हणाइत्यादि) । एके केचन ब्राह्मणविशेषास्तथा श्रमणाः परिव्राजकविशेपाः सर्वेप्ये ते ज्ञायतेऽनेनेति ज्ञानं हेयोपादेयार्थाऽविर्भावकं परस्परविरोधेन व्यवस्थितं स्वकमात्मीयं वदंति । नच तानि ज्ञानानि परस्परविरोधेन प्रवृत्तत्वात्सत्यानि । तस्मादज्ञानमेव श्रेयः किं ज्ञानपरिकल्पनयेत्येतद्दर्शयति । सर्वस्मिन्नपि लोके ये प्राणाः प्राणिनोन ते किंचना पि सम्यगुपेतवाचं जानंतीति विदंतीति ॥ १४ ॥ यदपि तेषां गुरुपारंपर्येण ज्ञानमायातं तदपि छिन्नमूलत्वादवितथं न नवतीति दृष्टांतद्वारेण दर्शयितुमाह । (मिलक्कुअमिलक्कु स्सेत्यादि) । यथा म्लेच्छआर्यनाषानभिज्ञोऽम्लेच्छस्यार्यस्य म्लेच्छनाषानभिज्ञस्य यद्भापि तं तदनुनाषते अनुवदति केवलं न सम्यक्तदभिप्रायं वेत्ति यथाऽनया विवक्षयाऽने न नाषितमिति । नच हेतुं निमित्तं निश्चयेनासौ म्लेच्छस्तद्भाषितस्य जानाति । केवलं पर मार्थशून्यं तद्भाषितमेवानुनाषत इति ॥ १५ ॥ एवं दृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकं योजयितुमा ह । (एवमित्यादि) । यथा म्लेच्छः अम्लेच्छस्य परमार्थमजानानः केवलं तद्भाषितानुनु नाषते । तथा अज्ञानकाः सम्यक्ज्ञानरहिताः श्रमणाब्राह्मणावदंतोपि स्वीयं स्वीयं ज्ञानं प्रमाणत्वेन परस्परविरुद्धार्थनाषणात् निश्चयार्थं न जानंति । तथाहि । ते स्वकी यं तीर्थकरं सर्वज्ञत्वेन निर्द्धार्य तडुपदेशेन क्रियासु प्रवर्तेरन् । नच सर्वज्ञविवक्षा अर्वा ग्दर्शिना ग्रहीतुं शक्यते । नासर्वज्ञः सर्वज्ञं जानातीति न्यायात् । तथाचोक्तं । सर्वज्ञोऽ साविति ह्येतत्तत्कालेपि बुभुत्सुभिः ॥ तज्ज्ञानज्ञेयविज्ञान,रहितैर्गम्यते कथं ॥ १ ॥ ए वं परचेतोवृत्तीनां दुरन्वयत्वाडुपदेष्टुरपि यथावस्थितविवक्षया ग्रहणाऽसंनवान्निश्चया र्थमजानानाम्लेच्छवदपरोक्तमनुनाषंतएव । अबोधिकाबोधरहिताः केवलमित्यतोऽज्ञा

नमेव श्रेयइति । एवं यावद्यावज्ज्ञानाभ्युपगमस्तावत्तावद्गुरुतरदोषसंभवः । तथाहि । यो वगछन्पादेन कस्यचित् शिरः स्पृशति तस्य महानपराधोभवति । यस्त्वनाभोगेन स्पृशति तस्मै न कश्चिदपराध्यतीत्येवं चाज्ञानमेव प्रधानभावमनुभवति नतु ज्ञानमिति । १६ ॥

अन्नाणियाण वीमंसा, नाणे ण विनियछइ ॥ अप्पणो य परं नालं, कुतो अन्नाणुसासिउं ॥ १७ ॥ वणे मूढे जहा जंतू, मूढे णेयाणुगामि ए ॥ दोवि एए अकोविया, तिव्वं सोयं नियछइ ॥ १८ ॥ अंधो अंधं प हं णिंतो, दूरमध्दाणु गछइ ॥ आवज्जे उप्पहं जंतु; अडुवा पंथाणु गा मिए ॥ १९ ॥ एवमेगे णियायठी, धम्ममाराहगा वयं ॥ अडुवा अ हम्ममावज्जे, ण ते सवज्जुयं वए ॥ २० ॥ ॥ ॥ ॥

अर्थ—हवे एने दोष देखाडेछे. जे एम कहेके, अज्ञानज भलुंछे; तेने अन्नाणियाण के० अज्ञानवादी कहिये. तेनी जे वीमंसा के० जाणवानी इछा, ते नाणे ण विनिय छइ के० ज्ञानने विषे पहोचे नहीं. कारण ते एम विचार करेछे के अज्ञानवडे अ पराध करनारानो दोष स्वल्प छे, अने जाणनारने दोष घणो लागेछे. जेम कोइक म नुष्य मार्गे जतां जाणतो थकोज कोइकना मस्तकने पगे करीने फरशे. तोते महा अ पराधनो पात्र थायछे. परंतु जो अजाणतां फरशे तोते स्वल्प अपराधी छे. ए कार ण माटे अज्ञानपणुंज रुडुंछे, एवी जेनामां विचारणा छे. ते अज्ञानवादी जाणवा. ते अज्ञानवादी अप्पणोय कहेतां पोतानो आत्मा समजवानेज असमर्थ छे. तो परंनालं के० बीजाने कुतो अन्नाणुसासिउं के० बीजा अज्ञानी जनोने समजाववाने क्यां थी समर्थ थाय? अर्थात् नज थाय. ॥ १७ ॥ हवे एज अर्थ दृष्टांते करी दिपावेछे. वणे के० वन एटले अटवीने विषे, जहा के० जेम, कोइक मूढेजंतू के० दिशिमूढजीव ते दिशिने जाणवा असमर्थ थको मूढेणेयाणुगामिए के० अनेरा दिशिमूढने आगेवा न करीने तेनी पाछळ चाले ते समये दोविएए के० ते बन्ने जण, ते मार्गना अकोवि या के० अजाण थका, तिव्वंसोयंनियछई के० तीव्र गहनमांहे पडे अर्थात् महाडुः ख पामे. ॥ १८ ॥ वळी बीजुं दृष्टांत कहेछे. अंधोअंधंपहंणिंतो के० जेम कोइएक पोते अंध छतां अनेरा अंधने मार्गे लेई जतो थको दूरमध्दाणुगछइ के० घणे दूर ज ईने आवज्जेउप्पहंजंतु के० ते अंध उन्मार्गे पडे; अडुवा के० अथवा पंथाणुगामिए के० अनेरे पंथे जाय पण वांछित मार्गे न जाय. एटले पोते उन्मार्गे पडतां पाछळा ने पण उन्मार्गे पाडे. ॥१९॥ हवे ए दृष्टांत अज्ञानवादी साथे मेळवेछे. एवं के० ए अ

जाणता अंधनी पेठे नावमूढ एवा एगे के० कोइ एक परदर्शनी णियायठी के० मोक्ष ना अर्थी धम्ममाराहगावयं के० अमे धर्मना आराधक छैये एम कही प्रव्रज्याने लईने अनेक छकायनुं मर्दन करता थका, अडुवा के० अथवा अनेराने छकायना आरंजनो उपदेश करता थका, अहम्ममावज्जे के० अधर्मज आचरे. परंतु णतेसव्वज्जुअंवए के० ते सर्व प्रकारे ऋजु एटले सरल एवो मार्ग न पामे. एटले ते मोक्षने अर्थे यत्न करे प रंतु मोक्षनो मार्ग न पामे. ॥ २० ॥

॥ दीपिका–इदानीमेतद्दूषणायाह । (अन्नाणित्ति) अज्ञानिकानामज्ञानमेव श्रेयइति वादिनां योविमर्शोविचारस्स अज्ञानेऽज्ञानविषये न नियच्छति न युज्यते । यतोज्ञानं सत्यमसत्यं वेति विमर्शः । अज्ञानेन कृतेऽपराधे स्वल्पोदोषः ज्ञानेन कृते महान् इत्येवं नूतोविचारोपि तेषां न युज्यते । एवंविधविचारस्य ज्ञानरूपत्वादित्यज्ञानवादे विचारोन युज्यते । तथा आत्मनोपि परं प्रधानमज्ञानवादं शासितुमुपदेष्टुं नालं न समर्थाः । स्वयमज्ञत्वात् कुतोऽन्येषां शिष्याणामुपदेष्टुं समर्थाजवेयुः ॥ १७ ॥ यथा ते आत्मनः परेषां च शिक्षणे ऽसमर्थास्तथा दृष्टांतेनाह (वणेत्ति) वनेऽरण्ये यथा कश्चिन्मूढोमूढं नेतारं प्रापकमनुगच्छत्याश्रयति तदा तौ द्वावप्यकोविदौ मार्गोऽनिपुणौ संतौ तीव्रं स्रोतोगहनं शोकं वा नियच्छतः प्राप्नुतः ॥ १८ ॥ दृष्टांतांतरमाह । (अंधेति) यथा अंधः स्वयं अन्यमंधं पंथानं नयन् दूरमध्वानं वांछितमार्गादन्यं दूरं मार्गं गच्छति । तथा उत्प थमुन्मार्गमापद्यते जंतुः प्राणी अंधः । अथवा परं पंथानमनुगच्छेन्न वांछितं ॥ १९ ॥ दार्ष्टांतिकमर्थमाह । (एवमिति) । एवं पूर्वोक्तार्थेन एके नावमूढानियागोमोक्षः सद्ध र्मोवा तदर्थिनस्ते किल वयं धर्माराधका इतिजानंतोऽधर्मं पापमेवापद्येरन् प्राप्नुवंति तथा ते सदनुष्ठानाआजीविकादयोगोशालकमतानुसारिणोऽज्ञानवादप्रवृत्ताः सर्वथा ऋ जुः सर्वर्जुः संयमः सद्धर्मोवा तं न व्रजेयुः न गच्छंति न प्राप्नुवंतीत्यर्थः । अथवा सर्व र्जुकं सत्यमज्ञानांधान व्रजेयुः ॥ २० ॥

॥ टीका–एवमज्ञानवादिमतमनूद्येदानीं तद्दूषणायाह । (अन्नाणियाणमित्यादि) न ज्ञा नमज्ञानं तद्विद्यते येषां तेऽज्ञानिनः।अज्ञानशब्दस्योत्तरपदत्वाद्वा मत्वर्थीयः।यथा गौरखरव दरण्यमिति । यथा तेषामज्ञानिनामज्ञानमेव श्रेयइत्येवं वादिनां योयं विमर्शः पर्यालोच नात्मकोमीमांसा वा मातुं परिछेत्तुमिछा साऽज्ञानेऽज्ञानविषये (नणियच्छत्ति) न नि श्चयेन यच्छति नावतरति न युज्यतइतियावत् । तथाहि । यैवंनूता मीमांसा विमर्शोवा किमेतज्ज्ञानं सत्यमुताऽसत्यमिति । यथा अज्ञानमेव श्रेयोयथा यथाच ज्ञानातिशय स्तथा तथाच दोषातिरेकइति सोयमेवंनूतोविमर्शस्तेषां न बुध्यते । एवंनूतस्य पर्यालो

चनस्य ज्ञानरूपत्वादिति । अपिच तेऽज्ञानवादिनश्चात्मनोपि परं प्रधानमज्ञानवाद मिति शासितुमुपदेष्टुं नालं न समर्थास्तेषामज्ञानपक्षसमाश्रयणेनाऽज्ञत्वादिति कुतः पुनस्ते स्वयमज्ञाः संतोऽन्येषां शिष्यत्वेनोपगतानामज्ञानवादमुपदेष्टुमलं समर्थानवेयु रिति । यदप्युक्तं छिन्नमूलत्वात् म्लेछानुनाषणवत्सर्वमुपदेशादिकं तदप्ययुक्तं । यतोऽ नुनाषणमपि न ज्ञानमृते कर्तुं शक्यते । तथा । यदप्युक्तं परचेतोवृत्तीनां डुरन्वयत्वाद ज्ञानमेव श्रेयइति तदप्यसत् । यतोनवतैवाज्ञानमेव श्रेयइत्येवं परोपदेशदानान्यु द्यतेन परचेतोवृत्तिज्ञानस्यान्युपगमः कृतइति । तथाऽन्यैरप्यधायि । आकारैरिंगितैर्गत्या चेष्टया नाषितेन च ॥ नेत्रवक्रविकारैश्च, गृह्यतेंतर्गतं मनः ॥ १७ ॥ तदेवं ते तपस्विनोऽ ज्ञानिनश्चात्मनः परेषां च शासने कर्तव्ये यथा न समर्थास्तथा दृष्टांत द्वारेण दर्शयितुमा ह । (वणेइत्यादि) वनेऽटव्यां यथा कश्चिन्मूढो जंतुः प्राणोदिक्परिछेदं कर्तुमसमर्थः स एवंनूतोयदा परं मूढमेव नेतारमनुगछति तदा द्वावप्यकोविदौ सम्यक्ज्ञानाऽनिपुणौ संतौ तीव्रमसह्यं स्रोतोगहनं शोकं वा नियछतोनिश्चयेन गछतः प्राप्नुतोऽज्ञानावृत त्वात् । एवं तेप्यज्ञानवादिनश्चात्मीयं मार्गं शोननत्वेन निर्धारयंतः परकीयं वा शोनन त्वेन जानानाः स्वयं मूढाः संतः परानपि मोहयंतीति ॥ १८ ॥ अस्मिन्नेवार्थे दृष्टांतांत रमाह । (अंधोअंधमित्यादि ।) यथा अंधः स्वयमपरमंधं पंथानं नयन् दूरमध्वानं वि वक्षितादध्वनः परतरं गछति तथोत्पथमापद्यते जंतुरंधः । अथवा परं पंथानमनुगछे न्न विवक्षितमेवाध्वानमनुयायादिति ॥१९॥ एवं दृष्टांतं प्रसाध्य दार्ष्टांतिकमर्थं दर्शयितुमा ह । (एवमेगेनियायट्ठित्ति ।) एवमिति पूर्वोक्तोर्थोपप्रदर्शने । एवं नावमूढानावांधाश्चैके आजीविकादयः (नियायट्ठित्ति) । नयोमोक्षः सद्धर्मोवा तदर्थिनस्ते किल वयं सद्धर्मारा धकाइत्येवं संधाय प्रव्रज्यायामुद्यताः संतः पृथिव्यंबुवनस्पत्यादिकायोपमर्देन पचनपा चनादिक्रियासु प्रवृत्ताः संतस्तत्तत्स्वयमनुतिष्ठन्त्यन्येषां चोपदिशंति येनाऽनिप्रेतायामो क्षावाप्तेर्भ्रंशयंति । अथवा तावन्मोक्षानावस्तमेवं प्रवर्तमानाअधर्मं पापमापद्येरन् । सं नावनायामुत्पन्नेन लिङ्प्रत्ययेनैतद्दर्शयति । एतदपरं तेषामनर्थांतरं संनाव्यते । यडुत विवक्षितार्थानावतया विपरीतार्थावाप्तेः पापोपादानमिति । अपिच तएवमसदनुष्ठायि नआजीविकादयोगोशालकमतानुसारिणोऽज्ञानवादप्रवृत्ताः सर्वैः प्रकारैर्ऋजुः प्रगुणो विवक्षितमोक्षगमनंप्रत्यकुटिलः सर्वर्जुसंयमः सद्धर्मोवा तं सर्वर्जुकं ते न व्रजेयुर्न प्रा प्नुयुरित्युक्तं नवति । यदि वा सर्वर्जुकं सत्यं तत्तेऽज्ञानांधाज्ञानाऽपलापिनोन वदेयुरि ति । एते चाज्ञानिकाः सप्तषष्टिनेदानवंति । तेच नेदाअमुनोपायेन प्रदर्शनीयाः । तद्यथा । जीवादयोनव पदार्थाः । सत्, असत्, सदसत्, अवक्तव्यः, सदवक्तव्यः, असदवक्तव्यः, सदसदवक्तव्यइत्येतैः सप्तनिः प्रकारैर्विज्ञातुं न शक्यंते नच विज्ञातैः प्रयोजनमस्ति । ना

वना चेयं। सन् जीवइति कोवेत्ति किंवा तेन ज्ञातेन । असन् जीवइति को वेत्ति किंवा तेन ज्ञातेनेत्यादि । एवमजीवादिष्वपि प्रत्येकं सप्त विकल्पाः । नव सप्तकास्त्रिषष्टिः । अमी चान्ये चत्वारस्त्रिषष्टिमध्ये स्थाप्यंते । तद्यथा । सती जावोत्पत्तिरिति को जानाति किंवाऽनया ज्ञातया। एवमसती सदसदवक्तव्यताजावोत्पत्तिरिति को जानाति किंवाऽनयाज्ञातयेति। शेषविकल्पत्रयं तूत्पत्त्युत्तरकालं पदार्थावयवापेक्षमतोत्र न संजवतीति नोक्तं। एतच्चतुष्टय प्रक्षेपात्सप्तषष्टिर्जवति। तत्र सन् जीवइति को वेत्तीत्यस्यायमर्थोन कस्यचिद्विशिष्टं ज्ञानमस्ति योऽतींद्रियान् जीवादीनवजोत्स्यते । नच तैर्ज्ञातैः किंचित्फलमस्ति । तथाहि । यदि नित्यः सर्वगतोऽमूर्तोज्ञानादिगुणोपेतएतद्गुणव्यतिरिक्तोवा ततः कतमस्य पुरुषार्थस्य सिद्धिरिति तस्मादज्ञानमेव श्रेयइति ॥ २० ॥

एवमेगे वियक्काहिं, नोअन्नं पज्जुवासिया ॥ अप्पणोय वियक्काहिं, अयमंजूहिं डुम्मई ॥ २१ ॥ एवं तक्काइ साहिंता, धम्माधम्मे अकोविया ॥ डुक्खं ते नाइतुट्टंति, सउणी पंजरं जहा ॥ २२ ॥ सयं सयं पसंसंता, गरहंता परं वयं ॥ जे उ तत्र विउस्संति, संसारं ते विउस्सिया ॥२३॥ अहावरं पुरक्खायं, किरियावाइदरिसणं ॥ कम्मचिंतापणट्ठाणं, संसारस्स पवड्डणं ॥ २४ ॥

अर्थ—वली ग्रंथकार कहेछे. एवं के० एरीते एगे के० कोइएक अज्ञानी परवादी वियक्काहिं के० वितर्कें करी, पोतानी कल्पित कल्पनाए असत्यने सत्य करी मानता थका नोअन्नंपज्जुवासिया के० अनेरा साचा होय तोपण तेने पर्युपाशे नहीं. एटले सेवे नहीं. किंतु अप्पणोयवियक्काहिं के० पोतानाज वितर्कें करी एवुं कहे जे ए अयमंजूहिं के० अमारो मार्गेज रुजु एटले सरल अकुटिल छे, इत्यादिक कहेछे. तेमाटे ते डुम्मई के० डुर्मति विपरीतबुद्धिवाला छे. केमके ते सन्मार्गथी उपरांग वर्तेछे. अने विपरीत मार्गने सन्मुख छे. तेथी ते विपरीतबुद्धिवाला जाणवा. ॥ २१ ॥ हवे ज्ञानवादी ते अज्ञानवादीनो अनर्थ प्रगट देखाडेछे. एवं के० ए पूर्वोक्त न्यायें तक्काइसाहिंता के० तर्कें करी एटले पोतानी कल्पनायें मोक्षमार्गने कहेतां थका अष्ट प्रकारे जे कर्मनो बंध तेने त्रोडी न शके, ते केवाछे, धम्माधम्मे के० धर्म जे क्षांत्यादिक दशविध अने अधर्म जे हिंसादिक पांच आश्रव तेने विषे अकोविया के० अकोविद एटले अजाणछे अर्थात् ते धर्मअधर्मने जाणता नथी. डुक्खंतेनाइतुट्टंति के० ते पोतानां डुःखने शी रीते त्रोडे ते उपर दृष्टांत कहेछे. ते जहा के० जेम सउणी के० शकुनी एटले पक्षी

ते पंजरं के० पंजरमांहे पड्युं थकुं पांजराने त्रोडीने पोताने मूकावी शके नहीं. तेम ए अज्ञानवादी पण पोताने संसारपंजरथकी मूकावी शके नहीं एम जाणवुं. ॥ २२ ॥ हवे सामान्याकारे एकांत मतिने दूषण करेछे सयंसयंपसंसंता के० सर्व दर्शनी पोतपोतानुं दर्शन प्रशंसतां अने परंवयं के० पारकां वचनने गरहंता के० निंदतां जेउ के० जे तत्र के० त्यां एरीते विउस्संति के० पोतानुं विद्वांस एटले पंमित पणुं देखाडेछे. ते के० ते एवां वचनना बोलनार संसार के० चतुर्गतिक संसारमांहे विउस्सिया के० विशेषे बांध्या उतां अनंतो काल तत्र के० त्यांज रहे. ॥ २३ ॥ एटले अन्नाणवाईगया के० अज्ञानवादी कह्या. हवे क्रियावादीनो मत कहेछे. अह के० अथ एटले हवे अवरं के० अपर एटले अज्ञानवादीना मतथकी अनंतर पुरस्कायं के० पूर्वे कह्युं. एवुं किरियावाइदरिसणं के० क्रियावादीनुं दर्शन, ते क्रियावादी केवाछे, कम्मचिंतापणठाणं के० कर्मचिंताप्रनष्ट एटले कर्म जे ज्ञानावरणीयादिक तेने विषे चिंता एटले आलोचवुं ते थकी प्रनष्ट थयेला एटले ते कर्मबंधनो परमार्थ जाणे नहीं तेथी तेनुं दर्शन निःकेवल संसारस्सपव्वक्रुणं के० संसारनुं वधारनार जाणवुं. ॥ २४ ॥

॥ दीपिका—दूषणांतरमाह । (एवमिति) । एवं पूर्वोक्तनीत्या एकेऽज्ञानवादिनोवितर्कानिर्मीमांसाभिः स्वमतिकल्पनाभिः परमन्यं जैनादिकं न पर्युपासते न सेवंते स्वमतमेव श्रेयइति ज्ञात्वा तदेव सेवंते नान्यं ज्ञानादिवादिनं । तथा (अप्पणोत्ति) । आत्मीयैर्वितर्कैः सुविचारैरयमस्मदीयोमार्गोऽजुर्निर्दोषत्वाव्यक्तः स्पष्टऋजुर्वा प्रगुणोऽकुटिलः । हियस्मात्ते डुर्मतयस्ततएव एवमाहुः ॥ २१ ॥ पुनस्तेषामेव दोषमाह । (एवमिति) । एवं पूर्वोक्तन्यायेन तर्कया स्वकल्पनया साधयंतोवदंतोधर्माधर्मयोरकोविदाडुःखं ते नातित्रोटयंति नातिशयेनापनयंति । यथा शकुनिः पंजरं । पक्षी पंजरस्थो यथा पंजरं त्रोटयितुं बंधनादात्मानं मोचयितुं न समर्थएवमसावपि संसारपंजरादात्मानं मोचयितुं नालं ॥ २२ ॥ अथैकांतवादिमतं दूषयन्नाह । (सयमिति) । स्वकं स्वकं आत्मीयमात्मीयं मतं प्रशंसंतः परकीयां वाचं गर्हंतोनिंदंतः । यथा सांख्यानित्यवादिनोबौद्धं क्षणिकवादिनं निंदंति तेपि सांख्यान् । एवमन्येपि ज्ञेयाः । एवमेकांतवादिनो ये । तुरवधारणे । तत्र तेष्विव स्वमतेषु विद्वस्यंते विद्वांसइवाचरंति ते संसारं व्युच्छ्रिताः विविधमनेकप्रकारमुत्प्राबल्येन श्रिताः संसारे संबद्धाउषिताः स्युः ॥ २३ ॥ अथ क्रियावादिमतमाह । (अथेति) । अथापरं पूर्वमाख्यातं पूर्वसूचितं क्रियावादिदर्शनं । किंभूताः क्रियावादिनइत्याह । (कम्मचिंतत्ति) । कर्मणि ज्ञानावरणादिके चिंता कर्मचिंता ततः प्रनष्टाअपगताः । यतस्ते चतुर्विधं कर्मबंधं नेछंति ततः कर्मचिंताप्रणष्टास्तेषामिदं मतं संसारस्यप्रवर्धनं स्यात् ॥ २४ ॥

॥ टीका–पुनरपि तद्दूषणाभिधित्सयाऽऽह । (एवमित्यादि)। एवमनंतरोक्तया नीत्या एके केचनाऽज्ञानिकावितर्काभिर्मीमांसाभिः स्वोत्प्रेक्षिताभिरसत्कल्पनाभिः परमन्यमार्हतादिकं ज्ञानवादिनं न पर्युपासंते न सेवंते स्वावलेपग्रहग्रस्तावयमेवतत्त्वज्ञानाभिज्ञानपरः कश्चिदित्येवं नान्यं पर्युपासंतइति । तथात्मीयैर्विकल्पैरेवमभ्युपगतवंतोयथाऽयमेवास्मदीयोऽज्ञानमेव श्रेयइत्येवमात्मकोमार्गः। अंजूरिति।निर्दोषत्वा द्व्यक्तः स्पष्टः परैस्तिरस्कर्तुमशक्यऋजुर्वा प्रगुणोऽकुटिलः । यथावस्थितार्थाभिधायित्वात्। किमिति एवमभिदधति । हिर्यस्मादर्थे । यस्मात्ते डुर्मतयोविपर्यस्तबुद्धयइत्यर्थः ॥ २१ ॥ सांप्रतमज्ञानवादिनां ज्ञानवादिनां स्पष्टमेवाऽनर्थाभिधित्सयाह । (एवं तक्काइइत्यादि) एवं पूर्वोक्तन्यायेन तर्कया स्वकीयविकल्पनया साधयंतः प्रतिपादयंतोधर्मे क्षांत्यादिके अधर्मे च जीवोपमर्दापादिते पापेऽकोविदाअनिपुणाडुःखमसातोदयलक्षणं तद्धेतुं वा मिथ्यात्वाद्युपचितकर्मबंधनं नातित्रोटयंति अतिशयेनैत द्व्यवस्थितं।तथा ते न त्रोटयंत्यपनयंतीति।अत्र दृष्टांतमाह।यथा पंजरस्थः शकुनिः पंजरं त्रोटयितुं पंजरबंधनादात्मानं मोचयितुं नालमेवमसावपि संसारपंजरादात्मानं मोचयितुं नालमिति॥२२॥ अधुना सामान्येनैकांतवादिमतदूषणार्थमाह । (सयंसयमित्यादि) स्वकं स्वकमात्मीयं च दर्शनमभ्युपगतं प्रशंसंतोवर्णयंतः समर्थयंतोवा । तथा गर्हमाणानिंदंतः परकीयां वाचं । तथाहि । सांख्याः सर्वस्याविर्भावतिरोभाववादिनः सर्वं वस्तु क्षणिकं निरन्वयनिरीश्वरं वेत्यादिवादिनोबौद्धान् दूषयंति तेपि नित्यस्य क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरहात् सांख्यान्। एवमन्येपि डृष्टव्याइति । तदेवं यएकांतवादिनः।तुरवधारणे भिन्नक्रमश्च। तत्रैव तेष्वेवाऽत्मीयात्मीयेषु दर्शनेषु प्रशंसां कुर्वाणाः परवाचं च विगर्हमाणाविद्वस्यंते विद्वांसइवाऽऽचरंति तेषु वा विशेषेणोशंति स्वशास्त्रविषये विशिष्टं युक्तिव्रातं वदंति । तेचैवं वादिनः संसारं चतुर्गतिभेदेन संसृतिरूपं विविधमनेकप्रकारमुत्प्राबल्येन श्रिताः संबद्धाः । तत्र वा संसारे उषिताः संसारांतर्वर्तिनः सर्वदा भवंतीत्यर्थः ॥ २३ ॥ सांप्रतं यडुक्तं निर्युक्तिकारेणोद्देशकार्थाधिकारे कर्मचयं न गच्छति चतुर्विधं भिक्षुसमयइति तदधिकृत्याह । (आहावरमित्यादि) । अथेत्यानंतर्ये । अज्ञानवादिमतानंतरमिदमन्यत् पुरा पूर्वमाख्यातं कथितं । किंपुनस्तदित्याह ।क्रियावादिदर्शनं। क्रियैव चैत्यकर्मादिका प्रधानं मोक्षांगमित्येवं वदितुं शीलं येषां ते क्रियावादिनस्तेषां दर्शनमागमं क्रियावादिदर्शनं ॥ किंभूतास्ते क्रियावादिनइत्याह। कर्मणि ज्ञानावरणादिके चिंतापर्यालोचनं कर्मचिंता तस्याः प्रणष्टाअपगताः कर्मचिंताप्रणष्टाः। यतस्ते अविज्ञानाद्युपचितं चतुर्विधं कर्मबंधं नेच्छंत्यतः कर्मचिंताप्रणष्टास्तेषां चेदं दर्शनं डुःखस्कंधस्यासातोदयपरंपराया विवर्धनं भवति । क्वचित्संसारवर्धनमिति पाठः । तेह्येवं प्रतिपद्यमानाः संसारस्य वृद्धिमेव कुर्वंति नोच्छेदमिति ॥ २४ ॥

जाणं काएण णाउट्टी, अबुहो जं च हिंसति ॥ पुट्ठो संवेदइ परं, अविय तं खु सावज्जं ॥ २५॥ संति मे तउ आयाणा, जेहिं कीरइ पावगं ॥ अभिकम्माय पेसाय, मणसा अणुजाणिया ॥ २६ ॥ एते उ तउ आयाणा, जेहिं कीरइ पावगं ॥ एवं भावविसोहीए, निवाणमभिगछइ ॥ ॥ २७ ॥ पुत्तं पिया समारप्न, आहारेज्ज असंजए ॥ भुंजमाणो य मेहावी, कम्मणा नो विलप्पइ ॥ २८ ॥

अर्थ–जे कारणे ते कर्मचिंता थकी प्रनष्ट छे, ते उपर देखाडेछे. जाणंकाएणणाउट्टी के० जे पुरुष जाणतो थको प्राणीउंने हणे एटले जे पुरुष क्रोधे चड्यो थको मनने व्यापारे प्राणीनो घात करे परंतु कायाये करी अनाकुट्टी एटले कायाये करी प्राणीना अवयवना छेदनभेदनना व्यापारे प्रवर्ते नहीं तेने कर्मबंध न लागे. तथा जंचके० जे पुरुष अबुहोके० अजाणतो थको एकली कायाना व्यापारेज, हिंसतिके० प्राणीउंनी हिंसा करे तेने पण कर्म लागे नहीं तथा एवा एकला मनना व्यापारे अथवा एकला कायाना व्यापारे जो कर्म लागे तो पुठोके० ईषत्मात्र फरश्यो थको स्पर्शरूपेज कर्म भोगवे, परंके० परंतु एनो अधिक विपाक नथी. केमके खुके० निश्चे सावज्जंके० ते सावद्य एटले पाप ते केवुंछे, तो के अवियत्तंके० अव्यक्तमात्र छे एटले अस्पष्ट छे, सिकतामुष्टिवत् छे एटले जेम वेलुनी मुष्टी भींतने सन्मुख नांखी छतां स्पर्श मात्र करी पाछी पडे; पण ते भींतने कांइ लागी रहे नहीं. तेम ए कर्मनो बंध जाणवो, एम क्रियावादी कहेछे. ॥ २५ ॥ हवे कर्मनो बंध पूरण केम थाय एटले कर्मनो उपचय केम थाय ते कहेछे. मेतउ के० ए त्रण आयाणा के० आदान एटले कर्मबंधननां कारण संति के० छे. जेहिं किरइपावगंके० जेणे करी पाप करीयें ते देखाडेछे. अभिकम्मायके० अभिमुख चित्तमांहे जाणीने जे स्वयमेव एटले पोते जीवने हणे तथा तेने हणवानुं मन करे के हुं एनो विनाश करुं ए पहेलुं कर्म बंधननुं कारण जाणवुं. तथा ते जीवनो विनाश करवाने अर्थे पेसाय के० अन्यने आदेश आपी तेनोविनाश करावे ए बीजुं कर्मबंधनुं कारण जाणवुं. अने मणसाअणुजाणियाके० बीजो कोई जीवनो विनाश करतो होय तेने मने करी अनुमोदे, ए त्रीजुं कर्मबंधनुं कारण जाणवुं. ॥ २६ ॥ हवे ए त्रण कारणे करी उपार्ज्युं कर्म अधिक बंधाय ते कहेछे. एतेउतउआयाणाके० निश्चे पूर्वोक्त ए त्रण कर्म बंधनां कारणछे; ए त्रण एकठां मले तो निवड कर्म बंधाय एरीते जेहिंके० जें डुष्टअध्यवसायेकरी कीरइपावगंके० पाप उपचयरूप करे. एवंके० एरीते ए त्रण प्रकारे प्राणीघातने विषे प्रवर्त्ते नहीं अने भावविसोहीएके० भावनी विशुद्धि होय. एतावता रागद्वेष

विना यद्यपि कांई मने करी तथा कायाये करी प्राणिघात थाय. तोपण तेने नावनी विशुद्धियें कर्मबंध न लागे ते कर्मबंधने अनावे निव्वाणमनिगच्छइ के० निर्वाणपदे पहो चे. एटले मुक्ति पामे एम परवादी कहेडे. ॥२७॥ ए उपर दृष्टांत कहेडे. पुत्तंपियासमा रप्नके० बाप दीकरानो विनाश करी तेनुं मांस आहारने अर्थे कोइक आपत्कालने विषे, आहारेजअसंजएके० असंयत जे गृहस्थ ते रागद्वेषरहित थको पुत्रना मांसने आहारे तथा मेधावीके० पंमितपण एटले संयती दीक्षित ते पण ते मांसनो नुंजमाणो के० आहार करतो थको जो शुद्ध अध्यवसाय डे. तो कम्मणानोविलिप्पई के० कर्मे लेपातो नथी तेम बीजो प्राणी पण रागद्वेषरहित कर्तो थको कर्मे करी बंधातो नथी. ॥ २८ ॥

॥ दीपिका—कर्मचिंतानष्टत्वमेवाह ॥ जानन् यः प्राणिनोहिनस्ति कायेनशरीरेणच नाकु ट्टी अहिंसकः । कोर्थः । कोपादेर्निमित्तात्मनोव्यापारेण जीवान् हंति न कायेन तस्याऽनवद्य कर्मोपचयोन स्यादित्यर्थः । तथा अबुधोऽजानन् कायेन हिनस्ति तस्यापि मनोव्यापारा नावान्न कर्मबंधः । (पुठोत्ति) । तेन कर्मणा असौ केवलमनोव्यापारकृतेन केवलका यक्रियोत्थेन वा स्पृष्टएव संवेदयति स्पर्शमात्रेणैव तत्कर्मानुनवति न तस्याधिको विपाकः स्पर्शानंतरमेव परिशटतीत्यर्थः । एवं तत्सावद्यं कर्माऽव्यक्तमेव न स्पष्टं ॥ २५ ॥ कथं तर्हि कर्मोपचयः स्यादित्याह । (संतिमे) । संत्यमूनि त्रीण्यादानानि कर्मोपादा नानि । यैः पापकर्म क्रियते तान्याह । अनिक्रम्यं सन्मुखं गत्वा स्वयं हंति १ परं प्रे ष्य यत्कारयति २ कुर्वंतं वाऽनुजानातीति ३ एतत्कर्मोपादानत्रयं । अयं नावः । केवलं म नसा शरीरेण वा न कर्मबंधः किंतु यत्र स्वयंकृतकारितानुमतयः क्लिष्टाध्यवसायश्च तत्रैव कर्मबंधः ॥ २६ ॥ एतदेव दर्शयति । तुरवधारणे । एतान्येव त्रीणि व्यस्तानि समस्तानि कर्मोपादानानि यैः पापं कर्म क्रियते । एवं सति यत्र कृतकारितानुमतयः प्राणिहिंसायां न संति तत्र नावविशुध्या रागद्वेषरहितबुध्या प्रवर्तमानस्य सत्यपि प्राणातिपाते केवलेन म नसा मनोव्यापाररहितेन कायेन उनयेन वा विशुद्धबुद्धेर्न कर्मबंधस्तदनावान्निर्वाणम निगच्छति प्राप्नोति ॥ २७ ॥ नावशुध्या प्रवर्तमानस्य हिंसायामपि कर्मबंधो न स्यादि त्यत्रार्थे दृष्टांतमाह । (पुत्तंति) । पिता पुत्रं समारन्य व्यापाद्य आहारार्थं कस्यां चित्त थाविधायामापदि रागद्वेषरहितोऽसंयतोगृहस्थस्तन्मांसं नुंजानोपि । चशब्दोप्यर्थे । मेधा वी संयतोपि नुंजानः कर्मणा नोपलिप्यते । यथा पितुः पुत्रं व्यापादयतोपि शुद्धमन सः कर्मबंधोन स्यात्तथा तस्यारक्तद्विष्टस्य प्राणिवधे न कर्मबंधः ॥ २८ ॥ ॥

॥ टीका—यथा च ते कर्मचिंतातोनष्टास्तथा दर्शयितुमाह।(जाणंकायेणणाउट्टीत्यादि)।यो हि जानन्नवगछन् प्राणिनोहिनस्ति कायेन चाऽनाकुट्टी । कुट्टछेदने । आकुट्टनमाकुट्टः सवि

द्यते यस्यासावाकुट्टी नाकुट्टयनाकुट्टी। इदमुक्तं भवति। योहि कायादेर्निमित्तात् केवलं मनोव्यापारेण प्राणिनोव्यापादयति नच कायेन प्राण्यवयवानां छेदनभेदनादिके व्यापारे वर्त्तते न तस्याऽवद्यं। यस्य कर्मोपचयोन भवतीत्यर्थः। तथाऽबुधोऽजानानः कायव्यापारमात्रेण यंच हिनस्ति प्राणिनं तत्रापि मनोव्यापाराभावान्न कर्मोपचयइति। अनेन च श्लोकार्धेन यडुक्तं निर्युक्तिकृता। यथा चतुर्विधं कर्म नोपचीयते भिक्षुसमयइति। तत्र परिज्ञोपचितमविज्ञोपचिताख्यं भेदद्वयं साक्षाडुपात्तं। शेषं त्वीर्यापथस्वप्नांतिकभेदद्वयंच शब्देनोपात्तं। तत्रेरणमीर्या गमनं तत्संबद्धः पंथाईर्यापथस्तत्प्रत्ययं कर्मेर्यापथं। एतडुक्तं भवति। पथि गछतोयथाकथंचिदनभिसंधेर्यत्प्राणिव्यापादनं भवति कर्मणश्चयोन भवति तथा स्वप्नांतिकमिति। स्वप्नएव लोकोक्त्या स्वप्नांतः सविद्यते यस्य तत्स्वप्नांतिकं तदपि न कर्मबंधाय। यथा स्वप्ने भुजिक्रियायां तृप्त्यभावस्तथा कर्मणोपीति। कथं तर्हि तेषां कर्मोपचयोभवतीत्युच्यते। यद्यसौ हन्यमानः प्राणी भवति हंतुश्च यदि प्राणीत्येवं ज्ञानमुत्पद्यते तथैनं हन्मीत्येवं च यदि बुद्धिः प्राडुःष्यादेतेषु च सत्सु यदि कायचेष्टा प्रवर्त्तते तस्यामपि यद्यसौ प्राणी व्यापाद्यते ततोहिंसा ततश्च कर्मोपचयोभवतीत्येषामन्यतराभावेपि न हिंसा नच कर्मचयः। अत्र च पंचानां पदानां द्वात्रिंशद्भंगाभवंति। तत्र प्रथमभंगे हिंसकोऽपरेष्वेकत्रिंशत्स्वहिंसकः। तथाचोक्तं। प्राणी प्राणिज्ञानं, घातकचित्तं च तद्गता चेष्टा॥ प्राणैश्च विप्रयोगः पंचभिरापद्यते हिंसा॥ १॥ किमेकांतेनैव परिज्ञोपचितादिना कर्मोपचयो न भवत्येव काचिदव्यक्तिमात्रेति दर्शयितुं श्लोकपश्चार्धमाह। पुट्ठोत्ति। तेन केवलमनोव्यापाररूपपरिज्ञोपचितेन केवलकायक्रियोछेदेन वाऽविज्ञोपचितेनेर्यापथेन स्वप्नांतिकेन च चतुर्विधेनापि कर्मणा स्पृष्टईपत्स्पृष्टःसंस्तत्कर्माऽसौ स्पर्शमात्रेणैव परमनुभवति न तस्याधिकोविपाकोस्ति। कुड्यापतितसिकतामुष्टिवत्स्पर्शानंतरमेव परिशटतीत्यर्थः। अतएव तस्य चयाभावोऽभिधीयते न पुनरत्यंताभावइति। एवंच कृत्वा तदव्यक्तमपरिस्फुटं। खुरवधारणे। अव्यक्तमेव स्पष्टविपाकानुभवाभावात्। तदेवमव्यक्तं सद्यावद्येन गर्ह्येण वर्त्तते तत्परिज्ञोपचितादिकर्मेति॥ २५॥ ननु च यद्यनंतरोक्तं चतुर्विधं कर्म नोपचयं याति कथं तर्हि कर्मोपचयोभवतीत्येतदाशंक्याह। (संतिमेइत्यादि)। संति विद्यंते अमूनि त्रीणि आदीयते स्वीक्रियते अमीभिः कर्मेत्यादानानि। एतदेव दर्शयति। यैरादानैः क्रियते विधीयते निष्पाद्यते पापकं कल्मषं तानि चामूनि। तद्यथा। अतिक्रम्येत्याभिमुख्येन वध्यं प्राणिनं क्रात्वा तद्घाताभिमुखं चित्तं विधाय यत्र स्वतएव प्राणिनं व्यापादयति तदेकं कर्मादानं। तथाऽपरं च प्राणिघाताय प्रेष्यं समादिश्य यत्प्राणिव्यापादनं तद्द्वितीयं कर्मादानमिति। तथाऽपरं व्यापादयंतं मनसाऽनुजानीतइत्येतत्तृतीयं कर्मादानं। परिज्ञोपचितादस्यायं भेदः। तत्र केवलं मनसा

चिंतनमिह त्वपरेण व्यापाद्यमाने प्राणिन्यनुमोदनमिति ॥ २६ ॥ तदेवं यत्र स्वयं कृतकारितानुमतयः प्राणिघाते क्रियमाणे विद्यंते क्लिष्टाध्यवसायस्य प्राणातिपातश्च तत्रैव कर्मोपचयोनान्यत्रेति दर्शयितुमाह ।(एएउइत्यादि) तुरवधारणे ।एतान्येव पूर्वोक्तानि त्रीणि व्यस्तानि समस्तानि वा आदानानि यैर्दुष्टाध्यवसायव्यपेक्षैः पापकं कर्मोपचीयतइति । एवंच स्थिते यत्र कृतकारितानुमतयः प्राणिव्यपरोपणं प्रति न विद्यंते । तथा नावशुध्या अरक्तद्विष्टबुध्या प्रवर्तमानस्य सत्यपि प्राणातिपाते केवलेन मनसा कायेन वा मनोनिसंधिरहितेनोनयेन वा विशुद्धबुद्धेर्नकर्मोपचयस्तदनावाच्च निर्वाणं सर्वद्वंद्वोपरतिनावमनिगच्छत्यानिमुख्येन प्राप्नोतीति ॥ २७ ॥ नावशुध्या प्रवर्तमानस्य कर्मबंधोन नवतीत्यत्रार्थे दृष्टांतमाह । (पुत्तपियाइत्यादि) पुत्रमपत्यं पिता जनकः समारज्य व्यापाद्याहारार्थं कस्यांचित्तथाविधायामापदि तड्डरणार्थमरक्तद्विष्टोऽसंयतोगृहस्थस्तत्पिशितं जुंजानोपि चशब्दस्यापिशब्दार्थत्वादिति । तथा मेधाव्यपि संयतोपीत्यर्थः । तदेवं गृहस्थोनिक्कुर्वा शुद्धाशयः पिशिताश्यपि कर्मणा पापेन नोपलिप्यते नाश्लिष्यतइति । यथात्र पितुः पुत्रं व्यापादयतस्तत्रारक्तद्विष्टमनसः कर्मबंधो न नवति तथान्यस्याप्यरक्तद्विष्टांतःकरणस्य प्राणिवधे सत्यपि न कर्मबंधोनवतीति ॥ २७ ॥

मणसा जे पउस्संति,चित्तं तेसिं ण विज्जइ ॥ अणवज्जमतहं तेसिं, ण ते संवुमचारिणो ॥२ए॥ इच्चेयाहिं य दिठीहिं, सातागारवणिस्सिया ॥ सरणंति मन्नमाणा, सेवंती पावगं जणा ॥ ३० ॥ जहा अस्साविणिं णावं, जाइ अंधो ऊरूहिया ॥ इच्छई पारमागंतुं, अंतराय विसीयई ॥ ३१ ॥ एवं तु समणा एगे, मिछदिठी अणारिया ॥ संसारपारकंखी ते, संसारं अणुपरियट्टंतित्तिबेमि ॥ ३२ ॥ इति प्रथमाध्ययने द्वितीयोद्देशकः ॥

अर्थ–हवे एने उत्तर कहेछे. मणसाजे पउस्संतिके० जे कोई पुरुष कोईक कारण उत्पन्न थया थकी मने करी द्वेष करे, चित्तंतेसिंणविज्जइ के० तेनुं चित्त शुद्ध केवी रीते थशे ? अर्थात् नहीं थशे; कारणके ते दर्शनीये एम कह्युं के, अणवज्जमतहंतेसिं के० एकला मनना व्यापार थकी कर्म न लागे. ते एवुं तेनुं बोलवुं मिथ्याछे. जेमाटे ते एकले मनने अशुद्धपणे णतेसंवुमचारिणो के० ते संवृतचारी नहीं एटले संवुद्धचारी थको संवरमां प्रवर्त्तनार नथी. केमके कर्मबंधनी वेलायें मुख्य कारणतो मनजछे. माटे जो तेने व्यापारेज कर्मबंध न थाय, तो पछी बीजा कया कारणे कर्मबंध थाय? ते माटे पुत्रंपिता ए दृष्टांत योग्य नथी. ॥ २९ ॥ हवे ए क्रियावादीने अनर्थपरंपरा देखाडे

ढे. इच्चेयाहिं के० इत्यादिक ए पूर्वोक्त एवी दिठीहिं के० ज्ञानदृष्टीना अंगीकारे करीने ते वादी सातागारवणिस्सिया के० सातागारवे निश्रित एटले आसक्त अर्थात् सुखशी लीया एवा थका, ते क्रियाना करनार जेवो सदोष निर्दोष आहार पामे तेना नोगवनार एवा बतां ते पोतानुंज दर्शन सरणंतिमन्नमाणाके० संसारथकी उद्धरवासमर्थढे. एवुं माणा एटले मानता थका, सेवंतीपावगं के० ते विपरीत अनुष्ठाने करी हिंसादिक पापज सेवेढे, तेमाटे यद्यपि ते व्रतधारी ढे, तथापि ते अनेरा पामर एवा जणाके० लोक तेना सरखा जाणवा. ॥ ३० ॥ एहिज अर्थ दृष्टांते कहेढे. जहा के० जेम अस्साविणिं के० बिडसहित एवी णावं के० नाव तेने विषे जाइअंधो के० जातिअंध एटले जन्मांध पुरुष डुरुह्यिया के० चडीने इच्चईपारमागंतुं के० पार पामवा वांढे परंतु पार पामे नहीं. किंतु अंतराय के० अंतराले एटले वचमांहेज ते विसीयई के० बुडी जाय इत्यर्थः ॥ ३१ ॥ हवे ए दृष्टांत दर्शनीउं साथे मेलवेढे. जेम सढिडनावे चड्यो थको अंध पुरुष पार पोहोचे नहीं एवंतुसमणाएगे के० तेनीपेरे कोइएक शाक्यादिक श्रमण ते मिच्छदिठीअणारिया के० मिथ्यादृष्टी एटले जिनप्रणीत धर्मथकी विपरीत दृष्टि तथा अनारिया एटले अनाचारी संसारपारकंखीते के० ते पोताना दर्शनने अनुरागे संसारनो पार पामवाने वांढे ढे, परंतु ते संसारंअणुपरियट्टंति के० संसारमांहेज परावर्तन घचन घोलन इत्यादिक अनंत कालसुधी पामे. ॥ ३२ ॥ एम श्रीमहावीर देवे कह्युं इति के० एम हुं पण तुजने कहुंबुं. एरीते श्रीसुधर्मास्वामिये पोताना शिष्य श्रीजंबुस्वामी प्रत्ये कह्युं. इति प्रथम समयाध्ययनस्य द्वितीयोद्देशकः समाप्तः। ए उद्देशे करी स्वसमय परसमयनी प्ररूपणा करीढे.

॥ दीपिका–एतद्दूषयन्नाह । (मणसेति)। ये कुतोपि हेतोर्मनसा प्रडुष्यंति प्रद्वेषयंति तेषां वधपरिणतानां शुद्धं चित्तं न विद्यते । एवंच यत्तैरुक्तं केवलमनःप्रद्वेषेप्यनवद्यं पापान्नावइति तत्तेषामतथं मिथ्या । यतस्ते न संवृतचारिणोमनसोऽशुद्धत्वात् । तथाहि । कर्मबंधे मुख्योहेतुर्मनएव । यथा ईर्यापथेऽनुपयुक्तोगच्छन् कर्मबंधकः । उपयुक्तस्तु सहसा हिंसकोपि न कर्मबंधकइति ततः पुत्रं पितेति दृष्टांतोन समीचीनइति ॥ २ए ॥ अथ तेषामनर्थमाह । (इच्चेहियाहिंति)। इत्येतानिः पूर्वोक्तानिर्दृष्टीनिर्मतैस्ते वादिनः सातागौरवनिश्रिताइदमस्मन्मतं शरणमिति मन्यमानानराः पापमेव सेवंते कुर्वंति ॥ ३० ॥ अत्रार्थे दृष्टांतमाह । (जहत्ति)। आश्राविणीं सच्छिद्रां नावं यथा जात्यंधः समारुह्य पारं तटमागंतुमिच्छति स नरोनावोजलव्याप्तत्वादंतरा मध्यएव विषीदति जले निमज्जति ॥ ३१ ॥ दार्ष्टांतिकमर्थमाह । एवमिति । एवं नौदृष्टांतेन ए

के श्रमणाः शाक्यादयोमिथ्यादृष्टयोऽनार्याः स्वमतानुसारेण संसारपारकांक्षिणोपि संसारमेवानुपर्यटंति संसारएवानंतकालं भ्रमंति इति ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ३२ ॥ इति श्रीसूत्रकृतांगे प्रथमाध्ययने द्वितीयोद्देशकः समाप्तः ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ टीका—सांप्रतमेतद्दूषणायाह । (मणसाजेइत्यादि) । येहि कुतश्चिन्निमित्तान्मनसांऽतःकरणेन प्रदुष्यंति प्रद्वेषमुपयांति तेषां वधपरिणतानां शुद्धं चित्तं न विद्यते । तदेवं यत्तैरभिहितं । यथा केवलमनःप्रद्वेषेप्यनवद्यं कर्मोपचयाभावइति । ततस्तेषामतथ्यमसदर्थाभिधायित्वं । यतो न ते संवृतचारिणोमनसोऽशुद्धत्वात् । तथाहि । कर्मोपचये कर्तव्ये मनएव प्रधानं कारणं । यतस्तैरपि मनोरहितकेवलकायव्यापारे कर्मोपचयाभावोभिहितः । ततश्च यद्यस्मिन् सति भवत्यसति तु न भवति तत्तस्य प्रधानं कारणमिति । ननु तस्यापि कायचेष्टारहितस्याऽकारणत्वमुक्तं सत्यमुक्तं । अयुक्तं तूक्तं । यतोभवतैवैवं भावशुध्यानिर्वाणमभिगछतीति भणता मनसएवैकस्य प्राधान्यमभ्यधायि । तथाऽन्यदप्यभिहितं । चित्तमेव हि संसारे रागादिक्लेशवासितं ॥ तदेव तैर्विनिर्मुक्तं भवांतइतिकथ्यते । तथान्यैरप्यभिहितं । मतिविभवमनस्ते यत्समत्वेपि पुंसां, परिणमसि शुभांशैः कल्मषांशैस्त्वमेव ॥ निरयनगरवर्त्मप्रस्थिताः कष्टमेके उपचितशुभशक्त्या सूर्यसंभेदिनोन्ये ॥ १ ॥ तदेवं भवदभ्युपगमेनैव क्लिष्टमनोव्यापारः कर्मबंधायेत्युक्तं भवति । तथेर्यापथेपि यद्यनुपयुक्तोघातितवान् ततोनुपयुक्ततैव क्लिष्टचित्ततेति कर्मबंधो भवत्येवाथोपयुक्तोयाति ततो ऽप्रमत्तत्वादबंधकएव । तथाचोक्तं । उच्चालियंमि पाए, इरियासमियस्स संकमट्ठाए । वावज्जेज्जकुलिंगी, मरेज्ज तं जोगमासज्ज ॥१॥ णय तस्स तन्निमित्तो बंधो सुहुमो विदेसिउ समये । अणवज्जो उपयोगे, ण सव्वभावे णसो जम्हा ॥ २ ॥ स्वप्नांतिकेप्यशुद्धचित्तसद्भावादीषद्बंधोभवत्येव सच भवतोप्यभ्युपगतएवाव्यक्तं तत्सावद्यमित्यनेनेति । तदेवं मनसोपि क्लिष्टस्यैकस्यैव व्यापारबंधसद्भावात् । यदुक्तं भवता प्राणी प्राणिज्ञानमित्यादि तत्सर्वं प्लवतइति । यदप्युक्तं । पुत्रं पिता समारभ्येत्यादि तदप्यनालोचिताभिधानं । यतोमारयामीत्येवं यावन्न चित्तपरिणामोभूत्तावन्न कश्चिद्व्यापादयति । एवंभूतचित्तपरिणतेश्च कथमसंक्लिष्टता चित्तसंक्लेशे चावश्यंभावी कर्मबंधइत्युभयोरपि संवादोत्रेति । यदपि च तैः क्वचिदुच्यते यथापरव्यापादितपिशितभक्षणे परहस्ताऽकृष्टांगारदाहाभाववन्न दोषइति । पिशितभक्षणेऽनुमतिरप्रतिहताऽस्याच्च कर्मबंधइति । तथा चान्यैरप्यभिहितं । अनुमंता, विशसिता, संहर्ता, क्रयविक्रयी, ॥ संस्कर्ता, चोपभोक्ता च, घातकश्चाष्ट घातकाः । यच्च कृतकारितानुमतिरूपमादानत्रयं तैरभिहितं तदज्ञानेंऽमतभवास्वादनमेव तैरकारीति । तदेवं कर्मचतुष्टयं नोपचयं यातीत्येवं तदभिदधानाः कर्मचिंतातोनष्टा

इति सुप्रतिष्ठमिदमिति ॥ २ए ॥ अधुनैतेषां क्रियावादिनामनर्थपरंपरां दर्शयितुमाह । (इच्चेयाहिं इत्यादि) इत्येताभिः पूर्वोक्ताभिश्चतुर्विधं कर्म नोपचयं यातीति दृष्टिभिरभ्यु पगमैस्ते वादिनः सातागौरवनिश्रिताः सुखशीलतायामासक्तायत्किंचनकारिणोयथाल ब्धभोजिनश्च संसारोद्धरणसमर्थं शरणमिदमस्मदीयं दर्शनमित्येवं मन्यमानाविपरीता नुष्ठानतया सेवंते कुर्वंति पापमवद्यमेवं व्रतिनोपि संतोजनाइव जनाः प्राकृतपुरुषसदृशा इत्यर्थः ॥ ३० ॥ अस्यैवार्थस्योपदर्शकं दृष्टांतमाह । (जहाअस्साविणिमित्यादि) आस मंतात्स्रवति तच्छीला आस्राविणी सच्छिद्रेत्यर्थः । तां तथाभूतां नावं यथा जात्यंधः समारुह्य पारं तटमागंतुं प्राप्तुमिच्छत्यसौ तस्याश्च स्राविणीत्वेनोदकप्लुतत्वादंतराले जलम ध्यएव विषीदति वारिणि निमज्जति तत्रैव च पंचत्वमुपयातीति ॥ ३१ ॥ सांप्रतं तं दार्ष्टां तिकयोजनार्थमाह । (एवमित्यादि) यथांऽधः सच्छिद्रां नावं समारूढः पारगमनाय नालं तथा श्रमणाएके शाक्यादयोमिथ्या विपरीता दृष्टिर्येषां मिथ्यादृष्टयः । तथापि शिताशनानुमतेरनार्याः स्वदर्शनानुरागेण संसारपारकांक्षिणोमोक्षाभिलाषुकाअपि सं तस्ते चतुर्विधकर्मचयानभ्युपगमेनानिपुणत्वाच्छासनस्य संसारमेव चतुर्गतिसंसरणरूपम नुपर्यटंति । भूयोभूयस्तत्रैव जन्मजरामरणादौ गत्यादिक्लेशमनुभवंतोऽनंतमपि काल मासते न विवक्षितमोक्षसुखमाप्नुवंतीति । ब्रवीमीति पूर्ववदिति ॥३२॥ इति सूत्रकृतांगे समयाख्याध्ययनस्य द्वितीयोद्देशकः समाप्तः ॥

॥ अथ प्रथमाध्ययने तृतीयोद्देशकः प्रारभ्यते. ॥

जं किंचिउ पूइकडं सड्ढीमागंतुमीहियं ॥ सहस्संतरियं भुंजे, दुपक्खं चेव सेवइ ॥ १ ॥ तमेव अवियाणंता, विसमंसि अकोविया ॥ मच्छा वेसा लिया चेव, उदगस्स भियागमे ॥ २ ॥ उदगस्स पभावेणं, सुक्कं सिग्घं तमिं ति ॥ ढंकेहिय कंकेहिय, आमिसत्थेहिं ते दुही ॥ ३ ॥ एवं तु सम णा एगे, वट्टमाणसुहेसिणो ॥ मच्छा वेसालिया चेव, घातमेस्संति णंतसो४

अर्थ—पाछलना उद्देशे स्वसमय परसमय प्ररूपणा करी, अने अहींपण तेहिज कहेछे. जं किंचिउके० जे कांइ अल्प अथवा घणो आहार पाणी पूइकडं के० पूतीकर्म एटले आधाक र्मिना एक कणे सहित एवो आहार पाणी सड्ढिके० श्रद्धावंत गृहस्थें भक्तियें करी आगं तुमीहियं के० अनेरा आवनारना उद्देशे करी नीपजाव्योछे. तेज आहार कदाचित् सह स्संतरियं के० सहस्रांतरित एटले एके बीजाने दीधो, बीजे त्रीजाने दीधो, त्रीजे चो थाने दीधो एवी रीते सहस्रांतरित पणे ते सदोष आहार जे भुंजे के० भक्षण करे ते,

चेवके० निश्चे उपरकंके० द्विपक्ष एटले गृहस्थ अने प्रव्रजितनो पक्ष सेवइके० सेवे एटले ते लिंगे तो प्रवर्जित देखायछे, पण सदोष आहारना लेवा थकी ग्रहस्थ सरखो जाणवो. । यडुक्तं । आहाकम्मंभुंजमाणे,समणे कइकम्मपयडीउबंधइ गोयमा अठकम्मपयडिउबंधइ सिढिलबंधण बद्धाउ, धणियबंधणबद्धाउकरेत्ति ॥ इत्यादिवचनात्. ए कारणे परतीर्थी अथवा स्वतीर्थी आधाकर्मादिक आहार लेता थका द्विपक्षना सेवनार जाणवा. ॥१॥ हवे एने एवो आहार लेतां थकां जे विपाक उपजे ते देखाडेछे. तमेवअवियाणंता के० ते दर्शनी ते आधाकर्मि आहारनो दोष अजाणता तथा विसमंसिके० विषम जे अष्ट प्रकारना कर्मनो बंध अथवा चतुर्गतिक संसारने विषे अकोविया के० अपंडित छे, एटले ते एम नथी जाणता के जीवने कर्मनो बंध अथवा मोक्ष केम थाय? अथवा केवा उपाय थकी संसारसमुद्र तरे एवो परमार्थ ते जाणता नथी एवा छतां संसारमांहे कर्मपाशे बंधाणा थका दुःखी थायछे, अहियां दृष्टांत कहेछे. मछा के० जेम माछलां वेसालिया के० समुद्रना उपना, अथवा विशाल जातीना उपना, अथवा विशाल एटले बृहत्काय एटले मोहोटा शरीरवाला एवा महामछ ते उदगस्सनियागमे के० पाणीना आगमे एटले समुद्रनी वेलि प्रसार पामी छते, ॥ २ ॥ उदकस्सपन्नावेणं के० उदकने प्रनावे एटले पाणीने पूरे, समुद्र थकी निकलीने नदीना मुखमां आवी पडे त्यारपछी ते पाणी सुक्कंसिग्घंतमिंतिउ के० सुके छते ते मछ शरीरने स्थूलपणे कादवमांहे खूता थका घातमेस्संति के० मरण पामे. ते केवी रीते, तो के ढंकेहियकंकेहियके० ढंक अने कंक ए जातिना पक्षी विशेष अने आमिसछेहिं के० बीजापण मांसना लोनिष्ट एवा मछीमारोए विलुप्यमान एवां ते दुही के० दुःख पामेछे एटले ते जीवतां मछोने विलुरी नाखे, छेदीनाखे, किं बहुना प्राण थकी मुकावे. ए रीते दुःख पामे. ॥ ३ ॥ ए दृष्टांत दर्शनीउ साथे मेलवेछे, एवंतु के० ए पूर्वोक्त न्याये माछलांनी पेरे समणाएगे के० एक शाक्यादिक श्रमण अथवा स्वतीर्थी द्रव्यलिंगी ते केवाछे, तोके वट्टमाणसुहेसिणोके० वर्त्तमान सुख जे आधाकर्मिकआहार नोजन सुख तेना गवेषणहार परलोकना सुखथी पराङ्मुख मछावेसालियाचेव के० वैशालिक मछनी परे आगमिक काले अरहट्टघटिकाने न्याये घातमेस्संतिणंतसो के० संसारमांहे अनंता उन्मज्जन निमज्जन सरखा जन्म मरण पामे पण संसारना पारंगामी न थाय. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—द्वितीयोदेशके स्वान्यसमयप्ररूपणा कृता तृतीयेपि सैवोच्यतइति तस्येदमादिसूत्रं । (जंकिंचिदिति किंचिदाहारजातं स्वल्पं घनं वा पूतिकृतमाधाकर्मादिसिक्थेनापि युक्तं । (सड्ढित्ति) । श्रद्धावता नक्तिमताऽन्येनापरानागंतुकानुद्दिश्य ईहितं कृतं तत्सहस्रां

तरितमपि यो न्नुंजीत स द्विपक्षं गृहस्थपक्षं प्रव्रजितपक्षंच सेवते । अयमर्थः । आधाक र्मादिलवेनापि संस्पृष्टं परकृतमप्याहारं योन्नक्ष्येत् सोपि द्विपक्षसेवी स्यात् किं पुनः स्वयमाहारं निष्पाद्य ये शाक्यादयोन्नुंजते ते सुतरां द्विपक्षसेविनः स्युरित्यर्थः । अथवा द्विपक्षमीर्यापथं सांपरायिकं वा बध्दनिकाचितन्नेदं वा कर्म तत्सेविनः परतीर्थिकाः स्व यूथ्यावा स्युरिति ॥ १ ॥ अथ तन्नोजिनां विपाकं दृष्टांतेनाह । (तमेवेति) । तमा धाकर्माद्युपन्नोगदोषमविजानंतोविषमे कर्मबंधे संसारे वा अकोविदाः कथं कर्मबंधः स्यात्कथं च न स्यात् कथं संसारार्णवस्तीर्यतइत्यत्राऽनिपुणाडुःखिनः स्युः । दृष्टांतमाह। मत्स्या यथा (वेसालियत्ति) विशालः समुड्स्तत्र न्नवाविशालाख्यजातिन्नवावा विशा लाएव वा वैशालिकाबृहद्बरीराउदकस्य जलस्यान्यागमे समुड्वेलायां सत्यामुदकस्य प्रन्नावेन नदीमुखमागताः पुनर्वेलापगमे जले शुष्के वेगे अपगते सति ढंकैः कंकैश्च प क्षिविशेषैरन्यैश्चामिषार्थिन्निर्विलुप्यमानास्ते डुःखिनोमत्स्यघातं विनाशं यांति प्राप्नुवंती ति श्लोकद्वयार्थः ॥ ३ ॥ दार्ष्टांतिकयोजनामाह । (एवमिति) । एवमेके श्रमणाः शाक्यादयः स्वयूथ्यावा वर्तमानमेव सुखमिहलोकसुखमाधाकर्माद्युपन्नोगजमेषितुं शीलं येषां ते वर्तमानसुखैषिणोवैशालिकामत्स्याइव घातं विनाशमेष्यंत्यनंतशोयास्यंति बहुवारं संसारे न्नमिष्यंति डुःखमनुन्नवंतः ॥ ४ ॥

॥ टीका—द्वितीयोद्देशकानंतरं तृतीयः समारन्यते ॥ अस्य चायमन्निसंबंधः । अध्यय नार्थाधिकारः स्वसमयपरसमयप्ररूपणेति । तत्रोद्देशकद्वयेन स्वपरसमयप्ररूपणा कृता। अत्रापि सैव क्रियते । अथ चाऽद्ययोरुद्देशकयोः कुदृष्टयः प्रतिपादितास्तद्दोषाश्च तदिहा पि तेषामाचारदोषः प्रदर्श्यतइत्यनेन संबंधेनायातस्यास्योद्देशकस्य चत्वार्यनुयोग द्वाराणि व्यावर्ण्यास्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं । (जंकिंचिउपूइकडमित्यादि)। अस्य चानंतरसूत्रेण सहायं संबंधइहानंतरोद्देशकपर्यंतसूत्रेन्निहितः । (एवंतुश्रमणाए केइत्यादि) । तदिहापि संबध्यते । एके श्रमणायत्किंचित्पूतिकृतं न्नुंजानाः संसारं पर्यटं तीति । परंपरसूत्रेत्वन्निहितं (बुज्जिज्जइत्यादि) यत्किंचित्पूतिकृतं तद्बुध्येतेत्येवमन्यैरपि सूत्रैरुत्प्रेक्ष्यः संबंधोयोज्यः । अधुना सूत्रार्थः प्रतीयते । (यत्किंचिदिति) । आहारजातं स्तोकमप्यास्तांतावत्प्रन्नूतं । तदपि पूतिकृतमाधाकर्मादि सिक्थेनाप्युपसृष्टमास्तांताव दाधाकर्म । तदपि न स्वयंकृतमपि तु श्रध्दावतान्येन न्नक्तिमताऽपरानागंतुकानुद्दिश्येहि तं चेष्टितं निष्पादितं तच्च सहस्रांतरितमपि योन्नुंजीताभ्यवहरेदसौ द्विपक्षं गृहस्थपक्षं प्र व्रजितपक्षं वा सेवते । एतडुक्तं न्नवति । एवंन्नूतमपि परकृतमपरागंतुकयत्यर्थं निष्पादि तं यदाधाकर्मादि तस्य सहस्रांतरितस्यापि योवयवस्तेनाप्युपसृष्टमाहारजातं न्नुंजानस्य द्विपक्षसेवनमापद्यते । किं पुनः यएते शाक्यादयः स्वयमेव सकलमाहारजातं निष्पाद्य स्वय

मेव चोपभुंजते तेच सुतरां द्विपक्षसेविनोभवंतीत्यर्थः। यदि वा द्विपक्षमिति ईर्यापथः सांपरायिकं वा । अथवा पूर्वबद्धानिकाचिताद्यवस्थाः कर्मप्रकृतीर्नयत्यपूर्वश्चादत्ते । तथाचागमः। आहाकम्मं भुंजमाणे समणे कइ कम्मपयडीउ बंधइ गोयमा अठकम्म पयडीउ बंधइ सिढिलबंधणबद्धाउ धणियबंधणबद्धाउ करेइ चियाउ करेइ उवचियाउ करेइ हस्सहिइयाउ दीहहिइयाउ करेइ इत्यादि । ततश्चैवं शाक्यादयः परतीर्थिकाः स्वयूथ्यावा आधाकर्मभुंजानाद्विपक्षमेवाऽसेवंतइति सूत्रार्थः ॥ १ ॥ इदानीमेतेषां सुखैषिणामाधाकर्मभोजिनां कटुकविपाकाविर्भावनाय श्लोकद्वयेन दृष्टांतमाह। (तमेव अवियाणंता इत्यादि) तमेव आधाकर्मोपभोगदोषमजानानाविषमोऽष्टप्रकारकर्मबंधोभवकोटिभिरपि डुर्मोक्षश्चतुर्गतिसंसारोवा तस्मिन्नकोविदाः कथमेषकर्मबंधोभवति कथं वा न भवति· केन चोपायेनायं संसारार्णवस्तीर्यतइत्यत्राऽकुशलास्तस्मिन्नेव संसारोदरे कर्मपाशावपाशिताडुःखिनोभवंतीति। अत्र दृष्टांतमाह। यथा मत्स्याः पृथुरोमाणोविशालः समुद्रस्तत्र भवावैशालिकाः विशालाख्यविशिष्टजात्युद्भवावा वैशालिकाः विशालाएव वैशालिकाबृहच्छरीरास्ते एवंभूतामहामत्स्याउदकस्याभ्यागमे समुद्रवेलायां सत्यां प्रबलमरुद्वेगोद्भूतोत्तुंगकल्लोलमालाऽपनुन्नाः संतउदकस्य प्रभावेन नदीमुखमागतापुनर्वेलापगमे तस्मिन्नुदके शुष्के वेगेनैवापगते बृहत्वाच्छरीरस्य तस्मिन्नेव धुनीमुखे विलग्नाअवसीदंतआमिषगृध्नुभिर्ढंकैः कंकैश्च पक्षिविशेषैरन्यैश्च मांसवसार्थिभिर्मत्स्यबंधादिभिर्जीवंतएव विलुप्यमानामहांतं डुःखसमुद्घातमनुभवंतोऽशरणाघातं विनाशं यांति प्राप्नुवंति । तुरवधारणे। त्राणाभावाद्विनाशमेव यांतीति श्लोकद्वयार्थः ॥ ३ ॥ एवं दृष्टांतमुपदर्श्य दार्ष्टांतिके योजयितुमाह। (एवंतुसमणा इत्यादि) यथैतेऽनंतरोक्तमत्स्यास्तथा श्रमणाः श्राम्यंतीति श्रमणाएके शाक्यपाशुपतादयः स्वयूथ्यावा। किंभूतास्ते इति दर्शयति । वर्तमानसुखैषिणः समुद्रवायसवत् तत्कालावाप्तसुखलवासक्तचेतसोनालोचिताधाकर्मोपभोगजनिताऽतिकटुकडुःखौघानुभवनावैशालिकमत्स्याइव घातं विशालमेष्यंत्यनंतशोऽरहघट्टीन्यायेन भूयोभूयः संसारोदन्वति निमज्जनोन्मज्जनं कुर्वाणान ते संसारांभोधेः पारगामिनोभविष्यंतीत्यर्थः॥ ४ ॥

इणमन्नं तु अन्नाणं, इहमेगेसि आहियं॥देवउत्ते अयं लोए, बंभउत्तेति आवरे ॥ ५ ॥ ईसरेण कडे लोए, पहाणाइ तहावरे ॥ जीवाजीवसमाउत्ते, सुहडुक्खसमन्निए ॥ ६ ॥ सयंभुणा कडे लोए, इति वुत्तं महेसिणा॥ मारेण संथुया माया, तेण लोए असासए ॥७॥ माहणा समणा एगे आह अंमकडे जगे ॥ असो तत्तमकासीय, अयाणंता मुसं वदे ॥ ८ ॥

अर्थ—हवे अनेरा अज्ञानीनुं मत देखाडेछे. इणमन्नंतु अन्नाणं के० ए पूर्वे कह्योजे सदोष आहार लइने सुख माने तेनाथी वली अन्य अज्ञानीनुंमत देखाडेछे. इहमेगेसिआ हियके० अहीयां कोइ एकने मते पण सर्वेने मते नहीं एटले कोइक अज्ञानी एम कहेछे के देवउत्तेअयंलोए के० आ लोक जे चराचर संसार छे, ते देवें नीपजावेलो छे. जेम करसणी बीज वावीने करसण नीपजावेछे ते सरखो जाणवो. तथा वली बीजा एम कहेछे के बंभउत्तेतिआवरे के० ए लोक ब्रह्मदेवें नीपजाव्योछे. ब्रह्मा जगत्पितामह इतिवचनात्. ॥ ५ ॥ वली कोइएक एम कहेछें, के ईसरेणकडेलोए के० ए लोक ईश्वरें करेलोछे. पहाणाइ तहावरे के० तथा अवरे एटले बीजा वली एम कहेछे के, प्रधान एटले सत्व, रज अने तमगुणनी जे सम अवस्था ते प्रकृति कहिए. तेणे ए लोक करे लो छे. बीजा एम कहेछे के मोरनी पांख कोणे चीतरी? सेलडीमिष्ठ कोणे कीधी? स्वभा वथकी लोक नीपनो छे. वली कांटा तीखा कोणे कीधा! लींब कडवो कोणे कर्यो तथा लस ण डुर्गंधमय, कमल सुगंधमय ए सर्व स्वभावेज नीपनांछे, तेम लोक पण स्वभावे निष्प न्न छे. ते लोक केवोछे, तोके जीवाजीवसमाउत्तेके० जीव अजीव सहित तथा सुह डुख सम न्निएके०सुखडुःखसहित छे. ॥ ६ ॥ एक कहेछे के, सयंभुणाकडेलोएके० ए लोक स्वयंभु एटले विष्णु तेणे नीपजाव्यो. अथवा ते विष्णु पेहेलो एकज हतो तेणे जगत नीपजाववानी चिंता करी त्यारे बीजी शक्ति नीपनी, त्यार पछी जगतनी सृष्टी निष्पन्न थई. इतिवुत्तंम हेसिणा के० एवुं महर्षिए कह्युंछे: त्यार पछी स्वयंभुए लोक नीपजावीने एवुं चिंतव्युं जे एटली जगत सृष्टीनो समास क्यां थशे! तेवारे मार एटले यम नीपजाव्यो. पछी मारे णसंथुयामायाके० तेणेमारे माया नीपजावी ते थकी ए लोक मरेछे. तेणलोए असासए के० ते कारण माटे ए लोक अशाश्वतो छे. ॥ ७ ॥ वली तेद्विज कहेछे माहणा समणा एगेके० एक ब्राह्मण तथा एक श्रमण जे त्रिदंडी प्रमुख ते एम आह के० कहेछे के, अंमकडेजगेके०ए सचराचर जगत ते अंमथकी निपनुं छे; ते एम कहेछे के जेवारे जगत मां काइ वस्तु न हती सर्व पदार्थ शून्य संसार हतो तेवारे ब्रह्मायें पाणीमांहे इंडुं सरज्युं पछी ते इंडु वध्युं तेवारे ते भांगीने बे खंम थया; तेमांहे थकी अधोलोक अने ऊर्ध्वलोक नीपना तेमां समस्त प्रजा उत्पन्न थई. एवा अनुक्रमे पृथ्वी, पाणी, अग्नि, वायु, आकाश, समुद्र, नदी, पर्वत, ग्राम, आगर, नगर इत्यादिक सर्व स्थिति उत्पन्न थई; ए कारणे अ सोके० ए ब्रह्माये ए सर्व तत्तंके० तत्व एटले पदार्थ ते अकासीयके० कीधा. एरीतें ते ब्राह्मणादिक अयाणंता मुसंवदेके० परमार्थने अजाणता थका मृषा बोलेछे. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका—अथाऽपराज्ञानिमतमाह ॥ (इणमिति)। इदं वक्ष्यमाणमन्यदज्ञान

मिहास्मिन् लोके एकेषामाख्यातं । किं पुनस्तैराख्यातमित्याह । देवउत्तेति । देवेन उप्तः कृ तोदेवोप्तोदेवपुत्रोवायं लोकः । ब्रह्मणा उप्तोब्रह्मणा कृतोवायं लोकइत्यपरे वदंतीति ॥ ॥५॥ तथा ईश्वरेण कृतोलोकः । अपरे वदंति प्रधानादिकृतोलोकः । सत्वरजस्तमोगुणा नां साम्यावस्था प्रकृतिः सैव प्रधानशब्दवाच्या । आदिशब्दान्नियतिकृतोलोकइत्यन्ये । लोकोजीवाजीवसमायुक्तः सुखदुःखसमन्वितश्च ॥ ६ ॥ तथा स्वयंभूर्विष्णुरन्योवा सचै काकी रतिं न लभते ततोन्या शक्तिः समुत्पन्ना तदनंतरं जगत्सृष्टिरभूदिति महर्षिणा उ क्तं । ततः स्वयंभुवा लोकं निष्पाद्यातिसंसारभयात् यमाख्योमारयतीतिमारोव्यधायि । तेन मारेण संस्तुता कृता माया तया मायया च लोको म्रियते । नच तत्त्वतोजीवस्य मृतिरस्त्यतोमायैषा तेन लोकोऽशाश्वतइति गम्यते ॥ ७ ॥ तथा ब्राह्मणाद्विजातयः श्रमणास्त्रिदंडिप्रमुखाएके अंडेन कृतमंडकृतं अंडाज्जातं जगदाहुर्वदंति । ब्रह्मणांडं कृ तं ततोविश्वं जातं । एवं कृते जगति असौ ब्रह्मा तत्त्वं पदार्थसमूहमकार्षीत् कृतवान् ते च ब्राह्मणाद्याः परमार्थानभिज्ञाएवं मृषा वदंति ॥ ८ ॥

॥ टीका—सांप्रतमपराज्ञानिमतोपप्रदर्शनायाह । (इणमन्नंतुअन्नाणमित्यादि) । इद मिति वक्ष्यमाणं । तुशब्दः पूर्वेभ्योविशेषणार्थः । अज्ञानमिति मोहविजृंभणमिहास्मिन् लो के एकेषां न सर्वेषामाख्यातमभिप्रायः । किंपुनस्तदाख्यातमिति तदाह । देवेनोप्तोदेवोप्तः कर्ष केणेव बीजवपनं कृत्वा निष्पादितोयं लोकइत्यर्थः । देवैर्वा गुप्तोरक्षितोदेवगुप्तोदेवपुत्रोवेत्या दिकमज्ञानमिति । तथा ब्रह्मणाउप्तोब्रह्मोप्तोयंलोकइत्यर्थः । परे एवं व्यवस्थिताः । तथा हि । तेपामयमभ्युपगमः । ब्रह्मा जगत्पितामहः सचैकएव जगदवासीत्तेन च प्रजापतयः सृष्टा स्तैश्च क्रमेणैतत्सकलं जगदिति । तथेश्वरेण कृतोयं लोकः । एवमेके ईश्वरकारकाअभिदधति प्रमाणयंति वा । सर्वमिदं विमत्यधिकरणभावोपपन्नं तनुभुवनकरणादिकं धर्मित्वेनोपादी यते । बुद्धिमत्कारणपूर्वकमिति साध्योधर्मः । संस्थानविशेषवत्त्वादिति हेतुः । यथा घटादिरि ति दृष्टांतोयं । यद्यत्संस्थानविशेषवत्तत्तद्बुद्धिमत्करणपूर्वकं दृष्टं । यथा देवकुलकूपादिसं स्थानविशेषवच्च मकराकरनदीधराधरधराशरीरकरणादिकं विवादगोचरापन्नमिति । तस्माद्बु द्धिमत्कारणपूर्वकं । यश्च समस्तस्यास्य जगतः कर्ता ससामान्यपुरुषोन भवतीत्यसावीश्वरइ ति । तथा सर्वमिदं तनुभुवनकरणादिकं धर्मित्वेनोपादीयते बुद्धिमत्कारणपूर्वकमिति । साध्यो धर्मः कार्यत्वाद्घटादिवत् तथा स्थित्वा प्रवृत्तेर्वा वास्यादिवदिति । तथाऽपरेप्रतिपन्नायथा । प्रधानादिकृतोलोकः । सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः साच पुरुषार्थं प्रवर्तते । आदिग्र हणाच्च प्रकृतेर्महान् ततोहंकारस्तस्माच्च गणः षोडशकस्तस्मादपि षोडशकात्पंचभ्यः पंच महाभूतानीत्यादिकया प्रक्रियया सृष्टिर्भवतीति । यदि वा आदिग्रहणात्स्वभावादिकं गृह्य

ते । ततश्चायमर्थः । स्वनावेन कृतोलोकः कंटकादितैक्ष्ण्यवत् । तथान्ये नियतिकृतोलोको मयूरांगरुहवदित्यादिनिः कारणैः कृतोयं लोकोजीवाजीवसमायुक्तो जीवैरुपयोगलक्षणै स्तथा जीवैर्धमाधर्माकाशपुज्जलादिकैः समन्वितः समुद्रधराधरादिकइति । पुनरपि लोकं विशेषयितुमाह । सुखमानंदरूपं डुःखमसातोदयरूपमिति ताभ्यां समन्वितोयुक्तइति ॥ ॥ ६ ॥ किंच । (सयंभुणाइत्यादि) । स्वयं नवतीति स्वयंनूर्विष्णुरन्यो वा सचैकएवादाव नूत्तत्रैकाकी रमते द्वितीयमिष्टवांस्तच्चिंतानंतरमेव द्वितीया शक्तिः समुत्पन्ना तदनंतरमेव जगत्सृष्टिरनूदित्येवं महर्षिणोक्तमनिहितं । एवं वादिनोलोकस्य कर्तारमन्युपगतवंतोपि च । तेन स्वयंनुवा लोकं संपाद्यातिनारनयाद्यमाख्योमारयतीति मारोऽन्यधायि । तेन मा रेण संस्तुता कृता प्रसाधिता माया तया च मायया लोकाम्रियंते । नच परमार्थतोजी वस्योपयोगलक्षणस्य व्यापत्तिरस्त्यतोमायैषा । यथायं मृतस्तथा चायं लोकोऽशाश्व तोऽनित्योऽविनाशीति गम्यते ॥ ७ ॥ अपिच । (माहणाइत्यादि) । ब्राह्मणाद्विजात यः श्रमणास्त्रिदंडिप्रनृतयः । एके केचन पौराणिकान सर्वे एवमाहुरुक्तवंतोवदंति च । यथा जगदेतच्चराचरमंडेन कृतमंडकृतं । अंडाज्जातमित्यर्थः । तथाहि । ते वदंति यदा न किंचिदपि वस्त्वासीत् पदार्थशून्योयं संसारस्तदा ब्रह्माऽप्स्वंडमसृजत्तस्माच्च क्रमे ण वृद्धात्पश्चाद्विधानावमुपगताडूर्ध्वाधोविनागोऽनूत् तन्मध्ये च सर्वाः प्रकृतयोऽनूव न् । एवंपृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशसमुद्रसरित्पर्वतमकराकरनिवेशादिसंस्थितिरनूदिति । तथाचोक्तं । आसीदिदं तमोनूतमप्रज्ञातमलक्षणं ॥ अप्रतर्क्यमविज्ञेयं, प्रसुप्तमिव सर्व तः ॥ १ ॥ एवंनूते चास्मिन् जगत्यसौ ब्रह्मा तस्य नावस्तत्त्वं पदार्थजातं तदंमादिप्रक्रमे णाकार्षीत् कृतवानिति । तेच ब्राह्मणादयः परमार्थमजानानाः संतोमृषावदंति अन्यथा च स्थितं तत्त्वमन्यथाप्रतिपादयंतीत्यर्थः ॥ ८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

सएहिं परियाएहिं, लोयं बूया कडेतिय ॥ तत्तं ते ण विजाणंति, ण विणा सी कयाइवि ॥ ए ॥ अमणुन्नसमुप्पायं, डुक्कमेव विजाणिया ॥ समुप्पायमजाणंता, कहं नायंति संवरं ॥ १० ॥

अर्थ ॥ हवे ग्रंथकार एनो उत्तर कहेछे. एरीते पूर्वे जे दर्शनी कह्या ते, सएहिं परियाए हिंके० पोतपोताना पर्यायें करी एटले पोतपोतानी कल्पनाये लोयंबूयाकडेतियके० एम कहे जे ए लोक अमुक अमुक प्रकारे कीधोछे. परंतु तत्तंते णविजाणंतिके० ते तत्व कांइ जाणता नथी. णविणासीकयाइविके० ए लोकतो कदापि काले विनाश पामे नहीं, एनी आदि पणनथी अने अंत पण नथी, तेथी एनो कर्त्ता कोइ नथी. एवो परमार्थ ते जाण ता नथी; पण अजाणथका नावे तेम बोलेछे.॥ए॥ हवे एवां वचनना बोलनारने फल दे

खाडेढे. ते दर्शनी अमणुन्नके० विरुद्ध अनुष्ठान अनाचार ते थकी जेनी समुप्पायं के० उत्पत्तिढे, ते केवुं तोके, डुक्कंके० हिंसादिक विरुद्ध अनुष्ठान तेमां जे प्रवर्त्तशे ते डुःखी थासे एवविजाणियाके० एवुं जाणवुं जोइये. समुप्पायमजाणंताके० ते एवा डुःखनी उत्पत्तिनां कारणोने नजाणे परंतु ते अजाण बापडा कहंनायंतिसंवरं के० संवरपणुं जे डुःखनिवारणनुं कारण ढे, तेने केवी रीते जाणी शकशे? एतावता अति यत्न करतां प ण डुःखनो उच्छेद न पामे, किंतु संसारमांहे अनंतो काल रहेशे.॥ १० ॥ ॥

॥ दीपिका–अथ तेषामुत्तरमाह । (सएहिमिति) । स्वकैर्निजैः पर्यायैरभिप्रायैर्लोकं कृतमब्रुवन् कथितवंतस्ते तत्त्वं परमार्थं नाभिजानंति । नच विनाशी लोकः कदाचित् निर्मूलतः पर्यायरूपेण विनाश्यपि द्रव्यार्थतया नित्यत्वात् । लोकस्य ईश्वरादिकृतत्वं नि षेधयुक्तयष्टीकातोज्ञेयं ॥ ए ॥ अथ तेषां मृषावादिनां फलमाह । अमणुन्नेति । अ मनोज्ञं असदनुष्ठानं तस्माडुत्पादः प्राडुर्भावोयस्य तदमनोज्ञसमुत्पादं डुःखं विजा नीयात् प्राज्ञः । अयमर्थः स्वकृतादसदनुष्ठानादेव डुःखमुत्पद्यते नेश्वरादेरिति । ते चैवं डुःखस्य संवरं प्रतिघातहेतुं ज्ञास्यंति । कारणोच्छेदादेव कार्योच्छेदः स्यात् । कारणं वाऽजा नंतः कथं डुखोच्छेदाय यतिष्यंते यत्नवंतोपि डुःखोच्छेदं नाप्नुवंतीति ॥ १० ॥ ॥ ॥

॥ टीका–अधुनैषां देवोप्तादिजगद्वादिनामुत्तरदानायाह । (सएहिमित्यादि) । स्वकीयैः स्वकीयैः पर्यायैरभिप्रायैर्युक्तिविशेषैरयं लोकः कृतइत्येवमब्रुवन्नभिहितवंतः । देवोप्तोब्रह्मो प्तईश्वरकृतः प्रधानादिनिष्पादितः स्वयंभुवा व्यधायि तन्निष्पादितमायया म्रियते तथांड जश्चायं लोकइत्यादिस्वकीयाभिरुपपत्तिभिः प्रतिपादयंति । यथाऽस्मडुक्तमेव सत्यं ना न्यदिति ते चैवंवादिनो वादिनः सर्वेपि तत्त्वं परमार्थं यथावस्थितलोकस्वभावं नाभिजानं ति न सम्यक् विवेचयंति । यथाऽयं लोकोद्रव्यार्थतया न विनाशीति निर्मूलतः कदाचन। नचायमादितआरभ्य केनचित् क्रियते अपित्वयं लोकोऽभूद्भवति भविष्यति च। तथाहि। य त्तावडुक्तं यथा देवोप्तोऽयं लोकइति तदसंगतम्। यतोदेवोप्तत्वे लोकस्य न किंचित्तथावि धं प्रमाणमस्ति । नचाप्रमाणकमुच्यमानं विद्वज्जनमनांसि प्रीणयति । अपिच किमसौ देव उत्पन्नोऽनुत्पन्नोवा लोकं सृजेन्न तावदनुत्पन्नस्तस्य खरविषाणस्येवासत्त्वात्करणाभावः । अथोत्पन्नः सृजेत्तत्किं स्वतोऽन्यतो वा। यदि स्वतएवोत्पन्नस्तथा सति तल्लोकस्यापि स्वतए वोत्पत्तिः किं नेष्यते । अथान्यतउत्पन्नः सन् लोककरणाय सोप्यन्योन्यतः सोप्यन्योन्यतइ त्येवमनास्थालतानभोमंडलव्यापिन्यनिवारितप्रसरा प्रसर्पतीति । अथासौ देवोऽनादित्वा न्नोत्पन्नइत्युच्यते इत्येवंसति लोकोप्यनादिरेवास्तु को दोषः । किंचासावनादिः सन्नित्योऽनि त्योवा स्यात्तद्यदि नित्यस्तदा तस्य क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरोधान्न कर्तृत्वं । अथाऽनि

त्यस्तथासति स्वतएवोत्पत्त्यनंतरं विनाशित्वादात्मनोन त्राणाय कुतोन्यत्करणं प्रति तस्य व्यापारचिंतेति । तथा किममूर्तोमूर्तिमान् वा । यद्यमूर्तस्तदाऽऽकाशवदकर्तैवाऽथ मूर्तिमान् तथासति प्राकृतपुरुषस्येवोपकरणसव्यपेक्षस्य स्पष्टमेव सर्वजगदकर्तृत्वमिति । देवगुप्तदेवपुत्रपक्षौ त्वतिफल्गुत्वादपकर्णयितव्याविति । एतदेव दूषणं ब्रह्मोप्तपक्षेपि द्रष्टव्यं तुल्ययोगक्षेमत्वादिति । तथा यदुक्तं । तनुभुवनकरणादिकं विमत्यधिकरणभावापन्नं विशिष्टबुद्धिमत्कारणपूर्वकं कार्यत्वाद्धटादिवदिति तदयुक्तं । तथाविधविशिष्टकारणपूर्वकत्वे न व्याप्त्यसिद्धेः । कार्यपूर्वकत्वमात्रेण तु कार्यं व्याप्तं । कार्यविशेषोपलब्धौ कारणविशेषप्रतिपत्तिर्गृहीतप्रतिबंधस्यैव भवति । नचात्यंतादृष्टे तथा प्रतीतिर्भवति।घटे तत्पूर्वकत्वं प्रतिपन्नमिति चेत् युक्तं ।तत्र घटस्य कार्यविशेषत्वप्रतिपत्तेर्नत्वेवं सरित्समुद्रपर्वतादौ बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्वेन संबंधोगृहीतइति । पुनरप्युक्तं । नन्वतएव घटादिसंस्थानविशेषदर्शनवत्पर्वतादावपि विशिष्टसंस्थानदर्शनाद्बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्वस्य साधनं क्रियते । नैतदेवं युक्तं । यतोनहि संस्थानशब्दप्रवृत्तिमात्रेण सर्वस्य बुद्धिमत्कारणपूर्वत्वावगतिर्भवति । यदितु स्यान्मृद्विकारत्वा द्वल्मीकस्यापि घटवत्कुंभकारकृतिः स्यात् । तथाचोक्तं । अन्यथाकुंभकारेण मृद्विकारस्य कस्यचित् । घटादेः कारणात्सिद्ध्ये द्वल्मीकस्यापि तत्कृतिरिति । तदेवं यस्यैव संस्थानविशेषस्य बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्वेन संबंधोगृहीतस्तद्दर्शनमेव तथाविधकारणानुमापकं भवति न संस्थानमात्रमिति । अपिच घटादिसंस्थानानां कुंभकार एव विशिष्टः कर्तोपलभ्यते नेश्वरः । यदि पुनरीश्वरः स्यात्किं कुंभकारेणेति । नैतदस्ति । तत्रापीश्वरएव सर्वव्यापितया निमित्तकारणत्वेन व्याप्रियते । नन्वेवं दृष्टहानिरदृष्टकल्पना स्यात् । तथाचोक्तं । शस्त्रौषधादिसंबंधाच्चैत्रस्य व्रणरोहणे ॥ असंबद्धस्य किं स्थाणोः कारणत्वं न कल्प्यते ॥ १ ॥ तदेवं दृष्टकारणपरित्यागेनाऽदृष्टपरिकल्पना न त्याज्येति । अपिच । देवकुलावटादीनां यः कर्ता ससावयवोऽव्याप्यनित्योदृष्टस्तद्दृष्टांतः साधितश्चेश्वरएवंभूतएव प्राप्नोति । अन्यथाभूतस्य च दृष्टांताभावाद्व्याप्त्यसिद्धेर्नानुमानमिति । अनयैव दिशा स्थित्वाप्रवृत्त्यादिकसाधनमसाधनमायोज्यं तुल्ययोगक्षेमत्वादिति । यदपि चोक्तं प्रधानादिकृतोऽयं लोकइति तदप्यसंगतं । यतस्तत्प्रधानं किं मूर्तममूर्तं वा। यद्यमूर्तं न ततोमकराकरादेर्मूर्तस्योद्भवोघटते । नह्याकाशात्किंचिदुत्पद्यमानमालक्ष्यते मूर्ताऽमूर्तयोः कारणविरोधादिति । अथ मूर्तं तत्कुतः समुत्पन्नं । न तावत्स्वतोलोकस्यापि तथोत्पत्तिप्रसंगात् नाप्यन्यतोऽनवस्थापत्तेरिति । अन्यथाऽनुत्पन्नमेव प्रधानाद्यनादिभावेनास्ते त द्वल्लोकोपि किं नेष्यते । अपिच । सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रधानमित्युच्यते नचाऽविकृतात्प्रधानान्महदादेरुत्पत्तिरिष्यते भवद्भिः । नच विकृतं प्रधानव्यपदेशमास्कंदतीत्यतोन प्रधानान्महदादेरुत्पत्तिरिति । अपिचाचेतनायाः प्रकृतेः कथं पुरुषार्थं

प्रति प्रवृत्तिर्येनाऽत्मनोजोगोपपत्त्या सृष्टिः स्यादिति । प्रकृतेरयं स्वजावइति चेदेवं तर्हि स्वजावएव बलीयान् । यस्तामपि प्रकृतिं नियमयति ततएव च लोकोप्यस्तु किमदृष्टप्रधानादिकल्पनयेति । अथादिग्रहणात्स्वजावस्यापि कारणत्वं कैश्चिदिष्यतइति चेदस्तु । न हि स्वजावोऽन्युपगम्यमानोनः क्षतिमातनोति । तथाहि । स्वजावः स्वकीयोत्पत्तिः । सा च पदार्थानामिष्यतएवेति । तथा यडुक्तं नियतिकृतोयं लोकइति । तत्रापि नियमनं नियतिर्यथाजवनं नियतिरित्युच्यते । साचाऽलोच्यमाना न स्वजावादतिरिच्यते । यच्चान्यथा थि स्वयंजुवोत्पादितोलोकइति तदप्यसुंदरमेव । यतः स्वयंजूरिति किमुक्तं जवति । किं यदाऽसौ जवति तदा स्वतंत्रोन्यनिरपेक्षएव जवति । अथाऽऽदिजवनात्स्वयंजूरिति व्यपदिश्यते । तद्यदि स्वतंत्रजवनान्युपगमस्तद्वल्लोकस्यापि जवनं किं नान्युपेयते किं स्वयंजुवा । अथानादिस्ततस्तस्यानादित्वे नित्यत्वं नित्यस्य चैकरूपत्वात्कर्तृत्वाऽनुपपत्तिस्तथा वीतरागत्वात्तस्य संसारवैचित्र्यानुपपत्तिः । अथ सरागोसौ ततोऽस्मदाद्यव्यतिरेकात्सुतरां विश्वस्याकर्ता मूर्ताऽमूर्तादिकल्पाश्च प्राग्वदायोज्याइति । यदपि चात्राजिहितं । तेन मारः समुत्पादितः सच लोकं व्यापादयति तदप्यकर्तृत्वस्याजिहितत्वात्प्रलापमात्रमिति । तथा यडुक्तं अंडादिक्रमाज्जायते लोकइति तदप्यसमीचीनं । यतोयास्वप्सु तदंडं निसृष्टं तायथाऽडमंतरेणाजूवन् तथा लोकोपि जूतइत्यन्युपगमे न काचिद्बाधा दृश्यते । तथासौ ब्रह्मा यावदंडं सृजति तावल्लोकमेव कस्मान्नोत्पादयति किमनया कष्टया युक्त्यसंगतया चांडपरिकल्पनया । एवमस्त्विति चेत् केचिदजिहितवंतोयथा ब्रह्मणोमुखाद्ब्राह्मणाः समजायंत बाहुन्यां क्षत्रियाऊरुन्यां वैश्याः पद्भ्यां शूद्राइत्येतदप्ययुक्तिसंगतमेव । यतोन मुखादेः कस्यचिडुत्पत्तिर्जवंत्युपलक्ष्यते । अथापि स्यात्तथा सति वर्णानामजेदः स्यादेकस्माडुत्पत्तेः । तथा ब्राह्मणानां कठतैत्तिरीयककलापादिकश्च जेदोन स्यादेकस्मान्मुखाडुत्पत्तेः । एवंचोपनयनादिसद्भावोन जवेद्भावे वा स्त्र्यादिग्रहणापत्तिः स्यादेवमाद्यनेकदोषडुष्टत्वादेवं लोकोत्पत्तिर्नान्युपगंतव्या । ततश्च स्थितमेतत् । तएवं वादिनोलोकस्याऽनाद्यपर्यवसितस्योर्ध्वाधश्चतुर्दशरज्जुप्रमाणस्य वैशाखस्थानस्थकटिन्यस्तकरयुग्मपुरुषाकृतेरधोमुखमल्लकाकारसप्तपृथिव्यात्मकाधोलोकस्य स्थालाकाराऽसंख्येयद्वीपसमुद्राधारमध्यलोकस्य मल्लकसमुद्गकाकारोर्ध्वलोकस्य धर्माधर्माकाशपुजलजीवात्मकस्य द्रव्यार्थतयाऽनित्यस्य पर्यायापेक्षया क्षणक्षयिणउत्पादव्ययध्रौव्यापादितद्व्यसतत्त्वस्याऽनादिजीवकर्मसंबंधापादिताऽनेकप्रपंचस्याष्टविधकर्मविप्रमुक्ताऽत्मलोकांतोपलक्षितस्य तत्त्वमजानानाः संतोमृषा वदंतीति ॥ ए ॥ इदानीमेतेषामेव देवोप्तादिवादिनामज्ञानत्वं प्रसाध्य तत्फलदिदर्शयिषयाऽह । (अमणुन्नइत्यादि) । मनोनुकूलं मनोज्ञं शोजनमनुष्ठानं न मनोज्ञममनोज्ञमसदनुष्ठानं तस्माडुत्पादः प्राडुर्जावोयस्य

डुःखस्य तदमनोज्ञसमुत्पादं । एवकारोऽवधारणे । सचैवं संबंधनीयः । अमनोज्ञसमुत्पादमेव डुःखमित्येवं विजानीयादवगछेत्प्राज्ञः । एतडुक्तं नवति । स्वकृताऽसदनुष्ठानादेव डुःखस्योन्नवोनवति नान्यस्मादित्येवं व्यवस्थितेपि सत्यनंतरोक्तवादिनोऽसदनुष्ठानोन्नवस्य डुःखस्य समुत्पादमजानानाः संतोऽन्यतईश्वरादेर्डुःखस्योत्पादमिछंति । तेचैवमिछंतः कथं केन प्रकारेण डुःखस्य संवरं डुःखप्रतिघातहेतुं ज्ञास्यंति । निदानोछेदेन हि निदानिनउछेदोनवति । तेच निदानमेव न जानंति तत्त्वाऽजानानाः कथं डुःखोछेदाय यतिष्यंते यत्नवंतोपि च नैव डुःखोछेदनमवाप्स्यंत्यपि तु संसारएव जन्मजरामरणेष्टवियोगाद्यनेकडुःखव्रातायातान्नूयोनूयोऽरहघट्टीन्यायेनानंतमपि कालं संस्थास्यंति ॥ १० ॥ ॥

सुद्धे अपावए आया, इहमेगेसिमाहियं ॥ पुणो किड्डापदोसेणं, सो तह्व अवरज्झई ॥११॥ इह संवुमे मुणी जाए, पछा होइ अपावए ॥ वियडंबु जहा नुज्जो, नीरयं सरयं तहा ॥१२॥ एताणुचीति मेधावी, बंनचेरेण ते वसे ॥ पुढो पावाउया सवे, अरकायारो सयं सयं ॥ १३ ॥ सए सए उवठाणे, सिद्धिमेव न अन्नहा ॥ अहो इहेव वसवत्ती, सवकामसमप्पिए ॥ १४ ॥

अर्थ—हवे प्रकारांतरे दर्शनीनुं मत देखाडेछे. ए प्रस्तावे इहमेगेसिमाहियंके० एकं वली कोइक, त्रैराशिक गोशालामतानुसारी ते एम कहेछेके, ए आयाके० आत्माते मनुष्यने नवेज सुद्धेके० शुद्ध थाय. अपावए के० पापरहित थाय. एटले सर्व कर्म क्षयकरी मोक्षे जाय. पुणोके० वली सोके० तेहज आत्मा तह्वके० त्यां मोक्षनेविषे छतो किड्डापदोसेणंके० क्रीडाप्रदोषे करी एटले रागद्वेषने वशें करी अवरज्झइके० अपराध करे एटले कर्म रजे करी अशुद्ध थाय. एटले शुं कह्युं? के ते मुक्ति छतां जीवने पोतानां सासननी पूजा जाणी, अने अन्य सासननो परानव जाणी, पोताने राग उपजावे. तथा पोताना साससनो व्याघात देखी द्वेष उपजे. ए कारण माटे आत्मा निर्मल छतो उज्वल वस्त्रनी परे शनैःशनैः मलीन थाय. ए प्रकारे ते आत्मा वली संसारमांहे अवतरे एवुं जे त्रैराशिक कहेछे, ते जीवनी त्रणराशी स्थापेछे. प्रथम आत्मा सकर्मक, पछी वली अकर्मक थईने मुक्तिमां जाय, ए बीजी राशी. अने त्यां मुक्तिने विषे वली कर्म उपार्जी संसारमांहे आवे ए त्रीजी राशी. ॥ ११ ॥ इहसंवुमेमुणीजाएके० अहीं मुक्ति थकी आवी मनुष्यना नवमां उपजीने मुनि एटले यमनियम आदरी, संवुमे एटले संवर आदरी, पछाहोइअपावएके० पछी पापरहितनिर्मल थाय. एना उपर दृष्टांत कहेछे, जहाके० जेम वियडंबुके० विकटांबु एटले पा

णी तेहनीपरे जाणवुं. जेम नीरयंके० निर्मल पाणी होयते रजादिकने संयोगे सरयंके० रजसहित एटले मलिन थाय, फरी ते पाणी निर्मलपण थाय; तहाके० तेम ए आत्मा पण जाणी लेवो. ॥ १२ ॥ हवे ए मतने दूषवेछे. एतके० ए पूर्वोक्त वादीउंनां वचन असमं जस अणुचिंतिके० चिंतवी आलोचीने, मेधावी के० पंमित जे होय ते मनमां एवी रीते अवधारे ते कहेछे. बंनचेरे णतेवसेके० ए त्रैराशिक तथा अनेरा दर्शनी ब्रह्मचारीनेविषे न वसे एटले सूधो संयम नपाले. जे कारण माटे ते सम्यक्ज्ञानरहित थका अकर्मक ने सकर्मक कहेछे ते माटे ते अज्ञानी छे. तथा पुढोपावाउयासव्वेके० ए सर्व जुदाजुदा प्रावाडुक एटले परदर्शनी अरकायारो सयंसयंके० पोतपोतानुं दर्शन रुडुं करी वखाणेछे. ॥१३॥ वली तेहिज दर्शनीनुं मत कहेछे. सएसएउवठाणे के० ते पोतपोतानां दर्शननें विषे प्रवर्त्तता पोतपोतानुं अनुष्ठान जे दीक्षा, गुरु चरण, शुश्रूपादिक तेहिज सिद्धिमेव के० सिद्धिनुं कारणछे पण नअन्नहाके० अनेरा दर्शन थकी, अनेरा अनुष्ठान थकी मुक्ति न पामिये. अहोऽहेववसवत्ती के० ते एम कहेछे के–अमारा दर्शन थकी एहिज जन्ममां यावत् आत्मवर्ती थको एटले समस्त इंडीनो जीपनार एवो थको सव्वकामसमप्पिएके० सर्वकामएटले जे जे काम नोगनी प्रार्थना तथा वांछनाकरे ते ते पामे. ॥ १४ ॥ ॥

॥ दीपिका–कृतवादिमतमेवाह । (सुद्धेति)। अयमात्मा शुद्धोमनुष्यजवएव शुद्धाचारोजूत्वा मोक्षे अपापकः स्यात् । इदमेकेषां गोशालमतानुसारिणामाख्यातं । पुनरयमात्मा अकर्मकोजूत्वा क्रीडया प्रद्वेषेण वा स तत्र मोक्षस्थएवाऽपराध्यति रजसा श्लिष्यते । तस्यहि स्वशासनपूजामन्यदर्शनपराजवमुपलज्य क्रीडाप्रमोदः स्यात् । स्वशासनपराजवदर्शनाच्च द्वेषस्ततोऽसौ क्रीडाद्वेषाज्यां कर्मणा बाध्यते ततोऽसौ जूयः संसारेऽवतरति ॥११॥ किंच । (इहेति) । इह संसारे प्राप्तः सन् प्रव्रज्यामंगीकृत्य संवृतात्मा जातः सन् पश्चादपापः स्यात् । यथाविकटांबु जलोदकं नीरजस्कं निर्मलं सत् वातोद्धूतरेणुयुक्तं सरजस्कं मलिनं जूयः स्यात् तथायमात्मा त्रैराशिकाणां मते राशित्रयावस्थः स्यात् । यथापूर्वं संसारावस्थायां सकर्मकः ततो मोक्षेऽकर्मकः पुनः शासनपराजवदर्शनात् द्वेषोदयात् सकर्मा स्यादिति ॥१२॥ एतन्मतं दूषयति । (एयाणुत्ति)। एतान्पूर्वोक्तान् वादिनोऽनुचिंत्य मेधावी प्रज्ञावान् एतदवधारयेत् यथा न ते वादिनो ब्रह्मचर्ये संयमानुष्ठाने वसेयुः । यद्यपि ते संयमे स्थितास्तथापि न सम्यगनुष्ठातारइत्यवधारयेत् । पृथक्पृथक् सर्वेप्येते प्रावाडुकाः परमतिनः स्वकं स्वकमात्मीयं दर्शनमाख्यातारः शोजनत्वेन कथयितारः स्वदर्शनं शुजं वदंति ते । नच तत्रास्था विधेयेति ॥ १३ ॥ कृतवादिमतमेव प्रकारांतरेणाह । (सएत्ति)। ते कृतवादिनः स्वके स्वके उपस्थाने संयमाद्यनुष्ठाने सिद्धिं मोक्ष

मनिहितवंतोनान्यथा । तथासिद्धिप्राप्तेरधः प्रागपि वशवर्ती वशेंडियः स्यात् अस्मन्म ताश्रितः सांसारिकैः स्वनावैर्नाजिनूयते । सर्वे कामाञनिलाषाः समर्पिताः संपन्नायस्य ससर्वकामसर्पितः इहलोके ईदृशः स्यात् परलोके च मोक्षं यायादित्यर्थः ॥ १४ ॥ ॥

॥ टीका–सांप्रतं प्रकारांतरेण कृतवादिमतमेवोपन्यस्यन्नाह । (सुद्धेत्यादि) । इहा स्मिन् कृतवादिप्रस्तावे त्रैराशिकागोशालकमतानुसारिणोयेषामेकविंशतिसूत्राणि पूर्वं गतत्रैराशिकसूत्रपरिपाट्या व्यवस्थितानि ते एवं वदंति । यथायमात्मा शुद्धोमनुष्यन वएव शुद्धाचारोजूत्वा अपगताशेषमलकलंकोमोक्षेऽपापकोनवति । अपगताशेषक र्मा नवतीत्यर्थः । इदमेकेषां गोशालकमतानुसारिणामाख्यातं । पुनरसावात्माऽशुद्धत्वाऽक र्मकत्वराशि द्वयावस्थोजूत्वा क्रीडया प्रद्वेषेण वा सतत्र मोक्षस्थएवाऽपराध्यति रज सा श्लिष्यते । इदमुक्तं नवति । तस्य हि स्वशासनपूजामुपलन्यान्यशासनपरानवं चोपल न्य क्रीडोत्पद्यते प्रमोदः संजायते स्वशासनन्यक्कारदर्शनाच्च द्वेषस्ततोऽसौ क्रीडाद्वेषान्या मनुगतांतरात्मा शनैर्निर्मलपटवडुपजुज्यमानोरजसा मलिनीक्रियते मलीमसश्च कर्मगौ रवाद्भूयः संसारेऽवतरति । अस्यां चावस्थायां सकर्मकत्वात्तृतीयराश्यवस्थोनवति ॥ ॥ ११ ॥ किंच । (इहेत्यादि) । इहास्मिन् मनुष्यनवे प्राप्तः सन् प्रव्रज्यामन्युपेत्य संवृ तात्मा यमनियमरतोजातः सन् पश्चादपापो नवति। अपगताऽशेषकर्मकलंकोनवतीति नावः । ततः स्वशासनं प्रज्ञाप्य मुक्त्यवस्थोनवति । पुनरपि स्वशासनपूजादर्शनान्निका रोपलब्धेश्च राग द्वेषोदयात्कलुषितांतरात्मा विकटांबुवडुदकवन्नीरजस्कं स वातोद्धूतरेणुनि वहसंपृक्तं सरजस्कं मलिनं नूयोयथा नवति तथाऽयमप्यात्माऽनंतकालेन संसारोद्वेगा बुद्धाचारावस्थोनूत्वा ततोमोक्षावाप्तौ सत्यामकर्मावस्थोनवति । पुनः शासनपूजानि कारदर्शनाड्रागद्वेषोदयात्सकर्मा नवतीत्येवं त्रैराशिकानां राशित्रयावस्थोनवत्यात्मे त्याख्यातं ॥ उक्तंच । दग्धेंधनः पुनरुपैति नवं प्रमथ्य, निर्वाणमप्यनवधारितनीरु निष्ठः ॥ मुक्तः स्वयं कृतनवश्च परार्थशूरस्त्वच्छासनप्रतिहतेष्विह मोहराज्यमिति ॥ १२ ॥ अधुनैतद्दूषयितुमाह । (एयाणुचीइत्यादि) । एतान्पूर्वोक्तान् वादिनोऽनुचिंत्य मेधावी प्र ज्ञावान् मर्यादाव्यवस्थितोवा एतदवधारयेत् । यथा नैते राशित्रयवादिनोदेवोप्तादिलोक वादिनश्च ब्रह्मचर्ये तडुपलक्षिते वा संयमानुष्ठाने वसेयुरवतिष्ठेरन्निति । तथाहि । तेषामय मन्युपगमोयथा स्वदर्शनपूजानिकारदर्शनात्कर्मबंधोनवत्येवंचावश्यं तद्दर्शनस्य पूजा यास्तिरस्कारेण चोनयेन वा नाव्यं तत्संनवाच्च कर्मोपचयस्तडुपचयाच्च शुध्यनावः शु ध्यनावाच्च मोक्षानाव. । नच मुक्तानामशेषकर्मकलंकानां कृतकृत्यानामपगताशेषयथाव स्थितवस्तुतत्त्वानां समस्तुतिनिंदानामपगतात्मात्मीयपरिग्रहाणां रागद्वेषानुषंगस्तदनावाच्च

कुतः पुनः कर्मबंधस्तस्माच्च संसारावतरणमित्यर्थः ॥ अतस्ते यद्यपि कथंचिद्द्रव्यब्रह्म चर्ये व्यवस्थितास्तथापि सम्यक् ज्ञानाजावान्न सम्यगनुष्ठानजाज़इतिस्थितं । अपिच स र्वेप्येते प्रावाडुकाः स्वकं स्वकमात्मीयं दर्शनं स्वदर्शनानुरागादाख्यातारः शोजनत्वेन प्र ख्यापयितारइति । नच तत्र विदितवेद्येनास्था विधेयेति ॥१३॥ पुनरन्यथाकृतवादिमत मुपदर्शयितुमाह् । (सएसएइत्यादि) ते कृतवादिनः शैवैकदंडिप्रजृतयः स्वकीये स्वकीये उपतिष्ठत्यस्मिन्नित्युपस्थानं स्वीयमनुष्ठानं दीक्षा गुरुचरणशुश्रूषादिका तस्मिन्नेव सिद्धिमशेषसांसारिकप्रपंचरहितस्वजावमजिहितवंतोनान्यथा नान्येन प्रकारेण सिद्धि रवाप्यत इति । तथाहि शैवादीक्षातएव मोक्षइत्येवं व्यवस्थिताः । एकदंडिकाः पंच विंशतितत्त्वपरिज्ञानान्मुक्तिरित्यजिहितवंतस्तथान्येपि वैदांतिकाध्यानाध्ययनसमाधिमार्गा नुष्ठानात्सिद्धिमुक्तवंतइत्येवमन्येपि यथास्वदर्शनान्मोक्षमार्गं प्रतिपादयंतीति । अशेषद्वं द्वोपरमलक्षणायाः सिद्धिप्राप्तेरधस्तात्प्रागपि यावदद्यापि सिद्धिप्राप्तिर्न जवतीति तावदिहै व जन्मन्यस्मदीयदर्शनोक्तानुष्ठानानुजावादष्टगुणैश्वर्यसद्भावो जवतीति दर्शयति । आत्म वशं वर्तितुं शीलमस्येति वशवर्ती वशेंद्रियइत्युक्तं जवति तथ्द्यसौ सांसारिकैः स्वजावैरजिजू यते । सर्वे कामाअजिलाषाअर्पिताः संपन्नायस्य ससर्वकामसमार्पितोयान्यान् कामान् कामयते ते तेऽस्य सर्वे सिध्यंतीति यावत् । तथाहि । सिद्धेराराददष्टगुणैश्वर्यसिद्धिर्जवति । तद्यथा । अणिमा लघिमा गरिमा प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं प्रतिघातित्वं यत्र कामा वसायित्वमिति ॥ १४ ॥

सिद्धा य ते अरोगा य, इहमेगेसिमाहियं ॥ सिद्धिमेव पुरो काउं
सासए गढिआ नरा ॥ १५ ॥ असंवुमा अणादीयं, जमिहिंति
पुणो पुणो ॥ कप्पकालमुवज्जंति, ठाणा आसुरकिब्बिसियात्ति
बेमि ॥ १६ ॥ इति प्रथमाध्ययने तृतीयोद्देशकः ॥

अर्थ—हवे परजवे जे गति थाय ते कहेछे. सिद्धायते के० ते जीव अमारा दर्शनने प्र वर्त्तता शरीर त्याग करी, विशिष्ट समाधिने योगे सिद्ध थाय. ते सिद्ध केवा? तो के, अरोगाय के० रोगरहित एटले शरीरनां डुःख थकी रहित छे. एरीते इह के० एहि ज लोकने विषे मेगेसि के० एकेक कोइ शिवने मतें एम आहियं के० जाख्युं एटले क ह्युं. ते दर्शनी पोतपोताने अनुष्ठाने सिद्धिमेवके० सिद्धिनेज, पुरोकाउंके० आगल करी सासए के० आपणा अजिप्रायने विषे गढिआ के० गृध छता अनेक हेतु यु क्ति कहे. ते कोनी परें? तो के, नराके० पामर नरनी पेरे. जेम ते अजाण म नुष्य पोताना मतनुं कदाग्रह न त्यागे, तेम तें दर्शनीउपण जे कांइ पोताना मतनुं

अनुष्ठान ते सर्वे मुक्तिनुं कारण छे, एम कहे. ॥ १५ ॥ हवे एवुं कहेनारने फल देखाडेछे. असंवुमा के० ते पाखंमि दर्शनी संवररहित, असंयमसहित, एवी रीते मुग्धलोकने विप्र तारणहार अणादीयं के० अनादि संसारमांहे नमिहिंति के० परिभ्रमण करतां पुणो पुणो के० वली वली नरकादिनी पीडा पामशे. कदाचित् ते बाल तपने प्रनावे स्वर्गादि क गति पामे; तोपण केवी पामे तो के, कप्पकालं के० घणाकालसुधी गणा के० स्थान क जे आसुर के० असुर कुमारादिकनां स्थानक तेनेविषे अथवा किब्बिसिया के० कि ल्बिषीयादिक अधर्म स्थानक त्यां नवज्जंति के० उत्पन्न थया छतां डुःखज पामे. तिबेमि के० पूर्ववत्. ॥ १६ ॥ इति प्रथमाध्ययनस्य तृतीयोद्देशकः समाप्तः ।

दीपिका—एतदेवाह । (सिद्धेति)। तेऽस्मन्मताश्रिताः सिद्धाश्च अरोगाः स्युः । अरोगग्र हणाच्छारीरमानसानेकडुःखरहिताश्चेति ज्ञेयं । इहास्मिन् लोके एकेषां शैवादीनामिदमा ख्यातं । ते हि सिद्धिं मुक्तिमेव पुरस्कृत्यांऽगीकृत्य स्वाशये स्वमतानुरागे ग्रथिताः संबद्धान राः प्राकृतपुरुषाः पंमितंमन्याइवेत्यर्थः ॥ १५ ॥ एतद्दूषणायाह । (असंवुडेति) ते पा खंडिनस्तत्त्वतोऽसंवृताअनादिकं संसारं पुनःपुनर्भ्रमिष्यंति । यदि कथंचित्तेषां स्वर्गावाप्ति स्तथापि कल्पकालं बहुकालमुत्पद्यंते संनवंत्यसुराः । असुरस्थानोत्पन्नाअपि न प्रधा नाः किंतर्हि किल्बिषिकाअधमाएवेति ॥ १६ ॥ ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ इति सूत्रकृतांग दीपिकायां प्रथमाध्ययने तृतीयोद्देशकः ।

॥ टीका—तदेवमिहैवास्मडुक्तानुष्ठायिनोऽष्टगुणैश्वर्यलक्षणा सिद्धिर्भवत्यमुत्रचाऽशे षद्वंद्वोपरमलक्षणा नवतीति दर्शयितुमाह । (सिद्धायतेइत्यादि) ये ह्यस्मडुक्तम नुष्ठानं सम्यगनुतिष्ठंति तेऽस्मिन् जन्मन्यष्टगुणैश्वर्यरूपां सिद्धिमासाद्य पुनर्विशिष्टसमाधि योगेन शरीरत्यागं कृत्वा सिद्धाश्चाशेषद्वंद्वरहिताअरोगाभवंति । अरोगग्रहणं चोपल क्षणं। अनेकशरीरमानसद्वंद्वैर्न स्पृशंति शरीरमनसोरनावादित्येवमिहास्मिन्लोके सिद्धिवि चारे वा एकेषां शैवादीनामिदमाख्यातं नाषितं । तेच शैवादयः सिद्धिमेव पुरस्कृत्य मु क्तिमेवांगीकृत्य स्वकीये आशये स्वदर्शनाभ्युपगमे ग्रथिताः संबद्धाअध्युपपन्नास्तदनुकू लायुक्तीः प्रतिपादयंति । नराइव नराः प्राकृतपुरुषाः शास्त्रावबोधविकलाः स्वाभिप्रेता र्थसाधनाय युक्तीः प्रतिपादयंत्येवं तेपि पंडितंमन्याः परमार्थमजानानाः स्वाग्रहप्रसाधि कां युक्तिमुद्घोषयंतीति । तथाचोक्तं । आग्रही बत निनीषति युक्तिं, तत्र यत्र मतिरस्य निविष्टा ॥ पक्षपातरहितस्य तु युक्तिर्यत्र तत्र मतिरेति निवेशं ॥ १ ॥ १५ ॥ सांप्रत मेतेषामनर्थप्रदर्शनपुरःसरं दूषणाभिधित्सयाह (असंवुडाइत्यादि) तेहि पाखंडिकामो क्षाभिसंधिनः समुब्रिताअपिअसंवृताइंडियनोइंडियैरसंयताइहाप्यस्माकं लाभइंडिया

नुरोधेन सर्वविषयोपनोगादमुत्र मुक्त्यवाप्तेः । तदेवं मुग्धजनं प्रतारयंतोऽनादि संसारकांतारं चमिष्यंति पर्यटिष्यंति । स्वदुश्चरितोपात्तकर्मपाशाः पाशावशापिताः पौनः पुन्येन नारकादियातनास्थानेपूत्पद्यंते । तथाहि । नेंद्रियैरनियमितैरशेषद्वंद्वप्रच्युतिल क्षणासिद्धिरवाप्यते । याप्यणिमाद्यष्टगुणलक्षणैहिकी सिद्धिरनिधीयते सापि मुग्धजनप्र तारणाय दंनकल्पैवेति । यापि च तेषां बालतपोनुष्ठानादिना स्वर्गावाप्तिः साप्येवंप्राया नवतीति दर्शयति । कल्पकालं प्रनूतकालमुत्पद्यंते संनवंति । असुराअसुरस्थानोत्प न्नानागकुमारादयस्तत्रापि न प्रधानाः किं तर्हि किल्बिषिकाअधमाः प्रेष्यनूताअल्पर्ध योऽल्पनोगाः स्वल्पायुःसामर्थ्याद्युपेताश्च नवंतीति । इति उद्देशकपरिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमी ति पूर्ववत् ॥ १६ ॥ इति समयाख्याध्ययनस्य तृतीयोद्देशकः समाप्तः ॥

अथ–प्रथमाध्ययने चतुर्थ उद्देशकः प्रारन्यते ॥

एते जिया नो न सरणं, बाला पंमियमाणिणो (पाठांतरे ॥ यत्रबालेवसीय ति)॥ हिचा णं पुव्व संजोगं, सिया किञ्चोवएसगा ॥ १ ॥ तं च निरकू परिन्ना य, वियं तेसुं ण मुञ्चए ॥ अणुक्कस्से अप्पलीणे, मझेण मुणि जावए ॥ २ ॥

अर्थ–हवे चोथो उद्देशो प्रारंनियें बैये. त्रीजे उद्देशे परतीर्थिनी वक्तव्यता कही हवे अहीं पण तेहिज कहेबे. एते के० ते दर्शनी जे पूर्वे कह्यां ते पंचनूतिक तज्जीव तच्छरीरवादी तथा गोशालकमतानुसारी त्रैराशिक ए सर्वने कोणे जियाके० जीत्या? ते क हेबे–राग, द्वेष, परिग्रह, उपसर्ग तथा शब्दादिक विषय प्रबल मोहरूप वेरीए जीत्या. ते कारणे नो के० शिष्यने आमंत्रणे अहो शिष्य ए वचन तुं सही करीने सदहे. न सरणं के० ए परतीर्थीक कोइ जीवने शरण न थाय, एटले संसारमांहे पडतां प्राणीने उद्ध री नशके. केमके जे कारणे ते बालाके० बाल अज्ञानी बतां पंमिय माणिणोके० आ त्माने पंमित करी मानता अज्ञाने लागा सिदाय. पोते उन्मार्गे पडतां बीजाने उन्मार्गे पाडेबे, केमके तेनी आचरणादिरूप विरुद्ध देखायबे; ते गाथाना उतरार्धवडे देखाडेबे. हिंचाणंपुव्वसंयोगं के० पूर्व संयोगं एटले पूर्वे धनधान्य अने स्वजनादिक संयोग बां मीने "अमे निःसंग प्रव्रजित बैये" एम कहे; परंतु ते वली सियाके० ते बंधाणा एटले परिग्रह आरंनने विषे आसक्त एवा बता गृहस्थजबे केमके ते किच्चोवएसगाके० ते ग्र हस्थनां कृत्य जे पचन तथा पाचनादिक बकाय हिंसानो व्यापार तेनो जे उपदेश तेने विषे प्रवर्त्ते. ते कारणे प्रवर्जित बतां गहस्थोनां करतव्य थकी वेगला नथी. अर्थात् "जेवा गृही तेवा दर्शनी" ए कारणे कोइनो उद्धार न करी शके. ॥ १ ॥ एवा दर्श नीउ देखीने चारित्रियायें जे करवुं ते देखाडेबे. तंच निरकू के० ते पाखंमी लोक वि

परीत उपदेश देवाने प्रवर्त्तता तेने परिन्नायके० सम्यक् प्रकारे जाणीने जेम ए दर्शनी बाप डा मिथ्यात्वव्यापारें विवेकशून्य पोते पोतानेज अहितकारी दीशेछे, तो अन्य जीव ने हितकर्ता क्यांथी थशे ? एवुं आलोचीने निकु जे चारित्रीउ वियंतेसुंके० परमार्थनो जाण ते दर्शनीउनेविषे एमुछ्ए के० मूर्छाय नहीं अर्थात् तेनीप्रत्ये संबंध पण न करे. त्यारे शुं करे, ते अर्थ गाथाना उतरार्धवडे देखाडे छे. अणुक्कस्से के० ते उत्कर्ष र हित आठ मदनो टालनार, अप्पलीणे के० अप्रलीन एटले असंबंध गृहस्थ तथा पास छादिकने विषे संसर्ग अणकरतो ते नणी मझेण के० मध्यमनावे रागद्वेष रहित छतो मुणिके० मुनी एटले जे साधु ते जावए के० पोताने प्रवर्त्तावे, एटले शुं कह्युं! तो के, कदाचित परतीर्थीक अथवा पासछादिक संघाते संबंध मले तो मद न करवो ने तेनी प्रशंसा तथा निंदा अणकरतो राग द्वेष रहित वर्त्ते. ए प्रकारेकरी संयम जे पाले तेज साधु जाणवो. ॥ २ ॥

॥ दीपिका—तृतीयोद्देशकेऽन्यतीर्थिकाणां कुत्सितत्वमुक्तमिहापि तदेवोच्यतइत्यर्थसं बद्धस्यास्योद्देशकस्येदमादिसूत्रं ॥ (एतइति) एतेऽन्यमतिनोजिताअनिनूताराग द्वेषादिनिः । नोइति शिष्यामंत्रणं । एवं त्वं जानीहि । यथाएते न शरणं कस्यचित्त्राणाय न समर्थाः । (जछत्ति) यत्राऽज्ञाने बालोऽज्ञोलग्नः सन् अवसीदति तत्र ते व्यवस्थिताः। बालापंमिअमाणिणोइति क्वचित्पाठस्तत्र बालानिर्विवेकाअपंमिताअपि पंमितमानिनः कस्यापि न त्राणाय स्युरित्यर्थः। तत्कृत्यमाह । हित्वा त्यक्त्वा पूर्वसंयोगं धनस्वजनादिकं । णमिति वाक्यालंकारे । सिताबद्धाः परिग्रहारंनेषु । पुनः किंनूताः । कृत्यं कार्यं पचन पाचनादि तस्योपदेशं गछंतीति कृत्योपदेशगाः । अथवा सियाइत्यार्षत्वात् स्युर्नवेयुः । कृत्यं सावद्यानुष्ठानं तत्प्रधानाः कृत्यागृहस्थास्तेषामुपदेशः संरंनसमारंनरूपः स विद्यते येषां ते कृत्योपदेशिकाः । प्रव्रजिताअपि कर्तव्यैर्गृहस्थेन्योन निद्यंतइत्यर्थः ॥ १ ॥ एवं नूतेषु तीर्थिकेषु सत्सु साधुना यत्कर्तव्यं तदाह । (तंचेति) तं पाखंमिलोकं परिज्ञाय सम्यक् ज्ञात्वा निकुः संयतोविद्वान् तेषु न मूर्छयेत् तैः सह संबंधं न कुर्यात् । किंतर्हि कुर्यादित्याह । अनुत्कर्षवान् उत्कर्षोमदस्तमकुर्वन् । तथाऽप्रलीनोऽसंबद्धस्तीर्थिकेषु गृहस्थेषु पार्श्वस्थादिषु वा संश्लेषमकुर्वन् मध्येन रागद्वेषयोरंतरालेन संचरन् मुनिर्जगत्त्रयवेदी यापयेदात्मानं वर्तयेत् तेषु निंदां स्वस्य प्रशंसांच परिहरन् साधुर्मध्यस्थवृत्त्या चरेदित्यर्थः।

॥ टीका—उक्तस्तृतीयोद्देशकः । अधुना चतुर्थः समारभ्यते । अस्यचायमनिसंबंधः । अनंतरोद्देशकेऽध्ययनार्थत्वात्स्वपरसमयवक्तव्यतोक्तेहापि सैवाऽनिधीयते । अथचाऽनंतरोद्देशके तीर्थिकानां कुत्सिताचारत्वमुक्तमिहापि तदेवानिधीयते । तदनेन संबंधे

नाऽथातस्याऽस्योद्देशकस्योपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोगद्वाराण्यभिधाय सूत्रानुगमे सूत्रमुच्चारणीयं। तच्चेदं (एतेजियाभो इत्यादि) अस्य चानंतरसूत्रेण सहायं संबंधस्तद्यथा। अनंतरसूत्रेऽभिहितं। तीर्थिकाअसुरस्थानेषु किल्बिषाजायंतइति। किमिति। यतएते जिताः परीषहोपसर्गैः। परंपरसूत्रसंबंधस्त्वयं। आदाविदमभिहितं बुध्येत त्रोटयेच्च। ततश्चैतदपि बुध्येत। यथैते पंचभूतादिवादिनोगोशालकमतानुसारिणश्च जिताः परीषहोपसर्गैः कामक्रोधलोभमानमोहमदाख्येनाऽरिषड्वर्गेण चेत्येवमन्यैरपि सूत्रैः संबंधउत्प्रेक्ष्यः। तदेवं कृतसंबंधस्याऽस्य सूत्रस्येदानीं व्याख्या प्रतन्यते। (एतइति) पंचभूतैकात्मतज्जीवतच्छरीरादिवादिनः कृतवादिनश्च गोशालकमतानुसारिणश्च त्रैराशिकाश्च जिताअभिभूतारागद्वेषादिभिः शब्दादिविषयैश्च तथा प्रबलमहामोहोत्थाऽज्ञानेन च। भो इति विनेयामंत्रणं। एवं त्वं गृहाण। यथैते तीर्थिकाअसम्यगुपदेशप्रवृत्तत्वान्न कस्यचिच्छरणं भवितुमर्हंति। न कथंचित्त्रातुं समर्थाइत्यर्थः। किमित्येवं यतस्ते बालाइव बालाः। यथा शिशवः सदसद्विवेकवैकल्याद्यत्किंचनकारिणोभाषिणश्च। तथैतेऽपि स्वयमज्ञाः संतः परानपि मोहयंति। एवंभूताअपिच संतः पंडितमानिनइति। क्वचित्पाठोजत्थबालोवसीयइति। यत्राऽज्ञाने बालोऽज्ञोलग्नः सन्नवसीदति तत्र ते व्यवस्थिताः यतस्ते न कस्यचित्त्राणायेति। यच्च तैर्विरूपमाचरितं तदुत्तरार्द्धेन दर्शयति। हित्वा त्यक्त्वा। णमिति वाक्यालंकारे। पूर्वं संयोगोधनधान्यस्वजनादिभिः संयोगस्तं त्यक्त्वा किल वयं निःसंगाः प्रव्रजिताइत्युत्थाय पुनः सिता बद्धाः परिग्रहेष्वारंभेष्वासक्तास्ते गृहस्थास्तेषां कृत्यं करणीयं पचनपाचनकंडनपेषणादिकाभूतोपमर्दकारी व्यापारस्तस्योपदेशस्तं गच्छंतीति कृत्योपदेशगाः कृत्योपदेशकावा। यदिवा सियाइति आर्षत्वाद्बहुवचनेन व्याख्यायते। स्युर्भवेयुः। कृत्यं कर्तव्यं सावद्याऽनुष्ठानं तत्प्रधानाः कृत्यागृहस्थास्तेषामुपदेशः संरंभसमारंभारंभरूपः सविद्यते येषां ते कृत्योपदेशिकाः प्रव्रजिताअपि संतः कर्तव्यैर्गृहस्थेभ्यो न भिद्यंते। गृहस्थाइव तेऽपि सर्वावस्थाः पंचसूनाव्यापारोपेताइत्यर्थः ॥ १ ॥ एवंभूतेषु च तीर्थिकेषु सत्सु भिक्षुणा यत्कर्तव्यं तद्दर्शयितुमाह। तंचभिक्खूइत्यादि। तं पाखंडिकलोकमसदुपदेशदानाऽभिरतं परिज्ञाय सम्यगवगम्य यथैते मिथ्यात्वोपहतांतरात्मानः सद्विवेकशून्या नात्मने हितायालं नान्यस्माइत्येवं पर्यालोच्य भावभिक्षुः संयतोविद्वान् विदितवेद्यस्तेषु न मूर्छयेत् न गार्ध्यं विदध्यान्न तैःसह संपर्कमपि कुर्यादित्यर्थः। किंपुनः कर्तव्यमिति पश्चार्द्धेन दर्शयति। अनुत्कर्षवानित्यष्टमदस्थानानामन्यतमेनाऽप्युत्सेकमकुर्वन्। तथा अप्रलीनोऽसंबद्धस्तीर्थिकेषु गृहस्थेषु पार्श्वस्थादिषु वा संश्लेषमकुर्वन्, मध्येन रागद्वेषयोरंतरालेन संचरन् मुनिर्जगत्त्रयवेदी यापयेदात्मानं वर्तयेत्। इदमुक्तं भवति। तीर्थिका

दिभिःसह सत्यपि कथंचित्संबंधे त्यक्ताहंकारेण तथा भावतस्तेष्वप्रतीयमानेनारक्तद्विष्टेन तेषु निंदामात्मनश्च प्रशंसां परिहरता मुनिनाऽत्मा यापयितव्यइति ॥ २ ॥

सपरिग्गहा य सारंभा इह मेगेसिमाहियं ॥ अपरिग्गहा अ
णारंभा, भिरकू ताणं परिव्वए ॥ ३ ॥ कडेसु घासमेसेज्जा, विक
दत्तेसणं चरे ॥ अगिद्धो विप्पमुक्को अनुमाणं परिवज्जए ॥ ४ ॥

अर्थ—हवे जे कारणे परतीर्थीकने विरुद्धाचारी कह्या ते कारण देखाडेछे—सपरिग्गहा के० ते धनधान्यादिक द्विपद चतुष्पदादिक सहित, तेने अभावे शरीर उपकरणादिकने विषे मूर्छा राखेछे तेहिज परिग्रह कहिए. अने सारंभ के० जीवघातने विषे प्रवर्त्तमान, तेहने अभावे उद्देशादिकना भोगवनार छे. माटे आरंभी कहिये. एवाछतां मोक्ष मार्ग साधे ते देखाडे छे. इह मेगेसिमाहियंके० ते इह परलोकने चिंतवे. एक दर्शनीने मतें एम कह्युं, के, ए तपस्यादिक तथा मुंमनादिक क्रिया करे ते व्यर्थ छे, किंतु जे गुरु भक्तीने प्रसादे एक परम अक्षर लाभे तेथी जीवने मोक्ष थाय. बीजो जे कांइ काय क्लेश करे ते सर्व अप्रमाण छे. एम जे कहे ते साधु पदवी न पामे. ते तारवाने समर्थ नहीं होवाने लीधे जे तारवाने समर्थ एवो साधु होय, ते आगल अर्द्ध गाथायें देखाडेछे. अपरिग्गहाके० जे किंचित् मात्र परिग्रहरहित होय एक धर्मोपकरण टाली अने तेना उपर पण ममताने अभावे परिग्रह उपर स्वल्प मात्रे नराचे. तथा अणारंभाके० सर्वथा प्रकारें छकायना आरंभरहित एवा भिरकूताणं के० भिक्षु पोताने अने बीजाने त्राण शरण होय. एटले संसारसमुद्रमांहेथी पोते पण प्रवहणनीपरे तरे अने बीजा पण संसार समुद्रमां बुडता जीवने प्रवहणनी पेठे तारनार होय एरीते साधु परिव्वएके० उद्देशादिक आहार वर्जतो संयम पाले. ॥३॥ हवे चारित्रिउ आरंभ अने परिग्रह टाली केम प्रवर्त्ते ते कहेछे. कडेसुके० ते गृहस्थे पोताने अर्थे जे भात पाणी कीधांछे. तेनेविषे सोल जातना उद्गम दोषरहित घासकें० आहार एसेज्जाके० गवेषे, विकके० ते पंमित निःकेवल निर्जरा निमित्ते जे आहार दातारे दत्तकं० दीधो. तेना धात्रादिक सोले उत्पादन दोष तेनी एसणंचरेके० एषणाने विषे विचरे. अने संकीतादि दश एषणाना दोष जाणवा. अर्थात् बेतालीश दोष विशुद्ध आहार ले एम कह्युं. तथा अगिद्धोके० ते अमूर्छित थको आहारें एटले पांच मांमलिना दोष टाले. विप्पमुक्कोके० आहारने विषे रागद्वेषरहित, एवो छतो अउमाणं परिवज्जए के० बीजानुं अपमान वर्जे; एटले अनेराने करेलो पराभव अहियासे. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—कथं तीर्थिकास्त्राणाय न स्युरित्याह । (सपरिग्रहाइति) । सपरिग्रहाधना

दियुक्ताः धनाद्यनावेपि शरीरोपकरणादौ मूर्बावंतः सपरिग्रहाएव तथा सारंजाः सावद्य व्यापाराइतीह विचारे एकेषामाख्यातं । यथा किमनया शिरस्तुंडमुंडनक्रियया । गुरोरनुग्रहाद्यदा परमाक्षरावाप्तिर्नवति तदा मोक्षः स्यादेवं जापमाणास्ते न त्राणाय स्युः । ये त्रातुं समर्थास्तानाह । अपरिग्रहाधर्मोपकरणंविना शरीरोपनोगाय स्वल्पोपि न विद्यते परिग्रहोयेषां तेऽपरिग्रहाअनारंजाश्च तान् जिक्षुः साधुः शरणं परिव्रजेत् गच्छेत् । तेषां शरणं यायादित्यर्थः ॥३॥ परिग्रहारंनवर्जनं यथा स्यात्तथाह । (कडेसुइति) । कृतेषु गृहस्थैः स्वार्थं निष्पादितेषु उंदनादिपिंडेषु ग्रासमाहारं एषयेत् याचेत इति षोडशोजमदोषत्यागः सूचितः । तथा विद्वान् संयमनिपुणोदत्तं परैराशंसादोषरहितैर्निश्रेयसबुध्या वितीर्णं तत्र एषणां ग्रहणैषणां चरेत् । दत्तमित्यनेन षोडशोत्पादनादोषाः एषणां चरेदित्यनेन दश एषणादोषाश्च सूचिताः । एतद्दोषत्यागेन पिंडं गृण्हीयादित्यर्थः । अगृध्दोऽमूर्छितोविप्रमुक्तो रागद्वेषरहितश्च । आहारे स्यादिति पंचग्रासैषणादोषत्यागउक्तः । सएवंनूतोनिक्षुः परेषामपमानं परिवर्जयेत् तपोमदं ज्ञानमदं च न कुर्यादित्यर्थः । आत्मनः सकाशात्परान् हीनान् न पश्येदिति तात्पर्यं ॥ ४ ॥

॥ टीका–किमिति ते तीर्थिकास्त्राणाय न नवंतीति दर्शयितुमाह । (सपरिग्रहाइत्यादि) । सपरिग्रहेण धनधान्यद्विपदचतुष्पदादिना वर्तंते तदनावेऽपि शरीरोपकरणादौ मूर्बावंतः सपरिग्रहाः । तथा सहारंनणे जीवोपमर्दादिकारिणा व्यापारेण वर्ततइति तदनावेऽप्यौद्देशिकादिनोजित्वात्सारंजाः । तीर्थिकादयः सपरिग्रहारंनकत्वेनैव च मोक्षमार्गं प्रसाधयंतीति दर्शयति । इह परलोकचिंतायामेकेषांकेषांचिदाख्यातं जाषितं । यथा किमनया शिरस्तुंडमुंडनादिकया क्रियया परं गुरोरनुग्रहात्परमक्षरावाप्तिस्तद्दीक्षावाप्तिर्वा यदि नवति ततोमोक्षोनघतीत्येवं जाषमाणास्ते न त्राणाय नवंतीति । येतु त्रातुं समर्थास्तान्पश्चार्ध्देन दर्शयति । अपरिग्रहाः न विद्यते धर्मोपकरणादृते शरीरोपनोगाय स्वल्पोऽपि परिग्रहोयेषांते अपरिग्रहाः । तथा न विद्यते सावद्यआरंनो येषां तेऽनारंजास्तेचैवं नूताः कर्मलघवः स्वयंयानपात्रकल्पाः संसारमहोदधेर्जंतूत्तारणसमर्थास्तान् जिक्षुर्निक्षणशील उद्देशिकाद्यपरिनोजी त्राणं शरणं परि समंताद्व्रजेत्गच्छेदिति ॥३॥ कथं पुनःपुनस्तेनापरिग्रहेणाऽनारंजेण च वर्तनीयमित्येतद्दर्शयितुमाह (कडेसुइत्यादि) गृहस्थैः परिग्रहारंनद्वारेणाऽत्मार्थं ये निष्पादिताउंदनादयस्ते कृताउच्यंते । तेषु कृतेषु परकृतेषु परनिष्ठितेष्वित्यर्थः ॥ अनेन च षोडशोजमपरिहारः सूचितः । तदेवमुजमदोषरहितं ग्रस्यतइति ग्रासआहारस्तमेवंनूतमन्वेषयेन्मृगयेत् याचेदित्यर्थः । तथा विद्वान्संयमकरणैकनिपुणः परैराशंसादोपरहितैर्यन्निःश्रेयसबुध्या दत्तमित्यनेन षोडशोत्पादनदोषाः परिगृहीताद्रष्टव्याः ।

तदेवंभूते दौत्यधात्रीनिमित्तादिदोषरहिते आहारे सभिक्षुः एषणां ग्रहणैषणां चरेदनुतिष्ठे दित्यनेनाऽपि दशैषणादोषाः परिगृहीताइति मंतव्यं । तथा । अगृद्धोऽनध्युपपन्नोऽमूर्छि तस्तस्मिन्नाहारे रागद्वेषविप्रमुक्तः। अनेनाऽपि च ग्रासैषणादोषाः पंच निरस्ताअवसेयाः । सएवंभूतोभिक्षुः परेषामपमानं परावमदर्शित्वं परिवर्जयेत् परित्यजेत् । न तपोमदं ज्ञा नमदं च कुर्यादिति भावः ॥ ४ ॥

लोगवायं णिसामिज्जा, इह मेगेसिमाहियं ॥ विवरीयपन्नसं भूयं, अन्नउत्तं तयाणुयं ॥ ५ ॥ अणंते निइए लोए, सासए ण विणस्सती ॥ अंतवं णिइए लोए, इति धीरोति पासइ ॥ ६ ॥

अर्थ—हवे वली परवादी मिश्रित वचन कहेछे—लोगवायं के० पाखंमी लोक तेनो वाद पोतपोताने मतें कल्पित जे स्वरूप ते णिसामिज्जाके० सांभले, सांभलीने हैयामां धरे जिन मतिथी कशुं खोटुं जाणी परिहरे ते लोकवाद देखाडेछे. इह के० ते ए जगतने विषे, मे गेसिके० एकेक वादीने मतें, आहियंके० कह्युं छे. ते केवुं तोके, विवरीयंके० विपरीत पन्न के० प्रज्ञातत्व थकी ऊपरांठी बुद्धि, संभूयंके० तेहथकी ऊपनो तथा अन्नउत्तंतयाणुगं के० ते अनेरा अविवेकीनुं जे भाष्युं तेने अनुसारे वली तेवुंज प्रवर्त्तवुं एवो लोकवाद सांभली हैये धारेछे. ॥५॥ हवे ते विपरीत बुद्धि रचित लोकवाद देखाडेछे.—तें लोक अणंते के० अनंत तथा निइएलोए के० नित्यछे. एटले शुं कह्युं ? के जे आ भवमां पुरुषछे अथ वा स्त्री छे, ते आगमिक भवे पण तेवोज पुरुष तथा स्त्रीने रूपेछे. एटले स्त्री ते स्त्री ने पुरुष ते पुरुष छे, ते माटे लोक नित्यछे. सासए के० वली ए लोक सास्वतोछे. ण विणस्सति के० वणसे नही. अंतवंके० ते अंतसहित छे, एटले सप्तद्वीप तथा सप्त समुद्रसहित एटलो लोकछे. एथी न्यून अधिक नथी; ए कारणे लोकनो अंत छे. अने णिइएलोए के० लोक नित्यछे. स्त्री ते स्त्री अने पुरुष ते पुरुष रूपज छे. ते माटे इति के० एरीते, धीरोके० अमारा जे व्यासादिक धीरपुरुष अनेक गुणवंत ते पासइके० देखेछे.

॥ दीपिका—स्वमतं प्रख्याप्य पुनः परमतं दर्शयति । (लोगवायमिति) । लोकानां खंडिनां वादमंगीकारं (णिसामिज्जा) निशामयेत् जानीयात् । तद्दर्शयति । इह संसा केषांचित् इदमाख्यातं । तथा विपरीता मिथ्या या प्रज्ञा तया संभूतमुत्पन्नं तत्त्व र्थस्तबुद्धिग्रथितमित्यर्थः । तथाऽन्यैरविवेकिभिर्यदुक्तं तदनुगं तत्सदृशं अविवेकिजन यसदृशमिति ॥ ५ ॥ लोकवादमेवाह । (अणंतेति) । न विद्यतेंऽतोयस्येत्यनं त्यः शाश्वतोन विनश्यति । योयादृगिह भवे सपरभवेपि तादृशएव पुरुषः पुरुषएव

अंगना अंगनैवेति । अथवा अनंतोनिरवधिकः तथा नित्योऽप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकरूपः तथा शाश्वतः कार्यद्रव्यं नवदपि प्रांते परमाणुत्वं न त्यजति तथा न विनश्यति दिगात्माकाशाद्यनपेक्षया । तथा अंतवान् लोकः सप्त द्वीपा वसुंधरेति परिमाणोक्तेस्तादृक्परिमाणोनित्यइति धीरः .साहसिकोव्यासादिरतीव पश्यति ॥ ६ ॥

॥ टीका–एवं निर्युक्तिकारेणोद्देशकार्थाधिकाराऽभिहितं किञ्चुवमाय चज्ञत्तीत्येतत्प्रदर्श्येदानीं परवादिमतमेवोद्देशार्थाधिकाराभिहितं दर्शयितुमाह । (लोगवायमित्यादि) । लोकानां पाखंडिनां पौराणिकानां वा वादोलोकवादः । यथा स्वाभिप्रायेणाऽन्यथावाऽभ्युपगमस्तं निशामयेत् शृणुयात् जानीयादित्यर्थः । तदेव दर्शयति । इहाऽस्मिन्संसारे एकेषां केषांचिदिदमाख्यातमभ्युपगमः । तदेव विशिनष्टि । विपरीता परमार्थादन्यथाभूता या प्रज्ञा तया संभूतं समुत्पन्नं तत्त्वविपर्यस्तबुद्धिग्रथितमितियावत् । पुनरपि विशेषयति । अन्यैरविवेकिभिर्यद्भक्तं तदनुगं यथावस्थितार्थविपरीतानुसारिभिर्यद्भक्तं विपरीतार्थाभिधायितया तदनुगच्छतीत्यर्थः ॥५॥ तमेव विपर्यस्तबुद्धिरहितं लोकवादं दर्शयितुमाह । (अणंतेनिइएलोएइत्यादि) नाऽस्यांतोऽस्तीत्यनंतः । न निरन्वयनाशेन नश्यतीत्युक्तं भवतीति । तथाहि । यो यादृगिह भवे स तादृगेव परभवेऽप्युत्पद्यते पुरुषः पुरुष एवांऽगनांऽगनैवेत्यादि । यदिवाऽनंतोऽपरिमितोनिरवधिकइति यावत् । तथा नित्यइति । अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावोलोकइति । तथा शश्वद्भवतीति शाश्वतो द्व्यणुकादिकार्यद्रव्यापेक्षया शश्वद्भवन्नपि न कारणद्रव्यं परमाणुत्वं परित्यजतीति । तथा न विनश्यतीति दिगात्माकाशाद्यपेक्षया । तथांऽतोऽस्याऽस्तीत्यंतवान् लोकः । सप्त द्वीपा वसुंधरेति परिमाणोक्तेः सच तादृक् परिमाणोनित्यइत्येवं धीरः कश्चित्साहसिकोऽन्यथाभूतार्थप्रतिपादनात् व्यासादिरतीव पश्यतीत्यतिपश्यति । तदेवंभूतमनेकभेदभिन्नं लोकवादं निशामयेदिति प्रकृतेन संबंधः । तथा अपुत्रस्य न संति लोकाब्राह्मणादेवाः श्वानोयक्षागोनिहतस्य गोघ्नस्य वा न संति लोकाइत्येवमादिकं निर्युक्तिकं लोकवादं न निशामयेदिति ॥६॥

अपरिमाणं वियाणाई, इह मेगेसिमाहियं ॥ सवब्ब सपरिमाणं, इति धीरोति पासई ॥७॥ जे केइ तसा पाणा, चिट्ठंति अदुवा वरा ॥ परियाए अत्थि से अंजू, जेण ते तसथावरा ॥ ८ ॥

अर्थ–वली तेहिज कहेछे:–अपरिमाणं वियाणाइ के० जेनुं क्षेत्र थकी तथा का थकी प्रमाण नथी, तेटलुंज मात्र जाणे पण सर्वज्ञ नथी. इह के० ए लोकनेविषे सिमाहियं के० कोइएक दर्शनीने मते एम कह्युंछे, जे अमारा तीर्थनो स्वामी अप

ए जाणे. जगतमां सर्वज्ञ कोइ नथी, किंतु सव्वड के० सर्वत्र सपरिमाणं के० प्रमाण सहित छे. सर्वज्ञ अपन्हववादी ते एम कहेछे. इति के० एम धीरोति पासइ के० धीर पुरुष देखेछे, ते एम कहे छे के, देवता संबंधी सहस्र वर्ष ब्रह्मा सुए ते प्रस्तावे, ते कांइ न देखे, वली एटलोज काल ब्रह्मा जागृत थाय त्यारे देखे. ए कारणे सपरिमाण वस्तु जाणे तथा देखे एप्रमाणे कोइ एक कहेछे. ॥७॥ हवे ग्रंथकार तेने उत्तर कहेछे. जगतमां हे जे केइ के० जे कोइ तसाके० त्रस ते बेइंद्रियादिक पाणाके० प्राणी जीव, चिठंति के० ते तिष्ठंति एटले रहेछे. अडुवाके० अथवा बीजा थावराके० स्थावर पृथिव्यादिक एवा बंने स्वजाव जगत्मां दिशेछे. अने अन्य दर्शनी एम कहे के " जे जेवो ते तेवोज होय " परंतु अन्वय परावर्त न थाय. जो ए वचन साचुं होय तो दान, अध्ययन, जप, नियम, तप तथा अनुष्ठानादिक क्रिया सर्व निरर्थक थाय. ए कारणे तेनुं बोलवुं प्रमाण जाणवुं नहीं. अने जैन कहेछे के, जगतमां त्रस अने स्थावर छे तेने पोतपोतानां कर्मने परिणामे अंजू के० रुजु परियाएके० पर्याय अछिसे के० छे. एटले शुं कह्युं? तो के पोतपोताना कर्मना उपार्ज्या पर्यायने पामे ते पर्यायेकरी जेणतेके० जे कारणे ते तसके० त्रस जीव ते थावराके० स्थावर थाय. एटले त्रस फीटी स्थावर थाय अने स्थावर फीटी त्रस थाय परंतु " जे जेहवो ते तेहवो " ए निश्चये थकी नथी. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–किंच (अपरिमाणमिति) न विद्यते परिमाणमियत्ता क्षेत्रतः कालतोवायस्य तदपरिमाणं विजानाति कश्चित्तीर्थिकः । अपरिमितज्ञोऽसावतींद्रियद्रष्टा न पुनः सर्वज्ञः । यद्वाऽपरिमितज्ञोऽजिप्रेतार्थातींद्रियदर्शी न पुनः सर्वदर्शी । यडुक्तं । सर्वं पश्यतु वा मा वा, इष्टमर्थं तु पश्यतु ॥ कीटसंख्यापरिज्ञानं, तस्य न क्वोपयुज्यतइति । इह एकेषां सर्वज्ञापन्हववादिनामिदमाख्यातं । तथा सर्वत्र क्षेत्रे काले वा सपरिमाणं परिमाणयुक्तं धीर्बुद्धिस्तया राजत इतिधीरः इत्येवमसावतीव पश्यति । दिव्यं वर्षसहस्रं ब्रह्मा स्वपिति तावत्कालं न पश्यति किंचित् पुनस्तावंतं कालं जागर्ति तत्र च पश्यति एवं बहुधा प्रवृत्तो लोकवादः ॥ ७ ॥ अस्योत्तरमाह । (जेकेइति) । ये केचित्रसाः प्राणिनस्तिष्ठंति अथवा स्थावराः तेषां स्वकर्मपरिणत्याऽयं पर्यायोस्ति । (अंजूइति) प्रगुणोऽव्यजिचारी तेन पर्यायेण ते त्रसाः स्थावराः स्युः । त्रसत्वमनुजूय कर्मपरिणत्या स्थावराः स्थावरत्वमनुजूय त्रसाश्च जवंतीति । ततोयोयादृगिहजवे सपरजवेपि तादृगिति नियमो न युक्तः॥८॥

॥ टीका–किंच । (अपरिमाणमित्यादि) । न विद्यते परिमाणमियत्ता क्षेत्रतः कालतोवा यस्य तदपरिमाणं । तदेवंजूतं विजानाति कश्चित्तीर्थिकस्तीर्थंकृत् । एतडुक्तं जवति । अपरिमितज्ञोऽसावतींद्रियद्रष्टा न पुनः सर्वज्ञ इति । यदि वाऽपरिमितज्ञइत्य

भिप्रेतार्थोऽतींद्रियदर्शीति । तथाचोक्तं । सर्वं पश्यतु वा मा वा, इष्टमर्थं तु पश्यतु ॥ कीटसंख्यापरिज्ञानं, तस्य न कोपयुज्यतइति । इहाऽस्मिंल्लोके एकेषां सर्वज्ञापन्हववा दिनामिदमाख्यातमयमभ्युपगमः । तथा सर्वक्षेत्रमाश्रित्यकालं वा परिच्छेद्यं कर्मतापन्न माश्रित्य सद्परिमाणेन सपरिमाणं सपरिच्छेदं धीर्बुद्धिस्तयाराजतइतिधीरइत्येवमसौ अतीव पश्यतीत्यतिपश्यति । तथाहि । ते ब्रुवते दिव्यं वर्षसहस्रमसौ ब्रह्मा स्वपिति तस्यामवस्थायां न पश्यत्यसौ तावन्मात्रं च कालं जागर्ति तत्र च पश्यत्यसाविति तदेवंभूतोबहुधा लोकवादः प्रवृत्तः ॥ ७ ॥ अस्य चोत्तरदानायाह । (जेकेइइत्यादि) ये केचन त्रस्यंतीति त्रसाद्वींद्रियादयः प्राणाः प्राणिनः सत्वास्तिष्ठंति त्रसत्वमनुभ वंति । अथवा स्थावराः स्थावरनामकर्मोदयात् पृथिव्यादयस्ते । यद्ययं लोकवादः सत्योभवेत् । यथासौ यादृगस्मिन् जन्मनि मनुष्यादिः सोऽन्यस्मिन्नपि जन्मनि ता दृगेव भवतीति । ततः स्थावराणां त्रसाणां च तादृशत्वे सति दानाध्ययनजपनियमत पोनुष्ठानादिकाः क्रियाः सर्वाप्यनर्थिकाआपद्येरन् । लोकेनाऽपि चाऽन्यथात्वमुक्तं । तद्य था । सवै एषशृगालोजायते यः सपुरीषोदह्यते तस्मात् स्थावरजंगमानां स्वकृतकर्मवशा त् परस्परसंक्रमणाद्यनिवारितमिति । तथा अनंतोनित्यश्च लोकइति यदभिहितं तत्रेदमभिधीयते । यदि स्वजात्यनुच्छेदेनास्य नित्यताऽभिधीयते ततः परिणामानित्य त्वमस्मदभीष्टमेवाऽभ्युपगतं न काचित्क्षतिः । अथाऽप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावत्वेन नित्यत्व मभ्युपगम्यते तन्न घटते तस्याऽध्यक्षबाधितत्वात् । नहि क्षणभाविपर्यायानाऽलिं गितं किंचिद्वस्तु प्रत्यक्षेणाऽवसीयते । निःपर्यायस्यच खपुष्पस्येवाऽसद्रूपतैव स्यादिति । तथा शश्वद्भवनं कायद्रव्यस्याऽकाशात्मादेश्चाऽविनाशित्वं यदुच्यते द्रव्यविशे षापेक्षया तदप्यसदेव । यतः सर्वमेव वस्तूत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तत्वेन निर्विभागमेव प्रवर्त ते अन्यथा वियदरविंदस्येव वस्तुत्वमेव हीयेतेति । यथा यदुक्तमंतवांल्लोकः सप्त द्वीपावच्छि न्नत्वादित्येतन्निरंतराः सुहृदः प्रत्येष्यंति न प्रेक्षापूर्वकारिणस्तद्ग्राहकप्रमाणाभावादिति । तथा यदप्युक्तं अपुत्रस्य न संति लोकाइत्यादीत्येतदपि बालभाषितं । तथाहि । किंपुत्रस त्तामात्रेणैव विशिष्टलोकावाप्तिरुत तत्कृतविशिष्टानुष्ठानात् । तद्यदि सत्तामात्रेण ततइंडम हत्कार्मुकगर्त्तावराहादिभिर्व्याप्तालोकाभवेयुस्तेषां पुत्रबहुलत्वसंभवात् । अथानुष्ठानमाश्री यते । तत्र पुत्रद्वयेसत्येकेन शोभनमनुष्ठितमपरेणाऽशोभनमिति तत्र का वार्त्ता स्व कृतानुष्ठानं च निष्फलमापद्येतेत्येवं यत्किंचिदेतदिति । तथा श्वानोयक्षाइत्यादियुक्ति विरोधित्वादनाकर्णनीयमिति । यदपि चोक्तम् । अपरिमाणं विजानातीति तदपि न घा मियर्ति । यतः सत्यऽप्यपरिमितज्ञत्वे यद्यसौ सर्वज्ञोन भवेत् ततोहेयोपादेयोपदेश दानविकलत्वान्नैवाऽसौ प्रेक्षापूर्वकारिभिराद्रियते तथासति तस्य कीटसंख्यापरिज्ञा।

मप्युपयोग्येव । यतोयथैव तद्विषयेऽस्याऽपरिज्ञानमेवमन्यत्राऽप्याशंकया हेयोपादेये प्रेक्षापूर्वकारिणः प्रवृत्तिर्न स्यात् तस्मात्सर्वज्ञत्वमेष्टव्यं । तथा यडुक्तं । स्वापबोधविजा गेन परिमितं जानातीत्येतदपि सर्वजनसमानत्वे यत्किंचिदिति । यदपिच कैश्चिडुच्यते । यथा ब्रह्मणः स्वप्नावबोधयोर्लोकस्य प्रलयोदयौ जवतइति तदप्ययुक्तिसंगतमेव । प्रति ादितं चैतत् प्रागेवेति न प्रतन्यते । नचाऽत्यंतं सर्वजगतउत्पादविनाशौ विद्येते । न कदाचिदनीदृशं जगदिति वचनात् । तदेवमनंतादिकं लोकवादं परिहृत्य यथावस्थितवस्तु वजावाविर्जावनं पश्चार्द्धेन दर्शयति । ये केचन त्रसाः स्थावरावा तिष्ठंत्यस्मिन् संसारे ेषां स्वकर्मपरिणत्याऽस्त्यऽसौ पर्यायः । अंजूइति प्रगुणोव्यन्निचारी तेन पर्यायेण स्वक ्मपरिणतिजनितेन ते त्रसाः संतः स्थावराः संपद्यंते । स्थावरा अपिच त्रसत्वमश्नुवते । ाथा त्रसास्त्रसत्वमेव स्थावराः स्थावरत्वमेवाऽप्नुवंति । न पुनर्योयादृगिह सतादृगे ाऽमुत्राऽपि जवत्ययं नियमइति ॥ ८ ॥

उरालं जगतो जोगं, विवज्जासं पलिंतिय ॥ सवे अक्कंतडुस्काय
अउ सवे अहिंसिता ॥ ए ॥ एवं खु नाणिणो सारं; जन्न हिंसइ
किंचणं ॥ अहिंसासमयं चेव, एतावत्तं वियाणिया ॥ १० ॥

अर्थ—हवे ए उपर दृष्टांत कहेछे—ए जीव उरालंके० ते औदारिक एटले अति स्थूल ्हवा जगतो जोगंके० जगनो योग जीवनो, व्यापार चेष्टा विशेष, विवज्जासं के० ते विपरीत जुदो जुदो पलिंतिय के० पामे. अत्रे गर्जनुं दृष्टांत कहेछे. जेम ग र्जमांहे रह्यो थको जीव अर्बुद, कलल, पेसी इत्यादिक जुदी जुदी अवस्था पामे. तथा जन्म पाम्या पछी बाल, कुमार, तरुण अने वृद्ध एवी जुदी जुदी अवस्था पामे. ए का रणे तेनुं वचन साचुं नथी जणातुं. तो जैन कहे छे के, सवेके० सर्व जीव एकेंद्रिया दिकथी मांमीने पंचेंद्रियपर्यंत जे छे, तेने अक्कंतडुःखाय के० शारीरी तथा मानसी डुःख ते वल्लन्न नथी. अउ के० ए कारणे सवे के० सघला जीव अहिंसया के० हणाय नहीं, तेम करवुं. ॥ ए ॥ एवं शब्द अवधारणे छे नाणिणो के० ज्ञानी एटले जे जाण पुरुष तेनो एहज सारं के०सार एटले न्यायछे. जन्नहिंसई किंचणं के० जे कोइ त्रस अने स्थावर जीवने किंचित् मात्र हणे नहीं, उपलक्षणथी मृषा बोले नहीं, अ दत्त, मैथुन तथा परिग्रह ए आश्रव न सेवे, रात्री जोजन न करे, एज ज्ञानीनो सार ए आश्रव न सेवे, अहिंसा के० जीवनी दया तथा समयंचेव के० समता सर्वत्र स म परिणाम राखे. एतावत्तंके० एटलुंज वियाणियाके० जाणवुं जोइये. बीजुं घणुं प ढ़ल जार सरखुं जाणवा थकी शुं फल छे? जेम मुजने मरण ते डुःख तेम बीजा जी वने पण मरण तेडुःख एम जाणे एटले मूल गुण कह्या. ॥ १० ॥

॥ दीपिका—अत्र दृष्टांतमाह । (उरालमिति)। उदारं स्थूलं जगतोयोगं । औदारिकाः प्राणिनोगर्नकललार्बुदरूपादवस्थाविशेषाद्विपरीतं बालकुमारयौवनादिकमुदारं योगं परिसमंतादयंते गच्छंति । अयमर्थः । औदारिकशरीरिणोमनुष्यादेर्बालकुमाराद्यवस्थाविशेषाःप्रत्यक्षेण दृश्यंते न पुनर्यादृक्प्राक्तादृगेव सर्वदेति । एवं सर्वेषां स्थावरजंगमानामन्यथानवनं ज्ञेयं । तथा आक्रांताः पीडितादुःखेन सर्वे जंतवस्ततस्तेऽहिंसितानवंति तथा कार्यं । अथवाऽकांतमप्रियंदुःखं येषां तेऽकांतदुःखाश्चशब्दात् प्रियसुखाश्च अतः सर्वान्नहिंस्यादिति दृष्टांतोदर्शितउपदेशश्च दत्तः । ॥ ए ॥ किमर्थं सत्वान्न हिंस्यादित्याह । (एयमिति) खुनिश्चये । एतदेव ज्ञानिनः सारं यत्किंचन प्राणिजातं न हिनस्ति । अहिंसा समता चैव एतावद्विजानीयात् । कोर्थः । यथा मम मरणं दुःखं वाऽप्रियं एवं सर्वस्य प्राणिलोकस्यापीति । एवं ज्ञात्वा न हिंस्यात्प्राणिनः । उपलक्षणान्मृषा न ब्रूयान्नादत्तं गृण्हीयान्नाब्रह्मा सेवेत न परिग्रहं कुर्यादिति ॥ १० ॥

॥ टीका—अस्मिन्नेवार्थे दृष्टांतानिधित्सयाऽऽह । (उरालमित्यादि)। उरालमिति स्थूलमुदारं जगतऔदारिकजंतुग्रामस्य योगं व्यापारं चेष्टामवस्थाविशेषमित्यर्थः । औदारिकशरीरिणोहि जंतवः प्राक्तनादवस्थाविशेषाद्गर्नकललार्बुदरूपाद्विपर्यासन्नूतं बालकौमारयौवनादिकमुदारं योगं परिसमंतादयंते गच्छंति पर्ययंते । एतडुक्तं नवति । औदारिकशरीरिणोहि मनुष्यादेर्बालकौमारादिकः कालादिकृतोऽवस्थाविशेषोऽन्यथाचाऽन्यथाऽनवन् प्रत्यक्षेणैव लन्यते न पुनर्यादृक् प्राक् तादृगेव सर्वदेति । एवं सर्वेषां स्थावरजंगमानामन्यथाऽन्यथा च नवनं द्रष्टव्यमिति । अपिच सर्वे जंतवआक्रांता अनिन्नूतादुःखेन शारीरमानसेनाऽसातोदयेन दुःखाक्रांताः संतोऽन्यथाऽवस्थानाजो लन्यंते । अतः सर्वेपि ते यथाऽहिंसिता नवंति तथा विधेयं । यदि वा सर्वेऽपि जंतवोऽकांतमननिमतं दुःखं येषां तेऽकांतदुःखाः । चशब्दात् प्रियसुखाश्च ते तान् सर्वान् न हिंस्यादित्यनेन वाऽन्यथात्वदृष्टांतोदर्शितोनवत्युपदेशश्च दत्तइति ॥ ए ॥ किमर्थं सत्वान् न हिंस्यादित्याह । (एवंखुइत्यादि)। खुरवधारणे । एतदेव ज्ञानिनोविशिष्टविवेकवतः सान्याय्यं यत्किंचनप्राणिजातं स्थावरं जंगमं वा न हिनस्ति न परितापयति । उपलक्षणं चैतत् । तेन न मृषा ब्रूयान्नादत्तं गृण्हीयान्नाऽब्रह्मा सेवेत न परिग्रहं परिगृण्हीयान्न नक्तं भुंजीतेत्येवं ज्ञानिनः सारं यत्र कर्माश्रवेषु वर्ततइति । अपिच अहिंसया समता अहिंसासमता तां चैतावद्विजानीयात् । यथा मम मरणं दुःखं वाऽप्रियमेवमन्यस्याऽपि प्राणिलोकस्येति । एवंकारोऽवधारणे । इत्येवं साधुना ज्ञानवता प्राणिनां परितापनाऽपद्रावणादि वा न विधेयमेवेति ॥ १० ॥

वुसिए य विगयगेही, आयाणं सरक्कए ॥ चरिआसणसेज्जासु, नत्तपाणे अ अंतसो ॥ ११ ॥ एतेहिं तिहिं गणेहिं, संजए सततं मुणी ॥ उक्कसं जलणं णूमं, मज्झत्थं च विगिंचए ॥ १२ ॥

अर्थ—एटले मूलगुण कह्या हवे उत्तरगुण कहेछे. दशविध सामाचारीने विषे विविध ना प्रकारे वुसिएके० वश्या, तथा विगतगृद्धि के० जेमां आहारादिकनी लोल्यता नथी; ए साधु ते आयाणं के० आदान, ज्ञान, दर्शन अने चारित्र ए रत्नत्रयने सरक्कए के० म्यक्प्रकारे राखे. एटले जे प्रकारे ए रत्नत्रयनी वृद्धि थाय तेम करे तेज कहेछे. चरिआ चालवुं, एटले चारित्रवंत पुरुषने कोइ प्रयोजन कार्य उपना थकां चालवुं पडे धूसर प्रमाण दृष्टि जोतो थको चाले; तथा प्रतिलेषित, प्रमार्जित एवा आसण के० सन उपर बेशे, तथा सुप्रतिलेषित, सुप्रमार्जित एवा सेज्जासुके० उपाश्रय अथवा ाराने विषे रहे अथवा शयन करे. तथा नत्तपाणेअ के० नात पाणीने विषे अंत के० सम्यक् प्रकारे उपयोग करे एटले निर्दोष आहारनी गवेषणा करे. ॥ ११ ॥ ी पण उत्तरगुण आश्रयीज कहेछे. एतेहिं के० ए पूर्वे कह्याजे तिहिंगणेहिं के० ा स्थानक एटले एक चर्या, बीजुं आसन सज्जा, अने त्रीजुं नातपाणी ए त्रणे ानक रुडी परे जाणवां. एटले चालवामां ईर्यासमिति ए एक स्थानक, अने आसन ज्ञा एटले आदान नांम मात्र निक्षेपणासमिति कही ए बीजुं स्थानक, तथा नत्तपा एटले एषणासमिति कही; अने नातपाणीनी याचना करतां नाषा निरवद्य बोले, ले नाषासमिति पण आवी तथा आहार लीधाथी उच्चार प्रश्रवणनो सद्भाव थाय, रुडीपेरे परठवतां पारिष्ठापनिका समिति पण कही ए त्रीजुं स्थानक जाणवुं. ए त्रणे नकने विषे संजएके० संयत थतो सततंके० सततं एटले निरंतर मुणी के० चारित्र ते उक्कस्संके० उत्कर्ष एटले मान, जलणंके० क्रोध, णूमं के० माया अने मज्झत्थं मध्यस्थ एटले लोन ए चारे कषायने विगिंचए के० आत्मा थकी जूदा करे. ॥१२॥

॥ दीपिका—विविधमनेकधोषितः स्थितोदशविधसामाचर्यां व्युषितः । विगता आदौ गृद्धिर्यस्य सविगतगृद्धिः साधुः । आदीयते प्राप्यते मोक्षोयेन तदादानीयं ज्ञा त्रयं तत्सम्यग्रक्षयेत् । तथा चर्यासनशय्यासु । चर्यागमनं, आसनं निषीदनस्था ाय्या वसतिः, संस्तारकोवा तेषु तथा नक्तपाने चांतशः सम्यगुपयोगवता नाव्यं । पर्थः । ईर्यानाषेषणादाननिक्षेपप्रतिष्ठापनासमितिरूपयुक्तेनांतशोनक्तपानं यावन्नि नन्वेषणीयं ॥ ११ ॥ पुनरुत्तरगुणानाह । एतानि त्रीणि स्थानानि । यथा ईर्या तिरित्येकं स्थानं १ आसनं शय्येत्यादाननांडमात्रनिक्षेपणासमितिरिति द्वितीयं २

नक्तपानमित्येतेन एषणासमितिः । नक्तपानार्थं च प्रविष्टस्य नाषणासंनवान्नाषणासमितिराक्षिप्ता । सति चाहारे प्रश्रवणादीनां सन्नावात्प्रतिष्ठापनसमितिरप्यायाता इति तृतीयं स्थानं ३ एतेषु त्रिषु स्थानेषु सम्यग्यतः संयतआमोक्षाय परिव्रजेदित्युत्तरश्लोकेन संबंधः । तथा सततं मुनिरुत्कर्षोमानः, ज्वलनः क्रोधः, णूमंति गहनं मायेत्यर्थः । संसारमध्ये सर्वदा नवतीति मध्यस्थोलोनः । चः समुच्चये । एतान् मानादीन् कषायान् । (विगिंचएति) । विवेचयेदात्मनः पृथक्कुर्यात् । ननु क्रोधएवादौ सर्वत्र स्थाप्यते ऽत्रतु कथं मानइति चेडुच्यते । माने सत्यवश्यंनावी क्रोधः क्रोधे च सति मानः स्यान्नवेत्यर्थस्य दर्शनाय क्रमोल्लंघनमिति. ॥ १२ ॥

॥ टीका—एवं मूलगुणानन्निधायेदानीमुत्तरगुणानन्निधातुकामआह । वुसिएयइत्यादि । विविधमनेकप्रकारमुषितः स्थितोदशविधचक्रवालसामाचर्यां व्युषितस्तथा विगताऽपगता आहारादौ गृद्धिर्यस्यासौ विगतगृद्धिः साधुरेवंन्नूतश्चादीयते स्वीक्रियते प्राप्यते वा मोक्षोयेन तदादानीयं ज्ञानदर्शनचारित्रत्रयं तत्सम्यग्रक्षयेदनुपालयेत् यथा यथा तस्य वृद्धिर्नवति तथाकुर्यादित्यर्थः ॥ कथंपुनश्चारित्रादि पालितं नवतीति दर्शयति । चर्यासनशय्यासु । चरणं चर्यागमनं साधुनाहि सति प्रयोजने युगमात्रदृष्टिनागंतव्यं तथा सुप्रत्युपेक्षिते सुप्रमार्जिते चासने उपवेष्टव्यं तथा शय्यायां वसतौ संस्तारके वा सुप्रत्युपेक्षितप्रमार्जितस्थानादि विधेयं तथा नक्ते पाने चांतशः सम्यगुपयोगवता नाव्यं । इदमुक्तं नवति । ईर्यानाषेषणादाननिक्षेपप्रतिष्ठापनासमितिभूपयुक्तेनांऽतशोनक्तपानं यावडुजमादिदोषरहितमन्वेषणीयमिति ॥ ११ ॥ पुनरपि चारित्रशुध्यर्थं गुणानधिकृत्याह । एतेहिं इत्यादि । एतान्यनंतरोक्तानि त्रीणि स्थानानि । तद्यथा । ईर्यासमितिरित्येकं स्थानं, आसनं शय्येत्यनेनादाननांडमात्रनिक्षेपणासमितिरित्येतच्च द्वितीयं स्थानं, नक्तपानमित्यनेनैषणासमितिरुपात्ता नक्तपानार्थं च प्रविष्टस्य नाषणासंनवान्नाषासमितिराक्षिप्ता सति चाहारे उच्चारप्रश्रवणादीनां सन्नावात्प्रतिष्ठापनासमितिरप्यायातेऽत्येतच्च तृतीयं स्थानमित्यतएतेषु त्रिषु स्थानेषु सम्यग्यतः संयतआमोक्षाय परिव्रजेदित्युत्तरश्लोकांते क्रियेति । तथा सततमनवरतं मुनिः सम्यक् यथावस्थितजगत्त्रयवेत्ता । उत्कृष्यते आत्मादर्पाध्मातोविधीयतेऽनेनेत्युत्कर्षोमानस्तथात्मानं चारित्रं वा ज्वालयति दहतीति ज्वलनः क्रोधस्तथा णूममिति गहनं मायेत्यर्थः । तस्याअलब्धमध्यत्वादेवमन्निधीयते । तथा आसंसारमसुमतां मध्येंऽतर्नवतीति मध्यस्थोलोनः । चशब्दः समुच्चये । एतान् मानादींश्चतुरोपि कषायांस्तद्विपाकानिज्ञोमुनिः सदा (विगिंचएति) विवेचयेदात्मनः पृथक्कुर्यादित्यर्थः । ननु चान्यत्रागमेक्रोधआदावुपन्यस्यते तथा क्षप

कश्रेण्यामारूढोनगवान् क्रोधादीनेव संज्वलनान् क्षपयति किमर्थमागमप्रसिद्धमुल्लं घ्यादौ मानस्योपन्यासइति ॥ अत्रोच्यते । माने सत्यवश्यंनावी क्रोधः क्रोधेतु मानः स्याद्वानवेत्यस्यार्थस्य प्रदर्शनायान्यथाक्रमकरणमिति. ॥ १२ ॥

समिएउ सयासाहु, पंचसंवरसंवुमे ॥ सिएहि अ
सिए निरकू, अमोरकायपरिवएज्जासित्तिबेमि ॥ १३ ॥

अर्थ—हवे अध्ययन उपसंहरतो कहेछे. समिएके० पांच समिते समितो,उके० तु अ वधारणने अर्थे छे. तथा सयासाहुके० सर्वकालनेविषे साधु केवोछे ? ते कहेछे. पंचसंवर संवुमेके० पांच महाव्रतनो पालनार तथा पांच प्रकारना संवरे करी संवस्यो छतो तथा सिएहिके० जे गृहस्थ पासछादिकने विषे बंधाणा तेवा गृहस्थने विषे असिए के० अ णबंधाणो थको एटले तेने विषे मूर्छा नकरे. जेम कर्दम थकी कमल उंचुंरहे तेम निरकूके० साधु ते आरंन परिग्रह थकी दूर रहे पण तेनी साथे बंधाय नहीं, एवो छतो अमोरकायपरिवएके० ज्यांसुधी मोक्ष न थाय त्यांसुधी संयम पाले. ईत्तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत्. ॥ १३ ॥ इति प्रथमाध्ययनस्य चतुर्थोद्देशकः समाप्तः । प्रथमाध्ययनं स०

॥ दीपिका— एवं समितिनिः समितः साधुः पंचमहाव्रतोपेतत्वात्पंचप्रकारसंवृतः । चशब्दाद्गुप्तिगुप्तस्तथा गृहपाशादिषु सिताबद्धा गृहस्थास्तेष्वसितोन बद्धोन मूर्छितो निक्षुर्नाविनिक्षुरासमंतात् मोक्षाय परिसमंताद्व्रजेः संयमानुष्ठानरत्तोनवेस्त्वमितिशिष्यस्यो पदेशः । इति समाप्तौ । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ १३ ॥ इति तपागच्छाधिपश्रीहेमविमलसू रिस्वशिष्यहर्षकुलप्रणीतायां श्रीसूत्रकृतांगदीपिकायां प्रथमं समयाध्ययनं समाप्तं ॥

॥ टीका— तदेवं मूलगुणानुत्तरगुणांश्चोपदर्श्याऽधुना सर्वोपसंहारार्थमाह । (समिए उसया इत्यादि) तुरवधारणे । पंचनिः समितिनिः समितएव साधुस्तथा प्राणातिपा तादिपंचमहाव्रतोपेतत्वात्पंचप्रकारसंवरसंव्रतस्तथा मनोवाक्कायगुप्तिगुप्तस्तथा गृहपाशा दिषु सिताअवबद्धाः सक्तागृहस्थास्तेष्वसितोऽनवबद्धस्तेषुमूर्छामकुर्वाणः पंकाधारपं कजवत्तत्कर्मणाऽदिह्यमानोनिक्षुर्निक्षणशीलोनावनिक्षुरामोक्षायाऽशेषकर्मापगमलक्षण मोक्षार्थं परि समंतात् व्रजेः संयमानुष्ठानरतोनवेस्त्वमिति विनेयस्योपदेशः । इति अध्य यनसमाप्तौ । ब्रवीमीति गणधरएवमाह यथा तीर्थकृतोक्तं तथैवाहं ब्रवीमि न स्वमनी षिकयेति गतोऽनुगमः । सांप्रतं नयास्तेषामयमुपसंहारः । सव्वसिंपि नयाणं बहुविधव त्तव्वयं निसामित्ता । तं सव्वनयविसुद्धं जं चरणगुणछिओसाहुत्ति ॥ १ ॥ १३ ॥ इति सू त्रकृतांगे प्रथमाध्ययनं समाप्तं ॥ ॥

॥ अथ द्वितीयाध्ययनस्य प्रथमोद्देशकः प्रारंनः ॥

संबुज्झह किंन बुज्झह, संबोही खलु पेच्च डुल्लहा ॥ णोहूवणमंति राइउं, नो सुलनं पुणरवि जीवियं ॥ १ ॥ म्हरा बुड्ढाय पासह, गप्नत्था वि चियंति माणवा ॥ सेणे जह वट्टयं हरे, एवमाउखयंमि तुट्टई ॥२॥

अर्थ–पहेलुं समय नामे अध्ययन कह्युं. हवे बीजुं वैताली नामक अध्ययन कहेछे. तेनो ए संबंध पेहेला अध्ययनने विषे परसमयना दोष कह्या तथा स्वसमयना गुण कह्या. ते सर्व जाणीने जेम कर्म विदारीयें तेम यत्न करवो, ए नाव कहेछे. ते श्री आदीश्वर देवे नरते तिरस्कार कख्या. संवेग उपन्या थकी रुषनदेवना अगणुं पुत्र रुषनदेवनी पासे आव्या. ते स्वपुत्र प्रत्यें उपदेश कहेछे. अथवा श्रीमहावीर देव परखदा प्रत्यें कहेछे. संबुज्झह के० अहो नव्यो ? तमे समजो. ज्ञान, दर्शन तथा चारित्ररूप धर्मनेविषे उद्यम करो; केमके आ अवसर मलवो फरी फरी डुर्लन छे, तो एवो अवसर पामीने किंनबुज्झह के० केम नथी समजता जे आ नवने विषे धर्म नहीं करशो तेने पेच्चके० परनवनेविषे खलुके० निश्चे थकी, संबोहीके० बोधबीज ते डुल्लहाके० डुर्लन छे. णोहूवणमंतिराइउं के० जेम अतिक्रमेली रात्री फरीथी आवे नहीं तेम यौवनादिक सर्व पदार्थ गया तेपण फरी आवे नहीं. णोसुलनंपुणरवि जीवियं के० फरी फरी जीवित शब्दे संयमे करी प्रधान जे जीवितव्य ते सुलन नथी. ॥ १ ॥ हवे सर्व संसारी जीवने आयुष्य अनित्य करी देखाडेछे. म्हरा के० बालक एटले कोइक जीव बाल्यावस्थामांयकांज विनाश पामेछे. तथा कोइएक बुड्ढायके० बुढा (वृद्ध) थईने विनाश पामेछे. तथा पासह के० जूउ के, गप्नत्था विचयंति माणवा के० कोइ एक मनुष्य जे छे, ते गर्नेमां रह्या थकां पण विनाशने पामेछे. एम ए मृत्यु जे छे, ते जीवने सर्व अवस्थाये आवी पोहोचेछे. तेना उपर दृष्टांत कहेछे. जह के० जेम सेणे के० श्येन एटले सींचाणो जे छे, ते वट्टयं के० वाटो एटले तीतर पक्षी तेने बलीने पुहुते हरे के० हरण करी लीये. एवं आउखयंमि तुट्टई के० एम ए मनुष्यनुं आयुष्य पण क्षणे क्षणे त्रूटे छे. एवं जीवाण जीवियं के० ए पूर्वे कह्युं एवुं जीवनुं जीवितव्य जाणवुं. ॥ २ ॥

॥ दीपिका–व्याख्यातं प्रथमं समयाध्ययनं । अथ द्वितीयं वैतालीयाध्ययनं व्याख्यायते तत्र प्रथमाध्ययने परसमयदोषाः स्वसमयगुणाश्चोक्तास्तांश्च ज्ञात्वा यथा कर्म विदार्यते तथा बोधोविधेयइत्यनेन संबंधेनागतस्यास्योद्देशकत्रयं । तत्र प्रथमोद्देशकस्येदमादिसूत्रं । (संबुज्झहत्ति) । तत्र नगवानादितीर्थंकरोनरतः तिरस्कारागतसंवेगान्

स्वपुत्रानुद्दिश्येदमाह । यदि वा सुरासुरनरोरगतिरश्चः समुद्दिश्याह । यथा बुध्यध्वं यूयं धर्मे बोधं कुरुत । किं न बुध्यध्वं एवंविधसामग्र्यां सत्यां कस्माद्धर्मे बोधोन क्रियतइत्यर्थः । यतः अकृतधर्माणां प्रेत्य परलोके संबोधिर्धर्मप्राप्तिरूपा पुनर्डुर्लजा । डुर्निश्चये । नैवातिक्रांताराात्रयजपनमंति पुनर्ढौकंते । नहि अतिक्रांतोयौवनादिकालः पुनरावर्त्ततइतिजावः । पुनरपि जीवितं संयमजीवितं नो नैव सुलजं । यदि वा जीवितमायुस्त्रुटितं सत्संधातुं न शक्यतइति ॥ १ ॥ आयुषोऽनियतत्वमाह । (महरेति) । महराबालाएव केचिज्जीवितं त्यजंति तथा वृद्धागर्नस्थाअपि मानवाः । उपदेशयोग्यत्वान्मानवग्रहणं । एतत्पश्यत यूयं यत्सर्वास्वप्यवस्थासु प्राणी जीवितं त्यजतीति । तथाहि त्रिपल्योपमायुष्कस्यापि पर्याप्त्यनंतरमंतर्मुहूर्तेनैव कस्यचिन्मृत्युरुपतिष्ठतीति । अत्र दृष्टांतमाह । यथा श्येनोवर्तकं तित्तिरिजीवं हरते हंति एवमायुःक्षये प्राणान् मृत्युरपहरेत् । आयुःक्षये वा त्रुटयति जीवितं. ॥ २ ॥

॥ टीका—उक्तं समयाख्यं प्रथममध्ययनं सांप्रतं वैतालीयाख्यं द्वितीयमारन्यते । अस्य चाऽयमनिसंबंधः । इहाऽनंतराऽध्ययने स्वसमयगुणाः परसमयदोषाश्च प्रतिपादितास्तांश्च ज्ञात्वा यथाकर्मविदार्यते तथा बोधोविधेयइत्यनेन संबंधेनाऽयातस्याऽस्याध्ययनस्योपक्रमादीनि चत्वार्यऽनुयोगद्वाराणि जणनीयानि । तत्राऽप्युपक्रमांतर्गतोऽर्थाऽधिकारोद्विधा । अध्ययनार्थाऽधिकारउद्देशार्थाधिकारश्च । तत्राऽध्ययनार्थाधिकारः प्रागेव निर्युक्तिकारेणाऽजाणि । णाऊणबुज्झणाचेवेत्यनेन गाथाद्वितीयपादेनेत्युद्देशार्थाधिकारं तु स्वतएव निर्युक्तिकारउत्तरत्र वक्ष्यति । नामनिष्पन्नं तु निक्षेपमधिकृत्य निर्युक्तिकृदाह " वेयालियंमि वेया,लगो य वेयालणं वेयालियं । तिन्निवि चउक्कगाइं, वेयालेउ एब पुण जीवी " ॥ ३७ ॥ (वेयालियमित्यादि) । तत्र प्राकृतशैल्या वेयालियमिति । दृविदारणेइत्यस्य धातोर्विपूर्वस्य ग्रंदसत्वात् जावे एवुल्प्रयांतस्य विदारकमिति क्रियावाचकमिदमध्ययनाऽजिधानमिति । सर्वत्र च क्रियायामेतत्त्रयं सन्निहितं । तद्यथा कर्ता करणं कर्म चेत्यतस्तद्दर्शयति । विदारकोविदारणं विदारणीयं च तेषां त्रयाणामपि नामस्थापनाद्रव्यजावजेदाच्चतुर्धा निक्षेपेण । त्रीणि चतुष्ककानि ड्रष्टव्यानि । अत्र च नामस्थापने क्षुसे ड्रव्यविदारकोयोहि ड्रव्यं काष्ठादि विदारयति । जावविदारकस्तु कर्मणोविदार्यत्वात् नो आगमतोजीवविशेषः साधुरिति ॥ ३७ ॥ करणमधिकृत्याऽह " दवं च परसुमादी दंसणणाणतवसंयमाजावे । दवं च दारुगादी जावे कम्मं वियालणियं " ॥ ३ए ॥ (दवंचेत्यादि) नामस्थापने क्षुसे ड्रव्यविदारणं परश्वादि जावविदारणं दर्शनज्ञानतपःसंयमास्तेषामेव कर्मविदारणे सामर्थ्यमित्युक्तं जवति । विदारणीयं

तु नामस्थापने अनादृत्य द्रव्यं दार्वादि । नावे पुनरष्टप्रकारं कर्मेति ॥ ३९ ॥ सांप्रतं वे तालियमित्येतस्य निरुक्तं दर्शयितुमाह " वेयालियं इह देसियंति वेयालियंतउ होइ ॥ वेयालियं तहा वित्तमत्थि तेणे वयणिबध्दं " ॥ ४० ॥ (वेयालियमित्यादि) । इ हाऽध्ययनेऽनेकधाकर्मणां विदारणमनिहितमिति कृत्वैतदध्ययनं निरुक्तिवशाद्विदारकं ततोनवति । यदि वा वैतालियमित्यध्ययननामात्राऽपि प्रवृत्तौ निमित्तं । वैतालियछंदोवि शेपरूपं वृत्तमस्ति तेनैव च वृत्तेन निबध्दमित्यध्ययनमपि वैतालीयं । तस्य चेदं लक्षणं । वैतालीयलिंगनैधनाः, षडयुक्त्यादोष्टौ समे चलः । नसमोऽत्र परेण युज्यते, नेतः षट्च नि रंतरायुजोः ॥ ४० ॥ सांप्रतमध्ययनस्योऽपोद्घातं दर्शयितुमाह " कामं तु सासयमिणं कहियं उछावयंति उसन्नेणा ॥ अठ्ठोणउतिसयाणं सोऊण वि तेइ पवइया " ॥ ४ ॥ (काममित्यादि) कामशब्दोऽयमन्युपगमे । तत्र यद्यपि सर्वोप्यागमः शाश्वतः तदंतर्गत मध्ययनमपि तथाऽपि नगवतादितीर्थाधिपेनोत्तपन्नदिव्यज्ञानेनाऽष्टापदोपरिव्यवस्थितेन नरताधिपनरतेन चक्रवर्त्तिनोऽपहृतैरष्टनवतिनिः पुत्रैः पृष्टेन यथा नरतोऽस्मानाऽज्ञां का रयत्यतः किमस्माभिर्विधेयमित्यतस्तेषामंगारदाहकदृष्टांतं प्रदर्श्य न कथंचिज्जंतोर्नोगे च्छा निवर्ततइत्यर्थः । गर्नेमिदमध्ययनं कथितं प्रतिपादितं तेऽप्येतछ्रुत्वा संसारासारता मवगम्य विषयाणां च कटुविपाकतां निःसारतां च ज्ञात्वा मत्तकरिकर्णवच्चपलमायुर्गि रिनदीवेगसमं यौवनमित्यतोनगवदाज्ञैव श्रेयस्करीति तदंतिके सर्वे प्रव्रज्यां गृहीतवं तइत्यत्र उद्देसेनिद्देसेयइत्यादिसर्वोऽप्युपोद्घातोनणनीयः ॥ ४१ ॥ सांप्रतं उद्देशार्था धिकारं प्रागुल्लिखितं दर्शयितुमाह " पढमे संबोहो अनिच्चयाय वीयंमि माणवज्जणया, अहिगारो पुण नणिउ, तहा तहा बहुविहो तत्थ ॥ ४२ ॥ उद्देसंमिय तइये, अन्नाण वियस्स अवचउ नणिउ । वज्जेयव्वो य सया सुयप्पमाउ जइ जणेण " ॥ ४३ ॥ (प ढमइत्यादिगाथाद्वयं) तत्र प्रथमोद्देशिके हिताऽहितप्राप्तिपरिहारलक्षणोबोधोविधेयोऽ नित्यता वेत्ययमर्थाधिकारः । द्वितीयोद्देशके मानोवर्जनीयइत्ययमधिकारः । पुनश्च त थाऽनेकप्रकारोबहुविधः शब्दादाऽवर्थेऽनित्यतादिप्रतिपादकोऽर्थोऽधिकारोनणितइति । तृतीयोद्देशके बहुविधज्ञानोपचितस्य कर्मणोऽपचयरूपोर्थाधिकारोनणितइति यतिज नेनच सुखप्रमादोवर्जनीयः सदेति ॥ ४३ ॥ सांप्रतं सूत्रानुगमे अस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं । (संबुज्झहेत्यादि) तत्र नगवानादितीर्थकरोनरतस्तिरस्का रागतसंवेगान् स्वपुत्रानुद्दिश्येदमाह । यदि वा सुरासुरनरोरगतिरश्चः समुद्दिश्य प्रोवाच य था संबुध्यध्वं यूयं ज्ञानदर्शनचारित्रलक्षणे धर्मे बोधं कुरुत । यतः पुनरेवंनूतोऽवसरो डुरापः । तथाहि । मानुषं जन्म तत्राऽपि कर्मनूमिः पुनरार्यदेशः सुकुलोत्पत्तिः सर्वेंद्रिय

पाटवं । श्रवणश्रद्धादिप्राप्तौ सत्यां स्वसंवित्यवष्टंभेनाह । किं न बुध्यध्वमित्यवश्यमेवंविध सामग्र्यावाप्तौ सत्यां सकर्णेन तुच्छान् भोगान् परित्यज्य सद्धर्मबोधोविधेयइतिभावः । तथाहि । निर्वाणादिसुखप्रदे नरभवे जैनेंद्रधर्मान्विते, लब्धे स्वल्पमचारु कामजसुखं नो सेवितुं युज्यते । वैडूर्यादिमहोपलौघनिचिते प्राप्तेऽपि रत्नाकरे, लातुं स्वल्पमदीप्तिकाचशकलं किं चोऽचितं सांप्रतं ॥१॥ अकृतधर्मचरणानां तु प्राणिनां संबोधिः सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्राऽवाप्तिलक्षणा प्रेत्य परलोकगतानां खलुशब्दस्याऽवधारणार्थत्वात् सुदुर्लभैव । तथाहि । विषयप्रमादवशात् सकृत् धर्माचरणाद्भ्रष्टस्याऽनंतमपि कालं संसारे पर्यटनमभिहितमिति । किंच । हुरित्यवधारणे । नैवाऽतिक्रांताराात्र्यउपनमंति पुनर्ढौकंते । नह्यतिक्रांतोयौवनादिकालः पुनरावर्त्ततइतिभावः । तथाहि । भवकोटिभिरसुलभं, मानुष्यं प्राप्य कः प्रमादोमे । नच गतमायुर्भूयः प्रत्येत्यपि देवराजस्य ॥ १ ॥ नोनैव संसारे सुलभं सुप्रापं संयमप्रधानं जीवितं यदि वा जीवितमायुस्त्रुटितं सत् तदेव संधातुं न शक्यतइति वृत्तार्थः । संबोधश्च प्रसुप्तस्य सतोभवति स्वापश्च निद्रोदये निद्रासंबोधयोश्च नामादिश्चतुर्द्धा निक्षेपः । तत्र नामस्थापने अनादृत्य द्रव्यभावनिक्षेपं प्रतिपादयितुं निर्युक्तिकृदाह । “दव्वं निद्दा वेउ दंसणनाणतवसंजमा भावे । अहिगारो पुणभणिउ नाणे तव दंसणचरित्ते ” ॥ ४४ ॥ (दव्वंनिद्दावेउ इति) इह च गाथायां द्रव्यनिद्राभावसंबोधश्च दर्शितः । तत्राऽर्थंतग्रहणेन भावनिद्राद्रव्यबोधयोस्तदंतर्वर्तिनोर्ग्रहणं द्रष्टव्यं । तत्र द्रव्यनिद्रा निद्रा वेदोवेदनमनुभवः । दर्शनावरणीयविशेषोदयइति यावत् । भावनिद्रातु विषयज्ञानदर्शनचारित्रशून्यता । तत्र द्रव्यबोधोद्रव्यनिद्रया सुप्तस्य बोधनं । भावे भावविषये पुनर्बोधोदर्शनज्ञानचारित्रतपःसंयमाद्रष्टव्याः । इह च भावप्रबोधेनाऽधिकारः सच गाथापश्चार्द्धेन सुगमेन प्रदर्शितइति । अत्र च निद्राबोधयोर्द्रव्यभावभेदाच्चत्वारो भंगायोजनीयाइति ॥ ४४ ॥ १ ॥ भगवानेव सर्वसंसारिणां सोपक्रमत्वादनियतमायुरुपदर्शयन्नाह । (डहराबुड्ढायेत्यादि) डहराबालाएव केचन जीवितं त्यजंति । तथा वृद्धाश्च गर्भस्थाअप्येतत्पश्यत यूयं के ते मानवामनुष्यास्तेषामेवोपदेशदानार्हत्वात् मानवग्रहणं । बह्वपायत्वादायुषः सर्वास्वऽप्यवस्थासु प्राणी प्राणांस्त्यजतीत्युक्तं भवति । तथाहि । त्रिपल्योपमायुष्कस्यापि पर्याप्त्यनंतरमंतर्मुहूर्तेनैव कस्यचिन्मृत्युरुपतिष्ठतीति । अपिच गर्भस्थं जायमानमित्यादि । अत्रैव दृष्टांतमाह । यथा श्येनः पक्षिविशेषोवर्त्तकं तित्तिरजातीयं हरेत् व्यापादयेदेवं प्राणिनः प्राणान् मृत्युरुपहरेत् । उपक्रमकारणमायुष्कमुपक्रमेत् । तदभावे वा आयुष्यक्षये त्रुटयति व्यवछिद्यते जीवानां जीवितमिति शेषः ॥ २ ॥

मायाहिं पियाहिं लुप्पइ, नो सुलहा सुगई य पेच्चउ ॥ एयाइं जयाइं पेहिया, आरंजा विरमेज्ज सुव्वए ॥ ३ ॥ जमिणं जगती पुढो जगा, कम्मेहिं लुप्पंति पाणिणो ॥ सयमेव कडेहिं गाहइ, णो तस्स मुच्चेज्ज पुठ्ठयं ॥ ४ ॥

अर्थ–कोइएक जीव बापडो मायाहिं पियाहिं के० मातापितादिक स्वजने लुप्पइ के० संसारमांहे जमाड्यो थको एटले तेने मोहे बांध्यो थको, धर्मने विषे उद्यम करे नहीं ते जीवने पेच्चउ के० परजवने विषे सुगईय के० सद्गति जे मुक्ति ते नोसुलहा के० सुलज नथी. केमके मोहरूप क्लेश तथा विषयसुख थकी डुर्गति थाय एवुं जाणी एयाइंजयाइं के० ए मोहादिक जयने पेहिया के० देखीने जे आरंजाविरमेज्ज के० आरंज थकी विरमे, निवृत्ते ते सुव्वएके० सुव्रत थाय. एटले शोजनिकव्रत वंत थाय. ॥३॥ हवे जे कोई आरंजादिक थकी निवृत्ते नहीं तेने दोष कहेछे, जमिणं के० जे कारणे अव्रति जीवने आगल जे कहेशे ते उत्पन्न थाय. ते शुं उत्पन्न थाय? तो के जगती के० जगतमांहे पुढोजगा के० पृथक् पृथक् जुदां जुदां जीवनां स्थानक जे नरकादिक छे, ते स्थानकोमांहे कम्मेहिं लुप्पंति पाणिणो के० प्राणी पोतानां उपार्जेलां कर्मोनां जे डुःख तेणेकरी पीडाय. ते प्राणी सयमेवकडेहिं के० स्वमेव एटले पोते कीधां जे कर्म तेणे करी गाहइ के० अवगाहे एटले नरकादिक स्थानक डुःखना हेतु उपचय करे. णोतस्समुच्चेज्ज के० ते अशुजविपाक थकी न मूकाय; अपुठ्ठयं के० अणफरश्यो एटले ते बांधेलां कर्म जोगव्या विना बूटे नहीं. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका–मायेति । योमातापितृमोहेन धर्मोद्यमं न कुरुते सतैरेव मातापित्रादि निर्लुप्यते संसारेच्राम्यते । तस्य प्रेत्य जन्मांतरे सुगतिश्च नो सुलजा । एतानि डुर्गतिग मनादीनि जयानि (पेहिया) प्रेक्ष्यारंजाद्विरमेत् सुव्रतः शोजनव्रतः । सुस्थितोवा पाठांतरे ॥ ३ ॥ (जमिणमिति) यद्यस्मादनिवृत्तानामिदं स्यात् । जगति पृथिव्यां (पुढो जगत्ति) पृथग्जूताव्यवस्थिताः सावद्याचारोपचितैः कर्मजिः प्राणिनोलुप्यंते नरकादिषु च्राम्यंते । स्वयमेव कृतैः कर्मजिर्नरकादिस्थानान्यजिगाहते । नच तस्याऽशुजाचरितस्य कर्मणो विपा केनाऽस्पृष्टोमुच्यते जंतुः ॥ ४ ॥

॥ टीका–तथा (मायाहींत्यादि) कश्चिन्मातापितृज्यां मोहेन स्वजनस्नेहेन च न धर्मं प्रत्युद्यमं विधत्ते सचतैरेव मातापित्रादिजिर्लुप्यते संसारे च्राम्यते । तथाहि । वि हितमजोहमहोमह,न्मातापितृपुत्रदारबंधुसंज्ञं । स्नेहमयमसुमतामसः किंबंधनं शृंखलं

खलेन धात्रा ॥ १ ॥ तस्य च स्नेहाकुलितमानसस्य सदसद्विवेकविकलस्य स्वजनपोषणार्थं यत्किंचनकारिणइहैव सद्भिर्निंदितस्य सुगतिरपि प्रेत्य जन्मांतरे नोसुलभाऽपि तु मातापितृव्यामोहितमनसस्तदर्थं क्लिश्यतोविषयसुखेप्सातश्च दुर्गतिरेव भवतीत्युक्तं भवति । तदेवमेतानि भयानि भयकारणानि दुर्गतिगमनादीनि (पेहियत्ति) प्रेक्ष्याऽरंभात्सावद्याऽनुष्ठानरूपाद्विरमेत् । सुव्रतः शोभनव्रतः सन् सुस्थितोवेति पाठान्तरं ॥ ३ ॥ अनिवृत्तस्य दोषमाह । (जमिणमित्यादि) यद्यस्मादनिवृतानामिदं भवति । किं तत् जगति पृथिव्यां (पुढोत्ति) पृथग्भूताव्यवस्थिताः सावद्यानुष्ठानोपचितैः कर्मभिर्विलुप्यंते नरकादिषु यातनास्थानेषु भ्राम्यंते । स्वयमेव च कृतैः कर्मभिर्नेश्वराद्यापादितैर्गाहते नरकादिस्थानानि यानि तानि वा कर्माणि दुःखहेतूनि गाहते उपचिनोति । अनेन च हेतुसद्भावः कर्मणामुपदर्शितोभवति । नच तस्याऽशुभाऽचरितस्य कर्मणोविपाकेनाऽस्पृष्टोऽछुप्तो मुच्यते जंतुः । कर्मणामुदयमननुभूय तपोविशेषमंतरेण दीक्षाप्रवेशाद्विना न तदपगमं विधत्तइतिभावः ॥ ४ ॥

देवा गंधवरक्कसा, असुरा भूमिचरा सिरिसिवा ॥ राया नरसेट्ठिमाहणा, ठणा ते विचयंति दुक्खिया ॥५॥ कामेहिंय संथवेहिय गिद्धा, कम्मसहा कालेण जंतवो॥ताले जह बंधणच्चुए,एवं आउक्खयंमि तुट्टती ॥६॥

अर्थ—हवे सर्व स्थाननुं अनित्यपणुं देखाडेछे. देवा के० देवता ते ज्योतिषि सौधर्मादिक तथा गंधवरक्कसा के० गांधर्व राक्षस एटले व्यंतरदेवो कह्या, तथा असुरा के० दश प्रकारना भुवनपति तथा भूमिचरा के० भूमिचरादिक ते मनुष्यादिक जाणवा. अने सिरिसिवा के० सरीसृप एटले सर्पादिक तिर्यंच जाणवा; तथा राया के० राजा चक्रवर्त्यादिक अने नर के० सामान्य मनुष्य, सेट्ठिके० श्रेष्ठि ते नगरमांहे मोहोटा, माहणा के० ब्राह्मण, ठणा तेविचयंति दुक्खिया के० एटला सर्व पोतपोतानां स्थानकने पोते दुखिया थया थका छांमेछे एटले सर्व प्राणीमात्रने अंतकाले दुःख उपजेछे इत्यर्थः ॥५॥ वली तेहिज भाव कहेछे. कामेहिंयके० कामते विषयादिक भोग अने संथवेहिय के० संस्तवते मातापितादिक तथा स्वसुर वर्गादिक तेनो परिचय, तेणेकरी गिद्धाके० आसक्त छतो कम्मसहाकालेण के० काले कर्मविपाके एटले भोगववाने प्रस्तावे जंतवो के० जीव कर्मनो सहन करनार थाय, एटले विषयासक्त मनुष्यने आगमिक काले दुःखज थाय, परंतु ते जीवने काम, भोग तथा स्वजन ए सर्व दुःख थकी राखनार नथी. जह के० जेम ताले के० तालवृक्षनुं फल ते बंधणच्चुए के० बीट थकी

बूटे तेवारे अवश्य पडे, एवं के० एम आउरकयंमि तुट्टती के० जीव, जे छे ते आयुष्य ना क्षय थकी जेवारे विनाश पामे तेवारे तेने कोइ जीवाडी शके नहीं. ॥ ६ ॥

॥ दीपिका–देवेति । देवाज्योतिष्कसौधर्माद्याः गंधर्वराक्षसयोरुपलक्षणार्थत्वादष्टप्रकाराव्यंतराः । असुरा दशधा नवनपतयः । येचान्ये नूमिचराः, सरीसृपास्तिर्यंचः । राजानश्च क्रिहरिप्रमुखाः । नराः सामान्यमनुष्याः । श्रेष्ठिनः पुरमहत्तरा ब्राह्मणाश्च । एते सर्वेपि स्वस्थानानि डुःखिताः संतस्त्यजंते । सर्वेषां मरणं डुःखदायीति ॥५॥ (कामेहिंति) कामैरिछामदनरूपैः संस्तवैः पूर्वापरनूतैर्गृद्धाआसक्ताः कर्मविपाकसहिस्नवः कालेन जंतवः स्युः । नोगेन्नोर्विषयासेवने क्लेशएवेत्यर्थः । कामनोगैर्न त्राणमस्तीत्याह (तालेत्ति) तालफलं यथा बंधनात् वृंतात् च्युतमत्राणं पतति एवं जंतुरपि स्वायुःक्षये त्रुटयति च्यवते ॥६॥

॥ टीका–अधुना सर्वस्थानाऽनित्यतां दर्शयितुमाह (देवाइत्यादि) देवाज्योतिष्कसौधर्माद्याः, गंधर्वराक्षसयोरुपलक्षणत्वादष्टप्रकाराव्यंतरागृह्यंते । तथा असुरादशप्रकारान्नवनपतयः, ये चाऽन्ये नूमिचराः सरीसृपाद्यास्तिर्यंचः, तथा राजानश्चक्रवर्तिनोबलदेववासुदेवप्रनृतयः । तथा नराः सामान्यमनुष्याः । श्रेष्ठिनः पुरमहत्तराब्राह्मणाश्चैते सर्वेऽपि स्वकीयानि स्थानानि डुःखिताः संतस्त्यजंति । यतः सर्वेषामपि प्राणिनां प्राणपरित्यागे महद्दुःखं समुत्पद्यतइति ॥ ५ ॥ किंच (कामेहिंत्यादि) कामैरिछामदनरूपैस्तथा संस्तवैः पूर्वापरनूतैर्गृद्धा अध्युपपन्नाः संतः (कम्मसहित्ति) कर्मविपाकसहिस्नवः कालेन कर्मविपाककालेन जंतवः प्राणिनोन्नवंति । इदमुक्तं नवति । नोगेप्सोर्विषयाऽसेवनेन तडुपशममिछतइहामुत्र क्लेशएव केवलं न पुनरुपशमावाप्तिः । तथाहि । उपनोगोपायपरो, वांछति यः शमयितुं विषयतृष्णां । धावत्याऽक्रमितुमसौ पुरो पराण्हे निजछायां । नच तस्य मुमूर्षोः कामैः संस्तवैश्च त्राणमस्तीति दर्शयति । यथातालफलं बंधनात् वृंतात् च्युतमत्राणमवश्यं पतति एवमसावपि स्वायुषःक्षये त्रुटयति जीवितात् च्यवतइति ॥६॥

जे यावि बहुस्सुए सिया, धम्मिय माहणनिक्खुएसिया ॥ अनिणूमकडेहिं मुछिए, तिवं से कम्मेहिं किच्चती ॥७॥ अह पास विवेगमुट्ठिए, अवितिन्ने इह नासई धुवं ॥ णाहिसि आरं कउ परं वेहासे कम्मेहिं किच्चती ॥८॥

अर्थ–जेयाविबहुस्सुए के० जे कोइ बहुश्रुत एटले शास्त्रना पारंगामी सियाके०होय, तथा धम्मियके० धार्मिक एटले धर्मना करनार होय तथा माहणनिक्खुएके० ब्राह्मण अने निक्षुक एटले निक्षा अटनशील एवा सिया के० होय; तेपण अनिणूमके० माया

येकरी कडेहिं के० कीधां एवां जे कर्म तेने विषे मुछिए के० मूर्छित बतां तिवंसे के० तीव्र एटले आकरा एवा कम्मेहिं के० कर्म तेणेकरी किच्चती के० पीडाय; एटले सारो अथवा नरसो कोई पण जीव करेला कर्मने नोगव्याविना बूटे नहीं. ॥ ७ ॥ हवे ज्ञान, दर्शन अने चारित्रविना अन्य कोइ मोक्षमार्ग नथी एवुं देखाडेबे. अहपास के० एवुं देखीने शिष्य प्रत्ये गुरु एम कहेबे के, कोइएक दर्शनी विवेक के० परिग्रहनो परित्याग करी उठिते के० उठ्यो अर्थात् प्रव्रज्याने विषे सावधान थयो; परंतु अवितिन्ने के० सम्यक् परिज्ञानने अनावे तिन्न एटले संसारसमुड थकी तर्यो नहीं, एवो बतो वली इहनासइ के० एम नाषे के धुवं के० जे मोक्षनो मार्ग अथवा मोक्षनो उपाय ते अमाराज आचार थकीबे एम कहे. माटे हे शिष्य? तेना मार्गे प्रपन्न बतो तुं णाहिसिके० क्यां थकी जाणीश? आरं के० इहलोक अने वली कउके० क्यां थकी परं के० परलोकने जाणीश अथवा आरं एटले गृहस्थावास अने परं एटले प्रव्रज्या अथवा आरं एटले संसार अने परं एटले मोक्ष तेने केम जाणीश एटले इहलोक परलोक बन्ने थकी भ्रष्ट एवो थको वेहासे के० अंतराले एटले संसारमांहेज कम्मेहिं किच्चइ के० पोताना करेला जे कर्म तेणेकरी पीडातो जइश. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–(जेयाविति) येचापि बहुश्रुताः स्युर्येधार्मिकास्तथा ब्राह्मणास्तथा निक्षुकाः स्युः आनिमुख्येन (णूमंति) कर्म माया वा तत्कृतैरसदनुष्ठानैर्मूर्छितास्तीव्रमत्यर्थं । सेत्ति आर्षत्वाद्बहुवचनं ज्ञेयं । ते कर्मनिः कृत्यंते पीड्यंते ॥ ७ ॥ ज्ञानादिसाध्यएव मोक्षोन तीर्थिकोक्तइत्याह । (अहेति) अथाऽनंतरं त्वं पश्य विवेकं त्यागं परिग्रहस्य ज्ञानं वा संसारस्याश्रित्य उत्थितः स्वक्रियोद्युक्तः सम्यग्ज्ञानानावादवितीर्णः संसाराब्धिमतीर्णः केवलं ध्रुवं मोक्षं तडुपायं वा नाषतएव नतु विधत्ते ज्ञानानावादित्यर्थः । तन्मार्गप्रपन्नस्त्वमपि कथमारं इहनवं परं वा परनवं ज्ञास्यसि । एवं नूतश्चो नयभ्रष्टो (वेहासित्ति) अंतराले कर्मनिः कृत्यते पीड्यते ॥ ८ ॥

॥ टीका–अपिच (जेयावीत्यादि) येचाऽपि बहुश्रुताः शास्त्रार्थपारगाः । तथा धार्मिकाधर्माचरणशीलाः । तथा ब्राह्मणाः । तथा निक्षुकानिक्षाटनशीलाः स्युर्नवेयुः । तेऽप्यानिमुख्येन (णूमंति) कर्म माया वा तत्कृतैरसदनुष्ठानैर्मूर्छितागृध्रास्तीव्रमत्यर्थं । अत्र च ग्रांदसत्वाद्बहुवचनं इष्टव्यं । एवंनूताः कर्मनिरसद्वेद्यादिनिः कृत्यंते छिद्यंते पीड्यंतइतियावत् ॥ ७ ॥ सांप्रतं ज्ञानदर्शनचारित्रमंतरेण नाऽपरोमोक्षमार्गोऽस्तीति त्रिकालविषयत्वात् सूत्रस्याऽगामितीर्थिकधर्मप्रतिषेधार्थमाह (अहेत्यादि) अथेत्यधिकारांतरे बन्हादेशो एकादेशइति । अथेत्यनंतरं एतच्च पश्य । कस्तीर्थिकोविवेकं

परित्यागं परिग्रहस्य परिज्ञानं वा संसारस्या ऽऽश्रित्योऽह्नितः प्रव्रज्योत्थानेन । सच स म्यक् परिज्ञानानावादवितीर्णः संसारसमुद्रं तितीर्षुः केवलमिह संसारे प्रस्तावे वा शाश्वतत्वात् ध्रुवोमोक्षस्तं तदुपायं वा संयमं नाषतएव न पुनर्विधत्ते तत्परिज्ञाना नावादितिनावः । तन्मार्गे प्रपन्नस्त्वमपि कथं ज्ञास्यसि । आरमिहनवं कुतोवा परं पर लोकं । यदि वा आरमिति गृहस्थत्वं परमिति प्रव्रज्यापर्यायं ।अथवा आरमिति संसा रं परमिति मोक्षं एवंनूतश्चाऽन्योऽप्युनयत्रष्टः । (वेहासित्ति) अंतराले उनयानावतः स्वकृतैः कर्मनिः कृत्यते पीडयतइति ॥ ८ ॥

जइ वि य णिगणे किसे चरे, जइविय भुंजिय मासमंतसो ॥ जे इह मायावि मिजई, आगंतागप्नायणंतसो ॥ ए ॥ पुरिसो रम पावकम्मुणा, पलियंतं मणुयाणजीवियं ॥ सन्ना इह काममु छिया, मोहं जंति नरा असंवुमा नरा ॥ १० ॥

अर्थ–हवे शिष्य कहेछे के, हे नगवन्? केटलाएक दर्शनी निपरिगृही तथा तपस्या ना करनार देखायछे, तो तेने मोक्ष केम नहोय? हवे गुरु कहेछे के, जइविय के० यद्य पि ते परतीर्थिक तापसादिक अथवा आज्ञा थकी त्रष्टस्वयूथिक णिगणे के० नग्न सर्व बाह्य परिग्रह रहित, किसे के० कृश डुर्बल कीधुंछे शरीर जेमने एवा छतां चरे के० पोतपोतानी प्रव्रज्या आदरीने विचरेछे. वली जइविय के० यद्यपि भुंजिय मासमं तसोके० मासमास खमण करी मासने अंते जमे तथापि जेइह के० जे आ संसारने विषे मायावि के० मायासहित मिज्जइ के० संयोगकरे. उपलक्षणथी कषायादिके करी युक्त होय ते आगंतागप्नयाणंतसो के० आगमिक काले अनंता गर्नादिक डुःख पामे, ए टले अनंतो संसार परिन्रमण करे. ॥ ए ॥ हवे जे कारणे मिथ्यादृष्टिने उपदेशे घणो कायक्लेशे, पण मुक्ति नथी तेकारणे निरते मार्गें रहेवुं ए नाव कहेछे. पुरिसो के० अ हो पुरुषो? तमे पावकम्मुणा के० पापकर्म थकी उपरम के० निवर्त्तो. केमके पलियंतं मणुयाणजीवियं के० मनुष्यनुं जीवितव्य ते पल्योपमांतछे, एटले संयमरहित जीवनुं जो घणुंज आयुष्य होय तो त्रण पल्योपम होय अने संयमसहित तो एक पल्योपमनी अंदर जाणवुं एटले आठ वर्षें उणी एक पूर्वकोडी एटलुंज मनुष्यनुं आयुष्यछे तेतो गयुंज जाणजे एवुं जाणीने जेटलो काल जीविए तेटलो काल सम्यक् अनुष्ठाने करी सफल करिए वली जे नरा के० मनुष्य सन्नाइह के० नोग, स्नेह पंकनेविषे खुता अथवा काममुछिया के० कामनोगने विषे मूर्छित छता एवाजे मनुष्य असंवुमा नराके० ते.

पुरुष असंवरी बतां मोहंजंति के०मोहने विषे पोहोचे एटले हिताहित न जाणे.॥१०॥

॥ दीपिका—जइवीति । यद्यपि कश्चित्तापसादिर्नग्नः कृशश्च चरेत् । यद्यपि षष्ठाष्टमादिकुर्वन् यावदंतशोमासं स्थित्वा नुंक्ते तथापि योमायावी उपलक्षणात्कषाययुक्तोमीयते सगर्नाय गर्नार्थमनंतशोऽनंतवारं आगंता यास्यति । अनंतकालं संसारे च्रमिष्यतीति नावः ॥ ए ॥ पुरीसोति । हे पुरुष त्वं पापकर्मणः सकाशात् उपरम निवर्तस्व । यतोमनुजानां जीवितं सुबह्वपि त्रिपल्योपमांतं संयमजीवितं वा पल्योपमस्यांतर्मध्ये पूर्वकोटिमितमित्यर्थः । अथवा परिसमंतादंतो यस्य तत् पर्यंतं सांतमित्यर्थः । ये पुनः कामेषु इह्रामदनादिषु मूर्छिताः सन्नामग्राइह संसारे ते मोहं यांति ते मोहनाय कर्म बध्नंति असंवृताः संवररहितानराः ॥ १० ॥

॥ टीका—ननु च तीर्थिकाअपि केचन निष्परिग्रहास्तथा तपसा निष्टप्तदेहाश्च तत्कथं तेषां नो मोक्षावाप्तिरित्येतदाशंक्याह । (जइविइत्यादि) यद्यपि तीर्थिकः कश्चित्तापसादिस्त्यक्तबाह्यगृहवासादिपरिग्रहत्वात् निष्किंचनतया नग्नस्त्वक्त्राणानावाच्च कृशश्चरेत् स्वकीयप्रव्रज्यानुष्ठानं कुर्यात् । यद्यपिच षष्ठाष्टमदशमद्वादशादितपोविशेषं विधत्ते यावदंतशो मासं स्थित्वा नुंक्ते तथापि आंतरकषायाऽपरित्यागान्न मुच्यते इतिदर्शयति । यस्तीर्थिकइह मायादिना मीयते उपलक्षणार्थत्वात् कषायैर्युक्तइत्येवं परिछिद्यते । असौ गर्नाय गर्नार्थमासमंतात् गंता यास्यत्यनंतशोनिरवधिकं कालमिति । एतडुक्तं नवति । अकिंचनोऽपि तपोनिष्टप्तदेहोऽपि कषायाऽपरित्यागान्नरकादिस्थानात् तिर्यगादिस्थानं गर्नाज्जन्मनंतमपि कालमश्रिशमेवत् संसारे पर्यटतीति ॥ ए ॥ यतोमिथ्यादृष्ट्युपदिष्टतपसाऽपि न डुर्गतिमार्गनिरोधोऽतोमडुक्तएव मार्गे स्थेयमेतज्जन्मुपदेशं दातुमाह । (पुरिसोइत्यादि) हे पुरुष येन पापेन कर्मणा असदनुष्ठानरूपेण त्वमुपलक्षितस्तत्राऽसकृत् प्रवृत्तत्वात् तस्माडुपरम निवर्त्तस्व । यतः पुरुषाणां जीवितं सुबह्वपि त्रिपल्योपमांतं संयमजीवितं वा पल्योपमस्यांऽतर्मध्ये वर्त्तते तदऽप्यूनां पूर्वकोटिमिति यावत् । अथवा परिसमंतात्अंतोऽस्येतिपर्यंतं सांतमित्यर्थः । तच्चैवं तज्ञतमेवाऽवगंतव्यं । तदेवं मनुष्याणां स्तोकं जीवितमवगम्य यावत्तन्नपर्यैति तावद्धर्मानुष्ठानेन सफलं कर्त्तव्यं । ये पुनर्नोगस्नेहपंके अवसन्नामग्राइह मनुष्यनवे संसारे वा कामेष्विछामदनरूपेषु मूर्छिताअध्युपपन्नास्ते नरा मोहं यांति हिताहितप्राप्तिपरिहारे मुह्यंति मोहनीयं वा कर्मोपचिन्वंतीति संनाव्यते । एतदसंवृतानां हिंसादिस्थानेन्योनिवृत्तानामसंयतेंडियाणां चेति ॥ १० ॥

जययं विहराहि जोगवं, अणुपाणा पंथा डुरुत्तरा ॥ अणुसासणमेव प क्कमे, वीरेहिं समं पवेइयं ॥ ११ ॥ विरया वीरा समुठिया कोहकायरियाइ पीसणा॥पाणेण हणंति सवसो; पावाउविरिया अनिनिवुमा ॥१२॥

अर्थ—हवे जो एमछे तो शुं करवुं ते कहेछे. जययं के० आयुष्य तुछ जाणी अने विषयने क्लेशनुं कारण जाणी, गृहपाशबंध छेदीने चारित्रने विषे यत्न करतो विहराहि के० विचरे ते केहेवो छतो विचरे? तोके, जोगवं के० समिति अने गुप्तिसहित थको विचरे; केमके अणुपाणापंथाके०सूक्ष्मजीव जे पंथ एटले मार्गने विषे छे, ते पंथ ईर्यासमितिविना डुरुत्तराके० डुस्तरछे एटले जतां दोहिलोछे, एरीते बीजी समितिउ पण फलाववी तो एम सदा सावधान पणे हिंमे.अणुसासणं के० जेम श्रीवीतरागदेवे सूत्रमध्ये शीखामण कहीछे. एवके० तेम सूत्रने अनुसारे पक्कमेके० चाले, एम वीरेहिं के० श्रीवीर तीर्थंकरे समंके० साचु पवेदियं के० कह्युंछे. ॥ ११ ॥ ते श्रीवीर केवाछे, ते कहेछे. जे हिंसादिक पापथकी विरियाके० विरत एटले निवर्त्त्या ते वीरा के० वीरकर्मना छेदनारा तथा समुठियाके० सम्यक् आचारने विषे सावधान थया एवा छता कोह के० क्रोध अने कायरियाइके० कातरी एटले माया तथा आदि शब्द थकी मान अने लोज पण जाणी लेवां तेना पीसणा के० पीसनार एटले मर्दन करनार ते वीर सवसो के० सर्वथापि पाणेणहणंति के० प्राण हणे नहीं. पावाउ के० पाप जे सावद्य अनुष्ठान ते थकी विरिया के० विरत तथा अनिनिवुमा के० क्रोधादिकना उपशमे करी शीतल थयाछे एवा श्रीवीर जाणवा. ॥ १२ ॥

॥ दीपिका—जययमिति। यतमानोयत्नंकुर्वन् विहर उद्युक्तविहारी जव योगवान् संयमयोगवान् । अणवः सूक्ष्माः प्राणाः प्राणिनोयेषु ते अणुप्राणाः पंथानोऽनुपयोगैर्डुरुत्तराडुर्गमाः । ईर्यादिसमितिषु उपयोगवताजाव्यमित्यर्थः। अनुशासनमेव सूत्रानुसारेणैव संयमे प्रक्रमेत् चरेत् । एवं वीरैरर्हद्भिः सम्यक् प्रवेदितं कथितं ॥११॥ विरयाइति । हिंसादेर्विरताः समुत्थिताः सम्यगारंनत्यागेनोत्थिताः क्रोधकातरिकादिपीषणाः । क्रोधग्रहणान्मानोपि ग्राह्यः । कातरिका माया। मायाग्रहणाच्च लोनोगृहीतः। तेषां पीषणाविनाशकाः एवंविधावीराः स्युः । तथा प्राणान् सर्वशोमनोवाक्कायैर्न घ्नंति । पापात् सावद्यव्यापारात् विरताअनिनिर्वृताः क्रोधाद्युपशमेन शांताः स्युः ॥ १२ ॥

॥ टीका—एवं च स्थिते यद्विधेयं तद्दर्शयितुमाह । (जययमित्यादि) स्वल्पं जीवितमवगम्य विषयांश्च क्लेशप्रायाऽनवबुध्य छित्वा गृहपाशबंधनं यतमानोयत्नं कुर्वन् प्राणि

नामनुपरोधेन विहरयुक्तविहारी नव । एतदेव दर्शयति । योगवानिति ॥ संयमयोगवान् गुप्तः समितिगुप्तइत्यर्थः । किमित्येवं । यतोऽणवः सूक्ष्माः प्राणाः प्राणिनोयेषु ते । तथा चैवंनूताः पंथानोऽनुपयुक्तैर्जीवानुपमर्द्देन दुस्तरादुर्गमाइत्यनेन ईर्यासतिरुपक्षिप्ता । अस्याश्चोऽपलक्षणार्थत्वात् अन्यास्वऽपि समितिषु सततोऽपयुक्तेन नवितव्यं । अपिच अनुशासनमेव यथागममेव सूत्राऽनुसारेण संयमं प्रक्रमेत् । एतच्च सर्वैरेव वीरैरर्हद्भिः सम्यक् प्रवेदितं प्रकर्षेणाऽख्यातमिति ॥ ११ ॥ अथ कएते वीराइत्याह । (विरयेत्यादि) हिंसाऽनृतादिपापेन्योये विरताः । विशेषेण कर्म प्रेरयंतीति वीरा; । सम्यगारंनपरित्यागेनोत्थिताः समुत्थिताः ते एवंनूताश्च क्रोधकातरिकादिपीषणाः। तत्र क्रोधग्रहणान्मानोगृहीतः । कातरीका माया तद्ग्रहणाल्लोनोगृहीतः । आदिग्रहणात् शेषमोहनीय परिग्रहः तत्पीषणास्तदपनेतारः तथा प्राणिनोजीवान् सूक्ष्मतरन्नेदनिन्नान् सर्वशोमनोवाक्कायकर्मन्निर्नघ्नंति नव्यापदयंति । पापाच्च सर्वतः सावद्यानुष्ठानरूपाद्विरताः निवृत्तास्तश्चाऽन्निनिवृत्ताःक्रोधाद्युपशमेनशांतीनूताः। यदि वाऽन्निनिवृत्ताः मुक्ताइव द्रष्टव्याइति॥ १२

णवि ता अहमेव लुप्पए, लुप्पंति लोअंसि पाणिणो ॥ एवं स
हिएहिं पासए, अणिहेसे पुट्ठे अहियासए ॥ १३ ॥ धुणिया
कुलियं चलेववं, किसए देहमणासणा इह ॥ अविहिंसा मेव
पवए, अणुधम्मो मुणिणापवेदितो ॥ १४ ॥

अर्थ—वली उपदेशांतर कहेछे. ए नावनाये परिसह अने उपसर्ग सहन करवा ते कहेछे. ण के० नथी अपि के० निश्चे ता के० तेप्रत्ये ए शीत, उष्ण, क्षुधातृषादिक परिसह तेणेकरी अहमेवलुप्पएके० नथी पीडाता हुं? किंतु लुप्पंतिलोअ सिंपाणिणोके० लोकने विषे घणा तीर्यंच तथा मनुष्यादि प्राणीउ जे छे, ते शीततापादिक कष्टे करी पीडायछे, परंतु तेने सम्यक् विवेकने अनावे निर्जरा कांइ पण थती नथीः तेमाटे एवं के० ए प्रकारे सहिएहिं के० ज्ञान, दर्शन अने चारित्रे करी सहित छता जे शीततापादिक पूर्वे कह्या तेने पासए के० आलोचे तथा अणिहे के० स्नेहरहित अथवा क्रोधादिकेरहित छतो सेपुट्ठेके० ते परिसहे पीड्यो थको तेनी वेदना सम्यक् प्रकारे अहियासे. ॥१३॥ वली तेहिज कहेछे. धुणिया के०दूरकरी कुलियं चलेववं के० लेपसहित नींतने एटले शुं कह्युं के, जेम गोबरथकी लींपेली नींत ते अनुक्रमें तेनो लेप गये थके दुर्बल थाय. ए दृष्टांते करी मणासणाइहिंके०अनशनादिक तपे करीने किसएदेहके०देहने कृश करे तथा वली अविहिंसा मेवपव्वएके०एक अहिंसाज आदरे. अणुधम्मो मुणिणापवेदितो के०ए अहिंसादिलक्षण जे धर्मछे,ते जीवने अनुकूल एटले हितकारी सर्वज्ञे कह्योछे.॥१४॥

॥ दीपिका–णवितेति। परीषहैःस्पृष्टोपि तान् अधिसहेत क्षमेत। पीडितएवं चिंतयेत् नतावदहमेव परीषहोपसर्गैर्लुप्ये पीडये किंतु अन्येपि प्राणिनस्तिर्यङ्मनुष्याः पीड्यंते लोके एवं सहितोज्ञानादिभिः स्वहितआत्महितोवा पश्येत् निर्मलबुध्या विचारयेत् पूर्वोक्तं। अनीहः क्रोधादिभिरपीमितः संयमेपरीषहसहनेवा निगूहीतवीर्योवा सन् परिषहैः स्पृष्टोपि तान् अधिसहेत क्षमेत ॥ १३ ॥ धुणियाइति। धूत्वा विधूय कुडिअं कुड्यं भित्तिमिवेत्यर्थः। लेपवत् सलेपं। यथा कुडयं गोमयादिलेपेन सलेपं क्रमेण लेपोप गमतः कृशं स्यात् एवमशनादिभिर्देहं कर्शयेत्। देहकृशत्वाच्च कर्मकृशत्वं स्यादितिभा वः। तथा विविधाहिंसाविहिंसा न विहिंसा अविहिंसा तां प्रव्रजेत प्रकर्षेण व्रजेत। अ हिंसा प्रधानः स्यादित्यर्थः। अनुगतोमोक्षं प्रति अनुकूलोधर्मोऽनुधर्मोऽयं मुनिना सर्वे ज्ञेन प्रवेदितः कथितः ॥ १४ ॥

॥ टीका–पुनरप्युपदेशांतरमाह । (णविताइत्यादि परीषहोपसर्गाएतद्भावनापरेण सोढव्याः नाहमेवैकस्तावदिह शीतोष्णादिदुःखविशेषैर्लुप्ये पीड्ये। अपित्वऽन्येऽपि प्राणि नस्तथाविधा स्तिर्यङ्मनुष्याअस्मिंल्लोके लुप्यंते अतिदुःसहैर्दुःखैः परिताप्यंते तेषां च सम्यग्विवेकाभावान्ननिर्जराख्यफलमस्ति। यतः। क्षांतं न क्षमया गृहोचितसुखं त्यक्तं न संतोषतः सोढा दुःसहतापशीतपवनक्लेशान तप्तं तपः ॥ ध्यातं चित्तमहर्निशं नियमि तं द्वंद्वैर्न तत्वं परं तत्तत्कर्मकृतं सुखार्थिभिरहो तैस्तैः फलैर्वंचिताः ॥१॥ तदेवं क्लेशादिस हनं सद्विवेकिनां संयमाभ्युपगमे सति गुणाय भवति। तथाहि। काश्यं क्षुत्प्रभवं कदन्न मशनं शीतोष्णयोः पात्रता पारुष्यं च शिरोरुहेषु शयनं मह्यास्तले केवले। एतान्येव गृ हे वहंत्यवनतिं तान्युन्नतिं संयमे दोषाश्चापि गुणाभवंति हि नृणां योग्ये पदे योजि ताः। १। एवं सहितो ज्ञानादिभिः स्वहितोवा आत्महितः सन् पश्येत् कुशाग्रीयया बुध्या पर्यालोचयेदनंतरोदितं । तथा निहन्यतइति निहः न निहोऽनिहः क्रोधादिभि रपीमितः सन् समहासत्वः परीषहैः स्पृष्टोऽपि तानाधिसहेत मनःपीमां न विदध्यादिति। यदिवाऽनिहइति तपः संयमपरीषहने वा निगूहितबलवीर्यः। शेषंपूर्ववदिति ॥ १३ ॥ अपिच (धुणियाइत्यादि)। धूत्वा विधूय (कुलियंति) कमणकृतं कुड्यं। लेपवत्सलेपं। अयमत्रार्थः। यथाकुडयं गोमयादिलेपेन सलेपं जाघट्यमानं लेपापगमात् कृशं भवति एवं अनशनादिभिर्देहं कर्शयेत् अपचितमांसशोणितं विदध्यात्। तदपचयाच्च कर्मणोऽ पचयोभवतीति भावः। तथा विविधाहिंसा विहिंसा न विहिंसा अविहिंसा तामेव प्रकर्षे ण व्रजेत् अहिंसाप्रधानोभवेदित्यर्थः। अनुगतोमोक्षं प्रत्यनुकूलो धर्मोऽनुधर्मः असावहिं सालक्षणः परीषहोपसर्गसहनलक्षणश्च धर्मोमुनिना सर्वज्ञेन प्रवेदितःकथितइति ॥१४॥

सउणी जह पंसुगुंडिया, विहुणिय धंसयई सियं रयं ॥ एवं दविनेवहाणवं, कम्मं खवइ तवस्सिमाहणे ॥ १५ ॥ उठियमणगारमेसणं, समणं ठाण ठिअं तवस्सिणं ॥ महर बुड्डाय पछए, अवि सुस्से ण य तं लनेजणो ॥१६

अर्थ–हवे कहेछे के जह के०जेम सउणी के० पक्षिणी ते पंसुगुडिया के०रजे करी खरडी छती विहुणिय के० अंग धुणावीने धंसयईसियंरयं के० ते बधी रज खंखेरीने दूर करे. एवं के० एरीते दविड के० मोक्ष जवाने योग्य नव्यजीव ते वहाणवं के० उप धान वंत छतो उपधान एटले तपविशेष तेनो करनार एवो तवस्सिमाहणे के० तपस्वी माहण महणो एवोजेनो उपदेश छे,तेने प्राकृत शैली माटे माहण कहिए; एटले तपस्वी ब्रह्मचर्यनो पालनार ते कम्मंखवइ के० कर्म खपावीने पोता थकी वेगलाकरे. ॥१५॥ हवे अनुकूल उपसर्ग कहेछे. अणगारं के० साधु ते संयमने विषे उठियं के० प्रवर्त्यो तथा एसणंके० एषणानो पालनार तथा समणंके० श्रमण अने तवस्सिणं के० तपस्वी ठाणठिअंके०स्थान स्थित उत्तरोत्तर संयमने स्थानके प्रवर्त्यो ते तवस्सिणंके० तपस्वी एवा साधुने कदाचित् महरा के० बालक पुत्र पौत्रादिक तथा बुड्डाके० पिता माता दिक तेणे पछएके० प्रार्थ्यो एटले प्रार्थना करी कहेके, शुं तमे अमारुं प्रतिपालन कर वानुं टालोछो. अमारुं पालण पोषण करनार तमारा विना बीजो कोइ नथी. इत्यादिक व चन कहेतां ते अवि के० अपि सुस्से के० श्रम पामे; परंतु तंजणा के० ते जन जे स्व जनादिकते परमार्थना जाण एवा साधुने णयलनेतुके०पोताने वश करी शके नहीं.॥१६॥

॥ दीपिका–सउणीति । शकुनिः पक्षिणी यथा पांसुना रेणुना गुंठिता व्याप्ता सती अं गं विधूय कंपयित्वा सितं बद्धं रजोध्वंसयत्यपनयति एवं इव्योनव्योमुक्तिगमनयोग्य उपधानवान् तपोयुक्तः क्षपयति तपस्वी । मावधीरिति प्रवृत्तिर्यस्य सप्राकृतशैल्यामाहणः ॥१५॥ (उठियेति) डहराबालाः पुत्रादयोवृद्धाः पित्रादयः श्रमणं प्रार्थयेयुः । वयं त्वया पाल्यास्त्वंचास्माकं पाल्यइति । किंनूतं श्रमणं अनगारं गृहरहितं एषणां प्रति उछितमुद्य मवंतं स्थानस्थितं संयमस्थानस्थं तपस्विनं एवं नणंतस्ते जनाअपि शुष्येयुः श्रमं ग छेयुः न च तं साधुं लनेरन् नैवात्मवशं कुर्युरित्यर्थः ॥ १६ ॥

॥ टीका–किंच (सउणीत्यादि) शकुनिका पक्षिणी यथा पांसुना रजसा ऽवगुंठितासती अंगं विधूय कंपयित्वा तद्रजः सितमवबद्धंसत् ध्वंसयत्यपनयति । एवं इव्योनव्यो मुक्तिगमनयोग्योमोक्षंप्रत्युपसामीप्येन दधातीति उपधानमनशनादिकं तपः तदस्याऽस्ती त्युपधानवान् सचैवंनूतः कर्मज्ञानावरणादिकं क्षपयत्यपनयति । तपस्वी साधुः (माह

णत्ति) मावधीरिति प्रवृत्तिर्यस्य सप्राकृतशैल्या माहणेत्युच्यतइति ॥ १५ ॥ अनुकूलोप सर्गमाह । (उठियेत्यादि) अगारं गृहं तदस्य नास्तीत्यनागारस्तमेवं नूतं संयमोब्राने नैषणां प्रत्युब्रितं प्रवृत्तं । श्राम्यतीतिश्रमणस्तं । तथास्थानस्थितमुत्तरोत्तरविशिष्टसंयम स्थानाध्यासिनं तपस्विनं विशिष्टतपोनिष्टप्तदेहं तमेवंनूतमपि कदाचित् महरा पुत्रनप्ता दयोवृद्धाः पितृमातुलादयः उन्निष्क्रामयितुं प्रार्थयेयुर्याचेरंस्तएवमूचुर्नवता वयंप्रतिपाल्या न त्वामंतरेणाऽस्माकं एकः प्रतिपाल्यएवं नणंतस्ते जनाअपि शुष्येयुः श्रमं गच्छेयुर्न च तं साधुं विदितपरमार्थं लन्नेरन् नैवाऽऽत्मसात्कुर्युर्नैवाऽऽत्मवशगं विदध्युरिति ॥ १६ ॥

जइ कालुणियाणि कासिया, जइ रोयंति य पुत्तकारणे ॥ दवि
यं न्निक्खुसमुठियं णो लप्नंति ण संठवित्तए ॥ १७ ॥ जइ विय
कामेहिं लाविया,जइ णं जाहिण बंधिउं घरं ॥ जइ जीवितना
वकंखए, णो लप्नंति णं संठवित्तए ॥ १८ ॥

अर्थ–जइके० यद्यपि ते माता पिता पुत्र कलत्रादिक जेठे ते साधुने सन्मुख आवीने कालुणियाणिकासियाके० अनेक करुणा प्रलाप वचन बोले. तथा जइके० यदि रोयं तियपुत्तकारणेके० पुत्रने निमित्ते रुदन करे. तोपण ते दवियंके० मुक्ति गमन योग्य न्निक्खुके० साधु रागद्वेषरहित एवो समुठियंके० सम्यक् प्रकारे संयमने विषे उठ्यो छे, सावधान थयोछे, एवा साधुने णोलप्नंतिके० क्षोनावी न शके. णसंठवित्तएके० प्रव्रज्या मूकावी गृहस्थावासने विषे स्थापि नशके. ॥ १७ ॥ जइवियकामेहिंलावियाके० यद्यपि ते पोताना सज्जन ते संयम पालता साधुने कामनोगे करी लोनावे ए अनुकूल उपस र्ग अने जइणंजाहिणबंधिउंघरं के० अथवा जो तेने बांधीने घेर लेई जाय ए प्रतिकूल उपसर्ग छे. तो एवा अनुकूल अने प्रतिकूल उपसर्गे पीड्यो थको पण साधु जई के० यदि जीवितंनावकंखए के० असंयमे जीवितव्य न वांछे एटले मरण कबुल करे. पण असंयमे जीवितव्य न वांछे तो तेने णोलप्नंति णसंठवित्तए के० तेना स्वजन ते पोताने वशकरी नशके अर्थात् गृहवासने विषे स्थापी नशके ॥ १८ ॥

॥ दीपिका–जईति । यद्यपि ते मातापित्रादयः कारुणिकानि विलापवचनानि कुर्युः । तथा यदि रुदंति पुत्रकारणात् सुतनिमित्तं । एवं रुदंतोयदिनणंति निरकुं । किंनूतं इव्यं मुक्ति योग्यत्वात् इव्यनूतं संयमे समुब्रितमुद्यतं तथापि तं साधुं न लप्स्यंते न शक्नुवंति संयमा चालयितुं तथा न गृहस्थत्वे संस्थापयितुं ॥ १७ ॥ (जईति) यद्यपि ते पित्रादयस्तं साधुं कामैरिब्रामदनैर्लावयंति उपनिमंत्रयेयुः । तथा यदि णंवाक्यालंकारे बध्वा गृहं नयंति।

एवमनुकूलप्रतिकूलोपसर्गैरपीडितोपि साधुर्यदि जीवितं नाभिकांक्षयेत् यदि जीवितं न वांछेत् असंयमजीवितं वा नाकांक्षेत् । तदा ते निजास्तं साधुं न लनंते न प्राप्नुवंति स्वव शेकर्तुं (नसंगविताएत्ति) नापि गृहस्थत्वे संस्थापयितुमलं ॥ १८ ॥

॥ टीका–किंच (जईत्यादि) यद्यपि ते मातापितृपुत्रकलत्रादयस्तदंतिके समेत्य करुणा प्रधानानि विलापप्रायाणि वचांस्यऽनुष्ठानानि वा कुर्युः । तथाहि । णाहपियकंतसामिय, अइवल्लहडुल्लहोसि नवणंमि ॥ तुहविरहम्मियनिक्किवसुस्संसवंपिपडिहाइ ॥१॥ सेणीगा मोगोठी,गणोवतंज बहोसिसणिहिंतो ॥ दिप्पइसिरिएसुपुरिसकिंपुणनियर्यघरद्दारं ॥ २ ॥ तथा यदि (रोयंतियत्ति) रुदंति पुत्रकारणं सुतनिमित्तं कुलवर्धनमेकं सुतमुत्पाद्य पुनरेवं क र्तुमर्हसीति ।एवं रुदंतोयदि नणंति तं निक्खुं रागद्वेषरहितत्वान्मुक्तियोग्यत्वाद्वा इव्यनूतं सम्यक्संयमोत्थानेनोत्थितं तथाऽपि साधुं न लप्स्यंते न शक्नुवंति प्रव्रज्यातोभ्रंशयितुं नावाद्च्यावयितुं नाऽपि संस्थापयितुं गृहस्थनावेन इव्यालिंगाच्च्यावयितुमिति ॥ १७ ॥ अपिच (जइविइत्यादि) यद्यपि ते निजास्तं साधुं संयमोत्थानेनोत्थितं कामैरिच्छामदन रूपैर्लावयंति उपनिमंत्रयेयुरुपलोजयेयुरित्यर्थः । अनेनाऽनुकूलोऽपसर्गग्रहणं । तथा । यदि नयेयुर्बध्वा गृहं। णमिति वाक्यालंकारे। एवमनुकूलप्रतिकूलोपसर्गैरनिडुतोऽपि साधु र्यदि जीवितं नाभिकांक्षेत् यदि जीविताभिलाषी न नवेत् असंयमजीवितं वा नाऽभिनंदेत् ततस्ते निजास्तं साधुं (णो लप्नंतित्ति) न लनंते न प्राप्नुवंति आत्मसात्कर्तुं (णसंग वित्तएति । नाऽपि गृहस्थनावेन संस्थापयितुमलमिति ॥ १८ ॥

सेहंतिय णं ममाइणो,माया पियाय सुयाय नारिया ॥ पोसाहि
ण पासउ तुमं, लोगपरं पि जहासि पोसणो ॥ १९ ॥ अन्ने अ
न्नेहिं मुच्छिया, मोहं जंति णरा असंवुमा ॥ विसमं विसमेहिं
गाहिया, ते पावेहिं पुणो पगप्निया ॥ २० ॥

अर्थ–ते माता पितादिक ते चारित्रियाने अहीं णं इति वाक्यालंकारे, सेहंतिके० शी खवे ते स्वजन केवा ले? तोके, ममाइणोके० अत्यंत स्नेहकरी ते मायाके० माता, पिया यके० पिता, सुयायके० सुत एटले गेकरा अने नारियाके० नार्या एवा सज्जन शुं शी खवे तेकहेले. के अहो पुत्र? अमे ताहरे वियोगे अत्यंत डुखिआलैए, एवा अमने पासउके० देखीने तुमंके० तुं अमारु पोसाहिणके० पोषण कर;कारणके तुं अत्यंत सूक्ष्मदृष्टीवालोले ते माटे तारा हृदयमां सारीपेठे विचारीने अमारुं पोषण कर,अन्यथातो लोगंके० इहलोक तथा परंके० परलोक थकी पण जहाहिके० नष्ट थईश. तेमाटे डुःखी एवा मावित्रनुं पोसणो

के० पोषण करवुं ते महापुण्यनुं कामछे. ॥१ए॥ हवे कोइएक कायर पुरुष ते मातापितादिकना वचनथी लोनाय तेने विपाक कहेछे. अन्नेके० अनेरा कोइएक अल्प सत्ववंत एवा चारित्रिया ते अन्नेहिंके० अन्य जे मातापितादिक तेने विषे मुछिया के० मोहे मूर्छाथका मोहंजंतिणराअसंवुमा के० असंवरी एटले संवरविना मोह पामे, एटले रूडाअनुष्ठाननुं करवुं मूकी आपे अने मोहनेविषे पोहोचे तथा ते असंयतिनरोने विसमके० गृहस्थे विसमेहिंगाहियाके० असंयम तेने विषे पोहोचाड्या छता पुणो के० वली ते पावेहिंके० पापेकरी पगप्रियाके० धृष्ट छतां पापकर्म करतां लज्जा पामे नहीं. ॥२०॥

॥ दीपिका-(सेहंतीति) ते मात्रापित्रादयः सुताजार्या च । णमिति व्याक्यालंकारे । तं साधुं (ममाइणोत्ति) ममायं साधुरिति स्नेहालवः शिक्षयंति । किमित्याह । पश्य नोऽस्मान् दुःखितान् त्व तु दर्शीकः सूक्ष्मदर्शी अतोऽस्मान् पोषय अन्यथा त्वया प्रव्रज्याग्रहणादिह लोकस्त्यक्तः । अस्मत्परिपालनत्यागात्परलोकमपि त्वं जहासि त्यजसि ॥ १ए ॥ (अन्नेति) अन्ये केचनाऽल्पसत्वाअन्यैर्मातापित्रादिनिर्मूर्छिताअसंवृतानरामोहं यांति सदनुष्ठाने मुह्यंति । तथा विषमैरसंयतैर्विषममसंयमं ग्राहिताअसंयमे प्रवर्तितास्ते पापैः कर्मनिः पुनः प्रगल्निताधृष्टतांगताः ॥ २० ॥

टीका-च (सेहंतियणमित्यादि) ते कदाचिन्मातापित्रादयस्तमजिनवप्रव्रजितं (सेहंतित्ति) शिक्षयंति । णमिति वाक्यालंकारे । (ममाऽइणोत्ति) । ममाऽयमित्येवं स्नेहालवः । कथं शिक्षयंतीत्यतआह । पश्य नोऽस्मानत्यंतडुःखितांस्त्वदर्थं पोषकाजावाछा त्वं च यथावस्थितार्थपश्यक.सूक्ष्मदर्शी सश्रुतिकइत्यर्थः । अतोनोऽस्मान् पोषय प्रतिजागरणं कुरु अन्यथा प्रव्रज्याऽन्युपगमेनेह लोकस्त्यक्तोनवताऽस्मत्प्रतिपालनपरित्यागेन च परलोकमपि त्वं त्यजसीति डुःखितनिजप्रतिपालनेन च पुण्यावाप्तिरेवेति । तथाहि । या गतिः क्लेशदग्धानां गृहेषु गृहमेधिनां । बिज्रतां पुत्रदारांस्तु तां गतिं व्रज पुत्रकेति ॥१ए ॥ एवं तैरुपसर्गिताः केचन कातराः कदाचित् यद्यत्कुर्युरित्याह । (अन्नेइत्यादि) अन्ये केचनाऽल्पसत्वाः अन्यैर्मातापित्रादिनिर्मूर्छिताअध्युपपन्नाः सम्यग्दर्शनादिव्यतिरेकेण सकलमपि शरीरादिकमन्यदित्यऽन्यग्रहणं । ते एवंनूताः असंवृतानराः संमोहं यांति सदनुष्ठाने मुह्यंति तथा संसारगमनैकहेतुनूतत्वात् विषमोऽसंयमस्तं विषमैरसंयतैरुन्मार्गप्रवृत्तित्वेनाऽपायानीरुनिः रागद्वेषैर्वा अनादिनवाभ्यस्ततया डुश्छेद्यत्वेन विषमैर्ग्राहिताअसंयमं प्रति वर्तिताः । ते चैवंनूता. पापैः कर्मनिः पुनरपि प्रवृत्ताः प्रगल्निताः धृष्टतां गताः पापकं कर्म कुर्वतोऽपि नलज्जंतइति ॥ २० ॥

तम्हा दवि इक्क पंम्मिए,पावाउ विरतेऽन्निणिवुम्मे॥ पणए वीरे म
हाविहिं, सिद्धिपहं णेआउयं धुवं ॥११॥ वेयालियमग्गमागउ
मणवयसाकायएणसंवुम्मो॥ विच्चा वित्तं च णायउ आरंनं च सुसंवु
म्मे चरेज्जासित्तिबेमि ॥१२॥ इति वैतालीयाध्ययनस्य प्रथमोद्देशकः

अर्थ—जो तेने ए विपाक लागेतो शुं करवुं ? ते कहेछे. तम्हा के० ते कारणे दवि के० मुक्तिगमन योग्य नव्यजीव रागद्वेषरहित पंम्मिए के० पंम्मित विवेकयुक्त छतो संसारवास सेवतां महाक्लेशछे एवुं जाणी. इक्क के० तेना विपाकने चिंतवे एवो तो के० ते पावा के० पापकर्म थकी विरते के० निवर्त्ते अन्निणिवुम्मे के० क्रोधादिकने परिहारे करी शीतल थाय तथा पणतके० महाविनयवंत अने वीरेके०कर्म विदारवाने सामर्थ्यवान महाविहिं के० जे महांत एटले जैनमार्गे प्रवर्त्ते ते मार्ग केवो छे? तो के, सिद्धिपहं के० सिद्धिपंथ जे मोक्षनो मार्ग तथा णेआउयं के० न्यायमार्ग तथा धुवं के० शाश्वतो एवो मार्ग जाणीने आदरवो ॥ ११ ॥ वली तेहज उपदेश उपसंहार करतो कहेछे. वेयालिय के० कर्मनो विदारनार एवो जे मग्गं के० मार्ग तेनेविषे आगउ के० आगत एटले आव्यो तथा वली मणवयसाकाएण संवुम्मो के० मन, वचन अने कायेकरी संवरनो पालनार विच्चाके० छांम्मीने; शुं छाम्मीने? तोके, वित्तंचणायउके० धन, ज्ञाती, स्वजन तथा आरंनं के० आरंन एटलां वाना छांडीने सु के० सुष्ठु एटले नली परे इंडीउने संवुम्मे के० संवरतो छतो चरे के० संयमने पाले तिबेमि के० एरीते पंचम गणधर श्रीसुधर्मास्वामी जंबुप्रत्ये कहेछे के, जेम श्रीमहावीरदेव पासेथी सांनल्युं तेम तुजने कहुंछुं. ॥ १२ ॥ इति श्रीवैतालियाऽध्ययनस्य प्रथमोद्देशः समाप्तः

॥ दीपिका—तम्हादिति । तस्मात् द्रव्यनूतोमुक्तियोग्यः पंडितः सन् ईक्षस्व विचारय । पापाद्विरतोऽनिनिर्वृतः क्रोधादित्यागात् शांतीनूतः तथा वीराः कर्मविदारणसमर्थामहावीथिं महामार्गं प्रणताः प्राप्तानान्ये । महावीथिंकिंनूतां सिद्धिप्रदं ज्ञानादिमार्गं प्रतिनेतारं प्रापकं ध्रुवमव्यनिचारं इतिज्ञात्वा संयमप्रागल्न्यैर्नन्नाव्यमिति ॥ ११ ॥ वैतालिएत्ति । कर्मणां वैदारिकं विदारणसमर्थं मार्गमागतोमनोवाक्कायसंवृतस्त्यक्त्वा वित्तं धनं ज्ञातीन् स्वजनान् सावद्यारंनं च सुसंवृतइंद्रियैः संयमे चरेदिति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ १२ ॥ इति वैतालीयाख्यद्वितीयाध्ययनस्य प्रथमोद्दशकः समाप्तः ॥

॥ टीका—यतएवं ततः किं कर्तव्यमित्याह । (तम्हाइत्यादि) यतोमातापित्रादिमूर्छिताः पापेषु कर्मसु प्रगल्ननानवंति तस्माद्द्रव्यनूतोनव्योमुक्तिगमनयोग्योरागद्वेष

रहितोवा सन्नीक्ष्य तद्विपाकं पर्यालोचय । पंडितः सद्विवेकयुक्तः पापात् कर्मणोसद नुष्ठानरूपात् विरतोनिवृत्तः क्रोधादिपरित्यागाच्छांतीनूतइत्यर्थः । तथा प्रणताः प्रह्वीनू तावीराः कर्मविदारणसमर्थामहावीथिं महामार्गं । तमेव विशिनष्टि । सिद्धिपथं ज्ञा नादिमोक्षमार्गं तथा मोक्षंप्रति नेतारं प्रापकं ध्रुवमव्यनिचारिणमित्येतदवगम्य सएव मार्गोऽनुष्ठेयोवा सदनुष्ठानप्रगल्भैर्नान्यमिति ॥ २१ ॥ पुनरप्युपदेशदानपूर्वकमुपसंहर न्नाह । (वेयालियमग्गइत्यादि) कर्मणां विदारणमार्गमागतोनूत्वा तं तथानूतं मनो वाक्कायसंवृतः पुनस्त्यक्त्वा परित्यक्त्वा वित्तं इव्यं तथा ज्ञातींश्च स्वजनांश्च तथा साव द्यारंनं च सुष्ठु संवृतइंद्रियैः संयमानुष्ठानं चरेदिति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २२ ॥ इति वैतालीयद्वितीयाध्ययनस्य प्रथमोद्देशकः समाप्तः ॥

अथ वेतालीयऽध्ययनस्य द्वितीयोद्देशकप्रारंनः ॥ प्रथमउद्देशामांबाह्य इव्य, स्वज न तथा आरंननो परित्याग कह्यो, हवे बीजे उद्देशे माननो परित्याग कहेछे.

तय संच जहाइ सेरयं, इति संखाय मुणीण मज्जई॥गोयन्नतरेण माहणे, अह सेयकरी अनेसि इंखणी ॥१॥ जे परन्नवई परं ज णं, संसारे परिवत्तई महं॥अछु इंखणिया उ पाविया,इति संखा य मुणीण मज्जई॥ २ ॥

अर्थ—तयसंच के० ते जहा के० जेम सर्प्प पोतानी त्वचा जे कांचली ते परिहरवा योग्य जाणीने छांमे, सेरयं के० तेम ए साधुजे छे, ते रजनी पेरे अष्ट प्रकारनां कर्मने छांमे एतावता कषाय नकरे. केमके कषायने अनावे कर्म पोतानी मेले छंमाशे. इति संखायमुणी के० एवीरीते जाणीने चारित्रिउ णमज्जई के० मद एटले अहंकार करे नहीं; ते मदनुं कारण देखाडेछे. गोके० काश्यपादिक गोत्रकरी अथवा यन्नतरेण के० अनेरा कुलरूपादिक मद तेने पामीने उत्कर्ष मान नकरे एवो माहणे के० साधु ते जेम पोता थकी मद नकरे तेम अनेसिं के० अनेरानी पण अहसेयकरी के० अश्रेयकारणी एवी जे इंखणी के० निंदा तेपण नकरे. ॥१॥ हवे परनिंदाना दोष कहे छे. जे के० जे कोइ अविवेकी पुरुष परंजणं के० अनेरा लोकने परन्नवई के० परान्नव करे एटले अवहेलना करे ते पुरुष संसारेपरिवत्तईमहं के० संसारमांहे अत्यंत परिन्रमण करे. अछु के० अथ जे कारणे इंखणिया के० परनिंदाते पावया के० एवी पापणीछेके जे स्वस्थानक थकी अधोस्थानके जीवने पाडे इतिसंखाय के० एवुं जाणी ने एटले परनिंदाने दोषरूप जाणीने मुणी के० मुनिश्वर जे छे, ते जाति कुल श्रुत त

पादिकने विषे एमकांई के० मद न करे, एटले हुं उत्तम छुं. ए अमुक महारा थकी घणो हीन छे एवो पोतानो उत्कर्ष नकरे. ॥ १ ॥

॥ दीपिका—अथ द्वितीयआरज्यते पूर्वोदेशके श्रीकृषनस्वामिना स्वपुत्राणामुपदेशः कथितः इहापि सएवोच्यतइति तत्रेदं प्रथमसूत्रं (तयेत्ति)यथा सर्पः त्वचं स्वां जहाति एवमसौ साधुः रजःकर्म त्यजति एवं कषायानावे कर्मानावइति संख्याय ज्ञात्वा मुनिर्न माद्यति मदं न याति । गोत्रेण काश्यपादिना । अन्यतरग्रहणात् शेषमदग्रहणं । माहणेत्ति। साधुः । जेविउत्तिपाठे यो विद्वान् जातिकुलादिनिर्न माद्यतीति तथा । अश्रेयस्करी इंखिणी निंदा साप्यन्येषां न कार्येति ॥१॥ (जोपरिनवइत्ति) यः परिनवति अवज्ञाति परं जनं ससंसारे परिवर्तते च्रमति महदत्यर्थं । चिरं वा पाठः । अडुत्ति । अथशब्दोऽतइत्यर्थे। अतः इंखिणिआ परनिंदा । तुर्निश्चये । पापिकैव डुष्टैव । इहलोके निंदायां सुघरोदृष्टांतः । यथा एकोवानरःकश्चि वृक्षे वर्षासु झंझावातैः पीड्यमानः सुगृहीकया पक्षिण्या नणितः । यथा । वानरगापुरिसोसी,निरत्थयंवहसिबाहुदंडाइं । जोपायवस्ससिहरे,नकरोसिकुडिंपडालिंवा ॥१॥ सचैवं पक्षिण्या नाषितोपि तूष्णीमास्ते तावत्पक्षिणी वानरं वारं वारं तद्वक्ति रुष्टेन वानरेण तं वृक्षमारुह्य तद्गृहं नग्नं सा दूरं नष्टा । वानरोवक्ति । यथा । नवसिममंमहतरिआनवसिममंसोहिआवनिद्धावा । सुघरेअहसुविघरा,जावहसिलोगतत्तासु ॥१॥ सुखमिदानीं तिष्ठेति सुगृहा डुःखिनी जाता परलोकपुरोहितस्यापि श्वादियोनिषूत्पत्तिरिति इति संख्याय ज्ञात्वा मुनिर्न माद्यति मदं न कुर्यात् यतोमदादेव परनिंदा स्यादिति ॥ १ ॥

॥ टीका—प्रथमानंतरं द्वितीयः समारज्यते । अस्य चाऽयमनिसंबंधः । इहानंतरोद्देशके नगवता स्वपुत्राणां धर्मदेशनानिहिता । तदिहापि सैवाऽध्ययनार्थाधिकारत्वात् अनिधीयते । सूत्रस्य सूत्रेण सह संबंधोऽयं । अनंतरोक्तसूत्रे बाह्यद्रव्यस्वजनारंनपरित्यागोऽनिहितस्तदिहाऽप्यांतरमानपरित्यागउद्देशार्थाधिकारः सूचितोऽनिधीयते । तदनेन संबंधेनाऽयातस्याऽस्योदेशकस्यादिसूत्रं । (तयसंचयइत्यादि) । यथाह्युरगः स्वां त्वचं अवश्यं परित्यागार्हत्वात् जहाति परित्यजति । एवमसावपि साधुः रजइव रजोऽष्टप्रकारं कर्म तद् कषायित्वेन परित्यजतीति । एवं कषायानावो हि कर्मानावस्य कारणमिति संख्याय ज्ञात्वा मुनिः कालत्रयवेदी न माद्यति मदं न याति । मदकारणं दर्शयति । गोत्रेण काश्यपादिना । अन्यतरग्रहणात् शेषाणि मदस्थानानि गृह्यंतइति (माहणत्ति) साधुः । पाठांतरं वा (जेविउत्ति) विद्वान् विवेकी सजातिकुललानादिनिर्न माद्यतीति । न केवलं स्वतोमदोन विधेयोजुगुप्साऽप्यन्येषां न विधेयेति दर्शयति । अथाऽनंतरं । असौ अश्रेयस्करी पापकारिणी (इंखिणित्ति) निंदा अन्येषाऽमतोन कार्ये·

ति । मुणीनमज्झइत्यादिकस्य सूत्रावयवस्य सूत्रस्पर्शगाथाद्वयेन निर्युक्तिकृदाह । तवसंजमणाणेसु, विजईमाणोवज्जिउ महोसीहिं ॥ अत्रसमुक्करिसबंकिंपुणहीला उअन्ने सिं ॥ २ ॥ जइतावनिज्जरमउ, पडिसिद्धोअठमाणमहणेहिं । अविसेसमयठाणा, परि हरयवापयत्तेण ॥ ३ ॥ (तवसंजमइत्यादि) । तपःसंयमज्ञानेष्वऽप्यात्मसमुत्कर्षणार्थ मुत्सेकार्थं यः प्रवृत्तोमानोयद्यसावपि तावद्विवर्जितस्त्यक्तोमहर्षिभिर्महामुनिभिः किं पुनर्निंदाऽन्येषां न त्याज्येति । यदि तावन्निर्जरामदोपि मोक्षैकगमनहेतुः प्रतिषिद्धो ऽष्टमानमथनैरर्हद्भिरवशेषाणि तु मदस्थानानि जात्यादीनि प्रयत्नेन सुतरां परिहर्त्तव्या नीति गाथाद्वयार्थः ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ १ ॥ साप्रतं परनिंदादोषमधिकृत्याह । (जोप रिभवइत्यादि) । यः कश्चिदविवेकी परिभवत्यवज्ञयति । परं जनं अन्यं लोकमात्म व्यतिरिक्तं । सतत्कृतेन कर्मणा संसारे चतुर्गतिलक्षणे भवोदधावरघट्टघटीन्यायेन परि वर्त्तते भ्रमति महदत्यर्थं महांतं वा कालं ।क्वचिच्चिरमितिपाठः (अदुत्ति) अथशब्दोनिपा तः । निपातानामनेकार्थत्वात् अतइत्यस्याऽर्थे वर्तते । यतः परपरिभवादात्यंतिकः संसारः अतः (इंखिणिया)परनिंदा । तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् पापिकैव दोषवत्येव । अथवा स्वस्था नादधमस्थाने पातिका । तत्रेह जन्मनि । सुघरोदृष्टांतः । परलोकेऽपि पुरोहितस्याऽपि श्वादिषूत्पत्तिरिति इत्येवं संख्याय परनिंदां दोषवतीं ज्ञात्वा मुनिर्जात्यादिर्निर्यथाऽहं विशि ष्टकुलोद्भवः श्रुतवान् तपस्वी भवांस्तु मत्तोहीनइति न माद्यति ॥ २ ॥

जे यावि अणायगे सिया,जेविय पेसग पेसए सिया ॥ जे मोणप
यं उवहिए, णो लज्जे समयं सयायरे ॥३॥ समअन्नयरम्मि सं
जमे, संसुद्धे समणे परिव्वए ॥ जे आवकहा समाहिए, दविए
कालमकासि पंमिए ॥ ४ ॥

अर्थ–हवे मदने अभावे जेकांइ कर्त्तव्यछे ते देखाडेछे. जेयाविके० जेकोइ अणायगेके० अनायक एटले नायक रहित किंतु स्वमेव नायक चक्रवर्त्यादिक सियाके० होय तथा जेवि यके० जेकोइ अनेरो पेसगके० कर्म करनो पेसएके० कर्मकर होय परंतु जे के० जे मोणपयं के० मौन पद एवुंजे चारित्र तेने विषे उवहिएके० उपस्थित एटले सावधान थयो तेपण णोलज्जेके० लज्जाने अण करतो थको एतावता अभिमान छांमीने सर्वक्रिया परस्पर वं दन प्रतिवंदनादिक करे. जो चक्रवर्त्ति चारित्र आदरे तो पण पूर्वे दिक्षित पोताना कर्मकरना कर्म करने वांदे परंतु गर्व नकरे; लज्जा पामे नहीं. एरीते सयाके० सदाय समयं के० समभावने आयरेके० आदरे. संयमने विषे सावधान थाय ॥ ३ ॥ हवे क्यां रह्यो थको लज्जा तथा मद नकरे? ते देखाडेछे. समके० सामायकादिक अन्नयरम्मिसंजमे

के० अनेरा संयमनें विषे एटले सामायक छेदोपस्थापनीयादिक संयमने विषे प्रवर्त्ततो थको संके० सम्यक्प्रकारे सुद्धेके० शुद्ध समणेके० श्रमण जे तपस्वीते लज्जा तथा मदने परित्यागे समचित्त थको परिव्वए के० प्रव्रज्या पाले. ते केटलो काल सुधी पाले? ते कहेछे. जेआवके० ज्यांलगे तेनी कहाके० कथा रहे त्यांलगे पाले एटले जावजीव लगे मरण सीम समाहिएके० समाधिवंत अथवा आत्मज्ञानसहित अथवा रुडा अध्यवसाये करी युक्त दविएके० ते मुक्ति गमन योग्य अथवा रागद्वेषरहित एवो थको जे काल मकासिके० काल करे ते पंमिएके० पंमित कहेवाय ॥ ४ ॥.

॥ दीपिका–जेयाविति । यश्चापि अनायकोनायकरहितः स्वयं प्रनुश्चक्रवर्त्यादिः स्यात् यश्चापि प्रेष्यस्यापि प्रेष्यः कर्मकरस्यापि कर्मकरः स्यात् एवंनूतः सन् मुनेरिदं मौनं पदं स्थानं मौनपदं संयममुपस्थितआश्रितोनोलज्जते । कोर्थः । चक्रवर्त्यपि प्रेष्यं साधुं वंदमानोन लज्जते प्रेष्योपि प्रनुः साधुमितरं वा उत्कर्षरहितोनमन्न लज्जते । एवमनेन प्रकारेण समतां चरेत् साधुः ॥ ३ ॥ (समेत्ति) समोमध्यस्थः संयमस्थानानां षट्स्थानपतितत्वादन्यतरस्मिन् संयमस्थाने सामायिकछेदोपस्थापनीयादौ वा संयमे संशुद्धे निर्मले संशुद्धो वा मदरहितः श्रमणः परिव्रजेत् उद्यमवान् नवेत् । कियंतं कालं यावत्कथा यावन्नाम धत्ते तावत् । किंनूतः साधुः समाहितः शुनध्यानः पंडितोयावत्कालमकार्षीत् मृत्युकालं यावदित्यर्थः । नामवार्तातु मृतस्यापि नवेत् ततउक्तं यावत्कालमकार्षीदिति ॥ ४ ॥

॥ टीका–मदान्नावे च यद्विधेयं तद्दर्शयितुमाह (जेयावीत्यादि) यश्चाऽपि कश्चिदास्तां तावत् । अन्योन विद्यते नायकोऽस्येत्यनायकः स्वयं प्रनुश्चक्रवर्त्यादिः स्यात् नवेत् यश्चाऽपि प्रेष्यस्याऽपि प्रेष्यः तस्यैव राज्ञः कर्मकरस्यापि कर्मकरोयएवंनूतोमौनींद्रं पद्यते गम्यते मोक्षोयेन तत्पदं संयमस्तं उपसामीप्येन स्थितः उपस्थितः समाश्रितः सोऽप्यलज्जमानउत्कर्षमकुर्वन् वा सर्वाः क्रियाः परस्परतोवंदनप्रतिवंदनादिकाविधत्ते । इदमुक्तं नवति ।चक्रवर्तिनाऽपिमौनींद्रपदमुपस्थितेन पूर्वमात्मप्रेष्यमपि वंदमानेन लज्जा न विधेया इतरेण चोत्कर्षइत्येवं समतां समन्नावं सदा निक्षुश्चरेत् संयमाद्युक्तोनवेदिति ॥ ३ ॥ कपुनर्व्यवस्थितेन लज्जामदौ न विधेयाविति दर्शयितुमाह (समेइत्यादि) (समेत्ति) समन्नावोपेतः सामायिकादौ संयमे संयमस्थाने वा षट्स्थानपतितत्वात् संयमस्थानानामन्यतरस्मिन् संयमस्थाने छेदोपस्थानीयादौ वा । तदेव विशिनष्टि । सम्यक् शुद्धे सम्यक् शुद्धोवा श्रमणस्तपस्वी लज्जामदपरित्यागेन समानमनावा परिव्रजेत् संयमोद्युक्तोनवेत् स्यात्। कियंतं कालं यावत् कथा देवदत्तोयज्ञदत्तइति कथां यावत् ।सम्यगाहितआत्मा ज्ञानादौ येन ससमाहितः समाधिना वा शोनननाध्यवसायेन शुक्तोद्रव्यनूतोरागद्वेषादिरहि

तोमुक्तिगमनयोग्यतया वा नव्यः । सएवंनूतः कालमकार्षीत् पंडितः सद्विवेकासद्विवेक कलितः । एतडुक्तं नवति । देवदत्तइति कथा मृतस्याऽपि नवत्यतोयावन्मृत्युकाले ता वल्लज्जामदपरित्यागोपेतेन संयमानुष्ठाने प्रवर्तितव्यमिति स्यात् ॥ ४ ॥

दूरं अणुपस्सिया मुणी, तीतं धम्ममणागयं तहा ॥ पुट्ठे परुसेहिं
माहणे, अविहम्मू समयंमि रीयइ ॥ पाठांतरे समयाहिया सये
ति ॥ ५ ॥ पन्न समत्ते सया जए, समताधम्ममुदाहरे मुणी ॥ सु
हमे ज सया अलूसए, णो कुज्के णो माणि माहणे ॥ ६ ॥

अर्थ—हवे शास्त्रनुं अवलंबन करीने संयम पाले ते कहेछे. दूरंके० जे कारणे दूर वर्त्ते माटे ते दूर शब्दे मोक्ष कहिये; तेने अणुपस्सियाके०आलोचीने एटले सम्यक्धर्म विना मोक्ष न थाय एवुं विमाशीने ते मुणीके० चारित्रिउ अतीतंधम्मं के० अतीत धर्म एट, ले पाछले काले जीवनुं अनेक प्रकारे उंच नीच गतिने विषे जे भ्रमण कर्युं तेरूप धर्म तहा के० तथा अणागयं के० अनागत एटले आगमिक काले जीवनी गतिरूपधर्मनुं स्वरूप जाणीने लज्जा तथा मद करे नहीं. तथा परुसेहिंके० कठण वचन अथवा दंम कशादिक तेणे पुट्ठे के० फरश्यो थको माहणे के० ब्रह्मचर्यनो पालनार चारित्रिउ ते अपि के० किंबहुना हम्मू के० सर्वथापि मार्यो थको पण स्कंदकमुनिना शिष्यनी पेरे समयंमि के० सिद्धांतना मार्गेज रीयति के० चाले एटले तेना उपर कषाय नकरे अ थवा पाठांतरे (समयाहियासएति) के० समताये करी सहित थको विचरे ॥५॥ वली उपदेशांतर कहेछे. पन्नसमत्ते के० ते प्रज्ञाये करी पूर्ण तत्वनो जाण सया के० सर्व काल कषायादिकने जए के० जीपे. अथवा प्रश्न पूछ्या थकां प्रत्युत्तर देवाने स मर्थहोय' समता के० समनावे धम्मं के० अहिंसादि लक्षण जे धर्म ते उदाहरे के० लोकप्रत्ये कहेछे एवो मुणी के० चारित्रिउ सुहमेज के० सूक्ष्म संयमने विषे सयाअ लूसए के० सर्व काल अविराधक तथा ते चारित्रियाने कोइए हण्यो थको पण णोकु ज्के के० क्रोध नकरे अने कोइए पूज्यो थको णोमाणि के० मान नकरे एवो माह णे के० साधु जाणवो ॥ ६ ॥

॥ दीपिका—(दूरमिति) दूरं मोक्षमनुदृश्य पर्यालोच्य मुनिरतीतमनागतं च धर्मं जी वानां स्वनावं विचार्य लज्जामानौ न कार्यौ । तथा स्पृष्टः परुषैः कठिनैर्दंडादिनिर्वचनैर्वा माहनोमुनिः (अविहम्मूत्ति) अपि हन्यमानः स्कंदकशिष्यवत्समये संयमे रीयते गछ ति । पाठांतरे वा (समयाहियासये) । समतयासहते इत्यर्थः ॥५॥ (पन्नसमत्तेत्ति) ।

प्रज्ञासमाप्तः पटुप्रज्ञः। अथवा प्रश्नसमर्थः प्रश्ने कृते तडुत्तरदानसमर्थः सदाजयेत्कषाया दिकं तथा समतया धर्ममुदाहरेत् कथयेन्मुनिः। सूक्ष्मं स्तोकमपि यत्संयमकृत्यं तस्याऽछूषकोऽविराधकोनो क्रुध्येत् हन्यमानं पूज्यमानोमानी नोपि माहनोयतिः ॥ ६ ॥

॥ टीका–किमालंब्यैतद्विधेयमित्युच्यते। (दूरमित्यादि) दूरवर्त्तित्वात् दूरोमोक्षस्त मनु पश्चात् तद्दृष्ट्वा। यदि वा दूरमिति दीर्घकालमनुदृश्य पर्यालोच्य मुनिः कालत्रयवेत्ता दूरमेव दर्शयति अतीतं धर्मं स्वनावं जीवानामुच्चावचगतिस्थानलक्षणं तथा अनागतं च धर्मं स्वनावं पर्यालोच्य लज्जामदौ न विधेयौ। तथा स्पृष्टः परुषैर्दंडकशादिनिर्वाग्निर्वा (मा हणेत्ति) मुनिः (अविहस्सूत्ति) अपि मार्यमाणः स्कंदकशिष्यगणवत्समये संयमे रीयते त डुक्तमार्गेण गछतीत्यर्थः। पाठांतरं वा (समयाहियासयत्ति)समतयासहतइति ॥ ५॥ पुन रप्युपदेशांतरमाह (पसुसमत्तइत्यादि) प्रज्ञायां समाप्तःप्रज्ञासमाप्तः पटुप्रज्ञः। पाठांतरं वा (पसुसमत्थे) प्रश्नविषये प्रत्युत्तरदानसमर्थः सदा सर्वकालं जयेज्ञेयं कषायादिकमिति शेषः। तथा समया समता तया धर्ममहिंसादिलक्षणमुदाहरेत् कथयेत् मुनिर्यतिः सूक्ष्मे संयमे यत्कर्तव्यं तस्याछूषकोऽविराधकस्तथा न हन्यमानोवा पूज्यमानोवा क्रुध्ये न्नाऽपि मानी गर्वितः स्यात् माहणो यतिरिति ॥ ६ ॥

बहुजणणमणंमि संवुमो, सव्वठेहिं णरे अणिस्सिए ॥ हरएव
सया अणाविले, धम्मं पाडुरकासिकासवं ॥७॥ बहवे पाणा पुढो
सिया पत्तेयं समयजवेहिया ॥ जे मोणपदं उवष्ठिते, विरतिं
तब अकासि पंमिए ॥ ८ ॥

अर्थ–बहुजण के० घणालोकने णमणंमि के० नमाडे एटले जेने सर्व लोक पोत पोतानो करीने प्रसंशे तेमाटे जेबहुजणनमन तेने धर्म कहिए ते धर्मने विषे संवुमोके० संवृत एटले समाधिवंत एवो बतो णरेके० नर एटले मनुष्य ते सव्वठेहिं के० सर्व अ र्थ एटले बाह्य अने अभ्यंतर धन धान्य पुत्र कलत्रादिके करी,अणिस्सिएके० अनिश्रित ए टले अप्रतिबंध बतो धर्म प्रकाशे. हरएवके० इहनी पेरे जेम इहजेबे, ते सयाके० सर्व काल स्वब निर्मल पाणीयेंज नस्यो थको रहेबे. अणाविले के० अनेक जलचर जीव ना फोलवा थकी पण डोहोलुं नथाय. तेम चारित्रिउ रागद्वेषरहित बतो धम्मंपाडु रकासि के० धर्म प्रगट करे. तेधर्म कासवं के० श्रीतीर्थंकरसंबंधी एटले श्रीवर्द्धमान स्वा मिनिर्देश जाणवो. ॥ ७ ॥ हवे जेवो धर्म प्रकाशे तेवो कहेबे. अथवा उपदेशांतरे कहेबे. बहवेपाणा के० घणाप्राणी एटले अनंताजीव ते पुढोसियाके० पृथक्पृथक् जुदा जुदा

सूक्ष्म बादर पर्याप्त अपर्याप्त नरक तिर्यंच मनुष्यादिक भेदे करी संसारमांहे आश्रित छे, तेने पत्तेयं के० प्रत्येके प्रत्येके समय के० समता एटले सरखापणे समीहिया के० देखवा. केमके सर्व जीव सुखना अभिलाषीछे, पण दुःखना द्वेषीछे; तेमाटे पोताना सरखा जाणी धर्म प्रकाशे तथा जेमोणपदंउवट्ठिते के० जे मौनपद एटले संयमने विषे उपस्थित एटले सावधान एवो साधु छे, तत्थके० ते जीवघातने विषे त्रिविध त्रिविध प्रकारे जेणे विरतिं अकासि के० विरति कीधी छे; पंडिएके० ते पंडित जाणवो. ॥८॥

दीपिका-(बहुजनेति) बहुजनैर्नम्यते स्तूयते इति बहुजननमनोधर्मः । कथं राजगृहपुरे श्रेणिकराज्ञः सदसि कदाचिदेवं विचारः क्रियते । किंधार्मिकाजनाबहवः किंवा ऽधार्मिकाः । तदा लोकैरुक्तं अधार्मिकाबहवः । अभयमंत्रिणा तु कथितं धार्मिका बहवः । सभालोके तद्वचोऽमन्यमाने अभयेन परीक्षार्थं श्वेतकृष्णप्रासादद्वयं कारितं । नगरे च उद्घोषणा कारिता । यः कश्चिद्धार्मिकः सबलिं गृहीत्वा धवलप्रासादे समेतु अधार्मिकस्तु कृष्णे तदा सर्वोपि लोकोधवलप्रासादमेव प्राप्तः कृष्णप्रासादे तु श्रावकद्वयं। तद्दृष्ट्वा राज्ञा पृष्टं कथमेतावंतोलोकाधार्मिकाएव । तदा स्वस्वधर्मप्रशंसापूर्वकं वयं धार्मिका इति सर्वजनैरुक्तं । कृष्णप्रासादे श्रावकद्वयं दृष्ट्वा राज्ञा पृष्टं कथं युवामधार्मिकौ । तदा ताभ्यामुक्तमस्माभिर्मद्यनिवृत्तिनियमभंगः सकृन्निर्मितः । भग्नव्रतस्य किं जीवितं । यतः । वरमग्गिंमिपावेसो, वरं विसुद्धेण कम्मुणा मरणं ॥ मागहियव्वयभंगो, माजीयं खलिअ सीलस्स ॥१॥ इति । तथा परमार्थतः साधवएव धार्मिकाः । अस्माभिस्तु । अवाप्य मानुषं जन्म, लब्ध्वा जैनं च शासनं ॥ कृता निवृत्तिर्मद्यस्य, सम्यक् सापि न पालिता ॥१॥ अनेन व्रतभंगेन मन्यमानाअधार्मिकं ॥ अधमाधममात्मानं,कृष्णं प्रासादमाश्रिताः ॥२॥ तदेवं सर्वेपि प्रायः स्वं धार्मिकं मन्यंतइति। बहुजननमनोधर्मस्तस्मिन् संवृतः समाहितो नरः सर्वार्थैर्बाह्याभ्यंतरैर्धनधान्यकलत्रममतादिभिरनिश्रितोऽप्रतिबद्धः सन् धर्मं प्रकाशितवान् इत्युत्तरेण संबंधः । यथा ह्रदोजलाशयविशेषोऽनाविलोनिर्मलः स्यात् तथाऽकलुषचित्तोधर्मं काश्यपं जिनप्रणीतं प्राडुरकार्षीत् प्रकटं कृतवान् । छांदसत्वाद्वा वर्तमानातीतप्रत्ययनिर्देशः । एवंविधोधर्मं प्रकाशयेदिति । एवंगुणश्च साधुः स्यात्ततः साधोरेव धर्मदेशनायामधिकारोन गृहिणइति ॥ ७ ॥ (बहवइति) बहवः प्राणिनः पृथिव्यादयः पृथक् संसारं श्रितास्तेषां समतां सुखप्रियत्वं तुल्यमवेक्ष्य दृष्ट्वा योमौनपदं संयममुपस्थितआश्रितः साधुस्तत्र प्राणिसमूहोपघाते विरतिमकार्षीत् कुर्याद्वा पंडितः ॥ ८ ॥

॥ टीका-अपिच (बहुजणनमणमित्यादि) बहून् जनान् आत्मानंप्रति नामयति प्रह्वीकरोति तैर्वा नम्यते स्तूयते बहुजननमनोधर्मः सएव बहुभिर्जनैरात्मीयात्मीयाश

येन यथाऽभ्युपगमप्रशंसया स्तूयते प्रशस्यते। कथमत्र कथानकं । राजगृहे नगरे श्रेणिको महाराजः कदाचिदसौ चतुर्विधबुध्युपेतेन पुत्रेण अनयकुमारेण सार्धमास्थानस्थित स्तानिस्तानिः कथानिरासांचक्रे। तत्र कदाचिदेवंनूता कथाऽनूत् । तद्यथा इहलोके धार्मि कावहवउताऽधार्मिकाइति । तत्र समस्तपर्षदानिहितं । यथाऽत्राऽधार्मिकाबहवोलो काधर्मं तु शतानामपि मध्ये कश्चिदेवैकोविधत्ते तदाकर्ण्याऽनयकुमारेणोक्तं । यथा प्रा यशोलोकाः सर्वेएव धार्मिकाः । यदि न निश्चयोनवतां परीक्षा क्रियते पर्षदाऽप्यनिहितमे वमस्तु ततोऽनयकुमारेण धवलेतरप्रासादद्वयं कारितं घोषितं च डिंडिमेन नगरे यथा यः कश्चिदिह धार्मिकः ससर्वोऽपि धवलप्रासादं गृहीतबलिः प्रविशतु इतरस्त्वितरमिति। ततोऽसौ लोकः सर्वोऽपि धवलप्रासादमेव प्रविष्टोनिर्गच्छंश्च कथं त्वं धार्मिकइत्येवं पृष्टः कश्चिदाचष्टे । यथाऽहं कर्षकोऽनेकशकुनिगणोमद्धान्यकणैरात्मानं प्रीणयति खलकसमा गतधान्यकणनिक्षादानेन च मम धर्मइति।अपरस्त्वाह।यथाऽहं ब्राह्मणः षट्कर्माऽनिरत स्तथा बहुशौचस्नानादिनिर्वेदविहितानुष्ठानेन पितृदेवांस्तर्पयामि।अन्यः कथयति यथा व णिक्कुलोपजीवी निक्षादानादिप्रवृत्तोऽपरस्त्विदमाह । यथाऽहं कुलपुत्रकोन्यायागतं नि र्गतिकं कुटुंबकं पालयाम्येव तावत् श्वपाकोपीदमाह यथाऽहं कुलक्रमागतं धर्ममनुपाल यामीति मन्निश्रयाश्च बहवः पिशितनुजः प्राणान् धारयंतीत्येवं सर्वोऽप्यात्मीयमात्मी यं व्यापारमुद्दिश्य धर्मे नियोजयति । तत्राऽपरमसितप्रासादं श्रावकद्वयं प्रविष्टं तच्च कि मधर्माचरणं नवद्भयामकारीत्येवं पृष्टं सत् सकृन्मद्यनिवृत्तिनंगव्यलीकमकथयत् तथा सा धवएवाऽत्र परमार्थतोधार्मिकायथा गृहीतप्रतिज्ञानिर्वाहणसमर्थाः । अस्मानिस्तु अवा प्य मानुषं जन्म लब्ध्वा जैनं च शासनं ॥ कृत्वा निवृत्तिं मद्यस्य सम्यक् साऽपि न पालिता ॥ १ ॥ अनेन व्रतनंगेन मन्यमानाअधार्मिकं ॥ अधमाधममात्मानं कृष्णप्रा सादमाश्रिताः ॥ २ ॥ तथाहि । लज्जां गुणौघजननीं जननीमिवार्या,मत्यंतशुद्धहृद यामनुवर्त्तमानाः ॥ तेजस्विनः सुखमसूनपि संत्यजंति सत्यस्थितिव्यसनिनोन पुनः प्र तिज्ञां ॥ ३ ॥ वरं प्रवेष्टुं ज्वलितं हुताशनं नचाऽपि नग्नं चिरसंचितव्रतं ॥ वरं हि मृत्युः सुविशुद्धचेतसोनचाऽपि शीलस्खलितस्य जीवितमिति ॥ ४ ॥ तदेवं सर्वोऽप्यात्मानं धार्मिकं मन्यतइतिकृत्वा बहुजननमनोधर्मइति स्थितं । तस्मिंश्च संवृतः समाहितः सन् नरः पुमान् सर्वार्थैर्बाह्यान्यंतरैर्धनधान्यकलत्रममत्वादिनिरनिश्रितोऽप्रतिबद्धः सन् धर्मं प्रकाशितवानित्युत्तरेण सह संबंधः । निदर्शनमाह।न्हदइव स्वच्छांनसा नृतः सदानाविलो ऽनेकमत्स्यादिजलचरसंक्रमेणाऽप्यनाकुलोऽकलुषोवा क्षांत्यादिलक्षणं धर्मं प्राडुरकार्षी त् प्रकटं कृतवान्। यदि वा एवं विशिष्टएव काश्यपतीर्थंकरसंबंधिनं धर्मं प्रकाशयेत् ।

छांदसत्वात् वर्त्तमानेनूतनिर्देशइति ॥ ७ ॥ सबहुजननमने धर्मे व्यवस्थितोयादृक् धर्मं प्रकाशयति तद्दर्शयितुमाह । (बहवेइत्यादि) यदिवोपदेशांतरमेवाऽधिकृत्याह । (बह वेइत्यादि) बहवोऽनंताः प्राणादशविधप्राणनोकृत्वात्तद्भेदोपचारात् प्राणिनः । पृथगि ति पृथिव्यादिभेदेन सूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तनरकगत्यादिभेदेन वा संसारमाश्रितास्तेषां च पृथगाश्रितानामपि प्रत्येकं समतां डुःखद्वेषित्वं सुखप्रियत्वं च समीक्ष्य दृष्ट्वा । यदि वा समतां माध्यस्थ्यमुपेक्ष्य योमौनींद्रपदमुपस्थितः संयममाश्रितः ससाधुस्तत्राऽनेक भेदभिन्नप्राणिगणे डुःखद्वेषिसुखाभिलाषिणि सति तदुपघाते कर्तव्ये विरतिमकार्षीत् कुर्याद्वेति पापाद्वीनः पापानुष्ठानात् दवीयान् पंमितइति ॥ ८ ॥

धम्मस्स य पारए मुणी, आरंभस्स य अंतए ठिए ॥ सोयंति य णं ममा इणो, णो लप्नंति णियं परिग्गहं ॥ ए॥ इह लोगडुहावहं विऊ, पर लोगेय डुहं डुहावहं ॥ विद्धंसण धम्ममेव तं इति विज्जं कोगारमावसे॥१०॥

अर्थ—वली तेहिज कहेछे. धम्मस्सयपारएमुणी के० धर्म शब्दे श्रुत चारित्ररूप ते नो पारंगामी एटले संवेगी अने गीतार्थ एवो मुनीश्वर तथा आरंभस्सय के० आरं भ जे सावद्यानुष्ठान तेनाथी अंतएठिए के० अत्यंत दूर रह्योछे अर्थात् सावद्यानुष्ठानने अण करतो थको प्रवर्त्ते ते मुनि कहेवाय. अने सोयंतियणं के० ए पूर्वे कह्युं एवो जे धर्म तेना अण करनार जे होय ते मरण आवे थके शोच पामे. परंतु ते केवा जाण वा? तोके, ममाइणो के० ममत्वना करनार णोलप्नंतिनियं परिग्गहं के० ते पोतानुं जे नष्ट थयेलुं सुवर्णादिक परिग्रह अथवा स्वजन नाशीगयेलो अथवा मरण पाम्यो एवो स्वजन तेने न पामे. पण ते शोच करता थकाज मरीने डुर्गतिये जाय. ॥ ए ॥ धन धान्य अने स्वजनादिक जे परिग्रह छे ते इहलोगडुहावहंविऊ के० आ लोकने विषे डुःखनुं कारण जाणी. यतः । अर्थानामर्जने डुःखमार्जितानां च रक्षणे ॥ आये डुः खं व्यये डुःखं धिगर्थान् डुःखभाजनान् ॥ १ ॥ अने परलोगेयडुहं डुहावहंके० परलोके पण डुःख तथा अनेरां डुःखनो करनार जाणीने तथा विद्धंसणधम्ममेवतं के० तेथी परिग्रह जे छे, विद्धंसण धर्मिछे एटले अशाश्वत अनित्यछे. इतिविज्जं के० एवुं जाण तो थको कोगारमावसे के० कोण सकर्ण मनुष्य गृहवासने विषे वसे. यत. । दाराः परिभवकारावंधुजना बंधनं विषं विषयाः ॥ कोयं जनस्य मोहोये रिपवस्तेपु सुहृदाशा ॥ १ ॥ इतिवचनात् ॥ १० ॥

॥ दीपिका—(धम्मस्सेति) धर्मस्य श्रुतचारित्ररूपस्य पारगोमुनिः आरंभस्य च अं

ते पर्यंते स्थितः स्यात् । ये पुनरेवं नस्युः ते । एंवाक्यालंकारे (ममाइणोत्ति) । ममेदं अहमस्य स्वामीत्यध्यवसायिनः शोचंति । शोचमानाअपि निजपरिग्रहं धनस्वजनादिकं नष्टं मृतं वा लनंते ॥ ए ॥ (इहेति) इह लोकडुःखावहं धनस्वजनादिकं (विजत्ति) विद्याः जानीहि । यतः । अर्थानामर्जने डुःख,मर्जितानां च रक्षणे ॥ आये डुःखं व्यये डुःखं धिगर्थान् डुःखनाजनान् ॥ १ ॥ तथा रेवापयः किसलयानिव सल्लकीनां विंध्योपकंठविपिनं स्वकुलं च हित्वा ॥ किं ताम्यसि द्विप गतोसि वशं करिण्याः स्नेहोहि कारणमनर्थपरंपरायाः ॥ २ ॥ परलोके च धनादिकं डुःखं तदप्यपरं डुःखं करोति । तडुपादानकर्मोपादानात् ॥ तथा तद्धनादिविध्वंसनधर्मकमेव विनश्वरमेव इति विद्वान् एवं जानन् कोऽगारवासमावसेत् गृहवासे तिष्ठति । यतः । दाराः परिजवकारा,बंधुजनो बंधनं विषं विषयाः ॥ कोयं जनस्य मोहोये रिपवस्तेषु सुहृदाशा इति॥ १ ॥ १० ॥

॥ टीका—अपिच । (धम्मस्सइत्यादि) । धर्मस्य श्रुतचारित्रभेदभिन्नस्य पारं गच्छतीति पारगः सिद्धांतपारगामी सम्यक् चारित्रनुष्ठायी वेति । चारित्रमधिकृत्याह । आरंनस्य सावद्यानुष्ठानरूपस्यांते पर्यंते तदनावरूपे स्थितोमुनिर्नवति।ये पुनर्नैवं नवंति ते अकृतधर्माः मरणे डुःखेवा समुब्रिते आत्मानं शोचंति । एमिति वाक्यालंकारे । यदि चेष्टमरणादाऽवर्थनाशो वा (ममाइणोत्ति) ममेदमहमस्य स्वामीत्येवमध्यवसायिनः शोचंति । शोचमानाअप्येते निजमात्मीयं परिसमंतात् गृह्यते आत्मसाक्रियतइति । परिग्रहोहिरण्यादिरिष्टस्वजनादिर्वा । नष्टं मृतं वा नलनंते न प्राप्नुवंतीति । यदिवा धर्मस्य पारगं मुनिमारंनस्यांऽते व्यवस्थितमेनमागत्य स्वजनामातापित्रादयः शोचंति ममत्वयुक्ताः स्नेहालवः । नच ते लनंते निजमप्यात्मीयपरिग्रहबुद्ध्या गृहीतमिति । अत्रांतरे नागार्जुनीयास्तु पठंति ॥ सोऊणतयंउवठियं केइगिहीविग्घेणउठिया धम्मंमिअणुत्तरे मुणी,तंपि जिणिज्जइमेणपंडिए॥१॥ एतदेवाह । (इहलोगेइत्यादि) । इहाऽस्मिन्नेव लोके हिरण्यस्वजनादिकं डुःखमावहति । (विजत्ति) विद्याः जानीहि । तथाहि । अर्थानामर्जने डुःख, मर्जितानां च रक्षणे । आये डुःखं व्यये डुःखं, धिगर्थं डुःखनाजनं । तथाहि । रेवापयः किसलयानि च सल्लकीनां विंध्योपकंठविपिनं स्वकुलं च हित्वा ॥ किं ताम्यसि द्विप गतोसि वशं करिण्याः स्नेहोनिबंधनमनर्थपरंपरायाः ॥१॥परलोके च हिरण्यस्वजनादिममत्वाऽपादितकर्मजं डुःखं नवति तदप्यपरं डुःखमावहति तडुपादानकर्मोपादानादिति नावः ॥ तथैतडुपार्जितमपि विध्वंसनधर्मं विशरारुस्वनावं गत्वरमित्यर्थः । इत्येवं विद्वान् जानन् कः सकर्णोऽगारवासं गृहवासमावसेत गृहवासं वा ऽनुबध्नीयादिति । उक्तंच । दाराः परिनवकाराबंधुजनो बंधनं विषं विषयाः ॥ कोऽयं जनस्य मोहोये रिपवस्तेषु सुहृदाशा॥१०॥

महयं पलिगोव जाणिया जाविय वंदणपूयणाइहं ॥ सुहुमे सल्ले दुरुध्धरे, विउ मंता पयहिज्ज संथवं ॥११॥ एगेचरे ठाणमासणे सयणे एगे समाहिए सिया ॥ भिक्खू उवहाणवीरिए वइगुत्ते अज्झत्तसंवुडो ॥ १२ ॥

अर्थ—वली उपदेश कहेछे. महयं के० महा महोटा जीवने ऊतरतां दुर्लन एवो शुं? तो के पलिगोव के० कर्दम ते अंतरंग कर्दम जाणवो जाविय वंदणपूयणाइहं के०तेअहीं साधुने राजादिकनी करेली वंदना तथा पूजना एटले वस्त्रादिकनी प्रतिलाभना तेणे करी उपजी जे पूजा तेने कर्मोपशमनुं कारण जाणिया के० जाणीने उत्कर्ष न करवो, जे जीवने गर्व उत्पन्न थाय तेहिज कर्दम सरखो जाणवो केमके सुहुमेसल्लेदुरुध्धरेके० ए गर्वरूप जे सल्यछे ते सूक्ष्मछे माटे दुरुध्धर एटले एने उध्धरता घणो दुर्लनछे तेमाटे विउमंता के० विद्वांस विवेकी पुरुषते पयहिज्ज के० छांमे संथवं के० संस्तव परिचयादिकनो त्याग करे ॥११॥ वली तेहिज कहेछे एगेचरे के० चारित्रिउ एकाकी द्रव्य थकी एकल्लविहारी अने भाव थकी रागद्वेषरहित एवो छतो विचरे तथा एकलो छतो ठाण के० काउस्सग करे तथा आसणेके० आसनने विषे पण रागद्वेषरहित थको बेशे एरीते सयणेके० शयनजे पाटप्रमुख त्यां पण एकाकीरहे ते केवो थको रहे? तोके समाहिएके० समाहित एटले जे जे क्रियामां प्रवर्त्ते त्यांत्यां सियाके० रागद्वेष टालतो थको प्रवर्त्तमान होय एवो भिक्खू के० आहारनो लेनार तथा उवहाण के० तपने विषे वीरिएके० बल वीर्यनो फोरवनार तथा वइगुत्तेअके० वचनगुप्ति एटले विमाशीने बोलनार तथा अज्झत्त के० मन तेनेविषे संवुडे के० संवृत एटले मनने स्थिरतानो करनार एवो साधु होय. ॥ १२ ॥

॥ दीपिका—(महयमिति) महांतं परिगोपं भावपंकोऽभिष्वंगस्तं विपाकतोज्ञात्वा योपि च प्रव्रजितस्य सतोवंदना पूजना इहाऽस्मिंल्लोके तां ज्ञात्वा गर्वोन कार्यइति । यतो गर्वोऽयं सूक्ष्मशल्यं वर्तते ।सूक्ष्मत्वाच्चदुरुध्धरमुध्धर्तुमशक्यअतोविद्वान् तत्तावत्संस्तवं परिचयं संगं प्रजह्यात् त्यजेत् ॥११॥ (एगेइति) एकोरागद्वेषरहितएकल्लविहारीवा चरेत् स्थानं कायोत्सर्गादिकमेकएव कुर्यात् ।आसने शयने वा स्थितएकएव रागद्वेषरहितएव समाहितो धर्मादिध्यानयुक्तः स्यात् । तथाभिक्षुरुपधानं तपस्तत्र वीर्यमुपधानवीर्योऽनिगूहितबलवीर्यः वाग्गुप्तः अध्यात्मं मनस्तेन संवृतः स्यात् ॥ १२ ॥

॥ टीका—पुनरप्युपदेशमधिकृत्याह (महयमित्यादि) महांतं संसारिणं डुस्त्यजत्वा न्महत्ता वा संरंजेण परिगोपणं परिगोपोऽव्यतः पाकादिर्नावतोऽनिष्वंगस्तं ज्ञात्वा स्व रूपतस्तद्विपाकतोवा परिछिद्य याऽपि च प्रव्रजितस्य सतोराजादिजिः कायादिजिर्वंदना वस्त्रपात्रादिजिश्च पूजना तांच इहाऽस्मिन् जोके मौनींडे वा शासने व्यवस्थितेन कर्मोप शमजं फलमित्येवं परिज्ञायोत्सेकोन विधेयः । किमिति यतोगर्वात्मकमेतत्सूक्ष्मश ल्यं वर्त्तते सूक्ष्मत्वाच्च डुरुद्धरं डुःखेनोद्धर्तुं शक्यते अतोविद्वान् सदसद्विवेकज्ञस्तत्तावत् संस्तवं परिचयमनिष्वंगं परिजह्यात् परित्यजेदिति ॥ नागार्जुनीयास्तु पठंति । पलिमंथमहं वियाणिया जावियवंदणपूयणाइहं ॥ सुहुमं सल्लं डुरुद्धरं तंपि जिणे एएण पंडिए ॥१॥ अ स्यचाऽयमर्थः । साधोः स्वाध्यायाऽध्ययनपरस्यैकांतनिस्पृहस्य योऽपि चाऽयं परैर्वंदनापूज नादिकः सत्कारः क्रियते.असावपि सदनुष्टानस्य सजतेर्वा महान् पलिमंथे विघ्नआस्तां तावच्छब्दादिष्वनिष्वंगस्तमित्येवं परिज्ञाय तथा सूक्ष्मशल्यं डुरुद्धरं वाऽतस्तमपि जये दपचयेत् पंडितएतेन वक्ष्यमाणेनेति ॥११॥ (एगेचरेइत्यादि) एकोऽसहायोऽव्यतएक छविहारी जावतोरागद्वेषरहितश्चरेत् तथा स्थानं कायोत्सर्गादिकमेकएव कुर्यात् तथा आ सनेऽपि व्यवस्थितोऽपि रागद्वेषरहितएव तिष्ठेत् । एवं शयनेऽप्येकाक्येव समाहितोध र्मादिध्यानयुक्तः स्यात् जवेत् । एतडुक्तं जवति । सर्वास्वप्यवस्थानासनशयनरूपासु राग द्वेषविरहात् समाहितएव स्यादिति । तथा जिक्षणशीलोजिक्षुः उपधानं तपस्तत्र वीर्यं यस्य सउपधानवीर्यः तपस्यनिगूहितबलवीर्यइत्यर्थः । तथा वाक्गुप्तः सुपर्यालोचिताजिधायी अ ध्यात्मं मनस्तेन संवृतोजिक्षुर्जवेदिति ॥ १२ ॥

णोपिहे ण यावपंगुणे दारं सुन्नघरस्स संजए ॥ पुठेण उदाहरेवायं, ण स
मुछे णो संथरे तणं ॥१३॥ जछ छमिए अणाउले, समविसमाइं मुणी
हियासए ॥ चरगाय डुवावि जेरवा, अडुवा तछ सरीसिवा सिया ॥१४॥

अर्थ—वली साधुने उपदेश कहेछे. कोइ एक शयनादिक कारणे सुन्नघरस्सके० शून्य घरें रह्यो थको एवोजे संजएके० साधु, ते ते घरना दारंके० द्वारतेने णोपिहेणयावपंगु णेके० ढांके पणनहीं, तेम उघाडे पण नहीं वली त्यां रह्यो छतो अथवा अन्यत्र स्था नके रह्योछतो पुठेणउदाहरेवायंके० कोइएके धर्म पूछ्यो थको सावद्यवचन बोलेनहीं. तथा णसमुछे णोसंथरेतणं के० त्यां रहेजाजे तृणकचरादिक ते प्रमार्जे नहीं, वली तेनेणो संथरे एटले पाथरे पण नहीं. ए आचार जिनकल्पादिक अजिग्रहधारी प्रमुख साधुनो कह्योछे; ॥ १३ ॥ वली जछछमिए के० चारित्रिउ ज्यां सूर्य अस्त थाय त्यांज रहे अने अणाउले के० परिसह उपसर्गें करी आकुल व्याकुल न थाय; क्षोज पामे न हिं,अक्षोज थको रहे. तथा समविसमाइंमुणीहियासएके० यथावस्थित संसारना स्वरू

पनो जाए एवो मुनीश्वर ते सम एटले अनुकूल शय्यादिक तथा विषम एटले प्रतिकूल शय्यादिक तेने अहियाशे तथा तेमज ते स्थानकने विषे चरक्के० मांस मसादिक अ डुवावि के० अथवा नेरवा के० बिहामणा एवा घूक सिंहादिक जीव अडवा के० अ थवा तब के० त्यां सुनाघरने विषे सरीसिवा के० सरीसृप एटले सर्प, सिया के०होय तो ते जीवोना करेला उपसर्गने सहन करे. ॥ १४ ॥

॥ दीपिका–(णोपीहेति)। केनचिद्वयनादिनिमित्तेन शून्यं गृहमाश्रितोनिकुस्तस्य गृहस्य द्वारं कपाटादिना न पिदधीत न स्थगयेत् ।(णयावपंगुणेत्ति)। नोद्घाटयेत् । केनचिद्धर्मादिकं मार्गादिकं पृष्टः सन् सावद्यां वाचं नोदाहरेन्नब्रूयात् ।आनिग्रहिकोजिनकल्पिकादिर्निरवद्यामपि न ब्रूयात् । न समुच्छिंद्यात्तृणानि कचवरंवा प्रमार्जनेन नावनयेत् नापि शयनार्थी कश्चिदानिग्राहिकस्तृणादिकं संस्तरेत् तृणैरपि संस्तारकं न कुर्यात् किंपुनः कंबला दिना अन्योवा शुषिरतृणं न संस्तरेत् ॥ १३ ॥ (जब्बेत्ति)। यत्रास्तमेति सविता तत्र वाऽनाविलोऽनाकुलस्तिष्ठति । समविषमाणि शयनासनादीन्यधिसहेत समतया सहेत । तत्र स्थितस्य मुनेश्चरकादंशमशकादयोनैरवाजयंकरारक्षःशिवादयोऽथवा सरीसृपाः सर्पा स्युस्तदा तत्कृतोपसर्गानपि सहेत ॥ १४ ॥

॥ टीका–किंच (णोपिहेत्यादि) । केनचिद्वयनादिनिमित्तेन शून्यगृहमाश्रितोनिक्षुः तस्य गृहस्य द्वारं कपाटादिना नस्थगयेन्नाऽपि तच्चालयेत्।यावत् (नयावपंगुणेत्ति)नोद्घाटयेत् तत्रस्थोऽन्यत्रवा केनचिद्धर्मादिकं मार्गं वा पृष्टः सन् सावद्यां वाचं नोदाहरेत् न ब्रूयात् । आनिग्रहिकोजिनकल्पिकादिर्निरवद्यामपि न ब्रूयात् तथा न समुच्छिंद्यात् । तृणानि कचवरंच प्रमार्जनेन नाऽपनयेत नाऽपि शयनार्थी कश्चिदानियाहिकस्तृणादिकं संस्तरेत् तृणैरपि संस्तारकं न कुर्यात् किं पुनः कंबलादिनाऽन्योवा शुषिरतृणं न संस्तरेदिति ॥ १३ ॥ तथा (जबबमियेत्यादि) । निक्षुर्यत्रैवाऽस्तमुपैति सविता तत्रैव कायोत्सर्गादिना तिष्ठतीति । यत्राऽस्तमितस्तथाऽनाकुलः ,समुद्भवन्नक्रादिनिः परीषहोपसर्गैरक्षुन्यन् समविषमाणि शयनासनादीन्यनुकूलप्रतिकूलानि मुनिर्यथावस्थितसंसारस्वनाववेत्ता सम्यगारक्तद्विष्टतयाऽधिसहेतेति ॥ १४ ॥

तिरिया मणुयाय दिव्वगा, उवसग्गा तिविहा हियासिया ॥ लो
मादियं पिण हरिसे सुन्नागारगउ महामुणी ॥१५॥ णो अनिकं
खेज्ज जीवियं, नोविय पूयणपब्बए सिया ॥ अप्नच्चुविंति
नेरवा, सुन्नागारगयस्स निक्खुणो ॥ १६ ॥

अर्थ–तथा तिरिया के० तिर्यंच संबंधी, मणुयाय के० मनुष्यसंबंधी अने दिव्वगा के० देवतासंबंधी ए तिविहा के० त्रण प्रकारना उवसग्गा के० उपसर्गने साधु ह्यियासियाके० सहन करे. पण तेना करेला उपसर्गथी विकार पामे नहीं; लोमादियंपि के० किं बहुना तेने ते नयथकी रोमोद्गम पण एहरिसेकें० नथाय, सुन्नागारगउ के० एरीते जे सुनाघरने विषे रहे ते महामुणी के० महामुनि जिनकल्पियादिक जाणवा. ॥ १५ ॥ तथा नोअनिकंखेज्जजीवियंके० ते चारित्रिउ पूर्वोक्त उपसर्गे पीड्यो बतो जीवितव्यने वांडे नहीं किंतु मरण आगमिने परिसहने सहन करे, तथा नोपियपूयणपब्बएसियाके० परिसह सहन करवा थकी पूजाना अनिलाषी नथाय. एरीते ते सुन्नागारगयस्सनिक्खुणोके० शुनागारगत चारित्रियाने नेरवा के० महारौद्र उपसर्ग ते अप्पब्ब के०सहन करतां सुलन्न नुविंति के० होय. ॥ १६॥

॥दीपिका–तिरियाइति ।तिरश्चाः सिंहादिकृताः मानुषाअनुकूलप्रतिकूलादिव्याव्यंतरादिकृताउपसर्गास्त्रिविधास्तान् अधिसहेत निर्विकारतया क्षमेत । लोमादिकमपि नहर्षेत् नयेन रोमोजमं नकुर्यात् । आदिशब्दाद्दृष्टिमुखविकारादिग्रहः । शून्यागारगतोमहामुनिः उपलक्षणात्प्रेतवनादिस्थितः ॥१५॥ नोअनिकंखेइति । उपसर्गैः पीड्यमानोपि साधुर्नानिकांक्षेज्जीवितं । जीवितनिरपेक्षेणोपसर्गाः सोढव्याइत्यर्थः ।नापिच पूजाप्रार्थकःस्यात् । उपसर्गसहनात्पूजामपि नसमीहते इत्यर्थः । एवं सह्यमानाः परिषहानैरवानयंकराअपि अन्यस्तनावं यंति गबंति । शून्यागारगतस्यनिक्षोरे वमुपसर्गाः सदन्यस्ताः सुसहानवंतीति॥१६

॥ टीका–सांप्रतं त्रिविधोपसर्गाधिसहनमधिकृत्याह । (तिरियाइत्यादि) तैरश्चाः सिंहव्याघ्रादिकृतास्तथा मानुषाअनुकूलप्रतिकूलाः सत्कारपुरस्कारदंमकशाताडनादिजनिताः। तथा (दिव्वगाइति) व्यंतरादिना हास्यप्रद्वेषादिजनिताः। एवंत्रिविधानऽप्युपसर्गानऽधिसहेत नोपसर्गैर्विकारं गच्छेत् । तदेव दर्शयति । लोमादिकमपि न हर्षेत् नयेन रोमोजममपि न कुर्यात् । यदिवा एवमुपसर्गास्त्रिविधाअपि (अहियासियत्ति) अधिसोढा नवंति । यदि रोमोजमादिकमपि न कुर्यात् । आदिग्रहणात् दृष्टिमुखविकारादिपरिग्रहः । शून्यागारगतः शून्यगृहव्यवस्थितस्य चोपलक्षणार्थत्वात् पितृवनादिस्थितोवा महामुनिर्जिनकल्पिकादिरिति ॥ १५ ॥ किंच । (णोअनिकंखेइत्यादि) । सतैर्नैरवैरुपसर्गैरुदीर्णैस्तोतुद्यमानोऽपिजीवितं नाऽनिकांक्षेत जीवितनिरपेक्षेणोपसर्गः सोढव्यइतिनावः । नचोपसर्गसहनद्वारेण पूजाप्रार्थकः प्रकर्षाऽनिलाषी स्यात् नवेत् । एवंच जीवितपूजानिरपेक्षेणाऽसकृत् सम्यक् सह्यमानानैरवाजयानकाः शिवाः पिशाचादयोऽन्यस्तनावं

स्वात्मनां उपसामीप्येन यंति गच्छंति । तत्सहनाच्च भिक्षोः शून्यागारगतस्य नीराजित वारणस्येव शीतोष्णादिजनिताउपसर्गाः सुसहाएव भवंतीति भावः ॥ १६ ॥

उवणीयतरस्स ताइणो, भयमाणस्सवि विक्कमासणं ॥ सामाइयमाहु तस्स जं, जो अप्पाण भएण दंसए ॥ १७ ॥ उसिणोदग तत्तभोइणो धम्मठियस्स मुणिस्स हीमतो ॥ संसग्गिअ साहुराइहिं, असमाही उ तहागयस्सवि ॥ १८ ॥

अर्थ—वली बीजो उपदेश कहेछे. उवणीयतरस्सके० उपनीततर एटले जेणे पोताना आत्माने ज्ञान, दर्शन अने चारित्रनेविषे पहोचाडयोछे. तथा ताइणोके० त्राइ एटले जेनो आत्मा अन्यने उपकारी होय तेने त्राइ कहिए. तथा विविक्तके० विविक्त आसणंके० आशन एटले स्त्री तथा पशु पंमके करी विवर्जित एवा भयमाणस्सके० उपाश्रयनो से वनार सामाइयमाहुतस्सजंके० तेने सामायक चारित्र जाणवो. जोके० जेचारित्रिउ अ प्पाणके० पोतानाआत्माने परिसह उपसर्ग उपना थका भएणदंसएके० भयने देखाडे नहीं, एटले उपसर्ग उत्पन्नथयाथी बीहे नहीं. ॥१७॥ वली उसिणोदगतत्तके० उष्ण उ दक तथा तप्तोदकनो भोइणोके० भोगवनार एटले उष्ण थकां शीतल नकरे, किंतु उष्णो दक छतांज पानकरें; तथाधम्मठियस्सके० श्रुत अने चारित्र धर्मने विषे स्थित मुनि स्सके० मुनिराज एटले तत्वनो जाण हीमतोके० लज्जावंत एटले असंयमे प्रवर्त्यों थको लज्जा पामे. एवा साहुके० साधुने पण राइहिंके राजादिकने संसग्गिअके० संस र्गे असमाहिउ के० असमाधिज थाय, तह गयस्सविके० तथा गतस्य यथोक्त अनुष्ठा नना करनार एवा साधु पण राजादिकना संसर्गे करी स्वाध्याय ध्यानथकी चूके. ॥१८॥

॥ दीपिका—उवणीयेति । उपनीतोऽतिशयेन ज्ञानादौ प्रापितआत्मायेन सउपनीतत रस्तस्य । तायिनः परात्मोपकारिणस्त्रायिणोवा सम्यक्पालकस्य विविक्तं स्त्रीपशुपंडकवि वर्जितमासनं वसत्यादि भजमानस्य सेवमानस्य सामायिकादिचारित्रमाहुः । सर्वं ज्ञा यते यस्मात्ततः साधुना निश्चलात्मना भाव्यं । तथा यआत्मानं भयेन दर्शयेत् परीषहो पसर्गैर्भीरुर्नस्यात् तस्य सामायिकमाहुरिति ॥ १७ ॥ (उसिणोत्ति) मुनेरुष्णोदकत प्तभोजिनः त्रिदंडोद्वृत्तोष्णोदकभोजिनः अथवा उष्णं सत् न शीतीकुर्यादिति तप्तग्रहणं ।त था धर्मे स्थितस्य ह्रीमतः असंयमे लज्जावतोराजादिभिः सह संसर्गः संबंधोऽसाधुरन र्थकरः । तथागतस्य यथोक्तानुष्ठायिनोपि राजादिसंसर्गवशादसमाधिरेव नकदाचित्स्वा ध्यायादिकं स्यादित्यर्थः ॥ १८ ॥

॥ टीका–पुनरप्युपदेशांतरमाह (उवणीयेत्यादि) उपसामीप्येन नीतः प्रापितोज्ञानादाऽवात्मा येन सतथा अतिशयेनोपनीतउपनीततरस्तस्य तथा तायिनः परात्मोपकारिणस्त्रायिणोवा सम्यक्पालकस्य तथा नजमानस्य सेवमानस्य विविक्तं स्त्रीपशुपंडकविवर्जितमास्यते स्थीयते यस्मिन्निति तदासनं वसत्यादि तस्यैवं नूतस्य मुनेः सामायिकं समनावरूपं सामायिकादिचारित्रमाहुः सर्वज्ञाः। यद्यस्मात् ततश्चारित्रिणा प्राग्व्यवस्थितस्वनावेन नाव्यं यश्चात्मानं नयेन परिषहोपसर्गजनितेन दर्शयेत् तन्नीरुर्न नवेत् तस्य सामायिकमाहुरिति संबंधनीयं ॥ १७ ॥ किंच (उसिणोदगेत्यादि) मुनेरुष्णोदकतप्तनोजिनः त्रिदंडोद्वृतोष्णोदकनोजिनः। यदिवा उष्णं सन्नशीतीकुर्यादिति तप्तग्रहणं। तथा श्रुतचारित्राख्ये धर्मे स्थितस्य (हीमतोत्ति) न्हीरसंयमं प्रति लज्जा तद्वतोऽसंयमजुगुप्सावतइत्यर्थः। तस्यैवंनूतस्य मुनेराजादिनिः सार्द्धं यः संसर्गः संबंधोऽसाऽवसाधुरनर्थोदयहेतुत्वात्तथागतस्यापि यथोक्तानुष्ठायिनोऽपि राजादिसंसर्गवशादसमाधिरेवाऽपध्यानमेव स्यात् न कदाचित् स्वाध्यायादिकं नवेदिति ॥ १७ ॥

अहिगरणकडस्स निरकुणो, वयमाणस्स पसश्नदारुणं ॥ अहे परिहायती बहु, अहिगरणं नकरेज्ज पंमिए ॥ १ए ॥ सीउदग पडिडुगंबिणो, अपडिन्नस्स लवावसप्पिणो ॥ सामाइय साहु तस्स जं, जो गिहिमत्तसणं न नुंजती ॥ २० ॥

अर्थ–हवे उपदेश आश्री कहेडे. अहिगरण के० अधिकरण ते कलह तेनो कडस्स के० करनार एवो निरकुणो के० चारित्रिउ वली पसश्नदारुणं के० प्रगटदारुण एटले जीवने नयनुं कारण वयमाणस्स के० एवी नाषानो बोलनार एवा चारित्रियानो घणो एवो जे अहेके० अर्थ जे मोक्ष तेनुं कारण जे संयम ते परिहायती के० हीणो थाय. एटले बहुके० घणाकाले उपार्जित जे डुष्करतप संयम तेनो पण कलह करतां परोपघातीया वचन बोलतां क्षय थाय. एवुं जाणीने शुंकरे ? ते कहेडे. पंमिएके० जे पंमितविवेकी होयते अहिगरणके०अधिकरण जे क्रोध ते स्वल्पपण नकरेज्जके० नकरे,एटले पंमित अल्पक्रोध पण करे नहीं. ॥ १ए ॥ जे चारित्रिउ सीउदगं के० शीतोदक एटले सचेतपाणी तेने पडिडुगंबिणो के० टालनार तथा अपडिन्नस्स के० अप्रतिज्ञ एटले नियाणु सर्वथापि नकरे. तथा लवावसप्पिणो के० लव एटले कर्म तेथकी शंकातो रहे. एटले कर्मबंधनुं कारण एवुं जे अनुष्ठान होय ते नकरे. सामाइयसाहुतस्सजंके० ते साधुने सामायक एटले समता लक्षणवंत कहिए. वली जोके० जे साधु गिहिमत्तसणं

के० गृहस्थसंबंधी जे नाजन कांस्यपात्रादिक तेने विषे नभुंजती के० नोजन न करे तेने सामायकवंत जाणवो. ॥ २० ॥

॥ दीपिका–(अहिगरणेति)। अधिकरणं कलहस्तत्करस्य निक्षोर्दारुणं वाचं प्रसह्य प्रगटमेववदतोऽर्थोमोक्षः संयमोवा बहु परिहीयते नृशं विनश्यतीत्यर्थः। बहुकालार्जित मपि महत्पुण्यं कलहं कुर्वतस्तत्कालं हीयते। यतः। जं अज्जिअं समीखल्लएहिं तवनियम बंनमइएहिं ॥ माहुतयंकलहंता, बड्डेअहसागपत्तेहिं ॥ १ ॥ तस्मादधिकरणं नकुर्यात्पं मितः ॥ १ए ॥ (सीउंदगेति)। शीतोदकमप्रासुकजलं तत्प्रति जुगुप्सकस्य परिहारिणो न विद्यते प्रतिज्ञा निदानं यस्य सअप्रतिज्ञस्तस्याऽनिदानस्य लवं कर्म तस्मादवसर्पिणोनि वर्तमानस्य साधोः सामायिकादिसंयममाहुः सर्वज्ञाः। यश्च साधुर्गृहमात्रे गृहस्थनाज नेन नुंक्ते तस्य सामायिकमिति ॥ २० ॥

॥ टीका–परिहार्यदोषप्रदर्शनेनाऽधुनोपदेशानिधित्सयाह । (अहिगरणेत्यादि)। अधिकरणं कलहस्तत्करोति तच्छीलश्चेत्यधिकरणकरस्तस्यैवंनूतस्य निक्षोस्तथाऽधिकरण करीं दारुणां वा नयानकां वा प्रसह्यप्रगटमेव वाचं ब्रुवतः सतोर्थोमोक्षस्तत्कारण नूतोवा संयमः सबहु परिहीयते ध्वंसमुपयाति । इदमुक्तं नवति। बहुना कालेन यद र्जितं विप्रकृष्टेन तपसा महत्पुंण्यं तत्कलहं कुर्वतः परोपघातिनीं च वाचं ब्रुवतस्तत्क्ष णमेव ध्वंसमुपयाति। तथाहि। जंअज्जियंसमीखल्लएहिं तवनियमबंनमइएहिं। माहु तयंकलहंताबड्डेअह सागपत्तेहिं ॥ १ ॥ इत्येवं मत्वा मनागप्यधिकरणं न कुर्यात् पं मितः सदसद्विवेकीति ॥ १ए ॥ तथा (सीउंदगेत्यादि)। शीतोदकमप्रासुकोदकं तत्प्र ति जुगुप्सकस्याऽप्रासुकोदकपरिहारिणः साधोर्न विद्यते प्रतिज्ञा निदानरूपा यस्य सोप्र तिज्ञोऽनिदानइत्यर्थः । लवं कर्म तस्मात् (अवसप्पिणोत्ति)। अवसर्पिणः यदनुष्ठा नं कर्म बंधोपादाननूतं तत्परिहारिणइत्यर्थः । तस्यैवंनूतस्य साधोर्यस्मात् यत्सामा यिकं समनावलक्षणमाहुः सर्वज्ञाः। यश्च साधुः गृहमात्रे गृहस्थनाजने कांस्यपात्रादौ न नुंक्ते तस्यच सामायिकमाहुरिति संबंधनीयमिति ॥ २० ॥

एय संखयमाहु जीवियं, तहविय बालजणो पगप्नइ॥ बाले पापेहिं मिज्जती, इति संखाय मुणी ए मज्जती ॥ २१॥ बंदेण पाले इमा पया, ब हुमाया मोहेण पाउडा ॥ वियडेण पलिंति माहणे, सीउण्ह वयसा हियासए॥ २२ ॥

अर्थ—वली प्रकारांतरे कहेछे. आहुजीवियंके० जीवितव्य आयुष्य काल पर्यायें करी त्रूटोछतां णयसंखयके० वधारी नशकाय, एरीते पंमितो कहेछे. तहवियके० तोपण बालजणोके० बाल अज्ञानी जन पगप्नइके० पाप करतो धृष्टपणुं करे एवो बालेके० बाल ते पापेहिंमिज्जतीके० पापकर्मेकरी नराय, संसारमां दुःख पामे. इतिसंखायके०एवुं जाणीने मुणी के० साधुजेछे, ते णमज्जतीके० मद नकरे एटले पापे करी धींगो न थाय. ॥ २१ ॥ वलीउपदेश कहेछे. छंदेणके० पोतपोताने अनिप्रायेंकरी इमापया के० ए प्रजा एटले लोकजेछेते पालेके० तेवी तेवी नरकादिक गतिने विषे पर्यटन करे, ते केवीरीते? तोके, एक दशनी पोताना अनिप्रायें करी गृहनेविषे ग्रस्त छतां अजादिकना वधने पण धर्मनुं कारण कहेछे, अन्य वली धनधान्यादिक परिग्रह पृथ्वीकायनो आरंन एने पण धर्म कहेछे, इत्यादिक प्रकारें ए प्रजालोक जे छे ते मुग्धजनरंजननिमित्ते बहुमाया के० कपट प्रधान अनेक प्रकारनी कपटक्रिया करे, परंतु श्रीवीतरागनो मार्ग सम्यक् प्रकारे नजाणे. तेनुं कारण कहेछे, केमके ए लोक जेछे, ते मोहेणके० अज्ञाने करी पाउडाके० आवस्था. विवेकरहित छे, माटे खोटा साचानी व्यक्तिने जाणता नथी, एवुं जाणीने माहणे के० साधु ते वियडेण के० विकटेण एटले प्रगट मायारहित निर्माय कर्मे करी पलिंति के० मोक्ष तथा संयमने विषे प्रवर्त्ते, एटले शुन ध्याने करीयुक्त होय, सीउण्हके०शीत उष्ण एटले अनुकूल अने प्रतिकूल उपसर्ग ते वयसा के० वचने, कायाये अने मने ए त्रिकरण शुद्धेकरी अहियासए एटले परीसह आवे थके दीनपणुं आणेनहीं. ॥ २२ ॥

॥ दीपिका—नयेति । जीवितं त्रुटितं सत् (नसंखयत्ति) नसंस्कर्तुं शक्यमित्याहुस्तद्विदः तथापि बालोऽज्ञो जनः प्रगल्नते पापं कुर्यात् । बालः पापैः कर्मनिर्मीयते म्रियते वा इति संख्याय ज्ञात्वा मुनिर्न माद्यति अहं सदनुष्ठानइति मदं नकुर्यात् ॥२१॥ (छंदेणेति) इमाः प्रजाः अयंलोकः छंदेन स्वानिप्रायेण प्रलीयते शोननजावः स्यात् । यथा छागादि वधेपि केचिद्धर्मं वदंति कुटुंबमुद्दिश्य धनादिपरिग्रहं कुर्वंति केचिन्मायया मुग्धजनं प्रतारयंति तथा बहुमाया प्रजा मोहेन प्रावृता आछादिताच एवंज्ञात्वा (माहणेत्ति) साधुः विकटेन प्रकटेन निर्मायेन कर्मणा संयमे प्रलीयते शुननावः स्यात् । तथा शीतं उष्णंच वाचा कायेन मनसा वाऽधिसहते ॥ २२ ॥

॥ टीका—किंच (नयसंखयमित्यादि) नच नैव जीवितमायुष्कं कालपर्यायेण त्रुटितं सत् पुनः (संखयमिति) संस्कर्तुं तंतुवत्संधातुं शक्यते इत्येवमाहुस्तद्विदस्तथाऽप्येवमपि व्यवस्थिते बालोऽज्ञो जनः प्रगल्नते पापं कुर्वन् धृष्टोनवति असदनुष्ठानरतोऽपि

न लज्जतइति । सचैवंभूतोबालस्तैरसदनुष्ठानापादितैः पापैः कर्मभिर्मीयते तद्युक्तइत्येवं प रिछिद्यते म्रियते वा मेयेन धान्यादिना प्रस्थकवदित्येवं संख्याय ज्ञात्वा मुनिर्यथावस्थि तपदार्थानां वेत्ता न माद्यतीति तेष्वसदनुष्ठानेष्वहं शोभनः कर्त्तेत्येवं प्रगल्भमानोमदं न करोति ॥ २१ ॥ उपदेशांतरमाह (छंदेणेत्यादि) छंदोऽभिप्रायस्तेन तेन स्वकीया भिप्रायेण कुगतिगमनैकहेतुना इमाः प्रजाअयं लोकस्तासु गतिषु प्रलीयते । तथाहि रागादिवधमपि स्वाभिप्रायग्रहग्रस्ताधर्मसाधनमित्येवं प्रगल्भमानाविदधति । अन्येतु संघा दिकमुद्दिश्य दासीदासधनधान्यादिपरिग्रहं कुर्वंति तथाऽन्ये मायाप्रधानैः कुकुटैरसकृछ त्प्रेक्षमाणश्रोत्रस्पर्शनादिभिर्मुग्धजनं प्रतारयंति । तथाहि । कुक्कटसाध्योलोकोन कुकुट तः प्रवर्तते किंचित् । तस्माल्लोकस्याऽर्थे पितरमपि सकुक्कुटं कुर्यात् तथेयं प्रजा बहु माया कपटप्रधाना किमिति यतोमोहोऽज्ञानं तेन प्रावृताऽऽछादिता सदसद्विवेकविकले त्यर्थः । तदेवमवगम्य (माहणेत्ति) साधुर्विकटेन प्रकटेनाऽमायेन कर्मणा मोक्षे संयमे वा प्रकर्षेण लीयते प्रलीयते शोभनभावयुक्तोभवतीति भावः । तथा शीतंच उष्णंच शीतो ष्णः शीतोष्णोवा अनुकूलप्रतिकूलपरीषहास्तान् वाचा कायेन मनसा च करणत्रयेणाऽपि सम्यगधिसहेतइति ॥ २२ ॥

कुजए अपराजिएजहा, अक्खेहिं कुसलेहिं दीवयं ॥ कडमेव गहाय
णो कलिं, नो तियंनो चेवदावरं ॥ २३ ॥ एवंलोगंमि ताइणा, बुइए जे
धम्मे अणुत्तरे ॥ तं गिण्ह हियंति उत्तमं, कडमिव सेसवहाय पंडिए॥२४॥

अर्थ—वली उपदेशांतर कहेछे. कुजए के कुत्सित एटले माठो एवो जेनो जय तेने कु जय कहिए. ए जुगार कहेवाय छे; केमके एमां घणो जय थाय तोपण निंद्रा करवा यो ग्य छे माटे कुजयछे,ते केवो? तोके अपराजिएके० लब्ध लक्षपणे खेलतो अपर एटले अ न्य कोइथी जीत्यो जाय नहीं. एवो जुगारी जहा के० जेम अक्खेहिंके० अक्ष एटले पाशा तेणेकरी कुसलेहिं के० कुशल निपुण एवीरीते दीवयं के० खेलतो छतो ते कड मेवसहाय के० चोतरो दाव ग्रहण करीने खेलतां जीते तो ते चोतरो दावज ग्रहण करे, पण णोकलीके०एकनोदाव ग्रहण करे नहीं. तेमज णोतियंके० त्रणनो दावग्रहण नकरे अने नोचेवदावरं के० बेनो दाव पण ग्रहण नकरे. ॥ २३ ॥ हवे एदृष्टांत साधु साथे मेलवे छे, जेम जुगारने विषे जय पामवानो अभिलाषी एक चोकानो दावज ग्र हण करी बीजा दावनो त्याग करे. एवंलोगंमि के० एरीते ए मनुष्यलोकमांहे ताइ णा के० छकायनो रक्षपाल चारित्रियें बुइएजेधम्मे के० अहिंसाछे प्रधान जेमां, एवो धर्म जे श्रीवीतरागे कह्यो, अणुत्तरे के० एवो अन्य धर्म जगतमांहे कोई नथी.

तंके० ते धर्मने अहो शिष्य? तुं निःसंदेह थइने हियंतिके० एकांत हितकारी जाणीने गि एहके० आदर. ए उत्तमके० सर्वोत्तम मार्ग बे. ते तूं ग्रहण कर. कोनी पेरे तोके, कड मेव के० ते जुगारिये ग्रहण करेला चोकाना दावनी पेरे. सेसवहाय के० शेष एकादि कनो दाव बांमी दीधो. तेम पंमिए के० पंमित जे बे, ते शेष अनेरा जे गृहस्थ, कुलिं गी, इव्यलिंगी एवा धर्म बांमीने एक सर्वज्ञोपदिष्ट धर्मने ग्रहण करे. ॥ २४ ॥

॥ दीपिका-(कुजएत्ति) । कुजयोद्यूतकारोयथा अक्षैः पाशैर्दीव्यन् क्रीमन् कुशलो नापराजितःस्यात् । अन्येन न जीयतइत्यर्थः । कडमेवत्ति । सद्यूतकारः कमचतुष्कमेव गृहीत्वाकैकं नो गृएहाति । नत्रैतं त्रिकं न द्वापरं द्विकंवा गृएहाति किंतुचतुष्कमेव लाति ॥ २३ ॥ दार्ष्टांतिकमाह । (एवमिति) । एवं लोकेस्मिन् तायिना सर्वज्ञेनोक्तोऽनु त्तरउत्कृष्टोयोयं धर्मस्तं हितमुत्तमं त्वं गृहाण। दृष्टांतनिगमनमाह। यथा द्यूतकारः शेषं एककादि अपहाय त्यक्त्वा कृतं कृतयुगं चतुष्कमेव लाति तथा पंमितः साधुरपि गृहस्थः कुप्रावचनिकपार्श्वस्थादिजावं त्यक्त्वा सर्वोत्तमं धर्मं गृएहीयादित्यर्थः ॥ २४ ॥

॥ टीका-अपिच (कुजएत्यादि) । कुत्सितोजयोऽस्येति कुजयोद्यूतकारः महतो ऽपि द्यूतजयस्य सद्भिर्निंदितत्वादनर्थहेतुत्वाच्च कुत्सितत्वमिति । तमेव विशिनष्टि । अप राजितोदीव्यन् कुशलत्वादन्येन न जीयते । अक्षैर्वा पाशकैर्दीव्यन् क्रीडंस्तत्पातज्ञः कुशलोनिपुणः यथा असौ द्यूतकारोऽक्षैः पाशकैः कपर्दकैर्वा रममाणः (कडमेवत्ति) चतुष्कमेव गृहीत्वा तल्लब्धजयत्वात् तेनैव दीव्यति । ततोसौ तल्लब्धजयःसन्न कलिमे ककं नाऽपि त्रैतं त्रिकं च नापि द्वापरं द्विकं गृएहातीति ॥ २३ ॥ दार्ष्टांतिकमाह । (एवमित्यादि) यथा द्यूतकारः प्राप्तजयत्वात् सर्वोत्तमं दीव्यंश्चतुष्कमेव गृएहात्येवम स्मिंल्लोके मनुष्यलोके तायिना त्रायिणा वा सर्वज्ञेनोक्तोऽयं धर्मः क्षांत्यादिलक्षणः श्रु तचारित्राख्योवा नाऽस्योत्तरोऽधिकोऽस्तीत्यनुत्तरस्तमेकांतहितमपि कृत्वा सर्वोत्तमंच गृ हाण विस्रोतसिकारहितः स्वीकुरु । पुनरपि निगमनार्थतमेव दृष्टांतं दर्शयति । यथा क श्चित् द्यूतकारः कृतं कृतयुगं चतुष्कमित्यर्थः । शेषमेककाद्यपहाय त्यक्त्वा दीव्यन् गृएहा ति एवं पंडितोऽपि साधुरपि शेषं गृहस्थकुप्रावचनिकपार्श्वस्थादिजावमपहाय संपूर्णं म हांतं सर्वोत्तमं धर्मं गृएहीयादिति जावः ॥ २४ ॥

उत्तरमणुयाण आहिया, गामधम्मा इइ मे अणुस्सुयं ॥ जंसी
विरता समुठिया कासवस्स अणुधम्मचारिणो ॥ २५ ॥ जे
एयं चरंति आहियं, नाएणं महया महेसिणा ॥ ते उठिय
ते समुठिया, अन्नोन्नं सारंति धम्मओ ॥ २६ ॥

अर्थ—वली अन्य उपदेश कहेछे. मणुयाणके० मनुष्यने उत्तरके० जीपतां अति दुर्लभ आहियाके० कह्या. एवा शुं? तोके, गामधम्मा के० ग्रामधर्म ते शब्दादिक विषय अथवा मैथुन सेवन इत्यादिकने ग्रामधर्म कहिए. इति के० एरीते मेके० में अणुस्सुयं के० श्रीवीरभगवंत पाशेथी सांभल्युं छे, एटले श्रीसुधर्मस्वामी श्रीजंबुस्वामि प्रत्ये कहे छे के; ग्रामधर्म जे शब्दादिक विषय छे ते मनुष्यने घणा दुर्जय श्रीवीतरागे कह्या छे, एवुं में भगवंत पाशेथी सांभल्युं छे. तेरीते हुं तुजने कहुंछुं तो हवे ए ग्रामधर्म आश्री. जंसी के० जे विरता के० विरतिने विषे समुठ्ठिया के० सावधान थया ते पुरुष कासवस्स के० काश्यप गोत्री एटले श्रीऋषभदेव स्वामि अथवा श्रीमहावीरस्वामि एमना धम्म के० धर्मना अणुचारिणोके० अनुचारी जाणवा. ॥ २५ ॥ वली कहेछे. जेके० जे पुरुष एयं के० ए पूर्वोक्त ग्रामधर्मने विषे विरतिलक्षण एवो जे धर्म तेने चरंति के० आचरे ते धर्म कोणे आहियंके० कह्यो? तोके, महया के० महोटा महेसिणा के० महाऋषी एवा नाएण के० ज्ञातपुत्रे कह्योछे. तेके० ते एवा धर्मना करनार संयम पालवाने उठिय के० उठ्या, सावधान थया, तथा समुठ्ठिया के० सम्यक् प्रकारें कुमार्गदेशनाने परित्यागे करी घणा सावधान छता प्रवर्त्ते. ते अन्नोन्नंसारंति धम्मउके० परस्पर मांहोमांहे धर्मथकी भ्रगता प्राणीने वली धर्मनेविषे सारंति एटले स्थापे इत्यर्थः ॥२६॥

॥ दीपिका—(उत्तरेति) । मनुजानां नराणां ग्रामधर्माः शब्दादिविषयाउत्तराडुर्जयत्वात्प्रधानाजिनैराख्याताः । मयैतदनुपश्चाछ्रुतमाकर्णितं । यतः श्रीऋषभस्वामिना स्वपुत्रानुद्दिश्य प्रोक्तं तत्पाश्चात्यगणधरैः शिष्येभ्यः कथितं ततोमया श्रुतमिति । यस्मिन्निति पंचम्यर्थे सप्तमी । येभ्योविषयेभ्योविरताः समुत्थिताउद्यताः काश्यपस्य श्रीऋषभस्य श्रीवीरस्य वा संबंधी योधर्मस्तदनुचारिणोजिनोक्तधर्मकारिणः स्युः ॥२५॥ (जेएयमिति) । ये एवंविधाः पूर्वोक्तास्ते धर्मविषयत्यागरूपं चरंति कुर्वंति इति महता महर्षिणा ज्ञातेन श्रीवीरेणाख्यातं । तएवोत्थिताः सम्यङ्मार्गेभ्यः समुत्थिताश्च कुमतिभ्यस्तएवाऽन्योन्यं परस्परं धर्मतोधर्ममाश्रित्य धर्मतोभ्रश्यंतं वा सारयंति धर्मे प्रवर्तयंतीत्यर्थः ॥ २६ ॥

॥ टीका—पुनरप्युपदेशांतरमाह । (उत्तरेत्यादि) । उत्तराः प्रधानाः डुर्जयत्वात् । केषामुपदेशार्हत्वान्मनुष्याणामन्यथा सर्वेषामेवेति । के ते ग्रामधर्माः शब्दादिविषयामैथुनरूपावेति । एवं ग्रामधर्माउत्तरत्वेन सर्वज्ञैराख्याताः । मयैतदनुपश्चाछ्रुतं । एतच्च सर्वमेव प्रागुक्तं । यच्च वक्ष्यमाणं तन्नाभेयेनाऽऽदितीर्थकृता पुत्रानुद्दिश्याऽभिहितं सत् पाश्चात्यगणधराः सुधर्मस्वामिप्रभृतयः स्वशिष्येभ्यः प्रतिपादयंत्यतोमयैतदनुश्रुतमित्यन

वद्यं । यस्मिन्निति कर्मणि ल्यब्लोपे पंचमी सप्तमीवेति । यान् ग्रामधर्मानाश्रित्य ये वि रताः । पंचम्यर्थे वा सप्तमी । येन्योवा विरताः सम्यक्संयमरूपेणोत्थिताः समुत्थितास्ते काश्यपस्य र्षनस्वामिनोवर्धमानस्वामिनोवा संबंधी योधर्मस्तदनुचारिणस्तीर्थंकरप्रणीतध र्मानुष्ठायिनोजवंतीत्यर्थः ॥२५॥ किंच (जेएइत्यादि) । ये मनुष्याएनं प्रागुक्तं धर्मं ग्राम धर्मविरतिलक्षणं कुर्वंति चरंति । आख्यातं ज्ञातेन ज्ञातपुत्रेण (महयेति) महाविषयस्य ज्ञानस्याऽनन्यनूतत्वात् महान् तेन तथाऽनुकूलप्रतिकूलोपसर्गसहिष्णुत्वान्महर्षिणा श्री मद्वर्धमानस्वामिना आख्यातं धर्मं ये चरंति तेएव संयमोत्थाने कुतीर्थिकपरिहारेणोत्थि तास्तथा निन्हवादिपरिहारेण । तएव सम्यक्त्वमार्गदेशनाऽपरित्यागेनोत्थिताः समुत्थिता इति नाऽन्ये कुप्रावाचनिकाजमालिप्रनृतयश्चेतिनावः । तएव च यथोक्तधर्मानुष्ठायिनो ऽन्योऽन्यं परस्परं धर्मतोधर्ममाश्रित्य धर्मतोवाऽभ्रश्यंतं सारयंति चोदयंति पुनरपि सद्धर्मे प्रवर्तयंतीति ॥ २६ ॥

मापेह पुरा पणामए, अनिकंखे उवहिं धुणित्तए ॥ जे दूमणते हिं णोणया, ते जाणंति समाहिमाहियं ॥ २७ ॥ णोकाहिए हो ज्ज संजए, पासणिए णय संपसारए ॥ नच्चा धम्मं अणुत्तरं कय किरिए ण यावि मामए ॥ २८ ॥

अर्थ–हवे जेरीते धर्मस्थापे ते रीत कहेछे. पणामएके० प्रणाम एटले सर्व जीवने न माडे. एवा प्रणाम ते शब्दादिक विषयरूप पुरा के० पूर्वला नोगव्या नोग तेने मापेह के० न चिंतवे. केमके तेनुं चिंतववुं पण महा अनर्थनुं कारणछे. तो ए शब्दादिक विषय ने सेववानुं शुं कहेवुं ? तथा अनिकंखे के० आगमिक काले उपजनार जे विषय तेने प ण न वांछे, तेनी अनिलाषा न करे, तथा तेने दूर करवा वांछे. तोआत्माने जे उवहिंके० उपधि एटले माया अथवा अष्टप्रकारे कर्म तेने धुणित्तए के० पोताथकी दूर करे. त था जे दूमणतेहिं के० डुष्ट मनना करनार एवाजे शब्दादिक विषय तेने विषे णोणयाके० नम्या नथी. अथवा डुष्ट धर्मना करनार एवा जे कुतीर्थिक तेनां कहेलां जे अनुष्ठान ते ना करनार थया नथी एटले तेने वशीगत थया नथी. ते जाणंति समाहिमाहियं के० ते पुरुष राग, द्वेष, परित्यागरूप जे समाधि तद्रूप धर्मध्यान तेने आहियं एटले आत्माने विषे व्यवस्थित जाणे. ए थकी जे अन्य छे तेने विषे समाधि जाणे नहीं, एवुं जाणीने विषयने छांमे ॥ २७ ॥ वली उपदेशांतर कहेछेः संजए के० चारित्रिउ जे छे, ते णोकाहिए होज्ज के० गोचरीने विषे कथानो करनार न होय एटले विकथा न करे. अथवा विरुद्ध रूप पैशुन्य वार्त्ता एटले स्त्रीयादिकनी कथा तेपण न करे. तथा पासणिएणयके० प्रश्न नकरे

अथवा अनेरायें पूछयाथकी निमित्तादिक कहे नहीं तथा संपसारए के० अर्थकांमादिक कथानो विस्तार नकरे, केमके धम्मंके० ए श्रीवीतराग देवनो जे धर्म तेने अणुत्तरं के० सर्वो त्तम नच्चा के० जाणीने विकथादि न करे एटले सम्यक् धर्म जाणवानुं एहिज फलछे, जे विकथादिकनो त्याग करवो अने सम्यक् प्रकारे क्रिया करवी ते नाव देखाडेछे. कयके० कीधीछे रुडीपरे अन्यासीने संयमानुष्ठानरूप किरिए के० क्रिया जेणे एवो छतो उत्तम साधु ते णयाविमामए के० देहादिकने विषे पण ममत्व न करे ॥ २८ ॥

॥ दीपिका–(मापेहेति)। प्रणामयंति प्रापयंति डुर्गतिं प्रणामकाः शब्दादिविपया स्तान् माप्रेक्षस्व मास्मर । तथा उपधिं मायां धूनयितुमपनयनायाभिकांक्षेत् चिंतयेत् मायात्यागाय यतेतेत्यर्थः । ये नराडुर्मनोनिर्विषयैर्ननता न तत्पराः स्युस्ते जानंति समाधिं धर्मध्यानं आहितं आसमंतात् हितं ॥२७॥ (नोकाहिएति) संयतः साधुः काथिकः कथाकथकोगोचरादौ न नवेत् । प्राश्निकः प्रश्ननिमित्तकथकश्च नन्नवेत् । नच संप्रसारको मेघवृष्ट्यर्थकांडादिसूचककथाविस्तारको नवेत् । किंकृत्वाऽनुत्तमुत्कृष्टं धर्मं ज्ञात्वा कृता अन्यस्ता क्रिया संयमानुष्ठानरूपा येन सकृतक्रियोमामकोन स्यात् ममेदं वस्तु अहमस्य स्वामीति मामकः परिगृही नस्यादित्यर्थः ॥ २८ ॥

॥ टीका–किंच (मापेहेत्यादि) डुर्गतिं संसारं वा प्रणामयंति प्रव्हीकुर्वंति प्राणिनां प्रणामकाः शब्दादयोविषयास्तान् पुरा पूर्वं नुक्तान् मा प्रेक्षस्व मास्मर । तेषां स्मरणमपि यस्मान्महतेऽनर्थाय । अनागतांश्च नोदीक्षेत नाऽऽकांक्षेदिति । तथाऽभिकांक्षेत् अनिलपेदनारतं चिंतयेदनुरूपमनुष्ठानं कुर्यात् । किमर्थमिति दर्शयति । उपधीयते ढौक्यते डुर्गतिं प्रत्यात्मा येनाऽसावुपधिर्माया अष्टप्रकारं वा कर्म तद्धननायाऽपनयनायाऽभिकांक्षेदिति संबंधः । डुष्टधर्मं प्रत्युपनताः कुमार्गानुष्ठायिनस्तीर्थिकाः यदिवा (दूमणत्ति) डुष्टमनःकारिणउपतापकारिणोवा शब्दादयोविषयास्तेषु ये महासत्वाः न नतान प्रव्हीनूतास्तदाचारानुष्ठायिनोन नवंति तेच सन्मार्गानुष्ठायिनोजानंति विंदंति समाधिं रागद्वेषपरित्यागरूपं धर्मध्यानंच आहितमात्मनि व्यवस्थितं आसमंताद्धितं वा तएव जानंति नाऽन्यइतिनावः ॥ २७ ॥ तथा (णोकाहिएइत्यादि) संयतः प्रव्राजितः कथया चरति काथिकोगोचरादौ न नवेत् । यदिवा विरुद्धां पैशून्यापादनीं स्त्र्यादिकथां वा न कुर्यात् । तथा प्रश्नेन राजादिकिंवृत्तरूपेण दर्पणादिप्रश्ननिमित्तरूपेण वा चरतीति प्राश्निकोन नवेत् नाऽपिच संप्रसारकोदेववृष्ट्यर्थकांडादिसूचककथाविस्तारकोन्नवेदिति । किंकृत्वेति दर्शयति । ज्ञात्वाऽवबुध्य नास्योत्तरोविद्यतइत्यनुत्तरस्तंश्रुतचारित्राख्यं धर्मं सम्यगवगम्य तस्य हि धर्मस्यैतदेव फलं यडुत विकथानिमित्तपरिहारेण स

न्यक्क्रियावान् स्यादिति । तद्दर्शयति । कृता स्वन्यस्ता क्रिया संयमानुष्ठानरूपा येन सकृतक्रियस्तथाऽनूश्च। नचाऽपि मामकोममेद महमस्य स्वामीत्येवं परिग्रहाग्रही नवेदिति ॥ २८ ॥

छन्नं च पसंस णोकरे, नय उक्कोस पगास माहणे ॥ तेसिं सुविवे
गमाहिए,पण याजेहिं सुजोसिअं धुयं॥ २९ ॥ अणिहे सहिए
सुसंवुमे, धम्मही उवहाण वीरिए ॥ विहरेज्ज समाहि इंदिए,
आत्तहिअं खु डुहेण लप्नइ ॥ ३० ॥

अर्थ–तथा चारित्रिउ होयते छन्नं के० माया अने पसंस के० लोन ते णोकरे के० नकरे, तथा उक्कोस के० उत्कर्ष एटले मान तथा पगास के० प्रकाश एटले क्रोध तेपण माहणे के० साधु ते नय के० नकरे, तेसिं के० ते क्रोधादिकनो सुविवेग के० परित्याग आहिए के० महांत पुरुषे कह्यो तेहिज धर्मनेविषे प्रणया के० सावधान थया एवा जेहिं के० जे महासत्ववंत पुरुष तेणे धुयं के० संयमानुष्ठान सुजोसियं के० सेव्युं ते साधु जाणवा ॥ २९ ॥ अणिहे के० स्नेहरहित तथा सहिए के० ज्ञान, दर्शन अने चारित्रे करी संयुक्त अने सुसंवुमे के० सुसंवृत एटले संवरेसहित प्रवर्त्ततो तथा धम्मही के० धर्मनो अर्थि तथा उवहाण के० उपधान एटले तपविशेष तेनेविषे वीरिए के० बलवीर्यनो फोरवनार संयम पालतो समाहिइंदिए के० समाहित इंडिउ एटले इंडिउ वश करीछे जेणे, एवो छतो विहरेज्जा के० विचरे केमके संसारमांहे नमता खु के० निश्चे आत्तहियं के० आत्महित जे छे, ते डुहेणलप्नइ के० डुःखेकरी लन्यमान थायछे ॥ ३० ॥

॥ दीपिका–(छन्नंति) मायां न कुर्यात् । प्रशस्यते सर्वैरिंड्रियैरिति प्रशस्योलोनस्तंच उत्कर्षमानं प्रकाशंक्रोधंच माहनः साधुर्न कुर्यादिति सर्वत्र संबंधः । तेषां कषायाणां यैर्महात्मनिर्विवेकः परित्यागआहितोजनितस्तएव धर्मप्रति प्रणताः प्रह्वीनूताः । अथवा तेषां सत्पुरुषाणां सुविवेकआहितः प्रथितः । यैः सत्पुरुषैर्जुष्टं सेवितं । धूयते क्षिप्यते कर्म येन तत्धूतं संयमानुष्ठानं ।(अथवा यैः सुजोसिअंति)सुष्ठु क्षपितं धूतं कर्मेति ॥ २९ ॥ (अणिहः अस्निहोममत्वरहितः परीषहोपसर्गैर्न निहन्यतइत्यनिहोवा । अणहेतिपाठेतु अनघो निरवद्यः सहितोहितयुक्तः स्वहितोवा सुसंवृतोधर्मार्थी । उपधानं तपस्तस्य वीर्यवान् समाहितेंड्रियः संयतेंड्रियोविरहेत् । कुतएवं यतआत्महितं डुःखेन जीवैर्लन्यते । यतो दशदृष्टांतैर्मानुष्यादिकं डुर्लनमिति ॥ ३० ॥

॥ टीका–किंच (छन्नमित्यादि) (छन्नंति) माया तस्याः स्वानिप्रायप्रछादनरूपत्वात् तां न कुर्यात् । चशब्दउत्तरापेक्षया समुच्चयार्थः । तथा प्रशस्यते सर्वैरप्यविगानेनाड्रियत

इति प्रशस्योलोनस्तं च नकुर्यात् । तथा जात्यादिनिर्मदस्थानैर्लघुप्रकृतिं पुरुषमुत्क र्षयतीत्युत्कर्षकोमानस्तमपि न कुर्यादिति संबंधः । तथांऽतर्व्यवस्थितोऽपि मुखदृष्टि भंगविकारैः प्रकाशी भवतीति प्रकाशः क्रोधस्तं च (माहणेत्ति) साधुर्न कुर्यात् । तेषां क षायाणां यैर्महात्मभिर्विवेकः परित्यागश्चाहितो जनितस्तएव धर्मं प्रति प्रणताइति । य दिवा तेषामेव सत्पुरुषाणां सुष्ठु विवेकः परिज्ञानरूपश्चाहितः प्रथितः प्रसिद्धिं गतस्त एवच धर्मं प्रति प्रणताः । यैर्महासत्वैः सुष्ठु जुष्टं सेवितं । धूयतेऽष्टप्रकारं कर्म येन तद्धूतं सं यमानुष्ठानं । यदिवा यैः सदनुष्ठायिभिः (सुजोसिअंति) सुष्ठु क्षिप्तं धूननार्हत्वात् धूतं कर्मेति ॥ २७ ॥ अपिच (अणिहेइत्यादि) स्निह्यतइतिस्निहः । नस्निहः अस्निहः सर्व त्र ममत्वरहितइत्यर्थः । यदिवा परीषहोपसर्गैर्निहन्यतेइतिनिहः ननिहोऽनिहउप सर्गैरपराजितइत्यर्थः । पाठांतरंवा । (अणहेति) नाऽस्याऽघमस्तीत्यनघोनिरवद्यानु ष्ठायीत्यर्थः । सह हितेन वर्ततइति सहितः सहितोयुक्तोवा ज्ञानादिभिः स्वहितआ त्महितोवा सदनुष्ठानप्रवृत्तेः । तामेव दर्शयति । सुष्ठु संवृतइंद्रियनोइंद्रियैर्विस्रोत सिकारहितइत्यर्थः । तथा धर्मः श्रुतचारित्राख्यस्तेनाऽर्थः प्रयोजनं सएवाऽर्थस्तस्यैव सद्भि रर्थ्यमाणत्वात् धर्मार्थः सयस्याऽस्तीति सधर्मार्थी । तथोपधानं तपस्तत्र वीर्यवान् सए वंभूतो विहरेत् संयमानुष्ठानं कुर्यात् । समाहितेंद्रियः संयतेंद्रियः । कुतएवं । यतआ त्महितं दुःखेनाऽसुमता संसारे पर्यटता अकृतधर्मानुष्ठानेन लभ्यते अवाप्यतइति । त थाहि । नपुनरिदमतिदुर्लभ,मगाधसंसारजलधिविभ्रष्टं । मानुष्यं खद्योतकतडिल्लताविल सितप्रतिमं ॥ १ ॥ तथाहि । युगसमिलादिदृष्टांतनीत्या मनुष्यभवएव तावत् दुर्लभ स्तत्राऽप्यार्यक्षेत्रादिकं दुरापमित्यतआत्महितं दुःखेनाऽवाप्यतइति मंतव्यं । अपिच । भू तेषु जंगमत्वं, तस्मिन् पंचेंद्रियत्वमुत्कृष्टं ॥ तस्मादपि मानुष्यं मानुष्येप्यार्यदेशश्च । १ । देशे कुलं प्रधानं, कुले प्रधाने च जातिरुत्कृष्टा ॥ जातौ रूपसमृद्धी रूपे च बलं विशिष्ट तमं ॥२॥ भवति बले चायुष्कं प्रकृष्टमायुष्कतोऽपि विज्ञानं । विज्ञाने सम्यक्त्वं सम्यक्त्वे शीलसंप्राप्तिरिति ॥ ३ ॥ एतत्पूर्वश्चाऽयं, समासतोमोक्षसाधनोपायः । तत्रच बहु संप्रा प्तं, भवद्भिरल्पं च संप्राप्यं ॥ ४ ॥ तत्कुरुतोद्यममधुना मदुक्तमार्गे समाधिमाधाय ॥ त्यक्त्वा संगमनार्यं, कार्यं सद्भिः सदा श्रेयइति ॥ ५ ॥ ३० ॥

णहि णूणे पुरा अणुस्सुतं, अडुवा तं तह णो समुट्ठियं ॥ पा ठांतरं अडवा अवितहणो अणुट्ठिअं॥मुणिणा सामाइ आहितं, नाएणं जगसव्वदंसिणा॥३१॥एवं मत्ता महंतरं,धम्ममिणं सहिया बहू जणा॥ गुरुणो छंदाणुवत्तगा,विरया तिन्न महोघमाहितंतिवेमि॥३२

अर्थ—हवे ए जीव क्यांए जे नथी पाम्यो ते देखाडेछे. जे श्रीवीतरागे संयमानुष्ठान कह्युं. ते पुराके० पूर्वे ए जीवे णूणअणुस्सुतंणहिके० निश्चेंथकी सांनळ्युं पण नथी. अडुवाके० अथवा तंके० ते धर्म कदापि तह के० तथा णोसमुछियं के० रुडीरीते पाळ्युं पण नथी मुणिणा के० महर्षियें ज्ञातपुत्रे सामाइआ के० सामायिकादिक घणां डुर्लभ छे, एरीते आहितं के० कह्यां ते नाएणं के० ज्ञातपुत्र जे श्रीमहावीर जगसव्वदंसिणा के० जगतमां सर्वदर्शी तेणे कह्युं ॥ ३१ ॥ एवो जाणी जे करवुं ते कहेछे. एवंमत्तामहंतरं के० एम पूर्वोक्त प्रकारे आत्महित डुर्लभ जाणीने तथा धम्ममिणं के० धर्मनो ए महांतआंतरो एटले धर्मनुं विशेष जाणीने सहिया के० ज्ञान, दर्शन अने चारित्र सहित बहु के० घणा एवा हलवा कर्मि जणा के० लोक ते गुरुणो छंदाणुवत्तगा के० गुरुने छंदे प्रवर्त्तता एटले गुरूपदिष्ट यथोक्त संयमने पालता विरया के० पापथकी विरत ते महोघ के० महोटो जेनो प्रवाह छे, एवा संसारसमुद्र थकी तिन्न के० तस्या. एरीते आहितं के० श्रीतीर्थंकर गणधरे कह्युं तिबेमि एटले पूर्ववत् ॥ ३२ ॥ इति श्रीवेतालियाध्ययनस्य द्वितीयोद्देशकः समाप्तः ॥

॥ दीपिका—(णहिणूणेति)। यन्मुनिना ज्ञातेन श्रीवीरेण जगतः सर्वभावदर्शिना सर्वज्ञेन सामायिकादि आहितमाख्यातं तन्नूनं निश्चितं पुरापूर्वं जीवैर्नहि अनुश्रुतं श्रवणपथमागतं। अथवा श्रुतमपि नसमुत्थितं यथावन्नानुष्ठितं ॥ ३१ ॥ (एवमिति) एवमात्महितं डुर्लभं मत्वा (महंतरंति) मानुष्यादिकमवरं ज्ञात्वा एनं जैनं धर्मंच स्वहिताबहवोजनालघुकर्माणोगुरोश्छंदानुवर्तकास्तडुक्तमार्गानुष्ठायिनोविरताः पापेभ्यइत्याख्यातं तीर्थकृद्भिः। इतिशब्दः समुच्चयार्थः। ब्रवीमीतिपूर्ववत् ॥ ३२ ॥ इतिश्रीसूत्रकृतांगदीपिकायां द्वितीयाध्ययनस्य द्वितीयोद्देशकः समाप्तः ॥

॥ टीका—एतच्च प्राणिभिर्न कदाचिदवाप्तपूर्वमित्येतद्दर्शयितुमाह ॥ (णहिणूणेत्यादि)। यदेतन्मुनिना जगतः सर्वभावदर्शिना ज्ञातपुत्रीयेण सामायिकाद्याहितमाख्यातं तन्नूनं निश्चितं। नहि नैव पुरापूर्वं जंतुभिरनुश्रुतं श्रवणपथमायातं। अथवाश्रुतमपि तत्सामायिकादि यथावस्थितं तथा नाऽनुष्ठितं। पाठांतरंवा। (अवितहत्ति)। अवितथं यथावन्नाऽनुष्ठितमतः कारणादसुमतामात्महितं सुडुर्लभमिति ॥ ३१ ॥ पुनरप्युपदेशांतरमधिकृत्याह। (एवंमत्ताइत्यादि)। एवमुक्तरीत्याऽऽत्महितं सुडुर्लभं मत्वा ज्ञात्वा धर्माणां च महदंतरं धर्मविशेषं कर्मणोवा विवरं ज्ञात्वा। यदिवा (महंतरंति) मनुष्यार्यक्षेत्रादिकमवसरं सदनुष्ठानस्य ज्ञात्वा एनं जैनं धर्मं श्रुतचारित्रात्मकं सह हितेन वर्ततइति सहिताज्ञानादियुक्ताबहवोजनालघुकर्माणः समाश्रिताः संतोगु

रोराचार्यादेस्तीर्थंकरस्य वा छंदानुवर्त्तकास्तडक्तमार्गानुष्ठायिनोविरताः पापेन्यः कर्मेन्यः संतस्तीर्णामहौघमपारं संसारसागरमेवमाख्यातं मया जवतामपरैश्च तीर्थकृद्भिरन्येषां । इ तिशब्दः परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत्॥२२॥वैतालीयस्य द्वितीयोद्देशकः समाप्तः॥२॥

॥ अथ वैतालीयाध्ययनस्य तृतीयोद्देशकस्य प्रारंजः ॥

संवुमकम्मस्स निकुणो, जं डुक्कं पुठं अबोहिए ॥ तं संजमउव चिज्जई, मरणं हेच वयंति पंमिया ॥१॥ जे विन्नवणा अजोसिया, संतिन्नेहिं समं विहाहिया ॥ तम्हा उढंति पासहा, अदरकुकामाइरोगवं ॥ २ ॥

अर्थ—हवे त्रीजो उद्देशो प्रारंजियेछैयें. बीजा उद्देशामां चारित्र पालवुं कह्युं ते चारित्र पालतां कदाचित् परिसह आवेतो सहन करवा एवो जाव कहेछे, संवुम के० संवरयाछे कम्मस्स के० मिथ्यात्वादिक कर्म जेणे एवा निकुणो के० साधुने जंडुक्कं के० जे डुःख जोगवतां दोहिलां अथवा तेनां कारण जे अष्ट प्रकारना कर्म अबोहिए के० अज्ञानपणे पुठं के० बांध्यांछे, निकाचित कस्याछे तंके० ते संजमउ के० सत्तर प्रकारना संयमे करी चिज्जई के० क्षणे क्षणे खुटेछे; जेम तलावनुं पाणी सूर्यना किरणे करी सर्वदा क्षणे क्षणे खूटेछे, तेम चारित्रियानां कर्म ते तप अने संयमे करी खूटेछे, मरणं हेचपंमिया के० तथा संवृति आत्मा ते पंमित मरण एटले जन्म, जरा, मरण अने शोकादिक बांमीने वयंति के० मोक्षे पोहोचे. अथवा एरीते वयंति पंमिया के० जे पंमित विवेकी सर्वज्ञ छेते कहेछे. ॥१॥ हवे जे विरति रुडा अनुष्ठानना करनारछे, ते ते हिज जवे मोक्षे जाय. ते आश्री कहेछे. जे के० जे महासत्त्ववंत पुरुष विन्नवणाके० जे कामार्थि पुरुषे विनंती कराय ते कारणमाटे विन्नवणा शब्दे स्त्री कहिए, तेने अजोसियाके० नसेवे तथा रुडे आचारे करी संतिन्नेहिं के० संतीर्ण शब्दे संसार थकी मूकाणा समवि विहिया के० सरखा कह्या तम्हा के० तेकारणे उढंति के० उंचुं एवुं जे मोक्ष तेने पासहा के० जोयुं वली जेणे अदरकूकामाइरोगवं के० कामजोग जे छे तेने रोगनीपरे दीठा॥२॥

॥ दीपिका—उक्तो द्वितीयोद्देशकः सांप्रतं तृतीयः समारज्यते तस्यायमधिकारः । पूर्वं विरताइत्युक्तं तेषांच कदाचित् परीषहाअपि उदीर्येरन् ते सम्यक् सोढव्याइत्यनेन संबंधेनायातस्यास्योद्देशकस्येदमादिसूत्रं ॥ (संवुडेति) संवृतं निरुद्धं कर्म येन तस्य संवृतकर्मणः साधोर्डुःखं यत् स्पृष्टं बद्धं तदबोधिना अज्ञानेनोपचितं सन्नसंयमतोऽपचीयते क्षीयते । ते संवृतात्मानोमरणं उपलक्षणाज्जातिशोकादिकं च हित्वा त्यक्त्वा मोक्षं व्रजंति पंडिताः ॥ १ ॥ (जेवीति) । कामार्थिभिर्विज्ञाप्यंते प्रार्थ्यंतइति विज्ञापनास्त्रियस्ताभि

यें अजुष्टाअसेवितास्ते संतीर्णैर्मुक्तैः समं व्याख्याताः । अतीर्णाअपि ते संसारं तीर्णाइव स्यु रित्यर्थः ॥ तस्मादूर्ध्वंमोक्षं यूयंपश्यत ये च कामान् रोगवत् रोगतुल्यान् अडाक्षुर्दृष्ट वंतस्तेपि तीर्णसमाइत्यपि पश्यत । यतः पुप्फफलाणं च रसं, सुराइमंसस्स महिलि आणं च ॥ जाणंतो जे विरया, ते डुक्करकारएवंदे ॥ २ ॥

॥ टीका—उक्तोद्वितीयोद्देशकः सांप्रतं तृतीयः समारभ्यते ॥ अस्यचाऽयमभिसंबं धः । इहाऽनंतरोद्देशकांते विरताइत्युक्तं तेषांच कदाचित्परीषहाः समुदीर्येरन्नतस्तत्स हनं विधेयमित्युद्देशार्थाधिकारोऽपि निर्युक्तिकारेणाऽभिहितः । यथाऽज्ञानोपचितस्य क र्मणोऽपचयोभवतीति सच परीषहसहनादेवेत्यतः परीषहाः सोढव्याइत्यनेन सं बंधेनाऽऽयातस्याऽस्योद्देशकस्याऽदिसूत्रं । (संवुमकम्मस्सेत्यादि) । संवृतानि रुद्धा नि कर्माण्यनुष्ठानानि सम्यगुपयोगरूपाणि वा मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगरूपा णि वा यस्य भिक्षोः साधोः सतथा तस्य यत् डुःखमसद्वेद्यं तदुपादानभूतं वाऽष्टप्र कारं कर्म । (स्पृष्टमिति) बद्धस्पृष्टनिकाचितमित्यर्थः । तच्चाऽत्राबोधिना अज्ञानेनोपचितः सत् संयमतोमौनींद्रोक्तात् सप्तदशरूपादनुष्ठानादपचीयते प्रतिक्षणं क्षयमुपयाति । एतडुक्तं भवति । यथा तटाकोदरसंस्थितमुदकं निरुद्धापरप्रवेशद्वारं सदादित्यकरसंप र्कात् प्रत्यहमपचीयते । एवं संवृताश्रवद्वारस्य भिक्षोरिंद्रिययोगकषायं प्रति संलीनत या संवृतात्मनः सतः संयमानुष्ठानेन चाऽनेकभवाज्ञानोपचितं कर्म क्षीयते । ये च सं वृतात्मानः सदनुष्ठायिनश्च ते हित्वा त्यक्त्वा मरणं मरणस्वभावमुपलक्षणत्वात् जाति जरामरणशोकादिकं त्यक्ता मोक्षं व्रजंति पंडिताः सदसद्विवेकिनः । यदि वा पंडिताः सर्व ज्ञाएवं वदंति यत् प्रागुक्तमिति ॥ १ ॥ येऽपिच तेनैवं भवेन च मोक्षमाप्नुवंति तान धिकृत्याह । (येविन्नवणेत्यादि) ये महासत्वाः कामार्थिभिर्विज्ञाप्यंते यास्तदर्थिन्यो वा कामिनं विज्ञापयंति ताविज्ञापनाः स्त्रियस्ताभिरजुष्टाअसेविताः क्षयं वा अवसाय लक्षणमतीतास्ते संतीर्णैर्मुक्तैः समं व्याख्याताः । अतीर्णाअपि संतोयतस्ते निष्किंचन तया शब्दादिषु विषयेष्वप्रतिबद्धाः संसारोदन्वतस्तटोपांतवर्तिनोभवंति । (तस्मादूर्ध्वमि ति) मोक्षं योषित्परित्यागादूर्ध्वं यद्भवति तत्पश्यत यूयं । येच कामान् रोगवद्व्याधि कल्पान् अडाक्षुर्दृष्टवंतस्ते संतीर्णसमाव्याख्याताः । तथाचोक्तं । पुप्फफलाणंचरसं, सुराइमंसस्समहलियाणंच ॥ जाणंताजेविरया, तेडुक्करकारएवंदे ॥ १ ॥ तृतीयपादस्य पाठांतरं वा । उड्ढंतिरियंअहेतहा. ऊर्ध्वमिति सौधर्मादिषु तिरियमिति तिर्यग्लोके अ धइति भवनपत्यादौ येकामास्तान् रोगवदडाक्षुर्ये ते तीर्णकल्पाव्याख्याताइति ॥ २ ॥

अग्गं वणिएहिं आहियं धारंति राइणिया इह ॥एवं परमा महव्वया, अ
क्खायाउ सराइन्नोयणा ॥३॥ जे इह सायाणुगा नरा, अज्झोववन्ना कामे
हिं मुच्छिया ॥ किवणेणसमं पगप्निया, न विजाणंति समाहिमाहितं ॥४॥

अर्थ–वली उपदेश आश्री कहेछे. जेम वणिएहिं के० वणिके अग्गंके० अग्र एटले प्रधान एवां रत्नवस्त्रानरणादिक देशांतर थकी, आहियंके० आण्या तेने इह के० आमनुष्यलोकमांहे राइणिया के० राजा अथवा मोहोटा व्यवहारवंतपुरुषजे होय तेज धारंति के० धारण करेछे एटले पहेरेछे एवं के० एप्रकारे परमा के० प्रधान रत्नतुल्य एवाजे महव्वया के० पांच महाव्रत ते सराइन्नोयणा के० छठारात्रीनोजन विरमण सहित छ व्रत ने अक्खायाउ के० आचार्ये आण्या तेने साधुज धारणकरें अने सारीरीते पाले ॥३॥ जे के० जे इह के० आजगतने विषे सायाणुगा के० सुखशिलीया त्रण गारवेंकरी अज्झोववन्ना के० अध्युपपन्न एटले सहित तथा कामेहिंमुच्छिया के० कामनोगने विषे मूर्छित ते किवणेणसमं के० कृपण एटले दीन, कायर सरखा पगप्निया के० धीग एटले अल्पदोषे अमारो निर्मल संयम शी रीते मलिन थशे? एवी रीते धृष्टपणुकरनार जे होय ते समाहिमाहितं के० श्रीवीतरागनो कह्यो एवो जे समाधिनो मार्ग तेने नविजाणंति के० नजाणे ॥ ४ ॥

॥ दीपिका–(अग्गमिति) अग्रं प्रधानं रत्नानरणादिकं वणिग्निर्देशांतरादाहितं ढौकितं राजानस्तत्तुल्याइह मनुष्यलोके धारयंति बिन्नति । एवं रत्नतुल्यानि परमाणि प्रधानानि महाव्रतानि पंचसरात्रिनोजनानि त्रिरात्रिनोजनविरमणषष्ठानि आख्यातान्याचार्यैरिति तानि महासत्वाः साधवोधारयंति नान्ये इति तात्पर्यार्थः ॥ ३ ॥ (जेइहेति) । ये इह मनुष्यलोके सातानुगाः सुखशीलानराऋद्धिरससातागौरवेष्वध्युपपन्नागृद्धा स्तथा कामेषु इछामदनेषु मूर्छिताः सतृष्णाः संतः कृपणेन दीनेन इंद्रियपराजितेन समास्त द्वत्कामासेवने प्रगल्नितावृष्टतां गताः किमनेनाऽसम्यक् प्रत्युपेक्षणादिस्तोकदोषेणास्मच्चारित्रविराधना नाविनीत्येवं प्रमादवंतोधृष्टाः शनैः समस्तमपि संमलिनयंति । एवंनूतास्ते समाधिधर्मध्यानादिकमाख्यातं कथितमपि नजानंति ॥ ४ ॥

॥ टीका–पुनरप्युपदेशांतरमधिकृत्याह । (अग्गंवेत्यादि) अग्रं वर्यं प्रधानं रत्नवस्त्रानरणादिकं । तद्यथा वणिग्निर्देशांतरादाहितं ढौकितं राजानस्तत्कल्पाईश्वरादयः इहाऽस्मिन्मनुष्यलोके धारयंति बिन्नति एवमेतान्यपि महाव्रतानि रत्नकल्पानि आचार्यैराख्यातानि योजितानि सरात्रिनोजनविरमणपष्ठानि साधवोबिन्नति । तुशब्दः पूर्वेरत्नेन्यो महाव्रतरत्नानां विशेषापादकइति । इदमुक्तं नवति । यथा प्रधानरत्नानां राजानएव

भाजनं एवं महाव्रतरत्नानामपि महासत्वाएव साधवोभाजनं नान्ये इति ॥३ ॥ किंच (जेइहेत्यादि) ये नरालघुप्रकृतयइहाऽस्मिन् मनुष्यलोके सातं सुखमनुगच्छंतीति सातानुगाः सुखशीलाऐहिकामुष्मिकाऽपायभीरवः समृद्धिरससातागौरवेष्वध्युपपन्नागृद्धाः। तथा कामेषु इच्छामदनरूपेषु मूर्छिताः कामोत्कटतृष्णाः। कृपणोदीनोवराककइंद्रियैः पराजितस्तेन समास्तद्वत्कामासेवने प्रगल्भिताधृष्टतां गताः। यदिवा किमनेन स्तोकेन दोषेणाऽसम्यक्प्रत्युपेक्षणादिरूपेणाऽस्मत्संयमस्य विराधनं भविष्यत्येवं प्रमादवंतः कर्तव्येष्ववसीदंतः समस्तमपि संयमं पटवन्मणिकुट्टिमवद्वा मलिनीकुर्वंति। एवंभूताश्च ते समाधिधर्मध्यानादिकमाख्यातं कथितमपि न जानंतीति ॥ ४ ॥

वाहेण जहा व विछए, अबले होइ गवं पचोइए॥ से अंतसो अप्पथामए नाइ वहइ अबले विसीयति ॥ ५ ॥ एवं कामेसणं विऊ अज्जसुए पयहेज्ज संथवं ॥ कामी कामेण कामए, लद्धेवावि अलद्धकण्हुई ॥ ६ ॥

अर्थ—वली उपदेशांतर कहेछे. जहाव के० जेम वाहेणके० व्याध एटले आहेडी ते मृगादिक पशुने विछएके० त्राशदेतो छतो ते गवंके० मृगादिक अबले होइके० बलरहित थाय. क्यांए जइ शकेनहीं. अथवा वाहेणके० गाडानो वाहक एटले सांधडीउ तेणे जेम विषम मार्गने विषे गवंके० बलदने पचोइलेके० पराणे प्रेरणा करी खेडयो छतो बलरहित थायः पछी से के० ते बलदने अंतसो के० मरणांत सुधी जो कष्ट आपे तो पण अप्पथामए के० अल्प सामर्थ्यपणाने लीधे नाइवहइके० चाली नशके. अबलेविसीयति के० निर्बलपणाथी तेहिज कादवमां विषम मार्गे खूतो रहे ॥५॥ हवे ए दृष्टांत पुरुष साथे मेलवेछे' एवं के० ए पूर्वोक्त न्याये काम के० शब्दादिक विषय तेनी एसणं के० गवेषणा एटले प्रार्थना तेनेविषे विऊ के० निपुण आसक्त छतो ते पुरुष सिदाय परंतु कामभोगने छांमी नशके; कामभोगरूप कर्दमने विषे खुतो एवो छतो अज्जसुएके० आज अथवा काले संथवं के० ए कामभोगनो संबंध पयहेज्जके० छांमीश. एम चिंतवे; पण निर्बल बलदनी परें छांमी नशके एमजाणी संवेग आणीने कामी के० कामि पुरुषे कामेण के० कामभोग वांछवा नही वली कामएलद्धेवावि के० ते कामभोगने लाधा थका पण अलद्धकण्हुइ के० अणलाधा एटले अणपाम्या सरखा करे. कोइएक निमित्ते बुज्यो छतो जंबुस्वामि तथा वेरस्वामिनी पेरे निस्पृहीथाय. ॥ ६ ॥

॥ दीपिका–(वाहेणेति)। व्याधेन लुब्धकेन यथा(गवंति)। मृगादिपशुः विक्षतोविविधप्रकारेंणक्षतः पीमितः प्रचोदितः श्रमं प्रापितः सन्नबलोगंतुमसमर्थः। अथवा वा

ह्यतीतिवाहः शाकटिकस्तेनाऽवहन् गौः प्रतोदादिना क्षतः प्रेरितोपि अबलोविषमपथे गंतुमसमर्थः स्यात् सचांतशोमरणांतमपि यावत् अल्पस्थामाऽल्पसामर्थ्योनोन्नारं वोढुं शक्नोति एवंनूतश्चतत्रैव पंकादौविषीदति ॥ ५ ॥ दार्ष्टांतिकमाह । (एवमिति) । एवं पूर्वोक्तदृष्टांतेन कामानां शब्दादीनां या गवेषणा प्रार्थना तस्यां विद्वान् निपुणः कामप्रार्थनासक्तोऽद्य श्वोवा संस्तवं कामसंबंधं प्रजह्यात् । नवा बलीवर्दइव विपममार्गेकामान् त्यक्तुमलं । किंच नवैहिकामुष्मिकापायनीरुः कामी नूत्वा प्राप्तानपि कामान् कामयेताऽनिलषेत वैरस्वामी जंबूस्वामिनामादिवत् तथाक्षुल्लककुमारवत् कुतश्चिन्निमित्तात् । सुठु गाइयं सुठुवाइयं सुनेच्चिअंसामसुंदरि ॥ अणुपालिअदीहराइओ उसुमिणंते मापमायह । इत्यादि प्रतिबुद्धोलब्धानपि कामान् लब्धसमान् मन्यमानोनिस्पृहःस्यात् ॥ ६ ॥

॥ टीका—पुनरप्युपदेशांतरमधिकृत्याह (वाहेणेत्यादि) व्याधेन लुब्धकेन (जहावत्ति) यथा (गवत्ति) मृगादि. पशुर्विविधमनेकप्रकारेण कूटपाशादिना कृतः परवशीकृतः श्रमं वा ग्राहितः प्रणोदितोऽप्यबलोन्नवति जातश्रमत्वात् गंतुमसमर्थः । यदिवा वाहयतीति वाहः शाकटिकस्तेन यथावदवहन् गौर्विविधं प्रतोदादिना क्षतः प्रचोदितोऽप्यबलोविषमपदादौ गंतुमसमर्थोन्नवति । सचांऽतशोमरणांतमपि यावदल्पसामर्थ्यान्नाऽतीव वोढुं शक्नोति । एवंनूतश्चाऽबलोन्नारं वोढुमसमर्थस्तत्रैव पंकादौ विपीदतीति ॥ ५ ॥ दार्ष्टांतिकमाह (एवमित्यादि) एवमनंतरोक्तया नीत्या कामानां शब्दादीनां विषयाणां या गवेषणा प्रार्थना तस्यां कर्त्तव्यायां विद्वान् निपुणः कामप्रार्थनासक्तः शब्दादिपंके मग्नः सचैवंनूतोऽद्य श्वोवा संस्तवं परिचयं कामसंबंधं प्रजह्यात् । क्लिल्त्येवमध्यवसाय्येव सर्वदाऽवतिष्ठते।नच तान् कामान् अबलोबलीवर्दवत् विषमं मार्गं त्यक्तुमलं । किंच नचैहिकामुष्मिकापायदर्शितया कामी नूत्वोपपन्नानऽपि कामान् शब्दादिविषयान् वैरस्वामिजंबूनामादिवद्या कामयेतानिलषेदिति । तथा क्षुल्लककुमारवत् कुतश्चिन्निमित्तात् । सुष्ठुगाइयमित्यादिना प्रतिबद्धोलब्धानप्यप्राप्तानपि कामान् लब्धसमान् मन्यमानोमहासत्वतया तन्निस्पृहोनवेदिति ॥ ६ ॥

मापच्छ असाधुता नवे, अच्चेही अणुसास अप्पगं ॥ अहियंच असाहुसोयती, संथणती परिदेवती बहु ॥ ७ ॥ इह जीवियमेव पासहा, तरुणे एव वाससयस्स तुट्टती ॥ इत्तरवासेय बुज्जह, गिद्धनरा कामेसु मुच्छिया ॥८॥

अर्थ—हवे शावास्ते कामन्नोगनो त्याग करवो ते कहेछे. मापच्छ के० रखे, पछी मरणकाले नवांतरने विषे ए कामन्नोगनी सेवाये करी असाधुतान्नवे के० असाधु

पणाथकी डुर्गति गमनरूप थाय. एवुं जाणी पोतानो आत्मा विपयना संग थकी अ वेही के० दूर करे तथा अणुसासअप्पगं के० पोताना आत्माने शीखवे के, रे जीव अ साधु कर्मने प्रमाणे तुं डुर्गतियें गयो थको डुःखी थईश तथा अहियंचके० अत्यंत अ साहु के० असाधु कर्मने प्रमाणे सोयती के० शोचकरीश संथणती के० हे जीव तुज ने परमाधार्मियें पीड्यो थको गाढा आकरा शब्द करीश, तथा परिदेवइबहु के० घणा विलाप करीश. हे माय? हुं मरुबुं, आ वखत मने राखनार कोइ नथी इत्यादिक अनेक आक्रंद करीश एवुं कहीने आत्माने शीखामण आपे. ॥७॥ वली इहके० आ सं सारमांहे धनधान्यादिक पदार्थ तो दूररह्या, पण जीवियमेव के० एकलुं जीवितव्य पणुज पासह के० देखो तेएवुं तो अशाश्वतुं बे के, क्षणेक्षणे विनाशशीलबे. कोइक तो तरुणएव के० तरुण पणेज विनाशपामे वाससतस्सतुट्टती के० चालता समयमां घणुतो शो व र्षनुं आयुष्यबे, तेपण बेहेडे त्रूटेबे जेमाटे ते आयुष्य सागरोपमनी अपेक्षायेतो मेषो न्मेप प्रायें इत्तरवासेय के० इत्वर एटले अल्प वर्ष सरखुं थाय. एवुं जाणीने रे जीव बुज्कह के० बुजो के, एवीरीतनो आयुष्यनो नरोशो बता पण गिद्धनराकामेसुमुच्छियाके० एकेक पुरुष गृद्धबता कामनोगने विषे मूर्बित रहेबे? तेनरकादिक पीडाने पामेबे ॥८॥

॥ दीपिका—(मापच्छेति पश्चान्मरणकाले नवांतरेवा मानुषंगादसाधुता कुगतिरूपा मानवेत् माप्राप्नुयादित्यतोविषयेन्यआत्मानमत्येहि त्याजय । तथा आत्मानमनुशास्तिं कुरु । यथा हेजीव असाधुरशुनकर्मकारी अधिकं डुर्गतौ गतः शोचति । सच परमाधार्मिकैः कदर्थ्यमानस्तिर्यक्षु क्षुदादिवेदनाग्रस्तः स्तनत्याक्रंदति परिदेवते विलपति बह्वपि इत्या त्मानुशासनंकुरु ॥ ७ ॥ (इहेति) इह संसारे आस्तांतावदन्यत् । जीवितमायुरेवाऽनि त्यं पश्यत प्रतिक्षणमावीचीमरणसद्भावात् । तथा सर्वायुःक्षयात्तरुणएव त्रुटयति च्यव ते । अथवा सांप्रतं सुबह्वप्यायुर्वर्षशतं तच्च सागरोपमापेक्षया कतिपयमेषोन्मेषप्रायत्वा त् इत्वरवासकल्पं स्तोकवासतुल्यमिति बुध्यध्वं । एवंनूतेप्यायुषि गृद्धानराः कामे मूर्बिताआ सक्तानरकादिपीडां लनंतइति शेषः ॥ ८ ॥

॥ टीका—किमिति कामपरित्यागोविधेयइत्याशंक्याह । (मापच्छेत्यादि) मापश्चान्मरण काले नवांतरेवा कामानुषंगादसाधुता कुगतिगमनादिकरूपा नवेत् प्राप्नुयादिति । अतो विषयासंगादात्मानमत्येहि त्याजय । तथात्मानं चाऽनुशाध्यात्मनोऽनुशास्तिं कुरु । यथा हेजीव योह्यसाधुरसाधुकर्मकारी हिंसानृतस्तेयादौ प्रवृत्तः सन् डुर्गतोपतितोऽधिक मत्यर्थमेवं शोचति सच परमाधार्मिकैः कदर्थ्यमानस्तिर्यक्षु वा क्षुधादिवेदनाग्रस्तो

ऽत्यर्थं स्तनति सशब्दं निःश्वसितित । तथा परिदेवते विलपऽत्याक्रंदति । बहिहति । हामातर्म्रियतइति त्राता नैवाऽस्ति सांप्रतं कश्चित् किंशरणं मेस्यादित्याह । डुष्कृतचरितस्य पापस्येन्येवमादीनि डुःखान्यऽसाधुकारिणः प्राप्नुवंतीत्यतोविषयानुषंगोन विधेयइत्येवमात्मनोऽनुशासनं कुर्विति संबंधनीयं ॥७॥ किंच (इहजीवियमेवेत्यादि) । इहाऽस्मिन् संसारे आस्तां तावदन्यज्जीवितमेव सकलसुखास्पदमनित्यताऽघ्रातं आवीचिमरणेन। प्रतिक्षणं विशरारुस्वभावं तथा सर्वायुःक्षयएव वा तरुणएव युवैव वर्षशतायुरप्युपक्रमतोध्यवसाननिमित्तादिरूपादायुषस्त्रुटयति प्रच्यवते । यदिवा सांप्रतं सुबव्हप्यायुर्वर्षशतं तच्च तदंते त्रुटयति । तच्च सागरोपमापेक्षया कतिपयनिमेषप्रायत्वात् इत्वरं वासकल्पं वर्तते स्तोकनिवासकल्पमित्येवं बुध्यध्वं यूयं । तथैवंभूतेऽप्यायुषि नराः पुरुषालघुप्रकृतयः कामेषु शब्दादिषु विषयेषु गृद्धाअध्युपपन्नामूर्छितास्तत्रैवाऽसक्तचेतसोनरकादियातनां स्थानमाप्नुवंतीति शेषः ॥ ८ ॥

जे इह आरंभनिस्सया, आत्तदंमा एगंतलूसगा ॥ गंता ते पावलोगयं, चिररायं आसुरियं दिसं ॥ए॥ एाय संखय माहु जीवितं, तहविय बाल जणो पगप्भई ॥ पच्चुप्पन्नेण कारियं, कोदट्ठुं परलोकमागते ॥ १० ॥

अर्थ–जेइह के० जे आ मनुष्य लोकमांहे महामोहाकुलित पुरुष आरंभ के० आरंभ हिंसादिक सावद्यानुष्ठानने विषे निस्सिया के० निश्रित एटले आसक्तछे, ते पुरुष आत्तदंमा के० आत्माने दंमनार तथा एगंतलूसगा के० एकंत जीवना प्राणने लूसनार अथवा सद् अनुष्ठाननेलूसनार, गंताते पावलोगयं के० एवा पुरुष पापलोक एटले जे गतिमां पापकर्मना करनार जाय, ते गतिमां जशे किंबहुना चिररायं असुरियंदिसं के० चिरकाल सुधी नरकादिकना डुःख पामसे. यद्यपि ते अज्ञान कष्टने प्रभावे कदाचित् देवगति पामे तोपण असुरिगति एटले किल्बिषीयादिकनी गति पामे ॥ए॥ वली कहेछे एायसंखयमाहुजीवितं के० सर्वज्ञे एम कह्युंछे के, त्रुटयुं आयुष्य संधाय नही तहविय के० तोपण बालजणो के० बाल अज्ञानी लोक ते निर्विवेकी पणे पगप्भई के० धृष्टपणुं करेछे, ते कहेछे, कोइ एक पंमिते धर्मने विषे प्रेर्योछतो ते नरविवेकी पुरुष एम कहेके पच्चुप्पन्नेणकारियं के० अमारा प्रत्युत्पन्न जे वर्त्तमान सुख तेनी सायेज अमारो कार्य छे, कोणजाणे परलोकछे किंवा नथी कोदट्ठुं परलोगमागते के० परलोकने कोण देखी आव्योछे, जे देखीने परलोकथी आव्यो होय ते अमोने कहेतो मान्य करीये इत्यादिक धृष्टपणानी वातो करे. ॥ १० ॥

॥ दीपिका–जेइहेति। ये केचन इह लोके आरंभनिःश्रिताआरंभसंबद्धाआत्मानं दंडयं

तीत्यात्मदंडकाः । तथा एकांतेन जूषकाजंतूनां हिंसकास्ते पापलोकं नरकादिगतिं गंता रोयास्यंति चिररात्रं प्रजूतकालं तन्निवासिनोनवंति । तथा बालतपश्चरणादिना यद्य पि देवत्वप्राप्तिस्तथाप्यासुरींदिशं यांति किल्बिषिकादेवाऽधमाः स्युरित्यर्थः ॥ ए ॥ (न येति । नचनैव संस्कृतमायुस्त्रुटितमायुर्न संस्कर्तुं संधातुं शक्यमेवमाहुः सर्वज्ञाः । तथापिच एवं सत्यपि बालजनोमूर्खलोकः सावद्यं कृत्यं कुर्वन् प्रगल्नतेऽसदनुष्ठानेनापि नलज्ज ते । एवं पापकर्माणि कुर्वन् परेण प्रेरितोवक्ति । प्रत्युत्पन्नेन वर्तमानकालेनास्माकं कार्यं अ तीतानागतयोर्विनष्टाऽनुत्पन्नत्वादसत्वं तस्मादिह लोकएव विद्यते नपरलोके । यतः । ए तावानेव लोकोयं यावानिंड्रियगोचरः । नड़े वृकपदं पश्य य द्वदंत्यबहुश्रुताइति ॥ १० ॥

॥ टीका—अपिच (जेइहेत्यादि) ये केचन महामोहाकुलितचेतसइहाऽस्मिन्मनुष्य लोके आरंने हिंसादिके सावद्यानुष्ठानरूपे निश्चयेन श्रिताः संबद्धाअध्युपपन्नास्ते आत्मानं दंडयंतीत्यात्मदंडकास्तथैकांतेनैव जंतूनां जूषकाहिंसकाः सदनुष्ठानस्य वा ध्वं सकास्ते एवंजूतागंतारोयास्यंति पापं लोकं पापकर्मकारिणां योलोकोनरकादिश्चिर रात्रमिति प्रजूतं कालं तन्निवासिनोनवंति । तथा बालतपश्चरणादिना यद्यपि तथावि धदेवत्वापत्तिस्तथाऽप्यासुराणामियमासुरी तां दिशं यांति । अपरे प्रेष्याः किल्बिषिका देवाऽधमानवंतीत्यर्थः ॥ ए ॥ किंच (णयसंखयेत्यादि) नचनैव त्रुटितं जीवितमायुः संस्कर्तुं संधातुं शक्यते एवमाहुः सर्वज्ञाः । तथाहि दंमकलियं करित्तावच्चंति डुराइउयदि वसाय आउसंचेल्लंता गयाय पुणोनाणनियत्तंति । तथाऽप्येवमपि व्यवस्थिते जीवानामायु षि बालजनोऽन्योलोकोनिर्विवेकतया असदनुष्ठाने प्रवृत्तिं कुर्वन् प्रगल्नते धृष्टतां या त्यसदनुष्ठाने नाऽपि लज्जतइत्यर्थः । सचाऽन्योजनः पापानि कर्माणि कुर्वन् परेण चो दितोधृष्टतया अलीकपांडित्यानिमानेनेदमुत्तरमाह । प्रत्युत्पन्नेन वर्तमानकालनाविना परमार्थतोऽतीतानागतयोर्विनष्टानुत्पन्नत्वेनाऽविद्यमानत्वात् कार्यं प्रयोजनं प्रेक्षापूर्व कारिनिस्तदेव प्रयोजनसाधकत्वादाड्रीयते । एवंच सतीह लोकएव विद्यते नपरलोक इति दर्शयति । कः परलोकं दर्शयति कं परलोकं कोदृष्ट्वहायातस्तथाचोचुः । पिब खादच साधु शोनने यदतीतं वरगात्रि तन्न ते । नहि नीरुगतं निवर्तते समुदयमात्रमिदं कलेवरं । तथा एतावानेव पुरुषोयावानिंड्रियगोचरः॥नड़े वृकपदं पश्य य द्वदंत्यबहुश्रुताइति ॥१०॥

अदक्खुव दक्खुवाहियं,सद्दहसु अदक्खुदंसणा॥हंदि हु सुनिरुद्ध
दंसणे,मोहणिज्जेण कडेण कम्मुणा॥११॥ डुक्खी मोहे पुणोपुणो,
निव्विदेज्जसि लोगपूयणं॥ एवं सहिते हियासए, आयतुलं पा
णेहिं संजए ॥ १२ ॥

अर्थ–हवे एवुं धृष्टपणुं करे तेने उपदेश कहेछे, अहो अदक्खुव के० अंध सरखा पुरुषो दक्खुव के० त्रणभुवनने देखनार एवो सर्वज्ञजे श्रीवीतरागदेव तेनो आहियंके० कहेलो जे श्रीसिद्धांत तेने सद्दहसु के० सर्द्दहे, तुं केवोछे ? तोके, अदक्खुदंसणा के० अंध ज्ञानदृष्टीरहित एवाजे छे, तेमना दर्शनने विषे प्रवर्त्तनहारछे माटे तने बोलाविये छैये के अहो ? अदक्खुदंसणा तुं श्रीवीतराग परमात्मानोभाष्युंजे सिद्धांत तेनाउपर श्रद्धाकरीने हंदि के० तेने गृह्णकर अने आलोकना सुखटालीने परलोक उपर कोण भरोशो राखे, परलोकतो नथी इत्यादिकजे तुं बोलेछे, ते ताहारुं बोलवुं अयोग्यछे; केमके वर्त्तमानकाल टालीने अतीत अनागत नही मानीश तो पितामहादिक पुत्रपौत्रादिक एपण नथी, एम पण कहेवुंपडशे परंतु एवीरीतना ताहारा बोलवा थकी एम जाणीये छैये जे सु के० सुष्ठु पणे तुं निरुद्धदंसणे के० निरुद्ध दर्शनेछे, एटले सर्वदा ज्ञानदृष्टीरहितछो, मोहणिज्जेणकडेण कम्मुणा के० मोहनीयकर्मेकरी अथवा ज्ञानावरणादिक कर्मेकरी ताहरो दर्शन रुंधाणुछे तेमाटे तुं जैनमार्ग सर्द्दहतो नथी, माटे ए तारो मत मूकीने सूत्रना सत्यमार्गनी सर्द्दहणा कर ॥ ११ ॥ वली उपदेश कहेछे एवा वचननो बोलनार दुक्खीके० दुःखीछतो मोहेपुणोपुणो के० वली वली मोह पामे एटले वली तेनेज समाचरे जे थकी संसार मांहे अनंतो काल परिभ्रमण करे. एवुं जाणी मोह मूकीने जे संयमने विषे प्रवर्त्ते ते उत्तम पुरुष जाणवो, निव्विदेज्जसिलोगपूयणं के० ते आत्मश्लाघा स्तुति लोकपूजा तथा वस्त्रादिक लाभना उत्कर्षने न वांछे, एटले ए सर्वनो त्यागकरे. एवं के० ते एम करतो सहितेहिं के० ज्ञानादिक सहित थको संजए के० संयती पाणेहिं के० सर्व प्राणीमात्रने आयतुलंके० पोताना आत्मा तुल्यकरी पासएके० देखे. ए रीते दया पाले ॥ १२ ॥

दीपिका–एवं नास्तिकेनोक्तेसत्युत्तरमाह । (अदक्खवेति) पश्यतीतिपश्यः नपश्योऽपश्योंधस्तत्संबुद्धौ हेअंधतुल्य पश्येन सर्वज्ञेन आख्यातं सर्वज्ञागमं श्रद्धस्व प्रमाणीकुरु । तथाऽपश्यकस्यासर्वज्ञस्याऽभ्युपगतं दर्शनं येन सोपश्यकदर्शनस्तस्यामंत्रणं हेऽपश्यकदर्शन प्रत्यक्षस्यैकस्य प्रमाणस्यांगीकारे व्यवहारलोपः स्यात् तस्मादागमं प्रमाणमिति । कस्मादेवमुपदिश्यतइत्याह । (हंदीत्यादि) हंदिएवंगृहाण । हुशब्दोवाक्यालंकारे । मोहनीयेन स्वकृतेन कर्मणा सुष्ठु निरुद्धमावृतं दर्शनं सम्यगवबोधोयस्य ससुनिरुद्धदर्शनः। एवंविधः प्राणी सर्वज्ञोक्तं मार्गं नश्रद्धधते तस्मादेवं बहूपदिश्यतेइति ॥ ११ ॥ (दुःखीति) दुःखी प्राणी पुनः पुनर्मोहंयाति दुःखेन विवेकविकलोभवति । निर्विवेकीच पुनर्दुःखी स्यात् तस्मान्मोहं परित्यज्य श्लोकमात्मश्लाघां पूजनं च निर्विद्येत जुगुप्सेत । परिहरेदित्यर्थः । एवमुक्तनीत्या सहहितेन वर्ततइति सहितोज्ञानादियुक्तोवा संयतः साधुः परैः प्राणिभिरा

त्मतुलामात्मतुल्यत्वं पश्यन् यथाऽत्मनोडुःखमप्रियं सुखंच प्रियं एवं सर्वेपि प्राणिनईह शाएवेति ज्ञात्वा सर्वान् प्राणिनः पालयेदित्यर्थः ॥ १२ ॥

टीका—(अदक्खुवेत्यादि) । पश्यतीति पश्योनपश्योऽपश्योंऽधस्तेन तुल्यं कार्याकार्या विवेचित्वादपश्यवत्तस्याऽऽमंत्रणं हेऽपश्यवदंधसदृश प्रत्यक्षस्यैवैकस्याऽन्युपगमेन कार्या कार्यानन्निज्ञ पश्येन सर्वज्ञेन व्याव्हतमुक्तं सर्वज्ञागमं श्रद्धस्व प्रमाणीकुरु प्रत्यक्षस्यैवै कस्याऽन्युपगमेन समस्तव्यवहारविलोपेन हंत हतोसि पितृनिबंधनस्याऽपि व्यवहारस्या ऽसिद्धेरिति । तथाऽपश्यकस्याऽपि सर्वज्ञस्याऽन्युपगमं दर्शनं येनासाऽवपश्यकदर्शनस्तस्याऽ मंत्रणं वा हेऽपश्यकदर्शन स्वतोऽर्वाकूदर्शी नवांस्तथाविधदर्शनप्रमाणश्च सन् कार्याका र्यविवेचितयांऽधवदन्नविष्यत् यदिसर्वज्ञान्युपगमं नाऽकरिष्यत् यदिवाऽदक्षोवाऽनिपुणो वा यादृशस्तादृशोवाऽचक्षुदर्शनमस्याऽसावचक्षुदर्शनः केवलदर्शनः सर्वज्ञस्तस्माद्यदवाप्य ते हितं तत् श्रद्धस्व । इदमुक्तं नवति । अनिपुणेन निपुणेन वा सर्वज्ञदर्शिनोक्तं हितं श्रद्धातव्यं । यदि वा हे अदृष्ट हेअर्वाक्दर्शिन दृष्टाऽतीताऽनागतव्यवहितसूक्ष्मपदार्थद र्शिना यद्व्याव्हतमनिहितमागमं तंश्रद्धस्व । हेअदृष्टदर्शिन अदक्षदर्शन इतिवा असर्वज्ञो क्तशासनानुयायिन् तमात्मीयमाग्रहं परित्यज्य सर्वज्ञोक्तेमार्गे श्रद्धानं कुर्विति तात्पर्या र्थः । किमिति सर्वज्ञोक्ते मार्गे श्रद्धानमसुमान्नकरोति । येनैवमुपदिश्यते तन्निमित्तमा ह । हंदीत्येवं गृहाण । हुशब्दोवाक्यालंकारे । सुष्ठु अतिशयेन निरुद्धमावृतं दर्शनं सम्य क् अवबोधरूपं यस्य सः केनेत्याह । मोहयतीति मोहनीयं मिथ्यादर्शनादिज्ञानावरणी यादिकं वा तेन कृतेन कर्मणा निरुद्धदर्शनः प्राणी सर्वज्ञोक्तं मार्गं नश्रद्दधते ऽतस्तन्मा र्गेश्रद्धानं प्रति चोद्यते इति ॥ ११ ॥ पुनरप्युपदेशांतरमाह । (डुःखीत्यादि) डुःखम सातवेदनीयमुदयेन यत्प्राप्तं तत्कारणं वा डुःखयतीति डुःखं तदस्याऽस्तीति डुःखी सन् प्राणी पौनःपुन्येन मोहं याति सदसद्विवेकविकलोन्नवति । इदमुक्तंन्नवति । असातो दयात् डुःखमनुन्नवन्नार्तोमूढस्तत्करोति येन पुनः पुनः सुखी संसारसागरमनंतमस्येति त देवंनूतं मोहं परित्यज्य सम्यगुडानेनोऽज्ञाय निर्विंद्येत जुगुप्सेत परिहरेदात्म श्लाघां स्तुतिरूपां तथा पूजनं वस्त्रादिलान्नरूपं परिहरेत् । एवमनंतरोक्तरीत्या परिवर्त्त मानः सहहितेन वर्ततइति सहितोज्ञानादियुक्तोवा संयतः प्रव्राजितोऽपरप्राणिनिः सु खार्थिनिरात्मतुलामात्मतुल्यतां डुःखाप्रियत्वसुखप्रियत्वरूपामधिकं पश्येत् आत्मतुल्या न् सर्वानपि प्राणिनः पालयेदिति ॥ १२ ॥

गारं पिअ आवसे नरे, अणुपुव्वं पाणेहिं संजए ॥ समता सव्वत्त सुव्वते, देवाणं गच्छे सलोगयं ॥ १३ ॥ सोच्चा भगवाणुसासणं सच्चे तच्छकरेज्जुवक्कमं ॥ सव्वत्त विणीयमच्छरे, उंछं भिक्खु विसुद्धमाहरे॥ १४

अर्थ—वली उपदेशांतर कहेछे. गारंपिअआवसेनरे के० गृहवासने विषे वसतो एवो मनुष्य तेपण अणुपुव्वं के० अनुक्रमे धर्म सांभली, श्रावकना व्रतादिकने अंगीकार करी, पाणेहिं के० जीवोने विषे संजए के० सम्यक्प्रकारे यत्न करतो, समतासव्वत्तसुव्वते के० सर्वत्र समता परिणामे वर्त्ततो एवीरीते गृहस्थ धर्मने पालतो थको पण देवाणंगच्छेसलोगयंके० देवलोकमां जाय. तो पछी यतिधर्म पालनारनो केवोजकहुं ॥ १३ ॥ वली कहेछे सोच्चाभगवाणुसासणं के०ते श्रीवीतरागनी आज्ञापूर्वक धर्म सांभलीने सच्चेतच्छकरे ज्जुवक्कमंके० तेनां आगमने विषे जेम कह्युंछे. तेम सत्य संयमने विषे उपक्रम एटले उद्यम करे, सव्वत्तविणीयमच्छरेके० सर्वत्र मच्छररहित एवो थको भिक्खु के० साधु ते उंछं के० माधुकरी वृत्तियें विसुद्धमाहरे के० शुद्ध एटले बेतालीश दोष रहित एवो आहार लीये. ॥ १४ ॥

॥ दीपिका—किंच । (गारंपीति) अगारं गृहमप्यावसन् गृहस्थोपि नरआनुपूर्व्या चारित्रप्रतिपत्त्यादिरूपया प्राणिषु जीवेषु संयतोहिंसानिवृत्तः । यतः सर्वत्र समता श्रूयते । यतौ गृहस्थेच समतैव जिनमतेऽभिधीयते तां कुर्वन् गृहस्थोपि देवानां लोकं गच्छेत् किंपुनर्यतिरिति ॥१३॥ (सोच्चेति) भगवदनुशासनं जिनागमं श्रुत्वा तदुक्ते सत्ये संयमे उपक्रमं उद्यमं कुर्यात् । किंभूतः सर्वत्र उपनीतमत्सरोऽरक्तद्विष्टः (उंछंति) भैक्ष्यं शुद्धं दोषरहितमाहरेद्गृह्णीयात् ॥ १४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ टीका—किंच (गारंपियइत्यादि)। अगारमपि गृहमप्यावसन् गृहवासमपि कुर्वन् नरो मनुष्यः(आनुपूर्वमिति)आनुपूर्व्या श्रवणधर्मप्रतिपत्त्यादिलक्षणया प्राणिषु यथाशक्त्या सम्यक् यतः संयतस्तदुपमर्दान्निवृत्तः। किमिति । यतः समता समभावः । आत्मपरतुल्यता सर्वत्र यतौ गृहस्थे च यदिचैकेंद्रियादौ श्रूयतेऽभिधीयते आर्हते प्रवचने तां च कुर्वन् सगृहस्थोऽपि सुव्रतःसन् देवानां पुरंदरादीनां लोकं स्थानं गच्छेत् किं पुनर्योमहासत्वतया पंचमहाव्रतधारी यतिरिति ॥ १३ ॥ अपिच । (सोच्चाइत्यादि) । ज्ञानैश्वर्यादिगुणसमन्वितस्य भगवतः सर्वज्ञस्य शासनमाज्ञामागमं श्रुत्वाऽधिगम्य तत्र तस्मिन्नागमे तदुक्तेवा संयमे सद्भ्योहिते सत्ये लघुकर्मा तदुपक्रमं तत्प्राप्त्युपायं कुर्यात् । किंभूतः सर्वत्राऽपनीतोमत्सरोयेन सतथाऽसौरक्तद्विष्टः क्षेत्रवस्तूपधिशरीरनिष्पिपासः । तथा (उंछंति) भैक्ष्यं शुद्धं द्विचत्वारिंशद्दोषरहितमाहारं गृह्णीयादभ्यवहरेद्वेति॥ १४ ॥

सवं नच्चा अहिठिए, धम्मठी उवहाणवीरिए ॥ गुत्ते जुत्ते सदाजये आय परे परमायतठिते ॥ १५ ॥ वित्तं पसवोय नाईउ, तं बाले सरणं ति मन्नइ ॥ एते मम तेसुवी अहं, नोताणं सरणं नविज्जई ॥ १६ ॥

अर्थ—वली उपदेश कहेछे ते साधु सवंके० सर्व हेय उपादेयवस्तुने नच्चाके० जाणीने सर्वज्ञोक्त संवररूप मार्गने अहिठिएके० अधितिष्ठेत् एटले आश्रये वली धम्मठीके० धर्मार्थी थको उवहाण के० उपधान एटले तपनेविषे वीरिएके० वीर्य फोरवे एटले तेमा बलवंत थाय पण तेमां वीर्य गोपवे नहीं वली गुत्तेजुत्ते के० मन वचन अने काय गुप्तिए गुप्त अने शुभयोगे युक्त थवानो सदा के० सर्वकाल आयपरे के० पोताने विषे अने परने विषे जयेके० यत्न करे परमायतठिते के०ते साधुपरमाग्रतजे मोक्ष तेनो अर्थी जाणवो ॥ १५ ॥ वित्तं के० धनकनकादिक तथा पसवो के० पशु चतुष्पदादिक अने नाईउ के० ज्ञातिते स्वजन मातापितादिक तंके० तेनु बाले सरणंतिमन्नई के० जे बाल अज्ञानी होय ते सरणकरीमाने केवीरीते तोके एतेममतेसुवीअहं के० ए जेवित्तादिकछे ते माहाराछे हुं एनी रक्षा करनारछुं पण नोताणं सरणंनविज्जई के० एम न जाणे जे ए धनादिक जे छे, ते रोगादिक उपने थके अथवा डुर्गतिमां पडतां थका मने त्राणशरण नविद्यते एटले नथी. थवाना ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–(सच्चमिति) सत्यमार्गमिमं ज्ञात्वाऽधितिष्ठेदाश्रयेत् । धर्मार्थीउपधानं तपस्तत्र वीर्यवान् मनोवाक्कायगुप्तोज्ञानादिभिर्युक्तः सदा यतेत आत्मनि परस्मिंश्च । किंभूतः परमउत्कृष्टआयतोदीर्घोमोक्षस्तेनार्थिकस्तदभिलाषी ॥ १५ ॥ (वित्तमिति) वित्तं धनं पशवस्तुरगादयः ज्ञातयः स्वजनामात्रादयः तदेतद्बालोमूर्खः शरणमिति मन्यते । कथमित्याह । एते वित्तादयोमम मदीयाअहं तेषु वित्तादिषु रक्षाकरणेन प्रवर्ते एवं बालोमन्यते नत्वेवं वेत्ति यद्वित्तादिकं त्राणं नस्याद्दुर्गतौपततोनापिरोगादौ शरणं विद्यते । रिद्धिसहावतरला, रोगजराभंगुरं हयसरीरं ॥ दोण्हंपि गमणसीला, णाकिच्चिरहोज्ज संबंधाइति ॥ १६ ॥

॥ टीका–किंच (सच्चंणच्चेत्यादि) सर्वमेतद्धेयमुपादेयं च ज्ञात्वा सर्वज्ञोक्तं सर्वसंवररूपमधितिष्ठेत् आश्रयेत् । धर्मेणार्थोधर्मएव वाऽर्थः परमार्थताऽन्यस्याऽनर्थरूपत्वात् धर्मार्थः सविद्यते यस्याऽसौ धर्मार्थी धर्मप्रयोजनवान् । उपधानं तपस्तत्रवीर्यं यस्य स तथा अनिगूहितबलवीर्यइत्यर्थः । तथा मनोवाक्कायगुप्तः सुप्रणिहितयोगइत्यर्थः । तथा युक्तोज्ञानादिभिः सदा सर्वकालं यतेताऽऽत्मनि परस्मिंश्च । किंविशिष्टः सन् अतआह । प

रमउत्कष्टश्चायतोदीर्घः सर्वकालजवनात् मोक्षस्तेनाऽर्थिकस्तदभिलापी पूर्वोक्तविशेषणवि शिष्टोजवेदिति ॥ १५ ॥ पुनरप्युपदेशांतरमाह (वित्तमित्यादि) वित्तं धनधान्यहिरण्या दि । पशवः करितुरगगोमहिष्यादयोज्ञातयः स्वजनामातापितृपुत्रकलत्रादयः तदेतद्वित्ता दिकं बालोऽज्ञः शरणं मन्यते । तदेव दर्शयति । ममैते वित्तपशुजातयः परिजोगे उपयो क्ष्यंते । तेषु चाऽर्जनपालनसंरक्षणादिना शेषोपद्रवनिराकरणेन परिहारेणाऽहंजवामीत्ये वं बालोमन्यते । न पुनर्जानीते यदर्थं धनमिच्छंति तच्छरीरमशाश्वतमिति । अपिच । रि द्धी सहावतरला, रोगजराजंगुरं हयशरीरं ॥ तथा मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च । प्रतिजन्मनि वर्तंते कस्य माता पितापि वा ॥१॥ एतदेवाह । नोनैव वित्तादिकं संसारे क थमपि त्राणं जवति । नरकादौ पततोनापि रागादिनोऽपद्रुतस्य क्वचिच्छरणं विद्यतइति ॥१६॥

अप्नागमितंमि वा छहे, अहवा उक्कमिते जवंतिए ॥ एगस्स गती
य आगती, विडुमंता सरणं ए मन्नई ॥ १७ ॥ सवे सयकम्मक
प्पिया, अवियत्तेण छहेण पाणिणो ॥ हिंमंति जयाउला सढा,
जाई जरा मरणेहिं निहुता ॥ १८ ॥

अर्थ—वली उपदेश कही देखाडेछे. अप्नागमितंमिवाछहे के० पूर्वोपार्जित असाता वेदनीय कर्मना उदय थकी छःख प्राप्त थयां छतां ते छःख एकलोज जीव अनुजवेछे. पण ज्ञाति, स्वजन अथवा द्रव्य ते छखः थकी मूकावी शकता नथी अहवाके० अथवा उक्क मितेजवंतिए के० मरण आवे छते पण एकलोज छःख जोगवे तथा जवांतरने विषे पण एकलोज छःख जोगवे तथा एगस्सगतीय आगती के० गति आगति पण एकलानेज होय, परंतु ते वखते धनादिक जे छे ते कोइ सरण न थाय विडुमंता के० विवेकी पंमित ज न एवी रीते जाणता थका सरणं णमन्नइ के० कोइनुं सरण करी माने नही॥ १७ ॥ सवे के० संसारमांहे सर्व जीव सय के० पोताना करेला कम्म के० कर्मे करी कप्पिया के० एकेंद्रियादिकनी अवस्थाये कल्प्या छतां अवियत्तेणके० अव्यक्त संज्ञाये छहेण के० अस्पष्ट शिरशूलादिक छःखे करी छःखीया छतां एवा पाणिणो के० प्राणीउ ते हिंमंति के० चतुर्गतिकरूप संसार मांहे अरहट घटीने न्याये परिज्रमण करेछे, ते ज योनीनेविषे जयाउला के० जयाकुल विहीता थका तथा सढा के० शठ एटले अज्ञानी छता जाई जरामरणेहिं के० वली वली जाइ एटले जाति अने जरा तथा मरणे करी निहुता के० पीड्या थका रहेछे. ॥ १८ ॥

॥ दीपिका—(अप्नागमितंमिवेति) अन्यागते प्राप्ते छःखेऽथवा उपक्रमकारणैरुपक्रांते क्षी

णे आयुषि नवांते वा सति एकाक्येव डुःखमनुनवतीतिशेषः ॥ यतः सयणस्सविमज्झगउ, रोगानिदउकिलिस्सइइहेगो ॥ सयणोवियसेरोगं, नविरंचइनेव नासेइ इति ॥ तथाचाह । (एकस्सत्ति) एकस्यैव प्राणिनानवांतरे गतिरागतिश्च स्यात् ततोविद्वान् तावदीषदपि शरणं न मन्यते । यतः एकस्य जन्ममरणे गतयश्च शुनाशुनानवावर्ते॥ तस्मादाकालिकहितमेकेनैवात्मनः कार्यमिति॥ १७॥(सव्वेत्ति) सर्वे प्राणिनः स्वकेन स्वकृतेन कर्मणा कल्पिताएकेंड्रियादिनेदेन व्यवस्थिताः । तथा एकेंड्रियादिनवेषु अव्यक्तेन डुःखेन उनयलक्षणाव्यक्तेनापि डुःखेन समन्विताः प्राणिनोनयाकुलाः शठकर्मकारित्वात् शगाहिंडंति पर्यटंति तासुतासु योनिषु । किंनूताः प्राणिनः जातिजरामरणैरनिडुताः पीडिताः ॥ १८ ॥

॥ टीका–एतदेवाऽह । (अप्नागमितंमीत्यादि) । पूर्वोपात्ताऽसातवेदनीयोदयेनाऽन्यागते डुःखे सत्येकाक्येव डुःखमनुनवति न ज्ञातिवर्गेण वित्तेन वा किंचिक्रियते । तथाच । सयणस्सविमझ्गउरोगानिहतोकिलिस्सइइहेगो ॥ सयणोवियसेरोगं नविरंचइनेवनासेइ ॥ १ ॥ अथवोपक्रमकारणैरुपक्रांते स्वायुषि स्थितिक्षयेण वा नवांतरे नवांतिके वा मरणे समुपस्थिते सति एकस्यैवाऽसुमतोगतिरागतिश्च नवति । विद्वान् विवेकी यथावस्थितसंसारस्वनावस्य वेत्ता ईषदपि तावत् शरणं न मन्यते कुतः सर्वात्मना त्राणमिति । तथाहि । एकस्य जन्ममरणे गतयश्च शुनाशुनानवावर्ते । तस्मादाकालिकहित,मेकेनैवाऽत्मनः कार्यं ॥ १ ॥ एक्को करेइ कम्मं फलमवि तस्सिं क्कउसमणुहवइ । एक्को जायइ मरइ य परलोयं एक्कउजाइ ॥१॥१७॥ अन्यच्च । (सव्वेसयइत्यादि) । सर्वेपि संसारोदरविवरवर्तिनः प्राणिनः संसारे पर्यटंतः स्वकृतेन ज्ञानावरणीयादिना कर्मणा कल्पिताः सूक्ष्मबादरपर्याप्तकैकेंड्रियादिनेदेन व्यवस्थिताः। तथा तेनैव कर्मणैकेंड्रियाद्यवस्थायामव्यक्तेनाऽपरिस्फुटेन शिरःशूलाद्यलक्षितस्वनावेनोऽपलक्षणत्वात् प्रव्यक्तेन च डुःखेनाऽसातावेदनीयस्वनावेन समन्विताः प्राणिनः पर्यटंत्यरघट्टघटीन्यायेन तावत्स्वेव योनिषु नयाकुलाः शठकर्मकारित्वात् शगान्नमंति जातिजरामरणैरनिडुतागर्नाधानादिनिर्डुःखैःपीडिताइति १८

इणमेव खणं वियाणिया, णोसुलनं बोहिंच आहितं ॥ एवं सहिए हिपासए, आहिजिणे इणमेव सेसगा ॥ १९ ॥ अनविंसु पुरा विनिक्खुवो,आएसावि नवंति सुव्वता ॥ एयाइं गुणाइं आहुते, कासवस्स अणुधम्मचारिणो ॥ २० ॥

अर्थ–इणमेव के० एहिज आर्य क्षेत्र सुकुमाल जन्म जिनधर्म प्रतिपत्तिरूप एवो खणंवियाणिया के० क्षण एटले अवसर जाणी यथोचित धर्म करवो णोसुजनंबोहिंच

मान स्वामी पासेथी अमे सांभळ्युं छे, तेरीते तमोने कहुंछुं ॥ २२ ॥ इति श्रीसूत्रकृतांगे प्रथमश्रुतस्कंधे श्रीद्वितीयवेतालीयाध्ययनं समाप्तं ॥

॥ दीपिका–(तिविहेणेति) त्रिविधेन मनोवाक्कायैः कृतकारितानुमतिभिर्वा प्राणिनो माहन्यात् । इदमाद्यव्रतं । उपलक्षणादन्यान्यपि व्रतानि ज्ञेयानि । तथा आत्महितोऽनिदानोनिदानरहितः संवृतएवंभूतः सिध्यतीत्याह । एवंभूताअनंतशः सिद्धाः संप्रति वर्तमानकालेपि सिद्धिगमनयोगे सिध्यंति । अपरे अनागते काले सेत्स्यंति । नान्योमुक्तिमार्गइत्यर्थः ॥ २१ ॥ (एवमिति) एवमुद्देशकत्रयोक्तनीत्या श्रीऋषभस्वामी स्वसुतानुद्दिश्य उदाहृतवान् कथितवान् । अनुत्तरमुत्कृष्टं ज्ञानं तदस्यास्तीत्यनुत्तरज्ञानी । एवमनुत्तरदर्शी । अनंतज्ञानदर्शनइत्यर्थः । बौद्धमतनिरासाय ज्ञानाधारंजीवं दर्शयति । अनुत्तरज्ञानदर्शनधरइति । कथंचिद्भिन्नज्ञानदर्शनाधारइत्यर्थः । अर्हन् सुरेंद्रादिपूज्योज्ञातपुत्रोवर्धमानस्वामी ऋषभस्वामीवा भगवान् विशालानगर्यामाख्यातवान् श्रीवीरः । ऋषभस्वामीतु विशालकुलोद्भवत्वात् वैशालिकः ॥ यदुक्तं " विशालाजननीयस्य, विशालकुलमेववा ॥ विशालं वचनं वास्यात्तेन वैशालिकोजिनः " इतिब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ॥ २२ ॥ इति द्वितीयाध्ययनं समाप्तं ॥

॥ टीका–तदभिहितांश्च गुणानुद्देशतआह । (तिविहेणेत्यादि) । त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन यदिवा कृतकारितानुमतिभिर्वा प्राणिनोदशविधप्राणभाजोमाहन्यादिति । प्रथममिद महाव्रतं । अस्य चोपलक्षणार्थत्वात् एवं शेषाण्यपि द्रष्टव्यानि । तथाऽऽत्मनेहित आत्महितः । तथानाऽस्य स्वर्गावाप्त्यादिलक्षणनिदानमस्तीत्यनिदानः । तथेंद्रियनोइंद्रियैर्मनोवाक्कायैर्वा संवृतस्त्रिगुप्तिगुप्तइत्यर्थः । एवंभूतश्चावश्यं सिद्धिमवाप्नोतीत्येतद्दर्शयति । एवमनंतरोक्तमार्गानुष्ठानेनानंताः सिद्धाअशेषकर्मक्षयभाजः संवृत्ताविशिष्टस्थानभाऽजोवा । तथा संप्रति वर्तमाने काले सिद्धिगमनयोग्ये सित्ध्यंत्यऽपरेवाऽनागते काले एतन्मार्गानुष्ठायिनएव सेत्स्यंति । नाऽपरः सिद्धिमार्गोऽस्तीति भावार्थः ॥ २१ ॥ एतच्च सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिप्रभृतिभ्यः स्वशिष्येभ्यः प्रतिपादयतीत्याह । (एवंसेत्यादि) । एवमुद्देशकत्रयाभिहितनीत्या सऋषभस्वामी स्वपुत्रानुद्दिश्योदाहृतवान प्रतिपादितवान् । नाऽस्योत्तरं प्रधानमस्तीत्यनुत्तरं । तच्च तज्ज्ञानंच अनुत्तरज्ञानं तदस्याऽस्तीत्यनुत्तरज्ञानी तथाऽनुत्तरदर्शी । सामान्यविशेषपरिच्छेदकावबोधस्वभावइति बौद्धमतनिरास द्वारेण ज्ञानाधारं जीवं दर्शयितुमाह । (अनुत्तरज्ञानदर्शनधरइति) । कथंचिद्भिन्नज्ञानदर्शनाधारइत्यर्थः । अर्हन् सुरेंद्रादिपूजार्होज्ञातपुत्रोवर्द्धमानस्वामी ऋषभस्वामी वा भगवानैश्वर्यादिगुणयुक्तोविशाल्यां नगर्यां वर्द्धमानोऽस्माकमाख्यातवान् ऋषभस्वामी वा । विशालकुलोद्भव

त्वा द्वैशालिकः । तथाचोक्तं । विशाला जननी यस्य विशालं कुलमेव वा । विशालं वचनं चाऽस्य तेन वैशालिकोजिनः । एवमसौ जिनआख्यातइति । इतिशब्दः परिसमाप्त्यर्थोब्रवीमीतिउक्तार्थोऽनया पूर्ववदिति ॥२२॥ समाप्तंच द्वितीयं वैतालीयमध्ययनं ॥ ग्रंथाग्रं॥१७६॥

हवे बीजो अध्ययन कह्या अनंतर त्रीजो अध्ययन प्रारंनिये बैए. एनो ए संबंधछे के, पाबले अध्ययने स्वसमय परसमयनी प्ररूपणा कही माटे परसमयना दोष अने स्वसमयना गुण जाणीने स्वसमयने विषे प्रवर्तवो; तेने विषे प्रवर्त्तता थकां जे अनुकूल अने प्रतिकूल उपसर्ग उपजे ते सहन करवा ए अधिकारे आव्यो जे अध्ययन तेप्रारंनियें बैयें.

सूरं मण्इ अप्पाणं, जावजेयं नपस्सती ॥ जुझंतं दढधम्माणं,
सिसुपालोव महारहं ॥ १ ॥ पयाता सूरा रणसीसे, संगामंमि
उवद्विते ॥ माया पुत्तं नयाणाइ, जेएण परि विञ्चए ॥ २ ॥

अर्थ–कोइएक बाल मनुष्य संग्रामने विषे अप्पाणंके० पोताने सूरंमण्इके० शूरवीर करी माने जे आजगतमांहे माहारा समान सुनट कोइ नथी. परंतु जावजेयं के० ज्यां सुधी तेसंग्रामने विषे पोताने जीपनार कोइ नपस्सतीके० न देखे त्यांसुधी जाणवुं. कोनीपरे? सिसुपालोवके० जेम शिशुपालराजा पोतानी आत्माने शूरवीर मानतो हतो परंतु संग्रामने विषे दढधम्माणं के० दृढधर्मी तथा महारहं के० महारथी एवा नारायणने जुझंतं के० जुंजतो देखी, क्षोन पामी, मद बांमीने निर्मद थयो. ॥ १ ॥ सांप्रत सामान्यपदे दृष्टांत कहेबे. कोइएक पोतानेविषे सूरा के० शूरवीरपणुं मानता रण के० संग्रामने सीसे के० मस्तके अग्रेसर पणे पयाताके० आव्या; एवा संगामंमिउवद्वितेके० ते संग्रामनेविषे उपस्थित एटले प्राप्त थये थके त्यां परदलने सुनटे सर्वजनने व्याकुल चित्त कर्या बे. ते संग्राम एवो वर्त्तेबे के, ज्यां मायापुत्तंनयाणाइ के० माता पुत्रने न जाणे; एटले माताने केडे रह्यो बालक पडतो जाणे नहीं एवा संग्रामने विषे जेएण के० जे आगले जीपणहार पुरुषो तेणे परिविञ्चए के० शस्त्रादिके करी बेद्यो थको, हत प्रहत कीधो बतो, कायरपणे नंग पामे. ॥ २ ॥

॥ दीपिका–उक्तं द्वितीयमध्ययनं । तत्र स्वसमये बोधोविधेयइत्युक्तं । तत्र प्रतिबुद्धस्य कदाचिदुपसर्गाः स्युस्तेच उदीर्णाः सम्यक्सोढव्याइत्यर्थः । अथ तृतीयाध्ययनमारभ्यते । तत्र चत्वारउद्देशकास्तेषु प्रथमोद्देशकस्येदमादिसूत्रं । (सूरंमण्इत्ति) कश्चिद्बालः संग्रामे आत्मानं शूरं सुनटं मन्यते शूरोहमिति गर्जति । यावज्जेतारं पुरःस्थितमुद्यतासिं नपश्यति । दृष्टांतमाह । युध्यमानं दढः समर्थोधर्म स्वनावोयस्यस तथातं । महान् रथोऽस्येति महारथोऽत्रनारायणस्तं दृष्ट्वा यथा शिशुपालोमाद्रीसुतः समर्थोपि क्षोनंगतस्तं दृष्ट्वा

तोयथा वसुदेवस्वसा माद्री दमघोषाय दत्ता । तयोः पुत्रः शिशुपालः सयौवनमदगर्वि तोबलवान् चतुर्भुजश्च तं तादृशं दृष्ट्वा माता नैमित्तिकं पप्रछ । तेनोक्तं अयं तव पुत्रोऽजेयः समरे । यं दृष्ट्वास्य स्वाभाविकं भुजायुगलं भावि तस्मादस्य मृतिः । एवमस्य कियान् का लोतिक्रांतः सकदाचित्कृष्णेन दृष्टस्तदा तस्य भुजायुगलमेव जातं । तदा तद्विदित्वा माद्री नाम्न्या तन्मात्रा कृष्णपितृष्वस्रा कृष्णाय निवेदितं । त्वं मत्पुत्रोपरि कृपां कुर्याः ।कृष्णेनोक्तं। अहं त्वत्सुतस्यापराधशतं सहिष्ये तदादेशात् । शिशुपालस्तु कृष्णं तृणमिव मन्यते । अ सभ्यवचांसि वक्ति । बहूनपराधान् करोति । अपराधशते पूर्णे मात्रादिभिर्वार्यमाणोपि नति ष्ठति तदा कृष्णश्चक्रेण तदुत्तमांगं चिछेदेति ॥ १ ॥ सांप्रतं जनप्रतीतं दृष्टांतमाह । (पया याइति) । प्रकर्षेण पातः पादपातोयेषांते प्रपातारणशिरसि प्रयाताः प्रकर्षेण प्राप्तावा शूराः सुभटंमन्यास्ततः संग्रामे उपस्थिते प्राप्ते सति सर्वस्याकुलीभूतत्वान्माता पुत्रं न जाना ति । एवंविधे रणे जेता कुंतादिभिः परिविक्षतः परि समंताद्विविधं क्षतोहतश्छिन्नोवा य था कश्चिदल्पसत्वोभंगं याति दैन्यं लभतइत्यर्थः ॥ २ ॥

॥ टीका—उक्तं द्वितीयमध्ययनमधुना तृतीयमारभ्यते । अस्यचाऽयमभिसंबंधः । इहाऽनं तराध्ययने स्वसमयपरसमयप्ररूपणाऽभिहिता । तथा परसमयदोषान् स्वसमयगुणांश्च प रिज्ञाय स्वसमये बोधोविधेयइत्येतच्चाऽभिहितं । तस्यच प्रतिबुद्धस्य सम्यगुत्थानेनोत्थितस्य सतः कदाचिदनुकूलप्रतिकूलोपसर्गाः प्रादुर्भवेयुस्तेचोदीर्णाः सम्यक् सोढव्याइत्येत दनेनाऽध्ययनेन प्रतिपाद्यते । ततोऽनेन संबंधेनाऽयातस्याऽस्याऽध्ययनस्य चत्वार्यनुयोग द्वाराणि भवंति । तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोद्वेधा । अध्ययनार्थाधिकारउद्देशार्थाधिका रश्च । तत्राऽध्ययनार्थाधिकारः संबुद्धस्सुवसग्गाइत्यादिना प्रथमाध्ययने प्रतिपादितः । उद्देशार्थाऽधिकारं तूत्तरत्र स्वयमेव निर्युक्तिकारः प्रतिपादयिष्यतीति । नामनिष्पन्नंतु नि क्षेपमधिकृत्य निर्युक्तिकृदाह । (उवसग्गमित्यादि) उवसग्गंमियछक्कं दव्वे चेयणमचेयणं दुविहं । आगंतुगोयपीला, करोयजोसोउवसग्गो ॥ १ ॥ नामस्थापनात् द्रव्यक्षेत्रकाल भावभेदात् उपसर्गाः षोढा । तत्र नामस्थापने क्षुण्णत्वादनादृत्य द्रव्योपसर्गं दर्शयति । द्रव्ये द्रव्यविषये उपसर्गोद्वेधा । यतस्तद्द्रव्यमुपसर्गकर्तृ चेतनाचेतनभेदात् द्विविधं । त त्र तिर्यङ्मनुष्यादयः स्वावयवाभिघातेन यदुपसर्गयंति ससचित्तद्रव्योपसर्गः सएवकाष्ठादि भेतरः तत्त्वभेदपर्यायैर्व्याख्यातः । तत्रोपसर्गउपतापः शरीरपीडनोत्पादनमित्यादि पर्यायाः । भेदाश्च तिर्यङ्मनुष्योपसर्गादयः नामादयश्च । तत्र व्याख्यांतु निर्युक्तिकृदेव गाथा पश्चार्द्धेन दर्शयति । अपरस्माद्दिव्यादेरागछतीत्यागंतुकोयोऽसावुपसर्गोभवति । सच दे हस्य संयमस्य वा पीडाकारीति ॥१॥ क्षेत्रोपसर्गानाह । खेत्तमित्यादिना । खेत्तं बहुउघपयं

कालोएगंनदूसमादीउ। नावेकम्मप्पुदउ,सो डुविहोउघुवक्कमिउ ॥१॥ यस्मिन् क्षेत्रे बहून्यो घतः सामान्येन पदानि क्रूरचौराद्युपसर्गस्थानानि भवंति तत्क्षेत्रं बव्होघपदं। पाठांतरंवा बव्होघभयं बहून्योघतोभयस्थानानि यत्र तत्तथा । तच्च लाढादिविषयादिकं क्षेत्र मिति। कालस्त्वेकांतडुःषमादिः । आदिग्रहणात् योयस्मिन् क्षेत्रे डुःखोत्पादकोग्रीष्मा दिः सगृह्यतइति । कर्मणां ज्ञानावरणादीनामभ्युदयोभावोपसर्गइति । सच उपसर्गः सर्वोऽपि सामान्येन औघिकोपक्रमिकभेदात् द्वेधा । तत्रौघिकोऽशुभकर्मप्रकृतिजनित भावोपसर्गोभवति । औपक्रमिकस्तु दंडकशशस्त्रादिनाऽसातवेदनीयोदयापादकइति । ॥ २ ॥ तत्रौघिकौपक्रमिकयोरुपसर्गयोरौपक्रमिकमधिकृत्याह । (उवक्कमिउइत्यादि)। उवक्कमिउ संयमविग्घकरेतत्तुवक्कमेपगयं । दव्वे चउविहो देवमणुयतिरियायसंवेत्तो ॥ ॥ ३ ॥ उपक्रमणमुपक्रमः । कर्मणामनुदयप्राप्तानामुदयप्रापणमित्यर्थः । एतच्च यद्द्र व्योपयोगात् येन वा द्रव्येणाऽसातवेदनीयाद्यशुभं कर्मोदीर्यते । यडुदयाच्चाल्पसत्वस्य संयमविघातोभवति । अतऔपक्रमिकउपसर्गः संयमविघातकारीति। इहच यतीनां मोक्षं प्रति प्रवृत्तानां संयमोमोक्षांगं वर्तते तस्य योविघ्नहेतुः सएवाऽत्राऽधिक्रियतइति दर्शी यति । तत्रौघिकौपक्रमिकयोरौपक्रमिके प्रकृतं प्रस्तावस्तेनात्राधिकारइतियावत् । सच द्रव्ये द्रव्यविषयश्चिंत्यमानश्चतुर्विधोभवति । तद्यथा । दैविकोमानुषस्तैरश्चआत्मसंवेदन श्चेति ॥३॥ सांप्रतमेतेषामेव भेदमाह। एक्केक्कोयेत्यादि। एक्केक्कोयचउविहो, अहविहोवावि सोलसविहोवा।घडणजयणायतेसिं, एत्तोवोच्छंय अहियारो॥४॥ एकैकोदिव्यादिश्चतुर्विधश्च तुर्भेदः। तत्र दिव्यस्तावत् हास्यात् प्रद्वेषात् विमर्शात् पृथग्विमात्रातश्चेति। मानुषाअपि हास्यतः प्रद्वेषाद्विमर्शात् कुशीलप्रतिसेवनातश्च । तैरश्चाअपि चतुर्विधाः । तद्यथा । भ यात्प्रद्वेषादाहारादपत्यसंरक्षणाच्च । आत्मासंवेदनाअपि चतुर्विधाः । तद्यथा । घट्ट नातोलेशनातोंऽगुल्याद्यवयवसंश्लेषरूपायास्तंभनातः प्रपाताच्चेति । यदिवा वातपित्त श्लेष्मसंनिपातजनितश्चतुर्धेति । सएव दिव्यादिश्चतुर्विधोऽनुकूलप्रतिकूलभेदात् अष्टधा भवति । सएव दिव्यादिः प्रत्येकं यश्चतुर्धा प्राग्दर्शितः सचतुर्णां चतुष्कानां मेलापकात् षोडशभेदोभवति । तेषां चोपसर्गाणां यथा घटनासंबंधप्राप्तिः प्राप्तानांचाऽधिसहनं प्र तियातना भवति । तथाऽतऊर्द्धमध्ययनेन वक्ष्यते इत्ययमत्रार्थाधिकारइतिभावः ॥४॥ उद्देशार्थाधिकारमधिकृत्याऽऽह ।(पढमंमीत्यादि) पढमंमियपडिलोमा हुंतीअणुलोमगाय वितियंमि।तइएअज्झत्तविसीदणंयपरवादिरयणंच ॥५॥ प्रथमे उद्देशके प्रतिलोमाः प्रतिकूला उपसर्गाः प्रतिपाद्यंतइति तथा द्वितीये ज्ञातिकृताः स्वजनापादिताअनुलोमाअनुकू लाइति । तथा तृतीये अध्यात्मविषीदनं परवादिवचनं चेत्ययमर्थाधिकारइति । हेउस रिसेहिंअहेउएहिं समयपडिएहिंणिउणेहिं । शीलखलितपण्णवनाकयाचउमि उद्देशे

॥ ६ ॥ (हेउइत्यादि) चतुर्थोद्देशके अयमर्थाधिकारः । तद्यथा । हेतुसदृशैर्हेत्वा नासैरन्यतैर्थिकैर्व्युद्ग्राहिताः प्रतारितास्तेषां शीलस्खलितानां व्यामोहितानां प्रज्ञाप ना यथाव स्थितार्थप्ररूपणा स्वसमयप्रतीतैर्निपुणजणितैर्हेतुनिः कृतेति ॥ सांप्रतं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं । (सूरंमस्रइत्यादि) । कश्चिल्लघुप्रकृतिः संग्रामे समुपस्थिते शूरमात्मानं मन्यते । निस्तोयांबुदइवात्मश्लाघाप्रवणोवाग्निार्विस्फूर्जन् गर्जति । तद्यथा । नमत्कल्पः परानीके कश्चित् सुजटोऽस्तीत्येवं तावज्जर्जति यावत् पुरोऽवस्थितं प्रोद्यतासिं जेतारं न पश्यति। तथा चोक्तं । तावद्गजः प्रस्रुतदानगंडः करोत्यकालांबुदगर्जितानि । यावन्न सिंहस्य गुहास्थलीषु लांगूलविस्फोटरवं शृणोति ॥ १ ॥ न दृष्टांतमंतरेण प्रायोलोकस्याऽर्थावगमोजवतीत्यतस्तदवगतये दृष्टांतमाह । यथा माद्रीसुतः शिशुपालोवासुदेवदर्शनात्प्राक् आत्मश्लाघाप्रधानं गर्जितवान् पश्चाच्च युध्यमानं शस्त्राणि व्यापारयंतं दृढः समर्थोधर्मः स्वजावः संग्रामाजंगरूपो यस्य सतथा तं महान् रथोऽस्येति महारथः सच प्रक्रमादत्रनारायणस्तं युध्यमानं दृष्ट्वा प्राग्गर्जनाप्रधानोपि क्षोजं गतः। एवमुत्तरत्र दार्ष्टांतिकेऽपि योजनीयमिति । जावार्थस्तु कथानकादऽवसेयः। तच्चेदं । वसुदेवसुसाएसुउदमघोसणराहिवेणसुद्दीए । जाऊचउप्पुउँजुजवलकलिउंकलहपत्तहो ॥१॥ दहूणतउँजणणी, चउप्नुयपुत्तमप्नुयमणग्घं॥जयहरिसविम्हयमुही पुच्छइणेमत्तियंसहसा॥२॥णेमित्तिकएणमुणिऊणसाहियंतीइहठहियियाए॥जहएसतुप्नपुत्तोमहाबलोडज्जउंसमरे॥३॥ एयस्सयजंदहूणहोइसाजावियंजुयाजुयलं॥ होहीतत्तोवियजयंसुतस्सतेणड्ठिसंदेहो ॥४॥ जाविन्नयवेविरंगी पुत्तंदंसेइजावकएहस्स ।तावच्चियतस्सवियंपयइडंवरजुयाजुगलं॥५॥ तोकएहस्सपिउच्छापुत्तंपाडेइपायपीढंमि॥ अवराहखामणठ्ठंसोविसयंसेखमिस्सामि ॥५॥ सिसुवालोविहुजुवणमएण नारायणंअसप्नेहिं ॥ वयणेहिंजणइसोविहुखमइखमाएसमत्थोवि ॥ ७ ॥ अवराहसएपुस्सेवारिज्जंतोणचिठ्ठईजाहे। कएहेणतउ छिन्नंचक्केणंउत्तमंगंसे ॥७॥ सांप्रतं सर्वजनप्रतीतं वार्तमानिकं दृष्टांतमाह । (पयायाइत्यादि) यथा वाग्जिर्विस्फूर्जंतः प्रकर्षेण विकटपादपातं रणशिरसि संग्राममूर्धन्यग्रानीके यातागताः। केते शूराः शूरंमन्याः सुजटाः। ततः संग्रामे त्र ति
नेतरः ते स्थिते पतत्परानीकसुजटमुक्तहेतिसंघाते सति तत्रच सर्वस्याऽऽकुलीजूतत्वात् मा पर्यायाः। नेदं जानाति कटीतोच्रश्यंतं स्तनंधयमपि न सम्यक् प्रतिजागर्त्तीत्येवं मातापुत्रीये पश्चार्द्धेन दर्शयति सुजटेन जेत्रा च शक्त्यादिनिः परिसमंतात् विविधमनेकप्रकारं क्षतोद्धतहस्य संयमस्य वा पीडितःदल्पसत्त्वोजंगमुपयाति दीनोजवतीति यावदिति ॥ २ ॥

एवं सेहेवि अपुठे, निरका यरिया अकोविए ॥ सूरं मसंति अप्पाणं, जावलूहं नसेवए ॥ ३ ॥ जया हेमंतमासंमि, सीतं फुसइ सवगं, पाठंतरं सवायगं ॥ तब मंदा विसीयंति, रज्जहीणावि खत्तिया ॥ ४ ॥

अर्थ—हवे ए दृष्टांत साधु साथे मेलवे डे. एवं के० एम पूर्वोक्त सुनटनी पेरे शीशु पालवत् सेहेविके० नवदीक्षित शिष्य पण अपुठेके० परिसहने अण फरश्यो थको एम कहेके, दीक्षापालवामां शुं डुर्लनडे? एटले दीक्षानो मार्ग सुलन्नज डे. एवो ते निरकायरिया अकोविएके० निक्षाचर्याने विषे अकोविद, एटले अजाण, अनेरा आचारने विषे अनिपुण थको नवदीक्षितडे. ते सूरंमसंतिअप्पाणं के० वचन मात्रे करी पोताने विषे शूर पणानो माननार ते जावके० ज्यांलगे लूहंके० संयमने नसेवए के० सेवे नही त्यांलगे एवुं कहे के, “ ए संयममां शुं डुष्करपणुं डे? ” परंतु जेवारे संयम आदरे तेवारे परिसहनो उदय आवे थके सिदाय. ॥ ३ ॥ हवे संयमनुं डुष्करपणुं देखाडेडे. जया के० त्यां एकदाकाले हेमंतमासंमि के० हेमंत रुतुना पोष अने माघ मासमां सवगं के० सर्वांगे पाठांतरे सवायगं के० वायरासहित सीतंफुसति के० शीत फरसे तब के० तेवारे मंदाविके० मंदबुद्धि नारी कार्मिजीव कायर थको, चारित्रने विषे सीयंतिके० सिदाय एटले दीनपणुं पामे. कोनी पेरे? तोके, रज्जहीणावि खत्तिया के० जेम राज्य हीन क्षत्री सिदाय तेनी परे ते साधु पण जाणी लेवो. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—दार्ष्टांतिकमाह । (एवमिति) । एवं पूर्वोक्तप्रकारेण यथा शूरंमन्योजेतारं वासुदेवमन्यंवा युध्यमानं दृष्ट्वा नंगं याति । एवं शिष्यकोऽनिनवप्रव्रजितः परीषहैरस्पृष्टः प्रव्रज्यायां किंडुष्करमिति गर्जन् निक्षाचर्यायां निक्षाटनेऽकोविदोनिपुणः । उपलक्षणादन्यस्मिन्नपि साध्वाचारेऽनिपुणः सन्नात्मानं तावत् शिशुपालवत् शूरं मन्यते । यावज्जेतारमिव रूक्षं संयमं नसेवते नन्नजते । संयमप्राप्तौहि बहवोगुरुकर्माणोऽल्पसत्वानंगमुपयांतीति ॥३॥ संयमस्य रूक्षत्वमाह ।(जयेत्ति) यदा हेमंतमासे शीतकाले शीतं स्पृशति सर्वांगं।तत्र शीते मंदाविषीदंति दीनाः स्युः । राज्यहीना राज्यच्युतायथाक्षत्रियाराजानः॥४॥

॥ टीका—दार्ष्टांतिकमाह । (एवंसेहेवीत्यादि) । एवमिति प्रक्रांतपरामर्शार्थः । यथाऽसौ शूरंमन्यउत्कृष्टसिंहनादपूर्वकसंग्रामशिरस्युपस्थितः पश्चाज्जेतारं वासुदेवमन्यं वा युध्यमानं दृष्ट्वा दैन्यमुपयाति । एवं शिष्यकोऽनिनवप्रव्रजितः परीषहैरस्पृष्टोबुसः किंप्रव्रज्यायां डुष्करमित्येवं गर्जन् निक्षाचर्यायां निक्षाटनेऽकोविदोऽनिपुणः । उपलक्षणार्थत्वादन्यत्राऽपि साध्वाचारेऽनिनवप्रव्रजितत्वादप्रवीणः सएवंनूतआत्मानं

तावच्छिशुपालवत् शूरं मन्यते यावज्जेतारमिव रूक्षं संयमं कर्म संश्लेषकारणा भावात् नसेवते नभजतइति । तत्प्राप्तौ तु बहवोगुरुकर्माणोऽल्पसत्वाभंगमुपयांति ॥ ३ ॥ संयमस्य रूक्षत्वप्रतिपादनायाह । (जयाहेमंतेइत्यादि) । यदा कदाचित् हेमंत मासे पौषादौ शीतं सहिमकणवातं स्पृशति लगति तत्र तस्मिन्नसह्ये शीतस्पर्शे ल गतिसति एके मंदाजडागुरुकर्माणोविषीदंति दैन्यभावमुपयांति राज्यहीनाराज्यच्यु ताः यथा क्षत्रियाराजानश्चेति ॥ ४ ॥

पुठे गिम्हाहि तावेणं, विमणे सुप्पिवासिए ॥ तब मंदा विसियं
ति, मछा अप्पोदए जहा ॥ ५ ॥ सदादत्तेसणा डुक्खा, जायणा
डुप्पणोल्लिया ॥ कम्मत्ता डुप्भगा चेव, इच्चाहं सुपुढो जणा ॥ ६ ॥

अर्थ–हवे उष्णपरिसह कहेछे. गिम्हाहि के० ग्रीष्मकाले ज्येष्ठादिक मासनो उप न्यो तावेणं के० उष्ण आताप,तेणे करी पुठे के० फरश्यो एटले व्याप्यो छतो, विमणे के० विमन एटले आमण डुमणो थयो थको सप्पिवासिए के० अत्यंत तृषाये करी पराभव पाम्यो तेवारे तबमंदाविसीयंतिके० त्यां पण मंद बापडो कायर सिदाय,भंग पामे. जहा के० जेम मछाअप्पोदए के० माछलुं अल्पोदकमां एटले पाणीना वियोगथी सिदाय तेम सत्वरहित चारित्रियो संयम थकी भ्रष्ट थाय. जेम माछलां जीवितव्य थ की भ्रष्ट थाय तेनी पेरें जाणी लेवुं. ॥ ५ ॥ हवे याचना परिसह कहेछे. सदादत्तेस णाडुक्खा के० सर्वकाल शिलिमात्रपण साधुने दीधो अने एषणिय लेवो ए महाडुःखछे जायणा के० याचना एटले मागवुं ते डुप्पणोल्लियाके० अपार डुर्जयछे. तेमां जे काय र होय ते सिदाय. हवे पाछले अर्थें आक्रोश परिसह कहेछे. पुढोजणाके० पामर लो क होय ते साधुने इच्चाहंसु के० एम कहेके, कम्मत्ताके० ए बापडा पूर्वे आचरित कर्मे करी आर्त्त थका पूर्वकृत कर्मनां फल अनुभवेछे अथवा ए बापडा मलमलिन श रीर डुःखादिक वेदनाये ग्रसित दरिद्री करसणादिक कार्य करवा असमर्थ माटे उद्वेग पा म्यायका यति थयाछे ए पुत्र कलत्रादिके करी मूकायला, डुप्भगाचेव के० दौर्भागी थ का परिवार छांमी प्रवर्ज्या आदरी रहेछे. ॥ ६ ॥

॥ दीपिका–(पुठेति) । ग्रीष्मेऽग्नितापस्तेन स्पृष्टोव्याप्तः सन् विमना विमनस्कः सु ष्ठु अतिशयेन पिपासां तृषां प्राप्तः स्यात् । तत्रोष्णपरीषहे मंदाविषीदंति । यथा मत्स्या अल्पोदके विषीदंति ॥ ५ ॥ (सदेति) सदासर्वकालं दंतशोधनाद्यपि दत्तमेषणीयदो परहितं भोक्तव्यमिति दत्तैषणाडुःखं । तथा इयं याच्ञा डुःखेन प्राणोद्यते परीषहोडुर्जे

यइतिभावः । भिरकाइ सुहजावसुं, वायाघोलेइकंवमझंमि । कहकहकरेइहियर्यं, देहि त्ति परं भणंतस्स ॥ १ ॥ गतिभ्रंशोमुखे दैन्यं गात्रस्वेदोविवर्णता । मरणे यानि चिन्हानि तानि चिन्हानि याचके ॥ १ ॥ एवं याञ्चापरिषहं परित्यज्य महापुरुषसेवितः पंथाः श्र यणीयः । आक्रोशपरिषहमाह । कम्मत्तत्ति । पृथक्जनाएवमाहुः सामान्यलोकाइत्थमुक्तवं तः । यथा एते यतयः कर्मभिः कृष्यादिभिरार्तास्तत्कर्तुमसमर्थाः संतोयतित्वं प्रतिपन्ना डुर्भगाः पुत्रदारादिनात्यक्तानिर्गतिकाः संतः प्रव्रज्यामाश्रिताइति ॥ ६ ॥

॥ टीका–उष्णपरीषहमधिकृत्याह । (पुढेइत्यादि) । ग्रीष्मे ज्येष्ठाषाढाख्ये अभि ताप्रतेन स्पृष्टस्तुप्तोव्याप्तः सन् विमनाविमनस्कः सुष्ठुवा अतिशयेन पातुमिछा पिपा सा तां प्राप्तोनितरां तृडभिभूतोबाहुल्येन दैन्यमुपयातीति दर्शयति । तत्र तस्मिन्नु ष्णपरीषहोदये मंदाजमाश्रशक्ताविषीदंति पराभंगमुपयांति । दृष्टांतमाह । यथा म त्स्याअल्पोदके विषीदंति । गमनाभावान्मरणमुपयांत्येवं सत्वाभावात्संयमात् भ्र श्यंतइति । इदमुक्तं भवति । यथा मत्स्याअल्पत्वाडुदकस्य ग्रीष्माभितापेन तप्ताअ वसीदंत्येवमल्पसत्वाश्चारित्रप्रतिपत्तावपि जलमलक्लेदक्लिन्नगात्राबहिरुष्माभितप्ताः शीत लान् जलाश्रयान् जलाधारगृहचंदनादीनुष्णप्रतिकारहेतूननुस्मरंतआकुलितचेतसः सं यमानुष्ठानं प्रति विषीदंति ॥ ५ ॥ सांप्रतं याञ्चापरीषहमधिकृत्याह (सदादत्तेइ त्यादि) यतीनां सदा सर्वदा दंतशोधनाद्यपि परेण दत्तमेषणीयमुत्पादाद्येषणादोषरहि तमुपभोक्तव्यमित्यतः क्षुधादिवेदनार्त्तानां यावज्जीवं परदत्तैषणाडुःखं भवति । अपि चेयं याञ्चापरीषहोल्पसत्वैर्डुःखेन प्रणोद्यते त्यज्यते । तथाचोक्तं । भिरकाइमुहजावसुं, वा याघोलेइकंवमझंमि । कहकहकहेइहियर्यं देहित्तिपरंभणंतस्स ॥ १ ॥ गतिभ्रंशोमुखे दैन्यं गात्रस्वेदोविवर्णता । मरणे यानि चिन्हानि तानि चिन्हानि याचके इत्यादि । एवं डुस्त्यजं याञ्चापरीषहं परित्यज्य गताभिमा[illegible]महासत्वाज्ञानाद्यभिवृद्धये महापुरुषसेवितं पंथान मनुव्रजंतीति श्लोकपश्चार्द्धेनाऽऽक्रोशप[illegible] दर्शयति । पृथक्जनाः प्राकृतपुरुषाअनार्य कल्पाइत्येवमाहुरित्येवमुक्तवंतः । त[illegible] । ये एते यतयः जलाविलदेहाजुंचितशिर सः क्षुधादिवेदनाग्रस्तास्ते एतैः पूर्वाच[illegible] कर्मभिरार्ताः पूर्वस्वकृतकर्मणः फलमनुभवं ति । यदिवा कर्मभिः कृष्यादिभिरार्त्तास्त[illegible] मसमर्थाउद्विग्नाः संतोयतयः संवृत्ताइतित थैते डुर्भगाः सर्वेणैव पुत्रदारादिना परित्य[illegible] र्गतिकाः संतः प्रव्रज्यामभ्युपगताइति ॥ ६ ॥

एते सद्दे अचायंता, गामेसु [illegible]रेसु वा ॥ तत्र मंदा विसीयंति,
संगामंमिव भीरुया ॥७ ॥ अ[illegible]ो रकुधियं भिरकुं, सुणी मंसंति
लूसए ॥ तत्र मंदा विसीयंति, त[illegible] पुढाव पाणिणो ॥ ८ ॥

अर्थ–एतेसद्दे के० एवा पूर्वोक्त आक्रोश संबंधि जे शब्द तेने सहन करवाने अचा यंता के० असमर्थ गामेसु के० ग्रामने विषे, वाके० अथवा णगरेसु के० नगरने विषे तब्के० त्यां एवा आक्रोश वपने थके मंदाविसीयंतिके० तेमंद अज्ञानी चारित्रिउं सीदा यछे, कोनी परे सिदायछे ते कहेछे. संगामंमिवन्नीरुयाके० जेम बीकण मनुष्य संग्रामने विषे शस्त्र देखी सिदाइने नागी जाय, तेनी पेरे ते मंद चारित्रियो चारित्रथी नंग पामेछे. ॥७॥ हवे वध परिसह कहेछे. अप्प के० अपि संनावनाये एगे के० एक कोइ एक लू सक श्वानादिक ते खुधियंनिरकुं के० निक्षाये नमतो नूख्यो एवोजे साधु तेने देखी सुणी के० ते श्वानादिक मंसंतिके० मंख मारे. लूसए के० वखुरे तब के० त्यां श्वानादिके खा धो बतो मंदाविसीयंति के० [illegible]ज्ञानी सिदाय एटले दीन थाय. कोनी परें, तोके जेम तेउ के० अग्निने पुछाव के० स्पर्शें करी पाणिणो के० प्राणी एटले जीव पोतानुं शरीर संकोचें तेम मंद चारित्रिउं पण पोतानुं गात्र संकोचे. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–(एतेइति) एतान् पूर्वोक्तानाक्रोशशब्दान् सोढुमशक्नुवंतोग्रामनगरादौ स्थि ताः । तत्राक्रोशे मंदा विषीदंति दैन्यंनजंते संयमा द्वा नश्यंति यथा नीरवः कातराः संग्रामे षु नज्यंते ॥७॥ वधपरीषहमाह (अप्पेगइति) अपिःसंनावने । एकः कश्चित् श्वादिर्लूषकः क्रूरोनक्षकः (खुधियमिति) क्षुधितं निक्षामटंतं निक्षुं दशति नक्षयति। तत्र श्वादिनक्षणे मंदाविपीदंति । यथा तेजसाग्निनास्पृष्टादह्यमानाः प्राणिनोवेदनार्ताः सीदंति ॥ ८ ॥

॥ टीका–(एएसद्दइत्यादि) एतान् पूर्वोक्तानाक्रोशरूपान् तथा चौरचारिकादि रूपान् शब्दान् सोढुमशक्नुवंतोग्रामनगरादौ तदंतराले वा व्यवस्थिताः । तत्र तस्मिन् आक्रोशे सति मंदाअज्ञानलघुप्रकृतयोविषीदंति विमनस्कानवंति संयमाद्भ्रश्यंति । तथा नीरवः संग्रामे रणशिरसि चक्रकुंताऽसिशक्तिनाराचाकुले रटत्पटहशंखफल्लरीनाद गंनीरे समाकुलाः संतः पौरुषं परित्यज्याऽयशःपटहमंगीकृत्य नज्यंते । एवमाक्रोशादि शब्दाकर्णनादऽल्पसत्वाः संयमे विषीदंति ॥ ७ ॥ वधपरीषहमधिकृत्याह । (अप्पेगेइ त्यादि) । अपिः संनावने । एकः कश्चिच्छ्वादिः लुषयतीतिलुषकः प्रकृत्यैवक्रूरोनक्षकः । खुधियंति । क्षुधितं बुनुक्षितं निक्षामटंतं निक्षुं दशति नक्षयति दशनैरंगावयवं विलुं पति । तत्र तस्मिन् श्वादिनक्षणे सति मंदाअज्ञाअल्पसत्वतया विषीदंति दैन्यं नजं ते । यथा तेजसाऽग्निना स्पृष्टादह्यमानाः प्राणिनोजंतवोवेदनार्त्ताः संतोविषीदंति गात्रं संकोचयंत्यार्तध्यानोपहतानवंति । एवं साधुरपि क्रूरसत्वैरनिद्रुतः संयमा द्भ्रश्यतइति दुःसहत्वाद्ग्रामकंटकानां ॥ ८ ॥

अप्पेगे पडिन्नासंति, पडिपंथियमागता ॥ पडियारगता एते,
जे एते एव जीविणो ॥ ए॥ अप्पेगे वइ जुंजंति, नगिणा पिंमो
लगाहमा ॥ मुंमाकंमूविणठंगा, उज्जल्ला असमाहिता ॥ १० ॥

अर्थ–वली ग्रामीण लोकनुं वचन परिसह कहेले. अप्पेगे के० अपि संजावनायें. कोइ एक धर्मना अजाण पडिपंथियमागता के० साधुना वेषी, साधुनी साथे शत्रुजावे पोंहोंता थका पडिन्नासंति के० एवुं कठोर वचन साधुप्रतें जासे एटले बोले. शुं बोले? तो के, पडियारगताएते के० ए बापडा पाछला जवना करेलां कर्मनां फल जोगवेले. जे एते के० जे ए यति ते एवजीविणो के० एम आजीविकायें जीवेले. एटले परघरनी जिक्षा मागेले, तथा अंतप्रांत आहारना लेनारा ले. एणे पूर्वले जवे कांइ दीधुं नथी, कांइ लाधु नथी, तेथी मस्तक मुंम थइ बीजत्सरूपे सर्व जोग थकी वंच्या एवा ए बापडा डुःखी थका, जीवे ले. ॥ ए ॥ तथा वली एहिज परिसह कहेले. अप्पेगेवइजुंजंति के० अपि संजावनायें, एक कोइ अनार्य एवां वचनबोले के, नगिणा के० ए नागा सर्वकाल पिंमोलगाहमा के० परपिंमना उसीआला अधम डुगंबाना स्थानक मुंमा के० मुंमितकेश, कंमूके० खाजीये करी एमना शरीर विणठंगाके० विणगले. अंगजेना एवा पामर तथा उज्जल्ला के० मेल प्रस्वेद थकी खरडयाले असमाहिया के० सर्वकाल असमाधिया एटले अशोजनिक देखनाराने असमाधिना उपजावनारले. ॥ १० ॥

॥ दीपिका–आक्रोशमेव पुनराह । (अप्पेगइति) अप्येके प्रातिपंथिकतां साधुविद्वेषितां प्राप्ताः प्रतिजापंते । यथा प्रतीकारपूर्वकर्मानुजवस्तमेकेगताः प्राप्ताः स्वकृतकर्मजोगिनोयएते एवं जीविनः परगृहाण्यटंतः अंतप्रांतजोजिनोलुंचितशिरसः सर्वजोगं चिंताडुखं जीवंतीति ॥ ए ॥ किंच (अप्पेगेइति) अप्येके अनार्यावाचं युंजंति जाषंते । यथा एते जिनकल्पिकादयोनग्नाः पिंमोलगाः परपिंमप्रार्थकाअधमामुंडालुंचितकेशाः कंडूः खर्जूस्तया विनष्टांगाः अप्रतिकर्मतया क्वचित् रोगसंजवे सनत्कुमारवद्विनष्टांगाउज्जतो जल्लोमलः प्रस्वेदोयेषांते उज्जल्लाः असमाहिताअशोजनाः ॥ १० ॥

॥ टीका–पुनरपि तानधिकृत्याह । (अप्पेगेइत्यादि) । अपिः संजावने । एके केचनाऽपुष्टधर्माणः अपुण्यकर्माणः प्रतिजाषंति ब्रुवते । प्रतिपंथाः प्रतिकूलत्वं तेन चरंति प्रातिपंथिकाः साधुविद्वेषिणस्तद्भावमागताः कथंचित्प्रतिपथेवा दृष्टाअनार्याएतद्ब्रुवते । संजाव्यते एतदेवंविधानां तद्यथाप्रतीकारः पूर्वाचरितस्य कर्मणोऽनुजवस्तमेके गताः प्राप्ताः स्वकृतकर्मफलजोगिनोयएते यतयएवं जीवंति परगृहाण्यटंतोंऽतप्रांतजोजिनो

दत्तादानाल्लुंचितशिरसः सर्वजोगवंचितादुःखितं जीवंतीति ॥ ए ॥ किंच (अप्पेगेइ त्यादि) अप्येके केचन कुसृतिप्रसृताअनार्यावाचं युंजंति नाषंते। तद्यथैते जिनक ल्पिकादयोनग्नास्तथा (पिंमोलगत्ति) परपिंमप्रार्थकाअधमाः मलाविलत्वात् जुगुप्सितामुं माल्लुंचितशिरसस्तथा क्वचित्कंमूकृतक्षतैरेखानिर्वा विनष्टांगाविकृतशरीराअप्रतिकर्मश रीरतया वा क्वचिद्रोगसंजवे सनत्कुमारवद्विनष्टांगस्तथोज्ञतोजल्लः शुष्कप्रस्वेदोयेषांते उज्ञ ल्लास्तथा असमाहिताअशोजनाबीनत्साडुष्टावा प्राणिनामसमाधिमुत्पादयंतीति ॥ १० ॥

एवं विप्पडिवन्नेगे, अप्पणाउ अजाणया ॥ तमउ ते तमं जंति,
मंदा मोहेण पाउडा ॥ ११ ॥ पुठोय दंस मसएहिं, तण फास
मवाइया ॥ न मे दिठे परे लोए, जइ परं मरणंसिया ॥ १२ ॥

अर्थ—हवे जे साधुने एवां डुर्वचन बोले, तेने विपाक देखाडे ठे. एवं के० एपूर्वेली रीते विप्पडिवन्नेगे के० कोइ एक पुण्य रहित जीव, विप्रतिपन्न एटले साधु मार्गना द्वे षी अप्पणाउअजाणया के० पोते अजाण ठतां तु शब्दथकीअन्य विवेकी पुरुषनां वच न अण मानतां एवा जीव तमउतेतमंजंति के० अंधकार गति थकी फरी आकरी अं धकार गतियें जाय. ते मंदा के० अज्ञानी केवाठे. तोके, मोहेण के० मिथ्यात्व दर्शने करी पाउडा के० ढाक्या आवस्या कुमार्गने सेवेठे ॥ ११ ॥ हवे दंसमसकादिक परिसह कहे ठे. सिंधु ताम्रलिप्त कोंकणादिक देशने विषे प्रायें दंस मशकादिक अधिक होयठे. ते देशोने विषे कोइवार साधु गयो थको, दंसमसएहिं के० दंस मशकादिक पुठोय के० फरशे तेथी दंसमशकादिके पीडायो तथा अकंचन नावठे, माटे तण के० तृणादिकने विषे संथारो करे, तेथी ते तृणादिकना फास के० स्पर्श मवाइया के० सहन कर वाने अशक्तिवंत ठतो, कोइ एक कायर एम चिंवतन करे के एवुं डुष्कर अनुष्ठान परलो कने अर्थें करियें बैये. अने नमेदिठेपरेलोए के० ते परलोकतो अमे दीतुं नथी. जइ के० जेमाटे अपरंमरणं के० एवा क्लेशथी मरण तो प्रत्यक्ष देखायठे जे अवश्य मरण पामीशुं माटे एवा क्लेशथी सखुं ॥ १२ ॥

॥दीपिका—एवं नाषंते ये तेषां विपाकमाह।(एवमिति) एवं पूर्वोक्तनीत्या एके केचित् प्रति पन्नाः साधुमार्गे द्वेषिणआत्मना स्वयमज्ञाः। तुशब्दादन्येषां वचनमकुर्वाणास्तेऽज्ञानात्तमो यांति। अधस्तमां गतिं गहंति। मंदामोहेन मिथ्यात्वेन प्रावृताआज्ञादिताः साधुद्वेषिणः कुमा र्गगाः स्युः। यथा। एकं हि चक्षुरमलं सहजोविवेक,स्तद्वद्भिरेव सह संवसतिर्द्वितीयं॥ एतद्द्व यं भुवि न यस्य सतत्वतोंधस्तस्यापमार्गचलने खलु कोपराधः॥ ११ ॥दंशमशकपरीषहानाह।

(पुट्ठेत्ति) क्वचित्सिंधुताम्रलिप्तकोंकणादिषु बहवोदंशमशकाः स्युस्तत्रपर्यटन् साधुस्तैः स्पृष्टोनक्तितस्तथा निष्किंचनत्वात्तृणेषु शयानस्तेषां स्पर्शं सोढुमशक्नुवन् आर्तः सन् एवं कदाचिच्चिंतयेत् । यथा परलोकार्थमिदं डुष्करमनुष्ठानं क्रियते नचासौ मया परलोकः प्रत्यक्षेण दृष्टोनाप्यनुमानादिना । यदि परमनेन क्लेशेन मरणं स्यान्नान्यत्फलं किंचिदिति १२

॥ टीका—सांप्रतमेतद्भावकाणां विपाकदर्शनायाह । (एवमित्यादि) । एवमनंतरोक्तरीत्या एके अपुण्यकर्माणोविप्रतिपन्नाः साधुसन्मार्गद्वेषिणआत्मना स्वयमज्ञाः । तुशब्दादन्येषां च विवेकिनां वचनमकुर्वाणाः संतस्ते तमसोऽज्ञानरूपाडुत्कृष्टं तमोयांति गच्छंति यदिवा अधस्तादप्यधस्तनीं गतिं गच्छंति । यतोमंदाज्ञानावरणीयेनाऽवष्टब्धास्तथा मोहेन मिथ्यादर्शनरूपेण प्रावृताआच्छादिताः संतः षिंगप्रायाः साधुविद्वेषतया कुमार्गगाभवंति । तथाचोक्तं । एकं हि चक्षुरमलं सहजोविवेक,स्तद्वद्भिरेव सह संवसतिर्द्वितीयं । एतद् द्वयं भुवि न यस्य सतत्वतोऽधस्तस्याऽपमार्गचलने खलु कोपराधः॥ १ ॥ ११ ॥ दंशमशकपरीषहमधिकृत्याह । (पुच्छोयेत्यादि) क्वचित्सिंधुताम्रलिप्तकोंकणादिके देशे अधिकादंशमशकाभवंति । तत्रच कदाचित्साधुः पर्यटंस्तैस्पृष्टश्च भक्तितस्तथानिष्किचनत्वात् तृणेषु शयानस्तत्स्पर्शं सोढुमशक्नुवन् आर्त्तः सन् एवं कदाचिच्चिंतयेत् । तद्यथा । परलोकार्थमेतद्दुष्करमनुष्ठानं क्रियमाणं घटेत नचाऽसौ मया परलोकः प्रत्यक्षेणोपलब्धोऽप्रत्यक्षत्वात् नाऽप्यनुमानादिनोपलभ्यतइति । अतोयदि परं ममानेन क्लेशाभितापेन मरणं स्यान्नाऽन्यत्फलं किंचनेति ॥ १२ ॥

संतत्ता केसलोएणं, बंभचेर पराइया ॥ तब मंदा विसीयंति,
मछा विट्ठाव केयणे ॥ १३ ॥ आयदंमसमायारे, मिछासंठिय
भावणा ॥ हरिसप्पउसमावन्ना, केइ लूसंति नारिया ॥ १४ ॥

अर्थ—तथा वली संतत्ता केसलोएणं के० केशना लोचे संताप्या तथा बंभचेर पराइया के० ब्रह्मचर्य थकी भागा एटले लोचनी पीडा उपनी थकी तथा कामविकार ना दीपवा थकी तब के० त्यां मंदा के० मंद अज्ञानी बापडा विसीयंति के० सदाय. संयम थकी भ्रष्ट थाय. ते कोनी परे? तोके, जेम केयणे के० केतन एटले मत्स बंधन तेने विषे विट्ठाव के० प्रवेश करवा थकी मछा के० माछलुं जीवितव्य थकी चूकेछे. तेनी पेरे ते बापडा संयम थकी चूकेछे. ॥ १३ ॥ आयदंमसमायारे के० आत्मा जे थकी दंमाय एवो जेनो आचार एटले अनुष्ठानछे. तथा मिछासंठियभावणा के० मिथ्यादर्शन संस्थित एटले मिथ्यादर्शने भावित जेनुं चित्त छे, तथा हरिसप्पउसमाव

न्ना के० रागद्वेषे व्याकुल एवा केइ के० कोइएक अनारिया के० अनार्य पुरुषो ते चारित्रवंत साधुने क्रीडायें करी लूसंति के० लूंशे कदर्थना करे ॥ १४ ॥

॥ दीपिका-(संताइति)। केशानां लोचने संतप्ताः पीडितास्तथा ब्रह्मचर्येण पराजितान्नग्नाः संतस्तत्र केशलोचे ब्रह्मचर्ये मंदाविषीदंति संयमाद्भ्रश्यंते। यथा मत्स्याः केतने मत्स्यबंधने प्रविष्टाविषीदंति जीविताद्भ्रश्यंति ॥ १३ ॥ (आयदंडेत्ति)। आत्मा दंड्यते दुर्गतौ पात्यते येन स आत्मदंडः समाचारोनुष्ठानं येषां ते आत्मदंडसमाचाराः। मिथ्यासंस्थिताविपरीततया स्वीकृता भावना चित्तवृत्तिर्यैस्ते मिथ्यासंस्थितभावनामिथ्यात्वोपहतदृष्टयइत्यर्थः । हर्षद्वेषमापन्नारागद्वेषाकुलाएवंविधाअनार्याः केचित् साधुं लूषयंति कदर्थयंति दंडादिभिर्वाग्भिर्वा ॥ १४ ॥

॥ टीका-अपिच (संतत्ताइत्यादि)। समंतात् तप्ताः संतप्ताः केशानां लोचउत्पाटनं तेन। तथाहि। सरुधिरकेशोत्पाटने हि महती पीडोपपद्यते तया चाऽल्पसत्वाः विस्रोतसिकां भजंते। तथा ब्रह्मचर्यं वस्तिनिरोधस्तेनच पराजिताः पराभग्नाः संतस्तत्र तस्मिन् केशोत्पाटनेऽतिदुर्जयकामोद्रेके वा सति मंदाजडालघुप्रकृतयोविषीदंति संयमानुष्ठानं प्रति शीतलीभवंति सर्वथा संयमाद्भ्रश्यंति। तथा मत्स्याः केतने मत्स्यबंधने प्रविष्टानिर्गतिकाः संतोजीविताद्भ्रश्यंति। एवं तेपि वराकाः सर्वं कष्टकामपराजिताः संयमजीवितात् भ्रश्यंति ॥ १३ ॥ किंच (आयदंडेत्यापि)। आत्मा दंड्यते खंड्यते हितात् भ्रश्यते येन स आत्मदंडः समाचारोऽनुष्ठानं येषामनार्याणां ते। तथा मिथ्या विपरीता संस्थिता स्वानुग्रहारूढा भावनांतःकरणवृत्तिर्येषां ते मिथ्यासंस्थितभावनामिथ्यात्वोपहतदृष्टयइत्यर्थः। हर्षश्च प्रद्वेषश्च हर्षप्रद्वेषं तदापन्नारागद्वेषसमाकुलाइति यावत्। तएवंभूताअनार्याः साधुं सदाचारं क्रीडया प्रद्वेषणं वा क्रूरकर्मकारित्वात् लूषयंति कदर्थयंति दंडादिभिर्वाऽग्भिर्वैते ॥ १४ ॥

अप्पेगे पलियंतेसिं, चारो चोरोति सुव्वयं ॥ बंधंति भिक्खुयं बाला कसायवयणेहिय ॥१५॥ तब दंडेण संवीते, मुठिणा अदुफलेण वा ॥ नातीणं सरती बाले, इत्थीवा कुद्धगामिणी ॥१६॥ एते भोकसिणा फासा, फरुसा दुस्सहियासया॥हत्थी वा सरसंवित्ता कीवा वसगयागिहंतिवेमि ॥१७॥ इति तृतीय ऽध्ययनस्य प्रथमोद्देशोस०

अर्थ-वली अपि संभावनायें एगेपलियं के० कोइएक अनार्य, देशपर्यंत विचरता

जें साधु तेसिंके० ते साधुने एम कहेके, चारोचोरोतिसुव्वयंके० ए हेरुछे चोरछे, निक्कण शील एम कहीते सुव्रतजे अणगार तेने बंधंतिनिरकयंके० राशी प्रमुखे करी, साधुने बांधे एवा बालाके० बाल अज्ञानी तथा कसायवयणेहियके० कषायना वचने करी निर्त्सना करे. ॥ १५ ॥ तछके० त्यां अनार्य पुरुषे साधुने दंमेणके० दंमे करी तथा मुठिणाके० मुष्टियें करी अडुवाके० अथवा फलेणवाके० फले करी संवीतेके० हण्यो छतो कांइक परिणत साधु नातिणंसरती बाले के० एवा डुःखोने ते बाल अज्ञानी अण सहेतो थको ज्ञाती गोत्रीने संनारे के, माहारो संबंधि गोत्री जो कोइ अंहियां होत तो ए मने एवी कदर्थना नकरत; एवी चिंतवना करे इच्छिवाकुद्दगामिणी के० जेम स्त्री रीशाणी थकी, पोताना घरमांथी निकली; रस्तामां तेने चोर लोकोए ग्रहण करी छती पोताना संबंधिर्जनुं स्मरण करे, पश्चात्ताप करे, तेनीपेरे जाणी लेवी. ॥ १६ ॥ हवे उपसंहार करतो कहेछे. एते के० ए जे पूर्वे दंसमशकादिकना परिसह कह्या ते नोके० श्रीसुधर्मस्वामी जंबूप्रमुख शिष्योने बोलावी कहेछे के, नोशिष्यो कसिणाफासा के०जे परिसह कह्या ते संपूर्णप्रत्ये फरशे फरुसा डुसहियालया के० जे कगोर अहियासता डुर्लनछे एवा परिसहने अणसहेता एवा जे किवाके० क्लीब असमर्थ अवसाके० परवशे एटले कर्मना वशे पड्या थका गयागिहं के० वली गृहवाशे गया. कोनीपरे ? तोके, हछिवासरसंवित्ता के० जेम हस्ती संग्रामने माथें, मस्तके शरजाले वींध्यो थको त्यांथी नाशी पाछो फरे तेम कायर साधु चारित्र थकी पाछो फरे तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो. ॥ १७ ॥

इति तृतीयाऽध्ययनस्य प्रथमोद्देशकः समाप्तः ॥

॥ दीपिका–(अप्पेगत्ति) एके पूर्वोक्तविशेषणाअनार्याः पर्यंतदेशे वर्तमानं साधुं सुव्रतं (चारोचोरित्ति) चरोयं चोरोयमिति कृत्वा बध्नंति निक्कुकं निक्कणशीलं बालाअज्ञास्तथा कपायवचनैः क्रोधवचनैर्निर्नत्सर्यंति ॥ १५ ॥ (तछेति) तत्राऽनार्यदेशेऽनार्यैर्दंडेन मुष्टिना फलेन मातुलिंगादिना खड्गादिनावा संवीतः कश्चिदपरिणतः साधुर्ज्ञातीनां स्मरति। यद्यत्र मम कश्चित्संबंधी स्यात्तदा नाहमीदृशीं कदर्थनां प्राप्नुयामीति। यथा स्त्री क्रुद्धा सती स्वगृहाजमनशीला निराश्रया मांसपेशीव सर्वस्पृहणीया तस्करादिनिरभिद्रुतासती जातपश्चात्तापा ज्ञातीनां स्मरत्येवं साधुरपि ॥ १६ ॥ (एतेइति)। नोइति शिष्यामंत्रणं । एते दंशमशकादयः परीषहाः स्पृश्यंते अनुनूयंते स्पर्शाः परुषाः कठिनाडुःखेनाधिसह्यंते डुरधिसह्याहस्तिनइव शरैर्बाणैः संवीताव्याप्तानज्यंतइति शेषः । एवं क्लीबाअसमर्थाअवशाःपरवशाःकर्मायत्ताः पश्चात्स्वगृहं गता ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ १७ ॥

इतिउपसर्गपरिज्ञाख्ये तृतीयाध्ययने प्रथमोद्देशकः समाप्तः ॥

॥ टीका—एतदेव दर्शयितुमाह । (अप्पेगेइत्यादि) । अपिःसंभावने । एके अनार्या आत्मदंभसमाचारामिथ्यात्वोपहतबुद्धयोरागद्वेषपरिगताः । साधुं (पलियंतेसिंति) अनार्यदेशपर्यंते वर्तमानं (चारोत्ति) चारोयं चौरोयं स्तेन इत्येवं मत्वा सुव्रतं कदर्थयंति । तथाहि । बध्नंति रज्वादिना संयमयंति निक्षुकं भीक्षणशीलं बालाअज्ञाः सदसद्विवेकविकलास्तथा कषायवचनैश्च क्रोधप्रधानकटुकवचनैर्निर्भर्त्सयंतीति ॥ १५ ॥ अपिच (तत्थदंडेणेत्यादि) । तत्र तस्मिन्ननार्यदेशपर्यंते वर्त्तमानः साधुरनार्यैर्दंडेन यष्टिना मुष्टिना वा संवीतः प्रहतोऽथवा फलेन वा मातुलिंगादिना खड्गादिना वा ससाधुरेवं तैः कदर्थ्यमानः कश्चिदपरिणतोबालोऽज्ञोज्ञातीनां स्वजनानां स्मरति । तद्यथा । यद्यत्र मम कश्चित् संबंधी स्यात् नाऽहमेवंभूतां कदर्थनामवाप्नुयामिति । दृष्टांतमाह । यथा स्त्री क्रुद्धा सती स्वगृहात् गमनशीला निराश्रया मांसपेशीव सर्वस्पृहणीया तस्करादिभिरभिद्रुता सती जातपश्चात्तापा ज्ञातीनां स्मरत्येवमसावपीति ॥ १६ ॥ उपसंहारार्थमाह । (एते भोइत्यादि) । भोइति शिष्यामंत्रणं । यएतआदितः प्रभृति दंशमशकादयः पीडोत्पादकत्वेन परीषहाएवोपसर्गाअभिहिताः कृत्स्नाः संपूर्णाबाहुल्येन स्पृश्यंते स्पर्शेंद्रियेणाऽनुभूयंतइति स्पर्शाः । कथंभूताः परुषाः परुषैरनार्यैः कृतत्वात् पीडाकारिणः । तेचाऽल्पसत्वैर्दुःखेनाऽधिसह्यंते तांश्चाऽसहमानालघुप्रकृतयः केचन श्लाघामंगीकृत्य हस्तिनइव रणशिरसि शरजालसंवीताः शरशताकुलाभंगमुपयांत्येवं क्लीबाअसमर्थाअवशाः परवशाः कर्मायत्तागुरुकर्माणः पुनरपि गृहमेव गताः । पाठांतरं वा (तिव्वसढेत्ति) तीव्रैरुपसर्गैरभिद्रुताः शठाः शठानुष्ठानाः संयमं परित्यज्य गृहं गताइति । ब्रवीमीति पूर्ववत् । उपसर्गपरिज्ञायाः प्रथमोद्देशकइति ॥ १७ ॥

॥ अथ द्वितीयोद्देशकस्य प्रारंभः पहेला उद्देशामां प्रतिकूल उपसर्गना कारण कह्या. हवे बीजा उद्देशामां अनुकूल उपसर्गना कारण कहेछे.

अहिमे सुहुमा संगा, भिक्खुणं जे डुरुत्तरा ॥ जच्छ एगे विसीयंति, एाचयंतिज वित्तए ॥ १ ॥ अप्पेगे नायत्रु दिस्स, रोयंति परिवारिया ॥ पोसणे ताय पुठोसि, कस्स तायजहासि णे ॥२॥

अर्थ—अहके० अथ हवे इमे के० ए सुहुमाके० सूक्ष्म, एटले चित्तने विकार उपजावनार एवा अंतरंग प्रतिकूल उपसर्गना कारण पण बादर एटले प्रगट देखाय नही तेवा शरीरने विकार करनार उपसर्ग न जाणवा एवा संगाके० मातापितादिकनो संबंध, ते संबंधी जेके० जे नि

रकुणंके० चारित्रियाने डुरुत्तराके० डुर्लंघनीय उपसर्गछे तेज उपसर्ग कहेछे. जब्बके० जे उपसर्ग आवे थके एगेके० कोइ एक कायर चारित्रिउ, सीयंतिके० सदाय एाचियंतिजवित्तएके० ते पोताना आत्माये संयमनो निर्वाह करी शके नही ॥१॥ अपि संनावनाए, एगेके० कोइएक नायउहिस्स के० ज्ञातिना साधुने देखीने साधुने परिवारिया कें० वीटीने रोयंति के० रुदन करे एटले विलाप करे अने एम कहेके अम्हे तारुं बालपण थकी पालण पोषण कर्युं, ते अम्हे तारा ताय के० तात एटले पिता बैयें माटे एवुं जाणुजे अमारी वृद्धावस्थामां; तुपण अमारुं पोषण करीश पुछोसि के० तेमाटे हेपुत्र तुं अमारुं पोसणके० पोषण कर, तथा ते साधुना पुत्रादिक होय ते एम कहेके कस्सताायजहासिणे के० अहो तात अहोपिता तमे अमने शाकारणे छांमोछो ?. ॥ २ ॥

॥ दीपिका—अथ द्वितीयआरन्यते । पूर्वं प्रतिकूलाउपसर्गाउक्ताः इहाऽनुकूलाउच्यंते । यथा (अहिमेति) अथ इमे वक्ष्यमाणाः सूक्ष्माआंतरविकारिणः संगामातापित्रादयोनिकूणां ये डुरुत्तराडुर्लंघ्याः । यत्र येषु उपसर्गेषु एकेअल्पसत्वाविषीदंति संयमे मंदाः स्युः । नशक्नुवंति यापयितुं संयमे आत्मानं प्रवर्तयितुमिति ॥ १ ॥ (अप्पेगइति) अपिःसंनावने । एके ज्ञातयः स्वजनाः प्रव्रजंतं प्रव्रजितं वा दृष्ट्वा परिवार्य विष्टन्य आश्रित्य रुदंति वदंति चैवं त्वमस्मान्निः पोषितोबाल्यादारन्यावृद्धमस्माकं बालकोनविष्यसीति कृत्वा ततोऽस्मान् त्वं तातपुत्र पोषय पालय कस्य कृते केन कारणेनास्मान् त्यजसि ॥२॥

॥ टीका—उक्तः प्रथमोद्देशकः । सांप्रतं द्वितीयः समारन्यते । अस्य चायमन्निसंबंधः । इहोपसर्गपरिज्ञाध्ययने उपसर्गाः प्रतिपादितास्तेचानुकूलाः प्रतिकूलाश्च । तत्र प्रथमोद्देशके प्रतिकूलाः प्रतिपादिताइहत्वनुकूलाः प्रतिपाद्यंतइत्यनेन संबंधेनायातस्याऽस्योद्देशकस्याऽदिसूत्रं । (अहिमेइत्यादि) । अथेत्यानंतर्ये । प्रतिकूलोपसर्गानंतरमनुकूलाः प्रतिपाद्यंतइत्यानंतर्यार्थः । इमे त्वनंतरमेवान्निधीयमानाः प्रत्यक्षासन्नवाचित्वादिदमन्निधीयंते । तेच सूक्ष्माः प्रायश्चेतोविकारकारित्वेनांतरान प्रतिकूलोपसर्गाइव बाहुल्येन शरीरविकारकारित्वेन प्रकटतया बादराइति । संगामातापित्रादिसंबंधाः । यएते निकूणां साधूनामपिडुरुत्तराडुर्लंघ्याडुरतिक्रमणीयाइति । प्रायोजीवितविघ्नकरैरपि प्रतिकूलोपसर्गैरुदीर्णैर्माध्यस्थ्यमवलंबयितुं महापुरुषैः शक्यमेतेत्वनुकूलोपसर्गास्तानप्युपायेन धर्माद्ध्यावयंत्यतोऽमीडुरुत्तराइति । यत्र येषूपसर्गेषु सत्स्वेके अल्पसत्वाः सदनुष्ठानं प्रति विषीदंति शीतलविहारित्वं नजंते सर्वथा वा संयमं त्यजंति नैवात्मानं संयमानुष्ठानेन यापयितुं वर्तयितुं तस्मिन् वा व्यवस्थापयितुं शक्नुवंति समर्थान्नवंतीति ॥ १ ॥ तानेव सूक्ष्मसंगान् दर्शयितुमाह । (अप्पेगेइत्यादि) अपिः संनावने । एके

तथाविधाज्ञातयः स्वजनामातापित्रादयः प्रव्रजंतं प्रव्रजितं वा दृष्ट्वोपलन्य परिवार्य वेष्ट यित्वा रुदंति रुदंतोवा वदंति च दीनं । यथा बाल्यात् प्रनृति त्वमस्मानिः पोषितोवृद्धा नां पालकोनविष्यतीति कृत्वा ततोधुनानोऽस्मानपित्वं तात पुत्र पोषय पालय कस्य कृ ते केन कारणेन कस्यवा बलेन तातास्मान् त्यजसि नास्माकं नवंतमंतरेण कश्चित्राता विद्यतइति ॥ २ ॥

पिया ते थेरर्ज तात, ससा ते खुड्डिया इमा ॥ नायरोते सगा ता
त, सोयरा किं जहासि णे ॥ ३ ॥ मायरं पियरं पोस, एवं लोगो
नविस्सति ॥ एवं खु लोइयं ताय, जे पालंति य मायरं ॥ ४ ॥

अर्थ–पियाते थेरजतात के० अहो तात ताहरो जे पिताछे ते थेरज एटले मोकरो छे अर्थात वृद्धछे, तथा ससा के० बेहेन ते खुड्डिया के० न्हानीछे, इमाके० ए प्रत्यक्ष देखायछे, तथा नायरोतेसगातात के० हेतात ताहरा सगाचाइ ते एक माताना जण्या एवा सोयरा के० सहोदर एक उदरना उपज्या, स्नेहना पात्र, तेने किंजहासिणे के० केम छांमीश ते कारण माटे तु अमने कां छांमेछे ॥ ३ ॥ तथा मायरं के० माता अने पियरं के० पिता तेने पोस के० पोषण कर एवं लोगोनविस्सति के० एरीते पर लोकनी सिद्धि थशे. एवंखुलोइयं ताय के० तथा हेतात आलोकने विषे पण निश्चय थकी एवो आचारछे के जे पालंति य मायरं के० जे संसारमांहे पोताना मातापितानुं पालणपोषणकरे, तेज श्रेष्ठ मनुष्य कहेवायछे. यतोगुरुवोयत्र पूज्यंतिइति वचनात्॥४॥

॥ दीपिका–पियेति। हेतात पुत्र ते तव पिता स्थविरः स्वसानगिनी तव क्षुल्लिका लघ्वी इमे भ्रातरस्तव निजास्तात सोदराः स्वकाःसहोदराः किमस्मान् त्यजसि ॥३॥ मायरमिति। मातरं पितरं पुषाण पोषय एवंकृते तवेह लोकः परलोकश्च नविष्यति । इदमेव लौकिकं लोकसंमतं यत् वृद्धयोर्मातृपित्रोः परिपालनं । यतः । गुरवोयत्र पूज्यंते यत्र धान्यं सुसं स्कृतं ॥ अदंतकलहोयत्र तत्र शक्र वसाम्यहमिति ॥ ४ ॥

॥ टीका–किंच (पियेत्यादि) हेतातपुत्र पिता ते तव स्थविरोवृद्धः शतातो तः स्वसाच नगिनी तव क्षुल्लिका लघ्वी अप्राप्तयौवना इमा पुरोवर्त्तिनी प्रत्यक्षेति तथा न्रातरस्ते तव स्वकानिजास्तात सोदराएकोदराः किमित्यस्मान् परित्यजसीति ॥ ३ ॥ तथा (मायरमित्यादि) मातरं जननीं तथा पितरं जनयितारं पुषाण बिनृहि । एवं च कृते तवेह लोकः परलोकश्च नविष्यति । तातेदमेवलौकिकं लोकाचीर्णमयमेव लौकिकः पं

था यडुत वृध्धयोर्मातापित्रोः प्रतिपालनमिति । तथाचोक्तं । गुरवोयत्र पूज्यंते यत्र धान्यं सुसंस्कृतं ॥ अदंतकलहोयत्र तत्र शक्रवसाम्यहमिति ॥ ४ ॥

उत्तरा महुरुल्लावा, पुत्ता ते तात खुड्डया ॥ भारिया ते णवा तात,
मा सा अन्नं जणं गमे ॥ ५ ॥ एहि ताय घरं जामो, माय कम्मं
सहावयं ॥ बितियं पिताय पासामो, जासु ताव सयं गिहं ॥ ६ ॥

अर्थ–एरीते उत्तर के० प्रधान तथा उत्तरोत्तर महुरुल्लावा के० मधुर जेनो आलाप ले एटले नरम वचनना बोलनारा एवा पुत्तातेतातखुड्डया के० अहोतात तमारा पुत्र न्हानाछे, तथा भारियातेणवातात के० तमारी भार्या ते नवीन परणेलीछे ने लघुवयवालीछे, माटे माके० रखे साके० ते अन्नंजणंगमे के० अन्यजन पासे जशे तो आपणा कुलने ते कलंक लगाडशे. ॥ ५ ॥ माटे एहितायघरंजामो के० अहो तात तमे आवी घरमां रहो अने त्यां रह्या थका मायकम्मं के०कांइपण कार्य करशोमां नवा कार्य उपने थके अम्हे तमोने सहावयं के०सहाइ थइशुं. तेमाटे एकवार गृहकार्यथी तमे भागाछो परंतु बितियंपि के० बीजी वखत तायके० हेतात अथवा हे पुत्र पासामो के० तमे जुउ के अमे शखाइ छता जोइये जे तमारो शुं बिगाड थायछे, जासुतावसयंगिहंके० तेमाटे चालो पोताने घेर जइये, एटलुं अमारुं वचन मान्यकरो. ॥ ६ ॥

॥ दीपिका–(उत्तराइति) उत्तराः प्रधानाउत्तरोत्तरजातावा । मधुरोल्लापामधुरवचनास्ते तात पुत्रालघवः । तथा भार्या तव नवा नवयौवना नवोढा वा सा त्वया त्यक्ता सती नान्यं गच्छेडुन्मार्गगामिनी मास्यात् ॥ ५ ॥ (एहीति) एहि आगच्छ तात गृहं यामः । मात्वं किमपि कर्म कृथाः । अपितु कर्मण्युपस्थिते ते वयं सहायकाभविष्यामः । एकवारं तावद्गृहकर्मभिर्भग्नस्त्वं पुनरपि द्वितीयवारं पश्यामोऽद्ध्यामोयदस्माभिः सहायैर्भवतो भविष्यतीत्यतोयामस्तावत्स्वकं निजं गृहं ॥ ६ ॥

॥ टीका–अपिच । (उत्तरेत्यादि) उत्तराः प्रधानाउत्तरोत्तरजातावा मधुरोमनोज्ञउल्लापआलापोयेषांते तथाविधाः पुत्रास्ते तव तातपुत्र क्षुल्लकालघवः । तथा भार्यापत्नी ते नवा प्रत्यग्रयौवना अतिनवोढा वा मासौ त्वया परित्यक्ता सत्यन्यं जनं गच्छेडुन्मार्गयायिनी स्यादयं च महाजनापवादइति ॥ ५ ॥ अपिच । (एहीत्यादि) जानीमोवयं यथा त्वं कर्मभीरुस्तथाप्येहि आगच्छ गृहं यामोगच्छामः । मात्वं किमपि सांप्रतं कर्मकृथाः अपितु तव कर्मण्युपस्थिते वयं सहायकाभविष्यामः साहाय्यं करिष्यामः । एकवारं तावद्गृहकर्मभिर्भग्नस्त्वं तात पुनरपि द्वितीयवारं पश्यामोऽद्ध्यामोयदस्माभिः सहायैर्भवतोभविष्यतीत्यतोयामोगच्छामस्तावत् स्वकं गृहं कुर्वें तदस्मद्वचनमिति ॥ ६ ॥

गंतुं ताय पुणो गछे, णय तेणासमणोसिया ॥ अकामगं परि
कम्मं, कोउते वारेउ मरिहति ॥७॥ जं किंचि अणगं तात, तंपि
सवं समीकतं ॥ हिरसं ववहाराइ, तंपि दाहासु ते वयं ॥ ८ ॥

अर्थ–गंतुंताय के० तेमाटे अहो तात एकवार घेर जइने पुणोगछे के० वली फरी आवीने यति थाजो णयतेणासमणोसिथा के० एटलुं कीधा थकी अश्रमणपणु न थाय; जो तमे अकामगं के० गृह व्यापारनी इछारहित परिकम्मं के० पोतानुं मन मान्यु अनुष्ठान करशो, तो तमने कोउतेवारेउमरिहति के० कोण वारवाने समर्थ छे अथवा अकामगं के० वृद्धावस्थायें विषयाभिलाष निवर्त्ते थके परिकम्मं के० संयमानुष्ठानने विषे पराक्रम करजो, केमके तेवखत धर्म करवाने योग्य छे; तेवारे कोतेवारेउ मरिहतिके० तमोने कोइ पण वारवाने समर्थ थशे नही ॥७॥ जंकिंचिअणगंतातके० वली अहो तात जेकांइ तमारा उपर रूण एटले लेणुहतुं तंपिसवंके० तेपण अमे सर्व देवुं समीकितं के० समुंकीधुं, एटले मागनाराउनुं सर्व लेणुं चुकावी दीधुं छे, तथा हिरन्नंववहाराइ के० जे व्यवहारने कार्यें अथवा अन्य कोइ भोगोपभोगने अर्थें सुवर्ण रूपादिक खपमां लागशे तंपि के० तेपण सर्व अमे तेवयं के० तेमोने दाहासुके० आपीशुं ॥८॥

॥ दीपिका–(गंतुमिति) तात गत्वा गृहं स्वजनवर्गं दृष्ट्वा पुनर्गतासि नच तेनैतावता गृहगमनमात्रेण त्वश्रमणोभविष्यसि । अकामकं गृहव्यापारेछारहितं पराक्रमंतं स्वाभिप्रेतानुष्ठानं कुर्वाणं कोवारयितुमर्हति । एकवारं गृहमागत्य पुनर्यथोचितं कुर्याइति भावः । अथवा अकामकं वृद्धावस्थायां मदनेछारहितं पराक्रमंतं संयमे प्रवर्तमानं त्वां कोवारयितुमर्हति ॥७॥ (जंकिंचिदिति) यत्किंचित्तव रूणमासीत्तदस्माभिर्विभज्य समीकृतं समभारेण व्यवस्थापितं । यच्च हिरण्यं द्रव्यं व्यवहारादावुपयुज्यते तदपि वयं तव दास्यामः ॥८॥

॥ टीका–किंच । (गंतुमित्यादि) । तात पुत्र गत्वा गृहं स्वजनवर्गं दृष्ट्वा पुनरागंतासि नच तेनैतावता गृहगमनमात्रेण त्वश्रमणोभविष्यसि । (अकामगंति) अनिछंतं गृहव्यापारेछारहितं पराक्रमंतं स्वाभिप्रेतानुष्ठानं कुर्वाणं कस्त्वां भवंतं वारयितुं निषेधयितुमर्हति योग्योभवति । यदिवा (अकामगंति) वार्द्धकावस्थायां मदनेछाकामरहितं पराक्रमंतं संयमानुष्ठानं प्रति कस्त्वामवसरप्राप्ते कर्मणि प्रवृत्तं धारयितुमर्हतीति ॥ ॥७॥ अन्यच्च (जंकिंचिइत्यादि) । तात पुत्र यत्किमपि भवदीयमृणजातमासीत्तत्सर्वमस्माभिः सम्यग्विभज्य समीकृतं समभागेन व्यवस्थापितं । यदिवोत्कटं सत् समीकृतं सुदेयत्वेन व्यवस्थापितं यच्चहिरण्यं द्रव्यजातं व्यवहारादावुपयुज्यते । आदिशब्दात् येनवा प्रकारेण तवोपयोगं यास्यति तदपि वयं दास्यामोनिर्धनोहमिति माकृथाभयमिति ॥ ८ ॥

इच्चेव णं सुसेहंति, कालुणीयसमुठिया ॥ विबद्धो नायसंगेहिं, ततो गारं पहावइ ॥ ए ॥ जहा रुक्खं वणे जायं, मालुया पडिबंधई ॥ एव णं पडिबंधंति, णातउ असमाहिणा ॥ १० ॥

अर्थ—इच्चेवके० एरीते वचनेकरी, णंइति वाक्यालंकारे. ते सर्व पुत्रादिक सुके० रुडीरीते सेहंति के० शीखवे कालुणीय के० करुणाकारे एवावचने समुठिया के० पोते ते पुत्रादिक दीनपणाने नावे पोंहोंच्या बतां, एम पूर्वोक्त रीते कहे, तेथी ते नायसंगेहिं के० ते ज्ञाति गोत्रीजे पुत्रादिक तेना संगे करी, विबद्धो के० बांध्योबतो ततोके० तेवारे ते अल्प सत्ववंत कायर साधु, तेमना वचने मोहित थयो बतो आगारंपहावइ के० आगार नणी ध्यावे, एटले घरवास मांमीने संयमने गंमे ॥ ए ॥ पढी जहा के० जेम वणेजायं के० वनने विषे उत्पन्न थयुं एवुंजे रुरकं के० वृक्ष ते मालुया के० वेलडीउ तेणेकरी पडिबंधई के० बंधाय, एटले वेलडीयें करी वीटाय, एव के० एम, णंइति वाक्यालंकारे. णातउ के० जाति स्वजनादिक जे बे ते साधुने असमाहिणा के० असमाधियेकरी पडिबंधंति के० बांधीलीये संयमथकी च्रष्ट करे इत्यर्थः ॥ १० ॥

॥ दीपिका—(इच्चेवेति) णंवाक्यालंकारे । इत्येवं पूर्वोक्तनीत्या स्वजनाः करुणामुत्पादयंतीति कारुणिकाः समुपस्थिताः प्राप्तास्तं साधुं (सुसेहंत्ति) सुष्टु शिक्षयंति व्युद्ग्राहयंति । सचाऽपरिणतधर्माऽल्पसत्वोगुरुकर्मा जातिसंगैर्विबद्धोमोहितस्ततोऽगारंगृहं (पधावइत्ति) प्रव्रज्यां त्यक्त्वा गृहे यातीत्यर्थः ॥ ए ॥ (जहेति) यथा वने जातं वृक्षं मालुयावल्ली प्रबध्नाति वेष्टयति । एवं ज्ञातयस्तं साधुमसमाधिना प्रतिबध्नंति । तत्कुर्वंति येनास्याऽसमाधिरुत्पद्यते । यडुक्तं । अमित्तो मित्तवेसेण कंठे घेत्तूण रोयइ । मामित्तासो गईजाई. दोविगबासुडुग्गइं इति ॥ १०॥

॥टीका—उपसंहारार्थमाह (इच्चेवणमित्यादि)।णमितिवाक्यालंकारे।इत्येव पूर्वोक्तया नीत्या मातापित्रादयः कारुणिकैर्वचोभिः करुणामुत्पादयंतः स्वयंवा दैन्यमुपस्थितास्तं प्रव्रजितं प्रव्रजंतं वा ॥ (सुसेहंतित्ति) सुष्टु शिक्षयंति व्युद्ग्राहयंति । सचापरिणतधर्माऽल्पसत्वो गुरुकर्मा ज्ञातिसंगैर्विबद्धोमातापितृपुत्रकलत्रादिमोहितस्ततोगारं गृहं प्रति धावति प्रव्रज्यां परित्यज्य गृहपाशमनुबध्नातीति ॥ए॥ किंचान्यत् । (जहारुरकमित्यादि) । यथा वृक्षं वने अटव्यां जातमुत्पन्नं मालुयावल्ली प्रतिबध्नाति वेष्टयत्येव । णमितिवाक्यालंकारे । ज्ञातयः स्वजनास्तं यतिं असमाधिना प्रतिबध्नंति ते तत्कुर्वंति येनास्यासमाधिरुत्पद्यतइति । तथा चोक्तं । अमित्तो मित्तवेसेण, कंठे घेत्तूण रोयइ । मामित्तासोगईजाइं, दोविगबासु डुग्गइं ॥ १० ॥

विबद्धो नातिसंगेहिं, हत्थीवावि नवग्गहे ॥ पिठ्ठतो परिसप्पंति, सुयगोव्व अदूरए ॥ ११ ॥ एतेसं गा मणूसाणं, पातालाव अतारिमा ॥ कीवा जत्थ य किस्संति, नायसंगेहिं मुछिया ॥ १२ ॥

अर्थ–वळीते नातिसंगेहिं के० ज्ञाति गोत्रीनी संगते करी विबद्धो के० विविध प्रकारे बंधाणो थको परवश थयो, एटले तेमना अनुकूल वचने करी मनने विषे धृति उपजी तेणे करी बंधाणो हत्थीवाविनवग्गहे के० जेम नवा ग्रहण करेला हस्तिने, जो इक्षुखंमादिकनो आहार कराविये तो नवा बंधने करी बंधाय अथवा मधुर वचने करी उपचारिये तेवारे ते बंधननो अंगीकार करे तेम अहीं पण ए दृष्टांते ते ज्ञाति गोत्रि जे पुत्रादिकछे ते सुयगोव्व के० नवप्रसूत गायनीपेरे जेम तेगाय पोताना बालक थकी अदूरए के० दूर नजाय, तेम ते पिठ्ठतोपरिसप्पंति के० पुत्रादिक तेसाधुने व्यामोहमां पाडवाने अर्थे पछवाडे लाग्याज फरता रहे ॥ ११ ॥ हवे संगनो दोष कहेछे, एतेसंगा के० ए पूर्वोक्त मातापितापुत्रादिकनो जे संगम छे ते मणूसाणं के० मनुष्यने पातालाव के० पाताल समुद्रनी पेरे अतारिमा के० तरतां डुस्तर जाणवो जत्थय के० जे संगमने विषे मनुष्य कीवा के० क्लीब असमर्थ छतां किस्संति के० क्लेश पामेछे, ते केवाछता क्लेशपामेछे, तोके नायसंगेहिंमुछिया के० ज्ञाति स्वजनने संगे गृद्ध मूर्छित छतां संसार मांहे क्लेश पामेछे. ॥ १२ ॥

॥ दीपिका–(विबद्धइति) । ज्ञातिसंगैर्विबद्धोविशेषेण बद्धः । तेच ज्ञातयस्तस्मिन्नवसरे तस्य सर्वमनुकूलमनुतिष्ठंति । यथा हस्ती नवग्रहे धृत्युत्पादनार्थं इक्षुखंडादिभिरुपचर्यते तथाऽसावप्युपचर्यते । यथाऽचिरनवप्रसूता गौर्निजवत्सस्यादूरगा समीपवर्त्तिनीसती पृष्ठतः परिसर्पति एवं स्वजनाअपि तन्मार्गानुगाः स्युः ॥ ११ ॥ (एतेति) एते पूर्वोक्ताः संगाः पित्रादिसंबंधामनुष्याणां पातालाः समुद्राइव अतारिमाडुस्तराः संति क्लीबाअसमर्थाः। यत्र येषु संगेषु क्लिश्यंति क्लेशमनुभवंति ज्ञातिसंगैर्मूर्छिताः ॥ १२ ॥

॥ टीका–अपिच । (विबद्धइत्यादि) विविधं बद्धः परवशीकृतः विबद्धोज्ञातिसंगैर्मा तृपित्रादिसंबंधैस्तेच तस्य तस्मिन्नवसरे सर्वमनुकूलमनुतिष्ठंतोधृतिमुत्पादयंति । हस्तीवापि नवग्रहे अभिनवग्रहणे धृत्युत्पादनार्थमिक्षुशकलादिभिरुपचर्यते । एवमसावपि सर्वानुकूलैरुपायैरुपचर्यते । दृष्टांतांतरमाह । यथाऽचिरनवप्रसूता गौर्निजस्तनंधयस्यादूरगा समीपवर्तिनी सती पृष्ठतः परिसर्पत्येवं तेपि निजाउत्प्रव्रजितं पुनर्जातमिव मन्यमानाः पृष्ठतोनुसर्पंति तन्मार्गानुयायिनोभवंतीत्यर्थः ॥ ११ ॥ संगदोषदर्शनायाह । (एतेसंगाइत्यादि)

एते पूर्वोक्ताः सज्यंतइति संगाः मातृपित्रादिसंबंधाः कर्मोपादानहेतवः मनुष्याणां। पाताला इव समुद्राइवाप्रतिष्ठितभूमितलत्वात् ते (अतारिमत्ति) डुस्तराएवमेतेपि संगाअल्पसत्वैर्डुःखेनातिलंघ्यंते। तत्रच येषु संगेषु क्लीबाअसमर्थाः क्लिश्यंति क्लेशमनुभवंति संसारांतर्वर्तिनोभवंतीत्यर्थः। किंभूताः ज्ञातिसंगैः पुत्रादिसंबंधैर्मूर्छितागृध्राअध्युपपन्नाः संतोन पर्यालोचयंत्यात्मानं संसारांतर्वर्तिनमेव क्लिश्यंति॥ १२॥

तं च भिक्खू परिन्नाय, सव्वे संगा महासवा॥ जीवियं नाव कंखि
ज्जा, सोच्चा धम्ममणुत्तरं ॥ १३॥ अहिमे संति आवट्टा, कास
वेणं पवेइया॥ बुद्धा जत्थ वसप्पंति, सीयंति अबुहा जहिं ॥१४॥

अर्थ–तंचके० तेमाटे भिक्कूके० जे साधु होय ते ज्ञाती स्वजनादिकना समागमने परिन्नाय के० ज्ञ परिज्ञायें करी संसारनुं कारण जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञायें परिहरे केमके, ए सव्वेसंगा के० समस्त समागमो जे छे ते महासवा के० महाश्रव महोटा कर्मोना स्थानको जाणवा. ते कारण माटे जीवियंनावकंखिज्जा के० अनुकूल उपसर्गआवे थके पण, असंयमे जीवितव्य वांछे नही, एटले गृहस्थावासनी वांछा साधु करे नही; शुं करीने तो के अणुत्तरं के० अनुत्तर एटले प्रधान एवो धम्मं के० श्रीजिनधर्म तेने सोच्चा के० सांभलीने असंयम वांछे नही॥ १३॥ अहके० अथ एटले हवे अथवा पाठांतरे अहो इति विस्मयें इमेके० ए प्रत्यक्ष समस्त जन प्रसिद्ध संति के० छे एवा आवट्टा के० आवर्त एटले जेम नदीने विषे पाणीना आवर्त होय, तेम अहीं उत्कृष्ट मोहनीयना उदय थकी उत्पन्न थयां जे विषयाभिलाषरूप आवर्त, ते जीवने संसार मांहे बुडवाना स्थानक जाणवा. ए कासवेणं के० काश्यपगोत्री श्रीवर्द्धमान स्वामी तेणे पवेइया के० प्रवेदिता एटले कह्या छे जत्थ के० जे थकी बुद्धा के० पंमित तत्वना जाण ते अवसप्पंति के० दूर थाय छे; अने अबुहा के० अबुद्ध एटले अज्ञानी लोक ते जहिं के० जे आवर्त्तने विषे सीयंति के० सदाय भ्रममां पडीने बुडेछे.॥ १४॥

॥ दीपिका–(तंचेति) तंच भिक्षुर्ज्ञपरिज्ञया प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत्। यतः सर्वे संगामहाश्रवाः कर्मबंधहेतवस्ततोऽसंयमजीवितं नावकांक्षेत नाभिलषेत् श्रुत्वा धर्ममनुत्तरं प्रधानं॥ १३॥ (अहिमेइति)। अथ इमे आवर्तामोहपाशाः संति काश्यपेन श्रीवीरेण प्रवेदिताः कथिताः। यत्र येषु संगेषु सत्सु बुधास्तत्वज्ञाअपसर्पंति तद्दूरगामिनः स्युः। अबुधाअज्ञास्तु तत्र सीदंति आसक्ताः स्युः॥ १४॥

॥टीका–अपिच। (तंचेत्यादि)। तंच ज्ञातिसंगं संसारैकहेतुं भिक्षुर्ज्ञपरिज्ञया प्रत्याख्यान

परिज्ञया परिहरेत्। किमिति यतः सर्वेपि केचन संगास्ते महाश्रवामहांति कर्मणश्चा श्रवद्वाराणि वर्तंते। ततोनुकूलैरुपसर्गैरुपस्थितैरसंयमजीवितं गृहावासपाशं नाभि कांक्षेत नाभिलपेत्। प्रतिकूलैश्चोपसर्गैः सद्भिर्जीविताभिलाषी नन्नवेदसमंजसकारित्वेन न वजीवितं नाभिकांक्षेत्। किंकृत्वा श्रुत्वा निशम्यावगम्य। कं धर्मं श्रुतचारित्राख्यं। नास्यो त्तरोस्तीत्यनुत्तरं प्रधानं मौनींद्रमित्यर्थः॥१३॥ अन्यच्च। (अहिमेत्यादि)। अथेत्यधिका रांतरदर्शनार्थः। पाठांतरं वा अहोऽति तच्चविस्मये। इमे इतिप्रत्यक्षासन्नाः सर्वजनविदि तत्वात् संति विद्यंते वक्ष्यमाणाश्चावर्तयंति प्राणिनं भ्रामयंतीत्यावर्तास्तत्र द्रव्यावर्ता नद्यादेर्भावावर्तास्तूत्कटमोहोदयापादितविषयाभिलापसंपादकसंपत्प्रार्थनाविशेषाएतेचाव र्ताः काश्यपेन श्रीमन्महावीरवर्द्धमानस्वामिनाऽनुत्पन्नदिव्यज्ञानेनावेदिताः कथिताः प्रतिपादिताः। यत्र येषु सत्सु बुद्धाश्चवगततत्त्वाश्चावर्तविपाकवेदिनस्तेभ्योवसर्पंते। प्रम त्ततया तद्दूरगामिनोभवंत्यबुद्धास्तु निर्विवेकतया येष्ववसीदंत्यासक्तिं कुर्वंतीति॥१४॥

रायाणो रायमच्चाय, माहणा अडुव खत्तिया॥ निमंतियंति भो
गेहिं, भिक्खूणं साहु जीविणं॥१५॥ हत्थस्स रहजाणेहिं, वि
हारगमणेहिया॥ भुंजभोगे इमे सग्घे, महरिसी पूजयामु तं॥१६॥

अर्थ—हवे ते आवर्त्त कहेछे. रायाणोराय के० राजाना राजा जे चक्रवर्ति प्रमुख तथा राजाना मच्चाय के० अमात्य मंत्रीश्वरप्रमुख तथा माहणा के० ब्राह्मण ते पुरोहित प्रमुख अथवा खत्तिया के० क्षत्रीते इक्ष्वाकुकुलप्रमुख वंशने विषे उत्पन्न थयला एवा पुरुषो ते भिक्खूणंजीविणं के० साधुने आचारे प्रवर्तता एवा साहु के० साधुउने भोगेहिं के० भोगे करी निमंतियंति के० ब्रह्मदत्ते जेम चित्र साधुने निमंत्रण कर्युं तेनी पेरे निमं त्रण करे॥१५॥ हवे जेरीते भोगे करी निमंत्रे ते देखाडेछे. हत्थस्सके० हस्ती घोडा रह के० रथ यानके० पालखी प्रमुख, एटले करी निमंत्रण करे भोलवे विहारगमणेहिय के० उद्यानादिकने विषे क्रीडादिक हेतुये गमन करवाने अर्थे, तथा अन्य इंद्रियोने अनुकूल एवा विपयसुखने अर्थे निमंत्रण करे अने कहेके इमे के० आ प्रत्यक्ष सग्घे के० श्लाघनीय भोगे के० भोग ते तमे भुंजके० भोगवो; महरिसी के० अहो महर्षि एटले प्रकारे करीने पूजयामुतं के० अमें तमोने पूजीये छैये॥ १६॥

॥ दीपिका-(रायाणोत्ति)। राजानोराजामात्यामंत्रिणोब्राह्मणाः अथवा क्षत्रियाः शेषभृत्याः। एते सर्वेपि भिक्षुकं साधुजीविनं साध्वाचारेण जीवनशीलं साधुं भोगैर्निमंत्रयं ति भोगांश्चांगीकारयंति। यथा ब्रह्मदत्तचक्रिणा चित्रसाधुर्भोगैर्निमंत्रितइति॥१५॥ तथा

(हब्बस्सेति)। हस्त्यश्वरथयानैस्तथा विहारगमनैः क्रीडादिगमनैः साधुं निमंत्रयंतीति। यथा। त्वं त्रुंक्ष्व नोगान् इमान् श्लाघ्यान् हे महर्षे वयं त्वां पूजयामः सत्कारयामः ॥१६॥

॥ टीका–तानेवावर्तान् दर्शयितुमाह। (रायाणोइत्यादि)। राजानश्चक्रवर्त्यादयो राजामात्याश्च मंत्रीपुरोहितप्रनृतयस्तथा ब्राह्मणाश्रथवा क्षत्रियाइक्ष्वाकुवंशप्रनृतयः। एते सर्वेपि नोगैः शब्दादिविषयैर्निमंत्रयंति नोगोपनोगं प्रत्यन्युपगमं कारयंति कं निक्षुकं (साधुजीविणमिति)। साध्वाचारेण जीवितुं शीलमस्येति साधुजीविनमिति। यथा ब्रह्मदत्तचक्रवर्तिना नानाविधैर्नोगैश्चित्रसाधुरुपनिमंत्रितइत्येवमन्येपि केनचित्संबंधेन व्यवस्थितायौवनरूपादिगुणोपेतं साधुं विपयोद्देशेनोपनिमंत्रयेयुरिति ॥ १५ ॥ एतदेव दर्शयितुमाह। (हब्बस्सरहेत्यादि)। हस्त्यश्वरथयानैस्तथाविहारगमनैः विहरणं क्रीडनं विहारस्तेन गमनान्युद्यानादौ क्रीडया गमनानीत्यर्थः। चशब्दादन्यैश्चेंडियानुकूलैर्विषयैरुपनिमंत्रयेरंस्तद्यथा त्रुंवि नोगान् शब्दादिविषयानिमानस्मानिर्ढौकितान् प्रत्यक्षासन्नान् श्लाघ्यान् प्रशस्तान् ननिंद्यान् महर्षेसाधो वयं विषयोपकरणढौकनेन त्वां नवंतं पूजयामः सत्कारयामइति ॥ १६ ॥

वब्गंधमलंकारं, इब्बीर सयणाणिय ॥ नुंजाइं माइं नोगाइं,
आउसो पूजयामुतं ॥ १७ ॥ जो तुमे नियमो चिन्नो, निक्कुनावं
मि सुव्वया ॥ अगारमावसंतस्स, सब्बो संविज्जए तहा ॥ १८ ॥

अर्थ–वली वब के० वस्त्र नीना विना चीन अंशुकादिक अने गंध के० गंध ते कपूरादिक तथा अलंकारं के० आनूषण ते केयूरादिक तथा इब्बीर के० स्त्री ते नवयौवना अने सयणाणिय के० शयन ते पर्यंकतूलिकादिक त्रुंजाइंमाइंनोगाइं के० इत्यादिक ए प्रत्यक्ष नोग नोगवो; आउसो के० अहो आयुष्मन् साधु पूजयामुतं के० एटले प्रकारे करी अमे तमने पूजीये बैये ॥ १७ ॥ जोतुमे नियमोचिन्नो के० अहो साधु जो तमे पूर्वे महाव्रतादिकरूप नियम आचर्योबे, निक्कुनावंमि के० ते निक्कुने नावे संयमने अवसरे आचर्योबे, सुव्वया के० हे सुव्रति अगारमावसंतस्स के० ते आगार गृहस्थावासे वसता पण सब्बो संविज्जएतहा के० सघलो तेमजबे सुकृत अथवा डुष्कृत जें करवां तेनो नाश नथी ॥ १८ ॥

॥ दीपिका–(वब्बेति), वस्त्राणि गंधाः सुगंधचूर्णानि वस्त्रगंधं अलंकारं केयूराद्यानरणं तथा स्त्रियः शयनानि पर्यंकादीनि इमान्नोगांस्त्वं त्रुंक्ष्व। हेआयुष्मन् त्वां एनिः पूजयामः ॥१७॥ (जोतुमेति) यस्त्वयापूर्वं निक्कुनावे नियमोमहाव्रतरूपश्चीर्णोऽनुष्ठितः अगारं गृहं आवसतस्तव सर्वोपि विद्यते नहि सुकृतस्याऽनुचीर्णस्य नाशोस्तीत्यर्थः ॥ १८ ॥

॥ टीका-किंचान्यत्। वस्त्रगंधेत्यादि। वस्त्रं चीनांशुकादि गंधाः काष्ठपुटपाटकादयः वस्त्राणि च गंधाश्च वस्त्रगंधमिति समाहारद्वंद्वः। तथा अलंकारं कटककेयूरादिकं तथा स्त्रियः प्रत्यग्रयौवनाः शयनानि च पर्यंकतूलीप्रवरपटोपधानयुक्तानि इमान् भोगानिंद्रियमनोनुकूलानस्मानिर्ढौकितान् भुंक्ष्व तदुपभोगेन सफलीकुरु हेआयुष्मन् भवंतं पूजयामसत्कारयामइति ॥ १७ ॥ अपिच (जोतुमेइत्यादि) यस्त्वया पूर्वं भिक्षुभावे प्रव्रज्यावसरे नियमोमहाव्रतादिरूपश्चीर्णोनुष्ठितः इंद्रियनोइंद्रियोपशमगतेन हेसुव्रत ससांप्रतमप्यगारं गृहमावसतोगृहस्थभावं सम्यगनुपालयतोभवतस्तथैव विद्यतइति। नहि सुकृतस्यानुचीर्णस्य नाशोस्तीति भावः ॥ १८ ॥

चिरं दूइज्जमाणस्स, दोसोदाणिं कुतो तव ॥ इच्चेव णं निमंतेति, नीवारेणव सूयरं ॥ १९ ॥ चोइया भिक्खचरिया, अचयंता जवित्तए ॥ तत्थ मंदा विसीयंति, उज्जाणंसिव डुब्बला ॥ २० ॥

अर्थ-चिरंदूइज्जमाणस्स के० घणो काल संयमानुष्ठाने करी विचरता तमने दोसोदाणिंकुतोतव के० हमणा दोपनी प्राप्ति क्यांथी थशे एटला दिवस सुधी घणा व्रत पाल्यांछे इच्चेवणं के० इत्यादिक भोग योग्य पदार्थोये करी निमंतेति के० ते साधुने निमंत्रण करे ते उपर दृष्टांत कहेछे नीवारेणवसूयरं के० जेम नीवार एटले व्रीहिना कण तेणे करी सूयरने कूटबंधमां पाडे तेम चारित्रियाने संयम थकी भ्रष्ट करी संसाररूप पास बंधनमां नाखे ॥ १९ ॥ चोइयाके० संयमने विषे वारंवार प्रेर्या छतां पण भिक्खूके० चारित्रिया चरियाए के० साधुनी समाचारीने विषे अचयंता के० असमर्थ जवित्तए के० संयमरूप भारनो निर्वाह करवाने अशक्त छता तत्र के० ते मुक्ति पंथने विषे मंदा के० कोइएक मंद अज्ञानी कायर चारित्रिउं होयते विसीयंति के० सीदाय एटले सीतल विहारी थाय. ते उपर दृष्टांत कहेछे. उज्जाणंसीव के० जेम मार्गने विषे उंचे स्थानके आवे थके डुब्बला के० दुर्बल बलदिया गाडलाने भारे पीड्या थका सीदाय गाबडनाखी नीचे पडे, तेम साधु मंद चारित्रिउं महाव्रतनो भार नाखी संसारमांहे पडे ॥ २० ॥

॥ दीपिका-(चिरमिति) चिरं बहुकालं (दूइज्जमाणस्सेति) संयमक्रियया विहरतस्तवेदानीं कुतोदोषोनैवास्तीत्यर्थः। इत्येवं पूर्वोक्तप्रकारेण ज्ञातयः साधुं निमंत्रयंति। यथा नीवारेण व्रीहिविशेषेण सूकरं वराहं कूटे पातयंति एवं साधुमपि ॥ १९ ॥ (चोइआइति) भिक्षुसमाचर्यया साधुसमाचर्यया प्रेरिताः संयमानुष्ठानेनात्मानं यापयितुं

र्तयितुमशक्नुवंतस्तत्र संयमे मंदाविषीदंति शीतलविहारिणः स्युः । यथा उद्याने क
स्थलनूमौ उत्क्षिप्तमहानाराबलीवर्दाअतिडुर्बलाः सीदंति ग्रीवां पातयित्वा तिष्ठं
एवं साधवोपि ॥ २० ॥

॥ टीका–किंच (चिरमित्यादि)। चिरं प्रनूतकालं संयमानुष्ठानेन (डुइज्जमाणस्सत्ति)
हरतः सतइदानीं सांप्रतं दोषः कुतस्तव नैवास्तीति नावः । इत्येवं हस्त्यश्वरथादि
नवस्त्रगंधालंकारादिनिश्च नानाविधैरुपनोगोपकरणैः करणनूतैः । णमितिवाक्यालंकारे ।
निक्षुं साधुजीविनं निमंत्रयंति नोगबुद्धिं कारयंति । दृष्टांतं प्रदर्शयति । यथा नीवारे
। व्रीहिविशेषकणदानेन सूकरं वराहं कूटके प्रवेशयंत्येवं तमपि साधुमपि ॥ १९ ॥
नंतरोपन्यस्तवार्तोपसंहारार्थमाह । (चोदिताइत्यादि) । निक्षूणां साधूनामुद्युक्तवि
हारिणां चर्या दशविधचक्रवालसामाचारी इच्छामिच्छेत्यादिका तया नोदिता प्रेरिता। यदि
निक्षुचर्यया करणनूतया सीदंतश्चोदितास्तत्करणं प्रत्याचार्यादिकैः पौनःपुन्येन प्रेरितास्त
दनामशक्नुवंतः संयमानुष्ठानेनात्मानं यापयितुं वर्तयितुमसमर्थाः संतस्तत्र तस्मिन्
यमे मोक्षैकगमनहेतौ नवकोटिशतावाप्तेर्मंदाजडाविषीदंति शीतलविहारिणोनवं
त तमेवाचिंत्यचिंतामणिकल्पं महापुरुषानुचीर्णं संयमं परित्यजंति । दृष्टांतमाह । उ
र्वयानंमुद्यानं । मार्गस्योन्नतोनागउद्धंकमित्यर्थः । तस्मिन् उद्यानशिरसि उत्क्षिप्तमहानरा
क्षाणोतिडुर्बलायथावसीदंति ग्रीवां पातयित्वा तिष्ठंति नोत्क्षिप्तनरनिर्वाहकानवंतीत्येवं
पि नावमंदाउत्क्षिप्तपंचमहाव्रतनारं वोढुमसमर्थाः पूर्वोक्तनवावर्तैःपराजग्नाविषीदंति २०

अचयंतावलूहेण, उवहाणेण तज्जिया ॥ तब मंदा विसीयंति, उ
ज्जाणंसि जरग्गवा ॥ २१ ॥ एवं निमंतिए लकु, मुच्छिया गिद्ध इ
च्छीसु ॥ अझोववन्ना कामेहिं, चोइजंता गयागिहं तिबेमि ॥२२॥
इति उवसग्गपरिन्नाए बितिउद्देसो सम्मत्तो ॥ २ ॥

अर्थ–एरीते अचयंतावलूहेण के० संयमने निर्वाह करवा अशक्त, तथा उवहा
णेण के० बाह्याभ्यंतर तपे करीने तज्जिया के० पीडया बता तब के० ते संयमने विषे,
मंदा के० कोइएक मंद अज्ञानी विसीयंतिके० सीदाय; कोनीपेरे तोके उज्जाणंसि के०
जेम उद्यान एटले उर्ध्वस्थलनूमिने मस्तके आवे तेवारे जरग्गवा के० गरढो फोकरो
वृषन सीदाय, अने नारनी पीडायें पीडयो थको तो तरुण बलद पण सीदाय तो जर
गव एटले फोकरो बलद सीदाय तेमां केवुंजसुं; ॥२१॥ एवंनिमंतिएलकु के० ए पूर्वो
क्तरीते कामनोगादिके करी निमंत्रण लेइने ते कामनोगने विषे मुच्छियाके० मूर्छित बता

तथा गिद्धइच्छीसु के० स्त्रीने विषे गृद्ध एटले अत्यंत आसक्त बता तथा अज्ञोववन्ना कामेहिं के० कामजोगने विषे अध्युपपन्न एटले तेनेविषे रागी होय तेने विवेकी पुरु चोइजंता के० चोयणा करी बनि ते चोयणा सहन करी शके नही, एवा मंद चारित्रिया ते संयम बांमीने गयागिहं के० नागा थका, फरी घरवास अंगीकार करे. तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् ॥ २२ ॥ इतिश्री उवसग्गपरिन्नाए बितिउद्देशः समाप्तः

॥ दीपिका-(अचेति) रूक्षेण संयमेनात्मानं यापयितुमशक्नुवंतउपधानेन तर्जिताः पीडिताः संतस्तत्र संयमे मंदाविषीदंति स्थलजूमौ यथा जरजवाजीर्णबलीवर्दाः । तरुणस्यापि तत्रसीदनं संजवति किंपुनर्जीर्णस्येति जीर्ण ग्रहणं । तथा समर्थानां विवेकिनामपि संयमे सीदनं संजाव्यते किंपुनर्मंदानामिति ॥ २१ ॥ (एवमिति) एवं पूर्वोक्तं निमंत्रणं जोगं प्रति प्रार्थनं लब्ध्वा प्राप्य तेषु मूर्बिताआसक्ताः स्त्रीषु गृद्धादत्तोपयोगा रमणीरागमोहितास्तथा कामेषु इछामदनेषु अध्युपपन्नाः कामानुगतचित्ताः संयमं प्रति प्रेरणां सोढुमसमर्थाः प्रव्रज्यां त्यक्त्वा गृहंगता गृहस्थीजूताइति । ब्रवीमीतिपूर्ववत् ॥ २२॥ इति उपसर्गपरिज्ञाख्ये तृतीयाध्ययने द्वितीयोद्देशकः समाप्तः

॥ टीका-किंच । (अचयंताइत्यादि) रूक्षेण संयमेनात्मानं यापयितुमशक्नुवंतस्तथोपधानेनानशनादिना सबाह्याभ्यंतरेण तपसा तर्जिताबाधिताः संतस्तत्र संयमे मंदाविषीदंत्युद्यानशिरस्युद्धंकमस्तके जीर्णोडुर्बलोगौरिव यूनोपि हि तत्रावसीदनं संजाव्यते किंपुनर्जरजवस्येति जीर्णग्रहणं । एवमावर्तमंतरेणापि धृतिसंहननोपेतस्य विवेकिनोप्यवसीदनं संजाव्यते किंपुनरावर्तैरुपसर्गितानां मंदानामिति ॥ २१ ॥ सर्वोपसंहारमाह । (एवमित्यादि) । एवं पूर्वोक्तया नीत्या विषयोपजोगोपकरणं दानपूर्वकं निमंत्रणं विषयोपजोगंप्रति प्रार्थनं लब्ध्वा प्राप्य तेषु विषयोपकरणेषु हस्त्यश्वरथादिषु मूर्बिताअत्यंतासक्तास्तथा स्त्रीषु गृद्धादत्तावधानारमणीरागमोहितास्तथा कामेषु इछामदनरूपेष्वऽध्युपपन्नाः कामगतचित्ताः संयमेऽवसीदंतोऽपरेणोद्युक्तविहारिणोनोद्यमानाः संयमं प्रति प्रोत्सह्यमानानोदनं सोढुमशक्नुवंतः संतोगुरुकर्माणः प्रव्रज्यां परित्यज्याल्पसत्वा गृहं गतागृहस्थीजूताः ॥ इतिपरिसमाप्तौ । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २२ ॥

हवे त्रीजा अध्ययननो त्रीजो उद्देशो प्रारंजिये बैयें.

जहा संगामकालंमि, पिठतो जीरु वेहइ ॥ वलयं गहणं णूमं, कोजाणइ पराजयं ॥ १ ॥ मुहुत्ताणं मुहुत्तस्स, मुहुत्तो होइ तारिसो ॥ पराजिया वसप्पामो, इति जीरु उवेहई ॥ २ ॥

द्दा। नीं वीरेण ते)

अर्थ—जहासंगामकालंमि के० जेम संग्रामनो काल आवे बते, नीरु के० कोइएक
कणो पुरुष पिठतोके० पाबो वेहईके० जूए, एटले बीकण मनुष्य संग्रामने काले प्रथ
थीज प्रतिकार कारण डुर्ग प्रछन्न स्थानक नासवाने अर्थे जूए; ते स्थानक देखाडेबे;
लयं के० वलयाकारे उदक रहित एवी गर्ताते डुर्गम होय अथवा जेमां पेसतां, तथा नीकल
गहणंके० गहन होय, एटले वृक्षे करी व्याप्त होय अने णूमं के० प्रछन्न एवा जे गि
गुफादिक तेनुं अवलोकन नासवाने अर्थे करे तेनुं कारण मनमां आवीरीते चिंतवे
, कोजाणइपराजयं के० कोण जाणे एवा संग्रामने विषे कोनो जय पराजय थशे,
ार्यसिद्धि दैवायत्तबे, थोडा होय ते घणाने पण जीतीशकेबे ॥ १ ॥ मुहुत्ताणं मुहुत्त
र के० मुहूर्त्त जोवामां कोइएक मुहूर्त्त मुहुत्तोहोइतारिसो के० अपर अन्य मुहूर्त्त
ाल विशेष लक्षण तेवुं होय त्यां एवो प्रस्ताव आवेके पराजियाके० ज्यां जीवने जय
णुं थाय अथवा पराजय पणुं पण थाय तेवारे नासीजइने ए स्थानको मने बुपीरेवाने
ाम आवशे इतिके० एवा स्वरूपे अवसप्पामोके० पराजयने अवसरे कदाचित् संग्राम
ाकी नासीने पाबा आववुं पडे तेवारे शी गति थाय, तेमाटे नीरु के० बीकण सुनट
नासवानुं स्थानक उवेहती के० प्रथमथीज मनमा चिंतवी राखे. ॥ २ ॥

॥ दीपिका—अथ तृतीयोद्देशकः प्रारभ्यते । पूर्वोद्देशकयोरनुकूलप्रतिकूलोपसर्गा उक्ता
ैश्चाध्यात्मविषादः स्यादिति । अत्रोच्यते । (जहेति) यथा संग्रामकाले कश्चिद्भीरुः परानी
कयुद्धावसरे पृष्ठतः प्रेक्षते नाशस्थानं वाऽऽलोकते । वलयं यत्रोदकं वलयाकारेणस्थितं उ
दकरहिता वा गर्ता गहनं धवादिवृक्षावृतं स्थानं णूमं प्रछन्नगिरिगुहादिकमित्यादिस्थानं
नाशहेतोरालोकते । यतः कोजानाति पराजयं कस्य जयः पराजयोवा नावीति कोवेत्ति
दैवायत्ताः कार्यसिद्धयः ॥ १ ॥ किंच । (मुहुत्तेति) मुहूर्तानामेकस्य वा मुहूर्तस्याऽपरो
मुहूर्तः कालविशेषस्तादृशोन्नवति । यत्र जयः पराजयोवास्यात् । एवं सति पराजितावय
मवसर्पामइति नीरुरुपेक्षते शरणमपीति ॥ २ ॥

॥ टीका—उपसर्गपरिज्ञायां उक्तोद्वितीयोद्देशकः सांप्रतं तृतीयः समारभ्यते । अस्यचा
यमभिसंबंधः । इहानंतरोद्देशकाभ्यामुपसर्गाअनुकूलप्रतिकूलभेदेनाभिहितास्तैश्चाध्यात्मवि
षीदनं नवतीति तदनेन प्रतिपाद्यतइत्यनेन संबंधेनायातस्यास्योद्देशकस्यादिसूत्रं (जहे
त्यादि) दृष्टांतेन हि मंदमतीनांसुखेनैवार्थावगतिर्नवतीत्यतआदावेव दृष्टांतमाह । यथा
कश्चिद्भीरुरकृतकरणः संग्रामकाले परानीकयुद्धावसरे समुपस्थितः पृष्ठतः प्रेक्षते आदावे
वापत्प्रतीकारहेतुनूतं डुर्गादिकं स्थानमवलोकयति। तदेव दर्शयति । वलयमिति । यत्रोदकं
वलयाकारेण व्यवस्थितमुदकरहितावा गर्ता डुःखनिर्गमप्रवेशा तथा गहनं धवादिवृक्षैः

कटिसंस्थानीयं(णूमंति) प्रछन्नं गिरिगुहादिकं किमित्यसावेवमवलोकयति । यतएवं मन्य ते । तत्रैवंभूते तुमुले संग्रामे सुभटसंकुले कोजानाति कस्यात्र पराजयोभविष्यतीति यतो दैवायत्ताः कार्यसिद्धयस्तोकैरपि बहवोजीयंतइति ॥ १ ॥ किंच (मुहुत्ताणमित्यादि) मु हूर्त्तानामेकस्य वा मुहूर्तस्यापरोमुहूर्तः कालविशेषलक्षणोवसरस्तादृग्भवति यत्रजयः प राजयोवा संभाव्यते तत्रैवं व्यवस्थिते पराजितावयमपसर्पामोनश्यामइत्येतदपि संभाव्य ते अस्मद्विधानामिति भीरुः पृष्ठतआपत्प्रतीकारार्थं शरणमुपेक्षते ॥ २ ॥

एवं तु समणा एगे, अबलं नच्चाण अप्पगं ॥ अणागयं भयं दि
स्स, अविकप्पंति मंसुयं ॥३॥ कोजाणइ विउवातं, इत्थीउ उदगा
उवा ॥ चोइज्जंता पवरकामो, णणो अत्थि पकप्पियं ॥ ४ ॥

अर्थ—हवे एपूर्वोक्तदृष्टांत, कायर साधु साथे मेलविएछैए एवंतु के० एरीते समणाए गे के० कोइएक श्रमण प्रव्रजित अल्प सत्वना धणी ते अप्पगं के० पोताने विषे अ बलं के० अबलपणु एटले संयमरूप भार वहेवाने जाव जीवसुधी पोताने विषे अस मर्थ पणु नच्चाण के० जाणीने अणागयंभयं के० अनागत एटले आगमिक कालनो भ य दिस्सके० देखीने, एटले आगल वृद्धावस्थायें तथा ग्लानावस्थायें तथा दुर्भिक्षने वि षे मने शुं त्राण शरण थशे अविकप्पंतिमंसुयंके० एवी कल्पना करीने ठेरावकरे के मने व्या करण,ज्योतिष, वैद्यकादिक त्राण शरण थशे माटे तेवा शास्त्रो भणे ॥३॥ कोजाणइके० कोण जाणे विउवातं के० मुजने केवा कारण थकी संयमनो भ्रंस थशे. इत्थीउ के० स्त्रीथकी थसे उदगाउवाके० किंवा उदक एटले सचित्तपाणीना परिभोग थकीथशे, केमके कर्मनी वि चित्र गतिछे णणोअत्थिपकप्पियंके० प्रकल्पित पूर्वोपार्जित द्रव्य नथी जे ते समय म ने काम आवे; तो तेवखते चोइज्जंताके० कोइयें अमने पूछया थकां पवरकामो के० व्याकर्णादिक कहिसुं एरीते चिंतवन करी ज्योतिषादिकने विषे यत्न करे ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—श्लोकद्वयेन दृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकमाह । (एवमिति) एवं पूर्वोक्तदृ ष्टांतेन श्रमणाएके अल्पसत्वाआत्मानमबलं संयमभारवहनाक्षमं ज्ञात्वाऽनागतमेव भयं दृष्ट्वा इदंव्याकरणं गणितं ज्योतिष्कं वैद्यकं मंत्रादिकं वा श्रुतमधीतं मम त्राणाय स्यादि ति अविकल्पंते मन्यंते ॥ ३ ॥ (कोजाणइति) कोजानाति व्यापातं संयमाद्भ्रंशं । के न पराजितस्य मम संयमाद्भ्रंशः स्यादिति। किंस्त्रीतः किंवा उदकात् स्नानाद्यर्थमुदकसेवना भिलापात् इत्येवं ते वराकामन्यंते ननो ऽस्माकं किंचित्प्रकल्पितं पूर्वोपार्जितं द्रव्यम स्ति यत्तस्यां दुःखावस्थायां कार्यं ममेति । अतश्चोद्यमानाः परेण पृछ्यमानावयं हस्तिशि

ह्याधनुर्वेदादिकं कुटिलविटलादिकं वा प्रवक्ष्यामः कथयिष्यामइत्येवं हीनसत्वाः संप्रधार्य व्याकरणादिन्नणितादौ प्रवर्तंते तथापि तेषां मंदन्नाग्यानामन्निमतार्थोनसिद्ध्यति । यतः उपशमफलाद्विद्याबीजात्फलं धनमिच्छतां नवति विफलोयद्यायासस्तदत्र किमद्भुतं । न नियतफलाः कर्तुर्नावाः फलांतरमीशते जनयति खलु व्रीहेर्बीजं न जातु यवांकुरं ॥४॥

॥ टीका–इति श्लोकद्वयेन दृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकमाह । (एवमित्यादि) एवमिति यथा संग्रामं प्रवेष्टुमिच्छुः पृष्ठतोवलोकयति किमत्र मम पराजग्रस्य वलयादिकं शरणं त्राणाय स्यादिति ।एवमेव श्रमणाः प्रव्रजिताएके केचनाऽदृढमतयोऽल्पसत्वाआत्मानं अबलं यावज्जीवं संयमन्नारवहनाऽक्षमं ज्ञात्वा अनागतमेव नयं दृष्ट्वोत्प्रेक्ष्य । तद्यथा। निष्किंचनोहं किंमम वृद्धावस्थायां ग्लानावस्थायां डुर्निक्षे वा त्राणाय स्यादित्येवमा जीविकान्नयमुत्प्रेक्ष्य विकल्पयंति परिकल्पयंति मन्यंते इदं व्याकरणं गणितं जोतिष्कं वैद्यकं होराशास्त्रं मंत्रादिकं वा श्रुतमधीतं ममाऽवमादौ त्राणाय स्यादिति ॥ ३ ॥ एत च्चैते विकल्पयंतीत्याह । (कोजाणइइत्यादि) अल्पसत्वाः प्राणिनोविचित्राच कर्मणां ग तिर्बहूनि प्रमादस्थानानि विद्यंते अतः कोजानाति कः परिच्छिनत्ति व्यापातं संयमजी वितात् न्नश्यंतं केन पराजितस्य मम संयमाद्भ्रंशः स्यादिति। किं स्त्रीतः स्त्रीपरिषहाडुतो दकात् स्नानाद्यर्थमुदकासेवनाभिलाषादित्येवं तेवराकाः प्रकल्पयंति । ननोऽस्माकं किंच न प्रकल्पितं पूर्वोपार्जितद्रव्यजातमस्ति । यत्तस्यामवस्थायामुपयोगे समेत्य यास्यत्य तश्चोद्यमानाः परेण पृच्छ्यमानाहस्तिशिक्षा धनुर्वेदादिकं कुटिलविटलादिकं वा प्रवक्ष्यामः कथयिष्यामः प्रयोक्ष्यामइत्येवं ते हीनसत्वाः संप्रधार्य व्याकरणादौ श्रुते प्रयतंतइति, नच तथापि मंदन्नाग्यानामन्निप्रेतार्थावाप्तिर्नवतीति । तथाचोक्तं । उपशमफलाद्विद्या बीजात्फलं धनमिच्छतां नवति विफलोयद्यायासस्तदत्र किमद्भुतं ॥ ननियतफलाः क र्तुर्नावाः फलांतरमीशते जनयति खलु व्रीहेर्बीजं न जातु यवांकुरं ॥ ४ ॥

इच्चेव पडिलेहंति, वलया पडिलेहिणो ॥ वितिगिच्छ समाव न्ना, पंथाणंच अकोविया ॥ ५ ॥ जेउ संगामकालंमि, नाया सूरपुरं गमा ॥ णो ते पिठमुवेहिंति, किंपरं मरणंसिया ॥ ६ ॥

अर्थ–हवे उपसंहार करतो कहेछे. इच्चेव के० ए जेम पूर्वे कह्या एवा पडिलेहं ति के० कायर सुनट, जेम बीक पामता थका वलयापडिलेहिणोके० वलयादिक स्था नकना जोनारा थाय, तेम प्रमादि चारित्रिया मंद नाग्यने लीधे, अल्प सत्वना धणी आजीविकाना नय थकी अनेक कुशास्त्र शीखे; ते केवा छे तोके, वितिगिच्छसमावन्नाके०

चित्तना अस्थिरपणाने पोहोता थका, मनमां विचार करे के, शुं जाणीयें, अमे जाव जीव सुधी संयम पाळी शकशुं; किंवा नही पाळी शकशुं; कोनीपेरे तोके पंथाणंचके० जेम मार्गने विषे अकोवियाके० अनिपुण एवापुरुषो मार्ग देखी संदेहमां पडे. के शुं जाणीयें एमार्गे अमुक स्थानके जशे किंवा नही जाय; ॥५॥ हवे माहापुरुषनी स्थिति कहेछे. जे उके० जे महासत्ववंत मोहोटा पुरुष नाता के० ज्ञात लोकोमांहे प्रसिद्ध अने सूरपुरं गमा के० शूरवीर पुरुषोमां अग्रेसर, एटले आगेवान एरीते प्रसिद्ध थयेलाछे ते संगामकालंमि के० संग्रामकाळने अवसरे, णोतेपिठमुवेहिंति के० पाछुं न जुवे, एटले नासी जवानुं स्थानक जूए नही; किंपरंमरणंसियाके० ते एम जाणे जे आपणने मरण तो साश्वतछे एटले क्यारेपण मरवुं तो आवश्यछे नासी जइशुं तो, अमारो यश जतो रेशे; ते कारण माटे आ संग्राममनेविषे अमे मरण पामीशुं पण अमारो यश अखंडित राखीशुं ॥६॥

॥ दीपिका–(इच्चेवेति) इत्येवं पूर्व प्रकारेण यथा भीरवः संग्रामे प्राप्तावलयादि स्थानसमुपेक्षिणः स्युस्तथा प्रव्रजिताअपिआजीविकाभया द्व्याकरणगणितादिकं जीवनोपायत्वेन प्रत्युपेक्षंते परिकल्पयंति । किंभूताः । विचिकित्सा चित्तविप्लुतिः किमेनं संयमं वयं समर्थाउत नेत्येवंरूपा । यडुक्तं । लुरकमणुएहमत्तियं, कालाइक्कं तसोयणं विरसं ॥ भूमीसयणं लोउ, असिणाणं बंभचेरंच ॥ १ ॥ तां समापन्नाः प्राप्ताः। यथा पंथानं प्रत्यकोविदाअनिपुणाः किमयं पंथा इष्टं देशं यास्यति नवेति कृतचित्तसंदेहाः स्युः । तथा ते संयमभारवहने संदेहं प्राप्ताः । यथानिमित्तादिकं जीविकार्थं परिकल्पयंति ॥ ५ ॥ (जेउसंगेति) ये पुनर्महासत्वाः । तुर्विशेषणे । संग्रामकाले ज्ञाताः प्रसिद्धाः शूराणां पुरंगमाः पुरोगामिनः सुभटाग्रवर्तिनस्ते पृष्टं नप्रेक्षंते नाशस्थानं नविलोकयंति किंत्वेवं मन्यंते यदत्रास्माकं किमपरं मरणमेव स्यात् भवतु मरणं यशोमायातु । यडुक्तं । विशरारुभिरविनश्वरमतिचपलैः स्थास्नुवांछतां विशदं ॥ प्राणैर्यदिशूराणां, भवति यशः किं न पर्याप्तमिति ॥ ६ ॥

॥ टीका–उपसंहारार्थमाह । (इच्चेवमित्यादि) । इत्येवमिति पूर्वप्रक्रांतपरामर्शार्थः । यथा भीरवः संग्रामे प्रविविक्षवोवलयादिकं प्रत्युपेक्षिणोभवंतीत्येवं तेपि प्रव्रजिता मंदभाग्यतया अल्पसत्वाआजीविकाभया द्व्याकरणादिकं जीवनोपायत्वेन प्रत्युपेक्षंते परिकल्पयंति । किंभताः विचिकित्सा चित्तविप्लुतिः किमेनं संयमभारमुत्क्षिप्तमंतं नेतुं वयं समर्थाः उतनेतीत्येवं भूताः। तथाचोक्तं । लुरकमणुएहमणियं, कालाइक्कं तभोयणं विरसं । भूमीसयणंलोउ असिणाणं बंभचेरंच ॥१॥तां समापन्नाः समागताः । यथा पंथानं प्रत्यकोविदाअनिपुणाः किमयं पंथा विवक्षितं भूभागं यास्यत्युत नेतीत्येवं कृतचित्तविप्लुत

योन्नवंति तथा तेपि संयमनारवहनंप्रति विचिकित्सां समापन्नानिमित्तगणितादिकं जीविकार्थं प्रत्युपेक्षंतइति ॥ ५ ॥ सांप्रतं महापुरुषचेष्टिते दृष्टांतमाह । (जेउसंगामेत्यादि) । ये पुनर्महासत्वाः । तु शब्दोविशेषणार्थः । संग्रामकाले परानीकयुद्धावसरे ज्ञाता लोकविदिताः । कथं शूरपुरंगमाः शूराणामग्रगामिनोयुद्धावसरे सैन्याग्रस्कंधवर्तिनइति एवंनूताः संग्रामं प्रविशंतोन पृष्ठमुत्प्रेक्षंते नडुर्गादिकमापन्नाणाय पर्यालोचयंति । तेचा नंगकृतबुद्ध्योपित्वेवं मन्यंते । किमऽपरमत्रास्माकं नविष्यति यदि परं मरणं स्यातच्च शाश्वतं यशःप्रवाहमिच्छतामस्माकं स्तोकं वर्ततइति । तथाचोक्तं । विशरारुनिरऽविनश्वर, मति चपलैः स्यास्तु वांठतां विशदं ॥ प्राणैर्यदिशूराणां, नवति यशः किं न पर्याप्तं ॥१॥६॥

एवं समुठिए निक्खू, वोसिज्जा गारबंधणं ॥ आरंनं तिरियंकट्टु आत्तत्ताए परिव्वए ॥ ७ ॥ तमेगे परिनासंति, निक्खयं साहुजीविणं ॥ जे एवं परिनासंति, अंतए ते समाहिए ॥ ८ ॥

अर्थ--एवं के० एरीते निक्खू के० साधु संयमने विषे समुठिए के० सावधान थयो ठतो, तथा अगारबंधणं के० गृहस्थावासनुं बंधन तेने वोसिज्जा के० ठांमीने, तथा आरंनं के० आरंन जे सावद्यानुष्ठान तेने तिरियं कट्टुके० तिर्छो करीने एटले, आरंनने दूर करीने आत्तत्ताए परिव्वएके० एक मोक्षनेविषे सावधान थाय, संयमानुष्ठानने विषे प्रवर्त्ते॥७॥ अध्यात्माविषीदनार्थाधिकारोगतःके० ए आत्मा थकीजे विवाद ते कह्यो. हवे बीजो अधिकार परवादिना वचन आश्री कहेले. एगे के० एक कोइ परने उपकार रहित एवा दर्शनने ग्रहण करनारा गोसालीक मतना अनुसारी तथा दिगंबरादिक एवा अन्य तीर्थिकना साधुउ तं के० ते पूर्वोक्त साहुजीवणं के० साधु एटले रूडी आजीवणं एटले आजीविकाये प्रवर्त्तनार अर्थात् परने उपकार करनार, रूडा आचारे प्रवर्त्तमान एवा निरक्कूयं के० साधुने परिनासंति के० एवीरीते कहे. इतिकोर्थः तेनी निंदा करे, तो जे के० जे धर्मना अजाण एवं के० एम पूर्वे कह्युं, तेम परिनासंति के० साधुना आचारनी निंदा करे ते के० तेवा अन्यतीर्थिक साधुउ समाहिए के० समाधि एटले सम्यक् अनुष्ठान थकी अथवा मोक्षथकी अंतए के० वेगला जाणवा. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका--दार्ष्टांतिकमाह । (एवमिति) एवं निक्षुरपि महासत्वः सम्यक्संयमे उत्थितः कषायादिवैरिवर्गं जेतुं प्रवृत्तः । यतः । कोहंमाणं च मायं च, लोहं पंचिंदिआणिअ । डुज्जयं चेवमप्पाणं,सव्वमप्पेजिएजिअ।१।किंकृत्वा समुत्थितः अगारबंधनं गृहपाशं व्युत्सृज्य त्यक्त्वा आरंनं तिर्यक्कृत्वा निराकृत्य आत्मत्वाय शेषकर्मरहितत्वाय परिव्रजेत् संयमे प्रव

तंत इति ॥ ७ ॥ अध्यात्मविषीदनाधिकारोगतः अथ परवादिवचनाधिकारमाह । (त मेगइति) एके परवादिनः साधुं निक्कुं साधु शोजनं जीवितुं शीलमस्य सतथा तं एवं परि जाषंते । ये ते पुष्टधर्माणोगोशालकमतानुगताः आजीविकादिगंबरावा ये ते एवं वक्ष्यमा णं परिजाषंते साधुं निंदंति ते अंतके पर्यंते समाधेर्मोक्षाद्दाह्याइति शेषः ॥ ८ ॥

॥ टीका–तदेवं सुजटदृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकमाह । (एवमित्यादि) यथा सुजटाश्च तरोनामतः कुलतः शौर्यतः शिक्षातश्च तथा सन्निबद्धपरिकराः करगृहीतहेतयः प्रतिज्ञ टसमितिजेदिनोन पृष्ठतोवलोकयंति । एवं निक्कुरपि साधुरपि महासत्वः परलोकप्रति स्पर्द्धिनमिंद्रियकषायादिकमरिवर्गं जेतुं सम्यक् संयमोबानेनोब्रितः समुब्रितः । तथा चोक्तं । कोहं माणं च मायंच लोहं पंचेंदियाणिय । डुज्जयं चेवमप्पाणं सव्वमप्पेजिएजि यं ॥ किं कृत्वा समुब्रितइति दर्शयति । व्युत्सृज्य त्यक्त्वा अगारबंधनं गृहपाशं तथा आरं जं सावद्यानुष्ठानरूपं तिर्यक्कृत्वाऽपहस्तयित्वात्मनोजावआत्मत्वमशेषकर्मकलंकरहित त्वं तस्मै आत्मत्वाय । यदिवा आत्मा मोक्षः संयमोवा तद्भावस्तस्मै तदर्थं परिसमंताद्व्रजेत् संयमानुष्ठानक्रियायां दत्तावधानोजवेदित्यर्थः ॥ ७ ॥ निर्युक्तौ यदजिहितमध्यात्मविषी दनं तडुक्तमिदानीं परवादिवचनं द्वितीयमर्थाधिकारमधिकृत्याह । (तमेगेइत्यादि) तमिति । साधुमेके ये परस्परोपकाररहितं दर्शनमापन्नाअयःशलाकाकल्पास्ते च गोशालक मतानुसारिणआजीविकादिगंबरावा तएवं वक्ष्यमाणं परिसमंताद्भाषंते । तं निक्कुकं सा ध्वाचारं साधु शोजनं परोपकारपूर्वकं जीवितुं शीलमस्य ससाधुजीविनमिति । ये ते ऽपुष्ट धर्माणएवं वक्ष्यमाणं परिजाषंते साध्वाचारनिंदां विदधति तएवं जूताअंतके पर्यंते दूरें समाधे मोंक्षाख्यात्सम्यक् ध्यानात्सदनुष्ठानात् वा वर्ततइति ॥ ८ ॥

संबद्ध सम कप्पाउ, अन्न मन्नेसु मुब्रिया ॥ पिंम्रवायंगिलाए
स्स, जं सारेह दलाहय ॥ ए ॥ एवं तुप्ने सरागब्रा, अन्न मन्न
मणुवसा ॥ नढसप्पह सप्नावा, संसारस्स अपारगा ॥ १० ॥

अर्थ–हवे ते गोसालकादिक मतानुसारी जे कहे ते देखाडेबे. संबद्धसमकप्पाउ के० निश्चयथकी ग्रहस्थ समान तमारो कल्प एटले आचारबे; अर्थात् तमे मोहे करी बंधाणाबो अन्नमन्नेसु के० जेम ग्रहस्थ अन्योअन्य परस्पर माहोमांहे मातापितादिकनी सार संजाल करे तेम तमे पण माहोमांहे आचार्यादिक उपर मुब्रिया के० मुर्बित थयेला बो ते केवीरीते मुर्बितबो ते देखाडे बे पिंम्रवायं गिलाणस्स के० पिंम एटले निक्षा ते गिलाण एटले रोगीने अर्थे जंके० जेमाटे सारेह के० गवेषो बो दलाहय के० निक्षा आणी आपोबो. च शब्द थकी गुर्वादिकनो वैयावच्च करोबो तेमाटे तमे गृहस्थ

सरखा बो ॥ ए ॥ एवं के० ए कारणमाटे तुम्हके० तुमे सरागत्ना के० गृहस्थनी पेरे सराग पणे वर्त्तोंबो अन्नमन्न के० माहोमांहे मणुवसा के० वशगामी साधु कोइना आ धीन न थाय ते कारणमाटे तमे सप्पह के० सद्पंथ एटले रुडोमार्ग तेना सप्नावा के० सद्भावने नठ के० नष्ट कीधो एटले सन्मार्गने ज्रष्ट कीधो तेथी तमे संसारस्सअ पारगा के० संसारना पारंगामी नही एवा दोष अन्य तीर्थिउं बोले ॥ १० ॥

॥ दीपिका—यत्परिन्नाषंते तदाह । (संबद्धेति) संबद्धागृहस्थास्तैस्तुल्यः समः कल्पो व्यवहारोयेषां ते तथा गृहस्थानुष्ठानतुल्याः।यथा गृहस्थाः परस्परमुपकारे प्रवर्तंते । मा ता पुत्रे पुत्रोमातरि एवं यूयमप्यन्योन्यमुपकारे मूर्बिताः । कथमित्याह पिंडपातनैक्ष्यं ग्ला नस्य रोगिणः साधोर्यस्मात् (सारेहत्ति) अन्वेषयंते तथा (दलाहत्ति) ग्लानायददध्वं । चशब्दादाचार्यादिवैयावृत्त्यै प्रवर्तध्वं ततोगृहस्थतुल्याइत्यर्थः ॥ए॥ (एवमिति) एवं यूयं स रागः स्वन्नावस्तत्रस्थिताअन्योन्यं वशमुपागताः परस्परायत्ताः । यतयस्तु निःसंगाः कस्य चिदायत्तानस्युः । ततोगृहस्थानामयं न्यायइति । तथा नष्टसत्पथसन्नावाः गतसन्मार्गप रमार्थाएवंनूतायूयं संसारस्य । अपारगाः न पारगामिनः ॥ १० ॥

॥ टीका—यत्ते प्रन्नाषंते तद्दर्शयितुमाह । (संबद्धेत्यादि) समेकीनावेन परस्परोपका र्योपकारितयाच बद्धाः पुत्रकलत्रादिस्नेहपाशैः संबद्धागृहस्थास्तैः समस्तुल्यः कल्पोव्यव हारोनुष्ठानं येषांते संबद्धसमकल्पागृहस्थानुष्ठानतुल्यानुष्ठानाइत्यर्थः । तथाहि । य था गृहस्थानामयं न्यायोयडुतपरस्मै परस्परोपकारेण माता पुत्रे पुत्रोपि मात्रादावित्येवंमू र्बिताअध्युपपन्नाएवं नवंतोप्यन्योन्यं परस्परतः शिष्याचार्याद्युपकारक्रियाकल्पनया मूर्बिताः । तथाहि । गृहस्थानामयं न्यायो यडुतपरस्मै दानादिनोपकारइति नतु यती नां । कथमन्योन्यं मूर्बिताइति दर्शयति । पिंडपातं नैक्ष्यं ग्लानस्याऽपरस्य रोगिणः साधो र्यद्यस्मात् (सारेहत्ति) अन्वेषयंते । तथा (दलाहयत्ति) ग्लानयोयग्यमाहारमन्विष्य तडुप कारार्थं ददध्वं । चशब्दादाचार्यादेः वैयावृत्त्यकरणाद्युपकारेण वर्तध्वं ततोगृहस्थसमक ल्पाइति ॥ ए ॥ सांप्रतमुपसंहारव्याजेन दोषदर्शनायाह । (एवमित्यादि) एवं परस्परो पकारादिना यूयं गृहस्थाइव सरागस्थाः सहरागेण वर्ततइति सरागः स्वन्नावस्तस्मिन् ति ष्ठंतीति ते तथा अन्योन्यं परस्परतोवशमुपागताः परस्परायत्ताः । यतयोहि निःसंगतया नकस्यचिदायत्ता नवंति । यतोगृहस्थानामयंन्याय इति।तथा नष्टोऽपगतः सत्पथः सद्भा वः सन्मार्गः परमार्थोयेन्यस्ते तथा । एवंनूताश्च यूयं संसारस्य च डुर्गतिन्नमणलक्षण स्याऽपारगा अतीरगामिनइति ॥ १० ॥

अह ते परिन्नासेज्जा, निक्खू मोरकविसारए ॥ एवं तुप्ने पन्नासं
ता, डुपरकं चेव सेवह ॥ ११ ॥ तुप्ने नुंजह पाएसु, गिलाणो अ
निहडंमिया ॥ तंच बीउदगं नोच्चा, तमुदिस्सादिजंकडं ॥ १२ ॥

अर्थ–हवे ते अन्य तीर्थिउने साधु उत्तर आपेढे अह के० अथ एवुं कह्या नंतर तेके० ते असाधु प्रत्ये परिन्नासेज्जा के० साधु एवीरीते बोले परंतुते बोलनार निक्खू के० साधु केवाढे तो के मोरकविसारए के० मोक्षमार्गना विशारद एटले जाए ते अ साधु प्रत्ये कहेढेके एवंके० एम पूर्वोक्त न्यायें तुप्नेके० अहो तुमे पन्नासंताके०एम बोलता थका डुपरकंचेव के० निश्चें थकी बे पक्षने सेवह के० सेवो ढो एटले रागद्वेषरूप बन्ने पक्षने सेवोढो कारए के एकतो पोते अनाचारी ढो सदोष पक्षीढो माटे अने बीजा निर्दोषी साधुना निंदकढो माटे बेहु पक्षना सेवनारढो अथवा बीज उदक उद्देशिकादिक नोगवतां गृहस्थ समानढो अने लिंग ग्रहण कर्युं माटे यति समान देखवा मात्रढो एम बन्ने पक्षने सेवोढो ॥ ११ ॥ हवे आजीविकादिक परतीर्थिकोनो आचार कही देखाडेढे. तुप्ने के० तमे एम कहोढो के अमे निःकंचन बैयें अने तमे जे नुंजह के० नोगवोढो तेपए पाएसु के० कांशादिक धातुना जे गृहस्थना पात्र तेने विषे नोजन करोढो तेमाटे तमे सपरिग्रहीढो तथा आहारादिकनी मूर्ढा करोढो माटे निःपरिग्रहि शीरीतें थशो वली गिलाणो के० गिलानने अर्थे निक्षा अटनने विषे असमर्थ ढतां अनिहडंमियाके०गृहस्थने हाथे आणी देवाडोढो तंचके०तेद्विज दोष देखाडेढे बीउदगंके० जे गृहस्थे बीज अने उदकनुं मर्दन करीने तमुद्दिस्सादिजंकडं के०ते ग्लानने अर्थें उद्देशीने जे आहार नीपजाव्यो तेने नोच्चाके० नोगववा थकी तमने दोष लागेढे॥१२

॥ दीपिका–अथात्रपूर्वपक्षे दोषमाह । (अहतेइति) । अथ तान् परवादिनएवमुपस्थितान् निक्षुः परिज्ञापेत ब्रूयात् । किंनूतोनिक्षुः मोक्षविशारदः।एवं यूयं प्रनाषमाणाडुष्पक्षं डुष्टं पक्षं सेवध्वं । यदिवा द्विपक्षं रागद्वेषात्मकं पक्षद्वयं सेवध्वं । तथाहि । सदोषेपि स्वमते रागः । निर्दोषेप्यस्मन्मते द्वेषः । अथवा बीजोदकोद्दिष्टादिनोजित्वाद्गृहस्थायूयं यतिलिंगांगीकाराच्च प्रव्रजिताइतिपक्षद्वयं ॥ ११ ॥ परमतीनामसदाचारं दर्शयति । (तुप्नेति) हेपरमतिनोयूयं पात्रेषु कांस्यपात्र्यादिगृहस्थनाजनेषु नुंग्ध्वं नोजनं कुरुध्वं। ततः कथं निष्परिग्रहाः।तथा ग्लानस्य निक्षाटनं कर्तुमसमर्थस्य यदपरैर्गृहस्थैरन्याहृतं कार्यते नवद्भिः यतेरानयनाधिकारान्नावात् । तद्दुष्टं नवतां यच्च गृहस्थैर्बीजोदकाद्युपमर्दैन निष्पादितमाहारं चुक्त्वा ग्लानमुद्दिश्योद्देशकादियत्कृतं यन्निष्पादितं तदवश्यं युष्मत्परिनोगाय

समेतश्चवतिष्ठते । तदेवं गृहस्थगृहे तद्भाजनेषु भुंजानाग्लानस्य च गृहस्थैः कारयंतोयूयं अवश्यं बीजोदकादिनोजिनउद्देशकादिकृतनोजिनश्चेति ॥ १२ ॥

॥ टीका–अयं तावत्पूर्वपक्षोस्य च दूषणायाह । (अहतेपरिन्नासेक्कत्यादि) । अथा नंतरं तानेवं प्रतिकूलत्वेनोपस्थितान् निक्षुः परिज्ञापेत ब्रूयात् । किंभूतो मोक्षविशारदो मोक्षमार्गस्य सम्यक्ज्ञानदर्शनचारित्ररूपस्य प्ररूपकः । एवमनंतरोक्तं यूयं प्रनाषमाणाः संतः डुष्टःपक्षोडुष्पक्षोऽसत्प्रतिज्ञान्युपगमस्तमेव सेवध्वं यूयं यदिवा रागद्वेषात्मकं पक्ष द्वयं सेवध्वं यूयं । तथाहि । सदोषस्याप्यात्मीयपक्षस्य समर्थनाद्रागो निष्कलंकस्याप्यस्मद न्युपगमस्य दूषणाद्वेषोऽथैवं पक्षद्वयं सेवध्वं यूयं । तद्यथा । वक्ष्यमाणनीत्या बीजोदको द्दिष्टकृतनोजित्वाद्गृहस्थाः यतिलिंगान्युपगमात्किल प्रव्रजिताश्चेत्येवं पक्षद्वयासेवनं नवता मिति । यदिवा स्वतोऽसदनुष्ठानमपरंच सदनुष्ठायिनां निंदनमितिन्नावः ॥ ११ ॥ आजीविका दीनां परतीर्थिकानां दिगंबराणां वा सदाचारनिरूपणायाह।(तुझे भुंजहेत्यादि) किल वय मपरिग्रहतया निष्किंचनाएवमन्युपगमं कृत्वा यूयं भुंग्ध्वं पात्रेषु कांस्यपात्र्यादिषु गृहस्थ नाजनेषु तत्परिनोगाच्च तत्परिग्रहोऽवश्यं नावी । तथाऽहारादिषु मूर्छां कुरुध्वमित्यतः कथं निष्परिग्रहान्युपगमोनवतामकलंकइति । अन्यच्च ग्लानस्य निक्षाटनं कर्तुमसमर्थ स्य यदपरैर्गृहस्थैरन्याहृतं कार्यते । नवद्भिर्यतोरानयनाधिकारान्नावाद्गृहस्थानयने च योदो षसद्भावः सनवतामवश्यंनावीति । तमेव दर्शयति । यच्च गृहस्थैर्बीजोदकाद्युपमर्देना पादितमाहारं भुक्त्वा तं ग्लानमुद्दिश्योद्देशकादि यत्कृतं यन्निष्पादितं तदवश्यं परिनोगा यावतिष्ठते । तदेवं गृहस्थगृहे तद्भाजनादिषु नुंजानास्तथा ग्लानस्य च गृहस्थैरेव वै यावृत्त्यंकारयंतो यूयमवश्यं बीजोदकादिनोजिनउद्देशिकादिकृतनोजिनश्चेति ॥ १२ ॥

लित्ता तिव्वा निताविणं, उज्झआ असमाहिया ॥ नातिकंडूइयं से
यं, अरुयस्सावरज्झती ॥ १३ ॥ तत्तेण अणुसिघाते अपडिन्नेण
जाणया ॥ एएस णियए मग्गे, असमिक्खा वती किती ॥ १४ ॥

अर्थ–तिव्वानिताविण के० तुमे ठ काय जीवनी विराधना तथा साधुनी निंदारूप तीव्र तापे एटले संतापे करी लित्ता के० लिप्तठो तथा उज्झआ के० विवेक रहित ठो वली असमाहिया एटले शुनध्यान रहितठो माटे जेम नातिकंडूइयं सेयं के० कंडू एटले खुजली तेने अत्यंत खणवी श्रेयकारी नथी किंतु अरुयस्स के० गुंबडाने खणवुं थकुं अवरज्झती के० अपराधियें घणा दोषनी वृद्धि करे तेम तमने साधु साथे द्वेष पणुं करवुं श्रेय नथी ॥ १३ ॥ अपडिन्नेण के० जे खराने खोटुं ठेरावुं अने खोटाने

खरुं वेरावयुं एवी जेनी प्रतिज्ञा नथी ते अप्रतिज्ञ रागद्वेष रहित तथा जाणया के० जाणते एवे संयत तत्वे सहित तेने हेयोपादेय परमार्थ जाण्याविना तत्तेण अणुसि ठाते के० परमार्थं करीने ते असाधु छे एम तेना मार्गने दोष देखाडवानुं तमने कोणे शिखव्युं एएसणीयएमग्गेके० माटे अहो तुमारो उपमार्ग ते निश्चय मलतो नथी जे कारणे गिलानने अशनादिक आपे ते गृहस्थ समान जाणवा एवो तमे कहोछो परंतु ए असमिरकावती के० अणआलोच्याना बोलनारनुं कती के० जे कर्तव्य अनुष्ठान ते पण अणआलोच्योज देखायछे. ॥ १४ ॥

॥दीपिका–(लित्तेति) तीव्रतापेन साधुनिंदारूपेण लिप्ताव्याप्ताः(उज्ञयेति)निर्विवेकाउद्देश कादिनोजित्वात् असमाहिताः शुनाध्यवसायरहिताः । दृष्टांतमाह । यथाऽरुपोव्रणस्याति कंमूयितं नश्रेयः किंतु अपराध्यति दोषंकरोति एवं यूयमपि निर्विवेकाःवयं किल निष्किंच नाइति कृत्वा कांस्य पात्रादिकं परिहत्यैतदनावादवश्यमशुद्धाहारपरिनोगकारिणः निष्किं चनत्वात्पात्रादिपरिहारोनश्रेयो व्रणस्यातिकंमूयितमिव ॥१३॥ (तत्तेणेति) ते गोशालम तानुसारिणआजीविकादयोदिगंबरावा तत्वेनाऽनुशासिताः शिक्षांग्राहिताः केन अप्रतिज्ञेन इदंमया समर्थनीयमिति प्रतिज्ञा सा नास्ति यस्याऽसावप्रतिज्ञोरागद्वेपरहितः साधुस्तेन जा नताज्ञानवता । कथमनुशिष्टाइत्याह । (एएसेति) । योनवद्भिरंगीकृतः सनियतोन युक्ति क्षमोमार्गः । याच साधुनिंदा वाक् सा समीक्षयोक्ता आचार्यकथिता। तथाकृतिः क्रिया प्यविचाररम्यैव ॥ १४ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् (लित्ताइत्यादि) यूयं षट्जीवनिकायविराधनयोद्दिष्टनोजित्वेना निगृहीतमिथ्यादृष्टितया च साधुपरिनाषणेन च तीव्रोनितापः कर्मबंधरूपस्तेनोपलिप्ताः संवेष्टितास्तथा (उज्ञयन्ति) सद्विवेकशून्यानिक्षापात्रादित्यागात्परगृहनोजितयोद्देशकादि नोजित्वात् । तथा असमाहिताः शुनाध्यवसायरहिताः सत्साधुप्रद्वेषित्वात् । सांप्रतं दृ ष्टांतद्वारेण पुनरपि तद्दोषानिधित्सयाह । यथाऽरुषोव्रणस्यातिकंमूयितं नखैर्विलेखनं नश्रे योनशोननं नवति । अपितुपराध्यति तत्कंमूयनं व्रणस्य दोषमावहति । एवं नवंतोपि सद्विवेकरहिताः वयं किल निष्किंचनाइत्येवं निष्परिग्रहतया षट्जीवनिकायरक्षणनूतं निक्षापात्रादिकमपि संयमोपकरणं परिहृतवंतः । तदनावाच्चावश्यं नावी अशुद्धाहारपरि नोगइत्येवं इव्यक्षेत्रकालनावानपेक्षणेन नातिकंडूयितं श्रेयोनवतीति नावः ॥१३॥ अपि च । (तत्तेणेत्यादि) तत्वेन परमार्थेन मौनींड्राभिप्रायेण यथावस्थितार्थप्ररूपणया ते गो शालकमतानुसारिणआजीविकादयः कोटिकाअनुशासितास्तदन्युपगमदोषदर्शनद्वारेण शिक्षांग्राहिताः । केनाप्रतिज्ञेन । नास्य मयेदमसदपि समर्थनीयमित्येवं प्रतिज्ञा विद्यते

इत्यप्रतिज्ञोरागद्वेषरहितः साधुस्तेन जानता हेयोपादेयपदार्थपरिच्छेदकेनेत्यर्थः । कथमनु शासिताइत्याह । योयं नवद्भिरन्युपगतोमार्गो यथा यतीनां निष्किंचनतयोपकरणाना वात् परस्परतउपकार्योपकारकानावइत्येषनियतोनिश्चितोन युक्तिसंगतोऽतो येयं वाग् यथा ये पिंमपातं ग्लानस्यानीय ददति ते गृहस्थकल्पाइत्येषा असमीक्ष्याभिहिता अपर्यालोच्योक्ता तथा कृतं करणमपि नवदीयमसमीक्षितमेव यथा वा पर्यालोचितकरणता न वति नवदनुष्ठानस्य तथा नातिकंमूयितं श्रेयइत्यनेन प्राग्लेशतः प्रतिपादितं पुनरपि सदृष्टांतं तदेव प्रतिपादयंति ॥ १४ ॥

एरिसा जावई एसा, अग्गवेणु वकरिसिता ॥ गिहिणो अभिहडं
सेयं, नुंजीउ णउ निरकणो ॥१५॥ धम्मपन्नवणा जासा, सारंन्ना
ण विसोहिआ ॥ णउ एयाहिं दिठीहिं, पुवमासिं पग्गप्पिअं॥१६॥

अर्थ—एरिसाजावईएसा के० नो एटले आमंत्रणे करीने तमारी एवी वाणीजे ग्लानने आहारलावी नआपवो ते अग्गवेणुव करिसिता के० वंशना अग्री सरखी अत्यंत सुक्ष्म एटले कोइ पण युक्तिने खमे नही एवी तमारी वाणी केही ते कहेछे गिहिणो अनिहडंसेयं के० तमे कह्युं जे गृहस्थनो आणेलो आहार श्रेयछे नुंजीउ के० ते नोगववो परंतु णउनिरकणो के०यतिनो आणेलो आहार यतिने लेवो अयोग्यछे ए तमारुं वचन रूडुं नथी अमे एम कहियेंछैये के गृहस्थनो आण्यो आहार सदोषछे अने यतिनो आण्यो आहार निर्दोषछे ॥ १५ ॥ वली साधु तेने कहेछे के धम्मपन्नवणाजासा के० जे तमारी धर्म प्रज्ञाप्ना एटले धर्मदेशना जे यतिने दाननो देवो नथी सारंनाण विसोहिया के० केमके दान जे छेते ते सारंन जे गृहस्थ तेनी विशुद्धिनो करनार जाणवो कारण के यतितो पोताना अनुष्ठाने शुद्धि पामेछे यतिने दान देवानो अधिकार नथी एयाहिं दिठीहिं के० एम तमारी दृष्टीमां जे आवेछे परंतु ए प्रकारे पुवमासिं के० जे पूर्वे तीर्थंकर थया तेणे णउपग्गप्पिअं के० नथी प्रकल्प्यो एटले जेरीते तमे धर्म कहोछो तेरीतनो धर्म सर्वज्ञे कह्यो नथी ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–(एरिसेति) इदृशी एषा वाक् साधुना ग्लानस्यानीय न देयमिति एषा वाक् अग्रवेणुवत् वंशवत् निकरिषिता डुर्बला यथा वंशाग्रं डुर्बलं स्यात्तथा डुर्बलेत्यर्थः । तामेव वाचं दर्शयति । गृहिणायदन्याहतं तद्यथा नोक्तुंश्रेयोनतु निक्षूणां । गृहस्थान्याहतं जीवोपमर्दहेतुनूतं साधूनामकल्पमिति ॥ १५॥ (धम्मपन्नवणेति) या धर्मस्य प्रज्ञापना देशना यतीनां दानादिना उपकर्तव्यमित्येवंनूता सारंनाणां गृहस्थानां विशोधिका विशुद्धिकारिणी । यतयः स्वस्वानुष्ठानेनैव शुध्यति नतु तेषां दानाधिकारः । एतद्दूषयति । नतुएतानि

दृष्टीनिर्युष्मन्मतानुगताभिः पूर्वमादौ सर्वज्ञैः प्रकल्पितं प्ररूपितमासीत् न हि सर्वज्ञा एवंवि धमसारं ब्रुवते । यद्गृहस्थैर्ग्लानवैयावृत्त्यं कार्यं नतूपयुक्तेन संयतेनेति । ग्लानोपका रोभवद्भिरप्यनुमतोगृहस्थप्रेरणादनुमोदनाच्च ॥ १६ ॥

॥ टीका—यथा प्रतिज्ञातमाह । (एरिसेत्यादि) येयमीदृक्षा वाक् यतिना ग्लानस्यानी य नदेयमित्येषा अग्रे वेणुवंशवत्कर्षिता तन्वी युक्त्यक्षमत्वात् दुर्बलेत्यर्थः । तामेव वा चं दर्शयति । गृहिणां गृहस्थानां यदन्याहृतं तद्यतेर्भोक्तुं श्रेयः श्रेयस्करं नतु भिक्षूणां संबंधीति । अग्रे तनुत्वं चास्या वाचएवं द्रष्टव्यं । यथा गृहस्थान्याहृतं जीवोपमर्देन भव ति यतीनांतूद्गमादि दोषरहितमिति ॥ १५ ॥ किंच । (धम्मपण्णवणेत्यादि) धर्मस्य प्र ज्ञापना देशना यथा यतीनां दानादिनोपकर्तव्यमित्येवंभूता या सा सारंभाणां गृहस्था नां विशोधिकायतयस्त्वनुष्ठानेनैव विशुध्यंति । नतु तेषां दानाधिकारोस्तीत्येतत् दूष यितुं प्रक्रमते । नतु नैवेताभिर्यथागृहस्थैनैव पिंडदानादिना यतेर्ग्लानाद्यवस्थायामु पकर्तव्यं । नतु यतिभिरेव परस्परमित्येवंभूताभिर्युष्मदीयाभिर्दृष्टिभिर्धर्मप्रज्ञापनादि भिः पूर्वमादौ सर्वज्ञैः प्रकल्पितं प्ररूपितं प्रख्यापितमासीदिति । यतो नहि सर्वज्ञाएवं भूतं परिफल्गुप्रायमर्थं प्ररूपयंति यथा असंयतैरेषणाद्यनुपयुक्तैर्ग्लानादेर्वैयावृत्त्यं विधे यं नतूपयुक्तेन संयतेनेति । अपिच भवद्भिरपि ग्लानोपकारोऽभ्युपगतएव । गृहस्थप्रेरणा दनुमोदनाच्च ततोभवंतस्तत्कारिणस्तत्प्रद्वेषिणश्चेत्यापन्नमिति ॥ १६ ॥

सव्वाहिं अणुजुत्तीहिं, अचयंताजवित्तए ॥ ततो वायं णिराकि
च्चा, ते भुज्जोवि पगप्भिए ॥ १७ ॥ रागदोसाभिभूयप्पा, मिच्छत्ते
ण अभिद्दुता ॥ आउस्स सरणं जंति, टंकणाइव पव्वयं ॥ १८ ॥

अर्थ—सव्वाहिं के० ते गोसालादिक मतानुसारी अन्य समस्त अणुजुत्तीहिं के० अ नुयुक्ति एटले हेतु दृष्टांते करी अचयंताजवित्तए के० पोताने पक्षे पोतानो पक्ष स्थापन करवाने असमर्थ छता ततो के० ते माटे वायंणिराकिच्चाके० वाद मूकीने तेभुज्जो के० ते फरी फरी विपगप्भिए के० विशेषे धृष्टपणु करे एटले एम कहेके अमारे जेम परं परागतछे तेज श्रेष्ठछे अन्यथी अमारे कांइ काम नथी इत्यादिक कहीने धृष्ट पणु अंगी कार करे पण युक्ति पूर्वक जैनमतानुसारीने उत्तर आपी शके नही ॥ १७ ॥ ते रागदो स के० राग अने द्वेषे अभिभूयप्पाके० पराभव्या थका सारी युक्तिये करी प्रत्युत्तर आ पवाने असमर्थ एवा मिच्छत्तेण के० मिथ्यादृष्टियें करीने अभिद्दुता के० व्याप्तछता आ उस्ससरणंजंति के० ते अनार्य अनेक आक्रोस एटले असभ्य वचने दंड मुष्ट्यादिक हण

वानो जे व्यापार तेनुं शरण ग्रहण करे टंकणाइव पव्वयं के० जेम टंकण एटले म्लेछादिक लोको जेछे ते शस्त्रादिके करी युद्ध करवाने असमर्थ छता पर्वतनो सरण ग्रहण करे तेम पूर्वोक्त कुतीर्थिकोपण युक्तिपूर्वक उत्तर देवाने असमर्थ छता क्रोधनो सरण अंगीकार करे. ॥ १७ ॥

॥ दीपिका–(सव्वेहिंति) तेगोशालमतीयादिगंबरावा सर्वाभिरनुगतयुक्तिभिः स्वपक्षं यापयितुमशक्नुवंतस्थापयितुस्ततोवादं निराकृत्य ते तीर्थिका जूयोपि प्रगल्भितां गताः वादपरित्यागेपि स्वधर्मस्थापनं नामुंचन्निति ॥ १७ ॥ (रागेति) रागद्वेषाभिभूतात्मानो मिथ्यात्वेनाऽभिद्रुताव्याप्तावादं कर्तुमसमर्थाआक्रोशेन शरणं यांति असत्यवचनानि दंभादिहननव्यापारंवा स्वीकुर्वंतीत्यर्थः । यथा टंकणाम्लेछविशेषाः परैरभिद्रुताः पर्वतं शरणंयांति ॥ १७ ॥

॥ टीका–अपिच (सव्वाहीत्यादि) ते गोशालकमतानुसारिणोदिगंबरावा सर्वाभिरर्थानुगताभिर्युक्तिभिः सर्वैरेव हेतु दृष्टांतैः प्रमाणभूतैरशक्नुवंतः स्वपक्षे आत्मानं यापयितुं संस्थापयितुं ततस्तस्माद्युक्तिभिः प्रतिपादयितुं सामर्थ्याभावाद्वादं निराकृत्य सम्यग्हेतुदृष्टांतैर्योवादोजल्पस्तं परित्यज्य ते तीर्थिकाजूयः पुनरपि वादपरित्यागे सत्यपि प्रगल्भिता धृष्टतां गताइदमूचुः । तद्यथा । पुराणं मानवोधर्मः संगोवेदश्चिकित्सितं । आज्ञासिद्धानिचत्वारि न हंतव्यानि हेतुभिः ॥ १ ॥ अन्यच्च किमन्यया बहिरंगया युक्त्या ऽनुमानादिकया ऽत्र धर्मपरिक्षणे विधेये कर्तव्यमस्तियातः प्रत्यक्षएव बहुजन्मसंमतत्वेन राजाद्याश्रयणाच्चायमेवास्मदभिप्रेतोधर्मः श्रेयान्नापरइत्येवं विवदंते तेषामिदमुत्तरं । नह्यत्र ज्ञानादिसाररहितेन बहुनापि प्रयोजनमस्तीति । युक्तं च । एरंमकठरासी जहायगोसीस चंदनपलस्स । मोल्लेन होज्ज सरिसो किंतियमेत्तो गणिज्जंतो ॥१॥ तहविगयणातिरेगो जहारासी सोनचंदनसरिछो ॥ तहनिव्विणाणमहो जणो विमोक्खे विसंवयति ॥२॥ एक्कोसचक्कुगोणविमूढापमाणं जेगइंणयाणंति ॥ संसारगमणगुविलं णिउणस्सयबंधमोरकस्स ॥ ३ ॥ इत्यादि ॥ १७ ॥ अपिच (रायदोस्साइत्यादि) रागश्च प्रीतिलक्षणोद्वेषश्च तद्विपरीतलक्षणस्ताभ्यामभिभूतआत्मायेषां परतीर्थिकानां ते । तथा मिथ्यात्वेन विपर्यस्तावबोधेनातत्वाऽध्यवसायरूपेणाभिद्रुताव्याप्ताः सद्युक्तिभिर्वादं कर्तुमसमर्थाः क्रोधानुगाआक्रोशानसत्यवचनरूपांस्तथा दंभमुष्ट्यादिभिश्च हननव्यापारं यांत्याऽश्रयंते । अस्मिन्नेवार्थे प्रतिपाद्ये दृष्टांतमाह । यथा टंकणाम्लेछविशेषाडुर्जयायदा परेण बलिना स्वानीकादिनाभिद्रूयंते तदा ते नानाविधैरप्यायुधैर्योद्धुमसमर्थाः संतः पर्वतं शरणमाश्रयंत्येवं तेपि कुतीर्थिकावादपराजिताः क्रोधाद्युपहत

दृष्टयआक्रोशादिकं शरणमाश्रयंते । नच ते इदमाकलय्य प्रत्याक्रोष्टव्याः । तद्यथा । अ क्रोसहणणमारण धम्मफंसाणवाल सुलनाणं । लानंमन्नइधीरो जहुत्तराणंअनावंमि॥१८॥

बहुगुणप्पगप्पाइं, कुज्जाअत्तसमाहिए ॥ जेणन्नेणोविरुज्झेज्जा, तेण तंतं समायरे ॥ १९ ॥ इमं च धम्म मादाय,कासवेण पवेइयं ॥ कुज्जा भिक्खू गिलाणस्स, अगिलाए समाहिए ॥ २० ॥ संखाय पेसलं धम्मं, दिहिमं परिनिव्वुडे ॥ उवसग्गे नियामित्ता,आमोक्खाए परिव्वएज्जा सित्तिबेमि ॥ २१ ॥ इति ततीय अज्झयणस्स तईउ उद्देसो सम्मत्तो.

अर्थ—परंतु जे साधुछे ते तेमनी साथे आक्रोशादिक करे नही किंतु ज्यां बहुगुण के० घणागुणछे एटले प्रतिज्ञा हेतु दृष्टांत उपनय नैगम नय इत्यादिक प्पगप्पाइं के० प्रकल्पिये एवा मध्यस्थपणाना कारणने कुज्जा के० करे वली जे थकी अत्त के० आत्मा समाहिए के० समाधिवंत रहे एवा अनुष्ठान करे जेणन्नेणो विरुज्झेज्जा के० जे अनुष्ठानकखाथी अथवा जे वचन बोल्या थकी अन्यपुरुष विरोध नपामे तेवुं कार्य करे तेण के० तेमाटे तंतं के० ते ते विधि समायरे के० समाचरे ॥१९॥ एरीते परमत निराकरण करी उपसंहारे स्वमत स्थापन करतां कहेछे इमंके० ए पूर्वोक्त वचनरूप धम्म मादाय के० धर्मने ग्रहण करीने ते धर्म कासवेण पवेइयंके० काश्यप एटले श्रीमाहावीर देवे प्रवेद्यो च शब्द थकी अन्य मतिनु निराकरण करीने प्रवेद्यो एटले कह्यो ते केवीरीते तो के भिक्खूके० साधु जे छे ते गिलाणस्स के० गिलाननी कुज्जाके० वैयावच्च करे अगिलाए समाहिए के० परंतु अगिलान पणे करे जेम पोताने तथा गिलानने समाधि उत्पन्न थाय तेवीरीते वैयावच्च करे ॥२०॥ संखायपेसलंधम्मं के० ते पेसल एटले मनोहर एवा सर्वज्ञ प्रणीत श्रुत चारित्ररूप धर्मने सम्यक् प्रकारे जाणीने दिहिमं के० दृष्टीमंतसाचा तत्वनो जाण परिनिव्वुडेके०परिनिवृत्त एटले क्रोधना उपशम थकीशीतलनूत थएलो एवो साधु तेने उवसग्गेके० उपसर्ग उदय आव्या छता नियामित्ताके० तेने सहन करीने आमोक्खाय के० मोक्ष प्राप्तिसुधी परिव्वएज्जासि के० शुद्ध संयम पालतो थको प्रवर्त्ते. तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो. ॥२१॥ इति श्रीद्वितीयसूत्रकृतांगे प्रथमश्रुतस्कंधे तृतीयाध्ययने उपसर्ग परिज्ञानाम स्तृतीयोद्देशकः समाप्तः ॥

॥ दीपिका–(बहुगुणेति) । बह्वोगुणाः स्वपक्षसिद्ध्यादयः प्रकल्पंते प्रादुर्भवंति येषु तानि बहुगुणप्रकल्पानि प्रतिज्ञाहेतुदृष्टांतोपनयनिगमनादीनि मध्ये स्ववचनानि वाऽनुष्ठानानि साधुर्वादकाले कुर्यात् । कीदृशः साधुः आत्मसमाधिकश्चित्तस्वास्थ्यवान् । तत्र

त्कुर्यात्साधुर्येन कृतेनान्यस्तीर्थिकोनविरुध्येत नविरोधं गच्छेत् । तेन तत्तदविरुद्धं समाचरेत् ॥१ए॥ (इममिति) इमं वक्ष्यमाणं धर्ममादाय काश्यपेन श्रीवीरेण प्रवेदितं प्ररूपितं कुर्याद्भिक्षुः साधुर्ग्लानस्य वैयावृत्त्यादिकं अग्लानतया यथाशक्ति समाहितः समाधिंप्राप्तः । यथा ग्लानस्य समाधिरुत्पद्यते स्वस्य वा योगानविषीदंति तथा वैयावृत्त्यादिकं विधेयमिति ॥ २० ॥ (संखाएति) । पेशलं श्रेष्ठं सर्वज्ञोदितं धर्मं संख्याय ज्ञात्वा दृष्टिमान् दर्शनोपेतः परिनिर्वृतोरागद्वेषत्यागाच्छीतलउपसर्गाननुकूलप्रतिकूलान् नियम्य नियंत्र्य आमोक्षाय सर्वकर्मक्षयाय परिव्रजेत्संयमोद्यतोजवेत् ससाधुरिति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥२१॥ इति तृतीयाध्ययने तृतीयोद्देशकः समाप्तः ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (बहुगुणेत्यादि) । बह्वोगुणाः स्वपक्षसिद्धिपरपक्षदोषोद्भावनादयोमाध्यस्थ्यादयोवा प्रकल्पंते प्राडुर्जवंत्यात्मनि येष्वनुष्ठानेषु तानि बहुगुणप्रकल्पानि प्रतिज्ञाहेतुदृष्टांतोपनयनिगमनादीनि माध्यस्थ्यवचनप्रकाराणि वा अनुष्ठानानि साधुर्वादकाले अन्यदा वा कुर्यात् विदध्यात् सएव विशिष्यते । आत्मनः समाधिश्चित्तस्वास्थ्यं यस्य सजवत्यात्मसमाधिकः। एतडुक्तं जवति । येन येनोपन्यस्तेन हेतुदृष्टांतादिना आत्मसमाधिः स्वपक्षसिद्धिलक्षणोमाध्यस्थ्यवचनादिना वा परानुपघातलक्षणः समुत्पद्यते तत् तत् कुर्यादिति । तथा येनानुष्ठितेन वा जाषितेन वा अन्यतीर्थिकोधर्मश्रवणादौ वान्यः प्रवृत्तोन विरुध्येत नविरोधं गच्छेत् तेन पराविरोधकारणेन तत्तदविरुद्धमनुष्ठानं वाचनं वा समाचरेत् कुर्यादिति ॥ १ए ॥ तदेवं परमतं निराकृत्योपसंहारद्वारेण स्वमतस्थापनायाह । (इमंचेत्यादि) । इममिति वक्ष्यमाणं पूर्वोक्तमूलोत्तरगुणरूपं चारित्राख्यं वा डुर्गतिधारणाद्धर्ममादायोपादाय आचार्योपदेशेन गृहीत्वा । किंजूतमिति । तमेव विशिनष्टि । काश्यपेन श्रीमन्महावीरवर्द्धमानस्वामिनोत्पन्नदिव्यज्ञानेन सदेवमनुजायां पर्षदि प्रकर्षेण यथावस्थितार्थनिरूपणद्वारेण वेदितं प्रवेदितं । चशब्दात्परमतं च निराकृत्य निक्षणशीलोनिक्षुर्ग्लानस्यापटोरपरस्य निक्षोर्वैयावृत्त्यादिकं कुर्यात् । कथं कुर्यादेतदेव विशिनष्टि। स्वतोप्यग्लानतया यथाशक्ति समाहितः समाधिंप्राप्तइति । इदमुक्तं जवति । यथा यथात्मनः समाधिरुत्पद्यते तथा पिंमपातादिकं विधेयमिति ॥ २० ॥ किं कृत्वैतद्विधेयमितिदर्शयितुमाह । (संखायेत्यादि) । संख्याय ज्ञात्वा कं धर्मं सर्वज्ञप्रणीतं श्रुतचारित्राख्यजेदजिन्नपेशलमिति । सुश्लिष्टं प्राणिनामहिंसादिप्रवृत्त्या प्रीतिकारणं । किंजूतमिति । दर्शनं दृष्टिः समुद्भूतपदार्थगतं सम्यग्दर्शनमित्यर्थः । सा विद्यते यस्याऽसौ दृष्टिमान् यथा व्यवस्थितपदार्थपरिच्छेदवानित्यर्थः । तथा परिनिर्वृतोरागद्वेषविरहाच्छांतीजूतस्तदेवं धर्मं पेशलं परिसंख्याय दृष्टिमान् परिनिर्वृतउपसर्गाननुकूलप्रतिकूलान्नियम्य सं

यन्य सोढा नोपसर्गैरुपसर्गितोऽसमंजसं विदध्यादित्येवमामोक्षायाशेषकर्मक्षयप्राप्तिं या वत्परिसमंतात् व्रजेत्संयमानुष्ठानोद्युक्तोनवेत् परिव्रजेदिति । परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २१ ॥ उपसर्गपरिज्ञायास्तृतीयोद्देशकः समाप्तः ॥ ३ ॥

अथ तृतीयाध्ययने चतुर्थोद्देशकस्य प्रारंनः

आहं सुमहापुरिसा, पुव्विं तत्ततवोधणा ॥ उदयेण सिद्धिमाव न्ना, तत्र मंदोवसीयति ॥ १ ॥ अनुंजिया नमी विदेही, रामगुत्ते य नुंजिआ ॥ बाहुए उदगं नोच्चा, तहा तारागणेरिसी ॥ २ ॥

अर्थ—आहं सुमहा पुरिसाके० हवे ते परमार्थना अजाण एम कहेछेके महा पुरुष प्रधान पुरुष तारागणऋषि प्रमुख तेणे एवीरीते आहं एटले कह्युंछे शुंकह्युंछे तोके पुव्विंत तत्तके०पूर्वे कालनेविषे तपश्र्याना करनार तवोधणाके० तपरूप धनना धणी एवा अनेक ऋषीश्वर ते उदयेणके० उदक एटले शीतल पाणीनो परिनोग करता थका सिद्धिमाव न्ना के० सिद्धिने पाम्या तेरीतनुं अन्य तीर्थिनुं वचन सांनलीने तत्रमंदोवसीयति के०मंद अज्ञानी बापडा तत्र एटले तेहिज शीतलोदकने विषे राचे ; पण प्राशुक उदकनो नोग नकरे, एरीते संयमानुष्ठानने विषे सीदाय. ॥ १ ॥ हवे कोइक कुतीर्थि होयते सा धुने विप्रतारवाने अर्थे आवीरीते कहेके अनुंजिया के० अशनादिकने अण नोगवतो एवो नमीविदेही के० नमीराजा विदेह देशमां उत्पन्न थयेलो हतो, ते मुक्ति पोहोतो ; तथा अन्य तीर्थिज कहेछे के रामगुत्तेय नुंजिया के० रामगुप्त राजऋषीश्वर आहा र नोगवतो थको मुक्ति पोहोतो, तथा बाहुए के० बाहुक ऋषीश्वर तहा के० तेमज तारागणेरिसी के० तारागणनामा ऋषीश्वर ए बंने उदगंनोच्चा के० शीतल पाणीना परिनोग थकी सिद्धिने पाम्या ॥ २ ॥

॥ दीपिका—सांप्रतं चतुर्थआरन्यते । सच साधुना शीलरक्षणाय यत्नोविधीयतइत्य र्थवान् तस्य चेदमादिमं सूत्रं । (आहंसुइति) केचिदविज्ञाततत्वाआहुरुक्तवंतः । यथा म हापुरुषावल्कलचीरितारागणर्षिप्रमुखाः पूर्वं पूर्वकाले तप्तमनुष्ठितं तपएव धनं येषांते तप्ततपोधनाः पंचाग्न्यादिसाधकास्तएवंनूताउदकेन स्वचित्तोदकपरिनोगेण उपलक्ष णात्कंदमूलादिनोजिनः सिद्धिमापन्नाः सिद्धिं गताः । तत्रैवंनूतार्थाकर्णने मंदोमूर्खोऽ वसीदति संयमे सीदति शीतोदकादिपरिनोगे प्रवर्तते । तत्रैवं वेति तेषां तापसानां कुतश्चिज्जातिस्मरणादिप्रत्ययादाविर्नूतस्वसम्यग्दर्शनानां संयमप्रतिपत्त्याऽगतज्ञानावरणा

दिकर्मणां नरतादीनामिव मुक्तिः संजाता न तु शीतोदकपरिन्नोगादिति ॥ १ ॥ (अ नुंजिएति) केचित्कुतीर्थिकाअथवा स्ववर्ग्याएवं शीतलविहारिण एवमाहुः। नमी राजा विदेहपुरवासिनोलोकावैदेहास्तेयस्य संति स वैदेही अशनादिकमनुक्त्वा सिद्धिं गतः। रामगुप्तश्च राजर्षिराहारादिकंनुक्त्वैव नुंजानएव सिद्धिं गतः । तथा बाहुकः शीतोद कादिपरिन्नोगं कृत्वा तथा तारागणनामा मुनिः शीतोदकादिपरिन्नोगात्सिद्धः ॥ २ ॥

॥टीका—उक्तस्तृतीयोद्देशकः सांप्रतं चतुर्थः समारन्यते। अस्यचायमनिसंबंधः। इहानंतरो देशके अनुकूलप्रतिकूलोपसर्गाः प्रतिपादितास्तैश्च कदाचित्साधुः शीलात् प्रच्याव्येत तस्य च शीलस्खलितस्य प्रज्ञापनानेन प्रतिपाद्यते इति। अनेन संबंधेनायातस्यास्योद्देशकस्यादिमं सू त्रं (आहंसुइत्यादि)। के चन अविदितपरमार्थाआहुरुक्तवंतः। किंतदित्याह। यथा महापुरु षाःप्रधानपुरुषावल्कलचीरितारागणर्षिप्रनृतयः। पूर्वं पूर्वस्मिन् काले तप्तमनुष्ठितं तपएव ध नं येषां ते तप्ततपोधनाः पंचाग्न्यादितपोविशेषेण निष्टप्तदेहास्तएवंनूताः शीतोदकपरिन्नो गेन उपलक्षणार्थत्वात् कंदमूलफलाद्युपन्नोगेन च सिद्धिमापन्नाः सिद्धिं गतास्तत्रैवंनूता र्थसमाकर्णने तदर्थसद्भावावेशात् मंदोझोस्नानादित्याजितः प्रासुकोदकपरिन्नोगनग्नः संय मानुष्ठाने प्रविषीदति। यदि वा तत्रैव शीतोदकपरिन्नोगे विषीदति लगति निमज्जतीति यावत्। न त्वसौ वराकएवमवधारयति यथा तेषां तापसादिव्रतानुष्ठायिनां कुतश्चि ज्जातिस्मरणादिप्रत्ययादाविर्नूतसम्यग्दर्शनानां मौनींद्नावसंयमप्रतिपत्त्या अपगतज्ञा नावरणादिकर्मणां नरतादीनामिव मोक्षावाप्तिर्न तु शीतोदकपरिन्नोगादिति॥१ ॥ किंचा न्यत्। (अनुंजियाणमित्यादि) केच न कुतीर्थिकाः साधुप्रतारणार्थमेवमूचुः । यदिवा स्ववर्ग्याः शीतलविहारिणएत द्वक्ष्यमाणमुक्तवंतस्तद्यथा निमीराजा विदेहोनाम जनप दस्तत्रनवावैदेहास्तन्निवासिनोलोकास्तेऽस्य संतीति वैदेही। सएवंनूतो निमीराजा अश नादिकमनुक्त्वा सिद्धिमुपगतस्तथा रामगुप्तश्च राजर्षिराहारादिकं नुक्त्वैव नुंजानएव सि द्धिं प्राप्तइति। तथा बाहुकः शीतोदकादिपरिन्नोगं कृत्वा तथा नारायणोनाममहर्षिः परिणतोदकादिपरिन्नोगात्सिद्धइति ॥ २ ॥

आसिले देवले चेव, दीवायण महारिसी, पारासरे दगं नो
च्चा, बीयाणि हरियाणिया॥ ३॥ एते पुव्वं महापुरिसा, आहिता
इह संमता॥ नोच्चा बीउदगं सिद्धा, इति मेयमणुस्सुअं॥ ४॥

अर्थ—वली आसिले के० आसिल तथा देवले के० देवल चेव के० एमज दीवाय णमहारिसी के० द्वीपायन महाऋषीश्वर अने पारासरे के० पाराशर ए सर्व ऋषीउ उ

दगंनोच्चा के० शीतलपाणीने नोगवी तथा बीयाणि के० बीजकाय हरियाणिय के० हरिकायना परिनोग थकी सिद्ध थया ॥ ३ ॥ एते के० ए नेमीराज रुषी प्रमुख पुवं महापुरिसाके० पूर्वकालनेविषे माहा पुरुष (आहिताके०)कह्या बे ते इहके० आलोकने विषे संमता के० प्रसिद्धबे ते कुतीर्थिक अथवा साताशील स्वयूथिक एम कहे के ए सर्वे बीउदगं के० बीज सचेतपाणीने नोच्चा के० नोगवीने सिद्धा के० सिद्ध थया इतिके० एम मेयं के० ए अमे महानारतादिक तथा पुराणोमांथी अणुस्सुयं के० सांनल्युंबे. माटे अमे पण एवीज रीते मुक्ति साधशुं ॥ ४ ॥

॥ दीपिका–(असिलेति) । असिलोनाम महर्षिस्तथा देवलोद्वैपायनः पराशरारूयइत्यादयः शीतोदकबीजहरितादिनोजिनःसिद्धाः ॥ ३ ॥ (एतइति) एते पूर्वोक्तामहापुरुषानम्यादयः पूर्वकाले त्रेनाद्वापारादौ आख्याताः प्रसिद्धाः इहाप्यार्हतमते रुषिनाषितादौ केचन संमता इत्येवं कुतीर्थिकाः प्रोचुः । एते सर्वेपि बीजोदकादिनोगात्सिद्धाइति मया नारतादौ पुराणे श्रुतं ॥ ४ ॥

॥टीका–अपिच । (असिलेइत्यादि) । असिलोनाम महर्षिर्देवलोद्वैपायनश्च तथा पराशरारूयइत्येवमादयः शीतोदकबीजहरितादिपरिनोगादेव सिद्धाइति श्रूयते ॥३॥ एतदेव दर्शयितुमाह । (एतेइत्यादि) एते पूर्वोक्तानम्यादयोमहर्षयः पूर्वमिति पूर्वस्मिन्काले त्रेताद्वापरादौ महापुरुषाइति प्रधानपुरुषाआसमंतात् ख्याताः प्रख्याताराजर्षित्वेनप्रसिद्धिमुपगताइहाप्याहितप्रवचने रुषिनाषितादौ केचन संमताअनिप्रेताइत्येवं कुतीर्थिकाः स्वयूथ्यावा प्रोचुः । तद्यथा । एते सर्वेपि बीजोदकादिकं जुक्त्वा सिद्धाइत्येतन्मया नारतादौ पुराणे श्रुतं ॥ ४ ॥

तब मंदा विसीअंति, वाहछिन्नाव गद्दना ॥ पिठतो परिसप्पंति पिठसप्पी च संनमे ॥ ५ ॥ इह मेगेउ नासंति, सातं सातेण विजती ॥ जे तब आरिअं मग्गं, परमं च समाहिए ॥ ६ ॥

अर्थ–तबके० त्यां कुशास्त्र जे नारतपुराणादिक तेने सांनलवे करी तथा परिसह उपने थके मंदाविसीअंति के० कोइक मंद अज्ञानी चारित्र थकी सीदाय कोनीपेरे तोके वाहछिन्नावगद्दना के० जेम नार थकी नागा एवा जे गर्दन ते मार्गमांज नार नाखीदेइने नासीजाय अथवा पिठतोपरिसप्पंति के० पृष्ट सर्प्प एटले नग्न गति पुरुष संनमे के० संभ्रमी पणे अग्न्यादिक उपद्रव उपने थके पिठसप्पिय के० नाशीजनार मनुष्य

नी पडवाडे दोडतो जाय परंतु अग्रगामि नथाय अग्नीमांहेज विनाश पामे तेम जे शीतल विहारी छे तेपण मुक्तिना अग्रगामी नथाय अनंतोकाल संसारमांहेज नमे ॥५॥ इहके० ए मोक्षमार्ग विचारवाने प्रस्तावे एगेउ के० कोइक शाक्यादिक अथवा स्वतीर्थि लोच प्रमुख कष्टे पीडया थका एम कहेके सातंके० ते जे मुक्तिना सुख छे ते सातेणके० सुखे करीज विज्जती के० थाय परंतु डुःख थकी सुख न थाय. यथा शालिबीजाच्छाल्यंकुरो, जायतेनयवांकुर इतिवचनात् माटे लोचादिक कष्ट थकी मुक्ति शीरीते थशे एवीरीते बोलीने जेके० जे कोइक शाक्यादिक तत्र के० त्यां मोक्षविचारणाने प्रस्तावे आरिय के० श्रीतीर्थंकर देव तेनो प्ररुप्यो एवो जे मग्गं के० मोक्षमार्ग तेने मूकी आपेछे, ते परमंचसमाहियं के० परम समाधिनो कारण जे ज्ञान दर्शन अने चारित्ररूपछे तेने त्यागीने घणो संसारमांहे परिभ्रमण करेछे. तेहिज देखाडेछे ॥ ६ ॥

॥ दीपिका-(तत्रेति) तत्र कुमतश्रवणोपसर्गे मंदाविपीदंति संयमे सीदंति । यथा वाहेन नारेण छिन्नास्त्रुटितारासनाः सीदंति । कोर्थः । यथा रासनानारपीमिता मार्गएव निपतंति एवं ते संयमनारं त्यक्त्वा शीतलविहारिणः स्युः । यथा पीठसर्पिणो नग्नगमनतया अग्न्यादिनये उद्भ्रांतनयनाः पश्चान्न परिसर्पंति नाग्रगामिनोनवंति अपितु तत्रैवाग्न्यादिसंभ्रमे विनश्यंति । एवं तेपि शीतलविहारिणोन मोक्षगामिनः स्युः अपितु तत्रैव संसारे अनंतकालं तिष्ठंति ॥ ५ ॥ (इहेति) इह मोक्षविचारे एके शाक्यादयः स्वतीर्थ्यावा लोचादिपीमिताः। तुशब्दोविशेषणे । नाषंते । तथाहि। सातं सुखं सातेन सुखेन विद्यते स्यात् । यतउक्तं । सर्वाणि सत्वानि सुखे रतानि, सर्वाणि डुःखाच्च समुद्विजंति ॥ जीवेषु तस्मात्सुखमेव दद्यात् सुखप्रदानाल्लनते सुखानि ॥ १ ॥ इत्यात्मसुखान्मुक्तिसुखं स्यात् नतु लोचादिडुःखात् । यडुक्तं । मणुणं नोअणं नुच्चा, मणुणं सयणासणं ॥ मणुणंसि अगारंसि, मणुणं जायए मुणी ॥१ ॥ तथा । मृद्वी शय्या प्रातरुत्थाय सेव्या, नुक्तं मध्ये पानकं वाऽपराह्णे ॥ डाक्षाखंमं शर्करां चार्धरात्रे मोक्षश्चांते शाक्यपुत्रेण दृष्टइति । अतोमनोज्ञाहारादेश्चित्तस्वास्थ्यं ततः समाधिः सएव मुक्तिरिति । ततः सुखेन सुखावाप्तिर्न तु लोचादिक्लेशेनेति एवंये नाषंते तथा आर्यं जैनेंद्रमार्गं परमंच समाधिज्ञानदर्शनचारित्रात्मकं येत्यजंति ते सदा नवे नाम्यंतीति ॥६ ॥

॥टीका-एतडुपसंहार द्वारेण परिहरन्नाह। (तत्रेत्यादि) तत्र तस्मिन् कुश्रुत्युपसर्गोदये मंदाअज्ञानानाविधोपसाध्यं सिद्धिगमनमवधार्य विषीदंति संयमानुष्ठानेन पुनरेत द्वदंत्यज्ञाः ।तद्यथा। येषां सिद्धिगमनमनूत् तेषां कुतश्चिन्निमित्तात् जातजातिस्मरणादिप्रत्ययानामवाप्तसम्यक्ज्ञानचारित्राणामेव वल्कलचीरिप्रनृतीनामिव सिद्धिगमनमनूत् । न पुनः क

दाचिदपि सर्वविरतिपरिणामनावलिंगमंतरेण शीतोदकबीजाद्युपनोगेन जीवोपमर्दप्राये ण कर्मक्षयोऽवाप्यते । विषीदने दृष्टांतमाह । वहनं वाहोनारो वहनं तेन जिन्नाः कर्पि तास्त्रुटितारासनाइव विषीदंति । यथा रासनागमनपथएव प्रोज्झितनारानिपतंति ए वं ते प्रोज्य संयमनारं शीतलविहारिणोनवंति । दृष्टांतांतरमाह । यथा पृष्ठसर्पिणोनग्न गतयोऽग्न्यादिसंभ्रमे सत्युद्भ्रांतनयनाः समाकुलाः प्रनष्टजनस्य पृष्ठतः पश्चात्परिसर्पं ति नाग्रगामिनोनवंत्यपि तु तत्रैवाग्न्यादिसंभ्रमे विनश्यंत्येवं तेपि शीतलविहारिणो मोक्षं प्रतिप्रवृत्ताअपि तु न मोक्षगतयोनवंत्यपि तु तस्मिन्नेव संसारे अनंतमपि कालं यावदासतइति ॥ ५ ॥ मतांतरं निराकर्तुं पूर्वपक्षयितुमाह । (इहमेगेइत्यादि) । इहेति मोक्षगमनप्रस्तावे एके शाक्यादयः स्वयूथ्यावा लोचादिनोपतप्ताः । तुशब्दः पूर्वस्मात् शी तोदकापरिजोगाद्विशेषमाह । नाषंते ब्रुवते । मन्यंते च इति क्वचित्पाठः । किंतदित्याह । सातं सुखं सातेन सुखेनैव विद्यते नवतीति । तथाच वक्तारोनवंति । सर्वाणि सत्वानि सुखे रतानि सर्वाणि ङःखाच्च समुद्विजंति । तस्मात्सुखार्थीसुखमेव दद्यात् सुखप्रदाता लन ते सुखानि॥१॥ युक्तिरप्येवमेव स्थिता । यतः कारणानुरूपं कार्यमुत्पद्यते । तद्यथा । शा लिबीजाच्छाल्यंकूरोजायते न यवांकुरइत्येव प्रीत्यात्मसुखान्मुक्तिसुखमुपजायते न तुलो चादिरूपात् ङःखादिति । तथाह्यागमे ऽप्येवमेव व्यवस्थितं ॥ मणुसं नोयणं नोच्चा मणु सं सयणासणं। मणुसंति अगारंसि मणुसं जायए मुणी ॥१॥ तथा मृद्वी शय्याप्रातरुत्थाय पेया, नुक्तं मध्ये पानकं चापराह्णे । द्राक्षाखंडं शर्करा चार्धरात्रे मोक्षश्चांते शाक्यपुत्रेण दृष्टः ॥१॥इत्यतोमनोज्ञाहारविहारादेश्चित्तस्वास्थ्यं ततः समाधिरुत्पद्यते समाधेश्च मुक्त्यवाप्तिर तः स्थितमेतत्सुखेनैव सुखावाप्तिर्न पुनः कदाचनापि लोचादिना कायक्लेशेन सुखावाप्तिरि ति स्थितं । इत्येवं व्यामूढमतयोये केचन शाक्यादयस्तत्र तस्मिन्मोक्षमार्गप्रस्तावे स मुपस्थिते आराज्ञातः सर्वहेयधर्मेन्यइत्यार्योमार्गोजैनेंद्रशासनप्रतिपादितोमोक्षमार्ग स्तं ये परिहरंति । तथा च । परमं च समाधिज्ञानदर्शनचारित्रात्मकं ये त्यजंति तेऽज्ञाः संसा रांतवर्तिनः सदा नवंति । तथाहि । यत्तैरनिहितं कारणानुरूपं कार्यमिति तन्नायमेकां तोयतः शृंगाच्छरोजायते गोमयाद्वृश्चिकोगोलोमाविलोमादिन्योदूर्वेति । यदपि मनोज्ञा हारादिकमुपन्यस्तं सुखकारणत्वेन तदपि विषूचिकादिसंनवाद्यनिचारीति । अपिचेदं वै षयिकं सुखं ङःखप्रकारहेतुत्वात् सुखानासतया सुखमेव न नवति । तदुक्तं । ङःखात्म केषु विषयेषु सुखानिमानः सौख्यात्मकेषु नियमादिषु ङःखबुद्धिः । उत्कीर्णवर्णवदपंक्तिरि वान्यरूपा सारूप्यमेति विपरीतगतिप्रयोगात्॥१॥इति । कुतस्तत्परमानंदरूपमस्यात्यंतिकै कांतिकम्य मोक्षसुखस्य कारणं नवति । यदपि लोचनूशयननिक्षाटनपरपरिनवक्षुत्पिपासा दंशमशकादिकं ङःखकारणत्वेन नवतोपन्यस्तं तदप्यल्पसत्वानामपरमार्थदृशां महापु

रुषाणां तु स्वार्थान्युपगमप्रवृत्तानां परमार्थचिंतकानां महासत्वतया सर्वमेवैतत्सुखायैवे ति। तथाचोक्तं। तणसंथारनिविस्रो विमुनिवरो नट्ठरागमयमोहो॥ जंपावइ मुत्तिसुहं कत्तो तंचक्कवट्टीवि॥१॥ तथा। दुष्कृतसंख्यया च महतां क्षांतं पदं वैरिणः कायस्याशुचिता विरा गपदवी संवेगहेतुर्जरा॥ सर्वत्यागमहोत्सवाय मरणं जातिः सुहत्प्रीतये संपद्भिः परिपूरितं जगदिदं स्थानं विपत्तेः कुतइति॥१॥ अपिचैकांतेन सुखेनैव सुखेऽन्युपगम्यमाने विचित्रसं साराभावः स्यात्तथा स्वर्गस्थानां नित्यसुखिनां पुनरपि सुखानुभूतैस्तत्रैवोत्पत्तिः स्यात्तथा नारकाणां च पुनर्दुःखानुभवात्तत्रैवोत्पत्तेर्न नानागत्या विचित्रता संसारस्य स्यान्नचैतत् दृष्टमिष्टं चेति॥६॥

मा एयं अवमन्नंता, अप्पेणं लुंपहा बहुं॥ एतस्स अमोक्खाए,
अयहारिव्व जूरह॥७॥ पाणाइवाते वट्टंता, मुसावादे असं
जता॥ अदिन्नादाणे वट्टंता, मेहुणेय परिग्गहे॥८॥

अर्थ-मा के० अहो दर्शनीउं, तमे एयं के० सुख थकी सुख थाय एवां वचने करी अवमन्नंता के० श्रीजिनेंद्रना मार्गने अवहिलता थका अप्पेणं के० अल्प विषयने अ र्थे बहुं के० घणा एवांजे मोक्षना सुख तेने लुंपहा के० गमावोडो; एतस्स के० एवा असत्य पक्षने अमोक्खाए के० न मूकवे करीने अयहारिव्व के० लोहवाहकनी पेरे जूर ह के० फूरशो; जेम कोइक बे जण हता तेणे लोहनो भार उपाड्यो हतो, पढी मार्गे जता सुवर्ण दीतुं तेवारे एकजणे लोहनां भारने नाखी देइने अमुलक सुवर्ण व स्तु ग्रहण करी अत्यंत धनवंत थयो, अने बीजायें लोहनो भार नाखी दीधो नहीं, ते पढी फूरवा लागो, तेम तमे पण जूरशो. ए कथा सविस्तर श्रीरायप्रश्नि सूत्रमांहे त्यां थकी जोइ लेवी॥७॥ पाणाइवातेवट्टंता के० प्राणातिपातने विषे वर्त्तता मुसावादे के० मृषावादने विषे वर्त्तता अदिन्नादाणेके० अदत्तादान तथा मेहुणेके० मैथुन च के० वली परिग्गहेके० परिग्रह एटलाने विषे वट्टंताके० वर्त्तता थका तमे असंजताके० असंय तिडो अल्प विषयसुखमां पड्या थका घणुं एवुं जे मोक्ष सुख तेनो विनाशकरोडो.॥८॥

॥ दीपिका-(माएति) एनं जैनमार्गं अवमन्यमानाः परिहरंतो ऽल्पेन सुखेन मा बहुं मोक्षसुखं लुंपथ विध्वंसथ। तथा एतस्यासत्पक्षस्यामोक्षेपरित्यागे अयोहारीव (जूरहत्ति) आत्मानं कदर्थयते। यथाऽयसोलोहस्याहर्ता ऽपांतराले रूप्यादिलाभेपि दूरमानीतमिति लोहं नोज्झितवान् पश्चादलाभे जूरितवान् पश्चात्तापं कृतवान् एवं यू

यमपि ॥ ७ ॥ (पाणाइवेति) यूयं प्राणातिपाते मृषावादे संयताः संतोवर्तमानाःतथा ऽदत्तादाने मैथुने परिग्रहे वर्तमानाश्चल्पेन सुखेन बहु हारयथ ॥ ८ ॥

॥ टीका—अतोव्यपदिश्यते । (माएयमित्यादि) एनमार्यं मार्गं जैनेंद्रप्रवचनं सम्यक् ज्ञानदर्शनचारित्रमोक्षमार्गप्रतिपादकं सुखं सुखेनैव विद्यते इत्यादिमोहेन मोहितामवमन्यमानाः परिहरंतोऽल्पेन वैषयिकेण सुखेन माबहु परमार्थसुखं मोक्षाख्यं लुंपथ विध्वंसथ तथाहि । मनोज्ञाऽहारादिना कामोद्रेकस्तदुद्रेकाच्च चित्तास्वास्थ्यं न पुनः समाधिरिति । अपि चैतस्यासत्पक्षाभ्युपगमस्यामोक्षे परित्यागे सति । (आयो हारिव्वजूरहत्ति) आत्मानं यूयं कदर्थयथ । यथैव केवलं यथावाऽयसो लोहस्याहर्त्ता अपांतराले रूप्यादिलाभे सत्यपि दूरमानितमिति कृत्वा नोज्झितवान् । पश्चात् स्वावस्थानावाप्तावल्पलाभे सति जूरितवान् पश्चात्तापं कृतवान् एवं भवंतोपि जूरयिष्यंतीति ॥७॥ पुनरपि सातेन सातमित्येवं वादिनां शाक्यानां दोषोद्भिावयिषयाह । (पाणाइवायेत्यादि) प्राणातिपाते मृषावादादत्तादानमैथुनपरिग्रहेषु वर्तमानाअसंयतायूयं वर्तमानसुखैषिणोल्पेन वैषयिकसुखाभासेन परमार्थिकमेकांतात्यंतिकं बहु मोक्षसुखं विलुंपथेति । किमिति । यतः पचनपाचनादिषु क्रियासु वर्तमानाः सावद्यानुष्ठानारंभतया प्राणातिपातमाचरथ । तथा येषां जीवानां शरीरोपभोगोभवद्भिः क्रियते तानि शरीराणि तत्स्वामिभिरदत्तानीत्यदत्तादानाचरणं । तथा गोमहिष्यजोष्ट्रादिपरिग्रहात्तन्मैथुनानुमोदनादब्रम्हेति । तथा प्रव्रजितादयमित्येवमुद्भाय गृहस्थाचरणानुष्ठानान्मृषावादस्तथा धनधान्यद्विपदचतुष्पदादिपरिग्रहात्परिग्रहइति ॥ ८ ॥

एवमेगे उ पासबा, पन्नवंति अणारिया ॥ इबीवसंगया बाला,
जिणसासणपरम्मुहा ॥ ए ॥ जहा गंमं पिलागं वा, परिपीलेज
मुहुत्तगं ॥ एवं विन्नवणिबीसु, दोसो तब कउसिआ ॥ १० ॥

अर्थ—वली परमतनो नाषा दोष कही देखाडेबे. एव के० एरीते एगेउ के० कोइएक परतीर्थिक अथवा स्वतीर्थिक पासबाके० पासबादिक ते केवाबे तोके अणारियाके० अनार्य कर्मना करनार अणाचारि वली इबीवसंगया के० स्त्रीने वसे पडया एटले स्त्रीनो परिसह जीतवाने असमर्थ तथा बाला के० अज्ञानी वली जिणसासण परम्मुहा के० जिनमार्ग थकी वपरांठा ते पन्नवंति के० एम कहेबेके ॥ ए ॥ जहा के० जेम गंमके० गूंबडुं पिलागंवा के० पाकुं थकुं तेने परि के० त्यांज पीलेज्ज के० पीलीने तेमांथी परु अथवा रुधीर काढीनाखवा थकी मुहुत्तगंके० मुहूर्त्तमात्रमां सुख थाय परंतु पीडा कांइ

पण न थाय एवं के० एरीते अंहीं पण विन्नवणिडीसु के० प्रार्थना करती एवी स्त्रीनी साथे संबंध करवाथी दोसोतबकउसिया के० त्यांपण क्यां थकीदोष आवशे अपितुं कांइज दोषनथी. ॥ १० ॥

॥ दीपिका—एवं पूर्वोक्त प्रकारेण एके बौद्धविशेषाः शैवविशेषावा पार्श्वस्थाः स्वयूथ्या वाऽवसन्नकुशीलादयोऽनार्याः स्त्रीवशंगताः प्रज्ञापयंति वदंति। यतस्तेषां वचनं।प्रियादर्शन मेवास्तु, किमन्यैर्दर्शनांतरैः ॥ प्राप्यते येन निर्वाणं, सरागेणापि चेतसा इति ।ते किंभूताः जिनशासनपराङ्मुखाः ॥ ए ॥ (जहेत्ति) ते एवमाहुः । यथा गंडं पिटकं पीडोपशमार्थं परिपीड्य रुधिरादिकं निर्गाल्य मुहूर्तमात्रं सुखिनः स्युर्नच दोषेणानुबध्यंते । एवं विज्ञा पनासु प्रार्थनीयासु स्त्रीषु दोषः कुतःस्यात् । तत्रकोर्थः । गंडपरिपीडनतुल्ये स्त्रीसंबंधे क्व दोषः स्यात् । तत्र दोषोयदि काचित्पीडा भवेन्न चेह साकाप्यस्तीति ॥ १० ॥

॥ टीका—सांप्रतं मतांतरदूषणाय पूर्वपक्षयितुमाह । (एवमेगेइत्यादि) तुशब्दः पूर्व स्माद्विशेषणार्थः ।एवमिति वक्ष्यमाणया नीत्या यदि वा प्राक्तनएव श्लोकोत्रापि संबधनी यः । एवमिति । प्राणातिपातादिषु वर्तमानाएकइत्यादिबौद्धविशेषानीलपटादयोनाथ वादिकमंडलप्रविष्टावा शैवविशेषाः सदनुष्ठानात् पार्श्वे तिष्ठंतीति पार्श्वस्थाः स्वयूथ्यावा पार्श्वस्थावसन्नकुशीलादयः स्त्रीपरीषहपराजितास्तएवं प्रज्ञापयंति प्ररूपयंति । अना र्याः अनार्यकर्मकारित्वात्। तथाहि। ते वदंति।प्रियादर्शनमेवास्तु किमन्यैर्दर्शनांतरैः। प्रा प्यते येन निर्वाणं सरागेणापि चेतसा। किमित्येवं तेनिदधतीत्याह।स्त्रीवशंगताः यतोयुवती नामाज्ञायां वर्तंते बालाअज्ञारागद्वेषोपहतचेतसइति । रागद्वेषजितोजिनास्तेषां शासन माज्ञा कषायमोहोपशमहेतुभूता तत्पराङ्मुखाः संसारभिष्वंगिणोजैनमार्गविद्वेषिणएत द्वक्ष्यमाणमूचुरिति ॥ ए॥ यदूचुस्तदाह (जहागंडमित्यादि) यथेत्युदाहरणोपन्यासार्थः। यथा येन प्रकारेण कश्चित् गंडी पुरुषोगंडं समुत्थितं पिटकं वा तज्जातीयकमेव तदा कृतोप शमनार्थं परिपीड्य पूयरुधिरादिकं निर्गाल्य मुहूर्तमात्रं सुखितोभवति न च दोषेणानुष ज्यते । एवमत्रापि स्त्रीविज्ञापनायां युवतिप्रार्थनायां रमणीसंबंधे गंडपरिपीडनकल्पे दोष स्तत्र कुतः स्यात् । न ह्येतावता क्लेदापगममात्रेण दोषोभवेदिति ।स्यात्तत्र दोषोयदि काचि त्पीडा भवेत् ॥ १० ॥

जहा मंधादए नाम,थिमिअं भुंजती दगं ॥ एवं विन्नवणित्थीसु,
दोसो तत्थ कओसिआ ॥११॥ जहा विहंगमा पिंगा,थिमिअं भुं
जती दगं ॥ एवं विन्नवणित्थीसु, दोसो तत्थ कओसिआ ॥१२॥ ए

वमेगे उ पासत्था, मिच्छदिट्ठी अणारिआ ॥ अज्झोववन्ना कामे हिं, पूयणा इव तरुणए ॥ १३ ॥

अर्थ—वली दृष्टांत कहेछे. जहाके० जेम मंदादननामके० मेषो एवे नामे जनावर ते थि मितं के० जेरीते पाणी डोलाय नही एरीते भुंजतीदगं के० उदकनुं पान करे, परंतु पाणीने पण बाधा नथाय अने पोताने पण बाधा नकरे एवंके० एरीते विन्नवणिछीसु के० प्रार्थना करती स्त्री साथे संबंध करवा थकी दोसोतत्थकउसिया के० त्यांपण दोष क्यां थकी थाय अपितु नज थाय. ॥११॥ जहा के० जेम विहंगमापिंगा के० कपिंजल एवेनामे पंखणी आकाशे उडती थकीज थिमिअंभुंजतीदगं के० निर्मलपाणीनुं पानकरे एवं के० एरीते विन्नवणिछीसु के० अंहींपण गर्भातर करण पूर्वक पुत्रादिकने अर्थे राग द्वेष रहित प्रार्थती एवी स्त्रीनी साथे संग करतां थकां दोष क्यांथकी थाय ॥१२॥ हवे सूत्र कर्ता ते वादीउना दोष प्रगट करतो कहेछे. एवमेगेउपासत्थाके० ते पूर्वोक्त गुंबडादिक ना दृष्टांते करी मैथुनने निर्दोष मानता एवा कोइ एक परतीर्थिक तथा स्वयूथिक पासत्थादि क जेणे स्त्री परिसह जित्यो नथी, ते सिथल विहारी केवा छे, तो के मिछदिठी अणा रिया के० मिथ्यादृष्टी अनार्य कर्मना करनार अनाचारी अज्झोववन्नाकामेहिंके० कामभो गने विषे गृद्ध छता प्रवर्त्ते कोनीपेरे तोके पूयणाइवके० पुतना एटले डाकणनीपेरे जेम डाकण न्हाना बालकने देखी गृद्ध थाय अथवा पुतना एटले गाडरीनीपेरे जेम गाडरी पोताना तरुणए के० तरुण बालकने विषे गृद्ध थाय; एटले समस्त जीवोमांहे संता नने विषे गाडरीनो स्नेह आकरो दीपेछे ते माटे ए दृष्टांत कह्युं तेम पूर्वोक्त अनाचा री पासत्थादिक पण कामभोगनेविषे गृद्ध थायछे. ॥ १३ ॥

॥ दीपिका—(जहेति) यथा मंधादनोमेषः स्तिमितं अनालोडयन्नुदकं भुंक्ते पिब त्यात्मानं प्रीणयति नचान्योपघातं कुर्यात् एवं स्त्रीसंबंधे न काचिदन्यस्य पीडा आ त्मनश्च प्रीणनमिति कुतस्तत्र दोषः ॥११॥ यथा पिंगाः कपिंजलाविहंगमाः पक्षिणआ काशएव वर्तमानाः स्तिमितं निभृतमुदकं पिबंति एवमत्रापि पुत्राद्यर्थं स्त्रीसंबंधं कुर्वतोऽ रक्तद्विष्टस्य पक्षिणइव कुतोदोषः। यदुक्तं ॥ धर्मार्थं पुत्रकामस्य स्वदारेष्वधिकारिणः॥ ऋतुकालविधानेन दोषस्तत्र नविद्यतइति ॥१२ ॥ अथैवं वदतां परेषां दोषमाह। एवं प रोक्तैः पूर्वदृष्टांतैर्मैथुनं निर्दोषमितिमन्यमानाएके शाक्यादयः स्वयूथ्यावा पार्श्वस्थादय स्तथा मिथ्यादृष्टयोऽनार्याधर्मविरुद्धभाषिणोऽध्युपपन्नागृद्धाः कामेषु वा। यथा पूतना शाकिनी तरुणके बाले आसक्ता यदि वा पूतना गड्डरिका स्वापत्ये आसक्ता। कथाचात्र केनापि सर्वपशूनामपत्यानि निरुदके कूपेऽपत्यस्नेहपरीक्षार्थं क्षिप्तानि। तत्र चान्यामात

रः स्वापत्यशब्दाकर्णनेऽस्मिन्नपि कूपतटस्थाएव रुदंति वरच्री त्वत्र्यपत्यातिस्नेहांधा अपायमनपेक्ष्य तत्रैवात्मानं क्षिप्तवतीत्यतोन्यपशुन्योगक्षुरिका स्वापत्ये नृशमासक्ता एवं तेपि कामासक्ताः ॥ १३ ॥

॥ टीका—दृष्टांतेन दर्शयति । (जहेत्यादि) यथेत्ययमुदाहरणोपन्यासार्थः । मंथाद नइति मेषः । नामशब्दः संन्नावनायां । यथा मेषस्तिमितमनालोडयन्नुदकं पिबत्यात्मानं प्रीणयति नच तथान्येपां किंच नोपघातं विधत्ते।एवमत्रापि स्त्रीसंबंधे न काचिदन्यस्य पीडा आत्मनश्च प्रीणनमतः कुतस्तत्र दोषः स्यादिति ॥११॥ अस्मिन्नेवानुपघातार्थे दृष्टांतबहुत्वख्यापनार्थं दृष्टांतांतरमाह। (जहाविहंगमाइत्यादि) यथा येन प्रकारेण विहायसा गच्छतीति विहंगमा पक्षिणी(पिंगेति)कपिंजलासाकाशएव वर्तमाना स्तिमितं निभृतमुदकमापिबत्येवमत्रापि दर्भप्रदानपूर्विकया क्रियया अरक्ताद्विष्टस्य पुत्राद्यर्थं स्त्रीसंबंधं कुर्वतोपि कपिंजलायाइव न तस्य दोपइति । सांप्रतमेतेषां गंडपीडनतुल्यं स्त्रीपरिन्नोगं मन्यमानानां तथैमोदकपानसदृशं परपीडाऽनुत्पादकत्वेन परात्मनोश्च सुखोत्पादकत्वेन किल मैथुनं जायतइत्यध्यवसायिनां तथा कपिंजलोदकपानं यथा तद्भागोदकासंस्पर्शेन किल न्नवत्येव मरक्तद्विष्टतया दर्भाद्युत्तारणात् स्त्रीगात्रस्पर्शेन पुत्रार्थं न कामार्थं । ऋतुकालाभिगामितया शास्त्रोक्तविधानेन मैथुनेपि न दोषानुषंगः॥ तथाचोचुस्ते। धर्मार्थं पुत्रकामस्य स्वदारेष्वधिकारिणः । ऋतुकाले विधानेन दोषस्तत्र न विद्यते इति । एवमुदासीनत्वेन व्यवस्थितानां दृष्टांतेनैव निर्युक्तिकारो गाथात्रयेणोत्तरदानायाह । (जहणामेइत्यादि) जहणा ममंमलग्गे णसिरं एकस्सइमणुस्सो ॥ अच्छेज्जपराहुत्तो किं नाम ततो णये पेच्छा ॥ ५३ ॥ जहणा विसगंडूसं, कोतीघेत्तूणनामतुण्हिक्को ॥ असुणअदीसंतो, किं नाम ततो नवमरेज्जा ॥ ५४॥ जह नाम सिरिघराउ, कोइरयणेणामघेत्तूणं । अच्छेज्जपराहुत्तो किंणामततो न घेपेज्जा॥५५॥यथा नामकश्चिन्मंमलाग्रेण कस्यचिच्छिरश्छित्वा पराङ्मुखस्तिष्ठेत् । किमेतावतोदासीनन्नावावलंबनेन न गृह्येत नापराधी न्नवेत्।तथा यथा कश्चिद्विषगंडूषं गृहीत्वा पीत्वानाम तूष्णींन्नावं न्नजेदन्येन वा संदृश्यमानोसौ किं नाम ततोसावन्यादर्शनात् नम्रीयेत।तथा यथा कश्चिच्छ्रीगृहाद्भांडागाराद्रत्नानि महार्घाणि गृहीत्वा पराङ्मुखस्तिष्ठेत् किमेतावतासौ न गृह्येतेति। अत्र च यथा कश्चित् शठतया अज्ञतया वा शिरच्छेदे विषगंडूषरत्नापहाराख्ये सत्यपि दोषत्रये माध्यस्थ्यमवलंबेत। न च तस्य तदवलंबनेपि निर्दोषतेति। एवमत्राप्यवश्यंन्नाविरागकार्यमैथुने सर्वदोषास्पदे संसारवर्द्धके कुतोनिर्दोषतेति । तथा चोक्तं । प्राणिनां बाधकं चैतच्छास्त्रैर्गीतं महर्षिन्निः ॥ नलिकातप्तकणकप्रवेशज्ञा ततस्तथा ॥ १ ॥ मूलं चैतदधर्मस्य न्नवन्नावप्रवर्धनं॥तस्माद्विषान्नवत्त्याज्यमिदं पापमनिच्छतेति निर्युक्तिगाथा

त्रयतात्पर्यार्थः ॥ १२ ॥ सांप्रतं सूत्रकारउपसंहारव्याजेन गंडपीडनादिदृष्टांतवादिनां दो षोद्भिनावयिषयाह । (एवमेगेइत्यादि)। एवमिति गंडपीडनादिदृष्टांतबलेन निर्दोषं मैथुन मिति मन्यमानाएके स्त्रीपरीषहपराजिताः सदनुष्ठानात्पार्श्वे तिष्ठंतीति पार्श्वस्थानाथ वादिकमंडलचारिणः। तुशब्दात् स्वयूथ्यावा तथा विपरीता तत्वाग्राहिणी दृष्टिर्दर्शनं येषां ते तथा आराद्दूरे याताागताः सर्वहेयधर्मेभ्यइत्यार्याः नआर्या अनार्याः । धर्मविरुद्धानुष्ठाना त्तएवं विधाअध्युपपन्नागृध्नवश्च्छामदनरूपेषु कामेषु कामैर्वाकरणभूतैःसावद्यानुष्ठानेष्विति । अत्र लौकिकं दृष्टांतमाह । यथावा पूतना डाकिनी तरुणके स्तनंधयेऽध्युपपन्ना । एवं तेप्यना र्याः कामेष्विति।यदि वा(पूयणत्ति)गड्डुरिका आत्मीयेऽपत्येऽध्युपपन्ना एवं तेपीति । कथा न कंचात्र । यथा किल सर्वपशूनामपत्यानि निरुदके कूपेऽपत्यस्नेहपरीक्षार्थं क्षिप्तानि तत्र चापरामातरः स्वकीयस्तनंधयशब्दाकर्णनेपि कूपतटस्थारुदंत्यस्तिष्ठंति । उरभ्रीत्वपत्याति स्नेहेनांधा अपायमनपेक्ष्य तत्रैवात्मानं क्षिप्तवतीत्यतोऽपरपशुभ्यः स्वापत्येऽध्युपपन्नेति ॥

अणागयमपस्संता, पच्चुप्पन्नगवेसगा ॥ ते पच्छा परितप्पंति,
खीणे आउंमि जोवणे ॥ १४ ॥ जेहिं काले परिक्कंतं, नपच्छा प
रितप्पए ॥ ते धीरा बंधणुम्मुक्का, नाव कंखंति जीविअं ॥ १५ ॥

अर्थ—हवे ते काम गृद्धना दोष कहेछे. ते काम जोग थकी जे निवृत्या नथी तेने अणागय के० आगामिक काले नरकादिक दुःख उत्पन्न थाय एवुं अपस्संता के० अ ण देखता थका अने पच्चुप्पन्नगवेसगाके० प्रत्युत्पन्न जे वर्तमान विषय सुख तेने गवेषता एनेज रुडुंकरी मानता थका रहेछे तेपच्छाके० तेपछी खीणआउंमिजोवणेके० जेवारे आ युष्य क्षीण थाय, अने यौवन जतुं रहे तेवारे परितप्पंति के० पश्चात्ताप करे; अने क हेके अमे एवा अनाचार शावास्ते कस्था? ॥ १४ ॥ जेहिं के० जे महापुरुषे कालेके० काल प्रस्तावे धर्मनेविषे परिक्कंतं के० पराक्रम कस्थुं. नपच्छापरितप्पए के० ते महापुरुष पछी वृद्धावस्थायें तथा मरणावसरे पश्चात्तापकरे नहीं; ते धीराबंधणुम्मुक्का के० ते धैर्य वंत पुरुष बंधण थकी मूकाणा नावकंखंतिजीविअंके० असंयमे जीवितव्यनी आकां क्षाकरता नथी अथवा जीवितव्य मरणने विषे निस्पृहि थका वर्तेछे. ॥ १५ ॥

॥ दीपिका—तेषां दोषमाह (अणागयमित्यादि)। अनागतं नरकादिदुःखमपश्यंतः प्रत्युत्पन्नं वर्तमानमेव विषयसुखाभासमन्वेषयंतः पश्यंतः पश्चात्क्षीणे स्वायुषि यौवने वा गते परितप्यंति पश्चात्तापं कुर्वंति । यडुक्तं । हतं मुष्टिभिराकाशं तुषाणां कंडनं कृतं । यन्मया प्राप्य मानुष्यं सदर्थे नादरः कृतः ॥ १ ॥ तथा । विहवावलेवनमिएहिं । जाइ

कीरंतिजोव्वणमएण ॥ वयपरिणामेसरिश्रा । इंताइंहि अपखुडुकंति इति ॥१४॥ (जेहिं इत्यादि) यैरात्महितैः कालेऽवसरे पराक्रांतं संयमोद्यमः कृतस्ते पश्चान्न परितप्यंते । एकवचनंसूत्रे छांदसत्वात् । ते वीरास्तपश्चरणोद्यताबंधनात्कर्मणोन मुक्ताअसंयमजीवितं नावकांक्षंतिने छंति । जिविते मरणे वा निस्पृहाः स्युरित्यर्थः ॥ १५ ॥

॥टीका–एवं तेपि कामानिष्वंगिणांदोषमाविष्कुर्वन्नाह॥(अणागयमित्यादि)अनागतमेष्यत्कामानिवृत्तानां नरकादियातनास्थानेषु महत् डुःखमपश्यंतोऽपर्यालोचयंतस्तथा प्रत्युत्पन्नं वर्तमानमेव वैपयिकं सुखान्नासमन्वेषयंतोमृगयमाणानानाविधैरुपायैर्नोगान्प्रार्थयंतस्ते पश्चात्क्षीणे स्वायुषि जातसंवेगायौवने वा अपगते परितप्यंतेशोचयंते पश्चात्तापं विदधति । उक्तं च। हतं मुष्टिन्निराकाशं तुषाणां कंमनंकृतं।यन्मया प्राप्य मानुष्यं सदर्थे नादरःकृतः॥१॥ तथा। विहवावलेवनमिएहिं। जाइंकीरंतिजोव्वणमएण॥वयपरिणामे सरियाइंताइंहिअपखुडुकंति ॥१॥१४॥ येतूत्तमसत्वतया अनागतमेव तपश्चरणादावुद्यमं विदधति न ते पश्चाछोचंतीति तद्दर्शयितुमाह । (जेहिंकाले इत्यादि) यैरात्महितकर्तृन्निः काले धर्मार्जनावसरे पराक्रांतमिंड्रियकषायपराजयाद्युद्यमोविहितोन ते पश्चान्मरणकाले वृद्धावस्थायां वा परितप्यंते न शोकाकुलान्नवंति । एकवचननिर्देशस्तु सौत्रछांदसत्वादिति । धर्मार्जनकालस्तु विवेकिनां प्रायशः सर्वएव तस्मात्सएव प्रधानपुरुषार्थः प्रधानएव च प्रायशः क्रियमाणोघटां प्रांचति । ततश्चायं बाल्यात्प्रनृत्यकृतविषयासंगतयाकृततपःश्चरणास्ते धीराः कर्मविदारणसहिस्नवोबंधनेन स्नेहात्मकेन कर्मणा चोत्प्राबल्येन मुक्तानावकांक्षंति असंयमजीवितं यदि वा जीविते मरणे वा निस्पृहाः संयमोद्यममतयोन्नवंतीति ॥ १५॥

जहा नई वेयरणी, डुत्तरा इह संमता ॥ एवं लोगंसि नारीठ,
डुत्तरा अमईमया ॥ १६ ॥ जेहिं नारीणसंजोगा, पूयणा पिठ
तोकता ॥ सव्वमेयंनिराकिच्चा, तेठिया सुसमाहिए ॥ १७ ॥

अर्थ–जहानईवेयरणी के० जेम नदी वेतरणी जेछेते डुत्तराइहसंमता के० सर्वनदीओमां तरवी डुर्लनछे एवात लोक प्रसिद्धछे एवंलोगंसिनारीठ के० एरीते लोकमांहे स्त्रीठजेछे तेपण डुत्तराअमईमया के० अमतिवंत निरविवेकी पुरुषने अपार डुस्तर डुर्लंघनीय जाणवी ॥ १६ ॥ एवुं जाणीने जे हितकारी वातछे ते कहेछे जेहिं के० जे पुरुषे नारीणसंजोगा के० स्त्री संबंधी संयोगना जे विपाक तेने कडवा जाणीने स्त्रीना संयोग छांमीदीधा वली पूयणापिठतोकता के० तेस्त्रीना संयोगने अर्थे जे पोताना शरीरनी पूजा विनूषाते पण जेणे उपरांठी कीधी एटले मूकीदीधी, सव्वमेयंनिराकिच्चा

के० ते पुरुषे एसर्वे स्त्रीसंगादिक तथा क्षुधा तृषादिक अनुकूल प्रतिकूल उपसर्गना गण एटले समूह तेने निराकरीने जे महापुरुष संसेवित मार्गे प्रवर्त्ते तेठियासुसमाहिए के० तेपुरुष संवररूप समाधिने विषे स्थित जाणवा. ॥ १७ ॥

॥ दीपिका—यथा वैतरणी नदी सर्वनदीनां मध्ये दुस्तरा दुर्लंघ्या इह लोके सम्मता । एवं लोके नार्योऽमतिमता निर्विवेकेन नरेण दुस्तराः । यदुक्तं ! सन्मार्गे तावदास्ते प्रनवति पुरुषस्तावदेवेंद्रियाणां लज्जां तावद्विधत्ते विनयमपि समालंबते तावदेव । भ्रूचापाक्षेपमुक्ताः श्रवणपथजुषोनीलपक्ष्माणएते यावल्लीलावतीनां न हृदि धृतिमुषो दृष्टिबाणाः पतंति इति ॥ १६ ॥ यैरुत्तमैर्नारीणां संयोगास्तत्संयोगार्थमेव वस्त्रालंकारादिनिरात्मनः पूजनाः कामविनूषाः पृष्ठतः कृतास्त्यक्तास्ते महापुरुषाः सर्वमेतत्स्त्रीप्रसंगादिकं निराकृत्य सुसमाधिना चित्तस्वास्थ्येन स्थिताः ॥ १७ ॥

॥ टीका—अन्यच्च (जहाइत्यादि) यथेत्युदाहरणोपन्यासार्थः । यथा वैतरणी नदीनां मध्येऽत्यंतवेगवाहित्वात् विषमतटत्वाच्च दुस्तरा दुर्लंघ्या एवमस्मिन्नपि लोके नार्योऽमतिमता निर्विवेकेन हीनसत्वेन दुःखेनोत्तीर्यंते । तथाहि । ताहावनावैः कृतविद्यानपि स्वीकुर्वंति । तथाचोक्तं । सन्मार्गे तावदास्ते प्रनवति पुरुषस्तावदेवेंद्रियाणां, लज्जां तावद्विधत्ते विनयमपि समालंबते तावदेव ॥ भ्रूचापाक्षेपमुक्ताः श्रवणपथजुषोनीलपक्ष्माणएते यावल्लीलावतीनां न यदि धृतिमुषो दृष्टिबाणाः पतंति । तदेवं वैतरणीनदीवत् दुस्तरानार्योनवंतीति ॥ १६ ॥ अपिच । (जेहींत्यादि । यैरुत्तमसत्वैः स्त्रीसंगविपाकवेदिनिः पर्यंतकटवोनारीसंयोगाः परित्यक्तास्तथा तत्संगार्थमेव वस्त्रालंकारमाल्यादिनिरात्मनः पूजनाकामविनूषा पृष्ठतः कृता परित्यक्तेत्यर्थः । सर्वमेतत्स्त्रीप्रसंगादिकं क्षुत्पिपासादिप्रतिकूलोपसर्गकदंबकं च निराकृत्य ये महापुरुषसेवितपंथानं प्रति प्रवृत्तास्ते सुसमाधिना स्वस्थचित्तवृत्तिरूपेण व्यवस्थितानोपसर्गैरनुकूलप्रतिकूलरूपैः प्रक्षोभ्यंते । अन्येतु विषयाभिष्वंगिणः स्त्र्यादिपरीषहपराजिताअंगारोपरिपतितमीनवद्रागाग्निना दह्यमानाअसमाधिना तिष्ठंतीति ॥ १७॥

एते उग्घं तरिस्संति, समुद्दं ववहारिणो ॥ जब पाणा विसन्ना
सि, किच्चंती सयकम्मणा ॥ १८ ॥ तंच निक्खू परिन्नाय, सुवते
समिते चरे ॥ मुसावायं च वज्जिज्जा, दिन्नादाणं च वोसिरे ॥ १९॥

अर्थ—एतेके० ए पूर्वोक्त परिसहना जीपणहार ते उग्घंके० उघसंसारने तरिस्संतिके० तरसे समुद्दंववहारिणोके० समुद्रवत; एटले जेम व्यवहारिआ समुद्रने नाव वडे तरेछे तेनीपरे जाणीलेवुं जबके० जे संसार समुद्रने विषे पाणाविके० प्राणी एटले जीव ते सन्नासिके०

खुता थका सयकम्मणाके० पोताना करेला पापकर्मे करी असातावेदनीयरूपे किच्चंती के० पीडायछे ॥ १७ ॥ हवे उपदेश कहेछे तंचभिरकू के० ते पूर्वोक्त चारित्रिउ परिम्नायके० हेय उपादेय स्वरूप जाणीने सुव्वते के० भला व्रतनो पालक समितेचरे के० पांच समिते समितो एवो थको विचरे अने मुसावायंच वज्जिज्जा के० मृषावादने वर्जे तथा दिन्नादाणंचवोसिरे के० अदत्तादान एटले चोरी थकी वोसिरे एटले चोरीनुं त्यागकरे, एम अनुक्रमे मैथुन तथा परिग्रहने पण छांमे. ॥ १ए ॥

॥ दीपिका—एतेस्त्रीपरीषहजेतारउघं संसारं तरिष्यंति । यथा व्यवहारिणः सांयात्रिकाः समुडं तरंति । यत्र नवौघे प्राणिनोविषयसंगैर्विषम्पाः संतः कृत्यंते पीडयंते स्वकर्मणा ॥ १७ ॥ तदेतत्प्रागुक्तं निकुः परिज्ञायज्ञात्वा सुव्रतः शोननव्रतयुक्तः समितः पंचसमितिनिश्चरेत् संयमानुष्ठानं कुर्यात् तथामृषावादं वर्जयेददत्तादानंच व्युत्सृजोत् त्यजेत् । आदिशब्दान्मैथुनपरिग्रहादिच त्यजेत ॥ १ए ॥

॥ टीका—स्त्र्यादिपरीषहपराजयस्य फलं दर्शयितुमाह ।(एतेइत्यादि) यएते अनंतरोक्ता अनुकूलप्रतिकूलोपसर्गजेतारएते सर्वे उघंसंसारं डुस्तरमपितरिष्यंति। इव्यौघदृष्टांतमाह । समुडंलवणसागरमिव व्यवहारिणःसांयात्रिकायानपात्रेण तरंत्येवं नवौघमपि संसारसंयमयानपात्रेण यतयस्तरिष्यंति।तथा तीर्णास्तरंतिचेति।नवौघमेव विशिनष्टि।नवौघे संसारसागरेप्राणाःप्राणिनःस्त्रीविषयसंगाद्विषम्पाःसंतःकृत्यंते पीड्यंते स्वकृतेनानुष्ठितेन पापेनकर्मणा असद्वेदनीयोदयरूपेणेति ॥१७॥ सांप्रतमुपसंहारव्याजेनोपदेशांतरविधित्सयाह । (तंच निरकूइत्यादि) । तदेतद्यथा प्रागुक्तं । यथा वैतरणीनदीवत् डुस्तरानार्योयैः परित्यक्तास्ते समाधिस्थाः संसारं तरंति स्त्रीसंगिनश्च संसारांतर्गताः स्वकृतकर्मणा कृत्यंतइति । तदेतत्सर्वं निक्षणशीलोनिकुः परिज्ञाय हेयोपादेयतया बुध्वा शोननानि व्रतान्यस्य सुव्रतः पंचनिः समितिनिः समितइत्यनेनोत्तरगुणावेदनं कृतमित्येवंनूतश्चरेत् संयमानुष्ठानं विदध्यात् तथा मृषावादमसद्भूतार्थनाषणं विशेषेण वर्जयेत्तथा अदत्तादानं च व्युत्सृजेद्दंतशोधनमात्रमप्यदत्तं न गृह्णीयात् । आदिग्रहणान्मैथुनादेः परिग्रहइति । तच्चमैथुनादिकं यावज्जीवमात्महितं मन्यमानः परिहरेत् ॥ १ए ॥

उड्ढमहे तिरियं वा,जे केई तस थावरा ॥ सव्वड विरतिं कुज्जा, संति निव्वाणमाहियं ॥२०॥ इमं च धम्ममादाय,कासवेण प्पवेदितं॥ कुज्जा भिरकू गिलाणस्स, अगिलाए समाहिए ॥२१॥ संखाय

पेसलं धम्मं दिठिमं परिनिवुडे ॥ उवसग्गे हियासित्ता, आमो
रकाए परिवएज्जा सितिबेमि ॥ २२ ॥ इति श्री उवसग्गपरिन्ना
ए तइयं अझयणं सम्मत्तं ॥

अर्थ—हवे बीजा सर्वव्रत दयानी वाड रूपछे तेकारणे अहिंसाने विशेष दीपावेछे उड्ढं के० उंचो अहे के० अधो एटले नीचो तिरियं के० तीर्छों वा के० अथवा एटले सर्व लोकमांहे क्षेत्रथी प्राणातिपात कह्युं हवे द्रव्यप्राणातिपात कहेछे. जेकेईतसथावरा के० ए सर्व लोकमांहे जेकांइ त्रस अने स्थावर जीवछे सव्वछविरतिंकुज्जा के० तेनेविषे सर्व प्रकारे एटले करण करावण अने अनुमतियेंकरी सर्वत्रकालें विरतिपणुं करें एटले सर्व जीवोनी दयानुं पालवुं तेने संतिनिवाण माहियं के० ते शांति एटले कर्म दाहनी उप शम करनार कहिये तथा एनेज निरवाण एटले मोक्षपदमांपण आहितंएटलेकह्युंछे.॥२०॥ हवे अध्ययननो अर्थ उपसंहरतो कहेछे. इमंच धम्ममादाय के० एम श्रुत चारित्र रूप धर्मने ग्रहण करीने ते धर्म कासवेणप्पवेदितं के० श्रीमहावीर स्वामिये प्रकाश्यो ते मार्ग आदरीने निरकू के० साधु ते गिलाणस्स के० गिलानने विषे वैयावच्चने कुज्जा के० करे ते केवो थको वैयावच्च करे तो के अगिलाए समाहिए के० अगिलाणपणे आत्माने समाधिमान थको जे साधु वैयावच्च करेछे तेने धन्यछे एवी समाधि धारण करतो थको वैयावृत्त करे ॥ २१ ॥ संखायके० सम्यक् प्रकारे जाणीने एटले जातिस्म रणादिके अथवा अन्यपासेथी सांजलीने पेसलं के० रूडो एवो धम्मं के० केवलीनुं ना ख्योजे धर्म तेने दिठिमं के० सम्यक्दृष्टी जीव परिनिवुडे के० कषायने उपशमावी शीत लीभूत थको उवसग्गेहियासित्ता के० अनुकूल प्रतिकूल उपसर्गने अहिआसीने आमो रकाए के० ज्यांसुधी मोक्षे जाय त्यांसुधी परिव्वएज्जासिके० सुधो संयम पाले तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥२२॥ ए उपसर्ग परिज्ञानामे त्रीजाध्ययननुं अर्थ समाप्त थयुं ॥

॥ दीपिका—ऊर्ध्वमधः ये केचित् त्रसाः स्थावराः प्राणिनस्तेषु सर्वत्र कालेऽवस्थासु च विरतिं कुर्यात् यस्माच्छांतिनिर्वाणं कर्म दाहोपशमः शांतिस्तद्रूपं निर्वाणं मोक्षपदं आ ख्यातं कथितं यतोविरतेर्मोक्षोभवतीति ॥ २० ॥ इमं चारित्ररूपं धर्ममादाय गृहीत्वा काश्यपेन श्रीवीरेण प्रवेदितमाख्यातं ग्लानस्य साधोर्वैयावृत्त्यं कुर्यात् निक्षुः। कथं। अग्लान तया यथाशक्ति समाहितः समाधिं प्राप्तः यथाऽग्लानस्य समाधिरुत्पद्यतेः स्वस्यच योगान विषीदंति यथा वैयावृत्त्यादिकं विधेयमिति ॥२१॥ पेशलं मोक्षप्रदं धर्मं संख्याय ज्ञात्वा दृष्टिमान् सम्यग्दर्शनी परिनिर्वृतः शांतः उपसर्गाननुकूलप्रतिकूलान् नियम्य नियंत्र्य

आमोक्षाय मोक्षार्थं परिव्रजेत् संयममेचरेदिति ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २२ ॥ इतितृतीयाध्ययने चतुर्थउद्देशकः समाप्तः ॥ ४ ॥

॥ टीका—अपरिव्रतानामहिंसायावृत्तिकल्पत्वात् तत्प्राधान्यख्यापनार्थमाह (उड्ढमहे इत्यादि) ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् चेत्यनेन क्षेत्रप्राणातिपातोगृहीतः । तत्रच ये केचन त्रसंतीति त्रसा द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियाः पर्याप्तापर्याप्तकभेदभिन्नास्तथा तिष्ठंतीति स्थावराः पृथिव्यप्तेजो वायुवनस्पतयः सूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तकभेदभिन्नाइत्यनेन च द्रव्यप्राणातिपातोगृहीतः। सर्वत्र काले सर्वास्ववस्थास्वित्यनेनापि कालभावभेदभिन्नः प्राणातिपातउपात्तोद्रष्टव्यः। तदेवं चतुर्दशस्वपि जीवस्थानेषु कृतकारितानुमतिभिर्मनोवाक्कायैः प्राणातिपातविरतिं कुर्यादित्यनेन पादोनेनापि श्लोकद्वयेन प्राणातिपातविरत्यादयोमूलगुणाः ख्यापिताः। सांप्रतमेतेषां सर्वेषामेव मूलोत्तरगुणानां फलोद्देशेनाह । शांतिरिति कर्मदाहोपशमस्तदेवच निर्वाणं मोक्षपदं यदाख्यातं प्रतिपादितं सर्वद्वंद्वापगमरूपं तदस्यावश्यं चरणकरणानुष्ठायिनः साधोर्भवतीति ॥ २० ॥ समस्ताध्ययनार्थोपसंहारार्थमाह । (इमंचधम्ममित्यादि) इममिति पूर्वोक्तं मूलोत्तरगुणरूपं श्रुतचारित्राख्यं वा दुर्गतिधारणात् धर्मंसादायाचार्योपदेशेन गृहीत्वा (किंभूतमिति)। तदेव विशिनष्टि । काश्यपेन श्रीमन्महावीरवर्धमानस्वामिना समुत्पन्नदिव्यज्ञानेन भव्यसत्वाऽभ्युद्धरणाभिलाषिणा प्रवेदितमाख्यातं समधिगम्य भिक्षुः साधुः परीषहोपसर्गैरतर्जितोग्लानस्यापरस्यसाधोर्वैयावृत्त्यं कुर्यात् । कथमिति। स्वतोऽग्लानतया यथाशक्ति समाहितइति समाधिं प्राप्तः। इदमुक्तं भवति । कृतकृत्योहमिति मन्यमानोवैयावृत्त्यादिकं कुर्यादिति ॥ २१ ॥ अन्यच्च (संखायइति) संख्यायेति सम्यक् ज्ञात्वा स्वसंमत्या अन्यतोवा श्रुत्वा (पेशलंति) मोक्षगमनं प्रत्यनुकूलं किंतद्धर्मं श्रुतचारित्राख्यं दृष्टिमान् सम्यक्दर्शनी परिनिर्वृतइति। कषायोपशमाच्छीतीभूतः परिनिर्वृतकल्पोवा उपसर्गाननुकूलप्रतिकूलान् सम्यग् नियम्यातिसह्यामोक्षाय मोक्षंयावत् परिसमंतात् व्रजेत् संयमानुष्ठानेन गच्छेदिति । इतिशब्दः समाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् । नयचर्चापि तथैवेति ॥ २२ ॥ उपसर्गपरिज्ञायाः समाप्तश्चतुर्थोद्देशकस्तत्परिसमाप्तौ च तृतीयाध्ययनमिति । ग्रंथाग्रं ॥७७५॥

हवे प्रथम श्रुतस्कंधने विषे चोथुं अध्ययन प्रारंभियें छैयें. त्रीजा अध्ययननेविषे जे उपसर्ग कह्या तेमांहे अनुकूल उपसर्ग सहन करवा दुर्लभछे एम कह्युं हतुं, तेमाटे स्त्रीना करेला अनुकूल उपसर्ग सहन करवाने अर्थे चोथुं अध्ययन कहियें छैयें.

जे मायरंच पियरंच, विप्पजहाय पुव्वसंजोगं ॥ एगे सहिते च

रिस्सामि, आरतमेहुणो विवित्तेसु ॥ १ ॥ सुहुमेणं तं परिक्कम्म

छन्नपएण इत्थि मंदा ॥ उवायंपि ताउ जाणं सु जहा लिस्संति निक्कुणो एगे ॥ २ ॥

अर्थ—(जेके०) जे उत्तमसाधु (मायरंचपियरंचके०) माता पिता अने नाइ प्रमुखनो (पुव संजोगंके०) पूर्वलो संयोग एटले आगलो संबंध तथा श्वशुरादिकनो पश्चात् संबंध एटले पा छलथी थयलो संबंध तेने विप्पजहायके० छांमीने एगेके० एकलो रागद्वेषरहित अने ज्ञान द र्शन तथा चारित्रे करीने सहितेके०सहित एवो छतो,चरिस्सामिके०हुं संयम पालीश एवी प्रतिज्ञा करे; वली मेहुणो के० मैथुन थकी आरत के० निवर्त्योछे विवित्तेसु के० स्त्री पशु पंमग रहित एवा उपाश्रयनो गवेषणहार एवा साधुने पण कोइएक स्त्री विप्र तारेछे ते कहेछे ॥ १ ॥ सुहुमेणं के० कोइएक कार्यने मीशे तंपरिक्कम्म के० ते साधु ने समीपे आवीने छन्नपएण के० छाने शब्दे, हलवे हलवे, अनेक गूढार्थ पदे करी ए टले मर्मना वचने करी, इत्थिउमंदाके० कोइक स्त्री मंद एटले विवेकरहित एवी छति पु रुषने वशकरवाना उवायंपि के० उपायने ताउ के० ते स्त्री जाणंसु के० जाणे जहा के० जे उपाये करीने एगेके० कोइक निक्कुणो के० चारित्रिउ मोहनीय कर्मना उदय थकी स्त्रीने वश थई जाय अने लिस्संति के० संयम थकी पडी जाय. ॥ २ ॥

अथ चतुर्थमध्ययनं.

॥ दीपिका—उक्तं तृतीयमध्ययनं । अथ चतुर्थमारभ्यते । तच्च स्त्रीपरीषहोजेयइत्यर्थंवा चकं तस्येदमादिमंसूत्रं । जेमायरमिति । योमातरं पितरं चशब्दात्पुत्रादिकं च विप्रहाय त्य क्त्वा पूर्वसंयोगं एकोनिःसंगः सहितोज्ञानादिभिः स्वहितोवा चरिष्यामि संयमं करिष्यामी ति कृतप्रतिज्ञः । आरतमुपरतं मैथुनं कामाभिलाषोयस्य सआरतमैथुनोविविक्तेषु स्त्र्याद्य नाकुलेषु स्थानेषु चरतीति शेषः । अथवा विविक्तं स्थानं एषितुं मार्गितुं शीलमस्य विविक्ते षी॥१॥तं साधुं सूक्ष्मेन परकार्यव्यपदेशेन छन्नपदेन कपटेन पराक्रम्य समीपमागत्य मंदाग त्यमंदाः कामोद्रेककारित्वान्निर्विवेकाः स्त्रियः शीलाद्भ्रंशयंति । कोर्थः । भ्रातृपुत्रव्यपदेशेन साधुसमीपमागत्य स्त्रियः संयमाद्भ्रंशयंति साधुमिति । प्रछन्नपदं गुप्ताभिधानं । यथा । का ले प्रसुप्तस्य जनार्दनस्य मेघांधकारासु च शर्वरीषु ॥ मिथ्या न भाषामि विशालनेत्रे ते प्र त्यया ये प्रथमाक्षरेषु इत्यादि । स्त्रियस्तथोपायंजानंति यथाश्लिष्यंते साधवोप्येके ॥ २ ॥

॥टीका—उक्तं तृतीयमध्ययनं सांप्रतं चतुर्थमारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंधः इहानंतराध्य यने उपसर्गाःप्रतिपादितास्तेषां च प्रायोनुकूलाःदुःसहास्ततोपि स्त्रीकृताअतस्तज्जयार्थमिद

मध्ययनमुपदिश्यतइत्यनेन संबंधेनायातस्याध्ययनस्योपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोगद्वाराणि नवंति। तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारो द्वेधा। अध्ययनार्थाधिकारउद्देशार्थाधिकारश्च। तत्रा ध्ययनार्थाधिकारः प्राग्वत् निर्युक्तिकृता(स्त्रीदोषविवर्जणा)चेवेत्यनेन स्वयमेव प्रतिपादितः। उद्देशार्थाधिकारं तूत्तरनिर्युक्तिकृदेव नणिष्यति।सांप्रतं निक्षेपः सचौघनामसूत्रालापकनेदा त्रिधा। तत्रौघनिष्पन्ने निक्षेपेऽध्ययनं नामनिष्पन्ने स्त्रीपरिज्ञेति नाम। तत्र नामस्थापने क्षु एत्वादनादृत्य स्त्रीशब्दस्य इव्यादिनिक्षेपार्थमाह। (दवानिलावेत्यादि)। दवानिला वचिंधे, देवेनावेयइत्तिणिक्केवो। अहिलावे तहसिद्धी, नावे वेयंमिउवउत्तो॥ ५६॥ तत्र-इव्यस्त्री द्वेधा। आगमतोनोआगमतश्च। आगमतः स्त्रीपदार्थज्ञस्तत्र चानुपयुक्तो नुपयोगोइव्यमिति कृत्वा नोआगमतोज्ञशरीरनव्यशरीरव्यतिरिक्तात्रिधा। एकनविका बद्धाऽयुष्काभिमुखनामगोत्रावेति। चिन्ह्यते ज्ञायतेऽनेनेतिचिह्नं स्तननेपथ्यादिकं चिह्नमा त्रेण स्त्री चिह्नस्त्री अपगतस्त्री वेदछद्मस्थः केवलीवा अन्योवा स्त्रीवेषधारी यः कश्चि दिति। वेदस्त्रीतु पुरुषानिलाषरूपः स्त्रीवेदोदयः। अनिलाषनावौ तु निर्युक्तिकृदेव गाथाप श्चार्द्धेनाह। अनिलाप्यते इत्यनिलापः स्त्रीलिंगानिधानः शब्दः। तद्यथा। शाला माला सिद्धि रिति। नावस्त्री तुद्वेधा। आगमतोनोआगमतश्च। आगमतः स्त्रीपदार्थज्ञस्तत्र चोपयुक्त उपयोगोनावइति कृत्वा नोआगमतस्तु नावविषये निक्षेपे वेदेस्त्रीवेदरूपे वस्तुन्युपयुक्ता तदुपयोगानन्यत्वान्नावस्त्री नवति। यथाऽग्नावुपयुक्तोमाणवकोग्निरेव नवत्येवमत्रा पि। यदिवा स्त्रिवेदनिवर्तकान्युदयप्राप्तानि यानि कर्माणि तेषूपयुक्तेति तान्यनुनवंती नावस्त्रीति। एतावानेव स्त्रियोनिक्षेपइति। परिज्ञानिक्षेपस्तु शस्त्रपरिज्ञावद् इष्टव्यः। सां प्रतं स्त्रीविपक्षनूतं पुरुषनिक्षेपार्थमाह। (नामंठवणाइत्यादि)। णामंठवणादविए खेत्ते कालेयपज्जणणकंमे। नोगेगुणेयनावे, दसएएपुरिसणिक्केवा॥५७॥ नामेति संज्ञा तन्मात्रे ण पुरुषोनामपुरुषः। यथाघटः पटइति यस्य वा पुरुषइति नामेति। स्थापनापुरुषः काष्ठा दिनिर्वर्तितोजिनप्रतिमादिकः। इव्यपुरुषोज्ञशरीरनव्यशरीरव्यतिरिक्तोनो आगमतएक नविकोबद्धायुष्कोनिमुखनामगोत्रश्चेति। इव्यप्रधानोवा मम्मणवणिगादिरिति। योयस्मिन् सुराष्ट्रादौ क्षेत्रे नवः सक्षेत्रपुरुषोयथा सौराष्ट्रिकइति। यस्यच यत् क्षेत्रमाश्रित्य पुंस्त्वं नवतीति।योयावंतं कालं पुरुषवेदवेद्यानि कर्माणि वेदयते सकालपुरुषइति। यथा पुरिसेणं नंते पुरिसेत्ति कालउक्केव चिरं होइ। गो. जहन्नेणं एगंसमयंउक्कोसेणंजोजम्मिकालेपुरि सोन्न वइ। जहाकोइएगंमिपक्खेपुरिसोएगंमिनपुंसगोत्ति। प्रजन्यतेऽपत्यं येन तत्प्रजननं शिश्नं लिंगं तत्प्रधानः पुरुषः परपुरुषकार्यरहितत्वात् प्रजननपुरुषः।कर्मानुष्ठानं तत्प्रधानः पुरुषः कर्म पुरुषः कर्मकरादिकस्तथा नोगप्रधानः पुरुषोनोगपुरुषश्चक्रवर्त्यादिस्तथा गुणाव्यायाम विक्रमधैर्यसत्वादिकास्तत्प्रधानः पुरुषोगुणपुरुषः। नावपुरुषस्तु पुंवेदोदये वर्तमानस्तद्वेधा

नि कर्माण्यनुजवन्तीत्येते दशपुरुषनिक्षेपाजवंति। सांप्रतं प्रागुल्लिंगितमुद्देशार्थाधिकारमधि कृत्याह (पढमेइत्यादि) पढमेसंथवसंजवमाइहिखलणाउहोतिसीलस्स । बितिएइहैवख लियस्सअवन्नाकम्मबंधोयं॥५७॥प्रथमे उद्देशके अध्ययनार्थाधिकारः।तद्यथा। स्त्रीजिःसार्धं संस्तवेन परिचयेन यथा संलापेन जिन्नकथाद्यालापेनादिग्रहणादंगप्रत्यंगनिरीक्षणादिना कामोत्काचकारिणोजवेदल्पसत्वस्य शीलस्य चारित्रस्य स्खलनात्तुशब्दात्तत्परित्यागोवेति। द्वितीये त्वयमर्थाधिकारस्तद्यथा । शीलस्खलितस्य साधोरिहैवास्मिन्नेव जन्मनि स्वपक्षप रपक्षकृता तिरस्कारादिकाविमंबना तत्प्रत्ययश्च कर्मबंधस्ततश्च संसारसागरपर्यटनमिति। किं स्त्रीजिः कश्चित् शीलात् प्रच्याव्यात्मवशः कृतोयेनैवमुच्यते कृतइति दर्शयितुमा ह । (सूरामोइत्यादि) सूरामोमन्नंता, कतिवविंयाहिंउवहिप्पहाणाहिं ॥ गहियाहुंअ जयपज्जोवकूलवालादिणोबहवे ॥ ५९ ॥ बहवः पुरुषाअजयप्रद्योतकूलवालादयः शूरा वयमित्येवं मन्यमानाः । मो इतिनिपातोवाक्यालंकारार्थः । कृत्रिमाजिः सन्नावरहिताजिः स्त्रीजिस्तथोपधिर्माया तत्प्रधानाजिः कृतकपटशतानिर्गृहीत्वा आत्मवशतां नीताः केचन राज्यादपरे शीलात् प्रच्याव्येहैव विमंबनां प्रापिताः॥ अजयकुमारादिकथानकानिच मूला दावश्यकादवगंतव्यानि । कथानकत्रयोपन्यासस्तु यथाक्रमं मत्यबुद्धिविक्रमात्यंतबुद्धि विक्रमतपस्विख्यापनार्थइति । यतएवं ततोयत्कर्तव्यं तदाह । तम्हाणउवीसंजोगं तवो णिच्चमेवइवीसु ॥ पढमुद्देसेजणिया, जेदोसातेगणंतेणं ॥ ६०॥ (तम्हाइत्यादि) । यस्मा त् स्त्रियः सुगतिमार्गार्गलामायाप्रधानावंचनानिपुणास्तस्मादेतदवगम्य नैव विश्रंजोवि श्वासस्तासां विवेकिना नित्यं सदा गंतव्योयातव्यः कर्तव्यइत्यर्थः । ये दोषाः प्रथमोद्दे शके अस्योपलक्षणार्थत्वात् द्वितीयेच तान् गणयता पर्यालोचयता तासां मूर्तिमत्कप टराशिजूतानामात्महितमिच्छता नविश्वसनीयमिति । अपिच । सुसमच्चावसमच्चा, की रंतीअप्पसत्तियापुरिसा । दीसंतीसूरवादीणारीवसगाणतेसूरा ॥६१॥(सुसमच्चेत्यादि) परा नीकविजयादौ सुष्ठु समर्थाअपि संतः पुरुषाः स्त्रीजिरात्मवशीकृताअसमर्थाच्रूक्षेपमात्र जीरवः क्रियंतेल्पसात्विकाः स्त्रीणामपि पादपतनादिचाटुकरणेन निःसाराः क्रियंते त था दृश्यंते प्रत्यक्षेणोपलज्यंते । शूरमात्मानं वदितुं शीलं येषां ते शूरवादिनोपि नारीवश गाः संतोदीनतां गताः । एवंजूताश्च नते शूराइति । तस्मात् स्थितमेतदविश्वास्याः स्त्रियइ ति । उक्तंच । कोवीससेज्जतासिं,कतिवयजरियाणउज्जियघाणे । खणरत्तविरत्तेणं, धिरत्थु इत्थीणहिययाणं ॥ १ ॥ अन्नं जणंतिपुरउ अन्नंपासेइविज्जमाणीउ । अन्नंच तासिंहिय ए, जंचखमंतंकरिंतिपुणो ॥२॥ कोएयाणंणाहिइ, वेत्तलयागुम्मगुविलहिययाणं ॥ जावंज ग्गासाणं तच्चुप्पन्नंजणंतीणं ॥ ३ ॥ महिलायरत्तमेत्ता, उच्छुखंमंचसक्कराचेव । सापुण विरत्तमित्ताणिंबंकूरेविसेसेत्ति ॥४॥ महिलादिज्जकरेज्जवमारिज्जवसंठविज्जवमणुस्सं । तुट्ठा

जीवाविज्जाअहवरणरं वंचयावेज्जा ॥ ५ ॥ णविरक्कंतेसुकयं, णविणेहंणवियदाणस म्माणं ॥ णकुलंणपुच्चयंआयतंच शीलंमहिलियाउ ॥ ६ ॥ मावीसंनहताणं महि लाहियया णकवड नरियाणं ॥ सुिसुहनिदयाणं अलियवयणजंपणरयाणं ॥ ७ ॥ मारेइ जियंतंपिह्रुमयंपि अणुमरइकाइनत्तारं ॥ विसहरगइवच्चरियं वंकविवंकंमहेलाणं ॥ ८ ॥ गंगाएवालुयंसागरेजलंहिमवउयपरिमाणं । जाणंति बुद्धिमंतामहिलाहिययंणजाणंति ॥ ए ॥ रोवावंतिरुवंतिय अलियंजपंतिपत्तियावंति ॥ कवडेणयखंतिविसंमरंतिणयजंतिस प्नावं ॥१०॥ चिंतितिकज्जमसुंअसुंसंववइनासईअसुं॥आढवइकुणइअसुं माइणगूणिय म्हिसारो ॥ ११ ॥ असयारंनाणतहासवेसिंलोगगरहणिज्जाणं ॥ परलोगवैरियाणंकारणयं चैवइत्तीउ ॥ १२ ॥ अहवाकोजुवईणं जाणइचरियंसहावकुमिलाणं ॥ दोसाणआगरोचिय जणेसरीरेवसइकासा ॥ १३ ॥ मूलडुच्चरियाणं हवइउणरयस्सवत्तिणी ॥ विबुला मोरकस्समहाविग्घंवज्जेयवासयानारी ॥ १४ ॥ धम्मातेवरपुरिसाजेच्चियमोत्तूणणिययजुव ईउ ॥ पव्वइयाकयनियमासिवमयलमणुत्तरंपत्ता ॥ १५ ॥ अधुना यादृक्ः शूरोनवति तादृक्ं दर्शयितुमाह । धम्मंमिजोदढमइसोसूरोसत्तिउयवीरोय ॥ णहुधम्मणिरुत्साहोपुरिसोसूरोसुबलिउवि ॥ ६२ ॥ (धम्ममित्यादि) । धर्मे श्रुतचारित्राख्ये दृढा निश्चला मतिर्यस्य सतथा एवंनूतः सइंडियनोइंडियारिजयाछूरस्तथा सात्विकोमहासत्वोपेतोऽसावेव वीरः स्वकर्मदारुणसमर्थोऽसावेवेति । किमिति यतोनैव धर्मेनिरुत्साहः सदनुष्ठाननिरुद्यमः सत्पुरुषाचीर्णमार्गेपरिन्नष्टः पुरुषः सुष्ठु बलवानपि शूरोनवतीति । एतानेव दोषान् पुरुषसंबंधेन स्त्रीणामपि दर्शयितुमाह । एतेचेवयदोसा पुरीससमाएविइत्थियाणंपि ॥ तम्हाणअप्पमाउविरागमग्गंमितासिंतु ॥६८॥(एतेचेवेत्यादि)। ये प्राक्शीलप्रध्वंसादयः स्त्रीपरिचयादिन्यः पुरुषाणामनिहिताएतएव न्यूनाधिकाः पुरुषेण सह यः समायः संबंधस्तस्मिन स्त्रीणामपि यस्माद्दोषान्नवंति तस्मात्तासामपि विरागमार्गे प्रवृत्तानां पुरुषपरिचयादिपरिहारलक्षणोऽप्रमादएव श्रेयानिति । एवं यडुक्तं स्त्रीपरिज्ञेति तत्पुरुषोत्तमधर्मप्रतिपादनार्थमन्यथा पुरुषपरिज्ञेत्यपि वक्तव्येति । सांप्रतं सूत्रानुगमे स्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं । (जेमायरंचेत्यादि) । अस्य चाऽयमनंतरसूत्रेण सह संबंधः । तद्यथा । अनंतरसूत्रेनिहितमामोक्षाय परिव्रजेदित्येतच्चाऽशेषानिष्वंगवर्जितस्य नवतीत्यतोऽनेन तदनिष्वंगवर्जनमनिधीयते । यः कश्चिडुत्तमसत्वोमातरं पितरं जननीं जनयितारमेतद्ग्रहणादन्यदपि न्रातृपुत्रादिकं पूर्वसंयोगं तथा श्वश्रूश्वशुरादिकं पश्चात्संयोगं च विप्रहाय त्यक्त्वा । चकारौसमुच्चयार्थौ । एकोमातापित्राद्यनिष्वंगवर्जितः कषायरहितोवा तथा सहितोज्ञानदर्शनचारित्रैः स्वस्मै वा हितः स्वहितः परमार्थानुष्ठानविधायी चरिष्यामि संयमं करिष्यामीत्येवं कृतप्रतिज्ञः । ता मेव प्रतिज्ञां सर्वप्रधान

नूतां लेशतोदर्शयति । आरतमुपरतं मैथुनं कामाभिलाषोयस्यासावारतमैथुनस्तदेवंभू तोविविक्तेषु स्त्रीपशुपंमकवर्जितेषु स्थानेषु चरिष्यामीत्येवं सम्यग्ज्ञानेनोत्थाय विहरती ति । क्वचित्पाठो (विवित्तेसित्ति) विविक्तं स्त्रीपंडकादिरहितं स्थानं संयमानुपरोध्ये षितुं शीलमस्य तथेति ॥ १ ॥ तस्यैवं कृतप्रतिज्ञस्य साधोर्यद्भवत्यविवेकिस्त्रीजनात्त द्दर्शयितुमाह । (सुहुमेणेत्यादि) । तं महापुरुषं साधुं सूक्ष्मेणाऽपरकार्यव्यपदेशभूते न छन्नपदेनेति छद्मना कपटजालेन पराक्रम्य तत्समीपमागत्य यदिवा पराक्रम्येति शील स्खलनयोग्यतापत्त्या अभिभूय काः स्त्रियः कूलवालकादीनामिव मागधगणिकाद्यानाना विधकपटशतकरणदक्षाविविधबिब्बोकवत्योभावमंदाः कामोद्रेकविधायितया सदसद्वि वेकविकलाः समीपमागत्य शीलात् ध्वंसयंति । एतदुक्तं भवति भ्रातृपुत्रव्यपदेशेन साधुस मीपमागत्य संयमाद् भ्रंशयंति । तथाचोक्तं । पियपुत्तभाइ किडगाणत्तूचकिम्हगायसय णकिडगाय॥एतेजोव्वण किम्हगा पच्छन्नपइमहिलियाणं । यदिवा छन्नपदेनेति गुप्ताभि मानेन । तद्यथा । काले प्रसुप्तस्य जनार्दनस्य मेघांधकारासु च शर्वरीषु॥मिथ्या न भाषा मि विशालनेत्रे ते प्रत्ययाये प्रथमाक्षरेषु इत्यादि ॥ ताः स्त्रीयो मायाप्रधानाः प्रतारणो पायमपि जानंत्युत्पन्नप्रतिभतया विदंति । पाठांतरं वा ज्ञातवत्यः यथाश्लिष्यंते विवेकि नोपि साधवएके तथाविधकर्मोदयात् तासु संगं उपयांति ॥ २ ॥

पासे भिसं णिसीयंति, अभिक्खणं पोसवत्थं परिहिंति ॥ कायं अहे
वि दंसंति, बाहूउद्धुकक्खमणुव्वजे ॥ ३ ॥ सयणासणेहिं जोगेहिं,
इच्छिउ एगता णिमंतंति ॥ एयाणिचेव सेजाणे, पासाणि विरूवरूवाणि॥४॥

अर्थ–हवे जे उपाये करी ते स्त्री साधुने विप्रतारे ते उपाय कहेछे. ते स्त्री पासेके० साधुनी पासे भिसं के० ढुकडी एटले नजीक आवी णिसीयंति के० बेशीने अभिक्खणं के० वारंवार पोस के० जेरीते कामविकार पोषाय तेरीते वत्थंपरिहिंति के० वस्त्र पहेरे कायंअहे के० नीचलुं शरीर जे जंघादिक ते विदंसंति के० देखाडे बाहूउद्धु के० बं ने बाहु उंची उपाडीने कक्खं के० कांख देखाडती छती अणुव्वजे के० साधुने सन्मुख जाय अथवा साधुने सन्मुख नजर राखे ॥ ३ ॥ वली इच्छिउ एगता के० कोइ एक स्त्री एकदा प्रस्तावे जोगेहिं के० साधुने लेवा योग्य एवा सयणासणेहिं के० सय नाशन एटले पाट पाटलादिके करी निर्व्यंजन वेलाये स्नेहना वचने करी णिमंतंतिके० निमंत्रणा करे तेवारे विरूवरूवाणि एयाणि के० विरूपरूप एवा ए पूर्वोक्त नानाप्र कारना जे पाट पाटलादिक तेने पासाणिके० ए मुफने बंधनना करनाराछे एरीते सेके० ते साधु जाणे के० जाणीने त्यां बेसे नही. चेव शब्द पद पूरणार्थछे. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—नृशं सस्नेहं निषीदंति तिष्ठंतिस्त्रियः पुष्णात्यतिपोषं मनोहरवस्त्रं परिद धति अनीक्ष्णं निरंतरं तथाधःकायं ऊर्वादिकं दर्शयंति बाहून् उद्धृत्य ऊर्ध्वीकृत्य कक्षा मादर्श्यानुव्रजेत् अनुकूलं गछेत् ॥ ३ ॥ शयनासनैर्योग्यैर्भोगयोग्यैः स्त्रियएकदा नि र्व्यंजनकालादौ निमंत्रयंति प्रार्थयंति साधुं । ससाधुस्तानि शयनासनानि पाशरूपाणि जानीयात् बंधनरूपाणि अवगछेत विरूपरूपाणि तानि नानाविधानि ॥ ४ ॥

॥ टीका—तानेव सूक्ष्मप्रतारणोपायान् दर्शयितुमाह । (पासेभिसमित्यादि) पार्श्वे समीपे भृशमत्यर्थमुरःपीडमतिस्नेहमाविष्कुर्वत्योनिषीदंति विश्रंभमापादयितुमुपविशं तीति । तथा कामं पुष्णातीति पोषं कामोत्काचकारि शोभनमित्यर्थः । तच्च त द्वस्त्रं तदभीक्ष्णमनवरतं तेन शिथिलादिव्यपदेशेन परिदधति स्वाभिलाषमावेदयंत्यः सा धुप्रतारणार्थं परिधानं शिथिलीकृत्य पुनर्निबध्नंतीति । तथाऽधःकायमूर्वादिकमनंगोद्दीप नाय दर्शयंति प्रकटयंति तथा बाहुमुद्धृत्य कक्षामादर्श्याऽनुकूलं साध्वभिमुखं व्रजेत् ग छेत् । संभावनायां लिङ् । संभाव्यते एतदनंगप्रत्यंगसंदर्शकत्वं स्त्रीणामिति ॥३॥ अपिच । (सयणासणेऽत्यादि) शय्यतेऽस्मिन्निति शयनं पर्यंकादि तथाऽऽस्यतेऽस्मिन्नित्यासनमा संदकादीत्येवमादिना योग्येनोपभोगार्हेण कालोचितेन स्त्रियोयोषितएकदेति विविक्त देशकालादौ निमंत्रयंत्यभ्युपगमं ग्राहयंति । इदमुक्तं भवति । शयनासनाद्युपभोगंप्रति साधुं प्रार्थयंति । एतानेव शयनासननिमंत्रणरूपान् ससाधुर्विदितवेद्यः परमार्थदर्शी जा नीयादवबुध्येत स्त्रीसंबंधिकारिणः पाशयंति बध्नंतीति पाशास्तान्विरूपरूपान् नानाप्रका रानिति । इदमुक्तं भवति । स्त्रियोह्यासन्नगामिन्योभवंति । तथाचोक्तं । अंबं वा निंबं वाअस्स सगुणेण आरुहाइ वल्ली । एवं इछीतोविजं आसन्नं तमिछंति ।१। तदेवंभूताः स्त्रियोज्ञात्वा न ताभिः सार्धं साधुः संगं कुर्याद्यतस्तदुपचारादिकःसंगोदुष्परिहार्योभवति । तदुक्तं।जंइछसि घेत्तुंजे, पुव्विंतं आमिसेण गिण्हाहि॥आमिसपासनिबद्धोकाहिइकज्जंअकज्जंवा॥ १ ॥ ४ ॥

नोतासु चक्कु संधेज्जा, नोविय साहसं समभिजाणे ॥ णोसहियंपि वि हरेज्जा, एवमप्पासु रक्कित होइ ॥५॥ आमंतिय उस्सविय भिक्कु आ यसा निमंतंति ॥ एताणि चेव सेजाणे, सद्दाणि विरूवरूवाणि ॥ ६ ॥

अर्थ—नो तासुचक्कुसंधेज्जा के० तेस्त्रीनी दृष्टी सायें साधु पोतानी दृष्टी मेलवे न ही, तथा नोवियसाहसं के० मैथुनादिक अकार्यनुं करवुं करे नही, अने समभिजाणे के० ते स्त्रीनुं कहेलुं जे विषयनी प्रार्थनारूप वचन तेने अनुमोदे नही. णोसहियं पिवि हरेज्जा के० वली ते स्त्रीनीसाथे ग्रामादिकने विषे विचरे नही, एव के० एरीते रहेता

थका अप्पा के० पोताना आत्मानु रक्खिउं के० रक्षण सु के० रूडीरीते होइ के० था य ॥ ५ ॥ स्त्री स्वनावे अकार्य करवाने सावधान होयछे, तेमाटे निक्खु के०साधुने आ मंतिय के० आमंत्रीने कहे के हुं अमुक वखते आवीश, एम संकेत कहीने उस्स विय के० विश्वास उपजावे आयसा के० पोते पोताना आत्माने मैथुन सेववाने अर्थे एकदा प्रस्तावे निमंतंति के० साधुने निमंत्रण करे, अथवा साधुने निवारवा नणी ते स्त्री एम कहेके आयसा के० माहारा नर्तारना आदेशथी हुं तमारा पाशे आवी बुं, एवी रीते पोताने वश करवाना वचन कहे एताणिचके० ए पूर्वोक्त वचनने करी अंहींच पद पू रणार्थे छे एव के० एम से के० ते साधु जाणे के० ज्ञ परिज्ञायेकरी स्त्रीनुं स्वरूप जेवुंछे तेवुं जाणे सुंजाणे तोके सद्दाणि विरूवरूवाणि के० विषय संबंधिया नानाप्रकारना हावनावादिकरूप जे स्त्रीना शब्द तेने साधु बंध पासना कारण जाणे. ॥ ६ ॥

॥ दीपिका—नो तासु स्त्रीषु चक्षुः संदध्यात् संधयेत् । स्वदृष्टिः स्त्रीदृष्टौ न निवेशयेदित्यर्थः॥ यतिः कार्ये ईषदवज्ञया निरीक्षेत । यडुक्तं । कार्येपीषन्मतिमान्निरीक्षते योषिदंगमस्थिरया॥ अस्निग्धयादृशावज्ञयाह्यकुपितोपि कुपितइवेति॥तथा नोपि च साहसमकार्यकरणं तत्प्रार्थ नया समनुजानीयात्प्रतिपद्येत स्त्रीनिः सार्धं ग्रामादौ न विहरेन्नगछेत्।अपिशब्दात्ताभिः सहै कासने नतिष्ठेत्॥ यडुक्तं।मात्रा स्वस्रा डुहित्रा वा न विविक्तासनो नवेत्॥बलवानिंद्रियग्रामः पंमितोप्यत्र मुह्यतीति । एवमात्मा सुरक्षितोनवति ॥ ५ ॥ ताः स्त्रियः साधुमामंत्र्य सं केतं ग्राहयित्वा (उस्सविअत्ति) संस्थाप्य उच्चावचैर्विश्वासजनकैरालापैर्विश्रंभे पातयित्वा निक्षुं आत्मनोनिमंत्रयंति आत्मनोगेन साधुमन्युपगमं कारयंति सच निक्षुरेतान्विरूपरूपा न् नानाविधान् शब्दादिविषयान् ज्ञपरिज्ञया जानीयात् प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् ॥६॥

॥ टीका—किंच । (णोतासु इत्यादि) नोनैव तासु शयनासनोपमंत्रणपाशावपा शिकासु स्त्रीषु चक्षुर्नेत्रं संदध्यात्संधयेद्वा न तद्दृष्टौ स्वदृष्टिं निवेशयेत् । सतिच प्रयोज ने ईषदवज्ञया निरीक्षेत । तथाचोक्तं । कार्येपीषन्मतिमान्निरीक्षते योषिदंगमस्थिरया । अस्निग्धया दृशाऽवज्ञया ह्यकुपितोपि कुपितइव ॥ १ ॥ तथा नापिच साहसमकार्यकर णं तत्प्रार्थनया समनुजानीयात्प्रतिपद्येत । तथा ह्यसति साहसमेतत्संग्रामावतरणवद्य न्नरकपातादिविपाकवेदिनोपि साधोर्योषिदासंजनमिति । तथा नैव स्त्रीनिः सार्धं ग्रामादौ विहरेत् गछेत्। अपिशब्दान्न ताभिः सार्धं विविक्तासनोनवेद्यतोमहापापस्थानमेतद्यतीनां यत् स्त्रीनिः सह सांगत्यमिति ॥ तथाचोक्तं । मात्रा स्वस्रा डुहित्रा वा नविविक्तासनो नवेत् ॥ बलवानिंद्रियग्रामः पंमितोप्यत्रमुह्यति ॥ १ ॥ एवमनेन स्त्रीसंगवर्जनेनात्मा स

मस्तापायस्थानेभ्योरक्षितोभवति । यतः सर्वापायानां स्त्रीसंबंधः कारणमतः स्वहितार्थी तत्संगं दूरतः परिहरेदिति ॥ ५ ॥ कथं चैताः पाशाइव पाशिकाइत्याह (आमंतिये त्यादि) स्त्रियोहि स्वभावेनैवाकर्तव्यप्रवणाः साधुमामंत्र्य यथाहममुकस्यां वेलायां भव दंतिकमागमिष्यामीत्येवं संकेतं ग्राहित्वा तथा (उस्सवियत्ति) संस्थाप्योच्चावचैर्वि श्रंभजनकैरालापैर्विश्रंभे पातयित्वा पुनरकार्यकरणायात्मना निमंत्रयंत्यात्मनोपभोगेन साधुमभ्युपगमं कारयंति । यदिवा साधोर्भयापहरणार्थं ताएव योषितः प्रोचुस्तद्यथा भ र्तारमामंत्र्यापृछ्याहमिहायाता तथा संस्थाप्य भोजनपदधावनशयनादिकया क्रिययो पचर्य ततस्तवांतिकमागतेत्यतोभवता सर्वा मद्भर्तृजनितामाशंकां परित्यज्य निर्भयेन भाव्यमित्येवमादिकैर्वचोभिर्विश्रंभमुत्पाद्य भिक्षुमात्मना निमंत्रयंते । युष्मदीयमिदं शरीरकं यादृक्षस्य क्षोदीयसोगरीयसोवा कार्यस्य क्षमं तत्रैव निमज्ज्यतामित्येवमुपप्र लोभयंति । सच भिक्षुरवगतपरमार्थएतानेव विरूपरूपान्नानाप्रकारान् शब्दादीन् विष यान् तत्स्वरूपनिरूपणतोज्ञपरिज्ञया जानीयाद्यथैते स्त्रीसंसर्गापादिताः शब्दादयोविष याडुर्गतिगमनैकहेतवः सन्मार्गार्गलारूपाइत्येवमवबुध्येत । यथा प्रत्याख्यानपरिज्ञया च तद्विपाकागमेन परिहरेदिति ॥ ६ ॥

मणबंधणेहिं णेगेहिं, कलुण विणीयमुवगसित्ताणं॥अडु मंजुलाइं भासं ति, आणवयंति भिन्नकहाहिं॥७॥ सीहं जहा च कुणिमेणं, निभ्भयमेगच रंति पासेणं ॥ एवं ज्रियाउ बंधंति संवुम्ं एगतियमणगारं॥ ८ ॥

अर्थ—(मणबंधणेहिंके०) मनने बंधन करे एवा अणेगेहिंके० अनेक प्रपंचकरती कलुण के० जे थकी पुरुषने दया उपजे तेवा करुणाना वचने विणीय के० विनय पूर्वक उवगसित्ताणं के० साधुनी पाशे आवीने अडु के० अथवा निरंतर मंजुलाइं के० मधुर स्नेह सहित मनोहर वचन भासंति के० बोले तथा भिन्नकहाहिं के० भि न्नकथा एटले रहस्यवार्ता जे मैथुन संबंधि ठाना वचन तेणे करी आणवयंति के० से वकनी पेरे साधुने ते स्त्री पोतानी आज्ञा करावे, अथवा भिन्नकहाहिं के० मैथुन संबं धिया वचनेकरी ते स्त्री आणवयंति के० साधुनुं चित्त मैथुन सेववा भणी प्रवर्त्ते तेम मैथुन सेववानी आज्ञा आपी पोतानी आज्ञायें साधुने प्रवर्त्तावे ॥ ७ ॥ हवे दृष्टांते करी देखाडेछे. जहाचके० जेम सीहंकुणिमेणंके० सिंहने मांसे करी लोभवीने निभ्भयं के० निर्भ य करी ने एगचरंति के० एकलो थको विचरे तेम करी पछी तेने पासेणं के० अनेक बंधने बांधीने कदर्थियें एवं के० एम ज्रियाउ के० स्त्रीपण संवुम्ं के० जेणे मन वचन

अने कायाने संवस्थाळे एवा एगतियं अणगारंके० कोइएक सुव्रती अणगारने स्नेहरूप बंधनेकरी बंधंतिके० बांधे धर्म थकी पाडे तो बीजा सामान्य साधुनुं केवुंज शुं. ॥८॥

॥ दीपिका–मनो बध्यते यैस्तानि मनोबंधनानि मंजुलालापस्निग्धावलोकनांगप्रकटनादीनि तैरनेकैः करुणालापविनयपूर्वकं (उवगसित्ताणंति) उपसंश्लिष्य समीपमागत्याथवा तदनंतरं मंजुलानि पेशलानि जाषंते । तथा जिन्नकथाजीरहस्यालापैर्मैथुनसंबद्धैर्वचोजिः साधोश्चित्तमकार्यकरणंप्रति आज्ञापयंति प्रवर्तयंति ॥ ७ ॥ यथा सिंहं (कुणिमेणं) मांसेनोपलोभ्य निर्नयमेकचरं पाशेन यंत्रेण बध्नंति एवं स्त्रियोप्येकं कंचनाऽनगारं साधुं संवृतमपि बध्नंति स्ववशं कुर्वंति ॥ ८ ॥

॥ टीका–अन्यच्च । (मणबंधणेहिइत्यादि) मनोबध्यते यैस्तानि मनोबंधनानि मंजुलालापस्निग्धावलोकनांगप्रत्यंगप्रकटनादीनि । तथाचोक्तं । णाहपियकं तसामिय दतियजियाउ तुमं महपिउत्ति । जीएजीयामिअहं पहवसितंमेशरीरस्स ॥ १ ॥ इत्यादिजिरनेकैः प्रपंचैः करुणालापविनयपूर्वकं (उवगसित्ताणंति) उपसंश्लिष्य समीपमागत्याऽथ तदनंतरं मंजुलानि पेशलानि विश्रंजजनकानि कामोत्काचकानि वा जाषंते । तदुक्तं । मितमहुररिजिय जंपुल्लएहिईसीकडस्क हसिएहिं॥ सविगारेहिवरागंहियं पिहियं मयजीए ॥१॥तथा जिन्नकथाजीरहस्यालापैर्मैथुनसंबद्धैर्वचोजिः साधोश्चित्तमादाय तमकार्यकरणं प्रत्याज्ञापयंति प्रवर्तयंति स्ववशं वा ज्ञात्वा कर्मकरवदाज्ञां कारयंतीति ॥ ७ ॥ अपिच । (सीहंजहेत्यादि) यथेति दृष्टांतोपदर्शनार्थे । यथा बंधनविधिज्ञाः सिंहं पिशितादिनामिषेणोपप्रलोभ्य निर्जयं गतजीकं निर्जयत्वादेवैकचरं पाशेन गलयंत्रादिना बध्नंति बद्ध्वाच बहुप्रकारं कदर्थयंत्येवं स्त्रियोनानाविधैरुपायैः पेशलजाषणादिजिः (एगतियंति) कंचन तथाविधमनगारं साधुं संवृतमपि मनोवाक्कायगुप्तमपि बध्नंति स्ववशं कुर्वंतीति । संवृतग्रहणं च स्त्रीणां सामर्थ्योपदर्शनार्थं । तथाहि । संवृतोपि ताजिर्बध्यते किं पुनरपरोऽसंवृतइति ॥ ८ ॥

अह तज पुणो णमयंती रहकारोव णेमि अणुपुव्वी ॥ बद्धे मिएव पासे णं फंदंते वि णमुच्चए ताहे ॥ए॥ अह से णुतप्पई पच्चा जोच्चा पायसंच विसम्मिसं ॥ एवं विवेगमादाय, संवासो नविकप्पए दविए ॥ १० ॥

अर्थ–अथ के० हवे साधुने पोताने वश करीने पछी तज के० त्यांते स्त्री पोताना कार्यनेविषे ते साधुने पुणोके० वली णमयंती के० नमाडे एटले सेवकनी पेरे कार्य क

रावे रहकारोव के० जेम रथकार सूत्रधार अणुपुवीके० अनुक्रमे णेमिके० पइडानो बाहेरलो प्रदेश नमाडे तेम साधुने ते स्त्री पोताना कार्य करवाने विषे नमाडे प्रवर्त्तावे, तेवारे ते साधु, बद्धे मिएवपासेणंके० मृगनी पेरे स्त्रीरूप पासे करी बंधाणो थको जेम मृग पासे करी बंधाणो होय ते फंदंतेविके० फंदाणोथको अरहो परहो हाले चाले पण ताहेके० ते पास थकी णमुच्चएके० मूकाय नही तेम साधु पण स्त्रीरूपीआ पास थकी मूकाय नही॥ए॥ अथ के० हवे स्त्रीरूपीआ पासमां पड्या पछी, सेके० ते साधु णुत्तप्पइ के० पश्चात्ताप करे पछा के० पछी संयम छांमीने गृहवास आदरे, तेवारे जूरे जेम विसम्मिसं के० विषमिश्रित एवो पायसं के० दूध तेने नोछा के० जमीने पछी पश्चात्ताप करे के ए अन्नमे सा वास्ते आसेव्यो एम चिंतवे चके० तेनी पेरे ते साधु पण पश्चाताप करे एवंके० एवो विवेग मादायके० विवेक ग्रहण करीने दविए के० मुक्ति गमन योग्य एवा साधुने संयमनी हे षणी एवीजे स्त्री तेनी साथे संवासो नविकप्पएके० संवास संसर्ग करवो नकल्पे. ॥१०॥

॥ दीपिका—अथ पुनस्तत्र स्वात्मनि अवस्तुनि नमयंति आसक्तं कुर्वंति । यथा रथकारोवर्धकिर्नेमिचक्रधाराकाष्ठं आनुपूर्व्या नमयति एवं स्त्रियोपि साधुं नमयंति स्ववशं कुर्वंति । सच साधुर्मृगवत् पाशेन बद्धोमोक्षार्थं स्पंदमानोपि चलमानोपि पाशान्नमुच्यते ॥ ए ॥ अथ ससाधुः पाशबद्धमृगइवाऽनुतप्यते पश्चात्तापं करोति । यतः । मया परिजनस्यार्थे कृतं कर्म सुदारुणं ॥ एकाकी तेन दह्येहं गतास्ते फलनागिनइति । यथा कश्चिद्विषमिश्रं पायसं भुक्त्वाऽनुतप्यते एवं पूर्वोक्तप्रकारेण विपाकं स्वानुष्ठानस्यादाय प्राप्य तानिः सह संवासोनकल्पते द्रव्यमुक्तियोग्ये साधौ ॥ १० ॥

॥ टीका—किंच । (अहतछेत्यादि) अथेति स्ववशीकरणादनंतरं पुनस्तत्र स्वानिप्रेते वस्तुनि नमयंति प्रव्हं कुर्वंति । यथा रथकारोवार्धकिर्नेमिकाष्ठं चक्रबाह्यभ्रमिरूपमानुपूर्व्या नमयत्येवं ताअपि साधुं स्वकार्यानुकूल्ये प्रवर्तयंति । सच साधुर्मृगवत् पाशेन बद्धोमोक्षार्थं स्पंदमानोपि ततः पाशान्नमुच्यतइति ॥ ए ॥ किंच । (अहसेइत्यादि) अथासौ साधुः स्त्रीपाशावबद्धोमृगवत् कूटके पतितः सन् कुटुंबकृते अहर्निशं क्लिश्यमानः पश्चादनुतप्यते । तथाहि । गृहांतर्गतानामेतदवश्यं संभाव्यते । तद्यथा । कोधायउकोसमवित्तु कोहोवणाहिं काहोविक्कउवित्त कोउग्घाम् उपहिय उपरिणीय उकोवकुमार उपडियतो जीवखडप्पडेहि परबंधइ पवेहनारउं । तथा चत् । मया परिजनस्यार्थे, कृतं कर्म सुदारुणं ॥ एकाकी तेन दह्येहं गतास्ते फलनागिनः ॥ १ ॥ इत्येवं बहुप्रकारं महामोहात्मके कुटुंबकूटके पतिताअनुतप्यंते । अमुमेवार्थं दृष्टांतेन स्पष्टयति । यथा कश्चिद्विष

मिश्रं नोजनं नुक्का पश्चात्तत्र कृतावेगाकुलितोऽनुतप्यते । तद्यथा । किमेतन्मया पापेन सांप्रतेक्षिणा सुखरसिकतया विपाककटुकमेवंनूतं नोजनमास्वादितमिति । एवमसावपि पुत्रपौत्रदुहितृजामातृस्वसृन्रातृव्यनागिनेयादीनां नोजनपरिधानपरिणयनालंकारजातमृ तकर्मत द्व्याधिचिकित्साचिंताकुलोपगतस्वशरीरकर्तव्यः प्रनष्टैहिकामुष्मिकानुष्ठानोऽहर्नि शं तद्व्यापारव्याकुलितमतिः परितप्यते । तदेवमनंतरोक्तया नीत्या विपाकं स्वानुष्ठा नस्यादाय प्राप्य । विवेकमिति वा क्वचित्पाठस्तद्विपाकं विवेकं चादाय गृहीत्वा स्त्रीनि श्चारित्रपरिपंथिनीनिः सार्धं संवासोवसतिरेकत्र नकल्पते न युज्यते कस्मिन्द्रव्यनूते मु क्तिगमनयोग्ये रागद्वेषरहिते वा साधौ । यतस्तानिः सार्धं संवासोवश्यं विवेकिनामपि सदनुष्ठानविघातकारीति ॥ १० ॥

तम्हाउ वज्जए इत्थी, विसलित्तंच कंटगं नच्चा ॥ उए कुलाणि वसवत्ती
आघाते ण सेवि णिग्गंथे ॥ ११ ॥ जे एयं उंबं अणुगिद्धा अन्नयरा
हुंति कुसीलाणं ॥ सुतवस्सिएवि से निक्खु, नोविहरे सह णमित्थीसु ॥१२॥

अर्थ—जे कारण माटे स्त्रीना समागम थकी कडवा विपाक प्राप्त थाय तम्हा के० तेकारणे इत्थीके० स्त्रीने वज्जएके० वर्जे. तु शब्द थकी स्त्रीनी साथे आलाप संलाप पण करे नहिं, जेम विसलित्तंच के० विषेकरी लिप्त एटले विषेकरी खरड्यो एवो कंटगंके० कांटो नच्चाके० जाणीने तेने दूर थकी टालियें, तेम साधु होयते स्त्रीने विषे करी खड्या कांटा नी पेरे डुर थकी टाले तथा उए के० एकलो थको कुलाणि के० ते गृहस्थने कुलेजइ, वसवत्ती के० तेनो वशवर्त्ती थको जे साधु आघाते के० धर्मकथा कहे सेवि के० ते द्रव्यलिंगी साधु पण णणिग्गंथे के० निर्ग्रंथ नही निषिद्धाचरण सेवनादित्यर्थः ॥ ११ ॥ जे एयं के० जे चारित्रिया ए स्त्री संबंधिया उंबं के० निंदनिक तेने विषे अणुगिद्धा के० गृद्ध एटले मूर्छा थका होय ते अन्नयराहुंति कुसीलाणं के० अन्य पासत्था उसन्ना कुशीलिया प्रमुख जे स्त्रीनी पाशे कथाना करनार होय तेमांहेला कुशीलिया जाणवा ते कारणे सुतवस्सिएवि के० रूडो तपस्वी जे होय सेनिक्खु के० ते साधु नोविहरेसहण मित्थीसु के० स्त्रीसहित विचरे नही, तथा स्त्रीनो समागम आलाप संलापादिक पण करे नही. अही णं वाक्यालंकारेछे. स्त्रीने अंगारा सरखी जाणी दूर छांमी आपे. ॥ १२ ॥

॥ दीपिका—तस्मात् स्त्रियो वर्जयेत् । तुशब्दादालापादिन कुर्यात् । विषे लिप्तं कंटकमिव ज्ञात्वा । विषदिग्धकंटकः शरीरेमग्नः सन्ननर्थं करोति स्त्रियस्तु स्मरणादपि । यतः । विषस्य विषयाणां च दूरमत्यंतमंतरं ॥ उपभुक्तं विषं हंति विषयाः स्मरणादपीति । तथा (उए)

एकोऽसहायः कुलानि गृहस्थगृहाणि गत्वा स्त्रीणां वशवर्ती योधर्ममाख्याति नासौ निर्ग्रंथोनिभिक्षाचरणात् ॥ ११ ॥ ये यतयएतत् पूर्वोक्तं झंझं गर्ह्यं स्त्रीसंबंधादिकं एकाकिस्त्रीधर्मकथानादिकं वा अनुगृद्धाः प्रत्यासक्तास्ते कुशीलादीनां पार्श्वस्थादीनामन्यतमाः स्युः । ततस्तु तपस्व्यपि तपःकृशदेहोपि स्त्रीभिः सह नविहरेन्नगच्छेन्नापि तिष्ठेत् । तृतीयार्थे सप्तमी । णं वाक्यालंकारे ॥ १२ ॥

॥ टीका—स्त्रीसंबंधदोषानुपदर्श्योपसंहरन्नाह । (तम्हाइत्यादि) । यस्माद्विपाककटुः स्त्रीभिः सह संपर्कस्तस्मात्कारणात् स्त्रियोवर्जयेत् । तुशब्दात्तदालापमपि न कुर्यात् । किं तदित्याह । विषोपलिप्तं कंटकमिव ज्ञात्वाऽवगम्य स्त्रियं वर्जयेदिति । अपिच । विषदिग्ध कंटकः शरीरावयवे नग्नः सन्ननर्थमापादयेत् स्त्रियस्तु स्मरणादपि । तडुक्तं । विषस्य विषयाणां च, दूरमत्यंतमंतरं ॥ उपयुक्तं विषं हंति,विषयाः स्मरणादपि ॥१॥ तथा वरि विसखइयंविसय सुहुइक्क सुविसिणमरंति॥विसयामि सपुणघाइया णरणरएहिंपडंति॥१॥ तथोजएकोऽसहायः सन् कुलानि गृहस्थानां गृहाणि गत्वा स्त्रीणां वशवर्ती तन्निर्दिष्टवेला गमनेन तदानुकूल्यं नजमानोधर्ममाख्याति योसावपि ननिर्ग्रंथोनसम्यक् प्रव्रजितोनि भिक्षाचरणसेवनादवश्यं तत्रापायसंनवादिति । यदा पुनः काचित्कुतश्चिन्निमित्तादागंतुम समर्था वृद्धा वा नवेत्तदा परिसहायसाध्वनावे एकाक्यप्यपि गत्वाऽपरस्त्रीवृंदमध्यगतायाः पुरुपसमन्वितायावा स्त्रीनिंदाविषयजुगुप्साप्रधानं वैराग्यजननं विधिना धर्मं कथयेदपीति ॥ ११ ॥ अन्वयव्यतिरेकाभ्यामुक्तोर्थः सुगमोनवतीत्यभिप्रायवानाह । (जेएयंउंठमि त्यादि) ये मंदमतयः पश्चात्कृतसदनुष्ठानाः सांप्रतेक्षिणएतदनंतरोक्तं झंझंतिजुगुप्सनीयं गर्ह्यं तदत्र स्त्रीसंबंधादिकं एकाकिस्त्रीधर्मकथनादिकं वा इष्टव्यं । तदनु तत्प्रति ये गृद्धा अध्युपपन्नामूर्छितास्तेहि कुशीलानां पार्श्वस्थावसन्नकुशीलसंसक्तयथाछंदरूपाणामन्यतरा नवंति, यदिवा काथिकपश्यकसंप्रसारकमामकरूपाणां वा कुशीलानामन्यतरानवंति तन्म ध्यवर्तिनस्तेपि कुशीलानवंतीत्यर्थः। यतएवमतः सुतपस्व्यपि विकृष्टतपोनिष्टप्तदेहोपि भिक्षुः साधुरात्महितमिछन् स्त्रीभिः समाधिपरिपंथिनीभिः सह न विहरेन्नक्वचिजछेन्नापि संतिष्ठेत्। तृतीयार्थेसप्तमी।णमितिवाक्यालंकारे।ज्वलितांगारपुंजवहूरतः स्त्रियोवर्जयेदितिनावः॥१२

अवि धूयराहि सुण्हाहिं,धातीहिं अडुव दासीहिं ॥ महतीहि वा कुमारी हिं, संथवं सेन कुज्जा अणगारे॥१३॥अड णाइणंच सुहीणंवा अप्पियं द ठु एगता होंति॥ गिद्धासत्ता कामेहिं; रस्कणपोसणे मणुस्सोसि ॥ १४ ॥

अर्थ—हवे कदाचित् पुत्री प्रमुखनो संसर्ग थइ जाय,तो ते पण साधुयें टालवो ते आश्रयी

कहेछे अवि के० अपि संनावनाये धूयराहिंसुएहाहिं के० धूआ एटले बेटी साथे पण साधु विचरे नहीं, तथा सुएहा एटले वहु साथे अने धातीहिं के० धाव, ते माता स मानछे ते साथे पण, अडुव के० अथवा दासीहिं के० दासी साथे, तथा महतीहि के० म्होटी स्त्री साथे, वा के० अथवा कुमारीहिं के० कुमारिका जे न्हानी स्त्री, तेनी साथे पण संथवं के० संस्तव परिचय से के० ते साधुनकुंज्जा के० नकरे तेने अणगा रे के० अणगार जाणवो. ॥ १३ ॥ हवे ए पूर्वोक्त स्त्रीउंना समागम थकी जे दोष उप जे ते कहेछे. अथ के० हवे कदापि एगता के० एकदा प्रस्तावे एकांते स्त्रीनी साथे साधु नो संसर्ग तेने णाईणं के० ज्ञाति गोत्रि वा के० अथवा सुहीणं के० सुहृत् एटले मि त्र संबंधि वर्ग होंति के० त्यां होय ते दट्ठु के० देखे तेवारे तेउने अप्पियं के० अप्री ति एटले द्वेष उपजे अने तेउ जाणेके गिद्धासत्ता कामेहिं के० जूवो ए पुरुष एवा गृ द्धछे कामनोगने विषे आसक्त देखायछे एम चिंतवी सक्रोध वचन बोले के मणुस्सोसिके० अरेतुं एनो पुरुषछे के शुं जे तुं अंहीं घणो घणो बेशेछे, रक्खण पोसणे के० राखवे पो षवे आदर करेछे, तेनो शुं कारणछे, एवा कठोर वचन ते बोले. ॥ १४ ॥

॥ दीपिका—डुहितृनिरपि पुत्रीनिरपि सार्धं न विरहेत् स्नुषाः सुतनार्यास्तानिर्धात्र्यास्त न्यदायिन्यस्तानिरथवा दासीनिर्महतीनिः प्रौढानिः कुमारीनिर्लघ्वीनिर्वा सार्धं संस्त वं परिचयं न कुर्यादनगारः ॥ १३ ॥ अथ एकदा स्त्रीनिः सह संगतं साधुं दृष्ट्वा योषि तुज्ञातीनां सुहृदां वाऽप्रियं चित्ताशंका नवति । एवंच ते माब्रुवेरन् । यथा सत्वाः प्राणि नः कामैर्गृद्धाः । एवंविधोप्ययं श्रमणः स्त्रीसक्तचेताः स्त्रीनिः सार्धं तिष्ठति । तडुक्तं । मुंडं शिरोवदनमेतदनिष्टगंधि, निक्षाशनेन नरणं वहतोदरस्य । गात्रं मलेन मलिनं गतसर्व शोनं, चित्रं तथापि मनसो मदनेस्ति वांछेति ॥ अतिस्त्रीसंगं दृष्ट्वा तव ज्ञातयः क्रुद्धाः साधुं ब्रुवंति रक्षणं वा पोषणं वा समाहारद्वंद्वे रक्षणपोषणं तत्र त्वमादरं कुरु । यतस्त्व मस्यामनुष्योसि । यदिवा वयं रक्षणे पोषणे प्रछन्नास्त्वमेव मनुष्योसि त्वयैव सार्धमिय मेकाकिन्यहर्निशं त्यक्तगेहव्यापारा तिष्ठतीति ॥ १४ ॥

॥ टीका—कतमानिः पुनःस्त्रीनिःसार्धं न विहर्तव्यमित्येतदाशंक्याह । (अविधूयराही त्यादि) अपिशब्दः प्रत्येकम।न[illegible]ध्यते । (धूयराहित्ति) डुहितृनिरपि सार्धं न विहरे त्तथा स्नुषाः सुतनार्यास्तानिरपि सा[illegible] न विविक्तासनादौ स्थातव्यं । तथा धात्र्यः पंच प्रकाराः स्तन्यदायिन्योजननीकल्पास्तानिश्च साकं न स्थेयं । अथवा सतां तावदपरायोषि तोयाअप्येतादास्योघटयोषितः सर्वापसदास्तानिरपि सह संपर्कं परिहरेत् । तथा महती निः कुमारीनिर्वाशब्दाल्लघ्वीनिश्च सार्धं संस्तवं परिचयं प्रत्यासत्तिरूपं सोऽनगारोन कु

यदिति । यद्यपि तस्यानगारस्य तस्यां डुहितरि स्नुषादौ वा नचित्तान्यथात्वमुत्पद्यते तथा पि च तत्र विविक्तासनादावपरस्य शंकोत्पद्यते अतस्तछंकानिरासार्थं स्त्रीसंपर्कः परिहर्त व्यश्ति ॥१३॥ अपरस्य शंका यथोत्पद्यते तथा दर्शयितुमाह । (अडुणाईणमित्यादि) विविक्तयोषिता सार्धमनगारमथैकदा दृष्ट्वा योषिज्ञातीनां सुहृदां वा अप्रियं चित्तडुःखा सिका नवत्येवं च ते समाशंकेरन् यथा सत्वाः प्राणिनश्छामदनकामैर्गृध्दाअध्युपप न्नास्तथाह्येवंनूतोप्ययं श्रमणः स्त्रीवदनावलोकनासक्तचेताः परित्यक्तनिजव्यापारोऽनया सार्धं निर्ह्रीकस्तिष्ठति । तडुक्तं । मुंमं शिरोवदनमेतदनिष्टगंधि, निक्षाटनेन नरणं वह तोदरस्य ॥ गात्रं मलेन मलिनं गतसर्वशोनं चित्रं तथापि मनसो मदनेस्ति वांछा ॥१॥ तथातिक्रोधाध्मातमानसाश्चैव मूचुर्यथा रक्षणं पोषणं चेति विगृह्य समाहारहंद्व स्तस्मिन् रक्षणपोषणे सदादरं कुरु । यतस्त्वमस्याः मनुष्योसि मनुष्योवर्तसे । यदि वा परं वयमस्यारक्षणपोषणव्यापृतास्त्वमेव मनुष्योवर्तसे । यतस्त्वयैव सार्धमियमेका किन्यहर्निशं परित्यक्तनिजव्यापारा तिष्ठतीति ॥ १४ ॥

समणंपि दठुदासीणं, तब्ववि तावएगे कुप्पंति ॥ अडु नोयणेहिं णब्वेहिं इत्थीदोसं संकिणो होंति ॥१५॥ कुवंति संथवं ताहिं, पब्नठा समाहि जो गेहिं ॥ तम्हा समणा णसमेंति, आयहियाए सण्णिसेज्जाउ ॥ १६ ॥

अर्थ—समणंपि दठुदासीणं के० तपस्वी, उदासीन मध्यस्थ, राग द्वेष रहित एवो सा धु पण स्त्री साथे आलाप करतो थको देखीने ताव के० तेवारे तब्ववि के० त्यां प ण एगे के० कोइएक कुप्पंति के० क्रोध करे अडुवा के० अथवा नोयणेहिं के० अने क प्रकारना नोजन ते णब्वेहिं के० साधुने अर्थे थाप्या देखीने एम जाणे जे ए यति आ हारनो गृध्द सदैव अहीं आवेछे, इत्थीदोसं संकिणोहोंति के० तेवारे तेने स्त्रीना दोष नी शंका मनमांहे उपजे, अने एम जाणे के ए स्त्रीपण नली नथी ॥ १५ ॥ तेमाटे जे पब्नठा समाहि जोगेहिं के० प्रकर्षे करी धर्मरूप समाधि जे मन वचन कायाना शु नयोगरूप व्यापार,तेथकी भ्रष्ट थया होय. कुवंति संथवंताहिंके० तेवा ड्व्यलिंगीउ स्त्रीनी साथे संस्तव परिचय करे तम्हा के० तेमाटे एवुं जाणीने समणा के० साधु णसमेंति के० स्त्रीनी साथे नजाय, आयहियाए के० आत्माना हितने अर्थे सण्णिसेज्जाउ के० स्त्रीजे स्थानके रहेती होय ते स्थानके साधु निषिज्जा अशनादिक परिचय करे नही.॥१६॥

॥ दीपिका—श्रमणमुदासीनमपि रागद्वेषरहितमपि दृष्ट्वा तत्रापि मध्यस्थे रहस्यस्त्री जल्पनकृतदोषादेके कुप्यंति श्रमणं मध्यस्थमपि स्त्रिया सहैकांते जल्पं दृष्ट्वा एके कुप्यं

ति किंपुनः कृतविकारं । तथा स्त्रीदोषाशंकिनश्च ते नवंति । ते चामी दोषाः। नोजनैर्बहुविधै र्न्यस्तैः साध्वर्थमुपकल्पितैरियमेनमुपचरति अथवा नोजनार्थमुपविष्टेष्वपि श्वशुरादिषु साध्वागमने सा वधूः समाकुला सत्यन्यस्मिन् दातव्येऽन्यद्ददाति । यथा । कयाचि द्वध्वा ग्राममध्यप्रारब्धनटप्रेक्षणगतचित्तया पतिश्वशुरयोर्नोजनार्थमुपविष्टयोस्तंडुलाइति कृ त्वा राइकाः संस्कृत्य दत्ताः । ततश्चासौ श्वशुरेणोपलक्षिता पत्या कुद्धेन ताडिता ऽन्यग तचित्तेत्याशंकया गृहान्निर्घाटितेति ॥१५॥ तानिः स्त्रीनिः सह संस्तवं परिचयं कुर्वंति । किंनूताः । प्रन्नष्टाः स्वलिताः समाधियोगेन्योधर्मध्यानव्यापारेन्यः प्रच्युताः तस्मात् श्र मणा (णसमेंतित्ति) नगछंति । सत्यः शोननाअनुकूलत्वान्निपद्याइव निपद्याः स्त्रीकृ ता माया अथवा स्त्रीवसतीः आत्महिताय स्वहितं मन्यमानाः ॥ १६ ॥

॥ टीका-(किंचान्यत् । समणंपीत्यादि) श्राम्यतीतिश्रमणः साधुः । अपिशब्दोनिन्नक्र मः। तमुदासीनमपि रागद्वेषविरहान्मध्यस्थमपि दृष्ट्वा।श्रमणग्रहणं तपःखिन्नदेहोपलक्षणा र्थं । तत्रैवंनूतेपि विषयद्वेषिण्यपि साधौ तावदेके केचन रहस्यस्त्रीजल्पनकृतदोषत्वात्कु प्यंति । यदिवा (पाठांतरं) "समणं दठूणुदासीणं" श्रमणं प्रव्रजंतं उदासीनं परित्यक्त निजव्यापारं स्त्रिया सह जल्पंतं दृष्ट्वोपलन्य तत्राप्येके केचन तावत् कुप्यंति किंपुनः कृतवि कारमितिनावः । अथवा स्त्रीदोषाशंकिनश्चते नवंति । ते चामी स्त्रीदोषाः। नोजनैर्नानाविधै राहारैर्न्यस्तैः साध्वर्थमुपकल्पितैरेतदर्थमेव संस्कृतैरियमेनमुपचरति तेनायमहर्निशमि हागछतीति।यदिवा नोजनैःश्वशूरादीनां न्यस्तैरर्धदत्तैः सद्भिः सावधूः साध्वागमनेन समा कुलीनूता सत्यन्यस्मिन् दातव्येऽन्यद्दद्यात्ततस्ते स्त्रीदोषाशंकिनोनवेयुर्यथेयं दुःशीलाऽने नैव सहास्तइति । निदर्शनमत्र यथा कयाचि द्वध्वा ग्राममध्यप्रारब्धनटप्रेक्षणैकगतचि त्तया पतिश्वशुरयोर्नोजनार्थमुपविष्टयोस्तंडुलाइति कृत्वा राइकाः संस्कृत्य दत्तास्ततोसौ श्वशुरेणोपलक्षिता निजपतिना कुद्धेन ताडिता अन्यपुरुषगतचित्तेत्याशंक्य स्वगृहान्नि र्घाटितेति ॥ १५ ॥ किंचान्यत् । (कुर्वंतीत्यादि) तानिः स्त्रीनिः सन्मार्गार्गलानिः सह संस्तवं तद्गृहगमनालापदानसंप्रेक्षणादिरूपं परिचयं तथाविधमोहोदयात्कुर्वंति विदध ति। किंनूताः।प्रकर्षेण नृष्टाः स्वलिताः समाधियोगेन्यः।समाधिर्धर्मध्यानं तदर्थं तत्प्रधा नावा योगामनोवाक्कायव्यापारास्तेन्यः प्रच्युताः शीतलविहारिणइति । यस्मात् स्त्रीसं स्तवात्समाधियोगपरिभ्रंशोनवति तस्मात्कारणाछ्रमणाः सत्साधवोन (समेंति) न गछं ति । सछोननाः सुखोत्पादकतयाऽनुकूलत्वान्निषद्याइव निषद्यास्त्रीनिः कृता माया यदि वा स्त्रीवसतीरिति आत्महिताय स्वहितं मन्यमानाः । एतच्च स्त्रीसंबधपरिहरणं तासामध्यै हिकामुष्मिकापायपरिहाराद्धितमिति । क्वचित्पश्चार्धमेवं पठ्यते ॥ तत्प्रासमणाच जहा

हि अहितात्संनिसेज्जाउ ॥ अयमस्यार्थः। यस्मात्स्त्री संबंधोनर्थाय नवति तस्मात् हेश्रमण साधो । तुशब्दोविशेषणार्थः । विशेषेण सनिपद्या स्त्रीवसतीस्तत्कृतोपचाररूपा वा माया आत्महिताद्धेतोर्जह्याद्धि परित्यजेति ॥ १६ ॥

वह्वे गिहाइं अवहट्टु, मिस्सीनावं पत्नुया (पाठांतरे पणता) यएगे ॥ धुवमग्गमेव पवयंति वायावीरियं कुसीलाणं ॥१७॥ सुद्धं रवति परिसाए, अह रहस्संमि डुक्कडं करेंति ॥ जाणंतियणं तहाविया, माइल्ले महासढेयंति॥ १८ ॥

अर्थ—वह्वे के० घणा मनुष्य गिहाइंअवहट्टु के० घर गंमी संयम आदरीने वली मोहनीय कर्मना उदय थकी अज्ञानपणे, मिस्सीनावं के० मिश्रनावे पत्नुयाचके० पहोता एवा एगे के० कोइएक मनुष्य ते गृहस्थ पण नही अने यतिपण नही एटले द्व्यलिंगी थाय. एवा बतां पण धुवमग्गमेव के० मोक्ष मार्गज एटले अमारो मोक्षनो मार्ग सत्यबे एम पवयंति के०मध्यस मार्गने श्रेष्ठ कही बोले ए कारणे अहो कुसीलाणं के०ते कुसीलीयाना वायाके० वचननुं बोलवा मात्र, जे वीरियंके० बल वीर्यबे ते ज्ुवो केवुं बे ॥ १७ ॥ एरीते परिसाए के० परखदा मध्ये ते कुशीलिया पोतानी आत्माने सुद्धं के० शुद्ध निर्दोष रवति के० बोले अह के० अथ हवे परखदा मांहेथी उठया पढी, रहस्संमि के० एकांत गंनो डुक्कर्म करेंति के० डुष्कृत एटले अनाचार करे. एरीते ते मूर्ख पोतानो अनाचार गोपवे, तोपण जाणंतियणंतहाविया के० तेना अंग चेष्टाना जाण होय तेजाणे, तथा सर्वज्ञ तो जाणेजबे के ए साधु माइल्लेके० डुष्ट मायावीबे, तथा महासढेयंति के० महाधूर्त्त मृषावादी बे. एरीते तो बीजा जाणे किंवा नजाणे परंतु सर्वज्ञतो जाणेजबे. ॥ १८ ॥

॥ दीपिका—बह्वः केचन गृहाण्यपहृत्य परित्यज्य मिश्रीनावं गृहस्थतुल्यत्वं प्रणताः प्राप्ताएवंनूतास्ते ध्रुवमार्गं मोक्षमार्गमेव प्रवदंति, यथायमेवास्मदीयोमार्गः श्रेयान् अनेनैव प्रव्रज्यानिर्वाहः स्यादिति । तदेतत्कुशीलानां वाचा कृतवीर्यं नानुष्ठानकृतं । वाङ्मात्रेणैव ते प्रव्रजितानतु सदनुष्ठानतइत्यर्थः ॥ १७ ॥ सकुशीलोवाङ्मात्रेण परिषदि शुद्धमात्मानं रौति नाषते । अथ रहस्येकांते डुष्कृतं पापं करोति तच्च तस्य पापमन्यः कोपि न वेत्ति तथापि तथारूपमनुष्ठानं विदंतीतितथाविदोनिपुणाइंगिताकारज्ञाः सर्वज्ञावा जानंत्येव यतोयं मायावी महाशठश्चेति ॥ १८ ॥

॥ टीका—किं केचनाच्युपगम्यापि प्रव्रज्यायां स्त्रीसंबंधं कुर्युर्येनैवमुच्यते उमित्याह । (ब

हवेइत्यादि) बहवः केचन गृहाण्यपहृत्य परित्यज्य पुनस्तथाविधमोहोदयान्मिश्रीभावइ ति । द्रव्यालिंगमात्रसद्भावाद्भावतस्तु गृहस्थसमकल्पाइत्येवंभूतामिश्रीभावं प्रस्तुताः सम नुप्राप्तान गृहस्थाएकांततोनापि प्रव्रजितास्तदेवंभूताअपि संतोध्रुवोमोक्षः संयमोवा तन्मा र्गमेव प्रवदंति । तथाहि । ते वक्तारोभवंति यथाऽयमेवास्मदारब्धोमध्यमः पंथाः श्रेया न् तथाह्यनेन प्रवृत्तानां प्रव्रज्यानिर्वहणं भवतीति तदेतत्कुशीलानां वाचा कृतं वीर्यं नानुष्ठा नकृतं । तथाहि । ते द्रव्यलिंगधारिणोवाङ्मात्रेणैव वयं प्रव्रजिताइति ब्रुवते नतु तेषां सातगौरवविषयसुखप्रतिबद्धानां शीतलविहारिणां सदनुष्ठानकृतं वीर्यमस्तीति ॥ १७ ॥ अपिच (शुद्धंरवतीत्यादि) सकुशीलोवाङ्मात्रेणाविष्कृतवीर्यः पर्षदि व्यवस्थितोधर्मदेश नावसरे सत्यात्मानं शुद्धमपगतदोषमात्मानमात्मीयानुष्ठानं वा रौति भाषते । अथाऽनं तरं रहस्येकांते दुष्कृतं पापं तत्कारणं वा सदनुष्ठानं करोति विदधाति तच्च तस्यासदनु ष्ठानं गोपायतोपि जानंति विदंति । के । तथारूपमनुष्ठानं विदंतीति तथाविदइंगिताकार कुशलानिपुणास्तद्विदइत्यर्थः । यदिवा सर्वज्ञाः । एतदुक्तंभवति । यद्यप्यपरः कश्चिदकर्त व्यं तेषां न वेत्ति तथापि सर्वज्ञाविदंति तत्परिज्ञानेनैव किंन पर्याप्तं यदिवा मायावी महा शठश्चायमित्येवं तथाविदस्तिद्विदोजानंति । तथाहि । प्रछन्नकार्यकारी न मां कश्चिज्जाना त्येवं रागांधोमन्यते अथच तं तद्विदो वदंति । तथाचोक्तं । नयलोएणंलोणिज्जइ,णयउंपि ज्जइ घयं चतेल्लंवा ॥ किहसक्कावंचेउअत्ताअणूहूयकल्लाणो॥ १ ॥ १८ ॥

सयं दुक्कडं च न वदति; आइठोवि पकछति बाले ॥ वेयाणुवीइ मा का सी, चोइज्जंतो गिलाइ से भुज्जो ॥ १९ ॥ उसियावि इछिपोसे सुपुरिसा इछिवेयखेदन्ना ॥ पन्नासमन्निताबेगे, नारीणं वसं उवकसंति ॥ २० ॥

अर्थ—सयंदुक्कडंच के० जे द्रव्यलिंगी होय, ते पोतानो करेलो अनाचार तेने चशब्द थकी आचार्यादिके पुछ्यो थको, नवदति के० नकहे; एटले पोतानो अ नाचार प्रकाशे नही, तथा आइठोवि के० आदिष्ट एटले चोयणा कस्यो छतो, एटले हे वत्स आज पछी एम न करवुं एरीते प्रेस्यो थको, पण बाले के० ते बाल अज्ञानी पक छति के० पोताना आत्माने श्लाघनीय मानतो थको एम कहेके, आज पछी तमे क होछो तेम करीश, तथा वेय के० पुरुषवेदनो उदय तेथी थयोजे अणुवीइ के० मैथुन सेववानो अभिलाष ते माकासी के० मकरीश, एरीते चोइज्जंतोके० प्रेस्यो थको गिलाइ के० गिलानपणु पामे. एम सेके० ते द्रव्यलिंगी साधु भुज्जो के० वली वली सां भलुं अणसांभल्युं करे ॥ १९ ॥ उसियावि के० अनेक प्रकारना कामभोगने विषे उषित

एटले जुक्तनोगी थइने पुरिसाके० ते मनुष्य इब्रिपोसेसुके० स्त्रीने पोषवाने विषे प्रवर्त्ते तथा इब्रिवेयखेदन्ना के० स्त्रीवेद खराबछे, एटले स्त्री संसार भ्रमणनुं कारणछे, एम जाणता छता पण पन्नासमन्निताबेगे के० प्रज्ञासमन्वित एटले बुद्धिमंत एवा कोइएक पुरुष मोहने उदये करी नारीणंवसं के० तेहिज स्त्रीने वशवर्त्तियें रहे अने उवकसंति के० ते स्त्री जे कांइ कहे ते किंकरनी पेरे करे इत्यर्थः ॥ २० ॥

॥ दीपिका—स्वयंकृतं पापं परेण पृष्टोपि नवदति यदहमेतत्पापकारीति परेणादिष्टश्चोदितोपि बालोऽज्ञः प्रकछते आत्मानंश्लाघमानोऽकार्यमपलपति । तथा वेदः पुंवेदोदयस्तस्यानुवीचिरानुकूल्यं मैथुनानिलाषं माकार्षीरिति यः पुनश्चोद्यमानोग्लायति ग्लानिं याति अनाकर्णितं करोति मर्मविद्धोवा सखेदं नाषते । यथा । संनाव्यमानपापश्चेदपापेनापि किं मया । नृजमुद्विजते लोको,निर्विषादपि सर्पतइति ॥ १९ ॥ स्त्रीपोषकाये अनुष्ठानविशेषास्तेषु उषिताव्यवस्थिताः पुरुषा जुक्तनोगिनइत्यर्थः । तथा स्त्रीवेदे खेदज्ञाः स्त्रीवेदो मायाबहुलइति निपुणाअपि प्रज्ञाबुद्धिरौत्पत्त्यादिका तया समन्वितायुक्ताअपि एके नारीणां वशमायत्ततां उपकर्षंति व्रजंति स्त्रीवशवर्तिनोनवंतीत्यर्थः । नतु एवं जानंति । यतः । एताहसंतिच रुदंतिच कार्यहेतोर्विश्वासयंति च नरं नच विश्वसंति ॥ तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन नार्यः स्मशानघटिकाइव वर्जनीयाः ॥१॥ स्त्रीस्वनावस्तथा । यथा । एकोयुवा गृहान्निर्गत्य पाटलिपुत्रं प्रस्थितस्तदंतरेऽन्यतरग्रामवर्तिन्या कयाचिन्नार्याऽनिहितस्त्वमेवं शुनकृतिः क यासि तेनापि च यथास्थितमुक्तं । तयोक्तं पठित्वा चलमानोत्रागछेः । तेनांगीकृत्याग्रे गतं । अधीत्य च तत्रायातः । तया च स्नानजोजनादिनिः सत्यापितो हावनावैश्च हृतचित्तस्तां हस्ते गृण्हाति ततस्तया महता शब्देन फूत्कृत्य जनागमनावसरे तन्मस्तके वारिघटः प्रक्षिप्तः । ततोलोकस्य तयोक्तं अयं गले लग्नेन जलेन व्याकुलोमृतइव । ततोमयोदकेन सिक्तइति । गते लोके सा पृष्टवती त्वया कामशास्त्रं पठता स्त्रीस्वनावानां किं ज्ञातमिति एवं स्त्रीचरितं डुर्विज्ञेयं । यतः । हृद्यन्यद्वाच्यन्यत्, कर्मण्यन्यत् पुरो थ पृष्टेऽन्यत् ॥ अन्यत्तव मम चान्यत् स्त्रीणां सर्वं किमप्यन्यदिति ॥ २० ॥

॥ टीका—किंचान्यत् (सयंडुक्कडंचेत्यादि) । स्वयमात्मना प्रछन्नं यद्दुष्कृतं कृतं तदपरेणाचार्यादिना पृष्टोन वदति न कथयति यथाहमस्याऽकार्यस्य कारीति । सच प्रछन्नपापोमायावी स्वयमवदन् यदापरेणादिष्टश्चोदितोपि सन् बालोज्ञोरागद्वेषकलितोवा प्रकछते आत्मानं श्लाघमानोऽकार्यमपलपति वदतिच यथाहमेवंनूतमकार्यं कथं करिष्ये इत्येवं धाष्टर्यात्प्रकछते । तथा वेदः पुंवेदोदयस्तस्यानुवीच्याऽनुकूल्यं मैथुनानिलाषं

तन्माकार्षी रित्येवं नूयः पुनश्चोद्यमानोसौ ग्लायति ग्लानिमपयात्यकर्णश्रुतं विधत्ते मर्मैवि द्धोवा सखेदमिव नाषते । तथा चोक्तं । संनाव्यमानपापोह,मपापेनापि किं मया ॥ निर्वि षस्यापि सर्पस्य नृशमुद्विजते जनइति ॥ १ए ॥ अपिच । (उसियावीत्यादि) स्त्रियं पो षयंतीति स्त्रीपोषकाअनुष्ठानविशेषास्तेषूषिताअपि व्यवस्थिताअपि पुरुषामनुष्याजुक्त नोगिनोपीत्यर्थः तथा स्त्रीवेदज्ञाः स्त्रीवेदोमायाप्रधानइत्येवं निपुणाअपि तथा प्रज्ञया औत्पत्तिक्यादिबुध्या समन्वितायुक्ताअप्येके महामोहांधचेतसोनारीणां सम्यक्स्त्री णां संसारावतरणवीथीनां वशं तदायत्ततामुपसामीप्येन कषंति व्रजंति । यद्यत्ताः स्वप्राय मानाअपि कार्यमकार्यं वा ब्रुवते तत्तत्कुर्वते नपुनरेतज्जानंति यथैताएवंनूतानवंतीति । तद्यथा । एताहसंति च रुदंति च कार्यहेतो,र्विश्वासयंति च नरं नच विश्वसंति ॥ तस्मा न्नरेण कुलशीलसमन्वितेन, नार्यः श्मशानघटिकाइव वर्जनीयाः ॥ १ ॥ तथा । समुद्र वीचीव चलस्वनावाः, संध्यान्नरेखेव मुहूर्तरागाः ॥ स्त्रियः कृतार्थाः पुरुषं निरर्थकं, नि ष्पीडितालक्तकवत्त्यजंति ॥ २ ॥ अत्रच स्त्रीस्वनावपरिज्ञाने कथानकमिदं । तद्यथैकोयुवा स्वगृहान्निर्गत्य वैशिकं कामशास्त्रमध्येतुं पाटलिपुत्रं प्रस्थितः। तदंतरालेऽन्यतरग्रामवर्तिन्यै कया योषिताऽनिहितस्तद्यथा सुकुमारपाणिपादशोननाकृतिस्त्वं क्व प्रस्थितोसि तेनापि य थास्थितमेव तस्याः कथितं । तयाचोक्तं । वैशिकं पठित्वा मम मध्ये नागंतव्यं तेनापि तथै वान्युपगतं । अधीत्य चासौ मध्येनायातस्तया च स्नाननोजनादिना सम्यगुपचरितोविविध हावनावैश्चापहृतहृदयः संस्तां हस्तेन गृह्णाति ततस्तया महता शब्देन फूत्कृत्य जनागमना वसरे मस्तके वारिवर्धनिका प्रक्षिप्ता। ततोलोकस्य समाकुले एवमाचष्टे। यथायं गले लग्नेनो दकेन मनाक् मृतः । ततोमयोदकेन सिक्तइति । गतेच लोके किं त्वया वैशिकशास्त्रोप देशेन स्त्रीस्वनावानां किं परिज्ञातमित्येवं स्त्रीचरित्रं डर्विज्ञेयमिति नात्रास्था कर्तव्येति । तथा चोक्तं । हृद्यन्यद्वाच्यन्यत्कर्मण्यन्यत्पुरोथपृष्ठेन्यत् ॥ अन्यत्तव मम चान्यत् स्त्रीणां सर्वं किमप्यन्यत् ॥ २० ॥

अवि हत्थपादछेदाए, अडुवा वद्धमंसउक्कंते ॥ अवि तेयसानितावणानि नछिय खारसिंचणाइं च ॥ ११ ॥ अड कन्नणासछेदं, कंठछेदणं तितिरकंती ॥ इत पावसंतत्ता, नयबिंति पुणोन काहिति ॥ २२ ॥

अर्थ—हवे इहलोके पण स्त्रीने संबंधे जे विपाक थाय ते देखाडेले अपि एवी संना वना ले जे कुशीलिया पुरुष होय ते हत्थपादछेदाएके० हस्तपादादिकनुं छेद पामे, अडुवा के०अथवा वद्धमंसके० चर्म अने मांसनुं उक्कंते के० उपडवुं पामे अपि एवी संनावना

छे तेयसाके० अग्नीनो ताप पामे एटले राजपुरुष रीशाणा थका अभितावणानिके० पर स्त्री गमन करनार पुरुषना अग्नी सहित तेना शरीरना जडथुआ करे नछिय के० वांशला साथे तेना शरीर त्राछीने तेवार पछी खारसिंचणाइंच के० क्षारनुं सीचवुं करे, एटले लुणक्षेप पामे ॥२१॥ अडु के० अथवा कसुणासछेदं के० कान अने नाशिकानुं छेदन पामे. कंठछेदणं तितिरकंती के० कंठनुं छेदन पोताना कर्मना उदये सहन करे एरीते इब के० अंहीं मनुष्य लोकने विषे पण पावसंतत्ता के० पापे करी संतप्त एवी विटंबना पामे, तथापि नयबिंतिके० एमनकहे जे पुणोके० हवे वली हुं एवो अनाचार नकाहिंतिके० नही करुं एम विचारी विरति पणु अंगीकार करे नही॥२२॥

॥ दीपिका—स्त्रीसंबंधे रागिणां हस्तपादछेदाद्यपि अथ वर्ध्रमांसोत्कर्तनमपि तेजसाग्निनाऽभितापनानि स्त्रीसंबंधिभिर्नृपुरुषैर्नटित्रकाण्यपि क्रियंते। पादारिकास्तथा शस्त्रैश्छित्वा क्षारोदकसेचनानि प्राप्यंते ॥ २१ ॥ कर्णनासिकाछेदमपि कंठछेदनं च तितिक्षंते सहंते । इति एवं प्रकारेणात्रैव मनुष्यजन्मनि पापसंतप्तामहावेदनामनुभवंति नच ब्रुवते एवं पुनर्न करिष्यामइति ॥ २२ ॥

॥ टीका—सांप्रतमिह लोकएव स्त्रीसंबंधविपाकं दर्शयितुमाह । (अविहछेत्यादि) स्त्रीसंपर्कोहि संसर्गिणां हस्तपादछेदनाय भवति । अपिः संभावने । संभाव्यतएतन्मोहातुराणां संबंधाद्धस्तपादछेदादिकं अथवा वर्ध्रमांसोत्कर्तनमपि तेजसाग्निनाऽभितापनानि स्त्रीसंबंधिभिरुत्तेजितैराजपुरुषैर्नटित्रकाण्यपि क्रियंते पादारिकास्तथा वास्यादिना तक्षयित्वा क्षारोदकसेचनानि च प्रापयंतीति ॥२१॥ अपिच। (अडुकसुत्यादि) अथ कर्णनासिकाछेदं तथा कंठछेदनं च तितिक्षंते स्वकृतदोषात्सहंते इत्येवं बहुविधां विडंबनामस्मिन्नेव मानुषे च जन्मनि पापेन पापकर्मणा संतप्तानरकातिरिक्तां वेदनामनुभवंतीति। नच पुनरेतदेवंभूतमनुष्ठानं नकरिष्यामइति ब्रुवतइत्यवधारयंतीति यावत् । तदेवमैहिकामुष्मिकाडुःखविडंबनाअप्यंगीकुर्वंति न पुनस्तदकरणतया निवृत्तिं प्रतिपद्यंतइति भावः ॥ २२ ॥

सुतमेत मेवमेगेसिं, इत्थीवेदेतिहु सुयरकायं॥ एवंपि ता वदित्ताणं
अडुवा कम्मणा अव करेंति ॥ २३ ॥ अन्नं मणेण चिंतेति, वा
या अन्नंच कम्मणा अन्नं॥ तम्हा णसद्दहिंभिरकू, बहुमायाउ
इत्थिउ णच्चा ॥ २४ ॥

अर्थ—श्रीसुधर्मस्वामी कहेछे के एवंके० ए जे पूर्वे स्त्रीना संबंधनुं फल कह्युं. ते, भगवंत

पाशेथी सुतमेके० मेंसांजल्युंछे. एतमेवके० एवीरीते एगेसिंके० कोइएकने कडवाविपाक होय इत्थिवेदेतिहुके० स्त्रीवेद थकी हुइति निश्चे डुःखज पामे. सुयरकायंके० ए जलुं कह्युं एवंपि के० एरीते लोकपरंपराये पण सांजल्युंछे जे, स्त्रीना संबंध थकी कडवा विपाक पामियें; एम सांजलीने ताके० ते अकार्यनो करनार वदित्ताणंके० एम कहे जे हवे हुं ए अकार्य नही करुं. अडुवाके० अथापि एटले तोपण कम्मणाके० माग कर्मने करवे करी अवकरेंतिके० तेहिज अकार्यनुं आचरण करे ॥२३॥ हवे स्त्री उपर विरक्त थवाने अर्थें स्त्रीना दोष कहेछे. अन्नंमणेणचिंतेतिके० स्त्री जेछे ते मने करी अन्य चिंतवे अने वायाअन्नंच के० वचने करी अन्य बोले कम्मणाअन्नं के० वली कायाये करी अन्य करे तम्हा के० तेमाटे णसद्दहिंनिरकू के० स्त्रीना वचन मायासहित होय तेने परमार्थनो जाण साधु सर्द्दहे नही. बहुमायाउ इत्थिउ के० अत्यंत मायासहित एवी स्त्रीने णच्चा के० जाणीने साधु जे होय ते स्त्रीनो विश्वास करें नही. ॥ २४ ॥

॥ दीपिका–श्रुतमेतजुरोः सकाशात् यत्पूर्वमुक्तं एवमेकेषां व्याख्यातं जवति । यत स्त्रियो निंद्याइति । तथास्त्रियं वेदयति ज्ञापयतिस्त्रीवेदोवैशिकादिकं स्त्रीस्वजावप्रकाशकं शास्त्रमिति । तडुक्तं । डुर्ग्राह्यं हृदयं यथैव वदनं यद्दर्पणांतर्गतं, जावः पर्वतडुर्गमार्गविषमः स्त्रीणां न विज्ञायते ॥ चित्तं पुष्करपत्रतोयचपलं नैकत्र संतिष्ठते नार्योनाम विषांकुरैरिव लतादोषैः समं वर्धिताः ॥१॥ तथा उप्रेउअंगुलिसोपुरिसो सयलंमिजीवलोगंमि। कामं तएणनारिंजेण नपत्ताइं डुःखाइं इत्यादि । किंच । अकार्यमहं न करिष्यामीत्येवं वाचा उक्त्वापि (अडुवत्ति) अथापि तथा कर्मणा क्रिययाऽपकुर्वंति विरूपमाचरंति स्त्रियः ॥ २३ ॥ स्त्रियोमनसाऽन्यत् चिंतयंति वाचान्यद्भाषंते कर्मणा क्रिययाऽन्यत् कुर्वंति । तस्मात्तासां निक्षुः साधुर्नश्रद्दधीत तत्कृतमायया आत्मानं नप्रतारयेत् । यतोबहुमायाः स्त्रियइति ज्ञात्वा । अत्र दत्तावेशिकदृष्टांतः । यथा दत्तकोनामकश्चिद्युवा एकया गणिकया बहुप्रकारैः प्रतार्यमाणोपि तां नेष्टवान् ततस्तयोक्तं किंमया दौर्जाग्यकलंकितया जीवंत्या प्रयोजनं । अहं त्वया त्यक्ताऽग्निं विशामि ततोदत्तकोवदत् मायया इदमप्यस्ति वैशिके तदासौ पूर्वं सुरंगामुखे काष्ठजारं संमील्य तं प्रज्वाल्य तत्रानुप्रविश्य सुरंगया गृहमागता । दत्तकोपि इदमप्यस्ति वैशिके इत्येवं विलपन्नपि वातिकैश्चितायां प्रक्षिप्तस्तथापि नासौ तासु श्रद्धानं कृतवान् एवमन्येनापि स्त्रीषु न श्रद्धातव्यं ॥ २४ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (सुतमेतमित्यादि) श्रुतमुपलब्धं गुर्वादेः सकाशाल्लोकतोवा एतदिति यत्पूर्वमाख्यातं। तद्यथा । डुर्विज्ञेयं स्त्रीणां चित्तं दारुणः स्त्रीसंबंधविपाकस्तथा चलस्वजावाः स्त्रियोडुष्परिचाराअदीर्घप्रेक्षिण्यः प्रकृत्या लघ्व्या जवंत्यात्मगर्विताश्चेत्येव

मेकेषां स्वाख्यातं भवति लोकश्रुतिपरंपरया चिरंतनाख्यासु वा परिज्ञातं भवति। तथास्त्रियं यथावस्थितस्वभावतस्तत्संबंधविपाकतश्च वेदयति ज्ञापयतीति स्त्रीवेदोवैशिकादिकं स्त्रीस्वभावाविर्भावकं शास्त्रमिति। तडुक्तं। डुर्ग्राह्यं हृदयं यथैव वदनं यद्दर्पणांतर्गतं, भावः पर्वतमार्गडुर्गविषमः स्त्रीणां न विज्ञायते ॥ चित्तं पुष्करपत्रतोयतरलं नैकत्र संतिष्ठते, नार्योनाम विषांकुरैरिव लतादोषैः समं वर्धिताः ॥ १ ॥ अपिच। सुठुविजयासुसुठु विपियासुसुठुलद्धपसरासु ॥ अडईसु महिलियासु य,वीसंभोनेवकायव्वो ॥ १ ॥ उभ्भेउ अंगुलीसोपुरिसोसयलंमि जीवलोयम्मि। कामेतएणनारी, जेणनपत्ताइ डुःखाई ॥ २ ॥ अहएयाणंपगई, सव्वस्सकरेंतिवेमणास्सई। तस्सणकरेंतिणवरं, जस्सअलंचेवकामेहिं ॥३॥ किंच कार्यमहं न करिष्यामीत्येवमुक्त्वापि वाचा (अडुवत्ति) तथापि कर्मणापि क्रिययाऽपकुर्वंतीति विरूपमाचरंति। यदि वाऽग्रतः प्रतिपाद्यपि शास्तुरेवापकुर्वंतीति ॥२३॥ सूत्रकारएव तत्स्वभावाविष्करणायाह। (अन्नंमणेणेत्यादि) पातालोदरगंभीरेण मनसान्यच्चिंतयंति तथाश्रुतमात्रपेशलया विपाकदारुणया वाचा अन्यद्भाषंते। तथाकर्मणानुष्ठानेनान्यन्निष्पादयंति यतएवं बहुमायाः स्त्रियइति। एवं ज्ञात्वा तस्मात्तासां भिक्षुः साधुर्न श्रद्दधीत तत्कृतया माययात्मानं न प्रतारयेत् दत्तावैशिकवत्। अत्र चैतत्कथानकं। दत्तावैशिकएकया गणिकया तैस्तैः प्रकारैः प्रतार्यमाणोपि तां नेष्टवान् ततस्तयोक्तं किं मया दौर्भाग्यकलंकांकितया जीवंत्या प्रयोजनमहंत्वत्परित्यक्ताऽग्निं विशामि ततोसाववोचत् मायया इदमप्यस्ति वैशिके तदाऽसौ पूर्वं सुरंगामुखे काष्ठसमुदयं कृत्वा तं प्रज्वाल्य तत्रानुप्रविश्य सुरंगया गृहमागता। दत्तकोपि इदमपि चास्ति वैशिके इत्येवमसौ विलपन्नपि वातिकैश्चितायां प्रक्षिप्तस्तथापि नासौ तासु श्रद्धानं कृतवानेवमन्येनापि नश्रद्धातव्यमिति ॥ २४ ॥

जुवती समणं बूया, विचित्तलंकारवत्थगाणि परिहित्ता ॥ विरता चरिस्सहं रुख्खं,धम्ममाइख्क णे भयंतारो॥२५॥ अडु साविया पवाएणं,अहमंसि साहम्मिणीय समणाणं॥जतुकुंभे जहा उवज्जोई,संवासे विडुवि सीएज्जा॥२६॥

अर्थ—विचित्तलंकार वत्थगाणि परिहित्ताके० विचित्र प्रकारना आभूषण अने वस्त्र पेहेरी विभूषावंत शरीर करी, जुवती के० कोइक नव यौवना स्त्री अभिराम माधाकरी समणं के० साधुप्रत्ये बूया के० बोले के हे साधु हुं विरता के० घरना पाश थकी विरक्त थइछुं, माहारो भर्तार माहारी साथे भलो नथी, अथवा ए भर्तार मने रुचतोनथी अथवा ए भर्त्तारे मने मूकी दीधीछे, तेकारणे चरिस्सहं रुख्खं के० हुं संयम आचरीश, तेमाटे भयंतारो के० अहो भय थकी राखनार धम्ममाइख्कणे के० तमे अमने धर्म कहो,॥२५॥ अडु पवाएणंके० अथवा अन्य प्रवादे सावियाके० हुं तमारी श्राविकाछुं एवुं

बल पाखंम तेणे करी ते स्त्री साधुने समीप आवे अहमंसिसाहम्मिणीय समणाणं के० हुंश्रमण माहात्मानी सामिणीछुं, एवा प्रपंच करी साधुने धर्मथकी भ्रष्ट करे तेना उपर दृष्टांत कहेछे. जहा के० जेम जतुकुंने के० लाखनो घडो ते ववज्जोइ के० अग्नी समीपे गलीने पाणी रूप थाय, तेम विडविके० पंमित होय तेपण संवासेके० स्त्रीने संवासे संसर्गे करी सीएज्जाके० सीदाय सीतल विहारी थाय तो अन्य जननुं केवुंज छुं? ॥२६॥

॥ दीपिका–युवतिर्मायया श्रमणं ब्रूयाद्विचित्रवस्त्राणि परिधायालंकृतशरीरेत्यर्थः। अहं गृहपाशाद्विरता मह्यं पतिर्नरोचते परित्यक्ताहं च तेन ततश्चरिष्यामि रूक्षं संयमं। मे मह्येनयत्रातर्धर्ममाख्याहि ॥ २५ ॥ अनेन प्रवादेन छलेन अथवा स्त्री साधुसमीपमागछेत् अहं श्राविका अहंश्रमणानां सधर्मिणी एवं मायया समीपमागत्य कूलवालकमिव साधुं धर्माद्भ्रंशयति। यडुक्तं। तज्ज्ञानं तच्च विज्ञानं तत्तपः सच संयमः॥ सर्वमेकपदे भ्रष्टं सर्वथा किमपि स्त्रियः॥ १ ॥ यथा जतुकुंनोज्योतिःसमीपे उपज्योतिर्वर्ती विलीयते एवं योषितां संवासे विद्वानपि विषीदेत शीतलविहारी नवेत् ॥ २६ ॥

॥ टीका–किंचान्यत्। (जुवईत्यादि) युवतिरभिनवयौवना स्त्री विचित्रवस्त्रालंकारविनूषितशरीरा मायया श्रमणं ब्रूयात्। तद्यथा। विरताहं गृहपाशान्नममानुकूलोनर्ता मह्यं चासौ नरोचते परित्यक्ता चाहं तेनेत्यतश्चरिष्यामि धर्ममाचक्ष्वाणेति। अस्माकं हेत्रयत्रात यथाहमेवं दुःखानां नाजनं नन्नवामि तथाधर्ममावेदयेति ॥ २५ ॥ किंचान्यत्। (अडु साविएइत्यादि) अथवाऽनेन प्रवादेन व्याजेन साध्वंतिकं योषिदुपसर्पेत। यथाहं श्राविकेति कृत्वा युष्माकं श्रमणानां साधर्मिणीत्येवं प्रपंचेन नेदीयसी नूत्वा कूलवालुकमिव साधुं धर्माद्भ्रंशयति। एतडुक्तं नवति योषित्सान्निध्यं ब्रह्मचारिणां महतेऽनर्थाय। तथा चोक्तं। तज्ज्ञानं तच्च विज्ञानं, तत्तपः सच संयमः॥ सर्वमेकपदे भ्रष्टं सर्वथाकिमपि स्त्रियः॥१॥ अस्मिन्नेवार्थे दृष्टांतमाह। यथा जातुषः कुंनोज्योतिषोऽग्नेः समीपे व्यवस्थितउपज्योतिर्वर्ती विलीयते डवत्येवं योषितां संवासे सान्निध्ये विद्वानप्यास्तांतावदितरोयोपि विदितवेद्योसावपि धर्मानुष्ठानं प्रति विषीदेत शीतलविहारी नवेदिति ॥ २६ ॥

जतुकुंने जोइ उवगूढे, आसु नितत्ते णासमुवयाइ ॥ एवित्थियाहिं अणगारा, संवासेण णासमुवयंति ॥ २७ ॥ कुव्वंति पावगं कम्मं, पुछावेगे वमाहिंसु ॥ नोहं करेमि पावंति, अंके साइणी ममेसत्ति ॥ २८ ॥

अर्थ–जतुकुंनेके० जेम लाखनो घडो जोइके० अग्नियें उवगूढेके० आलिंग्यो छतो आसुके०

शीघ्र नितत्तेके० तेना तापेकरी णासमुवयातिके० विनाश पामे, एटले लाख बधीगली जाय. ए वके०एरीते इत्थियाहिंके० स्त्रीने संवासेणके० संवासे करीने अणगाराके०साधु पण ते लाखनी पेरे णासमुंवयंतिके० संयम थकी विनाश पामे ॥२७॥ कुव्वंतिपावगंकम्मंके० कोइएक साधु अनाचारी मोहना उदय थकी भ्रष्ट थको मैथुनसेवादिरूप पापकर्म करे, तेने पुछावेगे वमाहिंसु के० कोइ एक आचार्यादिके पुछ्यो थको एम कहे, जे नोहंकरेमिपावं ति के० हुं एवुं पाप कर्म नकरुं अंकेसाइणी ममेसत्ति के० ए स्त्रीतो मारे दीकरी समानछे, ए जेवारे न्हानी हती तेवारे माहरे खोळे सयन करती, ते अभ्यासे हमणा पण माहारा खोळामां बशेछे, सयन करेछे, परंतु हुं प्राणांते पण व्रतभंग करुं नही. ॥२८॥

॥ दीपिका–यथा जतुषः कुंभोज्योतिषाऽग्निनोपगूढोव्याप्तआशु अभितप्तोनाशमुपयाति एवं स्त्रीभिः सार्धं संवसनेनाऽनगारानाशमुपयांति संयमाद्भ्रश्यंति ॥ २७ ॥ स्त्रीष्वासक्ताः पापं कर्म कुर्वंति भ्रष्टाः संयमादेके आचार्यादिना चोद्यमानाएवमाहुर्वक्ष्यमाणमुक्तवंतः। नाहमेवंभूतकुलप्रसूतः पापमकार्यं करिष्यामि ममैषा दुहितृतुल्या पूर्वमंकेशायिनी आसीत् तदेषा पूर्वाभ्यासान्मयि एवमारचयति । नपुनरहं प्राणांतेपि व्रतभंगं विधास्य इति ॥ २८ ॥

॥ टीका–एवं तावत्स्त्रीसान्निध्ये दोषान् प्रदर्श्य तत्संस्पर्शजं दोषं दर्शयितुमाह । (जउकुंभेत्यादि) यथा जातुषः कुंभोज्योतिषाग्निनोपगूढः समालिंगितोभितप्तोग्निनाभिमुख्येन संतापितः क्षिप्रं नाशमुपैति द्रवीभूय विनश्यत्येवं स्त्रीभिः सार्धं संवसनेन परिभोगेनानगारानाशमुपयांति सर्वथा जातुषकुंभवत् व्रतकाठिन्यं परित्यज्य संयमशरीराद्भ्रश्यंति॥२७॥अपिच।(कुव्वंतीत्यादि) तासु संसाराभिष्वंगिणीष्वभिसक्ताअवधीरितैहिकामुष्मिकापायाःपापं कर्म मैथुनासेवनादिकं कुर्वंति विदधति। परिभ्रष्टाः सदनुष्ठानादेके केचनोत्कटमोहाआचार्यादिना चोद्यमानाएवमाहुर्वक्ष्यमाणमुक्तवंतः। तद्यथा।नाहमेवंभूतकुलप्रसूतः एतदकार्यं पापोपादानभूतं करिष्यामि ममैषा दुहितृकल्पा पूर्वमंकेशयिनीआसीत् तदेषा पूर्वाभ्यासेनैव मय्येवमाचरति नपुनरहं विदितसंसारस्वभावः प्राणात्ययेपि व्रतभंगं विधास्यइति.

बालस्स मंदयं बीयं, जंच कडं अवजाणई भुज्जो ॥ दुगुणं करे इ से पावं, पूयणकामो विसन्नेसी ॥२९॥ संलोकणिज्जमणगारं, आयगयं निमंतणेणाहंसु ॥ वछंच ताय पायंवा, अन्नं पाणगं पडिग्गहे ॥ ३० ॥ णीवारमेवं बुज्झेज्जा, णोइछे अगारमागंतुं ॥ बद्धे विसयपासेहिं, मोहमावज्जइपुणो मंदित्तिबेमि ॥३१॥

इति इत्थी परिन्नाए पढमो उद्देसो सम्मत्तो ॥ (आवन्नंके०)

अर्थ—बालस्स के० अज्ञानीनी एबीजी मंदयं के० मूर्खता जाणवी; केमके एकतो अकार्य करवा थकी चोथा व्रतनो भंग थायछे ने बीयं के० बीजो जंचकडं के० जे अनाचार कीधो तेने अवजाणई के० उलववे करी मृषावाद बोले तेथकी बीजाव्रतनो भंग थाय, तेमाटे जुत्तो के० वली वली सेके० ते पुरुष डगुणंकरेईपावं के० बमणुं पाप करे, ते सावास्ते करे, तेनुं कारण कहेछे. पूयणकामो पूजा सत्कारनो अभि लाषी असंयमनुं विसन्नेसि के० गवेषणहार थको मनमां एम जाणे जे माहारो लोकोमां अवर्णवाद थशे. तेमाटे अनाचारने छांना राखे ॥ २९ ॥ संलोकणिज्जमण गारं के० संलोकनीय एटले सुंदराकार एवा साधुने देखीने, आयगयं के० आत्मगत जाणी कोइएक स्त्री निमंतणेण के० निमंत्रणा पूर्वक आहंसु के० एम कहे के ताथ के० अहो छकायना रक्षपाल वछंच के० वस्त्र वली पायं के० पात्र वा के० अथवा अन्नंपाणगं के० अन्न पाणी जे कांइ आपने खप होय ते पडिग्गहे के० अमारे घेर आवीने लेजो ॥ ३० ॥ जे उत्तम साधु होय ते ए पूर्वोक्त आमंत्रणने णीवारमेवं बुझे के० व्रीहीना कण समान जाणीने णोइछेअगारमागंतुं के० एवा घेरने विषेजवुं आववुं वांछे नही. जो कदापि कोइएक साधु तेवा घरे जाय तो ते बद्धेविस यपा सेहिं के० विषयरूप पाशे करी बंधाणो छतो पुणो के० वली वली मोहमाव ज्जइ के० मोहने आवर्त्ते पडे एटले मोहने वश थको चित्तनुं आकुल व्याकुलपणुं पा मे; मंद के० ते मूर्ख स्नेहरूप पास त्रोडवाने असमर्थ होय माटे डुःखी थाय. तिबे मिनो अर्थ पूर्ववत जाणवो. ॥ ३१ ॥ इति चतुर्थाध्ययने प्रथमोद्देशकः समाप्तः

॥दीपिका—बालस्याऽज्ञस्य द्वितीयं मंदत्वं । प्रथममज्ञत्वमेकं तावदकार्यकरणेन तुर्यव्र तविलोपोद्वितीयं तदपलपनेन मृषावादः । तदेवाह । यत्कृतमकार्यमपजानीते अपलप ति सएवंभूतोद्विगुणं पापं करोति । किमर्थमपलपतीत्याह । पूजनकामुकः सत्काराभिला पी मामे लोकेऽवर्णवादः स्यादित्यकार्यं प्रछादयति । विषण्णोऽसंयमस्तमेषितुं शीलमस्य सविषण्णेषी॥ ॥ २९ ॥ संलोकनीयं रूपवंतमनगारमात्मगतमात्मज्ञं काश्चन स्वैरिण्यो निमंत्रणपूर्वमाहुरुक्तवत्यः । तथाहि । हेशयिन् साधो वस्त्रं पात्रं चान्नापानादिकं वा य त्तव विलोक्यते तत्वस्मद्गृहमागत्य प्रतिगृहाण लाहि ॥३०॥ वस्त्रादिदानं नीवारतुल्यं बु ध्येत जानीयात् । यथा नीवारेण च व्रीहिणा मृगादिर्वशमानीयते एवंसाधुरप्यामंत्रणेन वशमानीयते अतस्तं नेछेदगारं गृहं गंतुं बद्धश्च विषयदामभिर्विषयपाशैर्मोहं चित्ताकु लत्वमापद्यते मंदोमूढइति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥३१॥ इति चतुर्थाध्ययने प्रथमोद्देशकः ॥

...—किंच (बालस्येत्यादि) । बालस्याज्ञस्य रागद्वेषाकुलितस्यापरमार्थदृशए

तद्द्वितीयं मांद्यं । अज्ञत्वमेकं तावदकार्यकरणेन चतुर्थव्रतजंगो द्वितीयं तदपलपनेन मृषा दः । तदेव दर्शयति । यत्कृतमसदाचरणं नूयः पुनरपरेण चोद्यमानोऽपजानीतेऽपलपति तन्मयाकृतमिति सएवंनूतोऽसदनुष्ठानेन तदपलपनेन च द्विगुणं पापं करोति । कि मपलपतीत्याह । पूजनं सत्कारपुरस्कारस्तत्कामस्तदनिलाषी मामेलोके अवर्णवाद स्यादित्यकार्यं प्रच्छादयति । विपस्गोऽसंयमस्तमेषितुं शीलमस्येति विषस्गेषी ॥ २९ ॥ किं चान्यत् (संलोकणिज्ञमित्यादि) संलोकनीयं संदर्शनीयमाकृतिमंतं कंचनानगारं साधु मात्मनि गतमात्मगतमात्मज्ञमित्यर्थः । तदेवंनूतं काश्चन स्वैरिण्योनिमंत्रणेन निमंत्रणपु रःसरमाहुरुक्तवत्यःतद्यथा । हेशयिन् साधो वस्त्रं पात्रमन्य द्वा पानादिकं येन केनचिद्भवतः प्रयोजनं तदहं नवते सर्वं ददामीति मद्गृहमागत्य प्रतिगृहाण त्वमिति ॥ ३० ॥ उपसं हारार्थमाह (णीवारमित्यादि) एतद्योषितां वस्त्रादिकमामंत्रणं नीवारकल्पं बुध्येत जा नीयात् । यथाहि नीवारेण केनचिद्भक्ष्य विशेषेण सूकरादिर्वशमानीयते एवमसावपि तेना मंत्रणेन वशमानीयते अतस्तं नेच्छेदगारं गृहं गंतुं।यदि वा गृहमेवावर्तोगृहावर्तोऽहं ञ मस्तं नेच्छेत् नानिलषेत् । किमिति । यतोबद्धोवशीकृतोविषयाएव शब्दादयः पाशारज्जुबंध नानि तैर्बद्धः परवशीकृतः स्नेहपाशानपत्रोटयितुमसमर्थः सन्मोहं चित्तव्याकुलत्वमाग च्छति किंकर्तव्यमूढोनवति पौनःपुन्येन मंदोऽज्ञोजडइति । इति परिसमाप्तौ । ब्रवीमीति पू र्ववत् ॥ ३१ ॥ इतिस्त्रीपरिज्ञायां प्रथमोद्दशकः समाप्तः ॥

हवे चोथा अध्ययननो बीजो उद्देशो प्रारंनिये बैयें पहेला उद्देशामां स्त्रीना परिचय थकी चारित्रनो विनाश थायछे एम कह्युं. हवे बीजा उद्देशामां जे साधु शील थकी पडे तेने जे विटंबना थाय ते कहेछे.

ओएसया णरज्जेज्जा, नोगकामी पुणोविरज्जेज्जा ॥ नोगे समणाण सुणेह, जह नुंजंति निक्खुणो एगे ॥१॥ अह तं तु नेदमावन्न, मुछितं निक्खूका ममतिवट्टं ॥ पलिन्निंदियाणं तो पछा, पाडुघट्टुमुद्धि पहणंति ॥ २ ॥

अर्थ—(ओएसयाके०)चारित्रिउ एकाकी राग द्वेषरहित होय ते साधु स्त्रीने विषे सदा काल(णरज्जेज्जाके०)नराचे, (नोगकामीपुणोके०) कदापि कर्मोदय थकी नोगानिलाषी था य; तो वली विरज्जेज्जाके० विरचे केमके गृहस्थने पण जे नोगछे,ते विटंबनाप्रायछे, तेथी ते पण विरचेलो तो, साधुने नोगनी विटंबनानुं केवुंजहुं तेकारण माटे (नोगेसमणाण सुणेहके०)साधुना नोग केवा विटंबना प्रायछे ते सांनलो(जहके०)जेम (नुंजंति निक्खुणो एगेके०)धर्मना जाण एवा कोइक साधु नोगवे ते आगल कहेछे. ॥१॥(अहके०)हवे(तं के०)ते साधु(तुके०)विशेषेकरी स्त्रीना परिचय थकी(नेदंके०)शीलना विनाशने(आवन्नंके०).

यो हतो(मुच्छितंके०)स्त्रीने विषे मूर्छित एवो(निरक्कूके०)यति तथा (काममतिवट्टंके०) नोग उपरे मति अनिलाषनुं प्रवर्त्ताववुंछे जेमने एवा साधुने ते स्त्री एम कहेके(प अर्थनिंदियाणंके०) में माहारा कुलशीलनी मर्यादा अतिक्रमीने माहारो आत्मा तुजने अर्पणकर्योछे इत्यादिक वचन कहीने ते यतिने पोताने वश करे (पच्छाके०) तेवारपछी को इनाएक प्रकारे ते स्त्रीने रीशाणी जाणीने ते बापडो ते स्त्रीने पगे पोतानुं मस्तक लगाडे तेवारे ते पुरुषने एवो वश थयो देखीने ते स्त्री (पाउद्दट्टुद्धिके०) पोतानो पग ऊंचो उपाडीने डाबा पगे करी ते द्रव्यलिंगी यतिना मस्तकने विषे (पहणंतिके०) प्रहार करे तोपण जे काम नोगनेविषे गृद्ध होय ते मूर्ख स्त्रीथकी विरचे नहि. ॥ २ ॥

॥ दीपिका—अथ द्वितीयआरन्यते । तस्येदमादिसूत्रं ॥ (उएति) उजएकोरागद्वेषर हितः सदास्त्रीषु न रागं कुर्यात् यद्यपि कर्मोदयाद्भोगानिलाषी नवेत्तथापि पुनस्तान्योविर क्तेत । कोर्थः।कर्मोदयात् प्रवृत्तमपि चित्तं ज्ञानांकुशेन निवर्तयेत् । तथाश्रमणानां नोगाइती यंविमंबनैवेति शृणुत यूयं। यडुक्तं मुंडंशिरइत्यादि पूर्ववत् । तथातैरप्युक्तं ॥ कृशः काणः खंजः श्रवणरहितः पुच्छविकलः क्षुधाक्षामोजीर्णः पिठरककपालार्दितगलः॥ व्रणैः पूयक्लि न्नैः कृमिकुलशतैराविलतनुः शुनीमन्वेति श्वा हतमपि च हंत्येव मदनइत्यादि । यथा अधर्मीणोनिह्नवोप्येके नोगान् नुंजते तथाग्रे वक्ष्यतीति ॥१॥ अथ तं साधुं नेदं शील नेदं चारित्रस्खलनमापन्नं प्राप्तं स्त्रीमूर्छितं।तुर्विशेषणे। पुनः किंनूतं । कामेषु इच्छामद नेषु मतिर्बुद्धिर्वर्तते यस्य स काममतिवर्तस्तमेवंविधं निक्षुं परिनिद्य मया कुलशीलमर्या दामतिक्रम्य तवात्मा अर्पितस्त्वंतु अकिंचित्करइत्यादिवचनान्युच्चार्य याः पादंचरणमु त्कृत्य ऊर्ध्वीकृत्य साधोर्मूर्ध्नि प्रघ्नंति प्रहारं ददति एवं विडंबयंति ॥ २ ॥

॥ टीका—उक्तः प्रथमोद्देशकः सांप्रतं द्वितीयः समारन्यते । अस्य चायमनिसंबंधः। इहा नंतरोद्देशके स्त्रीसंस्तवाच्चारित्रस्खलनमुक्तं स्खलितशीलस्य या अवस्था इहैव प्राडुर्नवति तत्कृतकर्मबंधश्च तदिह प्रतिपाद्यते इत्यनेन संबंधेनायातस्योद्देशकस्यादिसूत्रं (उएस याइत्यादि) अस्य चानंतरपरंपरसूत्रसंबंधोवक्तव्यः सचायं संबंधोविषयपाशैर्मोहमा गच्छति यतोऽतउजएकोरागद्वेषवियुतः स्त्रीषु रागं न कुर्यात् । परंपरसूत्रसंबंधस्तु संलो कनीयमनगारं दृष्ट्वा च यदि काचिद्योषित् साधुमशनादिना नीवारकल्पेन प्रतारयेत्तत्रौजः सन्न रज्येतेति । तत्रौजोद्रव्यतः परमाणुर्नावतस्तु रागद्वेषवियुतः । स्त्रीषु रागादिहैव वक्ष्य माणनीत्या नानाविधाविमंबनानवंति तत्कृतश्च कर्मबंधस्तद्विपाकाच्चामुत्र नरकादौ तीव्रावेदनानवंति । यतोऽतएतन्मत्वा नावोजः सन् सदा सर्वकालं वाऽनर्थखनिषु स्त्रीषु न रज्येत । तथा यद्यपि मोहोदयात् नोगानिलाषी नवेत्तथाप्यैहिकामुष्मिकापायान्

परिगणय्य पुनस्तान्योविरज्येत । एतडुक्तं नवति । कर्मोदयात्प्रवृत्तमपि चित्तं हेयोपादेयपर्यालोचनया ज्ञानांकुशेन निवर्तयेदिति । तथा श्राम्यंति तपसा खिद्यंतीति श्रमणास्तेषामपि नोग इत्येतच्छृणुत यूयं । एतडुक्तं नवति । गृहस्थानामपि नोगाविडंबनाप्रायायतीनांतु नोगा इत्येतदेव विडंबनाप्रायं किंपुनस्तत्कृतावस्थाः । तथाचोक्तं । मुंमं शिरइत्यादि पूर्ववत् । यथा यथा च नोगानेकेऽपुष्टधर्माणोनिक्षवोयतयोविडंबनाप्रायान् नुंजते तथोद्देशकसूत्रेणैव वक्ष्यमाणेनोत्तरत्र महता प्रबंधेन दर्शयिष्यामि । अन्यैरप्युक्तं । कृशः काणः खंजः श्रवणरहितः पुछविकलः, क्षुधाक्षामोजीर्णः पिठरककपालार्दितगलः ॥ व्रणैः पूयक्लिन्नैः कृमिकुलशतैराविलतनुः शुनीमन्वेति श्वा हतमपि च हंत्येव मदनः इत्यादि ॥ १ ॥ नोगिनां विडंबनां दर्शयितुमाह । (अहेत्यादि) अथेत्यानंतर्यार्थः । तुशब्दोविशेषणार्थः स्त्रीसंस्तवादनंतरं निक्षुं साधुं नेदं शीलनेदं चारित्रस्खलनमापन्नं प्राप्तं संतं स्त्रीषु मूर्छितं गृद्धमध्युपपन्नं । तमेव विशिनष्टि । कामेष्विछामदनरूपेषु मतेर्बुद्धेर्मनसोवा वर्तनं प्रवृत्तिर्यस्यासौ काममतिवर्तः कामानिलाषुकइत्यर्थः । तमेवंनूतं परिनिद्य मदन्युपगतः श्वेतकृष्णप्रतिपन्नोमद्वशकइत्येवं परिज्ञाय यदिवा परिनिद्य परिसार्यात्मसात्कृतं चोच्चार्येति । तद्यथा । मया तव लुंचितशिरसोजल्लमलाविलतया डुर्गंधस्य जुगुप्सनीयकक्षावक्षोबस्तिस्थानस्य कुलशीलमर्यादालज्जाधर्मादीन्परित्यज्यात्मादत्तस्त्वं पुनरकिंचित्करइत्यादि नणित्वा प्रकुपितायास्तस्याअसौ विषयमूर्छितस्तत्प्रत्यापनार्थं पादयोर्निपतितः । तथाचोक्त । व्याजिन्नकेसरबृहच्छिरसश्च सिंहा,नागाश्च दानमदराजिकृशैः कपोलैः॥ मेधाविनश्च पुरुषाः समरेच शूराः स्त्रीसन्निधौ परमकापुरुषानवंति ॥ १ ॥ ततोविषयेष्वेकांते न मूर्छितइति परिज्ञानात्पश्चात्पादं निजवामचरणमुद्धृत्योत्क्षिप्य मूर्ध्नि शिरसि प्रघ्नंति ताडयंत्येवं विम्बनां प्रापयंतीति ॥ २ ॥

जइ केसिआ णं मए निक्खु, णोविहरे सह ण मिडीए॥ केसाणविह लुंचिस्सं नन्नड मए चरिज्जासि ॥ ३ ॥ अहणं सहोई उवलद्धो, तो पेसंति तहान्नूएहिं ॥ अलाउछेदं पेहेहिं, वग्गुफलाइं आहराहित्ति ॥ ४ ॥

अर्थ—वली कोइक स्त्री एवी माया करे के (जइके०)जो तमे(केसिआके०) केसवंती एवी णंवाक्यालंकारे (मएके०)माहारा सहित विहार करताथका शंका पामताहो तो(निरकूके०) अहो साधु तमे (णोविहरेसहणमिडीएरु०)केशवाली स्त्रीनी साथे विहार करशो नहीं (केसाणविहके०) केशनेपण हुं (लुंचिस्सुंके०) लोच करीने दूर करीश. अपि शब्द थकी अन्य जे कांइ तमे कहेशो ते सर्वे हुं करीश पण (नन्नडमएचरेज्जासि के०) माहारा विना तमे अन्य स्थानके विचरशो नही एटली वीनती करुंबुं ते मान्य करो. हुं पण तमा

रा आदेशो प्रवर्त्तिश इत्यादिक वचने करी विश्वास उपजावीने ते स्त्री जे करे ते कहेछे ॥ ३ ॥ (अह के०) अथ एटले हवे णं वाक्यालंकारे एवा वचने करी (साके०) ते साधु (होईउवलद्धो के०) स्त्रीने वश थाय एम ते स्त्री पोताने वश थयो जाणीने (तो के०) तेवारपछी तेने (पेसंतितहाजूएहिं के०) तथा जूत एटले तेवाज अनेक कर्मकरना कार्य करवा मोकले एटले दासनी पेरे कार्य करवानी आज्ञा आपे ते कार्य कया ते देखाडेछे (अलाउच्छेदं के०) तुंबडुं छेदवाने अर्थे शस्त्रो (पेहाहि के०) जोइए ते लावो के जे शस्त्रे करी तुंबिपात्रादिक समारियें तथा (वग्गुफलाइं आहराहित्ति के०) रुडा नालियरादिकना फल लइ आवो ॥ ४ ॥

॥ दीपिका–केशाविद्यंते यस्याः सा केशिका। एंवाक्यालंकारे। हेनिक्षो यदि मया स्त्रिया केशिकया सह त्वं नोविहरेः। यदि मया सह नोगान् जुंजानोव्रीडां वहसि तदा केशानप्यहंलुंचिष्याम्यपनेष्यामि। आस्तांतावद्भूषणादिकमित्यपेरर्थः। अस्योपलक्षणादन्यदपि डुष्करं विदेशगमनादि सर्वमहं करिष्यामि त्वं पुनर्मया रहितोनान्यत्र चरेः ॥ ३ ॥ एं वाक्यालंकारे। अथ ससाधुराकारेंगितैस्तया उपालब्धः स्ववशइति ज्ञातस्तदा तं तथा जूतैर्दासव्यापारैः प्रेषयति नियोजयति। तथाहि। अलाबु तुंबं छिद्यते येन तदलाबुछेदं पिप्पलकादिशस्त्रं प्रेक्षस्व निरूपय येन शस्त्रेण पात्रादेर्मुखं क्रियते। तथा वल्गूनि शोजनानि नालिकेरादीनि त्वं आहर आनय। अथवा देशनादिरूपया यानि लज्यंते तानि वाक्फलानि वस्त्राहारादीनि तान्यानय ॥ ४ ॥

॥ टीका–अन्यच्च (जइइत्यादि) केशाविद्यंतेयस्याः सा केशिका। णमितिवाक्यालंकारे। हेनिक्षो यदिमया स्त्रिया जार्यया केशवत्या सह नोविहरेस्त्वं सकेशया स्त्रिया जोगान् जुंजानोव्रीडां यदि वहसि ततः केशानप्यहंत्वत्संगमाकांक्षिणी लुंचिष्याम्यपनेष्यामि। आस्तां तावदलंकारादिकमित्यपिशब्दार्थः। अस्य चोपलक्षणार्थत्वादन्यदपि डुष्करं विदेशगमनादिकं तत्सर्वमहं करिष्ये त्वं पुनर्न मया रहितोनान्यत्र चरेः। इदमुक्तं जवति मया रहितेन जवता क्षणमपि नस्थातव्यमेतावदेवाहं जवंतं प्रार्थयामि अहमपियज्जवानादिशति तत्सर्वं विधास्यइति ॥ ३ ॥ इत्येवमतिपेशलैर्विश्रंजजननैरापातजइकैरालापैर्विश्रंज्जयित्वा यत्कुर्वंति तद्दर्शयितुमाह। (अहणमित्यादि) अथेत्यानंतर्यार्थः। णमिति वाक्यालंकारे। विश्रंजालापानंतरं यदासौ साधुर्मदनुरक्तइत्येवमुपलब्धोजवत्याकारैरिंगितैश्चेष्टया वा मद्वशगइत्येवं परिज्ञातोजवति ताजिः कपटनाटकनायिकाजिः स्त्रीजिस्ततस्तदजिप्रायपरिज्ञानाडुत्तरकालं तथाजूतैः कर्मकरव्यापारैरपशब्दैः

प्रेषयंति नियोजयंति । यदिवा तथाभूतैरिति लिंगस्थयोग्यैर्व्यापारैः प्रेषयंति तानेवदर्शयितुमाह । (अलाउत्ति) अलाबु तुंबं छिद्यते येन तदलाबुछेदं पिप्पलकादि शस्त्रं (पेहाहित्ति) प्रेक्षस्व निरूपय लभस्वेति येन पिप्पलकादिना लब्धेन पात्रादेर्मुखादि क्रियतइति । तथा वग्गूनि शोभनानि फलानि नारीकेरादीनि अलाबुकानिवा त्वमाहरानयेति । यदिवा वाक्फलानिच धर्मकथारूपायाव्याकरणादिव्याख्यानरूपायावा वाचोयानि फलानि वस्त्रादिलाभरूपाणि तान्याहरेति ॥ ४ ॥

दारूणि साग पागाए, पज्जोउ वा भविस्सती राउ ॥ पाताणिय मे रयावेहि, एहि तामे पिठउ मद्दे ॥५॥ वत्थाणिय मे पडिलेहेहिं, अन्नं पाणंच आहराहित्ति ॥ गंधंच रउहरणं च कासवगं मे समणुजाणाहि ॥ ६ ॥

अर्थ--(दारूणिसाग पागाएके०) दारुण एटले काष्ठ शाकपत्र एटले वथुलादिक रांधवाने अर्थे लावो (वाके०) अथवा (पज्जोउके०) प्रद्योत एटले अजवालुं (राउके०) रात्रीनेविषे (भविस्सतीके०) थाय ते वास्ते तैलादिक लावो. तथा (पाताणिय मेरयाहिके०) माहारा पात्राने रंगी आपो के जेणे करी हुं सुखे भिक्षा मांगी आहारादिक लावुं अथवा माहारा पग रंगवाने अर्थे रंग लइ आवो तथा (एहितामे पिठउमद्देके०) अहीं आवो माहारा अंगडुःखेछे माटे माहारी पीठे मर्द्दन करो एम कहे ॥ ५ ॥ (वत्थाणियमेपडिलेहेहिंके०) माहारा वस्त्र प्रतिलेखो एटले जूउ जुना थयाछे, माटे बीजा नवा आणी आपो, तथा मलीन थयाछे तेने धोवरावो तथा (अन्नंपाणंच आहराहित्तिके०) अन्न पाणी आणी आपो तथा (गंधंचके०) सुगंध कर्पूरादिक लइ आवो, अथवा ग्रंथ ते हिरण्यादिक लावो तथा (रउहरणंचके०) रजोहरण सारो आणी आपो तथा (कासवगंमेसमणुजाणाहिके०) हुंलोच करावी शकुं तेम नथी तेमाटे मस्तक भद्र कराववा एटले वृद्धकेश उतारवाने अर्थे नावीने तडी लावो एटला उपकरण वेषधारीना कह्या ॥ ६ ॥

॥ दीपिका--दारूणि काष्ठानि शाकंच पाकायानय । रात्रौ रजन्यां प्रद्योतोभविष्यतीति रात्रावपि वनादौ गत्वाऽ नय । तथा पात्राणि भाजनानि मे रंजय लेपय येनाहं सुखं भिक्षां मार्गये । अथवा पादौ रंजय अलक्तकादिना । एहि आगछ साधो तावन्मेमम पृष्ठं मर्दय विश्रमणां कुरु बाधते ममांगमिति ॥ ५ ॥ वस्त्राणि मे जीर्णानि वर्तंते अतस्तानि प्रत्युपेक्षस्व अन्यानि निरूपय अन्नपानादिकं चाहारमानय गंधं वासादिकं ग्रंथंवा हिरण्यादिकं शोभनं रजोहरणंच । अहं लोचं कारयितुमसमर्था ततः काश्यपं नापितं अनुजानीहि येनाहं शिरोमुंडयामि ॥ ६ ॥

॥ टीका–अपिच (दारूणीत्यादि) यथा दारूणि काष्ठानि शाकं पक्ववस्तुलादिकं त्रप शाकं तत्पाकार्थं।क्वचिदन्नपाकायेति पाठस्तत्रान्नमोदकादिकमिति । रात्रौ रजन्यां प्रद्योतो वा जविष्यतीति कृत्वा अतोऽटवीतस्तमाहरेति । तथा पात्राणि पतद्गृहादीनि रंजय लेपय येन सुखेनैव निक्षाटनमहं करोमि ।यदिवा पादावलक्तकादिना रंजयेति । तथा प रित्यज्यापरं कर्म तावदेह्यागच्छ मे मम पृष्ठमुत्प्राबल्येन मर्दय बाधते ममांगमुपवि ष्टायाअतः संहारय पुनरपरं कार्यशेषं करिष्यसीति ॥ ५ ॥ किंच (वच्छाणियमेइत्यादि) वस्त्राणिच अंबराणि मे मम जीर्णानि वर्ततेऽतः प्रत्युपेक्षस्वान्यानि निरूपय । य दिवा मलिनानि रजकस्य समर्पय मडुपधिंवा मूषिकादिजयात्प्रत्युपेक्षस्वेति । तथा अन्नपा नादिकमाहरानयेति तथा गंधं कोष्ठपुटादिकग्रंथिं वा हिरण्यं तथा शोजनं रजोहरणं तथा लोचं कारयितुमहमशक्तेत्यतः काश्यपं नापितं मच्छिरोमुंमनाय श्रमणानुजानीहि येनाहं बृहत्केशानपनयामीति ॥ ६ ॥

अदु अंजणिं अलंकारं,कुक्कययंमे पयच्छाहि ॥ लोद्धंच लोद्धकु
सुमंच, वेणुपलासियंच गुलियंच ॥ ७ ॥ कुठं तगरंच अगरुं, सं
पिठं सम्मं उसिरेणं॥ तेल्लं मुहभिंजाए, वेणुफलाइं सन्निधानाए ॥८॥

अर्थ–(अडुके०)अथवा हवे प्रकारांतरे गृहस्थना उपकरण कहीदेखाडेछे (अंजणिंके०) काजलनुं जाजन लावो तथा (अलंकारंके०) घरेणानुं जाजन लावो तथा (कुक्कययंके०) खुंखणो आणी आपो तथा(पयच्छाहिके०)घुघुरा विणा (मेके०) मुजने लावी आपो जेम हुं सर्व आजरण पेहेरीने तमने विनोद उपजावुं तथा (लोद्धंचलोद्धकुसुमंचके०) लोद्ध अने लोद्धना फल तथा (वेणुपलासियंचके०) वंशनी लाकडी आणी आपो जेने वाम हाथे ग्रहणकरी जाबाहाथे वीणा वजाडिये तथा (गुलियंचके०) औषधगुटिका एटले औषधनी गोली लावी आपो जेणेकरी हुं सदा यौवनाजिराम थकी रहुं ॥७॥ कुठंअगरं तगरंचके०) कुष्ठ ते पुटादिक तथा अगर अने तगर रूडावास सुगंध द्रव्य (संपिठं स म्मउसिरेणंके०) एसर्ववस्तु उसिरजे वालो ते सहित पीसेली एवी सुगंध लइ आवो(तेल्लं मुहभिंजाएके०) तथा औषधादिके संस्कार्युं एवुं तैल मुखना अज्यंगने अर्थे लइ आ वो जे थकी माहारो मुख सतेज देखाय तथा (वेणुफलाइं सन्निधानाएके०) वांसना कंमीआ पेटी प्रमुख वस्त्रालंकारादिक राखवाने अर्थे लइ आवो. ॥ ८ ॥

॥दीपिका–अथ अंजनिकां कज्जलाधारजूतां नलिकां अलंकारं केयूरादिकं च मे प्रयच्छ देहि (कुक्कययं) खुखंणकं प्रयच्छयेनाहं वीणाविनोदेन त्वां रंजयामि लोध्रं लोध्रकुसुमं सुगंधं तथा (वेणुपलासिअत्ति) वंशात्मिका त्वक्काष्ठिका सा दंतैर्वीणाव द्वाद्यते तथौषधगुटिकां

तादृशीं देहि येनाहमविनष्टयौवना नवामीति ॥ ७ ॥ कुष्ठमुत्पलं तगरमगरंच सुगंधिड्व्यमुशीरेण वीरणमूलेन संपिष्टं सुगंधि स्याद्यतस्तत्तथा कुरु । तैलं मुखमाश्रित्य (निलिंजएत्ति) अभ्यंगाय ढौकय मुखाभ्यंगार्थं तैलं तथाविधमानयेत्यर्थः । वेणुफलानि वंशकार्याणि करंमकादीनि सन्निधानं वस्त्रादेर्व्यवस्थापनं तदर्थमानय ॥ ८ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (अडुअंजणीमित्यादि) अथशब्दोऽधिकारांतरप्रदर्शनार्थः । पूर्वं लिंगस्थोपकरणान्यधिकृत्याभिहितमधुना गृहस्थोपकरणान्यधिकृत्याभिधीयते । तद्यथा (अंजणीमिति) अंजणिकां कज्जलाधारभूतां नलिकां मम प्रयच्छस्वेत्युत्तरत्र क्रिया । तथा कटककेयूरादिकमलंकारं वा तथा (कुक्कुटयंति) खुंखुणकं मे मम प्रयच्छ येनाहं सर्वालंकारविभूषिता वीणाविनोदेन भवंतं विनोदयामि । तथा लोध्रं च लोध्रकुसुमं च । तथा (वेणुफलासियंति) वंशात्मिका श्लक्ष्णत्वक् काष्ठिका सा दंतैर्वामहस्तेन प्रगृह्य दक्षिणहस्ते नवीणाव द्वाद्यते । तथौषधगुटिकां तथाभूतामानय येनाहमविनष्टयौवना भवामीति ॥ ७॥ तथा (कुट्ठमित्यादि) कुष्ठमुत्पलकुष्ठं तथाऽगरुं तगरंच एते द्वेअपि गंधिकड्व्ये । एतत्कुष्ठादिकमुशीरेण वीरणीमूलेन संपिष्टं सुगंधि भवति यतस्तत्तथा कुरु, तथा तैलं लोध्रकुंकुमादिना संस्कृतं मुखमाश्रित्य (भिलिंजएत्ति) अभ्यंगाय ढौकयस्व । एतडुक्तं भवति । मुखाभ्यंगार्थं तथाविधं संस्कृतं तैलमुपाहरेति येन कांत्युपेतं मे मुखं जायते (वेणुफलाइंति) वेणुकार्याणि करंडकपेटिकादीनि सन्निधिः सन्निधानं वस्त्रादेर्व्यवस्थानं तदर्थमानयेति ॥ ८ ॥

नंदीचुस्सगाइं पाहराहिं, बत्तोवाणहंच जाणाहिं ॥ सत्थंच सूवछेज्जाए
आणीलंच वत्थयं रयावेहि ॥ ए ॥ सुफणिंच साग पागाए, आ
मलगाइंदगाहरणंच ॥ तिलगकरणिमंजणसलागं, घिंसु मेवि
हूणयं विजाणेहि ॥ १० ॥

अर्थ–(नंदीचुस्सगाहिं पाहराहिंके०)ड्व्यसंयोगे नीपजाव्युं एवुं नंदीचूर्ण ते उष्ठ रंगवाने अर्थे कोइक प्रकारे लावो (छत्त के०) आताप तथा वृष्टी राखवा नणी छत्र लावो तथा (उवाणहंचजाणाहिंके०) उपानह जे मोजडी प्रमुख ते पग राखवाने अर्थे सम्यक् प्रकारे लावो (सत्थंचसुवछेज्जाएके०) दात्रादिक शस्त्र नीलाशाक पत्रादिक छेदवाने अर्थे लावो (आणीलंचवत्थयंरयावेहिके०) नीला वस्त्र रंगावी आपो लालवस्त्र रंगावी आपो एरीते वचन कहे ॥ ए ॥ (सुफणिंचसागपागाए के०)रुडी हांमली पत्रशाक अन्नादिक पकाववाने अर्थे लावो तथा (आमलगाइंके०) पित्तोपशमाववाने अर्थे अथवा स्नान करवाने अर्थे आमला लावो (दगाहरणंच के०) पाणी राखवाने अर्थे घडो घडूलो

इत्यादिक लावो (तिलगकरणं के०) जेणेकरी गोरोचननुं तिलक करियें तेची शलि लावो तथा (अंजण के०) जेणेकरी आंख आंजीयें एवी (सलागं के०) शिलाका लावो (घिंसुमेविहूयणंविजाणेहिं के०) उन्हालो जे ग्रीष्मकाल विशेष ते दिवशे वायु ढोलवाने अर्थे वींजणो लावो ॥ १० ॥

॥दीपिका–नंदीचूर्णं उष्ठम्रक्षणचूर्णं प्राहार प्रकर्षेणानय आतपस्य वृष्टेर्वारणाय छत्रमुपानहौ च ममानुजानीहि । तथा शस्त्रं दात्रादिकं सूपछेदाय पत्रशाकछेदनार्थं देहि तथा नीलं वस्त्रं रंजय । उपलक्षणाद्रक्तादिकं च कारय ॥ए॥ सुष्ठु फण्यते क्वाथ्यते तक्रादिकं यत्र सा सुफणि स्थाल्यादिभाजनं तत् शाकपाकार्थमानय । आमलकानि पित्तोपशमाय नक्षणार्थं स्नानार्थंवा उदकाहरणं च जलाहरणपात्रं । उपलक्षणाद्घृतादिपात्रमानय । सर्वं गृहोपस्करमानय । तथाहि । तिलकं क्रियते यया सा तिलककरणी अंजनशलाका यया तिलकः क्रियते तामानय तथा ग्रीष्मे उष्णतापे मम विधूनकं व्यजनकं विजानीहि ॥ १० ॥

॥टीका–किंच । (नंदीचुस्सुगाईइत्यादि) नंदीचुस्सुगाइंति द्रव्यसंयोगनिष्पादितोष्ठम्रक्षणचूर्णोनिधीयते । तमेवंभूतं चूर्णं प्रकर्षेण येन केनचित्प्रकर्षेणाहरानयेति तथाऽऽतपस्य वृष्टेर्वासंरक्षणाय छत्रं तथोपानहौ च ममानुजानीहि । नमे शरीरमेनिर्विनावर्तते ततोददस्वेति । तथा शस्त्रं दात्रादिकं सूपछेदनाय पत्रशाकछेदनार्थं ढौकयस्व । तथा वस्त्रमंबरं परिधानार्थं गुलिकादिना रंजय यथा नीलमीषन्नीलं सामस्त्येन वा नीलं नवत्युपलक्षणार्थत्वाद्रक्तं यथा नवतीति ॥ ए ॥ तथा । (सुफणिंचेत्यादि) सुष्ठु सुखेन वा फण्यते क्वाथ्यते तक्रादिकं यत्र तत्सुफणि स्थालीपिठरादिकं नाजनमनिधीयते तच्छाकपाकार्थमानय । तथा आमलकानि धात्रीफलानि स्नानार्थं पित्तोपशमनायान्यवहारार्थं वा तथोदकमाह्रियते येन तडुदकाहरणं कुटवर्धनिकादि । अस्य चोपलक्षणार्थत्वाद्घृततैलाद्याहरणं स र्वंवा गृहोस्करं ढौकस्वेति । तिलकः क्रियते यया सा तिलककर्णी दंतमयी सुवर्णात्मिका वा शलाका यया गोरोचनादियुक्तया तिलकः क्रियतइति । यदिवा गोरोचनया तिलकः क्रियते साच तिलककर्णीत्युच्यते । तिलकाः क्रियंते पिष्यंते वा यत्र सा तिलककर्णीत्युच्यते । तथांजनं सौवीरकादि । शलाका अक्ष्णोरंजनार्थं शलाका अंजनशलाका तामाहरेति । तथा ग्रीष्मे उष्णाभितापे सति मे मम विधूनकं व्यजनकं विजानीहि ॥ १० ॥

संडासगंच फणिहंच, सीहलि पासगंच आणाहि ॥आदसगंच पयछाहि, दंतपरकालणं पवेसाहि ॥ ११ ॥ पूयफलं तंबोलयं, सूई सुत्तगंच जाणाहि ॥ कोसंयमोचमेहाए, सुप्पुक्खलगंच खारगालणंच ॥ १२ ॥

अर्थ- (संमासकं के०) चीपीउ जेणेकरी नाशिकाना नीमाला खूचीए काढीए तेने संमासक कहिए वली (फणिहंचके०) कांसकी जेणेकरी माथाना वाल समारिए ते तथा (सीहलिपासगंचआणाहि के०) वेणी बांधवाने अर्थे ऊननी कांकशी ए वस्तुउ आणी आपो (आदसगंचके०) आदर्शकं आसमंतात् दृश्यते आत्मा यस्मिन् स आदर्शः जेणे करी मुख वर्णादिक रूप शरीर देखाय तेने आरीशो कहिए ते (पयछाहिके०) आणी आपो (दंतपरकालणंपवेसाहिके०) दंतप्रक्षालन करवाने अर्थे दातण माहारा समीपे ला वो ॥११॥ (पूयफलंके०) पुंगफलते सोपारी (तंबोलयंके०) नागरवेलीना पानना बीडा प्रमुख तथा (सूईसुत्तगंचजाणाहिके०) सूत्र शीववाने अर्थे सूई ए वस्तुउ लइ आवो (कोसंयके०) घटादिक नाजन (मोचमेहाएके०)मोचप्रस्रवणंतेनमेहसेचन एटले लघुनीति करवा निमित्त रात्रीने समये मने बाहेर निकलता बीक लागेछे तेमाटे ते नाजन आणी आपो (सुप्पुके०) तंडुलादिक धान सोधवाने अर्थे सुपडुं लावो (खलगंचके०) धान खांड वाने अर्थे उखलो लइ आवो वली (खारगालणंचके०) जेमां नाखीने साजी प्रमुख खार गालीयें ते पात्र लावो अथवा लवणादिक खार लावो ॥ १२ ॥

॥ दीपिका—संडासिकं नासिकाकेशोत्पाटनं फणिहं केशसमारचनाय कंकतकं सीहलिपासकं वीणासंयमनार्थमूर्णामयं कंकणं चानय आदर्शकं दर्पणं प्रयछ दंतप्रक्षालनं दंतकाष्ठं मदंतिके प्रवेशय ॥११॥ पूगफलं तांबूलं सूचीसूत्रं च जानीहि देहि। कोशं घटादिनाज नं मोचमेहायानय । मोचः प्रस्रवणं तेनमेहः सेचनं तदर्थं नाजनमानय । तथा शूर्पं तंडुलादिशोधनं उदूखलं क्षारस्य सर्जिकादेर्गलनकं चानयेति ॥ १२ ॥

॥ टीका—एवं (संमासगंचेत्यादि) संडासिकं नासिके केशोत्पाटनं फणिहं केशसं यमानार्थं कंकतकं तथा (सीहलिपासगंति) वीणासंयमनार्थमूर्णामयं कंकणं चानय ढौ कयेति । एवमासमंताद्दृश्यते आत्मा यस्मिन् सआदर्शः सएवआदर्शकस्तं प्रयछ ददस्वे ति। तथा दंताः प्रक्षाल्यंते अपगतमलाः क्रियंते येन तद्दंतप्रक्षालनं दंतकाष्ठं तन्मदंतिके प्रवेशयेति ॥ ११ ॥ (पूयफलंचेत्यादि) पूगफलं प्रतीतं तांबूलं नागवल्लीदलं तथा सू चीं च सूत्रं च सूच्यर्थं वा सूत्रं जानीहि ददस्वेति तथा कोशमिति वारकादिनाजनं तन्मो चमेहाय समाहर । तत्र मोचः प्रस्रवणं कायिकेत्यर्थः । तेन मेहः सेचनं तदर्थं नाजनं ढौकय। एतडुक्तं नवति । बहिर्गमनं कर्तुमहमसमर्था रात्रौनयादतो मम यथारात्रौ ब हिर्गमनं न नवति तथा कुरु । एतच्चान्यस्याप्यधमतमकर्तव्यस्योपलक्षणं इष्टव्यं । त था शूर्पं तंडुलादिशोधनं तथोदूखलं तथा किंचन क्षारस्य सर्जिकादेर्गालनकमित्येवमा दिकमुपकरणं सर्वमप्यानयेति ॥ १२ ॥

चंदालगंच करगंच, वच्चघरंच आउसो खणाइ ॥ सरपायं च जायाए, गोरहगंच सामणे राए ॥ १३ ॥ घडिगंच सडिंडिमयंच, चेलगोलं कुमारजूयाए ॥ वासं समभिआवणं, आवसहंच जाण जत्तंच ॥ १४ ॥

अर्थ-(चंदालगंच के०) देवपूजाने अर्थे चंगेरी प्रमुख भाजन तथा (करगंचके०) करुउं मदिरानुं भाजन ते आणी आपो तथा (वच्चघरंचआउसोखणाहिके०) अहो आयुष्मन् संचारुखण एटले पुरिष विष्टा घरमां नपडे माटे घरने नलीया संचारो तथा कूइ खणावो वली (सरपायंचजायाएके०) शरपात एटले धनुष्य बाण पुत्र रमाडवाने अर्थे लइ आवो (गोरहगंचसामणेराए के०) गोरहगं एटले त्रण वर्षनो बलदीउं श्रमणना पुत्रने अर्थे रमत करवासारुं लइ आवो ॥१३॥(घडिगंचसडिंडिमयंचके०) घडिगं एटले कूल्हाडी सडिंडिम एटले वाजिंत्रविशेष तेसहित तथा (चेलगोलंके०)गोलदडी(कुमारजूयाएके०)कुमरक्रीडाने अर्थे लइ आवो जे दडीयें करी माहारा बालक रमत करे (वासंसमभिआवन्नंके०) तथा हेश्रमण वर्षाकाल आव्यो ते कारणे (आवसहंचके०) वर्षाकालमां निवास करवा योग्य घर करावी आपो के जे थकी भिंजीयें नही तथा (जाणभत्तंचके०) तेवर्षाकाल योग्य एटले वर्षाकालमां बेग खाइये माटे तांडुलादिक लइ आवोः ॥१४॥

॥ दीपिका-चंदालकं देवतार्चनाद्यर्थं ताम्रमयं भाजनं एतच्च मथुरायां चंदालगमित्युच्यते। करकोजलाधारोमद्यभाजनं वा आनय । तथा वर्चोगृहं पुरीषोत्सर्गस्थानं आयुष्मन् खन संस्कुरु ।शरपातं बाणक्षेपस्थानं धनुस्तज्जाताय मत्पुत्राय राय ढौकय । गोरहगं त्रिवर्षं बलीवर्दं वाऽनय श्रमणस्यापत्यं श्रामणिस्तस्मै श्रामणये गंत्र्यादिकृते भविष्यतीति ॥ १३ ॥ घटिकां मृन्मयकुल्लडिकां सडिंडिकां पटहादिवादित्रेण सह गोलं कंडुकं कुमारभूताय क्षुल्लकरूपाय मत्पुत्राय क्रीडार्थं देहि। हे श्रमण वर्षं प्रावृट्कालोयमभ्यापन्नः समापन्नः । प्राप्तस्ततश्चावसथं गृहं वर्षाकालयोग्यं भक्तं च तंडुलादिकं च जानीहि निष्पादय । येन सुखेन वर्षाकालोतिवाह्यते । यडुक्तं । मासैरष्टभिरह्ना च पूर्वेण वयसाऽयुषा ॥ तत्कर्तव्यं मनुष्येण यस्यांते सुखमेधते ॥ १४ ॥

॥टीका-किंचान्यत्।(चंदालगंचेत्यादि)चंदालकमिति देवतार्चनिकाद्यर्थं ताम्रमयं भाजनं। एतच्च मथुरायां चंदालकत्वेन प्रतीतमिति । तथा करकोजलाधारोमदिराभाजनं वा तदानयेति क्रिया। तथा वर्चोगृहं पुरीषोत्सर्गस्थानं तदा ऽयुष्मन् मदर्थं खन संस्कुरु। तथा शराइषवः पात्यंते क्षिप्यंते येन तच्छरपातं धनुस्तज्जाताय मत्पुत्राय कृते ढौकय । तथा (गोर

हगंति) अयहायणं बलीवर्दं च ढौकयेति (सामणेराएत्ति) श्रमणस्यापत्यं श्रामणिस्तस्मै श्रामणिपुत्राय त्वत्पुत्राय गंत्र्यादिकृते भविष्यतीति॥१३॥तथा (घटिगंचेत्यादि) घटिकां मृन्मयकुल्लुडिकां डिंडिमेन पटहकादिवादित्रविशेषेण सह तथा (चेलगोलंति) वस्त्रात्मकं कंडुकं कुमारभूताय क्षुल्लकभूताय राजकुमाररूपाय वा मत्पुत्राय क्रीडनार्थमुपानयेति। तथा वर्षमिति प्रावृट्कालोयमभ्यापन्नोऽभिमुखं समापन्नोऽतआवसथं गृहं प्रावृट्कालनिवासयोग्यं तथा भक्तंच तंडुलादिकं तत्कालयोग्यं जानीहि निरूपय निष्पादय। येन सुखेनैवाऽनागतपरिकल्पितावसथादिना प्रावृट्कालोतिवाह्यतेऽइति। तदुक्तं। मासैरष्टभिरह्ना च, पूर्वेण वयसाऽऽयुषा॥ तत्कर्तव्यं मनुष्येण, यस्यांते सुखमेधते ॥ १४ ॥

आसंदियंच नवसुत्तं, पाउल्लाइं संकमट्ठाए ॥ अडु पुत्तदोहलट्ठाए,
आणप्पा हवंति दासावा ॥ १५ ॥ जाए फले समुप्पन्ने, गेण्हसुवाणं
अहवा जहाहि ॥ अहं पुत्तपोसिणो एगे, भारवहा हवंति उट्टावा॥१६

॥ अर्थ-(आसंदियंचके०) बेशवानिमित्ते मांची आणी आपो पणते केवी लावो के जे (नवसुत्तंके०) नवासूत्रे वणी होय अथवा चर्मे थकी वणी होय तेवी लइ आवो (पाउल्लाइं संकमट्ठाए के०) वरसादमां चालतां पगे कादव नलागे तेना अर्थे काष्ठनी पावडी माहारा सारुं आणी आपो (अडके०) अथवा (पुत्तदोहलट्ठाएके०) गर्भस्थे पुत्रना मोहोला संपादवाने अर्थे वस्तुउलावो एम(आणप्पाहवंतिदासावाके०)आज्ञापेभवंतिदासाइव एटले स्त्री जेठे ते पुरुषने पोतानी आज्ञामां प्रवर्त्तावे स्नेह पाशे बंधाणा एवा विषयार्थी पुरुष स्त्रीना दास थाय ॥१५॥ (जाएफलेसमुप्पन्नेके०) हवे जात एटले गृहवासनेविषे पुत्ररूप फल उत्पन्न थया ठता जे विटंबनाउ थाय ते कहेठे, (गेण्हसुवाणं अहवाजहाहिके०) कोइक स्त्री गृहना कार्ये व्याकुल थई थकी पुरुष प्रत्ये कहे के ए बालक तमे संभालो अथवा एनो त्याग करो (अहंके०)हुं एनी वेठ करी शकती नथी में नवमाश सुधी उदरे धर्यो अने तमे क्षणमात्र पण पुत्रने खोलामां लेता नथी; एम क्रोधना वचन बोले तेवारे (एगेके०) कोइएक पुरुष आक्रोशतांथे (पुत्तपोसिणोके०) स्त्रीनो वशवर्त्ती थको पुत्रनो पोषक थाय (भारवहा हवंति उट्टावाके०) जेम उंटनो भारवाहक जेटलो भार उंट उपर नाखे तेटलो भार आरडतो थकोउपाडे तेम ते पुरुष पण स्त्रीनीपाशेउंटतुल्य जाणवा॥१६

॥ दीपिका-आसंदिकां मंचिकां ।किंभूतां। नवं सूत्रं वल्कलादि यस्यां सा नवसूत्रा तां (पाउल्लाइं) मौंजकानि काष्ठपाडुकावा संक्रमणार्थं पर्यटनार्थं अथवा पुत्रे गर्भस्थिते दोहदोभेदस्तदर्थं स्त्रीणां पुरुषाआज्ञापनीयाः स्युः । यथा दासाआज्ञाप्यंते जनैस्तथा स्त्री

भिः पुरुषाः कर्मकराइवादिश्यंते ॥१५॥ जातः पुत्रः सएव फलं गृहस्थानां तस्मिन् पुत्रे समुत्पन्ने तदुद्देशेन याविडंबनास्ताआह । अमुं दारकं गृहाण त्वं रमे अहंतु व्यापारवती अथवा एनं जहाहि परित्यज नाहमस्य वार्तामपि पृच्छामि । कुपिता पुनः साब्रूते मयायं नवमासानुदरेणोढस्त्वंतु उत्संगेपि नधत्से एवमुक्तोनरस्तदुक्तं सर्वं कुरुते । यतः । ददाति प्रार्थितः प्राणान्, मातरं हंति तत्कृते ॥ किं न दद्यात्किं न कुर्यात्स्त्रीभिरभ्यर्थितोनरः ॥१॥ ददाति शौचपानीयं पादौ प्रक्षालयत्यपि ॥ श्लेष्माणमपि गृह्णाति स्त्रीणां वशगतोनरः ॥ २ ॥ अथ पुत्रपोषिणस्ते नराएके भारवहाः स्युः । यथातु उष्ट्राभारं वहंति तत्तुल्याः ॥ १६ ॥

॥ टीका–एवंच (पाउल्लाइति) मौंजे काष्ठपादुके वा संक्रमणार्थं पर्यटनार्थं निरूपय यतोनाहं निरावरणपादा भूमौपदमपि दातुं समर्थेति । अथवा पुत्रे गर्भस्थे दौहृदः पुत्रदौहृदः अंतर्वत्नीफलादावभिलाषविशेषस्तस्मै तत्संपादनार्थं स्त्रीणां पुरुषाः स्ववशीकृता दासाइव क्रयक्रीताइवाज्ञाप्याआज्ञापनीयाभवंति । यथा दासाअलज्जितैर्योग्यत्वादाज्ञाप्यंते एवं तेपि वराकाः स्नेहपाशावपाशिताविषयार्थिनः स्त्रीभिः संसारावतरणवीथीभिरादिश्यंतइति ॥ १५ ॥ अन्यच्च । (जाएफलेइत्यादि) जातः पुत्रः सएव फलं गृहस्थानां । तथाहि । पुरुषाणां कामभोगः फलं । तेषामपि फलं प्रधानकार्यं पुत्रजन्मेति । तदुक्तं । इदं तत्स्नेहसर्वस्वं, सममाढ्यदरिद्रयोः ॥ अचंदनमनौशीरं, हृदयस्यानुलेपनं ॥१॥ यत्तत्पनिकेत्युक्तं, बालेनाव्यक्तभाषिणा ॥ हित्वा सौख्यं च योगं च तन्मे मनसि वर्तते ॥ २ ॥ यथा लोके पुत्रसुखं नाम द्वितीयं सुखमात्मनइत्यादि । तदेवं पुत्रः पुरुषाणां परमाभ्युदयकारणं तस्मिन् समुत्पन्ने जाते तदुद्देशेन या विडंबनाः पुरुषाणां भवंति । अमुं दारकं गृहाण त्वमहंतु कर्मासक्ता न मे ग्रहणावसरोस्ति । अथचैनं जहाहि परित्यज नाहमस्य वार्तामपि पृच्छाम्येवं कुपितासती ब्रूते मयायं नवमासानुदरेणोढस्त्वं पुनरुत्संगे नाप्युद्वहन् स्तोकमपिकालमुद्विजसइति । दासदृष्टांतस्त्वादेशदानेनैव साम्यं भजते नादेशनिष्पादनेनैव । तथाहि । दासोभयादुद्भ्रादेशं विधत्ते सतु स्त्रीवशगोऽनुग्रहं मन्यमानोमुदितश्च तथादेशं विधत्ते । यदेव रोचते मह्यं, तदेव कुरुते प्रिया । इतिवेत्ति न जानाति तत्प्रियं यत्करोत्यसौ ॥ १ ॥ ददाति प्रार्थितः प्राणान् मातरं हंति तत्कृते ॥ किं नदद्यात्किं न कुर्यात्स्त्रीभिरभ्यर्थितो नरः ॥ २ ॥ ददाति शौचपानीयं, पादौ प्रक्षालयत्यपि ॥ श्लेष्माणमपि गृह्णाति स्त्रीणां वशगतो नरः ॥३॥ तदेवं पुत्रनिमित्तमन्यद्वा यत्किंचिन्निमित्तमुद्दिश्य दासमिवादिशंति । अथ तेपि पुत्रान् पोषितुं शीलं येषांते पुत्रपोषिणश्चपलक्

णार्थत्वाद्वास्य सर्वादेशकारिणएके केचन मोहोदये वर्तमानाः स्त्रीणां निदेशवर्तिनोऽपह स्तितैहाकामुष्मिकापायाउष्ट्राइव परवशान्नारवाहान्नवंतीति ॥ १६ ॥

राउवि उछिया संता, दारगंच संठवंतिधाईवा ॥ सुहिरामणा विते संता वछधोवा हवंति हंसावा ॥ १७ ॥ एवं बहुहिं कए पुव्वं, नोगछाए जेनि यावन्ना ॥ दासे मिइव पेसेवा ॥ पसुनूतेव से ए वा केइ ॥ १८ ॥

अर्थ-(राउवि उछियासंता के०) रात्रने विषे पण निद्रामांथी उठीने बालक रडतो होय तेने राखे बालकने रमाडे कोनीपेरे तो के (दारगंचसंठवंतिधाईवाके०) रुदंतं दारकं धात्रीवत् संथापयंति एटले धात्रीनी पेरे राखे जेम धात्री बालकने रुडीरीते पाले तेम ते पुरुष पण बालकने पाले (सुहिरामणावितेसंताके०) कदापि ते पुरुष सुहिराम एटले घणो लज्जावंत होय तोपण स्त्रीने वचने निर्लज्ज थाय (वछधोवा हवंति हंसावा के०) हंस एटले धोबीनी पेरे स्त्रीना तथा बालकना वस्त्र धोवे तथा बीजापण जेकांइ कार्य कहे ते सर्वे दासनी पेरे करे ॥ १७ ॥ (एवंके०) ए पूर्वोक्त प्रकारे स्त्रीनुं किंकरपणुं (पुव्वंके०) पूर्वे अतीत कालने विषे (बहुहिंके०) घणा पुरुषोए (कएके०) कर्युं अने वर्त्तमा न काले पण स्त्रीनुं दासत्वपणुं घणा पुरुषो करेछे तथा आगमिक काले पण करशे (नोगछाएजेनियावन्ना के०) नोगने अर्थे जे अनिमुख एटले संमुख थया तेना ए ह वाल थाय एवा रागांध पुरुषजे स्त्रीने वश वर्त्ते थयाते (दासेके०)दास समान तथा (मि इव के०) पाशमां पडेला मृग समान तथा (पेसेवाके०)वेचातो लीधेलो चाकर ते समान तथा (पसुनूतेवसेणवाकेइ के०) तिर्यंच समान पण न कहेवाय किंबहुना ते कोइ स रीखान कहेवाय एवो कोइ पदार्थ नथी के जेनी उपमा एवा अधमने आपीने तेनी तुल्यना करी बतावीए. ते पुरुष सत्क्रिया थकीरहित माटे साधुपण नही अने तांबुलादिक परिन्नोग थकी रहित माटे गृहस्थ पण न कहेवाय माटे उनय भ्रष्ट जाणवा. ॥ १८ ॥

॥ दीपिका-रात्रावप्येके नराउत्थाय धात्रीवत्तं रुदंतं दारकं बालं संस्थापयंति । सुष्ठुन्ही लज्जा तस्यां मनो येषांते सुन्हीमनसोलज्जावंतोपि संतोलज्जां त्यक्ता स्त्रीवशगाहीनक र्माण्यपि कुर्वंति । तान्येवाह । वस्त्रधावकावस्त्रप्रक्षालकाः स्युः । यथा हंसारजकाइव । अस्योपलक्षणादन्यदपि जलवहनादि कुर्वंति ॥ १७ ॥ एवं पूर्वोक्तं बहुन्निर्नरैः पूर्वकृतं कृतपूर्वं नोगकृतये नराअन्यापन्नाव्यवस्थिताः सावद्यकार्येषु सक्ताः । तथा योरागांधः सदासइव मृगइव मूर्खोहीनकर्मण्यपि प्रेष्यते योज्यते पशुनूतः स न कश्चित् । न दीक्षितः सत्क्रिया रहितत्वात् । नापिगृहस्थः तांबूलादिन्नोगरहितत्वात् अतोऽसौ नकश्चित् ॥ १८ ॥

॥ टीका—किंचान्यत् (राउविइत्यादि) रात्रावप्युत्थिताः संतोरुदंतं दारकं धात्रीवत् सं स्थापयंत्यनेकप्रकारैरुल्लापैः । तद्यथा । सामिउसणीगरस्स यणक्कउरस्सय हत्थकप्पगिरि पट्टणसीहपुरस्स चउणयस्स निन्नस्सय कुंडिपुरस्सयकणकुज्जआयामुहसोरियपुरस्स य इत्येवमादिनिरसंबद्धैः क्रीडनकलापैः स्त्रीचित्तानुवर्तिनः पुरुषास्तत् कुर्वंति येनोपहा स्यतां सर्वस्य व्रजंति । सुष्ठु न्हीर्लज्जा तस्यां मनोंतः करणं येषांते सुन्हीमनसोलज्जालवो पि ते संतोविहाय लज्जां स्त्रीवचनात्सर्वजघन्यान्यपि कर्माणि कुर्वते । तान्येव सूत्रावयवेन दर्शयति । वस्त्रधावकावस्त्रप्रक्षालकाहंसाइव रजकाइव नवंति । अस्य चोपलक्षणार्थत्वाद न्यदप्युदकवहनादिकं कुर्वंति ॥ १७ ॥ किमेतत्केचन कुर्वंतीति येनैवमनिधीयते बाढं कु र्वंतीत्याह । (एवं बहुइत्यादि) एवमिति पूर्वोक्तं स्त्रीणामादेशकरणं पुत्रपोषणवस्त्रधा वनादिकं तद्बहुनिः संसारानिष्वंगिनिः पूर्वं कृतं कृतपूर्वं । तथापरे कुर्वंति करिष्यंति च ये नोगकृते कामनोगार्थमैहिकामुष्मिकापायमपर्यालोच्यानिमुख्येन नोगानुकूल्येनापन्नाव्य वस्थिताः सावद्यानुष्ठानेषु प्रतिपन्नाइति यावत् । तथा योरागांधः स्त्रीवशीकृतः सदासवदर्शा कितानिस्तानिः प्रत्यपरेपि कर्मणिनियोज्यते । तथा वागुरापतितः परवशोमृगइव धार्यते ना त्मवशोनोजनादिक्रियापि कर्तुं लनते । तथा प्रेष्यइव कर्मकरइव क्रीतइव वर्चः शोधनादा वपि नियोज्यते। तथा कर्तव्याकर्तव्यविवेकरहिततया हिताहितप्राप्तिपरिहारशून्यत्वात् पशु नूतइव। यथाहि पशुराहारनयमैथुनपरिग्रहानिज्ञएवं केवलमसावपि सदनुष्ठानरहितत्वा त्पशुकल्पः।यदिवा स स्त्रीवशगोदासमृगप्रेष्यपशुन्योप्यधमत्वान्न कश्चित् । एतडुक्तं नवति सर्वाधमत्वात्तस्य तत्तुल्यं नास्त्येव येनासावुपमीयते । अथवा न सकश्चिदित्युनयभ्रष्टत्वा त् । तथाहि न तावत्प्रव्रजितोसौ सदनुष्ठानरहितत्वान्नापिगृहस्थस्तांबूलादिपरिनोगरहि तत्वाल्लोचिकामात्रधारित्वाच्च।यदिवा ऐहिकामुष्मिकानुष्ठायिनां मध्ये न कश्चिदिति ॥१८॥

एवं खु तासु विन्नप्पं, संथवं संवासंच वज्जेज्जा॥ तज्जातिआ इमे कामा
वज्जकराय एवमरकाए॥१९॥ एवं नयं णसेयाय, इइ से अप्पगं निरुं
नित्ता ॥ णोइत्थि णोपसू, निरकुणो सयं पाणिणा णिलज्जेज्जा ॥२०॥

अर्थ—हवे उपदेश कहेढे (एवंखुत्तासुविन्नप्पंके०) एम जे पूर्वोक्त स्त्रीनो विनव्यो मायानुं कारण जाणीने (संथवंके०) तथा तेनुं संस्तव (संवासंचके०) तेनुं संवास एटले नेलुं व शवुं तेने उत्तमपुरुष (वज्जेज्जाके०) वर्जे त्याग करे (तज्जातिआइमेकामा के०) त ज्जाति एटले ते स्त्रीना संग थकी ढे उत्पत्ति जेनी एवा ए प्रत्यक्ष कामनोग ते (वज्ज करायएवमरकाए के०) अवद्यकराएवमाख्यातं एटले पापकर्म कारी डुर्गतिना दातार

छे एम श्रीतीर्थंकर गणधरे कह्युंछे ॥ १ए ॥ (एवंभयं के०) एम स्त्रीना संवास थकी घणा भयना कारण उत्पन्न थायछे माटे (णसेयायसेके०) ते श्रेयकारी कल्याणकारी न थी (इइ के०) ए हेतु जाणीने (अप्पगं के०) पोताना आत्माने (निरुंभित्ताके०) स्त्रीना संग थकी निरुंधीने एटले निवारीने संमार्गने विषे स्थापन करीने (निरूकूके०) चारित्रिउ जे होय ते (णोइत्थिणोपसू के०) स्त्रीअने पशु एटले तिर्यंचनो सहवास करे नही (णोसयंपाणिणाणिलिजेज्जाके०) तथा पोताना हाथथी स्पर्श मात्रपणनकरे॥२०॥

॥ दीपिका—खुर्वाक्यालंकारे । एतत्पूर्वोक्तं तासु स्त्रीषु विषये यद्विज्ञप्तमुक्तं तत्तथा स्त्रीभिः सार्धं संस्तवं परिचयं वासंच एकत्र निवासंच त्यजेत् । यतः । ताभ्यः स्त्रीभ्योजातिरुत्पत्तिर्येषांते तज्जातिकाऽमे कामाः । पुनः किंभूताः । अवद्यं पापं तस्य कारकास्तएवमाख्यातास्तीर्थंकृद्भिः ॥ १ए ॥ एवं पूर्वोक्तप्रकारेण भयहेतुत्वाद्भयं स्त्रीसंबंधरूपं नश्रेयसे इति हेतोः सन्निक्कुरात्मानं निरुध्य न स्त्रियं नापि पशुं लीयेत संश्रयेत स्त्रीपशुभ्यां संवासं त्यजेत् । तथा स्वहस्तेनवा अंगस्य (नणिलिक्केज्जति) जातेन संबंधं न कुर्यात् । यतो हस्तकर्मणापि चारित्रं शबलीभवति ॥ २० ॥

॥ टीका—सांप्रतमुपसंहारद्वारेण स्त्रीसंगपरिहारमाह । (एवंखुइत्यादि) एतत्पूर्वोक्तं । खुशब्दोवाक्यालंकारे । तासु यत् स्थितं तासां वा स्त्रीणां संबंधि यद्विज्ञप्तमुक्तं । तद्यथा । यदि सकेशया मया सह न रमसे ततोहं केशानप्यपनयामीत्येवमादिकं तथा स्त्रीभिः सार्धं संस्तवं परिचयं तत्संवासं च स्त्रीभिः सहैकत्र निवासं चात्महितमनुवर्तमानः सर्वापायभीरुस्त्यजेज्जह्यात् । यतस्ताभ्योजातिरुत्पत्तिर्येषां ते कामास्तज्जातिकारमणीसंपर्कोत्थास्तथाऽवद्यं पापं वज्रं वा गुरुत्वादधः पातकत्वेन पापमेव तत्करणशीलाऽवद्यकरावज्रकरावेत्येवमाख्यातास्तीर्थंकरगणधरादिभिः प्रतिपादिताइति ॥ १ए ॥ सर्वोपसंहारार्थमाह । (एवंभयमित्यादि) एवमनंतरनीत्या भयहेतुत्वात् स्त्रीभिर्विज्ञप्तं तथा संस्तवस्तत्संवासश्च भयमित्यतः स्त्रीभिः सार्धं संपर्कोन श्रेयसे सदनुष्ठानहेतुत्वात्तस्येत्येवं परिज्ञाय सन्निक्कुरवगतकामभोगविपाकआत्मानं स्त्रीसंपर्कान्निरुंध्य सन्मार्गेप्यवस्थाप्य यत्कुर्यात्तद्दर्शयति । नस्त्रियं नरकवीथीप्रायां नापि पशुं लीयेताश्रयेत स्त्रीपशुभ्यां सह संवासं परित्यजेत् स्त्रीपशुपंमकवर्जिताशय्येतिवचनात्तथास्वकीयेन पाणिना हस्तेनावाच्यस्य (नणिलिक्केज्जति) नसंबाधनं कुर्यात् । यतस्तदपि हस्तसंबाधनं चारित्रं शबलीकरोति । यदिवा स्त्रीपश्वादिकं स्वेन पाणिना नस्पृशेदिति ॥ २० ॥

सुविसुद्धलेसे मेहावी, परकिरिअंच वज्जए नाणी॥ मणसा वयसा काएण सव्वफासंसहे अणगारे ॥२१॥ इच्चेव माहु से वीरे, धुअरए धुअमोहे से

भिक्खू ॥ तम्हा अप्ऩविसुद्धे सुविमुक्के, आमोक्खाए परिव्वएज्जा सि(पाठां तरं विहरे आमुक्खाए)त्तिबेमि॥२२॥इति श्रीइत्थी परिन्ना चतुर्थाध्ययनं समत्तं

अर्थ-(सुविसुद्धलेसेके०) शुद्ध निर्मल लेश्यावंत चित्तनो व्यापारछे जेनो एवो (मेहावी के०) पंमित ते (परकिरियंचके०) परनी करेली स्त्रियादिकसंबंधीनी क्रिया अथवा जोगने अर्थे परने हाथे पोताने विषे स्पर्शादिक जे क्रिया करावची तेने (वज्जएनाणीके०)ज्ञानवंत पुरुष मने वचने अने कायाये करवुं करावचुं ने अनुमोदवुं एम त्रिविधे वर्जे अर्थात् काम जोगने टाळे तथा(सव्वफाससहे अणगारेके०)अन्य सर्व शीतादिक परिसह जे कह्याछे तेने ते अणगार स्पर्श्ये थको सहे एटले सहन करे ॥२१॥ (इच्चेवमाहु सेवीरेके०) एम ए पूर्वोक्त समस्त उपदेश श्री माहावीर देवे आहु एटले कह्योछे ते श्रीमाहावीर परमेश्वर केवाछे तो के(धुअरए धुअमोहेके०) पाप रज रहित तथा मोहरहित छे (तम्हाके०)तेमाटे(सेभिक्खू के०)ते साधु सम्यक्दर्शन चारित्रे करी युक्त थको मुक्तिने साधे (अप्ऩ विसुद्धेसुके०) अध्यवसाय निर्मल थको (विमुक्के आमोक्खाए परिव्वएज्जासिके०) विमुक्त आमोक्षाय परिव्रजेत् संयमानुष्ठाने इति एवो भिक्षु स्त्रीसंगादिक क्लेश थकी विमुक्त थयो थको ज्यांसुधी मोक्षे जाय त्यांसुधी सूधो संयम पाळे. तिबेमिनु अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ २२ ॥ ए स्त्री परिज्ञा नामे चोथा अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो. ॥

॥ दीपिका-सुविशुद्धा लेश्या मनोवृत्तिर्यस्य सुविशुद्धलेश्योमेधावी मर्यादावान् परस्य स्त्र्यादेः संबंधिनीं क्रियां ज्ञानी विवेकवान् वर्जयेत् मनसा वाचा कायेन सर्वस्पर्शसहोऽनगारः शीतोष्णदंशमशकादिसहनकृत्यः स्यात् ॥ २१ ॥ इत्येवं पूर्वोक्तं तत्सर्वं भगवान् वीरोधुतं क्षिप्तं रजः स्त्रीसंबंधकृतं कर्म येन स धुतरजाः धुतमोहआह उक्तवान् तस्मात्सभिक्षुरध्यात्मविशुद्धोनिर्मलचित्तः सुविमुक्तः स्त्रीसंबधेन रहितआमोक्षाय सर्वकर्मक्षयं यावत् विहरेत्संयमोद्यतोभवेदिति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥२२॥ इति सूत्रकृतांगदीपिकायां चतुर्थाध्ययनं समाप्तं ॥

॥ टीका-अपि च । सुविसुद्धइत्यादि)सुष्ठु विशेषेण शुद्धा स्त्रीसंपर्कपरिसंहाररूपतया निष्कलंका लेश्यांऽतःकरणवृत्तिर्यस्य स तथा सएवंभूतोमेधावी मर्यादावर्ती परस्मै स्त्र्यादिपदार्था क्रिया परक्रिया तां च ज्ञानी विदितवेद्योवर्जयेत्परिहरेत्। एतदुक्तं भवति । विषयोपभोगोपाधिना नान्यस्य किमपि कुर्यान्नाप्यात्मनः स्त्रिया पादधावनादिकमपि कारयेत्। एतच्च परक्रियावर्जनं मनसा वच सा कायेन वर्जयेत्तथा ह्यौदारककामभोगार्थं मनसा न गच्छति नान्यं गमयति गच्छंतमपरं नानुजानीते एवं वाचाकायेनच सर्वैप्यौदारिके नव भेदाएवं दिव्येपि

नव भेदास्ततश्चाष्टादशभेदभिन्नमपि ब्रह्म बिभृयात् । यथाच स्त्रीस्पर्शपरीषहः सोढव्यएवं स र्वानपि शीतोष्णदंशमशकतृणादिस्पर्शानपि सहेत । एवंच सर्वस्पर्शसहोऽनगारः साधुर्भवती ति ॥ २१ ॥ कएवमाहेति दर्शयति। (इच्चेवमाहुरित्यादि) इत्येवं यत्पूर्वमुक्तं तत्सर्वं सवीरोभग वानुत्पन्नदिव्यज्ञानः परहितैकरतआह उक्तवान् । यतएवमतोधूतमपनीतं रजःस्त्रीसंपर्का दिकृतं कर्म येन सधूतरजाः । तथा धूतोमोहोरागद्वेषरूपोयेन सतथा । पाठांतरं वा धूतोऽप नीतोरागमार्गोरागपंथा यस्मिन् स्त्रीसंस्तवादिपरिहारात्तत्तथा तत्सर्वं भगवान् वीरएवाह ।य तएवं तस्मात्सभिक्षुरध्यात्मविशुद्धः सुविशुद्धांतःकरणः सुष्ठु रागद्वेषात्मकेन स्त्रीसंपर्केण मु क्तः सन्नामोक्षायाशेषकर्मक्षयंयावत्परिसमंतात्संयमेऽनुष्ठाने व्रजेद्गच्छेत्संयमोद्योगवान् भवे दिति। इति परिसमाप्त्यर्थे ।ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २२ ॥इति चतुर्थं स्त्रीपरिज्ञाध्ययनं परिसमाप्तं

हवे नरयविभत्ति नामा पांचमुं अध्ययन श्रीजंबूस्वामी पूछेछे अने श्रीसुधर्म स्वामी जंबू प्रत्ये कहेछे के पूर्वे चोथा अध्ययनमां अनाचारी कह्या तेवा अनाचारी जे होय तेने नरकगति प्राप्त थाय माटे नरयविभत्ति नामा पांचमुं अध्ययन कहेछे.

पुच्छिस्सहं केवलियं महेसिं, कहं भितावा णरगा पुरछा ॥ अ
जाणउ मे मुणि बूहि जाणं, कहिं नु बाला नरयं उवेंति ॥ १ ॥
एवं मए पुट्ठे महाणुभावे, इणमोब्बवी कासवे आसुपन्ने ॥ पवे
दइस्सं दुहमट्ठदुग्गं, आदीणियं दुक्कडियं पुरछा ॥ २ ॥

अर्थ-(पुच्छिस्सहंकेवलियंमहेसिंके०) सुधर्मस्वामी कहेछे जे तमे मने पूछोछो के नरक केवाछे तथा जीव केवे कर्मे करी नरके जाय तथा त्यां केवी वेदनाछे तेम में पण (पुरछाके०) पूर्वे केवली महर्षि श्री माहावीर देवने पुछयुं हतुं के हे भगवन् (अभितावा के०) तापसहित (णरगाके०) नरकना भय जे तीव्र दुःख रूपछे ते (कहंके०) केवाछे (अ जाणउमेके०) अजाणता एवा मुजने (मुणिके०) हे मुनि तमे (जाणंबूहिके०) केवल ज्ञाने करी जाणता थका कहो के (कहिंनुबालानरयंउवेंतिके०)केवीरीते बाल एटले अज्ञानी जी व नरकमां जइ उपजे ॥१॥ (एवंमएपुट्ठेके०) एम में विनय सहित पुछयुं छतां (महाणुभावे के०) महोटोछे अनुभाव एटले माहात्म्य जेनो (आसुपन्नेके०) आशुप्रज्ञ एटले सर्वत्र सदा उपयोग थकी केवल ज्ञानवंत एवा (का.सवेके०) काश्यप श्रीमहावीर देव तेणे (इ णमोब्बवीके०)एमज कह्युं ते प्रमाणे हुं तमने कहीश (पवेदइस्संदुहमट्ठदुग्गंके०) प्रवेदि तंदुःखमेवार्थदुर्गं एटले दुःखनु कारणछे माटे दुर्गमस्थानक नरकावासा कह्याछे (आदीणि यंदुक्कडियंपुरछाके०)आदीनिकंदुष्कृतिनो पुरस्तात् एटले अत्यंत दीनपुरुषे जेनो आश्रयकर्यो

ने एवा दुःकृत एटले पापफलसहित ते नरकावासाने पुरस्तात् एटले आगल कहेशे ते तमे एकाग्रचित्ते सांजलो ॥ २ ॥

॥ दीपिका—अथ पंचमाध्ययनमारज्यते । तत्र उपसर्गजीरोः स्त्रीवशगस्य नरकपातः स्यात्तत्र च यादृश्योवेदनाः स्युस्ताअत्रोच्यंते इति । प्रथमोद्देशकस्यादिसूत्रमिदं । (पुच्छिस्सेति) जंबूस्वामिना सुधर्मस्वामी पृष्टः किंजूतानरकाइत्यादिपृष्टः सुधर्मस्वाम्याह । यदेतज्ञवताऽहंपृष्टस्तदेतत्केवलिनः श्रीवीरमहर्षेः पुरस्तात्पूर्वं पृष्टवानहं कथमजितापान्विता नरकाः । हेमुने एतदजानतो मे त्वं जानन् ब्रूहि । कथं केनप्रकारेण नुवितर्के बालाअज्ञानरकमुपयांति ॥१॥ एवं मया पृष्टोमहानुजावइदं प्रश्नोत्तरमब्रवीत् । काश्यपोवीरआशुप्रज्ञोजगवान् इदमाह । यथाहं प्रवेदयिष्यामि कथयिष्यामि त्वं शृणु । दुःखंनरकदुःखं अर्थतः परमार्थतो दुर्गं विषमं । पुनः किंजूतं । आसमंतादीनमादीनं तद्विद्यते यस्य सआदीनिकोऽत्यंतदीनत्वाश्रयस्तं दुष्कृतं पापं विद्यते यत्र स दुष्कृतिकस्तं पुरस्तादग्रतः कथयिष्ये ॥२॥

॥टीका—उक्तं चतुर्थाध्ययनं सांप्रतं पंचममारज्यते । अस्य चायमजिसंबंधः । इहाद्याध्ययने स्वसमयपरसमयप्ररूपणाजिहिता । तदनंतरं स्वसमये बोधोविधेयइत्येतद्द्वितीयेऽध्ययने ऽजिहितं । संबुद्धेन चानुकूलप्रतिकूलाउपसर्गाः सम्यक्सोढव्याइत्येतत्तृतीयेऽध्ययने प्रतिपादितं । तथा संबुद्धेनैव स्त्रीपरीषहश्च सम्यगेव सोढव्यइत्येतच्चतुर्थेऽध्ययने प्रतिपादितं । सांप्रतमुपसर्गजीरोः स्त्रीवशगस्यावश्यं नरकपातोजवति । तत्र च यादृक्षावेदनाः प्रादुर्जवंति ताअनेनाध्ययनेन प्रतिपाद्यंते । तदनेन संबंधेनायातस्यास्याध्ययनस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराणि उपक्रमादीनि वक्तव्यानि । तत्रोपक्रमांतर्गतोऽर्थाधिकारो द्विधा । अध्ययनार्थाधिकारउद्देशार्थाधिकारश्च । तत्राध्ययनार्थाधिकारोनिर्युक्तिकारेण प्रागेवाजिहितः । तद्यथा । उपसर्गजीरुणो (थीवसस्सनरएसु होज्जउववाउ)इत्यनेन उद्देशार्थाधिकारस्तु निर्युक्तिकृताजिहितोऽध्ययनार्थाधिकारांतर्गतइति । सांप्रतं निक्षेपः सचत्रिविधः । उघनिष्पन्नोनामनिष्पन्नः सूत्रालापकनिष्पन्नश्चेति । तत्रौघनिष्पन्ने निक्षेपेऽध्ययनं नामनिष्पन्ने तु नरकविजक्तिरिति द्विपदं नाम । तत्र नरकपदनिक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह । णिरए ठक्कं दवं, णिरयाउ इहमेव जे जवे असुजा ॥ खेत्तं णिरउंगासो कालोणिरएसुचेवठी ॥६४॥जावेउणिरयजीवा कम्मुदउ चेव णिरयपाउंगा । सोऊणणिरयदुःखं, तवचरणेहोइजइयव्वं ॥ ६५ ॥ णिरयेठक्कमित्यादिगाथाद्वयं । तत्र नरकशब्दस्य नामस्थापना द्रव्यक्षेत्रकालजावजेदात् षोढा निक्षेपः । तत्र नामस्थापने क्षुण्णे । द्रव्यनरकआगमतोनोआगमतश्च । आगमतोज्ञाता तत्र चानुपयुक्तः । नोआगमतस्तु ज्ञशरीरजव्यशरीरव्यतिरिक्तइहैव मनुष्यजवे तिर्यग्जवे ये केचनाऽशुजकारित्वादशुजाः सत्वाः कालकसौकरिकादयइति । यदिवा यानि कानि चिदशुजानि

स्थानानि चारकादीनि याश्च नरकप्रतिरूपावेदनास्ताः सर्वाऽद्रव्यनरकाइत्यभिधीयंते। यदिवा कर्मद्रव्यनोकर्मद्रव्यभेदाद् द्रव्यनरकोद्वेधा। तत्र नरकवेद्यानि यानि बद्धानि कर्माणि तानि चैकभविकस्य बद्धायुष्कस्याभिमुखनामगोत्रस्य चाश्रित्य द्रव्यनरकोभवति। नोकर्मद्रव्यनरकस्त्विहैव येऽशुभारूपरसगंधवर्णशब्दस्पर्शाइति। क्षेत्रनरकस्तु नरकावकाशकालमहाकालरौरवमहारौरवप्रतिष्ठानाऽभिधानादिनरकाणां चतुरशीतिलक्षसंख्यानां विशिष्टोभूभागः। कालनरकस्तु यत्र यावतीस्थितिरिति। भावनरकस्तु ये जीवानरकायुष्कमनुभवंति तथा नरकप्रायोग्यः कर्मोदयइति। एतदुक्तं भवति। नरकांतर्वर्तिनोजीवास्तथा नरकायुष्कोदयापादिताऽसातावेदनीयादिकर्मोदयाश्चैतद्द्वितयमपि भावनरकइत्यभिधीयते। तदेवं श्रुत्वाऽवगम्य तीव्रमसह्यं नरकदुःखं क्रकचपाटनकुंभीपाकादिकं परमाधार्मिकापादितं परस्परोदीरणाकृतं स्वाभाविकं च तपश्चरणे संयमानुष्ठाने नरकपातपरिपंथिनि स्वर्गापवर्गागमनैकहेतोर्वाऽत्महितमिच्छता प्रयतितव्यं परित्यक्तान्यकर्तव्येन यत्नोविधेय इति। सांप्रतं विभक्तिपदनिक्षेपार्थमाह। णामंठवणादविए, खेत्ते काले तहेव भावेय। एसोउ विभत्तीए णिरकेवोछव्विहोहोइ ॥१॥ (नामंठवणेत्यादि) विभक्तेर्नामस्थापना द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदात् षोढा निक्षेपस्तत्र नामविभक्तिर्यस्य कस्य चित्सचित्तादेर्द्रव्यस्य विभक्तिरिति नाम क्रियते। तद्यथा। स्वादयोष्टौ विभक्तयस्तिबादयश्च। स्थापनाविभक्तिस्तु यत्र ताएवं प्रातिपदिकाद्धातोर्वा परेण स्थाप्यंते पुस्तकपत्रकादिन्यस्तावा। द्रव्यविभक्तिर्जीवाजीवभेदाद् द्विधा। तथापि जीवविभक्तिः सांसारिकेतरभेदाद्द्विधा। तत्राप्यसांसारिकजीवविभक्तिर्द्रव्यकालभेदात् द्वेधा। तत्रद्रव्यतस्तीर्थातीर्थसिद्धादिभेदात्पंचदशधा। कालतस्तु तत्प्रथमसमयसिद्धादिभेदादनेकधा। सांसारिकजीवविभक्तिरिंद्रियजातिभवभेदात्त्रिधा। तत्रेंद्रियविभक्तिरेकेंद्रियविकलेंद्रियपंचेंद्रियभेदात्पंचधा। जातिविभक्तिः पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसभेदात् षोढा। भवविभक्तिर्नारकतिर्यङ्मनुष्यामरभेदाच्चतुर्धा। अजीवद्रव्यविभक्तिस्तु रूप्यरूपिद्रव्यभेदाद्द्विधा। तत्र रूपिद्रव्यविभक्तिश्चतुर्धा। तद्यथा। स्कंधाः स्कंधदेशाः स्कंधप्रदेशाः परमाणुपुद्गलाश्च। अरूपिद्रव्यविभक्तिर्दशधा। तद्यथा। धर्मास्तिकायोधर्मास्तिकायस्य देशोधर्मास्तिकायस्य प्रदेशः। एवमधर्माकाशयोरपि प्रत्येकं त्रिभेदता द्रष्टव्या। अद्धासमयश्च दशमइति। क्षेत्रविभक्तिश्चतुर्धा। तद्यथा। स्थानं दिशं द्रव्यं स्वामित्वं चाश्रित्य। तत्र स्थानाश्रयणादूर्ध्वाधस्तिर्यग्विभागव्यवस्थितोलोकोवैशाखस्थानस्थपुरुषइव कटिस्थकरयुग्मइति द्रष्टव्यः। तत्राप्यधोलोकविभक्तीरत्नप्रभाद्याः सप्त नरकपृथिव्यस्तत्रापि सीमंतकादिनरकेंद्रकावलिकप्रविष्टपुष्पावकीर्णकवृत्तत्र्यस्रचतुरस्रादिनरकस्वरूपनिरूपणं। तिर्यग्लोकविभक्तिस्तु जंबूद्वीप,लवणसमुद्र, धातकीखंड,कालोदसमुद्रेत्यादि द्विगुणद्विगुणवृद्ध्या द्वीपसागरस्वयंभूरमणपर्यंतस्वरूपनि

रूपणं। ऊर्ध्वलोकविनक्तिः सौधर्माद्यानपर्युपरिव्यवस्थिता द्वादशदेवलोकाः नवग्रैवेय कानि पंचमहाविमानानि। तत्रापि विमानेंद्रकावलिप्रविष्टपुष्पावकीर्णकवृत्तत्र्यस्रचतु रस्रादिविमानस्वरूपनिरूपणमिति। दिगाश्रयणेन तु पूर्वस्यां दिशि व्यवस्थितं क्षेत्रमे वमपरास्वपीति। इव्याश्रयणाद्बालिक्षेत्रादिकं गृह्यते। स्वाम्याश्रयणाच्च देवदत्तस्य क्षेत्रं यज्ञदत्तस्य वेति। यदिवा क्षेत्रविनक्तिरार्याऽनार्यक्षेत्रनेदाद्द्विधा। तत्राप्यार्यक्षेत्रमर्धष ड्विंशतिजनपदोपलक्षितं राजगृहमगधादिकं गृह्यते। रायगिहमगहचंपा, अंगातहता मलित्तिवंगाय॥ कंचणपुरंकलिंगा, वाराणसीचेव कासीय॥ १॥ साकेयकोसलागय, पुरंचकुरुसौरियंकुसुट्टाय॥ कंपिल्लं पंचाला, अहिछत्ताजंगलाचेव॥ २॥ वारवईयसुरट्ठा मिहिलविदेहायवच्छकोसंबी॥ नंदिपुरंसंडिल्ला, नद्दलिपुरमेवमलयाय॥ ३॥ वइराडव च्छवरणा, अछातहमित्तियावइदसण्णा॥ सुत्तीमईयचेदी, वीयनयं सिंधुसौवीरा॥४॥ महुरा यसूरसेणा, पावानंगीयमासपुरिवट्टा॥ सावित्थीयकुणाला, कोमीवरिसंचलाढाय॥ ५॥ सेयवियावियणायरि, केययअद्धंचआरियंनणियं॥ जत्थुप्पत्तिजिणाणं, चक्कीणंरामकि ण्हाणं॥ ॥ ६॥ अनार्यक्षेत्रं धर्मसंज्ञारहितमनेकधा। तदुक्तं। सगजवणसबरबब्बर, का यमुरुंमो डुगोणपक्कणया॥ अरकागहूणरोमस पारसखसखासियाचेव॥ १॥ डुविलय लवोसवाक्कस, निल्लंदपुलिंदकोंचनमररूया॥ कौंचायचीणचंचुय, मालंदमिलाकुलरकाय॥ ॥ २॥ केकयकिरायहयमुह, खरमुहतह तुरगमेढगमुहाय॥ ॥ हयकण्णागयकण्णा, अ ण्णेयअणारियाबहवे॥ ३॥ पावायचंमदंमा, अणारियाणिग्घिणाणिरणुकंपा॥ धम्मोत्ति अरकराइं, जेसुणणज्जंतिसुविणोवि॥ ४॥ कालविनक्तिस्तु अतीताऽनागतवर्तमानकालने दात्रिधा। यदि चैकांतसुषमादिकक्रमेणाऽवसर्पिण्युत्सर्पिण्युपलक्षितं द्वादशारं कालचक्रं। अ थवा। समयावलियमुहुत्ता.दिवसमहोरत्तपरकमासाय॥ संवछरयुगपलिया, सागरउस्स प्पिपरियट्टेत्येवमादिकाकालविनक्तिरिति। नावविनक्तिस्तु जीवाजीवनेदाद्द्विधा। तत्र जीव नावविनक्तिरौदयिकौपशमिक,क्षायिक, क्षायोपशमिक,पारणामिक, सान्निपातिक, नेदा त् षट्प्रकारा। तत्रौदयिकोगतिकषायलिंगमिथ्यादर्शनाऽज्ञानाऽसंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतु स्त्र्येकैकैकैकषड्नेदक्रमेणैकविंशतिनेदनिन्नः। तथौपशमिकः सम्यक्त्वचारित्रनेदाद् द्वि विधः। क्षायिकः सम्यक्त्वचारित्रज्ञानदर्शनदानलाननोगोपनोगवीर्यनेदान्नवधा। क्षायोप शमिकस्तु ज्ञानाज्ञानदर्शनदानादिलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपंचनेदाः। तथा सम्यक्त्वचारित्रसंय मासंयमनेदक्रमेणाष्टादशधेति। पारिणामिकोजीवनव्यानव्यत्वादिरूपः सान्निपातिक स्तु द्विकादिनेदात् षड्विंशतिनेदः। संनवीतु षड्विंशतिविधोयमेव गतिनेदात्पंचधेति। अ जीवनावविनक्तिस्तु मूर्तानां वर्णगंधरसस्पर्शसंस्थानपरिणामः। अमूर्तानां गतिस्थित्यव गाहवर्तनादिकइति। सांप्रतं समस्तपदापेक्षया नरकविनक्तिरिति। नरकाणां विनागोविन

क्लिस्तामाह ॥ पुढवीफासंअसुा,णुवक्कमणिरयणवाजवहणंच ॥ तिसुवेदेतिअताणाअणु नागंचेव सेसासु ॥ ६७ ॥ (पुढवीफासमित्यादि)। पृथिव्याः शीतोष्णरूपायास्तीव्रवेदनोत्पादकः स्पर्शः संपर्कः पृथिवीसंस्पर्शस्तमनुनवंति। तमेव विशिनष्टि। अन्येन ...दिना उपक्रमितुमुपशमयितुं योनशक्यते सोन्यानुपक्रमस्तमपराचिकित्स्यमित्यर्थः। तमेवंनूतमराऽसाध्यं पृथिवीस्पर्श नारकाः समनुनवंति। उपलक्षणार्थत्वाच्चास्य रूपगंधस्पर्शशब्दानप्येकांतेनाशुनान्निरुपमाननुनवंति । तथा नरकपालैः पंचदशप्रकारैः परमाधार्मिकैः कृतमुजराऽसिकुंतक्रकचकुंनीपाकादिकं वधमनुनवंत्याद्यासु तिसृषु रत्न,शर्करा,वालुकाख्यासु पृथिवीषु स्वकृतकर्मफलजुजोनारकाअत्राणाअशरणाः प्रनूतकालं यावदनुनवंति। शेषासु चतसृषु पृथिवीषु पंकधूमतमोमहातमःप्रनाख्यासु परमाधार्मिकनरकपालानावेपि स्वतएव तत्कृतवेदनायाः सकाशाद्यस्तीव्रतरोऽनुनावोविपाकोवेदनासमुद्घातस्तमनुनवंति । परस्परोदीरितडुःखाश्च नवंतीति। सांप्रतं परमाधार्मिकानामाद्यासु तिसृषु पृथिवीषु वेदनोत्पादकान् स्वनामग्राहं दर्शयितुमाह। अंबेअंबरिसीचेव, सामेयसबलेविय ॥ रोद्देवरुद्दकालेय. महाकालेत्तिआवरे ॥ ६८ ॥ असिपत्तेधणुंकुंनेवालुवेयरणीविय ॥ खरस्सरेमहाघासे, एवंपन्नरसाहिया ॥ ६९ ॥ गाथाद्वयंप्रकटार्थं। एवं ते चांबाद्यादयः परमाधार्मिकायादृक्षां वेदनां परस्परोदीरणडुःखं चोत्पादयंति । तां दर्शयितुमाह । धाडेंतियहाडेंतिय, हणंतिविंधंतितहणिसुंनंति। मुंचंतिअंबरतले; अंबाखलुतत्रणेरइया ॥ ७० ॥ (धाडेंतीत्यादि) । तत्रांबानिधानाः परमाधार्मिकाः स्वनवनान्नरकावासं गत्वा क्रीडया नारकान् अत्राणान् सारमेयानिव शूलादिप्रहारैस्तुदंतो (धाडेंतेत्ति) प्रेरयंति । स्थानात् स्थानांतरं प्रापयंतीत्यर्थः । तथा (पहाडेंतित्ति) स्वेच्छयेतश्चेतश्चाऽनार्थं नमयंति तथांऽबरतले प्रक्षिप्य पुनर्निपतंतं मुजरादिना घ्नंति तथा शूलादिना विध्यंति तथा (निसुंनंतित्ति) कृकाटिकायां गृहीत्वा नूमौ पातयंति अधोमुखं अथोत्क्षिप्यांऽबरतले मुंचंतीत्येवमादिकया विडंबनया तत्र नरकपृथिवीषु नारकान् कदर्थयंति। किंचान्यत् । उहयहयेयतहियं, णिस्सन्नेकप्पणीहिकप्पंति ॥ विडुलगवडुलगच्छिन्ने अंबरसीतत्रणेरइए ॥ ७१ ॥ (उहयेत्यादि)। उप सामीप्येन मुजरादिना हताउपहताः पुनरप्युपहताएव खड्गादिना हताउपहतहतास्तान्नारकान् तस्यां नरकपृथिव्यां निःसंज्ञकान् नष्टसंज्ञान् मूर्छितान्सतः कर्पणीनिः कल्पयंति छिंदंतीतश्चेतश्च पाटयंति । तथा द्विदलचटुलकच्छिन्नानिति मध्यपाटितान् खंडशश्छिन्नांश्च नारकांस्तत्र नरकपृथिव्यामंबर्षिनामानोसुराः कुर्वंतीति । तथा । साडणपाडणतोत्रूण, बंधणरज्जुलयप्पहारेहिं ॥ सोमाणेरतियाणं, पवत्तयंतीअपुन्नाणं ॥ ७२ ॥ (साधनेत्यादि)। तथा अपुण्यानां तीव्राऽसातोदये वर्तमानानां नारकाणां श्यामाख्याः परमाधार्मिकाएतच्चैतच्च प्रवर्तयंति । तद्यथा। सातनमंगोपांगानां

छेदनं तथा पातनं निष्कुटादधोवज्रभूमौ प्रक्षेपस्तथाप्रतोदनं व्यथनं तथा सूच्यादिना नासिकादौ वेधस्तथा रज्ज्वादिना क्रूरकर्मकारिणं बध्नंति। तथा तादृग्विधलताप्रहारैस्ता डयंत्येवं दुःखोत्पादनं दारुणं शातनपातनवेधनबंधनादिकं बहुविधं प्रवर्तयंति व्यापा रयंतीति । अपिच । अंतगयफिफिसाणिय, हियियं कालेज्जफुप्फु सेचक्के । सवलाएरति याणं, कद्देतितहिंअपुन्नाणं ॥ ७३ ॥ (अंतगयेत्यादि) । तथा सवलाख्यानरकपाला स्तथाविधकर्मोदयसमुत्पन्नक्रीमापरिणामाअपुण्यनाजां नारकाणां यत्कुर्वंति तद्दर्शय ति । तद्यथा । अंत्रगतानि यानि फिफिसानि अंत्रांतवर्तीनि मांसविशेषरूपाणि हृदयं ति पाटयंति तथा तजतं (कालेज्जंति)। हृदयांतर्वर्ति मांसखंडं । तथा (फुप्फुसेत्ति) उदरांतवर्तीन्यंत्रविशेषरूपाणि तथा वल्कलान् वध्रानाऽकर्षयंति । नानाविधैरुपायैरशर णानां नारकाणां तीव्रां वेदनामुत्पादयंतीति । अपिच । असिसत्तिकोंततोमर, सूलतिसू लेसुसूइवियगासु ॥ पोएतिरुद्दकम्माउ, णरगपालातहिंरोद्दा ॥ ७४ ॥ (असिसत्तीत्या दि)। तथा अन्वर्थाभिधानारौद्राख्यानरकपालारौद्रकर्माणोनानाविधेष्वसिशक्त्या दिषु प्रहरणेषु नारकानशुभकर्मोदयवर्तिनः प्रोतयंतीति । तथा । भंजंतिअंगमंगाणि, ऊरूबाहूसिराणिकरचरणा । कप्पेंतिकप्पणीहिं, उवरुद्दापावकम्मरया ॥७५॥ (भंजंतीत्या दि) तथोपरुद्राख्याः परमाधार्मिकाणामंगप्रत्यंगानि शिरोबाहूरुकादीनि तथा करचरणांश्च भंजंति मोटयंति पापकर्माणः कल्पनीभिः कल्पयंति पाटयंति। तन्नास्त्येव दुःखोत्पादनं य त्ते न कुर्वंतीति। अपिच। मीरासुसुंठएसुय, कंडूसुयपयणएसुयपयंति। कुंभीसुयलोहियसुय, एयंतिकालाउणेरतिए॥ ७६ ॥ (मीरासुइत्यादि) तथा कालाख्यानरकपालाः सुरामीरासु दीर्घचुल्लीषु तथा शुंठकेषु तथा कंडुकेषु प्रचंडकेषु तीव्रतापेषु नारकान् पचंति तथा कुंभीषूष्ट्रिकाकृतिषु तथा वल्लीष्वायसकवल्लिषु नारकान् व्यवस्थाप्य जीवन्मत्स्यानिव प चंति । अपिच । कप्पंतिकागिणीमं, सगाणिछीदंतिसीहपुछाणि ॥ खावंतियाणरइए, मह कालापावकंमरए ॥ ७७ ॥ (कप्पंतीत्यादि) महाकालाख्यानरकपालाः पापकर्मभिर तानारकान्नानाविधैरुपायैः कदर्थयंति । तद्यथा । काकिणीमांसकानि श्लक्ष्णमांसखं डानि कल्पयंति नारकान् कुर्वंति तथा (सीहपुछाणित्ति)। पृष्ठीवध्रास्तांश्छिंदंति । त था ये प्राक् मांसाशिनोनारकाआसन् तान्स्वमांसानि खादयंतीति । अपिच । हत्थेपाएऊ रू, बाहुसिरापायअंगमंगाणि ॥ छिंदंतिपगाणंतू असिणेरइएनिरयपाला ॥ ७८ ॥ (ह त्थेत्यादि) असिनामानोनरकपालाअशुभकर्मोदयवर्तिनोनारकानेवं कदर्थयंति । तद्य था । हस्तपादोरुबाहुशिरःपार्श्वादीन्यंगप्रत्यंगानि छिंदंति प्रकाममत्यर्थं खंडयंति । तुश ब्दोऽपरदुःखोत्पादनविशेषणार्थइति। तथा।कन्नोठणासकरचरण दसणछण फुग्गऊरुबाहू णं ॥ छेयणभेयणसाडण, असिपत्तधणूहिपाडंति ॥ ७९ ॥ (कन्नोठइत्यादि)। असि

प्रधानाः पत्रधनुर्नामानोनरकपालाअसिपत्रवनं बीभत्सं कृत्वा तत्र छायार्थिनः समा गतान् नारकान् वराकान् असयादिभिः पाटयंति तथा कर्णौष्ठनासिकाकरचरणदशन स्तनस्फिगूरुबाहूनां छेदनभेदनशातनादीनि विकुर्वितवाताहतचलिततरुपातितासिप त्रादिना कुर्वंतीति । तडुक्तं । छिन्नपादभुजस्कंधा, श्छिन्नकर्णौष्ठनासिकाः ॥ भिन्नताल शिरोमेढ्राभिन्नाक्षिहृदयोदराः ॥ १ ॥ किंचान्यत् कुंभीसुचपयणेसुय, लोहियसुयकुंडलो हि कुंभीसु ॥ कुंभीयणरयपाला हणंतिपाडंतिणरएसु ॥ ८० ॥ (कुंभीसुइत्यादि) कुं भिनामानोनरकपालानारकान्नरकेषु व्यवस्थितान् निघ्नंति तथा पाचयंति । क्वेति द र्शयति । कुंभीषूष्ट्रिकाकृतिषु तथा पचनेषु कडिल्लकाकृतिषु तथा लौहीष्वायसभा जनविशेषेषु पाचयंति । तथा । तडवडस्सभजंति, भज्जणेकलंबुवालगापढे । वालूगाणे रश्या लोलंतीअंबरतलंमि ॥ ८१ ॥ (तडवडेत्यादि) वालुकाख्याः परमाधार्मिकाना रकानत्राणांस्तप्तवालुकाभृतभाजने चणकानिव (तडतडित्ति) स्फुटतः (भजंति) ... वंति । क्वेत्याह । कदंबपुष्पाकृतिवालुकाकदंबवालुका तस्याः पृष्ठमुपरितलं तस्मिन् ... यित्वांऽबरतलेच लोलयंतीति । किंचान्यत् । पूयरुहिरकेसट्ठिवाहिणीकलकलेंतजलसो या ॥ वेयरणिणिरयपालाणेरइएऊपवाहंति ॥ ८२ ॥ (पूयरुहिरेत्यादि) । वैतरणीना मानोनरकपालावैतरणीं नदीं विकुर्वंति । साच पूयरुधिरकेशास्थिवाहिनीमहाभयानका कलकलायमानजलाश्रिता तस्यांच क्षारोष्णजला... मतीव बीभत्सदर्शनायां नारकान् प्रवा हयंतीति ॥ तथा । कप्पंतिकरकरएहिं, तच्छिंति ... परंसुएहिंति ॥ सिंबलितमारुहंती, खरस्वरातबणेरइए ॥ ८३ ॥ (कप्पेंतीत्यादि) । खरस्वराख्यास्तु परमाधार्मिकानर कानेवं कदर्थयंति । तद्यथा । क्रकचपातैर्मध्यं मध्येन स्तंभमि ... गतानुसारेण कल्प ंति पाटयंति । तथा परशुभिश्च तानेव नारकान् परस्परमन्योन्यं तक्षयंति सर्वशोदेहाव यवापनयनेन तनून् कारयंति । तथा शाल्मलीं वज्रमयभीषणकंटकाकुलां खरस्वरैरारटं नारकानारोहयंति पुनरारूढानाकर्षयंतीति ॥ ... च । भीएयपलायंते समंततोतबते रुंभंति ॥ एसुणोजहापसुवहे, महघोसातबणेरइए ॥ ८४ ॥ (भीएइत्यादि) । महाघो षाभिधानाभवनपत्यसुराधमविशेषाः परमाधार्मिकाव्याधाइव परपीडोत्पादनेनैवाऽतु ष्येषु हृहंतोक्रीडया नानाविधैरुपायैर्नारकान् कदर्थयंति । तांश्च भीतान् प्रपला यमानान् मृगानिव समंततः सामस्त्येन तत्रैव पीडोत्पादनस्थाने निरुंधंति प्रतिबध्नं पशून् बस्तादिकान् । यथा पशुवधे समुपस्थिते नश्यतस्तद्वधकाः प्रतिबध्नंत्ये वं नरकावासे नारकानिति । गतोनामनिष्पन्नोऽधुना सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगु णोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं । (पुच्छिस्सहमित्यादि) जंबूस्वामिना सुधर्मस्वामी पृष्टः त त्य भगवन् किंभूतानारकाः कैर्वा कर्मभिरसुमतां तेषूत्पादः कीदृश्योवा तत्रत्यावेद

नाऽस्त्येवं पृष्टः सुधर्मस्वाम्याह । यदेतद्भगवताऽहं पृष्टस्तदेतत्केवलिनमतीतानागतवर्तमानसूक्ष्मव्यवहितपदार्थवेदिनं महर्षिमुग्रतपश्चरणकारिणमनुकूलप्रतिकूलोपसर्गसहिष्णुं श्रीमन्महावीरवर्धमानस्वामिनं पुरस्तात्पूर्वं पृष्टवानस्मि । यथा कथं किंभूताश्चाभितापान्वितानरकानरकावासाभवंतीत्येतदजानतोमे मम हेमुने जानन् पूर्वमेव केवलं ज्ञानेनाऽवगच्छन् ब्रूहि कथय । कथंतु केन प्रकारेण किमनुष्ठायिनः। नुरिति वितर्के। बालाश्च ज्ञाहिताहितप्राप्तिविवेकरहितास्तेषु नरकेषूपसामीप्येन तद्योग्यकर्मोपादानतया यांति गच्छंति ॥ १ ॥ किंभूताश्च तत्र गतानां वेदनाः प्राडुर्ष्यंतीत्येतच्चाह । (पृष्टवानिति) (तथा एवंमइत्यादि) एवमनंतरोक्तं मया विनेयेनोपगम्य पृष्टोमहांश्चतुस्त्रिंशदतिशयरूपोऽनुभावोमाहात्म्यं यस्य स तथा प्रश्नोत्तरकालं चेदं वक्ष्यमाणं। मोइति वाक्यालंकारे। केवलालोकेन परिज्ञाय मत्प्रश्ननिर्वचनमब्रवीडुक्तवान् । कोसौ । काश्यपोवीरोवर्धमानस्वामी आशुप्रज्ञः सर्वत्र सदोपयोगात् सचैवं मया पृष्टोभगवानिदमाह । यथा। यदेतद्भवता पृष्टस्तदहं प्रवेदयिष्यामि कथयिष्याम्यग्रतोदत्तावधानः शृणुतेति । तदेवाह । डुःखमिति नरकं डुःखहेतुत्वात् असदनुष्ठानं। यदिवा नरकावासएव डुःखयतीतिडुःखं। अथवा असातावेदनीयोदयात् तीव्रपीडात्मकं डुःखमित्येतच्चार्थतः परमार्थतोविचार्यमाणं डुर्गं गहनं विषमं डुर्विज्ञेयं। असर्वज्ञेन तत्प्रतिपादकप्रमाणाभावादित्यभिप्रायः। यदिवा (डुहमद्दुग्गंति) डुःखमेवार्थोयस्मिन् स डुःखनिमित्तोवा डुष्प्रयोजनोवा डुःखार्थोनरकः। सच डुर्गो विषमोडुरुत्तरत्वात् तं प्रतिपादयिष्ये । पुनरपि तमेव विशिनष्टि । आसमंताद्दीनमादीनं तद्विद्यते यस्मिन्सआदीनिकोऽत्यंतदीनसत्त्वाश्रयस्तद्दुःष्कृतमसदनुष्ठानं पापं वा तत्फलं वा असातावेदनीयोदयरूपं तद्विद्यते यस्मिन्स डुष्कृतिकस्तं पुरस्तादग्रतः प्रतिपादयिष्ये । पाठांतरं वा (डुक्कडिणंति) डुष्कृतं विद्यते येषां ते डुष्कृतिनोनारकास्तेषां संबंधि चरितं पुरस्तात्पूर्वस्मिन् जन्मनि नरकगतिगमनयोग्यं यत्कृतं प्रतिपादयिष्यतइति॥ २

जे केइ बाला इह जीवियट्ठी, पावाइं कम्माइं करंति रुद्दा ॥ ते घोररूवे तमिसंधयारे, तिवाभितावे नरए पडंति ॥ ३॥ तिव्वं तसे पाणिणो थावरेया, जे हिंसति आयसुहं पडुच्चा ॥ जे लूसए होइ अदत्तहारी, ण सिक्खती सेयवियस्स किंचि ॥ ४ ॥

अर्थ-(जेकेइबालाके०) जे कोइक महारंभीया बाल एटले अज्ञानी (इहजी के०) आसंसारने विषे असंयमे जीवितव्यना अर्थी एवा जीव (पावाइंकम्माइंकरं के०) रौद्र एटले प्राणीने जयना उपजावनार एवा अनेक पापकर्मकरे (तेघोररू धयारे के०) तेवा पुरुष तीव्रपापोदयने लीधे घोररूप एटले अत्यंत

संधयारे एटले महाअंधकारे सहित ज्यां आंखे करी कांइज देखाय नही मात्र अवधिज्ञाने करी थोडुं थोडुं घुकनी पेरे देखे अने (तिव्वाभितावेनरएपडंतिके०) ज्यां खेरना अंगाराथी अनंतगणो तापछे एवा नरकनेविषे पडेछे ॥ ३ ॥ (तिव्वंतसेके०) जे पुरुष तीव्रपणे करी बेंद्रीयादिक त्रस (पाणिणोके०) जीव अने (थावरेयाके०) पृथ्वीकायादिक स्थावर जीव ने (जेहिंसतिआयसुहंपडुच्चके०) येहिनस्तिआत्मसुखंप्रतीत्य एटले जे पुरुष सदाकाल स्वात्मसुखनो अर्थी जाणी करीने हणे तथा (जेलूसएहोइके०) जे प्राणीउनुं उपमर्दन कर नार होय तथा (अदत्तहारीके०) परद्रव्यापहारक एटले अदत्तदाननो लेनार होय तथा (णसिरकतीसेयवियस्सकिंचिके०) नशिक्ष्यतेसेवनीयस्य किंचित् एटले सेववा योग्य एवा जे व्रत पच्चखाणादिक छे ते नकरे अर्थात् अविरति छतोज रहे परंतु काकमांसादि कनी पण विरति करी शके नही. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—ये केचिद्बालाअज्ञाजीवितार्थिनः संयमजीवितार्थेन पापानि कर्माणि रौद्राः कुर्वंति ते नरके पचंति । यदुक्तमागमे । केइसुभंतेजीवानेरइअत्ताएकाम्मंपकरंतीति । किंभूते नरके । घोररूपे अतिभयानके तथा (तमिसंधयारेत्ति) बहुलतमोंधकारे यत्रात्मापि नोपलभ्यते केवलमवधिनापि मंदंमंदमुलूकाइवाम्हि पश्यंति । तथा चागमः । कएहलेसेएंभंतेणेरइकएहलेस्संनेरइअंपाणिहाएउहिणा सव्वातासमन्नासमभिलोएमाणीकेवइयंखेत्तं जाणइपासइ इत्तिरिअमेवखेत्तं जाणइपासइ इत्यादि । पुनः किंभूते नरके । तीव्रोडुःसहः खादिरांगारमहाराशितापादनंतगुणाभितापः संतापोयस्मिन् स तीव्राभितापस्तस्मिन् ॥ ३ ॥ तीव्रं निर्दयोयस्त्रसान् द्वींद्रियादीन् स्थावरांश्च पृथ्वीकायादीन् हिनस्ति हंति आत्मसुखं प्रतीत्य स्वशरीरसुखकृते यः प्राणिनां लूषकउपमर्दकारी अदत्तहारी अदत्तग्राही सन शिक्षते नाभ्यसति (सेयविअस्सत्ति) सेवनीयस्य संयमस्य किंचित् मांसादेरपि निवर्तलइत्यर्थः ॥ ४ ॥

॥ टीका—यथाप्रतिज्ञातमाह । (जेकेइत्यादि) ये केचन महारंभपरिग्रहपंचेंद्रियवधपिशितभक्षणादिके सावद्यानुष्ठाने प्रवृत्ताबालाअज्ञारागद्वेषोत्कटास्तिर्यग्मनुष्याइहास्मिन्संसारेऽसंयमजीवितार्थिनः पापोपादानभूतानि कर्माण्यनुष्ठानानि रौद्राः प्राणिनां भयोत्पादकत्वेन भयानकहिंसानृतादीनि कर्माणि कुर्वंति तएवंभूतास्तीव्रपापोदयवर्तिनोघोररूपेऽत्यंतभयानके (तमिसंधयारेत्ति) बहुलतमोंधकारे यत्रात्मापि नोपलभ्यते चक्षुषा केवलमवधिनापि मंदंमंदमुलूकाइवाह्नि पश्यंति । तथाचागमः । कएहलेसेएंभंतेणेरइएकएहलेस्संणेरइअंपाणयाएउहिणासव्वउ समंतासमभिलोएमाणेकेव

इयंखेत्तंजाणई केवइयंखेत्तंपासइ गोयमाणोबहुययरं खेत्तंजाणइणो बहुययत्तरंपासइ इत्तरियमेवखेत्तंजाणइइत्तरियमेवपासइइत्यादि । तथा तीव्रोडुःसहः खदिरांगारमहाराशितापादनंतगुणोऽभितापः संतापोयस्मिन् सतीव्राभितापस्तस्मिन् एवंभूते नरके बहुवेदनेऽपरित्यक्तविषयाभिष्वंगाः स्वकृतकर्मगुरवः पतंति तत्र च नानारूपा वेदनाः समनुभवंति । तथाचोक्तं । अत्थिंदियविसयसुहो, पडइअविज्झायसिविसिहाणिवहे ॥ संसारोदहिवलयं, सुहंमिदुःखागरेनिरए ॥ १ ॥ पायकतोरबलमुह, कुहरुब्बलियंरुहिरगंडूसे करवत्तुकत्तडुहाविरिक्कंविवईणदेह्ने ॥ २ ॥ जंतंतरभिन्नंतु, ब्भलंतसंसदभरियदिशिविवरे ॥ मज्ञंतुप्फिडियसमुब्भलंतसीसट्ठिसंथाए ॥ ३ ॥ सुक्कंकदकडाहु, कढंतडुक्कयकयंतकम्मंते ॥ मूलविभिन्नुखित्तु,छदेहणित्तंतपञ्भारे ॥ ४ ॥ बछंधयारडुग्गं बंधणायारडुछरकिलेसे ॥ भिन्नकरचरणसंकर, रुहिरवसाडुग्गमप्पवहे ॥ ५ ॥ गिद्धमुहणिहउक्खि,त्तबंधणोमुछकंविरकबंधे ॥ दडगहियतत्तसंडा, सयग्गविसुमुक्कुभियजीहो ॥ ६ ॥ निरकंकुसग्गकड्डिय, कंटयरुक्कग्गजज्झरसरीरे ॥ निमिसंतरंपि डुल्लह,सुरकेवरकेडुःखंमि ॥ ७ ॥ इयभीसणंमिणिरए, पडंतिजेविविहसत्तवहिनिरया ॥ सच्चप्ननठायनरा, जयंमिकयपावसंघाया ॥ ८ ॥ इत्यादि ॥ ३ ॥ किंचान्यत् । (तिव्वंतसेत्यादि) । तथा तीव्रमतिभिरनुकंपं रौद्रपरिणामतया हिंसायां प्रवृत्तः । त्रस्यंतीतित्रसाद्वींद्रियादयस्तांस्तथा स्थावरांश्च पृथिवीकायादीन यः कश्चिन्महामोहोदयवर्ती हिनस्ति व्यापादयति । आत्मसुखंप्रतीत्य स्वशरीरसुखकृते नानाविधैरुपायैर्यः प्राणिनां लूषकउपमर्दकारी भवति तथा अदत्तमपहर्तुं शीलमस्याऽसावदत्तहारी परद्व्यापहारकस्तथा न शिक्षते नाभ्यसति । नादत्ते (सेयवियस्सत्ति) सेवनीयस्यात्महितैषिणा सदनुष्ठाने यस्य संयमस्य किंचिदिति । एतदुक्तं भवति । पापोदयाद्विरतिपरिणामं काकमांसादेरपि मनागपि नविधत्ते इति ॥४॥

पागब्भि पाणे बहुणंतिवाती, अनिव्वते घातमुवेति बाले ॥ णिहो
णिसं गच्छति अंतकाले, अहोसिरं कट्टु उवेइ डुग्गं ॥५॥ हण छिं
दहभिंद णं दहेति, सद्दे सुणिंता परहम्मियाणं ॥ ते नारगाउ
भयभिन्नसन्ना, कंखंति कन्नामदिसं वयामो ॥ ६ ॥

अर्थ-(पागब्भिके०) प्रागल्भिक एटले धृष्टपणे पापनेविषे निशंकछतो (पाणेबहुणंतिपाती के०) बहुनांप्राणानतिपाती घणाप्राणीउनो अतिपाती विनाशक एटले जीवघातक, धृष्टपणे बोलनार शास्त्रमांहे जे हिंसाते हिंसा नही एवा वचननो बोलनार (अनिव्वते के०) अनिवृत्त एटले क्रोध थकी उपशम्यो नथी, एवो छतो (बालेके०) बाल एटले अज्ञा

नी (घातं के०) नरकने (उपैतिके०) पामे ([illegible] लेकें०) अंतकाले एटले मरणकाले (अहोसिरंकट्टु के०) नीचुं मस्तक करी ([illegible]णिसं के०) अधोगतियें अंधकारने विषे (गछतिके०) जाय (डुग्गंके०) डुर्ग विषम स्थानके छेदनन्नेदनादिक डुःखने (उवेइ के०) पामे ॥५॥ हवे ते नारकी पर्याप्त नावे पोहोता थका परमाधार्मिकना शब्द सांनले ते कहेछे (हणके०) मुजरादिकें करी हणो (छिंदहके०) खड्गादिकेकरी छेदो (निंदणंके०) शूलादिके करी न्नेदो (दहेतिके०) अग्नीये करी बालो इत्यादिक करणने डुःखकारी एवा (परहम्मियाणं के०) परमाधार्मिकना (सद्देके०) शब्दने (सुणिंताके०) सांनलीने (ते नारगाउ के०) ते नारकीउ (नयनिन्नसन्नाके०) नयेकरीने नाश पाम्याछे संज्ञा एटले मनव्यापार जेना तथा गात्र पण नागाछे एवा छतां (कंखंतिके०) एवी वांछना करेके (कन्नामदिसंवया [illegible]ो के०) कांदिशंव्रजामः एटले अमे कयी दिशाये नाशी जइये के ज्यां गया थका अमने नय टली जाय. ॥ ६ ॥

॥ दीपिका—प्रागल्न्यं धाष्टर्यं विद्यते यस्य स प्रागल्नी बहूनां प्राणिनामतिपाती हिंसकः सर्पहिंसादिवत् अनिर्वृत्तः कदाचिदप्यनुपशांतः सन् घातं नरकमुपैति बालःस अंतकालेन्यक् नीचैः (निसंति) अंधकारं गछति स्वपापेनाधःशिरःकृत्वा डुर्ग विषमं पीडास्थानमुपैति ॥ ५ ॥ हतंमुजरादिना, छिन्नंखड्गादिना निन्नं शूलादिना दग्धं वन्हिना । णंवाक्यालंकारे । तदेवंनूतान् परमाधार्मिकाणां शब्दान् शृण्वंति श्रुत्वा वा ते नारकान्नयेन निन्ना नष्टा संज्ञा येषां ते तथा कांदिशं व्रजेम इति कांक्षंति ॥ ६ ॥

॥ टीका—तथा (पागब्जिपाणेइत्यादि)। प्रागल्न्यं ध्याष्टर्यं तद्विद्यते यस्य सप्रागल्नी बहूनां प्राणिनां प्राणानतीव पातयितुं शीलमस्य सन्नवत्यतिपाती। एतडुक्तं नवति । अतिपात्यपि प्राणिनः प्राणानतिधाष्टर्याद्वदति । यथा वेदाभिहिता हिंसाऽहिंसैव नवति।तथा राज्ञामयं धर्मोयडुत आखेटकेन विनोदक्रिया । यदिवा। नमांसनक्षणे दोषो,न मद्ये न च मैथुने । प्रवृत्तिरेषा नूतानां, निवृत्तिस्तुमहाफलाइत्यादि । तदेवं क्रूरसिंहकृष्णसर्पवत् प्रकृत्यै प्राणातिपातानुष्ठायी अनिर्वृतः कदाचिदप्यनुपशांतः क्रोधाग्निना दह्यमानोयदिवा लुब्धकमत्स्यादिवधकजीविकाप्रसक्तः सर्वदा परिणामपरिणतोऽनुपशांतोहन्यते प्राणिनः स्वकृतकर्मविपाकेन यस्मिन् सघातोनरकस्तमुपसामीप्येनैति। याति कोबालोऽज्ञो रागद्वेषोदयवर्ती सोंतकाले मरणकाले (निहोत्ति) न्यगधस्तात् (णिसंति) अधों[illegible]कारं गछती त्यर्थः । यथा तेन डुश्चरितेनाधः शिरःकृत्वा डुर्गं विषमं यातनास्थानमुपैति अवाक्शिरा नरके पततीत्यर्थः ॥ ५ ॥ सांप्रतं पुनरपि नरकांतवर्तिनोनारका यदनुनवंति तदर्शयितुमा

ह । (हणछिंददहेत्यादि) । तिर्यङ्मनुष्यनवात्सत्वानरकेषूत्पन्नाअंतर्मुहूर्तेन निर्लूनांडज सन्निनानि शरीराएयुत्पादयंति । पर्याप्तिनावमागताश्चातिनयानकान् शब्दान् परमाधार्मिकजनितान् शृएवंति ।तद्यथा । हतं मुजरादिना छिदितं खड्गादिना निन्नं शूलादिना दग्धं मुर्मुरादिना ।एमितिवाक्यालंकारे । तदेवंनूतान् कर्णासुखान् शब्दान् नैरवान् श्रुत्वा तेतु नारकानयोद्भ्रांतलोचनानयेन नीत्या निन्ना नष्टा संज्ञांऽतःकरणवृत्तिर्येषांते तथा नष्टसंज्ञाश्च कांदिशं व्रजामः कुत्र गतानामस्माकमेवंनूतस्यास्य महाघोरास्वदारुणस्य दुःखस्य त्राणं स्यादित्येतत्कांक्षंतीति ॥ ६ ॥

इंगालरासिं जलियं सजोतिं, ततोवमं नूमिमणुक्कमंता ॥ तेमज्जमाणा कलुणं थणंति, अरहस्सरा तब्ब चिरछितीया ॥७॥ जइ ते सुया वेयरणीनिडुग्गा, णिसिर्ड जहा खुरइव तिरकसोया ॥ तरंति ते वेयरणींनिडुग्गां, उसुचोइयासत्ति सुहम्ममाणा ॥ ८ ॥

अर्थ—एम चिंतवी नयभ्रांत छतां नाशता थकां जे पामे ते कहेछे. (इंगालरासिंजलियंसजोति के०) खदिरांगार एटले खयरना अंगाराना पुंज ज्वाला कराल ज्योति सहित एवीजे नूमि (ततोवमं के०) तेनीछे उपमा जेने (नूमिमणुक्कमंता के०) एवी नूमिने अतिक्रमता (तेमज्जमाणा के०) तेनारकी अत्यंत दाऊता बलता थका (कलुणंथणंति के०) कलुनमहाशब्दास्तनंति करुण एटले घणा दीनस्वरे आक्रंद करे परंतु ते नारकी केवाछे तोके (अहरहस्सरा के०) जेनो स्वर प्रगट जाएयामां आवे नही एटले जेवा गुंगाना शब्द तेवा शब्दे बोले वली केवाछे तोके (तब्बचिरछीतीया के०) त्यां घणोकाल रेवानी स्थितिछे जेनी एटले उत्कृष्ट तेत्रीश सागरोपमनी स्थिति अने जघन्य दश हजार वर्षनी स्थिति जाणवी. ॥ ७ ॥ गुरु शिष्य प्रत्यें कहेछे के (जइतेसुयाके०) जेते सांनलीछे ग्रुं शांनलीछे.(वेयरणीनिडुग्गाके०) वेतरणी नामनी नदी घणी डुर्ग एटले विषम केवी विषमछे तोके (णिसिर्डजहाखुरइवतिरकसोया के०) क्षुर एटले छुरीनी पेरे तीक्ष्णछे स्रोत एटले पाणीनुं पूर जेने विषे एवी (वेयरणींनिडुग्गां के०) ते वेतरणी नदी माहा विषम तेमां (तेके०) ते नारकीउ नरकनी नूमिना तापे तप्या छता पाणीना अर्थि तरस्या थका (तरंति के०) तरे पण केवा छता तरे तोके त्यां जवाने अण इछता (उसुचोइयाके०) बाणना चोया एटले प्रेर्या तथा (सत्तिसुहम्ममाणा के०) शक्ति नाले करी हणाता थका ते नदीने डुखे पीडया छता बलात्कारे ते वेतरणी नदी अगाधछे माटे तरवाने असमर्थ छता पण तरे तेवारे घणाज डुःखी थाय पछी तरवाने नौकानी वांछा करे तेवारे फरी अत्यंत डुःखी थाय ते आगली गाथायें कहेछे. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका—अंगारराशिं ज्वलितं सह ज्योतिषा वह्निना वर्तत इति सज्योतिर्भूमिस्तेनो पमा यस्यां सा तदुपमा तामंगारतुल्यां भूमिमाक्रमंतस्ते नारकादह्यमानाः करुणं दीनं स्तनंत्याक्रंदंति । तत्र बादराग्नेरभावात्तदुपमां भूमिमित्युक्तं । एतदपि दिग्दर्शनार्थमुक्तं । अन्य था नारके चिरस्थितिकालस्थितयः । तथाहि । उत्कृष्टतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि जघन्य तस्तु दशवर्षसहस्राणि तिष्ठंति ॥ ७ ॥ सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमाह । यदि ते त्वया श्रु ता वैतरणी नाम क्षारोष्णरुधिराकारजलवाहिनी नदी अभिदुर्गा विषमा ।यथा निशितस्ती क्ष्णः क्षुरः स्यादेवं तीक्ष्णानि स्रोतांसि प्रवाहायस्याः सा तीक्ष्णस्रोताः। तथा ते नारका तापतप्ताजलं पातुमिच्छवो वैतरणीमतिदुर्गां तरंति । किंभूताः ।इषुणा शरेण प्रतोदेने व प्रेरिताः शक्तिभिः शस्त्रविशेषैर्हन्यमानाः । तृतीयार्थे सप्तमी ॥ ८ ॥ ७३

॥ टीका—तेच भयोद्भ्रांतादिक्षु नष्टायदनुभवंति तद्दर्शयितुमाह । (इंगालेत्यादि) अं गारराशिं खदिरांगारपुंजं ज्वलितं ज्वालाकुलं तथा सह ज्योतिषोद्योतेन वर्ततइति सज्यो तिर्भूमिस्तेनोपमायस्याः सा तदुपमा तामंगारसन्निभां भूमिमाक्रमंतस्ते नारकादंदह्यमा नाः करुणं दीनं स्तनंत्याक्रंदंति । तत्र बादराग्नेरभावात्तदुपमां भूमिमित्युक्तं । एतदपि दिग्दर्शनार्थमुक्तमन्यथा नारकतापस्येहत्याग्निना नोपमा घटते । तेच नारकामहानगरदा हाधिकेन तापेन दह्यमानाअरहस्वराअप्रकटस्वरामहाशब्दाः संतस्तत्र तस्मिन्नरकावा से चिरं प्रभूतं कालं स्थितिरवस्थानं येषां ते । तथा ह्युत्कृष्टतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा णि जघन्यतोदशवर्षसहस्राणि तिष्ठंतीति ॥ ७ ॥ (जइतेसुयाइत्यादि) । सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनं प्रतीदमाह । यथा भगवतेदमाख्यातं यदिते त्वया श्रुता श्रवणपथमुपाग ता वैतरणी नाम क्षारोष्णरुधिराकारजलवाहिनी नदीआभिमुख्येन दुर्गाभिदुर्गा दुःखोत्पा दिका । तथा निशितोयथा क्षुरस्तीक्ष्णानि शरीरावयवानां कर्तकानि स्रोतांसि यस्याः सा । तथा तेच नारकास्तप्तांगारसन्निभां भूमिं विहायोदकं पिपासवोऽभितप्ताः संतस्तापाप नोदायाऽभिषिषिक्षवोवा तां वैतरणीमभिदुर्गां तरंति ।कथंभूताः।इषुणा शरेण प्रतोदेनेव चो दिताः प्रेरिताः शक्तिभिश्च हन्यमानास्तामेव भीमां वैतरणीं तरंति ।तृतीयार्थे सप्तमी॥८॥

कीलेहिं विज्झंति असाहुकम्मा, नावं उविंते सइ विप्पहूणा ॥
अन्नेतु सूलाहिं तिसूलियाहिं, दीहाहिं विद्धूण अहे करंति ॥९॥
केसिंच बंधित्तु गले सिलाउ, उदगं सि बोलंति महालयंसि ॥ क
लंबुयावालुय मुम्मुरेय, लोलंति पच्चंति अ तत्थ अन्ने ॥ १० ॥

अर्थ—(असाहुकम्माके०) पछीते असाधुकर्मी पापकारक एवा नारकी ते नावमाहेलाजे

ओखंमना (कीलेहिंके०) खीला तेणेकरी (विझंतिके०) वींधाय (नावंउविंतेके०) नावायें चढया (सइविप्पहूणाके०) स्मृतिविप्रहीणा स्मृतिहीन एटले विवेकरहित थाय तथा (अन्नेतुके०) अन्य वली परमाधार्मिक लोक ते नारकीउने नाशी जता देखीने (सूलाहिंतिसूलियाहिंदीहाहिंके०) त्रिशूलसहित एवी दीर्घ एटले लांबी शूलीयें (विंधू एअहेकरंतिके०) वींधी करीने नीचा धरतिने विषे नाखे ॥ए॥ (केसिंच बंधित्तुगलेसिला उ के०) केटलाक नारकीने परमाधार्मिक लोक तेमना गलामां अत्यंत वजनदार शिला बांधीने (महालयंसि के०) माहा अगाध उंमा एवा (उदगंसिबोलंति के०) पाणीमां बोले फरी तेमांहेथी काढीने पढी (कलंबुयावालुयमुम्मुरेयके०) कलंबू फूल सरखी वे लूने विषे तथा मुम्मुरेय एटले अग्नीने विषे (लोलंति के०) आघा पाबा घाले अत्यंत तप्तरेती मांहे चणानी पेरे शेके (तब्बअन्ने के०) त्यां वली अन्य परमाधार्मिको (पच्चं तिअके०) ते नारकीने मांसनी पेशीनी पेरे पचावे तुहंपियाइ मांसाइ इत्यादि. ॥ १० ॥

॥ दीपिका—तान् नारकान् वैतरणीजलतप्तान् लोहकीलाकुलां नावमागच्छंतः पूर्वारूढा असाधुकर्माणः परमाधार्मिकाः कीलेषु कंठेषु विध्यंति तेच विध्यमानावैतरणीजलेन न ष्टसंज्ञाः स्मृतिविप्रहीणागतकर्तव्यविवेकाः स्युः। अन्ये पुनर्नरकपालानारकैः क्रीडंतस्ता न त्रिशूलिकाभिः शूलाभिर्दीर्घाभिर्विध्वा अधोभूमौ जालयंति ॥ए॥ केषांचिन्नारकाणांगले ते परमाधार्मिकाः शिलां बध्वा महति जले बोलंति मज्जयंति ततः समाकृष्य पुनर्वैतर णीनद्याः कलंबुकावालुकायां मुर्मुराग्नौ लोलयंति अन्येच नारकान् तत्र नारकावासे भ्रष्टकच्छिन्नमांसवत् पचंति ॥ १० ॥

॥ टीका—किंच (कीलेहीत्यादि) तांश्च नारकानत्यंतक्षारोष्णेन दुर्गंधेन वैतरणीजले नाभितप्तानायसकीलाकुलां नावमुपगच्छतः पूर्वारूढाअसाधुकर्माणः परमाधार्मिकाः कीलेषु कंठेषु विध्यंतीति । तेच विध्यमानाः कलकलायमानेन सर्वस्रोतोनुयायिना वैतर णीजलेन नष्टसंज्ञाअपि सुतरां स्मृत्या विप्रहीणाअपगतकर्तव्यविवेकाभवंति । अन्ये पु नर्नरकपालानारकैः क्रीडंतस्तान्नष्टांस्त्रिशूलिकाभिर्दीर्घिकाभिरायताभिर्विध्वा अधोभूमौ कुर्वंतीति ॥ ए ॥ अपिच (केसिंचइत्यादि) केषां चिन्नारकाणां परमाधार्मिकाम हतीं शिलां गले बद्धा महत्युदके (बोलंतित्ति) निमज्जयंति । पुनस्ततः समाकृष्य वै तरणीनद्याःकलंबुकावालुकायां मुर्मुराग्नौ च लोलयंति अतितप्तवालुकायां चणका निव समंततोघोलयंति । तथान्ये तत्र नरकावासे स्वकर्मपाशावपाशितान्नारकान् सुंठके प्रोतकमांसपेशीवत् पचंति नर्जयंतीति ॥ १० ॥

असूरियं नाम महाभितावं, अंधतमं दुप्पतरं महंतं ॥ उडूं अ
हेअं तिरियं दिसासु, समाहिउ जब गणीझियाइं ॥ ११ ॥ जं
सी गुहाए जलणेतिउट्टे, अविजाणउ मस्सइ लुत्तपसो ॥ सया
य कलूणं पुण घम्मगणं, गाढोवणीयं अतिदुस्कधम्मं ॥१२॥

अर्थ–)असूरियंनामके०) नथी ज्यां सूर्य तेने असूर्य स्थानक कहिए एटले कुंजीने, आकारे माहाअंधकाररूप नरकावास, तथा ज्यां (महाभितावं के०) माहा अत्यंत तापछे (अंधतमं के०) अत्यंत अंधकारछे, एवा (दुप्पतरं महंतंके०) महोटा विशाल दुस्तर स्थानकनें पापना उदयथी ते नारकी पामेछे. (जबके०) जे नरकावासमां सर्वकाल (उडूंअहेअंतिरियं दिसासु के०) उंचुं नीचुं अने तिर्छु एटले सर्व दिशाउने विषे (अगणीझियाइंके०) प्रज्वलित अग्नीने (समाहित के०)स्थाप्यो छे अर्थात् ज्यां सदा काल अग्नी बल्यां करेछे एवा कष्ट मांहे नारकीउने पाडे. ॥ ११ ॥ (जंसीगुहाए जल णेतिउट्टेके०)जे नरकावासने विषे उंटने आकारें गुफाछे ते गुफा मांहे प्रवेश करतोज अग्नीना आवर्त्तमां पडे एवो (अविजाणउ के०) अजाण बापडो पोताना कर्मने नथी जाणतो तथा(लुत्तपसोके०) लुप्तप्रज्ञो एटले जेनी प्रज्ञा लोंपाइ गइछे, एवो छतो ते नार की त्यां(मस्सइके०) दाझे बले (सयायकलुणंके०) सर्वकाल करुणप्राय दयामणु एवुं (पुण घम्मगणंके०) पूर्ण तापनुं स्थानक त्यां (गाढोवणीयंके०) आकरा पापकर्मे करी ढोयुं (अ तिदुस्कधम्मंके०) ज्यां अत्यंत दुःखरूपनुंज धर्म एटले स्वनावछेएवुं स्थानक नारकी पामे.

॥ दीपिका–(असूर्येति) नविद्यते सूर्योयस्मिन् सोऽसूर्योनरकोंधकारमयस्तं महाभि तापं अंधतमसं दुष्प्रतरं महांतं नरकं पापोदयाद् व्रजंति ।तत्र च नरके उर्ध्वमधस्तिर्यक्कु च सर्वदिक्कु समाहितोव्यवस्थापितोऽग्निः प्रज्वलतीति ॥ ११ ॥ (जंसीति) यस्मिन् न रके प्राणी गुहायामिव ज्वलनेऽग्नौऽतिवृत्तः प्राप्तवेदनानुगतः स्वकृतं पापमजानन् लुप्तप्रज्ञो गतप्रज्ञाविवेकोदंदह्यते । तथा सदा करुणं पुनर्दानं घर्मस्थानमापत्स्थानं गाढमत्यर्थमु पनीतं दुष्कृतेन अतिदुःखरूपोधर्मस्वनावोयस्मिन् तत्तथा एवंविधं स्थानं ते व्रजंति नय त्र दुःखविश्रामः । यतः । अहिनिमीलणमेतं, नहिसुहंदुस्कमेवअणुबद्धं ॥ निरएनेरइआ णं, अहोनिसंपच्चमाणाणं ॥ १२ ॥

॥ टीका–तथा (असूरियमित्यादि) । नविद्यते सूर्योयस्मिन् सोऽसूर्योनरकोबहु लांधकारः कुंजीपाकाकृतिः सर्वएव व नरकावासोऽसूर्योव्यपदिश्यते । तमेवंनूतं महा

नितापमंधतमसं डुष्प्रतरं डुरुत्तरं महांतं विशालं नरकं महापापोदयाद्व्रजंति । तत्र च नरके ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् सर्वतः समाहितः सम्यगाहितोव्यवस्थापितोग्निर्ज्वलतीति । पच्यते च । (समूसितेउजबगणीकियाइ) यत्र नरके सम्यगूर्ध्वश्रितः समुच्छ्रितोऽग्निः प्रज्वलति तं तथाभूतं नरकं वराकाव्रजंति. ॥ ११ ॥ किंचान्यत् (जंसिगुहाएइत्यादि) यस्मिन्नरकें ऽतिगतोऽसुमान् गुहायामित्युष्ट्रिकाकृतौ नरके प्रवेशितोज्वलनेऽग्नावतिवृत्तोवेदनाभि नूतत्वात्स्वकृतं डुश्चरितमजानन् लुप्तप्रज्ञोऽपगतावधिविवेकोदंदह्यते । तथा सदा सर्वकालं पुनः करुणप्रायं कृत्स्नं वा घर्मस्थानमुष्णस्थानं तापस्थानमित्यर्थः । (गाढंति) अत्यर्थमु पनीतं ढौकितं डुष्कृतकर्मकारिणां यत् स्थानं तत्ते व्रजंति । पुनरपि तदेव विशिनष्टि । अ तिडुःखरूपोधर्मः स्वनावोयस्मिन्निति । इदमुक्तं नवति । अक्षिनिमेषमात्रमपि कालं नत स्य डुःखस्य विश्रामइति । तदुक्तं । अच्छि णिमीलणमेत्तं णत्थि सुहं डुरकमेव पडिबद्धं ॥ णिरए णेरइयाणं, अहोणिसं पच्चमाणाणं ॥ १ ॥ १२ ॥

चत्तारि अगणिउ समारनित्ता, जेहिं कूरकम्मा नितविंति बालं॥
ते तब चिठंति नितप्पमाणा, मब्रावजीवंतुवजोतिपत्ता ॥१३॥ सं
तब्रणं नाम महाहितावं, ते नारया जब असाहुकम्मा ॥ हबेहिं
पाएहिय बंधिऊणं, फलगंवतबंति कुहाडहबा ॥ १४ ॥

अर्थ—(चत्तारिअगणिउ समारनित्ता के०) चारेदिशे चार अग्नी समारंनीने एटले प्रज्वलित करीने (जेहिं के०) जे नरकावासने विषे (कूरकम्मा के०) क्रूरकर्मना कर नार एवा परमाधार्मिको ते (अनितविंतिबालंके०) अज्ञानी एवा बापडा नारकीउने तपावे (तेतबचिठंतिनितप्पमाणाके०) तेनारकी त्यां पूर्वोक्त रीते ताप सहन करता कदर्थीता अत्यंत डुःख नोगवता बतां घणा काल सुधी रहे कोनीपेरे तोके (मब्रावजीवंतुवजोति पत्ता के०) जेम जीवता मत्स्य अग्नी पासे मूक्या बता अत्यंत तापनु डुःख पामे पण परवश पणाने लीधे त्यांथी नासी शके नही, तेमते नारकीउ पण जाणी लेवा. ॥ १३ ॥ (संतब्रणंनाम के०) त्यां ते नरकमांहे नारकीउने त्राबवा बेदवानुं जे स्थानकबे ते केवुंबे तोके (महानितावं के०) सर्वने महा डुःखनुं कारणबे (जब के०) ज्यां (असाहुकम्मा के०) असाधुकर्मि एवा परमाधार्मिको (कुहाडहबा के०) हाथमां कुहाडो लइने (तेनारया के०) ते नारकीउने पकडीने (हबेहिं पाएहियबंधि ऊणंके०) तेना हाथ तथा पग बांधी(फलगंवतबंतिके०)काष्टनी पेरे त्राबे बेदे. ॥ १४ ॥

॥दीपिका—(चत्तारित्ति) चतसृष्वपि दिक्षुचतरोग्नीन समारज्य प्रज्वाल्य यत्र नरके क्रूरक

णोनरकपालास्तंबालं मूर्खं अभितापयंति भटित्रवत् पचंति तेनारकास्तत्राभितप्य मानाः कदर्थ्यमानास्तिष्ठंति । यथा मत्स्याजीवंतोज्योतिःप्राप्ता अग्निगताः पीड्यंते तथा पीड्यमानाः ॥ १३ ॥ (संतच्छणमिति) नामेति संभावनायां । संतक्षणं छेदनं महाभि तापं महादुःखोत्पादकं । ततस्ते यत्र नरकावासे असाधुकर्माणः क्रूरकर्माणोनरकपालाः कुठारहस्तान् हस्तैः पादैश्च बध्वा फलकमिव काष्ठखंडमिव तक्ष्णुवंति छिंदंति. ॥ १४ ॥

॥ टीका–अपिच । (चत्तारिइत्यादि) चतसृष्वपि दिक्षु चतुरोग्नीन् समारभ्य प्रज्वा ल्य यस्मिन्नरकावासे क्रूरकर्माणोनरकपालाअभिमुख्येनात्यर्थं तापयंति भटित्रवत्प चंति बालमज्ञं नारकंपूर्वकृतदुश्चरितं । तेतु नारकजीवाएवमभितप्यमानाः कदर्थ्यमानाः स्वकर्मनिगडितास्तत्रैव प्रभूतं कालं महादुःखाकुले नरके तिष्ठंति । दृष्टांतमाह । यथाजी वंतोमत्स्यामीनाउपज्योतिरग्नेः समीपे प्राप्ताः परवशत्वादन्यत्र गंतुमसमर्थास्तत्रैव तिष्ठंत्येवं नारकाअपि । मत्स्यानां तापासहिष्णुत्वादग्नावत्यंतं दुःखमुत्पद्यतइत्यतस्तद्ग्रह णमिति ॥ १३ ॥ किंचान्यत् (संतच्छमित्यादि) समेकीभावेन तक्षणं संतक्षणं । नामश ब्दः संभावनायां । यदेतत्संतक्षणं तत्सर्वेषां प्राणिनां महाभितापं महादुःखोत्पादकमित्ये वं संभाव्यते । यदेवं ततः किंचित्याह । ते नारकानरकपालायत्र नरकावासे स्वभवनादा गताअसाधुकर्माणः क्रूरकर्माणोनिरनुकंपाः कुठारहस्ताः परशुपाणयस्तान्नारकानत्राणान् हस्तैः पादैश्च बध्वा संयम्य फलकमिव काष्ठशकलमिव तक्ष्णुवंति तनूकुर्वंति छिंदंतीत्यर्थः १४

रुहिरे पुणो वच्च समुस्सिअंगे, भिन्नुत्तमंगे परिवत्तयंता॥ पयंति
एां णेरइए फुरंते, सजीवमच्छेव अयोकवल्ले ॥ १५॥ नोचेव ते तब
मसीभवंति, णमिज्जती तिव्वभिवेयणाए ॥ तमाणुभागंअणुवेदयं
ता, दुक्खंति दुक्खी इह दुक्कडेणं ॥ १६ ॥

अर्थ–(रुहिरेके०) ते परमाधार्मिको ते नारकीजीवोनुज रक्त, काढीने कडाहमां नाखी (पुणोके०) फरी तेज लोहीमां ते नारकीउने पचावे ते नारकीउ केवाछे तोके (व च्चके०) दुर्गंध वस्तु तेणेकरी (समुस्सिके०) खरडयाछे (अंगेके) अंग जेमना एवा ते नारकीने केवीरीते पचावे तोके (भिन्नुत्तमंगेके०) प्रथम तेमनुं उत्तमांग भेदीने पछी (प रिवत्तयंता के०) परिवर्त्तयंता एटले समु होय तेने उपरांठुं होय करे अने उपरांठु तेने समु करे अर्थात् उलटावी पलटावीने पचावे. (पयंतिणंणेरइएफुरंते के०) त्यां पचता थका ते नारकी तापे करी विव्हल थता आघा पाछा उछलता हालता थका धूजे, ट लवले, कोनीपेरे तोके (सजीवमच्छेवअयोकवल्ले के०) जेम जीवता मत्स्य तप्त लोर्खं

मनी कडाहमां नाख्या थका अत्यंत टलवले, तेनी पेरे ते नारकीउ पण वेदना सहन करता थका टलवले.॥ १५ ॥ (नोचेवतेतत्तमसीनवंति के०) पण ते नारकी त्यां पचा व्या थका वलीने नस्म नथाय, (णमिज्जतीतिव्वनिवेयणाए के०) मरण पामे नही शरीर बांफे नही. अत्यंत उग्र वेदनाये पण पोताना कृतकर्म (तमाणुनागं के०) ते कर्मनो अनुनाग जे विपाक तेने (अणुवेदयंता के०) अनुवेदता एटले नोगवता थका (डुःखंतिडुक्खीइहडुक्कडेणं के०) सीतोस्नवेदना दहन हनन बेदन नेदन ताडन तर्ज्जनादिक तथा तक्षण त्रिशूलारोपण कुंनीपाक सालम्ली वृक्षादिके करी उप जावेला जे डुःख, ते डुखेकरी डुखीथका पोताना करेला डुकृतने योगे त्यां जीवता थ काल रहे पण आयुष्य पूरण कस्या विना मरण पामेज नही. ॥ १६ ॥

॥ दीपिका—(रुहिरेत्ति) ते नरकपालास्तान्नरकान् स्वरुधिरे तप्तकवल्यां प्रक्षिप्ते पुनः पचंति । वर्चःप्रधानानि समुच्छ्रितानि अंत्राण्यंगानि वा येषांते तथा तान् । निन्नं चूर्णितमु त्तमांगं शिरोयेषांते तथा तान् । के पचंतीत्याह । परिवर्त्तयंतउत्तानानधोमुखांश्च कुर्वंतः। एंवाक्यालंकारे । तान् स्फुरतइतश्चेतश्च विव्हलान् सजीवमत्स्यानिव लोहकवल्यां पचंति ॥ १५ ॥ (णोचेवेति) ते च नारकाएवं वन्हिनापच्यमानाअपि नमषीनवंति ननस्म सात्नवंति नरकानुनावात् । तथा तीव्रवेदनया नापरमग्निप्रक्षिप्तमत्स्यादिकमप्यस्ति य न्मीयते उपमीयते । अथवा तीव्रान्निवेदनयापि अननुनूतस्वकर्मत्वान्नम्रियंते तं बेदनने दनादिकमनुनागं कर्मविपाकमनुवेदयंतोऽनुनवंतस्तिष्ठंति । तथा कृतेन डुष्कृतेन डुःखि नोडुःखयंति पीडयंति. ॥ १६ ॥

॥ टीका—अपिच (रुहिरेपुणोइत्यादि) ते परमाधार्मिकास्तान्नारकान्स्वकीये रुधिरे तप्तकवल्यां प्रक्षिप्ते पुनः पचंति । वर्चःप्रधानानि समुच्छ्रितान्यंत्राण्यंगानि वा येषांते तथा तान् निन्नचूर्णितमुत्तमांगं शिरोयेषां ते तथा तानिति । कथं पचंतीत्याह । परिवर्त्त यंतउत्तानानवाङ्मुखान् वा कुर्वंतः । एमिति वाक्यालंकारे । तान् । स्फुरतइतश्चेतश्च वि व्हलमात्मानं निक्षिपंतः सजीवमत्स्यानिवायसकवल्यामिति. ॥ १५ ॥ तथा (णोचेवे त्यादि) तेच नारकाएवं बहुशः पच्यमानाअपि नोनैव तत्र नरके पाकेवा नरकानुनावे वा सति मषीनवंति नैव नस्मसाद्भवंति । तथा तत्तीव्रान्निवेदनया नापरमग्निप्रक्षिप्तमत्स्या दिकमप्यस्ति यन्मीयते उपमीयते अनन्यसदृशीं तीव्रां वेदनां वाचामगोचरामनुनवंती त्यर्थः । यदिवा तीव्रान्निवेदनयाप्यननुनूतस्वकृतकर्मत्वान्नम्रियंतइति प्रनूतमपि कालं याव त्तत्तादृशं शीतोस्नवेदनाजनितं तथा दहनछेदननेदनतक्षणत्रिशूलारोपणकुंनीपाकशाल्मल्या रोहणादिकं परमाधार्मिकजनितं परस्परोदीरणनिष्पादितं चानुनागं कर्मणां विपाकमनुवेदयं

तः समनुवेदयंतः समनुनवंतस्तिष्ठंति । तथा स्वकृतेन हिंसादिनाऽष्टादशपापस्थानरूपेण ततनोदीर्णडुःखेन डुःखिनोडुःखयंति पीडयंते नाक्षिनिमेषमपिकालं डुःखेन मुह्यंतइति ॥ १६

तेहिंच ते लोलणसंपगाढे, गाढं सुतत्तं अगणिं वयंति ॥ न तत्थ
सायं लहती भिडुग्गे, अरहियाभितावा तहवी तविंति ॥ १७॥
से सुच्चई नगरवहेव सद्दे, डुहोवणीयाणि पयाणि तत्थ ॥ उदिसक
म्माणउदिसकम्मा, पुणोपुणो ते सरहं डुहेति ॥ १८ ॥

अर्थ–(तेहिंच के०) ते नरकावासने विषे (तेके०) ते नारकीने (लोलणसंपगाढे के०)आलोलवे एटले आघा पाछा करवे करी अत्यंत व्याप्त शीतार्त छता एवा नारकी सुखने अर्थे (गाढंसुतत्तंअगणिंवयंतिके०)अत्यंततप्त अग्नीने विषे जाय, परंतु(नतत्थसायंलहतीभि डुग्गे के०) त्यां विषम अग्नीस्थानने विषे पण शाता न पामे (अरहिताभितावा तह वीतविंतिके०) निरंतर ज्यां आकरो तापछे एवा नरकने विषे परमाधार्मिक तेने तपावे, तेल तप्तकरी तेने कष्ट आपे, एम अनेक प्रकारे परमाधार्मिक देवो नारकीजीवोने वेदना करेछे. ॥ १७ ॥ (सेसुच्चईनगरवहेवसद्देके०) तेनरकमांहे नारकीना आक्रंद शब्द नगरना वधजेवा संजलायछे जेम कोइएक नगरनो नाश करे तेवारे माहा कोलाहल शब्द था य एवो आक्रंद शब्द हामात, हातात, हुं अनाथ ताहारे सरणागतछुं, मुजनेराख, इत्यादि शब्द सांजलीये (डुहोवणीयाणिपयाणितत्थके०) डुखोपनीतानिपदानितत्रनरकेशब्दः एट ले त्यां नरकने विषे करुणा प्रलाप सहित एवा पूर्वोक्त पदोना दयामणा शब्द बोले (उदि सुकम्माणउदिसुकम्मा के०) जेने कटुक विपाकरूप कर्म वर्त्तमानकाले उदय थयाछे एवा नारकीने मोहनीय कर्मना उदयवाला एवा परमाधार्मिक देवो (पुणोपुणोतेके०) ते पुनःपुनःपूर्वोक्तरीते (सरहंडुहेतिके०) उत्साह सहित नारकीउने एटला डुःख करे.॥१८॥

॥ दीपिका–(तेहिंचेति) तत्र नरके नारकाणां लोलनेनेतःपरतोघोलनेन संप्रगाढे व्याप्ते शीतार्तानारकागाढमत्यर्थं सुतप्तमग्निंव्रजंति । तत्राप्यग्निस्थानेऽभिडुर्गे सातं सुखं न लनंते । अरहितोनिरंतरोऽभितापोयेषांतेऽरहिताभितापास्तथापि तान्नरकपा लास्तापयंति तप्ततैलादिना दहंतीति ॥१७॥ (सेइति) से अथ तेषां नारकाणां नयान कः शब्दोनगरवधइव श्रूयते । यथा नगरसंबधी महानाक्रंदः स्यात्तादृशोडुःखेनोपनीतानामु च्चारितानां पदानां हामातः हातातइत्यादीनां तत्र शब्दः श्रूयते । उदीर्णमुदयप्राप्तं क र्म येषांते तथा तेषामुदीर्णकर्माणोनरकपालामिथ्यात्वहास्यरत्यादीनामुदये वर्तमानाः पुनःपुनस्ते सरहंसोत्साहं नारकान् डुःखयंति ॥ १८ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (तेहिंचेत्यादि) तस्मिंश्च महायातनास्थाननरके । तमेव विशिनष्टि । नारकाणां लोलने सम्यक् प्रगाढोव्याप्तोनूतः सतथा तस्मिन्नरके शीतार्ता. संतो गाढमत्यर्थं सुष्टु तप्तमग्निं व्रजंति । तत्राप्यग्निस्थानेऽ निर्दुर्गे दह्यमानाः सातं सुखं मनागपि नलनंते । अरहितोनिरंतरोऽनितापोदाहोयेषांते अरहितानितापास्तथापि तान्नारकास्तेनरकपालास्तापयंतीत्यर्थः । तप्ततैलाग्निना दहंतीति ॥ १७ ॥ अपिच (सेसुच्चई त्यादि) सेशब्दोऽथशब्दार्थे । अथानंतरं तेषां नारकाणां नरकपालैरौद्रैः कदर्थ्यमानानां नयानकोहाहारवप्रचुरआक्रंदनशब्दोनगरवधइव श्रूयते समाकर्ण्यते दुःखेन पीमयोपनीतान्युच्चरितानि करुणाप्रधानानि यानि पदानि हामातस्तात कष्टमनाथोहं शरणागतस्तव त्रायस्व मामित्येवमादीनां पदानां तत्र नरके.शब्दः श्रूयते । उदीर्णमुदयप्राप्तं कटुविपाकं कर्म येषां तथोदीर्णकर्माणोनरकपालामिथ्यात्वहास्यरत्यादीनामुदये वर्तमानाः पुनः पुनर्बहुशस्ते (सरहंतित्ति) सरनसं सोत्साहं नारकान् दुखयंत्यतस्तदसह्यं नानाविधैरुपायैर्दुःखमसातवेदनीयमुत्पादयंतीति ॥ १८ ॥

पाणेहि णं पावविउ जयंति, तं से पवरकामि जहा तहेणं॥ दंमेहिं
तबा सरयंति बाला, सवेहिं दंमेहि पुरा कएहिं ॥१९॥ ते हम्म
माणा णरगे पडंति, पुन्ने डुरूवस्स महानितावे॥ ते तब चिठंति
डुरूवनरकी, तुट्टंति कम्मोवगया किमीहिं ॥ २० ॥

अर्थ–एंवाक्यालंकारेढे (पाणेहिणंपावविउजयंतिके०) ते पापिष्ट परमाधार्मिको नारकी प्राणीना इंडी विमुक्त करे उपांग वेगलाकरे (तंसेपवरकामिजहातहेणं के०)ते नारकीने एटला डुःख सावास्ते करे तेना कारण तमने यथा तथ्य कहुंबुं (तबा के०) त्यां (दंमेहिं के०) डुःख विशेष एटले पाबला नवना करेला कर्म तेने (सरयंति के०) संनारीने तेनरकपाल पुरुषो तेने कहेके अरे बापडा तें पूर्वनवने विषे मांसनक्षण, मद्यपान, जीवघात, मृषावाद, चोरी, परस्त्रीगमन, कस्याढे, ते सांप्रत ताहारे उदय आव्याढे, तेने योगे तुं डुःख नोगवेढे, माटे आम सावास्ते आरडेढे. एरीते (बाला के०) ते परमाधार्मिक पुरुषो (सवेहिं के०) सर्वथा प्रकारे (दंमेहि के०) ते नारकीने डुःखरूप दंमेकरी(पुराकएहिंके०)पूर्वकृत कर्मना उदय थकी पीडा करे. ॥१९॥ (तेहम्ममाणाणरगेपडंति के०) ते नारकी हणाया थका पांचशे योजन उंचा उबलीने नरकने एकदेसें पडे ते नरक केवाढे तोके (पुन्नेडुरूवस्स महानितावे के०) डुष्टरूप माहातापे करी पूर्णढे, नाना प्रकारना डुःख तथा मल सहितढे, (तेतबचिठंतिडुरूवनरकी के०)

त्यांते नारकी अशुची वस्तुना आहारी बता घणोकाल सुधी रहे (तुट्टंति कम्मोवगया किमीहिं के०) कर्मने वस पड्या एवा नारकीने परमाधार्मिक विकूर्विने पीडे. ॥ २० ॥

॥दीपिका—(पाणेहिणमिति) णं वाक्यालंकारे। ते पापानरकपालाः प्राणैः शरीरेंद्रियादि निर्वियोजयंति येनैवं डुःखं ते लनंते तद्दुःखकारणं नो नवतां याथातथ्येन सत्यतय... प्रव क्ष्यामि तेषां दंमैर्नरकविशेषैस्तत्र बालानरकपालाः पूर्वकृतं स्मारयंति । प्रते... त्वं मां सानि खादसि पिबसिमद्यं गबसि परदारान् । सांप्रतं विपाकप्राप्तेन ... कर्मणा किमेवमाक्रं दसीत्येवं पुराकृतैः सर्वैर्दमैर्डुःखविशेषैस्तादृशमेव डुःखम... यंति. ॥ १ए ॥ (तेइति) ते नारका हन्यमानानष्टाः संतोऽन्यस्मिन् घोरतरे नरके ... पतंति। किंनूते पूर्णे नृते। डुरूपं वि ष्ठासृङ्मांसादिमलं तस्यनृते महानितापेऽति... संतापोपेते तत्र नरके डुरूपस्याशुच्यादेर्नक्षि णस्तिष्ठंति । तथा कृमिनिर्नरकपाल... पहूमहंताइं लोहिअकुंथुरूवाइं विउव्विता असमस्सुस्स बठीसत्तमासुणं पुढवीसुनेरइअ"अणुज्झायमाणा २ चिठंति ॥ २० ॥ कायं समचउरंगेमाण"

—तथा (पाणेहिणमित्यादि) णमिति वाक्यालंकारे । प्राणैः शरीरेंद्रियादिनि ॥. पापाः पापकर्मणोनरकपालावियोजयंति शरीरावयवानां पाटनादिनिः प्रकारैर्विक र्तनादवयवान् विश्लेषयंति। किमर्थमेवं कुर्वंतीत्याह । तद्दुःखकारणं नेयुष्माकं प्रवक्ष्यामि याथातथ्येनावितथं प्रतिपादयामीति । दंडयंति पीडामुत्पादयंतीति दंमाडुःखविशेषा स्तैर्नारकाणामापादितैर्बालानिर्विवेकानरकपालाः पूर्वकृतं स्मारयंति । तद्यथा । तदा रुष्टस्त्वं खादसि समुत्कृत्य प्राणिनां मांसं तथा पिबसि तं तद्रसं मद्यं च गबसि परदा रान् सांप्रतं तद्विपाकापादितेन कर्मणा ऽनितप्यमानः किमेवं रारटीषीत्येवं सर्वैः पुरा कृतैर्दंडैर्दुःखावशेषैः स्मरयंतस्तादृक् नूतमेव डुःखविशेषमुत्पादयंतोनरकपालाः पीमयं तीति ॥ १ए ॥ किंच (तेहम्ममाणाइत्यादि) ते वराकानारकाहन्यमानास्तोद्यमा नानरकपालेन्योनष्टेऽन्यस्मिन् घोरतरे नरकैकदेशे पतंति गबंति । किंनूते नरके पूर्णे नृते । डुष्टं रूपं यस्य तद्दुरूपं विष्ठासृग्मांसादिकं मलं तस्य नृते तथा महानितापिते संता पोपेते ते नारकाः स्वकर्मावबद्धास्तत्रैवंनूते नरके डुरूपनक्षिणोऽशुच्यादिनक्षकाः प्रनू तं कालं यावत्तिष्ठंति । तथा कृमिनिर्नरकपालापादितैः परस्परकृतैश्च स्वकर्मोपगताः स्वकर्म ढौकितास्तुद्यंते व्यथ्यंते इति । तथाचागमः । बठीसत्तमासुणं पुढवीसु नेरइयाहूपमहं ताइं लोहिकुंथुरूवाइं विउव्वित्तअन्नमन्नस्सकायंसमचउरंगे माणामाणा अणुज्झायमाण अणुज्झायमाणा चिठंति ॥ २० ॥

सया कसिणं पुण घम्मठाणं, गाढोवणीयं अतिदुक्खधम्मं॥ अंदूसु पक्खिप्प विहत्तुदेहं, वेहेण सीसं से भितावयंति ॥२१॥ छिंदंति बालस्स खुरेण नक्कं, उठेवि छिंदंति दुवेवि कन्ने ॥ जिप्भं विणिक्कस्स विहत्थिमित्तं, तिक्खाहिं सूलाइ भितावयंति ॥ २२ ॥

तथा।६ (सयाकसिणंपुणघम्मठाणं के०) सर्वदाकाले ते नरक परिपूर्ण घर्म एटले आ
नयानकोहाहाः५ (गाढोवणीयं के०) कर्मने उदयें ढोया एवा नारकी (अतिदुक्खध
चीतान्युच्चरितानि करु७ एटले स्वनावठे ज्यां (अंदूसुपक्खिप्पविहत्तुदेहं के०) ते
अर्थ-(स्स मामित्येवमादीनां स्यांहे प्रक्षेपीने (वेहेणसीसंसे के०) मस्तके छिद्रक
तापनुं स्थानक त्यां तीर्णकर्माणोनरकपा०शरीर चर्मनी पेरे विस्तारीने खीलायें करी ध
म्मं के०) अत्यंतदुःखनो धर्म रसं सोत्साहं नार५. ते अज्ञानी नारकीउना (खुरेण
स्थानके नारकीनो शरीर निवडबंधे॥ १७ ॥ छिंदंतिके०) छेदे तथा (उठे
री तेने (भितावयंति के०) तपावे सर्वे शरी मद्यमांसादि मृषाबो
खेडे. ॥ २१ ॥ ते परमाधार्मिक (बालस्स के०) मि जहा तहेण॥ ८५. ते नारकी
के०) क्षुर एटले छुरीयें करीने (नक्कंके०) नासिकाने छिं ॥१७॥ ते हम्म
विछिंदंतिदुवेविकन्ने के०) उष्ठ छेदे तथा बंने कान पण छेदे तथा दंति
जवुं इत्यादि पाप तेमने संनारी आपीने (जिप्भंविणिक्कस्सविहत्थिमित्तं के०)
नी एक विहत्थ प्रमाण जीन बाहेर काढीने (तिक्खाहिंसूलाइभितावयंतिके०) तीक्ष्ण सू
लियें करी संतापे, छेदे एरीते ते नारकीने पीडे वेदना आपे. ॥ २२ ॥

॥ दीपिका-(सयेति) सदा कृत्स्नं संपूर्णं घर्मस्यातपस्य स्थानमुष्णस्थानं नवति गाढैर्दृढैः कर्मभिरुपनीतं ढौकितं अतिदुःखमेव धर्मः स्वनावोयस्यतत् एवंविधे स्थाने स्थितोजंतुः अंडुषु निगडेषु देहं विहत्य प्रक्षिप्य तथा शिरश्च(से)तस्य वेधनेनारकस्य रंध्रोत्पादनेनाभितापयंति कीलकैश्च सर्वाण्यंगानि विध्वा चर्मवत् कीलयंति ॥ २१ ॥ (छिंदंतीति) दं नरकपालाः बालस्याज्ञस्य क्षुरप्रेण नासिकां छिंदंतीति। तथा उष्ठौ कर्णौच द्वावपि छिंतेति तथा जिव्हां वितस्तिमात्रां बहिर्निष्काश्य तीक्ष्णशूलाभिरभितापयंति अपनयंति ॥

॥ टीका-किंचान्यत् (सयाकसिणमित्यादि) सदा सर्वकालं कृत्स्नं संपूर्णं। पुनस्तत्र नरके घर्मप्रधानं उष्णप्रधानं स्थितिस्थानं नारकाणां नवति। तत्रहि प्रलयातिरिक्ताग्निवातादीनामत्यंतोष्णरूपत्वात्तच्च दृढैर्निधत्तनिकाचितावस्थैः कर्मभिर्नारकाणामुपनीतं ढौकितं। पुनरपि विशिनष्टि।अतीव दुःखमसातावेदनीयं धर्मः स्वनावोयस्य तत्तथा तस्मिंश्चैवंविधे स्थाने स्थितोऽसुमान् अंडुषु निगडेषु देहं विहत्य प्रक्षिप्य च यथा शिरश्च (से)तस्य नारकस्य वेधेन रंध्रोत्पादनेनाभितापयंतीति ॥ २१ ॥ अपिच (छिंदंतिबालस्सेत्यादि) ते परमाधार्मिकाः पूर्वदुश्चरितानि स्मरयित्वा बालस्याज्ञस्य निर्विवेकस्य प्रायशः सर्वदा वेदनास

मुंद्गातोपगतस्य क्षुरप्रेण नासिकां छिंदंति तथौष्ठावपि द्वावपि कर्णौ छिंदंति तथा मद्य मांसरसाऽनिलिप्सोर्मृषानाषिणोजिह्वां वितस्तिमात्रामाकृष्य तीक्ष्णानिः शूलानिरनि तापयंत्यपनयंति ॥ २२ ॥

ते तिप्पमाणा तलसंपुडंव, राइंदियं तत्र थणंति बाला ॥ गलंति ते सोणिअपूयमंसं, पज्जोइया खारपइद्धियंगा ॥२३॥ जइ ते सुता लो हितपूअपाई, बालागणी तेअगुणा परेणं ॥ कुंनी महंताहियपोर सीया, समूसिता लोहियपूयपुसा ॥ २४ ॥

अर्थ--(ते के०) तेनारकी कान होठ प्रमुख अंगोपांगना छेदन थकी (तिप्पमाणा के०) लोहिजरता थका (तलसंपुडंव के०) सुका ताडवृक्षना पान जेम पवने नडता शब्द करे, तेनीपेरे (राइंदियंतत्रथणंतिबालाके०) ते बाल अज्ञानी निरविवेकी एवा नारकी बापडा रात्र दिवश त्यां आक्रंद शब्द करे (गलंतितेसोणियपूयमंसं के०) त्यांते नारकीना अंगोपांग छेद्या पछी तेना शरीरमांथी लोही परु तथा मांसादिक जरे (पज्जोइया के०) तेवारे तेने शेककरी अग्नीयें प्रज्वालीने (खारपइद्धियंगा के०) लवणादिक खारे अंगोपांग खरड्या छता रुधिर परु अने मांस एटलावाना रात्र दिवस तेमना शरीरमांथी गलता थका रहेछे॥२३॥वली श्रीसुधर्मस्वामी श्रीजंबूस्वामी प्रत्ये कहेछे के, (जइते के० (यदि तें श्रीमहावीर नाषित (लोहितपूअपाई के०) रुधिर अने परुनी पात्री एटले रुधिर अने पाकीरुधिर ते परु ए बंने ज्यां पचेछे एवो स्थानक कुंनी नाजन विशेष ते (सुता के०) ते सांनलीछे ते केवीछे तोके (बालागणीके०) नवी अग्नीना (तेअ के०) तेज करता पण (गुणापरेणं के०) गुणे करी अधिकछे एटले अत्यंत बलतीछे (कुंनीमहंताहियपोरसीया के०) एवी पुरुष प्रमाण थकी अधिक मोटी कुंनी नाजन विशेष ते केवीछे तोके (समूसिता के०) उंटने आकारे उंचीछे अने (लोहियपूयपुसा के०) रुधिर अने परु एणे करी परिपूर्ण नरेलीछे. ॥ २४ ॥

॥ दीपिका--(तेऽति) ते नारकाः शोणितं तिप्यमानाः स्त्रवंतोयत्र रात्रिंदिनं गमयंति तत्र प्रदेशे तालसंपुटाइव पवनप्रेरितशुष्कपत्रसंचयाइव सदा विस्वरं स्तनंति क्रंदंति । वन्हिना प्रद्योतिताज्वालिताः क्षारेणप्रदिग्धांगाः शोणितं पूयं मांसं वाऽहर्निशं गलंति. ॥ २३ ॥ (जईति) सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनं वक्ति । यदि ते त्वया श्रुता लोहितं रुधिरं पूयं पक्वरुधिरं ते द्वे अपि पक्तुं शीलमस्याः सा लोहितपूयपाचिनी कुंनी । पुनः किंनूता । बालः प्रत्यग्रोग्निस्तस्यतेजोनितापः सएव गुणोयस्याः सा बालाग्नितेजोनिताप

गुणा परेणापरेण प्रकर्षेण ।तथा पुनः किंभूता महती बृहत्तरा (अहियपोरिसीयेति) पुरुषप्रमाणाऽधिकसमुच्छ्रिता उष्ट्रिकाकृतिः ऊर्ध्वं व्यवस्थिता लोहितपूर्णा ॥२४॥

॥ टीका-तथा । (तेतिप्पमाणेत्यादि) ते छिन्ननासिकोष्ठजिह्वाः संतः शोणितं तिप्प्यमानाः क्षरंतोयत्र यस्मिन् प्रदेशे रात्रिंदिनं गमयंति । तत्र बालाअज्ञास्तालसंपुटाइव पवनेरितशुष्कतालपत्रसंचयाइव सदा स्तनंति दीर्घविस्वरमाक्रंदंतस्तिष्ठंति तथा प्रद्योतितावन्हिना ज्वलितास्तथा क्षारेण प्रदिग्धांगाः शोणितं पूयं मांसं चाहर्निशं गलंतीति. ॥ २३ ॥ किंच । (जइतेसुताइत्यादि) पुनरपि सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमुद्दिश्य भगवद्वचनमाविष्करोति । यदिते त्वया श्रुता आकर्णिता।लोहितं रुधिरं पूयं रुधिरमेव पक्वं ते द्वे अपि पक्तुं शीलं यस्यां सा लोहितपूयपाचिनी कुंभी।तामेव विशिनष्टि। बालोऽग्निरभिनव प्रत्यग्रोग्निस्तेन तेजोभितापः सएव गुणोयस्याः सा बालाग्नितेजोगुणा परेण प्रकर्षेण तप्तेत्यर्थः । पुनरपि तस्याएव विशेषणं महती बृहत्तरा (अहियपोरुसोयंति) पुरुषप्रमाणाधिका समुच्छ्रितोष्ट्रिकाकृतिरूर्ध्वं व्यवस्थिता लोहितेन पूयेन च पूर्णा सैवंभूता कुंभी समंततोऽग्निना प्रज्वलिताऽतीव बीभत्सदर्शनेति. ॥ २४ ॥

पक्खिप्प तासु पययंति बाले, अट्टस्सरे ते कलुणं रसंते ॥ तण्हा इया ते तउ तंबतत्तं, पज्जिज्जमाणाट्टतरं रसंति ॥ २५ ॥ अप्पेण अप्पं इह वंचइत्ता, भवाहमे पुव्वसते सहस्से ॥ चिठंति तत्था बहुकूरकम्मा, जहा कडं कम्म तहासि भारे ॥ २६ ॥ समज्जिणित्ता कलुसं अणज्जा, इठेहिं कंतेहि य विप्पहूणा ॥ ते दुब्भिगंधे कसिणेयफासे,कम्मोवगाकुणिमे आवसंतित्तिबेमि ॥ २७ ॥ इति निरयविभत्तिएपढमोउद्देसोसमत्तो ॥

अर्थ-हवे त्यां कुंभीमांहे नारकीने शुं करे ते कहेछे. (पक्खिप्पतासुके०) ते परमाधार्मिक कुंभीमांहे घालीने (अट्टस्सरेतेकलुणंरसंते के०) आर्त शब्द करता तथा करुण प्रलाप करता एवा ते बापडा (बालेके०) अज्ञान नारकीने (पययंतिके०) प्रकर्षे करी पचावे (तण्हाइयातेतउतंबतत्तंके०) तृषाये पीड्या थका पाणी मागे तेवारे तेने त्रांबु उकालीने तेनो रस (पज्जिज्जमाणके०) पीवरावे तेवारे ते (अट्टतररंसंतिके०) घणामां घणे दीनस्वरे करुणाकारी विलाप करे ॥ २५ ॥ (अप्पेणअप्पंइहवंचइत्ता के०) जेणे इह एटले आ मनुष्य भवमां अल्पसुखने अर्थे परोपघाति पणुं आदरीने पोताना आत्मायें करी पोताना आत्मानेज वंच्यो (भवाहमेपुव्वसतेसहस्से के०) तथा पूर्वे जन्मे अधम एवा लुब्धकादिकना शतसहस्र भव भोगवी घणा कर्मोपार्जीने (चिठंतितत्थाबहुकूरकम्माके०)

अत्यंत क्रूर पापकर्मना धणी डुःखवेदना नोगववाने घणोकाल सुधी त्यां नरकने विषे रहे (जहाकडंकम्मतहासिभारे के०) यथाकृतानिकर्माणि जेवां अध्यवसायेकरी जेवाना वे कर्म कीधां होय तेवाज नरकमां पण सिभार शब्दे डुःख उपजे जेम मांस न क्षण करनारने तेनाज शरीरमांथी मांसकापी अग्नीवर्ण करी खवरावे, मद्यपानीने तप्त कथीरनो रस पीवरावे, मत्सघातकीने छेदे, नेदे, असत्य नाषण करनारनी जिव्हा छेदे, परधनापहारीना अंगोपांग छेदे, लंपटना वृषण छेदे, साल्मली वृक्षनुं आलिंगन करावे इत्यादिक जेणे जेवा कर्म उपार्ज्या होय तेने ते सरखाज डुःख परमाधार्मिको उपजावे. ॥ २६ ॥ (समज्जिणित्ताकलुसंअणज्जा के०) ते पापी अनार्य माता पिता अने स्त्रियादिकने अर्थे घणा कलुष एटले पापकर्म उपार्जन करीने पढी (इछेहिकंतेहियविप्पहूणा के०) इष्टजे मातापिता तथा कांता एटले स्त्रियादिक ते थकी विप्पहूणा एटले रहित अर्थात् एकाकी बता (तेडुप्निगंधेकसिणेयफासेके०) ते डुर्निगंध डुःखे करी नखो तथा अशुन स्पर्शवान एवा नरकने विषे (कम्मोवगाकुणिमेआवसंतिके०) कर्मोपगता अशुन कर्मने लीधे कुणि एटले मांस पेसी रुधिर परु आंतरमा फेफसुं इत्यादिक कस्मले करी समाकुल एवा नरक स्थानमां घणोकाल अवश्य पणे रहीने पूर्वोक्त डुःख सहन करे. तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो.॥२७॥इति नरकविनक्तियनाम प्रथमोद्देशकनुंअर्थसमाप्तः

॥ दीपिका–(परिक्खप्पेति) कुंनीषु तान् आर्तस्वरान् करुणं दीनं रसंतः प्रक्षिप्य प्रपचंति ते तृषार्ताः सलिलं प्रार्थयंतस्तप्तं त्रपु पाय्यंते । पाय्यमानाश्चार्त्ततरं रसंति रारटंति ॥ २५ ॥ (अप्पेणेति) इह नरनवे आत्मनैवात्मानं वंचयित्वा नवानामधमानवाधमा अधमनवामत्स्यवधलुब्धकादीनां नवास्तान् पूर्वजन्मनि शतसहस्रशः समनुनूय क्रूरकर्माणस्ते नरके बहुप्रनूतकालं तिष्ठंति यथा येन प्रकारेण यादृशाध्यवसायेन पूर्वनवे कृतानि कर्माणि तथा से तस्य नारकस्य नारावेदनाः स्युः ॥ २६ ॥ (समज्जिणित्तेति) अनार्याः पापकर्मकारिणः कलुषं पापं समर्ज्य अर्जयित्वा ते नारकाडुरनिगंधिनरके वसंति । किंनूताः । इष्टैः कांतैः शब्दादिविषयैर्विहीनाः।नरके किंनूते।कृत्स्ने संपूर्णेऽस्पर्शेऽत्यंताशुनस्पर्शे कर्मोपगताआशु कर्मबद्धाः कुणिमे रुधिराद्याकुले आसमंताडुत्कृष्टतस्त्रयस्त्रिंशत्सागराणि वसंतीति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २७ ॥ इतिपंचमाध्ययनस्य प्रथमोद्देशकः

॥ टीका–तासु च यक्रियते तद्दर्शयितुमाह । (परिक्खप्पेत्यादि) तासु प्रत्यग्निना दीप्तासु लोहितपूयशरीरावयवकिल्बिषपूर्णासु डुर्गंधासु च बालान्नारकांस्त्राणरहितानार्त्तस्वरान् करुणं दीनं रसंतः प्रक्षिप्य प्रपचंति तेच नारकास्तथा कदर्थ्यमानाविरसमाक्रंदंतस्तृषार्ताः सलिलं प्रार्थयंतोमद्यं ते अतीव प्रियमासीदित्येवं स्मरयित्वा तप्तं यत्त्रपु

पाट्यमानाआर्ततरं रसंति रारटंतीति. ॥ २५ ॥ उद्देशकार्थोपसंहारार्थमाह । (अ प्पेणेत्यादि) इहास्मिन्मनुष्यनवे आत्मना परवंचनप्रवृत्तेन स्वतएव परमार्थतआत्मा नं वंचयित्वाऽल्पेन स्तोकेन परोपघातसुखेनात्मानं वंचयित्वा बहुशोनवानां मध्ये अधमानां मध्ये अधमानवाधमामत्स्यबंधलुब्धकादीनां नवास्तान्पूर्वजन्मसु शतसह स्रशः समनुनूय तेषु नवेषु विषयोन्मुखतया सुकृतपराङ्मुखत्वेन वा ऽवाप्य महाघोरा तिदारुणं नरकवासं तत्र तस्मिन्मनुष्याः क्रूरकर्माणः परस्परतोडःखमुदीरयंतः प्रनूतं का लं यावत्तिष्ठंति । अत्रकारणमाह । यथा पूर्वजन्मसु यादृग्नूतेनाध्यवसायेन जघन्यजघ न्यतरादिना कृतानि कर्माणि तथा तेनैव प्रकारेण (से) तस्य नारकजंतोर्नारावेदनाः प्रा डर्नवंति स्वतः परतउनयतोवेति । तथाहि । मांसादाः स्वमांसान्येवाग्निना प्रताप्य न क्ष्यंते तथा मांसरसपायिनोनिजपूयरुधिराणि तप्तत्रपूणीव पायंते तथा मत्स्यघातकलु ब्धकादयस्तथैव छिद्यंते निद्यंते यावन्मार्यंतेति । तथाऽनृतनाषिणां तत्स्मारयित्वा जिह्वाश्छिद्यंते । तथा पूर्वजन्मनि परकीयद्रव्यापहारिणामंगोपांगान्यपन्द्दियंते तथा पा रदारिकाणां वृषणछेदः शाल्मल्युपगूहनादिच तैः कार्यंते । एवं महापरिग्रहारंनवतां क्रो धमानमायालोनिनां च जन्मांतरस्वकृतक्रोधादिडष्कृतस्मारणेन तादृग्विधमेव डःखमु त्पाद्यतइति कृत्वा सुष्ठूच्यते तथाविधं कर्म तादृग्विधनूतएव तेषां तत्कर्मविपाकादितो नारइति. ॥ २६ ॥ किंचान्यत् (समजिणित्तुइत्यादि) अनार्याअनार्यकर्मकारित्वा द्धिंसानृतस्तेयादिनिराश्रवद्वारैः कलुषं पापं समर्ज्याशुनकर्मोपचयं कृत्वा ते क्रूरकर्मा णोडरनिगंधे नरके आवसंतीति सटंकः । किंनूताः । इष्टैः शब्दादिनिर्विषयैः कमनीयैः कांतैर्विविधं प्रकर्षेण हीनाविप्रमुक्तानरके वसंति । यदिवा यदर्थं कलुषं समार्जयंति तैर्मातापुत्रकलत्रादिनिः कांतैश्च विषयैर्विप्रमुक्ताएकाकिनस्ते डरनिगंधेन कुथितकलेव रातिशायिनि नरके कृत्स्ने संपूर्णेऽत्यंताशुनस्पर्शे एकांतोद्वेजनीये शुनकर्मापगताः (कु णिमेत्ति) मांसपेशीरुधिरपूयांत्रफिफिसकल्मषाकुले सर्वामेध्याधमे बीनत्सदर्शने हाहार वाक्रंदेन कष्टं मातावदित्यादि शब्दावधीरितदिगंतराले परमाधमे नरकावासे आसमंताउ त्कृष्टतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि यावद्यस्यांवा नरकपृथिव्यां यावदायुस्तावद्वसंति तिष्ठंति । इति परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीतिपूर्ववत्. ॥ २७ ॥ इति नरक विनक्तेः प्रथमोद्देशकः समाप्तः

हवे पांमाध्ययननांबीजो उद्देशो प्रारंनियें ठैये एने विषे पण एज नरकना नाव कहेठे.

अहावरं सासयडक्खधम्मं, तं नेे पवक्खामि जहातहेणं ॥ बाला
जहा डक्कडकम्मकारी, वेदंति कम्माइं पुरेकडाइं ॥ १ ॥ हवेहि

पाएहि य बंधिऊणं, उदरं विकत्तंति खुरासिएहिं ॥ गिएहंतु
बालस्स विहत्तु देहं, वद्धं थिरं पिठतो उद्धरंति ॥ २ ॥

अर्थ–(अहके०) अथ एटले हवे (अवरंके०) अपर एटले बीजा (सासयडुरकधम्मं के०) शाश्वतडुःखनो धर्म एटले स्वभावछे जेने विषे एवा नरकना डुःख ज्यां सुधी जीवे त्यांसुधी ते नारकी जेमभोगवे (तंभेके०) तेम तमने (जहातहेणं के०) यथा तथ्य (पवरकामि के०) कहीशुं; एटले जेरीते श्रीवीरपरमेश्वरना मुखथी सांभल्युंछे तेरीते तमोने कहीशुं (डुक्कडकम्मकारी के०) डुःकृत कर्मना करनार एवा (बाला के०) अज्ञानी निर्विवेकीजीव ते (जहा के०) जेरीते (पुरेकडाइंकम्माइं के०) पोताना पूर्वकृतकर्मने (वेदंति के०) वेदेछे भोगवे छे तेरीते कहीशुं ॥१॥ त्यां परमाधार्मिक देव (हछेहिपाएहियबंधिऊणं के०) ते नारकीना हाथ पग बांधीने (खुरासिएहिं के०) छुरे करी तथा खड्गे करी (उदरंविकत्तंति के०) पेटने कापे ते केवीरीते कापे तोके (गिएहंतुबालस्सविहत्तुदेहंके०) बाल नारकीने ग्रहणकरी एटले पकडीने तेना शरीरने लाकडादिके हणीने खंभो खंभ करे (वद्धंथिरंपिठतोउद्धरंति के०) आगला भागनुं सबल चर्म ते पुठ प्रदेशे काढे अने पुठनुं चर्म ते आगल काढे तथा मावा पाशानुं चर्म जमणे पासे काढे अने जमणी बाजुनुं चर्म मावी बांजुए काढे एरीते चामडी उखेडी नाखे ॥२॥

॥ दीपिका–अथ द्वितीयस्यादिसूत्रमिदं । (अहावरमिति) अथापरमन्यद्वक्ष्यामि । शश्वद्भवतीति शाश्वतं यावदायुस्तच्च तदुःखंच तदेव धर्मः स्वभावोयस्मिन् सतथा एवंभूतं नरकं तथ्येन सत्यतया (भे) भवतां कथयामि । बालानिर्विवेकाडुष्कृतकर्मकारिणः पुराकृतानि पापानि कर्माणि वेदयंति तथा वदिष्यामि ॥ १ ॥ (हछेहिंति) परमाधार्मिकास्तान्नारकान् हस्तपादेषु बध्ध्वा उदरं क्षुरप्रासिभिरायुधविशेषैर्विकर्तयंति विदारयंति तथा बालस्य लकुटादिभिर्विविधं हतं देहं गृहीत्वा वर्ध्रं चर्मशकलं स्थिरं बलवत् पृष्ठतः पृष्ठदेशे उत्धरंति वेष्टयंति, ॥ २ ॥

॥ टीका–उक्तः प्रथमोद्देशकः सांप्रतं द्वितीयः समारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंधः । इहानंतरोद्देशके यैः कर्मभिर्जंतवोनरकेषूत्पद्यंते यादृगवस्थाश्च भवंत्येवं तत्प्रतिपादितमिहापि विशिष्टतरं तदेव प्रतिपाद्यते इत्यनेन संबंधेनायातस्यास्योद्देशकस्य सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं (अहावरमित्यादि) अथेत्यानंतर्ये । अपरमित्युक्तादन्यद्वक्ष्यामीत्युत्तरेण संबंधः । शश्वद्भवतीति शाश्वतं यावदायुस्तच्च तदुःखं च शाश्वतं डुःखं तद्धर्मः स्वभावोयस्मिन् यस्य वा नरकस्य सतथा तमेवंभूतं नित्यडुःखस्वभाव

मक्षिनिमेषमपि कालमविद्यमानं सुखलेशं याथातथ्येन यथाव्यवस्थितं तथैव कथयामि । नात्रोपचारोर्थवादोवा विद्यतइत्यर्थः । बालाः परमार्थमजानानाविषयसुखलिप्सवः सांप्रतेक्षिणः कर्मविपाकमनवेक्ष्यमाणायथा येन प्रकारेण दुष्टं कृतं दुष्कृतं तदेव कर्मानुष्ठानं तेनवा दुष्कृतेन कर्मज्ञानावरणादिकं तद्दुष्कृतकर्म तत्कर्तुं शीलं येषांते दुष्कृतकर्मकारिणस्तएवंभूताः पुराकृतानि जन्मांतरार्जितानि कर्माणि यथावेदयंति तथा कथयिष्यामीति ॥ १ ॥ यथाप्रतिज्ञातमाह । (हत्थेहीत्यादि) परमाधार्मिकास्तथाविधकर्मोदयात् क्रीडायमानास्तान्नारकान् हस्तेषु पादेषु बध्वोदरं क्षुरप्रासिभिर्नानाविधैरायुधविशेषैर्विकर्तयंति विदारयंति । तथा परस्य बालस्येवाकिंचित्करत्वाद्बालस्य लकुटादिभिर्विविधं हतं पीडितं देहं गृहीत्वा वर्ध्रं चर्मशकलं स्थिरं बलवत्पृष्ठतः पृष्टिदेशे उद्धरंति विकर्तयंत्येवग्रतः पार्श्वतश्चेति ॥ २ ॥

बाहू पकप्पंति समूलतो से, थूलं वियासं मुहे आडहंति ॥ रहंसि जु
त्तं सरयंति बालं, आरुस्स विझंति तुदेण पिठे ॥ ३॥ अयंव तत्तं ज
लियं सजोइ, तऊवमं भूमि मणुक्कमंता ॥ ते डज्झमाणा कलुणं थणं
ति, उसुचोइया तत्तजुगेसु जुत्ता ॥ ४ ॥

अर्थ–ते परमाधार्मिको (बाहूपकप्पंतिसमूलतोसेके०) त्रण नरकपृथ्वीने विषे नारकीना अधस्तन अने चारनरकपृथ्वीमां मूलथी आरंभीने बन्ने बाहु कापे, तथा (थूलंके०) मोहोटो लोहनो गोलो तपावी (मुहेके०) ते नारकीनुं मुख (वियासंके०) विकाशीने एटले मुख उघाडीने तेमांहे (आडहंतिके० नाखे तथा (रहंसिजुत्तंसरयंतिबालंके०) लोखंडना रथमां जोतरी पूर्वना करेला कर्म संभलावीने ते नारकीने खेडे हलावे तथा (आरुस्सविझंतितुदेणपिठे के०) अत्यंत रोश करीने ते नारकीना पुठनाभागने आरे करी वींधे ॥ ३ ॥ (अयंवतत्तंजलियंसजोइके०) जेम लोखंडनो गोलो तप्त अग्नीयें सहित जाज्वल्यमान होय अथवा उष्ण कथीर होय (तऊवमंभूमिमणुक्कमंताके०) तेनीछे उपमां जेने एटले तेना सरखी तप्त एवीजे भूमि, तेने अतिक्रमता एटले बलती पृथ्वीपर चालता (तेडज्झमाणाके०) ते नारकी बलता थका (कलुणंथणंतिके०) करुण एटले दयामणा शब्द करे अर्थात् हेमात हेतात इत्यादिक विलाप करे (उसुचोइयाके०) तथा आरे करी चोया एटले प्रेर्या थका (तत्तजुगेसुजुत्ताके०) तप्त एवा धूंसरे जोतर्या थका जेम गलिया बलद चालतां आरडे तेम ते नारकी आरड्यां करे. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका–(बाहूइति) (से)तस्य नारकस्य तिसृषु नरकपृथिवीषु परमाधार्मिकाअप

रनारकाश्चाधस्तनचतसृषु पृथिवीषु मूलतआरन्य बाहून् प्रकर्तयंति छिंदंति । तथा मुखे विकाशं कृत्वा स्थूलं बृहल्लोहगोलादिकं प्रक्षिपंतआदहंति । तथा रहसि एकांते युक्तं स्वकृतकर्मानुरूपवेदनां कुर्वंतोबालमज्ञं स्मारयंति जन्मांतरकर्म । आरुष्य च रोषं कृत्वा पृष्ठे प्रतोदेन विध्यंति ॥ ३ ॥ (अयमिति) तथा अयोगोलवज्ज्वलितां ज्योतिर्नूतां तडुपमां वा नूमिमनुक्रमंतोगछंतस्ते दह्यमानाः करुणं दीनं स्तनंति आक्रंदंति तप्तेषु युगेषु युक्तागलिवृषाइव इषुणा प्रतोदादिना विध्यमानाः स्तनंति ॥ ४ ॥

॥ टीका–अपिच । (बाहूपकप्पंतीत्यादि) (से)तस्य नारकस्य तिसृषु नारकपृथिवीषु परमाधार्मिकाअपरनारकाश्चाधस्तनचतसृषु चापरनारकाएव मूलतआरन्य बाहून् प्रकर्तयंति छिंदंति तथा मुखे विकाशं कृत्वा स्थूलं बृहत्तप्तायोगोलादिकं प्रक्षिपंतआसमंताद्धंति । तथा रहस्येकांतिनं युक्तमुपपन्नं युक्तियुक्तं स्वकृतवेदनानुरूपंतत्कृतजन्मांतरानुष्ठानं तं बालमज्ञं नारकं स्मारयंति । तद्यथा । तप्तत्रपुपानावसरे मद्यपस्त्वमासीस्तथा स्वमांसनक्षणावसरे पिशिताशी त्वमसीत्येवं डुःखानुरूपमनुष्ठानं स्मारयंतः कदर्थयंति तथा निष्कारणमेवारूष्य कोपं कृत्वा प्रतोदादिना पृष्ठदेशे तं नारकं परवशं विध्यंतीति ॥ ३ ॥ तथा (अयंवेत्यादि) तप्तायोगोलकसन्निनां ज्वलितज्योतिर्नूतां तदेवंरूपां तडुपमां वा नूमिमनुक्रामंतस्तां ज्वलितां नूमिं गछंतस्ते दह्यमानाः करुणं दीनं विस्वरं स्तनंति रारटंति तथा तप्तेषु युगेषु युक्तागलिबलीवर्दाइवेषुणा प्रतोदादिना विध्यमानाः स्तनंतीति॥

बालाबलान्नूमिमणुक्कमंता, पविज्जलं लोहपहं च तत्तं ॥ जंसी
न्नडुग्गे सि पवज्जमाणा, पेसेव दंमेहिं पुराकरंति ॥५॥ ते संपगा
ढं सि पवज्जमाणा. सिलाहि हम्मंति निपातिणीहिं ॥ संतावणी
नाम चिरछितीया. संतप्पती जब असाहुकम्मा ॥ ६ ॥

अर्थ–(बालके०) अज्ञानी निर्विवेकी (अबलाके०) बल रहित एवा नारकी तेने उस लोहना) जेवी (नूमि के०) पृथवीयें बलात्कारें (अणुक्कमंताके०) अतिक्रमावे एटले चलावे तेवारे ते बापडा विरस शब्द करे ते नूमि केवीछे तोके (पविज्जलं लोहपहंचतत्तं के०) प्रज्वलित एटले ज्यां उस लोह समान रुधिर अने परुनो कर्दमछे एवीछे (जंसीन्निडुग्गे सिपवज्जमाणाके०) तथा जे विषम स्थानके कुंनीपाक शाल्मली वृक्ष प्रमुख विषम स्थानकछे (पेसेवके०) त्यां चालता कर्मकरनी पेरे अथवा गलियाबलदनीपेरे(दंमेहिंके०) दंमादिके ताडना करीने (पुराकरंतिके०) आगलकरी चलावे पण ते नारकी पोतानी इछायें आगल जवाने अथवा पोताने गमेते स्थानके रहीजवा पणु पामे नही. ॥ ५ ॥ (तेके०) ते

नारकीने (संपगाढंसि के०) अत्यंत वेदनाक्रांत एवुं नरक अथवा तेवो मार्ग तेने विषे (पवज्जमाणा के०) चलावता थका (सिलाहिं हम्मंतिनिपातिणीहिं के०) साहमु सिलायेंकरी हणीने नीचो पाडी नाखे, परंतु ते आगल जइ शके नही (संतावणी नामचिरहितीयाके०) तथा संतापनी नामे कुंनी त्यां शाश्वतिछे तेमांहे गयो बतो (संतप्पतीज ब असाहुकम्मा के०) ज्यां माठा कर्मनो करनार बापडो घणु संताप सहन करे ॥६॥

॥ दीपिका-(बालेति) बालाअज्ञाः प्रज्वलितलोहपथमिव ते आक्रंदंति । तथा यस्मिन्ननिडुर्गे विषमे कुंनीशाल्मल्यादिप्रपद्यमानानसम्यगुपगच्छंति ततस्ते कुपितानरकपालाः प्रेष्यानिव कर्मकरानिव दंडैर्हत्वा पुरतोग्रतः कुर्वंति ॥ ५ ॥ (तेइति) ते नारकाः संप्रगाढमसह्यं नरकं प्रपद्यमानाअनिमुखपातिनीनिः शिलानिरसुरैर्हन्यंते । संतापनी कुंनी साच चिरस्थितिका तज्ञतः प्राणी वेदनाग्रस्तआस्ते यत्र संतप्यतेऽत्यर्थमसाधुकर्मा ॥ ६ ॥

॥ टीका-अन्यच्च (बालाबलाइत्यादि) बालानिर्विवेकिनः प्रज्वलितलोहपथमिव तप्तां भुवं (पविज्जलंति) रुधिरपूयादिना पिच्छिलां बलादनिच्छंतोऽनुक्रम्यमाणा विरसमासरंति। तथा यस्मिन्ननिडुर्गे कुंनीशाल्मल्यादौ प्रपद्यमानानरकपालचोदितानसम्यग्गच्छंति । ततस्ते कुपिताः परमाधार्मिकाः प्रेष्यानिव कर्मकरानिव बलीवर्दवच्चा दंमैर्हत्वा प्रतोदेन प्रतुद्य पुरतोग्रतः कुर्वंति नते स्वेच्छया गंतुं स्थातुं वा लनंतइति ॥५॥ किंच (तेसंपगाढमित्यादि) ते नारकाः संप्रगाढमिति बहुवेदनात्वेन सह्यं नरकं मार्गं वा प्रपद्यमाना गंतुं स्थातुं वा तत्राऽशक्नुवंतोऽनिमुखपातिनीनिः शिलानिरसुरैर्हन्यंते। तथा संतापयतीति संतापनी कुंनी साच चिरस्थितिका । तज्ञतोऽसुमान् प्रनूतं कालं यावदतिवेदनाग्रस्तआस्ते यत्रच संतप्यते पीडयतेऽत्यर्थमसाधुकर्मा जन्मांतरकृताशुनानुष्ठानइति ॥ ६ ॥

कंदूसु पक्खिप्प पयंति बाला, ततोवि दड्ढा पुण उप्पयंति ॥ ते उड्ढका
एहिं पखज्जमाणा, अवरेहिं खज्जंति सणप्फएहिं ॥ ७ ॥ समू
सियं नाम विधूमठाणं, जं सोयतत्ता कलुणं थणंति ॥ अहेसिरं
कट्टु विगत्तिऊणं, अयंव सत्थेहिं समोसवेंति ॥ ८ ॥

अर्थ-वली नरकना दुःख कहेछे. (बाला के०) ते बाल नारकीने परमाधार्मिक लोको (कंदूसु के०) कंदू नामा भाजन विशेष तेने विषे (पक्खिप्प के०) प्रक्षेपीने (पयंतिके०) पचवे (ततोविदड्ढापुणउप्पयंतिके०) तेवारे ते नारकी दाफता थका बलता चणानी पेरे उंचा उछले (तेउड्ढकाएहिंपखज्जमाणाके०) त्यां आकाशमां वली तेने ड्रोण काकादिक पक्षीउं त्रोडता थका खाता थका (अवरेहिं के०) त्यां थकी बीजा स्था

नकनी दिशा तरफ नासे (सणप्फएहिं के०) त्यां वली अन्य सिंह व्याघ्रादिक तेने (खज्जंति के०) खाए ॥ ७ ॥ नाम शब्द संजावनायेंछे (समूसियं के०) उंचु चिताने आकारे एवुं (विधूमठाणं के०) अग्नीनुं स्थानकछे (जं के०) ते स्थानक पामिने (सोयतत्ता के०) शोके तप्त थका (कलुणंथणंति के०) दीनस्वरे करीने आक्रंद करे तथा परमाधामीउ ते नारकीनुं (अहेसिरंकट्टु के०) मस्तक नीचुं करीने (विगत्तिऊणंअयंवके०) शरीर विकूर्वि छेदीने लोहनी पेरे (सत्थेहिं के०) शस्त्र जे मुजरादिक तेणेकरी (समोसवेंति के०) खंम खंम एटले टुकडा टुकडा करे ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–(कंदूसुइति) तं बालं कंदूसु कुंनीषु प्रक्षिप्यासुराः पचंति । ततः पाकस्थानात्ते दह्यमानाश्चणकाइव नृज्यमानाउत्पतंति ऊर्ध्वमुच्छलंति । तेच (उड्डकाएहिं ति) डोणैः काकैर्वैक्रियैः प्रखाद्यमानान्नद्यमाणानश्यंतोनष्टाः संतोऽपरैः (सणप्फएहिंति) सनखपदैः सिंहव्याघ्रादिनिर्नक्ष्यंते ॥ ७ ॥ (समूसिअमिति) सम्यगुच्छ्रितं चितिकाकृति विधूमस्याग्नेः स्थानं विध्वंसस्थानं यत् प्राप्य शोकतप्ताः करुणं दीनं स्तनंत्याक्रंदंति । नामेति संजावनायां । संजाव्यंते तत्रैतावेदनाइति । तथा अधः शिरोमस्तकं कृत्वा देहं विकर्त्य छित्वा (समोसवेंतित्ति) खंडशः खंमयंत्यसुराः ॥ ८ ॥

॥ टीका–(तथा कंदूसुपक्खिप्पइत्यादि) तं बालं वराकं नारकं कंदूषु प्रक्षिप्य नरकपालाः पचंति । ततः पाकस्थानात् ते दह्यमानाश्चणकाइव नृज्यमानार्ऊर्ध्वं पतंत्युत्पतंति ते च ऊर्ध्वमुत्पतिताः (उड्डकाएत्ति) डोणैः काकैर्वैक्रियैः प्रखाद्यमानान्नद्यमाणाअन्यतोनष्टाः संतोऽपरैः (सणफएहिंति) सिंहव्याघ्रादिनिः खाद्यंते नक्ष्यंतेइति ॥ ७ ॥ किंच (समूसियंनामेत्यादि) सम्यगुच्छ्रितं चितिकाकृति । नामशब्दः संजावनायां । संजाव्यते एवंविधानि नरकेषु यातनास्थानानि । विधूमस्याग्नेः स्थानं विधूमस्थानं । यत्प्राप्य शोकवितप्ताः करुणं दीनं स्तनंत्याक्रंदंतीति । तथा अधःशिरः कृत्वा देहंच विकर्त्यायोवच्छस्त्रैस्तछेदनादिनिः (समोसवेंतित्ति) खंमशः खंमयंतीति ॥ ८ ॥

समूसिया तछ विसूणियंगा, पक्खीहिं खज्जंति अजमुहेहिं ॥ सं
जीवणी नाम चिरठितीया, जंसीपया हम्मइ पावचेया ॥ ९ ॥
तिक्खाहिं सूलाहि जितावयंति, वसोगयं सोयरयं व लछुं ॥ ते सू
लविछा कलुणं थणंति, एगंतडुक्खं डुहउ गिलाणा ॥ १० ॥

अर्थ–(तछ के०) त्यां नरकने विषे (समूसिया के०) उंचा थांजादिकने विषे (विसूणियंगा के०) नीचे मस्तके बांधीने जेम खाटकी बालीनुं चर्म उखेडे तेम परमा

धार्मिको ते नारकीउनुं चर्म उखेडी नाखे पढी ते नारकीना चर्म रहित एवा अंगने (प क्खीहिंखज्जंति अउमुहेहिं के०) वज्र समानछे चांच जेमनी एवा काक समली गृध्र पक्षीउ तेने खाय, एरीते नरकपाले छेदन भेदन मूर्छित कर्या थका पण ते नारकी मरण पामे नही तेनुं कारण कहेछे (संजीवणी नामचिरठितीया के०) संजीवनी नामे एवी साश्वति कुंभीछे (जंसीपया के०) जेहने विषे पोहोता थकां प्राणी (हम्मइपावचे या के०) पापसहित एवा परमाधार्मिकलोक तेने हणे छेदे भेदे परंतु तेणे करी ते मरे नही किंतु पारानी पेरे तेनुं शरीर फरी मली जाय ॥९॥ (तिरकाहिंसूलाहि के०) तेपर माधार्मिक पुरुषो तीक्ष्ण वज्रवत् सूलिये करीने नारकीना शरीरने (अभितावयंति के०) अभितापयंति एटले पीडे जेम (लडुं के०) लुब्धक एवा जे कुतरादिक तेने (वसोगयं के०) वसोपगतं एटले वशे पड्या एवां (सोयरयंव के०) स्वापद मृगादिक पशु ते जेम मरणांत कदर्थना पामे तेम (ते के०) ते नारकीजीवो पण (सूलविद्धा के०) सूलियें विंध्या थका (कलुणंथणंति के०) दीनस्वरें अरडाट करे एकतो अभ्यंतर शोकादिक अने बीजो बाहिर हननादिके करी (गिलाणाके०) गिलान थता एम (डुह उके०) बन्ने प्रकारे (एगंतडुरकं के०) एकांत डुःख भोगवे परंतु मरण पामे नही॥१०॥

॥ दीपिका—(समूसिआइति) तत्र नरके स्तंभादौ ऊर्ध्वबाहवोऽधःशिरसः श्वपाकैरजवल्लं बिताः (विसूणिअंगत्ति) उत्कृत्तांगाअपनीतत्वचोलोहमुखैः पक्षिभिर्वज्रचंचुभिः काक गृध्रादिभिर्भक्ष्यंते। एवंते परमाधार्मिककृतैः परस्परकृतैः स्वाभाविकैर्वा डुःखैश्छिन्नभिन्ना अपि न म्रियंते। अतोज्ञायते संजीवनी नरकभूमिर्यस्यां खंमशश्छिन्नोपि न म्रियते स्वायु पि सतीति। सर्वे प्रजाः प्राणिनोयस्मिन्नरके पापचेतसोहन्यंते मुजरादिभिः। नरकानुभावा च्च,मुमूर्षवोपि नम्रियंते॥९॥(तिरकाहिंति) तीक्ष्णाभिः शूलाभिस्तापयंति। कमिव। वशमुपग तं सूकरादिकं लब्ध्वा यथा कदर्थयंति। ते नारकाः शूलविद्धाअपि नम्रियंते पारदवन्मिलंति ततः करुणं स्तनंति दीनमाक्रंदंति उभयतोंतर्बहिश्च ग्लानाएकांतडुःखमनुभवंति ॥१०॥

॥ टीका—अपिच (समूसियाइत्यादि) तत्र नरके स्तंभादौ ऊर्ध्वं बाहवोऽधःशिरसोवा श्वपाकैर्बस्तवल्लंबिताः संतः (विसूणियंगत्ति) उत्कृत्तांगाअपगतत्वचः पक्षिभिरयोमुखै र्वज्रचंचुभिः काकगृध्रादिभिर्भक्ष्यंते। तदेवं ते नारकानरकपालापादितैः परस्परकृतैः स्वाभा विकैर्वा छिन्नाभिन्नाः क्वथितामूर्छिताः संतोवेदनासमुद्घाते गताअपि संतोन म्रियंते अतोव्यपदिश्यते संजीवनीवत् संजीवनी जीवितदात्री नरकभूमिः। तत्र गतः खंम शश्छिन्नोपि नम्रियते स्वायुषि सतीति। साच चिरस्थितिकोत्कृष्टतस्त्रयस्त्रिंशत् याव त्सागरोपमाणि। यस्यां च प्राप्ताः प्रजायंतइति प्रजाः प्राणिनः पापचेतसोहन्यंते मुजरा

रादिनिर्नरकानुनावाच्च मुमूर्षवोप्यत्यंतपिष्टाअपि न म्रियंते ऽपितु पारदवन्मिलंतीति॥ए॥ अपिच (तिरकाहीआदि) पूर्वडुष्कृतकारिणं तीक्ष्णानिरयोमयीनिः शूलानिरनेकपा लानारकमनितापयंति । किमिव । वशमुपगतं श्वापदमिव । कालपृष्ठसूकरादिकं स्वा तंत्र्येण लब्ध्वा कदर्थयंति ते नारकाः शूलादिनिर्विध्दाअपि नम्रियंते केवलं करुणं दीनं स्तनंति । नच तेषां कश्चित्त्राणायालं । तथैकांतेनोच्चयतोंतर्बहिश्च ग्लानाअपगतप्रमोदाः सदा डुःखमनुजवंतीति ॥ १० ॥

सया जलं नाम निहं महंतं, जंसी जलंतो अगणी अकहो ॥
चिठंति बध्दा बहुकूरकम्मा, अरहस्सरा केइ चिरघितीया ॥
॥११॥ चिया महंतीउ समारनित्ता,बिप्नंति ते तं कलुणं रसंतं ॥
आवट्टती तठ असाहुकम्मा, सप्पी जहा पडियं जोइमझे ॥१२॥

अर्थ–(सयाजलंनाम के०) सर्वे काल निरंतर जलतुं बलतुं एवे नामे (निहंके०) ज्यां प्राणीने हणीयें ते (महंतं के०) मोहोटुं स्थानकछे (जंसीजलंतोअगणी अकहो के०) जे स्थानकें काष्ट रहित अग्नि प्रज्वलेछे त्यां (बध्दाबहुकूरकम्मा कें०) घणा कूरकर्में बांध्या थका घणा कालसुधी (चिठंतिकें०) रहे केवा थका तिष्टे तोकें (अरह स्सराकेइ कें०) मोहोटा बीहामणा आक्रंद स्वर करता थका तथा (चिरघितीयाके०) घणाकाल नी स्थितीछे जेमनी एवा थका रहे ॥ ११ ॥ (चियामहंतीउ कें०) ते पर माधार्मिक त्यां नरकने विषे मोहोटी अग्नीनी चिता (समारनित्ता के०) समारंनीने तेमां अनेक काष्ट प्रक्षेपीने (बिप्नंतितेतंकलुणंरसंतंके०) तेमांहे नारकीनेनाखे ते त्यां दा फता थका करुण स्वरे आक्रंद करता (तठके०) त्यां ते चितामांहे गयाथका (असाहुक म्माके०)असाधुकर्मेना करनार एवा नारकी (आवट्टतीके०) आवर्त्ते,विलय थइ जाय कोनी पेरे तोके (जहाके०) जेम (सप्पि के०) घृत ते (जोइमझेके०) ज्योतिजे अग्नी तेमां हे (पडियंके०) पड्यो थको विलय थइ जाय तेनीपेरे विलयथाय परंतु घृततो अग्नीमांहे सर्वथा बली जाय पण नारकी जीव ते अग्नीमां मरण पामेनही ॥ १२ ॥

॥ दीपिका–(सयेति) सदा ज्वलद्दीप्यमानं स्थानं । किंनूतं । निहन्यंते प्राणिनोयस्मि न् निहमाघातस्थानं महद्विस्तीर्णमस्ति ।यस्मिन् स्थानेऽकाष्ठोग्निर्ज्वलन्नास्ते । तत्र बहुकू रकर्माणः केचिच्चिरस्थितिकाअरहस्सराबृहदाक्रंदशब्दास्तिष्ठंति ॥ ११ ॥ (चियेते) महतीश्चिताः समारन्य नरकपालास्ते तं नारकं करुणं दीनं रसंतमाक्रंदंतं तत्र

क्षिपंति । स असाधुकर्मा तस्यां चितायामावर्तते विलीयते । यथा सर्पिर्घृतं ज्योतिर्मध्ये अग्निमध्ये पतितं विलीयते तथापि नम्रियते जवस्वजावत्वात् ॥ १२ ॥

॥ टीका—तथा (सयाजलमित्यादि) सदा सर्वकालं ज्वलद्देदीप्यमानमुष्णरूपत्वात् स्थानमस्ति । निहन्यंते प्राणिनः कर्मवशगायस्मिन् तन्निहमाघातस्थानं तच्च महाविस्तीर्णं यत्राकाष्ठोऽग्निर्ज्वलन्नास्ते तत्रैवं जूते स्थाने जवांतरे बहुक्रूरकर्माणस्तद्विपाकापादितेन पापेन बद्धास्तिष्ठंतीति । किंजूताः । अरहस्वराबृहदाक्रंदशब्दाश्चिरस्थितिकाः प्रजूतकालस्थितयइत्यर्थः ॥ ११ ॥ तथा (चियामहंतीउ इत्यादि) महतीश्चिताः समारज्य नरकपालास्तं नारकं विरसं करुणं दीनमारसंतं तत्र क्षिपंति । सचासाधुकर्मा तस्यां चितायां गतः सन्नावर्तते विलीयते । यथा सर्पिर्घृतं ज्योतिर्मध्ये पतितं ड्वीजवत्येवमसावपि विलीयते नच तथापि जवानुजावात्प्राणैर्विमुच्यते ॥ १२ ॥

सदा कसिणं पुण घम्मठाणं, गाढोवणीयं अइडुरकधम्मं ॥ हत्थे
हिं पाएहिय बंधिऊणं, सत्तुव दंमेहिं समारजंति ॥ १३ ॥ जंजं
ति बालस्स वहेण पुठी, सीसंपि जिंदंति अउघणेहिं॥ते जिन्नदे
हा फलगंव तछा, तत्ताहिं आराहिं णियोजयंति ॥ १४ ॥

अर्थ—हवे वली डुःखनो बीजो प्रकार कहेठे. (सदाकसिणंपुणघम्मठाणं के०) त्यां सर्वकाल संपूर्ण घर्म एटले उष्ण आतापनुं स्थानक जे स्थानके (गाढोपनीतंके०) ते नारकीने निवडकर्मे आणी ढोक्या थका (अइडुरकधम्मं के०) ज्यां अत्यंत डुःखरूप धर्मनो स्वजावछे एवा स्थानके (हत्थेहिंपाएहियबंधिऊणंके०) नरकपाल ते नारकीना हाथ अने पग बांधीने (सत्तुवके०) शत्रुनी पेरे (डंमेहिंके०) दंमेकरी (समारजंतिके०) संमारंजे ताडना करे ॥ १३ ॥ (जंजंतिबालस्सवहेणपुठि के०) ते परमाधार्मिको दंमादिके करी बाल अज्ञ एवा नारकीनी पीठने जांजे तथा (अउघणेहिंके०) लोढाना घणे करीने (सीसंपिजिंदंतिके०) मस्तकने पण जेदी नाखे, चूर्ण करीनाखे वली अपि शब्द थकी बीजा पण अंगोपांग एजरीते मुजरे करी जेदी नाखे (तेजिन्नदेहाके०) ते नारकी चूर्ण थयाथी जिन्नदेह ठतां (फलगंवतछाके०) पाटीआनी पेरे बन्ने पासे करवते करी ठेद्या थका (तत्ताहिंआराहिंके) तप्त आरे करी खोसता थका तप्त कथीरादिकना मार्गने विषे (नियोजयंति के०) ते नारकीने प्रवर्त्तावे इतिजाव एटले तप्त कथीरना रसनुं पान कराववाने विषे नियोजे एटले प्रवर्त्तावे ॥ १४ ॥

॥ दीपिका—(सदेति) सदा कृत्स्नं संपूर्णं घर्मस्थानं गाढैर्दृढैः कर्मनिरुपनीतं प्रापितं

अतिःडुखमेव धर्मः स्वनावोयस्मिन् तत्तथा । एवंविधे स्थाने नारकं हस्तैः पादैर्बध्वा त त्र प्रक्षिपंति छित्वाच शत्रुमिव दंमैः समारनंते ताफयंति ॥ १३ ॥ (नंजंतिच्चि) बा लस्य नारकस्य व्यथेन लकुटादिप्रहारेण पृष्ठं नंजंति अयोघनैर्लोहघनैः शीर्षं निंदंति चूर्णयंति । अपिशब्दादन्यान्यप्यंगानि चूर्णयंति । ते निन्नदेहानारकाः फलकमिवोना न्यां पार्श्वान्यां क्रकचादिनावतष्टाद्विधाकृतास्तप्ताभिराराभिः पीड्यमानास्तप्तत्रपुपानादि के कर्मणि नियोज्यंते व्यापार्यंते ॥ १४ ॥

॥ टीका–अथायमपरोनरकयातनाप्रकारस्तमाह । (सयाकसिणमित्यादि) सदा स र्वकालं कृत्स्नं संपूर्णं पुनरपरं धर्मस्थानमुष्णस्थानं दृढैर्निधत्तनिकाचिकावस्थैः कर्मनिरु पनीतं ढौकितमतीव डुःखरूपोधर्मः स्वनावोयस्मिंस्तदतिडुःखधर्मं तदेवंनूते यातनास्था ने तमत्राणं नारकं हस्तेषु पादेषु च बध्वा तत्र प्रक्षिपंति । तथा तदवस्थमेव शत्रुमिव दंडैः समारनंते ताडयंति ॥ १३ ॥ किंच । (नंजंतिबालस्सेत्यादि) बालस्य वराकस्य नारकस्य व्यथयतीति व्यथोलकुटादिप्रहारस्तेन पृष्ठं नंजयंति मोटयंति तथा शिरोप्य योमयेन घनेन निंदंति चूर्णयंत्यपिशब्दादन्यान्यप्यंगोपांगानि द्रुघणघातैश्चूर्णयंति । ते कानिन्नदेहाश्चूर्णितांगोपांगाः फलकमिवोनान्यां पार्श्वान्यां क्रकचादिना अवतष्टास्तनूकृताः संतस्तप्ताभिराराभिः प्रतुद्यमानास्तप्तत्रपुपानादिके कर्मणि विनियोज्यंते व्यापार्यंतइति ॥ १४

अनिजुंजिया रुद्द असाहुकम्मा, उसुचोइया हत्थिवहं वहंति ॥ ए
गं डुरूहित्तु डुवे ततोवा, आरुस्स विझंति ककाणर्ज्ञसो ॥ १५ ॥
बाला बलानूमिमणुक्कमंता, पविज्जलं कंटइलं महंतं ॥ विब
द्धतप्पेहिं विवष्णचित्ते, समीरिया कोट्टबलिं करिंति ॥ १६ ॥

अर्थ–(अनिजुंजिया रुद्द असाहुकम्माके०) रौड एवा असाधु कर्मि एटले अन्य नार कीउने हणवादिक कार्ये [illegible] करनार अथवा पूर्वे नवना करेला एवा रौड अ साधु कर्म तेने प्रेरता थका एटले पूर्वकृत डुष्कृतने स्मरण करावीने (उसुचोइया ह त्थिवहंवहंति के०) सरानिघात एटले बाणादिके करी जेम हस्तिने चलावियें वाहियें तेम ते परधार्मिको माहावतनी पेरे ते नारकीउने वाहे अथवा उंटनी पेरे वाहे एटले चलावे (एगंडुरूहित्तुडुवेततोवा के०) तेना उपर एक बे अथवा त्रणरूपे आरुढ थइ ने डुःख आपे (आरुस्सविझंतिककाणर्उसोके०) क्रोधेकरीने ककाणर्उ एटले तेना मर्म स्थानकने आरादिकेकरी विंधे ॥१५॥ (बालाके०) अज्ञ एवा नारकीने (बलाके०) बला त्कारे करी (पविज्जलं के०) रक्त अने परु तद्रूप रौड कर्दमें करी विषम तथा

(कंटइलं के०) कांटावाली एवी (महंतं के०) महोटी (नूमि के०) नूमिकानी वेलुने विपे (अणुक्कमंता के०) अतिक्रमावे ते जेम जेम आकरा चलावे तेम तेम डुःख पामे तथा (विवस्सचित्ते के०) मूर्छित एवा नारकीउने (विवधतप्पेहिंके०) अनेक नरकपालो त्रापें करी बांधीने (समीरियाके०) तेना पूर्वकृत पापकर्म प्रकाशीने (कोट्टबलिंकरंति के०) कोट एटले नगरनी बलिबाकुल जेम दशोदिशे सैकडाखंम थइ विखरी जाय तेम परधार्मिको ते नारकीना खंमो खंम करी विखेरी नाखे. ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–(अनिजुंजिआइति) रौद्रकर्मणि अपरान्नारकान् हननव्यापारेऽनियुज्य व्यापार्य असाधुकर्मणइषुचोदितान् शरान्निघातप्रेरितान् हस्तिवहं वाहयंति नरकपालाः। यथा हस्ती वाह्यते समारुह्य एवं तान् वाहयंति। तस्य नारकस्योपर्येकं द्वौ त्रीन् वा समारोप्य ततस्तं वाहयंति। अतिनारारोपणेनावहंतमारुष्य रोषंकृत्वा प्रतोदादिना विध्यंति। सेतस्य नारकस्य (ककाणउत्ति) मर्मणि विध्यंति छिंदंति॥१५॥ (बालाइति) बालाः परवशामहतीं रुधिरादिप्रपिच्छिलां कंटकाकुलां नूमिमनुक्रामंतोमंदगतयोबलात्प्रेर्यंते। तथान्यान् तर्पकाकारान् विषस्सचित्तान् मूर्छितान् विविधमनेकधाबद्धानरकपालाः पापेन समीरिताः प्रेरितास्तान् कुट्टयित्वा बलिं कुर्वंति खंडशः छित्वा इतश्चेतश्चक्षिपंति ॥ १६ ॥

॥ टीका–(अनिजुंजियाइत्यादि) रौद्रकर्मण्यपरनारकहननादिकेऽनियुज्य व्यापार्य यदिवा जन्मांतरकृतं रौद्रं सत्वोपघातकार्यमनियुज्य स्मारयित्वा असाधून्यशोननानि जन्मांतरकृतानि कर्माण्यनुष्ठानानि येषांते तथा तानिषुचोदितान् शरान्निघातप्रेरितान् हस्तिवहं वाहयंति नरकपालाः। यथा हस्ती वाह्यते समारुह्यैवं तमपि वाहयंति। यदिवा हस्ती महांतं नारं वहत्येवंतमपि नारकं वाहयंत्युपलक्षणार्थत्वादस्योष्ट्रवहं वाहयंतीत्याद्यप्यायोज्यं कथं। वाहयंतीति दर्शयति। तस्य नारकस्योपर्येकं द्वौ त्रीन् वा समारुह्य समारोप्य ततस्तं वाहयंति। अतिनारारोपणेनावहंतमारुष्य क्रोधं कृत्वा प्रतोदादिना विध्यंति तुदंति। सेतस्य नारकस्य (काकणउत्ति) मर्माणि विध्यंतीत्यर्थः ॥ १५ ॥ अपिच (बालाबलाइत्यादि) बालाइव बालाः परतंत्राः पिच्छिलां रुधिरादिना तथा कंटकाकुलां नूमिमनुक्रामंतोमंदगतयोबलात्प्रेर्यंते । तथान्यान् विषस्सचित्तान् मूर्छितांस्तर्पकाकारान्विविधमनेकधा बद्धानरकपालाः समीरिताः पापेन कर्मणा चोदितास्तान्नारकान् कुट्टयित्वा खंमशः कृत्वा (बलिकरिंति) नगरबलिवदितश्चेतश्च क्षिपंतीत्यर्थः । यदिवा कोट्टबलिं कुर्वंतीति ॥ १६ ॥

वेतालिए नाम महानितावे, एगायते पव्वयमंतलिक्खे॥ हम्मंति तत्था बहुकूरकम्मा, परं सहस्साण मुहुत्तगाणं॥१७॥ संबाहिया

क्कडिणो थणंति, अहोय राउ परितप्पमाणा॥ एगंतकूमे नरए
हंते, कूमेण तत्था विसमे हताउ ॥ १८ ॥

अहीं नाम शब्द संभावनाने अर्थे जाणवो (वेयालिए के०) विकूर्व्यो एवो ापे के०) माहा दुःखनुं कारण (एगायते के०) घणो लांबो एवो (पव्वयके०) रकमांहे (अंतरिक्खे के०) आकाश पर्यंत उंचोविकुर्वे निष्पादे (तत्थाके०) त्यां ते उपरथी (बहूकुरकम्मा के०) अत्यंत पापकर्मना करनार एवा घणा नारकी पडतां थ धकाररूपे दृष्टीयें कांइ पण देखे नही परंतु हस्त स्पर्श मात्रे थाय अने चडता थकां रमाधार्मिक तेने (हम्मंति के०) हणे पीडा आपे त्यां (परंसहस्साणमुहुत्तगाणंके०) र थकी घणा मूहुर्त्त अधिक एटले उपलक्षणथी घणा काल सुधी एवुं दुःख पामे १७ ॥ (दुक्कडिणो के०) ते नारकी माहा पाप कर्मना करनार ते (संबा या के०) संबाधिता एटले अत्यंत पीडया थका (थणंति के०) आक्रंद करे (अ यराउपरितप्पमाणा के०) अहोरात्र परितप्तमान थका करुण आक्रंद करे (एगंतकू नरएमहंते के०) एकांत एटले निश्चयरूप कूट एटले दुःखोत्पत्तिनुं स्थान ज्यांछे ; महंत एटले विस्तीर्ण नरकने विषे (कूमेण तत्था विसमेहताउ के०) त्यां विषम पासादिक गलयंत्रादिके करी हणाता थका आक्रंद करे ॥ १८ ॥

॥ दीपिका–(वेयालिएत्ति) नामेति संभावने। संभाव्यते यन्नरकेषु। यथांतरिक्खे महा भितापे महादुःखे एकशिलाघटितोदीर्घः (वेयालिएत्ति) वैक्रयः परमाधार्मिकनिष्पादि तः पर्वतस्तत्र हस्तस्पर्शिकया समारुहंतोनारकाबहुकूरकर्माणोहन्यंते पीडयंते सहस्र संख्यानां मुहूर्तानां परं प्रकृष्टं कालं प्रभूतं कालं हन्यंतेइत्यर्थः ॥ १७॥ (संबाहियाइति) दुष्कृतं विद्यते येषांते दुष्कृतिनः संबाधिताः पीमिताअहनि रात्रौ च परितप्यमानाएकां तेन कूटानि दुःखोत्पत्तिस्थानानि यस्मिन् तथा तस्मिन्-एवंविधे महति नरके कूटेन गलयंत्रपाशादिना तत्र विषमे हताः सुनिश्चितं स्तनंति ॥ १८ ॥

॥ टीका–(किंच। वेयालिए इत्यादि) नामशब्दः संभावनायां। संभाव्यते एतन्नरकेषु यथांतरिक्खे महाभितापे महादुःखैककार्येएकशिलाघटितोदीर्घः (वेयालिएति) वैक्रि यः परमाधार्मिकनिष्पादितः पर्वतस्तत्र तमोरूपत्वान्नारकाणामतोहस्तस्पर्शिकतया स मारुहंतोनारकाहन्यंते पीडयंते बहूनि कूराणि जन्मांतरोपात्तानि कर्माणि येषां ते त था सहस्रसंख्यानां मुहूर्तानां परं प्रकृष्टं कालं सहस्रशब्दस्योपलक्षणार्थत्वा त्प्रभूतं का लं हन्यंतइति यावत् ॥ १७ ॥ तथा। (संबाहियाइत्यादि) समेकीभावेन बाधिताः

पीभिताडुष्कृतं पापं विद्यते येषांते डुष्कृतिनोमहापापाः । अहोअहनि तेडुः च परितप्यमानाअतिडुःखेन पीडयमानाः संतः करुणं दीनं स्तनंत्याक्रदंति । तत्रने टानि डुःखोत्पत्तिस्थानानि यस्मिन् तथा तस्मिन्नेवं जूते नरके महति विस्तीर्णेह्ट प्राणिनस्तेनच कूटेन गलयंत्रपाशादिना पापाणसमूहलक्षणेन वा तत्र तस्मिन्स्थि ताः । तुशब्दस्यावधारणार्थत्वात् स्तनंत्येव केवलमिति ॥ १७ ॥

जंजंति णं पुव्वमरीसरोसं, समुग्गरे ते मुसले गहेतुं ॥ ते भिन्नदे
हा रुहिरं वमंता, उमुद्धगा धरणितले पडंति ॥ १७ ॥ अणासि
या नाम महासियाला, पागब्भिणो तत्र सया सकोवा ॥ खज्जंति
तत्रा बहुकूरकम्मा, अदूरए संकलियाहि बद्धा॥ २० ॥

अर्थ-(पुव्वमरीसरोसंतेके०) पूर्व जन्मना वैरी, सरखा तेपरमाधार्मिक रोस हित कोपायमान थका (समुग्गरेमुसलेगहेतुं के०) मुजर सहित मुसल ग्रहण करीने ते नारकीना मस्तकादिकने (जंजंतिणं के०) जांगी नाखे तेवारे (तेभिन्नदेहारु हिरंवमंता के०) तेनारकी बापडा भिन्नदेही थका लोहिवमता बता प्राबल्ये करी (उमुद्ध गा के०) अधो मुख करी (धरणितलेपडंति) धरणीतलने विषे पडे. ॥१७॥ त्यां (अणा सियाके०)भुख्या अहीं नाम शब्द संजावनायेछे (महाके०) अने महोटा शरीरना प्रमाण वाला (पागब्भिणो के०) प्रगल्जित एटले डुष्ट (सयासकोवाके०) सदाकाल क्रोध स हित एवा (सियाला के०) सीयालिया जीवने (तत्रके०) ते नरकने विषे परमाधार्मिको विकूर्वे ते (तत्राके०) त्यां नारकीमां (अदूरएसंकलियाहिबद्धा के०) ढुकडा शांकले करी बांध्या थका एवाजे (बहुकूरकम्मा के०) माहा पापी अत्यंत कूर कर्मना करना र नारकीउ तेने (खज्जंति के०) खंम खंम करी जक्षण करे. ॥ २० ॥

॥ दीपिका-(जंजंतीति) णं वाक्यालंकारे । पूर्वमरयोजन्मांतरवैरिणइव परमाधार्मि कानारकावा अन्येषामंगानि सरोषं समुजराणि मुसलानि गृहीत्वा जंजंति ते नारकाभि न्नदेहारुधिरं वमंतोऽधोमुखाधरणितले पतंति ॥ १७ ॥ महांतः शृगालानरकपालविकु र्विताअनाशिनोबुजुक्षिताः । नामेति संजावने । संजाव्यते एतत्तत्र । प्रगल्जिताधृष्टारौड्रू पायत्र सदा सकोपाः संजवंति । तत्र तैः सृगालादिभिर्बहुक्रूरकर्माणः शृंखलादिभिर्लो हनिगडैर्बद्धाअदूरगाः परस्परसमीपएव वर्त्तिनः खाद्यंते जक्ष्यंते ॥ २० ॥

॥ टीका-अपिच (जंजंतिणमित्यादि) णमिति वाक्यालंकारे । पूर्वमरयइवारयो-

(तमेतरवैरिणइव परमाधार्मिकायदिवा जन्मांतरापकारिणोनारकाअपरेषामंगानि सरोषमिवकोपं समुद्गराणि मुसलानि गृहीत्वा भंजंति गाढप्रहारैरामर्दयंति तेच नारकास्त्राणरहिताः शस्त्रप्रहारैर्भिन्नदेहारुधिरमुद्वहंतोऽधोमुखाधरणितले पतंतीति ॥ १९ ॥ किंच (अणासियाइत्यादि) महादेहप्रमाणामहांतः शृगालानरकपालविकुर्विताअनशितावुभुक्षिताः । नामशब्दः संभावनायां । संभाव्यतएतन्नरकेषु । अतिप्रगल्भिताअतिधीर्यवन्तारौद्ररूपानिर्भयास्तत्र तेषु नरकेषु संभवंति । सदावकोपानित्यकुपितास्तैरेवंभूतैः सृगालादिभिस्तत्र व्यवस्थिताजन्मांतरकृतबहुक्रूरकर्माणः शृंखलादिभिर्बद्धाअयोमयनिगडनिगडिताअदूरगाः परस्परसमीपवर्तिनोभक्ष्यंते खंडशः खाद्यंतइति ॥ २० ॥

सयाजला नाम नदी भिदुग्गा, पविज्जलं लोहविलीणतत्ता ॥
जंसी भिदुग्गंसि पवज्जमाणा, एगायताणुक्कमणं करंति ॥२१॥
एयाइं फासाइं फुसंति बालं, निरंतरं तत्र चिरठितीयं ॥ ण ह
म्ममाणस्स उ होइ ताणं, एगोसयं पच्चणु होइ दुक्कं ॥ २२ ॥

अर्थ—(सयाजला नाम नदीभिदुग्गा के०) ते नरकने विषे सदाकाल पाणीए एवी महाविषम नदीरूप स्थानछे. अंहीं नाम शब्द संभावनायेंछे तेमां (पविज्ज... विलीणतत्ता के०) अग्नीमां गल्यो एवो लोहनो गोलो तेना सरखुं उष्ण पाणीछे पाणी पीता थका घणुं खारुं तथा उष्ण लागे माटे विषमछे (जंसीभिदुग्गंसि व ...णा के०) जे एवी विषम नदी तेने विषे ते नारकी प्रेरया थका जाता थका ह ...थका (एगाय ताणुक्कमणं करंति के०) एकाकी अशरण प्लवन करता परवश थका दुःख भोगवे. ॥ २१ ॥ (एयाइं के०) ए पूर्वोक्त बन्ने उद्देशामां जे दुःख कह्या तेने (बालंके०) बाल अज्ञानी एवा नारकीना जीवो ते (फुसंतिके०) छे सहन करेछे (निरंतरं तत्र चिरठितीयं के०) जेनी निरंतर घणा काल सुधी स्थितिछे एवा नारकी त्यां (णहम्ममाणस्स उहोइताणंके०) हणाता थका तेने त्राण सरण एटले राखवाने समर्थ नथी (सयंके०) पोते (एगो के०) एकलो (पच्चणुहोइदुक्कं के०) नाना प्रकारना पोताना उपार्ज्या दुःख भोगवे. ॥ २२ ॥

॥ दीपिका—सदा जलं यस्यां सा सदाजला नाम नदी अ... विषमा प... धिरादिपिच्छिला अग्नितप्तं सद्विलीनं द्रवीभूतं यल्लोहं तद्वत्तप्ता ... र्थः । यस्यां नद्यां प्रपद्यमानानारकाएकाकिनोऽत्राणाअनुक्रमणं गमनं कुर्वंति ॥ एते प्रवोक्ताः स्पर्शादुःखविशेषाः परमाधार्मिककृताः स्वाभाविकाश्च बालं नारकं

दुःखयंति निरंतर मविश्रामं तत्र चिरस्थितिकं तं हन्यमानस्य नारकस्य नकिंचित् स्यात् । यथा शीतेंद्रेण लक्ष्मणस्य नरकदुःखमनुनवतस्त्राणोद्यतेनापि नत्राणं कृतमिति एकः स्वयं प्रत्यनुनवति दुःखं । यतो मया परिजनस्यार्थे, कृतं कर्म सुदारुणं ॥ एकाकी तेन दह्येहं गतास्ते फलनोगिनइति ॥ २२ ॥

॥ टीका–अपिच (सदाजलेत्यादि) सदा सर्वकालं जलमुदकं यस्यां सा तथा र जलाभिधाना वा नदी सरिदतिदुर्गा अतिविषमा प्रकर्षेण विविधमत्युष्णं क्षारपूयरुधिरा. लजलं यस्यां सा (पविज्जलेत्ति) रुधिराविलत्वात् पिच्छिला विस्तीर्णगंजीरजला वा । अथव प्रदीप्तजला वा । एतदेव दर्शयति । अग्निना तप्तं सद्विलीनं द्रवतां गतं यल्लोहमयस्त द्वत् प्ताऽतितापविलीनलोहसदृशजलेत्यर्थः । यस्यां च सदाजलायां अभिदुर्गायां नद्यां प्रपद्यमा नाः (एगायत्ति) एकाकिनोऽत्राणाअनुक्रमणं तस्यां गमनं प्लवनं कुर्वंतीति ॥ २१ ॥ सां प्रतमुद्देशकार्थमुपसंहरन् पुनरपि नारकाणां दुःखविशेषं दर्शयितुमाह (एयाइंफासाइंइ त्यादि) एते अनंतरोद्देशकद्वयाभ्रेत्यतिकटवोबालमशरणं स्पृशयंति दुःखयंति निरंत रमविश्रामं (अच्छिनिमीलयमित्यादिपूर्ववत्) तत्र तेषु नरकेषु चिरं प्रनूतं कालं स्थितिर्यस्य बालस्यासौ चिरस्थितिकस्तं । तथाहि । रत्नप्रनायामुत्कृष्टा स्थितिः सागरोपमं तथा द्वितीया यां शर्करप्रनायां त्रीणि तथा वालुकायां सप्त पंकायां दश धूमप्रनायां सप्तदश तमःप्रना यां द्वाविंशतिर्महातमःप्रनायां सप्तमपृथिव्यां त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमानि उत् उत्कृष्टा स्थि तिरिति । तत्र गतस्य कर्मवशाऽपादितोत्कृष्टस्थितिकस्य परैर्हन्यमानस्य स्वकृतकर्मफलभुजो न किंचित्राणं नवति । तथाहि । किल शीतेंद्रेण लक्ष्मणस्य नरकदुःखमनुनवतस्तत्त्राणोद्य तेनापि न त्राणं कृतमिति श्रुतिः । तदेवमेकोसहायोयदर्थं यत्पापं समर्जितं तैरहित स्तत्कर्मविपाकजं दुःखमनुनवति नकश्चिद्दुःखसंविनागं गृण्हातीत्यर्थः । तथाचोक्तं । म या परिजनस्यार्थे कृतं कर्म सुदारुणं । एकाकी तेन दह्येहं गतास्ते फलनोगिनइत्यादि ॥ २२

जं जारिसं पुव्वमकासिकम्मं, तमेव आगच्छति संपराए ॥ एगंतदुक्खं नव मज्जणित्ता, वेदंति दुक्की तमणंतदुक्खं ॥ २३ ॥ एताणि सोच्चा णरगा णि धीरे, नहिंसए किंचण सव्वलोए ॥ एगंतदिठ्ठी अपरिग्गहेउ, बुज्झि ज्ज लोयस्सवसं नगच्छे ॥२४॥ एवं तिरिक्के मणुया सुरेसुं, चतुरत्तणं तं त यणुविवागं ॥ ससव्वमेयं इति वेदइत्ता, कंखेजकालं धुयमायरेज्जत्तिबेमि ॥ २५ ॥ इति श्रीनरयविनत्तीनाम पंचमाध्ययनंसंमत्तं ॥

अर्थ—(जंजारिसंपुव्वमकासिकम्मंके०) जे जीवे जेवाभावे पाछला जन्मांतरे कर्म कीधाछे (तमेव के०) ते कर्म तेवीज विधियें (संपराए के०) संसारमां भमता थका चारगति नेविषेजीवने (आगछतिके०) उदय आवे (एगंतडुक्कंभवमझणित्ताके०) परंतु नरकमांहे तो एकांत निःकेवल डुःखरूप भव उपार्जीने (वेदंतिडुक्कीतमणंतडुक्कं के०) ते नारकी जीव डुःखी थका अनंत डुःख वेदे ॥ २३ ॥ हवे उपदेश स्वरूप कहेछे. (एताणि के०) ए पूर्वोक्त (णरगाणिसोच्चा के०) नरकना तीव्र डुःख सांभलीने (धीरेके०) जे धैर्यवंत पुरुषछे ते शुं करे ते देखाडेछे. (नहिंसएकिंचण सव्वलोए के०) जेथकी नरकना डुःख न भोगवे एवा सर्व चतुर्दश रज्ज्वात्मक लोकने विषे जेकांइ त्रस अने स्थावर जीवछे तेकोइने हणे नही तथा (एगंतदिट्ठीके०) एकांत दृष्टी एटले निश्चल सम्यक्त्व धारक तथा (अपरिग्गहेउ के०) परिग्रह रहित एवो छतो तु शब्दथी मृषावादादिकनु वर्जन पण जाणी लेवुं तथा (लोयस्स के०) लोक ते इहां प्रस्तावथकी अशुभ कर्मकारी लेवो तथा कषाय लोक लेवो तेना स्वरूपने (बुज्झिज्जके०) जाणीने एवा लोकने (वसं के०) वशमां (नगछे के०) नपोहोचे ॥ २४ ॥ (एवंतिरिक्केमणुयासुरेसुं के०) ए जेम अशुभ कर्मिने नरकगति कही तेम तिर्यंच मनुष्य तथा देवतानी गति एम बधिमली (चतुरत्तणंतं के०) चतुर्गतिक संसारने विषे अनंत (तयणुविवागं के०) तदनुरूप विपाक एटले अनंत एवो कर्मनो जे विपाक (ससव्वमेयंइतिवेदइत्ता के०) सबुद्धिमान् सर्वमेतदितिविदित्वा एटले पंमित पुरुष ए पूर्वोक्त सर्वने इति एम जाणीने जेरीते श्रीभगवंते कह्योरे तेरीते (कंखेज्जके०) कांक्षा करे एटले वांछे सुंवांछेतोके काल के०) काल एटले ज्यांसुधी मरण प्राप्त थाय त्यांसुधी (धुयंके०) ध्रौव एटले संयमने (आयरेज्ज के०) आचरे एतावता चारित्रविना जीव चतुर्गतिक संसारमां भ्रमण करे ते कारण माटे जाव जीव सुधी त्रिविधे दयाधर्म रूप निरतिचार चारित्र पालवाने वांछे अने सर्वथा पापनो त्याग करे. तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो. ॥ २५ ॥ इति श्री नरकविभक्तिनामे पांचमा अध्ययननो अर्थ संपूर्ण थयो ॥

॥ दीपिका—यत्कर्म यादृशं पूर्वजन्मांतरे अकार्षीत् कृतं तत्तादृशमेव संपराये संसारे अनुगछति । एकांतेन डुःखमेव भवोयस्मिन् सएकांतडुःखभवस्तमर्जयित्वा डुःखिनस्तमनंत डुःखंवेदयंति ॥ २३ ॥ एतान्नरकान् श्रुत्वा धीरोनहिंस्यात्कंचन प्राणिनं सर्वलोके एकांतदृष्टि र्निश्चलसम्यक्त्वोऽ परिग्रहः । तुशब्दान्मृषावादादिवर्जनमपि ज्ञेयं । तथा लोकं अशुभकर्म कारिणं तद्विपाकंच भुंजानं बुध्यते जानीयात् नतु तस्य वशं गछेत् ॥ २४ ॥ एवमशुभ कर्मकारिणामसुमतां तिर्यङ्मनुष्यामरेष्वपि चतुरंतं चतुर्गतिकमनंतमपर्यवसानं तद

नुरूपं विपाकं सबुद्धिमान् सर्वमेतदिति पूर्वोक्तं विदित्वा ध्रुवं संयममाचरन् कालं कांक्षे त् ।कोर्थः । चतुर्गतिकसंसारे दुःखमेव केवलं मत्वा संयमानुष्ठानरतोयावज्जीवं मृत्युका लं प्रतीक्षेत । इतिब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २५ ॥ इति पंचमाध्ययने द्वितीयोद्देशकः ॥ ॥ इ तितपोगछे श्रीहेमविमलसूरिशिष्यहर्षकुलपंडितप्रणीतायां श्रीसूत्रकृतांगदीपिकायां नर कविभक्त्याख्यं पंचमाध्ययनं समाप्तं. ॥ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् (जंजारिसमित्यादि) यत्कर्म यादृशं यदनुभावं यादृक्स्थितिकं वा कर्म पूर्वं जन्मांतरे अकार्षीत् कृतवांस्तत्तादृगेव जघन्यमध्यमोत्कृष्टस्थित्यनुभावभेदं संपराये तथा तेनैव प्रकारेणानुगछति । एतदुक्तं भवति । तीव्रमंदमध्यमैर्बंधाध्यवसाय स्थानैर्यादृशैर्यद्बद्धं तत्तादृगेव तीव्रमंदमध्यमेव विपाकमुदयं गछतीति । एकांतेनावश्यं सु खलेशरहितं दुःखमेव यस्मिन्नरकादिके भवे सतथा तमेकांतदुःखं भवमर्जयित्वा नरकभ वोपादानभूतानि कर्माण्युपादायैकांतदुःखिनस्तत्पूर्वनिर्दिष्टं दुःखमसातवेदनीयप्रतिकारं वे दयंत्यनुभवंतीति ॥२३॥ पुनरप्युपसंहारव्याजेनोपदेशमाह ।(एयाणिसोच्चाइत्यादि) एता न्पूर्वोक्तान्नरकान् स्वाख्या व्यपदेशइतिकृत्वा नरकदुःखविशेषान् श्रुत्वा निशम्य धीर्बुद्धिस्त या राजतइति धीरोबुद्धिमान् प्राज्ञः।एतत्कुर्यादिति दर्शयति।सर्वस्मिन्नपि त्रसस्थावरभेदभि न्ने लोके प्राणिगणे नकमपि प्राणिनं हिंस्यान्नव्यापादयेत् । तथैकांतेन निश्चयजीवादितत्वेषु दृष्टिः सम्यक् दर्शनं यस्य सएकांतदृष्टिर्निष्प्रकंपसम्यक्त्वइत्यर्थः । तथा नविद्यते परिसमंता त्सुखार्थं गृह्यतइति परिग्रहोयस्य सावप्यपरिग्रहः।तुशब्दादाद्यंतोपादाना द्वा मृषावादादत्ता दानमैथुनवर्जनमपि द्रष्टव्यं । तथा लोकमशुभकर्मकारिणं तद्विपाकं फलं भुंजन् वा यदिवा कषायं लोकं तत्स्वरूपतोबुध्येत जानीयान्नतु तस्य वशं गछेदिति ॥२४॥ एतदनंतरोक्तं दुःख विशेष मन्यत्राप्यतिदिशन्नाह।(एवमित्यादि) एवमशुभकर्मकारिणामसुमतां तिर्यङ्मनुष्या मरेष्वपि चतुरंतं चतुर्गतिकमनंतमपर्यवसानं तदनुरूपं विपाकं स बुद्धिमान् सर्वमेतदिति पूर्वोक्तया नीत्या विदित्वा ज्ञात्वा ध्रुवं संयममाचरन् कालं मृत्युकालमाकांक्षेत् । एतदुक्तं भवति । चतुर्गतिकसंसारांतर्गतानामसुमतां दुःखमेव केवलं यतोध्रुवोमोक्षः संयमोवा तदनुष्ठानरतोयावज्जीवं मृत्युकालं प्रतीक्षेतेति । इति परिसमाप्तौ । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥२५॥ इतिपंचमं नरकविभक्त्यध्ययनं परिसमाप्तं. ॥

अथ द्वितीये सूत्रकृतांगे षष्ठमध्ययनं प्रारभ्यते।पांचमां अध्ययनने विषे नरकना दुःख कह्या ते श्रीमहावीरदेवे उपदेश्या छे ते माटे आ छठा अध्ययनने विषे श्री महावीर परमात्मानी गुणो त्किर्तनीपूर्वक स्तुति करेछे.

पुछिस्सु णं समणा माहणाय, अगारिणोया परतिछिआय ॥
से केइ णेगंतहियं धम्ममाहु, अणेलिसं साहु समिरकयाए॥१॥
कहंच णाणं कह दंसणं से, सीलं कहं नायसुतस्स आसी॥ जा
णासि णं निरकु जहातहेणं, अहासुतं बूहि जहाणिसं तं ॥ २॥

अर्थ—(पुछिस्सुणं के०) पूर्वोक्त नरकना डुःख सांनलीने संसारना नयथी बीकपाम्या
उनग्या एवा पुरुषो श्रीसुधर्म स्वामिने पूछेछे ते कोण पूछेछे तोके (समणा के०) साधु
तथा (माहणायके०) ब्राह्मण तथा (अगारिणोया के०) आगारीते गृहस्थ क्षत्रिया
दिक तथा (परतिछिआयके०) अन्य तीर्थिकते शाक्यादिक तापस प्रमुख जाणवा ए
सर्व शुं पुछेछे ते कहेछे. (सेकेइणेगंत के०) ते कयो एकांत (हियके०) हितनो कर
नार एवो (अणेलिसं के०) अनीदृशमतुलं एटले निरुपम शाश्वत (साहुसमिरकयाए
के०) साधु समीक्षाये यथास्थित तत्व ज्ञाने करी ज्ञातपुत्र श्रीमहावीरदेवे निरतो (ध
म्मं के०) धर्म (आहु के०) कह्योछे के जेणे करी जीव सुख पामे. ॥ १ ॥ (कहंचणा
णं के०) केवुं ज्ञान वली (कहंदंसणंसे के०) दर्शन चारित्ररूप केवुं तथा (सीलंकहं
के०) यम नियमरूप शील केवुंछे ए बधुं (नायसुतस्सआसीके०) ज्ञातपुत्र एटले क्षत्रि
य शिरोमणी सिद्धार्थ राजाना पुत्र श्रीमहावीरने विषे केवुं हतुं ते (निरकू के०) अ
हो नगवन् (जाणासिणं के०) ए सर्व जेरीते तमे जाणोछो (जहातहेणं के०) यथा
तथ्य एटले सत्य निरुपण रूप (अहासुतं के०) जेम तमे सांनल्युं छे (जहाणिसंतं के०)
यथानिशांतं एटले सांनलीने जेम हृदयने विषे धारण कर्युंछे तेम अमने (बूहिके०) कहो.

॥ दीपिका—अथ षष्ठमारन्यते। पूर्वाध्ययने नरकविनक्तिरुक्ता श्रीवीरेण। ततोत्र श्रीवीर
स्यैव गुणाउच्यंते तस्येदमादिसूत्रं (पुछिस्सुणमिति) जंबूस्वामी सुधर्माणमाह। यथा के
नैवंनूतोधर्मउक्तइत्येतद्बहवोमां पृष्टवंतः श्रमणाः साधवादयस्तथा ब्राह्मणाब्रह्मचर्या
द्यनुष्ठानरताअगारिणः क्षत्रियादयोयेच शाक्यादयः परतीर्थिकास्ते सर्वेपि पृष्टवंतः। किंतदि
त्याह। योसो इमं धर्मं एकांतहितमाह उक्तवान् अनीदृशमनन्यसदृशमतुल्यमित्यर्थः।
साध्वी चासौ समीक्षा तत्वपरिछित्तिश्च साधुसमीक्षा सासमता तया उक्तवान् ॥१॥ तस्य
श्रीवीरस्य ज्ञानं किंनूतं च दर्शनं शीलंच यमनियमरूपं कीदृगासीत्। हेसुधर्मस्वामिन्
यन्मयापृष्टं तद्याथातथ्येन त्वंजानासि। णं वाक्यालंकारे। यथाश्रुतं श्रुत्वा च यथानिशां
तमवधारितं तथा त्वं बूहि इति पृष्टः सुधर्मा वीरगुणानाह ॥ २ ॥

॥टीका–उक्तं पंचममध्ययनं ।अधुना षष्ठमारभ्यते । अस्य चाऽयमभिसंबंधः।अत्रानंतरा ध्ययने नरकविभक्तिः प्रतिपादिता । सा च श्रीमन्महावीरवर्धमानस्वामिनाऽभिहितेत्यत स्तस्यैवाऽनेन गुणकीर्तन द्वारेण चरितं प्रतिपाद्यते । शास्तुर्गुरुत्वेन शास्त्रस्य गरीयस्त्वमि ति कृत्वेत्यनेन संबंधेनाऽऽयातस्याऽस्याऽध्ययनस्योपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोग द्वाराणि । तत्राऽप्युपक्रमांतर्गतोऽर्थाधिकारोमहावीरगुणगणोत्कीर्त्तनरूपः।निक्षेपस्तु द्विधा । उघनिष्प न्नोनामनिष्पन्नश्च । तत्रौघनिष्पन्ने निक्षेपे ऽध्ययनं । नामनिष्पन्नेतु महावीरस्तवः । तत्र म हच्छब्दस्य वीरइत्येतस्य स्तवस्यच प्रत्येकं निक्षेपोविधेयः । तत्रापि यथोद्देशस्तथानिर्देश इतिकृत्वा पूर्वं महच्छब्दोनिरूप्यते । तत्राऽस्त्यऽयं महच्छब्दोबहुत्वे । यथा महाजनइति अस्तिबृहत्त्वे । यथा महाघोषोऽस्तीत्यर्थं यथा महाभयमित्यऽस्ति प्राधान्ये यथा महापु रुषइति । तत्रेह प्राधान्ये वर्तमानोगृहीतइत्येतन्निर्युक्तिकारोदर्शयितुमाह । पाहन्नेमहसद्दो, दव्वे खेत्ते य कालभावेय ॥ वीरस्सउणिक्खेर्ज चउक्कउंहोइणायव्वो ॥ १ ॥ पाहेन्नमहसद्दोइत्यादि तत्र महावीरस्तवइत्यत्र योमहच्छब्दः सप्राधान्ये वर्तमानोगृहीतः । तच्च नामस्थापना द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदात् षोढा । प्राधान्ये नामस्थापने क्षुण्णे द्रव्यप्राधान्यं । ज्ञशरीरभव्य शरीरव्यतिरिक्तं सचित्ताचित्तमिश्रभेदात् त्रिधा । सचित्तमपि द्विपदचतुष्पदे नरहस्त्यश्वा दिकमपदेषु प्रधानं कल्पवृक्षादिकं । यदि वेहैव ये प्रत्यक्षारूपरसगंधस्पर्शैरुत्कृष्टाः पौंम रीकादयः पदार्थाः । अचित्तेषु वैडूर्यादयोनानाप्रभावमणयोमिश्रेषु तीर्थकरोविभूषित इति । क्षेत्रतः प्रधानासिद्धिर्धर्मैश्वयणान्महाविदेहं चोपभोगांगीकरणेन तु देवकुर्वादि कं क्षेत्रं कालतः प्रधानं त्वेकांतसुषमादि । योवा कालविशेषोधर्मचरणप्रतियोग्यइति । भावप्रधानंतु क्षायिकोभावस्तीर्थकरशरीरापेक्षयौदयिकोवा । तत्रेह द्वयेनाऽप्यधिकारइ ति । वीरस्य द्रव्यक्षेत्रकालभेदाच्चतुर्धा निक्षेपः । तत्र ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तोद्रव्य वीरोद्रव्यार्थं संग्रामादावद्भुतकर्मकारितया शूरोयदिवा यत्किंचित् वीर्यवद् द्रव्यं तत् द्र व्यवीरेंऽतर्भवति । तद्यथा। तीर्थकृदनंतबलवीर्योलोकमलोकं कंडुकवत् प्रक्षेप्तुमलं । तथा मंदरं दंडं कृत्वा रत्नप्रभां पृथिवीं छत्रवद्बिभृयात् ।तथा चक्रवर्तिनोपि बलं दोसोलावत्तीसा। तथा विषादिनां मोहनादिसामर्थ्यमिति । क्षेत्रवीरस्तु योयस्मिन् क्षेत्रेऽद्भुतकर्मकारी वीरोवा यत्र वर्ण्यते । एवं कालेऽप्यायोज्यं । भाववीरोयस्य क्रोधमानमायालोभैः परीष हादिभिश्चात्मनोजेता । तथाचोक्तं । कोहं माणं च मायं च, लोभं पंचेंदियाणिय ॥ दुज्जयंचेव अप्पाणं सव्वमप्पेजिएजियं ॥ १ ॥ योसहस्संसहस्साणं संगामेदुज्जयेजिणे । एकंजिणेज्जअप्पाणं एसेसपरमोजर्ज ॥ २ ॥ तथा । एक्कोपरिभमउजए, वियडंजिणके सरीसलीलाए ॥ कंदप्पदुठ्ठदाढो मयणोविड्डारिउजेण ॥३॥ तदेवं वर्धमानस्वाम्येव परी षहोपसर्गैरनुकूलप्रतिकूलैरपराजितोऽद्भुतकर्मकारित्वेन गुणनिष्पन्नात् भावतोमहावीर

इति नएयते । यदिवा द्रव्यवीरोव्यतिरिक्तएकन्नविकादिः । क्षेत्रवीरोयत्र तिष्ठत्यऽसौ व्याव ण्यते वा कालोऽप्येवमेव । नाववीरोनोआगमतोवीरनामगोत्राणि कर्माण्यनुनवन् स च वीरवर्धमानस्वाम्येवेति ॥ स्तवनिक्षेपार्थमाह ॥ थुइणिरकेवोचउहा, अंगतुअनूसणेहिं दव्वसुती ॥ नावेसंताणगुणा, णकित्तणाजेजहिंनणिया ॥ २ ॥ (थुइणिरकेवोइत्यादि) स्तुतेः स्तवस्य नामादिश्चतुर्धा निक्षेपः । तत्र नामस्थापने पूर्ववत् । द्रव्यस्तवस्तु ज्ञशरीरनव्यशरीरव्यतिरिक्तोयः कटककेयूरस्त्रक्चंदनादिनिः सचित्ताचित्तद्रव्यैः क्रियतइति । नावतस्तु वस्तुतः सद्भूतानां विद्यमानानां गुणानां ये यत्र नवंति तत्कीर्तनमिति ॥ सांप्रतं आद्यसूत्रसंस्पर्शी द्वारेण सकलाध्ययनसंबंधप्रतिपादिकां गाथां निर्युक्तिकृदाह । पुछिस्सु जंबुणामो,अक्क सुहम्मा तउकहेसीय । एवमहाप्पवीरो, जयमाहाहु तहा जएक्काहिं ॥ ३ ॥ जंबूस्वामी आर्यसुधर्मस्वामिनं श्रीमन्महावीरवर्धमानस्वामिगुणान् पृष्टवान् अतोऽसावपि नवान् सुधर्मस्वाम्येवंगुणविशिष्टोमहावीरइति कथितवान् । एवं चाऽसौ नगवान् संसारस्य जयमनिनवं चाह । ततोयूयमपि यथा नगवान् संसारं जितवान् तथैव यत्नं विधत्त । सांप्रतं निक्षेपानंतरं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चेदं । (पुछिस्सुणमित्यादि) । अस्य चाऽनंतरसूत्रेण सहायं संबंधःतद्यथा । तीर्थकरोपदिष्टेन मार्गेण ध्रुवमाचरन् मृत्युमुपेक्षेतेत्युक्तं । तत्र किंनूतोऽसौ तीर्थकृत् येनोपदिष्टोमार्गइत्येत् पृष्टवंतः श्रमणायतयइत्यादि । परंपरसूत्रसंबंधस्तु बुध्येत ॥ यडुक्तं । प्रागित्येतच्च यडुत्तरत्र प्रश्नवचनं वक्ष्यते तच्च बुध्यतेत्यनेन संबंधेनाऽयातस्याऽस्य सूत्रस्य संहितादिक्रमेण व्याख्या प्रतन्यते । साचाऽयमनंतरोक्तां बहुविधां नरकविनक्तिं श्रुत्वा संसाराडुद्विग्नमनसः केनेयं प्रतिपादितेत्येतत् सुधर्मस्वामिनमप्राक्षुः पृष्टवंतः । णमितिवाक्यालंकारे । यदिवा जंबूस्वामी सुधर्मस्वामिनमेवमाह । यथा केनैवं नूतोधर्मे संसारोत्तरणे समर्थः प्रतिपादितइत्येतद्बहवोमां पृष्टवंतः । तद्यथा । श्रमणानिर्ग्रंथादयोत्राह्मणाब्रह्मचर्याद्यनुष्ठाननिरतास्तथाऽऽगारिणः क्षत्रियादयोयेच शक्यादयः परतीर्थिकास्ते सर्वेऽपि पृष्टवंतः । किंतदिति दर्शयति । सकोयोऽसावेनं धर्मं डुर्गतिप्रसृतजंतुधारकमेकांतहितमाहोक्तवान् अनीदृशमतुलमित्यर्थः । तथा साध्वीचाऽसौ समीक्षा च साधुसमीक्षा यथावस्थिततत्त्वपरिछित्तिस्तया यदिवा साधुसमीक्ष्या समतयोक्तवानिति ॥ ॥ १ ॥ तथा तस्यैव ज्ञानादिगुणावगतये प्रश्नमाह । (कहंचणाणमित्यादि) कथं केन प्रकारेण नगवान् ज्ञानमवाप्तवान् किंनूतं वा तस्य नगवतोज्ञानं विशेषावबोधकं । किंनूतं च तस्य दर्शनं सामान्यार्थपरिछेदकं शीलं च यमनियमरूपं कीदृक् ज्ञाताः क्षत्रियास्तेषां पुत्रोनगवान् वीरवर्धमानस्वामी तस्याऽऽसीदनूदिति यदेतन्मया पृष्टं तत् निक्षोसुधर्मस्वामिन् याथातथ्येन त्वं जानीषे सम्यगवगछसि । (णमितिवाक्यालंकारे) तदेतत्सर्वं

यथाश्रुतं त्वया श्रुत्वा च यथानिशांतमित्यवधारितं यथा दृष्टं तथा सर्वं ब्रूह्याचक्ष्वेति ॥२॥

खेयन्नेसे कुसले (सुपन्नेपा०) महेसी, अणंतनाणीय अणंतदंसी ॥
जसस्सिणो चक्कुपहठियस्स, जाणाहि धम्मंच धिइं पेचहि
॥ ३ ॥ उड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु, तसाय जे थावर जेह पाणा ॥
सेणिच्चणिच्चेहि समिक्क पन्ने, दीवेव धम्मं समियं उदाहु ॥ ४ ॥

अर्थ—एम श्री सुधर्म स्वामिने पुछ्या थका सुधर्मस्वामि श्री महावीर देवना गुण कहेछे. (सेके०) ते श्री महावीरदेव (खेयन्नेके०) खेदज्ञ एटले संसारी जीवोने कर्म विपाक थकी उत्पन्न थयुं जे खेद एटले दुःख तेने जाणे जाणीने उपदेश आपी तेना दुःख टाळवाने सामर्थवान तथा (कुसले के०) कर्म विदारवाने निपुण अने (महेसी के०) महोटा रुषीश्वर साधु तथा (अणंतनाणीय के०) अनंत अविनाशी जेनुं ज्ञान प्रगट्युंछे (अणंतदंसीके०) अनंत अविनाशी जेमनुं दर्शन प्रगट्युं छे (जसस्सिणोके०) यशस्वी एटले जेनो यश त्रण भुवनमां व्याप्योछे (चक्कुपहठियस्स के०) लोकने चक्षुभूत समानछे केमके लोकना भावना जे भेद ते सर्व परिछेछे माटे लोकने चक्षुने स्थानके वर्तेछे (जाणाहि धम्मंच के०) एवा श्री महावीर प्रणीत जे श्रुत चारित्ररूप धर्म तेने धर्म जाणो. (धिइंच के०) तथा तेज संयमने विषे धृति एटले धैर्यपणु तेपण श्रीमहावीरनोज (पेहि के०) प्रेक्ष्यो एटले देखो एटले श्रुत चारित्ररूप संयमने विषे जेहने रतिछे धैर्यछे. ॥ ३ ॥ (उड्ढंअहेयंतिरियंदिसासु) के० उंचोनीचो अने तिर्छो एटले चौदराज लोक मांहे पूर्वादिक अढार द्रव्य दिशाउ अने अढार भावदिशाउ मध्ये (तसायजेथावरजेहपाणा के०) जे बेंद्रियादिक त्रस प्राणी अने एकेंद्री पृथवियादिक जे स्थावर प्राणीउछे (सेणिच्चणिच्चेहिसमिक्कपन्ने के०) तेने भगवंत नित्यानित्य भेदे द्रव्य पर्याय भेदे सम्यक् प्रकारे जाणे एवा श्रीमहावीर वीतराग देव तेणे संसार समुद्र मांहे पडता बुडता प्राणीने (दीवेव के०) द्वीप समान एवो (समियं के०) समभावि (धम्मं के०) धर्म (उदाहु के०) कह्यो छे. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—सभगवान् वीरः खेदं प्राणिनां कर्मविपाकजं दुःखं जानातीति खेदज्ञः कुशलोनिपुणोमहर्षिस्तपश्चरणानुष्ठायी अनंतज्ञानी अनंतदर्शीच । विशेषग्राहकं ज्ञानं सामान्यग्राहकं दर्शनं तेद्वेअपि यस्यानंते तस्य यशस्विनोभगवतोलोकस्य चक्षुःपथे लोचनमार्गे स्थितस्य भवस्यकेवलिनइत्यर्थः । तस्य धर्मं संसारतारणसमर्थं धृतिंच संयमनिश्चलतां जानीषे । ततः (पेहित्ति) कथय । अथवा तथैवेति यथा धर्मस्तथा धृतिरपी

ति ॥ ३ ॥ ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्च सर्वदिक्षु चतुर्दशरज्ज्वात्मके ये त्रसाः स्थावराश्च ये प्राणिनस्तान् नित्यानित्याभ्यां समीक्ष्य ज्ञात्वा प्राज्ञोभगवान् दीपइव प्रकाशकत्वात् धर्ममुदाह उक्तवान् समतया । यदागमः । जहापुसुस्सकछई तहातुछस्सकछइ इति ॥ ४ ॥

॥ टीका–स एवं पृष्टः सुधर्मस्वामी श्रीमन्महावीरवर्धमानस्वामिगुणान् कथयितुमाह । (खेयन्नएसेइत्यादि) स भगवान् चतुस्त्रिंशदतिशयसमेतः खेदं संसारांतर्वर्तिनां प्राणिनां कर्मविपाकजं दुःखं जानातीति खेदज्ञोदुःखापनोदनसमर्थोपदेशदानात् । यदिवा क्षेत्रज्ञोयथावस्थितात्मस्वरूपपरिज्ञानादात्मज्ञइति । अथवा क्षेत्रमाकाशं तज्जानातीति क्षेत्रज्ञोलोकालोकस्वरूपपरिज्ञातेत्यर्थः । तथा भावकुशानष्टविधकर्मरूपान् लुनाति छिनत्ति कुशलः प्राणिनां कर्मोच्छित्तये निपुणइत्यर्थः । आशु शीघ्रं प्रज्ञा यस्याऽसावाशुप्रज्ञः । सर्वत्र सदोपयोगान्नछद्मस्थइव विचिंत्य जानातीति भावः । महर्षिरिति क्वचित्पाठः । महांश्चासावृषिश्च महर्षिरत्यंतोग्रतपश्चरणानुष्ठायित्वादतुलपरीषहोपसर्गसहनाच्चेति । तथा अनंतमविनाश्यनंतपदार्थपरिछेदकं वा ज्ञानं विशेषग्राहकं यस्यासावनंतज्ञानी । एवं सामान्यार्थपरिछेदकत्वेनाऽनंतदर्शी । तदेवं भूतस्य भगवतोयशोनृसुरासुरातिशाय्यतुलं विद्यते यस्य सयशस्वी तस्य लोकस्य चक्षुःपथे लोचनमार्गे भवस्थकेवल्यवस्थायां स्थितस्य लोकानां सूक्ष्मव्यवहितपदार्थाविर्भावनेन चक्षुर्भूतस्य वा जानीह्यवगछ । धर्मं संसारोद्धरणस्वभावं तत्प्रणीतं वा श्रुतचारित्राख्यं तथा तस्यैव भगवतस्तथोपसर्गितस्याऽपि निष्प्रकंपां चारित्राचलनस्वभावां धृतिं संयमे रतिं तत्प्रणीतां वा प्रेक्षस्व सम्यक्कुशाग्रीयया बुद्ध्या पर्यालोचयेति । यदिवा तैरेव श्रमणादिभिः सुधर्मस्वाम्यभिहितो यथा त्वं तस्य भगवतोयशस्विनश्चक्षुष्पथे व्यवस्थितस्य धर्मं धृतिं च जानीषे । ततोऽस्माकं (पेहित्ति) कथयेति ॥ ३ ॥ सांप्रतं सुधर्मस्वामी तद्गुणान् कथयितुमाह । (उड्ढंअहेयमित्यादि) ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्षु सर्वत्रैव चतुर्दशरज्ज्वात्मके लोके ये केचन त्रस्यंतीति त्रसास्तेजोवायुरूपाविकलेंद्रियपंचेंद्रियभेदात् त्रिधा । तथा येच स्थावराः पृथिव्यंबुवनस्पतिभेदात् त्रिविधाः । एते श्वासादयः प्राणाविद्यंते येषां ते प्राणिनइत्यनेन च शाक्यादिमतनिरासेन पृथिव्याद्येकेंद्रियाणामपि जीवत्वमावेदितं भवति । सभगवांस्तान् प्राणिनः प्रकर्षेण केवलज्ञानित्वात् जानातीति प्रज्ञः सएव प्राज्ञोनित्यानित्याभ्यांद्रव्यार्थपर्यायार्थाश्रयणात् समीक्ष्य केवलज्ञानेनाऽर्थान् परिज्ञाय प्रज्ञापनायोग्यानाहेत्युत्तरेण संबंधः । तद्यथा । सप्राणिनां पदार्थाविर्भावनेन दीपवत् दीपः । यदिवा संसारार्णवपतितानां सडुपदेशप्रदानतआश्वासहेतुत्वात् दीपइव दीपः । सएवंभूतः संसारोत्तारणसमर्थं श्रुतचारित्राख्यं सम्यक् इतं गतं सदनुष्ठानतया रागद्वेषरहितत्वेन समतया वा ।

यथाश्रुतं त्वया श्रुत्वा च यथानिशांतमित्यवधारितं यथा दृष्टं तथा सर्वं ब्रूह्याचद्दवेति ॥ २॥

खेयन्नेसे कुसले (सुपन्नेपा०) महेसी, अणंतनाणीय अणंतदंसी॥
जसस्सिणो चक्कुपहठियस्स, जाणाहि धम्मंच धिइं पेचहि
॥ ३ ॥ उड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु, तसाय जे थावर जेह पाणा॥
सेणिच्चणिच्चेहि समिक्ख पन्ने, दीवेव धम्मं समियं उदाहु ॥ ४ ॥

अर्थ–एम श्री सुधर्म स्वामिने पुछ्या थका सुधर्मस्वामि श्री महावीर देवना गुण कहेछे. (सेके०) ते श्री महावीरदेव (खेयन्नेके०) खेदज्ञ एटले संसारी जीवोने कर्म विपाक थकी उत्पन्न थयुं जे खेद एटले दुःख तेने जाणे जाणीने उपदेश आपी तेना दुःख टालवाने सामर्थवान तथा (कुसले के०) कर्म विदारवाने निपुण अने (महेसी के०) महोटा रुषीश्वर साधु तथा (अणंतनाणीय के०) अनंत अविनाशी जेनुं ज्ञान प्रगटयुंछे (अणंतदंसीके०) अनंत अविनाशी जेमनुं दर्शन प्रगटयुं छे (जसस्सिणोके०) यशस्वी एटले जेनो यश त्रण जुवनमां व्याप्योछे (चक्कुपहठियस्स के०) लोकने चक्षुजूत समानछे केमके लोकना जावना जे जेद ते सर्व परिछेछे माटे लोकने चक्षुने स्थानके वर्तेछे (जाणाहि धम्मंच के०) एवा श्री महावीर प्रणीत जे श्रुत चारित्ररूप धर्म तेने धर्म जाणो. (धिइंच के०) तथा तेज संयमने विषे धृति एटले धैर्यपणु तेपण श्रीमहावीरनोज (पेहि के०) प्रेक्ष्यो एटले देखो एटले श्रुत चारित्ररूप संयमने विषे जेहने रतिछे धैर्यछे. ॥ ३ ॥ (उड्ढंअहेयंतिरियंदिसासु) के० उंचोनीचो अने तिर्छो एटले चौदराज लोक मांहे पूर्वादिक अढार द्रव्य दिशाउ अने अढार जावदिशाउ मध्ये (तसायजेथावरजेहपाणा के०) जे बेंद्रियादिक त्रस प्राणी अने एकेंद्री पृथवियादिक जे स्थावर प्राणीउछे (सेणिच्चणिच्चेहिसमिक्खपन्ने के०) तेने जगवंत नित्यानित्य जेदे द्रव्य पर्याय जेदे सम्यक् प्रकारे जाणे एवा श्रीमहावीर वीतराग देव तेणे संसार समुद्र मांहे पडता बुडतां प्राणीने (दीवेव के०) द्वीप समान एवो (समियं के०) समजावि (धम्मं के०) धर्म (उदाहु के०) कह्यो छे. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका–सजगवान् वीरः खेदं प्राणिनां कर्मविपाकजं दुःखं जानातीति खेदज्ञः कुशलोनिपुणोमहर्षिस्तपश्चरणानुष्ठायी अनंतज्ञानी अनंतदर्शीच । विशेषग्राहकं ज्ञानं सामान्यग्राहकं दर्शनं तेद्वेअपि यस्यानंते तस्य यशस्विनोजगवतोलोकस्य चक्षुःपथे लोचनमार्गे स्थितस्य जवस्यकेवलिनइत्यर्थः । तस्य धर्मं संसारतारणसमर्थं धृतिंच संयमनिश्चलतां जानीषे । ततः (पेहित्ति) कथय । अथवा तथैवेति यथा धर्मस्तथा धृतिरपी

ति ॥ ३ ॥ ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्च सर्वदिक्षु चतुर्दशरज्ज्वात्मके ये त्रसाः स्थावराश्च ये प्राणिनस्तान् नित्यानित्याभ्यां समीक्ष्य ज्ञात्वा प्राज्ञोभगवान् दीपइव प्रकाशकत्वात् धर्ममुदाह उक्तवान् समतया । यदागमः । जहापुसस्सकत्थई तहातुछस्सकत्थइ इति ॥ ४ ॥

॥ टीका—स एवं पृष्टः सुधर्मस्वामी श्रीमन्महावीरवर्धमानस्वामिगुणान् कथयितुमाह । (खेयन्नएसेइत्यादि) स भगवान चतुस्त्रिंशदतिशयसमेतः खेदं संसारांतर्वर्तिनां प्राणिनां कर्मविपाकजं दुःखं जानातीति खेदज्ञोदुःखापनोदनसमर्थोपदेशदानात् । यदि वा क्षेत्रज्ञोयथावस्थितात्मस्वरूपपरिज्ञानादात्मज्ञइति । अथवा क्षेत्रमाकाशं तज्जानातीति क्षेत्रज्ञोलोकालोकस्वरूपपरिज्ञातेत्यर्थः । तथा भावकुशानष्टविधकर्मरूपान् लुनाति छिनत्ति कुशलः प्राणिनां कर्मोच्छित्तये निपुणइत्यर्थः । आशु शीघ्रं प्रज्ञा यस्याऽसावाशुप्रज्ञः । सर्वत्र सदोपयोगान्नछद्मस्थइव विचिंत्य जानातीति भावः । महर्षिरिति क्वचित्पाठः । महांश्चासावृषिश्च महर्षिरत्यंतोग्रतपश्चरणानुष्ठायित्वादतुलपरीषहोपसर्गसहनाच्चेति । तथा अनंतमविनाश्यनंतपदार्थपरिच्छेदकं वा ज्ञानं विशेषग्राहकं यस्यासावनंतज्ञानी । एवं सामान्यार्थपरिच्छेदकत्वेनाऽनंतदर्शी । तदेवं भूतस्य भगवतोयशोनृसुरासुरातिशाय्यतुलं विद्यते यस्य सयशस्वी तस्य लोकस्य चक्षुःपथे लोचनमार्गे भवस्थकेवव्यवस्थायां स्थितस्य लोकानां सूक्ष्मव्यवहितपदार्थाविर्भावनेन चक्षुर्भूतस्य वा जानीह्यव गछ । धर्मं संसारोध्दरणस्वभावं तत्प्रणीतं वा श्रुतचारित्राख्यं तथा तस्यैव भगवतस्तथोपसर्गितस्याऽपि निष्प्रकंपां चारित्राचलनस्वभावां धृतिं संयमे रतिं तत्प्रणीतां वा प्रेक्षस्व सम्यक्कुशाग्रीयया बुद्ध्या पर्यालोचयेति । यदिवा तैरेव श्रमणादिभिः सुधर्मस्वाम्यभिहितो यथा त्वं तस्य भगवतोयशस्विनश्चक्षुष्पथे व्यवस्थितस्य धर्मं धृतिं च जानीषे । ततोऽस्माकं (पेहित्ति) कथयेति ॥ ३ ॥ सांप्रतं सुधर्मस्वामी तद्गुणान् कथयितुमाह । (उढ्ढेअहेयमित्यादि) ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्षु सर्वत्रैव चतुर्दशरज्ज्वात्मके लोके ये केचन त्रस्यंतीति त्रसास्तेजोवायुरूपाविकलेंद्रियपंचेंद्रियभेदात् त्रिधा । तथा येच स्थावराः पृथिव्यंबुवनस्पतिभेदात् त्रिविधाः । एते श्वासादयः प्राणाविद्यंते येषां ते प्राणिनइत्यनेन च शाक्यादिमतनिरासेन पृथिव्याद्येकेंद्रियाणामपि जीवत्वमावेदितं भवति । सभगवांस्तान् प्राणिनः प्रकर्षेण केवलज्ञानित्वात् जानातीति प्रज्ञः सएव प्राज्ञोनित्यानित्याभ्यांद्रव्यार्थपर्यायार्थाश्रयणात् समीक्ष्य केवलज्ञानेनाऽर्थान् परिज्ञाय प्रज्ञापनायोग्यानाहेत्युत्तरेण संबंधः । तद्यथा । सप्राणिनां पदार्थाविर्भावनेन दीपवत् दीपः । यदिवा संसारार्णवपतितानां सदुपदेशप्रदानतआश्वासहेतुत्वात् दीपइव दीपः । सएवंभूतः संसारोत्तारणसमर्थं श्रुतचारित्राख्यं सम्यक् इतं गतं सदनुष्ठानतया रागद्वेषरहितत्वेन समतया वा ।

तथाचोक्तं । जहापुसुस्सकबइतहातुडस्सकबइइत्यादि समं वा धर्ममुत्प्राबल्येनाऽऽह उक्तवान् । प्राणिनामनुग्रहार्थं न पूजासत्कारार्थमिति ॥ ४ ॥

से सवदंसी अनिनूयनाणी, णिरामगंधे धिइमं ठितप्पा ॥ अणु
त्तरे सव जगंसि विजं, गंथा अतीते अनए अणाऊ ॥ ५ ॥ स
नूइपण्णे अणिए अचारी, उहंतरे धीरे अणंतचक्कु ॥ अणुत्तरे
तप्पति सूरिएवा, वइरोयणिं देवतमं पगासे ॥ ६ ॥

अर्थ–(सेके०) ते नगवंत (सवदंसीके०) सर्वदर्शि एटले लोकालोकने देखनार वली (अनिनूतनाणी के०) बावीश परिसहने जीतवा थकी केवल ज्ञानी थया (णिरामगंधेके०) निरामगंध एटले मूलोत्तर गुण विशुद्ध संयम पालक तथा (धिइमंके०) धैर्यवंत (ठितप्पाके०) स्थितात्मा एटले समस्त कर्मना क्षय थकी आत्म स्वरूपमांज जे स्थित थयाछे तथा (अणुत्तरेसवजगंसिविज्जं के०) अनुत्तर एटले प्रधान सर्व जगतमां निरुपम ज्ञाता माटे विद्वान् एटले नली बुधिवंतछे तथा (गंथाअतीतेके०) ग्रंथ थकी अतीत एटले निर्ग्रंथ बाह्याभ्यंतर परिग्रह रहितछे. (अनएके०) सप्त नय रहितछे तेना नाम कहेछे पेहेलुं इहलोकनय बीजुं परलोकनय त्रीजुं आदान नय चोथुं अकस्मात् नय पांचमुं वेदना नय छठुं अपकीर्त्तिनय सातमुं मरण नय तथा (अणाऊ के०) चारप्रकारना आयुकर्म करी रहितछे ॥ ५ ॥ (सके०) ते नगवंत (नूइपण्णे के०) नूति प्राज्ञ एटले अनंत ज्ञानी तथा (अणिएअचारी के०) अप्रतिबद्ध विहारी जाणवा (उहंतरेके०) उघ एटले संसाररूप समुद्रने तरनार (धीरेके०) धीर एटले निश्चल (अणंतचक्कु के०) अनंत ज्ञानरूप चक्षुना धरनार (अणुत्तरेतप्पतिसूरिएवा के०) जेम सूर्य सर्व थकी अधिक तपे तेम नगवंत ज्ञाने करी सर्व थकी उत्तम प्रधानछे (वइरोयणिंदेवतमंपगासे के०) तथा वैरोचनेंद्र एटले अग्नी जेम अंधकारने दूर करी अधिक प्रकाशकरेछे तेम श्रीमहावीर यथावस्थित पदार्थना प्रकाशक जाणवा ॥ ६ ॥

॥ दीपिका–ससर्वदर्शी अनिनूय द्वाविंशतिपरीषहान् पराजित्य ज्ञानं च केवलाख्यं विद्यते यस्य सज्ञानी निर्गतआमोविशोधिकोटिरूपोगंधोयस्मात्सनिरामगंधः । मूलोत्तर गुणविशिष्टचारित्रइत्यर्थः । धृतिमान् स्थैर्यसंपन्नः स्थितात्मा निर्मलात्मा अनुत्तरउत्कृष्टः सर्वस्मिन्जगति विद्वान् सर्वपदार्थवेत्ता ग्रंथाद्बाह्याभ्यंतरपरिग्रहादतीतोनिर्ग्रंथइत्यर्थः । अनयः सप्तनयरहितः । नविद्यते चतुर्विधमप्यायुर्यस्यासावनायुः ॥५॥ नूतिशब्दोत्र वृद्धौ । नूतिप्रज्ञोवृद्धप्रज्ञो ऽनंतज्ञानइत्यर्थः। अनियतचारी उघं संसारं तरतीति उ

घतरः। धिया राजतेधीरः । अनंततया ऽनंतत्वाच्चक्षुर्ज्ञानं यस्य स तथा । यथा सूर्योऽनुत्तरं सर्वाधिकं तपति यथा वा वैरोचनोऽग्निः सएव प्रज्वलितत्वादिंद्रः सयथा तमोपनीय प्रकाशयति एवमसावपि नगवान् ॥ ६ ॥

॥ टीका–किंचाऽन्यत् । (सेसव्वदंसीत्यादि) सनगवान् सर्वं जगत् चराचरं सामान्येन दृष्टुं शीलमस्य ससर्वदर्शी । तथाऽनिनूय पराजित्य मत्यादीनि चत्वार्यऽपि ज्ञानानि यद्वर्तते ज्ञानं केवलाख्यं तेन ज्ञानेन ज्ञानी । अनेन चाऽपरतीर्थाधिपाधिकत्वमावेदितं नवति । ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षइति कृत्वा तस्य नगवतो ज्ञानं प्रदर्श्य क्रियां दर्शयितुमाह। निर्गतोऽपगतआमोऽविशोधिकोटयः ऽस्तथा गंधोविशोधिकोटिरूपोयस्मात् सनवति निरामगंधः । मूलोत्तरगुणनेदनिन्नां चारित्रक्रियां कृतवानित्यर्थः । तथाऽसह्यपरीषहोपसर्गानिडुतोऽपि निष्प्रकंपतया चारित्रधृतिमान् तथा स्थितोव्यवस्थितोऽशेषकर्मविगमादात्मस्वरूपे आत्मा यस्य स नवति स्थितात्मा ।एतच्च ज्ञानक्रिययोः फलद्वारेण विशेषणं । तथा नास्योत्तरं प्रधानं सर्वस्मिन्नऽपि जगति विद्यते सतथा विद्वानिति सकलपदार्थानां करतलामलकन्यायेन वेत्ता । तथा बाह्यग्रंथात् सचित्तादिनेदादांतराच्च कर्मरूपादतीतोऽतिक्रांतोग्रंथातीतोनिर्ग्रंथइत्यर्थः । तथा न विद्यते सप्तप्रकारमपि नयं यस्याऽसावनयः समस्तनयरहितइत्यर्थः । तथा न विद्यते चतुर्विधमप्यायुर्यस्य सनवत्यनायुर्दग्धकर्मबीजत्वेन पुनरुत्पत्तेरनावादिति ॥ ५ ॥ अपिच (सनूइपन्नेइत्यादि) । नूतिशब्दोवृद्धौ मंगले रक्षायां च वर्तते । तत्र नूतिप्रज्ञः प्रवृद्धप्रज्ञः । अनंतज्ञानवानित्यर्थः । तथा नूतिप्रज्ञोजगद्रक्षानूतिप्रज्ञः । एवं सर्वमंगलनूतिप्रज्ञइति । तथा अनियतमप्रतिबद्धं परिग्रहोयोगाच्चरितुं शीलमस्याऽसावनियतचारी । तथौघं संसारसमुद्रं तरितुं शीलमस्य स तथा धीर्बुद्धिस्तया राजतइति धीरः परीषहोपसर्गाऽक्षोभ्योवा धीरः । तथा अनंतं ज्ञेयानंततया नित्यतया वा चक्षुरिव चक्षुः केवलं ज्ञानं यस्याऽनंतस्यवा लोकस्य प्रदार्थप्रकाशकतया वा चक्षुर्नूतोयः सनवत्यनंतचक्षुः । तथा यथा सूर्योऽनुत्तरं सर्वाधिकं तपति न तस्मादधिकस्तापेन कश्चिदस्ति । एवमसावपि नगवान् ज्ञानेन सर्वोत्तमइति । तथा वैरोचनोऽग्निः सएव प्रज्वलितत्वात् इंद्रोयथाऽसौतमोऽपनीय प्रकाशयति एवमसावपि नगवानज्ञानतमोऽपनीय यथावस्थितपदार्थप्रकाशनं करोति ॥ ६ ॥

अणुत्तरं धम्ममिणं जिणाणं, णेया मुणी कासव आसुपन्ने ॥ इं
देव देवाण महाणुनावे सहस्सणेता दिवि णं विसिट्ठे ॥७॥ से प
न्नया अक्खय सागरेवा, महोदहीवावि अणंतपारे ॥ अणाइ
लेया अकसाइ मुक्के (पाठांतरे निक्खु) सक्केव देवाहिवई जुईमं ॥८॥

अर्थ-(अणुत्तरंधम्ममिणंजिणाणं के०) जे श्रीकृषनादिक प्रनाववंत तीर्थंकरो त त् संबंधी जे निरुपम धर्म तेनो नायक एटले तेने (णेया के०) जाणे एवा (मुणी के०) चारित्रवान (कासव के०) काश्यपगोत्री श्रीमहावीर (आसुपन्ने के०) जता वली प्रज्ञानो जाण (इंदेवदेवाणमहाणुनावे के०) जेम इंद हजारो देवतानो नायक महाप्रनाववंत देवो मांहे प्रधान तेम श्री महावीर केवलज्ञानी (सहस्सणेतादिविणं विसिठे के०) सहस्र पुरुषोमां देवताना नायक जेइंद्रतेनी पेरे विशिष्ट माहानुनाव जाणवा ॥ ७ ॥ (सेके०) तेनगवंत (पन्नयाअरकयसागरेवा के०) प्रज्ञायें एटलेबुद्धि यें करीने अक्षयछे वा शब्द विशेषणने अर्थेछे कोनी पेरे तोके जेम समुद्र जे (महो दहीवावि के०) महोदधी एवो स्वयंनुरमण समुद्र (अणंतपारे के०) निर्मल जेनु ज लछे इत्यादिक गुणे करी अनंतअपारछे तेम श्रीवीरपण (अणाइलेया के०) अकलुप अकषाइ थका (निक्खू के०) निक्षाये आजीविका करेछे यद्यपि निःशेप कर्मक्षय करी त्रैलोक्यने पूज्यछे तथापि निक्षाये आजीवेछे परंतु अक्षीणमाहानसी प्रमुख लब्धीने प्रयुंजता नथी एवा अनेक गुणयुक्त श्रीमहावीरदेवछे तथा (सक्केवदेवाहिवईज्जुईमं के०) शक्रेंद्र देवताना स्वामी तेनी पेरे दीप्तिमान्छे ॥ ८ ॥

॥ दीपिका-अनुत्तरं धर्मं जिनानामृषनादिनां सबंध्ययं मुनिः श्रीवीरोनेता प्रणेता काश्य पोगोत्रेण। आशुप्रज्ञः केवली। नेताइति ताछीलिकस्तृन् । तद्योगे नलोकाव्ययेतिषष्ठीनि षेधाद्धर्ममिति कर्मणिद्वितीया । यथा इंद्रोदेवसहस्राणां मध्ये महानुनावः। णं वाक्यालं कारे। दिवि स्वर्गे विशिष्टोरूपबलादिनिः । एवं स नगवान् सर्वेन्योविशिष्टोनेता ॥७॥ सनग वान प्रज्ञयाक्षयोऽक्षीणज्ञानइत्यर्थः । यथा महोदधिः सागरः स्वयंनुरमणइवानंतपा रोविस्तीर्णगंनीरजलोऽक्षोन्यश्चानाविलोऽकलुषजलस्तथा नगवानपि अकलुषोपि मुक्तः क र्मबंधात् यथा शक्रोदेवधिपतिर्द्युतिमान् दीप्तिमान् ॥ ८ ॥

॥ टीका-किंच (अणुत्तरमित्यादि) । नाऽस्योत्तरोऽस्तीत्यनुत्तरस्तमिममनुत्तरं धर्मं जिनानामृषनादितीर्थकृतां संबंधिनमयं मुनिः श्रीमान् वर्धमानाख्यः काश्यपोगोत्रेणाशु प्रज्ञः केवलज्ञानी उत्पन्नदिव्यज्ञानोनेता प्रणेतेति । ताछीलिकस्तृन् तद्योगे नलोकाव्य यनिष्ठेत्यादिना षष्ठीप्रतिषेधाद्धर्ममित्यत्र कर्मणिद्वितीयैव । यथा चेंद्रोदिवि स्वर्गे देवसह स्राणां महानुनावोमहाप्रनाववान् । णमितिवाक्यालंकारे। तथा नेता प्रणायकोवि शिष्टोरूपबलवर्णादिनिः प्रधानएवं नगवानपि सर्वेन्योऽपि विशिष्टः प्रणायकोमहानु नावश्चेति ॥ ७ ॥ अपिच (सेपन्नयेत्यादि) असौ नगवान् प्रज्ञायतेऽनयेति प्रज्ञा त या अक्षयोन तस्य ज्ञातव्येर्थे बुद्धिः प्रतिहीयते प्रतिहन्यते वा । तस्य हि बुद्धिः वलके

ज्ञानाख्या साच साद्यपर्यवसाना कालतोऽद्रव्यक्षेत्रनावैरप्यनंता। सर्वसाम्येन दृष्टांतानावादे कदेशेन त्वाह। यथा सागरइति। अस्य वा विशिष्टत्वात् विशेषणमाह। महोदधिरिव स्वयंनू रमणइवाऽनंतपारः। यथाऽसौ विस्तीर्णोगंनीरजलोऽक्षोन्यश्च। एवं तस्याऽपि नगवतो विस्तीर्णा प्रज्ञा स्वयंनूरमणानंतगुणोगंनीरो ऽक्षोन्यश्च। यथा चासौ सागरोऽनाविलोऽ कलुपजल एवं नगवानपि तथाविधकर्मलेशानावादकलुषज्ञानइति। तथा कषायाविद्यं ते यस्याऽसौकपायी नकपायी अकपायी। तथा ज्ञानावरणीयादिकर्मबंधनाद्वियुक्तोमुक्तः। निक्षुरिति क्वचित्पाठः। तस्याऽयमर्थः। सत्यपि निःशेषांतरायक्षये सर्वलोकपूज्यत्वेच तथापि निक्षामात्रजीवित्वात् निक्षुरेवाऽसौ नाऽक्षीणमहानसादिलब्धिमुपजीवतीति। तथा शक्रइव देवाऽधिपतिर्द्युतिमान् दिप्तिमानिति ॥ ७ ॥

से वीरिएणं पडिपुन्नवीरिए, सुदंसणेवा णगसव्वसेट्ठे ॥ सुरालएवा सि मुदागरे से, विरायए णेगगुणोववेए ॥ ए॥ सयं सहस्साणउ जोयणाणं, तिकंम्मगे पंम्मगवेजयंते ॥ से जोयणेणवणवतिसहस्से उद्धुस्सितो हेढसहस्समेगं ॥ १० ॥

अर्थ-(सेवीरिएणंपडिपुन्नवीरिए के०) ते नगवंत श्रीमहावीर वीर्यांतराय कर्मना क्षय थकी बलेकरी प्रतिपूर्ण वीर्यवानछे एटले संघयणादिके बलवान छे (सुदंसणेवा णगसव्वसेट्ठे के०) सुदर्शन शब्दे मेरुपर्वत ते जेम सर्व पर्वतमां श्रेष्ठछे तेम नगवंत पण ऐश्वर्यगुणे करी सर्वमां श्रेष्ठछे वली (सुरालएवासि के०) देवलोकना निवासी देवताने (सेके०) तेमेरुपर्वत (मुदाकर के०) हर्षनो करनारछे (अणेगगुणोववेए के०) प्रशस्त एवा अनेक वर्णादिक गुणे करी (विरायएके०) विराजमान एटले शोनेछे तेम श्रीनगवानप ण जाणवा ॥ए॥ तेमेरु पर्वत (सयंसहस्साणउजोयणाणंके०) सतसहस्र योजन प्रमाण सर्वांगे उंच पणे जाणवो तेमज (सेके०) ते पर्वतना (तिकंम्मे के०) त्रण कांमछे एक नूमिमय बीजो सुवर्णमय त्रीजो वैमूर्यमयछे अने (पंम्मगवेजयंते के०) पंम्मगवनछे ते वेजयंति एटले ध्वजा समान शोनेछे (सेजोयणेणवणवतिसहस्से के०) ते मेरु पर्वत णवणवति एटले नवाणु हजार योजन (उद्धुस्सितो के०) उंचो जाणवो अने (हेढसहस्समेगं के०) नीचे नूमि मध्ये एक हजार योजननो कंदछे एम सर्व मली एक लाख योजन प्रमाणछे ॥ १० ॥

॥ दीपिका-सनगवान् वीर्येण बलेन प्रतिपूर्णवीर्यः सुदर्शनोमेरुर्जंबूद्वीपमध्यगतोय था नगानां पर्वतानां सर्वेषां श्रेष्ठस्तथा नगवान् गुणैः श्रेष्ठः। यथाच सुरालयः स्वर्गः सु

राणां मुदाकरोह्र्षजनकोऽनेकैर्गुणैर्वर्णरसगंधादिभिरुपेतोविराजते एवं भगवानपि ॥ ॥ ए ॥ समेरुर्योजनसहस्राणां शतमुच्चैस्त्वेन त्रीणि कंडकानि यस्य सत्रिकंडकः । तथाहि । भौमं जांबूनदं वैडूर्यंचेति । सकिंभूतः । पंडकं वनं वैजयंतीकल्पं पताकाभूतं शिरसि स्थितं यस्य सपंडकवैजयंतः सनवनवतिर्योजनसहस्राणि ऊर्ध्वोच्छ्रितः अधोपि सहस्रमेकमवगाढः ॥ १० ॥

॥ टीका–किंच (सेवीरिएणमित्यादि) । स भगवान् वीर्येणौरसेन बलेन धृतिसंहननादिभिश्च वीर्यांतरायस्य निःशेषतः क्षयात् प्रतिपूर्णवीर्यस्तथा सुदर्शनोमेरुर्जंबुद्वीपनाभिभूतः । तथा नगानां पर्वतानां सर्वेषां श्रेष्ठः प्रधानस्तथाभगवानपि वीर्येणाऽन्यैश्च गुणैः सर्वश्रेष्ठइति । तथा यथा सुरालयः स्वर्गस्तन्निवासिनां मुदाकरोह्र्षजनकः प्रशस्तवर्णरसगंधस्पर्शप्रभावादिभिर्गुणैरुपेतोविराजते शोभते । एवं भगवानप्यनेकैर्गुणैरुपेतोविराजतइति । यदिवा यथा त्रिदशालयोमुदाकरो ऽनेकैर्गुणैरुपेतोविराजतइति । एवमसावपि मेरुरिति ॥ ए ॥ पुनरपि दृष्टांतभूतमेरुवर्णनायाह । (सयंसहस्साणमित्यादि) समेरुर्योजनसहस्राणां शतमुच्चैस्त्वेन । तथा त्रीणि कंडान्यस्येति त्रिकंडः । तद्यथा भौमं जांबूनदं वैडूर्यमिति । पुनरप्यसावेव विशेष्यते । पंमकवैजयंतइति । पंमकवनं शिरसि व्यवस्थितं वैजयंतीकल्पं पताकाभूतं यस्य सतथाऽसावूर्ध्वमुच्छ्रितोनवनवतिर्योजनसहस्राण्यधोऽपि सहस्रमेकमवगाढइति. ॥ १० ॥

पुढे णभे चिठइ भूमिवठिए, जं सूरिया अणुपरिवट्टयंति ॥ से हेमवन्ने बहुनंदणेय, जंसी रतिं वेदयंती महिंदा ॥ ११ ॥ से पव्वए सद्दमहप्पगासे, विरायती कंचणमठवन्ने ॥ अणुत्तरे गिरिसु य पव्वडुग्गे, गिरीवरे से जलिएव भोमे ॥ १२ ॥

अर्थ–ते मेरु पर्वत (णभे के०) आकाशे (पुढे के०) फरशीने (चिठइ के०) रह्योछे तथा (भूमिके०) भूमिकाने (वठिएके०) अवगाही रह्योछे तिर्छो ऊंचो अने नीचो एमलोक व्यापछे (जंसूरियाअणुपरियट्टयंतिके०) जे मेरु पर्वतने चोमर अगीआरशेने एकवीश योजनने अंतरे सूर्य प्रमुख ज्योतषी देवो परिभ्रमण करता थका प्रदक्षिणा करी रह्याछे तथा (सेहेमवन्ने के०) ते मेरुपर्वत सुवर्णमय छे तथा (बहुके०) घणा परंतु अंहीं नंदनादिक चार जाणवा एवा (नंदणेयके०) रलीयामणा वनछे, जेने विषे, एटले पहेली भूमिकाने विषे भद्रशाल वनछे ते उपर पांचशे योजन ऊंचु बीजुं नंदन वनछे ते उपर साढी बाशठ हजार योजन ऊंचु चडता वली त्रीजुं सोमनस वनछे ते

पडी बत्रीश हजार योजन उंचु चडता शीखर उपर चोथु पंफग वन खंमछे (जंसीरतिं वेदयंतीमहिंदाके०) जे पर्वतने विषे महेंद्र पण क्रीडा करवाने अर्थे स्वर्ग थकी आवी ने रती सुख नोगवेछे ॥ ११ ॥ (सेपव्वए के०) ते पर्वत वली केवोछे तोके मंदर मेरु सुदर्शन सुरगिरि इत्यादिक (सद्द के०) शब्दे करी (महप्पगासे के०) मोहोटो प्रकाशवान एटले प्रसिद्ध एवो बतो (विरायतीके०) शोनेछे तथा (कंचणमहवन्ने के०) सुवर्णनी पेरे देदीप्यमान सुकुमाल वर्णछे (अणुत्तरे गिरिसुयपव्वडुग्गे के०) सर्व पर्वत मां अनुत्तर एटले प्रधान एवी पर्व एटले मेखलायें करी डुर्ग एटले विषमछे अर्थात् सामान्य जीवने चढता विषमछे तथा (गिरिवरेसेजलि एवनोमे के०) प्रधान मणी अने औषधियें करी देदीप्यमान् नूमि सरखो पृथवी प्रदेशनी पेरे जाणवो. ॥ १२ ॥

॥ दीपिका–नजसि स्पृष्टोलग्नोनूमिंवा अवगाह्य स्थितः । यं मेरुं सूर्याआदित्याअनु परिवर्तयंति पार्श्वतोच्रमंति सहेमवर्णः। बहूनि चत्वारि नंदनानि यस्य सतथा। तथाहि नूमौ नद्रशालवनं १ ततः पंचयोजनशतान्यनिक्रम्य नंदनवनं २ ततोद्विषष्ठियोजन सहस्राणि पंचशताधिकान्यतिक्रम्य सौमनसवनं ३ ततः षट्त्रिंशत्सहस्राण्यारुह्य शिखरे पंडकवनं ४ इति मेरोश्चत्वारि वनानि। तथा यस्मिन् मेरौ महेंद्रारतिं वेदयंत्यनुनवंति ॥ ११ ॥ सपर्वतोमेरुर्मंदरः सुदर्शनः सुगिरिरित्यादिनिः शब्दै र्महान् प्रकाशः प्रसिद्धिर्यस्य सशब्दमहाप्रकाशोविराजते। कांचनस्य मृष्टः शुद्धोवर्णोयस्य सतथा अनुत्तरश्लक्ष्णः। गिरिषु मध्ये पर्वनिर्मेखलानिर्डुर्गोविषमोगिरवरमणिनिरोषधीनिश्च ज्वलितोदीप्यमानइव नूमिदेशं ॥ १२ ॥

॥ टीका–तथा (पुढेणनेइत्यादि)। नजसि स्पृष्टोलग्नोननोव्याप्य तिष्ठति। तथा नूमिं चावगाह्य स्थितइति ऊर्ध्वाधस्तिर्यक्लोकसंस्पर्शी । यथा यं मेरुं सूर्यादयोज्योतिष्काअनुपरिवर्त्तयंति यस्य पाश्वेतोच्रमंतीत्यर्थ. । तथाऽसौ हेमवर्णोनिष्टसजांबूनदानस्तथा बहूनि चत्वारि नंदनवनानि यस्य सबहुनंदनवनः । तथाहि। नूमौ नद्रशालवनं ततः पंचयोजनशतान्यारुह्य मेखलायां नंदनं तथाद्विषष्टियोजनसहस्राण्यधिकान्यतिक्रम्य सौमनसं ततः षट्त्रिंशत्सहस्राण्यारुह्य शिखरे पंफकवनमिति। तदेवमसौ चतुर्नंदनवनाद्युपेतोविचित्रक्रीमास्थानसमन्वितः। यस्मिन् माहेंद्रा अप्यागत्य त्रिदशालयाद्रमणीयतरगुणेन रतिं रमणक्रीमां वेदयंत्यनुनवंतीति ॥ ११ ॥ अपिच (सेपव्वएइत्यादि) समेवाख्योऽयं पर्वतोमंदरोमेरुः सुरगिरिरित्येवमादिनिः शब्दैर्महान् प्रकाशः प्रसिद्धिर्यस्य सशब्दमहाप्रकाशोविराजते शोनते। कांचनस्येव मृष्टः श्लक्ष्णःशुद्धो वा वर्णोयस्य सतथा । एवं नविद्यते उत्तरः प्रधानोयस्याऽसाव

नुत्तरस्तथा गिरिषु मध्ये पर्वनिर्मेखलादिनिर्दंष्ट्रापर्वतैर्वा डुर्गोविषमः सामान्यजंतूनां डुरारोहोगिरिवरः पर्वतप्रधानः । तथाऽसौ मणिनिरोषधीनिश्च देदीप्यमानतया नौमइव नूदेशइव ज्वलितइति ॥ १२ ॥

महीइ मझंमि ठिते णगिंदे, पन्नाय ते सुरिय सूद्धलेसे ॥ एवं सि
रीए उस नूरिवन्ने, मणोरमे जावइ अच्चिमाली ॥ १३ ॥ सुदंस
णस्सेव जसो गिरिस्स, पचुच्चई महतो पव्वयस्स ॥ एतोवमे
समणे नायपुत्ते, जातीजसो दंसणनाणसीले ॥ १४ ॥

अर्थ—(महीइमझंमिठिते के०) मही एटले पृथवीने वचमां आवेलो जे जंबूद्वीप तेना मध्यनागे एटले वचमां वर्तेछे (णगिंदे के० नगेंद्र एटले सर्व पर्वतोंना इंद्र सरखो ए मेरु पर्वत जाणवो (ते के०) ते पर्वत लोकमां (सूरिय के०) सूर्यनी पेरे (सुद्धलेसे के०) विसुद्धनिर्मल कांतिवानछे एम (पन्नाय के०) प्रकर्षे करी जाणीये (एवं के०) ए प्रकारे करी (सिरीएउस के०) लक्ष्मीये सहित ते मेरू रत्न (नूरिवन्ने के०) अनेक वर्णे करी सहितछे तथा (मणोरमे जावइ अच्चिमाली के०) मनने रमाडनार तथा जेनी ज्योति अर्चिमाली एटले सूर्य तेनी पेरे दशे दिशिने विषे प्रकाश पामेछे ॥१३॥ हवे ए मेरु पर्वतनी उपमाउ श्रीमहावीर नगवंतनी साथे जोडेछे. (सुदंसणस्सेवजसोगिरिस्स के०) सुदर्शन नामा जे गिरि एटले पर्वत तेनोजे यश (पचुच्चई के०) कहियेछैए तेवो (महतोपव्वयस्सके०) महोटो मेरुपर्वत जाणवो (एतोवमेके०) एमेरुनी उपमाये (समणेनायपुत्ते के०) श्रमण तपस्वी ज्ञातपुत्र श्रीमहावीर देव जाणवा (केवी रीते तोके (जातीजसो दंसणनाणसीलेके०) जातियें करी, यशे करी, दर्शने करी, ज्ञाने करी अने शीले करी समस्त जेटला धर्म मार्गना प्रकाशकोछे तेमां श्रीमहावीर देव प्रधानछे.

॥ दीपिका—महारत्नप्रनापृथिव्यामध्यदेशे जंबूद्वीपस्तन्मध्ये स्थितोनगेंद्रः प्रकर्षेण ज्ञायते सूर्यवत् शुद्धलेश्यः सूर्यसमतेजाः। एवं पूर्वोक्तप्रकारेण श्रिया समेरुर्नूरिवर्णोऽनेकवर्णरत्नोपेतत्वात् मनोरमः अर्चिमाली सूर्यइव द्योतयति दिशः ॥ १३ ॥ एतद्यशः कीर्तनं सुदर्शनस्य गिरेर्मेरोः प्रोच्यते महतः पर्वतस्य एतडुपमएतत्तुल्यः श्रमणोजातपुत्रः श्रीवीरः सजात्या यशसा दर्शनज्ञानाभ्यां शीलेन वा श्रेष्ठः । अर्श आदित्वान्मत्वर्थीयाच्प्रत्ययेन योज्यं- ॥ १४ ॥

॥ टीका—किंच (महीइइत्यादि) । मह्यां रत्नप्रनापृथिव्यां मध्यदेशे जंबूद्विपस्तस्याऽपि वहुमध्यदेशे सोमनस, विद्युत्प्रन, गंधमादन माल्यवंत, दंष्ट्रापर्वतचतुष्टयोपशोनितः समनू

नागे दशसहस्रविस्तीर्णः शिरसि सहस्रमेकमधस्तादपि दशसहस्राणि नवतियोजनानि योजनैकादशनागैर्दशनिरधिकानि । विस्तीर्णश्चत्वारिंशद्योजनोछ्रितचूडोपशोनितोनगेंड्ः पर्वतप्रधानोमेरुः प्रकर्षेण लोके ज्ञायते सूर्यवच्छुद्धलेश्यआदित्यसमानतेजाः । एवमनंतरोक्तप्रकारया श्रिया । तुशब्दाद्विशिष्टतरया समेरुर्नूरिवर्णोऽनेकवर्णोऽनेकवर्णरत्नोपशोनितत्वात् । मनोऽंत.करणं रमयतीति मनोरमोर्चिमालीवादित्यइव स्वतेजसा द्योतयति दशदिशः प्रकाशयतीति ॥१३॥ सांप्रतं मेरुदृष्टांतोपक्षेपेण दार्ष्टांतिकं दर्शयति । (सुदंसणेत्यादि) एतदनंतरोक्तं यशः कीर्तनं सुदर्शनस्य मेरुगिरेर्महापर्वतस्य प्रोच्यते । सांप्रतमेतदेव नगवति दार्ष्टांतिके योज्यते । एषाऽनंतरोक्तोपमा यस्यसएतडुपमः । कोऽसौ । श्रीम्यतीति श्रमणस्तपोनिष्टसदेहोज्ञाताः क्षत्रियास्तेषां पुत्रः श्रीमन्महावीरवर्द्धमानस्वामा त्यर्थः । सच जात्या सर्वजातिन्योयशसाऽशेषयशस्विन्योदर्शनज्ञानान्यां सकलदर्शनज्ञानिन्यः शीलेन समस्तशीलवद्भ्यः श्रेष्ठः प्रधानः । अक्षरघटनातु जात्यादीनां कृतद्वंद्वानामतिशायने अर्शआदित्वादच्प्रत्ययविधानेन विधेयेति ॥ १४ ॥

गिरिवरेवा निसहो ययाणं, रुयएव सेठे वलयायताणं ॥ तउव
मे से जगनूइपन्ने, मुणीण मझे तमुदाहु पन्ने ॥ १५ ॥ अणुत्तरं
धम्ममुईरइत्ता, अणुत्तरं झाणवरं झियाइ ॥ सुसुक्कसुक्कं अप
गंमसुक्कं, संखिंडुएगंतवदातसुक्कं ॥ १६ ॥

अर्थ-(गिरिवरेवानिसहोययाणं के०) जेम लांब पणे समस्त पर्वतमां निषध पर्वत श्रेष्ठछे तथा (रुयएवसेठेवलयायताणं के०) जेम वर्त्तुलाकार समस्त पर्वतमांहे रुचक नामा पर्वत श्रेष्ठछे (तउवमेसेजगनूइपन्ने के०) तेनी उपमायें श्रीमहावीर देवजगतमां नूतिप्रज्ञ एटले प्रज्ञायें करी श्रेष्ठ जाणवा (मुणीणमझेके०) समस्त मुनिउंमांहे (तःमुदाहुपन्ने के०) तत्स्वरूप जाणवाने अत्यंतज्ञानवंत जाणवा प्रकर्षेणजानातीति प्रज्ञ ए नावजाणवो ॥ १५ ॥ ते श्रीमहावीर (अनुत्तरंधर्मं के०) प्रधान एवोजे सर्वोत्तम धर्म तेने (उदिरयित्वा के०) प्ररुपीने प्रकाशीने (अणुत्तरंझाणवरं कें०) प्रधानमां प्रधान एवोजे शुक्लध्यान तेने (झियाइ के०) ध्यावे ते नगवंतने योग निरुंध काले सूक्ष्म काययोग रुंधनावसरे शुक्ल ध्याननो त्रीजो नेद जे सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपति एवे नामेछे ते थाय तथा योगनिरोध थया पठी शुक्लध्याननो चोथो नेद उपरतक्रिया अने अनिवृत्ति नामे ध्यावे ते ध्यान वर्णवेछे (सुसुक्कसुक्कंअपगंमसुक्कं के०) सुष्टु प्रधान शुक्लवस्तुनी परे शुक्ल उज्वल अपगंम एटले दोष रहित अर्थात मिथ्यात्व रूप काट कलंक तेणे करी

रहित एवुं निर्दोष शुक्ल ध्यान सुवर्णनी पेरे उज्वलछे अथवा गंम शब्दे उदकनुं फेण ते सरखुं उज्वलछे तथा (संखिंड के०) शंख अने चंद्रमा तेनीपेरे (एगंतवदातसुक्कं के०) एकांत अवदात एटले अत्यंत शुक्ल एवुं शुक्ल ध्यानछे, तेने ध्यावे ॥ १६ ॥

॥ दीपिका—यथा निषधोगिरिवराणां गिरीणामायतानां मध्ये दीर्घत्वेन श्रेष्ठस्तथा वलयायतानां मध्ये रुचकः पर्वतः श्रेष्ठः। सहि रुचकद्वयांतवर्ती मानसोत्तरगिरिरिव वृत्तायतोऽसंख्येययोजनानि परिक्षेपेण स जगवान् तडपमोजगति संसारे जूतिप्रज्ञः प्रजूतज्ञानोमुनीनां मध्ये प्रज्ञः। एवं तत्स्वरूपविदउदाहुरुक्तवंतः॥१५॥ अणुत्तरं उत्कृष्टधर्ममुदीर्य कथयित्वा ऽनुत्तरं प्रधानं ध्यानं ध्यायति सुष्ठु शुक्लवत् शुक्लं ध्यानं अपगतं गंडं दोषो यस्मात्तदपगंडं निर्दोषं शुक्लं। अथवा अपगंडमुदकफेनं तत्तुल्यं शंखेंडुवत् एकांतावदातं शुक्लध्यानोत्तरजेदद्वयं ध्यायति। तथाहि। योगनिरोधकाले सूक्ष्मं काययोगं निरुंधन् शुक्लध्यानस्य तृतीयं जेदं सूक्ष्मक्रियमप्रतिपाताख्यं तथा निरुद्धयोगं चतुर्थं शुक्लध्यानजेदं व्युपरतक्रियमनिवृत्त्याख्यं ध्यानं ध्यायतीति ॥ १६ ॥

॥ टीका—पुनरपि दृष्टांतद्वारेणैव जगवतोव्यावर्णनमाह। (गिरिवरेत्यादि) यथा निषधोगिरिवरोगिरीणामायतानां मध्ये जंबुद्वीपेऽन्येषु वा द्वीपेषु दैर्घ्येण श्रेष्ठः प्रधानः तथा वलयाऽऽयतानां मध्ये रुचकः पर्वतोऽन्येन्योवलयाय तत्वेन। यथा प्रधानः सहि रुचकद्वीपांतर्वर्ती मानुषोत्तरपर्वतइव वृत्तायतोऽसंख्येययोजनानि परिक्षेपेणेति। तथा सजगवानपि तडपमः। यथा वाऽऽयतवृत्तताभ्यां श्रेष्ठश्च। एवं जगवानपि जगति संसारे जूतिप्रज्ञः प्रजूतज्ञातप्रज्ञयाश्रेष्ठइत्यर्थः। तथा परमुनीनां मध्ये प्रकर्षेण जानातीति प्रज्ञः। एवं तत्स्वरूपविदउदाहुरुदाहृतवंतउक्तवंतइत्यर्थः ॥ १५ ॥ किंचाऽन्यत् (अणुत्तरमित्यादि) नाऽस्योत्तरः प्रधानोऽन्योधर्मोविद्यते इत्यनुत्तरः। तमेवंजूतं धर्मं उत् प्राबल्येन ईरयित्वा कथयित्वा प्रकाश्याऽनुत्तरं प्रधानं ध्यानवरं ध्यानश्रेष्ठं ध्यायति ॥ तथाहि। उत्पन्नज्ञानोजगवान् योगनिरोधकाले सूक्ष्मं काययोगं निरुंधन् शुक्लध्यानस्य तृतीयं जेदं सूक्ष्मक्रियमप्रतिपाताख्यं। तथा निरुद्धयोगं चतुर्थंशुक्लध्यानजेदं व्युपरतक्रियमनिवृत्ताख्यं ध्यायति। एतदेव दर्शयति। सुष्ठु शुक्लवच्छुक्लं ध्यानं। तथा अपगतं गंडमपद्रव्यं यस्य तदपगतगंमं निर्दोषार्जुनसुवर्णवत् शुक्लं। यदिवा गंडमुदकफेनं तत्तुल्यतिति जावः। तथा शंखेंडुवदेकांतावदातं शुभ्रं शुक्लं शुक्लध्यानोत्तरं जेदद्वयं ध्यायतीति ॥ १६ ॥

अणुत्तरग्गं परमं महेसी, असेसकम्मं स विसोहइत्ता॥सिद्धिं ग
ते साइमणंतपत्ते, नाणेण सीलेण य दंसणेण॥१७॥रुक्खेसु णाते

जह सामलीवा, जस्सिं रतिं वेययंती सुवन्ना ॥ वणेसु वाणंदण माहु सेठं, नाणेण सीलेण य नूतिपन्ने ॥ १८ ॥

अर्थ—ते नगवंत शैलेसी अवस्थायें शुक्लध्यानना चोथा नेदने अनंतर (साइके०) सादि अने (अणंतके०) अनंत एवी (सिद्धिंगते के०) सिद्धिगतिने विषे पोहोंता ते सिद्धिकेवीछे तोके, (अणुतरग्गं के०) सर्वमां उत्तम तथा लोकने अग्रे वर्त्तमानछे ते कारण माटे (परमंमहेसी के०) परम प्रधान मोहोटा रुषीश्वर श्रीमहावीर देवछे जे (नाणेणसीलेणयदंसणेणके०) ज्ञाने करी दर्शनेकरी चारित्रशीलेकरी (असेसकम्मंसविसोहइत्ताके०) समस्तज्ञानावर्णादिक आठेकर्मने शोधी कर्म खपावीने मुक्तिनेविषे (पत्तेके०) पोहोता. ॥१७॥ वली उपमायें करी नगवंतने स्तवेछे; (जहके०) जेम (रुक्खेसुके०) वृक्षो मांहे (णातेके०) प्रसिद्ध देवकुरु उत्तरकुरुने विषे व्यवस्थित एवुं (सामलीवाके०) साल्मली वृक्ष मोहोटुंछे (जस्सिंके०) जेनेविषे (सुवन्नाके०) सुवर्ण कुमारकादिक नुवनपति देवो आवीने (रतिंवेययंती के०) रतिवेदेछे एटले क्रीडा रूप सुख नोगवेछे तथा जेम (वणेसुवाके०) वनने विषे (णंदण के०) नंदन वन (सेठंके०) श्रेष्ठ (आहुके०) कह्युंछे उत्तम शोनाये करी सहित कह्युंछे तेम (नाणेणसीलेणयनूतिपन्ने के०) ज्ञान अने शील एटले चारित्र तेणे करी, श्री महावीर महाप्राज्ञ एटले मोहोटा जाणवा. ॥१८॥

॥ दीपिका—अनुत्तरां प्रधानां अग्र्यां च सर्वोत्तमां परमां सिद्धिं गतिं साद्यनंतां प्राप्तोमहर्षिः सअशेषं कर्म विशोध्यापनीय केन ज्ञानेन दर्शनेन शीलेनच कर्म क्षपयित्वा ॥ ॥ १७ ॥ वृक्षेषु मध्ये यथा ज्ञातः प्रसिद्धोदेवकुरुस्थितः कूटशाल्मलीवृक्षः। यस्मिन्वृक्षे सुपर्णानवनपतिविशेषारतिं क्रीडां वेदयंतीति । वनेषु मध्ये यथा नंदनं वनं श्रेष्ठमाहुस्तथा नगवान् ज्ञानेन शीलेनच श्रेष्ठोनूतिप्रज्ञः प्रवृद्धज्ञानः ॥ १८ ॥

॥ टीका—अपिच (अणुत्तरग्गमित्यादि) तथाऽसौ नगवान् शैलेऽश्यवस्थापादितशुक्लध्यानचतुर्थनेदानंतरं साद्यपर्यवसानां सिद्धिं गतिं पंचमीं प्राप्तः । सिद्धिगतिमेव विशिनष्टि । अनुत्तरा चासौ सर्वोत्तमत्वादग्र्याच लोकाग्रव्यवस्थितत्वादनुत्तराग्र्या तां परमां प्रधानां महर्षिरसावत्यंतोग्रतपोविशेषनिष्टप्तदेहत्वादअशेषं कर्म ज्ञानावरणादिकं विशोध्यापनीय च विशिष्टेन ज्ञानेन दर्शनेन शीलेनच क्षायिकेन सिद्धिं गतिं प्राप्त इति मीलनीयं ॥ १७ ॥ पुनरपि दृष्टांतद्वारेण नगवतः स्तुतिमाह । (रुक्खेसुणाएइत्यादि) वृक्षेषु मध्ये यथा ज्ञातः प्रसिद्धोदेवकुरुव्यवस्थितः शाल्मलीवृक्षः सच नवनपतिक्रीडास्थानं । यत्र व्यवस्थिताअन्यतश्चागत्य सुपर्णानवनपतिविशेषारतिं रमण

क्रीडां वेदयंत्यनुभवंति । वनेषु च मध्ये यथा नंदनं देवानां क्रीडास्थानं प्रधानं ।.एवं भगवानपि ज्ञानेन केवलाख्येन समस्तपदार्थाविर्भावकेन शीलेन च चारित्रेण यथा ख्यातेन श्रेष्ठः प्रधानोभूतिप्रज्ञः प्रवृद्धज्ञानोभगवानिति ॥ १८ ॥

थणियंव सद्दाण अणुत्तरे उ, चंदोव ताराण महाणुभावे ॥ गंधे सु वा चंदणमाहु सेठं, एवं मुणीणं अपडिन्नमाहु ॥ १९॥ जहा सयंभू उदहीण सेठे, नागेसु वा धरणिंदमाहुसेठे ॥ खोउदए वा रसवेजयंते, तवोवहाणे मुणिवेजयंते ॥ २० ॥

अर्थ—जेम (सद्दाण के०) शब्दमां (थणियंव के०) स्तनितं एटले मेघनी गर्जनानो शब्द (अणुत्तरेउके०) प्रधान एटले रुडो कह्योछे तथा (चंदोवताराणमहाणुभावे के०) जेम ग्रह नक्षत्र अने ताराने विषे चंद्रमा महानुभाव कह्योछे तथा (गंधेसुवाचंदणमाहुसेठंके०) जेमसमस्त गंधमां गोशीर्षे बावना चंदन श्रेष्ठ कह्युंछे (एवं के०) एम (मुणीणं के०) समस्त साधुमां (अपडिन्नमाहुके०) अप्रतिज्ञ एटले आलोक परलोकनी आशंसा करवानी जेने प्रतिज्ञा नथी अर्थात् इहलोक परलोकनी आशंसा रहित एवा श्रीमहावीरने मोहोटा श्रेष्ठ कह्याछे ॥ १९ ॥ (जहासयंभूउदहीणसेठे के०) जेम समस्त समुद्रमां स्वयंभूरमण समुद्र श्रेष्ठ कह्योछे (नागेसुवाधरणिंदमाहुसेठे के०) जेम नागकुमार देवोमां धरणेंद्रनामा इंद्र श्रेष्ठ कह्योछे (खोउदएवारसवेजयंतेके०) जेम इक्षुरसोदक समस्त रसमां प्रधान वेजयंत एटले वखाण्योछे (तवोवहाणेमुणिवेजयंतेके०) तेम तप उपधाने करी तपो विशेषे करी समस्त मुनिमां श्रीमहावीर ने प्रधानवखाण्याछे॥२०॥

॥ दीपिका—यथा शब्दानां मध्ये स्तनितं मेघगर्जितमनुत्तरं प्रधानं । तुर्विशेषणे । यथा ताराणां मध्ये चंद्रोमहानुभावः श्रेष्ठः । गंधेषु मध्ये यथा चंदनं श्रेष्ठं तज्ज्ञा आहुः । तथा मुनीनां मध्ये भगवंतं श्रेष्ठमाहुः । किंभूतं । नास्य प्रतिज्ञा इहलोकपरलोकाशंसिनी विद्यते इत्यप्रतिज्ञस्तं ॥ १९ ॥ स्वयंभुवस्ते यत्रागत्य रमंतइति स्वयंभूरमणः सयथा उदधीनां समुद्राणां मध्ये श्रेष्ठः । नागेषु भवनपतिविशेषेषु धरणेंद्रं श्रेष्ठमाहुः । (खोउदए त्ति) इक्षुरसइव उदकं यस्य सइक्षुरसोदकः समुद्रोयथा रसमाश्रित्य वैजयंत. प्रधानः । एवं तपउधानेन तपोविशेषेण मुनिर्भगवान् वैजयंतः प्रधानः ॥ २० ॥

॥ टीका—अपिच (थणियमित्यादि) यथा शब्दानां मध्ये स्तनितं मेघगर्जितं तदनुत्तरं प्रधानं । तुशब्दोविशेषणार्थः समुच्चयार्थो वा । तारकाणां च नक्षत्राणां मध्ये यथा

चंद्रोमहानुभावः सकलरजनिवृत्तिकारिण्या कांत्यामनोरमः श्रेष्ठः। गंधेष्विति गुणगुणि नोरभेदान्मतुब्लोपाद्वा । गंधवत्सु मध्ये यथा चंदनं गोशीर्षकाख्यं मलयजं वा तज्ज्ञाः श्रेष्ठमाहुः । एवं मुनीनां महर्षीणां मध्ये भगवंतं नाऽस्य प्रतिज्ञा इहलोकपरलोकानां शंसिनी विद्यते इत्यप्रतिज्ञस्तमेवंभूतं श्रेष्ठमाहुरिति ॥ १९ ॥ अपिच । (जहा सयंभूइत्यादि) स्वयं भवंतीति स्वयंभुवोदेवास्ते तत्राऽऽगत्य रमंतीति स्वयंभूरमणस्तदेवमुदधीनां समुद्राणां मध्ये यथा स्वयंभूरमणः समुद्रः समस्तद्वीपसागरपर्यंतवर्ती श्रेष्ठः प्रधानोनागेषु च भवनपतिविशेषेषु मध्ये धरणेंद्रं नागेंद्रं यथा श्रेष्ठमाहुः । तथा (खोदएइति) इक्षुरसइवोदकं यस्य सइक्षुरसोदकः सयथा रसमाश्रित्य वैजयंतः प्रधानः स्वगुणैरपरसमुद्राणां पताकेवोपरि व्यवस्थितः । एवं तपउपधानेन विशिष्टतपोविशेषेण मनुते जगतस्त्रिकालावस्थामिति मुनिर्भगवान् वैजयंतः प्रधानः समस्तलोकस्य महातपसा वैजयंतीवोपरि व्यवस्थितइति ॥ २० ॥

हत्थीसु एरावणमाहु णाए, सीहो मिगाणं सलिलाण गंगा, प
क्खीसुवा गेरुले वेणुदेवे, निव्वाणवादीणिह णायपुत्ते ॥ २१ ॥
जोहेसु णाए जह वीससेणे, पुप्फेसुवा जह अरविंदमाहु॥खत्तीण
सेठे जह दंतवक्के, इसीण सेठे तह वद्धमाणे ॥ २२ ॥

अर्थ—(हत्थीसुएरावणमाहुणाएके०) जेम हस्तिउने विषे इंद्रनुवाहन ऐरावणहस्ति प्रधान कह्योछे. (सीहोमिगाणंके०) जेम मृग प्रमुख श्वापद जनावरोमां सिंह प्रधानकह्योछे (सलिलाणगंगाके०) भरतक्षेत्रनी अपेक्षायें जेमपाणीमां गंगानदिनुंपाणी निर्मल कह्युंछे(पक्खीशुवागेरुलेवेणुदेवेके०) जेम समस्त पक्षीउमां गरुड मोहोटो कह्योछे अपरनामे वेणुदेव ए जेम प्रधान कह्याछे (निव्वाणवादीणिहके०) तेम निर्वाणजे मोक्ष मार्ग तेना स्थापन करनारा वादीलोक मां (णायपुत्ते के०) श्रीमहावीर मोहोटा कह्याछे. ॥२१॥ (जहके०) जेम (जोहेसु के०) योद्धाभटो मां (णाएके०) ज्ञातविदित (वीससेणेके०) विश्वसेन एटले चक्रवर्त्ति प्रधान कह्योछे (पुप्फेसुवाजहअरविंदमाहु के०) जेम फूलमां अरविंद कमल मोहोटुं कह्युंछे (खत्तीणसेठेजहदंतवक्के के०) जेम क्षत्रीमां दंतवाक्य एटले चक्रवर्त्ति प्रधान कह्योछे (तह के०) तेम (इसीणके०) समस्त ऋषीउ मां (वद्धमाणे के०) श्रीवर्द्धमान स्वामि (सेठे के०) श्रेष्ठ कह्याछे. ॥ २२ ॥

॥ दीपिका—हस्तिषु यथा ऐरावतं इंद्रगजं ज्ञातं प्रसिद्धं दृष्टांतभूतमाहुस्तज्ज्ञाः । यथा

मृगाणां श्वापदानां मध्ये सिंहः प्रधानः। नरतक्षेत्रापेक्षया यथोदकानां मध्ये गंगोदकं प्रधानं यथा च पक्षिणां मध्ये गरुडोऽपरनामा वेणुदेवः प्रधानस्तथानिर्वाणपथदेश कानां ज्ञातपुत्रः श्रीवीरः प्रधानोयथास्थितमोक्षार्थवादित्वात् ॥ २१ ॥ योधानां मध्ये यथा विश्वा संपूर्णा सेना यस्य सविश्वसेनश्चक्री ज्ञातः पुष्पेषु यथाऽरविंदं प्रधानमाहुः क्षत्रियाणां मध्ये यथा दांताउपशांतावाक्येनवा शत्रवोयस्मात्सदांतवाक्यश्चक्रवर्ती प्र धानस्तथा ऋषीणां मध्ये श्रीवर्धमानः श्रेष्ठः ॥ २२ ॥

॥ टीका-(हत्थीसुइत्यादि) हस्तिषु करिवरेषु मध्ये यथा ऐरावतं शक्रवाहनं ज्ञातं प्रसिद्धं दृष्टांतभूतं वा प्रधानमाहुस्तज्ज्ञाः। मृगाणां च श्वापदानां मध्ये यथा सिंहः केसरी प्रधानस्तथा भरतक्षेत्रापेक्षया सलिलानां मध्ये यथा गंगासलिलं प्रधानभावमनुभव ति। पक्षिषु मध्ये यथा गरुत्मान् वेणुदेवाऽपरनामा प्राधान्येन व्यवस्थितः। एवं निर्वा णं सिद्धिक्षेत्राख्यं कर्मच्युतिलक्षणंवा स्वरूप तस्तउपायप्राप्तिहेतुतोवा वदितुं शीलं येषां ते तथा तेषां मध्ये ज्ञाताः क्षत्रियास्तेषां पुत्रोऽपत्यं ज्ञातपुत्रः श्रीमन्महावीरवर्धमान स्वामी सप्रधानइति यथावस्थितनिर्वाणार्थवादित्वादित्यर्थः ॥ २१ ॥ अपिच (जोहे सुइत्यादि) योधेषु मध्ये ज्ञातोविदितोदृष्टांतभूतोवा विश्वा हस्त्यश्वरथपदातिचतुरं गबलसमेता सेना यस्य सविश्वसेनश्चक्रवर्ती यथाऽसौप्रधानः पुष्पेषु च मध्ये यथाऽ रविंदं प्रधानमाहुः। तथा क्षतात् त्रायंतइति क्षत्रियास्तेषां मध्ये दांताउपशांतायस्य वाक्येनैव शत्रवः सदांतवाक्यश्चक्रवर्ती यथासौ श्रेष्ठः। तदेवं बहून् दृष्टांतान् प्रशस्तान् प्रदर्श्याऽधुना भगवंतं दार्ष्टांतिकं स्वनामग्राहमाह। तथा ऋषीणां मध्ये श्रीमान् वर्धमानस्वामी श्रेष्ठइति ॥ २२ ॥

दाणाण सेठं अभयप्पयाणं, सच्चेसुवा अणवज्जं वयंति ॥ तवेसु
वा उत्तमबंभचेरं, लोगुत्तमे समणे नायपुत्ते ॥ २३ ॥ ठिईण से
ठा लवसत्तमावा, सभा सुहम्माव सभाण सेठा ॥ निव्वाणसेठा
जह सव्वधम्मा, ण णायपुत्ता परमत्थि नाणी ॥ २४ ॥

अर्थ-(दाणाणसेठंअभयप्पयाणं) जेम समस्त दानने विषे अभयदान श्रेष्ठ कह्युं (सच्चेसुवाअणवज्जंवयंति के०) जेम सत्य वचनमां निरवद्य एटले जे वचनना उच्चारे करी परने पीडा उत्पन्न नथाय ते वचन श्रेष्ठ वखाण्युंछे (तवेसुवाउत्तमबंभचेरं के०) जेम सर्व तपमां नवविध ब्रह्मगुप्ति सहित ब्रह्मचर्य श्रेष्ठकह्योछे (लोगुत्तमेसमणेनायपुत्ते के०) तेम लोकमां उत्तम श्रमण तपस्वी श्रीमहावीर देव श्रेष्ठ वखाण्याछे. ॥ २३ ॥

(विईएसेठ्ठालवसत्तमावा के०) जेम स्थितिमां प्रधान लव सप्तम देवता एटले पंचानुत्तर विमानवासी देवो कह्याछे कारणके तेमनुं मनुष्यमां सात लव प्रमाण आयु कर्म जो शेष रह्युं होत तो मुक्ति पामत तेमाटेएने लव सप्तम देवो कहियें (सजासुहम्मावस जाणसेठ्ठा के०) अन्य सजाउमां जेम सौधर्मी सजा श्रेष्ठ कहीछे (निवाणसेठ्ठाजहस वधम्मा के०) जेम समस्त धर्मोने विषे निर्वाण जे मोक्ष ते प्रधान कह्योछे केमके अन्य दर्शनीउ पण पोत पोताना धर्मने विषे मोक्ष प्रधान बोलेछे माटे. (णणायपुत्ता परमत्थीनाणी के०) तेम ज्ञात पुत्र श्रीमहावीर थकी अन्य कोइ ज्ञानी नथी एटले सर्वे मां उत्तम ज्ञानवंत श्रीमहावीर देव जाणवा. ॥ २४ ॥

॥ दीपिका—यथा दानानां मध्येऽजयप्रदानं श्रेष्ठं । यडुक्तं । दीयते म्रियमाणस्य कोटिं जीवितमेव वा ॥ धनकोटिं न गृण्हीयात्सर्वोजीवितुमिच्छति ॥ १ ॥ अत्रदृष्टांतः । वसंतपुरे अरिदमनोराजा चतुर्वधूयुक्तोऽन्यदा गवाक्षे क्रीडति तेन सपत्नीकेन चौरोवधस्थानं नीयमानोदृष्टः पत्निजिः पृष्टं किमनेनापराद्धं । एकेन राजनरेण तत्स्वरूपमुक्तं । अनेन चौर्यं कृतं । ततएकया पत्न्या नृपपार्श्वे पूर्वदत्तोवरोमार्गितएकदिनं चौरोमोच्यइति । राज्ञापि प्रतिपन्नं ततस्तया स्नानजोजनसत्काराादिपूर्वकमलंकारैरलंकृतोदीनारसहस्रव्ययेन शब्दादिविषयान् प्रापितोदिनमेकं पालितश्चौरः । द्वितीयदिने द्वितीयया दीनारलक्षव्ययेन लालितस्तृतीयदिने तृतीयया दीनारकोटिव्ययेन सत्कारितश्चतुर्थ्यातु राज्ञोनुमत्या मरणाद्रक्षितोनान्यत्किंचिडुपकृतं सान्यपत्नीजिर्हसिता नानया किंचिद्दत्तमिति । ततस्तासां बहूपकारविषये विवादे जाते राज्ञा चौरएव कार्यं पृष्टोयथा तव कया बहूपकृतमिति तेनोक्तं मया मरणमहाजयजीतेन स्नानादिसुखं किंचिन्न ज्ञातं । अग्रे पुनरजयदानाकर्णनात्परमं सुखमनुजवामीति सर्वदानानामजयदानं श्रेष्ठमिति स्थितं । सत्येषु वाक्येषु यदनवद्यं पीडानुत्पादकं वाक्यं तत्श्रेष्ठं । सत्यं तदेव यत्परपीडानुत्पादकं । यतः । लोकेपि श्रूयते वादोयथाऽसत्येन कौशिकः ॥ पतितोवधयुक्तेन नरके तीव्रवेदने ॥ १ ॥ तथा तहेव काणंकाणित्ति पंमगंपंमगत्ति वा ॥ वाहिअं वाहिरोगिति ताणं चोरित्ति नोवते इति ॥ तपःसु यथा ब्रह्मचर्यमुत्तमं तथा लोकोत्तमः श्रमणोज्ञातपुत्रः श्रीवीरः ॥२३॥ स्थितिमतां मध्ये यथा लवसप्तमाः पंचानुत्तरविमानस्थादेवाः सर्वोत्कृष्टस्थितयः प्रधानाः। तेषां यदि सप्तलवाआयुष्कमजविष्यत्ततः सिद्धिगमनमजविष्यदिति। यथा सजानां मध्ये सौधर्मी सजा श्रेष्ठा। यथा सर्वधर्मानिर्वाणश्रेष्ठामोक्षप्रधानाः।कुदर्शिनोपि स्वधर्मं निर्वाणफलदमाहुः। एवं ज्ञातपुत्रात् श्रीवीरात् परोज्ञानी नास्तीति सर्वेज्योधिकज्ञानइत्यर्थः॥२४

॥ टीका—तथा (दाणाणमित्यादि)। तथा स्वपरानुग्रहार्थमर्थिने दीयतइति दानमनेकधा। तेषां मध्ये जीवानां जीवितार्थिनां त्राणकारित्वादभयदानं श्रेष्ठं । तडुक्तं। दीयते म्रियमाणस्य, कोटिं जीवितमेव वा। धनकोटिं नगृएह्नीयात्, सर्वोजीवितुमिच्छति गोपालांगनादीनां दृष्टांत द्वारेणार्थोबुद्धौसुखेनारोहतीति । अतोऽभयप्रदानप्राधान्यख्यापनार्थं कथानकमिदं । वसंतपुरे नगरे अरिदमनोनाम राजा सच कदाचिच्चतुर्वधूसमेतो वातायनस्थः क्रीडायमानस्तिष्ठति । तेन कदाचिच्चौरोरक्तकरवीरकृतसुंमुमालोरक्तपरिधानोरक्तचंदनोपलिप्तश्च प्रहतवध्यडिंडिमोराजमार्गेण नीयमानः सपत्नीकेन दृष्टोदृष्ट्वा च ताभिः पृष्टं किमनेनाकारीति । तासामेकेन राजपुरुषेणाऽऽवेदितं यथा परद्रव्यापहारेण राजविरुद्धमिति । ततएकया राजा विज्ञप्तोयथा योभवता मम प्राग्वरः प्रतिपन्नः सोऽधुना दीयतां यथाऽहमस्योपकरोमि। किंचित् राज्ञापि प्रतिपन्नं ततस्तया स्नानादिपुरःसरमलंकारेणाऽलंकृतोदीनारसहस्रव्ययेन पंचविधान् शब्दादीन् विषयानेकमहःप्रापितः पुनर्द्वितीयथाऽपितथैव द्वितीयमहोदीनारशतसहस्रव्ययेन लालितः। ततस्तृतीयया तृतीयमहोदीनारकोटिव्ययेनसत्कारितः। चतुर्थ्यातु राजानुमत्या मरणाद्रक्षितो ऽभयप्रदानेन । ततोऽसावऽन्याभिर्हसितानाऽस्य त्वया किंचिद्दत्तमिति। तदेव तासां परस्परबहूपकारविषये विवादे राज्ञाऽसावेव चौरः समाहूय पृष्टोयथाकेन तव बहूपकृतमिति तेनाऽप्यभाणि। यथा न मया मरणमहाभयभीतेन किंचित् स्नानादिकं सुखं विज्ञायीति । अभयप्रदानाकर्णनेन पुनर्जन्मानमिवात्मानमवैमीति । अतः सर्वदानानामभयप्रदानं श्रेष्ठमिति स्थितं । तथा सत्येषु च वाक्येषु च यदनवद्यमपापं परपीडानुत्पादकं तत्श्रेष्ठं वदंति। नपुनः परपीडोत्पादकं सत्यं सद्भ्योहितं सत्यमितिकृत्वा। तथाचोक्तं। लोकेऽपि श्रूयते वादो, यथा सत्येन कौशिकः॥ पतितोवधयुक्तेन, नरके तीव्रवेदने । अन्यच्च। तहेवकाणंकाणत्ति पंमगंपंमगत्तिवा। वाहियंवाहिरोगित्ति, तेणंचोरोत्तिनोवदे ॥ तपस्सु मध्ये यथैवोत्तमं नवविधब्रह्मगुप्त्युपेतं ब्रह्मचर्यं प्रधानं भवति। तथा सर्वलोकोत्तमरूपसंपदा सर्वातिशायिन्या क्षायकज्ञानदर्शनाभ्यां शीलेन ज्ञातपुत्रोभगवान् श्रमणः प्रधानइति ॥ २३ ॥ किंच (ठिईणमित्यादि) स्थितिमतां मध्ये यथा लवसत्तमाः पंचानुत्तरविमानवासिनोदेवाः सर्वोत्कृष्टस्थितिवर्तिनः प्रधानायदि किल तेषां सप्तलवाआयुष्कमभविष्यत्ततः सिद्धिगमनमभविष्यदिति । अतोलवसत्तमास्तेऽभिधीयंते। सभानां च पर्षदांच मध्ये यथासौधर्माधिपर्षच्छ्रेष्ठा बहुभिः क्रीडास्थानैरुपेतत्वात्तथा। यथा सर्वेऽपि धर्मानिर्वाणफलमेव स्वदर्शनं ब्रुवते। यतः एवं ज्ञातपुत्रात् वीरवर्धमानस्वामिनः सर्वज्ञात् सकाशात् परं प्रधानं अन्यद्विज्ञानं नास्ति सर्वथैव भगवानपरज्ञानिभ्योऽधिकज्ञानोभवतीति भावः॥ २४ ॥

पुढोवमे धुणइ विगयगेहि, नसंणिहिं कुवति आसुपन्ने ॥ तरिउं समुदंच महाभवोघं, अभयंकरे वीर अणंतचक्खू ॥ २५ ॥ कोहं च माणंच तहेव मायं, लोभं चउत्थं अज्झत्थदोसा ॥ एआणि वंता अरहामहेसी ण कुवई पाव ण कारवेइ ॥ २६ ॥

अर्थ-(पुढोवमेके०) जेम पृथवी सकल पदार्थने आधार भूतछे तेम श्रीमहावीर सर्व सत्वने अभय प्रदाने करी रुडा उपदेशना दान थकी आधारभूतछे. (धुणइके०) अष्टप्रकारना कर्म खपाव्याछे (विगयगेहि के०) विगतगृधि एटले अभिलाष रहित थयाछे वली (नसंणिहिंकुवति के०) संनिध नकरे एटले कांइ पण संचय करे नही तथा (आसुपन्नेके०) उतावली प्रज्ञाना धणी एटले केवली एवा भगवंत जाणवा (तरिउंसमुदंचमहाभवोघं के०) तथा समुद्रनी पेरे तरवाने डुस्तर एवो मोहोटो संसार समुद्र तेने तरीने मुक्तियें पोहोताछे, वली श्रीमहावीर केवाछे तोके, (अभयंकरेके०) अभय करनार एटले सर्व जीवना भयना टालनारछे तथा (वीरके०) शूरवीरछे (अणंतचक्खू के०) अनंत चक्षुना धणी एटले सर्व स्वरूप देखेछे जाणेछे. ॥ २५ ॥ (कोहंचमाणंचतहेवमायं के०) क्रोध वली मान तथा माया तेमज वली (लोभंके०) लोभते परवंचना रूप जाणवो (चउत्थंके०) एचार (अज्झत्थदोसा के०) अध्यात्म दोषछे तेने संसार वधारवाना कारण जाणीने (एआणिवंता के०) एचारे कषायने छांमीने श्रीमहावीर (अरहामहेसी के०) अरहंत थया महारिषी थया ते कारण माटे (णकुवईपावणकारवेइ के०) श्रीमहावीर स्वामि पोते पाप करे नही तथा बीजा पासे पाप करावे नही अने पापकर्मना करनारनी अनुमोदना पण करे नही. ॥ २६ ॥

॥ दीपिका-यथा पृथ्वी सर्वसहा तथा भगवानपि तडुपमः । विगतगृद्धिर्गताभिलाषोधुनात्यपनयति कर्मेति । आशुप्रज्ञः सदायोगज्ञानः सन्निधिं न करोति । ड्व्यसन्निधिर्धनधान्यादिर्भावसन्निधिर्मायाक्रोधादिस्तं द्विविधमपि सन्निधिं न करोति सतरित्वा समुद्रमिव महाभवौघं संसारप्रवाहं निर्वृतोऽभयंकरः प्राणिनां वीरोऽनंतचक्षुरनंतज्ञानः॥ ॥ २५ ॥ क्रोधं मानं मायां लोभं चतुर्थमध्यात्मदोषानात्मदोषरूपान् कषायान् एतान् वांत्वा त्यक्त्वा ऽर्हन्महर्षिः स्वयं पापं न करोति न कारयत्यन्यैः ॥ २६ ॥

॥ टीका-किंचाऽन्यत् (पुढोवमेइत्यादि) सहि भगवान् यथा पृथिवी सकलाधारा वर्तते तथा सर्वसत्वानामभयप्रदानतः सडुपदेशदानाद्वा सत्वाधारइति । यदिवा यथा पृथ्वी सर्वसहा एवं भगवान् परीषहोपसर्गान् सम्यक् सहतइति । तथा धुनात्यपनयत्यष्ट

प्रकारं कर्मेतिशेषः । तथा विगता प्रलीना सबाह्याभ्यंतरेषु वस्तुषु गृद्धिर्गार्ध्यमभिलाषोय स्य सविगतगृद्धिः। तथा सन्निधानं सन्निधिः सच द्रव्यसन्निधिः। धनधान्यद्विपदचतुष्पदरूपोभावसन्निधिस्तु मायाक्रोधादयोवा सामान्येन कषायास्तमुभयरूपमपि सन्निधिं न करोति भगवांस्तथाऽऽशुप्रज्ञः सर्वत्र सदोपयोगान्नछद्मस्थवन्मनसा पर्यालोच्य पदार्थप रिछित्तिं विधत्ते । सएवंभूतस्तरित्वा समुद्रमिव पारं महाभवौघं चतुर्गतिकं संसारसागरं बहुव्यसनाकुलं सर्वोत्तमं निर्वाणमासादितवान् । पुनरपि तमेव विशिनष्टि । अभयं प्राणिनां प्राणरक्षारूपं स्वतः परतश्च सदुपदेशदानात् करोतीत्यभयंकरः । तथाऽष्टप्रकारं कर्म विशेषेणेरयति प्रेरयतीति वीरः। तथाऽनंतमपर्यवसानं नित्यं ज्ञेयानंतत्वाद्वानंतं चक्षुरिव चक्षुः केवलज्ञानं यस्य सतथेति ॥२५॥ किंचाऽन्यत् (कोहंचेत्यादि) निदानोछेदेन हि निदानिनउछेदोभवतीति न्यायात् संसारस्थितेश्च क्रोधादयः कारणमतएतानध्यात्मदोषांश्चतुरोऽपि क्रोधादीन् कषायान्वांत्वा परित्यज्य असौ भगवानर्हन्तीर्थकृत् जातः तथामहर्षिश्चैवं परमार्थतोमहर्षित्वं भवति यद्यध्यात्मदोषान भवंति नान्यथेति । तथा न स्वतः पापं सावद्यमनुष्ठानं करोति नाप्यन्यैः कारयतीति ॥ २६ ॥

किरियाकिरियं वेणइयाणुवायं, अन्नाणियाणं पडियच्च ठाणं ॥ से सव्ववायं इति वेयइत्ता, उवठिए संजमदीहरायं ॥ २७ ॥ से वारिया इत्थि सराइभत्तं, उवहाणवं दुरकखयठ्याए ॥ लोगं विदित्ता आरं पारंच, सव्वं पभू वारिय सव्ववारं ॥ २८ ॥ सोच्चाय धम्मं अरहंत भासियं,समाहितं अठपदोपसुद्धं ॥ तं सद्दहाणाय जणा अणाऊ, इंदावदेवाहिव आगमिस्संतित्तिबेमि ॥ २९ ॥ इति श्री वीरथुतीनाम षष्ठमध्ययनं सम्मत्तं ॥

अर्थ-(किरियाकिरियंके०) क्रियावादीना एकशोने एंशी भेद, अक्रियावादीना चोराशी भेद (वेणइयके०) विनयवादीना बत्रीश भेद, अने (अन्नाणियके०) अज्ञान वादीना सड सठ भेद ए सर्व मली त्रणशोने त्रेशठ थयांते पांखंडी दर्शनीउना (अणुवायंके०) अनुवाद एटले भेद जाणवा ए चारे दर्शनीना (स्थानके०) दर्शन स्वरूप तेने (पडियच्च के०) दुर्गति जवाना कारण जाणीने (सेके०) ते श्रीमहावीर देव (सव्ववायंके०) सर्ववादने (इतिवेयइत्ताके०) जाणीने उन्मार्गनो त्याग करीने (संजमेसदीहरायं के०) चारित्ररूप धर्मने विषे दीर्घरात्रं एटले जावजीव सुधी (उवठिए के०) उपस्थित एटले सावधान थयाछे ॥२७॥ (सेके०) ते भगवंते (इत्थिसराइभत्तं के०) स्त्री सहित रात्री भोजन तथा उपलक्षणथी प्राणातिपातादिकने पण (वारिया के०) निवार्याछे वली (दुःरकखयठ

याए के०) कर्मरूप डुःख क्षय करवाने अर्थे (उवहाणवं के०) उपधानवंत थया एट ले तपश्या करी देह शोषवीने कर्म खपाव्या (लोगंविदित्ता आरंपारंच के०) इह लोक अने परलोक ए बंनेने जाणीने (सव्वंपनूवारियसव्ववारं के०) सर्व पापना स्था नकने प्रनूत पणे पोते वारंवार निवार्याछे ॥ २७ ॥ हवे श्रीसुधर्म स्वामि पोताना शिष्य प्रत्ये कहेछे (धम्मं अरहंत नासियंके०) अरिहंतनो नाषेलोजे धर्म ते केवोछे तो के (समाहितं अठपदोपसुद्धं के०) सम्यक् प्रकारे अर्थे करी पदे करी शुद्ध एटले उज्वल युक्ति सहित तेने (सोच्चाय के०) सांनलीने (तं के०) ते धर्मने (सद्दहाणाय के०) सद्दहता एटले सत्य करी मानता थका (जणा के०) अनेक जन (अणाऊ के०) कर्म रहित थईने अनायुष्य थया एटले सिद्ध थया (इंदावदेवाहिव आगमिस्संतिके०) अथवा आगमिक काले इंडादिक पदवी पाम्या तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ २ए॥ इतिश्री वीरस्तुतिनामे बठा अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो.

॥ दीपिका–क्रियावादिनामक्रियावादिनां वैनयिकानामज्ञानिकानां स्थानं पक्षं सम्यक्प्रका रं प्रतीत्य परिछिद्य ज्ञात्वा सनगवान् सर्ववादं निवेदयित्वा सर्वकुदर्शनिनां स्वरूपं ज्ञात्वा दीर्घ कालं यावज्जीवं संयमे उपस्थितः ॥ २७ ॥ सनगवान् स्त्रीनोगं मैथुनं सरात्रिनोजनसहितं वारयित्वा उपलक्षणादन्यदपि प्राणातिपातादिकं ग्राह्यं । उपधानवान् तपोविशेषयुक्तो डुःखक्षयार्थं आरं पारंच लोकं इह लोकं परलोकं च विदित्वा ज्ञात्वा प्रनुर्नगवान् सर्व वारं बहुशोनिवारितवान् । कोर्थः । अहिंसादिकं स्वयं विधाय परांश्च स्थापितवान् न हि स्वयमधर्मे स्थितः परान् धर्मे स्थापयितुमलं । यडुक्तं स्तुतिकृता । ब्रुवाणोपि न्या य्यं स्ववचनविरुद्धं व्यवहरन् परं नालं कश्चिद्दमयितुमदांतः स्वयमिति ॥ नवान्निश्चित्यैवं मनसि जगदाधाय सकलं स्वमात्मानं तावद्दमयितुमदांतं व्यवसितइति ॥ २७ ॥ श्रु त्वा धर्ममर्हद्भाषितं सम्यगाख्यातमर्थपदैर्युक्तिनिरुपशुद्धं निर्मलं तं धर्मं श्रद्दधानाज नास्तथा कुर्वंति यथा नायुःकर्माणः सिद्धाः सायुषश्च इंद्राद्यादेवाधिपा आगमिष्यंती ति इति ब्रवीमीति ॥ २ए ॥ इति वीरस्तवाख्यं षष्ठमध्ययनं समाप्तं ॥

॥ टीका–किंचाऽन्यत् (किरिएइत्यादि) तथा सनगवान् क्रियावादिनमक्रियादिनां वैनयिका नामज्ञानिकानांच स्थानं पक्षमन्युपगतमित्यर्थः । यदिवा स्थीयतेऽस्मिन्निति स्थानं डुर्गति गमनादिकं प्रतीत्य परिछिद्य सम्यगवबुध्यत्यर्थः । एतेषां च स्वरूपमुत्तरत्र प्रत्यक्षेण व्याख्या स्यामः । लेशतस्त्विदं । क्रियैव परलोकसाधनायाऽलमित्येवं वादितुं शीलं येषांते क्रियावा दिनस्तेषां हि दीक्षातएव क्रियारूपायामोक्षइत्येवमन्युपगमः । अक्रियावादिनस्तु ज्ञानवादि नस्तेषां हि यथावस्थितवस्तुपरिज्ञानादेव मोक्षः । तथाचोक्तं । पंचविंशतितत्वज्ञो, य

त्र तत्राश्रमे रतः॥ शिखी मुंमीजटी वापि सिद्ध्यते नात्र संशयः॥१॥ तथा विनयादेव मोक्षइत्येवं गोशालकमतानुसारिणोविनयेन चरंतीति वैनायिकाव्यवस्थिताः । तथाऽज्ञानमेवैहिकामुष्मिकायाऽलमित्येवमज्ञानिकाव्यवस्थिताइत्येवं रूपं तेषामभ्युपगमं परिज्ञाय स्वतः सम्यगवगम्य सम्यगवबोधेन तथा सएव वीरवर्धमानस्वामी सर्वमन्यमपि बौद्धादिकं यं कंचन वादमपरान् सत्वान् यथावस्थितत्त्वोपदेशेन वेदयित्वा परिज्ञाप्योपस्थितः सम्यगुत्थानेन संयमे व्यवस्थितोनतु यथा अन्ये । तडुक्तं । यथा परेषां कथकाविदग्धाः, शास्त्राणि कृत्वा लघुतामुपेताः ॥ शिष्यैरनुज्ञामलिनोपचारै,र्वक्तृत्वदोषास्त्वयि ते न संति १ ॥ दीर्घरात्रमिति यावज्जीवं संयमोत्थानेनोत्थितइति ॥ २७ ॥ अपि च (सेवारिएइत्यादि) सनगवान् वारयित्वा प्रतिषिध्य ।किंतदित्याह् । स्त्रियमिति स्त्रीपरिनोगमैथुनमित्यर्थः । सहरात्रिनक्ते वर्ततइति सरात्रिनक्तं । उपलक्षणार्थत्वादस्याऽन्यदपि प्राणातिपातनिषेधादिकं ड्रष्टव्यं । तथा उपधानं तपस्तद्विद्यते यस्याऽसौ उपधानवान् तपोनिष्टप्तदेहः। किमर्थमिति दर्शयति । डुःखयतीति डुःखमष्टप्रकारं कर्म तस्य क्षयोऽपगमस्तदर्थं । किंच लोकं विदित्वा आरमिहलोकाख्यं पारं परलोकाख्यं । यदिवा आरं मनुष्यलोकं पारमिति नरकादिकं स्वरूपतस्तत्प्राप्तिहेतुं ततश्च विदित्वा सर्वमेतत् प्रनुर्जगवान् सर्ववारं बहुशोनिवारितवान् । एतडुक्तं नवति। प्राणातिपातनिषेधादिकं स्वतोऽनुष्ठाय परांश्च स्थापितवान् । नहि स्वतोऽस्थितः परांश्च स्थापयितुमलमित्यर्थः । तडुक्तं । ब्रुवाणोऽपि न्याय्यं, स्ववचनविरुद्धं व्यवहरन्, परान्नालं कश्चिद्दमयितुमदांतः स्वयमिति ॥ नवान्निश्चित्यैवं मनसि जगदाधाय सकलं स्वमात्मानं तावद्दमयितुमदांतं व्यवसितइति ॥ तथा तिहुयरोचवनाणी, सुरमहिउ सिज्झियव्व धूयामि ॥ अणिगूहियबलविरउ सव्वत्थामेसु उज्जमइ इत्यादि ॥ २८ ॥ सांप्रतं सुधर्मस्वामी तीर्थंकरगुणानाख्याय स्वशिष्यानाह (सोच्चायेत्यादि) श्रुत्वा च डुर्गतिधारणाद्धर्मं श्रुतचारित्राख्यमर्हद्भिर्नाषितं सम्यगाख्यातमर्थपदानि युक्तयोहेतवोवा तैरुपशुद्धमवदातं सद्युक्तिकं सद्धेतुकंवा । यदि वाऽर्थैरनिधेयैः पदैश्च वाचकैः शब्दैः उप सामीप्येन शुद्धं निर्दोषं । तमेवंनूतमर्हद्भिर्नाषितं धर्मं श्रद्दधानास्तथाऽनुतिष्ठंतोजनालोकाअनायुषोऽपगतायुः कर्माणः संतः सिद्धाः सायुपश्चेंड्राद्यादेवाधिपाआगमिष्यंतीति । इतिशब्दः परिसमाप्तौ । ब्रवीमीतिपूर्ववत् ॥ २९ ॥ इति वीरस्तवाख्यं षष्ठमध्ययनं परिसमाप्तमिति ॥ ग्रंथसंख्या ३००

हवे सातमुं अध्ययन प्रारंनियें वैयें बठा अध्ययनने विषे श्रीमहावीरनुं स्तवन करतां श्रीमहावीरने सुशील कह्या, हवे आ सातमां अध्ययननेविषे ते थकी विपरीत कुशीलिया होयडे जे अरहट्ट घटीकाने न्यायें संसारमांहे न्रमण करे तेनुं स्वरूप कहेडे.

पुढवीय आऊ अगणीय वाऊ, तण रुक्ख बीयाय तसाय पाणा॥
जे अंमया जेय जराउपाणा; संसेयया जे रसयानिहाणा ॥१॥
एयाइं कायाइं पवेदिताइं, एतेसु जाणे पडिलेह सायं॥ एतेण
काएणय आयदंमे, एते सु याविप्परियासुविंति ॥ २ ॥

अर्थ-(पुढवीयआऊअगणीयवाऊ के०) पृथ्वीकाय अप्पकाय अने वायुकाय अं हीं चकार थकी ए चारे निकाय सूक्ष्म अने बादरना नेदे करी बे प्रकारे जाणवा तथा (तणरुक्खबीयाय के०) तृण वृक्ष बीज शालीप्रमुख वनस्पतिकाय जाणवी अने (तसायपाणा के०) त्रसते बेंड्रियादिक जीव जाणवा तेना अनेक प्रकारछे ते कहेछे. (जेअंमया के०) जेइंमा थकी उपना एवा पंखी तथा सर्प प्रमुख तथा (जेयजराउपाणाके०) जे जराउते गाय प्रमुख जीव जाणवा अने (संसेययाके०) संस्वेदज एटले प्रस्वेद थकी उत्पन्न थयला एवा जुं माकण प्रमुख जीव जाणवा वली (जेरसयानिहाणा के०) रसजाः ते जे सोवीरादिकने विषे उपजे तेनाज वर्ण सरखा जे जीव होय ते जाणवा. एरीते जीवना नेद कह्या ॥ १ ॥ (एयाइंकायाइं पवेदिताइं के०) ए पूर्वोक्त पृथिव्यादिक उ जीवनी निकाय श्रीतीर्थंकर देवे कहीछे (एतेसुजाणेपडिलेहसायं के०) ए उ जीवनिकायजेछे ते सातासुखने जाणेछे वांछेछे एटले सर्वजीव सुखानिलाषीछे (एतेणकाएणयआयदंमेके० (ए उ कायने जे दंमे घात करे दीर्घकाल पीडा आपे तेने जे फल थाय ते कहेछे (एतेसुयाविप्परियासुविंति के०) ते जीव एज उ कायने विषे विपर्यासमुपयंति एटले विनाश पामे अर्थात् वारंवार एने विषेज परिभ्रमण करे ॥ २ ॥

॥ दीपिका–सांप्रतं सप्तमं । पूर्वस्मिन् वीरस्तवेन सुशीलतोक्ता । अत्र तद्विपरीताः कुशीलाः परिनाष्यंते । यथा । (पुढवीति) पृथिवीकायिकाअप्कायिकाअग्निकाया वायवश्च । चशब्दात्सूक्ष्मबादरनेदाः । तृणानि कुशादीनि वृक्षाअश्वत्थाद्याः । बीजानि शाल्यादीनि एते त्रयोपि वनस्पतयः। त्रसाः प्राणिनो द्वींद्रियादयः। अंमजाः पक्षिसर्पादयो जरायुजागोमहिष्याजाद्याः संस्वेदजायूकामत्कुणकृम्यादयः रसजानिधानादधिसौवीरादिषु रूतपक्ष्मतुल्याः ॥ १ ॥ ते पूर्वोक्ताः कायाजीवनिकायाः प्रवेदिताः कथिताजिनैः । छांदसत्वात्क्लीबलिंगता । एतेषु प्राणिषु सातं सुखं जानीहि । सर्वे जीवाः सुखैषिणइति प्रत्युपेक्षस्व पर्यालोचय।यथा एनिः कायैः पीड्यमानैरात्मा दंड्यते । एतत्पीमयाऽऽत्मदंमः स्यात्। तथा एतान् ये पीमयंति ते एतेष्वेव पृथिव्यादिकायेषु विविधं परिसमंतात् आक्षिप्रमुपयांति व्रजंति ॥ २ ॥

॥ टीका—उक्तं षष्ठमध्ययनं सांप्रतं सप्तममारन्यते । अस्य चाऽयमनिसंबंधः । इहाऽनंतराध्ययने महावीरगुणोत्कीर्त्तनतः सुशीलपरिनाषा कृता । तदनंतरं तद्विपर्यस्ताः कुशीलाः परिनाष्यंते । तदनेन संबंधेनाऽऽयातस्याऽध्ययनस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराणि व्यावर्णनीयानि । तत्राप्युपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोऽयं ॥ तद्यथा । कुशीलाः परतीर्थिकाः पार्श्वस्थादयोवा स्वयूथ्याश्रशीलाश्च गृहस्थाः परि समंतात् नाष्यंते प्रतिपाद्यंते तदनुष्ठानतस्तद्विपाकदुर्गतिगमनाश्च निरूप्यंतइति । तथा तद्विपर्ययेण क्वचित्सुशीलाश्चेति । निक्षेपस्त्रिधा । उघनामसूत्रालापकनेदात् । तत्रौघनिष्पन्ननिक्षेपेऽध्ययनं नामनिष्पन्ने कुशीलपरिनाषेति । एतदधिकृत्य निर्युक्तिकृदाह । शीलेचउक्कं दवे,पाउरणानरणनोयणादीसु॥ नावेउ उहशीलं, अनिरकमासेवणा चेव ॥ ८८ ॥ (शीलेचउक्कमित्यादि) शीले शीलविषये निक्षेपे क्रियमाणे चतुष्कमिति नामादिश्चतुर्धा निक्षेपः । तत्राऽपि नामस्थापने क्षुस्से तदनादृत्य द्रव्यमिति द्रव्यशीलं प्रावरणानरणनोजनादिषु द्रष्टव्यं । अस्याऽयमर्थः । योहि फलनिरपेक्षस्तत्स्वनावादेव क्रियासु प्रवर्तते सतच्छीलस्तत्रेह प्रावरणशीलइति । प्रावरणप्रयोजनानावेऽपि ताच्छील्यान्नित्यप्रावरणस्वनावप्रावरणे वा दत्तावधानः । एवमानरणनोजनादिष्वपि द्रष्टव्यमिति । योवा यस्य द्रव्यस्य चेतनाचेतानादेः स्वनावस्तद्द्रव्यशीलमित्युच्यते । नावशीलं तु द्विधा उघशीलमानीक्ष्णसेवनाशीलमिति । तत्रौऽघशीलं व्याचिख्यासुराह । उहेसीलंविरति, विरयाविरईयअविरतीअसीलं ॥ धम्मेणाणतवादी, अपसब्बअहम्मकोवादी ॥८९॥ (उहेत्यादि)। तत्रौघः सामान्यं । सामान्येन सावद्ययोगविरतोऽविरतोवा शीलवान् नण्यते तद्विपर्यस्तोऽशीलवानिति । आनीक्ष्णसेवायां त्वनवरतसेवनायां तु शीलमिति ॥ तद्यथा । धर्मे धर्मविषये प्रशस्तं शीलं यद्दुताऽनवरतापूर्वज्ञानार्जनं विशिष्टतपःकरणं वा । आदिग्रहणादनवरतानिग्रहणादिकं परिगृह्यते । अप्रशस्तनावशीलं त्वधर्मप्रवृत्तिर्बाह्या । आंतरा तु क्रोधादिषु प्रवृत्तिः । आदिग्रहणात् शेषकषायाश्चौर्यान्याख्यानकलहादयः परिगृह्यंतइति ॥ सांप्रतं कुशीलपरिनापाख्यस्याऽध्ययनस्याऽन्वर्थतां दर्शयितुमाह । परिनासियाकुशीलाय,एव्वजावंति अविरताकेइ ॥ सुत्तिपसंसासुद्धो, कुंतिदुगुंछअपरिसुद्धो ॥९०॥ (परिनासियाइत्यादि) । परि समंतात् नाषिताः प्रतिपादिताः कुशीलाः कुत्सितशीलाः परतीर्थिकाः पार्श्वस्थादयश्च । चशब्दात् यावंतः केचनाऽविरताअस्मिन्नित्यतइदमध्ययनं कुशीलपरिनाषेत्युच्यते । किमिति कुशीलाअशुद्धागृह्यंते इत्याह । सुरित्ययं निपातः प्रशंसायां शुद्धविषये वर्तते । तद्यथा सौराज्यमित्यादि । तथा कुरित्ययमपि निपातोजुगुप्सायामशुद्धविषये वर्तते । कुतीर्थं कुग्रामइत्यादि । यदि कुत्सितशिलाः कुशीलाः कथंतर्हि परतीर्थिकाः पार्श्वस्थादयश्च तथाविधाजवंतीत्याह । अफासुयपडिसेविय, णामंजुज्जोयशीलवादीय । फासुं वयंतिसीलं, अफासुयामोअजुंजंता ॥९१॥

(अफासुयइत्यादि) अस्त्यऽयं शीलशब्दस्तत्स्वाजाव्ये। तथाहि। यः फलनिरपेक्षः क्रियास्वा जरणादिषु प्रवर्तते सचेह द्रव्यशीलत्वेन प्रदर्शितः। अस्त्युपशमप्रधाने चारित्रे। तथाहि। तत्प्रधानः शीलवानयं तपस्वीतिं। तद्विपर्ययेण डुःशीलइति। सचेह जावशीलग्रहणेनो पात्तइति। इहच यतीनां ध्यानाध्ययनादिकं मुक्त्वा धर्माधारशरीरतत्पालनाहारव्यापारं च मुक्त्वा नाऽपरः कश्चिद्व्यापारोऽस्तीत्यतस्तदाश्रयणेनैव सुशीलत्वं च चिंत्यते। तत्र कु तीर्थिकः पार्श्वस्थादिर्वा। अप्राशुकं सचित्तं प्रतिसेवितुं शीलमस्य सजवत्यप्राशुकप्रतिसे वी। नामशब्दः संजावनायां। नूयः पुनर्धार्ष्ट्याच्छीलवंतमात्मानं वदितुं शीलं यस्य स शीलवादी। किमित्येवं यतः प्राशुकमचेतनं शीलं वदति। इदमुक्तं जवति। यः प्रा शुकमुज्जमादिदोषरहितमाहारं जुंक्ते तं शीलवंतं वदंति तज्ज्ञाः। तथाहि। यतयोप्राशुक मुज्जमादिदोषडुष्टमेवाऽऽहारमजुंजानाः शीलवंतोजएयंते नेतरइति स्थितं। नोशब्दस्य निपातत्वेनाऽवधारणार्थत्वादिति। अप्राशुकजोजित्वेन कुशीलत्वं प्रतिपादयितुं दृष्टांत माह। जहणामगोयमाचं, डीदेवगावारिजद्दगाचेव॥ जेअग्निहोत्तवादी, जलसोयंजेयइ छंति॥ ए२॥ (जहणामेइत्यादि) यथेति दृष्टांतोपक्षेपार्थं। नामशब्दोवाक्यालंकारे। गैातमाइति गोव्रतिकागृहीतशिक्षं लघुकायं वृषजमुपादाय धान्याद्यर्थं प्रतिगृहमटंति। तथा (चंमीदेवगाइति)। चक्रधरप्रायाः। एवं वारिजद्रकाअब्जक्षाः शैवलाशिनोनित्यं स्नानपानादिधावनाजिरतावा। तथा ये चाऽन्येऽग्निहोत्रवादिनोऽग्निहोत्रादेव स्वर्गगमन मिच्छंति ये चान्ये जलशौचमिच्छंति जागवतादयस्ते सर्वेऽप्यप्राशुकाहारजोजित्वात् कुशी लाइति। चशब्दात् ये च स्वयूथ्याः पार्श्वस्थादयजज्ञमाद्यशुद्धमाहारं जुंजंते तेऽपि कुशी लाइति। गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपः॥ सांप्रतं सूत्रालापकनिष्पन्ने निक्षेपे अस्खलितादि गुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं। तच्चेदं। (पुढवीएइत्यादि) पृथिवी पृथिवीकायिकाः सत्वाः। चकारः स्वगतजेदसंसूचनार्थः। सचाऽयंजेदः। पृथिवीकायिकाः सूक्ष्माबादराश्च। ते च प्रत्येकं पर्याप्तकाऽपर्याप्तजेदेन द्विधा। एवमप्कायिकाअपि। तथाऽग्निकायिकावायुकायिका श्च डष्टव्याः। वनस्पतिकायिकान् जेदेन दर्शयति। तृणानि कुशादीनि। वृक्षाश्चाश्वबादयोवी जानि शाल्यादीनि। एवं वल्लीगुल्मादयोऽपि वनस्पतिजेदाडष्टव्याः। त्रस्यंतीति त्रसाद्वींड्रिया दयः प्राणाः प्राणिनोये चांमाज्जाताअंडजाः शकुनिसरीसृपादयः। ये च जरायुजाजंबालवेष्टि ताः समुत्पद्यंते तेच गोमहिष्यजाविकमनुष्यादयः। तथा संस्वेदाज्जाताः संस्वेदजायूकामत्कु णकृम्यादयः ये च रसजाजिधानादधिसौवीरकादिषु रूतपक्ष्मसन्निजाइति॥१॥ नानाजेदजि न्नं जीवसंघातं प्रदर्श्याऽधुना तडुपघाते दोषं दर्शयितुमाह। (एयाइमित्यादि)। एते पृथिव्या दयः कायाजीवनिकायाजगवद्भिः प्रवेदिताः कथिताः। शंदसत्वान्नपुंसकलिंगिता॥ एते ष्व पूर्वं प्रतिपादितेषु पृथिवीकायादिषु प्राणिषु सातं सुखं जानीहि। एतडुक्तं जव

ति । सर्वेपि सत्वाः सातैषिणोदुःखद्विषश्चेति ज्ञात्वा प्रत्युपेक्षस्व कुशाग्रीयया बुद्ध्या पर्यालोचयेदिति । यथैभिः कायैः समारभ्यमाणैः पीड्यमानैरात्मा दंड्यते तत्समारंभादा त्मदंडोभवतीत्यर्थः । अथवैऽभिरेव कायैर्ये आयतदंडादीर्घदंडाः । एतदुक्तं भवति । ए तान् कायान् ये दीर्घकालं दंडयंति पीडयंतीति तेषां यद्भवति तद्दर्शयति । ते एतेष्वेव पृथि व्यादिकायेषु विविधमनेकप्रकारं परि समंतादाशु क्षिप्रमुपसामीप्येन यांति व्रजंति । तेष्वे व पृथिव्यादिकायेषु विविधमनेकप्रकारं भूयोभूयः समुत्पद्यंतइत्यर्थः । यदिवा विपर्यासो व्यत्ययः सुखार्थिभिः कायसमारंभः क्रियते तत्समारंभेणच दुःखमेवाऽप्यते नसुखमि ति । यदिवा कुतीर्थिकामोक्षार्थमेतैः कायैर्या क्रियां कुर्वंति तया संसारएव भवतीति ॥२॥

जाईपहं अणुपरिवट्टमाणे, तस थावरेहिं विणिघायमेति ॥
से जाति जातिं बहुकूरकम्मे, जं कुवती मिज्जति तेण बाले ॥३॥
अस्सिंच लोए अडुवा परत्ता, सयग्गसोवा तह अन्नहावा ॥
संसारमावन्न परंपरं ते, बंधंति वेदंतिय दुन्नियाणि ॥ ४ ॥

अर्थ—(जाइपहंअणुपरिवट्टमाणेके०) एकेंद्रियादिकथी मांडीने पंचेंद्रिय पर्यंत जीव नी जातीछे तेने विषे एक स्थानकथी बीजे स्थानके परिभ्रमण करता थका (तसथावरेहिं विणिघायमेतिके०) त्रस तथा स्थावर जीवने विषे विनिघातमेत्य एटले उत्पत्ति अने वि नाश पामे (सेजातिजातिं बहुकूरकम्मे के०) ते क्रूर कर्मना करनार जाति जातिने विषे उत्पत्ति पामीने (जंकुवती मिज्जतितेणबालेके०) ते बाल अज्ञानी जे वली त्यां दुष्ट एवा पापकर्म करे तो वली तेहीज दुष्ट कर्म करी एटले चोर अथवा परदारा गमन इत्यादिक दोषे वली विनाश पामे ॥ ३ ॥ (अस्सिंचलोए अडुवापरत्ता के०) जे कर्म करे ते कर्म आजन्मने विषे अथवा परजन्मने विषे विपाक आपे (सयग्गसोवा के०) अथवा एकज कर्म सो सहस्र लाख क्रोड संख्याता असंख्याता इत्यादिक घणा भवसुधी पण विपाक आपे जेवा विधियें कर्म कस्यो होय तेवा विधियें भोगवे (वा के०) अथवा (तह के०) तथा (अन्नहा के०) अन्यविधिये पण भोगवे सिरछेदादिक हस्तपाद छेदनादिक दुःख पामे (संसार मावन्न परंपरंते के०) एवीरीते ते कुशीलिया अरहट्ट घटीकाने न्याये संसारने विषे फरीफरी भव परंपराये परिभ्रमण करता थका दुःख भोगवे तथा (बंधंति वेदंतिय दुन्नियाणिके०) एकेक छेदनादिक दुःखे पीड्या थका ते दुःखना योगेकरी वली नवा नवा कर्म बांधे तेने फरी भोगवे पण भोगव्या विना बूटेज नही. ॥४॥

॥ दीपिका—जातिवधं जन्ममरणे अनुपरिवर्तमाने एकेंद्रियादिषु पर्यटन् त्रसस्था०

वरेषु समुत्पन्नोबहुशोविनिघातं विनाशमेति सजातिमुत्पत्तिं प्राप्य बहुक्रूरकर्मा यत्क र्म करोति तेन कर्मणा म्रियते हिंस्यते ॥ ३ ॥ अस्मिन् लोकेऽन्यस्मिन् जन्मनि वा क र्माणि विपाकं ददति शताग्रशोवा बहुषु जन्मसु यद्यथा आचरंति तथैवोदीर्यंते अन्य थावा । एवं ते कुशीलाः संसारमापन्नाः परं परं प्रकृष्टं प्रकृष्टं डुःखमनुभवंति । आर्तध्यानो पहताश्चापरं बध्नंति वेदयंतिच डुर्नीतानि कर्माणि डुष्टं नीतानि डुर्नीतानि डुष्कृतानि । नहि स्वकृतकर्मणोनाशोस्ति । यडुक्तं । माहोहिरेविसन्नो जीवतुमं विमणडुम्मणो दी णो ॥ एडुविंतिए ण फिट्टइ तं डुःखं जं पुरा रईअमिति ॥ ४ ॥

॥ टीका—यथा चाऽसावायतदंडोमोक्षार्थी तान् कायान् समारभ्य तद्विपर्यासात् संसारमाप्नोति तथा दर्शयति । (जाईपहमित्यादि) जातीनामेकेंद्रियादीनां पंथाजाति पथः । यदिवा जातिरुत्पत्तिर्वधोमरणं जातिश्च वधश्च जातिवधं तदनुपरिवर्तमानएकें द्रियादिषु पर्यटन् जन्मजरामरणानि वा बहुशोऽनुभवंस्त्रसेषु तेजोवायुद्वींद्रियादिषु स्था वरेषु च पृथिव्यंबुवनस्पतिषु समुत्पन्नः सन् कायदंडविपाकजेन कर्मणा बहुशोविनि घातंविनाशमेत्यवाप्नोति सआयतदंडोऽसुमान् जातिं जातिमुत्पत्तिमुत्पत्तिमवाप्य ब हूनि क्रूराणि दारुणान्यनुष्ठानानि यस्य सभवति बहुक्रूरकर्मा सएवंभूतोनिर्विवेकः सद सद्विवेकशून्यत्वात् बालइव बालोयस्यामेकेंद्रियादिकायां जातौ यत्प्राण्युपमर्दकारि कर्म कु रुते सतेनैव कर्मणा मीयते म्रियते पूर्यते । यदिवा मीङ्हिंसायां मीयते हिंस्यते । अ थवा बहुक्रूरकर्मेति चौरोऽयं पारदारिकइति वा इत्येवं तेनैव कर्मणा मीयते परिछिद्य तइति ॥ ३ ॥ क्व पुनरसौ तैः कर्मनिर्मीयते इति दर्शयति (अस्सिंचेत्यादि) यान्याशुका रीणि कर्माणि तान्यस्मिन्नेव जानाति जन्मनि विपाकं ददति ।अथवा परस्मिन् जन्मनि नरकादौ तस्य कर्मविपाकं ददत्येकस्मिन्नेव जन्मनि विपाकं तीव्रं ददति (शताग्रशोवेति) बहुषु जन्मसु येनैव प्रकारेण तदशुभमाचरति तथैवोदीर्यंते । तथा (अन्यथावेति) इ दमुक्तं भवति । किंचित्कर्म तद्भवतएव विपाकं ददाति किंचिच्च जन्मांतरे । यथा मृगा पुत्रस्य डुःखविपाकाख्ये विपाकश्रुतांगश्रुतस्कंधे कथितमिति दीर्घकालस्थितिकं स्वपरज न्मांतरितं वेद्यते येन प्रकारेण सकृत्तथैवाऽनेकशोवा । यदिवाऽन्येन प्रकारेण सकृत्सह स्त्रशोवा शिरश्छेदादिकं हस्तपादछेदादिकं चाऽनुभूयतइति । तदेवं ते कुशीलाआयतदंडाश्च तुर्गतिकसंसारमापन्नाअरहट्टघटीयंत्रन्यायेन संसारं पर्यटंतः परं परं प्रकृष्टं प्रकृष्टं डुःखम नुभवंति । जन्मांतरकृतं कर्मानुभवंतश्चैकमार्तध्यानोपहताअपरं बध्नंति वेदयंति च डुष्टं नीतानि डुर्नीतानि डुष्कृतानि । नहि स्वकृतस्य कर्मणोविनाशोऽस्तीतिभावः । तडुक्तं । माहोहिरेविसन्नो, जीवतुमं विमणडुम्मणो दीणो । एडुविंतिए णफिट्टइ, तं डुःखं जं पुरा

रइयं ॥ १ ॥ जइ पविससिपायालं, अडइं बदरिं गुहं समुद्दंवा ॥ पुवकयाउ नचुक्कसि अप्पाणं घायसेजइवि ॥ २ ॥

जे मायरं वा पियरं च हिच्चा, समणव्वए अगणिं समारभिज्जा ॥
अहाहु से लोए कुसीलधम्मे, भूताइं जे हिंसति आयसाते ॥५॥
उज्जालउ पाण निवातएज्जा, निव्वावउ अगणि निवायवेज्जा ॥
तम्हा उमेहावि समिक्ख धम्मं, ण पंडिए अगणि समारभिज्जा ॥६॥

अर्थ-(जेमायरंवा पियरंचहिच्चा के०) जे कोइ माता पितादिकने हित्वा एटले छांमीने अने स्वजन वर्गनो त्याग करीने (समणव्वएके०) श्रमणने व्रते उठ्या अर्थात् अमे साधुछैयें एवुं जाणता छता (अगणिं समारभिज्जा के०) उद्देशादिक परिभोगे करी अ ग्नीनो समारंभ करे अथवा करावे तथा अनुमोदे (अहाहुसेलोए कुसीलधम्मेके०) तेवा पाखंमी लोकते कुशील धर्मि जाणवा एम श्रीतीर्थंकर गणधरादिक कहेछे (भूताइं जेहिंसति आयसाते के०) जे पोताना आत्मसुखने अर्थे प्राणीनी हिंसाकरेछे ते कुशी लिया जाणवा. ॥ ५ ॥ (उज्जालउपाण निवातएज्जा के०) जे अग्नि उज्वाले प्रदीप्त करे ते त्रस अने स्थावर जीवोनो अतिपात एटले विनाशकरे अने (निव्वावउ अगणि नि वायवेज्जाके०) तेम वली ते अग्नीने पाणीयें करी बुजावतां थका पण अनेक त्रस अने स्थावर जीव हणायछे एमज अग्नीने अजुआलतां तथा उलवतां थकां पण प्राणीउनो घात थायछे (तम्हाउ के०) तेमाटे (मेधाविके०) पंमित सदसद्विवेकनो जाण (स मिक्खधम्मंके०) हिंसानो त्याग करी तथा दयामां धर्मछे एम विमाशीने (णपंमिए अग णिसमारभिज्जाके०) पंमित अग्निकायनो समारंभ करे नही ॥ ६ ॥

॥ दीपिका-ये ज्ञाततत्वामातरं पितरं स्वजनवर्गं हित्वा श्रमणव्रते स्थितावयमि त्यंगीकृत्याऽग्निकायं समारभंते अग्न्यागारं कुर्युः पचनपाचनादौ । अथ तीर्थकृतएव माहुः सोयं पाखंडिलोकः कुशीलः कुत्सितशीलोधर्मोयस्य सतथा योभूतानि प्राणि नोहिनस्ति आत्मसाते आत्मसुखार्थं ॥ ५ ॥ अग्निमुज्वालयन् सोग्निकायमपरांश्च पृथ्व्यादिजीवान् स्थावरत्रसांश्च निपातयेत् तथा अग्निकायं निर्वापयेत् तदाश्रितान न्यांश्च प्राणिनोनिपातयेत् । अग्निज्वालकनिर्वापकयोर्योज्वालयति समहाकर्मबंधकः । तथा चागमः । दोभंतेपुरिसा अस्सिमस्सुण सद्धिं अगणिकायं समारभंति । तत्थणं एगे पुरिसे अगणिकायं उज्जलेइ एगेपुरिसे अगणिकायं निव्वावेइ तेसिं भंते पुरिसाणं कयरे पु रसे महाकम्मतराए अप्पकम्मतराए वा गोयमा जेणं पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ सेणं म

हाकम्मतराए जेसे पुरिसे अगणिकायं निवावेइ सेणं पुरिसे अप्पकम्मतराए से केणठेणं नंते एवं वुच्चत्ति तहेव गोयमा तत्रणं जेसे पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ सेणं पुरिसे बहुतरागं पुढविकायं समारनति। एवं आउकायं समारनति एवं वाउकायं वणस्सतिकायं अप्प तरागं अगणिकायं समारनति तत्रणं जेसे पुरिसे अगणिकायं निवावेइ सेणं पुरिसे अप्प तरागं पुढविकायं समारनति जाव अप्पतरागं तसकायं समारनति बहुतरागं अगणि कायं समारनति सेणं अठेणं गोयमा एवं वुच्चत्ति जे पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ सेणं पुरिसे महाकम्मतराए जेणं पुरिसे अगणिकायं निवावेइ सेणं पुरिसे अप्पकम्मतराएइति। तस्मान्मेधावी पंमितोधर्मं समीक्ष्याऽग्निकायं नसमारनते ॥ ६ ॥

॥ टीका—एवं तावदोघतः कुशीलाः प्रतिपादिताः। तदधुना पार्षंडकानधिकृत्याह। (जेमायरंवेत्यादि) ये केचनाऽविदितपरमार्थाधर्मार्थिमुत्थितामातरं पितरंच त्यक्त्वा मातापि त्रोर्डस्त्यज त्वात् तडुपादानमन्यथा न्रातृपुत्रादिकमपि त्यक्त्वेति डष्टव्यं। श्रमणव्रते किल वयं समुपस्थिताइत्येवमन्युपगम्याऽग्निकायं समारनंते पचनपाचनादिप्रकारेण। कृतकारि तानुमत्योद्देशिकादिपरिनोगाच्चाऽग्निकायसमारंनं कुर्युरित्यर्थः। अथेति वाक्योपन्यासार्थः। आहुरिति तीर्थकृत्गणधरादयएवमुक्तवंतोयथा सोऽयं पार्षंडिकोलोकोगृहस्थलोकोवा ऽग्निकायसमारंनात् कुशीलः कुत्सितशीलोधर्मोयस्य सकुशीलधर्मा। अयं किंनूतइति दर्शी यति॥ अनूवन् नवंति नविष्यंतीति नूतानि प्राणिनस्तान्यात्मसुखार्थं हिनस्ति व्यापाद यति। तथाहि। पंचाग्नितपसा निष्टप्तदेहास्तथाऽग्निहोत्रादिकया च क्रियया पार्षंडिकाः स्व र्गावाप्तिमिछंतीति। तथा लौकिकाः पचनपाचनादिप्रकारेणाऽग्निकायं समारनमाणाः सुखमनिलषंतीति ॥ ५ ॥ अग्निकायसमारंने च यथा प्राणातिपातोनवति तथा द र्शयितुमाह (उज्जालउइत्यादि) तपनतापनादिप्रकाशहेतुं काष्ठादिसमारंनेण योऽग्निका यं समारनते सोऽग्निकायमपरांश्च पृथिव्याद्याश्रितान् स्थावरांस्त्रसांश्च प्राणिनोनिपात येत्। त्रिन्योवा मनोवाक्कायेन्यआयुर्बलेंडियेन्योवा पातयेन्निपातयेत्। तथाऽग्निका यमुदकादिना निर्वापयेत् विध्या पयंस्तदाश्रितानऽन्यांश्च प्राणिनोनिपातयेन्निपातये द्वा। तत्रोज्ज्वालकनिर्वापकयोर्योऽग्निकायमुज्ज्वलयति सबहूनामन्यकायानां समारंनकः। त था चाऽऽगमः। दोनंते पुरिसा अन्नमन्नेण सिद्धिं अगणिकायं समारनंति तत्रणं एगे पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ से एगेणं पुरिसे अगणिकायं निव्ववइ तेसिं नंते पुरिसा णं कयरे पुरिसे महाकम्मतराए अप्पकम्मतराए॥ गोयमा तत्रणं जेसे, पुरिसे अगणि कायं उज्जालेइ सेणं पुरिसे बहुतरागं पुढविकायं समारनति॥ एवं आउकायं वाउकायं वणस्सइकायं अप्पतरागं अगणिकायं समारनइ तत्रणं जेसे पुरिसे अगणिकायं नि

वावेइ सेणं पुरिसे अप्पतरागं पुढविकायं समारनइ जाव अप्पतरागं तसकायं समारनइ बहुतरागं अगणिकायं समारनइ । से एतेणंअठेणं गोयमा एवं वुच्चइ ॥ अपि चोक्तं । नूयाणं ए समाघाउ, । हव्ववाहेण संसउइत्यादि । यस्मादेवं तस्मान्मेधावी सदसद्विवेकः सश्रुतिकः समीक्ष्य धर्मं पापाड्डीनः पंडितोनाग्निकायं समारनते । सए व च परमार्थतः पंमितोयोऽग्निकायसमारंनकृतात् पपान्निवर्ततइति ॥ ६ ॥

पुढवीवि जीवा आऊवि जीवा, पाणाइ संपाइम संपयंति ॥ संसेय
या कठसमस्सियाय, एते दहे अगणि समारनंते ॥ ७ ॥ हरिया
णि नूताणि विलंबगाणि, आहार देहाय पुढो सियाई ॥ जे बिंद
ती आयसुहं पडुच्च, पगप्निपाणे बहुणंतिवाती ॥ ८ ॥

अर्थ–हवे अग्नीनो समारंन करवा थकी बीजा जीवो केवीरीते हणाय ते कहेछे. (पुढवीविजीवाआऊविजीवा के०) पृथवी तेपण जीव अने आऊ एटले पाणी तेपण जीव (पाणाइसंपाइम के०) तथा संपातिमप्राणी ते पतंगीया प्रमुख (संपयंति के०) त्यां सम्यक् प्रकारे पडे तथा (संसेययाकठसमस्सियाय के०) संस्वेदजा ते काष्ठ तथा छाणादिकने विषे उत्पन्न थएला जीव काष्ठनिश्रितघुणादिककीडीप्रमुख जाणवा (एतेदहेअगणिसमारनंते के०) एटला स्थावर जंगमजीवने जे अग्नीनो समारंन करे ते दहे एटले बाली नाखे ॥ ७ ॥ तथा (हरियाणि के०) हरीकाय ते अंकुरादिक समस्त वनस्पति जाणवी ए सर्वे (नूताणि के०) जीव ते (विलंबगाणि के०) विलंबक जाणवा विलंबक शब्दे जीवनो आकार धारण करे जेम कलल अर्बुद मांस पेशी एटली अवस्था गर्नमां थाय अने गर्न प्रसव्या पछी बाल कुमार तरुण वृद्ध एटली अवस्था मनुष्य धारण करे तेम शाल्यादिक वनस्पति पण अंकूर मूल स्कंध पत्र शाखादिक विशेप जे छे ते पण वर्द्धमान थका बाल तरुण वृद्धावस्थादिक नाव पामे छे तथा ए हरितादिक जेछे तेना मूल पत्र शाखादिकने विषे (पुढोसियाई के०) पृथक् पृथक् जुदा जुदा जीव जाणवा एटला वनस्पतिने (आहारदेहाय के०) आहार तथा शरीरने अर्थे (जेछिंदतीआयसुहंपडुच्चके०) जे आत्माना सुखने अर्थे एटले एने छेदवा थकी माहारा आत्माने सुख थशे एवी आत्मसुखनी प्रतीते जे छेदे (पगप्निपाणेबहुणंतिवाती के०) ते पुरुष धीगइ पणे घणाजीवोना घातनो करनार जाणवो ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–पृथ्वीजीवाआपोपिजीवास्तदाश्रिताश्चप्राणाः संपातिमाः शलनादयस्तेच

संपतंति। संस्वेदजाः करीषादिष्विंधनेषु घुणपिपीलिकादयः काष्ठसमाश्रिताश्च ये एतान् प्राणिनः सदहेतु योग्निं समारभते ॥७॥ हरितानि भूतानि जीवरूपाणि तथा जीवाकारं विलंबंते धारयंतीति विलंबकानि। यथा मनुष्या कललाऽर्बुदमांसपेशीगर्भप्रसवबालकुमारयुवमध्यमस्थविराद्यवस्थां धरंति तथा हरितान्यपि। किंभूतानि पृथक् मूलस्कंधशाखापत्रपुष्पादिस्थानेषु प्रत्येकं श्रितानि नतु मूलादौ। एकएव जीवः एतानि भूतानि आहारार्थं देहोपचयार्थमात्मसुखं प्रतीत्याश्रित्य यश्छिनत्ति सप्रागल्भ्यात् धाष्टर्यात् बहूनां प्राणिनामतिपाती हिंसकः स्यात् तथाच नधर्मोनात्मसुखं चेति ॥ ८ ॥

॥ टीका—कथमग्निकायसमारंभेणाऽपरप्राणिवधोभवतीत्याशंक्याह। (पुढवीत्यादि)। नकेवलं पृथिव्याश्रिता द्वींद्रियादयोजीवायापि च पृथ्वी मृल्लक्षणा असावपि जीवाः। तथा आपश्च द्रवलक्षणाजीवास्तदाश्रिताश्च प्राणाः संपातिमाः शलभादयस्तत्र संपतंति। तथा संस्वेदजाः करीषादिष्विंधनेषु घुणपिपीलिकाः कृम्यादयः काष्ठाद्याश्रिताश्च ये केचन एतान् स्थावरजंगमान् सदहेद्योऽग्निकायं समारभते ऽतोऽग्निकायसमारंभोमहादोषायेति ॥ ७ ॥ एवं तावदग्निकायसमारंभकास्तापसास्तथा पाकादनिवृत्ताः शाक्यादयश्चोऽपदिष्टाः। सांप्रतं ते चाऽन्ये वनस्पतिसमारंभादनिवृत्ताः परामृश्यंते इत्याह (हरियाणीत्यादि) हरितानि दूर्वांकुरादीन्येतान्यप्याहारादेर्वृद्धिदर्शनात् भूतानि जीवाः। तथा विलंबकानीतिं जीवाकारं यांति विलंबंति धारयंति। तथाहि। कललार्बुदमांसपेशीगर्भप्रसवबालकुमारयुवमध्यमस्थविरावस्थांतोमनुष्योभवति। एवं हरितान्यपि शाल्यादीनि जातान्यभिनवानि संजातरसानि यौवनवंति परिपक्कानि जीर्णानि परिशुष्काणि मृतानि। तथा वृक्षाअप्यंकुरावस्थायां जाताइत्युपदिश्यंते मूलस्कंधशाखाप्रशाखादिभिर्विशेषैः परिवर्धमानायुवानः पोताइत्युपदिश्यंतइत्यादि शेषास्वप्यवस्थास्वायोज्यं। तदेवं हरितादीन्यऽपि जीवाकारं विलंबयंति। ततएतानि मूलस्कंधशाखापत्रपुष्पादिस्थानेषु पृथक् प्रत्येकं व्यवस्थितानि नतु मूलादिषु सर्वेष्वऽपि समुदितेषु। एकएव जीवएतानि च भूतानि संख्येयाऽसंख्येयानंतभेदभिन्नानि वनस्पतिकायाश्रितान्याहारार्थं वा देहक्षतसंरोहणार्थं चात्मसुखं प्रतीत्याश्रित्य यश्छिनत्ति सप्रागल्भ्यात् धाष्टर्यावष्टंभाद्बहूनां प्राणिनामतिपाती भवति तदतिपाताच्च निरनुक्रोशतया नधर्मोनाऽप्यात्मसुखमित्युक्तं भवति ॥ ८ ॥

जातिंच वुड्ढिंच विणासयंते, बीयाइ अस्संजय आयदंडे ॥ अहाहु से लोए अणज्जधम्मे, बीयाइ जे हिंसति आयसाते ॥ ९ ॥ गब्भाइ मिज्जंति

बुया बुयाणा, णरा परे पंचसिहा कुमारा ॥ जुवाणगा मज्झिम थेरगाय, (पाठांतरे पोरुसाय) चयंति ते आउखए पलीणा ॥ १० ॥

अर्थ-(जातिंच के०) उत्पत्ति एटले मूलादिक कोमल तथा (वुड्ढिंच के०) वृद्धि एटले शाखा प्रशाखादि जे वनस्पति तेनो (विणासयंते के०) विनाश करतो होय तथा (बीयाइ के०) बीजादिक एटले तेना फलनो विनाश करतो होय तेने (अस्संजय आयदंमेके०) असंयत एटले गृहस्थ अथवा प्रव्रजित अन्यलिंगी अथवा स्वलिंगी आत्मानो दंमनार कहिए तेजीव प्राणीने उपघाते पोताना आत्मानो उपघात करेछे (अहाहुसे लोएअणज्जधम्मेके०) जे आत्म सुखने अर्थे हरीकायने छेदे तेने लोकमांहे अनार्य धर्मि श्रीतीर्थंकर गणधर कहेछे (बीयाईजेहिंसतिआयसाते के०) जे प्राणी धर्मोपदेशे आत्मसुखने अर्थे बीजादिक वनस्पतिकायने छेदे, छेदावे तथा अनुमोदे तथा एवो धर्मोपदेश करे ते पाखंमी अनार्य जाणवो. ॥ ए ॥ (गप्भाइमिज्जंति के०) वनस्पतिकायना विनाशक प्राणीउ घणा जन्मसुधि गर्नादिक अवस्थाने विषे वर्त्ताज मरण पामे एटले कलल अर्बुदादिक अवस्थायें वर्त्तता थकाज मरण पामे तथा जन्म्या पछी (बुयाबुयाणाके०) बोलता अणबोलता थका तथा (णरापरेके०) अन्य मनुष्य (सिहाकुमाराके०) न्हानी चोटलीना धणी कुमारावस्थायें स्थित थका मरे तथा (जुवाणगा के०) युवानवय तरुणवय तथा (मज्झिम के०) मध्यमवय (थेरगायके०) थविर वय ए सर्व अवस्थाने विषे (आउखए पलीणा के०) आयुष्यना क्षय विषे प्रलीन थका एटले स्वकर्म नोगवता दीन डुखी क्षुध तृष्णादिक सहन करता थका (चयंतितेके०) ते पापी जीवो शरीर त्याग करे एटले जेवुं पाप समाचरे तेवुं नोगवे ॥ १० ॥

॥ दीपिका-जातिं पत्रांकुरादिनेदां वृद्धिं च विनाशयन् बीजानिच फलानि विनाशयन् असंयतोगृहस्थः प्रव्रजितोवा आत्मदंमः परहिंसया आत्मानमेव हंतीत्यात्मदंडः । अथेति वाक्यालंकारे । आहुरुक्तवंतोजिनाः । तदेवाह । सलोके निर्दयोऽनार्यधर्मा क्रूरकर्मकारी स्यात् । योबीजानि वनस्पतिकायमात्मसुखार्थं हिनस्ति ॥ ए ॥ वनस्पतिकायोपमर्दकागर्नादिकावस्थासु म्रियंते तथाऽब्रुवंतोऽब्रुवंतश्च व्यक्तवाचोऽव्यक्तवाचश्च तथा परे नराः पंचशिखाः कुमाराः संतोम्रियंते युवानोमध्यमपौरुषामध्यमवयसोवृद्धाश्च । एवं सर्वावस्थासु आयुःक्षयोप्रलीनाः संतोदेहं त्यजंति ॥ १० ॥

॥ टीका-किंच । (जातिंचेत्यादि) । जातिमुत्पत्ति तथाऽकुरपत्रमूलस्कंधशाखाप्रशाखानेदेन वृद्धिं च विनाशयन् बीजानिच तत्फलानि विनाशयन् हरितानि छिनत्तीति । असंय

तोगृहस्थः प्रव्रजितोवा तत्कर्मकारी गृहस्थएव सच हरितछेदं विधायात्मानं दंमय तीत्यात्मदंडः सहि परमार्थतः परोपघातेनाऽऽत्मानमेवोऽपहंति । अथ शब्दोवाक्यालं कारे । आहुरेवमुक्तवंतइति दर्शयति । योहरितादिछेदकोनिरनुक्रोशः सोऽस्मिन् लोकेऽ नार्यधर्मा क्रूरकर्मकारी भवतीत्यर्थः । सच एवंभूतोयोधर्मोपदेशेनात्मसुखार्थं वा बीजान्यऽस्यचोपलक्षणार्थत्वात् वनस्पतिकायं हिनस्ति सपाषंडिकलोकोऽन्योवाऽनार्य धर्मा भवतीति संबंधः ॥ ९ ॥ सांप्रतं हरितछेदकर्मविपाकमाह (गब्भाइमिज्जंतिइत्या दि) । इह वनस्पतिकायोपमर्दकाबहुषु जन्मसु गर्भादिकास्ववस्थासु कललार्बुदमां सपेशीरूपासु म्रियंते । तथा ब्रुवंतोऽब्रुवंतश्च व्यक्तवाचो ऽव्यक्तवाचश्च । तथा परेनराः पं चशिखाः कुमाराः संतोम्रियंते । तथा युवानोमध्यमवयसः स्थविराश्च । क्वचित्पाठो (मज्झिमपोरुसायत्ति) । तत्र मध्यमामध्यमवयसः (पौरुसायत्ति) । पुरुषाणां चरमाव स्थां प्राप्ताश्चत्यंतवृद्धाएवेति यावत् । तदेवं सर्वास्वप्यवस्थासु बीजादीनामुपमर्दकाः स्वायुषः क्षये प्रलीनाः संतोदेहं त्यजंतीति । एवमपरस्थावरजंगमोपमर्दकारिणामप्य नियतायुष्कत्वमायोजनीयं ॥ १० ॥

संबुज्झहा जंतवो माणुसत्तं, दठ्ठुं भयं बालिसेणं अलंभो ॥ एगं
तदुक्खे जरिएव लोए, सक्कम्मणा विप्परियासुवेइ ॥ ११ ॥ इहे
गमूढा पवयंति मोक्खं, आहारसंपज्जणवज्जणेणं ॥ एगेयसी ओद
गसेवणेणं, हुएण एगे पवयंति मोक्खं ॥ १२ ॥

अर्थ- (जंतवो के०) अहो जीवो तमे (संबुज्झहा के०) बुझो जे (माणु सत्तं के०) मनुष्यपणुं पामवुंदुर्लभछे एम जाणो दुल्लहेखलुमाणुस्सेभवे इत्यादिक वचने बुजो एटले प्रतिबोध पामो (दठ्ठुंभयंबालिसेणंअलंभो के०) तथा नरक तिर्यंचादिक गतिने विषे अनेक दुःखछे तेनो भय देखीने बालिस एटले अज्ञान पणाने लीधे सद् विवेक पामवो दुर्लभछे एवीरीते जाणो (एगंतदुक्खेजरिएवलोए के०) तथा ए लोक एकांत दुखीछे ज्वरित एटले जेम ज्वराक्रांत जीव दुःखी होय तेम ए सर्व लोक (सक्क म्मणाविप्परियासुवेइ के०) पोत पोताना कर्मरूप तापे करी व्याकुल थता संसा रमां विपर्यास एटले फरी फरी नाश पामेछे ॥ ११ ॥ (इहेगमूढापवयंति के०) अं हीं धर्म स्थापना अधिकारे कोइएक मूर्ख कुशील दर्शनी एम कहेछे के (आहारसंप ज्जणवज्जणेणं के०) आहारेणसंपचक एटले लवण तेने वर्जवा थकी (मोक्खं के०) मोक्षछे एटले सर्व रसनु सार लवणछे यतः लवणाविहूणारसा इतिवचनात् तथा पाठां तरे (आहारउपंचकवज्जणेणं के०) आहारपंचकंलवणपंचकंचेदं आहार आश्री पां

च भेद वर्जवा थकी मोक्ष थायछे ते आहार पंचकना नाम कहेछे एक लशण बीजो प लाडु त्रीजो करभी एटले दुग्ध चोथो गौमांस पांचमुं मद्य (एगेयसीओदगसेवणेणंके०) तथा एकेक वादी शीतलोदकना उपभोग थकी मोक्ष कहेछे एटले जेम पाणी बाह्यमल उतारेछे तेम अंतरंग मल पणते पाणीज उतारेछे एम कहेछे (हुएणएगेपवयंतिमोरकं के०) कोइएक वली हुताशन एटले अग्नीना होम थकी मोक्षछे एम प्ररूपेछे जेम सुव र्णादिकना मलने अग्नी बोलेछे तेम आत्मना मलनो पण अग्नीज नाश करेछे. ॥ १ २॥

॥ दीपिका–हेजंतवो यूयं संबुध्यध्वं मनुष्यत्वं दुर्लनं तथा नरतिर्यगादिगतिषु नयं दृष्ट्वा बालिशेन मूर्खेण विवेकस्यालंनोविवेकश्चैन न लभ्यते इतिज्ञात्वा एकांतदुःखाज्ज्व रितइवायं लोकः । यदुक्तं । जन्मदुःखं जरादुःखं, रोगा य मरणाणि अ ॥ अहोदुः रके हु संसारो जह कीसंति जंतुणो इति । तथा तएहाइ अस्सपाणं कूगेडायस्स नुत्तपचि त्ति । दुःखसयंसंपचत्तंजरिअमिवजगंकालइ । एवंनूतोलोकोदुष्कर्मकारी विपर्यासमुपै ति सुखार्थी पापं कुर्वन् दुःखमेव प्राप्नोति ॥ ११ ॥ उक्तः कुशीलविपाकः । अथ तद्दर्शना न्युच्यंते । इह नवे एके मूढामोक्षं प्रवदंति । केन आहारस्य संपद्रसस्तं जनयतीत्याहारसं पद्धनं लवणं तस्य वर्जनेन लवणवर्जनेन मोक्षं प्रवदंति । लवणं हि सर्वरसमूलं तद्व र्जनाच्च रसपंचकं तस्य वर्जनेन । लवणपंचकं चेदं । सैधवं १ सौवर्चलं २ विडं ३ रौमं ४ सामुद्रंचेति । तथा पाठांतरं आहारउपंचकवज्जणेणं । आहारतः आहारमाश्रित्य पंचक वर्जनं । तथाहि । लशुनं १ पलांडुः २ करभीक्षीरं ३ गोमांसं ४ मद्यंचेति । एवमाहा रपंचकवर्जनेन मोक्षं प्रवदंति । तथा एकेन शीतोदकसेवनेन सचित्तजलपरिभोगादेके मोक्षं वदंति । यथा जलेन बाह्यमलस्य विनाशस्तथांतरस्यापी त्यर्थः । एके हुतेन वन्हिहो मेन मोक्षं प्रवदंति । कोर्थः । ते मोक्षायाग्निहोत्रे जुव्हति वदंतिच यथाग्निः स्वर्णादी नां मलं दहति तथात्मनोपीति ॥ १२ ॥

॥ टीका–किंचाऽन्यत् (संबुज्झहेत्यादि) हेजंतवः प्राणिनः संबुध्यध्वं यूयं नहि कुशी लपाषंडिकलोकस्त्राणाय नवति । धर्मंच सुदुर्लभत्वेन संबुध्यध्वं । तथाचोक्तं । माणुस्स खेत्तजाई, कुलरूवारोग्गमाउयंबुद्धी ॥ सवणोग्गहसद्धासंममोयलोगंमि दुल्लहाइं ॥ तदेव मकृतधर्माणां मनुष्यत्वमतिदुर्लभमित्यवगम्य तथा जातिजरामरणरोगशोकादीनि नरक तीर्यक्षुच तीव्रदुःखतया नयं दृष्ट्वा तथा बालिशेनाऽज्ञेन सद्विवेकस्याऽलंनइत्येतच्चा ऽवगम्य तथा निश्चयनयमवगम्य एकांतदुःखोयं ज्वरितइव लोकः संसारप्राणिगणः । तथा चोक्तं । जम्मदुःखं जरादुःखं, रोगायमरणाणिय । अहोदुरकोहुसंसारो, जह कीसंतिपा

णिणो ॥ १ तथा । तएहाऽहस्सपाणं, कूरोब्रायस्सउज्जएतेत्ती ॥ दुःखकसहसंपनुत्तं जरियमिवजगंकलयलेइ ॥१॥ इत्यत्र चैवं नूतलोके आनार्यकर्मकारी स्वकर्मणोविपर्यासमुपैति सुखार्थी प्राण्युपमर्दं कुर्वन् दुःखं प्राप्नोति । यथा मोक्षार्थी संसारं पर्यटतीति ॥ ॥ ११ ॥ उक्तः कुशीलविपाकोऽधुना तद्दर्शनान्यभिधीयंते । (इहेगेत्यादि) इहेति मनुष्यलोके मोक्षगमनाधिकारे वा एके केचन मूढाअज्ञानाऽऽबादितमतयः परैश्च मोहिताः प्रकर्षेण वदंति प्रतिपादयंति । किंतत् मोक्षं मोक्षावाप्तिं । केनेति दर्शयंति । आह्रियतइत्याहारउदनादिस्तस्य संपदसपुष्टिस्तां जनयतीत्याहारसंपज्जनं लवणं । तेन ह्याहारस्य रसपुष्टिः क्रियते तस्य वर्जनं तेनाऽऽहारसंपज्जनवर्जनेन लवणवर्जनेन मोक्षं वदंति । पाठांतरंवा । आहारसपंचयवज्जणेण आहारसलवणपंचकमाहारसपंचकं । लवणपंचकं चेदं । तद्यथा । सैंधवं सौवर्चलं बिडं रौमं सामुद्रं चेति । लवणेन हि सर्वरसानामभिव्यक्तिर्नवति । तथाचोक्तं । लवणविहूणायरसा, चरकुविहूणायइंदियग्गामा । धम्मोदयापरहिउ, सोरकंसंतोसरहियंतो ॥ १ ॥ तथा लवणं रसानां तैलं स्नेहानां घृतं मेध्यानामिति । तदेवंनूतलवणपरिवर्जनेन रसपरित्यागएव कृतोनवति तत्त्यागाच्च मोक्षावाप्तिरित्येवं केचन मूढाः प्रतिपादयंति । पाठांतरंवा आहारउपंचकवज्जणेण ।आहारतइति ल्यब्लोपे कर्मणि पंचमी । आहारमाश्रित्य पंचकं वर्जयंति । तथा लसणं पलांडुः करनीक्षीरं गोमांसं मद्यं चेत्येतत्पंचकवर्जनेन मोक्षं प्रवदंति । तथैके वारिनद्रकादयोनागवतविशेषाः शीतोदकसेवनेन सचित्ताप्कायपरिनोगेन मोक्षं प्रवदंति । उपपत्तिं च ते अभिदधति । यथोदकं बाह्यमलमपनयति एवमांतरमपि । वस्त्रादेश्च यथोदकाच्छुद्धिरुपजायते एवं बाह्यशुद्धिसामर्थ्यदर्शनादांतरापि शुद्धिरुदकादेवेति मन्यंते । तथैके तापसब्राह्मणादयोहुतेन मोक्षं प्रतिपादयंति । ये किल स्वर्गादिफलमनाशंस्य समिधाघृतादिनिर्द्रव्यविशेषैर्हुताशनं तर्पयंति ते मोक्षायाग्निहोत्रं जुह्वति । शेषास्त्वन्युदयायेति । युक्तिं चात्र ते आहुः । यथा अग्निः सुवर्णादीनां मलं दहत्येवं दहनसामर्थ्यदर्शनादात्मनोऽप्यांतरं पापमिति ॥१२॥

पाउसिणाणादिसु णत्थि मोरको, खारस्स लोणस्स अणासएणं ॥
ते मज्जमंसं लसणंच नोच्चा, अन्नत्थवासं परिकप्पयंति ॥ १३ ॥
उदगेण जे सिद्धिमुदाहरंति, सायंच पायं उदगं फुसंता ॥ उदगस्स फासेण सियाय सिद्धि, सिज्जंसु पाणा बहवे दगंसि ॥ १४ ॥

अर्थ–हवे ए पूर्वोक्त दर्शनीउने उत्तर कहेछे. (पाउसिणाणादिसुके०) प्रातःस्नानादिके करी आदि शब्द थकी हस्त पादने धोवे करी (णत्थिमोरको के०) मोक्ष नथी के

मके पाणी नाखवा थकी तदाश्रित जीवोनो घात थायछे तेमाटे एम कह्याथकी मोक्ष प्राप्त नथाय तथा (खारस्सलोणस्सअणासएणंके०) खार एटले लवणने अण जमवे करी पण मोक्ष नथी जो लुंण नखावा थकी मोक्ष प्राप्ति थती होय तो जे देशमां सर्वथा लुंण मलतुंज नथी तो त्यां निवाश करनारा लोकोने दुर्गति पण नथाय परंतु ए वचन असंबंध जाणवो (तेमज्जमंसंलसणंचभोच्चा के०) अने ते मूर्ख मद्य मांस तथा लशण नो परिभोग करी ने (अन्नत्थवासंपरिकप्पयंतिके०) मोक्षार्थि थका अन्यत्र स्थानके वाशकरें एटले तेने पण सुशीलविना मोक्ष नथी एतावता तेने संसारमां निवास कल्पे ॥१३॥ (उदगेण जेसिद्धिमुदाहरंति के०) जे मूर्ख पाणीये करी मोक्ष प्ररूपेछे (सायंचपायंउदगंफुसंता के०) एटले संध्या प्रभात अने चकारना ग्रहण थकी मध्यानने विषे पाणीनो स्पर्श करवा थकी मुक्ति कहेछे तेपण मुधा जाणवो केमके (उदगस्सफासेणसियायसिद्धि के०) उदकना स्पर्शे थकी जो सिद्धि थाय तो (सिझंसुपाणाबहवेदगंसि के०) पाणीमांहे सर्व काल माछला प्रमुख जीवो रहेछे अथवा जाल पण पाणीमां रहेछे तेने पण मुक्ति होवी जोइयें तेम तो थतुं नथी कारणके पाणी जेम अनिष्ट मलने हरण करेछे तेमज इष्ट मल जे सुगंध द्रव्य छे तेने पण हरण करेछे. ॥ १४ ॥

॥ दीपिका–प्रातःस्नानादिषु नास्ति मोक्षः । तथा क्षारस्य पंचप्रकारलवणस्यानशने नाऽपरिभोगेण मोक्षोनास्ति ते मूढामद्यं मांसं लशुनादिकंवा भुक्त्वाऽन्यत्र मोक्षात् संसारेवा समवस्थानं परिकल्पयंति नतु मोक्षगामिनः स्युः शीलं विना ॥ १३ ॥ ये उदकेन सिद्धिमुदाहरंति सायमपराह्णे प्रातः प्रभाते उपलक्षणान्मध्यान्हे एवं त्रिकालमुदकं स्पृशंतोजलेन स्नानादिकं कुर्वंतः प्राणिनः सिद्धिं यांतीति केचिद्वदंति तन्न युक्तं । यतोजलस्य स्पर्शमात्रेण यदि सिद्धिः स्यात्तदा जलाश्रितामत्स्यबंधादयोबहवः सिध्येयुः। स्नानंच यतीनां दोषायैव । यदुक्तं ।स्नानं मददर्पकरं कामांगं प्रथमं स्मृतं । तस्मात्कामं परित्यज्य न ते स्नांति दमे रताः ॥१॥ तथा । नोदकक्लिन्नगात्रोहि स्नातइत्यभिधीयते॥ सस्नातोयोव्रतस्नातः सबाह्याभ्यंतरः शुचिरिति ॥ १४ ॥

॥ टीका–तेषामसंबद्धप्रलापिनामुत्तरदानायाह । (पाउसिणाणादिइत्यादि) । प्रातः स्नानादिषु नास्ति मोक्षइति प्रत्यूषजलावगाहनेन निःशीलानां मोक्षोनभवति । आदिग्रहणात् हस्तपादादिप्रक्षालनं गृह्यते । तथा ह्युदकपरिभोगेन तदाश्रितजीवानामुपमर्दः समुपजायते । नच जीवोपमर्दान्मोक्षावाप्तिरिति । नचैकांतेनोदकं बाह्यमलस्याप्यपनयने समर्थं यथाऽपिस्यात्तथाप्यांतरमलं नशोधयति । भावशुध्या तद्बुद्धेरथभावरहितस्यापि तद्बुद्धिः

स्यात् ततोमत्स्यबंधादीनामपि जलाभिषेकेण मुक्त्यवाप्तिः स्यात् । तथा क्षारस्य पंच प्रकार स्याऽपि लवणस्याऽ नशनेनाऽपरिभोगेन मोक्षोनास्ति । तथाहि । लवणपरिभोगरहितानां मोक्षोनभवतीत्ययुक्तिकमेतत् ।नचाऽयमेकांततोलवणमेव रसपुष्टिजनकमिति क्षीरशर्करादि निर्व्यभिचारात् । अपिचाऽसौ प्रष्टव्यः । किं द्रव्यतोलवणवर्जनेन मोक्षावाप्तिरुत भावतः । यदि द्रव्यतस्ततोलवणरहितदेशे सर्वेषां मोक्षः स्यान्नचैवं दृष्टमिष्टंवा । अथ भावतस्ततो भावएव प्रधानं किं लवणवर्जनेनेति । तथा ते मूढामद्यमांसलशुनादिकं वा भुक्त्वा अन्यत्र मोक्षादन्यत्र संसारे वा समवस्थानं तथाविधानुष्ठानमसद्भावात् सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र रूपमोक्षमार्गस्याऽनुष्ठानाच्च परिकल्पयंति समंतान्निष्पादयंतीति ॥ १३ ॥ सांप्रतं विशेषे ण परिजिहीर्षुराह । (उदगेणेत्यादि) तथा ये केचन मूढाउदकेन शीतवारिणा सिद्धिं परलोकमुदाहरंति प्रतिपादयंति । सायमपराएहे वकाले वा प्रातश्च प्रत्युषसिच आ द्यंतग्रहणात् मध्यान्हे च । तदेवं संध्यात्रयेऽप्युदकं स्पृशंतः स्नानादिकां क्रियां जले न कुर्वंतः प्राणिनोविशिष्टां गतिमाप्नुवंतीति केचनोदाहरंति । एतच्चासम्यक् । यतोय द्युदकस्पर्शमात्रेण सिद्धिः स्यात् ततउदकसमाश्रितामत्स्यबंधादयः क्रूरकर्माणोनिरनुक्रोशा बहवः प्राणिनः सिद्ध्येयुरिति । यदपि तैरेवोच्यते । बाह्यमलापनयनसामर्थ्यमुदकस्य दृष्ट मिति तदपि विचार्यमाणं नघटते । यतोयथोदकमनिष्टमलमपनयत्येवमभिमतमप्यंग रागं कुंकुमादिकमपि नयति । ततश्च पुण्यस्याऽपनयनादिष्टविघातकृद्विरुद्धः स्यात् । किंच यतीनां ब्रह्मचारिणामुदकस्नानं दोषायैव । तथाचोक्तं । स्नानं मददर्पकरं, कामांगं प्रथमं स्मृतं । तस्मात्कामं परित्यज्य,नते स्नांति दमे रताः ॥ अपिच । नोदकक्लिन्नगात्रो हि, स्नातइत्यभिधीयते ॥ सस्नातोयोव्रतस्नातः सबाह्याभ्यंतरः शुचिः ॥ १४ ॥

मछाय कुम्माय सिरीसिवाय, मग्गूय उट्ठादगरस्कसाय ॥ अ
ठाणमेयं कुसला वयंति, उदगेण जे सिद्धिमुदाहरंति ॥ १५ ॥
उदयं जइ कम्ममलं हरेज्जा, एवं सुहं इछामित्तमेवं ॥ अंधंव
णेयारमणुस्सरित्ता; पाणाणि चेवं विणिहंति मंदा ॥ १६ ॥

अर्थ—(मछायकुम्मायसिरीसिवाय के०) जो उदकना स्पर्श थकी मोक्ष थायतो माछला कूर्मक एटले रूमका तथा सर्प (मग्गूयके०) जलकाग (उट्ठाके०) जलचरवि शेष (दगरस्कसाय) जलमाणस एटले मनुष्याकृति जेवा राक्षस ए सर्व मोक्षगामी थशे (अठाणमेयंकुसलावयंतिके०) ते कारण माटे जे कुशल एटले तीर्थंकर देव तेणे ए अस्थान अयुक्त कह्युंछे तो शुं कह्युंछे तोके (उदगेणजेसिद्धिमुदाहरंतिके०) उदक थ की जेमोक्ष कहेछे ते पुरुष अज्ञानी पापिष्ट पाखंमी अल्पमति वाला जाणवा ॥ १५ ॥

(उदयंजइ कम्ममलंहरेज्जाके०) उदक जो अशुभ कर्मरूप मलने हरण करे तो (एवं सुहं के०) एमज शुभ एटले पुण्य तेने पण हरण करे अने जो पुण्यने हरण नकरे तो कर्म मल पण अपहरी शकेनही माटे (इच्छामित्तमेवं के०) जे उदक थकी सिद्धि कहेछे ते ए वचन इच्छामात्रज बोलेछे (अंधंवणेयारमणुस्सरित्ताके०) जेम जात्यंध पुरुष मार्गी देखाडनार होय तो तेनी पछवाडे चालवा थकी वांछित मार्ग पामियें नही (पाणाणिचेवंविणिहंतिमंदाके०) तेम मूर्ख प्राणी पण धर्मनी बुद्धियें प्राणीउनो विनाशक एवा शौच मार्गनो सेवन करता थका मोक्षपामे नही एम जगवंत कहेछे. ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–उदकेन यदि मुक्तिः स्यात्तदा मत्स्याः कूर्माश्च सरीसृपाजलसर्पामजवोजलवायसाउष्ट्राजलचरविशेषादकराक्षसाजलमानुषास्ते प्रथमं सिध्येयुः । नचैवं दृष्टमिष्टं वा । ततोऽस्थानमयुक्तमेतदिति कुशलानिपुणावदंति ये उदकेन सिद्धिमुदाहरंति ॥ १५ ॥ उदकं यदि कर्ममलं हरेत् एवं शुभं पुण्यमपि हरेत् । अथ पुण्यं नहरेदेवं कर्ममलमपि न हरेदतइच्छामात्रमेतज्जलं कर्मापहारीति ॥ यथा जात्यंधाश्चान्यं जात्यंधमेव नेतारमनुसृत्य गछंतः कुपथाश्रिताः स्युः । एवं स्मार्तमार्गानुसारिणोजलशौचपरामंदामूर्खाः प्राणिनएव विनिघ्नंति व्यापादयंति ततश्च नाभिप्रेतस्थानगामिनः स्युः ॥ १६ ॥

॥ टीका–किंच (मछायइत्यादि) । यदि जलसंपर्कात्सिद्धिः स्यात् ततोये सततमुदकावगाहिनोमत्स्याश्चकूर्माश्च सरीसृपाश्च तथा मजवस्तथोष्ट्राजलचरविशेषास्तथोदकराक्षसा जलमानुषाकतयोजलचरविशेषाएते प्रथमं सिद्धेयुर्नचैतद्दृष्टमिष्टं । ततश्च ये उदकेन सिद्धिमुदाहरंत्येतदस्थानमयुक्तमसांप्रतं कुशलनिपुणामोक्षमार्गाभिज्ञावदंति ॥ १५ ॥ किंचाऽन्यत् । (उदयमित्यादि) यद्युदकं कर्ममलमपहरेदेवं शुभमपि पुण्यमपहरेत् अथ पुण्यं नापहरेदेवं कर्ममलमपि नापहरेत् । अतइच्छामात्रमेवैतद्यदुच्यते जलकर्मापरिहारीति । एवमपि व्यवस्थिते ये स्नानादिकाः क्रियाः स्मार्तमार्गमनुसरंतः कुर्वंति ते यथा जात्यंधाअपरं जात्यंधमेव नेतारमनुसृत्य गछंतः कुपथश्रुतयोजवंति नाऽभिप्रेतं स्थानमवाप्नुवंति । एवं स्मार्तमार्गानुसारिणोजलशौचपरायणामंदाअज्ञाः कर्तव्याकर्तव्यविवेकविकलाः प्राणिनएव तन्मयात् तदाश्रितांश्च पूतरकादीन् विनिघ्नंति व्यापादयंति अवश्यं जलक्रियया प्राणव्यपरोपणस्य संभवादिति ॥ १६ ॥

पावाइं कम्माइं पकुव्वतोहिं, सिउदगं तू जइ तं हरिज्जा॥सिझं सु
एगे दगसत्तघाती. मुसं वयंते जलसिद्धिमाहु॥ १७॥ हुतेण जे

सिद्धिमुदाहरंति, सायंच पायं अगणिं फुसंता ॥ एवं सिया सिद्धि हवेज्ज तम्हा, अगणिं फुसंताण कुकंमिणंपि ॥ १८ ॥

अर्थ-(पावाइं कम्माइं पकुव्वतोहिंके०) जे जीव प्रकर्षे करी जीव घातादिक अनेक पाप कृत्यो करी कर्म उपार्जीने पछी (सिउदगंतूजइतंहरिज्जाके०) सीतोदक एटले त्रिसंध्याये पाणीनो स्पर्श करी उपार्जित कर्मनो नाश करीने सिद्धिपामे तो (सिज्झंसुएगेदगसत्तघाती के०) पाणीने योगे करी कोइ एक जीवघातक एवा माछीगर प्रमुख पण सीजे (मुसं वयंतेजलसिद्धिमाहु के०) तेमाटे जे उदक थकी सिद्धि कहेछे ते मृषावाद बोले छे ॥ १७ ॥ (हुतेणजे सिद्धिमुदाहरंति के०) हुताशन जे अग्नि ते थकीजे मोक्ष कहेछे (सायंचपायं अगणिंफुसंता के०) एटले संध्या प्रभात अने मध्यान्हे एम त्रिसंध्यायें अग्नीने फरसवे करी घृतादिकनुं अग्नीनेविषे होम करवे करी सिद्धिछे एम अग्नी होत्री नामना दर्शनीउ कहेछे तेने पूछीयें जे (एवंसिया सिद्धिहवेज्जतम्हाके०) एम करवा थकी जो सिद्धि थति होय तो (अगणिं फुसंताण कुकंमिणंपि के०) अग्नीना फरशनारा कुकर्मि एवा लोहकार अंगार दाहक कुंभकार भाडभूंजा सोनी प्रमुख ने पण मोक्ष प्राप्ति थवी जोइये केमके ए लोहकार प्रमुखतो सदा अग्नि तर्प्पण करता थकाज रहेछे माटे ते दुर्गतिमां नहीज जाय. यद्यपि ते दर्शनीउ मंत्रनुं कारण देखाडे तो तेने एम कहेवुं केजे अत्यंत तमारा आज्ञाकारी होय ते एवुं तमारुं बोलवुं प्रमाण करशे परंतु अन्य जनो ए वात माने नही जेम तेम भस्म करणे सरखा तो मंत्रेकरी शुं विशेषछे॥१८॥

॥ दीपिका-पापानि कुर्वतः प्राणिनोयत्कर्म बध्यते तत्कर्म यदि जलमपहरेत्।यद्येवं स्यात्तदा जलसत्वघातिनोजलप्राणिहिंसकाः सर्वे सिध्येयुर्नचैवमस्ति तस्माद्ये जलेन सिद्धिमाहुस्ते मृषावदंति ॥१७॥ अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामइत्यादिवाक्यात् ये मूढाहुतेनाऽग्नौ हव्यरूपेण सिद्धि सगतिमुदाहरंति वदंति । किंभूताः सायमपराण्हे प्रातः प्रभातेऽग्निं स्पृशंतस्तर्पयंतः सिद्धिमिछंति । एवं यदि सिद्धिः स्यात्ततस्तस्मादग्निं स्पृशतां कुकर्मिणामंगारकदाहककुंभकारायस्कारादीनां सिद्धिः कथं न स्यात् ॥ १८ ॥

॥ टीका-अपिच (पावाइंइत्यादि । पापानि पापोपादानभूतानि कर्माणि प्राण्युपमर्दकारीणि कुर्वतोसुमतोयत्कर्मोपचीयते तत्कर्म यद्युदकमपहरेत् । यद्येवं स्यात् तर्हि यस्मादर्थे यस्मात्प्राण्युपमर्दकर्मोपादीयते जलावगाहनाच्चाऽपगछति तस्मादुदकसत्वघातिनः पापभूयिष्ठअप्येवं सिध्येयुः । नचैतदृष्टमिष्टं वा । जलावगाहनात्सिद्धिमाहुस्ते

मृषा वदंति ॥ १७ ॥ किंचाऽन्यत् (हुतेणेत्यादि) अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामइत्य स्मा द्वाक्यात् ये केचन मूढाहुतेनाऽग्नौ द्रव्यप्रक्षेपेण सिद्धिं सुगतिगमनादिकां स्वर्गा वाप्तिलक्षणामुदाहरंति प्रतिपादयंति । कथंभूताः सायमपराण्हे विकालेवा प्रातः प्रत्यु षसि अग्निं स्पृशंतोयथेष्टैर्द्रव्यैरग्निं तर्पयंतस्ततएव यथेष्टगतिमभिलषंति । आहुश्चै वं ते यथा अग्निकार्यात्स्यादेव सिद्धिरिति । तत्रच यद्येवमग्निस्पर्शेन सिद्धिर्भवेत् । ततस्त स्मादग्निं स्पृशतां कुकर्मिणामंगारदाहककुंभकारायस्कारदीनां सिद्धिः स्यात् । यदपि च मं त्रपूतादिकं तैरुदाह्रियते तदपिच निरंतराः सुहृदः प्रत्येष्यंति । यतः कुकर्मिणा मप्यग्निकार्ये भस्मापादनमग्निहोत्रिकादीनामपि भस्मसात्करणमिति नातिरिच्यते कुक र्मिभ्योऽग्निहोत्रादिकं कर्मेति । यदप्युच्यते अग्निमुखावैदेवाः । एतदपियुक्तिविकलत्वात् वाङ्मात्रमेव विष्टादिभक्षणेन चाऽग्नेस्तेषां बहुतरदोषोत्पत्तेरिति ॥ १८ ॥

अपरिक्ख दिट्ठं णहु एव सिद्धी,एहिंति ते घायमबुज्झमाणा॥भूए
हिं जाणं पडिलेह सातं, विज्जंगहायं तसथावरेहिं ॥१९ ॥ थणं
ति लुप्पंति तसंति कम्मी, पुढो जगा परिसंखाय भिक्खू ॥ तम्हा
विऊ विरतोआयगुत्ते, दट्ठुं तसेया पडिसंहरेज्जा ॥ २० ॥

अर्थ–माटे (अपरिक्खदिट्ठंणहुएवसिद्धीके०)जे स्नान अने होमादिके करी सिद्धि बोले छे ते अविमास्यो बोलेछे केमके एवा कारणो थकी सर्वथापि सिद्धि नथाय·(एहिंतिते घायमबुज्झमाणा के०) ते अबुद्ध एटले तत्वना अजाण धर्मनी बुद्धियें पाप करतां थका घात पामशे (भूएहिंजाणंपडिलेहसातं के०) एवुं जाणी करीने भूत एटले प्राणी मात्रने साता एटले सुख प्रतिलेखीने तेने हणे नही एम (विज्जंके०) विद्वान् विवेकने (गहा यके०) ग्रहीने (तसथावरेहिंके०) त्रस अने स्थावर जीवोने सुख प्रियछे दुःख अप्रियछे एवुं ज्ञानेकरी जाणे यडुक्तं पढमंनाणंतउदया इतिवचनात्॥१९॥परंतु जे कुशीलिया छेतेप्राणीउ नो उपमर्दन करवा थकी सातामानेछे तेने फलकहेछे ते पृथिव्यादिकना आरंभे सुखाभिला षी छता नरकादिक गतिने विषे जाय पछी त्यां (थणंतिके०)आक्रंद करे तथा (लुप्पंतिके०) खड्गादिक शस्त्रे छेदन थयाथी कदर्थमान थका (तसंतिके०) नाशीजाय एम (कम्मी के०) ते पाप सहित प्राणी दुःखी थाय (तम्हाके०) ते कारणे (भिक्खूके०) चारि त्रिउ (पुढोजगापरिसंखाय के०) जुदा जुदा जीवोने जाणीने (विऊके०) विद्वान होयते (आयगुत्तेके०) आत्म गुप्तिवंत छतो (विरतोके०) संयम आचरे (दट्ठुंतसेयापडिसंहरेज्जा के०) त्रस अने स्थावर जीवनी हिंसाकारणी एवी क्रियादेखीने ते थकी निवर्त्ते ॥२०॥

॥ दीपिका–अग्निहोत्रेण जलेन वा यैः सिद्धिरुक्ता तैरपरीक्ष्य दृष्टं युक्तिविकलमुक्तं ।

यतो नैवमेव सिद्धिः। ते परमार्थमबुध्यमानाअजानंतः प्राणिघातेन संसारे न्रमिष्यंति॥ ततोविद्वान् विवेकी सातं सुखं प्रत्युपेक्ष्य नूतैः प्राणिनिस्त्रसस्थावरैर्जानीयाद्यथाव स्थिततत्वं गृहीत्वा । कोर्थः । सर्वे जीवाः सुखैपिणोडुःखद्विषश्च। नच सुखैषिणां डुःखोत्पा दकत्वेन स्वस्य सुखं स्यादिति ॥ १ए ॥ ते आरंनिणोनरकादिगतास्तनंत्याक्रंदंति लु प्यंते छिद्यंते खड्गादिनिः। एवं पीड्यमानास्त्रसंति पलायंते ।कर्माणि विद्यंते येषांते कर्मि णः सपापाः पृथक् जगाइति जंतवः । एवं परिसंख्याय ज्ञात्वा निक्षुस्तस्माद्विद्वान् पंडितो विरतः पापादात्मगुप्तोदांतात्मा त्रसान् स्थावरांश्च दृष्ट्वा परिज्ञाय तडुपघातक्रियां प्र तिसंहरेन्निवर्तयेत् ॥ २० ॥

॥ टीका–उक्तानि पृथक् कुशीलदर्शनानि अथमपरस्तेषां सामान्योपालंनइत्याह । (अ परिस्कदिठमित्यादि । यैर्मुमुक्षुनिरुदकसंपर्केणाऽग्निहोत्रेण वा प्राण्युपमर्दकारिणा सिद्धि रिति । तेच परमार्थमबुध्यमानाः प्राण्युपघातेन पापमेव धर्मबुद्ध्या कुर्वंतोघात्यंते वा व्या पाद्यंते नानाविधैः प्रकारैर्यस्मिन् प्राणिनः संघातः संसारस्तमेष्यंति । अप्कायतेजःकाय समारंनेण हि त्रसस्थावराणामवश्यं नावी विनाशस्तन्नाशेच संसारएव न सिद्धिरित्यनि प्रायः । यतएवं ततोविद्वान् सदसद्विवेकी यथावस्थिततत्वं गृहीत्वा त्रसस्थावरैर्नूतैर्जं तुनिः कथं सांप्रतं सुखमवाप्स्यतइति एतत्प्रत्युपेक्ष्य जानीहि अवबुध्यस्व । एतडुक्तं नव ति । सर्वेऽप्यसुमंतः सुखैषिणोडुःखद्विषोनच तेषां सुखैषिणां डुःखोत्पादकत्वेन सुखा वाप्तिर्नवतीति । यदिवा । (विज्जंगहायत्ति) विद्याज्ञानं गृहीत्वा विवेकमादाय त्रस स्थावरैर्नूतैर्जंतुनिः करणनूतैः सातं सुखं प्रत्युपेक्ष्य पर्यालोच्य जानीह्यवगछेति । यत उक्तं ।(पढमं नाणं तवोदया एवं चिठइ संजए। अन्नाणीकिंकाही किंवाणाहीछेयपावगमि त्यादि)॥ १ए ॥ ये पुनः प्राण्युपमर्देन सातमनिलपंतीत्यशीलाः कुशीलाश्च ते संसारे एवंविधाअवस्थाअनुनवंतीत्याह (थणंतिलुप्पंतीत्यादि) तेजस्कायसमारंनिणोनूतस मारंनेण सुखमनिलषंतोनारकादिगतिगतास्तीव्रडुःखैः पीड्यमानाअसह्यवेदनाग्रातमा नसाअशरणाः स्तनंति केवलं करुणमाक्रंदंतीति यावत् । (तथालुप्पंतीति) । छि द्यंते खड्गादिनिरेवं च कदर्थ्यमानास्त्रस्यंति प्रपलायंते । कर्माण्येषां संतीति कर्मिणः स पापाइत्यर्थः । तथा पृथक्जगाइति जंतवइति । एवं परिज्ञाय ज्ञात्वा निक्षणशीलोनिक्षुः साधुरित्यर्थः । यस्मात्प्राण्युपमर्दकारिणः संसारांतर्गताविलुप्यंते तस्माद्विद्वान् पंडितोवि रतः पापानुष्ठानादात्मा गुप्तोयस्य सोऽयमात्मगुप्तोमनोवाक्कायगुप्तइर्थः। दृष्ट्वाच त्रसान्।च शब्दात्स्थावरांश्च दृष्ट्वा परिज्ञाय तडुपघातकारिणीं क्रियां प्रतिसंहरेन्निवर्तयेदिति ॥ २० ॥

जे धम्मलद्धं विणिहाय भुंजे, वियडेण साहट्टु य जे सिणाइ॥ जे धोवती लूसयतीव वत्थं, अहाहु सेणा गणियस्स दूरे ॥ २१ ॥ कम्मं परिन्नाय दगंसि धीरे, वियडेण जीविज्जय आदिमोक्खं ॥ सबीय कंदाइ अभुंजमाणे, विरतेसि णाणाइसु इत्थियासु ॥ २२ ॥

अर्थ-(जे के०) जे शीतल विहारी (धम्म के०) शुद्ध निर्दोष एवा आहारने लद्ध के० लहीने (विणिहायभुंजे के०) संनिधि करी जमे तथा (वियडेणसाहट्टुयजे सिणाइ के०) विकट एटले फासु पाणीयें करी अंगोपांग संकोची प्रासुक प्रदेशें बेशी देश थकी अथवा सर्व थकी स्नान करे तथा (जेधोवतीलूसयतीववत्थं के०) जे वस्त्र धोवे तथा लुसे एटले लांबुंहोय तेने फाडीने न्हानो करे तथा न्हानुं होय तेने सांधी ने मोहोटुं करे इत्यादिक वातो शोभाने अर्थे जे करे (अहाहुसेणागणियस्सदूरेके०) ते संयम थकी दूर वर्त्तेछे एम श्रीतीर्थंकर गणधर कहेछे. ॥ २१ ॥ (कम्मंपरिन्नायदगं सिधीरे के०) जे धीर बुधिमंत पुरुष होय ते उदकने विषे कर्मबंध जाणीने (वियडे णजीविज्जयआदिमोक्खं के०) जावजीव सुधी फासु पाणी पीए (सबीयकंदाइअभुंज माणे के०) ते साधु बीज कंदादिक अणभोगवतो (विरतेसिणाणाइसुइत्थियासुके०) स्नान अभ्यंग उटंगणादिकने विषे तथा स्त्रीने विषे विरति होय पणकुशील दोष आचरे नही ॥ २२

॥ दीपिका-अथ स्वयूथ्यकुशीलानाह । (जेइति) । ये शीतलविहारिणोधर्मेण सुधिकया लब्धमुद्देशकक्रीतादिदोषरहितमाहारं विनिधाय व्यवस्थाप्य सन्निधिकृतेवा भुंजते तथा विकटेन प्रासुकोदकेनापि संकोच्यांगानि प्रासुकोदकेनापि देशसर्वस्नानं कुर्वंति तथा ये वस्त्रं धावंति प्रक्षालयंति लूषयंति शोभार्थं दीर्घं सच्छिदार्य ऱ्हस्वं वा संधाय दीर्घं करोति (सेणागणिअस्स) निर्ग्रंथभावस्य दूरे वर्तते इति तीर्थकृतआहु. ॥ २१ ॥ उक्ताः कुशीलाअथ सुशीलाउच्यंते । धीरोबुद्धिमान् उदकारंभे सति कर्म बध्यतइति प्रतिज्ञाय विकटेन प्रासुकोदकेन सौवीरादिना जीव्यात् प्राणधारणं कुर्यात् । आदिः संसारस्तस्मान्मोक्षआदिमोक्षः संसारविमुक्तिंयावदित्यर्थः । अथवा धर्महेतूनामादिभूतं शरीरं तद्विमुक्तिंयावद्यावज्जीवमित्यर्थः । ससाधुर्बीजकंदादीनभुंजानः स्नानादिषु विरतः । आदिशब्दादभ्यंगोद्वर्तनादिभ्योपिविरतअन्यासुच विचिकित्सादिक्रियासु निवर्तते तथा स्त्रीषु विरतोऽन्यास्वेभ्योपि विरतः कुशीलदोषैर्न युज्यते॥ २२ ॥

॥ टीका-सांप्रतं स्वयूथ्याः कुशीलाअभिधीयंतइत्याह।(जेधम्मलद्धमित्यादि) ये केच

न शीतलविहारिणाधर्मेण सुधिकया लब्धं धर्मलब्धं। उद्देशकक्रीतकृतादिदोषरहितमित्यर्थः।तदेवंभूतमप्याहारजातं निधाय व्यवस्थाप्य सन्निधिं कृत्वा भुंजंते । तथा ये विकटेन प्राशुकोदकेनाऽपि संकोच्यांगानि प्राशुकएव प्रदेशे देशसर्वस्नानं कुर्वंति । तथा योवस्त्रं धावति प्रक्षालयति तथा लूषयति शोभार्थं दीर्घमुत्पाटयित्वा ह्रस्वं करोति ह्रस्वंवा संधाय दीर्घं करोति । एवं लूषयति । तदेवं स्वार्थं परार्थं वा योवस्त्रं लूषयति।अथाऽसौ (णागणियस्सत्ति) निर्ग्रंथभावस्य संयमानुष्ठानस्य दूरे वर्तते न तस्य संयमोभवत्येवं तीर्थंकरगणधरादयआहुरिति ॥ २१ ॥ उक्ताः कुशीलास्तत्प्रतिपक्षभूताः शीलववंतः प्रतिपाद्यंतइत्येतदाह । (कम्मंपरिणायइत्यादि) । धिया राजते इति धीरोबुद्धिमान् (उदगंसित्ति) उदकसमारंभे सति कर्मबंधोभवति । एवं परिज्ञाय किंकुर्यादित्याह । विकटेन प्राशुकोदकेन सौवीरादिना जीव्यात् प्राणसंधारणं कुर्यात् । चशब्दात् अन्येनाऽप्याहारेण प्राशुकेनैव प्राणवृत्तिं कुर्यात् । आदिः संसारस्तस्मान्मोक्षआदिमोक्षः संसारविमुक्तिंयावदिति । धर्मकारणानां तावदादिभूतं शरीरं तद्विमुक्तिं यावज्जीवमित्यर्थः । किंचाऽसौ साधुर्बीजकंदादीन् भुंजानः। आदिग्रहणात् मूलपत्रफलानि गृह्यंते । एतान्यऽप्यपरिणतानि परिहरन् विरतोभवति । कुतइति दर्शयति ।स्नानाभ्यंगोद्वर्तनादिषु क्रियासु निष्प्रतिकर्मशरीरतयाऽन्यासु चिकित्सादिक्रियासु न वर्तते । तथा स्त्रीषु च विरतः वस्तिनिरोधग्रहणात् अन्येऽप्याश्रया गृह्यंते। यश्चैवंभूतः सर्वेभ्योऽप्याश्रव द्वारेभ्योविरतोनाऽसौ कुशीलदोषैर्युज्यते तदयोगाच्च न संसारे बंभ्रमीति । ततश्चन दुःखितः स्तनति नापि नानाविधैरुपायैर्विलुप्यतइति ॥२२॥

जे मायरं च पियरं च हिच्चा, गारं तहा पुत्तपसुं धणंच॥कुलाइं जे
धावइ साउगाइं, अहाहु से सामणियस्स दूरे ॥ २३ ॥ कुलाइं
जे धावइ साउगाइं, आघातिधम्मं उदराणुगिद्धे ॥ अहाहु से
आयरियाण सयंसे, जो लावएज्जा असणस्स हेऊ ॥ २४ ॥

अर्थ—(जेमायरंच पियरंचहिच्चा के०) जे कुशीलिया माता तथा पिता प्रमुख कुटुंब त्यागीने (गारं के०) आगार एटले घर (तहा के०) तथा (पुत्तपसुंधणंच के०) पुत्र अने पशु जे गवादिक तथा धनने त्यागी पंचमहाव्रत अंगीकार करी पछी रसगृद्धियें आसक्त छता जिव्हालोलुपी सरस आहारने गवेषता थका (कुलाइं जेधावइ साउगाइंके०) मोहोटा कुलने विषे रूडा रसनो आहार पामवाने अर्थें जे भ्रमण करे (अहाहुसेसामणियस्सदूरे के०) ते चारित्र थकी दूर जाणवा एम श्रीतीर्थंकर गणधर कहेछे. ॥ २३ ॥ (कुलाइं जे धावइ साउगाइं के०) जे स्वादुक कुलने विषे रसलंपट थका गोचरी करवाने जाय (आघातिधम्मं उदराणुगिद्धेके०) एवा उदर गृद्ध पेटार्थि थका जेने जेवो धर्म

रूचे तेने तेवो उपदेश आपे (अहाडुसे आयरियाणसयंसेके०) ते पुरुषो आर्य धर्मने सो मे नागे उपलक्षणथकी सहस्र लाख क्रोडमे नागे पण पोहोचे नहीं एम श्री तीर्थंकरा दिक कहेछे (जोलावएज्ञा असणस्सहेककै०) तथा जे साधु आहार वस्त्रादिकोने अर्थे बीजाने मुखे पोताना गुण केवरावे लाल पाल करे तेपण कुशीलिया जाणवा. ॥२४॥

॥ दीपिका—यः कुशीलोमातरं पितरं वा उपलक्षणाद्भ्रातृडुहित्रादिकमपि हित्वा अगा रं गृहं पुत्रमपत्यं पशुं हस्त्यश्वगोमहिष्यादिकं धनं च त्यक्त्वा पुनर्हीनतया स्वाडुका नि स्वाडुनोजनवंति कुलानि गृहाणि धावति गच्छति असौ श्रामण्यस्य श्रमणत्वस्य दूरे एवमाहुस्तीर्थंकृतः ॥ २३ ॥ यः कुलानि स्वाडुनोजनवंति धावति गच्छति गत्वा भिक्षा र्थं प्रविश्य यद्यस्मै रोचते कथादिकं तत्तस्याख्याति। किंनूतः । उदरेऽनुगृध्ध्उदरनरणव्य ग्रः सआर्याणां उत्तमगुणानां शतांशे अधिवर्तते शतोपलक्षणात्सहस्रांशादेरप्यधिव र्तते । योऽशनःस्यात्तस्य हेतुं लापयति स्वप्रशंसां करोति ॥ २४ ॥

॥ टीका—पुनरपि कुशलानेवमधिकृत्याह । जेमायरंचेत्यादि । ये केचनाऽपरिणतस म्यक्धर्माणस्त्यक्त्वा मातरंच पितरंच मातापित्रोर्डुस्त्यजत्वाडुपादानं। अतोभ्रातृडुहित्रादि कमपि त्यक्त्वेति एतदपि डृष्टव्यं । तथा अगारं गृहं पुत्रमपत्यं पशुं हस्त्यश्वरथगोमहि ष्यादिकं बंधनं च त्यक्त्वा सम्यक् प्रव्रज्योछानेनोछाय पंचमहाव्रतनारस्य स्कंधं दत्वा पुन र्हीनसत्वतया रससातादिगौरवगृध्धोयः कुलानि गृहाणि स्वाडुकानि स्वाडुनोजनवंति धावति गच्छति । अथाऽसौश्रामण्यस्य श्रमणनावस्य दूरे वर्त्तते एवमाहुस्तीर्थंकरगणधरा दयइति ॥२३॥ एतदेव विशेषेण दर्शयितुमाह (कुलाइंजेधावतीत्यादि) कुलानि स्वाडुनो जनवंति धावतिगच्छति)तथा गत्वा धर्ममाख्याति भिक्षार्थंवा प्रविष्टोयद्यस्मै रोचते कथासंबं धस्तं तस्याऽऽख्याति । किंनूतइति दर्शयति। उदरेऽनुगृध्ध्उदरानुगृध्धः। उदरनरणव्यग्रस्तुंद परिमृजइत्यर्थः।इदमुक्तं नवति। योह्युदरगृध्धआहारादिनिमित्तं दानश्रध्धकाख्यानि कुलानि गत्वाऽऽख्यायिकाः कथयति सकुशीलइति। अथाऽसावाचार्यगुणानां वा शतांशे वर्ततइति। योह्यन्नस्य हेतुं नोजननिमित्तमपरवस्त्रादिनिमित्तं वा आत्मगुणानपरेणालापयेद्भाणयेत्। असावप्यार्यगुणानां सहस्रांशे वर्तते।किमंगं पुनर्यः स्वतएवाऽऽत्मप्रशंसां विदधातीति२४

णिक्कम्म दीणे परनोयणंमि, मुहमंगलीए उदराणुगिद्धे ॥ नी
वारगिद्धेव महावराहे, अदूरए एहइ घातमेव ॥ २५ ॥ अन्न
स्स पाणस्सिहलोइयस्स, अणुप्पियं नासति सेवमाणे ॥ पास
छयं चेव कुसीलयंच, निस्सारए होइ जहा पुलाए ॥ २६ ॥

अर्थ-(णिरकम्मदीणेपरभोयणंमि के०) जे पोतानुं धनादिक छांमीने पछी परभो जनने विषे दीन एटले दयामणो थाय (उदराणुगिद्धेके०) एम उदरगृद्धथको रहेते (मुहमंगलिक के०) गृहस्थने बंदीजननी पेरे मुखेंमंगलिक वचन कहे गृहस्थनी प्रसं साकरे यतः सोएसोजस्सगुणा, विरयंतनवारियादसदिसासु, इहराकहासुचसि पच्चक्कं अद्धदिछोसि ॥ १ ॥ इत्यादिक वचन पेटनें अर्थें बोले (नीवारगिद्धेवमहावराहे के०) जे म महोटो सूअर नीवार एटले चावलना कणने विषे गृद्धछतो (अदूरएएहइघातमेव के०) अदूर एटले तरत घात पामे तेम कुशीलिया पण आहार गृद्धछता संसार मांहे अनंता मरण पामे ॥ २५ ॥ ते कुशीलिया (अन्नस्स के०) अन्नने अर्थें (पाणस्स के०) पाणीने अर्थे तथा (हलोइयस्स के०) अन्य वस्त्रादिकने अर्थें (अणुप्पियंभा सतिसेवमाणे के०) जेने जेवुं गमतुं होय तेना आगल तेवुंज बोले सेवकनी पेरे जेम सेवक पोताना राजाने गमतुं बोले तेम ए कुशीलिया पण बोले ते (पासत्थयंचेवकुसी लयंच के०) सदाचार थकी भ्रष्ट एवा पासत्थानो भाव तथा कुशीलियानो भाव पामे ते केवो थाय तोके (निस्सारएहोइजहापुलाए के०) निःसार थाय जेम पुलाक एटले धानना छोतरा तूस निःसार होयछे तेम तेपण तेना सरखोज निःसार जाणवो ॥२६॥

॥ दीपिका-योनिष्क्रम्य प्रव्रज्य पराहारविषये दीनः सन् बंदिवन्मुखमांगलिकः स्यात् मुखेन परप्रशंसावाक्यानि वक्ति औदर्यं प्रतिगृद्धः । किमिव । नीवारोमृगादिभक्ष्यविशेषस्तत्र गृद्धआसक्तोयथा महावराहः सूकरः संकटे प्रविष्टः सन्नदूरएव शीघ्रमेव घातं विनाशमेष्यति एवमसावपि कुशीलः ॥ २५ ॥ सकुशीलोऽन्नस्य पानस्य ऐहिकार्थस्य वस्त्रादेः कृतेतु प्रियं भाषते ऽनुकूलंवक्ति सेवकवत्सेवमानएवंभूतश्च पार्श्वस्थतां कुशीलतां च गच्छति निःसारोभवति यथा पुलाकस्तुषः ॥ २६ ॥

॥ टीका-किंच (णिरकमेत्यादि) । योह्यात्मीयं धनधान्यहिरण्यादिकं त्यक्त्वा निष्क्रांतोनिष्क्रम्य च परभोजने पराहारविषये दीनोदैन्यमुपगतोजिह्वेंद्रियवशादार्त्तोबंदिवन्मुखमांगलिकोभवति । मुखेन मंगलानि प्रशंसावाक्यानि ईदृशस्तादृशस्त्वमित्येवं दैन्यभावमुपगतोवक्ति । उक्तंच । सोएसोजस्सगुणा, वियरंतनवारियादसदिसासु । इहराकहासु सुचसि, पच्चक्कंअद्धदिछोसि । इत्येवमौदर्यं प्रतिगृद्धोऽध्युपपन्नः । किमिव । नीवारः सूकरादिमृगभक्ष्यविशेषस्तस्मिन् गृद्धआसक्तमनागृहीत्वा च स्वयूथं महावराहोमहाकायः सूकरः । एवकारोऽवधारणे । अवश्यं तस्य विनाशएव नाऽपरा गतिरस्तीति । एवमसावपि कुशीलआहारमात्रगृद्धः संसारोदरः पौनःपुन्येन विनाशमेवैति ॥ २५ ॥

(किंचअन्नस्सेत्यादि) सकुशीलोऽन्नस्य पानस्य वा कृतेऽन्यस्य वैहिकार्थस्य. वस्त्रादेः कृते अनुप्रियं नाषते । यद्यस्य प्रियं तत्तस्य वदतोऽनुपश्चाद्भापते अनुनापते । प्रतिशब्दकव त् सेवकवद्वा राजाद्युक्तमनुवदतीत्यर्थः । तमेव दातारमनुसेवमानआहारमात्रगृद्धः सर्व मेतत्करोतीत्यर्थः । सचैवंनूतः सदाचारच्रष्टः पार्श्वस्थनावमेव व्रजति कुशीलतां च गच्छति । तथा निर्गतएकांततः सारश्चारित्राख्योयस्य सनिःसारः । यदिवा निर्गतस्य सारोनिः सारः सविद्यते यस्याऽसौ निःसारवान् पुलाकइव निष्कणोनवति यथा एवमसौ संय मानुष्ठानं निःसारीकरोति । एवंनूतश्चाऽसौलिंगमात्रावशेषोबहूनां स्वयूथ्यानां तिरस्कार पदवीमवाप्नोति परलोके च निकृष्टानि यातनास्थानान्यऽवाप्नोति ॥ २६ ॥

अन्नातपिंमेण हियासएका, णो पूयणं तवसा आवहेका ॥ सद्दे
हिं रूवेहिं असज्जमाणं, सव्वेहि कामेहि विणीय गेहिं ॥२७॥ स
व्वाइं संगाइं अइच्च धीरे, सव्वाइं डुक्काइं तितिरकमाणे ॥ अखिले
अगिद्धे अणिएयचारी, अन्नयं करे न्निक्कु अणाविलप्पा ॥२८॥

अर्थ–हवे सुशीलियानुं आचरण कहेछे. (अन्नातपिंमेणहियासएकाके०) जे अ ज्ञात कुलने विषे पिंम एटले आहार पाणी लीयें अंत प्रांत आहारे करी संयम पाले पण दीनपणु अंगीकार करे नही (णोपूयणंतवसाआवहेका के०) तथा तपश्यायें करी पूजा सत्कारने वांछे नही एटले राजादिकनी पूजाने निमित्ते तपश्या करे नही परंतु आत्मार्थे करे यडुक्तं इहलोगठ्याएतवमाघहेका इत्यादिक नाव जाणीने तथा (सद्दे हिं के०) शब्दने विषे (रूवेहिं के०) रूपने विषे (असज्जमाणं के०) असह्यमान ए टले तत्पर नहोय अने (सव्वेहिकामेहिविणीयगेहिं के०) सर्व कामने विषे गृद्ध पणु टालीने रागद्वेष नकरें तेने साधु जाणवो ॥ २७ ॥ (सव्वाइंसंगाइंअइच्च के०) सम स्त संग तेमां स्नेह ते अन्यंतर संग अने धन धान्यादिक बाह्य संग एवेप्रकारना संग थकी अतीत एटले रहित (धीरे के०) विवेकवान् (सव्वाइंडुक्काइंतितिरकमाणे के०) तथा सर्व शारीरिक अने मानसिक डुःख तेने सहन करनार एटले परीसहोपसर्ग ज नित डुःखनो सहन करनार (अखिले के०) ज्ञान, दर्शन अने चारित्रे करी संपूर्ण (अगिद्धे के०) कामनोगनी अनिलाष रहित तथा (अणिएयचारी के० अनियतचारी एटले अप्रतिबद्ध विहारी (अन्नयंकरे के०) सर्व जीवने अन्नयनो करनार एवो (न्निक्कु के०) साधु ते (अणाविलप्पा के०) विषय कषाये करी अनाकुल एटले कषायने उपश मावये करी निर्मल थयोछे जेनो आत्मा एवो साधु महानुनाव जाणवो ॥ २८ ॥

॥ दीपिका—अज्ञातपिंडः अंतः प्रांतः अज्ञातेन्यः पूर्वापराऽपरिचितेन्यः कुलेन्यउंछवृत्या लब्धस्तेनात्मानमधिसहे द्वर्तयेत् नच तपसा पूजनं सत्कारमावहेत् नसत्कारार्थी तपः कुर्यादित्यर्थः । यडुक्तं । परलोकादिकं धाम, तपः श्रुतमिति द्वयं ॥ तदेवार्थित्वनिर्जुप्तसारं तृणलवायते इति । शब्दैर्मनोज्ञैरूपैश्चासज्जन् आसक्तिमकुर्वन् सर्वैरपि कामैरिछामदनैर्गृध्धिं विनीय त्यक्त्वा संयममनुपालयेत् ॥१७॥ सर्वान् संगानतीत्य त्यक्त्वा धीरोविवेकी सर्वाणि डुःखानि परीषहोपसर्गजनितानि तितिक्षमाणोऽधिसहन् अखिलोज्ञानादिसंपूर्णोऽगृध्धः कामेष्वनियतचारी अप्रतिबध्धविहारी जीवानामनयंकरोनिक्षुः साधुरनाविलात्मा निष्कपायात्मा सुशीलः स्यात् ॥ १८ ॥

॥टीका—उक्ताः कुशीलास्तत्प्रतिपक्षनूतान् सुशीलान् प्रतिपादयितुमाह।(असुातपिंडेत्यादि) अज्ञातश्चाऽसौ पिंडश्चाऽज्ञातपिंमः अंतःप्रांतइत्यर्थः। अज्ञातेन्योवा पूर्वापरासंस्तुतेन्यो वा पिंमोऽज्ञातउंछवृत्त्या लब्धस्तेनात्मानमधिसहेत् वर्तयेत् पालयेत् । एतडुक्तं नवति अंतप्रांतेन लब्धेनाऽलब्धेन वा न दैन्यं कुर्यात् । नाऽप्युत्कृष्टेन लब्धेन मदं विदध्यात् । नाऽपि तपसा पूजनसत्कारमावहेत् न पूजनसत्कारनिमित्तं तपः कुर्यादित्यर्थः । यदिवा पूजासत्कारनिमित्तत्वेन तथाविधार्थत्वेन वा महतापि केनचित्तपोमुक्तिहेतुकं न निःसारं कुर्यात् । तडुक्तं । परलोकाधिकं धाम तपःश्रुतमिति द्वयं ॥ तदेवाऽर्थित्वनिर्लुप्तसारं तृणलवायते । तथा च रसेषु गृध्धिं न कुर्यात् । एवं शब्दादिष्वपीति दर्शयति । शब्दैर्वेणुवीणादिनिराक्षिप्तः संस्तेष्वसज्जन्नासक्तिमकुर्वन् कर्कशेषुच द्वेषमगछन् तथा रूपैरपि मनोज्ञेतरै रागद्वेपमकुर्वन् । एवं सर्वैरपि कामैरिछामदनरूपैः सर्वेन्योवा कामेन्यो गृध्धिं विनीयाऽपनीय संयममनुपालयेदिति । सर्वथा मनोज्ञेतरेषु विषयेषु रागद्वेपं न कुर्यात् । तथाचोक्तं।सद्देसुयन्नदयपावएसुसोयविसयमुवगएसु । तुठेणचरुठेणच, समणेणसयाणहोयवं ॥ १ ॥ रूवेसुयन्नदयपावएसुचक्खुविसयमुवगएसु । तुठेणचरुठेणच, समणेणसयाणहोयवं ॥२॥ गंधेसुयन्नदयपावएसु, घाणविसयमुवगएसु । तुठेण० ॥ ३ ॥ नरकेसुयन्नदयपावएसु; रसणविसयमुवगएसु, तुठेणचरुठेणच, समणेणसयाणहोयवं ॥ ४ ॥ फासेसुयन्नदयपावएसु, फासविसयमुवगएसु । तुठेणचरुठेणच, समणेणसयानहोयवं ॥ ५ ॥ २७ ॥ यथाचेंड्रियनिरोधोविधेयएवमपरसंगनिरोधोऽपि कार्यइति दर्शयति (सवाइंइत्यादि) सर्वान् बाह्यांश्च डव्यपरिग्रहलक्षणानतीत्य त्यक्त्वा धीरोविवेकी सर्वाणि डुःखानि शारीरमानसानि त्यक्त्वा परीषहोपसर्गजनितानि तितिक्षमाणोऽधिसहन्नऽखिलोज्ञानदर्शनचारित्रैः संपूर्णस्तथा कामेष्वगृध्धस्तथा नियतचारी अप्रतिबध्धविहारी तथा जीवानामनयंकरोपि निक्षणशीलोनिक्षुः साधुरेवमनाविलोविषयकषायैरनाकुलआत्मा यस्याऽसावनाविलात्मा संयममनुवर्त्ततइति ॥ २८ ॥

भारस्स जाता मुणि भुंजएज्जा, कंखेज्ज पावस्स विवेग भिक्खू॥
डुक्खेण पुट्ठे धुयमाइएज्जा, संगामसीसेव परं दमेज्जा ॥ २९ ॥
अविहम्ममाणे फलगावतट्ठी, समागमं कंखति अंतकस्स ॥
णिधूय कम्मं ण पवंचुवेइ, अक्खक्खएवा सगडं तिबेमि॥ ३० ॥
इतिश्री कुसील परिभासिय सत्तमाझयणं सम्मत्तं ॥

अर्थ-(भारस्सजातामुणि भुंजएज्जाके०) भार एटले संयम तेनी यात्रा निरवाह करवाने अर्थे चारित्रिउं शुद्ध निर्दोष आहार ग्रहण करे (कंखेज्जपावस्सविवेगभिक्खू के०) तथा साधु पूर्वे आचरित पापकर्मनो विवेक एटले पृथक् भाव वांछे (डुक्खेणपुट्ठेधुयमाइएज्जा के०) तथा परीसहादिक उपने थके डुःखने फरश्यो बतो धौव शब्दे संयम अथवा धौव शब्दे मोक्ष तेने ग्रहण करे कोनीपेरें तोके (संगामसीसेवके०) जेम कोइक शूरवीर सुभटने संग्रामने मस्तके शत्रुयें पराभव्यो थको (परंदमेज्जाके०) परंते फरी शत्रुने दमन करे तेम चारित्रिउं कर्मरूप शत्रुथी उपना जे उपसर्ग अने परीसह तेथी पराभव्य पाम्यो थको पण कर्मने दमे अने आत्मस्वरूपने साधे ॥ २९ ॥ (अविहम्ममाणे के०) परीसहोपसर्गें हणातो थको पणते साधु सम्यक् अहियाशे कोनीपेरे तोके (फलगावतट्ठीके०) फलग एटले पाटीआनीपेरे तिष्टे एटले रहे जेम पाटीउं बन्ने पाशे छेदातु थकुं पण राग द्वेष नकरे तेम साधुपण उपसर्ग परिसह उपने थके राग द्वेष रहित थको रहे (समागमंकंखतिअंतकस्स के०) अंतक एटले मृत्यु आववानो समागम वांछे अर्थात् पंमित मरण वांछे पण तपश्यायें करी शरीर शोषवाने लीधे डुर्बलता पामवा थकी मनमां शंका तथा भय आणे नही (णिधूयकम्मंणपवंचुवेइके०) ज्ञानावर्णादिक अष्ट प्रकारना कर्म खपावीने वली प्रपंच एटले संसारने न पामे एटले मुक्ति पामे (अक्खक्खएवासगडंतिबेमिके०) जेम अक्ष एटले धुरी तेना क्षय थकी गाडलुं सम विषम मार्गे नचाले तेम साधु मोक्ष पहोता पढी संसार मांहे पाढा आवे नही. तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो.॥३०॥इति कुशील परिभाषा नामे सातमा अध्ययननो अर्थ समाप्तथयो.

॥ दीपिका-भारस्य संयमभारस्य यात्रानिर्वाहस्तदर्थं मुनिर्भुंजीत आहारं गृण्हीयात्. तथा भिक्षुः पापस्य कर्मणोविवेकं विनाशं कांक्षेत् डुःखेन परीषहादिना स्पृष्टः सवं धूतं संयमं आददीत गृण्हीयात् यथा संग्रामशीर्षे कश्चित् सुभटः परं शत्रुं दमयत्येवं साधुः कर्मशत्रून् दमयेत् ॥ २९ ॥ परीषहैर्हन्यमानः पीड्यमानोपि सम्यक् सहते । यथा फलकं उभाभ्यां पार्श्वाभ्यां तष्टं घटितं सत्तनु भवत्येवं साधुरपि तपसा डुर्बलतनुः स्यात्

अरक्तद्विष्टश्च मृत्योः समागमं प्राप्तिमाकांक्षेत अष्टप्रकारं कर्म निर्धूयापनीय प्रपंचं संसारं नोपैति नयाति । यथा अक्षस्य क्षये विनाशे सति शकटं समविषमपथरूपं प्रपंचं याति उपष्टंनकारणानावात् एवं साधुः कर्मक्षये संसारं नयातीति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ३० ॥ समाप्तं कुशीलपरिनाषाख्यं सप्तमाध्ययनं ॥

॥ टीका–किंचाऽन्यत् (नारसजाताइत्यादि) । संयमनारस्य यात्रार्थं पंचमहाव्रत नारनिर्वाहणार्थं मुनिः कालत्रयवेत्ता नुंजीत आहारग्रहणं कुर्वीत । तथा पापस्य कर्मणः पूर्वचरितस्य विवेकं पृथग्नावं विनाशमाकांक्षेन्निक्षुः साधुरिति । तथा डुःखय तीति डुःखं परीषहोपसर्गजनितापीडा तेन स्पष्टोव्याप्तः सन् धूतं संयमं मोक्षंवा आद दीत गृण्हीयात् । यथा सुनटः कश्चित् संग्रामशिरसि शत्रुनिरनिद्रुतः परं शत्रुं दमयति । एवं परं कर्मशत्रुं परीषहोपसर्गानिद्रुतोदमयेदिति ॥ २ए ॥ अपिच (अविहम्ममाणे त्यादि) परीषहोपसर्गैर्हन्यमानोऽपि सम्यक् सहते । किमिव । फलकवदकृष्टः । यथा फलकमुनान्यमपि पार्श्वान्यां तष्टं घट्टितं सत्तनु नवति अरक्तंद्विष्टं वा संनवत्येवमसावपि साधुः सबाह्यान्यंतरेण तपसा निष्टप्तदेहस्तनुर्डुर्बलशरीरोऽरक्तद्विष्टश्चांतकस्य मृत्योः समागमं प्राप्तिमाकांक्षत्यनिलपति । एवं चाऽष्टप्रकारं कर्म निर्धूयाऽपनीय नपुनः प्रपंचं जातिजरामरणरोगशोकादिकं प्रपंच्यते । बहुधा नटवद्यस्मिन् सप्रपंचः संसारस्तं नोपैति नयाति । दृष्टांतमाह । यथा ऽक्षस्य क्षये विनाशे सति शकटं गंत्र्यादिकं समविषमपथरूपं प्रपंचमुपष्टंनकारणनावान्नोपयाति । एवमसावपि साधुरष्टप्रकारस्य कर्मणः क्षये संसारप्रपंचं नोपयातीति । गतोऽनुगमोऽनया।पूर्ववदिति शब्दःपरिसमाप्त्यर्थे ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ३० ॥ समाप्तंच कुशीलपरिनाषाख्यं सप्तमाध्ययनं ॥

हवे आठमुं वीर्याध्ययन कहेठे सातमाअध्ययनमां कुशीलियानो आचार कह्यो ते आचार संयमनेविषे वीर्यांतराय कर्मना उदय थकी थायठे तेमाटे आ अध्ययनमां सुशीलियानो वीर्य देखाडेठे तेथी ए अध्ययननुं नाम वीर्याध्ययनठे.

डुहावेयं सुयरकायं,वीरियंति पवुच्चई ॥ किंतु वीरस्स वीरत्तं, कहं
चेयं पवुच्चई ॥१॥ कम्ममेगे पवेदेंति,अकम्मं वावि सुवया ॥ एते
हिं दोहि ठाणेहिं, जेहिं दीसंति मच्चिया ॥ २ ॥

अर्थ–(डुहावेयंसुयरकायं के०) तेनलो वीर्य पराक्रम बे प्रकारे श्रीजिनेश्वरे कह्युंठे (वीरियंतिपवुच्चई के०) तेवीर्य प्रकर्षे करी कहिएछैयें (किंतुवीरस्सवीरत्तं के०) तु एवा वितर्के करी वीर नामा सुनटनुं केवुं वीर पणुं अने केवीरीते ए वीर केवायठे तथा (क

हंचेयंपवुच्चई के०) केवीरीते ए प्रकर्षे करी वीर्य कहेछे. ॥ १ ॥ (कम्ममेगेपवेदेंतिके०) एकतो अष्ट प्रकारे कर्म क्रिया अनुष्ठानरूप वीर्य कहेछे (अकम्मंवावि के०) अथवा. अकर्म एटले जीवनुं सहेज स्वरूप तेने पण एक वीर्य कहेछे एम बे प्रकारे वीर्य कहेछे (सुव्वयाके०) अहोसुव्रतो (एतेहिंदोहिगणेहिं के०) एज बे स्थानके करी बल वीर्यना नेद जाणो एटले एक सकर्मक अने बीजो अकर्मकना नेदे करी बे प्रकारनो वीर्य जा णवो (जेहिंदीसंतिमच्चिया के०) जेने विषे व्यवस्थित सर्वे मनुष्यो देखायछे. ॥ २ ॥

॥ दीपिका—अथाष्टमं । पूर्वं कुशीलसुशीलावुक्तौ तौच वीर्यतः स्यातामिति वीर्यमत्रो च्यते । (डुहेति) द्विधा द्विप्रकारकमेतद्वीर्यं सुष्ठु आख्यातं तीर्थकृदादिन्निः । इदं वीर्यं द्विनेदं प्रोच्यतइति । वीर्यं जीवस्य शक्तिविशेषः । तत्र किंनु वीरस्य सुनटस्य वीरत्वं केन वा हेतुनाऽसौवीरइत्युच्यते । तुशब्दोवितर्के ॥ १ ॥ किंतद्वीर्यं किंवा वीरत्वमित्याह । (क म्मेति) कर्मक्रिया अनुष्ठानमित्येव वीर्यमिति प्रवेदयंति ॥ अथवाऽष्टप्रकारं कर्म कारणे कार्योपचारात् तदेव वीर्यमित्युच्यते । तथाहि । नावनिष्पन्नं कर्म उदयिकन्नावोपि कर्मोद यनिष्पन्नइति बालवीर्यं १ द्वितीयन्नेदस्त्वयं ।कर्मरहितोऽकर्मा वीर्यांतरायक्षयजनितं जीव स्य सहजं वीर्यं। चशब्दाच्चारित्रमोहनीयोपशमक्षयोपशमजनितं हेसुव्रताएवंनूतं पंडितवीर्यं जानीत२ द्वाभ्यां द्वाभ्यां स्थानाभ्यां बालपंडितवीर्याभ्यां व्यवस्थितं वीर्यमित्युच्यते।येभ्यो ययोर्वा व्यवस्थितामर्त्यामनुष्याअपदिश्यंते । तथाहि । अनेककार्येषूद्यमवंतं नरं दृष्ट्वा वीर्यवानयमित्युच्यते तथा वीर्यांतरायक्षयादनंतबलयुक्तोयं मर्त्यइत्यपदिश्यते ॥ २ ॥

॥ टीका—उक्तं सप्तममध्ययनं सांप्रतमष्टममारभ्यते ॥ अस्य चाऽयमभिसंबंधः । इहा नंतराध्ययने कुशीलास्तत्प्रतिपक्षनूताः श्रीसुशीलाः प्रतिपादिताः।तेषांच कुशीलत्वं च संय मवीर्यांतरायोदयात्तत्क्षयोपशमाच्च नवतीत्यतोवीर्यप्रतिपादनायेदमुपदिश्यते तदने न संबंधेनाऽऽयातस्याऽस्याऽध्ययनस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराणि उपक्रमादीनि वक्तव्यानि । तत्राऽप्युपक्रमांतर्गतोऽर्थाधिकारोऽयं ॥ (बालबालपंडितपंडितवीर्यन्नेदात्रिविधमपि वीर्यं परिज्ञाय पंडितवीर्ये यतितव्यमिति । नामनिष्पन्ने तु निक्षेपे वीर्याध्ययनवीर्यनिक्षेपाय निर्युक्तिकृदाह । (विरिएछक्कंदवे, सच्चित्ताचित्तमीसगंचेव ॥ डुपयचउप्पयअपयं, एयंति विहंतिसच्चित्तं ॥ १ ॥) (विरिएछक्कमित्यादि) वीर्ये नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालनावन्नेदा त् षोढा निक्षेपः । तत्राऽपि नामस्थापने क्षुसे डव्यवीर्यं द्विधा ।आगमतो नोआगमतश्च। आगमतोज्ञाता तत्र वाऽनुपयुक्तः । नोआगमतस्तु ज्ञशरीरन्नव्यशरीरव्यतिरिक्तसचित्ताचित्त मिश्रन्नेदात्त्रिधा वीर्यं सचित्तमपि द्विपदचतुष्पापदन्नेदात् त्रिविधमेव । तत्र द्विपदानां अर्ह

चक्रवर्त्तिबलदेववासुदेवादीनां यद्वीर्यं स्त्रीरत्नस्य वा यस्यवा यद्वीर्यं तदिह द्रव्यवीर्यत्वेन ग्राह्यं । तथा चतुष्पदानामश्वहस्तिरत्नादीनां सिंहव्याघ्रशरनादीनां वा परस्य यद्बोढव्ये धावने वा वीर्यं तदिति । तथाऽपदानां गोशीर्षचंदनप्रनृतीनां शीतोष्णकालयोरुष्णशीतवीर्य परिणामइति । अचित्तवीर्यप्रतिपादनायाह ॥ अचित्तं पुणविरयं, आहारावरणपहरणा दीसु ॥ जहउसहीणनणियं, विरियं रसवीरियविवागो ॥ २ ॥ (अचित्तंपुणेत्यादि) अचित्तद्रव्यवीर्यं त्वाऽऽहारावरणप्रहरणेषु यद्वीर्यं तडुच्यते । तत्राऽऽहारवीर्यं सद्यः प्राणकरा हृद्याघृतपूर्णाः कफापहाइत्यादि । उषधीनां च शल्योद्धरणसंरोहणविषापहारमेधाकरणादिकं रसवीर्यं विपाकवीर्यं च । तडुक्तं । चिकित्साशास्त्रादौ तदिह ग्राह्यमिति । तथा योनिप्रानृतकान्नानाविधं द्रव्यवीर्यं द्रष्टव्यमिति । तथा । आवरणेकववादी, चक्कादीयंचपहरणेहोंति ॥ खित्तंमि जंमि खेत्ते,काले जं जंमि कालंमि । तथा(आवरणेइत्यादि) आवरणे कवचादीनां प्रहरणे चक्रादीनां यद्भवति वीर्यं तडुच्यतइति । अधुना क्षेत्रकालवीर्यं गाथापश्चार्धेन दर्शयति । क्षेत्रवीर्यंतु देवकुर्वादिकं क्षेत्रमाश्रित्य सर्वाण्यपि द्रव्याणि तदंतर्गतान्युत्कृष्ट वीर्यवंति नवंति । यद्वा डुर्गादिकं क्षेत्रमाश्रित्य कस्यचिद्वीर्योल्लासोनवति । यस्मिन्वा क्षेत्रे वीर्यं व्याख्यायते तत्क्षेत्रवीर्यमिति । एवं कालवीर्यमप्येकांतसुखमादावाऽऽयोज्यमिति । तथाचोक्तं । वर्षासु लवणममृतं, शरदिजलं गोपयश्चहेमंते ॥ शिशिरे चामलकरसो, घृतंवसंते गुडश्चांऽते ॥१॥ तद्यथा । ग्रीष्मे तुल्यगुडां सुसैंधवयुतां मेघावनध्वंबरे, तुल्यां शर्करया शरद्यमलया शुंठ्या तुषारागमे । पिप्पल्या शिशिरे वसंतसमये क्षौद्रेण संयोजितां, पुंसां प्राप्य हरीतकीमिव गदानश्यंतु ते शत्रवः ॥ १ ॥ नाववीर्यप्रतिपादनायाह । (नावोजीवस्स सवीरियस्स विलयंमि लद्धिणेगविहा ॥ उरस्सिंदिय अज्झप्पिएसु बहुसोबहुवीहियं (नावोजीवस्सेत्यादि) सवीर्यस्य वीर्यशक्त्युपेतस्य जीवस्य वीर्यविषये अनेकविधा लब्धिस्तामेव पश्चार्द्धेन दर्शयति । तद्यथा । उरसि नवमौरस्यं शारीरबलमित्यर्थः । तथेंद्रियबलमाध्यात्मिकं बलं बहुशोबहुविधं द्रष्टव्यमिति । एतदेव दर्शयितुमाह । (मणवइकालाआणा पाणुसंनवतहायसंनवे । सोत्तादीणं सद्दा, दिएविसएसुगहणंच ॥ ४ ॥ (मणवइइत्यादि) आंतरेण व्यापारेण गृहीत्वा पुज्ञलात्मनोयोग्यान् मनस्त्वेन परिणमयति नाषायोग्यान् नाषात्वेन परिणमयति काययोग्यान् काययोग्यत्वेन अन्नपानयोग्यान् तद्भावेनेति । तथा मनोवाक्कायादीनां तद्भावपरिणतानां यद्वीर्यं सामर्थ्यं तद्विविधं । संनवे संनाव्येच । संनवे तावत्तीर्थकृतामनुत्तरोपपातिकानांच सुराणामतीव पटूनि मनोद्रव्याणि नवंति । तथाहि । तीर्थकृतामनुत्तरोपपातिकसुरमनःपर्यायज्ञानिप्रश्नव्याकरणस्य द्रव्यमनसैव करणात् । अनुत्तरोपपातिकसुराणांच सर्वव्यापारस्यैव मनसा निष्पादनादिति । संनाव्ये तु योहि यम

हंचेयंपवुच्चई के०) केवीरीते ए प्रकर्षे करी वीर्य कहेछे. ॥ १ ॥ (कम्ममेगेपवेदेंतिके०) एकतो अष्ट प्रकारे कर्म क्रिया अनुष्ठानरूप वीर्य कहेछे (अकम्मंवावि के०) अथवा अकर्म एटले जीवनुं सहेज स्वरूप तेने पण एक वीर्य कहेछे एम बे प्रकारे वीर्य कहेछे (सुवयाके०) अहोसुव्रतो (एतेहिंदोहिंगणेहिं के०) एज बे स्थानके करी बाल वीर्यना नेद जाणो एटले एक सकर्मक अने बीजो अकर्मकना नेदे करी बे प्रकारनो वीर्य जाणवो (जेहिंदीसंतिमच्चिया के०) जेने विषे व्यवस्थित सर्व मनुष्यो देखायछे. ॥ २ ॥

॥ दीपिका—अथाष्टमं । पूर्वं कुशीलसुशीलावुक्तौ तौच वीर्यतः स्यातामिति वीर्यमत्रो च्यते । (डुहेति) द्विधा द्विप्रकारकमेतद्वीर्यं सुष्ठु आख्यातं तीर्थकृदादिनिः । इदं वीर्यं द्विनेदं प्रोच्यतइति । वीर्यं जीवस्य शक्तिविशेषः । तत्र किंनु वीरस्य सुनटस्य वीरत्वं केन वा हेतुनाऽसौवीरइत्युच्यते । तुशब्दोवितर्के ॥ १ ॥ किंतद्वीर्यं किंवा वीरत्वमित्याह । (कम्मेति) कर्मक्रिया अनुष्ठानमित्येव वीर्यमिति प्रवेदयंति ॥ अथवाऽष्टप्रकारं कर्म कारणे कार्योपचारात् तदेव वीर्यमित्युच्यते । तथाहि । नावनिष्पन्नं कर्म उदयिकनावोपि कर्मोदयनिष्पन्नइति बालवीर्यं १ द्वितीयन्नेदस्त्वयं।कर्मरहितोऽकर्मा वीर्यांतरायक्षयजनितं जीवस्य सहजं वीर्यं। चशब्दाच्चारित्रमोहनीयोपशमक्षयोपशमजनितं हेसुव्रताएवंनूतं पंडितवीर्यं जानीत२ द्वाभ्यां द्वाभ्यां स्थानाभ्यां बालपंडितवीर्याभ्यां व्यवस्थितं वीर्यमित्युच्यते।येभ्यो ययोर्वा व्यवस्थितामर्त्यामनुष्याअपदिश्यंते । तथाहि । अनेककार्येषूद्यमवंतं नरं दृष्ट्वा वीर्यवानयमित्युच्यते तथा वीर्यांतरायक्षयादनंतबलयुक्तोयं मर्त्यइत्यपदिश्यते ॥ २ ॥

॥ टीका—उक्तं सप्तममध्ययनं सांप्रतमष्टममारन्यते ॥ अस्य चाऽयमनिसंबंधः । इहानंतराध्ययने कुशीलास्तत्प्रतिपक्षनूताः श्रीसुशीलाः प्रतिपादिताः।तेषांच कुशीलत्वं च संयमवीर्यांतरायोदयात्तत्क्षयोपशमाच्च नवतीत्यतोवीर्यप्रतिपादनायेदमुपदिश्यते तदनेन संबंधेनाऽऽयातस्याऽस्याऽध्ययनस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराणि उपक्रमादीनि वक्तव्यानि । तत्राऽभ्युपक्रमांतर्गतोऽर्थाधिकारोऽयं ॥ (बालबालपंडितपंडितवीर्यन्नेदात्रिविधमपि वीर्यं परिज्ञाय पंडितवीर्ये यतितव्यमिति । नामनिष्पन्ने तु निक्षेपे वीर्याध्ययनवीर्यनिक्षेपाय निर्युक्तिकृदाह । (विरिएछक्कंदवे, सच्चित्ताचित्तमीसगंचेव ॥ डुपयचउप्पयअपयं, एयंति विहंतिसच्चित्तं ॥ १ ॥) (विरिएछक्कमित्यादि) वीर्ये नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालनावन्नेदात् षोढा निक्षेपः । तत्राऽपि नामस्थापने क्षुस्से द्रव्यवीर्यं द्विधा ।आगमतो नोआगमतश्च। आगमतोज्ञाता तत्र वाऽनुपयुक्तः । नोआगमतस्तु ज्ञशरीरनव्यशरीरव्यतिरिक्तसचित्ताचित्तमिश्रन्नेदात्रिधा वीर्यं सचित्तमपि द्विपदचतुष्पापदन्नेदात् त्रिविधमेव । तत्र द्विपदानां अर्ह

चक्रवर्त्तिबलदेववासुदेवादीनां यद्वीर्यं स्त्रीरत्नस्य वा यस्यवा यद्वीर्यं तदिह ड्व्यवीर्यत्वेन ग्राह्यं । तथा चतुष्पदानामश्वहस्तिरत्नादीनां सिंहव्याघ्रशरनादीनां वा परस्य यद्वोढव्ये धावने वा वीर्यं तदिति । तथाऽपदानां गोशीर्षचंदनप्रनृतीनां शीतोष्मकालयोरुष्मशीतवीर्य परिणामइति । अचित्तवीर्यप्रतिपादनायाह ॥ अचित्तं पुणविरयं, आहारावरणपहरणा दीसु ॥ जहउसहीणनणियं, विरियं रसवीरियविवागो ॥ १ ॥ (अचित्तंपुणेत्यादि) अ चित्तड्व्यवीर्यं त्वाऽऽहारावरणप्रहरणेषु यद्वीर्यं तडुच्यते । तत्राऽऽहारवीर्यं सद्यः प्राणकरा हृद्याघृतपूर्णाः कफापहाइत्यादि । उपधीनां च शल्योद्धरणसंरोहणविषापहारमेधाक रणादिकं रसवीर्यं विपाकवीर्यं च । तडुक्तं । चिकित्साशास्त्रादौ तदिह ग्राह्यमिति । तथा योनिप्रानृतकान्नानाविधं ड्व्यवीर्यं डष्टव्यमिति । तथा। आवरणेकववादी, चक्कादीयंचपहर णेहोंति ॥ खित्तंमि जंमि खेत्ते,काले जं जंमि कालंमि । तथा(आवरणेइत्यादि) आवरणे कव चादीनां प्रहरणे चक्रादीनां यद्भवति वीर्यं तडुच्यतइति । अधुना क्षेत्रकालवीर्यं गाथापश्चा र्धेन दर्शयति । क्षेत्रवीर्यंतु देवकुर्वादिकं क्षेत्रमाश्रित्य सर्वाण्यपि ड्व्याणि तदंतर्गतान्युत्कृष्ट वीर्यवंति नवंति । यद्वा डुर्गादिकं क्षेत्रमाश्रित्य कस्यचिद्वीर्योल्लासोनवति । यस्मिन्वा क्षेत्रे वीर्यं व्याख्यायते तत्क्षेत्रवीर्यमिति । एवं कालवीर्यमप्येकांतसुखमादावाऽऽयोज्य मिति । तथाचोक्तं । वर्षासु लवणममृतं, शरदिजलं गोपयश्चहेमंते ॥ शिशिरे चामलक रसो, घृतंवसंते गुडश्चांऽते ॥१॥ तद्यथा । ग्रीष्मे तुल्यगुडां सुसैंधवयुतां मेघावनद्धेंबरे, तुल्यां शर्करया शरद्यमलया शुंठ्या तुषारागमे । पिप्पल्या शिशिरे वसंतसमये क्षौद्रेण संयोजि तां, पुंसां प्राप्य हरीतकीमिव गदानश्यंतु ते शत्रवः ॥ १ ॥ नाववीर्यप्रतिपादनायाह । (नावोजीवस्स सवीरियस्स विलयंमि लद्धिणेगविहा ॥ उरस्सिंदिय अज्जुप्पिएसु ब हुसोबहुवीहियं (नावोजीवस्सेत्यादि) सवीर्यस्य वीर्यशक्त्युपेतस्य जीवस्य वीर्य विषये अनेकविधा लब्धिस्तामेव पश्चार्धेन दर्शयति । तद्यथा । उरसि नवमौरस्यं शा रीरबलमित्यर्थः । तथेंड्रियबलमाध्यात्मिकं बलं बहुशोबहुविधं डष्टव्यमिति । ए तदेव दर्शयितुमाह । (मणवइकालाआणा पाणुसंनवतहायसंनवे । सोत्तादीणं सद्दा, दिएविसएसुगहणंच ॥ ४ ॥ (मणवइत्यादि) आंतरेण व्यापारेण गृहीत्वा पुजलात्मनोयोग्यान् मनस्त्वेन परिणमयति नाषायोग्यान् नाषात्वेन परिणमयति काय योग्यान् काययोग्यत्वेन अन्नपानयोग्यान् तद्भावेनेति । तथा मनोवाक्कायादीनां त द्भावपरिणतानां यद्वीर्यं सामर्थ्यं तद्द्विविधं । संनवे संनाव्येच । संनवे तावत्तीर्थकृताम नुत्तरोपपातिकानांच सुराणामतीव पटूनि मनोड्व्याणि नवंति । तथाहि । तोर्थकृताम नुत्तरोपपातिकसुरमनःपर्यायज्ञानिप्रश्नव्याकरणस्य ड्व्यमनसैव करणात् । अनुत्तरो पपातिकसुराणांच सर्वव्यापारस्यैव मनसा निष्पादनादिति । संनाव्ये तु योहि यम

थँ पटुमतिना प्रोच्यमानं नशक्नोति सांप्रतं परिणमयितुं संनाव्यते त्वेषपरिकर्म्यमाणः शक्नोत्यमुमर्थं परिणमयितुमिति । वाग्वीर्यमपि द्विविधं । संनवे संनाव्येच । तत्र संनवे तीर्थकृतां योजननिर्हारिणी वाक् सर्वस्वनावानुगताच । तथाऽन्येषामपि क्षीरमध्वास्रवा दिलब्धिमतां वाचः सौनाग्यमिति । तथा । हंसकोकिलादीनां संनवति स्वरमाधुर्यं । संनाव्येतु संनाव्यते श्यामायाः स्त्रियागानमाधुर्यं । तथाचोक्तं । श्यामा गायति मधुरं, काली गायति खरंच रुक्षंचेत्यादि । तथा संनावयामएनं श्रावकदारकमकृतसुखसंस्कारमप्यक्षरेषु यथावदनिलप्यव्येष्विति । तथा संनावयामः शुकसारिकादीनां वाचोमानुषनाषापरिणामः।कायवीर्यमप्यौरस्यं। यद्यस्य बलं तदपि द्विविधं संनवे संनाव्येच।यथा चक्रवर्तिबलदेववासुदेवादीनां यद्बाहुबलादिकायबलं । तद्यथा कोटिशिलात्रिपृष्ठेन वामकरतलेनोध्धृता । यदिवा (सोलसरायसहस्साइत्यादि) यावदपरिमितबलाजिनवरेंदाइति । संनाव्येतु संनाव्यते तीर्थकरोलोक,मलोके कंडुकवत् प्रक्षेप्तुं तथा मेरुं दंमवद्गृहीत्वा वसुधां बत्रकवध्धर्तुमिति । तथा संनाव्यते अन्यतरसुराधिपोजंबूद्दीपं वामहस्तेन बत्रवध्धर्तुमयत्नेनैव मंदिरमिति ।तथा संनाव्यते अयं दारकः परिवर्धमानः शिलामेनामुध्धर्तुं हस्तिनं दमयितुमश्वं वाहयितुमित्यादि । इंद्रियबलमपि श्रोत्रेंद्रियादिस्वविषयग्रहणसमर्थं पंचधैकैकं द्विविधं संनवे संनाव्येच।संनवे यथा श्रोत्रस्य द्वादशयोजनानि विषयः। एवं शेषाणामपि योयस्य विषयइति । संनाव्ये तु यस्य कस्यचिदनुपहतेंद्रियस्य श्रांतस्य क्रुध्धस्य पिपासितस्य परिग्लानस्य वा अर्थग्रहणसमर्थमपि इंद्रियं सद्यथोक्तदोषोऽपशमे तु सति संनाव्यते विषयग्रहणायेति । सांप्रतमध्यात्मिकं वीर्यं दर्शयितुमाह । उज्जमधितीधीरत्तं, सोंडीरत्तंखमायगंनीरं। उवयोगं योगतव, संजमादियहोइअज्जुप्पो (उज्जमधीत्यादि)। आत्मन्यधीत्यध्यात्मं तत्र नवमाध्यात्मिकमांतरशक्तिजनितं सात्विकमित्यर्थः । तच्चाऽनेकधा । तत्रोद्यमोज्ञानतपोऽनुष्ठानादिषूत्साहः । एतदपि यथा योगं संनवे संनाव्ये च योजनीयमिति । धृतिः संयमे धैर्यं चित्तसमाधानमिति । धीरत्वं परीषहोपसर्गाक्षोन्यता शौंडीर्यं त्यागसंपन्नता षट्खंडमपि नरतं त्यजतश्चक्रवर्तिनोन मनः कंपते । यदिवाऽऽपद्यविपस्रता । यदिवा विषमेऽपिकर्तव्ये समुपस्थिते पराज्ञियोगमकुर्वन् मयैवैतत्कर्तव्यमित्येवं हर्षायमाणोऽविपस्रोविधत्तइति । क्षमावीर्यंतु पैराक्रुश्यमाणोऽपि मनागपि मनसा नक्षोनमुपयाति नावयति । तच्चेदं । आक्रुष्टेन मतिमता तत्वार्थगवेपणे मतिः कार्या । यदि सत्यं कः कोपः स्यादनृतं किंतु कोपेन ॥ ३ ॥ तथा (अक्कोसहणणमारण धम्मप्रंसाए बालसुलनाणं ॥ लानं मन्नइ धीरो, जहुत्तराणं अनावंमि ॥१॥) गांनीर्यवीर्यं नाम परीषहोपसर्गैरधृष्यत्वं । यदिवा यन्मनश्चमत्कारकारिण्यपि स्वानुष्ठाने अनौध्धत्यं । उक्तंच । (बुझुबलेइ जंहे, इकणयं रित्तयं कणकणेइ । नरियाइं ण खुभंती, सुपु

रिसविन्नाण नंडाइं ॥ १ ॥) उपयोगवीर्यं साकारानाकारन्नेदात् द्विविधं । तत्र साकारोप योगोऽष्टधा ऽनाकारश्चतुर्धा । तेन चोपयुक्तः स्वविषयस्य इव्यक्षेत्रकालन्नावरूपस्य परिछे दं विधत्तइति ।.तथा योगवीर्यं त्रिविधं । मनोवाक्कायन्नेदात् । तत्र मनोवीर्यमकुशलमनो निरोधः कुशलमनसश्च प्रवर्तनं मनसोवा एकत्वीन्नावः करणं। मनोवीर्येणह्वि निर्ग्रंथसंय ताः प्रवृद्धपरिणामाश्चवस्थितपरिणामाश्च न्नवंतीति । वाग्वीर्येण तु न्नाषमाणोऽपुनरु क्तं निरवद्यं च न्नाषते । कायवीर्यंतु यस्तु समाहितपाणिपादः कूर्मवदवतिष्ठतइति । तपो वीर्यं द्वादशप्रकारं तपोयद्बलादग्लायन् विधत्तइति । एवं सप्तदशविधेयं संयमे एकत्वाद्यऽध्य वसितस्य यद्बलात्प्रवृत्तिस्तत्संयमवीर्यं । कथमहमतिचारं संयमेन प्राप्नुयामित्यध्यव सायिनः प्रवृत्तिरित्येवमाद्यऽध्यात्मवीर्यमित्यादिच न्नाववीर्यमिति । वीर्यप्रवादपूर्वेचाऽनंतं वीर्यं प्रति पादितं । किमिति यतोऽनंतार्थं पूर्वं न्नवति । तत्रच वीर्यमेव प्रतिपाद्यते । अनंता र्थता चातआगंतव्या । तद्यथा । (सव्वणईणं जाहोऊवालुया गणणमागयासत्ती । तत्तोबहुय तरागो अडो एगस्स पुव्वस्स॥ १ ॥ सव्वसमुदाणजलं जइ पच्चमियं हविऊ संकलियं। एत्तोबहु यतरागो, अडोएगस्स पुव्वस्स ॥ २॥) तदेवं पूर्वार्थस्याऽनंत्या द्वीर्यस्य च तदर्थत्वादनंतता वी र्यस्येति । सर्वमप्येत द्वीर्यं त्रिधेति प्रतिपादयितुमाह । (सव्वंपिय तं तिविहं, पंमियबालवि रियंच । अहवावि होंति डुविहं, अगारअणगारियंचेव ॥ १ ॥) (सव्वंपियमित्यादि) सर्व मप्येतद्भाववीर्यं पंडितबालमिश्रन्नेदात् त्रिविधं । तत्रनागाराणां पंडितवीर्यं बालपंडित वीर्यं त्वगाराणां गृहस्थानामिति । तत्र यतीनां पंडितवीर्यं सादिसपर्यवसितं । सर्वविर ति प्रतिपत्तिकाले सादितासिद्धावस्थायां तदन्नावात्सांतं । बालपंमितवीर्यं तु देशवि रतिसद्भावकाले सादि । सर्वविरतिसद्भावे तद्भ्रंशेवा सपर्यवसानं । बालवीर्यं त्वविरतिल क्षणमन्नव्यानामनाद्यपर्यवसितं न्नव्यानां त्वनादिसपर्यवसितं । सादि सपर्यवसितं तु विरति भ्रंशात् सादिता । पुनर्जघन्यतांतर्मुहूर्तादुत्कृष्टतो ऽपार्द्धपुजलपरावर्तात् विरतिसद्भवात् सांत तेति । साद्यपर्यवसितस्य तृतीयन्नंगकस्य त्वसंन्नवएव । यदिवा पंडितवीर्यं ससर्वविरतिलक्ष णं । विरतिरपि चारित्रमोहनीयक्षयक्षयोपशमलक्षणात्रिविधैवाऽतोवीर्यमपि त्रिधैव न्नवति गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपः । तदनुसूत्रानुगमे स्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । त च्चेदं । (डुहावेदंसुयरकायमित्यादि) द्वे विधे प्रकारावऽस्येति द्विविधं द्विप्रकारं। प्रत्य क्षासन्नवाचित्वात् इदमोयदनंतरं प्रकर्षेणोच्यते वीर्यं तद्विन्नेदं सुष्ठ्वाख्यातं स्वाख्यातं तीर्थं करादिन्निः। चोवाक्यालंकारे । तत्रेऽरगतिप्रेरणयोः । विशेषेण ईरयति प्रेरयति अहितं ये न तद्वीर्यं जीवस्य शक्तिविशेषइत्यर्थः। तत्र किंतु वीरस्य सुन्नटस्य वीरत्वं केनवा कारणे नाऽसौवीरइत्यन्निधीयते । तुशब्दोवितर्कवाची । एतद्वितर्कयति । किंत द्वीर्यं वीरस्य वा किं त द्वीरत्वमिति ॥ १ ॥ तत्र न्नेद द्वारेण वीर्यस्वरूपमाचख्यासुराह ॥ (कम्ममेगेइत्यादि)

कर्म्म क्रियानुष्ठानमित्येतदेके वीर्यमिति प्रवेदयंति । यदिवा कर्माष्टप्रकारं कारणे कार्योपचारात् तदेव वीर्यमिति ।तथा ह्यौदयिकनावनिष्पन्नं कर्मेत्यपदिश्यते । औदयिकोपिच नावः कर्मोदयनिष्पन्नएव बालवीर्यं । द्वितीयनेदस्त्वयं । न विद्यते कर्माऽस्येत्यकर्मा । वीर्यांतरायक्षयजनितं जीवस्य सहजं वीर्यमित्यर्थः । चशब्दात् चारित्रमोहनीयोपशमजनितंच । हेसुव्रताएवंनूतपंडितवीर्यं जानीत यूयं । आन्यामेव द्वान्यां स्थानान्यां सकर्मकाकर्मकापादितं बालपंडितवीर्यान्यां व्यवस्थितं वीर्यमित्युच्यते । यकान्यां ययोर्वा व्यवस्थितामर्त्येषु नवामर्त्याः(दिस्संतइति) दृश्यंतेऽपदिश्यंतेवा । तथाहि । नानाविधासु क्रियासु प्रवर्तमानमुत्साहबलसंपन्नं मर्त्यं दृष्ट्वा वीर्यवानयं मर्त्यइत्येवमपदिश्यते । तथा न दावारककर्मणः क्षयादनंतबलयुक्तोऽयं मर्त्यइत्येवमपदिश्यते दृश्यतेचेति ॥ २ ॥

पमायं कम्ममाहंसु अप्पमायं तहावरं ॥ तप्नावादेसजवावि, बालं पंमियमेववा ॥ ३ ॥ सबमेगेतु सिरकंता, अतिवायाय पाणिणं ॥ एगे मंते अहिज्जंति, पाणनूयविहेडिणो ॥ ४ ॥

अर्थ–(पमायंकम्ममाहंसु के०) श्रीतीर्थंकर देव प्रमादने कर्म कहेले तेप्रमाद कहेबे मज्जविसयकसाया निद्दाविहगाय पंचमेनणियाइत्यादि (अप्पमायंतहावरंके०) तथा अप्रमादने अकर्म कहेबे (तप्नावादेसजवाविबालंपंमियमेववा के०) जे प्रमादि थको कर्म करे ते बालवीर्य कहिए अने जे अप्रमादि थको कर्म करे ते पंमितवीर्य कहिए ते बाल अने पंमितवीर्य आवीरीतेबे अनव्यने अनादि अपर्यवसित अने नव्यने अनादि सपर्यवसित अथवा सादि सपर्यवसित जाणवो ॥ ३ ॥ (सबमेगेतुसिरकंता के०) कोइएक शस्त्र एटले खजादि हथीयार धनुष्य विद्यादिक शीखे अथवा शास्त्र एटले ज्योतिषादिक शास्त्र तथा निमित्त वैद्यक औषध प्रमुख शीखे शावास्तेशीखेतोके (पाणिणंके०) जीवोने (अतिवायायके०) अतिपात एटले विनाश करवाने अर्थे शीखे (एगेमंतेअहिज्जंति के०) तथा कोइएक हिंसक मंत्रादिक नणीने जे अथर्वेणयाग अश्वमेध मनुष्य मेध अजामेध प्रमुख करे ए (पाणके०) बेंद्रियादिक त्रस जीव तथा (नूतके०) पृथिव्यादिक स्थावरजीव तेने (विहेडिणोके०) विविध प्रकारे हणवा निमित्ते पूर्वोक्त मंत्रादि नणे ॥४॥

॥ दीपिका–प्रमादमेव कर्म आहुस्तीर्थकृतः । कर्महेतुत्वात्प्रमादः कर्मैव । अप्रमादं चापरं कर्म आहुः । कोर्थः । प्रमादात्कर्म बध्यते सकर्मणश्च क्रिया बालवीर्यं । तथा अप्रमत्तस्य कर्मानावस्तस्यच पंमितवीर्यं । तन्नावदेशतः बालवीर्यस्य पंमितवीर्यस्य नावस्तेनादेशोव्यपदेशस्तत्र बालवीर्यमनव्यानामनाद्यनंतं । नव्यानामनादिसांतं सादिसांतं वा । पंमि

तवीर्यंतु सादिसांतमेव ॥३॥ बालवीर्यमाह् । शस्त्रं प्रहरणं शास्त्रंवा धनुर्वेदायुर्वेदादिकमेके शिक्षंते प्राणिनामतिपाताय विनाशाय गृण्हंति । एके बालवीर्यवंतोमंत्रानन्निचारकानधीयते । किंनूतान् प्राणिनोद्वींड्रियाद्याः । नूतानि पृथिव्यादीनि तेषां हेठकान् बाधकान्॥४॥

॥ टीका—इह बालवीर्यं कारणे कार्योपचारात्कर्मैव वीर्यत्वेनान्निहितं । सांप्रतं कारणे कार्योपचारादेव प्रमादं कर्मत्वेनापदिशन्नाह् । (पमायमित्यादि)। प्रमाद्यंति सदनुष्ठानरहितान्नवंति प्राणिनोयेन सप्रमादोमद्यादिः । तथाचोक्तं । (मद्यविसयकसाया, णिद्दाविगहाय पंचमे न्नणिया । एसपमायपमाउ, णिद्दिठो वीयरागेहिं ॥ १ ॥) तमेवंनूतं प्रमादं कर्माहुरुक्तवंतस्तीर्थकरादयोऽप्रमादंच तथाऽपरकर्मकमाहुरिति । एतडुक्तं न्नवति । प्रमादापहतस्य कर्म बध्यते सकर्मणश्च यक्रियानुष्ठानं तद्बालवीर्यं । तथाऽप्रमत्तस्य कर्मान्नावोन्नवति । एवंविधस्य च पंडितवीर्यं न्नवति । एतच्च बालवीर्यं पंमितवीर्यमिति वा प्रमादवतः सकर्मणोबालवीर्यमप्रमत्तस्याऽकर्मणः पंमितवीर्यमित्येवमायोज्यं । (तप्नावादेसउवापोति) तस्य बालवीर्यस्य कर्मणश्च पंमितवीर्यस्य वा न्नावः सत्ता सतन्नावस्तेनाऽऽदेशोव्यपदेशस्ततस्तद्यथा बालवीर्यमनव्यानामनादि अपर्यवसितं नव्यानामनादि सपर्यवसितं वा सादिसपर्यवसितं चेति । पंमितवीर्यं तु सादिसपर्यवसितमेवेति ॥ ३ ॥ तत्र प्रमादापहतस्य सकर्मणोयद्बालवीर्यं तद्दर्शयितुमाह् । (सब्रमेगेइत्यादि) । शस्त्रं खङ्गादिप्रहरणं शास्त्रंवा धनुर्वेदायुर्वेदादिकं प्राण्युपमर्दकारि तत् सुष्ठु सातगौरवगृद्धाएके केचन शिक्षंते उद्यमेन गृण्हंति । तच्च शिक्षितं सत् प्राणिनां जंतूनां विनाशाय न्नवति। तथाहि । तत्राऽपदिश्यते एवंविधमालीढप्रत्यालीढादिनिर्जीवव्यापादयितव्ये स्थानं विधेयं । तडुक्तं । मुष्टिना छादयेल्लक्ष्यं, मुष्टौ दृष्टिं निवेशयेत् । हतं लक्ष्यं विजानीयाद्यदि मूर्धा न कंपते । १ । (तथा) एवं लावकरसः क्षयिणे देयोऽन्नयारिष्टाख्योमद्यविशेषश्चेति । तथैवं चौरादेः शूलारोपणादिकोदंडोविधेयः । तथा चाणिक्यान्निप्रायेण परोवंचयितव्योऽर्थोपादानार्थं तथा कामशास्त्रादिकं चोद्यमेनाऽशुन्नाध्यवसायिनोधीयते । तदेवं शस्त्रस्य धनुर्वेदादेः शास्त्रस्य वा यदन्यसनं तत्सर्वं बालवीर्यं । किंचैके केचन पापोदयान् मंत्रानन्निचारकानाऽऽथर्वणानश्वमेधपुरुषमेधादिकं विधीयते । किंनूतानिति दर्शयति । प्राणा द्वींड्रियादयोन्नूतानि पृथिव्यादीनि तेषां विविधमनेकप्रकारं हेठकान् बाधान् कुर्कसंस्थानीयान् मंत्रान् पठंतीति । तथाचोक्तं । षट्शतानि नियुज्यंते, पशूनां मध्यमेऽहनि । अश्वमेधस्य वचनाद्न्यूनानि पशुन्निस्त्रिन्निरित्यादि ॥ ४ ॥

माइणो कट्टु मायाय,कामभोगे समारभे ॥ हंता छेत्ता पगब्भित्ता आयसायाणुगामिणो ॥ ५ ॥ मणसा वयसाचेव, कायसा चेव अंतसो ॥ आरउ परउ वावि, डुहाविय असंजया ॥ ६ ॥

अर्थ-(माइणोकट्टुमायायके०) कोइएक मायावि पुरुष माया केळवीने (कामभोगेसमारभेके०) शब्दादिक विषय रूप कामभोगनो समारंभ करे एटले पोतानाचित्तने विषे आशक्त थता काम सेवना करे एवा ते (आयसायाणुगामिणोके०) पोताना आत्म सुखना अर्थि विषय गृद्ध थता (हंताछेत्ता पगब्भित्ता के०) जीवना हणनार तथा अंगोपांगना छेदनार तथा पेटना कापनार थाय ॥ ५ ॥ (मणसावयसाचेव के०) मने करी वचने करी चेव पदपूर्णार्थेछे अने (कायसा के०) कायायें करी (अंतसोके०) आशक्त थता तंडुल मछनी पेरे कर्म बांधता तथा(आरउके०) आरत आलोकने विषे (परउवाविके०) अथवा परलोकने विषे पण (डुहाविय के०) ए बन्ने लोकने विषे कृत्य कारीत पणे करी ते जीव घातना करनार पुरुष निश्चें थकी (असंजया के०) असंयति जाणवा. ॥ ६ ॥

॥ दीपिका-मायाविनोमायां परवंचनानि कृत्वा कामभोगान् समारभंते सेवंते । तदेवमात्मना सातानुगामिनः स्वसुखलिप्सवः प्राणिनां हंतारः स्युः । तथा छेत्तारः कर्णनासादेः प्रकर्तयितारः पृष्ठोदरादेः ॥ ५ ॥ मनसा वाचा कायेन अंतशः कायेनाशक्तोपि तंडुलमत्स्यवन्मनसैव कर्म बध्नाति तथा आरतः परतश्चेति इह लोकपरलोकयोर्द्विधापि कृतकारिताभ्यां च संयताजीवोपघातकारिणः ॥ ६ ॥

॥ टीका-(अधुना सत्थमित्येतत्सूत्रपदं सूत्रस्पर्शिकया निर्युक्तिकारः स्पष्टयितुमाह । सत्थमसिमादीयं, विज्जामंतेयदेवकयं । पत्थीवकरुणअग्गेय, वायुतहमीसगंचेव।) (सत्थमित्यादि) शस्त्रं प्रहरणं तच्चाऽसिः खड्गादिस्तदादिकं तथा विद्याधिष्ठितं मंत्राधिष्ठितं तदेव कर्मकृतं दिव्यक्रियानिष्पादितं। तच्च पंचविधं । तद्यथा । पार्थिवं वारुणमाग्नेयं वायव्यं तथैव द्व्यादिमिश्रं चेति । किंचाऽन्यत् । माइणोइत्यादिसूत्रं । माया परवंचनादिका बुद्धिः सा विद्यते येषांते मायाविनस्तएवंभूतामायाः परवंचनानि कृत्वा एकग्रहणे तज्जातीयग्रहणादेव क्रोधिनोमानिनोलोभिनः संतः कामान् इच्छारूपान् तथा भोगांश्च शब्दादिविषयरूपान् समारभंते सेवंते। पाठांतरंवा (आरंभायेतिवट्टइ) त्रिभिर्मनोवाक्कायैरारंभार्थं वर्त्तते । बहून् जीवान् व्यापादयन् बध्नन् अपध्वंसयन् आज्ञापयन् भोगार्थी वित्तोपार्जनार्थं प्रवर्त्ततइत्यर्थः । तदेवमात्मसातानुगामिन. स्वसुखलिप्सवोऽदुःखद्विषोविषयेषु गृद्धाः कषायकलुषितांतरात्मानः संतएवंभूताभवंति । तद्यथा । हंता

रः प्राणिव्यापादयितारस्तथाछेत्तारः कर्णनासिकादेस्तथा प्रकर्तयितारः पृष्ठोदरादेरिति ॥ ५ ॥ तदेतत्कथमित्याह (मणसाइत्यादि) अधुना सव्वमित्येतत्सूत्रपदं तदेतत्प्राण्यु पमर्दनं मनसा वाचा कायेन कृतकारितानुमतिभिश्चांतशः कायेनाऽशक्तोऽपि तंदुलम त्स्यवन्मनसैव पापानुष्ठानानुमत्या कर्म बध्नातीति । तथाऽऽरतः परतश्चेति लौकिकी वा यु क्तिरिति । एवं पर्यालोच्यमानाऐहिकामुष्मिकयोर्द्विधापि स्वयंकरणेन परकरणेनवा संयता जीवोपघातकारिणइत्यर्थः ॥ ६ ॥

वेराइं कुव्वई वेरी, तउ वेरेहिं रज्जती॥पावोवगाय आरंभा, दुरक
फासाय अंतसो ॥७॥ संपराइय णियछंति, अत्तदुक्कडकारिणो ॥
रागदोसस्सिया बाला, पावं कुव्वंति ते बहु ॥ ८ ॥

अर्थ-(वेराइंकुव्वईवेरीके०) जीव घातनो करनार पुरुष ते विरोधरूप वैर ने अनेक जीवो नी साथे करे (तउवेरेहिंरज्जतीके०) तथा ते वैरे करी परलोके पण राचे एटले वैर सा थें संबंध करे (पावोवगायआरंभाके०) पापना समीप गामी एवा सावद्यानुष्ठानरूप आरं भना करनार ते (दुरकफासायअंतसो के०) अंत काले विपाकावसरे असातावेदनीय ना उदय थकी दुःखनो स्पर्श पामे. ॥ ७ ॥ (संपराइयणियछंति के०) साते कर्म बां धवाना बे प्रकार कह्याछे एक इर्यापथिकिक्रिया अने बीजी सांपराइकिक्रिया ए बे थकी जीव कर्मनो बंध बांधेछे (अत्तदुक्कडकारिणो के०) आत्म दुष्कृतकारी एटले स्वयं पापकारी (रागदोसस्सियाबाला के०) रागद्वेषाश्रित एटले राग द्वेषे व्याकुल बाल एटले अज्ञा नी सदसद् विवेक रहित एवा छता (पावंकुव्वंतितेबहुके०) ते पुरुषो पोताना आत्माना घात करनार एटले आत्माने दुःखना देनारा एवा घणा पाप करे. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका-वैरी सजीवोवैराणि करोति ततोऽपैरवैरैरनुरुध्यते. वैरपरंपरानुषंगी स्या दित्यर्थः । आरंभाः पापोपगाः पापयुक्ताअंतशोविपाककालेदुःखदायिनः स्युः ॥ ७ ॥ आत्मदुष्कृतकारिणः स्वपापविधायिनः सांपरायिकं कर्म नियछंति बध्नंति । ते किंभूताः रा गद्वेषाश्रिताबालाः पापं कुर्वंति बहूनंतं । कर्मद्विधा । ईर्यापथं सांपरायिकंच तत्र संपराया बादरकषायास्तेभ्यआगतं सांपरायिकं जीवघातहेतुत्वेन कषायोछं कर्म बध्नंतीत्यर्थः॥ ८ ॥

॥ टीका-सांप्रतं जीवोपघातविपाकदर्शनार्थमाह । (वेराइंइत्यादि)। वैरमस्यास्ती ति वैरी सजीवोपमर्दकारी जन्मशतानुबंधीनि वैराणि करोति । ततोऽपि च वैरादपरैर्वैरै रनुरुध्यते । वैरपरंपरानुषंगी भवतीत्यर्थः । किमिति । यतः पापं उपसामीप्येन गछंती ति पापोपगाः १कएते आरंभाः सावधानरूपाः। अंतशोविपाककाले दुःखं स्पृशंतीति दुःख

स्पर्शाअसातोदयविपाकिनोनवंतीति ॥ ७ ॥ किंचाऽन्यत्संपराइयणियछंतीत्यादि) द्विविधं कर्म ईर्यापथं सांपरायिकंच । तत्र संपरायाबादरकषायास्तेन्यआगतं सांपरायिकं तज्जीवोपमर्दकत्वेन वैरानुषंगितयाऽऽत्मदुष्कृतकारिणः स्वपापविधायिनः संतोनियछं ति बध्नंति । तानेव विशिनष्टि । राग द्वेषाश्रिताः कषायकलुषितांतरात्मानः सदसद्विवेक विकलत्वात् बालाइव बालास्ते चैवंनूताः पापमसद्वेद्यं बव्हनंतं कुर्वंति विदधति ॥७॥

एयं सकम्मवीरियं, बालाणं तु पवेदितं॥इत्तो अकम्मविरियं, पं
मियाणं सुणेहमे ॥८॥ दविए बंधणुम्मुक्के, सवउ छिन्नबंधणे ॥ प
णोल्लपावकं कम्मं,सल्लं कंततिअंतसो पाठांतरे सल्लंकंतंति अप्पणो१०

अर्थ—(एयंसकम्मवीरियं के०) एपूर्वोक्त अनुक्रमे सकर्म वीर्य कह्यो ते कर्म बांधवा नुं कारणछे माटे ए (बालाणंतुपवेदितं के०) ए बालनुं वीर्य कह्युं (इत्तो के०) ए बालवीर्य कह्यानंतर (अकम्मविरियं के०) अकर्म वीर्य ते (पंमियाणंसुणेहमे के०) पंमितनु वीर्य जाणवो ते हुं कहुंछुं माटे हे शिष्यो तमे सांजलो ॥८॥ (दविएके०) मुक्ति गमन योग्य एवो जीव इव्य (बंधणुके०) राग द्वेष रूप जे कषाय तेथकी (मुक्केके०) मुक्त एटले रहित (सवउछिन्नबंधणे के०) सर्वथा प्रकारे कर्म बंधननो छेद्य करनार एवोछतो (पणोल्लपावकंकम्मं के०) पाप कर्मने क्षय करी (सल्लंकंततिअंतसो के०) जेने पामीने जीव समस्त सल्य कापे अथवा पाठांतरे (सल्लंकंततिअप्पणोके०)पोताना शल्य कापे ॥१०॥

॥ दीपिका—तत् पूर्वोक्तं बालानां सकर्मवीर्यं प्रवेदितं । यथा जमदग्निना स्वनार्यायामकार्य प्रवृत्तः कृतवीर्योव्यादितस्तत्पुत्रेण कार्तवीर्येण जमदग्निर्हतः पुनर्जमदग्निपुत्रेण परशु रामेण सप्तवारान् क्षत्रियाहताः पुनः कृतवीर्यसुतेन सुनूमेन त्रिःसप्तवारान् ब्राह्मणाह ताइति बालानां कर्मवीर्यमिति । इतऊर्ध्वमकर्मवीर्यं पंडितानां तन्मे मम कथयतः शृ णुत यूयं ॥ ८ ॥ इव्योनव्योमुक्तियोग्योऽकषायीत्यर्थः। बंधनोन्मुक्तः कर्मरहितः सर्वत श्छिन्नबंधनः सूक्ष्मबादरकषायमुक्तः प्रणुद्य प्रेर्य पापं कर्म तत्कारणनूतान् आश्रवान् वा त्यक्त्वा शल्यतुल्यमशेषं कर्म कृंतत्यपनयति ॥ १० ॥

॥ टीका—एवं बालवीर्यं प्रदर्श्योपसंजिघृक्षुराह । (एयंसकम्मेत्यादि) । एतत् यत् प्राक् दर्शितं । तद्यथा । प्राणिनामतिपातार्थं शस्त्रं शास्त्रं वा केचन शिक्षंते । तथा परे विद्यामं त्रान् प्राणिबाधकानधीयते । तथाऽन्येमायाविनोनानाप्रकारां मायां कृत्वा कामनोगार्थ मारंनान् कुर्वते । केचन पुनरपि परे वैरिणस्तत्कुर्वंति येन वैरैरनुबध्यंते । तथाहि । जमदग्निना स्वनार्याकार्यव्यतिकरे कृतवीर्योविनाशि तत्पुत्रेणतु कार्तवीर्येण जमदग्निः

जमदग्निसुतेन परशुरामेण सप्तवारान् निःक्षत्रा पृथिवी कृता। पुनः कार्तवीर्यसुतेन तु सुनूमेन त्रिःसप्तकृत्वोब्राह्मणाव्यापादिताः। तथाचोक्तं। अपकारसमेन कर्मणा, न नरस्तुष्टिमुपैति शक्तिमान्। अधिकां कुरुते हि यातनां, द्विषतां जातमशेषमुद्धरेत् ॥१॥ तदेवं कषायवशगाः प्राणिनस्तत्कुर्वंति। येन पुत्रपौत्रादिष्वपि वैरानुबंधोन्नवति। तदेतत्सकर्मणां बालानां वीर्यं। तुशब्दात्प्रमादवतां च प्रकर्षेण वेदितं प्रवेदितं प्रतिपादितमिति यावत्। अतऊर्ध्वमकर्मणां पंडितानां य द्वीर्यं तन्मे मम कथयतः शृणुत यूयमिति॥९॥ यथाप्रतिज्ञातमेवाह (दविएइत्यादि) इव्योन्नव्योमुक्तिगमनयोग्यः। इव्यं च न्नव्यइति वचनात्। रागद्वेषविरहाद्वा इव्यन्नूतोऽकषायीत्यर्थः। यदिवा वीतरागइति। वीतरागोऽल्पकषायइत्यर्थः। तथाचोक्तं। किंसक्कावोत्तुंजे, सरागधम्मंमि कोइअकसायी। संतेविजोकषाए, निगिएहइसोवि तत्तुल्लो ॥१॥ सच किंन्नूतोन्नवतीति दर्शयति। बंधनात्कषायात्मकान्मुक्तोबंधनोन्मुक्तः। बंधनं तु कषायाणां कर्मस्थितिहेतुत्वात्। तथाचोक्तं। (बंधहिइकसायवसाइति) यदिवा बंधनोन्मुक्तइव बंधनोन्मुक्तः। तथा परः सर्वतः सर्वप्रकारेण सूक्ष्मबादररूपं छिन्नमपनीतं बंधनं कषायात्मकं येन सछिन्नबंधनः। तथा प्रणुद्य प्रेर्य पापं कर्म कारणन्नूतान्वाऽऽश्रवानपनीय शल्यवच्छल्यं शेषकं कर्म तत् कृंतत्यपनयत्यंतशोनिरवशेषतो विघटयति। पाठांतरंवा। (सल्लंकंतइअप्पणोत्ति) शल्यन्नूतं यदष्टप्रकारं कर्म तदात्मनः संबधि कृंतति छिनत्तीत्यर्थः ॥ १० ॥

नेयाउयं सुयक्खायं, उवादाय समीहए। नुज्जोनुज्जो डुहावासं, असुहत्तं तहातहा ॥ ११ ॥ ठाणी विविहठाणाणि, चइस्संति ण संसउ ॥ अणियंते अयं वासे, णायएहि सुहीहिय ॥ १२ ॥

अर्थ—हवे जे वस्तु पामीने शल्यने छेदे ते देखाडेछे. (नेयाउयंसुयक्खायंके०) न्याय एटले ज्ञान दर्शन चारित्ररूप जे मोक्ष मार्ग श्री तीर्थंकर देवनो नाष्यो (उवादायके०) तेने उपादान एटले ग्रहण करीने (समीहएके०) धर्म ध्यानने विषे उद्यम करे अने (नुज्जोनुज्जो डुहावासंके०) जे बालवीर्यवंतते वली वली अनंतनव ग्रहणने विषे जेम जेम नरकादिक डुःखना आवासोने विषे पर्यटन करे (तहातहा के०) तेम तेम (असुहत्तंके०) अशुनत्वं एटले डुर्ध्यानपणु प्रवर्द्धमान थाय एवो संसारनुं स्वरूप जाणीने पंमित पुरुष धर्मध्यानने विषे प्रवर्त्ते ॥ ११ ॥ हवे संसारनुं अनित्य पणु देखाडेछे. (ठाणीविविहठाणाणि के०) जे जीवना विविध प्रकारना प्रधान स्थानकछे तद्यथा देवलोकमां इंद्र तथा सामानिक त्रयस्त्रिंशकादिकना स्थानछे मनुष्यने विषे चक्रवर्त्ती वासुदेव बलदेव

तथा मांमलिकादिकना स्थानछे तिर्यंचने विषे पण क्यांएक इष्टनोग नूम्यादिक स्थानछे ते सर्व स्थानने (चइस्संति के०) बांमशे (एासंसउ के०) एमां संदेहकरवो नही तथा (णायएहि के०) ज्ञाति गोत्री (सुहीहिया के०) सुहृद एटले बांधवादिक (अणियंतेअयंवासे के०) ए सर्वनुं अनित्य अशाश्वत एवो वासछे ॥ १२ ॥

॥ दीपिका—नैय्यायिकं मोक्षनयनशीलं श्रुताख्यातं धर्ममुपादाय गृहीत्वा समीहते सम्यक् मोक्षाय ईहते चेष्टते नूयोनूयः पुनः पुनः दुःखावासं बालवीर्यवान् स्यात् यथाय था बालवीर्यवान् स्यात तथातथाऽशुनत्वं दुर्ध्यानं प्रवर्धते ततश्च नरकादिदुःखं ॥११॥ स्थानानि विद्यंते येषांते स्थानिनोदेवलोकादिशुनस्थानवर्तिनः स्थानानि त्यक्ष्यं ति नात्र संशयोऽशाश्वतत्वादिंद्रत्वचक्रित्वादीनां । यतः । सुचिरतरमुषित्वा बांधवैर्वि प्रयोगः सुचिरमपि हि रंत्वा नास्ति नोगेषु तृप्तिः ॥ सुचिरमपि हि पुष्टं याति नाशं शरीरं, सुचिरमपि विचिंत्योधर्मएकः सहायः ॥ १ ॥ इतिज्ञातकैः स्वजनैः सुहृद्भिश्च सहवासोय मनियतः कियत्कालस्थायी ननित्यः ॥ १२ ॥

॥ टीका—यदुपादाय शल्यमपनयति तद्दर्शयितुमाह । (नेयाउयमित्यादि) नयनशी लोनेता । नयतेस्ताच्छीलिकस्तृन् । सचाऽत्र सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकोमोक्षमार्गः श्रु तचारित्ररूपोवा धर्मोमोक्षनयनशीलवान् गृह्यते । मार्गं धर्मं वा मोक्षं प्रति नेतारं सुष्ठु तीर्थकरादिनिराख्यातं स्वाख्यातं तमुपादाय गृहीत्वा सम्यक् मोक्षाय चेष्टते ध्यानाध्य नादावुद्यमं विधत्ते । धर्मध्यानारोहणालंबनायाह । नूयोनूयः पौनःपुन्येन यद्बालवीर्यं त दतीतानागतानंतनवग्रहणेषु दुःखमावासयतीति दुःखावासं वर्तते । यथा यथाच बाल वीर्यवान् नरकादिषु दुःखवासेषु पर्यटति तथातथा चास्याऽशुनाध्यवसायित्वाद शुतमेव प्रवर्धते इत्येवं संसारस्वरूपमनुपेक्ष्यमाणस्य धर्मध्यानं प्रवर्ततइति ॥ ११ ॥ सां प्रतमनित्यनावनामधिकृत्याह । (ठाणीविविहेत्यादि) । स्थानानि विद्यंते येषांते स्थानिनः । तद्यथा देवलोके इंद्रस्तत्समानानि त्रयस्त्रिंशत्पार्षद्यादीनि मनुष्येष्वपि च क्रवर्तिबलदेववासुदेवमहामंमलिकादीनि । तिर्यक्ष्वपि यानि कानिचिदिष्टानि नोगनू म्यादौ स्थानानि तानि सर्वाण्यपि विविधानि नानाप्रकाराण्युत्तमाधममध्यमानि तेषु स्था निनस्त्यक्ष्यंति नात्र संशयोविधेयइति । तथाचोक्तं । अशाश्वतानि स्थानानि सर्वाणि दि वि चेह च देवासुरमनुष्याणामृद्धयश्च सुखानिच तथाऽयं ज्ञातिनिः सहंधुनिः सार्धं सहान्यै श्च मित्रैः सुहृद्भिर्यः संवासः सोऽनित्योऽशाश्वतइति । तथाचोक्तं । सुचितरमुषित्वा बांध वैर्विप्रयोगः सुचिरमपिहि रंत्वा नास्ति नोगेषु तृप्तिः । सुचिरमपि हि पुष्टं याति नाशं शरीरं ॥

सुचिरमपि विचिंत्यो धर्मएकः सहायइति ॥११॥ चकारौ धनधान्यद्विपदचतुष्पदशरीराद्यनि त्यत्वनावनार्थौ । अशरणाद्यशेषभावनार्थंचा ऽनुक्तसमुच्चयार्थमुपात्ताविति॥ १२ ॥

एवमादाय मेहावी, अप्पणो गिद्धिमुद्धरे ॥ आरियं उवसंपज्जे, सव्वधम्ममकोवियं ॥ १३ ॥ सहसंमइए एच्चा, धम्मसारं सुणे तु वा ॥ समुवठिएउ अणगारे पच्चरकाय पावए ॥ १४ ॥

अर्थ–(एवमादायमेहावीके०) एरीते पंमित पुरुषे अवधारीने (अप्पणोगिद्धिमुद्धरे के०) पोतानो ममत्व स्वनाव उद्धरे एटले स्वजनादिकने विषे ममत्व नकरे (आरियंउवसंपज्जेके०) आर्यजे वीतराग प्रणीत मोक्षमार्गरूप धर्म तेने आदरे तेधर्म केवो बे तोके (सव्वधम्ममगोवियंके०) सर्व धर्ममांहे प्रधान अगोपित एटले अदूषितबे प्रगटबे ॥१३॥ हवे शुद्धधर्म परिज्ञान जेरीते थाय तेरीते कहेबे. (सहसंमइएणच्चाके०)जाति स्मरणादिके करी तथा पोतानी मतिये करी जाणीने (वाके०) अथवा अन्य गुर्वादिक पाशेथी (धम्मसारंसुणेतुके०) धर्मनो सार जे चारित्र तेने सांनलीने अंगीकार करे(समुवठिएउअणगारे के०) पंमित वीर्यं संपन्न एवो साधु संयमने विषे उद्यमवंत थको (पच्चरकायपावए के०) पापकर्म जे सावद्यानुष्ठान तेने पच्चरके एटले निराकरे ॥१४॥

॥ दीपिका–सर्वमनित्यमेवमादाय एवं ज्ञात्वा मेधावी आत्मनोगृद्धिं ममत्वमुद्धरेत् त्यजेत् आर्यं मोक्षमार्गमुपसंपाद्येताधितिष्ठेदाश्रयेत् । किंनूतं सर्वैः कुतीर्थधर्मैरकोपितोऽदूषितश्च ॥१३॥ धर्मसारं धर्मरहस्यं ज्ञात्वा (सहसंमइएइत्यादि) ज्ञातेनतीर्थकरादिन्योवा श्रुत्वा चारित्रं प्रतिपद्यते । उपस्थितउत्तरोत्तरगुणसंपत्तयेऽन्युद्यतोऽनगारः प्रत्याख्यातं निराकृतं पापं येन सप्रत्याख्यातपापकः स्यात् ॥ १४ ॥

॥ टीका–अपिच । (एवमादायेत्यादि) अनित्यानि सर्वाण्यपि स्थानानीत्येवमादायावधार्य मेधावी मर्यादाव्यवस्थितः सदसद्विवेकी वा आत्मनः संबंधिनीं गृद्धिं गार्ध्यं ममत्वमुद्धरेदपनयेन्ममेदमहमस्य स्वामीत्येवं ममत्वं क्वचिदपि न कुर्यात् । तथा । आराज्ञातः सर्वहेयधर्मेन्यइत्यार्योमोक्षमार्गस्तमुपसंपद्येताऽधितिष्ठेत् समाश्रयेदिति । किंनूतं मार्गमित्याह । सर्वैः कुतीर्थकधर्मैरकोपितोऽदूषितः स्वमहिम्नैव दूषयितुमशक्यत्वात् प्रतिष्ठां गतः । यदिवा सर्वैर्धर्मैः स्वनावैरनुष्ठानरूपैरगोपितं कुत्सितकर्त्तव्यानावात् प्रकटमित्यर्थः ॥ १३ ॥ सुधर्मपरिज्ञानंच यथा नवति तद्दर्शयितुमाह । (सहसंमइएइत्यादि) धर्मस्यसारः परमार्थोधर्मसारस्तं ज्ञात्वाऽवबुध्य । कथमिति दर्शी

यति। सहसम्मत्या स्वमत्यावा विशिष्टाभिनिबोधिकज्ञानेन श्रुतज्ञानेनावधिज्ञानेन वा स्वप रावबोधकत्वात् ज्ञानस्य तेन सह धर्मस्य सारं ज्ञात्वेत्यर्थः । अन्येभ्योवा तीर्थकरगण धराचार्यादिभ्यइलापुत्रवत् श्रुत्वा चिलातपुत्रवद्वा धर्मसारमुपगच्छति । धर्मस्य वा सारं चारित्रं तत्प्रतिपद्यते तत्प्रतिपत्तौच पूर्वोपात्तकर्मक्षयार्थं पंडितवीर्यसंपन्नोरागादिबंधन विमुक्तोबालवीर्यरहितउत्तरोत्तरगुणसंपत्तये समुपस्थितोऽनगारः प्रवर्धमानपरिणामः प्र त्याख्यातं निराकृतं पापकं सावद्यानुष्ठानरूपं येनाऽसौ प्रत्याख्यातपापकोभवतीति ॥१४॥

जं किंचुवक्कमं जाणे, आउक्खेमस्स अप्पणो ॥ तस्सेव अंतरा खिप्पं, सिक्खं सिक्खेज्ज पंडिए ॥१५॥ जहा कुम्मे सअंगाइं, स ए देहे समाहरे ॥ एवं पावाइं मेधावी, अज्झप्पेण समाहरे ॥ १६ ॥

अर्थ-(जंकिच के०) जे कोइ प्रकारे करी (अप्पणो के०) पोतानो (आउक्खेम स्सके०) खेमे कुशले करी आयुष्यनो (उवक्कमंजाणेके०) उपक्रम एटले विनाश जाणे अर्थात् पोतानुं मरण जाणे (तस्सेवअंतराखिप्पंके०) तेना अंतराले एटले विचाले क्षिप्र एटले उतावळो (सिक्खंसिक्खेज्जपंडिएके०) ते पंडित संलेपणारूप शिक्षा शीखे अने ते शि क्षाने मरणावधि सुधि अंगीकार करे ॥१५॥ (जहाके०) जेम (कुम्मेसअंगाइंके०) कांचबो पोताना अंग तथा हाथ मस्तकादिक उपांगने (सएदेहेसमाहरे के०) पोताना देहने विषे गोपवे (एवं के०) एरीते (मेधावी के०) पंडितजे छे ते पण (पावाइं के०) पापजे सावद्यानुष्ठान रूप तेने (अज्झप्पेण के०) अध्यात्म एटले सम्यक् दर्शन ज्ञा नादिक भावनायें करी (समाहरे के०) उपसंहरे एटले मरण काल सुधी संलेष णायें करी पापकर्मने निर्ज्जरे ॥ १६ ॥

॥ दीपिका-आयुःक्षेमस्य स्वायुष उपक्रमं क्षयं जानीयात् ज्ञात्वा च तस्योपक्रमस्य कालस्य वा अंतराले क्षिप्रमेव अनाकुलः पंडितः संलेखनारूपां शिक्षां भक्तपरिज्ञेंगितमर णादिकां वा शिक्षेत् ॥१५॥ यथा कूर्मः स्वान्यंगानि स्वके देहे समाहरेद्गोपायेत् एवं मेधावी पंडितः पापानि पापानुष्ठानान्यध्यात्मना सम्यक् ज्ञानादिभावनया समाहरेदुपसंहरेत्॥१६

॥ टीका-किंचान्यत् (जंकिंचुवक्कममित्यादि) उपक्रम्यते संवर्त्यते क्षयमुपनीयते आयुर्येन सउपक्रमस्तं यं कंचन जानीयात् । कस्यायुःक्षेमस्य स्वायुषइति । इदमुक्तं भव ति। स्वायुष्कस्य येन केनचित्प्रकारेणोपक्रमोभावी यस्मिन्वा काले तत्परिज्ञाय तस्योपक्र मस्य कालस्यवा अंतराले क्षिप्रमेवाऽनाकुलोजीविताशंसी पंडितोविवेकी संलेखना

नुरूपां शिक्षां नक्तपरिज्ञेंगितमरणादिकां वा शिक्षेत् । तत्र ग्रहणशिक्षया यथावन्मरण विधिं विज्ञायाऽऽसेवनाशिक्षया सेवेतेति ॥१५॥ किंचान्यत् । (जहाकुम्मेइत्यादि) । यथेत्यु दाहरणप्रदर्शनार्थः । यथा कूर्मः कच्छपः स्वान्यंगानि शिरोधरादीनि स्वके देहे समाहरेद्गोप येद्व्यापाराणि कुर्यादेवमनयैव प्रक्रियया मेधावी मर्यादावान् सदसद्विवेककी वा पापानि पापरूपाण्यनुष्ठानान्यध्यात्मना सम्यक् धर्मज्ञानादिनावनया समाहरेडुपसंहरेन्मरणकाले चोपस्थिते सम्यक्संलेखनया संलिखितकायः पंमितमरणेनाऽऽत्मानं समाहरेदिति ॥१६॥

साहरे हत्थपाएय, मणं पंचेंदियाणिय ॥ पावकं च परीणामं, नासा दोसंच तारिसं ॥ १७ ॥ अणुमाणंच मायंच, तं पडिन्नाय पंमिए ॥ (पाठां तरं अइमाणं च माइंच तं परिणाय पंडिए) द्वितीय पाठांतरं (सुयंमे इहमेगेसिं, एयं वीरस्स वीरियं (तृतीय पाठांतरं । आयतठं समादा य एयं वीरस्स वीरियं) ॥ सातागारवणिहुए, उवसंते णिहेचरे ॥ १८ ॥

अर्थ–(साहरे हत्थपाएयके०) काचबानी पेरे हाथ पग अंगोपांगादिकने गोपवीराखे (मणंपंचेदियाणियके०) तथा मनना अकुशल व्यापार तथा श्रोत्रादिक सर्व इंद्रिउंना विषय थकी निवर्त्ते तथा (पावकंचपरीणामंके०) मननो पाप मय परिणाम एटले माठो अनिप्राय (नासादोसंचतारिसंके०) ज्यारे कांइ प्रयोजन पडे त्यारे तेवोजजे पापरूप नाषानो दोष तेने पण संवरे ॥१७॥ तथा कोइ पूजा सत्कार करे तेवारे मान टालवुं ते आश्री कहेछे. (अणुमाणंच मायंचके०) अल्पमान अल्पमाया अने चकारथकी अनुक्रमे क्रोध तथा लोन पण लेवो (तंपडिन्नाय पंमिए के० तेने जाणीने पंमित विवेकी जन होयते अंहीं पा ठांतरे अइमाणमिति अत्यंतमान अत्यंतमाया तेमज अत्यंत क्रोध अने लोन एनो सर्वथा प्रकारे त्याग करे एम पण कह्युंछे बीजुं पाठांतर (सुयंमेइ हमेगेसिं के०) एरीते में गु रुनी पाशेथी सम्यक् प्रकारे सांनल्युंछे के (एयंवीरस्स वीरियं के०) ए क्रोधादिकना जय थी वीर पुरुषनुं वीर्य पराक्रम जाणवुं पण जे संग्राममां शत्रुने ह णेते परमार्थें वीर सुनट नकहेवाय त्रीजुंपाठांतर (आयतठंके०) मोक्षनो अर्थि आत्मतिष्ट एवो साधु (स मादायके०) ते चारित्रने रुडीरीते ग्रहण करीने पछी क्रोधादिकने जीतवानो उद्यम करे (एयंवीरस्सवीरियंके०) ए प्रकारे वीर पुरुषनुं वीर्य जाणवो तथा (सातागारवणिहुए के०) सातागारवने विषे निनृत एटले अनुद्युक्त अर्थात् साता गारवे करी रहित तथा (उवसंतेणिहेचरे के०) उपशांत एटले कषायना जीतवा थकी क्षमावान् तथा माया रहित छतो संयमानुष्ठान आचरे ए शुद्ध मार्गनो नाव जाणवो ॥ १८ ॥

॥ दीपिका—अनशने शेषकाले वा हस्तौ पादौच संहरे द्व्यापारान्निवर्तयेत्। तथा मनश्चित्तं पंचेंद्रियाणि च विषयेन्योनिवर्तयेत् पापकमशुनं परिणामं नाषादोषं च सावद्यां नाषां संहरेत्॥ १७॥ आयतार्थं मोक्षं सुष्टु आदाय गृहीत्वा कामक्रोधादिकं जयेत् एत द्वीरस्य वीरत्वं तथा सातगौरवं सुखशीलता तत्र निनृतोऽनुद्यमउपशांतः क्षमावान् नविद्यते निहा माया यस्यासावनिहोमायाप्रपंचरहितश्चरेत्संयमे ॥ १८ ॥

॥ टीका—संहरणप्रकारमाह (साहरेत्यादि) पादपोपगमने इंगितमरणे नक्तपरिज्ञायां शेषकाले वा कूर्मवद्धस्तौ पादौ च संहरेद्व्यापारान्निवर्त्तयेत्। तथा मनोंऽतःकरणं तच्चाऽकुशलव्यापारेन्योनिवर्तयेत्। तथा शब्दादिविषयेन्योऽनुकूलप्रतिकूलेन्योऽरक्तद्विष्टतया श्रोत्रेंद्रियादीनि पंचाऽपींद्रियाणि। चशब्दः समुच्चये। तथा पापकं परिणाममैहिकामुष्मिकाशंसारूपं संहरेदित्येवं नापादोषंच तादृशपापरूपं संहरेत् मनोवाक्काय गुप्तः सन् दुर्लनं संयममवाप्य पंमितमरणं वाऽशेषकर्मक्षयार्थं सम्यगनुपालयेदिति। तंच संयमे पराक्रममाणं कश्चित् पूजासत्कारादिना निमंत्रयेत्। तत्राऽऽत्मोत्कर्षोंन कार्यइति दर्शयितुमाह ॥ १७ ॥ (अणुमाणं चेत्यादि) चक्रवर्त्यादिना सत्कारादिना पूज्यमानेनाऽणुरपि स्तोकोऽपि मानोऽहंकारोन विधेयः किमुत महान्। यदि वोत्तममरणोपस्थितेनोग्रतपोनिष्टप्तदेहेन वा अहोऽहमित्येवंरूपस्तोकोऽपि गर्वोन विधेयः। तथा पंमुरार्ययेव स्तोकाऽपि माया न विधेया किमुत महतीत्येवं क्रोधलोनावपि न विधेयाविति। एवं द्विविधयापि परिज्ञया कषायांस्तद्विपाकांश्च परिज्ञाय तेन्योनिवृत्तिं कुर्यादिति। पाठांतरंवा। अश्माणंचमाइंच तंपरिस्सायपंमिए। अतीव मानोतिमानःसुनूमादीनामिव तं दुःखावहमित्येवं ज्ञात्वा परिहरेत्। इदमुक्तं नवति। यद्यपि सरागस्य कदाचिन्मानोदयः स्यात्तथाप्युदयप्राप्तस्य विफलीकरणं कुर्यादित्येवं मायायामप्यायोज्यं। पाठांतरंवा। (सुयं मे इहमेगेसिं, एयं वीरस्स वीरियं।) येन बलेन संग्रामशिरसि महति सुनटे परानीकं विजयते तत्परमार्थतोवीर्यं ननवत्यपितु येन कामक्रोधादीन् विजयते तद्वीरस्य महापुरुषस्य वीर्यमिहैवाऽस्मिन्नेव संसारे मनुष्यजन्मनि चैकेषां तीर्थंकरादीनां संबंधिवाक्यं मया श्रुतं वा। पाठांतरंवा। (आयतठं समादाय, एवं वीरस्स वीरियं) आयतोमोक्षोऽपर्यसितावस्थानत्वात्। सचाऽसावर्थश्च तदर्थोवा तत्प्रयोजनोवा सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्रमार्गः सआयतार्थस्तं दृष्ट्वाऽऽदाय गृहीत्वा योधृतिबलेनकामक्रोधादिविजयाय च पराक्रमते। एतद्वीरस्य वीर्यमिति यदुक्तमासीत् किंतु वीरस्य वीरत्वमिति तद्यथानवति तत्तथाख्यातं। किंचाऽन्यत् सातगौरवंनाम सुखशीलता तत्र निनृतस्तदर्थमनुद्युक्तइत्यर्थः। तथा क्रोधाग्निजयादुपशांतः शीतीनूतः शब्दादिविषयेन्यो

ऽप्यनुकूलप्रतिकूलेन्योऽरक्तद्विष्टतयोपशांतोजितेंड्रियत्वात्तेन्योनिवृत्तइति । तथा निहन्यं ते प्राणिनः संसारे यया सा निहा माया नविद्यते सा यस्याऽसावनिहोमायाप्रपंच रहितइत्यर्थः । तथा मानरहितोलोन्नवर्जितइत्यपि इष्टव्यं । सचैवंजूतः संयमानुष्ठानं चरेत् कुर्यादिति । तदेवं मरणकालेऽन्यदा वा पंडितोवीर्यवान् महाव्रतेषूद्यतः स्यात् । तत्राऽपि प्राणातिपातविरतिरेव गरीयसीति कृत्वा तत्प्रतिपादनार्थमाह । (उड्ढमहे तिरियंवा जेपाणा तसथावरा ॥ सव्वड विरतिं कुज्जा, संति निव्वाणमाहियं॥१॥) अयंच श्लोकोन सूत्रादर्शेषु दृष्टष्टीकायांतु दृष्टइति कृत्वा लिखितउत्तानार्थश्चेति ॥ १७ ॥

पाणेय णाइवाएज्जा, अदिन्नं पियणादए॥ सादियं ण मुसं बूया
एस धम्मे बुसीमउ ॥ १ए ॥ अतिक्कम्मंति वायाए,मणसा वि न
पत्रए ॥ सवउ संवुमे दंते, आयाणंसु समाहरे ॥ २० ॥

अर्थ-(पाणेयणाइवाएज्जा के०) प्राणीउना प्राणने हणे नही (अदिन्नं पियणा दए के०) तथा दंत शोधनमात्र पण अदत्त लीए नही (सादियंणमुसंवूया के०) माया सहित मृषावाद न बोले केम के परवंचना निमित्त जे मृषा बोलाय ले ते मायाविना बोलातुं नथी किंतु माया सहितज बोलायले ते माटे मृषानी आदि ते मायाज जाणवी तेवी मायाने परिहरे त्यागे (एसधम्मेबुसीमउ के०) संयमवंतनो तथा जीतेंड्रिय साधुनो एहिज धर्म सत्य जाणवो ॥ १ए ॥ (अतिक्कम्मंतिवायाए के०) महाव्रतोनुं अतिक्रम एटले उलंघन करवानी वचने करी (मणसाविनपत्रए के०) तथा मने करी पण प्रार्थना करे नही ए बन्नेना निषेधवा थकी त्रीजो कायानो अतिक्रम दूर थकीज निषेध्यो एम पोतानी मेलेज जाणी लेवो (सवउसंवुमेदंते के०) सर्वे थकी करण करावण तथा अनुमतियें करी बाह्यान्यंतर नेदेकरी संवृत गुप्तेंड्रिय एवो बतो (आयाणं सुसमाहरे के०) आदान एटले सम्यक् दर्शनादिकनुं ग्रहण करे तथा शुद्धआहार ग्रहण करे एम ग्रहण करेली चारित्रने सम्यक् प्रकारे शुद्ध क्रियासहित पाले.॥२०॥

॥ दीपिका–प्राणिनां प्राणान् नातिपातयेत् परेणाऽदत्तं किंचिन्नाददीत नगृह्णीयात् सह आदिना मायया वर्तते इति सादिकं समायं मृषावादं न ब्रूयात्।परवंचनार्थं मृषावादोऽधिक्रियते च न मायामंतरेण स्यात्ततोमृषावादस्य माया आदिजूता।कोर्थः। योहि परवंचनार्थं समायोमृषावादः सत्यज्यते । यस्तु संयमगुप्त्यर्थं नमया मृगादृष्टाइत्यादिकः स न दोषाय (एसधम्मोबुसीमउत्ति) वस्तुमतः वस्तूनि ज्ञानादीनि विद्यते यस्य स वस्तुमान् साधुस्तस्य अथवा वश्यस्य वशीकृतेंड्रियस्येत्यर्थः ॥ १ए ॥ अतिक्रमं महाव्र

तातिचारइत्येवंभूतं वा मनसाऽपि न प्रार्थयेत् । कायेनापि सर्वतः सबाह्याभ्यंतरतः संवृ तोगुप्तोदांतइंद्रियदमेन आदानं सम्यक्दर्शनादिकं सुष्ठु आहारं गृण्हीयात् ॥ २० ॥

॥ टीका–किंच (पाणेइत्यादि) प्राणप्रियाणां प्राणिनां प्राणान्नातिपातयेत् । तथा परेणाऽदत्तं दंतशोधनमात्रमपि नाददीत नगृण्हीयात् । तथा । सहादिना मायया वर्त्त तइति सादिकं समार्य मृषावादं न ब्रूयात् । तथाहि । परवंचनार्थं मृषावादोऽधिक्रियते सच न मायामंतरेण भवतीत्यतोमृषावादस्य माया आदिभूता वर्त्तते । इदमुक्तं भवति । योहि परवंचनार्थं समायोमृषावादः सपरिह्रियते । यस्तु संयमगुप्त्यर्थं नमया मृगाऽप लब्धाइत्यादिकः सन दोषायेति । एषयः प्राक् निर्दिष्टो धर्मः श्रुतचारित्राख्यस्वभावोवा (बुसीमउत्ति) छांदसत्वान्निर्देशार्थस्त्वयं । वस्तूनि ज्ञानादीनि त द्वतोज्ञानादिमतइत्यर्थः । यदिवा । (बुसीमउत्ति) वश्यस्य आत्मवशगस्य वश्येंद्रियस्येत्यर्थः ॥ १९ ॥ अपिच (अइक्कमंतीत्यादि) प्राणिनामतिक्रमं पीडात्मकं महाव्रतातिक्रमंवा मनोऽवष्टब्धतया पर तिरस्कारंवा इत्येवंभूतमतिक्रमं वाचा मनसाऽपि न प्रार्थयेत् । एतद्वयनिषेधेच कायातिक्र मोदूरतएव निषिद्धोभवति । तदेवं मनोवाक्कायः कृतकारितानुमतिभिश्च नवकेन भेदेना तिक्रमं न कुर्यात् । तथा इंद्रियदमनेन तपसा वा दांतः सन् मोक्षस्यादानमुपादानं सम्य ग्दर्शनादिकं सुष्ठूद्युक्तः सम्यग्विस्रोतसिकारहितआहरेत् आददीत गृण्हीयादित्यर्थः॥ २०॥

कडंच कज्जमाणंच, आगमिस्संच पावगं ॥ सव्वं तं णाणुजाणंति,
आयगुत्ता जिइंदिया ॥२१॥ जे अबुद्धा महाभागा, वीरा अस
मत्त दंसिणो ॥ असुद्धं तेसि परक्कतं, सफलं होइ सव्वसो ॥२२॥

अर्थ–(कडंचकज्जमाणंच के०) साधुने उद्देशीने जे कोइ अनार्य पुरुषे कर्युं एवुं जे पाप तथा वर्त्तमान काले जे पाप करेछे (आगमिस्संचपावगंके०) तथा आगामिक काले जे पाप कर्म सावद्यानुष्ठान आरंभादिक साधुने अर्थे जे करशे (सव्वंतंणाणुजाणं ति के०) ते सर्वने मन वचन अने कायायें करी अनु मोदे नही ते कोण अनुमोदे नही तोके (आयगुत्ताजिइंदिया के०) जे महानुभाव आत्मगुप्त जितेंद्रिय होय ते एवा पाप कृत्यने अनुमोदे नही. ॥ २१ ॥ (जेअबुद्धामहाभागा के०) जे अबुद्ध तत्व मार्गना अजाण परंतु व्याकर्णादिक भणेला तेथी लोक मांहे पूज्य मोटा केवाय एवा (वीरा के०) वीर पुरुष पण (असमत्तदंसिणो के०) सम्यक्त्व परिज्ञान थकी विकल होय (असुद्धंतेसिपरक्कंतं के०) एवा पुरुषनुं जे कांइ दान तप नियमादिकने विषे प राक्रम एटले उद्यम ते अशुद्ध जाणवो (सफलंहोइसव्वसो के०) ते सर्व कर्मबंधना

कारणने विषे सफल थाय पण मूर्ख वैद्यनी चिकित्सानी पेरे कर्म निर्ज्जराना कारण ने विषे सफल न थाय ॥ २२ ॥

॥ दीपिका—साधूद्देशेन यदन्यैः कृतं पापकं कर्म तथा वर्तमाने काले क्रियमाणं तथा अगामिकाले यत्करिष्यते तत्सर्वं नानुजानंति नानुमोदंते आत्मगुप्ताजितेंद्रियाः साधवः ॥ २१ ॥ अबुद्धाअज्ञातपरमार्थाव्याकरणशुष्कतर्कादिज्ञानेन जातमदाअपि तत्वानवबोधादज्ञातपरमार्थाएव । यदुक्तं । शास्त्रावगाहपरिघट्टनतत्परोपि नैवाबुधः समभिगच्छति वस्तुतत्वं ॥ नानाप्रकाररसभावगतापि दर्वी स्वादं रसस्य सुचिरादपि नैव वेत्ति॥१॥ अबुधाअपि महाभागाः । भागशब्दः पूजावाची । कोर्थः । अपंडिताअपि त्यागादिगुणै र्लोकपूज्यावीराः सुभटवादं वहंतोप्यसम्यक्दर्शनामिथ्यादृष्टयइत्यर्थः । तेषां बालानां पराक्रांतमनुष्ठानमशुद्धं नशुद्धिहेतु प्रत्युत कर्मबंधाय तत्पराक्रांतं सहफलेन कर्मबंधेन वर्ततइति सफलं सर्वतः स्यात् ॥ २२ ॥

॥ टीका—तथा किंचाऽन्यत् । (कडंवेत्यादि) । साधूद्देशेन यदपरैरनार्यकल्पैः कृतमनुष्ठितं पापकं कर्म तथा वर्त्तमानेच काले क्रियमाणं तथाऽऽगामिनिच काले यत्करिष्यते तत्सर्वं मनोवाक्कायकर्मभिर्नानुजानंति नाऽनुमोदंति तदुपभोगपरिहरेणेति भावः । यद्यप्यात्मार्थं पापकं कर्म परैः कृतं क्रियते करिष्यते च । तद्यथा । शत्रोः शिरश्छिन्नं छिद्यते छेत्स्यतेवा तथा चौरोहतोहन्यते हनिष्यते वा इत्यादिकं परानुष्ठानं नाऽनुजानंति नच बहुमन्यंते । तथाहि । यदि परः कश्चिदशुद्धेनाहारेणोपनिमंत्रयेत्तमपि नानुमन्यंतइति । कएवंभूताभवंतीति दर्शयति । आत्माऽकुशलमनोवाक्कायनिरोधेन गुप्तोयेषां ते तथा जितानि वशीकृतानि इंद्रियाणि श्रोत्रादीनि यैस्ते तथा एवंभूताः पापकर्म नाऽनुजानंतीति स्थितं ॥ २१ ॥ अन्यच्च (जेयाबुद्धाइत्यादि) ये केचनाऽबुद्धाधर्मं प्रत्यविज्ञातपरमार्थाव्याकरणशुष्कतर्कादिपरिज्ञानेन जाताऽवलेपाः पंमितमानिनोऽपि परमार्थवस्तुतत्वाऽनवबोधादबुद्धाइत्युक्तं । नच व्याकरणपरिज्ञानमात्रेण सम्यक्त्वव्यतिरेकेण तत्वावबोधोभवतीति । तथा चोक्तं । शास्त्रावगाहपरिघट्टनतत्परोऽपि नैवाऽबुधः समभिगच्छति वस्तुतत्वं ॥ नानाप्रकाररसभावगताऽपि दर्वी, स्वादं रसस्य सुचिरादपि नैव वेत्ति ॥१॥ यदिवाऽबुद्धाइव बालवीर्यवंतस्तथा महांतश्चते भागाश्च महाभागाः । भागशब्दः पूजावचनः । ततश्च महापूज्याइत्यर्थः । लोकविश्रुताइति । तथा वीराः परानीकभेदिनः सुभटाइति । इदमुक्तं भवति पंमिताअपि त्यागादिभिर्गुणैर्लोकपूज्याः । अपिच । तथा सुभटवादं वहंतोऽपि सम्यक्तत्वपरिज्ञानविकलाः केचन भवंतीति दर्शयति । न सम्यगसम्यक् तद्भावोऽसम्यक्त्वं तद्दृष्टुं शीलं येषांते तथा मिथ्यादृष्टयइत्य

र्थः। तेषां च बालानां यत्किमपि तपोदानाध्ययनयमनियमादिषु पराक्रांतमुद्यमकृतस्तद शुद्धमविशुद्धकारि प्रत्युत कर्मबंधाय भावोपहतत्वात् सनिदानत्वाद्वेति कुवैद्यचिकित्सा वद्विपरीतानुबंधीति। तच्च तेषां पराक्रांतं सह फलेन कर्मबंधेन वर्त्ततइति सफलं सर्वश इति सर्वोऽपि तत्क्रिया तपोनुष्ठानादिका कर्मबंधायैवेति ॥ २२ ॥

जेय बुद्धा महाभागा, वीरा सम्मत्तदंसिणो॥सुद्धं तेसिं परक्कंतं,
अफलं होइ सवसो ॥ २३॥ तेसिंपि तवो असुद्धो, निस्कंता जे
महाकुला ॥ जन्ने वन्ने वियाणंति, नसिलोगं पवेज्जए ॥ २४ ॥

अर्थ-(जेयबुद्धामहाभागा के०) जे बुद्ध तत्व मार्गना जाण एवा तीर्थंकरादिक मोटा पूज्य पुरुष (वीरासम्मत्तदंसिणो के०) घनघाती कर्म विदारवाने सूरवीर सम्य क्त्व दृष्टि होय (सुद्धंतेसिंपरक्कंतं के०) तेमनो जेटलो नियमादिक क्रिया अनुष्ठा नने विषे उद्यमले ते सर्व शुद्ध निर्मल जाणवो (अफलंहोइसवसो के०) ते सर्व उ द्यम कर्मबंधना कारणने विषे अफल थाय किंतु सुवैद्यचिकित्सानीपेरे ते कर्म निर्ज्जरा नुंज कारण थाय ॥२३॥ तेसिंपितवोअसुद्धोके०) तेनुं तपजे अनशनादिक ते पण अशुद्ध जाणवुं ते कोनुं अशुद्ध जाणवुं तोके(निस्कंताजेमहाकुलाके०)जेमोटा इक्ष्वाकादिक कुल तेथकी नीकलीने चारित्रिया थया बता पण (जन्नेवन्नेवियाणंति के०) जे मुनीश्वर पू जा सत्कारने अर्थे तप करे तेनो तप पण निःफल माटे अशुद्ध जाणवो अने जे त प करतां अनेरा गृहस्थादिक जाणे नही (नसिलोगंपवेज्जए के०) जे तपमां पोतानी श्लाघा प्रसंसा नबोले ते तप आत्मनेहिते जाणवो ॥ २४ ॥

॥ दीपिका-ये बुद्धाज्ञाततत्वामहाभागामहापूजाभाजोवीराः सम्यक्दर्शनास्तज्ज्ञा स्तेषां यत्पराक्रांतमनुष्ठितं तत् शुद्धमफलं कर्मबंधरहितं भवति सर्वतः ॥२३ ॥ महत्कु लं येषांते महाकुलानिष्क्रांताः प्रव्रजितास्तेषामपि पूजासत्काराद्यर्थं यत्तपस्तदशुद्धं स्यात् यत्तपः क्रियमाणं नान्ये विजानंति तत्कार्यं नैवात्मश्लाघां प्रवेदयेत् प्रकाशयेत्॥ २४ ॥

॥ टीका-सांप्रतं पंडितवीर्येणाधिकृत्याह । (जेयबुद्धाइत्यादि) ये केचन स्वयंबुद्धास्ती र्थकराद्यास्तच्छिष्यावा बुद्धबोधितागणधरादयोमहाभागामहापूजाभाजोवीराः कर्मविदार णसहिष्णवोज्ञानादिभिर्वा गुणैर्विराजंतइतिवीराः। तथा सम्यक्त्वदर्शिनः परमार्थतत्व वेदिनस्तेषां भगवतां यत्पराक्रांतं तपोऽध्ययनयमनियमादावनुष्ठितं तच्छुद्धमवदातं निरु परोधं सातगौरवशल्यकषायादिदोषाकलंकितं कर्मप्रतिबंधमफलं भवति तन्निरनुबंधनि

र्जरार्थमेव भवतीत्यर्थः । तथाहि । सम्यक्दृष्टीनां सर्वमपि संयमतपःप्रधानमनुष्ठानं भवति संयमस्य चानाश्रयरूपत्वात् तपसश्च निर्जराफलत्वादिति । तथाच पठ्यते । (संयमेणएहयफलेतवेवोदाणफलेइति) ॥ २३ ॥ किंचाऽन्यत् (तोसिंपीत्यादि) महत्कुलमिक्ष्वाकादिकं येषांते महाकुलालोकविश्रुताः शौर्यादिभिर्गुणैर्विस्तीर्णयशसस्तेषामपि पूजासत्काराद्यर्थमुत्कीर्त्तनेन वा यत्तपस्तदशुद्धं भवति । यच्च क्रियमाणमपि तपो नैवाऽन्ये दानश्रद्धादयोजानंति तत्तथाभूतमात्मार्थिना विधेयं । अतोनैवात्मश्लाघां प्रवेदयेत् प्रकाशयेत् । तद्यथा । हेउत्तमकुलीन इभ्योवा सांप्रतं पुनस्तपोनिष्टप्तदेहइति । एवं स्वयमाविष्करणेन न स्वकीयमनुष्ठानं फल्गुतामापादयेदिति ॥ २४ ॥

अप्पपिंमासि पाणासि, अप्पं भासेज्ज सुव्वए ॥ खंते भिनिवुमे
दंते, वीतगिद्धी सदा जए ॥ २५ ॥ झाणजोगं समाहट्टु, कायं
विउसेज्ज सव्वसो ॥ तितिक्खं परमं णच्चा आमोक्खाए परिव्वएज्जा
सित्ति बेमि ॥ २६ ॥ इतिश्रीवीरिइनामम्मयणं सम्मत्तं ॥

अर्थ-(अप्पपिंमासिपाणासिके०) अल्पाहारनो जमनार तथा अल्प पाणीनो वापरनार (अप्पंभासेज्जसुव्वए के०) तथा सुव्रति साधु अल्प भाषणनुं करनार परने हितरूप वचननु बोलनार (खंतेभिनिवुमेदंतेके०) क्षमावंत क्रोधादिकना उपशम थकी कषायने अभावे सीतल परिणामि तथा इंद्रिउनो दमनार (वीतगिद्धीके०) लोल्यता रहित (सदाजएके०) एरीते साधु जे छे ते सर्व काल संयमने विषे यत्न करे ॥ २५ ॥ (झाणजोगंसमाहट्टुके०) शुभध्यान एटले धर्मध्यानदिकना योग तेने सम्यक् आदरीने (कायंविउसेज्जसव्वसोके०) कायाना अकुशल योगनी प्रवर्त्तिनो त्याग करे सर्वथा प्रकारे हस्त पादादिके करी पण परने पीडा नकरे (तितिक्खंपरमंणच्चा के०) तितिक्षा एटले परीसह अने उपसर्गनुं जे सहन करवुं तेने परम प्रधान कर्म निर्जरानुं कारण जाणीने (आमोक्खाएपरिव्वएज्जासिके०) ज्यांसुधी मोक्ष नपामे त्यांसुधी दीक्षा पाले तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ २६ ॥ इतिश्रीवीर्यनामा आठमा अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो.

॥ दीपिका-अल्पं पिंडमश्नातीति अल्पपिंडाशी एवं पानेपि योज्यं । यदागमः । अद्धनुकुच्छिअंअप्पमाणे कवले आहारेमाणे अप्पाहारे डुवालसकवलेहिं अवट्टमो अरिआ सोलसहिं १ डुभागयते २ चउवीसेहिं पउणोमो अरिअरि आतीसेहिंपमाणवत्तो बीत्तीसहिं पुणेहारेत्ति । अतएवैकैकवलहान्या ऊनोदरता कार्या । एवं पाने उपकरणे च ऊनोदरतां कुर्यात् । यडुक्तं । योवीहारोघावभणि उवजोहोइघोवनिद्दो । अघोवोवहि उ

वगरणो तस्सहुदेवा विपणमंतीति । अल्पं जाषते यः सुव्रतः क्रोधाद्युपशमात् क्षांतोऽ निनिर्वृतोलोजालोन्नजयादनातुरोदांतोजितेंद्रियस्तथा वीतगृद्धिर्निरीहः सदा यतेत सं यमे ॥ कषाया यस्य नोच्छिन्ना यस्य नात्मवशं मनः ॥ इंद्रियाणि नगुप्तानि प्रव्रज्या तस्य जी विकेति ॥२५॥ ध्यानं धर्मध्यानादि तत्र योगोमनोवाक्कायव्यापारस्तं समाहृत्य सम्यगा हृत्य कायं देहं सर्वतोव्युत्सृजेत् त्यजेत् तथा तितिक्षां क्षांतिपरीषहादिसहनरूपां प रमां प्रधानां ज्ञात्वा आमोक्षाय सर्वकर्मक्षयाय परिव्रजेत् संयमक्रियां कुर्यादिति । ब्रवीमी ति पूर्ववत् ॥२६॥ इतिश्रीसूत्रकृतांगदीपिकायां वीर्याख्यमष्टमाध्ययनं समाप्तं ॥ ८ ॥

॥ टीका–अपिच अप्पपिंमाइत्यादि । अल्पं स्तोकं पिंमशितुं शीलमस्याऽसावल्प पिंमाशी यत्किंचनाशीति जावः । तथाचाऽऽगमः । हेजंतवञ्ासीयजन्नतन्नवसुहोवग यनिद्दा॥ जेणवतेणसंतुठ, वीरमुणिञ सितेअप्पा ॥ १ ॥ तथा (अठ्ठकुक्मिअंमगमत्त प्पमाणेकवलेआहरे माणे अप्पाहारे डुवालसकवलेहिं ॥ २ ॥ अवड्डोमोयरिया । सोलसेहिंडुनागपत्ते ॥ चउवीसंउमोदरियांसंपमाणपत्ते वत्तीसंकवलासंपुसुहारे ॥ ३ ॥ अतएकैककवलाद्दान्यादिनोदरता विधेया । एवं पाने उपकरणेवोचोनोदरतां विदध्या दिति । तथाचोक्तं । थोवाहारोथोवनणिउंअजोहोइ थोवनिद्दोअ ॥ थोवोवहिउपकर णेतस्सहुदेवाविपणमंति ॥ तथा सुव्रतः साधुरल्पं परिमितं हितं च जाषेत सर्वदा विकथा रहितोजवेदित्यर्थः। जावातऔदर्यमधिकृत्याह । जावतः क्रोधाद्युपशमात् क्षांतः क्षांतिप्र धानस्तथाऽनिनिर्वृतोलोजादिजयान्निरातुरस्तथा इंद्रियनोइंद्रियदमनाद्दांतोजितेंद्रियः । तथाचोक्तं । कषायायस्य नोछिन्ना, यस्य नात्मवशंमनः । इंद्रियाणि न गुप्तानि, प्रव्रज्या तस्य जीवनं ॥१॥ एवं विगता गृद्धिर्विषयेषु यस्य सविगतगृद्धिराशंसादोषरहितः सदा सर्वकालं संयमानुष्ठाने यतेत यत्नं कुर्यादिति ॥ २५ ॥ अपिच (फाणजोगमित्यादि । ध्यानं चित्तरोधलक्षणं धर्मध्यानादिकं तत्र योगोविशिष्टमनोवाक्कायव्यापारस्तं ध्यानयोगं समाहृत्य सम्यगुपादाय कायं देहमकुशलयोगप्रवृत्तं व्युत्सृजेत् परित्यजेत् । सर्वतः सर्वेणाऽपि प्रकारेण हस्तपादादिकमपिपरपीडाकारि न व्यापारयेत्। तथा तितिक्षां क्षांति परीषहोपसर्गसहनरूपां परमां प्रधानां ज्ञात्वा आमोक्षायाऽशेषकर्मक्षयं यावत्परिव्रजेदि ति संयमानुष्ठानं कुर्यास्त्वमिति । इति परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २६ ॥ स माप्तं चाऽष्टमं वीर्याख्यमध्ययनमिति ॥

हवे नवमुं अध्ययन प्रारंजियेछैयें. आगमां अध्ययनमां बालनुं अने पंमितनुं वीर्य कह्युं तेमां पण पंमितना वीर्यनुं जे धर्म ते धर्मने विषे साधु उद्यम करे तेमाटे आ नवमां अध्ययनमां ते धर्मनुं स्वरूप कहेछे.

कयरे धम्मे अरकाए, माहणेण मतीमता ॥ अंजुधम्मं जहात
चं, जिणाणं तं सुणेहमे ॥ (पाठांतरे । जणगातं सुणेहमे ॥
॥ १ ॥ माहणा खत्तिया वेस्सा, चंमाला अडु वोक्कसा ॥ एसिया
वेसिया सुद्दा, जेय आरंनणिस्सिया॥ २ ॥

अर्थ—श्रीसुधर्मस्वामि प्रत्यें श्रीजंबूस्वामि बे हाथ जोडीने पुछेछे, के (माहणेणम तीमता के०) माहण मतिमंत एटले केवली नगवंत एवा श्रीमहावीर देव तेणे (क यरेंधम्मेअरकाए के०) सम्यक् प्रकारे करीने केवा प्रकारनो धर्म कह्योछे एम श्रीजंबुस्वा मियें पुछ्या थका, श्री सुधर्म स्वामि बोल्या, (अंजुधम्मं के०) श्रीवीतराग प्रणीत धर्म ते रुजु एटले सरल शुद्ध (जहातच्चं के०) साचो यथावस्थित (जिणाणंतंसुणेहमे के०) एवो धर्म श्रीतीर्थंकरनुं कहेलो तेहुं कहुंछुं ते तमे सांनलो पाठांतरं (जणगातं सुणेहमेके०) एवो धर्म ते अहो जन, एटले लोको हुं कहुंछुं, ते प्रत्ये तमे सांनलो ॥ १ ॥ (माहणाखत्तियावेस्सा के०) ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य अने (चंमाला के०) चांमाल निषाद (अडुके०) अथवा (वोक्कसा के०) वोक्कसते अवांतरजाति तेमां जे ब्राह्मण अने शुद्रथकी उत्पन्न थयो ते, निषाद एटले चांमाल अने ब्राह्मण तथा वै श्यनी स्त्रीथी थयो ते अंबष्ठ, चंमालणी अने ब्राह्मण थकी थयो ते वोक्कस अंहीं माता पितानो पक्ष जूदो जाणवो (एसिया के०) मृगलुब्धकः हस्तितापसादिक (वे सिया के०) वणिकादिक व्यापारमां अजीविका करनार (सुद्दा के०) शूद्र करसणी प्रमुख (जेयआरंनणिस्सिआ के०) इत्यादिक जे छे ते आरंनना करनार छे, तेमज बीजा पण पाखंमी प्रमुख आरंनना करनार अनेकछे. ॥ २ ॥

॥ दीपिका—अथ नवमाध्ययनं । पूर्वाध्ययने बालपंडितवीर्यमुक्तं पंडितवीर्यंच तदेव य द्धर्मं प्रति उद्यमं कुरुते अतोत्र धर्मः प्रोच्यते । तस्येदमादिसूत्रं । (कतरेत्ति) जंबूनामा सु धर्माणमुद्दिश्याह । कतरोधर्मआख्यातोमाहनेन श्रीवीरेण मतिमता ज्ञानवता । सुध र्मा आह । रुजुमवक्रं यथातथ्यं सत्यं जिनानां तं धर्मं मम कथयतः शृणुत यूयं ॥ १ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रियावैश्याश्चांडालाअथ वोक्कसाअवांतरजातीयाः । तद्यथा । ब्राह्मणेन शूद्र्यां जातोनिषादः । ब्राह्मणेनैव वैश्यायां जातोऽबष्ठः । तथा निषादेनांबष्ठ्यां जातो वोक्कसः। एषिकामृगलब्धकाहस्तितापसाश्च ये मांसहेतोर्मृगान् हस्तिनश्च एषंति वैश्यावणि जोमायाप्रधानाः कलाजीविनः शूद्राः कृषीवलादयः येचान्ये नानाविधारंननिश्रिताः॥ २॥

॥ टीका—अष्टमानंतरं नवमः समारन्यते ॥ अस्य चायमनिसंबंधः । इहानंतराध्यय

ने बालपंडितजेदेन द्विरूपं वीर्यं प्रतिपादितं । अत्राऽपि तदेव पंडितवीर्यं धर्मं प्रति यद्उद्यमं विधत्ते अतोधर्मः प्रतिपाद्यतइत्यनेन संबंधेन धर्माध्ययनमायातं । अस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराणि उपक्रमादीनि प्राग्वत् व्यावर्णनीयानि । तत्राऽप्युपक्रमांतर्गतोऽर्थाधिकारोऽयं । तद्यथा । धर्मोऽत्र प्रतिपाद्यतइति तमधिकृत्य निर्युक्तिकृदाह । (धम्मोपुव्वुद्दिठो जावधम्मेण एव्व अहिगारो । एसेच होइ धम्मं, एसेवसमाहिमग्गोत्ति १ । (धम्मोपुव्वुद्दिठोइत्यादि) । दुर्गतिगमनधरणलक्षणोधर्मः प्राक् दशवैकालिकश्रुतस्कंधषष्ठाऽध्ययने धर्मार्थकामाख्ये उद्दिष्टः प्रतिपादितः । इहतु जावेन धर्मेणाधिकारः । एषएवच जावधर्मः परमार्थतोधर्मोजवति । अमुमेवार्थमुत्तरयोरप्यध्ययनयोरतिदिशन्नाह । एषएवच जावसमाधिर्जावमार्गश्च जवतीत्यवगंतव्यमिति । यदि वैषएवच जावधर्मएषएवच जावसमाधिरेषएवच तथा जावमार्गोजवति नतेषां परमार्थतः कश्चिद्भेदः । तथाहि । धर्मः श्रुतचारित्राख्यः क्षांत्यादिलक्षणोवा दशप्रकारोजवेत् जावसमाधिरप्येवंप्रकारएव । तथाहि । सम्यगाधानमारोपणं गुणानां क्षांत्यादीनामिति समाधिः । तदेव मुक्तिमार्गोऽपि ज्ञानदर्शनचारित्राख्योजावधर्मतया व्याख्यातयितव्यइति ॥ सांप्रतमतिदिष्टस्यापि स्थानाशून्यार्थं धर्मस्य नामादिनिक्षेपं दर्शयितुमाह ।(णामंठवणाधम्मो,दव्वधम्मोय जावधम्मोय । सचित्ताचित्तमीसग,गिहत्थदाणेदवियधम्मे।१।) (नामंठवणेत्यादि) नामस्थापनाद्रव्यजावजेदाच्चतुर्धा धर्मस्य निक्षेपः।तत्राऽपि नामस्थापनेऽनादृत्य ज्ञशरीरजव्यशरीरव्यतिरिक्तोधर्मः सचित्ताचित्तमिश्रजेदात् त्रिधा । तत्राऽपि सचित्तस्य जीवच्छरीरस्योपयोगलक्षणोधर्मः स्वजावः । एवमचित्तानामपि धर्मास्तिकायानां योयस्य स्वजावः सतस्य धर्मइति । तथाहि । (गइलरकणउधम्मो, ठाणलरकणोअहम्मोय । जायणं सव्वदव्वाणं, नहअवगाहलरकणं । १ । पुग्गलास्तिकायोऽपिग्रहणलक्षणइति । मिश्रद्रव्याणां च क्षीरोदकादीनां योयस्य स्वजावः सतद्धर्मतयाऽवगंतव्यइति । गृहस्थानांच यः कुलनगरग्रामादिधर्मोगृहस्थेज्योगृहस्थानां वा योदानधर्मः सद्रव्यधर्मोऽवगंतव्यइति । तथाचोक्तं । अन्नं पानं च वस्त्रंच, आलयः शयनासनं । शुश्रूषा वंदनं तुष्टिः पुण्यं नवविधं स्मृतं । १ । जावधर्मस्वरूपनिरूपणायाह । (लोइयलोउत्तरिउ, डुविहोपुणहोतिजावधम्मोउ । डुविहोवि डुविहतिविहो, पंचविहो होतिणायव्वो । २ । (लोइयइत्यादि) । जावधर्मोनोआगमतो द्विविधः । तद्यथा । लौकिकोलोकोत्तरश्च । तत्र लौकिकोद्विविधः । गृहस्थानां पाखंडिकानां च लोकोत्तरस्त्रिविधः । ज्ञानदर्शनचारित्रजेदात् । तत्राऽप्याजिनिबोधकं ज्ञानं पंचधा । दर्शनमप्यौपशमिक,सास्वादन,क्षायोपशमिक,वेदक,क्षायिक जेदात् पंचविधं ।चारित्रमपि सामायिकादिजेदात् पंचविधं । गाथाक्षराणि त्वेवं नेयानि । तद्यथा । जावधर्मोलौकिकलोकोत्तरजेदाद्द्विधा । द्विविधोऽपि चायं यथासंख्येन द्विविधस्त्रिविधः। तत्रैव लौकिकोगृहस्थपाखंडिकजेदात् द्वि

विधः। लोकोत्तरोऽपि ज्ञानदर्शनचारित्रभेदात् त्रिविधः। ज्ञानादीनि प्रत्येकं त्रीण्यपि पंचधेवेति। तत्र ज्ञानदर्शनचारित्रवतां साधूनां योधर्मस्तं दर्शयितुमाह। (पासब्भोसन्न कुसीलं, संघवोणकिरचहृतीकाउ। सूयगडेअज्झयणे, धम्मंमि निकाइतंएयं ॥४॥) पासब्भोसन्नेत्यादि)। साधुगुणानां पार्श्वे तिष्ठंतीति पार्श्वस्थाः। तथा संयमानुष्ठानेऽवसीदंतीत्यवसन्नाः।तथा कुत्सितं शीलं येषांते कुशीलाएतैः पार्श्वस्थादिभिः सह संस्तवः परिचयः सहसंवासरूपोन किल यतीनां वर्त्तते कर्त्तुमतः सूत्रकृतेंऽगेधर्माख्येऽध्ययने एतस्मिन्निकाचितं नियमितमिति ॥ गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपोऽधुना सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं। तच्चेदं। (कयरेइत्यादि)॥ जंबूस्वामी सुधर्मस्वामिनमुद्दिश्येदमाह। तद्यथा। कतरः किंभूतोडुर्गतिगमनलक्षणोधर्मआख्यातः प्रतिपादितो (माहणेणंति) मा जंतून् व्यापादयेत्येवं विनेयेषु वाक्प्रवृत्तिर्यस्याऽसौ माहनोभगवान् वीरवर्धमानस्वामी तेन। तमेव विशिनष्टि। मनुतेऽवगच्छति जगत्त्रयं कालत्रयोपेतं यया सा केवलज्ञानाख्या मतिः सा अस्याऽस्तीति मतिमान् तेनोत्पन्नकेवलज्ञानेन भगवतेति पृष्टे सुधर्मस्वाम्याह रागद्वेषजितोजिनास्तेषां संबंधिनं धर्मं (अंजुमिति) ऋजुं मायाप्रपंचरहितत्वादवक्रं। तथा (जहातच्चमिति) यथावस्थितं मम कथयतः शृणुत यूयं। ननु यथाऽन्यैस्तीर्थिकैर्दंभप्रधानोधर्मोभिहितस्तथा भगवताऽपीति (पाठांतरंवा) जणगा तं सुणेहमे) जायंतइति जनालोकास्तएव जनकास्तेषामामंत्रणं हेजनकाः तंधर्मं शृणुत यूयमिति ॥ १ ॥ अन्वयव्यतिरेकाभ्यामुक्तोऽर्थः सूक्तोभवतीत्यतोयथोद्दिष्टप्रतिपक्षभूतोऽधर्मस्तदाश्रितांस्तावद्दर्शयितुमाह। (माहणेत्यादि)। ब्राह्मणाः क्षत्रियावैश्यास्तथा चांडालाः अथ वोक्कसाअवांतरजातीयाः। तद्यथा। ब्राह्मणेन शूद्र्यांजातोनिषादोब्राह्मणेनैव वैश्यायां जातोंऽबष्ठस्तथा निषादेनांबष्ठ्यां जातोवोक्कसः। तथा एषितुं शीलमित्येषिकामृगलुब्धकाहस्तितापसाश्च मांसहेतोर्मृगान् हस्तिनश्च एष्यंति तथा कंदमूलफलादिकं च। तथा ये चाऽन्ये पाखंडकानानाविधैरुपायैर्भैक्ष्यमेष्यंत्यन्यानिवा विषयसाधनानि ते सर्वेऽप्येषिकाइत्युच्यंते। तथा वैशिकावणिजोमायाप्रधानाकलोपजीविनः। तथा शूद्राः कृषीवलादयः। आभीरजातीयाः कियंतोवा वक्ष्यंतइति दर्शयति। ये चाऽन्येव र्णापसदानानारूपसावद्यारंभनिश्रितायंत्रपीडननिर्लांछनकर्मांगारदाहादिभिः क्रियाविशेषैर्जीवोपमर्दकारिणस्तेषां सर्वेषामेव जीवापकारिणां वैरमेव प्रवर्धतइत्युत्तरश्लोकेक्रियेति॥ २

परिग्गहनिविठाणं, वेरं तेसिं पवड्ढई॥ (पाठांतरे पावं तेसिं पवड्ढई)
आरंभसंभिया कामा, नते डुक्खविमोयगा॥ ३॥ आघाय किच्चमाहेउं,
नाइउ विसएसिणो॥ अन्ने हरंति तं वित्तं, कम्मी कम्मेहिं किच्चती॥४॥

अर्थ—(परिग्गहे के०) परिग्रह द्विपद, चतुष्पद, धन, धान्य हिरण्य, सुवर्णादिकने विषे ममत्व तेमां (निविठाणंके०) गृध बता (वेरंतेसिंपवड्ढईके०) एवा पुरुष आरंजना करनार तेने निःकेवल वैरनी वृद्धि थायडे. अथवा पागंतरे . (पावंतेसिंपवड्ढई के०) तेवा आरंजना करनार पुरुषोने जमदग्नि कृतवीर्यनी पेरे पापनी वृद्धि थायडे ज्यां जेरी ते प्राणीउंनी हिंसा करे त्यां तेरीते संसार मांहे डुःखना विजागी थाय. (आरंजसंनियाकामा के०) तथा कामजोगजे डे; ते आरंज संवृतडे आरंजे करी पुष्टडे अनेक पापना कारणे करी जखाडे, (नतेडुःखविमोयगा के०) ते कारण माटे ते डुःख थकी बूटे नही ॥ ३ ॥ जेथकी प्राणीना प्राणने हणियें तेने (आघाय के०) मरण कहिए. ते मरणने अर्थे जे (किच्चमाहेउंके०) कृत्य करवुं एटले मरणनुं जे कार्य करवुं अर्थात् अग्निसंस्कार जलांजली, प्रदान, पितृ पिंम, प्रमुख एटलावाना करीने पठी (नाइउविसएसिणो के०) ज्ञाति, गोत्री, स्वजन, पुत्र, कलत्रादिक एसर्वे विषयाजिलाषी बता होय तेमनुं उपार्जन करेलुं जे वित्त एटले धन (तंवित्तंके०) तेधन (अन्नेहरंतिके०) अन्य जे पूर्वोक्त अग्नि संस्कार प्रमुखना करनारा पुरुषो ते लिये, एटले अंगीकार करे. अने ते धननो उपार्जनार (कम्मीकम्मेहिंकिच्चती के०) अनेक कुकर्म करी डुर्गतीयें पोहोतो बतो ते कर्मे करी संसारमां किच्चती एटले पीडाय डेदाय. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—परिग्रहनिविष्टानां ममतासक्तानां तेषां पूर्वोक्तानां वैरं वर्धते । जमदग्निकृतवीर्यादीनामिव रिपवस्ते आरंजसंभृताआरंजपुष्टाः कामेषु प्रवृत्तास्ते एवंविधाडुःखविमोचकान स्युः ॥ ३ ॥ आघातोमरणं तस्य कृत्यमग्निसंस्कारजलांजलिदानपितृपिंमादिकं तदाधातुमाधाय कृत्वा पश्चाज्ज्ञातयः स्वजनाअन्येऽपि विषयैषिणः संतस्तस्य तद्वित्तं धनं हरंति गृण्हंति । यडुक्तं । ततस्तेनार्जितैर्द्रव्यैर्दारैश्च परिरक्षितैः ॥ क्रीडंत्यन्ये नराराजन् हृष्टतुष्टाअलंकृताइति । सतु ड्रव्योपार्जकः कर्मवान् कृतैः कर्मजिः संसारे कृत्यते पीड्यते ॥ ४ ॥

॥टीका—किंच (परिग्गहेइत्यादि) परिसमंतात् गृह्यतइति परिग्रहोद्विपदचतुष्पदधनधान्यहिरण्यसुवर्णादिषु ममीकारस्तत्र निविष्टानामध्युपपन्नानां गार्द्ध्यं गतानां पापमसातवेदनीयादिकं तेषां प्रागुक्तानामारंजनिश्रितानां परिग्रहे निविष्टानां प्रकर्षेण वर्द्धते वृद्धिमुपयाति जन्मांतरेष्वपि डुर्मोचं जवति । क्वचित्पाठः (वेरंतेसिंपवड्ढइत्ति)। तत्र येन यस्य यथा प्राणिनउपमर्दः क्रियते सतथैव संसारांतर्वर्ती शतशोडुःखजाक् जवति । जमदग्निकृतवीर्यादीनामिव पुत्रपौत्रानुगं वैरं प्रवर्द्धतइति जावः । किमित्येवं । यतस्ते

कामेषु प्रवृत्ताः कामाश्चारंनैः सम्यग् नृताआरंनपुष्टाआरंनाश्च जीवोपमर्दकारिणोऽतोन ते कामसंनृताआरंननिश्रिताः परगृहे निविष्टाः डुःखयतीति डुःखमष्टप्रकारं कर्म तहिमो चकानवंति तस्याऽपनेतारोनवंतीत्यर्थः ॥ ३ ॥ किंचाऽन्यत् (आघायमित्यादि) आहन्यंते अपनयंति विनाश्यंते प्राणिनां दश प्रकाराअपि प्राणायस्मिन् सआघा तोमरणं तस्मै तत्र वा कृतमग्निसंस्कारजलांजलिप्रदानपितृपिंमादिकमाघातं कृत्यं तदा धातुमादाय कृत्वा पश्चात् ज्ञातयः स्वजनाः पुत्रकलत्रनातृव्यादयः। किंनूताः। विषयान न्वेष्टुं शीलं येषां तेऽन्येऽपि विषयैषिणः संतस्तस्य डुःखार्जितं वित्तं डव्यजातमपहरंति स्वीकुर्वंति। तथाचोक्तं। ततस्तेनार्जितैर्डव्य,दारैश्च परिरक्षितैः॥ क्रीडंत्यन्ये नराराजन्, हृष्टास्तुष्टाह्यलंकृताः ॥ १ ॥ सतु डव्यार्जनपरायणः सावद्यानुष्ठानवान् कर्मवान् पापी स्वीकृतैः कर्मनिः संसारे कृत्यते छिद्यते पीड्यतइति यावत् ॥ ४ ॥

माया पिया एहुसा नाया, नज्जा पुत्ताय जरसा ॥ नालं ते तव ताणा
य, लुप्पंतस्स सकम्मुणा ॥ ५ ॥ एयमठं सपेहाए, परमठाणु
गामियं ॥ निम्ममो निरहंकारो, चरे निक्कू जिणाहियं ॥ ६ ॥

अर्थ-(मायापियाएहुसानाया के०) माता पिता स्नुषा एटले ठोकरानी स्त्री तथा नाइ (नज्जापुत्तायउरसा के०) नार्या, पुत्र अंगजातिक एटला सर्व (लुप्पंत स्ससकम्मुणा के०) ए जीवने कर्म विपाक नोगवता थकां (नालंतेतवताणाय के०) तेवखते त्राणनणी नथाय एटले डुःख टालवाने असमर्थ थाय ॥ ५ ॥ धर्मरहित जी वंने राखवा कोइ समर्थ नथी (एयमठंसपेहाए के०) ए अर्थ आलोची एटले सम्य क् प्रकारे विमासीने (परमठाणुगामियं के०) परमार्थजे मोक्ष तेनो अनुगामि एटले मोक्षनो साधक (निम्ममोनिरहंकारो के०) निर्ममत्व तथा निरहंकारी एवोथतो (चरे निक्कूजिणाहियं के०) ते साधु जिननाषित जे संयम मार्गछे तेने आचरे ॥ ६ ॥

॥ दीपिका-माता पिता स्नुषापुत्रवधूः न्राता नार्या पुत्राश्च औरसाःस्वांगजाएते स र्वे तव त्राणाय रक्षणाय नालं नसमर्थाः। तव किंनूतस्य। स्वकर्मणा लुप्यमानस्य पीड्य मानस्य। दृष्टांतोत्र कालसौकरिकसुतः सुलसोऽनयकुमारस्य मित्रं तेन महात्मना स्वजना न्यर्थितेनापि न प्राणिहिंसा कृता ॥ ५ ॥ एतं पूर्वोक्तमर्थं प्रेक्ष्य विचार्य परमार्थोमोक्ष स्तमनुगछतीति परमार्थानुगामुकस्तं सम्यक्दर्शनादिकं विचार्य निर्ममोनिरहंकारोनि क्षुर्जिनाहितं जिनोक्तं मार्गं चरेत् ॥ ६ ॥

॥ टीका-स्वजनाश्च तद्दव्योपजीविनस्तत्राणाय ननवंतीति दर्शयितुमाह। (माया

पियाइत्यादि) माताजननी पिताजनकः स्नुषापुत्रवधूः भ्रातासहोदरः । तथा भार्या कलत्रं पुत्राश्चौरसाः स्वनिष्पादिताएते सर्वेऽपि मात्रादयोये चान्ये श्वशुरादयस्ते तव संसारचक्रवाले स्वकर्मभिर्विलुप्यमानस्य त्राणाय नाऽलं समर्थान्नवंतीति । इहाऽपि ताव न्नैते त्राणाय किमुताऽमुत्रेति । दृष्टांतश्चाऽत्र कालसौकरिकसुतः सुलसनामा अभयकुमा रस्य सखा । तेन महासत्वेन स्वजनाऽभ्यर्थितेनाऽपि नप्राणिष्वपकृतमपि त्वात्मन्येवेति ॥ ५ ॥ किंचान्यत् (एयमठमित्यादि) धर्मरहितानां स्वकृतकर्मविलुप्यमानानामैहि कामुष्मिकयोर्नकश्चित्त्राणायेति एनं पूर्वोक्तमर्थं सप्रेक्षापूर्वकारी प्रत्युपेक्ष्य विचार्याऽवगम्य च परमः प्रधानभूतोमोक्षः संयमोवा तमनुगच्छतीति तच्छीलश्च परमार्थानुगामुकः सम्य क्दर्शनादिस्तंच प्रत्युपेक्ष्य।क्त्वाप्रत्ययांतस्य पूर्वकालवाचितया क्रियांतरसव्यपेक्षत्वात्।त दाह । निर्गतं ममत्वं बाह्याभ्यंतरेषु वस्तुषु यस्मादसौ निर्ममः । तथा निर्गतोऽहंकारोऽ भिमानः पूर्वैश्वर्यजात्यादिमदजनितस्तथा तपःस्वाध्यायलाभादिजनितोवा यस्मा दसौ निरहंकारोरागद्वेषरहितइत्यर्थः । सएवंभूतोभिक्षुर्जिनैराहितः प्रतिपादितोऽनु ष्ठितोवा योमार्गोजिनानां वा संबंधी योऽभिहितोमार्गस्तं चरेदनुतिष्ठेदिति ॥ ६ ॥

चिच्चा वित्तंच पुत्तेय.णाइउ य परिग्गहं ॥ चिच्चाण अंतगं सोयं
(चिच्चाणणंतगंसोयं,) इति पाठांतरं । निरवेक्खो परिव्वए ॥ ७ ॥
पुढवी आउगणि वाऊ, तणरुक्ख सबीयगा ॥ अंमया पोय जरा
ऊरस संसेय उब्भिया ॥ ८ ॥

अर्थ—(वित्तंचपुत्तेय के०) वित्तते धन अने पुत्रादिक तेने (चिच्चा के०) त्यक्त्वा एटले ग्रांमीने वली (णाइउयके०) ज्ञाति, स्वजन, स्त्री, ससुर, वेवाही प्रमुख तथा (परि ग्गहं के०) परिग्रह तेना उपर ममत्व भाव ते सर्वने (चिच्चाके०) त्यक्त्वा एटले गं मीने णवाक्यालंकारेछे तथा (तंसोयं के०) तथा भूतशोक तेने त्यागीने अथवा पाठांत रनुं अर्थ कहेछे. मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषायरूप बंधना कारण, अने (णणंतगं के०) जेनो कोइरीते अंत एटले पार न आवे एवो सोयं के० शोक तेनो त्याग करीने (निरवेक्खो के०) निरपेक्ष एटले विषयादिकने अण वांगतो थको (परिव्वए के०) सं यम पाले तेने साधु जाणवो ॥ ७ ॥ (पुढविआउगणिवाऊ के०) पृथवीकाय, अ प्काय, तेऊकाय अने वायुकाय तथा (तणरुक्खसबीयगा के०) तृण वृक्ष बीज शा लि प्रमुख ए पांचमी वनस्पतिकायनी जाति ए सर्व स्थावर जीवो जाणवाः अने (अं मया के०) इंमा थकी उपजे जे वायुलि प्रमुख (पोतजके०) हस्तियादिक तथा (ज

रायुज के०) मनुष्यादिक (रसज के०) कीटादिक (संस्वेदजके०) जुं प्रमुख (उद्भि ज्ज के०) तीडादिक ए सर्व त्रसकाय जीवोजाणवा. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–वित्तं धनं पुत्रांश्च ज्ञातीन् स्वजनान् त्यक्त्वा परिग्रहं चांतरंममत्वं । ए कारोवाक्यालंकारे अंतं गच्छतीत्यंतगोडुष्परित्यजइत्यर्थः । तं तथानूतं शोकरूपं त्य क्त्वा निरपेक्षः पुत्राद्यपेक्षारहितः परिव्रजेत् संयमे चरेत् । यडुक्तं । ठलियाअवइक्कंता, निरावइक्कागयाअविग्घेणं ॥ तम्हापवयणसारे, निरावइक्केणहोअव्वंइति ॥ ७ ॥ पृथि वी आपः अग्नयः वायवः तृणानिकुशादीनि वृक्षाअशोकाम्रादयः सबीजानि शालिगो धूमादीनि तद्युक्ताएते त्रयोपि वनस्पतयः एते पंचाप्येकेंडियाः । अंमजाः पक्षिगृहकोकि लाद्याः पोतजाहस्त्यादयः जरायुजागोमनुष्यादयः रसाद्दधिसौवीरादेर्जातारसजाः सं स्वेदजायूकामत्कुणादयः उद्भिज्जाःखंजरीटदर्डुराद्याः एते त्रसाः ॥ ८ ॥

॥ टीका–अपिच (चिच्चाइत्यादि) संसारस्वनावपरिज्ञानपरिकर्मितमतिर्विदितवेद्यः सम्यक् त्यक्त्वा परित्यज्य किंतद्वित्तं ड्रव्यजातं तथा पुत्रांश्च त्यक्त्वा पुत्रेष्वधिकस्नेहोन वतीति पुत्रग्रहणं । तथा ज्ञातीन् स्वजनांश्च त्यक्त्वा तथा परिग्रहं चांतरं ममरूपत्वं । एकारोवाक्यालंकारे । अंतं गच्छतीत्यंतगोडुष्परित्यजइत्यर्थः । अंतकोविनाशकारीत्यर्थः । आत्मनि वा गच्छतीत्यात्मगआंतरइत्यर्थः । तं तथानूतं शोकं त्यक्त्वा परित्यज्य श्रोतोवामिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषायात्मकं कर्माश्रवद्वारनूतं परित्यज्य पाठांतरंवा । (चिच्चाणणंतगंसोयं) अंतं गच्छतीत्यंतगं नअंतगमनंतगं । श्रोतःशोकं परित्य ज्य निरपेक्षः पुत्रदारधनधान्यहिरण्यादिकमनपेक्ष्यमाणः सन् मोक्षाय परिसमंता त् संयमानुष्ठाने व्रजेत् परिव्रजेदिति । तथा चोक्तं । (ठलियाअवयक्कंता, निरावय क्कागयाअविग्घेणं ॥ तम्हापवयणसारे, निरावयक्केणहोयव्वं॥ १ ॥ नोगेअवयक्कंता, प डंति संसारसागरे घोरे । नोगेहिनिरवपक्का, तरंति संसारकंतारमिति ॥२॥ सएवं प्रव्रजि तः सुव्रतावस्थितात्माऽहिंसादिषु व्रतेषु प्रयतेत ॥ ७ ॥ तत्राऽहिंसाप्रसित्ध्यर्थमा ह । (पुढवीआउइत्यादिश्लोकद्वयं) तत्र पृथिवीकायिकाः सूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तक नेदनिन्नाः । तथाऽप्कायिकाअग्निकायिकावायुकायिकाश्चैवंनूताएव । वनस्पतिकायि कान् लेशतः सन्नेदानाह । तृणानि कुशवच्चकादीनि वृक्षाश्चूताशोकादिकाः । सह बीजैर्व र्ततइति सबीजानि तु शालिगोधूमयवादीनि एते एकेंडियाः पंचापिकायाः। षष्ठत्रसकायनि रूपणायाह । अंडजाः शकुनिगृहकोकिलकसरीसृपादयः । तथा पोताएव पोतजाहस्तिश रन्नादयः । तथा जरायुजाये जंबालवेष्टिताः समुत्पद्यंते गोमनुष्यादयः । तथा रसात् दधि

सौवीरकादजीतारसजास्तथा .संस्वेदाज्जाताः संस्वेदजायूकामत्कुणादयः । उद्भिज्जाः खंजरीटकदर्डुरादयइति । आज्ञातभेदाहि दुःखेन रक्ष्यंतइत्यतोभेदेनोपन्यासइति ॥ ८ ॥

एतेहिं ढहिं काएहिं, तं विज्जं परिजाणिया ॥ मणसा कायवक्के
णं, णारंभी ण परिग्गही ॥ए॥ मुसावायं बहिद्धंच, उग्गहंच अ
जाइय ॥ सत्था दाणाइं लोगंसि, तं विज्जं परिजाणिया ॥ १० ॥

अर्थ-(एतेहिंढहिंकाएहिंके०) पूर्वोक्त ढ कायजीवो ते त्रस स्थावर तथा सूक्ष्म बादर पर्याप्ता अपर्याप्ता ना भेदे करी (तंविज्जंपरिजाणियाके०) ते ढकायने पंमित ज्ञ परिज्ञायें करी भलीपरे जाणीने अने प्रत्याख्यान परिज्ञाये (मणसाकायवक्केणं के०) मन, वचन अने काया एत्रण करणे करी (णारंभीणपरिग्गहीके०) साधु आरंभ परिग्रह नकरे केमके ए आरंभपरिग्रहथकी पूर्वोक्त ढकाय जीवोनी विराधना थायढे माटेसाधु आरंभी परिग्रही नथाय. ए प्राणातिपात विरमण नामा प्रथम व्रतनो अधिकार कह्यो ॥ए॥ हवे बीजो व्रत आदि कहेढे (मुसावायं के०) असत्य बोलवुं (बहिद्धंचके०) तथा मैथुन ते भोग कामादिक (उग्गहंच के०) परिग्रह तथा (अजाइय के०) अदत्तदान ए मृषावादादिक अव्रतजेढे ते (लोगंसि के०) लोक मांहे (सत्थके०) शस्त्ररूपढे, तथा शस्त्रनी पेरे (आदानके०) कर्म ग्रहण करवानुं कारणढे, (तंविज्जंपरिजाणियाके०) तेने विद्वान् ए एले पंमित ज्ञपरिज्ञायें जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञाये परिहरे ॥ १० ॥

॥ दीपिका-एभिः षड्भिः कायैर्नारंभी नापि परिग्रही स्यात् विद्वान् पंडितोज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया मनोवाक्कायैरारंभं परिग्रहंच परिहरेदिति श्लोकद्यार्थः ॥ ए ॥ मृषावादं विद्वान् प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् अवहिद्धं मैथुनं अवग्रहंपरिग्रहमयाचितमदत्तादानं एतानि मृषावादादीनि प्राण्युपघातकारित्वात् शस्त्राणि तथा आदानानि कर्मोपादानकारणान्यस्मिन् लोके तदेतत्सर्वं विद्वान् परिज्ञाय परिहरेत् ॥ १० ॥

॥ टीका-एभिः पूर्वोक्तैः षड्भिरपि कायैस्त्रसस्थावररूपैः सूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तकभेदभिन्नैर्नारंभी नाऽपि परिग्रही स्यादिति संबंधः । तदेतद्विद्वान् सश्रुतिकोज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया मनोवाक्कायकर्मभिर्जीवोपमर्दकारिणामारंभं परिग्रहं च परिहरेदिति ॥ ए ॥ शेषव्रतान्यधिकृत्याह । (मुसावायमित्यादि) मृषा असद्भूतोवादोमृषावादस्तं विद्वान् प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् तथाऽवहिद्धमितिमैथुनं अवग्रहं परिग्रहमयाचितमदत्तादानं । यदिवाऽ वहिद्धमिति मैथुनग्रहोऽवग्रहमयाचित

मित्यनेनाऽदत्तादानं गृहीतं । एतानिच मृषावादादीनि प्राण्युपतापकारित्वात् शस्त्राणीव शस्त्राणि वर्तंते । तथा दीयते गृह्यतेऽष्टप्रकारं कर्मभिरिति । कर्मोपादानकारणान्यस्मिन् लोके तदेतत्सर्वं विद्वान् ज्ञपरिज्ञया प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेदिति ॥१०॥

पलिउंचणंच नयणंच, थंभिल्लुस्सयणाणिया ॥ धूणादाणाइं लोगंसि, तं विज्जं पारिजाणिया॥११॥ धोयणं रयणं चेव,वत्थीकम्मं विरेयणं ॥ वमणं जणपलीमंथं, तं विज्जं परिजाणिया ॥ १२ ॥

अर्थ-(पलिउंचणंचके०) माया तथा (नयणंचके०) लोभ (थंभिल्लके०) जे निर्विवेक पणा थकी थंभिलनी पेरे होय ते क्रोध (उस्सयणाणियाके०) जे अपध्याने करी सच्यादिकनी पेरे ऊंचु होय तेने मान कहिए (धुणाके०) एचारेनो त्यागकरे केम के (दाणाइ लोगंसि के०) एचार कषायने लोकमां कर्म ग्रहण करवाना कारण कह्यां छे तेमाटे (तं विज्जंपरिजाणिया के०) एने पंमित ज्ञपरिज्ञाये जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञायें परिहरे. ॥ ११ ॥ (धोयणंरयणं के०) हाथ पग वस्त्रादिकने धोवुं तथा रंगवुं (चेवके०) वली (वत्थिकम्मं के०) नख रोमादिकनुं समारवुं (विरेयणं के०) परवाल लेवो (वमनंके०) वमन करवुं (अंजण के०) आखनुं आंजवुं (पलिमंथं के०) अन्यकोइ शरीर संस्कारादिक जेणे करी संयमनो उपघात थाय तेवा सर्वकारणोने जाणीने पंमित परिहरे॥१२॥

॥ दीपिका-परिकुंच्यते आत्मा वक्रतां प्राप्यते येन तत् परिकुंचनं माया । भज्यते सर्वत्र आत्मा प्रव्हीक्रियते येन सभजनोलोभः । यदुदयेनात्मा सदद्विवेकविकलत्वात् स्थंभिलवत्स्यात् सस्थंडिलः क्रोधः। यस्मिन् सति आत्मा उच्छ्रितः स्यादुन्नतः सउच्छ्रायो मानः। छांदसत्वात्क्लीबत्वं । एतानि धूनय त्यज। किंभूतानि आदानानि बंधकारणानि तदेतद्विद्वान् परिज्ञाय परिहरेत् ॥ ११ ॥ धावनं हस्तपादवस्त्रादेः। रंजनं तस्यैव। बस्तिकर्मानुवासनरूपं । विरेचनमधोविरेकः । वमनमूर्ध्वविरेकः । अंजनं नयनयोः । एवमन्यदपि यत्संयमपलिमंथकारि संयमोपघातकारि तत्परिज्ञाय परिहरेत् ॥ १२ ॥

॥ टीका-किंचाऽन्यत् (पलिउंचणमित्यादि) पंचमहाव्रतधारणमपि कषायिणोनिष्फलं स्यादतस्तत्साफल्यापादनार्थं कषायनिरोधोविधेयइति दर्शयति ॥ परिसमंतात् कुंच्यंते वक्रतामापद्यंते क्रियायेन मायाऽनुष्ठानेन तत्पलिकुंचनं मायेति भण्यते । तथा भज्यते सर्वत्राऽऽत्मा प्रव्हीक्रियते येन सभजनोलोभस्तं तथा यदुदयेन ह्यात्मा सदसद्विवेकविकलत्वात् स्थंभिलवद्भवति सस्थंडिलः क्रोधः। यस्मिंश्च सत्यूर्ध्वं श्रयति जात्यादिना दर्पा

ध्मातः पुरुषउत्तानीनवति सउच्छ्रायोमानः।छांदसत्वान्नपुंसकलिंगता।जात्यादीनामेतत्स्था नानां बहुत्वात् तत्कार्यस्याऽपि मानस्य बहुत्वमतोबहुवचनं । चकाराः स्वगतन्नेदसंसू चनार्थाः समुच्चयार्थावा। धूनयेति प्रत्येकं क्रिया योजनीया । तद्यथा । पलिकुंचनंमायां धूनय धूनीहि वा । तथा नजनं लोनं तथा स्थंडिलं क्रोधं तथा उच्छ्रायं मानं । विचित्रत्वात् सूत्रस्य क्रमोल्लंघननिर्देशोन दोषायेति । यदिवा रागस्य डुस्त्यज त्वात् लोनस्य च मायापूर्वकत्वादित्यादावेव मायालोनयोरुपन्यासइति । कषायपरित्यागे विधेये पुनरपरं कारणमाह । एतानि पलिकुंचनादीनि अस्मिन् लोके आदानानि वर्त्तंते । तदेतद्विद्वान् ज्ञपरिज्ञया परिज्ञानप्रत्याख्यानपरिज्ञया प्रत्याचक्षीत ॥ ११ ॥ पुनरप्युत्त रगुणानधिकृत्याह । (धावणमित्यादि) धावनं प्रक्षालनं हस्तपादयोर्वस्त्रादेरंजनमपि तथा विरेचनं निरूहात्मकमधोविरेकोवा । वमनमूर्ध्वविरेकस्तथांऽजनं नयनयोरिति । एवमादिकमन्यदपि शरीरसंस्कारादिकं यत् संयमपलिमंथकारि संयमोपघातरूपं तदेत द्विद्वान् स्वरूपतस्तद्विपाकतश्च परिज्ञाय प्रत्याचक्षीत ॥ १२ ॥

गंधमल्लसिणाणंच, दंतपरकालणं तहा ॥ परिग्गहित्थिकम्मंच,
तं विज्जं परिजाणिया ॥१३॥ उद्देसियं कीयगडं, पामिच्चं चेव
आहडं ॥ पूयं अणेसणिज्जंच, तं विज्जं परिजाणिया ॥ १४ ॥

अर्थ-(गंधमल्लसिणाणंच के०) सुगंधिक ड्व्यते गंध, माल्यते फूल अने शरीर स्नान ते शरीरप्रक्षालन देश थकी तथा सर्व थकी करवुं तथा (दंतपरकालणंके०) दांतप्र क्षालन ते दातणप्रमुखनुं करवुं (तहाके०) तथा (परिग्गहि के०) सचेत अचेतादि कनो परिग्रह (इत्थिकम्मंच के०) स्त्रीकर्म ते तिर्यंच मनुष्य देवी प्रमुख ने हस्तकर्म कुचेष्टादिकनुं करवुं (तंविज्जंपरिजाणिया के०) ए सर्वने पंमित अशुन्न जाणीने वर्जे ॥ ॥ १३ ॥ (उद्देशिकं के०) साधुने निमित्ते करेलो आहार (क्रीतंक्रीतं के०) साधुने अर्थे मूल आपीने लीधेलो आहार (पामिच्चंचेव के०) साधुने अर्थे उधारे लीधेलो आहार वली (आहडं के०) साधुने अर्थे ग्रहस्थे सामो आण्यो एवो आहार (पुयं अनेषणिज्जंच के०) आधाकर्मिना कण सहित आहार (तंविज्जंपरिजाणिया के०) किं बहुना एवधो अनेशणिय सदोष आहार जाणीने पंमित पुरुष एने परिहरे ॥ १४ ॥

॥ दीपिका-गंधाः कोष्ठपुटाद्यामाल्यंपुष्पादि स्नानं शरीरक्षालनं दंतप्रक्षालनं प रिग्रहः सचित्तादेः स्त्रीकर्म स्त्रियोनरतिरश्च्यस्तासां वशीकरणादिकर्म हस्तकर्म सावद्या नुष्ठानंवा तत्सर्वं विद्वान् परिहरेत् ॥ १३ ॥ उद्देशिकं साधुद्देशेन यत्कृतं। क्रीतं क्रयस्ते

न क्रीतं । पामिच्चं साध्वर्थमन्यतउच्छिन्नकं गृह्यते । चकारः समुच्चये । आहृतं यद्गृहस्थैः साध्वर्थमानीयते पूयं आधाकर्मावयवसंपृक्तं अनेषणीयं यत्केनापि दोषेण अशुद्धं तत्सर्वं विद्वान् परिज्ञाय परिहरेत् ॥ १४ ॥

॥ टीका–अपिच । (गंधमल्लइत्यादि) गंधाः कोष्ठपुटादयः। माल्यंजात्यादिकं । स्नानंच शरीरप्रक्षालनं देशतः सर्वतश्च । तथा दंतप्रक्षालनं कदंबकाष्ठादिना । परिग्रहः सचित्ता देः स्वीकरणं । तथा स्त्रियोदिव्यमानुषतैरश्च्यः। तथा कर्महस्तकर्म सावद्यानुष्ठानंवा । तदेतत्सर्वं कर्मोपादानतया संसारकारणत्वेन परिज्ञाय विद्वान् परित्यजेदिति ॥१३॥ किंचान्यत् । (उद्देसियमित्यादि) साध्वाद्युपदेशेन यद्दानाय व्यवस्थाप्यते तदुद्देशिकं । तथा क्रीतं क्रयस्तेन क्रीतं गृहीतं क्रीतक्रीतं । (पामिच्चंति) साध्वर्थं अन्यतउद्यतकं यद्गृह्यते तत्तदुच्यते । चकारः समुच्चयार्थः । एवकारोऽवधारणार्थः । साध्वर्थं यद्गृहस्थेन नीयते तदाहृतं । तथा पूयमिति आधाकर्मावयवसंपृक्तं शुद्धमप्याहारजातं नवति । किंबहुनोक्तेन यतः केनचिद्दोषेणाऽनेषणीयमशुद्धंतत्सर्वं विद्वान् परिज्ञाय संसारकारणतया निस्पृहः सन् प्रत्याचक्षीतेति ॥ १४ ॥

आसूणि मक्खिरागंच, गिधुवघायकम्मगं ॥ उच्छोलणंच कक्कंच,
तं विज्जं परिजाणिया ॥ १५ ॥ संपसारी कयकिरिए, पसिणाय
तणाणिय ॥ सागारियंच पिंमंच, तंविज्जं परिजाणिया ॥१६ ॥

अर्थ–(आसूणि के०) घृतपानादिक औषध जेणे करी प्राणी बलवंत मत्त थायः अथवा आशून एटले सुन्य जेणेकरी आत्मा शून्यथको रहे तथा (अरकीरागंच के०) आंखनुं अंजनादिक तथा (गृद्धिके०) रसलोलुपता तथा (उपघातकर्मकं के०) जे करवा थकी परजीवने उपघात थाय ते कर्म, तथा (उच्छोलनंच के०) हाथ पग वस्त्रादिकनुं पखालवुं. तथा (कक्कंच के०) लोध्रादिक द्रव्ये करी शरीरनुं उगटणु करवुं ए सर्वने कर्म बंधनुं कारण जाणीने पंमित परिहरे ॥ १५ ॥ (संपसारीकयकिरए के०) असंयतिनी साथें पर्यालोचन एटले आलोचन करवुं तथा असंयमाचरण करवुं करावबुं तथा असंयतिना अनुष्ठाननी प्रसंसा करवी तथा (पसिणायतणाणियके०) प्रश्नजे लोक व्यवहार ज्योतिषादिक तेनो निर्णय करवो तथा (सागारियंचपिंमचके०) सागारिक जे सय्यात्तर तेना घरनो पिंम लेवो ए सर्वने पापना कारण जाणी पंमित परिहरे. ॥ १६ ॥

॥ दीपिका–येन घृतपानादिना आशुनी स्यात् बलवान् नवति तदाशुनी । अक्षिरा

गोलोचनांजनं गृद्धिर्गार्ध्यं रसेषु उपघातकर्म परापघातक्रिया उच्चोलणं अयतनया शीतोदकादिना हस्तपादादिक्षालनं कल्कं लोध्रादिद्रव्येण शरीरोद्वर्तनं तत्सर्वं विद्वान् परिहरेत् ॥ १५ ॥ असंयतैः सार्धं संप्रसारणं पर्यालोचनं तत्संप्रसारणं परिहरेत् । कृता शोजना गृहकरणादिक्रिया येन सकृतक्रियइत्येवमसंयतानुष्ठानप्रशंसा प्रश्नस्यायतनं प्रकटीकरणं प्रश्ननिर्णयकारणं । सागारिकः शय्यातरस्तस्य पिंडं जुगुप्सितं हीनं वर्णपिंडं वा तदेतत्सर्वं विद्वान् परिहरेत् ॥ १६ ॥

॥ टीका–किंच । (आसूणिमित्यादि) येन घृतपानादिना आहारविशेषेण रसायनक्रियया वा अशूनः सन् आसमंतात् शूनीजवति बलवानुपजायते तदाशूनीत्युच्यते । यद्विवा (आसूणिति) श्लाघा यतःश्लाघया क्रियमाणया आसमंतात् शूनः । शूनोलघुप्रकृतिः कश्चिद्दर्पाध्मातत्वात् स्तब्धोजवति । तथा अक्ष्णां रागोरंजनं सौवीरादिकमंजनमिति यावत् । एवं रसेषु शब्दादिषु विषयेषु वा गृद्धिंगार्ध्यं तात्पर्यमासेवा तथोपघातकर्मेत्युच्यते । तदेव लेशतोदर्शयति । (उच्चोलनंति) अयतनया शीतोदकादिना हस्तपादादिप्रक्षालनं तथा कल्कं लोध्रादिद्रव्यसमुदायेन शरीरोद्वर्तनकं तदेतत्सर्वं बंधनायेत्येवं विद्वान् पंडितोज्ञपरिज्ञया प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेदिति ॥१५॥ अपिच । (संपसारायइत्यादीति । असंयतैः सार्धं संप्रसारणं पर्यालोचनं परिहरेदिति वाक्यशेषः । एवं संयमानुष्ठानं प्रत्युपदेशदानं तथा (कयकिरिए) नाम कृता शोजना गृहकरणादिक्रिया येन सकृतक्रियइत्येवमसंयतानुष्ठानप्रशंसनं तथा प्रश्नस्यादर्शः प्रश्नादेरायतनमाविष्करणं कथनं यथावस्थितप्रश्ननिर्णयनानि। यद्विवा प्रश्नायतनानि लौकिकानां परस्परव्यवहारे मिथ्याशास्त्रगतसंशयेवा प्रश्ने सति यथावस्थितार्थकथनद्वारेणायतनानि निर्णयनानीति । तथा सागारिकः शय्यातरस्तस्य पिंडमाहारं । यद्विवा सागारिकपिंडमिति सूतकगृहापिंडं जुगुप्सितं वर्णापसदपिंडं च। चशब्दःसमुच्चये। तदेतत्सर्वं विद्वान् ज्ञपरिज्ञया प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेदिति॥१६

अठावयं नसिक्खिज्जा, वेहाईयं च णोवए ॥ हत्थकम्मं विवायंच
तं विज्जं परिजाणिया ॥ १७॥ पाणहा उयछत्तंच, णालीयं वाल
वीयणं ॥ परकिरियं अन्नमन्नंच, तं विज्जं परिजाणिया ॥ १८॥

अर्थः–(अठावयं नसिक्खिज्जाके०) अर्थपदं एटले अर्थ पदते धन धान्य उपार्जवानो उपाय, न शीखे अथवा बीजे अर्थे अष्टापदं एटले द्यूतक्रीडा नशीखे, (वेधादिकंचके०) अधर्मना वचन (णोवदेके०) नबोले, अथवा हिंसाकारी वचन बोले नही, तथा (हत्थकम्मं के०) कुशील प्रसिद्ध छे (विवायंच के०) कलह अथवा बीजो कोइपण विवाद

पंमित ज्ञपरिज्ञायें जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञायें परिहरे ॥ १७ ॥ (पाणहा उयबत्तंच के०) पावडी तथा खासडा तथा ताप टालवाने अर्थे छत्र तथा (णालीयं के०) न लीमांहे पाश घाली नाखे द्युत रमत विशेष (वालवीयणंच के०) चामर मोर पीछ प्रमुखना वींजणा तथा (परकिरियं के०) अन्य गृहस्थ पाशेथी क्रिया करावे तथा (अन्नमन्नंच के०) अन्योन्य एटले माहो मांहे क्रियानुं करवुं एटले बीजो आपणी करे आपणे बीजानी करिए तेक्रिया जाणवी. ए सर्व कर्म बंधना हेतुछे एम तेने ज्ञ प रिज्ञाये जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञायें करी पंमित परिहरे ॥ १८ ॥

॥ दीपिका—अर्थोधनधान्यादिः पदं शास्त्रं प्राण्युपघातकं नशिक्षेत् । अथवा अष्टा पदं द्यूतक्रीडां नशिक्षेत नापि पूर्वशिक्षितमनुशीलयेत् वेधोधर्मानुवेधस्तस्मादतीतं वें धातीतमधर्मप्रधानं वचोनवदेत् हस्तकर्म प्रतीतं । अथवा हस्तक्रिया परस्परं हस्तव्यापारे प्रधानः कलहः । विवादं शुष्कवादं तदेतद्बधकारणं परिहरेत् ॥ १७ ॥ उपानहौ काष्ठपा डुके आतपवारणाय छत्रं च नालिका द्यूतक्रीडा वालैर्मयूरपिछैर्व्यजनकं परेषां क्रिया अन्योन्यकार्यमन्यकार्यं सकरोति तस्य चान्यः । तदेतत्सर्वं विद्वान् कर्मबंधहेतुत्वेन ज्ञप रिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् ॥ १८ ॥

॥ टीका किंचान्यत् । (अष्टापयमित्यादि) अर्थते इत्यर्थोधनधान्यहिरण्यादिकः पद्य ते गम्यते येनार्थस्तत्पदं शास्त्रं अर्थार्थं पदमर्थपदं चाणक्यादिकमर्थशास्त्रं तन्न शिक्षे न्नान्यसेन्नाप्यपरप्राण्युपमर्दकारि शास्त्रं शिक्षयेत् । यदिवा अष्टापदं द्यूतक्रीडाविशेषस्तं नशिक्षेत नापि पूर्वशिक्षितमनुशीलयेदिति । तथा वेधोधर्मानुवेधस्तस्मादतीतमधर्मप्र धानं वचोनोवदेत् । यदिवा वेधइति वर्ध्रवेधोद्यूतविशेषस्तजतं वचनमपि नोवदेदास्तां तावत्क्रीडनमिति हस्तकर्म प्रतीतं । यदिवा हस्तकर्म हस्तक्रिया परस्परं हस्तव्यापार प्रधानः कलहस्तं तथा विरुद्धवादं शुष्कवादमित्यर्थः । चःसमुच्चये । तदेतत्सर्वं संसा रभ्रमणकारणं ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया प्रत्याचक्षीत ॥१७॥ किंच (प णहावेवेइत्यादि) उपानहौ काष्ठपाडुके च तथाऽतपादिनिवारणाय छत्रं तथा नालिका द्यूतक्रीडाविशेषस्तथा वालैर्मयूरपिछैर्वा व्यजनकं तथा परेषां संबंधिनी क्रियामन्योन्यपरस्प रतो ऽन्यनिष्पाद्यामन्यः करोत्यपरनिष्पाद्यां चापरइति । चःसमुच्चये । तदेतत्सर्वं विद्वान् पं मितः कर्मोपादानकारणत्वेन ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेदिति॥ १८

उच्चारं पासवणं,हरिएसु ण करे मुणी ॥ वियडेण वा विसाहट्टु,
णावमज्जे कयाइवि ॥ १ए॥ परमत्ते अन्नपाणं, ण भुंजेज्ज कया
इवि.॥ परवत्थं अचेलोवि, तं विज्जं परिजाणिया ॥ २० ॥

अर्थ–(उच्चारं के०) वडीनीत (पासवणं के०) लघुनीत तेनो (हरिएसुणकरेसु निः के०) मुनि हरित काय वनस्पति उपर स्थंडिल नकरे (वियडेणवाविसाहट्टु के०) फासु पाणियें करी वनस्पतिकाय हरितकाय बीजने कदापि (णावमज्जेकयाइविके०) पर हां नकरे एटले निश्चेषकी दूरन करे ॥ १९ ॥ (परमत्तेअन्नपाणं के०) पर एटले अन्य गृहस्थ तेने घेर कांसादिकना जाजनने विषे अन्न पाणी आहारादिकने (णचुंजेज्ज कयाइवि के०) कदापि जुंजे नही एटले जमे नही (परवत्थंअचेलोवि के०) पोते अ चेलक एटले वस्त्र रहित उतां पण परजे गृहस्थादिकतेनुंजे वस्त्र तेने नजोगवे एटले ए सर्वने संयम विराधवाना कारण जाणीने जे पंमित होय ते परिहरे ॥ २० ॥

॥ दीपिका–उच्चारं प्रस्रवणं च हरितेषु नकुर्यान्मुनिः। तथा विकटेन प्रासुकजलेनापि संहृत्यापनोय बीजानि हरितानि वा नाचमेत ननिर्लेपनं कुर्यात्किमुताविकटेन ॥ १९ ॥ परस्य गृहस्थस्यामत्रं जाजनं तत्रान्नपानं नजुंजीत। कदाचिदपि पूर्वकर्मपश्चात्कर्मादिदोषा त् अचैलोपि सन् परवस्त्रं गृहस्थवस्त्रं नबिजर्ति । यदिवा ऽचैलोजिनकल्पी तस्य सर्वम पि वस्त्रं परवस्त्रमेव तन्न बिजृयात् तत्सर्वं विद्वान् परिज्ञाय परिहरेत् ॥ २० ॥

॥ टीका–तथा (उच्चारमिति) उच्चारप्रस्रवणादिकां क्रियां हरितेषूपरिबीजेषु वा स्थं डिले वा मुनिः साधुर्नकुर्यात्तथा विकटेन विगतजीवेनाप्युदकेन संहृत्यापनीय बीजानि ह रितानि वा नाचमेत ननिर्लेपनं कुर्यात् किमुताविकटेनेतिजावः ॥ १९ ॥ किंच (परमत्ते इत्यादि) परस्य गृहस्थस्यामत्रं जाजनं परामत्रं तत्र पुरःकर्म पश्चात्कर्म तज्जयात् हृतनष्टा दिदोषसंजवाच्चान्नं पानंच मुनिर्न कदाचिदपि जुंजीत। यदिवा पतद्गृहधारिणश्छिद्रपाणेः पाणिपात्रं परपात्रं। यदिवा पाणिपात्रस्याच्छिद्रपाणेर्जिनकल्पिकादेः पतद्गृहः परपात्रं त त्र संयमविराधनाजयान्नजुंजीत तथा परस्य गृहस्थस्य वस्त्रं परवस्त्रं तत्साधुरचैलोपि सन् पश्चात्कर्मादिदोषजयात् हृतनष्टादिदोषसंजवाच्च नबिजृयात् । यदिवा जिनकल्पिका दिकोऽचैलोजूत्वा सर्वमपि वस्त्रं परवस्त्रमिति कृत्वा नबिजृयादेतत्सर्वं परपात्रजोजनादि कं संयमविराधकत्वेन ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेदिति ॥ २० ॥

आसंदीपलियंकेय, णिसिज्जं च गिहंतरे॥ संपुच्छणं सरणंवा, तं
विज्जं परिजाणिया ॥ २१॥ जसं कित्ति सलोयंच, जाय वंदण पू
यणा ॥ सवलोयंसि जे कामा, तं विज्जं परिजाणिया ॥ २२ ॥

अर्थ–(आसंदीपलियंकेयके०) गृहस्थनुं आसन जे मांची प्रमुख तथा पर्यंकासन ते

ना उपर बेसवुं तथा (निसिज्जंचगिहंतरेके०) गृहस्थना घरने अंतरे अथवा गृहस्थना घरमां बेसवुं (संप्रछनं के०) गृहस्थने कुशलादिकनुं पुढवुं (वाके०) तथा (सरणं के०) पूर्वक्रीडादिकनुं संज्ञारवुं ए सर्वने जाणीने पंमित परिहरे ॥ २१ ॥ जे सर्व व्यापि तेने (जसंके०) यश कहिए अने जे एकदेश व्यापि तेने (कित्तिके०) कित्ति कहिए तेज (सिलोयंचके०) श्लाघानी (जायके०) जाति जाणवी तथा (वंदणपूयणाके०) राजादिकनी वंदना पूजा सत्कार वस्त्रादिके करी करावववानी जे वांढा करवी, तथा (सव्व लोयंसिजेकामा के०) सर्व लोकमां जे विषय इहा कामरूप तेनी वांढना करवी, ए सर्वने पंमित कर्म बंधना कारण जाणीने परिहरे ॥ २२ ॥

॥ दीपिका—आसंदीआसनविशेषः पर्यंकःशयनविशेषः । तथा द्वयोर्गृहयोर्मध्ये निषद्यामवस्थानं परिहरेत् गृहस्थकुले कुशलादिसंप्रश्नं पूर्वक्रीडितस्मरणं तदेतत्सर्वं विद्वान् परिहरेत् ॥ २१ ॥ संग्रामादिजवं यशः । दानादिजवा कीर्तिः । तपोज्ञानादिजवा श्लाघा तथा नृपादिन्निर्वंदना पुष्पादिनिः पूजनं तथा सर्वलोकइहामदनरूपाये कामास्तदेतत्सर्वं विद्वान् परिज्ञाय परिहरेत् ॥ २२ ॥

॥ टीका–(आसंदीत्यादि) आसंदीत्यासनविशेषः । अस्य चोपलक्षणार्थत्वात्सर्वोऽप्यासनविधिर्गृहीतः । तथा पर्यंकः शयनविशेषस्तथा गृहस्यांतमर्ध्ये गृहयोर्वा मध्ये निषद्यां वाऽऽसनंवा संयमविराधनाजयात्परिहरेत् । तथाचोक्तं । गंजीरज्जुसिराएते, पाणाडुप्पडिलेहगा ॥ अगुत्ती बंजचेरस्स, इबीउ बाविसंकणाइत्यादि । तथा तत्र गृहस्थगृहे कुशलादिप्रश्नं आत्मीयशरीरावयवप्रश्ननंवा तथा पूर्वक्रीमितस्मरणं चेत्येतत्सर्वं विद्वान् विदितवेद्यः सन्ननर्थायेति ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् ॥ २१ ॥ अपि च । (जसंकित्तिमित्यादि) बहुसमरसंघट्टनिर्वहणशौर्यलक्षणं यशः । दानसाध्या कीर्तिः जातितपोबहुश्रुत्यादिजनिताश्लाघा तथा याच सुरासुराधिपतिचक्रवर्तिबलदेववासुदेवादिन्निर्वंदना तथा तैरेव सत्कारपूर्विका वस्त्रादिना पूजना तथा सर्वस्मिन्नपि लोके इहामदनरूपाये केचन कामास्तदेतत्सर्वं यशःकीर्तिमपकारितया परिज्ञाय परिहरेदिति ॥ २२ ॥

जेणेह णिवहे जिक्खू, अन्नपाणं तहाविहं ॥ अणुप्पयाणमन्नेसिं,
तं विज्जं परिजाणिया ॥ २३ ॥ एवं उदाहु निग्गंथे, महावीरे महा
मुणी ॥ अणंतनाणदंसी से, धम्मं देसि तवं सुतं ॥ २४ ॥

अर्थ– (जेणेह के०) जे (अन्नपाणं के०) अन्नपाणीयें करीने आलोकने विषे (णिव्वहेन्निरकू के०) साधुपोतानो निरवाह करे आजीविका करे तेवा अन्न पान ने (तहाविहं के०) तथाविध देखीने द्रव्य, क्षेत्र, काल अने भावनी अपेक्षायें शुद्ध निर्दोष ग्रहण करे. (अणुप्पयाणमन्नेसिं के०) वली एज अन्न पाणीनुं बीजा असंयतिने देवुं ते सर्वने ज्ञ परिज्ञायें अनर्थनुं हेतु जाणीने पंमित परिहरे ॥ २३ ॥ (एवं के०) एरीते (महामुणी के०) महामुनि (निग्गंथे के०) बाह्याभ्यंतर परिग्रह रहित एवा (महावीरे के०) श्री वर्द्धमान स्वामी तेणे (उदाहु के०) कह्याछे. (सेके०) ते श्री वर्द्धमान केवाछे, तोके (अणंतनाणदंसी के०) अनंत ज्ञान दर्शनना धरनारछे. तेणे धम्मंदेसितवंसुतं के०) ए श्रुत चारित्र रूप धर्म उपदेश्यो छे सिद्धांत रहस्य प्रकाश्योछे.

॥ दीपिका– येनान्नपानेन इहास्मिन् लोके निर्कुर्निर्वहेत् संयमयात्रां कुर्यात् तत्तथाविधमन्नं पानं वा शुद्धं गृण्हीयात्तेषामन्नादीनामनुप्रदानं गृहस्थानां परतीर्थिकानां स्वयूथ्यानां वा संयमोपघातकं नकुर्यात्तत्सर्वं विद्वान् परिज्ञाय परिहरेत् ॥ २३ ॥ एवं पूर्वोक्तं निर्ग्रंथः श्रीवीरोमुनिः उदाहृतवान् कथितवान् । बाह्याभ्यंतरग्रंथरहितत्वान्निर्ग्रंथः । अनंतं ज्ञानं दर्शनं च यस्यासावनंतज्ञानदर्शी सभगवान् धर्मंचारित्ररूपं श्रुतं च सिद्धांतं देशितवान् प्रकाशितवान् ॥ २४ ॥

॥ टीका– किंचान्यत् । (जेणेहमित्यादि) येनान्नेन पानेन वा तथाविधेनेति सुपरिशुद्धेन कारणापेक्षयाल्पशुद्धेन वा इहास्मिन् लोके इदं संयमपात्रादिकं दुर्निक्षारोगातंकादिकं वा निर्कुर्निर्वहेन्निर्वाहयेद्वा यदन्नं पानंवा तथाविधं द्रव्यक्षेत्रकालभावापेक्षयाशुद्धं कल्पं गृण्हीयात्तथैतेषामन्नादीनामनुप्रदानमन्यस्मै साधवे संयममात्रान्निर्वहणसमर्थमनुतिष्ठेत् । यदिवा येनकेनचिदनुष्ठितेन संयमं निर्वहेन्निर्वाहयेदसारतामापादयेत्तथाविधमशनं पानं वाऽन्यद्वा तथाविधमनुष्ठानं नकुर्यात् । तथैषामशनादीनामनुप्रदानं गृहस्थानां परतीर्थिकानां स्वयूथ्यानां वा संयमोपघातकं नानुशीलयेदिति तदेतत्सर्वं ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वा सम्यक्परिहरेदिति ॥ २३ ॥ यदुपदेशेनैतत्कुर्यात्तद्दर्शयितुमाह (एवंउदाहुइत्यादि) एवमनंतरोक्तया नीत्या उद्देशकादेरारभ्य (उदाहुत्ति) उदाहृतवानुक्तवान्निर्गतो बाह्याभ्यतरोग्रंथोयस्मात्सनिर्ग्रंथोमहावीरइति श्रीमद्वर्धमानस्वामी महांश्चासौ मुनिश्च महामुनिःअनंतं ज्ञानं दर्शनं च यस्यासावनंतज्ञानदर्शी सभगवान् धर्मं चारित्रलक्षणं संसारोत्तरणसमर्थं वा तथा श्रुतं च जीवादिपदार्थसूचकं देशितवान् प्रकाशितवान् ॥ २४ ॥

नासमाणो नन्नासेज्जा, णेव वंफेज्जमम्मयं ॥ मातिघाणं विवज्जे ज्जा, अणुचिंतिय वियागरे ॥ २५ ॥ तब्बिमात इया नासा, जं वदित्ता णुतप्पती ॥ जं बन्नं तं न वत्तवं, एसा आणाणियंठिया ॥२६॥

अर्थ-(नासमाणोनन्नासेज्जा के०) गुरुवादिक मोहोटा पुरुष बोलता होय तेनी व चमां नडकीने नबोले, तथा (मम्मयंके०) मर्मनुं वचन जेना बोलवा थकी कोइ जीव डुह वाय एवा वचन बोले नही. (मातिघाणंविवज्जेज्जा के०) मातृस्थान एटले मायायें करी प्रधान वचन बोलवानुं पण वर्जे तो सुं बोले तोके (अणुचिंतियवियागरे के०) कार्य विशेषे विमाशीने बोले जे नाषा बोलवा थकी कांइ पण डुषण नलागे तेवी ना षा प्रकाशे ॥ २५ ॥ (तब्बिमातइयानासा के०) एक सत्या बीजी असत्या त्रीजी स त्यामृषा चोथी असत्यामृषा ए चार नाषा माहेली त्रीजी नाषा जे कांइक सत्य अने कांइक असत्य बे तेपण नबोले (जंवदित्ताणुतप्पती के०) जे नाषाना बोलवा थकी पबी घणो पश्चाताप करवो पडे, एटले परनवे एना उदयथी डुःखी थाय तेवारे पश्चा त्ताप करे (जंबन्नंतंनवत्तवं के०) जे सावद्य एवुं हिंसाकारी वचन ते नबोले, एटले आ अमुक चोरबे एने मारो, आ धातुनो प्रयोग करो, अथवा आ खेत्र खेडो एवी नाषा नबोले. (एसाआणाणियंवियाके०) एवी आज्ञा निग्रंथ श्रीमाहावीर देवनीबे ॥२६॥

॥ दीपिका-योहि नाषासमितः सन्नाषमाणोपि धर्मकथां कथयन्नपि अनाषकएव । उक्तंच । वयणविहत्तीकुसलो, वउगयं बहुविहं वियाणंतो । दिवसंपि नासमाणो, साहू वइगुत्तयंपत्तो ॥ १ ॥ अथवा यत्र रत्नाधिकोनाषमाणः स्यात्तत्रांतरे नन्नाषेत । मर्मगं व चनं नकांक्षेत् । यद्वचनमुक्तं सत्परपीडामाधत्ते तन्न नाषेतेत्यर्थः । मातृस्थानं मायाप्रधानं वचोविवर्जयेत् अनुविचिंत्य विचार्य व्यागृणीयात् वदेत् ॥ २५ ॥ सत्या १ असत्या २ सत्यामृषा ३ असत्यामृषा ४ एताश्चतस्रोनाषाः । तत्रेयं तृतीया नाषा साच किंचित्सत्या किंचिन्मृषा । यथा दशदारकाअत्रपुरे जातामृतावा तदत्र न्यूनाधिकसंनवेसति संख्या व्यनिचारात्सत्यामृषात्वं । यां नाषामुदित्वा इहलोके वा अनितप्यते क्लेशनाग्नवति । को र्थः । मिश्रापि नाषा दोषाय किंपुनरसत्येति । तथा यद्वचः (बंन्नत्ति) क्षणुहिंसयां हिंसाप्र धानं प्रन्नन्नंवा यल्लोकैराबाध्यते तत्सत्यमपि नवाच्यं एषाज्ञा निर्ग्रंथोनगवान् तस्य. ॥२६

॥ टीका-किंचान्यत् (नासमाणे इत्यादि) योहि नाषासमितः सन्नाषमाणोपि धर्मक थासंबंधनाषकएव स्यात् । उक्तंच । वयणविहत्तीकुशलो, वउगयं बहुविहं वियाणंतो ।

दिवसंपि नासमाणो,साहूवरुगुत्तयंपत्तो ॥१॥ यदिवा यत्रान्यः कश्चिद्दत्तादिकोनाषमाणस्त त्रांतरएव सश्रुतिकोहमित्येवमनिमानवान्ननाषेत।तथा मर्म गच्छतीति मर्मगं वचोन (वंफेज्जत्ति) नानिलषेत् । यद्वचनमुच्यमानं तथ्यमतथ्यंवा सचस्य कस्यचिन्मनःपीडामाधत्ते तद्विवेकी न नाषेतेति नावः। यदिवा मामकं ममीकारः पक्षपातस्तं नापमाणो (नवंफेज्जति) नानिलषेत्तथा मातृस्थानं मायाप्रधानं वचोविवर्जयेत्। इदमुक्तं नवति। परवंचनबुध्या गूढाचारप्रधानोनाषनाणोऽनापमाणोवाऽन्यदावा मातृस्थानं नकुर्यादिति । यदातु वक्तुकामोनवति तदा नैतद्वचः परमात्मनोरुनयोर्वा बाधकमित्येवं प्राग्वि चिंत्य वचनमुदाहरेत्। तदुक्तं।पुवं बुद्धीएपेहित्तापच्छावक्कमुदाहरे इत्यादि ॥२५॥ अपिच। (तह्निमेत्यादि) सत्या असत्या सत्यामृषा असत्यामृषेत्येवंरूपासु चतसृषु नाषासु मध्ये तत्रेयं सत्यामृषेत्ये तदनिधानात्तृतीया नाषा। साच किंचिन्मृषा किंचित्सत्या इत्येवंरूपा। तद्यथा दशदारका अस्मिन्नगरे जातामृताः। तदत्र न्यूनाधिकसंनवेसति संख्यायाव्यनिचारात्सत्यामृषात्वमिति। यां चैवंरूपां नाषामुदित्वा अनुपश्चात्नाषणाज्जन्मांतरेवा तज्जनितेन दोषेण तप्यते पीडयते क्लेशनाग्नवति।यदिवा अनुतप्यते किंममैवंनूतेन नाषितेनेत्येवं पश्चात्तापं विधत्ते। ततश्चेदमुक्तं नवति मिश्रापि नाषा दोषाय किंपुनरसत्या द्वितीया समस्तार्थविसंवादिनी। तथा प्रथमापि नाषा सत्या या प्राण्युपतापेन दोषानुषंगिणी सा न वाच्या। चतुर्थाप्यसत्या मृषा नाषा बुधैरनाचीर्णा सा न वक्तव्येति। सत्यायाअपि दोषानुषंगित्वमधिकृत्याह । यद्वचः (हन्नंति) क्षणुहिंसायां हिंसाप्रधानं । तद्यथा वध्यतांचौरायं लूयंतांकेदाराः दम्यंतां गोरथकाइत्यादि । यदिवा हन्नंति प्रच्छन्नं यल्लोकैरपि प्रच्छाद्यते तत्सत्यमपि न वक्तव्यमिति । एषाऽऽज्ञा अयमुपदेशोनिर्ग्रंथोनगवांस्तस्ये ति ॥ २६ ॥

होलावायं सहीवायं, गोयावायं च नोवदे ॥ तुमं तुमंति अमणुन्नं, सवसो तं ण वत्तए ॥ २७ ॥ अकुसीले सया निक्खू, णेव संसग्गियं नए ॥ सुहरूवा तत्तुवस्सग्गा, पडिबुझेज्ज तेविऊ ॥२८॥

अर्थ-(होलावायं के०) होलावादते देश विशेषे कुरवचन विशेषछे तेमाटे होल्या एम नबोले; तथा (सहीवादं के०) हे सखी एम पण न बोले; (गोयावायंचनोवदे तुके०)गोत्रनो प्रकाशकरी बोलाववो जे तुं अमुक नीच गोत्रीगो एवुं वचन पण नबोले; (तुमंतुमंतिअणुमन्नंके०) तुंतुं एवो अमनोज्ञ तिरस्कारनुं असुहामणुं वचन ते (सव्वसोतंणवत्तए के०) सर्वथा प्रकारे नबोले; केमके साधुने एवा वचन बोलवा युक्त नथी. ॥ २७ ॥ (अकुसीलेसया निक्खू के०) सर्व काल साधु अकुशील होय ब्रह्मचारी

थको रहे (एवसंसग्गियंनए के०) तथा जिनशासनथी विरुद्ध एवा अनाचारी पास त्थादिकनो त्रविधे संसर्ग नकरे ते पासत्थादिकनो संसर्ग केवोछे तोके जेना थकी (सु हरूवा तत्तुवस्सग्गा के०) सुखरूप जे संयम तेना घातना करनार एवा एना थकी उपसर्ग उत्पन्न थायछे केमके ते प्रायें सातागारव पणे वर्त्तनारा होय छे तेमाटे तेनी साथे सुविहित पुरुष संसर्ग करे तो तेपण सातागारव पणाने पामे. तेथी सुखरूप सं यमनो घातक थायछे माटे (पडिबुज्झेज्जतेविऊ के०) पंमित जे होय ते प्रतिबोध पा मीने एवा स्वेच्छाचारीउनो संसर्ग तेने डुःखनुं कारण जाणीने त्याग करे. ॥ २७ ॥

॥ दीपिका–होलाइति वादोहोलावादः सखेइति वादः सखिवादः गोत्रप्रकटनेन वादो गोत्रवादः काश्यपगोत्रावासिष्ठगोत्रावेत्यादि एवंरूपं वादं साधुर्नवदेत् (तुमंति) इत्थं त्वमिति तिरस्कारवाक्यं अमनोज्ञं परस्य मनःप्रतिकूलं सर्वशः सर्वथा साधूनां वक्तुं न वर्तते ॥ २७ ॥ नकुशीलोऽकुशीलः सदाभिक्षुर्नकुशीलैः संसर्गं भजेत सेवेत। सुखरूपा सातागौरवस्वभावास्तत्र कुशीलसंगे उपसर्गाः संयमोपघातकारिणः प्राडुष्यंति तद्विद्वा न् विवेकी प्रतिबुध्येत जानीयात् कुशीलसंगं त्यजेदित्यर्थः ॥ २७ ॥

॥ टीका–किंच (होलावायमित्यादि) होलेत्येवं वादोहोलावादस्तथासखेत्येवं वादः स खिवादस्तथा गोत्रोद्घाटनेन वादोगोत्रवादोयथा काश्यपसगोत्रोवासिष्ठसगोसत्रोवेति इत्ये वंरूपं वादं साधुर्नोवदेत्तथा (तुमंतुमं) तिरस्कारप्रधानमेकवचनातंबहुवचनोच्चारणयो ग्येऽमनोज्ञं मनःप्रतिकूलरूपमन्यदप्येवंभूतमपमानापादकं सर्वशः सर्वथा तत्साधूनां वक्तुं न वर्ततइति। यदाश्रित्योक्तं निर्युक्तिकारेण। तद्यथा। पासत्थोसन्नकुशीलसंथवोणकिलव ट्टएकाउं तदिदमित्यादि ॥२७॥ (अकुशीलेत्यादि) कुत्सितं शीलमस्येति कुशीलः सच पार्श्वस्थादीनामन्यतमः नकुशीलोअकुशीलः सदा सर्वकालं भिक्षणशीलोभिक्षुः कुशीलो नभवेन्नचापि कुशीलैः सार्धं संसर्गं सांगत्यं भजेत सेवेत। तत्संसर्गदोषोद्भिावयिषयाह। सुखरूपाः सातागौरवस्वभावास्तत्रतस्मिन् कुशीलसंसर्गे संयमोपघातकारिणउपसर्गाः प्राडुष्यंति। तथाहि। कुशीलवक्तारोभवंति। कः किल प्रासुकोदकेन हस्तपाददंतादिके प्रक्षा ल्यमानेदोषः स्यात्तथा नाशरीरोधर्मोभवति इत्यतोयेन केनचित्प्रकारेणाधाकर्मसान्निध्या दिना तथा उपानच्छत्रादिनाच शरीरं धर्माधारं वर्तयेत्। उक्तंच। अप्पेण बहुमेसेज्जा एयं पंडियलक्खणंइति। शरीरं धर्मसंयुक्तं रक्षणीयं प्रयत्नतः ॥ शरीरात्स्रवते पापं पर्वतात्स लिलं यथा ॥ १॥ तथा सांप्रतमल्पानि संहननानि अल्पधृतयश्च संयमे जंतवइत्येवमादि कुशीलोक्तं श्रुत्वा अल्पसत्वास्तत्रानुषज्जंत्येवं विद्वान् विवेकी प्रतिबुध्येत जानीयात् बु ध्वा चापायरूपकुशीलसंसर्गं परिहरेदिति ॥ २७ ॥

नन्नब अंतराएणं, परगेहेण णिसीयए ॥ गामकुमारियं किड्डं, नातिवेलं हसे मुणी॥ २९॥ अणुस्सुउ उरालेसु, जयमाणो परिव्वए ॥ चरियाए अप्पमत्तो, पुट्ठो तब हियासए ॥ ३० ॥

अर्थ- (नन्नब अंतराएणं के०) जरा रोगादिक कारणविना (परगेहेणणिसीयए के०) गृहस्थना घरने विषे नबेशे एटले गृहस्थने घेर नबेशवुं ए साधुनो उत्सर्ग मार्गे कह्योबे. अने अपवादे तो जरारोगादिक कारण विना नबेशे तथा कोइएक लब्धीमंत धर्मोपदेशादिक वचन देवाने कारणे पण बेशे तथा (गामकुमारियंकिड्डं के०) ग्रामने विषे बालक क्रीडा हास्य कंदर्प हस्तस्पर्श आलिंगनादिक गेडा दडि इत्यादिक क्रीडाने (नातिवेलंहसेमुणीके०) साधु नकरे वली पडिलेहणादिक क्रियानी मर्यादा ने नगवंतनी आज्ञा थकी विरुध जाणीने अतिक्रमे नही हसे नही ॥२९॥ (अणुस्सुउ उरालेसु के०) उदार उद्भट प्रधान एवा गृहस्थना कामनोगादिक देखी तथा सांनलीने तेनी वांढा करे नही; तथा (जयमाणोपरिव्वए के०) संयमने विषे यत्नकरतो शुद्ध चारित्र पाले (चरियाएअप्पमत्तो के०) विहार करवाने विषे प्रमाद नकरे, अप्रमत्त पणे विचरे (पुट्ठोतबहियासए के०) त्यां विहार करवानेविषे उपसर्ग परिसह उपने थके तेने फरश्यो थको अदीनपणे सम्यक्रीते अहियासे ॥ ३० ॥

॥ दीपिका—साधुर्भिक्षानिमित्तं ग्रामादौ प्रविष्टः सन् परोगृहस्थस्तस्य गृहे ननिषीदेत नोपविशेत्। यदिवा देशनालब्धिमान् कश्चित्ससहायोगुर्वनुज्ञातः कथंचित्तथाविधस्य धर्मदेशनानिमित्तमुपविशेदपि । तथा ग्रामे कुमारकास्तेषामियं ग्रामकुमारिका क्रीडा हास्यकंदर्पहस्तसंस्पर्शालिंगनादिका अथवा क्रीडा वट्टकंडुकादिका तां मुनिर्नोकुर्यात् अतिवेलं वेलामर्यादा तामतिक्रम्य नहसेन्मुनिः । यदागमः । जीवेणंनंतेहसमाणे उस्सुयमाणेवाकाइकम्मवगडीउ बंधइ गोयमा ससविहबंधएवा अठविहबंधएवाइत्यादि ॥ २९ ॥ उदारेषु शब्दादिविषयेषु अनुत्सुकोऽनासक्तोयतमानः संयमे परिव्रजेन्मूलोत्तरगुणेषूद्यमं कुर्यात् । चर्यायां निक्षादिकायामप्रमत्तः स्यात् स्पृष्टः परीषहादिभिस्तत्राऽदीनोऽध्यासहेत् सम्यक् सह्यात् ॥ ३० ॥

॥ टीका—किंचान्यत् (ननत्थेत्यादि) तत्र साधुर्भिक्षादिनिमित्तं ग्रामादौ प्रविष्टः सन् परोगृहस्थस्तस्य गृहं परगृहं तत्र ननिषीदेन्नोपविशेत् उत्सर्गतोस्यापवादं दर्शयति।नान्यत्रांतरायेणेति। अंतरायः शक्त्यनावः सच जरसा रोगातंकाभ्यां स्यात्तस्मिं चांतराये सत्युपवि

शोद्यदिवोपशमलब्धिमान् कश्चित्सुसहायोगुर्वनुज्ञातः कस्यचित्तथाविधस्य धर्मदेशनानिमित्तमुपविशेदपि। तथा ग्रामे कुमारकाग्रामकुमारकास्तेषामियं ग्रामकुमारिका ऽसौक्रीडा हास्यकंदर्पहस्तसंस्पर्शनालिंगनादिका। यदिवा वट्टकंडुकादिका तां मुनिर्नकुर्यात्तथा वेला मर्यादातामतिक्रांतमतिवेलं नहसेन्मर्यादामतिक्रम्य मुनिः साधुर्ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मबंधभयान्नहसेत्। तथा चागमः। जीवेणं भंते हसमाणे उस्सूयमाणे वाकाइकम्मपगडीउ बंधइ गोयमा सत्तविह बंधएवा अठविहबंधएवाइत्यादि ॥ २ए ॥ किंच (अणुस्सुउइत्यादि) उरालाउदाराः शोभनामनोज्ञाये चक्रवर्त्यादीनां शब्दादिषु विषयेषु कामभोगा वस्त्राभरणगीतगंधर्वयानवाहनादयस्तथा आज्ञैश्वर्यादयश्चैतेषूदारेषु दृष्टेषु श्रुतेषु वा नोत्सुकः स्यात्। पाठांतरंवा। ननिश्रितोऽनिश्रितो ऽप्रतिबद्धः स्याद्यतमानश्च संयमानुष्ठाने परिसमंतान्मूलोत्तरगुणेषु उद्यमं कुर्वन् व्रजेत्संयमं गच्छेत् तथा चर्यायां भिक्षादिकायामप्रमत्तःस्यात् नाहारादिषु रसगार्ध्यं विदध्यादिति । तथा स्पृष्टश्चाभिद्रुतश्च परीषहोपसर्गैस्तत्रादीनमनस्कः कर्मनिर्जरां मन्यमानोविषहेत सम्यक् सह्यादिति ॥ ३० ॥

हम्ममाणो ण कुप्पेज्जा, वुच्चमाणो नसंजले ॥ सुमणे अहियासिज्जा, णय कोलाहलं करे ॥३१॥ लद्धे कामे ण पत्थेज्जा, विवेगे एव माहिए ॥ आयरियाइं सिक्खेज्जा, बुद्धाणं अंतिए सया ॥ ३२ ॥

अर्थ-(हम्ममाणोणकुप्पेज्जाके०) कोइए लाकडी अने मुष्ट्यादिके करी हण्यो छतो क्रोध नकरे (वुच्चमाणोनसंजलेके०) तथा डुर्वचने करी आक्रोश उपजाव्यो थको पण क्रोध नकरे, अने प्रति वचन पण नबोले; (सुमणेअहियासिज्जाके०) किंतु सुमन थको पूर्वोक्त परीसहने सहन करे, परंतु (णयकोलाहलंकरे के०) तेवा परीसहनी पीडायें पीड्यो थको कोलाहल नकरे ॥३१॥ (लद्धेकामेणपत्थेज्जाके०) प्राप्त थएला कामभोगने प्रार्थे नही एटले भोगवे नही, (विवेगेएवमाहिए के०) ए साधुनो विवेक श्रीतीर्थंकरे कह्योछे, (आयरियाइंसिक्खेज्जा के०) तथा जे आचरवायोग्य एवा ज्ञान, दर्शन अने चारित्रादिक तेने शीखे, परंतु कोनी पाशेथी शीखे तोके (बुद्धाणंअंतिएसया के०) गुरु जे आचार्य तेनी पाशेथी सदा शीखे एटले गुरु कुल वास कह्यो. ॥ ३२ ॥

॥ दीपिका—हन्यमानोयष्ट्यादिभिर्न कुप्येत कोपं न कुर्यात् डुर्वचनैरुच्यमानआक्रुश्यमानोन संज्वलेत नप्रलापं वदेत् सुमनाः कोलाहलमकुर्वन्नधिसहेत ॥ ३१ ॥ लब्धानपि कामान् भोगांश्च वैरस्वामिवन्नप्रार्थयेन्नगृह्णीयात् एवंकुर्वतोहि विवेकआविर्भावितः स्या

त् । आर्याणि शुनानि कर्तव्यानि बुद्धानामाचार्याणामंतिके समीपे शिक्षेताभ्यसेदनेन नित्यंगुरुकुले वासः सेवनीयइति ज्ञापितं ॥ ३२ ॥

॥ टीका–परीषहोपसर्गाधिसहनमेवाधिकृत्याह । (हम्ममाणोइत्यादि) हन्यमानो यष्टिमुष्टिलकुटादिनिरपि न कुप्येन्नकोपवशगोनवेत्तथा डुर्वचनान्युच्यमानआक्रुश्यमानो निर्नत्स्यमानोन संज्वलेन्न प्रतीपं वदेन्नमनागपि मनोऽन्यथात्वं विदध्यात् किंतु सुमनाः सर्वं कोलाहलमकुर्वन्नधिसहेतेति ॥ ३१ ॥ किंचान्यत् । (लद्धेकामेइत्यादि) लब्धान् प्राप्तानप्राप्तानपि कामानिन्नामदनरूपान्गंधालंकारवस्त्रादिरूपान्वा वैरस्वामिवन्नप्रार्थयेन्नानुमन्येत नगृह्णीयादित्यर्थः । यदिवा यत्र कामावसायितया गमनादिलब्धिरूपान् कामांस्तपोविशेष लब्धानपि नोपजीव्यान्नाप्यनागतान् ब्रह्मदत्तवत्प्रार्थयेदेवं च कुर्वतोनावविवेकआख्यातआविर्नावितोनवति । तथा आर्याण्यार्याणां कर्तव्यानि अनार्यकर्तव्यपरिहारेण । यदिवा आचर्याणि मुमुक्षुणां यान्याचरणीयानि ज्ञानदर्शनचारित्राणि तानि बुद्धानामाचार्याणामंतिके समीपे सदा सर्वकालं शिक्षेताभ्यसेदित्यनेन हि शीलवता नित्यं गुरुकुलवास आसेवनीयइत्यावेदितं नवतीति ॥ ३२ ॥

सुस्सूसमाणो उवासेज्जा, सुप्पन्नं सुतवस्सियं ॥ वीराजे अत्तप
न्नेसी, धितिमंता जिइंदिया ॥ ३३ ॥ गिहेदीवमपासंता, पुरिसा
दाणिया नरा ॥ ते वीरा बंधणुम्मुक्का, नावकंखंति जीवियं ॥३४॥

अर्थ–(सुस्सूसमाणोउवासेज्जाके०) सांजलवा वांबतो एवो जे साधु ते पोताना गुरुनी रुडी वैयावच्चादिक विश्रामणादिके करी सेवा करे, ते गुरु केवाहोय तोके (सुप्पन्नं सुतवस्सियंके०) स्वपर सिद्धांत जाणवाने नलीछे प्रज्ञा जेनी एटले रुडा गीतार्थी तथा रुडा तपना करनार एवा गुरुनी सेवा करे; ते केवा पुरुष गुरुनी सेवा करे तोके (वीरा के०) कर्मने जीतवा समर्थ तथा (जेअत्तपन्नेसी के०) जे सत्य बुद्धिना गवेषण हार तथा (धितिमंताजिइंदिया कं०) धैर्यवंत एटले जेमनुं संयममां एकाग्र चित्तछे, अने जीतेंडिय एवा जे पुरुष होय ते गुरुनी सेवा करे ॥ ३३ ॥ (पुरिसादाणियानरा के०) जे पुरुषादानीय एटले सत्यमार्गनी गवेषणा करनार एवा मनुष्य ते एम जाणेछे जे (गिहेके०) गृहस्थने नावे रेवा थकी (दीवंके०) ज्ञानरूप दीपक अथवा संसारनो उद्धार तेने (अपासंता के०) नथी देखता माटे चारित्र आदरेछे, (तेवीराबंधणुम्मुक्का के०) ते वीर पुरुष राग द्वेषादिक बंधनथी रहित थका (नावकंखंतिजीवियं के०) असंयमे जीवितव्य वांछे नही एटले जीववाने अर्थे असंयम करे नही ॥ ३४ ॥

॥ दीपिका—शुश्रूषमाणोगुर्वादेर्वैय्यावृत्यं कुर्वाणोगुरुमुपासीत सेवेत । गुरुं किंभूतं । सुप्रज्ञं गीतार्थं सुतपस्विनं संयमवंतं । यडुक्तं । नाणस्स होइ भागी, थिरयरउ दंसणे चरित्तेय ॥ धन्ना आवकहाए गुरुकुलवासं न मुंचंति ॥ १ ॥ ये वीराआत्मप्रज्ञान्वेषिणआत्महितान्वेषकाधृतिः संयमे रतिस्त ह्तोजितेंद्रियास्ते गुरुकुलवासिनः स्युः । यडुक्तं । जस्स धिई तस्स तवो जस्स तवो तस्स सुग्गई सुलहा ॥ जे अधिइमंतपुरिसा तवोवि खलु डुल्लहो तेसिमिति ॥ ३३॥ गृहे गृहस्थत्वे दीपं भावदीपं श्रुतज्ञानमपश्यंतोऽप्राप्नुवंतोनराः सम्यक् प्रव्रज्यापुरुषादानीयाः पुरुषाणामादानीयाआश्रयणीयामहतोपि महीयांसः स्युरित्यर्थः। यएवंभूतास्ते वीराबंधनोन्मुक्ताजीवितमसंयमजीवितं नावकांक्षंति नाभिलषंति ॥ ३४ ॥

॥ टीका—यडुक्तं बुद्धानामंतिके शिक्षेत्तत्स्वरूपनिरूपणायाह । (सुस्सूसमाणाइत्यादि) गुरोरादेशं प्रति श्रोतुमिच्छा शुश्रूषा गुर्वादेर्वैय्यावृत्त्यमित्यर्थः । तां कुर्वाणोगुरुमुपासीत सेवेत । तस्यैव प्रधानगुणद्वय द्वारेण विशेषणमाह । सुष्ठु शोभना वा प्रज्ञास्येति सुप्रज्ञः स्वसमयपरसमयवेदी गीतार्थइत्यर्थः । तथा सुष्ठु शोभनं वा सबाह्याभ्यंतरं तपोस्यास्तीति सुतपस्वी तमेवंभूतं ज्ञानिनं सम्यक्चारित्रवंतं गुरुं परलोकार्थी सेवेत । तथा चोक्तं। नाणस्स होइ भागी, थिरयरउ दंसणे चरित्तेय॥ धन्ना आवकहाए गुरुकुलवासं नमुंचंति। यएवं कुर्वंति तान् दर्शयति। यदिवा के ज्ञानिनस्तपस्विनइत्याह । वीराः कर्मविदारणसहिष्णवोधीरावा परीषहोपसर्गाक्षोभ्याः । धिया बुध्या राजंतीति वा धीराये केचनासन्नसिद्धिगमनाआप्तोरागादिविप्रमुक्तस्तस्य प्रज्ञा केवलज्ञानाख्या तामन्वेष्टुं शीलं येषां ते आप्तप्रज्ञान्वेषिणः सर्वज्ञोक्तान्वेषिणइतियावत् । यदिवा आत्मप्रज्ञान्वेषिणआत्मनः प्रज्ञा ज्ञानमात्मप्रज्ञा तदन्वेषिणआत्मज्ञत्वान्वेषिणआत्महितान्वेषिणइत्यर्थः । तथा धृतिः संयमे रतिः सा विद्यते येषां ते धृतिमंतः । संयमधृत्या हि पंचमहाव्रतभारोद्वहनं सुसाध्यं भवतीति । तपःसाध्या च सुगतिर्हस्तप्राप्तेति । तडुक्तं । जस्स धिई तस्स तवो, जस्स तवो तस्स सुग्गई सुलहा ॥ जे अधिइमंतपुरिसा तवोवि खलु डुल्लहो तेसिं ॥१॥ तथा जितानि वशीकृतानि स्वविषयरागद्वेषविजयेनेंद्रियाणि स्पर्शनादीनि यैस्ते जितेंद्रियाः शुश्रूषमाणा यथोक्तविशेषणविशिष्टाभवंतीति ॥३३॥ तदभिधित्सुराह । गिहेदीवमित्यादि) गृहे गृहवासे गृहपाशेवा गृहस्थभावइतियावत् । दीवंति । दीपीदीप्तौ दीपयति प्रकाशयतीति दीपः । सच भावदीपः श्रुतज्ञानलाभः। यदिवा द्वीपःसमुद्रादौ प्राणिनामावासभूतः सच भावद्वीपः संसारसमुद्रे सर्वज्ञोक्तचारित्रलाभस्तदेवंभूतं दीपं द्वीपं वा गृहस्थभावेऽपश्यंतोऽप्राप्नुवंतः संतः सम्यक् प्रव्रज्योत्थानेनोत्थिता उत्तरोत्तरगुणलाभेनैवंभूता भवंतीति दर्शयति। नराः पुरुषाः पुरुषोत्तमत्वाद्धर्मस्य नरोपादानमन्यथा स्त्रीणामप्येतद्गुणभाक्त्वं भवत्यथवा देवादिव्युदासार्थमिति । मुमुक्षूणां पुरुषाणामादानीयाआश्रयणीयाः पुरुषादानीयामहतोपि महीयां

सोन्नवंति । यदिवा आदानीयोहितैषिणां मोक्षस्तन्मार्गोवा सम्यक्दर्शनादिकः पुरुषाणां मनुष्याणामादानीयः सविद्यते येषामिति विगृह्य मत्वर्थीयोऽर्शआदिभ्योजिति । तथा यएवं नूतास्ते विशेषेणेरयंत्यष्टप्रकारं कर्मेति वीरास्तथा बंधनेन सबाह्याभ्यंतरेण पुत्रकलत्रादि स्नेहरूपेणोत्प्राबल्येन मुक्ताबंधनोन्मुक्ताः संतोजीवितमसंयमजीवितं प्राणधारणंवा ना विकांक्षंति नाभिलषंतीति ॥ ३४ ॥

अगिद्धे सद्दफासेसु, आरंभेसु अणिस्सिए ॥ सवं तं समयाती
तं, जमेतं लवियं बहु ॥ ३५ ॥ अइमाणंच मायंच, तं परिन्नाय
पंमिए ॥ गारवाणिय सवाणि, णिवाणं संधए मुणित्तिबेमि ॥
॥ ३६ ॥ इति श्रीधम्मनामं नवमज्झयणं सम्मत्तं.

अर्थ-(अगिद्धेसद्दफासेसु के०) शब्द गंध रूप रस स्पर्शादिकने विषे अगृद्ध एटले अमूर्छित तथा (आरंभेसु के०) छ कायना आरंभने विषे (अनिश्रित के०) प्रवर्त्ते नही, (सवंतंसमयातीतं के०) ए सर्व निषेधवाना कारण कह्या, ते सर्वने सिद्धांत थकी विपरीत जाणीने आचरवा नही. (जमेतंलवियंबहु के०) तथा जे विधि द्वारे कह्युंछे ते सर्व सिद्धांतने अनुसारे जाणीने आचरवुं ॥ ३५ ॥ (अतिमाणंचमायंच के०) अत्यंत मान अत्यंत माया च शब्द थकी क्रोध लोभ पण लेवा (तंपरिन्नायपंमिए के०) ए चार कषायने पंमित ज्ञ परिज्ञाये जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञाये करी परिहरे (गारवाणियस वाणि के०) तथा रसगारव ऋद्धिगारव अने सातागारव ए सर्वने सर्वथा परिहरे (णि वाणंसंधएमुणि के०) साधु चारित्रियो मोक्षने संधए एटले वांछे. त्तिबेमिनो अर्थ पूर्वव त् जाणवो ॥ ३६ ॥ इतिश्री धर्म नामा नवमा अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो.

॥ दीपिका-शब्दस्पर्शेषु । आद्यंतग्रहणान्मध्यग्रहणं । रूपगंधरसेष्वप्यगृद्धोऽनासक्त आरंभेष्वनिश्रितोऽप्रवृत्तः । सर्वमेतदध्ययनादेरारभ्य निषेधत्वेन यल्लपितमुक्तं मया बहु तत्समयाज्जैनागमादतीतमितिकृत्वा निषिद्धं ॥ ३५ ॥ अतिमानं तत्सहचरं क्रोधं माया तत्कार्यभूतं लोभं च तत्सर्वं पंमितः परिहरेत् सर्वाणि गारवाणि ऋद्धिरससातरूपाणि त्यक्त्वेति शेषः । साधुर्निर्वाणं मोक्षं सर्वकर्मक्षयं वा संदध्यात् । इतिब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ॥ ३६ ॥ इतिश्रीसूत्रकृतांगदीपिकायां नवमं धर्माध्ययनं समाप्तं ॥

॥ टीका-किंचान्यत् । (अगिद्धेत्यादि) अगृद्धोऽनध्युपपन्नोमूर्छितः । क्व । शब्दस्पर्शेषु मनोज्ञेष्वाद्यंतग्रहणान्मध्यग्रहणमतोमनोज्ञेषु रूपेषु गंधेषु रसेषु वा अगृद्धइति द्रष्टव्यं ।

तथेतरेषु वाऽद्विष्टइत्यपि वाच्यः। तथा आरंनेषु सावद्यानुष्ठानरूपेष्वनिश्रितोऽसंबद्धोऽप्रवृत्तइत्यर्थः। उपसंहर्तुकामआह। सर्वमेतदध्ययनादेरारन्य प्रतिपेध्यत्वेन यल्लपितमुक्तं मया बहु तत्समयादार्हतादागमादतीतमतिक्रांतमिति कृत्वा प्रतिषिद्धं।यदपिच विधिद्वारेणोक्तं तदेतत्सर्वं कुत्सितसमयातीतं लोकोत्तरं प्रधानं वर्तते। यदपिच तैः कुतीर्थिकैर्बहु लपितं तदेतत्सर्वं समयातीतमिति कृत्वा नानुष्ठेयमिति ॥ ३५ ॥ प्रतिपेध्य प्रधाननिषेध द्वारेण मोक्षानिसंधानेनाह (अतिमाणंचेत्यादि) अतिमानोमहामानस्तं। च शब्दात्सहचरितं क्रोधंच तथा मायां चशब्दात्तत्कार्यनूतं लोनंच तदेतत्सर्वं पंडितोविवेकी ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरें तथा सर्वाणि गारवाणि ऋद्धिरससातरूपाणि सम्यक् ज्ञात्वा संसारकारणत्वेन परिहरेत्परिहृत्यच मुनिः साधुर्निर्वाणमशेषकर्मक्षयरूपं विशिष्टाकाशदेशं वा संधयेदनिसंदध्यात् प्रार्थयेदितियावत्। इतिः परिसमाप्त्यर्थे। ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ३६ ॥ समाप्तं धर्माख्यं नवममध्ययनमिति ॥

हवे दशमुं समाधि नामे अध्ययन कहेछे नवमां अध्ययनने विषे धर्म कह्यो, ते धर्म समाधि विना थाय नही माटे दशमां अध्ययनमां समाधिनुं स्वरूप कहेछे.

आघं मईमंमणुवीय धम्मं, अंजू समाहिं तमिणं सुणेह ॥ अप्प
डिन्ने निरकू समाहिपत्ते, अणियाणनूते सुपरिवएज्जा ॥ १ ॥ उड्ढं
अहेयं तिरियं दिसासु,तसा य जे थावर जेय पाणा॥हबेहिं पाए
हिं य संजमित्ता, अदिन्नमन्ने सुयणो गहेज्जा ॥ २ ॥

अर्थ-(आघंमईमंमणुवीयधम्मं के०) मतिमंत एटले केवली नगवान् तेणे केवलज्ञाने करी विचारीने धर्म कह्यो, ते धर्म केवोछे तोके (अज्जुके०) ऋजु एटले सरलतापणु (समाहिंतमिणंसुणेहके०) तेनेज समाधि कहिए. ते समाधि श्री केवली नगवंते मने उपदेशीछे तेमज श्री सुधर्म स्वामि जंबुप्रत्ये कहेछे के हुं तमने कहुंछुं ते तमे सांनलो जे एवो साधु होय ते समाधिने प्राप्त थयो एरीते जाणो ते साधु केवो होय ते कहेछे. (अप्पडिन्नेके०) जेने तप संयम पालता थका इह लोक तथा परलोकना सुखनी वांछा करवी एवी प्रतिज्ञा नथी तेने अप्रतिज्ञ कहिए; एवो, तथा (अनिदाननूतेके०) निदान रहित एटले आश्रव रहित एवो छतो (सुपरिवएज्जा के०) रुडीरीते संयम पाले ते (निरकूके०) साधु (समाहिपत्ते के०) समाधि प्राप्त जाणवो ॥ १ ॥ (उड्ढंअहेयंतिरियं दिसासुके०) उंचा नीचा अने तिर्छा एम दिशो दिशे एटले सर्व लोकमांहे दिशि विदिशिने विषे (तसायजेथावरजेयपाणा के०) जे बेइंडियादिक त्रश जीवो तथा पृथ्विकाया

दिक स्थावर जीवोछे ते समस्त जीवोने (हत्थेहिंपाएहिंय के०) हाथें करी, पगे करी अथवा समस्त कायायें करी (संजमिता के०) संयत थतो एनी हिंसा नकरे उपलक्ष ण थकी एने कोइ पण कदर्थना नकरे तथा (अदिन्नमन्नेसुयणोगहेज्जा के०) अन्यनु अदत्तदान ग्रहण करे नही ए अर्थथी परिग्रह मैथुन मृषावादादिकने पण नसेवे ॥ २ ॥

॥ दीपिका–अथदशमाध्ययनमारन्यते । पूर्वं धर्मउक्तः सच समाधौ सति स्यादित्यत्र समाधिरुच्यते । (आघंमईममित्यादि । आघंमाख्यातवान् इमं वक्ष्यमाणं धर्मं मति मान् अर्हन् अनुविचिंत्य ज्ञानेन ज्ञात्वा । धर्मं किंनूतं । रुजुमवक्रं समाधिंच सम्यगधी यते मोक्षंप्रति योग्यः क्रियते आत्मायेन ससमाधिस्तमिमं समाधिरूपं धर्मं शृणुत यूयं । नविद्यते प्रतिज्ञा आकांक्षा तपसि क्रियायांवा यस्यासावप्रतिज्ञोनिस्पृहोनिक्षुः समा धिं धर्मं प्राप्तः नविद्यते निदानमारंनरूपं नूतेषु जंतुषु यस्यासावनिदानः सावद्यानुष्ठानर हितः परिव्रजेत् संयमे चरेत् ॥ १॥ ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्च त्रिषु लोकेषु प्राच्यादिदिक्षु च ये त्रसाः स्थावरा श्व ये प्राणिनः । एतान् प्राणिनोहस्तपादान्यां संयम्य बध्वा साधुः उप लक्षणादन्यथा वा कदर्थयित्वा डुःखोत्पादं न कुर्यात् । तथा अन्येन्योदत्तं नगृह्णीयात् तृतीयव्रतोपलक्षणादन्यान्यपि व्रतानि पालयेत्समाधिमाश्रयेदित्यर्थः ॥ २ ॥

॥ टीका–नवमानंतरं दशममारन्यते । अस्य चायमनिसंबंधः। इहानंतराध्ययने धर्मो ऽनिहितः सचाविकलः समाधौसति नवत्यतोधुना समाधिः प्रतिपाद्यते इत्यनेन संबंधे नायातस्याऽध्ययनस्य चत्वार्युपक्रमादीन्यनुयोगद्वाराणि वाच्यानि । तत्रोपक्रमांतर्गतोर्था धिकारोयं । तद्यथा । धर्मे समाधिःकर्तव्यःसम्यगाधीयते व्यवस्थाप्यते तन्मार्गेवा प्रति येना त्मा धर्मध्यानादिना ससमाधिर्धर्मध्यानादिकः सच सम्यक्ज्ञात्वा स्पर्शनीयः । नामनिष्पन्नं तु निक्षेपमधिकृत्य निर्युक्तिकृदाह । आयाणपदेणाघं गोणं णामं पुणो समाहित्ति॥णि क्खिविऊण समाहिं, नावसमाही इपगयंतु ॥ ५ ॥ (आयाणपदेणाघमित्यादि) आदीय ते गृह्यते प्रथममादौ यत्तदादानमादानंच तत्पदंच सुबंतं तिङंतंवा तदादानपदं तेनाघंति नामास्याध्ययनस्य यस्मादध्ययनादाविदं सूत्रं । (आघंमईमंमणुवीइ धम्ममित्यादि) य थोत्तराध्ययनेषु चतुर्थमध्ययनं प्रमादाप्रमादानिधायकमप्यादानपदेनासंक्ष्य मित्युच्यते गुणनिष्पन्नं पुनरस्याध्ययनस्य नामसमाधिरिति । यस्मात्सएवात्र प्रतिपाद्यते तं च स माधिं नामादिना निक्षिप्य नावसमाधिनेह प्रकृतमधिकारइति । समाधिनिक्षेपार्थमा ह । णामंठवणादविए, खेत्ते काले तहेव नावेय ॥ एसोउ समाहीए, णिक्खेउ छव्विहोहोइ ॥ ॥ ६ ॥ (णामंठवणाइत्यादि) नामस्थापना ड्व्यक्षेत्रकालनावनेदात् । एषतु समाधिनि क्षेपः षड्विधोनवति । तुशब्दोगुणनिष्पन्नस्यैव नाम्नोनिक्षेपोनवतीत्यस्यार्थस्याविर्नाव

नार्थइति । नामस्थापने सुगमत्वादनादृत्य इव्यादिकमधिकृत्याह । पंचसु विसएसु सुने, सु दवंमि जावसमाहित्ति ॥ खेत्तंतु जम्मि खेत्ते, काले कालो जहिं जोक ॥ ७ ॥ (पंचसि त्यादि) पंचस्वपि शब्दादिषु मनोज्ञेषु विषयेषु श्रोत्रादींडियाणां यथा स्वप्राप्तौ सत्यां य स्तुष्टिविशेषः सद्रव्यसमाधिस्तदन्यथा त्वसमाधिरिति । यदिवा इव्ययोर्ड्व्याणां वा सन्मिश्रा णामविरोधिनां सतां न रसोपघातोजवत्यपितु रसपुष्टिः सद्रव्यसमाधिः । तद्यथा क्षीरशर्क रयोर्दधिगुडचातुर्जातकानां चेति । येनवा इव्येणोपयुक्तेन समाधिपानकादिना समाधिर्ज वति तद्रव्यं । इव्यसमाधिस्तुलादावारोपितं वा यत् इव्यं समतामुपैतीत्यादिकोड्व्य समाधिरिति । क्षेत्रसमाधिस्तु यस्य यस्मिन्वा क्षेत्रे व्यवस्थितस्य समाधिरुत्पद्यते सक्षेत्र प्राधान्यात् क्षेत्रसमाधिर्यस्मिन्वा क्षेत्रे समाधिर्व्याख्यायतइति । कालसमाधिरपि यस्य यं का लमवाप्य समाधिरुत्पद्यते । तद्यथा । शरदिगवां नक्तमुलूकानामहनि वलिभुजां यस्य वा या वंतं कालं समाधिर्जवति यस्मिन्वा समाधिर्व्याख्यायते सकालप्राधान्यात् कालसमाधिरि ति । जावसमाधिंत्वधिकृत्याह । जावसमाहिंचचुविहं, दंसणणाणे तवे चरित्तेय ॥ चउसुवि समाहियप्पा सम्मंचरणछिर्त साहू ॥ ८ ॥ (जावसमाहीत्यादि) जावसमाधिस्तु दर्शनज्ञान तपश्चारित्रजेदाच्चतुर्धा । तत्र चतुर्विधमपि जावसमाधिं समासतोगाथापश्चार्धेनाह । मुमुक्षु णा चर्यतइति चरणं । तत्र सम्यक्चरणे चारित्रे व्यवस्थितः समुद्युक्तः साधुर्मुनिश्चतुर्ष्व पि जावसमाधिजेदेषु दर्शनज्ञानतपश्चारित्ररूपेषु सम्यगाहितोव्यवस्थापितश्चात्मा येन ससमाहितात्मा जवति । इदमुक्तं जवति । यःसम्यचरणे व्यवस्थितः सचतुर्विधजा वसमाधिसमाहितात्मा जवति योवाजावसमाधिसमाचितात्मा जवति ससम्यक्च रणे व्यवस्थितोड्टव्यइति । तथाहि । दर्शनसमाधौ व्यवस्थितोजिनवचनजावितां तःकरणोनिर्वातशरणप्रदीपवन्नकुमतिवायुनिर्भ्राम्यते । ज्ञानसमाधिना तु यथा यथा पूर्वश्रुतमधीते तथातथातीव जावसमाधावुद्युक्तोजवति । तथा चोक्तं । जहजह सु यमवगाहइ अइसयरसपसरसंजुयमउव्वं । तहतह पल्हाइ मुणी एव एवसंवेगस छाए । चारित्रसमाधावपि विषयसुखनिस्पृहतया निष्किंचनोपि परं समाधिमाप्नोति । तथाचोक्तं । तणसंथारणिसन्नो मस्सितरोजछरागजयमोहो ॥ जं पावइ मुत्तिसुहं क त्तोतं चक्कवट्टीवि ॥ नैवास्ति राजराजस्येत्यादि तपःसमाधिनापि निकृष्टतपसोपि नग्ला निर्जवति । तथा क्षुत्तृषादिपरीषहेन्योनोद्विजते । तथा अन्यस्ताज्यंतरतपोध्यानाश्रितम नाः सनिर्वाणस्थइव नसुखडःखान्यां बाध्यतइत्येवं चतुर्विधजावसमाधिस्थः सम्यक्चर णव्यवस्थितोजवति साधुरिति । गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपः । सांप्रतं सूत्रानुगमेऽस्खलिता दिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं (आघंमईमित्यादि) अस्य चायमनंतरसूत्रेण सह संबंधः । तद्यथा । अशेषगारवपरिहारेण मुनिर्निर्वाणमनुसंधयेदित्येतद्भगवानुत्पन्नदिव्यना

ज्ञानः समाख्यातवानेतच्च वक्ष्यमाणमाख्यातवानिति (आघंति) आख्यातवान् कोसौ। मतिमान् मननं मतिः समस्तपदार्थपरिज्ञानं तद्विद्यते यस्यासौ मतिमान् केवलज्ञानीत्यर्थः। तत्रासाधारणविशेषणोपादानात्तीर्थकृद् गृह्यते। असावपि प्रत्यासत्ते र्वीरोवर्धमानस्वामी गृह्यते। किमाख्यातवान् धर्मं श्रुतचारित्राख्यं। कथं। अनुविचिंत्य केवलज्ञानेन ज्ञात्वा प्रज्ञापनयोग्यान् पदार्थानाश्रित्य धर्मं नाषते। यद्विवा ग्राहकमनुविचिंत्य कस्यार्थस्यायं ग्रहणसमर्थस्तथाकोयं पुरुषः कंच नतः किंदर्शनमापन्नइत्येवं पर्यालोच्य धर्मशुश्रूषवोवा मन्यंते। यथा प्रत्येकमस्मदभिप्रायमनुविचिंत्य नगवान् धर्मं नाषते युगपत्सर्वेषां स्वनाषापरिणत्या संशयापगमादिति। किंनूतं धर्मं नाषते। ऋजुमवक्रं यथावस्थितस्वरूपं वस्तुस्वरूपनिरूपणतोन। यथा शाक्याः सर्वं क्षणिकमन्युपगम्य कृतनाशाकृताभ्यागमदोषनयात्संतानान्युपगमं कृतवंतस्तथावनस्पतिमचेतनत्वेनान्युपगम्य स्वयं न छिंदंति तच्छेदनादावुपदेशं तु ददति तथा कार्षापणादिकं हिरण्यं स्वतोनस्पृशंत्य परेणतु तत्परिग्रहतः क्रयविक्रयं कारयंति। तथा सांख्याः सर्वमप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वनावं नित्यमन्युपगम्य कर्मबंधमोक्षानावप्रसंगदोषनयादाविर्नावतिरोनावावाश्रितवंतइत्यादिकौटिल्यनावपरिहारेणावक्रं तथ्यं धर्ममाख्यातवान्। तथा सम्यगधीयते मोक्षं तन्मार्गंवा प्रत्यात्मा योग्यः क्रियते व्यवस्थाप्यते येन धर्मेण सधर्मः समाधिस्तं समाख्यातवान्। यद्विवा धर्ममाख्यातवांस्तत्समाधिं च धर्मध्यानादिकमिति सुधर्मस्वाम्याह तमिमं धर्मं समाधिं वा नगवदुपदिष्टं शृणुत यूयं। तद्यथा। नविद्यते ऐहिकामुष्मिकरूपा प्रतिज्ञा आकांक्षा तपोनुष्ठानं कुर्वतोयस्यासावप्रतिज्ञोनिक्षणशीलोनिक्षुः। तुर्विशेषणे। नावनिक्षुरसावेव परमार्थतः साधुधर्मं धर्मसमाधिंच प्राप्तोसातितिं। तथा नविद्यते निदानमारंनरूपं नूतेषु जंतुषु यस्यासावनिदानः सएवंनूतः सावद्यानुष्ठानरहितः परिसमंतात्संयमानुष्ठाने व्रजेद्गच्छेदिति। यद्विवा अनिदाननूतोऽनाश्रवनूतः कर्मोपादानरहितः सुष्ठु परिव्रजेत्। सुपरिव्रजेत् यद्विवा अनिदाननूतान्यनिदानकल्पानि ज्ञानादीनि तेषु परिव्रजेत्। अथवा निदानं हेतुः कारणं दुःखस्यातोनिदाननूतः कस्यचिद्दुःखमनुपादयन् संयमे पराक्रमेतेति ॥१॥ प्राणिपातादीनितु कर्मणोनिदानानि वर्तंते। प्राणातिपातोपि द्रव्यक्षेत्रकालनावनेदाच्चतुर्धा। तत्र प्राणातिपातमधिकृत्याह॥ (उड्ढंअहेइत्यादि) सर्वोपि प्राणातिपातः क्रियमाणः प्रज्ञापकापेक्षयोर्ध्वमधस्तिर्यक् क्रियते। यद्विवा ऊर्ध्वाधस्तिर्यक्रूपेषु त्रिषुलोकेषु तथा प्राच्यादिषु दिक्षु विदिक्षु चेति। द्रव्यप्राणातिपातस्त्वयं। त्रस्यंतीति त्रसाद्वींद्रियादयोयेच स्थावराः पृथिव्यादयः। चकारः स्वगतनेदसंसूचनार्थः कालप्राणातिपातसंसूचनार्थो वा। दिवा रात्रौ वा प्राणाः प्राणिनां नावप्राणातिपातंत्वाह। एतान् प्रागुक्तान् प्राणिनोहस्तपादान्यां बध्वा उपलक्षणार्थत्वादस्यान्यथावा कदर्थयित्वा यत्तेषां दुःखोत्पादनं तन्न कुर्या

त् ।यदि चैते प्राणिनोहस्तौ पादौ संयम्य संयतकायः सन्न हिंस्यात् । चशब्दाडुच्छासनिश्वास कासकासितक्षुतवातनिसर्गादिषु सर्वत्र मनोवाक्कायकर्मसु संयतोनगवान् नावसमाधिमनु पालयेत्तथा परैरदत्तं नगृह्णीयादिति तृतीयव्रतोपन्यासः।अदत्तादाननिषेधाच्चार्थतः परिग्र होनषिद्धोनवति नापरिगृहीतमासेव्यतइति मैथुननिषेधोप्युक्तः । समस्तव्रतपालनोपदे शाच्च मृषावादोप्यर्थतोनिरस्तइति ॥ २ ॥

सुयरकायधम्मे वितिगिछतिसे, लाढे चरे आयतुले पयासु ॥
आयं न कुज्जा इह जीवियठी,चयं नकुज्जा सुतवस्सि निरकू॥३॥
सविंदियानिनिवुमे पयासु, चरे मुणी सव्वतो विप्पमुक्के ॥ पासा
हि पाणे य पुढोवि सत्ते, डुरकेण अट्टे परितप्पमाणे ॥ ४ ॥

अर्थ-(सुयरकायधम्मे के०) समाधिवंत जे साधु छे ते एम जाणेके श्रीवीतरागें जे धर्म नाष्योछे. ते रुडो कह्योछे. ए श्रुताख्यात धर्म एवो होय एम साधु जाणे एटले गी तार्थ पणुं कह्युं; तथा (वितिगिछतिसे के०) जे श्रीवीतरागे कह्युं तेने संदेह रहित पणे तहत्ति करी मानतो थको रहे; एटले ज्ञान दर्शन रूप समाधि कही तथा (लाढेच रेके०) निर्दोष आहारनो लेनार एवो छतो विचरे एटले संयम पाले तथा (पयासु के०) प्रजा एटले सर्वजीवने (आयतुले के०) पोताना आत्मतुल्य करी लेखवे, तथा (आयंन कुज्जाइहजीवियठी के०) जीववाने अर्थे आय एटले आश्रव नकरे अर्थात् असंयमाश्र व नकरे तथा (सुतवस्सिनिरकू के०) सुतपस्वी एवो साधु (चयंनकुज्जा के०) धन धान्यादिक परिग्रहनो संचय नकरे. ॥३॥ (सव्विंदियानिनिवुमेपयासुके०) समस्त इंद्रिय नो संवर करीने निरानिलाषी थाय, ते कोनेविषे तोके प्रजा एटले स्त्रीने विषे निरानि लाषी थाय अर्थात् स्त्रीने देखी पांचे इंद्रियोनो संवर करे. (चरेमुणीसव्वतोविप्पमुक्केके०) तथा सर्व थकी विप्रमुक्त एटले स्वजनादिक द्रव्य संग अने क्रोधादिक नाव संग ए सर्व संग थकी रहित थयो छतो एवो साधु संयम आचरे. (पाणेयपुढोविसत्ते के०) तथा प्रत्येक जुदा जुदा पृथ्विकायादिकजे सत्व एटले जीवछे तेमने (डुरकेणअट्टे के०) डुःखे करीआर्त्त (परितप्पमाणे के०) परितप्पमान एटले संसाररूप कडाहमां कर्मरूप इंधणेकरी पचता एवा (पासाहिके०) देखीने समाधिवान साधु सर्व जीवनी दया पाले.

॥ दीपिका-सुष्ठु आख्यातोधर्मोयेन सस्वाख्यातधर्मा जुगुप्साचित्तविप्लुतिस्तां तीर्णोऽति क्रांतः। येन केन चिदाहारोपकरणादिनाऽऽत्मानं यापयतीति लाढः सएवंनूतश्चरेत्संयमे । पु नःकिंनूतः । प्रजासु प्राणिषु आत्मतुल्यआत्मवत्सर्वप्राणिनः पश्यतीत्यर्थः । तथा जीवि

लमसंयमजीवितं तस्यार्थी आयमाश्रवरूपं न कुर्यात्। तथा सुतपस्वी भिक्षुः चयं आहारौषध्यादेः संचयं न कुर्यात् ॥ ३ ॥ सर्वेंद्रियनिर्वृतः संवृतेंद्रियइत्यर्थः । कासु प्रजासु स्त्रीषु। स्त्रीषु संवृतेंद्रियः स्यादिति सर्वतोविप्रमुक्तोनिःसंगः सन् चरेत्संयमाध्वनि पृथक् पृथक् पृथिव्यादिकायेषु सत्वान् प्राणिनोऽपिशब्दा द्वनस्पतिकायेऽनंतानपि पश्य। किंभूतान् दुःखार्तान् स्वकर्मणा संसारकटाहे परिपच्यमानान् ॥ ४ ॥

॥ टीका–ज्ञानदर्शनसमाधिमधिकृत्याह । (सुयरकायधम्मेत्यादि) सुष्ठ्वाख्यातः श्रुतचारित्राख्योधर्मोयेन साधुनाऽसौ स्वाख्यातधर्माऽनेन ज्ञानसमाधिरुक्तोभवति।नहि विशिष्टपरिज्ञानमंतरेण स्वाख्यातधर्मत्वमुपपद्यतइति भावः। तथा विचिकित्साचित्तविप्लुतिर्वि द्वज्जुगुप्सा वा तां वितीर्णोतिक्रांतः। तदेव च निःशंकं यज्जिनैः प्रवेदितमित्येवं निःशंकतया न क्वचिच्चित्तविप्लुतिं विधत्तइत्यनेन दर्शनसमाधिः प्रतिपादितोभवति। येन केनचित्प्रासुकाहारोपकरणादिगतेन विधिनात्मानं यापयति पालयतीति लाढः सएवंभूतः संयमानुष्ठानं चरेदनुतिष्ठेत्तथा प्रजायंतइतिप्रजाः पृथिव्यादयोजंतवस्तास्वात्मतुल्यआत्मवत्सर्वप्राणिनः पश्यतीत्यर्थः। एवंभूतएव साधुर्भवतीति । तथाचोक्तं । जह ममणपियं दुःखं, जाणिय एमेव सव्वजीवाणं ॥ णहणइणहणावेइ, सममणइ तेण सोसमणो ॥ २ ॥ यथाच समाक्रुश्यमानस्यान्याख्यायमानस्य दुःखमुत्पद्यते एवमन्येषामपीत्येवं मत्वा प्रजास्वात्मसमोभवति। तथा इहासंयमजीवितार्थी प्रभूतकालं सुखेन जीविष्यामीत्येतदध्यवसायी आयं कर्माश्रवलक्षणं न कुर्यात्तथा चयमुपचयमाहारोपकरणादेर्धनधान्यद्विपदचतुष्पदादेवी परिग्रहलक्षणं संचयमत्यर्थं सुष्ठु तपस्वी सुविकृष्टतपोनिष्टप्तदेहोभिक्षुर्नकुर्यादिति ॥३॥ किंचान्यत्। (सर्वेंदियइत्यादि) सर्वाणि च तानि इंद्रियाणिच स्पर्शनादीनि तैरभिनिर्वृतः संवृतेंद्रियोजितेंद्रियइत्यर्थः। क्व। प्रजासु स्त्रीषु । तासु हि पंचप्रकाराअपि शब्दादयोविषया विद्यंते। तथाचोक्तं , कलानि वाक्यानि विलासिनीनां, गतानि रम्याण्यवलोकितानि ॥ रतानि चित्राणिच सुंदरीणां, रसोपि गंधोपि च चुंबनादेः ॥ १ ॥ तदेवं स्त्रीषु पंचेंद्रियविषयसंभवात्तद्विषये संवृतसर्वेंद्रियेण भाव्यमेतदेव दर्शयति । चरेत्संयमानुष्ठानमनुतिष्ठेत् मुनिः साधुः सर्वतः सबाह्याभ्यंतरात्संगाद्विप्रेण प्रमुक्तोनिःसंगोनिष्किंचनश्चेत्यर्थः। स एवंभूतः सर्वबंधनविमुक्तः सन् पश्यावलोकय पृथक् पृथिव्यादिषु कायेषु सूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तकभेदभिन्नान्सत्वान्प्राणिनोऽपिशब्दा द्वनस्पतिकाये साधारणशरीरिणोऽनंतानप्येकत्वमागतान् पश्य । किंभूतान् । दुःखेनासातवेदनीयोदयरूपेण दुःखयतीतिवा दुःखमष्टप्रकारं कर्म तेनार्तान् पीडितान्परिसमंतात्संसारकटाहोदरे स्वकृतबंधनेन परिपच्यमा

नान् क्राथ्यमानान यदिवा डुःप्रणिहितेंड्रियानार्तध्यानोपगतान्मनोवाक्कायैः परितप्यमानान् पश्येति संबंधोलगनीयइति ॥ ४ ॥

एतेसु वालेय पाठांतरे (एवं बालेय) पकुव्वमाणे, आवट्टती पाठांतरे (आउट्टती) कम्मसु पावएसु ॥ अतिवायतो कीरति पावकम्मं, निउंजमाणे उ करेइ कम्मं ॥ ५ ॥ आदीणवित्तीव पाठांतरे (आदीणभोइ वि) करेति पावं, मंताउ एगंतसमाहिमाहु ॥ बुद्धे समाहीयरते विवेगे, पाणातिवाता विरते ठियप्पा पाठांतरंवा (ठियच्ची) ॥ ६ ॥

अर्थ–(एतेसु के०) ए पूर्वोक्त पृथिव्यादिक जीवोने (बालेय के०) अज्ञानी जीव अनेक संघटन परिताप उपड्वादिके करी (पकुव्वमाणे के०) पाप कर्म करतो थको वली तेजीव तेहिज पृथिव्यादिक जीवोने विषे आवीने (आवट्टती के०) घणा डुःख पामे. (कम्मसुपावएसुके०) जे पापकर्म पोते जेवा प्रकारे कर्युं होय ते पाप कर्म तेवा प्रकारे तेजीव भोगवे. हवे ते पाप कहेछे. (अतिवायतोकीरतिपावकम्मंके०) अतिवाय एटले जीवनी घात तेथकी ज्ञानावर्णादिक पाप कर्मने समाचरे (निउंजमाणेउ करेइकम्मंके०) तथा बीजा सेवकादिकने पण जीवघातनी प्रेरणा करतो थको पाप कर्म बांधे, एटले हिंसा करतो करावतो तथा अनुमोदतो थको पाप कर्मनुं बंध करे; एमज मृषावादादिकने पण सेवतो सेवरावतो अनुमोदन करतो थको पाप कर्मनुं बंध करे. ॥५॥ (आदीणवित्तीवकरेतिपावं के०) दीन एटले दयामणी एवी, आहार लेवानी जेनी वृत्तिछे तेने आदीन वृत्ति कहिए; एवो छतो पण पापकर्म बांधे, केमके आहारनी लोलुपता थकी आर्त्त रौड् ध्याने वर्त्ते ते थकी कर्म बांधे, (मंताउएगंतसमाहिमाहुके०) एवुं जाणीने श्रीतीर्थंकर गणधरे संसार तरवारनुं कारण एकांते आहारादिकने अर्थे पण अरत्यादिक नकरे एवी समाधि कहीछे. (बुद्धसमाहीयरतेविवेगे के०) ते कारणे बुद्ध एटले तत्वनो जाण एवो साधु समाधिने विषे रत होय ते साधु विवेकी एवो छतो शुं करे ते कहेछे (पाणातिवाताविरतेठियप्पाके०) प्राणातिपात जे जीवनी हिंसा ते थकी विरमीने संयमने विषे जेनो आत्मा सत्यमार्गेने विषे व्यवस्थितछे एवो थाय ॥ ६ ॥

॥ दीपिका–एतेषु प्राणिषु बालोज्ञः संघट्टपरितापोपड्वादि प्रकुर्वाणस्तेषु पापेषु कर्मसु भत्सु आवर्त्यते डुःखभाग्भवति अतिपाततोहिंसातः पापकर्मक्रिया नबध्यते परान् भृत्यादीन् नियोजयन् कर्म करोति प्राणातिपातादिकं कुर्वन् कारयंश्च कर्म बध्नातीति ॥ ५ ॥ आसमंताद्दीना करुणा वृत्तिस्तया भोजी आहारग्राही शोभनाहारमप्राप्नुवन्नार्त

रौद्रध्यानात्कर्म करोति बध्नाति। यथा राजगृहनगरोत्सवनिर्गतजनसमूहे कश्चिद्रमको भिक्षार्थी वांछिताहारमप्राप्तोवैभारगिरिशिलापातनोद्यतः सएव दैवात् शिलाधःपतितः शिलाचूर्णितः सप्तमपृथ्वीं जगामेति। एवमादीनजोजी कर्म बध्नाति एवं मत्वा ज्ञात्वा एकांते न समाधिर्ज्ञानादिभावसमाधिस्तमाहुः संसारतारणक्षमं जिनाः।बुद्धोज्ञाततत्वः समाधौ ज्ञानादिके विवेकेवा रतोव्यवस्थितः प्राणातिपाताद्विरतः स्थितात्मा मर्यादावान् स्यात्॥६॥

॥टीका–अपिच (एतेसुइत्यादि) एतेषु प्राङ्गिर्दिष्टेषु प्रत्येकं साधारणप्रकारेषूपतापक्रियया बालवद्बालोज्ञश्चशब्दादितरोपि संघट्टनपरितापनोपद्रवणादिकेनानुष्ठानेन पापानि कर्माणि प्रकर्षेण कुर्वाणस्तेषुच पापेषु कर्मसु सत्सु एतेषु वा पृथिव्यादिजंतुषु गतः संस्तेनैव संघट्टनादिना प्रकारेणाऽनंतशआवर्त्यते पीड्यते दुःखभाग्भवतीति। पाठांतरंवा एवं तु बाले) एवमित्युपप्रदर्शने। यथा चौरः पारदारिकोवासदनुष्ठानेन हस्तपादछेदान् बंधवधादींश्चावाप्नोत्येवं सामान्यदृष्टेनानुमानेनान्योपि पापकर्मकारी इहामुत्रच दुःखभाग्भवति (आउट्टतित्ति) क्वचित्पाठः। तत्राशुभान् कर्मविपाकान् दृष्ट्वा श्रुत्वा ज्ञात्वा वा तेभ्योऽसदनुष्ठानेभ्यआउट्टतित्ति निवर्तते। कानि पुनः पापस्थानानि येभ्यः पुनः प्रवर्तते निवर्तते वा इत्याशंक्य तानि दर्शयति। अतिपाततः प्राणातिपाततः प्राणव्यपरोपणाद्धेतोस्तच्चाशुभं ज्ञानावरणादिकं कर्म क्रियते समादीयते तथा परांश्च भृत्यादीन् प्राणातिपातादौ नियोजयन् व्यापारयन् पापं कर्म करोति। तुशब्दान्मृषावादादिकंच कुर्वन् कारयंश्च पापकं कर्म समुच्चिनोतीति॥ ५॥ किंचान्यत् (आदीणवित्तीत्यादि) आसमंताद्दीना करुणास्पदा वृत्तिरनुष्ठानं यस्य कृपणवनीपकादेः सभवत्यादीनवृत्तिरेवंभूतोपि पापं कर्मकरोति। पाठांतरंवा आदीनभोज्यपि पापं करोतीति। उक्तंच। पिंडोलगेव दुःसीले णरगाउणमुच्चइ। सकदाचिद्भोजनमाहारमलभमानोऽल्पत्वादार्तरौद्रध्यानोपगतोप्यधः सप्तम्यामप्युत्पद्येत। तद्यथा। असाविव राजगृहनगरोत्सवनिर्गतजनसमूहोवैभारगिरिशिलापातनोद्यतः सदैवात्स्वयं पतितपिंडोपजीवीति तदेवमादीनभोज्यपि पिंडोलकादिवज्ज्ञः पापं कर्म करोतीत्येवं मत्वा अवधार्य एकांतेनात्यंतेन च योभावरूपोज्ञानादिसमाधिस्तमाहुः संसारोत्तरणाय तीर्थंकरगणधरादयः। द्रव्यसमाधयोहि स्पर्शादिसुखोत्पादकाअनैकांतिकाश्च नात्यंतिकाश्च भवंत्यंतेचावश्यमसमाधिमुत्पादयंति। तथाचोक्तं। यद्यपि निषेव्यमाणा, मनसः परितुष्टिकारकाविषयाः॥ किंपाकफलादनवद्भवंति पश्चादतिदुरंताइत्यादि। तदेवं बुद्धोऽवगततत्वः सचतुर्विधे ज्ञानादिके समाधावैकांतिकात्यंतिकसुखोत्पादके रतो व्यवस्थितोविवेकेवा आहारोपकरणकषायपरित्यागरूपे द्रव्यभावात्मके रतः सन्नेवंभूतश्च स्यादित्याह। प्राणानां दशप्रकाराणामप्यतिपातोविनाशस्तस्माद्विरतः स्थितः

सम्यक् मार्गेषु आत्मा यस्य सः । पाठांतरंवा (ठियच्चित्ति)·स्थिता शुद्धस्वनावात्मना अ र्चिर्लेश्या यस्य सनवति स्थितार्चिः सुविशुद्धस्थिरलेश्यइत्यर्थः ॥ ६ ॥

सवं जगं तं समयाणुपेही, पियमप्पियं कस्सइ णो करेजा ॥ उघा
य दीणोय पुणो विसन्नो, संपूयणं चेव सिलोयकामी ॥७॥ आहा
कडं चेव निकाममीणे नियामचारीय विसएमेसी ॥ इछीसु सत्तेय
पुढोय वाले, परिग्गहं चेव पकुवमाणे ॥ ८ ॥

अर्थ–(सवंजगंके०) सर्वजगत् एटले जीव अर्थात् ठ निकायना जीव (तंके०) ते स र्वेने (समयाणुपेहीके०) समता नावे करी पोताना आत्मा समान देखे (पियमप्पियं के०) प्रीतिनावते राग अप्रीतिनाव ते द्वेष ए बन्ने (कस्सइके०) कोइ उपरे (णोकरे ज्जा के०) नकरे, एटले कोइ उपर सारुं मातुं चिंतवे नही, (उघायदीणोयके०) तथा कोइक चारित्र आदरी पढी तेने पालवा असमर्थ एटले दीन थाय (पुणोविसन्नोके०) वली विषयानिलाषी थको गृहस्थपणु आदरे कंमरीकनी पेरे संसारमांहे खुचे, वली को इएक (संपूयणंचेव के०) वस्त्र पात्रादिके करी पूजा वांढे तथा (सिलोयकामी के०) लोकमांहे पोतानी श्लाघा करावना माटे व्याकर्ण ज्योतिषादिक कुशास्त्र पण नणे, एवो पुरुष समाधि थकी न्रष्ट जाणवो. ॥ ७ ॥ (अहाकडंचेवनिकाममीणे के०) आ धाकर्मि उद्देशी आहारने अत्यंत वांढतो थको तेवो आहार लेवाने अर्थे (नियामचा रीय के०) अत्यंत न्रमण करे एवो ढतो (विसन्नमेसिं के०) संसार रूप कादवमांहे खूतोज रहे. (इछीसुसत्तेयपुढोयबाले के०) स्त्रीने विषे आसक्त जुदा जुदा ते रमणी ना हाव नाव विलासने विषे गृद्ध ढतो ड्व्य विना स्त्रीनी प्राप्ति नथाय एम विचारी ते बाल एटले अज्ञानी पुरुष (परिग्गहंचेवपकुव्वमाणे के०) परिग्रहने धन धान्यादिक तेनो संचय करतो थको वली घणा पाप कर्मने उपार्जे अर्थात् पापनो संचय करे. ॥८॥

॥ दीपिका–सर्वं जगत् प्राणिगणं समतयानुप्रेक्षतइति समतानुप्रेक्षी प्रियमप्रियं वा कस्यचिन्न कुर्यात् निःसंगोविहरेदित्यर्थः । कश्चित्तु सम्यगुत्थानेनोत्थाय परीषहाभिर्दी नः पुनर्विषस्सः स्यात् संयममादृत्यापि पश्चात्पार्श्वस्थादिनावं प्रतिपद्यते कश्चिदित्यर्थः। तथा संपूजनं वस्त्रपात्रादिना प्रार्थयेत् श्लोककामी श्लाघानिलाषी व्याकरणगणितनि मित्तादिशास्त्राण्यधीते कश्चित् ॥ ७ ॥ आधाकर्म आहारोपाध्यादिकं (निकाममीणे त्ति) अत्यर्थानिलाषी तथा आधाकर्मादिनिमंत्रणेषु निकामचारी अत्यंतं प्रवृत्तोविष ष्णुनावं संयमे शीतलत्वं एषते श्रयति । तथा स्त्रीषु सक्तः पृथक् तद्भाषितहसितवि

नासादिषु आसक्तोबालोज्ञोऽव्यमंतरेण स्त्रीप्राप्तिर्नस्यादिति तडुपायनूतं परिग्रहं प्रकुर्वाणः पापमेव बध्नाति ॥ ८ ॥

॥ टीका—किंच (सव्वंजगमित्यादि) सर्वं चराचरं जगत् प्राणिसमूहं समतया प्रेक्षितुं शीलमस्य समतानुप्रेक्षी समतापश्यकोवा नकश्चित्प्रियोनापि द्वेष्यइत्यर्थः । तथा चोक्तं । नत्थियस कोइविस्सो, पिउसव्वेसु चेवजीवेसु । तथा (जहममणपियं डुःखमित्यादि) समतोपेतश्च न कस्यचित्प्रियमप्रियं वा कुर्यान्निःसंगतया विहरेदेवं हि संपूर्णनावसमाधियुक्तोनवति । कश्चित्तु नावसमाधिना सम्यग्ज्ञानेनोत्थाय परीषहोपसर्गैस्तर्जितोदीननावमुपगम्य पुनर्विषण्णोनवति विषयार्थीवा कश्चिगार्हस्थ्यमप्यवलंबते रससातागौरवगृद्धोवा पूजासत्कारानिलाषी स्यात्तदनावे दीनः सन् पार्श्वस्थादिनावेन वा विषण्णोनवति । कश्चित्तथा संपूजनं वस्त्रपात्रादिना प्रार्थयन् श्लाघानिलाषीच व्याकरणगणितज्योतिषनिमित्तशास्त्राण्यधीते कश्चिदिति ॥ ७ ॥ किंचान्यत् (आहकडंचेत्यादि) साधूनाधायोद्दिश्य कृतं निष्पादितमाधाकर्मेत्यर्थः । तदेवंनूतमाहारोपकरणादिकं निकाममत्यर्थं यः प्रार्थयते स निकाममीणः । तथा निकाममत्यर्थं आधाकर्मादीनि तन्निमित्तनिमंत्रणादीनि वा सरति चरति तच्छीलश्च सतथा एवंनूतं पार्श्वस्थावसन्नकुशीलानां संयमोद्योगे विषण्णानां विषण्णनावमेषते सदनुष्ठानविषण्णतया संसारपंकावसन्नोनवतीति यावत् । अपिच स्त्रीषु रमणीष्वासक्तोऽध्युपपन्नः पृथक्पृथक् तद्भाषितहसितविब्बोकशरीरावयवेष्विति । बालवद्बालोज्ञः सदसद्विवेकविकलस्तदवसक्ततया च नान्यथा ऽव्यमंतरेण तत्संप्राप्तिर्नवतीत्यतो येन केनचिडुपायेन तडुपायनूतं परिग्रहमेव प्रकर्षेण कुर्वाणः पापं कर्म समुच्चिनोतीति॥८

वेराणुगिद्धे (पाठांतरे आरंनसत्तो) णिचयं करेति, इउ चुतेसु डुहमघडुग्गं ॥ तम्हा उ मेधावि समिक्खधम्मं, चरे मुणी सवउ विप्पमुक्के ॥ ए ॥ आयं ण कुज्जा पाठांतरे (बंदं ण कुज्जा) इह जीवियठी, असज्जमाणोय परिवएज्जा ॥ णिसम्म नासीय विणीय गिद्धिं,हिंसन्नियं वा ण कहं करेज्जा ॥१०॥

अर्थ—(वेराणुगिद्धेके०) जे कोइ परोपताप रूप कर्मेकरी वैरनुं अनुबंध करे तेने वेरानुगृद्ध कहिये. अथवा (आरंनसत्तोणिचयंकरेति के०) आरंनने विषे आसक्त बतो कर्मनो संचय करे एवो पुरुष (इउचुतेसुके०) अहीं थकी चवीने ते (डुहमडुग्गंके०) परमार्थ थकी डुर्ग एटले विषम डुष्कर एवुं नरकादिक स्थानकने पामे, (तम्हाउ के०)ते कारण माटे (मेधाविके०) पंमित होय ते (समिक्खधम्मं के०) सम्यक् प्रकारे आलोचीने श्रुत चारित्ररूप धर्मजे श्रीवीतरागे नाष्योबे, तेने विषे (चरेके०) विचरे एवो (मुणी

के०) साधु (सव्वउविप्पमुक्के के०) सर्व संग थकी विप्र मुक्त बतो विचरे ॥ ए ॥ (इ हजीवियठी) साधु आ संसार मांहे आजीविकाने अर्थे (आयंके०) लान एटले इ व्यादिक उपार्जन करवानो उपाय ते (णकुज्जा के०) नकरे तथा (असज्जमाणोयप रिव्वएज्जा के०) गृह पुत्र कलत्रादिकनो समागम अणकरतो थको संयमने विषे प्रवर्त्ते, शुद्ध चारित्रपाले (णिसम्मनासीयविणीयगिद्धिंके०) तथा कोइ कार्यउपना थका विमा सीने बोले पण उंरु बोले नही एटले शब्दादिक पांच प्रकारना विषयने विषे गृद्धपणु टालीने आलोचीने बोले अर्थात् (हिंसन्नियंवाणकहंकरेज्जा के०) प्राणीनी हिंसाकारक एवी कथा नकरे, एटले जे वचन थकी जीव हणाय नही तेवा वचन बोले ॥ १० ॥

॥ दीपिका—वैरानुगृद्धः परोपतापसक्तोनिचयं कर्मबंधं करोति । इतोनवाच्च्युतः सङुः खमुपैति । किंनूतं डुःखं । अर्थडुर्गं परमार्थविपमं तस्मान्मेधावी विवेकी धर्मं समीक्ष्य विचार्य मुनिः सर्वतोविप्रमुक्तोनिःस्पृहः सन् चरेत्संयमे ॥ए॥ आयमिति । आयं इव्यादि संचयं नकुर्यात् । इहनवे असंयमजीवितार्थी तथा असज्जमानः संगमकुर्वन्परिव्रजे त् गृद्धिं आसक्तिविपयेषु विनीय त्यक्त्वा निशम्य पर्यालोच्य नापकोनवेत् हिंसयान्वि तां युक्तां कथां नकुर्यान्न ब्रूयात् ॥ १० ॥

॥ टीका—तथा (वेराणुगिद्धेइत्यादि) येन केन कर्मणा परोपतापरूपेण वैरमनुबध्यते जन्मांतरशतानुयायि नवति तत्रगृद्धोवैरानुगृद्धः । पागंतरंवा (आरंनसत्तोत्ति) आरंने सावद्यानुष्ठानरूपे सक्तोलग्नोनिरनुकंपोनिचयं इव्योपचयं तन्निमित्तापादितकर्मनिचयं स्थानाच्च्युतोजन्मांतरं गतः सन् वा करोत्युपादत्ते सएवंनूतउपात्तवैरः कृतकर्मोपचय इत्यतोऽस्मात्स्थानाच्च्युतोजन्मांतरंगतः सन्ः डुःखयतीति डुःखं नरकादिकयातनास्थानम र्थतः परमार्थतोडुर्गं विपमं डुरुत्तरमुपैति । यतएवं तत्तस्मान्मेधावी विवेकी मर्यादावान् वा संपूर्णसमाधिगुणं जानानोधर्मं श्रुतचारित्राख्यं समीक्ष्यालोच्यांगीकृत्य मुनिः साधुः सर्वतः सबाह्यन्यंतरात्संगाद्विप्रमुक्तोऽपगतः संयमानुष्ठानं मुक्तिगमनैकहेतुनूतं चरेदनु तिष्ठेत् रूयारंनादिसंगाद्विप्रमुक्तोनिःश्रितनावेन विहरेदिति यावत् ॥ ए ॥ किंचान्यत् (आयंणकुज्जाइत्यादि) आगछतीत्यायोइव्यादेर्लानस्तन्निमित्तापादितोऽष्टप्रकारकर्मलानो तमिहास्मिन् संसारे असंयमजीवितार्थी नोगप्रधानजीवितार्थीत्यर्थः । यदिवा आजी विकानयात् इव्यसंचयं न कुर्यात् । पागंतरंवा (बंदंणकुज्जाइत्यादि) बंदः प्रार्थनानि लाषइंड्रियाणां स्वविषयानिलाषोवादं नकुर्यात्तथा असज्जमानः संगमकुर्वन् गृहपुत्र कलत्रादिषु परिव्रजेडुद्युक्तविहारी नवेत्तथा गृद्धिं गार्ध्यं विषयेषु शब्दादिषु विनीयाप नीय निशम्यावगम्य पूर्वोत्तरेण पर्यालोच्य नाषकोनवेत् । तदेव दर्शयति । हिंसया प्रा

त्युपमर्दरूपया अन्वितां युक्तां कथां न कुर्यात् । नतत्प्रब्रूयात् यत्परात्मनोरुभयोव बाधकं वचइति भावः । तद्यथा । अश्नीतपिबत खादतमोदत हतछिंदत प्रहरतपचते त्यादिकथां पापोपादानभूतां नकुर्यादिति ॥ १० ॥

आहाकडं वा ण णिकामएज्जा, णिकामयं तेयण संथवेज्जा॥ धुणे उरालं अणुवेहमाणे, विच्चाण सोयं अणवेरकमाणो ॥ ११ ॥ ए गंतमेयं अभिपत्थएज्जा, एवं पमोरको न मुसंति पासं ॥ एस प्पमो रको अमुसे वरेवि, अकोहणे सच्चरते तवस्सी ॥ १२ ॥

अर्थ-(आहाकडंवाणणिकामएज्जा के०) आधाकर्मि प्रमुख आहारादिकनो सर्वे था प्रकारें साधु अभिलाष करे नही (णिकामयंतेयणसंथवेज्जा के०) तथाजे आधा कर्मि आहारनी वांछना करे एवा पासत्थादिक तेने संस्तवे नही एटले तेनी साथे परि चय करे नही. तथा (उरालं के०) शरीर तेने (धुणे के०) कृश करे (अणुवेहमा णो के०) निर्जराने आलोचीने एम विचारेजे शरीरने कृश करियें तो निर्जरा थाय, एम चिंतवी शरीर कृश करतां कदाचित् शोक दुःखउपजे तो (विच्चाणसोयंअणवेरकमा णे के०) शरीरनु ममत्व अण करतो ते शोक छांमी चारित्र पाले, संयम गुणे साव धान थाय· ॥ ११ ॥ (एगंतमेयंअभिपत्थएज्जा के०) साधु एकल पणानीज प्रार्थना करे एटले एकत्व पणु वांछे कारणके जीव एकलो आव्यो तथा परभवे दुर्गतिने विषे जाय तेवारे पण एकलोज जाय पण कोइ एने सहायी थाय नही, एकलोज कर्म बांधे एकलोज भोगवे, ते माटे एकत्व भावना भावे (एवंपमोरको नमुसंतिपासं के०) एम ए कल भावनायें प्रकर्षें करी मोक्ष एटले संगरहित पणो, थाय. एम देखीने मृषा एटले अलीक भाषा बोले नही (एसप्पमोरकोके०) एम एकत्व भावनानो अभिप्राय ते प्रकर्षे करी मोक्षछे (अमुसेवरेविके०) मृषा रहित एवो प्रधान सत्यपणु एनेज भाव समाधि कहिए जे साधु (अकोहणे के० अक्रोधि क्षमावंत (सच्चरतेके०) सत्यने विषे रत (तवस्सीके० तथा तपस्वी एवो चारित्रानुष्ठानवान् एवो जे साधु ते साधु भावसमाधिवंत जाणवो.॥१२॥

॥ दीपिका—आधायकृतमाधाकर्मादि न कामयेन्नाभिलषेत् तथाविधाहारमभिलष माणात् पार्श्वस्थादीन्नसंस्तुयात् तैः समं परिचयं न कुर्यात् उदारं उदारिकशरीरं विकृष्टतप सा निर्जरामनुप्रेक्षमाणोधुनीयात् कृशं कुर्यात् । तथानुकाम्यपि शोकं त्यक्त्वाऽनपेक्षमा णः शरीरनिरापेक्षोधुनीयात् ॥ ११ ॥ एकत्वमसहायत्वं प्रार्थयेत् एकत्वभावनां भाव येदित्यर्थः । एवमेकत्वभावनया प्रकर्षेण मोक्षः स्यादिदं न मृषा इति पश्य सत्यमेवैतदि

ति विचारय एषएव एकत्वाभिप्रायः अमृषारूपः सत्योवरः प्रधानश्च । यदि वा अक्रोधनः सत्यरतस्तपस्वी सएव भावसमाधिवान् वरः प्रधानः स्यात् ॥ १२ ॥

॥ टीका—अपिच । (आहाकडंचेत्यादि) साधूनाधाय कृतमाधाकृतमौद्देशिकमाधाकर्मेत्यर्थः । तदेवंभूतमाहारजातं निश्चयेनैव नकामयेन्नाभिलषेत्तथा विहारादिकंच निकामं निश्चयेनाभिलषेत् पार्श्वस्थादींस्तत्संपर्कदानप्रतिग्रहसंभाषणादिभिर्न संस्थापयेन्नोपबृंहयेत्तैर्वा सार्धं संस्तवं न कुर्यादिति । किंच (उरालंति) औदारिकं शरीरं विशिष्टतपसा कर्मनिर्जरामनुप्रेक्षमाणोधुनीयात् कृशं कुर्यात् । यदिवोरालंति बहुजन्मांतरसंचितं कर्म तद्दारं मोक्षमनुप्रेक्षमाणोधुनीयादपनयेत्तस्मिंश्च तपसा धूयमाने कृशीभवति । शरीरके कदाचित् शोकः स्यात्तं त्यक्त्वा याचितोपकरणवदनप्रेक्षमाणः शरीरकं धुनीयादिति संबंधः ॥११॥ किंचापेक्षितेत्याह । (एगंतमेवेत्यादि) एकत्वमसहायत्वमभिप्रार्थयेदेकत्वाध्यवसायी स्यात् । तथाहि । जन्मजरामरणरोगशोकाकुंले संसारे स्वकृतकर्मणा विलुप्यमानानामसुमतां न कश्चित्त्राणसमर्थः सहायः स्यात् । तथाचोक्तं । एकोमेसासउअप्पा, णाणदंसणसंजुउ ॥ सेसामेबाहिराभावा, सव्वे संयोगलरकणाइत्यादिकामेकभावनां भावयेदेवमनयैकत्वभावनया प्रकर्षेण मोक्षः प्रमोक्षोविप्रमुक्तसंगता न मृषा अलीकमेतद्भवतीत्येवंपश्य। एषचैकत्वभावनाभिप्रायः प्रमोक्षोवर्तते अमृषारूपः सत्यश्चायमेव। तथा वरोपिप्रधानोप्ययमेव भावसमाधिर्वा। यदिवा तपस्वी तपोनिष्टप्तदेहोऽक्रोधनः। उपलक्षणार्थत्वादस्यामानोनिर्मायोनिर्लोभः सत्यरतश्च एषएव प्रमोक्षोऽमृषा सत्योवरः प्रधानश्च वर्ततइति॥१२

इत्थीसु या आरय मेहुणाउ, परिग्गहं चेव अकुव्वमाणे ॥ उच्चावए
सु विसएसु ताई, निस्संसयं भिक्कु समाहिपत्ते॥ १३ ॥ अरइं
रइंच अभिभूय भिक्कू, तणाइफासं तह सीयफासं ॥ उण्हंच दं
संच हियासएज्जा, सुब्भिंव दुब्भिंव तितिरकएज्जा ॥ १४ ॥

अर्थ—(इत्थीसुया के०) स्त्रीने विषे (मेहुणाउ के०) मैथुन सेववा थकी (आरय के०) निवर्त्ते (परिग्गहं चेवअकुव्वमाणे के०) तथा धन धान्यादिक परिग्रहनो संचयअण करतो थको तथा (उच्चावएसु विसएसुताईके०) नाना प्रकारना मनोज्ञ एवा वचनना जे प्रकार तेने विषे अथवा नाना प्रकारना विषय तेने विषे राग द्वेषे रहित होय, तथा त्राइ एटले छकायनो रक्षपाल थको (निस्संसयं भिक्कु समाहिपत्ते के०) एवो भाव समाधिने विषे प्राप्त थयलोजे साधु, ते विषयने निसंश्रय एटले नपामे एटले विषयने वांछे नही ॥ १३ ॥ हवे भाव थकी समाधि शीरीते साधु पामे ते देखाडेछे. (अरइं रइंच अभिभूय भिक्कू के०) ते भाव साधु परमार्थनो जाण शरीरादिकने विषे निस्पृह

हि थको तथा संयमने विषे अरति अने असंयमने विषे रति तेने टालीने (तणाइ फासंतहसीयफासं के०) तृणादिकनो कठोर स्पर्श सहन करे. आदिशब्दथकी उंचो नीचो प्रदेश तेनो स्पर्शपण जाणवो ते स्पर्शनेपण सहन करे तथा शीत प्रमुखनुं स्पर्श तथा (उण्हंचदंसंच हियासएज्जा के०) उष्णनो स्पर्श. दंशमसकादिकनो स्पर्श तेनेपण साधु सम्यक् प्रकारे सहन करे तथा (सुब्भिंव डुब्भिंवतितिरकएज्जाके०) समाधिवंत साधु सुन्निरगंध डुरन्निगंधना परिसहने पण सम्यक् प्रकारे अहियासे एटले सहन करे ॥ १४ ॥

॥ दीपिका—स्त्रीषु यन्मैथुनं न स्यात् आरतआसमंताद् रतोऽसक्तः परिग्रहमकुर्वन् उच्चावचेषु ननाविधेषु विषयेषु अरक्तद्विष्टस्त्रायी परेषां त्राणनूतोनिःसंशयं निक्षुरेवंनूतः साधुः समाधिप्राप्तः स्यात् ॥ १३ ॥ अरतिं रतिंवा अनिनूय निक्षुस्तृणादिस्पर्शान् शीतोष्णस्पर्शान् दंशमशकादीन् परीषहांश्चाधिसहेत सुरनिमसुरनिं वा गंधं तितिक्षेत्सहेत ॥ १४ ॥

टीका—किंचान्यत् (इत्थीसुइत्यादि) दिव्यमानुषतिर्यग्रूपासु त्रिविधास्वपि स्त्रीषु विषयनूतासु यन्मैथुनमब्रह्म तस्मादासमंतान्नरतोऽरतोनिवृत्तइत्यर्थः। तु शब्दात्प्राणातिपातादिनिवृत्तश्च। तथा परिसमंताद्गृह्यते इति परिग्रहोधनधान्यद्विपदचतुष्पदादिसंग्रहः। तथा आत्माऽत्मीयग्रहस्तं चैवाकुर्वाणः सन्नुच्चावचेषु नानारूपेषु विषयेषु । यदिवोच्चाउत्कृष्टाश्चवचाजघन्यास्तेष्वरक्तद्विष्टस्त्राय्यपरेषांच त्राणनूतोविशिष्टोपदेशदानतोनिःसंशयं निश्चयेन परमार्थतोनिक्षुः साधुरेवंनूतोमूलोत्तरगुणसमन्वितोनावसमाधिं प्राप्तोनवति नापरः कश्चिदिति । उच्चावचेषु वा विषयेषु वा नावसमाधेः प्राप्तोनिक्षुर्न संश्रयं याति नानारूपान् विषयान् नसंश्रयतीत्यर्थः ॥ १३ ॥ विषयाननाश्रयन् कथं नावसमाधिमाप्नुयादित्याह । (अरइंरइंचेत्यादि) सन्नावनिक्षुः परमार्थदर्शी शरीरादौ निस्पृहोमोक्षगमनैकप्रवणश्च या संयमेऽरतिरसंयमेच रतिर्वा तामनिनूय एतदधिसहेत। तद्यथा। निष्किंचनतया तृणादिकान् स्पर्शानादिग्रहणान्निम्नोन्नतनूतप्रदेशस्पर्शांश्च सम्यगधिसहेत तथा शीतोष्णदंशमशकक्षुत्पिपासादिकान् परीषहानक्षोन्यतया निर्जरार्थमध्यासहेदधिसहेत तथा गंधं सुरनिमितरं च सम्यक् तितिक्षयेत्सहयात् । चशब्दादाक्रोशवधादिकांश्च परिषहान्मुमुक्षुस्तितिक्षयेदिति ॥ १४ ॥

गुत्तो वईएय समाहिपत्तो, लेसं समाहट्टु परिव्वएज्जा ॥ गिहं न
छाए णवि छायएज्जा, समिस्सन्नावं पयहे पयासु ॥ १५ ॥ जे के
इ लोगंमि उ अकिरियआया, अन्नेण पुट्ठा धुयमादिसंति ॥ आ
रंनसत्ता गढिताय लोय, धम्मं ण जाणंति विमुक्कहेउं ॥ १६ ॥

अर्थ-(गुत्तोवईएयसमाहिपत्तो के०) वचने करी गुप्त मौनव्रती एटले विचारीने धर्म संबंधनुं नाषण करनार एवो साधु नाव समाधिने विषे पोहोतो कहेवाय; तथा (लेसंसमाहट्टु परिवएज्जा के०) कृष्ण, नील अने कापोत ए त्रण अशुनलेश्याने परिहरिने तेज, शुक्ल अने पद्म ए त्रण शुन लेश्याने ग्रहण करीने संयमानुष्ठान पाले, (गिहंनछाएणविछायएज्जा के०) तथा पोते घरने ढाहे नही बीजाने हाथे बवरावे नही उपलक्षण थकी बवरावताने अनुमोदे नही;तथा बीजा पण गृहस्थ पणाना कर्तव्यने परिहरे तथा (पयासु के०) प्रजालोकने विषे (समिस्सनावं के०) विषयमिश्रित नावनो (पयहे के०) त्याग करे जे पचन पाचनादिक क्रिया करता गृहस्थ समान थाय ते नकरे अथवा प्रजा एटले स्त्री तेनी साथें मिश्रनावनो त्याग करे एटले स्त्री थकी दूर रहे. ॥ १५ ॥ (जेकेइ लोगंमिउ अकिरियआया के०) जे कोइ सांख्य दर्शनी लोक मांहे एम कहेबे के आत्मा अक्रियबे आत्माने क्रिया नथी, पण प्रकृति सर्व क्रिया करेबे एम बंध मोक्षने अण मानता थका बोलेबे (अन्नेणपुठा धुयमादिसंति के०) तेने अन्य दर्शनी कोइ पूबे के तमारा मते जो आत्मा कर्त्ता नथी तो बंध मोक्ष केम घटे तेवारे तेने फरी एमज कहेके अमारा दर्शनमांज ध्रुव एटले मोक्षबे परंतु अन्य कोइ दर्शने मोक्ष नथी एवा ते (आरंनसत्ता गढितायलोय के०) पचन पाचन स्नानादिकना आरंनने विषे आसक्त बता अत्यंत गृद्ध एवा थका रहेबे परंतु ते कहेवाबे तोके आ लोकने विषे (धम्मंणयाणंतिविमुरकहेउं के०) मोक्षनो हेतु एवो जे श्रुत चारित्र रूप धर्म तेने नथी जाणता एवाबे. ॥ १६ ॥

॥ दीपिका-वाचा गुप्तोमौनव्रती समाधिप्राप्तः स्यात् । शुद्धां लेश्यां समाहृत्यादाय परिव्रजेत् संयमेगृहं स्वतोन्येनवा न छादयेत् अपरमपि गृहसंस्कारं किंचिन्न कुर्यात् । तथा प्रजाः स्त्रियस्तासु मिश्रनावमेकत्वं प्रजह्यात्त्यजेत् ॥ १५ ॥ ये केचिल्लोकेऽक्रियात्मानोऽक्रियावादिनः सांख्याः । तुर्विशेषेणे । तेऽन्येनाऽक्रियत्वे सति बंधमोक्षौ नघटेते इत्यनिप्रायवता पृष्टाः संतोधूतं मोक्षं क्रियासाध्यमादिशंति । तेतु पचनाद्यारंनसक्तास्तु लोके धर्मं श्रुतचारित्राख्यं विमोक्षहेतुं न जानंति ॥ १६ ॥

॥ टीका-किंचान्यत् (गुत्तोवईए इत्यादि) वाचि वाचा वा गुप्तोवाग्गुप्तोमौनव्रती सुपर्यालोचितधर्मसंबंधनाषीवेत्येवं नावसमाधिं प्राप्तोनवति । तथा शुद्धां लेश्यां तैजस्यादिकां समाहृत्योपादाय अशुद्धांच कृष्णादिकामपहृत्य परिसमंतात्संयमानुष्ठानेन व्रजेद्गछेदिति । किंचान्यत् गृहमावसथं स्वतोन्यैर्वा नविछादयेडपलक्षणार्थत्वादस्यापरमपि गृहादेरुरगवत्परकृतबिलनिवासित्वात्संस्कारं न कुर्यात् । अन्यदपि गृहस्थकर्तव्यं परिजिहीर्षुराह ।

प्रजायंतइति प्रजास्तासु तद्विषये येन कृतेन सन्मिश्रनावोनवति तत्प्रजह्यात्। तदुक्तं नवति। प्रव्रजितोपि सन् पचनपाचनादिकां क्रियां कुर्वन् कारयंश्च गृहस्थैः सन्मिश्रनावं नजते यदिवा प्रजाः स्त्रियस्तासु तानिर्वा यः सन्मिश्रीनावस्तमविकलसंयमार्थी प्रजह्यात्परित्यजेदिति ॥ १५ ॥ अपिच । (जेकेइइत्यादि) ये केचन अस्मिन् लोके अक्रियआत्मा येषामन्युपगमे तेऽक्रियात्मानः सांख्यास्तेषां हि सर्वव्यापित्वादात्मा निष्क्रियः पठ्यते। तथाचोक्तं। अकर्ता निर्गुणोनोक्ता, आत्मा कपिलदर्शनइति । तुशब्दोविशेषणे । सचैतद्विशिनष्टि । अमूर्तत्वव्यापित्वान्यामात्मनोऽक्रियत्वमेव बुध्यते। तेचाक्रियात्मवादिनोन्येनाक्रियत्वे सति बंधमोक्षौ नघटेते इत्यनिप्रायवता मोक्षसन्नावं पृष्टाः संतोऽक्रियावाददर्शनेपि धूतं मोक्षं तदनावमादिशंति प्रतिपादयंति तेतु पचनपाचनादिके स्नानार्थं जलावगाहनरूपे वाऽरंने सावद्ये सक्ताअध्युपपन्नालोके मोक्षैकहेतुनूतं धर्मं श्रुतचारित्राख्यं न जानंति कुमार्गग्राहिणोन सम्यगवगछंतीति ॥ १६ ॥

पुढोय बंदा इह माणवाउ, किरियाकिरीणं च पुढोय वायं ॥जायस्स बालस्स पकुव देहं, पाठांतरे (जायाई बालस्स पगप्नणाए) पवट्टती वेरमसंजतस्स ॥ १७ ॥ आउक्खयं चेव अबुज्ममाणे, ममाति से साहसकारि मंदे ॥ अहोयराउ परितप्पमाणे, अट्टेसु मूढे अजरामरेव ॥ १८ ॥

अर्थ-(इहमाणवाउ के०) आलोकने विषे जे मनुष्यछे ते प्रत्येकमनुष्य (पुढोयबंदा के०) पृथक् पृथक् जुदा जुदा छंद एटले अनिप्राय वालाछे ते अनिप्राय कोण कोणते देखाडेछे (किरियाकिरीणंचपुढोयवायं के०) क्रियावादी एम कहेछे के सर्वकाल क्रियाज सफलछे. अने अक्रियावादी एम कहेछे के क्रिया कखाविनाज सर्व इछित पदार्थनी प्राप्ति थायछे. एमज वली बीजा विनय प्रमुख वादीउ पण जाणी लेवा ए सर्व पुढोय एटले पृथक पृथक वायं एटले वदेछे; परंतु ते धर्मना अजाण बापडा (जायस्सबालस्सपकुव्वदेहं के०) जात एटले उत्पन्न थयेला बालकनी देहं एटले शरीर तेने खंम खंम करीने पोताने सुख उपजावे छे, तथा पाठांतरे जायाइबालस्सपगप्नणाए एवो पण पाठ छे एवीरीते करतां ते (असंजतस्स के०). असंयति एटले संयम रहित थका (पवट्टतीवेर के०) वेरने वधारेछे एटले जे जीवनी उपघात करे तेते जीवनी साथे वैरनी वृद्धि थायछे. ॥ १७ ॥ ते बापडा (आउक्खयं के०) आयुष्यना क्षयने (अबुज्ममाणे के०) अजाणता एटले आयुष्य खूटेछे तेने नथी जाणता. अहीं चेव पदपूर्णार्थेछे एवा छता (ममाति के०) अत्यंत ममत्व करेछे एटले आ माहारुं छुं एनो एवा

ममत्वने नथी मूकता (सेसाहसकारिमंदे के०) ते महोटा साहासीक एटले पाप थकी बीता नथी एवा मंद एटले अज्ञानी (अहोयराउपरितप्पमाणे के०) अहोरात्र परित प्तमान एटले इव्यने अर्थे मम्मण श्रेष्ठिनी पेरे पश्चाताप करे कायक्लेशकरे तथा (अ ट्टेसुमूढेअजरामरेव्व के०) आर्त्तवंत थया थका एवा ते मूर्ख संसारने विषे परिभ्रमण करे परंतु अजरामर वणिकनी पेरे कोइ काले मनमां एम नजाणे जे अमने जरा अने मरण अवश्य आवशे एमविचारेनही. एवाते मूर्ख अज्ञानी जाणवा ॥ १८ ॥

॥ दीपिका—पृथक्छंदानानानिप्रायाइह मनुष्यलोके मानवाः । तुर्निश्चये । क्रियाक्रिय योः पृथक्त्वेन क्रियावादमक्रियावादं च समाश्रिताः।जातस्य उत्पन्नस्य बालस्याज्ञस्य सु खैषिणोदेहं (पकुव्वन्ति) खंडशःकृत्वाऽऽत्मसुखमुत्पादयंति। एवंकुर्वतोऽसंयतस्य वैरं प्राणि षु प्रवर्धते ॥ १७ ॥ आयुःक्षयं जीवितांतमबुध्यमानोऽजानन् साहसमविमृश्य प्रवृत्ति स्तत्करणशीलः साहसकारी मंदोममायमिति ममत्ववान् नवति । यथा कश्चिद्वणिक् महता क्लेशेन बहुमूल्यरत्नानि प्राप्य उज्जयिन्याबहिरावासितः सच राजचौरदायादनयाद्रा त्रौ रत्नान्येवमेवं नगरे नयामीत्येवं विचाराकुलोनिशाक्षयं नज्ञातवान् दिवैव रत्नानि प्र वेशयन् राजपुरुषैर्धृतोरत्नानि गृहीतानिचेति । एवमन्योपि किंकर्तव्यताकुलः स्वायुःक्ष यमजानन् ममतया साहसकारी स्यादिति । अन्हि रात्रौ च परितप्यमानोमंमणवणि ग्वदार्तध्यानी अर्थेषु मूढोऽजरामरवत्क्लिश्यते ।यतः । अजरामरवद्बालः क्लिश्यते धन काम्यया ॥ निरंतरं मन्यमानः शाश्वतं जीवितं धनमिति ॥ १८ ॥

॥ टीका—किंचान्यत् । (पुढोयछंदाइत्यादि) पृथक् नाना छंदोऽनिप्रायोयेषां ते पृथ क्छंदाइहास्मिन्मनुष्यलोके मानवामनुष्याः । तुरवधारणे । तमेव नानानिप्रायमाह । क्रि याऽक्रिययोः पृथक्त्वेन क्रियावादमक्रियावादंच समाश्रिताः।तद्यथा । क्रियैव फलदा पुं सां, नज्ञानं फलदं मतं ॥ यतः स्त्रीनक्ष्यनोगज्ञो, न ज्ञानात्सुखितोनवेत् ॥१॥ इत्येवं क्रियैव फलदायित्वेनान्युपगताः क्रियावादमाश्रिताएवमेतद्विपर्ययेणाऽक्रियावादमाश्रि ताः।एतयोश्चोत्तरस्वरूपं न्यक्षेण वक्ष्यते। तेच नानानिप्रायामानवाः क्रियाक्रियादिकं पृ थग्वादमाश्रितामोक्षहेतुं धर्ममजानानाआरंनेषु सक्ताइंद्रियवशगारससातागारवानि लाषिणएतत्कुर्वंति । तद्यथा । जातस्योत्पन्नस्य बालस्याज्ञस्य सदसद्विवेकविकलस्य सु खैषिणोदेहं शरीरं पकुव्वति खंडशः कृत्वात्मनः सुखमुत्पादयंति। तदेवं परोपघातक्रियां कुर्वतोऽसंयतस्य कुतोप्यनिवृत्तस्य जन्मांतरशतानुबंधिवैरं परस्परोपमर्दकारि प्रकर्षेण व र्धते। पाठांतरंवा (जायाइबालस्सपगब्नणाए) बालस्याज्ञस्य हिंसादिषु कर्मसु प्रवृत्तस्य निरनुकंपस्य या जाता प्रगल्नता धार्ष्ट्यं तया वैरमेव प्रवर्धतइति संबंधः ॥ १७ ॥ अ

पिच । (आउरकयमित्यादि). आयुषोजीवनलक्षणस्य क्षयआयुष्कक्षयस्तमारंभप्रवृत्त छिन्नहृदमत्स्यवदुदकक्षये सत्यबुध्यमानोतीव ममइति ममत्ववानिदं मे अहमस्य स्वामीत्येवं समंदोज्ञः साहसं कर्तुं शीलमस्येति साहसकारीति । तद्यथा । कश्चिद्वणिङ् महाक्लेशेन महार्घाणि रत्नानि समासाद्योज्जयिन्याबहिरावासितः । सच राजचौरदायादनयाऽत्रौ रत्नान्येवमेवंच प्रवेशयिष्यामित्येवं पर्यालोचनाकुलोरजनीक्षयं न ज्ञातवान् अन्ह्येव रत्नानि प्रवेशयन् राजपुरुषैरत्नेन्यश्च्यावितइति एवमन्योपि किंकर्तव्यताकुलः स्वायुषः क्षयमबुध्यमानः परिग्रहेष्वारंभेषु च प्रवर्तमानः साहसकारी स्यादिति । तथा कामभोगतृषितोऽन्हि रात्रौ च परिसमंतात् द्रव्यार्थी परितप्यमानोमंमणवणिग्वदार्तध्यायी कायेनापि क्लिश्यते । तथाचोक्तं । अजरामरवद्बालः, क्लिश्यते धनकाम्यया ॥ शाश्वतं जीवितं चैव, मन्यमानोधनानिच ॥ १ ॥ तदेवमार्तध्यानोपहतः । कइयावच्चइसत्थो, किंभंडंकच्छकित्तियाभूमीत्यादि । तथा उक्कणइखणइणिहणइरत्ति नसुयइदियावियससंको इत्यादि चित्तसंक्लेशात्सुष्ठु मूढोजरामरवणिग्वदजरामरवदात्मानंमन्यमानोऽपगत शुभाध्यवसायोहर्निशमारंभे प्रवर्ततइति ॥ १८ ॥

जहाहि वित्तं पसवोय सवं, जे बंधवा जेय पियाय मित्ता॥लाल
प्पती से विय एइ मोहं, अन्ने जणा तंसि हरंति वित्तं ॥१९॥ सी
हं जहा खुड्डमिगा चरंता, दूरे चरंती परिसंकमाणा ॥ एवं तु मे
हावि समिक्ख धम्मं, डुरेण पावं परिवज्जएज्जा ॥ २० ॥

अर्थ-(जहाहि के०) यथा दृष्टांते (वित्तं के०) सुवर्णादिक द्रव्य तथा (पसवोय के०) गाय भेश प्रमुख पशुउं (सवं के०) ए सर्व तारो त्याग करशे माटे एमने विषे ममत्व करीश नही. वली (जेबंधवा जेयपियायमित्ता के०) यथा दृष्टांते भाइ माता पिता ससुरादय प्रिय मित्र ते पण परमार्थ थकी तने काम नही आवे तोपण तुं बापडो तेमने अर्थे विलाप करेछे. (लालप्पतीसेविय एइमोहं के०) लालप्यते सोपिमोहंउपेति एटले वित्त पुत्रादिकने अर्थे लाल पाल करेछे एम ते बापडो कुंमरीकनी पेरे मोहपाशे पड्यो थको (अन्नेजणातंसि हरंतिवित्तं के०) पछी तेनुं उपार्जन करेलुं वित्त तेने बीजा जन अपहरे ए प्रकारे जीवतां तथा मरण पाम्या पछी पण तेने क्लेश ज थाय ॥ १९ ॥ (जहाके०) जेम खुड्डमिगाचरंता के० (क्षुद्र मृग एटले न्हानाएवा मृग प्रमुख अटवीनेविषे विचरनार जीवोते (सीहंके०) सिंहनामा जनावर थकी (दूरेचरंतीपरिसंकमाणा के०) बीहीता थका सिंहने दूर टालीने वेगला थका चरे; (एवं

तुमेहाविसमिरकधम्मंके०) ए दृष्टांते पंमित जेठे तेपण सम्यक् प्रकारें श्रीवीतराग नाषित श्रुत चारित्ररूप धर्मने आलोचीने (डुरेंणपावं परिवज्जएज्जाके०) हिंसादिक सावद्यानुष्ठा नरूपजे क्रिया तेने पापरूप जाणीने तेनाथी दूर रहे एरीते साधु सुंधूसंयम पाले.॥२०

॥दीपिका—वित्तं द्रव्यं पशवोगोमहिष्याद्यास्तान् सर्वान् जहाहि त्यज। बांधवा मातापित्रादयः सेतस्य येच मित्राणि सुहृदस्तेपि तस्य न किंचित्त्राणतः कुर्वंति सोपिच वित्ताद्यर्थं लालप्यते नृशं विलपति मोहमुपैतिच धनवानपि मम्मणवणिग्वत् धान्यवानपि तिलकश्रेष्ठिवत् एवमयमपि असमाधिमाप्नोति। यच्च तेनार्जितं धनं तदन्यजनास्तस्य जीवतएव मृतस्यच हरंति गृह्णंति । तस्यतु क्लेशएव केवलं॥ १ए ॥ यथा क्षुद्रास्तुच्छा मृगाश्चरंतोऽटव्यामटंतः सिंहं दूरे त्यक्त्वा चरंति । यतः परिशंकमानाः सर्वतोन्नयाकुला एवं मेधावी धर्मं समीक्ष्य विचार्य पापं दूरेण परिवर्जयेत् ॥ २० ॥

॥ टीका—किंचान्यत् (जहाहिवित्तमित्यादि) वित्तं द्रव्यजातं तथा पशवोगोमहिष्यादयस्तान् सर्वान् जहाहि परित्यज। तेषु ममत्वं माकृथाः। ये बांधवामातृपित्रादयः श्वशुरादयश्च पूर्वापरसंस्तुतायेच प्रियामित्राणि सहपांसुक्रीडितादयस्ते एते मातापित्रादयोन किंचित्तस्य परमार्थतः कुर्वंति सोपिच वित्तपशुबांधवमित्रार्थी अत्यर्थं पुनः पुनर्वालपति लालप्यते । तद्यथा हेमातः हेपितइत्येवं तदर्थं शोकाकुलः प्रलपति तदार्जनपरश्च मोहमुपैति। रूपवानपि कंडरीकवत् धनवानपि मम्मणवणिग्वत् धान्यवानपि तिलकश्रेष्ठिवदित्येवमसावप्यसमाधिमान् मुह्यते। यच्च तेन महता क्लेशेनापरप्राण्युपमर्दनोपार्जित्तं वित्तं तदन्ये जनाः सेतस्यापहरंति जीवतएव च तस्य वा तस्य च क्लेशतः केवलं पापबंधश्चेत्येवं मत्वा पापानि कर्माणि परित्यजेत्तपश्चरेदिति ॥ १ए ॥ तपश्चरणोपायमधिकृत्याह । (सीहंजहेत्यादि) यथा क्षुद्रमृगाः क्षुद्राटव्यपशवोहरिणजात्याद्याश्चरंतोऽटव्यामटंतः सर्वतोबिन्यतः परिशंकमानाः सिंहं व्याघ्रं वा आत्मोपद्रवकारिणं दूरेण परिहृत्य चरंति विहरंत्येवं मेधावी मर्यादावान् । तुर्विशेषणे। सुतरां धर्मं समीक्ष्य पर्यालोच्य पापं कर्मसदनुष्ठानं दूरेण मनोवाक्कायकर्मभिः परिहृत्य परिसमंताद्व्रजेत्संयमानुष्ठायी तपश्चारी च नवेदिति दूरेण वा पापं पापहेतुत्वात्सावद्यानुष्ठानं सिंहमिव मृगः स्वहितमिच्छन् परिवर्जयेत्त्यजेदिति ॥ २० ॥

संबुज्झमाणे उ एारे मतीमं, पावाउ अप्पाए निवट्टएज्जा ॥ हिंसप्पसूयाई डुहाई मत्ता, वेराणुबंधीणि महप्नयाणि ॥ पाठांतरे सनिवाण नूएउ

वरिवएज्जा ॥ २१ ॥ मुसं न बूया मुणिअत्तगामी, णिव्वाणमेयं कसिणं समाहिं ॥ सयं न कुज्जाउ न कारवेज्जा, करंतमन्नोपि य णाणुजाणे ॥ २२ ॥

अर्थ-(संबुज्झमाणेउणरेमतीमं के०) मतिमंत प्रज्ञावंत एवो मनुष्य सम्यक् प्रकारे धर्मने जाणतो थको (पावाउअप्पाणनिवट्टएज्जा के०) पोताना आत्माने पाप थकी निवर्त्तावे; (हिंस के०) जीवनो घात ते थकी (प्रसूत के०) उत्पन्न थयां एवांजे (दुहाईके०) शारीरीक अने मानशीक दुःख तेने (मत्ताके०) जाणीने ग्रुंजाणीने तोके (वेराणुबंधीणिमहब्भयाणि के०) वैरानुबंधावैरना कारण जाणीने महाभयना उपजावनार एवा आश्रवोनो निरोध करे; एटले सर्व आश्रवनुं मूल ते हिंसा जाणवी; माटे हिंसाथकीनिवर्त्ते ते साधु भावसमाधिवंत जाणवो. अथवा पाठांतरे सनिव्वाणभूएउपरिव्वएज्जा) ॥ २१ ॥ (मुणिअत्तगामी के०) मोक्ष गामी मुनि (मुसंनबूया के०) मृषा बोले नही. (णिव्वाणमेयंकसिणंसमाहिंके०) ए मृषावादनो जे परिहार एज मोक्षरूप समाधिनु पण संपूर्ण कारण जाणवुं माटे ते मृषावादने (सयंनकुज्जाउके०) साधु पोते करे नही, तथा (नकारवेज्जाके०)बीजा पासे करावे नही, तथा (करंतमन्नोपियणाणुजाणे) अन्य कोइ करतो होय तेने अनुमोदे नहीं एवोसाधु भावसमाधिवंत जाणवो ॥ २२ ॥

॥ दीपिका-मतिमान्नरः साधुः सम्यक्धर्मं बुध्यमानः पापात्सावद्याचरणादात्मानं निवर्तयेत् हिंसातः प्रसूतानि जातानि दुःखानि वैरानुबंधीनि कर्मबंधहेतूनि महाभयंकराणि इति मत्वा स्वं पापान्निवर्तयेत् ॥ २१ ॥ आप्तोमोक्षस्तगामी मुनिर्मृषावादं न ब्रूयात् एतदेव मृषावर्जनं कृत्स्नं संपूर्णं समाधिं भावसमाधिमाहुः । यथा मृषावादस्तथा अन्यव्रतातिचारमपि न कुर्यात्स्वयं नाप्यपरेण कारयेत् अन्यं कुर्वंतमपि नानुजानीयात्. ॥२२॥

॥ टीका-अपिच । (संबुज्झमाणेत्यादि) मननं मतिः सा शोभना यस्यासौ मतिमान् । प्रशंसायां मतुप् । तदेवं शोभनमतियुक्तोमुमुक्षुर्नरः सम्यक्श्रुतचारित्राख्यं धर्मं वा भावसमाधिं वा बुध्यमानस्तु विहितानुष्ठाने प्रवृत्तिं कुर्वाणस्तु तदेव पूर्वं तान्निषिद्धाचरणान्निवर्तेतातस्तत्प्रदर्शयति । पापात् हिंसानृतादिरूपात्कर्मणआत्मानं निवर्तयेत् । निदानोच्छेदेन हि निदानिनउच्छेदोभवतीत्यतोऽशेषकर्मक्षयमिच्छन्नादावेवभव द्वाराणि निरुंध्यादित्यभिप्रायः । किंचान्यत् । हिंसा प्राणिव्यपरोपणं तथा ततोवा प्रभूतानि जातानि यान्यशुभानि कर्माणि तान्यत्यंतं नरकादिषु यातनास्थानेषु दुःखानि दुःखोत्पादकानि वर्तंते । तथा वैरमनुबध्नंति तच्छीलानिच वैरानुबंधीनि जन्मशतसहस्रदुर्मोचान्यतएव महद्भयं येभ्यः सकाशात्तानि महाभयानीत्येवं च मत्वा मतिमानात्मानं पापान्निवर्तयेदिति । पा

गंतरंवा । (निव्वाणनूएयपरिव्वएज्जा) अस्यायमर्थः । यथाहि निर्वृतौ निर्व्यापारत्वात्कस्य चिडुपघाते न वर्तते एवं साधुरपि सावद्यानुष्ठानरहितः परिसमंताद् व्रजेदिति ॥ २१ ॥ तथा (मुसंणबूयाइत्यादि) आप्तोमोक्षस्तद्गामी तद्गमनशीलआत्महितगामीवा आप्तोवा प्रक्षीणदोषः सर्वज्ञस्तडुपदिष्टमार्गगामी मुनिः साधुर्मृषावादमनृतमयथार्थं न ब्रूयात्सत्य मपि प्राण्युपघातकमिति । एतदेव मृषावादवर्जनं कृत्स्नं संपूर्णं नावसमाधिं निर्वाणं चा हुः । सांसारिकाहि समाधयः स्नाननोजनादिजनिताः शब्दादिविषयसंपादितावा अनैकांति काऽनात्यंतिकत्वेन डुःखप्रतीकाररूपत्वेन वाऽसंपूर्णावर्तंते । तदेवं मृषावादमन्येषां वा व्रतानामतिचारं स्वयमात्मना न कुर्यान्नाप्यपरेण कारयेत्तथा कुर्वंतमप्यपरं मनो वाक्कायकर्मनिर्नानुमन्यतइति ॥ २२ ॥

सुद्धे सिया जाए न दूसएज्जा, अमुच्छिए णय अज्झुववन्ने ॥ धिति
मं विमुक्के ण य पूयणठी, न सिलोयगामीय परिव्वएज्जा ॥ ७३ ॥
निरकम्मगेहाउ निरावकंखी, कायं विउसेज्ज नियाणछिन्ने ॥ णो
जीवियं णो मरणावकंखी, चरेज्ज निक्कू वलया विमुक्के तिबेमि
॥ ७४ ॥ इति समाहिनाम दसमज्झयणं सम्मत्तं ॥

अर्थ–(सुद्धेसिया जाएनदूसएज्जाके०) उद्गम, उत्पादन अने एषणा ए त्रणे दोष रहित एवो शुद्धो निर्दोष आहार प्राप्त थयो अथवा न थयो उता पण कदापि साधु राग द्वेषे करी पोताने डुषवे नही तथा (अमुच्छिए के०) अमूर्छित अगृद्ध एटले लोलुपता रहित (णयअज्झुववन्ने के०) फरी फरी ते रूडा आहारनी वांछा नकरे तथा (धि तिमंविमुक्के णयपूयणठी के०) धृतिमंत तथा बाह्याभ्यंतर ग्रंथी रहित तथा पूजानो अर्थी न थाय (नसिलोय कामीय परिवएज्जा के०) तथा श्लाघाने अर्थे क्रिया न करे परंतु कर्म निर्जराने अर्थे मोक्षने अर्थे संयमने विषे प्रवर्त्ते एवो समाधिवंत साधु जाणवो ॥ २३ ॥ (निरकमगेहाउ के०) गृहस्थावास थकी निकलीने चारित्र आदरी ने (निरावकंखी के०) जीवितव्यने विषे निरापेक्षी उतो (कायंविउसेज्ज के०) शरीर उपर ममत्व मूकीने पोतानी काया वोसिरावे तथा (नियाणछिन्ने के०) परनवे देव अथ वा राजादिक थवानुं नियाणु नकरे (णोजीवियंणोमरणावकंखी के०) जीवितव्य अ ने मरणने वांछे नही एटले पूजा सत्कारनी प्राप्तियें करी जीवितव्य नवांछे अने उपसर्ग परिसह उपने थके मरण पण नवांछे एवो (निक्कू के०) साधु ते (वलयाविमुक्के के०) कर्मबंध थकी मूकाणो अथवा वलय एटले संसार थकी मूकाणो थको (चरेज्जके०)

संयमानुष्ठानने पाले तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ २४ ॥ इतिश्री समाधि नामक दशमां अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो.

॥ दीपिका—उद्गमादिदोषशुद्धे आहारादौ स्यात्कदाचिद्याते प्राप्ते सति रागद्वेषाभ्यां साधुर्न दूषयेत् । यतः । बायाली सेसणसं, कमंमि गहणंमि जीवनदुब्बलिउ । इण्हिंजइ नलब्भिज्ञसि, भुंजंतोरागदोसेहिं इति । अमूर्छितोनासक्तः शुभाहारे नचाध्युपपन्नस्तमेवाहारं पुनःपुनरभिलषमाणः संयमयात्रार्थमेवाहारयेत् । तथा धृतिमान् ग्रंथाद्विमुक्तो नच पूजनार्थी श्लोकः कीर्तिस्तत्कामी तदभिलाषुकोन स्यात् एवंभूतः परिव्रजेत् ॥ ॥ २३ ॥ गृहान्निःसृत्य निरावकांक्षी निस्पृहः कायं शरीरं व्युत्सृज्य विचिकित्साम कुर्वन् छिन्ननिदानोभवेत् । तथा जीवितं नापि । मरणमभिकांक्षेत भिक्षुर्वलयात्संसाराद्विमुक्तः संयमे संचरेदिति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २४ ॥ इति श्रीसूत्रकृतांगदीपिकायां समाध्याख्यं दशमाध्ययनं समाप्तं ॥

॥ टीका—उत्तरगुणानधिकृत्याह (सुद्धेसियाइत्यादि) उद्गमोत्पादनैषणाभिः शुद्धे निर्दोषे स्यात्कदाचिद्याते प्राप्ते पिंडेसति साधूरागद्वेषाभ्यां न दूषयेत् । उक्तंच । बायाली सेसणसं, कडंमिगहणंमि जीवनदुब्बलिउ ॥ इण्हिजइन छलिज्ञसि, भुंजंतोरागदोसेहिं ॥१॥ तत्रापि रागस्य प्राधान्यख्यापनायाह। नमूर्छितोऽमूर्छितः सकृदपि शोभनाहारलाभे सतिगृद्धिमकुर्वन्नाहारयति तथा नाध्युपपन्नस्तमेवाहारं पौनःपुन्येनानभिलषमाणः केवलं संयमयात्रापालनार्थमाहारमाहारयेत् । प्रायोविदितवेद्यस्यापि विशिष्टाहारसन्निधावभिलाषातिरेकोजायतइत्यतोऽमूर्छितोऽनध्युपपन्नइति च प्रतिषेधद्वयमुक्तं । उक्तंच । भुत्त भोगो पुरा जोवि, गीयत्थोविय भाविउ ॥ संते साहारमाईसु, सोविखिप्पंतु खुब्भइ ॥ १ ॥ तथा संयमे धृतिर्यस्यासौ धृतिमान् सबाह्याभ्यंतरेण ग्रंथेन विमुक्तस्तथा पूजनं वस्त्र पात्रादिना तेनार्थः पूजनार्थः सविद्यते यस्यासौ पूजनार्थी तदेवंभूतोन भवेत् । तथा श्लोकः श्लाघा-कीर्तिस्तत्कामी नतदभिलाषुकः परिव्रजेदिति । कीर्त्यर्थी न कांचन क्रियां कुर्यादित्यर्थः॥२३॥अध्ययनार्थमुपसंजिघृक्षुराह। (णिक्कम्मेत्यादि) गेहान्निःसृत्य निष्क्रम्य च प्रव्रजितोपि भूत्वा जीवितेपि निराकांक्षी कायं शरीरं व्युत्सृज्य निष्प्रतिकर्मतया चिकित्सादिकमकुर्वन् छिन्ननिदानोभवेत्। तथा न जीवितं नापि मरणमभिकांक्षेत् भिक्षुः साधुर्वलयात्संसारवलयात्कर्मबंधनाद्वा विप्रमुक्तः संयमानुष्ठानं चरेत् । इति परिसमाप्त्यर्थे। ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २४ ॥ इति समाध्याख्यं दशमाध्ययनं समाप्तं ॥

हवे मोक्ष मार्ग नामे अगीआरमुं अध्ययन कहेछे. पूर्वेला दशमां अध्ययनमां समाधि कही, ते समाधि तो ज्ञान, दर्शन अने चारित्ररूप जाणवी ते कारणे एनुं सेवन करिए तो मोक्ष प्राप्ति थाय, माटे आ अध्ययनमां मोक्ष मार्ग कहेछे.

कयरे मग्गे अक्खाए, माहणेण मईमता ॥ जं मग्गं उज्जु पावित्ता, उहं तरति डुत्तरं ॥ १ ॥ तं मग्गं णुत्तरं सुद्धं, सवडुक्कविमोक्कणं ॥ जाणासि णं जहा भिक्कू, तं णो बूहि महामुणी ॥ २ ॥

अर्थ–श्रीजंबुस्वामी श्रीसुधर्मस्वामि प्रत्ये पूछेछे के, (कयरेमग्गे के०) मोक्षमार्ग साधन करवानो एवो कयो धर्ममार्ग (माहणेणमईमताके०) मतिमंत एटले केवलज्ञान वंत श्रीमहावीर परमेश्वर तेणे (अक्काएके०) कह्योछे. (जंमग्गंउज्जुपावित्ताके०) जेज्ञान दर्शन चारित्ररूप सरल मार्ग पामिने प्राणी (उहंतरंतिडुत्तरं के०) तरतां थकां डुस्तर एवा संसार समुड्ने तरीने पार पामे ॥ १ ॥ सर्वेनाहितने अर्थे जे मार्ग श्रीसर्वज्ञे उपदेश्योछे, (तंमग्गणुत्तरंसुद्धं के०) तेमार्ग शुद्धो निर्दोष अनुत्तर एटले निरुपम (सवडुक्कविमोक्कणं के०) समस्त डुःखथकी मुकावनार एवो मार्ग (जाणासिणंजहाभिक्कू के०) अहो नगवंत जेवो तमे जाणोछो (तंणोबूहिमाहामुणी के०) तेवो हे महामुनीश्वर अमने कहो. ॥ २ ॥

॥ दीपिका–अथैकादशमारभ्यते । पूर्वाध्ययने समाधिरुक्तः सच मार्गे सति स्यादिति मार्गोऽत्र प्रतिपाद्यते । यथा । (कयरेइत्यादि) जंबूस्वामी सुधर्मस्वामिनमाह । कतरः कोमार्गआख्यातोमाहनेन मतिमता श्रीवीरेण । यं मार्गं मुक्तिप्राप्तिरूपं ऋजुमवक्रं प्राप्योघं संसारं तरति प्राणी ॥१॥ तं मार्गमनुत्तरं श्रेष्ठं शुद्धं निर्दोषं सर्वडुःखविमोक्षणं हे मुने त्वं यज्जानीपे । णमिति वाक्यालंकारे । तं मार्गं नोऽस्माकं हेमहामुने ब्रूहि ॥ २ ॥

॥ टीका–उक्तं दशमाध्ययनं तदनंतरमेकादशमारभ्यते । अस्य चायमनिसंबंधः । इहानंतराध्ययने समाधिः प्रतिपादितः सच ज्ञानदर्शनतपश्चारित्ररूपोवर्तते । नावमार्गोप्येवमात्मकएवेत्यतोमार्गोऽनेनाध्ययनेन प्रतिपाद्यतेइत्यनेन संबंधेनायातस्याध्ययनस्य चत्वार्युपक्रमादीन्यनुयोग द्वाराणि वाच्यानि । तत्राप्युपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोयं । तद्यथा । प्रशस्तोज्ञानादिकोनावमार्गस्तदाचरणं चात्रानिधेयमिति । नामनिष्पन्नेतु निक्षेपे मार्गइत्यस्याध्ययनस्य नाम । तन्निक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह । “ णामं ठवणा दविए, खेत्ते काले तहेव नावेय ॥ एसो खलु मग्गस्सय, णिक्खेवो छविहो होइ ” ॥ ए ॥ (णामंठवणेत्यादि) नामस्थापनाड्व्यक्षेत्रकालनावन्नेदान्मार्गस्य षोढा निक्षेपः । तत्र नामस्थापने सुगमत्वाद

नाहत्य ज्ञशरीरजव्यशरीरव्यतिरिक्तं द्रव्यमार्गमधिकृत्याह । "फलगलयं दोलणचि,त्तर ज्जुदवणबिलप्पास मग्गेय । खलिगअयपक्खिप हे बत्तजलाकासदवंमि" ॥ १० ॥ (फलकेत्यादि) फलकैर्मार्गः फलकमार्गः । यत्र कर्दमादिजयात् फलकैर्गम्यते । लतामार्गस्तु यत्र लतावलंबेन गम्यते । अंदोलनमार्गोपि यत्रांदोलनेन डुर्गमतिलंघ्यते । वेत्रमार्गोयत्र त्रलतोपष्टंनेन जलादौगम्यते इति । तद्यथा । चारुदत्तोवेत्रलतोपष्टंनेन वेत्रवतीं नदीमुत्तीर्य परकूलं गतः । रज्जुमार्गस्तु यत्र रज्वाकिंचिदतिडुर्गमतिलंघ्यते । दवनंति यानं तन्मार्गोदवनमार्गः । बिलमार्गोयत्र तु गुहाद्याकारेण बिलेन गम्यते । पाशप्रधानोमार्गः पाशमार्गः पाशकूटकवागुरान्वितोमार्गइत्यर्थः । कीलकमार्गोयत्र वालुकोत्कटे मरुकादिविषये कीलकाजिज्ञानेन गम्यते । अजमार्गोयत्र बस्त्येनाजेन गम्यते । तद्यथा । सुवर्णजूम्यां चारुदत्तोगतइति । पक्षिमार्गोयत्र जारुंडादिपक्षिनिर्देशांतरमवाप्यते । बत्रमार्गोयत्र बत्रमंतरेण गंतुं न शक्यते । जलमार्गोयत्र नावादिना गम्यते । आकाशमार्गोविद्याधरादीनामयं सर्वोपि फलकादिकोड्व्ये द्रव्यविषये ऽवगंतव्यइति । क्षेत्रादिमार्गप्रतिपादनायाह । "खेत्तंमि जंमि खेत्ते. काले कालो जहिं हवइ जोउ । जावंमि होंति डुविहो, पसबतह अप्पसत्रोय ३ ॥ ११ ॥ (खेत्तंमीत्यादि) क्षेत्रमार्गे पर्यालोच्यमाने यस्मिन् क्षेत्रे ग्रामनगरादौ प्रवेशोवा शालिक्षेत्रादिके वाक्षेत्रे योयाति मार्गोयस्मिन्वा क्षेत्रे व्याख्यायते सक्षेत्रमार्गः । एवं कालेप्यायोज्यं । जावे त्वालोच्यमाने द्विविधोपि जवति जावमार्गः । तद्यथा । प्रशस्तोऽप्रशस्तश्चेति । प्रशस्ताप्रशस्तजेदप्रतिपादनायाह । "डुविहंमि वितिगजेदो, णेवो तस्स विचिणिच्छिउ डुविहो ॥ सुगतिफलडुग्गतिफलो, पगयं सुगतीफले णिबं ४ ॥ १२ ॥ (डुविहंमीत्यादि) द्विविधेपि प्रशस्ताप्रशस्तरूपे जावमार्गे प्रत्येकं त्रिविधोजवति । तत्राप्रशस्तोमिथ्यात्वाविरतिरज्ञानं चेति । प्रशस्तस्तु सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूपइति । तस्य प्रशस्ताप्रशस्तरूपस्य जावाजावमार्गस्य विनिश्चयोनिर्णयः फलं कार्यं । निष्ठा द्वेधा । तद्यथा । प्रशस्तः सुगतिफलोऽप्रशस्तश्च डुर्गतिफलइति । इह तु पुनः प्रशस्ताऽधिकारः सुगतिफलेन प्रशस्तमार्गेणेति । तत्राप्रशस्तं डुर्गतिफलं मार्गं प्रतिपिपादयिषुस्तत्कर्तॄन्निर्दिदिक्षुराह । "डुग्गइफलवादीणं, तिन्नि तिसठ्ठासताइवादीणं ॥ खेमे य खेमरूवे, चउक्कगं मग्गमादीसु ५ ॥ १३ ॥ (डुग्गईत्यादि) डुर्गतिः फलं यस्य सडुर्गतिफलस्त द्वदनशीलाडुर्गतिफलवादिनस्तेषां प्रवाडुकानां त्रीणि त्रिषष्ट्यधिकानि शतानि जवंति । डुर्गतिफलमार्गोपदेष्टृत्वंच तेषां मिथ्यात्वोपहतदृष्टितया विपरीतजीवादितत्वान्युपगमात् । तत्संख्या चैवमवगंतव्या । तद्यथा । असियसयंकिरियाणं, अकिरियवाईण होइ चुलसीई ॥ अन्नाणियसत्तठ्ठी, वेणइयाणं च बत्तीसं ॥१॥ तेषांच स्वरूपं समवसरणाध्ययने वक्ष्यतइति । सांप्रतं मार्गजंगद्वारेण निरूपयितुमाह । तद्यथा । एकः क्षेमोमार्गस्तस्करसिंह

व्याघ्राद्युपद्रवरहितत्वात्तथा क्षेमरूपश्च समत्वात्तथा शाखापुष्पफलवद्वृक्षोपेतजलाश्रया कुलत्वाच्च । तथा परः क्षेमोनिश्चौरः किंत्वक्षेमरूपउपलशकलाकुलगिरिनदीकंटकगर्तशता कुलत्वेन विषमत्वात्तथाऽपरोक्षेमस्तस्करादिभयोपेतत्वात्क्षेमरूपश्चोपलशकलाद्यभावतया समत्वात्तथाऽन्योनक्षेमोनापि क्षेमरूपः सिंहव्याघ्रतस्करादिदोषदुष्टत्वात्तथा गर्तपाषाणनि म्नोन्नतादिदोषदुष्टत्वाच्चेति । एवं भावमार्गोप्यायोज्यः । तद्यथा । ज्ञानादिसमन्वितोद्रव्य लिंगोपेतश्च साधुः क्षेमः क्षेमरूपश्च । तथाऽक्षेमोऽक्षेमरूपस्तु सएव भावसाधुः कारणिको द्रव्यलिंगरहितः । तृतीयभंगकगतानिन्हवाः परतीर्थिकागृहस्थाश्चरमभंगकवर्तिनोद्रष्ट व्याः । एवमनंतरोक्तप्रक्रियया चतुष्कं भंगकचतुष्टयं मार्गादिष्वायोज्यं । आदिग्रहणादन्य त्रापि समाध्यादावायोज्यमिति ।सम्यक्मिथ्यात्वमार्गयोः स्वरूपनिरूपणायाह । सम्मप्पणि उ मग्गो. णाणे तह दंसणे चरित्तेय ॥ वरगपरिव्वायादी, विसुमिच्छत्तमग्गोत्ति ६ ॥१४॥ (स मप्पणिउइत्यादि) सम्यग्ज्ञानं दर्शनं चारित्रं चेत्ययं त्रिविधोपि भावमार्गः सम्यग्दृष्टिभिर्गे णधरादिभिः सम्यग्वा यथावस्थितवस्तुतया च निरूपणया प्रणीतस्तैरेव सम्यगाचीर्णआसे वितोमार्गो मिथ्यात्वमार्गो ऽप्रशस्तमार्गोभवतीति। तुशब्दो स्य दुर्गतिफलनिबंधनत्वेनऽ विशे षणार्थइति । स्वयूथ्यानामपि पार्श्वस्थादीनां षड्जीवनिकायोपमर्दकारिणां कुमार्गाश्रित त्वं दर्शयितुमाह । इड्डिरससायगुरुया, छज्जीवनिकाय घायनिरयाए ॥ जेउदिसंति मिग्गं, कुमग्गमग्गस्सिता तेउ "॥१५॥ (इड्डिरसेत्यादि) ये केचन अपुष्टधर्माणः शीतल विहारिणोक्रुद्धिरससातगौरवेण गुरुकागुरुकर्माणआधाकर्माद्युपभोगेन षड्जीवनि कायव्यापादनरताश्चापरे तेभ्योमार्गं मोक्षमार्गमात्मानुचीर्णमुपदिशंति । तथाहि । शरी रमिदमाद्यं धर्मसाधनमिति मत्वा कालसंहननादिहानेश्चाधाकर्माद्युपभोगोपि न दोषाये त्येवं प्रतिपादयंति तच्चैवं प्रतिपादयंतः कुत्सितमार्गास्तीर्थकरास्तन्मार्गाश्रिताभवंति । तु शब्दादेतेपि स्वयूथ्याएतदुपदिशंतः कुमार्गाश्रिताभवंतीति ।किंपुनस्तीर्थिकाइति।प्रशस्तशास्त्र प्रणयनेन सन्मार्गाविष्करणायाह । "तवसंजमप्पहाणा, गुणधारी जे वयंति सप्भावं ॥ सवजगजीवहियं, तमाहुसम्मप्पणीयमिणं"॥१६॥ (तवसंयमेत्यादि) तपः सबाह्याभ्यंतरं द्वादशप्रकारं तथा संयमः सप्तदशभेदःपंचाश्रवविरमणादिलक्षणस्ताभ्यां प्रधानास्तपःसंय मप्रधानास्तथाऽष्टादशशीलांगसहस्राणि गुणास्तद्धारिणोगुणधारिणोये सत्साधवस्तएवं भूतायं सद्भावं परमार्थं जीवाजीवादिलक्षणं वदंति प्रतिपादयंति । किंभूतं सर्वस्मिन् जग ति ये जीवास्तेभ्यो हितं पथ्यं तद्रक्षणतस्तेषां सदुपदेशदानतोवा । तं सन्मार्गं सम्यङ्मार्ग ज्ञाः सम्यगविपरीतत्वेन प्रणीतमाहुरुक्तवंतइति । सांप्रतं सन्मार्गस्यैकार्थिकान् दर्शयितुमा ह।" पंथो मग्गो णेउ, वहिधीतिसुगतीहियसुवहं ॥ पद्धं सेयं णिच्चुइ, णिव्वाणं शिवकरंचेव " ॥ १७ ॥ (पंथोमग्गोणेउइत्यादि) देशाद्विवक्षितदेशांतरप्राप्तिलक्षणः पंथाः सचेह भाव

मार्गाधिकारे सम्यक्त्वाख्यातिरूपो ऽवगंतव्यः। तथा मार्गइति पूर्वस्माद्विशुध्या विशिष्टतरो मार्गः सचेह सम्यक्ज्ञानावाप्तिरूपो ऽवगंतव्यः। तथा न्यायइति निश्चयेनायनं विशिष्टस्थान प्राप्तिलक्षणं यस्मिन् सति सन्यायः। सचेह सम्यक्चारित्रावाप्तिरूपो ऽवगंतव्यः।सत्पुरुषा णामयं न्यायएव। यदुतावाप्तयोः सम्यग्दर्शनज्ञानयोस्तत्फलजूतेन सम्यक्चारित्रेण योगो जवतीत्यतोन्यायशब्देनात्र चारित्रयोगो ऽनिधीयतइति। तथा विधिरिति। विधानं विधिः स म्यक्ज्ञानदर्शनयोर्यौगपद्येनावाप्तिस्तथा धृतिरिति धरणं धृतिः सम्यक्दर्शने सति चारित्रा वस्थानं मानुषादाविव विशिष्टज्ञानाजावाद्विवक्षयैवमुच्यते। तथा सुगतिरिति शोजना ग तिरस्मात्ज्ञानचारित्राच्चेति सुगतिः। ज्ञानक्रियाज्यां मोक्षइति न्यायात्सुगतिशब्देन ज्ञानक्रिये अजिधीयेते। दर्शनस्यतु ज्ञानविशेषत्वादत्रैवांतर्जावो ऽवगंतव्यः। तथाहि। हितमिति परमा र्थतोमुक्त्यवाप्तिस्तत्कारणं वा हितं तच्च सम्यग्दर्शनचारित्राख्यमवगंतव्यमिति। अत्र च संपू र्णानां सम्यग्दर्शनादीनां मोक्षमार्गत्वेसति य द्व्यस्तसमस्तानां मोक्षमार्गत्येनोपन्यासः स प्रधानोपसर्जनविवक्षया न दोषायेति। तथा सुखमिति सुखहेतुत्वात्सुखमुपशमश्रेण्यामुपशा मकं प्रत्यपूर्वकरणानिवृत्तिबादरसूक्ष्मसंपरायरूपा गुणत्रयावस्था। तथा पथ्यमिति पथि मो क्षमार्गे हितं पथ्यं तच्च क्षपकश्रेण्यां पूर्वोक्तं गुणत्रयं तथा श्रेयइत्युपशमश्रेणिमस्तकावस्था उपशांतसर्वमोहावस्थेत्यर्थः। तथा निर्वृतिहेतुत्वान्निर्वृतिः क्षीणमोहावस्थेत्यर्थः। मोहनी यविनाशेऽवश्यं निर्वृतिसद्भावादितिजावः। तथा श्रेयइति निर्वाणमिति घनघातिकर्मचतुष्टय रूपेण कर्मक्षयेण केवलज्ञानावाप्तिस्तथा शिवं मोक्षपदं तत्करणशीलं शैलेश्यवस्थागमनमि त्येवमेतानि मोक्षमार्गत्वेन किंचिद्भेदाजेदेन व्याख्यातान्यजिधानानि। यदिचैते पर्यायशब्दा एकार्थिकामोक्षमार्गस्येति। गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपस्तदनंतरं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपे तं सूत्रमुच्चारयितव्यं। तच्चेदं (कयरेमग्गेइत्यादि) विचित्रत्वात्रिकालविषयत्वाच्च सूत्रस्यागा मुकं पृच्छकमाश्रित्य सूत्रमिदं प्रवृत्तमतोजंबूस्वामी सुधर्मस्वामिनमिदमाह। तद्यथा। कतरः किंजूतोमोक्षोऽपवर्गावाप्तिसमर्थोऽस्यां त्रिलोक्यामाख्यातः प्रतिपादितोजगवता त्रैलोक्यो द्धरणसमर्थेनैकांतहितैषिणा माहनेनेत्येवमुपदेशः प्रवृत्तिर्यस्यासौ माहनस्तीर्थकृत्तेन। तमे व विशिनष्टि।मतिर्लोकालोकांतर्गतसूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टातीतानागतवर्तमानपदार्था विजा विकाकेवलज्ञानाख्या यस्यास्त्यसौ मतिमांस्तेन प्रशस्तंजावमार्गं मोक्षगमनंप्रति ऋजुं प्रगु णं यथावस्थितपदार्थस्वरूपनिरूपणद्वारेणावक्रं सामान्यविशेषनित्यानित्यादिस्याद्वाद समाश्रयणात्तदेव जूतं मार्गं ज्ञानदर्शनतपश्चारित्रात्मकं प्राप्य लब्ध्वा संसारोदरविवरव र्ती प्राणी समग्रसामग्रीकत्वधमिति जवौघं संसारसमुद्रं तरत्यत्यंतदुस्तरं तदुत्तरगुण सामग्र्याएव दुष्प्रापकत्वात्। तदुक्तं। माणुस्स खेत्तजाई, कुलरूपा रोगमाउयं बुद्धी॥ समणोग्गहसद्धासं. यमोयलोयंमि दुल्लहाइंइत्यादि ॥१॥ सएव पृच्छकः पुनरप्याह। (तं

मग्गेइत्यादि) योसौ मार्गः सत्वहिताय सर्वज्ञेनोपदिष्टोऽशेपैकांतकौटिल्यवक्ररहितस्तं मार्गं । नास्योत्तरः प्रधानोस्तीत्यनुत्तरस्तं शुद्धोऽ वदातोनिर्दोषः पूर्वापरव्याहतिदोषापगमात्सावद्यानुष्ठानोपदेशाजावाद्वा तमिति । तथा सर्वाण्यशेषाणि बहुनिर्नवैरुपचितानि दुःखकारणत्वाद्दुःखानि कर्माणि तेन्योविमोक्षणं विमोचकं तमेवं नूतं मार्गमनुत्तरं निर्दोषं सर्वदुःखक्षयकारणं हेनिक्षो यथा त्वं जानीपे । णमितिवाक्यालंकारे । तथा तं मार्गं सर्वज्ञप्रणीतं नो ऽस्माकं हेमहामुने ब्रूहि कथयेति ॥ १ ॥

जइ णो केइ पुच्छिज्जा, देवा अडुव माणुसा ॥ तेसिं तु कयरं मग्गं आइक्खेज्ज कहाहिणो ॥ ३ ॥ जइ णो केइ पुच्छिज्जा, देवा अडुव माणुसा ॥ तेसि मं पडिसाहिज्जा मग्गसारं सुणेहमे ॥ ४ ॥

अर्थ—यद्यपि मुजनेतो तमारी प्रतिते मार्ग सुगमछे, परंतु अन्य कोइने मार्ग हुं के वीरीते कहुं एवा अनिप्रायें पूछुंछुं. (जइणोकेइपुच्छिज्जा के०) यद्यपि अमने कोइ पूछे कोण पूछे तोके (देवाअडुवमाणुसा के०) देवो अथवा मनुष्यजे चक्रवर्त्यादिक ते पूछे (तेसिंतुकयरंमग्गं के०) तेवारे तेने कयो मार्ग (आहिक्खेज्जकहाहिणो के०) कहींए ते तमे कहो. ॥ ३ ॥ एम श्रीजंबुस्वामियें पूछ्या थका श्रीसुधर्मस्वामि कहेछे. (जइणो केइपुच्छिज्जादेवाअडुवमाणुसा के०) यद्यपि तमने कोइ देव अथवा मनुष्य संसार च्रांतिनो नंग करनार एवा मार्गनी वात पूछे, तेवारे (तेसिमंपडिसाहिज्जा के०) तेने तमारे जे मार्ग कहेवो (मग्गसारंसुणेहमे के०) तेमार्गनो सार हुं तमने कहुंछुं ते तमे साजलो.

॥ दीपिका—यदि नोऽस्माकं केचन पृछेयुः।देवाअथवा मनुष्यास्तेषामहं। तुरेवार्थे।कतरं कं मार्गं (आइक्खेज्जत्ति) आचक्षामि आचक्ष्वा तत्कथय नोऽस्माकमिति ॥ ३ ॥ यदि केचित्सुजनबोधयोवोयुष्माकं मार्गं पृछेयुः । के । ते देवामनुष्यावा तेषां पृछतामिमं धर्मं प्रति कथयेत्साधुस्तंमार्गं सारं मम कथयतः शृणुत यूयं ॥ ४ ॥

॥ टीका—यद्यप्यस्माकमसाधारणगुणोपलब्धेर्युष्मत्प्रत्ययेनैव प्रवृत्तिः स्यात्तथाप्यन्येषां किंनूतोमार्गोमयाख्येयइत्यनिप्रायवानाह । (जइणेत्यादि) यदा कदाचिन्नोस्मान्केचन सुजनबोधयः संसारोद्विग्नाः सम्यग्मार्गं पृछेयुः । के ते देवाश्चतुर्निकायास्तथा मनुष्याः प्रतीताः बाहुल्येन तयोरेव प्रश्नसद्भावात्तडुपादानं । तेषां पृछतां कतरं मार्गमहमाख्यास्ये कथयिष्ये तदेतदस्माकं त्वं जानानः कथयेति ॥ ३ ॥ एवंपृष्टः सुधर्मस्वाम्याह । (जइवोइत्यादि) यदि कदाचिद्वोयुष्मान् केचन देवामनुष्यावा संसारं च्रांतिपरामग्नाः सम्यग्मार्गं पृछेयुस्तेषां पृछतामिममिति वक्ष्यमाणलक्षणं षड्जीवनिकायप्रतिपादनगर्भं

तदृक्षाप्रवणं मार्गं (पडिसाहिज्जेत्ति) प्रतिकथयेत् । मार्गसारं मार्गपरमार्थं यं ज्ञवंतो न्येषां प्रतिपादयिष्यंति तन्मे मम कथयतः शृणुत यूयमिति । पाठांतरंवा (तेसिंतुइमं मग्गं आइरकेज्ज्सुणेहमेत्ति) उत्तानार्थं ॥ ४ ॥

अणुपुवेण महाघोरं, कासवेण पवेइयं ॥ जमादाय इउ पुवं, समुद्दं ववहारिणो ॥५॥ अतारिं सुतरंतेगे, तरिस्संति आणगया ॥ तं सोच्चा पडिवरकामि, जंतवो तं सुणेहमे ॥ ६ ॥

अर्थ-(अणुपुवेण के०) आनुपूर्वि एटले अनुक्रमे (पंचिंदिअत्तणं माणुसत्तणं) इत्यादिक अनुक्रमे करीने (महाघोरं के०) पालतां अत्यंत दुष्कर छे एवो जे मार्गनो सार ते (कासवेणपवेइयं के०) काश्यपजे श्रीमहावीर देव तेणे जाष्यो एटले कह्यो; (जमादाय के०) जेमार्गना ग्रहण करवा थकी (इउपुवंके०) पूर्वे अतीतकाले घणा सत्पुरुष डुस्तर एवो संसार समुद्र तर्याछे ते उपर दृष्टांत कहेछे. (समुद्दंववहारिणो के०) जेम व्यवहारीआ वस्तुनां जोजी थका डुस्तर समुद्र तरे तेनी पेरे तर्याछे ॥५॥ (अतारिं सुतरंतेगे के०) जे मार्ग ग्रहण करीने अतीतकाले अनंताजीव संसार समुद्र तर्या (तरिस्संति अणागया के०) अने हमणा पण संख्याता जीव संसार समुद्र तरेछे, तथा आगमिक काले पण अनंता जीव तरशे, एम त्रणे काले संसार समुद्रने जेवडे तरेछे एवो जे मोक्षनो मार्ग (तंश्रुत्वा प्रतिवक्ष्यामि के०) तेने सांजलीने अंगीकार करे ते मार्ग सम्यक् प्रकारे तमने कहीशुं (जंतवोतं सुणेहमेके०) माटे अहो जीवो ते सर्व हुं कहुंछुं माटे एकाग्रचित्ते तमे सांजलो ॥ ६ ॥

॥ दीपिका-यथाहमनु पूर्वेण परिपाट्या मार्गं वच्मि तथा शृणुत यूयं। किंनूतं मार्गं कापुरुषैर्डुष्पाल्यत्वान्महाघोरं काश्यपेन श्रीवीरेण प्रवेदितं प्ररूपितं यं मार्गमादाय गृहीत्वा इतः सन्मार्गोपादानात्पूर्वमादावेवाऽनुष्ठितत्वात्संसारं तरंति । यथा व्यवहारिणः सांयात्रिकाः पोतेन समुद्रं तरंति ॥ ५ ॥ यं मार्गमाश्रिताः पूर्वं बहवोऽतीर्षुस्तीर्णाः संसारं सांप्रतमप्येके तरंति महाविदेहादौ तथा ऽनागतकाले तरिष्यंति । एवंनूतं तं मार्गं श्रुत्वा तीर्थकृद्भ्यः अहं प्रतिवक्ष्यामि । हेजंतवोहेप्राणिनः तं मार्गं मम कथयतः शृणुत यूयमिति सुधर्मस्वामिवचनं ॥ ६ ॥

॥ टीका-पुनरपि मार्गाभिष्टवं कुर्वन्सुधर्मस्वाम्याह । (अणुपुवेणेत्यादि) यथाहमनुपूर्व्येणानुपरिपाट्या कथयामि तथा शृणुत । यदिवा यथा चानुपूर्व्या सामग्र्या वा मार्गो वाप्यते तच्छृणुत । तद्यथा । पढमिल्लगाणउदएइत्यादितावद्यावत् । बारसविहेकसाए, ख

विएउवसामिएयजोगेहिं ॥ लप्तइचरित्तलानो, इत्यादि तथा चत्तारिपरमंगाणीत्यादि । किंनूतं मार्गं तमेव विशिनष्टि । कापुरुषैः संग्रामप्रवेशवत् डुरध्यवसायत्वान्महानयानकं काश्यपोमहावीरवर्धमानस्वामी तेन प्रवेदितं प्रणीतं मार्गं । कथयिष्यामीत्यनेन स्वमनीषिकापरिहारमाह । ये शुद्धमार्गमुपादाय गृहीत्वा ऽतइति सन्मार्गोपादानात् पूर्वमादावेवानुष्ठितत्वाद्दुस्तरं संसारं महापुरुषास्तरंति । अस्मिन्नेवार्थे दृष्टांतमाह । व्यवहारः पएयक्रयविक्रयलक्षणोविद्यते येषांते व्यवहारिणः सांयात्रिकाः । यथा ते विशिष्टलानार्थिनः किंचिन्नगरं यियासवोयानपात्रेण डुस्तरमपि समुद्रं तरंत्येवं साधवोप्यात्यंतिकैकांतिकाबोधसुखैषिणः सम्यग्दर्शनादिना मार्गेण मोक्षं जिगमिषवोडुस्तरं नवौघं तरंतीति ॥ ५ ॥ मार्गविशेषणायाह । (अतरिंसुइत्यादि) यं मार्गं पूर्वं महापुरुषाचीर्णमव्यनिचारिणमाश्रित्य पूर्वस्मिन्ननादिके काले बहवोऽनंताः सत्वाअशेषकर्मकचीवरविप्रमुक्तान्नवौघं संसारमतीर्षुस्तीर्णवंतः सांप्रतमप्येके समग्रसामग्रीका असंख्येयाः सत्वास्तरंति । महाविदेहादौ सर्वदा सिद्धिसद्भावा द्वर्तमानत्वं न विरुध्यते । तथाऽनागतेच काले पर्यवसानात्मकेऽनंतात्मकेऽनंताएव जीवास्तरिष्यंति । तदेवं कालत्रयेपि संसारसमुद्रोत्तारकं मोक्षगमनैककारणं प्रशस्तं नावमार्गमुत्पन्नदिव्यज्ञानैस्तीर्थकृद्भिरुपदिष्टं तं चाहं सम्यक् श्रुत्वाऽवधार्य च युष्माकं शुश्रूषूणां प्रतिवक्ष्यामि प्रतिवादयिष्यामि । सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनं निश्रीकृत्यान्येषामपि जंतूनां कथयतीत्येतद्दर्शयितुमाह । हे जंतवोऽनिमुखीनूय तं चारित्रमार्गं मम कथयतः शृणुत यूयं । परमार्थकथनेऽत्यंतमादरोपादानार्थमेवमुपन्यासइति ॥६॥

पुढवीजीवा पुढो सत्ता, आउजीवा तहागणी ॥ वाउजीवा पुढो
सत्ता. तणरुरका सबीयगा ॥७॥ अहावरा तसा पाणा, एवं बक्का
य आहिया ॥ एतावए जीवकाए, णावरे कोइविक्कई ॥ ८ ॥

अर्थ- (पुढवीजीवापुढोसत्ता के०) पृथिवीकाय जीव तेपण जुदा जुदा जाणवा (आउजीवा के०) तेमज अपकायना जीव; उस धूयरी प्रमुख पृथक् पृथक् जाणवा (तहागणी के०) तथा अग्निकायना पण इंगाल ज्वाल मूंमर प्रमुख जीवो जुदा जुदा जाणवा तथा (वाउजीवापुढोसत्ता के०) वायुकायना जीव पण जुदा जुदा जाणवा अने (तणरुरकासबीयगा के०) तृण वृक्षनी जाती तथा बीज ते शाली प्रमुख ए सर्व वनस्पति कायना जीव जाणवा. ॥ ७ ॥ (अहावरातसापाणा के०) अथानंतर अवरा एटले ए पूर्वें जे स्थावर जीवो कह्या तेथकी अपर बीजा बेंद्रियादिक प्राण ते त्रसजीवो जाणवा (एवंबक्कायआहिया के०) ए प्रमाणे बकायना जीवो श्री तीर्थंकर

तथा गणधरे कह्याछे. (एताव्वएजीवकाए के०) एटलीज ए जीवनी निकायछे (णावरें कोइविज्ञई के०) परंतु एथकी उपरांत बीजी कोइ जीवनी निकाय नथी. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–पृथिवीजीवाः पृथक् प्रत्येकं सत्वाजंतवो ज्ञेयाः । आपश्च जीवाएवमग्नि कायाजीवावायुजीवाश्च पृथक्सत्वाः प्रत्येकजीवास्तृणानि कुशादीनि वृक्षाश्चूताद्याः बीजानि शाल्यादीनि एतेच वनस्पतिभेदाः ॥७॥ अथापरे त्रसाः प्राणिनोद्वित्रिचतुःपं चेंद्रियाएवं षट्कायाआख्यातास्तीर्थकृद्भिः। एतावान् जीवराशिर्नापरो विद्यते कश्चित् ॥८॥

॥ टीका–चारित्रमार्गस्य प्राणातिपातविरमणमूलत्वात्तस्य च तत्परिज्ञानपूर्वकत्वादतो जीवस्वरूपनिरूपणार्थमाह । (पुढवीजीवाइत्यादि) पृथिव्येव पृथिव्याश्रितावाजीवास्तेच प्रत्येकशरीरत्वात्पृथक् प्रत्येकं सत्वाजंतवोऽवगंतव्याः । तथा आपश्च जीवाएवमग्निकाया श्च तथापरे वायुजीवास्तदेवं चतुर्महाभूतसमाश्रिताः सत्वाः प्रत्येकशरीरिणोऽवगंतव्याः । एतएव पृथिव्यप्तेजोवायुसमाश्रिताः सत्वाः प्रत्येकशरीरिणोवक्ष्यमाणवनस्पतेस्तु सा धारणा साधारणशरीरत्वेनापृथक्त्वमप्यस्तीत्यस्यार्थस्य दर्शनाय पुनः पृथक् सत्वग्रहणमि ति । वनस्पतिकायस्तु यः सूक्ष्मः ससर्वोपि निगोदरूपः । साधारणबादरस्तु साधारणा ऽसाधारणश्चेति । तत्र प्रत्येकशरीरिणोऽसाधारणस्य कतिचिद्भेदान्निर्दिदिक्षुराह । तत्र तृ णानि दर्भवीरणादीनि वृक्षाश्चूताशोकादयः सहबीजैः शालिगोधूमादिनिर्वर्तितइति सबी जकाएते सर्वेपि वनस्पतिकायाः सत्वाअवगंतव्याः। अनेनच बौद्धादिमतनिरासः कृ तोवगंतव्यइति । एतेषां च पृथिव्यादीनां जीवानां जीवत्वेन प्रसिद्धिस्वरूपनिरूपणमाचा रे प्रथमाध्ययने शस्त्रपरिज्ञाख्ये न्यक्षेण प्रतिपादितमिति नेह प्रतन्यते ॥ ७ ॥ षष्ठजी वनिकायप्रतिपादनायाह । (आहावरेत्यादि) तत्र पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयएकेंद्रियाः सूक्ष्मबादरपर्याप्तापर्याप्तकभेदेन प्रत्येकं चतुर्विधाः । अथानंतरमपरेऽन्ये त्रसंतीति त्रसा द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियाः कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादयः। तत्र द्वित्रिचतुरिंद्रियाः प्रत्येकं पर्या प्तकापर्याप्तकभेदात्षड्विधाः । पंचेंद्रियास्तु संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तकापर्याप्तकभेदाच्चतुर्विधाः । तदे देवमनंतरोक्तया नीत्या चतुर्दशभूतग्रामात्मकतया व्याख्यातास्तीर्थकरगणधरादिभिः । एतावानेवतद्भेदात्मकएव संक्षेपतोजीवनिकायोजीवराशिर्भवत्यंडजोद्भिज्जसंस्वेदजादेरत्रैवां तर्भावान्नापरोजीवराशिर्विद्यते कश्चिदिति ॥ ८ ॥

सव्वाहिं अणुजुत्तीहिं, मतिमं पडिलेहिया ॥ सव्वे अकंतडुक्खाय,
अतो सव्वे अहिंसया ॥९॥ एयं खु णाणिणो सारं, जं न हिंसति
कंचण ॥ अहिंसा समयं चेव, एतावंतं विजाणिया ॥ १० ॥

अर्थ—ए पूर्वोक्त छ जीवनी निकाय कही हवे जे कांइ करवुं ते देखाडेछे. (सवाहिं अ णुजुत्तीहिं के०) समस्त अनुयुक्ति एटले जीवितव्य साधवाना कारण तेणेकरी जीवने सम्यक् प्रकारे उलखीने (मतिमं के०) बुद्धिवंत पुरुष जीवादिक तत्वने (पडिलेहिया के०) प्रतिलेखी एटले आलोचीने, (सवे अकंत डुरकाय के०) सर्वजीवो डुःख थकी आक्रांत थायछे, एटले एकांते डुःख कोइने वल्लन्न नथी सर्व सुखना अर्थीछे, (अतो के०) ते कारण माटे (सवेअहिंसया के०) पृथव्यादिक सर्व जीवोने हणे नही, छए कायनी दया पाले ॥ ए ॥ (एयं खुणाणिणोसारं के०) एहिज निश्चय थकी ज्ञानी ने जाणवानो सारछे, (जंनहिंसतिकंचण के०) जे कोइ जीवनो विनाश नकरे परमा र्थ थकी तेनेज ज्ञानी कहीये, के जे कोइ परजीवने पीडा उपजाववा थकी निवर्त्ते उ कंच किंताए पडियाए इति वचनात् (अहिंसा समयंचेव के०) अहिंसा जे दया तेज निश्चये थकी आगमनुं तत्व जाणवुं (एतावंतं विजाणिया) किंबहुना एटलुंज जाणीने दयाने विषे यत्न करवो परंतु घणुं जाणे शुं फलछे. ॥ १० ॥

॥ दीपिका—सर्वानिरनुकूलयुक्तिन्निर्मेतिमान् पृथिव्यादिजीवान् प्रत्युपेक्ष्य पर्यालोच्य जी वत्वेन प्रसाध्य तथा सर्वे जीवाअकांतडुःखाघ्रननिमतडुःखाः सुखैषिणश्चेति मत्वाऽतो मतिमान्सर्वान्प्राणिनोन हिंस्यात् ॥ ए ॥ खुर्वाक्यालंकारे निश्चयेवा । एतदेव ज्ञानिनः सारं यत्कंचन प्राणिनं न हिनस्ति अहिंसाप्रधानं संयममेतावंतमेव विज्ञानं यन्न हिंस्या त्कंचन किंबहुना ज्ञातेन एतावता ज्ञातेन विवक्षितकार्यसिद्धिः ॥ १० ॥

॥ टीका—तदेवं षड्जीवनिकायं प्रदर्श्य यत्तत्र विधेयं तद्दर्शयितुमाह । (सवाहींत्यादि) सर्वाभिः कार्त्स्नानुरूपाः पृथिव्यादिजीवनिकायसाधनत्वेनानुकूलायुक्तयः साधनानि । य दिवा सिद्धविरुद्धानैकांतिकपरिहारेण पक्षधर्मत्वसपक्षसत्वविपक्षव्यावृत्तिरूपतया यु क्तिसंगतायुक्तयस्ताभिर्मेतिमान् सद्विवेकी पृथिव्यादिजीवनिकायान्प्रत्युपेक्ष्य पर्यालोच्य जीवत्वेन प्रसाध्य तथा सर्वेपि प्राणिनोऽकांतडुःखाडुःखद्विषः सुखलिप्सवश्च मत्वाऽतोम तिमान् सर्वानपि प्रणिनोन हिंस्यादिति । युक्तयश्च तत्प्रसाधिकाः संक्षेपेणेमाइति । सा त्मिका पृथिवी तदात्मनां विद्रुमलवणोपलादीनां समानजातीयांकुरसद्भावादर्शोविकारां कुरवत् । तथा सचेतनमंभोनूमिखननादाविष्कृतस्वन्नावसंनवाद्दर्डुरवत् । तथा सात्मकं तेजस्तद्योग्याहारवृध्या वृध्युपलब्धेर्बालकवत् । तथा सात्मकोवायुरपराप्रेरितनियततिरश्ची नगतिमत्वाद्गोवत् । तथा सचेतनावनस्पतयोजन्मजरामरणरोगादीनां समुदितानां सद्भावात्स्त्रीवत्तथा क्षतसंरोहणाहारोपादानदौहृदसद्भावस्पर्शसंकोच सायान्हस्वापप्रबो

धाश्रयोपसर्पणादिन्योहेतुन्योवनस्पतेश्चैतन्यसिद्धिः । द्वींद्रियादीनां तु पुनः कृम्यादीनां स्पष्टमेव चैतन्यं तद्वेदनाश्चोपक्रमिकाः स्वाजाविकाश्च समुपजायमानामनोवाक्कायैः कृत कारितानुमतिनिश्च नवकेन नेदेन तत्पीडाकारिणउपमर्दान्निवर्तितव्यमिति ॥ ए ॥ एतदेव समर्थयन्नाह । (एयंखुइत्यादि) खुशब्दोवाक्यालंकारेऽवधारणेवा । एतदेवानंतरोक्तं प्राणातिपातनिवर्तनं ज्ञानिनोजीवस्वरूपतद्बधकर्मबंधवेदिनः सारं परमार्थप्रधानं ! पुनरप्यादरख्यापनार्थमेतदेवाह । यत्कंचनप्राणिनमनिष्टदुःखं सुखैषिणं न हिनस्ति प्रनूतवेदिनोपि ज्ञानिनएतदेव सारतरं ज्ञानं यत्प्राणातिपातनिवर्तनमिति । ज्ञानमपि तदेव परमार्थतोयत्पीडातोनिवर्तनं । यथोक्तं । किंताए पढियाए, पयकोडीए पयालनूयाए ॥ जब्बित्तियं ण णायं, परस्स पीडा न कायव्वा ॥१॥ तदेवमहिंसाप्रधानः समयआगमः संकेतोवापदेशरूपस्तदेवंनूतमहिंसासमयमेतावंतमेव विज्ञाय किमन्येन बहुना परिज्ञानेनैतावतैव परिज्ञानेन मुमुक्षोर्विवक्षितकार्यपरिसमाप्तेरतोन हिंस्यात्कंचनेति ॥ १० ॥

उड्ढं अहेय तिरियं, जे केइ तसथावरा ॥ सव्वज्ञ विरतिं विज्जा, संति निव्वाणमाहियं ॥ ११ ॥ पन्नू दोसे निराकिच्चा, ण विरुश्मेज्ज केणई ॥ मणसा वयसा चेव, कायसा चेव अंतसो ॥ १२ ॥

अर्थ-(उड्ढंअहेयतिरियं के०) उंचो नीचो अने तीर्छो एतावता सर्व लोकने विषे (जेकेइतसथावरा के०) जे कांइ त्रस अने स्थावर जीवछे, (सव्वज्ञविरतिंविज्ञा के०) ते सर्वजीवनी निवृत्तिकरे एटले प्राणातिपात थकी निवर्ते, (संतिनिव्वाणमाहियं के०) एहिज विरति, शांति अने निर्वाण श्रीतीर्थंकरें कह्युंछे. ॥ ११ ॥ (पन्नूदोसेनिराकिच्चा के०) प्रजु एटले समर्थ इंद्रीयनो जीपनार मिथ्यात्व अविरति प्रमादादिक दोषने निराकरी एटले अवगणीने (णविरुश्मेज्ञकेणई के०) कोइ पण जीवनीसाथे विरोध नाव नकरे, (मणसावयसाचेव के०) मने करी वचने करी वली (कायसाचेवअंतसोके०) कायायें करी निश्चय थकी कोइ पण जीवनी साथे जावजीवसुधी विरोध नकरे. ॥१२॥

॥ दीपिका-ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्च ये केचन त्रसाः स्थावराश्च प्राणिनस्तत्र सर्वत्र प्राणिनि विरतिं प्राणातिपातनिवृत्तिं विजानीयात्कुर्यात् । एषैव विरतेः शांतिहेतुत्वाच्छांतिर्वर्तते । तथा निर्वाणहेतुत्वान्निर्वाणमप्याख्याता एषैव विरतिः ॥११॥ प्रजुः समर्थोदोषान् मिथ्यात्वविरतिप्रमादकषायादीन् निराकृत्याऽपनीय केनापि प्राणिना सार्धं न विरुध्येत केनैव सह विरोधं न कुर्यात् मनसा वचसा कायेन चांतशः परमार्थतः केनापि नविरुध्येत॥१२॥

॥ टीका—सांप्रतं क्षेत्रप्राणातिपातमधिकृत्याह । (उड्ढमहेत्यादि) ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्च ये केचन त्रसास्तेजोवायुर्द्वींद्रियादयस्तथा स्थावराः पृथिव्यादयः किंबहुनोक्तेन सर्वत्र प्राणिनि त्रसस्थावरसूक्ष्मबादरनेदनिन्ने विरतिं प्राणातिपातनिवृत्तिं विजानीयात्कुर्यात् । परमार्थतएवमेवासौ ज्ञाता नवति । यदि सम्यक् क्रियतइति एषैवच प्राणातिपातनिवृत्तिः परेषामात्मनश्च शांतिहेतुत्वाच्छांतिर्वर्तते । यतोविरतिमतोनान्ये केचन बिन्यति नाप्यसौ नवांतरेपि कुतश्चिद्बिनेति । अपिच निर्वाणप्रधानैककारणत्वान्निर्वाणमपि प्राणातिपातनिवृत्तिरेव । यदिवा शांतिरुपशमःशांतता निवृत्तिर्निर्वाणं विरतिमांश्चार्तरौद्रध्यानानावाडुपशांतिरूपोनिर्वृतिनूतश्च नवति ॥ ११ ॥ किंचान्यत् । (पनूदोसेइत्यादि) इंद्रियाणां प्रनवतीति प्रनुर्वा वश्येंद्रियइत्यर्थः । यदिवा संयमाचारकाणि कर्माण्यनिनूय मोक्षमार्गे पालयितव्ये प्रनुः समर्थः सएवंनूतः प्रनुर्दूषयंतीति दोषामिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगास्तान्निराकृत्याऽपनीय केनापि प्राणिना सार्धं नविरुध्येत न केनचित्सह विरोधं कुर्यात्त्रिविधेनापि योगेनेति मनसा वाचा कायेन चैवांतशोयावज्जीवं परोपकारक्रियया न विरोधं कुर्यादिति ॥ १२ ॥

संवुमे से महापन्ने, धीरे दत्तेसणं चरे ॥ एसणासमिए णिच्चं, वज्जयंते अणेसणं ॥१३॥ नूयाइंच समारंन त मुद्दिस्साय जं कडं॥ तारिसं तु ण गिण्हेज्जा, अन्नपाणं सुसंजए ॥ १४ ॥

अर्थ—(संवुमेसेमहापन्नेके०) आश्रवनो रोधकरी संवरने पाम्यो ते महाप्राज्ञ एटले विपुल बुद्धिवंत तथा (धीरेदत्तेसणंचरेके०) परीसह जीतवाने धीर सुनट समान एवो व तो दीधेली एषणाने वरे; अर्थात् दातारेदीधो एषणीक निर्दोष एवोजे आहारतेने लिए (एसणासमिएणिच्चंके०) एषणा एटले आहारनी गवेषणा तेने विषे समिति सहित नित्यसदाकाल (वज्जयंतेअणेसणं के०) अनेषणीयने वर्जतो थको संयम पाले ॥१३॥ (नूयाइंचसमारंन के०) नूत एटले प्राणीनो समारंन करीने (तमुद्दिस्सायजंकडंके) यतिने अर्थे उद्देशीने कीधो एवो जे आधाकर्मिक आहार (तारिसंके०) तादृश एटले तेवो (अन्नपाणं के०) अन्न, पान, वस्त्र, पात्र अने शय्यादिक (णगिण्हेज्जा के०) तेने जे ग्रहण करे नही, ते (सुसंजए के०) सुसंयत जाणवो. ॥ १४ ॥

दीपिका—इंद्रियैः संवृतः समहाप्रज्ञोविपुलमतिर्धीरोऽक्षोन्योनिक्षुर्दत्तैषणां चरेत् आहारोपधिशय्यादिकं स्वामिना दत्तं सदेषणीयं गृह्णीतेत्यर्थः। एषणायां गवेषणग्रहणग्रासरूपायां त्रिविधायामपि समितः सम्यक्तयाऽनेषणां वर्जयन् नित्यं संयममनुपालयेत्॥१३॥

नूतानि प्राणिनः समारभ्य संताप्य तं साधुमुद्दिश्य साध्वर्थं यत्कृतं तादृशमाधाकर्म दोष दुष्टमाहारादिकं न गृण्हीयात् नक्तं पानंच सुसंयतोगृहीतव्रतस्तादृशं न भुंजीत ॥१४॥

॥ टीका—उत्तरगुणानधिकृत्याह । (संवुडे इत्यादि) आश्रवद्वाराणां रोधेनेंद्रियनिरोधेन च संवृतः सन्निकुर्महती प्रज्ञा यस्यासौ महाप्रज्ञोविपुलबुद्धिरित्यर्थः । तदनेन जीवाजीवादिपदार्थाभिज्ञता वेदिता भवति । धीरोऽक्षोभ्यः क्षुत्पिपासादिपरीषहैर्न क्षोभ्यते । तदेव दर्शयति । आहारोपधिशय्यादिके स्वस्वामिना तत्संदिष्टेन वा दत्ते सत्येषणां चरत्येषणीयं गृण्हातीत्यर्थः । एषणायाएषणायांवा गवेषणग्रहणैषणग्रासरूपायां त्रिविधायामपि सम्यगितः समितः ससाधुर्नित्यमेषणासमितः सन्ननेषणां परिवर्जयन् परित्यजन्संयममनुपालयेत् । उपलक्षणार्थत्वादस्य शेषाभिरपीर्यासमित्यादिभिः समितोऽद्रष्टव्यइति ॥ १३ ॥ अनेषणीयपरिहारमधिकृत्याह (भूयाइंइत्यादि) अभूवन् भवंति भविष्यंति च प्राणिनस्तानि भूतानि प्राणिनः समारभ्य संरंभसमारंभारंभैरुपतापयित्वा तं साधुमुद्दिश्य साध्वर्थं यत्कृतं तदकल्पितमाहारोपकरणादिकं तादृशमाधाकर्मदोषदुष्टं सुसंयतः सुतपस्वी तदन्नं पानकं वा न भुंजीत । तु शब्दस्यैवकारार्थत्वान्नैवाभ्यवहरेदेवं तेन मार्गोऽनुपालितोभवति ॥ १४ ॥

पूईकम्मं न सेविज्जा, एस धम्मे वुसीमउ ॥ जं किंचि अभिकंखेज्जा, सवसो तं नभोत्तए ॥ १५ ॥ हणंतं णाणुजाणेज्जा, आयगुत्ते जिइंदिए ॥ ठाणाइं संति सद्धीणं, गामेसु नगरेसु वा ॥ १६ ॥

अर्थ—(पूईकम्मंनसेविज्जाके०) शुद्धाहार पण जो आधाकर्मिकना एक कण सहित होय तो ते अशुद्ध थाय, तेमाटे तेने पूतिकर्म कहिए; एवो आहारादिकने नसेवे एटले नभोगवे (एसधम्मे के०) एवो धर्माचार ते (बुसीमउ के०) साचा संयमवंतनो जाणवो तथा (जंकिंचि के०) जेकांइ निर्दोष आहार होय परंतु तेने (अभिकंखेज्जा के०) सदोष करी जाणे तेपण सशंकित थयो माटे (सवसोतंनभोत्तए के०) ते सर्वथा प्रकारे भोगववुं नकल्पे ॥१५॥ (ठाणाइंसंतिसद्धीणंके०) श्रद्धावंतना स्थान श्रद्धावंत धर्मवंतना आश्रय (गामेसुनगरेसुवाके०) एवा ग्रामने विषे अथवा नगरने विषे साधु रह्या छे त्यांनो आश्रीत कोइएक कूप खनन सत्रुकारकादिकनो करावनार एवो पुरुष साधुने पूछे, जे एमां धर्मछे किंवा नथी एम पुछयां थकां (आयगुत्तेजिइंदिए के०) आत्मगुप्त तथा जितेंद्रिय एवो साधु, (हणंतंणाणुजाणेज्जा के०) आरंभेकरी प्राणी हणाता होय तेवा कार्यने अनुमोदे नही, जेए तुं रुडुं काम करेछे एम कहे नही ॥ १६ ॥

॥ दीपिका—आधाकर्माद्यविशुद्धिकोटयवयवेनापि संपृक्तं पूतिकर्म तन्न सेवेत । एषधर्मः (बुसीमउत्ति) सम्यक्संयमवतोयत्किंचिदनिकांक्षेतानुष्ठानं तत्र सर्वशः सर्वप्रकारमप्याहारादिकं पूतिकर्म नोक्तुं न कल्पते ॥ १५ ॥ धर्मश्रद्धावतां ग्रामेषु स्थानान्याश्रया विद्यंते तत्र तत्स्थानाश्रितः कश्चिद्धर्मबुध्या कूपतडागखननप्रपासत्रादिकां क्रियां कुर्यात्ते न च किमत्र धर्मोस्ति नास्तीत्येवं पृष्टः साधुस्तं प्राणिनोघ्नंतं नानुजानीयात् । किंनूतः साधुः आत्मगुप्तोमनोवाक्कायगुप्तोजितेंद्रियः ॥ १६ ॥

॥ टीका— किंच (पूतीत्यादि) आधाकर्माद्यविशुद्धकोटयवयवेनापि संपृक्तं पूतिकर्म तदेवंनूतमाहारादिकं न सेवेत नोपभुंजीत । एषोऽनंतो धर्मकल्पस्वनावः (बुसीमउत्ति) सम्यक् संयमवतोऽऽयमेवानुष्ठानकल्पोयद्गुताशुद्धमाहारादिकं परिहरतीति । किंच । यद्यप्यशुद्धत्वेनानिशंकेत किंचिदप्याहारादिकं तत्सर्वशः सर्वप्रकारमप्याहारोपकरणपूतिकर्म नोक्तुं न कल्पतइति ॥ १५ ॥ किंचान्यत् (हणंतमित्यादि) धर्मश्रद्धावतां ग्रामेषु नगरेषु वा खेटखर्वटादिषु वा स्थानान्याश्रयाः संति विद्यंते तत्र तत्स्थानाश्रितः कश्चिद्धर्मोपदेशेन किल धर्मश्रद्धालुतया प्राण्युपमर्दकारिणां धर्मबुध्या कूपतडागखननप्रपासत्रादिकां क्रियां कुर्यात्तेन च तथानूतक्रियायाः कर्ता किमत्र धर्मोस्ति नास्तीत्येवं पृष्टोवा तडुपरोधाद्भयाद्वा तं प्राणिनोघ्नंतं नानुजानीयात् । किंनूतः सन्नात्मना मनोवाक्कायरूपेण गुप्तआत्मगुप्तस्तथा जितेंद्रियोवश्येंद्रियः सावद्यानुष्ठानं नानुमन्यते ॥ १६ ॥

तहागिरं समारप्न, अत्थि पुन्नंति णोव ए॥ अहवा णत्थि पुन्नंति,
एवमेयं महप्नयं ॥ १७ ॥ दाणठ्याय जे पाणा, हम्मंति तस
थावरा ॥ तेसिं सारखणठाए, तम्हा अत्थित्ति णोवए ॥ १८ ॥

अर्थ—हवे ए स्वरूप विशेषे दीपावेछे अहो मुनीश्वर आ अमारे अनुष्ठाने पुण्यछे किंवा नथी एम पुछयां थकां (तहा के०) ते साधु (गिरंसमारप्न के०) एवी वाणी कहे के आ समारंन करवामां (अत्थिपुन्नंतिणोवए के०) पुण्यछे एम पण मुख थकी कहे नही; (अहवा के०) अथवा (णत्थिपुन्नंति के०) एमां पुण्य नथी एम पण मुख थकी कहे नही. (एवमेयं महप्नयं के०) एम ए बने प्रकारने दोषना हेतु तथा महानयना कारण जाणीने एवी नाषा नबोले ॥ १७ ॥ हवे जे कारणे एवी नाषा नबोले ते कारण कहेछे. (दाणठ्यायजेपाणा के०) दानने अर्थे अनेक लोकने अन्नपाणी आपवा सारुं जे प्राणी एटले जीव (तसथावरा के०) त्रस अने स्थावर (हम्मति के०) हणायछे (तेसिंसाररकणठाएके०) तेजीवोने राखवाने अर्थे (तम्हा

अत्थित्तिनोवए के०) तेकारणे आ तमारा अनुष्ठाने पुण्यछे एम पण साधु नकहे. ॥१८॥

॥ दीपिका—केनचिद्राजादिना कूपखननसत्रदानादिप्रवृत्तेन पृष्टः साधुः किमस्मदनुष्ठानेऽस्ति पुण्यमाहोस्विन्नास्तीत्येवं जूतां गिरं समारन्य निशम्यास्तिपुण्यं नास्तिवेत्येवमुन्नयथापि महान्नयमिति मत्वा नानुमन्येत ॥ १७ ॥ अन्नपानादिदानार्थं पाकादिक्रियायां ये प्राणिनोहन्यंते त्रसाःस्थावराश्च तेषां संरक्षणार्थं साधुरत्र पुण्यमस्तीति नोवदेत्॥१८॥

॥ टीका—सावद्यानुष्ठानानुमतिं परिहर्तुकामआह । (तहागिरमित्यादि) केनचिद्राजादिना कूपखननसत्रदानादिप्रवृत्तेन पृष्टः साधुः किमस्मदनुष्ठाने अस्ति पुण्यमाहोस्विन्नास्तीत्येवं जूतां गिरं समारन्य निशम्याश्रित्य चास्ति पुण्यं नास्तिवेत्येवमुन्नयथापि महान्नयमिति मत्वा दोषहेतुत्वेन नानुमन्येत ॥१७॥ किमर्थं नानुमन्येतइत्याह (दाणछयाइत्यादि) अन्नपानदानार्थमाहारमुदकंच पचनपाचनादिकया क्रियया कूपखननादिकया चोपकल्पयेत् । तत्र यस्माद्धन्यंते व्यापाद्यंते त्रसाः स्थावराश्च जंतवस्तस्मात्तेषां रक्षानिमित्तं साधुरात्मगुप्तोजितेंद्रियोऽत्र नवदीयानुष्ठाने पुण्यमित्येवं नो वदेदिति ॥ १८ ॥

जेसिं तं उवकप्पंति, अन्नपाणं तहाविहं ॥ तेसिं लाभं तरायंति,
तम्हा णत्थित्ति णो वए॥ १९ ॥ जे य दानं पसंसंति, वहमिच्छंति
पाणिणं ॥ जेयणं पडिसेहंति वित्तिछेयं करंति ते ॥ २० ॥

अर्थ—अने (जेसिंतं उवकप्पंति के०) जे लोकने निमित्ते उपकल्पे एटले वांछे शुं वांछे तोके (अन्नपाणंतहाविहंके०) अन्न पाणी तथाविध दोषे दुष्ट अनेक प्रकारे करी नीपजावेछे तथापि तेनो निषेध करे तो (तेसिंलाभंतरायंतिके०) तेने लाभांतराय रूप आहार देवानुं विघ्न थाय (तम्हा के०) ते कारणे आ तमारे अनुष्ठाने पुण्य (णत्थित्तिके०) नथी (नोवए के०) एम पण नकहे. ॥१९॥ (जेयदानंपसंसंति के०) तेमाटे जे कोइ परमार्थनो जाण यति दाननी प्रशंसाकरे ते (वहमिच्छंतिपाणिणं के०) ते प्राणीना वधनी इछा करेछे, (जेयणंपडिसेहंतिके०) अने जे यति दान आपवानो निषेध करे (वित्तिछेयंकरंतिते के०) तो ते यति अनेक जीवोनी आजीविकानो छेद करेछे. ॥ २० ॥

॥ दीपिका—येषां जंतूनां कृते तदन्नपानादिकं धर्मबुध्या उपकल्पयंति निष्पादयंति तन्निषेधे तेषामाहारार्थिनां लाभांतरायोविघ्नोजवेत् । तस्मात्कूपखननसत्रादिकर्मणिनास्ति पुण्यमित्यपि नो वदेत् ॥ १९ ॥ प्रपासत्रादिदानं ये प्रशंसंति ते प्राणिनां वधमिछं

ति येच निषेधंति प्रतिपेधयंति तेप्यगीतार्थाः प्राणिनां वृत्तिछेदं आजीविकाविघ्नं कुर्वंति २०

॥ टीका–यद्येवं नास्तिपुण्यमिति ब्रूयात्तदेतदपि न ब्रूयादित्याह । (जेसिमित्यादि) येषां जंतूनां तदन्नपानादिकं किल धर्मबुध्योपकल्पयंति तथाविधं प्राण्युपमर्ददोषडुष्टं निष्पादयंति तन्निषेधेच यस्मात्तेषामाहारपानार्थिनां तल्लानांतरायोविघ्नोनवेत्तदन्नावेन तु पीडयेरंस्तस्मात्कूपखननसत्रादिके कर्मणि नास्ति पुण्यमित्येतदपि नोवदेदिति ॥ १ए ॥ एनमेवार्थं पुनरपि समासतः स्पष्टतरं बिनणिषुराह । (जेयदाणमित्यादि) ये केचन प्रपासत्रादिकं दानं बहूनां जंतूनामुपकारीति कृत्वा प्रशंसंति श्लाघंते ते परमार्थानभिज्ञाः प्रनूततरप्राणिनां तत्प्रशंसा द्वारेण वधं प्राणातिपातमिछंति । तद्दानस्य प्राणातिपातमंतरेणानुपपत्तेः । येपिच किल सूक्ष्मधियोवयमित्येवं मन्यमानाआगमसद्भावानन्निज्ञाः प्रतिषेधंति निषेधयंति तेप्यगीतार्थाः प्राणिनां वृत्तिछेदं वर्तनोपायविघ्नं कुर्वंतीति ॥ २० ॥

डुहर्ठवि ते ण नासंति, अबिवा नबिवा पुणो ॥ आयं रयस्स हेच्चाणं, निवाणं पाउणंति ते ॥ २१ ॥ निवाणं परमं बुद्धा, णरकत्ताणव चंदमा ॥ तम्हा सदा जए दंते, निवाणं संधए मुणी॥२२॥

अर्थ–(अबिवानबिवा के०) अस्ति अथवा नास्ति एम न कहे एटले पुण्यडे किंवा पुण्य नथी एवी (डुहर्ठवि के०) बन्ने प्रकारनी वाणीने (पुणोके०) वली (तेके०) तेसाधु (णनासंति के०) नाषेनही; केमके ए थकी (रयस्सके०) कर्मरूप रज तेनो (आयं के०) लान तेने (हित्वाके०) जाणीने तेवी वाणीने उच्चार करवानो त्याग करे, (निवाणंपाउणंतितेके०) ते साधु निर्वाण प्रत्ये पामे; एटले अनवद्य नाषक एवो साधु संसाररहित थाय ॥ २१ ॥ (निवाणंपरमंबुद्धा के०) निर्वाण एटले मोक्ष तेने परम प्रधान जाणे, (णरकत्ताणवचंदमाके०) नक्षत्रचंद्रमानी पेरे, जेम नक्षत्रमां चंद्रमा प्रधानडे. तेम तत्वना जाण पुरुष सर्व गतिर्उमां मुक्तिने प्रधान कहेडे. (तम्हाके०) तेमाटे (सदाजएदंतेके०) संयमवंत पुरुष ते निरंतर प्रयत्नवान इंडियनुं दमन करनार थको (निवाणंसंधए मुणीके०) एवो साधु मोक्षने साधे अर्थात् सर्व क्रिया मोक्षने अर्थे करे. ॥ २२ ॥

॥ दीपिका–द्विधापि ते पुनः साधवोन नाषंते अस्ति पुण्यं नास्तिवा इति किंतु पृष्टैः सद्भिर्मौनमेवाश्रयणीयं । निर्बंधेत्वस्माकं निर्दोषाहारः कल्पते । एवंविधविषये साधूनामधिकारएव नास्तीति वक्तव्यं । यडुक्तं । सत्यं वप्रेषु शीतं शशिकरधवलं वारि पीत्वा प्रकामं, व्युछिन्नाशेषतृष्णाः प्रमुदितमनसः प्राणिसार्थान्नवंति ॥ शोषं नीते जलौघे दिन

करकिरणैर्यात्यनंताविनाशं तेनोदासीनन्नावं व्रजति मुनिगणः कूपवप्रादिकार्ये ॥ १ ॥ एवं रजसः कर्मणआयं लानं हित्वा त्यक्त्वाऽनवद्यनाषिणोनिर्वाणं मोक्षं प्राप्नुवंति ॥ ॥ २१ ॥ येषां निर्वाणं मोक्षएव परमं प्रधानं ते बुद्धाज्ञातत्वाः। यथा नक्षत्राणां मध्ये चंद्रमाप्रधानएवं मोक्षमेवाश्रित्य प्राप्य ये प्रवृत्तास्ते एव बुद्धानां मध्ये प्रधानाः। त स्मात्सदा सर्वकालं यतः प्रयत्नवान् इंद्रियदमने दांतोमुनिर्निर्वाणं संधयेन्निर्वाणार्थी सर्वाः क्रियाः कुर्यादित्यर्थः ॥ २२ ॥

॥ टीका—तदेवं राज्ञा अन्येन वेश्वरेण कूपतडागयागसत्रदानाद्युद्यतेन पुण्यसन्नावं पृष्टैर्मुमुक्षुनिर्यद्विधेयं तद्दर्शयितुमाह। (डुहउवीत्यादि) यद्यस्ति पुण्यमित्येवमूचुस्ततोनंता नां सत्वानां सूक्ष्मबादराणां सर्वदा प्राणत्यागएव स्यात्प्रीणनमात्रंतु पुनः स्वल्पानां स्वल्पका लीयमतोस्तीति न वक्तव्यं। नास्ति पुण्यमित्येवं प्रतिषेधेपि तदर्थिनामंतरायः स्यादित्यतो द्विधाप्यस्ति नास्ति वा पुण्यमित्येवं ते मुमुक्षवः साधवः पुनर्न नाषंते किंतु पृष्टैः सद्भिर्मौ नं समाश्रयणीयं। निर्बंधेत्वस्माकं द्विचत्वारिंशद्दोषवर्जितआहारः कल्पते। एवंविधविष ये मुमुक्षूणामधिकारएव नास्तीति। उक्तंच। सत्यं वप्रेषु शीतं शशिकरधवलं वारि पी त्वा प्रकामं, व्युच्छिन्नाशेषतृष्णाः प्रमुदितमनसः प्राणिसार्थानिवंति ॥ शोषं नीते जलौ घे दिनकरकिरणैर्यात्यनंताविनाशं, तेनोदासीनन्नावं व्रजति मुनिगणः कूपवप्रादिकार्ये ॥ १ तदेवमुनयथापि नाषिते रजसः कर्मणआयोलानोनवतीत्यतस्तं चायं रजसोमौनेना नवद्यनाषणेन वा हित्वा त्यक्त्वा तेऽनवद्यनाषिणोनिर्वाणं मोक्षं प्राप्नुवंतीति ॥ २१ ॥ अपिच। निवाणमित्यादि) निर्वृतिर्निर्वाणं तत्परमं प्रधानं येषां परलोकार्थिनां बुद्धानां ते तथा तानेव बुद्धान्निर्वाणवादित्वेन प्रधानानित्येवं दृष्टांतेन दर्शयति। यथा नक्षत्राणा मश्विन्यादीनां सौम्यत्वप्रमाणप्रकाशकत्वैरधिकश्चंद्रमाएवं परलोकार्थिनां बुद्धानां मध्ये ये स्वर्गचक्रवर्तिसंपन्निदानपरित्यागेनाशेषकर्मक्षयरूपं निर्वाणमेवाभिसंधाय प्रवृत्तास्त एव प्रधानानापरइति। यदिवा यथा नक्षत्राणां चंद्रमाः प्रधानन्नावमनुनवत्येवं लोक स्य निर्वाणं परमं प्रधानमित्येवं बुद्धाअवगततत्वाः प्रतिपादयंतीति। यस्माच्च निर्वाणं प्रधानं तस्मात्कारणात्सदा सर्वकालं यतः प्रयतः प्रयत्नवान् इंद्रियनोइंद्रियदमनेन दांतो मुनिः साधुर्निर्वाणमभिसंधयेन्निर्वाणार्थी सर्वाः क्रियाः कुर्यादित्यर्थः ॥ २२ ॥

वुज्जमाणाण पाणाणं किच्चंताण सकम्मणा ॥ आघाति साहु तं
दीवं, पतिठे सा पवुच्चई ॥ २३ ॥ आयगुत्ते सया दंते, छिन्नसोए
अणासवे ॥ जे धम्मं सुद्धमरकाति, पडिपुन्नमणालिसं ॥ २४ ॥

अर्थ-(बुज्झमाणाण पाणाणं के०) संसार समुद्रमां, विचरता प्राणी (किच्चंताण सकम्मणा के०) पोतपोताना कर्मेंकरी छेदन नेदननी कदर्थना पामता एवा असरण जीवोने पण (आघातिसाहुतं दीवं के०) श्रीतीर्थंकर गणधरनो कहेलो आश्वासनूत द्वीप समान एवो सम्यक् दर्शनादिक धर्म जाणवो, (पतिठेसापवुच्चई के०) एने संसार समुद्रमां परिच्रमणनो टालनार कहिए ॥२३॥ एवा धर्मनो प्ररुपनार कोण ते कहेछे. (आयगुत्तेसयादंतेके०) आत्माजेनो गुप्तछे ते आत्मगुप्त कहिए तथा सदादांत एटले सर्वकाल पांचेंद्रियनो संवर करनार (छिन्नसोए के०) जेणे संसारना स्रोत छेद्याछे (अणासवेके०) अनाश्रव एटले प्राणातिपातादिक आश्रव रहित (जेधम्मं सुद्धमक्खाति के०) एवो जे होय ते सुद्धो धर्म कहे ते धर्म केवोछे, तो के (पडिपुन्न के०) प्रतिपूर्ण सर्व विरतिरूप तथा (अणालिसं के०) निरुपमछे. एटले एवो धर्म अन्य दर्शनीउना कोइपण शास्त्रमां कह्यो नथी माटे ए धर्म उपमारहित छे. ॥ २४ ॥

॥ दीपिका-संसारसागरे मिथ्यात्वकषायादिनिर्वाह्यमानानां संमुखं नीयमानानां तथा स्वकर्मनिः कृत्यमानानां पीड्यमानानां प्राणिनां परोपकारनिरतस्तीर्थकारणतस्तीर्थकरो गणधरादिर्वा साधु शोजनं द्वीपमाश्वासनूतमाख्याति । यथा समुद्रपतितस्य जंतोः कश्चित्सुखार्थं द्वीपं वक्ति तथा संसारच्रमणविश्रामहेतुं सम्यग्दर्शनादिकं जिनादिर्वक्ति एषा संसारच्रमणविरतिरूपा प्रतिष्ठाप्रोच्यते तज्ज्ञैः ॥ २३ ॥ आत्मा गुप्तोयस्य सआत्मगुप्तः सदांतोवशीकृतेंद्रियः । तथा छिन्नानि त्रोटितानि संसारस्रोतांसि येन सछिन्नस्रोतानिराश्रवः कर्मबंधरहितएवंनूतोयः सशुद्धं निर्दोषं धर्ममाख्याति कथयति । किंनूतं धर्मं प्रतिपूर्णं सर्वविरतिरूपमनीदृशमनन्यसदृशं ॥ २४ ॥

॥ टीका-किंचान्यत् । (वुज्झमाणाण इत्यादि) संसारसागरस्रोतोनिर्मिथ्यात्वकषायप्रमादादिकैरुह्यमानानां तदनिमुखं नीयमानानां तथा स्वकर्मोदयेन निकृत्यमानानामशरणानामसुमतां परहितैकरतः कारणवत्सलस्तीर्थकृदन्योवा गणधराचार्यादिकस्तेषामाश्वासनूतं साधुं शोजनं द्वीपमाख्याति।यथा समुद्रांतः पतितस्य जंतोर्जलकल्लोलाकुलितस्य मुमूर्षोरतिश्रांतस्य विश्रामहेतुं द्वीपं कश्चित्साधुर्वत्सलतया समाख्यात्येवं तथानूतं द्वीपं सम्यग्दर्शनादिकं संसारच्रमणविश्रामहेतुं तीर्थपरतीर्थिकैरनाख्यातपूर्वमाख्यात्येवं च कृत्वा प्रतिष्ठानं प्रतिष्ठा संसारच्रमणविरतिलक्षणैषा दर्शनाद्यवाप्तिसाध्या मोक्षप्राप्तिः प्रकर्षेण तत्वज्ञैरुच्यते प्रोच्यतइति ॥ २३ ॥ किंनूतोऽसावाश्वासद्वीपोनवति कीदृग्विधेन वाऽसावाख्यायतइत्येदाह । (आयगुत्ते इत्यादि) मनोवाक्कायैरात्मा गुप्तोयस्य स

आत्मगुप्तस्तथा सदा सर्वकालमिंद्रियनोइंद्रियदमनेन दांतोवश्येंद्रियोधर्मध्यानध्यायी वे त्यर्थः । तथा छिन्नानि त्रोटितानि संसारस्त्रोतांसि येन सतथा । एतदेव स्पष्टतरमाह निर्गतआश्रवः प्राणातिपातादिकः कर्मप्रदेशद्वाररूपोयस्मात्सनिराश्रवोयएवंभूतः संशु द्धं समस्तदोषाऽपेतं धर्ममाख्याति । किंभूतं धर्मं प्रतिपूर्णं निरवयवतया सर्वविरत्याख्यं मोक्षगमनैकहेतुमनीदृशमनन्यसदृशमद्वितीयमिति यावत् ॥ २४ ॥

तमेव अवि जाणंता, अबुद्धा बुद्धमाणिणो ॥ बुद्धा मोत्तियम
न्नंता, अंतएते समाहिए ॥ २५ ॥ तेय बीउदगं चेव, तमुद्दिस्सा
य जं कडं ॥ भोच्चा झाणं झियायंति, अखेयन्ना असमाहिया ॥ २६ ॥

अर्थ-(तमेवअविजाणंता के०) ते शुद्ध प्रतिपूर्ण धर्मना आचारनुं जे जाणपणु तेने विषे (अबुद्धाबुद्धमाणिणो के०) अबुद्ध एटले अविवेकी छतां, पोतामां पंमित पणु मानता थका जे अमेज धर्मना जाणछैयें, (बुद्धामोत्तियमन्नंता के०) तत्वना जाण एवा बुद्धिमान अमेज छैयें; एवीरीते मानता एवा जनो (अंतएतेसमाहिए के०) ते भाव समाधि थकी अत्यंत दूर वर्त्तनार जाणवा ॥ २५ ॥ एवा कोण पुरुष ते कहेछे. (तेयबीउदगंचेव के०) ते शाक्यादिक अन्य दर्शनी अथवा एवा जे स्वतीर्थिक पासत्था दिक तेबीज एटले शाली गोधूमादिक तथा उदक ते सचित्तपाणी तथा (तमुद्दिस्सायजंकडं के०) तेने अर्थे उद्देशीने जे आहारादिक कीधो ते सर्वने अविवेकी पणे जीव्हाना लं पटी छता (भोच्चा के०) भोगवी ने (झाणंझियायंति के०) आर्त्त ध्यान ध्यावे, एट ले संघनो भोजनादिक थशे तेवारे आपणने पण मलशे, एवो आर्त्त ध्यान ध्यावे ते तात्विके (अखेयन्ना असमाहिया के०) धर्माधर्मने विषे अखेदज्ञ एटले अनिपुण तथा एवा ध्यानना ध्यावनार सदा असंतोषी होय माटे असमाधिवंत जाणवा ॥२६॥

॥ दीपिका-तमेवं धर्ममजानानाअबुद्धानिर्विवेकाबुद्धमानिनः पंडितंमन्याबुद्धाः स्मोवयमिति मन्यमानाः समाधेः सम्यग्दर्शनादंते पर्यंतेऽतिदूरे वर्तंते इति तेऽन्ये तीर्थिकाज्ञेयाः ॥ २५ ॥ बीजानि शालिगोधूमादीनि उदकमप्रासुकजलं च शाक्यादय स्तानुद्दिश्य तद्भक्तैर्यदाहारादिकं कृतं तत्सर्वं भुक्त्वा सातर्धिरसगौरवासक्ताः संघभक्ता दिक्रियया तदवाप्तिकृते आर्तं ध्यानं ध्यायंति । नहि ऐहिकसुखार्थिनां परिग्रहवतां धर्मं ध्यानं स्यात् । यतः । ग्रामक्षेमग्रहादीनां, गृहक्षेत्रजनस्य च । यस्मिन् परिग्रहोदृष्टो, ध्यानं तत्र कुतः शुभमिति । मोहस्यायतनं धृतेरपचयः शांतेः प्रतीपोविधि,र्व्याक्षेपस्य सुहृन्मदस्य भवनं पापस्य वासोनिजः ॥ दुःखस्य प्रभवः सुखस्य निधनं ध्यानस्य क

ष्टोरिपुः प्राज्ञस्यापि परिग्रहोग्रहइव क्लेशाय नाशाय च ॥ १ ॥ तथा ते कुतीर्थिकाध र्माधर्मविवेके ऽखेदज्ञाश्चनिपुणाश्चसमाहिताश्च समाधेर्मोक्षमार्गाद्दूरस्थाइत्यर्थः ॥ २६ ॥

॥ टीका–एवंनूतधर्मव्यतिरेकिणां दोषाभिधित्सयाऽह । (तमेवेत्यादि) तमेवंनूतं शुद्धं प रिपूर्णमनीदृशं धर्ममजानानाश्चप्रबुद्धाश्च विवेकिनः पंडितमानिनोवयमेव प्रतिबुद्धाधर्मंत त्वमित्येवं मन्यमानाभावसमाधेः सम्यग्दर्शनाख्यादंते पर्यंते विदूरे वर्ततइति तेच सर्वेपि प रतीर्थिकाद्रष्टव्याइति ॥ २५॥ किमिति ते तीर्थिकाभावमार्गरूपात्समाधेर्दूरे वर्ततइत्याशंक्या ह।(तेयबीउदगमित्यादि) तेच शाक्यादयोजीवाजीवानभिज्ञतया बीजानि शालिगोधूमादी नि तथा शीतोदकमप्राशुकोदकं तांश्चोद्दिश्य तद्भक्तैर्यदाहारादिकं कृतं निष्पादितं तत्सर्वमवि वेकितया शाक्यादयोनुक्त्वाऽन्यवहृत्य पुनः सातर्द्धिरसगौरवासक्तमनसः संघनक्तादिक्रिय या तदवाप्तिकृते आर्तं ध्यानं ध्यायंति । नह्यैहिकसुखैपिणां दासीदासधनधान्यादिपरिग्रहव तां धर्मध्यानं नवतीति । तथाचोक्तं। ग्रामक्षेत्रगृहादीनां गृहक्षेत्रजनस्य च ॥ यस्मिन्परिग्र होदृष्टो, ध्यानं तत्र कुतः शुनमिति । तथा । मोहस्यायतनं धृतेरपचयः शांतेः प्रतीपो विधि,र्व्याक्षेपस्य सुहृन्मदस्य नवनं पापस्य वासोनिजः ॥ दुःखस्य प्रनवः सुखस्य निध नं ध्यानस्य कष्टोरिपु., प्राज्ञस्यापि परिग्रहोग्रहइव क्लेशाय नाशाय च ॥ १ ॥ तदेवं पच नपाचनादिक्रियाप्रवृत्तानां तदेव चानुप्रेक्षमाणानां कुतः शुनध्यानस्य संनवइति । अपि च । ते तीर्थिकाधर्माधर्मविवेके कर्तव्ये अखेदज्ञाश्चनिपुणाः । तथाहि । शाक्यामनोज्ञाहा रवसतिशय्यासनादिकं रागकारणमपि शुनध्याननिमित्तत्वेनाध्यवस्यंति । तथाचोक्तं । म णुसुंनोयणं नुच्चेत्यादि । तथा मांसं कल्किकमित्यपदिश्य संज्ञांतरसमाश्रयणान्निर्दोषं म न्यंते बुद्धसंघादिनिमितं चारंनं निर्दोषमिति । तडुक्तं । मंसनिवत्तिं काउं,सेवइ दंतिक्कगंतिध णिनेया ॥ इयवइक्कणारंनं, परववएसा कुणइ बालो ॥ १ ॥ नचैतावन्निर्दोषता । नहि लू तादिकं शीतलिकाद्यनिधानांतरमात्रेणान्यथात्वं नजते विषं वा मधुरकानिधानेनेति । ए वमन्येषामपि कापिलादीनामाविर्नावतिरोनावानिधानाभ्यां विनाशोत्पादावनिदधताम नैपुण्यमाविष्करणीयं । तदेवं ते वराकाः शाक्यादयोमनोदिष्टनोजिनः सपरिग्रहतयार्त ध्यायिनोऽसमाहितामोक्षमार्गाख्याद्भावसमाधेरसंवृततया दूरेण वर्ततइत्यर्थः ॥ २६ ॥

जहा ढंकाय कंकाय कुललामगुकासिहा ॥ मच्छेसणं झियायंति,
झाणं ते कलुसाधमं ॥ २७ ॥ एवंतु समणाएगे, मिच्छदिठी अ
णारिया ॥ विसएसणं झियायंति, कंकावा कलुसाहमा ॥ २८ ॥

अर्थ-(जहाढंकायकंकाय. के०) जेम ढंक पक्षी विशेष, तथा कंक पक्षी विशेष (कुललामग्गुकासिहा के०) कुलला पक्षी विशेष मूंगु पक्षी विशेष काक पक्षी विशेष एसर्व पक्षी मांसना अर्थि मांसनी इहा एटले वांछाना करनार छे, ते (मछेसणंझि यायंति के०) माछलानी प्राप्तिनी एषणाने ध्यावतां थकां रहेछे. (आणंतेकलुसा धमं के०) एवा मांसाहारी जीवो ते सर्वकाल कलुष एटले मलीन एवुं माछलानी गवे षणानुं अधम ध्यान ध्यावेछे. ॥ २७ ॥ (एवंतुसमणाएगे के०) ए प्रकारे कोइएक अन्यतीर्थिक अथवा पासछादिक कुशीलिया श्रमण (मिछदिठि के०) मिथ्यादृष्टी (अणारिया के०) अनार्य ते (विसएसणंझियायंति के०) विषयनी एषणा एटले, श ब्द रूप रस गंधनी प्राप्तिने ध्यावेछे (कंकावाकलुसाहमा के०) ते पूर्वोक्त कंकादिक प क्षीनी पेरे कलुषित चित्त वाला अधम पुरुषो जाणवा. ॥ २८ ॥

॥ दीपिका-यथा ढंकादयः पक्षिविशेषाजलाश्रयनिवासाआमिषजीविनोमत्स्यप्रा प्तिं ध्यायंति तत्ध्यायिनश्च ते कलुषाधमाः स्युः । एवं शाक्यादयोविषयप्राप्तिं ध्यायंतः क लुषाधमाश्च स्युः ॥ २७ ॥

टीका-यथा चैते रससातागौरवतयार्तध्यायिनोनवंति तथा दृष्टांतद्वारेण दर्शयितु माह । (जहाढंकायइत्यादि) यथेत्युदाहरणन्यासार्थः ।यथा येन प्रकारेण ढंकादयः पक्षि विशेषाजलाश्रयाआमिषजीविनोमत्स्यप्राप्तिं ध्यायंत्येवंभूतं च ध्यानमार्तरौद्रध्यानरूपत याऽत्यंतकलुषमधमं च नवतीति॥२७॥ दार्ष्टांतिकं दर्शयितुमाह । (एवमित्यादि) एवमि ति यथा ढंकादयोमत्स्यान्वेषणपरं ध्यानं ध्यायंति तत्ध्यायिनश्च कलुषाधमाभवंत्येवमेव मिथ्यादृष्टयः श्रमणाएके शाक्यादयोऽनार्यकर्मकारित्वात्संरंभपरिग्रहतया अनार्याः संतो विषयाणां शब्दादीनां प्राप्तिं ध्यायंति तत्ध्यायिनश्च कंकाइव कलुषाधमाभवंतीति ॥२८॥

सुद्धं मग्गं विराहित्ता, इहमेगेउ दुम्मती॥ उम्मग्गगता दुक्खं,
घायमेसंति तं तहा ॥ २९ ॥ जहा आसाविणिं नावं, जाइअंधो
दुरूहिया ॥ इछइ पारमागंतुं, अंतराय विसीयंती ॥ ३० ॥

अर्थ-(सुद्धंमग्गंविराहित्ताके०)शुद्धमार्गजे सम्यक्दर्शनादिक तेने कुमार्गनी प्ररुपणाये विराधता एवा (इहके०) आसंसारमांहे (मेगेउदुम्मतीके०) कोइएक दुराचारी पोताना दर्शनना अनुरागे प्रवर्त्तता (उम्मग्गगतादुक्खं के०) उन्मार्ग गत एटले अरिहंत नाषी त तत्व थकी विपरीत मार्गं प्राप्त थया छता दुःखजे अष्ट प्रकारना कर्म असातोदयरू प तेणे करी (घायमेसंतितंतहा के०) तथा प्रकारे ते घात एटले नरकादिकगतिमांहे

अनेक प्रकारेकरी जन्ममरणछेदन नेदनादिक डुःखनी वेदना पामे. ॥ २ए ॥ (जहाके०) जेम (जाइअंधोके०) जात्यंध पुरुष (आसाविणिंके०) शतछिड् सहित एवी (नावंके०) नावने विषे (डुरूहिया के०) बेसीने (इछति पारमागंतुंके०) समुड् तरी पार पाम वानी इछा करे पण तेवी नावा थकी समुड्नो शीरीते पार पामे? (अंतरायविसीयंती के०) ते पुरुष अंतराले विषीदंति एटले वचमांज बुडे, परंतु पार पामे नही. ॥ ३० ॥

॥ दीपिका– शुद्धं निर्दोषं मोक्षमार्गप्ररूपणया विराध्य दूषयित्वा इह संसारे एके शाक्यादयोडुर्मतयउन्मार्गगताडुःखं घातं च मृतिं ते शाक्यादयस्तथा तेन प्रकारेण एषं ति अन्वेषयंति डुःखमरणे शतशः प्रार्थयंतीत्यर्थः ॥ २ए ॥ यथा जात्यंधआस्राविणीं शतछिड्रां नावमारुह्य पारमागंतुमिछति। न चासौ छिड्नावारूढः पारगतः स्यात् किंत र्हि अंतराले जलमध्यएव विषीदति निमज्जति ॥ ३० ॥

॥ टीका–किंच (शुद्धमित्यादि) शुद्धमवदातं निर्दोषं मार्गं सम्यग्दर्शनादिकं मोक्षमार्गं कुमार्गप्ररूपणया विराध्य दूषयित्वा इहास्मिन्संसारे मोक्षमार्गप्ररूपणप्रस्तावे वा एके शाक्यादयः स्वदर्शनानुसारेण महामोहाकुलितांतरात्मानोडुष्टा पापोपादानतया मति र्येषां ते डुष्टमतयः संतउन्मार्गेण संसारावतरणरूपेण गताः प्रवृत्ताउन्मार्गगताडुःख यतीति डुःखमष्टप्रकारं कर्मासातोदयरूपं वा तद्डुःखं घातं चांतशस्तथा सन्मार्गविराधन तया उन्मार्गगमनं चैषंत्यन्वेषयंति। डुःखमरणे शतशः प्रार्थयंतीत्यर्थ. ॥ २ए ॥ शाक्यादीनां चापायं दिदर्शयिषुस्तावद्दृष्टांतमाह। (जहाआसाविणिमित्यादि) यथा जात्यंधआस्राविणीं शतछिड्रां नावमारुह्य पारमागंतुमिछति। नचासौ सछिड्तया पार गामी नवति किंतर्ह्यंतरालएव जलमध्यएव विषीदति निमज्जतीत्यर्थः ॥ ३० ॥

एवंतु समणा एगे, मिछद्दिठी अणारिया ॥ सोयं कसिणमाव न्ना, आगंतारो महप्भयं ॥ ३१ ॥ इमंच धम्ममादाय, कासवेण पवेदितं ॥ तरे सोयं महाघोरं, अत्तत्ताए परिव्वए॥ ३२ ॥

अर्थ–हवे ए दृष्टांत अन्यतीर्थिक साथे जोडेछे (एवंतुसमणाएगे के०) एरीते कोइ एक अन्य दर्शनी श्रमण (मिछदिठी अणारिया के०) मिथ्यादृष्टी अनाचारी विपरीत मार्गना उपदेशक विपरीत बुद्धिना धणी ते (सोयंकसिणमावन्ना के०) श्रोत एट ले कर्मनो आश्रव तेने विषे संपूर्ण पोहोच्या थका (आगंतारोमहप्भयं के०) आवते काले महान्नय एटले अत्यंत बीहामणा एवा नरकादिकना डुःख पामे. ॥३१॥ (इमंचध म्ममादाय के०) एम सर्वलोक प्रसिद्ध छकाय जीवोनो वाछल्ल कारी एवो श्रुत चारित्र

रूप धर्म तेने ग्रहण करीने (कासवेणपवेदितं के०) ते धर्म काश्यपगोत्री श्रीमहावीर देवे कह्यो ते धर्मने आदरवा थकी फल जे थाय ते कहेछे (तरेसोयंमहाघोरं के०) ते माहाघोर एवो संसार समुद्रनो श्रोत एटले प्रवाहरूप स्थानक तेने तरे अर्थात् संसार समुद्रने उल्लंघीने पारपामे, (अत्तत्ताएपरिव्वए के०) ते कारण माटे आत्मानो त्राण एटले रक्षपाल एवो साधु ते एहिज सम्यग् धर्मने समाचारे ॥ ३२ ॥

॥ दीपिका–एवमेके शाक्यादयः श्रमणामिथ्यादृष्टयोऽनार्याभावस्रोतःकर्माश्रवरूपं कृत्स्नं समापन्नाः संतोमहाभयं पौनःपुन्येन दुःखमागंतारआगमनशीलाः स्युः संसारसागरोत्तरणं न स्यादिति ॥३१॥ इमं प्रत्यक्षं धर्मं । चः पुनरर्थे। काश्यपेन श्रीवीरेण प्रवेदितं प्रणीतं आदाय गृहीत्वा भावस्रोतः संसारपर्यटनं महाघोरं तरेल्लंघयेत् । तदेवं जिनप्रणीतधर्माटनेनासता आत्मनस्त्राणाय नरकादिभ्योरक्षणाय परिव्रजेत्संयमानुष्ठायी स्यात् । क्वचित्पश्चार्धस्यायं पाठः । (कुज्जाभिक्खूगिलाणस्स, अगिलाएसमाहिए)। भिक्षुः साधुर्ग्लानस्य वैयावृत्यमग्लानोऽपरिश्रांतः कुर्यात्समाधिर्ना ग्लानस्य समाधिमुत्पादयन् ॥३२॥

॥ टीका–दार्ष्टांतिकमाह । (एवंतित्यादि) एवमेव श्रमणाएके शाक्यादयोमिथ्यादृष्टयोऽनार्याभावस्रोतःकर्माश्रवरूपं कृत्स्नं संपूर्णमापन्नाः संतस्ते महाभयं पौनःपुन्येन संसारपर्यटनतया नारकादिस्वभावं दुःखमागंतारआगमनशीलाभवंति । न तेषां संसारोदधेरास्राविणीं नावं व्यवस्थितानामिवोत्तरणं भवतीति भावः ॥ ३१ ॥ यतः शाक्यादयः श्रमणाः मिथ्यादृष्टयोऽनार्याः कृत्स्नं स्रोतः समापन्नाः महाभयमागंतारोभवंति ततइदमपदिश्यते । (इमंचेत्यादि) इदमिति प्रत्यक्षासन्नवाचित्वादिदमोनंतरं वक्ष्यमाणलक्षणं सर्वलोकप्रकटं च दुर्गतिनिषेधेन शोभनगतिधारणाद्धर्मं श्रुतचारित्राख्यं । चशब्दः पुनःशब्दार्थे । सच पूर्वस्माद्व्यतिरेकं दर्शयति । यस्माच्छाक्यादिप्रणीतधर्मस्यादातारोमहाभयं गंतारोभवंति इमं पुनर्धर्ममादाय गृहीत्वा काश्यपेन श्रीवर्धमानस्वामिना प्रवेदितं प्रणीतं तरेल्लंघयेद्भावस्रोतः संसारपर्यटनस्वभावं । तदेव विशिनष्टि । महाघोरं दुरुत्तारत्वान्महाभयानकं । तथाहि । तदंतर्वर्तिनोजंतवोगर्भाद्गर्भं जन्मतोजन्म मरणान्मरणं दुःखाद्दुःखमित्येवमरघट्टघटीन्यायेनानुभवंतोऽनंतमपि कालमासते । तदेवं काश्यपप्रणीतधर्मादानेन सता आत्मनस्त्राणं नरकादिरक्षा तस्मै आत्मत्राणाय परिःसमंतात्परिव्रजेत्संयमानुष्ठायी भवेदित्यर्थः । क्वचित्पश्चार्धस्यान्यथा पाठः । कुज्जाभिक्खूगिलाणस्स. अगिलाएसमाहिए ॥ भिक्षुः साधुः ग्लानस्यवैयावृत्यमग्लानोऽपरिश्रांतः कुर्यात्सम्यक्समाधिना ग्लानस्य वा समाधिमुत्पादयन्निति ॥ ३२ ॥

विरए गामधम्मेहिं जे केइ जगई जगा ॥ तेसिं अत्तुवमायाए, थामं कुव्वं परिव्वए ॥ ३३ ॥ अइमाणं च मायं च, तं परिन्नाय पंमिए ॥ सव्वमेयं णिराकिच्चा, णिव्वाणं संधए मुणी ॥ ३४ ॥

अर्थ–विरति साधु संयमानुष्ठानने शीरीतें पाले ते उपर कहेले. (विरएगामधम्मेहिंके०) ग्रामधर्मजे शब्दादिक विषय ते थकी विरति थको अने (जेकेइजगईजगा के०) जेकां इ जगत्रमांहे त्रस अने स्थावर जीवडे (तेसिंअत्तुवमायाए के०) तेने पोताना आत्म तुल्यनी उपमायें देखीने तेने राखवाने अर्थें (थामंकुव्वं के०) बलवीर्य फोरवतो थको (परिव्वए के०) संयम पाले. ॥ ३३ ॥ अइमाणंचमायंच के०) जे कारणे मान जे डे ते चारित्रने अतिक्रमे डे तेमाटे तेने अतिमान कहिए. एना सायें क्रोध पण लेवो एम ज अतिमाया अने चशब्द थकी लोज पण लेवो (तं के०) ते चार कषायने (पंमिए के०) पंमित विवेकी जन होय ते एने संयमना शत्रु (परिन्नाय के०) ज्ञपरिज्ञायें करी जाणीने (सव्वमेयंणिराकिच्चा के०) एसर्व कषायने संसारनुं कारण जाणीने तेने प्रत्या ख्यान परिज्ञायें करी निराकरीने (णिव्वाणंसंधएमुणीके०) साधु मोक्षने सधे वांछाकरे.

॥ दीपिका–ग्राम्यधर्माः शब्दादिविषयास्तेन्योविरताः संत्येके केचन जगति जगाः प्राणिनोजीवितार्थिनस्तेषामात्मोपमया तद्रक्षणाय स्थामं सामर्थ्यं कुर्वन् परिव्रजेत्संयमे ॥ ३३ ॥ अतिमानं च मायां चशब्दात्क्रोधलोनौ गृह्येते । एवं कषायव्रतं परिज्ञाय पंमितः सर्वमेतं नवहेतुं निराकृत्य निर्वाणमनुसंधयेत् मोक्षार्थं प्रशस्तनावानुगतः स्यात् । सतिच कषाये न संयमः सफलतां याति । यतः । सामन्नमणुचरंतस्स, कसाया जस्स उक्कडा होंति । मन्नामि उच्छुपुप्फंच, निप्फलं तस्स सामण्णंइति ॥ ३४ ॥

॥ टीका–कथं संयमानुष्ठाने परिव्रजेदित्याह । (विरएइत्यादि) ग्रामधर्माः शब्दादयो विषयास्तेन्योविरतामनोज्ञेतरेष्वरक्तद्विष्टाः संत्येके केचन जगति पृथिव्यां संसारोदरे (जगाइति) जंतवोजीवितार्थिनस्तेषां दुःखद्विषामात्मोपमया दुःखमनुत्पादयन्तद्रक्षणे सामर्थ्यं कुर्यात्कुर्वंश्च संयमानुष्ठाने परिव्रजेदिति ॥ ३३ ॥ संयमविघ्नकारिणामपनयनार्थमाह । (अइमाणंचेत्यादि) अतीव मानोऽतिमानश्चारित्रमतिक्रम्य योवर्तते चकारादेतद्देश्यः क्रोधोपि परिगृह्यते । एवमतिमायां चशब्दादतिलोनं च तमेवंनूतं कषायव्रतं संयमपरिपंथिनं पंमितोविवेकी परिज्ञाय सर्वमेनं संसारकारणनूतं कषायसमूहं निराकृत्य निर्वाणमनुसंधयेत्सति च काषायकर्दबके नसम्यक् संयमः सफलतां प्रतिपाद्यते । तदुक्तं ।

सामस्समणुचरंतस्स कसाया जस्स उक्कडा होंति ॥ मन्नामि उच्छुपुप्फंच निप्फलं तस्स सा मन्नं ॥१॥ तन्निष्फलत्वेच न मोक्षसंजवः । तथाचोक्तं । संसारादपलायनप्रतिजुवोरागादयो मे स्थितास्तृष्णाबंधनबध्यमानमखिलं किंवेत्सि नेदं जगत् ॥ मृत्यो मुंच जराकरेण परुषं केशेषु मामाग्रहीरेहीत्यादरमंतरेण जवतः किंनागमिष्याम्यहं॥१॥इत्यादि । तदेवमेवंजूतकपायपरित्यागादच्छिन्नप्रशस्तजावानुसंधनया निर्वाणानुसंधानमेव श्रेयइति ॥ ३४ ॥

संधए साहुधम्मंच, पाठांतरं (सद्दए साहुधम्मंच) पावधम्मं
णिराकरे ॥ उवहाणवीरिए जिरकू, कोहं माणंच पत्थए ॥ ३५ ॥
जे य बुद्धा अतिक्कंता, जे य बुद्धा अणागया ॥ संति तेसिं पइ
ठाणं, जूयाणं जगती जहा ॥ ३६ ॥

अर्थ–(संधएसाहुधम्मंच के०) साधुनो धर्मजे क्षमादिक दश प्रकारनोछे तेने सम्यक् जाणीने वृद्धि करे एटले सम्यक् उपदेशीने वृद्धि पमाडे पाठांतरे (सद्दए साहुधम्मंच के०) दश प्रकारनायतिधर्म उपर श्रद्धा राखे. (पावधम्मंणिराकरे के०) पाप धर्म जे जीवोनो मर्दन करतो थको धर्मनेजावे प्रवर्त्ते तेने पापधर्म कहिए, तेने निराकरे एटले तेनुं उच्छापन करीने (उवहाणवीरिएजिरकू के०) उपधान जे तप तेने विषे बलवीर्य फोरवतो एवो साधु (कोहंमाणंचपत्थए के०) क्रोध अने मानने प्रार्थे नही. चशब्द थकी साधु वर्तमान काले एवीरीते संयम पाले. ॥ ३५ ॥ ए धर्म श्रीमहावीर देवे कह्यो किंवा अन्य जिनोए पण कह्यो ते कहेछे. (जेयबुद्धाअतिकंता के०) जे तीर्थंकर अतीत काले थया, तथा (जेयबुद्धाअणागया के०) जे तीर्थंकर अनागत काले थशे चशब्द थकी जे तीर्थंकर वर्त्तमान काले विराजमान छे, ते सर्व एज धर्मना कहेनार जाणवा (संतितेसिंपइठाणं के०) तेनो प्रतिष्ठान एटले अवलंबननो स्थानक ते शांति एटले समस्त जीवनी दया जाणवी, कोनीपेरे तोके (जहाके०) जेम (जूयाणंजगती के०) समस्त जीवोने आधारजूत पृथवीरूप स्थानक छे, तेम सर्व तीर्थंकर देवोने जीवदया रूप शांतिनुं स्थानक ते आधारजूत जाणवो. ॥ ३६ ॥

॥ दीपिका–साधुधर्मं संयमं संधयेत् वृद्धिं प्रापयेत् तथा पापधर्मं हिंसात्मकं निराकुर्यात् । उपधानं तपस्तत्र वीर्योजिक्षुः क्रोधं मानं च न प्रार्थयेन्नवर्धयेत् ॥ ३५ ॥ ये बुद्धास्तीर्थकृतोऽतिक्रांताअतीताये चाऽनागताः । चशब्दाद्वर्तमानाजिनेंद्रास्तेषां सर्वेषां शांतिर्जावमार्गः प्रतिष्ठानमाधारः । अथवा शांतिर्मोक्षः प्रतिष्ठानमाधारः । मोक्षश्च जावमार्गं विना नस्यादित्यतः सर्वेपि जिनाएनं जावमार्गं प्रतिष्ठानमुक्तवंतोऽनुष्ठितवंतश्चेति ग

म्यंते । नूतानां प्राणिनां यथा त्रिलोकी प्रतिष्ठानमेवं सर्वेपि बुद्धाः शांतिप्रतिष्ठानाः ॥३६॥

॥ टीका–किंच । (संधएइत्यादि) साधूनां धर्मः क्षांत्यादिकोदशविधः सम्यग्दर्शनचारित्राख्योवा तमनुसंधयेद्वृद्धिमापादयेत् । तद्यथा । प्रतिक्षणमपूर्वज्ञानग्रहणेन ज्ञानं तथा शंकादिदोपपरिहारेण सम्यग्जीवादिपदार्थाधिगमेन च सम्यग्दर्शनमस्खलितमूलोत्तरगुणसंपूर्णपालनेन प्रत्यहमपूर्वज्ञानग्रहणेन चारित्रंवृद्धिमापादयेदिति । पागंतरंवा (सद्दहेसाधुधम्मंच) पूर्वोक्तविशेपणविशिष्टसाधुधर्मं मोक्षमार्गत्वेन श्रद्दधीत निःशंकतया गृएहीयाच्चशब्दात्सम्यगनुपालयेच्च । तथा पापं पापोपादानकारणं धर्मं प्राण्युपमर्देन प्रवृत्तं निराकुर्यात्तथोपधानं तपस्तत्र यथाशक्त्या वीर्यं यस्य सनवत्युपधानवीर्यस्तदेवंनूतोनिक्षुः क्रोधं मानं च न प्रार्थयेन्नवर्धयेद्देति ॥ ३५ ॥ अथैवंनूतं नावमार्गं किं वर्धमानस्वाम्येवोपदिष्टवानुतान्येपीत्येतदाशंक्याह । (जेयबुद्धाइत्यादि) ये बुद्धास्तीर्थकृतोऽतीते नादिके कालेऽनंताः समतिक्रांतास्ते सर्वेप्येवंनूतं नावमार्गमुपन्यस्तवंतस्तथा ये चानागता नविष्यदनंतकालनाविनोनंताएव तेप्येवमेवोपन्यसिष्यंति । चशब्दाद्वर्तमानकालनाविनश्च संख्येयाइति । न केवलमुपन्यस्तवंतोऽनुष्ठितवंतश्च गम्यंते । तद्दर्शयति । शमनं शांतिर्नावमार्गस्तेपामतीतानागतवर्तमानकालनाविनां बुद्धानां प्रतिष्ठानमाधारोबुद्धत्वस्यान्यथानुपपत्तेः । यदिवा शांतिर्मोक्षः सतेषां प्रतिष्ठानमाधारस्ततस्तदवाप्तिश्च नावमार्गमंतरेण न नवतीत्यतस्ते सर्वेप्येनं नावमार्गमुक्तवंतोऽनुष्ठितवंतश्च गम्यंते । शांतिप्रतिष्ठानत्वे दृष्टांतमाह । नूतानां स्थावरजंगमानां यथा जगती त्रिलोकी प्रतिष्ठानमेवं ते सर्वेपि बुद्धाः शांतिप्रतिष्ठानाइति ॥ ३६ ॥

अहसं वयमावन्नं, फासा उच्चावया फुसे ॥ ण ते सुविणिहसेज्जा वाएणव महागिरी ॥ ३७ ॥ संवुमे से महापन्ने, धीरे दत्तेसणं चरे ॥ निवुमे कालमाकंखी, एवं केवलिणो मयंतिबेमि ॥३८॥
इति मोक्षमार्गनामकं एकादसममझयणं सम्मत्तं ॥

अर्थ–(अहसंवयमावन्नंके०) अथ हवे व्रतप्रतिपन्न संयम आहित साधुने (फासाउच्चावयाफुसे के०) सम विषमादिक ऊंचा नीचा अनुकूल प्रतिकूल एवा परिसह फरशे (णतेसुविणिहसेज्जा के०) तोपण तेणे करीने ते धर्मथकी नचुके एटले धर्म थकी भ्रष्ट नथाय, कोनी पेरे तोके (वाएणवमहागिरी के०) जेम वायरे करी मेरुपर्वत डोलायमान नथाय, तेम परिसह उपने थके साधुजन व्रत थकी डोलायमान नथाय. ॥३७॥ (संवुमेसेमहापन्ने के०) ते साधु संवरवान महाप्रज्ञावंत, (धीरेदत्तेसणंचरे के०) धै

र्यवान कर्मविदारवाने सूरवीर, दीधो एषणीक आहार ग्रहण करवाने विषे विचरे (नि वुमेकालमाकंखी के०) तथा निवृत्त उपशांत कषाय वालो एवो बतो मरण कालसु धी संयमने वांछे (एवंकेवलिणोमयं के०) एम केवल ज्ञानीउंनो मतछे अने तेज केवल ज्ञानीउंनो प्रकाश्यो मार्ग श्रीमहावीर देव कहेछे, पण महारी बुद्धिये हुं केतो नथी. ति बेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ ३ ८ ॥ इतिश्रीसूत्रकृतांगना प्रथमश्रुतस्कंधने विषे मो क्षमार्गनामे एकादशमां अध्ययनो अर्थ समाप्त थयो. ॥

॥ दीपिका–अथ तं साधुं प्रतिपन्नव्रतं उच्चावचाः शुनाशुनाः स्पर्शाः परीषहोप सर्गाः स्पृशेयुः पीडयेयुः । सच साधुस्तैः पीडितोन विहन्यात् न संयमाच्चलेत् । यथा वातेन वायुना महागिरिर्मेरुर्न चलेत् । परीषहोपसर्गजयश्चाभ्यासवशाद्विधेयः । यथा क श्चिद्गोपस्तदहर्जातं तर्णकमुत्पाट्य गवांतिकं नयति आनयति च ततोसौ क्रमेण प्रत्यहं वर्धमानमपि वत्समुत्पाटयन्नभ्यासवशाद्द्विवर्षत्रिवर्षमपि तमुत्पाटयति । एवं साधुरप्यभ्या सात्परीषहोपसर्गजयं विधत्ते ॥३७॥ ससंवृतः साधुर्महाप्रज्ञः सम्यग्दर्शनज्ञानवान् धीरः परीषहादिनिरक्षोभ्यः परेण दत्ते आहारादिके एषणां चरेत् त्रिविधयैषणया युक्तः संयमे चरेत् तथा निर्वृतः शीतीनूतकालं मृत्युकालं यावदनिकांक्षेत् । एतन्मया यत्पूर्वोक्तं त त्केवलिनः सर्वज्ञस्य मतमिति । ब्रवीमीति सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमाहेति ॥३८॥ इत्ये कादशं मार्गाध्ययनं समाप्तं ॥

॥ टीका–प्रतिपन्नजावमार्गेण च यद्विधेयं तद्दर्शयितुमाह । (अहसुमित्यादि) अथ मार्गप्र तिपत्त्यनतरं साधुं प्रतिपन्नव्रतं संतं स्पर्शाः परीषहोपसर्गरूपाउच्चावचागुरुलघवोनानारू पावा स्पृशेयुः । सच साधुस्तैरनिहुतः संसारस्वजावमपेक्षमाणः कर्मनिर्जरांच न तैरनुकूल प्रतिकूलैर्विहन्यात् नैवं संयमानुष्ठानान्मनागपि विचलेत्किमिव महावातेनेव महागिरिर्मेरु रिति। परीषहोपसर्गजयश्चाभ्यासक्रमेण विधेयोऽभ्यासवतोहि दुष्करमपि सुकरं जवति । अ दृष्टांतः। तद्यथा कश्चिद्गोपस्तदहर्जातं तर्णकमुत्क्षिप्य गवांतिके नयत्यानयति वा ततोसा वनेनैव क्रमेण प्रत्यहं प्रवर्द्धमानमपि वत्समुत्क्षिपन्नभ्यासवशाद्द्विहायनं त्रिहायणमप्यु त्क्षिपत्येवं साधुरप्यभ्यासात् शनैःशनैः परिषहोपसर्गजयं विधत्तइति ॥३७॥ सांप्रतमध्यय नार्थमुपसंजिहीर्षुरुक्तशेषमधिकृत्याह । (संवुडेइत्यादि) सएवं साधुः संवृताश्रवद्वारत या संवरसंवृतोमहती प्रज्ञा यस्यासौ महाप्रज्ञः सम्यग्दर्शनज्ञानवांस्तथा धीर्बुद्धिस्तया राज तइति धीरः परीषहोपसर्गाऽक्षोभ्योवा सएवंजूतः सन् परेण दत्ते सत्याहारादिके एषणां चरेत्त्रिविधयाप्येषणया युक्तः सन् संयममनुपालयेत्तथा निवृतः कषायोपशमाच्छीतीनूतका लं मृत्युकालं यावदभिकांक्षेत् । एतन्मया प्राक् प्रतिपादितं तत्केवलिनः सर्वज्ञस्य तीर्थकृ

तोमतं । एतच्च जंबूस्वामिनमुद्दिश्य सुधर्मस्वाम्याह । तदेतद्यत्त्वया मार्गस्वरूपं प्रश्नितं त न्मया न स्वमनीषिकया कथितं तर्हि केवलिनोमतमेतदित्येवं भवता ग्राह्यं । इतिः परिसमा प्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ३८ ॥ इति मार्गाख्यमेकादशमध्ययनं समाप्तं ॥

॥ हवे समवसरण नामे बारमुं अध्ययन प्रारंनिए बैए अगीयारमां अध्ययनने विषे मो क्ष मार्ग कह्यो ते मोक्षने तो जे कुमार्ग मूकीने सुमार्गने पडिवजे ते अंगीकार करे माटे मार्ग प्रतिपत्ति चारित्रियें कुमार्गने परिहरवो ए अधिकारे बारमो अध्ययन प्रारंनियेबैए.

चत्तारि समोसरणाणिमाणि, पावाडुया जाइं पुढोवयंति ॥ कि
रियं अकिरियं विणियंति तइयं, अन्नाण माहंसु चउब्रमेव ॥१॥
अण्णाणिया ता कुसलावि संता, असंथुयाणो वितिगिछतिन्ना ॥
अकोविया आहु आकोवियेहिं, अणाणुवीइत्तु मुसं वयंति ॥२॥

अर्थ–(चत्तारिसमोसरणाणिमाणि के०) ए आगल वखाणशे ते चार प्रकारना समोसरण एटले परतीर्थिकनो समुदाय जाणवो ते (पावाडुयाजाइंपुढोवदंति के०) प्रावाडुक एटले कुवादि ते जुडुं जुडुं बोलेबे ते केवीरीते तोके एकवादि (किरियं के०) क्रियानेज सफल कहेबे. तथा बीजो वादि (अकिरियं के०) अक्रियानेज सफल कहे बे अने (विणियंतितइयं के०) त्रीजोवादि विनयज प्रधानबे एम बोलेबे (अन्नाणमा हंसुचउब्रमेव के०) अन्यवली चोथो अज्ञानवादि ते अज्ञाननेज प्रधान पणे मानेबे ॥ १ ॥ हवे एपूर्वोक्त चारे वादिउमाना सर्व प्रकारे असंबंध प्रलापि अज्ञातिक एवा जे अज्ञानवादि तेनेज पहेला कहेबे. (अण्णाणियाताकुसलाविसंता के०) ते अज्ञानवा दि अज्ञानी बता एम कहेबेजे अमेज पंमित बैयें एम मानेबे परंतु ते(असंथुया के०) असंबंधनाषी जाणवा ते (णोवितिगिछतिन्ना के०) चित्तनीजे भ्रांति तेथकी तख्या नथी माटे मृषावादि जाणवा ते अज्ञानवादि (अकोविया आहुअकोवियेहिं के०) सम्यक् धर्म प्ररुपवाने अनिपुण एटले साक्षात् सत्यधर्मनुं ज्ञान जाणवाने असमर्थबे माटे ए अकोविद बे तो एना समीपे सांनले एवा जे एमना शिष्य तेपण अकोविद एटले मूर्ख जाणवा जेमाटे ते एवुं असंबंध वचन बोलेबे के अज्ञान एज श्रेयबे तो एवुं ते मनुं बोलवुं जेबे तेने मूर्खज मान्य करेबे ॥ सरिसासरिसेहिंरचंति इतिवचनात् एम ते (अणाणुवीइत्तुमुसंवयंति के०) अनालोची थका सर्वकाल मृषाज बोलेबे. ॥ २ ॥

॥ दीपिका–सांप्रतं द्वादशमारभ्यते । पूर्वं मार्गउक्तः सच कुमार्गपरित्यागात्सम्यग्भ वतीति इह कुमार्गत्यागउच्यते । यथा (चत्तारित्ति) चत्वारि समवसरणानि परतीर्थि

कान्युपगमसमूहरूपाणि इमानि यानि प्रावाडुकाः परतीर्थिकाः पृथक् पृथक् वदंति । क्रियामस्तीत्यादिकां वदंतीति क्रियावादिनः १ अक्रियां नास्तीत्यादिकां वदंतीत्यक्रियावादिनः २ तृतीयावैनयिकाः ३ चतुर्थास्त्वज्ञानिकाः ४ इमानि चत्वारि समवसरणान्युच्यंते ॥ १ ॥ अथैतेषामज्ञानिकाएव सर्वापलापिनस्तानेवादावाह । (अण्णाणीति) अज्ञानिकास्तावदादौ प्रदर्श्यंते । अज्ञानिकाः किल वयं कुशलाइति वादिनोपि संस्तुताश्च संबुद्धाः अतएव विचिकित्सा चित्तशुद्धिश्चित्तभ्रांतिस्तां न तीर्णानातिक्रांताः । तथाहि । केचित्सर्वज्ञं मन्यंते केचित्तं निषेधंति एके सर्वगतमात्मानं वदंत्यन्ये देहमात्रमपरे अंगुष्ठपर्वमात्रं । केचित् श्यामाकतंडुलमात्रमन्ये मूर्तममूर्तं हृदयमध्यवर्तिनं ललाटस्थितमित्यादि । एषामेकवाक्यता कथं स्यात् । नचातिशयज्ञानी कश्चिदस्ति यद्वाक्यं प्रमाणीक्रियते । तथा ज्ञानवतां प्रमादोबहुदोषः । ततोवरमज्ञानमेवेति वदंतश्चित्तभ्रांतिं नातिक्रांताश्चकोविदाः सम्यक्परिज्ञानविकलाश्चकोविदेभ्यः स्वशिष्येभ्यश्चाहुः । तथा तेऽननुविचिंत्य अविचिंत्य भाषणान्मृषाऽसत्यं वदंति ॥ २ ॥

॥ टीका–उक्तमेकादशमध्ययनं । सांप्रतं द्वादशमारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंधः । इहानंतराध्ययने मार्गोभिहितः सच कुमार्गव्युदासेन सम्यग्मार्गतां प्रतिपाद्यतेऽतः कुमार्गव्युदासं चिकीर्षुणा तत्स्वरूपमवगंतव्यमित्यतस्तत्स्वरूपनिरूपणार्थमिदमध्ययनमायातमस्य चोपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोगद्वाराणि । तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोऽयं । तद्यथा । कुमार्गाभिधायिनां क्रियाक्रियाज्ञानिवैनयिकानां चत्वारि समवसरणानीह प्रतिपाद्यंते । नामनिष्पन्नेतु निक्षेपे समवसरणमित्येतन्नामनिक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह । समवसरणंमिचउक्कं सचित्ताचित्तमीसगं दव्वे ॥ खेत्तंमि जंमि खेत्ते,काले जं जंमि कालंमि '॥१७॥ (समवसरणमित्यादि) समवसरणमिति सृगतावित्येतस्य धातोः समवोपसर्गपूर्वस्य ल्युडंतस्य रूपं । सम्यगेकीभावेनावसरणमेकत्रगमनं मेलापकः समवसरणं तस्मिन्नपि केवलं समाधौ षड्विधोनामादिकोनिक्षेपस्तत्रापि नामस्थापने क्षुण्णे द्रव्यविषयं पुनः समवसरणं नोआगमतोज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तं सचित्ताचित्तमिश्रभेदात्रिविधं । सचित्तमपि द्विपदचतुष्पदापदभेदात्रिविधमेव । तत्र द्विपदानां साधुप्रभृतीनां तीर्थकृज्जन्मनिष्क्रमणप्रदेशादौ मेलापकः । चतुष्पदादीनां गवादीनां निपानप्रदेशादौ । अपदानां तु वृक्षादीनां स्वतोनास्ति समवसरणं विवक्षया तु काननादौ भवत्यपि । अचित्तानां तु द्व्यणुकाद्यभ्रादीनां तथा मिश्राणां सेनादीनां समवसरणसद्भावोऽवगंतव्यइति । क्षेत्रसमवसरणं तु परमार्थतोनास्ति विवक्षया तु यत्र द्विपदादयः समवसरंति व्याख्यायते च समवसरणं यत्र तत्क्षेत्रप्राधान्यादिदमुच्यते । एवं कालसमवसरणमपि द्रष्टव्यमिति । इदानीं भाव

समवसरणमधिकृत्याह । " नावसमोसरणं पुण, णायव्वं छव्विहंमि नावंमि ॥ अहवा वि किरिय अकिरिया, अन्नाणी नेव चेणइया ॥ १ए ॥ (नावसमवसरणमित्यादि) नावा नामौदयिकादीनां समवसरणमेकत्र मेलकोनावसमवसरणं । तत्रौदयिकोनावएकविंशति नेदः । तद्यथा । गतिश्चतुर्धा । कषायाश्चतुर्विधाः । एवं लिंगं त्रिविधं । मिथ्यात्वाज्ञानाऽसं यतत्वाऽसिद्धत्वानि प्रत्येकमेकैकविधानि। लेश्याः कृष्णादिनेदेन षड्विधाजवंति । औपशमि कोद्विविधः । सम्यक्त्वचारित्रोपशमनेदात् । क्षायोपशमिकोप्यष्टादशनेदनिन्नः । तद्यथा। ज्ञानं मतिश्रुतावधिमनःपर्यायनेदाच्चतुर्धा । अज्ञानं मत्यज्ञानश्रुताज्ञानविनंगनेदात्रिवि धं । दर्शनं चक्षुरवधिदर्शननेदात्रिविधमेव । लब्धिर्दानलानजोगोपजोगवीर्यनेदात्पं चधा । सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाः प्रत्येकमेकप्रकाराइति । क्षायिकोनवप्रकारः।तद्यथा। केवलज्ञानं केवलदर्शनं दानादिलब्धयः पंच सम्यक्त्वं चारित्रं चेति। जीवत्वजव्यत्वाजव्यत्व नेदात्पारिणामिकस्त्रिविधः।सान्निपातिकस्तु द्वित्रिचतुःपंचकसंयोगैर्नवति । तत्र द्विकसंयो गः संसिद्धस्य क्षायिकपारिणामिकनावद्वयसद्भावादवगंतव्यः । त्रिकसंयोगस्तु मिथ्यादृष्टि सम्यग्दृष्ट्यविरतानामौदयिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनावसद्भावादवगंतव्यः । तथा न वस्थकेवलिनोप्यौदयिकक्षायिकपारिणमिकसद्भावाद्विज्ञेयइति । चतुष्कसंयोगोपि क्षायि कसम्यग्दृष्टीनामौदयिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिकनावसद्भावात्तथोपशमिकसम्य ग्दृष्टीनामौदयिकोपशमिकक्षायोपशमिकपारिणामिकसद्भावाच्चेति । पंचकसंयोगस्तु क्षायि कसम्यग्दृष्टीनामुपशमश्रेण्यां समस्तोपशांतचारित्रमोहानां नावपंचकसद्भावाद्विज्ञेयइति । तदेवं नावानां द्विकत्रिकचतुष्कपंचकसंयोगात्संनविनः सान्निपातिकनेदाः षड्नवं त्येतएव त्रिकसंयोगचतुष्कसंयोगगतिनेदात्पंचदशधा प्रदेशांतरेऽनिहिताइति । षड्विधे नावे नावसमवसरणं निर्युक्तिकृदेव दर्शयति । क्रियां जीवादिपदार्थोस्तीत्यादिकां वदितुं शीलं येषां ते क्रियावादिनः । एतद्विपर्यस्ताश्चाक्रियावादिनस्तथा ज्ञानिनोज्ञान निन्हववादिनस्तथा वैनयिकाविनयेन चरंति तत्प्रयोजनावा वैनयिकाः । एषां चतु र्णामपि सप्तनेदानामाक्षेपं कृत्वा यत्र विक्षेपः क्रियते तद्भावसमवसरणमित्येतच्च स्वयमेव निर्युक्तिकरोंऽत्यगाथया कथयिष्यति । सांप्रतमेतेषामेवानिधानान्वर्थतादर्शी नद्वारेण स्वरूपमाविष्कुर्वन्नाह । "अत्थित्ति किरियवादी, वयंति णत्थियकिरियवा दीया ॥ अन्नाणी अन्नाणं, विणइत्ता वेणइयवादी" ॥ २० ॥ (अस्तित्त्वीत्यादि) जीवादिसद्भावपदार्थोस्त्येवेत्येवं सावधारणंक्रियान्युपगमोयेषां ते अस्तीति क्रियावादि नस्ते चैवंवादित्वान्मिथ्यादृष्टयः । तथाहि । यदि जीवोस्त्येवेत्येवमन्युपगम्यते ततः सावधारणत्वान्न कथंचिन्नास्तीत्यतः स्वरूपसत्तावत्पररूपापत्तिरिति स्यादेवंच नानेकं जगत् स्यान्नचैतद्दृष्टमिष्टं वा । तथा नास्त्येव जीवादिकः पदार्थइत्येवं वादिनोऽक्रियावादिनस्ते

प्यसद्भूतार्थप्रतिपादनान्मिथ्यादृष्टयएव । तथा ह्येकांतेन जीवास्तित्वप्रतिषेधे कर्तुरभावा न्नास्तीत्येतस्यापि प्रतिषेधस्याभावस्तदभावाच्च सर्वास्तित्वमनिवारितमिति ॥ तथा न ज्ञानमज्ञानं तद्विद्यते येषां ते ज्ञानिनस्ते ह्यज्ञानमेव श्रेयइत्येवं वदंत्येतेपि मिथ्यादृष्टयएव । तथा ह्यज्ञानमेव श्रेयइत्येतदपि न ज्ञानमृतेभणितुं पार्यते तदभिधानाच्चावश्यं ज्ञानमभ्युपगतं तैरिति । तथा वैनयिकाविनयादेव केवलात्स्वर्गमोक्षावाप्तिमभिलषंतोमिथ्यादृष्टयोयतोन ज्ञानक्रियाभ्यामंतरेण मोक्षावाप्तिरिति । एषां च क्रियावाद्यादीनां स्वरूपं तन्निराकरणं चाचारटीकायां विस्तरेण प्रतिपादितमिति नेह प्रतन्यते । सांप्रतमेतेषां भेदसंख्यानिरूपणार्थमाह । " असियसयं किरियाणं, अकिरियाणं च होइ चुलसीति ॥ अन्नाणियसत्तठी, वेणइयाणं च बत्तीसा." ॥ २१ ॥ (असियेत्यादि) क्रियावादिनामशीत्यधिकं शतं भवति तच्चानया प्रक्रियया । तद्यथा । जीवादयोनव पदार्थाः परिपाट्या स्थाप्यंते । तदधः स्वतः परतइति भेदद्वयं ततोप्यधोनित्यानित्यभेदद्वयं ततोप्यधस्तात्परिपाट्या कालस्वभावनियतीश्वरात्मपदानि पंच व्यवस्थाप्यंते । ततश्चैवं चारणिकाप्रक्रमः । तद्यथा । अस्ति जीवः स्वतोनित्यः कालतः । तथाऽस्ति जीवः स्वतोऽनित्यः कालतएव । एवं परतोपि भंगद्वयं । सर्वेपि च चत्वारः कालेन लब्धाः । स्वभावनियतीश्वरात्मपदान्यपि प्रत्येकं चत्वारएव लभंते । ततश्च पंचापि चतुष्ककाविंशतिर्भवंति । साथि जीवपदार्थेन लब्धा । एवमजीवादयोप्यष्टौ प्रत्येकं विंशतिं लभंते । ततश्च नवविंशतयोमीलिताः क्रियावादिनामशीत्युत्तरशतं भवतीति । इदानीमक्रियावादिनां नसंत्येव जीवादयः पदार्थाइत्येवमभ्युपगमवतामनेनोपायेन चतुरशीतिरवगंतव्या । तद्यथा । जीवादीन् पदार्थान् सप्ताभिलिख्य तदधः स्वपरभेदद्वयं व्यवस्थाप्यं । ततोप्यधः कालयदृच्छानियतिस्वभावेश्वरात्मपदानि षड्व्यवस्थाप्यानि । भंगकानयनोपायस्त्वयं । नास्ति जीवः स्वतः कालतः । तथा नास्ति जीवः परतः कालतः । एवं यदृच्छानियतिस्वभावेश्वरात्मभिः प्रत्येकं द्वौद्वौ भंगकौ लभ्येते । सर्वेपि द्वादश । तेऽपि च जीवादिपदार्थसप्तकेन गुणिताश्चतुरशीतिरिति । तथाचोक्तं । कालयदृच्छानियतिस्वभावेश्वरात्मतश्चतुरशीतिः । नास्तिकवादिगणमते न संति भावाः स्वपरसंस्थाः । सांप्रतमज्ञानिकानामज्ञानादेव विवक्षितकार्यसिद्धिमिच्छतां ज्ञानं तु सदपि निष्फलं बहुदोषत्वाच्चेत्येवमभ्युपगमवतां सप्तषष्टिरनेनोपायेनावगंतव्या । जीवाजीवादीन् नव पदार्थान् परिपाट्या व्यवस्थाप्य तदधोऽमी सप्त भंगकाः संस्थाप्याः । सत् असत् सदसत् अवक्तव्यं सदवक्तव्यं असदवक्तव्यं सदसदवक्तव्यमिति । अभिलापस्त्वयं । सन् जीवः कोवेत्ति किंवा तेन ज्ञातेन १ असन् जीवः कोवेत्ति किंवा तेन ज्ञातेन, २ सदसन् जीवः कोवेत्ति किंवा तेन ज्ञातेन ३ अवक्तव्योजीवः कोवेत्ति किंवा तेन ज्ञातेन ४ सदवक्तव्योजीवः कोवेत्ति किंवा तेन ज्ञातेत ५ अ

सदवक्तव्योजीवः कोवेत्ति किंवातेन ज्ञातेन ६ सदसदवक्तव्योजीवः कोवेत्ति किंवातेन ज्ञातेन ७ एवमजीवादिष्वपि सप्त नंगकाः । सर्वेपि मिलितास्त्रिषष्टिस्तथाऽपरे ऽमी च त्वारोनंगकाः । तद्यथा । सती नावोत्पत्तिः कोवेत्ति किंवा तया ज्ञातया १ असती नावोत्पत्तिः कोवेत्ति किंवा तया ज्ञातया २ सदसती नावोत्पत्तिः कोवेत्ति किंवा तया ज्ञातया ३ अवक्तव्या नावोत्पत्तिः कोवेत्ति किंवा तया ज्ञातया ४ सर्वेपि सप्तषष्टिरित्युत्तरं नंगकत्रयमुत्पन्ननावावयवोपेक्षमिह नावोत्पत्तौ न संनवतीति नोपन्यस्तं । उक्तंच । अज्ञानिकवादिमतं नव जीवादीन् सदादिसप्तविधान् ॥ नावोत्पत्तिः सदसद्वेधा वाच्या च कोवेत्ति ॥ १ ॥ इदानीं वैनयिकानां विनयादेव केवलात्परलोकमपीछतां द्वात्रिंशदनेन प्रक्रमेण योज्याः । तद्यथा । सुरनृपतियतिज्ञानिस्थविराधममातृपितृषु मनसा वाचा कायेन दानेन चतुर्विधोविनयोविधेयः । सर्वेप्यष्टौ चतुष्ककामिलिता द्वात्रिंशदिति । उक्तं च वैनयिकमतं विनयश्चेतोवाक्कायदानतः कार्यः । सुरनृपतियतिज्ञानिस्थविराधम मातृपितृषु सदा ॥ १ ॥ सर्वे प्येते क्रियाज्ञानिवैनयिकवादिनेदाएकीकृतास्त्रीणि त्रिष ष्ट्यधिकानि प्रावाडुकमतशतानि नवंति । तदेवंवादिनां मतनेदसंख्यां प्रदर्श्याऽधुना ते षामध्ययनोपयोगित्वं दर्शयितुमाह । “ तेसिं मताणुमएणं पन्नवणावन्निया इहज्झयणे॥ सप्नावणिच्छयठ्ठं, समोसरणमाहु तेणं तु ” ॥ २२ ॥ (तेसिंमताणुमएणंइत्यादि) तेषां पूर्वोक्तवादिनां मतमनिप्रायस्तेन यदनुमतं पक्षीकृतं तेन पक्षीकृतेन पक्षीकृताश्रयणेन प्रज्ञापना प्ररूपणा वर्णिता प्रतिपादिता इहास्मिन्नध्ययने गणधरैः । किमर्थमिति दर्शयति । तेषां यः सद्भावः परमार्थस्तस्य निश्चयोनिर्णयस्तदर्थं तेनैव कारणेनेदमध्ययनं समवसरणाख्यमाहुर्गणधराः । तथाहि । वादिनां सम्यगवसरणं मेलापकस्तन्मतनिश्चयार्थं मस्मिन्नध्ययने क्रियतइत्यतः समवसरणाख्यमिदमध्ययनं क्रियते । इदानीं तेषां सम्यग् मिथ्यात्ववादित्वं विनागेन यथा नवति तथा दर्शयितुमाह । “ सम्मदिठी किरिया, वा दीमिछाय सेसगा वाई ॥ जहि ऊणमिछवाय, सेवहवायं इमं सवं ॥ २३ ॥ (सम्मदिठीत्यादि) सम्यगविपरीता दृष्टिर्दर्शनं पदार्थपरिछित्तिर्यस्यासौ सम्यग्दृष्टिः । कोसावित्याह । क्रियामस्तीत्येवंनूतां वदितुं शीलमस्येति क्रियावादी । अत्रच क्रियावादीत्येतदछित्तिकिरियवादीत्यनेन प्राक् प्रसाधितं सदनूद्यसम्यग्दृष्टित्वं विधीयते तस्याऽसिद्धत्वादिति। तथाहि । अस्ति लोकालोकविनागः । अस्त्यात्मा अस्ति पुण्यपापविनागः । अस्ति तत्फलं स्वर्गनरकावाप्तिलक्षणं । अस्ति कालः कारणत्वेनाशेषस्य जगतः प्रनववृद्धिस्थितिविनाशेषु साध्येषु तथा शीतोष्णवर्षावनस्पतिपुष्पफलादिषु चेति । तथाचोक्तं । कालः पचति नूतानीत्यादि । तथास्तिस्वनावोपि करणत्वेनाशेषस्य जगतः स्वोनावः स्वनाव इति कृत्वा तेनहि जीवाजीवनव्यत्वमूर्तत्वानां स्वरूपानुविधानात् । तथा धर्माऽधर्माका

शकालादीनां च गतिस्थित्यवगाहपरत्वापरत्वादिस्वरूपापादनादिति । तथा चोक्तं । कः कंटकानामित्यादि । तथा नियतिरपि कारणत्वेनाश्रीयते । तथातथा पदार्थानां नियते रेव नियतित्वात् । तथाचोक्तं । प्राप्तव्योनियतिबलाश्रयेणेत्यादि । तथा पुरा कृतं यच्च शुनाशुनमिष्टानिष्टफलकारणं । तथा चोक्तं । यथायथा पूर्वकृतस्य कर्मणः फलं निधान स्थमिहोपतिष्ठते ॥ तथातथा पूर्वकृतानुसारिणी प्रदीपहस्तेव मतिः प्रवर्तते ॥ १ ॥ तथा । स्वकर्मणा युक्तएव सर्वोह्युत्पद्यते जनः ॥ सयथाऽकृष्यते तेन न यथा स्वयमि च्छतीत्यादि । तथा पुरुषकारोपि कारणं यस्मान्नपुरुषकारमंतरेण किंचित्सिध्यति । तथा चोक्तं । न दैवमिति संचिंत्य त्यजेडुद्यममात्मनः ॥ अनुद्यमेन कस्तैलं तिलेन्य. प्राप्तुमर्हति ॥ १ ॥ तथा । उद्यमाच्चारुचित्रांगि नरोनद्राणि पश्यति ॥ उद्यमात्कृमिकीटोपि निनत्ति महतोडुमान् ॥ २ ॥ तदेवं सर्वानपि कालादीन् कारणत्वेनान्युपगच्छन् तथात्मपुण्यपापपरलोकादिकं चेच्छन् क्रियावादी सम्यग्दृष्टि त्वेनान्युपगंतव्यः । शेषकास्तु वादाअक्रियावादाज्ञानवादवैनयिकवादामिथ्यावादाइ त्येवं इष्टव्याः । तथाहि । अक्रियावाद्यत्यंतनास्तिकोऽध्यक्षसिद्धं जीवाजीवादिपदा र्थजातमपन्हुवन् मिथ्यादृष्टिरेव नवति । अज्ञानवादी तु सति मत्यादिके हेयोपादे यप्रदर्शके ज्ञानपंचके ऽज्ञानमेव श्रेयइत्येवं वदन् कथं नोन्मत्तः स्यात्तथा विनयवाद्य पि विनयादेव केवलात् क्रियासाध्यां सिद्धिमिच्छन्नपकर्णयितव्यः । तदेवं विपरीतार्था निधायकाएते मिथ्यादृष्टयो ऽवगंतव्याः । ननुच क्रियावाद्यप्यशीत्युत्तरशतनेदोनवति तत्रतत्र प्रदेशे कालादीनन्युपगच्छन्नेव मिथ्यावादित्वेनोपन्यस्तस्तत्कथमिह सम्यग्दृष्टित्वे नोच्यतइति । उच्यते । सतत्रास्त्येव जीवइत्येवं सावधारणतयाऽन्युपगमं कुर्वन् का लएवैकः सर्वस्यास्य जगतः कारणं तथा स्वनावएव नियतिरेव पूर्वकृतमेव पुरुषकारएवे त्येवमपरनिरपेक्षतयैकांतेन कालादीनां कारणत्वेनाश्रयणान्मिथ्यात्वं । तथाहि । अ स्त्येव जीवइत्येवमस्तिना सह जीवस्य सामानाधिकरण्यात् । यद्यदस्ति तत्तज्जीवइति प्रा प्तमतोनिरवधारणपक्षसमाश्रयणादिह सम्यक्त्वमनिहितं । तथा कालादीनामपि स मुदितानां परस्परसव्यपेक्षाणां कारणत्वेनेहाश्रयणात्सम्यक्त्वमिति । ननुच कथं कालादीनां प्रत्येकं निरपेक्षाणां मिथ्यात्वस्वनावत्वे सति समुदितानां सम्यक्त्वसद्भावः । नहि यत्प्रत्येकं नास्ति तत्समुदायेपि नवितुमर्हति सिकतातैलवत् । नैतदस्ति प्रत्येकं प्रत्येकं पद्मरागादिमणिष्वविद्यमानापि रत्नावली समुदाये नवंती दृष्टा । नच दृष्टे ऽनुपपन्नं नामेति यत्किंचिदेतत् । तथाचोक्तं । कालो सहावणियई, पुव्वकयं पुरिसकारणे गंता ॥ मिच्छत्तं ते चेव उ, समासउ होंति संमत्तं ॥ १ ॥ सव्वे विय कालाइ इय समुदा येण साहगा नणिया ॥ जुज्जुत्तियएमेवय, सम्मं सव्वस्स कज्जस्स ॥ २ ॥ नहि काला

दी हिंतो, केवलएहिं तु जायए किंचि ॥ इह मुग्गरंधणादिवि, ता सव्वे समुदिता हेक ॥ ३ ॥ जह ऐगलरकणगुणा, वेरुलियादीमणीविसंजुत्ता ॥ रयणावलीवएसं, ण लहंति महघमुल्लावि ॥ ४ ॥ तह णिययवादसुविणि, छियावि अणाणपरकनिरवेरका ॥ सम्मदंसणसहं, सव्वेवि णयाणपाविंति ॥ ५ ॥ जह पुण तेचेव मणी, जहा गुणविसेसनागपडिबद्धा ॥ रयणावलित्तिनणइ, चयंतिपाडिक्कसस्राउ ॥ ६ ॥ तह सव्वे णयवाया, जहाणुरूवविणिउत्तवत्तवा ॥ सम्मदंसणसहं, लनंति ण विसेससस्राउ ॥ ७ ॥ तम्हा मिच्छदिठी, सव्वे विणया सपरकपडिबद्धा ॥ असोसनिस्सिया पुण, हवंति सम्मत्तसक्षावा ॥ ८ ॥ यतएवं तस्मात्त्यक्त्वा मिथ्यात्ववादं कालादिप्रत्येकैकांतकारणरूपं सेवध्वमंगीकुरुध्वं सम्यग्वादं परस्परसव्यपेक्षकालादिकारणरूपमिममिति मयोक्तं प्रत्यक्षावसन्नं सत्यमवितथमिति । गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपः । सांप्रतं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं तच्चेदं । (चत्तारीत्यादि) अस्य च प्राक्तनाध्ययनेन सहायं संबंधः । तद्यथा । साधुना प्रतिपन्ननावमार्गेण कुमार्गाश्रिताः परवादिनः सम्यक्परिज्ञाय परिहर्तव्यास्तत्स्वरूपाविष्करणं चानेनाध्ययनेनोपदिश्यते इत्यनंतरसूत्रस्यानेन सूत्रेण सह संबंधोयं । तद्यथा । संवृतोमहाप्रज्ञोवीरोदत्तैपणां चरन्ननिनिर्वृतः सन् मृत्युकालमनिकांक्षेदेतत्केवलिनोनाषितं । तथा परतीर्थिकपरिहारं च कुर्यात् एतच्च केवलिनो मतं । अतस्तत्परिहारार्थं तत्स्वरूपनिरूपणमनेन क्रियते । चत्तारीति संख्यापदमपरसंख्यानिवृत्त्यर्थं समवसरणानि परतीर्थिकाभ्युपगमसमूहरूपाणि यानि प्रावाडुकाः पृथग्वदंति तानि चामूनि अन्वर्थाभिधायिनिः संज्ञापदैर्निर्दिश्यंते । तद्यथा । क्रियामस्तीत्यादिकां वदितुं शीलं येषां ते क्रियावादिनस्तथाऽक्रियां नास्तीत्यादिकां वदितुं शीलं येषां तेऽक्रियावादिनस्तथा तृतीयावैनयिकाश्चतुर्थास्त्वज्ञानिकाइति ॥ १ ॥ तदेवं क्रियाऽक्रियावैनयिकाज्ञानवादिनः सामान्येन प्रदर्श्याधुना तद्दूषणार्थं तन्मतोपन्यासं पश्चानुपूर्व्याप्यस्तीत्यतः पश्चानुपूर्व्याकर्तुमाह । यदि चैतेपामज्ञानिकाएव सर्वापलापितयाऽत्यंतमसंबद्धाअतस्तानेवादावाह । (अन्नाणियाइत्यादि) अज्ञानं विद्यते येषामज्ञानेन वा चरंतीत्यज्ञानिकाः । अज्ञानिकावा तावत्प्रदर्श्यंते । ते चाज्ञानिकाः किल वयं कुशलाइत्येवं वादिनोपि संतो ऽसंस्तुताज्ञानमेव श्रेयइत्येवं वादितया असंबद्धाः । असंस्तुतत्वादेव विचिकित्सा चित्तविप्लुतिश्चित्तभ्रांतिः संशीतिस्तां न तीर्णानातिक्रांताः । तथाहि । ते ऊचुर्यएतेज्ञानिनस्ते परस्परविरुद्धवादितया असंबद्धाअसंस्तुतत्वादेव विचिकित्सान यथार्थवादिनोनवंति । तथा ह्येके सर्वगतमात्मानं वदंति तथान्ये असर्वगतं अपरे अंगुष्ठपर्वमात्रं केचन श्यामाकतंडुलमात्रमन्ये मूर्तममूर्तं हृदयमध्यवर्तिनं ललाटव्यवस्थितमित्याद्यात्मपदार्थएव सर्वपदार्थपुरःसरे तेषां नैकवाक्यता । नचातिशयज्ञानी कश्चिदस्तीति य

द्वाक्यं प्रमाणीक्रियेत । न चासौ विद्यमानोप्युपलभ्यते ऽर्वाग्दर्शिना । नासर्वज्ञः सर्वं जानातीति वचनात् । तथाचोक्तं । सर्वज्ञोसाविति ह्येतत्तत्कालेऽपि बुभुत्सुभिः ॥ तज्ज्ञान ज्ञेयविज्ञानशून्यैर्विज्ञायते कथं॥१॥ नच तस्य सम्यक् तदुपायपरिज्ञानाभावात्संभवः संभवा भावश्चेतरेतराश्रयत्वात् ।तथाहि। न विशिष्टपरिज्ञानमृते तदवाप्त्युपायपरिज्ञानमुपायमंतरे ण नचोपेयस्य विशिष्टपरिज्ञानस्यावाप्तिरिति । नच ज्ञानं ज्ञेयस्य स्वरूपं परिच्छेत्तुमलं । त थाहि। यत्किमप्युपलभ्यते तस्यार्वाग्मध्यपरभागैर्भाव्यं । तत्रार्वाग्भावस्यवोपलब्धेर्नैतर योस्तेनैव व्यवहितत्वात् । अर्वाग्भागस्यापि भागत्रयकल्पनात्तत्सर्वारातीय भागपरिकल्प नया परमाणुपर्यवसानता परमाणोश्च स्वाभाविकविप्रकृष्टत्वादर्वाग्दर्शिनिनां नोपलब्धि रिति । तदेवं सर्वज्ञस्याभावादसर्वज्ञस्य च यथावस्थितवस्तुस्वरूपापरिच्छेदात्सर्ववादि नां च परस्परविरोधेन पदार्थस्वरूपाभ्युपगमात् यथोत्तरपरिज्ञानिनां प्रमादवतां बहुतर दोपसंभवादज्ञानमेव श्रेयः । तथाहि । यद्यज्ञानवान् कथंचित्पादेन शिरसि हन्यात् तथापि चित्तशुद्धेर्न तथाविधदोषानुषंगी स्यादित्येवमज्ञानिनएवंवादिनः संतोऽसं बद्धानचैवं विधां चित्तविप्लुतिं वितीर्णाइति । तत्रैवं वादिनस्ते अज्ञानिकाअकोविदा अनिपुणाः सम्यक् परिज्ञानविकलाइत्यवगंतव्याः । तथाहि । यत्तैरभिहितं ज्ञानवादि नः परस्परविरुद्धार्थवादितया न यथार्थवादिनइति तद्भवत्वसर्वज्ञप्रणीतागमाभ्युपगम वादिनामयथार्थवादित्वं ।नचाभ्युपगमवादाएव बाधायै प्रकल्प्यंते । सर्वज्ञप्रणीतागमाभ्यु पगमवादिनां तु न कचित्परस्परतोविरोधः सर्वज्ञत्वान्यथानुपपत्तेरिति । तथाहि । प्रक्षी णाऽशेषावरणतया रागद्वेषमोहानामनृतकारणानामभावान्न तद्वाक्यमयथार्थमित्येवं तत्प्रणीतागमवतां न विरोधवादित्वमिति । ननुच स्यादेतद्यदि सर्वज्ञः कश्चित्स्यान्नचासो संभवतीत्युक्तं प्राक्।सत्यमुक्तमयुक्तं तूक्तं।तथाहि । यत्तावदुक्तं नचासौ विद्यमानोप्युपल भ्यते ऽर्वाग्दर्शिभिस्तदयुक्तं।यतोयद्यपि परचेतोवृत्तीनां दुरन्वयत्वात्सरागावीतरागाइव चेष्टं ते वीतरागाः सरागाइवेत्यतः प्रत्यक्षेणानुपलब्धिस्तथापि संभवानुमानस्य सद्भावात्तद्बाध कप्रमाणाभावाच्च तदस्तित्वमनिवार्यं । संभवानुमानं त्विदं व्याकरणादिना शास्त्राभ्यासेन संक्रियमाणायाः प्रज्ञायाज्ञानातिशयोज्ञेयावगमं प्रत्युपलब्धस्तदत्र कश्चित्तथाभूताभ्या सवशात्सर्वज्ञोपि स्यादिति । नच तदभावसाधकं प्रमाणमस्ति । तथाहि । न तावदर्वा ग्दर्शिभिः प्रत्यक्षेण सर्वज्ञाभावः साधयितुं शक्यस्तस्यहि तज्ज्ञानज्ञेयविज्ञानशून्यत्वादशू न्यत्वाभ्युपगमेच सर्वज्ञत्वापत्तिरिति । नाप्यनुमानेन तदव्यभिचारिलिंगाभावादिति । ना प्यनुमानेन सर्वज्ञाभावः साध्यते । तस्य सादृश्यबलेन प्रवृत्तेः । नच सर्वज्ञाभावे साध्ये तादृग्विधं सादृश्यमस्ति येनासौ सिध्यतीति । नाप्यर्थनिष्पत्त्या तस्याः प्रत्यक्षादिप्रमा णपूर्वकत्वेन प्रवृत्तेः । प्रत्यक्षादीनां च तत्साधकत्वेनाप्रवर्तमानात्तस्याप्यप्रवृत्तिः । ना

प्यागमेन तस्य सर्वज्ञसाधकत्वेनापि दर्शनान्नप्रमाणपंचकाभावरूपेणाभावेन सर्वज्ञाभावः सिध्यति। तथाहि। सर्वत्र सर्वदा न संभवति तद्ग्राहकप्रमाणमित्येतदर्वाग्दर्शिनोव कुं न युज्यते तेन हि देशकालविप्रकृष्टानां पुरुषाणां यद्विज्ञानं तस्य ग्रहीतुमशक्यत्वा त्तद्ग्रहणे वा तस्यैव सर्वज्ञत्वापत्तेः। नचार्वाग्दर्शिनां ज्ञानं निवर्तमानं सर्वज्ञाभावं भाव यति तस्याऽव्यापकत्वात्। नचाव्यापकव्यावृत्त्या पदार्थव्यावृत्तिर्युक्तेति। नच वस्त्वंतर विज्ञानरूपोभावः सर्वज्ञाभावसाधनायालं। वस्त्वंतरसर्वज्ञयोरेकज्ञानसंसर्गप्रतिबंधाभावा त्। तदेवं सर्वज्ञबाधकप्रमाणाभावात्संभवानुमानस्य च प्रतिपादितत्वादस्ति सर्वज्ञस्त त्प्रणीतागमाभ्युपगमाच्च मतभेददोषोदूरापास्तइति। तथाहि। तत्प्रणीतागमाभ्युपगम वादिनामेकवाक्यतया शरीरमात्रव्यापी संसार्यात्मास्ति. तत्रैव तद्गुणोपलब्धेरिति। इतरे तराश्रयदोपश्चात्र नावतरत्येव। यतो ऽभ्यस्यमानायाः प्रज्ञायाज्ञानातिशयः स्वात्मन्यपि दृष्टोनच दृष्टेऽनुपपन्नं नामेति। यदप्यभिहितं। तद्यथा। नच ज्ञानं ज्ञेयस्य स्वरूपं परिछे त्तुमलं सर्वत्रार्वाग्भावेनेत्यवधानात्सर्वारातीयभागस्य च परमाणुरूपतयाऽतींद्रियत्वादित्ये तदपि वाङ्मात्रमेव। यतः सर्वज्ञज्ञानस्य देशकालस्वभावव्यवहितानामपि ग्रहणान्ना स्ति व्यवधानसंभवः। अर्वाग्दर्शिज्ञानस्याप्यवयवद्वारेणाऽवयविनि प्रवृत्तेर्नास्ति व्यवधा नं। न ह्यवयवी स्वावयवैर्व्यवधीयतइति युक्तिसंगतं। अपि चाज्ञानमेव श्रेयइत्यत्राऽ ज्ञानमिति किमयं पर्युदासआहोस्वित्प्रसज्यप्रतिपेधस्तत्र यदि ज्ञानादन्यदज्ञानमिति ततः पर्युदासवृत्त्या ज्ञानांतरमेव समाश्रितं स्यान्नाज्ञानवादइति। अथ ज्ञानं न भवतीत्यज्ञानं तुच्छोनीरूपोज्ञानाभावः सच सर्वसामर्थ्यरहितइति कथंश्रेयानिति। अपिच ज्ञानं श्रेय इति प्रसज्यप्रतिपेधेन ज्ञानं श्रेयोभवतीति क्रियाप्रतिपेधएव कृतः स्यादेतच्चाध्यक्षबाधि तं। यतः सम्यगज्ञानादर्थं परिछिद्य प्रवर्तमानोर्थक्रियार्थी न विसंवाद्यतइति। किंचाऽ ज्ञानप्रमादवद्भिः पादेन शिरःस्पर्शनेपि स्वल्पदोषवतां परिज्ञायैवाज्ञानं श्रेयइत्यभ्युपगम्य ते। एवंच सति प्रत्यक्षएव स्यादभ्युपगमविरोधोनानुमानं प्रमाणमिति। तथा तदेवं सर्वथा तेऽज्ञानवादिनोऽकोविदाधर्मोपदेशं प्रत्यनिपुणाः स्वतोऽकोविदेभ्यएव स्वशिष्येभ्य आहुः कथितवंतः। छांदसत्वाच्चैकवचनं सूत्रेकृतमिति। शाक्याअपि प्रायशोऽज्ञानिका अविज्ञोपचितं कर्मबंधं न यांतीत्येवं यतस्तेऽभ्युपगमयंति। तथा येच बालमत्तसुप्तादयो ऽस्पष्टविज्ञानाअबंधकाइत्येवमभ्युपगमं कुर्वंति ते सर्वेप्यकोविदाइष्टव्याइति। तथाऽ ज्ञानपक्षसमाश्रयणाच्चाननुविचिंत्य भाषणान्मृषा ते सदा वदंति। अनुविचिंत्य भाषणं यतोज्ञाने सति भवति तत्पूर्वकत्वाच्च सत्यवादस्यातोज्ञानानभ्युपगमादननुविचिंत्य भाष णाभावस्तदभावाच्च तेषां मृषावादित्वमिति ॥ २ ॥

सच्चं असच्चं इति चिंतयंता, असाहु साहुत्ति उदाहरंता ॥ जे मे जणा वेणइया अणेगे, पुठावि नावं विणइंसु णाम ॥३॥ अणो वसंखा इति ते उदाहू, अठे सउ नासइ अम्ह एवं ॥ लवाव संकीय अणागएहि, णो किरिय माहंसु अकिरियवादी ॥ ४ ॥

अर्थ—हवे विनयवादिने जुदा जुदा करी कहेछे. (सच्चंअसच्चंइतिचिंतयंता के०) जे साचुं ते जुठुं एवुं चिंतवता थका (असाहुसाहुत्तिउदाहरंता के०) तथा जे असाधु होय तेने साधु एम कहेता थका (जेमेजणावेणइयाअणेगे के०) ए पूर्वोक्त रीते जे कोइ जन एटले लोक बोले ते लोकने विनयवादि जाणवा एटले एक विनयज मोक्षनुं कारणछे, गुणागुणनो विशेष कांइ नथी एवीरीते बोलता अजाण लोक सरखा एवाते विनयवादि अनेक प्रकारना एटले बत्रीश प्रकारनाछे (पुठाविनावंविणइंसुणाम के०) ते विनयवादिने कोइए पुछया थकां एम कहेके ए विनयज सरवार्थसिद्धिनुं कारकछे पण बीजुं कांइ जगत्मां श्रेय नथी एम कहे अहीं नाम शब्द संभावनार्थे छे. ॥ ३ ॥ (अणोवसंखाइतितेउदाहू के०) उपसंख्या एटले सम्यक् परिज्ञान ते जेने विषे नथी अर्थात् मूढमति छता एवा विनयवादि एम कहेछे के (अठेसउनासइअम्हएवं के०) अर्थ जे स्वर्ग अने मोक्षादिक तेनी प्राप्ति अमाराज दर्शन थकीछे पण अन्य कोई दर्शनने विषे नथी, एम कहेछे. हवे अक्रियावादिनुं मत कहेछे. (लवावसंकियअणागएहि के०) लव एटले कर्म तेना अपशंकी एटले सांकणहार एवा लोकायित शाक्यादिक बौद्ध तेना दर्शनने विषे आम कह्युंछे के अतीत अनागत कालछे अने वर्त्तमान काल नथी कारणके क्षणिकपणाने लीधे सर्व पदार्थ क्षणिकछे एवां वचन थकी अणागएहि एटले जेकांइ कर्त्तव्य करिए ते अनागतज कहेवाय अने कर्म करिए ते तो वर्त्तमान काले होय तेज कर्मलागे तेमाटे एना मते क्रिया पण नथी एवुं सिद्ध थयुं ते कारणे क्रियानुं उपजावेलुं जे शुभाशुभ कर्मनुं बंध ते पण केवीरीते सिद्ध थाय एवीरीते ते अक्रियावादि नास्तिक मतना धारक कर्मथकी नथी शंकाता एवा थका (णोकिरियमाहंसु के०) क्रियाने कर्म बंध मानता नथी तेमाटे एने (अकिरियवादी के०) अक्रियावादि कहिए.

॥ दीपिका—अथ वैनयिकान्निराकुर्वन्नाह । (सच्चमित्यादि) सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गइति सत्यमपि असत्यं मन्यमानाविनयादेव मोक्षइत्यसत्यमपि सत्यतया चिंतयंतस्तथा असाधुमपि विनयप्रतिपत्त्या साधुमुदाहरंतः कथयंतः । केते इत्याह । ये इमे प्रत्यक्षावैनयिकाअनेके द्वात्रिंशद्भेदास्तेच जनेन पृष्टाः संतोव्यनैषुर्विनयं

ग्राहितवंतोविनयादेव स्वर्गमोक्षावाप्तिरित्युक्तवंतः ॥ ३ ॥ न उपसंख्याऽनुपसंख्याऽप रिज्ञानं तयाऽज्ञानेन व्यामूढमतयस्ते वैनयिकाइति ।अथ क्रियावादिमतमाह । (लवा वसंकीति) लवंकर्म तस्मादपशंकितुमपसर्तुं शीलं येषां ते लवापशंकिनोलोकायतिकाना स्तिकाः शाक्यादयश्च तेषामात्मैव नास्ति कुतः क्रिया। बौद्धाएवमाहुः । अनागतैः क्ष णैश्च शब्दादतीतैश्च वर्तमानक्षणस्यासंगतेर्नक्रिया नापि तज्जनितः कर्मबंधः । तदेवमक्रि यावादिनोनास्तिकान क्रियामाहुः । तथाऽक्रियआत्मा येषां सर्वव्यापितया तेप्यक्रिया वादिनः सांख्याः । तदेवं नास्तिकबौद्धसांख्याअज्ञानेन एतत्पूर्वोक्तं कथितवंतः । अथ मर्थो ऽस्माकमवनासते । पूर्वार्धमत्रापि व्याख्यातं ॥ ४ ॥

॥ टीका—सांप्रतं वैनयिकवादं निराचिकीर्षुः प्रक्रमते । (सच्चमसच्चमित्यादि) स च्चोहितं सत्यं परमार्थोयथावस्थितपदार्थनिरूपणं वा मोक्षोवा तडुपायनूतोवा संय मः सत्यं तदसत्यमित्येवं विचिंतयंतोमन्यमानाएवमसत्यमपि सत्यमिति मन्यमानाः । तथाहि । सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राख्योमोक्षमार्गः सत्यस्तमसत्यत्वेन चिंतयंतोविनयादे व मोक्षइत्येतदसत्यमपि सत्यत्वेन मन्यमानास्तथा असाधुमप्यविशिष्टकर्मकारिणं वंद नादिकया विनयप्रतिपत्त्या साधुमित्येवमुदाहरंतः प्रतिपादयंतोऽसम्यग्यथावस्थितधर्म स्य परीक्षकायुक्तिविकलं विनयादेव धर्मइत्येवमन्युपगमात् । कएते इत्येतदाह । ये इमे बु द्धा प्रत्यक्षासन्नीकृताजनाइव प्राकृतपुरुषाइव जनाविनयेन चरंति वैनयिकाविनयादेव केवलात्स्वर्गमोक्षावाप्तिरित्येवं वादिनोऽनेके बहवो द्वात्रिंशद्भेदभिन्नत्वात्तेषां तेच विनय चारिणः केनचिद्धर्मार्थिना पृष्टाः संतोऽपि शब्दादपृष्टावा नावं परमार्थं यथार्थोपलब्धं स्वा निप्रायं वा विनयादेव स्वर्गमोक्षावाप्तिरित्येवं व्यनैषुर्विनयितवंतः सर्वदा सर्वस्य सर्वसिद्ध ये विनयं ग्राहितवंतः । नामशब्दः संभावनायां । संभाव्यतएवं विनयात्स्वकार्यसिद्धिरि ति । तडुक्तं । तस्मात्कल्याणानां सर्वेषां भाजनं विनयइति ॥३॥ किंचान्यत् (अणोवसंखा इत्यादि) संख्यानं संख्या परिच्छेदः । उप सामीप्येन संख्या उपसंख्या सम्यग्यथावस्थिता र्थपरिज्ञानं नोपसंख्याऽनुपसंख्या तयाऽनुपसंख्यया ऽपरिज्ञानेन व्यामूढमतयस्ते वैनयि काः स्वाग्रहग्रस्ताइत्येतद्यथा विनयादेव केवलात्स्वर्गमोक्षावाप्तिरित्युदाहृतवंतएतच्च ते म हामोहाच्छादिताउदाहुरुदाहृतवंतः । यथैवं सर्वस्य विनयप्रतिपत्त्या स्वोर्थः स्वर्गमोक्षादि कोऽस्माकमवभासते आविर्भवति प्राप्यते इति यावत् । अनुपसंख्योदाहृतिश्च तेषामेव मवगंतव्या । तद्यथा । ज्ञानक्रियान्यां मोक्षसद्भावे सति तदपास्य विनयादेवैकस्माचदवा प्त्यन्युपगमादिति । यदप्युक्तं । सर्वकल्याणभाजनं तदपि सम्यग्दर्शनादिसंभवे सति विन यस्य कल्याणभाक्त्वं भवति नैकस्येति तद्धितोविनयोपेतः सर्वस्य प्रब्हतयाऽन्यत्कारण

सच्चं असच्चं इति चिंतयंता, असाहु साहुत्ति उदाहरंता ॥ जे मे
जणा वेणइया अणेगे, पुट्ठावि नावं विणइंसु णाम ॥३॥ अणो
वसंखा इति ते उदाहू, अट्ठे स उ नासइ अम्ह एवं ॥ लवाव
संकीय अणागएहिं, णो किरिय माहंसु अकिरियवादी ॥ ४ ॥

अर्थ—हवे विनयवादिने जुदा जुदा करी कहेछे. (सच्चंअसच्चंइतिचिंतयंता के०) जे साचुं ते जुवुं एवुं चिंतवता थका (असाहुसाहुत्तिउदाहरंता के०) तथा जे असाधु होय तेने साधु एम कहेता थका (जेमेजणावेणइयाअणेगे के०) ए पूर्वोक्त रीते जे कोइ जन एटले लोक बोले ते लोकने विनयवादि जाणवा एटले एक विनयज मोक्षनुं कारणछे, गुणागुणनो विशेष कांइ नथी एवीरीते बोलता अजाण लोक सरखा एवाते विनयवादि अनेक प्रकारना एटले बत्रीश प्रकारनाछे (पुट्ठाविनावंविणइंसुणाम के०) ते विनयवादिने कोइए पुछया थकां एम कहेके ए विनयज सरवार्थसिद्धिनुं कारकछे पण बीजुं कांइ जगत्मां श्रेय नथी एम कहे अहीं नाम शब्द संभावनार्थे छे. ॥ ३ ॥ (अणोवसंखाइतितेउदाहू के०) उपसंख्या एटले सम्यक् परिज्ञान ते जेने विषे नथी अर्थात् मूढमति छता एवा विनयवादि एम कहेछे के (अट्ठेसउनासइअम्हएवं के०) अर्थ जे स्वर्ग अने मोक्षादिक तेनी प्राप्ति अमाराज दर्शन थकीछे पण अन्य कोई दर्शनने विषे नथी, एम कहेछे. हवे अक्रियावादिनुं मत कहेछे. (लवावसंकियअणागएहिं के०) लव एटले कर्म तेना अपशंकी एटले सांकणहार एवा लोकायित शाक्यादिक बौद्ध तेना दर्शनने विषे आम कह्युंछे के अतीत अनागत कालछे अने वर्त्तमान काल नथी कारणके क्षणिकपणाने लीधे सर्व पदार्थ क्षणिकछे एवां वचन थकी अणागएहिं एटले जेकांइ कर्त्तव्य करिए ते अनागतज कहेवाय अने कर्म करिए ते तो वर्त्तमान काले होय तेज कर्मलागे तेमाटे एना मते क्रिया पण नथी एवुं सिद्ध थयुं ते कारणे क्रियानुं उपजावेलुं जे शुभाशुभ कर्मनुं बंध ते पण केवीरीते सिद्ध थाय एवीरीते ते अक्रियावादि नास्तिक मतना धारक कर्मथकी नथी शंकाता एवा थका (णोकिरियमाहंसुके०) क्रियाने कर्म बंध मानता नथी तेमाटे एने (अकिरियवादीके०) अक्रियावादि कहिए.

॥ दीपिका—अथ वैनयिकान्निराकुर्वन्नाह । (सच्चमित्यादि) सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गइति सत्यमपि असत्यं मन्यमानाविनयादेव मोक्षइत्यसत्यमपि सत्यतया चिंतयंतस्तथा असाधुमपि विनयप्रतिपत्त्या साधुमुदाहरंतः कथयंतः । केते इत्याह । ये इमे प्रत्यक्षावैनयिकाअनेके द्वात्रिंशद्भेदास्तेच जनेन पृष्टाः संतोप्यनैपुर्विनयं

ग्राहितवंतोविनयादेव स्वर्गमोक्षावाप्तिरित्युक्तवंतः ॥ ३ ॥ न उपसंख्याऽनुपसंख्याऽप रिज्ञानं तयाऽज्ञानेन व्यामूढमतयस्ते वैनयिकाइति । अथ क्रियावादिमतमाह । (लवा वसंकीति) लवंकर्म तस्मादपशंकितुमपसर्तुं शीलं येषां ते लवापशंकिनोलोकायतिकाना स्तिकाः शाक्यादयश्च तेषामात्मैव नास्ति कुतः क्रिया । बौद्धाएवमाहुः । अनागतैः क्ष णैश्च शब्दादतीतैश्च वर्तमानक्षणस्यासंगतेर्नक्रिया नापि तज्जनितः कर्मबंधः । तदेवमक्रि यावादिनोनास्तिकान क्रियामाहुः । तथाऽक्रियआत्मा येषां सर्वव्यापितया तेप्यक्रिया वादिनः सांख्याः । तदेवं नास्तिकबौद्धसांख्याअज्ञानेन एतत्पूर्वोक्तं कथितवंतः । अथ मर्थो ऽस्माकमवनासते । पूर्वार्धमत्रापि व्याख्यातं ॥ ४ ॥

॥ टीका—सांप्रतं वैनयिकवादं निराचिकीर्षुः प्रक्रमते । (सच्चमसच्चमित्यादि) स ह्रयोहितं सत्यं परमार्थोयथावस्थितपदार्थनिरूपणं वा मोक्षोवा तडुपायनूतोवा संय मः सत्यं तदसत्यमित्येवं विचिंतयंतोमन्यमानाएवमसत्यमपि सत्यमिति मन्यमानाः । तथाहि । सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राख्योमोक्षमार्गः सत्यस्तमसत्यत्वेन चिंतयंतोविनयादे व मोक्षइत्येतदसत्यमपि सत्यत्वेन मन्यमानास्तथा असाधुमप्यविशिष्टकर्मकारिणं वंद नादिकया विनयप्रतिपत्त्या साधुमित्येवमुदाहरंतः प्रतिपादयंतोऽसम्यग्यथावस्थितधर्म स्य परीक्षकायुक्तिविकलं विनयादेव धर्मइत्येवमन्युपगमात् । कएते इत्येतदाह । ये इमे बु द्ध्या प्रत्यक्षासन्नीकृताजनाइव प्राकृतपुरुषाइव जनाविनयेन चरंति वैनयिकाविनयादेव केवलात्स्वर्गमोक्षावाप्तिरित्येवं वादिनोऽनेके बहवो द्वात्रिंशद्भेदनिन्नत्वात्तेषां तेच विनय चारिणः केनचिद्धर्मार्थिना पृष्टाः संतोऽपि शब्दादपृष्टावा नावं परमार्थं यथार्थोपलब्धं स्वा निप्रायं वा विनयादेव स्वर्गमोक्षावाप्तिरित्येवं व्यनैषुर्विनयितवंतः सर्वदा सर्वस्य सर्वसिद्ध ये विनयं ग्राहितवंतः । नामशब्दः संनावनायां । संनाव्यतएवं विनयात्स्वकार्यसिद्धिरि ति । तडुक्तं । तस्मात्कल्याणानां सर्वेषां नाजनं विनयइति ॥ २ ॥ किंचान्यत् (अणोवसंखा इत्यादि) संख्यानं संख्या परिछेदः । उप सामीप्येन संख्या उपसंख्या सम्यग्यथावस्थिता र्थपरिज्ञानं नोपसंख्याऽनुपसंख्या तयाऽनुपसंख्यया ऽपरिज्ञानेन व्यामूढमतयस्ते वैनयि काः स्वाग्रहग्रस्ताइत्येतद्यथा विनयादेव केवलात्स्वर्गमोक्षावाप्तिरित्युदाहृतवंतएतच्च ते म हामोहाच्छादिताउदाहुरुदाहृतवंतः । यथैवं सर्वस्य विनयप्रतिपत्त्या स्वोर्थः स्वर्गमोक्षादि कोऽस्माकमवनासते आविर्नवति प्राप्यते इति यावत् । अनुपसंख्योदाहृतिश्च तेषामेव मवगंतव्या । तद्यथा । ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षसद्भावे सति तदपास्य विनयादेवैकस्मात्तदवा प्त्यन्युपगमादिति । यदप्युक्तं । सर्वकल्याणनाजनं तदपि सम्यग्दर्शनादिसंनवे सति विन यस्य कल्याणनाक्त्वं नवति नैकस्येति तद्धितोविनयोपेतः सर्वस्य प्रह्वतयाऽन्यत्कारण

मेवापादयति ततश्च विवक्षितार्थविन्नासनात्तेषामेवं वादिनामज्ञानावृतत्वमेवावशिष्यते नाभिप्रेतार्थावाप्तिरित्युक्तावैनयिकाः । सांप्रतमक्रियावादिदर्शनं निराचिकीर्षुः पश्चार्धमाह । लवं कर्म तस्मादपशंकितुमपसर्तुं शीलं येषां ते लवापशंकिनोलोकायतिकाः शाक्यादयश्च तेषामात्मैव नास्ति कुतस्तक्रिया तज्जनितोवा कर्मबंधइति । उपचारमात्रेण त्वस्तिबंधः । तद्यथा । बद्धामुक्ताश्च कथ्यंते, मुष्टिग्रंथिकपोतकाः ॥ नचान्ये द्रव्यतः संति, मुष्टिग्रंथिकपोतकाः ॥ १ ॥ तथा बौद्धानामयमभ्युपगमोयथा क्षणिकाः सर्वसंस्काराइत्यस्थितानां च कुतः क्रियेत्यक्रियावादित्वं योपि स्कंधपंचकाभ्युपगमस्तेषां सोपि संवृतमात्रेण न परमार्थेन यतस्तेषामयमभ्युपगमस्तद्यथा विचार्यमाणाः पदार्थान कथंचिदप्यात्मानं विज्ञानेन समर्पयितुमलं तया ह्यवयवी तत्वातत्त्वाभ्यां विचार्यमाणोनघटां प्रांचति । नाप्यवयवाः परमाणुपर्यवसानतयाऽतिसूक्ष्मत्वाज्ज्ञानगोचरतां प्रतिपद्यंते । विज्ञानमपि ज्ञेयाभावेनामूर्तस्य निराकारतया न स्वरूपं बिभर्त्ति । तथा चोक्तं । यथा यथार्थाश्चिंत्यंते, विविच्यंते तथातथा ॥ यद्येतत्स्वयमर्थेभ्यो,रोचते तत्र के वयमिति । प्रच्छन्नलोकायतिकाहि बौद्धास्तत्रानागतैः क्षणैः । चशब्दादतीतैश्च वर्तमानक्षणस्यासंगतेर्नक्रिया नापिच तज्जनितः कर्मबंधइति । तदेवमक्रियावादिनोनास्तिकवादिनः सर्वापलापितयालवावशंकिनः संतोनक्रियामाहुस्तथा अक्रियआत्मा येषां सर्वव्यापितया तेप्यक्रियावादिनः सांख्यास्तदेवं लोकायतिकाबौद्धसांख्याअनुपसंख्यया अपरिज्ञानेनेत्येतत्पूर्वोक्तमुदाहृतवंतस्तथैव तत्त्वाज्ञानेनैवोदाहृतवंतस्तद्यथास्माकमेवमभ्युपगमोर्थोऽवभासते युज्यमानकोभवतीति ॥ तदेवंश्लोकपूर्वार्द्धं काकाक्षिगोलकन्यायेनाक्रियावादिमतेप्यायोज्यमिति ॥४॥

सम्मिस्सभावं व गिरागहीए,से मुम्मुई होइ अणाणुवाई॥ इमं
डुपक्खं इममेगपक्खं, आहंसु छलायतणं च कम्मं ॥ ५ ॥ ते एव
मक्खंति अबुज्झमाणा, विरूवरूवाणि अकिरियवाई ॥ जे मा
यइत्ता बहवे मणूसा, भमंति संसारमणोवदग्गं ॥ ६ ॥

अर्थ—(सेके०) ते लोकायिक परवादी (वगिरागहीए के०) पोतानी वाणीयें करी ग्रह्या अर्थने विषे पण वली पोतानेज वचने निषेध करतां थकां (सम्मिस्सभावंके०) मिश्रभावनेज अंगीकार करेछे एटले पोते बोलता थकाज जेनी अस्ति कहे तेनीज वली नास्ति कहे तेमज जेनी नास्ति कहे तेनीज अस्ति कहेछे एरीते मिश्रभाव जाणवो केमके जे नास्तिक जीवादिक पदार्थनो अभाव कहेछे तेपण पोते पोताना शास्त्रे करी पोताना शिष्यने पोतानो मार्ग शीखावेछे के सर्व पदार्थ शून्यपणेछे तेवारे पोते तथा

शास्त्र अने शिष्य ए क्यांछे एम नविचारे तेमाटे ए असंबंध वचनना बोलनार माटे ए ने मिश्रनाव सहित जाणवा तथा सांख्यदर्शनी एम कहेछे के आत्मा सर्वव्यापि छे तथा अक्रियछे ए पण असमंजस बोले छे कारणके ए दर्शनवाला एम कहेछे के प्रकृतिने वियोगें मोक्षछे जो एमछे तो आत्माने बंधमोक्षनो सद्भाव थाप्यो एम सिद्ध थयुं कारणके प्रकृतिनो बंध हतो तेनो वियोग थवाथी मोक्ष थयो एथी स्पष्ट मालम पडेछे के बंध मोक्षनो सद्भाव थयो अने बंध मोक्षना सद्भावने लीधे आत्मा सक्रियछे एवुं एम नाज बोलवा उपरथी जणायछे तो पोतानाज वचनथी जेनुं स्थापन कर्युं तेने पोतानाज वचनथी उत्थापेछे एरीते मिश्रनाव सर्व दर्शनीउनो जाणवो ए वर्णिका मात्र लख्युंछे (सेमुम्मुईहोइअणाणुवाई के०) ते अक्रियावादी आदेदेइने जे परवादीछे ते जैन मतानुसारीने अनेक हेतु दृष्टांते करी व्याकुल छतो तेनो उत्तर आपवाने असमर्थ थाय मुम्मुई एटले मूक सरखो थाय अर्थात् कांइपण बोली शके नही ते दर्शनी केवो जाणवो तोके अनानुवादी एटले जिनजाषित वचन सांजलीने पछी बोलवा असमर्थ एवो छतो मौन नावनेज अंगीकार करे इत्यर्थः हवे यद्यपि ते दर्शनीउ जैनमतानुसारीने सन्मुख बोली नशके तथापि कदाग्रहे पड्या थका पोताना पक्षनुं स्थापन करे तेनी रीत कहेछे. (इमंडुपरकंइममेगपरकंके०) एम अमारो एक पक्ष छे ते एम डुपक्ष जाणवो एटले ए पक्षना शुं वखाण करिए ए अमारा पक्षने त्रीजो कोइ उत्थापी नशके एवो ए पक्ष उत्तमछे अहीं पूर्वापर विरोध वचनछे ते नाव पाछलना मिश्रनाव कहेवाथी कह्युंछे ए डुपरक शब्दनो अर्थछे अथवा जे पोतानुं खोटुं होय तेने साचुं करे तेने उत्सूत्रजाषण करवाने लीधे डुपक्ष एटले आनवमां तथा परनवमां विमंबना थाय ए पण डुपरक शब्दनो अर्थ छे तथा ते परवादि जेवारे पोची नशके तेवारे (आहंसुछलायतणंचकम्मं के०) छलायतन एटले छले करी बोले ते छल त्रण प्रकारनाछे एक वाक्छल, बीजो सामान्यछल अने त्रीजो उपचारछल एवां छले करी बोलीने पोतानो एक पक्ष स्थापन करे तथा कर्म एटले एक पक्षादि स्थापन करवाने अर्थे बोले ॥ ५ ॥ (तेएवमरकंति के०) ते बौद्धादिक परवादीउ सत्यमार्गने अजाणता मिथ्यात्व पमले आवस्या थकां असंबंध वचन बोले एवाते (अबुज्झमाणा के०) तत्वने अजाणता (विरूवरूवाणिअकिरियवाई के०) विरूपरूप नाना प्रकारना कुशास्त्रनी प्ररूपणा करे एवाते अक्रियावादि नास्तिकादिक मिथ्यात्वी छे (जेमायईत्ताबहवेमणूसा के०) जेमनो मत ग्रहण करीने घणा मनुष्य मिथ्यात्वे मोह्या थका (नमंतिसंसारमणोवदग्गं के०) अनंत संसार परिभ्रमण करेछे ॥ ६ ॥

॥ दीपिका–गिरा स्ववाचा स्वांगीकारेण गृहीते तस्मिन्नर्थे तस्यार्थस्य गिरा प्रतिषेधं

कुर्वाणाः सन्मिश्रीनावमस्तित्वनास्तित्वाज्युपगमं ते नास्तिकादयः कुर्वंति । वाशब्दात्प्रतिषेधे वाच्येऽस्तित्वमेव कथयंति । तथाहि । नास्तिकास्तावत्स्वशिष्येन्योजीवाद्यनावप्रतिपादकं शास्त्रं वदंतोनांतरीयकतयाऽत्मानं कर्तारं करणं च शास्त्रं कर्मतापन्नांश्च शिष्यानवश्यमंगीकुर्युः । सर्वशून्यत्वे त्वस्य त्रितयस्यानावान्मिश्रीनावोव्यत्ययोवा स्यादेव । तथा बौद्धादिः कश्चित्स्याद्वादिना सम्यग्घेतुदृष्टांतैर्व्याकुलीकृतः सन् (मुम्मुईहोइत्ति) गद्गदनाषित्वेनाव्यक्तनाषी स्यात् । अथवा मूकादपि मूकोमूकमूकः स्यात् । प्राकृतशैल्या छांदसत्वाच्चैवं प्रयोगः । स्याद्वादिनोक्तं साधनमनुवदितुं शीलमस्येत्यनुवादी तन्निषेधादननुवादी व्याकुलितमनाअनुवादमपि कर्तुं न शक्नोतीति । स्वमतमाश्रित्याह । (इमंडुपक्खमित्यादि) इदमस्मदंगीकृतं मतमेकः पक्षोस्येत्येकपक्षं निष्प्रतिपक्षमित्यर्थः । इदं च परमतं द्वौ पक्षौ यस्य तद्द्विपक्षं सप्रतिपक्षमित्यर्थः । तथा स्याद्वादिसाधनोक्तौ छलायतनं छलं नवकंबलोदेवदत्तइत्यादिकमाहुरुक्तवंतः । चशब्दादस्य च दूषणाना सादिकं कर्मच एकपक्षद्विपक्षादिकं । अथवा षट् आयतनानि उपादानकारणानि आश्रवद्वाराणि श्रोत्रादीनींद्रियाणि यस्य कर्मणस्तत् षडायतनं कर्मेत्येवमाहुः ॥ ५ ॥ तेऽक्रियावादिनश्चार्वाकबौद्धाद्याएवमाख्यांति परमार्थमबुद्ध्यमानाअजानंतोविरूपरूपाणि नानाप्रकाराणि शास्त्राणि रूपयंति । तद्यथाहि दानेन महानोगोदेहिनां सुरगतिश्च शीलेन नावनयाच मुक्तिस्तपसा सर्वाणि सिध्यंति । तथा पृथिव्यापस्तेजोवायुरिति चत्वारि नूतान्येव संति न कश्चिदात्मा । तथा बौद्धाः सर्वं क्षणिकं निरात्मकमित्यादीनि शास्त्राणि वदंति ते च मूढाअज्ञामनुष्यायद्दर्शनमादाय गृहीत्वाऽनवदग्रमनंतं संसारं भ्रमंति ॥ ६ ॥

॥ टीका—सांप्रतमक्रियावादिनामज्ञानविजृंनितं दर्शयितुमाह । (सम्मिस्सनमित्यादि) स्वकीयया गिरा वाचा स्वान्युपगमेनैव गृहीते तस्मिन्नर्थे नांतरीयकतया वा समागते सति तस्याऽयातस्यार्थस्य गिरा प्रतिषेधं कुर्वाणाः सन्मिश्रीनावमस्तित्वं नास्तित्वाप्रुगमं ते लोकायतिकादयः कुर्वंति । चशब्दात्प्रतिषेधे प्रतिपाद्येऽस्तित्वमेव प्रतिपादयंति । तथाहि । लोकायतिकास्तावत्स्वशिष्येन्योजीवाद्यनावप्रतिपादकं शास्त्रं प्रतिपादयंतोनांतरीयकतयात्मानं कर्तारं करणं च शास्त्रं कर्मतापन्नांश्च शिष्यानवश्यमन्युपगछेयुः । सर्वशून्यत्वे त्वस्य त्रितयस्यानावान्मिश्रीनावोव्यत्ययोवा । बौद्धाअपि मिश्रीनावमेवमुपगताः । तद्यथा । गंता च नास्ति कश्चिद्गतयः षड् बौद्धशासने प्रोक्ताः ॥ गम्यतइति च गतिः स्याछ्रुतिः कथं शोनना बौद्धी ॥ १ ॥ तथा कर्म च नास्ति फलं चास्तीत्यसति चात्मनि कारके कथं पड्गतयोज्ञानसंतानस्यापि संतानव्यतिरेकेण संवृतिसत्वात् क्षणस्य चास्थितत्वेन क्रियानावान्न नानागतिसंनवः । सर्वाण्यपि कर्माण्यबंधनानि प्ररूपयंति स्वागमे । तथा पंच

जातकशतानि च बुद्धस्योपदिशंति । तथा । मातापितरौ हत्वा बुद्धशरीरे च रुधिरमुत्पा द्य ॥ अर्हद्वधं च कृत्वा स्तूपं निित्त्वा च पंचैते ॥ १ ॥ निरंतरमावीचिनरकं यांत्येवमादिक स्यागमस्य सर्वशून्यत्वे प्रणयनमयुक्तिसंगतं स्यात् । तथा । जातिजरामरणरोगशोकोत्तम मध्यमाधमत्वानि च नस्युः । एषएव च नानाविधकर्मविपाकोजीवास्तित्वं कर्तृत्वं कर्म वत्त्वं चावेदयति । तथा । गंधर्वनगरतुल्या, माया स्वप्नोपपातधनसदृशा ॥ मृगतृष्णानीहारां बुचंद्रिकाजातचक्रसमाइति नाषणाच्च स्पष्टमेव मिश्रीनावोपगमनं बौद्धानामिति । यदि वा नानाविधकर्मविपाकान्युपगमात्तेषां व्यत्ययएवेति । तथाचोक्तं । यदि शून्यस्तव पक्षो, मत्पक्षनिवारकः कथं नवति ॥ अथ मन्यसे न शून्यस्तथापि मत्पक्षएवासावित्यादि । त देवं बौद्धाः पूर्वोक्तया नीत्या मिश्रीनावमुपगतानास्तित्वं प्रतिपादयंतोऽस्तित्वमेव प्रति पादयंति । तथा सांख्याअपि सर्वव्यापितया अक्रियमात्मानमन्युपगम्य प्रकृतिवियोगा न्मोक्षसद्भावं प्रतिपादयंतस्तेप्यात्मनोबंधं मोक्षं च स्ववाचा प्रतिपादयंति । ततश्च बंध मोक्षसद्भावे सति स्वकीयया गिरा सक्रियत्वे गृहीते सत्यात्मनः सन्मिश्रीनावं व्रजंति य तोन क्रियामंतरेण बंधमोक्षौ घटेते । वाशब्दादक्रियत्वे प्रतिपाद्ये व्यत्ययएव सक्रियत्वं तेषां स्ववाचा प्रतिपाद्यते । तदेवं लोकायतिकाः सर्वे नावान्युपगमेन क्रियानावं प्रतिपा दयंति । बौद्धाश्च क्षणिकत्वात्सर्वशून्यत्वाच्चाक्रियामेवान्युपगमयंतः स्वकीयागमप्रणयनेन चोदिताः संतः सन्मिश्रीनावं स्ववाचैव प्रतिपाद्यंते । तथा सांख्याश्चाक्रियमात्मानमन्युप गच्छंतोबंधमोक्षसद्भावं च स्वान्युपगमेनैव सन्मिश्रीनावं व्रजंति । व्यत्ययं चैतत्प्रतिपादि तं । यदिवा बौद्धादिः कश्चित्स्याद्वादिनासम्यग्घेतुदृष्टांतैर्व्याकुलीक्रियमाणः सन् सम्यगु त्तरं दातुमसमर्थोयत्किंचन नाषितया (मुम्मुईहोइत्ति) गजदनाषित्वेनाऽव्यक्तनाषी नवति । यदिवा प्राकृतशैल्या छांदसत्वाच्चायमर्थोऽष्टव्यः । तद्यथा । मूकादपि मूकोमूकमूकोन वति । एतदेव दर्शयति । स्याद्वादिनोक्तं साधनमनुवदितुं शीलमस्येत्यनुवादी तत्प्रतिषे धादननुवादी सद्धेतुनिर्व्याकुलितमनामौनमेव प्रतिपाद्यतइति नावः । अनुनाष्य च प्रति पक्षसाधनं तथाऽदूषयित्वा च स्वपक्षं प्रतिपादयंति । तद्यथा । इदमस्मदन्युपगतं दर्शन मेकः पक्षोस्येति एकपक्षमप्रतिपक्षतयैकांतिकमविरुद्धार्थानिधायितया निष्प्रतिबाधं पूर्वा पराविरुद्धमित्यर्थः । इदं चैवंनूतमपि सदित्याह । द्वैपक्षावस्येति द्विपक्षं सप्रतिपक्षमनै कांतिकं पूर्वापरविरुद्धार्थानिधायितयाविरोधिवचनमित्यर्थः । यथाच विरोधिवचनत्वं तेषां तथा प्राग्दर्शितमेव। यदि त्वेतदस्मदीयं दर्शनं द्वैपक्षावस्येति द्विपक्षं कर्मबंधनिर्ज रणं प्रतिपक्षद्वयसमाश्रयणात् । तत्समाश्रयणं चेहामुत्र वेदना चौरपारदारिकादीना मिव । तेहि करचरणनासिकादिकामिहैव पुष्पकल्पां स्वकर्मणोविडंबनामनुनवंत्यमुत्र च नरकादौ तत्फलनूतां वेदनां समनुनवंतीति । एवमन्यदपि कर्मोनयवेद्यमन्युपगम्य

ते । तच्चेदं । प्राणी प्राणिज्ञानमित्यादिपूर्ववत् । तथेदमेकः पक्षोस्येत्येकपक्षं इहैव जन्मनि तस्य वेद्यत्वात् । तच्चेदमविज्ञोपचितं परिज्ञोपचितमीर्यापथं स्वप्नादिकं चेति । तदेवं स्याद्वादिनानियुक्ताः स्वदर्शनमेवमनंतरोक्तया नीत्या प्रतिपादयंति । तथा स्याद्वादिसाधनोक्तौ बलायतनं बलं नवकंबलोदेवदत्तइत्यादिकमाहुरुक्तवंतः । च शब्दादन्यच्च दूषणाजामादिकं । तथा कर्मच एकपक्षद्विपक्षादिकं प्रतिपादितवंतइति । यदिवा षडायतनानि उपादानकारणानि आश्रवद्वाराणि श्रोत्रेंद्रियादीनि यस्य कर्मणस्तत्पडायतनं कर्मेत्येवमाहुरिति ॥५॥ सांप्रतमेव तद्दूषणायाह । (तएवमसंतीत्यादि) ते चार्वाकबौद्धादयोऽक्रियावादिनएवमाचक्षते । सद्भावमबुध्यमानामिथ्यामलपटलवृतात्मानः परमात्मानं च व्युद्ग्राहयंतोविरूपरूपाणि नानाप्रकाराणि शास्त्राणि प्ररूपयंति । तद्यथा । दानेन महाभोगोदेहिनां सुरगतिश्च शीलेन ॥ भावनया च विमुक्तिस्तपसा सर्वाणि सिध्यंति ॥ १ ॥ तथा पृथिव्यापस्तेजोवायुरित्येतान्येव चत्वारि भूतानि विद्यंते नापरः कश्चित्सुखदुःखभागात्मा विद्यते । यदि चैतान्यप्यविचारितरमणीयानि न परमार्थतः संतीति स्वप्नेंद्रजालमरुमरीचिकानिचयद्विचंद्रादिप्रतिभासरूपत्वात्सर्वस्येति । तथा सर्वं क्षणिकं निरात्मकं मुक्तिस्तु शून्यता दृष्टेस्तदर्थाः शेषभावनाइत्यादीनि नानाविधानि शास्त्राणि व्युद्ग्राहयंत्यक्रियात्मानोऽक्रियावादिनइति । तेच परमार्थमबुध्यमानायद्दर्शनमादाय गृहीत्वा बहवोमनुष्याः संसारमनवदग्रमपर्यवसानमरहट्टघटीन्यायेन भ्रमंति पर्यटंति । तथाहि । लोकायतिकानां सर्वशून्यत्वे प्रतिपाद्ये न प्रमाणमस्ति । तथाचोक्तं । तत्त्वान्युपहतानीति, युक्त्यभावेन सिध्यति ॥ नास्ति चेत्सैव नस्तत्त्वं, तत्सिद्धौ सर्वमस्तु सत् ॥ १ ॥ नच तत्प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणं । अतीतानागतभावतया पितृनिबंधनस्यापि व्यवहारस्यासिद्धेस्ततः सर्वसंव्यवहारोच्छेदः स्यादिति । बौद्धानामप्यत्यंतक्षणिकत्वेन वस्तुत्वाभावः प्रसज्यति । तथाहि । यदेवार्थक्रियाकारि तदेव परमार्थतः सत् । नच क्षणः क्रमेणार्थक्रियां करोति । क्षणिकत्वहानेर्नापि यौगपद्येन तत्कार्याणामेकस्मिन्नेव क्षणे सर्वकार्यापत्तेर्नचैतद्दृष्टमिष्टं वा । नच ज्ञानाधारमात्मानं गुणिनमंतरेण गुणभूतस्य संकलनाप्रत्ययस्य सद्भावइत्येतच्च प्रागुक्तप्रायं । यच्चोक्तं दानेनमहाभोगो,इत्यादि तदार्हतैरपि कथंचिदिष्यतएवेति नचाभ्युपगमाएव बाधायैप्रकल्प्यंतइति ॥ ६ ॥

णाइच्चो उएइ ण अत्थमेति, ण चंदिमा वड्ढति हीयती वा ॥ स
लिला ण संदंति ण वयंति वाया, वंझो णियतो कसिणे हु लोए
॥७॥ जहाहि अंधे सह जोतिणावि, रूवाइ णो पस्सति हीणणे
त्ते ॥ संतंपि ते एवमकिरियवाई, किरियं ण पस्संति निरुद्धपन्ना ॥ ८ ॥

अर्थ–हवे सर्व शून्यवादिनो भेद कहेछे. ते शून्यवादी एम कहेछे के समस्त लोक प्रसिद्ध जगत्प्रदीप समान एवो (णाइच्चो के०) सूर्य नथी वली ते सूर्य (णउएइके०) उगतो नथी तथा (णअछमेति के०) अस्तपण थातो नथी ए जे देदीप्यमान सूर्य मंडल देखायछे ते मात्र चित्तनो भ्रम जाणवो मृगतृष्णा समान ए सर्व भ्रमछे. तथा (णचंदिमावड्डति हीयती के०) चंद्रमानी कला वृद्धि पामती नथी तेम हीन पण थती नथी एटले शुक्ल पक्षादिने विषे जे वृद्धि प्रमुख चंद्रमानी देखायछे ते सर्व भ्रम छे (वा के०) अथवा तथा (सलिला के०) नदीना पाणी ते (णसंदंति के०) नथी श्रवता एटले नदीन्हदादिक पण नथी तथा (णवयंतिवाया के०) वायरो पण वालो नथी (वंझोणियतो कसिणे हुलोए के०) तो हु इति निश्चे ए लोक संपूर्ण वंध्यसमान अर्थ शून्य छे अर्थात् ए जगतमां कांइज नथी जे कांइ देखायछे ते सर्व स्वप्नेंद्रजाल समान जाणवुं ॥ ७ ॥ (जहाहि अंधेसह जोतिणावि के०) जेम जाति अंध एटले नेत्रहीन पुरुष दीपे करी सहित छतां पण (हीणणेत्ते के०) हीननेत्रपणाने लीधे (रूवाइ के०) रूपादिक जे घटपटादिक विद्यमान पदार्थोछे तेने (णोपस्सति के०) देखी शके नही (संतंपिते एवमकिरियवाई के०) तेम ते अक्रियावादिउमां छतिक्रिया विद्यमान छता पण ते (किरियं के०) क्रियाने (निरुद्धपन्ना के०) जेमनी प्रज्ञा एटले बुद्धिनिरोध थइछे अर्थात् बुद्धिहीन एवाते अक्रियावादी लोको पोतामां क्रिया विद्यमान छता पण तेने (णपस्संतिके०) मिथ्यात्वादिक दोषेकरी नथी देखता. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–आदित्योनोगच्छति नास्तमेति । कोर्थः । आदित्यएव तावन्न विद्यते कुतस्तस्योगमनमस्तगमनं च । यच्चेदं ज्वलत्तेजोमंडलं दृश्यते तद्भ्रांतमतीनां द्विचंद्रप्रतिभासमृगतृष्णातुल्यमिति । तथा न चंद्रमावर्धते हीयते वा सलिलानि पर्वतनिर्झरेभ्यो न स्यंदंते न स्रवंति वाता न वांति । किंबहुना कृत्स्नः संपूर्णोप्ययं लोकोवंध्योर्थशून्योनियतोनिश्चितोभावरूपइत्यर्थः । सर्वमिदं यदुपलभ्यते तन्मायास्वप्नेंद्रजालप्रायमिति ॥ ७ ॥ यथाह्यंधोजात्यंधः पश्चाद्वा हीननेत्रोगतचक्षुर्घटपटादिरूपाणि ज्योतिषा प्रदीपादिनाऽपि सहवर्तमानोन पश्यति । एवंतेप्यक्रियावादिनः सदपि घटपटादिकं वस्तु न क्रियां चास्तित्वादिकां परिस्पंदादिकां वा न पश्यंति । यतोनिरुद्धाआच्छादिता प्रज्ञा ज्ञानं येषांते निरुद्धप्रज्ञाः अतएव ते न जानंतीति ॥ ८ ॥

॥ टीका–पुनरपि शून्यमताविर्भावनायाह । (णाइच्चो उएईत्यादि) सर्वशून्यवादिनोह्यक्रियावादिनः सर्वाध्यक्षामादित्योगमनादिकामेव क्रियां तावन्निरुंधंतीति दर्शयति । आदित्योहि सर्वजनप्रतीतोजगत्प्रदीपकल्पोदिवसादिकालविभागकालकारी सएव तावन्न

विद्यते कुतस्तस्योद्गमनमस्तगमनं वा । यच्च जाज्वल्यमानं तेजोमंडलं दृश्यते तद्भ्रांतमतीनां द्विचंद्रादिप्रतिभासं मृगतृष्णिकाकल्पं वर्तते । तथा न चंद्रमावर्धते शुक्लपक्षे नाप्युत्तरपक्षे प्रतिदिनमपहीयते नसंधानसलिलानि उदकानि स्यंदंते पर्वतनिर्झरेभ्यो न स्रवंति तथा वाताः सततगतयोन वांति । किंबहुनोक्तेन कृत्स्नोप्ययं लोकोवंध्यो ऽर्थशून्योनियतोनिश्चितोभावरूपइति यावत् । सर्वमिदं यदुपलभ्यते तन्मायास्वप्नेंद्र जालमिति ॥ ७ ॥ एतत्परिहर्तुकामआह (जहाहि अंधेइत्यादि) यथा ह्यंधोजात्यंधः पश्चाद्वा हीननेत्रोऽपगतचक्षुः रूपाणि घटपटादीनि ज्योतिषापि प्रदीपादिनापि सहवर्त मानोन पश्यति नोपलभते एवं तेप्यक्रियावादिनः सदपि घटपटादिकं वस्तु तत्क्रियां चाऽस्तित्वादिकां परिस्पंदादिकां वा क्रियां न पश्यंति । किमिति यतोनिरुद्धा आच्छादि ता ज्ञानावरणादिना कर्मणा प्रज्ञा ज्ञानं येषां ते तथा । तथाहि । आगोपालांगनादिप्र तीतः समस्तांधकारक्षयकारी कमलाकरोद्घाटनपटीयानादित्योद्गमः प्रत्यहं भवनुपलक्ष्य ते । तत्क्रियाच देशाद्देशांतरावाप्त्याऽन्यत्र देवदत्तादौ प्रतीताऽनुमीयते । चंद्रमाश्च प्रत्यहं क्षीयमाणः समस्तक्षयं यावत्पुनः कलाभिवृद्ध्या प्रवर्धमानः संपूर्णावस्थायां यावदध्य क्षेणैवोपलक्ष्यते । तथा सरितश्च प्रावृषि जलकल्लोलाविलाः स्यंदंत्योदृश्यंते वायवश्च वाताद्वृक्षभंगकंपादिभिरनुमीयंते । यच्चोक्तं भवता सर्वमिदं मायास्वप्नेंद्रजालकल्पमि ति तदसत् । यतः सर्वाभावे कस्यचिद् मायारूपस्य सत्यस्याभावान्मायायाएवाऽभावः स्यात् । यश्च मायां प्रतिपादयेत् यस्य च प्रतिपाद्यते सर्वशून्यत्वे तयोरेवाभावात्कुतस्त द्व्यवस्थितिरिति । तथा स्वप्नोपि जाग्रदवस्थायां सत्यां व्यवस्थाप्यते तस्याभावे त स्याप्यभावः स्यात्ततः स्वप्नमभ्युपगच्छता भवता तन्नांतरीयकतया जाग्रदवस्थावश्यमभ्युप गता भवति तदभ्युपगमेच सर्वशून्यत्वहानिः । नच स्वप्नोप्यभावरूपएव स्वप्नेप्यनुभूतादेः सद्भावात् । तथा चोक्तं । अणुहूयदिठ्ठचिंतिय, सुयपयइविपारदेव पाणूया ॥ सुमिणस्स निमित्ताइं पुस्सं पावंच णाभावो ॥ १ ॥ इंद्रजालव्यवस्थाप्यपरसत्यत्वे सति भवति तद भावेतु केन कस्य चेंद्रजालं व्यवस्थाप्येत । द्विचंद्रप्रतिभासोपि रात्रौ सत्यामेकस्मिंश्च चंद्रमस्युपलंभकसद्भावे च घटते न सर्वशून्यत्वे । नचाभावः कस्यचिदप्यत्यंततुच्छरूपोस्ति । शशविषाणकूर्मरोमगगनारविंदादीनामत्यंताभावप्रसिद्धानां समासप्रतिपाद्यस्यैवार्थस्याभा वोन प्रत्येकपदवाच्यार्थस्येति । तथाहि । शशोप्यस्ति विषाणमप्यस्ति किंत्वत्र शशम स्तकसमवायिविषाणं नास्तीत्येतत्प्रतिपाद्यते । तदेवं संबंधमात्रमत्र निषिध्यते नात्यं तिकोवस्त्वभावइति । एवमन्यत्रापि द्रष्टव्यमिति । तदेवं विद्यमानायामप्यस्तीत्यादिका यां क्रियायां निरुद्धप्रज्ञास्तीर्थिकाअक्रियावादमाश्रिताइति । अनिरुद्धप्रज्ञास्तु यथाव स्थितार्थवेदिनोभवंति । तथाहि । अवधिमनःपर्यायकेवलज्ञानिनस्त्रैलोक्योदरविवरव

तिनः पदार्थान् करतलामलकन्यायेन पश्यंति । समस्तश्रुतज्ञानिनोपि आगमबलेना तीतानागतानर्थान् विदंति । येऽप्यन्येऽष्टांगनिमित्तपारगास्तेपि निमित्तबलेन जीवादि पदार्थपरिछेदं विदधति ॥ ८ ॥

संवछरं सुविणं लरकणं च, निमित्तदेहं च उपाइयं च ॥ अठंग मेयं बहवे अहित्ता, लोगंसि जाणंति अणागताइं ॥ ए ॥ केई निमित्ता तहिया नवंति, केसिं च तं विप्पडिएति णाणं ॥ तेविज्ज नावं अणहिज्जमाणा, आहंसु विज्जापरिमोरकमेव ॥ पाठांतरे ॥ (जाणासु लोगंसि वयंति मंदा ॥ १० ॥

अर्थ-(संवछरं के०) ज्योतिषग्रंथ (सुविणं के०) स्वप्न शुनाशुनना शास्त्र (लरकणंके०) श्रीवत्सादिक लक्षण सामुडिक शास्त्र ते च शब्द थकी अन्यंतर नेदरूप पण जाणवा तथा (निमित्त के०) निमित्त प्रसिद्ध शकुनादिक शास्त्र जाणवा (देहंके०) देहना लक्षण मतस तिलकादिक जाणवा (उपाइयंच के०) उत्पात ते नूमिकंपादिकनी सूचनाकरनार शास्त्र एम (अठंगमेयंबहवेअहित्ता के०) अष्टांगनिमित्तनुं घणा लोक पठन करीने अर्थात् अष्टांगनिमित्त नणीने (लोगंसिजाणंतिअणागताइं के०) आलो कने विषे अतीत अनागतादिक वस्तुने जाणेले. तेटलुं पण ए शून्यवादी जाणता न थी जेम कोइ संनिपाती यथातथ्य वस्तुने उलखे नही तेना दृष्टांते ए शून्यवादी पण जाणीलेवा ॥ ए ॥ तेमां वली (केईनिमित्तातहियानवंति के०) कोइएक निमित्तियायें पोताना मुख थकी निमित्त प्रकाश्यो थको तेनो निमित्त जेम कहे तेमज थायले एट ले साचो थायले वली (केसिंचतंविप्पडिएतिणाणं के०) कोईकनो निमित्तादि ज्ञान विपर्यासपणाने पामेले एटले विघटेले तथा (तेविज्जनावंअणहिज्जमाणा के०) ते ए वी विद्याना नावनो अन्यास कस्या विना एटले एवी विद्याने अण नण्या थका कहेले के (आहंसुविज्जापरिमोरकमेव के०) अथवा पाठांतरे (जाणासुलोगंसिवयंतिमंदाके०) कोइएक मंद एटले मूर्ख एवा अक्रियावादी प्रमुख एमज कहेलेके अमेज आलोक मांहे अशेष एटले समस्त नावने जाणीयें बैयें ॥ १० ॥

॥ दीपिका-सांवत्सरं ज्योतिषं । स्वप्नप्रतिपादकोग्रंथः स्वप्नः । लक्षणं श्रीवत्सादिकं । निमित्तं शकुनादिकं । देहे नवं देहं मषतिलकादि । उत्पाते नवमौत्पातिकमुल्कापातदिग्दा हादिकमित्यादि । अष्टांगनिमित्तं । यथा नौमं १ उत्पातं २ स्वप्नं ३ आंतरिक्षं ४ आंगं ५ स्वरं ६ लक्षणं ७ व्यंजनमित्येवं नवमपूर्वतृतीयाचारवस्तुनिर्गतं सुखडुःखादिसूचकं नि

मित्तमधीत्य लोकेऽतीतानागतानि वस्तूनि जानंति। नच शून्यादिष्वेतद्घटते तस्मादप्रमाणकमेव तैरुच्यते ॥ ए ॥ पराभिप्रायमाह। (केईनिमित्तेत्यादि) छांदसत्वाल्लिंगव्यत्ययः। कानिचिन्निमित्तानि तथ्यानि सत्यानि नवंति। केषांचित्तु निमित्तानां निमित्तवेदिनां वा तन्निमित्तज्ञानं विपर्यासं व्यत्ययमेति। आर्हतानामपि निमित्तव्यनिचारोदृश्यते किंपुनस्तीर्थिकानां। तदेवं निमित्ते व्यनिचारमुपलभ्यतेऽक्रियावादिनोविद्यासद्भावं विद्यामनधीयानाः (आहंसुविज्जापलिमोरकमेव) विद्यायाः श्रुतस्य व्यनिचारेण तस्य परिमोक्षं परित्यागमाहुः। अथवा क्रियायाअनावाद्विद्यया ज्ञानेनैव मोक्षं कर्मक्षयरूपमाहुरिति। क्वचिच्चरमपादस्यैवं पाठः। (जाणासुलोगंसिवयंतिमंदत्ति) विद्यामनधीत्यैव स्वयमेव लोके नावान् वयं जानीमइति मंदाजडावदंति। मंदत्वं कथमिति चेडुच्यते। सम्यग्विलोकितस्य निमित्तस्य नास्ति व्यनिचारः। यत्रापि दृश्यते व्यनिचारः सोप्यज्ञाततादृगन्यनिमित्तसद्भावात्। यथा किल बुद्धः स्वशिष्यानाकार्यउक्तवान्। द्वादशवार्षिकमत्र दुर्निक्षं नावि। यूयं देशांतरं गच्छत। तेच गच्छंतस्तेनैव निषिद्धाः। मागच्छत यूयं इहाद्यैव पुण्यवान् महासत्त्वः संजातस्तत्प्रनावात्सुनिक्षं नविष्यतीति। तदेवमन्यनिमित्तसद्भावान्नकथंचिन्निमित्तव्यनिचारइति ॥ १० ॥

॥ टीका—तदाह। (संवत्सरमित्यादि) सांवत्सरमिति ज्योतिषं। स्वप्नप्रतिपादको ग्रंथः स्वप्नस्तमधीत्य। लक्षणं श्रीवत्सादिकं। च शब्दादांतरबाह्यनेदभिन्नं निमित्तं वाक्प्रशस्तशकुनादिकं। देहे नवं दैहं मपकतिलकादि। उत्पाते नवमौत्पातिकमुल्कापातदिग्दाहनिर्घातनूमिकंपादिकं। तथाष्टांगंच निमित्तमधीत्य। तद्यथा। नौममुत्पातमांतरिक्षमांगं स्वरं लक्षणं व्यंजनमित्येवं रूपं नवमपूर्वतृतीयाचारवस्तुविनिर्गतं सुखडुःखजीवितमरणलाभाऽलाभादिसंसूचकं निमित्तमधीत्य लोकेऽस्मिन्नतीतानि वस्तूनि अनागतानिच जानंति परिछिंदंति। नच शून्यादिवादेष्वेतद् घटते तस्मादप्रमाणकमेव तैरनिधीयतइति। एवंव्याख्याते सति आह परः। ननु व्यनिचार्यपि श्रुतमुपलभ्यते। तथाहि। चतुर्दशपूर्वविदामपि षट्स्थानपतितत्वमागमउद्घुष्यते किंपुनरष्टांगनिमित्तशास्त्रविदां। अत्र चांगवर्जितानां निमित्तशास्त्राणामानुष्टुभेन छन्दसा त्रयोदशशतानि सूत्रं तावंत्येव सहस्राणि वृत्तिस्ता वत्प्रमाणलक्षणा परिनाषेति। अंगस्य त्रयोदशसहस्राणि सूत्रं तत्परिमाणलक्षणा वृत्तिरपरिमितं वार्तिकमिति ॥ ए ॥ तदेवमष्टांगनिमित्तवेदिनामपि परस्परतः षट्स्थानपतितत्वेन व्यनिचारित्वमतइदमाह। (केइनिमित्ताइत्यादि) छांदसत्वात्प्राकृतशैल्या वा लिंगव्यत्ययः। कानिचिन्निमित्तानि तथ्यानि सत्यानि नवंति। केषांचित्तु निमित्तानां निमित्तवेदिनां वा बुद्धिवैकल्यात्तथाविधक्षयोपशमानावेन तन्निमित्तज्ञानं वि

पर्यासं व्यत्ययमेति । आर्हतानामपि निमित्तव्यनिचारः,समुपलन्यते किंपुनस्तीर्थिकानां । तदेवं निमित्तशास्त्रस्य व्यनिचारमुपलन्यते ऽक्रियावादिनोविद्यासद्भावमनधीयानाः संतोनिमित्तं तथा चान्यथा च नवतीति मत्वा ते (आर्हंसुविज्जापलिमोख्कमेव) विद्यायाः श्रुतस्य व्यनिचारेण तस्य परिमोक्षं परित्यागमाहुरुक्तवंतः । यदिवा क्रियायाश्च नावाद्विद्यया ज्ञानेनैव मोक्षं सर्वकर्मच्युतिलक्षणमाहुरिति ! क्वचिच्चरमपादस्यैवं पाठः (जाणासुंलोगंसिवयंतिमंदत्ति) विद्यामनधीत्यैव स्वयमेव लोकमस्मिन् वा लोके नावान् स्वयं जानीमएवं मंदाजडावदंति । नच निमित्तस्य तथ्यता । तथाहि । कस्यचित्क्वचित्क्षुतेऽपि गछतः कार्यसिद्धिदर्शनाछकुनसद्भावेपि कार्यविघातदर्शनादतोनिमित्तबलेनादेशविधायिनां मृषावादएव केवलमिति । नैतदस्ति । नहि सम्यगधीतस्य श्रुतस्यार्थे विसंवादोऽस्ति । यदपि षट्स्थानपतितत्वमुद्घोष्यते तदपि पुरुषाश्रितक्षयोपशमवशेन । नच प्रमाणानासव्यनिचारे सम्यक्प्रमाणव्यनिचाराशंकां कर्तुं युज्यते । तथाहि । मरुमरीचिकानिचये जलग्राहि प्रत्यक्षं व्यनिचरतीति कृत्वा किंसत्यजलग्राहिणोपि प्रत्यक्षस्य व्यनिचारोयुक्तिसंगतोनवति । नहि मशकवर्तिरग्निसिद्धावुपदिश्यमाना व्यनिचारिणीति सत्यधूमस्यापि व्यनिचारोनहि सुविवेचितकार्यकारणं व्यनिचरतीति । ततश्च प्रमातुरयमपराधोन प्रमाणस्यैव सुविवेचितं निमित्तं श्रुतमपि न व्यनिचरतीति । यश्च क्षुतेपि कार्यसिद्धिदर्शनेन व्यनिचारः शंक्यते सोऽनुपपन्नः । तथाहि । कार्याकूतात् क्षुतेपि गछतः कार्यसिद्धिः सापांतरालेंतरशोननिमित्तबलात्संजातेत्येवमवगंतव्यं । शोननिमित्तप्रस्थितस्यापीतरनिमित्तबलात्कार्यव्याघातइति । तथाच श्रुतिः । किल बुद्धः स्वशिष्यानाहूयोक्तवान् यथा द्वादशवार्षिकमत्र दुर्निक्षं नविष्यतीत्यतोदेशांतराणि गछत यूयं ते तद्वचनाजछंतस्तेनैव प्रतिषिद्धायथा मागछत यूयमिहाद्यैव पुण्यवान् महासत्वः संजातस्तत्प्रनावात्सुनिक्षं नविष्यति । तदेवमंतरा परनिमित्तसद्भावात्तद्व्यनिचारशंकेति स्थितं ॥ १० ॥

ते एवमख्कंति समिच्च लोगं, तहा तहा समणा माहणा य ॥
सयं कडं णन्नकडं च डुख्कं, आहंसुविज्जा चरणं पमोख्कं ॥ ११ ॥
ते चख्कुलोगंसिह णायगा उ, मग्गाणुसासंति हितं पयाणं ॥ त
हा तहा सासयमाहु लोए, जंसी पया माणव संपगाढा ॥ १२ ॥

अर्थ—हवे क्रियावादीनो मत दूषवेछे. (तेएवमख्कंतिसमिच्चलोगं के०) जे एकली मात्र क्रिया करवा थकीज मोक्षनी वांछना करेछे तेक्रियावादि एवीरीते आख्याति एट

ले कहेछे ते पोताने अभिप्रायें लोकने जाणीनें अमे यथावस्थित तत्वना जाणछैए ए वीरीते बोलीने क्रियानुं स्थापन करेछे (तहातहासमणामाहणाय के०) तथा तथा ए टले ते ते प्रकारें अर्थात् जेवा जेवा प्रकारनी क्रिया प्रवर्त्ते तेम तेम एटले तेवा तेवा प्रकारनुं स्वर्ग नरकादिक फल पण जाणवुं एरीते ते शाक्यादिकना श्रमण ब्राह्मण क्रियाथकीज सिद्धि कहेछे. (सयंकडंणन्नकडंचडुरकं के०) तथाजे कांइ आ जगत् मांहे दुःख सुखछे ते सर्व पोतानुं करेलुं तथा परनुं करेलुं पण नथाय परंतु सर्व भवितव्यतानुं करेलुं थायछे हवे एमना मतनुं निराकरण करेछे (आहंसुविज्जाचरणंपमोरकं के०) तीर्थंकर गणधरादिक विद्या एटले ज्ञान अने चरण एटले चारित्र एणेकरी मोक्षछे एट ले संसारीजीवोने ज्ञान अने क्रियानेसंयोगे करी प्रकर्षे जैनमार्गे मोक्षछे एम कहेछे. ॥ ॥ ११ ॥ (तेचरकुलोगंसिहणायगाउ के०) ते तीर्थंकर गणधरादिक केवाछे तोके लो कमांहे चक्षुने स्थानकेछे तथा आ लोकने विषे नायक एटले स्वामि छता (मग्गाणुसा संतिहितंपयाणं के०) आलोकने विषे पोताना प्रजालोकने आ भवें तथा परभवें हित कारी एवो सम्यक् धर्म मार्ग प्रकाशेछे. (तहातहासासयमाहुलोएके०) तथा तथा एटले जेवा जेवा प्रकारें ए लोक पंचास्तिकायरूप ते द्रव्यास्तिक नयना अभिप्रायें शाश्वतो थाय तेवा तेवा प्रकारे कहे अथवा जेम जेम रागद्वेषनी वृद्धि तेम तेम संसारनी वृद्धि थाय एम कहे (जंसी के०) जे संसारने विषे (पयासंपगाढा के०) प्रजा एटले जीव ते राग द्वेषे व्याप्त छता नाना प्रकारे रह्याछे (माणवके०) तो हे मानव तुं एम जाण ॥१२॥

॥ दीपिका— अथ क्रियावादिमतमाह । ये क्रियातएव मोक्षमिछंति तएवमाख्यां ति । स्वाभिप्रायेण लोकं स्थावरजंगमात्मकं समेत्य ज्ञात्वा किल वयं यथावस्थितवस्तु ज्ञातारइत्यंगीकृत्य सर्वमस्त्येवेति सनिश्चयं कथयंति । तथा तेन प्रकारेण यथायथा क्रिया तथातथा स्वर्गनरकादिफलमिति । ते श्रमणास्तीर्थिकाब्राह्मणावा क्रियातएव सि द्धिमिछंति। तथा यत्किंचित्संसारे दुःखं तथा सुखं च तत्सर्वं स्वयमात्मनाऽन्येन कालेश्व रादिना । नचैतदक्रियावादे घटते । तत्र हि अक्रियत्वादात्मनोऽकृतयोरेव सुखदुःखयोः संभवः स्यादिति । (तस्मादाहंसु विज्जाचरणं पमोरकंति) विद्याज्ञानं । चरणंक्रिया । ते द्वे अपि विद्येते कारणत्वेन यस्येति समासंकृत्वा अर्शआदित्वान्मत्वर्थीयोच्प्रत्ययः । अ सौ विद्याचरणोमोक्षः। ज्ञानक्रियासाध्यइत्यर्थः । एवंविधं मोक्षमाहुस्तीर्थकृदादयः॥११॥ ते तीर्थकरादयइहास्मिन् लोके चक्षुर्लोचनतुल्यइत्यर्थः । ते लोके नायकाः प्रधानाः । तुर्विशेषणे । मार्गं ज्ञानादिकं प्रजानां हितं प्राणिनामनर्थवारकं सद्गतिप्रापकं चानुभाषं ते कथयंति तथा तथा शाश्वतं लोकं संसारमाहुर्जिनाः । यथायथा मिथ्यात्ववृद्धिः ।

तथाहि । तत्र तीर्थकराहारकवर्ज्याः सर्वएव कर्मबंधाः संन्नाव्यंते । कर्मबंधाच्च संसारवृ द्धिः । अथवा यथायथा रागद्वेषवृद्धिस्तथा तथा संसारोपि शाश्वतइत्याहुः । यस्मिन्सं सारे प्रजाजंतवः हेमानव संप्रगाढाः स्थिताः ॥ १२ ॥

॥ टीका—सांप्रतं क्रियावादिमतं डुदूषयिषुस्तन्मतमाविष्कुर्वन्नाह । (तएवमरकंती त्यादि) ये क्रियातएव ज्ञाननिरपेक्षायादीक्षादिलक्षणायामोक्षमिच्छंति तेएवमाख्यांति तद्यथा । अस्ति माता पिता अस्ति सुचीर्णस्य कर्मणः फलमिति । किंकृत्वा तएवं क थयंति क्रियातएव सर्वं सिध्यतीति स्वानिप्रायेण लोकं स्थावरजंगमात्मकं समेत्य ज्ञात्वा किल वयं यथावस्थितवस्तुनोज्ञातारइत्येवमभ्युपगम्य सर्वमस्त्येवेत्येवं सावधारणं प्र तिपादयंति न कथंचिन्नास्तीति कथमाख्यांति । तथा तेन प्रकारेण यथायथा क्रिया तथा तथा स्वर्गनरकादिकं फलमिति ते च श्रमणास्तीर्थिकाब्राह्मणावा क्रियातएव सिद्धि मिच्छंति । किंच यत् किमपि संसारे डुःखं तथा सुखं च तत्सर्वं स्वयमेवात्मना कृतं नान्येन कालेश्वरादिना नचैतदक्रियावादे घटते । तत्र ह्यक्रियात्वादात्मनोऽकृतयोरेव सुखडुःखयोः संन्नवः स्यादेवंच कृतनाशाकृतागमौ स्यातां । अत्रोच्यते । सत्यमस्त्यात्मसुखडुःखादिकं । नत्वस्त्येव । तथाहि । यद्यस्त्येवं सावधारणमुच्येत ततश्च न कथंचिन्नास्तीत्यापन्नमेवंच स ति सर्वं सर्वात्मकमापद्येत । तथाच सर्वलोकस्य व्यवहारोच्छेदकः स्यात् । नच ज्ञानर हितायाः क्रियायाः सिद्धिस्तडुपायपरिज्ञानाचावात् । नचोपायमंतरेणोपेयमवाप्यतइ ति प्रतीतं । सर्वा हि क्रिया ज्ञानवत्येव फलवत्युपलद्यते । उक्तंच । ज्ञानस्य ज्ञानि नां चैव निंदाप्रद्वेषमत्सरैः ॥ उपेक्षितैश्च विघ्नैश्च ज्ञानघ्नं कर्म बध्यते ॥ १ ॥ पढमं नाणं तउ दया, एवं चिठति सवसंजए ॥ अन्नाणी किं काही, किंवा नाहीछेयपावयं ॥ १ ॥ इत्यतोज्ञानस्यापि प्राधान्यं नापि ज्ञानादेवसिद्धिः क्रियारहितस्य पंगोरिव कार्यसिद्धेरनु पपत्तिरित्यालोच्याह । (आहंसुविज्जाचरणं पमोरकंति) न ज्ञाननिरपेक्षायाः क्रियायाः सिद्धिरंधस्येव नापि क्रियाविकलस्य ज्ञानस्य पंगोरित्येवमवगम्याहुरुक्तवंतस्तीर्थंकरगण धरादयः । किमाहुः । मोक्षं । कथं । विद्यां च ज्ञानं चरणंच क्रिया ते द्वे अपि विद्येते का रणत्वेन यस्येति विगृह्यार्शआदित्वान्मत्वर्थीयोच् । असौ विद्याचरणोमोक्षः । ज्ञान क्रियासाध्यइत्यर्थः । तमेवं साध्यं मोक्षं प्रतिपादयंति । यदिवान्यथा वा पातनिका केनै तानि समवसरणानि प्रतिपादितानि । यच्चोक्तं यच्च वक्ष्यते इत्येतदाशंक्याह । (तेए वमरकंतीत्यादि) अनिरुद्धा क्वचिदप्यस्खलिता प्रज्ञायते ऽनयेति प्रज्ञा ज्ञानं येषां तीर्थ कृतां तेऽनिरुद्धप्रज्ञास्तएवमनंतरोक्तया प्रक्रियया सम्यगाख्यांति प्रतिपादयंति । लोकं चतुर्दशरज्ज्वात्मकं स्थावरजंगमाख्यं वा समेत्य केवलज्ञानेन करतलामलकन्यायेन ज्ञात्वा

तथागतास्तीर्थकरत्वं केवलज्ञानं च गताः श्रमणाः साधवोब्राह्मणाः संयताऽसंयताः। लौकिकी वाचोयुक्तिः। किंनूतास्तएवमाख्यांतीति संबंधः। तथातथेति वा क्वचित्पाठः। यथायथा समाधिमार्गोव्यवस्थितस्तथातथा कथयंति। एतच्च कथयंति। यथा यत्किंचित्संसारांतर्गतानामसुमतां दुःखमसातोदयस्वनावं तत्प्रतिपक्षनूतं च सातोदयापादितं सुखं तत्स्वयमात्मनाकृतं नान्येन कालेश्वरादिना कृतमिति। तथा चोक्तं। सव्वो पुव्वकयाणं, कम्माणं पावए फलविवागं॥ अवराहे सुगुणेसुय णिमित्तमित्तं परो होइ॥ १॥ एतच्चाहुस्तीर्थकरगणधरादयः। तद्यथा। विद्या ज्ञानं चरणं चारित्रं क्रिया तत्प्रधानोमोक्षस्तमुक्तवंतोनज्ञानक्रियाज्यां परस्परनिरपेक्षाज्यामिति। तथा चोक्तं। क्रियां च संज्ञानवियोगनिष्फलां क्रियाविहीनां च विबोधसंपदं॥ निरस्यताक्लेशसमूहशांतये, त्वया शिवाया लिखितेव पद्धतिः॥ १॥ ११॥ किंच (तेचखुलोगंसिहेत्यादि) ते तीर्थकरगणधरादयोऽतिशयज्ञानिनोऽस्मिन् लोके चक्षुरिव चक्षुर्वर्तंते। यथाहि चक्षुर्योग्यदेशावस्थितान् पदार्थान् परिछिनत्ति। एवं तेऽपि लोकस्य यथावस्थितपदार्थाविष्करणं कारयंति। यथाऽस्मिन् लोके ते नायकाः प्रधानाः। तुशब्दो विशेषणे। सदुपदेशदानतोवा नायकाइत्येतदाह। मार्गं ज्ञानादिकं मोक्षमार्गं अनुशासंति कथयंति प्रजायंतइतिप्रजाः प्राणिनस्तेषां। किंनूतं। हितं सजतिप्रापकमनर्थनिवारकं। किंच चतुर्दशरज्ज्वात्मके लोके पंचास्तिकायात्मके वा येन प्रकारेण द्व्यास्तिकनयाभिप्रायेण यद्वस्तु शाश्वतं तत्तथा आहुरुक्तवंतः। यदिवा लोकोयं प्राणिगणः संसारांतर्वर्ती यथायथा शाश्वतोनवति तथातथैवाहुः। तद्यथा। यथायथा मिथ्यादर्शनाभिवृद्धिस्तथातथा शाश्वतोलोकः। तथाहि। तत्र तीर्थकराहारकवर्ज्याः सर्वेएव कर्मबंधाः संजाव्यंतइति। तथाच महारंजादिभिश्चतुर्भिः स्थानैर्जीवानरकायुष्कं यावन्निवर्तयंति तावत्संसारानुबंदइति। अथवा यथायथा रागद्वेषादिवृद्धिस्तथातथा संसारोपि शाश्वतइत्याहुः। यथायथा च कर्मोपचयमात्रा तथातथैव संसारानिवृद्धिरिति। दुष्टमनोवाक्कायानिवृत्तौ वा संसारानिवृद्धिरवगंतव्या। तदेवं संसारस्याभिवृद्धिर्नवति। यथाऽस्मिंश्च संसारे प्रजायंतइति प्रजाजंतवः हे मानव। मनुष्याणामेव प्रायशउपदेशार्हत्वान्मानवग्रहणं। सम्यगनारकतिर्यङ्नरामरभेदेन प्रगाढाः प्रकर्षेण व्यवस्थिताइति॥ १२॥

जे रक्कसा वा जमलोइया वा, जे वासुरा गंधव्वा य काया॥
आगासगामी य पुढोसिया जे, पुणोपुणो विप्परिया सुवंति॥
॥१३॥ जमाहु उहं सलिलं अपारगं, जाणाहि णं नवगहणं दुमोक्खं॥ जंसी विसन्ना विसयंगणाहिं, डुहउ वि लोयं अणुसंचरंति॥१४

अर्थ—हवे ते नाना प्रकार कहेछे. (जेरक्खसावाजमलोइयावा के०) जे राक्षस व्यंतरादिक यमलोकिका जे परमाधार्मिकादिक देवो (जेत्रासुरा के०) जे वैमानिक ज्योतिषादिक देवो (गंधव्वाय के०) गांधर्व एटले विद्याधरादिक तथा (कायके०) पृथिविकायादिक (आगासगामीय के०) आकाशगामि एवा पक्षीउ तथा वायुप्रमुख तथा (पुढोसियाजे के०) पृथिविने विषे आश्रित एवा जे अनेक बेंद्रियादिक जीव ते सर्व (पुणोपुणोविप्परियासुवंति के०) पोत पोताना कर्मे करी वलीवली चतुर्गतिक रूप संसारमां परिभ्रमण करेछे ॥ १३ ॥ (जमाहुउहंसलिलंअपारगं के०) श्रीतीर्थंकर गणधरादिक ते ए जे उंघ एटले संसार तेने अपार स्वयंभूरमण समुद्र सरखो कहेछे (जाणाहि के०) एम तुं जाण अहीं णं वाक्यालंकारेछे (नवगहणं के०) ते समान संसार गहनछे (दुमोरकं के०) दुर्मोक्ष एटले अत्यंत दुस्तरछे (जंसीविसन्ना विसयंगणाहिं के०) अस्तिवादीने पणजो एमछे एटले सम्यक् प्रवर्तकने पण आ अपार संसारसमुद्र अत्यंत दुस्तर छे तो नास्तिकवादीने तो अत्यंत दुस्तर होय एमां केवुंज शुं जे आ संसारने विषे सावद्य धर्मना प्रवर्त्तक कुमार्गे पतित पांचेंद्रिय संबंधी विषयना सेवनार तथा अंगना जे स्त्री तेने वश पड्याछता रहेछे ते (दुहउविलोयंअणुसंचरंति के०) त्रस स्थावररूप बे प्रकारनुं जे लोक तेमांहे राग द्वेषेकरीपरिभ्रमणकरे.

॥ दीपिका—ये राक्षसाः । राक्षसग्रहणात्सर्वे व्यंतराज्ञेयाः । यमलौकिकात्मानोंऽबर्ष्यादयोभवनपतयः । येच सुरावैमानिकाः । चशब्दाज्ज्योतिष्काः । ये गंधर्वाविद्याधराः । कायाः पृथिवीकायादयः षट् । पुनः प्रकारांतरेण जीवान् आकाशगामिनः संप्राप्तलब्धयश्चतुर्विद्यादेवाविद्याधराः पक्षिणोवायवश्च । ये च पृथिव्याश्रिताः पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियास्ते सर्वेपि कर्मभिः संसारे विपर्यासं परिभ्रमणमुपयांति गछंति ॥ १३ ॥ यं संसारं समुद्रमाहुर्जिनाः । किंभूतं । स्वयंभुरमणसलिलौघवदपारं जानीहि त्वं । णमितिवाक्यालंकारे । भवगहनं संसारारण्यं दुःखेन मुच्यतइति दुर्मोक्षं दुस्तरमस्तिवादिनामपि किंपुनर्नास्तिकानां । यस्मिन् संसारे सावद्याचारे विषयाआसक्ताविषयप्रधानाअंगनाविषयांगनास्तानिर्वशीकृताद्विधापि स्थावरजंगमं लोकमनुचरंति गछंति संसारे भ्रमंतीत्यर्थः ॥ १४ ॥

॥ टीका—लेशतोजंतुभेदप्रदर्शनद्वारेण तत्पर्यटनमाह । (जेरक्खसाइत्यादि) ये केचन व्यंतरभेदाराक्षसात्मानः । तद्ग्रहणाच्च सर्वेपि व्यंतरा गृह्यंते । तथा यमलौकिकात्मनोंऽबर्ष्यादयस्तदुपलक्षणात्सर्वेभवनपतयस्तथा येच सुराः सौधर्मादिवैमानिकाः । चशब्दाज्ज्योतिष्काः सूर्यादयस्तथा ये गांधर्वाविद्याधराव्यंतरविशेषावा । तद्ग्रहणं च

प्राधान्यख्यापनार्थं । तथा कायाः पृथिवीकायादयः षडपि गृह्यंतइति । पुनरन्येन प्रकारेण सत्वान्संजिघृक्षुराह । ये केचनाकाशगामिनः संप्राप्ताकाशगमनलब्धयश्चतुर्विधदेवनिकायविद्याधरपक्षिवायवः । तथा येच पृथिव्याश्रिताः पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियास्ते सर्वेपि स्वकृतकर्मभिः पुनःपुनर्विविधमनेकप्रकारं पर्यासं परिक्षेपमरहट्टघटीन्यायेन परिभ्रमणमुपसामीप्येन यांति गछंतीति ॥ १३ ॥ किंचान्यत् । (जमाहुरित्यादि) । यं संसारसागरमाहुरुक्तवंतस्तीर्थकरगणधरादयः । तद्विदः कथमाहुः स्वयंभुरमणसलिलौघवदपारं । यथा स्वयंभुरमणसलिलौघोन केनचिज्जलचरेण स्थलचरेण वा लंघयितुं शक्यते एवमयमपि संसारसागरः सम्यग्दर्शनिनमंतरेण लंघयितुं न शक्यतइति दर्शयति । जानीहि अवगछ। णमिति वाक्यालंकारे। भवगहनमिदं चतुरशीतियोनिलक्षप्रमाणं यथासंभवं संख्येयाऽसंख्येयानंतस्थितिकं दुःखेन मुच्यतइतिदुर्मोक्षं दुरुत्तरमस्तिवादिनामपि किंपुनर्नास्तिकानां । पुनरपि भवगहनोपलक्षितं संसारमेव विशिनष्टि । यत्र यस्मिन् संसारे सावद्यकर्मानुष्ठायिनः कुमार्गपतिताअसत्समवसरणग्राहिणो विषण्णाअवसक्ताविषयप्रधानाअंगनाविषयांगनास्तान्निर्यदि वा विषयाश्चांगनाश्च विषयांगनास्तानिर्वशीकृताः सर्वत्र सदनुष्ठाने ऽवसीदंति तएवंविषयांगनादिके पंचके विषण्णाद्विधाप्याकाशाश्रितं पृथिव्याश्रितंच लोकं यदि वा स्थावरजंगमलोकमनुसरंति गछंति । यदिवा द्विधापि लिंगमात्रप्रव्रज्य याऽविरत्याचरागद्वेषाभ्यां वा लोकं चतुर्दशरज्ज्वात्मकं स्वकृतकर्मप्रेरिताअनुसंचरंति बंभ्रम्यंतइति ॥ १४ ॥

न कम्मणा कम्म खवेंति बाला, अकम्मणा कम्म खवेंति धीरो ॥ मेधाविणो लोभमया वतीता, पाठांतरे (लोभभयावतीता) संतोसिणो नोपकरेंति पावं ॥ १५ ॥ ते तीयउप्पन्नमणागयाइं, लोगस्स जाणंति तहागयाइं॥णेतारो अन्नेसि अणन्नणेया, बुद्धा हु ते अंतकडा भवंति ॥१६॥

अर्थ—(नकम्मणाकम्मखवेंतिबाला के०) अज्ञानी एवो मिथ्यामतिवालुं जीव कर्मजे सावद्यारंभ तेणे करी पूर्वकृतकर्मने खपावे नही परंतु साहमां नवा कर्मनुं बंध करे (अकम्मणाकम्मखवेंतिधीरा के०) आश्रवने सर्व प्रकारें रोधन करवा थकी सैलेसी करणावस्थायें धीर एटले महासत्ववंत एवो पुरुष कर्मने खपावेछे. (मेधाविणोलोभमयावतीता के०) जे मेधावि एटले पंडित महानुभाव होय ते लोभमय एटले परिग्रह तेथकी अतीत एटले रहित होय (संतोसिणोनोपकरेंतिपावं के०) एम संतोषी छतो पाप नकरे ॥ १५ ॥ जे पुरुष एवा होय ते केवा थाय ते कहेछे. (तेतीयउप्पन्नमणागयाइं के० ते) श्रीवीतराग अतीत, अनागत अने वर्तमान ए त्रणे काल आश्री

(लोगस्सजाणंतितहागयाइं के०) तथागत एटले यथावस्थित जेमछे तेवीरीते लोक मांहे सर्व जीवोना नावी सुखडुःखादिकना जाण एवा थाय परंतु विनंग ज्ञानीनी पेरे आघुंपाछुं नजाणे (णेतारोअन्नेसिअणन्नणेया के०) एवा जीवो अन्य जीवोने संसारनो पार पमाडे परंतु तेने अन्य कोइ तत्वनो देखाडनार नथाय किंतुते डुइतिनिश्चे पोतेज (बुद्धाके०) तत्वना जाण थका (अंतकडानवंतिके०) कर्मनो अंतकरनार होयछे ॥१६॥

॥ दीपिका–कर्मणा सावद्यारंनेण कर्म पापं न क्षपयंति बालामूढाः । अकर्मणा आश्रवनिरोधेन तु कर्म क्षपयंति धीरामहासत्त्वाः । मेधाविनः प्रज्ञावंतोलोनमयं परिग्रहमेवातीतालोनातीतावीतरागाः संतोषिणः संतुष्टास्ते एवंविधाअवीतरागाअपि पापं कर्म न कुर्वंति । लोनलयादतीताइति क्वचित्पाठः । लोनश्च नयं च लोनाद्भा नयं तस्मादतीताअतएव संतोषिणइति । लोनाईनावं दर्शयताऽपरकषायेन्योलयस्याधिकत्वमुक्तं ॥ १५ ॥ ते वीतरागाअतीतानि पूर्वजन्मकृतानि प्रत्युत्पन्नानि वर्तमानानि अनागतान्यागामिनवनावीनि सुखडुःखानि लोकस्य प्राणिगणस्य तथागतानि यथास्थितानि जानंति ते जिनाः श्रुतकेवलिनोवा ऽन्येषां प्राणिनां मोक्षंप्रति नेतारः प्रापकास्तेच स्वयंबुद्धत्वादन्येन न नीयंते तत्त्वावबोधं कार्यंतइत्यनन्यनेयास्तेबुद्धाज्ञाततत्त्वास्तीर्थकरगणधरादयोडुनिश्चितमंतकराः संसारपारगानवंति ॥ १६ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (णकम्मणेत्यादि) ते एवमसत्समवसरणाश्रितामिथ्यात्वादिनिर्दोषैरनिनूताः सावद्येतरविशेषानन्निज्ञाः संतः कर्मक्षपणार्थमप्युद्यतानिर्विवेकतया सावद्यमेव कर्म कुर्वते । नच कर्मणा सावद्यारंनेण कर्म पापं क्षपयंत्यपनयंत्यज्ञत्वाद्बालाइव बालास्तइति । यथाच कर्म क्षिप्यते तथा दर्शयति । अकर्मणात्वाश्रवनिरोधेन तु अंतशः शैलेश्यवस्थायां कर्म क्षपयंति धीरामहासत्त्वाः सद्वैद्याइव चिकित्सयाऽऽमयानिति । मेधा प्रज्ञा विद्यते येषांते मेधाविनोहिताहितप्राप्तिपरिहारानिज्ञालोनमयं परिग्रहमेवातीताः परिग्रहातिक्रमाल्लोनातीतावीतरागाइत्यर्थः । संतोषिणोयेन केनचित्संतुष्टाअवीतरागाअपीति । यदिवा यतएवाऽतीतलोनाअतएव संतोषिणइति । तएवंनूतान्नगवंतः पापमसदनुष्ठानापादितं कर्म न कुर्वंति नाददति । क्वचित्पाठः । लोनलयादतीताः । लोनश्च नयं च समाहारद्वंद्वः । लोनाद्भा नयं तस्मादतीताः संतोषिणइति । न पुनरुक्ता शंका विधेयेत्यतोलोनातीतत्वेन प्रतिषेधांशोदर्शितः । संतोषिणइत्यनेन च विध्यंशइति । यदिवा लोनातीतग्रहणेन समस्तलोनानावः । संतोषिणइत्यनेनतु सत्यप्यवीतरागत्वेनोत्कटलोनाइति । लोनानावं दर्शयन्नपरकषायेन्योलोनस्य प्राधान्यमाह । येच लोनातीतास्तेऽवश्यं पापं न कुर्वंतइति स्थितं ॥ १५ ॥ येच लोनातीतास्ते किंनूतानवं

तीत्यतआह । (तेतीयइत्यादि) ते वीतरागाअल्पकषायावा लोकस्य पंचास्तिकायात्मक स्य प्राणिलोकस्य वाऽतीतान्यन्यजन्माचरितानि उत्पन्नानि वर्तमानावस्थायीन्यनागता नि च नवांतरनावीनि सुखडुःखादीनि तथागतानि यथावस्थितानि तथैवाऽवितथं जानं ति न विनंगज्ञानिनइव विपरीतं पश्यंति । तथाहि । आगमः । अणगारेणं नंतेमाई मि च्छादिठी रायगिहेण यरेसंमोहए वाणारसीए नयरीए रूवाइं जाणाइ पासइ जावसे दं सणे विवज्ञा से नवतीत्यादि । ते चातीतानागतवर्तमानज्ञानिनः प्रत्यक्षज्ञानिनश्चतुर्दशपू र्वविदोवा ऽप्रत्यक्षज्ञानिनोऽन्येषां संसारोत्तितीर्षूणां नव्यानां मोक्षंप्रति नेतारः सञ्जपदे शं प्रत्युपदेष्टारोनवंति । नच ते स्वयंबुद्धत्वादन्येन नीयंते तत्वावबोधं कार्यंतइत्यनन्य नेयाहिताहितप्राप्तिपरिहारंप्रति नान्यस्तेषां नेता विद्यतइति नावः । ते च बुद्धाः स्वयं बुद्धास्तीर्थंकरगणधरादयः । तुशब्दश्च शब्दार्थे विशेषणेच । तथाच प्रदर्शितएव । तेच न वांतकराः संसारोपादाननूतस्य वा कर्मणोंतकरानवंतीति ॥ १६ ॥

ते णेव कुव्वंति ण कारवंति, नूताहिसंकाइ डुगुंछमाणा ॥ सयाजता विप्प
णंवंति धीरा, विन्नत्ति धीरा पाठांतरे (विन्नतिवीरा) य हवंति एगो
॥ १७ ॥ महरे य पाणे वुड्ढे य पाणे, ते आत्तउ पासइ सव्वलोए ॥
उवे हती लोगमिणं महंतं, बुद्धेऽपमत्तेसु परिव्वएज्जा ॥ १८ ॥

अर्थ—हवे तेमनी क्रिया केवी होय ते कहेछे. (ते के०) ते वीतराग सम्यक् ज्ञानी ते सावद्यानुष्ठानरूप एवी जे (नूताहि संकाइ डुगुंछमाणा के०) नूत एटले प्राणी तेनी हिंसानी शंकायें डुगंछित एटले प्राणीनी हिंसाने निंदता थका (णेवकुव्वंति के०) पोते हिंसा करे नही तथा (णकारवंति के०) अन्य पाशे हिंसा करावे नही. उपल क्षण थकी जे हिंसा करतो होय तेने अनुमोदे नही तेमज मृषा पोते बोले नही बीजा पाशे बोलावे नही तथा बोलताने अनुमोदन आपे नही एरीते सर्व पंचमहा व्रतोने सदाकाल पाले एम (सयाजता के०) सर्व काल यत्नवंत एटले पाप थकी नि वर्त्ते (विप्पणवंतिधीरा के०) संयमने विषे नम्र होय विनयवंत होय एवा धैर्यवंत सुनट तुल्य उतो संयमरूप नूमिने विषे कर्मरूप सुनटोने जीतवा समर्थ एवो (विन्नत्तिधी रायहवंतिएगोके०) कोइएक शुद्ध सम्यक् मार्ग जाणी धैर्यवंत शूरवीर थाय ते परीसहा दिकने जीते ॥ १७ ॥ हवे शुं जाणीने सावद्यानुष्ठान नकरे ते कहेछे. (महरेयपाणे वुढेयपाणे के०) महरा एटले बालक ते अंही पृथ्विकायादिक तथा बेंड्रीयादिक लघु जातीना जीवो लेवा तेपण जीवछे अने वुढेय एटले महोटा हस्ति प्रमुख ते पण जी वछे एवुं जाणीने (तेआत्तउपासइ सव्वलोए के०) ते सहुजीवने सर्व चौद रज्वात्मक

लोकने विषे पोतानाआत्म समान देखे (उवेहती लोगमिणं महंतं के०) ए महांत लोक एटले संसार तेने सारीरीते आलोचीने सर्वस्थानक अशाश्वता जाणीने आ संसारमां कोइ सुख नथी एवो जाणीने (बुद्ध के०) जे पंमित तत्वना जाण होय ते (अप्पमत्तेसुपरिव्वएज्जा के०) अप्रमत्तपणे संयमने विषे प्रवर्त्ते शुद्धो संयम पाले १८

॥ दीपिका—ते तीर्थंकरादयः पापं कर्म नैव कुर्वंति स्वयं । नवाऽन्येन कारयंति कुर्वं तमन्यं नानुजानंति नूतानिशंकया प्राणिघातनयेन पापं कर्म जुगुप्समानाः । एवं विधास्ते सदा सर्वकाले यताः संयताविप्रणमंति विविधं संयमानुष्ठानं प्रति प्रव्हीनवंति तत्पराः स्युर्धीराः । तथा एके केचन गुरुकर्माणो (विणत्ति) विज्ञप्तिर्ज्ञानं तन्मात्रेणैव वीरानानुष्ठानेन स्युः । नच ज्ञानमात्रेण सिद्धिः । यतः । अधीत्य शास्त्राणि नवंति मूर्खा, यस्तु क्रियावान् पुरुषः सविद्वान् ॥ संचिंत्यतामोपधमातुरं हि न ज्ञानमात्रेण करोत्यरोगम् ॥ १ ॥ १७ ॥—ये उदरालघवः कुंथ्वाद्याः सूक्ष्मावा ते सर्वेपि प्राणाः प्राणिनोये च वृद्धाबादरास्तान् सर्वानात्मवत्पश्यति सर्वलोके । तथा लोकमिमं षड्जीवैराकुलत्वान्महांतमुत्प्रेक्षते । अनाद्यनंतत्वाद्वा महांतं । यतोनव्याअपि केचन सर्वेणापि कालेन नसेत्स्यंतीति । यद्यपि द्रव्यतः षड्द्रव्यात्मकत्वात् क्षेत्रतश्चतुर्दशरज्जुमानत्वात्परिमितोलोकस्तथापि कालतोऽनाद्यनंतत्वाद्भावतः पर्यायाणामंतत्वान्महान् लोकस्तमुत्प्रेक्षते । बुद्धोज्ञाततत्त्वोऽप्रमत्तेषु यतिषु तथानूतएव परिव्रजेत्संयमे ॥ १८ ॥

॥ टीका—यावदद्यापि नवांतं न कुर्वंति तावत्प्रतिषेध्यमंशं दर्शयितुमाह । (तेणेव कुव्वंतीत्यादि) ते प्रत्यक्षज्ञानिनः परोक्षज्ञानिनोवा विदितवेद्याः सावद्यमनुष्ठानं नूतोपमर्दाभिशंकया पापं कर्म जुगुप्संतः संतोन स्वतः कुर्वंति नाप्यन्येन कारयंति कुर्वंतमप्यपरं नानुमन्यन्ते । तथा स्वतोन मृषावादं जल्पंति नान्येन जल्पयंति नाप्यपरं जल्पंतमनुजानंत्येवमन्यान्यपि महाव्रतान्यायोज्यानीति । तदेवं सदा सर्वकालं यताः संयताः पापानुष्ठानान्निवृत्ताविविधं संयमानुष्ठानं प्रति प्रणमंति प्रव्हीनवंति । के ते वीरामहापुरुषाइति । तथैकेचन हेयोपादेयं विज्ञायाऽपिशब्दात्सम्यक् परिज्ञाय वा तदेव निःशंकं यज्जिनैः प्रवेदितमित्येवं कृतनिश्चयाः कर्मणि विदारयितव्ये वीरानवंति । यदिवा परीषहोपसर्गानीकविजया द्धीरा इति । पांगतरंवा (विस्सुति वीराय नवंति एगे) एके केचन गुरुकर्माणोल्पसत्त्वाः विज्ञप्तिर्ज्ञानं तन्मात्रेणैव वीरानत्वनुष्ठाने नच ज्ञानादेवाऽभिलषितावाप्तिरुपजायते । तथाहि । अधीत्यशास्त्राणि नवंति मूर्खायस्तुक्रियावान् पुरुषः सविद्वान् ॥ संचिंत्यतामौषधमातुरं हि न ज्ञानमात्रेण करोत्यरोगं ॥ १ ॥ १७ ॥ कानि

पुनस्तानि नूतानि यत्नेकयाऽरंनं जुगुप्संति संतइत्येतदाशंक्याह । (डहरेयइत्यादि) ये केचन डहरेति लघवः कुंथ्वादयः सूक्ष्मावा ते सर्वेपि प्राणाः प्राणिनोये च वृद्धा बादरशरीरिणस्तान्सर्वानप्यात्मतुल्यान् आत्मवत्पश्यति सर्वस्मिन्नपि लोके यावत्प्रमाणं मम तावदेव कुंथोरपि यथावा मम दुःखमननिमतमेवं सर्वलोकस्यापि सर्वेषामपि प्राणिनां दुःखमुत्पद्यते दुःखाडद्विजंति । यथाचागमः । पुढविकाएणं नंते अक्कंते समाणे केरिसयं वेयणं वेएइइत्याद्याः सूत्रालापकाइति मत्वा तेपि नाक्रमितव्यान संघट्टनीया इत्येवं यः पश्यति तथा लोकमिमं महांतमुत्प्रेक्षते षड्जीवसूक्ष्मबादरनेदैराकुलत्वान्महांतं । यदिवाऽनादिनिधनत्वान्महान् लोकः । तथाहि । कालतोनव्याअपि केचन सर्वेणापि कालेन न सेत्स्यंतीति । यद्यपि द्रव्यतः षड्द्रव्यात्मकत्वात् क्षेत्रतश्चतुर्दशरज्जुप्रमाणतया सावधिकोलोकस्तथापि कालतोनावतश्चानाद्यनिधनत्वात्पर्यायाणां चानंतत्वान्महान् लोकस्तमुत्प्रेक्षतइति । एवंच लोकमुत्प्रेक्षमाणोबुद्धोऽवगंतव्यः । सर्वाणि प्राणिस्थानान्यशाश्वतानि तथा नात्रापसदे संसारे सुखलेशोप्यस्तीत्येवं मन्यमानोऽप्रमत्तेषु संयमानुष्ठायिषु मध्ये तथानूतएव परिसमंताद्व्रजेद्यदिवा बुद्धः सन् प्रमत्तेषु गृहस्थेषु अप्रमत्तः सन् संयमानुष्ठाने परिव्रजेदिति ॥ १८ ॥

जे आयउ परउ वा वि णच्चा, अलमप्पणो होंति अलं परेसिं ॥
तं जोइनूतं च सया वसेज्जा, जे पाउ कुज्जा अणुवीति धम्मं॥१९॥
अत्ताण जो जाणति जो य लोगं, गइं च जो जाणइ णागइं च॥
जो सासयं जाण असासयं च, जातिं मरणं च जणोववायं॥२०॥

अर्थ-(जेआयउपरउवाविणच्चा के०) जे कोइ पोताना आत्माने तथा परना आत्माने सम्यक् प्रकारे जाणे एटले जेवीरीते पोताना आत्माने जाणे तेवीरीते परना आत्माने पण जाणे (अलमप्पणोहोंतिअलंपरेसिं के०) ते पुरुष पोताने उद्धरवाने समर्थ होय अने बीजाने पण उद्धरवाने समर्थ थाय (तंजोइनूतंचसयावसेज्जा के०) ते ज्योतिनूत प्रकाशवान चंद्रादित्य प्रदीपसमान गुरुने जाणीने सर्व काले सेवे (जेपाउकुज्जाअणुवीतिधम्मं के०) जे विचारीने श्रीवीतराग नाषित धर्मना स्वरूपने सम्यक् प्रकारें करी प्रगट करे ॥ १९ ॥ (अत्ताणजोजाणतिजोयलोगं के०) जे पोताना आत्माने सम्यक् प्रकारे जाणे जे लोकालोकनुं स्वरूप जाणे (गइंचजोजाणइणागइंचके०) जे जीवनी गति आगति जाणे अथवा चारे गतिनुं स्वरूप जाणे तथा अनागतनुं स्वरूप जाणे एटले ज्यां गयो थको जीव फरी नआवे एवी जे मोक्षगति तेना स्वरूपने जाणे (जोसासयंजाणअ

सासयंचके०) तथा जे शाश्वता पदार्थ अने अशाश्वता पदार्थने पण जाणे (जातिंमरणंचज णोववायं के०) तथा जे जीवना जन्म अने मरणने पण जाणे तथा जन एटले लो क तेनुं उपपात एटले उत्पत्ति देव नारकादिकने विषे थायबे ते पण जाणेबे ॥ २०॥

॥ दीपिका–यआत्मनः स्वयं सर्वज्ञोगणधरादिर्वा परतस्तीर्थकरादेर्जीवादीन् पदार्था न् ज्ञात्वा परेन्यउपदिशति सआत्मनस्त्रातुमलं समर्थः परेषांच तं सर्वज्ञं गणधरादिकं वा ज्योतिर्नूतं पदार्थप्रकाशकत्वाच्चंडादित्यतुल्यं सदाऽऽवसेत सेवेत नित्यं गुरुसेवी नवे त् । यतः । नाणस्स होइ नागी, थिरयरउदंसणाचरित्तेय ॥ धन्ना आवकडाए गुरुकुलवा सं नमुंचंति ॥ १ ॥ ते के इत्याह । ये धर्मं श्रुतचारित्राख्यं साधुधर्मं श्राद्धधर्मंवाऽनुवि चिंत्य विचार्य तमेव धर्मं प्राडुष्कुर्युर्यथोक्तानुष्ठानतः प्रकटयेयुस्ते गुरुसेविनः स्युः॥१ए॥ आत्मानं यो जानाति यश्च लोकं चराचरं चशब्दादलोकं च जानाति । यश्च जीवानां ग तिमागतिं जानाति अनागतिं कुत्र गतानां नागमनं स्यादिति। यश्च शाश्वतं नित्यं सर्वं व स्तु डव्यास्तिकनयादशाश्वतं वा ऽनित्यं पर्यायनयाश्रयणात् चशब्दान्नित्यानित्यं च सर्वं योजानाति । यदागमः । णेरइआदवठया एसासयाजावहाएअसासया । एवं तिर्यगाद योपि । अथवा शाश्वतं मोक्षमशाश्वतं नवं तथा जातिमुत्पत्तिं मरणं च नारकादीनां तथा जनानां सत्वानामुपपातं जानाति। उपपातोदेवनारकयोरुत्पत्तिरन्येषां ज्ञेया॥२०॥

॥ टीका–किंच । (जेआयउइत्यादि) यः स्वयं सर्वज्ञआत्मनस्त्रैलोक्योदरविवरवर्त्ति पदार्थदर्शी यथावस्थितं लोकं ज्ञात्वा तथा यश्च गणधरादिकः परतस्तीर्थकरादेर्जीवा दीन् पदार्थान् विदित्वा परेन्यउपदिशति सएवंनूतोहेयोपादेयवेद्यात्मनस्त्रातुमलमा त्मानं संसारावटात्पालयितुं समर्थोनवति । तथा परेषां सडुपदेशदानतस्त्राता जायते तं सर्वज्ञं स्वतएव सर्ववेदिनं तीर्थकरादिकं परतोवेदिनं च गणधरादिकं ज्योतिर्नूतं पदा र्थप्रकाशकतया चंडादित्यप्रदीपकल्पमात्महितमिब्रन् संसारडुःखोद्विग्नः कृतार्थमात्मा नं नावयन् सततमनवरतमावसेत सेवेत गुर्वंतिकएव यावज्जीवं वसेत् । तथाचोक्तं । नाणस्स होइ नागी, थिरपरउ दंसणे चरित्तेय ॥ धन्ना आवकहाए, गुरुकुलवासं ण मुंचंति । कएवं कुर्युरिति दर्शयति । ये कर्मपरिणतिमनुविचिंत्य माणुस्सखेत्तजाइत्या दि डुर्लनां च सद्धर्मावाप्तिं सद्धर्मंवा श्रुतचारित्राख्यं क्षांत्यादिकं दशविधसाधुधर्मं वा ऽनुविचिंत्य पर्यालोच्य ज्ञात्वा वा तमेव धर्मं यथानुष्ठानतः प्राडुष्कुर्युः प्रकटयेयुस्ते गुरु कुलवासं यावज्जीवमासेवंतइति । यदिवा ये ज्योतिर्नूतमाचार्यं सततमासेवंति तथा आगमज्ञाधर्ममनुविचिंत्य लोकं पंचास्तिकायात्मकं चतुर्दशरज्ज्वात्मकं वा प्राडुष्कुर्युरिति

क्रिया ॥ १७ ॥ किंचान्यत् । (अत्ताणमित्यादि) योह्यात्मानं परलोकयायिनं शरीरा द्व्यतिरिक्तं सुखदुःखाधारं जानाति यश्चात्महितेषु प्रवर्तते सआत्मज्ञोभवति । येन चात्मा यथावस्थितस्वरूपोऽहंप्रत्ययग्राह्योभिज्ञातोभवति तेनैवायं सर्वोपि लोकः प्रवृत्तिनिवृत्तिरूपोभिविदितोभवति सएव चात्मज्ञोस्तीत्यादिक्रियावादं भाषितुमर्हतीति द्वितीयवृत्तांतस्य क्रिया । यश्च लोकं चराचरं वैशाखस्थानस्थकटिस्थकरयुग्मपुरुषाकारं चशब्दादलोकं चानंताकाशास्तिकायमात्रं जानाति । यश्च जीवानामागतिमागमनं कुतः समागतानारकास्तिर्यंचोमनुष्यादेवाः कैर्वा कर्मभिर्नारकादित्वेनोत्पद्यंतइत्येवं यो जानाति । तथाऽनागतं चाऽनागमनं च कुत्र गतानां नागमनं भवति चकारात्तद्गमनोपायं च सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकं योजानाति । तत्रानागतिः सिद्धिरशेषकर्मच्युतिरूपा लोकाग्राकाशदेशस्थानरूपा वा ग्राह्या साच सादिरपर्यवसाना । यश्च शाश्वतं नित्यं सर्ववस्तुजातं द्रव्यास्तिकनयाश्रयादशाश्वतं वा नित्यं प्रतिक्षणविनाशरूपं पर्यायनयाश्रयणात् चकारान्नित्यानित्यं चोभयाकारं सर्वमपि वस्तुजातं योजानाति । तथाहि । आगमः । णेरइया दव्वठ्याएसासयाभावठ्याएअसासया । एवमन्येपि तिर्यगादयोद्रष्टव्याः । अथवा निर्वाणं शाश्वतं संसारोऽशाश्वतस्तद्गतानां संसारिणां स्वकृतकर्मवशगानामितश्चेतश्च गमनादिति । तथा जातिमुत्पत्तिं नारकतिर्यङ्मनुष्यामरजन्मलक्षणां च मरणं वाऽऽयुष्कक्षयलक्षणं । तथा जायंतइति जनाः सत्त्वास्तेषामुपपातं जानाति सच नारकदेवयोर्भवतीति । अत्रच जन्मचिंतायामसुमतामुत्पत्तिस्थानं योनिर्भणनीया साच सचित्ताचित्तमिश्राच तथा शीतोष्णा मिश्राच तथा संवृता विवृता मिश्राचेत्येवं सप्तविंशतिविधेति । मरणं पुनस्तिर्यङ्मनुष्ययोश्च्यवनं ज्योतिष्कवैमानिकानामुद्वर्तनं भवनपतिव्यंतरनारकाणामिति ॥ २० ॥

अहो वि सत्ताण विउट्टणं च, जो आसवं जाणति संवरं च ॥
डुक्कं च जो जाणति निज्जरं च, सो भासिउ मरिहइ किरियवादं
॥ २१ ॥ सद्देसु रूवेसु असज्जमाणो, गंधेसु रसेसु अडुस्समा
णे ॥ णो जीवितं णो मरणाहिकंखी, आयाणगुत्ते वलया विमु
क्के तिबेमि ॥ २२ ॥ इतिश्री समवसरणमध्ययनं द्वादशमं संमत्तं ॥

अर्थ—(अहोविसत्ताण विउट्टणंच के०) अधोगतियें नरकादिकने विषे अशुभ कर्मने विपाके जीवने शरीर पीडादिक संताप उपजेछे ते सर्व जाणे (जोआसवंजाणतिसंवरंच के०) जे आश्रव इंद्रिय कषाय योग अने अव्रत इत्यादिक सर्व जाणे तथा संवर ते समिति गुप्ति अने परिसह इत्यादिक सर्व जाणे (डुक्कंचजोजाणतिनिज्जरंच के०)

तथा पापोदयथकी डुःख उत्पन्न थाय ते जाणे अने उपजक्रमणथकी पुण्यना बेतालीश नेद पण जाणे वली निर्जराना बारनेदने पण जाणे (सोनासिवमरिहइकिरयवादं के०) तथा बंधना चार नेदने पण जाणे ते परमार्थथकी क्रियावाद बोलवा योग्य थाय ॥ २१ ॥ एवा जे सम्यक् वादी तेने फल देखाडेछे. (सद्देसुरूवेसुअसज्जमाणो के०) शब्द जे वीणा वंश प्रमुख श्रोत्रेंद्रियने सुखना आपनार तेने विषे तथा रूप ते अनेक काष्टकर्म चित्रकर्म तथा लिप्यकर्मादिकने विषे असज्जमान एटले तेना उपर रागद्वेषने टालतो थको तथा (गंधेसुरसेसुअडुस्समाणे के०) गंधने विषे, रसने विषे अडुसमान एटले द्वेषने अण करतो थको (णोजीवितंणोमरणाहिकंखी के०) जीवितव्य अने मरणनी वांछा नकरे समता नावे वर्ते (आयाणगुत्ते के०) आदान एटले संयम तेने विषे गुप्त एटले तेनो रक्षपाल छतो (वलयाविमुक्के के०) वलय एटले माया तेना थकी विमुक्त छतो संयम पाले तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥२२॥ इतिश्री द्वितियसूत्रकृतांगनेविषे समवसरण नामे बारमा अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो.

॥ दीपिका–सत्त्वानां स्वकर्मभुजामधोनारकादौ विकुट्टनीं पीडां योजानाति । यश्चाश्रवं संवरं च जानाति तथा डुःखं चशब्दात्सुखंच तथा तपसा निर्जरां च जानाति । कोर्थः । बंधहेतून् कर्मक्षयहेतूंश्च तुल्यतया जानाति । यतः । यथाप्रकारायावंतः, संसारावेशहेतवः ॥ तावंतस्तद्विपर्यासा, निर्वाणावेशहेतवः ॥१॥ सएव तत्त्वतोनाषितुं वक्तुमर्हति क्रियावादं जीवाद्यस्तित्वरूपमिति । अत्रान्यमतखंडनं वृत्तितोज्ञेयं ॥ २१ ॥ शब्देषु रूपेषु मनोज्ञेषु असज्जन् संगमकुर्वन् गंधेषु रसेष्वमनोज्ञेषु अद्वेष्यन् द्वेषमकुर्वन् । शब्दादिषु इंद्रियविषयेष्विष्टानिष्टेषु रागद्वेषरहितइत्यर्थः । एवंविधोजीवितमसंयमजीवितं नाभिकांक्षेत् परीषहोपसर्गैः पीडितोमरणमपि नाभिकांक्षेत् । आदानं संयमस्तेन गुप्तः स हि वलयं नाववलयं माया तया विमुक्तइति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २२ ॥ समाप्तं समवसरणाख्यं द्वादशमध्ययनं ॥

॥ टीका–किंच (अहोविइत्यादि) सत्वानां स्वकृतकर्मफलभुजामधस्तान्नारकादौ डुष्कृतकर्मकारिणां विविधां विरूपां वा कुट्टनां जातिजरामरणरोगशोककृतां शरीरपीडां च शब्दात्तद्नावोपायं योजानाति । इदमुक्तंनवति । सर्वार्थसिद्धादारतोधःसप्तमीं नरकभुवं यावदसुमंतः सकर्माणोविवर्तंते तत्रापि ये गुरुतरकर्माणस्तेऽप्रतिष्ठाननरकयायिनोनवंतीत्येवं योजानीते तथा आश्रवत्यष्टप्रकारकं कर्म येन स आश्रवः सच प्राणातिपातरूपोरागद्वेषरूपोवा मिथ्यादर्शनादिकोवेति तं तथा संवरणमाश्रवनिरोधरूपं यावदशेषयो

गनिरोधस्वनावं चकारात्पुण्यपापे च योजानीते तथा दुःखमसातोदयरूपं तत्कारणं च योजानाति सुखं च तद्विपर्ययनूतं योजानाति तपसा निर्जरांच । इदमुक्तं नवति । यः कर्मबंधहेतून् तद्विपर्यासहेतूंश्च तुल्यतया जानाति । तथाहि । यथाप्रकारायावंतः, संसारावेशहेतवः ॥ तावंतस्तद्विपर्यासा, निर्वाणावेशहेतवः ॥ १ ॥ सएव परमार्थतोनाथितुं वक्तुमर्हति । किंतदित्याह । क्रियावादमस्ति जीवोऽस्ति पुण्यमस्ति च पूर्वाचरितस्य कर्मणः फलमित्येवं वादमिति । तथाहि ।जीवाजीवाश्रवसंवरबंधपुण्यपापनिर्जरामोक्षरूपानवापि पदार्थाः श्लोकद्वयेनोपात्तास्तत्र यश्चात्मानं जानातीत्यनेन जीवपदार्थोलोकमित्यनेनाजीवपदार्थस्तथा गत्या गतिः शाश्वतेत्यादिनानयोरेव स्वनावोपदर्शनं कृतं । तथाश्रवसंवरौ स्वरूपेणैवोपात्तौ । दुःखमित्यनेन तु बंधपुण्यपापानि गृहीतानि तदविनानावित्वाद्दुःखस्य । निर्जरायास्तु स्वानिधानेनैवोपादानं तत्फलनूतस्य मोक्षस्योपादानं द्रष्टव्यमिति । तदेवमेतावंतएव पदार्थास्तदन्युपगमे नवास्तीत्यादिकः क्रियावादोऽन्युपगतोनवतीति । यश्चैतान् पदार्थान् जानात्यन्युपगच्छसपरमार्थतः क्रियावादं जानाति ।ननुचाऽपरदर्शनोक्तपदार्थपरिज्ञानेन सम्यक्त्वादिकं कस्मान्नान्युपगम्यते तडुक्तपदार्थानामेवाघटमानत्वात् । तथाहि । नैयायिकदर्शनेन तावत्प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टांतसिद्धांतावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितंडाहेत्वानासछलजातिनिग्रहस्थानानीत्येते षोडश पदार्थाअनिहिताः । तत्र हेयोपादेयप्रवृत्तिरूपतया येन पदार्थपरिच्छित्तिः क्रियते तत्प्रमीयतेऽनेनेति प्रमाणं । तच्च प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दनेदाच्चतुर्द्धा । तत्रेंद्रियपदार्थसंनिकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यनिचारिव्यवसायात्मकं प्रत्यक्षं । तदत्रेंद्रियार्थयोर्यः संबंधस्तस्माद्यदुत्पन्नं नानिव्यक्तं ज्ञानं न सुखादिकमव्यपदेश्यमिति । व्यपदेशत्वेनाशब्दप्राप्तेरव्यनिचारि तद्द्विचंद्रज्ञानवद्व्यनिचरतीति व्यवसायात्मकमिति । निश्चयात्मकं प्रत्यक्षं तत्रास्य प्रत्यक्षता न युज्यते । तथाहि । यत्रात्मार्थग्रहणंप्रति साक्षाद्व्याप्रियते तदेव प्रत्यक्षं । तच्चावधिमनःपर्यायकेवलात्मकं । एतच्चापरोपाधिद्वारेण प्रवृत्तेरनुमानवत्परोक्षमिति । उपचारप्रत्यक्षं तु स्यान्नचोपचारस्तत्त्वचिंतायां व्याप्रियतइति। अनुमानमपि पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतोदृष्टमिति त्रिधा । तत्र कारणात्कार्यानुमानं पूर्ववत्कार्यात्कारणानुमानं शेषवत्सामान्यतोदृष्टांतनूतमेकं विकसितं दृष्ट्वा पुष्पिताश्चूताजगतीति । यदिवा देवदत्तादौ गतिपूर्विकां स्थानात् स्थानांतरावाप्तिं दृष्ट्वाऽऽदित्ये गत्यनुमानमिति । तत्राप्यन्यथानुपपत्तिरेव गमिका न कारणादिकं तयाविना कारणस्य कार्यंप्रति व्यनिचारात् । यत्रतु सा विद्यते तत्र कार्यकारणादिव्यतिरेकेणापि गम्यगमकनावोदृष्टः । तद्यथा । नविष्यति शकटोदयः कृत्तिकादर्शनादिति । तडुक्तं । अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किं॥ नान्यथाऽनुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किं ॥ १ ॥ अपिच प्रत्यक्षस्याप्रामाण्ये तत्पूर्वकस्या

प्यनुमानस्याप्रामाण्यमिति । प्रसिद्धसाधर्म्यात्साध्यसाधनमुपमानं । यथा गौर्गवयस्तथा ऽत्रच संज्ञासंज्ञिसंबंधप्रतिपत्तिरुपमानार्थोऽत्रापि सिद्धायामन्यथानुपपत्तावनुमानलक्षण त्वेन तत्रैवांतर्भावात्पृथक्प्रमाणत्वमनुपपन्नमेव । अथ नास्त्यनुपपत्तिस्ततोव्यभिचाराद प्रमाणतोपमानस्य । शाब्दमपि न सर्वं प्रमाणं किंतर्ह्याप्तप्रणीतस्यैवागमस्य प्रामाण्यान्न चार्हद्व्यतिरेकेणापरस्याप्तता युक्तियुक्तेत्येतच्चान्यत्र निर्लोडितमिति । किंच सर्वमप्येत त्प्रमाणमात्मनोज्ञानं । ज्ञानं चात्मनोगुणः पृथक्पदार्थतयाभ्युपगंतुं न युक्तोरूपरसादी नामपि पृथक्पदार्थतापत्तेः । अथ प्रमेयग्रहणेनेंद्रियार्थतया तेप्याश्रिताः सत्यमाश्रिता नतु युक्तियुक्ताः । तथाहि । द्रव्यव्यतिरेकेण तेषामभावात्तद्ग्रहणेच तेषामपि ग्रहणं सिद्धमेवेति न युक्तं पृथगुपादानं । प्रमेयं त्वात्मशरीरेंद्रियार्थबुद्धिमनःप्रवृत्तिदोषप्रेत्यभा वफलदुःखापवर्गाः । तत्रात्मा सर्वस्य द्रष्टोपभोक्ता चेच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानानुमेयः। सच जीवपदार्थतया गृहीतएवाऽस्माभिरिति । शरीरं तु तस्य भोगायतनं भोगायतनानीं द्रियाणि भोक्तव्याइंद्रियार्थाः । एतदपि शरीरादिकं जीवाजीवग्रहणेनोक्तमस्माभिरिति । उपयोगोबुद्धिरित्येतच्चज्ञानविशेषः । सच जीवगुणतया जीवोपादानतयोपात्तएव । सर्वे विषयमंतःकरणं युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्लिंगं मनस्तदपि द्रव्यमनःपौद्गलिकमजीवग्रहणेन गृहीतं भावमनस्त्वात्मगुणत्वाज्जीवग्रहणेनेति । आत्मनः सुखदुःखसंवेदनानां निवर्तनका रणं प्रवृत्तिः सापि पृथक्पदार्थतया नाभ्युपगंतुं युक्ता । तथाहि । प्रवृत्तिरित्यात्मेच्छा सा चात्मगुणएवात्माऽभिप्रायतया ज्ञानविशेषत्वादात्मानं दूषयतीति दोषः । तद्यथा । अ स्यात्मनो नवेदं शरीरमपूर्वमनादित्वादस्य नाप्यनुत्तरत्वात्संततेरिति । योयमात्मनोध्यवसा यः सदोषोरागद्वेषमोहादिकोवा दोषः । अयमपि दोषोजीवाभिप्रायतया तदंतर्भावीति न पृथग्वाच्यः । प्रेत्यभावः परलोकसद्भावोयमपि ससाधनोजीवाजीवग्रहणेनोपात्तः । फलमपि सुखदुःखोपभोगात्मकं तदपि जीवगुणे एवांतर्भवतीति न पृथगुपदेष्टव्यमिति । दुःखमित्येतदपि विविधबाधनायोगरूपमिति फलादतिरिच्यते । जन्ममरणप्रबंधोच्छेदरूप तया सर्वदुःखप्रहाणलक्षणोमोक्षः सचास्माभिरुपात्तएवेति । किमित्यनवधारणात्मकः प्रत्ययः संशयोऽसावपि निर्णयज्ञानवदात्मगुणएवेति । येन प्रत्युक्तः प्रवर्तते तत्प्रयोजनं तदपीच्छाविशेषणत्वादात्मगुणएव । अविप्रतिपत्तिविषयापन्नोऽर्थोदृष्टांतोऽसावपि जीवा जीवयोरन्यतरः । नचैतावतास्य पृथक्पदार्थता युक्ताऽतिप्रसंगादवयवग्रहणेन च तस्योत्त रत्र ग्रहणादिति । सिद्धांतश्चतुर्विधः । तद्यथा । सर्वतंत्राविरुद्धस्तंत्रेऽभिकृतोर्थः सर्वतंत्र सिद्धांतः । यथा स्पर्शनादीनींद्रियाणि स्पर्शादयइंद्रियार्थाः प्रमाणैः प्रमेयस्य ग्रहणमि ति समानं । तंत्रसिद्धः परतंत्रासिद्धः प्रतितंत्रसिद्धांतोयथा सांख्यानां नाऽसतआत्मला भोनच सतः सर्वथाविनाशइति । तथा चोक्तं । नासतोजायते भावोनाभावोजायते सत

इति यत्सिद्धावन्यस्यार्थस्यानुषंगेण सिद्धिः सोधिकरणसिद्धांतः । यथेंद्रियव्यतिरिक्तोज्ञानात्माऽस्ति दर्शनस्पर्शनाभ्यामेकार्थग्रहणादिति । तत्रानुषंगिणोर्थाइंद्रियनानात्वं नियतविषयाणींद्रियाणि स्वविषयग्रहणलिंगानि च ज्ञातुर्ज्ञानसाधनानि स्पर्शादिगुणव्यतिरिक्तं द्रव्यं गुणाधिकरणमनियतविषयाश्चेतनाइति । पूर्वार्थसिद्धावेतेऽर्थाः सिध्यंति नैतैर्विना पूर्वार्थः संभवतीति । अपरीक्षिताभ्युपगमात्तद्विशेषपरीक्षणमभ्युपगमसिद्धांतः । तद्यथा । किंशब्दइति विचारे कश्चिदाह । अस्तु द्रव्यं शब्दः सतु किंनित्योऽथानित्यइत्येवं विचारः । सचायं चतुर्विधोपि सिद्धांतोन ज्ञानविशेषादतिरिच्यते । ज्ञानविशेषस्यात्मगुणत्वाद्गुणस्य च गुणिग्रहणेन ग्रहणादपृथगुपादानमिति । अथावयवाः प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनानि । तत्र साध्यनिर्देशः प्रतिज्ञाय नित्यः शब्दोऽनित्योवेति । हिनोति गमयति प्रतिज्ञातमर्थमिति हेतुः । तथोत्पत्तिधर्मकत्वात्साध्यसाधर्म्यात्तद्धर्मभावे दृष्टांतः । उदाहरणं यथा घटइति । वैधर्म्योदाहरणं यदि नित्यं न भवति तदुत्पत्तिमदपि न भवति यथाकाशमिति । तथा न तथेति वा पक्षधर्मोपसंहारउपनयः । तद्यथा । अनित्यः शब्दः कृतकत्वादघटवत्तथाचायं । अनित्यत्वाभावे कृतकत्वमपि नभवत्याकाशवत् तथाऽयमिति । प्रतिज्ञाहेत्वोः पुनर्वचनं निगमनं तस्मादनित्यइति । तत्रामी पंचाप्यवयवायदि शब्दमात्रं ततः शब्दस्य पौद्गलिकत्वात्पुद्गलानां चाजीवग्रहणेन ग्रहणान्नपृथगुपादानं न्याय्यमथतज्ज्ञानं ज्ञानं ततोजीवग्रहणेनैवोपादानमिति । ज्ञानविशेषपदार्थताभ्युपगमे च पदार्थबहुत्वं स्यादनेकप्रकारत्वाज्ज्ञानविशेषाणामिति । संशयादूर्ध्वं भवितव्यताप्रत्ययः सदर्थपर्यालोचनात्मकस्तर्कः । यथा भवितव्यमत्र स्थाणुना पुरुषेणवेत्ययमपि ज्ञानविशेषएव । नच ज्ञानविशेषाणां ज्ञातुरभिन्नानां पृथक्पदार्थपरिकल्पनं समनुजानते विद्वांसः । संशयतर्काभ्यामुत्तरकालभावी निश्चयात्मकः प्रत्ययः । निर्णयोयमपि प्राग्वन्न ज्ञानादतिरिच्यते । किंचास्य निश्चयात्मकतया प्रत्यक्षादिप्रमाणांतर्भावान्न पृथक्निर्देशोन्याय्यइति । तिस्रः कथावादोजल्पोवितंडा चेति । तत्र प्रमाणतर्कसाधनोपालंभः सिद्धांताविरुद्धः पंचावयवोपपन्नः प्रतिपक्षपरिग्रहोवादः । सच तत्त्वज्ञानार्थं शिष्याचार्ययोर्भवति । सएव विजिगीषुणा सार्धं छलजातिनिग्रहस्थानसाधनोपालंभोजल्पः । सएव प्रतिपक्षस्थापनाहीनोवितंडेति । तत्रासां तिसृणामपि कथानां भेदएव नोपपद्यते यतस्तत्त्वचिंतायां तत्त्वनिर्णयार्थं वादोविधेयोन छलजल्पादिना तत्त्वागमः कर्तुं पार्यते । छलादिकं हि परवंचनार्थमुपन्यस्यते । नच तेन तत्त्वावगतिरिति । सत्यपि भेदे नैषां पदार्थता यतोयदेव परमार्थतोवस्तुवृत्त्या वस्त्वस्ति तदेव परमार्थतयाऽभ्युपगंतुं युक्तं । वादास्तु पुरुषेच्छावशेन भवंतोऽनियतावर्तंते ते न तेषां परमार्थतेति । किंच पुरुषेच्छानुविधायिनोवादाः कुक्कुटलावकादिष्वपि पक्षप्रति

पक्षपरिग्रहेण नवंत्यतस्तेषामपि तत्त्वप्राप्तिः स्यान्नचैतदिष्यतइति । असिद्धानैकांतिक विरुद्धाहेत्वानासाः । हेतुवदानासंतइति हेत्वानासास्तत्र सम्यग्घेतूनामपि न तत्त्वव्यवस्थितिः किंपुनस्तदानासानां। तथाहि। इह यन्नियतं वस्त्वस्ति तदेव तत्त्वं नवितुमर्हति हेतुवस्तु। क्वचि द्वस्तुनि साध्ये हेतवः क्वचिदहेतवइत्यनियतास्तइति । अथ छलं अर्थविघातोऽर्थविकल्पोपपत्तेरिति । तत्रार्थविशेषे विवक्षितेऽनिहिते वक्तुरनिप्रायादर्थांतरकल्पना वाक्छलं । यथा नवकंबलोऽयं देवदत्तः । अत्र च नवः कंबलोऽस्येति वक्तुरनिप्रायः। विग्रहे च विशेषोन समासे । तत्रायं छलवादी नवः कंबलोऽस्येत्येतद्भवतानिहितमिति कल्पयति नचायं तथेत्येवं प्रतिषेधयति । तत्र छलमित्यसदर्थानिधानं। तद्यदि छलं न तर्हि तत्त्वं तत्त्वं चेन्न तर्हि छलं परमार्थरूपत्वात्तस्येति। तदेवं छलं तत्त्वमित्यतिरिक्ता वाचोयुक्तिः। दूषणानासास्तु जातयस्तत्र सम्यक्दूषणस्यापि न तत्त्वव्यवस्थितिरनियतत्वात् । अनियतत्त्वं च यदेवैकस्मिन् सम्यक् दूषणं तदेवान्यत्र दूषणानासं पुरुषशक्त्यपेक्षत्वाच्च दूषणानासव्यवस्थितेरनियतत्त्वमिति । कुतः पुनर्दूषणानासरूपाणां जातीनामवास्तवत्वात्तासामिति। वादकाले वादी प्रतिवादी वा येन निगृह्यते तन्निग्रहस्थानं तच्च वादिनो साधनांगवचनं प्रतिवादिनस्तद्दोषोद्भावनं विहाय यदन्यदनिधीयते नैयायिकैस्तत्प्रलापमात्रमिति । तच्च प्रतिज्ञाहानिः प्रतिज्ञांतरं प्रतिज्ञाविरोधइत्यादिकमेतच्च विचार्यमाणं न निग्रहस्थानं नवितुमर्हति नवदपिच पुरुषस्यैवापराधं कर्तुमलं न त्वेतत्तत्त्वं नवितुमर्हति। वक्तृगुणदोषौ हि परार्थे अनुमानेऽधिक्रियेते नतु तत्त्वमिति। तदेवं न नैयायिकोक्तं तत्त्वं तत्त्वेनाश्रयितुं युज्यते तस्योक्तनीत्या सदोषत्वादिति।नापि वैशेषिकोक्तं तत्त्वमिति। तथाहि। इव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानावास्तत्त्वमिति । तत्र पृथिव्यप्तेजोवायुराकाशं कालोदिगात्मा मनइति नव इव्याणि । तदत्र पृथिव्यप्तेजोवायूनां पृथग्इव्यत्वमनुपपन्नं । तथाहि । तएव परमाणवः प्रयोगविस्रसाभ्यां पृथिव्यादित्वेन परिणमंतोपि न स्वकीयं इव्यत्वं त्यजंति। नचावस्थानेदेन इव्यनेदोयुक्तोऽतिप्रसंगादिति । आकाशकालयोश्चास्मानिरपि इव्यत्वमन्युपगतमेव । दिशस्त्वाकाशावयवनूतायाअनुपपन्नत्वं पृथग्इव्यत्वमतिप्रसंगदोषादेव । आत्मनश्च स्वशरीरमात्रव्यापिनउपयोगलक्षणस्यान्युपगतइव्यत्वमिति । मनसश्च पुद्गलविशेषतया पुद्गलइव्येऽतर्नावइति परमाणुवन्नावमनसश्च जीवगुणत्वादात्मन्यंतर्नावइति । यदपि तैरनिधीयते यथा पृथिवीत्वयोगात्पृथिवीति तदपि स्वप्रक्रियामात्रमेव । यतोनहि पृथिव्याः पृथग्नूतं पृथिवीत्वमपि येन तद्योगात्पृथिवी नवेदपि तु सर्वमपि यदस्ति तत्सामान्यविशेषात्मकं नरसिंहाकारमुन्नयस्वनावमिति। तथा चोक्तं । नान्वयः सहनेदत्वा,न्न नेदोन्वयवृत्तितः ॥ मृद्भेदद्वयसंसर्ग, वृत्तिजात्यंतरं घटः ॥ १ ॥ तथा नरस्य सिंहरूपत्वान्न सिंहोनररूपतः ॥ शब्दविज्ञानकार्याणां नेदा

ज्ञात्यंतरं हि सइत्यादि । अथ रूपरसगंधस्पर्शारूपिद्रव्यवृत्तेर्विशेषगुणास्तथा संख्या परिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ परत्वापरत्वे इत्येते सामान्यगुणाः सर्वद्रव्यवृत्तित्वा त् । तथा बुद्धिः सुखदुःखेछाद्वेषप्रयत्नधर्माधर्मसंस्कारात्मगुणाः । गुरुत्वं पृथिव्यु दकयोर्द्रवत्वंस्वभावत्वेन परोपाधिकत्वं पृथिव्युदकाग्निषु स्नेहोंऽभस्येव वेगाख्यः संस्कारो मूर्तद्रव्येष्वेव आकाशगुणः शब्दइति । तत्र संख्यादयः सामान्यगुणारूपादिवद्द्रव्यस्व भावत्वेन परोपाधिकत्वाद्गुणाएव न भवंति । अथापि स्युस्तथापि न गुणानांपृथक्त्व व्यवस्था । तत्पृथक्त्वभावे द्रव्यस्वरूपहानेर्गुणपर्यायवत् द्रव्यमिति कृत्वा नांतरीयक तया द्रव्यग्रहणेनैव ग्रहणं न्याय्यमिति न पृथग्भावः । किंच तस्य भावस्तत्वमित्युच्यते। भावप्रत्ययश्च यस्य गुणस्य हि भावाद् द्रव्ये शब्दनिवेशस्तदभिधाने त्वतलावित्यनेन भव ति । तत्र घटोरक्तउदकस्याहारकोजलवान् सर्वैरेव घटउच्यते । अत्र च घटस्य भावोघट त्वं रक्तस्य भावोरक्तत्वं आहारकस्यभावआहारकत्वं जलवतोभावोजलवत्वमित्यत्र घटसा मान्यरक्तगुणक्रियाद्रव्यसंबंधरूपाणां गुणानां सद्भावात् द्रव्ये पृथुबुध्नाकारउदकाद्याहरण क्रमे कुटकाख्ये शब्दस्य घटादेरभिनिवेशस्तत्र त्वतलाविह्च रक्ताख्यकोगुणोयत्सद्भावात्कत रश्चतद् द्रव्यं यत्र शब्दनिवेशोयेन भावप्रत्ययः स्यादिति । किमिदानीं रक्तस्य भवोरक्तत्व मिति न भवितव्यं भवितव्यमुपचारेण । तथाहि । रक्तइत्येतद्द्रव्यत्वेनोपचर्य तस्य सामा न्यं भावइति रक्तत्वमिति । नचोपचारस्तत्वचिंतायामुपयुज्यते शब्दसिद्धावेव तस्य कृता र्थत्वादिति । शब्दश्चाकाशस्य गुणएव न भवति तस्य पौद्गलिकत्वादाकाशस्य चामूर्तत्वा दिति । शेषं तु प्रक्रियामात्रं न साधनदूषणयोरंगं । क्रियापि द्रव्यसमवायिनी गुणवत्पृथ गाश्रयितुं न युक्तेति । अथ सामान्यं तद्द्विधा परमपरंच । तत्र परं महासत्वाख्यं द्रव्यादि पदार्थव्यापिं । तथाचोक्तं । सदिति यतोद्रव्यगुणकर्मसु सा सत्ता अपरं च द्रव्यत्वगुण त्वकर्मत्वात्मकं । तत्र न तावन्महासत्तायाः पृथक्पदार्थता युज्यते यतस्तस्यां यः सदि ति प्रत्ययः सकिमपरसत्तानिबंधनउत स्वतएव तत् । यद्यपरसत्तानिबंधनस्तत्राप्ययमेव विकल्पोऽतोऽनवस्था । अथ स्वतएव ततस्तद् द्रव्यादिष्वपि स्वतएव सत्प्रत्ययोभविष्य तीति किमपरसत्तयाऽजागलस्तनकल्पया विकल्पितया । किंच द्रव्यादीनां किं सतां सत्तया सत्प्रत्ययउताऽसतां तत् । यदि सतां स्वतएव सत्प्रत्ययोभविष्यति किंतया । असत्यप देतु शशविषाणादिष्वपि सत्तायोगात्सत्प्रत्ययः स्यादिति । तथाचोक्तं । स्वतोर्थाः संतु सत्तावत्सत्तया किं सदात्मनां ॥ असदात्मसु नैषा स्यात्सर्वथाऽतिप्रसंगतइत्यादि । एतदे व दूषणमपरसामान्येऽप्यायोज्यं तुल्ययोगक्षेमत्वात् । किंचास्माभिरपि सामान्यविशेष रूपत्वाद्वस्तुनः कथंचित्तदिष्यतएवेति तस्यच कथंचित्तदव्यतिरेकात्तद्द्रव्यग्रहणेनैव ग्रह णमिति । अथ विशेषास्ते चात्यंतव्यावृत्तिबुद्धिहेतुत्वेन परैराश्रीयंते । तत्रेदं चिंत्यते ।

या तेषु विशेषबुद्धिः सा नापरविशेषहेतुका ऽऽश्रयितव्याऽनवस्थाभयात्। स्वतः समाश्रयणेच तद्वद्द्रव्यादिष्वपि विशेषबुद्धिः स्यात्किंद्रव्यादिव्यतिरिक्तैर्विशेषैरिति। द्रव्यादिव्यतिरिक्तास्तु विशेषाश्चस्मान्निरप्याश्रीयंते सर्वस्यसामान्यविशेषात्मकत्वादिति। एतत्तु प्रक्रियामात्रं। तद्यथा। नित्यद्रव्यवृत्तयोंऽत्याविशेषानित्यद्रव्याणिच चतुर्विधाः परमाणवोमुक्तात्मानोमुक्तमनांसि चेति निर्युक्तिकत्वादपकर्णयितव्यमिति। समवायस्त्वयुतसिद्धानामाधाराधेयभूतानां यइह प्रत्ययहेतुः ससमवायइत्युच्यते। असावपि नित्यश्चैकश्चाश्रीयते। तस्यच नित्यत्वात्समवायिनोपि नित्याश्चापद्येरन्। तदनित्यत्वे च तस्याप्यनित्यत्वापत्तिस्तदाधाररूपत्वात्तस्य तदेकत्वाच्च सर्वेषां समवायिनामेकत्वापत्तिस्तस्य चानेकत्वमिति। किंचायं समवायः संबंधस्तस्य च द्विष्ठत्वादयुतसिद्धत्वमेव दंडदंडिनोरिव वीरणानांच कटोत्पत्तौ तद्रूपतया विनाशः कटरूपतयोत्पत्तिरन्वयरूपतया व्यवस्थानमिति दुग्धदध्नोरिवेत्येवं वैशेषिकमतेपि न सम्यक्पदार्थावस्थितिरिति। सांप्रतं सांख्यदर्शने तत्त्वनिरूपणं प्रक्रम्यते। तत्र प्रकृत्यात्मसंयोगात्सृष्टिरुपजायते। प्रकृतिश्च सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था ततोमहान् महतोऽहंकारोऽहंकारादेकादशेंद्रियाणि पंचतन्मात्राणि तन्मात्रेभ्यः पंचभूतानीति चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपं सचाकर्ता निर्गुणोऽभोक्तेति। तत्र परस्परविरुद्धानां सत्त्वादीनां गुणानां प्रकृत्यात्मनां नियामकं गुणिनमंतरेणैकत्रावस्थानं न युज्यते कृष्णसितादिगुणानामिव। नच महदादिविकारे जन्ये प्रकृतिवैषम्योत्पादने कश्चिद्धेतुस्तद्व्यतिरिक्तवस्त्वंतरानभ्युपगमादात्मनश्चाकर्तृत्वेनाकिंचित्करत्वात्स्वभाववैषम्याभ्युपगमेतु निर्हेतुकत्वापत्तेर्नित्यं सत्त्वमसत्त्वं वा स्यादिति। उक्तंच। नित्यं सत्त्वमसत्त्वं वा, हेतोरन्यानपेक्षणात्॥ अपेक्षातोहि भावानां, कादाचित्कत्वसंभवः॥ १॥ अपिच। महदहंकारौ संवेदनादभिन्नौ पश्यामः। तथाहि। बुद्धिरध्यवसायोऽहंकारश्चाहं सुख्यहं दुःखीत्येवमात्मनः प्रत्ययस्तयोश्चिद्रूपतयाऽऽत्मगुणत्वं न जडरूपायाः प्रकृतेर्विकारावेताविति। अपिच येयं तन्मात्रेभ्योभूतोत्पत्तिरिष्यते। तद्यथा। गंधतन्मात्रात्पृथिवी रसतन्मात्रादापः रूपतन्मात्रात्तेजः स्पर्शतन्मात्राद्वायुः शब्दतन्मात्रादाकाशमिति सापि न युक्तिक्षमा। यतो यदि बाह्यभूताश्रयेणैतदभिधीयते तदयुक्तं। तेषां सर्वदाभावान्नकदाचिदनीदृशं जगदिति कृत्वा। अथ प्रतिशरीराश्रयणादेतदुच्यते। तत्र किल त्वगस्थिकठिनलक्षणा पृथ्वी श्लेष्मासृग्द्रवलक्षणाश्चापः पक्तिलक्षणंतेजः प्राणापानलक्षणोवायुः सुषिरलक्षणमाकाशमिति तदपि न युज्यते। यतोऽत्रापि केषांचिच्छरीराणां शुक्रासृग्द्रवोत्पत्तिर्न तत्र तन्मात्राणो गंधोपि समुपलक्ष्यते। अदृष्टस्यापि कारणत्वकल्पनेऽतिप्रसंगः स्यात्। अंडजोद्भिज्जांकुरादीनामप्यन्यतएवोत्पत्तिर्भवंती समुपलक्ष्यते। तदेवं व्यवस्थिते प्रधानमहदहंकारादिकोत्पत्तिर्या सांख्यैः स्वप्रक्रिययाऽभ्युपगम्यते तत्तैर्निर्यु

क्तिकमेव स्वदर्शनानुरागेणान्युपगम्यतइति । आत्मनश्चाकर्तृत्वान्युपगमे कृतनाशोऽकृताग मश्च स्यात् । बंधमोक्षानावश्च निर्गुणत्वे च ज्ञानशून्यतापत्तिरित्यतोबालप्रलापमात्रं । प्र कृतेश्चाचेतनायाआत्मार्थं प्रवृत्तिर्युक्तिविकलेति । अथ बौद्धमतं निरूप्यते । तत्रहि पदा र्था द्वादशायतनानि । तद्यथा । चक्षुरादीनि पंच रूपादयश्च विषयाः पंच शब्दायतनं धर्मा यतनंच धर्माः सुखादयो द्वादशायतनपरिछेदकत्वे प्रत्यक्षानुमाने द्वेएव प्रधाने प्रमाणे । तत्र चक्षुरादींद्रियाण्यजीवग्रहणेनैवोपात्तानि । नावेंद्रियाणितु जीवग्रहणेनेति । रूपाद यश्च विषयाअजीवोपादानेनोपात्तान पृथगुपादातव्याः । शब्दायतनं तु पौजलिकत्वाछब्द स्याजीवग्रहणेन ग्रहणं । नच प्रतिव्यक्ति पृथक्पदार्थता युक्तिसंगतेति । धर्मात्मकं सुखं डुः खंच यद्यसातोदयरूपं ततोजीवगुणत्वाज्जीवेंतर्नावः । अथ तत्कारणं कर्म ततः पौज लिकत्वादजीवइति । प्रत्यक्षं च तैर्निर्विकल्पकमिष्यते तच्चानिश्चयात्मकतया प्रवृत्तिनिवृ त्त्योरनंगमित्यप्रमाणमेव । तदप्रामाण्ये तत्पूर्वकत्वादनुमानमपीति । शेषस्त्वाक्षेपपरिहारो न्यत्र सुविचारितइति नेह प्रतन्यतइत्यनया दिशा मीमांसकलोकायतमताश्रितत्वनिराक रणं सुबुध्या विधेयं । तयोरत्यंतलोकविरुद्धपदार्थानां श्रयणान्न साक्षादुपन्यासः कृतइति । तस्मात्पारिशेष्यसिद्धाअर्हदुक्तानव सप्त पदार्थाः सत्यास्तत्परिज्ञानं च क्रियावादे हेतु र्नापरपदार्थपरिज्ञानमिति ॥ २१ ॥ सांप्रतमध्ययनार्थमुपसंजिहीर्षुः सम्यग्वादपरिज्ञान फलमादर्शयन्नाह । (सद्देसुइत्यादि) शब्देषु वेणुवीणादिषु श्रुतिसुखदेषु रूपेषु च नय नानंदकारिष्वासंगमकुर्वन् गार्ध्यमकुर्वाणोऽनेन रागोगृहीतस्तथा गंधेषु कुथितकलेवरादि षु रसेषु चांतप्रांताशनादिषु अजुष्यमाणोमनोज्ञेषु द्वेषमकुर्वन्निदमुक्तं नवति । शब्दादिष्विं द्रियविषयेषु मनोज्ञेतरेषु रागद्वेषान्यामनपदिश्यमानोजीवितमसंयमजीवितं नानिकांक्षे न्नापि परीषहोपसर्गैरनिडुतोमरणमन्निकांक्षेत् । यदिवा जीवितमरणयोरननिलाषी संय ममनुपालयेदिति । तथा मोक्षार्थिनादीयते गृह्यतइत्यादानं संयमस्तेन तस्मिन्वा सति गुप्तोयदिवा मिथ्यात्वादिनादीयते इत्यादानमष्टप्रकारं कर्म तस्मिन्नादातव्ये मनोवाक्का यैर्गुप्तः समितश्च तथा नाववलयं माया तया विप्रमुक्तोमायामुक्तः । इति परिसमाप्त्यर्थे । ब्र वीमीति पूर्ववत् । नयाः पूर्ववदेव ॥ २२ ॥ समाप्तं समवसरणाख्यं द्वादशमध्ययनमिति ॥

हवे यथातथ्य नामे तेरमो अध्ययन प्रारंनियें डैयें. बारमां अध्ययनमां जुदा जुदा दर्श नीउंना समवसरण कह्या नंतर तेरमां अध्ययनमां यथातथ्य एटले सत्य स्वरूप देखाडे डे.

आहत्तहीयं तु पवेयइस्सं, नाणप्पकारं पुरिसस्स जातं ॥ सउ
अधम्मं असउ असीलं, संतिं असंतिं करिस्सामि पाउं ॥ १ ॥

अहोयराउंअ समुट्ठिएहिं, तहागएहिं पडिलप्प धम्मं ॥ समा
हिमाघातमजोसयंता, सत्थारमेवं फरुसं वयंति ॥ २ ॥

अर्थ–(आहत्तहीयंतुपवेयइस्सं के०) यथातथ्य सम्यक् ज्ञाननो स्वरूप हवे प्रवेदिसुं एटले कहीशुं तथा (पुरिसस्स के०) जीवने (नाणप्पकारं के०) नानाप्रकारना ज्ञानादिक जे (जातं के०) उत्पन्न थाय तेपण हवे कहीशुं तथा (सउंअधम्मं के०) सत्पुरुषनुं धर्म जे श्रुत चारित्ररूप जे डुर्गति थकी राखनार ते धर्म अने (असउंअ सीलं के०) असत्पुरुष एटले परतीर्थिक तथा ग्रहस्थ अने पासत्थादिक तेनो सील एटले डुष्टाचार ते कहीशुं तथा (संतिं के०) शांति एटले निर्वाणरूप अने (असंतिं के०) संसारभ्रमणरूप ए बन्नेने (करिष्यामि प्राड के०) प्रगट करी शुं ॥१॥ (अहोयराउंअस मुट्ठिएहिंके०) रात्रना तेम दिवसना पण सम्यक् प्रकारे उठ्या एटले सावधान थया एवा जे निन्हवादिक जमाली प्रमुख स्वदर्शनी तथा बोटिकादिक अन्यदर्शनी ते(तहागएहिंप डिलप्पधम्मं के०) तथा प्रकारे तीर्थंकरादिक पाशेथी संसारथकी निकलवानुं उपाय एवो जे पंमित धर्म तेने पामीने जमाली प्रमुखनी पेरे कर्मने उदयें ते श्रीतीर्थंकर नापित एवो (समाहिमाघात के०) समाधिवंत एटले सम्यक् दर्शनादिक धर्म तेने (अजोसयंता के०) अण सेवता थका कदाग्रहि पणाने लीधे मिथ्यात्वना प्रेरया स्वछंदे यथा तथा एटले जेम तेम बोलता श्रीसर्वज्ञना मार्गने उत्थापता अने कुमार्गनो उपदेश करता एरीते प्रवर्त्तता (सत्थार मेवंफरुसंवयंति के०) कदापि पोताने आचारना शिखावनार एवा गुरु जे महानुभाव ते प्रत्यें पण कठोर वचन बोले ॥ २ ॥

॥ दीपिका–अथ त्रयोदशं याथातथ्याध्ययनमारभ्यते । तस्येदमादिसूत्रं । (अहत्तेति) यथातथाभावोयाथातथ्यं तत्त्वज्ञानादिकं पुरुषस्य जंतोर्जातमुत्पन्नं तदहं प्रवेदयिष्यामि कथयिष्यामि । तुशब्दोविशेषणे । वितथाचारिणस्तद्दोषांश्च कथयिष्यामि । नानाप्रकारं वा चित्रं पुरुषस्य स्वभावं प्रशस्तरूपं प्रवेदयिष्यामि । तथा । सतः सत्पुरुषस्य धर्मं श्रुतचारित्राख्यं शीलमुद्यतविहारित्वं शांतिं निर्वृतिं मोक्षं (करिस्सामिपाउंति) प्राडुष्करिष्ये प्रकटयिष्यामि । तथाऽसतोऽशोभनस्य परतीर्थिकस्य गृहस्थस्य पार्श्वस्थादेर्वा चशब्दसमुच्चितमधर्मं पापं तथाऽशीलं कुत्सितशीलमशांतिं संसारं प्राडुष्करिष्ये ॥१॥ अहोरात्रं समुत्थितानिन्हवाबोटिकाश्च तेभ्यः श्रुतधरेभ्यस्तथागतेभ्योवा तीर्थकृद्भ्योधर्मं श्रुतचारित्राख्यं प्रतिलभ्य प्राप्यापि मंदभाग्यतया जमालिप्रमुखश्वात्मोत्कर्षात्तीर्थंकरैराख्यातं समाधिं मोक्षमार्गमजोषयंतोऽसेवमानाः सर्वज्ञोक्तं मार्गं विध्वंसयंति ते निन्हवाबोटिकाश्च परेणाचार्यादिना चोदिताः संतस्तं शास्तारं चोदकं पुरुषं निष्ठुरं वदंति ॥ २ ॥

॥ टीका–अथानंतरं त्रयोदशमारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंधः । इहानंतराध्ययने परवादिमतानि निरूपितानि तन्निराकरणं चाऽकारि तच्च याथातथ्येन भवति तदिह प्रतिपाद्यते इत्यनेन संबंधेनायातस्यास्याध्ययनस्य चत्वार्यनुयोग द्वाराणि भवंति । तत्राप्युपक्रम द्वारांतर्गतार्थाधिकारोयं । तद्यथा । शिष्यगुणदीपना । अथानंतराध्ययनेषु धर्मसमाधि मार्गसमवसरणाख्येषु यदवितथं याथातथ्येन व्यवस्थितं यच्च विपरीतं वितथं तदपि लेशतोऽत्र प्रतिपादयिष्यतइति । नामनिष्पन्नेतु निक्षेपे याथातथ्यमिति नाम तदधिकृत्य निर्युक्तिकृदाह । " णामतहं ठवणतहं, दव्वतहं चेव होइ भावतहं ॥ दव्वतहं पुण जो जस्स सब्भावोहिंति दव्वस्स " ॥ २४ ॥ (णामतहमित्यादि) अस्याध्ययनस्य याथातथ्य मिति नाम । तच्च यथाशब्दस्य भावप्रत्ययांतस्य भवति । तत्र यथाशब्दोल्लंघनेन तथा शब्दस्य निक्षेपं कर्तुं निर्युक्तिकारस्यायमभिप्रायः । इह यथाशब्दोयमनुवादे वर्तते तथा शब्दश्च विधेयार्थे । तद्यथा । यथेदं तथैवेदं भवता विधेयमित्यनुवादविधेययोश्च विधेयांशएव प्रधानभावमनुभवतीति । यदिवा याथातथ्यमिति तथ्यमतस्तदेव निरूप्यतइति । तत्र यथाभावस्तथ्यं यथावस्थितवस्तुता । तन्नामादिश्चतुर्धा । तत्र नामस्थापने सुगमे । द्रव्यतथ्यं गाथापश्चार्धेन प्रतिपादयति । तत्र द्रव्यतथ्यं पुनर्योयस्य सचित्तादेः स्वभावोद्रव्यप्राधान्याद्यस्य स्वरूपं तद्यथोपयोगलक्षणोजीवः कठिनलक्षणा पृथिवी द्रव्यलक्षणा आपइत्यादि । मनुष्यादेर्वा योयस्य मार्दवादिस्वभावोऽचित्तद्रव्याणां च गोशीर्षचंदनकंबलरत्नादीनां द्रव्याणां स्वभावः । तद्यथा । उण्हे करेइ सीयं,सीए उण्हत्तणं पुण भवेइ ॥ कंबलरयणादीणं, एस सहावो मुणेयव्वो ॥ १ ॥ भावतथ्यमधिकृत्याह । " भावतहं पुण नियमा, णायव्वं छव्विहंमि भावंमि ॥ अहवा वि नाणदंसण, चरित्तविणएण अज्झप्पे " ॥ २५ ॥ (भावतहमित्यादि) भावतथ्यं पुनर्नियमतोऽवश्यंभावतया षड्विधे औदयिके भावे ज्ञातव्यं । तत्र कर्मणामुदयेन निर्वृत्तऔदयिकः कर्मोदयापादितोगत्याद्यनुभावलक्षणस्तथा कर्मोपशमेन निर्वृत्तऔपशमिकः कर्मानुदयलक्षणइत्यर्थः । तथा क्षयाज्जातः क्षायिकोऽप्रतिपातिज्ञानदर्शनचारित्रलक्षणस्तथा क्षयाडुपशमाच्च जातः क्षायोपशमिकोदेशोदयोपशमलक्षणः । परिणामेन निर्वृत्तः पारिणामिकोजीवाजीवभव्यत्वादिलक्षणः पंचानामपि भावानां द्विकादिसंयोगान्निष्पन्नः सान्निपातिकइति । यदिवा अध्यात्मन्यांतरं चतुर्धा भावतथ्यं द्रष्टव्यं । तद्यथा । ज्ञानदर्शनचारित्रविनयतथ्यमिति । तत्र ज्ञानतथ्यं मत्यादिकेन ज्ञानपंचकेन यथास्वमवितथोविषयोपलंभः । दर्शनतथ्यं शंकाद्यतिचाररहितं जीवादितत्त्वश्रद्धानं । चारित्रतथ्यं तु तपसि द्वादशविधे संयमे सप्तदशविधे सम्यगनुष्ठानं । विनयतथ्यं द्विचत्वारिंशद्भेदभिन्ने विनये ज्ञानदर्शनचारित्रतपउपचारिकरूपे यथायोगमनुष्ठानं ज्ञानादीनां तु वितथाऽसेवनेनाऽतथ्यमिति । अत्र च भावतथ्येना

धिकारः । यदि वा नावतथ्यं प्रशस्ताप्रशस्तनेदाद्द्विधा । तदिह प्रशस्तेनाधिकारं दर्शयितु माह । " जह सुत्तं तह अबो, चरणं चारो तहत्ति णायवं ॥ संतंमिय पसंसाए, असतीपगयं डुगुंबाए " ॥ २६ ॥ (जहसुत्तमित्यादि) यथा येनप्रकारेण यथापद्धत्त्या सूत्रं व्यवस्थितं तथा तेनैव प्रकारेणार्थोव्याख्येयोनुष्ठेयश्च । एतद्दर्शयति । चरणमाचरणमनुष्ठातव्यं । यदिवा सिद्धांतसूत्रस्य चारित्रमेवाचरणमतोयथासूत्रं तथा चारित्रमेतदेव चानुष्ठेयमेतच्च याथातथ्यमिति ज्ञातव्यं । पूर्वार्धस्यैव नावार्थं गाथापश्चार्धेन दर्शयितु माह । यद्दस्तुजातं प्रकृतं प्रस्तुतं यथार्थमधिकृत्य सूत्रमकारि तस्मिन्नर्थे सति विद्यमाने यथावद्व्याख्यायमाने संसारोत्तारणकारणत्वेन प्रशस्यमाने वा याथातथ्यमिति नवति विवक्षिते त्वर्थे सत्यविद्यमाने संसारकारणत्वेन वा जुगुप्सायां सत्यां सम्यगनुष्ठीयमाने वा याथातथ्यं न नवति । इदमुक्तं नवति । यदि यथासूत्रं येन प्रकारेण व्यवस्थितं तथैवार्थोयदि नवति व्याख्यायते ऽनुष्ठीयते च संसारनिस्तरणसमर्थश्च नवति ततोयाथातथ्यमिति नवति । असति त्वर्थे क्रियमाणे संसारकारणत्वेन जुगुप्सिते वा नवति याथातथ्यमिति गाथातात्पर्यार्थः । एतदेव दृष्टांतगर्नं दर्शयितुमाह । " आयरियपरंपर्येण आगयं जोउ लेयबुद्धीए ॥ कोवेइ लेयवाई जमालिनासंचणासिहत्तित्ति ॥ २७ ॥ (आयरिएइत्यादि) आचार्याः सुधर्मस्वामिजंबुनामप्रनवार्यरक्षिताद्यास्तेषां प्रणालिका पारंपर्यं तेनागतं यद्व्याख्यानं सूत्रानिप्रायस्तद्यथा व्यवहारतयानिप्रायेण क्रियमाणमपि कृतं नवति । यस्तु कुतर्कदर्पाध्मातमानसोमिथ्यात्वोपहतदृष्टिकया लेकबुध्या निपुणबुध्या कुशाग्रशेमुषीकोहमिति मत्वा कोपयति दूषयति अन्यथा तमर्थं सर्वज्ञप्रणीतमपि व्याचष्टे कृतं कृतमित्येवं ब्रूयात् । वक्तिच नहि मृत्पिंडक्रियाकालएव घटोनिष्पद्यते कर्मगुणव्यपदेशानामनुपलब्धेः । सएव लेकवादी निपुणोहमित्येवं वादी पंडितानिमानी जमालिना समोजमालिनिन्हववत् सर्वज्ञमतविकोपकोविनंक्ष्यत्यरहघट्टघटीयंत्रन्यायेन संसारचक्रवाले बंभ्रमिष्यतीति । नचासौ जानाति वराकोयथायं लोकोघटाद्यार्थः क्रियामृत्खननाद्याघट एवोपचरति तासांच क्रियाणां क्रियाकालनिष्ठाकालयोरेककालत्वात् क्रियमाणमेव कृतं नवति । दृश्यते चायं व्यवहारोलोके । तद्यथा । अद्यैव देवदत्ते निर्गते कान्यकुब्जं देवदत्तोगतइति व्यपदेशस्तथा दारुणि छिद्यमाने प्रस्थकोयं व्यपदेशइत्यादि ।सांप्रतमन्यथावादिनोऽपायदर्शनद्वारेणोपदेशं दातुकामआह । ण करेति डुःखमोरकं, उज्जममाणोवि संजमतवेसु ॥ तम्हाअत्तुक्करिसो वज्जेअवो जतिजणेणं ॥ २७ ॥ (णकरेइत्यादि) योहि डुर्गृहीतविद्यालवदर्पाध्मातः सर्वज्ञवचनैकदेशमप्यन्यथा व्याचष्टे सएवंनूतः सत्संयमतपस्तडुद्यमं कुर्वाणोशारीरिकमानसानां डुःखानामसातोदयजनितानां मोक्षं विनाशं न करोत्यात्मगर्वाध्मातमानसोपि यतएवं तस्मादात्मोत्कर्षोऽहमेव सिद्धांतार्थवेदी नापरः कश्चिन्मत्तु

ल्योस्तील्येवंरूपोनिमानोवर्जनीयस्त्याज्योयतिजनेन । साधुलोकेनापरोपि ज्ञानिना जात्या दिकोमदोन विधेयः किंपुनर्ज्ञानमदः । तथा चोक्तं ॥ ज्ञानं मददर्पहरं, माद्यति यस्तेन तस्य कोवैद्यः ॥ अगदोयस्य विषायति, तस्य चिकित्सा कथं क्रियते ॥ १ ॥ गतोनामनिष्पन्नो निक्षेपः सांप्रतं सूत्रालापकनिष्पन्नस्य निक्षेपस्यावसरः सच सूत्रे सति नवति । सूत्रंच सूत्रा नुगमे सचावसरः प्राप्तोऽतः सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं । (आह त्तहीत्यादि) अस्य चानंतरसूत्रेण सहायं संबंधः । तद्यथा । वलयाविमुक्तेत्यनिहितं । नावव लयं रागद्वेषौ ताभ्यां विनिर्मुक्तस्यैव याथातथ्यं नवतीत्यायनेन संबंधेनायातस्यास्य सूत्रस्य व्याख्या प्रतन्यते । यथातथानावोयं याथातथ्यं तत्त्वं परमार्थस्तच्च परमार्थचिंतायां सम्य क्ज्ञानादिकं तदेव दर्शयति । ज्ञानप्रकारं प्रकारशब्दआद्यर्थे । आदिग्रहणाच्च सम्यग्दर्शनचा रित्रे गृह्येते । तत्र सम्यग्दर्शनमौपशमिकक्षायोपशमिकं गृह्यते । चारित्रं तु व्रतसमितिकषाया णां धारणरक्षणनिग्रहादिकं गृह्यते । एतत्सम्यग्ज्ञानादिकं पुरुषस्य जंतोर्यज्जातमुत्पन्नं त दहं प्रवेदयिष्यामि कथयिष्यामि । तुशब्दोविशेषणे । वितथाचारिणस्तद्दोषांश्चाविर्नावयि ष्यामि । नानाप्रकारं वा विचित्रं पुरुषस्य स्वनावमुच्चावचप्रशस्ताप्रशस्तरूपं प्रवेदयिष्या मि । नानाप्रकारं स्वनावफलंच पश्चार्धेन दर्शयति । सतः सत्पुरुषस्य शोननस्य सदनुष्ठा यिनः सम्यग्दर्शनचारित्रज्ञानवतोधर्मं श्रुतचारित्राख्यं पुनर्गतिगमनधरणलक्षणं वा तथा शीलमुद्युक्तविहारित्वं तथा शांतिं निर्वृतिमशेषकर्मक्षयलक्षणां (करिस्सामिपाउत्ति) प्राडुष्करिष्ये प्रकटयिष्यामि यथावद्भावयिष्यामि । तथाऽसतोऽशोननस्य परतीर्थिक स्य गृहस्थस्य पार्श्वस्थादेर्वा च शब्दः समुच्चितमधर्मं पापं तथा कुशीलं कुत्सितशील मशांतिं चानिर्वाणरूपां संसृतिं प्राडुर्नावयिष्यामीति । अत्र च सतोधर्मं शीलं शांतिंच प्राडुष्करिष्याम्यसतश्चाधर्ममशीलमशांतिंचेत्येवं पदघटना योजनीया अनुपात्तस्यच चशब्दे नाक्षेपोद्रष्टव्यइति ॥१॥ जंतोर्गुणदोषरूपं नानाप्रकारं स्वनावं प्रवेदयिष्यामीत्युक्तं तद्दर्श यितुकामआह । (अहोयमित्यादि) अहोरात्रमहर्निशं सम्यगुबितानिन्हवाबोटिका श्च सदनुष्ठानवंतस्तेन्यः श्रुतधरेन्यस्तथा तथागतेन्योवा तीर्थकृद्भ्योधर्मं श्रुतचारित्राख्यं प्रतिलन्य संसारनिःसरणोपायं धर्ममवाप्यापि कर्मोदयान्मंदनाग्यतया जमालिप्रनृतयः वात्मोत्कर्षात्तीर्थकृदाद्याख्यातं समाधिं सम्यग्दर्शनादिकं मोक्षपद्धतिमजोषयंतोऽसेवंतः सम्यगकुर्वाणानिह्नवाबोटिकाश्च स्वरुचिविरचितव्याख्याप्रकारेण निर्दोषं सर्वज्ञप्रणीतं मार्गं विध्वंसयंति कुमार्गं प्ररूपयंति ब्रुवते चासौ सर्वज्ञएव न नवति । यः क्रियमाणं कृतमि त्यध्यक्षविरुद्धं प्ररूपयति । तथा यः पात्रादिपरिग्रहान्मोक्षमार्गमाविर्नावयति । एवं स र्वज्ञोक्तमश्रद्दधानाः अश्रद्धानं कुर्वंतोप्यपरे धृतिसंहननडर्बलतया यथारोपितं संयमनारं

बोद्धुमसमर्थाः क्वचिद्विषीदंतोऽपरेणाचार्यादिना वत्सलतया चोदिताः संतस्तं शास्तारम नुशासितारं चोदकं पुरुषं वदंति कर्कशं निष्ठुरं निर्जरं प्रतीपं चोदयंतीति ॥ २ ॥

विसोहियं ते अणुकाहयंते, जे आत्तनावेण वियागरेज्जा ॥ अघाणिए हो इ बहूगुणाणं, पाठांतरे (बहूणिवेसे) जे णाणसंकाइ मुसं वदेज्जा ॥३॥ जे यावि पुघ पलिउं चयंति, आयाणमठं खलु वंचयित्ता ॥ असाहुणो ते इह साहुमाणी, मायस्सि एसंति अणंतघातं ॥ ४ ॥

अर्थ—ते स्वाग्रहि पुरुष (विसोहियंते के०) ते विशोधित शुद्धनिर्दोषमार्ग तेने (अ णुकाहयंते के०) आचार्यनी प्ररूपणा थकी उत्थापिने कहे एटले (जेआत्तनावेणविया गरेज्जा के०) जे पोताना नावे एटले स्वछंदे बोले (अघाणिएहोइबहूगुणाणं के०) ते अछाछंद पणा थकी घणा गुणा जे ज्ञानादिक तेनो आस्थान थाय केमके ए स्वा निनिवेश मिथ्यात्वना नाव थकी करीने (जेणाणसंकाइ के०) जे ज्ञान शंका एटले श्रीजिनागमनेविषे शंका लावीने (मुसंवदेज्जा के०) मृषाबोले स्वकल्पित जेवो रुचे तेवो बोले तेणे करीने घणा गुणानो आस्थान एटले कुनाजन थाय ॥ ३ ॥ (जे आविपुघपलिउंचयंति के०) जे कोइ पूछे जे तमे कोनी पासेथी नण्याछो तेवारे पोता ना आचार्यनुं नाम गोपवीने बीजानुं नाम कहे (आयाणमठंखलुवंचयित्ता के०) ते निश्चे थकी आत्मार्थी जे मोक्षनो अर्थ तेने वंचेछे एतावता ते मुक्तिने नपामे (असाहु णोतेइहसाहुमाणी के०) परमार्थथकी ते असाधु थको पण आ जगतने विषे पोतामां साधुपणु करी माने तथा बीजाउने कहीने पोतामां साधु पणो मनावे (मायस्सिएसं तिअणंतघातं के०) ते मायावी साधु आसंसारनेविषे अनंत घात पामे एटले अनंत काल पर्यंत संसारमां परिच्रमण करे ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—विशोधितोमोक्षमार्गस्तं ते कदाग्रहिणोगोष्ठामाहिलवदनुपश्चादाचार्यप्र रूपणातः कथयंति अनुकथयंति । ये आत्मोत्कर्षादात्मनावेन स्वानिप्रायेणाचार्यपारं पर्यागतमप्यर्थं व्युदस्यान्यथा व्यागृणीयुर्व्याख्यांति । आचार्यपरंपरामज्ञात्वा स्वानिप्राये ण सूत्रार्थव्याख्यानं महतेऽनर्थाय । इदमेव दर्शयति । सएवंनूतोऽस्थानिकोऽनाधारोबहूनां ज्ञानादिगुणानां स्यात् । क्वचित्पाठः । (अघाणिएहोइबहूणिवेसत्ति) अस्यार्थः । अ स्थानमनाजनं सम्यक्ज्ञानादीनां । किंनूतोबहुरनर्थकारकत्वेनाऽसदनिनिवेशोयस्य सब हुनिवेशः । ते पुनः किंनूताइत्याह । ये ज्ञानशंकया मृषा वदेयुः । कोर्थः । जिनोक्ताग मे शंकां कुर्वंत्ययं तडक्तएव नस्यादिति । अथवा ज्ञानशंकया पांमित्यानिमानेन मृषा

वदेयुः ॥ ३ ॥ येऽज्ञाततत्त्वाः परेण पृष्टाः कस्मादाचार्यादधीतं जवद्भिरिति ते स्वमाचार्यं ज्ञानाभिमानेन (पलिउंचयंतित्ति) निन्हुवते । अथवा सदपि प्रमादस्खलितमाचार्यादिना पृष्टाः संतोमातृस्थानेनावर्णवादजीतानिन्हुवते । ते एवं कुर्वाणाआदानं मोक्षमर्थं वंचयंति । एवं कुर्वाणास्तेऽसाधवइहास्मिन् जगति साधुमानिनोमायान्विताएष्यंति या स्यंत्यनंतशोघातं विनाशं संसारं वा । एकं तावत्स्वयमसाधवोद्वितीयं साधुमानिनः । उक्तंच । पावं काऊण सयं, अप्पाणं सुद्धमेव ववहरइ ॥ डुगुणं करेइ पावं, बीअं बालस्स मंदत्तं ॥१॥ तदेवमात्मोत्कर्षदोषाद्बोधिलाजमप्युपहत्यानंतजवनाजः प्राणिनः स्युरिति ॥४॥

॥ टीका—किंच । (विसोहियमित्यादि) विविधमनेकप्रकारं शोधितः कुमार्गप्ररूपणापनयनद्वारेण निर्दोषतां नीतोविशोधितः सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्राख्योमोक्षमार्गस्तमेवंजूतं मोक्षमार्गं ते स्वाग्रहग्रस्तागोष्ठामाहिलवदनुपश्चादाचार्यप्ररूपणातः कथयंत्यनुकथयंति । ये चैवंजूताआत्मोत्कर्षात्स्वरुचिविरचितव्याख्याप्रकारव्यामोहिताआत्मजावेन स्वाजिप्रायेणाचार्यपारंपर्येणायातमप्यर्थं व्युदस्यान्यथा व्यागृणीयुर्व्याख्यानयेयुस्तेहि गंजीराजिप्रायं सूत्रार्थं कर्मोदयात्पूर्वापरेण यथावत्परिणामयितुमसमर्थाः पंडितमानिनउत्सूत्रं प्रतिपादयंति । आत्मजावव्याकरणं च महतेऽनर्थायेति दर्शयति । सएवंजूतः स्वकीयाजिनिवेशादस्थानिकोऽनाधारोबहूनां ज्ञानादिगुणानामजाजनं जवतीति । ते चामी गुणाः । सुस्सूसइ पडिपुब्बइ, सुणेइ गेएहइ य ईहएआवि ॥ तत्तो अपोहएवा, धारेइ करेइ वा संम्मं ॥१॥ यदि वा गुरुशुश्रूषादिना सम्यक्ज्ञानावगमस्ततः सम्यगनुष्ठाने च मतः सकलकर्मक्षयलक्षणोमोक्षइत्येवंजूतानां गुणानामनायतनमसौ । क्वचित्पाठः । (अघाणिएहोंतिबहूणिवेसत्ति) अस्यायमर्थः । अस्थानमजाजनमसौ जवति सम्यक्ज्ञानादीनां गुणानां । किंजूतोबहुरनर्थसंपादकत्वेनासदजिनिवेशोयस्य सबहुनिवेशः । यदिवा गुणानामस्थापनिकोऽनाधारोबहूनां दोषाणां च निवेशः स्थानमाश्रयइति । किंजूताः पुनरेवं जवंतीति दर्शयति । ये केचन डुर्गृहीतज्ञानलवाऽवलेपिनोज्ञाने श्रुतज्ञाने शंका ज्ञानशंका तया मृषावादं वदेयुः । एतडुक्तं जवति । सर्वज्ञप्रणीते आगमे शंकां कुर्वंत्ययं तत्प्रणीतएव नजवेदन्यथा वाऽस्यार्थः स्यात् । यदिवा ज्ञानशंकया पांडित्याजिमानेन मृषावादं वदेयुर्यथाहं ब्रवीमीति तथैव युज्यते नान्यथेति ॥ ३ ॥ किंचान्यत् । (जेयाविपुठाइत्यादि) ये केचनाविदितपरमार्थाः स्वल्पतया समुत्सेकिनोऽपरेण पृष्टाः कस्मादाचार्यात्सकाशादधीतं श्रुतं जवद्भिरिति । ते तु स्वकीयमाचार्यं ज्ञानावलेपेन निन्हवानोऽपरं प्रसिद्धं प्रतिपादयंति । यदिवा मयैवैतत्स्वतउत्प्रेक्षितमित्येवं ज्ञानावलेपात् (पलिउंचयंतित्ति) निन्हुवते । यदिवा सदपि प्रमादस्खलितमाचार्यादिना लोचनादिके अवसरे पृ

ष्टाः संतोमातृस्थानेनाऽवर्णवादनयान्निन्हुवते । तएवं पलिउंचकानिन्हवं कुर्वाणाश्चादी यतइत्यादानं ज्ञानादिकं मोक्षोवा तमर्थं वंचयंति भ्रंशयंत्यात्मनः । खलुरवधारणे। वंचयं त्येव । एवमनुष्ठायिनश्चासाधवस्ते परमार्थतस्तत्त्वचिंतायामिहास्मिन् जगति साधुविचा रेवा साधुमानिनश्चात्मोत्कर्षायाऽसदनुष्ठानमानिनोमायान्वितास्ते एष्यंति यास्यंत्यनंत शोबहुशोघातं विनाशं संसारं वा अनवदग्रसंसारकांतारमनुपरिवर्तयिष्यंलीति । दोषद्वय डुष्टत्वात्तेषामेकं तावत्स्वयमसाधवोद्वितीयं साधुमानिनः । उक्तंच । पावं काऊण सयं, अप्पाणं सुद्धमेव ववहरइ ॥ डुगुणं करेइ पावं, वीयं बालस्स मंदत्तं ॥ १ ॥ तदेवमा त्मोत्कर्षदोषाद्बोधिलानमप्युपहत्यानंतसंसारनाजोनवंत्यसुमतइति स्थितं ॥ ४ ॥

जे कोहणे होइ जगछनासी, विउसियं जे उ उदीरएज्जा ॥ अंधे
व से दंमपहं गहाय, अविउसिए घासति पावकम्मी ॥ ५ ॥
जे विग्गहीए अनायनासी, न से समे होइ अऊंऊपत्ते ॥ उव
वायकारी य हरीमणे य, एगंतदिठीय अमाइरूवे ॥ ६ ॥

अर्थ–(जे कोहणेहोइजगछनासी के०) जे क्रोधी थाय ते जगतार्थनाषी होय जगतार्थनाषी एटले जेमां जेवो दोष होय तेने तेवो कहे अर्थात् काणाने काणो कहे खोडाने खोडो कहे टुंटाने टुंटो कहे पांगलाने पांगलो कहे कोढीने कोढी कहे एवो प्रगट निठुर नाषण करनार होय (विउसियंजेउ के०) जे उपशमावेलो एवो जे कलह तेने वली (उदीरएज्जा के०) उदीरें ए पुरुषने जे फल थाय ते कहेछे. (सेके०) ते पुरुष (अंधेवदंमपहंगहाय के०) जेम कोइ आंधलो पुरुष लाकडी ग्रहण करीने मार्गने वि षे जातो थको अनेक कंटक चतुष्पदादिके करी पीडाय तेम (अविउसिए के०) अ कोविद एवोजे कलहकारी (पावकम्मी के०) पापकर्माचारी जीव ते पण (घासतिके०) चतुर्गतिक संसारमांहे डुःख पामे ॥ ५ ॥ (जेविग्गहीए के०) जेकोइ विग्रह एटले कलहकारी होय ते यद्यपि क्रिया तो केटलीक करे तथापि ते क्रिया विग्रह एटले युद्ध प्रिय थाय तथा (अनायनासी के०) अन्यायनो बोलनार होय (नसेसमेहोइअऊंऊ पत्ते के०) ते पुरुष कलहरहित एवा सम्यक् दृष्टी तेना सरखो समनावी नहोय ते माटे साधु कलहकारी नहोय परंतु साधु केवो होय ते कहेछे. (उववायकारीयहरीम णेय के०) उपपातकारी एटले आचार्यनी आज्ञापालक तथा लज्जावंत मनवालो होय एटले अनाचार करतो थको आचार्यादिक थकी लज्जा पामे तथा (एगंतदिठीय के०) एकांतदृष्टी एटले जीवादिक पदार्थनो ज्ञाता होय एकांत श्रद्धावंत होय तथा (अमाइरूवे के०) मायारहित होय एवा पुरुषने साधु कहिए. ॥ ६ ॥

वदेयुः ॥ ३ ॥ येऽज्ञाततत्त्वाः परेण पृष्टाः कस्मादाचार्यादधीतं नवद्भिरिति ते स्वमाचार्यं ज्ञानाभिमानेन (पलिउंचयंतित्ति) निन्हुवते । अथवा सदपि प्रमादस्खलितमाचार्यादिना पृष्टाः संतोमातृस्थानेनावर्णवादभीतानिन्हुवते । ते एवं कुर्वाणाआदानं मोक्षमर्थं वंचयंति । एवं कुर्वाणास्तेऽसाधवइहास्मिन् जगति साधुमानिनोमायान्विताएष्यंति या स्यंत्यनंतशोघातं विनाशं संसारं वा । एकं तावत्स्वयमसाधवोद्वितीयं साधुमानिनः । उक्तंच । पावं काऊण सयं, अप्पाणं सुद्धमेव ववहरइ ॥ दुगुणं करेइ पावं, बीअं बालस्स मंदत्तं ॥१॥ तदेवमात्मोत्कर्षदोषाद्बोधिलाभमप्युपहत्यानंतभवभाजः प्राणिनः स्युरिति ॥४॥

॥ टीका–किंच । (विसोहियमित्यादि) विविधमनेकप्रकारं शोधितः कुमार्गप्ररूपणापनयनद्वारेण निर्दोषतां नीतोविशोधितः सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्राख्योमोक्षमार्गस्तमेवंभूतं मोक्षमार्गं ते स्वाग्रहग्रस्तागोष्ठामाहिलवदनुपश्चादाचार्यप्ररूपणातः कथयंत्यनुकथयंति । ये चैवंभूताआत्मोत्कर्षात्स्वरुचिविरचितव्याख्याप्रकारव्यामोहिताआत्मभावेन स्वाभिप्रायेणाचार्यपारंपर्येणायातमप्यर्थं व्युदस्यान्यथा व्यागृणीयुर्व्याख्यानयेयुस्ते हि गंभीराभिप्रायं सूत्रार्थं कर्मोदयात्पूर्वापरेण यथावत्परिणामयितुमसमर्थाः पंडितमानिनउत्सूत्रं प्रतिपादयंति । आत्मभावव्याकरणं च महतेऽनर्थायेति दर्शयति । सएवंभूतः स्वकीयाभिनिवेशादस्थानिकोऽनाधारोबहूनां ज्ञानादिगुणानामभाजनं भवतीति । ते चामी गुणाः । सुस्सूसइ पडिपुच्छइ, सुणेइ गेण्हइ य ईहएआवि ॥ तत्तो अपोहएवा, धारेइ करेइ वा सम्मं ॥१॥ यदि वा गुरुशुश्रूषादिना सम्यक्ज्ञानावगमस्ततः सम्यगनुष्ठाने च मतः सकलकर्मक्षयलक्षणोमोक्षइत्येवंभूतानां गुणानामनायतनमसौ । क्वचित्पाठः । (अट्ठाणिएहोंतिबहूणिवेसत्ति) अस्यायमर्थः । अस्थानमभाजनमसौ भवति सम्यक्ज्ञानादीनां गुणानां । किंभूतोबहुरनर्थसंपादकत्वेनासदभिनिवेशोयस्य सबहुनिवेशः । यदिवा गुणानामस्थापनिकोऽनाधारोबहूनां दोषाणां च निवेशः स्थानमाश्रयइति । किंभूताः पुनरेवं भवंतीति दर्शयति । ये केचन दुर्गृहीतज्ञानलवाऽवलेपिनोज्ञाने श्रुतज्ञाने शंका ज्ञानशंका तया मृषावादं वदेयुः । एतदुक्तं भवति । सर्वज्ञप्रणीते आगमे शंकां कुर्वंत्ययं तत्प्रणीतएव नभवेदन्यथा वाऽस्यार्थः स्यात् । यदिवा ज्ञानशंकया पांडित्याभिमानेन मृषावादं वदेयुर्यथाहं ब्रवीमीति तथैव युज्यते नान्यथेति ॥ ३ ॥ किंचान्यत् । (जेयाविपुट्ठा इत्यादि) ये केचनाविदितपरमार्थाः स्वल्पतया समुत्सेकिनोऽपरेण पृष्टाः कस्मादाचार्यात्सकाशादधीतं श्रुतं भवद्भिरिति । ते तु स्वकीयमाचार्यं ज्ञानावलेपेन निन्हवानोऽपरं प्रसिद्धं प्रतिपादयंति । यदिवा मयैवैतत्स्वतउत्प्रेक्षितमित्येवं ज्ञानावलेपात् (पलिउंचयंतित्ति) निन्हुवते । यदिवा सदपि प्रमादस्खलितमाचार्यादिना लोचनादिके अवसरे पृ

ष्टाः संतोमातृस्थानेनाऽवर्णवादभयान्निन्हुवते । तएवं पलिउंचकानिन्हवं कुर्वाणाआदी यतइत्यादानं ज्ञानादिकं मोक्षोवा तमर्थं वंचयंति भ्रंशयंत्यात्मनः । खलुरवधारणे। वंचयं त्येव । एवमनुष्ठायिनश्चासाधवस्ते परमार्थतस्तत्त्वचिंतायामिहास्मिन् जगति साधुविचा रेवा साधुमानिनआत्मोत्कर्षायाऽसदनुष्ठानमानिनोमायान्वितास्ते एष्यंति यास्यंत्यनंत शोबहुशोघातं विनाशं संसारं वा अनवदग्रसंसारकांतारमनुपरिवर्तयिष्यंतीति । दोषद्वय दुष्टत्वात्तेषामेकं तावत्स्वयमसाधवोद्वितीयं साधुमानिनः । उक्तंच । पावं काऊण सयं, अप्पाणं शुद्धमेव ववहरइ ॥ दुगुणं करेइ पावं, वीयं बालस्स मंदत्तं ॥ १ ॥ तदेवमा त्मोत्कर्षदोषाद्बोधिलाभमप्युपहत्यानंतसंसारभाजोभवंत्यसुमतइति स्थितं ॥ ४ ॥

जे कोहणे होइ जगठ्ठभासी, विउसियं जे उ उदीरएज्जा ॥ अंधे
व से दंमपहं गहाय, अविउसिए घासति पावकम्मी ॥ ५ ॥
जे विग्गहीए अनायभासी, न से समे होइ अझंझपत्ते ॥ उव
वायकारी य हरीमणे य, एगंतदिठ्ठीय अमाइरूवे ॥ ६ ॥

अर्थ-(जे कोहणेहोइजगठ्ठभासी के०) जे क्रोधी थाय ते जगतार्थभाषी होय जगतार्थभाषी एटले जेमां जेवो दोष होय तेने तेवो कहे अर्थात् काणाने काणो कहे खोडाने खोडो कहे टुंटाने टुंटो कहे पांगलाने पांगलो कहे कोढीने कोढी कहे एवो प्रगट निठुर भाषण करनार होय (विउसियंजेउ के०) जे उपशमावेलो एवो जे कलह तेने वली (उदीरएज्जा के०) उदीरे ए पुरुषने जे फल थाय ते कहेछे. (सेके०) ते पुरुष (अंधेवदंमपहंगहाय के०) जेम कोइ आंधलो पुरुष लाकडी ग्रहण करीने मार्गने वि षे जातो थको अनेक कंटक चतुष्पदादिके करी पीडाय तेम (अविउसिए के०) अ कोविद एवोजे कलहकारी (पावकम्मी के०) पापकर्माचारी जीव ते पण (घासतिके०) चतुर्गतिक संसारमांहे दुःख पामे ॥ ५ ॥ (जेविग्गहीए के०) जेकोइ विग्रह एटले कलहकारी होय ते यद्यपि क्रिया तो केटलीक करे तथापि ते क्रिया विग्रह एटले शुद्ध प्रिय थाय तथा (अनायभासी के०) अन्यायनो बोलनार होय (नसेसमेहोइअझंझ पत्ते के०) ते पुरुष कलहरहित एवा सम्यक् दृष्टी तेना सरखो समभावी नहोय ते माटे साधु कलहकारी नहोय परंतु साधु केवो होय ते कहेछे. (उववायकारीयहरीम णेय के०) उपपातकारी एटले आचार्यनी आज्ञापालक तथा लज्जावंत मनवालो होय एटले अनाचार करतो थको आचार्यादिक थकी लज्जा पामे तथा (एगंतदिठ्ठीय के०) एकांतदृष्टी एटले जीवादिक पदार्थनो ज्ञाता होय एकांत श्रद्धावंत होय तथा (अमाइरूवे के०) मायारहित होय एवा पुरुषने साधु कहिए. ॥ ६ ॥

॥ दीपिका—यः स्वनावेन क्रोधनोरोषी नवति यश्च जगदर्थनाषी योयथावस्थितः पदार्थस्तं तथैव नाषते । तद्यथा । ब्राह्मणं डोडमिति वक्ति वणिजं किराटमिति शूद्र मानीरमिति श्वपाकं चांमालमिति काणं काणमेव वक्ति । खंजं खंजमेव चौरं चौरमिति । अंधमंधमित्यादि कविणं योवक्ति सजगदर्थनाषी निष्ठुरनाषीत्यर्थः । व्यवसितं समाप्तं द्वंद्व कलहं यः पुनरुदीरयेत् प्रज्वालयेत् सोऽधइव । यथांधोदंडमेवं गोदंडमार्गं गृहीत्वा व्रजन् घृष्यते कंटकश्वापदादिनिः पीड्यते । एवं सोपि (अविग्रोसियंति) अप शांतकलहः पापकर्मा घृष्यते पीड्यते संसारपीडानिः ॥ ५ ॥ योविग्रहिकः कलहप्रियोऽन्यायनापी न समोमध्यस्थोनवति अझंझा प्राझंझा माया कलहोवा मायाप्राप्तः कलहप्राप्तोवा सरागद्वेषवान् मायावांश्च नवतीत्यर्थः । एतद्दोषदर्शी उपपातकारी आचार्यादेशकरः न्हीर्लज्जासंयमस्तत्र मनोयस्य सन्हीमनाः एकांतेन तत्त्वेषु दृष्टिर्यस्य सएकांतदृष्टिः । एगंतसड्डित्तिपाठे एकांतश्रद्धावान् जिनागमे । अमायि निर्मायं रूपं यस्यस तथा ब्रह्मरहितइत्यर्थः ॥ ६ ॥

॥ टीका—मानविपाकमुपदर्श्याधुना क्रोधादिकषायदोषमुन्नावयितुमाह । (जेकोहणे इत्यादि) योह्यविदितकषायविपाकः प्रकृत्यैव क्रोधनोनवति तथा जगदर्थनाषी यश्च नवति । जगत्यर्थाजगदर्थाये यथा व्यवस्थिताः पदार्थास्तानानाषितुं शीलमस्य जगदर्थनाषी तद्यथा ब्राह्मणं डोडमिति ब्रूयात्तथा वणिजं किराटमिति शूद्रमानीरमिति श्वपाकं चांडालमित्यादि तथा काणं काणमिति तथा खंजं कुब्जं वडनमित्यादि तथाकुष्टिनं क्षयिणमित्यादि योयस्य दोषस्तं तेन खरं परुषं ब्रूयात् यः सजगदर्थनाषी । यदिवा जयार्थनाषी यथैवात्मनोजयोनवति तथैवाविद्यमानमप्यर्थं नाषते तच्छीलश्च येन केनचित्प्रकारेणाऽसदर्थनाषणेनाप्यात्मनोजयमिच्छतीत्यर्थः । (विउसियंति) विविधमवसितं पर्यवसितमुपशांतं द्वंद्व कलहं यः पुनरप्युदीरयेत् । एतडुक्तं नवति । कलहकारिनिर्मिथ्याडुष्कृतादिना परस्परं क्षामितेपि तद्ब्रूयाद्येन पुनरपि तेषां क्रोधादयोनवंति । सांप्रतमेतद्विपाकं दर्शयति । यथाह्यंधश्चक्षुर्विकलोदंडपथं गोदंडमार्गं प्रमुखोज्ज्वलं गृहीत्वाऽऽश्रित्य व्रजन् सम्यगकोविदतया घृष्यते कंटकश्वापदादिनिः पीड्यते एवमसावपि केवलं लिंगधार्यनुपशांतक्रोधः कर्कशनाष्यधिकरणोद्दीपकस्तथा (अविउसियत्ति) अनुपशांतद्वंद्वः पापमनार्यं कर्मानुष्ठानं यस्यासौ पापकर्मा घृष्यते चतुर्गतिके संसारे यातनास्थानगतः पौनःपुन्येन पीड्यतइति ॥५॥ किंचान्यत् । (जेविग्गहिएइयादि) यः कश्चिदविदितपरमार्थोविग्रहोयुद्धं सविद्यते यस्यासौ विग्रहिकोयद्यपि प्रत्युपेक्षणादिकाः क्रियाविधत्ते तथापि युद्धप्रियः कचिन्नवति तथाऽन्याय्यं नाषितुं शीलमस्य सोऽन्यायनाषी यत्किंचन नाष्यऽस्था

नजाषी गुर्वाद्यधिक्षेपकरोवा यश्चैवंनूतोनासौ समोरक्तद्विष्टतया मध्यस्थोनवति । तथा नाप्यफंफां प्राप्तोकलहप्राप्तोवा नजवत्यमायाप्राप्तः । यदिवा अफंफाप्राप्तैरकलहप्राप्तैः सम्यग्दृष्टिनिरसौ समोन नवति यतः, अतोनैवंविधेन नाव्यमपिलक्रोधनेनाकर्कशनाषिणा चोपशांतयुद्धानुदीरकेण न्यायनाषिणाऽफंफाप्राप्तेन मध्यस्थेन च नाव्यमिति। एवमनंतरोद्दिष्टदोषवर्जीसन्नुपपातकार्याचार्यनिर्देशकारी यथोपदेशं क्रियासु प्रवृत्तः । यदिवोपायकारित्ति) सूत्रोपदेशप्रवर्तकस्तथा न्हीर्लज्जासंयमोमूलोत्तरगुणनेदनिन्नस्तत्र मनोयस्यासौ न्हीमनाः । यदिवाऽनाचारं कुर्वन्नाचार्यादिन्योलज्जते सएवमुच्यते । तथैकांतेन तत्त्वेन जीवादिषु पदार्थेषु दृष्टिर्यस्यासावेकांतदृष्टिः।पाठांतरंवा (एगंतसड्डित्ति) एकांतेन श्रद्धावान् मौनींद्रोक्तमार्गे एकांतेन श्रद्धालुरित्यर्थः।चकारः पूर्वोक्तदोषविपर्यस्तगुणसमुच्चयार्थः । तद्यथा । ज्ञानपलिउंचकोक्रोधीत्यादि । तावदफंफाप्राप्तइति स्वतएवाह । (अमाइरूवेत्ति) अमायिनोरूपं यस्यासावमायिरूपोऽशेषछद्मरहितइत्यर्थः। न गुर्वादीन् छद्मनोपचरति नाप्यन्येन केनचित्सार्धं छद्मव्यवहारं विधत्तइति ॥ ६ ॥

स पेसले सुहुमे पुरिसजाए, जच्चन्निए चेव सुउज्जुयारे ॥ बहुंपि
अणुसासिए जे तहच्चा, समे हु से होइ अफंफपत्ते ॥ ७ ॥ जे
आवि अप्पं वसुमंति मत्ता, संखाय वायं अपरिक्क कुज्जा ॥ त
वेण वाहं सहिउत्ति मत्ता, अस्सं जणं पस्सति बिंबनूयं ॥ ८ ॥

अर्थ–(सपेसले के०) तेने आचार्यादिके घणो शिखव्यो ठतो पण यथार्थ तेवाजनावें वर्त्ते पण गुरु वचन विरोधि नथाय तेने पेशल एटले मनोहर विनयादिक गुणवंत जाणवो. तथा (सुहुमे के०) सूक्ष्म नावनो देखनार तथा (पुरुषजात के०) परमार्थथकी पुरुषार्थनो साधक तथा (जच्चन्निए के०) तेवीज जातिसहित सत्कुलोत्पन्न जाणवो (चेव के०) निश्चय थकी (सुउज्जुयारे के०) ते रुजु आचारी एटले सरल मार्गें प्रवर्त्ते तेवा पुरुषने (बहुंपिअणुसासिएजेतहच्चा के०) आचार्यादिके घणो शिखाव्यो ठतो मुखनुं राग फेरवे नही अर्थात् प्रसन्न मन राखे (समेहुसेहोइअफंफपत्ते के०) ते पुरुष श्रीवीतराग समान कलह रहित थाय ॥ ७ ॥ (जेआविअप्पंवसुमंतिमत्ता के०) जे कोइ लघुप्रकृति पोताने आत्माने वसुमंत एटले संयमवंत जाणीने (संखायवायंअपरिक्कुज्जा के०) सम्यक् परमार्थे अपरीक्ष थको आत्मोत्कर्ष अनिमान करे (तवेणवाहंसहिउत्तिमत्ता के०) तथा हुंज तपे करी सहितछुं माहारा समान बीजो कोइ तपस्वी नथी एवीरीते जाणीने अनिमान धारण करी (अस्संजणंपस्सतिबिंबनूयं के०) अन्य जन ने बिंबनूत गुणसुन्य आकार मात्र देखे एटले जलचंद्रमानी पेरे जाणे ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–क्वचित्प्रमादसंचलने सति आचार्यादिना बव्हप्यनुशास्यमानस्तथैव सन्मार्गानुसारिणी वा लेश्या चित्तवृत्तिर्यस्य सतथार्थः। एवंभूतोयः सपेशलोमृष्टवाक्यः सूक्ष्मदर्शित्वात्। पुरुषजातः सएव तत्त्वपुरुषार्थकारी सएव जात्यन्वितः सत्कुलोत्पन्नः। सुशीलोहि कुलीनः स्यान्नसुकुलोत्पत्तिमात्रेण सएव सुष्टु अतिशयेन ऋजुः संयमस्तस्य करणशीलः सएव समोमध्यस्थः झंझा क्रोधोमाया वा तामप्राप्तोभवति ॥ ७ ॥ यश्चापि वसु द्रव्यं संयमस्तद्वंतमात्मानं मत्वा तथा संख्या ज्ञानं तद्वंतमात्मानं मत्वा परमार्थमपरीक्ष्य वादमात्मोत्कर्षवादं कुर्यात् । तथा तपसा सहितोहमिति मत्वाऽन्यं जनं बिंबभूतं जलचंद्रवदर्थशून्यं पश्यति अवगणयतीत्यर्थः ॥ ८ ॥

॥ टीका–पुनरपि सद्गुणोत्कीर्तनायाह । (सपेशलेइत्यादि) योहि कटुसंसारोद्विग्नः क्वचित्प्रमादस्खलिते सत्याचार्यादिना बह्वप्यनुशास्यमानश्चोद्यमानस्तथैव सन्मार्गानुसारिण्यर्चा लेश्या चित्तवृत्तिर्यस्य भवतीति तथार्चः। यश्च शिक्षां ग्राह्यमाणोपि तथार्चोभवति सपेशलोमिष्टवाक्योविनयादिगुणसमन्वितः सूक्ष्मः सूक्ष्मदर्शित्वात्सूक्ष्मभाषित्वा द्वा सूक्ष्मः सएव पुरुषजातः सएव परमार्थतः पुरुषकार्यकारी नापरोयोऽनायुधतपस्विजनपराजिते नापि क्रोधेन जीयते तथाऽसावेव जात्यन्वितः सुकुलोत्पन्नः । सच्छीलान्वितोहि कुलीन इत्युच्यते न सुकुलोत्पत्तिमात्रेण । तथा सएव सुष्ठुतिशयेन ऋजुः संयमस्तत्करणशीलोऋजुकरः । यदिवा (उज्जुचारेत्ति) यथोपदेशं यः प्रवर्तते नतु पुनर्वक्रतयाऽचार्यादिवचनं विलोमयति प्रतिकूलयति यश्च तथार्चः पेशलः सूक्ष्मभाषी जात्यादिगुणान्वितः क्वचिदवक्रः समोमध्यस्थोनिंदायां पूजायां च न रुष्यति नापि तुष्यति तथा झंझा क्रोधोमाया वा तां प्राप्तोझंझाप्राप्तः। यदि वा ऽझंझाप्राप्तैर्वीतरागैः समस्तुल्योभवतीति ॥ ७॥ प्रायस्तपस्विनां ज्ञानतपोऽवलेपोभवतीत्यतस्तमधिकृत्याह । (आविअप्पंइत्यादि) यश्चापि कश्चिल्लघुप्रकृतिरल्पतयाऽत्मानं वसु द्रव्यं तच्च परमार्थचिंतायां संयमस्तद्वंतमात्मानं मत्वाऽहमेवात्र संयमवान् मूलोत्तरगुणानां सम्यग्विधायी नापरः कश्चिन्मत्तुल्योस्तीति । तथा संख्यायंते परिछिद्यंते जीवादयः पदार्थायेन तज्ज्ञानं संख्येत्युच्यते तद्वंतमात्मानं मत्वा तथा सम्यक् परमार्थमपरीक्ष्यात्मोत्कर्षवादं कुर्यात्तपसा द्वादशभेदभिन्नेनाहमेवात्र सहितोयुक्तो न मत्तुल्योविकृष्टतपोनिष्टप्तदेहोस्तीत्येवं मत्वाऽऽत्मोत्कर्षाभिमानीत्यन्यं जनं साधुलोकं गृहस्थलोकं वा बिंबभूतं जलचंद्रवत्तदर्थशून्यं कूटकार्षापणवद्वा लिंगमात्रधारिणं पुरुषाकृतिमात्रं वा पश्यत्यवमन्यते । तदेवं यद्यन्मदस्थानं जात्यादिकं तत्तदात्मन्येवारोप्यापरमवभूतं पश्यतीति ॥ ८ ॥

एगंत कूमेण उ से पलेइ, ण विज्जती मोणपयंसि गोत्ते ॥ जे माण णठेण विउक्कसेज्जा, वसुमन्नतरेण अबुज्झमाणे ॥ ए ॥ जे माहणो खत्तियजायए वा, तहुग्गपत्ते तह लेछई वा ॥ जे पवईए परदत्तभोई, गोत्तेण जे थप्नति माणबद्धे ॥ १० ॥

अर्थ–ते पुरुष (एगंतकूमेणउसेपलेइ के०) एकांत कूटपाशे करीने जेम मृग कूटपासे पड्यो थको डुःखनु विभागी थायछे तेनी पेरे ते मंदबुद्धि पण संसारमांहे परिभ्रमण करे ते पुरुष कदापि (मोणपयंसि के०) मौनपद एटले संयमपद तेनेविषे (णविज्जती के०) सर्वथा प्रकारे विद्यमान नथी एम समजवुं तथा ते पुरुष (गोत्ते के०) उंचगोत्रने विषे पण न प्रवर्त्ते किंतु ते अत्यंत हीन गोत्रनेज पामे तथा (जे माणणठेणविउक्कसेज्जा के०) जे मान एटले पूजाने अर्थे व्युत्कर्ष एटले विविध प्रकारे अभिमान करे तेपण संयमने विषे नथी एम जाणवुं तथा जे (वसु के०) संयमने ग्रहण करीने पछी (अन्नतरेण के०) मंदविपाकना उदय थकी अन्य कोइ मद स्थानकने विषे माचे ते (अबुज्झमाणे के०) निश्चे थकी परमार्थने अजाणतो अज्ञानी थको संसारमां परिभ्रमण करे ॥ ए ॥ (जेमाहणोखत्तियजायएवा के०) तथा जे ब्राह्मणजाति अथवा क्षत्रियजाति ते इक्ष्वाकुवंशादिक तेना भेद कहेछे. (तहुग्गपत्तेतहलेछईवा के०) तथा जे उग्रपुत्र तथा लेछई एटले राजपुत्र विशेष नवमल्लिक नवलेछिक एटला कुलमां उत्पन्न थयला संसारने असार जाणीने राज्य प्रमुख त्यागीने (जेपवईए के०) जे प्रवर्जित थया एटले चारित्रवान थया ते एवा छता पण (परदत्तभोई के०) पारको दीधो एवो जे आहार तेने भोगवे एटले शुद्धाहार ग्रहण करे (गोत्तेणजेथप्नतिमाणबद्धे के०) परंतु गोत्रने विषे गर्व नकरे एटले शुद्धाहारनुं ग्रहण करनार एवो चारित्रीउ पोताना उंच गोत्रने विषे गर्व करे नही गोत्र केवोछे तोके मानबद्ध एटले ब्राह्मण तथा क्षत्रीय वंशना उपना स्वभावे पोताना वंशना अभिमानी थायछे तेम छतां पण चारित्र आदस्या पछी कोइपण प्रकारना गोत्रनुं आहार ग्रहण करे परंतु शुद्धाहार ग्रहण करे पण पोताना गोत्रनो गर्व करीने तेवाज गोत्रनो अशुद्ध आहार लेवानी इछा चारित्रिउ करे नही ए अभिप्रायछे. ॥ १० ॥

॥ दीपिका–यथा कूटेन पाशेन बद्धोमृगादिः परवशोऽडुःखी स्यात्तथा भावकूटेन स्नेहेन एकांततोऽसौ संसारं पर्येति बंभ्रमीति । मौनपदे संयमे सन् प्रवर्तते। किंभूते संयमे गोत्रे गां वाचं त्रायतइति गोत्रं सर्वागमाधारभूतं तस्मिन् । यश्च माननं सत्कारस्तस्या

र्थः प्रयोजनं तेन आत्मानं व्युत्कर्षयेत् मदवंतं कुर्यात् तथा च सु संयमस्तमादायान्यतरेण ज्ञानादिना मदस्थानेन माद्यति ससर्वज्ञमतं तत्त्वतोन वेत्तीति नावः ॥ ए ॥ योजात्या ब्राह्मणः क्षत्रियजातीयोवा उग्रपुत्रः क्षत्रियविशेषः (लेबइत्ति) क्षत्रियविशेषएव । एवं विशिष्टकुलोद्भूतः प्रव्रजितः परदत्तनोजी शुद्धाहारग्राही गोत्रे उच्चैर्गोत्रे उत्पन्नोपि नैव स्तंनं गर्वं यायात् । किंनूते गोत्रे मानबद्धे अनिमानास्पदे ॥ १० ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (एगंतकूडेइत्यादि) कूटवत्कूटं यथा कूटेन मृगादिर्बद्धः परवशः सन्नेकांतदुःखनाग्नवति । एवं नावकूटेन स्नेहमयेनैकांततोऽसौ संसारचक्रवालं पर्येति तत्र वा प्रकर्षेण लीयते प्रलीयतेऽनेकप्रकारं संसारं बंभ्रमीति । तुशब्दात्कामादिना वा मोहेन मोहितोबहुवेदने संसारे प्रलीयते । यश्चैवंनूतोऽसौ न विद्यते न कदाचन संनवति । मुनीनामिदं मौनं तच्च तत्पदं च मौनपदं संयमस्तत्र मौनींद्रेवा पदे सर्वज्ञप्रणीतमार्गे नासौ विद्यते । सर्वज्ञमतमेव विशिनष्टि । गां वाचं त्रायतेऽर्थाविसंवादनतः पालयतीति गोत्रं तस्मिन्समस्तागमाधारनूतइत्यर्थः । उच्चैर्गोत्रे वा वर्तमानस्तदनिमानग्रहग्रस्तोमौनींद्रपदे न वर्तते । यश्च माननं पूजनं सत्कारस्तेनार्थः प्रयोजनं तेन माननार्थेन विविधमुत्कर्षयेदात्मानं योहि माननार्थेन लानपूजासत्कारादिना मदं कुर्यान्नासौ सर्वज्ञपदे विद्यतइति पूर्वेण संबंधः । तथा वसु द्रव्यं तच्चेह संयमस्तमादाय तथान्यतरेण ज्ञानादिना मदस्थानेन परमार्थमबुध्यमानोमाद्यति पवन्नपि सर्वशास्त्राणि तदर्थं वा गच्छन्नपि नासौ सर्वज्ञमतं परमार्थतोजानातीति ॥ ए ॥ सर्वेषां मदस्थानानामुत्पत्तेरारभ्य जातिमदोबाह्यनिमित्तनिरपेक्षोयतोनवत्यतस्तमधिकृत्याह । (जेमाहणेइत्यादि) योहि जात्या ब्राह्मणोनवति क्षत्रियोवा इक्ष्वाकुवंश्यादिकः । तद्भेदमेव दर्शयति । उग्रपुत्रः क्षत्रियविशेषजातीयः । तथा (लेबइत्ति) क्षत्रियविशेषएव । तदेवमादिविशिष्टकुलोद्भूतोयथावस्थितसंसारस्वनाववेदितया यः प्रव्रजितस्त्यक्तराज्यादिगृहपाशबंधनः परैर्दत्तं नोक्तुं शीलमस्य परदत्तनोजी सम्यक्संयमानुष्ठायी गोत्रे उच्चैर्गोत्रे हरिवंशस्थानीये समुत्पन्नोपि नैव स्तंनं गर्वमुपयायादिति । किंनूते गोत्रे अनिमानबद्धे अनिमानास्पदे इति । एतदुक्तं नवति । विशिष्टजातीयतया सर्वलोकानिमान्योपि प्रव्रजितः सन् कृतशिरस्तुंडमुंडनोनिक्षार्थं परगृहाण्यटन् कथं हास्यास्पदं गर्वं कुर्यान्नैवासौ मानं कुर्यादिति तात्पर्यार्थः ॥ १० ॥

न तस्स जाई व कुलं व ताणं, णसन्न विज्जा चरणं सुचिन्नं ॥ णिक्खम्म से सेवइ गारिकम्मं, ण से पारए होइ विमोयणाए ॥ ११ ॥

णिक्किंचणे भिक्कु सुलूहजीवी, जे गारवं होइ सलोगगामी ॥
आजीवमेयं तु अबुज्झमाणो,पुणोपुणो विप्परियासुवेंति ॥ १२ ॥

अर्थ-(नतस्सजाईव कुलंवताणं के०) ते अभिमानी पोताना गोत्रसंबंधी मदना करनारने जाति एटले जे मातानुं पक्ष अने कुल एटले पितानुं पक्ष ए बंनेनुं मद त्राणने अर्थे न थाय कारणके संसारमां भ्रमण करतां प्राणीने मातानी जाति अने पितानुं कुल ते कांइ त्राण भणी नथाय हवे जे पदार्थ जीवने त्राण थाय ते कहेछे (ण सुबविज्जाचरणं सुचिन्नं के०) विद्या एटले ज्ञान अने चरण एटले चारित्र सुचीर्ण एट ले ए बन्नेने सारीरीते आचस्या थकी मुक्तिनुं कारण थायछे. अर्थात् ज्ञान अने क्रिया ए बे विना बीजो कोई जीवने शरण नथी (णिक्कम्मसेसेवइगारिकम्मं के०) माटे जे पुरुष ग्रहस्थपणा थकी णिक्कम्म एटले निकली चारित्र आदरीने फरी आ गारीनो कर्त्तव्य जे जातिमदादिक तेने सेवे अथवा सावद्यारंभादिक सेवे (णसेपारए होइविमोयणाए के०) ते पुरुष संसारनो पारंगामि न थाय केमके ज्ञान, दर्शन अने चारित्र एज मुक्तिना कारणछे परंतु जातिकुलादिकनो मद ते कांई मुक्तिनो कारण नथी एम जाणवुं ॥ ११ ॥ (णिक्किंचणेभिक्कु सुलूहजीवि के०) जे निकिंचन निपरि ग्रही सुलुक्खजीवी एटले अंतप्रांत आहारनो लेनार होय तेने भिक्कु एटले साधु जाणवो अने (जेगारवं होइसलोगगामी के०) जे गर्ववंत होय श्लाघा एटले प्रसंसानो कामि एटले वांछा करनार होय (आजीवमेयं तुअबुज्झमाणो के०) ते जीव आजीविका मात्र नो करनार छता शुद्ध संयमनो अजाण एवो छतो (पुणोपुणोविप्परियासुवेंति के०) ते जीव फरी फरी विपर्यासने पामे एटले वली वली जन्ममरणादिके करीने घणो संसारने विषे परिभ्रमण करे ॥ १२ ॥

॥ दीपिका-तस्याभिमानवतोजातिमदः कुलमदोवाऽत्र संसारक्रमणे शरणं नस्या त् । मातृभवा जातिः पितृभवं कुलमेतडुपलक्षणादन्यदपि पदस्थानं न त्राणाय । यत्राणं तदाह । सुचीर्णं विद्या ज्ञानं चरणं चारित्रंच तस्मादन्यत्र त्राणाशा न विद्यते । ज्ञानक्रियाभ्यामेव मोक्षइति वचनात् । एवंसत्यपि कश्चित् निष्क्रम्य प्रव्रज्या गृहीत्वापि अगारिणां गृहस्थानां कर्म सावद्यक्रियां सेवते न च कर्ममोचनाय पारगोभवति ॥ ११ ॥ बाह्यार्थेन निष्किंचनोभिक्षुः सुरूक्षजीवी वल्लचणकादिप्रांताहारएवंभूतोपि क श्चिद्गौरवप्रियोभवति । तथा श्लोककामी आत्मश्लाघाभिलाषी च स्यात् । नचैवंभूतो निष्किंचनत्वादिकमाजीवमात्मवर्तनोपायं कुर्वाणः परमार्थमबुध्यमानः संसारे विपर्या सं जन्ममरणाद्युपद्रवमुपैति ॥ १२ ॥

॥ टीका—न चासौ मानः क्रियमाणोगुणायेति दर्शयितुमाह । (नतस्सजाईत्यादि) नहि तस्य लघुप्रकृतेरभिमानोद्धुरस्य जातिमदः कुलमदोवा क्रियमाणः संसारं पर्यटत स्त्राणं भवति । नह्यभिमानोजात्यादिकऐहिकामुष्मिकगुणयोरुपकारीति । इहच मातृसमु त्थाजातिः पितृसमुत्थं कुलं एतच्चोपलक्षणमन्यदपि मदस्थानं न संसारत्राणायेति । यत्पुनः संसारोत्तारकत्वेन त्राणसमर्थं तद्दर्शयति । ज्ञानं च चरणं च ज्ञानचरणं तस्मादन्यत्र संसारोत्तारणत्राणाशा न विद्यते । एतच्च सम्यक्त्वोपबृंहितं सत् सुष्ठु चीर्णं सुचीर्णं संसा राडुत्तारयति । ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षइति वचनात् । एवंभूते सत्यपि मोक्षमार्गे निष्क्रम्या पि प्रव्रज्यां गृहीत्वापि कश्चिदपुष्टधर्मा संसारोन्मुखः सेवतेऽनुतिष्ठत्यभ्यस्यति पौनःपुन्ये न विधत्ते अगारिणां गृहस्थानामंगं कारणं जात्यादिकं मदस्थानं पाठांतरं वा (अगारि कम्मंति) अगारिणां कर्मानुष्ठानं सावद्यमारंभं जातिमदादिकं वा सेवते । नचासावगा रिकर्मणां सेवकोऽशेषकर्ममोचनाय पारगोभवति । निःशेपकर्मक्षयकारी न भवतीति भा वः । देशमोचनात्तु प्रायशः सर्वेषामेवासुमतां प्रतिक्षणमुपजायतइति ॥ ११ ॥ पुनरप्य भिमानदोषाविर्भावनायाह । (णिक्किंचणेइत्यादि) बाह्येनार्थेन निष्किंचनोपि भिक्षण शीलोभिक्षुः परदत्तभोजी तथा सुष्ठुरूक्षमंतप्रांतं वल्लचणकादि तेन जीवितुं प्राणधारणं कर्तुं शीलमस्य स सुरूक्षजीवी एवंभूतोपि यः कश्चिद्गारवक्रियोभवति । तथा श्लोक कामी आत्मश्लाघाभिलापी भवति । सचैवंभूतः परमार्थमबुध्यमानएतदेवाकिंचनत्वं सुरूक्षजीवित्वं वात्मश्लाघा तत्परतया आजीवमाजीविकामात्मवर्तनोपायं कुर्वाणः पुनःपुनः संसारकांतारे विपर्यासं जन्मजरामरणरोगशोकोपद्रवमुपैति गच्छति तदुत्तरणा यान्युद्यतोवा तत्रैव निमज्जतीत्ययं विपर्यासइति ॥ १२ ॥

जे भासवं भिक्खु सुसाहुवादी, पडिहाणवं होइ विसारएय ॥
अगाढपन्ने सुविभावियप्पा, अन्नं जणं पन्नसा परिहवेज्जा॥१३॥
एवं ण से होइ समाहिपत्ते, जे पन्नवं भिक्खु विउक्कसेज्जा ॥ अ
हवा वि जे लाभमयावलित्ते, अन्नं जणं खिंसति बालपन्ने॥ १४ ॥

अर्थ—(जे भासवंभिक्खुसुसाहुवादी के०) जे साधु भापाना गुण तथा दोषनो जाण तथा सुसाहुवादी एटले प्रिय वचननो बोलनार एटले क्षीराश्रव मध्वाश्रव लब्धीवा लो वली (पडिहाणवंहोइ के०) प्रतिभाववंत एटले उत्पातिकादिक चार प्रकारनी बुद्धिनो पारंगामि होय तथा (विसारएय के०) विशारद एटले पंमित अर्थ ग्रहण करवाने समर्थ (आगाढपन्ने के०) आगाढप्रज्ञ एटले प्रस्ताववेता अर्थात् द्रव्य, क्षेत्र,

काल अने नावनो जाण तथा (सुविनावियप्पा के०) नानाप्रकारनी नावनायें करी ने नाव्योछे आत्मा जेमनो एवो छतो (अन्नंजणंपन्नसापरिहवेज्जा के०) अन्य जन प्रत्ये पोतानी प्रज्ञाये करी एटले पोताना जाणपणे करी पराजवे अर्थात् एम जाणे जे माहारा समान कोइ जाण पुरुष नथी एरीते बीजाने तृणवत गणे. ॥ १३ ॥ एवा साधुने दोष कहेछे. (एवंणसेहोइसमाहिपत्ते के०) एरीते अहंकारनो कर नार जे साधु होय ते समाधिने प्राप्त थयो न कहेवाय (जेपन्नवंनिरकुविउक्कसेज्जा के०) जे साधु प्रज्ञावंत थईने व्युत्कर्ष एटले गर्वने धारण करे (अहवाविजेलानमयावलित्ते के०) अथवा जे कोइ साधु अल्पांतराय थको लानवान् एटले बीजाने उपकरण आ पवाने समर्थ छतो लाजना मदे करी लिप्त थाय एटले मत्त थाय (अन्नंजणंखिंसति बालपन्ने के०) अन्य जनने खिंसे एटले बीजानी निंदा करे अने एम विचारे जे सर्व साधारण सय्या संस्तारक प्रमुख लाववाने हुंज समर्थछुं बीजा बापडा शुं ? पेट नरवाने पण समर्थ नथी एवो साधु बाल एटले मूर्ख बुद्धिवालो जाणवो. ॥ १४ ॥

॥ दीपिका—नाषावान् नाषागुणदोषज्ञोयोनिक्षुः सुसाधुवादी हितमितवादी प्रतिना नमुत्पत्तिक्यादिबुद्धिस्तद्वान् विशारदोऽर्थग्रहणसमर्थः । अगाढा तत्त्वनिष्ठा प्रज्ञा बु द्धिर्यस्य सोगाऽढप्रज्ञः सुविनावितोधर्मवासनावासितआत्मायस्य सतथा । एनिर्गुणैः साधुर्नवति यश्च मदवानन्यं जनं स्वकीयया प्रज्ञया परिनवेत् ॥ १३ ॥ तद्दोषानाह । ए वं परपरिनवकारी समाधिर्धर्मध्यानं तत्र प्राप्तोन नवति । यः प्रज्ञावान् निक्षुरुत्कर्षेत् ग र्वं कुर्यात् । अथवा योलानमदावलिप्तः स्यात् लानमदेन व्याप्तः स्यात्सोन्यं जनं निंदति बालप्रज्ञोमूर्खप्रायस्तन्निंदयाच समाधिं न प्राप्नोतीति ॥ १४ ॥

॥ टीका—यस्मादमी दोषाः समाधिमाख्यातमसेवमानानामाचार्यपरिनाषिणां वा त स्मादमीनिः शिष्यगुणैर्नाव्यमित्याह । (जेनासवमित्यादि) नाषागुणदोषज्ञतया शो ननाषायुक्तोनाषावान् निक्षुः साधुस्तथा सुष्टु साधु शोननं हितं मितं प्रियं वदितुं शी लमस्येत्यसौ सुसाधुवादी क्षीरमध्वाश्रववादीत्यर्थः । तथा प्रतिना नामौत्पत्तिक्यादिबुद्धि गुणसमन्वितत्वेनोत्पन्नप्रतिनत्वं तत्प्रतिनानं विद्यते यस्यासौ प्रतिनानवान् अपरेणा क्षिप्तस्तदनंतरमुत्तरदानसमर्थः । यदिवा धर्मकथावसरे कोयं पुरुषः कंच देवताविशेषं प्रणतः कतरद्वा दर्शनमाश्रितइत्येवमासन्नप्रतिनतया यथायोगमाचष्टे तथा विशारदोऽर्थ ग्रहणसमर्थोबहुप्रकारार्थकथनसमर्थोवा चशब्दाच्च श्रोत्रनिप्रायज्ञस्तथा अगाढाऽवगाढा परमार्थपर्यवसिता तत्त्वनिष्ठा प्रज्ञा बुद्धिर्यस्यासावगाढप्रज्ञस्तथा सुष्टु विविधं नावितोधर्म

वासनया वासितआत्मा यस्यासौ सुविनावितात्मा । तदेवमेनिः सत्यनाषादिनिर्गुणैः शोननः साधुर्नवति । यश्चैनिरेव निर्जराहेतुनूतैरपि मदं कुर्यात्तद्यथाऽहमेव नाषाविधिज्ञ स्तथा साधुवाद्यहमेवच न मत्तुल्यः प्रतिनानवानस्ति नापि मत्समानोलौकिकोलोको त्तरशास्त्रार्थविशारदोऽवगाढप्रज्ञः सुनावितात्मेति चैवमात्मोकर्षवानन्यं जनं स्वकीयया प्र ज्ञया परिनवेत् एवं मन्यते । तथाहि । किमनेन वाऽकुंठेन डर्डुरूढेन कुंडिकाकार्पासिक तुल्येन खसूचिना कार्यमस्ति क्वचित्सनायां धर्मकथावसरे वेत्येवमात्मोत्कर्षवान् न वति । तथाचोक्तं । अन्यैः स्वेछारचितानर्थविशेषान् श्रमेण विज्ञाय ॥ कृत्स्नं वाङ्मयमितइति खादत्यंगानि दर्पेणेत्यादि ॥ १३ ॥ सांप्रतमेतद्दोषानिधित्सया ह । (एवंणसेइत्यादि) एवमनंतरोक्तया प्रक्रियया परपरिनवपुरःसरमात्मोत्कर्षं कु र्वन्नशेषशास्त्रार्थविशारदोपि तत्त्वार्थगाढप्रज्ञोप्यसौ समाधिं मोक्षमार्गं ज्ञानदर्शनचारित्र रूपं धर्मध्यानाख्यं वा न प्राप्तोनवत्युपर्यैवासौ परमार्थोदन्वतः प्लवते । कथंनूतोनव तीति दर्शयति । योह्यविदितपरमार्थतयात्मानं सम्बेमुषीकं मन्यमानः स्वप्रज्ञया निक्षु रुत्कर्षगर्वं कुर्यान्नासौ समाधिं प्राप्तोनवतीति प्राक्तनेन संबंधः । अन्यदपि मदस्थानदोष मुद्घट्टयति । अथवेति पक्षांतरे । योह्यल्पांतरायोलब्धिमानात्मकृते परस्मै चोपकरणादिक मुत्पादयितुमलं सलघुप्रकृतितया लानमदावलिप्तोनवति तदवलिप्तश्च समाधिमप्राप्तो नवति । सचैवंनूतोऽन्यं जनं कर्मोदयादलब्धिमंतं खिंसइत्ति निंदति परिनवति वक्ति च नमत्तुल्यः सर्वसाधारणः शय्यासंस्तारकाद्युपकरणोत्पादकोविद्यते किमन्यैः स्वोदरनरण व्यग्रतया काकप्रायैः कृत्यमस्तीत्येवं बालप्रज्ञोमूर्खप्रायोऽपरजनापवादं विदध्यादिति तदेवं प्रज्ञामदावलेपादन्यस्मिन् जने निंद्यमाने बालसदृशैर्नूयते यतोतः प्रज्ञामदोन विधे योन केवलमयमेव विधेयोन्यदपि मदस्थानं संसारजिहीर्षुणा नविधेयमिति ॥ १४ ॥

पन्नामयं चेव तवोमयंच, णिन्नामए गोयमयं च निक्कू ॥ आ
जीवगं चेव चउब्रमाहु, से पंमिए उत्तम पोग्गलेसे ॥ १५ ॥ ए
याइं मयाइ विगिंच धीरा, ण ताणि सेवंति सुधीरधम्मा ॥ ते स
वगोत्तावगया महेसी, उच्चं अगोत्तं च गतिं उवेंति ॥ १६ ॥

अर्थ—(पन्नामयंचेवतवोमयंच के०) प्रज्ञानो मद तेम वली तपनो मद एटले हुं बुद्धिवान बुं हुं तपस्यावान बुं एवो जे मद तेने (णिन्नामए के०) नमाडे एटले एवो मद नकरे तथा (गोयमयंचनिक्कू के०) गोत्रनो मद साधु नकरे एटले माहरो उंच गोत्रने हुं उत्तम कुलमां जन्म पाम्योबुं एवो अहंकार साधु नकरे (आजीवगंचेवचउ

ब्माहु के०) आसमंतथी जीते आजीविकाअर्थः एटले चोथो आजीविक एटले अर्थ अर्थात् धन तेनो मद साधु नकरे एम बीजो पण कोइ प्रकारनो मद नकरे (सेपंमि एउत्तमपोग्गलेसे के०) ते पंमित उत्तम पुजलने विषे पोते निस्पृह एवा आत्मावालो ते साधु जाणवो ॥ १५ ॥ (एयाइंमयाइविगिंचधीरा के०) ए पूर्वोक्तजे प्रज्ञादिक मद ना स्थानक कह्या तेने धैर्यवान साहसीक पुरुष संसारना कारण जाणीने पोताना आत्मा थकी जूदा करे (एताणिसेवंतिसुधीरधम्मा के०) एटला मदना स्थानकने सुप्र तिष्ठित जेनो धर्मछे एवा पुरुष नसेवे एटले आदरे नही (तेसव्वगोत्तावगयामहेसी के०) ते समस्त गोत्रादिक मदरहित एवो महाऋषीश्वर जे होय एवाने फल कहेछे. (उच्चंअ गोत्तंचगतिंवयंति के०) उंच अने अगोत्र एटले जेने विषे नामगोत्रादिक कर्म नथी तेवी गति पामे एटले ते साधु मोक्षने विषे जाय ॥ १६ ॥

॥ दीपिका—प्रज्ञा बुद्धिस्तया मदस्तं तपोमदं च निर्नामयेन्निश्चयेनापनयेत् गोत्रमदं च निक्कुर्नामयेत् । आजीवोर्थनिचयस्तं गच्छत्याजीवगोऽर्थमदस्तं च चतुर्थं नामयेत् ॥ तु शब्दाछेषानपि मदान् वर्जयेत् सपुजलआत्मा पंडितउत्तमश्च स्यात् ॥ १५ ॥ एतानि प्र ज्ञादीनि मदस्थानानि विगिंच पृथक्कुर्याद्वर्जयेत् । धीराज्ञाततत्त्वाः । सुधीरः सुप्रतिष्ठि तोधर्मोयेषां ते सुधीरधर्माणएवंनूतास्तानि मदस्थानानि नासेवंते ते सर्वस्माडुच्चैर्गोत्रा देरपगतामहर्षयउच्चां मोक्षाख्यां गतिं व्रजंति । अगोत्रां गोत्रकर्मोपलक्षणादन्यदपि कर्म तत्र न विद्यतइति ॥ १६ ॥

॥ टीका—तद्दर्शयितुमाह । (पन्नामयंचेवेत्यादि) प्रज्ञया तीक्ष्णबुध्या मदः प्रज्ञाम दस्तंच तपोमदं निश्चयेन नामयेन्निर्नामयेदपनयेदहमेव यथाविधशास्त्रार्थस्य वेत्ता तथा हमेव विकृष्टतपोविधायी नापि तपसोग्लानिमुपगच्छामीत्येवं रूपं मदं न कुर्यात्तथोच्चै र्गोत्रे इक्ष्वाकुवंशहरिवंशादिके संनूतोहमित्येवमात्मकं गोत्रमदंच नामयेदिति । आसमं ताज्जीवंत्यनेनेत्याजीवोऽर्थनिचयस्तं गच्छत्याश्रयत्यसावाजीवगोऽर्थमदस्तं च चतुर्थं नाम येच्चशब्दाछेषानपि मदान्नामयेत्तन्नामनाच्चा सौ पंमितस्तत्त्ववेत्ता नवति । तथाऽसावेव स मस्तमदापनोदकउत्तमपुजलआत्मा नवति । प्रधानवाची वा पुजलशब्दस्ततश्चायमर्थः । उत्तमोत्तमोमहतोपि महीयान् नवतीत्यर्थः ॥१५॥ सांप्रतं मदस्थानानामकरणीयत्वमुप दर्श्योपसंजिहीर्षुराह । (एयाइंइत्यादि) एतानि प्रज्ञादीनि मदस्थानानि संसारकारणत्वेन सम्यक्परिज्ञाय (विगंचत्ति) पृथक्कुर्यादात्मनोऽपनयेदिति यावत् । धीर्बुद्धिस्तया राजंतइति धीराविदितवेद्यानैतानि जात्यादीनि मदस्थानानि सेवंत्यनुतिष्ठंति । के एते । ये सुधीराः

सुप्रतिष्ठितोधर्मः श्रुतचारित्राख्योयेषां ते सुधीरधर्माणस्ते चैवंभूताः परित्यक्तसर्वमदस्थाना महर्षयस्तपोविशेषशोषितकल्मषाः सर्वस्माडच्चैर्गोत्रादेरपगतागोत्रोपगताः संतउच्चां मोक्षाख्यां सर्वोत्तमां वा गतिं व्रजंति गच्छंति चशब्दात्पंचमहाविमानेषु कल्पेषु कल्पातीतेषु वा व्रजंति। अगोत्रोपलक्षणाच्चान्यदपि नामकर्मायुष्कादिकं तत्र नविद्यतइति इष्टव्यं ॥ १६ ॥

भिक्खू मुयच्चे कय दिठधम्मे, पाठांतरे (तहदिठधम्मे) गामं च णगरं च अणुप्पविस्सा ॥ से एसणं जाण मणेसणं च, अन्नस्स पाणस्स अणाणुगिद्धे ॥ १७॥ अरतिं रतिं च अभिभूय भिक्खू, बहूजणे वा तह एगचारी ॥ एगंतमोणेण वियागरेज्जा, एगस्स जंतो गति रागतीय ॥ १८ ॥

अर्थ-(भिक्खू के०) ते साधु (मुयच्चे के०) शरीर संस्काररहित (कयदिठधम्मे के०) तथा दृष्ट एटले दीठोछे यथावस्थित धर्म जेणे अथवा दृढधर्मि एटले धर्मने विषे दृढ एवो छतो कोइक अवसरे (गामंचणगरंचअणुप्पविस्सा के०) भिक्षादिकने अर्थे ग्राम नगर द्रोण मडादिकने विषे प्रवेश करे (सेएसणंजाणमणेसणंच के०) ते एषणा एटले आहारनी शुद्धि जाणतो तथा अनेषणीय एटले आहारना अशुद्धतापणाने पण जाणतो थको उद्गमादिक दोषने सम्यक् प्रकारे टालतो थको (अन्नस्स पाणस्सअणाणुगिद्धे के०) अन्नने विषे तथा पाणीने विषे अगृद्ध थको लोल्यता रहित एवो छतो साधु विचरे ॥ १७ ॥ (अरतिंरतिंचअभिभूयभिक्खू के०) कदाचित साधुने अंतप्रांत भोजने तथा अस्ताने करी कर्म योगें संयमने विषे अरति उपजे अने असंयमने विषे रति उपजे तेवारे संसारनुं स्वभाव अस्थिर जाणीने नरकादिकना दुःखने स्मरण करतो थको उत्पन्न थयली रति अरतिनुं निराकरण करे एम रति अरतिने जीतीने सूधो संयम पाले (बहूजणेवातहएगचारीके०) तथा घणा जन सहित छतो तथा एकचारी एटले एकलो छतो पूछयो अथवा नपूछयो थको पण (एगंतमोणेणवियागरेज्जा के०) एकांत निरवद्य भाषा बोले कारणके अन्यजनोनो दाक्षिण्यपणो ते जीवने त्राण भणी नथाय तेमाटे धर्मकथाने प्रस्तावें साधु एकांत निरवद्य भाषा बोले अने वीजे प्रस्तावे मौन रहे (एगस्सजंतोगतिरागतीय के०) जीवने गति आगति ते एकला नेज करवी पडेछे. त्यारे जीवने एकलो परलोक गमनागमन करता एक धर्म विना वीजो कोइ सहायकारी नथी एवीरीते साधु पोताना मनमां जाणे ॥ १८ ॥

॥ दीपिका—सभिक्षुर्मृतेच स्नानादिसंस्काराभावादर्चा शरीरं यस्य सम्मृतार्चः। तथा

कृतआचरितोदृष्टोऽव्यवस्थितोऽवगतश्च धर्मोयेन सतथा । एवंनूतोग्रामं नगरं वाऽनुप्रविश्य निक्षार्थमेषणां गवेषणग्रहणैषणां तथाऽनैषणामुङ्गमदोषादिकां च जानन्नन्नस्य पानस्य वाऽननुगृध्धोऽनासक्तः सम्यग्विहरेत् ॥ १७ ॥ अरतिं रतिं वाऽनिनूय त्यक्त्वा निक्षुरेकांतमौनेन संयमेन व्यागृणीयात् धर्मसंबंधं ब्रूयात् । किंनूतः साधुः । बहवोजनाः संयमसहायायस्य सबहुजनोगबवासी। अथवा एकचारी एकल्लविहारी जिनकल्पादिर्वा । किंब्रूयादित्याह । एकस्य जंतोः कर्मानुगतस्य परलोके गतिरागतिश्च स्यादिति ॥ यतः । एकः प्रकुरुते कर्म,नुनक्त्येकश्च तत्फलं ॥ जायते म्रियते चैक,एकोयाति नवांतरमिति ॥ १८ ॥

॥ टीका–किंच । (निक्कूमुयच्चेइत्यादि) सएवं मदस्थानरहितोनिक्षणशीलोनिक्षुः । तं विशिनष्टि । मृतेच स्नानविलेपनादिसंस्काराजावादर्चा तनुः शरीरं यस्य समृतार्चः । यदिवा मोदनं मुत् तद्भूता शोजनाऽर्चा पद्मादिका लेश्या यस्य सजवति मुदर्चः प्रशस्तदर्शलेश्यः । तथा दृष्टोऽवगतोयथावस्थितोधर्मः श्रुतधर्मचारित्राख्योयेन सतथा चैवंनूतः क्वचिदवसरे ग्रामं नगरमन्यद्वा मगदिकमनुप्रविश्य निक्षार्थमसावुत्तमधृतिसंहननोपपन्नः सन्नेषणां गवेषणग्रहणैषणादिकां जानन् सम्यगवबुध्यन्ननैषणां चोङ्गमदोषादिकां तत्परिहारं विपाकं च सम्यगवगबन्नन्नस्य पानस्य वा नतु गृध्धोऽनध्युपपन्नः सम्यग्विहरेत् । तथाहि । स्थविरकल्पिकाद्विचत्वारिंशद्दोषरहितां निक्षां गृह्णीयुर्जिनकल्पिकानां तु पंचस्वनिग्रहो द्वयोर्ग्रहस्ताश्चेमाः । संसठमसंसठा,उध्धड तह होंति अप्पलेवाय ॥ उग्गहिया पग्गहिया, उज्झियधम्माय सत्तमीया ॥ १ ॥ अथवा योयस्यानिग्रहः सतस्यैषणा अपरात्वनैषणेत्येवमेषणानैषणानिज्ञः क्वचित्प्रविष्टः सन्नाहारादावमूर्छितः सम्यक्शुध्धां निक्षां गृह्णीयादिति ॥ १७ ॥ तदेवं निक्षोरनुकूलविषयोपलब्धिमतोप्यरक्तद्विष्टतया तथा दृष्टमप्यदृष्टं श्रुतमप्यश्रुतमित्येवं नावयुक्ततया च मृतकल्पदेहस्य सुदृष्टधर्मणएषणानेषणानिज्ञस्यान्नपानादावमूर्छितस्य सतः क्वचिद्ग्रामनगरादौ प्रविष्टस्याऽसंयमे रतिररतिश्च संयमे कदाचित्प्राडुष्यात्सा चापनेतव्येत्येतदाह । (अरइंरइंचेत्यादि) महामुनेरप्यस्नानतयामलाविलस्यांतप्रांतवल्लचणकादिनोजिनः कदाचित्कर्मोदयाऽरतिः संयमे समुत्पद्येत तां चोत्पन्नामसौ निक्षुः संसारस्वनावं परिगणय्य तिर्यङ्नारकादिडुःखं चोत्प्रेक्ष्यमाणश्चलं संसारिणामायुरित्येवं विचिंत्यानिनवेदनिनूय वाऽसावेकांतमौनेन व्यागृणीयादित्युत्तरेण संबंधः । तथा रतिं वाऽसंयमे सावद्यानुष्ठाने अनादिनवाभ्यासाडुत्पन्नामनिनवेदनिनूय संयमोद्युक्तोनवेदिति । पुनः साधुमेव विशिनष्टि । बहवोजनाः साधवोगबवासितया संयमसहायायस्य सबहुजनस्तथैकएव चरति तच्छीलश्चैकचारी सच प्रतिमाप्रतिपन्नएकल्लविहारी जिनकल्पादिर्वा स्यात्सच बहुजनएकाकीवा केनचित्पृष्टोऽपृष्टोवैकांतमौनेन संय

मेन करणनूतेन व्यागृणीयात् धर्मकथावसरेऽन्यदा संयमाबाधया किंचित्धर्मसंबद्धं ब्रूयात् । किंपरिगणय्यैतत्कुर्यादित्याह । यदिवा किमसौ ब्रूयादिति दर्शयति । एकस्याऽसहायस्य जंतोः शुनाशुनसहायस्य गतिर्गमनं परलोके नवति तथाऽऽगतिरागमनं नवांतराडुपजायते कर्मसहायस्यैवेति । उक्तंच । एकः प्रकुरुते कर्म शुनक्त्येकश्च तत्फलं ॥ जायते म्रियते चैक, एकोयाति नवांतरमित्यादि । तदेवं संसारे परमार्थतोन कश्चित्सहायोधर्ममेकं विहायैतद्विगणय्य मुनीनामयं मौनः संयमस्तेन तत्प्रधानं वा ब्रूयादिति ॥ १८ ॥

सयं समेच्चा अडुवा वि सोच्चा, नासेज्ज धम्मं हिययं पयाणं ॥
जे गरहिया सणियाणप्पउगा, ण ताणि सेवंति सुधीरधम्मा १९
केसिंचि तक्काइ अबुज्झ नावं, खुद्दंपि गच्छेज्ज असद्दहाणे॥आउस्स
कालाइचरं वघाए, लद्धाणु माणे य परेसु अठे ॥ २० ॥

अर्थ-(सयंसमेच्चा अडुवाविसोच्चा के०) चतुर्गतिक संसारनुं कारण मिथ्यात्वादिक छे तथा मोक्षस्वरूपनुं कारण सम्यक् ज्ञानादिकछे एवुं परोपदेशविना स्वयं पोतेज जाणीने अथवा गुर्वादिकनी पासेथी श्रवण करीने (नासेज्जधम्मंहियियंपयाणं के०) समस्त प्रजा एटले त्रस तथा स्थावर जीवोने हितकारक एवो श्रुतचारित्ररूप जे धर्म तेने नाषे एटले कहे एवो साधु जाणवो ए उपादेयपणुं कह्यो हवे हेयपणु एटले जे पदार्थ डांमवा योग्यछे ते कहेछे (जेगरहिया के०) जे मिथ्यात्व अविरति प्रमादादिक एवा पदार्थ जे जगतमांहे गरहा एटले निंदनीक छे तथा (सणियाण के०) नीयाणा सहित एवा जे (प्पउगा के०) प्रयोग होय तेने (णताणिसेवंति सुधीरधम्मा के०) जे धर्मने विषे धीर पुरुष होय ते नसवे न आचरे ॥ १९ ॥ (केसिंचि तक्काइ अबुज्झ नावं के०) कोईएक मिथ्यादर्शनीनो अनिप्राय जाण्याविना साधु तथा श्रावकनो धर्म स्थापन करवानी इच्छाये कदाचित् साधु तेपर तीर्थिक आगल तिरस्कारना वचन बोले (खुद्दंपिगच्छेज्जअसद्दहाणे के०) तेवारे ते मिथ्यादर्शनी श्री वीतरागना वचनउपर असदहणा करतो थको क्षुद्रपणुं करे एवो उतो विरूप करे जेम पालक प्रोहितनो स्कंदसूरिउपर क्षुद्रनाव थयो तेनी पेरे जाणवुं (आउस्सकालाइचरंवघाए के०) आयुष्यना कालनुं प्रमाण घणो होय तेने घटाडे अर्थात् आयुष्यनुं विनाश करे (लद्धाणुमाणेयपरेसुअठे के०) ते माटे साधु जन आगलानुं अनिप्राय लईने पछी तेना आगल अर्थ प्रकाशे स्वपरोपकारने अर्थे बोले अन्यथा मौनमेव श्रेय ॥ २० ॥

॥ दीपिका-स्वयं नवस्वरूपं समेत्य ज्ञात्वाऽथवाऽन्यस्मात् श्रुत्वाऽन्यस्मै. धर्मं नाषेत।

किंन्नूतं धर्मं प्रजानां जीवानां हितदं। ये च गर्हितानिंद्याः सह निदानेनाऽऽशंसारूपेण वर्तते ते सनिदानाः प्रयोगाव्यापाराः कर्मबंधहेतवस्तान् सुधीरधर्माणोनिक्कुवोन सेवंते ॥ १ए ॥ केषांचिन्मिथ्यादृशां नावमन्निप्रायमबुध्वाऽज्ञात्वा तीर्थिकतिरस्कारप्रायं वचोवदेत् कश्चित्साधुः श्रावकोवा सच तद्वचोऽश्रद्दधानः कुड्त्वमपि गच्छेत् विरूपं कुर्यात् पालकपुरोहितइव स्कंदकाचार्यस्य सकुपितोवक्तुर्यदायुस्तस्य व्याघातरूपं क्ष्यस्वन्नावं कालातिचारं दीर्घस्थितिकमप्यायुः संवर्तयेत् । कोर्थः । पुरुषविशेषं ज्ञात्वा हि देशना कार्या । अन्यथा श्रोता विरुद्धवचः श्रवणकुपितोमरणाद्युपसर्गमपि वक्तुः कुर्यादिति तस्माल्लब्धमनुमानं परान्निप्रायज्ञानं येन सलब्धानुमानः परेषु प्रतिपाद्येषु यथायोगमर्थान् जीवादिकान् वदेत् ॥ २० ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (सयंसमेच्चेत्यादि) स्वयमात्मना परोपदेशमंतरेण समेत्य ज्ञात्वा चतुर्गतिकं संसारं तत्कारणानि च मिथ्यात्वाविरत्यतिप्रमादकपाययोगरूपाणि तथाऽशेषकर्मक्ष्यलक्ष्णं मोक्षं तत्कारणानि च सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राण्येतत्सर्वं स्वत एवावबुध्यान्यस्मा द्वाचार्यादेः सकाशाच्छ्रुत्वाऽन्यस्मै मुमुक्षवे धर्मं श्रुतचारित्राख्यं न्नाषेत । किंन्नूतं । प्रजायंतइति प्रजाः स्थावरजंगमाजंतवस्तेन्यो हितं सडुपदेशदानतः सदोपकारिणं धर्मं ब्रूयादिति । उपादेयं प्रदर्श्य हेयं प्रदर्शयति । ये गर्हिताजुगुप्सितामिथ्यात्वाविरतिप्रमादकपाययोगाः कर्मबंधहेतवः सह निदानेन वर्तंतइति सनिदानाः प्रयुज्यंतइतिप्रयोगाव्यापाराधर्मकथाप्रबंधावा ममास्मात्सकाशात्पूजालान्नसंस्कारादिकं न्नविष्यंतीत्येवंन्नूतनिदानाऽऽशंसारूपांस्तांश्चारित्रविघ्नन्नूतान् महर्षयः सुधीरधर्माणोन सेवंते नानुतिष्ठंति । यदि वा ये गर्हिताः सनिदानावाक्प्रयोगास्तद्यथा कुतीर्थिकाः सावद्यानुष्ठानविरतानिःशीलानिर्व्रताः कुटलवेंटलकारिणइत्येवंन्नूतान्परदोषोद्घट्टनया मर्मवेधिनः सुधीरधर्माणोवाक्कंटकान् नसेवंते नब्रुवनइति ॥ १ए ॥ किंचान्यत् । (केसिंतक्कायेत्यादि) केषांचिन्मिथ्यादृष्टीनां कुतीर्थिकन्नावितानां स्वदर्शनाग्राहिणां तर्कया वितर्केण स्वमतिपर्यालोचनेन नावमन्निप्रायं डुष्टांतःकरणवृत्तित्वमबुध्वा कश्चित्साधुः श्रावकोवा स्वधर्मस्थापनेच्छया तीर्थिकतिरस्कारप्रायं वचोब्रूयात् सच तीर्थिकस्त द्वचोऽश्रद्दधानोरोचयन्नप्रतिपाद्यमानोऽति कटुकं न्नावयेत् क्षुद्रत्वमपि गच्छेद्विरूपमपि कुर्यात् । पालकपुरोहितवत् स्कंदकाचार्यस्येति । क्षुद्रत्वगमनमेव दर्शयति । सनिंदावचनकुपितोपि वक्तुर्यदायुस्तस्यायुपोव्याघातरूपं परिक्ष्यस्वन्नावं कालातिचारं दीर्घस्थितिकमप्यायुः संवतेत् । एतडुक्तं न्नवति । धर्मदेशनाहि पुरुषविशेषं ज्ञात्वा विधेया । तद्यथा । कोयं पुरुषोराजादिः कंचन देवताविशेषं नतः कतरद्वा दर्शनमाश्रितोऽन्निगृहीतोनन्निगृहीतोवाऽयमित्येवं सम्यक् परिज्ञाय

यथार्हं धर्मदेशना विधेया । यश्चैतदबुध्वा किंचिद्धर्मदेशना द्वारेण परविरोधकृद्वचोब्रूयात् सपरस्मादैहिकामुष्मिकयोर्मरणादिकमपकारं प्राप्नुयादिति । यतएवं ततोलब्धमनुमानं येन पराभिप्रायपरिज्ञाने सलब्धानुमानः परेषु प्रतिपाद्येषु यथायोगं यथार्हप्रतिपत्त्याऽर्थान् सद्धर्मप्ररूपणादिकान् जीवादीन् स्वपरोपकाराय ब्रूयादिति ॥ २० ॥

कम्मं च छंदं च विगिंच धीरे, विणइज्जउ सव्वह आयभावं ॥ रू
वेहिं लुप्पंति भयावहेहिं, विज्जं गहाय तसथावरेहिं ॥ २१ ॥
न पूयणं चेव सिलोयकामी, पियमप्पियं कस्सइ णो करेज्जा ॥
सव्वे अणट्ठे परिवज्जयंते, अणाउले या अकसाइ भिक्खू ॥२२॥
आहत्तहीयं समुपेहमाणे, सव्वेहिं पाणेहिं णिहाय दंडं ॥ णो जी
वियं णो मरणाहिकंखी, परिवएज्जा वलयाविप्पमुक्केत्तिबेमि ॥
॥ २३ ॥ इति श्रीआहत्तहियंनाम त्रयोदशमध्ययनं सम्मत्तं ॥

अर्थ—(कम्मंचछंदंचविगिंचधीरे के०) धैर्यवान बुद्धिमान साधु देशनाने अवसरे श्रोतानो कर्म एटले अनुष्ठान तथा छंद एटले चित्तनो भाव एने जुदा जुदा जाणीने एतावता सम्यक्रीते जाणीने यथायोग्य भाव धर्म कहे तथा (विणइज्जउसव्वहआय भावके०) तथा श्रोता पुरुषनुं आयभाव एटले आत्मभाव ते विषयउपर गृद्धपणुं एटले मिथ्या परिणाम तेने सर्वथा प्रकारे विशेषे करी निर्घाटे एटले दूरकरे अने गुणनेविषे तेने स्थापे (रूवेहिंलुप्पंतिभयावहेहिं के०) वली रूप जे स्त्रियादिकना अंगोपांगना जोवावाला एवा अल्प बुद्धिवान् तुछ प्राणी ते धर्मथकी लोपाए इह लोके छेदनादिक पीडा पामे परलोके नरकादिकना दुःख पामे माटे ए भयना करनारछे ए धर्मथकी भ्रष्ट करे एम कोई श्रोता कहे श्रोता स्त्रीनो गृद्ध होय तेवारे अपवाद धरे (विज्जंगहायतसथावरेहिं के०) तेवारे पंमित आगलानो भाव ग्रहण करीने त्रस तथा स्थावर जीवोने हितनो करनार एवो धर्मोपदेश करे ॥ २१ ॥ (नपूयणंचेवसिलोय कामी के०) साधु देशना आपतो थको पूजन तथा वस्त्रादिकना लाभनी वांछा नकरे तथा श्लाघा एटले आत्मानी प्रशंसा तेनी पण वांछा नकरे तथा (पियमप्पियंकस्सइ णोकरेज्जा के०) राग अने द्वेष कोइनी साथे सर्वथा नकरे अथवा कोइनी निंदा विकथा पण नकरे (सव्वेअणट्ठेपरिवज्जयंते के०) एम सर्वथा प्रकारे अनिष्ट अनर्थकारी एवी पूजा सत्कारादिक वस्तु तेने समस्तपणे वर्जे (अणाउलेयाअकसाइभिक्खू के०) तथा अनाकुल एटले क्रोधादिक रहित आलशरहित तथा कषायरहित एवो छतो

साधु, धर्मनी प्ररूपणा करे ॥ २२ ॥ (आहत्तहीयंसमुपेहमाणे के०) यथातथ्य सत्य मार्ग जे सूत्रगत बे तेने आलोचतो सम्यक् प्रकारें अनुष्ठानने अभ्यासतो थको (सव्वेहिं पाणेहिंणिहायदंमे के०) सर्व प्राणी मात्र जे त्रस अने स्थावर जीवोबे तेनो दंम एटले विनाशनुं त्याग करीने प्राणांते पण धर्मनुं उलंघन नकरे (णोजीवियंणोमरणाहिकंखीके०) जीवितव्य अने मरणनी वांबारहित समतानावसहित थको (परिव्वएज्जावलयाविप्पमुक्के के०) सुधो संयम पाले ते साधु वलय एटले मिथ्यात्व मोह गहनथकी विप्रमुक्त थाय तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥२३॥ इतिश्रीसूत्रकृतांगना प्रथमश्रुतस्कंधनेविषे यथातथ्य नामे तेरमां अध्ययननो अर्थ संपूर्ण थयो. ॥

॥ दीपिका—धीरोबुद्धिमान् श्रोतुः कर्मानुष्ठानं गुरुलघुकर्मत्वं वा तथा बंदमभिप्रायं (विगिंच) विवेचयेज्ञानीयात् ज्ञात्वा च धर्मकथां कुर्वन् सर्वथा सर्वप्रकारेण पर्षद आत्मनावं मिथ्यात्वादिकं व्यपनयेत् विषयासक्तिं व्यपनयेत् । यतोरूपैर्नयनमनोहारिनिर्नयावहैः संसारनयकारिनिस्तुबसत्वाविलुप्यंते धर्मात् बाध्यंते एवं विद्वान् पंडितो गृहीत्वा पराभिप्रायं त्रसस्थावरेन्योहितं धर्मं वदेत् ॥२१ ॥ साधुर्देशनां कुर्वन् पूजनं वस्त्रपात्रादिलानरूपं न वांबेत् नापिश्लोकं श्लाघां कामयेत् तथा श्रोतुः प्रियं राजकथादिकमप्रियं तदाश्रितदेवनिंदादिरूपं न कथयेत् । एवं सर्वान् दोषान् परिवर्जयेदनाकुलः साधुरकषायी नवेत् ॥ २२॥ योयाथातथ्यं सम्यक्चारित्रं प्रेक्षमाणः पर्यालोचयन् सर्वेषु प्राणिषु दंडं हिंसां निधाय त्यक्त्वा जीवितमसंयमजीवितं न कांक्षेन्नापि मरणाभिकांक्षी स्यात् । तदेवं वलयेन मायामोहेन विप्रमुक्तः परिव्रजेत्संयमानुष्ठानं चरेत्साधुः । इति समासौ । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २३ ॥ याथातथ्याख्यं त्रयोदशमध्ययनं समाप्तं ॥

॥ टीका—अपिच । (कम्मंचबंदंचेत्यादि) धीरोऽक्षोन्यः सद्बुध्यलंकृतोवा देशनावसरे धर्मकथाश्रोतुः कर्मानुष्ठानं गुरुलघुकर्मनावं वा तथा बंदमभिप्रायं सम्यग्विवेचयेज्ञानीयात् ज्ञात्वा च पर्षदनुरूपामेव धर्मकथिकोधर्मदेशनां कुर्यात्सर्वथा यथा तस्य श्रोतुर्जीवादिपदार्थावगमोनवति । यथाच मनोन दूष्यतेऽपितु प्रसन्नतां व्रजत्येतदभिसंधिमानाह । विशेषेण नयेदपनयेत्पर्षदः पापनावमशुद्धमंतःकरणं तुशब्दाद्विशिष्टगुणारोपणं च कुर्यात् । आयनावं ति क्वचित्पाठः । तस्यायमर्थः । आत्मनावोऽनादिनवान्यस्तोमिथ्यात्वादिकस्तमपनयेद्यदिवात्मनावोविषयगृध्नुताऽतस्तमपनयेदिति । एतद्दर्शयति । रूपैर्नयनमनोहारिनिः स्त्रीणामंगप्रत्यंगार्द्धकटाक्षनिरीक्षणादिनिरल्पसत्वाविलुप्यंते सद्धर्माद्बाध्यंते । किंनूतैरूपैर्नयावहैः । नयमावहंति नयावहानि । इहैव तावद्रूपादिविषयासक्तस्य साधुजनजुगुप्सा नानाविधाश्च कर्णनासिकाविकर्तनाविमंबनाः प्राडुर्नवंति जन्मांतरे तिर्यङ्नरकादिके

यातनास्थाने प्राणिनोविषयासक्तावेदनामनुभवंतीत्येवं विद्वान् पंडितोधर्मदेशनाभिज्ञो गृहीत्वा पराभिप्रायं सम्यगवगम्य पर्षदं त्रसस्थावरेभ्योहितं धर्ममाविर्भावयेत् ॥ २१ ॥ पूजासत्कारादिनिरपेक्षेण च सर्वमेव तपश्चरणादिकं विधेयं विशेषतोऽधर्मदेशनेत्येतदभिप्रायवानाह । (नपूयणंचेत्यादि) साधुर्देशनां विदधानोन पूजनं वस्त्रपात्रादिलाभरूपमभिकांक्षेन्नापि श्लोकं श्लाघां कीर्तिमात्मप्रशंसां कामयेदभिलषेत्तया श्रोतुर्यत्प्रियं राजकथाविकथादिकं छलितकथादिकं च तथाऽप्रियं च तत्समाश्रितदेवताविशेषनिंदादिकं न कथयेदरक्तद्विष्टतया श्रोतुरभिप्रायमभिसमीक्ष्य यथावस्थितं कथयेत् । उपसंहारमाह । सर्वानर्थान् पूजासत्कारलाभाभिप्रायेण स्वकृतान् परदूषणतया च परकृतान् वर्जयन् परिहरन् कथयेदनाकुलः सूत्रार्थादनुत्तरन्नकषायोभिक्षुर्भवेदिति ॥ २२ ॥ सर्वाध्ययनोपसंहारार्थमाह । (आहत्तहीयमित्यादि) यथातथाभावोयाथातथ्यं धर्ममार्गसमवरणाख्याध्ययनत्रयोक्तार्थं तत्त्वं सूत्रानुगतं सम्यक्त्वं चारित्रं वा तत्प्रेक्ष्यमाणः पर्यालोचयन् सूत्रार्थं सदनुष्ठानतोभ्यसन् सर्वेषु स्थावरजंगमेषु सूक्ष्मबादरभेदभिन्नेषु पृथिवीकायादिषु दंड्यंते प्राणिनोयेन सदंडः प्राणव्यपरोपणविधिस्तन्निधाय परित्यज्य प्राणात्ययेपि याथातथ्यं धर्मं नोल्लंघयेदिति । एतदेव दर्शयति । जीवितमसंयमजीवितं दीर्घायुष्कं वा स्थावरजंगमजंतुदंडेन नाभिकांक्षी स्यात् परीषहपराजितोवेदनासमुद्घातहतोवा तद्वेदनामसहमानोजलानलसंपातापादितजंतूपमर्देन नापि मरणाभिकांक्षी स्यात् । तदेवं याथातथ्यमुत्प्रेक्षमाणः सर्वेषु प्राणिषूपरतदंडोपजीवितमरणानपेक्षी संयमानुष्ठानं चरेदुद्युक्तविहारी भवेन्मेधावी मर्यादाव्यवस्थितोविदितवेद्योवा वलयेन मायारूपेण मोहनीयकर्मणा वा विविधं प्रकर्षेण मुक्तोविप्रमुक्तइति । इतिपरिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २३ ॥ समाप्तं च याथातथ्यं त्रयोदशमध्ययनमिति ॥

हवे ग्रंथ परित्याग नामा चौदमो अध्ययन कहेछे. तेरमा अध्ययनमां यथा सत्यपणो कह्यो ते यथा सत्य पणो तो बाह्याभ्यंतररूप द्विविध परिग्रहना त्याग विना न थाय माटे आ चौदमां अध्ययनमां ग्रंथ परित्याग पणो कहेछे.

गंथं विहाय इह सिक्खमाणो, उठाय सुबंभचेरं वसेज्जा ॥ उवा
यकारी विणयं सुसिक्खे, जे छेय विप्पमायं न कुज्जा ॥ १ ॥ ज
हा दियापोतमपत्तजातं, सावासगा पविउं मन्नमाणं ॥ तमंचाइयं
तरुणमपत्तजातं, ढंकाइ अवत्तगमं हरेज्जा ॥ २ ॥

अर्थ-(गंथं के०) धनधान्य हिरण्यादिक बाह्य ग्रंथ अने क्रोधादिक अभ्यंतर ग्रंथ ए द्विविध ग्रंथने (विहाय के०) त्यागीने (इह के०) आ प्रवचनने विषे (सिक्ख

माणो के०) सम्यक् प्रकारे संयममार्गे शुद्धक्रियारूप शील सीखतो थको (उद्धायसु के०) संयमने विषे उद्यम करीने सुशोजन एवा (बंनचेरंवसेज्जा के०) ब्रह्मचर्यव्रतनुं नव वाडसहित आश्रय करे (उवायकारीविणयंसुसिरके के०) तथा जावजीव सुधी उपायकारी एटले गुरुनी आज्ञा पालतो शोजन प्रकारे करीने विनयज शीखे (जेठेय विप्पमायंनकुज्जा के० जे म्हाह्या पुरुष छे ते ए कार्यने विषे प्रमाद नकरे ॥ १ ॥ हवे गुरु उपदेशविना पोताने छंदे गच्छथकी निकलीने जे एकाकी पणे विचरे तेने घणा दोषनी प्राप्ति थाय ते उपर दृष्टांत कहेछे (जहादिया के०) यथा दृष्टांते जेम पक्षी ना (पोतअपत्तजातं के०) बालक ने ज्यां सुधी पांख आवी नथी त्यांसुधी ते पांख विनानो एवो छतो (सावासगापविउंमन्नमाणं के०) पोताना माला थकी उडवानी वांछा करतो थको पांख फडफडावे परंतु (तमंचाइयं तरुणमपत्तजातं के०) आकरो उडीजवाने असमर्थ थाय अने तेने पांखो थकी हीन मांसपेसी समान एवो न्हानो तरुण देखीने (ढंकाइअव्वत्तगमंहरेज्जा के०) मांसाहारी एवा ढंकादिक पक्षीउ तेने अपहरीने तेनो विनाश करे ते बालक केवोछे तो के अव्यक्तगतासिवा असमर्थ एटले त्यांथी नाशी जवाने असमर्थ एवोछे ॥ २ ॥

॥ दीपिका–अथ चतुर्दशं ग्रंथाध्ययनमारन्यते । तस्येदमादिसूत्रं । (गंथमिति) इह प्रवचने ग्रंथं धनादिकं त्यक्त्वा शिक्षमाणोग्रहणसेवनाशिक्षां सेवमानः सद्भानेनोछाय सुष्ठु शोजनं ब्रह्मचर्यमाश्रित्य वसेत्तिष्ठेदाचार्यवचनस्यावपातोनिर्देशस्तत्कारी आचार्यकथितकारी विनयं सुष्ठु शिक्षेत् कुर्यात् तथा यश्छेकोनिपुणः स विप्रमादं विविधं प्रमादं न कुर्यात् ॥ १ ॥ यथाद्विजपोतः पक्षिशिशुर्नविद्यते पत्रजातं पक्षोद्भवोयस्य सोऽपत्रजातः पक्षहीनस्तं स्वकीयादावासकात् प्लवितुमुत्पतितुं मन्यमानं तत्र पतंतमुपलन्य तं (अचाइयंति) पक्षान्नावाद्गंतुमसमर्थमपत्रजातमिति कृत्वा ढंकादयोमांसाहाराः सत्वा अव्यक्तगमं गमनाजावे नष्टुमसमर्थं हरेयुर्व्यापादयेयुः ॥ २ ॥

॥ टीका–उक्तं त्रयोदशमध्ययनं सांप्रतं चतुर्दशमारन्यते । अस्य चायमनिसंबंधः । इहानंतराध्ययने याथातथ्यमिति सम्यक्चारित्रमनिहितं तच्च बाह्यान्यंतरग्रंथपरित्यागादवदातं नवति । तत्त्यागश्चानेनाध्ययनेन प्रतिपाद्यतइत्यनेन संबंधेनायातस्यास्याध्ययनस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराण्युपक्रमादीनि नवंति । तत्रोपक्रमद्वारांतर्गतोऽर्थाधिकारोयं । तद्यथा । सबाह्यान्यंतरग्रंथपरित्यागोविधेयइति नामनिष्पन्ने तु निक्षेपे आदानपदागुणनिष्पन्नत्वाच्च ग्रंथतइति नाम तं ग्रंथमधिकृत्य निर्युक्तिकृदाह । " गंथोपुवुद्दिठो, डुविहो सिस्सो य होंति णायवो ॥ पवावण सिरकावण, पगवं सिरकावणाए उ " ॥ २९ ॥ (गं

थोपुवुद्दिछोइत्यादि) ग्रंथोऽव्यजावनेदजिन्नः कुल्लकनैर्ग्रंथ्यं नाम उत्तराध्ययनेष्वध्ययनं। तत्र पूर्वमेव सप्रपंचोऽजिहितः। इह तु ग्रंथं इव्यजावनेदजिन्नं यः परित्यजति शिष्यआचारादिकं वा ग्रंथं योधीते सशिष्योद्विविधोद्विप्रकारोज्ञातव्योजवति। तद्यथा। प्रव्रज्यया शिक्षया च। यस्य प्रव्रज्या दीयते शिक्षां वा यो ग्राह्यते सद्विप्रकारोपि शिष्यइहपुनः शिक्षाशिष्येण प्रकृतमधिकारोयः शिक्षां गृह्णाति शिक्षकस्तच्छिक्षयेह प्रस्तावइत्यर्थः। यथाप्रतिज्ञातमधिकृत्याह। “सो सिरकगो य डुविहो, गहणे आसेवणा य णायव्वो ॥ गहणंमि होंति तिविहो सुत्ते अत्थे तडुजएय, ॥ ३० ॥ (सोसिरकगोयडुविहोइत्यादि) यः शिक्षां गृह्णाति सद्विविधोद्विप्रकारकोजवति। तद्यथा। ग्रहणे प्रथममेवाचार्यादेः सकाशाच्छिक्षां इच्छामिच्छातहकारादिरूपां गृह्णाति शिक्षति तथा शिक्षितां वाज्यस्यति अहर्निशमनुतिष्ठति सएवंविधोग्रहणासेवनानेदजिन्नः शिष्योज्ञातव्योजवति। तत्रापि ग्रहणपूर्वकमासेवनमिति कृत्वाऽऽदावेव ग्रहणशिक्षामाह। शिक्षया ग्रहणे उपादानेऽधिकृते त्रिविधोजवतीति शिक्षकः। तद्यथा। सूत्रेऽर्थे तडुजयेच सूत्रादीन्यादावेव गृह्णन् सूत्रादिशिक्षकोजवतीति जाव.। सांप्रतं ग्रहणोत्तरजाविनीमासेवनामधिकृत्याह। (“आसेवणाए डुविहो, मूलगुणे चेव उत्तरगुणेय ॥ मूलगुणे पंचविहो, उत्तरगुणे बारसविहो उ” ॥ ३१ ॥ (आसेवनेइत्यादि) यथावस्थितसूत्रानुष्ठानमासेवना तया कारणजूतया द्विविधोजवति शिक्षकः। तद्यथा मूलगुणे मूलगुणविषये आसेवमानः सम्यक् मूलगुणानामनुष्ठानं कुर्वन् तथोत्तरगुणे चोत्तरगुणविषयं सम्यगनुष्ठानं कुर्वाणोद्विरूपोप्यासेवनाशिक्षकोजवति। तत्रापि मूलगुणे पंचप्रकारः। प्राणातिपातादिविरतिमासेवमानः पंचमहाव्रतधारणात्पंचविधोजवति मूलगुणेष्वासेवनाशिक्षकः। तथोत्तरगुणविषये सम्यक्पिंडविशुध्यादिकान् गुणानासेवमानउत्तरगुणानासेवनाशिक्षकोजवति। ते चामी उत्तरगुणाः। पिंडस्स जावि सोही, समिईहो जावणा तवो डुविहा ॥ पडिमा अजिग्गहाविय, उत्तरगुणमो वियाणाहि ॥ १ ॥ यदिवा सत्स्वप्येतेषूत्तरगुणेषु प्रधाननिर्जराहेतुतया तपएव द्वादशगुणमुत्तरगुणत्वेनाधिकृत्याह। उत्तरगुणे उत्तरगुणविषये तपोद्वादशजेदजिन्नं यः सम्यक् विधत्ते सआसेवनाशिक्षकोजवतीति। शिष्योह्याचार्यमंतरेण न जवत्यतआचार्यनिरूपणमाह। “आयरिउ विय डुविहो, पव्वावंतो य सिरिकवंतो य॥ सिरकावंतो डुविहो गहणे आसेवणे चेव ॥ ३२ ॥ गाहाविंतो तिविहो; सुत्ते अत्थेय तडुजए चेव ॥ मूलगुणउत्तरगुणो, डुविहो आसेवणाए उ” ॥ ३३ ॥ (आयरिउ वियइत्यादिगाथाद्वयं शिष्यापेक्षया हि आचार्योद्विविधोद्विजेदः। एकोयः प्रव्रज्यां ग्राहयत्यपरस्तु यः शिक्षामिति। शिक्षयन्नपि द्विविधः। एकोयः शिक्षाशास्त्रं ग्राहयति पाठयत्यपरस्तु तदर्थं दशविधचक्रवालसमाचार्यनुष्ठानतः सेवयति सम्यगनुष्ठानं कारयति।

तत्र सूत्रार्थे तडुभयभेदाद्ग्राहयन्नप्याचार्यस्त्रिधा भवति । आसेवनाचार्योपि मूलोत्तर भेदाद्विविधोभवति । गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपस्तदनंतरं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चेदं । (गंथंविहेत्यादि) इह प्रवचने ज्ञातसंसारस्वभावः सन् सम्यगनुष्टानेनोद्भितोग्रथ्यते आत्मा येन सग्रंथोधनधान्यहिरण्यद्विपदचतुष्पदादिकस्तं विहाय त्यक्त्वा प्रव्रजितः सन् उज्ञानेनोज्ञाय च ग्रहणरूपामासेवनारूपां च शिक्षां च कुर्वाणः सम्यगासेवमानाः सुष्ठु शोभनं नवविधब्रह्मचर्यगुप्तिनिर्गुप्तमाश्रित्य ब्रह्मचर्यं वसेत्तिष्ठेत् यदिवा ब्रह्मचर्यमिति संयमस्तदावसेत्तं सम्यक् कुर्यात् । आचार्यांतिके याव ज्जीवं वसमानोयावदभ्युद्यतविहारं न प्रतिपाद्यते तावदाचार्यवचनस्यावपातोनिर्देशस्त त्कार्यावपातकारी वचननिर्देशकारी सदाज्ञाविधायी विनीयतेऽपनीयते कर्म येन सवि नयस्तं सुष्ठु शिक्षेद्विदध्यात् ग्रहणासेवनाभ्यां विनयं सम्यक्परिपालयेदिति । तथा य श्छेकोनिपुणः संयमानुष्ठाने सदाचार्योपदेशो वा विविधं प्रमादं न कुर्यात् । यथाहि आतुरः सम्यग्वैद्योपदेशं कुर्वन् श्लाघां लभते रोगोपशमंचैवं साधुरपि सावद्यग्रंथपरि हारी पापकर्मभेपजस्थानभूतान्याचार्यवचनानि विदधदपरसाधुभ्यः साधुकारमशेषकर्म क्षयं वा प्राप्नोतीति ॥ १ ॥ यः पुनराचार्योपदेशमंतरेण स्वछंदतया गछान्निर्गत्य एका किविहारितां प्रतिपद्यते सच बहुदोषभाग् भवतीत्यस्यार्थस्य दृष्टांतमाविर्भावयन्नाह । (जहादियाइत्यादि) यथेति दृष्टांतोपप्रदर्शनार्थः । यथा येन प्रकारेण द्विजपोतः प क्षिशिशुरव्यक्तस्तमेव विशिनष्टि । पतंति गछंति तेनेति पत्रं पक्षपुटं नविद्यते पत्रजातं प क्षोद्भवोयस्यासावपत्रजातस्तत्र स्वकीयादावासकात् स्वनीडात् प्लवितुमुत्पतितुं मन्यमानं तत्रतत्र पतंतमुपलभ्य तं द्विजपोतं (अचाइयंति) पक्षाभावाद्गंतुमसमर्थमपत्रजात मिति कृत्वा मांसपेशीकल्पं ढंकादयः क्षुद्रसत्त्वाः पिशिताशिनोऽव्यक्तगमं गमनाभावे नष्टुमसमर्थं हरेयुश्चंच्वादिनोत्क्षिप्य नयेयुर्व्यापादयेयुरिति ॥ २ ॥

एवं तु सेहंपि अपुठधम्मं, निस्सारियं वुसिमं मन्नमाणा ॥ दि
यस्स गवं च अपत्तजायं, हरिसुणं पावधम्मा अणेगे ॥ ३ ॥
उसाणमिछे मणुए समाहिं; अणोसिए णंतकरिंति णच्चा ॥ उ
भासमाणे दवियस्स वित्तं, ण णिक्कसे बहिया आसुपन्नो ॥ ४ ॥

अर्थ—(एवंतु के०) एरीते जेम ते अव्यक्त एवोजे पक्षीनो बालक तेनो बीजा ढं कादिक क्षुद्र पक्षीउ विनाश करे तेम ते (सेहंपिअपुठधम्मं के०) अगीतार्थ नवदिक्षी त शिष्य पण (निस्सारियं वुसिमंमन्नमाणा के०) गछरूप माला थकी नीकल्यो तो

पछी तेने अनेक क्षुद्र पाखंमीरूप जे ढंकपक्षीउं ते पोताने वसगामी जाणता थका तेने विप्रतारीने संयमरूप जीवितव्य थकी चुकावे (दियस्सछावंचअपत्तजायं के०) पांखरहित एवो जे पक्षीनो बालक तेनी पेरे ते अगीतार्थ शिष्यने (हरिसुणंपावधम्माअ णेगे के०) ते पापधर्मि एवा अनेक पाखंमी तेने संयम थकी हरण करे ॥ ३ ॥ ए माटे चारित्रवान साधुए सर्वकाल गुरुपाशे रहेवो ते कहेछे. (उसाणमिछेमणुएसमाहिं के०) जावजीव सुधी गुरुनी पाशे रहेवानी वांछा करे जे सुसाधु छे ते एवीज सन्मार्गरूप समाधिनी वांछा करे एटले परमार्थथकी मनुष्य तेनेज कहिए के जे गुरुकुलवासे वसतो थको पोताना नाषेला अंगीकार करेलां सन्मार्गनो निर्वाह करे (अणोसिएणंतकरिंतिणच्चा के०) गुरुकुलवासे अणवसतो एटले स्वछंदाचारी छतो संसारनो अंत नकरे उलटो अनंत संसारी थाय संसारनी वृद्धि करे एवुं जाणीने (उन्नासमाणेदवियस्सवित्तं के०) सर्वकाल गुरुकुलवासे वशे गुरुनी सेवा करे एम मुक्तिगमन योग्य साधुना आचारने अत्यंत दीपावतो थको जिनन्नाषित धर्मने दीपावे एवुं जाणीने (णणिक्कसेबहिया आसुपन्ने के०) आसुप्रज्ञ एटले जे पंमित होय ते गछथकी बाहेर नीकले नही अर्थात् स्वछंदी नथाय ॥ ४ ॥

॥ दीपिका–दृष्टांतयोजनामाह । एवमुक्तप्रकारेण शिक्षकं नवदीक्षितं सूत्रार्थविकलमगीतार्थमपुष्टधर्माणं पाखंडिकाः प्रतारयंति प्रतार्यच गछान्निःसारयंति निःसारितंच संतमस्माकं वश्यमित्येवं मन्यमानाअजातपक्षं द्विजशावं पक्षिपोतमिव ढंकादयः पापकर्माणः कुतीर्थिकाः स्वजनाराजादयोवाऽनेके हृतवंतोहरंति हरिष्यंति चेति कालत्रयोपलक्षणार्थं नूतनिर्देशः ॥ ३ ॥ अवसानं गुरोरंतिके स्थानं समाधिसन्मार्गानुष्ठानरूपं यावज्जीवमिछेन्मनुजः साधुर्यावज्जीवं गुरुकुलवासी स्यादित्यर्थः । गुरोरंतिकेऽनुषितोऽव्यवस्थितः कर्मणोऽनंतकरोंऽतकारी नस्यादिति ज्ञात्वा गुरुं सेवेत तद्हितस्य विज्ञानमुपहासोन्नवेत् । यतः । नहि नवति निर्विगोपकमनुपासितगुरुकुलस्य विज्ञानं ॥ प्रकटितपश्चाद्भागं, पश्यत नृत्यं मयूरस्य ॥ १ ॥ द्रव्यस्य मुक्तियोग्यस्य साधोर्वृत्तमनुष्ठानमुन्नासयन्ननुतिष्ठन् ननिष्कसेन्ननिर्गछेजछाद्बहिराशुप्रज्ञः पंडितः ॥ ४ ॥

॥ टीका–एवं दृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकं प्रदर्शयितुमाह । (एवंतुसेहंपीत्यादि) एवमित्युक्तप्रकारेण । तुशब्दः पूर्वस्माद्विशेषं दर्शयति । पूर्वं ह्यसंजातपक्षत्वादव्यक्तता प्रतिपादिता इहत्वपुष्टधर्मतयेति । अयं विशेषोयथा द्विजपोतमसंजातपक्षं स्वनीडान्निर्गतं क्षुद्रसत्वाविनाशयंति एवं शिष्यकमन्निनवप्रव्रजितं सूत्रार्थानिष्पन्नमगीतार्थमपुष्टधर्माणं सम्यगपरिणतधर्मपरमार्थं संतमनेकपापधर्माणः पाषंडिकाः प्रकारयंति प्रतार्यच गछस

मुडान्निःसारयंति निःसारितंच संतं विषयोन्मुखतामापादितमपगतपरलोकजयमस्माकं वश्यमित्येवं मन्यमानाः। यदिवा (बुसिन्ति) चारित्रं तदसदनुष्ठानतोनिःसारं मन्यमानाअजातपक्षं द्विजशावकमिव पक्षिपोतमिव ढंकादयः पापधर्माणोमिथ्यात्वाविरति प्रमादकषायकलुषितांतरात्मानः कुतीर्थिकाः स्वजनाराजादयोवाऽनेके बहवोहृतवंतोहरंति हरिष्यंति चेति कालत्रयोपलक्षणार्थं नूतनिर्देशइति। तथाहि। पाषंडिकाएवमगीतार्थं प्रतारयंति। तद्यथा। युष्मदर्शनेनाग्निप्रज्वालनविषापहारशिखाछेदादिकाः प्रत्यया दृश्यंते तथाऽणिमाद्यष्टगुणमैश्वर्यंच नास्ति तथा न राजादिनिर्बहुनिराश्रितं। याप्यहिंसोच्यते जवदागमे सापि जीवाकुलत्वाल्लोकस्य डुःसाध्या नापि जवतां स्नानादिकं शौचमस्तीत्यादिकाजिः शगोक्तिजिरिंद्रजालकल्पाजिर्मुग्धजनं प्रतारयंति स्वजनादयश्चैवं विप्रलंजयंति। तद्यथा। न जवंतमंतरेणास्माकं कश्चिदस्ति पोषकः पोष्योवा त्वमेवास्माकं सर्वस्वं त्वया विना शून्यमाजाति तथा शब्दादिविषयोपजोगामंत्रणेन सद्धर्माच्यावयंति। एवं राजादयोपि डुष्टव्यास्तदेवमपुष्टधर्माणमेकाकिनं बहुजिः प्रकारैः प्रतार्यापहरेयुरिति। ॥ ३ ॥ तदेवमेकाकिनः साधोर्यताबहवोदोषाः प्राडुर्जवंत्यतः सदा गुरुपादमूले स्थातव्यमित्येतद्दर्शयितुमाह। (उंसाणमिछेइत्यादि) अवसानं गुरोरंतिके स्थानं तद्यावज्जीवं समाधिं सन्मार्गानुष्ठानरूपमिछेदजिलपेन्मनुजोमनुष्यः साधुरित्यर्थः। सएव परमार्थतोमनुष्योयोयथाप्रतिज्ञातं निर्वाहयति। तच्च सदागुरोरंतिके व्यवस्थितेन सदनुष्ठानरूपं समाधिमनुपालयता निर्वाह्यते नान्यथेत्येतद्दर्शयति। गुरोरंतिकेऽनुषितोव्यवस्थितः स्वछंदविधायी समाधिः सदनुष्ठानरूपस्य कर्मणोयथाप्रतिज्ञातस्य वा नांतकरोजवतीति ज्ञात्वा सदा गुरुकुलवासोऽनुसर्तव्यस्तद्रहितस्य विज्ञानमुपहास्यप्रायं जवतीति। उक्तंच। नहि जवति निर्विगोपकमनुपासितगुरुकुलस्य विज्ञानं॥ प्रकटितपश्चाद्भागं पश्यत नृत्यं मयूरस्य॥ १ ॥ तथा जांगलविलग्नवालुकां पार्ष्णिप्रहारेण प्रगुणां दृष्ट्वाऽपरोऽनुपासितगुरुरज्ञोराज्ञीं संजातगलगंडां पार्ष्णिप्रहारेण व्यापादितवानित्यादयोऽनुपासितगुरोर्बहवोदोषाः संसारवर्धनाद्याजवंतीत्यवगम्यानया मर्यादया गुरोरंतिके स्थातव्यमिति दर्शयति। अवजासयन्नुद्भासयन् सम्यगनुतिष्ठन् डव्यस्य मुक्तिगमनयोग्यस्य सत्साधोरागद्वेषरहितस्य सर्वज्ञस्य व्यावृत्तमनुष्ठानं तत्सदनुष्ठानतोऽवजासयेद्धर्मकथिकः कथनतोवोद्भासयेदिति। तदेवं यतोगुरुकुलवासोबहूनां गुणानामाधारोजवत्यतोन निष्कसेन्ननिर्गछेत गछाज्रुर्वंतिकाद्वा बहिः स्वेछाचारी जनवेदाशुप्रज्ञइति क्षिप्रप्रज्ञस्तदंतिके निवसन् विषयकषायाज्यामात्मानं ह्रियमाणं ज्ञात्वा क्षिप्रमेवाचार्योपदेशात्स्वतएव वा निवर्तयति सत्समाधौ व्यवस्थापयतीति॥ ४ ॥

जे ठाणउ य सयणासणे य, परक्कमे यावि सुसाहुजुत्ते॥समितीसु गुत्तीसु य आयपन्ने, वियागरिंते य पुढो वएज्जा ॥५॥ सद्दाणि सोच्चा अदु भेरवाणि, अणासवे तेसु परिवएज्जा॥ निद्दं च भिक्खू न पमाय कुज्जा, कहंकहं वा वितिगिछ तिन्ने ॥ ६ ॥

अर्थ-(जेके०) जे वैराग्य आदरी चारित्रवंत थको (ठाणउंय के०) स्थान आश्री कायोत्सर्गादिकने विषे (सयणासणेय के०) तथा शयन अने आशनने विषे च कार शब्दथकी गमनने विषे (परक्कमेयावि के०) पराक्रम एटले बल फोरवे ते केवो थको फोरवे तोके (सुसाहुजुत्ते के०) रुडा आचारसहित एवो छतो (समितीसुगुत्ती सुयआयपत्ते के०) पांच समिति अने त्रण गुप्तिने विषे आयपन्न एटले सम्यक् जाण (वियागरिंतेयपुढोवएज्जो के०) अथवा अन्यने उपदेश देतो ते उपदेशने गुरु प्रासाद थकी जाणीने तेने जुदो जुदो विचार कहे. ॥५॥ (सद्दाणिसोच्चाअदुभेरवाणि के०) शब्द ते वंशना वीणादिक कर्णने सुखना करनार तथा भैरव एटले कर्णने दुःखना करनार एवा शब्द सांभलीने (अणासवे के०) ते शब्दादिकने विषे राग द्वेष रहित एवो छतो (सुप रिवएज्जा के०) सूधो संयम पाले (निद्दंचभिक्कूनपमायकुज्जा के०) तथा निद्रारूप जे प्रमाद ते पण भिक्षु नकरे ए प्रकारे प्रवर्त्ततो (कहंकहंवावितिगिछतिन्ने के०) कोई पण प्रकारे वितिगिछ एटले संदेह तेथकी निःक्रांत थाय एटलेसंदेह रहित थाय. ॥६॥

॥ दीपिका-प्रव्रज्यां प्रति उद्यतोनित्यं गुरुकुलवासतः स्थानतश्च स्थानमाश्रित्य तथा शयनतआसनतः । चकाराद्गमनमाश्रित्य तथा तपश्चरणादौ पराक्रमतश्च साधोरुद्यतविहारिणोये समाचारास्तैः समायुक्तः स्थानशयनासनादावुपयुक्तइत्यर्थः । समितिषु गुप्तिषु चागताउत्पन्ना प्रज्ञा यस्य सआगतप्रज्ञः संजातकृत्याकृत्यविवेकः स्वतः स्यात् । परस्यापि व्याकुर्वत् कथयत् पृथक् समितिगुप्तीनां पालनं तत्फलंच वदेत् ॥५॥ शब्दान् मनोहरान् श्रुत्वाऽथवा भैरवान् कर्णकटून् श्रुत्वा तेषु शब्देष्वनाश्रवोमध्यस्थोभूत्वा परिव्रजेत्संयमानुष्ठायी स्यात् । तथा निद्रां प्रमादरूपां भिक्षुर्नकुर्यात् । तदेवं गुरूपदेशात् कथं कथमपि विचिकित्सां विप्लुतिरूपां वितीर्णोनिष्क्रांतः स्यात् ॥ ६ ॥

॥ टीका-तदेवं प्रव्रज्यामभ्युद्यतोनित्यं गुरुकुलमावसन् सर्वत्र स्थानशयनासनादावुपयुक्तोभवति तदुपयुक्तस्य च गुणमुद्भावयन्नाह । (जेठाणउ यइत्यादि) योहि निर्विण्णसंसारतया प्रव्रज्यायामभ्युद्यतोनित्यं गुरुकुलवासतः स्थानतश्च स्थानमाश्रित्य तथा

शयनतश्चासनतः । एकश्चकारः समुच्चये द्वितीयोऽनुक्तसमुच्चयार्थः । चकाराज्जमनमाश्रित्यागमनंच तथा तपश्चरणादौ पराक्रमतश्च साधोरुद्युक्तविहारिणोये समाचारास्तैः समायुक्तः सुसाधुर्हि यत्र स्थानं कायोत्सर्गादिकं विधत्ते तत्र सम्यक्प्रत्युपेक्षणादिकां क्रियां करोति कायोत्सर्गे च मेरुरिव निष्प्रकंपशरीरोनिस्पृहोविधत्ते तथा शयनं च कुर्वन् प्रत्युपेक्ष्य संस्तारकं तन्नुवं कायं वोचितकाले गुरुनिरनुज्ञातः स्वपेत्तत्रापि जाग्रदिव नात्यंतं निःसहइति । एवमासनादिष्वपि तिष्ठता पूर्ववत्संकुचितगात्रेण स्वाध्यायध्यानपरायणेन सुसाधुना नवितव्यमिति । तदेवमादिसुसाधुक्रियायुक्तोगुरुकुलनिवासी सुसाधुर्नवतीति स्थितं । अपिच गुरुकुलवासे निवसन् पंचसु समितिष्वीर्यासमित्यादिषु प्रविचाराऽप्रविचाररूपासु तथा तिसृषु च गुप्तिषु प्रविचाराप्रविचाररूपासु आगतोत्पन्ना प्रज्ञा यस्यासावागतप्रज्ञः संजातकर्तव्याकर्तव्यविवेकः स्वतोनवति परस्यापिच व्याकुर्वन् कथयन् पृथक्पृथग्गुरोः प्रसादात्परिज्ञातस्वरूपः समितिगुप्तीनां यथावस्थितस्वरूपप्रतिपालनं तत्फलंच वदेत्प्रतिपादयेदिति ॥ ५ ॥ ईर्यासमित्याद्युपेतेन यद्विधेयं तद्दर्शयितुमाह । (सद्दाणीत्यादि) शब्दान् वेणुवीणादिकान् मधुरान् श्रुतिपेशलान् श्रुत्वा समाकर्ण्याऽथ नैरवान् नयावहान् कर्णकटूनाकर्ण्य शब्दानाश्रवति तान् शोननत्वेनाशोननत्वेनवा गृह्णातीत्याश्रवोनाश्रवोऽनाश्रवस्तेष्वनुकूलेषु प्रतिकूलेषु श्रवणपथमुपगतेषु शब्देष्वनाश्रवोमध्यस्थोरागद्वेषरहितोनूत्वा परिसमंताद् व्रजेत्परिव्रजेत् संयमानुष्ठायी नवेत्तथा निडांच निडाप्रमादंच निक्षुः सत्साधुः प्रमादांगत्वान्न कुर्यात् । एतडुक्तंनवति । शब्दाश्रवनिरोधेन विषयविषयप्रमादोनिषिद्धोनिडानिरोधेन निडाप्रमादश्चशब्दादन्यमपि प्रमादं विकथाकषायादिकं न विदध्यात् । तदेवं गुरुकुलवासात् स्थानशयनासनसमितिगुप्तिष्वागतप्रज्ञः प्रतिषिद्धसर्वप्रमादः सद्गुरोरुपदेशादेव कथंकथमपि विचिकित्सां चित्तविप्लुतिरूपां वितीर्णोऽतिक्रांतोनवति । यदिवा मझृहीतोयं पंचमहाव्रतनारोऽतिडुर्वहः कथंकथमपर्यंतं गच्छेदित्येवंनूतां विचिकित्सां गुरुप्रसादाद्वितीर्णोनवति ।अथवा यां कांचिच्चित्तविप्लुतिं देशसर्वगतां तां कृत्स्नां गुर्वंतिके वसन् वितीर्णोनवत्यन्येषामपि तदपनयनसमर्थः स्यादितिह

डहरेण वुड्ढेण णुसासिए उ, रातिणिएणावि समवएणं ॥ स
म्मं तयं थिरतो णान्निगच्छे, णिज्जंतए वा वि अपारएसे ॥ ७ ॥
विउट्ठितेणं समयाणुसिट्ठे, डहरेण वुड्ढेणउ चोइएय ॥ अच्चु
ट्ठियाए घडदासिए वा, अगारिणं वा समयाणुसिट्ठे ॥ ८ ॥

अर्थ–डहरेणवुड्ढेणणुसासिएउराके०) ते साधु गुरु सन्मुख वसतो कोइ कारणे प्र

मादे खलना पाम्यो छतो तेने न्हाने अथवा वडेराये शीखामण दीधी छतां (रायंणिए णाविसमव्वएणं के०) अथवा रत्नाधिक जे आचार्य अथवा सरखा पर्याय वालाये शीखामण आपीछतां (सम्मंतयंथिरतोणाभिगछे के०) तेमनी शीखामण सम्यक् प्रकारे नमाने (णिज्ञंतएवाविअपारएसे के०) ते संसार प्रवाहे वाहाडीजतो संसारनो पारंगामी नथाय एटले मुक्तिगामी नथाय ॥ ७ ॥ (विउठिते के०) अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ तेणे साधुने (समयाणुसिठे के०) सिद्धांतने अनुसारे शीखव्यो छतो एटले जेवीरीते तमे समाचरोछो तेम तमारा आगमने विषे कह्युं नथी (डहरेणवुड्ढेण उचोइएया के०) तथा न्हाने अथवा महोटे शीखामण चोयणा आपी छता (अच्चुठियाएघडदासिएवा के०) एटले अत्यंत कार्यनी करनारी तथा पाणीनी भरनारी एवी दासी तेणे (आगारिणंवासमयाणुसिट्ठे के०) सिद्धांतने अनुसारे चोयणा कस्यो छतो एटले जेम तमे चालोछो तेम गृहस्थ पण नचाले इत्यादिक वचने करी चोयणा कस्यो छतो शुं करे ते कहेछे ॥ ८ ॥

॥ दीपिका—ससाधुर्गुरुसमीपे वसन् डहरेण लघुना वृद्धेन वाऽनुशाशितः प्रमादाचरणनिषिद्धः । अथवा वयोधिकेन पर्यायज्येष्ठेन समवयसा वाऽनुशासितः कुप्यति तदनुशासनं सम्यक्स्थितोऽपुनःकरणतया नाभिगछेन्नप्रतिपद्येत । अप्रतिपद्यमानश्च संसारप्रवाहे नीयमानोन संसारपारगः स्यात् ॥ ७ ॥ विरुद्धोछानेनोछितोव्युछितोऽन्यतीर्थिकोगृहस्थोवा मिथ्यादृष्टिस्तेन प्रमादस्खलितोचोदितः स्वसमयेन । तद्यथा । नैवंविधमनुष्ठानं भवतामागमेव्यवस्थितमिति । तथा डहरेण लघुना वृद्धेन वाऽनाचारे प्रवृत्तश्चोदितस्तथाऽतीवाऽकार्यकरणं प्रति उछिताऽथवा दासीत्वेनात्यंतमुछिता तया । तथा दास्या अपिदासीत्वेन घटदास्या जलवाहिन्यापि चोदितोन क्रोधं कुर्यात् तथाऽगारिणां गृहस्थानां यः समयोनुशासितोगृहस्थानामप्येतन्नयुज्यते कर्तुं किं पुनः साधूनामितिचोदितोपि न कुप्येत् ॥ ८ ॥

॥ टीका—किंचान्यत् । (डहरेणेत्यादि) सगुर्वंतिके निवसन् कचित् प्रमादस्खलितः सन् वयःपर्यायाभ्यां क्षुल्लकेन लघुना चोदितः प्रमादाचरणं प्रतिषिद्धस्तथा वृद्धेन वा वयोधिकेन श्रुताधिकेनवाऽनुशासितोऽभिहितः । तद्यथा । भवद्विधानामीदृक्प्रमादाचरणमासेवितुमयुक्तं । तथा रत्नाधिकेनवा प्रव्रज्यापर्यायाधिकेन श्रुताधिकेनवा समवयसा वाऽनुशासितः प्रमादस्खलिताचरणंप्रति चोदितः कुप्यति । यथाहमप्यनेन रंकप्रायेणोत्तमकुलप्रसूतः सर्वजनसंमतइत्येवं चोदितइत्येवमनुशास्यमानोन मिथ्यादुष्कृतं ददाति न सम्यग्छानेनोत्तिष्ठति नापि तदनुशासनं सम्यक्स्थितोऽपुनःकरणतया नि

गच्छेत् प्रतिपद्यते चोदितश्च प्रतिचोदयेदसम्यक्प्रतिपाद्यमानश्चासौ संसारस्रोतसा नीयमानउह्यमानोऽनुशास्यमानः कुपितोसौ न संसारार्णवस्य पारगोनवति । यदिवाऽऽचार्यादिना सडुपदेशदानतः प्रमादस्खलितनिवर्तनतोमोक्षं प्रति नीयमानोप्यसौ संसारसमुद्रस्य तदकरणतोऽपारगएव नवतीति ॥ ७ ॥ सांप्रतं स्वपक्षचोदनानंतरतः स्वपरचोदनामधिकृत्याह । (विउहिएणमित्यादि) विरुद्धोबानेनोबितोव्युबितः परतीर्थिकोगृहस्थोवा मिथ्यादृष्टिस्तेन प्रमादस्खलितोचोदितः स्वसमयेन तद्यथा नैवंविधमनुष्ठानं नवतामागमे व्यवस्थितं येनाभिप्रवृत्तोसि । यदिवा व्युबितः संयमाद्भ्रष्टस्तेनापरः साधुः स्खलितःसन् स्वसमयेनार्हत्प्रणीतागमानुसारेणानुशासितोमूलोत्तरगुणाचरणे स्खलितः संचोदितश्चागमं प्रदर्श्याभिहितः । तद्यथा । नैतत्त्वरितगमनादिकं नवतामनुज्ञातमिति । तथान्येन वा मिथ्यादृष्ट्यादिना क्षुल्लकेन लघुतरेण वयसा वृद्धेन वा कुत्सिताचारप्रवृत्तश्चोदितस्तुल्वात्समानवयसावा तथातीवाकार्यकरणं प्रति उब्बिता अत्युबिता । यदिवा दासीत्वेन अत्यंतमुब्बिता दास्याअपि दासीति । तामेव विशिनष्टि । घटदास्या जलवाहिन्यापि चोदितोन क्रोधं कुर्यात् । एतडुक्तंनवति । उब्बितयापि कुपितयापि चोदितः स्वहितं मन्यमानः सुसाधुर्नकुप्येत् किंपुनरन्येनेति । तथा अगारिणां गृहस्थानां यः समयोनुष्ठानं तत्समयेनानुशासितोगृहस्थानामपि एतन्नयुज्यते कर्तुं यदारब्धं नवतेत्येवमात्मावमेनापि चोदितोममैवतच्छ्रेयइत्येवंमन्यमानोमनागपि न मनोदूषयेदिति ॥ ८ ॥

ण तेसु कुज्झे ण य पवहेज्जा, णं यावि किंची फरुसं वदेज्जा ॥तहा
करिस्संति पडिस्सुणेज्जा, सेयं खु मेयं ण पमाय कुज्जा ॥ए॥ व
णंसि मूढस्स जहा अमूढा, मग्गाणुसासंति हितं पयाणं ॥ तेणे
व मज्झं इणमेव सेयं, जमे बुहा समणुसासयंति ॥ १० ॥

अर्थ—(णतेसुकुज्झेणयपवहेज्जा के०) ते शीखामण आपनारना उपर ते साधु क्रोध नकरे तथा तेने व्यथे नही एटले दंडादिके प्रहार करीने तेने पीडा उत्पन्न करे नही तथा (णयाविकिंचीफरुसंवदेज्जा के०) तथा किंचित् मात्र कठोर वचन बोले नही परंतु तेमनां वचन सांजलीने आवीरीते कहे के (तहाकरिस्संतिपडिस्सुणेज्जाके०) जेम तमे कहोबो हुं तेमज करीश एम तेना वचन मान्य करे (सेयंखुमेयंणपमायकुज्जा के०) मनमां एम विचारेजे मने एहिज शिक्षारूप श्रेयकारी दान आपेबे एवुं जाणीने प्रमाद नकरे ॥ ए ॥ (वणंसिमूढस्सजहाअमूढा के०) जेम वन एटले गहन अटवीने विषे कोइएक मूर्ख दिशिमूढ थइ नूले पड्यो तेने कोइक अमूढ पुरुष मार्गनुं देखाडनार (मग्गाणुसासंतिहितंपयाणं के०) प्रजालोकने हितकारी एवो मार्ग देखाडे

ए दृष्टांते शिष्य पण एम जाणे जे (तेणेवमझंइणमेवसेयं के०) मुजने एहिज शिक्षानो मार्ग श्रेयकारी कहेछे (जमेबुद्धासमणुंसासयंति के०) जे मुजने बुद्ध पंडित गुरु आचार्यादिक सम्यक् रीते पुत्रनीपरे शिखामण शिक्षा आपेछे ते शिखामणने श्रेयकारी मानीने आदरे ॥ १० ॥

॥दीपिका–तेषु स्खलितनोदकेषु न क्रुध्येत्। यतः। आक्रुष्टेनमतिमतातत्वार्थविचारणे मतिः कार्या। यदि सत्यं कः कोपः स्यादनृतं किंनु कोपेन ॥ १ ॥ तथा तं नोदकं न प्रव्यथेत न दंमादिप्रहारेण पीमयेत्। नचापि किंचित्परुषं पीडाकारि वदेत् नोदितश्च तथा करिष्यामीति प्रतिशृणुयादंगीकुर्यात् इदं नोदनं ममश्रेयोयतएतद्भयात्कचित्प्रमादं न कुर्यात् ॥ ए ॥ वने मूढस्य दिग्भ्रांतस्य कस्यचिद्यथाऽमूढामार्गज्ञामार्गमनुशासंति कथयंति। किंभूतं मार्गं प्रजानां हितं। एवं तेनाप्यसदनुष्ठायिना नोदिते न कुपितव्यं किंतु ममैवं श्रेयइति मंतव्यं। यदेतद्बुधाः सम्यगनुशासयंति सन्मार्गे प्रापयंति ॥ १० ॥

॥ टीका–एतदेवाह। (एतेसुकुब्बेइत्यादि) तेषु स्वपरपक्षेषु स्खलितचोदकेष्वात्महितं मन्यमानोन क्रुध्येदन्यस्मिन् वा डुर्वचनेऽनिहिते न कुप्येदेवं चिंतयेत्। आक्रुष्टेन मतिमता तत्वार्थविचारणे मतिः कार्या ॥ यदि सत्यं कः कोपः स्यादनृतं किंनु कोपेन ॥ १ ॥ तथा नाप्यपरेण स्वतोऽधमेनापि चोदितोऽर्हन्मार्गानुसारेण लोकाचारगत्या वाऽनिहितः परमार्थं पर्यालोच्य तं चोदकं प्रकर्षेण व्यथेद्दंडादिप्रहारेण पीमयेन्नचापि किंचित्परुषं तत्पीडादिकारि वदेत् ब्रूयात्। ममैवायमसदनुष्ठायिनोदोषोयेनायमपि मामेवं चोदयति चोदितश्चैवंविधं नवता असदाचरणं न विधेयं। एवंविधे च पूर्वर्षिनिरनुष्ठितमनुष्ठेयमित्येवंविधवाक्यं तथा करिष्यामीत्येवं मध्यस्थवृत्त्या प्रतिशृणुयादनुतिष्ठेच्च मिथ्याडुष्कृतादिना निवर्तेत। यदेतच्चोदनं नामैतन्ममैवश्रेयोयतएतद्भयात्कचित्पुनः प्रमादं न कुर्यान्नैवासदाचरणमनुतिष्ठेदिति ॥ ए ॥ अस्यार्थस्य दृष्टांतं दर्शयितुमाह। (वणंसीत्यादि) वने गहने महाटव्यां दिग्भ्रमेण कस्यचिद्व्याकुलितमतेर्नष्टसत्पथस्य यथा केचिदपरे कृपाकृष्टमानसाअमूढाः सदसन्मार्गज्ञाः कुमार्गपरिहारेण प्रजानां हितमशेषापायरहितमीप्सितस्थानप्रापकं मार्गं पंथानमनुशासंति प्रतिपादयंति। सच तैः सदसद्विवेकिनिः सन्मार्गावतरणमनुशासितआत्मनः श्रेयोमन्यते। एवं तेनाप्यसदनुष्ठायिना चोदितेन नकुपितव्यमपितु ममायमनुग्रहइत्येवं मंतव्यं। यदेतद् बुद्धाः सम्यगनुशासयंति सन्मार्गेऽवतारयंति पुत्रमिव पितरस्तन्ममैवश्रेय इति मंतव्यं ॥ १० ॥

अह तेण मूढेण अमूढगस्स, कायव पूया सविसेसजुत्ता ॥ एत्र
वमं तत्र उदाहु वीरे, अणुगम्म अत्थं उवणेति सम्मं ॥ ११ ॥

णेता जहा अंधकारंसि राउ, मग्गं ण जाणाति अपस्समाणे॥
से सूरिअस्स अप्नुग्गमेणं, मग्गं वियणाइ पागसियंसि ॥१२॥

अर्थ—(अहतेणमूढेण अमूढगस्स के० हवे ते मूर्ख पुरुषे मार्ग पामे बते मार्गनो देखाडनार जे अमूढ पुरुष तेनो उपकार जाणीने (कायवपूयासविसेसजुत्ता के०) तेनी सविशेष विस्तार युक्त पूजा करवी (एउंवमंतबउदाहुवीरे के०) उपमां त्यां कही को णे कही तोके श्रीवीरपरमेश्वरे कही (अणुगम्मअबं उवणेतिसम्मं के०) ते पुरुष अर्थ एटले परमार्थ जाणी सम्यक् प्रकारे पोताने तेनो करेलो उपकार जाणी एम विचारे जे आ पुरुषे मने मिथ्यात्वरूप गहन वनना डुःख थकी रुमो उपदेश आपीने बोमाव्योबे तेमाटे एनी नक्ति करवी ॥ ११ ॥ (णेताजहाअंधकारंसिराउ के०) जेम णेता एटले मार्गनो जाण पुरुष चक्षु सहित बतां पण अत्यंत अंधकारमय रात्रीने विषे (मग्गंणजाणातिअपस्समाणे के०) मार्गने नजाणे केमके अंधकारमां दृष्टी पडे नही माटे अणदेखतो बतो मार्गनजाणे (सेसूरिअस्सअप्नुग्गमेणं के०) परंतु तेज पुरुष सूर्योदय थयाथी अंधकार विनाश पामे तेवारें (मग्गंवियाणातिपगासियंसि के०) सर्व जगतमां विशेष प्रकाश थयो बता वली सम्यक् प्रकारे तेमार्गने जाणे ॥ १२ ॥

॥ दीपिका—यथा तेन मूढेन सन्मार्गे प्रापितेन तस्यामूढस्य सन्मार्गोपदेष्टुः पुलिंदादेरपि पूजा विशेषयुक्ता कर्तव्या । एतामुपमामुदाहृतवान् कथितवान् वीरस्तीर्थकृत् अनुगम्य ज्ञात्वार्थं परमार्थं सम्यगात्मन्युपनयति परमोपकारं । कोर्थः । अहमनेन मिथ्यात्ववनाज्जन्ममरणाद्यनेकोपद्रवबहुलात्सडुपदेशदानेनोत्तारितस्ततोमयाऽस्य परमोपकारिणोविनयादिन्निः पूजा कर्तव्येति । यथा । गेहम्मि अग्गिजाला, उलंमि जहाण मउज माणंमि ॥ जो बाहेइ सुयंतं, सो तस्स जणो परमबंधूइति ॥११॥ यथा महांधकारायां रात्रौ नेता नायकोऽटव्यादौ स्वन्यस्तप्रदेशेपि मार्गं न जानाति स्वहस्तादिकमप्यपश्यन् । सएव नेता सूर्यस्याभ्युजमेनोदयेन प्रकाशिते दिक्चक्रे मार्गं विशेषेण जानाति॥१२

॥टीका—पुनरप्यस्यार्थस्य पुष्ट्यर्थमाह । (अहत्तेणेत्यादि) अथेत्यानंतर्यार्थे वाक्योपन्यासार्थेवा । यथा तेन मूढेन सन्मार्गावतारितेन तदनंतरं तस्यामूढस्य सत्पथोपदेष्टुः पुलिंदादेरपि परमुपकारं मन्यमानेन पूजा विशेषयुक्ता कर्तव्या । एवमेतामुपमामुदाहृतवान्निर्दिष्टवान् वीरस्तीर्थकरोन्योवा गणधरादिकोऽनुगम्य बुध्वाऽर्थं परमार्थं चोदनाकृतं परमोपकारं सम्यगात्मन्युपनयति । तद्यथाऽहमनेन मिथ्यात्ववनाज्जन्मजरामरणाद्यनेकोपद्रवबहुलात्सडुपदेशदानेनोत्तारितस्ततोमयाऽस्य परमोपकारिणोऽभ्युबानविनयादिन्निः

पूजा विधेयेति ॥ अस्मिन्नर्थे बहवोदृष्टांताः संति । तथा । गेहंमि अग्गिजाला, उलंमि ज हणामउज्झमाणंमि । जो बोहेइ सुयंतं सो तस्स जणो परमबंधू ॥१॥ जहवा विसजं जु तं, जत्तमिहमिहजोत्तुकामस्स ॥ जोवि सदोसं साहइ, सो तस्स जणो परमबंधू ॥ २ ॥ ॥ ११ ॥ अयमपरः सूत्रेणैव दृष्टांतोऽनिधीयते । (एोयाजहेत्यादि) यथाहि सजलज लधराछादितबहलांधकारायां रात्रौ नेता नायकोऽटव्यादौ स्वन्यस्तप्रदेशेपि मार्गं पंथानमं धकारावृतत्वात्स्वहस्तादिकमपश्यन्न जानाति न सम्यक् परिछिनत्ति । सएव प्रणेता सूर्यस्या दित्यस्याभ्युद्गमेनापनीते तमसि प्रकाशिते दिक्चक्रे सम्यगाविर्भूते पाषाणदरीनिम्नोन्नता दिके मार्गं जानाति विवक्षितप्रदेशप्रापकं पंथानमभिव्यक्तचक्षुः परिछिनत्ति दोषगुणवि चारणतः सम्यगवगछतीति ॥ १२ ॥

एवं तु सेहेवि अपुठधम्मे, धम्मं न जाणाइ अबुज्झमाणे ॥ से
कोविए जिणवयणेण पछा, सूरोदए पासति चक्कुणे वा ॥१३॥
उड्डुं अहेयं तिरियं दिसासु, तसा य जे थावरा जे य पाणा ॥
सया जए तेसु परिव्वएज्जा, मणप्पउसं अविकंपमाणे ॥ १४ ॥

अर्थ-(एवंतुसेहेविअपुठधम्मं के०) एरीते नवदीक्षित शिष्य पण प्रथमतो धर्मने अण फरसवाने लीधे अपंडित (धम्मंनजाणातिअबुज्झमाणे के०) अगीतार्थ अबुज्झ थको धर्मने नजाणे शुद्ध सिद्धांतना जे अर्थ ते थकी रहित होय पछी (सेके०) ते हिज शिष्य गुरुकुल वासे वसतो थको (जिणवयणेणपछा के०) जिनवचन थकी सम स्त सूत्रार्थ विचारने समजीने (कोविए के०) पंडित थाय (सूरोदएपासतिचक्कुणेवा के०) जेम सूर्योदय थकी निर्मल नेत्र वालो पुरुष सर्व मार्गने जाणे तेम सुशिष्य प ण हृदयरूप नेत्रे करी आगमरूप सूर्य प्रकाशित यथार्थी निर्मल धर्मरूप मार्गने जा णे ॥ १३ ॥ ते शिष्य जाण थयो थको शुं देखे ते कहेछे. (उड्डंअहेयंतिरियंदिसासुके०) उंचो नीचो अने तिर्छो एतावता सर्व लोकमांहे (तसायजेथावराजेयपाणा के०) त्रस अने स्थावर जे जीवोछे तेने विषे (सयाजएतेसुपरिव्वएज्जा के०) ते सर्वकाल यत्नकरतो संयम पाले रूडी क्रिया करे तेने विषे (मणप्पउसंअविकंपमाणेके०) मने करी प्रद्वेष न करे अविकंप एटले) शुद्ध संयमने विषे अमोल निश्चल एकाग्रभावसहित एवो रहे॥ १४

॥ दीपिका-एवं पूर्वोक्तप्रकारेण शिष्यकोप्यपुष्टधर्मा अगीतार्थः सूत्रार्थमबुध्यमानोधर्मं न जानाति सएव पश्चाद्गुरुकुलवासाज्जिनवचनेन कोविदः स्यात् । यथा. सूर्योदये गता

वतरणश्चक्षुषा घटादीन् पश्यति जनस्तथा जिनागमेनापि जीवादयः पदार्थाजवंतइ त्यर्थः ॥ १३ ॥ ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्च दिक्षु त्रसाश्च ये स्थावराः सूक्ष्मबादरादिनेदाश्च ये प्राणिनस्तेषु सदायत्तः परिव्रजेत् संयमानुष्ठायी जवेत् तथाऽविकंपमानः संयमादविचलन् तेषु प्राणिषु मनसापि प्रद्वेषं न गछेत् ॥ १४ ॥

॥ टीका—एवं दृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकमधिकृत्याह । (एवंतुसेहेत्यादि) यथा ह्यसावंधकारावृतायां रजन्यामतिगहनायामटव्यां मार्गं न जानाति सूर्योजमेनापनीते तमसि पश्चाज्ज्ञानात्येवं तु शिष्यकोऽजिनवप्रव्रजितोपि सूत्रार्थानिष्पन्नोऽपुष्टोऽपुष्कलः सम्यगपरिज्ञातोधर्मः श्रुतचारित्राख्योडुर्गतिप्रसृतजंतुधरणस्वजावोयेनासावपुष्टधर्मा सचाऽगीतार्थसूत्रानजिज्ञत्वादबुध्यमानोधर्मं जानातीति नसम्यक् परिछिनत्ति । सएव तु पश्चाज्ञुरुकुजवासाज्जिनवचनेन कोविदोऽभ्यस्तसर्वज्ञप्रणीतागमत्वान्निपुणः सूर्योदयेऽपगतावरणश्चक्षुषेव यथावस्थितान् जीवादीन् पदार्थान् पश्यति । इदमुक्तंजवति । यथाहि इंद्रियार्थसंपर्कात्साक्षात्कारितया परिस्फुटाघटपटादयः पदार्थाः प्रतीयंते एवं सर्वज्ञप्रणीतागमेनापि सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टस्वर्गापवर्गदेवतादयः परिस्फुटानिःशंकं प्रतीयंतइति । अपिच कदाचिच्चक्षुषान्यथाजूतोप्यर्थोऽन्यथा परिछिद्यते । तद्यथा । मरुमरीचिकानिचयोजजज्रांत्या किंशुकनिचयोग्न्याकारेणापीति । नच सर्वज्ञप्रणीतागमस्य क्वचिदपि व्यजिचारः । तद्व्यजिचारे हि सर्वज्ञत्वहानिप्रसंगात् तत्संजवस्य चासर्वज्ञत्वेन प्रतिषेडुमशक्यत्वादिति ॥१३॥ शिक्षकोहि गुरुकुजवासितया जिनवचनाजिज्ञोजवति तत्कोविदश्च सम्यक् मूलोत्तरगुणान् जानाति । तत्र मूलगुणानधिकृत्याह । (उड्ढंअहेयमित्यादि) ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् दिक्षु विदिक्षु चेत्यनेन क्षेत्रमंगीकृत्य प्राणातिपातविरतिरजिहिता । इव्यतस्तु दर्शयति । त्रस्यंतीति त्रसास्तेजोवायुर्द्वींद्रियादयश्च. तथा ये च स्थावराः स्थावरनामकर्मोदयवर्तिनः पृथिव्यब्वनस्पतयस्तथाचैतद्भेदाः सूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तकरूपादशविधप्राणधारणात्प्राणिनस्तेषु सदा सर्वकालमनेन तु कालमधिकृत्य विरतिरजिहिता । यत्तः परिव्रजेत्परिसमंता द्व्रजेत् संयमानुष्ठायी जवेत् । जावप्राणातिपातविरतिं दर्शयति । स्थावरजंगमेषु प्राणिषु तदपकारे उपकारेवा मनागपि मनसा प्रद्वेषं नगछेदास्तांतावद्दुर्वचनदंडप्रहारादिकं तेष्वपकारिष्वपि नामंगलं चिंतयेदविकंप्यमानः संयमादचलन् सदाचारमनुपालयेदिति । तदेवं योगत्रिककरणत्रिकेण इव्यक्षेत्रकालजावरूपां प्राणातिपातविरतिं सम्यगरक्तद्विष्टतया ऽनुपालयेदेवं शेषाण्यपि महाव्रतान्युत्तरगुणांश्च ग्रहणासेवनाशिक्षासमन्वितः सम्यगनुपालयेदिति ॥ १४ ॥

कालेण पुढे समियं पयासु, आइस्कमाणो दवियस्स वित्तं ॥ तं सोय कारी पुढो पवेसे, संखा इमं केवलियं समाहिं ॥ १५ ॥ अस्सिं सुठि च्चा तिविहेण तायी, एएसु या संति निरोहमाहु ॥ ते एवमस्कंति तिलो गदंसी, ए नुज्जमेयंति पमायसंगं ॥ १६ ॥

अर्थ-(कालेण के०) ते साधु काल प्रस्तावे एटले अवशर लइने जे आचार्य (पयासु के०) प्रजा एटले जीवोने विषे (समियं के०) सम परिणामे वर्त्तता होय तेवा आचार्यनी पासे सूत्र अने अर्थ (पुढे के०) पूछे (आइस्कमाणोदवियस्सवि त्तं के०) अने ते आचार्य पण मुक्तिगमनयोग्य जे पुरुष एवा पुरुषना शुद्ध व्रत आचा रने नाषतो थको वंदनीक पूजनीक होय पंचाचारनो पालनार होय (तंसोयकारीपुढोपवे से के०) तेवा आचार्य गुरुना वचन श्रवण करतो थको जुदा जुदा अर्थ विचार हृद यने विषे धारण करी राखे (संखाइमंकेवलियंसमाहिं के०) सन्मार्ग रूप केवली ना षित सम्यक् ज्ञानादि लक्षण धर्म तद्रूप समाधि ने पोताना हृदयने विषे स्थापन करे ॥ १५ ॥ (अस्सिंसुठिच्चातिविहेणतायी के०) एरीते गुरुकुल वासे वसतो एवो चारि त्रिउ ते पूर्वोक्त श्रुतरूप धर्म मार्ग सांजलीने मोक्ष मार्ग ग्रहण करीने त्रिविध प्रकारे त्रायी थाय एटले मन वचन अने कायायें करी बकायनो रक्षपाल थाय (एएसुयासं तिनिरोहमाहु के०) ए समिति गुप्तिने विषे स्थित रहिने शांति तथा निरोध एटले समस्त कर्मनो क्षय करे एम कहेछे (तेएवमस्कंतितिलोगदंसी के०) ते कोण कहेछे तोके त्रैलोक दर्शि एटले सर्वज्ञ पुरुषो एम कहेछे (एनुज्जमेयंतिपमायसंगं के०) व ली ते साधु कदापि क्षण मात्र पण प्रमादनो संग करेनही तथा ए प्रमाद करवो ए वो उपदेश पण करे नही ते पंमित साधु जाणवो. ॥ १६ ॥

॥ दीपिका—सम्यगितं सदाचारानुष्ठायिनं कंचिदाचार्यादिकं प्रजासु जंतुविषये चतुर्दश नूतग्रामविषयं किंचित् कालेनावसरं ज्ञात्वा पृछेत् । सच तेन पृष्टआचार्यादिराचक्षाणः सेव्यः स्यात् । किमाचक्षाणइत्याह । द्रव्यस्य वीतरागस्य वृत्तमनुष्ठानं संयमं वाऽचक्षा णोमान्यः स्यात् । आचार्यवचनं श्रोत्रे कर्णे कर्तुं शीलमस्य श्रोत्रकारी आज्ञाविधायी सन् पृथगुपन्यस्तमादरेण हृदये प्रवेशयेत् । केवलिकं केवलिना कथितं समाधिं सन्मार्ग मिमं वक्ष्यमाणं संख्याय सम्यक् ज्ञात्वा यथोपदेशं प्रवर्तकः सम्यक् चेतसि धारयेदिति ॥ १५ ॥ अस्मिन् गुरुकुलवासे सुष्ठु स्थित्वा त्रिविधेन मनोवाक्कायैः कृतकारितानुमति निर्वा जंतूनां त्रायी रक्षकः । एतासु समितिगुप्तिषु स्थितस्य शांतिः सर्वद्वंद्वविनाशः

स्यात्। तथा च निरोधं कर्मक्षयमाहुस्तद्विदः। एवं त्रिलोकदर्शिनस्तीर्थंकरास्ते आख्यांति कथयंति न पुनर्नूय एतं प्रमादसंगं विषयादिकं विधेयत्वेम कथितवंतः ॥ १६ ॥

॥ टीका–गुरोरंतिके वसतो विनयमाह। (कालेणेत्यादि) सूत्रमर्थं तडुनयं वा विशिष्टेन प्रष्टव्यकालेनाचार्यादेरवसरं ज्ञात्वा प्रजायंतइति प्रजाजंतवस्तासु जंतुषु विषये चतुर्दशनूतग्रामसंबधं कंचिदाचार्यादिकं सम्यगितं सदाचारानुष्ठायिनं सम्यक् वा समंताद्वा जंतुगतं पृच्छेदिति। सच तेन पृष्टआचार्यादिराख्याणः शुश्रूषयितव्योन्नवति। यदाचक्षाणस्तद्दर्शयति। मुक्तिगमनयोग्योन्नव्योऽव्यरागद्वेषविरहाद्वा डव्यं तस्य डव्यस्य वीतरागस्य तीर्थकरस्य वा वृत्तमनुष्ठानं संयमं ज्ञानं वा तत्प्रणीतमागमं वा सम्यगाचक्षाणः सपर्यया ऽयं माननीयोन्नवंति। कथमित्याह। तदाचार्यादिना कथितं श्रोत्रे कर्णे कर्तुं शीलमस्य श्रोत्रकारी यथोपदेशकारी सदाज्ञाविधायी सन् पृथक्पृथगुपन्यस्तमादरेण हृदये प्रवेशयेच्चेतसि व्यवस्थापयेत्। व्यवस्थापनीयं दर्शयति। संख्याय सम्यक् ज्ञात्वा इममिति वक्ष्यमाणं केवलिनइदं कैवलिकं केवलिना कथितं सन्मार्गं सम्यक् ज्ञानादिकं मोक्षमार्गमाचार्यादिना कथितं यथोपदेशं प्रवर्तकः पृथग्विविक्तं हृदये पृथग्व्यवस्थापयेदिति ॥ ॥ १५ ॥ किंचान्यत्। (अस्सिंइत्यादि) अस्मिन् गुरुकुलवासे निवसता यच्छ्रुतं श्रुत्वा च सम्यक् हृदयव्यवस्थापनद्वारेणावधारितं तस्मिन् समाधिनूते मोक्षमार्गे सुष्ठुस्थित्वा त्रिविधेनेति मनोवाक्कायगुप्तिन्निः कृतकारितानुमतिनिर्वाऽत्मानं त्रातुं शीलमस्येति त्रायी जंतूनां सडुपदेशदानतस्त्राणकरणशीलोवा तस्य स्वपरत्रायिणएतेषु च समितिगुप्त्यादिषु समाधिमार्गेषु स्थितस्य शांतिर्नवत्यशेषद्वंद्वोपरमोन्नवति। तथा निरोधमशेषकर्मक्षयरूपमाहुस्तद्विदः प्रतिपादितवंतः। कएवमाहुरित्यादि। त्रिलोकमूर्ध्वाधस्तिर्यग्लक्षणं डष्टुं शीलं येषांते त्रिलोकदर्शिनस्तीर्थकृतः सर्वज्ञास्ते एवमनंतरोक्तया नीत्या सर्वन्नावान् केवलालोकेन दृष्ट्वाचक्षते प्रतिपादयंतीति। एतदेवं समितिगुप्त्यादिकं संसारोत्तारणसमर्थं ते त्रिलोकदर्शिनः कथितवंतोन पुनर्नूयएवं प्रमादसंगं मद्यविषयादिकं संबंधविपयत्वेन प्रतिपादितवंतः ॥ १६ ॥

निसम्म से न्निक्कु समीहियहं, पडिन्नाणवं होई विसारए य ॥
आयाणअही वोदाणमोणं, उवेच्च सुद्धेण उवेति मोक्खं ॥ १७ ॥
संखाइ धम्मं च वियागरंति, बुद्धा हु ते अंतकरा न्नवंति ॥
ते पारगा दोएहवि मोयणाए, संसोधितं पएह मुदाहरंति ॥ १८ ॥

अर्थ–(सेन्निक्कु के०) ते गुरुकुलवासी साधु (निसम्मसमीहियहं के०) मुक्तिग

मन योग्यनो आचार जे मोक्ष मार्ग एटले समिहित अर्थ एवो सांजलीने तेने सम्यक् प्रकारे हृदयने विषे अवधारीने (पडिनाणवंहोईविसारएय के०) प्रतिज्ञावंत एटले बुद्धिवंत थाय तथा विशारद एटले सांजलनारने ते मोक्षमार्गनो अर्थ प्रकाशे एवो (आयाणअठी के०) मोक्षार्थी तथा (वोदाण के०) बार प्रकारनो तप तथा (मोणं के०) संयम तेने (उवेच्च के०) प्राप्त करीने (सुद्धेणउवेतिमोरकं के०) शूधो निर्दोष एवा आहारे करी अवशाने मोक्षने पामे ॥१७॥ हवे गुरुकुलवासे वसतांजे करे ते देखाडेले (संखाइधम्मंचवियागरंति के०) ते साधु गुरु पाशेथी सांजलीने पढी तेने सम्यक् प्रकारे जाणीने अन्य जनोने धर्म प्रकाशे (बुद्धाहुतेअंतकराजवंति के०) एवा बुद्ध एटले तत्वना जाण ते जन्मांतरे संचितजे कर्म तेना अंतना करनार थाय (तेपारगादोएहविमोयणाए के०) ते यथावस्थित धर्मना प्रकाशक बन्नेने एटले पोताने तथा परने कर्म थकी मुकाववे करीने संसारना पारंगामी थाय (संसोधितंपएहमुदाहरंति के०) जे सम्यक् सोधी पूर्वापर अविरोध द्रव्य क्षेत्र काल नाव जाणी ने प्रश्न कहे एतावता ते गीतार्थ सत्य धर्म प्रकाशता थका पोताना जीवने अने परना जीवने तारनार थाय पुढनारने समाधिना करनार थाय. ॥ १८ ॥

॥ दीपिका–सगुरुकुलवासी निक्षुः साध्वाचारं निशम्य ज्ञात्वा स्वतः समाहितं वार्थं मोक्षं ज्ञात्वा प्रतिज्ञानवानुत्पन्नबुद्धिर्विशारदश्च नवति। आदीयते मोक्षार्थिनिरित्यादानं ज्ञानादि सएवार्थः सविद्यते यस्य स आदानार्थी ज्ञानादिप्रयोजनवान् व्यवदानं तपः। मौनं संयमः। तौ तपःसंयमौ उपेत्य प्राप्य शुद्धेन निर्दोषाहारेणात्मानं यापयन् मोक्षमुपैति। (नउवेइमारंकचित्पाठः) मारं संसारं न उपैति न भ्रमतीति ॥ १७ ॥ संख्या सद्बुद्धिस्तया धर्मं ज्ञात्वा परेषां ये व्यागृणंति कथयंति ते बुद्धाज्ञाततत्वाः कर्मणामंतकरानवंति। ते शुद्धधर्मप्ररूपकाद्वयोरपि परात्मनोः कर्मपाशमोचनेनपारगाः स्युः। ते च सम्यक् शोधितं पूर्वापरविरुद्धं प्रश्नशब्दमुदाहरंति। कोर्थः परेण कंचिदर्थं पृष्टस्तं प्रश्नं सम्यक् परीक्ष्य कथयेत् ॥ १८ ॥

॥ टीका–किंचान्यत्। (णिसम्मेत्यादि) सगुरुकुलवासी निक्षुः इव्यस्य वृत्तं निशम्यावगम्य स्वतः समीहितं चार्थं मोक्षार्थं बुध्वा हेयोपादेयं सम्यक् परिज्ञाय नित्यं गुरुकुलवासतः प्रतिज्ञानवानुत्पन्नप्रतिनोनवति। तथा सम्यक् स्वसिद्धांतपरिज्ञानाच्छ्रोतृणां यथावस्थितार्थानां विशारदोनवति प्रतिपादकोनवति। मोक्षार्थिनाऽऽदीयत इत्यादानं सम्यक् ज्ञानादिकं तेनार्थः सएवार्थः आदानार्थः विद्यते यस्यासावादानार्थी सएवंनूतो

ज्ञानादिप्रयोजनवान् । इत्यादानं द्वादशप्रकारं तपोमौनं संयमआश्रवनिरोधरूपस्तदेवमे तौतपःसंयमावुपेत्य प्राप्य ग्रहणसेवनरूपया द्विविधयापि शिक्षया समन्वितः सर्वत्र प्रमाद रहितः प्रतिनावान् विशारदश्च शुद्धेन निरुपाधिना उजमादिदोषशुद्धेन चाहारेणात्मानं यापयन्नशेषकर्मक्षयलक्षणं मोक्षमुपैति। नउवेश्मारंतिकचित्पाठः। बहुशोम्रियंते स्वकर्मपर वशाः प्राणिनोयस्मिन् समारः संसारस्तं जातिजरामरणरोगशोकाकुलं शुद्धेन मार्गे णात्मानं वर्तयन् उपैति । यदिवा मरणं प्राणत्यागलक्षणं मारस्तं बहुशोनोपैति। तथा हि । अप्रतिपतितसम्यक्त्वउत्कृष्टतः सप्ताष्टौवा नवान् म्रियतेनोर्ध्वमिति ॥१७॥ तदेवं गुरुकुलनिवासितया धर्मे सुस्थिताबहुश्रुताः प्रतिनानवंतोऽर्थविशारदाश्च यत्कुर्वंति त द्दर्शयितुमाह । (संखाइइत्यादि) सम्यक् ख्यायते परिज्ञायते यया सा संख्या सद्बुद्धिस्त या स्वतोधर्मं परिज्ञायापरेषां यथावस्थितं धर्मं श्रुतंचारित्राख्यं व्यागृणंति प्रतिपादयंति। यदिवा स्वपरशक्तिं परिज्ञाय पर्षदं वा प्रतिपाद्य चार्थं सम्यगवबुध्य धर्मं प्रतिपादयंति । ते चैवंविधाबुद्धाः कालत्रयवेदिनोजन्मांतरसंचितानां कर्मणामंतकराऋवंति । अन्येषां कर्मापनयनसमर्थोंनवतीति दर्शयति । ते यथावस्थितधर्मप्ररूपकात् द्वयोरपि परा त्मनोः कर्मपाशविमोचनया स्नेहादिनिगडविमोचनया वा करणनूतया संसारसमुद्रस्य पारगाऋवंति। ते चैवंनूताः सम्यक्बोधितं पूर्वोत्तराविरुद्धं प्रश्नशब्दमुदाहरंति । तथाहि। पूर्वं बुध्वा पर्यालोच्य कोयं पुरुषः कस्य चार्थस्य ग्रहणसमर्थोऽहंवा किंनूतार्थप्रति पादनशक्तइत्येवं सम्यक् परीक्ष्य व्याकुर्यादित्यथवा परेण किंचिदर्थं पृष्टस्तं प्रश्नं सम्यक् परीक्ष्योदाहरेत्सम्यगुत्तरं दद्यादिति । तथाचोक्तं ।आयरियसयाधारि एणं अन्नेण सरियमुणिएण ॥ तोसंघमज्झयारे, ववहरिउंजेसुहंहोंति ॥ १ ॥ गीतार्थायथावस्थितं धर्मं कथयंतः स्वपरतारकाऋवंतीति. ॥ १८ ॥

णोछायए णो विय लूसएज्जा, माणं ण सेवज्ज पगासणं च ॥ ण
यावि पन्ने परिहास कुज्जा, ण या सियावाय वियागरेज्जा ॥ १९ ॥
नूताभिसंकाइ डुगुंबमाणे, ण णिव्वहे मंतपदेण गोयं ॥ ण किं
चिमिच्छे मणुए पयासु, असाहुधम्माणि ण संवएज्जा ॥ २० ॥

अर्थ– ते प्रश्न कहेता थकां कदापि अन्यथा पण केवाय ते माटे तेनु निषेध कहे ले. ते धर्मनु प्ररूपक पुरुष पूबता सूत्रना अर्थने (णोछायए के०) ढाके नही एटले अन्यथा नवखाणे (णोवियलूसएज्जा के०) तथा पारका गुण लूसे नही एटले पोता ने अनिमाने करी अन्यने विटंबना करे नही तथा (माणंणसेवज्जपगासणंच के०) मा

न नसेवे एटले अहंकार नकरे पोतानी मोहोटाइ प्रकाशे नही तथा हुं बहुश्रुतछुं एम पण नकहे (णयाविपन्नेपरिहासकुज्जा के०) तथा पोताने प्रज्ञावंत जाणीने परनो परिहास्य एटले उपहास्य नकरे एटले कोइने अज्ञानी जाणीने तेने हास्यना वचन बोले नही (णयासियावायवियागरेज्जा के०) तथा कोइने आशीर्वादना वचन नबोले एटले तमे बहु धनवान् बहु पुत्रवान् दीर्घायुष्यवान् छो इत्यादिक वचन नकहे ॥ १ए ॥ तथा (जूताभिसंकाए के०) जूत एटले प्राणी तेनी हिंसानी शंकायें सावद्य वचन जाणीने आशीर्वाद न आपे (डुगुंबमाणे के०) पापने निंदतो थको (णणिव्वहेमंतपदेणगोयं के०) तथा मंत्रपद एटले विद्यामंत्रे करीने गोत्र एटले संयम तेने निःसार नकरे (ण किंचिमिछेमणुएपयासु के० वली धर्मनो प्ररूपक साधु ते धर्मनो प्रकाश करतो थको सांजलनार पुरुषोनी पाशेथी वस्त्रादिकना लाजनी इछा करे नहि निरीह छतो धर्म प्रकाशे तथा (असाहुधम्माणि के०) असाधुनो हिंसारूप वस्तुदान तर्प्पणादिक एवो जे धर्म तेने सेवे नही एटले (णसंवएज्जा के०) एवो सावद्य धर्म नबोले. ॥ २० ॥

॥ दीपिका—सप्रश्नस्योदाहर्ता कुतश्चिन्निमित्तात् श्रोतुः कुपितोपि सूत्रार्थं न छादयेत् स्वाचार्यं वा नापलपेत् परगुणान् वा न छादयेत् । शास्त्रार्थं नोजूषयेत् न विडंबयेत् मौनं न सेवेत नाप्यात्मगुणानां प्रकाशनं कुर्यात् न च प्रज्ञावान् परिहासं कुर्यात् न चाशीर्वादं बहुपुत्रोबहुधान्योदीर्घायुस्त्वं जूयाइत्यादि व्यागृणीयात् ॥ १ए ॥ जूतेषु प्राणिषु जूताभिशंका उपमर्दशंका तयाऽऽशीर्वादं सावद्यं जुगुप्सां न ब्रूयात् तथा गोत्रं मौनं मंत्रपदेन विद्यासाधनविधिना ननिर्वाहयेत् न निःसारं कुर्यात् । प्रजासु जीवेषु मनुजोव्याख्यां कुर्वन्नकिमपि लाजमिछेत् तथाऽसाधूनां धर्मान्स्नानतर्पणादिकान् न संवदेन्न ब्रूयात्. ॥ २० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ टीका—सच प्रश्नमुदाहरन् कदाचिदन्यथापि ब्रूयादतस्तत्प्रतिषेधार्थमाह । (णो छायएइत्यादि) सप्रश्नस्योदाहर्ता सर्वार्थाश्रयत्वाद्रत्नकरंडकल्पः कुत्रापि कुत्तिकापणकल्पोवा चतुर्दशपूर्विणामन्यतरोवा कश्चिदाचार्यादिभिः प्रतिजानवानर्थविशारदस्तदेवंजूतः कुतश्चिन्निमित्तात् श्रोतुः कुपितोपि सूत्रार्थं न छादयेन्नान्यथा व्याख्यां नयेत्स्वाचार्यं वा नापलपेध्धर्मकथां वा कुर्वन्नार्थं छादयेदात्मगुणोत्कर्षाभिप्रायेण वा परगुणान्नछादयेत्तथा परगुणान्नजूषयेन्नविडंबयेछास्त्रार्थं वा नापसिध्धांतेन व्याख्यानयेत्तथा समस्तशास्त्रवेत्ताहं सर्वलोकविदितः समस्तसंशयापनेता न मत्तुल्योहेतुयुक्तिभिरर्थप्रतिपादयितेति एवमात्मकं मानमभिमानं गर्वं नसेवेत नाप्यात्मनोबहुश्रुतत्वेन तपस्वित्वेन वा प्रकाशनं कुर्याच्चशब्दादन्यदपि पूजासत्कारादिकं परिहरेत्तथा नचापि प्रज्ञावान् सश्रुतिकः परि

हासं केवलिप्रायं ब्रूयाद्यदिवा कथंचिदवबुध्यमाने श्रोतरि तडुपहासप्रायं परिहासं न विदध्यान्नापि चाशीर्वादं बहुपुत्रोबहुधनोबहुधर्मोदीर्घायुस्त्वं भूयाइत्यादिव्यागृणीयात् भाषासमितियुक्तेन भाव्यमिति ॥ १९ ॥ किंनिमित्तमाशीर्वादोन विधेयइत्याह । (भूया निसंकाइइत्यादि) भूतेषु जंतुष्पमर्दशंका तयाशीर्वादं सावद्यं सपापं जुगुप्समानोन ब्रूयात्तथा गायत्रायतइति गोत्रं मौनं वाक्संयमस्तं मंत्रपदेन विद्यापमार्जनविधिना न निर्वाहयेन्न निःसारं कुर्यात् । यदिवा गोत्रं जंतूनां जीवितं मंत्रपदेन राजादिगुप्तभाषणपदेन राजादीनामुपदेशदानतोननिर्वाहयेन्नापनयेत् । एतडुक्तं भवति । नराजादिना सार्धं जंतुजीवितोपमर्दकं मंत्रं कुर्यात्तथा प्रजायंतइति प्रजाजंतवस्तासु प्रजासु मनुजोमनुष्यो व्याख्यानं कुर्वन् धर्मकथां वा नकिमपि लाभपूजासत्कारादिकमिच्छेदभिलषेत्तथा कुत्सितानामसाधूनां धर्मान् वस्तुदानतर्पणादिकान्नसंवदेन्नब्रूयाद्यदिवा नासाधुर्धर्मान् ब्रुवन् संवादयेदथवा धर्मकथां व्याख्यानंवा कुर्वन् प्रजास्वात्मश्लाघारूपां कीर्तिं नेच्छेदिति. ॥ २० ॥

हासं पि णो संधति पावधम्मे, उए तहीयं फरुसं वियाणे ॥
णो तुच्छए णो य विकंथइज्जा, अणाइले या अकसाइ भिक्खू ॥ २१ ॥
संकेज्ज या संकितभाव भिक्खू, विभज्जवायं च वियागरेज्जा ॥ भा
साडुयं धम्म समुट्ठितेहिं, वियागरेज्जा समया सुपन्ने ॥ २२ ॥

अर्थ-(हासंपिणोसंधति के०) तथा जे थकी पोताने अने परने हास्य उपजे ते नकहे तथा (पावधम्मे के०) पापधर्म एटले सावद्य धर्म नबोले (उएतहीयं के०) तथा राग द्वेष रहित अकिंचन एवो छतो साधु सत्य वचनज बोले अनेजे (फरुसंवियाणे के०) परुष एटले करुण निठुर वचन होय तेने ज्ञ परिज्ञायें जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञायें परिहरे तथा (णोतुच्छए के०) पूजा सत्कारादिकने पामतो थको उन्माद न करे तथा (णोयविकंथइज्जा के०) पोतानी यश कीर्ति देखीने श्लाघा नकरे तथा (अणाइलेया के०) अणाकुल होय एटले धर्म करतो थको आकुल नथाय तथा (अकसाइभिक्खू के०) कषाय रहित एवो साधु जाणवो ॥ २१ ॥ (संकेज्जयासंकित भावभिक्खू के०) साधु सूत्र अर्थने विषे निःशंकित छतो पण शंका राखे एटले सगर्व नथाय ए अर्थ जेरीते हुं जाणुबुं तेरीते बीजो कोइ जाणतो नथी एम नकहे एकांत वाद टाले तथा (विभज्जवायं चवियागरेज्जा के०) स्याद्वादवचन बोले सिद्धांतनो सर्व प्रथक् प्रथक् अर्थ वेचीने व्याख्या करे तथा (भासाडुयं धम्मसमुट्ठितेहिं के०) संयमने विषे सम्यक् प्रकारे उठ्या .एवा साधु धर्म कथाने अवसरे बे भाषा बोले एकतो सत्या भाषा अने

बीजी असत्यामृषा एटले एकतो सत्य नाषा अने बीजी व्यवहारारिक ए रीते बे नाषा बोले (वियागरेज्जा समयासुपन्ने के०) तथा राजायें अने रांके पुबयो थको प्रज्ञावंत महानुनाव एवो साधु बन्नेने समनावे धर्म कहे. ॥ २२ ॥

॥ दीपिका–हास्यं न संधयेन्नकुर्यान्नकारयेत् । तथा पापधर्मान् सावद्यरूपान्नकुर्यात् तथा उंजानिष्किंचनः सन् तथ्यमपि परुषं वचः कठिनं वाक्यं ज्ञपरिज्ञया विजानीय प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिहरेत् । तथा पूजासत्कारादिकमवाप्य न तुब्रोनवेनोन्मादं गब्रेत् । तथा नविकब्रयेन्नात्मानं श्लाघयेत् तथा व्याख्यानावसरेऽनाविलोलोनादिनिरपेक्षः स्यात्तथाऽकषायोनिक्षुः स्यात् ॥ २१ ॥ साधुर्व्याख्यानं कुर्वन्नशंकितनावोप्यर्थनिर्णयवेत्तापि शंकेत औद्धत्यं परिहरेत् तथा विनज्यवादं स्याद्वादं व्यागृणीयात् कथयेत् । सत्या असत्या मृषावेति नाषाद्वयं वदेत् समुब्रितैः साधुनिः सह विहरन् सुप्रज्ञः सन्मतिर्नृपतिद्रमकयोः समतया रागद्वेषरहितोधर्मं व्यागृणीयात्. ॥ २२ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (हासंपीत्यादि) यथा परात्मनोर्हास्यमुत्पद्यते तथा शब्दादिकं शरीरावयवमन्यान् वा पापधर्मान् सावद्यान्मनोवाक्कायव्यापारान्नसंधयेन्नविदध्यात् । तद्यथा । इदं बिंधि निंधि तथा कुप्रावचनिकान् हास्यप्रायं नोत्प्रासयेत्तद्यथा शोननीयं नवदीयं व्रतं । तद्यथा । मृद्वी शय्या प्रातरुब्राय पेया, मध्ये नक्तं पानकं चापराह्णे । इाक्काखंडं शर्करां चार्धरात्रे, मोक्षश्चांते शाक्यपुत्रेण दृष्टइत्यादिकं परदोषोद्भावनप्रायं पापबंधकमिति कत्वा हास्येनापि नवक्तव्यं । तथा उंजारागद्वेषरहितः सबाह्याभ्यंतरग्रंथत्यागाद्वा निष्किंचनः संस्तथ्यमिति परमार्थतः सत्यमपि परुषं वचोपरचेतोविकारि ज्ञपरिज्ञया विजानीयात्प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिहरेत् । यदिवा रागद्वेषविरहादोजास्तथ्यं परमार्थनूतमकृत्रिममप्रतारकं परुषं कर्म संश्लेषानावान्निर्ममत्वादल्पसत्वैर्डरनुष्ठेयत्वाद्वा कर्कशमंतप्रांताहारोपनोगाद्वा परुषं संयमं विजानीयात्तदनुष्ठानतः सम्यगवगब्रेत्तथा स्वतः किंचिदर्थविशेषं परिज्ञाय पूजासत्कारादिकमवाप्य न तुब्रोनवेन्नोन्मादं गब्रेत्तथा नविकब्रयेन्नात्मानं श्लाघयेत् परं वा सम्यगवबुध्यमानोनोविकब्रयेन्नात्यंतं च मदयेत् तथा नाकुलोव्याख्यानावसरे धर्मकथनावसरे वा नाविलोलानादिनिरपेक्षोनवेत् । तथा सर्वदा अकषायः कषायरहितोनवेद्भिक्षुः साधुरिति ॥ २१ ॥ सांप्रतं व्याख्यानविधिमधिकृत्याह । (संकेज्जेत्यादि) निक्षुः साधुर्व्याख्यानं कुर्वन्नर्वाग्दर्शित्वादर्थनिर्णयं प्रति अशंकितनावोपि शंकेत औद्धत्यंपरिहरन्नहमेवार्थस्य वेत्ता नापरः कश्चिदित्येवं न गर्वं कुर्वीत किंतु विषममर्थं प्ररूपयन् साशंकमेव कथयेद्यदिवा विनज्यवादः स्याद्वादस्तं सर्वत्रास्खलितं लोकव्यवहाराविसंवादितया सर्वव्यापिनं स्वानुनव

सिद्धं वदेदथवासम्यगर्थान् विजज्य पृथक्कृत्वा तद्वादं वदेत्तद्यथा नित्यं वादं द्रव्यार्थत या पर्यायार्थतया त्वनित्यवादं वदेत्तथा स्वद्रव्यक्षेत्रकालनावैः सर्वेपि पदार्थाः संति पर द्रव्यादिनिस्तु न संति। तथाचोक्तं । सदैव सर्वं कोनेच्छेत्स्वरूपादिचतुष्टयात् । असदे व विपर्यासान्नचेन्न व्यवतिष्ठतइत्यादिकं विनज्यवादं वदेदिति । विनज्यवादमपि नाषा द्वितयेनैव ब्रूयादित्याह । नाषयोराद्यचरमयोः सत्यासत्यामृषयोर्द्विकं नाषाद्विकं त नाषा द्वयं क्वचित्पृष्टोऽपृष्टोवा धर्मकथावसरेऽन्यदावा सदा वा व्यागृणीयात् नाषेत। किंनू तः सन् सम्यक् सत्संयमानुष्ठानेनोछिताः समुछिताः सत्साधवउद्युक्तविहारिणोन पुन रुदायिनृपमारकवत्कृत्रिमास्तैः सम्यगुछितैः सह विहरंश्चक्रवर्तिद्रमकयोः समतया रागद्वेष रहितोवा शोननप्रज्ञोनाषाद्वयोपेतः सम्यग्धर्मं व्यागृणीयादिति ॥ २२ ॥

अणुगछमाणे वि तहंवि जाणे, तहातहा साहु अ कक्कसेणं ॥
ण कुवईनास विहंसइज्जा, निरुद्धगं वावि न दीहइज्जा॥ २३ ॥
समालवेज्जा पडिपुन्ननासी, निसामिया समिया अठदंसी ॥
आणाइसुद्धं वयणं निउंजे अनिसंधए पावविवेगनिक्खु ॥ २४॥

अर्थ—(अणुगछमाणे वि तहंवि जाणेके०) हवे तेने बे नाषायेंकरी धर्म कहेता थका कोइ एक पंमित होय ते समी रीते समजे अने कोइएक मूर्ख होय ते विपरीत पणे समजे एटले तेने अर्थनी पूरे पूरी समजण न पडे तो (तहातहा साहुअकक्कसेणं के०) तेम तेम साधु ते श्रोताने मधुर नाषाये करी सम्यक् समजावे सत्यमार्ग देखाडे परंतु (णकुवईनासविहंसइज्जा के०) तेनी नाषाने अवहिले नही तथा तेने ति रस्कार नकरे तथा तेनी नाषाने निंदे नही (निरुद्धगंवाविनदीहइज्जा के०) थोडो सूत्रा र्थ थोडा काल सुधी कहे पण व्याकर्ण तर्क करी घणो काल सुधी आलजाल कही विस्तारे नही. यतः सोअछोवत्तवो, जोनणई अरकरेहिं थोवेहिं। जाउण थोवबहु अरक रेहिं सोहोईनिस्सारो ॥ १ ॥ इतिवचनात् ॥ २३ ॥ (समालवेज्जापडिपुन्ननासीके०) जे अत्यंत विषम अर्थ होय ते सम्यक् प्रकारे विस्तारीने बोले जेम श्रोता पुरुष सुखे स मजे तेम प्रतिपूर्ण नाषाये करी बोले अरकलियं अविच्चामेलिउ इत्यादिक पूरण नाषे (निसामियासमिया अठदंसी के०) तथा गुरुने समीपे सांनलीने सम्यक् प्रकारे अर्थ देखीने नलीरीते ते अर्थने विचारीने (आणाइसुद्धं वयणं निउंजे के०) आज्ञा विशुद्ध वचन प्रयुंजे एम उत्सर्ग अपवाद मार्गने दर्शावनारि एवि शुद्ध वाणी कहेतो थको (अ निसंधए पावविवेगनिक्खुके०) साधु पापनुं विवेक करे एटले पापनुं परिहार करे. ॥२४

॥ दीपिका–तस्यैवं भाषाद्वयेन वदतः कश्चिन्मेधावी तथैव तमर्थमाचार्यादिना कथितमनुगच्छन् सम्यगवबुध्यते। अन्यस्तु मंदमतिर्वितथमन्यथैव विजानीयात्। तंच सम्यगनवबुध्यमानं तथातथा तेन प्रकारेण कर्कशवचनेन वदेत्। यथाऽसौ तमर्थं बुध्यते न कुत्रचित्कुत्सुमुखोनादरेण कथयेन्मनःपीडामुत्पादयेत्। तथा प्रश्नकर्तुर्भाषां नविहिंस्यान्नतिरस्कुर्यात् निरुद्धं स्तोकमर्थं न दीर्घयेत् अन्योन्यकथनेन दीर्घं कुर्यात्। तथा चोक्तं। सोअत्थो वत्तवो, जो नसइ अक्करेहिं थोवेहिं ॥ जो पुण थोवा बहु अ,क्करेहिं सो होइ निःसारोइति ॥ २३ ॥ यः स्तोकाक्षरैर्नावबुध्यते तं प्रतिपूर्णभाषी पर्यायशब्दैर्भावार्थकथनश्च समालपेत् समंताद्भाषेत यथा सअवबुध्यते तथा कुर्यादित्यर्थः। तथाऽचार्यादेः सकाशादर्थं निशम्य श्रुत्वा सम्यगर्थदर्शी सत्पदार्थवेत्ता तीर्थकृताज्ञया निरवद्यं शुद्धं वचनमभियुंजीत वदेत्। एवं वाऽभियुंजन् भिक्षुः पापविपाकं लाभसत्कारादिं निरपेक्षतया कांक्षमाणोनिर्दोषं वचनमभिसंधयेत् ॥ २४ ॥

॥ टीका–(किंचान्यत्। (अणुगच्छमाणेइत्यादि) तस्यैवं भाषाद्वयेन कथयतः कश्चिन्मेधावितया तथैव तमर्थमाचार्यादिना कथितमनुगच्छन् सम्यगवबुध्यते। अपरस्तु मंदमेधावितया वितथमन्यथैवाभिजानीयात्तंच सम्यगनवबुध्यमानं तथातथा तेन हेतूदाहरणसद्युक्तिप्रकटनप्रकारेण मूर्खस्त्वमसि तथा डुर्डुरूढः खसूचिरित्यादिना कर्कशवचनेनाभिनर्त्सयन् यथातथासौ बुध्यते तथा साधुः सुष्ठु बोधयेन्न कुत्रचित्कुत्सुमुखहस्तौष्ठनेत्रविकारैरनादरेण कथयन् मनःपीडामुत्पादयेत्तथा प्रश्नयतस्तद्भाषामपशब्दादिदोषडुष्टामपि धिग्मूर्खासंस्कृतमते किंवाऽनेन संस्कृतेन पूर्वोत्तरव्याहतेन वोच्चारितेनेत्येवं नविहिंस्यान्न तिरस्कुर्यादसंबद्धोद्घट्टनस्तं प्रश्नयितारं न विडंबयेदिति। तथा निरुद्धमर्थं स्तोकं दीर्घवाक्यैर्महता शब्ददर्डुरेणार्कविटपिकोष्ठिकान्यायेन नकथयेन्निरुद्धं वा स्तोककालीनं व्याख्यानं व्याकरणतर्कादिप्रवेशनद्वारेण प्रसक्त्यानुप्रसक्त्या नदीर्घयेन्नदीर्घकालिकं कुर्यात्। तथाचोक्तं। सो अत्थो वत्तवो, जो नसइ अक्करेहिं थोवेहिं ॥ जो पुण थोवो बहु अ, क्करेहिं सो होइ निःसारो ॥ तथा ॥ किंचित्सूत्रमल्पाक्षरमल्पार्थं वा इत्यादि चतुर्भंगिका तत्र यदल्पाक्षरं महार्थं तदिह प्रशस्यतइति ॥ २३ ॥ अपिच। (समालवेज्जाइत्यादि) यत्पुनरतिविषमत्वादल्पाक्षरैर्न सम्यगवबुध्यते तत्सम्यक् शोभनेन प्रकारेण समंतात्पर्यायशब्दोच्चारणतोभावार्थकथनतश्चालपेद्भाषेत समालपेन्नाल्पैरेवाक्षरैरुक्त्वा कृतार्थोभवेदपितु क्षेयगहनार्थभाषणे सद्धेतुयुक्त्यादिभिः श्रोतारमुपेक्ष्य प्रतिपूर्णभाषी स्यादस्खलिताहीनाक्षरार्थवादी भवेदिति। तथाचार्यादेः सकाशाद्यथावदर्थं श्रुत्वा ऽवगम्य निशम्य च यथावस्थितमर्थं यथागुरुसकाशादवधारितमर्थं प्रतिपाद्यं दृष्टुं

शीलमस्य सनवति सम्यगर्थदर्शी सएवंनूतः संस्तीर्थकराज्ञया सर्वज्ञप्रणीतागमानुसारेण शुद्धमवदातं पूर्वापराविरुद्धं निरवद्यं वचनमनियुंजीतोत्सर्गेविपयेसति उत्सर्गमवाद विपर्ये वा ऽपवादं तथा स्वपरसमययोर्यथास्वं वचनमनिवदेत् । एवं चानियुंजन् निक्षुः पापविवेकलानं सत्कारादिं निरपेक्षतया कांक्षमाणोनिर्दोषं वचनमनिसंधयेदिति ॥ २४ ॥

अहाबुइयाइं सुसिरकएज्जा, जइज्जया णातिवेलं वदेज्जा ॥ से दिठिमं दिठिए लूसएज्जा, से जाणई नासिउं तं समाहिं ॥ २५ ॥ अलूसए णो पछन्ननासी, णो सुत्तमछं च करेज्ज ताई ॥ सछारनत्ती अणुवीइ वायं सुयं च सम्मं पडिवाययंति ॥ २६ ॥ से सुद्धसुत्ते उवहाणवं च, धम्मं च जे विंदति तछतछ ॥ आदेज्जवक्के कुसले वियत्ते, स अरिहइ नासिउं तं समाहित्तिबेमि ॥ २७ ॥ इतिग्रंथनामा चउदसमज्झयणं सम्मत्तं ॥

अर्थ— (अहाबुइयाइंसुसिरकएज्जा के०) श्रीतीर्थंकरादिके जेम वचन कह्यांछे तेमज नलीरीते शीखे (जइज्जयाणातिवेलंवदेज्जा के०) तेमज पाले तेमज मुखथी नाषे एटले प्रकाशे तथा वेलं एटले मर्यादा उल्लंघे नही वली सावद्य वचन बोले नही (सेदिठिमंदिठिएलूसएज्जा के०) एवो ते दिठिमं एटले सम्यक् दृष्टीवंत ते पोतानो सम्यक् दर्शन लूसाए नही तेवी रीते प्ररूपणा करे (सेजाणईनासिउंतंसमाहिं के०) ते पुरुष श्रीतीर्थंकरनाषित समाधि मार्ग बोली जाणे ॥ २५ ॥ (अलूसएणोपछन्ननासी के०) आगमार्थ कहेतो थको लूसे नही एटले अपशब्द बोली सूत्रार्थ डुषवेनही तथा प्रछन्ननाषी नथाय एटले सूत्रार्थ गोपवे नही सूत्रनो नलो अर्थ प्रकाशे (णोसुत्तमछंच करेज्जताई के०) तथा त्राई एटले छकायनो रक्षपाल एवो साधु सूत्र अर्थ अन्यथा नकरे (सछारनत्तीअणुवीइवायंके०) गुरूनी नक्तिआलोचीने बोले पण गुरूनी अनक्ति थाय तेम नबोले (सुयंचसम्मंपडिवाययंतिके०) जेरीते श्रुतने सम्यक् प्रकारे करीने गुरूसमीपेंसांनाल्युं होय तेरीतेज अर्थ बोले अन्यथाक्षणोबंदोनवति ॥ २६ ॥ (सेसुद्धसुत्ते के०) ते साधुनुं ए रीते उपदेशादिक अवशरे प्रकाशतो सूत्र शुद्ध कहेवाय (उवहाणवंचके०) तथा उपधानवंत एटले जे सूत्रनो जे तप सिद्धांतोमां कह्योछे तेने उपधान कहियें तेनो करनार (धम्मंचजेविंदतितछतछके०) जेजे धर्म सम्यक् जाणे तेते धर्म त्यां त्यां अंगीकार करे जेम जेम श्रीवीतरागनी आज्ञा मले तेम तेम धर्मनाषे पण श्रीवीतरागनी आज्ञा विरूद्ध नबोले (आदेज्जवक्केकुसलेवियत्तेके०) एवो जेथाय ते आदेय वचन एटले समस्त लोकने ग्राह्य माननीक वचन बोले तथा कुशल

निपुण तथा व्यक्त स्पष्ट ते अविमास्यो नकरे (सअरिहइनासिउंतंसमाहित्तिबेमिके०)ते साधु श्रीवीतराग प्रणीत सूधो समाधि धर्म मार्ग नाषवाने योग्य थाय त्तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ २७ ॥ एरीते ग्रंथनामा चौदमां अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो.

॥ दीपिका—(यथोक्तानि जिनैस्तानि सुष्टु शिक्षेत शिक्षितश्च देशनायां यतते । देशनोद्यतोपि योयस्य कर्तव्यस्य कालस्तां वेलामतिक्रम्य न वदेत् कर्तव्यमर्यादां नातिलंघयेदित्यर्थः । सद्दृष्टिमान् यथावस्थितपदार्थान् श्रद्दधानोदृष्टिं सम्यक्दर्शनं नलूषयेन्नदूषयेत् । कोर्थः । देशनां व्याख्यानं वा कुर्वन् तथा कथयेद्यथाश्रोतुः सम्यक्त्वं स्थिरीनवति । यश्चैवंनूतः सजानाति नाषितुं तं सर्वज्ञोक्तं समाधिं ज्ञानदर्शनचारित्राख्यं २५ सर्वज्ञोक्तं नलूषयेन्नदूषयेतुप्रछन्नजाषी नवेत्सिद्धांतार्थं शुद्धं प्रछन्नंवा न गोपयेदथ प्रछन्नमर्थमपरिणताय न नाषेत । तथाचोक्तं । अप्रशांतमतौ शास्त्रसद्भावप्रतिपादनं ॥ दोषायाभिनवोदीर्ण,शमनीयमिव ज्वरे ॥ १ ॥ त्रायी स्वपररक्षकोन सूत्रमतिकल्पनया कुर्वीत । परहितकरः शास्ता तस्मिन् शास्तरि याजक्तिर्बहुमानस्तयाऽनुविचिंत्य वादं वदेत् । अनेनोक्तेनागमबाधा कापि न स्यादिति । तथा श्रुतं सम्यगाराधयन् प्रतिपादयेत् सुखशीलः स्यादित्यर्थः ॥ २६ ॥ शुद्धं सूत्रं प्रवचनं यस्य सशुद्धसूत्रः उपधानवान् तपश्चरणयुक्तोयोधर्मं सम्यक् वेत्ति तत्रतत्रोत्सर्गापवादादौ आदेयवाक्योग्राह्यवचनः स्यात् तथा कुशलोनिपुणोव्यक्तोनासमीक्ष्यकारी समाधिं ज्ञानादिकं नाषितुमर्हति योग्यः स्यादिति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ २७ ॥ इति चतुर्दशं ग्रंथाध्ययनं समाप्तं ॥ ६ ॥

॥ टीका—पुनरपि नाषाविधिमधिकृत्याह । (अहोबुद्दियाइंइत्यादि) यथोक्तानि तीर्थंकरगणधरादिनिस्तान्यहर्निशं सुष्टु शिक्षेत ग्रहणशिक्षया सर्वज्ञोक्तागमं सम्यक् गृह्णीयादासेवनाशिक्षया त्वनवरतमुद्युक्तविहारितया सेवेताऽन्येषांच तथैव प्रतिपादयेदिति । प्रसक्तलक्षणनिवृत्तये त्वपदिश्यते सदा ग्रहणासेवनाशिक्षयोर्देशनायां यतेत सदा यतमानोपि योयस्य कर्तव्यस्य कालोऽध्ययनकालोवा तां वेलामतिलंघ्य नातिवेलं वददध्ययनकर्तव्यमर्यादां नातिलंघयेत्सदनुष्ठानं प्रतिव्रजेद्वा यथावसरं परस्पराबाधया सर्वाः क्रियाः कुर्यादित्यर्थः । सएवंगुणजातीयोयथाकालवादी यथाकालचारी च सम्यक् दृष्टिमान् यथावस्थितार्थान् पदार्थान् श्रद्दधानोदेशनां व्याख्यानं वा कुर्वन् दृष्टिं सम्यक्दर्शनं नलूषयेन्नदूषयेत् । इदमुक्तंनवति । पुरुषविशेषं ज्ञात्वा तथातथा कथनीयमपसिध्धांतदेशनापरिहारेण यथायथा श्रोतुः सम्यक्त्वं स्थिरीनवति । नपुनः शंकोत्पादनतोदूष्यते यश्चैवंविधः सजानात्यवबुध्यते नाषितुं प्ररूपयितुं समाधिं सम्यक्दर्शनचारित्राख्यं सम्यक्

व्यवस्थानाख्यं वा तं सर्वज्ञोक्तं समाधिं सम्यगवगच्छतीति ॥ २५ ॥ किंचान्यत् (अलू सएइत्यादि) सर्वज्ञोक्तमागमं कथयन्नोलूषयेन्नान्यथापसिद्धांतव्याख्यानेन दूषयेत्तथा न प्रछन्ननाषी नवेत् सिद्धांतार्थमविरुद्धमवदातं सार्वजनीनं तत्प्रछन्ननाषणेन न गोपये त्। यदिवा प्रछन्नं वाऽर्थपरिणताय न नाषेत नसिद्धांतरहस्यमपरिणतशिष्यविध्वंसनेन दोपायैव संपद्यते । तथाचोक्तं । अप्रशांतमतौ शास्त्र, सद्भावप्रतिपादनं ॥ दोषायानि नवोदीर्ण, शमनीयमिव ज्वरेइत्यादि । नच सूत्रमन्यत् स्वमतिविकल्पनतः स्वपरत्रायी कुर्वीतान्यथा सूत्रं तदर्थंवा संसारत्रायी त्राणशीलोजंतूनां नविदधीत । किमित्यन्यथा सूत्रं नकर्तव्यमित्याह । परहितैकरतः शास्ता तस्मिन् शास्तरि या व्यवस्थिता नक्तिर्बहु मानस्तया तद्भक्त्या ऽनुविचिंत्यमानेनोक्तेन न कदाचिदागमबाधा स्यादित्येवं पर्यालो च्य वाचं वदेत्तथातथा तछ्रुतमाचार्यादिन्यः सकाशात्तथैव सम्यक्त्वाराधनामनुवर्तमानो ऽन्येन्यक्रुणमोक्तं प्रतिपद्यमानः प्रतिपादयेत् प्ररूपयेन्न सुखशीलतां मन्यमानोयथाकथं चित्तिष्ठेदिति ॥ २६ ॥ अध्ययनोपसंहारार्थमाह । (सेसुद्धसुत्तेइत्यादि) ससम्यग्दर्श नस्यालूपकोयथावस्थितागमस्यप्रणेता ऽनुविचिंत्य नाषकः शुद्धमवदात्तं यथावस्थित वस्तुप्ररूपणतो ऽ ध्ययनतश्च सूत्रं प्रवचनं यस्यासौ शुद्धसूत्रः । तथोपधानं तपश्चरणं यद्यस्य सूत्रस्यान्निहितमागमे तद्विद्यते यस्यासावुपधानवान् तथा धर्मं श्रुतचारित्राख्यं यः सम्यक् वेत्ति विंदतेवा सम्यक् लनते तत्र तत्रेति यथाज्ञाग्राह्योर्थः सथाज्ञयैव प्रति पत्तव्योहेतुतस्तु सम्यग्वेतुना । यदिवा स्वसमयसिद्धोर्थः स्वसमये व्यवस्थापनीयः पर सिद्धश्च परस्मिन्नथवोत्सर्गापवादयोर्व्यवस्थितोर्थस्ताभ्यामेव यथास्वंप्रतिपादयितव्यए तज्गुणसंपन्नश्चादेयवाक्योग्राह्यवाक्योनवति । तथा कुशलोनिपुणआगमप्रतिपादने स दनुष्ठाने च व्यक्तः परिस्फुटोनासमीक्ष्यकारी । यश्चैतज्गुणसमन्वितः सोर्हति योग्योनव ति तं सर्वज्ञोक्तं ज्ञानादिकं वा नावसमाधिं नाषितुं प्रतिपादयितुं नापरः कश्चिदिति । इति परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् । गतोनुगमोनयाः प्राग्वद्याख्येयाः ॥ २७ ॥ समाप्तं चतुर्दशं ग्रंथाख्यमध्ययनमिति ॥

हवे पंदरमुं आदान नामे अध्ययन प्रारंनिये बैयें आदान एटले ग्रहण करवुं एटले रूडी शिक्षारूप चारित्रानुष्ठानने ग्रहण करवुं तेनुं द्रव्ये करी तथा नावे करी शुद्ध स्वरूप कहेछे.

जमतीतं पडुप्पन्नं, आगमिस्सं च णायगो ॥ सव्वमन्नंति तं ताई,
दंसणावरणं तए ॥ १ ॥ अंतए वितिगिछाए, जे जाणंति अ
णेलिसं ॥ अणेलिसस्स अरकाया, ण से होइ तहिं तहिं ॥२॥

अर्थ-(जमतीतंपडुप्पन्नं के०) जे द्रव्यादिक पदार्थ अतीतकाले थया तथा जे वर्त्तमान कालें वर्त्ते छे (आगमिस्सं चणायठ के०) तथा आगमिक कालें जे थशे तेना यथावस्थित स्वरूपनो प्ररुपवो तेथी प्ररूपणाना अधिकारी पणा माटे नायक कहियें (सव्वमन्नंतितंताई के०) ते सर्व द्रव्यादिक चतुष्क संपूर्ण जाणे ते जाणतो बतो सर्व प्राणीउनो रक्षपाल (दंसणावरणंतए के०) ते दर्शनावरणीय कर्मनो अंतकरनार जाणवो अर्थात् ते दर्शनावरणादिक घातीकर्म चतुष्कने खपावे ॥ १ ॥ (वितिगिछाए के०) संदेह एटले मिथ्याज्ञान तेनो (अंतए के०) अंतकारक (जे जाणंतिअणेलिसं के०) जे घातीकर्मनो खपावनार ते सर्व निरुपम जाणे एटले तेना जेवो ज्ञानवंत बीजो कोइ नहीं (अणेलिसस्स अरकाया के०) एम जे निरुपम ज्ञानेकरी पदार्थनो प्रकाश करनार (णसेहोइतहिंतहिं के०) ते तिहां तिहां बौद्धादि दर्शनीने विषे न प्रवर्त्ते एटले ते प्राणी जिनमत टालीने अन्य दर्शनीने विषे तत्व न जाणे ॥ २ ॥

॥ दीपिका-अथ पंचदशमादानीयाध्ययनमारन्यते । तस्येदमादिसूत्रं । (जमतीत्यादि) यदतीतं प्रत्युत्पन्नं वर्तमानं यदनागतमेष्यत्कालनाविद्रव्यं तस्य सर्वस्यापि यथावस्थितस्वरूपनिरूपणतोनायकः प्रणेता त्रायी सर्वप्राणिरक्षकः सर्वं मन्यते जानाति यो दर्शनावरणांतकोमध्यग्रहणादघातिकर्मचतुष्कस्यांतकृद्द्रष्टव्यः सएव सर्वज्ञइति ॥१॥ विचिकित्सायाः संशयस्यांतकः क्षयकृद्यः सअनीदृशं जगज्जानाति । यादृशं कर्मक्षयतः सर्वज्ञं सामान्यविशेषात्मकं जगज्जानाति तादृशमन्योबौद्धादिर्न जानातीत्यनीदृशमित्युक्तं । अनीदृशस्य च यआख्याता प्ररूपकोनासौ तत्र तत्र बौद्धादिके दर्शनः स्यात् । किंतु जिनप्रवचनेऽर्हन्नेव त्रिकालवर्तिवस्तूनामाख्यातेति ॥ २ ॥

॥ टीका-अथ चतुर्दशाध्ययनानंतरं पंचदशमारन्यते । अस्य चायमनिसंबंधः । इहानंतराध्ययने सबाह्याभ्यंतरस्य ग्रंथस्य परित्यागोविधेयइत्यनिहितं । ग्रंथपरित्यागाच्चायतचारित्रोनवति साधुस्ततोयादृगसौ यथासंपूर्णामायतचारित्रतां प्रतिपाद्यते तदनेनाध्ययेन संबंधेनायातस्यास्याध्ययनस्य चत्वार्यनुयोग द्वाराण्युपक्रमादीनि नवंति । तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोयं । तद्यथा । आयतचारित्रेण साधुना नाव्यं । नामनिष्पन्नेतु निक्षेपे आदानीयमिति नाम।मोक्षार्थिनाऽशेषकर्मक्षयार्थं यज्ज्ञानादिकमादीयते तदत्र प्रतिपाद्यतइति कृत्वा आदानीयमिति नाम संवृत्तं। पर्याय द्वारेणच प्रतिपादितं सुग्रहं नवतीत्यतआदानशब्दस्य तत्पर्यायस्य च ग्रहणशब्दस्यच निक्षेपं कर्तुकामोनिर्युक्तिकृदाह । “आदाणे गहणंमि य णिक्खेवो होंति दोन्नवि चउक्को । एगठं नाणठं, च होज्ज पगयं तु आदाणे” ॥ ३४ ॥ (आदाणेइत्यादि)-अथवा (जमतीयंति) अस्याध्ययनस्य नाम

तच्चादानपदेनादावादीयते इत्यादानं तच्च ग्रहणमित्युच्यते । तत्रादानग्रहणयोर्निक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह । (आदाणेइत्यादि) आदीयते कार्यार्थिनां तदित्यादानं । कर्मणिल्युट् प्रत्ययः करणेवा । दीयते गृह्यते स्वीक्रियते विवक्षितमनेनेति कृत्वा आदानं च पर्यायतोग्रहणमित्युच्यते ॥ तत आदानग्रहणयोर्निक्षेपोभवति द्वौचतुष्कौ । तद्यथा। नामादानं स्थापनादानं द्रव्यादानं भावादानंच । तत्र नामस्थापने क्षुसे। द्रव्यादानं चित्तं यस्माल्लौकिकैः परित्यक्तान्यकर्तव्यैर्महता क्लेशेन तदादीयते तेन वाऽपरंद्विपदचतुष्पदादिकमादीयतइति कृत्वा । भावादानंतु द्विधा प्रशस्तमप्रशस्तं क्रोधाद्युदयमिथ्यात्वाविरत्यादिकं वा । प्रशस्तं तूत्तरोत्तरगुणश्रेण्या विशुद्धाध्यवसायकंडकोपाख्यानं सम्यक् ज्ञानादिकं वेत्येतदर्थप्रतिपादनपरमेतदेव चाध्ययनं द्रष्टव्यमित्येवं ग्रहणेपि नामादिकश्चतुर्धा निक्षेपोद्रष्टव्यः । भावार्थोप्यादानपदस्येव द्रष्टव्यस्तत्पर्यायत्वादस्येति । एतच्च ग्रहणं नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रार्थनयाभिप्रायेणादानपदेन सहालोच्यमानं शक्रेंद्रादिवदेकार्थमभिन्नार्थं भवेत् शब्दसमभिरूढैवंभूतशब्दनयाभिप्रायेण च नानार्थं भवेत् । इहतु प्रकृतं प्रस्तावआदाने आदानविषये आदानपदमाश्रित्यास्याभिधानमाकार्यादानीयं वा ज्ञानादिकमाश्रित्य नाम कृतमिति आदानीयाभिधानस्यान्यथा वा प्रवृत्तिनिमित्तमाह । “जं पढमस्संतिमए, बितियस्सउ तह वेज्जआदिंमि ॥ एतेणादाणिज्जं, एसो अनोवि पज्जाउ” ॥ ३५ ॥ (जंपढमस्सेत्यादि) यत्पदं प्रथमश्लोकस्य तदर्धस्य चांते पर्यंते तदेव पदं शब्दतोर्थतउभयतश्च द्वितीयश्लोकस्यादौ तदर्धस्य वादौ भवत्येतेन प्रकारेणाद्यंपदसदृशत्वेनादानीयं भवत्येष आदानीयाभिधानप्रवृत्तेः पर्यायोऽन्योवा विशिष्टज्ञानाद्यादानीयोपादानादिति । केचित्तु पुनरस्याध्ययनस्यांतादिपदयोः संकलनात्संकलिकेति नाम कुर्वते । तस्याअपि नामादिकश्चतुर्धानिक्षेपोविधेयः । तत्रापि द्रव्यसंकलिका निगडादौ भावसंकलनात्तूत्तरोत्तरविशिष्टावसायसंकलनमिदमेव वा ऽध्ययनमाद्यंतपदयोः संकलनादिति । येषामादानपदेनाभिधानं तन्मतेनादौ यत्पदं तदादानपदमतआदेर्निक्षेपं कर्तुकामआह । “णामादी ठवणादी, दव्वादी चेव होंति भावादी ॥ तं दव्वादी पुण दव्वस्स जो सभावो सएठ्ठाणे ३६ (णामादी इत्यादि) आदेर्नामादिकश्चतुर्धा निक्षेपः । नामस्थापने सुगमत्वादनादृत्य द्रव्यादि दर्शयति । द्रव्यादिः पुनर्द्रव्यस्य परमाण्वादेर्यः स्वभावः परिणतिविशेषः स्वके स्थाने स्वकीये पर्याये प्रथममादौ भवति सद्रव्यादिर्द्रव्यस्य दध्यादेर्यआद्यः परिणतिविशेषः क्षीरस्य विनाशकालसमकालीनएवमन्यस्यापि परमाण्वादेर्द्रव्यस्य योयः परिणतिविशेषः प्रथममुत्पद्यते ससर्वोपिद्रव्यादिर्भवति । ननुच कथं क्षीरविनाशसमयएव दध्युत्पादः । तथाहि । उत्पादविनाशौ भावाभावरूपौ वस्तुधर्मौ वर्तेते । न च धर्मोधर्मिणमंतरेण भवितुमर्हत्यतएकस्मिन्नेव क्षणे तद्धर्मिणोर्दधिक्षीरयोः सत्तामाप्नोत्येतच्च दृष्टेष्ट

बाधितमिति नैषदोषः । यस्य हि वादिनः क्षणमात्रं वस्तु तस्यायं दोषोयस्यतु पूर्वोक्त लक्षणानुगतमन्वयि द्रव्यमस्ति अस्यायं दोषएव न भवति । तथाहि । तत्परिणामि द्रव्य मेकस्मिन्नेव क्षणे एकेन स्वभावेनोत्पद्यते परेण विनश्यत्यनंतधर्मत्वाद्वस्तुनइति । य त्किंचिदेतत् । तदेवं द्रव्यस्य विवक्षितपरिणामेन परिणमतोयआद्यः समयः सद्रव्यादि रिति स्थितं द्रव्यस्य प्राधान्येन विवक्षितत्वादिति । सांप्रतं भावादिमधिकृत्याह । " आ गमणो आगमउ भावादी तं बुहा उवदिसंती ॥ णो अगमउ भावो, पंचविहो होइ णायव्वो ॥ ३७ ॥ आगमउ पुण आदी, गणिपिंमगं होइ बारसं गंतु । गच्छसि लोगो पदपादअक्खराइ चउ तच्छादी " ॥ ३८ ॥ (आगमइत्यादि) भावोंतःकरणस्य परिणति विशेषस्तं बुधास्तीर्थंकरगणधरादयोव्यपदिशंति प्रतिपादयंति । तद्यथा आगमतोनोआगम तश्च । तत्र नोआगमतः प्रधानपुरुषार्थतया चिंत्यमानत्वात्पंचविधः पंचप्रकारोभवति । तद्यथा । प्राणातिपातविरमणादीनामाद्यः प्रतिपत्तिसमयइति । तथा (आगमउइत्यादि) आगममाश्रित्य पुनरादिरेवं द्रष्टव्यः । तद्यथा । यदेतद्गणिनआचार्यस्य पिटकं सर्व स्वमाधारोवा तद्द्वादशांगं भवति । तुशब्दादन्यदप्युपांगादिकं द्रष्टव्यं । तस्य प्रवचनस्यादि भूतोयोग्रंथस्तस्याप्याद्यः श्लोकस्तत्राप्याद्यं पदं तस्यापि प्रथममक्षरमेवंविधोबहुप्रकारो भावादिर्द्रष्टव्यइति । तत्र सर्वस्यापि प्रवचनत्वसामायिकमादिस्तस्यापि करोमीति पदं तस्यापि ककारो द्वादशानां त्वंगानामाचारांगमादिस्तस्यापि शास्त्रपरिज्ञाध्ययनमस्यापि च जीवोद्देशकस्तस्यापि सुयंतिपदं तस्यापि सुकारइति पदमादिरित्यस्य च प्रकृतांगस्य सम याध्ययनमादिस्तस्यापि उद्देशकश्लोकपादपदवर्णादिर्द्रष्टव्यइति । गतोनामनिष्पन्नोनिक्षे पस्तदनंतरमस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चेदं । (जमतीयमित्यादि) अ स्य चानंतरसूत्रेण संबंधोवक्तव्यः सचायं । तद्यथा । आदेयवाक्यः कुशलोव्यक्तोर्हति त थोक्तं समाधिं भाषितुं यश्च यदतीतं प्रत्युत्पन्नमागामिच सर्वमवगच्छति सएव भाषितुमर्ह ति नान्यइति । परंपरसूत्रसंबंधस्तु यएवातीतानागतवर्तमानकालत्रयवेदी सएवाशेषबंधना नां परिज्ञानात्रोटयिता वेत्येतद्बुध्येतेत्यादिकः संबंधोऽपरसूत्रैरपि स्वबुध्या लगनीयइ ति । तदेवं प्रतिपादितसंबंधस्यास्य सूत्रस्य व्याख्या प्रस्तूयते । यत्किमपि द्रव्यजातमती तं यच्च प्रत्युत्पन्नं यच्चानागतमेष्यत्कालभावि तस्यासौ सर्वस्यापि यथावस्थितस्वरूपनि रूपणतोनायकः प्रणेता । यथावस्थितवस्तुस्वरूपप्रणेतृत्वं च परिज्ञानेसति भवत्यत स्तदपदिश्यते सर्वमतीतानागतवर्तमानकालत्रयभावतोद्रव्यादिचतुष्कस्वरूपतोद्रव्यपर्या यनिरूपणतश्च मनुतेऽसौ जानाति सम्यक् परिछिनत्ति तत्सर्वमवबुध्यते जानानश्च विशि ष्टोपदेशदानेन संसारोत्तारणतः सर्वप्राणिनां त्रायतेऽसौ त्राणकरणशीलः । यदिवा अयव यपयमयतयणयगतावित्यस्य धातोर्ल्युट् प्रत्ययः । तयनं तायः सविद्यते यस्यासौ तायी ।

सर्वे गत्यर्थाज्ञानार्थाइति कृत्वा सामान्यस्य परिछेदकोमनुते इत्यनेकविशेषस्य तदनेकसर्व ज्ञः सर्वदर्शी चेत्युक्तं नवति । नच कारणमंतरेण कार्यं नवतीत्यतइदमपदिश्यते । दर्श नावरणीयस्य कर्मणोंतकोमध्यग्रहणेतु घातिचतुष्टयस्यांतकृद्द्रष्टव्यइति ॥ १ ॥ यश्च घा तिचतुष्टयांतकृत्सईदृग्नवतीत्याह । (अंतएइत्यादि) विचिकित्सा चित्तविप्लुतिः संशयज्ञा नं तस्यासौ तदावरणक्षयादंतकृत् संशयविपर्ययमिथ्याज्ञानानामविपरीतार्थपरिछेदादंते वर्तते । इदमुक्तंनवति । तव दर्शनावरणक्षयप्रतिपादनात् ज्ञानाद् निन्नं दर्शनमित्युक्तं नवति । ततश्च येषामेव सर्वज्ञस्य ज्ञानं वस्तुगतयोः सामान्यविशेषयोरचिंत्यशक्त्युपेतत्वा त्परिछेदकमित्येषोयेषामन्युपगमः सोऽनेन पृथगावरणप्रतिपादनेन निरस्तोनवतीतिं । यश्च घातिकर्मांतकृदतिक्रांतसंशयादिज्ञानः सोऽनीदृशमनन्यसदृशं जानीते नतत्तुल्योवस्तु गतसामान्यविशेषांशपरिछेदकउनयरूपेणैव विज्ञानेन विद्यतइतीदमुक्तं नवति । न तज्ज्ञान मितरजनज्ञानतुल्यमतोयडुक्तं मीमांसकैः सर्वज्ञस्य सर्वपदार्थपरिछेदकत्वेऽन्युपगम्यमाने स र्वदा स्पर्शरूपरसगंधवर्णशब्दपरिछेदादनन्निमतइव्यरसास्वादनमपि प्राप्नोति तदनेन व्युद स्तं इष्टव्यं । यदप्युच्यते सामान्येन सर्वज्ञसन्नावेपि शेषहेतोरन्नावादर्हत्येव संप्रत्ययोनोपप द्यते । तथा चोक्तं । अर्हन्न यदि सर्वज्ञो, बुद्धोनेत्यत्र का प्रमा । अथोनावपि सर्वज्ञौ मत नेदस्तयोः कथमित्यादि । एतत्परिहारार्थमाह । अनीदृशस्यानन्यसदृशस्य यःपरिछेदकआ ख्याताच नामासौ तत्र तत्र दर्शने बौद्धादिकोनवति तेषां इव्यपर्याययोरनन्युपगमादिति । तथाहि । शाक्यमुनिः सर्वं क्षणिकमिछन् पर्यायानेवेछति न इव्यं । इव्यमंतरेण च नि र्बीजत्वात् पर्यायाणामप्यन्नावः प्राप्नोत्यतः पर्यायानिछताऽवश्यमकामेनापि तदाधारनूतं परिणामिइव्यमेष्टव्यं तदनन्युपगमाच्च नासौ सर्वज्ञइति । तथा अप्रच्युतानुत्पन्नस्थि रैकस्वनावस्य इव्यस्यैवैकस्यान्युपगमादध्यक्षावसीयमानानामर्थक्रियासमर्थानां पर्याया णामनन्युपगमान्निष्पर्यायस्य इव्यस्याप्यन्नावात्कपिलोपि न सर्वज्ञइति तथा क्षीरोदकवद निन्नयोर्इव्यपर्याययोरन्नेदेनान्युपगमाडुलूकस्यापि न सर्वज्ञत्वाच्च तीर्थांतरीयाणां मध्ये न कश्चिदप्यनीदृशस्यानन्यसदृशस्यार्थस्य द्रव्यपर्यायोनयरूपस्याख्याता नवतीत्यर्हन्नेवाती तानागतवर्तमानत्रिकालवर्तिनोर्थस्य स्वाख्यातेति न तत्रतत्रेति स्थितं ॥ २ ॥

तहिं तहिं सुयरकायं, से य सच्चे सुआहिए ॥ सया सच्चेण संपन्ने, मित्ति नूएसु कप्पए ॥ ३ ॥ नूएहिं न विरुझेज्जा, एस धम्मे वुसीमउ ॥ साहू जगं परिन्नाय, अस्सिं जीवितनावणा ॥ ४ ॥

अर्थ—(तहिंतहिंसुयरकायंके०) जे जे नाव श्रीवीतरागें ज्यां ज्यां नलीपेरे कह्यां छे एटले मिथ्यात्व अविरत प्रमदादिकते संसारनुं कारणछे अने ज्ञान दर्शन चारित्र ते

मोक्ष मार्गछे त्यां त्यां (सेयसव्वेसुआहिए के०) तेहिज भावने सत्यकरी जाणवा (स यासच्चेणसंपन्नेके०) जे सदा एटले सर्वकाल एवा सत्य वचने करी संपन्न होय ते शुं करे तेकहेछे (मित्तिंभूएसुकप्पएके०) भूत एटले प्राणी मात्रने विषे मैत्रीभाव कल्पे सर्व जीव आत्मा मात्रने समान करी लेखवे एटले जेवो पोतानो आत्मा तेवो परनो आत्मा जाणे ॥३॥ (भूएहिंनविरुझेज्जाके०) त्रस अने स्थावर जेभूत एटले प्राणीसाथे विरोध न करे एटले प्राणी मात्रनेहणे नही (एसधम्मेवुसीमओके०) एवो धर्म बुसीमओ एटले संयमवंतनो जाणवो (साहूजगंपरिन्नायके०) साधु सर्व लोकमांहे त्रस अने स्थाव र जीवोने रुडीपेरे जाणीने (अस्सिंजीवितभावणाके०) शुद्ध धर्मनेविषे भावना भावे ॥४॥

॥ दीपिका—तत्र तत्र यद्यत्तेनार्हता जीवाजीवादिवस्तु स्वाख्यातं तत्र तत्र न विरोधः । सच सर्वज्ञः सत्यः स्वाख्याता । तथाचोक्तं । वीतरागाहि सर्वज्ञा, न मिथ्या ब्रुवते वचः॥ यस्मात्तस्माद्वचस्तेषां, तथाभूतार्थदर्शिनां ॥१॥ सदा सर्वकालं सत्येन संपन्नः ससर्वज्ञो भूतेषु प्राणिषु मैत्रीं कल्पयेत् कुर्यात् । यतः मातृवत्परदाराणि, परद्रव्याणि लोष्टवत् ॥ आत्मवत्सर्वभूतानि, यः पश्यति सपश्यतीति ॥३॥ भूतैः प्राणिभिः सह न विरुध्येत । न विरोधं कुर्यात् एष धर्मः (बुसीमओत्ति) तीर्थकस्य साधोर्वा तथा बुसीमं साधुस्तीर्थकृद्वा जग द्विश्वं परिज्ञाय आगमतः स्वयंच ज्ञात्वा यस्मिन् भावनाः पंचविंशतिर्द्वादशवा ताजी वितभावनाजीवसमाधानकारिणीर्भावयेत् ॥ ४ ॥

॥ टीका—सांप्रतमेतदेव कुतीर्थिकानामसर्वज्ञत्वमर्हतश्च सर्वज्ञत्वं यथाभवति तथा सोपपत्तिकं दर्शयितुमाह ।(तहिंतहिमित्यादि) तत्रतत्रेति वीप्सापदं । यद्यत्तेनार्हता जी वाजीवादिकं पदार्थजातं तथा मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगाबंधहेतवइति कृत्वा संसारकारणत्वेन तथा सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गइति मोक्षांगतयेत्येतत्सर्वं पूर्वोत्तराविरोधितया युक्तिभिरुपपन्नतया सुष्ठ्वाख्यातं स्वाख्यातं तीर्थिकवचनं तु नहिं स्याद्भूतानीति भणित्वा तदुपमर्दकारंभाभ्यनुज्ञानात्पूर्वोत्तराविरोधितया तत्रतत्र चिंत्यमानं निर्युक्तिकत्वान्नस्वाख्यातं भवति । सचाविरुद्धार्थस्याख्याता रागद्वेषमोहानामनृतकारणा नामसंभवात्सद्भूतोदितत्वाच्च सत्यः स्वाख्यातस्तत्स्वरूपविद्भिः प्रतिपादितः ॥ रागादयो ह्यनृतकारणं ते च तस्य न संत्यतः कारणाभावात्कार्याभावइति कृत्वा तद्वचोभूतार्थप्र तिपादकं ॥ तथा चोक्तं । वीतरागाहि सर्वज्ञा, मिथ्यान ब्रुवते वचः । यस्मात्तस्माद् वचस्तेषां, तथाभूतार्थदर्शिनां । ननु च सर्वज्ञत्वमंतरेणापि हेयोपादेयमात्रपरिज्ञानादपि सत्यता भवत्येव । तथा चोक्तं । सर्वं पश्यतु वा मावा, तत्वमिष्टं तु पश्यति । कीट

संख्यापरिज्ञानं, तस्य नक्कोपयुज्यते इत्याशंक्याह । सदा सर्वकालं सत्येनावितथनाषणेन संपन्नोसौ । अवितथनाषणत्वं च सर्वज्ञे सति नवति नान्यथा । तथाहि । कीटसंख्यापरिज्ञानासंनवे सर्वत्रापरिज्ञानमाशंकेत । तथा चोक्तं । सदृशे बाधासंनवे तल्लक्षणमेव दूषितं स्यादिति सर्वत्रानाश्वासस्तस्मात्सर्वज्ञत्वं तस्य नगवतोऽष्टव्यमन्यथा तद्वचःसत्यता न स्यात् । सत्योवाऽसंयमः संतः प्राणिनस्तेन्योहितत्वादतस्तेन तपः प्रधानसंयमेन नूतार्थहितकारिणा सदा सर्वकालं संपन्नोयुक्तएतजुणसंपन्नश्चासौ नूतेषु जंतुषु मैत्री तद्लक्षणपरतया नूतदयां कल्पयेत् कुर्यात् । इदमुक्तं नवति । परमार्थतः सर्वज्ञस्तत्त्वदर्शितया योनूतेषु मैत्रीं कल्पयेत् । तथा चोक्तं । मातृवत्परदाराणि परद्रव्याणि लोष्टवत् ॥ आत्मवत्सर्वनूतानि यः पश्यति सपश्यति ॥३॥ यथा नूतेषु मैत्री संपूर्णनावमनुनवति तथा दर्शयितुमाह । (नूएहिंइत्यादि) नूतैः स्थावरजंगमैः सह विरोधं नकुर्यात्त डुपघातकारिणमारंनं तद्विरोधकारणं दूरतः परिवर्जयेदित्यर्थः । सएषोऽनंतरोक्तोनूताविरोधकारी धर्मः स्वनावः पुण्याख्योवा (बुसीमउत्ति) तीर्थकृतोयं सत्संयमवतोवेति । तथा सत्संयमवान् साधुस्तीर्थकृज्जगच्चराचरनूतग्रामाख्यं केवलालोकेन सर्वज्ञप्रतीतागमपरिज्ञानेन वा परिज्ञाय सम्यगवबुध्यास्मिन् जगति मौनींडेवा धर्मे नावनाः पंचविंशतिरूपाद्वा दशप्रकारावा या अनिमतास्ताजीवितनावनाजीवसमाधानकारिणीः सत्संयमांगतया मोक्षकारिणीर्नावयेदिति ॥ ४ ॥

नावणा जोगसुद्धप्पा, जलेणावाव आहिया ॥ नावाव तीरसंपन्ना, सवडुक्खा तिउट्टइ ॥ ५ ॥ तिउट्टई उ मेधावी, जाणं लोगंसि पावगं ॥ तुट्टंति पावकम्माणि, नवं कम्ममकुवए ॥ ६ ॥

अर्थ–जे नावनानावे तेने जे होय ते देखाडेबे. (नावणाजोगसुद्धप्पा के०) नावनाना योगेकरी जेनो विशुद्ध निर्मल आत्माबे (जलेणावावआहिया के०) ते पुरुष संसार रूप समुड्रने विषे नौका समान कह्याबे ते उपर दृष्टांत कहेबे (नावावतीरसंपन्ना के०) जेम नावा समुड्रने तीरे पोहोचाडे तेम ते पुरुषना उपदेश थकी जीव चारित्ररूप प्रवहणे करीने (सवडुक्खातिउट्टइ के०) संसारना सर्व डुःख थकी मुकाए अने मोक्षरूप कांठे पोहोचे ॥ ५ ॥ (मेधावी के०) पंमित (तिउट्टईउ के०) सर्व डुःख थकी मूकाए ते पंमित केवो होय तोके (जाणंलोगंसिपावगंके०) सर्वलोकने विषे जे पाप एटले सावद्यानुष्ठान तेनो जाण होय एवाने (तुट्टंतिपावकम्माणिके०) पूर्वना संचित सर्व पाप कर्म त्रूटे (नवंकम्ममकुवएके०) वली नवा कर्म नकरे एटले नबांधे एटले तेजीव अकर्मि थाय सर्व कर्मोना क्षय युक्त थाय ॥ ६ ॥

॥ दीपिका–भावनानिर्योगः सध्यानरूपोभावनायोगस्तेन शुद्धआत्मा यस्य सतथा एवंविधः सन् त्यक्तसंसारस्वभावोनौरिव जलोपरि तिष्ठति । एवमाख्याता नौरिवानु कूलवातप्रेरिता तीरं प्राप्ता स्यादेवं चारित्रवान् जीवपोतस्तपोवायुवशात्सर्वदुःखात्मकः संसारोत्त्रुटयत्यपगच्छति ॥ ५ ॥ मेधावी मर्यादावान् त्रुटयति मुच्यते सर्वबंधनेभ्यः । किंकुर्वन् पापकं सावद्यकार्यं लोके ज्ञपरिज्ञया जानन् प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् ॥ तस्य नवं कर्म अकुर्वतः पूर्वसंचितानि पापकर्माणि त्रुटयंति ॥ ६ ॥

॥ टीका–सद्भावनाभावितस्य यद्भवति तद्दर्शयितुमाह । (भावणाइत्यादि) भावना निर्योगः सम्यक् प्रणिधानलक्षणोभावनायोगस्तेन शुद्धआत्मा अंतरात्मा यस्य सतथा । सच भावनायोगशुद्धात्मा परित्यक्तसंसारस्वभावोनौरिव जलोपर्यवतिष्ठते संसारोदन्व तइति नौरिव यथा जले निमज्जनत्वेन प्रत्याख्याता एवमसावपि संसारोदन्वति न नि मज्जतीति । यथा चासौ नियामकाधिष्ठाताऽनुकूलवातेरिता समस्तद्वंद्वापगमात्तीरमास्कं दत्येवमायतचारित्रवान् जीवपोतः सदागमकर्णधाराधिष्ठितस्तपोमारुतवशात्सर्वदुःखा त्मकात्संसारात्त्रुटयत्यपगच्छति मोक्षाख्यं तीरं सर्वद्वंद्वोपरमरूपमवाप्नोतीति ॥ ५ ॥ अपिच । (तिउट्टइत्यादि) सहि भावनायोगशुद्धात्मा नौरिव जले संसारे परिवर्तमा नस्त्रिभ्योमनोवाक्कायेभ्योऽशुभेभ्यस्त्रुटयति यदिवातीव सर्वबंधनेभ्यस्त्रुटयति मुच्यते। अतित्रुटयति संसारादतिवर्तेत मेधावी मर्यादाव्यवस्थितः सदसद्विवेकी वाऽस्मिन् लोके चतुर्दशरज्ज्वात्मके भूतस्य ग्रामलोकेवा यत्किमपि पापकं कर्म सावद्यानुष्ठानरूपं तत्कार्यंवा अष्टप्रकारं कर्म तत् ज्ञपरिज्ञया जानन् प्रत्याख्यानपरिज्ञया च तदुपादानं प रिहरन् ततस्त्रुटयति तस्यैवं लोकं कर्मवा जानतोनवानि कर्माण्यकुर्वतोनिरुद्धाश्रवद्वार स्य विप्रकृष्टतपश्चरणवतः पूर्वसंचितानि कर्माणि त्रुटयंति निवर्तंतेवा नवं च कर्माकुर्वतो ऽशेषकर्मक्षयोभवतीति ॥ ६ ॥

अकुव्वउ णवं णत्थि, कम्मं नाम वि जाणइ ॥ विन्नाय से महावीरे, जेण
जाइ ण मिज्जइ ॥ ७ ॥ णमिज्जइ महावीरे, जस्स नत्थि पुरे कडं ॥ वा
उव्वं जलमच्चेति, पिया लोगंसि इत्थिउ ॥ ८ ॥

अर्थ–(अकुव्वउणवंणत्थि के०) कारण के जे समस्त क्रिया रहित होय एवा अण करताने नवा कर्मनो बंध नथी (कम्मंनामविजाणइ के०) तेवारे अष्ट प्रकारना जे कर्म तेना विपाकनुं निर्जरवो ते सम्यक् जाणे (विन्नायसेमहावीरे के०) ते कर्म रूप शत्रुनो विदारण करवा थकी श्रीमहावीरदेव कर्मना बंधने तथाकर्मनी निर्जराने जाणी

ने ते प्रमाणे करे (जेणजाइणमिज्जइ के०) जे करे थके फरी संसारमां नउपजे अने उपजवाने अनावे फरी मरण पण न पामे. ॥ ७ ॥ (णमिज्जइमहावीरें के०) ए महा सुनट तुल्य श्रीमहावीर संसार चक्रमां मरण पामे नही (जस्सनत्थिपुरेकडं के०) जेने पूर्वना करेला कर्म रह्या नथी तो ते नवाकर्म बांधवानी वांछा नकरे ए कारण जाणवो जे कारण माटे आ संसारमांहे स्त्रीनो संग प्रधानछे परंतु तेने स्त्री पराजवी नशके. दृष्टांत कहेछे (वाउव्वजालमच्चेति के०) जेम वायु अग्नीनी ज्वालामां प्रवेश करीने तेने अतिक्रमि जाय परंतु वायु पोते प्रज्वले नही (पियालोगंसिइत्थिउ के०) तेम लोकने विषे स्त्री प्रियछे ते स्त्री अग्नि ज्वाला समानछे परंतु वायु सरखा साधुने जीपी नशके तेमाटे महावीर सुनटने कर्मनो बंध नथी ॥ ८ ॥

॥ दीपिका–कामपि क्रियामकुर्वतोयोगप्रत्ययाजावान्नवं कर्म नास्ति न जवति । एतद्गुणोपेतश्च नमनं नाम कर्मनिर्जरणं कर्मच जानाति ज्ञात्वाच कर्मबंधं समहावीरः कर्मदारणक्षमस्तत्करोति येन कृतेन न पुनर्जायते जन्माजावाच्च नम्रियते ॥ ७ ॥ महावीरस्त्यक्ताशेषकर्मा न म्रियते जन्ममरणे न प्राप्नोति यस्य नास्ति पुरस्कृतं कर्म वायुर्यथाग्निज्वालामत्येति अतिक्रामति न तया जीयते एवं लोके प्रियावल्लजास्त्रियोडुरतिक्रमणीयास्ताअतिक्रामति न ताजिर्जीयते। यडुक्तं। स्मितेन जावेन मदेन लज्जया पराङ्मुखैरर्धकटाक्षवीक्षणैः॥ वचोजिरीर्ष्याकलहेन लीलया, समस्तपाशं खलु बंधनं स्त्रियः ॥१॥ स्त्रीणां कृते भ्रातृयुगस्य जेदः संबंधिजेदे स्त्रियएव मूलं॥ अप्राप्तकामाबहवोनरेंद्रानारीजिरुत्सादितराजवंशाइत्यादि ॥ ८ ॥

॥ टीका–केषांचित्सत्यामपि कर्मक्षयानंतरं मोक्षावाप्तौ तथापि स्वतीर्थनिकारदर्शनतः पुनरपि संसाराजिगमनं जवतीदमाशंक्याह । (अकुव्वउ इत्यादि) तस्याऽशेषक्रियारहितस्य योगप्रत्ययाजावात्किमप्यकुर्वतोपि नवं प्रत्यग्रं कर्म ज्ञानावरणीयादिकं नास्ति नजवति कारणाजावात्कार्याजावइति कृत्वा कर्मजावे च कुतः संसाराजिगमनं कर्मकार्यत्वात्संसारस्य तस्य चोपरताशेष द्वंद्वस्य स्वपरकल्पनाजावाद्रागद्वेषरहिततया स्वदर्शननिकाराजिनिवेशोपि नजवत्येव । सचैतद्गुणोपेतः कर्माष्टप्रकारमपि कारणतस्तद्विपाकतश्च जानाति नमनं नाम कर्मनिर्जरणं तच्च सम्यक् जानाति । यदिवा कर्म जानाति तन्नामास्य चोपलक्षणार्थत्वात्तद्भेदांश्च प्रकृतिस्थित्यनुजावप्रदेशरूपान्सम्यगवबुध्यते । संजावनायां वा नामशब्दः। संजाव्यते चास्य जगवतः कर्मपरिज्ञानं विज्ञायच कर्मबंधनं तत्संचरणनिर्जरणोपायं चासौ महावीरः कर्मदारणसहिष्णुस्तत्करोति येन कृतेनास्मि

न्संसारोदरे नपुनर्जायते नपरिच्छिद्यते तदनावाच्च नम्रियते । यदिवा जात्या नारकोयं तिर्यग्योनिकायमिति । एवं नमीयते न परिच्छिद्यते ऽनेनच कारणानावात्संसाराविर्नाव नेन । यत्कैश्चिदुच्यते । ज्ञानमप्रतिघं यस्य वैराग्यं च जगत्पतेः ॥ ऐश्वर्यं चैव धर्मश्च सह सिद्धं चतुष्टयमित्येतदपि व्युदस्तं नवति । संसारस्वरूपं विज्ञाय तदनावः क्रियते नपुनः सांसिद्धिकः कश्चिदनादिसिद्धोस्ति तत्प्रतिपादकायायुक्तेरसंनवादिति ॥ ७ ॥ किंपुनः कारणमसौन जात्यादिना मीयते इत्याशंक्याह । (णमिज्जतीत्यादि) असौ महावीरः परित्यक्ताशेषकर्मा न जात्यादिना मीयते परिच्छिद्यते न म्रियते वा जातिजरामरणरोगशोकैर्वा संसारचक्रवाले पर्यटन् न म्रियते न पूर्यते किमिति । यतस्तस्यैव जात्यादिकं नवति यस्य पुरस्कृतं जन्मशतोपात्तं कर्म विद्यते यस्य तु नगवतोमहावीरस्य निरुद्धाश्रवद्वारस्य नास्ति न विद्यते पुरस्कृतं पुरस्कृतकर्मोपादानानावाच्च न तस्य जातिजरामरणैर्मरणं संनाव्यते । तदाश्रवद्वारनिरोधाश्रयाणां च प्रधानः स्त्रीप्रसंगस्तमधिकृत्याह । वायुर्यथा सततगतिरस्खलिततयाऽग्निज्वालां दहनात्मकामप्येत्यतिक्रामति परान्नवति न तथा परानूयते । यएवं लोके मनुष्यलोके हावनावप्रधानत्वात्प्रियादयितास्तत्प्रियत्वाच्च डुरतिक्रमणीयाअत्येत्यतिक्रामतिनतानि जीयते तत्स्वरूपावगमात्तज्जयविपाकदर्शनाच्चेति । तथाचोक्तं । स्मितेन नावेन मदेन लज्जया, पराङ्मुखैरर्धकटाक्षवीक्षितैः ॥ वचोनिरीर्ष्याकलहेन लीलया, समस्तनावैः खलु बंधनं स्त्रियः ॥ १ ॥ स्त्रीणांकृते भ्रातृयुगस्य नेदः संबंधिन्नेदे स्त्रियएव मूलं ॥ अप्राप्तकामाबहवोनरेंद्रा, नारीनिरुत्सादितराजवंशाः॥२ इत्येवं तत्स्वरूपं परिज्ञाय तज्जयं विधत्ते नैतान्निर्जीयतइति स्थितं । अथ किंपुनः कारणं स्त्रीप्रसंगाश्रवद्वारेण शेषाश्रवद्वारोपलक्षणं क्रियते नप्राणातिपातादिनेति । अत्रोच्यते । केषांचिद्दर्शनिनामंगनोपनोगआश्रवद्वारमेव नवति । तथाचोचुः । न मांसनक्षणे दोषो, न मद्ये न च मैथुने ॥ प्रवृत्तिरेषा नूतानां, निवृत्तिस्तु महाफला इत्यादि तन्मतव्युदासार्थमेवमुपन्यस्तमिति । यदिवा मध्यमतीर्थकृतांचतुर्यामएव धर्मइहतु पंचयामोधर्मइत्यस्यार्थस्याविर्नावनायानेनोपलक्षणमकारि । अथवा पराणि व्रतानि सापवादानीदंतु निरपवादमित्यस्यार्थस्याविर्नावनाय प्रकटनायैवमकारि । अथवा सर्वाण्यपि व्रतानि तुल्यानि एकखंडेन सर्वविराधनमिति कृत्वा येन केनचिन्निर्देशोन दोषायेति॥ ८॥

इबिउं जे ण सेवंति, आइमोक्का हु ते जणा ॥ ते जणा बंधणुम्मुक्का,
नावकंखंति जीवियं ॥ ए ॥ जीवितं पिठउकिच्चा, अंतं पावंति
कम्मुणं॥ कम्मुणा संमुहीनूता, जे मग्गमणुसासई ॥ १० ॥

अर्थ-(इबिउजेणसेवंति के०) जे पुरुषो स्त्रीने नथी सेवता (आइमोक्काहुतेजणा

के०) ते पुरुषोने आदि एटले प्रथम मोक्षगामी जाणवा (तेजणाबंधणुम्मुक्का के०) तेपुरुषो स्त्रीना बंधन थकी मूकाणा थका (नावकंखंतिजीवियंके०) जीवित श ब्दे बीजो असंयमपणोकांइ पण वांछे नही कारणके परिग्रहादिकनुं मूल कारण सर्व स्त्रीजछे ॥ ए ॥ (जिवितंपिछ्ठउकिच्चाके०) ते पुरुष असंयमने निषेधिने (अंतंपावं तिकम्मुणंके०) सर्व कर्मनो अंत करे (कम्मुणासंमुहीजूताके०) ते रुडा अनुष्ठाने करी मोक्षने सन्मुख थका (जेमग्गमणुसासईके०) जे श्रीवीतराग प्रणीत मार्गछे तेमार्गने लोकोना हितने अर्थे प्रकाशे अने पोते पण तेहिज समाचरे ॥ १० ॥

॥ दीपिका—ये नराः स्त्रियोनासेवंते स्त्रीप्रसंगं त्यजंति ते जनाआदिः प्रधानोमोक्षो येषां ते आदिमोक्षाः प्रधानजूतमोक्षपुरुषार्थसाधकाः स्युः । तथा ते जनाः कर्मबंधनो न्मुक्ताजीवितं नावकांक्षंति ॥ ए ॥ जीवितमसंयमजीवितं पृष्ठतः कृत्वा निराकृत्य कर्म णामंतं प्राप्नुवंति मोक्षमप्राप्ताअपि कर्मणाविशिष्टानुष्ठानेन मोक्षस्य सन्मुखीजूताये मार्गम नुशासंति अन्येच्योवदंति स्वयंच कुर्वंति ॥ १० ॥

॥ टीका—अधुना स्त्रीप्रसंगाश्रवनिरोधफलमाविर्नावयन्नाह । (इत्थिउइत्यादि) येम हासत्वाः कटुविपाकोयं स्त्रीप्रसंगइत्येवमवधारणतया स्त्रियः सुगतिमार्गार्गलाः संसारवी थीजूताः सर्वाविनयराजधान्यः कपटजालशताकुलामहामोहनशक्तयोन सेवंते नतत्प्रसंग मजिलषंति । तएवंजूताजनाइतरजगातीताः साधवआदौ प्रथमं मोक्षोऽशेष द्वंद्वोपरमरू पोयेषांते आदिमोक्षाः । डुरवधारणे । आदिमोक्षाएव तेऽवंगतव्याः । इदमुक्तं जवति । सर्वाऽविनयास्पदजूतः स्त्रीप्रसंगोयैः परित्यक्तस्तएवादिमोक्षाः प्रधानजूतमोक्षाख्यपुरुषा र्थोद्यताः । आदिशब्दस्य प्रधानवाचित्वान्न केवलमुद्यतास्तेजनाः स्त्रीपाशबंधनोन्मुक्त तयाऽशेषकर्मबंधनोन्मुक्ताः संतोनावकांक्षंति नाजिलषंति असंयमजीवितमपरमपि परि ग्रहादिकं नाजिलषंते । यदिवा परित्यक्तविषयेछाः सदनुष्ठानपरायणामोक्षैकतानाजीवितं दीर्घकालजीवितं नाजिकांक्षंतीति ॥ए॥ किंचान्यत् । (जीवियमित्यादि) जीवितमसंयमजी वितं पृष्ठतः कृत्वाऽनादृत्य प्राणधारणलक्षणं वा जीवितमनादृत्य सदनुष्ठानपरायणाः कर्म णां ज्ञानावरणादीनामंतं पर्यवसानं प्राप्नुवंति । अथवा कर्मणा सदनुष्ठानेन जीवितनिरपे क्षाः संसारोदन्वतोंऽतं सर्वद्वंद्वोपरमरूपं मोक्षाख्यमाप्नुवंति । सर्वडुःखविमोक्षलक्षणं मोक्षमप्राप्ताअपि कर्मणा विशिष्टानुष्ठानेन मोक्षस्य संमुखीजूताघातिचतुष्टयक्षयेण उत्प न्नदिव्यज्ञानाः शाश्वतपदस्याजिमुखीजूताः। कएवंजूता इत्याह । ये विपच्यमानतीर्थक न्नामकर्माणः समासादितदिव्यज्ञानामोक्षं मोक्षमार्गं ज्ञानदर्शनचारित्ररूपमनुशासंति स त्वहिताय प्राणिनां प्रतिपादयंति स्वतश्चानुतिष्ठंतीति ॥ १० ॥

अणुसासणं पुढो पाणी, वसुमं पूयणासुते ॥ अणासए जते दंते, दढे आरयमेहुणे ॥ ११ ॥ णीवारे व ण लीएज्जा, छिन्नसोए अणाविले ॥ अणाइले सया दंते, संधिं पत्ते अणेलिसं ॥१२॥

अर्थ—(अणुसासणं पुढोपाणी के०) जेनो अनुशासन एटले उपदेश दान ते सर्व प्राणिने विषे पृथक् पृथक् जुदो जुदो परणमे कोनी पेरे तोके पृथ्वीने विषे जेम उदक जुदो जुदो परणमे तेनी पेरे जेनो उपदेश परणमेछे तथा (पूयणासु के०) पूजानेविषे (वसुमं के०) इव्यवंत एनो नावार्थ कहेछे जे देवतादिक समवसरणादिक पूजा करे छे त्यां त्यां तेने इव्य थकी नोगछे परंतु ते नाव थकी नोग नथी तेकारण माटे संयमवंत (ते के०) तेहिज जाणवा ए वचन श्रीतीर्थंकर देव आश्री कह्याछे वली (अणासएजतेदंते के०) आश्रव रहित जयणावंत तथा इंद्रियनो दमन करनार (दढे आरयमेहुणे क०) संयमने विषे दृढ अने मैथुन थकी विरत- एटले विषय रहित ॥ ११ ॥ (णीवारेवणलीएज्जा के०) मैथुनने नीवार समान जाणे जेम सूकरादिकने खावानी वस्तु आपी लोनावीने मारी नाखीये अथवा डुःख आपीये तेम मैथुनने एवो जाणीने स्त्रीनो संग नकरे ते केवो पुरुष जाणवो तोके (छिन्नसोए अणाविले के०) स्रोत एटले जे संसार तेमां अवतरवाना द्वारजे विषय कषायादिकछे ते जेणे छेद्याछे वली राग द्वेष थकी रहित तथा (अणाइलेसयादंते के०) अनाकुल एटले अक्षोन सदा दांत गुणवान् एवोछतो (संधिंपत्ते अणेलिसं के०) कर्म विवर लक्षणनी सिद्धि पामे एवी बीजी वस्तु कोइ जगतमां नथी तेमाटे ए सिद्धिने कोइ उपमा नथी ॥१२॥

॥ दीपिका—अनुशासनं देशनाकरणं पृथक् पृथक् नव्यानव्यप्राणिषु सर्वज्ञः करोति । नव्येषु देशना न सम्यक् परिणमति तथापि न सर्वज्ञस्य दोषः । तडुक्तं । सद्धर्मबीजवपनानघकौशलस्य सल्लोकबांधव तवापि खिलान्यनूवन् ॥ तत्राद्भुतं खगकुलेष्विह तामसेषु, सूर्यांशवोमधुकरीचरणावदाताइति । किंनूतः सर्वज्ञोवसुमान् चारित्री । पुनः किंनूतः पूजनं देवादिकृताशोकादिकमास्वादयति उपनुंक्ते पूजनास्वादकः । ननु देवादिकृतस्याधाकर्मणः समवसरणादेरुपनोगात्कथमसौ चारित्रीत्याशंक्याह । (अणासएत्ति) न विद्यते आशयः पूजानिप्रायोयस्य स अनाशयः इव्यतः समवसरणादिके विद्यमानेपि नावतोसौ नास्वादकोगार्ध्यानावात् । यस्मादसौ यतोयत्नवान दांतः संवृतेंद्रियः दृढः संयमे आरतमपगतं मैथुनं यस्य सतथा गतकामानिलाषः ॥ ११ ॥ नीवारः पशूनां वध्यस्थानप्रापणीयनूतोनक्ष्यविशेषस्तत्तुल्यं मैथुनं ततोनीवारे मैथुनं न लीयेत न प्रस

ज्येत । किंनूतः बिन्नानि स्रोतांसि आश्रवद्वाराणि येन सूबिन्नस्रोताः । अनाविलोऽक लुषः । एवंनूतोऽनाविलः सन् सदा दांतः स्यात् । एवंविधश्च कर्मविवररूपं नावसंधिम नीदृशमनन्यसदृशं प्राप्तः स्यात् ॥ १२ ॥

॥ टीका—अनुशासनप्रकारमधिकृत्याह । (अणुशासणमित्यादि) अनुशास्यंते सन्मार्गे ऽवतार्यंते सदसद्विवेकतः प्राणिनोयेन तदनुशासनं धर्मदेशनया सन्मार्गावतारणं तत्पृथ क् पृथक् नव्यादिषु प्राणिषु क्ष्मित्युदकवत्स्वाशयवशादनेकधा नवति । यद्यपि च अनव्ये तदनुशासनं न सम्यक् परिणमति तथापि सर्वोपायज्ञस्यापि नसर्वज्ञस्य दोषः । तेषामेव स्वनावपरिणतिरियं यथा तद्वाक्यममृतनूतमेकांतपथ्यं समस्तद्वंद्वोपघातकारि न य थावत् परिणमति । तथा चोक्तं । सद्धर्मबीजवपनानघकौशलस्य, यल्लोकबांधवतयोप्य खिलान्यनूवन् । तन्नाद्भुतं खगकुलेष्विह तामसेषु, सूर्यांशवोमधुकरीचरणावदाताः ॥१॥ किंनूतोसावनुशासकइत्याह । वसु डव्यं सच मोक्षंप्रति प्रवृत्तस्य संयमस्तद्विद्यते यस्यासौ वसुमान् पूजनं देवादिकृतमशोकादिकमास्वादयत्युपनुंक्तइति पूजनास्वादकः । ननु चाधा कर्मणोदेवादिकृतस्य समवसरणादेरुपनोगात्कथमसौ सत्संयमवानित्याशंक्याह । न वि द्यते आशयः पूजानिप्रायोयस्यासावनाशयः । डव्यतोविद्यमानेपि समवसरणादिके नाव तोनास्वादकोसौ तजतगार्ध्यानावात् सत्यप्युपनोगे । यतः सत्संयमवानेवासावेकांते सं यमपरायणत्वात्कुतोयतइंडियनोइंडियान्यां दांतः । एतद्गुणोपि कथमित्याह । दृढः संयमे । आरतमुपरतमपगतं मैथुनं यस्यसआरतमैथुनोऽपगतेज्ञामदनकामः । इज्ञामद नकामानावाच्च संयमे दृढोसौ नवति .आयतचारित्रत्वाच्च दांतोसौ नवति । इंडियनोइंडि यदमाच्च प्रयतः प्रयत्नवत्त्वाच्च देवादिपूजनास्वादकस्तदनास्वादनाच्च सत्यपि डव्यतः परि नोगे सत्संयमवानेवासाविति ॥ ११ ॥ अथकिमित्यसावुपरतमैथुनइत्याशंक्याह । (णीवारे इत्यादि) नीवारं सूकरादीनां पशूनां वध्यस्थानप्रवेशननूतोनद्दयविशेषस्तत्कल्पमेतन्मैथु नं । यथाहि असौ पशुर्नीवारेण प्रलोन्य वध्यस्थानमतिनीयमानोनानाप्रकारावेदनाः प्राप्यते एवमसावप्यसुमान् नीवारकल्पेनानेन स्त्रीप्रसंगेन वशीकृतोबहुप्रकारायातनाः प्राप्नोत्यतोनीवारप्रायमेतन्मैथुनमवगम्य न तस्मिन् ज्ञाततत्त्वोलीयेत न स्त्रीप्रसंगं कु र्यात् । किंनूतः सन्नित्याह । बिन्नान्यपनीतानि स्रोतांसि संसारावतरणद्वाराणि यथावि षयमिंडियवर्तनानि प्राणातिपातादीनि वा आश्रवद्वाराणि येन सबिन्नस्रोताः । यथाऽ नाविलोकलुषोरागद्वेषासंपृक्ततया मलरहितोनाकुलोवा विषयाप्रवृत्तेः स्वज्ञचेताएवंनूत श्चानाकुलोवा सदा सर्वकालमिंडियनोइंडियान्यां दांतोनवति ईदृग्विधश्च कर्म विवरलक्ष णं नावसंधिमनीदृशमनन्यतुल्यं प्राप्तोनवतीति ॥ १२ ॥

अणेलिसस्स खेयन्ने, ण विरुज्झिज्ज केणइ ॥ मणसा वयसा चेव, कायसा चेव चक्खुमं ॥ १३ ॥ से हु चक्खू मणुस्साणं, जे कंखाए य अंतए ॥ अंतेण खुरो वहती, चक्कं अंतेण लोट्टती ॥१४॥

अर्थ-(अणेलिसस्सखेयन्नेके०) अणेलिस एटले संयम तेने विषे जे खेदज्ञ एटले निपुण होय ते (णविरुज्झिज्जकेणइके०) कोइजीवनी साथे विरोध नकरे सर्वजीवोनी साथे मैत्री नाव आणे (मणसावयसाचेवके०) मन वचन पुनः । (कायसाचेव चक्खुमंके०) कायाए करी त्रिकरण शुद्ध जे एम करे तेनेज परमार्थ थकी चक्षुवंत निर्मल दृष्टीवालो जाणवो ॥ १३ ॥ (सेहुचक्खूमणुस्साणंके०) हुइति निश्चें तेहिज पुरुष संयमी मनुष्योनी चक्षु जेवो जाणवो (जेकंखाएयअंतएके०) जे पुरुष कांक्षा एटले विषय तृष्णानो अंतकरे ते संसार अने कर्मनो अंतकारी जाणवो तेनाउपर दृष्टांत कहेछे (अंतेणखुरोवहतीके०) छेहडे जेम छुरी कोइ पदार्थ छेदवाने अर्थें अत्यंत तीक्ष्ण धारायें वहे धारने अंते छेदन क्रियामां समर्थ होय (चक्कंअंतेण लोट्टतीके०) जेम गाडानोपइडो पण अंते प्रवर्त्ते तेम मोहादिकने अंते मुक्तिरूप कार्य सिद्ध थाय ॥ १४ ॥

॥ दीपिका-अनीदृशः संयमस्तस्य खेदज्ञोनिपुणः केनचित्सार्द्धं नविरोधं कुर्वीत मनोवचःकायैः सएव परमार्थतश्चक्षुष्मान् नवति ॥ १३ ॥ सएव संयमी मनुष्याणां चक्षुर्नूतोयः कांक्षायानोगेछायाअंतकोंतवर्ती । यथा क्षुरोनापितोपकरणमंतेन वहति चक्रं रथांगमंतेनैव मार्गे वर्तते तथा साधुरपि विषयाद्यंतवर्ती मोक्षसाधकः ॥ १४ ॥

॥ टीका-किंच । (अणेलिसस्सेत्यादि) अनीदृशोऽनन्यसदृशः संयमोमौनींद्रधर्मो वा तस्य तस्मिन् वा खेदज्ञोनिपुणोऽनीदृशखेदज्ञश्च केनचित्सार्धं न विरोधं कुर्वीत सर्वेषु प्राणिषु मैत्रीं नावयेदित्यर्थः । योगत्रिककरणत्रिकेणेति दर्शयति । मनसांऽतःकरणेन प्रशांतमनास्तथावाचोहितमितनाषी तथा कायेन निरुद्धोडुष्प्रणिहितसर्वकायचेष्टोदृष्टिपूतपादचारी परमार्थतश्चक्षुष्मान् नवतीति ॥ १३ ॥ अपिच । (सेहचक्खूइत्यादि) हुरवधारणे । सएव प्राप्तकर्मविवरोऽनीदृशस्य खेदज्ञोनव्यमनुष्याणां सदसत्पदार्थाविर्नावनान्नेत्रनूतोवर्तते । किंनूतोसौ यः कांक्षायानोगेछायाअंतकोविषयतृष्णायाः पर्यंतवर्ती । किमंतवर्तीति विवक्षितमर्थं साधयत्येवेत्यमुमर्थं दृष्टांतेन साधयन्नाह । अंतेन पर्यंतेन क्षुरोनापितोपकरणं तदंतेन वहति तथा चक्रमपि रथांगमंतेनैव मार्गे प्रवर्तते । इदमुक्तंनवति । यथा क्षुरादीनां पर्यंतएवार्थकार्यैवं विषयकषायात्मकोमोहनीयांतएवापसदसंसारक्षयकारीति ॥ १४ ॥

अंताणि धीरा सेवंति, तेण अंतकरा इह ॥ इह माणुसए ठाणे,
धम्ममाराहिउं णरा ॥ १५ ॥ णिठियठा व देवावा, उत्तराए इ
मं सुयं ॥ सुत्तं च मेयमेगेसिं, अमणुस्सेसु णे तहा ॥ १६ ॥

अर्थ- (अंताणिधीरासेवंतिके०) तेम धीर पुरुष पण अंत सेवे एटले विषयनो अंत करे तथा अंत प्रांत आहार सेवे (तेणअंतकराइहके०) ते कारणे आ संसारने विषे अंतना करनार जाणवा (इहमाणुसएठाणेके०) आमनुष्य लोक रूप स्थानकने पाम्या थका (धम्ममाराहिउंणराके०) एवा मनुष्य धर्मजे सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्ररूप तेने आराधीने मुक्ति गामी थाय ॥ १५ ॥ (णिठियठावदेवावाके०) एवा संयमना पालनार पुरुषो निष्ठितार्थ एटले सिद्धिने पामे अथवा प्रचुर कर्मने सद्भावे देवत्व पणाने विषे सौधर्मादिक विमाने उपजे (उत्तराएइमंसुयंके) ए वचन उत्तरा एटले लोकोत्तर प्रवचने में सांजल्युंछे एरीते श्रीसुधर्मा स्वामी श्रीजंबूस्वामि प्रत्ये कहेछे. (सुत्तंचमेयमेगेसिंके०) में श्रीतीर्थंकरादिक समीपे सांजल्युंछे जे (अमणुस्सेसुणेतहाके०) ए मोक्षनी प्राप्ति ते मनुष्यनी गति टालीने अन्यत्र नथी ते कारण माटे मनुष्य पणे संयम पालवाने विषे प्रमाद नकरवो ॥ १६ ॥

॥ दीपिका-अंतान् अंतप्रांताहारान् सेवंते वीरास्तेन संसारस्यांतकरास्ते इहार्यक्षेत्रे स्युः । यतइह मनुष्यलोके स्थाने नराधर्ममाराध्य निष्ठितार्थाः स्युः ॥ १५ ॥ केचिन्निष्ठितार्थाः कृतकृत्याः स्युः केचिद्देवाः । एतल्लोकोत्तरीये प्रवचने श्रुतं मयेति सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमाह । एतच्च मया तीर्थंकरांते श्रुतं । गणधरः स्वशिष्याणामेकेषामिदमाह । अमनुष्येषु मनुष्यवर्जितेषु नतथा नमोक्षावाप्तिः स्यादित्यर्थः ॥ १६ ॥

॥ टीका-अमुमेवार्थमाविर्जावयन्नाह । (अंताणीत्यादि) अंतान् पर्यंतान् विषयकषायतृष्णायास्तत्परिकर्मणार्थमुद्यानादीनामाहारस्य वांतप्रांतादीनि धीरामहासत्वाविषयसुखनिस्पृहाः सेवंते ऽन्यस्यंति तेन चांतप्रांतान्यसनेनांतकराः संसारस्य तत्कारणस्य वा कर्मणः क्षयकारिणोजवंति । इहेति मनुष्यलोके आर्यक्षेत्रे न केवलं तएव तीर्थंकरादयोऽन्येऽपीह मानुष्यलोके स्थाने प्राप्ताः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकं धर्ममाराध्य नरामनुष्याः कर्मजूमिगर्जेव्युत्क्रांतिजसंख्येयवर्षायुषः संतः सदनुष्ठानसामग्रीमवाप्य निष्ठितार्थाउपरतसर्वद्वंद्वाजवंति ॥ १५ ॥ इदमेवाह । (णिठियठाइत्यादि) निष्ठितार्थाः कृतकृत्याजवंति केचन प्रचुरकर्मतया सत्यामपि सम्यक्त्वादिकायां सामग्र्यां न तद्भवएव मोक्षमास्कंदंति । अपितु सौधर्माद्याः पंचोत्तरविमानावसानादेवाजवंतीति । एतल्लोको

त्तरीये प्रवचने श्रुतमागमे । एवंनूतः सुधर्मस्वामी वा जंबूस्वामिनमुद्दिश्यैवाह । यथा मयैतल्लोकोत्तरीये नगवत्यर्हत्युपलब्धं तद्यथा अवाप्तसम्यक्त्वादिसामग्रीकः सिध्यति वैमानिकोवा नवतीति । मनुष्यगतावेवैतन्नान्यत्रेति दर्शयितुमाह ॥ सुयंमेइत्यादि पश्चार्द्धं । तच्च मया तीर्थकरांतिके श्रुतमवगतं । गणधरः स्वशिष्याणामेकेषामिदमाह । यथा मनुष्यएवाशेषकर्मक्षयात्सिद्धिगतिनाग्नवति नामनुष्यइति । एतेन यच्छाक्यैरनिहितं । तद्यथादेवएवाशेषकर्मप्रहाणं कृत्वा मोक्षनाग्नवति तदपास्तं नवति । नह्यमनुष्येषु गतित्रयवर्तिषु सच्चारित्रपरिणामानावाद्यथा मनुष्याणां तथामोक्षावाप्तिरिति ॥ १६ ॥

अंतं करंति डुरकाणं, इहमेगेसि आहियं ॥ अघायं पुण एगेसिं, डुल्लने यं समुस्सए ॥ १७ ॥ इउविद्धंसमाणस्स, पुणो संबोहि डुल्लना ॥ डुल्लहाउ तहच्चाउ, जे धम्मठं वियागरे ॥ १८ ॥

अर्थ-(अंतंकरंतिडुरकाणं के०) मनुष्य सर्व डुःखनो अंत करे पण मनुष्यनी जाति विना अन्य जातीने मुक्ति नथी (इहमेगेसिआहियंके०) एम कोइएके कह्योछे तथा गणधरादिके एम कह्योछेके (आघायंपुणएगेसिंके०) ए मनुष्य संबंधी देह पामवो एक एक बहुल कर्मिजीवोने अत्यंत (डुल्लनेयंसमुस्सएके०) डुर्लनछे वली वली मनुष्य जन्म पामवो डुर्लनछे चुलग पासके इत्यादिक दृष्टांते डुर्लनछे ॥ १७ ॥ (इउविद्धंसमाणस्सके०) ए मनुष्य देह थकी विध्वंस एटले भ्रष्ट थयलाने एटले जे मनुष्य जन्म हार्या एवाने (पुणोसंबोहिडुल्लनाके०) अन्यगतीने विषे बोधी एटले सम्यक्त्व ज्ञान पामवो डुर्लनछे (तहच्चाउके०) तथार्चा एटले लेश्या चित्तना परिणाम अथवा अर्चा एटले मनुष्यनुं शरीर ते (डुल्लहाउके०) डुःप्राप्यछे (जेधम्मठंवियागरेके०) वली धर्मनो अर्थजे वियागरे एटले शुधो प्रकाशे एवो शरीर धारी मनुष्य पणुं पण डुर्लनछे ॥ १८ ॥

॥ दीपिका-इह एकेषां वादिनामाख्यातं यत् देवाएवांतकरामोक्षगामिनः स्युरिति न तथा इहार्हते प्रवचने । इदमन्यत् पुनरेकेषां गणधरादीनामाख्यातं यदयं मानुष्यः शरीरसमुच्छ्रयोडुर्लनः । यतः । ननु पुनरिदमतिडुर्लन, मगाधसंसारजलधिविभ्रष्टं ॥ मानुष्यं खद्योतक,तडिल्लताविलसितप्रतिममित्यादि ॥ १७ ॥ इतोमनुष्यनवाद्विध्वंसमानस्य जीवस्य पुनः संबोधिधर्मप्राप्तिर्डुर्लना तथानूता सम्यक्त्वप्राप्तियोग्याऽर्चा लेश्या डुर्लना । जंतूनां ये धर्मरूपमर्थं व्याकुर्वंति ये धर्मप्रतिपत्तियोग्याइत्यर्थः । तेषां तथानूताचा डुर्लना स्यात् ॥ १८ ॥

॥ टीका–इदमेव स्वनामग्राहमाह । (अंतकरेंतीत्यादि) नह्यमनुष्याअशेषडुःखानामं तं कुर्वंति तथाविधसामग्र्यानावाद्यथैकेषां वादिनामाख्यातं । तद्यथा । देवाएवोत्तरोत्त रं स्थानमास्कंदंतोऽशेषक्लेशप्रहाणं कुर्वंति न तथेहार्हते प्रवचने इति । इदमन्यत् पुन रेकेषां गणधरादीनां स्वशिष्याणां वा गणधरादिनिराख्यातं । तद्यथा । युगसमिलादिन्या यावाप्तः कथंचित्कर्मविवरात् योयं शरीरसमुछ्रयः सोकृतधर्मोपायैरप्यसुमद्भिर्महासमुद्र प्रच्नष्टरत्नवत्पुनर्डुर्लनोनवति । तथाचोक्तं । नुनु पुनरिदमतिडुर्लन,मगाधसंसारजलधिविभ्र ष्टं ॥ मानुष्यं खद्योतक,तडिल्लताविलसितप्रतिममित्यादि ॥१७॥ अपिच (इउविद्धंसेइत्या दि) इतोऽमुष्मात् मानुष्यनवात्सद्धमेतोवा विध्वंसनस्याकृतपुण्यस्य पुनरस्मिन् संसारे पर्यटतोबोधिः सम्यक्दर्शनावाप्तिः सुडुर्लनोत्कृष्टतः अपार्धपुजलपरावर्तकालेन यतोनवति तथा डुर्लना डुरापा तथानूता सम्यक्दर्शनप्राप्तियोग्यर्चा लेश्यांतःपरिणतिरकृतधर्माणा मिति । यदि वाऽर्चा मनुष्यशरीरं तदप्यकृतधर्मबीजानामार्यक्षेत्रसुकुलोत्पत्तिसकलेंद्रिय सामग्र्यादिरूपं डुर्लनं नवति । जंतूनां धर्मरूपमर्थं व्याकुर्वंति ये धर्मप्रतिपत्तियोग्याइत्य र्थः । तेषां तथानूतार्चा सुडुर्लना नवतीति ॥ १७ ॥

जे धम्मं सुद्धमक्खंति, पडिपुन्नमणेलिसं ॥ अणेलिसस्स जं
ठाणं, तस्स जम्मकहा कउ ॥ १ए॥ कउ कयाइ मेधावी, उप्प
ज्जंति तहागया ॥ तहागया अप्पडिन्ना, चक्खू लोगस्सणुत्तरा ॥२०॥

अर्थ–(जेधम्मंसुद्धमक्खंतिके०) जे श्रीवीतरागादिक महापुरुषो शुद्ध निर्मल ध र्म कहे अने पोते पण तेजरीते समाचरे (पडिपुन्नके०) प्रतिपूर्ण (अणेलिसंके०) अनीदृश एटले सम्यक् चारित्रिउ (अणेलिसस्सजंठाणंके०) जेनो ज्ञान दर्शन अने चारित्ररूप मोक्ष स्थानकठे परंतु बीजो स्थानक नथी (तस्सजम्मकहाकउके०) ते ने जन्मकथा क्यांथी होय एटले कर्मने क्षयें जन्म मरणनो अनाव होय ॥ १ए ॥ (कउकयाइमेधावीके०) कदाचित् मेधावी एटले सम्यक् ज्ञानवंत क्यांथकी आवीने (उप्पज्जंतिके०) उपजे खरा परंतु ते केवा होय तोके (तहागयाके०) तेमज कर्म खपावीने गया (तहागयाअप्पडिन्नाके०) जे कर्मखपावीने गया जेने निदान प्र तिज्ञा नही ते अप्रतिज्ञ निराशंस एवा होय तेने संसार मांहे उत्पत्ति अने मरण नथी जे कारणे तथागत श्रीतीर्थंकरादिक निदान रहित निराशंस (चक्खूलोगस्सणुत्तराके०) तथा लोकने अनुत्तर सर्वोत्तम प्रधान ज्ञानथकी चक्षुनूत जाणवा ॥ २० ॥

॥ दीपिका–ये सर्वज्ञाः शुद्धं धर्ममाख्यांति परिपूर्णमनन्यसदृशं । तदेवमनन्यसदृश

स्याज्ञानक्रियोपेतस्य यत् स्थानं तत्प्राप्तस्य जन्मकथा कुतः । तस्य जन्ममरणे न जव तइत्यर्थ. ॥ १ए ॥ मेधाविनोज्ञानिनस्तथा जवज्रमणेन गतास्तथागताः कुतः कदाचि डुत्पद्यंते जवेनोत्पद्यंतएवेत्यर्थः । तथागताअर्हज्ञणधरादयोऽप्रतिज्ञाअनिदानाअनुत्तराः सर्वज्ञत्वात्ते लोकस्य चक्षुर्जूताः स्युः ॥ २० ॥

॥ टीका—किंचान्यत् (जेधम्ममित्यादि) ये महापुरुषावीतरागाः करतलामलकवत्स कलजगद्द्रष्टारस्तएवंजूताः परहितैकरताः शुद्धमवदातं सर्वोपाधिविशुद्धं धर्ममाख्यांति प्र तिपादयंति स्वतः समाचरंति च प्रतिपूर्णमायतचारित्रसद्भावात्संपूर्णं यथाख्यातचारित्र रूपं वाऽनीदृशमनन्यसदृशं धर्ममाख्यांत्युपतिष्ठंति । तदेवमनीदृशस्यानन्यसदृशस्य ज्ञा नचारित्रोपेतस्य यत् स्थानं सर्वद्वंद्वोपरमरूपं तदवाप्तस्य कुतोजन्मकथा जातोमृतोवे त्येवंरूपा कथा स्वप्नांतरेपि तस्य कर्मबीजाजावात् कुतोविद्यतइति । तथोक्तं । दग्धे बीजे यथाऽत्यंतं, प्राडुर्जवति नांकुरः ॥ कर्मबीजे तथा दग्धे, न रोहति जवांकुरइत्यादि ॥ १ए ॥ किंचान्यत् । (कउकयाइत्यादि) कर्मबीजाजावात्कुतः कस्मात्कदाचिदपि मेधा विनोज्ञानात्मकास्तथा पुनरावृत्त्याऽगतास्तथागताः पुनरस्मिन् संसारेऽशुचिगर्जाधाने स मुत्पद्यंते न कथंचित्कदाचित्कर्मोपादानाजावाडुत्पद्यंतइत्यर्थः । तथा तथागतास्तीर्थकृद्ग णधरादयोन विद्यंते प्रतिज्ञा निदानबंधनरूपा येषां तेऽप्रतिज्ञानिदानानिराशंसाः सत्वहि तकरणोद्यताअनुत्तरज्ञानत्वादनुत्तरालोकस्य जंतुगणस्य सदसदर्थनिरूपणकारणतश्चक्षुर्जू ताहिताहितप्राप्तिपरिहारं कुर्वंतः सकललोकलोचनजूतास्तथागताः सर्वज्ञाजवंतीति॥२०॥

अणुत्तरे य ठाणे से, कासवेण पवेदिते । जं किच्चा णिवुमा एगे,
निघं पावंति पंमिया ॥ २१ ॥ पंमिए वीरियं लद्धुं, निग्घायाय
पवत्तगं ॥ धुणे पुवकडं कम्मं, णवं वा वि ण कुवती ॥ २२ ॥

अर्थ—(अणुत्तरेयठाणेसेके०) अनुत्तर एटले प्रधान संयमरूप स्थानक ते (कास वेणपवेदितेके०) काश्यप श्रीमहावीर देवे कह्यो (जंकिच्चाके०) जे संयम स्थानक पा लीने (णिवुमाएगेके०) एक महापुरुष उपशांत कषायवंत एवा ठता (निघंपावंतिपंमिया के०) पंमित विवेकना जाण संसारनो अंत पामे ॥ २१ ॥ (पंमिएवीरियंलद्धुंके०) पंमित एटले सदसद्विवेकना जाण ते संयमनो वीर्य बल पामीने निःशेष समस्त कर्मनो (निग्घायायके०) निर्घातन करवाने अर्थे (पवत्तगंके०) प्रवर्त्तक ए पंमित वी र्य घणा जवे पामवो डुर्लज तेने पामीने (धुणेपुवकडंकम्मंके०) पूर्वकृत कर्मने धुणे एटले खपावे (णवंवाविणकुवतीके०) कोइ नवा कर्मने नकरे ॥ २२ ॥

॥ दीपिका—अनुत्तरं स्थानं संयमरूपं काश्यपेन श्रीवीरेण प्रवेदितं कथितं यत्संयम स्थानं कृत्वाऽनुपाल्यैके निर्वृतामोक्षं गतानिष्ठां नवपर्यंतं प्राप्नुवंति पंडिताः ॥ २१ ॥ पंडितः संयमवीर्यं लब्ध्वा पूर्वकृतं कर्म धुनीयादपनयेत् । वीर्यं किंजूतं निर्घाताय निर्जरणाय प्रवर्तकं । नवं च कर्म न कुर्यात् ॥ २२ ॥

॥ टीका—किंचान्यत् (अणुत्तरेयइत्यादि) न विद्यते उत्तरं प्रधानं यस्मादनुत्तरं तच्च तत्संयमाख्यं काश्यपेन काश्यपगोत्रेण श्रीमन्महावीरवर्धमानस्वामिना प्रवेदितमाख्यातं । तदस्य चानुत्तरत्वमाविर्नावयन्नाह । यदनुत्तरं संयमस्थानं एके महासत्वाः सदनुष्ठायिनः कृत्वाऽनुपाल्य निर्वृतानिर्वाणमनुप्राप्ताः । निर्वृताश्च संतः संसारचक्रवालस्य निष्ठां पर्यवसानं पंडिताः पापाड्डीनाः प्राप्नुवंति । तदेवं नूतं संयमस्थानं काश्यपेन प्रवेदितं सदनुष्ठायिनः संतः सिद्धिं प्राप्नुवंतीति तात्पर्यार्थः ॥२१॥ अपिच (पंडिएइत्यादि) पंडितः सदसद्विवेकज्ञोवीर्यं कर्मोद्दलनसमर्थं सत्संयमवीर्यं तपोवीर्यंवा लब्ध्वाऽवाप्य । तदेव वीर्यं विशिनष्टि । निःशेषकर्मणोनिर्घातायनिर्जरणाय प्रवर्तकं पंडितवीर्यं तच्च बहुनवशतडुर्लनं कथंचित्कर्मविवरादवाप्य धुनीयादपनयेत् । पूर्वनवेष्वनेकेषु यत्कृतमुपात्तं कर्माष्टप्रकारं तत्पंडितवीर्येण धुनीयात् नवं चानिनवं चाश्रवनिरोधान्नकरोत्यसाविति ॥ २२ ॥

एए कुव्वती महावीरे, अणुपुव्वकडं रयं ॥ रयसा संमुहीनूता, कम्मं हेच्चाए जं मयं ॥ २३॥ जं मयं सव्वसाहूणं, तं मयं सल्लगत्तणं॥ साहइत्ताए तं तिन्ना, देवावा अन्नविंसु ते ॥ २४ ॥ अन्नविंसु पुरा धीरा, आगमिस्सावि सुव्वता ॥ डुन्निबोहस्स मग्गस्स, अंतं पाउकरातिन्नेतिबेमि ॥२५॥ इतिपनरसमंजंमइयंनामझयणं सम्मत्तं॥

अर्थ—(एकुव्वतीमहावीरेके०) श्रीमहावीर उत्तम साधु ते नकरे शुं नकरे तोके (अणुपुव्वकडंरयंके०) आनुपूर्वी मिथ्यात्व अविरति प्रमाद अनुक्रमे कीधुं जे पापरूप रज ते नकरे (रयसासंमुहीनूताके०) पापरूप रजेकरी संमुहीनूत एटले एकठा कीधा जे अष्टप्रकारना कर्म (कम्मंहेच्चाएजंमयंके०) ते कर्मने हित्वा एटले हणीने सत्य संयम पालीने मोक्षने संमुख थाय ॥ २३ ॥ (जंमयंसव्वसाहूणंके०) जे संयम रूप स्थानक ते सर्व साधु चारित्रियानो मनो वांछित स्थानक जाणवो (तंमयंसल्लगत्तणंके०) वलीते संयमानुष्ठान केहेवो तोके शल्यकर्तन एटले शल्यनो छेदनार (साहइत्ताएतंतिन्नाके०) एवा संयमने सम्यक् प्रकारे आराधीने घणा प्राणी सर्वथा कर्मने अन्नावे संसार

समुद्र थकी तस्या (देवावाअनूविंसुतेके०) अथवा सर्वथा कर्मना क्षयना अजावे दे वत्व पणे वैमानिकमां जइ उपना एकावतारी प्रमुख थया ॥ २४ ॥ (अनूविंसुपुराधी राके०) पूर्वं अतीतकाले घणा चारित्रिया थया अने वर्त्तमान काले पणछे तथा (आ गमिस्साविसुव्वताके०) आगमिक काले पण घणा सुव्रत संयमानुष्ठानी थशे ते केवा थशे तोके (डुन्निबोहस्समग्गस्सके०) दुर्निबोध एटले डुर्लन एवोजे ज्ञान दर्शन अने चारित्ररूप मार्ग ते (अंतंपाउकरातिन्नेके०) परम उत्कृष्टो पामीनें तेहिज मार्गना प्रका शक उता संसार समुद्रने पूर्वे तथा वर्त्तमाने तरेछे अने आगमिक काले तरशें. तिवेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ २५ ॥ एरीते पंदरमां यतिनामा अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो.

॥ दीपिका–अन्यजीवैर्यदनुपूर्वं कर्म आश्रित्य संयमात्संमुखीनूतोयन्मतमष्टनेदं तत् कर्म हित्वा मोक्षस्यानिमुखीनूतः ॥ २३ ॥ सर्वसाधूनां यन्मतमनिप्रेतं तत्संयमस्थानं श ल्यकर्तनं कर्मछेदकं । तत्संयमस्थानं साधयित्वा बहवः संसारं तीर्णामोक्षं प्राप्ताः । अ थवा देवाअनूवन् नवंति नविष्यंतिच ॥ २४ ॥ पुरा पूर्वं बहवोधीराअनूवन् अनागते काले सुव्रताजविष्यंति च वर्तमानकाले तथानूताः संतिच । ये डुर्निबोधस्य डुष्प्रापस्य मा र्गस्य दर्शनचारित्राख्यस्यांतं परमकाष्ठामवाप्य तस्यैव प्राडुष्कराः स्वतः सन्मार्गसेविनोऽ न्येषां च प्राडुर्नावकाः संतः संसारं तीर्णास्तरंति तरिष्यंति चेति ॥ २५ ॥ इति आदा नीयाख्यं पंचदशमध्ययनं समाप्तं ॥

॥ टीका–किंच (नकुव्वतीत्यादि) महावीरः कर्मदारणसहिष्णुः सन्नानुपूर्व्येण मिथ्या त्वविरतिप्रमादकषाययोगैर्यत्कृतं रजोऽपरजंतुनिस्तदसौ न करोति न विधत्ते । यतस्तत्प्रा क्तनोपात्तरजसैवोपादीयते सच तत्प्राक्तनं कर्मावष्टन्य सत्संयमात्संमुखीनूतस्तदनिमुखी नूतश्च यन्मतमष्टप्रकारं तत्सर्वं हित्वा त्यक्त्वा मोक्षस्य सत्संयमस्य वा सम्मुखीनूतोऽ साविति ॥ २३ ॥ अन्यच्च (जम्मयमित्यादि) सर्वसाधूनां यन्मतमनिप्रेतं तदेतत्संयम स्थानं । तद्विशिनष्टि । शल्यं पापानुष्ठानं तज्जनितं वा कर्म तत्कर्तयति छिनत्ति तच्छल्यक र्तनं तच्च सदनुष्ठानं तद्युक्तविहारिणः साधयित्वा सम्यगाराध्य बहवः संसारकांतारं ती र्णाः । अपरे तु सर्वकर्मक्षयानावात् देवाअनूवन् ते चाप्तसम्यक्त्वाः सच्चारित्रिणोवैमानि कत्वमवापुः प्राप्नुवंति प्राप्स्यंतिचेति ॥ २४ ॥ सर्वोपसंहारार्थमाह । (अनूविंसुइत्यादि) पुरा पूर्वस्मिन्ननादिके काले बहवोमहावीराः कर्मविदारणसहिष्णवः अनूवन् नूतास्तथा वर्तमाने च काले कर्मनूमौ तथानूताजवंति तथागामिनि चानंते काले तथानूताः सत्सं यमानुष्ठायिनोजविष्यंति । किंकृतवंतः कुर्वंति करिष्यंतिचेत्याह । यस्य डुर्निबोधस्याती

वडुष्प्रापकस्य ज्ञानदर्शनचारित्राख्यस्यांतं परमकाष्ठामवाप्य तस्यैव मार्गस्य प्राडुःप्राकाश्यं तत्करणशीलाः प्राडुष्कराः स्वतः सन्मार्गानुष्ठायिनोऽन्येषांच प्राडुर्नावकाः संतः संसारार्णवं तीर्णास्तरंति तरिष्यंतिचेति । गतोऽनुगमः । सांप्रतं नयास्तेच प्राग्वत् इष्टव्याः । इतिरध्ययनपरिसमाप्तौ । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ १५ ॥ इति आदानीयाख्यं पंचदशाध्ययनं समाप्तं ॥

हवे सोळमुं गाहा नामे अध्ययन प्रारंनिये ठैए पंदरमां अध्ययनमां जे विधिरूप तथा प्रति निषेधरूप नाव कह्या ते यथोक्त विधि आचरतो सुसाधु कहेवाय एवा नावे आ सोळमो अध्ययन कहेठे.

अहाह नगवं एवं, से दंते दविए, वोसठकाएत्ति वच्चे, माहणेत्ति वा, समणेत्तिवा निस्कूत्तिवा, णिग्गंथेत्तिवा, पडिआह नंते कहं तु दंते दविए वोसठकाएत्ति वच्चे माहणेत्तिवा समणेत्ति वा निस्कूत्तिवा णिग्गंथेत्तिवा तंनो बूहि महामुणी ॥ १ ॥

अर्थ-(अहाहनगवं एवं के०) यथाह नगवान् हवे श्री नगवंत महावीरदेव सना मांहे एम कहेठे. (सेदंते दविए के०) ते साधु इंड्यिोने दमवे करी दांत तेणे करी मुक्तिगमन योग्य तथा (वोसठ के०) निःप्रतिकर्म एवो (काएंत्तिवच्चे के०) शरीरठे जेहनो तेने एम कहेवो (माहणेत्तिवा के०) त्रस अने स्थावर जीवोने माहणो एवो जेनो उद्देशठे ते माहण कहिये अथवा नव विध ब्रह्मचर्यनी गुप्ति थकी माहण एटले ब्राह्मण कहिए (समणेत्तिवा के०) तथा श्रमण एटले तपस्वी शुद्ध क्रिया अनुष्ठानना करनार (निस्कूत्तिवा के०) आरंननो त्याग करे निर्दोष निक्षायें प्रवर्ते अथवा अष्ट प्रकारना कर्मने नेदे तेमाटे निक्षु कहिए (णिग्गंथेत्तिवा के०) तथा बाह्य अन्यंतर परिग्रह रहित माटे निर्ग्रंथ कहिए (एम श्री नगवाने कहे थके शिष्य पूछे ठे के केवीरीते (दंतेदविए के०) दांत मुक्तिगमन योग्य (वोसठकाएत्ति के०) तथा शरीरनी शोना शुश्रूषा रहित तेने (वच्चे के०) कहिये शुं कहियें तोके (माहणेत्तिवा के०) माहण कहिये तथा (समणेत्तिवा के०) श्रमण कहिए तथा (निस्कूत्तिवा के०) निक्षु कहिए (णिग्गंथेत्तिवा के०) तथा निर्ग्रंथ कहिए (तंनोबूहिमहामुणी के०) ते हे महामुनि ए चार शब्दनो अर्थ अमने कहो. ॥ १ ॥

॥ दीपिका-अधुना गाथाषोडशाख्यं षोडशाध्ययनमारन्यते । तस्येदमादिसूत्रं । (अहेति) । अथाह नगवान् सर्वज्ञः । एवमसौ साधुर्दांतः संवृतेंड्यिः । ड्व्यं मुक्तिगमन

योग्योव्युत्सृष्टकायोनिष्प्रतिकर्मशरीरः समाह्नइति श्रमणइति भिक्षुरिति निर्ग्रंथइति भगवतोक्ते शिष्यः प्रत्याह। हेभगवन् योऽसौ पूर्वोक्तपंचदशाध्ययनार्थानुष्ठायी साधुर्माह नादिशब्दवाच्यइति तत्कथं स्यादिति नोऽस्माकं ब्रूहि हेमहामुने ॥ १ ॥

॥ टीका–उक्तं पंचदशमध्ययनं सांप्रतं षोडशमारभ्यते। अस्य चायमभिसंबंधः। ईहानंतरोक्तेषु पंचदशस्वप्यध्ययनेषु येऽर्थाअभिहिता विधिप्रतिषेधद्वारेण तान् तथैवाचरन् साधुर्भवतीत्येतदनेनाध्ययनेनोपदिश्यते। ते चामी अर्थाः। तद्यथा। प्रथमाध्ययने स्वसमयपरसमयपरिज्ञानेन सम्यक्त्वगुणावस्थितोभवति। द्वितीयाध्ययने ज्ञानादिभिः कर्मविदारणहेतुभिरष्टप्रकारकं कर्म विदारयन् साधुर्भवति। तथा तृतीयाध्ययने यथानुकूलं प्रतिकूलोपसर्गान् सहमानः साधुर्भवति। चतुर्थे तु स्त्रीपरीषहस्य दुर्जयत्वात्तज्जयकारीति। पंचमेतु नरकवेदनाभ्यः समुद्विजमानस्तत्प्रायोग्यकर्मणोविरतः सन्साधुत्वमवाप्नुयात्। षष्ठेतु यथा श्रीवीरवर्धमानस्वामिना कर्मक्षयोद्यतेन चतुर्ज्ञानिनापि संयमं प्रति प्रयत्नः कृतस्तथान्येनापि छद्मस्थेन विधेयमिति। सप्तमे तु कुशीलदोषान् ज्ञात्वा तत्परिहारोद्यतेन सुशीलावस्थितेन भाव्यं। अष्टमेतु बालवीर्यपरिहारेण पंडितवीर्योद्यतेन सदा मोक्षाभिलाषिणा भाव्यं। नवमे तु यथोक्तं क्षांत्यादिकं धर्ममनुचरन् संसारान्मुच्यतइति। दशमे तु संपूर्णसमाधियुक्तः सुगतिभाग्भवत्येकादशेतु सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्राख्यं सन्मार्गं प्रतिपन्नोऽशेषक्लेशप्रहाणं विधत्ते। द्वादशेतु तीर्थिकदर्शनानि सम्यग्गुणदोषविचारणतोविजानन्न तेषु श्रद्धानं विधत्ते। त्रयोदशे तु शिष्यगुणदोषविज्ञः सद्गुणेषु वर्तमानः कल्याणभाग्भवति। चतुर्दशे तु प्रशस्तभावग्रंथितभावितात्मा विस्रोतसिकारहितोभवति। पंचदशेतु यथावदायतचरित्रोभवति भिक्षुस्तदुपदिश्यतइति। तदेवमनंतरोक्तेषु पंचदशस्वध्ययनेषु येऽर्थाः प्रतिपादितास्तेत्र संक्षेपतः प्रतिपाद्यंतइत्यनेन संबंधेनायातस्यास्याध्ययनस्य चत्वार्युपक्रमादीन्यनुयोगद्वाराणि भवंति। तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोऽनंतरमेव संबंधप्रतिपादनेनैवाभिहितः। नामनिष्पन्नेतु निक्षेपे गाथाषोडशकमिति नाम। तत्र गाथानिक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह। "णामं ठवणा गाहा, दव्वगाहा य भावगाहा य॥ पोत्थगपत्तगलिहिया, सो होइ दव्वगाहाउ ॥ १३९ ॥ (णामंठवणेत्यादि) तत्र गाथायानामादिकश्चतुर्धा निक्षेपस्तत्रापि नामस्थापने क्षुण्णत्वादनादृत्य द्रव्यगाथामाह। तत्र ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्ता द्रव्यगाथा पत्रकपुस्तकादिन्यस्ता। तद्यथा। जयतिणवणलिणकुवलयवियसियसयरावत्तपत्तलदलच्छो ॥ वीरोगयंदमयगल सुललियगयविक्कमो भगवं ॥ १ ॥ अथ चेयमेव गाथा षोडशाध्ययनरूपा पत्रकपुस्तकन्यस्ता द्रव्यगाथेति। भावगाथामधिकृत्याह। "होंति पुण भावगाहा, सागारुवउगभावणिप्फन्ना ॥ महुराभिलाणच्छु

त्ता, तेणं गाहाति एं बिंति "॥ ४० ॥ (होंतिपुंएइत्यादि) नावगाथा पुनरियं नवति। तद्यथा । योऽसौ साकारोपयोगः क्षायोपशमिकनावनिष्पन्नोगाथां प्रति व्यवस्थितः सा नावगाथेत्युच्यते । समस्तस्यापि च श्रुतस्य क्षायोपशमिकनावे व्यवस्थितत्वात् । तत्र चानाकारोपयोगस्यासंनवादेवमनिधीयते इति । पुनरपि तामेव विशिनष्टि । मधुरं श्रुति पेशलमनिधानमुच्चारणं यस्याः सा मधुरानिधानगाथा युक्ता । गाथा बंदसोपनिबद्धस्य प्राकृतस्य मधुरत्वादित्यनिप्रायोगीयते पठ्यते मधुराक्षरप्रवृत्त्या गायंति वा तामिति गाथा । यतएवमतस्तेन कारणेन गाथामिति तां ब्रुवते । एमिति वाक्यालंकारे । एनां वा गाथामिति । अन्यथावा निरुक्तमधिकृत्याह । " गाहीकयावअज्ञा,अहवणसामुद्दएण बंदेणं ॥ एएण होंति गाहा, एसो अन्नोवि पज्जाउ,, ॥ ४१ ॥ (गाहीकयावइत्यादि) गाथीकृताः पिंडीकृताविक्षिप्ताः संतएकत्र मीलिताअर्थायस्याः सा गाथेत्यथवा सामुद्रेण बंदसा वा निबद्धा सा गाथेत्युच्यते । तच्चेदं बंदोऽनिबद्धं च यल्लोकेगाथेति तत्पंडितैः प्रोक्तं । एषोऽनंतरोक्तोगाथाशब्दस्य पर्यायोनिरुक्तस्तात्पर्यार्थोद्रष्टव्यः । तद्यथा । गीयतेऽसौ गायंति वा तामिति गाथीकृतावार्थाः सामुद्रेण वा बंदसेति गाथेत्युच्यते। अन्योवास्वयमभ्यूह्य निरुक्तविधिना विधेयइति। पिंडितार्थग्राहित्वमधिकृत्याह ।,, पन्नरससुअज्झयणे,पिंडितबेसुजो अवितहत्ति ॥ पिंडियवयणेणब्बं गेहेतिम्हा ततो गाहा,, ॥४२॥ (पन्नरससुइत्यादि) पंचदशस्वप्यध्ययनेषु अनंतरोक्तेषु पिंडितार्थानि तेषु सर्वेष्वपि यएवं व्यवस्थितोऽर्थस्तमवितथं यथावस्थितपिंडितार्थवचनेन यस्माद्ग्रथ्नात्येतदध्ययनं षोमशं ततः पिंमितार्थग्रथनाज्ञाथेत्युच्यतइति । तत्त्वनेदपर्यायैर्व्याख्येति कृत्वा सूत्रार्थमधिकृत्याह । "सोलसमे अज्झयणे, अणगारगुणाणवणण नणिया ॥ गाहा सोलसणामं, अज्झयणमिणं उवदिसंति ॥ ४३ ॥ (सोलसमेइत्यादि) षोमशाध्ययने ऽनगाराः साधवस्तेषां गुणाः क्षांत्यादयस्तेषामनगारगुणानां पंचदशस्वप्यध्ययनेष्वनिहितानामिहाध्ययने पिंमितार्थवचनेन यतोवर्णनानिहिताऽतोगाथाषोमशानिधानमध्ययनमिदं व्यपदिशंति प्रतिपादयंति। उक्तोनामनिष्पन्नोनिक्षेपोनिर्युक्त्यानुगमस्तदनंतरं स्पार्शिकनिर्युक्त्याऽनुगमस्यावसरः सच सूत्रे सति नवति सूत्रं च सूत्रानुगमेऽसावप्यवसरप्राप्तएवातोऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रानुगमे सूत्रमुच्चारणीयं । तच्चेदं । (अहाहनगवमित्यादि) अथेत्ययं शब्दोऽवसानमंगलार्थः । आदिमंगलं तु बुध्यतेत्यनेनानिहितं । तेनाद्यंतयोर्मंगलत्वात्सर्वोपि श्रुतस्कंधोमंगलमित्येतदनेनावेदितं नवति । आनंतर्येवा शब्दः । पंचदशाध्ययनानंतरं तदर्थसंग्राहीदं षोमशमध्ययनं प्रारभ्यते । अथानंतरमाह नगवानुत्पन्नदिव्यज्ञानः सदेवमनुजायां पर्षदीदं वक्ष्यमाणमाह । तद्यथा । एवमसौ पंचदशाध्ययनोक्तार्थयुक्तः ससाधुर्दांतइंद्रियदमनेन इव्यनूतोमुक्तिगमनयोग्यत्वात् इव्यंच नव्येइति वचनात् रागद्वेषकालिकायइव्यरहित

त्वाद्वा जात्यसुवर्णवत् शुद्धद्रव्यनूतस्तथा व्युत्सृष्टोनिष्प्रतिकर्मशरीरतया कायः शरीरं येन सनवति व्युत्सृष्टकायः। तदेवंनूतः सन् पूर्वोक्ताध्ययनार्थेषु वर्तमानः प्राणिनः स्था वरजंगमसूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तकनेदनिन्नान् (माहणत्ति) प्रवृत्तिर्यस्यासौ माहनोनव ब्रह्मचर्यगुप्तिगुप्तोब्रह्मचर्यधारणाद्वा ब्राह्मणइत्यनंतरोक्तगुणकदंबकयुक्तः साधुमर्हितोब्राह्म णइति वा वाच्यः। तथा श्राम्यति तपसा खिद्यतइति कृत्वा श्रमणोवाच्योऽथवा समं तुल्यं मित्रादिषु मनोंतःकरणं यस्य ससमनाः सर्वत्रवासी चंदनकल्पइत्यर्थः । तथाचोक्तं । ण त्थियसिकोइवेसो, इत्यादि । तदेवं पूर्वोक्तगुणकलितः श्रमणः सममनावा इत्येवं वाच्यः सा धुरिति । तथा निक्षणशीलोनिक्षुर्निनत्ति वा ऽष्टप्रकारं कर्मेति निक्षुः ससाधुर्दांतादिगुणोपे तोनिक्षुरिति । तथा सबाह्याभ्यंतरग्रंथानावान्निर्ग्रंथः । तदेवमनंतरोक्तपंचदशाध्ययनोक्ता र्थाऽनुष्ठायी दांतोद्रव्यनूतोव्युत्सृष्टकायश्च सनिर्ग्रंथइति वाच्यइति । एवं नगवतोक्ते सति प्र त्याह तच्छिष्योनगवन् नदंत नयांत नवांत इति वा योऽसौ दांतोद्रव्यनूतोव्युत्सृष्टकायः सन् ब्राह्मणः श्रमणोनिक्षुर्निर्ग्रंथइति वाच्यः। तदेतत्कथं यन्नगवतोक्तं ब्राह्मणादिशब्दवा च्यत्वं साधोरित्येतन्नोऽस्माकं ब्रूहि आवेदय महामुने यथावस्थितत्रिकालवेदिन् ॥ १ ॥

इतिविरए सव्वपावकम्मेहिं, पिज्जदोसकलह, अप्नरकाण, पेसु न्न, परपरिवाय, अरतिरति, मायामोस, मिच्छादंसणसल्ल, विरए, समिए सहिए, सयाजए,णो कुज्जे, णो माणी, माहणेत्ति,वच्चे॥२॥

अर्थ—एम शिष्ये पूछे थके हवे नगवंत ब्राह्मणादिक चार नामनो यथाक्रमे नेद सहित अर्थ कहेडे. (इतिविरएसव्वपावकम्मेहिंके०) जेणे प्रकारें सर्व पाप कर्मारंनक्रिया थकी निवर्त्यो (पिज्जके०) प्रेम ते राग अने (दोसके०) द्वेष ते अप्रीति (कलहके०) कुवचननुं बोलवुं (अप्नरकाणके०) अन्याख्यान एटले अबता दोषनुं प्रकाशवुं (पेसुन्नके०) पर ना गुणनुं अण सहेवुं अने पारका दोषने प्रकाशवुं (परपरिवायके०) पारका दोष बी जा आगल प्रकाशवा (अरतिके०) संयमने विषे अरति (रतिके०) असंयम विषया दिकने विषे रति (मायामोसके०) परवंचना मृषा अलिक नाषानुं बोलवुं (मिच्छादं सणसल्लके०) मिथ्यादर्शन शल्य एटले अतत्वने विषे तत्वनी बुद्धि तेनेज शल्य कहिए ए सर्व थकी (विरएके०) विरत एटले निवर्त्योडे वली (समिएसहिएके०) पांच समिति ए समिता थका ज्ञान दर्शन अने चारित्र सहित प्रवर्ते (सयाजएके०) सदा संयमने विषे प्रयत्न करे एटले सावधान थको रहे एवो बतो (णोकुज्जेके०) कोइना उपर क्रोध नकरे तथा (णोमाणीके०) अनिमान रहित होय उपलक्षणथकी माया तथा लोनरहित एवा गुणे सहितजे होय ते (माहणेत्तिवच्चेके०) माहण एटले ब्राह्मण जाणवा ॥ २ ॥

॥ दीपिका—इति पृष्टे नगवान् माहनादीनां चतुर्णामनिधानानामर्थमाचष्टे। इत्येवं पूर्वोक्ताध्ययनार्थवृत्तिर्विरतः सर्वपापकर्मन्यस्तथा प्रेम रागः द्वेषोऽप्रीतिरूपः कलहोराटिः अन्याख्यानमसदन्नियोगः पैशुन्यं परगुणमत्सरेण तद्दोषोद्घट्टनं । परपरिवादः काक्का परदोषापादनं अरतिः संयमे रतिर्विषयेषु । माया परवंचनं मृषावादोऽसदर्थानिधानं मिथ्यादर्शनं तत्वेऽतत्त्वमतत्वेच तत्वमिति मतिः । तदेव शल्यं एतेन्योविरतः । तथा समितः संगतः पंचसमितिनिः सहितोज्ञानादिनिः सदा यत्तः संयमे कस्यापि न कुप्येत नापि मानी । उपलक्षणात् मायालोनान्यामपि निवृत्तइत्यादि गुणकल्पितः साधुर्माहनइति वाच्यः ॥ २ ॥

॥ टीका—इत्येवं पृष्टोनगवान् ब्राह्मणादिनां चतुर्णामप्यनिधानानां कथंचिद्भेदाभिन्नानां यथाक्रमं प्रवृत्तिनिमित्तमाह । इत्येवं पूर्वोक्ताध्ययनार्थवृत्तिः सन् विरतोनिवृत्तः सर्वेन्यः पापकर्मन्यः सावद्यानुष्ठानरूपेन्यः सतथा तथा प्रेम रागानिष्वंगलक्षणं द्वेषोऽप्रीतिलक्षणः कलहो द्वंद्वाधिकरणमन्याख्यानमसदनियोगः पैशुन्यं परगुणासहनतया तद्दोषोद्घट्टनमितियावत् । परस्य परवादः काक्कापरदोषापादनं अरतिश्चित्तोद्वेगलक्षणा संयमे तथा रतिर्विषयानिष्वंगोमाया परवंचनतया कुटिलमतिर्मृषावादोऽसदर्थानिधानं गामश्वं ब्रुवतोनवति मिथ्यादर्शनमतत्त्वे तत्त्वानिनिवेशस्तत्वेवा तत्त्वमिति । यथा । णञ्चिणणिञ्चो कुणइकयं वेइ णञ्चि णिव्वाणं ॥ णञ्चिय मोरको वाउ उमिञ्चत्तस्सगणाइंइत्यादि । एतदेव शल्यं तस्मिंस्ततोवा विरतइति । तथा सम्यगितः समितईर्यासमित्यादिनिः पंचनिः समितिनिः समितइत्यर्थः । तथा सह हितेन परमार्थनूतेन वर्ततइति सहितः । यदिवा सहितोयुक्तोज्ञानादिनिस्तथा सर्वकालं यतः प्रयतः सत्संयमानुष्ठानेन तदनुष्ठानमपि न कषायैर्निःसारी कुर्यादित्याह । कस्यचिदप्यपकारिणोपि न कुप्येत आकुष्टः सन्न क्रोधवशगोनूयात् नापि मानी नवेत् डुष्कततपोयुक्तोपि न गर्वं विदध्यात् । तथा चोक्तं । जइ सो वि निज्जरमउ, पडिसिद्धो अट्टमाणमहाणेहिं ॥ अवसेसमयठाणा परिहरियव्वा पयत्तेणं । अस्य चोपलक्षणार्थत्वाद्भागोपि मायालोनात्मकोन विधेयइत्यादिगुणकलितः साधुर्माहनइति निःशंकं वाच्यइति ॥ २ ॥

एब्वि समणे अणिस्सिए, अणियाणे, आदाणंच, अतिवायं च, मुसावायंच बहिद्धंच, कोहंच, माणंच मायंच, लोहंच, पिज्जंच, दोसंच, इच्चेव जनजउ आदाणं अप्पणोपद्देसेहेऊ तनतउ आदाणतो पुव्वं पडिविरते, पाणाइवायाए दंते दविए वोसठ्ठकाए समणेत्ति वच्चे ॥३

अर्थ-(एछविसमणे के०) जे माहणना लक्षण कह्या ते अहीं सर्व जाणवा वली श्रमणना विशेष कहेछे जे (अणिस्सिए के०) अनाश्रित अप्रतिबंध विहारी तथा (अणियाणे के०) नियाणा रहित (आदाणंच के०) कषाय थकी रहित (अतिवायं च के०) अतिपातंच एटले जीवहिंसा तथा (मुसावायंचके०) मृषावाद (बहिद्धंचके०) मैथुन परिग्रह ए सर्वने ज्ञ परिज्ञायें जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञायें परिहरे एटले मूलगुण कह्या हवे उत्तर गुण कहेछे (कोहंचमाणंचमायंचलोहंच के०) क्रोध मान, माया तथा लोन अने (पिज्जंच के०) प्रेम शब्दे राग (दोसंच के०) द्वेष एने पण सम्यक् प्रकारें संसारना कारण जाणीने परिहरे (इच्चेव के०) एरीते (जउंजउं के०) जे जे (आदाणाउ के०) कर्मनो बंध (अप्पणोपदेसेहेऊ के०) जे थकी पोताना आत्माने प्रदोष हेतु एटले अ वगुणना कारण देखे (तउंतउंआदाणतो के०) ते ते सावद्यानुष्टान थकी चारित्रिउ (पुव्वंपडिविरते के०) पूर्वेज एटले आगल थकीज आत्म हित वांछतो थको विरति करे (पाणाइवायाए के०) प्राणातिपात नकरे एवो उतो (दंते के०) दांत एटले इंद्रि यनो दमनार (दविए के०) द्रविक एटले मुक्तिगमन योग्य (वोसठकाए के०) निष्प्र तिकर्म शरीरवालो एटले शरीरनी शुश्रूषायें रहित (समणेत्तिवच्चे के०) एवा गुणे स हित विशिष्ट श्रमण कहेवो. ॥ २ ॥

॥ दिपीका-अत्रापि पूर्वोक्तगुणसमूहे वर्तमानः श्रमणोपि वाच्यः। एतद्गुणयुक्तेनापि नाव्यमित्याह। अनिश्रितोऽप्रतिबद्धशरीरादौ अनिदानोनिराकांक्षः। आदानं कषायः परिग्रहोवा अतिपातोहिंसा मृषावादं बहिद्धं मैथुनं। उक्तामूलगुणाः। उत्तरगुणानाह। क्रोधं मानं मायां लोनं च प्रेम द्वेषं च इत्यादिकं सम्यक् परिज्ञाय परिहरेदिति। एवं यतो यतः कर्मोपादानादपायं पश्यति प्रद्वेषहेतूंश्च ततस्ततोहिंसादिकादानात्पूर्वमेव प्रतिविरतो नवेत् विरतिं कुर्यादित्यर्थः। एवंनूतोदांतः शुद्धोऽव्यनूतोव्युत्सृष्टकायः श्रमणोवाच्यः॥२॥

॥ टीका-सांप्रतं श्रमणशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तमुद्भावयन्नाह। अत्राप्यनंतरोक्ते विरत्या दिके गुणसमूहे वर्तमानः श्रमणोपि वाच्यः। एतद्गुणयुक्तेनापि नाव्यमित्याह। निश्चये नाधिक्येन चाश्रितोनिश्रितः ननिश्रितोऽनिश्रितः क्वचिच्छरीरादावप्यप्रतिबद्धस्तथा न वि द्यते निदानमस्येत्यनिदानोनिराकांक्षोऽशेषकर्मक्षयार्थी संयमानुष्ठाने प्रवर्तेत तथा दीय ते स्वीक्रियते ऽष्टप्रकारं कर्म येन तदादानं कषायः परिग्रहः सावद्यानुष्ठानं वा तथाऽ तिपातनमतिपातः प्राणातिपातइत्यर्थः। तं च प्राणातिपातं ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वा प्रत्याख्या नपरिज्ञया परिहरेदेवमन्यत्रापि क्रिया योजनीया। तथा मृषावादोऽलीकवादस्तं च तथा बहिद्धंति मैथुनपरिग्रहौ तौच सम्यक् परिज्ञाय परिहरेत्। उक्तामूलगुणाः।. उत्तरगुणान

धिकृत्याह् । क्रोधमप्रीतिलक्षणं मानं स्तंनात्मकं मायां च परवंचनात्मकां लोनं मूर्डास्व नावं तथा प्रेमाभिष्वंगलक्षणं तथा द्वेषं स्वपरात्मनोबाधारूपमित्यादिकं संसारावतरणमार्गं मोक्षाध्वनोपध्वंसकं सम्यक् परिज्ञाय परिहरेदिति। एवमन्यस्मादपि यतोयतः कर्मोपादनादिहामुत्र चानर्थहेतोरात्मनोपायं पश्यति प्रद्वेषहेतूंश्च ततस्ततःप्राणातिपातादिकादनर्थदंडदानात् पूर्वमेवानागतमेवात्महितमिब्रन् प्रतिविरतोनवेत् सर्वस्मादनर्थहेतुनूताडनयलोकविरुद्धाद्वा सावद्यानुष्ठानान्मुमुक्षुर्विरतिं कुर्यात् । यश्चैवंनूतोदांतः शुद्धोऽव्युत्सृतोनिष्प्रतिकर्मतया व्युत्सृष्टकायः सश्रमणोवाच्यः ॥ ३ ॥

एबवि निक्खू अणुन्नए, विणीए, नामए दंते दविए, वोसठ्ठकाए, संविधुणीय विरूवरूवे, परीसहोवसग्गे, अन्नप्पजोगसुद्धादाणे, उवठिए, ठिअप्पा, संखाए परदत्तन्नोई निक्खूत्ति वच्चे ॥४॥

अर्थ—हवे निक्षु शब्दनो विशेष कहेछे (एबवि निक्खू के०) अंहीयां निक्षुने विषे पण जे पूर्वे ब्राह्मण श्रमणना गुण कह्या ते सर्वे जाणवा अने वली अनेरा विशेष कहेछे (अणुन्नए के०) अनिमान रहित (विणीए के०) विनीत एटले विनयवंत (नामए के०) संयमने विषे आत्मानो नमाडनार (दंतेदविएवोसठ्ठकाए के०) ए त्रण शब्दना अर्थ पूर्ववत् जाणवा (संविधुणीय के०) सम्यक् प्रकारे सहन करे शुं सहन करे ते कहेछे (विरूवरूवे के०) विरूपरूप एटले अनुकूल प्रतिकूल एवा नाना प्रकारना (परीसहोवसग्गे के०) उपसर्ग परीसहने सहन करे तथा (अन्नप्पजोगसुद्धादाणे के०) अध्यात्मयोगे करी निर्मल चित्तने परिणामे शुद्ध चारित्रवंत थको (उवठिए के०) उपस्थित एटले चारित्रने विषे उठ्यो सावधान थयो (ठिअप्पाके०) परीसह उपसर्गे करी अंगजीतछे जेहनो आत्मा (संखाए के०) संसारनी असारता बोधिनुं डुर्लनं पणु जाणतो (परदत्तन्नोई के०) पारका दीधेला आहारनुं नमनार एटले निर्दोष अहारी (निक्खूत्तिवच्चे के०) एवाने निक्षु कहेवो ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—अत्रापि पूर्वोक्तमाहनशब्दप्रवृत्तिहेतवोत्रापि निक्षुशब्दप्रवृत्तिहेतवस्तएव ज्ञेयाः । अमी चान्ये अनुन्नतोमदरहितोनावनीतोनदीनः दांतोविनयेन नामकोगुर्वादौ प्रह्वोऽव्यनूतव्युत्सृष्टकायः सम्यक् विधूयापनीय विरूपान् नानाविधान् परीषहोपसर्गान् । परीषहा द्वाविंशतिः उपसर्गादेवादिकृतास्तद्विधूननं सम्यक् सहनं अध्यात्मयोगेन शुभचेतसा शुद्धं आदानं चारित्रं यस्य सतथा सम्यगुछितः संयमोद्यतः स्थितोमोक्ष

मार्गे आत्मा यस्य सस्थितात्मा संख्याय ज्ञात्वा संसारासारतां परदत्तभोजी एवंगुण युतोभिक्षुर्वाच्यः ॥ ४ ॥

॥ टीका–सांप्रतं भिक्षुशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तमधिकृत्याह । अत्रापीति । ये ते पूर्वमुक्ताः पापकर्मविरत्यादयोमाहनशब्दप्रवृत्तिहेतवोऽत्रापि भिक्षुशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्ते तएवावगंतव्याः । अमी चान्ये । तद्यथा । न उन्नतोऽनुन्नतः शरीरेणोच्छ्रितः भावोन्नतस्त्वभिमानग्रहग्रस्तस्तत्प्रतिषेधात्तपोनिर्जरांमदमपि न विधत्ते । विनीतात्मतया प्रश्रयवान् यतएतदेवाह । विनयालंकृतोगुर्वादावादेशदानोद्यतोऽन्यदा वात्मानं नामयतीति नामकः सदा गुर्वादौ प्रह्वोभवति । विनयेन चाष्टप्रकारं कर्म नामयति वैयावृत्त्योद्यतोऽशेषमप्यपनयतीत्यर्थः । तथा दांतइंद्रियनोइंद्रियाभ्यां तथा शुद्धात्मा शुद्धद्रव्यभूतोनिष्प्रतिकर्मतया व्युत्सृष्टकायश्च परित्यक्तदेहश्च । यत्करोति तद्दर्शयति । सम्यक् विधूयापनीय विरूपरूपान् नानारूपाननुकूलप्रतिकूलानुच्चावचान् द्वाविंशतिपरीषहान् तथा दिव्यादिकानुपसर्गांश्चेति । तद्विधूननं तु यत्तेषां सम्यक् सहनं तैरपराजितता परीषहोपसर्गांश्च विधूयाध्यात्मयोगेन सुप्रणिहितांतःकरणतया धर्मध्यानेन शुद्धमवदातमादानं चरित्रं यस्य सशुद्धादानोभवति । तथा सम्यग्ज्ञानेन सच्चारित्रोद्यमेनोत्थितस्तथा स्थितोमोक्षाध्वनि व्यवस्थितः परीषहोपसर्गैरप्यधृष्यआत्मा यस्य सस्थितात्मा तथा संख्याय परिज्ञायाऽसारतां संसारांतस्य दुष्प्रापतां कर्मभूमेर्बोधेः सुदुर्लभत्वं चावाप्य च सकलां संसारोत्तरणसामग्रीं सत्संयमकरणोद्यतः परैर्गृहस्थैरात्मार्थं निर्वर्तितमाहारजातं तैर्दत्तं भोक्तुं शीलमस्य परदत्तभोजी सएवं गुणकलितोभिक्षुरिति वाच्यः ॥ ४ ॥

एत्थवि णिग्गंथे, एगे, एगविऊ बुद्धे, संछिन्नसोए सुसंजते सुसमिते, सुसामाइए, आयवायपत्ते, विऊ डुहओवि सोयपलिछिन्ने, णोपूयणसक्कारलाभट्ठी, धम्मट्ठी धम्मविऊ णियोगपडिवन्ने, समियंचरे, दंते दविए, वोसठ्ठकाए निग्गंथेत्ति वच्चे, ॥ ५ ॥

अर्थ–(एत्थविणिग्गंथेके०) हवे निग्रंथनो विशेष कहेछे. अहींयां पण पूर्वला गुण सर्व लेवा वलीजे विशेष गुणछे ते कहेछे (एगेके०) एकलो राग द्वेष रहित तथा (एगविऊबुद्धेके०) पोताने एकलोज जाणे एटले संसारमां महारो कोइ संबंधी नथी एवो बुद्ध एटले तत्वनो जाण (संछिन्नसोएके०) सम्यक् प्रकारें जेणे आश्रवने छेद्योछे तथा (सुसंजतेके०) सुसंयत एटले काछवानी पेरें गुप्तेंद्रिय (सुसमितेके०) रुडी समितिए करी समितो (सुसामाइएके०) सुसामायिकवंत एटले जेने शत्रु मित्र समानछे

(आयवायपत्तेके०) आत्म वादे पहोतो एटले आत्माने वादे उपयोग लक्षण जीव असंख्य प्रदेशी जीव संकोच विकाशनो भजनार इव्यं पर्यायरूप नित्यानित्य भेद भिन्न पोताना करेला कर्मनुं भोगवनार इत्यादिक आत्मवादे पहोतो एटले आत्म तत्वनो जाण (विऊके०) तथा विद्वान् पंमित शुद्धमार्गनो जाण (डुहउविसोयप लिछिन्नेके०) तथा इव्य अने भावना भेदे करी बन्ने प्रकारना आश्रव रूपिया स्रोत जेणे परिछेद्याछे तथा (णोपूयणसक्कारलाभछीके०) पूजा सत्कारना लाभनो अर्थी न थाय किंतु निर्जरानो अर्थी थाय (धम्मछीकें०) धर्मनो अर्थी (धम्मविऊके०) धर्मनो जाण शुद्धमार्गनो गवेषण हार (णियोगपडिवन्नेके०) नियोगप्रतिपन्न एटले मोक्षमार्गे पहोतो एवो छतो (समियंचरेके०) समता आचरे एवो थको (दंतेदविएवोसछकाएके०) दांत इविक वोसछकाए तेने (निग्गंथेत्तिवच्चेके०) निग्रंथ कहेवो ॥ ५ ॥

॥ दीपिका—अत्रापि गुणगणे वर्तमानोनिग्रंथोवाच्यः । अमी चान्ये गुणाः । एकोरागद्वेषरहितः । एकमेव परलोकगामितयात्मानं वेत्तीत्येकवित् बुद्धस्तत्त्वज्ञः सम्यक् छिन्नानि भावस्रोतांसि आश्रवद्वाराणि येन ससंछिन्नस्रोताः सुसंयतः सुसमितः समितिभिः सुष्ठु सामायिकं समभावोयस्य स तथा आत्मवादप्राप्तः सम्यगात्मस्वरूपवेदी विद्वान् ज्ञातसर्वपदार्थः द्विधा इव्यतोभावतश्च स्रोतांसि परिछिन्नानि येन सतथा इव्यस्रोतांसि विषयेंडियप्रवृत्तयः । भावस्रोतांसि तु शब्दादिषु शुभाशुभेषु रागद्वेषोत्पत्तिः । तानि येन त्यक्तानि तथा नोपूजासत्कारार्थी तथा धर्मार्थी धर्मवित् नियोगोमोक्षस्तं प्रतिपन्नः समतां चरेत् कुर्यात् दांतोइव्यभूतोव्युत्सृष्टकायः । एवंभूतः पूर्वोक्तमाहनादिगुणयुतश्च निग्रंथोवाच्यः ॥ ५ ॥

॥ टीका—तथाऽत्रापि गुणगणे वर्तमानोनिग्रंथइति वाच्यः । अमी चान्ये अपदिश्यंते । तद्यथा । एकोरागद्वेषरहिततया उजाः । यदिवाऽस्मिन् संसारचक्रवाले पर्यटन्नसुमान् स्वकृतसुखडःखफलभाक्त्वेनैकस्यैव परलोकगमनतया सदैककएव भवति । तत्रोद्यतविहारी इव्यतोप्येककोभावतोपि गछांतर्गतस्तु कारणिकोइव्यतोभाज्योभावतस्त्वेककएव । तथैकमेवात्मानं परलोकगामिनं वेत्तीत्येकवित् न मे कश्चिद्दुःखपरित्राणकारी सहायोस्तीत्येवमेकवित् । यदिवैकांतेन विदितसंसारस्वभावतया मौनींइमेव शासनं तथ्यं नान्यदित्येवं वेत्तीत्येकांतवित् अथवैकोमोक्षः संयमोवा तं वेत्तीति । तथा च बुद्धोऽवगततत्त्वः सम्यक् छिन्नान्यपनीतानि भावस्रोतांसि संवृतत्वात्कर्माश्रवद्वाराणि येन सतथा सुष्ठु संयतः कूर्मवत्संयतगात्रोनिरर्थककायक्रियारहितः सुसंयतस्तथा सुष्ठु पंचभिः समितिभिः सम्यगितः प्राप्तोज्ञानादिकं मोक्षमार्गमसौ सुसमितस्तथा सुष्ठु समभावतया सामा

यिकं समशत्रुमित्रनावोयस्य ससुसामायिकः । तथात्मनउपयोगलक्षणस्य जीवस्यासंख्ये यप्रदेशात्मकस्य संकोचविकाशनाजः स्वकृतफलनुजः प्रत्येकसाधारणतया व्यवस्थितस्य इव्यपर्यायतया नित्यानित्याद्यनंतधर्मात्मकस्य वा वादआत्मवादस्तं प्राप्तआत्मवादप्राप्तः सम्यग्यथावस्थितात्मस्वतत्त्ववेदीत्यर्थः । तथा विद्वानवगतसर्वपदार्थस्वनावोन व्यत्ययेन पदार्थानवगबति । यतोयत् कैश्चिदनिधीयते तद्यथैकएवात्मा सर्वस्वनावतया विश्वव्यापी श्यामाकतंडुलमात्रोंऽगुष्ठपर्वपरिमाणोवेत्यादिकोसद्भूताभ्युपगमः परिहृतोनवति । तथाविधात्मसद्भावप्रतिपादकस्य प्रमाणस्यानावादित्यनिप्रायः । तथा द्विधापीति इव्यतोनावतश्च । तत्र इव्यस्रोतांसि यथा स्वविषयेष्विंडियप्रवृत्तयः। नावस्रोतांसि तु शब्दादिष्वेवानुकूलप्रतिकूलेषु रागद्वेषोद्भवस्तान्युनयरूपाण्यपि स्रोतांसि संवृतेंडियतया रागद्वेषानावाच्च परिछिन्नानि स्रोतांसि येन परिछिन्नस्रोतास्तथानपूजासत्कारलानार्थी किंतु निर्जरापेक्षी सर्वास्तपश्चरणादिकाः क्रियाविदधति । एतदेव दर्शयति । धर्मः श्रुतचारित्राख्यस्तेनार्थः सएवार्थोधर्मार्थः सविद्यते यस्यासौ धर्मार्थीति । किमिति । इदमुक्तं नवति । नपूजाद्यर्थं क्रियासु प्रवर्तते अपितु धर्मार्थीति । किमिति । यतो धर्मं यथावत्तत्फलानि च स्वर्गावाप्तिलक्षणानि सम्यक् वेत्ति धर्मं च सम्यक् ज्ञानतः । यत्करोति तद्दर्शयति । नियोगो मोक्षमार्गः सत्संयमोवा तं सर्वात्मना नावतः (प्रतिपन्ननियोगपडिवन्नोत्ति) तथाविधश्च यत्कुर्यात् तदाह । (समियंति) समतां समनावरूपां वा शीतचंदनकल्पां चरेत् सततमनुतिष्ठेत् । किंनूतः सन्नाह । दांतोइव्यनूतोव्युत्सृष्टकायश्चैतद्गुणसमन्वितः सन् यत्पूर्वोक्तमाहनश्रमणनिक्षुशब्दानां प्रवृत्तिनिमित्तं तत्समन्वितश्च निर्ग्रंथइति वाच्यः । तेपि माहनादयः शब्दानिर्ग्रंथशब्दप्रवृत्तिनिमित्ताविनानाविनोनवंति । सर्वेप्येते निन्नव्यंजनाअपि कथंचिदेकार्थाइति ॥ ५ ॥

से एवमेव जमह जाणहं नयंतारो त्तिबेमि ॥ ६ ॥ इतिखोडसमं गाहानामज्झयणं सम्मतं ॥ पढमो सुअरकंधो सम्मत्तो ॥ १ ॥

अर्थ—हवे श्रीसुधर्म स्वामी जंबू प्रनृति साधु प्रत्ये कहेडे के (सेएवमेवजाणहंजमह के०) तमे एम जाणोके जे में कह्यो ते निश्चे करी सत्य डे एम जाणो कारणके हुं सर्वज्ञनी आज्ञायें कहुंबुं. ते सर्वज्ञ नगवंत तीर्थंकर देव परोपकारी केवाडे तोके (नयंतारो के०) महानय थकी राखनारडे माटे तेमना कहेला वचन हुं तमने कहुंबुं. त्तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो. एरीते श्रीसुधर्म स्वामियें जंबूस्वामि प्रत्यें कह्यो. ए गाहाना मे सोलमां अध्ययननो अर्थ समाप्त थयो. इति श्रीसुयगडांग सूत्रना प्रथम श्रुतस्कंधनो बालावबोध लेश्यार्थ समाप्तः ॥

॥ दीपिका—एते चत्वारोभिन्नाअपि कथंचिदेकार्थाइति। सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमाह। सेतत् यन्मयोक्तं एवमेव जानीत यूयं यस्मादहं सर्वज्ञाज्ञया वच्मि। नच भतोगवंभयात्रातारोवा सर्वज्ञाअन्यथा वदंति अतोमडुक्तमेवमेवावगछतेति। इति समाप्तौ। ब्रवीमीति पूर्ववत्. ॥ ६ ॥ ॥ इति श्रीतपागछाधिराजश्रीहेमविमलसूरीश्वरशिष्यहर्षकुलपंडितप्रणीतायां सूत्रकृतांगदीपिकायां गाथाषोडशाख्यं षोडशमध्ययनं समाप्तं ॥

॥ टीका—सांप्रतमुपसंहारार्थमाह। (सेएवमेवजाणहइत्यादि) सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिप्रभृतीनुद्दिश्येदमाह। सेइति। तद्यन्मया कथितमेव जानीत यूयं। नान्योमद्वचसि विकल्पोविधेयः। यस्मादहं सर्वज्ञाज्ञया ब्रवीमि। नच सर्वज्ञाभगवंतः परहितैकरता भयात्रातारोरागद्वेषमोहान्यतरकारणाभावादन्यथा ब्रुवते। अतोयन्मयाऽऽदितः प्रभृति कथितं तदेवमेवावगछेदिति। इति परिसमाप्त्यर्थे। ब्रवीमीति पूर्ववत्। उक्तोनुगमः सांप्रतं नयास्ते च नैगमादयः सप्त। नैगमस्य सामान्यविशेषात्मतया संग्रहव्यवहारप्रवेशात्संग्रहादयः षट्। समभिरूढैवंभूतयोः शब्दनयप्रवेशान्नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दाः पंच। नैगमनस्याप्यंतर्भावाच्चत्वारोव्यवहारस्यापि। सामान्यरूपविशेषतया सामान्यविशेषात्मनोः संग्रहर्जुसूत्रयोरंतर्भावात्संग्रहर्जुसूत्रशब्दास्त्रयस्तेपि च द्रव्यास्तिकपर्यायास्तिकांतर्भावाद्द्रव्यास्तिकपर्यायास्तिकाभिधानौ द्वौ नयौ। यदि वा सर्वेषामेव ज्ञानक्रिययोरंतर्भावात् ज्ञानक्रियाभिधानौ द्वौ तत्रापि ज्ञाननयोज्ञानमेव प्रधानमाह क्रियानयश्च क्रियामिति। नयानांच प्रत्येकं मिथ्यादृष्टित्वाज्ज्ञानक्रियाश्च परस्परापेक्षतया मोक्षांगत्वादुभयमात्रप्रधानं। तच्चोभयं सत्क्रियोपेते साधौ भवतीति। तथाचोक्तं। णायम्मिगिण्हियवे, अगिण्हियवंमि चेव अबंमि॥ जइ यवमेव इति जो उवएसो सो नउ नाम॥ १॥ सवेसिंपि णयाणं, बहुविहवत्तवयं णिसामेत्ता॥ तं सवनयविसुद्धं जं चरणगुणठीउ साहुत्ति॥ ६॥ समाप्तं षोडशाख्यं षोडशमध्ययनं तत्समाप्तौ च समाप्तः प्रथमः श्रुतस्कंधइति॥

॥ इति श्रीद्वितीये सूत्रकृतांगे, गुर्जरभाषासहितः
श्रीहर्षकुलकृतदीपिकायुक्तः शीलंगाचार्यकृतटी
कासंयुतश्च, प्रथमः श्रुतस्कंधः समाप्तः॥

ॐ नमो श्री वीतरागाय.

अथश्री द्वितीय सूत्रकृतांगे द्वितीय श्रुतस्कंधस्य बालावबोध दीपिकासहितस्य टीकायुतस्य प्रारंभः



मूल गद्य--सुयं मे आउसंतेणं नगवया एवं मरकाय इह खलु पोंमरीए णामज्झयणे तस्सणं अयमट्ठे पन्नत्ते ॥१॥से जहा णामए पुरकरिणी सिया बहुउदगा बहुसेया बहुपुरकला लद्धद्या पुंमरिकिणी पासादिया दरिसणिया अभिरूवा पडिरूवा ॥२॥ तीसेणं पुरकरिणीए तत्र तत्र देसे देसे तहिं तहिं बहवे पउमवरपोंमरीया बुइया अणुपुव्वुट्ठिया ऊसिया रुइला वन्नमंता गंधमंता रसमंता फासमंता पासादिया दरिसणिया अभिरूवा पडिरूवा॥३॥तीसेणं पुरकरिणीए बहुमज्झदेसन्नाए एगेमहं पउमवरपोंमरीए बुइए अणुपुव्वुट्ठिए उस्सिते रुइले वन्नमंते गंधमंते रसमंते फासमंते पासादीए जावपडिरूवे ॥ ४ ॥ सव्वावंतिचणं तीसेणं पुरकरिणीए तत्र तत्र देसे देसे तहिं तहिं बहवे पउमवरपोंमरीया बुइया अणुपुव्वुट्ठिया ऊसिया रुइला जावपडिरूवा सव्वावंतिचणं तीसेणं पुरकरिणीए बहुमज्झदेसन्नाए एगं महं पउमवरपोंमरीए बुइए अणुपुव्वुट्ठिए जावपडिरूवे॥५॥अह पुरिसे पुरिच्छिमाउ दिसाउ आगम्म तं पुरकरिणी तीसे पुरकरिणीए तीरे ठिच्चा पासंति तं महं एगं पउमवरपोंमरीयं अणुपुव्वुट्ठियं ऊसियं जावपडिरूवं तएणं से पुरिसे एवं वयासि अहमंसी पुरिसे खेयन्ने कुसले पंमिते वियत्ते मेहावी अबाले मग्गत्ने मग्गविऊ मग्गस्सगतिपराकमण्णू अहमेयं पउमवरपोंमरीयं उन्निरिकस्सामित्ति कट्टु इतिवच्चा से पुरिसे अभिक्कमेति तं पुरकरिणी जावंजावंचणं अभिक्कमेइ तावंतावंचणं महंते उदए महंते सेए पहीणे तीरं अपत्ते पउमपरपोंमरीयं णोहच्चाए णोपाराए अंतरा पोरकरिणीए सेयंसि निसन्ने पढमे पुरिसजाए ॥ ६ ॥

अर्थ--हवे श्री सुधर्म स्वामि जंबू स्वामि प्रत्ये कहेछे (सुयंमेआउसंतेणं के०)

सांनल्युं ले में आयुष्यवंत एवा (जगवया के०) जगवंते (एवमरकाय के०) एम कह्युं ले (इह के०) ए वचन थकी सुयगडांगने बीजे श्रुतस्कंधे (खलु) ए शब्द वाक्यालंकारने अर्थे (पोंमरीएणामअयणे के०) पुंमरीक नामे अध्ययन ते पुंमरीक कमलनी उपमायें थशे (तस्सणं के०) ते कारणे एवो नाम कह्यो तेनुं (अयमठेपस्नुते के०) एजे आगल कहेशे ते अर्थ जाणवो ॥ १ ॥ (सेज हाणामए के०) ते जेमले तेम कहेवो. नाम इति संजावनाने अर्थेले. जेम कोइ एक (पुरकरिणीसिया के०) पुष्करणी एटले कमल सहित वावडीले ते केवीले तोके (ब हुउदगाके०) घणो अगाध जेमां पाणीले (बहुसेयाके०) घणो जेमां कर्दमले (बहुपुरक लालका के०) घणो पुष्करणी पणो संपूर्णले अर्थात् पुष्करणीनो अर्थ जेणे लाधोले एटले जेवो नाम तेवा परिणामे एवी (पुंमरिकिणी के०) पुंमरिकिणी एटले श्वेत क मल सहित वावडीले (पासादिया के०) निर्मल जले करीने प्रसन्न चित्त कारणीले (दरिसणिया के०) घणा लोकने देखवा योग्यले (अनिरूवा के०) जेने विषे सर्व काल हंस चक्रवाक गजमहिषादि रूपले ते कारणे अनिरूपले (पडिरूवा के०) स्वज्ञ नाव थकी सर्व रूप प्रत्यें वंचेले ते माटे प्रतिरूपले ॥ २ ॥ (तीसेणंपुरकरिणीए के०) ते पुष्करणीने विषे (तबतबदेसेदेसे के०) त्यां त्यां ते ते प्रदेशे (तहिंतहिंब हवेपउमरपोंमरीयाबुइया के०) त्यां त्यां घणा प्रधान पुंमरीक नामे पद्म एटले कमल जगवंत श्रीमहावीर देवे कह्याले (अणुपुवुठिया के०) ते कमल आनुपूर्वियें उग्या (क सियाके०) पाणी थकी उपर वर्त्तेले (रुइलाके०) दीपता (वन्नमंताके०) प्रधान वर्ण वाला कमलले (गंधमंता के०) सुगंधवाला (रसमंता के०) रसवाला (फासमं ता के०) सुकोमल स्पर्श सहित ले (पासादिया के०) प्रासादनीक प्रसन्नचित्तकार णीक (दरिसणिया के०) लोकने देखवा योग्य (अनिरूवा के०) अनिरूप (पडि रूवा के०) प्रतिरूप ॥ ३ ॥ (तीसेणंपुरकरिणीए के०) ते पुष्करणीने विषे (बहुमज्ञ देसनाए के०) घणा मध्य प्रदेशना जागने विचाले (एगेमहंपउमवरपोंमरीएबुइए के०) एक महोटुं प्रधान पोंमरीक नामा कमल बोल्युंले (अणुपुवुठिए के०) ते आनुपूर्वियें चडती चडती पांखडीयें करी उग्योले उस्सिते रुइले वन्नमंते गंधमंते रसमंते फासमं ते पासादीए जाव पडिरूवे एम यावत् प्रतिरूप सुधीना अर्थ पूर्ववत् जाणवा ॥ ४ ॥ (सबावंतिचणं के०) इत्यादिक सर्व समग्र जाव णं एवे वाक्यालंकारे जाणवा (तीसे णंपुरकरिणीए के०) ते पुष्करणीने विषे (तबतबदेसेदेसे के०) त्यां त्यां प्रदेशे एटले एवा समग्रजागोने विषे (तहिंतहिंबहवेपउमवरपोंमरीयाबुइयाके०) त्यां त्यां पूर्वोक्त गुण सहित एवा घणा पुंमरीक कमल बोल्याले ते सर्व अणुपुवुठिया ऊसिया रुइला जावपडि

रूवा सव्वावंतिचणं इत्यादिक उपमायें जाणवा (तीसेणंपुस्करिणीएबहुमझदेसभाएके०) ते पुष्करणीना बहु मध्यदेश भागने विषे (एगंमहं के०) एक महोटुं (पउमवरपोंमरि एबुइए के०) प्रधान पौंमरिक कमल बोल्योछे अणुपुव्वुठिए जावपडिरूवे सुधी अर्थ पूर्वे लखाइ गयुंछे ॥५॥ (अहपुरिसेके०) अथ हवे एक पुरुष (पुरिछिमाउदिसाउके०) पूर्वदिशा थकी (आगम्मके०) आवीने (तंके०) ते (पुस्करिणींके०) पुष्करणी (तीसे पुस्करिणीएके०) तेपुष्करणीना (तीरेठिच्चाके०) तीरने विषे उभो रहीने (तंमहंएगंपउमवर पोंमरीयंके०) ते महोटुं एक पौंमरीक कमल पूर्वोक्त गुण सहित तेने (पासंतिके०)देखे ते क मलकेवो तोके अणुपुव्वुठियं उस्सियं जावपडिरूवं इत्यादिकना अर्थ पूर्वे लखाइ गयाछे एवी शोभा सहित ते पौंमरीक कमलने देखीने (तत्तेणं के०) तेवारें (सेपुरिसे के०) ते पुरुष (एवंवयासि के०) एम बोल्यो शुं बोल्यो ते कहेछे (अहमंसीपुरिसे के०) हुं पुरुषछुं परंतु केवोछुं तोके (खेयन्ने के०) परपीडानो जाण तथा अवसरनो जाण छुं (कुसलेपंमिते के०) डाह्यो पंमितछुं (वियत्ते के०) विवेक युक्त (मेहावी के०) परिणत बुद्धिवालो छुं (अबाले के०) बाल पणा रहित (मग्गंछे के०) मार्गस्थ ए टले मार्गने विषे स्थित रह्यो (मग्गविऊ के०) रुडा मार्गनो जाण (मग्गस्सगति के०) मार्गनी गतिना (पराक्कमन्नू के०) पराक्रम तेनो जाणछुं (अहमेयंके०) तेज णी हुं ए (पउमवरपोंमरीयंके०) प्रधान पौंमरीक कमलने ए पुष्करणी थकी (उन्नि क्खिस्सामित्ति के०) उध्दरीश (कट्टु के०) एम करीने (इतिवच्चा के०) ए पूर्वो क्त वचन बोलतो जेटले (सेपुरिसे के०) ते पुरुष (अभिक्कमेति के०) पुष्करणी मांहे प्रवेश करेछे (तंपुस्करिणीके०) ते पुष्करिणी मांहे (जावंजावंचणंअभिक्कमेइके०) जेम जेम जायछे अतिक्रमेछे (तावंतावंचणंके०)तेम तेम ते पुरुष पुष्करणी मांहे (महंते उदए के०) महोटा अगाध पाणीने विषे (महंतेसेए के०) घणा कादवने विषे (प हीणेतीरं के०) एक कांठो मूकी बीजे कांठे (अपत्तेके०) अण पहोतों एटले न पहो तो अने (पउमवरपोंमरीयंके०) पौंमरीक कमले पण पहोतो नही तेने उध्दरी पण शक्यो नही (णोहव्वाए के०) कांठे रह्यो नही (णोपाराएके०) पार पण पाम्यो नही कमलपण लइ नशक्यो (अंतरापोस्करिणीए के०) विचाले पुष्करणी मांहेज (सेयंसि के०) का दवने विषे (निसन्ने के०) खुंची रह्यो एटले बेहु तीर थकी भ्रष्ट थयो अने कम लने पण उध्दरी न शक्यो अने पोते पण कादवमां खुंची रह्यो नीकली शक्यो नही (पढमेपुरिसजाए के०) एटले प्रथम पुरुष जात जाणवो ॥ ६ ॥

॥ दीपिका–श्रीसूत्रकृतांगस्य प्रथमः श्रुतस्कंधउक्तः ॥ अथ द्वितीयः प्रारभ्यते । त

स्य सप्ताध्ययनानि । तेषु प्रथमं पुंडरीकाध्ययनं तस्येदमादिसूत्रं । (सुअंमेऽति) श्रुतं मया आयुष्मता नगवता एवमाख्यातं । इह प्रवचने । खलुशब्दोवाक्यालंकारे । पौंड रीकाख्यमध्ययनं पुंडरीकेण श्वेतपद्मेन उपमा यत्र तत्पौंडरीकं । तस्यायमर्थः प्रज्ञप्तः । एं वाक्यालंकारे ॥ १ ॥ तद्यथा । नामशब्दः संनावनायां । संनाव्यते पुष्करिणीदृष्टांतः पुष्कराणि पद्मानि यस्यां सा पुष्करिणी वापी स्यात् । किंनूता । बहूदका बहूदकप्रचुरा । सीयंते यस्मिन्नसौ सेयः कर्दमः सयस्यां बहुसेया बहुपुष्कला बहुसंपूर्णा लब्धोनामानु गतोर्थोयया सा लब्धार्था पुंडरीकिणी श्वेतपद्मप्रचुरा प्रासादिका निर्मला दर्शनीया शो नना । अनितः सर्वतोरूपाणि हंसचक्रादीनि यस्यां सा तथा प्रतिरूपा प्रतिबिंबवती नि र्मलत्वात्तस्यां सर्वत्र प्रतिबिंबानि वीक्ष्यंते ॥ २ ॥ तस्यां पुष्करिण्यां । तत्रतत्रेति पुंडरी कैर्व्याप्तिमाह । देशेदेशे इत्यनेन तु एकैकप्रदेशे प्राचुर्यमाह । तस्मिंस्तस्मिन्नित्यनेन तु नास्त्येवासौ प्रदेशोयत्र तानि न संतीति । अथवा अत्यादरज्ञापनाय एकार्थान्येवैता नि त्रीणि पदानि । तेषु पुष्करिण्याः सर्वप्रदेशेषु बहूनि पद्मान्येव वराणि पौंडरीकाणि श्वेतशतपत्राण्युक्तानि आनुपूर्व्येण विशिष्टरचनया स्थितानि उच्छ्रितानि पंकजले अति लंघ्य उपरि व्यवस्थितानि रुचिं कांतिं लांतीति रुचिलानि दीप्तिमंति शोननवर्णगंधरस स्पर्शवंति प्रासादीयानि दर्शनीयानि अनिरूपाणि प्रतिरूपाणि ॥ ३ ॥ तस्यां पुष्करि ण्यां । एं वाक्यालंकारे । मध्यदेशे एकं पद्मवरमेव पुंडरीकमुक्तं शेषव्याख्या पूर्ववत् ॥४॥ (सव्वावंतित्ति) सर्वस्याअपि तस्याः पुष्करिण्याः सर्वप्रदेशेषु बहूनि पद्मानि तथा सर्व स्याश्च तस्याबहुमध्यदेशे पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टं महदेकं पौंडरीकं विद्यतइति ॥ ५ ॥ अ थ पूर्वस्यादिशः कश्चिदेकः पुरुषः समागम्य तां पुष्करिणीं तस्याश्च तीरे तटे स्थित्वा त तत्पद्मं प्रासादीयादिविशेषणं सपुरुषएवं वक्ष्यमाणं वदेत् । (अहमंसित्ति) अहमस्मि पुरुषः कुशलः पंडितः क्षेत्रज्ञोव्यक्तोबाल्यादतिक्रांतोमेधावी अबालोमध्यमवयामार्गे स्थः सद्भिराचीर्णमार्गस्थोमार्गवित् मार्गस्य या गतिर्गमनं तया पराक्रमं विवक्षितदेश गमनं तज्जानातीति मार्गस्य गतिपराक्रमज्ञः एवंविधोऽहमेतत्पद्मवरपुंडरीकं पुष्करिणी मध्यस्थं उत्क्षेप्स्यामि उत्खनिष्यामीति कृत्वा इहागतइत्युक्त्वा सपुरुषस्तां पुष्करिणीम निक्रामेत् संमुखं गच्छेत् । यावच्च यावच्च तदवतरणेच्छुः संमुखं गच्छेत्तावत्तावच्च । एं वा क्यालंकारे । तस्याः पुष्करिण्यामहदगाधमुदकं महांश्च सेयः कर्दमः । ततः समहाकर्दमोद काभ्यामाकुलः प्रहीणस्तीरं विनक्तिव्यत्ययात्तीराद्भ्रष्टः । अप्राप्तश्च पद्मवरपुंडरीकं । तस्याः सेयः कर्दमस्तस्मिन्निषण्णोनिमग्नस्तीरपद्मयोरंतरंतरालएव तिष्ठति (नोहव्वाएत्ति) नार्वाक्तटवर्ती (नोपाराएत्ति) नापि पारगमनाय समर्थः । एवमसावुनयभ्रष्टः प्रथमः पुरु षजातः पुरुषजातीयः ॥ ६ ॥

टीका—प्रथमश्रुतस्कंधानंतरं द्वितीयः समारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंधः । इहानं तरश्रुतस्कंधे योर्थः समासतोऽभिहितोऽसावेवानेन श्रुतस्कंधेन सोपपत्तिकोव्यासेनाभि धीयते । तएव विधयः सुसंगृहीताभवंति येषां समासव्यासाभ्यामभिधानमिति । यदि वा पूर्वश्रुतस्कंधोक्तएवार्थोऽनेन दृष्टांतद्वारेण सुखावगमार्थं प्रतिपाद्यतइत्यनेन संबंधे नायातस्यास्य श्रुतस्कंधस्य संबंधीनि सप्त महाध्ययनानि प्रतिपाद्यंते । महांति च ता न्यध्ययनानि च पूर्वश्रुतस्कंधाध्ययनेभ्योमहत्वादेतेषामिति । तत्र महच्छब्दाध्ययनशब्दयो र्निक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह । णामंठवणा दविए खेत्ते काले तहेव भावेय ॥ एसो खलु म ह तंमि निरकेवो बविहो होंति ॥ १ ॥ (णामंठवणेत्यादि) नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रका लभावात्मकोमहति षड्विधोनिक्षेपोभवत्ति । तत्र नामस्थापने सुज्ञाते द्रव्यमहदागमतो नोआगमतश्च । आगमतोज्ञाता तत्र चानुपयुक्तः । नोआगमतस्तु ज्ञशरीरभव्यशरीरव्य तिरिक्तं सचित्तमिश्रभेदात्रिधा । तत्रापि सचित्तद्रव्यमहतऔदारिकं शरीरं तत्रौदारिकं योज नसहस्रपरिमाणं मत्स्यशरीरं वैक्रियं तु योजनशतसहस्रपरिमाणं । तैजसकार्मणे तु लोका काशप्रमाणे । तदेतदौदारिकवैक्रियतैजसकार्मणरूपं चतुर्विधं द्रव्यं सचित्तमहदचित्तमहत् समस्तलोकव्याप्यचित्तमहास्कंधः । मिश्रं तु तदेव मत्स्यादिशरीरं क्षेत्रमहत् लोकाकाशं कालमहत्सर्वाद्धाभावमहदौदयिकादिभावरूपतया षोढा । तत्रौदयिकोभावः सर्वसंसा रिषु विद्यतइति कृत्वा बह्वाश्रयत्वान्महान् भवति । कालतोप्यसौ त्रिविधः । तद्यथा । अनाद्यपर्यवसितोऽभव्यानामनादिसपर्यवसितोभव्यानां सादिसपर्यवसितोनारकादीनामि ति । क्षायिकस्तु केवलज्ञानदर्शनात्मकः साद्यपर्यवसितत्वात्कालतोमहान् क्षायोपशमि कोप्याश्रयबहुत्वादनाद्यपर्यवसितत्वाच्च महानिति । औपशमिकोपि दर्शनचारित्रमोहनी यानुदयतया शुभभावत्वेन च महान् भवति । पारिणामिकस्तु समस्तजीवाजीवाश्रयम हत्वान्महानिति । सान्निपातिकोप्याश्रयबहुत्वादेव महानिति उक्तं । महदध्ययनस्यापि नामादिकं षोढानिक्षेपं दर्शयितुं निर्युक्तिकृदाह । “ णामंठवणा दविए खेत्ते काले तहेव भावेय ॥ एसो खलु अज्ञयणे निरकेवो बविहो होंति ” ॥ २ ॥ (नामंठवणेत्यादि) अध्ययनस्य नामादिकः षोढा निक्षेपः । सचान्यत्र न्यक्षेण प्रतिपादितइति नेह प्रतन्य ते । अत्रच श्रुतस्कंधे सप्त महाध्ययनानि तेषामाद्यमध्ययनं पौंमरीकाख्यं तस्य चोपक्र मादीनि चत्वार्यनुयोगद्वाराणि प्ररूपणीयानि । तत्रोपक्रमआनुपूर्वी,नाम,प्रमाण,वक्त व्यता,अर्थाधिकार, समवतार, भेदात्षोढा । तत्र पूर्वानुपूर्व्यां प्रथममिदं पश्चानुपूर्व्यां स प्तमगच्छगतायाः श्रेण्याअन्योन्याभ्यासोने द्विरूपोने सति पंचाशच्छतान्यष्टात्रिंशदधिकानि भ वंति नाम्नितु षट् । तत्रापि क्षायोपशमिके भावे सर्वस्यापि च श्रुतस्य क्षायोपशमिकत्वा त्प्रमाणचिंतायां जीवगुणप्रमाणे वक्तव्यतायां सामान्येन सर्वेष्वध्ययनेषु स्वसमयवक्तव्य

ता। अर्थाधिकारः पौंडरीकोपमया स्वसमयगुणव्यवस्थापनं । समवतारेतु यत्र यत्र स मवतरति तत्रतत्र लेशतः समवतारितमेवेति । उपक्रमानंतरं निक्षेपः सच नामनिष्पन्ने निक्षेपे पौंडरीकमित्यस्याध्ययनस्य नाम तन्निक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह । " णामंठवणा द विए, खेत्ते कालेय गणणसंगणे ॥ नावेय अठमे खलु, णिस्केवो पुंडरीयस्य " ॥ ३ ॥ (णामंठवणेत्यादि) पौंडरीकस्य नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालगणनासंस्थापनन्नावात्म कोऽष्टधा निक्षेपः । तत्र नामस्थापने क्षुसत्वादनादृत्य द्रव्यपौंमरीकमनिधित्सुराह । " जो जीवो नविर्ड खलु, उववज्जि कामो पुंडरीयस्य ॥ सोदव्वपुंडरीउ, नावंमि विजा णउं नणिउं " ॥४॥ (जोजीवोइत्यादि) यः कश्चित्प्राणधारणलक्षणोजीवोनविष्यतीति नव्यस्तदेव दर्शयति । उत्पत्तितुकामः समुत्पित्सुस्तथाविधकर्मोदयात्पौंडरीकेषु श्वेतपद्मेषु वनस्पतिकायविशेषेष्वनंतरनवे नावी सद्रव्यपौंमरीकः । खलुशब्दोवाक्यालंकारे । नावपौं मरीकं त्वागमतः । पौंडरीकपदार्थज्ञस्तत्र चोपयुक्तइति । एतदेव द्रव्यपौंडरीकं विशेषत रं दर्शयितुमाह । " एगनविएयबद्धा, उएय अनिमुहिय नामगोएय ॥ एते त्तिन्न देसा, दव्वंमिय पोंमरीयस्स " ॥ ५ ॥ एकेन नवेन गतेनानंतरनवएव पौंडरीकेषूत्पत्स्यते स एकनविकस्तथा तदासन्नतरः पौंडरीकेषु बद्धायुष्कस्ततोप्यासन्नतमोनिमुखनामगोत्रोऽ नंतरसमयेषु यः पौंडरीकेषूत्पद्यते । अनंतरोक्ताएते त्रयोदेशविशेषाद्रव्यपौंमरीकेऽवगंत व्याइति । नूतस्य नाविनोवा नावस्य हि कारणं तु यल्लोके । तद्द्रव्यं तत्त्वज्ञैः सचेतना चेतनं कथितमिति वचनात् । इहच पुंडरीककंडरीकयोर्भ्रात्रोर्महाराजपुत्रयोः सदसदनुष्ठा नपरायणतया शोननत्वमवगम्य तडुपमयाऽन्यदपि यच्छोननं तत्पौंडरीकमितरत्तु कंमकमि ति । तत्र च नरकवर्जासु तिसृष्वपि गतिषु ये शोननाः पदार्थास्ते पौंमरीकाः शेषास्तु कांमरीकाइत्येतत्प्रतिपादयन्नाह । " तेरिछिया मणुस्सा, देवगणा चेव होंति जेय व रा ॥ ते होंति पुंमरीया, सेसा पुण कंमरीयाउ " ॥ ६ ॥ (तेरिछियाइत्यादि) कंठ्या तत्र तिर्यक्षु प्रधानस्य पौंमरीकत्वप्रतिपादनार्थमाह । " जलयर थलयर खयरा, जे पवराचेव होंति कंताय । जे वसनावमणुमया, ते होंति पुंमरीयाउ " ॥ ७ ॥ जलचरेषु मत्स्यकरिमकरादयः स्थलचरेषु सिंहादयोबलवर्णरूपादिगुणयुक्ताउरःपरिसर्पे मणिफणि नोजुजपरिसर्पेषु नकुलादयः खचरेषु हंसमयूरादयः इत्येवमन्येपि स्वनावेन प्रकृत्या लो कानुमतास्ते च पौंमरीकाइव प्रधानान्नवंति । मनुष्यगतौ प्रधानाविष्करणायाह । " अ रिहंत चक्कवत्ती चारणविज्जाहरा दसाराय ॥ जे अन्ने इतिमंता, तेहोंति पोंमरीया उ ॥ ८ ॥ सर्वातिशायिनीं पूजामर्हतीत्यर्हंतः । ते निरुपमरूपादिगुणोपेतास्तथा चक्रव र्तिनः षट्खंडनरतेश्वरास्तथाचारश्रमणाबहुविधैश्वर्यनूतलब्धिकलापोपेतामहातपस्विनस्त था विद्याधरावैताढ्यपुराधिपतयस्तथा दाशार्हाहरिवंशकुलोद्भवाः । अस्य चोपलक्षणार्थ

त्वादन्येपीक्ष्वाकादयः परिगृह्यंते । एतदेव दर्शयति । ये चान्ये महर्धिमंतोमहेन्त्यः को टीश्वरास्ते सर्वेपि पौंडरीकाभवंति । तु शब्दस्यानुक्तसमुच्चयार्थत्वात् । येचान्ये विद्याक लापोपेतास्ते पौंडरीकाइति । सांप्रतं देवगतौ प्रधानस्य पौंडरीकत्वं प्रतिपादयन्नाह । भव णवइयाणमंतर, जोतिसवेमाणियाणि देवाणं ॥ जे तेसिं पवरा खलु, ते होंति पुंडरीयाउ ॥ ए ॥ भवनपतिव्यंतरज्योतिष्कवैमानिकानां चतुर्णां देवनिकायानां मध्ये ये प्रवरा प्रधानाइंडसामानिकादयस्ते प्रधानाइति कृत्वा पौंडरीकाभिधानाभवंति । सांप्रतमचित्त डव्याणां यत्प्रधानं तत्पौंमरीकत्वप्रतिपादनायाह । " कंसाणं दूसाणं, मणिमोत्तियसि लप्पवालमादीणं ॥ जे तेसिं पवरा खलु ते होंति पोंमरीयाउ ॥ १० ॥ कांस्यानां म ध्ये जयघंटादीनि दूष्याणां चीनांशुकादीनि मणीनामिंडनीलवैदूर्यपद्मरागादीनि रत्नानि मौक्तिकानां यान्यनेकवर्णसंस्थानप्रमाणाधिकानि । तथा शिलानां मध्ये पांडुकंबला दयः शिलास्तीर्थकृज्जन्माभिषेकसिंहासनाधारभूतास्तथा प्रवालानां यानि वर्णादिगुणोपे तान्यादिग्रहणाज्जात्यचामीकरं तद्विकाराश्चाभरणविशेषाः परिगृह्यंते । तदेवमनंतरोक्ता नि कांस्यादीनि प्रवराणि तानि चित्तपौंमरीकाण्यभिधीयंतइति । मिश्रडव्यपौंमरीकं तु ती र्थकृच्चक्रवर्त्यादयएव प्रधानकटककेयूराद्यलंकारालंकृताइति । डव्यपौंडरीकानंतरं क्षेत्र पौंमरीकाभिधित्सयाह । " जाइं खेत्ताइं खलु, सुहाणुभावाइं होंति लोगंमि ॥ देवकु रुमादियाइं, ताइं खेत्ताइं पवराइं " ॥ ११ ॥ (जाइमित्यादि) यानि कानिचिदिह देव कुर्वादीनि शुभानुभावानि क्षेत्राणि तानि प्रवरणानि पौंडरीकाभिधानानि भवंति । सां प्रतं कालपौंडरीकप्रतिपादनायाह । " जीवा भवठितीए, कायठितीए य होंति जे पवरा॥ ते होंति पौंमरीया, अवसेसा कंडरीयाउ ॥ १२ ॥ (जीवाइत्यादि) जीवाः प्राणिनोभ वस्थित्या च ये प्रवराः प्रधानास्ते पौंडरीकाभवंति शेषास्त्वप्रधानाः कंमरीकाइति । तत्र भवनस्थित्या देवाअनुत्तरोपपातिकाः प्रधानाभवंति । तेषां यावद्भवं शुभानुभावत्वात्का यस्थित्या तु मनुष्याः शुभकर्मसमाचाराः सप्ताष्टभवप्रमाणानि मनुष्येषु पूर्वकोट्यायुष्के ष्वनुपरिवर्त्यानंतरभवे त्रिपल्योपमायुष्केषूत्पादमनुभूय ततोदेवेषूत्पद्यतइति कृत्वा ततस्ते कायस्थित्या पौंमरीकाभवंत्यवशिष्टास्तु कंडरीकाइति । कालपौंडरीकानंतरं गणनासंस्था नपौंडरीकद्वयप्रतिपादनायाह । " गणणाए रज्जू खलु संगाणं चेव होंति चउरंसं । ए याइं पोंमरीगाइं होंति सेसाइं इयराइं " ॥ १३ ॥ (गणणाएइत्यादि) गणनया संख्य या पौंमरीकं चिंत्यमानं दशप्रकारस्य गणितस्य मध्ये रज्जुगणितं प्रधानत्वात्पौंमरीकं । दशप्रकारं तु गणितमिदं । परिकम्मुरज्जुरासी, ववहारे तह कलासवन्ने य ॥ पुग्गलजावं तावे, घणे य घणवग्ग वग्गेय । एषां संस्थानानां मध्ये समचतुरस्रं संस्थानं प्रवर त्वात्पौंमरीकमित्येवमेते द्वे अपि पौंमरीके शेषाणि तु परिकर्मादीनि गणितानि न्यग्रो

धपरिमंम्हलादीनि च संस्थानानि इतराणि कंम्हरीकान्यप्रवराणि नवंतीति यावत् । सांप्रतं नावपौंम्हरीकप्रतिपादनाभिधित्सयाह । "उदएयउं वसमिए खलु, खइए य तहा खउं वसमिएय ॥ परिणामसन्निवाए, जे पवरा ते वि ते चे व ॥ १४ ॥ (उदयेइत्यादि) औदयिके नावे तथौपशमिके क्षायिकक्षायोपशमिके पारिणामिके सान्निपातिकेच नावे चिंत्यमानेषु तेषु वा मध्ये ये प्रवराः प्रधानास्तेप्यौदयिकादयोनावास्तएव पौंडरीकाएवावगंतव्यास्तथौदयिके नावे तीर्थकराअनुत्तरोपपातिकसुरास्तथान्येपि सितशतपत्रादयः पौंम्हरीका औपशमिके समस्तोपशांतमोहाः क्षायिके केवलज्ञानिनः क्षायोपशमिके विपुलमतिश्चतुर्दशपूर्ववित्परमावधयोन्यस्ताः समस्तावा पारिणामिके नावे नव्याः सान्निपातिके नावे द्विकादिसंयोगाः सिद्धादिषु स्वबुध्या पौंडरीकत्वेन योजनीयाः शेषास्तु कांडरीका इति । सांप्रतमन्यथानावपौंडरीकप्रतिपादनायाह । "अहवावि नाणदंसण, चरित्तविणए तहेव अज्झप्पे ॥ जे पवरा होंति मुणी, ते पवरा पुंडरीयाउ ॥१५॥ (अहवेत्यादि) अथवापि नावपौंडरीकमिदं । तद्यथा । सम्यक्ज्ञाने तथा सम्यग्दर्शने सम्यक्चारित्रज्ञानादिके विनये तथाऽध्यात्मनि च धर्मध्यानादिके प्रवराः श्रेष्ठामुनयोनवंति ते पौंम्हरीकत्वेनावगंतव्यास्ततोऽन्ये कंम्हरीकाइति । तदेवं संनविनमष्टधा पौंडरीकस्य निक्षेपं प्रदर्श्याधुनेह येनाधिकारस्तमाविर्नावयन्नाह । "एडं पुण अहिगारो, वणस्सतीकायपुंम्हरीएणं ॥ नावंमि य समणेणं, अज्झयणे पुंम्हरीए य" ॥१६॥ (एडंपुणेत्यादि) अत्र पुनर्दृष्टांतप्रस्तावे ऽधिकारोव्यापारः सचित्ततिर्यग्योनिकैकेंद्रियवनस्पतिकायद्रव्यपौंडरीकेन जलरुहेणवा औदयिकनाववर्तिना वनस्पतिकायपौंडरीकेण सितशतपत्रेण तथा नावे श्रमणेन सम्यग्दर्शनचारित्रविनयाध्यात्ममूर्तिना सत्साधुनाऽस्मिन्नध्ययने पौंडरीकाख्ये ऽधिकारइति । गता निक्षेपनिर्युक्तिरधुनासूत्रस्पर्शितकनिर्युक्तेरवसरः । साच सूत्रे सति नवति । सूत्रंच सूत्रानुगमे सचावसरप्राप्तोऽतोऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चेदं । (सुयंमेआउसंतेणमित्यादि) अस्य चानंतरं सह सूत्रेण संबंधोवाच्यः । सचायं । (सेएवमेवं जाणह जमहं नयंतारोत्ति) तमेव देवं जानीत नयस्य त्रातारं । तद्यथा । श्रुतं मयाऽऽयुष्मता नवतैवमाख्यातमादिसूत्रेण च सह संबंधोयं । तद्यथा । यद्भगवताख्यातं मया च श्रुतं तद्बुध्येतेत्यादि । किंतद्भगवताख्यातमित्याह । इह प्रवचने सूत्रकृत् द्वितीयश्रुतस्कंधे वा । खलुशब्दो वाक्यालंकारे । पौंडरीकाभिधानमध्ययनं पौंडरीकेण सितशतपत्रेणात्रोपमा नविष्यतीति कृत्वाऽतोस्याध्ययनस्यपौंडरीकमिति नाम कृतं तस्य चायमर्थः । णमिति वाक्यालंकारे । प्रज्ञप्तः प्ररूपितः ॥१॥ (सेजहत्ति) तद्यथार्थः सच वाक्योपन्यासार्थः । नामशब्दः संनावनायां । संनाव्यते पुष्करिणी दृष्टांतः । पुष्कराणि पद्मानि तानि विद्यंते यस्यामसौ पुष्करिणी स्याद्भवेदेवंनूता । तद्यथा बहुप्रचुरमगाधमुदकं यस्यां सा बहूदका बहूदकप्रचुरा

तथा सीयंतेऽवबध्यंते यस्मिन्नसौ सेयः कर्दमः सयस्यां सा बहुसेया प्रचुरकर्दमा च ब हुश्वेतपद्मसद्भावात् स्वछोदकसंभवाच्च बहुश्वेता वा तथा बहुपुष्कला बहुसंपूर्णा प्रचुरोदकभृतेत्यर्थः। तथा लब्धः प्राप्तः पुष्करिणीशब्दान्वर्थतयार्थोयया सा लब्धार्थाऽथवाऽऽस्थानमास्था प्रतिष्ठा सा लब्धा यया सा लब्धास्था तथा पौंडरीकाणि श्वेतशतपत्राणि विद्यंते यस्यां सा पौंडरीकिणी। प्रचुरार्थेन मत्वर्थीयोत्पत्तेर्बहुपद्मेत्यर्थः। तथा प्रसादः प्रसन्नता निर्मलजलता सा विद्यते यस्याः सा प्रसादिका प्रासादावा देवकुलसन्निवेशास्ते विद्यंते यस्यां समंततः प्रासादिका दर्शनीया शोभना सत्संनिवेशतोऽद्रष्टव्या दर्शनयोग्या तथाऽभिमुख्ये च सदावस्थितानि रूपाणि राजहंसचक्रवाकसारसादीनि गजमहिषमृगयूथादीनि वा जलांतर्गतानि वा करिमकरादीनि वा यस्यां साऽभिरूपेति तथा प्रतिरूपाणि प्रतिबिंबानि विद्यंते यस्यां सा प्रतिरूपा। एतदुक्तं भवति। स्वछत्वात्तस्याः सर्वे प्रतिबिंबानि समुपलभ्यंते तदतिशयरूपतया वा लोकेन तत्प्रतिबिंबानि क्रियते सा प्रतिरूपेति। यदिवा (पासादीयादरिसणीयाअभिरूवापडिरूपत्ति) पर्यायाइत्येते चत्वारोप्यतिशयरमणीयत्वख्यापनार्थमुपात्ताः ॥ २ ॥ तस्याश्च पुष्करिण्याः। णमिति वाक्यालंकारे। तत्र तत्रेत्यनेन वीप्सापदेन पौंडरीकैर्व्यापकत्वमाह। देशेदेशे इत्यनेन त्वेकैकप्रदेशे प्राचुर्यमाह। तस्मिंस्तस्मिन्नित्यनेन तु नास्त्येवासौ पुष्करिण्याः प्रदेशोयत्र तानि न संतीति। यदिवा देशेदेशइत्येतत्प्रत्येकमभिसंबध्यते। तत्रतत्रेति। कोर्थोदेशेदेशे तस्मिंस्तस्मिन्निति चार्थोदेशैकदेशइति। यदिवा अत्यादरख्यापनायैकार्थान्येवैतानि त्रीण्यपि पदानि। तेषु च पुष्करिण्याः सर्वप्रदेशेषु बहूनि प्रचुराणि पद्मान्येव वराणि श्रेष्ठानि पौंडरीकाणि पद्मवरपौंडरीकाणि। पद्मग्रहणं छत्रव्याघ्रव्यवछेदार्थं। पौंडरीकग्रहणं श्वेतशतपत्रप्रतिपत्त्यर्थं। वरग्रहणमप्रधाननिवृत्त्यर्थं। तदेवंभूतानि बहूनि पद्मवरपौंडरीकाणि (बुइयत्ति) उक्तानि प्रतिपादितानि विद्यंतइत्यर्थः। आनुपूर्व्येण विशिष्टरचनया स्थितानि तथोछ्रितानि पंकजले अतिलंघ्योपरि व्यवस्थितानि तथा रुचिर्दीप्तिस्तां लांत्याददति रुचिलानि सद्दीप्तिमंति तथा शोभनवर्णगंधरसस्पर्शवंति तथा प्रसादीयानि अभिरूपाणि प्रतिरूपाणि ॥ ३ ॥ तस्याश्च पुष्करिण्याः सर्वतः पद्मावृतायाः। णमिति वाक्यालंकारे। बहुदेशमध्यभागे निरुपचरितमध्यदेशे एकं महत्पद्मवरपौंडरीकमुक्तमानुपूर्व्येण व्यवस्थितमुछ्रितं रुचिलवर्णगंधरसस्पर्शवत् तथा प्रासादीयं दर्शनीयं अभिरूपतरं प्रतिरूपतरमिति ॥ ४ ॥ सांप्रतमेदेवानंतरोक्तं सूत्रद्वयं सव्वावत्तिचणंतीत्यनेन विशिष्टमपरं सूत्रद्वयं द्रष्टव्यं। अस्यायमर्थः (सव्वावंतित्ति) सर्वस्याअपि तस्याः पुष्करिण्याः सर्वप्रदेशेषु यथोक्तविशेषणविशिष्टानि बहूनि पद्मानि तथा सर्वस्याश्च तस्याबहुमध्यदेशभागे यथोक्तविशेषणविशिष्टं महदेकं पौंडरीकं विद्यतइति। अन्यत्रापि चः समुच्चये। णमिति वाक्यालंका

रे ॥ ५ ॥ अथानंतरमेवंभूतपुष्करिण्याः पूर्वस्यादिशः कश्चिदेकः पुरुषः समागत्य तां पुष्करिणीं तस्याश्च तीरे तटे स्थित्वा तदेतत्पद्मप्रासादादिप्रतिरूपांतविशेषणकलापोपेतं स पुरुषः पूर्वदिग्भागव्यवस्थितएवमिति वक्ष्यमाणनीत्या वदेत् ब्रूयात् । (अहमंसेत्ति) अहमस्मि पुरुषः । किंभूतः कुशलोहिताहितप्रवृत्तिनिपुणस्तथा पापाल्लीनः पंडितोधर्मज्ञो देशकालज्ञः क्षेत्रज्ञोव्यक्तोबालभावान्निष्क्रांतः परिणतबुद्धिर्मेधावी प्लवनोत्प्लवनयोरुपायज्ञस्तथा बालोमध्यमवयाः षोडशवर्षोपरिवर्ती मार्गस्थः सद्भिराचीर्णमार्गव्यवस्थितस्तथा सन्मार्गज्ञस्तथा मार्गस्य या गतिर्गमनं वर्तते तया यत्पराक्रमणं विवक्षितदेशगमनं तज्जानातीति पराक्रमज्ञः । यदिवा पराक्रमः सामर्थ्यं तज्ज्ञोहमात्मज्ञइत्यर्थः । तदेवंभूतविशेषणकलापोपेतोऽहमेतत्पूर्वोक्तविशेषणकलापोपेतं पद्मवरपौंडरीकं पुष्करिणीमध्यंदेशावस्थितमहमुत्क्षेप्स्यामीति कृत्वेहागतइत्येतत्पूर्वोक्तं तत्प्रीत्योक्त्वाऽसौपुरुषस्तां पुपुष्करिणीमभिमुखं क्रामेत् अभिमुखं गच्छेद्यावद्यावच्चासौ तदवतरणाभिप्रायेणाभिमुखं क्रामेत्तावत्तावच्च । णमिति वाक्यालंकारे । तस्याश्च पुष्करिण्यामहदगाधमुदकं तथा महांश्च सेयः कर्दमस्ततोऽसौ महाकर्दमोदकाभ्यामाकुलीभूतः प्रहीणस्तद्विवेकेन रहितस्त्यक्त्वा तीरं सुब्व्यत्यया द्वा तीरात्प्रहीणः प्रभ्रष्टोऽप्राप्तश्च विवक्षितं पद्मवरपौंडरीकं तस्याः पुष्करिण्यास्तस्यां वा यः सेयः कर्दमस्तस्मिन्निषण्णोनिमग्नआत्मानमुद्धर्तुमसमर्थस्तस्माच्च तीरादपि प्रभ्रष्टस्ततस्तीरपद्मयोरंतरालएवावतिष्ठते । यतएवमतः (नोहव्वाएत्ति) नार्वाक्तटवर्त्त्यसौ भवति (नोपाराएत्ति) नापि विवक्षितप्रदेशप्राप्त्या पारगमनाय समर्थोभवति । एवमसावुभयभ्रष्टोमुक्तमुक्तोलीवदनर्थायैव प्रभवतीत्ययं प्रथमः पुरुषएव पुरुषजातः पुरुषजातीयइति ॥ ६ ॥

अहावरे दोच्चे पुरिसजाए अह पुरिसे दक्खिणाउ दिसाउ आगम्म तं पुक्करिणिं तीसे पुक्करिणीए तीरे ठिच्चा पासंति तं महं एगं पउमवर पोंमरीयं अणुपुवुठियं पासादीयं जाव पडिरूवं तंच एड एगं पुरिसजातं पासंति तं पहीणे तीरं अपत्ते पउमवरपोंमरीयं णोहव्वाए णोपाराए अंतरा पोक्खरिणीए सेयंसि णिसन्ने तएणं से पुरिसे तं पुरिसं एवं वयासी अहो णं इमे पुरिसे अखेयन्ने अकुसले अपंमिए अवियत्ते अमेहावी बाले णोमग्गत्थे णोमग्गविऊ णोमग्गस्सगतिपरक्कमस्सूजन्नं एस पुरिसे अहंखेयन्ने अहंकुसले जाव पउमवरपोंमरीयं उन्निक्खिस्सामि णो खलु एयं पउमवरपोंमरीयं एवं उन्निक्खेयव्वं जहा णं

एस पुरिसे मन्ने॥ ७॥ अहमंसि पुरिसे खेयन्ने कुसले पंमिए वियत्ते मेहावी अबाले मग्गड्डे मग्गविऊ मग्गस्सगतिपरक्कमसू अहमेयं पउमवरपोंमरीयं उन्निक्खिस्सामित्ति कट्टु इति वच्चा से पुरिसे अन्निक्कमे तं पुक्करिणिं जावजावंचणं अन्निक्कमेइ तावतावंचणं महंते उदए महंते सेए पहीणे तीरं अपत्ते पउमवरपोंमरीयं णोहव्वाए णोपाराए अंतरा पोक्करिणीए सेयंसि णिसन्ने दोच्चे पुरिसजाते अहावरे तच्चे पुरिसजाते अह पुरिसे पच्छिमाउ दिसाउ आगम्म तं पुक्करिणिं तीसे पुक्करिणीए तीरे ठिच्चा पासंति तं एगं महं पउमवरपोंमरीयं अणुपुव्वुठियं जाव पडिरूवं ते तड दोन्नि पुरिसजाते पासंति पहीणे तीरं अपत्ते पउमवरपोंमरीयं णोहव्वाए णोपाराए जाव सेयंसि णिसन्ने तएणंसे पुरिसे एवं वयासी अहो णं इमे पुरिसा अखेयन्ना अकुसला अपंमिया अवियत्ता अमेहावी बाला णोमग्गड्डा णोमग्गविऊ णोमग्गस्सगतिपरक्कमसू जन्नं एते पुरिसा एवं मन्ने अम्हे तं पउमवरपोंमरीयं उन्निक्खिस्सामो नोय खलु एयं पउमवरपोंमरीयं एवं उन्निक्खेतव्वं जहाणं एए पुरिसा मन्ने अहमंसि पुरिसे खेयन्ने कुसले पंमिए वियत्ते मेहावी अबाले मग्गड्डे मग्गविऊ मग्गस्सगतिपरक्कमसू अहमेयं पउमवरपोंमरीयं उन्निक्खिस्सामित्ति कट्टु इतिवच्चा सेपुरिसे अन्निक्कमे तं पुक्करिणिं जाव जावंचणं अन्निक्कमे तावतावंचणं महंते उदए महंते सेए जावअंतरा पोक्करिणीए सेयंसि णिसन्ने तच्चे पुरिसजाए॥ ८॥ अहावरे चउड्डे पुरिसजाए अह पुरिसे उत्तराउ दिसाउ आगम्म तं पुक्करिणिं तीसे पुक्करिणीए तीरे ठिच्चा पासंति तं महं एगं पउमवरपोंमरीयं अणुपुव्वुठियं जावपडिरूवं ते तड तिन्नि पुरिसजाते पासंति पहीणे तीरं अपत्ते जाव सेयंसि णिसन्ने तएणं से पुरिसे एवं वयासी अहो णं इमे पुरिसा अखेयन्ना जावणोमग्गस्सगतिपरिक्कमसू जन्नं एते पुरिसा एवं मन्ने अम्हे तं पउमवरपोंमरीयं उन्निक्खिस्सामि

णो खलु एयं पउमवरपोंमरीयं एवं उन्निक्खेयव्वं जहा णं एते पुरिसा मन्ने अहमं सि पुरिसे खेयन्ने जाव मग्गस्सगतिपरक्कमस्सू अहमेयं पउमवरपोंमरीयं उन्निक्खिस्सामित्ति कट्टु इतिवच्चा से पुरिसे तं पुक्करिणिं जावजावंचणं अभिक्कमे ताव तावंचणं महंते उदए महंते सेए जाव णिसन्ने चउछे पुरिसजाए ॥ ए ॥

अर्थ- (अहावरे के०) अथ हवे प्रथम पुरुष अनंततर (दोच्चेपुरिसजाए के०) बीजो पुरुष जात कहेछे (अहपुरिसेके०) अथ हवे ए बीजो पुरुष (दक्खिणाउ दिसाउ आगम्म के०) दक्षिण दिशा थकीआव्यो (तंपुक्करिणिंके०) ते पुष्करणीने विषे (तीसेपुक्करिणीएतीरेठिच्चा के०) ते पुष्करणीने कांठे उनो रहीने (तंमहंएगंपउमवरपोंमरीयंके०) ते महोटो प्रधान पोंमरीक कमलने (पासंति के०) दीठो ते कमल केवोछे तो के अणुपुव्वुठियं पासादीयं जावपडिरूवं) इत्यादिक पूर्ववत् शोनायें करी सहित छे (तंच के०) त्यां ते पुरुषे (एछके०) अंहीया (एगंपुरिसजातंपासंतिके०) एक पुरुष जात दीठो (तंपहीणतीरेके०) ते पुरुष वावडीना कांठाथी भ्रष्ट (पउमवरपोंमरीयंके०) प्रधान पुंमरीक कमलने (अपत्तेके०) अण पाम्यो थको (णोहव्वाएके०) वावडीनो बीजो कांठो अणपाम्यो (णोपाराएके०) कमल उद्धरवाने पण असमर्थ (अंतरापोक्करिणीएके०) पुष्करणीने विचालें (सेयंसिके०) कादवमांहे (णिसन्नेके०) खुतोछे (तए णंसेपुरिसेके०) तेवार पछी ते पुरुष (तंपुरिसंके०) ते कादवमां खुचेला पुरुष प्रत्ये (एवंवयासीके०) एम कहेवा लागो के (अहोणंइमेपुरिसेके०) अहो हे पुरुष अखेयन्ने अकुसले अपंमिए अवियत्ते अमेहावी बाले णोमग्गछे णोमग्गविक णोमग्गस्स गति परक्कमस्सू ए नव पदनुं अर्थ सुजनछे (जन्नंएसपुरिसेके०) जे कारणे ए पुरुष पोताना आत्माने (अहंखेयन्नेके०) हुं खेदज्ञछुं (अहंकुसलेके०) हुंकुसलछुं (जावपउमवरपोंमरीयंउनिक्खिस्सामिके०) इत्यादिक जाणतो यावत् प्रधान पुंमरीक कमल हुं उद्धरीश एवा नावे अहीं आव्यो परंतु (णोखलुएयंपउमवरपोंमरीयं के०) निश्चें थकी पुंमरीक कमल उद्धरी शक्यो नथी अने कादवमांज खूतोछे (एवंउन्निक्खेयव्वं जहाणंएसपुरिसेमन्नेके०) जेम तेपुरुष पोताने महोटो माह्यो मानीने कमल उद्धरवा गयो तेज विधियें ए बीजो पुरुष पण पोताने माने ॥१॥ (अहमंसिपुरिसेके०) हुं पुरुष खेयन्ने कुसले पंमिए वियत्ते मेहावी अबाले मग्गछे मग्गविक मग्गस्सगतिपरिक्कमस्सू इत्यादिक पोतामां माह्यापणो मानतो (अहमेयंके०) हुं ए (पउमवरपोंमरीयंउन्निक्खिस्सामित्तिके०) प्रधान पुंमरीक कमलने उद्धरीश (कट्टुके०) एमकरी (इतिवच्चा के०) एवुं कहीने (सेपुरिसे

के०) ते पुरुष (अनिक्कमेतंपुरकरिणिंके०) ते पुष्करणीमां चाल्यो (जावजावंचणंअ निक्कमेइके०) जेम जेम ते कमल सामो आवीने मांहे प्रवेश कस्यो (तावतावंचणं के०) तेमतेम (महंतेउदएके०) उंमापाणी मांहे (महंतेसेएके०) महोटा कादवमां हे खूतो (पहीणेतीरंके०) वाव्यनातीर थकी पण भ्रष्ट थयो (अपत्तेपउमवरपोंमरीयं के०) अने प्रधान पुंमरीक कमलने पण अण पाम्यो (णोहव्वाएके०) एक कांठा थकी भ्रष्ट (णोपाराएके०) अने बीजा कांठाने पण नपाम्यो तथा कमल पण उद्धरी नशक्यो (अंतरापोरकरिणीएके०) पुष्करणीने विचाले ज (सेयंसिके०) कादव मांहे (णिसन्ने के०) खूची रह्यो (दोच्चेपुरिसजातेके०) एटले बीजो पुरुष जात कह्यो. ॥ अथ हवे ए बीजो पुरुष कह्यानंतर त्रीजो पुरुष कहेले ए त्रीजो पुरुष पश्चिमदिशा थकी आवी पुष्करणीने कांठे उनो रहीने आगला पुरुषनी पेरे समस्त वचन बोली कमल उद्धरवा ने अर्थे पुष्करणीमां प्रवेश कस्युं पण ते कमलने उद्धरी नशक्यो पोते पुष्करणीने अं तराले पाणी अने कादव मांहे खूतो एटले त्रीजो पुरुष जात कह्यो॥ ७ ॥ हवे चोथो पुरुष उत्तर दिशा थकी आवीने पुष्करणीने तीरे उनो रही आगला त्रण पु रुषनी रीतेज वचन बोली तेमनी पेरेज कमल उद्धरवाने पुष्करणी मांहे प्रवेश कस्यो परंतु तेपण कमल उद्धरी नशक्यो अने वाव्यने अंतराले ते त्रण पुरुषोनीपेरे कादव मांहेज खूची रह्यो एटले चोथो पुरुष जात कह्यो ॥ ए ॥

॥ दीपिका—अथापरोद्वितीयः पुरुषजातः पुरुषइति । अथ कश्चित्पुरुषोदक्षिणदिग्भा गादागत्य तां पुष्करिणीं तस्याश्च तीरे स्थित्वा पश्यति पद्मं तीरस्थश्च तं पूर्वस्थितं पुरु षमेकं पश्यति । तीराद्भ्रष्टं पद्ममप्राप्तं उनयभ्रष्टं दृष्ट्वा सद्वितीयः पुरुषस्तमेवं वदेत् अहोखेदे ! णं वाक्यालंकारे । योयं कर्दमे निमग्नः पुरुषः सोखेदज्ञोऽकुशलोऽपंडितोऽ व्यक्तोमेधावी बालोन्न मार्गस्थोनोमार्गज्ञोनोमार्गस्य गतिपराक्रमज्ञः । यस्मादेषपुरुषः कुश लइत्युक्त्वा पद्ममुत्क्षेप्स्यामीत्येवं प्रतिज्ञां कृतवान् । नचैतत् पद्ममेवमुत्क्षेप्तव्यं यथायं पुरु षोमन्यतइति नावः । शेषं सुगमं ॥ ७ ॥ ततः (अहमंसीत्यादि) अहमेवास्य पुंडरी कस्योत्क्षेपणे कुशलइतिनावः । शेषं सुगमं (अहावरेतच्चेत्ति) सुगमं । ॥ ७ ॥ (अहा वरेंचउत्थेत्ति) सुगमं ॥ ए ॥

॥ टीका—अथ प्रथमपुरुषादनंतरमपरोद्वितीयः पुरुषजातः पुरुषइति । अथवेति वा क्योपन्यासार्थे । अथ कश्चित्पुरुषोदक्षिणदिग्भागादागत्य तां पुष्करिणीं तस्याश्च पुष्करि ण्यास्तीरे स्थित्वा तत्रस्थश्च पश्यति । महदेकं पद्मवरपौंडरीकमानुपूर्व्येण व्यवस्थितं प्रा सादीयं यावत्प्रतिरूपमत्र चास्मिंश्च प्रतीते तीरे व्यवस्थितस्तंच पूर्वव्यवस्थितमेकं पुरुषं

पश्यति। किंभूतं। तीरात्परिभ्रष्टमनवाप्तपद्मवरपौंडरीकमुभयभ्रष्टमंतराल एवावसीदंतं च दृष्ट्वा तमेवमवस्थं पुरुषं ततोसौ द्वितीयः पुरुषस्तं प्राक्तनं पुरुषमेवं वदेत् ॥ अहोऽइति खेदे। सर्वत्र णमिति वाक्यालंकारे। इष्टव्योयोयं कर्दमे निमग्नः पुरुषः सोखेदज्ञोऽकुशलोऽपंडितोव्यक्तोमेधावी बालोनमार्गस्थोनोमार्गज्ञोनोमार्गस्य गतिपराक्रमज्ञः। अकुशलत्वादिके कारणमाह। यद्यस्मादेषपुरुषएतत्कृतवान्। यदहं खेदज्ञः कुशलइत्यादि भणित्वा पद्मवरपौंडरीकमुत्क्षेप्स्यामीत्येवं प्रतिज्ञातवान्। नचैतत्पद्मवरपौंडरीकमेवमनेन प्रकारेण यथाऽनेनोत्क्षेप्तुमारब्धं नैवमुत्क्षेप्तव्यं यथायं पुरुषोमन्यतइति ॥ ७ ॥ ततोहमेवास्योत्क्षेपणे कुशलइति दर्शयितुमाह। (अहमंसीत्यादि) जावदोच्चेपुरिसाजाएत्ति। सुगमं ॥ ८ ॥ तृतीयं पुरुषमधिकृत्याह। (अहावरेतच्चेइत्यादि) सुगमं यावच्चतुर्थः पुरुष जातइति ॥ ए ॥

अह भिक्खू लूहे तीरठी खेयन्ने जाव परक्कमस्सू अन्नतराउ दिसाउ वा अणुदिसाउ वा आगम्म तं पुक्करिणिं तीसे पुक्करिणीए तीरे ठिच्चा पासंति तं एगं महंतं पउमवरपोंमरीयं जावपडिरूवं ते तच्च चत्तारि पुरिसजाए पासंति पहीणे तीरं अपत्ते जाव पउमवर पोंमरीयं णोहच्चाए णोपाराए अंतरापुक्करिणीए सेयंसि णिसन्ने तएणं से भिक्खू तं एवं वयासी अहो णं इमे पुरिसा अखेयन्ना जाव णो मग्गस्स गति परक्कमस्सू जन्नं एते पुरिसा एवं मन्ने अम्हे तं पउमवरपोंमरीयं उन्निक्खिस्सामो णो खलु एयं पउमवपोंमरीयं एयं उन्निखेतवं जहा णं एते पुरिसा मन्ने अहमंसि भिक्खू लूहे तीरठी खेयन्ने जाव मग्गस्स गतिपरक्कमस्सू अहमेयं पउमवरपोंमरीयं उस्सिक्खिस्सामित्ति कट्टु इतिवच्चा से भिक्खू णो अभिक्कमे तं पुक्करिणिं तीसे पुक्करिणीए तीरे ठिच्चा सद्दं कुज्जा उप्पयाहि खलु भो पउमवरपोंमरीया उप्पयाहि अहसे उप्पति ते पउमवरपोंमरीए ॥ १० ॥ किट्टिए नाए समणाउसो अट्ठे पुण से जाणितव्वे भवति भंतेति समणं भगवं महावीरं बहवे निग्गंथाय निग्गंथीउय वंदंति नमंसंति वंदेत्ता नमंसित्ता एवं वयासि किट्टिए नाए समणाउसो अट्ठं पुण से ण जाणामो समणाउसोत्ति समणे भगवं महावीरे तेय बहवे निग्गंथेय निग्गंथीउय आ

मंतेत्ता एवं वयासी हं भोसमणाउसो ते आइरकामि विभावेमि किट्टेमि पवेदेमि सअट्ठं सहेउं सनिमित्तं भुज्जोभुज्जो उवदंसेमि सेबेमि ॥ ११ ॥

अर्थ-(अहके०) हवे चोथा पुरुष नंतर पांचमो पुरुष कहेछे ते केवोछे तोके (भिरकू के०) भिक्षुण शील पचन पाचनादिक सावद्यानुष्ठान रहित निर्दोष आहार भोजी (लूहे के०) राग द्वेष रहित (तीरट्ठी के०) संसार समुद्रना तीरनो अर्थी (खेयन्ने के०) खेदज्ञ एटले समस्त जीवोना खेदनो जाण (जावपरक्कमस्सू के०) यावत् मार्गेनी गतिना पराक्रमनुं जाण अंही बीजो आगलनो वर्णन सर्व करवो एवो जाण पुरुषते (अन्नतराउदिसाउवाअणुदिसाउवा के०) अन्य कोइएक दिशा थकी अथवा विदिशा थकी (आगम्म के०) आवीने (तंपुरकरिणिं के०) ते पुष्करणी (तीसेपुरकरिणीएतीरेठिच्चा के०) ते पुष्करणीने कांठे रहीने (तंएगंमहंतंपउमवरपोंमरीयंके०) ते एक महोटुं प्रधान पुंमरीक कमलने (पासंति के०) दीठो (जावपडिरूवं के०) ते कमल ज्यांलगे प्रतिरूप सुधी पूर्वें वर्णन करेलुंछे तेवो कमल दीठो (तेतबचत्तारिपुरिसजाएपासंति के०) तेणे त्यां चार पुरुषजात पूर्वोक्त चारदिशाना आवेला दीठा ते चारे पुरुष (पहीणेतीरं के०) वाव्यना तीर थकी भ्रष्ट अने (अपत्तेजावपउमवरपोंमरीयंणोहव्वाएणोपाराए के०) पुंमरीक कमलने पण यावत् नथी पाम्या (अंतरापुरकरिणीएके०) वाव्यने विचाले (सेयंसि के०) कादव मांहे (णिसन्ने के०) खुताछे तेनें देखीने (तएणंसे भिरकू के०) तेवार पछी ते भिक्षु साधु (तं के०) ते चार पुरुषोने (एवंवयासि के०) एम बोल्यो (अहोणंइमेपुरिसा के०) अहो ए पुरुष बापडा (अखेयन्ना के०) अखेदज्ञ (जावणोमग्गस्सगतिपरक्कमस्सू के०) यावत् मार्गेनी गतिना पराक्रमना अजाण (जन्नंएतेपुरिसाकें०) जेम ए पुरुष (एवंमन्नेके०) एम जाणे जे (अम्हेतंपउमवरपोंमरीयंउस्सिरिकस्साम्मो के०) अमे ए कमल उद्धरी सुं तेवा विधियें उद्धरवाने अर्थें गया परंतु (णोखलु के०) निश्चें थकी नहीज (एयंपउमवरपोंमरीयंके०) ए पोंमरीक कमलने (एयंउन्निरकेतव्वं के०) एम उद्धरी शके नही (जहाणंएतेपुरिसामन्ने के०) जेम ए चार पुरुष जाणेछे ते विधियें कमल उद्धरी शकाय नही (अहमंसिभिरकुलूहे के०) जेमाटे हुं साधु राग द्वेष रहित (तीरट्ठी के०) संसारना तीरनो अर्थी (खेयन्नेके०) खेदज्ञ (जावमग्गस्सगतिपरक्कमस्सूके०) यावत् मार्गेनी गतिना पराक्रमनुं जाण (अहमेयंपउमवरपोंमरीयंउस्सिरिकस्सामित्ति के०) हुं ए पुंमरीक कमल निश्चे थकी उद्धरीश (कट्टु के०) एम करीने (इतिवच्चा के०) एवुं वचन कहीने (सेभिरकु के०) तेसाधु (णोअभिक्कमे तं पुरक

रिणिं के०) ते पुष्करणी मांहे पेगो नहीं (तीतेपुरकरिणीएतीरेठिच्चा के०) ते पु ष्करणीने कांठे रहीनेज (संदंकुज्जा के०) शब्द करेछे (उप्पयाहिखलुनोपउमव पोंमरीयाउप्पयाहि के०) अहोपुंमरीक कमल ए पुष्करणी मांहेथी उपडीने बाहेर आव बाहेर आव एम बे वार कह्यो (अहसेउप्पतितेपउमवरपोंमरीएके०) हवे ते पुंमरीक कम ल त्यांथी उपड्यो ॥१०॥ (किट्टिए के०) हवे ए दृष्टांत देखाडीने (नाएसमणाउसोके०) श्रीमहावीर देव शिष्य आगले अंतर नाव मेलवेछे के अहो आयुष्यमंत श्रमण महात्मा उ तमने ए दृष्टांत कह्यो तेना (अठे के०) अर्थने (पुण के०) वली (से के०) ते (जाणितव्वे नवति के०) जाणोछो एम कहे थके तेवारे (नंतेति के०) हे नगवान् एवो शब्द कहीने (समणंनगवंमहावीरं के०) तपस्वी नगवंत श्रीमहावीरदेवने (बह वेनिग्गंथाय के०) घणानिग्रंथ (निग्गंथीउंयवंदंति के०) घणी साधवी ते श्रीमहावीर देवने वांदे (नमंसंति के०) नमस्कार करे (वंदेत्ता के०) वंदना करीने (नमंसित्ता के०) नमस्कार करीने (एवंवयासि के०) एम बोल्या (किट्टिएनाएसमणाउसो के०) के हे नगवंत श्रमणआयुष्यमंत तमे जे दृष्टांत कह्यो तेना (अठं के०) अर्थने (पुण के०) वली (से के०) ते (णजाणामो के०) अमे नथी जाणता तेवारे श्रीमहावीर देव (समणाउसोत्ति के०) हे श्रमणो आयुष्यमंत साधुउ एवो शब्द कहीने (समणेन गवंमहावीरें के०) श्रमण नगवंत श्रीमहावीर देव (तेयबहवेनिग्गंथेय के०) ते घणा निग्रंथ (निग्गंथीउंय के०) घणी साधवीने (आमंत्तेता के०) आमंत्रण करीने (एवंव यासी के०) एम कहेछे (हंनोसमणाउसोते के०) अहो साधुउ तमे पुछ्यो ते (आइ रकामि के०) हुं तमने कहुंछुं (विन्नावेमि के०) प्रगटार्थ कहुंछुं (किट्टेमि के०) तेना प र्याय कहुंछुं (पवेदेमिके०) हेतु दृष्टांते करी तमारे चित्तने सुगम थाय तेम कहुंछुं (सअठं के०) अर्थ सहित (सहेउंके०) हेतुये सहित (सनिमित्तंके०) कारण सहित (नुज्जोनुज्जो के०) वली वली (उवदंसेमिके०) देखाडीश (सेबेमिके०) ए हुं कहुंछुंते तमे सांनलो॥११॥

॥ दीपिका—अथ पंचमं पुरुषमाश्रित्याह । अथ निक्षुर्निर्दोषाहारनोजी रूक्षोराग द्वे परहितस्तीरार्थी संसाराब्धितीरानिलाषी । खेदज्ञइत्यादिविशेषणानि पूर्वं व्याख्यातानि । यावन्मार्गस्य गतिपराक्रमज्ञः सचान्यतरस्यादिशोवा आगत्य तां पुष्करिणीं तस्याश्च तीरे स्थित्वा तन्मध्देकं पद्मवरपौंडरीकं पश्यति तांश्चतुरः पुरुषान्पश्यति पंकनीरमग्नान् । दृ ष्ट्वा च सनिक्षुरेवं वदेत् अहो इमे चत्वारोपि पुरुषाअक्षेत्रज्ञाअकुशलान मार्गस्य गतिप राक्रमज्ञाः । यस्मात्ते पुरुषाएवं ज्ञातवंतोयथा वयं पुंडरीकमुन्निक्षेप्स्यामउत्खनिष्यामः। नच तत्पुंडरीकमेवमुत्क्षेप्तव्यं यथैते मन्यंते । किंतु अहमस्मि निक्षुरूक्षोयावन्मार्गस्य ग

तिपराक्रमज्ञोऽहमेवैतत्पुंडरीकमुत्खनिष्यामीत्युक्त्वा सन्निक्रुनोतिक्रामेत्तां पुष्करिणीं न प्रविशेत्तस्यास्तीरे स्थित्वा तटस्थएव शब्दंकुर्यात् । तद्यथा । उत्पत हेपुंडरीक उत्प त इति शब्दश्रवणात्तदुत्पतितं पुंडरीकं ॥ १० ॥ दार्ष्टांतिकं योजयन् श्रीवीरः शिष्याना ह । कीर्तिते कथिते ज्ञाते दृष्टांते हेश्रमणाआयुष्मंतोऽर्थः पुनरस्य ज्ञातव्योनवति नव द्भिः । एवमुक्ते नगवता बहवोनिर्ग्रंथानिर्ग्रंथ्यश्च श्रमणं नगवंतं महावीरं वंदंति कायेन नमस्यंति शब्दैः स्तुवंति । वंदित्वा नमस्कृत्वाच एवं वदेयुः । तद्यथा । कीर्तितं ज्ञातमु दाहरणं नगवता । अर्थं पुनरस्य न जानीमइति पृष्टोनगवान् तान् बहून्निर्ग्रंथादीनेवं व देत् । हंतेति आमंत्रणे । हेश्रमणाआयुष्मंतोयद्भवद्भिरहं पृष्टस्तदाख्यामि आविर्नावया मि प्रकटयामि कीर्तयामि पर्यायैः प्रवेदयामि हेतुदृष्टांतैः । एकार्थिकान्येव वा एतानि कथमाख्यामीत्याह । सार्थः सहेतुरन्वयव्यतिरेकरूपः कारणं कार्यसाधनं तेन युतं नू योनूयउपदर्शयामि ॥ ११ ॥

॥ टीका—सांप्रतमपरं पंचमं तद्विलक्षणं पुरुषजातमधिकृत्याह । (अहनिरकूलूहे इत्यादि) अथेत्यानंतर्ये । चतुर्थपुरुषादयमनंतरः पुरुषस्तस्यामूनि विशेषणानि । निक्ष णशीलोनिक्षुः पचनपाचनसावद्यानुष्ठानरहिततया निर्दोषाहारनोजी तथा रूक्षोरागद्वेष रहितः । तौहि कर्मबंधहेतुतया स्निग्धौ । यथाहि स्नेहानावाद्रजोन लगति तथा राग द्वेषान्नावात्कर्मरेणुर्नलगत्यतस्तद्रहितोरूक्षइत्युच्यते । तथा संसारसागरस्य तीरार्थी त था क्षेत्रज्ञः खेदज्ञोवा । पूर्वं व्याख्यातान्येव विशेषणानि । यावन्मार्गस्य गतिपराक्रमज्ञः सचान्यतरस्यादिशोनुदिशोवाऽऽगत्य तां पुष्करिणीं तस्याश्च तीरे स्थित्वा समंतादवलोक येदा बहुमध्यदेशनागे तन्महदेकं पद्मवरपौंडरीकं पश्यति तांश्चतुरः पुरुषान् पश्यति यत्र च व्यवस्थितानिति । किंनूतांस्त्यक्ततीरानप्राप्तपद्मवरपुंडरीकान् पंकजलावमग्नान् पुनस्तीरमप्यागंतुमसमर्थान् दृष्ट्वाच तांस्तदवस्थान् ततोसौ निक्षुरेवमिति वक्ष्यमाण नीत्या वदेत् । तद्यथा । अहोइति खेदे णमितिवाक्यालंकारे । इमे पुरुषाश्चत्वारोपि अखे दज्ञायावन्नोमार्गस्य गतिपराक्रमज्ञायस्मात्ते पुरुषाएवं ज्ञातवंतोयथा वयं पद्मवरपौंडरीक मेवमनेन प्रकारेण यथैते मन्यंते तथोत्क्षेप्तव्यं । अपि त्वहमस्मिन् निक्षुरूपोयावज्ञति पराक्रमज्ञएतद्गुणविशिष्टोऽहमेतत्पौंडरीकमुत्क्षेप्स्यामि उत्खनिष्यामि समुद्धरिष्यामीत्ये वमुक्त्वाऽसौ नातिक्रामेत् तां पुष्करिणीं न प्रविशेत् । तत्रस्थएव यत्कुर्यात्तद्दर्शयति । तस्यास्तीरे स्थित्वा तथाविधं शब्दं कुर्यात्तद्यथा ऊर्ध्वमुत्पतोत्पत । खलुशब्दोवाक्यालंका रे । हे पद्मवरपौंडरीक तस्याः पुष्करिण्यामध्यदेशात्त्वमुत्पतोत्पत । अथ तच्छब्दश्रवणा नंतरं तदुत्पतितमिति ॥ १० ॥ तदेवं दृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकं दर्शयितुकामः श्रीमन्म

हावीरवर्धमानस्वामी स्वशिष्यानाह । कीर्तिते कथिते प्रतिपादिते मयास्मिन् ज्ञाते उदाहरणे श्रमणाआयुष्मंतोऽर्थः पुनरस्य ज्ञातव्योजवति जवद्भिरेतडुक्तं जवति । नास्योदाहरणस्य परमार्थं यूयं जानीथैवमुक्ते जगवता ते बह्वोनिर्ग्रंथानिर्ग्रंथ्यश्च तं श्रमणं जगवंतं महावीरं ते निर्ग्रंथादयोवदंति कायेन नमस्यंति तत्प्रव्हैः शब्दैः स्तुवंति वंदित्वा चैवं वक्ष्यमाणं वदेयुः । तद्यथा । कीर्तितं प्रतिपादितं ज्ञातमुदाहरणं जगवता अर्थं पुनरस्य न सम्यक् जानीमइत्येवं पृष्टोजगवान् श्रमणोमहावीरस्तान्निर्ग्रंथादीनेवं वदेत् । हंतेति संप्रेषणे । हेश्रमणाआयुष्मंतोयन्नवद्भिरहं पृष्टस्तत्सोपपत्तिकमाख्यामि जवतां तथा विनावयाम्याविर्नावयामि प्रकटार्थं करोमि तथा कीर्तयिष्यामि पर्यायकथन द्वारेणेति । तथा प्रवेदयामि प्रकर्षेण हेतुदृष्टांतैश्चित्तसंततावारोपयामि । अथ चैकार्थिकानि चैतानि कथं प्रतिपादयामीति दर्शयति । सहार्थेन दार्ष्टांतिकेन सार्थः वर्ततइति पुष्करिणीदृष्टांतस्तं तथा सह हेतुना अन्वयव्यतिरेकरूपेण वर्ततइति सहेतुस्तं तथाजूतमार्गं प्रतिपादयिष्यामि यथा ते पुरुषाअप्राप्तप्रार्थितार्थाः पुष्करिणीकर्दमे डुरुत्तारे निमग्नाएवं वक्ष्यमाणास्तीर्थिकाअपारगाः संसारसागरस्य तत्रैव निमज्जंतीत्येवंरूपोर्थः सोपपत्तिकः प्रदर्शयिष्यते । तथा सह निमित्तेन उपादानकारणेन सहकारिकारणेन वा वर्ततइति सनिमित्तं सकारणं दृष्टांतार्थं जूयोऽपरैर्हेतुदृष्टांतैरुपदर्शयामि सोहं सांप्रतमेव ब्रवीमि शृणुत यूयमिति ॥ ११ ॥

लोयंच खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो पुक्करिणीबुइया कम्मंच खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो सेउदए बुइए कामजोगेयं खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो से सेए बुइए जए जाणावयंच खलु मए अपाहट्टु समणाउसो तेबह्वे पउमवरपोंमरीए बुइए रायाणंच से खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो से एगे महंपउमवरपोंमरीए बुइए अन्नउत्थियाय खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो ते चत्तारिंपुरिसजाया बुइया धम्मंच खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो से जिरकू बुइए धम्मतित्थंच खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो सेतीरे बुइए धम्मकहंच खलुमए अप्पाहट्टु समणाउसो से सद्दे बुइए निव्वाणंच खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो से उप्पाए बुइए एवमेयंच खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो से एवमेयं बुइयं ॥ १२ ॥

अर्थ–खलु इति वाक्यालंकारे (लोयंचमएके०) एलोक जे मनुष्य खेत्र ते में (अप्पाहट्टु के०) पोता थकी जाणीने (समणाउसो के०) अहोआयुष्मंत श्रमणो (पुरकरिणीबुइयाके०) पुष्करणी कही अने (कम्मंचखलुमए के०) अष्ट प्रकारना कर्म ते

में (अप्पाहट्टुके०) पोताथकी जाणीने (समणाउसोके०) हेसाधुर्ज (सेउदएके०)
ते पाणी (बुइएके०) कह्यो (कामन्नोगेयंके०) कामन्नोगंने खलुइति वाक्यालंकारे (म
एके०) में (अप्पाहट्टुके०) पोता थकी जाणीने (समणाउसोके०) हेसाधुर्ज (सेके०)
तेने (सेएके०) कर्दम (बुइएके०) कह्यो जेकर्दममांहे खुता थका जीव पोते पोताने
उद्धरी नशके अने (जणके०) सामान्यलोक ते (जाणवयंचके०) जनपद एटले आर्य
देशना उपना एवा अनेक लोक तेने (खलु मएके०) में निश्चेकरी (अप्पाहट्टुके०)
पोताथकी जाणीने (समणाउसोके०) हे आयुष्यमंत श्रमणो (तेबहवेके०) तेवा घणा
एक (पउमवरपोंमरीएबुइए के०) पद्मकमलो कह्या तथा (रायाणंचसेखलुमएआप्पा
हट्टुसमणाउसोके०) राजा जे सामान्य लोकना अधिपति केवायछे तेने में पोता थकी
जाणीने हे श्रमणो (एगेमहंपउमवरपोंमरीएबुइएके०) एक महोटुं पुंमरीक कमल क
ह्यो अने जे (अन्नउत्थियायके०) अन्यतीर्थिक क्रियावादि अक्रियावादि प्रमुख (तेके०)
तेने (खलुमएअप्पा हट्टुसमणाउसो के०) में पोता थकी जाणीने हे श्रमणो (चत्ता
रिपुरिसजायाबुइया के०) चार पुरुष जात कह्या तेर्ज राजारूपमहोटो कमल तेने उ
द्धरवाने असमर्थ कह्या अने (धम्मंचखलुमएअप्पाहट्टुसमणाउसोसेनिरकूबुइए के०)
जे श्रुतचारित्ररूप धर्म तेने में पोता थकी जाणीने हेश्रमणो निक्षु एटले अणगार
कह्यो जेमां पुंमरीक कमलरूप राजाने उद्धरवानी समर्थाइ कही (धम्मतित्थंचखलुम
एअप्पाहट्टुसमणाउसो सेतीरेबुइए के०) तथाजे धर्मतीर्थते निश्चें में पोता थकी जा
णीने तीर एटले कांठो कह्यो (धम्मकहंचखलुमएअप्पाहट्टुसमणाउसोसेसद्देबुइएके०)
तथा जेधर्म कथा ते निश्चें में पोता थकी जाणीने हे श्रमणो तेने में शब्द कह्यो (नि
व्वाणंचखलुमएअप्पाहट्टुसमणाउसोसेउप्पाएबुइए के०) तथा जे मोक्षपद ते निश्चें में
पोता थकी जाणीने हे श्रमणो तेने में कमलनो उद्धरवो कह्यो (एवमेयंच के०) ए
पूर्वोक्त सर्व लोकादिकपदार्थ ते खलु शब्दवाक्यालंकारेंछे (मएके०) में (आप्पाहट्टु
के०) आप थकी जाणीने (समणाउसो के०) हेश्रमणो आयुष्यमंतो (सेएवमेयंबु
इयंके०) तेने पुष्करणी कमल प्रमुख एरीते में कह्या एटले सामान्य प्रकारें दृष्टांत क
ह्यो हवे विशेष थकी राजा उद्धरणादिकन्नाव कहेछे ॥ १२ ॥

॥ दीपिका—लोकं मनुष्यक्षेत्रं । चशब्दः समुच्चये । खलुर्वाक्यालंकारे । मया (अप्पा
हट्टुत्ति) आत्मनि आहृत्य व्यवस्थाप्य अथवा आत्मना स्वयमाहृत्या ज्ञात्वा न परोपदे
शतः सा पुष्करिणी उक्ता । कर्म चाष्टप्रकारं खलु मयात्मनि आहृत्य आत्मना वा आ
हृत्य हेश्रमण आयुष्मन् तडुदकमुक्तं पुंडरीकोत्पत्तिकारणं । कामइछारूपा न्नोगामदन

व्यापाराः । सकर्दमः । यथा पंकेमग्नमात्मानमुद्धर्तुं दुःशक्यं । एवंविषयेष्वपीति विषय पंकयोः साम्यं । जनं सामान्यलोकं जानपदा आर्यदेशजातास्तानाश्रित्य तानिबहूनि पुंडरीकाणि उक्तानि राजानं चक्रवर्त्यादिकमाश्रित्य पद्मवरपुंडरीकमुक्तं । अन्यतीर्थिकानाश्रित्य ते चत्वारः पुरुषाउक्ताः । तेषां राजपुंडरीकोद्धरणे सामर्थ्याभावाद्धर्मं चाऽऽत्मन्याश्रित्य सभिक्षुरुक्तः । तस्यैव राजपुंडरीकोद्धरणेसमर्थत्वात् धर्मतीर्थं च खल्वाश्रित्य मया तत्तीरमुक्तं धर्मदेशनां चाश्रित्य मया सभिक्षोः संबधी शब्दउक्तः । निर्वाणं मोक्षंचाश्रित्य पुंडरीकस्योत्पातउक्तः । एवमेतल्लोकादिकं च खल्वात्मन्याश्रित्य मया श्रमणायुष्मन् से एतत्पुंष्करिण्यादिकं दृष्टांतत्वेनकिंचित्साधर्म्यादेवमुक्तं ॥ १२ ॥

॥ टीका—तदधुना भगवान् पूर्वोक्तस्य दृष्टांतस्य यथास्वं दार्ष्टांतिके दर्शयितुमाह ॥ (लोगंचेत्यादि) लोकमिति मनुष्यक्षेत्रं । चशब्दउत्तरापेक्षया समुच्चयार्थः । खलुरिति वाक्यालंकारे । मयेत्यात्मनिर्देशः । योयं लोकोमनुष्याधारस्तमात्मन्याहृत्य व्यवस्थाप्य अपाहृत्य वा आयुष्मन् श्रमण आत्मनावा मयाऽऽहृत्य न परोपदेशतः सा पुंष्करिणी पद्माधारभूतोक्ता । तथा कर्म चाष्टप्रकारं यद्बलेन पुरुषपौंडरीकाणि भवंति । तदेवंभूतं कर्म मयात्मन्याहृत्य आत्मनावा आहृत्यअपाहृत्य वा । एतदुक्तं भवति । हेश्रमण आयुष्मन् सर्वावस्थानां निमित्तभूतं कर्माश्रित्य तदुदकं दृष्टांतत्वेनोपन्यस्तं कर्मचात्र दार्ष्टांतिकं भविष्यति । तत्रेछामदनकामाः शब्दादयोविषयास्ते एव भुज्यंतइतिभोगाः । यदिवा कामाइछारूपामदनकामास्तु भोगास्तान् मयात्मन्याहृत्य सेयः कर्दमोऽभिहितस्तथा पंके निमग्नोदुःखेनात्मानमुद्धरत्येवं विषयेष्व्यासक्तोनात्मानमुद्धर्तुमलमित्येतत्कर्दमविषययोःसाम्यमिति । यथा जनं सामान्येन लोकं तथा जनपदे भवाजानपदाविशिष्टार्यदेशोत्पन्नागृह्यंते । ते चार्द्धषड्विंशतिजनपदोद्भवाइति तांश्च समाश्रित्य मया दार्ष्टांतिकत्वेनांगीकृत्य तानि तानि बहूनि पद्मवरपौंडरीकाणि दृष्टांतत्वेनाभिहितानि । तथा राजानमात्मन्याहृत्य तदेकं पद्मवरपौंडरीकं दृष्टांतत्वेनाभिहितं तथान्यतीर्थिकान् समाश्रित्य ते चत्वारः पुरुषजाताअभिहितास्तेषां राजपौंडरीकोद्धरणे सामर्थ्यवैकल्यात् । तथा धर्मंच खल्वात्मन्याहृत्य श्रमणायुष्मन् सभिक्षुः रूक्षवृत्तिरहितस्तस्यैव चक्रवर्त्यादिराजपद्मवरपौंडरीकोद्धरणसामर्थ्यसद्भावाद्धर्मं तीर्थंच खल्वाश्रित्य मया तत्तीरमुक्तं । तथा सद्धर्म देशनां चाश्रित्य मया सभिक्षुसंबंधी शब्दोऽभिहितस्तथा निर्वाणं मोक्षपदमशेषंकर्मक्षयरूपमीषत् प्राग्भाराख्यं भूभागोपर्यवस्थितक्षेत्रखंडं चात्मन्याहृत्य सपद्मवरपौंडरीकस्योत्पातोऽभिहितइति । सांप्रतं समस्तोपसंहारार्थमाह । एवं पूर्वोक्तप्रकारेण एतल्लोकादिकंच खल्वात्मन्याहृत्याश्रित्य मया श्रमणायुष्मन् से एतत्पुष्करिण्यादिकं दृष्टांतत्वेन किंचित्साधर्म्यादेवमेतदुक्तमिति ॥ १२ ॥

इह खलु पाईणंवा पडीणंवा उदीणंवा दाहिणंवा संतेगतिया मणुस्सा न वंति अणुपुव्वेणं लोगं उववन्ना तं जहा आरियावेगे अणारियावेगे उ च्चागोत्तावेगे णीयागोयावेगे कायमंतावेगे रहस्समंतावेगे सुवन्नावेगे डु वन्नावेगे सुरूवावेगे डुरूवावेगे तेसिंचणं मणुयाणं एगे राया नवइ महयाहिमवंतमलयमंदरमहिंदसारे अन्नंतविसुद्धरायकुलवंसप्पसूते निरंतररायलरकणविराइयंगमंगे बहुजणबहुमाणपूइए सव्वगुणस मिद्धे खत्तिए मुदिए मुद्धानिसित्ते माउपिउसुजाए देयप्पिए सीमंकरे सी मंधरे खेमंकरे खेमंधरे मणुस्सिंदे जणवयपिया जणवयपुरोहिए सेउक रे केउकरे नरपवरे पुरिसपवरे पुरिससीहे पुरिसआसीविसे पुरिसवर पोंमरीए पुरिसवरगंधहत्ती अड्ढे दित्ते वित्ते विच्छिन्नविउलनवणसय णासणजाणवाहणाइन्ने बहुधणबहुजातरूवरतए आउगपउगसंपउ त्ते विच्छड्डियपउरनत्तपाणे बहुदासीदासगोमहिसगवेलगप्पनूते प डिपुस्नकोसकोठागाराउधागारे बलवं डुबल्लपच्चामिए उहयकंटयं म लियकंटयं उद्धियकंटयं निहयकंटयं अकंटयं उहयसत्तू निहयसत्तू मलि यसत्तू उद्धियसत्तू निज्जियसत्तू पराइयसत्तू ववगयडुनिरकमारिनयवि प्पमुक्कं रायवन्नउ जहाउववाइए जावपसंतडिंबडमररज्जं पसाहेमाणे विहरंति तस्सणं रन्नो परिसा नवइ उग्गा उग्गपुत्ता नोगा नोगपु त्ता इरकागाइ इरकागाइ नायना नायना कोरव्वा कोरव्वा नट्टा नट्टपुत्ता माहणा माहणपुत्ता लेच्छइ लेच्छइपुत्ता पसत्थारो पसत्थारोपुत्ता सेणावइ सेणावइपुत्ता ॥ १३ ॥ तेसिंचणं एगतीए सड्ढानवइ कामंतं समणावा माहणावा संपहारिंसु गमणाए तत्र अन्नतरेणं धम्मेणं पन्नत्तारोवयं इ म्मेणं धम्मेणं पन्नवइस्सामो सेएवंमायाणह नयंतारो जेहामए एस धम्मे सुयरकाए सुपन्नते नवइ ॥ १४ ॥

अर्थ—(इहखलुके०) ए मनुष्य लोक मांहे खलुइति वाक्यालंकारे (पाईणंवाके०) पूर्वदिशि (पडीणंवाके०) पश्चिमदिशि (उदीणंवाके०) उत्तरदिशि (दाहिणंवाके०) दक्षणदिशि ए चार दिशि अथवा विदिशिए (संतेगतियामणुस्सानवंतिके०) कोइ एक मनुष्य होय ते (अणु

पुव्वेणं के०) अनुक्रमे (लोगं के०) लोकपणे (उववन्नाके०) उपना छे (तंजहा के०) ते देखाडेछे (आरियावेगे के०) एक आर्य मनुष्यते साढा पचीश देशना उपना (अणा रियावेगे के०) एक अनार्य देशना उपना ते संग यवन सबर बब्बरादिक जाणवा (उच्चागोत्तावेगे के०) एक उंचगोत्रना उपना (णीयागोयावेगे के०) एक नीचगोत्रना उपना (कायमंतावेगे के०) एक लांबा दीर्घ काय वाला (रहस्समंतावेगे के०) एक न्हस्व न्हानी काय वाला (सुवन्नावेगे के०) एक रुडा वर्ण वाला (डुवन्नावेगे के०) एक माठा वर्ण वाला (सुरूवावेगे के०) एक नला रूपवाला (डुरूवावेगेके०) एक माठा रूप वाला (तेसिंचणंमणुयाणं के०) ते मनुष्य मांहे वली (एगेरायाजवइ के०) एक राजा होय ते राजा केवोहोय तोके (महयाहिमवंत के०) महोटो हिमवंत (मलय के०) मलयाचल (मंदरके०) मेरुपर्वत (महिंद के०) महेंद्र एनी पेरे जेनु (सारेके०) सामर्थ्यपणुछे (अच्चंतविसुद्धरायकुलवंसप्पसूतेके०) अत्यंत निर्मल दोष रहित राजा नु कुल उत्तम क्षत्रीयनो कुल तेने विषे जन्म पाम्याछे (निरंतररायलरकण के०) आं तरा रहितजे राजाना लक्षण तेणेकरी (विराइयंगमंगे के०) बिराजमान एटले शोना यमानछे शरीरना अंगोपांग जेना (बहुजण के०) घणालोक (बहुमाण के०) घणो मान आपीने (पूइए के०) पूजेछे (सव्वगुणसमिद्धे के०) समस्त राजाना जे गुणछे तेणेकरी समृद्धिवान एटले संपूर्णछे (खत्तिएके०) क्षत्रिय जातवंत (मुदिए के०) स र्वकाल प्रमोद सहित (मुद्धाभिसित्ते के०) मातापितादिक परिवार मलीने राज्यानिषे क कीधोछे (माउपिउसुजाए के०) माता पिता सुजातवंतछे अथवा माता पितानो सुविनीत सुपुत्रछे (देयप्पिए के०) वछल तथा करुणाना गुणे करी सहित (सीमंकरे के०) मर्यादानोकरनार (सीमंधरे के०) मर्यादानो धरनार (खेमंकरे के०) कल्याण नो करनार उपद्रवनो टालनार (खेमंधरे के०) कल्याणनो धरनार (मणुस्सिंदे के०) मनुष्यनुं इंद्र (जणवयपिया के०) जनपद एटले देशना लोकने पिता समान (जण वयपुरोहिए के०) जनपद एटले देशना लोकने शांतिनु करनार उपद्रवनुं निवारक (से उकरे के०) मार्गनो देखाडनार (केउकरे के०) अद्भुत कार्यनो करनार (नरपवरेके०) मनुष्य मांहे प्रधान (पुरिसपवरे के०) पुरुषमांहे प्रधान (पुरिससीहे के०) पुरुष मांहे सिंह समान (पुरिसआसीविसे के०) पुरुष मांहे आशीविष सर्प समान अ पराध खमे नही (पुरिसवरपोंमरीए के०) पुरुष मांहे प्रधान पुंमरीक कमल समान (पुरिसवरगंधहत्थी के०) पुरुष मांहे प्रधान गंध हस्ति समान (अड्ढे के०) धन धा न्यादिके परिपूर्ण (दित्ते के०) दीपता (वित्ते के०) पहोला (विछिन्न के०) विस्तीर्ण एवा (विउल के०) विपुल एटले घणा (नवण के०) घर (सयणासण के०) पल्यंका

दिक आशन नद्रासन (जाण के०) पालखीप्रमुख,(वाहणाइस्से के०) गाडी घोडादिक तेणेकरीने आकीर्ण (बहुधण के०) घणो धन (बहुजातरूव के०) घणो सुवर्ण (रतए के०) घणो रजत एटले रुपु (आउगपउगसंपउत्ते के०) अर्थ लान बमणा बमणादिक तेहवो उपाय व्यापारादिक तेणे करी संयुक्तछे (विछडियपउरनत्तपाणे के०) घणा नात पाणी लोक जमेछे विशेषे देवरावेछे (बहुदासीदास के०) घणा दासी तथा दासछे (गोके०) वृषन (महीस के०) नेंस (गवेलग के०) गाय गेटी गाडरा बकरी ते (प्पनूते के०) प्रनूत एटले घणाछे वली (पडिपुस्सु के०) प्रतिपूर्णछे (कोसके०) लक्ष्मीना नंमार (कोठागारा के०) धानना नंमार (उक्षागारे के०) खड्ग त्रिसूल नालादिकना नंमार (बलवं के०) पोते बलवंतछे (डुब्बल के०) डुर्बलछे (पवामिए के०) वैरी जेना (उहतकंटयं के०) विणास्याछे समस्त गोत्री जेणे (मलियकंटयं के०) रूद्धि अपहारीने मान नंग कीधाछे गोत्री जेणे (उद्धयकंटयं के०) उदेश थकी काढयाछे गोत्री जेणे (निहयकंटयं के०) जेणे गोत्रीने हराव्याछे (अकंटयंके०) प्रतिमल वैरीयें रहितछे (उहयसत्तूके०) विणास्याछे शत्रू जेणे (निहियसत्तूके०) जेणे शत्रुने हराव्याछे (मलियसत्तूके०) रूद्धि अपहरीने मान नंग कस्याछे वैरी जेणे (उद्धियसत्तुके०) उदेश थकी कढाव्याछे वैरी जेणे (निज्जियसत्तुके०) विशेष थकी जीत्याछे वश कस्याछे वैरी जेणे (पराइयसत्तू के०) तेना राज्यने लेवे करी पराजय पमाड्याछे शत्रु जेणे वली (ववगय के०) वपगत एटले गयाछे जेना राज्यने विषे शुं गयाछे ते कहेछे (डुप्निरकके०) डुकाल डुर्निक्ष (मारिके०) देवादिकना करेला मारी मरकीना नय (नयके०) वैरीना नय थकी (विप्पमुक्कके०) रहितछे (रायवन्नउके०) एरीते राजानुं वर्णन (जहाउववाइए के०) जेम उववाइ सूत्रमां वर्णन कस्योछे तेना सरिखो (जावपसंत के०) ज्यांलगे उपशमाव्याछे (डिंबडमरंरज्जं के०) स्वचक्र परचक्रना नय ज्यां नथी एवो राज्य (पसाहेमाणे के०) पालतो थको (विहरति के०) विचरेछे (तस्सणंरन्नो के०) हवे तेराजानी (परिसाजवंति के०) परषदा केवी होए ते कहेछे. (उग्गाउग्गपुत्ता के०) उग्रकुलना उपना ते उग्रकुलना पुत्र (नोगानोगपुत्ता के०) नोगकुलना उपना ते नोगकुलना पुत्र (इरकागाइरकागाइ के०) श्रीआदीश्वरनो वंश जे इद्दवाग तेना उपना ते इद्दवागवंशना पुत्र (नायानानायानाके०) ज्ञातकुलना उपना ते ज्ञातकुलना पुत्र (कोरवाकोरवा के०) कौरवकुलना उपना ते कौरवकुलना पुत्र (नट्टानट्टपुत्ताके०) सुनटकुलना उपना ते सुनटना पुत्र (माहणामाहणपुत्ताके०) ब्राह्मणकुलना उपना ते ब्राह्मणना पुत्र (लेछइलेछइपुत्ताके०) लछाधिपति वणिक् जाति विशेष तेना पुत्र (पसछारोपसछारोपुत्ता के०) घणो जेने घरे लक्ष्मीनो विस्तार होय तेने घेर उपना ते

तेना पुत्र (सेणावइसेणावइपुत्ताके०) सेनाधिपतिना पुत्र इत्यादिक सन्नावर्णन थकी जाणवो.॥१३॥(तेसिंचणं के०) तेमांहे (एगतीएके०) कोइ एक पुरुष (सड्ढानवइके०) धर्म करवाने श्रद्धावंत धर्मार्थी होय तेने एवो (कामंतं के०) धर्मार्थी जाणीने (समणावा माहणावाके०) श्रमण ब्राह्मण मली (संके०) सम्यक् प्रकारे पोतानो धर्मप्रतिबोधवानि मित्त (पहारिंसुगमणाए के०) तेना समीपे आलोचवो चिंतवे ते केवो (तन्नअन्नतरेणंधम्मेणंपन्नत्तारोवयं के०) त्यां अमे अमारा धर्मना प्ररूपणहार आपणो धर्म प्ररूपशुं एवो आलोची राजाने संमुख आवी बोल्या (इम्मेणंधम्मेणंपन्नवइस्सामो के०) ए आगल कहे छे ते धर्म परूपशुं तेज कहेछे (सेएवंमायाणह के०) अमे धर्म कहीशुं ते एम जाणो (नयंतारो के०) अहो नय थकी राखनार (जेहामए के०) जेम ए प्रकारे अमारो (एसधम्मेसुयरकाएसुपन्नत्तेनवइ के०) ए धर्म स्वाख्यात स्वप्रज्ञप्तछे. ॥१४॥

॥ दीपिका–एवंसामान्येन दृष्टांतयोजनामुक्त्वा विशेषेण तामाह । (इहेति) इहास्मिन् लोके । खलुर्वाक्यालंकारे । प्राच्यां प्रतीच्यां दक्षिणायामुदीच्यामन्यतरस्यां वा दिशि संति विद्यंते एके केचन मनुष्यानवंति । आनुपूर्व्येणेमं लोकमाश्रित्योत्पन्नाः । तद्यथा । आर्याआर्यदेशोत्पन्नास्तदन्येऽनार्याएके उच्चैर्गोत्रानीचैर्गोत्राएके कायो महाकायः प्रांशुत्वं तद्विद्यते येषां ते कायवंतोऽन्हस्ववंतोवामनकुब्जादयः सुवर्णाः शोनन्नकांतयोडुर्वर्णाः कृष्णरूक्षादिवर्णाएके सुरूपाएके डुष्टरूपास्तेषांमध्ये महान् कश्चिदेकोराजा नवति । किंनूतः । महाहिमवन्मलयमंदरमहेंद्राणामिव सारं सामर्थ्यं धनं वा यस्य सतथा । इत्येवं राजवर्णकोयावडुपशांतडिंबडमरं राज्यं प्रसाधयन् तिष्ठति । तत्र डिंबं परानीकन्नयं डमरं स्वराष्ट्रक्षोनः । तस्य च राज्ञः पर्षत् सन्ना नवति । तद्यथा । उग्रातत्कुमाराश्च उग्रपुत्राः । एवं नोगपुत्रादयोपि ज्ञेयाः । (लेच्छइत्ति) लिप्सुकोवणिगित्यर्थः । प्रशास्तारोबुध्युपजीविनोमंत्र्यादयः सेनापतयश्च एके ॥ १३ ॥ तेषां मध्ये कश्चिदेवैकः श्रद्धावान् धर्मलिप्सुर्नवति । कामं निश्चितं तं श्रद्धावंतं श्रमणावा तदंतिकगमनाय प्रधारितवंतस्तत्प्रतिबोधाय तत्समीपे गमनं चिंतितवंतः । तत्रान्यतरेण धर्मेण स्वसमयप्रसिद्धेन प्रज्ञापयितारोवयमिति विचिंत्य तं राजानं स्वकीयेन धर्मेण प्रज्ञापयिष्यामएवं संप्रधार्य राजांतिकं गत्वा एवमूचुः । यथाहं वदामि एवं नवंतोयूयं जानीत यथा येन प्रकारेण मयैषधर्मः स्वाख्यातः सुप्रज्ञप्तोनवतीत्येवं तीर्थिकः स्वमतानुरागी राजादेः स्वानिप्रायेणोपदेशं ददाति । तत्राद्यः पुरुषस्तज्जीवतच्छरीरवादी राजानमुद्दिश्यैवं धर्मदेशनां चक्रे ॥ १४ ॥

॥ टीका–तदेवं सामान्येन दृष्टांतदार्ष्टांतिकयोर्योजनां कृत्वाऽधुना विशेषणप्रधानन्नूत

राजदार्ष्टांतिकं तडुद्धरणार्थत्वात्सर्वप्रयासस्येति दर्शयितुमाह । (इहखलुइत्यादि) इहास्मिन्मनुष्यलोके । खलु वाक्यालंकारे । इहास्मिन् लोके प्राच्यां प्रतीच्यां दक्षिणायामुदीच्यामन्यतरस्यां वा दिशि संति विद्यंते एके केचन तथाविधामनुष्या आनुपूर्व्येणेमं लोकमाश्रित्योत्पन्नान्नवंति तानेवानुपूर्व्येण दर्शयति । तद्यथेत्युपन्यासार्थः । आरायाताः सर्वहेयधर्मेन्य इत्यार्यास्तत्र क्षेत्रार्याअर्धषड्विंशतिजनपदोत्पन्नास्तद्व्यतिरिक्तास्त्वनार्याएके केचन नवंति । ते चानार्याः क्षेत्रोत्पन्नाअमी डष्टव्याः ॥ सगजगणसवरबब्बर,कायमुरुंडोडुगोडुपक्किणिया ॥ आवगाहो णरोमय,पारसखसखासिया चेव ॥ १ ॥डोंबिलयतलसबोकस,निल्लंधपुलिंदकोंबल्लमररुया ॥ कोंचाय चीण चंचुय,मालवदमिलाकुलंपाय ॥ २ ॥ केकयकिरीयहयमुह,खरमुह तह तुरगमेंढयमुहाय ॥ हयकस्मागयकस्मा, असे य अणारिया बहवो ॥ ३ ॥ पावायचंडदंडा,अणारिया णिग्घिणा णिरणुकंपा ॥ धम्मोत्ति अरकराइं, जे सुण णजंतिसुमिणेविइत्यादि । तथोच्चैर्गोत्रमिक्ष्वाकुवंशादिकं येषां ते तथाविधाएके केचन तथाविधकर्मोदयवर्तिनः । वाशब्दउत्तरापेक्षया विकल्पार्थः । तथा नीचैर्गोत्रं सर्वजनावगीतं येषांते तथा एके केचन नीचैर्गोत्रोदयवर्तिनोनसर्वे । वाशब्दः पूर्ववदेव । ते चोच्चैर्गोत्रानीचैर्गोत्रा वा । कायोमहाकायः प्रांशुत्वं तद्विद्यते येषां ते कायवंतस्तथा न्हस्ववंतोवामनककुब्जवडनादयएके केचन तथाविधनामकर्मोदयवर्तिनस्तथाशोनवर्णाः सुवर्णाः प्रतप्तचामीकरचारुदेहास्तथा डुर्वर्णाः कृमरूक्षादिवर्णाएके केचन तथा सुरूपाः सुविनक्तावयवचारुदेहास्तथा डुष्टरूपाडुरूपाबीनत्सदेहास्तेषां चोच्चैर्गोत्रादिविशेषणविशिष्टानां महान् कश्चिदेवैकस्तथाविधकर्मोदयाद्राजा नवति सविशेष्यते महाहिमवन्मलयमंदरमहेंद्राणामिव सारः सामर्थ्यं विनवोवा यस्य सतथा इत्येव राजवर्णकोयावडुपशांताडिंबडमरं राज्यं प्रसाधयंस्तिष्ठतीति । तत्र डिंबः परानीकस्तृगालिकोडमरः स्वराष्ट्रक्षोनः। पर्यायावेतावत्यादरख्यापनार्थमुपात्तौइति । तस्य चैवंविधगुणसंपडुपेतराज्ञएवंविधा पर्षन्नवतीति ।तद्यथा । उग्रास्तत्कुमाराश्चोग्रपुत्राः । एवं नोगपुत्रादयोपि डष्टव्याः ॥ शेषंसुगमं । यावत्सेनापतिपुत्रइति । णवरंलेबइत्ति । लिप्सुकःसवणिगादिस्तथा प्रशास्तारोबुध्युपजीविनोमंत्रिप्रनृतयः ॥ १३ ॥ तेषां च मध्ये कश्चिदेवैकः श्रद्धावान् धर्मलिप्सुः काममित्येवधृतार्थेऽवधृतमेतद्यथार्थं धर्मश्रद्धालुरवधार्य चतं धर्मलिप्सुतया श्रमणाब्राह्मणावा संप्रधारितवंतः समालोचितवंतोधर्मप्रतिबोधनिमित्तं तदंतिकगमनाय तत्र चान्यतरेण धर्मेण स्वसमयप्रसिद्धेन प्रज्ञापयितारोवयमित्येवंनाम संप्रधार्य तं राजानं स्वकीयेन धर्मेण प्रज्ञापयिष्यामएवं संप्रधार्य राज्ञोंतिकं गत्वैवमूचुः। तद्यथा। एतद्यथाहं कथयिष्यामि एवमितिच वक्ष्यमाणनीत्या नवंतोयूयं जानीतनयात्रातारोबा यथा येन प्रकारेण मयैषधर्मः स्वाख्यातः सुप्रज्ञप्तोनवतीत्येवं तीर्थिकः

स्वदर्शनानुरंजितोन्यस्यापि राजादेः स्वाभिप्रायेणोपदेशं ददाति । तत्राद्यः पुरुषजातस्त ज्जीवतच्छरीरवादी राजानमुद्दिश्यैवं धर्मदेशनां चक्रे ॥ १४ ॥

तं जहा उड्ढंपादतला अहे केसग्गमच्छया तिरियंतेयपरियंते जीवे एस आयापज्जवे कसिणे एसजीवे जीवति एसमय णोजीवइ सरीरे धरमाणे धरइ विणठंमिय णोधरइ एयं तं जीवियं नवति अदहणाए परेहिं निज्जइ अगणिज्जामिए सरीरे कवोतवन्नाणि अट्ठीणि नवंति आसंदीपं चमापुरिसा गामं पच्चागच्छंति एवं असंते असंविज्जमाणे जेसिंतं असं ते असंविज्जमाणे तेसिंतं सुयरकायं नवति अन्नोनवति जीवो अन्नं सरी रं तम्हा तेएवं नोविपडिवेदेंति अयमाउसो आयादीहेतिवा हस्सेतिवा परिमंम्लेतिवा वट्टेतिवा तंसेतिवा चउरंसेतिवा आयतेतिवा छलंसिए तिवा अठंसेतिवा किण्हेतिवा णीलेतिवा लोहियहालिद्दे सुक्किलेतिवा सुभिगंधेतिवा डुभिगंधेतिवा तित्तेतिवा कडुएतिवा कसाएतिवा अंबि लेतिवा महुरेतिवा कक्खडेतिवा मउएतिवा गुरुएतिवा लहुएतिवा सि एतिवा उसिणेतिवा निद्धेतिवा लुक्खेतिवा एवं असंते असंविज्जमाणे जे सिंतं सुयरकायं नवति अन्नोजीवो अन्नंसरीरं तम्हा तेणो एवं उवलभंति १५

अर्थ—हवे त्यां आदि पुरुषजात ते तज्जीव तच्छरीरवादी जीव छे ते राजाने उद्देशी पोताना धर्मनी देशना आपेछे (तंजहा के०) ते जेमछे तेम कहेछे (उड्ढंपादतला के०) पगना तलीआ थकी उपरें अने (अहेकेसग्गमच्छया के०) मस्तकना केशाग्र थकी नीचे त था (तिरियंतेयपरियंते जीवेके०) तिर्छो त्वचा जे चामडी ते पर्यंत जीव जाणवो एटला सी म शरीर थकी निकलतो जीव जुदो देखातो नथी तेथीज जणायछे के तेज शरीर अने तेज जीव एटले एशरीर तेहज जीवछे परंतु ए शरीर थकी आत्मा जुदोछे एम न जाणवुं (एसआयापज्जवेकसिणे के०) ए जे शरीरछे तेहिज आत्मानुं संपूर्ण पर्याय अवस्था विशेष जाणवो (एसजीवेजीवति के०) जेटलो काल ए काया जीवे तेटलो काल ए जीव पण जीवे (एसमयणोजीवइ के०) ए शरीर मरण पामे तेवारे जीव पण म रण पामे पण णोजीवइ एटले जीवे नहीं (सरीरेधरमाणेधरइ के०) ए शरीर ज्यां सुधी पांचनूतने धरे त्यां सुधी आत्माने पण धरे (विणिठंमिय णोधरइके०) ए शरीर विणछे

बते जीवनो पण विनाश थाय एोधरइ एटले पबी जीवने धरी न शके (एयंतंजीवियंनवति के०) ए जीवनो जीवितव्य बे तेथी शरीर विणशे थके आत्मा पण विणशे एवो करीने (अद्द णाएपरेहिंनिक्कइके०) अन्यलोक बालवाने अर्थे स्मशानादिकने विषे लेइजाय (अगणिज्ञामिएसरीरे के०)तेवारे अग्नीयें करी शरीर प्रज्वाले बते त्यां निःकेवल(कवोतवन्नाणिके०) कपोत वर्णे (अछीणिनवंति के०) अस्थि एटले हाम देखायबे परंतु तेथकी अन्य आत्मादिक पदार्थ कोइ देखाय नहीं के जे थकी आत्मानुं अस्तिपणु अमे जाणीयें (आसंदीपंचमापुरीसागामंपञ्चागबंति के०) तथा पांचमो जेनो मांचोबे एवा चार पुरुष ते मुवेलाने प्रज्वालीने पोताने गामे आवे माटे जो आत्मा शरीर थकी जुदो होय तो शरीर थकी निकलतो देखाय अने ते जेवारे नथी देखातो तो जाणियें बैए जे तेहिज शरीर अने तेहीज जीवबे (एवंके०) एरीते (असंतेके०) जीव अबतोबे (असंविज्जमाणे के०) अविद्यमान जातो थको जाणवामां नथी आवतो (जेसिंतंअसंते के०) जेनो ए पक्षबे के जीव अबतोबे (असंविज्जमाणे के०) अविद्यमानबे जेनो एवो पक्षबे (तेसिंतं के०) तेनो ए पूर्वोक्त वचन (सुयरकायंनवति के०) स्वाख्यातबे एम जाणवो अने जेनो (अन्नोन्नवतिजीवो के०) जीव अन्यबे अने (अन्नंसरीरं के०) शरीर पण अन्यबे एवुं जे कहेबे ते गाम्हरी प्रवाहे पड्या थका (तम्हा के०) तस्मात् (ते एवं के०) ते एवो (नोविपडिवेदेंति के०) जे आगल कहेशे ते नथी जाणता. तेज कहेबे (अयमाउसो के०) अहो आयुष्यमंत ए जीव शरीर थकी जुदो गणीए तो एनो शो प्रमाणबे (आयादीहेतिवा के०) आत्मा शुं दीर्घ एटले लांबोबे (हस्से तिवा के०) किंवा न्हस्व एटले अंगुग अथवा तंडुल प्रमाण न्हानोबे (परिमंमलेति वा के०) किंवा चुडी अथवा चंद्र मंमलने आकारेंबे (वट्टेतिवा के०) किंवा वाटला लाडुने आकारेंबे (तंसेतिवा के०) किंवा त्रिखूणा सीघोडाने आकारेंबे (चउरंसेति वा के०) चौखूणोबे (आयतेतिवा के०) थांना सरीखो लांबोबे (बलंसिएतिवाके०) बखूणा बहांशनोबे (अठंसेतिवा के०) आठहांसनो आठ खूणोबे (किण्हेतिवाके०) कालो वर्णेबे (णीलेतिवा के०) नीलो वर्णेबे (लोहियहालिद्देसुक्किलेतिवा के०) लाल वर्णेबे किंवा हलदर जेवा पीलो वर्णेबे किंवा उज्वलो वर्णेबे (सुब्भिगंधेतिवा के०) सुरभिगंध कपूर समानबे (डुब्भिगंधेतिवा के०) डुर्गंध गुमडादि समानबे अथवा रस आश्री (तित्तेतिवा के०) तीखो रस मिरची समानबे (कडूएतिवा के०) कडवुंरस नीमडा समानबे (कसाएतिवा के०) कसायलो काचाफल समान रसवालोबे (अंबिलेति वा के०) खाटा रस समानबे (महुरेतिवा के०) मिसरी समान मधुर रसेबे तथा स्पर्शआश्री (करकडेतिवा के०) कर्कश खरखरो फरशबे (मउएतिवा के०)

आकतुल समान सुंहालो फरशछे (गुरुएतिवा के०) लोहवत् नारी फरशछे (लहुएति वा के०) अर्कतुलवत् हलवो फरशछे (सिएतिवा के०) शीतल फरशछे (उसिणेति वा के०) उष्ण फरशछे (निद्धेतिवा के०) चीकणो फरशछे (लुक्खेतिवा के०) लुखो फरशछे एटला फरश मांथी आत्मानो कयो फरशछे (एवंअसंतेअसंविज्जमाणेजेसिं के०) ए कारण माटे जे आत्माने अछतो अविद्यमान कहे (तंसुयक्खायंनवति के०) तेनो पक्ष नलो स्वाख्यात जाणवो वली जे (अन्नोजीवो के०) अन्य जीव (अन्नंस रीरं के०) अने शरीर पण अन्यछे एम कहेछे (तम्हाके०) तस्मात् (तेणो एवंउवलप्नं ति के०) ते एवातना अजाण पणाने लीधे नथी जाणता माटे ते नास्तिकछे.॥ १५ ॥

॥ दीपिका--तद्यथा । ऊर्ध्वं पादतलादधश्च केशाग्रमस्तकात्तिर्यक्च त्वक्पर्यंतो जीवः । कोर्थः । यदेव शरीरं सएव जीवः । न शरीरादन्यः कश्चिदात्मास्ति । अयं कायएवात्मनः पर्यंतोऽवस्थाविशेषः कृत्स्नः संपूर्णः शरीरोपलंभे जीवएवोपलब्धइत्य र्थः । एषकायोयावज्जीवति तावज्जीवोपि जीवतीत्युच्यते । एषकायोयदा मृतस्तदा जीवोपिमृतइति व्यपदिश्यते । यावच्छरीरमव्यंगं धरति तिष्ठति तावज्जीवोपि विनष्टे शरी रे जीवोपि न धरति विनष्टइत्यर्थः । तदेवं यावदेतच्छरीरमच्युतं तावदेव जीवस्य तज्जीवि तं नवति विनष्टे शरीरे तद्रूपोजीवोपि विनष्टइति कृत्वाऽऽदहनायासमंताद्दहनार्थं श्म शानादौ नीयतेऽसौतस्मिंश्च शरीरेऽग्निना ध्मापिते कपोतवर्णान्यस्थीनि केवलमुपलन्यंते न कश्चित्तदपरोजीवः । ते च तद्बांधवाजघन्यतोपिच चत्वारः । आसंदी मंचकः सपंचमो येषांते आसंदीपंचमाः पुरुषास्तं कायमग्निना ध्मापयित्वा स्वं ग्रामं प्रत्यागच्छंति । यदि पुन रात्मा कायाद्भिन्नः स्यात्तदा निर्गच्छन् दृश्येत नच दृश्यते तस्मात्तज्जीवस्तदेव शरीरमिति स्थितं । एवमुक्तनीत्याऽसौ जीवोऽसन्नविद्यमानोयेषामयं पक्षोयत्काये तिष्ठन् गच्छंश्च संवे द्यमानोऽननुनूयमानोजीवइति तेषां तत् स्वाख्यातं नवति । येषां पुनरन्योजीवोऽन्यच्छरीर मेवंनूतोऽप्रमाणकएवांगीकारस्तस्मात्ते मूढतया प्रवर्तमानाएवं वक्ष्यमाणं न विप्रतिवेदयंति जानंति । यथा हे आयुष्मन् अयमात्मा शरीराद्भिन्नः स्वीक्रियमाणः किंपरिमाणः स्या दिति वाच्यं । किंदीर्घः किंह्रस्वइत्यादि संस्थानेषु किंपरिमंडलइत्यादि वर्णेषु किंकृष्णइ त्यादि गंधयोः किं सुरनिगंधइत्यादि । रसेषु किं तिक्तइत्यादि स्पर्शेषु किंकर्कशइत्यादि । तदेवं संस्थानवर्णगंधरसस्पर्शानामनावादसन्नविद्यमानोऽसंवेद्यमानोपि येषां तत् स्वा ख्यातं नवति यथान्योजीवोन्यच्छरीरमिति पक्षस्तस्मात्पृथगविद्यमानत्वात् ते जीववादि नोनैवात्मानमुपलनंते ॥ १५ ॥

॥टीका--तद्यथोर्ध्वमुपरि पादतलादधश्च केशाग्रमस्तकात्तिर्यक् च त्वक्पर्यंतोजीवः । एत

डुक्तं भवति। यदेवैतछरीरं सएव जीवोनैतस्माछरीराद्व्यतिरिक्तोस्त्यात्मेत्यतस्तत्प्रमाणएव भवत्यसावित्येवंच कृत्वैषआत्मायोयं कायोऽयमेव च तस्यात्मनः पर्यवः कृत्स्नः संपूर्णः पर्यायोऽवस्थाविशेषः तस्मिंश्च कायात्मन्यवाप्ते तदव्यतिरेकाज्जीवोप्यवाप्तएव भवति । एषच कायोयावंतं कालं जीवेदविकृतआस्ते तावंतमेव कालं जीवोपि जीवतीत्युच्यते । तदव्यतिरेकात्तथैव कायोयदा मृतोविकारभाग्भवति तदा जीवोपि न जीवति जीवशरीरयोरेकात्मकत्वात् । यावदिदं शरीरं पंचभूतात्मकमव्यंगं चरति तावदेव जीवोपीति । तस्मिंश्च विनष्टे सत्येकस्यापि भूतस्यान्यथाभावे विकारे सति जीवस्यापि तदात्मनोविनाशस्तदेवं यावदेतछरीरं वातपित्तश्लेष्माधारं पूर्वस्वभावादप्रच्युतं तावदेव तज्जीवस्य जीवितं भवति । तस्मिंश्च विनष्टे तदात्मा जीवोपि विनष्टइतिकृत्वा आदहनायासमंताद्दहनार्थं श्मशानादौ नीयते यतोऽसौ तस्मिंश्च शरीरेऽग्निध्मापिते कपोतवर्णान्यस्थीनि केवलमुपलभ्यंते न तदतिरिक्तोऽपरः कश्चिद्विकारः समुपलभ्यते यतआत्मास्तित्वशंकास्यात् । ते च तद्बांधवाजघन्यतोपि चत्वारः । आसंदी मंचकः सपंचमोयेषांते आसंदीपंचमाः पुरुषास्तं कायमग्निनाध्मापयित्वा पुनः स्वग्रामं गछंति। यदि पुनस्तत्रात्मा निजशरीराद्भिन्नः स्यात्ततः शरीरान्निर्गछन्दृश्येत नचोपलभ्यते तस्माज्जीवस्तदेव शरीरमिति स्थितं। तदेवमुक्तनीत्याऽसौ जीवोऽसन्नविद्यमानस्तत्र तिष्ठन् गछंश्चासंवेद्यमानोयेषामयं पक्षस्तेषां तत्स्वाख्यातं भवति । येषां पुनरन्योजीवोन्यछरीरमेवंभूतोऽप्रमाणकएवाभ्युपगमस्तस्मात्ते स्वयमूह्याप्रवर्तमानाएवमिति वक्ष्यमाणं तेनैव विप्रतिवेदयंति जानंति । तद्यथा । आयुष्मन् शरीराद्बहिरभ्युपगम्यमानः किंप्रमाणकः स्यादितिवाच्यं । तत्र किं दीर्घः शरीरात्प्रांशुतरः उत ह्रस्वोंगुष्ठश्यामाकतंडुलादिपरिमाणोवा । तथा संस्थानानां परिमंडलादीनां मध्ये किंसंस्थानस्तथा कृष्णादीनां वर्णानां मध्ये कतमवर्णवर्ती तथा किंगंधः षण्णां रसानां मध्ये कतमरसवर्ती तथा ऽष्टानां स्पर्शानां मध्ये कतमोयस्पर्शोवर्तते। तदेवं संस्थानवर्णगंधरसस्पर्शान्यरूपतया कथमप्यसावगृह्यमाणोऽसन्नसौ तथापि केनापि प्रकारेण संवेद्यमानोपि येषां तत्स्वाख्यातं भवति यथान्योजीवोन्यछरीरकमित्ययं पक्षस्तस्मात्पृथगविद्यमानत्वात्ते शरीरात्पृथगात्मवादिनोनैव वक्ष्यमाणनीत्यात्मानमुपलभंते ॥ १५ ॥

से जहा णाम एकेइ पुरिसे कोसीउ असिं अभिनिवट्टित्ताणं उवदंसेज्जा अयमाउसो असी अयं कोसी एवमेव णत्थि केइपुरिसे अभिनिवट्टित्ताणं उवदंसेत्तारो अयमाउसो आया इयं सरीरं से जहा णाम एकेइ पुरिसे मुंजाउ इसियं अभिनिवट्टित्ताणं उवदंसेज्जा अयमाउसो मुंजे इयं इसियं एव.मेव नत्थि केइपुरिसे उवदंसेत्तारो अयमाउसो आया इयं

सरीरं से जहा णाम एकेइ पुरिसे मंसाउअट्ठिं अभिनिवट्टित्ताणं उवदं सेज्जा अयमाउसो मंसे अयं अट्ठी एवमेव नत्थि केइ पुरिसे उवदंसे त्तारो अयमाउसो आया इयं सरीरं से जहा णाम एकेइ पुरिसे करय लाउ आमलकं अभिनिवट्टित्ताणं उवदंसेज्जा अयमाउसो करतले अयं आमलए एवमेव णत्थि केइपुरिसे उवदंसेत्तारो अयमाउसो आया इयं सरीरं से जहा णाम एकेइ पुरिसे दहिउ नवनीयं अभिनिव ट्टित्ताणं उवदंसेज्जा अयमाउसो नवनीयं अयंतु दही एवमेव णत्थि केइपुरिसे जाव सरीरं से जहा णाम एकेइ पुरिसे तिलेहिंतो तिल्लं अभि निवट्टित्ताणं उवदंसेज्जा अयमाउसो तेल्लं अयं पिन्नाए एवमेव जाव स रीरं से जहा णाम एकेइपुरिसे इक्कूतोखोतरसं अभिनिवट्टित्ताणं उवदं सेज्जा अयमाउसो खोतरसे अयं गेए एवमेव जाव सरीरं से जहा णाम एकेइ पुरिसे अरणीतोअग्गिं अभिनिवट्टित्ताणं उवदंसेज्जा अयमाउसो अरणी अयं अग्गी एवमेव जाव सरीरं एवं असंते असंविज्जमाणे जेसिं तं सुयरकायं भवति तं अन्नोजीवो अन्नं सरीरं तम्हा ते मिछा ॥ १६ ॥

अर्थ-(सेजहाणामए के०) ते जेम यथा दृष्टांते छे तेम कही देखाडे छे. नाम इति संभावनायेछे (केइपुरिसे के०) कोइ एक पुरुष (कोसीउ के०) पडीयार थकी (असिंके०) खड्ग काढीने (अभिनिवट्टित्ताणंके०) देखाडे अने (उवदंसेज्जा के०) कहे (अयमाउसो के०) हे आयुष्मंतो आ (असी के०) तलवार (अयंकोसी के०) ए पडियार एम जुदा जुदा देखाडी आपे (एवमेवणत्थिकेइपुरिसेअभिनिवट्टित्ताणंउवदंसे त्तारोअयमाउसोआयाइयंसरीरं के०) जेम ए पडिहार अने ए खड्ग एम बन्ने जुदा जु दा करी देखाडे तेम एवो कोइ पुरुष शरीर अने जीवने जुदो जुदो करी देखाडनार जगत मांहे नथी (सेजहाणामए के०) ए वचन यथा दृष्टांते करी देखाडेछे नाम इति संभाव नायेंछे (केइपुरिसेमुंजाउइसियं के०) जेम कोइ एक पुरुष मुंज एटले तृण थकी तेनो गर्भ भूत जे शली तेने (अभिनिवट्टित्ताणं के०) जुदा जुदा काढीने (उवदंसेज्जा के०) देखाडे जे ए तृण अने ए शली एम देखाडे के (अयमाउसोके०) अहो आयुष्मंत (मुं जेइयंइसियं के०) ए तृण अने ए शली (एवामेवनत्थिकेइपुरिसेउवदंसेत्तारोअयमाउ सोआयाइयंसरीरं के०) एम आत्मा अने शरीरने जुदो जुदो करी देखाडनार कोइ पुरुष

नथी (सेजहाणामए के०) ते वली यथा दृष्टांते करी देखाडेछे (केइपुरिसेमंसाउअट्ठी अनिनिव्वटित्ताणंउवदंसेज्जा के०) कोइक पुरुष मांस थकी हाड जुदा काढीने देखाडेके (अयमाउसो के०) अहो आयुष्यमंतो (मंसेअयंअट्ठीके०) आ मांस अने ए हाड (एवामेवणत्थिकेइपुरिसेउवदंसेत्तारोअयमाउसोआयाइयंसरीरं के०) एम आ आत्मा अने ए शरीर एने जुदो जुदो देखाडनार कोइ पुरुष नथी (सेजहाणामएकेइपुरिसेकरयलाउ आमलकंअनिनिव्वटित्ताणंउवदंसेज्जा के०) यथा दृष्टांते कोइ एक पुरुष करतल एटले हथेली थकी आमलो जुदो करी देखाडे (अयमाउसोकरतलेअयंआमलए के०) हे आयुष्यमंतो आ हथेली अने आ आमलो (एवमेवनत्थिकेइपुरिसेउवदंसेत्तारोअयमा उसोआयाइयंसरीरंके०) एम आ आत्मा अने आ शरीर एरीते जुदा जुदा करी देखाडनार कोइ पुरुष नथी (सेजहाणामएकेइपुरिसेदहीउनवनीयंअनिनिव्वटित्ताणंउवदंसेज्जाअयमा उसोनवनीयं अयं तुदहीएवामेवनत्थिकेइपुरिसेजावसरीरं के०) यथा दृष्टांते केइ एक पुरुष दही थकी माखण जुदो काढीने देखाडे के अहो आयुष्यमंतो आ माखण अने आ दही एम आ आत्मा अने आ शरीर एरीते जुदा जुदा करी देखाडनार कोइ पुरुष नथी. एमज यथा दृष्टांते कोइ एक पुरुष तिल थकी तेलने जुदो काढीने देखाडे के अहो आयुष्यमंतो आ तेल अने आ खल एम आत्मा अने शरीरने कोइ पुरुष जुदो करी देखाडनार नथी एमज यथा दृष्टांते कोइ एक परुष सेलडी थकी सेलडीनो रश जुदो काढीने देखाडे के अहो आयुष्यमंतो आ इक्षुरस अने आ छोतरा एम आत्मा अने शरीरने जुदो करी देखाडनार कोइ पुरुष नथी यथादृष्टांते कोइ एक पुरुष अरणी थकी अग्नी जुदो काढीने देखाडे के हे आयुष्यमंतो आ अग्नि अने आ अरणी एम शरीर अने अत्माने जुदो करी देखाडनार कोइ पुरुष नथी. ॥ (एवंअसंतेके०) एम अछतो अने (असंविज्जमाणे के०) अविद्यमान जे आत्माछे तेने पूर्वोक्त पदार्थोने जेम जुदा जुदा करी देखाडे तेम ए आत्मा अने शरीरने जुदो जुदो करी देखाडनार जगतमां कोइ पुरुष नथी (जेसिंतंसुयरवायंजवतितंके०) ते कारण माटे तेहिज जीव अने तेहिज शरीर ए पक्ष सत्य स्वाख्यात जाणवो (तम्हाके०) तस्मात् (अन्नोजीवोके०) अन्य जीव अने (अन्नंसरीरंके०) शरीर पण अन्यछे ए वचन (तेमिच्छाके०) तेमिथ्याछे ॥१६॥

॥ दीपिका–आत्मनास्तित्वं दृष्टांतैराह । (सेजहा इत्यादि) तद्यथा नाम कश्चित्पुरुषः कोशतः प्रत्याकारादसिं खड्गमभिनिवृत्य समाकृष्यान्येषामुपदर्शयेत् । तद्यथा । अयमायुष्मन् असिः खड्गः । अयं च कोशप्रत्याकारः । एवमेव जीवशरीरयोर्नास्त्युपदर्शयिता तथायं जीवइदंच शरीरमिति नास्त्येवमुपदर्शयिता कश्चिदतोन

कायाभिन्नोजीवइति । अत्रार्थे बहून् दृष्टांतानाह । तद्यथा । कश्चित्पुरुषोमुंजात्तृणविशे पात् (इसिअंति) तजर्नभूतां शलाकां पृथक् कृत्य दर्शयेत् तथा मांसादस्थि करतलादा मलकं दध्नोनवनीतं तिलेभ्यस्तैलं इक्षोरसमरणितोऽग्निमभिनिवृत्य पृथक् कृत्य दर्शयेदे वं शरीरादपि जीवं नास्त्येवमुपदर्शयिता कश्चिदतोसन्नात्मा शरीरात्पृथगसंवेद्यमानश्चे ति । येषां च स्वमतानुरागादेतत्स्वाख्यातं भवति । यदन्योजीवोन्यच्च शरीरमिति । एव मात्मा च पृथक् नोपलभ्यते तस्मात्तन्मिथ्या ॥ १६ ॥

॥टीका—तद्यथा नाम कश्चित्पुरुषः कोशतः परिवारादसिं खड्गमभिनिर्वर्त्य समाकृष्यान्येषा मुपदर्शयेत्तद्यथाऽयमायुष्मानसिः खड्गोयं च कोशः परिवारएवमेव जीवशरीरयोरपिनास्त्यु पदर्शयिता। तद्यथाऽयं जीवइदंच शरीरमिति।नचास्त्येवमुपदर्शयिता कश्चिदतः कायाभ्र भिन्नोजीवइति । अस्मिंश्चार्थे बहवोदृष्टांताः संतीत्यतोदर्शयितुमाह । तद्यथा वा कश्चि त्पुरुषोमुंजात् तृणविशेषात् (इसियंति) तजर्नभूतां शलाकां पृथक्कृत्य दर्शयेत् । तथा मांसादस्थि तथा करतलादामलकं तथा दध्नोनवनीतं तिलेभ्यस्तैलमिति । तथेक्षोरसं त थाऽरणितोऽग्निमभिनिर्वर्त्य दर्शयेदेवमेव शरीरादपि जीवमिति । नचास्त्येवमुपदर्शयिता तोऽसन्नात्माशरीरात्पृथगसंवेद्यमानश्चेति । प्रयोगश्चात्र सुखदुःखभाक् परलोकायायीना स्त्यात्मा तिलशश्छिद्यमानोपि शरीरकेपृथगनुपलब्धेर्घटात्मवत् व्यतिरेकेणच कोशखड्ग वत्तदेवंयुक्तिभिः प्रतिपादितोप्यात्माभवेत् । येषां पृथगात्मदिनां स्वदर्शनानुरागादेत त्स्वाख्यातं भवति । तद्यथा । अन्योजीवः परलोकानुयायी अमूर्तोऽन्यच्च तद्भवदृत्तिमू र्तिमच्छरीरमेतच्च पृथङ्नोपलभ्यते तस्मात्तन्मिथ्या यैः कैश्चिदुच्यते यथास्त्यात्मा पर लोकानुयायीति ॥ १६ ॥

सेहंता तंहणह खणह छणह मृहह पयह आलुंपह विलुंपह सहसा कारेह विपरामुसह एतावतावजीवे णत्थि परलोएवा ते णो एवं विप्प डिवेदेंति तंकिरियाइवा अकिरियाइवा सुक्कडेइवा दुक्कडेइवा कल्लाणे इवा पावएइवा साहुइवा असाहुइवा सिद्धाइवा असिद्धाइवा निरएइवा अनिरएइवा एवंतेविरूवरूवेहिं कम्मसमारंभेहिं विरू वरूवाइं कामभोगाइं समारंभंति भोयणाए ॥ १७ ॥ एवं एगेपागब्भि या णिक्खम्म मामगं धम्मं पन्नवेंति तंसद्दहमाणा तंपत्तियमाणा तंरो यमाणा साहु सुयक्खाए समणेतिवा माहणेतिवा कामं खलु आउसो तुमं पूययामि तं जहा असणेणवा पाणेणवा खाइमेणवा साइमेणवा

वत्थेणवा पडिग्गहेणवा कंबलेणवा पायपुंछणेणवा तत्थेगे पूयणाए समाउंहिंसु तत्थेगेपूयणाए निकाइंसु॥ १८॥

अर्थ—हवें ए पक्ष ग्रहण करनार नास्तिकछे ते देखाडेछे एवा अध्यवसायें प्रवर्त्ततो एवो नास्तिकवादि (सेहंताके०) ते पोते पण प्राणीओने हणे केमके ते प्राणातिपातने विषे दोष ने अण जाणतो थको छे माटे बीजाने पण जीवघात करवानो उपदेश आपे ते उपदेश क हेछे. (तंहणहके०) ते खड्गादिके करी प्राणीउने हणो एमां दोष नथी (खणहके०) पृथिव्यादिकने खणो (छणहके०) छेदो (भहहके०) बालो दहन करो (पयहके०) पचावो रसोइ करो (आलुंपहके०) लूंटो (विलुंपहके०) विशेषे लूंटो (सहसाकारे हके०) वस्त्र पात्रादिक सर्व अण विमास्या करो (विपरामुसहके०) इत्यादिक विपरी त मतिनुं उपदेश आपे (एतावतावजीवेणत्थिके०) एटले जीव नथी जेटले शरीर ते टलेज जीवछे (परलोएवाके०) परलोक पण नथी तो परलोकने अभावे पोतानी इछा प्रमाणे खाउ पीउं लाड करो (तेणोएवंविप्पडिवेदेंतिके०) अंही श्री सुधर्म स्वामि श्रीजंबू स्वामिने कहेछे केपरलोकने अभावे पुण्य पाप पण नथी जेनो एवो पक्षछे ते बापडा नास्ति क मतिना धणी एवाछे ते आगल वक्ष्यमाण एटले जे आगल हुं कहीश तेने नथी जा णता (तंकिरियाइवाके०) ते क्रिया एटले रुडा अनुष्ठानने नथी जाणता (अकिरिया इवाके०) माठा अनुष्ठानने नथी जाणता (सुक्कडेइवाडुक्कडेइवाके०) रुडुंकर्युं नथी जाणता तथा माठुंकर्युं नथी जाणता (कल्लाणेइवापावएइवा के०) पुण्यने नजा णे पाप नजाणे (साहुइवाअसाहुइवा के०) साधु तथा असाधुने नथी जाणता (सिद्धाइवाअसिद्धाइवा के०) सिद्धने नजाणे असिद्ध एटले संसारने नजाणे (निरए इवाअनिरएइवाके०) नारकी अने अनारकी जे तिर्यंच मनुष्य अने देवता तेने पण नजा णे (एवंतेविरूवरूवेहिं के०) एरीतें ते नास्तिकवादि विरूपरूप आत्मानो अभाव पडिवजीने (कम्मसंमारंभेहिंके०) नाना प्रकारना कर्मने समारंभे ते नाना प्रकारना कर्म ने करवे करीनें (विरूवरूवाइंकामभोगाइंसमारंभंतिभोयणाएके०) नाना प्रकारना काम भोगने संमारंभें भोजननेअर्थेभोगवे॥ १७॥ (एवंएगेपागब्भियाके०) एरीते एक नास्तिक वादि अत्यंत धृष्ठ थका एम कहे छे के (णिरकम्मके०) ए आत्मा शरीर थकी जुदो नथी एटले तेहिज शरीर अने तेहिज जीव एवा धृष्ठ पणे प्रवर्त्ते तथा पोताना दर्शन ने अनुसारे प्रवर्ज्या ग्रहण करीने (मामगंधम्मंपन्नवेंतिके०) महारो धर्म सत्यछे एवी प्ररूपणा करे (तंसद्दहमाणाके०) तेनास्तिकवादिनो भाषेलो जे धर्म तेने सर्दहता (तं पत्तियमाणा के०) तथा तेने सत्य करीमानता (तंरोयमाणा के०) तेने विषे रुचि करता

थका तथा (साहुसुयरकाएके०) ए अमारो धर्म नलो रुडो स्वाख्यातछे अने अनेरा दर्शनी बापडा मुगध लोकने परलोकनो नय देखाडी आ लोकना सुख थकी वंचेछे ते कारणे (समणेतिवाके०) अहो श्रमणो (माहणेतिवाके०) अहो ब्राह्मणो तेहिज जीव अने तेहिज शरीर ए धर्मने घणोज सारो कहीने (कामंखलुके०) निश्चे थकी ए धर्मने इह्रो (आउसोके०) अहो आयुष्यमंतो अमे तमने उह्स्या नहीकां क्यां एक कपटी दर्शनीयें तमने वेंच्यो हतो तेकारणे अमे तमारा उपकारी छैए माटे अमने (तुमंपूययामि के०) तुमे पूजो प्रत्युपकार करो (तंजहाके०) तेहिज कहेछे (असणेणवा पाणेणवा खाइमेणवा साइमेणवाके०) अशने करी पाने करी खादिमे करी स्वादिमे करी ए चतुर्विध आहारे करी पूजो (वछेणवाके०) वस्त्रे करी (पडिग्गहेणवाके०) पात्रादिके करी (कंबलेणवाके) कंबले करी (पायपुंछणेणवाके०) पायपुंछणे करी पूजो प्रतिलानो (तछेगेपूयणाएके०) त्यां कोइ एक एवी पूजाने विषे (समाउहिंसुके०) गृद्ध थया अथवा (तछेगेपूयणाएनिकाइंसु के०) त्यां कोइ एक पूजाने विषे प्रवर्त्तमान थका एवा राजादिक लोकने ते नास्तिको पोताना धर्मने विषे निश्चल करे अने तेने कहेके ए अमारो उपदेश्यो धर्म टालीने अनेरो धर्म आदरशो नही ॥ १७ ॥

॥ दीपिका—एतदध्यवसायी सनास्तिकः स्वतः प्राणिनां हंता व्यापादकः स्यात् अन्येपामपिवक्ति । हणहइत्यादि । घातयत क्षणत क्षणनं हिंसा दहत पचत आलुंपत विलुंपत सहसा कारयत विपरामृशत एतावान् शरीरमात्रएव तावज्जीवोजीवानावाच्च नास्ति परलोकः । ततस्तेन न तज्जीवतच्छरीरवादिनोनास्तिकाए तन्न विप्रतिवेदयंते नांगीकुर्वंति । तद्यथा । क्रियां सदनुष्ठानात्मिकामक्रियां वाऽसदनुष्ठानरूपां सुकृतं वा डुष्कृतं वा कल्याणंवा पापकंवा साधुकृतमसाधुकृतंवा इत्यादिका चिंतैव नास्ति । कोर्थः । सुकृतानि साधुत्वात्कल्याणफलानि डुष्कृतान्यसाधुत्वाद्विरूपफलानीति । आत्मानं विनाऽसौ चिंता न युज्यतइत्यर्थः । तथा सुकृतेन सिद्धिर्डुष्कृते नासिद्धिस्तथा डुष्कृतेनैव नरकः अनरकस्तिर्यङ्नरामरगतिरूपः स्यादित्यादिका चिंता न युक्ता । जीवस्यैवानावात् (एवंतेत्ति) एवमुक्तप्रकारेण ते नास्तिकाविरूपरूपैः कर्मसमारंनैः सावद्यानुष्ठानैर्विरूपान् कामनोगान् समारनंते समाददति तडपनोगार्थं ॥ १७ ॥ एवमुक्तप्रकारेणैके नास्तिकाः प्रागल्निकाःप्रागल्न्येन चरंति धृष्टतां प्राप्ताआत्मा नास्तीति वदंति । तथा निष्क्रम्य स्वतानुगतां प्रव्रज्यां गृहीत्वा मामकं धर्मं मदीयोऽयं धर्मइत्यंगीकृत्य परेन्यः प्रज्ञापयंति । यद्यपि नास्तिकानां नास्ति दीक्षा तथापि बौद्धादिमते प्रव्र

ज्य पश्चान्नास्तिकीभूते संभवति प्रव्रज्या। अथवा नीलपटाद्यंगीकृतः कश्चिदस्त्येव प्रव्रज्या विशेषइति। तं नास्तिकधर्मं श्रद्दधानारोचयंतः स्वमतौ प्रतियंतोऽवितथभावेन गृह्णंतः साधुशोभनमेतद्यथा स्वाख्यातोभवता धर्मः। हेश्रमण ब्राह्मण शोभनं कृतं यदयं तज्जीव तच्छरीरधर्मोऽस्माकमुक्तः काममिष्टमेतदस्माकं। खलुर्वाक्यालंकारे। हे आयुष्मन् उप कारिणं त्वां पूजयाम्यहमिति तच्छिष्यावदंति। पूजामेवाह। (असणेत्यादि) सुगमं। यावत् पादपुंछनकमिति। तत्रैके पूजायां (समाउट्टिंसु) समावृत्ताः प्रव्हीभूताराजाद यः। एके तत्र स्वमतस्थित्या निकाचितवंतस्तं नृपादिकं स्वधर्मे नियमितवंतइत्यर्थः १८

॥ टीका—एतदध्यवसायीच सलोकायतिकः स्वतः प्राणिनामेकेंद्रियादीनां हंता व्यापादको भवति प्राणातिपाते दोषाभावमभ्युपगम्यान्येषामपि प्राणुपघातकारिणामुपदेशं ददाति। तद्यथा। प्राणिनः खड्गादिना घातयत पृथिव्यादिकं खनतेत्यादिसुगमं। यावदेतावानेव शरीरमात्रएव जीवस्ततः परलोकिनोऽभावान्नास्ति परलोकोऽतस्तदभावाच्च यथेष्टमासत। तथाचोक्तं। पिब खादच साधु शोभने यदतीतं वरगात्रि तन्न ते॥ नहि भीरुगतं निवर्त ते समुदयमात्रमिदंकलेवरं। तदेवं परलोकयायिनोजीवस्याभावान्नपुण्यपापे स्तोनापि पर लोकइत्येवं येषां पक्षस्ते लोकायतिकास्तज्जीवतच्छरीरवादिनोनैवैत द्वक्ष्यमाणं प्रतिवेदयंति अभ्युपगच्छंति। तद्यथा। क्रियांवा सदनुष्ठानात्मिकामक्रियांवा असदनुष्ठानरूपां एवं नैव ते विप्रतिवेदयंति। यदिहि आत्मा तत्क्रियावान्नकर्मणोभोक्ता स्यात्ततोपापभयात्सदनुष्ठान चिंता स्यात्तदभावाच्च सत्क्रियादिचिंतापि दूरोत्सादितैव। तथा सुकृतं दुष्कृतं वा कल्या णमिति पापमिति वा साधुकृतमसाधुकृतमित्यादिका चिंतैव नास्ति। तथाहि। सुकृता नां कल्याणविपाकिनां साधुतया ऽवस्थानं दुष्कृतानां च पापविपाकिनामसाधुत्वेनावस्था नमेतदुभयमपि सत्यात्मनि तत्फलभुजि संभवति तदभावाच्च कुतोनर्थकौ हिताहितप्रा प्तिपरिहारौ स्यातां। तथा सुकृतेन कल्याणेन साध्वनुष्ठानेनाशेषकर्मक्षयरूपासिद्धिस्तथा दुष्कृतेन पापानुबंधिना असाध्वनुष्ठानेन नरकोनरकेवा तिर्यक्नरामरगतिलक्षणं स्यादित्ये वमात्मिका चिंतैव न भवेत्तदाधारस्यात्मसद्भावस्याभ्युपगमादिति भावः। पुनरपि लोकाय तिकानुष्ठानदर्शनायाह। (एवंतेइत्यादि) एवमनंतरोक्तेन प्रकारेण ते नास्तिकाआत्माभावं प्रतिपाद्य विरूपं नानाप्रकारं रूपं स्वरूपं येषांते तथा कर्मसमारंभाः सावद्यानुष्ठानरूपाः पशुघातमांसभक्षणसुरापाननिर्लांछनादिकास्तैरेवंभूतैर्नानाविधैः कर्मसमारंभैः कृषीवलानु ष्ठानादिभिर्विरूपकान् कामभोगान् समारभंतेसमाददति तदुपभोगार्थमिति ॥ १७ ॥ सांप्रतं तज्जीवतच्छरीरवादिमतमुपसंजिघृक्षुः प्रस्तावमारचयन्नाह। (एवंचेगइत्यादि)

मूर्तिमतः शरीरादन्यदमूर्तं ज्ञानमात्मन्यनुनूयते तस्य चामूर्तेनैव गुणिना नाव्यमतः श रीरात्पृथग्नूतश्चात्माऽमूर्तोज्ञानवत्तदाधारनूतोस्तीति । नचात्मान्युपगममंतरेण तज्जीव तच्छरीरवादिनः किंचिद्विचार्यमाणं मरणमुपपद्यते । दृश्यंते च तथानूतएवशरीरे म्रिय माणामृताश्च । कुतः समागतोहं कुत्र चेदं शरीरं परित्यज्य यास्यामि तथेदं मे शरीरं पुराणं कर्मेत्यधमादिकाः शरीरात्पृथग्नावेनात्मनि संप्रत्ययाअनुनूयंते । तदेवमपि स्वा नुनवसिद्ध्यात्मनि एके केचन नास्तिकाः पृथक्जीवास्तित्वमश्रद्दधानाः प्रागल्निकाः प्रागल्न्येन चरंति धृष्टतामापन्नाअनिदधति । तद्यथा । अयमात्मा शरीरात्पृथग्नूतः स्यात्ततः संस्थानवर्णगंधरसस्पर्शान्यतमगुणोपेतः स्यात् । नच ते वराकाः स्वदर्शनानु रागांधतमसावृतदृष्टयएतद्विदंति । तथा मूर्तस्यायं धर्मोनामूर्तस्य । नहि ज्ञानस्य सं स्थानादयोगुणाः संनाव्यंते । नच तत्तदनावेपि नास्तीत्येवमात्मापि संस्थानादिगुणरहि तोपि विद्यतइति । एवं युक्तियुक्तमप्यात्मानं धाष्टर्यान्नान्युपगच्छंति तथा निष्क्रम्यच स्व दर्शनविहितां प्रव्रज्यां गृहीत्वा नान्योजीवः शरीराद्विद्यतइत्येवं योधर्मोमदीयोयमित्येव मन्युपगम्य स्वतोऽपरेषां च तं तथानूतं धर्मं प्रतिपादयंति । यद्यपि लोकायतिकानां ना स्ति दीक्षादिकं तथाप्यपरेण शाक्यादिना प्रव्रज्याविधानेन प्रव्रज्य पश्चाल्लोकायतिकमधी यानस्य तथाविधपरिणतेस्तदेवानिरुचितमतोमामकोयं धर्मः स्वयमन्युपगच्छंत्यन्येषां च प्रज्ञापयंति । यदिवा नीलपटाद्यन्युपगंतुः कश्चिदस्त्येव प्रव्रज्याविशेषइत्यदोषइति । सां प्रतं तत्प्रतिज्ञापितशिष्यव्यापारमधिकृत्याह । (तंसद्दहमाणेत्यादि) तं नास्तिकवाद्यु पन्यस्तं धर्मं विषयिणामनुकूलं श्रद्दधानाः स्वमतावतिशयेन रोचयंतस्तथा प्रतिपादयंतो वितथनावेन गृण्हंतस्तथा तत्र रुचिं कुर्वंतस्तथा साधुशोननमेतद्यथास्वाख्यातोयथाव स्थितोनवतोधर्मोन्यथा सति हिंसादिष्ववर्तमानः परलोकनयात्सुखसाधनेषु मांसम द्यादिष्वप्रवृत्तिं कुर्वंतोमनुष्यजन्मफलवर्जितानवेयुः । ततः शोननमकारि नवता हेश्र मण ब्राह्मण इतिवा यदयं तज्जीवतच्छरीरधर्मोऽस्माकमावेदितः काममिष्टे तदस्माकं ध र्मकथनं । खलुशब्दोवाक्यालंकारे । हेआयुष्मंस्त्वया वयमन्युध्धृताः कार्पटिकैस्तीर्थिकै र्वंचिताः स्युरिति । तस्माडुपकारिणं त्वां नवंतं पूजयामोहमपि कंचिदायुष्मतोनगवतः प्रत्युपकारं करोमि । तदेव दर्शयति । तद्यथा । (असणेत्यादि) सुगमं यावत्पादपुंछन कमिति । तत्रैके पूर्वोक्तया पूजया पूजायां वा (समाउट्टिंसुत्ति) समावृताः प्रव्हीनू तास्ते राजानः पूजां प्रति प्रवृत्तास्तडुपदेष्टारोवा पूजामध्युपपन्नाः संतस्तं राजादिकं स्वद र्शनप्रतिपन्नमेके केचन स्वदर्शनस्थित्या हिताहितप्राप्तिपरिहारेषु निकाचितवंतोनियमि तवंतः । तथाहि । नवतेदं तच्छरीरमित्यन्युपगंतव्यमन्योजीवोन्यच्च शरीरमित्येतत् परि त्याज्यमनुष्ठानमपि एतदनुरूपमेतद्विधेयमित्येवं निकाचितवंतइति ॥ १७ ॥

पुव्वमेव तेसिं णायं नवति समणा नविस्सामो अणगारा अकिंचणा अपुत्ता अपसू परदत्तनोइणो निस्कुणोपावं कम्मं णोकरिस्सामि समुठीए ते अप्पणो अप्पडिविरया नवंति सयमाइयंति अन्नेवि आदियावेंति अन्नंपि आयतं तं समणुजाणंति एवमेव ते इबिकामनोगेहिं मुछिया गिद्धा गढिया अझोववन्ना लुद्धा रागदोसवसट्टा ते णोअप्पाणं समुछेदेंति ते णोपरं समुछेदेंति णोअस्साइं पाणाइं नूताइं जीवाइं सत्ताइं समुछेदेंति पहीणा पुव्वसंजोगं आयरियं मग्गं असंपत्ता इति ते णोहव्वाए णोपाराए अंतराकामनोगेसु विसन्ना इति पढमे पुरिसजाए तज्जीव तच्छरीरएति आहिए ॥ १९ ॥

अर्थ-(पुव्वमेवके०) एरीते पहेलोज (तेसिंके०) तेनास्तिक मतिओने (णायंनवति के०) एवो विपरीत ज्ञान होय के (समणानविस्सामोके०) अमे श्रमण संयति थइशुं (अणगाराके०) घर रहित थइशुं (अकिंचणाके०) परिग्रह रहित थइशुं (अपुत्ता के०) पुत्र मित्र कलत्रादिथी रहित थइशुं (अपसूके०) गोमहिषादिकथी रहित थइशुं (परदत्तनोइणोके०) अन्यनो दीधेलो आहार नोगवीशुं पोते पचन पाचनादिक क्रियाथी रहित थइशुं (निस्कुके०) निक्षाचर बता (णोपावकम्मंणोकरिस्सामिके०) पाप कर्म सावद्यानुष्ठान करीशुं नहीं (समुठीएके०) ऐवो नाव पडिवजीने सम्यक्प्रकारे उठी सावधान थइने पछी नास्तिक नाव प्राप्त करे लोकायतिक मार्गे आव्या थका (तेअप्पणोअप्पडिविरया नवंतिके० (ते आप पोते पापकर्म थकी अविरत थाय पोतानीज प्रतिज्ञा थकी भ्रष्ट थाय एवा थका जे करे ते कहेछे (सयमाइयंतिके०) सावद्यानुष्ठान हिंसा मृषावादादिक स्वयं पोते आदरे (अन्नेविआदियावेंतिके०) अन्यने आदरावे (अन्नंपिआयतं के०) अन्यकोइ आदरतो होय (तंसमणुजाणंतिके०) तेने अनुमोदे (एवमेवतेके०) एरीते ते (इबिकामनोगेहिंमुछियाके०) स्त्री संबंधी काम नोगने विषे मूर्छित (गिद्धा के०) गृद्ध एटले तेना अनिलाषी (गढियाके०) अधिक काम नोगने विषे बंधाणा (अझोववन्ना के०) कामनोगने विषे एकाग्र चित्ते थया (लुद्धा के०) लुब्ध थया (रागदोसवसट्टा के०) राग द्वेषने विषे पडोता (तेणोअप्पाणंसमुछेदेंति के०) ते पोताना आत्माने कर्म पास थकी न छोडावे (तेणोपरंसमुछेदेंति के०) ते अन्यने पण कर्म बंध थकी नछोडावे (णोअस्साइं पाणाइं नूताइं जीवाइं सत्ताइं समुछेदेंतिके०) ते अन्य प्राणी नूत जीव सत्व तेने पण कर्म पास थकी छोडावी नशके एवा नास्तिक

वादि (पहीणापुव्वसंजोगं के०) पूर्व संयोगजे पुत्र कलत्रादिक ते थकी पण त्रष्ट थया अने (आयरियंमग्गं के०) आर्य मार्गनेपण (असंपत्ता के०) अणपाम्या एटले नपाम्या (इतिके०) एम उजय त्रष्ट थया थका (तेणोहव्वाएके०) ते एवा प्रकारे पुष्करणीने तीरे पण रह्या नहीं अने (णोपाराएके०) पार पण पहोता नहीं (अंतराकामजोगेसुविसन्ना के०) विचाले कामजोगरूप कादवने विषेज खूता थका रह्या ते पुंमरीक कमल सरखा राजा ने उद्धरी नशके (इतिपढमपुरुषजाएतज्जीवतब्बरीरएतिआहिएके०) इति तज्जीव तब्बरी रवादिनामा एम प्रथम पुरुष जात कह्यो ॥ १ए ॥

॥ दीपिका—ये जागवतादिलिंगमंगीकृत्य पश्चान्नास्तिकाः संवृतास्तेषां पूर्वमादौ प्रव्रज्याग्रहणावसरएतत् परिज्ञातं जवति । यत् श्रमणायतयोजविष्यामोऽनगाराः किंच न इव्यं तद्रहितानिष्किंचनाश्चपुत्राश्चपशवः परदत्तजोजिनोनिह्नवः किंचित्पापं कर्म सावद्यं नकरिष्यामइति समुत्राय पश्चान्नास्तिकतां प्राप्तास्ते आत्मना स्वयं सावद्यादप्रतिविरताअनिवृत्ताजवंति । स्वयं सावद्यमाददते स्वीकुर्वंति अन्यानप्याददापयंति ग्राहयंत्यादानं समनुजानंति । एवमेव स्त्रीप्रधानाः कामजोगाः स्त्रीकामजोगास्तेषु मूर्छिताग्टद्धाअध्युपपन्नाआधिक्येन जोगेषु लुब्धारागद्वेषार्ताः संतोनात्मानं संसारात्समुच्छेदयंति । नापि परं समुच्छेदयंति नाप्यन्यान् प्राणिनोजूतानि जीवान् सत्वान् समुच्छेदयंत्यसदनिप्रायप्रवृत्तत्वात् । ते चैवंविधालोकायतिकाः पूर्वसंयोगात्पुत्रादिकात्प्रहीणाभ्रष्टाआर्यमार्गं सदनुष्ठानरूपमसंप्राप्ताइति लोकद्वयसदनुष्ठानभ्रष्टाअंतरालएव जोगेषु विषसास्तिष्ठंति न पुंडरीकोत्क्षेपादिकार्यं साधयंतीत्ययं तज्जीवतब्बरीरवादीप्रथमः पुरुषः समाप्तः ॥ १ए ॥

॥ टीका—तत्र ये जागवतादिकं लिंगमन्युपगताः पश्चाल्लोकायतग्रंथश्रवणेन लोकायताः संवृतास्तेषामादौ प्रव्रज्याग्रहणकालएवैतत्परिज्ञातं जवति । तद्यथा । परित्यक्तपुत्रकलत्राः श्रमणायतयोजविष्यामोऽनगारागृहरहितास्तथा निष्किंचनाः किंचनइव्यं तद्रहितास्तथाऽपशवोगोमहिष्यादिरहिताः परदत्तजोजिनः स्वतः पचनपाचनादिक्रियारहितत्वात् निह्नणशीलानिह्नवः किय द्वद्यतेऽन्यदपि यत्किंचित्पापं सावद्यं कर्मानुष्ठानं तत्सर्वं नकरिष्यामीत्येवं सम्यगुत्थानेनोत्थाय पूर्वं पश्चाल्लोकायतिकमुपगताआत्मनः स्वतः कर्मन्योऽप्रतिविरताजवंति । विरत्यजावेपि यत्कुर्वंति तद्दर्शयति । पूर्वं सावद्यारंजान्निवृत्तिं विधाय नीलपटादिकं च लिंगमास्थाय च स्वयमात्मना सावद्यमनुष्ठानमाददते स्वीकुर्वंति अन्यान्यप्याददापयंति ग्राहयंत्यन्यमप्यादानं परिग्रहं स्वीकुर्वंतं समनुजानंति । एवमेव पूर्वोक्तप्रकारेण स्त्रीप्रधानाः स्त्रियोपलक्षितावा काम्यंतइति कामाजुज्यंतइति जोगास्तेषु सातबहु

लतया ऽजितेंड्रियाः संतस्तेषु कामनोगेषु मूर्बिताएकीनावतामापन्नागृद्धाः कांक्षावंतो ग्रथिताअवबद्धाअध्युपपन्नाआधिक्येन नोगेषु लुब्धारागद्वेषार्तारागद्वेषवशगाः काम नोगांधावा तएवं कामनोगेषु आश्रवबद्धाः संतोनात्मानं संसारात्कर्मपाशाद्वा समुच्छे दयंति मोचयंति नापि परं सडुपदेशदानतः कर्मपाशावपाशितं समुच्छेदयंति कर्मबंधात्रोट यंति नाप्यन्यान् दशविधप्राणवर्तिनः प्राणान् प्राणिनस्तथा वानूवन् नवंति नविष्यं तिच नूतानि तथा वा आयुष्कधारणाज्जीवास्तांस्तथा सत्वास्तथाविधवीर्यांतरायक्षयोप शमापादितवीर्यगुणोपेतास्तान्नसमुच्छेदयंति । असदनिप्रायप्रवृत्तत्वात् । ते चैवंविधास्त ज्जीवतच्छरीरवादिनोलोकायतिकाअजितेंड्रियतया कामनोगावसक्ताः पूर्वसंयोगात्पुत्रदा रादिकात्प्रहीणाः प्रन्नष्टाआराद्याताः सर्वहेयधर्मेन्यइत्यार्योमार्गः सदनुष्ठानरूपस्तमसं प्राप्ताइत्येवं पूर्वोक्तया नीत्या ऐहिकामुष्मिकलोकद्वयसदनुष्ठानन्रष्टाअंतरालएव नोगे षु विषस्पास्तिष्ठंति । न विवक्षितं पौंमरीकोत्क्षेपणादिकं कार्यं प्रसाधयंतीति । अयं च प्रथमःपुरुषस्तज्जीवतच्छरीरवादी परिसमाप्तइति ॥ १९ ॥

अहावरे दोच्चे पुरिसजाए पंचमहब्भूतिएति आहिज्जइ इह खलु पाइ णंवा संतेगतियामणुस्सा नवंति अणुपुव्वेणं लोयं उववन्ना तं जहा आरि यावेगे अणारियावेगे एवं जाव डुरूवावेगे तेसिंचणं महंएगे राया नव इ महाएवंचेव णिरविसेसं जाव सेणावइपुत्ता तेसिंचणं एगेतिए सड्ढा न वंति कामंतं समणाय माहणाय पहारिंसु गमणाए तछ अन्नयरेणं धम्मे णं पन्नत्तारो वयं इमेणं धम्मेणं पन्नवइस्सामो सेएवं मायाणहनयंतारो जहाए एसधम्मे सुअक्खाए सुपन्नत्ते नवंति ॥ २० ॥

अर्थ-(अहावरेदोच्चेपुरिसजाए के०) अथ हवे अपर एटले बीजो पुरुषजात को णडे ते हुं कहुंछुं माटे हे श्रमणो तमे सांनलो (पंचमहब्भूतिएति के०) जे पुरुष पृथ्व्यादिक पांच महानूत तत्वे करी माने ते पांच महानूतिक पुरुष सांख्यमति (आहिज्ज इ के०) कहिए ते प्रथम पुरुषनी परे ज्यांलगे राजसनामां आवी राजा प्रत्ये पोतानो धर्म रुडो करी प्रकाशे तेनी पेरे कहेछे (इहखलुपाइणंवाके०) निश्चे आ संसारमां पूर्वादिक दिशिने विषे (संतेगतियामणुस्सानवंतिके०) कोइएक मनुष्य पंचमहानूतिक सांख्य मतिछे (अणुपुव्वेणंलोयंउववन्ना के०) ते अनुक्रमे लोकमांहे उपना (तंजहाके०) ते कहेछे (आरियावेगेके०) एक आर्य मनुष्यते साडा पचीश आर्य देशना उपना (अणारियावेगे के०) एक अनार्य मनुष्यते अनार्य देशना उपना (एवंजावडुरूवावेगे के०)

एम यावत् कोइएक मनुष्य कुरूपवंत ले इत्यादिक अर्थ आगल लखाइ गयाले (तेसिंचणं के०) ते मनुष्य मांहे (महंएगेरायाजवइ के०) एक महोटो राजा होय तेकेवो तोके (महाएवंचेव के०) महोटो हिमवंत पर्वतादिक समान होय (णिरविसेसं के०) एमज पूर्ववत निरविशेष (जावसेणावइपुत्ता के०) यावत् सेनापतिना पुत्र केवा (तेसिंचणं के०) तेमांहे (एगेतिएसड्ढाजवंति के०) कोइ एकने धर्म करवानी श्रद्धा होय एटले धर्मार्थी होय (कामंतं के०) तेने धर्मार्थी जाणीने (समणा य माहणाय के०) श्रमण अने ब्राह्मण मलीने तेना समीपे धर्म प्रतिबोधवा निमित्ते (पहारिंसुगमणाए के०) आलोचवो चिंतवीने आवे (तब के०) त्यां (अन्नयरेणंधम्मेणंपन्नत्तारोवयं के०) अनेरो पोतानो धर्म प्ररूपण हार एटले धर्मोपदेशक थइने (इमेणं के०) ए आगल कहेशे तेरीते (धम्मेणंपन्नवइस्सामो के०) राजानी आगल धर्म कहीशुं एम आलोचीने (सेएवं के०) तेएम (मायाणहुजयंतारो के०) माहरो धर्म कहुं अहो जयथकी राखनार ते (जहाए के०) जेम (एसधम्मे के०) महारो एधर्म (सुअरकाए के०) स्वाख्यात (सुपन्नत्तेजवंति के०) रुडो प्ररूपवो होय ॥२०॥ हवे ते राजा आगल जेवी रीते धर्म प्ररूपे तेवी रीते आगल कहेछे.

॥ दीपिका—अथापरोद्वितीयः पुरुषजातः पंचजिर्जूतैः पृथिव्यप्तेजोवायुव्योमाद्यैश्चरति पांचजौतिकः। सांख्याजीवस्य तृणमोटनेप्यसामर्थ्यं । जूतरूपायाः प्रकृतेरेव सर्वकर्तृत्वमिति तन्मतं । नास्तिकविशेषोवा पंचजूतव्यतिरिक्तनास्तित्वांगीकारात् । (आहिज्जइ) आख्यायते । अत्र च प्रथमपुरुषगमेन इह खलु पाईणंवा इत्यादिकोग्रंथः सुपन्नत्ते जवतीत्येतदंतोज्ञेयः ॥ २० ॥

॥टीका—प्रथमपुरुषानंतरं द्वितीयं पुरुषजातमधिकृत्याह । (अहावरेदोच्चे इत्यादि) अथशब्दआनंतर्यार्थे । प्रथमपुरुषानंतरमपरोद्वितीयः पुरुषएव पुरुषजातः पंचजिः पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशाख्यैश्चरति पांचजौतिकः । पंचवा जूतानि अज्युपगमद्वारेण विद्यंते यस्यसपंचजूतिको मत्वर्थीयष्ठन् । सच सांख्यमतावलंब्यात्मनस्तृणकुब्जीकरणेप्यसामर्थ्याज्युपगमात् इष्टव्योलोकायतमतावलंबी नास्तिकोजूतव्यतिरिक्तत्वाज्युपगमादाख्यायते प्रथमपुरुपानंतरमयं पंचजूतात्मवाद्यजिधीयते चेति । अत्र च प्रथमपुरुषगमने (इहखलुपाईणं) चेत्यादिकोग्रंथः सुपस्नत्तेजवतीत्येतत्पर्यवसानोवगंतव्यइति ॥ २० ॥

इहखलु पंचमहब्भूता जेहिं नोकज्जइ किरियातिवा अकिरियातिवा सुक्कडेतिवा डुक्कडेतिवा कल्लाणेतिवा पावएतिवा साहुतिवा सिद्धितिवा असिद्धितिवा णिरएतिवा अणिरएतिवा इति अंतसो तणमायमवि ॥२१॥

अर्थ-(इहखलु के०) निश्चें आसंसारने विषे (पंचमहब्भूता के०) पांच महोटा भूत सर्व जगतमां व्यापी रह्याछे (जेहिंनोकज्जइकिरियातिंवाअकिरियातिवा के०) ते हिज पांच भूते अमे क्रिया अक्रिया सर्व करियें परंतु जेहिं एटले जे छगो आत्मा ए वे नामे पदार्थछे ते क्रिया अक्रिया नोकज्जइ एटले नथी करतो तथा सुक्कडेतिवा दुक्कडेतिवा कल्लाणेतिवा पावएतिवा साहुतिवा सिद्धितिवा असिद्धितिवा णिरएतिवा अणिरएतिवा एटले सुकृत करणी दुष्कृत करणी कल्याण कारी क्रिया पापकारी क्रिया साधु एटले भली क्रिया असाधु एटले माठी क्रिया सिद्धि एटले मोक्ष जवा योग्य क्रिया असिद्धि एटले मोक्ष न जवा योग्यक्रिया नरक जवा योग्य क्रिया नरके नजवा योग्य क्रिया ए सर्व आत्मा नथी करतो (अंतसोतणमायमवि के०) ए कारणे सांख्यने मते जे कांइ सूक्ष्म तृणनु नमाववो तेनो पण उपदेश पांच भूतज करेछे पण आत्मा सर्वथा कांइ पण नथी करतो ॥ २१ ॥

॥ दीपिका-सांख्यनास्तिकयोर्मतमाह । इह मते पंच महाभूतानि यैर्नोऽस्माकं क्रिया व्यापारता वा नक्रियते सुकृतं दुष्कृतंवा कल्याणं पापकमिति या साध्वितिवा सिद्धिर्मुक्तिरसिद्धिः संसारोनरकोऽनरकस्तिर्यङ्नरामरगतिः । एतत्सर्वं सत्वरजस्तमोरूपा प्रकृतिरेव भूतरूपा करोति । आत्मा केवलमुपभुंक्ते नतु करोति किंचित् । नास्तिकाभिप्रायेणापि इहैव सुखदुःखे स्वर्गनरकौ इत्युच्यतइति । एवमंतशस्तृणमात्रमपि यत्कार्यं तद्भूतैरेव प्रकृतिरूपापन्नैः क्रियते । एवं सांख्यमते आत्मा किंचित्करः । नास्तिकमतेतु आत्मनः सर्वथाप्यभावस्ततो द्वयोरपि भूतान्येव सर्वकार्यकर्तृणीति ॥ २१ ॥

॥ टीका-सांप्रतं सांख्यस्य लोकायतिकस्य चाभ्युपगमं दर्शयितुमाह । (इहखलुपंचमहब्भूताइत्यादि) इहास्मिन् संसारे द्वितीयपुरुषवक्तव्यताधिकारे वा । खलुशब्दोवाक्यालंकारे । पृथिव्यादीनि पंचमहाभूतानि विद्यंते महांति च तानिच महाभूतानि सर्वव्यापितयाभ्युपगमात् महत्वं । तानिच पंचैव । परस्य षष्ठस्य क्रियाकर्तृत्वेनानभ्युपगमाद्यैर्हि पंचभिर्भूतैरभ्युपगम्यमानैर्नोऽस्माकं क्रिया परिस्पंदात्मिका चेष्टारूपा क्रियते क्रिया वा निर्व्यापारतया स्थितिरूपा क्रियते । तथाहि । तेषां दर्शनं सत्वरजस्तमोरूपा प्रकृतिर्भूतात्मभूताः सर्वाअर्थक्रियाः करोति पुरुषः केवलमुपभुंक्तेऽध्यवसितमर्थं पुरुषश्चेतयतीति वचनात् । बुद्धिश्च प्रकृतिरेव तद्विकारत्वात् । तस्याश्च प्रकृतेर्भूतात्मिकायाः सत्वरजस्तमसां चयापचयाभ्यां क्रियाक्रिये स्यातामिति कृत्वा भूतेभ्यएव क्रियादीनि प्रवर्तंते तद्व्यतिरेकेणापरस्याभावादिति भावः । तथा सुष्ठु कृतं सुकृतमेतच्च सत्वगुणाधिक्येन भवति ।

तथा दुष्टं कृतं दुष्कृतमेतदपि रजस्तमसोरुत्कटतया प्रवर्त्तते । एवं कल्याणमिति वा पापकमितिवा साध्वितिवा असाध्वितिवा इत्येतत्सत्वादीनां गुणानामुत्कर्षानुत्कर्षतया यथा संनवमायोजनीयं । तथेप्सितार्थनिष्ठानं सिद्धिविपर्ययः स्वसिद्धिर्निर्वाणं वा सिद्धिः संसारः संसारिणां तथा नरकः पापकर्मिणां यातनास्थानमनरकस्तिर्यङ्मनुष्यामराणामेतत्सर्वं सत्वादिगुणाधिष्ठिता नूतात्मिका प्रकृतिर्विधत्ते । लोकायतानिप्रायेणापीहैव तथा विधसुखडुःखावस्थाने स्वर्गनरकावितीत्येवमंतशस्तृणमात्रमपि यत्कार्यं तद्भूतैरेव प्रधानरूपापन्नैः क्रियते । तथा चोक्तं । सत्वं लघुप्रकाशकमिष्टमुपष्टंनकं चलंच रजः ॥ गुरुचरणकमेव तमः प्रदीपवच्चार्थतोवृत्तिरित्यादि । तदेवं सांख्यानिप्रायेणात्मनस्तृणकुब्जीकरणेप्यसामर्थ्याल्लोकायतिकानिप्रायेण त्वात्मनएवानावाद्भूतान्येव सर्वकार्यत्वात्कर्तृणीत्येवमन्युपगमस्तानिच समुदायरूपापन्नानि नानास्वनावं कार्यं कुर्वंतिं ॥ २१ ॥

तं च पिढुद्देसेणं पुढोनूतसमवातं जाणेज्जा तं जहा पुढवी एगे महप्नूते आऊ दुच्चे महप्नूते तेऊतच्चेमहप्नूते वाऊचउत्थेमहप्नूते आगासे पंचमे महप्नूते इच्चेते पंचमहप्नूया अणिम्मिया अणिम्माविता अकडा णोकित्तिमा णोकडगा अणाइया अणिहणा अवंजा अपुरोहिता सतंता सासता आयछ्ठा पुण एगे एवमाहु सतो णच्छि विणासो असतो णच्छि संनवो ॥ २२ ॥

अर्थ—(तंचपिढूद्देसेणंपुढोनूतसमवातंजाणेज्जाके०) ते पांचनूतनो समवाय पृथक् एटले जुदो जुदो जाणवो (तंजहाके०) ते कहेछे. (पुढवीएगेमहप्नूते के०) पृथवी पर्वतादिक ए एक महानूत जाणवो (आऊडुच्चेमहप्नूते के०) पाणी नदी सरोवर समुद्रादिकनो ए बीजो महानूत जाणवो (तेऊतच्चेमहप्नूते के०) अग्नि ते उष्ण अजवालानो कारण ए त्रीजो महानूत जाणवो (वाऊचउत्थेमहप्नूते के०) वायु वृक्ष कंपननो लक्षण ए चोथो महानूत जाणवो (आगासेपंचमेमहप्नूते के०) आकाश अवकाश लक्षण ए पांचमो महानूत जाणवो (इच्चेतेपंचमहप्नूया के०) ए पांच महानूत ते (अणिम्मिया के०) ईश्वरादिके नीपजाव्या नथी (अणिमाविता के०) हवे नीपजाववा पण नथी (अकडा के०) कोइना करेला नथी (णोकित्तिमा के०) घटादिकपदार्थनी पेरे कृत्रिम नथी (णोकडगा के०) तेनी निष्पत्तिने विषे अन्य कोइनी अपेक्षा नथी (अणाइया के०) तेनी आदि नथी (अणिहणा के०) तेनो अंत नथी (अवंजा के०) अवंध्यते समस्त कार्यना करनार जाणवा (अपुरोहिता के०) तेओने कार्यने विषे प्रवर्त्तावनार कोइ नथी (सतंता के०) स्वाधीनछे (सा

सता के०) शाश्वता बे (आयबहा के०) आत्माबे जेने बहो एवा ए पांचमहानूत जाणवा (पुणएगेएवमाहु के०) एक वली एम कहेबे (सतोणविविणासोके०) बतो विद्यमान पदार्थ तेनो विनाश नथी (असतोणबिसंनवो के०) अविद्यमान शशशृंगादिकनो उत्पत्तिनो संनव नथी ए कारणे सांख्य दर्शनवालो आत्माने कर्त्ता नथी मानतो जो आत्मा कर्त्ता होय तो अबति वस्तु उपजावे ते कारणे आत्मा कर्त्ता नथी. ॥१२॥

॥ दीपिका–तं च नूतानां समवायं पृथग्नूतपदोद्देशेन जानीयात् । तद्यथा । पृथिव्येका महानूतमित्यादि । एषां कायाकारतया यः समवायः सएकत्वे लक्ष्यते । इत्येतानि पंच महानूतान्यनिर्मितानि कालेश्वरादिना केनचिदकृतानि परेणाऽनिर्मापयितव्यानि अकृतानि विश्रसापरिणामेन निष्पन्नत्वात् । तथा न घटवत्कृत्रिमाणि अनादीनि अनिधनानि आद्यंतरहितानि अवंध्यान्यवश्यकार्यकर्तृणि नविद्यते पुरोहितः कार्यं प्रतिवर्तयिता येषां तान्यपुरोहितानि स्वतंत्राणि शाश्वतानि नित्यानि आत्मषष्ठानि पंच महानूतानीत्येकआहुः । सांख्यानामात्मा किंचित्करः । नास्तिकानांतु कायाकारपरिणतानि नूतान्येवाभिव्यक्तचैतन्यान्यात्मव्यपदेशं लनंते । तदेवं सांख्यमते सतोविद्यमानस्य प्रधानादेर्नास्तिविनाशोऽसतः शशविषाणादेर्नास्ति संनवः । यडुक्तं । नासतोजायतेनावो नानावोजायतेसतइति ॥ १२ ॥

॥ टीका–तंच तेषां समवायं पृथग्नूतपदोद्देशेन जानीयात् । तद्यथा । पृथिव्येकाकाठिन्यलक्षणा महानूतं । तथापोद्रवलक्षणामहानूतं तथा तेजउष्णोद्योतलक्षणं तथा वायुर्धृतिकंपनलक्षणस्तथावगाहदानलक्षणं सर्वद्रव्याधारनूतमाकाशमित्येवं पृथग्नूतपदोद्देशेनकायाकारतया यस्तेषां समवायः सएकत्वेपि लक्ष्यते इत्येतानि पूर्वोक्तानि पृथिव्यादीनि संख्याह्युपादीयमाना संख्यांतरं निवर्तयतीति कृत्वा नन्यूनानि नाप्यधिकानि विश्वव्यापितया महांति त्रिकालनवनाद्भूतानि । तदेवमेतान्येव पंच महानूतानि प्रकृतेर्महान् महतोहंकारस्तस्माच्च गणः षोडशकस्तस्मादपि षोडशकात्पंचन्यः पंचनूतानीत्येवं क्रमेण व्यवस्थितान्यपरेण लोकेश्वरादिना केनचिदनिर्मितान्यनिष्पादितानि । तथा परेणानिर्मापयितव्यानि तथा कृतानि न केनचित्तानि क्रियंते । अत्रेंद्रधनुरादिवद्विस्रसापरिणामेन निष्पन्नत्वात्तथा नघटवत्कृत्रिमाणि कर्तृकरणव्यापारसाध्यानि ननवंतीत्यर्थः । तथा परानावतया नोनैव कृतकानि । अपेक्षितपरव्यापारस्वनावनिष्पत्तौ नावः कृतकइतिव्यपदिश्यते । तानि च विस्रसापरिणामेन निष्पन्नत्वात्कृतकव्यपदेशनांजि न नवंति तथा नाद्यनिधनानि अवंध्यान्यवश्यकार्यकर्तृणि तथा न विद्यते पुरोहितः कार्यं

प्रति प्रवर्तयिता येषां तान्यपुरोहितानि स्वतंत्राणि स्वकार्यकर्तृत्वं प्रत्यपरनिरपेक्षाणि शाश्वतानि नित्यानि वा नकदाचिदनीदृशं जगदिति वचनात्तदेवंभूतानि पंच महाभूतान्यात्मषष्ठानि। पुनरेके एवमाहुरात्मावा किंचित्कारः सांख्यानां लोकायतिकानां पुनः कायाकारपरिणतान्येव भूतान्यभिव्यक्तचेतनानि आत्मव्यपदेशं भजंतइति । तदेवं सांख्याभिप्रायेण सतोविद्यमानस्य प्रधानादेर्नास्ति विनाशोऽत्यंताभावरूपोनाप्यसतः शशविषाणादेः संभवः समुत्पत्तिरस्ति कार्यस्य विद्यमानस्यैवोत्पत्तिरिष्टा नासतः सर्वस्मात्सर्वस्योत्पत्तिप्रसंगात् । तथाचोक्तं । नासतोजायते भावोऽनाभावोजायते सतइत्यादि तथा असतः खरविषाणादेरकरणाडुपादानकारणस्यच मृत्पिंडादेर्घटार्थिनोपादानादिभ्यश्च हेतुभ्यः कारणे सत्कार्यवादः ॥ २२ ॥

एतावतावजीवकाए एतावतावअत्थिकाए एतावतावसव्वलोए एतं मुहं लोगस्स करणयाए अवियंतसो तणमायमवि ॥ २३ ॥

अर्थ-(एतावतावजीवकाए के०) ते सांख्य एम कहेले के जीवकाय जे छे एटलोज पांच भूत जाणवो कार्यनो करनार पण एटलोज जाणवो (एतावतावअत्थिकाए के०) वली एटलोज अस्तिकाय टाली बीजो पदार्थ पण कोइ नथी (एतावतावसव्वलोए के०) एटलोज सर्वलोक पांचभूत आत्मिक जाणवो (एतंमुहंलोगस्सकरणयाए के०) लोकने करवे एहिज मुख्य प्रधान कारण जाणवो (अवियंतसोतणमायमवि के०) तृण मात्र कार्यनुं करनार पण ए पांचभूत टाली बीजो कोइ नथी ॥ २३ ॥

॥ दीपिका-एतावानेव भूतमात्रएव जीवकायः। एतावानेवास्तिकायोनापरः कश्चित्पदार्थः एतावानेव सर्वलोकः । तथा एतदेव पंचभूतास्तित्वं मुख्यं कारणं लोकस्य सांख्यस्य हि प्रधानात्मन्यांसृष्टेरुत्पत्तिर्नास्तिकस्यतु भूतान्येवांतशस्तृणमात्रमपि कार्यं कुर्वंति ॥ २३ ॥

॥ टीका-तदेवमेतावानेव तावदिति सांख्योलोकायतिकोवा माध्यस्थ्यमवलंब्यमानएवमेवाह । तद्यथा । निर्युक्तिनिर्विचार्यमाणस्तावदेतावानेव जीवकायोयडुत पंचमहाभूतानि यतस्तान्येव सांख्याभिप्रायेण प्रधानरूपतापन्नानि सत्वादिगुणोपचयापचयाभ्यां सर्वकार्यकर्तृण्यात्मा वा किंचित्करत्वादसत्कल्पएव लोकायतस्यतु सनास्त्येवेत्यतएतावानेव भूतमात्रएव जीवकायस्तथा एतावानेव भूतास्तित्वमात्रएवास्तिकायोनापरः कश्चित्तीर्थिकाभिप्रेतः पदार्थोस्तीति । तथा एतावानेव सर्वलोकोयडुत पंचमहाभूतानि प्रधानरूपापन्नान्यात्मा चाकर्ता निर्गुणः सांख्यस्य लोकायतिकस्यतु पंचभूतात्मकाएव लोकास्तदतिरिक्तस्यापरस्य पदार्थस्याभावादिति । तथा एतदेव पंचभूतास्तित्वं मुख्यं. कारणं लोक

स्यैतदेंव चरणकरणतया सर्वेकार्येषु व्याव्रियते । तथाहि । सांख्यस्य प्रधानात्मन्यां सृष्टिरुपजायते । लोकायतिकस्यतु भूतान्येवांतस्तृणमात्रमपि कार्यं कुर्वंति तदतिरिक्तस्यापरस्याभावादिति भावः ॥ २३ ॥

से किणंकिणावेमाणे हणंघायमाणे पयंपयावेमाणे अविअंतसो पुरिसमविक्किणित्ता घायइत्ता एडंपि जाणाहिं णत्थित्थदोसो ते णोएवं विप्पडिवेदेंति तंजहा किरियाइवा जाव णिरएइवा एवंते विरूवरूवेहिं कम्मसमारंभेहिं विरूवरूवाइं कामभोगाइं समारभंति भोयणाए एवमेव ते अणारिया विप्पडिवन्ना तं सद्दहमाणा तं पत्तियमाणा जावइति ते णो हव्वाए णोपाराए अंतरा कामभोगेसु विसण्णा दोच्चे पुरिसजाए पंचमहभूतिएत्ति आहिए ॥ २४ ॥

अर्थ—हवे एक वादी एम कहेछे के आत्मा सर्वथापि नथी वली एक वादी एम कहेछे के आत्माछे परंतु क्रिया कांइ करतो नथी तो तेने मते आत्माने शुभाशुभ कर्मनो बंध नथी एवो देखाडेछे (सेकिणंकिणावेमाणे के०) ते क्रियानो अर्थी पुरुष कोइएक जातनो क्रियाणो लेतो अथवा अन्य पाशें लेवरावतो (हणंघायमाणे के०) तथा प्राणीउने हणतो अथवा अनेरा पाशे हणावतो (पयंपयावेमाणे के०) पचन पाचनादि क्रिया पोते करतो अथवा अनेरा पाशे करावतो थको (अविअंतके०) पण निश्चेकरी जाणे (सोपुरिसमविक्किणित्ताके०) अथवा ते पुरुष पंचेंद्रीने मोले वेचातु लेइने (घायइत्ताके०) हणतो थको (एडंपिजाणाहिंके०) अहींयां पण ते एवुं जाणे के (णत्थित्थदोसो के०) ते हिंसाना दोषनो विभागी न थाय एवो जाणी यथाछंदे हिंसादिक सावद्य व्यापारमां प्रवर्त्ते (तेणोएवंविप्पडिवेदेंतिके०) ते बापडा मूर्ख एटलो न जाणे शुं नजाणे (तंजहाके०) ते कहेछे (किरियाइवाके०) क्रिया एटले रूडो अनुष्ठान ते नजाणे (जावणिरएइवाके०) ज्यां शुधी नरक नजाणे एम सर्व पूर्ववत् जाणवो (एवंतेविरूवरूवेहिं के०) एम ते नाना प्रकारना (कम्मसमारंभेहिंके०) कर्मनो समारंभ करता (विरूवरूवाइंकामभोगाइंसमारभंति के०) न्हाना प्रकारना कामभोगने समारंभे (भोयणाए के०) आहारने अर्थे भोगवता (एवमेवतेअणारियाविप्पडिवन्ना के०) एरीते ते अनार्य पोतानो धर्म रुडो करी प्ररूपता कामभोगने विषेमूर्छाणा थका (तंसद्दहमाणा के०) ते पाखंडी धर्म ने सर्द्दहता थका (तंपत्तियमाणा के०) तेनी प्रतीत करता थका (जावइतिते के०), ज्यां शुधी ए प्रकारे ते (णोहव्वाए .के०) तीरें पण रह्या नही

अने (णोपाराए के०) पार पण पाम्या नही इहलोक परलोकथी भ्रष्ट थया थका (अं तराकामभोगेसुविसन्ना के०) विचाले कामभोगने विषे संसार मांहेज खूता रहे पण पुंमरक कमल सरखा राजाने उद्धरी शके नही (दोच्चेपुरिसजाए के०) ए बीजो पुरुष जात (पंचमहभूत्तिएतिआहिए के०) ए पंचमहाभूतिक नामे कह्यो. ॥ २४ ॥

॥ दीपिका—आत्मनोऽकिंचित्करत्वात्सांख्यमतेऽसत्वान्नास्तिकमते न कर्मभिर्बंधइत्याह। सक्रयार्थी पुरुषः क्रीणन् किंचिद्वस्तु मूल्येन गृह्णन् परं क्रीणयन् मूल्येन ग्राहयन् तथा प्राणिनोघ्नन् हिंसन् परैर्घातयन् तथा पचन् पाचयन् एतानि कुर्वतोन्यानप्यनुजानन्नप्यं तशः पुरुषमपि पंचेंद्रियं विक्रीय हत्वा घातयित्वाऽत्रापि पंचेंद्रियवधे नास्ति दोषः। अत्रैवं जानीहि किंपुनरेकेंद्रियवधइत्यपिशब्दार्थः। ततस्ते नैवैतद्विप्रतिवेदयंति जानंति। तद्यथा। क्रिया वलनात्मिका सावद्यानुष्ठानरूपा अक्रिया स्थानरूपा यावदेवमेव विरूपविरूपैर्नाना रूपैः कर्मसमारंभैः सावद्यानुष्ठानैर्विरूपरूपान्नानाप्रकारान् कामोपभोगान् समारभंते स्वयं अन्यांश्च कारयंति नास्त्यत्र दोषइति प्रतार्य एवमेव तेऽनार्याविप्रतिपन्नाविरुद्धं मार्गं प्रति पन्नास्तमात्मीयं धर्मं श्रद्दधानाआत्मीयांगीकारं रोचयंतस्तद्धर्मस्याख्यातारं प्रशंसयंतः। त द्यथा। स्वाख्यातोभवता धर्मइत्यादितावन्नेयं। यावदंतरा कामभोगेषु विषण्णाइह परलोकभ्र ष्टानात्मत्राणाय नापि परेषामिति द्वितीयः पुरुषजातः पंचमहाभौतिकोव्याख्यातः ॥२४॥

॥ टीका— सचैवंवाद्येकत्रात्मनोऽकिंचित्करत्वादन्यत्र वात्मनोसत्वादसदनुष्ठानैरप्या त्मा पापैः कर्मभिर्न बध्यतइति दर्शयितुमाह (सेकिणमित्यादि) सेतियः कश्चित्पुरुषः क्रयार्थी क्रीणन् किंचित् क्रयेण गृह्णंस्तथापरं क्रापयंस्तथाहि प्राणिनोघ्नन् हिंसन् तथा परैर्घातयन् व्यापादयन् तथा पचन् पाचनादिकां क्रियां कुर्वंस्तथाऽपरैश्च पाचयन्। अस्य चोपलक्षणार्थत्वात् क्रीणतः क्रयतोघ्नतोघातयतः पचतः पाचयतश्चापरांस्तथाप्यंतशः पुरुष मपि पंचेंद्रियं विक्रीय घातयित्वापि पंचेंद्रियघाते नास्ति दोषोत्रैवंजानीहि अवगच्छ किंपुन रेकेंद्रियवनस्पतिघातइत्यपिशब्दार्थः। ततश्चैवंवादिनः सांख्याबार्हस्पत्यावा नोनैवैतद्वक्ष्य माणं विप्रतिवेदयंति जानंति। तद्यथा। क्रिया परिस्पंदात्मिका सावद्यानुष्ठानरूपाएवम क्रिया स्थानादिलक्षणा यावदेवमेव विरूपरूपैरुच्चावचैर्नानाप्रकारैर्जलस्नानावगाहनादिकै स्तथा प्राण्युपमर्दकारिभिः कर्मसमारंभैर्विरूपरूपान्नानाप्रकारान् सुरापानमांसभक्षणाग म्यागमनादिकान् कामोपभोगान् समारभंते स्वतः परांश्चोदयंति नास्त्यत्र दोषइत्येवं प्रता र्यसत्कारणाय प्रेरयंत्येवं च तेऽनार्याअनार्यकर्मकारित्वादार्यान्मार्गाद्विरुद्धं मार्गं प्रतिप न्नाः। तथाहि। सांख्यानामचेतनत्वात्प्रकृतेः कार्यकर्तृत्वं नोपपद्यते। अचेतनत्वं तु त

स्याश्चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपमिति वचनात् आत्मैव प्रतिबिंबोदयन्यायेन करिष्यतीति चेत्त दपि न युक्तिसंगतं । यतोऽकर्तृत्वादात्मनोनित्यत्वाच्च प्रतिबिंबोदये न युज्यते । किंचानि त्यत्वात्प्रकृतेर्महदादिविकारतया नोत्पत्तिः स्यात् । अपिच । नासतोजायते भावोनाभा वोजायते सतइत्याद्यभ्युपगमात्प्रधानात्मनोरेव विद्यमानत्वान्महदहंकारादेरनुत्पत्तिरेवैक त्वाच्च प्रकृतेरेकात्मवियोगेसति सर्वात्मनां वियोगः स्यादेकसंबंधेवा सर्वात्मनां प्रकृतिसंयो गोन पुनः कस्य चित्तत्त्वपरिज्ञानात् प्रकृतिवियोगे मोक्षोऽपरस्य तु विपर्ययात्संसारइत्येवं जगद्वैचित्र्यं नस्यादात्मनश्चाकर्तृत्वे तत्कृतौ बंधमोक्षौ नस्यातामेतच्च दृष्टेष्टबाधितं नापि कारणे सत्कार्यवादोयुक्तिनिरनुपपाद्यमानत्वात् । तथाहि । मृत्पिंडावस्थायां घटोत्पत्तेः प्राग्घटसंबंधानां कर्मगुणव्यपदेशानामभावाद्घटार्थिनां च क्रियासु प्रवृत्तेर्न कारणे कार्यमि ति लोकायतिकस्यापि भूतानामचेतनत्वात्कर्तृत्वानुपपत्तिः । कायाकारपरिणतानां चै तन्याभिव्यक्त्यभ्युपगमेच मरणाभावप्रसंगः स्यात्तस्मान्न पंचभूतात्मकं जगदिति स्थितं। अपि चेदं ज्ञानं स्वसंवित्तिसिद्धमनात्मधर्मिणमुपस्थापयति । नच भूतान्येवं धर्मित्वेन परिकल्पयितुं युज्यंते तेषामचेतनत्वादथ कायाकारपरिणतानां चैतन्यधर्मोभविष्यती त्येतदप्ययुक्तं । यतः कायाकारपरिणामएव तेषामात्मानमधिष्ठातारमंतरेण न भवितुम र्हति निर्हेतुकत्वप्रसंगान्निर्हेतुकत्वेच नित्यं सत्वमसत्वंवा स्यादिति । तदेवंभूतव्यतिक्त आत्मा तस्मिंश्च सति सदनुष्ठानतः पुण्यपापे ततश्च जगद्वैचित्र्यसिद्धिरिति । एवं व्यवस्थि ते तेऽनार्याः सांख्यालोकायतिकावा पंचमहाभूतप्रधानाभ्युपगमेन विप्रतिपन्नायत्कुर्यु स्तद्दर्शयितुमाह । (तंसद्दहमाणाइत्यादि) तमात्मीयमभ्युपगमं ये चोक्तया नीत्या निर्युक्ति कत्वमपि श्रद्दधानाः पंचमहाभूतात्मप्रधानस्य सर्वकार्याणि उपगच्छंति । तदेवच सत्य मित्येवं प्रतिपादयंतः प्रतिपद्यमानास्तदेव चात्मीयमभ्युपगमं रोचयंतस्तद्धर्मस्याख्यातारं प्रशंसयंतः । तद्यथा । स्वाख्यातोभवता धर्मोऽस्माकमयमत्यंतमभिप्रेतइत्येवं ते तदध्यव सायाः सावद्यानुष्ठानेनाप्यधर्मोन भवतीत्यध्यवसायिनः स्त्रीकामेषु मूर्छिताइत्येवं पूर्ववज्ज्ञे यं। यावत्तदंतरे कामभोगेषु विषण्णाऐहिकामुष्मिकोभयकार्यभ्रष्टानात्मत्राणाय नापि परेषा मिति । भवत्येवं द्वितीयः पुरुषजातः पंचमहाभूताभ्युपगमिकोव्याख्यातइति ॥ २४ ॥

अहावरे तच्चे पुरिसजाए ईसरकारणिए इति आहिज्जइ इह खलु पासा दीणंवा संतेगतिया मणुस्सा भवंति अणुपुवेणं लोयं उववन्ना तं आरि यावेगे जाव तेसिंचणं महंते एगे राया भवइ जाव सेणावइपुत्ता तेसिं चणं एगतीए सड्ढा भवइ कामं तं समणाय माहणाय पहारिंसुगमणाए जात्र जहा मए एसधम्मे सुअक्खाए सुपन्नत्ते भवइ॥ २५ ॥

अर्थ—हवे अपर त्रीजो पुरुष जात कहेछे जे ईश्वर लोकनो करनार छे एवुं मानेछे ते मते एने ईश्वर कारणिक कहेछे खलु इति निश्चें आ मनुष्य लोकने विषे पूर्वोक्तरीते पूर्वादिक चार दिशिये कोइएक मनुष्य होय ते अनुक्रमे लोक मांहे उपना तेमां कोइ एक आर्य देशना उपना ते ज्यां सुधी महोटो राजा होय तेने परषदा होय ते वली ज्यां सुधी सेनापतिना पुत्र इत्यादिक परखदा सुधी कहेवुं तेमांहे कोइ एक धर्मनी श्रद्धावान होय धर्मार्थी होय तेने धर्मार्थी जाणीने श्रमण ब्राह्मण मली धर्म प्रतिबोधवा निमित्ते आलोचीने ते पूर्वोक्त राजादिकने संमुख जइने अंहीं यावत् पूर्वोक्त रीते सज्जादिकनु प्रस्ताव सर्व कहेवो पछीते राजादिकने तेईश्वरकारणिक पुरुष आवी पोतानो स्वाख्यात सुप्रज्ञ धर्म वर्णवेछे. ॥ २५ ॥

॥ दीपिका—अथापरस्तृतीयः पुरुषजातईश्वरोजगतः कारणं यस्य सईश्वरकारणिक आत्माऽद्वैतवादी व्याख्यायते । (इहखलुइत्यादि) प्राच्यादिषु दिक्षु एकस्यां दिशि स्थितः कश्चिदेवं ब्रूयात् । यथा राजानमुद्दिश्य तावद्यावत्स्वाख्यातः सुप्रज्ञप्तोधर्मोभवति॥२५॥

॥ टीका—सांप्रतमीश्वरकारणिकमधिकृत्याह । (अहावरेइत्यादि) अथ द्वितीयपुरुषानंतरं तृतीयईश्वरकारणिकआख्यायते । समस्तस्यापि चेतनाचेतनरूपस्य जगतईश्वरः कारणं। प्रमाणं चात्र तनुभुवनकरणादिकं धर्मित्वेनोपादीयते ईश्वरकर्तृकमिति साध्योधर्मः संस्थानविशेषत्वात्कूपदेवकुलादिवत्तथा स्थित्वा प्रवृत्तेर्वास्यादिवत् । उक्तंच । अज्ञोजंतुरनीशः स्या,दात्मनः सुखदुःखयोः ॥ ईश्वरप्रेरितोगच्छे,त्स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा इत्यादि । तथा पुरुष एवेदं यद्भूतं यच्च भव्यमित्यादि । तथा चोक्तं । एकएव हि भूतात्मा भूते भूते प्रतिष्ठितः॥ एकधा बहुधाचैव दृश्यते जलचंद्रवदित्यादि । तदेवमीश्वरकारणिकआत्मा द्वैतवादी वा तृतीयः पुरुषजातआख्यायते । (इहखलुइत्यादि) इहैव पुरुषजातप्रस्तावे । खलुशब्दोवाक्यालंकारे । प्राच्यादिषु दिक्ष्वन्यतमस्यां व्यवस्थितः कश्चिदेवं ब्रूयात् । तद्यथा । राजानमुद्दिश्य तावद्यावत्स्वाख्यातः सुप्रज्ञप्तोधर्मोभवति ॥ २५ ॥

इह खलु धम्मा पुरिसादिया पुरिसोत्तराया पुरिसप्पणीया पुरिससंभूया पुरिसपज्जोतिता पुरिसअभिसमण्णागया पुरिसमेव अभिभूय चिठंति सेजहा णामए गंमेसिया सरीरे जाए सरीरे संवुड्ढे सरीरे अभिसमण्णागए सरीरमेव अभिभूय चिठंति एवमेव धम्मा पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अभिभूय चिठंति सेजहा णाम ए अरईसिया सरीरे जाया सरीरे संवुड्ढा सरीरे अ

ज्निसमणागया सरीरमेव अन्निन्नूय चिठंति एवमेव धम्मावि पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अन्निन्नूय चिठंति सेजहा णामए वम्मिएसिया पुढविजाए पुढविसंवुड्ढे पुढविअन्निस्समणागए पुढविमेव अन्निन्नूय चिठइ एवमेव धम्मावि पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अन्निन्नूय चिठंति सेजहा णामए रुक्खे सिया पुढविजाए पुढविसंवुड्ढे पुढविअन्निसमणागए पुढविमेव अन्निन्नूय चिठंति एवमेव धम्मावि पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अन्निन्नूय चिठंति सेजहा णामए पुक्करिणी सिया पुढविजाया जाव पुढविमेव अन्निन्नूय चिठंति एवमेव धम्माविपुरिसादिया जाव पुरिसमेव अन्निन्नूय चिठंति से जहा णामए नदगपुक्खलेसिया नदगजाए जाव नदगमेव अन्निन्नूय चिठंति एवमेव धम्मावि पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अन्निन्नूय चिठंति सेजहा णामए नदगबुब्बुएसिया नदगजाए जाव नदगमेव अन्निन्नूय चिठंति एवमेव धम्मावि पुरिसादिया जाव पुरिसमेव अन्निन्नूय चिठंति ॥ ९६ ॥

अर्थ–(इहखलुधम्मापुरिसादियाके०) आ संसारने विषे. खलु एवे वाक्यालंकारे धर्म जे सचेतना अचेतनारूप स्वनाव ते पुरुषादिक जाणवा एटले एम कह्युंजे एनी आदिनुं करनार पुरुष शब्दे ईश्वरछे तेकारणे पुरुषादिक एम पाठ कह्यो तथा (पुरिसोत्तरायाके०) पुरुषज जेने उत्तर एटले प्रधानछे तथा (पुरिसप्पणीया के०) पुरुष प्रणीत एटले एनो अधिष्ठाता पण पुरुष ईश्वरजछे तथा (पुरिससंनूयाके०) पुरुष थकीज उपना (पुरिसपज्जोतिता के०) पुरुषजे ईश्वर तेणेज प्रगट कस्या जेम प्रदीप मणी अने सूर्यादिके घटपटादिक पदार्थ प्रगट कस्या तेनी पेरे जाणी लेवुं (पुरिसअन्निसमणागया के०) जीवने जन्म जरा मरण रोग शोक वर्ण गंध रस स्पर्श मूर्त्तिपणो ए अनागतादिक धर्म ते सर्व पदार्थ ईश्वरना अनुगामीछे (पुरिसमेवअन्निन्नूयचिठंति के०) किंबहुना ए सर्व पुरुषनेज व्यापीने रहेछे (सेजहाणामए के०) ए अर्थ उपर दृष्टांत देखाडेछे जेम णाम एवे संनावनाये (गंमेसिया सरीरेजाएके०) पुरुषने शरीरे गंम एटले गुंबडो रोग विशेष थाय ते तेज शरीरने विषे उपनो (सरीरेसंवुड्ढे के०) तेज शरीरने विषे वृद्धि पाम्यो (सरीरे अन्निसमणागए के०) शरीरने पठवाडेज अनुगत गामिछे (सरीरमेवअन्निन्नूयचिठंति के०) शरीरने विषेज व्यापि रहेछे पण तेनो अवयव शरीर थकी बाहेर नथी (एवमेव के०) एमज (धम्मावि के०) ए पदार्थ मात्रजेछे ते पण (पुरिसादिया

के०) पुरुष जे ईश्वर ते थकी उत्पन्न थया ते (जावअजिनूयचिठंति के०) यावत् ईश्वरनेज व्यापि रहेछे परंतु ईश्वर थकी कांइ जुदा नथी.

वली बीजो दृष्टांत कहेछे. जेम (अरइत्तियाके०) अरति एटले चित्तनो उद्वेग पणो ते शरीर थकीज उपजे अने शरीर थकीज वृद्धि पामे अने शरीर मांहेज व्यापि रहेछे तेम ए धर्म जे पदार्थ ते पण पुरुष थकीज उपजे पुरुष थकीज वृद्धि पामे अने पुरुष मांहेज व्यापिरहेछे वली त्रीजो दृष्टांत कहेछे. (वम्मिएसियाके०) जेम वम्मिजे पृथवी तेनो विकार होय ते पृथवीने विषेज उपजे पृथवी थकीज वृद्धि पामे अने पृथवीने विषेज व्यापिने रहे तेम ए धर्म अने पुरुषादिक पण जाणी लेवा वली चोथो दृष्टांत कहेछे. जेम कोइएक वृक्ष होय ते पृथवी थकी उपजे पृथवीने विषेज वृद्धि पामे अने पृथवीनेज व्यापि रहे तेम ए धर्म अने पुरुषादिक पण जाणी लेवा. वली पांचमो दृष्टांत कहेछे. जेम पुष्करिणी होय ते पृथवी थकी उपजे पृथवी थकी वृद्धि पामे अने पृथवीने विषेज व्यापि रहे तेम ए पदार्थ अने पुरुषादिक पण जाणी लेवा. वली छठो दृष्टांत कहेछे. जेम घणा पाणी मांहे कमल होय ते कमल जल थकी नीपजे जल थकीज वृद्धि पामे अने जल मांहेज व्यापि रहे तेमज ए पदार्थ पण ईश्वर थकीज नीपजे ईश्वर थकीज वृद्धि पामे अने ईश्वरनेज व्यापि रहे वली सातमो दृष्टांत कहेछे. जेम पाणीनुं बुदबुदो होय ते जल थकीज नीपजे जल थकीज वृद्धि पामे अने जल मांहेज व्यापि रहे तेम ए पदार्थो सर्व ईश्वर थकीज उपजेछे इत्यादिक सर्व जाणी लेवुं ॥ २६ ॥

॥ दीपिका–इह खलु धर्माः स्वभावाश्चेतनाचेतनरूपाः पुरुषईश्वरआत्मा वा कारणमादिर्येषां ते पुरुषादिकाईश्वरकारणिकाआत्मकारणिकावा तथा पुरुषएव उत्तरं कार्यं येषांते पुरुषोत्तरास्तथा पुरुषेण प्रणीताः पुरुषेण द्योतिताः प्रकाशीकृतायथा सूर्येण घटादयः । ते च धर्माजीवानां जन्ममरणरोगशोकादयः । अजीवधर्मास्तु मूर्तद्रव्याणां वर्णगंधरसस्पर्शाः । अमूर्तद्रव्याणां धर्माधर्माकाशानां गत्यादिकाधर्माः सर्वेपीश्वरकृताः । आत्माद्वैतवादे चात्मविवर्ताः । सर्वेऽप्येते पुरुषमेवाजिनूय व्याप्य तिष्ठंति । अत्रार्थे दृष्टांतान् बहूनाह । (सेजहानामएइत्यादि) सेजहा तद्यथा । नामेति संजावनायां । गंडं स्यात् । संजाव्यते हि प्राणिनां कर्मवशगानां गंडादिरोगइति । गंडं च शरीरे जातं शरीरावयवजूतं तथा शरीरे वृद्धिमुपगतं शरीरवृध्या तस्य वृद्धिरिति। शरीरेऽजिसमत्वागतं न तदवयवोपि शरीरात्पृथक्जूतइति । शरीरमेवाजिनूय पीडयित्वा तिष्ठति । एवमेव येऽमी धर्माश्चेतनाचेतनरूपास्ते सर्वेपीश्वरकर्तृकाः । न ते ईश्वरात्पृथक्कर्तुं न शक्यंते यथा गंडं शरीरविकारजूतं तद्विनाशेच शरीरमेव तिष्ठति एवं धर्माः पुरुषादिकाः पुरुषवि

काररूपान पुरुषात् पृथग्नवंति तद्विकारापगमे चात्मानमेवाश्रित्य तिष्ठंति । एवम न्यदृष्टांताअपि नाव्याः । (सेजहेत्यादि) अरतिश्चित्तोद्वेगरूपा साच शरीरजातेत्यादि । यथावा वल्मीकं पृथिवीविकाररूपं पृथिव्यां जातमित्यादि । एवं सर्वमीश्वरकारणिक मात्मविवर्तरूपं वा । यथा वा वृक्षोऽशोकादिः पृथिवीजातः । यथा वा पुष्करिणी तडा गरूपा पृथिव्यामेव जातेत्यादि प्राग्वत् । तथा उदकपुष्कलमुदकप्राचुर्य मुदकजातमि त्यादि यथावा उदकबुद्बुदइत्यादि सुगमं ॥ २६ ॥

॥ टीका–सचायं । इह खलु धर्माः स्वनावाश्चेतनाचेतनरूपाः पुरुषईश्वरआत्मावा कारणमादिर्येषांते पुरुषादिकाईश्वरकारणिकाआत्मकारणिकावा तथा पुरुषएवोत्तरं का र्यं येषांते पुरुषोत्तरास्तथा पुरुषेण प्रणीताः सर्वस्य तदधिष्ठितत्वात् तदात्मकत्वाद्वा त था पुरुषेण द्योतिताः प्रकाशीकृताः प्रदीपमणिसूर्यादिनेव घटपटादयइति । तेच धर्मा जीवानां जन्मजरामरणव्याधिरोगशोकसुखडुःखजीवनादिकाः । अजीवधर्मास्तु मूर्तिमतां डव्याणां वर्णगंधरसस्पर्शाअमूर्तिमतां डव्याणां धर्माधर्माकाशानां गत्यादिकाधर्माः । स र्वेपीश्वरकृताआत्माद्वैतवादेवाऽत्मविवर्ताः सर्वेप्येते पुरुषमेवाजिनूय व्याप्य तिष्ठंति । अ स्मिन्नर्थे दृष्टांतानाविर्नावयन्नाह । (सेजहाणामएइत्यादि) सेशब्दस्तच्छब्दार्थे । नामश ब्दः संनावनायां । तद्यथा । नाम गंडं स्याद्भवेत्संनाव्यते च शरीरिणां संसारांतर्गता नां कर्मवशगानां गंडादिसमुद्भवस्तच्च शरीरे जातं शरीरावयवसंनूतं तथा शरीरे वृद्धिमुप गतं शरीराजिवृद्धौ च तस्याजिवृद्धिस्तथा शरीरेऽजिसंबंधागतं शरीरमाजिमुख्येन व्याप्य व्यवस्थितं न तदवयवोपि शरीरात्पृथग्नूतइति नावः । तथा शरीरमेवाजिनूयाजिमुख्येन पीडयित्वा तिष्ठति । यदिवा तडुपशमे शरीरमे वाश्रित्य तग्गंडं तिष्ठति न शरीराद्बहिर्भव ति । एतडुक्तं नवति । यथा तत्पिटकं शरीरैकदेशनूतं नयुक्तिशतेनापि शरीरात्पृथग्दर्श यितुं शक्यते एवमेवामी धर्माश्चेतनाचेतनरूपास्ते सर्वेपीश्वरकर्तृकान ते शरीरात्पृथक्कर्तुं पार्यंते । यदिवा सर्वव्यापिनआत्मनस्त्रैलोक्योदरविवरवर्तिपदार्थात्मनोये केचन धर्माः प्रा डुःषंति ते पृथक्कर्तुं नशक्यंते तथा तग्गंडं शरीरविकारनूतं तदपृथग्नूतं तद्विनाशेच शरीरमेवा वतिष्ठते । एवमेव सर्वेपि धर्माः पुरुषादिकाः पुरुषकारणिकाः पुरुषविकाररूपा नपुरुषा त्पृथग्नवितुमर्हंति तद्विकारापगमेवाऽत्मानमेवाश्रित्यावतिष्ठंति न तस्माद्बहिर्नवंतीति शास्त्रेच दृष्टांतप्राचुर्यमविरुद्धं । यदिवाऽस्मिन्नर्थे बहवोदृष्टांताः । संनवंतीश्वरकर्तृत्ववादस्या द्वैतवादस्यच सुप्रसिद्धत्वाद्दृष्टांतबहुत्वमित्याह । (सेजहाइत्यादि) तद्यथा नामारतिश्चि त्तोद्वेगलक्षणः स्याद्भवेत् । साच शरीरजाताइत्यादि गंडवन्नेया । दार्ष्टांतिकेप्येवमेव सर्वे धर्माः पुरुषादिकाः पुरुषप्रनवाइत्यादिपूर्ववन्नेयं । तथा यथा नाम वल्मीकं पृथ्वीविकार

रूपं स्यात्तच्च पृथिव्यां जातं पृथिवीसंबद्धं पृथिव्यभिसंबंधागतं पृथिवीमेवाभिसंभूय ति ष्ठत्येवं दार्ष्टांतिकेप्यायोज्यं । एवमेव यदेतच्चेतनरूपं तत्सर्वमीश्वरकारणिकमात्मविवर्त रूपं वा नात्मनः पृथग्भवितुमर्हति पृथिव्यां वल्मीकवत्तथा तद्यथा नाम वृक्षोऽशोका दिकः स्यात्सच पृथिवीजातइति दृष्टांतदार्ष्टांतिके पूर्ववदायोज्ये । तद्यथा । नामपुष्क रिणी स्यात्तडागरूपा भवेत्साच पृथिव्यामेव जातेत्यादि प्राग्वच्चर्च्यस्तथा तद्यथा नामपु ष्कलं प्रचुरमुदकं पुष्कलमुदकप्राचुर्यं तच्च तद्धर्मत्वादुदकमेव यावदुदकमेवाभिभूय तिष्ठ त्येवं दार्ष्टांतिकेप्यायोज्यं । तथा तद्यथा नामोदकबुद्बुदः स्यादत्रापि दृष्टांतदर्ष्टांतिके न तस्मादवयविनः पृथग्भूतइति सुगमं ॥ २६ ॥

जंपिय इमं समणाणं णिग्गंथाणं उद्दिठं पणियं वियं जियं डुवालसंगं गणिपिडयं तंजहा आयारो सूयगडो जाव दिठिवातो सवमेवं मिछा ण एयं तहियं णएयं आहातहियं इमं सच्चं इमं तहियं इमं आहात हियं एवं सन्नं कुवंति ते एवं सन्नं संठवेंति तेएवं सन्नं सोवठवयंति तमेवं ते तज्जाइयं डुक्कं णातिउट्टंति सउणी पंजरं जहा ॥२७॥ ते णो एवं विप्पडि वेदेंति तंजहा किरियाइवा जाव अणिरएइवा एवमेव ते विरूवरूवेहिं कम्मसमारंभेहिं विरूवरूवाइं कामभोगाइं समारभंति भोयणाए एव मेव ते अणारिया विप्पडिवन्ना एवं सद्दहमाणा जावइति ते णोहव्वाए णोपाराए अंतरा कामभोगेसु विसन्नेति तच्चे पुरिसजाए ईसरकारणि एत्ति आहिए ॥ २८ ॥

अर्थ—हवे जे ईश्वरे कह्यो ते सर्व सत्यछे अने बीजो सर्व मिथ्या छे एवो भाव कहेछे (जंपियइमंके०) जे ए प्रत्यक्ष लक्षण (समणाणंणिग्गंथाणंके०) श्रमण निग्रंथनो (उ दिठंके०) उद्देस्यो एटले ते निग्रंथने अर्थे भाष्यो (पणियंवियंजियं के०) तेने अर्थे प्रग ट कह्यो (डुवालसंगगणिपिडयं के०) द्वादशांगी गणि पिटक एटले आचार्यनो भंडा र (तंजहा के०) तेना नाम कहेछे. (आयारो के०) आचारांग (सूयगडो के०) सू त्रकृतांग इत्यादिक (जावदिठिवातो के०) ज्यांसुधी दृष्टिवाद लोक बिंदुसार नामा पूर्व पर्यंत (सवमेवंमिछा के०) ए सर्व मिथ्याछे कारण के ए कांइ ईश्वरकृत नथी एतो सर्व पोतानी इछायें कल्पितछे माटे मिथ्याछे जेम कोइ छताने अछतो कहे अछताने छतो कहे जेम कोइ साधुने चोर कहे अने चोरने साधु कहे तथा गायने घोडो कहे अने घोडाने गाय कहे तेमज आत्मा कर्त्ता नथी तेने जे कर्त्ता कहेछे अने जे ईश्वर कर्त्ताछे

तेने अकर्त्ता कहेछे तेमाटे (एएयंतहियंके०) ए तथ्य नथी (एएयंआहातहियंके०) ए यथातथ्य नथी हवे ए दर्शनी जेने सत्य करी माने ते कहेछे. (इमंके०) ए ईश्वर कारणिक छे एमजे मानीये तेहिज (सच्चंके०) सत्यछे (इमंतहियंके०) तेहिज तथ्य जाणवो (इमंआहातहियंके०) एज यथा तथ्यविशेषे जाणवो एरीते ते ईश्वर कारणिक पोताना दर्शनने अनुरागे (एवंसन्नंकुव्वंति के०) एवी संज्ञा करे (तेएवंसन्नंसंठवेंति के०) ते बीजा आगल पण एवीज संज्ञा स्थापन करे यद्यपि एवात युक्ति शून्यछे तथापि (तेएवं सन्नं सोवठवयंतिके०) ते एवी संज्ञाने अनेक हेतु युक्ति दृष्टांते करी स्थापेछे (तमेवंते तज्जाइयंडुरकं के०) ते कारणे ते उत्सूत्रने स्थापवे करी उत्पन्न थाय जे डुःख ते डुःखने (णातिउट्टंति के०) त्रोडी नशके तेना उपर दृष्टांत कहेछे (सउणीपंजरंजहा के०) जेम शकुनी एटले पक्षी ते पांजराने त्रोडी नशके भ्रमण करी करीने वली तेहिज पांजरा मांहे रहे तेम ते पूर्वोक्त अन्य दर्शनीउं पण संसार रूप पांजरा मांहेज रहे परंतु मोक्षे जइ शके नही अने बीजाने पण मोक्षे पोचाडी नशके ॥ २७ ॥ (तेणोएवं विप्पडिवेदेंति के०) ते अन्य दर्शनी पांखमी बापडा आटली वात नथी जाणता शुं नथी जाणता (तंजहा के०) ते कहेछे. (किरियाइवा के०) रुडो अनुष्ठान नथी जाणता (जावअणिरएतिवा के०) यावत् अनरक पर्यंत नथी जाणता (एवमेव के०) एम अणजाणता थका (तेविरूवरूवेहिंकम्मसमारंभेहिं के०) ते नाना प्रकारना सावद्यकर्मने करवे करी (विरूवरूवाइंकामभोगाइंसमारभंति के०) अनेक प्रकारना कामभोग समारंभे भोगवे (भोयणाए के०) भोजनने अर्थे एरीते ते अनार्य पोताना धर्मने रुडो देखाडी प्ररूपता छता कामभोगने विषे मूर्छाणा थका एमते पाखंमी धर्म राजादिकने सद्दावता थका ज्यांलगे ते तीरे पण रह्या नही अने पारपण पाम्या नही एम आलोक थकी चूका अने परलोके पण पोता नही विचाले संसार मांहे काम भोग रूप कादवने विषेज खुता थका रहे ते राजारूप पुंमरीक कमलने उद्धरी शके नही ए त्रीजो पुरुष जात ईश्वर कारणिक कह्यो. ॥ २८ ॥

॥ दीपिका—ईश्वरकृतं सत्यमन्यन्मिथ्येत्याह । यदपि चेदं श्रमणानां यतीनां निर्ग्रंथानां निष्किंचनानामुद्दिष्टं प्रणीतं व्यक्तीकृतं द्वादशांगं गणिपिटकं । तद्यथा । आचारः सूत्रकृतांगमित्यादि यावदृष्टिवादः । सर्वमेतन्मिथ्याऽनीश्वरप्रणीतत्वात् नैतत्तथ्यं नैतद्यातथ्यं न यथास्थितार्थकथकं। इदं पुनरीश्वरकर्तृत्वं आत्माद्वैतंच सत्यं इदमेव तथ्यं इदमेव याथातथ्यं । तदेवं ते पूर्वोक्तनीत्या संज्ञां कुर्वंति ज्ञानं दधते अन्येभ्यश्च संज्ञां संस्थापयंति । ते एवं संज्ञामुपस्थापयंति सुष्ठु उपसामीप्येन युक्तिभिः स्थापयंति । ते चै

वं वादिनस्तदंगीकारजातीयं दुःखं दुःखहेतुत्वान्नातिवर्तंते न त्रोटयंति । यथा शकुनिः पक्षी पंजरं न त्रोटयति एवं तेपि तदुपदेशात्कर्मबंधनं नातिवर्तंते ॥ २७ ॥ ते कदाग्र हग्रस्ताएत द्वक्ष्यमाणं नविप्रतिवेदयंति न जानंति । तद्यथा । इयंक्रियाइत्यादि यावदन रकइत्येवं निर्विवेकत्वान्न जानंति । एवमेव यथाकथंचित्ते विरूपरूपैः कर्मसमारंभैर्वि रूपरूपान् कामभोगान् समारभंते भोजनाय उपभोगाय । एवं ते अनार्याविप्रतिपन्नाः स्वपक्षं प्रतियंति श्रद्दधतीति पूर्ववत् । यावत्ते कामभोगेषु विषण्णाः । इत्ययमीश्वरकार णिकआत्माद्वैतवादी तृतीयः पुरुषजातः संपूर्णः ॥ २८ ॥

॥ टीका–तदेवं यदीश्वरकृतत्वेनाभ्युपगम्यते तत्सर्वं तथ्यमपरं मिथ्या इत्येतदाविर्भावय न्नाह । (जंपियेत्यादि) यदपि चेदं संव्यवहारतः प्रत्यक्षासन्नभूतं श्रमणानां यतीनां निर्ग्रं थानां निष्किंचनानामुद्दिष्टं तदर्थं प्रणीतं व्यंजितं तेषामभिव्यक्तीकृतं द्वादशांगं गणिपिटकं तद्यथाचारइत्यादि यावद्दृष्टिवादः सर्वमेतन्मिथ्या अनीश्वरप्रणीतत्वात्स्वरुचिविरचितरथ्या पुरुषवाक्यवत्तथ्यं नैतत्तथ्यंमिथ्येत्यनेनोद्भूतोद्भावनमाविष्कृतमचौरत्ववत् । नैतत्तथ्यमित्य नेन तु सद्भूतार्थनिन्हवोयथानास्त्यात्मेति तथा नैतद्याथातथ्यमवस्थितोर्थः । तथावस्थि तमिति भावोनेन सद्भूतार्थनिन्हवेनासद्भूतार्थारोपणमाविष्कृतं । तद्यथा । गामश्वं ब्रुवतो श्वं वा गामित्येकार्थिकानि चैतानि शक्रेंद्रादिवद्द्रष्टव्यानि । तदेवं यदि तद्द्वादशांगं गणि पिटकं तदनीश्वरप्रणीतत्वान्मिथ्येति स्थितमिदं तु पुनरीश्वरकर्तृकत्वं नामात्माद्वैतं वा सत्यं यथावस्थितार्थप्रतिपादनात् । तथेदमेव तथ्यं सद्भूतार्थोद्भासनात्तदेवं ते ईश्वरकार णिकाआत्माद्वैतवादिनोवा । एव मनंतरोक्तया नीत्या सर्वं तनुभुवनकारणादिकमीश्वर कारणिकं तथा सर्वं चेतनमचेतनं वाऽऽत्मनि निर्वर्तितस्वभावमात्मनएव सर्वाकारतयोत्प त्तेरित्येवं संज्ञानं संज्ञा तामेवं कुर्वंत्यन्येषांच ते स्वदर्शनानुरक्तमनसः संज्ञां स्थापयंति तथा एवंभूतां संज्ञां वक्ष्यमाणेन न्यायेन निर्युक्तिकामपि सुष्ठूपसामीप्येन तदाग्राहितया तदाभिमुख्याद्युक्तीर्निर्णीषवः स्थापयंति प्रतिष्ठापयंति । ते चैवं वादिनस्तमीश्वरकर्तृत्ववाद मात्माद्वैतवादंवा नातिवर्तंते तदभ्युपगमजातीयं च दुःखं दुःखहेतुत्वाद्दुःखं नातिवर्तंते न त्रोटयंति । अस्मिन्नर्थे दृष्टांतमाह । यथा शकुनिः पक्षिविशेषोभावकादिकः पंजरं ना तिवर्तते पौनःपुन्येन भ्रांत्वा तत्रैव वर्तते एवं तेप्येवंभूताभ्युपगमवादिनस्तदापादितक र्मबंधं नातिवर्तंते नवा त्रोटयंति ॥२७॥ तेच स्वाभिमानग्रहग्रस्तानैत द्वक्ष्यमाणं विप्रतिवे दयंति न सम्यक् जानंति । तद्यथेयं क्रियासदनुष्ठानरूपेयं चाक्रिया तद्विपरीतेत्येवं स्वाग्रहि णोनान्यत् शोभनमशोभनं वा यावदयमनरकइत्येवं सद्विवेकरहितत्वान्नावधारयंत्येवमेव य थाकथंचित्ते विरूपरूपैः कर्मसमारंभैर्नानाप्रकारैः सावद्यानुष्ठानैर्द्रव्योपार्जनोपायभूतैर्द्रव्य मुपादाय विरूपरूपान्कामभोगानुच्चावचान्समाचरंति भोजनायोपभोगार्थमित्येवमनार्यास्ते

विरुद्धं मार्गं विप्रतिपन्नान सम्यग्वादिनोनवंति । तथाहि । सर्वमीश्वरकर्तृकमित्यत्राज्यु पगमे किमसावीश्वरः स्वतएवापरान् क्रियासु प्रवर्तयेडुतापरेण प्रेरितस्तत्र यद्याद्यः पक्षस्त द्वदन्येषामपि स्वतएव क्रियासु प्रवृत्तिर्नविष्यति कियंतर्गेडुनेश्वरकल्पनेन । अथासावप्यपर प्रेरितः सोप्यपरेणेत्येवमनवस्थालता नजोमंडलमालिनी प्रसर्पति । किंचासावीश्वरोमहा पुरुषतया वीतरागोपेतः सन्ननेकान्नरकयोग्यासु क्रियासु प्रवर्तयत्यपरांस्तु स्वर्गापवर्गयोग्या स्वित्यथ ते पूर्वशुनाशुनचरितोदयादेव तथाविधासु तासु क्रियासु प्रवर्तंते सतु निमित्त मात्रमेतदपि नयुक्तिसंगतं । यतः प्राक्तनाशुनाशुनप्रवर्तनमपि तदायत्तमेव । तथा चो क्तं । अज्ञोजंतुरित्यादि । अथ तदपि प्राक्तनमन्येन प्राक्तनतरेण कारितमित्येवमनादिहे तुपरंपरेत्येवं च सति ततएव शुनाशुने स्थाने नविष्यतः किमीश्वरपरिकल्पनेन । तथा चो क्तं । शास्त्रौषधादिसंबंधाच्चैत्रस्य व्रणरोहणे ॥ असंबद्धस्य कः स्थाणोः कारणत्वं नक ल्पतइत्यादि । यच्चोक्तं । सर्वं तनुजुवनकरणादिकं बुद्धिमत्कारणपूर्वकं संस्थानविशेषत्वा त् देवकुलवदित्येतदपि नयुक्तिसंगतं । यतएतदपि साधनं नजवदनिप्रेतमीश्वरं साधयति तेन सार्धं व्याप्त्यसिद्धः । देवकुलादिके दृष्टांतेऽनीश्वरस्यैव कर्तृत्वेनाज्युपगमात् । नच सं स्थानशब्दप्रवृत्तिमात्रेण सर्वस्य बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्वं सिध्यति । अन्यथानुपपत्तिलक्षण स्य साध्यसाधनयोः प्रतिबंधस्यानावात् । अथाविनानावमंतरेणैव संस्थानमात्रदर्शना त्साध्यसिद्धिः स्यादेवंच सत्यतिप्रसंगः स्यात् । उक्तंच । अन्यथा कुंनकारेण मृद्विकारस्य कस्यचित् ॥ घटादेः कारणात्सिद्धेर्वल्मीकस्यापि तत्कृतिरित्यादि । नचेश्वरकर्तृत्वे जगद्वै चित्र्यं सिध्यति तस्यैकरूपत्वादित्युक्तप्रायमिति । आत्माद्वैतपक्षस्त्वत्यंतमयुक्तिसंगतत्वा न्नाश्रयणीयः । तथाहि । तत्र न प्रमाणं न प्रमेयं नप्रतिपाद्यं न प्रतिपादकोन हेतुर्न दृष्टांतोन तदानासोनेदेनावगम्यते । सर्वस्यैव जगतएकत्वं स्यादात्मनोनिन्नत्वात् तदना वेच कः केन प्रतिपाद्यते इत्यप्रणयनमेव शास्त्रस्यात्मनश्चैकत्वात्तत्कार्यमप्येकाकारमेव स्यादित्यतोनिर्हेतुकं जगद्वैचित्र्यं । तथाच सति । नित्यं सत्वमसत्वं वा, हेतोरन्यानपेक्ष णात् ॥ अपेक्षातोहिनावानां, कादाचित्कत्वसंनवइत्यादि । तदेवमीश्वरकर्तृत्वमात्माद्वैतप क्षश्च युक्तिविचार्यमाणोन कथंचिद्घटां प्रांचति । तथा ते स्वदर्शनमोहमहितास्तज्जातीया दुःखात् शकुनिः पंजरादिव नातिमुच्यंते विप्रतिपन्नाश्च तत्प्रातिपादिकानिर्युक्तिनिस्तदेव स्वपक्षं प्रतियंति श्रद्दधतीति पूर्ववन्नेयं । (यावत् णोहव्वाएणोपाराएअंतराकामनोगेसु विसन्नुत्ति) इत्ययं तृतीयः पुरुषजातईश्वरकारणिकइति । सह्येवमाह । यस्य बुद्धि र्न लिप्येत हत्वा सर्वमिदं जगत् ॥ आकाशमिव पंकेन नासौ पापेन लिप्यतइत्याद्यसमंज सनाषितया त्यक्त्वा पूर्वसंयोगमप्राप्तोविवक्षितं स्थानमंतरालएव कामनोगेषु मूर्छितोवि षसुइत्यवगंतव्यमिति ॥ २० ॥

अहावरे चउत्थे पुरिसज्जाए णियतिवाइएत्ति आहिज्जइ इह खलु पाईणं वा तहेव जावसेणावईपुत्तावा तेसिंचणं एगतीए सड्ढा नवइ कामं तं समणाय माहणाय संपहारिं सुगमणाए जाव मए एस धम्मे सुअक्खाए सुपन्नते नवइ ॥ २ए ॥

अर्थ—अथ हवे अनेरो चोथो पुरुषजात नियतवादि कहिये जैयें जे कार्य सिद्धिने विषे नवितव्यता टालीने बीजो कारण कांइ पण न माने ते नियतवादि कहिए. खलु एवे वाक्यालंकारे ए मनुष्य लोकने विषे पूर्वादिक चारदिशि मांहेलो कोइएक पुरुष होय ते ज्यां सुधी सेनापतिना पुत्र इत्यादिक परषदा कहेवी तेमांहे कोइएकने धर्मनी श्रद्धा होय धर्मार्थी होय एवो धर्मार्थी जाणीने ब्राह्मण श्रमण मली तेने धर्म प्रति बोधवा निमित्ते आलोची राजादिकने संमुख जइने पोतानो धर्म प्ररूपे ते नियतवादि राजादिकनी पाशें पोताना धर्मनी स्थापना जे रीते करे तेरीते कहेछे. ॥ २ए ॥

॥ दीपिका—अथापरश्चतुर्थः पुरुषजातोनियतिवादी आख्यायते । इह खलुपाईणं इत्यादिप्राग्वत् । यावदेषधर्मः स्वाख्यातोनवतीति ॥ २ए ॥

॥ टीका—सांप्रतं चतुर्थपुरुषजातमधिकृत्याह । (अहावरेइत्यादि) अथ तृतीयपुरुषानंतरमपरश्चतुर्थः पुरुषएव पुरुषजातोनियतिवादिकआख्यायते प्रतिपाद्यते सचैवमाह । नात्र कश्चित्कालेश्वरादिकः कारणं नापि पुरुषकारः समानक्रियाणामपि कस्यचिदेव नियतिवादबलादर्थसिद्धेरतोनियतिरेव कारणं । उक्तंच । प्राप्तव्योनियतिबलाश्रयेण योर्थः सोवश्यं नवति नृणां शुनोऽशुनोवा ॥ नूतानां महति कृतेपि हि प्रयत्ने नानाव्यं नवति न नाविनोस्ति नाशइत्यादि ॥ २ए ॥

इह खलु डुवे पुरिसा नवंति एगे पुरिसे किरियामाइक्खइ एगे पुरिसे णोकिरियामाइक्खइ जेयपुरिसे किरियामाइक्खइ जेपुरिसे णोकिरियामाइक्खइ दोवि ते पुरिसा तुल्ला एगठा कारणमावन्ना ॥ ३० ॥

अर्थ—(इहखलुडुवेपुरिसानवंति के०) आ संसार मांहे खलु एवे वाक्यालंकारे बे पुरुष होय तेमांहे (एगेपुरिसेकिरियामाइक्खइ. के०) एक पुरुष क्रिया बोले (एगेपुरिसेणोकिरियामाइक्खइ के०) अने एक पुरुष अक्रिया बोले त्यां एक देश थकी बीजे देशे जइयें ते क्रिया जाणवी अनेजे देशांतरने विषे नजावुं एम उपक्रम विना कार्य प्रा

त्ति थाय तेने अक्रिया कहिए (जेयपुरिसेकिरियामाइरकइ, के०) जे पुरुष क्रिया कहेछे अने (जेपुरिसेणोकिरियामाइरकइ के०) जेपुरुष अक्रिया कहेछे (दोवितेपुरिसातुल्ला के०) ए क्रियावादि अने अक्रियावादि बंने पुरुष तुल्य एटले सरखा जाणवा (एगठ्ठा कारणमावन्ना के०) ए बेनुं एकज अर्थछे कारणके ते नियतने वशें वर्त्ते जो ते पोताने वशें होय तो सरखा नकहेवाय ॥ ३० ॥

॥ दीपिका—नियतिवादी स्वमतमाह । इह द्वौ पुरुषौ भवतः । एकः क्रियामाख्याति । देशादेशांतरप्राप्तिः क्रिया सा नियतेरेवस्यात् एवमक्रियापि । द्वावेतौ नरौ तुल्यौ नियतिवशवर्तित्वात् एकार्थौ एककारणापन्नत्वात् क्रियाक्रिये नियत्येककारणाधीनेइत्यर्थः ॥ ३० ॥

॥ टीका—इह खलु (डुवेपुरिसाभवंतीत्यादि) इहास्मिन् जगति । खलुशब्दोवाक्यालंकारे । द्वौ पुरुषौ भवतस्तत्रैकः क्रियामाख्याति । क्रिया हि देशादेशांतरावाप्तिलक्षणा पुरुषस्य भवतीति न कालेश्वरादिना चोदितस्य भवत्यपितु नियतिप्रेरितस्यैवमक्रियापि । यदि तावतंत्रौ भवतः । ततः क्रियावादमक्रियावादंच समाश्रितौ द्वावपि नियत्यधीनत्वात्तुल्यौ । यदि पुनस्तौ स्वतंत्रौ भवतस्ततः क्रियाक्रियाभेदान्नतुल्यौ स्यातामित्यत एकार्थावेककारणापन्नत्वादिति नियतिवशेनैव तौ नियतिवादमनियतिवादं चाश्रिताविति भावः । उपलक्षणार्थत्वाच्चान्योपि यःकश्चित्कालेश्वरादिपक्षांतरमाश्रयति । सोपि नियति चोदितएव इष्टव्यइति ॥ ३० ॥

बाले पुण एवं विप्पडिवेदेंति कारणमावन्ने अहमंसि डुक्खामिवा सोयामिवा जूरामिवा तिप्पामिवा पीडामिवा परितप्पामिवा अहमेयमकासिपरोवा जं डुक्खइवा सोयाइवा जूराइवा तिप्पाइवा पीडाइवा परितप्पाइवा परोएवमकासि एवं सेबाले सकारणंवा एवं विप्पडिवेदेंति कारणमावन्ने ॥ ३१ ॥

अर्थ—हवे ए नियतवादी परमतने विभावेछे (बालेपुणएवं विप्पडिवेदेंतिके०) ते परमतवादी बाल एटले अज्ञाने करी वली मुजाणे ते कहेछे. (कारणमावन्ने के०) सुख डुःखादिकने उपजवे ईश्वरादिकनुं कारण माने ते कहेछे (अहमंसि डुक्खामिवा के०) हुं आ जगत मांहे शारीरिक तथा मानसिक डुःख अनुभवुंछुं (सोयामिवाके०) इष्ट वियोग अने अनिष्ट संयोगनो करेलो शोक अनुभवुंछुं (जूरामिवा के०) अनर्थनी प्राप्तियें स्मरणायें झुरुंछुं अथवा अर्थ प्राप्तियें विचरुंछुं (तिप्पामिवा के०) शरीरनो बल उछुं थायछे (पीडामिवाके०) बाह्याभ्यंतर पीडा अनुभवुंछुं (परितप्पामिवाके०) परितापना

अनुनववुं (अहमेय मकासिके०) ए सुख दुःखादिक अनुनववुं ते माहाराज करेलाछे (परोवा के०) अथवा पर एटले बीजो पण (जं के०) जे दुःख अनुनवेछे शोक अनुनवेछे जूरेछे तेना शरीरनो बल ठंकुं थायछे पीडा अनुनवेछे परितापना अनुनवेछे ते (परोएवमकासिके०) तेणेज अनरे एम कीधोछे अथवा माहारे विषे बीजो कोइ सुख दुःखादिक उपजावे तेपण माहाराज करेलाछे (एवंके०) एम (सेबालेके०) ते बाल अज्ञानी (सकारणंवा के०) स्वकारण अथवा (परकारणंवाके०) पर कारण सर्व दुःखादिक जे छे ते पुरुषकार कारणकरी मानेछे (एवं के०) एम (विप्पडिवेदेंति के०) जाणेछे (कारणमावन्ने के०) ए जे पुरुषकार कारणने मानेछे ते बाल जाणवा ॥ ३१ ॥

॥ दीपिका—बालोज्ञः पुनरेवं विप्रतिवेदयति जानीते कारणमापन्नः कारणमुद्दिश्य । तद्यथा । योहमस्मि (दुःखामित्ति) दुःखमनुनवामि (सोयामित्ति) शोकमनुनवामि (जूरामित्ति) दुष्कृतप्रवृत्तमात्मानं गर्हामि अनर्थावाप्तौ विस्तरयामीत्यर्थः । तिप्पामि शरीरबलात्क्षरामि पीडामि पीडामनुनवामि परितापमनुनवामि । एवं यत्सुखदुःखादिकमनुनवामि तदहमेवाकार्षं परोवा यःदुःखादिकमनुनवति मयिवाऽऽपादयति तत्स्वयमेव कृतमिति । एवं सपुरुषकारणमापन्नः स्वकृतं परकृतं वा दुःखादि सर्वं पुरुषकारकृतमिति जानीते बालइत्यर्थः ॥ ३१ ॥

॥ टीका—नियतिवादी परमतोद्भिनावविषयाह । (बालेपुणइत्यादि) बालोज्ञः पुरुषः कालेश्वरवादीत्यादिकः । पुनरिति विशेषणार्थस्तदेव दर्शयति । एवमिति । वक्ष्यमाणनीत्या विप्रतिवेदयति जानीते कारणमापन्नः सुखदुःखयोः स्वकृतएव पुरुषः कालेश्वरादिर्वा कारणमित्येवमन्युपपन्नोनान्यन्नियत्यादिकं कारणमस्तीति । तदेवाह । तद्यथा । योहमस्मिन् दुःखमिति शारीरं मानसं दुःखमनुनवामि तथा शोचामीष्टानिष्टवियोगसंप्रयोगकृतं शोकमनुनवामि तथा (तिप्पामित्ति) शारीरबलं क्षरामि तथा (पीडामित्ति) सबाह्याभ्यंतरया पीडया पीडामनुनवामि तथा (परितप्पामित्ति) परितापमनुनवामि तथा (जूरामित्ति) अनार्यकर्मणि प्रवृत्तमात्मानं गर्हामि अनर्थावाप्तौ विस्तरयामीत्यर्थः । तदेवं यदहं दुःखमनुनवामि तदहमेवाकार्षं परपीडया कृतवानस्मीत्यर्थः । तथा परोपि यद्दुःखशोकादिकमनुनवति मयि चापादयति तत्स्वयमेव कृतमिति । तदेव दर्शयति । परोवेत्यादि । तथा परोपि यन्मां दुःखयति शोचयतीत्यादि प्राग्वन्नेयं । तत्सर्वमहमकार्षमित्येवं ह्यन्यामाकलितोऽज्ञोज्ञोवा बालएवं विप्रतिवेदयते जानीते स्वकारणंवा परकारणंवा सर्वं दुःखादिपुरुषकारणमिति जानीते एवं पुरुषकारकारणमापन्नइति ॥ ३१ ॥

मेहावि पुण एवं विप्पडिवेदेंति कारणमावन्ने अहमंसि डुक्खामिवा सोयामिवा जूरामिवा तिप्पामिवा पीडामिवा परितप्पामिवा णोअहं एवमकासि परोवा जं डुक्खाइवा जाव परितप्पाइवा णोपरो एवमकासि एवं से मेहावि सकारणंवा परकारणंवा एवंविप्पडिवेदेंति कारणमावन्ने से बेमि पाईणंवा जे तसथावरा पाणा तेएवं संघायमागच्छंति ते एवं विपरियासमावज्जंति तेएवं विवेगमागच्छंति तेएवं विहाणमागच्छंति तेएवं संगतियंति उवेहाए णोएवं विप्पडिवेदेंति तंजहा किरियातिवा जावणिरएतिवा अणिरएतिवा एवंते विरूवरूवेहिं कम्मसमारंन्नेहिं विरूवरूवाइं कामन्नोगाइं समारन्नंति न्नोयणाए ॥ ३१ ॥

अर्थ–हवे ए नियतवादी लोक ते पूर्वोक्त पुरुषकार कारणने बालत्व पणे मानीने पोताना मतनी स्थापना करेछे. (मेहाविपुणएवंविप्पडिवेदेंति के०) वली पंमित एवा नियत पक्ष ग्राही एम जाणेछे शुं जाणेछे ते कहेछे. (कारणमावन्ने के०) सुख डुःख जे उपजेछे तेने नियतटाली बीजो कारण कांइ जाणवो नही ते उपर कहेछे डुक्खामिवा सोयामिवा इत्यादि पाठनो अर्थ पूर्वे प्रमाणे लखेछे हुं सुख डुःख अनुन्नवुंछुं हुं शोक अनुन्नवुंछुं जुरुछुं शरीरनो बल ओछुं थायछे पीडा अनुन्नवुंछुं परितापना अनुन्नवुंछुं (णोअहंएवमकासि के०) ते में नथी कर्युं किंतु नियतने न्नवितव्यताना बलथकी माहारे विषे आव्योछे परंतु पुरुषकारादिक प्रमाण कांइ नथी जे कारण माटे कोइपुरुष पोताना आत्माने अनिष्ट नथाय एम वांछेछे तो शावास्ते ते शुं करवाने एवो करे के जे थकी ते डुःखी थाय परंतु अहींया नियतज प्रमाणछे (परोवा के०) अथवा पर एटले बीजो (जंडुक्खाइवा के०) जे कांइ डुःख अनुन्नवेछे (जावपरितप्पाइवा के०) यावत् परितापना अनुन्नवेछे ते पण (णोपरोएवमकासि के०) तेणे कीधो नथी परंतु नियति अने न्नवितव्यताने योगेंज सर्व उपजेछे)एवंसेमेहाविके०) एम ते मेधावि एटले पंमित पुरुष (सकारणंवापरकारणंवा के०) पोताने डुःखनो कारण अथवा परने डुःखनु कारण न्नवितव्यता छे परंतु न्नवितव्यता टाली बीजो कोइ पण कारण नथी (एवंविप्पडिवेदेंति के०) एम ते नियतवादि जाणेछे के जगत मांहे कोइ एक पापना करनारने पण डुःख उपजतुं नथी अने कोइएक सुकृतना करनारने डुःख उपजेछे माटे अंहींया पुरुषजे ईश्वर तेनुं कारण कांइपण नथी देखातुं किंतु (कारणमावन्ने के०) नियतज कारण देखायछे एमाटे न्नवितव्यता बलीष्ठछे हवे बीजो पण जे कांइ जगत मांहे

छे ते सर्वे नियतनेज वशेंछे एवो देखाडेछे. (सेबेमि के०) ते नियतवादी युक्तियें निश्चें करी बोलेछे (पाईणंवा के०) पूर्वादिक चार दिशिने विषे (जे तसथावरापाणाके०) जे कांइ त्रस अने स्थावर प्राणीछे (ते एवंसंघायमागछंति के०) ते एम जे कांइ शरीरादिक संबंध पामेछे ते नियतिनेज वशें पामेछे परंतु बीजो कर्मादिक कारण तेने कांइ नथी (ते एवंविपरियासमावज्जंति के०) ते एम बाल कुमार यौवन अने वृद्ध अवस्थादिक नानाप्रकारना पर्याय पामेछे ते सर्वे नियति थकीज अनुनवेछे (ते एवंविवेगमागछंतिके०) तथा ते एम नियति थकीज विवेक एटले शरीर ते थकी पृथक् नाव पामेछे (ते एवंविहाणमागछंति के०) तथा ते एम नियति थकीज विधान एटले अवस्था विशेष अर्थात् कुब्ज काणो खंज वामन जरा मरण रोग शोकादिक पामेछे (ते एवंसंगतियंतिउवेहाए के०) एरीते ते त्रस अने स्थावर प्राणी नियतने बले एटला नावने अनुनवेछे हवे श्रीसुधर्म स्वामि श्रीजंबूस्वामि प्रत्ये कहे छे के एवा नियतवादि पुरुषो मात्र एक नियतनोज पक्ष अनुसरीने परलोकनी बीक नराखता सावद्यानुष्ठान करेछे परंतु (णोएवंविप्पडिवेदेंतिके०) ते एवो नथी जाणता शुं नथी जाणता (तंजहा के०) ते कहेछे (किरियातिवा जाव अणिरएतिवा के०) क्रिया अक्रिया सिद्धि असिद्धि इत्यादिक यावत् नरक अनरक पर्यंतने नथी जाणता (एवंते के०) एम ते सर्वे दोष एक नियत उपरे स्थापन करीने (विरूवरूवे हिंकम्मसमारंनेहिं विरूवरूवाइंकामनोगाइंसमारनंति नोयणाए के०) नानाप्रकारना कर्म समारंने नोजनने अर्थें अने नोगने अर्थें नाना प्रकारना कामनोगने समारंने ॥ ३१ ॥

॥ दीपिका–मेधावी नियतिवादी कारणमापन्नः स्वकारणं परकारणं वा उद्दिश्य प्रवृत्तिर्न पुरुषकारकृता यतोनहि कस्यचिदात्माऽनिष्टोयेनानिष्टाङुःखोत्पादिकाः क्रियाः समारनंते किंतुनियत्यैवायमनिञ्चन्नपि तत्कार्यते येन ङुःखनाग्नवति । एवमसौ कारणमापन्नोवेत्तीति कारणं वात्र एकस्याऽसदनुष्ठानपरस्यापि न ङुःखमुत्पद्यते ततोनियतिरेव कर्त्रीति । एतदेवाह । (सेब्रेमित्ति) सोहं नियतिवादी ब्रवीमि ये केचित्त्रसाः स्थावराश्च प्राणिनस्ते नियतितएव औदारिकादिशरीरसंबधमागछंति बालकुमारादिकं विविधं पर्यायं नियतितएवानुनवंति नियतितएव विवेकं शरीरात्पृथग्नावं प्राप्नुवंति । विधानमवस्थाविशेषं कुब्जकाणांधत्वजरामरणादिकमागछंति तदेवं ते प्राणिनोनियत्यैव संगतिं यांति नानानाविधसुखङुःखनाजः स्युः । एवं नियतिवादोत्प्रेक्षया एतद्वक्ष्यमाणं न विप्रतिवेदयंति न जानंति । तद्यथा । क्रियाअक्रियाइत्यादि यावद्विरूपरूपान् कामान् नोगान् नोजनाथोपनोगार्थं समारनंते ॥ ३१ ॥

॥ टीका—तदेवं नियतिवादी पुरुषकारकारणवादिनोबालत्वमापाद्य स्वमतमाह । (मेहावीत्यादि) मेधा मर्यादा प्रज्ञा वा तद्वान् मेधावी नियतिवादपक्षाश्रय्येवं विप्रतिवेदयति जानीते कारणमापन्नइति नियतिरेव कारणं सुखाद्यनुभवस्य । तद्यथा योहमस्मिन् डुःखयामि शोचयामि तथा (तिप्पामित्ति) झूरामि (पीडामित्ति) पीडामनुभवामि (परितप्पामित्ति) परितापमनुभवामि नाहमेवाकार्षं डुःखमपि तु नियतितएवैतन्मम्या गतं न पुरुषकारादिकृतं । यतोनहि कस्यचिदात्मा निष्टोयेनानिष्टाडुःखोत्पादिताः क्रियाः समारभंते नियत्यैवासावनिछन्नपि तत्कार्यते येन डुःखपरंपराभाग्भवति कारणमापन्नइति परेप्येवमेव योजनीयं । एवं सति नियतिवादी मेधावीति सोल्लुंठमेतत्सकिल नियतिवादी दृष्टं पुरुषकारं परित्यज्यादृष्टनियतिवादाश्रयेण महाविवेकीत्येवमुल्लंघ्यते स्वकारणं परकारणं च डुःखादिकमनुभवन्नियतिकृतमेतदेवं विप्रतिवेदयति जानाति कारणमापन्नं नियतिकारणं चात्रैकस्यासदनुष्ठानरतस्यापि नडुःखमुत्पद्यते परस्य तु सदनुष्ठायिनोपि तद्भवति यतोनियतिरेव कर्त्रीति । तदेवं नियतिवादे स्थिते परमपि यत्किंचित्तत्सर्वं नियत्यधीनमिति दर्शयितुमाह (सेबेमीत्यादि) सोहं नियतिवादी युक्तितोनिश्चित्य ब्रवीमीति प्रतिपादयामि । ये केचन प्राच्यादिषु दिक्षु त्रस्यंतीति त्रसा द्वींद्रियादयः स्थावराश्च पृथिव्यादयः प्राणिनस्ते सर्वेप्येवं नियतितएवौदरिकादिशरीरबंधमागछंति नान्येन केनचित्कर्मादिना शरीरं ग्राह्यंते तथा बालकौमारयौवनस्थविरवृद्धावस्थादिकं विविधपर्यायं नियतितएवानुभवंति तथा विवेकं शरीरात्पृथग्भावमनुभवंति । तथा नियतितएव विविधं विधानमवस्थाविशेषं कुब्जकाणखंजवामनकजरामरणरोगशोकादिकं बीभत्समागछंति । तदेवं ते प्राणिनस्त्रसाः स्थावराएवं पूर्वोक्तनीत्या संगतिं यांति नियतिमापन्नानानाविधविधानभाजोभवंति । तएव वा नियतिवादिनः संगइयंति नियतिमाश्रित्य तडुत्प्रेक्षया नियतिवादोत्प्रेक्षया यत्किंचन कारितया परलोकभीरवोनो नैव तद्वक्ष्यमाणं विप्रतिवेदयंति । तद्यथा । क्रिया सदनुष्ठानरूपा अक्रियाऽसदनुष्ठानरूपाइत्यादि यावदेवं ते नियतिवादिनस्तडुपरि सर्वं दोषजातं प्रक्षिप्य विरूपरूपैः कर्मसमारंभैर्विरूपरूपान् कामभोगान्भोजनायोपभोगार्थं समारभंतइति ॥ ३१ ॥

एवमेव ते अणारिया विप्पडिवन्नाइं तंसद्दहमाणा जावइति ते
णोहव्वाए णोपाराए अंतरा कामभोगेसु विसण्णा चउछे पुरिस
जाए णियइवाइ एत्ति आहिए ॥ ३३ ॥

अर्थ—एरी ते ते अनार्य पुरुष कामभोगने विषे गृद्ध थता पोतानो धर्म रुडो करी प्ररूपता ते पाखंमी धर्म राजादिकने सद्दावता थका ज्यां सुधी एम ते कांठे पण रह्या

नही अने पार पण पोता नही विचाले कामनोगने विषे खूता रहे ते पोताने पण उ द्धरी शके नही अने राजारूप पुंमरीक कमलने पण नद्धरी शके नही ते आ लोक थ की पण भ्रष्ट थया अने मुक्तियें पण पोचे नही परंतु विचाले संसार मांहेज खुची रहे ए चोथो पुरुषजात नियत वादी कह्यो ॥ ३३ ॥

॥ दीपिका—तदेवं ते नियतिवादिनो ऽनार्याविप्रतिपन्नास्तं निर्युक्तिकं नियतिवादं श्रद्दधा नाऽत्यादि तावन्नेयं यावदंतरा कामनोगेषु विषस्रा इति चतुर्थः पुरुषजातः संपूर्णः ॥३३॥

॥ टीका—तदेवमेव पूर्वोक्तया नीत्या तेऽनार्याविरूपं नियतिमार्गं प्रतिपन्नाविप्रतिपन्नाः। अनार्यत्वं पुनस्तेषां निर्युक्तिकस्यैव नियतिवादस्य समाश्रयणात् । तथा ह्यसौ नियतिः किं स्वतएव नियतिस्वनावा उतान्यया नियत्या नियम्यते किंवाऽतस्तत्र यद्यसौ स्वयमेव तथा स्वनावः सर्वपदार्थानामेव तथा स्वनावत्वं किं न कल्प्यते किं बहुदोषया नियत्या समाश्रितया । अथान्यया नियत्या तथा नियम्यते साप्यन्ययेत्येवमनवस्था । तथा नियतेः स्वनावत्वान्नियतिस्वनावया तया नवितव्यं न नानास्वनावयेति । एकत्वाच्च नियतेस्तत्का र्येणाप्येकाकारेणैव नवितव्यं । तथाच सति जगद्वैचित्र्यानावः । नचैतद्दृष्टमिष्टंवा । त देवं युक्तिनिर्विचार्यमाणा नियतिर्नैकथंचिद्घटते । यदप्युक्तं । द्वावपि तौ पुरुषौ क्रियाक्रि यावादिनौ तुल्यौ एतदपि प्रतीतिबाधितं । यतस्तयोरेकः क्रियावाद्यपरस्त्वक्रियावादीति कथमनयोस्तुल्यत्वमथैकया नियत्या तथा नियतित्वात्तुल्यता अनयोरेतच्च निरंतराः सुहृ दः प्रत्येष्यंति । नियतेरप्रमाणत्वात् । अप्रमाणत्वं च प्राग्लेशतः प्रदर्शितमेव । यदप्युक्तं । यदुःखादिकमहमनुनवामि तन्नाहमकार्षमित्यादि तदपि बालवचनप्रायं । यतोजन्मांतरकृ तं शुनमशुनंवा तदिहोपजुज्यते स्वकृतकर्मफलेश्वरत्वादसुमतां । तथा चोक्तं । यदिह क्रिय ते कर्म, तत्परत्रोपजुज्यते । मूलसिक्तेषु वृक्षेषु, फलं शाखासु जायते । तथा यदुपात्तमन्य जन्मनि शुनाशुनं वा स्वकर्मपरिणत्या तच्छक्यमन्यथा नोकर्तुं देवासुरैरपि हि । तदेवं ते निय तिवादिनोनार्याविप्रतिपन्नास्तमेव निर्युक्तिकं नियतिवादं श्रद्दधानास्तमेव च प्रतीयंते इत्यादि तावन्नेयं यावदंतरा कामनोगेषु विषस्राइति । चतुर्थः पुरुषजातः समाप्तः ॥ ३३ ॥

इच्चेते चत्तारि पुरिसजाया णाणापन्ना णाणाछंदा णाणासीला णाणादिठ्ठी णाणारुई णाणारंना णाणाअश्ववसाणा संजुत्ता प हीणपुव्वसंजोगा आरियं मग्गं असंपत्ता इति ते णोहव्वाए णो पाराए अंतरा कामनोगेसु विसन्ना ॥ ३४ ॥

अर्थ-(इच्चेतेचत्तारिपुरिसजाया के०) एरीते ते पूर्वोक्त चार पुरुष जात तेमां एक जीव तच्छरीरवादी बीजो पंचमहाभूतिक त्रीजो ईश्वरकारणी अने चोथो नियतवादी ए चार पुरुषते (णाणापन्ना के०) नानाप्रकारनी प्रज्ञा एटले बुद्धिवाला तथा नाना प्रकारना अभिप्राय वाला नाना प्रकारना शील एटले आचार वाला नाना प्रकारनी दृष्टी वाला नाना प्रकारनी रुची वाला नाना प्रकारना आरंभना करनार नाना प्रकारना अध्यवसाय तेणे करी (संजुत्ता के०) संयुक्त छता पोताना धर्मनेविषे सावधान थया (पहीणपुव्वसंजोगा के०) पूर्व संयोगजे माता पिता पुत्र कलत्रादिकनो संबंध तेनेत्यागीने (आरियंमग्गंअसंपत्ता के०) आर्य मार्गने अण पाम्या एमते कांठे पण न रह्या पार पण नपाम्या विचाले कामभोगने विषे खूता एटले परतीर्थिक चार पुरुष कह्या॥ ३४ ॥

॥ दीपिका-इत्येते चत्वारः पुरुषानानाप्रज्ञानानामतयोनानाछंदानानाभिप्रायानानाशीलाअनेकाचारानानादृष्टयोऽनेकदर्शनानानारुचयोनानाप्रकारआरंभोधर्मानुष्ठानं येषां ते तथा नानाप्रकारेणाध्यवसायेन संयुक्ताधर्मार्थमुद्यताः प्रहीणपूर्वसंयोगामातापितृकलत्रादिसंबंधरहिताआर्यं निर्दोषं मार्गमसंप्राप्ताः (णोहव्वाएत्ति) ऐहिकसुखभाजः (णोपराएत्ति) नापि भवपारगाः स्युः किंतु अंतरालएव कामभोगेषु विषम्णाः ॥ ३४ ॥

॥ टीका-सांप्रतमुपसंजिघृक्षुराह । (इच्चेतेइत्यादि) इत्येते पूर्वोक्तास्तज्जीवतच्छरीरपंचमहाभूतेश्वरकर्तृनियतिवादपक्षाश्रयिणश्चत्वारः पुरुषानानाप्रकारा प्रज्ञा मतिर्येषां ते तथा नानाभिन्नश्छंदोऽभिप्रायोयेषां ते तथा नाना प्रकारं शीलमनुष्ठानं येषां तथा नानारूपा दृष्टिर्दर्शनं येषां ते तथा नानारूपा रुचिश्चेतोभिप्रायोयेषां ते तथा नानाप्रकारआरंभोधर्मानुष्ठानं येषां ते तथा नानाप्रकारेण परस्परभिन्नेनाध्यवसायेन संयुक्ताधर्माधर्मार्थमुद्यताः प्रहीणः परित्यक्तः पूर्वसंयोगोमातृपितृकलत्रपुत्रसंबंधोयैस्ते तथा । आराद्यातः सर्वहेयधर्मेभ्यइत्यार्योमार्गोनिर्दोषः पापलेश्यासंपृक्तस्तमार्यं मार्गमसंप्राप्ताइति पूर्वोक्तया नीत्या ते चत्वारोपि नास्तिकादयो (णोहव्वाएइत्ति) परित्यक्तत्वान्मातृपित्रादिसंबंधस्य धनधान्यहिरण्यादिसंचयस्य च नैहिकसुखभाजोभवंति । तथा (णोपाराएत्ति) असंप्राप्तत्वादार्यस्य मार्गस्य सर्वोपाधिविशुद्धस्य प्रगुणमोक्षपद्धतिरूपस्य न संसारपारगामिनोभवंति न परलोकसुखभाजोभवंतीति किंत्वंतरालएव गृहवासार्यमार्गयोर्मध्यवर्तिनएव कामभोगेषु विषम्णाअध्युपपन्नादुष्पारपंकमग्नाइव करिणोविषीदंतीति स्थितं ॥ ३४ ॥

सेबेमि पाईणंवा संतेगतिया मणुस्सा भवंति तंजहा आयरियावेगे अणारियावेगे उच्चागोयावेगे णीयागोयावेगे कायमंतावेगे हस्समंतावेगे सुव

न्नावेगे डुवन्नावेगे सुरूवावेगे डुरूवावेगे तेसिंचणं खेत्तवत्थूणि परिग्गहिया णि नवंति तं अप्पयरोवा नुज्जयरोवा तेसिंचणं जण जाणवयाइं परिग्ग हियाइं नवंति तं अप्पयरोवा नुज्जयरोवा तहप्पगारेहिं कुलेहिं आगम्म अनिनूय एगे निरकायरियाए समुठिता सतोवावि एगे णाय उय उवग रणंच विप्पजहाय निरकायरियाए समुठिता असतोवा वि एगे णाय उय उवगरणंच विप्पजहाय निरकायरियाए समुठिता जेते सतोवा असतोवा णाय उय अणाय उय उवगरणंच विप्पजहाय निरकायरियाए सुमुठिता॥३८

अर्थ—हवे पांचमो पुरुष स्वतीर्थिक कहियेंबेयें (सेबेमि के०) जे पुरुष कामनोगने विषे अनासक्तबतो अंतराले नखुचे पुंमरीक कमलने उद्धारवा समर्थ ते हुं कहुंबुं (पाईणंवासंतेगतियामणुस्सा के०) पूर्वादिक दिशियें कोइ एक मनुष्य होय ते कहे वो होय (तंजहा के०) ते कहेबे. एक आर्य एक अनार्य एक उंचगोत्रना उपना एक नीचगोत्रना उपना एक महोटी कायाना धणी एक न्हानी कायाना धणी एक सारावर्ण वाला एक मागावर्ण वाला एक स्वरूपवान् एक कुरूपवान् (तेसिंचणं के०) ते पूर्वोक्त आर्यादिक पुरुषने (खेत्तवत्थूणिपरिग्गहियाणिनवंति के०) क्षेत्रते उघाडी नूमिका शाली क्षेत्रादिक तथा वस्तु ते घर हाट प्रमुख ढाकेली नूमिका ए परिग्रह होय (तंअप्प यरोवानुज्जयरोवा के०) तेअल्पतर एटले थोडा होय अथवा प्रनूततर एटले घणा होय वली (तेसिंचणंजणजाणवयाइंपरिग्गहियाइंनवंति के०) तेने जन एटले लोक जानपद एटले देश ए परिग्रह होय (तंअप्पयरोवानुज्जयरोवा के०) तेपण अल्पतर एटले थोडा होय अथवा प्रनूततर एटले घणा होय (तहप्पगारेहिंकुलेहिं आगम्मअनिनूय के०) तथा ते आर्यादिक तथा प्रकारना कुलने विषे आगम्म एटले जन्म पामीने कोइ एक महासत्ववंत पुरुष विषय कषायने जीपीने (एगेनिरकायरियाए के०) कोइएक निक्षाचर्याने विषे (समुठिता के०) सम्यक् प्रकारे उज्या सावधान थया (सतोवाविएगेणायउयउ वगरणंच के०) कोइएक महा सत्ववंत पुरुष विद्यमान एवा णायउय एटले ज्ञाति स्वजनादिक तथा उपकरण ते धन धान्य सुवर्ण रूपादिक अनेक प्रकारनाबे तेने (विप्प जहाय के०) त्यागीने (निरकायरियाए के०) निक्षाचर्याने विषे (समुठिता के०) सम्यक् प्रकारे उज्या एटले चारित्रिया थया (असतोवाविएगेणायउवगरणंचविप्पजहा यनिरकायरियाएसमुठिता के०) कोइ एक महा सत्ववंत पुरुष ते अबता ज्ञाति स्वजन उपकरणादिक अनेक प्रकारनाबे तेने त्यागीने निक्षाचर्याने विषे सम्यक् प्रकारे सावधान

थया (जेते के०) हवे जे ते (सतोवा असतोवा के०) छतो अथवा अछतो एवो (णा यत्तय के०) ज्ञाति स्वजनादिक नोपरिग्रह (अणायत्तय के०) ज्ञाति स्वजनादिकथी रहित पणानोपरिग्रह (उवगरणंच के०) तथा धन धान्य सुवर्णादिक नोपरिग्रह तेने (वि प्पजहाय के०) त्यागीने (भिरकायरियाए के०) भिक्षाचर्याने विषे एटले चारित्रने विषे (समुठिता के०) सम्यक् प्रकारे उठ्या सावधान थया ॥ ३५ ॥

॥ दीपिका—अथलोकोत्तरं पंचमं भिक्षुं पुरुषमाह । तदहं ब्रवीमि । यत्प्राच्यादिदिशमुद्दिश्य एके केचन मनुजाः संति भवंति । तद्यथा आर्याआर्यदेशोत्पन्नास्तद्विपरीताअनार्याउच्चैर्गोत्रोभ्रवानीचैर्गोत्रोभ्रवाः कायवंतउच्चशरीराऱ्ह्स्वावामनादयः सुवर्णाडुर्वर्णाः सुरूपाडुरूपास्तेषां वाऽऽर्यादीनां क्षेत्राणि शालिक्षेत्रादीनि वस्तूनि गृहाणि परिगृहीतानि स्वीकृतानि भवंति । किंभूतानि अल्पतराणि प्रभूततराणि वा । तथा तेषां जनपदाः स्वीकृता भवंति तेष्यल्पतराः प्रभूततरावा । तेष्वार्यादिषु तथा प्रकारेषु कुलेषु आगम्य जन्म लब्ध्वा ऽभिभूय विषयादीन् प्रव्रज्यां गृहीत्वा एके केचन सत्ववंतोभिक्षाचर्यायां समुत्थिताउद्यताः । तथा सतोविद्यमानान् ज्ञातीन् स्वजनानुपकरणं च धनधान्यादिकं विप्रहाय त्यक्त्वा असतोवा ज्ञातीनुपकरणंच त्यक्त्वा समुत्थिताः प्रव्रज्योद्यताः ॥ ३५ ॥

॥ टीका—उक्ताः परतीर्थिकाः सांप्रतं लोकोत्तरं भिक्षावृत्तिं भिक्षुं पंचमं पुरुषजातमधिकृत्याह । (सेबेमीत्यादि) याद्दक्कामभोगेष्वसक्तः सन्नंतरा नोवसीदति पद्मवरपौंडरीकोद्धरणाय च समर्थोभवति तदेतदहं ब्रवीमीति । अस्य चार्थस्योपदर्शनाय प्रस्तावमारचयन्नाह । प्राच्यादिकामन्यतरां दिशमुद्दिश्यैके केचन मनुष्याः संति भवंति । तद्यथा । आर्यदेशोत्पन्नामगधादिजनपदोभ्रवास्तथाऽनार्याः शकयवनादिदेशोभ्रवास्तथा चोच्चैर्गोत्रोभ्रवाइक्ष्वाकुहरिवंशादिकुलोभ्रवास्तथा नीचैर्गोत्रोभ्रवावर्णापसदसंभूतास्तथा कायवंतः प्रांशवस्तथा ऱ्ह्स्वावामनकादयस्तथा सुवर्णाडुर्वर्णाः सुरूपाः कुरूपावा एके एव केचन परवशाभवंति तेषां चार्यादीनां । णमितिवाक्यालंकारे । क्षेत्राणि शालिक्षेत्रादीनि वस्तूनि खातोच्छ्रितादीनि तानि परिगृहीतानि स्वीकृतानि भवंति । तान्येव विशिनष्टि । अल्पतराणि स्तोकतराणि वा प्रभूततराणिवा भवंति । तथा तेषामेव च जानपदाः परिगृहीताभवंति तेऽल्पतराः प्रभूततरावा भवेयुस्तेषु चार्यादिविशिष्टेषु तथाप्रकारेषु कुलेष्वागम्यैवंभूतानि गृहाणि गत्वा तथा प्रकारेषु वा कुलेष्वागम्य जन्म लब्ध्वाऽभिभूयच विषयकषायादीन् परीषहोपसर्गान् वा सम्यगुत्थानेनोत्थाय प्रव्रज्यां गृहीत्वैके केचन तथाविधसत्ववंतोभिक्षाचर्यायां सम्यगुत्थितास्तथा सतोविद्यमानानपिवा एके केचन महासत्वोपेताज्ञातीन् स्वज

नांस्तथोपकरणं च कामभोगांगं धनधान्यहिरण्यादिकं विविधं प्रकर्षेण हित्वा त्यक्त्वा भिक्षाचर्यायां सम्यगुत्थिताअसतोवा ज्ञातीनुपकरणंच विप्रहाय भिक्षाचर्यायामेके केच नापगतस्वजनविभवाः समुत्थिताः ॥ ३५ ॥

पुव्वमेव तेहिं णायं भवइ तं जहा इह खलु पुरिसे अन्नमन्नं ममहाए एवं विप्पडिवेदेंति तं जहा खेत्तंमे वत्थूमे हिरस्संमे सुवन्नंमे धणंमे धस्संमे कंसंमे दूसंमे विपुलधणकणगरयणमणिमोत्तियसंखसिलप्पवालरत्तरय णसंतसारसावतेयंमे सद्दामे रूवामे गंधामे रसामे फासामे एते खलु मम कामभोगा अहमवि एतेसिं ॥ ३६ ॥ सेमेहावि पुव्वमेव अप्पणो ए वं समभिजाणेज्जा तं जहा इह खलु मम अन्नयरे दुक्खे रोयातंके समुप्प ज्जेज्जा अणिठे अकंते अप्पिए असुभे अमणुन्ने अमणामे दुक्खे णोसु हे सेहंता भयंतारो कामभोगाइं मम अन्नयरं दुक्खं रोयातंकं परियाइय ह अणिठं अकंते अप्पियं असुभं अमणुन्नं अमणामं दुक्खं णोसुहं त हिं दुक्खामिवा सोयामिवा जूरामिवा तप्पामिवा पीडामिवा परितप्पामि वा इमाउ ममे अस्सयराउ दुक्खाउ रोगातंकाउ पडिमोयउ अणिठाउ अ कंताउ अप्पियाउ असुभाउ अमणुन्नाउ अमणामउ दुक्खाउ णोसुहाउ एवमेव णोलद्धपुव्वं भवइ ॥ ३७ ॥

अर्थ-(तेहिं के०) ते पुरुषने (पुव्वमेव के०) प्रथम चारित्र लेवाना वखतेज एवो (णायंभवइ के०) जाण्युछे (तंजहा के०) ते कहेछे. (इह के०) आ जगत मांहे खलु इति वाक्यालंकारे (पुरिसे के०) ते पुरुषे (अन्नमन्नं के०) अनेरी अनेरी वस्तु एटले अमुक अमुक जुदी जुदी वस्तु (ममहाए के०) महारा उपभोगने अर्थे अशे (एवं के०) एम (विप्पडिवेदेंति के०) वेद प्रवितियति एटले जाण्युछे (तंजहा के०) ते वस्तुना नाम कहेछे. (खेत्तंमे के०) आ क्षेत्र महारुंछे (वत्थूमे के०) ए घर हाट महाराछे (हिरस्संमे के०) आ रूपुं महारुंछे (सुवस्संमे के०) आ सोनु महारुं छे (धणंमे के०) आ धन महारुंछे (धन्नंमे के०) आ धान्य महारुंछे (कंसंमे के०) आ कांसाना भाजन महाराछे (दूसंमे के०) आ दुष्य एटले वस्त्र महाराछे (विपुल, ध ण, कणग, रयण, मणि, मोत्तिय, संख, सिल, प्पवाल, रत्त, रयण, संत सार साव तेयंमे के०) एम विस्तीर्ण धन कनक सोलजातिना रत्न सात जातना मणी, मोक्तिको संख

ते दक्षिणावर्त्त प्रमुख शीलते कशवटी प्रवाला रक्तरत्न तथा संत एटले ठतो सार एटले प्रधान एवो सावतेयं एटले धन ए सर्व मह्‌ारा उपनोगने अर्थे थशे (सद्दामे के०) शब्द वंशादिकना (रूवामे के०) रूप स्त्रियादिकना (गंधामे के०) गंध ते कस्तूरी कर्पूरादिक वस्तुना (रसामे के०) रसमधुरादिक वस्तुना (फासामे के०) स्पर्श मृडु कठणादिक वस्तुना (एते कें०) ए समस्त वस्तु ते खलु इति निश्चे (ममकामनोगा के०) ए कामनोग ते माहाराठे अने (अहमवि के०) हुंपण (एतेसिं के०) एनोबु ॥२६॥ हवे (से मेहावि के०) ते पंमित (पुव्वमेव के०) पूर्वे (अप्पणो के०) पोताना हृदय साथे (एवं के०) एवुं (समनिजाणेज्जा के०) सम्यक् प्रकारे जाणे आलोचे एटले प्रथम थीज पोताना हृदयसाथें विचारे के ए मह्‌ाराठे किंवा नथी एवो विचारे ते शुं विचारे (तंजहा के०) ते कहेबे. (इहखलु के०) आ संसारनेविषे निश्चे (ममअन्नयरे के०) मह्‌ारा शरीरने विषे अन्य कोइ एक (डुक्के के०) डुःख मस्तक पीडादिक (रोयातंके के०) रोगातंक एटले असाध्य रोग शूलादिक (समुप्पज्जेज्जा के०) उपजे ते रोग केवोहोय ते कहेबे. (अणिठे के०) अनिष्टकारी (अकांते के०) आक्रांतकारी (अप्पिए के०) अप्रिय कारी (असुने के०) अशुनकारी (अमणुन्ने के०) अमनोज्ञ एटले मनने गमे नही (अमणामे के०) विशेष प्रकारें पीडानो करनार (डुक्के के०) डुःख रूप (णोसुहेसेहंता के०) नथी ज्यां लवलेशमात्र सुख, एवो डुःख उपने थके ते पूर्वोक्त कामनोगादि योग्य जे वस्तुठे ते प्रत्ये एवुं कहे के (नयंतारो के०) अहो नय थकी राखनाराउ (कामनोगाइं के०) धन धान्यादिक तथा शब्दादिक कामनोगो तुमे (मम के०) मह्‌ारे शरीरे (अन्नयरंडुःखं के०) अनेरा डुःख जे (रोयातंकं के०) रोगातंक शूलादिक उपनाठे (परियाइयह के०) तेने तमे वेहेंची ल्यो मह्‌ारे अर्थे (अणिठं के०) अनिष्ट कारी (अकंतं के०) अक्रांत कारी (अप्पियं के०) अप्रियकारी (असुनं के०) असुनकारी (अमणुन्नं के०) अमनोज्ञ (अमणामं के०) विशेषे अमनोज्ञ पीडाकारी (डुक्खं के०) डुःखरूप (णोसुहं के०) नथी ज्यां लव लेश मात्र सुख (तहिं के०) तेणेकरी (डुक्खामिवा के०) आकरो डुःखी बुं (सोयामिवा के०) शोक अनुनवुंबुं (जूरामिवा के०) जुरुंबुं (तप्पामिवा के०) मह्‌ारो रुदय तपेठे बीजायठे (पीडामिवा के०) पीडा अनुनवुंबुं (परितप्पामिवा के०) विशेषे पीडा अनुनवुंबुं इत्यादिक (इमाउ के०) ए (ममे के०) मने (अन्नयराउ के०) अनेरा (डुक्काउ के०) डुःख जे पूर्वोक्त मस्तक पीडादिक असाध्य (रोगातंकाउपडीमोहय के०) रोग आंतक शूलादिक जे थकी तत्काल प्राणनो नाश थाय ते थकी तमे मने मूकावो एवा (अणिठाउ के०) अनिष्टकारी (अकंताउ के०) आक्रां

त कारी (अप्पियाउ के०) अप्रियकारी (असुनाउ के०) असुनकारी (अमणुन्नाउ के०) अमनोज्ञ (अमणामउके०) अरुचता विशेषे अमनोज्ञ पीडाकारी एवा (डुरकाउ के०) डुःख (णोसुहाउ के०) नथी जेमांहे लेश मात्र सुख एवा जे डुःख ते थकी हे काम नोगादिको तमे मने मूकावो (एवमेव के०) एवीरीते जे कामनोगादिकने प्रार्थना करेछे तोपण (णोलद्धेपुवंनवइ के०) ते कामनोगापूर्वलब्धोनजवति एटले ते काम नोगादिक जेछे तेणे कोइ मनुष्यने पूर्वोक्त डुःख थकी मूकाव्यो छे एवो पूर्वे क्यां जाणवामां आव्युं नथी. ॥ ३७ ॥

॥ दीपिका—ये निक्षाचर्योद्यतास्तैः पूर्वमेव प्रव्रज्याग्रहणकालएतज्ज्ञातं स्यात् । तद्यथा । अन्य दस्तूद्दिश्य पुरुषः प्रव्रजितः प्रव्रज्यां ग्रहीतुकामोवा एवं विप्रतिवेदयति जानाति । तद्यथा । क्षेत्रं वास्तुगृहं हिरण्यं सुवर्णं कनकं धनंगोमहिष्यादि धान्यं शाल्यादि कांस्यं कांस्यपात्रादि दूष्यं वस्त्रादि । तथा विपुलानि धनकनकादीनि शंखादक्षिणावर्ताः मुक्तशैलादिकाः शिलाः प्रवालंविद्रुमं रक्तरत्नं पद्मरागादि सत्सारं-शोजनसारं शूलमण्यादि स्वापतेयं इव्यं सर्वमेतन्ममोपजोगाय नविष्यति । तथा शब्दरूपगंधरसस्पर्शामे कामनोगाअहमप्येतेषां नोगानां संबंधी ॥ ३८ ॥ अयमपि नोगसंबंधीति विचार्य समेधावी पूर्वमेवात्मना एवं समनिजानीयात् । तद्यथा । इह जन्मनि ममान्यत् डुःखं शिरोवेदनादिकं आतंकोवा आशु जीवितापहारी शूलादिकः । सकिंनूतः । अनिष्टोऽकांतोऽशुनोऽमनोज्ञः । अवनामयतीत्यवनामः पीडाविशेषकारी डुःखरूपः । नशुनोऽशुनकर्मकृतत्वात् । पुनर्डुःखोत्पादनमत्यंतडुःखज्ञापनार्थं । तदेवंनूतं डुःखं रोगातंकं वा हंतइति खेदे हेनगवंतः कामनोगायूयं मया पालितास्ततोयूयमपीदं डुःखं रोगातंकं वा (परियाइयह) विनज्य गृण्हीत । अत्यंतडुःखपीडितः पुनस्तान्येव विशेषणान्याह । अनिष्टादिविशेषणानि पूर्वं प्रथमांतानि पुनर्द्वितीयांतानि सांप्रतं पंचम्यंतानि । सचायमर्थः पूर्वं लब्धोन नवति । कोर्थः । नहि ते नोगादयोनरं डुःखान्मोचयंतीतिपूर्वं नज्ञातं॥३७॥

॥ टीकाः—ते पूर्वोक्तविशिष्टानिक्षाचर्यायामन्युद्यताः पूर्वमेव प्रव्रज्याग्रहणकालएव तैरेतज्ज्ञातं नवति । तद्यथा (इहेत्यादि) इह जगति । खलुवाक्यालंकारे । अन्यदन्य दस्तूद्दिश्य ममैतद्भोगाय नविष्यतीत्येवमसौ प्रव्रज्यां प्रतिपन्नः प्रवव्रजिषुर्वा प्रवेदयति जानात्येवं परिछिनत्ति । तद्यथा । क्षेत्रं शालिक्षेत्रादिकं वास्तु खातोछ्रितादिकं हिरण्यं धर्मलानादिकं सुवर्णंकनकं धनंगोमहिष्यादिकं धान्यंगोधूमादिकं कांस्यंकांस्यपात्रादिकं तथा विपुलानि प्रनूततराणि धनकनकरत्नमणिमौक्तिकानि (शंखशिलंति) मुक्तशैला

दिकाः शिलाः प्रवालं विद्रुमं । यदिवा (शिलप्पवालंति) श्रियायुक्तं प्रवालं श्रीप्रवालं वर्णादिगुणोपेतं तथा (रत्तरयणंति) रक्तरत्नं पद्मरागादिकं तथा सत्सारं शोनन सारमित्यर्थः । शूलमण्यादिकं तथा स्वापतेयं शुद्धं इव्यजातं सर्वमेतत्पूर्वोक्तं मे ममोपनोगाय नविष्यति । तथा शब्दावेणवादयोरूपाण्यंगनादीनि, गंधाः कोष्टपुटाद योरसामधुरादयोमांसरसादयोवा, स्पर्शामृडादयएते सर्वेपि खलु मे कामनोगायाहमप्ये षां योगक्षेमार्थं प्रनविष्यामीत्येवं संप्रधार्य; ॥ ३६ ॥ समेधावी पूर्वमेवात्मानं विजानीया देवं पर्यालोचयेत्।तद्यथा । इह संसारे। खलुशब्दोऽवधारणे।इहैवास्मिन्नेव जन्मनि म नुष्यनवे ममान्यतरद्दुःखं शिरोवेदनादिकं आतंकोवाऽऽशु जीवितापहारी शूलादिकः समु त्पाद्यते । तमेव विशिनष्टि । अनिष्टोऽकांतोऽप्रियोऽशुनोऽमनोज्ञोऽवनामयतीत्यवनामः पीडाविशेषकारी डुःखरूपोयदि वा नमनागमनाक् मे मम नितरामित्यर्थः।डुःखयतीति डुःखं पुनरपि डुःखोत्पादनं अत्यंतडुःखप्रतिपादनार्थं सुखलेशस्यापि परिहारार्थं च नोनै व शुनकर्मविपाकोदितत्वादिति । अत्रच यडुक्तं पुनरुच्यते तदत्यादरख्यापनार्थं तद्विशे षप्रतिपादनार्थं वेति। तदेवंनूतं डुःखं रोगातंकं वा हंतइतिखेदे नयात्रातारोयूयं क्षेत्रवस्तु हिरण्यसुवर्णधनधान्यादिकाः परिग्रहविशेषाः शब्दादयोवा विषयास्तथा हे नगवंतः! कामनोगायूयं मया पालिताः परिगृहीताश्च ततोयूयमपीदं डुःखं रोगातंकं वा (परि याइयहत्ति) विनागशः परिगृण्हीत यूयं। अत्यंतपीडयोद्विग्नः पुनस्तदेव डुःखं रोगातंकं वा विशेषणद्वारेणोच्चारयति । अनिष्टमप्रियमकांतमशुनममनोज्ञममनाग्नूतमवनामकं वा डुःखमेवैतन्नोशुनमित्येवंनूतं ममोत्पन्नं यूयं विनजताहमनेनातीव डुःखामीति डुःखि तइत्यादि पूर्ववन्नेयमित्यतोऽमुष्मान्मामन्यतरस्माद्दुःखाद्रोगातंकाद्वा प्रतिमोचयत यूयं । अनिष्टादिविशेषणानि तु पूर्ववद्व्याख्येयानि। प्रथमं प्रथमांतानि पुनर्द्वितीयांतानि सां प्रतं पंचम्यंतानीति। नचायमर्थस्तेन डुःखितेनैवमेवेति यथाप्रार्थितस्तथैव लब्धपूर्वोन वति । इदमुक्तंनवति । नहि ते क्षेत्रादयः परिग्रहविशेषानापि शब्दादयः कामनोगास्त डुःखितं डुःखाद्विमोचयंतीति ॥ ३७ ॥

इह खलु कामनोगा णोताणाएवा णोसरणाएवा पुरिसेवा एगता पुविं कामनोगे विप्पजहंति कामनोगावा एगता पुविं पुरिसं विप्पजहंति अन्ने खलु कामनोगा अन्नो अहमंसि से किमंगपुण वयं अन्नमन्नेहिं काम नोगेहिं मुछामो इति संखाएणं वयंच कामनोगेहिं विप्पजहिस्सामो से मेहावि जाणेज्जा बाहिरंगमेत्तं ॥ ३८ ॥

॥ अर्थ–(इहखलु के०) आ जगत् मांहे निश्चे थकी (कामभोगा के०) ते कामभोगादिकजेछे ते, पूर्वोक्त दुःखिया जीवने (णोताणाएवाके०) त्राणभणी नथाय. (णोसरणाएवा के०) अथवा शरण भणी नथाय. (पुरिसेवा के०) ते पूर्वोक्त दुःखी पुरुषने पूर्वोक्त रोगादिक उपने थके त्राण शरण भणी नथाय. हवे रुडा कामभोगनी लीलानो अंत देखाडे छे (एगता के०) एकदा (पुव्विं के०) प्रथम व्याधि उत्पन्न कालें, अथवा जरा जीर्ण कालें, अथवा राजादिकना उपद्रवने कालें पुरुष, (कामभोगेविप्पजहंति के०) ए कामभोगने मूके छे. (कामभोगावाएगतापुव्वंपुरिसंविप्पजहंतिके०) अथवा ए काम भोग पोतेंज एकदा दुव्यादिकने अभावें विषयाभिलाषी पणुं छतांज ते पुरुषने त्यागी मूकेछे; ते कारण माटे जे पंमित पुरुष होय ते एवीरीते अवधारण करे के, (अन्नेखलुकामभोगा के०) निश्चे करी ए कामभोगादिक जेछे ते, महारा थकी अन्यछे जुदाछे. (अन्नोअहमंसि के०) हुं पण ए कामभोगथकी अन्यछुं जुदोछुं. जो एमछे तो, (सेकिमंगपुणवयं के०) ते शा अर्थें वली अमे (अन्नमन्नेहिंकामभोगेहिं मुछामो के०) अनित्य अशाश्वत एवा जे ए कामभोग, तेने विषे मूर्छा एटले ममत्व करिये, केमके एवुं ए ममत्व करवुं तेतो व्यर्थछे. (इतिसंखाएणंके०) एरीते कोइ महा सत्ववंत पुरुष ते कामभोगादिकने पूर्वोक्त रीते व्यर्थ जाणीने, (वयंचकामभोगेहिंविप्पजहिस्सामो के०) अमे ए कामभोगादिकनो त्याग करशुं. एवो अध्यवसाय करे ते महापुरुष जाणवो. वली अन्य बीजुं वैराग्यनुं कारण कहेछे. (सेमेहाविजाणेज्जा के०) ते पंमित एम जाणे जे,(बाहिरंगमेत्तं के०) ए नव विध परिग्रह तथा शब्दादिक विषय जे छे ते दुःखथकी राखनार नथी; एतो सर्वे बाहिरंग संयोगि छे एटले बाह्यरूपछे, एवुं पंमित जाणेछे. ॥ ३० ॥

॥ दीपिका–एतदेवाह । इह भवे खलु कामभोगान त्राणाय वा स्युः । पुरुषः प्राणी एकदा पूर्वं कामभोगान् त्यजति कामभोगावा एकदा कदाचित्पुरुषं त्यजंति । सचैवं जानाति अन्ये भिन्नाः खलु मत्तः कामभोगाएतेभ्यश्च भिन्नोऽहं एवं सति वयमेतेषु अन्यभूतेषु कामभोगेषु मूर्छां कुर्मइत्येवं केचिन्महापुरुषाः परिसंख्याय सम्यक् ज्ञात्वा, कामभोगान् वयं विप्रजहिष्यामस्त्यक्ष्यामइत्यध्यवसायिनः स्युः । पुनर्वैराग्यकारणमाह । समेधावी एतत्क्षेत्रादिकं बाह्यांगं वर्ततइति जानीयात् ॥ ३० ॥

॥ टीका–एतदेव लेशतोदर्शयति (इहखलुइत्यादि) इहास्मिन् । खलुवाक्यालंकारे । ते कामभोगाअत्यंतमभ्यस्तान तस्य दुःखितस्य त्राणाय शरणाय वा भवंति । सुलालितानामपि कामभोगानां पर्यवसानं दर्शयितुमाह । (पुरिसेवाइत्यादि) पुरिशयनात्पुरुषः एकदा व्याध्युत्पत्तिकाले वाऽन्यस्मिन्वा राजाद्युपद्रवे तान्कामभोगान् परित्यजति । सवा पुरुषोद्रव्याद्यभावे

तैः कामन्नोगैर्विषयोन्मुखोपि त्यज्यते । सचैवमवधारयति अन्ये मत्तोनिन्नाः खल्वमी कामन्नोगास्तेन्यश्चान्योहमस्मि । तदेवं व्यवस्थिते "किमिति वयं पुनरेतेष्वनित्येषु परनूतेष्वन्येषु कामन्नोगेषु मूर्बां कुर्मः" इत्येवं केचन महापुरुषाः परिसंख्याय सम्यक् ज्ञात्वा, कामन्नोगान्वयं विप्रजहिष्यामस्त्यन्द्यामइत्येवमध्यवसायिनोन्नवंति । पुनरपरं वैराग्योत्पत्तिकारणमाह । (सेमेहावी) समेधावी श्रुतिकः एतज्जानीयात् । यदेतत्क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णशब्दादिविषयादिकं डुःखपरित्राणाय न नवतीत्युपन्यस्तं तदेतद्बाह्यांतरं वर्तते ॥ ३७ ॥

इणमेव नवणीयतरागं तं जहा मायामेपितामे नायामे नगिणीमे नज्जामे पुत्तामे धूतामे पेसामे नन्नामे सुएहामेसुहामेपियामे सहामेसयणसंगथसंथुयामे एते खलु मम णायउ अहमवि एतेसिं एवं से मेहावि पुवमेव अप्पणाएवं समन्निजाणेज्जा इह खलु मम अन्नयरे डुक्के रोयातंके समुप्पज्जेज्जा अणिठे जाव डुक्के णोसुहे सेहंता नयंतारो णायउ इम मम अन्नयरं डुक्कं रोयातंकं परियाइयह अणिठं जाव णोसुहं ताहिं डुक्कामिवा सोयामिवा जाव परितप्पामिवा इमाउमे अन्नयराता डुक्काता रोयातंको परिमोएह अणिघाउ जाव णोसुहाउ एवमेव णोलद्ध पुवं नवइ ॥३८॥ तेसिंवावि नयंताराणं मम णाययाणं अन्नयरे डुक्के रोयातंके समुपज्जेज्जा अणिठे जाव णोसुहं सेहंता अहमेतेसिं नयंताराणं णाययाणं इमं अन्नयरं डुक्कं रोयातंकं परियाइयामि अणिठं जाव णोसुहं मामे डुक्कंतुवा जाव मामे परितप्पंतुवा इमाउणं अण्णयराउ डुक्काता रोयातंकाउ परिमोएमि अणिघाउ जाव णोसुहाउ एवमेव णोलद्धपुवं नवइ अन्नस्स डुक्कं अन्नोन परियाइयंति अन्नेन कडं अन्नो नोपडिसंवेदेंति॥४०॥ पत्तेयं जायतियं पत्तेयं मरइ पत्तेयं चयइ पत्तेयं उववज्जइ पत्तेयं झंझा पत्तेयं सन्ना पत्तेयंमन्ना एवं विन्नू वेदणाइति खलु णातिसंजोगा णोताणाएवा णोसरणाएवा पुरिसेवा एगता पुविं णातिसंजोए विप्पजहंति णातिसंजोगावा एगता पुविं पुरिसं विप्पजहंति अन्ने खलु णातिसंजोगा अन्नो अहमंसि सेकिमंग पुणवयं अन्नमन्नेहिं णातिसंजोगेहिं मुच्चामो इति संखाएणं वयं णातिसंजोगं विप्पजहिस्सामो ॥ ४१ ॥

अर्थ-(इणमेवउवणीयतरागं के०) आ जे आगल कहेशे ते घणाज आसन्न ढुकडा व र्तेछे. (तंजहा के०) ते कहेछे. (मायामे के०) माता महारी, पिता महारो, नाइ म हारो, बहेन महारी,नार्या एटले स्त्री महारी,पुत्र महारा धूता एटले बेटी महारी, पेसा एटले दास महारा, (नत्नामे के०) मित्र महारा सखाइ महारा, अथवा पोत्रा तथा न्यातमहारी (सुन्हामेके०) स्नुषा एटले पुत्रनी वहु महारी, (पियामेके०) प्रिय (सहामे के०) सखा (सुहामेके०) सुहृत् एटले सज्जन महारा, (सयणसंगथसंथुयामेके०) स्वजन संस्तुत श्वशुरकुलादिक पितरियादिक ए सर्व महारा,तथा जेनी साथे घणो आलाप संला प परिचय थाय ते सर्व महारा, (एतेखलुममणायउके०) ए सर्व निश्चे थकी महारा ज्ञाति ना घणाज ढूकडा संबंधीछे. अने (अहमवि के०) हुंपण (एतेसिं के०) एहोनो छुं ए मने उपकार करशे, हुं एने उपकार करीश. (एवं के०) एरीते (सेमेहावि के०) ते पंमित (पुवमेव के०) पूर्वे (अप्पणा के०) पोताना आत्माने विषे (एवंसमनि जाणेज्जा के०) एम समस्त प्रकारें जाणे मनमांहे विचारे जे, (इहखलुमम के०) आ नवने विषे निश्चे मुजने (अन्नयरे के०) अनेरो कोइ (डुरकेरोयांतकेसमुपज्जेज्जाअ णिठ्ठेजावडुरकेणोसुहे के०) डुःख शूलादिक असाध्य रोग अनिष्ट यावत् डुःख कारी, अने नथी जेमां लेशमात्र सुख एवा रोगादिक उपने थके तेवारे ते पुरुष ते डुःखे डुःखित छतो, (सेहंताके०) माता पितादिक ज्ञाति गोत्री स्वजनादिकने प्रार्थना करे के, (नयंतारोके०) अहो नय थकी राखनारा एवा (णायउ के०) ज्ञाति गोत्रीउ ! (इम के०) एम (म म के०) मने (अन्नयरं के०) अनेरो डुःख रोगातंक शूलादिक उपनुंछे ते तमो वहें ची ल्यो. केमके ए अनिष्टकारी ज्यांसुधि लवलेश मात्र सुख नही (तहिंडुरकामिवा के०) तेवा डुःखे करी अत्यंत डुखीछुं सोचुछुं, यावत् पीडा अनुनवुंछुं. (इमाउणंअन्न यरातोडुरकातो के०) एमज अनेरे डुःखे अत्यंत डुःखीछुं, शोक परिताप पीडा अनुनवुं छुं, ते कारणे ए डुःरक तथा रोग आंतक थकी मुजने (परिमोएह के०) मूकावो. प रंतु अनिष्टकारी ज्यांसुधि जेंमांहे लेश मात्र सुख नथी एवा डुःख थकी मूकाववाने (एवमेवणो लद्धपुवंनवइके०) एरीते ते अर्थ मागतो लीये नही एटले ते डुःखने वहेंचीलीये नही; अर्थात् ते ज्ञाती, गोत्री, तेने डुःख थकी मूकववाने समर्थ नथाय. ॥३ए॥ (तेसिंवावि नयंताराणं के०) अथवा ते नयथकी राखनारा एवा जे (ममणाययाणं के०) महा रा ज्ञाति, गोत्री, तेने पण अनेरो कोइएक डुःख रोगातंक उपजे ते केवो उपजे तोके अनिष्टकारी यावत् नथी जेमां लेशमात्र सुख एवो रोग उपने थके हुंपण ते नयथकी राखनार थइश ज्ञाती गोत्रीयोनो डुःख रोगातंक वहेची लइश, कारणके तेवा अनिष्टकारी जेमांहे लेशमात्र सुख नथी एवा डुःख थकी महारा ज्ञाती गोत्री डुःखी थाय यावत्

महारा ज्ञाति विशेषे पीडा अनुभवे माटे एने पण अनेरा कोइ दुःख थकी, रोगातंक थकी, मुकावशुं. एवुं यद्यपि ते पोताना मन मांहे जाणे परंतु ते अनिष्टकारी जेमां लेश मात्र सुख नथी एवा दुःख ते ज्ञाती गोत्रीने उपने थके ते मांहेथी वहेंची नशके, एट ले तेमनु दुःख पोते लइ शके नही कारणके, (अन्नस्सदुक्खंअन्नोनपरियाइयंति के०) अनेरानुं दुःख अनेरो वहेंची लइ शके नही, एटले एकनुं दुःख बीजो वहेंची लइ शके नही. (अन्नेनकडं के०) अनेरानुं करेलुं कर्म (अन्नोनोपडिसेवेदेंति के०) अनेरो भो गवे नही. जेणे जे कीधुं होय ते तेहिज भोगवे ॥४०॥ (पत्तेयंजायतियंके०) जीव प्रत्येक प्रत्येक उपजेछे. (पत्तेयंमरइ के०) प्रत्येक प्रत्येक मरण पामेछे. (पत्तेयंचयइ के०) प्रत्येक प्रत्येक धन धान्यादिक ने छांमेछे. (पत्तेयंउववज्जइ के०) प्रत्येक प्रत्येक उपार्ज न करेछे संग्रहेछे. (पत्तेयंझंझा के०) प्रत्येक प्रत्येक झंझायक कलह लहेछे. (पत्तेयंसन्ना के०) प्रत्येक प्रत्येकने संज्ञा एटले पदार्थनुं परिज्ञानछे, ते कोइएकने अल्पछे, कोइएकने घणुंछे. एम तरतम योग ज्ञान उपजेछे. (पत्तेयंमन्ना के०) प्रत्येक प्रत्येक चित्तनो चिं तवनछे. (एवंविन्नूवेदणाइतिके०) एरीते विन्नू एटले जाणवुं. प्रत्येक प्रत्येक सुख दुः खरूप वेदनानो अनुभव थायछे, एतावता एकनुं करेलुं बीजो न भोगवे. (एवं के०) ए कारणे खलु इति निश्चे (णातिसंजोगा के०) ज्ञातिनो जे संयोगछे ते जीवने (णोता णाएवा के०) त्राण भणी नथाय. (णोसरणाएवा के०) जीवने शरण भणी न थाय. (पुरिसेवाएगतापुव्विंणातिसंजोएविप्पजहंति के०) एकदा प्रस्तावे ज्ञाति संयोगने ते पु रुष प्रथम छांमे. (णातिसंजोगावाएगतापुविंपुरिसंविप्पजहंति के०) अथवा एकदा प्र स्तावे ज्ञाति संयोग ते पुरुषने प्रथमथीज छांमे ते कारणे, (अन्नेखलुणातिसंजोगाके०) निश्चे ए ज्ञातिना संयोग जे छे, ते मुज थकी अन्यछे. (अन्नोअहमंसि के०) अने हुं एना थकी अन्यछुं एटले जुदोछु जो एमछे तोपण (सेकिमंगपुणवयंके०) किशोर कोमल वचने करी वली अम्हे ते (अनमन्नेहिं के०) माहो मांहे (णातिसंयोगेहिं के०) ज्ञाति ना संयोग साथे (मुछामो के०) मूर्छा कीधीछे. ते मूर्छा करवी योग्य नथी (इतिसंखा एणं के०) एवुं जाणीने (वयंणातिसंजोगंविप्पजहिस्सामो के०) अमे ज्ञाति संयोग छांमशुं. एवो अध्यवसाय जेनो होय तेने पंमित जाणवो. ॥४१॥

॥ दीपिका—इदमेव च वक्ष्यमाणमुपनीततरमासन्नतरं वर्तते । तद्यथा । माता, पिता, भ्राता, भगिनी, भार्या, पुत्रः, सुता, स्नुषा, प्रियः, सखा सुहृत्, इत्यादि ज्ञातयः पूर्वापरसंस्तुताएते खलु ज्ञातयोममोपकाराय भविष्यंति अहमप्येतेषां ज्ञातीनामुपकरि ष्यामीत्येवं समेधावी पूर्वमेवात्मना एवं समभिजानीयाद्विचारयेत् । इह भवे ममानिष्टा

दिविशेषणोदुःखातंकः समुत्पद्यते, ततोऽसौ तद्दुःखदुःखितोज्ञातीन् एवमन्यर्थयेत् । यथा ममान्यतरं दुःखमुत्पन्नं परिगृएहीत यूयं अहमनेनोत्पन्नेन दुःखातंकेन पीडयिष्यामीति ततोऽस्माद्दुःखान्मां परिमोचयत यूयमिति ॥३९॥ इदं सर्वं प्राग्वत् योज्यं। यावदेवं नोपलब्ध पूर्वं नवति। यतः अन्यस्य दुःखमन्योन पर्याददाति न गृएहाति अन्येन कृतं कर्म अन्यो न प्रतिसंवेदयति नानुनवति ॥ ४० ॥ यतःयस्मात्प्रत्येकं जीवोजायते, प्रत्येकं म्रियते, प्रत्येकं त्यजति परिग्रहं प्रत्येकमुत्पद्यते । यडुक्तं । एकस्य जन्ममरणे, गतयश्च शुन्नाशु नान्नवावर्ते ॥ तस्मादाकालिकहितमेकेनैवात्मनः कार्यं ॥ १ ॥ तथा प्रत्येकं ऊंऊा कल हः । तद्ग्रहणात्कषायागृह्यंते प्रत्येकमेव जीवानां कषायोदयः स्यादित्यर्थः । संज्ञाप्रदा र्थपरिछित्तिः सापि प्रत्येकं (मन्नत्ति) मननं चिंतनं पर्यालोचनमिति यावत् । प्रत्येकमे व विद्वान् प्रत्येकं वेदनाः (इतिखलुत्ति) इति पूर्वोक्तप्रकारेण खलु अमी ज्ञातिसंयोगा न त्राणाय न शरणाय। उत्पन्नपीडार्तिनिवारणं त्राणं, अनागतार्तिसंरक्षणं शरणं । यतः पुरुषएकदा ज्ञातिसंयोगान् विप्रजहाति, ज्ञातिसंयोगावा पुरुषं परित्यजंति तस्मादन्ये ज्ञा तिसंयोगाअहमन्योस्मीति नावनीयं । एवं सति किमिति पुनर्वयमन्यैरन्यैर्ज्ञातिसंयोगै मूर्गा कुर्मः । मूर्गाकरणं न युक्तमित्यर्थः। इति संख्याय ज्ञात्वा, वयं "ज्ञातिसंयोगान् त्य क्ष्यामः परिहरिष्याम" इति कृताध्यवसायाज्ञानतत्त्वाः स्युः ॥ ४१ ॥

॥ टीका—इदमेव चान्य द्वक्ष्यमाणमुपनीततरमापन्नतरं वर्तते। तद्यथा। माता, पिता, न्रा ता, नगिनीत्यादयोज्ञातयः पूर्वापरसंस्तुताएते खलु ममोपकाराय ज्ञातयोनविष्यंति, अह म"प्येतेषांस्नानजोजनादिनोपकरिष्यामी" त्येवं समेधावी पूर्वमेवात्म नैवंसमनिजानीयादि त्यादि।एवं पर्यालोचयेत्कल्पितवानिति वा।एतदध्यवसायी चासौ स्यादिति दर्शयितुमाह। (इहखलुइत्यादि) इहास्मिन्नवे मम वर्तमानस्यानिष्टादिविशेषणविशिष्टोदुःखातंकः स मुत्पद्येत ततोऽसौ तद्दुःखदुःखितोजानीते । तमेवमन्यर्थयेत् । तद्यथा। ममान्यतरं दुःखातंकमुत्पन्नं परिगृएहीत यूयमहमनेनोत्पन्नेन दुःखातंकेन पीडयिष्यामीत्यतोमुष्मान्मां परिमोचयत यूयमिति। नचैतत्तेन दुःखितेन लब्धपूर्वं नवति नहि ताज्ञातयस्तं दुःखान्मोच यितुमलमितिनावः॥३९॥ नासौ तेषां दुःखमोचनायालमिति दर्शयितुमाह. (तेसिंवावीत्या दि) सर्वं प्राग्वद्योजनीयं यावदेवमेव नो लब्धपूर्वं नवतीति । किमित्येवं नोपलब्धपूर्वं नवतीत्याह । (असुस्सदुःखमित्यादि) सर्वस्यैव संसारोदरविवरवर्तिनोऽसुमतः स्वकृतक र्मोदयाद्दुःखमुत्पद्यते तदन्यस्य संबंधि दुःखमन्योमातापित्रादिकोनप्रत्यापिधत्ते न तस्मा त्पुत्रादेर्दुःखेनासह्येनात्यंतपीडिताःस्वजनाः नापि दुःखमात्मनि कर्तुमलं । किमित्येवमा शंक्याह । (असेएकडमित्यादि) अन्येन जंतुना कषायवशगेन इंद्रियानुकूलतयाऽनिला

षिणा ज्ञानावृतेन मोहोदयवर्तिना यत्कृतं कर्म तडुदयमन्यः प्राणी नोप्रतिसंवेदय ति, नानुनवति तदनुनवने ह्यकृतागमकृतनाशौ स्यातां । नचेमौ युक्तिसंगतावतोयद्येन कृतं तत्सर्वं सएवानुनवति । तथाचोक्तं । परकृतकर्मणि यस्मान्नाक्रामति संक्रमोविन्ना गोवा ॥ तस्मात्सत्वानां कर्म यस्य यत्तेन तद्वेद्यं ॥१॥४०॥ यस्मात्स्वकृतकर्मफलेश्वराजंतव स्तस्मात्तदेतद्भवतीत्याह । (पत्तेयमित्यादि) एकमेकं प्रत्येकं सर्वोप्यसुमान् जायते, त था क्षीणे चायुषि प्रत्येकमेव म्रियते । उक्तंच । एकस्य जन्ममरणे, गतयश्च शुनाशुना नवावर्ते ॥ । तस्मादाकालिकहितमेकेनैवात्मनः कार्यमिति ॥१॥ तथा प्रत्येकं क्षेत्रवस्तु हिरण्यसुवर्णादिकं परिग्रहं शब्दादींश्च विषयान्मातापितृकलत्रादिकं च त्यजति, यथा प्रत्ये कमुपपद्यते युज्यते, परिग्रहस्वीकरणतया तथा प्रत्येकं ऊंकाकलहस्तद्ग्रहणात्कषायाः प रिगृह्यंते । ततः प्रत्येकमेवासुमतां मंदतीव्रतया कषायोद्भवोनवति । तथा संज्ञानं संज्ञा पदार्थपरिच्छित्तिः । सापि मंदमंदतरपटुपटुतरनेदात्प्रत्येकमेवोपजायते । सर्वज्ञादारतस्तरत मयोगेन मतेर्व्यवस्थितत्वात् । तथा प्रत्येकमेव । (मन्नत्ति) मननं चिंतनं पर्यालोचन मिति यावत् । तथा प्रत्येकमेव (विन्नुत्ति) विद्वांस्तथा प्रत्येकमेव सातासातरूपवेद ना सुखडुःखानुनवः । उपसंजिघृक्षुराह । (इतिखलुइत्यादि) इत्येवं पूर्वोक्तेन प्रकारे ण यतोनान्येन कृतमन्यः प्रतिसंवेदयते प्रत्येकं जातिजरामरणादिकं । ततः खल्वमी ज्ञा तिसंयोगाः स्वजनसंबंधाः संसारचक्रवाले पर्यटतोत्यंतपीडितस्य तडुद्धरणेन त्राणाय न त्राणं कुर्वंति, नाप्यनागतसंरक्षणतः शरणाय नवंति । किमिति । यतः पुरुषएकदा क्रो धोदयादिकाले ज्ञातिसंयोगान् विप्रजहाति परित्यजति, स्वजनाश्च न बांधवाइति व्यवहा रदर्शनात् ज्ञातिसंयोगादेकदा तदसदाचारदर्शनतः पूर्वमेव तं पुरुषं परित्यजंति स्वसंबं धाडुत्तारयंति । तदेवं व्यवस्थिते एतद्भावयेत्तद्यथान्ये खल्वमी ज्ञातिसंयोगामत्तोनिन्ना एन्यश्चान्योहमस्मि । तदेवं व्यवस्थिते किमिति पुनर्वयमन्यैरन्यैर्ज्ञातिसंयोगैर्मूर्छां कु र्मोन तेषु मूर्छा क्रियमाणा न्याय्यैवं संख्याय ज्ञात्वा, प्रत्याकलय्य वयमुत्पन्नवैराग्याज्ञाति संयोगांस्त्यक्ष्यामइत्येवं कृताध्यवसायिनोविदितवेद्यानवंतीति ॥ ४१ ॥

से मेहावि जाणेज्जा बाहिरंगमेयं इणमेव उवणियतरागं तं जहा हब्नामे पा यामे बाहामे ऊरूमे उदरंमे सीसंमे सीलम्मे आउमे बलंमे वन्नोमे तयामे छायामे सोयंमे चक्खूमे घाणंमे जिप्नामे फासामे ममाइज्जंसि वयाउपडि जूरइ तंजहा आउन बलाउ वन्नाउ तयाउ बयाउ सोयाउ जाव फा साउ सुसंधिता संधीविसंधी नवइ बलितरंगेगाए नवइ किण्हा केसा प लिया नवंति तंजहा जंपियं इमं सरीरगं उरालं आहारोवइयं एयंपिय

अणुपुवेणं विप्पजहियवं नविस्सति एयं संखाए सेभिक्खू भिक्खायरियाए स मुठिए उहत्र लोगं जाणेज्जा तं जीवाचेव अजीवाचेव तसाचेव थावराचेव॥ ४१॥

अर्थ-हवे वली बीजुं विशेष वैराग्यनुं कारण कहेछे. (सेमेहाविजाणेज्जाबाहिरंग मेयं के०) ते पंमित एवुं जाणेजे ए आगल कहेशे ते सर्व बाह्यछे. ए स्वजनादिक स र्व बाह्यछे. एवुं पूर्वे कह्युं; वली (इणमेव के०) ए थकी (उवणीयतरागंके०) आस न ढुकडां एटले घणा नजीक जे छे (तंजहा के०) ते देखाडेछे. (हब्रामे के०) हाथ महारा अशोक पल्लव सरखा अनेक शत्रुउना विनाश करनार, तथा स्वजन जनोना म नोरथ पूरणहार, एवा हस्त बीजाना नथी एम चिंतवना करे. (पायामे के०) पग म हारा काछवा सरखा उंचा, तथा पद्म जेवा सुंवालाछे. एवा बीजाना नथी (बाहामे के०) तथा बाहू महारा नोगल समान अनेक शत्रुना विनाश करनाराछे. एवा बी जाना नथी (ऊरूमे के०) साथल महारा केलना गर्ने समानछे (उदरंमे के०) पेट महारुं अत्यंत सुवालुं माछला समानछे. (सीसंमे के०) मस्तक महारुं अत्यंत सुंद रछे. (सीलम्मे के०) आचार महारो बहुज रूडोछे. (आउमेके०) आयुष्य महारुं सब लछे एटले घणुंछे. (बलंमे के०) शरीरनुं बल महारुं घणुंछे. (वम्रोमेके०) वर्ण मा हारो गौर छे. (तयामे के०) त्वचा महारी शीघ्रछे. (छायामे के०) कांती महारी सुंदर छे. (सोयंमे के०) श्रोत्र एटले कान महारा नलाछे. (चरकूमे के०) चक्षु महारी नि र्मलछे. (घाणंमे के०) नासिका महारी नली तीक्ष्ण छे (जिप्नामे के०) जिव्हा महा री रुडीछे. (फासामेके०) स्पर्शेंड्रिय महारी सुंदरछे. (ममातिकंतिके०) एटला ए वाना महारा घणाज सारांछे एवी शरीरनी ममता करे के, जेवा महारा शरीरना अवयव छे तेवा बीजाना नथी एम जाणे. (वयाउपडिजूरत्ति के०) परंतु ते हस्तादिक शरीरना अवयव जे छे ते केवाछे तोके, वयना परिणाम थकीज जीर्ण थायछे. ते जीर्ण थवाथी ते प्राणी पूर्वोक्त सुंदर अवयवो थकी ज्रष्ट थाय (तंजहा के०) जे थकी ज्रष्ट थाय तेना नाम कहेछे. आयुष्य थकी, बल थकी, वर्ण थकी, त्वचा थकी, कांति थकी, श्रोत्र एटले कान थकी, यावत् स्पर्शेंड्रियादिक पांचेंड्रिय थकी, उछुं थाय. (सुसंधितासंधीवि संधीनवइके०) जेरुडी रीते जानुं कूर्प्परादिकनी संधि मलीछे ते विसंधि एटले विपरित संधि थाय. (वलितरंगेगाएनवंतिके०) शरीर सर्वे वलियां रूप तरंग तेणे करी आकुल थाय, शरीर एवुं थाय जे, पोतानेज उद्वेग करे तो पछी बीजाने उद्वेग करे तेमां केवुंजकुं? (किएहाके सापलियानवंति के०) काला केशछे ते सपेत थाय. (तंजहाके०) ते कहेछे किंबहुना (जंपियंइमंसरीरगं के०) जे ए शरीर सारुं मनोहर (उरालंआहारोवइयं के०) उदा

र रुडा आहारें करी वृद्धिने पमाडयुं. (एयंपियं के०) एने पण (अणुपुव्वेणं के०) अनुक्रमे वयने परिणामे (विप्पजहियव्वंभविस्सति के०) बांमवुं थशे. (एयंसंस्काए के०) एवुं जाणीने (सेभिरकू के०) ते साधु पंमित समस्त धन धान्यादिक बाह्य परिग्रह बांमीने तथा राग द्वेषादिक अंतरंग परिग्रह बांमीने (भिरकायरियाएसमुठिए के०) भिक्षाचर्याने विषे सावधान थाय. (डुहउंलोगंजाणेज्जा के०) ते साधु बे प्रकारे लोकने जाणे (तंके०) ते बे प्रकार कहेछे. (जीवाचेवके०) एक जीवते जीवास्तिकाय प्राणिमात्र जाणवा. बीजो (अजीवाचेव के०) धर्मास्तिकायादिक पांचद्रव्य अजीव जाणवा. हवे ए भिक्षु चारित्रियाने दया जाणवाने अर्थे जीवना भेद कहेछे. (तसाचेवथावराचेव के०) एक त्रस ते बेइंद्रियादिक जाणवा. बीजा स्थावरते पृथ्वी कायादिक जाणवा ते वली सूक्ष्म बादर पर्याप्ता अपर्याप्ताना भेदेंकरी घणा प्रकारें जाणवा. ॥ ५२ ॥

॥ दीपिका—वैराग्योत्पत्तिकारणमेवाह । समेधावी जानीयात् । तद्यथा । बाह्यतरमेतत् यज्ज्ञातिसंबंधनं इदमन्यडुपनीततरमासन्नतरं ज्ञातिभ्यः शरीरावयवानामासन्नतरत्वात् । तद्यथा । हस्तौमे मनोहरौ एवं पादौ बाहू ऊरू शीर्षमुदरमायुर्बलं वर्णस्त्वक् छाया श्रोत्रं चक्षुर्घ्राणं जिह्वास्पर्शइति सर्वं ममाति ममीकरोति. यादृङ् मे, न तादृगन्यस्येति भावः । एतच्च हस्तपादादिकं वयसः परिणामात्. (परिजूरइत्ति) परिजीर्णतां यांति । तद्यथा । आयुषः सकाशाद्धीयते बलात् वर्णात् त्वचश्छायातः श्रोत्रात् यावत्स्पर्शाद्धीयते । अत्रच सनत्कुमारचक्रिदृष्टांतोवाच्यः । शरीरे हीयमाने श्रोत्रादीनींद्रियाण्यपि हीयंते । यडुक्तं । बाल्यं वृद्धिर्वयोमेधा,त्वक्चक्षुःशुक्रविक्रमाः ॥ दशकेषु निवर्तंते मनः सर्वेंद्रियाणि च । तथा सुसंधितः सुबद्धः संधिर्जानुकूर्परादिकोविसंधिर्भवति । गात्रं शरीरं वलितरंगाकुलं शिराजालवेष्टितं भवति । यतः । वलिसंततमस्थिशेषितं,शिथिलस्नायुवृतं कलेवरं ॥ स्वयमेव पुमान् जुगुप्सते किमुकांताः कमनीयविग्रहाइति । तथा कृष्णाः केशाः पलिताः श्वेताः स्युः । यदपीदं शरीरमुदारं शोभनं विशिष्टाहारोपचितं एतदपि मयाऽवश्यं विप्रहातव्यं त्यक्तव्यं भविष्यति इत्यवगम्य संसारासारतां संख्याय ज्ञात्वा सभिक्षुर्भिक्षाचर्यायां समुत्थितः सन् द्विधा लोकं जानीयात् । तद्यथा । जीवाअजीवाश्च । जीवाद्विविधाः त्रसाः स्थावराश्च । एतेषामुपरि बहुधा व्यापारः प्रवर्तते ॥ ५२ ॥

॥ टीका—सांप्रतमन्येन प्रकारेण वैराग्योत्पत्तिकारणमाह । (समेहावीत्यादि) सश्रुतिकएत वक्ष्यमाणं जानीयात् । तद्यथा । बाह्यतरमेतद्यज्ज्ञातिसंबंधनमिदमेवान्यडुपनीततरमासन्नतरं शरीरावयवानां भिन्नज्ञातिभ्यआसन्नतरत्वात् । यथा हस्तौ ममाशोकप

त्नवसदृशौ तथा त्नुजौ करिकराऽकारौ परपुरंजयौ प्रणयिजनमनोरथपूरकौ शत्रुशतजीवितांतकरौ यथा मम न तथान्यस्य कस्यापीत्येवं पादावपि पद्मगर्नसुकुमारावित्यादि सुगमं । यावत्स्पर्शाः स्पर्शनेंद्रियं ममाति ममीकरोति । यादृङ् मे, न तादृगन्यस्येति नावः । एतच्च हस्तपादादिकं स्पर्शनेंद्रियपर्यवसानं शरीरावयवसंबंधित्वेन विवक्षितं यत्किमपि वयसः परिणामात्कालकृतावस्थाविशेषात् (परिजूरइत्ति) जीर्णतां यांति प्रतिक्षणं विशरारुतां याति तस्मिंश्च प्रतिशरीरं विशीर्यति शरीरे प्रतिसमयमसौ प्राणी एतस्माद्भ्रश्यते । तद्यथा । आयुषः पूर्वनिबद्धात्समयादिहान्याऽपचीयते आवीचीमरणान्युपगमात् । तथा बलादपचीयते तथा वयसोयौवनावस्थायाश्च्यवमाने शरीरे प्रतिक्षणं शिथिलीनवत्सु संधिबंधनेषु बलादवश्यं भ्रश्यते । तथा वर्णात्त्वचश्छायातोऽपचीयते तत्र च सनत्कुमारदृष्टांतोवाच्यः तथा जीर्यति शरीरे श्रोत्रादीनींद्रियाणि सम्यक् स्वविषयं परिछेत्तुमलं । तथाचोक्तं । बाल्यं वृद्धिर्वयोमेधा, त्वक्चक्षुःशुक्रविक्रमाः ॥ दशकेषु निवर्तंते मनः सर्वेंद्रियाणि च ॥ १ ॥ विशिष्टवयोहान्या सुसंधितः सुबद्धः संधिर्जानुकूर्परादिकोविसंधिर्नवति विगलितबंधनोनवतीत्यर्थः । तथा वलितरंगाकुलं सर्वतः शिराजालवेष्टितमात्मनोपि शरीरमिदमुद्वेगकृद्भवति किंपुनरन्येषां । तथाचोक्तं । वलिसंततमस्थिशेषितं शिथिलस्नायुवृतं कलेवरं ॥ स्वयमेव पुमान् जुगुप्सते, किमु कांताः कमनीयविग्रहाः ॥ १ ॥ तथा कृष्णाः केशावयःपरिणामे जलप्रक्षालिताधवलतां प्रतिपद्यंते । तदेवं वयःपरिणामापादितसन्मतिरेतद्भावयेत् । तद्यथा । यदपीदं शरीरमुदारं शोजनावयवरूपोपेतं विशिष्टाहारोपचितमेतदपि मयावश्यं प्रतिक्षणं विशीर्यमाणमायुषः क्षये विप्रहातव्यं नविष्यतीत्येतदवगम्य शरीरानित्यतया संसारासारतां संख्यायावगम्य परित्यक्तसमस्तगृहप्रपंचो निष्किंचनतामुपगम्य सनिर्कुर्देहदीर्घसंयमयात्रार्थं निक्षाचर्यायां समुद्यतः सन् द्विधा लोकं जानीयादिति । तदेव लोकद्वैविध्यं दर्शयितुकामआह । तद्यथा । जीवाश्च प्राणधारणात्तद्विपरिताश्चाजीवाधर्माधर्माकाशादयः । तत्र तस्य निक्षोरहिंसाप्रसिद्ध्ये जीवान् विनागेन दर्शयितुमाह । जीवाअप्युपयोगलक्षणा द्विधा । तद्यथा । त्रस्यंतीति त्रसाद्वींद्रियादयः तथा तिष्ठंतीति स्थावराः पृथिवीकायादयः । तेपि सूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तकादिनेदेन बहुधाऽवगंतव्याः । एतेषु चोपरि बहुधा व्यापारः प्रवर्तते ॥ ४२ ॥

इह खलु गारबा सारंना सपरिग्गहिया संतेगतिया समणा माहणावि सारंना सपरिग्गहावि जेइमे तसा थावरा पाणा ते सयं समारनंति अन्नेणावि समारंनावेंति असंपि समारनं तं समणुजाणंति ॥ ४३ ॥ इह खलु गारत्था सारंना सपरिग्गहा संतेगतिया समणा माहणावि सा

रंभा सपरिग्गहा जेइमे कामभोगा सचित्तावा अचित्तावा ते सयं परि गिएहंति अन्नेणवि परिगिएहावेंति अन्नंपि परिगिएहंतं समणुजाणंति ॥ ४४ ॥ इह खलु गारहा सारंभा सपरिग्गहा संते गतिया समणा माहणावि सारंभा सपरिग्गहा अहं खलु अणारंभे अपरिग्गहे जे खलु गारहा सारंभा सपरिग्गहा संतेगतिया समणा माहणावि सारंभा स परिग्गहा एते चेव निस्साए बंभचेरंवा संवसिस्सामो कस्सणं तं हेउं जहा पुवं तहा अवरं जहा अवरं तहा पुवं अंजू एते अणुवरया अणुवठिया पुणरवि तारिसगा चेव ॥ ४५ ॥

अर्थ–हवे ए जीवोना उपमर्दक देखाडेछे. (इहखलु के०) आ संसारने विषे निश्चें थकी (गारहासारंभा के०) ग्रहस्थ जेछे ते सारंभी, तथा (सपरिग्गहिया के०) स परिग्रहिया जाणवा. (संतेगतियासमणामाहणावि के०.) तथा कोइ एक श्रमण अने ब्राह्मणछे तेपण (सारंभासपरिग्गहावि के०) सारंभी अने सपरिग्रहीछे. ते सारंभी स परिग्रही केवाछे ते कहेछे. (जेइमेतसाथावरापाणा के०) जे कोइ ए त्रस अने स्थावर प्राणीछे (तेसयंसमारभंति के०) तेनो स्वयं पोते समारंभ करेछे (अन्नेणाविसमारंभा वेंति के०) अन्य बीजापासें आरंभ करावेछे (असुंपिसमारभंतंसमणुजाणंति के०) बीजो कोइ आरंभ करतो होय तेने अनुमोदन आपेछे. ॥४३॥ हवे ए सारंभी सपरिग्रहिने प्राणातिपात देखाडीने भोगांगभूत परिग्रह देखाडेछे. अंही इहखलु इत्यादिकनो अर्थ ल खेछे. आ जगत् मांहे निश्चे थकी ग्रहस्थ सारंभी सपरिग्रही होयछे अने कोइएक श्रमण ब्राह्मण पण सारंभी सपरिग्रहीछे. (जेइमेकामभोगासचित्तावाअचित्तावाके०) जे ते स्त्रिया दिकना भोगने अर्थें पुष्प, चंदन, गीत, वाजित्रादिक करावे ते सचित्त अने अचित्त परिग्रह जाणवो. (तेसयंपरिगिएहंतिके०) ते स्वयं पोते कामभोगना अर्थी थका सचित्ताचित्तरूप परिग्रह अंगीकार करे. (अन्नेणविपरिगिएहावेंतिके०) बीजा पासें परिग्रहावे. (अन्नंपिपरि गिएहंतंसमणुजाणंतिके०) बीजोजे परिग्रहे तेने अनुमोदन आपे. ॥ ४४ ॥ एम आ जगत् मां ग्रहस्थ सारंभी सपरिग्रहीछे अने केटलाएक श्रमण ब्राह्मण पण सारंभी सपरिग्रही छे एवुं जाणीने भिक्षु चारित्रिउ एवुं चिंतवे जे (अहं के०) हुं खलु इति निश्चें निरारं भी निःपरिग्रहीछुं. तो जे ए ग्रहस्थ तथा श्रमण ब्राह्मण सारंभी सपरिग्रहीछे एनी नि श्रायें अमे ब्रह्मचर्य आदरशुं एतावता निरारंभ निःपरिग्रही थका धर्माधारभूत देहने प्रतिपालवा निमित्ते आहारादिकने अर्थें सारंभी सपरिग्रही एवा ग्रहस्थनी निश्रायें

प्रवर्ज्या पालवुं इत्यर्थः । (कस्सणंतंहेउं के०) वली तेनी निश्रायें विचरवुं ते नुं कारण शुं? एवा संदेहें शिष्यें पूढे थके तदनंतर आचार्य ते शिष्यनो अभि प्राय जाणीनें तेने उत्तर आपेछे. (जहापुव्वंतहाअवरं के०) जेम ग्रहस्थने सारं भि सपरिग्रही पणु प्रथम होय तेम पछी पण होय. (जहाअवरंतहापुव्वं के०) अने कोइ एकश्रमण ब्राह्मण पण ग्रहस्थने नावें होय तेवारे सारंभि सपरिग्रही होय तेमज पछी प्रवर्ज्याना अवसरे पण तेवाज सारंभी सपरिग्रही थका वर्त्ते तो ते पण ग्रहस्थ सरखाज जाणवा केमके जेम पछी प्रवर्ज्याने अवसरेछे तेम प्रथम ग्रहस्थने नावे पण तेवाज ह ता. ए कारणे निरारंभि थका चारित्रियायें सारंभिनो आश्रय ग्रहण करवो जेम ए गृह स्थ सारंभि सपरिग्रही प्रत्यक्ष देखायछे तेम देखाडेछे. (अंजूएतेअणुवरयाअणुवठ्ठिया के०) ए वात प्रगट पणेछे के ए गृहस्थादिक सावद्यानुष्ठान थकी अनुपरत एटले नि वर्त्या नथी जे कारण माटे ते सारंभी, सपरिग्रही प्रत्यक्ष पणेछे. अने जे कोइ चारित्र ल हिने पछी सावद्यानुष्ठानने विषे प्रवर्त्ते. आधाकर्मादिक आहार लिये तेपण (पुणरवि के०) वली पण (तारिसगाचेवके०) तादृश तेवाज जाणवा. जेम पछी प्रवर्ज्याने अव सरे वर्त्तेछे तेम प्रथम गृहस्थने नावे पण वर्त्तता हता ॥ ४५ ॥

॥ दीपिका–तमेवाह । इह संसारे खलु गृहस्थाः सारंभाः सपरिग्रहाः संति विद्यंते । एके केचन श्रमणाः शाक्यादयोब्राह्मणाश्च सारंभाः सपरिग्रहाः । यतोयइमे त्रसाः स्था वराः प्राणिनएतान् स्वयं समारभंते अन्यांश्च समारंभयंति समारंभं कुर्वतश्चान्यान् सम नुजानंति ॥ ४३॥ एवं प्राणातिपातं प्रदर्श्य परिग्रहमाह । इह खलु गृहस्थाः सारंभाः सप रिग्रहाः संति श्रमणाब्राह्मणाअपि तादृशाः । यइमे कामभोगाः कामाः स्त्रीसंगादयो भोगाः स्रक्चंदनगीतादयः । एते सचित्ताअचित्तावा तान् स्वयं परिगृह्णंति. अन्यान् प रिग्राहयंति परंच परिगृह्णंतं समनुजानंति ॥ ४४॥ उपसंहारमाह । इह खलु गृहस्थाः श्रम णाब्राह्मणाश्च सारंभाः सपरिग्रहाइति ज्ञात्वा सभिक्षुरेवं चिंतयेत्. अहमेव खलु अनारं भोऽपरिग्रहश्च । ये चामी गृहस्थादयः सारंभाः सपरिग्रहास्तदेतन्निश्रयाब्रह्मचर्यं श्राम ण्यं वत्स्यामआचरिष्यामोऽनारंभाअपरिग्रहाः संतोधर्माधारदेहधारणार्थमाहारादिकृते सारंभसपरिग्रहगृहस्थनिश्रयां प्रव्रज्यां करिष्यामइत्यर्थः । शिष्यः प्राह । कस्य हेतोर्गृह स्थस्य श्रमणादिनिश्राकरणं? आचार्यआह । यथा पूर्वमादौ सारंभपरिग्रहत्वं तेषां तथा पश्चादपि सर्वकालमपि गृहस्थाः सारंभादिदोषदुष्टाः श्रमणाश्च पूर्वं गृहस्थत्वे सारंभास्त था परस्मिन्नपि प्रव्रज्याकाले तथाविधाएव ते यथा परमपरस्मिन् प्रव्रज्याकाले तथा पूर्वं गृहस्थत्वेपीति । ततः साधुभिरनारंभैः सारंभाश्रयणं कार्यं । गृहस्थासारंभत्वमाह (अंजू

इति) व्यक्तमिदं ये गृहस्थाः सावद्यादनुपस्थिताश्चनुद्यताः। येपि शाक्यादयः प्रव्रजिता स्तेप्युद्दिष्टनोजित्वात्सावद्यानुष्ठानपरत्वात्पुनरपि तादृशाएव गृहस्थतुल्याएव ॥ ४५ ॥

॥ टीका–सांप्रतं तडुपमर्दकव्यापारकर्तॄन् दर्शयन्नाह । (इहखलुइत्यादि) इहास्मि न्संसारे । खलुवाक्यालंकारे । गृहमागारं तत्र तिष्ठंतीति गृहस्थास्तेच सहारंनेण जीवो पमर्दकारिणा वर्तंते सारंनास्तथा सहपरिग्रहेण द्विपच्चतुष्पदधनधान्यादिना वर्तंतइति स परिग्रहाः । न केवलं तएवान्येपि संति विद्यंते एके केचन श्रमणाः शाक्यादयस्तेच पच नपाचनाद्यनुमतेः सारंनादास्यादिपरिग्रहाच्च सपरिग्रहास्तथा ब्राह्मणाश्चैवंविधाएव । ए तेषां च सारंनकत्वं स्पष्टतरं सूत्रेणैव दर्शयति । यइमे प्राग्वर्णितास्त्रसाः स्थावराश्च प्रा णिनस्तावत्स्वयमेवापरप्रेरिताएव समारनंते तडुपमर्दकं व्यापारं स्वतएव कुर्वंतीत्यर्थः । त थान्यांश्च समारंनं कुर्वतश्चान्यान् समनुजानंते ॥४३॥ तदेवंप्राणातिपातं प्रदर्श्य नोगांगनूतं परिग्रहं दर्शयितुमाह । यइमे प्रत्यक्षाः कामप्रधानानोगाः कामनोगाः काम्यंतइति कामाः स्त्रीगात्रपरिष्वंगादयोनुज्यंतइति नोगाः स्रक्चंदनवादित्रादयस्तएते सचित्ताः सचेतनाश्च चेतनावा नवेयुस्तडुपादाननूतार्थास्तांश्च सचित्तानचित्तान्वाऽर्थास्ते कामनोगार्थिनोगृहस्था दयस्ततएव परिगृह्णंति अन्येनच परिग्राहयंति अपरंच परिगृह्णंतं समनुजानंतइति ॥४४॥ सांप्रतमुपसंजिघृक्षुराह । इहास्मिन् जगति विद्यंते गृहस्थास्तथाविधश्रमणाब्राह्मणाश्च सा रंनाः सपरिग्रहाइत्येवं ज्ञात्वा सनिक्षुरेवमवधारयेदहमेवात्र खल्वनारंनोऽपरिग्रहश्च । ये चामी गृहस्थादयः सारंनादिगुणयुक्तास्तदेतन्निश्रयास्तदाश्रयेणच ब्रह्मचर्यं श्रामण्यमाचरि ष्यामोऽनारंनाअपरिग्रहाः संतोधर्माधारदेहप्रतिपालनार्थमाहारादिकृते सारंनपरिग्रहस्थ निश्रयां प्रव्रज्यां करिष्यामइत्यर्थः । ननु च यदि तन्निश्रयापुनरपि विहर्तव्यं किमर्थं? ते त्यज्यंतइति जाताशंकः पृच्छति। कस्य हेतोः केन कारणेन तदेतद्गृहस्थश्रमणब्राह्मणत्यज नमनिहितमित्याचार्योपि विदितानिप्रायउत्तरं ददाति । यथा पूर्वमादौ सारंनपरिग्रहत्वं तेषां तथा पश्चादपि सर्वकालमपि गृहस्थाः सारंनादिदोषडुष्टाः श्रमणाश्च केचन यथा पू र्वं गृहस्थानावे सारंनाः सपरिगृहास्तथा परस्मिन्नपि प्रव्रज्याकाले तथाविधाएव तइति । अधुनोनयपदाव्यनिचारित्वप्रतिपादनार्थमाह । यथा परमपरस्मिन् प्रव्रज्याप्रतिपत्तिका ले तथा पूर्वमपि गृहस्थनावादावपीति । यदि वा कस्य हेतोस्तद्गृहस्थाद्याश्रयणं क्रियते यतिनेत्याह । यथा पूर्वं प्रव्रज्यारंनकाले सर्वमेव निक्षादिकं गृहस्थायत्तं तथा पश्चादप्य तः कथंनु नामानवद्यावृत्तिर्नविष्यतीत्यतः साधुनिरनारंनैः सारंनाश्रयणं विधेयं । तथा चैते गृहस्थादयः सारंनाः सपरिग्रहाश्च । तथा प्रत्यक्षेणैवोपलन्यंतइति दर्शयितुमाह । (अं जूइत्ति) व्यक्तमेतदेते गृहस्थादयोयदि वांजूइति प्रगुणेन न्यायेन स्वरसप्रव्रज्यासावद्यानु

ष्ठानेभ्योऽनुपरताः परिग्रहारंभाच्च सत्संयमानुष्ठानेन चानुपस्थिताः सम्यग्ज्ञानमकृतवंतो पि कथंचिद्धर्मकरणायोद्यितास्तैप्युद्दिष्टभोजित्वात्सावद्याऽनुष्ठानपरत्वाच्च गृहस्थाभावेऽनुष्ठानमनतिवर्तमानाः पुनरपि तादृशाएव गृहस्थकल्पाएवेति ॥ ४५ ॥

जे खलु गारत्था सारंभा सपरिग्गहा संतेगतिया समणा माहणावि सारंभा सपरिग्गहा इहतो पावाइं कुव्वंति इति संखाए दोहिंवि अंतेहिं अदिस्समाणो इति भिक्खू रीएज्जा ॥ ४६ ॥ सेबेमि पाईणंवा जाव एवं से परिन्नायकम्मे एवं से ववेयकम्मे एवं सेवियंतकारए भवतीति मक्खायं॥४७॥

अर्थ–(जेखलुगारत्थासारंभासपरिग्गहा के०) जे निश्चे थकी ग्रहस्थ सारंभी सपरिग्रहीछे (संतेगतियासमणामाहणाविसारंभासपरिग्गहा के०) अने कोइ एक श्रमण ब्राह्मण पण सारंभी अने सपरिग्रहीछे (इहतोपावाइंकुव्वंति के०) ए कारणे ए बन्ने पापना करनारा जाणवा (इतिसंखाए के०) एवुं जाणीने (दोहिंविअंतेहिं के०) आरंभ अने परिग्रह ए बेउ थकी अंत एटले दूर रहे (अदिस्समाणो के०) आरंभ अने परिग्रह थकी अदृश्य मान थतो (इतिभिक्खूरीएज्जा के०) एम चारित्रवान् साधु निरवद्य आहारनुं भोजन करनार थको संयमानुष्ठानने विषे प्रवर्ते ॥४६॥ (सेबेमिके०) वली तेज अर्थ विशेषें करी कहुंछुं (पाईणंवा के०) पूर्व पश्चिम उत्तर अने दक्षण दिशि थकी आव्यो एवो साधु निरारंभी निःपरिग्रही संयमने विषे प्रवर्त्तमान थको (जावएवंसेपरिन्नायकंमे के०) ज्यां सुधी एम ते साधु ज्ञपरिज्ञायें जाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञायें पच्चखीने (एवंसेववेयकम्मे के०) एम ते कर्मना अंतनो करनार थाय (एवंसेवियंतकारएभवतीतिमक्खायं के०) ए प्रकारे ते योगनिरोधे करी विशेष अंतकारी थाय एम श्री तीर्थंकर गणधरें कह्युंछे ॥ ४७ ॥

॥ दीपिका–उपसंहारमाह । (जेखलुत्ति) येऽमे गृहस्थादयस्ते द्विधापि रागद्वेषाभ्यामुभाभ्यां पापानि कुर्वंति इति संख्याय ज्ञात्वा द्वयोरप्यंतयोरागद्वेषयोरनुपलभ्यमानः सन् इत्येवंभूतोभिक्षुः संयमे रीयेत प्रवर्तेत । कोर्थः । यऽमे ज्ञातिसंयोगायश्चार्थं धनादिपरिग्रहः यच्चेदं हस्ताद्यवयवयुक्तं शरीरं यच्चायुर्बलवर्णादिकं तत्सर्वमसारमनित्यं । गृहस्थश्रमणब्राह्मणाश्च सारंभपरिग्रहाः एतत्सर्वं ज्ञात्वा भिक्षुः संयमे रीयेत तिष्ठेदितिस्थितं ॥४६॥(सेबेमि) सोहं ब्रवीमि प्राच्यादिशोन्यतरस्याः समागतः सभिक्षुर्द्वयोरपि रागद्वेषयोरदृश्यमानः संयमे रीयमाणः सन् एवं पूर्वोक्तप्रकारेण परिज्ञातकर्मा स्यात् ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया प्रत्याख्यातकर्मा स्यादित्यर्थः । एवं सयोगनिरोधेन व्यंतकारकः विशेषेणकर्मणामंतकारकः स्यादिति तीर्थकृद्गणधरादिभिराख्यातं ॥ ४७ ॥

॥टीका–सांप्रतमुपसंहरति। (जेखलुइत्यादि) यइमे गृहस्थादयस्ते द्विधापि सारंनसपरि ग्रहत्वान्याभुनान्यामपि पापान्युपाददते। यदिवा राग द्वेपान्याभुनान्यामपि पापान्युपाददते यदिवा गृहस्थप्रव्रज्यापर्यायान्याभुनान्यां पापानि कुर्वंतइत्येवं संख्याय परिज्ञाय द्वयोरप्येत योरारंनपरिग्रहयोराग द्वेषयोर्वा दृश्यमानोनुपलन्यमानोयदिवा रागद्वेषयोर्याविनावन्नावौ तयोरादिश्यमाने राग द्वेषान्नाववृत्तित्वेनापदिश्यमानः सन्नित्येवंनूतोनिक्षणशीलोऽनवद्या हारनोजी सत्संयमानुष्ठाने रीयेत प्रवर्तेत। एतडुक्तं नवति। ये इमे जातिसंयोगायश्चार्यं ध नधान्यादिकः परिग्रहोयच्चेदं हस्तपादाद्यवयवयुक्तं शरीरं यच्च सदायुर्बलवर्णादिकं तत्सर्वम शाश्वतमनित्यं स्वप्नेंद्रजालसदृशमसारं। गृहस्थश्रमणब्राह्मणाश्च सारंनाः सपरिग्रहाश्चै तत्सर्वं परिज्ञाय सत्संयमानुष्ठाने निक्षुरीयेतेति स्थितं॥ ४६॥ सपुनरप्यहमधिकृतमेवार्थं विशेषिततरं सोपपत्तिकं ब्रवीमीति। तत्र प्रज्ञापकापेक्षया प्राच्यादिकायादिशोन्यतरस्याः स मायातः सन्निक्षुर्द्वयोरप्येतयोरदृश्यमानतया सत्संयमे रीयमाणः सन् एवमनंतरोक्तेन प्रका रेण ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिज्ञातकर्मा नवति। पुनरप्येवमिति परि ज्ञातकर्मत्वा द्व्यपेतकर्मा नवति अपूर्वस्याबंधकोनवतीत्यर्थः। पुनरेवमित्यबंधकयोगनिरो धोपायतः पूर्वोपचितस्य कर्मणोविशेषेणांतकारकोनवतीत्येतच्च तीर्थंकरगणधरादिनि र्ज्ञातज्ञेयैर्व्याख्यातमिति॥ ४७॥

तत्र खलु नगवंता बजीवनिकायहेउं पसत्ता तंजहा पुढवीकाए जाव त सकाए से जहा णामए मम अस्सायं दंमेणवा अठीणवा मुठीणवा लेलू णवा कवालेणवा आउट्टिज्जमाणस्सवा हम्ममाणस्सवा तज्जिज्जमाणस्स वा ताडिज्जमाणस्सवा परियाविज्जमाणस्सवा किलाविज्जमाणस्सवा उद्द विज्जमाणस्सवा जावलोमुक्कणणमायमवि हिंसाकारगं डुक्कं नयंपडिसं वेदेमि इच्चेवं जाण सव्वे जीवा सव्वेनूता सव्वेपाणा सव्वेसत्ता दंमेणवा जाव कवालेणवा आउट्टिज्जमाणावा हम्ममाणावा तज्जिज्जमाणावा ताडिज्ज माणावा परियाविज्जमाणावा किलाविज्जमाणावा उद्दविज्जमाणावा जाव लोमुक्कणणमायमवि हिंसाकारगं डुक्कं नयं पडिसंवेदेंति एवं नच्चा स व्वेपाणा जाव सत्ता णहंतवा णअज्जावेयव्वा णपरिघेतवा णपरितावेयव्वा णउद्दवेयव्वा॥ ४८॥ सेबेमि जेयअतिता जेयपडुप्पन्ना जेयआगमिस्सा मि अरिहंता नगवंता सव्वे ते एवमाइक्कंति एवंनासंति एवंपसवेंति एवं

परूवेंति सव्वेपाणा जावसत्ता णहंतव्वा णअज्जावेयव्वा णपरिघेतव्वा ण परितावेयव्वा णउद्दवेयव्वा एसधम्मे धुवे णीतिए सासए समिच्चं लोगं खे यन्नेहिं पवेदेंति एवंसे भिक्खू विरते पाणातिवायतो जाव विरते परिग्गहा तो णोदंतपक्खालणेणं दंतपक्खालेज्जा णोअंजणं णोवमणं णोधूवणे णोतं परिआविएज्जा ॥ ४ए ॥

अर्थ-(तब के०) त्यां कर्मबंधने प्रस्तावे खलु इति वाक्यालंकारे (भगवंता के०) भगवंत श्रीतीर्थंकरदेवे (छ जीवनिकायहेउ के०) छजीवनिकाय कर्मबंधना कारण (पन्नुत्ता के०) कह्याछे (तंजहा के०) ते छ कायना नाम कहेछे (पुढवीकाएजावतसकाए के०) पृथ्वी कायथी मांमीने यावत् त्रसकाय पर्यंत छ जीव निकाय जाणवा तेने पीडतां पीडावता जेम डुःख उपजे तेम दृष्टांते करी देखाडेछे (सेजहाणामए के०) ते जेम नाम एवी संभावनायें (मम के०) मुजने (अस्सायं के०) असाता उपजे शा थकी असाता उपजे ते कहेछे (दंमेणवा के०) दंमादिकेंकरी हणता थका (अछीणवा के०) अस्थिखंमे करी हाडकायें करी (मुछीणवा के०) मुष्टीयें करी (लेलूणवा के०) पाषाणे करी (कवालेणवा के०) ठीकरीयें करी (आउट्टिज्जमाणस्सवा के०) आक्रोश करताथका तथा सन्मुख नाखता थका (हम्ममाणस्सवा के०) अथवा हणता थका (तज्जिज्जमाणस्सवा के०) तर्जना करता थका (ताडिज्जमाणस्सवा के०) ताडना करता थका (परियाविज्जमाणस्सवा के०) परितापना करता थका (किलाविज्जमाणस्सवा के०) किलामणाकरताथका (उद्दविज्जमाणस्सवा के०) उद्वेग करता थका तथा जीवने काया थकी रहित करताथका (जावलोमुक्खणणमायमवि के०) यावत् शरीर मांहेथी एक रोम उखेडवा मात्र एवुं पण (हिंसाकारगं के०) हिंसानु कारण तेथी पण (डुक्खंभयंपडिसंवेदेंमि के०) डुःख अने भय हुं वेडुं अनुभवुं (इच्चेवंजाण के०) ए प्रकारे तेजाणे के (सव्वेजीवा के०) सर्व जीवते सर्व पंचेंद्रियजीव जाणवा (सव्वेभूता के०) सर्व भूतते सर्व वनस्पति प्रमुखना जीव जाणवा (सव्वेपाणा के०) सर्व प्राणी ते सर्व बे इंद्रियादिक विकलेंद्रि जीव जाणवा (सवेसत्ता के०) सर्वसत्व ते पृथिव्यादिक सर्वजीव जाणवा ते जीवोने (दंमेकरी हणता थका (जावकवालेणवा के०) यावत् ठीकरीयें करी हणता थका (आउट्टिज्जमाणावा के०) आक्रोश करता थका (हम्ममाणावा के०) हणता थका (तज्जिज्जमाणावा के०) तर्जना करता थका (ताडिज्जमाणावा के०) ताडना करता थका (परियाविज्जमाणावा के०) परितापना करता थका (किलाविज्जमाणावा

के०) किलामणा करता थका, (उद्दविज्जमाणावा के०) ,उद्वेग करता थका, तथा जीव ने काया थकी रहित करता थका, (जावलोमुरकणणमायमवि के०) यावत् एक रोम उखेडवा मात्र एवुं पण (हिंसाकारगं के०) हिंसानु कारण ते थकी पण, (डुरकं नयंपडिसंवेदेंति के०) ते जीवो डुःख अने नय एवुंज वेदे अनुनवे एटले जेवुं डुःख मने वेदवुं पडे, तेवुं डुःख सर्व जीवने वेदवुं पडे. एम सर्व जीवोने पोता सरखुं डुःख देखाडीने अन्य जीवोने शिक्षानो उपदेश आपेछे. (एवंनच्चा के०) एवुं जाणीने (सव्वेपाणाजावसत्ता के०) सर्व प्राणी, सर्वनूत, सर्वजीव अने सर्व सत्वने (णहंतव्वा के०) हणवा नही, (णअज्जावेयव्वाके०) दंमादिकें करी ताडवा नही, (णपरिघेतव्वाके०) बलात्कारें करी दासनी पेठें परिग्रहवा नही, एटले बलात्कारे करी चाकरनी पेठें कोइ कार्यने विषे प्रेरवा नही. (णपरितावेयव्वा के०) शारीरिक मानसी पीडाने उपजावीने परितापवा नही. (किलविश्रमाणवा णउद्दवेयव्वा के०) किलामणा करी करी उपद्रववा नही, तथा काया थकी रहित करवा नहीं॥४०॥हवे सुधर्म स्वामी कहेछे. (सेबेमिके०) ए वचन जे हुं कहुं बुं, ते पोतानी मतियें नथी कहेतो पण एम सर्व तीर्थंकरनी आज्ञाछे, ते देखाडेछे; (जेयअतीता के०) जे अतीत कालें तीर्थंकर थया, (जेयपडुप्पन्ना के०) जे वर्त्तमान कालें तीर्थंकर वर्त्तेछे, (जेयआगमिस्सामि के०) जें आगमिक कालें थशे ते (अरिहंत के०) पूजा सत्कार योग्य (नगवंता के०) ज्ञानवंतआश्चर्यादिक गुणे करी संयुक्त एवा (सव्वेते के०) समस्त श्री अरिहंत नगवंत ते (एवमाइरकंति के०) एम सामान्य थकी कहेछे (एवंनासंति के०) एम अर्द्धमागधीनाषायें नांखेछे (एवंपस्सवेंति के०) एम शिष्यने देशना आपेछे (एवंपरूवेंति के०) एम सम्यक् प्रकारें प्ररूपें छे के, (सव्वेपाणा जावसत्ता के०) सर्वे प्राणीथी मांमीने यावत् सर्व सत्व ने (णहंतव्वा के०) हणवा नही, दंमादिकें करी ताडवा नही, वली बलात्कारें दासनी पेठें परिग्रहवा नही, शारीरिक मानसी पीडा उत्पन्न करीने, परितापवा नही उपद्रववा नही, जीव काया थकी रहित करवा नही, (एसधम्मेधुवे के०) ए धर्म प्राणीनी दया लक्षण डुर्गतियें जाता जीवने राखनार ते धर्म केवोछे तोके, ध्रुव एटले निश्चल (णीतिए के०) नित्य सदा सर्वकालछे, कोइ काले जेनो क्षय नथी (सासएके०) शाश्वतछे, तेने (समिच्चंके०) केवल ज्ञाने करी आलोचीने शुं आलोचीने? तो के, (लोगं के०) चौद रज्वात्मक लोक एटले षट् जीव निकायरूप लोक तेने डुःखरूप समुड्मांहे पड्यो देखीने (रकेयन्नेहिं के०) खेदज्ञ एटले बीजा जीवोनां डुःखोना जाणनार, एवा श्रीतीर्थंकर नगवंते (पवेदेंति के०) पूर्वोक्त जीवदयालक्षण धर्म नांख्यो. (एवं के०) ए प्रकारें जाणीने (सेनिरकूविरते के०) ते साधु निवर्त्या (पाणातिवायतो के०) प्राणातिपात एटले हिंसा थकी, तेमज मृषा

वाद थकी, तथा अदत्तादान थकी, तथा मैथुन एटले कुशील थकी, (जावविरतेपरिग्गहातो के०) यावत् परिग्रह थकी, विरति करतो थको जेवा आचारें प्रवर्त्ते, ते आचार कहेछे. (णोदंतपरकालणेणं दंतपरकालेज्जा के०) दंत पक्षालनने करी दंत धोवे नही, एतावता जावजीव सुधी दातण न करे. (णोअंजणं के०) जावजीव सुधी सौजाग्यने अर्थे आंखमां अंजन नाखे नही. (णोवमणं के०) वमन विरेचनादिक क्रिया न करे, (णोधूवणे के०) शरीर वस्त्रादिकनुं धूपन न करे (णोतंपरिआविएज्जा के०) कासादि रोगने मटाडवा माटे धूम पान पण न करे, ते जिक्कु एटला वाना पोते आचरे नही.॥४ए॥

॥ दीपिका–प्राणातिपातेन कर्मबंधप्रस्तावे खलु जगवता षड्जीवनिकायाहेतुत्वेनोक्ताः। तद्यथा। पृथिवीकायोयावत्त्रसकायः। एतेषां दुःखं दृष्टांतेनाह । तद्यथा नाम ममासातं दुःखं दंडेन अस्थ्ना मुष्टिना लेलुना लोष्टेन कर्परेण आकोटद्यमानस्य संकोच्यमानस्य हन्यमानस्य कशादिनिस्ताडद्यमानस्य कुड्यादावनिघातादिना परिताप्यमानस्याग्न्यादावन्येन प्रकारेण परिक्रम्यमाणस्यापद्राव्यमानस्य मार्यमाणस्य यावल्लोमोत्खननमात्रमपि हिंसाकरं दुःखं जयं च यन्मयि क्रियते तत्सर्वमहं संवेदयामि इत्येवं जानीहि। तथा सर्वे प्राणाजीवाजूतानि सत्वाइत्येकार्थिकाः कथंचिद्भेदेन वा व्याख्येयाः। तथाहि। प्राणाद्वित्रिचतुःखाःस्यु,र्जूतानि तरवः स्मृताः॥ जीवाः पंचेंद्रियाः प्रोक्ताः शेषाः सत्वाइतीरिताइति। एषां दंडादिना कोटद्यमानानां यावल्लोमोत्खननमात्रमपि दुःखं प्रतिसंवेदयतां। एतच्च हिंसाकरं दुःखं जयं चोत्पन्नं ते सर्वेपि प्राणिनः साक्षादनुजवंत्यतः सर्वेपि प्राणिनोन हंतव्यान आज्ञापयितव्याबलान्न कार्ये प्रयोक्तव्यान परिग्राह्या न परितापयितव्यानापद्रावयितव्याः॥४८॥ सोहं साधुर्ब्रवीमि न स्वमत्या किंतु तीर्थकृदाज्ञयेत्याह। येअतीताये च प्रत्युत्पन्नावर्तमानाः सीमंधरादयोये चागमिष्याअनागताः पद्मनाजादयोऽर्हंतोजगवंतः सर्वेप्येवमाख्यांति एवं जाषंते स्वत एवं प्रज्ञापयंति हेतुजिरेवं प्ररूपयंति नामादिनिर्यथा सर्वेप्राणा न हंतव्याइत्यादि। एषधर्मो ध्रुवोनित्यः शाश्वतः समेत्य ज्ञात्वा, लोकं खेदज्ञैस्तीर्थकरैः प्रवेदितः। एवं ज्ञात्वा सन्निक्षुर्विरतः प्राणातिपाताद्यावत्परिग्रहान्महाव्रतपालनार्थमुत्तरगुणाः कथ्यंते। (नोदंतइत्यादिना) निष्किंचनः सन् साधुर्नो दंतप्रक्षालनेन काष्ठेन दंतान् प्रक्षालयेत् नोअंजनं नेत्रयोर्विजूषार्थं कुर्यात्, वमनं विरेचनादि न कुर्यात्, वस्त्राणां धूपनं न कुर्यात् कासाद्यपनोदनार्थं धूमं न पिबेत्॥४ए॥

॥ टीका–कथं पुनः प्राणातिपातविरतिव्रतादिव्यवस्थितस्य कर्मापगमोजवतीत्युक्तं यतस्तत्प्रवृत्तस्यात्मौपम्येनप्राणिनां पीडोत्पद्यते तया च कर्मबंधइत्येवं सर्वं मनस्याधा

याह । (तत्रखलुइत्यादि) तत्रेति कर्मबंधप्रस्तावे । खलुवाक्यालंकारे । भगवतोत्पन्न ज्ञानेन तीर्थकृता षड्जीवनिकायाहेतुत्वेनोपन्यस्ताः । तद्यथा । पृथिवीकायोयावत्त्रसका योपीति । तेषांच पीड्यमानानां यथा डुःखमुत्पद्यते तथा स्वसंवित्तिसिद्धेन दृष्टांतेन द र्शयितुमाह । तद्यथाच मे ममासातं डुःखं वक्ष्यमाणैः प्रकारैरुत्पद्यते तथान्येषामपीति तद्यथा । दंडेनास्थ्ना मुष्टिना लेलुनालोष्टेन कपालेन कर्परेण आकोटयमानस्य संकोच्यमा नस्य हन्यमानस्य कशादिभिस्तर्जमानस्यांगुल्यादिभिस्ताड्यमानस्य कुड्यदावभिघातादिना परितप्यमानस्याश्यादावन्येन प्रकारेण वा परिक्लाम्यमानस्य तथापद्राव्यमाणस्य मार्यमा णस्य यावल्लोमोत्खननमात्रमपि हिंसाकरं डुःखं भयं च यन्मयि क्रियते तत्सर्वमहं संवेद यामीत्येवं जानीहि । यथा सर्वे प्राणाजीवाभूतानि सत्वाइत्येते एकार्थिकाः कथंचिद्भेद माश्रित्य व्याख्येयास्तत्रैतेषां दंडादिना कुटयमानानां यावल्लोमोत्खननमात्रमपि डुःखं प्रतिसंवेदयतामेतच्च हिंसाकरं डुःखं भयं चोत्पन्नं ते सर्वे प्राणिनः प्रतिसंवेदयंति सा क्षादनुभवंतीत्येवमात्मोपमया पीड्यमानानां जंतूनां यतोडुःखमुत्पद्यतेऽतः सर्वे प्राणि नोन हंतव्यान व्यापादयितव्याबलात्कारेण व्यापारे न प्रयोक्तव्यास्तथा न परिग्राह्यान परितापयितव्यानापद्रावयितव्याः ॥ ४७ ॥ सोहं ब्रवीम्येतन्न स्वमनीषिकतया किंतु सर्व तीर्थकराज्ञयेति दर्शयति (येअतीएइत्यादि) ये केचन तीर्थकृतऋषभादयोऽतीतायेच विदेहेषु वर्तमानाः सीमंधरादयोये चागामिन्यामुत्सर्पिण्यां भविष्यंति ब्रह्मनाभादयोऽर्ह तोऽमरासुरनरेश्वराणां पूजार्हाभगवंतऐश्वर्यादिगुणकलापोपेताः सर्वेप्येवं ते व्यक्तवाचा आख्यांति प्रतिपादयंति । एवं सदेवमनुजायां पर्षदि भाषंते स्वतएव न यथा बौद्धानां बोधिसत्वप्रभावात् कुड्यादिदेशनतइत्येवं प्रकर्षेण ज्ञापयंति हेतूदाहारणादिभिः । एवं प्ररूपयंति नामादिभिर्यथा सर्वे प्राणान हंतव्याइत्यादि । एषधर्मः प्राणिरक्षणलक्षण प्राग्व्यावर्णितस्वरूपोध्रुवोऽवश्यंभावी नित्यः क्षांत्यादिरूपेण शाश्वतइत्येवं चाभिसमेत्य केवलज्ञानेनावलोक्य, लोकं चतुर्दशरज्ज्वात्मकं खेदज्ञैस्तीर्थकृद्भिः प्रवेदितः कथितइत्ये वं सर्वं ज्ञात्वा, सन्भिक्षुर्विदितवेद्योविरतः प्राणातिपाताद्यावत्परिग्रहादिति । एतदेव दर्शयितुमाह । (णोदंतइत्यादि) इह पूर्वोक्तमहाव्रतपालनार्थमनेनोत्तरगुणाः प्रतिपा द्यंते । तत्रापरिग्रहोनिष्किंचनः ससाधुर्नो दंतप्रक्षालनेन कदंबादिकाष्ठेन दंतान् प्रक्षाल येत्तथा नो अंजनं सौवीरादिकं विभूषार्थमक्ष्णोर्दद्यात्तथा नो वमनविरेचनादिकाः क्रि याः कुर्यात्तथा नो शरीरस्य स्वीयवस्त्राणां वा धूपनं कुर्यान्नापि कासाद्यपनयनार्थं तं धू मं योगवर्तिनिष्पादितमापिबेदिति ॥ ४ए ॥

सेभिक्खू अकिरिए अलूसए अकोहे अमाणे अमाए अलोहे उवसं
ते परिनिव्वुडे णोआसंसं पुरतोकुज्जा इमेणमे दिठेणवा सुएणवा मुएण

वा णाएणवा विन्नाएणवा इमेणवा सुचरिय तवनियमबंभचेरवासेण इमेणवा जायामायावुत्तिएणं धम्मेणं इउवए पेच्चा देवेसिया कामभोगा वसवत्ति सिद्धेवा अडुक्खमसुभे एवविसिया एवविणोसिया ॥ ५० ॥

अर्थ—(सेभिक्खू के०) ते चारित्रियो (अकिरिए के०) सावद्य क्रिया रहित, (अलूसए के०) जीवनो अहिंसक, (अकोहे के०) क्रोधरहित (अमाणे के०) मानरहित (अमाए के०) मायारहित (अलोहे के०) लोभरहित (उवसंतेपरिनिव्वुडे के०) एकारणे उपशांत परिनिवृत समाधिवंत एवो छतो, (णोआसंसंपुरतोकुज्जा के०) आशंसा न करे एटले जन्मांतरे कामभोगनी प्रार्थना न करेः (इमेणमेदिट्ठेणवा के०) वली आ जन्मने विषे आमोसही इत्यादिक लब्धि पाम्या तेथी तपश्यानुं फल प्रत्यक्ष दीठुं. तथा वली (सुएणवा के०) सिद्धांत भणवा थकी (मुएणवा के०) मनन करवाना (णाएणवा के०) ज्ञानेकरी (विन्नाएणवा के०) विज्ञानेकरी, (इमेणवा के०) एवा धर्मेकरी (सुचरिय के०) सुकृतरूप आचरण (तव के०) तप अनशनादिक (नियम के०) नियम अभिग्रहादिक (बंभचेर के०) ब्रह्मचर्यने विषे (वासेण के०) वसवा थकी (इमेणवा के०) ए धर्मेकरी (जायामायावुत्तिएणं के०) संयमयात्रामात्रा वृत्तिरूप एटले मानोपेत आहार लेवे करी (धम्मेणंइउवएपेच्चादेवेसिया के०) एवा धर्मेकरी अहींयां थकी चवीने परभवांतरें देवत्व पणु पामुं एवी आशंसा पण न करे (कामभोगावसवत्ति के०) अथवा नाना प्रकारना कामभोग महारे वशवर्ति थाउं एवी प्रार्थना पण नकरे (सिद्धि के०) अष्ट प्रकारनी अणिमा महिमादिकजे सिद्धि छे ते सिद्धियें करी सिद्धियें सहित थाउं, एवी आशंसा नकरे (अडुक्खमसुभे के०) दुःख रहित थाउं, शुभाशुभ कर्मरहित थाउं, तथा मध्यस्थ थाउं, एवी आशंसा पण न करे. एवी आशंसाने न करवानुं कारण कहेछे. (एवविसियाएवविणोसिया के०) तपश्चरण करतां मनःप्रार्थितसिद्धि होय अथवा न होय ए कारणें वांछा न करे ॥ ५० ॥

॥ दीपिका—मूलोत्तरगुणसंग्रहमाह । सभिक्षुः नविद्यते सावद्या क्रिया यस्य सोऽक्रियः सांपरायिककर्माबंधकइत्यर्थः । यतः प्राणिनामलूषकोऽहिंसकस्तथाऽक्रोधोऽमायोऽलोभउपशांतः परिनिर्वृतः शीतीभूतआशंसां जन्मांतरे कामभोगावाप्तिवांछां न पुरस्कुर्यात् । (इमेणत्ति) अमुना तपश्चरणफलेन दृष्टेनामर्षौषध्यादिना श्रुतेन पारलौकिकेनाईकधम्मिलब्रह्मदत्तादीनां तपश्चरणफलेन (मएणत्ति) मननं च जातिस्मरणादिज्ञानेन आचार्यादेः सकाशाद्विज्ञातेनावगतेन ममापि विशिष्टं फलं भविष्यतीत्येवं नाशंसां विदध्यात् । त

थाऽमुना सुचरितेन तपोनियमब्रह्मचर्यवासेन तथाऽमुना यात्रामात्रावृत्तिना धर्मेण इतोऽस्माद्भवात् च्युतस्य प्रेत्य, जन्मांतरे देवः स्यामहं तत्रस्थस्यच कामनोगावशवर्तिनःस्युः। सिद्धोवाऽडुःखःअशुनः शुनाशुनकर्मापेक्षया एवंनूतोहं स्यामिति एवमाशंसां न विदध्यात्। अत्रापि तपश्चरणे सत्यपि डुर्ध्यानसद्भावात्कदाचित्सिद्धिर्मुक्तिरणिमादिसिद्धिर्वा स्यात्कदाचिन्न न स्यात् एवं सति साधोराशंसां कर्तुं न युक्तेति इहलोकार्थं परलोकार्थं कीर्तिवर्णश्लोकाद्यर्थं च तपोन विधेयमिति स्थितं ॥ ५० ॥

॥ टीका—सांप्रतं मूलगुणोत्तरगुणप्रस्तावमुपसंजिघृक्षुराह। (सेनिरकूइत्यादि) समूलोत्तरगुणव्यवस्थितोनिक्षुर्नास्य क्रिया सावद्या विद्यतेइत्यक्रियः संवृतात्मकतया सांपरायिककर्माबंधकइत्यर्थः। कुतएवंनूतोयतः प्राणिनामलूषकोऽहिंसकोऽनुपमर्दकइत्यर्थः। तथा न विद्यतेक्रोधोयस्येत्यक्रोधएवममानोऽमाय्यलोनःकषायोपशमाच्चोपशांतः शीतीनूतस्तडुपशमाच्च परिनिर्वृतइव परिनिर्वृतः। एवं तावदैहिकेन्यः कामनोगेन्योविरतः पारलौकिकेन्योपि विरतइति दर्शयति। (नोआसंसंइत्यादि) नो नैवाशंसां पुरस्कृत्य ममानेन विशिष्टतपसा जन्मांतरे कामनोगावाप्तिर्नविष्यतीति। एवंनूतामाशंसां न पुरस्कुर्यादित्येतदेव दर्शयितुमाह। (इमेणमेइत्यादि) अस्मिन्नेव जन्मन्यमुना विशिष्टतपश्चरणफलेन दृष्टेनामर्षौषध्यादिना पारलौकिकेन च श्रुतेनाऽऽकधम्मिल्लब्रह्मदत्तादीनां तथा (सुणवत्ति) मननंज्ञानं जातिस्मरणादिना ज्ञानेन तथाऽचार्यादेःसकाशाद्विज्ञानेनावगतेन ममापि विशिष्टं नविष्यतीत्येवं नाशंसां विदध्यात्। तथाऽमुना सुचरित्रतपोनियमब्रह्मचर्यवासेन तथाऽमुना वा यात्रावृत्तिना धर्मेणानुष्ठितेनातोस्माद्भवाच्च्युतस्य प्रेत्य जन्मांतरे स्यामहं देवस्तत्रस्थस्यच मे वशवर्तिनः कामनोगानवेयुरशेषकर्माऽवियुतोवा सिद्धोऽडुःखोशुनाशुनकर्मप्रकृत्यपेक्षयेत्येवं नूतोहं स्यामागामिकालइत्येवमाशंसां न विदध्यादिति। यदिवा विशिष्टतपश्चरणादिनाऽऽगामिनि काले ममाणिमा लघिमेत्यादिकाऽष्टप्रकारा सिद्धिर्नविष्यतीत्यनया च सिद्ध्या सिद्धोहमडुःखोऽशुनोवाम ध्यस्यइत्येवंरूपामाशंसां न कुर्यात्। तदकरणे च कारणमाह। (एङविइत्यादि) अत्रापि विशिष्टतपश्चरणे सत्यपि कुतश्चिन्निमित्ताद्दुष्प्रणिधानसद्भावे सति कदाचित्सिद्धिः स्यात्कदाचिन्न नैवाशेषकर्मक्षयलक्षणा सिद्धिः स्यात्। तथाचोक्तं। जे जत्तियाउहेऊ नविस्स ते चे व तत्तिया मोरकेइत्यादि। यदिवाऽत्राप्यणिमाद्यष्टगुणकारणे तपश्चरणादौ सिद्धिः स्यात्कदाचिन्न न स्यात् तद्विपर्ययोपि वा स्यादित्येवं व्यवस्थिते प्रेक्षापूर्वकारिणां कथमाशंसा कर्तुं युज्यते इति। सिद्धिश्चाष्टप्रकारेयं। अणिमा १ गरिमा २ लघिमा ३ महिमा ४ प्राप्तिः ५ प्राकाम्यं ६ ईशित्वं ७ वशित्वं ८ यत्र कामावसायित्वमिति। तदेवमैहिकार्थमामुष्मिकार्थं च कीर्तिवर्णश्लोकाद्यर्थं च तपोन विधेयमिति स्थितं ॥ ५० ॥

सेभिक्खू सद्देहिं अमुछिए रूवेहिं अमुछिए रसेहिं अमुछिए गंधेहिं अमुछिए फासेहिंअमुछिए विरए कोहाउ माणाउ मायाउ लोनाउ पेजाउ दोसाउ कलहाउ अप्नक्खाणाउ पेसुन्नाउ परपरिवायाउ अरइरइउ मायामोसाउ मिच्छादंसणसल्लाउ इति सेमहतो आयाणाउ उवसंते उवठिए पडिविरते सेनिक्खू ॥ ५१ ॥ जेइमे तसथावरा पाणा नवंति ते णो सयं समारंनइ णोवसेहिं समारंनावेंति अन्नं समारनंतं नसमणुजाणंति इति सेमहतो आयाणाउ उवसंते उवठिए पडिविरते सेनिक्खू ॥ ५२ ॥ जेइमे कामनोगा सचित्तावा अचित्तावा ते णो सयं परिगिण्हंति णोअन्नेणं परिगिण्हावेंति अन्नं परिगिण्हंतंपि णसमणुजाणइ इति सेमहतो आयाणाउ उवसंते उवठिए पडिविरतो सेनिक्खू ॥ ५३ ॥

अर्थ-(सेनिक्खू के०) ते साधु (सद्देहिंअमुछिए के०) शब्दने विषे अमूर्छित (रूवेहिंअमुछिएके०) रूपने विषे अमूर्छित (रसेहिंअमुछिए के०) रस मधुरादिकने विषे अमूर्छित (गंधेहिंअमुछिए के०) सुरनिगंधादिकने विषे अमूर्छित (फासेहिंअमुछिएके०) स्पर्शने विषे अमूर्छित (विरएके०) निवर्त्यो, शा थकी निवर्त्यो ? ते कहेछे क्रोध थकी, मान थकी, माया थकी, लोन थकी, राग थकी, द्वेष थकी, कलह थकी, अन्याख्यान एटले जुतुं आल देवा थकी, चाडी करवा थकी, परना अवर्णवाद बोलवा थकी, अरति थकी, रति थकी, माया सहित मृषावाद बोलवा थकी, अने मिथ्यात्वदर्शन शल्य ए थकी निवर्त्यो (इतिसेमहतोआयाणाउके०) एवो ते चारित्रिउ महोटा कर्मबंधना कारण थकी, (उवसंतेके०) उपशम्यो (उवठिएके०) उपस्थित एटले सावधान थयो (पडिविरतेके०) विशेषें निवर्त्यो (सेनिक्खू के०) ते चारित्रिउ ॥५१॥ (जेइमेतसथावरापाणानवंति के०) जे ए त्रस अने स्थावर प्राणीउछे (तेणोसयंसमारनंति के०) तेनो पोते समारंन करे नही (णोवसेहिंसमारंनावेंति के०) बीजा पासे समारंन करावे नही (अन्नंसमारंनंतंनसमणुजाणंति के०) बीजा समारंन करता होय तेने अनुमोदे नही (इतिसे के०) एवो ते चारित्रिउ (महतो के०) महोटा (आयाणाउ के०) कर्मबंधना कारण थकी (उवसंते के०) उपशम्यो (उवठिएके०) उपस्थित एटले सावधान थयो (पडिविरते के०) विशेषे निवर्त्यो (सेनिक्खूके०) ते चारित्रिउ ॥५२॥ (जेइमेकामनोगा के०) जे आ जगत् मांहे काम नोगछे ते कहेछे (सचित्तावा के०) सचित्त (अचित्तावा के०)

अचित्त (तेणोसयंपरिगिएहंति के०) ते कामनोगनें पोते, परिग्रहे नही अंगीकार करे नही (णोअन्नेणंपरिगिएहावेंति के०) बीजा पासें परिग्रहावे नही (अन्नंपरिगिएहंतं पि णसमणुजाणइ के०) बीजो परिग्रहतो होय तेने अनुमोदे नही (इतिसेमहंतो के०) एवोते चारित्रिउ महोटा (आयाणाउ के०) कर्मबंधना कारण थकी (उवसंते के०) उपशम्यो (उवठिए के०) सावधान थयो (पडिविरए के०) विशेषे निवर्त्यो (सेनिक्कू के०) ते चारित्रिउ ॥ ५२ ॥

॥ दीपिका—अथ रागद्वेषानावमाह । (सेनिक्कूइत्यादि) सनिक्कुः शब्देषु शुनाशुनेष्व मूर्छितोऽद्विष्टश्च । एवं रूपगंधरसस्पर्शेष्वपि वाच्यं । तथा विरतः क्रोधमानमायालोनेन्य स्तथा प्रेमतोदोषात् कलहादन्याख्यानात् पैशुन्यात् परपरिवादात् अरतितोरतितोमाया मृषातोमिथ्यादर्शनशल्याद्विरतः सनिक्कुर्योमहतः कर्मोपादानाडुपशांतसंयमे उपस्थितः सावद्येन्यः प्रतिविरतः सनिक्कुः स्यात् ॥५१॥ येइमे त्रसाः स्थावराः प्राणिनोनवंति तान् स्वयं न समारनते नैवान्यैः समारंनयंते अन्यं समारनमाणं न समनुजानाति इत्येवं महतः कर्मोपादानाडुपशांतः प्रतिविरतः सनिक्कुःस्यात् ॥५२॥ येमी कामनोगाः सचित्ताअचित्तावा तान् स्वयं न परिगृएहाति नान्येन परिग्राहयति अन्यं परिगृएहंतं न समनुजानाति इत्येवं कर्मोपादानाद्विरतः सनिक्कुः स्यात् ॥ ५२ ॥

॥ टीका—सांप्रतमनुकूलप्रतिकूलेषु शब्दादिषु विषयेषु रागद्वेषानावं दर्शयितुमाह । (सेनिक्कूइत्यादि) सनिक्कुः सर्वाशंसारहितोवेणुवीणादिषु शब्देष्वमूर्छितोऽगृद्धोऽनध्युपपन्नस्तथा रासनादिशब्देषु कर्कशेषु द्विष्टः एवं रूपरसगंधस्पर्शेष्वपि वाच्यमिति । पुनरपि सामान्येन क्रोधाद्युपशमं दर्शयितुमाह (विरएकोहाउइत्यादि) क्रोधमानमायालोनेन्यो विरतइत्यादिसुगमं । यावदिति । (सेमहयाआयाणाउउवसंतेउवठिएपडिविरएसेनिक्कूत्ति) सनिक्कुर्नवति योमहतः कर्मोपादानाडुपशांतः सन्स्वयमेवोपस्थितः सर्वपापेन्यश्च विरतइति ॥५१॥ एतदेवमहतः कर्मोपादनाद्विरमणं साक्षाद्दर्शयितुमाह । (जेइमेइत्यादि) ये केचन त्रसाः स्थावराश्च प्राणिनोनवंति तान् सर्वानपि नोनैव स्वयं सत्साधवः समारनंते प्राएयुपमर्दकमारनंतइतियावत् । तथा नान्यैः समारंनयंते नचान्यान् समारंनमाणान् समनुजानतइत्येवं महतः कर्मोपादानाडुपशांतः प्रतिविरतोनिक्कुर्नवतीति ॥५२॥ सांप्रतं सामान्यतः सांपरायिककर्मोपादानकामनोगनिवृत्तिमधिकृत्याह । (जेइमेइत्यादि) ये केच नामी काम्यंतइति कामाञ्जुज्यंत इतिनोगास्तेच सचित्ताअचित्तावा नवेयुस्तांश्च नस्वतो गृएहीयान्नाप्यन्येन ग्राहयेत् नाप्यपरं गृएहंतं समनुजानीयादित्येवं कर्मोपादानाद्विरतो निक्कुर्नवतीति ॥ ५२ ॥

जंपियं इमं संपराइयं कम्मं कज्जइ णो तं सयं करेंति णोअस्राणं कारवेंति अन्नंपिकरें तं णसमणुजाणइ इति सेमहतो आयाणाउ उवसंते उवहिए पडिविरते ॥५४॥ से जिक्खूजाणेज्जा असणंवा अस्सिं पभियाए एगं साहम्मियं समुदिस्स पाणाइं जूताइं जीवाइं सत्ताइं समारंज समुद्दिस्स कीतं पामिच्चं अछिज्जं अणिसढं अजिहडं आदहुदेसियं तंचेतियंसियातं णो सयं जुंजई णोअस्रेणं जुंजावेंति अन्नंपि जुंजंतं णसमणुजाणइ इति से महतो अयाणाउ उवसंते उवहिए पडिविरते ॥ ५५ ॥

अर्थ-(सेजिक्खू के०) ते चारित्रिउ (जंपियं के०) जे (इमं के०) ए (संपराइयं कम्मंकज्जइ के०) सांपरायिक एटले जे कर्मे करी संसार मांहे परिज्रमण करियें ते सांपरायिक कर्म कहिए जे कारणे करी बंधाय ते कारण प्रद्वेष निन्हव मात्सर्य अंतराय आशातना उपघातादिक ए कर्मबंधना कारणछे (णोतंसयंकरेति के०) ते स्वयं पोते नकरे (णोअस्राणंकारवेंति के०) बीजा पासें करावे नही (अन्नंपिकरेंतं णसमणुजाणइके०) बीजो करतो होय तेने अनुमोदे नही (इतिसेमहतोआयाणाउ के०) एवो ते मोहोटा कर्मबंधना कारण थकी (उवसंते के०) उपशम्यो (उवहिए के०) सावधान थयो (पडिविरतेके०) विशेषें निवर्त्यो ते जिक्षु कहिए ॥५४॥ हवेचारित्रियानी आहार विशुद्धि कहेछे. (सेजिक्खूजाणेज्जा के०) ते चारित्रिउ एम जाणे ते कहेछे. जे (असणंवाके० एवंजूत आहार अशन पान खादिम स्वादिम जाणे (अस्सिंपभियाए के०) साधुने निमित्ते कोइएक प्रकृति जइक श्रावक गृहस्थ ते (एगंसाहम्मियं समुद्दिस्स के०) एक साधर्मिक साधुने समुद्देशीने (पाणाइं जूताइं जीवाइं सत्ताइं समारंज के०) प्राणी जूत जीव सत्वनो आरंज करे मर्दन करे (समुद्दिस्स के०) तथा साधुने निमित्ते उद्देशीने (कीतं के०) वेचातुं लीये (पामिच्चं के०) उछीनुं लावे (अछिज्जं के०) बीजानुं पाडीलीए (अणिसढं के०) बीजानी वस्तु होय ते तेना धणीने कह्या विना साधुने आपे (अजिहडंआहहुदेसियं के०) ग्रामादिक थकी साधुने सन्मुख लावे एवो आहार आधाकर्मादिक दोषें करी दुष्ट (तंचेतियंसिया के०) ते आहार साधुनें दीधो अने साधुए पण अजाणता लीधो परंतु एवो दोष दुष्ट आहार जाणीने (तेणोसयंजुंजइ के०) ते आहार साधु पोते जमे नही (णोवअस्रेणंजुंजावेंति के०) तथा बीजाने तेवो आहार जमाडे नही अने (अन्नंपिजुंजंतंणसमणुजाणइ के०) बीजो कोइ एवो आहार जमतो होए तेने अनुमोदे नही (इतिसेमहतोआ

याणाउंउवसंतेउवहिए पडिविरतेके०) एरीते ते महोटा कर्मबंधना कारण एवा जे आहारना दोष ते थकी उपशम्यो सावधान थयो विशेषें निवर्त्यो तेने साधु कहिए ॥५५॥

॥ दीपिका—यदपीदं सांपरायिकं कर्म तच्च प्रद्वेषनिन्हवमात्सर्यांतरायासातनोपघातै र्बध्यते तत्कर्म कारणंवा न कृतकारितानुमतिनिः करोति सनिक्षुः कथ्यते ॥५४॥ सनिक्षुर्यत्पुनरेवंनूतमाहारं जानीयात् (अस्सिंपडियाए) एतत्प्रतिज्ञया एकं साधुं साधर्मिकं समुद्दिश्य कश्चित्प्रकृतिनद्रकः श्रावकः साध्वाहारदानार्थं प्राणिनः समारन्य प्राणिघातकमारंनं कृत्वा समुद्दिश्य तत्पीडां सम्यगुद्दिश्य क्रीतं (पामिच्चं) उच्छिन्नकमाछेद्यमन्यस्मादाछिद्य गृहीतमनिसृष्टं परेणाननुमतमन्याहृतं साधुसंमुखमानीतमाहृत्य उपेत्य ज्ञात्वा साध्वर्थं कृतमुद्देशिकमेवंनूतमाहारं साधवे दत्तं स्यात्साधुनावाऽकामेन गृहीतं स्यात्तद्दोषडुष्टं ज्ञात्वा स्वयं न झुंजीत अन्येन न नोजयेत् नच झुंजानमन्यं समनुजानीयात् एवं डुष्टाहारान्निवृत्तोनिक्षुः स्यात् ॥ ५५ ॥

॥ टीका—सांप्रतं सामान्यतः सांपरायिककर्मोपादाननिषेधमधिकृत्याह । (जंपियइय इत्यादि) यदपीदं सपर्येति तासुतासु गतिष्वनेककर्मणेति सांपरायिकं तच्च तत्प्रद्वेषनिन्हवमात्सर्यांतरायासातनोपघातैर्बध्यते तत्कर्म तत्कारणं वा न कृतकारितानुमतिनिः करोति सनिक्षुरनिधीयतइति ॥५४॥सांप्रतं निक्षाविशुद्धिमधिकृत्याह । (सेनिक्खूइत्यादि) सनिक्षुर्यत्पुनरेवंनूतमाहारजातं जानीयात् (अस्सिंपडियाएत्ति) एतत्प्रतिज्ञयाऽऽहारदानप्रतिज्ञया यदि वास्मिन्पर्याये साधुपर्याये व्यवस्थितमेकं साधुं साधर्मिकं समुद्दिश्य कश्चिछ्रावकः प्रकृतिनद्रकोवा साध्वाहारदानार्थं प्राणिनः प्रव्यक्तेंद्रियान् नूतानि त्रिकालनाविनि जीवानायुष्कधरणलक्षणान्सत्वान्सदा सत्वोपेतान्समारन्य तडुपमर्दकमारंनं विधाय समुद्दिश्य तत्पीडां सम्यगुद्दिश्य, क्रीतं क्रयेण द्रव्यविनिमयेन (पामिच्चंति) उद्यतकमाछेद्यमित्यन्यस्मादाछिद्य निसृष्टमिति परेणानुत्संकलितमन्याहृतमिति साध्वनिमुखं ग्रामादेरानीतमाहृत्योपेत्य साध्वर्थं कृतमुद्देशिकमित्येवंनूतमाहारजातं साधवे दत्तं स्यात्तच्चाकामेन तेन परिगृहीतं स्यात्। तदेवं दोषडुष्टं च ज्ञात्वा स्वयं न झुंजीत नाप्यपरेण नोजयेन्नच झुंजानमपरं समनुजानीयादित्येवं डुष्टाहारदोषान्निवृत्तोनिक्षुर्नवतीत्यर्थः ॥ ५५ ॥

सेनिक्खू अह पुणेवं जाणेज्जा तं विज्जति तेसिं परक्कमे जस्सघ्ठा तेवेइयं सियातं जहा अप्पणो से पुत्ताणं धूयाणं सुण्हाणं धातीणं णातीणं राईणं दासाणं दासीणं कम्मकराणं कम्मकरीणं आदेसाणं पुढोपहेणाए सामासाए पातरासाए सन्निहीसंचएकज्जंति इहमेगेसिं माणवाणं नोयणा

एतत्थ भिक्खू परकडं परणिट्ठितं उग्गमुप्पायणेसणासुद्धं सत्थाइयं सत्थपरिणामियं अविहिंसियं एसियं वेसियं सामुदाणियं पन्नमसणं कारणट्ठा पमाणजुत्तं अक्खोवंजणवणलेवणभूयं संजमजायामायावत्तियं बिलमिव पन्नगभूतेणं अप्पाणेणं आहारं आहारेज्जा अन्नं अन्नकाले पाणं पाणकाले वत्थं वत्थकाले लेणं लेणकाले सयणं सयणकाले ॥ ५६ ॥

अर्थ—(सेभिक्खू के०) ते चारित्रिउ (अह के०) हवे (पुणेवंजाणेज्जा के०) वली एवुं जाणे ते कहेछे. (तंविज्जतितेसिंपरक्कमे के०) ते गृहस्थने एवो पराक्रम आहार करवानोछे के जे पराक्रमे करी (जस्सट्ठातेचेइयंसिया के०) जेने अर्थे ते आहार नीपजाव्यो होए (तंजहा के०) ते कहेछे. (अप्पणोसेपुत्ताणं के०) पोताने अर्थे तथा पुत्रने अर्थे (धूयाणं के०) दीकरीने अर्थे (सुण्हाणं के०) छोकरानी वहुने अर्थे (धातीणं के०) धाव्यने अर्थे (णातीणं के०) ज्ञातीने अर्थे (राईणं के०) राजाने निमित्तें (दासाणं के०) दासने अर्थे (दासीणं के०) दासीने अर्थे (कम्मकराणं के०) कर्म करने अर्थे (कम्मकरीणं के०) परोणाने अर्थे (आदेसाणंपुढोपेहेणाए सामासाए के०) अन्यत्र स्थानके बीजाने मोकलवाने अर्थे नीपजाव्यांछे रात्रे जमवाने निमित्तें तथा लोकोक्तिए व्यालुने अर्थे (पातरासाए के०) कलेवा निमित्तें (सन्निहिसंचएकज्जंति के०) एप्रकारे आहारनो संनिधि संचय करे एटले दही उदनादिक विनाशी द्रव्य, अने हरडे शर्करादिक अविनाशी द्रव्यनो संचय करे. (इहमेगेसिमाणवाणंभोयणाए के०) आ मनुष्य लोक मांहे कोइएक मनुष्यने एवो आहार भोजनने अर्थे थाय (तत्थभिक्खू के०) त्यां चारित्रिउ (परकडं के०) परनो करेलो (परणिट्ठितं के०) परनिष्ठित एटले अन्यने अर्थे नीपजाव्यो (उग्गमुप्पायणेसणासुद्धं के०) उद्गमना सोल दोषने दातार अजाणतो लगावे, अने उत्पादनना सोल दोष ते साधु लगावे, वली एषणाविशुद्धना दश दोष रहित एटले सर्वमली बेंतालीश दोष रहित (सत्थाइयं के०) शस्त्रातीत एटले अग्न्यादिकें करी अचित कीधो (सत्थपरिणामियं के०) शस्त्रें करी वर्ण गंध रसादिके करी परिणामाव्यो (अविहिंसियं) निर्जीव एटले जीव रहित तेपण (एसियं के०) गवेष्युं भिक्षाचर्या करतां पाम्यो तेपण वली (वेसियं के०) निःकेवलसाधुने वेषे प्राप्त थयो तेपण वली (सामुदाणियं के०) माधुकरी वृत्तिए घणा घर फरतां प्राप्त थयो तथा (पन्नमसणं के०) गीतार्थनो आणेलो, एवो आहार अशनादिक तेवली (कारणट्ठा के०) वैयावच्चादिक कारणने अर्थे तेवली (पमाणजुत्तं के०) प्रमाणयुक्त एटले प्रमाणोपेत आहार जाणवो. तेवली वर्णवलादिकने अर्थे नही किंतु

जेटले आहारें करी शरीर क्रियाने विषे प्रवर्ते तेटलोज आहार लेवो. ते उपर दृष्टांत कहेछे. (अस्कोवंजण के०) जेटलो गाडानी धरीने जोइए तेटलो किल आपिए चोपडीए तेटलुंज गाडुं पण चाले तथा (वण के०) व्रण एटले गुंबडा उपर (लेवणनूयंके०) जेटलो लेप लागे तेटलोज लगाडीए. ए उपमायें चारित्रिउ पण आहार लीए. (संजमजायामायावत्तियंके०) जेटले आहारें संयम जात्रायें प्रवृत्ताय तेटली मात्रायें तेटलो आहारलीए, ते वली तेटली मात्रा टालीने अधिक आहार न लेवो. (बिलमिवपन्नग नूतेणंके०) ते आहार वली बिलप्रवेश सर्पनी पेतें (अप्पाणेणं के०) पोतें (आहारंआहारेज्जाके०) आहार आहारे,एटले जेम सर्प बिल मांहे प्रवेश करे तेवारे उतावलो प्रवेश करे तेम साधु पण, आहार करतो सुस्वाद निरास्वाद अण जोतो आहार लीए (अन्नंअन्नकाले के०) ते अन्न अन्नने काले लीए, उत्सर्ग मार्गें सूत्र अर्थ पौरसीनुं अनंतर अहार काल जाणवो. (पाणंपाणकालेके०) एवीज रीते पाणी, पाणीने कालें पीए एटले तृषा लागे थके जमवुं नही, अने क्षुधातुर थके पाणी पीवुं नही इत्यर्थः (वत्थंवत्थकाले के०) तथा वस्त्र वस्त्रने कालें लेवुं उढवुं (लेणंलेणकाले के०) उपाश्रय उपाश्रयने काले लीये, एटले वर्षादिकाल समये अवश्य उपाश्रयने विषे रहे बीजाकालने विषे नियम नथी (सयणंसयणकालेके०) शयन कालें शयन करे त्यां अगीतार्थने बे पहोर निद्रा जाणवी. अने निद्रा थकी विमुक्त गीतार्थने एक पहोर निद्रा जाणवी॥५६॥

॥ दीपिका–सभिक्षुरथ पुनरेवं जानीयात् । तद्यथा । तेषां गृहस्थानां वक्ष्यमाणः पराक्रमः सामर्थ्यं आहारकरणारंभइति यावत् । यस्य चार्थाय यत्कृते तच्चेति तं दत्तं निष्पादितं स्यात् । तद्यथा । आत्मनः कृते से तदाहारजातं कृतंस्यात्तथा पुत्राणां सुतानां स्नुषाणां वधूनां धात्रीणां राज्ञां दासीनां कर्मकरीणामादेशकः प्राघूर्णकस्तस्यार्थं तथा पृथक् प्रग्रहणार्थं (सामासाएत्ति) श्यामारात्रिस्तत्राशनं श्यामाशोरात्रिभोजनार्थं प्रातरशनं प्रातराशस्तदर्थं सन्निचयोविशिष्टाहारनिष्पादनं क्रियते । अनेन चैतत्सूच्यते यद्बालवृद्धग्लानादिनिमित्तं प्रभातादिसमयेष्वपि भिक्षाटनं क्रियते तस्यायमुक्तः संभवः ससन्निधिसंभवइहैकेषां मानवानां भोजनाय स्यात् । तत्र भिक्षुः परकृतपरनिष्ठितमुद्गमोत्पादनैषणाशुद्धमाहारमाहरेत् । अत्र परकृतपरनिष्ठिते चत्वारोभंगाः। तद्यथा । तस्यकृतं तस्यैवनिष्ठितं १ तस्य कृतमन्यस्यनिष्ठितं २ अन्यस्य कृतं तस्य निष्ठितं ३ अन्यस्य कृतमन्यस्यनिष्ठितं ४ । तत्र चतुर्थभंगः सूत्रोपात्तः शुद्धः । द्वितीयोपिशुद्धः । उद्गमदोषाः १६ उत्पादनादोषा अपि १६ एषणादोषाः १० इतिद्विचत्वारिंशता दोषैः शुद्धं शास्त्रातीतं प्रासुकीकृतं शस्त्रपरिणामितं स्वकायपरकायादिशस्त्रेण निर्जीवीकृतं वर्णगंधरसादिभिश्च

परिणामितमविहिंसितं सम्यक् निर्जीवमित्यर्थः। एषितं भिक्षाचर्याविधिप्राप्तं वैषिकं केवलसाधुवेषप्राप्तं नपुनर्निमित्तादिनोत्पादितं सामुदानिकं मधुकरवृत्त्यास्तोकं स्तोकं गृहीतं प्रज्ञस्येदं प्राज्ञं गीतार्थोपात्तमशनं तदपि वेदनावैयावृत्त्यादिकारणे सति। यदुक्तं। वेयण १ वेयावच्चे, २ इरियठ्ठाएय ३ संजमठ्ठाए ४ । तह पाणवत्तियाए ५ छठं पुण धम्मचिंताए ।६। एषु कारणेष्वाहारं गृह्णीयात्। तदपि प्रमाणयुक्तं नातिमात्रं। यदुक्तं। अद्धमसणस्स सवजणस्स कुज्जादवस्सदोनाए॥ वायपवियारणठ्ठा, छप्नागं ऊणगं कुज्जाइति॥१॥ अक्षस्य शकटस्य उपांजनमभ्यंगः व्रणस्यच लेपनं तद्रुपमयाऽऽहारमाहरेत्। यतः। अप्नंगेणवसगमं जातरइविणाउजो साहू॥ सो रागदोसरहिउ, मत्ताइविहीइ तंसेवे॥१॥ एतदेवाह। संयमयात्रायां मात्रा संयमयात्रामात्रा यावत्याहारमात्रया संयमयात्रा प्रवर्तते तथा संयमयात्रामात्रया वृत्तिर्यस्य तत्तथा। तदपि बिलप्रवेशपन्नगभूतेनात्मनाऽऽहारमाहरेत्। कोर्थः। यथा बिलं प्रविशन् सर्पस्तूर्णं प्रविशति एवं साधुनापि स्वादमगृण्हताऽहारः शीघ्रं प्रवेशयितव्यः। अथवा सर्पेणेवाहारोऽलब्धास्वादं भक्षणीयइति। तद्यथा। अन्नमन्नकाले सूत्रार्थपौरुषीकरणोत्तरकालं पानकं पानकाले न तृषितोभुंजीत न बुभुक्षितः पानकं पिबेत्। वस्त्रं वस्त्रकाले ग्राह्यं लयनं गुहादिकमाश्रयस्तस्य वर्षास्वत्यवश्यमुपादानमन्यदात्वनियमः। शयनं संस्तारकः शयनकाले तत्रागीतार्थानां प्रहरद्वयं निद्राविमोक्षोगीतार्थानां तु प्रहरमेकमिति॥ ५६ ॥

॥ टीका—पुनरेवं जानीयादित्यादि। तद्यथा। गृहं विद्यते येषां तेषां गृहस्थानामेवंभूतोवक्ष्यमाणः पराक्रमः सामर्थ्यमाहारनिवर्तनं प्रत्यारंभस्तेनच यदाहारजातं निवर्तितं यस्य चार्थाय यत्कृते तच्चेति तमिति दत्तं निष्पादितं स्याद्भवेत्। यत्कृते च निष्पादितं तत्स्वनामग्राहमाह। तद्यथा। आत्मनः स्वनिमित्तमेवाहारादिपाकनिर्वर्तनं कृतमिति तथा पुत्रार्थं यावदादेशायादिश्यते यस्मिन्नागते संभ्रमेण परिजनस्तदातदाशनदानादिव्यापारः सआदेशकः प्राघूर्णकस्तदर्थंवा पृथक् प्रग्रहणार्थं विशिष्टाहारनिर्वर्तनं क्रियते तथा श्यामा रात्रिस्तस्यामशनमाशः श्यामाशस्तदर्थं प्रातरशनं प्रातराशः प्रत्यूषस्येव भोजनं तदर्थं सन्निधिः संनिचयोविशिष्टाहारसंग्रहस्य संचयः क्रियते। अनेन चैतत्प्रतिपादितं भवति। बालवृद्धग्लानादिनिमित्तं प्रत्यूषादिसमयेष्वपि भिक्षाटनं क्रियते तस्य चायमभिहितः संभवः। सच (संनिहिति) संचयइहैकेषां मानवानां भोजनार्थं भवति तत्र भिक्षुरुद्यतविहारी परकृतपरनिष्ठितमुद्गमोत्पादनैषणाशुद्धमाहारमाहरेत्। अत्र च परकृतपरनिष्ठिते चत्वारोभंगाः। तद्यथा। तस्य कृतं तस्यैव च निष्ठितं तस्य कृतमन्यस्य निष्ठितमन्यस्य कृतं तस्यैव निष्ठितमन्यस्य कृतमन्यस्य निष्ठितमित्ययं चतुर्थोभंगः सूत्रे

णोपात्तोऽयं च शुद्धोद्वितीयश्चान्यस्य निष्ठितत्वात्तत्राधाकर्मोद्देशिकादयउद्गमदोषाः षोड
श तथोत्पादनादोषाधात्रीदूत्यादिकाः षोडशैव तथैषणादोषाः शंकितादयोदश । एवमेभि
र्द्विचत्वारिंशद्दोषैरहितत्वाशुद्धं । यथाशस्त्रमग्न्यादिकं तेनानीतं प्रासुकीकृतं शस्त्रपरिणा
मितमिति शस्त्रेण स्वकायपरकायादिना निर्जीवीकृतं वर्णगंधरसादिभिश्च परिणमितं हिं
साप्राप्तं हिंसितं विरूपं हिंसितं विहिंसितं नसम्यक् निर्जीवीकृतमित्यर्थः । तत्प्रतिषेधाद
विहिंसितं निर्जीवमित्यर्थः । तदप्येषितमन्वेषितं भिक्षाचर्याविधिना प्राप्तं वैषिकमिति केवल
साधुवेषावाप्तं नपुनर्जात्याद्याजीवनतोनिमित्तादिना चोत्पादितं तदपि सामुदानिकं समुदा
नं भिक्षासमूहस्तत्र भवं सामुदानिकं । एतदुक्तं भवति । मधुकरवृत्त्यावाप्तं सर्वत्र स्तोकंस्तोकं
गृहीतमित्यर्थः । तथा प्राज्ञस्येदं प्राज्ञं गीतार्थेनोपात्तमशनमाहारजातं तदपि वेदनावैय्या
वृत्त्यादिके कारणेसति तत्रापि प्रमाणयुक्तं नातिमात्रं । प्रमाणं चेदं । अद्धमसणस्स स
व्वं जणस्स कुज्जादवस्स दोभाए । वाउपवियारणठाबभागं ऊणयं कुज्जत्ति । एतदपि न व
र्णबलाद्यर्थं किंतु यावन्मात्रेणाहारेण देहः क्रियासु प्रवर्तते । तत्र दृष्टांतद्वयमाह । त
द्यथा । अक्षस्योपांजनमभ्यंगोव्रणस्य च लेपनं प्रलेपस्तदुपमया आहारमाहरेत् । तथाचो
क्तं । अप्पेगेण वसगमं एतरइ विगइं विणाइ जो साहू । सो रागदोसरहिउ मत्ताइविही
इत्तं सेवे । एतदेव दर्शयति । संयमयात्रायामात्रा संयमयात्रामात्रा यावत्याहारमात्रया
संयमयात्रा प्रवर्तते सा तथा तया संयमयात्रामात्रया वृत्तिर्यस्य तत्तथा तदपि बिलप्रवे
शपन्नगभूतेनात्मनाऽऽहारमाहरेत् । एतदुक्तं भवति । यथाहिर्बिलं प्रविशन् तूर्णं प्रविश
त्येवंसाधुनाप्याहारस्तत्स्वादमनास्वादमभ्यवहार्यतइति । तदेवाहारजातं दर्शयितुमाह ।
अन्नं भक्तमन्नकाले सूत्रार्थपौरुष्युत्तरकालं भिक्षाकाले प्राप्ते पुरः पश्चात्कर्मपरिहृतं भव
ति । यथोक्तभिक्षाटनेन ग्रहणकालावाप्तं भैक्षं परिभोगकाले भुंजीत । तथा पानकं पान
काले नातितृषितोभुंजीत नाप्यतिबुभुक्षितः पानकं पिबेदिति । तथा वस्त्रं वस्त्रकाले गृ
एहीयाडपभोगंवा कुर्यात्तथा लयनं गुहादिकमाश्रयस्तस्य वर्षास्ववश्यमुपादानमन्यदाल
नियमस्तथा शय्यतेऽस्मिन्निति शयनं संस्तारकः सच शयनकाले । तत्राप्यगीतार्थानां प्र
हरद्वयं निद्राविमोक्षोगीतार्थानां प्रहरमेकमिति । ॥ ५६ ॥

सेभिक्खू मायन्ने अन्नयरं दिसं अणुदिसंवा पडिवन्ने धम्मं आ
इक्खे विभए किट्टे उवठिएसुवा अणुवठिएसुवा सुस्सूसमाणेसु प
वेदए संतिविरतिं उवसमं निवाणं सोयवियं अज्जवियं मद्दवि
यं लाघवियं अणतिवातियं सव्वेसिं पाणाणं सव्वेसिं भूताणं जा
व सत्ताणं अणुवाइं किट्टिए धम्मं ॥ ५७ ॥

अर्थ–(सेन्निरकूके०) ते चारित्रित्र आहार, उपधी, शयन, स्वाध्याय, अने ध्यानादि कना (मायंन्नेके०) मात्रा एटले विधिनो जाण ठतो .(अन्नयरंदिसंअणुदिसंवाके०) अन्य दिशि अथवा विदिशि प्रत्यें (पडिवन्ने के०) आश्रित होतो एटले अंगीकार करतो ठतो (धम्मंआइक्के के०) धर्म कहे. जे धर्म जेने करवा योग्य होय तेने तेवो उपदेश आपे (विन्नए के०) धर्म अने अधर्मना फल जुदा जुदा करी देखाडे (किट्टे के०) धर्मनी कीर्त्ति करे, प्रशंसा करे वली परना हितने अर्थें साधु चारित्रित्र (उवठ्ठिएसुवा के०) उपस्थित एटले उद्यमवंत एवा शिष्यने विषे तथा (अणुवठ्ठिएसुवा के०) अनुपस्थित एटले कौतुकार्थी शिष्यने विषे (सुस्सूसमाणेसु के०) सांजलवा वांठताने विषे पोताना आत्माना तथा परना हित नणी (पवेदए के०) धर्म कहे. जे धर्म कहे ते देखाडेठे. (संति के०) उपशम ते कषायनुं जीपवुं तथा (विरतिं के०) विरति ते प्राणातिपातादिक थकी निवर्त्तवुं एवो धर्म प्ररूपे (उवसमंके०) इंद्रिय तथा नोइंद्रियनुं उपशमाववुं एटले राग द्वेषनो अन्नाव करवो (निव्वाणं के०) तथा निरवाणते सर्व जीवोने समाधिरूप एटले मोक्ष कहे तथा (सोयवियं के०) शौचते व्रतनुं निर्मल पणु एटले जेम व्रतने मल नलागे तेवीरीते धर्म कहे (अज्जवियं के०) आर्जव एटले सरलता मायानो अन्नाव (मद्दवियं के०) कोमल मृडुनावयुक्त तेवा विधिये धर्म कहे (लाघवियं के०) तथा कर्म हलवां थाय तेवा विधियें धर्म कहे. हवे सर्व शुन्नानुष्ठाननु मूल कारण कहेठे (अणतिवातियं के०) अहिंसा आदरवानो उपदेश आपे ते कोनी अहिंसा? ते कहेठे (सव्वेसिंपाणाणंकें०) सर्व प्राणीनी (सव्वेसिंनूताणं के०) सर्वनूत सर्वजीव (जावसत्ताणं के०) यावत् सर्व सत्वनी अहिंसाने (अणुवाइंकिट्टिएधम्मं के०) विचारीने धर्मोपदेश आपे एटले समस्त जीवमात्रनी जे प्रकारे हिंसा नथाय ते प्रकारें धर्म कहे ॥ ५७ ॥

॥ दीपिका–आहारादिमात्रज्ञः सन्निक्षुः अन्यतरां दिशमनुदिशंवा प्रतिपन्नोधर्ममाख्यापयेत् कथयेत् यद्येन साधुना गृहस्थेन वा विधेयं तद्यथायोगं विन्नजेत् धर्मफलानि कीर्तयेत् उपस्थितेपूद्यतेषु अनुपस्थितेषु कौतुकादिप्रवृत्तेषु शुश्रूषमाणेषु श्रोतुं प्रवृत्तेषु प्रवेदयेत् । यत्कथयेत्तदाह । शांतिः क्षमा तत्प्रधाना विरतिस्तां कथयेत् । उपशममिंइयदमं निर्वाणं मोक्षं (सोयवियं) शौचं नावशौचमित्यर्थः । आर्जवं निर्मायत्वं मार्दवं मृडुनावोविनीतत्वमितिन्नावः । लाघवं कर्मलघुत्वक्रिया । अतिपातोहिंसा सविद्यते यस्यसोतिपातिकस्तन्निषेधादनतिपातिकस्तं सर्वेषां प्राणिनां यावत्सत्वानां धर्ममनुविविच्य विचिंत्य, कीर्तयेत् । कोर्थः । सर्वप्राणिरक्षान्नूतं धर्मं कथयेदित्यर्थः ॥ ५७ ॥

॥ टीका–सनिकुराहारोपधिशयनस्वाध्यायादीनां मात्रां जानातीति तद्विधिज्ञः सन् अन्यतरां दिशमनुदिशंवा प्रतिपन्नः समाश्रितोधर्ममाख्यापयेत् यद्येन विधेयस्तद्यथा नो गं विनजेद्धर्मफलानि च कीर्तयेदाविर्भावयेत्तच्चैकार्थप्रवृत्तेन साधुना सम्यगुपस्थितेषु वा कौतुकादिप्रवृत्तेषु शुश्रूषमाणेषु श्रोतुं प्रवृत्तेषु स्वपरानिप्रायं वेदयेदावेदयेत्प्रकथयेदितिया वत् । श्रोतुमुपस्थितेषु यत्कथयेत्तद्दर्शयितुमाह । (संतिविरइइत्यादि) शांतिरुपशमः क्रोधजयस्तत्प्रधाना प्राणातिपातिन्योविरतिः शांतिविरतिः । यदिवा शांतिरशेषक्लेशापग मरूपा तस्यै तदर्थं विरतिस्तां कथयेत्तथोपशममिंद्रियोपशमरूपं रागद्वेषाभावजनितं तथा निर्वृतिं निर्वाणमशेषद्वंद्वोपरमरूपं तथा (सोयवियंति) शौचं तदपि भावशौचं सर्वोपाधिशुद्धता व्रतामालिन्यं । (अज्जवियंति) आर्जवममायित्वं तथा मार्दवं मृडुभावं सर्वत्र प्रश्रयवत्वं विनयनम्रतेति यावत् । तथा (लाघवियंति) कर्मणां लाघवापादनं कर्मगुरोर्वात्मनः कर्मापनयनतोलघ्ववस्थासंजननं । सांप्रतमुपसंहारद्वारेण सर्वशुभानुष्ठा नानां मूलकारणमाह । अतिपतनमतिपातः प्राण्युपमर्दनं तद्विद्यते यस्यासावतिपातिक स्तत्प्रतिषेधादनतिपातिकस्तं सर्वेषां प्राणिनां भूतानां यावत्सत्वानां धर्ममनुविधिमनुवि चिंत्य, वा कीर्तयेत्कथयेत् । इदमुक्तं भवति सर्वप्राणिनां रक्षाभूतं धर्मं कथयेदिति ॥ ५७ ॥

सेभिक्खू धम्मं किट्टमाणे णो अन्नस्स हेउं धम्म माइक्खेज्जा णोपाणस्स हेउं धम्ममाइक्खेज्जा णोवत्थस्सहेउं धम्ममाइक्खेज्जा णोलेणस्स हेउं ध म्ममाइक्खेज्जा णोसयणस्सहेउं धम्ममाइक्खेज्जा णोअन्नेसिं विरूवरूवा णं कामभोगाणं हेउं धम्ममाइक्खेज्जा अगिलाए धम्ममाइक्खेज्जा नन्नत्थ कम्मनिज्जरट्ठाए धम्ममाइक्खेज्जा ॥५८॥ इहखलु तस्स भिक्खुस्स अंति ए धम्मं सोच्चा णिसम्म उट्ठाणेणं उट्ठाय वीरा अस्सिं धम्मे समुट्ठिया जे तस्सभिक्खू अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म सम्मं उट्ठाणेणं उट्ठायवीरा अ स्सिंसधम्मे समुट्ठिया तेएवं सव्वोवगता तेएवं सव्वोवरता तेएवं सव्वोवसं ता तेएवं सवताए परिनिव्वुमेत्तिबेमि ॥ ५९ ॥

अर्थ–(सेभिक्खू के०) ते साधु (धम्मंकिट्टमाणे के०) धर्म कहेतो थको (णो अन्नस्सहेउं धम्ममाइक्खेज्जा के०) अन्न एटले आहारने हेतुयें धर्म न कहे ते आवी रीते के आ अमुक मनुष्य धनवंतछे माटे महारी पासेंथी धर्म सांभलीने म ने मनो वांछित आहार आपशे, एवो विचार करे नही तथा वली (णोपाणस्सहेउंध

म्ममाइरकेज्जा के०) पाणीने. हेतुयें पण धर्म नकहे एवो संयति होए (णोवज्ञस्सहे उंधम्ममाइरकेज्जा के०) तथा वस्त्रने हेतुयें धर्म न कहे (णोलेणस्सहेउंधम्ममाइरकेज्जा के०) उपाश्रय वस्ति पामवाने हेतुयें धर्म न कहे (णोसयणस्सहेउंधम्ममाइरकेज्जा के०) तथा पाट पाटलादिक सयनने हेतुयें धर्म नकहे (णोअन्नेसिंविरूवरूवाणंकाम जोगाणंहेउंधम्ममाइरकेज्जा के०) नाना प्रकारना कामजोगने हेतुयें धर्म नकहे (अ गिलाएधम्ममाइरकेज्जा के०) अग्लान पणे धर्मकहे एटले पूछ्यो थको धर्म कहेवानो प्रमाद नकरे (नन्नबकम्मनिज्जरठाएधम्ममाइरकेज्जा के०) एक कर्मनिर्जरानुं कारण टाली, अनेरे अर्थे धर्म नकहे. ॥५७॥ हवे एवी रीते धर्म कहेवा थकी जे फल थाय ते देखा डेछे. (इहखलुतस्सजिरकुस्स के०) आ जगत् मांहे खलु इति वाक्यालंकारे ते गुणवं त साधुने (अंतिए के०) समीपे (धम्मंसोच्चा के०) धर्म सांजलीने (णिसम्मउ ठाएणं के०) सम्यक् हृदयने विषे धारण करीने, संयमने विषे सावधान थइने, (उ ठायवीरा के०) धर्ममार्गे प्रवर्त्तता वीर एटले कर्म विदारवाने समर्थ (असिंसधम्मे समुठियाके०) एवो धर्मजे सम्यक् ज्ञान दर्शन अने चारित्ररूप तेने विषे पहोता (जेत स्सजिरकू के०) जे ते साधुने समीपें धर्म सांजलीने. ते साधु केवाछे तोके सम्यक् हृ दय धरीने सयंमने विषे सावधान थइ धर्म मार्गे प्रवर्त्तता कर्मविदारवाने समर्थ ए स म्यक् ज्ञानादिक ने विषे सावधान थया (तेएवंसव्वोवगता के०) ते एम सर्व कर्म खपावीने मोक्षे पहोता (तेएवंसव्वोविरता के०) ते एम सर्व अढारे पापस्थानक थकी निवर्त्त्यां. (तेएवंसव्वोवसंता के०) ते एम सर्व प्रकारे उपशांत एटले कषा य जीपीने (तेएवंसव्वताएपरिनिव्वुमे के०) ते एम सर्व प्रकारें समर्थ पणे करीने शी तलीजूत थइ मोक्षे पहोता (त्तिबेमि के०) श्रीसुधर्मस्वामि श्रीजंबूस्वामि प्रत्ये कहे छे के साधुने समीपे धर्म सांजल्यानुं फल में कह्युं ते जेवीरीते श्रीजगवंत श्रीमहावीर देव पासेंथी में सांजल्युंछे तेवीरीते तमने कह्युं ॥ ५ए ॥

॥ दीपिका—जिक्षुर्धर्मं कीर्तयन्नान्नस्य हेतोर्धर्ममाचक्षीत । तथा पानवस्त्रलयनशय ननिमित्तं न धर्ममाख्याति । विरूपरूपाणां शुजाशुजानां कामजोगानां हेतोर्न धर्ममाख्या ति । अग्लानतया धर्ममाख्याति । निर्जरां विनाऽन्यकार्यार्थं न धर्मं वदेत् ॥५७॥ अथोप संहारमाह । इह जगति खलु तस्य जिक्षोरंतिके समीपे धर्मं श्रुत्वा निशम्यावगम्य सम्य गुबानेनोत्राय वीराः समर्थाये ते चैवंजूताः सर्वस्मिन् मोक्षकारणे उपगताः प्राप्ताः स र्वोपगतास्तेचैवं सर्वेज्यः पापस्थानेज्य उपरतानिवृत्ताः सर्वोपरतास्तेचैवं सर्वोपशांता

स्तेचैवं सर्वात्मतया सर्वसामर्थ्येन सदनुष्ठाने उद्यताःपरिनिर्वृतानिर्वाणं प्राप्ताइ ति ब्रवीमीति ॥ ५ए ॥

॥ टीका–सांप्रतं धर्मकीर्त्तनं यथा निरुपधि नवति तथा दर्शयितुमाह। (सेनिक्खूइत्यादि) सनिक्षुः परकृतपरनिष्ठिताहारनोजी यथाक्रियाकलानुष्ठायी शुश्रूषन् सुधर्मं कीर्तय न्नान्नस्य हेतोर्ममायमीश्वरोधर्मकथाप्रश्रवणे विशिष्टमाहारजातं दास्यतीति । एतन्निमित्तं न धर्ममाचक्षीत तथा पानवस्त्रलयनशयननिमित्तं न धर्ममाचक्षीत । नान्येषां विरूपरूपाणामुच्चावचानां कार्याणां कामनोगानां वा निमित्तं तथा धर्ममाचक्षीत ग्लानिमनुपगछन् न धर्ममाचक्षीत कर्मनिर्जरायाश्चान्यत्र न धर्मं कथयेदपरप्रयोजननिरपेक्षएव धर्मंकथयेदिति ॥५७॥ धर्मकथाश्रवणफलदर्शन द्वारेणोपसंजिघृक्षुराह।(इहखलुतस्सेत्यादि) इहास्मिन् जगति । खलु वाक्यालंकारे । तस्य निक्षोर्गुणवतोंतिके समीपेपूर्वोक्तविशेषणविशिष्टं धर्मं श्रुत्वा निशम्यावगम्य सम्यगुछानेनोछाय धीराः कर्मविदारणसहिष्णवोये चैवंनूतास्ते एवं पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टानुष्ठानतया सर्वस्मिन्नपि मोक्षकारणसम्यग्दर्शनादिके उपसामीप्येन गताः सर्वोपगतास्तथैवं सर्वेन्य उपरताः सर्वोपरतास्तथा तएवं सर्वोपशांताजितकषायतया शीतलीनूतास्तथा एवं सर्वात्मतया सर्वसामर्थ्येन सदनुष्ठानेनोद्यमं कृतवंतोये चैवंनूतास्ते ऽशेषकर्मक्षयं कृत्वा परि समंतान्निर्वृताअशेषकर्मक्षयं कृतवंतइति ब्रवीमीति पूर्ववत् ५७

एवं सेनिक्खू धम्मठी धम्मविऊ णियागपडिवन्ने से जहेयं बुत्तियं अडुवा पत्ते पउमवरपोंमरीयं अडुवा अपत्ते पउमवरपोंमरीयं एवं सेनिक्खू परिणायकम्मे परिणायसंगे परिणायगेहवासे उवसंते समिए सहिए सयाजए सेवं वयणिज्जं तंजहा समणेतिवा माहणेतिवा खंतेतिवा दंतेतिवा गुत्तेतिवा मुत्तेतिवा इसीतिवा मुणीतिवा कतीतिवा विऊतिवा निक्खूतिवा लूहेतिवा तीरठीतिवा चरणकरणपारविउत्तिबेमि॥ ॥ इति बितियं सुयक्खंधस्स पोंमरीयं नाम पढमज्झयणं सम्मत्तं ॥ ६० ॥

अर्थ–हवे अध्ययन परिसमाप्ति नणी कहेबे. (एवंसेनिक्खूधम्मठीके०) एम पूर्वोक्त गुण युक्त ते साधु धर्मनो अर्थी (धम्मविऊ के०) धर्मनो जाण, (णियागपडिवन्ने के०) मोक्ष अथवा संयमने विषे प्रतिपन्न एवो पांचमो पुरुष, (सेजहेयंबुत्तियं के०) ते आश्रीने जेम पूर्वे कह्युं (अडुवापत्तेपउमवरपोंमरीयं के०) ते अथवा प्रधान पौंमरीक कमले पहोंतो (अडुवाअपत्तेपउमवरपोंमरीयं के०) अथवा प्रधान पौंमरीक कम

लें न पहोतो. परमार्थथकी प्रधान पौंमरीक कमल समान चक्रवर्त्त्यादिक पुरुष जाणवा तेनी प्राप्ति केवलज्ञानीने होय, अथवा न होय किंतु केवलज्ञान विना पण चारित्रिउ कहे वाय तेकारणे पत्ते अपत्ते एवुं स्याद्वाद पद कह्युं (एवंसेनिरकूपरिसायकम्मेपरिसायसंगे के०) एरीतें ते साधुयें परिज्ञायें करी जाण्युं अने प्रत्याख्यान परिज्ञायें करी पच्चरव्युं ठे एवा कर्मबंधना कारणने तथा बाह्याभ्यंतर संगने जेणे वली (परिसायगेहवासेके०) परिज्ञात गृहवास जेणे असार करी जाण्यो तथा (उवसंते के०) इंद्रिय अने नोइंद्रिय जेणे उप शमाव्यां (समिएके०) पांच समितिए समित (सहिएके०) ज्ञान, दर्शन अने चारित्रे करी सहित (सयाजएके०) सर्वकाल संयत यत्नवंत (सेवंवयणिज्जेके०) एवो ते चारित्रिउ सर्व गुणेयुक्त होय ते केवो होय? (तंजहा के०) ते कहेठे. (समणेतिवा के०) श्रमण तप स्वी सममन एटले शत्रु मित्र उपर समभाव होय ते श्रमण जाणवो. (माहणेतिवाके०) कोइपण प्राणीमात्रने महणो एवो जेनो उपदेश होय तेने माहण ब्राह्मण कहिए (खंते तिवा के०) क्षमावंत (दंतेतिवाके०) दांत एटले इंद्रियोनो दमनार (गुत्तेतिवा के०) त्रणगुप्ते गुप्तो (मुत्तेतिवा के०) मुक्ति एटले निर्लोभी (इसीतिवा के०) ऋषी विशिष्ट तपश्चर्या सहित जीवनो रक्षा करनार (मुणीतिवा के०) जगत्नी त्रिकालावस्थाना स्व रूपनो ज्ञाता (कतीतिवा के०) परमार्थ थकी पंमित जेनुं सर्व कोइ कीर्त्तन करे तेजा णवो (विजतिवा के०) रूडी विद्यासहित विद्वान् सद्विद्योपेत तथा (निरकूतिवा के०) निरवद्याहारनो लेनार (लूहेतिवा के०) लूक्ष अंतप्रांत आहारी (तीरठीति वा के०) तथा संसारनो तीररूपजे मोक्ष तेनो अर्थी (चरणकरणपारविउ के०) च रण एटले मूलगुण, अने करण एटले उत्तरगुण, तेनो पारपर्यंत गमन जाणे एटले च रण करनो पारंगामि जाणवो तेमाटे चरणकरण पारविउ एम कह्युं. (इतिबेमि के०) श्रीसुधर्मस्वामी श्रीजंबूस्वामि प्रत्ये कहेठे के ए वचन हुं श्रीतीर्थंकरना वचनने अनुसा रे कहुंबुं. एरीतें श्री सूयगडांगसूत्रना बीजा श्रुतस्कंधने विषे प्रथम पौंमरीकनामा अध्य यननो बालावबोध समाप्त थयो ॥ ६० ॥

॥ दीपिका–एवं पूर्वोक्तगुणः सभिक्षुर्धर्मार्थी धर्मवित् नियागः संयमोमोक्षोवा तं प्रतिपन्नः सचैवंभूतः पंचमपुरुषस्तं वाऽश्रित्य तद्यथेदं प्राग्दर्शितं तत्सर्वमुक्तं । सच प्राप्तो वा स्यात्पद्मवरपुंडरीकं राजादिपुरुषं । तत्प्राप्तिश्च तत्त्वतः केवलज्ञानावाप्तौसत्यां स्यात् अप्राप्तौवा स्यात् मतिश्रुतावधिमनःपर्यायज्ञानैर्व्यस्तैः समस्तैर्वा युतः सचैवंभूतोभिक्षुः परिज्ञातकर्मविपाकः परिज्ञातसंगस्त्यक्तसंबंधः परिज्ञातोनिःसारतया गृहवासोयेन सतथा उपशांतोदांतेंद्रियः समितः समितिभिः सह हितेन वर्ततेयः ससहितः सदायतः संयतः

सएवंभूतगुणएत द्वचनीयएतैर्नामभिर्वाच्यः स्यात् । तद्यथा । श्रमणोवा माहनोवा ब्रह्मचारित्वाद्ब्राम्हणोवा, क्षांतोवा, दांतोवा, गुप्तिभिर्गुप्तोवा, निर्लोभत्वान्मुक्तोवा, ऋषिर्वा, कृतमस्यास्तीति कृती पुण्यवान् वित् विद्योपेतोभिक्षुर्वा, अंतप्रांताहारत्वेन रूक्षोवा, संसाराब्धेस्तीरार्थीवा, चरणं मूलगुणाः, करणमुत्तरगुणास्तेषां पारं पर्यंतगमनं वेत्तीत्ति चरणकरणपारवित् । इति समाप्तौ । ब्रवीमीति सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमाह ॥ ॥ इतिद्वितीयश्रुतस्कंधस्य पुंडरीकाध्ययनं प्रथमं समाप्तम् ॥ ६० ॥

॥ टीका–सांप्रतमध्ययनोपसंहारार्थमाह । (एवंसेभिस्कूइत्यादि) एवमिति पूर्वोक्तविशेषणकलापविशिष्टः सभिक्षुः पुनरपि सामान्यतोविशिष्यते । धर्मः श्रुतचारित्राख्यस्तेनार्थी यथावस्थितं परमार्थतोधर्मं सर्वोपाधिविशुद्धं जानातीति धर्मवित्तथा नियागः संयमोमोक्षोवा कारणे कार्योपचारं कृत्वा तं प्रतिपन्नोनियागप्रतिपन्नः सचैवंभूतः पंचमपुरुषजातस्तं चाश्रित्य यथेदं प्राक् प्रदर्शितं तत्सर्वमुक्तं । सच प्राप्तोवा स्यात्पद्मवरपौंडरीकमनुग्राह्यं पुरुषविशेषं चक्रवर्त्यादिकं । तत्प्राप्तिश्च परमार्थतः केवलज्ञानावाप्तौ सत्यां भवति । साक्षाद्यथावस्थितवस्तुस्वरूपपरिछित्तेरप्राप्तोवास्यान्मतिश्रुतावधिमनःपर्यायज्ञानैर्व्यस्तैः समस्तैर्वा समन्वितः सचैवंभूतः प्राग्व्यावर्णितगुणकलापोपेतोभिक्षुः परि समंतात् ज्ञातं कर्म स्वरूपतोविपाकतस्तडुपादानतश्च येन सज्ञातकर्मा तथा परिज्ञातः संगः संबंधः सबाह्याभ्यंतरोयेन सतथा परिज्ञातोभिःसारतया गृहवासोयेन सतथोपशांतइंद्रियनोइंद्रियोपशमात्तथा समितः पंचभिः समितिभिस्तथा सह हितेन वर्ततइति सहितोज्ञानादिभिर्वा सहितः समन्वितः सदा सर्वकालं यतः संयतः एत द्वचनीयस्तद्यथा श्राम्यतीति श्रमणः समनावा तथा मा प्राणिनोजहि व्यापादयेत्येवं प्रवृत्तिरुपदेशोयस्य समाहनः सब्रह्मचारीवा ब्राम्हणः क्षांतः सक्षमोपेतोदांतइंद्रियनोइंद्रियदमनेन तथा तिसृभिर्गुप्तिभिर्गुप्तः तथा मुक्तइवमुक्तस्तथा विशिष्टचरणोपेतोमहर्षिस्तथा । मनुते जगतस्त्रिकालावस्थामिति मुनिस्तथा कृतमस्यास्तीति कृती पुण्यवान् परमार्थपंडितोवा तथा विद्वान् सद्विद्योपेतस्तथा भिक्षुर्निरवद्याहारतया भिक्षणशीलस्तथांऽतप्रांताहारत्वेन रूक्षस्तथा संसारतीरभूतोमोक्षस्तदर्थीतथा चर्यतइति चरणं मूलगुणाः क्रियतइति करणमुत्तरगुणास्तेषां पारं तीरं पर्यंतगमनं तद्वेत्तीति करणचरणविदिति । इतिशब्दः परिसमाप्तौ । ब्रवीमीतितीर्थंकरवचनादार्यः सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमुद्दिश्य एवं भणति तथाहं न स्वमनीषिकया ब्रवीमीति ॥ सांप्रतं समस्ताध्ययनोपात्तदृष्टांतदार्ष्टांतिकयोस्तात्पर्यार्थं गाथाभिर्निर्युक्तिकृद्दर्शयितुमाह । उवमयपुंडरीए, तस्सेवयउववएणभिक्कुत्ती । अधिगारो पुण भणिर्ड, जिणोवदेसेण सिद्धित्ति ॥ १ ॥ सुरमणुयतिरियनिरर्ड, वंगेसुमणुया पहूचरित्तम्मि ॥ अवियमहाजणनेयत्तिचक्कवट्टम्मि

अधिगारो ॥ २ ॥ अवियद्दुनारियकम्मा, नियमा उक्कस्स निरयछितिगामी । ते विहुंजि णोवदेसेण तेणेव नवेण सिझंति ॥ ३ ॥ जलमालकद्दमालं, बहुविहवल्लिगहणं च पुक्करणी । जंघाहिव बाहाहिव नावाहिवतं डुरवगाहा ॥ ४ ॥ पउमं उल्लंघेत्तुं, उपरमाणस्सहोजवावत्ती । किंनविसेउवाउ, जेणुल्लंघेज्ज अविवन्नो ॥ ५ ॥ विज्जावदेव कम्मं, अहवा आगासियाविउव्वणया । पउमं उल्लंघेत्तुं नएसइणमोजिणुरकाउ ॥ ६ ॥ सुदप्पउंग विज्जासिद्धाउ जिणस्स जाणयेविज्जा । नवियजणपोंडरीयाउ जाए सिद्धिगतिमुवेंति ॥ ॥ ७ ॥ (उवमाइत्यादि) इहोपमा दृष्टांतः पौंडरीकेण श्वेतशतपत्रेण कृतस्तस्येहान्यहिंतत्वात् तस्यैव चोपचयेन सर्वावयवनिष्पत्तिर्यावद्विशिष्टोपायेनोद्धरणं । दार्ष्टांतिकाधिकारस्तु पुनरत्र नणितोनिहितश्चक्रवर्त्यादिनिर्नव्यस्य जिनोपदेशेन सिद्धिरिति तस्यैव पूज्यमानत्वादिति । पूज्यमेव दर्शयितुमाह । (सुरमणुएइत्यादि) सुरादिषु चतुर्गतिकेषु जंतुषु मध्ये मनुजाश्चरित्रस्य सर्वसंवररूपस्य प्रनवः शक्तावर्ततें न शेषाः सुरादयः । तेष्वपि मनुजेषु महाजननेतारश्चक्रवर्त्यादयोवर्ततें तेषु प्रबोधितेषु प्रधानानुगामित्वात् इतरजनः सुप्रतिबोधएव नवतीत्यतोत्र चक्रवर्त्यादिना पौंडरीककल्पेनाधिकारइति । पुनरप्यन्यथामनुजप्राधान्यं दर्शयितुमाह । (अविपदुइत्यादि) गुरुकर्माणोपि मनुजाश्चासंकलितनरकायुषोपि नरकगमनयोग्याअपि तेष्वेवंनूतजिनोपदेशात्तेनैव नवेन समस्तकर्मक्षयात् सिद्धिगामिनोनवंतीति । तदेवं दृष्टांतदार्ष्टांतिकयोस्तात्पर्यार्थं प्रदर्श्य दृष्टांतनूतपौंडरीकाऽधारायाः पुष्करिण्याडुरवगाहित्वं सूत्रालापकोपात्तनिर्युक्तिकृद्दर्शयितुमाह । (जलमालेत्यादि) जलमालामित्यर्थप्रचुरजलां तथा कर्दममालामप्रतिष्ठिततलतया प्रनूततरपंकां तथा बहुविधवल्लिगहनां च पुष्करिणीं जंघान्यां वा बाहुन्यां नावा वा डुस्तरां पुष्करिणीं दृष्ट्वेति क्रियाध्याहारः–किंचान्यत् । (पउमइत्यादि) तन्मध्ये पद्मवरपौंडरीकं गृहीत्वा समुत्तरतोऽवश्यं व्यापत्तिः प्राणानां नवेत् किं तत्र कश्चिडुपायः सनास्ति येनोपायेन गृहीतकमलः सन् तां पुष्करिणीमुल्लंघयेन्नविपन्नइति । तडुल्लंघनोपायं दर्शयितुमाह । (विद्यावेत्यादि) विद्या वा काचित्प्रज्ञप्त्यादिका देवता कर्मवाऽथवाऽकाशगमनलब्धिर्वा कस्यचिद्भवेत्तेनासावविपन्नोगृहीतपौंडरीकः सन्नुल्लंघयेत्तां पुष्करिणीमेषच जिनैरुपायः समाख्यातः । सर्वोपसंहारार्थमाह । (सुद्धप्पेत्यादि) शुद्धप्रयोगविद्यासिद्धा जिनस्यैव विज्ञानरूपा नान्यस्य कस्यचिद्यया विद्यया तीर्थकरदर्शितया नव्यजनपौंडरीकाः सिद्धिमुपगछंतीति । गतोनुगमः सांप्रतं नयास्तेच पूर्ववद्दृष्टव्याइति ॥ समाप्तं पौंडरीकाख्यं द्वितीयश्रुतस्कंधप्रथमाध्ययनमिति ॥ ६० ॥ ॥

॥ अथ द्वितीयक्रियास्थानाख्याध्ययनस्य प्रारंनः ॥

हवे बीजुं अध्ययन प्रारंनियें बैयें. पहेला अध्ययनमां पौंमरीक कमलने दृष्टांते अन्यतीर्थिकने कर्मना बंधक कह्या, तथा साधुने कर्मथी मूकावनारा कह्या. हवे ते कर्म बार क्रिया स्थानकें करी बांधीयें अने तेरमे क्रिया स्थानके मूकीयें तेकारणे बीजा अध्ययनमां क्रियास्थानक कहेबे.

सुयंमे आउसंतेणं नगवया एवमस्कायं इह खलु किरियाठाणे णामज्ञ यणे पत्ते तस्सणं अयमठे इह खलु संजूहेणं डुवे ठाणे एवमाहिज्जंति तंजहा धम्मेचेव अधम्मेचेव उवसंतेचेव अणुवसंतेचेव ॥१॥ तत्र णं जेसे प ढमस्स ठाणस्स अहम्मपस्कस्स विन्नंगे तस्स णं अयमठे पत्ते इह ख लु पाईणंवा संतेगतिया मणुस्सा नवंति तं जहा आरियावेगे अणारिया वेगे उच्चागोयावेगे णीयागोयावेगे कायमंतावेगे हस्समंतावेगे सुवन्नावेगे डुवन्नावेगे सुरूवावेगे डुरूवावेगे॥२॥ तेसिंचणं इमं एतारूवं दंमसमादाणं संपेहाए तं जहा णेरइएसुवा तिरिस्कजोणिएसुवा मणुस्सेसुवा देवेसुवा जेया वन्ने तहप्पगारा पाणाविन्नू वेयणं वेयंति॥३॥तेसिं पियणं इमाइं तेरसकिरिया ठाणाइं नवंतीति मस्कायं तंजहा अघादंमे अणठादंमे हिंसादंमे अकम्मा दंमे दिठीविपरियासियादंमे मोसवत्तिए अदिन्नादाणवत्तिए अज्ञववत्तिए माणवत्तिए मित्तदोसवत्तिए मायावत्तिए लोनवत्तिए इरियावहिए ॥ ४ ॥

अर्थ–(सुयंमे के०) श्रीसुधर्मस्वामी जंबूस्वामि प्रत्ये कहेबे. के, में सांनल्युंबे (आ उसंतेणंनगवयाएवमस्कायं के०) आयुष्यवंत नगवंते मने एम कह्युं बे ते में जेम सां नल्युंबे. तेम हुं तुज प्रत्ये कहुंबुं. (इहखलु के०) निश्चेंकरी आ जिनशासनने वि षे (किरियाठाणेणामज्ञयणेपत्ते के०) क्रियास्थान नामे अध्ययन प्ररूप्युं. (तस्स णंअयमठे के०) तेनो ए अर्थबे. (इहखलु के०) अहिंयां खलु एवी संनावनायें (सं जूहेणं के०) संक्षेपें करी (डुवेठाणेएवमाहिज्जंति के०) एकधुन, बीजोअधुन एम बे स्थानक, कहियें. (तंजहा के०) तेना नाम कहेबे. (धम्मेचेवअधम्मेचेव के०) एक धर्मस्थानक अने बीजो अधर्मस्थानक, (उवसंतेचेवअणुवसंतेचेव के०) एक उपशां

स्थानक, अने बीजो अनुपशांत स्थानक ॥१॥ (तत्थणं के०) त्यां (जेसे के०) जे कहेशे ते (पढमस्सठाणस्सअहम्मपरकस्सविभंगेके०) प्रथम स्थानक अधर्म पक्षनो विभंग एटले विचार. (तस्सणंअयमठेपन्नत्तेके०) तेनो ए अर्थ कहेछे. (इहखलुपाईणंवाके०) ए संसार मांहे पूर्वादिक दिशिमांहे अनेरी दिशायें (संतेगतियामणुस्साभवंति के०) केटलाएक मनुष्यछे. ते केवाछे (तंजहाके०) ते कहेछे. एक आर्य, एक अनार्य, एक उंचगोत्रना उपना, एक नीचगोत्रना उपना, एक महोटी कायावाला, एक न्हानी काया वाला, एक शुभवर्णना शरीरवाला, एक माठावर्णवाला, एक सुरूपवान् अने एक कुरूपवान् ॥२॥ (तेसिंचणंइमंएतारूवंके०) ते आर्यादिक मनुष्यने एवो एतादृशरूपजे आगल कहेशे (दंमसमादाणं के०) दंम समादान एटले पापरूप संकल्पनुं ग्रहणते, (संपेहाए के०) आलोचवुं ते चतुर्गतिक, जीवने होय (तंजहा के०) ते चारगतिना नाम कहेछे. (णेरइएसुवा के०) एक नारकीमां हे (तिरिक्कजोणिएसुवाके०) तिर्यंचनी योनी मांहे (मणुस्सेसुवाके०) मनुष्य मांहे (देवेसुवाके०) देवतामांहे ए चतुर्गतिक जीव जाणवा. तेमांहे (जेयावन्नेके०) जे अनेरा (तहप्पगारा के०) तथा प्रकारना (पाणाविन्नू के०) प्राणि जाणवा (वेयणंवेयंति के०) ते प्राणी एवा छता वेदना जे साता असातारूप तेने वेदे एटले अनुभवे. अत्र चतुर्भंगी कहेछे. एक संज्ञिया जीवजेछे ते वेदनाने अनुभवे तथा जाणे पण, अने बीजा सिद्धना जीव जेछे ते वेदनाने मात्र जाणे, पण अनुभवे नहीं. तथा त्रीजा असंज्ञिया जीव जेंछे ते वेदनाने अनुभवे, पण जाणे नही. चोथा अजीव जेछे ते वेदनाने अनुभवे पण नहीं, अने जाणे पण नहीं, तेमांहें अहीं पहेला अने त्रीजा भंगनो अधिकारछे ॥३॥ (तेसिंपियणं इमाइं के०) ते नारकियादिकने एजे आगल कहेशे ते. (तेरसकिरियाठाणाइं भवंतीतिमरकायं के०) तेर क्रियाना स्थानक होय, ते श्रीतीर्थंकर गणधरे एम कह्या (तंजहा के०) तेना नाम कहेछे. एक (अठादंमे के०) अर्थ दंम, बीजो (अणठादंमे के०) अनर्थदंम, त्रीजो (हिंसादंमेके०) हिंसादंम, चोथो (अकम्मादंमे के०) अकस्मात् दंम, पांचमो (दिठीविपरियासियादंमे के०) दृष्टि विपर्यास दंम, छठो (मोसवत्तीए के०) मृषावाद प्रत्ययिक दंम, सातमो (अदिन्नादाणवत्तिए के०) अदत्तादान प्रत्ययिक दंम, आठमो (अज्झत्त वत्तिएके०) अध्यात्मिक ते मननुं डुर्ध्यान प्रत्ययिक तेरूप दंम, नवमो (माणवत्तिएके०) मान प्रत्ययिक दंम, दशमो (मित्तदोसवत्तिए के०) मित्र उपर द्वेष करवो ते मित्रदोष प्रत्ययिक दंम, अगीयारमो (मायावत्तिए के०) परने वंचवुं ते मायाप्रत्ययिक दंम, बारमो (लोभवत्तिए के०) लोभ प्रत्ययिक दंम, तेरमो (इरियावहिए के०) इरियापथिक प्रत्ययिक दंम. हवे अनुक्रमे ए तेर क्रिया स्थानकोनो विचार कहेछे. ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—अथ द्वितीयं क्रियास्थानाध्ययनमारन्यते तस्येदमादिसूत्रं (सुयंमेइत्यादि) सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमाह । श्रुतं मया आयुष्मता नगवतैवमाख्यातं । इह खलु क्रियास्थानं नामाध्ययनं नवति । अस्य चायमर्थः । (संजूहेणं) सामान्येन संक्षेपेण द्वे स्थाने नवतः । ये केचन क्रियावंतस्तेऽनयोरेवं स्थानयोराख्यायंते । तद्यथा । धर्मे चैव अधर्मेचैव । उपशांतं धर्मस्थानमनुपशांतमधर्मस्थानं ॥१॥ तत्र णमितिवाक्यालंकारे । योऽसौ प्रथमानुष्ठेयतया प्रथमस्याधर्मपक्षस्य विनंगोविचारः । तस्यायमर्थः । इह जगति प्राच्यादिषु दिक्षु मध्येऽन्यतरस्यां दिशि संति विद्यंते एके केचन मनुष्याः । तद्यथा । आर्याअनार्याः उच्चैर्गोत्रानीचैर्गोत्राः कायवंतउन्नताह्रस्ववंतोनीचशरीराः सुवर्णाः सुकांतयोडुर्वर्णानिस्तेजसः सुरूपाडूरूपाश्च ॥२॥ तेषामार्यादीनामिदं वक्ष्यमाणमेतडूपं दंडसमादानं पापोपादानं (संपेहाएत्ति) संप्रेक्ष्य तद्यथा नारकेषु तिर्यग्योनिषु मनुष्येषु ये चान्ये तथा प्रकाराः सुवर्णडुर्वर्णाः प्राणिनोविद्वांसोवेदनां सातासातरूपां विदंति अनुनवंति । अत्र चत्वारोनंगाः । तथाहि । संज्ञिनोवेदनामनुनवंति जानंतिच १ सिद्धास्तु वेदनाजानंति नानुनवंति २ असंज्ञिनोऽनुनवंति न पुनर्जानंति ३ अजीवास्तु न जानंति नाप्यनुनवंति ४ इह प्रथमतृतीयान्यामधिकारोद्वितीयचतुर्थाववस्तुनूताविति ॥३॥ तेषां नारकादीनामिमानि वक्ष्यमाणानि त्रयोदश क्रियास्थानानि नवंतीत्याख्यातं तीर्थकृदादिनिः । तद्यथा । स्वार्थायदंडः पापोपादानमर्थदंडः १ निष्प्रयोजनं सावद्यक्रियानर्थदंडः २ हिंसा प्राणिघातस्तयादंडोहिंसादंडः ३ अकस्मादनुपयुक्तस्य दंडोऽकस्माद्दंडः। अन्यस्य क्रियया ऽन्यस्य घातइत्यर्थः ४ दृष्टेर्विपर्यासोरज्जुविषये यथा सर्पबुद्धिस्तया दंडो दृष्टिविपर्यासदंडः यथा शरादिक्षेपेण लेष्टुकादिबुध्या चटकादिहननं ५ मृषावादप्रत्ययिकः ६ अदत्तादानप्रत्ययिकः ७ अध्यात्मिकोदंडोयथा निर्निमित्तमेव डुर्मनाश्चिंतातुरस्तिष्ठति ८ मानप्रत्ययिकोदंडोयथाऽष्टमदस्थानोपगतः परं हीनं मन्यते ९ मित्राणामुपतापेन दोषोमित्रदोषस्तत्प्रत्ययिकोदंडः १० माया परवंचनबुद्धिस्तयादंडः ११ लोनप्रत्ययिकः १२ ईर्याप्रत्ययिकोदंडः समितिगुप्तियुतस्य दोषयुक्तस्य सामान्येन कर्मबंधः स्यात्॥ ४ ॥

॥ टीका—व्याख्यातं प्रथमाध्ययनं सांप्रतं द्वितीयमारन्यते । अस्य चायमनिसंबंधः । इहानंतराध्ययने पुष्करिणीपौंडरीकदृष्टांतेन तीर्थिकाः सम्यङ्मोक्षोपायानावात्कर्मणां बंधकाः प्रतिपादिताः सत्साधवश्च सम्यग्दर्शनादिमोक्षमार्गप्रवृत्तत्वान्मोचकाः सडुपदेशदानतोपरेषामपीति । तदिहापि यथा कर्म द्वादशनिः क्रियास्थानैर्बध्यते यथाच त्रयोदशेन मुच्यते तदेतत्पूर्वोक्तमेव बंधमोक्षयोः प्रतिपादनं क्रियते । अनंतरसूत्रेण चायं संबंधः । तद्यथा । निक्षुणा चरणकरणविदा कर्मक्षपणायोद्यतेन द्वादश क्रियास्थानानि कर्मबं

धकारणानि सम्यक्परिहर्तव्यानि तद्विपरीतानि च मोक्षसाधनानि आसेवितव्यानि इत्यनेन संबंधेनायातस्याध्ययनस्योपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोग द्वाराणि नवंति । तत्राप्युपक्रमांतर्गतोऽर्थाधिकारोयं । तद्यथा कर्मणां संबधोऽनेन प्रतिपाद्यते तद्विमोक्षश्चेति । नामनिष्पन्नेतु निक्षेपे क्रियास्थानमिति द्विपदं नाम । तत्रापि क्रियापदनिक्षेपार्थं प्रस्तावमारचयन्निर्युक्तिकदाह । "किरियाउनणियाउ, किरियागणंति तेण अज्ञयणं ॥ अहिगारो पुण नणिउ, बंधे तह मोरकमग्गेय" ॥ १५७ ॥ (किरियाउ इत्यादि) तत्र क्रियंतइति क्रियास्ताश्च कर्मबंधकारणत्वेनावश्यकांतर्वर्तिनि प्रतिक्रमणाध्ययने (पडिक्कमामितेरसहिंकिरियागणेहिंति) अस्मिन्सूत्रेऽनिहिताः । यदि वैहिकक्रियानणिताश्च निहितास्तेनेदमध्ययनं क्रियास्थानमित्युच्यते । तच्च क्रियास्थानं क्रियावत्स्वेव नवति नाक्रियावत्सु । क्रियावंतश्च केचिद्बध्यंते केचिन्मुच्यंतेऽतोध्ययनार्थाधिकारः पुनरनिहितोबंधे तथा मोक्षमार्गेचेति । तत्र नामस्थापने सुगमत्वादनाहृत्य द्रव्यादिकां क्रियां प्रतिपादयितुमाह । " दव्वे किरिए अवणय, पयोगुवायकरणिज्ज समुदाणे ॥ इरियावहसंमत्तो, सम्मत्तेचैव मिछत्ते " ॥ १५ए ॥ दव्वेइत्यादि) तत्र द्रव्यविषये या क्रिया एजनता । एजृकंपने । जीवस्याजीवस्य वा कंपनरूपा चलनस्वनावा सा द्रव्यक्रिया । सापि प्रयोगाद्विस्रसया वा नवेत् । तत्राप्युपयोगपूर्विका वाऽनुपयोगपूर्विका वाऽक्षिनिमेषमात्रादिका वा सा सर्वा द्रव्यक्रियेति । नावक्रियात्त्वियं । तद्यथा प्रयोगक्रिया उपायक्रिया करणीयक्रिया समुदानक्रिया ईर्यापथक्रिया सम्यक्त्वक्रिया मिथ्यात्वक्रिया चेति । तत्र प्रयोगक्रिया मनोवाक्कायलक्षणा त्रिधा । तत्र स्फुरद्भिर्मनोद्रव्यैरात्मनउपयोगोनवत्येवं वाक्काययोरपि वक्तव्यं । तत्र शब्दे निष्पाद्ये वाक्काययोर्द्वयोरप्युपयोगः । तथा चोक्तं । गिण्हइ य काइएणं, णिसिरइ तहवा इएण जोगेण ॥ गमनादिका तु कायक्रियैव । उपायक्रियातु घटादिकं द्रव्यं येनोपायेन क्रियते । तद्यथा । मृत्खननमर्दनचक्रारोपणदंडचक्रसलिलकुंनकारव्यापारैर्यावद्भिरुपायैः क्रियते सा सर्वोपायक्रिया । करणीयक्रियातु यद्येन प्रकारेण करणीयं तत्तेनैव क्रियते नान्यथा । तथाहि । घटोमृत्पिंडादिकयैव क्रियते न पाषाणसिकतादिकयेति ३ समुदानक्रियातु यत्कर्म प्रयोगगृहीतं समुदायावस्थं सत्प्रकृतिस्थित्यनुनावप्रदेशरूपतया यया व्यवस्थाप्यते सा समुदानक्रिया । साच मिथ्यादृष्टेरारन्य सूक्ष्मसंपरायं यावत् नवति । ४ ईर्यापथक्रिया तूपशांतमोहादारन्य सयोगिकेवलिनं यावदिति ५ सम्यक्त्वक्रिया तु सम्यग्दर्शनयोग्याः कर्मप्रकृतीः सप्तसप्ततिसंख्या यया बध्नाति साऽनिधीयते । मिथ्यात्वक्रिया तु सर्वाः प्रकृतीर्विंशत्युत्तरसंख्यास्तीर्थकराहारकशरीरतदंगोपांगत्रिकरहिता यया बध्नाति सामिथ्यात्वक्रियेत्यनिधीयते । सांप्रतं स्थाननिक्षेपार्थमाह । " नामं ठवणा दविए, खेत्ते द्धावद्ध उवरवीवसहि । संजम प

भगवहजोहे, अचल गणाए संधणा भावे, ॥ १६० ॥ (नामंठवणेत्यादि) इयंच गाथा ऽऽचारप्रथमश्रुतस्कंधे द्वितीयाऽध्ययने लोकविजयाख्ये (जेगुणे से मूलगणे) इत्यत्र स्थानशब्दस्य सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यां प्रबंधेन व्याख्यातेति नेह प्रतन्यते । इह पुनर्यया क्रियया येन च स्थानेनाधिकारस्तद्दर्शयितुमाह । " समुदाणियाणिह तउ, समं पउत्तेय भावगणंमि ॥ किरियाहिं पुरिस वावा, इएउ सव्वेपरिक्खेवो„ ॥ १६१ ॥ (समुदाणीत्यादि) क्रियाणां मध्ये समुदानिकाक्रिया व्याख्याता; तस्याश्च कषायानुगतत्वात् बहवो भेदा यतस्ततस्तासां सामुदानिकानां क्रियाणामिह प्रकारे (एणउत्ति) अधिकारो व्यापारः सम्यक्प्रयुक्तेच भावस्थाने । तत्रेह विरतिरूपं संयमस्थानं प्रशस्तभावसंधान रूपंच गृह्यते । सम्यक्प्रयुक्तभावस्थानग्रहणसामर्थ्यादीर्यापथिका क्रियापि गृह्यते । सामुदानिका क्रियाग्रहणाच्चाप्रशस्तभावस्थानान्यपि गृहीतान्याभिश्च पूर्वोक्ताभिः क्रियाभिः पूर्वोक्तान् पुरुषान् तद्द्वारायातान्प्रावाडुकांश्च परीक्षते सर्वानपीति । यथा चैवं तथा स्वतएव सूत्रकारस्तं (जहामे एगड्यासमणुस्सा भवंतीत्यादि) तथा प्रावाडुकपरिज्ञायामपि (णायउ उगरणंचविप्पजहा निरकायरियाए समुठिया) इत्यादिना वक्ष्यतीति गतोनिर्युक्त्यनुगमः । सांप्रतं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चेदं । (सुयंमे आउसंतेणमित्यादि) सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमुद्दिश्येदमाह । तद्यथा । श्रुतं मयाऽऽयुष्मता भगवतैव माख्यातमिह खलु क्रियास्थानं नामाध्ययनं तस्यचायमर्थः । (इह खलु संजूहेणंति) सामान्येन संक्षेपेण समासतो द्वे स्थाने भवतः । ये क्रियावंतस्ते सर्वेप्यनयोः स्थानयोरेवमाख्यायंते । तद्यथा धर्मेचैवाधर्मेचैव । इदमुक्तं भवति धर्मस्थानमधर्मस्थानंच । यदिवा धर्मादनपेतं धर्म्यं विपरीतमधर्म्यं । कारणशुद्ध्या च कार्यशुद्धिर्भवतीत्याह । उपशांतं यत्तद्धर्मस्थानमनुपशांतं वाऽधर्मस्थानं तत्रोपशांते उपशमप्रधाने धर्मस्थाने ऽधर्मस्थानेवा केच न महासत्वाः समासन्नोत्तरगुणादयोवर्तंते । परेच तद्विपर्यस्ते विपर्यस्तमतयः संसाराभिष्वंगिणोऽधोऽधोगतयोवर्तंते । इहच यद्यप्यनादिभवाभ्यासादिंद्रियानुकूलतया प्रायशः पूर्वमधर्मप्रवृत्तोभवति पश्चात्सदुपदेशयोग्याचार्यसंसर्गाद्धर्मस्थाने प्रवर्तते । तथाप्यभ्यर्हितत्वात्पूर्वं धर्मस्थानमुपशमस्थानंच प्रदर्शितं पश्चात्तद्विपर्यस्तमिति ॥ १ ॥ सांप्रतं तु यत्र प्राणिनामनुपदेशः स्वपरप्रवृत्त्यादावेव स्थानं भवति तदधिकृत्याह । (तवणंइत्यादि) तत्रेति वाक्योपन्यासार्थे । णमिति वाक्यालंकारे । योऽसौ प्रथमानुष्ठेयतया प्रथमस्याधर्मपक्षस्य स्थानस्य विविधोभंगोविभंगोविचारस्तस्यायमर्थइति । इहास्मिन् जगति प्राच्यादिषु दिक्षु मध्येऽन्यतरस्यां दिशि संति विद्यंते एके केचन मनुष्याः पुरुषास्तेचैवं भूताभवंतीत्याह । तद्यथा । आराद्याताः सर्वहेयधर्मेभ्यइत्यार्यास्तद्विपरीताश्चाऽनार्याएके केचन भवंति यावद्दूरूपाः सुरूपाश्चेति । तेषां चाऽऽर्यादीनामिदं वक्ष्यमाणमेतद्रूपं । दंडय

तीति दंडः पापोपादानसंकल्पस्तस्य समादानं ग्रहणं (संपेहाएत्ति) संप्रेक्ष्य । तच्चतुर्गति कानामन्यतमस्य नवतीति दर्शयति । (तंजहेत्यादि) तद्यथा नारकादिषु ये चान्ये तथाप्रकारास्तद्देदवर्तिनः सुवर्णकुर्वेणादयः प्राणाः प्राणिनोविद्वांसोवेदनाज्ञानं तद्देदयं त्यनुनवंति । यदिवा सातासातरूपां वेदनामनुनवंतीत्यत्र चत्वारोनंगाः । तद्यथा । संज्ञिनोवेदनामनुनवंति विदंतिच १ सिद्धास्तु विदंति नानुनवंति २ असंज्ञिनोऽनुनवंति न पुनर्विदंति ३ अजीवास्तु न विंदंति नाप्यनुनवंतीति ४ इह पुनः प्रथमतृतीयान्यामधिकारोद्वितीयचतुर्थावस्तुनूताविति । तेषांच नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवानां तथाविधज्ञानवतामिमानि वक्ष्यमाणलक्षणानि त्रयोदशस्थानानि नवंतीत्येवमाख्यातं तीर्थंकरगणधरादिनिरिति । कानि पुनस्तानीति दर्शयितुमाह । (तंजहेत्यादि) तद्यथेत्ययमुदाहरणवाक्योपन्यासार्थः । आत्मार्थाय स्वप्रयोजनकृते दंडोऽर्थदंडः पापोपादानं १ तथाऽनर्थदंडइति निष्प्रयोजनमेव सावद्यक्रियानुष्ठानमनर्थदंडः । तथा हिंसनं हिंसा प्राण्युपमर्दरूपा तया सैव वा दंडोहिंसादंडः तथा ऽकस्मादनुपयुक्तस्य दंडो ऽकस्माद्दंडोऽन्यस्य क्रिययान्यस्य व्यापादनमिति ४ तथा दृष्टेर्विपर्यासोरज्जुमिव सर्पबुद्धिस्तया दंडोदृष्टिविपर्यासोऽबुद्धिदंडस्तद्यथा लेष्टुकादिबुध्या शराद्यनिघातेन चटकादिव्यापादनं । तथा मृषावादप्रत्ययिकः सच सद्भूतनिन्हवासद्भूतारोपणः ६ तथा अदत्तस्य परकीयस्यादानं स्वीकरणमदत्तादानं स्तेयं तत्प्रत्ययिकोदंडइति ७ तथाऽत्मन्यध्यध्यात्म तत्र नव अत्ध्यात्मिकोदंडस्तद्यथा निर्निमित्तमेव डुर्मनाउपहतमनःसंकल्पोहृदयेन न्हियमाणश्चिंतासागरावगाढः संतिष्ठते ८ तथा जात्याद्यष्टमदस्थानोपहतमनाः परावमदर्शी तस्य मानप्रत्ययिकोदंडोनवति ए तथा मित्राणामुपतापेन दोषोमित्रदोषस्तत्प्रत्ययिकोदंडोनवति १० तथा माया परवंचनबुद्धिस्तया दंडोमायाप्रत्ययिकः ११ तथा लोनप्रत्ययिकोलोननिमित्तोदंडइति १२ तथा एवं पंचनिः समितिनिः समितस्य तिसृनिर्गुप्तिनिर्गुप्तस्य सर्वोपयुक्तस्येर्याप्रत्ययिकः सामान्येन कर्मबंधोनवति । एतच्च त्रयोदशं १३ क्रियास्थानमिति ॥ ४ ॥

पढमे दंम समादाणे अट्ठादंम वत्तिएत्ति आहिज्जइ सेजहा णामए केइ पुरिसे आयहेउंवा णाइहेउंवा आगारहेउंवा परिवारहेउंवा मित्तहेउंवा णागहेउंवा नूतहेउंवा जक्खहेउंवा तं दमं तसथावरेहिं पाणेहिं सयमेव णिसिरिंति अणेणविणिसिरावेंति अण्णंपि णिसिरिंतं समणुजाणइ एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ पढमे दंमसमादाणे अट्ठादंमवत्तिएत्ति आहिए ॥ ५ ॥

अर्थ-(पढमे दंमसमादाणे के०) त्यां पहेलोजे क्रिया स्थानक तें (अट्ठादंमवत्तिएत्ति आहिज्जइ के०) अर्थ दंम प्रत्ययिक एवे नामे कहियेंछैयें (सेजहाणामए के०) ते यथा दृष्टांते कहेछे. णाम एवीं संभावनायें छे. (केइपुरिसे के०) कोइएक पुरुष, (आयहेउंवा के०) पोताने अर्थें, अथवा (णाइहेउंवा के०) ज्ञाति स्वजनादिकने अर्थें, (आगारहेउंवा के०) घरने अर्थे, (परिवारहेउंवा के०) दास दासी कुमारादिक परिवारने अर्थें, (मित्तहेउंवा के०) मित्रने अर्थें, (णागहेउंवा के०) नागकुमार देवताने अर्थें, (भूतहेउंवा के०) भूत देवताने अर्थें, (जरकहेउंवा के०) यक्ष देवताने अर्थें, (तंदंमंतसथावरेहिंपाणेहिं के०) ते दंम, त्रस अने स्थावर प्राणीउने विषे (सयमेवणिसिरिंति के०) स्वयमेव एटले पोतेंज उपघात करे. (अस्सेणविणिसिरावेंति के०) अनेरा बीजा पासें उपघात करावे. (असुंपिणिसिरिंतंसमणुजाणइ के०) अनेरो बीजो कोइ उपघात करतो होय तेने अनुमोदे. (एवंखलु के०) एरीतें निश्चें थकी (तस्सतप्पत्तियंसावज्जंति के०) करण करावण अने अनुमतियें करी करे, तेहने तत्प्रत्ययिक सावद्य पाप कर्म (आहिज्जइ के०) बंधाय (पढमेदंमसमादाणेअट्ठादंमवत्तिएत्तिआहिए के०) एटले प्रथम क्रिया स्थानक अर्थदंम प्रत्ययिक एवे नामे कह्युं. ॥ ५ ॥

॥ दीपिका-प्रथमं दंडसमादानमर्थदंडप्रत्ययइत्याख्यायते । तद्यथा नाम कश्चित्पुरुषः आत्महेतुमात्मार्थं ज्ञातिहेतुं स्वजनाद्यर्थं आगारहेतुं गृहार्थं परिवारार्थं मित्रनागभूतयक्षाद्यर्थं तं दंडं त्रसस्थावरेषु प्राणिषु स्वयं निसृजति निक्षिपति अन्येनापि कारयति अन्यं निसृजंतं समनुजानीते एवं तस्य तत्प्रत्ययिकं सावद्यं कर्म आधीयते संबध्यते एतत्प्रथमं दंडसमादानमर्थदंडप्रत्ययिकमित्याख्यातं ॥ ५ ॥

॥ टीका-यथोद्देशस्तथा निर्देशइतिकृत्वा प्रथमाक्रियास्थानादारभ्य व्याचिख्यासुराह । (पढमे त्यादि) यत्प्रथममुपात्तं दंडसमादानमर्थायदंडमित्येवमाख्यायते । तस्यायमर्थः । तद्यथा नामकश्चित्पुरुषः । पुरुषग्रहणमनुक्तमुपलक्षणं । सर्वोपि चातुर्गतिकः प्राण्यात्मनिमित्तमात्मार्थं तथाभिज्ञातिनिमित्तं स्वजनाद्यर्थं तथाऽगारं गृहं तन्निमित्तं तथा परिवारोदासीकर्मकरादिकः परिकरोवा गृहादेर्वृत्त्यादिकस्तन्निमित्तं तथा मित्रनागभूतयक्षाद्यर्थं तथाभूतं स्वपरोपघातरूपं दंडं त्रसस्थावरेषु स्वयमेव निसृजति निक्षिपति दंडमिव दंडमुपरि पातयति प्राण्युपमर्दकारिणीं क्रियां करोतीत्यर्थः । तथाऽन्येनापि कारयत्यपरं दंडं निसृजंतं समनुजानीते । एवं कृतकारितानुमतिभिरेव तस्याऽनात्मज्ञस्य तत्प्रत्ययिकं सावद्यक्रियोपात्तं कर्माधीयते संबध्यतेइति । एतत्प्रथमं दंडसमादानमर्थदंडप्रत्ययिकमित्याख्यातमिति ॥ ५ ॥

अहावरे दोच्चे दंमसमादाणे अणघादंमवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए केइ पुरिसे जे इमे तसा पाणा नवंति ते णो अच्चाए णोअजिणाए णो मंसाए णोसोणियाए एवं हिययाए पित्ताए वसाए पिच्छाए पुच्छाए वालाए सिंगाए विसाणाए दंताए दाढाए णहाए एहारुणिए अघीए अछिमंजाए णोहिंसंसुमेत्ति णोहिंसिंतिमेत्ति णोहिंसिस्संतिमेत्ति णोपुत्तपोसणाए णोपसुपोसणयाए णोआगारपरिबूहणताए णोसमणमाहणवत्तणाहेउं णोतस्स सरीरगस्स किंचिविप्परियादित्ता नवंति सेहंता छेत्ता नेत्ता लुंपइत्ता विलुंपइत्ता उद्दवइत्ता उज्झिउं बाले वेरस्स आनागी नवंति अणघादंमे ॥ ६ ॥ से जहा णामए केइ पुरिसे जे इमे थावरा पाणा नवंति तंजहा इक्कडाइवा कडिणाइवा जंतुगाइवा परगाइवा मोक्खाइवा तणाइवा कुसाइवा कुच्चगाइवा पप्पगाइवा पलालाइवा ते णोपुत्तपोसणाए णोपसुपोसणाए णोआगारपडिबूहणयाए णोसमणमाहणपोसणयाए णोतस्स सरीरगस्स किंचिविपरियाइ नवंति सेहंता छेत्ता नेत्ता लुंपइत्ता विलुंपइत्ता उद्दविइत्ता उज्झिउं बाले वेरस्स आनागी अणघादंमे ॥ ७ ॥ सेजहा णामए केइ पुरिसे कच्छंसिवा दहंसिवा उदगंसिवा दवियंसिवा वलयंसिवा णूमंसिवा गहणंसिवा गहणविडुग्गंसिवा वणंसिवा वणविडुग्गंसिवा पव्वयंसिवा पव्वयविडुग्गंसिवा तणाइं ऊसविय सयमेव अगणिकायं णिसिरिंति असेणवि अगणिकायं णिसिरावेंति असंपि अगणिकायं णिसिरिंतं समणुजाणइ अणघादंमे एवं खलु तस्स तप्पत्तियंसावज्जेंति आहिज्जइ दोच्चे दंमसमादाणे अणघादंमवत्तिएत्ति आहिए ॥ ८ ॥

अर्थ-(अहावरेदोच्चेदंमसमादाणेअणघादंमवत्तिएत्तिआहिज्जइ के०) हवे अपर बीजो क्रिया स्थानक अनर्थदंम, प्रत्ययिक कहियें बैयें (सेजहाणामए के०) ते यथादृष्टांते नाम एवी संनावनायें जेम (केइपुरिसे के०) कोइएक पुरुष, निःकारणे, निर्विवेक पणे, जीवहिंसा करे; तें कहेबे. (जेइमेतसापाणानवंति के०) जे ए संसार मांहे प्रत्यक्ष लक्षण त्रस प्राणी, बगादिक बे ते प्राणीने निरर्थक हणे, ते केवीरीते हणे तोके (तेणोअच्चाए के०) तेजीवोने शरीरने अर्थे न हणे, (णोअजिणाए के०) चर्मने अर्थे न ह

णे, (णोमंसाए के०) मांसने अर्थे न हणे, (णोसोणियाए के०) शोणितने अर्थे न हणे, (एवंहियियाए के०) एमज हियो एटले रुदयना मांस ने अर्थे न हणे, (पित्ता ए के०) पित्तने अर्थे न हणे, (वसाए के०) वसाने अर्थे न हणे, (पिछाए के०) पिछने अर्थे न हणे, (पुछाए के०) पुछने अर्थे न हणे, (वालाए के०) वाल रोमने अर्थे न हणे, (सिंगाए के०) सिंगडाने अर्थे न हणे, (विसाणाए के०) वृषण प्रताल पोइसने अर्थे न हणे, (दंताए के०) दांतने अर्थे न हणे, (दाढाए के०) दाढने अर्थे नहणे (णहा ए के०) नखने अर्थे न हणे, (एहारुणिए के०) नसा नाडीने अर्थे न हणे, (अछिए के०) अस्थिने अर्थे न हणे, (अछिमंजाए के०) हाडकानी मिंजाने अर्थे न हणे, एटला ए कार णने अर्थे कोइ जीवने हणे नहीं, परंतु कारण विना जीवने हणे, (णोहिंसंसुमित्ति के०) अतीतकाले पण एटला कारण नणी जीव हण्या नथी, तथा (णोहिंसिंतिमे त्ति के०) वर्त्तमान काले पण हणे नहीं. (णोहिंसिस्संतिमेत्ति के०) आगमिक कालें पण हणशे नहीं, (णोपुत्तपोसणाए के०) एवुं पण न जाणे जे ए जीवनो विनाश क रीने महारा पुत्रनुं पोषण करीश. (णोपसुपोसणयाए के०) पशुनुं पोषण कर शुं, एम पण न जाणे, (णोआगारपरिबूहणताए के०) ग्रह घरनी वृद्धि शांतिक पुष्टि कादिक निमित्तें पण हणे नहीं. (णोसमणमाहणवत्तणाहेउं के०) श्रमण ब्राह्मणनुं पोष ण करवा निमित्तें पण न हणे. (णोतस्ससरीरगस्सांकिंचिविप्परियादित्तानवंति के०) तथा पोताना शरीरना परित्राणने अर्थे एटले पोषणनेअर्थे पण न हणे. किंतु? क्रीडा निमित्तें, अ थवा व्यसने करी निरर्थक पणे (सेहंता के०) ते जीवनो हणनार थाय दंमादिक ना प्रहारे करी जीवने हणे, (छेत्ता के०) जीवोना कर्ण नासिकादिक छेदे, (नेत्ता के०) नेदे, शूलिकारोपण करे (लुंपइत्ता के०) अंगना अवयव कापी नाखे (विलुंपइत्ता के०) चामडी उपाडी उखेडी नाखे, (उद्दवइत्ता के०) नाना प्रकारना पीडाकारी उप द्रव उपजावे, (उज्झिउंबालेवेरस्सआनागीनवंति के०) एतावता तेबाल विवेक गंमीने निःकेवल वैरनो विनागी थाय. (अणछादंमे के०) एटले त्रस जीव आश्रित अनर्थ दंम कह्यो. ॥६॥ (हवे स्थावर जीव आश्रित अनर्थ दंम कहेडे. (सेजहाणामए के०) ते यथा दृष्टांते जेम. (केइपुरिसे के०) कोइएक पुरुष मार्गे जतो थको निरर्थक निर्विवेक पणे वृक्षना पल्लवने दंमादिके करी जाटकी नाखे, परंतु लेवानी वांछा कांइ न होय, वली (जेइमेथावरापाणानवंति के०) जे ए स्थावर प्राणी होय (तंजहा के०) ते देखाडेछे. (इक्कडा इवा के०) तृण विशेष प्रसिद्धछे (कडिणाइवाजंतुगाइवापरगाइवा के०) वांसथकी उपनुं जे तृण विशेष, जेणे करी फुल गुंथाय ते जाणवुं (मोरकाइवा के०) नदीमां थायछे ते, (त णाइवा के०).तृण प्रसिद्ध (कुसाइवा के०) मान, (कुछगाइवा के०) वनस्पति विशेप, (प

प्पगाइवा के०) प्रसिद्ध तृण विशेष, एटला मांहे सर्वकाष्ट जाणवा (पलालएइवा के०) पलाल इत्यादि अनेक जगत् मांहेछे ते, पुत्र पोषवाने निमित्ते नहीं, तथा पशु पोषण करवाने अर्थे पण नहीं, आगार समारवाने अर्थे पण नहीं, श्रमण ब्राह्मणना पोष ण करवाने अर्थे पण नहीं, पोताना शरीरना पोषण करवाने अर्थे पण नही, एटले आत्मा ना त्राणने अर्थे पण नहीं किंतु? क्रीडा निमित्तें अथवा व्यसने करी निरर्थक ते जीव नो हणनार थाय. ते दंमादिके प्रहार करी छेदे, नेदे, अनेरा अंगनो अवयव कापे, बा ल उतारे; नाना प्रकारना पीडा कारी उपद्रव करे, एरीते ते बाल अविवेकी निःकेवल वैरनो विनागी थाय. एम वनस्पतिकाय आश्रि अनर्थ दंम कह्यो. ॥७॥ (हवे अग्निकाय आ श्रि अनर्थ दंम कहेछे. ते यथा दृष्टांते नाम एवी संनावनायें जेम कोइएक पुरुष विवे क विकल थको (कछंसिवा के०) कछादिकने विषे, (उदगंसिवा के०) पाणीने विषे, (दहंसिवा के०) ड्रहने विषे, (दवियंसिवा के०) समुद्र तथा नदीने विषे, (वलयंसि वा के०) नदियें वेष्टित नूमिकाने विषे, णूमंसिवा के०) गर्त्तादिक तथा नीचीनूमिका ने विषे, (गहणंसिवा के०) जल रहित स्थानक तथा अटवी माहेला क्षेत्रने विषे, (गहणविडुग्गंसिवा के०) गहन अटवीमां वली विषम स्थानकने विषे (वणं सिवा के०) वनने विषे, (वणविडुग्गंसिवा के०) वनमांहे विषम स्थानकने वि षें, (पव्वयंसिवा के०) पर्वतने विषे, (पव्वयविडुग्गंसिवा के०) पर्वतमांहे विषम स्था नकने विषे, इत्यादिक देशस्थानकनेविषे, वर्त्ततो (तणाइंऊसविय के०) तृण दर्नादिक ए कठा करी करीने (सयमेवअगणिकायंणिसिरंति के०) वलीवली पोते अग्नि करवाने अ र्थें अग्निकायने तेमां प्रक्षेपे (असुणविअगणिकायंणिसिरावेंति के०) अन्य पासेंअग्नि प्र क्षेपावे एटले बीजा पासें जलावे, (असंपिअगणिकायंणिसिरिंतंसमणुजाणइ के०) बीजो कोइ अग्निकायने तेमांहे प्रक्षेपतो होय तेने अनुमोदे,(अणठादंमेएवंखलु के०) अनर्थ दंम एम निश्चे तेने (तस्सतप्पत्तियं के०) तत्प्रत्ययिक एटले ते आश्रित (सावज्जेति के०) साव द्य कर्म (आहिज्जइ के०) बंधाय. एटले (दोच्चेदंमसमादाणेअणठादंमवत्तिएतिआहिए के०) ए बीजो क्रियास्थानक अनर्थ दंम समादान प्रत्ययिक कह्यो. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका—अथापरं द्वितीयं दंडसमादानमनर्थदंडप्रत्ययिकमित्यन्निधीयते । तद्य थानाम कश्चित्पुरुषोनिर्निमित्तमेव प्राणिनोहंति । तदेवाह । ये इमे त्रसाः प्राणिनस्तान् अर्चाशरीरं तदर्थं नहंति । अजिनं चर्म नापि तदर्थं । एवं मांसशोणितहृदयपित्तव सापिछपुछवालशृंगविषाणदंतदंष्ट्रानखस्नाय्वस्थिमज्जाइत्यादिनिमित्तमुद्दिश्य नैवाऽहिंसि पुर्नापि हिंसंति नापि हिंसयिष्यंति मां मदीयं चेति तथा नो पुत्रपोषणाय नापि पशु

पोषणाय अगारं गृहं तस्य परिबृंहणं वृद्धिस्तदर्थं नोहिनस्ति तथा श्रमणब्राह्मणवर्तनहेतुं यत्पाल्यते तस्य शरीरस्य किमपि परित्राणाय तत्प्राणिहिंसनं न स्यात् इत्यादिहेतून् विनाऽसौ क्रीडया हंता नवति दंडादिनिश्छेत्ता कर्णादीनां नेत्ता शूलादिना लुंपयिता अंगावयवकर्तनतोविलुंपयिता नेत्रोत्पाटनचर्मकर्तनादितोजीवितादपद्रावयिता सच सद्विवेकमुश्कित्वा बालोऽज्ञोवैरस्य नागी नवति। पंचेंद्रियजीवपीडातोऽनर्थदंडउक्तः॥६॥ अथ स्थावरानाश्रित्याह। यथा कश्चित्पुरुषः पथि गछन् निर्निमित्तमेव वृक्षादेः पल्लवादिकं दंडादिना प्रध्वंसयति। एतदेवाह। येऽमी स्थावरावनस्पतिकायाः प्राणिनः स्युः। तद्यथा। इक्कडादयोवनस्पतिविशेषास्तान् पत्रपुष्पफलादि निरपेक्षः क्रीडया छिनत्ति न पुत्रपोषणायेत्यादि पूर्ववत्। यावज्जन्मांतरानुबंधिनोवैरस्य नागी नवति। अयमनर्थदंडो वनस्पत्याश्रयउक्तः॥७॥ सांप्रतमग्न्याश्रितमाह। तद्यथानाम कश्चित्पुरुषः कछे नदीजलवेष्टिते वृक्षादिमति प्रदेशे न्हदेप्रतीते उदकेजलाशयमात्रे (दवियंसि) तृणादिद्रव्यसमुदाये वलये वृत्ताकारनद्यादिजलकुटिलगतियुक्तप्रदेशे तमे अवतमसे गहने वृक्षवल्लीसमुदाये गहनविडुर्गे पर्वतैकदेशावस्थितवृक्षवल्लीसमुदाये वनविडुर्गे नानाविधवृक्षसमूहे एतेषु कछादिषु दशस्थानेषु तृणानि उत्सर्प्य ऊर्ध्वीकृत्य, स्वयमेवाऽग्निकायं निसृजति निक्षिपति अन्येन वाऽग्निकायं निसर्जयति निक्षेपयति अन्यमप्यग्निकायं निसृजंतं समनुजानीते अयमनर्थदंडः। तदेवं खलु तस्य तत्प्रत्ययिकं दवदाननिमित्तं सावद्यं कर्मव्याख्यातं। एतच्च द्वितीयमनर्थदंडसमादानमाख्यातमिति ॥ ८ ॥

॥ टीका—अथापरं द्वितीयं दंडसमादानमनर्थदंडप्रत्ययिकमित्यनिधीयते तदधुना व्याख्यायते। तद्यथानाम कश्चित्पुरुषोनिर्निमित्तमेव निर्विवेकतया प्राणिनोहिनस्ति। तदेव दर्शयितुमाह। (जेइमेइत्यादि) ये केचनामी संसारांतर्वर्तिनः प्रत्यक्षांवष्ठादयः प्राणिनस्तांश्चासौ हिंसन्नर्चाशरीरं नो नैवार्चायै हिनस्ति तथाऽजिनं चर्म नापि तदर्थमेवं मांसशोणितहृदयपित्तवसापिछपुछवालशृंगविषाणनखस्नाय्वस्थिमज्जा इत्येवमादिकं कारणमुद्दिश्य नैवाहिंसिषिषुर्नापि हिंसयिष्यंति मां मदीयं चेति तथा नो पुत्रपोषणायेति पुत्रादिकं पोषयिष्यामीत्येतदपि कारणमुद्दिश्य न व्यापादयति तथा नापि पशूनां पोषणाय तथाऽगारं गृहं तस्य परिबृंहणमुपचयस्तदर्थंवा न हिनस्ति तथा न श्रमणब्राह्मणवर्तनाहेतुं तथा यत्नेन पालयितुमारब्धं नोतस्य शरीरस्य किमपि परित्राणाय तत्प्राणव्यपरोपणं नवति इत्येवमादिकं कारणमनपेक्ष्यैवासौ क्रीडया तछीलतया व्यसनेन वा प्राणिनां हंता नवति दंडादिनिः। तथा छेत्ता नवति कर्णनासिकाविकर्तनतस्तथा नेत्ता शूलादिना तथा लुंपयितान्यतरांगावयवविकर्तनतस्तथा विलुंपयिताऽक्ष्युत्पाटनचर्मविकर्त्तनक

रपादादिछेदनतः परमाऽधार्मिकवत्प्राणिनां निर्निमित्तमेव नानाविधोपायैः पीडोत्पादको नवति तथा जीवितादप्यपद्रावयिता नवति सच सद्विवेकमुज्झित्वात्मानं वा परित्यज्य बालवद्बालोऽज्ञोऽसमीक्षितकारितया जन्मांतरानुबंधिनोवैरस्य नागी नवति ॥ ६ ॥ तदेवं निर्निमित्तमेवं पंचेंद्रियप्राणिपीडनतोयथानर्थदंडोनवति तथा प्रतिपादितं । अधुना स्थावरानधिकृत्योच्यते । (सेजहेत्यादि) यथाकश्चित्पुरुषोनिर्विवेकः पथि गछन् वृक्षादेः पल्लवादिकं दंडादिना प्रध्वंसयन् फलनिरपेक्षस्तछीलतया व्रजति । एतदेव दर्शयति (जे इमेइत्यादि) ये केचनामी प्रत्यक्षाः स्थावरावनस्पतिकायाः प्राणिनोनवंति तद्यथेक्कडादयोवनस्पतिविशेषाउत्तानार्थास्तदिदेक्कडा ममानया प्रयोजनमित्येवमनिसंधाय न छिनत्ति केवलं तत्पत्रपुष्पादिनिरपेक्षस्तछीलतया छिनत्तीत्येतत्सर्वत्र योजनीयमिति । तथा न पुत्रपोषणाय नो पशुपोषणाय नागारप्रतिबृंहणाय नश्रमणब्राह्मणप्रवृत्तये नापि शरीरस्य किंचित्त्राणं नविष्यतीति केवलमेवासौ वनस्पतिहंताछेत्त्यादियावज्जन्मांतरानुबंधिनोवैरस्य नागी नवति । अयं वनस्पत्याश्रयोऽनर्थदंडोऽनिहितः ॥७॥ सांप्रतमग्न्याश्रितमाह । (सेजहेत्यादि) तद्यथानाम कश्चित्पुरुषः सदसद्विवेकविकलतया कछादिकेषु दशसु स्थानेषु वनडुर्गपर्वतेषु तृणानि कुशइषीकादीनि पौनःपुन्येनोर्ध्वाधस्थानि कृत्वाऽग्निकायं हुतनुजं निसृजति प्रक्षेपयत्यन्येन वाग्निकायं बहुसत्वापकारी दवाग्निं निसर्जयति प्रक्षेपयत्यन्यंच निसृजंतं समनुजानीते । तदेवं योगत्रिकेण कृतकारितानुमतिनिस्तस्य यत्किंचनकारिणस्तत्प्रत्ययिकं दवदाननिमित्तं सावद्यं कर्म महापातकमाख्यातं द्वितीयमनर्थदंडसमादानमाख्यातमिति ॥ ८ ॥

आहावरे तच्चे दंमसमादाणे हिंसादंमवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए केइ पुरिसे ममंवा ममिंवा अन्नंवा अन्निंवा हिंसंसुवा हिंसइवा हिंसिस्संइवा तंदंमं तसथावरोहिं पाणेहिं सयमेव णिसिरिंति अन्नेणवि णिसिरावेंति अन्नंपि णिसिरिंतं समणुजाणइ हिंसादंमे एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ तच्चे दंमसमादाणे हिंसादंमवत्तिएत्ति आहिए॥ ए॥

अर्थ—हवे अपर त्रीजो क्रियास्थानक हिंसादंम प्रत्ययिक कहेछे. ते जेम नाम एवी संनावनायें कोइएक पुरुष (ममंवा के०) मुजने (ममिंवा के०) महारा पिताने हणेछे, हण्योछे, हणशे, एम पुरुषाकार वहेतो पोताना मरण थकी मरतो बीकराखतोके, ए महारो विनाश करशे एवुं जाणीने सर्प्प सिंहादिक जीवोने हणे, जेम कंसें देवकीना पुत्रने हण्या तेनी पेठे जाणी लेवुं. (अन्नंवाके०) अथवा अन्य महारा गोत्री

स्वजनादिकने हणशे. (अन्निवा के०) अथवा तेना कोइएक बीजाने (हिंसंसुवा के०) अतीतकालें हण्योछे. (हिंसइवा के०) वर्तमान कालें हणेछे. (हिंसिस्सइवा के०) आगमिक कालें हणशेः (तंदमंतसथावरेहिंपाणेहिंसयमेवणिसिरिंतिके०) एम जाणीने दंमेक रीत्रसस्थावर प्राणीनो पोते घात करे, बीजानी पासें घात करावे, अथवा अन्य कोइ घात करतो होए तेने अनुमोदन आपे. ए हिंसादंम, एम निश्चें एने प्रत्ययें एटले ते आश्रित सावद्यकर्म बंधाय; एटले त्रीजो क्रिया स्थानक हिंसादंम प्रत्ययिक एवे नामे कह्यो.॥ए॥

॥ दीपिका—अथ तृतीयमाह । अथापरं तृतीयं दंडसमादानं हिंसादंडप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषोमामयं घातयिष्यतीति मत्वा, सर्पादिकं हंति यथा कंसोदेवकीसुतान् परशुरामोवा यथा कार्तवीर्यं जघान । मदीयं पितरमन्यदीयस्य वा कस्यचित्सुवर्णपशुप्रभृतेरयमुपद्रवकारीति मत्वा, तत्र दंमं निसृजति तदेवं मां मदीयं अन्यमन्यदीयं वा हिंसितवान् हिनस्ति हिंसिष्यतीत्येवं संभाविते त्रसे स्थावरे वा तं दंमं स्वयं निसृजति अन्येन निसर्जयति अन्यं निसृजंतं समनुजानीते । एतत्तृतीयं दंडसमादानं हिंसादंडप्रत्ययिकमाख्यातम् ॥ ए ॥

॥ टीका—तृतीयमधुना व्याचिख्यासुराह । (अहावरे इत्यादि) अथापरं तृतीयं दंडसमादानं हिंसादंडप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषः पुरुषकारं वहन् स्वतोमरणभीरुतया वा मामयं घातयिष्यतीत्येवं मत्वा, कंसवद्देवकीसुतान् भावतो जघान मदीयं वा पितरमन्यं वा मामकं ममीकारोपेतं परशुरामवत्कार्तवीर्यं जघानान्यं वा कंचनार्यं सर्पसिंहादिकं व्यापादयिष्यतीति मत्वा सर्पादिकं व्यापादयति अन्यदीयस्य वा कस्यचिद्धिरण्यपश्वादेरयमुपद्रवकारीति कृत्वा तत्र दंडं निसृजति । तदेवमयं मां मदीयमन्यदीयं वा हिंसितवान् हिनस्ति हिंसिष्यतीतिवेत्येवं संभाविते त्रसे स्थावरे वा तं दंडं प्राणव्यपरोपणलक्षणं स्वयमेव निसृजति अन्येन निसर्जयति निसृजंतं वाऽन्यं समनुजानीते । इत्येतत्तृतीयं दंडसमादानं हिंसाप्रत्ययिकमाख्यातमिति ॥ ए ॥

अहावरे चनब्रे दंमसमादाणे अकम्मादंमवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए केइ पुरिसे कछंसिवा जाव वणविडुग्गंसिवा मियवत्तिए मियसंकप्पे मियपणिहाणे मियवहाए गंता एए मियत्तिकानं अन्नयरस्स मियस्स वहाए नसुआयामेत्ताणं णिसिरेज्जा स मियं वहिस्सामित्ति कट्टु तित्तिरंवा वट्टगंवा चडगंवा लावगंवा कवोयगंवा कविंवा कविंजलंवा विधित्ता भ

वइ इहखलु से अन्नस्स अट्ठाए अन्नं फुसंति अकम्मादंमे॥१०॥से जहा णा मए केइ पुरिसे सालीणिवा वीहीणिवा कोद्दवाणिवा कंगूणिवा परगाणिवा रालाणिवा णिलिज्जमाणे अन्नयरस्स तणस्स वहाए सत्थं णिसिरेज्जा से सामगं तणगं कुमुदगं वीहीऊसियं कलेसुयं तणं छिंदिस्सामित्ति कट्टु सालिंवा वीहिंवा कोद्दवंवा कंगुंवा परगंवा रालयंवा छिंदित्ता नवइ इति खलु से अन्नस्स अट्ठाए अन्नं फुसंति अकम्मादंमे एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जं आहिज्जइ चउत्थे दंमसमादाणे अकम्मादंमवत्तिए आहिए॥११॥

अर्थ–हवे चोथो क्रिया स्थानक अकस्मात् प्रत्ययिक दंम कहियेंछेयें. जेम कोइएक लुब्धकादिक पुरुष कछने विषे, अथवा यावत् वन गहन पर्वतादिकने विषे, (मियवत्तिए के०) मृगें करी जेनी आजीविका वर्त्तेछे ते मृगवर्त्तिक (मियसंकप्पे के०) तथा मृगने विषे, जेनो संकल्पछे. (मियपणिहाणे के०) मृगनेविषे जेनो प्रणिधान एटले अंतःकरणछे एवो छतो (मियवहाएगंता के०) मृगना वधने अर्थें वन पर्वतादिकने विषे जइने, (एएमियत्तिकाउं के०) आ अमुक मृग नजीक देखायछे एमकरीने (अन्नयरस्समियस्सवहाए के०) ते अन्य मृगना वधने अर्थें (उसुआयामेत्ताणंणिसिरेज्जा के०) धनुष्य बाण ताकीने मूके चलावे. (सेमियंवहिस्सामित्तिकट्टु के०) ते मृगनो वध करीश, एम करीने एटले ते मृगने वेधशुं एवा भावें बाण मूके थके वचालें अन्य जीव हणाए. ते कहेछे (तित्तिरंवा के०) तित्तर, (वट्टगंवा के०) वर्त्तक, (चडगंवा के०) चकलो, (लावगंवा के०) लावक, (कवोयगंवा के०) कपोत, (कविंवा के०) होलो, (कविंजलंवा के०) कपिंजल, ए माहेला जीवोने (विधित्तानवइ के०) विंधनारो होयछे. (इहखलुसेअन्नस्सअट्ठाए के०) अहीं निश्चें ते अन्यने अर्थें प्राणघात चिंतव्यो, अने वचमां (अन्नंफुसंति के०) अन्यनो घात करे एटले एकने हणवानो प्रयोग कर्यो तेनी वचमां बीजा प्राणीनो घात करे, ते कारणे एने (अकम्मादंमे के०) अकस्मात् दंम कहियें.॥१०॥

हवे वनस्पति आश्रित अकस्मात् दंम कहेछे. जेम नाम एवी संभावनायें कोइएक करसणी पुरुष (सालीणिवा के०) सालधान (वीहीणिवा के०) व्रीहीधान्य (कोद्दवाणिवा के०) कोद्राधान्य, (कंगूणिवा के०) कांगणीधान्य, (परगाणिवा के०) बंटीधान्य, (रालाणिवा के०) रालो धान्य, इत्यादिक सर्व चोवीश जातना धान्यछे, ते धान्यनुं (णिलिज्जमाणे के०) निदान करतां थकां (अन्नयरस्सतणस्सवहाए के०) ते धान्य मांहेलुं शाल्यादिक तृण कापवाने अर्थें (सत्थंणिसिरेज्जा के०) दात्रादिक शस्त्र, वाहे, एट

ले चलावे. (सेसामगंतणगंकुमुडुगं के०) ते मनमांहे एवुं जाणे ठेजे हुं ए श्यामादिक ककुमुद तृणविशेषने ठेदिश. पढी (वीहीऊसियंकलेसुयं के०) व्रीहीकलेसुकादिक धान्य,उंचु करीने ए धान्यमाहेलुं (तणंछिदिस्सामित्तिकट्टु के०) तृण ठेदीश. एप्रकारें करीने,पढी ते तृणो ठेदतो थको शाली, व्रीही, कोद्रवा, कंगुणी, बंटी, रालो, इत्यादिक धान्यनो (ठिंदित्तानवंति के०) ठेदनारो थाय (इतिखलुसे के०) एप्रकारे निश्चें ते (अन्नस्सअघाए के०) अन्यना घातनो अर्थी चिंतवतो थको (अन्नंफुसंति के०) अन्यनो घात उपजावे एटले तृणोने ठेदतो थको धान्यने ठेदे, ते कारणे (अकम्मादंमे के०) एने अकस्मात् दंमकहिए, एम निश्चें तेने ते निमित्तें एटले तत्प्रत्ययिक सावद्य कर्म बंधाय. एप्रकारें ए चोथो क्रिया स्थानक अकस्मात् दंम प्रत्ययिक एवे नामे कह्यो. ॥ ११ ॥

॥ दीपिका—अथापरं चतुर्थं दंडसमादानमकस्माद्दंडप्रत्ययिकमाख्यायते । अकस्मादित्ययंशब्दोमगधदेशे लोके संस्कृतएवोच्चार्यते ततइहापि तथैवोक्तः । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषोलुब्धकादिः कच्छादिषु गत्वा मृगैर्वृत्तिर्जीविका यस्य समृगवृत्तिकोमृगेषु संकल्पो यस्यसतथा मृगेषु प्रणिधानं चित्तवृतिर्यस्यसतथा मृगवधार्थं कच्छादिषु गंता नवति तत्रच गतः सएते मृगाइति कृत्वा ऽन्यतरस्य मृगस्य वधार्थमिषुं शरमायामेन समाकृष्य, निसृजति सच मृगं हनिष्यामीति कृत्वा इषुं क्षिप्तवान् सच तेनेषुणा तित्तिरं, वर्तकंवा लावकंवा,कपोतकंवा, कपिंवा, कपिंजलंवा, पक्षिविशेषं व्यापादयिता नवति । इह खल्वसावन्यस्यार्थाय निक्षिप्तोदंडोयदाऽन्यं स्पृशति घातयति सोऽकस्माद्दंडइत्युच्यते ॥१०॥ अथ वनस्पतिमुद्दिश्येममेव दंडमाह । तद्यथानामकश्चित्पुरुषः कृषीवलादिः शालिव्रीहिकोद्रवकंगुरालादिधान्यस्य श्यामतृणककुमुदकलेसुकतृणानि तृणविशेषास्तानि (णिलिज्जमाणे) अपनयन् धान्यशुद्धिं कुर्वाणोऽन्यतरस्य तृणस्य छेदाय शस्त्रं दात्रादिकं निसृजेत् । स च श्यामादिकं तृणं ठेत्स्यामीति कृत्वाऽकस्माच्छालिं वा यावद्रालादिकं वा छिंद्यात् । रकृणीयस्यैवाऽकस्मादसौ ठेत्ता स्यादित्यन्यस्य कृतेऽन्यं स्पृशति छिनत्ति । एवं खलु तस्य तत्प्रत्ययिकमकस्माद्दंडनिमित्तं सावद्यं पापमाधीयते संबध्यते । एतच्चतुर्थं दंडसमादानमकस्माद्दंडप्रत्ययिकमाख्यातमिति ॥ ११ ॥

॥ टीका—अथापरं चतुर्थं दंडसमादानमकस्माद्दंडप्रत्ययिकमाख्यायते । इह चाकस्मादित्ययंशब्दोमगधदेशे सर्वेणाप्यागोपालांगनादिना संस्कृतएवोच्चार्यतइति तदिहापि तथानूतएवोच्चारितइति । तद्यथा नामकश्चित्पुरुषोलुब्धकादिकः कच्छे वा यावद्वनडुर्गेवा गत्वा मृगैर्हरिणैराटव्यपशुनिर्वृत्तिर्वर्त्तनं यस्यस मृगवृत्तिकः सचैवंनूतोमृगेषु संक

ल्पोयस्यासौ मृगसंकल्पः । एतदेव दर्शयति । मृगेषु प्रणिधानमंतःकरणवृत्तिर्यस्यासौ मृगप्रणिधानः क्व मृगान्द्रक्ष्यामीत्येतदध्यवसायी सन् मृगवधार्थं कच्छादिषु गंता भवति तत्रच गतः सद्दृष्ट्वा मृगानेते मृगाइत्येवं कृत्वा तेषां मध्येऽन्यतरस्य मृगस्य वधार्थमिषुं श रं (आयामेतत्ति) आयामेन समाकृष्य मृगमुद्दिश्य निसृजति सचैवंसंकल्पोभवति । तथा ऽहं मृगं हनिष्यामीति इषुं क्षिप्तवान् सच तेनेषुणा तित्तिरादिकं पक्षिविशेषं व्यापादयि ता भवति । तदेवं खल्वसावन्यस्यार्थाय निक्षिप्तो दंडो यदाऽन्यं स्पृशति घातयति तदा ऽकस्माद्दंडइत्युच्यते ॥१०॥ अधुना वनस्पतिमुद्दिश्याकस्माद्दंडउच्यते (सेजहेत्यादि) तद्य थानाम कश्चित्पुरुषः कृषीवलादिः शाल्यादेर्धान्यजातस्य श्यामादिकं तृणजातमपनयन् धान्यशुद्धिंकुर्वाणः सन्नन्यतरस्य तृणजातस्यापनयनार्थं शस्त्रं दात्रादिकं निसृजेत्सच श्या मादिकं तृणं छेत्स्यामीति कृत्वाऽकस्माच्छालिंवा रालकंवा छिंद्यात्क्षुण्णीयस्यैवासावकस्मा च्छेत्ता भवति. इत्येवमन्यस्यार्थायान्यकृते ऽन्यंवा स्पृशति छिनत्ति । यदिवा स्पृशतीत्य नेनापि परितापं करोतीति दर्शयति । तदेवं खलु तस्य तत्कर्तुस्तत्प्रत्ययिकमकस्माद्दंड निमित्तं सावद्यमिति पापमाधीयते संबध्यते । तदेतच्चतुर्थदंडसमादानमकस्माद्दंडप्रत्य यिकमाख्यातमिति ॥ ११ ॥

अहावरे पंचमे दंमसमादाणे दिठ्ठिविपरियासियादंमवत्तिएत्ति आहिज्ज इ से जहा णामए केइ पुरिसे माइहिंवा पिइहिंवा भाइहिंवा भगिणीहिंवा भज्जाहिंवा पुत्तेहिंवा धूताहिंवा सुण्हाहिंवा सद्धिं संवसमाणे मित्तं अमि त्तमेव मन्नमाणे मित्तेहयपुव्वे भवइ दिठ्ठि विपरियासियादंमे ॥१२॥ से ज हा णामए केइपुरिसे गामघायंसिवा णगरघायंसिवा खेडकवडमंमबघा यंसिवा दोणमुहघायंसिवा पट्टणघायंसिवा आसमघायंसिवा सन्नि वेसघायंसिवा निग्गमघायंसिवा रायहाणिघायंसिवा अतेणं तेणमि त्ति मन्नमाणे अतेणं हयपुव्वे भवइ दिठ्ठिविपरियासियादंमे एवं खलु त स्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ पंचमे दंमसमादाणे दिठ्ठिविपरिया सिया दंमवत्तिएत्ति आहिए ॥१३॥

अर्थ—हवे अपर पांचमो दृष्टिविपर्यास नामे क्रिया स्थानक कहियें छैए. ते जेम नाम एवी संभावनायें. कोइएक पुरुष माता, पिता, भाइ, बेन, भार्या, पुत्र, दीकरी, पुत्रनी वहु, प्रमुख परिवार (सद्धिंसंवसमाणे के०) सहित वसतो थको ज्ञाति पालवाने अर्थे (मित्तंअमित्तमेवमन्नमाणे के०) पोताना मित्रने दृष्टिना विपर्यास थकी " ए महारो

शत्रुछे" एम जाणतो थको (मित्तेहयपुव्वेनवइ के०) मित्रने हणे. एटले ए पुरुष शत्रुनो विनाश करवा वांछतो मित्रनेज हणे तेने मित्रज हत पूर्वे थाय. (दिट्ठिविपरियासियादंडे के०) एने दृष्टि विपर्यास दंम कहियें. ॥ १२ ॥

वली बीजी रीतें देखाडेछे, ते जेम कोइएक पुरुष (गामघायंसिवा के०) गामनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (णगरघायंसिवा के०) नगरनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (खेडकव्वडमंमबघायंसिवा के०) खेड कव्वड मंमपनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (दोणमुहघायंसिवा के०) डोणमुखनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (पट्टणघायंसिवा के०) पट्टणनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (आसमघायंसिवा के०) आश्रमनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (सन्निवेसघायंसिवा के०) सन्निवेशनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (निग्गमघायंसिवा के०) निगमनी घाते प्रवर्त्ततो थको, रायहाणिघायंसिवा के०) राजधानीनी घातें प्रवर्त्ततो थको, (अतेणंतेणमित्तिमन्नमाणेके०) अचोरने चोर करी जाणतो थको, (अतेणंहयपुव्वेनवंति के०) अचोर एटले साधुनेज हणे तेथी साधुज हत पूर्वथाय, तेथी ए दृष्टि विपर्यास दंम कहिए. एम निश्चें तेने तत्प्रत्ययिक सावद्य कर्म बंधाय। ए पांचमो क्रियास्थानक दृष्टिविपर्यास नामे दंम समादान कह्यो. ॥१३॥

॥ दीपिका–अथापरं पंचमं दंडसमादानं दृष्टिविपर्यासप्रत्ययिकमित्याख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषश्चारनट्टादिर्मातृपितृनगिनीनार्यापुत्रडुहितृस्नुषादिनिः सार्धं वसन् ज्ञातिपालनाय मित्रमेव दृष्टिविपर्यासादमित्रोयमिति मन्यमानोहन्यात्तेनच दृष्टिविपर्यासान्मित्रमेव हतपूर्वं स्यादतोदृष्टिविपर्यासदंडोऽयं॥ १२ ॥ पुनरन्यथा तमेवाह । यथावा कश्चित्पुरुषोग्रामघातादिके विन्रांतचेतादृष्टिविपर्यासादचौरमेव चौरोयमिति मन्यमानोहन्यात् । एवं तेन न्रांतेनाचौरएव हतपूर्वः स्यात् । ग्रामादिलक्षणं चेदं । ग्रामो वृत्यावृतः स्यान्नगरमुरुचतुर्गोपुरोन्नासिशोनं । खेटं नद्यद्रिवेष्टं परिवृतमनितः खर्वटं पर्वतेन ॥ ग्रामैर्युक्तं मटं बंदलितदशशतैः पत्तनं रत्नयोनि डोणाख्यं सिंधुवेलावलयितमथ संबाधनंवाऽद्रिशृंगेइति । आश्रमस्तापसस्थानं । सन्निवेशः सार्थकटकादिवासः । निगमोबहुवणिग्वासः । राजधानी राजकुलस्थानं । सोयं दृष्टिविपर्यासदंडः । तदेवं खलु तस्य दृष्टिविपर्यासप्रत्ययिकं सावद्यं कर्माधीयते । इदं पंचमं दंडसमादानं दृष्टिविपर्यासप्रत्ययिकमाख्यातमिति ॥ १३ ॥

॥ टीका–अथापरं पंचमं दंडसमादानं दृष्टिविपर्यासदंडप्रत्ययिकमित्याख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषश्चारनट्टादिकोमातृपितृभ्रातृनगिनीनार्यापुत्रडुहितृस्नुपादिनिः सार्धं वसंस्तिष्ठन् ज्ञातिपालनकृते मित्रमेव दृष्टिविपर्यासादमित्रोयमित्येवं मन्यमानोहन्या

तु व्यापादयेत्तेन च दृष्टिविपर्यासवता मित्रमेव हतपूर्वं नवतीति अतोदृष्टिविपर्यासदं डोयं ॥१२॥ पुनरप्यन्यथा तमेवाह । (सेजहेत्यादि) तद्यथानाम कश्चित्पुरुषः पुरुष कारमुद्वहन् ग्रामघातादिके विभ्रमे भ्रांतचेतादृष्टिविपर्यासादचौरमेव चौरोयमित्येवं म न्यमानोव्यापादयेत् । तदेवं तेन भ्रांतमनसा विभ्रमाकुलेनाचौरएव हतपूर्वोनवति सोऽयं दृष्टिविपर्यासदंडः । तदेवं खलु तस्य दृष्टिविपर्यासवत् तत्प्रत्ययिकं सावद्यं कर्मा धीयते । तदेवं पंचमं दंडसमादानं दृष्टिविपर्यासप्रत्ययिकमाख्यातमिति ॥ १३ ॥

अहावरे छट्ठे किरियाठाणे मोसावत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए केइ पुरिसे आयहेउंवा णाइहेउंवा अगारहेउंवा परिवारहेउंवा सयमेव मुसंवयंति अन्नेणंवि मुसंवयावेंति मुसंवयंतंपि अन्नं समणुजाणइ एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ छट्ठे किरियाठाणे मोसावत्तिएत्ति आहिए ॥१४॥

अर्थ—हवे छठ्ठो क्रिया स्थानक मृषावादप्रत्ययिक कहेछे. पूर्वोक्त पांचने दंडसमादान पणे कह्या. कारण के, तेमांहे प्रायः परनो उपघात थायछे, अने अहींथी हवे क्रिया जछे माटे एने क्रियास्थान एवी संज्ञा करवी अने हवे एथकी आगळजे क्रिया स्थान क कहेशे, ते थकी प्रायः परजीवनो विनाश नथी, तेमाटे तेने क्रियास्थान संज्ञा कहेवा य अने पूर्वना पांच स्थानने दंडसमादान एवी संज्ञाछे. एटलुं विशेष जाणवुं.

हवे छठ्ठो क्रिया स्थानक विचारियें छैयें. ते जेम नाम एवी संभावनायें कोइएक पुरुष (आयहेउंवा के०) पोताने अर्थे (णाइहेउंवा के०) ज्ञाति गोत्रीने अर्थे (अगारहेउंवा के०) घरने अर्थे (परिवारहेउंवा के०) परिवार जे दास दासी तेने अर्थे (सयमेवमुसंवयंति के०) स्वयमेव मृषावाद बोले एटले जेम हुं कोइ प्रकारे चोर नथी अथवा महारो परिवार कोइ चोर नथी एवो मृषावाद बोले. (अन्नेणंविमुसंवयावेंति के०) अन्य पासें मृषावाद बोलावे, (मुसंवयंतंपिअन्नंसमणुजाणइत्ति के०) अन्य कोइ मृषावाद बोले तेने अनुमोदे, एरीते निश्चें करण करावण अनुमोदन थकी मृषावाद बोले तेने तत्प्रत्ययिक सावद्यकर्म बंधाय. ए छठ्ठो क्रियास्थानक मृषावाद प्रत्ययिक कह्यो.॥१४॥

॥ दीपिका—अथापरं षष्ठं क्रियास्थानं मृषावादप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषआत्मनिमित्तं ज्ञातिपरिवारनिमित्तंवा स्वयमेव मृषावादं वदति नायं मदीयइत्यादि तथाऽचौरं चौरं वदति तथाऽन्येन मृषावादं वादयति अन्यं मृषावादं वदंतं समनुजानीते।एवं खलु तस्य तत्प्रत्ययिकं सावद्यं कर्माधीयते बध्यते। एतत्षष्ठं क्रियास्थानं मृषावादप्रत्ययिकमाख्यातं । पूर्वोक्तानां पंचानां क्रियास्थानानां सत्यपि क्रियास्थानत्वे प्राय

परोपघातित्वादंडसमादानसंज्ञा कृता । षष्ठादिषु च प्रायोन परघातः स्यादतः क्रियास्था नसंज्ञोच्यते ॥ १४ ॥

॥ टीका—अपरं षष्ठं क्रियास्थानं मृषावादप्रत्ययिकमाख्यायते । तत्रच पूर्वोक्तानां क्रियास्थानत्वे प्रायशः परोपघातोभवतीति कृत्वा दंडसमादानकृता षष्ठादिषुच बाहुल्येन न परव्यापादानं भवतीत्यतः क्रियास्थानमित्येषा संज्ञोच्यते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषः स्वपक्षावेशादाग्रहादात्मनि कृतं निमित्तं यावत्परिवारनिमित्तं वा सद्भूतार्थनिन्हवरूपमसद्भूतोद्भावनस्वभावं स्वयमेव मृषावादं ववति । तद्यथा नाहं मदीयोवा कश्चिच्चौरः सच चौरमपि सद्भूतमप्यर्थमपलपति तथा परमचौरं चौरमिति वदति तथान्येन मृषावादं भाणयति तथान्यांश्च मृषावादं वदतः समनुजानीते । तदेवं खलु तस्य योगत्रिककारणत्रिकेण मृषावादं वदतस्तत्प्रत्ययिकं सावद्यं कर्माधीयते संबध्यते । तदेतत्षष्ठं क्रियास्थानं मृषावादप्रत्ययिकमाख्यातमिति ॥ १४ ॥

अहावरे सत्तमे किरियाठाणे अदिन्नादाणवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहाणामए केइ पुरिसे आयहेउंवा जाव परिवारहेउंवा सयमेव अदिन्नं आदियइ अन्नेणंवि अदिन्नं आदियावेंति अदिन्नं आदियंतं अन्नं समणुजाणइ एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ सत्तमे किरियाठाणे अदिन्नादाणवत्तिएत्ति आहिए ॥ १५ ॥

अर्थ—हवे अपर सातमो क्रिया स्थानक अदत्तादान प्रत्ययिक कहेछे. ते जेम नाम एवी संभावनायें. कोइ एक पुरुष पोताना आत्माने अर्थें ज्ञातिगोत्रीने अर्थें यावत् परिवारने अर्थें पोते अदत्तादान ग्रहण करे, बीजाने अदत्तादान लेवरावे, अदत्तादान बीजो कोइ लेतो होय तेने अनुमोदन आपे, एरीते निश्चें थकी तेने अदत्तादान तत्प्रत्ययिक कर्म बंधाय; एटले सातमो क्रियास्थानक अदत्तादान प्रत्ययिक कह्यो. ॥ १५ ॥

॥ दीपिका—अथाऽपरं सप्तमं क्रियास्थानं अदत्तादानप्रत्ययिकमाख्यायते । इदं प्राग्वत् ॥ १५ ॥

॥ टीका—अथापरं सप्तमं क्रियास्थानं अदत्तादानप्रत्ययिकमाख्यायते । एतदपि प्राग्वज्ज्ञेयं । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषश्चात्मनिमित्तं यावत्परिवारनिमित्तं परद्रव्यमदत्तमेव गृह्णीयादपरंच ग्राहयेद्गृह्णंतमप्यपरं समनुजानीयादित्येवं तस्यादत्तादानप्रत्ययिकं कर्म संबध्यते । इति सप्तमं क्रियास्थानमाख्यातमिति ॥ १५ ॥

अहावरे अठमे किरियाठाणे अज्ञबवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णाम ए केइ पुरिसे णत्थिणं केइकिंविसंवादेंति सयमेव हीणे दीणे डुठे डुम्मणे उहयमणसंकप्पे चिंतासोगसागरसंपविठे करतलपल्लत्थमुहे अट्टझा णोवगए नूमिगयदिठिएज्ञियाइं तस्सणं अज्ञबया आसंसइया चत्तारि ठाणा एवमाहिज्जइ तं कोहे माणे माया लोहे अज्ञबमेव कोहमाणमा यालोहे एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ अठमे किरिया ठाणे अज्ञबवत्तिएत्ति आहिए ॥ १६ ॥

अर्थ—हवे अपर आठमो क्रिया स्थानक अध्यात्मिकप्रत्ययिक नामे कहेले. अध्या त्मिक केहेतां जे कर्म बंधनुं कारण एवो नाव चित्त थकी उपजे, तेमाटे अध्यात्मिक क हिये. ते जेम नाम एवी संनावनायें कोइएक पुरुषले तेने (णत्थिणं केइकिंविसंवादेंति के०) कोइ विखवादनुं कारण नथी. विखवाद एटले परानव तेने कोइ करे नही, तथापि ते पुरुष, (सयमेवके०) पोतेज (हीणेदीणेडुठेडुम्मणेके०) हीन, दीन, डुष्ट, अने डुर्मन एटले ऊंधा मन वालो थाय. (उहयमणसंकप्पे के०) अनवस्थित चित्त संकल्प एवो थको, (चिंतासोगसागरसंपविठे के०) चिंता शोक रूप समुड्मांहे पेगे एवो थको, जे अव स्था करे, ते देखाडेले. (करतलपल्लत्थमुहे के०) हाथना तलाने विषे स्थाप्युंले मुख जेणे एटले गालने विषे हाथ देइने (अट्टज्ञाणोवगए के०) आर्त्तध्यान सहित (नू मिगयदिठिएवियाइं के०) नूमिनी सन्मुख एकाग्रचित्तें जोतो निर्विवेक पणे आर्त्त, रौ ड्, ध्यान ध्यावे (तस्सणंअज्ञबया के०) तेने अध्यात्मनी (आसंसइया के०) आ शंसा मिश्रित (चत्तारिठाणाएवमाइज्जइतं के०) चार स्थानक कहिए. ते कहेले पेहे लो क्रोध, बीजुं मान, त्रीजी माया, अने चोथो लोन (अज्ञबमेव के०) ते पोताना मनथीज उत्पन्नथाय ए क्रोध, मान, माया, अने लोन, ए चारे करी जीवनो मन दोष डुष्ट थायः एरीते निश्चें तेने तत्प्रत्ययिक सावद्य कर्म बंधाय. तेमाटे ए आठमो क्रिया स्थानक आध्यत्मिक प्रत्ययिक एवे नामे कह्यो. ॥ १६ ॥

॥ दीपिका—अथापरमष्टमं क्रियास्थानमाध्यात्मिकमंतःकरणोद्भवमाख्यायते । य था कश्चिन्नरस्तस्य नास्ति कश्चिद्विसंवादयिता परानवकरस्तथाप्यसौ स्वयमेव हीनोदीनो डुष्टोडुर्मनाअपहतमनःसंकल्पः चिंताप्रधानः शोकश्चिंताशोकस्तत्र प्रविष्टः करतले पर्यस्तं स्थितं मुखं यस्य सतथा आर्तध्यानोपगतोनूमिगतदृष्टिर्ध्यायति तस्यैवमाध्यात्मिकानि चित्तोद्भवानि असंशयितानि निःसंशयानि चत्वारि स्थानानिस्युः । तानि चैवमा

ख्यायंते । तद्यथा । क्रोधमानमायालोजस्थानानि । तेच क्रोधमानमायालोनाआत्मोद्भवाः । एनिरेव मनोडुष्टं स्यात् । एवं तस्य तत्प्रत्ययिकमध्यात्मनिमित्तं सावद्यं कर्माधीयते । तदेवमष्टममाध्यात्मिकाख्यं क्रियास्थानमाख्यातं ॥ १६ ॥

॥ टीका–अथापरमष्टमं क्रियास्थानमाध्यात्मिकमित्यंतःकरणोद्भवमाख्यायते । तद्यथा नामकश्चित्पुरुषश्चित्तोपेक्षाप्रधानस्तस्य च नास्ति कश्चिद्विसंवादयिता । न तस्य कश्चिद्विसंवादेन परिजावेनवा सद्भूतोद्भावनेनवा चित्तडुःखमुत्पादयति तथाप्यसौ स्वयमेव वर्णापसदवदीनोडुर्गतवद्दीनोडुश्चित्ततया डुष्टोडुर्मनास्तथोपहतोऽस्वस्थतया मनःसंकल्पो यस्य सतथा चिंतैव शोकइति सागरश्चिंताप्रधानोवा शोकश्चिंताशोकसागरप्रविष्टः । तथानूतश्च यदवस्थोजवति तद्दर्शयति । करतले पर्यस्तं मुखं यस्य सतथाऽहर्निशं जवति तथार्तध्यानोपगतोऽपगतसद्विवेकतया धर्मध्यानदूरवर्ती निर्निमित्तमेव द्वंद्वोपहतवद्ध्यायति । तस्यैवं चिंताशोकसागरावगाढस्य सतआध्यात्मिकान्यंतःकरणोद्भवानि मनःसंश्रितान्यसंशयितानि वा निःसंशयितानि चत्वारि वक्ष्यमाणानि स्थानानि जवंति । तानि चैव समाख्यायंते । तद्यथा क्रोधस्थानं, मानस्थानं, मायास्थानं, लोजस्थानमिति । ते चावश्यं क्रोधमानमायालोजाआत्मनोऽधिजवंत्याध्यात्मिकाएनिरेव सद्भिर्डुष्टं मनोजवति । तदेव तस्य डुर्मनसः क्रोधमानमायालोजवतएवमेवोपहतमनःसंकल्पस्य तत्प्रत्ययिकमध्यात्मनिमित्तं सावद्यं कर्माधीयते संबध्यते । तदेवमेतक्रियास्थानमाध्यात्मिकाख्यमाख्यातमिति॥ १६॥

अहावरे णवमे किरियाठाणे माणवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए केइ पुरिसे जातिमएणवा कुलमएणवा बलमएणवा रूवमएणवा तवमएणवा सुयमएणवा लानमएणवा ईस्सरियमएणवा पन्नामएणवा अन्नतरेणवा मयठाणेणं मत्ते समाणे परं हिलेंति निंदेंति खिंसति गरहति परिजवइ अवमणेति इत्तरिए अय अहमंसि पुण विसिठे जाइकुलबलाइगुणोववेए एवं अप्पाणं समुक्कस्से देहाञ्चुए कम्मवित्तिए अवसेपयाइं तंजहा गप्नाउगप्नं जम्माउजम्मं माराउमारं णरगाउणरगं चंमे थद्धे चवले माणियावि नवइ एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ णवमे किरियाठाणे माणवत्तिएत्ति आहिए॥ १७॥

अर्थ–अथ हवे अपर नवमो क्रियास्थानक मान प्रत्ययिक नामे कहिए बैएं. ते जेम नाम एवी संनावनायें कोइएक पुरुष (जातिमएणवा के०) जाति एटले माता

नो पक्ष, तेना मदें करीने, (कुलमएणवा के०) कुल एटले पितानो पक्ष, तेना मदें करीने, (बलमएणवा के०) शरीरनुं बल, तेना मदें करीने, (रूवमएणवा के०) रूपने मदें करीने, (तवमएणवा के०) तपने मदें करीने, (सुयमएणवा के०) श्रुतज्ञानने मदें करीने, (लाजमएणवा के०) लाजने मदें करीने, (ईस्सरियमएणवा के०) ऐश्वर्य एटले ठकुराइने मदें करीने, (पन्नामएणवा के०) प्रज्ञाना मदें करीने, एटलाना मद (अन्नतरेणवा के०) अथवा अन्य एटले बीजा कोइ (मयघाणेणं के०) मदना स्थानकें करीने (मत्तेसमाणे के०) मातो थतो (परंहिलेंति के०) बीजानी हेलना करे, (निंदेंति के०) निंदा करें, (खिंसति के०) खष्ट करे, (गरहति के०) गर्हा करे, (परिजवइ के०) पराजव करे, (अवमस्रेति के०) अपमान करे, (इत्तरिएअ य के०) ए बापडो जघन्य एटले जातिकुलादिकें हीनछे. (अहमंसिपुणविसिठेजाइकुलबलाइगुणोववेए के०) हुं वली विशेष जाति, कुल, बलादिकगुणेकरी सहितछुं (एवंअप्पाणंसमुक्कस्से के०) एम पोताना आत्माने उत्कर्षे एटले अहंकार करे. हवे एवा मद करनारने विपाक देखाडेछे. (देहाचुए के०) ते पुरुष आ लोक मांहे पण निंदा अने गर्हानुं स्थानक थाय, अने परलोके पण निंदा अने गर्हानुं स्थानक थाय. देहाचुए एटले आ शरीरथकी चवीने परजवे (कम्मबित्तिए के०) कर्मद्वितीय (अवसेपयाइ के०) एतावता कर्मने वश वर्त्ततो चतुर्गतिक संसार मांहे परिच्रमण करे (तंजहा के०) ते कहेछे (गप्नाउगप्नं के०) एक गर्ज थकी मरण पामिने, वली बीजा गर्ज मांहे उपजे. (जम्माउजम्मं के०) एक जन्म थकी बीजुं जन्म पामे, (माराउमारं के०) मरण थकी मरण पामे, (णरगाउणरगं के०) नरक थकी निकलीने वली नरकांतरे नरकमां जइने तीव्र डुःख जोगवे, एटले ते नरकमांहे थी निकलीने, सिंह मत्स्यादिक मांहें उत्पन्न थाय, फरी त्यांथी मरण पामीने तीव्रतर नरकांतरें जाय. एतावता ते (चंमे के०) रौड़ अहंकारी (थद्धे के०) स्तब्ध अनम्र शील (चवले के०) चपल एवा लक्षणेयुक्त (माणियाविजवइ के०) ते अजिमानी पुरुष होय एम निश्चें तेने तत्प्रत्ययिक सावद्य कर्म बंधाय, ए नवमो क्रिया स्थानक मान प्रत्ययिक नामे कह्यो ॥ १७ ॥

॥ दीपिका–अथापरं नवमं क्रियास्थानं मानप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथा कश्चित्पुरुषो जात्यादिगुणोपेतः सन् जातिकुलबलरूपतपःश्रुतलाजैश्वर्यप्रज्ञामदाख्यैरष्टजिर्मदस्थानैरन्यतरेण वा मत्तः परं हीनबुध्या हीलयति, निंदति, जुगुप्सते, गर्हति, परिजवति । यथायमितरोजघन्योहीनोमत्तः कुलादिजिः । अहं पुनर्विशिष्टकुलादिगुणोपेतएवमात्मानमुत्क

र्षयेत् । एवं जात्यादिमदमत्तः सन् इहैव निंद्यः स्यात् । अत्रच जात्यादिमदद्व्यादिसंयो गैर्भंगाज्ञेयाः । तथाहि । जातिमदः कस्यचिन्न कुलमदः, १ कस्यचित्कुलमदएव, न जातिम दः २ कस्यचिद्द्वयं ३ कस्यचिडुभयमपि न. ४ एवं पदद्वयेन चत्वारोभंगाः । पदत्रयेणाष्टौ, पदचतुष्टयेन षोडश, पंचभिः पदैर्द्वात्रिंशत् षड्भिश्चतुःषष्टिः सप्तभिः १२७ अष्टभिः २५६ सर्वत्र मदाभावरूपश्चरमभंगः शुद्धइति । समानी देहाच्चुतोमृतः सन् कर्मद्वितीयः क र्मसहायोऽवशः परवशः प्रयाति भवांतरं । तद्यथा गर्भाज्जर्भ जन्मनएकस्मात्परं जन्म, मा रान्मरणान्मारं मरणांतरं व्रजति नरकतुल्याच्चंडालादिवासान्नरकं रत्नप्रभादिकं याति । अथवा नरकाडुद्धृत्य सिंहमत्स्यादावुत्पद्य पुनरतितीव्रं नरकांतरं याति । तदेवं मानी परपरिभवे सति चंडोरौद्रोऽन्यं हंति तदभावे आत्मानमेव हंति स्तब्धश्चपलो यत्किंचन कारी स्यात् मानी सन् एवं खलु तस्य तत्प्रत्ययिकं माननिमित्तं सावद्यं कर्माधीयते ब ध्यते । नवममेतक्रियास्थानमाख्यातमिति ॥ १७ ॥

॥ टीका—अथापरं नवमं क्रियास्थानं मानप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पु रुषोजात्यादिगुणोपेतः सन् जातिकुलबलरूपतपःश्रुतलाभैश्वर्यप्रज्ञामदाख्यैरष्टभिर्मदस्था नैरन्यतरेणवा मत्तः परमवबुध्या हीलयति तथा निंदति, जुगुप्सते, गर्हति, परिभवति, एतानि चैकार्थिकानि कथंचिद्भेदं चोत्प्रेक्ष्य व्याख्येयानीति । यथा परिभवति तथा दर्श यति । इतरोयं जघन्योहीनजातिकः कुलबलरूपादिभिर्दूरमपभ्रष्टः सर्वजनावगीतोयमि ति । अहं पुनर्विशिष्टजातिकुलबलादिगुणोपेतएवमात्मानं समुत्कर्षयेदिति । सांप्रतं मानोत्कर्षविपाकमाह । (देहाच्चुएइत्यादि) तदेवं जात्यादिमदोन्मतः सन्निहैव लोके गर्हितोभवति । अत्र जात्यादिपदद्व्यादिसंयोगाइष्टव्यास्ते चैवं भवंति । जातिमदः, कस्य चिन्न कुलमदोऽपरस्य कुलमदो,न जातिमदः परस्योभयमपरस्यानुभयमित्येवं पदत्र येणाष्टौ चतुर्भिः षोडशेत्यादि यावदष्टभिः पदैः षट्पंचाशदधिकं शतद्वयमिति । सर्वत्र मदाभावरूपचरमभंगः शुद्धइति । परलोकेऽपिच मानी डुःखभाग्भवतीत्यनेन प्रदर्श्यते । स्वायुषः क्षये देहाच्चुतोभवांतरं गच्छेत्शुभाशुभकर्मा द्वितीयः कर्मपरायत्तत्वादवशः परतं त्रः प्रयाति । तद्यथा गर्भाज्जर्भ पंचेंद्रियापेक्षं तथा गर्भाज्जर्भ विकलेंद्रियेषूत्पद्यमानः पुनर गर्भाज्जर्भमेवं गर्भादगर्भमेतच्च नरककल्पगर्भडुःखापेक्षायामभिहितमुत्पद्यमानडुःखापेक्षया त्विदमभिधीयते । जन्मनएकस्मादपरं जन्मांतरं व्रजति । तथा मरणं मारस्तस्मान्मारांतरं व्रजति तथा नरकदेश्याच्छ्वपाकादिवासाद्रत्नप्रभादिकं नरकांतरं व्रजति । यदिवा नरका त्सीमंतकादिकाडुद्धृत्य सिंहमत्स्यादावुत्पद्य पुनरपि तीव्रतरं नरकांतरं व्रजति । तदेवं मा नटवद्रंगभूमौ, संसारचक्रवाले स्त्रीपुंनपुंसकादीनि बहून्यवस्थांतराण्यनुभवंति । तदेवं मा

नी परपरिन्नवेसति चंडरौद्रोन्नवति परस्यापकरोति तदन्नावे ह्यात्मानं व्यापादयति। तथा स्तब्धश्चपलोयत्किंचनकारी मानी सन्सर्वोप्येतदवस्थोन्नवतीति। तदेवं तत्प्रत्ययिकं माननिमित्तं सावद्यं कर्माधीयते संबध्यते। नवममेतत्क्रियास्थानमाख्यातमिति॥ १७॥

अहावरे दसमे किरियाठाणे मित्तदोसवत्तिएत्ति आहिज्जइ से जहा णामए केइ पुरिसे माइहिंवा पिताहिंवा न्नाइहिंवा न्नइणीहिंवा न्नज्जाहिंवा धूयाहिंवा पुत्तेहिंवा सुएहाहिंवा सद्धिं संवसमाणे तेसिं अन्नयरेसि अहालहुगंसि अवराहंसि सयमेव गरुयं दंमं निवत्तेति तं जहा सीउदगवियडंसि वा कायं उब्बोलित्तान्नवति उसिणोदगवियडेणवा कायं उसिंचित्ता न्नवति अगणिकाएणं कायं उवडहित्तान्नवति जोतेणवा वेतेणवा णेतेणवा तयाइवा कसेणवा बियाएवा लयाएवा पासाइं उद्दालित्तान्नवति दंमेणवा अठीणवा मुठीणवा लेलूणवा कवालेणवा कायंआउडित्ता न्नवति तहप्पगारे पुरिसजाए संवसमाणे डुम्मणा न्नवति पवसमाणे सुमणा न्नवति तहप्पगारे पुरिसजाए दंमपासी दंमगुरुए दंमपुरक्कडे अहिए इमंसि लोगंसि संजलणे कोहणे पिठिमंसियावि न्नवति एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जंति दसमे किरियाठाणे मित्तदोसवत्तिएत्ति आहिए॥ १८॥

॥ अर्थ—अथ हवे अपर दशमो क्रिया स्थानक मित्र दोष प्रत्ययिक कहियेंबैयें. ते जेम नाम एवी संन्नावनायें कोइएक पुरुष माता, पिता, न्नाइ, बेन, स्त्री, बेटी, पुत्र, पुत्रनीस्त्री, तेवहु जाणवी. (सद्धिंसंवसमाणे के०) एटला साथें वसतो थको (तेसिंअन्नयरेसि के०) ते मातापितादिकथी कोइ अनेरो अजाण पणे अनान्नोग थकी (अहालहुगंसि के०) यथा कथंचित् न्हानो डुर्वचन प्रमुखनो अथवा काय थकी हस्त पादादिकनो संघट्ट प्रमुख एवो (अवराहंसि के०) अपराध थये बते (सयमेव के०) पोतेंज क्रोधें करी धमतो थको तेने (गुरुयंदंमंनिवत्तेति के०) महोटो दंम करे. (तंजहा के०) ते कहेबे (सीउदगवियडंसिवा के०) सीतल पाणीयें करी सीतकालने विपे (कायंउब्बोलित्तान्नवति के०) ते अपराधीनु शरीर ठंमापाणी मांहे बोले. एवा अकार्यनो करनार थाय तथा (उसिणोदगवियडेणवाकायंउसिंचित्तान्नवति के०) उष्मकालें अत्यंत उष्ण पाणीयें करीने उष्ण तेलें करीने तेना शरीरनेसिंचे शरीरनुं शोषण करनार थाय, (अगणिकाएणंकायंउवडहित्तान्नवंति के०) अग्निकायें करीने तेना शरीरनुं दहन करनार

थाय, (जोतेणवा के०) जोत्रे करी, (वेतेणवा के०) वेत्रें करी, अथवा (णेतेणवा के०) नेतरे करी, (तयाइवाके०) त्वचायें करी, अथवा (कसेणवाके०) ताजणे चा बखुकें करी, (बियाएवा के०) नाडायें करी, (लयाएवा के०) लता एटले वेलुयें करी, दोरडीयेंकरी (पासाइंउद्दालित्ताभवति के०) तेना पार्श्वभागना चामडाने उखेडनार थाय, (दंमेणवा के०) दंमे करी लाकडीयें करी, (अहीणवा के०) हाडकायें करी, (मुहीणवा के०) मुष्टियें करी, (लेलूणवा के०) पाषाणने कटके करी, (कवालेणवा के०) ठींकरीयें करी, कपालादिकेंकरी, (कायंआउडित्ताभवति के०) तेना शरीरने ता डनार थाय. किंबहुना (तहप्पगारे के०) तथा प्रकारना दंमना करनार एवा (पुरिस जाए के०) पुरुष जाति जे तथा प्रकारना कुकर्मना करनार होए तेनी साथे (संवसमा णे के०) एकवां रहेतां छता सज्जन पुरुष जे माता पितादिक ते पण (डुम्मणाभवंति के०) डुर्मन थइने देशांतर जता रहे पछी (पवसमाणे के०) ते थकी अलगा रहेवा थी (सुमणाभवंति के०) सुमन थाय, एटले तेने छोडयाथी हर्षित थाय. एवा (तह प्पगारे के०) तथा प्रकारना (पुरिसजाए के०) पुरुष जाति जे थोडा अपराधीने पण दंमना देनार, (दंमपासीके०) अल्पापराधने विषे अति कोपकरनार, ते दंडपार्श्वी (दंमगुरु एके०) दंमेंकरी आकरो दंम करे, (दंमपुरेक्कडेके०) तेने सर्व काल दंमज अग्रेसर छे. ते पुरुष (अहिएइमंसिलोगंसिकें०) आलोकने विषे पण पोताना जीवने अहित कारी अने (अ हिएपरंसिलोगंसि के०) परलोकने विषे पण पोताना जीवने अहित कारीछे तेनुं कारण शुं? तोके तेजीव, (संजलणे के०) क्षणे क्षणे ज्वले, (कोहणे के०) क्षणेक्षणे क्रोध करे, (पिहिमंसियाविभवति के०) पृष्ठ मांस भक्षण करनार होय, पुंठे पाछल अव र्णवादनो बोलनार होय, एम निश्चें तेहने तत्प्रत्ययिक एटले ते निमित्तें सावद्य कर्म बंधाय. ए दशमो क्रिया स्थानक मित्र दोष प्रत्ययिक नामे कह्यो. ॥ १० ॥

॥ दीपिका–अथापरं दशमं क्रियास्थानं मित्रदोषप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषः प्रभुकल्पोमातापितृसुत्हृत्स्वजनादिभिः सार्धं संवसन् तेषां मातापित्रादीनाम न्यतमेनाऽनाभोगतोयथाकथंचिल्लघुतमेप्यपराधे स्वयमेवात्मनाक्रोधतोगुरुतरं दंडं वर्तय ति करोति । तद्यथा शीतोदकविकटे शिशिरादावतिशीतोदके कायं शरीरमपराधिनोऽवबो लयिता भवति तथा उष्णोदकविकटेन कायमपसिंचयिता भवति । विकटग्रहणाडष्णतै लकांजिकादिना अग्निकायेन उल्मुकेन तप्तलोहेनवा कायमुपदाहयिता भवति । (जोए णत्ति) जोत्रेण वेत्रेणवा नेत्रोवृद्धविशेषस्तेन कशादिनावा लतयावा शरीरपार्श्वाणि उद्दा लयितुं चर्माणि लुंपयितुं भवति । दंडेन अस्थ्ना मुष्टिना लेष्टुना कपालेन भांडखंडेन कायमु

पताडयिता नवति । तथाविधे पुरुषे स्वल्पापराधेपि महादंडकारिणि एकत्र वासं कुर्वंति मातापित्रादयोडुर्मनसः स्युः । तस्मिन् प्रवसति दूरं गछति सति सहवासिनः सुमनसः सुखिनः स्युः । तथाप्रकारस्तादृशः पुरुषोदंडस्य पार्श्वं दंडपार्श्वं तद्विद्यते यस्यासौ, दंडप्रवृत्तोदंडः पुरस्कृतोयेन सदंडपुरस्कृतोऽस्मिन् लोके स्वस्य परेषां चाऽहितः परलोकेप्यहितः संज्वलनः क्रोधकारी क्रोधनोवधबंधादिषु अविमृश्य प्रवृत्तिकृत् पृष्ठिमांसखादकः परममोंद्घट्टनतः । एवं तस्य स्वल्पापराधेपि महादंडकर्तुस्तद्दंडप्रत्ययिकं सावद्यं कर्माधीयते बध्यते । तदेतद्दशमं क्रियास्थानमाख्यातमिति । अन्ये पुनरष्टमं क्रियास्थानमात्मदोषप्रत्ययिकमाचक्षते । नवमंतु परदोषप्रत्ययिकं । दशमं पुनः प्राणवृत्तिकमिति ॥ १७ ॥

॥ टीका—अथापरं दशमं क्रियास्थानं मित्रदोषप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथानाम कश्चित्पुरुषः प्रभुकल्पोमातापितृसुहृत्स्वजनादिनिः सार्धं परिवसंस्तेषांच मातापित्रादीनामन्यतमे नानानोगतया यथाकथंचि ल्लघुतमेप्यपराधे वाचिके डुर्वचनादिके तथा कायिके हस्तपादादिके संघट्टरूपे कृते सति स्वयमेवात्मना क्रोधध्मातोगुरुतरं दंडं डुःखोत्पादकं निवर्तयति करोति । तद्यथा शीतोदके विकटे प्रभूते शीतेवा शिशिरादौ तस्यापराधकर्तुः कायमधोबोलयिता नवति तथोष्णोदकविकटेन कायं शरीरमपसिंचयिता । तत्र विकटग्रहणाडुष्णतैलेन कांजिकादिनावा कायमुपतापयिता नवति तथाऽग्निकायेनाल्मुकेन तप्तायसावा कायमुपदाहयिता नवति तथा जोत्रेणवा वेत्रेणवा नेत्रेणवा त्वचा वासनादिकपाललतया वाऽन्यतरेण वा दवरकेण ताडनतस्तस्यापराधकर्तुः शरीरपार्श्वाणि उद्दालयितुं चर्माणि लुंपयितुं नवति तथा दंडादिना कायमुपताडयिता नवति । तदेवमल्पापराधिन्यपि महाक्रोधदंडवति तथा प्रकारे पुरुषजाते एकत्र वसति सति तत्सहवासिनोमातापित्रादयोडुर्मनसस्तदनिष्ठाशंकया नवंति तस्मिंश्च प्रवसति देशांतरे गछति गतेवा तत्सहवासिनः सुमनसोनवंति । तथाप्रकारश्च पुरुषजातोऽल्पेप्यपराधे महांतं दंडं कल्पयतीत्येतदेव दर्शयितुमाह । दंडस्य पार्श्वं दंडपार्श्वं तद्विद्यते यस्यासौ दंडपार्श्वी स्वल्पतया स्तोकापराधे कुप्यति दंडं च पातयति । तमप्यतिगुरुमिति दर्शयितुमाह । दंडेन गुरुकोदंडगुरुः । यस्यच महान् दंडोनवति असौ दंडेन गुरुर्नवति । तथा दंडः पुरस्कृतः सदा पुरस्कृतदंडइत्यर्थः । सचैवंनूतः स्वस्य परेषां चास्मिन् लोकेऽस्मिन्नेव जन्मनि अहितः प्राणिनामहितदंडपातनात् तथा परस्मिन्नपि जन्मन्यसावहितस्तच्छीलतया चासौ यस्य कस्यचिदेव येन केनचिदेव निमित्तेन क्षणेक्षणे संज्वलयतीति संज्वलनः सचात्यंतक्रोधनोवधबंधनविछेदादिषु शीघ्रमेव क्रियासु प्रवर्तते तदनावेप्युत्कटद्वेषतया मर्मोद्घट्टनतः पृष्ठिमांसमपिखादेत्तत्तदसौ ब्रूयात् । येनासावपि परः संज्वलयेत् ज्वलितश्चान्येषामपकुर्यात् तं

देवं खलु तस्य महादंडं प्रवर्तयितुस्तदंडप्रत्ययिकं सावद्यं कर्माऽधीयते। तदेतद्दशमं क्रियास्थानं मित्रद्रोहप्रत्ययिकमाख्यातमिति । अपरे पुनरष्टमं क्रियास्थानमात्मदोषप्रत्ययिकमाचक्षते. नवमंतु परदोषप्रत्ययिकंच. दशमं पुनः प्राणवृत्तिकं क्रियास्थानमिति ॥ १७॥

अहावरे एक्कारसमे किरियाठाणे मायावत्तिएत्ति आहिज्जइ जे इमे नवंति गूढायारा तमोकसिया उलुगपत्तलहुया पव्वयगुरुया ते आयरियावि संता अणारियाउ नासाउवि पउंजंति अन्नहासंतं अप्पाणं अन्नहामन्नंति अन्नंपुठ अन्नंवागरंति अन्नं आइक्खियव्वं अन्नंआइक्खंते॥१८॥से जहा णामए केइ पुरिसे अंतोसल्ले तं सल्लं णोसयं णिहरति णोअन्नेण णिहरावेंति णोपडिविद्धंसेइ एवमेव निण्हवेइ अविउट्टमाणे अंतोअंतोरियाइ एवमेव माई मायं कट्टु णोआलोएइ णोपडिक्कमेइ णोणिंदइ णोगरहइ णोविउट्टइ णोविसोहेइ णोअकरणाए अब्भुट्ठेइ णोअहारिहं तवोकम्मं पायच्छित्तं पडिवज्जइ माइ अस्सिंसलोए पच्चायाइ माइ परंसिलोए पच्चायाइ निंदइ गरहइ पसंसइ णिच्चरइ णनियट्टइ णिसिरियं दंडंछाएति माइ असमाहड सुहलेस्सेयावि नवइ एवं खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ एक्कारसमे किरियाठाणे मायावत्तिएत्ति आहिए ॥ २०॥

अर्थ—हवे अपर अगिआरमो क्रिया स्थानक मायाप्रत्ययिक कहियें बैयें (जेंइमे नवंति के०) जे आ जगत्मांहे पुरुषछे ते कया पुरुष तोके, (गूढायारा के०) गूढाचारी एटले धूतारा, ठगारा, गंठीछोडा प्रमुखछे ते नाना प्रकारना उपायें करीने लोकने विश्वास उपजावीने वंचे. (तमोकसिया के०) अंधाराने विषे विचरनारा, अर्थात् लोक थकी छाना क्रियाना करनारा, (उलुगपत्तलहुयाके०) ते पोतें जाते घूवडनी पांख थकी पण हलकाछे परंतु (पव्वयगुरुया के०) पोताने पर्वत थकी पण महोटा माने, (तेआयरियाविसंता के०) ते आर्य देशमां उत्पन्न थया होय तेम छतां पण परने वंचवाने अर्थे शठ पणे, पोताने गोपववा नणी (अणारियाउनासाउविपउंजंति के०) अनार्य देशनी नाषा बोले, अथवा पोतानी कल्पित नाषा जे बीजाथी अजाणी होय तेवी नाषा बोले, (अन्नहासंतं के०) लिपी पण तेवी अजाणी अन्य लखे (अप्पाणंअन्नहामन्नंति के०) पोतें वली बीजी रीते माने, (अन्नंपुठ के०) अन्य कांइ पुछे थके (अन्नंवागरंति के०) अन्य कहे, (अन्नंआइक्खियव्वं के०) अन्य कांहिं

एक प्ररूपवुंछे तेने ठेकाणे (अन्नंआइरकंते के०) अन्य बीजुं कांइक जुदूंज प्ररूपे ॥ १९॥ (सेजहाणामए के०) ते यथादृष्टांते नाम एवी संजावनायें जेम. (केइपुरिसे के०) कोइ एक पुरुष संग्राम थकी निकल्यो, (अंतोसल्ले के०) तीर जालादिकना शल्यें करी सशल्य छतो (तंसल्लं के०) ते शल्यने (णोसयंणिहरति के०) वेदना थकी बीहितो थको पोतें पोताने हाथे काढे नही, (णोअन्नेणणिहरावेंतिके०) बीजाने हाथे पण कढावे नही, (णोपडिविद्धंसेइ के०) तथा वैद्यने उपदेशें औषधादिक प्रयोगें करीने पण ते शल्यनो विध्वंस थशे नही (एवमेव के०) एम जाणीने, (निएहवेइ के०) ते शल्यने गोपवी राखे. (अविउट्टमाणे के०) पुब्यो थको कहे नही, (अंतोअंतोरियाइके०) ते दुःखें पीडयो थको माहोमांहे दुःखी थाय, (एवमेव के०) एम ते (माइमायंकट्टु के०) मायावी पुरुष, माया शल्ये करीने तेणे जे कोइ अकार्य कस्या होय ते (णोआलोएइ के०) गुरु समक्ष आलोवे नही (णोपडिकमेइके०) पडिकमे नहीं (णोणिंदइ के०) आत्मानी साखें निंदे नहीं, (णोगरहइ के०) परसाक्षीक गर्हे नहीं (णोविउट्टइ के०) तेवा अकार्य करवा थकी निवृत्तिपामे नहीं (णोविसोहेइ के०) शुजजाव रूप पाणीयें करी ते अतिचारनुं कलंक पखाले नहीं, (णोअकरणाएअप्भुठेइ के०) तेवा अकार्यने अणकरवाने उठे नहीं एटले अण करवानो उद्यम न करे, (णोअहारिहंतवोकम्मंपायच्छित्तपडिवज्जइ के०) यथायोग्य तप कर्म रूप प्रायश्चित पडिवजे नहीं. एरीतें (माइ के०) ते मायावी पुरुष (असिंसलोएपच्चायाइके०) आ लोक मांहे पण अविश्वासनी प्रसिद्धि पामे (माइपरंसिलोएपच्चायाइ के०) मायावी पुरुष परलोके नरकादिक पीडाना स्थानकने विषे वली वली अरहट्ट घटिकाने न्यायें गतिआगति करे, तथा मायावी पुरुष परनी (निंदइ के०) निंदा करे, (गरहइ के०) गर्हा करे (पसंसइ के०) अने पोतानी पोते प्रशंसा करे, (णिच्चरइ के०) अकार्यने विषे रती करे, (णनियट्टइ के०) अकार्य थकी निवर्त्ते नहीं (णिसिरियंदंमछाएति के०) अकार्य करीने पोतानो अपराध ढांकी राखे एरीते (माइअसमाहड के०) मायावी पुरुष अपहारे एटले त्यागकरे; शेंनो त्यागकरे? ते कहेछे. (सुहलेस्सेयाविजवइ के०) शुज लेश्यानो त्याग करे अने सर्व कालें अशुज लेश्यायें करी प्रवर्त्तमान थको होए एरीते निश्चे तेने तत्प्रत्ययिक एटले ते निमित्तें सावद्य कर्मबंधाय. एटले अगीआरमो क्रिया स्थानक मायाप्रत्ययिक नामे कह्यो. ॥ २० ॥

॥ दीपिका—अथापरमेकादशं क्रियास्थानमाख्यायते । तद्यथा । ये केचनामी जवंति पुरुषाः । किंजूताः । गूढाचारागलकर्तकग्रंथिछेदकादयस्ते बहूपायैर्विश्वासमुत्पाद्य, विरू

पं कुर्वंति चंडप्रद्योतादेरनयकुमारादिवत् तमसि कषितुं शीलं येषांते तमःकषिणस्तएव तमःकाषिकाः पराविज्ञाताः क्रियाः कुर्वंतीत्यर्थः । तेच उलूकपिछवल्लघवोपि पर्वतवगु रुमात्मानं मन्यंते आर्याअपि संतस्ते परव्यामोहार्थमनार्यनाषा (विउवंति) प्रयुंजंते अन्यथा स्थितमात्मानमन्यथा साध्वाचारेण मन्यंते व्यवस्थापयंति अन्यत् पृष्ठामायया ऽन्यदेव वदंति आम्रान् पृष्टा निंबान् वदंति । व्याकरणं पृष्टस्तदज्ञस्तर्कमवतारयति । यथा वा शरदि वाजपेयेन यजेतइत्यस्य वाक्यस्यार्थं पृष्टस्तदर्थानभिज्ञः कालविलंबार्थं शर त्कालमेव वर्णयति (अन्नमाइस्कियवंति) अन्यस्मिन्नर्थे कथयितव्ये ऽन्यमेवाख्यांति ॥ १ए॥ (सेजहेति) तद्यथानाम कश्चित्पुरुषः संग्रामान्निर्गतेंऽतर्मध्ये शल्यं यस्य सोंतःशल्यः सवे दनानीतः स्वयं शल्यं ननिर्हरति नकुषति नाप्यन्येन कर्षयति । नापि वैद्योपदेशादौषध प्रयोगैः प्रतिध्वंसयति विनाशयति अन्येन दृष्टस्तछल्यं निन्हुतेऽपलपति तेन शल्येन (अ विउट्टमाणेत्ति) पीडयमानः (अंतोअत्ति) मध्ये पीडयमानोपि रीयते व्रजति वेदनां स हमानोपि क्रियासु प्रवर्त्ततइत्यर्थः । दृष्टांतं योजयति (एवमेव मायीति) यथा सशल्यो डुःखनाग्नवति एवमेव मायी, कृतं कार्यं निगूहयन् मायां कृत्वाऽन्यस्मै नालोचयति नकथयति न तस्मात्स्थानात्प्रतिक्रमति न निवर्त्तते न आत्मसाक्षिकं निंदति नापिपरसा क्षिकं गर्हति आलोचनार्हसमीपे गतोनापि च जुगुप्सते (नविउट्टइत्ति) न वित्रोटयत्यपन यति मायाशल्यं नविशोधयति नापि पुनस्तदाकरणतयाऽन्युत्तिष्ठते नापि यथार्हं तपःक र्मरूपं प्रायश्चित्तं प्रतिपद्यते । तदेवं मायावी अस्मिन् लोकेऽविश्वासतया प्रत्याख्यातिं याति । यडुक्तं । मायाशीलः पुरुषोयद्यपि, नकरोति कंचिदपराधं ॥ सर्पइवाऽविश्वास्यो नवति तथाप्यात्मदोषहतइति ॥ तथा मायावी परस्मिन् लोके नरकतिर्यगादिषु प्रत्या याति नूयोनूयोयाति (निंदंगाहयति) परं निंदयित्वा आत्मप्रशंसया तुष्यति । एवंचा सौ लब्धप्रसरोऽधिकं निश्चरति तथाविधानुष्ठायी नवति । तत्रच गृद्धस्तस्मान्मातृस्थाना न्ननिवर्त्तते दंडं निसृज्य हिंसां कृत्वा प्रछादयत्यपलपति अन्यस्यवा मस्तके क्षिपति समाया वी असमाहृतशुनलेश्योऽनंगीकृतशुनध्यानश्चापि नवति । एवं खलु तस्य तत्प्रत्ययि कं मायाशल्यप्रत्ययिकं सावद्यं कर्माधीयते । एतदेकादशक्रियास्थानं मायाप्रत्ययिकमा ख्यातमिति ॥ २० ॥

॥ टीका—अथापरमेकादशं क्रियास्थानमाख्यायते । तद्यथा ये केचनामी नवंति पु रुषाः । किंविशिष्टाः । गूढाआचारायेषां ते गूढाचारागलकर्तकग्रंथिछेदादयस्तेच ना नाविधैरुपायैर्विश्रंनमुत्पाद्य पश्चादपकुर्वंति प्रद्योतादेरनयकुमारादिवत् । तथा माया शीलत्वेनाप्रकाशकचारिणस्तमसि कषितुं शीलं येषांते तमसिकाषिणस्तएवच तमः

काषिकाः पराऽविज्ञाताः क्रियाः कुर्वंतीत्यर्थः । तेच स्वचेष्टयैवोलूकपत्रवल्लघवः कौशिक पिञ्छवल्लघीयांसोपि पर्वतवद्गुरुमात्मानं मन्यंते । यदिवा कार्यप्रवृत्तेः पर्वतवन्नो स्तंज यितुं शक्यंते ते चाऽऽर्यदेशोत्पन्नाअपि संतः शाठ्यादात्मप्रछादनार्थमपरजयोत्पादनार्थं चाऽनार्यजाषाः प्रयुंजंते परव्यामोहार्थं स्वमतिपरिकल्पितजाषानिरपराऽविदितान्निर्जाषं ते तथाऽन्यथाऽव्यवस्थितमात्मानमन्यथासाध्वाकारेण मन्यंते व्यवस्थापयंति तथाऽन्यत्पृष्ठामातृस्थानतोऽन्यदाचक्षते । यथाम्रान् पृष्टाः कोविदारकानाचक्षते । वादकालेवा कश्चिन्नाथवादितया व्याकरणे प्रवीणस्तर्कमार्गमवतारयति । यथावा शरदि वाजपेयेन यजेतेत्यस्य वाक्यस्यार्थं पृष्टस्तदर्थानजिज्ञः कालातिपातार्थं शरद्कालं व्यावर्णयति । तथाऽन्यस्मिंश्चार्थे कथयितव्येऽन्यमेवार्थमाचक्षते । तेषां सर्वार्थविसंवादिनां कपटप्रपंचचतुराणां विपाकोद्भवनाय दृष्टांतं दर्शयितुमाह ॥ ११ ॥ (सेजहेत्यादि) यथानाम कश्चित्पुरुषः संग्रामादपक्रांतोंऽतर्मध्ये शल्यं तोमरादिकं यस्य सोंऽतःशल्यः सच शल्यघट्टनवेदनाजीरुतया तच्छल्यं न स्वतोनिर्हरत्यपनयति उद्धरति तथाप्यन्येन नोद्धारयति नापि तच्छल्यं वैद्योपदेशेनौषधोपयोगादिनिरुपायैः प्रतिध्वंसयति विनाशयति अन्येन केनचित्पृष्टोवाऽपृष्टो वातच्छल्यं निष्प्रयोजनमेव निन्हुतेऽपलपति तेन च शल्येनासावंतर्वर्तिना (अविउट्ट माणेत्ति) पीड्यमानः (अंतोत्ति) मध्येमध्ये पीड्यमानोपि रीयते व्रजति तत्कृतां वेदनाम सहमानः क्रियासु प्रवर्ततइत्यर्थः । सांप्रतं दार्ष्टांतिकमाह । (एवमेवेत्यादि) यथाऽसौ स शल्योऽङःखजाग्जवत्येवमेवासौ मायी मायाशल्यवानन्यत्कृतमकार्यं तन्मायया गूहयन् मायां कृत्वा न तां मायामन्यस्मै आलोचयति कथयति नापि तस्याः स्थानात्प्रतिक्रामति न ततोनिवर्तते नाप्यात्मसाक्षिकं तन्मायाशल्यं निंदति । तद्यथा धिङ्मां यदहमेवंजूतमकार्यं कर्मोदयात्कृतवांस्तथा नापि परसाक्षिकं गर्हति आलोचनार्हसमीपे गतोनापि च जुगुप्सते तथा (नोविउट्टत्ति) नापि तन्मायाख्यं शल्यमकार्यकरणात्मकं विविधमनेकप्रकारं त्रोटयत्यपनयति । यद्यस्यापराधस्य प्रायश्चित्तं तत्तेन पुनस्तदकरणतया निवर्त्तयतीत्यर्थः।नापि तन्मद्यादिकमकार्यं सेवित्वा लोचनार्हायात्मानं निवेद्य,तदकार्यकरणतयाऽन्युत्तिष्ठते प्रायश्चित्तं प्रतिपद्यापि नोद्युक्तविहारी जवतीत्यर्थः। तथा नापि गुर्वादिनिरजिधीयमानोपि यथार्हमकार्यनिर्वहणयोग्यं प्रायश्चित्तं शोधयतीति । प्रायश्चित्तं तपःकर्मविशिष्टं चांद्रायणाद्यात्मकं प्रतिपद्यते ऽन्युपगछति । तदेवं मायया सत्कार्यप्रछादकोऽस्मिन्नेव लोके मायावीत्येवं सर्वकार्येष्वेवाविश्रंजणत्वेन प्रत्यायाति प्रख्यातिं याति तथाजूतश्च सर्वस्यापि विश्वास्योजवति । तथाचोक्तं । मायाशीलः पुरुषइत्यादि । तथातिमायावित्वादसौ परस्मिन् लोके जन्मांतराऽवाप्तौ सर्वाऽधमेषु यातनास्थानेषु नरकतिर्यगादिषु पौनःपुन्येन प्रत्यायाति जूयोजूयस्तेष्वेवारघट्टघटीयंत्रन्यायेन प्रत्यागछतीति

तथा नानाविधैः प्रपंचैर्वंचयित्वा. परं निंदति जुगप्सते । तद्यथाऽयमज्ञः पशुकल्पोनानेन किमपि प्रयोजनमित्येवं परं निंदयित्वाऽत्मानं प्रशंसयति । तद्यथा ह्यसावपि मया वंचितइत्येवमात्मप्रशंसया तुष्यति । तथा चोक्तं । येनापत्रपते साधुरसाधुस्तेन तुष्यतीति । एवं चासौ लब्धप्रसरोऽधिकं निश्चयेन वा चरतीति तथाविधानुष्ठायी नवतीति निश्चरति । तत्रच गृद्धःसंस्तस्मान्मातृस्थानान्न निवर्तते तथासौ मायावलेपेन दंडं प्राण्युपमर्दकारणं निसृज्य पातयित्वा पश्चाच्छादयत्यपलपति अन्यस्य चोपरि प्रक्षिपतिसच मायावी सर्वदा वंचनपरायणः संस्तन्मनाः सर्वानुष्ठानेष्वेवंनूतोनवति । असमाहृताऽनंगीकृता शोननना लेश्या येन सतथार्त्तध्यानोपहततयाऽसावशोननलेश्यइत्यर्थः । तदेवमपगतधर्मध्यानोसमाहितोशुद्धलेश्यश्चापि नवति । तदेवं खलु तस्य तत्प्रत्ययिकं मायाशल्यप्रत्ययिकं सावद्यं कर्माऽधीयते । तदेकादशं क्रियास्थानं मायाप्रत्ययिकं व्याख्यातं ॥ २० ॥

अहावरे बारस्समे किरियाठाणे लोनवत्तिएत्ति आहिज्जइ जे इमे नवंति तंजहा आरन्निया आवसहिया गामंतिया कण्हुईरहस्सिया णो बहुसंजया णोबहुपडिविरया सव्वपाणनूतजीवसत्तेहिं ते अप्पणो सच्चामोसाइं एवं विउंजंति अहं ण हंतव्वो अन्ने हंतव्वा अहं ण अज्जावेयव्वो अन्ने अज्जावेयव्वा अहं ण परिघेतव्वो अन्ने परिघेतव्वा अहं ण परितावेयव्वो अन्ने परितावेयव्वा अहं ण उद्दवेयव्वो अन्ने उद्दवेयव्वा एवमेव ते इत्थिकामेहिं मुच्छिया गिद्धा गढिया गरहिया अज्झोववन्ना जाव वासाइं चउपंचमाइं छद्दसमाइं अप्पयरोवा नुज्जयरोवा नुंजित्तुंनोगनोगाइं कालमासे कालं किच्चा अन्नयरेसु आसुरिएसु किब्बिसिएसु ठाणेसु उववत्तारो नवंति ततोविप्पमुच्चमाणे नुज्जोनुज्जो एलमूयत्ताए तमूयत्ताए जाइमूयत्ताए पच्चायंति एव खलु तस्स तप्पत्तियं सावज्जंति आहिज्जइ डुवालसमे किरियाठाणे लोनवत्तिएत्ति आहिए ॥ २१ ॥

अर्थ–हवे अपर बारमो क्रियास्थानक लोनप्रत्ययिक कहिए बैयें. (जेइमेनवंति के०) जे आगल कहेशे ते पुरुष कोण? (तंजहा के०) ते कहेछे. (आरन्निया के०) अरण्यमां वसनारो, कंदमूलफलाहारी, वृक्षने मूले वसनारो, वली (आवसहिया के०) कोइएक पानडानी पर्णकूटी करीने तेमां रहे, (गामंतिया के०) तथा कोइएक आजीविका निमित्तें ग्रामने समीपें निवास करी रहे, (कण्हुईरहस्सिया के०) कोइएक का

र्यने विषे रहस्यना करनार, ए सर्व प्रायः त्रसजीवोनी विराधना नकरे परंतु एकेंद्रियनी विराधनायें उपजीवन करे, (णोबहुसंजया के०) ते घणा संयत नहीं, (णोबहुपडिविरया के०) घणी हिंसा थकी निवर्त्त्या नथी, एटले सर्व प्राणातिपात विरमणव्रतादिकने विषे न प्रवर्त्ते; किंतु? द्रव्य थकी केटलाएक व्रत पाले, अने सर्व विरतिनुं कारण जे सम्यक् दर्शनछे, ते गुण तेमांहे नथी ते कारणे, (सव्वपाणभूतजीवसत्तेहिं के०) सर्व प्राणी, भूत, जीव, अने सत्वथकी अविरत, हिंसा थकी अविरत (तेअप्पणो के०) ते पारखंभी पोते, (सच्चामोसाइं के०) घणां सत्यामृषावचन (एवंविउंजंति के०) एम आगल केशे. जेरीतें बोले तेज कहेछे. (अहंणहंतव्वो के०) हुं ब्राह्मण पणा थकी मने दंमादिकें हणवो नही, (अन्नेहंतव्वा के०) अन्य शूद्रादिकने हणवा. (अहंणअज्जावेयव्वो के०) तथा हुं वर्णोत्तम छुं, माटे मने आज्ञा करवी नहीं एटले मने कांइ आदेश आपवो नही. तथा (अन्नेअज्जावेयव्वा के०) शूद्रादिक आज्ञापयितव्यछे एटले तेमने आदेश आपवो. (अहंणपरिघेतव्वो के०) हुं वर्णोत्तमछुं, माटे मने बलात्कारें ग्रहण करवो नही, (अन्नेपरिघेतव्वा के०) अन्य शूद्रादिकने बलात्कारें ग्रहण करवा. (अहंणपरितावेयव्वो के०) तथा मने परितापवो नही, (अन्नेपरितावेयव्वा के०) अन्य शूद्रादिकने परितापवा. (अहंणउद्दवेयव्वो के०) तथा मने उपद्रव करवो नही, तथा जीव, काया थकी रहित करवो नही, (अन्नेउद्दवेयव्वा के०) अन्य शूद्रादिकने उपद्रवो करवा. एम ते परपीडाना उपदेशना करनार मूढ, असंबंध प्रलापी (एवमेवतेइत्थिकामेहिंमुच्छिया के०) एरीते पूर्वोक्त प्रकारे ते मूढ परमार्थना अजाण थका स्त्रियादिकना कामभोगने विषे मूर्छित थका (गिद्धा के०) गृद्ध एटले ते कामभोगना अभिलाषी छता, (गढिया के०) कामभोगने विषे आसक्त छता (गरहिया के०) निंदवा योग्य, अत्यंत आसक्त छता (अज्झोववन्ना के०) अध्युपपन्न एटले कामभोगने विषे एकाग्र चित्त थया छता (जाववासाइंचउपंचमाइं के०) यावत् चार पांच वर्ष सुधी अथवा (छद्दसमाइं के०) छ अथवा दश वर्ष एटलो काल तेमांहे ते तीर्थिक (अप्पयरोवा के०) अल्पतर एटले अल्प काल सुधी (भुज्जयरोवाके०) अथवा घणा काल सुधी घर वास छांमीने (भुंजित्तुभोगभोगाइं के०) वली काम भोग जे शब्दादिक विषयछे तेने धर्मने पांखमे भोगवीने, (कालमासे कालंकिच्चा के०) मरण प्रस्तावे काल करीने कांइक बालतपना प्रभावथी (अन्नयरेसु आसुरिएसु किव्विसिएसु ठाणेसु उववत्तारो भवंतिके०) तेने अनेरा आसुरिक किल्विषीने स्थानकें उपजवुं थाय, (ततोविप्पमुच्चमाणे के०) ते स्थानकथी आयुष्यने क्षये चवीने (भुज्जोभुज्जोएलमूयत्ताए के०) वलीवली मनुष्य भव पामे, तोपण एल एटले बोडा, काणा, अथवा मूयत्ता एटले मुंगा तथा

(तमूयत्ताएजाइमूयत्ताएपच्चायंति के०) ते जात्यंध एटले जन्म थकी अंध, तथा जन्म थकी बहेरा, एवा थाय. एम प्रत्यागच्छंति एटले फरीने आ लोकमां आवेछे. एरीते निश्चे थकी तेने तत्प्रत्ययिक एटले ते निमित्ते सावद्य कर्म बंधाय. ए बारमो लोनप्रत्ययिक नामे क्रिया स्थानक कह्यो. ॥ २१ ॥

॥ दीपिका—एतान्येकादश क्रियास्थानानि सामान्येनाऽसंयतानां नवंति । इदंतु द्वादशं क्रियास्थानं पाखंडिकानुद्दिश्य कथ्यते ॥ अथापरं द्वादशं क्रियास्थानं लोनप्रत्ययिक माख्यायते । तद्यथा । यइमे नवंत्यारण्यकाअरण्यवासिनआवसथिकाउटजवासिनोग्रा मांतिकाग्रामादिकमुपजीवंतोग्रामस्यांते समीपे वसंतीति (कण्हुई) क्वचित्कार्ये मंडल प्रवेशादिके रहस्यं येषां ते क्वचिद्राहसिकास्तेच न बहुसंयतान सर्वसावद्यनिवृत्ताश्च प्राय इत्यर्थः । एतएव न बहुविरतान सर्वव्रतपालकाः किंतु? इव्यतः कतिपयव्रतानावतः स म्यक्त्वानावात् । एतदेवाह । (सव्वपाणेत्ति) तेआरण्यकादयः सर्वप्राणिनूतजीवसत्वेन्य आत्मना स्वतोविरताः सत्यामृषानूतानि वाक्यान्येवं वक्ष्यमाणनीत्या वियुंजंति विशेषे ण प्रयुंजंति कथयंतीत्यर्थः । तद्यथाहं ब्राह्मणत्वाद्दंडादिनिर्न हंतव्योऽन्येशूद्रत्वाध्दंतव्याः । तथा च तद्वाक्यं शूद्रं व्यापाद्य प्राणायामं जपेत् । तथा कुड्सत्वानामनस्थिकानां शकटना रमपि व्यापाद्य ब्राह्मणं नोजयेदित्यादि । तथाहं न आज्ञापयितव्योऽन्येतु मत्तोऽधमाः स मापयितव्याः । नाहं परितापयितव्योऽन्ये परितापयितव्याः । अहं मूल्येन कर्मकरणा य न ग्राह्योऽन्ये ग्राह्याः । नाहमपद्रावयितव्योजीवितादपरोपयितव्योऽन्येत्वपद्रावयित व्याः । तदेवं तेषां परपीडोपदेशान्न प्राणातिपातविरतिव्रतमस्ति । उपलक्षणान्मृषावा दादत्तादानविरतिव्रतानावोपि ज्ञेयः । तुर्यव्रतमाश्रित्याह । (एवमेवत्ति) एवं पूर्वोक्त प्रकारेण स्त्रीषु कामेषु च मूर्छितागृध्दाग्रथिताअध्युपपन्नाः । कियंतं कालमासक्ताइत्याह । (जाववासाइत्ति) यावद्वर्षाणि चतुःपंचषद्दशकानि । अयं च मध्यमः कालः । एताव त्कालग्रहणं च सानिप्रायं । प्रायस्तीर्थिकाअतिक्रांतवयसएव व्रजंति तेषां च एतावानेव कालः संनाव्यते । यदिवा मध्यग्रहणात्ततऊर्ध्वमधश्च गृह्यतइत्याह । तस्माच्च उपात्ता त्कालादल्पतरः प्रनूततरोवापि कालः स्यात् । तत्रच ते त्यक्त्वापि गृहवासं नुक्त्वापि नो गान् स्त्रीनोगान् स्त्रीनोगे सत्यवश्यं शब्दादयोनोगनोगास्तान् नुक्त्वा ते हि वयं प्रव्रजिता इति नच नोगेन्योनिवृत्ताअज्ञानित्वात्ते एवंनूतपरिणामाः कालमासे स्वायुःक्षये कालं कृत्वा विकृष्टतपसोपि आसुरिकेषु किल्बिषिकेषु स्थानेषूत्पादयितारोनवंति । तस्मादपि स्थानाद्विप्रमुच्यमानाश्च्युताएडमूकत्वेनोत्पद्यंते । यथा एडकोव्यक्तवाक् तथायमपि । (त मूयत्ताएत्ति) तमस्त्वेन जात्यंधतयाऽत्यंताज्ञानावृततया वा जातिमूकत्वेनापगतवा

चइह प्रत्यायांति । तदेवं तेषां तीर्थिकानां तत्प्रत्ययिकं सावद्यानुष्ठाननिमित्तं सावद्यं कर्माधीयते । तदेतल्लोजप्रत्ययिकं द्वादशं क्रियास्थानमाख्यातमिति ॥ २१ ॥

॥ टीका–एतानि चानर्थदंडादीनि एकादश क्रियास्थानानि सामान्येनाऽसंयतानां नवंति । इदंतु द्वादशं क्रियास्थानं पाखंडिकानुदिश्याऽनिधीयते (अहावरेइत्यादि) एकादशात् क्रियास्थानादनंतरमथापरं द्वादशं क्रियास्थानं लोजप्रत्ययिकमाख्यायते । तद्यथा । य इमे वक्ष्यमाणाअरण्ये वसंत्यरण्यकास्ते च कंदमूलफलाहाराः संतः केचन वृक्षमूले वसंति, केचनावसथेषूटजाकारेषु गृहेषु, तथापरे ग्रामादिकमुपजीवंतोग्रामस्यांते समीपे वसंतीति ग्रामांतिकास्तथा क्वचित्कार्ये मंडलप्रवेशादिके रहस्यं येषांते क्वचिद्राहसिकास्तेच न बहुसंयतान सर्वसावद्यानुष्ठानेन्योनिवृत्ताः । एतडुक्तं नवति । नबाहुल्येन त्रसेषु दंडसमारंनं विदधति एकेंद्रियोपजीविनस्त्वविगानेन तापसादयोनवंतीति तथा न बहुविरता न सर्वेष्वपि प्राणातिपातविरमणादिषु व्रतेषु प्रवर्तंते किंतु? द्रव्यतः कतिपयव्रतव्रतिनोन नावतोमनागपि तत्करणस्य सम्यग्दर्शनस्यानावादित्यनिप्रायः । इत्येतदाविर्नावयितुमाह । (सव्वपाणेत्यादि) ते ह्यारण्यादयः सर्वप्राणिनूतजीवसत्वेन्यआत्मना स्वतोविरतास्तडुपमर्दकारंनादविरताइत्यर्थः । तथा पाषंडिकाआत्मना स्वतोबहूनि सत्यामृषानूतानि वाक्यान्येवं वक्ष्यमाणनीत्या विशेषेण युंजंति प्रयुंजंति ब्रुवतइत्यर्थः । यदि वासत्यान्यपि तानि प्राण्युपमर्दकत्वेन मृषानूतानि सत्यामृषाण्येवं ते प्रयुंजंतीति दर्शयति । तद्यथाऽहं ब्राह्मणत्वादंडादिनिर्न हंतव्योऽन्येतु शूद्रत्वाद्धंतव्याः । तथाहि । तद्वाक्यं । शूद्रं व्यापाद्य प्राणायामं जपेत् किंचिद्वा दद्यात् तथा क्षुद्रसत्वानामनस्थिकानां शकटनारमपि व्यापाद्य ब्राह्मणं नोजयेदित्यादि । अपरं चाहं वर्णोत्तमत्वात् नाज्ञापयितव्योन्येतु मत्तोऽधमाः समाज्ञापयितव्यास्तथा नाहं परितापयितव्योऽन्येतु परितापयितव्यास्तथाहं वेतनादिना कर्मकरणाय न ग्राह्योऽन्येतु शूद्राग्राह्याइति । किंबहुनोक्तेन नाहमुपद्रावयितव्योजीवितादपरोपयितव्योऽन्येतु अपरोपयितव्याइति । तदेवं तेषां परपीडोपदेशनतोऽतिमूढतयाऽसंबद्धप्रलापिनामज्ञानावृतानामात्मंनरीणां विषमदृष्टीनां न प्राणातिपातविरतिरूपव्रतमस्त्यस्य चोपलक्षणार्थत्वात् मृषावादादत्तादानविरमणानावोप्यायोज्यः । अधुना त्वनादिनावान्यासाडुस्त्यजत्वेन प्राधान्यात् सूत्रेणैवाब्रह्माधिकृत्याह । (एवमेवेत्यादि) एवमेव पूर्वोक्तेनैव कारणत्वेनातिमूढत्वादिना परमार्थमजानास्ते तीर्थिकाः स्त्रीप्रधानाः कामाः स्त्रीकामाः । यदिवा स्त्रीषु कामेषु च शब्दादिषु मूर्छितागृद्धाग्रथिताअध्युपपन्नाः । अत्र चात्यादरख्यापनार्थं प्रनूतपर्यायग्रहणं । एतच्च स्त्रीषु शब्दादिषुच प्रवर्तनं प्रायः प्राणिनां प्रधानं संसारकारणं । तथा चोक्तं । मूलमेयमहम्मस्स, महादोससमु

स्सयमित्यादि । स्त्रीसंगासक्तस्यावश्यंनाविनी शब्दादिविषयासक्तिरित्यतः स्त्रीकामग्रहणं। तत्र चासक्तायावंतं कालमासते तत्सूत्रेणैव दर्शयति । याव दर्षाणि चतुःपंचपड्दशकानि । अयंच मध्यमकालोगृहीतः । एतावत्कालोपादानं च सानिप्रायं प्रायस्तीर्थिकाअतिक्रांतवयसएव प्रव्रजंति तेषां चैतावानेव कालः संनाव्यते । यदिवा मध्यग्रहणाच्चतऊर्ध्वमधश्च गृह्यते इति दर्शयति । तस्माच्चोपात्तादल्पतरः प्रजूततरोवापि कालोनवति । तत्रच ते त्यक्त्वापि गृहवासं नुक्त्वा नोगन्नोगान् इति स्त्रीनोगे सति अवश्यं शब्दादयोनोगाः नोगन्नोगास्तान्नुक्त्वा तेच किल वयं प्रव्रजिताइति नच नोगेन्योविनिवृत्ताः । यतोमिथ्यादृष्टितया ज्ञानांधत्वात्सम्यग्विरतिपरिणामरहितास्तेचैवंनूतपरिणामाः स्वायुषः कालमासे कालं कृत्वा निकृष्टतपसोपि संतोऽन्यतरेष्वासुरिकेषु किल्बिषिकेषु स्थानेषूत्पादयितारोनवंति । ते ह्यज्ञानतपसा मृताअपि किल्बिषिकेषु स्थानेषूत्पत्स्यंते तस्मादपि स्थानादायुषः क्षयाद्विप्रमुच्यमानाश्च्युताः किल्बिषिकबहुलास्तत्कर्मशेषेणैलवन्मूकाएलमूकास्तन्नावेनोत्पद्यंते । किल्बिषिकस्थानाच्च्युतः सन्ननंतरनवे वा मानुषत्वमवाप्य यथैलमूकोऽव्यक्तवाक् समुत्पद्यतइति । तथा (तममूयत्ताएत्ति) तमस्त्वेन जात्यंधतया अत्यंताऽज्ञानावृततया वा तथा जातिमूकत्वेनापगतवाचइह प्रत्यागच्छंतीति । तदेवंनूतं खलु तेषां तीर्थिकानां परमार्थतः सावद्यानुष्ठानादनिवृत्तानामाधाकर्मादिप्रवृत्तेस्तत्प्रायोग्यनोगनाजां तत्प्रत्ययिकं सावद्यं कर्माधीयते । तदेतल्लोनप्रत्ययिकं द्वादशं क्रियास्थानमाख्यातमिति ॥ २१ ॥

इच्चियाइं डुवालस किरियाठाणाइं दविएणं समणेणवा माहणेणवा सम्मं सुपरिजाणिअवाइं नवंति ॥ २२ ॥

अर्थ—एरीते ए बारे क्रिया स्थानक तेने (दविएणं के०) मुक्ति गमन योग्य एवा जे श्रमण तथा ब्राह्मणो होय तेणे (सम्मंसुपरिजाणिअवाइंनवंति के०) सम्यक् प्रकारे संसारना कारण जाणीने. प्रत्याख्यान परिज्ञायें परिहरवा ॥ २२ ॥

॥ दीपिका—उपसंहारमाह । (इच्चेइत्यादि) इत्येतान्यनर्थदंडादीनि द्वादश क्रियास्थानानि कर्मग्रंथिद्रावणाद्द्रवः संयमः सविद्यते यस्यासौ द्रविकस्तेन श्रमणेन साधुना मावधीरिति प्रवृत्तिर्यस्य समाहनस्तेन सम्यक् सुपरिज्ञातव्यानि संसारकारणानीति ज्ञात्वा, परिहर्तव्यानि नवंति ॥ २२ ॥

॥ टीका—सांप्रतमेतेषां द्वादशानामप्युपसंहारार्थमाह । (इच्चेयाइत्यादि) इतिरूपप्रद

शीने । एतान्यनर्थदंडादीनि, लोजप्रत्ययिकक्रियास्थानपर्यवसानानि द्वादश क्रियास्था नानि । कर्मग्रंथिद्रावणाद्भवः संयमः सविद्यते यस्यासौ द्रविकोमुक्तिगमनयोग्यतया वा द्रव्यजूतः श्रमणः साधुः । तमेव विशिनष्टि । मावधीरित्येवं प्रवृत्तिर्यस्यासौ माहनस्तेनैवैत द्गुणविशिष्टेनैतानि सम्यग्यथावस्थितवस्तुस्वरूपनिरूपणतोमिथ्यादर्शनाश्रितानि संसारका रणानीति कृत्वा ज्ञपरिज्ञया ज्ञातव्यानि प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहर्तव्यानि जवंतीति ॥ २२॥

अहावरे तेरसमे किरियाठाणे इरियावहिएत्ति आहिज्जइ इह खलु अ त्तत्ताए संवुमस्स अणगारस्स इरियासमियस्स जासासमियस्स एस णासमियस्स आयाणजंममत्तणिरकेवणासमियस्स उच्चारपासवणखे लसिंघाण जल्लपारिठावणियासमियस्स मणसमियस्स वयसमिय स्स कायसमियस्स मणगुत्तस्स वयगुत्तस्स कायगुत्तस्स गुत्तिंदियस्स गुत्तबंजयारिस्स आउत्तंगहमाणस्स आउत्तंचिठमाणस्स आउत्तंणि सियमाणस्स आउत्तंतुयहमाणस्स आउत्तंजुंजमाणस्स आउत्तंजास माणस्स आउत्तंवज्ञं पडिग्गहं कंबलं पायपुंछणं गिरहमाणस्सवा णि रिकवमाणस्सवा जाव चरकुपम्हणिवायमवि अछिविमाया सुहुमा किरि या इरियावहिया नाम कज्जइ सापढमसमए बघ्दा पुघा बितीयसमए वेइया तइयसमए णिज्जित्ता साबघा पुघा उदीरिया वेइया णिज्जित्ता से यं काले अकम्मयावि जवंति एवं खलु तस्स तप्पतियं सावज्जंति आहि ज्जइ तेरसमे किरियाठाणे इरियावहिएति आहिज्जइ ॥ से बेमि जेयअ अतीता जेयपडुपन्ना जेयआगमिस्सा अरिहंता जगवंता सवेते एया इं चेव तेरसकिरियाठाणाइं जासिंसुवा जासेंतिवा जासिस्संतिवा पन्न विंसुवा पन्नविंतिवा पन्नविस्सिवा एवंचेव तेरसमं किरियाठाणं सेविंसु वा सेवंतिवा सेविस्संतिवा ॥ २३ ॥

अर्थ—हवे अपर तेरमो क्रिया स्थानक इरिया पथिक नामे कहिए बैए (इहखलुअ त्तत्ताए के०) निश्चे आ जगत्मांहे आत्म जाव पामवाने अर्थे (संवुमस्स के०) मन, वचन, अने कायायें करी संवृत एटले संवर सहित एवा (अणगारस्स के०) साधुने इरियावहि क्रिया कहियें. ते साधुना गुण कहेबे. ईर्यासमितिए समितो, जाषासमिति ए समितो, एषणासमितिए समितो, आदान जांम मात्रा निक्षेपण समितिए समि

तो, उच्चार एटले वडीनीत, अने पासवण एटले लघुनीत, खेलसिंघाणजल्ल एटले थूंक, बडखो, नाकनो मेल. श्लेष्म, शरीरनो मेल, तेने पारिष्ठापन एटले परठववा रूप समितिए समितो, (मणसमियस्स के०) मनसमितवंत, (वयसमियस्स के०) वचनसमितवंत, (कायसमियस्स के०) कायसमितवंत, (मणगुत्तस्स के०) मनगुप्तें गुप्तो, (वयगुत्तस्स के०) वचनगुप्तें गुप्तो, (कायगुत्तस्स के०) कायगुप्तें गुप्तो, (गुत्तिंदियस्स के०) गुप्तेंद्रिय एटले इंद्रियोनो गोपवनार, (गुत्तबंभयारिस्स के०) गुप्त ब्रह्मचारी, एटले नववाडे विशुद्ध, ब्रह्मचर्यनो पालनार, (आउत्तंगच्छमाणस्स के०) उपयोग सहित सावधान पणे चालनार, (आउत्तंचिट्ठमाणस्सके०) सावधान पणे उनो रहेनार, (आउत्तंणिसियमाणस्स के०) सावधान पणे बेसनार, (आउत्तंतुयट्टमाणस्स के०) सावधान पणे शयन करनार, (आउत्तंभुजमाणस्स के०) सावधान पणे नोजन करनार, (आउत्तंनासमाणस्स के०) सावधान पणे बोलनार, (आउत्तंवत्थंपडिग्गहंकंबलंपायपुंछणंगिण्हमाणस्सवा के०) सावधान पणे वस्त्र, पात्र, कांबल, पायपुंछणने लेतो, तथा (णिक्खिवमाणस्सवा के०) निक्षेप एटले तेने सावधान पणे मूकतो, तथा (जावचक्खूपम्हणिवायमवि के०) किंबहुना यावत् चक्षुनी पांपण एटले मिषोन्मिष मात्र, ते पण उपयुक्त पणे करतो, एवो जे साधु तेने एछे. (सुहुमाकिरियाइरियावहियानामकज्जइ के०) सूक्ष्मकिरिया इरियावहि नामे छे, परंतु ते क्रिया केवी छे, तोके (अत्थिविमायाके०) विविध प्रकारें जेनी मात्राछे एवी क्रियाछे ते लागे, ए क्रिया केवलीने पण लागे, कारणके केवली पण सयोगीछे ते सयोगी जीव तो एक क्षणवार पण अग्निना ताप मांहे पाणीनी पेठें निश्चल रही शके नही, ते कारणे इरियावहि क्रिया लागे. (साके०) ते क्रिया कषाय विना (पढमसमए के०) पहेला समयने विषे (बद्धा के०) बंधाय. (पुट्ठा के०) फरशे, तथा (बितीयसमएवेइया के०) बीजा समयने विषे वेदाय एटले एनुं वेदवुं थाय, अने (तइयंसमएणिज्जिन्ना के०) त्रीजा समयने विषे निर्जराय एटले एनुं निर्जरवुं थाय, ते कहे छे. (साबद्धा पुट्ठाउदीरियावेइयाणिज्जिन्ना के०) ते क्रिया बंधाए, फरशाए, उदिराए, वेदाय, अने निर्जराए, जे कारण माटे कर्मबंधनी स्थिति कषायितछे ते इरियावहिना धणी होय तेने ते नथी. केमके, कषाय वालाने सांपरायिक कर्म बंधायछे. परंतु ते कषाय, इरियावहिवालाने नथी ए कारणे ते इरियावहि क्रिया (सेयंकाले के०) ते आगमिककालें त्रीजा समयने विषे (अकम्मयावियभवंति के०) अकर्मता पणे होय, एटले कर्म रहितपणे होय. तेथी वीतरागनेज इरियावहि क्रिया लागे. एरीतें निश्चें तेहने तत्प्रत्ययिक एटले ते निमित्तें सावद्य कर्म बंधाय. ए तेरमो क्रिया स्थानक इरियावहि एवे नामे कह्यो. ॥ १३ ॥

ए तेर जे क्रियाना स्थानक छे ते मात्र एक श्रीवर्द्धमान स्वामियेंज नथी कह्या, किंतु? अन्य बीजा पण सर्व तीर्थंकरें कह्याछे. एवो जाव देखाडेछे. (सेबेमि के०) श्री सुधर्मस्वामि जंबूस्वामि प्रत्ये कहेछे के, में श्री महावीर पासेंथी सांजल्याछे जे पूर्वोक्त अर्थ, ते तुजने कह्या. ते अर्थ (जेयअतीता के०) अतीतकालें जे तीर्थंकर थया (जेयपडुपन्ना के०) तथा जे तीर्थंकर हमणा वर्त्तमान कालेंछे, वली (जेंआगमिस्सा के०) जे आगमिककालें तीर्थंकर थशे, (अरिहंता के०) ते श्री अरिहंत पूजा सत्कार करवा योग्य, (जगवंता के०) ऐश्वर्यादिकगुण युक्त, (सव्वेतेएयाइंचेव के०) ते सर्व तीर्थंकरें निश्चे थकी, ए (तेरसकिरियाठाणाइं के०) तेर क्रियाना स्थानक जेछे ते अतीतकालें जांख्या, वर्त्तमान काले जांखेछे,अने आगमिक कालें जांखशे. विशेषे प्ररूप्या. विशेषें प्ररूपेछे, अने विशेषें प्ररूपशे. एम निश्चें ए तेरमो क्रिया स्थानक अतीतकालें सेव्यो, वर्त्तमान कालें सेवेछे, अने आगमिक कालें सेवशे. जेम जंबूद्दीपने विषे बे सूर्य सरखो प्रकाश करेछे, तथा जेम प्रदीप सरखुं अजवालुं करेछे, तेम तीर्थंकर पण त्रणेकालें वर्त्तमान छता, सरखो उपदेश आपेछे. ॥ २४ ॥

॥ दीपिका–अथापरं त्रयोदशं क्रियास्थानमीर्यापथिकं नाम आख्यायते । ईरणं ईर्या तस्यास्तया वा पंथाईर्यापथः सविद्यते यस्य तदीर्यापथिकं । एतच्च शब्दव्युत्पत्तिनिमित्तं । प्रवृत्तिनिमित्तंतु इदं । सर्वत्रोपयुक्तस्य निकषायस्य समीक्षितमनोवाक्कायक्रियस्य या क्रिया तया यत्कर्म तदीर्यापथिकं सैव वा क्रिया ईर्यापथिका । तस्याः स्वरूपमाह । (इहखलु इत्यादि) आत्मजावार्थं संवृतस्याऽनगारस्य ईर्यादिकाभिः पंचभिः समितिभिर्मनोवाक्कायैः समितस्य तिसृभिर्गुप्तिभिर्गुप्तस्य गुप्तेंद्रियस्य नवब्रह्मचर्यगुप्तिसहितब्रह्मचारिणश्च उपयुक्तं गछतस्तिष्ठतोनिषीदतस्त्वग्वर्तनां कुर्वाणस्य तथा उपयुक्तमेव वस्त्रं पतद्ग्रहं कंबलं पादपुंछनंवा गृह्णतोनिक्षिपतोवा यावच्चक्षुःपक्ष्मनिपातमपि उपयुक्तं कुर्वतः सतोप्यस्ति विद्यते विमात्रा विविधा मात्रा सूक्ष्मा क्रिया ईर्यापथिकानाम केवलिनापि क्रियते । यतः सयोगी जीवः क्षणमप्येकं निश्चलः स्थातुं नशक्तोऽतिवह्नितप्यमानजलवत्कार्मणशरीरानुगतः सदा परिवर्तमानएवास्ते । ततः केवलिनोपि सूक्ष्मगात्रसंचाराः स्युस्तैश्च कर्म बध्यते तदीर्यापथिकं तस्य याऽवस्था सा क्रिया । (सापढमेति) निकषायिणा यत्कर्म बध्यते तत्प्रथमसमये बद्धं स्पृष्टं चेति तत्क्रियैव बद्धस्पृष्टेत्युक्ता । द्वितीयसमये वेदिताऽनुभूता तृतीयसमये निर्जीर्णा । केवलयोगनिमित्तं यत्कर्म बध्यते तस्य न सांपरायिकस्येव स्थितिः किंतु प्रकृतितः सातावेदनीयं तत् १ स्थितितोद्विसमया स्थितिकं २ अनुभावतः शुभानुभावमनुत्तरसुरसुखातिशायि ३ प्रदेशतो बहुप्रदेशमस्थि

बंधं बहुव्ययंच ४ । तदेवं सारक्रिया प्रथमसमये बद्धस्पृष्टा द्वितीयसमये उदिता निर्जीर्णा स्यात् । (सेयंकालेत्ति) एष्यत्काले आगामिनि तृतीयसमये तत्कर्मापेक्षया कर्मतापि नवति । एवं खलु तस्य वीतरागस्य तत्प्रत्ययिकमीर्याप्रत्ययिकं कर्माधीयते बध्यते । एतत्त्रयोदशं क्रियास्थानमाख्यातं । ये पुनस्तस्मादन्ये प्राणिनस्तेषां मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगनिमित्तः सांपरायिकोबंधः स्यात् । केवलयोगनिमित्तस्तु वीतरागस्यैव । सच द्विसमयस्थितिकइति ॥२३॥ सोहं ब्रवीमि येऽतीतायेच प्रत्युत्पन्नाये चागामिनोर्हंतो नगवंतः सर्वे ते एतान्येव त्रयोदश क्रियास्थानानि अन्नापिषुर्नापंते नाषिष्यंतेच विपाकतः प्रज्ञापितवंतः प्रज्ञापयंति प्रज्ञापयिष्यंतिच । तथैतदेव त्रयोदशं क्रियास्थानं सेवितवंतः सेवंति सेविष्यंते च ॥ २४ ॥

॥ टीका—अथापरं त्रयोदशं क्रियास्थानमीर्यापथिकं नामाख्यायते । ईरणमीर्या तस्यास्तया वा पंथाईर्यापथस्तत्र नवमीर्यापथिकमेतच्च शब्दव्युत्पत्तिनिमित्तं । प्रवृत्तिनिमित्तं त्विदं सर्वत्रोपयुक्तस्य निकषायस्य समीक्षितमनोवाक्कायक्रियस्य या क्रिया तया यत्कर्म तदीर्यापथिकं सैव वा क्रिया ईर्यापथिकेत्युच्यते । सा कस्य नवति किंनूता वा कीदृक्कर्मफलावा इत्येतद्दर्शयितुमाह । (इहखलुइत्यादि) इह जगति प्रवचने संयमेवा वर्तमानस्य । खलुशब्दोऽवधारणेऽलंकारेवा । आत्मनोनावआत्मत्वं तदर्थमात्मत्वार्थं संवृतस्य मनोवाक्कायैः परमार्थतएवंनूतस्यैवात्मनावोऽपरस्य त्वसंवृतस्यात्मतत्त्वमेव नास्ति सद्नूतात्मकार्यकारणात् । तदेवमात्मार्थं संवृतस्यानगारस्येर्यापथिकादिनिः पंचनिः समितिनिर्मनोवाक्कायैः समितस्य तथा तिसृनिर्गुप्तस्य । पुनर्गुप्तिग्रहणमेतानिरेव गुप्तिनिर्गुप्तोनवतीत्यस्यार्थस्याविर्नावनायात्यादरख्यापनार्थं वेति । तथा गुप्तेंद्रियस्य नवब्रह्मचर्यगुप्त्युपेतब्रह्मचारिणश्च सतस्तथोपयुक्तं गछतस्तिष्ठतोनिषीदतोमुनेस्त्वक्वर्तनां कुर्वाणस्य तथोपयुक्तमेव वस्त्रं पतद्ग्रहं कंबलंवा पादपुंछनकं वा गृण्हतोनिक्षिपतोवा यावच्चक्षुः पक्ष्मनिपातमप्युपयुक्तं कुर्वतः सतोऽत्यंतमुपयुक्तस्याप्यस्ति विद्यते विविधा मात्रा विमात्रा तदेवंविधा सूक्ष्माक्षिपक्ष्मसंचलनरूपादिकेर्यापथिकानाम क्रिया केवलिनापि क्रियते । तथाहि । सयोगी जीवोन शक्नोति क्षणमप्येकं निश्चलः स्थातुमग्निना ताप्यमानोदकवत्कार्मणशरीरानुगतः सदा परिवर्तयन्नेवास्ते । तथा चोक्तं । केवलीणं नंते अस्सिसमयं सिजेसु आगासयएसेसु इत्यादि । तदेवं केवलिनोपि सूक्ष्मगात्रसंचारान्नवंतीहच कारणे कार्योपचारात्तया क्रियया यद्बध्यते कर्म तस्य कर्मणो याअवस्थास्ताः क्रियाः । ताएव दर्शयितुमाह । (सापढमसमयेइत्यादि) यासावकाषिणः क्रिया तया यद्बध्यते कर्म तत्प्रथमसमयएव बद्धं स्पृष्टंचेति कृत्वा तत्क्रियैव बद्ध

स्पृष्टेत्युक्ता तथा द्वितीयसमये वेदितेत्यनुभूततृतीयसमयेऽतिर्जीर्णा । एतदुक्तं भवति । कर्मयोगनिमित्तं बध्यते तत्स्थितिश्च कषायायत्ता तदभावाच्च न तस्य सांपरायिकस्येव स्थितिः किंतु योगसद्भावाद्बध्यमानमेव स्पृष्टतां संश्लेषं याति । द्वितीयसमये त्वनुभूय ते तच्च प्रकृतितः सातावेदनीयं स्थितितो द्विसमयस्थितिकमनुभावतः शुभानुभावं अनुत्तरोपपातिकदेवसुखातिशायि देशतोबहुप्रदेशमस्थिरबंधं बहुव्ययंच । तदेवं सेर्या पथिका क्रिया प्रथमसमये बद्धस्पृष्टा द्वितीयसमये उदिता वेदिताऽतिर्जीर्णा भवति (सेयंकालेत्ति) आगामिनि तृतीयसमये तत्कर्मापेक्षया कर्मतापि च भवति । एवं ताव द्वीतरागस्येर्याप्रत्ययिकं कर्माधीयते संबध्यते । तदेतत्त्रयोदशं क्रियास्थानं व्याख्या तं। ये पुनस्तेभ्योऽन्ये प्राणिनस्तेषां सांपरायिकोबंधस्तेतु यानि प्रागुक्तानीर्यापथवर्ज्यानि द्वादश क्रियास्थानानि तेषु वर्तंते तेषां तद्वर्तिनामसुमतां मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषा ययोगनिमित्तः सांपरायिकोबंधोभवति । तत्रच प्रमादस्तत्र कषायायोगाश्च नियमाद्भवं ति । कषायिणश्च योगायोगिनस्त्वेते भाज्याः । तत्र प्रमादकषायप्रत्ययिकोबंधोऽनेक प्रकारा स्थितिः । तद्रहितस्तु केवलयोगप्रत्ययिकोद्विसमयस्थितिरेवेर्याप्रत्ययिकइति स्थितं॥ १३ ॥ एतानि त्रयोदश क्रियास्थानानि भगवद्वर्धमानस्वामिनैवोक्तान्यपि त्वन्यै रपीत्येतद्दर्शयितुमाह । (सेबेमीत्यादि) सोहं ब्रवीमीति यत्प्रागुक्तं तद्वा ब्रवीमीति । तद्यथा । ये तेऽतिक्रांताऋषभादयस्तीर्थकृतोयेच वर्तमानाः क्षेत्रांतरे सीमंधरस्वामि प्रभृतयोये चागामिनः पद्मनाभादयोऽर्हंतोभगवंतः सर्वैपि ते पूर्वोक्तान्येतानि त्रयोदश क्रियास्थानान्यभाषंतभाषंते भाषिष्यंतेच । तथा तत्स्वरूपतस्तद्विपाकतश्च प्ररूपितवंतः प्ररूपयंति प्ररूपयिष्यंतिच । तथैतदेव त्रयोदशं क्रियास्थानं सेवितवंतः सेवंते सेविष्यं तेच। तथाहि जंबूद्वीपे सूर्यद्वयं तुल्यप्रकाशं भवति । यथा वा सदृशोपकरणाः प्रदीपास्तु ल्यप्रकाशाभवंत्येवं तीर्थकृतोपि निरावरणत्वात् कालत्रयवर्तिनोपि तुल्योपदेशाभवंति॥ १४

अडुत्तरंचणं पुरिसविजयं विभंगमाइक्खिस्सामि इह खलु णाणापन्ना णं णाणाछंदाणं णाणासीलाणं णाणादिट्ठीणं णाणारूईणं णाणारंभा णं णाणाश्चवसाणं संजुत्ताणं णाणाविहपावसुयाश्ययणं एवं भवइ॥१५॥ तंजहा भोमं उप्पायं सुविणं अंतलिक्खं अंगं सरं लक्खणं वंज णं इत्थिलक्खणं पुरिसलक्खणं हयलक्खणं गयलक्खणं गोणलक्खणं मिंढलक्खणं कुक्कुडलक्खणं तित्तिरलक्खणं वट्टगलक्खणं लावयलक्ख णं चक्कलक्खणं छत्तलक्खणं चम्मलक्खणं दंडलक्खणं असिलक्खणं म

णिलक्खणं कागिणिलक्खणं ॥ २६ ॥ सुभगाकरं डुब्भगाकरं गब्भाकरं मो हणकरं आहव्वणिं पागसासणिं दव्वहोमं खत्तियविज्जं चंदचरियं सूरच रियं सुक्कचरियं वहस्सइचरियं उक्कापायं दिसादाहं मियचक्कं वायसपरिमंमलं पंसुवुहिं केसवुहिं मंसवुहिं रूहिरवुहिं वेतालिं अद्ध वेतालिं उसोवणिं तालुघाडणिं सोवागिं सोवरिं दामिलिं कालिंगिं गो रिं गंधारि उवतिणिं उप्पयणिं जंभणिं थंभणिं लेसणिं आमयकरणिं विसल्लकरणिं पक्कमणिं अंतद्धाणिं आयमिणिं एवमाइआउ विज्जाउ अन्नस्स हेउं पउंजंति पाणस्स हेउं पउंजंति वत्थस्स हेउं पउंजंति लेण स्स हेउं पउंजंति सयणस्स हेउं पउंजंति अन्नेसिंवा विरूवरूवाणं का मभोगाण हेउं पउंजंति तिरिछं तेविज्जं सेवेंति ते अणारिया विप्पडि वन्ना कालमासे कालं किच्चा अन्नयराइं आसुरियाइं किब्बिसियाइं ठ णाइं उववत्तारो भवंति ततोवि विप्पमुच्चमाणा भुज्जोएल मूयताए तम अंधयाए पच्चायंति ॥ २७ ॥

अर्थ—हवे जे कांइ ए तेरमां क्रियास्थानकने विषे पाप न कह्युं, ते कहेछे. (अडुत्तरंच णं के०) जे कांइ तेरमां क्रियास्थानकने विषे नकेवाणुं ते आगले ग्रंथे कहिए छैए (पुरिसविजयंविभंगेमाइक्खिस्सामिके०) हवे पुरुषविचय अथवा पुरुषविजय एटले केटला एक अल्पसत्ववंत पुरुषनो विभंग एटले ज्ञानक्रियाविशेष कहीशुं (इहखलु के०) आ मनुष्य क्षेत्रने विषे निश्चे थकी (णाणापन्नाणं के०) नाना प्रकारनी जेनी प्रज्ञाछे तथा (णाणाछंदाणं के०) नाना प्रकारें जेनो अभिप्रायछे (णाणासीलाणं के०) नाना प्रकारें जेनो आचारछे (णाणादिट्ठीणं के०) नाना प्रकारें जेनी दृष्टीछे एतावता त्रणशेंने त्रेसठ जेनुं प्रमाणछे. तेकारणे नाना दृष्टिना जाणवा (णाणारूईणं के०) आहार, विहार, शयन, आभरण, यान, वाहन, गीत, अने वाजित्रादिकनेविषे जुदी जुदी जेनी रुचिछे. (णाणारंभाणं के०) तथा नाना प्रकारना जेना आरंभ एटले कर्षण, पशुपालन, शिल्पकर्म, इत्यादिक जेने आरंभछे. (णाणाज्झवसाणं के०) नाना प्रकारना शुभाशुभ अध्यवसाय तेणेकरी (संजुत्ताणं के०) सहित जे वर्त्तेछे. (णाणाविहपावसुयाज्झयणं के०) तेना ए आगलजे केहेशे ते प्रमाणे, नाना प्रकारें पापश्रुताध्ययन (एवंभवइ के०) एम होय. ॥ २५ ॥ (तंजहा के०) ते कहेछे. (भोमं के०) भूमिनिर्घात एटले भूमिकंपादिक जे ग्रंथ

कह्याछे, तथा (उप्पायं के०) उत्पातिक, कपिहसितादिक, तथा आकाश थकी रुधिरवृष्ट्यादिक (सुविणं के०) स्वप्नते रात्रीने विषे गजवृषनादिक दर्शन, (अंतलिरकं के०) उल्कापात मेघ वृष्ट्यादिक तथा (अंग के०) अंग नेत्र बाहु स्फुरणादिक, (सरं के०) काकशिवादिक स्वर विचारणा, (लरकणं के०) पद्म, यव, शंख, चक्रादिक लक्षण, (वंजणं के०) मस तिलकादिक, (इत्थिलरकणंपुरिसलरकणं के०) स्त्रीलक्षण, तथा पुरुषना लक्षण, ते सामुद्रिकादिक प्रसिद्धछे. (हयलरकणं के०) घोडाना लक्षण, (गयलरकणंके०) हाथीना लक्षण, (गोणलरकणं के०) गौ वृषनना लक्षण, (मिंढलरकणं के०) मिंढाना लक्षण, (कुक्कडलरकणंके०) कुकडाना लक्षण, (तित्तिरलरकणं के०) तित्तिरपक्षीना लक्षण, (वट्टगलरकणं के०) वर्तकना लक्षण, (लावयलरकणं के०) लावकना लक्षण, (चक्कलरकणं के०) चक्रना लक्षण, (छत्तलरकणंके०) छत्रना लक्षण, (चम्मलरकणं के०) चर्मना लक्षण, (दंमलरकणं के०) दंमना लक्षण (असिलरकणं के०) खड्गना लक्षण, (मणिलरकणं के०) मणि चंद्र सूर्यकांतादिकना लक्षण, (कागिणिलरकणं के०) कागिणिना लक्षण, एवीरीते एना प्ररूपक शास्त्र जाणवां. ॥ २६ ॥ हवे मंत्रविद्या कहेछे. (सुनगाकरं के०) जे थकी दुर्नाग्य वंत प्राणी सौनाग्य वंत थाय. (डुप्नगाकरं के०) जेथकी सौनाग्य वंत प्राणी दौर्नाग्यवंत थाय. (गप्नाकरं के०) जे विद्याने बले गर्नाधान ऊपजे तेवी विद्या, (मोहणकरं के०) लोकने व्यामोह ऊपजे तथा वेदनो उदय दीपे, (आहव्वणिं के०) आथर्वणीविद्या एटले तत्काल अनर्थनी करनारी विद्या, (पागसासणिं के०) इंद्रजाल विद्या, (दवहोमं के०) मधु घृतादिक द्रव्य, उच्चाटनादिक कार्य निमित्तें होमीए ते द्रव्यहोम जाणवो (खत्तियविज्जं के०) क्षत्रीनी धनुर्विद्यादिक विद्या, (चंदचरियं के०) चंद्रमानु चरित्र चंद्रमानोवार जाणे (सूरचरियंके०) सूर्यनु चरित्र सूर्यनो वार जाणे, (सुक्कचरियं के०) शुक्रनुं चरित्र शुक्रनो वार जाणे, (वहस्सइचरियंके०) बृहस्पतिनुं चरित्र बृहस्पतिनो वार जाणे, एवं नवग्रह चरित्र ते ज्योतिष शास्त्र प्रसिद्ध जाणवुं. तथा (उक्कापायं के०) उल्कापात, (दिसादाहं के०) दिग्दाह (मियचक्कं के०) आरण्यक जीव तेनो ग्राम नगरने विषे प्रवेश करतां दर्शनथाय, अथवा शब्द शुनाशुन चिंतवियें ते मृगचक्र कहिए. (वायसपरिमंमलं के०) काकादिक पक्षीना शब्दादिकनो विचार कहे एवीविद्या (पंसुवुट्ठिं के०) पंसु धूल वृष्टि, (केसवुट्ठिं के०) केश वृष्टि, (मंसवुट्ठिंके०) मांस वृष्टि, (रूहिरवुट्ठिं के०) रुधिरवृष्टि, तेनुं शुनाशुन फल, जे शास्त्रने विषे चिंतवियें. ते शास्त्रो (वेतालिं के०) वेतालि नामे विद्या केटला एक अक्षर प्रमाणछे ते केटला एक दिवस जपतां अचेतन काष्ठ माहें चेतन उगाडे (अद्धवेतालिं के०) ते दंमने उपशमावे,

(उसोवणिंके०) उपस्वापिनी विद्या, (तालुघाडणिंके०) ताला उघाडवानी विद्या; तालो दृघट्टनी (सोवागिं के०) चांमालिणीश्वापकी विद्या, (सोवरिंके०) शांबरी विद्या. (दामिलिंके०) डाविडीविद्या (कालिंगिंके०) कालिंगी विद्या, (गोरिंके०) गोरी विद्या (गंधारिं के०) गांधारी विद्या, (उवतिणिं के०) अवपतनी नीचे पाडवानी विद्या, (उप्पयणिं के०) उत्पतनी एटले उंचे जवानी विद्या. (जंनणिंके०) जृंनणी विद्या, (थंनणिंके०) स्तंननी विद्या (लेसणिं के०) श्लेषनी विद्या (आमयकरणिं के०) आमय करणी विद्या (विसल्लकरणिं के०) विशल्य करणी विद्या (पक्कमणिं के०) प्रक्रामणी फेर चडावानी विद्या (अंतद्धाणिं के०) अदृश्य करणि विद्या (आयमणिं के०) आत्मणी विद्या, (एवमाइआउविज्जाउ के०) इत्यादिक विद्याउ आदि शब्दथकी प्रज्ञप्त्यादिक विद्याउ लेवी ते विद्याउने जे शास्त्रो थकी जाणीयें. तेवां शास्त्रो नणीने पांखंमी, परदर्शनी अथवा गृहस्थ, अथवा स्वपक्षीक इव्यलिंगी साधु ते ए पूर्वोक्त विद्याउने (अन्नस्सहेउं के०) अन्नने अर्थे (पउंजंति के०) प्रयुंजे (पाणस्सहेउंपउंजंति के०) पाणीने अर्थे प्रयुंजे (वत्थस्सहेउंपउंजंति के०) वस्त्रने अर्थे प्रयुंजे (लेणस्सहेउंपउंजंति के०) उपाश्रयने अर्थे प्रयुंजे (सयणस्सहेउंपउंजंति के०) शयनने अर्थे प्रयुंजे (अन्नेसिंवाविरूवरूवाणंकामनोगाणहेउंपउंजंति के०) अथवा बीजा नाना प्रकारना कामनोगने अर्थे प्रयुंजे ते पुरुष (तिरिछं तेविज्जंसेवेंति के०) तिरछि एटले रूडा अनुष्ठाननी हणनारी एवी ते विद्याने सेवे (तेअणारियाविप्पडिवन्ना के०) ते अनार्य जाणवा. यद्यपि क्षेत्रे करी अने नाषायें करी तो आर्यछे तथापि, मिथ्यात्वना आसेवन थकी, अनार्य कर्मना करनार, अनार्य, अनाचारी, केवाय ते (कालमासे कालंकिच्चा के०) आयुष्यने क्षये कालने अवसरे काल करीने अज्ञान तपने प्रमाणे यद्यपि देवलोकें जाय तथापि ते,(अन्नयराइं आसुरियाइं किव्विसियाइं ठाणाइं उववत्तारो नवंति के०) तेउनुं अनेरा आसुरी किल्विषिकादिक स्थानकोने विषे उपजवुं थाय. (ततोविविप्पमुच्चमाणाके०) त्यां थकी चवीने (नुज्जोके०) वली मनुष्यमां उपजतो केवा थाय तोके (एल के०) बेरा थाय. (मूयताए के०) मुंगा थाय, (तमअंधयाए के०) आंधला एवा ते जीव थाय. त्यार पढी (पच्चायंति के०) नरक तिर्यचादिक गतिने विषे परिभ्रमण करे; अधमेपक्ष आश्री एटले व्रतधारीने पापनो विपाक कह्यो. हवे गृहस्थ उद्देशिने अधर्म पक्ष कहेछे. ॥ २७ ॥

॥ दीपिका—सांप्रतं त्रयोदशसु क्रियास्थानेषु यन्नोक्तं पापस्थानं तदाह । इदमुत्तरं अस्मात्क्रियास्थानप्रतिपादनाडुत्तरं यदत्र नोक्तं तडुत्तरग्रंथेनोच्यते । चसमुच्चये । एं

वाक्यालंकारे । पुरुषाविचीयंते मृग्यंते येन सपुरुषविचयः पुरुषविजयोवा अल्पसत्वानां केषांचित्पुरुषाणां ज्ञानलवेनार्थानुबंधिना विजयस्तस्य विभंगं ज्ञानविशेषं चाख्यास्यामि । यादृशानां चासौ विभंगः स्यात्तानाह । (इहखलुइत्यादि) इह जगति नानाप्रज्ञाविचित्रमतयः पुरुषानानाछंदाविचित्राभिप्रायानानाशीलानानारूपादृष्टिरंतः करणप्रवृत्तिर्येषां ते तथा तेषांच त्रीणि शतानि त्रिषष्ट्यधिकानीति प्रमाणं ज्ञेयं । तथा नानारुचीनां नानारंभाणां नानाध्यवसायसंयुतानां इह लोकप्रतिबद्धानां परलोकपराङ्मुखानां तेषां नानाविधं पापश्रुताध्ययनं भवति॥ २५॥तद्यथा । भूमौ भवं भौमं निर्घातभूकंपादिकं उत्पातं कपिहसितादि स्वप्नं गजादि, आंतरिक्षं मेघादि, आंगं बाहुनेत्रस्फुरणादि, स्वरलक्षणं काकस्वरादिलक्षणं, मत्स्ययवश्रीवत्सादि व्यंजनं तिलमाषादि स्त्रीलक्षणं रक्तपाणिपादादिकं । एवं पुरुषहयगजगोमिंढकुक्कुटतित्तिरवर्तकलावकचक्रछत्रचर्मदंडासिमणिकाकिणीरत्नलक्षणानि॥ २६ ॥ सुभगमाकरोति सुभगाकाराविद्या, दुर्भगमाकरोति दुर्भगाकारा, गर्भकरा मोहनकरा आथर्वणी अथर्वणाख्या, सद्योऽनर्थकारिणी विद्या पाकशासनी इंद्रजालविद्या कणवीरपुष्पादिनिर्द्रव्यैरुच्चाटनादिकार्यैर्होमोयस्यां सा द्रव्यहोमा, क्षत्रविद्या धनुर्वेदादिका, तामधीत्य प्रयुंजते । ज्योतिषविद्यामाह । (चंदचरियमित्यादि) चंद्रचरित्रं, नक्षत्रयोगराहुग्रहणादिकं सूर्यचरित्रं, तथैव शुक्रबृहस्पतिचरितं उदयास्तवर्षकालादि । उल्कापातदिग्दाहमंडलविचारेण शुभाशुभकारिणोमृगाहरिणशृगालादयआरण्यास्तेषां दर्शनं ग्रामप्रवेशादौ शुभाशुभं यत्र चिंत्यते सग्रंथोपि मृगचक्रं वायसादीनां पक्षिणां स्थानस्वरादिकं शुभाशुभं चिंत्यते त द्वायसपरिमंडलं पांसुकेशमांसरुधिरवृष्टयोऽनिष्टफलायत्र शास्त्रे चिंत्यंते तत्तन्नाम. तथा वैतालीविद्या सा च किल कतिभिर्जपैर्दंडमुत्थापयति । अर्धवैताली तं दंडमुपशमयति । उपस्वापिनी, तालोद्घाटनी, श्वपाकी, शांबरी, द्राविडी, कालिंगी, गौरी, गांधारी, अवपतनी, उत्पतनी, जूंभणी, स्तंभनी, श्लेषणी, आमयकरणी, विशल्यकरणी, प्रक्रामणी, अंतर्धानकरणी इत्यादिका विद्या अधीयते । आदिशब्दात्प्रज्ञप्त्यादयोग्राह्याः । एताश्च विद्याः पाखंडिकागृहस्थावा स्वयूथ्याद्रव्यलिंगधारिणोवा अन्नपानवस्त्रलयनशयनार्थं प्रयुंजंति अन्येषां वा विरूपरूपाणां विचित्राणां कामभोगानां कृते प्रयुंजंति । सामान्येन विद्यासेवनमनिष्टमित्याह । (तिरिमिति) तिरश्चानामननुकूलां सदनुष्ठानप्रतिघातकारिणीं तेऽनार्याविप्रतिपन्नां विद्यां सेवंते तेच यद्यपि क्षेत्रार्याभाषार्यास्तथाप्यनार्यकर्मकारित्वादनार्याएव ज्ञेयाः । तेच कालमासे मरणावसरे कालं कृत्वा यदि कथंचिद्देवलोकगामिनोभवंति ततोन्यतरेषु आसुरीयकेषु किल्बिषिकादिस्थानेषु उत्पत्स्यंते ततोपि विप्रमुक्ताश्च्युतायदि मनुष्येषूत्पद्यंते तदा एडमूकत्वेनाऽव्यक्तभाषित्वेन तमस्त्वेनांधतया मूकतयावा प्रत्यायांति ततोनरकतिर्यगादिषूत्पद्यंते ॥ २७ ॥

॥ टीका—सांप्रतं त्रयोदशसु क्रियास्थानेषु यन्नाभिहितं,पापस्थानं तद्भिणिषुराह । (अडुत्तरमित्यादि) अस्मात्त्रयोदशक्रियास्थानप्रतिपादनाडुत्तरं यत्र न प्रतिपादितं तदधुनोत्तरभूतेनानेन सूत्रसंदर्भेण प्रतिपाद्यते । यथाऽऽचारे प्रथमश्रुतस्कंधे यन्नाभिहितं तडुत्तरभूताभिश्चूलिकाभिः प्रतिपाद्यते । तथा चिकित्साशास्त्रे मूलसंहितायां श्लोकस्थाननिदानशारीरचिकित्सितकल्पसंज्ञकायां कायं यन्नाभिहितं तडुत्तरेऽभिधीयते एवमन्यत्रापि छंदःस्वित्यादावुत्तरसद्भावोऽवगंतव्यः । तदिहापि पूर्वेण यन्नाभिहितं तदनेनोत्तरग्रंथेन प्रतिपाद्यतइति । च समुच्चये । णमितिवाक्यालंकारे । पुरुषाविचीर्यंते मृग्यंते विज्ञान द्वारेणान्वेष्यंते येन सपुरुषविचयः पुरुषविजयोवा केषांचिदल्पसत्वानां तेन ज्ञानबलेनावधिप्रयुक्तेनानर्थानुबंधेनाविजयादिति । सच विभंगवदवधिविपर्ययवद्विभंगोज्ञानविशेषः पुरुषविचयश्चासौ विभंगश्च पुरुषविचयविभंगस्तमेवंभूतं ज्ञानविशेषमाख्यास्यामि प्रतिपादयिष्यामि । यादृशानां चासौ भवति तांल्लेशतः प्रतिपादयितुमाह । (इह खलुइत्यादि) इह जगति मनुष्यक्षेत्रे प्रवचने वा नानाप्रकाराविचित्रक्षयोपशमात् प्रज्ञायतेऽनयेति प्रज्ञा सा विचित्रा येषां ते नानाप्रज्ञास्तया वाऽल्पाल्पतराल्पतमया चिंत्यमानाः पुरुषाः षट्स्थानपतिताभवंति । यथा छंदोऽभिप्रायः सनानायेषां ते तथा तेषां नानाशीलानां तथा नानारूपा दृष्टिरंतःकरणप्रवृत्तिर्येषां ते तथा तेषामिति । तेषांच त्रीणि शतानि षष्ठ्यधिकानि प्रमाणमवगंतव्यं । तथा नाना रुचिर्येषां ते नानारुचयः । तथाहि । आहारविहारशयनासनाछादनाभरणयानवाहनगीतवादित्रादिषु मध्ये ऽन्यस्यान्यारुचिर्भवति तेषां नानारुचीनामिति । तथा नानारंभाणां कृषिपाशुपाल्यविपणिशिल्पिकर्मसेवादिष्वन्यतरमारंभेणेति । तथा नानाध्यवसायसंयुतानां शुभाध्यवसायभाजां इहलोकमात्रप्रतिबद्धानां परलोकनिष्पिपासानां विषयतृषितानामिदं नानाविधं पापश्रुताध्ययनं भवति ॥२५॥ तद्यथा भूमौ भवं निर्घातभूकंपादिकं, तथोत्पातं कपिहसितादिकं, तथा स्वप्नं गजवृषभसिंहादिकं, तथांऽतरिक्षं मेघादिकं, तथांगे भवमांगं अक्षिबाहुस्फुरणादिकं, तथा स्वरलक्षणं काकस्वरगंभीरस्वरादिकं तथा लक्षणं यवमत्स्यपद्मशंखचक्रश्रीवत्सादिकं व्यंजनं तिलकमाषादिकं, तथा स्त्रीलक्षणं रक्तकरचरणादिकं, एवंपुरुषादीनां काकिणीरत्नपर्यंतानां लक्षणप्रतिपादकशास्त्रपरिज्ञानमवगंतव्यं ॥२६॥ तथा मंत्रविशेषरूपाविद्याः तद्यथा। डुर्भगमपि सुभगमाकरोमि सुभगकारां, तथा सुभगमपि डुर्भगमाकरोमि डुर्भगकारां, तथा गर्भकरां गर्भाधानविधायिनीं तथा मोहोवेदादयोवा तत्करणशीलामाथर्वणाभिधानां सद्योऽनर्थकारिणीं विद्यामभीधीयते तथा पाकशासनीमिंद्रजालसंज्ञिकां तथा नानाविधैर्द्रव्यैः कणवीरपुष्पादिभिर्मधुघृतादिभिर्वोच्चाटनादिकैः कार्यैर्होमोहवनं यस्यां सा द्रव्यहवना तां तथा क्षत्रियाणां धनुर्वेदादिकापरा,वा या स्वगोत्रकर्मे

णायाता तामधीत्य प्रयुंजते । तथा नानाप्रकारं ज्योतिषमधीत्य व्यापारयतीति दर्शयति (चंदचरियमित्यादि) चंद्रस्य ग्रहपतेश्चरितं चंद्रचरितमिति । तच्च वर्णसंस्थानप्रमाण प्रजानक्षत्रयोगराहुग्रहादिकं । सूर्यचरितंत्विदं । सूर्यस्यमंडलपरिमाणराशिपरिजोगोद्यो तावकाशराहूपरागादिकं । तथा शुक्रचारोविथीत्रयचारादिकस्तथा बृहस्पतिः शुजाशुज फलप्रदः संवत्सरराशिपरिजागादिकश्च तथोल्कापातादिग्दाहाश्च वायव्यादिषु मंडलेषु जवंतः शस्त्राग्निक्षुत्पीडाविधायिनोजवंति । तथा मृगाहरिणसृगालादयश्चारण्यास्तेषां द र्शनरुतं ग्रामनगरप्रवेशादौ सति शुजाशुजं यत्र चिंत्यते तन्मृगचक्रं । तथा वायसादीनां प क्षिणां यत्र स्थानादिकं स्वराश्रयेणाऽशुजफलं चिंत्यते तद्वायसपरिमंडलं । तथा पांसु केशमांसरुधिरादिवृष्टयोऽनिष्टफलदायत्र शास्त्रे चिंत्यंते तत्तदजिधानमेव जवति । त था विद्यानानाप्रकाराः क्षुद्रकर्मकारिण्यस्ताश्चेमाः । वैतालीनामविद्या । नियताक्षरप्रतिब द्धा । साच किल कतिजिर्जपैर्दंडमुत्थापयति तथार्धवैताली तमेवोपशमयति । तथोपस्वा पिनी तालोदघाटनी श्वापाकी शांबरी तथा परिद्राविडी कालिंगी गौरी गांधार्यवपतन्युत्पतन जृंजणी स्तंजनी श्लेषणी आमयकरणी विशल्यकरणी प्रक्रामण्यंतर्धानकरणीत्येवमादि काविद्याअधीयंते । आसां चार्थः संज्ञातोऽवसेयइति न वरं । स्वापिनीद्राविडीकालिंग्य स्तद्देशोद्भवास्तद्भाषानिबद्धावा चित्रफलाः । अवपतनी तुजपत्स्वतएवपतत्यन्यं वापात यत्येवमुत्पतन्यपि द्रष्टव्या । तदेवमेवमादिकाविद्या । आदिग्रहणात्प्रज्ञप्त्यादयो गृह्यंते । एताश्च विद्याः पाषंडिकाअविदितपरमार्थागृहस्थावास्वयूथ्यावाद्रव्यलिंगधारिणोन्नपा नाद्यर्थं प्रयुंजंति अन्येषां वा विरूपाणामुच्चावचानां शब्दादीनां कामजोगानां कृते प्रयुं जंति । सामान्येन विद्यासेवनमनिष्टकारीति दर्शयितुमाह । (तिरिच्छमित्यादि) तिरश्ची नामनुकूलां सदनुष्ठानप्रतिपादिकां घातिकां ते अनार्यविप्रतिपन्ना विद्यां सेवंते । तेच य द्यपि क्षेत्रार्यजाषार्या स्तथापि मिथ्यात्वहतबुद्धयोऽनार्यकर्मकारित्वादनार्याएव द्रष्टव्या स्तेच स्वायुषःक्षये कालमासे कालंकृत्वा यदि कथंचिद्देवलोकगामिनोजवंति ततोऽन्यतरे षु आसुरीयकेषु किल्बिषिकादिषु स्थानेषूत्पत्स्यंते ततोपि विप्रमुक्ताश्च्युतायदिवा मनुष्ये षूत्पत्स्यंते तत्रच तत्कर्मशेषतयैडमूकेनाव्यक्तजाषिणस्तमस्त्वेनांधतया मूकतया वा प्र त्यागच्छंति ततोपि नानाप्रकारेषु यातनास्थानेषु नरकतिर्यगादिषूत्पद्यंते ॥ २७ ॥

से एगईउ आयहेउंवा णायहेउंवा सयणहेउंवा आगारहेउंवा परि वारहेउंवा नायगंवा सहवासियंवा णिस्साए अडुवा अणुगामिए अडुवा उवचरए अडुवा पडिपहिए अडुवा संधिछेदए अडुवा गंठिछे दए अडुवा उरब्भिए अडुवा सोवरिए अडुवा वागुरिए अडुवा सोउ

णिए अडुवा मच्छिए अडुवा गोघायए अडुवा गोवालए अडुवा सोव
णिए अडुवा सोवणियंतिए ॥ २८ ॥

अर्थ-हवे गृहस्थ उद्देशीने अधर्म पक्ष कहेछे. (सेएगईउ के०) ते गृहस्थ कोइ एक महा निर्दय परलोक थकी न बिहितो थको, संसारना सुख वांछतो छतो जे कर्कश कर्म करे ते कहेछे. (आयहेउंवा के०) पोताने निमित्तें अथवा (णायहेउंवा के०) ज्ञातिने निमित्तें (सयणहेउंवा के०) स्वजनने निमित्तें (आगारहेउंवा के०) घरने निमित्तें (परिवारहेउंवा के०) परिवारने निमित्तें (नायगंवा के०) परिचित एटले जाणेला पुरुषने निमित्तें (सहवासियंवाणिस्साए के०) सहवासि एटले पाडोशीनी निश्राये, एटलां अकार्य करे, ते कहेछे. (अडुवा के०) अथवा (अणुगामिए के०) अकार्य करवाने अर्थें बीजो जतो होय तेनी पछवाडे जाय, (अडुवाउवचरए के०) अथवा अकार्य करवाने अर्थे तेने अनेक उपचार करे विश्वासे, (अडुवापडिपहिएके०) अथवा प्रतिपथिक एटले मार्गें जता माणासनी सन्मुख आवे (अडुवासंधिछेदएके०) संधिछेदक, एटले चोरी करे, (अडुवागंठिछेदए के०) अथवा ग्रंथिच्छेद करे, एटले गांठी छोडो थाय, (अडुवाउरब्भिए के०) अथवा छाली एटले गाडरां चरावे (अडुवासोवरिए के०) अथवा सूवर डुक्कर चरावे (अडुवावागुरिए के०) अथवा वाघरी थाय, एटले मृग मारवानां कर्म करे (अडुवासोउणिए के०) अथवा शकुनी एटले पक्षीउने पाश नाखे, (अडुवामच्छिए के०) अथवा माछी थाय, (अडुवागोघायए के०) अथवा गोघातक कसाइ थाय, गायने मारे, अथवा गोधाने नाथे (अडुवागोवालए के०) गोवालिया पणु करे, इत्यादिक नीचकर्म करे, (अडुवासोवणिए के०) कुतरानो राखनार थाय, (अडुवा सोवणियंतिए के०) कुतराये करी शिकार खेले. इत्यादिक बधा मलीने चउद प्रकारें करी अनेक जीवोनो विनाशकरे. ॥ २८ ॥

॥ दीपिका-अथ गृहस्थानुद्दिश्याधर्मसेवामाह । (सेएगईउआयहेउंवा) सएकः कदाचिन्निस्त्रिंशआत्मनिमित्तं ज्ञातिहेतुंवा अगारहेतुं गृहसंस्करणार्थं परिवारहेतुंवा ज्ञातकः परिचितस्तं समुद्दिश्य सहवासिकं प्रातिवेश्मिकं निश्रीकृत्य एतानि कुर्यात् । तान्येवाह । (अडुवेत्ति) अथवेति पक्षांतरापेक्षया । गच्छंतमनुगच्छतीत्यनुगामुकः सचाकार्यकरणमनास्तं गच्छंतमनुगच्छति । अथवाऽन्यस्य विरूपकरणावसरापेक्षी उपचारकः स्यात् । अथवा उरभ्रेण चरत्यौरभ्रिकः । अथवा सौकरिकः । अथवा शकुनिन्निश्चरति शाकुनिकः अथवा वागुरिकः अथवा मात्स्यिकः अथवा गोघातकः अथवा गोपालत्वं श्रयति

अथवा श्वनिश्चरति शौवनिकः शुनां पालकइत्यर्थः । अथवा (सोवणियंतएत्ति) श्वनिः पापर्द्धिकुर्वन्मृगादीनामंतं करोतीत्यर्थः ॥ २७ ॥

॥ टीका—सांप्रतं गृहस्थानुद्दिश्याधर्मपक्षसेवनमुच्यते । (सेएगइउइत्यादि) सएकः कदाचिन्निस्त्रिंशः सांप्रत्यापेक्ष्यपगतपरलोकाध्यवसायः कर्मपरतया नोगलिप्सुः संसारस्वनावानुवर्त्यात्मनिमित्तं चेत्येतान्यनुगामुकान्यकर्तव्य हेतुनूतानि चतुर्दशासदनुष्ठानानि विधत्ते तद्यथा ज्ञातयः स्वजनास्तन्निमित्तं तथाऽगारनिमित्तं गृहसंस्कारणार्थं सामान्येनवा कुटुंबार्थं पारिवारनिमित्तंवा दासीदासकर्मकरादिपरिकरकृते तथा ज्ञातएवज्ञातकः परिचितस्तं समुद्दिश्य तथा सहवासिकंवा प्रातिवेश्मिकंवा निश्रीकृत्यैतानि वक्ष्यमाणानि कुर्यादिति संबंधः । तानिच दर्शयितुमाह । (अडुवेत्यादि) अथवेत्येवं वक्ष्यमाणावेक्षया पक्षांतरोपलक्षणार्थः । गछंतमनुगछतीत्यनुगामुकः सचाऽकायाध्यवसायेन विवक्षितस्थलाद्यपेक्ष्या विरूपकर्तव्यचिकीर्षुस्तं गछंतमनुगछति । अथवा तस्यापकर्तव्यस्यापकारावसरापेक्ष्युपचारकोनवत्यथवा तस्य प्रातिपथिकोनवति प्रतिमुखं संमुखीनमागछत्यथवाऽऽत्मस्वजनार्थं संधिछेदकोनवति चौर्यं प्रतिपद्यते अथवौरछैर्मपैश्चरत्यौरभ्रिकोथवा सौकरिकोनवत्यथवा शकुनिन्निः पक्षिनिश्चरतीति शकुनिकोऽथवा वागुरया मृगादिबंधनोज्वा चरति वागुरिकोथवा मत्स्यैश्चरति मात्स्यकोथवा गोपालनावं प्रतिपद्यतेऽथवा गरघातकः स्यादथवा श्वन्निश्चरति शौवनिकः शुनां परिपाकोनवतीत्यर्थोऽथवा (सोवणियंति) श्वनिः पापर्द्धि कुर्वन्मृगादीनामंतं करोतीत्यर्थः ॥ २७ ॥

से एगईउ आणुगामियन्नावं पडिसंधाय तमेव आणुगामियाणु गामियं हंता छेत्ता नेत्ता लुंपइत्ता विलुंपइत्ता उद्दवइत्ता आहारं आहारेंति इति से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवस्काइत्ता नवइ ॥२ए॥ से एगईउ उवचरयं नावं पडिसंधाय तमेव उवचरियं हंता छेत्ता नेत्ता लुंपइत्ता विलुंपइत्ता उद्दवइत्ता आहारं आहारेंति इति से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवस्काइत्ता नवइ ॥३०

अर्थ—हवे ए चौद स्थानकने प्रत्येके प्रथम थकी विवर्णकरीने कहेछे. (सेएगईउ आणुगामियन्नावंपडिसंधाय के०) ते कोइ एक पुरुष आत्माने अर्थें कोइ एक ग्रामांतरे जनारा पुरुषनी पासें इव्यछे एवुं जाणीने (तमेवआणुगामियाणुगामियं के०) तेमज तेनी पछवाडे जाय, पछी तेने विश्वास उपजावीने (हंता के०) तेने हणे, छेदे, नेदे, लुंटे, विशेषे लुंटे, (उद्दवइत्ता के०) उपद्रव करे, जीवितव्य थकी विनाश करे, पछी

तेनुं धनलइने ते धनेकरी अनेक प्रकारें (आहारंआहारेंति के०) अहार आहारे. (इतिसेमहयापावेहिंकम्मेहिंअत्ताणंउवरकाइत्ताजवइ के०) एवी रीतें ते पुरुष महोटा क्रूर पाप कर्मानुष्ठाने, पोताना आत्माने डुर्गतिमांहे पाडे. नरक तिर्यंचगतिने नामे विख्यात थाय ॥ २ए ॥ ते कोइएक पुरुप धनवंतनी वंचना निमित्तें (उवचरयंनावंपडिसंधाय के०) उपचारक नाव आदरीने तेमज नाना प्रकारना उपाय करी विश्वास उपजावी तेने हणी, बेदी, नेदी, लुंटी, विशेषे लुंटी, उपड्रव करी, जीवितव्यथकी विनाशकरीने तेनु धनलेइने, तेधने करी अनेक प्रकारना आहार आहारे. एरीते ते पुरुष महोटा क्रूर पापानुष्ठाने करीने पोताना आत्माने डुर्गतिमांहे पाडे चतुर्गतिक संसारमांहे परिन्रमणकरे नरकादि गतिने विषे विख्यात थाय ॥ ३० ॥

॥ दीपिका—एवमेतेषां चतुर्दशकर्तव्यानामुद्देशं कृत्वा तानि प्रत्येकं विवृणोति। तत्रैकः कश्चिदात्माद्यर्थं ग्रामांतरं गबन् पुरुषस्य समीपे किंचिद्द्रव्यं ज्ञात्वा तज्जिघृक्षुस्तस्यानुगामुकनावं प्रतिसंधाय सहगमनेनानुकूल्यं प्रतिपद्य वंचनावसरं समीहमानोगबंतमनुगबति। अवसरं लब्ध्वा तस्य हंता, दंडादिनिश्छेत्ता, खड्गादिना नेत्ता, वज्रमुष्ट्यादिना लुंपयिता, केशाकर्षणादिनिर्विलुंपयिता, कशाप्रहारादिनिः अपड्रावयिता, जीवितविनाशकः स्यात् इत्यादि कृत्वाऽहारमाहारयति इत्येवमसौ महद्भिः पापैः कर्मभिरात्मानमुपख्यापयिता नवति। अयं महापापकारीत्येवं लोके ख्यापयति ॥२ए॥ तदेवमेकः कश्चिद्धनवतः कस्यचिडुपचरकनावमाश्रित्य तं विश्वासे पातयित्वा धनादिकृते तस्य हंता बेत्ता इत्यादि। एवमसौ महद्भिः पापैरुपख्यापयिता नवति ॥ ३० ॥

॥ टीका—तदेवमेतानि चतुर्दशाप्युद्दिश्य प्रत्येकमादितःप्रनृति विवृणोति। (सेएगइउइत्यादि) तत्रैकः कश्चिदात्मार्थं अपरस्य गंतुर्ग्रामांतरं किंचिद्द्रव्यजातमवगम्य तदादित्सुस्तस्यैवानुगामुकनावं प्रतिसंधाय सहगंतृनावेनानुकूल्यं प्रतिपद्य विवक्षितवंचनावसरकालाद्यपेक्षी तमेव गबंतमनुव्रजति तमेव चान्युबानविनयादिनिरत्यंतोपचारैरुपचर्यानुव्रज्य च विवक्षितमवसरं लब्ध्वा, तस्यासौ हंता दंडादिनिस्तथा बेत्ता खड्गादिना हस्तपादादेस्तथा नेत्ता वज्रमुष्ट्यादिना तथा लुंपयिता केशाकर्षणादिकदर्थनतस्तथा विलुंपयिता कशाप्रहारादिनिरत्यंतडुःखोत्पादनेन तथा डावयिता जीविताद्व्यपरोपणतोनवतीत्येवमादिकं कृत्वाऽहारमाहारयत्यसौ। एतडुक्तं नवति। गलकर्तकः कश्चिदन्यस्य धनवतोऽनुगामुकनावं प्रतिपद्य तं बहुविधैरुपायैर्विश्रंने पातयित्वा नोगार्थी मोहांधः सांप्रतेक्षितया तस्य। रिक्थवतोप्रकृत्याहारादिकां नोगक्रियां विधत्ते। इत्येवमसौ महद्भिः क्रूरैः क

र्मभिरनुष्ठानैर्महापातकभूतैर्वा तीव्रानुभावैर्दीर्घस्थितिकैरात्मानमुपाख्यापयिता भवति त थाह्ययमसौ महापापकारीत्येवमात्मानं लोके ख्यापयत्यष्टप्रकारैः कर्मभिरात्मानं तथा बंधयति यथा लोके तद्विपाकापादितेनावस्थाविशेषेण सता नारकतिर्यङ्नरामररूपत या ख्यापयतीति ॥ २९॥ तदेवमेकः कश्चिदकर्तव्याभिसंधिना परस्य स्वापतेयवतस्तद्वंचनार्थमुपचरकभावं प्रतिज्ञाय पश्चात्तं नानाविधैर्विनयोपायैरुपचरति उपचर्य च विश्रंभे पातयित्वा तद्द्रव्यार्थी तस्य हंता छेत्ता यावदपद्रावयिता भवतीत्येवमसावात्मानं पापैः कर्मभिः ख्यापयतीति ॥ ३० ॥

से एगइउ पाडिपहियभावं पडिसंधाय तमेव पाडिपहेठिच्चा हंता छेत्ता भेत्ता लुंपइत्ता विलुंपइत्ता उद्दवइत्ता आहारं आहारेति इति से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताएं उवक्खाइत्ता भवइ ॥ ३१ ॥ से एगइउ संधिछेदगभावं पडिसंधाय तमेव संधिं छेत्तां भेत्ता जाव इति से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताएं उवक्खाइत्ता भवइ ॥ ३२ ॥

अर्थ–ते कोइएक पुरुष (पाडिपहियभावंपडिसंधाय के०) धनवंत पुरुष जाणी, मार्गमां सन्मुख आवे, पछी (तमेवपडिपहेठिच्चा के०) तेने तेमज विश्वास उपजावी सन्मुख स्थित रहीने, हणी, छेदी, भेदी, लुंटीने, विशेषें लुंटीने, उपद्रव करे, जीवितव्य थकी विनाश करीने तेनुं धनलेइने अनेक प्रकारना आहार आहारे ते पुरुष महोटा क्रूर पापकर्मना अनुष्ठाने करी पोताना आत्माने डुर्गतिमां पाडे नरकादिक गतिने विषे विख्यात थाय॥३१॥ कोइएक पुरुष धनवंत पुरुष जाणीने संधिछेदक एटले खातर पाडवानोभाव आदरीने, आजीविकाने अर्थे पारकुं धनलीए, छेदे, भेदे इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं॥३२॥

॥ दीपिका–अथैकः कश्चित्प्रतिपथेनाभिमुखेन चरतीति प्रातिपथिकस्तद्भावं प्रतिपद्य तस्यार्थवतोविश्रंभतोहंतेत्यादि पूर्ववत् ॥ ३१ ॥ एकः कश्चित्संधिछेदकभावं खात्रखननत्वं प्रतिपद्य ततोसौ संधिं छिंदन् खात्रं खनन् प्राणिनां छेत्तास्यादित्यादि ॥ ३२ ॥

॥ टीका–अथैकः कश्चित्प्रतिपथेनाभिमुखेन चरति प्रातिपथिकस्तद्भावं प्रतिपद्यापरस्यार्थवतस्तदेव प्रतिपथिकत्वं कुर्वन् प्रतिपथे स्थित्वा तस्यार्थवतोविश्रंभतश्छेत्ता यावदपद्रावयिता भवतीत्येवमसावात्मानं पापैः कर्मभिः ख्यापयतीति ॥३१॥ अथैकः कश्चिद्विरूपकर्मणा जीवितार्थी संधिछेदकभावं खात्रखननत्वं प्रतिपद्यानेनोपायेनात्मानमहं कर्तयिष्यामीत्येवं प्रतिज्ञां कृत्वा तमेव प्रतिपद्यते ततोसौ संधिं छिंदन् खात्रं खनन् प्राणिनां

छेत्ता भेत्ता विलुंपयिता भवतीत्येतच्च कृत्वाऽहारमाहरयतीत्येतच्चोपलक्षणमन्यांश्च काम भोगान् स्वतो भुंक्तेऽन्यदपि ज्ञातिगृहादिकं पालयतीत्येवमसौ महद्भिः पापैः कर्मभिरा त्मानमुपख्यापयति ॥ ३२ ॥

से एगइउ गंठिछेदभावं पडिसंधाय तमेवगंठिं छेत्ता भेत्ता जाव इति से मह. या पावेहिं कम्मेहिं अत्ताएं उवक्काइत्ता भवइ ॥ ३३ ॥ से एगइउ उर भियभावं पडिसंधाय उरभंवा अस्रतरं तसं पाणहंता जाव उवक्काइत्ता भवइ एसो अभिलावो सवत्र ॥ ३४ ॥

अर्थ—कोइएक पुरुष गंठी छोडानो भाव आदरीने, घुर्घुरादिक अनेक उपायकरी लोकने हणे, छेदे, भेदे, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं ॥३३॥ कोइएक पुरुष औरभ्रिकभाव उरभ्र एटले उरणा बकरां तेना मांसादिकें करी आजीविका करे; ते उरभ्रिक उरणा तथा अ न्यत्रस प्राणीने हणे, छेदे, भेदे, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं ॥ ३४ ॥

॥ दीपिका—अथैकः कश्चिद्ग्रंथिछेदकभावं प्रतिपद्य घुर्घुरादिना ग्रंथिछेत्तास्यादित्यादि ॥३३॥ अथैकः कश्चिदधर्मवृत्तिः उरभ्राउरणकास्तैश्चरति औरभ्रिकः। सच तदूर्णया तन्मां सादिना वात्मानं वर्तयति सतद्भावं प्रतिपद्य उरभ्रंवाऽन्यंवा त्रसं प्राणिनं स्वपुष्टये हं ति तस्य वा हंता छेत्ता इत्यादि पूर्ववत् ॥ ३४ ॥

॥ टीका—अथैकः कश्चिदसदनुष्ठायी घुर्घुरादिना ग्रंथिछेदकभावं प्रतिपद्य तमेवानुया ति । शेषं पूर्ववत् ॥ ३३ ॥ अथैकः कश्चिदधर्मकर्मवृत्तिरुरभ्राउरणकास्तैश्चरति यः स औरभ्रिकः सच तदूर्णया तन्मांसादिना वात्मानं वर्तयति तदेवमसौ तद्भावं प्रतिपद्योरभ्रं वाऽन्यंवा त्रसं प्राणिनं स्वमांसपुष्ट्यर्थं व्यापादयति तस्य सवा हंता छेत्ता भेत्ता भवतीति शेषंपूर्ववत् ॥ ३४ ॥

से एगईउ सोवरिय भावं पडिसंधाय महिसंवा अस्रतरंवा तसं पाणं जाव उवक्काइत्ता भवइ ॥ ३५ ॥ से एगईउ वागुरिवभावं पडिसंधाय मियंवा अस्रतरंवा तसं पाणं हंता जाव उवक्काइत्ता भवइ ॥ ३६ ॥

अर्थ—कोइएक पुरुष सौकरिक एटले खाटकीनो भाव अंगीकार करीने खाटकी थइने अनेक महिषादिक तथा बीजा त्रस जीवोने हणे, छेदे, भेदे, यावत् संसार परिभ्रमण करे इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं. ॥३५॥ ते कोइएक पुरुष, पापात्मा वाघरी पणु आदरीने मृ गादिक तथा बीजा त्रस जीवोने हणे छेदे, भेदे, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं. ॥ ३६ ॥

॥ दीपिका—अथैकः कश्चित्सौकरिकः श्वपचश्चांडालः खाटिकइत्यर्थः । तद्भावमाश्रित्य महिषं वान्यं त्रसं प्राणिनं हंतीति तस्य हंता छेत्ताइत्यादि ॥३५॥ अथैकः कश्चिद्वागुरिकत्वमाश्रित्य मृगं वाऽन्यं प्राणिनं हंति तस्यच हंता नवति शेषं पूर्ववत् ॥ ३६ ॥

॥ टीका—अत्रांतरे सौकरिकपदं तच्च स्वबुध्या व्याख्येयं। सौकरिकाः श्वपचाश्चांडालाः खट्टिकाइत्यर्थः ॥३५॥ अथैकः कश्चित्कुड्सत्वोवागुरिकन्नावं लुब्धकत्वं प्रतिसंधाय प्रतिपद्य वागुरया मृगं हरिणमन्यंवा त्रसं प्राणिनं शशादिकमात्मवृत्यर्थं स्वजनाद्यर्थंवा व्यापादयति तस्यच हंता छेत्ता नवति । शेषं पूर्ववत् ॥ ३६ ॥

से एगईड सउणियं नावं पडिसंधाय सउणिंवा अन्नतरंवा तसं पाणं हंता जाव उवरकाइत्ता नवइ ॥३७॥ से एगइड मिछियन्नावं पडिसंधाय मछंवा अन्नतरं वा तसं पाणं हंता जाव उवरकाइत्ता नवइ ॥ ३८ ॥

अर्थ—कोइएक पुरुष, शाकुनी एटले पक्षीउनो विनाश करीने, अजीविका करे; एवो थको अनेक पक्षीउने हणे, छेदे, नेदे, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं. ॥ ३७ ॥ कोइएक पुरुष अधमाधम माछी थइने अनेक माछलादिक जलचर जीवोने हणे, छेदे, नेदे, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवु. ॥ ३८ ॥

॥ दीपिका—अथैकः कश्चिच्छकुनालावकादयस्तै श्चरति शाकुनिकस्तद्भावमाश्रित्य शकुनमन्यं वा त्रसं हंति तस्य च हननादिकां क्रियां करोतीति ॥ ३७ ॥ अथैकः कश्चिन्मात्स्यकन्नावमाश्रित्य मत्स्यं वाऽन्यं त्रसं वा जलचरं प्राणिनं हन्यात् । शेषं सुगमं ॥३८॥

॥ टीका—अथैकः कश्चिदधमोपापजीवी शकुनालावकादयस्तैश्चरति शाकुनिकस्तद्भावं प्रतिसंधाय तन्मांसाद्यर्थी शकुनमन्यं वा त्रसं व्यापादयति तस्यच हननादिकां क्रियां करोतीति । शेषं पूर्ववत् ॥३७॥ अथैकः कश्चिदधमाधमोमात्स्यकन्नावं प्रतिपद्य, मत्स्यं वाऽन्यं जलचरं प्राणिनं व्यापदयेद्धननादिकाः क्रियाः कुर्यात् । शेषं सुगमं ॥ ३८ ॥

से एगईड गोघायन्नावं पडिसंधाय तमेव गोणवा अन्नयरंवा तसं पाणं हंता जाव उवरकाइत्ता नवइ ॥३९॥ से एगईड गोवालन्नावं पडिसंधाय तमेव गोवालंवा परिजविय परिजवियहंता जाव उवरकाइत्ता नवइ॥ ४० ॥

अर्थ—कोइएक अधर्मी पुरुष, क्रूरकर्मनो करनार, गौघातकनो नाव आदरी, गाय, अथवा बीजा त्रस जीवोने छेदे, नेदे, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं ॥ ३९ ॥ कोइएक पुरुष, क्रूर

कर्मनो करनार गोपालनाव आदरीने, क्रोधें चड्यो थको गायने गोकुल मांहेथी टाली तेने हणे, छेदे, नेदे, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं ॥ ४० ॥

॥ दीपिका—अथैकः कश्चित्क्रूरकर्मा गोघातकनावमाश्रित्य गामन्यं वा त्रसं हंति तस्य हंता स्यात् ॥ ३९ ॥ अथैकः कश्चिजोपालनावं प्रतिपद्य तां गां परिविच्य पृथक् कृत्वा तस्याहंता नवति । शेषं पूर्ववत् ॥ ४० ॥

॥ टीका—अथैकः कश्चिजोपालनावं प्रतिपद्य कस्याश्चिजोः कुपितः सन् तां गां परिविच्य पृथक् कृत्वा तस्याहंता छेत्ता नेत्ता नूयोनूयोनवति । शेषं पूर्ववत् ॥ ३९ ॥ अथैकः कश्चित्क्रूरकर्मकारी गोघातकनावं प्रतिपद्य, गामन्यतरं वा त्रसं प्राणिनं व्यापादयेत्तस्य च हननादिकाः क्रियाः कुर्यादिति ॥ ४० ॥

से एगइन सोवणियनावं पडिसंधाय तमेव सुणगंवा अन्नयरंवा तसं पाणं हंता जाव उवरकाइत्ता नवइ ॥४१॥ से एगइन सोवणियंतियं नावं पडिसंधाय तमेव मणुस्संवा अन्नयरंवा तसं पाणं हंता जाव आहारं आहारेंति इति से महया पावेहिं कम्मेहिं अत्ताणं उवरकाइत्ता नवइ ॥४२॥

अर्थ—कोइएक पुरुष शौवनिकनाव एटले श्वानें करी आहार करुं एवो नाव आदरीने अनेक जीवने हणे, छेदे, नेदे, इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं ॥ ४१ ॥ कोइएक पुरुष श्वानने पाले, श्वाननो परिग्रह करे, तेणे करी कोइएक आवता जता पथिकने, अथवा बीजा जीवने हणे, छेदे, नेदे, आहार आहारे इत्यादिक एरीते ते क्रूरकर्म करी चतुर्गतिक संसार मांहे पडे ॥ ४२ ॥ एटले आजीविका निमित्त पापनुं कारण कह्युं.

॥ दीपिका—अथैकः कश्चित् श्वपापर्धिनावं प्रतिज्ञाय तमेव श्वानं परंवा त्रसं मृगसूकरादिकं हन्यात्तस्यच हंतेत्यादिपूर्ववत् ॥ ४१ ॥ अथैकः कश्चिदनार्यः (सोवणियंतियंति) श्वनिश्चरति शौवनिकः अंतोस्यास्तीत्यंतिकः अंते वा चरति अंतिकः पर्यंतवासी शौवनिकश्चासौ अंतिकश्च शौवनिकांतिकः क्रूरसारमेयपरिग्रहः प्रत्यंतनिवासी च तदसौ तद्भावमाश्रित्य मनुष्यं कंचन पथिकमन्यंवा मृगसूकरादिकं त्रसं प्राणिनं हंता नवति । हंता इत्यत्र ताच्छीलिकस्तृन् । श्वस्तनीता वा तृच् स्यात्तदाध्याहारेण पूर्ववन्नेयं । तथा पुरुषं हंति तस्य स हंता छेत्तेत्यादि । तृन्श्वस्तन्यौ प्रागपि योज्यौ । सचैवं महद्भिः पापकर्मनिरात्मानमुपख्यापयिता स्यादिति ॥ ४२ ॥

॥ टीका—अथैकः कश्चिज्जघन्यकर्मकारी शौवनिकन्नावं प्रतिपद्य सारमेयपापर्द्धिन्नावं प्रतिज्ञाय तमेव श्वानं तेन वा परं मृगसूकरादिकं त्रसं प्राणिनं व्यापादयेत्तस्य च हननादिकाः क्रियाः कुर्यादिति ॥ ४१ ॥ अथैकः कश्चिदनार्योनिर्विवेकः (सोवणियंतियं नावंति) श्वन्निश्चरति शौवनिकः अंतोस्यास्तीत्यंतिकोंऽतेवा चरत्यंतिकः पर्यंतवासीत्यर्थः । शौवनिकश्चासावंतिकश्च शौवनिकांतिकः क्रूरसारमेयपरिग्रहः प्रत्यंतनिवासीच प्रत्यंतनिवासिन्निर्वा श्वन्निश्चरतीति तदसौतन्नावं प्रतिसंधाय डुष्टसारमेयपरिग्रहं प्रतिपद्य, मनुष्यं वा कंचनपथिकमन्यागतमन्यं वा मृगसूकरादिकं त्रसं प्राणिनं हंता नवति । अयं च ताछीलिकस्तृन् लुट् प्रत्ययोवा ड्रष्टव्यः । तृचि तु साध्याहारं प्राग्वद्व्याख्येयं । तद्यथा । पुरुषं व्यापादयेत्तस्य च हंता लेत्ता इत्यादि । तृन्लुट्प्रत्ययौ प्रागपि योजनीयाविति । तदेवमसौ महाक्रूरकर्मकारी महद्भिः कर्मन्निरात्मानमुपख्यापयिता नवतीति ॥ ४२ ॥

से एगइन्ने परिसामज्झाओ उछिता अहमेयं हणामित्ति कट्टु तित्तिरंवा वट्टगंवा लावगंवा कवोयगंवा कविंजलंवा अन्नयरंवा तसं पाणं हंता जाव नवक्काइत्ता नवइ ॥ ४३ ॥ से एगइन्ने केणइ आयाणेणं विरुद्धे समाणे अडुवा खलदाणेणं अडुवा सुराघालएणं गाहावतीणवा गाहावइपुत्ताणंवा सयमेव अगणिकाएणं सस्साइं ज्ञामेइ अन्नेणवि अगणिकाएणं सस्साइं ज्ञामावेइ अगणिकाएणं सस्साइं ज्ञामंतंपि अन्नं समणुजाणइ इति से महया पावकम्मेहिं अत्ताणं नवक्काइत्ता नवइ ॥ ४४ ॥

अर्थ—हवे कांहिं एक पापनुं विशेष कारण कहेले. जे प्रथम कह्युं, अने हवे कहेशे, तेमां विशेप एटलुंजले के, प्रथमजे जीवहिंसा कही ते हिंसा लोक थकी प्रछन्न पणे करे, अने हवे जे कहेशे ते हिंसा लोकमां प्रगट पणे करे, एटलुं विशेष जाणवुं. ते एवी रीतें के, जेम कोइएक पुरुष मांस नक्षण करवानी इछायें, अथवा व्यसनने लीधे अथवा क्रीडाने निमित्तें (परिसामज्झाओउछित्ता के०) परिषदामांहेथी उठीने (अहमेयं के०) हुं आ अमुक जीवने (हणामित्तिकट्टु के०) हणीश. एवी प्रतिज्ञा करीने, पछी (तित्तिरंवा के०) तित्तर, अथवा (वट्टगंवा के०) वर्त्तक, अथवा (लावगंवा के०) लावक, अथवा (कवोयगंवा के०) कपोत पक्षी, अथवा (कविंजलंवा के०) कपिंजल एटले पारेवां, तथा सारस पक्षिविशेष जाणवां, अथवा (अन्नयरंवा के०) अन्य (तसंपाणं के०) त्रस जीवने हणे, लेदे, नेदे, इत्यादिक यावत् पोताना आत्माने कर्मबंधन विपे पाडे ॥ ४३ ॥ हवे कोइएक पुरुष, प्रकृतियें क्रोधी लतो, (केणइ के०)

कोइएक (आयाणेणंके०), शब्दादिक कारणे करी रीसाणो थतो, (विरुद्धसमाणे के०) आगलानो विरोध करे. ते कारण कहेछे. (अडुवाखलदाणेणं के०) सडेलां अन्न तेने दाने करीनें, अथवा धान्यने खले अल्प दाने करीने, (अडुवासुराथालएणंके०) अथवा थाल कोशादिक, कोइएक अधिकारादिक, तेने विषे वांछित लाभने अभावे रीसाणो थको (गाहवतीणवाके०) गृहपतिना, अथवा (गाहावइपुत्ताणंवा के०) गृहपतिना पुत्रना धान्य खलादिकने (सयमेवके०) पोतें (अगणिकाएणंके०) अग्नि कायें करी, (सस्साइंके०) ते धान्यादिकने (झामेइ के०) बाले. (अन्नेणविअगणिकाएणंसस्साइंझामावेइ के०) अथवा रीसाणो थको बीजा पासें अग्निकायें करी ते धान्यादिकने बलावे. (अगणिकाएणंसस्साइंझामंतंपिअन्नंसमणुजाणइ के०) बीजो कोइ अग्नि कायें करी ते धान्यने बालतो होय, तेने अनुमोदे. एरीतें ते महोटा पापकर्म करी पोताना आत्माने बांधे. यावत् चतुर्गतिक संसार मांहे परिभ्रमण करे ॥ ४४ ॥

॥ दीपिका—उक्ता सदा जीवनोपायभूता वृत्तिः। अथ क्वचित्कुतश्चिन्निमित्तात्सावद्यांगीकारं दर्शयति । पूर्वं वृत्तिरुक्ता प्रछन्नं वा प्राणिघातं कुर्यादिह तु कुतश्चिन्निमित्तात्साक्षाज्जनमध्ये प्राणिघातप्रतिज्ञया प्रवर्तते इत्याह । अथैकः कश्चिद्व्यसनेन क्रीडया कुपितोवा पार्षदोमध्ये गतउत्थाय एवं प्रतिज्ञां कुर्यात् । अहमेनं प्राणिनं हनिष्यामीति प्रतिज्ञां कृत्वा तित्तिरादिकं हंता इत्यादि यावदात्मानं पापकर्मणा उपख्यापयिता भवति । पूर्वमपराधं विना क्रुद्धाउक्ताः ॥४३॥ अथाऽपराधक्रुद्धान्दर्शयति । अथैकः कश्चित्प्रकृत्या क्रोधनः केनचिदादीयतइत्यादानं शब्दादिकं कारणं तेन विरुद्धः परस्य घातं कुर्यात् केनचिच्छब्देन क्रुष्टोनिंदितोवा विरुध्येत रूपेण बीभत्सं कंचित् दृष्ट्वाऽपशकुनोयमिति ध्यात्वा कुप्येत । गंधरसादिकं सूत्रेणैवाह । (अडुवाखत्ति) खलस्य कुपितस्य दानं खलके वाल्पधान्यादेर्दानं खलदानं तेन कुपितः। अथवा सुरायाः स्थालकं कोशकादि तेन वांछितलाभाभावात् कुपितोगृहपतेर्गृहपतिपुत्राणां वा स्वयं अग्निकायेन खलकवर्त्तीनि सस्यानि ध्मापयेद्दहेत् अन्येन वा दहतोऽन्यान्वा समनुजानीयात् । एवमसौ महापापैरात्मानमुपख्यापयिता स्यात् ४४

॥ टीका—उक्ता सदा जीवनोपायवृत्तिरिदानीं क्वचित्कुतश्चिन्निमित्तादभ्युपगमं दर्शयति । (सेएगइउइत्यादि) अयं चात्र पूर्वस्माद्विशेषः । पूर्वत्र वृत्तिः प्रतिपादिता प्रछन्नं वा प्राणव्यपरोपणं कुर्यात् । इतरस्तु कश्चिन्निमित्तात्साक्षाज्जनमध्ये प्राणिव्यापादनप्रतिज्ञां विधायोद्यछतइति दर्शयति । अथैकः कश्चिन्मांसादनेछया व्यसनेन क्रीडया कुपितोवा पर्षदोमध्यादभ्युत्थायैवंभूतां प्रतिज्ञां विदध्यात् । यथाहमेनं वक्ष्यमाणं प्राणिनं हनिष्यामी

ति प्रतिज्ञां कृत्वा पश्चात्तित्तिरादिकं हंता छेतेति नेतेत्ति ताच्छीलिकस्तृन् लुट्प्रत्ययोवा। तस्य वा हंतेत्यादि यावदात्मानं पापेन कर्मणा ख्यापयिता नवतीति ॥४३॥ इह चाधर्मे पाक्षिकेष्वनिधीयमानेषु सर्वेपि प्राणद्रोहकारिणः कथंचिदनिधातव्यास्तत्र पूर्वमनपराधक्रूरा अनिहिताः सांप्रतमपराधक्रूरान् दर्शयितुमाह ॥ (सेएगइउइत्यादि) अथैकः कश्चित्प्रकृत्या क्रोधनोऽसहिष्णुतया केनचिदादीयतइत्यादानं शब्दादिकं कारणं तेन विरुद्धः समानः परस्यापकुर्यात्। शब्दादानेन तावत्केनचिदाक्रुष्टोनिंदितोवाचा विरुध्येत। रूपादानेनतु वीनत्सं कंचन दृष्ट्वाऽपशकुनाध्यवसायेन कुप्येत। गंधरसादिकं त्वादानं सूत्रेणैव दर्शयितुमाह। अथवा खलस्य कुथितादिविशिष्टस्य दानं खलस्य वाल्पधान्यादेर्दानं खलदानं तेन कुपितोऽथवा सुरायाः स्थालकं कोशकादि तेन विवक्षितलानाऽनावात् कुपितः। गृहपत्यादेरेतत् कुर्यादित्याह। स्वयमेवाग्निकायेनाग्निना तत्सस्यानि खलकवर्तीनि शालिव्रीह्यादीनि ध्मापयेद्दहेदन्येन वा दाहयेद्दहतोवाऽन्यान्समनुजानीयादित्येवमसौमहापापकर्मनिरात्मानमुपख्यापयिता नवतीति ॥ ४४ ॥

से एगइउ केणइ आयाणेणंवा विरुद्धे समाणे अडुवा खलदाणेणं अडुवा सुराथालएणं गाहावतीणवा गाहावइपुत्ताणवा नुट्टाणवा गोणाणवा घोडगाणवा गद्दनाणवा सयमेव घूराउ कप्पेंति अन्नेणवि कप्पावेंति कप्पंतंपि अन्नं समणुजाणइ इति से महया जाव नवइ ॥४५॥

अर्थ—अथ हवे कोइएक पुरुष कोइएक आदान एटले कारणे करी रीसाणो थको, अन्नने दाने अथवा धान्यना खलाने विषे अल्प दाने, अथवा कोइएक अधिकारादिकने विषे वांछित लानने अनावे, गृहपतिनां अथवा गृहपतिनां पुत्रनां (उट्टाणवाके०) उंट, अथवा(गोणाणवा के०) वृषन, (घोडगाणवा के०) घोडो, (गद्दनाणवा के०) गर्दन, तेनो (सयमेवघूराउकप्पंति के०) जंघादिक अवयव कल्पे छेदे, नेदे, वंधन, नाथ, वाग प्रनृति आदि लेइने पोतेज कापे, बीजा पासें कपावे, बीजो कापतो होय तेने अनुमोदन आपे, एरीतें ते पुरुष महोटुंपोपार्जन करे ॥ ४५ ॥

॥ दीपिका—अथैकः कश्चित्केनचित्खलदानादिनाऽदानेन गृहपत्यादेः कुपितस्तत्संबंधिनउष्ट्रादेः स्वयमेव परशुप्रनृतिशस्त्रेण (घूराउत्ति) जंघाद्यवयवान् कल्पयति छिनत्ति अन्येन छेदयति छिंदंतं समनुजानीते। एवं पापकर्मणात्मानं प्रसिद्धिं नयति ॥ ४५ ॥

॥ टीका—सांप्रतमन्येन प्रकारेण पापोपादानमाह। (सेएगइउइत्यादि) अथैकः कश्चित्केनचित्तु खलदानादिनाऽनेन गृहपत्यादेः कुपितस्तत्संबंधिनउष्ट्रादेः स्वयमेवात्मना प

रथादिना (घूराउत्ति) जंघाः खलकावा कल्पयति ब्रिनत्त्यन्येन वा बेदयति अन्यंवा ब्रिदंतं समनुजानीते इत्येवमसावात्मानं पापेन कर्मणोपाख्यापयिता नवति ॥ ४५ ॥

से एगइउ केणइ आयाणेणं वा विरुद्धे समाणे अडुवा खलदाणेणं अडु वा सुराघालएणं गाहावतीणवा गाहावइपुत्ताणवा उद्दसालाउवा गोणसालाउवा घोडगसालाउवा गद्दनसालाउवा कंटकबोंदियाए पडिपेहित्ता सयमेव अगणिकाएणं झामेइ अन्नेणवि झामावेइ झामंतं पि अन्नं समणुजाणइ इति से महया जाव नवइ ॥ ४६ ॥

अर्थ–वली बीजी रीतें देखाडेबे. कोइएक पुरुष, कोइएक कारणथी रीसाणो थको, अथ वा वली अन्नने दाने, तथा धान्यने, थोमे दाने अथवा कोइएक अधिकारादिकने विषे वांबित लानने अनावे, गृहपति अथवा गृहपतिना पुत्रनां उंटशाला, वृषनशाला, अश्वशाला. गर्दनशालाने, कांटा ढांकीने पोतें अग्निकायें करी बाले, बीजा पासें बलावे, बीजो बालतो होय तेने अनुमोदे, एवी क्रिया करतो जीव, घणा पापकर्म उपार्जन क री, संसार मांहे परिन्रमण करे ॥ ४६ ॥

॥ दीपिका–अथैकः कश्चित्केनचिन्निमित्तेन गृहपत्यादेः कुपितस्तत्संबंधिनामुष्ट्रादीनां शालाः गृहाणि (कंटक बोंदियाएति) कंटकशाखान्निः प्रतिविधाय पिहित्वा स्वयमग्नि ना दहेत् । शेषं पूर्ववत् ॥ ४६ ॥

॥ टीका–किंच (सेएगइउइत्यादि) अथैकः कश्चित्केन चिन्निमित्तेन गृहपत्यादेः कुपि तस्तत्संबंधिनामुष्ट्रादीनांशालागृहाणि (कंटकबोंदियाएति) कंटकशाखान्निः प्रतिविधाय पिहित्वा स्थगित्वा, स्वयमेवाग्निना दहेत् । शेषं पूर्ववत् ॥ ४६ ॥

से एगइउ केणइ आयाणेणं विरुद्धे समाणे अडुवा खलदाणेणं अडुवा सुराघालएणं गाहावतीणवा गाहावइपुत्ताणवा कुंमलंवा मणिंवा मोत्तियंवा सयमेव अवहरइ अन्नेणवि अवहरवइ अवहरंतं पि अन्नं समणुजाणइ इति से महया जाव नवइ ॥ ४७ ॥

अर्थ–कोइएक पुरुष, कोइएक कारणे रीसाणो थको, अन्न अथवा धान्यना खलाने विषे, अल्प धान्यना दाने अथवा कांहिंएक अधिकारादिकनेविषे वांबित लानने अनावे, गृह पति अथवा गृहपतिना पुत्रना काननां कुंमल, अथवा मणी, रत्न, मोती, अथवा बीजा

आभरणादिक द्रव्य, पोतें अपहरे, बीजाने हाथे अपहरावे,बीजो कोइ अपहरतो होय तेने अनुमोदे, एम करतो जीव घणां पाप कर्मोपार्जन करे ॥ ४७ ॥

॥ दीपिका–अथैकः केनचिदादानेन कुपितोगृहपत्यादेः कुंडलादि द्रव्यमपहरेत्। शेषं पूर्ववत् ॥ ४७ ॥

॥ टीका–अपिच (सेएगउइत्यादि) अथैकः कश्चित्केनचिदादानेन कुपितोगृहपत्यादेः संबंधि कुंडलादिकं द्रव्यजातं स्वयमेवापहरेदवशिष्टं पूर्ववत् ॥ ४७ ॥

से एगइउ केणइवि आदाणेणं विरुद्धे समाणे अहुवा खलदाणेणं अहुवा सुराघालएणं समणेणवा माहणेणवा छत्तगंवा दंमगंवा नंमगंवा मत्तगंवा लठिंवा भिसिगंवा चेलगंवा चिलिमिलिगंवा चम्मगंवा छेयणगंवा चम्मकोसियंवा सयमेव अवहरंति जाव समणुजाणइ इति से महया जाव उवरकाइत्ता भवइ ॥ ४८ ॥

अर्थ–हवे पाखंमी दर्शन उपर कोप्यो थको, जे करे; ते देखाडेछे. कोइएक कारणे रीसाणो छतो वादीयें जींत्यो अथवा पोताना दर्शनने दृष्टिरागें अथवा अन्न अने धान्यने थोडे दाने, अथवा कोइएक अधिकारादिकने विषे वांछितलाभने अभावे, कोप्यो थको श्रमण अथवा ब्राह्मण तेनां दंम, छत्र, माटीना भांम, मात्रो, लाकडी, बेसवानो पाट, वस्त्र, मटको, ढांकवानो वस्त्र, चर्म, चर्मछेदनी तरवार, चर्मनी कोथली इत्यादिक अनेक उपकरण पोतें अपहरे, बीजा ने हाथे अपहरावे, बीजो कोइ अपहरतो होय तेने अनुमोदन आपे, एरीते घणा कर्म उपार्जन करे. एटला कारणे क्रोधें करी पापनुं विशेषपणुं कह्युं ॥ ४८ ॥

॥ दीपिका–अथ पाखंडिकोपरिकोपमाह। अथैकः कश्चित्स्वमतानुरागेण वादपराजितो वा अन्येन वा केनचिन्निमित्तेन कुपितः श्रमणानां ब्राह्मणानां छत्रकं वा भांडं किंचिद्वस्तु दंडकं वा भांडकं किंचिद्वस्तुमात्रकं पात्रं (लठिंग) यष्टिं (भिसिगं) वृसीमासनमिति यावत्। चेलकं वस्त्रं (चिलिमिलिगं) प्रछादपटीं चर्मकं पाडुकादि चर्मछेदनकं शस्त्रादि चर्मकोशं शस्त्रक्षेपकोछलकं स्वयमपहरेत्। शेषंपूर्ववत् ॥ ॥ ४८ ॥

॥ टीका–सांप्रतं पाखंडिकोपरि कोपेन यत्कुर्यात्तद्दर्शयितुमाह। (सेएगइउइत्यादि) अथैकः कश्चित्स्वदर्शनानुरागेण वा वादपराजितोवान्येनवा केनवा केनचिन्निमित्तेन कु

पितः सन्नेतत्कुर्यादित्याह । तद्यथा । श्राम्यंतीति श्रमणास्तेषामन्येषामपि तथानूतानां केनचिदादानेन कुपितः सन् दंडकादिकमुपकरणजातमपहरेत् अन्येन वा हारयेदन्यंवा हरंतं समनुजानीयात् इत्यादिपूर्ववत् ॥ ४७ ॥

से एगइउ णोवितिगिंबइ तं गाहावतीणवा गाहावइपुत्ताणवा सयमेव अगणिकाएणं नसहीउ श्रामेइ जाव अन्नंपि श्रामंतं समणुजाणइ इति से महया जाव नवस्काइत्ता नवति ॥ ४ए ॥

अर्थ—हवे निःकारण पापनुं विशेष कहेछे. अथ कोइएक पुरुष, अत्यंत मूर्खछतो (णोवितिगिंबइके०) एवो विचार करे नहीं के, अकार्य करवा थकी मने आ नवमां अथवा परनवमां अनिष्टफलनी प्राप्ति थशे, अथवा महारो अनुष्ठान अत्यंत मागोछे एवुं आलोचे नहीं, एवो छतो आलोक तथा परलोक विरुद्ध क्रिया करे ते देखाडेछे गृहपतिना अथवा गृहपतिना पुत्रना धान्यने निःकारणे पोतें अग्निकायें करी प्रज्वाले, बीजाने हाथे प्रज्वालावे, बीजो कोइ प्रज्वालतो होय तेने अनुमोदे ॥ ४ए ॥

॥ दीपिका—पूर्वं विरोधिनोऽनिहिताः अथ इतरे कथ्यंते । अथैकः कश्चिन्मूढतया (णोवितिगिंबइत्ति) न विमर्षति नविचारयति यन्ममानेन कृतेन परलोकेऽनिष्टं नावि । अथवा मदीयमिदमनुष्ठानं पापानुबंधीति न वेत्ति एवंनूतश्च गृहपत्यादेर्निमित्तमेव तत्कोपं विनैव स्वयमग्निना सस्यानि शालिव्रीह्यादीनि दहेदित्यादि ज्ञेयं ॥ ४ए ॥

॥ टीका—एवं तावद्विरोधिनोऽनिहिताः सांप्रतमितरेऽनिधीयंते । (सेएगइउइत्यादि) अथैकः कश्चित् दृढमूढतया (नोवितिगिंबिइत्ति) न विमर्षति नमीमांसते । यथाऽनेन कृतेन ममाऽमुत्राऽनिष्टफलं स्यात् तथा मदीयमिदमनुष्ठानं पापानुबंधीत्येवं न पर्यालोचयति तन्नावानाश्च यत्किंचनकारितया इहलोकपरलोकविरोधिनीः क्रियाः कुर्यात् । एतदेवोद्देशतोदर्शयति तद्यथा गृहपत्यादेर्निमित्तमेव तत्तत्कोपमंतरेणैव स्वयमेवात्मनाग्निकायेनौषधीः शालिव्रीह्यादिकाः ध्मापयेद्दहेत्तथाऽन्येन दाहयेद्दहंतं च समनुजानीयादित्यादि ॥ ४ए ॥

से एगइउ णोवितिगिंबइ तं गाहावतीणवा गाहावइपुत्ताणवा उट्टाणवा गोणाणवा घोडगाणवा गद्दनाणवा सयमेव घूराउकप्पइ अन्नेणवि कप्पावेंति अन्नंपि कप्पंति तं समणुजाणइ ॥५०॥ से एगइउ णोवितिगिंबइ तं गाहावतीणवा गहावइपुत्ताणवा उट्टसालाउवा जाव गद्दनसाला

ठेवा कंटकबोंदियाहिं पडिपेहित्ता सयमेव अगणिकाएणं झामेइ जाव समणु जाणइ ॥ ५१ ॥ से एगइउ णोवितिगिंछइ तं गाहावतीणवा गाहावइपुत्ताणंवा जाव मोत्तियंवा सयमेव अवहरइ जाव समणु जाणइ॥ ५२ ॥ से एगइउ णोवितिगिंछइ तंसमणंवा माहणाणंवा छत्तगंवा दंडगंवा जाव चम्मछेदणगंवा सयमेव अवहरइ जाव समणुजाणइ इति सेमहया जाव उवक्खाइत्ता भवइ ॥ ५३ ॥

अर्थ—एरीतेंज वली कोइएक पुरुष, गृहपति अथवा गृहपतिना पुत्रना उंट. गाय. बलद, घोडा, गर्द्दभना बंधन, तथा वाग, नाथ, प्रमुख पोतें कापे, बीजाने हाथे कपावे बीजो कापतो होय तेने अनुमोदे ॥ ५० ॥ तथा तेमज ते गृहपतिना तथा गृहपतिना पुत्रना उंटनीशाला, यावत् गर्द्दभनी शालाने कांटा थकी ढांकीने पोते बाले, बीजाने हाथे बलावे, बीजो बालतो होए तेने अनुमोदे ॥ ५१ ॥ तथा तेमज ते गृहस्थना अथवा गृहस्थना पुत्रना कुंमलादिक आभरण, तथा मौक्तिकादिक द्रव्य. पोतें अपहरे, बीजाने कहिने तेने हाथे अपहरावे, बीजो कोइ अपहरतो होय तेने अनुमोदे ॥ ५२ ॥ तथा कोइएक पुरुष, श्रमण ब्राह्मणना दंम छत्रादिक यावत् चर्मछेदक ए उपकरणोने पोतें अपहरे बीजाने हाथे अपहरावे अपहरतो होय तेने अनुमोदे ए प्रथम लखेला पांच आलावा, तथा पाछलना आलावा चार ते सरखाजछे परंतु ते सकारण, अने निष्कारण, एटलुं विशेषछे. ॥ ५३ ॥

॥ दीपिका—अथैकोनिस्त्रिंशतया गृहपत्यादिसंबंधिनामुष्ट्रादीनां जंघाद्यवयवान् छिंद्यात्यादि ॥ ५० ॥ कश्चिदुष्ट्रादिबंधनं गृहाणि दहेत् ॥ ५१ ॥ सुगमं ॥ ५२ ॥ निर्निमित्तमेवै तत्कुर्यात् व्याख्या पूर्ववत् ॥ ५३ ॥

॥ टीका—तथेहामुत्रच दोषापर्यालोचकोनिस्त्रिंशतया गृहपत्यादिसंबंधिनां क्रमेलकादीनां जंघादीनवयवांश्छिद्यात् ॥ ५० ॥ तथा शालां दहेत् ॥ ५१ ॥ तथा गृहपत्यादेः संबधि कुंडलमणिमौक्तिकादिकमपहरेत् ॥ ५२ ॥ तथा श्रमणब्राह्मणादीनां दंडादिकमुपकरणजातमपहरेदित्येवं प्राक्तनाएवालापकाआदानकुपितस्य येऽभिहितास्ततएव तदभावे नाभिधातव्याइति ॥ ५३ ॥

से एगइउ समणंवा माहणंवा दिस्सा णाणाविहेहिं पावकम्मेहिं अत्ताणं उवक्खाइत्ता भवइ अडुवाणं अछराए आफालित्ता भवइ अडुवाणं

फरुसंवदित्ता नवइ.कालेणवि से अणुपविठस्स.असणंवा पाणंवा जाव णोदेवावेत्ता नवइ जे इमे नवइ वोनमंता नारक्कंता अलसगा वेसलगा किवणगा निठक्कमा वणगा समणगा पव्वयंति ॥ ५४ ॥

अर्थ–हवे मिथ्यादृष्टिना पापनो अधिकार विशेष कहेछे. कोइएक मिथ्यादृष्टि पुरुष, श्रमण तपस्वी साधुनो निंदक होय, ते श्रमण अथवा ब्राह्मणने निसरतां पेसतां (दिस्सा के०) देखीने नानाप्रकारना पापोपार्जन करीने पोताना आत्माने दुर्गतिने विषे पाडे, तेज कारण कहेछे. (अडुवाणंअब्बराएके०) क्यांहिं एक साधुने देखीने पोतानी मिथ्यादृष्टीयें करी एवुं जाणेजे, ए मने अपशकुन थयुं. एम जाणतो थको पोतानी दृष्टिआगलथी ते साधुने अलगो करावे, अथवा (आफालित्तानवइ के०) चपटीयें करी साधुने आस्फाले एटले तेने तिरस्कार करे, (अडुवाणंफरुसंवदित्तानवइ) अथवा कठोर वचन बोले, अरे मूर्ख! निरर्थक कायक्लेशना करनार! हे दुर्बुद्धि! माहारा आगलथी दूरथइजा. एवा कठोर वचन बोले, तथा (कालेणविसेअणुपविठस्स के०) निक्षावेलायें ते चारित्रियाने अन्न पाणीने अर्थे आव्यो देखीने तेने (असणंवापाणंवा के०) अशन पानादिक देतां अत्यंत दुष्टपणे पोतें निंदे अने (जावणोदेवावेत्तानवइ के०) बीजो कोइ अशनपानादिक आपतो होय तेने निषेधे, तथा एवां दुर्वचन बोले के, (जेइमेनवइ के०) जे ए पाखंमीने आपवा थकी कांही फल नथी एम कहे (वोनमंता के०) ए तृण काष्ठना नारानो आणनारछे (नारक्कंता के०) ए कुंटुबना नारनो निर्वाह करी शक्यो नथी, ते कारणे मुंमित थयोछे. (अलसगा के०) आलसु क्रमागत कुटुंब धर्म पालवाने असमर्थ, माटे पाखंमी थयोछे (वेसलगा के०) वृषल कोइएक क्षुद्र जातिकछे तथा (किवणगानिठक्कमा के०) कृपण, निरुद्यमी, कोइपण कार्यनो उद्यम करी नशके ते कारणे (वणगासमणगापव्वयंति के०) प्रवर्ज्या लिए. ॥ ५४ ॥

॥ दीपिका–अथैकः कश्चिदनिगृहीतमिथ्यादृष्टिः साधुप्रत्यनीकः श्रमणं ब्राह्मणं साधुं दृष्ट्वा, अपशकुनोयमिति मन्यमानः पापकर्मभिरात्मानमुपख्यापयिता नवति (अडुवाणंति) अथवा साधुं दृष्ट्वाऽवज्ञयाऽप्सरायाश्च पुटिकाया आस्फालयिता नवति परुषं कठिनं वचोब्रूयात् निक्षाकालेपि (से) तस्य निक्षोर्निक्षार्थमनुप्रविष्टस्यान्नादेर्दापयिता न नवति प्रत्यनीकः सन्निदं ब्रूते ।(जेइमेत्ति) पाखंडिकाः स्युस्ते चोन्नमंतस्तृणकाष्ठहारादिकं कर्म तद्विद्यते येषां तेचोन्नमंतः नाराक्रांताः कुटुंबं पालयितुमसमर्थास्ते पाखंडव्रतमाश्रयंति । तथा वृषलाअधमाः कृपणाः क्लीबाअकिंचित्कराः श्रमणाः स्युः प्रव्रज्यां गृह्णंतीति॥५४॥

॥ टीका—सांप्रतं विपर्यस्तदृष्टयोऽगाढमिथ्यादृष्टयोऽनिधीयंते (सेएगइउइत्यादि) अथैकः कश्चिदनिगृहीतमिथ्यादृष्टिरनद्रकः साधुप्रत्यनीकतया श्रमणादीनां निर्गच्छतां प्रविशतां वा स्वतश्च निर्गच्छन् प्रविशन् वा नानाविधैः पापोपादानभूतैः कर्मभिरात्मानमुपख्यापिता नवतीत्येतदेव दर्शयति । अथवेत्ययमुत्तरापेक्षया पक्षांतरोपग्रहार्थः । क्वचित्साधुदर्शने सति मिथ्यात्वोपहतदृष्टितयाऽपशकुनोयमित्येवं मन्यमानः सन् दृष्टिपथादपसारयन् साधुमुद्दिश्यावज्ञयाप्सरायाश्च पुटिकायाः स्फालयिता नवत्यथवा तत्तिरस्कारमापादयन् परुषं वचोब्रूयात् । तद्यथौदनमुंडनिरर्थककायक्लेशपरायणदुर्बुद्देऽपसराग्रतस्तदसौ नृकुटिं विदध्यादसत्यंवा ब्रूयात् तथा निक्षाकालेनापि (से) तस्य निक्षोरन्येन्योनिक्षाचरेन्योऽनु पश्चात्प्रविष्टस्य सतोऽत्यंतदुष्टतयाऽन्नादेर्नेदापयिता नवत्यपरंच दानोद्यतं निषेधयति तत्प्रत्यनीकतयैतच्च ब्रूते । इमे पाखंडिकान्नवंति तएवंनूतान्नवंतीत्याह । (चोप्पुंत्ति) तृणकाष्ठहारादिकमधमकर्म विद्यते येषां ते तद्वंतस्तथा नारेण कुटुंबनारेण पोट्टलिकादिनारेण वाऽऽक्रांताः परान्नग्नाः सुखलिप्सवोऽलसाः क्रमागतं कुटुंबं पालयितुमसमर्थास्तथा पाखंमव्रतमाश्रयंति । तथाचोक्तं । गृहाश्रमपर इत्यादि । तथा (वेसलगत्ति) वृषलाश्चधमाः शूद्रजातयस्त्रिवर्गप्रतिवारकास्तथा कृपणाः क्लीबा अकिंचित्कराः श्रमणा नवंति प्रव्रज्यां गृह्णंतीति ॥ ५४ ॥

ते इणमेव जीवितं धिज्जीवितं संपडिबुहेंति नाइ ते पारलोगस्स अट्ठाए किंचिवि सिलीसंति ते डुक्कंति तेसोयंति तेजूरंति तेतिप्पंति तेपिट्टंति तेपरितप्पंति तेडुक्कण जूरण सोयण तिप्पण पिट्टण परितिप्पण वहबंधणपरिकिलेसाउ अप्पडिविरया नवंति ते महया आरंनेणं ते महया समारंनेणं तेमहया आरंनसमारंनेणं विरूवरूवेहिं पावकम्मे किच्चेहिं उरालाइं मणुस्सगाइं नोगनोगाइं नुंजित्तारो नवंति ॥ तं जहा अन्नं अन्नकाले पाणं पाणकाले वत्थं वत्थकाले लेणंलेणकाले सयणंसयणकाले पुवावरंचणं एहाए कयबलिकम्मे कयकोउयमंगल पायच्छित्ते सिरस्साएहाए कंठेमालाकडे आवद्धमणिसुवन्ने कप्पियमालामउली पडिवद्धसरीरवग्घारियसोणिसुत्तगमल्लदामकलावे अहतवत्थपरिहिए चंदणोक्खितगायसरीरे महति महालियाए कूडागारसालाए महति महालयंसि सीहासणंसि इत्थीगुम्मसंपरि वुडे स

वराइएणं जोइणाभियायमाणाणं महया हयनट्टगीयवाइयं तंतीतल तालतुम्भियघणमुइंगपडुपावाइयं रवेणं उरालाइं माणुस्सगाइं भोग भोगाइं भुंजमाणे विहरइ ॥ ५५ ॥

अर्थ–(तेइणमेवजीवितंधिम्नीवि के०) ते साधुना अवर्णवादि एम कहे जे आ साधुनुं जीवितव्य धिक् छे. (तंसंपडिबुहेंति के०) अने पोताने प्रशंसे जे अमे नला छैए, एरीते ते इह लोक प्रतिबंध साधुना निंदक मोहांध पुरुष ते साधुनो अपवाद बोले, (नाइतेपारलोगस्सअट्ठाएकिंचिविसिलीसंति के०) ए पुरुष, परलोकना अर्थनो साधनार एवो स्वल्प मात्र कांईपण अनुष्ठान करे किंतु? परने दुर्वचनादिकें करी पीडा उपजावे (तेदुरकंति के०) ते अज्ञानना अंधकारे दुःखी थाय. (तेसोयंति के०) ते अधिक शोचे, अन्यने शोक करावे (तेजूरंति के०) ते जूरे तथा परने निंदे. (तेतिप्पंति के०) ते पोताने तथा परने सुख थकी चूकावे (तेपिट्टंति के०) ते पोतें पीडाय, अने बीजाने पीडावे. (तेपरितप्पंति के०) ते पोते माहोमांहे दाझे, बीजाने दझावे, (तेदुरकणजूरणसोयण के०) ते पुरुष, एरीते दुःख, जूरण, शोक, इत्यादिक करतो करावतो थको (तिप्पण के०) सुखनो टालनार (पिट्टण के०) पीडानो करनार, (परितिप्पण के०) पश्चात्ताप करनार, (वहबंधण के०) वध बंधननो करनार (परिकिलेसाउ के०) महोटा क्लेश, तेथकी (अप्पडिविरयाजवंति के०) नथी निवर्त्या ते पुरुष, एवा छता ते महोटा आरंभ प्राण वध रूप तथा महोटा समारंभ परजीवने किलामणा उपजावी ते महोटा आरंभ समारंभे करीने नाना प्रकारना पापनुष्ठाने करीने प्रधान मनुष्य भाव संबधिया मधु मांसादिक अनेक काम भोगने भोगवतो थको विचरनारो थाय. (तंजहा के०) तेज कहेछे (अन्नंअन्नकाले के०) अन्नने काले अन्न, (पाणं पाणकाले के०) पाणीने कालें पाणी, (वत्थंवत्थकाले के०) वस्त्रने कालें वस्त्र, (लेणंलेणकाले के०) घरने कालें घर (सयणंसयणकाले के०) शयनने कालें शयन, (पुव्वावरंचणंण्हाए के०) पहेले पहोरे, अने वली पाछले पहोरे स्नान करे, (कयबलिकम्मे के०) देवतादिक निमित्त बलि कर्म करे, (कयकोउय के०) अनेक कौतुक उत्तारणादिक करे, (मंगलपायच्छित्ते के०) दधि, दूर्वादिक मंगल करे, दुःस्वप्नादिकना निवारणने अर्थे ए क्रिया करे,(सिरसाण्हाएकंठेमालाकडे के०) शिरें स्नान करीने कंठे माला पेरे, (आबद्धमणिसुवन्नेकप्पियमालामउली के०) आबद्ध एटले शुंपहेरे? तोके, मणि अने सुवर्ण, यथा योग्य स्थानके पहेरे, अनेक हार, अर्धहार, कटीसूत्र, इत्यादिक आभरणे करीने, (पडिबद्धसरीरवग्घारीय के०) प्रतिबंध नाम दृढ शरीर देहछे जेनो एवो,

प्रलंबित (सोणिसुत्तगमदल्लदामकलावे के०) कडने विषे कंदोरोछे जेने एवो, अने फुलनीमा लाना समूह पेरतो एवो, (अहतवञ्चपरिहिए के०) अत्यंत बहु धोलां निर्दोष वस्त्र पेहेरे, (चंदणोरिकतगायसरीरे के०) चंदने करी गात्रने विलेपन करे एवो थको, (महतिम हालियाए के०) अत्यंत महोटी (कूडागारसालाए के०) कूटने आकारें शिला तेने वि षे (महतिमहालयंसिसीहासणंसि के०) महोटा सिंहासने बेगे थको (इच्छिगुम्मसंप रिवुडे के०) स्त्रीना वृंदे पर वस्यो (सव्वराइएणं के०) सर्व रात्री संबंधि (जोइणा के०) प्रदीपनी ज्योति (झियायमाणाणं के०) तेना अजवाला थकि (महयाहयनट्टगीयवाइ यं के०) महोटा नह, गीत, वाद्यादिक वाजीत्रादिकने शब्दें, (तंतीतलतालतुडियतघणमुइ गपडुपावाइयंरवेणं के०) वीणा, हाथना ताल, कांशियाना ताल, तुरी एटले वाजीत्र, हाथ विशेष, घन ध्वनि सरखो जेनो घोषछे, मृदंग, पटह, माह्या पुरुषें वजाव्याछे, तेने शब्दें करी, (उरालाइंमाणुस्सगाइं के०) उदार प्रधान मनुष्य संबंधीया (नोगनोगाइं के०) कामनोगने (भुंजमाणे के०) नोगवतो थको (विहरइ) विचरे ॥ ५५ ॥

॥ दीपिका–अथ गृहस्थानामत्यंतविपरीतमतीनामसदाचारत्वं प्रकटयन्नाह । ते साधुधर्मप्रत्यनीकाइदमेव जीवितं परापवादप्रकटनजीवितं धिक्जीवितं कुत्सितं जीवि तं संप्रतिबृंहंति प्रशंसंति ते परलोकस्यार्थाय किंचित्सदनुष्ठानं न शिक्ष्यंते नाश्रयंते तेऽ पवादैः परान् डुःखयंति आत्मानंच अज्ञानांधास्तत्कुर्वंति येन शोचंते परानपि शोचयंति ते परान् (जूरयंति) गर्हंति ते स्वकर्मभिः पीडयंते (तेतिप्पंति) सुखाच्च्यावयंत्यात्मा नं परांश्च ते पापेन परितप्यंतेऽतर्दह्यंते परांश्च परितापयंति । एवं ते डुःखनशोचनादि क्लेशादिप्रतिविरताः स्युस्ते महतारंभेण प्राणिघातरूपेण महता समारंभेण प्राणि परितापरूपेण विरूपरूपैश्च नानाविधैः पापकर्मकृत्यैरुदारानुत्कृष्टान्मद्यमांसादियुतान् मानुष्यकान् मनुष्यभवयोग्यान् नोगेभ्योऽप्युत्कटाभोगाभोगभोगास्तान् नोक्तारःस्युः ॥ तद्यथा अन्नमन्नकाले यथेप्सितं तस्य पापानुष्ठानात्संपद्यते । एवं पानवस्त्रशयना सनादिकं सपूर्वापरं सहपूर्वकृत्येन स्नानादिना परकृत्येन विलेपनभोजनादिना वर्ततइति सपूर्वापरं । कोऽर्थः । यद्यदा प्रार्थ्यते तत्तदा संपद्यतइति । तद्यथा । स्नातः कृ तं देवतानिमित्तं बलिकर्म येन सःकृतबलिकर्मा कृतानि कौतुकान्यवतारणकादीनि मंगल सुवर्णचंदनाक्षतदूर्वासिद्धार्थादीनि प्रायश्चित्तानि डुःखप्रतिघातकानि येन सःकृतकौतुक मंगलप्रायश्चित्तः । शिरसि स्नातः कल्पितोयोमालाप्रधानोमुकुटः सविद्यते यस्य सःक ल्पितमालामुकुटी प्रतिबद्धशरीरोदृढांगः । (वग्घारितं) प्रलंबितं श्रोणी श्रोत्रं कटिसू त्रं मल्लदामकलापश्च येन सतया कंठे कृतमालः । आविद्धानि परिहितानि मणिसुव

र्णानि येन सतथा अहतमखंडितं वस्त्रं परिहितं येन सतथा चंदनेन उक्षितं सिक्तं गात्रं शरीरावयवायस्य सतथा नानाविधविलेपनावलिप्तइत्यर्थः । महत्यामुच्चायां (महालियाइति) विस्तीर्णायां कूटागारशालीयां महति महालये विस्तीर्णे सिंहासने नइासने स्थितः । स्त्रीगुल्मेन स्त्रियोयुवतयः गुल्मोऽन्यः परिवारस्तेन परिवृतः, निशि सर्वरात्रिसंबंधिना ज्योतिषा प्रदीपादिनवेन क्रियमाणेन दीप्यमानेन महता बृहत्तरेण प्रहतनाटयंगीतवादित्रतंत्रीतलतालत्रुटिकघनमृदंगपटुप्रवादितरवेण उदारान् मानुष्यकान् नोगनोगान् भुंजानोविहरति ॥ ५५ ॥

॥ टीका—सांप्रतमेषामगारिकाणामत्यंतविपर्यस्तमतीनामसद्वृत्तमाविर्नावयन्नाह । (तेइणमेवइत्यादि) तेहि साधुवर्गापवादिनः सद्धर्मप्रत्यनीकाइदमेव जीवितं परापवादोद्घाटनजीवितं धिक्जीवितं कुत्सितं जीवितं साधुजुगुप्सापरायणं संप्रतिबृंहंत्येतदेवासद्वृत्तजीवितं प्रशंसंतीति नावः । ते चेह लोकप्रतिबद्धाः साधुजुगुप्साजीविनोमोहांधाः साधूनपवदंति नापिच ते पारलौकिकस्यार्थस्य साधनमनुष्ठानं किंचिदपि स्वल्पमपि श्लिष्यंते समाश्रयंति । केवलं ते परान् साधून् वाचादिनिरनुष्ठानैर्डुःखयंति पीडामुत्पादयंति आत्मनः परेषांच । तथा ते ज्ञानांधास्तथा तत्कुर्वंति येनाधिकं शोचंते परानपि शोचयंति डुर्नापितादिनिः शोकं चोत्पादयंति तथा ते परान् (जूरयंति) गर्हंति तथा तिप्यंति सुखाद्च्यावयंत्यात्मानं परांश्च तथा ते वराकाअपुष्टधर्माणोऽसदनुष्ठानाः स्वतः पीडयंते परांश्च पीडयंति तथाते पापेन कर्मणा परितप्यंतेऽतर्दह्यंते परांश्च परितापयंति । तदेवं तेऽसहत्तयः संतोडुःखीनः शोचनादिक्लेशादप्रतिविरताः सदा नवंति । एवं नूताश्च संतस्ते महताऽऽरंनेण प्राणिव्यापादनरूपेण तथोनाभ्यामप्यारंनसमारंनाभ्यां विरूपरूपैश्च नानाप्रकारैः सावद्यानुष्ठानैः पापकर्मकृत्यैरुदारानत्यंतोद्भटान्समग्रसामग्रीकान् मधुमद्यमांसाद्युपेतान् मानुष्यकान् मनुष्यनवयोग्यान् नोगेन्योप्युत्कटान् नोगान् ते सावद्यानुष्ठायिनोनोक्तारोनवंति ॥ एतदेवदर्शयितुमाह । (तंजहेत्यादि) तद्यथेत्युपदर्शने । अन्नमन्नकाले यथेप्सितं तत्पापानुष्ठानात्संपद्यते । एवं पानवस्त्रशयनासनादिकमपि । सर्वमेतद्यथाकालं सपूर्वापरं संपद्यते सहपूर्वेण पूर्वाह्णकर्तव्येनापरेण चापराह्णकर्तव्येन । यदिवा पूर्वं यत्क्रियते स्नानादिकं तथा परंच यत्क्रियते विलेपनभोजनादिकं तेन सह वर्ततइति सपूर्वापरं । इदमुक्तंनवति । यद्यदा प्रार्थ्यते तत्तदा संपद्यतइति । अनिलषितार्थप्राप्तमेव लेशतोदर्शयितुमाह । तद्यथा । विनूत्या स्नातस्तथा कृतं देवतादिनिमित्तं बलिकर्म येन सतथा तथाकृतानि कौतुकान्यवतारणकादीनि मंगलानिच सुवर्णचंदनदध्यक्षतदूर्वासिद्धार्थकादर्शस्पर्शनादीनि तथा डुःस्वप्नादिप्रतिघातकानि प्रायश्चित्तानि येन सकृतकौतुकमं

गलप्रायश्चित्तः । तथा कल्पितश्चासौ मालाप्रधानोमुकुटश्च सतथा विद्यते यस्य सभवति कल्पितमालामुकुटी । तथा प्रतिबद्धशरीरोदृढावयवकायोयुवेत्यर्थः । तथा (वग्घा रियंति) प्रलंबितं श्रोणीसूत्रं कटिसूत्रं मल्लदामकलापश्च येन सतथा तदेवमसौ शिरसि स्नातः नानाविधविलेपनावलिप्तश्च कंठे कृतमालस्तथाऽपरयथोक्तभूषणभूषितः सन्महत्या मुच्चायां (महालियाएत्ति) विस्तीर्णायां कूटागारशालायां तथा महति महालये विस्ती र्णे सिंहासने भद्रासने समुपविष्टः स्त्रीवृंदेन युवतिजनेन सार्द्धमपरपरिवारेण संपरिवृतो वेष्टितोयस्तथा महता बृहत्तरेण प्रहतगीतवादित्रतंत्र्यादिरवेणोदारान्मानुष्यकान् भोगा भोगान्भुंजानोविहरति प्रविचरति विजृंभतीत्यर्थः ॥ ५५ ॥

तस्सणं एगमवि आणवेमाणस्स जाव चत्तारि पंचजणा आवुत्ता चेव अब्भुठंति भणहं देवाणुप्पिया किंकरेमो किंआहारेमो किंउवणेमो किं आचिट्ठामो किंभेहियं इच्छियं किंभेआसगस्स सयइ तमेवपासित्ता अणारिया एवं वयंति देवे खलु अयंपुरिसे देवसिणाए खलु अयं पुरिसे देवजीवणिज्जे खलु अयंपुरिसे अन्नेण विचणं उवजीवंति तमेव पासित्ता आरिया वयंति अभिक्कंतकूरकम्मे खलु अयंपुरिसे अति धुत्ते अइयायरक्खे दाहिणगामिए नेरइए कण्हपक्खिए आगमिस्साणं दुल्लहबोहियाएयावि भविस्सइ ॥ ५६ ॥

अर्थ—(तस्सणंएगमविआणवेमाणस्सके०) ते पुरुषने कोइ एक कार्य उपने एक माणसने आज्ञा देतां (जावचत्तारिपंचजणाके०) यावत् चार, पांच, पुरुष (आवुत्ताचेव के०) अणबो लाव्या (अब्भुठंतिके०) उठी सावधान थइने एम कहेके, (भणहंदेवाणुप्पियाके०) हेस्वामि! आज्ञा आपो? हे देवाणुप्रिय सरल स्वभावि! (किंकरेमोके०) शुं कार्य अमे करियें? जेवो आपनो हुकम होय ते करवाने तैयारछेए. (किंआहारेमो के०) केवो आहार क रशो? किंवा केवो आहार निपजावीये? (किंउवणेमोके०) शुं वस्तु लावी आपुं? (किं आचिट्ठामो के०) शुं स्थापना करू? तथा केवां आभरण पेरशो? (किंभेहियंइच्छियं के०) शुं तमारा हृदयने वल्लभछे. एटले शुं इच्छोछो? (किंभेआसगस्सईके०) शुं तमारा मुखने सयई रुचेछे? जेकांइ तमारा मुख मांहेथी वचन निकले ते अमे करियें, (तमे वपासित्ताके०) ते राजादिकने देखीने (अणारियाएवंवयंतिके०) अनार्य एवुं कहे के, (देवेखलु अयंपुरिसे के०) खलुइति निश्चें ए पुरुष देव, (देवसिणाए खलु अयं पुरिसे के०) ए पुरुष देव स्नातक, (देवेजीवणिज्जे खलुअयं पुरिसे के०) ए पुरुषनो देवताना

जेवो जीवछे, निश्चें ए पुरुष घणा लोकने आजीविकानो करनारछे, एने (अन्नेणविचणं उव जिवंति के०) बीजा घणा पुरुषो सेवेछे, एरीतें ते राजादिकने देखीने अनार्य लोको कहे अने तेना वखाण करे. हवे (तमेव पासित्ता के०) वली ते राजादिकने देखीने (आ रियावयंति के०) आर्य पुरुष जे होयते एवुं कहेके (अनिक्कंतकूरकम्मेखलुअयं पुरिसे के०) निश्चें ए पुरुष अत्यंत क्रूर कर्मी हिंसादिक क्रियाने विषे प्रवर्त्तेछे, (अतिधूत्तेके०) तथा ए पुरुष अत्यंत धूर्त्तछे घणां कर्मे करी सहितछे, तथा (अइयायरक्खेके०) घणा कर्मेकरी आपणा आत्माने संसार मांहे राखनारछे, (दाहिणगामिए नेरइए के०) त था ए दक्षिणगामि नारकीमां उपजनार, प्रायः जे क्रूरकर्मना करनार, साधुना निंदक, सा धुने दान आपवानो निषेध करनार होय, ते दक्षिणगामि नारकीमांहे उपजे. तेमाटे ए पुरुष दक्षिण गामि जाणवो. (कण्हपक्खिएके०) कृष्ण पाक्षिक नारकी थशे; कृष्ण पक्षि क नारकी मांहे शुं विशेषछे? ते कहेछे. (आगमिस्साणं डुल्लहबोहियाएयाविभविस्सइ के०) आगमिक कालें डुर्लभ बोधी थशे एटले शुं कह्युं? जे, दिशि मांहे दक्षिणदिशि, अने अप्रशस्त गतिमांहे नरकगति, तथा पक्ष मांहे कृष्ण पक्ष, एटला वाना अप्रशस्तछे तेम विषयांध पुरुष जे छेते परलोकना निस्पृहि, एवा साधुने देखीने तेने दानांतरायना कर नार थायतो एवा अप्रशस्त पुरुषने बोधबीज पामवुं डुर्लभछे. तथा जे ए थकी विपरी त विषयने विषे निस्पृहि, परलोकना भीरु, तथा साधुनी प्रशंसाना करनार, एवा पुरुष उत्तरदिशि तथा देवतानी गति अने शुक्लपक्ष, एटला वानां पामे तेने मनुष्य भवमां बो धबीज पामवुं सुलभछे. ॥ ५६ ॥

॥ दीपिका—तस्यैवंभूतस्य पुरुषस्य क्वचित्कार्ये सति एकपुरुषमाज्ञापयतोयाव च्चत्वारः पंचवा पुरुषाअनुक्ताएव समुपतिष्ठंते एवं वदंति च भण स्वामिन्! किंकु र्मोवयं किमाहराम आनयामः? किमुपनयामोढौकयामः? (किंआचिंढामोत्ति) किंभू षणादि परिधापयामः? किं युष्माकं हृदयेप्सितं? किंयुष्माकमास्यकस्य मुखस्य (सयइ त्ति) स्वदते स्वादु प्रतिभाति? अथवा यदेव तवास्यस्य स्रवति तव मुखान्निर्गच्छति तदे व वयं कुर्मइति। (तमेवपासित्तत्ति) यं राजानं तथाक्रीडमानं दृष्ट्वा अनार्याएवं वदंति देवः खलु अयं पुरुषोदेवस्नातकोदेवश्रेष्ठोबहूनामुपजीव्योऽन्योप्येनमुपजीवति तथा तं तादृशमसदाचारं दृष्ट्वाऽर्याविवेकिनोवदंति अनिक्रांतक्रूरकर्मा अयं पुरुषोहिंसादि क्रियाप्रवृत्तः अतिधूर्तोबहुलकर्मा अतीवात्मानं पापैरक्षतीत्यत्यात्मरक्षः दक्षिणदिग्गामी नैरयिकः कृष्णपाक्षिकः। कोर्थः। यः क्रूरकर्मा साधुप्रत्यनीकस्तद्दाननिषेधकः सदक्षिण दिशि नरकतिर्यगादिरुत्पद्यते। दिक्षु मध्ये दक्षिणा दिक् अप्रशस्ता गतिषु नरकगतिः प

क्षयोः कृष्णपक्षः । ततोऽस्य दिगादिकमप्रशस्तमुक्तं । अन्यदपि अबोधिलाभादिकं योज्यं । (आगमिस्सत्ति) सचाऽऽगामिकाले दुर्लभबोधिकः स्यादिति ॥ ५६ ॥

॥ टीका-तस्यच क्वचित्प्रयोजने समुत्पन्ने सति एकमपि पुरुषमाज्ञापयतोयावच्चत्वा रः पंचवा पुरुषाअनुक्ताएव समुपतिष्ठंते । तेच किंकुर्वाणाएत द्वक्ष्यमाणमूचुः । तद्यथा । भणाज्ञापय स्वामिन्! धन्यावयं येन भवताप्येवमादिश्यंते किंकुर्मइत्यादिसुगमं । याव हृदयेप्सितमिति । तथा किंच ते युष्माकमास्यकस्य मुखस्य स्वदते स्वाडु प्रतिभा ति? यदिवा यदेवास्य भवदीयास्यस्य स्रवति निर्गच्छति तदेव वयं कुर्मइति । तथा तमेवेत्यादि । तमेव राजानं तथा क्रीडमानं दृष्ट्वा अन्येऽनार्याएवं वदंति । तद्यथा । देवः खल्वयंपुरुषस्तथा देवस्नातकोदेवश्रेष्ठोबहूनामुपजीव्यस्तथा तमेवंसां प्रतेक्षितया सदनुष्ठायिनं दृष्ट्वा आर्याविवेकिनः सदाचारवंतएवं ब्रुवते तद्यथाऽभिक्रां तक्रूरकर्मा खल्वयं पुरुषोहिंसादिक्रियाप्रवृत्तइत्यर्थः । तथा धूयते रेणुवद्वायुनासंसा रचक्रवाले भ्राम्यते येन तद्धूतं कर्म । औणादिकोनक्प्रत्ययः । अतीव प्रभूतंधूतम ष्टप्रकारं कर्म यस्य सोतिधूतस्तथाऽतीवात्मनः परैः पापकर्मभिः रक्षा यस्य सोत्या त्मरक्षस्तथा दक्षिणस्यां दिशि गमनशीलोदक्षिणगामुकः । इदमुक्तं भवति । योहि क्रूर कर्मकारी साधुनिंदापरायणस्तद्दाननिषेधकः सन् दक्षिणगामुकइत्युक्तं । इदमेवाह । (ने रइएइत्यादि) नरकेषु भवोनारकः कृष्णपक्षोस्यास्तीति कृष्णपाक्षिकस्तथा आगामिनि काले नरकाडुधृतोदुर्लभबोधिकश्चायं बाहुल्येन भविष्यतीति । इदमुक्तं भवति । दिक्कुमध्ये द क्षिणा दिग् शस्ता गतिषु नरकगतिः, पक्षयोः कृष्णपक्षः तदस्य विषयोस्थेंद्रियानुकूलवर्तिनः परलोकनिस्पृहमतेः साधुप्रद्वेषिणोदानांतरायविधायिनोदिगादिकमशस्तं दर्शितमन्यदपि यदशस्तं तिर्यग्गत्यादिकमबोधिलाभादिकं च तद्योजनीयमस्येति । एतद्विपरीतस्य तु वि षयनिःस्पृहस्य इंद्रियानुकूलस्य परलोकभीरोः साधुप्रशंसावतः सदनुष्ठानरतस्य दक्षिण गामुकत्वं सुदेवत्वं शुक्लपाक्षिकत्वं तथा सुमानुषतया तस्य सुलभबोधित्वमित्येवमादिकं सद्धर्मानुष्ठायिनः सर्वं भवतीति ॥ ५६ ॥

च्चेयस्स ठाणस्स उठियावेगे अभिगिज्झंति अणुठियावेगे अभि गिज्झंति अभिझंझाउरा अभिगिज्झंति एसठाणे अणारिए अकेवले अ प्पडिपुन्ने अणेयाउए असंसुद्धे असल्लगत्तणे असिद्धिमग्गे अमुत्तिमग्गे अनिवाणमग्गे अणिज्जाणमग्गे असवडुक्खपहीणमग्गे एगंतमिच्छे अ साहु एसखलु पढमस्स ठाणस्स अधम्मपक्खस्स विभंगे एवमाहिए ॥५७॥

अर्थ–(इच्चेयस्सठाणस्सउठियावेगेके०) ए पूर्वोक्त स्थानक ऐश्वर्य लक्षण शृंगार मूल तेने कोइएक पाखंमीने मार्गे प्रवर्त्तता, परमार्थना अजाण, एवा पुरुष (अनिगिझंतिके०) वांछे, नियाणादिक चिंतवे, तथा वली (अणुठियावेगेके०) कोइएक अनुष्ठित गृहस्थ तेपण (अनिगिझंति के०) वांछे, (अनिफंफाउरा के०) तृष्णावंत लोनिया तदातुर थका ते राजानी पदवीने (अनिगिझंति के०) वांछे, (एसठाणेअणारिए के०) ए स्थानक अनार्य छे, महा पुरुषने अनाचीर्ण, (अकेवलेके०) एने विषे केवल ज्ञान नथी ए कारण माटे अशुद्ध तथा (अप्पडिपुन्ने के०) अप्रतिपूर्ण सजुण रहित तथा पूर्णता रहित तथा (अणेयाउए के०) अन्याय प्रवर्तक एटले न्यायमार्ग जेमां नथी, (असंसुद्धे के०) मलयुक्त (असल्लगत्तणे के०) तथा शल्यनुं कापनार नथी, (असिद्धिमग्गेके०) ए स्थानक थकी सिद्धिनो मार्ग नथी, एटले ए स्थानक सर्वडुःखना क्षयनो करनार नथी, (अमुत्तिमग्गे के०) कर्मबंधनुं स्थानक छे. (अनिव्वाणमग्गे के०) असमाधिनुं स्थानक छे. (अणिज्जाणमग्गेके०) मोक्षने नजाणवानो मार्ग छे, (असव्वडुरकपहीणमग्गे के०) सर्वथा सर्वडुःखना क्षयनो मार्ग नथी, एवुं ए स्थानकछे. (एगंतमिछे के०) ए एकांत मिथ्यात्वनुं स्थानकछे, एकारणे ए (असाहु के०) असाधुनो मार्गछे एसखलुके०) निश्चे थकी ए (पढमस्सठाणस्स के०) प्रथम स्थानकनुं (अधम्मपरकस्स (वनंगे के०) अधर्म पक्षना विनंग एटले विचार (एवमाहिए के०) एम कह्यो. ॥ ५७ ॥

॥ दीपिका–अस्योपसंहारमाह । इत्येतस्य स्थानस्य सावद्यरूपस्य एके उत्थिताः पाखंडाश्रिता (अनिगिझंति) लुन्यंते लोनवशगाः स्युः । अनुष्ठितागृहस्थाअपि संतोलुन्यंते (फंफाउरा) तृष्णातुरालुन्यंते अतइदं स्थानमनार्य अकेवलमशुद्धं अप्रतिपूर्णं गुणशून्यत्वात्तुछं अनैयायिकमन्यायवृत्तिकं असंशुद्धं समलं शल्यं मायानुष्ठानमकार्ये न शल्यकर्तनमशल्यकर्तनं । नविद्यते सिद्धेर्मार्गोयस्मिन् तदसिद्धिमार्गं नविद्यते मुक्तेर्मार्गोज्ञानादिकोयस्मिन् तदमुक्तिमार्गं नविद्यते निर्वाणस्य चित्तस्वास्थ्यस्य मार्गोयस्मिन् तत्तथा अनिर्वाणमार्गं न संसारनिर्याणमार्गरूपमित्यर्थः । न सर्वडुःखप्रक्षेपमार्गरूपं यस्मादेकांतेन मिथ्यादृशां असाधु असदाचारत्वात् । एषखलु प्रथमस्थानस्याधर्मपक्षस्य विनंगोविशेषः स्वरूपमिति यावत् आख्यातः कथितः ॥ ५७ ॥

॥ टीका–सांप्रतमुपसंजिघृक्षुराह । (इच्चेइयस्सेत्यादि) इत्येतस्य पूर्वोक्तस्य स्थानस्य ऐश्वर्यलक्षणस्य शृंगारमूलस्य संसारिकस्य परित्यागबुध्या एके केचन विपर्यस्तमतयः पाषंडिकोत्थानेनोत्थिताः परमार्थमजानातः (अनिगिझंतित्ति) आनिमुख्येन लुन्यंते लोन

वशगानवर्तीत्यर्थः । तथा एके केचन सांप्रतेक्षिणस्तस्मात्स्थानादनुपस्थितागृहस्थाए व संतः (अनिगिज्झंतित्ति) झंझा तृष्णा तदातुराः संतोऽर्थेष्वत्यर्थं लुभ्यंते यतएवमतो दुःस्थानमनार्यानुष्ठानपरत्वादनार्यं महापुरुषानुचीर्णं नवति तथा नविद्यते केवलमस्मि न्नित्यकेवलमशुद्धमित्यर्थः । तथेतरपुरुषाचीर्णत्वादपरिपूर्णं सद्गुणविरहात्तुच्छमित्यर्थः । तथा न्यायेन चरति नैयायिकं न नैयायिकमनैयायिकमसन्न्यायवृत्तिकमित्यर्थः । तथा र गेलगेसंवरणे । शोननं लगनं संवरणं इंद्रियसंयमरूपं सल्लगस्तद्भावःसल्लगत्वंवा विद्यते सल्लगत्वमस्मिन्नित्यसल्लगत्वमिंद्रियासंवरणरूपमित्यर्थः । यदिवा शल्यवच्छल्यं मायानुष्ठा नकार्यं तज्ञायति कथयति तच्छल्यगं यत्परिज्ञानं तन्नात्रेत्यशल्यगत्वमिति । तथा विद्यते सिद्धेर्मोक्षस्य विशिष्टस्थानोपलक्षितस्य मार्गोयस्मिंस्तदसिद्धिमार्गं तथा नविद्यते मुक्ते रशेषकर्मप्रच्युतिलक्षणायामार्गः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकोयस्मिंस्तदमुक्तिमार्गं तथा न विद्यतेः परिनिर्वृतेः परिनिर्वाणस्यात्मस्वास्थ्योत्पत्तिरूपस्य मार्गः पंथा यस्मिन् स्थाने तदपरिनिर्वाणमर्गं तथा नविद्यते सर्वं दुःखानां शारीरमानसानां प्रक्षयमार्गः सदुपदेशा त्मकोयस्मिंस्तदसर्वदुःखप्रक्षीणमार्गं । कुतएवंनूतं तत्स्थानमित्याशंक्याह । (एगंतेत्या दि) एकांतेनैव तत्स्थानं यतोमिथ्यानूतं मिथ्यात्वोपहतबुद्धीनां यतस्तद्भवत्यतएवासा ध्वसद्भृत्तत्वान्नह्ययं सत्पुरुषसेवितः पंथा येन विषयांधाः प्रवर्तंतइति । तदयं प्रथमस्य स्था नस्याधर्मपाक्षिकस्य पापोपादाननूतस्य विनंगोविनागोविशेषः स्वरूपमिति यावत् ॥५७॥

अहावरे दोच्चस्स ठाणस्स धम्मपक्खस्स विनंग एव माहिज्जइ इह ख लु पाईणंवा पडीणंवा उदीणंवा दाहिणंवा संतेगइया मणुस्सा नवंति तं जहा आयरियावेगे अणारियावेगे उच्चागोयावेगे णीयागोयावेगे कायमं तावेगे हस्समंतावेगे सुवन्नावेगे दुवन्नावेगे सुरूवावावेगे दुरूवावेगे तेसिं चणं खेत्तवत्थूणि परिग्गहियाइं नवंति एसोआलावगो जहा पोंमरीए तहा णेतवो तेणेव आलावेण जाव सवोवसंता सवताए परिनिवुमंत्तिबेमि॥५८॥ एसठाणे आरिए केवले जाव सवदुक्खपहीणमग्गे एगंतसम्मे साहु दोच्च स्स ठाणस्स धम्मपक्खस्स विनंगे एव माहिए ॥५९॥

अर्थ—हवे अपर बीजुं स्थानक धर्म पक्षनो विनंग एटले विचार कहियेंछैए. निश्चें आ जगत् मांहे पूर्वदिशियें, पश्चिमदिशियें, उत्तरदिशियें, अने दक्षिण दिशियें, अथवा विदि शियें, एवा कोइएक मनुष्यछे; ते कहेछे. एक आर्य, एक अनार्य, एक उंचगोत्रना उपना, एक नीचगोत्रना उपना, एक महोटी कायाना धणी, एक न्हानी कायाना धणी, एक

सारावर्ण वाला, एक माठा वर्ण वाला, एक सुंदर स्वरूपवान्, एक कुरूपवान्, तेने क्षेत्र एटले उघाडी जूमिका, अने वस्तु एटले घर हाट, प्रमुख एवो परिग्रह होय, इत्यादि (एसोआलावगोजहापोंमरीएतहाणेतव्वो केण) ए समस्त आलावो जेम पूर्वेना पौंमरीकाध्ययनमां कह्योछे तेमज जाणवुं, एटले "तेणेवअलावेणजावसव्वोवसंता सव्वत्ताएपरिनिव्वुमंत्तिबेमि" एटला सुधीनो पाठ पौंमरीक अध्ययनमांछे. ते प्रमाणे अहीं पण जाणी लेवुं. अर्थात् तेज आलावे ज्यां सुधी सर्व प्रकारे उपशांत एटले कषायने जीपीने तथा सर्व प्रकारे सर्व पापस्थानकथकी उपशम्या. ए कारणे सर्वात्मा, सर्व जीव उपर समजावे वर्त्तमान, शीतलीजूत थया. ए प्रमाणे श्रीसुधर्मस्वामि जंबूप्रत्यें कहेछे के ते आलावो सर्व आहीं जाणवो. ॥ ५८ ॥ ए स्थानकने आर्य रूडुं जाणवुं. एने विषे केवल ज्ञान होय यावत् ए सर्व दुःख क्षय करवानो मार्ग छे, एकांत सम्यक्मार्ग, एकांत सम्यक्दृष्टीनो मार्ग ते कारणे ए साधुनुं स्थानक जाणवुं एटले बीजुं स्थानक धर्मपक्ष, तेनो विजंग एटले विचार एरीतें कह्यो. ॥ ५९ ॥

दीपिका—(अहावरेत्ति) अथापरोद्वितीयस्थानस्य धर्मपक्षस्य विजंगोविशेषएवमाख्यायते । तद्यथा (पाईणंति) प्राचीनं प्रतीचीनमुदीचीनं दक्षिणंवा दिग्जागमाश्रित्य संत्येके केचन कल्याणजाजः पुरुषाः । तद्यथा आर्या एके अनार्याइत्यादि यथा पुंडरीकाध्ययने तथेहापि सर्वं वाच्यं यावत्ते एवं सर्वपापस्थानेन्य उपशांताअतएव सर्वात्मतया परिनिर्वृता इत्यहं ब्रवीमि ॥५८॥ एतत्स्थानमार्यं महापुरुषाचरितं केवलमित्यादिप्राग्वद्विपरीतं ज्ञेयं । यावद्वितीयस्थानस्य धर्मपक्षस्य विजंगोविशेषआख्यातः ॥ ५९ ॥

टीका—सांप्रतं द्वितीयं धर्मोपादानजूतं पक्षमाश्रित्याह । (अहावरेइत्यादि) अथेत्य धर्मपाक्षिकस्थानादनंतरमयमपरोद्वितीयस्य स्थानस्य धर्मपाक्षिकस्य पुण्योपादानजूतस्य विजंगोविजागः स्वरूपं समाधीयते सम्यगाख्यायते । तद्यथा प्राचीनं प्रतीचीनमुदीच्यं दक्षिणंवा दिग्विजागमाश्रित्य संतिवि द्यंते एके केचन कल्याणपरंपराजाजः पुरुषामनुष्यास्तेच वक्ष्यमाणस्वजावानवंति । तद्यथेत्ययमुपप्रदर्शनार्थः । आर्याएके केचनार्यदेशोत्पन्नास्तथाऽनार्याः शकयवनशवरबर्बरादयइत्याद्येवं । यथा पौंडरीकाध्ययने तथेहापि सर्वं निरवयवं जणितव्यं एवं पूर्वोक्तेन प्रकारेण सर्वेन्यः पापस्थानेन्य उपशांतास्तथा अतएव सर्वात्मतयापरिनिर्वृताइत्यहमेवं ब्रवीमि ॥५८॥ तदेवमेतत्स्थानं कैवलिकं प्रतिपूर्णं नैयायिकमित्यादि प्राग्वद्विपर्ययेण नेयं । यावद्वितीयस्य स्थानस्य धार्मिकस्यैव विजंगो विजागः स्वरूपमाख्यातमिति ॥ ५९ ॥

अहावरे तच्चस्स ठाणस्स मिस्सगस्स विभंग एव माहिज्जइ जे इमे न वंति आरसिया आवसहिया गामणियंतिया कएहुईरहस्सित्ता जाव ते तउविप्पमुच्चमाणा नुज्जो एलमूयत्ताए पच्चायंति एसठाणे अणारिए अ केवले जाव असव्वडुक्खपहीणमग्गे एगंतमिछे असाहु एसखलु तच्च स्स ठाणस्स मिस्सगस्स विभंगे एव माहिए ॥ ६० ॥

अर्थ—अथ हवे अपर त्रीजुं स्थानक मिश्र पक्षनो विचार एम कहेछे. (जेइमेनवंति के०) जे ए मिश्रस्थानकछे ते एने मिश्रस्थानक शा कारणे कहियें? तेमाटें विशेष कहेछे. अधर्म पक्षें मिश्रित जे धर्म पक्ष, ते कारणे एने मिश्र पक्ष कहियें. परंतु, अध र्मना बाहुल्य पणा थकी, ए अधर्म पक्षज जाणवो. यद्यपि मिथ्यादृष्टि पण केटली एक विरति करेछे, तथापि ते चित्तने अशुद्ध पणे, अने परमार्थने अजाण पणे, तथा अभिनव पित्तनाभावने उदयें, साकर मिश्रित दूधपाननी पेठें, तथा ऊखर क्षेत्रमां मेघ वृष्टि नी पेठें ते धर्म पण तेनो फलदायक नथाय. ते कारणे मिश्र पक्ष, विशेष अधर्म पक्षने म लतोज छे. (आरसिया के०) जे आरण्यक एटले कंदमूल फलाहारी वृक्षने मूलें वसता (आवसहियाके०) कोइएक पानडानी झुंपडी करीने रहे, (गामणियंतिया के०) आ जीविका चलाववा निमित्तें ग्रामने समीपे रहे, (कएहुईरहस्सित्ता के०) कोइएक कार्यने विषे

रहस्यना करनार, एवा तापसादिक पूर्वोक्त जेहोय ते मिश्रपक्षवाला जाणवा. (जावतेतउवि प्पमुच्चमाणाके०) यावत् यद्यपि ए कांहींएक काय क्लेश करे तथापि ते आसुरी किल्बिषिया उने स्थानके जइ उपजे. ते स्थानक थकी आयुष्यने क्षयें चवीने, (नुज्जो के०) वली मनुष्य नव पामे. तो, (एलमूयत्ताएके०) बेहेरा, मुंगा, आंधला, जन्मांध, (पच्चायंति के०) एवा थाय. एरीतें चतुर्गतिक संसार मांहे परिभ्रमण करे. ए कारणे ए स्थानक अनार्य एटले महापुरुषने अनाचरणीय छे, एने विषे केवलज्ञान नथी, यावत् सर्व दुःख ना क्षयनुं कारक ए स्थानक नथी ए मार्ग एकांत मिथ्यात्वनुं स्थानक, माटे ए असा धुनो पंथ जाणवो. ए निश्चें त्रीजुं स्थानक जे मिश्रपक्ष, तेनो विचार एरीतें कह्यो. ॥६०॥

॥ दीपिका—अथापरस्तृतीयस्थानस्य मिश्रकाख्यस्य विभंगोविभागः कथ्यते। अत्र चाधर्मपक्षयुक्तोधर्मपक्षइति मिश्रउच्यते। तत्राधर्मस्येह बहुत्वादयमधर्मपक्षवज्ज्ञेयः। यतोमिथ्यादृशः कांचिज्जीवहिंसादिनिवृत्तिं कुर्वंति तथापि चित्तशुद्धेरभावान्नवीने पित्तो दये शर्करामिश्रक्षीरपानवत् ऊपरप्रदेशे वृष्टिवद्वा कार्यासाधकत्वान्निरर्थकत्तां याति सा। तथा मिथ्यात्वानुभावान्मिश्रपक्षोप्यधर्मपक्षएवेति दर्शयति। (जेइमेआरसिया) ये इमे

अरण्ये चरंतीत्यारण्यिकाः कंदमूलफलाशिनस्तापसाः आवसथोगृहं तेन चरंतीत्यावस थिकागृहिणः। यद्यप्येते कायक्लेशेन देवाः स्युस्तथापि आसुरीयेषु किल्बिषिकेषु उत्प द्यंते इत्यादि सर्वं पूर्वोक्तं वाच्यं। यावत्ततश्च्युतानरज्ञवे एलमूकत्वेन प्रत्यायांति तदेतत्स्था नमनार्यमित्यादि पूर्ववत्। एषस्तृतीयस्थानस्य मिश्रकस्य विभंगोविचारोज्ञेयः॥ ६०॥

॥ टीका–सांप्रतं धर्माधर्मयुक्तं तृतीयस्थानमाश्रित्याह। (अहावरेत्यादि) अथापरस्तृतीय स्य स्थानस्य मिश्रकाख्यस्य विभंगोविभागः स्वरूपमाख्यायते। अत्र चाधर्मपक्षेण युक्तोऽधर्म पक्षोमिश्रइत्युच्यते। तत्राधर्मस्येह भूयिष्ठत्वादधर्मपक्षएवायं दृष्टव्यः। एतडुक्तं भवति। यद्यपि मिथ्यादृष्टयः कांचित्तथाप्रकारां प्राणातिपातादिनिर्वृत्तिं विदधति तथाप्याशया शुद्धत्वादभिनवे पित्तोदये सति शर्करामिश्रक्षीरपानवदूषरप्रदेशवृष्टिवद्विवक्षितार्थसाध कत्वान्निरर्थकतामापद्यते। ततोमिथ्यात्वानुभावात् मिश्रपक्षोप्यधर्मएवावगंतव्य इति। एतदेव दर्शयितुमाह॥ (जेइमेभवंतीत्यादि) ये इमेऽनंतरमुच्यमानाअरण्ये चरंतीत्यार ण्यिकाः कंदमूलफलाशिनस्तापसादयोये चावसथिकाआवसथोगृहं तेन चरंतीत्यावस थिकागृहिणस्तेच कुतश्चित् पापस्थानान्निवृत्ताअपि प्रबलमिथ्यात्वोपहतबुद्धयस्ते यद्य प्युपवासादिना महता कायक्लेशेन देवगतयः केचन भवंति तथापि ते आसुरीयेषु स्था नेषु किल्बिषिकेषूत्पद्यंतइत्यादि सर्वं पूर्वोक्तं भणनीयं यावत्ततश्च्युतामनुष्यभवं प्रत्याया ता एलमूकत्वेन तमोंधतया जायंते। तदेवमेतत्स्थानमनार्यमकेवलमसंपूर्णमनैयायि कमित्यादि यावदेकांतमिथ्याभूतं सर्वथैतदसाध्विति। तृतीयस्थानस्य मिश्रस्यायं विभं गोविभागः स्वरूपमाख्यातमिति॥ ६०॥

अहावरे पढमस्स ठाणस्स अधम्मपरकस्स विभंगे एव माहिज्जइ इह खलु पाईणंवा संतेगतिया मणुस्सा भवंति गिहत्था महिछा महारंभा महापरि ग्गहा अधम्मिया अधम्माणुया अधम्मिठा अधम्मरकाई अधम्मपावजी वि अधम्मपलोई अधम्मवलज्जणा अधम्मसील समुदायारा अधम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति॥ ६१॥

अर्थ–हवे वली ए पूर्वे त्रण प्रकार जे कह्या, तेज प्रकार विशेषें करी कहेछे. तेमां प्रथम स्थानकं कहेछे. अथ हवे अपर प्रथम स्थानक अधर्म पक्षनो स्वरूप विचार आवीरीते कहेछे. आजगतमांहे निश्चें पूर्वादिक चारदिशिने विषे कोइएक मनुष्य छे ते केवा छे तोके.. (महिछा के०) महोटी जेनी इछाछे, चित्तनी अविरतिछे, तथा (महारं

ना के०) कृष्यादिक महाआरंजना करनार, तथा (महापरिग्गहा के०) क्षेत्र, धन, धान्य, द्विपद, चतुःपदादिक, अनेक परिग्रहवंत अधर्मिक अधर्मानुय एटले अधर्मनीज अनुमोदना करनारा, (अधम्मिठा के०) अधर्मज जेने इष्टले वल्लनले, (अधम्मरकाईके०) अधर्मना बोलनार, अथवा अधर्मथीले ख्याति जेनी, अधर्मे करी आजीविकाना करनार, एटले अधर्मेज जीवे, प्राण धारण करे. तथा अधर्मज देखे तथा अधर्मनेज अंगीकार क रवा प्रलोके एटले देखे, ते अधर्म प्रलोइ केवाय. (अधम्मवलज्जणाके०) अधर्मने विषे राचे, अधर्मशील एटले अधर्मज जेनो स्वनावले, (समुदायारा के०) तथा चारनो समुदाय ले जेनो (अधम्मेणंचेववित्तिंकप्पेमाणाविहरंति के०) तथा जे अधर्मे करीनेज वृत्ति कल्पीने विचरे. कालक्षेप करे ॥६१॥

॥ दीपिका–नक्तानि अधर्मधर्ममिश्रस्थानानि । अथ तेषां स्थानिनोऽनिधीयंते । अथवा पूर्वोक्तमेव प्रकारांतरेण विशिष्टतरमाह । अथापरः प्रथमस्थानस्य धर्मपक्षस्य वि नंगोविनागएवमाख्या यते । (इहखलुइत्यादि) एते च प्रायोगृहस्थाएव स्युरित्याह । (गिहत्था) गृहस्थाः (महेब्रा) महारंनाः महापरिग्रहाअधर्मेण चरंत्याधार्मिकाअध र्मानुज्ञाः अधर्मिष्ठानिस्त्रिंशाः अधर्माख्यायिनोऽधर्मवादिनः अधर्मजीविनोऽधर्मप्रलोकिन अधर्मे प्रकर्षेण रज्यंतइत्यधर्मप्ररक्तकाः अधर्मशीलः समुदाचारोयत्किंचनकारित्वं येषां ते तथा अधर्मेण वृत्तिं जीविकां कल्पयंतः कुर्वंतोविहरंति तिष्ठंति । पापानुष्ठानमाह ॥६१॥

॥ टीका–नक्तान्यधर्मधर्ममिश्रस्थानानि । सांप्रतं तदाश्रिताः स्थानिनोऽनिधीयंते । यदिवा प्राक्तनमेवान्येन प्रकारेण विशेषिततरमुच्यते । तत्राद्यमधर्मस्थानकमाश्रित्याह (अहावरेइत्यादि) अथापरोन्यः प्रथमस्य स्थानस्याधर्मपाक्षिकस्य विनंगोविनाग आख्यायते (इहखलु इत्यादि) सुगमं । यावन्मनुष्याएवंस्वनावानवंतीति । एते च प्रा योगृहस्थाएवं नवंतीत्याह । (महेब्राइत्यादि) महती राज्यविनवपरिवारादिका स र्वातिशायिनी स्वबांतःकरणप्रवृत्तिर्येषां ते महेब्रास्तथा महानारंनोवहनोष्ट्रमंडलिकागं त्रीप्रवाहकृषिषंडपोषणादिकोयेषां ते महारंनाः । ये चैवं नूतास्ते महापरिग्रहाधन धान्यद्विपदचतुष्पदवास्तुक्षेत्रादिपरिग्रहवंतः क्वचिदप्यनिवृत्ताअतएवाधर्मेण चरंतीत्य धर्मिकास्तथा धर्मिष्ठानिस्त्रिंशकर्मकारित्वादधर्मबहुलास्ततश्चाधर्मे कर्तव्ये अनुज्ञाअनुमो दनं येषां ते नवंत्यधर्मानुज्ञा एवमधर्ममाख्यातुं शीलं येषां ते तथा एवमधर्मप्रायजीवि नस्तथा अधर्ममेव प्रविलोकयितुं शीलं येषां ते नवंत्यधर्मप्रविलोकिनस्तथा धर्मप्रायेषु क र्मसु प्रकर्षेण रज्यंतइति अधर्मरक्ताः । रलयोरैक्यमिति रस्य स्थाने लकारोऽत्र कृत इति ।

तथाऽधर्मशीलाअधर्मस्वनावास्तथाऽधर्मात्मकः समुदाचारोयत्किंचनानुष्ठानं येषांते नवं त्यधर्मशीलसमुदाचारास्तथाऽधर्मेण पापेन सावद्यानुष्ठानेनैव दहनांकननिर्लांछनादिके कर्मणा वृत्तिर्वर्तनं कल्पयंतः कुर्वाणाविहरंतीति कालमतिवाहयंति ॥ ६१ ॥

हण छिंद निंद विगत्तगा लोहियपाणी चंमा रुद्दा खुद्दा साहस्सिया उ कुंचण वंचण मायाणियडि कूडकवडसाइ संपडगबहुला डुस्सीला डुव्व या डुप्पडियाणंदा असाहु सवाउ पाणाइवायाउ अप्पडिविरया. जाव जीवाए जाव सवाउ. परिग्गहाउ अप्पडिविरया जाव जीवाए सवउ कोहाउ जाव मिछादंसणसल्लाउ अप्पडिविरया सवाउ एहाणुम्मद्दण म हण वस्रगंधविलेवणसद्द फरिसरसरूव गंधमल्लालंकाराउ अप्पडिवि रया जावजीवाए सवाउ सगड रहजाण जुगगिल्लिथिल्लिसिया संदमा णिया सयणासणजाण वाहणनोगनोयणपविछरविहीउ अप्पडिविरया जावजीवाएसवाउ कयविक्कयमासद्धमासरूवगसंववहाराउ अप्पडिवि रया जावजीवाए सवाउहिरस्र सुवस्रधणधस्र मणिमोत्तियसंखसिलप्प वालउ अप्पडिविरया जावजीवाए सवाउ कूडतुलकुडमाणाउ अप्पडिवि रयां जावजीवाए सवाउ आरंन समारंनाउ अप्पडिविरया जावजीवाए उ सवाउ करणकाराणाउ अप्पडिविरया जावजीवाए सवाउ पयण पायाणाउ अप्पडिविरया जावजीवाए सवाउ कुट्टणपिट्टणतज्जणताड णवहबंधपरिकिलेसाउ अप्पडिविरया जावजीवाए जेआवस्रे तहप्प गारे सावज्जा अबोहिया कम्मंता परपाणपरियावणकरा जे अणारि एहिं कज्जंति ततो अप्पडिविरया जावजीवाए ॥ ६२ ॥

अर्थ—हवे एनो अधर्माचार कहेछे. ते पोते अधर्मी उता बीजाने पण एवा आदेश आपे ते कहेछे, के, (हण के०) अरे एने हणो, (छिंद निंद के०) कर्णादिक, छेदी शूलादिकें करी नेदी, (विगत्तगाके०) एनां चर्म उखेडो, इत्यादिक कहीने प्राणीउने डुःखना उ पजावनार थाय, ए कारणे (लोहियपाणी के०) सर्वकाल लोहीयें करी हाथ राताछे परंतु तेउ जीवोने हणीने कोइ वारें हाथ पण धोवे नहीं, (चंमा के०) तीव्रक्रोध,(रुद्दा के०) रौड ध्यान, शोचरहितकर्मना करनार, (खुद्दाके०) क्षुड डुष्ट, नंमा, (साहस्सि

या के०) अणविमास्या कार्यना करनार, (उक्कंचण के०) तथा शूलिकारोपणने विषे ऊर्ध्वमहोटुं करवुं (वंचण के०) वंचणा. एटले परने नगवानी बुधिराखे, जेम अनयकुमारने चंडप्रद्योतनी गणिकायें वंच्यो, तेनी पेरें वंचक, (मायाणियडि के०) वंचवानीबुद्धियें वाणीयानी पेरें मायानियड नियड एटले बगनी वृत्तियें वंचवानें अर्थें साधुने स्वरूपे रहे जेम उदायिराजानें चलेईकियें वंच्यो, मास्यो, तेनी पेरें जाणी लेवुं (कूडके०) मृषा बोलवुं. (कवडसाइ के०) कपट एटले रूप पालटवुं तथा नापादिक परावर्त्ति एटले प्रकारें (संपउग के०) तथा ते तोलातु न्यूनाधिक करवुं तथा नेलसेलनुं करवुं इत्यादिक व्यापार जाणवो (बहुला के०) घणाढे बहुलकर्म, ते उपर योगी सन्यासीनी कथा जाणवी. (डुस्सीला के०) डुःशील (डुव्वया के०) डुष्टव्रत वाला (डुप्पडियाणंदा के०) डुःखें आनंद पमाडियें जेने डुःखें हर्ष पमाडियें डुराराध्य इत्यर्थः एवा (असाहु के०) असाधु (सव्वाउ के०) सर्वथा प्रकारें (पाणाइवायाउ के०) प्राणातिपात थकी, (अप्पडिविरया के०) अनिवृत्या, (जावजीवाए के०) जावजीवसुधी (जावसव्वाउपरिग्गहाउ के०) यावत् सर्वथा परिग्रह थकी, (अप्पडिविरया के०) अनिवृत्या (जावजीवाए के०) जावजीव सुधी (सव्वतोकोहाउ के०) सर्वथा प्रकारें क्रोध थकी (जावमिछादंसणसल्लाउ के०) यावत् मिथ्यात्व दर्शन शल्य थकी, (अप्पडिविरया के०) अनिवृत्या. (सव्वाउके०) सर्वथा (एहाणुचणके०) स्नान, (मद्दणके०) मर्दन. करावलुं (वस्रके०) वर्ण ते अंबीर, गुलाल, (गंधके०) सुवास, (विलेवणके०) विलेपन करवा थकी, (सदके०) शब्द, गीत, वाद्यादिकना (फरिसके०) आठ जातना स्पर्श, (रूवके०) रूप, सुंदराकारादिक, (गंध के०) कर्पूरादिकनी सुगंध (मल्लालंकाराउ के०) माला, अलंकार ते थकी, (अप्पडिविरया के०) अनिवृत्या (जावजीवाए के०) जावजीव सुधी (सव्वाउ के०) सर्वथा (सगड के०) शकट एटले गाडां (रह के०) रथ (जाणके०) वहेल (जुग के०) पुरुपे उपाड्यो आकाश यान तथा (गिल्लि के०) मोली, अथवा ऊंटना पलाण (थिल्लिके०) हस्तिना पलाण, (सिया के०) शिबिका. ते देशविशेष प्रसिद्ध यान शिबिका (संदमाणियाके०) शिबिका देशविशेषें अन्यजातिढे: (सयणासणजाणवाहण के०) पर्यंकादिक आसयान वाहनादिकना (नोग के०) नोग थकी तथा (नोयण के०) नोजन (पविछर के०) घर वखारो (विहीउ के०) तेना विस्तारथी (अप्पडिविरया के०) अनिवृत्या (जावजीवाए के०) जावजीवसुधी (सव्वाउ के०) सर्व (कयविक्कय के०) क्रय वक्रय एटले लेवो वेचवो (मासद्धमासरूवग के०) माप अर्ध माप रूपादिक (संववहाराउ के०) इत्यादिक लेवा देवा रूप व्यापार थकी (अप्पडिविरया के०) अनिवृत्या. (जावजीवाए के०) जावजीवसुधी सर्वथा हिरण्य एटले रु

पुं, तथा सुवर्ण, धन, धान्य, चिंतामणी प्रमुख मणी, तथा मौक्तिक दक्षणावर्त्त शंख, राजपट, प्रवालादिक परिग्रह, तेथकी अनिवृत्या; तथा जावजीवसुधी सर्व कूडां तोलां, कूडां मापथकी. नथी निवृत्या; तथा जावजीव सुधी सर्व आरंभ जें कर्षणादिक, तथा समारंभ विशेष, तेथकी नथी निवृत्या, तथा जावजीवसुधी सर्वथा करण करावण थकी नथी निवृत्या, तथा जावजीव सुधी पचन ते पोतें पचाववानुं करे, तथा पचावण ते बीजा पासें पचाववानुं करावे, ए क्रिया थकी नथी निवृत्या, तथा सर्व कुटण पिट्टन तर्जन अंगुलीयेंकरी तर्जना करे चपटीयादिकें करी ताडन करे, वध, बंधन करे, इत्यादिक जीवने क्लेषना कारण थकी नथी निवृत्या, तथा जावजीव सुधी जे बीजां, तथाप्रकारें पाठल कह्यां एवा सपापकारी परपीडानां करनार, सावद्य कर्म, (अबोहिया के०) बोधबीजना नसाडनार एवां (कम्मता के०) कर्म, परजीवने परितापना करनार जे अनार्य पुरुषोने करवा योग्य, तेथकी पण जावजीव सुधी निवृत्या नथी. ॥ ६१ ॥

॥दीपिका—(हणछिंदत्ति) जहि दंडादिना, छिंधि कर्णादिकं, भिंधि शूलादिना, एवं परोपदेशं ददते । किंभूताः विकर्तकाः प्राणिनां चर्मापनेतारस्तेनैव लोहितपाणयश्चंडारौद्राः निस्त्रिंशाः क्षुद्राः साहसिकाअविचारितकारिणः उत्कुंचनवंचनमायानिकृतिकूटकपटादिभिः सहातिसंप्रयोगोगार्ध्यं तेन बहुलाः । तत्र शूलाद्यारोपणार्थमूर्ध्वं कुंचनमुत्कुंचनं वंचनं प्रतारणं । यथाऽभयकुमारः प्रद्योतगणिकाभिर्धर्मवंचनया वंचितः । माया, वंचनबुद्धिः प्रायोवणिजामिव निकृतिस्तु बकवृत्त्या देशभाषावेषादिविपर्ययकरणं कूटं तु लामानादेर्न्यूनाधिककरणं, कपटं यथाषाढभूतिना वेषपरावृत्त्याचार्योपाध्यायसंघाटकात्मार्थं चत्वारोमोदकालब्धाः एवं मायायुतानराः । पुनः किंभूताः । दुःशीलाश्चिरं परिचिताअपि शीघ्रं विसंवदंतोदुष्टव्रतादुःखेन प्रत्यानंद्यंते हर्षंतइति दुष्प्रत्यानंद्याअसाधवः पापाः सर्वतः प्राणातिपातादप्रतिविरतालोकनिंद्यादपि ब्राह्मणघातादेरनिवृत्ताइति सर्वग्रहणं । एवं यावज्जीवं सर्वतोमृषावादाऽदत्तादानमैथुनपरिग्रहादप्रतिविरताः । एवं सर्वेभ्यः क्रोधमानमायालोभेभ्यस्तथा प्रेमद्वेषकलहाभ्याख्यानपैशुन्यपरिवादाऽरतिरतिमायामृषावादमिथ्यादर्शनशल्यादिभ्योऽविरताः स्नानोद्वर्तनवर्णकविलेपनशब्दस्पर्शरूपरसगंधमाल्यालंकारादप्रतिविरताः सर्वतः शकटरथादेर्यानादिकात्प्रविस्तरविधेः परिकरादप्रतिविरताः । अत्र शकटरथादिकमेव यानं शकटरथयानं युग्यंतरोत्क्षिप्तं चाकाशयानं (गिल्लित्ति) दोलिका (थिल्लित्ति) तुरगद्वयनिर्मितं यानं (संदमाणियत्ति) शिबिकाविशेषः । तथा सर्वतः क्रयविक्रायाभ्यां योमाषकार्धमाषकरूपकनाणकादिभिः संव्यवहारस्तस्मादविरताः सर्वस्माद्धिरण्यसुवर्णधान्यमणिमौक्तिकशंखशिलाप्रवालादिपरिग्रहात्, कूटतुलाकूटमानात्

कृष्यादेः स्वयंकरणमारंभः परेण कारयणं समारंभस्तस्मात्, पचनपाचनतः कंमनकुट्टन पिट्टनतर्जनताडनवधबंधादिभिर्यः परिक्लेशस्तस्मादनिवृत्ताये चान्ये तथाप्रकाराः सावद्याः कर्मसमारंभाअबोधिकाबोधिनाशकाः परप्राणपरितापनकरायेऽनार्यैः क्रियंते ततोनिवृत्तायावज्जीवयेति ॥ ६१ ॥

॥ टीका—पापानुष्ठानमेव लेशतोदर्शयितुमाह । (हणछिंदभिंदेत्यादि) स्वतएव हननादिकाः क्रियाः कुर्वाणाअपरेषामप्येवमात्मकमुपदेशं ददति । तत्र हननं दंडादिभिस्तत्कारयंति तथा छिंधि कर्णादिकं, भिंधि शूलादिना, विकर्तकाः प्राणिनामजिनापनेतारोऽतएव लोहितपाणयस्तथा चंडारौद्रानिस्त्रिंशाः क्षुद्राः क्षुद्रकर्मकारित्वात्तथा साहसिकाअसमीक्षितकारिणस्तथा उत्कुंचनवंचनमायानिकृतिकूटकषायादिभिः सहातिसंप्रयोगोगाढ्यं तेन बहुलास्तत्प्रचुरास्ते तथा तत्रोर्ध्वं कुंचनं शूलाद्यारोपणार्थमुत्कुंचनं । वंचनं प्रतारणं । तद्यथाऽभयकुमारः प्रद्योतगणिकाभिर्धार्मिकवंचनया वंचितः । माया, वंचनबुद्धिः प्रायोवणिजामिव । निकृतिस्तु बकवृत्त्या कुर्कुटादिकरणेन दंभप्रधानवणिक् श्रोत्रियसाध्वाकारेण परवंचनार्थं गलकर्तकानामिवावस्थानं । देशभाषानेपथ्यादिविपर्ययकरणं कपटं । यथा आषाढभूतिना नटेन वा परापरवेषपरावृत्त्याचार्योपाध्यायसंघाटकात्मार्थं चत्वारोमोदकाअवाप्ताः । कूटंतु कार्षापणतुलाप्रस्थादेः परवंचनार्थं नानाविधकरणं । एतैरुत्कुंचनादिभिः सहातिशयेन प्रयोगोयदिवातिशयेन द्रव्येण कस्तूरिकादिना परस्य द्रव्यस्य संप्रयोगः सोतिसंप्रयोगस्तद्बहुलास्तत्प्रधानाइत्यर्थः । उक्तंच सोहोइ सातिजोगो,दव्वं जं छादियसुदव्वेसु । दोसगुणावयणेसुय, अत्थविसंवाइणं कुणइ ॥ १ ॥ एते चोत्कुंचनादयोमायापर्यायाइंद्रशक्रादिवत् कथंचित्क्रियाभेदेपि द्रष्टव्याः । तथा दुष्टं शीलं येषांते दुःशीलाश्चिरमुपचरिताअपि क्षिप्रं विसंवदंति । दुःखानुमेयादारुणस्वभावाइत्यर्थः । तथा दुष्टानि व्रतानि येषांते तथा । यथा मांसभक्षणव्रतकालसमाप्तौ प्रभूततरसत्वोपघातेन मांसप्रदानमन्यदपि नक्तभोजनादिकं दुष्टव्रतमिति तथान्यस्मिन् जन्मांतरे मधुमद्यमांसादिकमभ्यवहरिष्यामीत्येवमज्ञानांधाजन्मांतरविधिद्वारेण सनिदानमेव व्रतं गृह्णंति, तथा दुःखेन प्रत्यानंद्यंते दुष्प्रत्यनंद्याः । इदमुक्तं भवति । तैरानंदितेनापरेण केनचित्प्रत्युपकारेप्सुना गर्वाध्मातादुःखेन प्रत्यानंद्यंते । यदिवा सत्यप्युपकारे प्रत्युपकारभीरवोनैवानंद्यंते प्रत्युत शक्ततयोपकारे दोषमेवोत्पादयंति । तथा चोक्तं । प्रतिकर्तुमशक्तिष्ठानराः पूर्वोपकारिणां ॥ दोषमुत्पाद्य गच्छंति मद्गूनामिव वायसाः ॥ १ ॥ यतएवमतोऽसाधवस्ते पापकर्मकारित्वात् तथा यावज्जीवं यावत्प्राणधारणेन सर्वस्मात्प्राणातिपातादप्रतिविरतालोकनिंदनीयादपि ब्राह्मणघातादेरविरताइति । सर्वग्रहणं सर्वस्मादपि कूटसाक्ष्यादेरप्रतिविरताइति । तथा सर्वस्माद

पि कूटसाक्ष्यादेरप्रतिविरताइति । तथा सर्वस्मात्स्त्रीबालादेः परद्रव्यापहरणादविरतास्तथा सर्वस्मात्परस्त्रीगमनादेर्मैथुनादविरताएवं सर्वस्मात्परिग्रहाद्योनिपोषकादप्यविरताएवं सर्वेन्यः क्रोधमानमायालोनेन्योऽविरतास्तथा प्रेमद्वेषकलहान्याख्यानपैशुन्यपरपरिवादाऽरतिरतिमायामृषावादमिथ्यादर्शनशल्यादिन्योऽसदनुष्ठानेन्योयावज्जीवं ये प्रतिविरताजवंति । तथा सर्वस्मात्स्नानोन्मर्दनवर्णकविलेपनशब्दस्पर्शरूपरसगंधमाल्यालंकारात्कामांगान्मोहजनितादप्रतिविरतायावज्जीवयेति । इहच वर्णकग्रहणेन वर्णविशेषापादकं लोध्रादिकं गृह्यते । तथा सर्वतः शकटरथादेर्यानविशेषादिकात्प्रतिविस्तरविधेः परिकररूपात्परिग्रहादप्रतिविरताः । इहच शकटरथादिकमेव यानं शकटरथयानं युग्यं पुरुषोत्क्षिप्तमाकाशयानं (गिल्लित्ति) पुरुषद्वयोत्क्षिप्ता जोल्लिका । (थिल्लित्ति) वेसरादिद्वयविनिर्मितोयानविशेषः तथा (संदमाणियत्ति) शिबिकाविशेषएव । एतदेवमन्यस्मादपि वस्त्रादेः परिग्रहाडुपकरणनूतादविरतास्तथा सर्वतः सर्वस्मात्क्रयविक्रयान्यां करणनूतान्यां योमापकार्धमाषकरूपकार्षापणादिन्निः पण्यविनिमयात्मकः संव्यवहारस्तस्मादविरतायावज्जीवयेति । तथा सर्वस्माद्धिरण्यसुवर्णादेः प्रधानपरिग्रहादविरतास्तथा कूटतुलाकूटमानादेरविरतास्तथा सर्वतः कृषिपाशुपाल्यादेर्यत्स्वतः करणमन्येन च यत्किंचित्कारयति तस्मादविरतास्तथा पचनपाचनतस्तथा कंडनकुट्टनपिट्टनतर्जनताडनबंधादिना यः परिक्लेशः प्राणिनां तस्मादविरताः । सांप्रतमुपसंहरति । ये चान्ये परपीडाकारिणः सावद्याः कर्मसमारंनाअबोधिकाबोधकारिणस्तथा परप्राणपरितापनकरागोग्रहबंदीग्रहग्रामघातात्मकायेऽना यैः क्रूरकर्मन्निः क्रियंते ततोऽप्रतिविरतायावज्जीवयेति ॥ ६१ ॥

से जहा णामए केइ पुरिसे कलममसूरतिलमुग्गमासनिप्फावकुलत्थआलिसंदग पलिमंथगमादिएहिं अयंते कूरे मिछादंमं पउंजंति एवमेव तहप्पगारे पुरिसजाए तित्तिरवट्टगलावगकवोतकविंजलमियमहिसवराहगाहगोहकुम्मसिरिसिवमादिएहिं अयंते कूरेमिछादंमं पउंजंति जावियसे वाहिरिया परिसा नवइ तंजहा दासेइवा पेसेइवा नयएइवा नाइल्लेइवा कम्मकरएइवा नोगपुरिसेइवा तेसिंपियणं अन्नयरंसिवा अहालहुगंसि अवराहंसि सयमेव गरुयं दंमं निवत्तेइ तंजहा इमंदंमेह इमंमुंमेह इमंतज्जेह इमंतालेह इमंअडुयबंधणं करेह इमंनियलबंधणं करेह इमंहडिबंधणं करेह इमंचारगबंधणं करेह इमंनियलजुयलसंकोडियमोडियं करेह इमंहत्थछिन्नयं करेह इमंपायछिन्नयं करेह इमं कन्नछिन्नयं

करेह इमंनक्कउठसीसमुहछिन्नयं करेह वेयगछहियं अंगछहियं इमंपुक्का प्फोडियं करेह इमंणयणुप्पाडियं करेह इमंदंसणुप्पाडियं वसणुप्पाडियं जि प्नुप्पाडियं उल्लंबियं करेह घसियं करेह घोलियं करेह सूलाइयं करेह सूला ज्निन्नयं करेह खारवत्तियं करेह वज्झवत्तियं करेह सीहपुछियंगं करेह वसन्नपुछियंगं करेह दवग्गिदह्वयंगं कागणिमंसखावियंगं नत्तपा णनिरुद्धगं इमं जावजीवं वहबंधणं करेह इमं अन्नयरेणं असुनेणं कु मारेणं मारेह ॥ ६३ ॥

अर्थ—हवे वली बीजा प्रकारें अधर्मिक पुरुषनो विशेष कहेछे. यथादृष्टांतें नामएवी संनावनायें कोइएक पुरुष. कलम एटले वटाणा, चणा, मसूरनी दाल, तल, मग, मास एटले अडद, निप्फाव एटले वाल, (कुलब के०) तुवर, (आलिसंदग पलिमंथग मादिएहिं के०) चत्रथ, कालाचणा, आदेलेइने जे धान्य विशेषछे तेने पच न पाचनादिक क्रियायें करी पोताने तथा परने अर्थे (अयंते के०) अयत्नछता निर्दय नावें (कूरेके०) क्रूरपणे डुष्ट थको (मिछादंमंपउंजंति के०) मिथ्या दंम प्रयूजे (एवमेव के०) एरीते (तहप्पगारे के०) तथा प्रकारें पूर्वोक्त जे (पुरिसजाए के०) पुरुषजाति छे ते निर्दय पणे तितर, वर्त्तक, लावक, कपोतपक्षी, कपिंजलपक्षी, मृग, पाम्रो, सूवर, मयूर, गौ नकुलादिक, जलचर घो,काचबो, अने नूजपुरी सर्प इत्यादिक प्राणीने विषे अर्थी अथवा अनर्थी थको यत्नविना निर्दय नावे क्रूर डुष्ट थकोमिथ्यादंम प्रयूजे;एवा पुरुष ने परिवार पण एवोज सांपडे " यथा राजा तथा प्रजा " इतिवचनात् ते देखाडेछे. (जावियसेबाहिरियापरिसानवइ के०) जेपण तेनी बाहेरनी परिषदा होय (तंजहा के०) ते कहेछे (दासेइवा के०) ए दास आपणी दासीनो पुत्रछे (पेसेइवा के०) ए प्रेष्क काम काज उपने ज्यां त्यां मोकलवुं (नयएइवा के०) नृत ते मजूरीनो करनार, तथा (नाइल्लेइवा के०) नागीक, षष्ठादिक नागें कर्षणादिकने विषे प्रवर्त्ते, (कम्मकरएइवा के०) कामनो करनार प्रसिद्ध ते कर्मकर कहियें (नोगपुरिसेइवा के०) स्वतंत्र नोगने माटें राखेलो दास तेपण बाहेरनी परिषदा मांहे कोइ रूडो पुरुष होय. (तेसिंपियणं के०) तेनो पण (अन्नयरंसिवा के०) अन्य कोइ एकनो (अहालहुगंसिके०) यथा शब्दादिक सांनलेछते पछी तेनो एवो न्हानो (अवराहंसिके०) अपराध उपने छते ते नायकना दासादिकपण (सयमेवगुरुयंदंमंनिवत्तेइके०) पोतें तेनें महोटो दंम करे. (तंजहा के०) ते केवा दंम करे. ते कहेछे (इमंदंमेह के०) एने दंमो, एनुं सर्व

स्व अपहरी ल्यो, (इमंमुंमेह के०) एने सर्वमुंमन करावो (इमंतज्जेह के०) एने अंगुलीयें करी तर्जना करो, (इमंतालेह के०) एने चिपटे करी ताडन करो, (इमंअडुयंबंधणंकरेहके०) एने पठवाडे बाहु करीने बंधने बंधन करो, (इमंनियलबंधणंकरेहके०) एना हाथमां बेडी नाखीने बंधन करो, (इमंहडिबंधणंकरेह) एने हडनुं बंधन करो, (इमंचारगबंधणंकरेह के०) एने नाकसी बंधन करो, (इमंनियलजुयलसंकोडियमोडियंकरेहके०) एने बेडीना युगलें करी संकोच करो, मोडिय एटले अंगोपांग नंग करी मरडो, अथवा एना हाथ पग संकोचीने बांधो, (इमंहछिन्नयंकरेह के०) एना हाथ छेदन करो, (इमं पायछिन्नयं करेह के०) एना पग छेदन करो (इमंकन्नछिन्नयंकरेह के०) एमज एना कान छेदन करो, (इमंनक्कउठसीसमुहछिन्नयंकरेहके०) एनुं नाक छेदन करो, एना होठ, एनुं मस्तक, एनुं मुख, छेदन करो, (वेयगछहियंअंगछहियं के०) एनुं वेदछेद करो, एना जीवतांज हैयाने छेदो, कापो, एम करो. (इमंपुरकाप्फोडियंकरेहके०) एना शरीरनी खालने उपाडो एम करो, (इमंणयणुप्पाडियंकरेह के०) एनी आंख उखेडो एटले चक्षुकाढो, एम करो. (इमंदंसणुप्पाडियंवसणुप्पाडियंजिप्नुप्पाडियंउलंबियंकरेह के०) एना दांत काढो, वृषण काढो, एनी जीन काढो. एने उंचो बांधोएने कूप, पर्वत नदीने नाखो एम करो, (घसियंकरेह के०) एने पग बांधीने घसो, (घोलियं करेहके०) एने विषे आंबांनी पेठें घोलो, (सूलाइयंकरेहके०) एने शूली उपर आरोपण करो, (सूलाभिन्नयंकरेहके०) एने त्रिशूलें नेद करो, (खारवत्तियं करेहके०) एने शस्त्रें करी छेदीने लूणनुं पाणी सींचो (वज्झवत्तियं करेह के०) एनुं शरीर मार्नें करी, काशें छेदो. (सीहपुछियंगं करेह के०) एने सिंहने पुंछडे बांधो, (वसनपुछियंगं करेह के०) एने बलदने पुंछडे बांधो (दवग्गिंदछयंगं के०) एने दावानल मांहे बालो, (कागणिमंसरकावियंगंके०) एने काक पक्षीनु मांस काढीने खवरावो, तथा एनुं पोतानुं मांस काढीने एनेज खवरावो, (नत्तपाणनिरुद्धगंके०) एने नात पाणीनो निरोध करो, (इमंजावजीववहबंधणंकरेह के०) एने जावजीव सुधी बांधी मूको, वध, बंधन करो, (इमंअन्नयरेणंअसुनेणंकुमारेणंमारेहके०) एम एने बीजा केटलाएक अशुन मारें करीने मारो, इत्यादिक एवा दंम तेने आपे. ६२

॥ दीपिका—अधार्मिकपदमेव सविस्तरमाह । (सेजहेत्ति) तद्यथा । नामसंनावने । संनाव्यंते अत्र नवे केचिदेवंनूतानराः ये कलममसूरादिषु पचनादिक्रिययाऽयताअयत्नवंतोनिष्क्रियाः क्रूराः मिथ्या अपराधं विना दोषमारोप्य दंडोमिथ्यादंडस्तं प्रयुंजंति । तथा एवमेव प्रयोजनं विनैव तथाप्रकारानिर्दयाः पुरुषास्तित्तिरिवर्तकादिप्राणिष्वयताः क्रूरकर्माणोमिथ्यादंडं प्रयुंजंति तेषां परिकरोपि तादृशः स्यादित्याह (जावियसेत्ति) यापिच

तेषां बाह्या पर्षद्भवति । तद्यथा दासः स्वदासीसुतः प्रेष्यः प्रेषणयोग्यः भृतकोमूल्यगृहीतः भागिकः कृष्यादौ सद्भागग्राही कर्मकरः प्रतीतः भोगपरोनायकाश्रितः कश्चित् ते दासादयोऽन्यतरस्मिन्स्वल्पेऽप्यपराधे स्वयं गुरुतरं दंडं प्रयुंजंति । सच नायकस्तेषां दासादीनां यथा लघौ स्वल्पेऽपराधेपि गुरुदंडं वक्ष्यमाणं प्रयुंक्ते । तद्यथा इमं दासं दंडयत यूयमित्यादि सुगमं । यावदिममन्यतरेणाऽशुभेन कुत्सितमारेण मारयतइति॥ ६३ ॥

॥ टीका–पुनरन्यथा बहुप्रकारमधार्मिकपदं प्रतिपिपादयिषुराह । (सेजहाणामएइत्यादि) तद्यथेत्युपदर्शनार्थोनामशब्दः संभावनायां संभाव्यते । अस्मिन्विचित्रे संसारे केचनैवंभूताः पुरुषाः केवलमसूरतिलमुद्गादिषु पचनपाचनादिकया क्रियया स्वपरार्थमयताअप्रयत्नवंतोनिष्कृपाः क्रूरामिथ्यादंडं प्रयुंजंति । मिथ्यैवाऽनपराधिष्वेव दोषमारोप्य दंडोमिथ्यादंडस्तं विदधति । तथैवेमे प्रयोजनं विनैव तथाप्रकाराः पुरुषानिष्करुणा जीवोपघातनिरतास्तित्तिरवर्तकलावकादिषु जीवनप्रियेषु प्राणिष्वयताः क्रूरकर्माणोदंडं प्रयुंजंति। तेषां च क्रूरधियां "यथा राजा तथा प्रजा" इति प्रवादात् परिवारोपि तथाभूतएव भवतीति । तथा दर्शयितुमाह । (जावियसेइत्यादि) यापिच तेषां बाह्या पर्षद्भवति । तद्यथा । दासः स्वदासीसुतः प्रेष्यः प्रेषणयोग्योभृत्योभृत्यदेश्योभृतकोवेतवेनोदकाद्यानयनविधायी तथा भागिकोयः षष्ठांशादिलाभेन कृष्यादौ व्याप्रियते कर्मकरः प्रतीतस्तथा नायिकाश्रितः कश्चिद्भोगस्तदेवं ते दासादयोऽन्यस्य लघावप्यपराधे गुरुतरं दंडं प्रयुंजंति प्रयोजयंतिच । सच नायकस्तेषां दासादीनां बाह्यपर्षद्भूतानामन्यतरस्मिंस्तथा लघावपराधे शब्दश्रवणादिके गुरुतरं दंडं वक्ष्यमाणं प्रयुंक्ते । तद्यथा । इमं दासं प्रेष्यादिकंवा सर्वस्वापहारेण दंडयत यूयमित्यादि सूत्रसिद्धं यावदिममन्यतरेणाशुभेन कुत्सितमारेण व्यापादयत यूयं ॥ ६३ ॥

जावियसे अप्भिंतरिया परिसा भवइ तंजहा मायाइवा पियाइवा भायाइवा भगिणीइवा भज्जाइवा पुत्ताइवा धूताइवा सुण्हाइवा तेसिंपियणं अन्नयरंसि अहालहुगंसि अवराहंसि सयमेव गरुयं दंमं णिवत्तेइ सीउदगवियडंसि उबोलित्ता भवइ जहा मित्तदोसवत्तिए जाव अहिए परंसि लोगंसि तेडुरकंति सोयंति जूरंति तिप्पंति पिट्टंति परितप्पंति ते डुरकणसोयणजूरणपिट्टणपरितप्पणवहबंधणपरिकिलेसाउ अपडिविरया भवंति ॥ ६४ ॥

अर्थ–(जावियसेअप्भिंतरियापरिसाभवइके०) जे पण तेनी अभ्यंतरनी परिषदा होय

जहा के०) ते कहेछे. माता, अथवा पिता, अथवा नाइ, नगनी, स्त्री, पुत्र, बेटी, पुत्रनीस्त्री, इत्यादिक माहेली परिषदावालामांथी कोइकनो पण अजाण पणे यथा न्हानो सरखो अपराध नपने थके पोतेंज तेने महोटो दंम करे, मारे, शीतकालें तेना शरीरने टाढापाणीमां बोले, एवा अकार्य करे, ए जेम पूर्वें मित्रदोष प्रत्ययिक क्रियास्थानक कह्युंछे, तेमज अहींयां पण जाणीलेवुं. एवा दंमनो करनार पुरुष, ते यावत् आ लोकने विषे अहित कारी अने परलोकने विषे आत्माने अहितकारी थाय ते अनेक जीवने दुःख नपजावे, शोक नपजावे, जूरावे, तपावे, पीटे, परिताप आपे, ते घणा जीवोने दुःखदायक शोकनो करनार गर्हा, निंदा करावनार, पीटीने पीडानो नपजावनार, परिताप करावनार, वध करावनार, बंधन करावनार, एवा महोटा क्लेश नपजाववाना कर्म थकी, जावजीव नथी निवृत्या एवो थका होय ॥ ६४ ॥

॥ दीपिका–यापि च तेषामन्यंतरा पर्षद्भवति मातापित्रादिका मित्रदोषःप्रत्ययिकाख्यदशमक्रियास्थानवज्ज्ञेयं यावदहितोऽस्मिन् लोके। ते क्रूरकर्माणः स्वल्पापराधिनामपि गुरुतरदंडकरणाद्दुःखयंति शोकयंति याव द्वधबंधपरिक्लेशादप्रतिविरतान्नवंति ॥ ६४ ॥

टीका–यापिच क्रूरकर्मवतामन्यंतरा पर्षद्भवति । तद्यथा । माता पित्रादिका मित्रदोष प्रत्ययिकक्रियास्थानवद्ज्ञेयं यावदहितोयमस्मिन् लोके इति । तथाहि । आत्मनोऽपथ्यकारि परस्मिन्नपि लोके । तदेवं ते मातृपित्रादीनां स्वल्पापराधिनामपि गुरुतरदंडापादनतोऽदुःखमुत्पादयंति तथा नानाविधैरुपायैस्तेषां शोकमुत्पादयंति शोकयंतीत्येवं ते प्राणिनां बहुप्रकारपीडोत्पादकाः याव द्वधबंधपरिक्लेशादप्रतिविरतान्नवंति ॥ ६४ ॥

एवमेव ते इत्थिकामेहिं मुच्छिया गिद्धा गढिया अज्झोववन्ना जाव वासाइं चउपंचमाइं छद्दसमाइवा अप्पतरोवा नुज्जतरोवा कालं नुंजित्तु नोग नोगाइं पविसुइत्ता वेरायतणाइं संचिणित्ता बहूइं पावाइं कम्माइं उस्सन्नाइं संनारकडेण कम्मणा से जहा णामए अयगोलइवा सेलगोलइवा उदगंसि पक्खित्ते समाणे उदगतलमइवइत्ताइ अहे धरणितलपइट्ठाणे नवइ एवमेव तहप्पगारे पुरिसजाते वज्जबहुले धूतबहुले पंकबहुले वेरबहुले अप्पत्तियबहुले दंनबहुले णियडिबहुले साइबहुले अयसबहुले उस्सन्नतसपाणघाती कालमासे कालंकिच्चा धरणितलमइवइत्ताइ अहे णरगतलपइट्ठाणे नवइ ॥ ६५ ॥

अर्थ-एरीतें ते पूर्वोक्त स्वभाव वालो पुरुष निर्दय थको बाह्याभ्यंतर एवी पोतानी जे परिषदा तेने पण पीडानो करनार एवो, उतो स्त्रियादिकना काम भोगने विषे मूर्छित गृद्ध एटले लोभी, भोगने विषे पोतें गुंथाणो थको परम आसक्त उतो, यावत् चार, तथा पांच, तथा सात, तथा दश वर्ष एम अल्प काल अथवा घणोकाल सुधी भोगववा योग्य भोग भोगवीने, घणा जीवोनी साथे अनेक जातना वेर उपजावी वैरभावना स्थानकनो संचय करीने, ज्यां घणापापरूप हिंसादिक क्रूर कर्म संभारीकरी करेला कर्मने प्ररेतो एवा उतो, नरक रूप स्थानकने पामे. (सेजहाणामए के०) ते यथा दृष्टांते जेम (अयगोलइवा के०) लोहनो गोलो, (सेलगोलइवा के०) पाषाणनो गोलो, तेने (उदगंसिपक्खित्तेसमाणे के०) पाणीना द्रहमांहे अथवा नदी तलाव मांहे नाख्यो थको, (उदगतलमइवइत्ताइ के०) उपलुं तलुं अतिक्रमीने पाणीना तलामां जइ पेसे, (अहेधरणितलपइठाणेभवइ के०) नीचे धरतिना तलाने विषे जइ बेसेछे. (एवमेव के०) एरीतें (तहप्पगारे के०) तथा प्रकारें, ए पूर्वोक्त प्रकारना दुष्ट निर्दय नास्तिक वादि प्रमुख एवा जे (पुरिसजाते के०) पुरुष जातिछे ते (वज्जबहुलेके०) घणा पापरूप कर्म, (धूतबहुलेके०) घणी कर्मरूपरज (पंकबहुलेके०) घणो कर्मरूप कादव, (वेरबहुले के०) घणो जीवोनी साथे वैरभाव, (अप्पत्तियबहुले के०) अविश्वासलायक एवुं मननुं दुर्ध्यान (अयसबहुले के०) घणो अपयश (दंभबहुले के०) घणुं कपट परने वंचवा पणु छे जेमां, (णियडिबहुले के०) घणो वेष तथा भाषानु पलटावबुंछे जेमां (साइबहुले के०) सातिशय द्रव्य साथें गुणहीन पुरुषोना द्रव्यनुं मेलावबुं (तसपाणघाती के०) प्रायः त्रस प्राणी जीवनो घात करनार, ते (कालमासेकालंकिच्चा के०) कालने अवसरें काल करीने (धरणितलमइवइत्ताइ के०) पृथ्वीना तलाने सहस्र योजन प्रमाण अतिक्रमि जाये; जइने, (अहेणरगतलपइठाणेभवइ के०) नीचें नरकना तलियाना स्थानकने विषे तेनुं पडवुं थायछे. ॥६५॥

॥दीपिका-(एवमेवत्ति) एवमेव ते निर्दयाः स्त्रीप्रधानेषु कामेषु मूर्छिता गृद्धाग्रथिता अध्युपपन्नायावद्वर्षाणि चतुःपंचषट्सप्त वा दशवाल्पतरंप्रभूततरं वा कालं भोगान् भुक्त्वा वैरायतनानि वैरानुबंधान प्रविसूय उत्पद्य बहूनि पापकर्माणि संचित्य वर्धयित्वा उत्पन्नं प्रायः संभारकृतेन कर्मणा प्रेर्यमाणानरकतलप्रतिष्ठानाः स्युः । यथाऽयोगोलः शिलागोलकोवा उदकक्षिप्तउदकतलमतिवर्त्य उल्लंघ्याधोधरणितलप्रतिष्ठानोभवति एवमेव सनरोवज्रं वध्यमानं कर्म तद्बहुलः धूनं प्राग्बद्धं कर्म तत्प्रचुरः पंकबहुलः पंकपाप वैरबहुलः (अप्पत्तियत्ति) मनसोदुर्ध्यानं दंभोमायया परवंचनं निकृतिर्भाषावेषादिपरावर्त्तेन परद्रोहबुद्धिः सातिशयेन द्रव्येणहीनद्रव्यस्य मेलनं सातिः तद्बहुलः अयशोबहु

लः प्रायस्त्रसघाती कालमासे स्वायुःक्षये कालं कृत्वा धरणितलं रत्नप्रनादिकायाः पृथिव्यास्तलमतिलंघ्याऽधोनरकतलप्रतिष्ठानः स्यात् ॥ ६५ ॥

॥ टीका—तेच विषयासक्ततया एतत्कुर्वंतीत्येतद्दर्शयितुमाह । (एवमेवइत्यादि) एवमेव पूर्वोक्तस्वनावाएवं ते निष्कृपानिरनुक्रोशाबाह्याभ्यंतरपर्षदोरपि कर्णनासाविकर्तनादिना दंडपातनस्वनावाः स्त्रीप्रधानाः कामाः स्त्रीकामाः यदिवा स्त्रीषु मदनकामविषयनूतासु कामेषुच शब्दादिषु इच्छाकामेषु मूर्छितागृद्धाग्रथिताअध्युपपन्नाः । एते च शक्रपुरंदरादिवत्पर्यायाः कथंचिद्भेदं वाश्रित्य व्याख्येयाः । तेच नोगासक्ताव्यपगतपरलोकाध्यवसायायावद्वर्षाणि चतुःपंचषट् सप्तवा दशवाल्पतरं वा कालं नुक्त्वा नोगासक्ततयाच परपीडोत्पादनतो वैरायतनानि वैरानुबंधाननुप्रसूयोत्पाद्य विधाय तथा संचयित्वा संचिंत्योपचित्य बहूनि प्रनूततरकालस्थितिकानि क्रूराणि क्रूरविपाकानि नरकादिषु यातनास्थानेषु क्रकचपाटनशाल्मल्यवरोहणतप्तत्रपुपानात्मकानि कर्माण्यष्टप्रकाराणि बद्धस्पृष्टनिधत्तनिकाचनावस्थानि विधाय तेनच संनारकृतेन कर्मणा प्रेर्यमाणास्तत्कर्मगुरवोवा नरकतलप्रतिष्ठानानवंतीत्युत्तरक्रिययापादितबहुवचनरूपयेति संबंधः । अस्मिन्नेवार्थे सर्वलोकप्रतीतं दृष्टांतमाह । (सेजहाणामएइत्यादि) तद्यथानामायोगोलकोऽयस्पिंडः शिलागोलकोवृत्तात्मशकलं वोदके प्रक्षिप्तः समानसलिलतलमतिवर्त्यातिलंघ्याधोधरणीतले प्रतिष्ठानोनवति । अधुना दार्ष्टांतिकमाह । (एवमेवेत्यादि) यथासावयोगोलकोवृत्तत्वाच्छीघ्रमेवाधोयात्येवमेव तथाप्रकारः पुरुषजातः । तमेव लेशतोदर्शयति । वज्रवद्वज्रं गुरुत्वात्कर्म तद्बहुलस्तत्करणप्रचुरस्तथा बध्यमानकर्मगुरुरित्यर्थः । तथा धूयतइति धूतं प्राग्बद्धं कर्म तत्प्रचुरः । पुनः सामान्येनाह । पंकयतीति पंकं पापं तद्बहुलस्तथा । तदेव कारणतोदर्शयितुमाह । वैरबहुलो वैरानु बंधप्रचुरस्तथा (पत्तियंति) मनसोडुष्प्रणिधानं तत्प्रधानस्तथा दंनोमायया परवंचनं तडुत्कटस्तथा निकृतिर्मायावेषनाषापरावृत्तिश्छद्मना परद्रोहबुद्धिस्तन्मयस्तथा सातिबहुलइतिसातिशयेन ड्रव्येणापरस्य हीनगुणस्य ड्रव्यस्य संयोगः सातिस्तद्बहुलस्तत्करणप्रचुरस्तथाऽयशोश्लाघासद्वृत्ततया निंदा यानि यानि परापकारनूतानि कर्मानुष्ठानानि विधत्ते तेषु तेषु कर्मसु करचरणछेदनादिषु अयशोनाग्नवतीति । सएवंनूतः पुरुषः कालमासे स्वायुषः क्षये कालं कृत्वा पृथिव्यारत्नप्रनादिकायास्तलमतिवर्त्य योजनसहस्रपरिमाणमतिलंघ्य नरकतलप्रतिष्ठानोऽसौ नवति ॥ ६५ ॥

तेणं णरगा अंतोवट्टा बाहिं चउरंसा अहे खुरप्पसंठाणसंठिया णिच्चंधकारतमसा ववगयगहचंदसूरनक्खत्तजोइसपहा मेदवसामंसरुहिरपूयपडलचिक्कललित्ताणुलेवणतला असुई वीसा परमडुब्भिगंधा कण्हा

अगणिवन्नाभा कक्खडफासा दुरुहियासा असुभा णरगा असुभा णरए

सु वेयणाउ ॥ ६६ ॥

अर्थ-(तेणंणरगाके०) ते नरकनु स्वरूप कहेछे. (अंतोवट्टा के०) सीमंतादिक नरकावासा माहेली कोरें वाटलाआकारेछे, (बाहिंचउरंसा के०) बाहेर चारखुणाछे. (अहेखुरप्पसंगणसंठिया के०) नीचें सजायानी धारने आकारें संस्थितछे एटले रह्याछे (णिच्चंधकारतमसा के०) नित्य सर्वकाल मेघ छायानी पेरें, कृष्णपक्षनी रात्रीनी परें, महाअंधकारे युक्तछे बहुल अंधकारछे. (ववगयचंदसूरगहनरक्खत्तजोइसप्पहा के०) बुधादिक ग्रह, चंद्रमा, सूर्य, नक्षत्र, ज्योतिष्य प्रकाश, ते थकी व्यपगत एटले रहितछे. (मेदवसामंसरुहिरपूयपडलचिक्खल्ललित्ताणुलेवणतला के०) मेद, वसा, मांस, रुधिर, परसेवो, तेना पडल एटले समूह तेना कादवें करी अनु लिप्तछे जेना भूमितल एवाछे, एटले जे एकवार लिपीयें तेने लिप्त कहिये अने जे वारंवार लिपीयें तेने अनुलिप्त कहियें, (असुईवीसापरमदुब्भिगंधाकएहा के०) अशुचि बीभत्सविष्टायें खरड्या कुत्सित एटले मांससमान दुर्गंध, खराब कृष्णवर्ण वाला (अगणिवन्नाभाके०) मशाणनो अग्नि, तथा धम्या लोहना अग्निनी ज्वालाउना जेवा वर्ण थाय ते समान आकारछे जेनो, जे अत्यंत कठोर, सहन करता अत्यंत दुःसहछे (करकसफासादुरुहियासा अशुभके०) दुःखे सहन थाय एवा खरखरा कर्कश फरशछे जेने विषे, एवा अशुभ (णरगा के०) नरकने विषे (अशुभ णरए सुवेयणाउ के०) महा अशुभ वेदना प्रवर्त्तेछे. ॥ ६६ ॥

॥ दीपिका-नरक स्वरूपमाह । ते नरकाअंतर्वृत्तावहिश्चतुरस्राः अधश्च क्षुरप्रसंस्थानस्थिताः । एतच्च संस्थानं पुष्पावकीर्णानां तेषामेव प्रचुरत्वात् । आवलिकां गतास्तु वृत्तत्र्यस्रचतुरस्रसंस्थानाएव तथा नित्यांधकारतमसा भृशं तमोबहुलाः व्यपगतग्रहचंद्रसूर्यनक्षत्रज्योतिष्पथाः । मेदवसामांसरुधिरपूयपटलैर्लिप्तानि अनुलेपनप्रधानानि तलानियेषां ते तथा । तथा अशुचयोविस्राः कुथितमांसादिलिप्तत्वात् परमदुरभिगंधाः कृष्णाग्निवर्णाभाः कर्कशस्पर्शादुःखेनाधिसह्यंते यतोऽशुभास्तत्र नरकेषु अशुभादुःसहावेदनाः ॥ ६६ ॥

॥ टीका-नरकस्वरूपनिरूपणमाह । (तेणमित्यादि) णमिति वाक्यालंकारे । ते नरकाः सीमंतकादिकाबाहुल्यमंगीकृत्यांतर्मध्ये वृत्तावहिरपि चतुरस्राअधश्च क्षुरप्रसंस्थानसंस्थिताः । एतच्च संस्थानं पुष्पावकीर्णानाश्रित्योक्तं तेषामेव प्रचुरत्वात् । आवलिकाप्रविष्टास्तु वृत्तत्र्यस्रचतुरस्रसंस्थानाएव भवंति । तथा नित्यमेवांधतमसं येषु ते नित्यांधतमसाः । क्वचित्पाठोनित्यांधकारतमसाइति । मेघावछिन्नांबरतलकृष्णपक्षरजनीवत् तमो

बहुलास्तथा व्यपगतोग्रहसूर्यचंद्रज्योतिःपथोयेषां ते तथा । पुनरप्यनिष्टापादनार्थं तेषा मेव विशेषणान्याह । (मेदवसेत्यादि) डुष्कृतकर्मकारिणां ते नारकास्तद्दुखोत्पादनायैवं नूतानवंति । तद्यथा । मेदवसामांसरुधिरपूयादीनां पटलानि संघास्तैर्लिप्तानि पिच्छिलीकृ तान्यनुलेपनतलान्यनुलेपनप्रधानानि तलानि येषां ते तथा अशुचयोविष्टासृक्क्लेदप्रधान त्वादतएव विश्राः कुथितमांसादिकऽपकर्दमावलिप्तत्वात् । एवं परमडुर्गंधाः कुथितगो मायुकलेवरादपि असह्यगंधास्तथा कृष्णा अग्निवर्णानारूपतः । स्पर्शतस्तु कर्कशः कठिनोवज्र कंटकादप्यधिकतरः स्पर्शोयेषां ते तथा किंबहुनाऽतीव डुःखेनाधिसह्यंते । किमिति । यत स्ते नरकाः पंचानामपींद्रियार्थानामशोजनत्वादशुनास्तत्रच सत्वानामशुनकर्मकारिणामु दग्रदंडपातिनांच वज्रप्रचुराणां तीव्राअतिडःसहवेदनाः शारीराः प्राडुर्नवंति ॥ ६६ ॥

णोचेव णरएसु नेरइया णिद्दायं तिवा पलायंतिवा सूइंवा रतिंवा धीतिं वा मतिंवा ऊवलन्नंते तेणं तछ ऊज्जलं विउलं पगाढं कडुयं कक्कसं चंमं डुक्खं डुग्गं तिवं डुरुहियासं णेरइया वेयणं पच्चणुप्नवमाणा विहरंति ॥६७॥

अर्थ-(णोचेवणरएसुरनरइया के०) पणते नरकने विषे जे नारकी जीवोछे ते एटलावा नां पामता नथी शुं नथी पामता ? तोके (णिद्दायंतिवा के०) निड़ा नथी पामता, (प लायंतिवाके०) घणी निड़ा जे प्रचला ते पण नथी पामता, (सूइंवाके०) श्रुति एटले विशेष ज्ञाननी स्मृति तेपण नथी पामता, (रतिंवा के०) चित्तने विषे रति पामता नथी, (धतिंवा के०) विशेष धैर्य धृतिने पण नथी पामता, तथा (मतिंवा के०) बुद्धिने पण (ऊवलन्नंते के०) पामे नहीं (तेणंतछऊज्जलं के०) ते नारकी ते नरकने विषे प्रव र्त्तमान थका उज्वली केतां तीव्र उत्कृष्ट (विउलं के०) विस्तीर्ण (पगाढं के०) आकरी, (कडुयं के०) कडवी, (कक्कसं के०) कर्कश, (चंमं के०) रौड़, (डुःक्खं के०) डुःखनुं कारण, (डुग्गंतिवं के०) तीव्र डुर्ग, तीक्ष्ण, (डुरुहियासं के०) डुःखे सहन करवा योग्य (णेरइयावेयणं के०) नरकने विषे नारकीने वेदनाने (पच्चणुप्नवमाणाविहरंतिके०) नोगवता थका विचरेछे. काल अतिक्रमण करेछे ते उपर दृष्टांत कहेछे. ॥ ६७ ॥

॥ दीपिका-(णोचेवत्ति) तेषु नरकेषु वेदनानिनूता न निड़ायंते न प्रचलायंते ईषन्नि ड़ामपि नगछंतीत्यर्थः । श्रुतिंवा रतिंवा धृतिंवा मतिंवा नोपलनंते ते नारकास्तत्र उज्वला मुत्कटां विपुलां प्रगाढां कटुकां कर्कशां चंडां डुःखरूपां तीव्रां डुरधिसह्यां नरकवेदनां प्र त्यनुनवमानास्तिष्ठंति ॥ ६७ ॥

॥ टीका—तथाच वेदनयाभिभूतास्तेषु नरकेषु नारकानैवाक्षिनिमेषमपि कालं निद्रायं ते नाप्युपविष्टाद्यवस्थाअक्षिसंकोचनरूपामीपन्निद्रामवाप्नुवंति । नह्येवंभूतवेदनाभिभूतस्य निद्रालाभोभवतीति दर्शयति । तामुज्वलां तीव्रानुभावेनोत्कटामित्यादि विशेषणविशिष्टां यावद्वेदयंत्यनुभवंतीति ॥ ६७ ॥

से जहाणामए रुक्खसिया पव्वयग्गे जाए मूले छिन्ने अग्गे गरुए ज उणित्तं जउ विसमं जउडुग्गं तउपवडंति एवमेव तहप्पगारे पुरिसजाए गप्ताउगप्तं जम्माउजम्मं माराउमारं णरगाउ णरगं डुक्काउ डुक्खं दाहि णगामिए णेरइए कण्हपक्खिए आगमिस्साणं डुल्लभबोहिएयावि भवइ एसठाणे अणारिए अकेवले जाव असव्वडुक्खपहीणमग्गे एगंतमिछे असाहू पढमस्स ठाणस्स अधम्मपक्खस्स विभंगे एव माहिए ॥६८॥

अर्थ—(सेजहाणामए के०) ते यथा दृष्टांते नाम एवी संभावनाये जेम कोइएक (रुक्खसिया के०) वृक्ष होय, (पव्वयग्गेजाए के०) पर्वतने अग्रे उपनो (मूलेछिन्ने के०) मूल मांहेथी छेद्यो (अग्गेगरुएके०) अग्रे भारी एवो छतो ते वृक्ष (जउणित्तं जउविसमं के०) ज्यां ज्यां नीचा खाडानु स्थानक होय, ज्यां त्यां विषम, समान नही, (जउडुग्गंके०) ज्यां ज्यां डुर्गम कष्टस्थान होय, (तउपवडंतिके०)त्यां ते वृक्ष उतावलो पडे. (एवमेवतहप्पगारे के०) एदृष्टांते तथा प्रकारना डुष्ट असाधु कर्मकारी पुरुष जाति ते कर्मरूपी वायरे प्रेर्यो छतो उतावलो नीचो नरकगतिमां जइ पडे; फरी त्यां थकी उद्वर्त्यो थको फरी गर्भ थकी गर्भ, जन्म थकीजन्म, मरण थकी मरण पामे, नरकथकी नरक पामे, डुःख थकी वली डुःख पामे, एरीते दक्षणदिशिनो जनारो, नारकी, कृष्णपक्षी ते दीर्घसंसार पणाने लीधे आगमिक कालें डुर्लभ बोधि थाय ए स्थानक अनार्य अकेवल यावत् जेमां सर्वडुःख थकी छुटवानो मार्ग नथी एकांत मिथ्यात्व असाधुनो मार्ग जाणवो ए प्रथम स्थानक अधर्म पक्षनो विचार एम कह्यो. ॥ ६८ ॥

॥ दीपिका—(सेजहत्ति) तद्यथा नामकश्चिद्वृक्षः पर्वताग्रे जातोमूले छिन्नः शीघ्रं य या निम्नं नीचं स्थानं ततः पतति एवमसावसाधुरपि नरके पतति ततोप्युद्धृतो गर्भाद्ग र्भं याति एवं न तस्य किंचित्त्राणं भवति यावदागामिन्यपि कालेऽसौडुर्लभ बोधिः स्यात् (ए सठाणत्ति) तदेतत् स्थानमनार्यं यावदेकांतमिथ्यारूपमसाधु । तदेवं प्रथमस्याधर्मपाक्षि कस्य स्थानस्य विभंगोविभागः समाख्यातः ॥ ६८ ॥

॥ टीका—एवं तावदयोगोलपाषाणदृष्टांतः शीघ्रमधोनिमज्जनार्थप्रतिपादकः प्रदर्शितोऽधुना शीघ्रपातार्थप्रतिपादकमेवापरं दृष्टांतमधिकृत्याह। (सेजहाणामएइत्यादि) तद्यथा नाम कश्चिदृक्षः पर्वताग्रे जातोमूले छिन्नः शीघ्रं यथा निम्नं पतति एवमसावप्यसाधुकर्मकारी तत्कर्मवातेरितः शीघ्रमेव नरके पतति ततोप्युद्वृतोगर्भाज्जन्मवश्यं याति न तस्य किंचित्राणं नवति यावदागामिन्यपि काले डुर्लनधर्मप्रतिपत्तिर्नवतीति। सांप्रतमुपसंहरति (एसठाणेइत्यादि) तदेतत्स्थानमनार्यं पापानुष्ठानपरत्वाद्यावदेकांतमिथ्यारूपमसाधु। तदेवं प्रथमस्याधर्मपाक्षिकस्य स्थानस्य विनंगोविनागः स्वरूपमेव व्याख्यातः ॥ ६७ ॥

अहावरे दोच्चस्स ठाणस्स धम्म पक्खस्स विनंगे एव माहिज्जइ इह खलु पाइणंवा संतेगतिया मणुस्सा नवंति तंजहा अणारंना अपरिग्गहा धम्मिया धम्माणुया धम्मिठा जाव धम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति सुस्सीला सुव्वया सुप्पडियाणंदा सुसाहु सव्वतो पाणातिवायाउ पडिविरया जावजीवाए जावजेयावन्ने तहप्पगारा सावज्जा अबोहिया कम्मंता परपाणपरियावणकरा कज्जंति ततोविपडिविरता जाव जीवाए॥६ए

अर्थ—अथ हवे बीजो स्थानक धर्म पक्षनो विचार कहियें बैयें. आजगत् मांहे निश्चें पूर्वादिक दिशिने विषे कोइएक मनुष्य एवाछे ते कहेछे. निरारंनी, निःपरिग्रही धार्मिक धर्मानुगामि, धर्मज जेने इष्टछे. यावत् धर्मेंकरी वृत्ति आजीविका करता थका विचरेछे. सुशील, सुव्रत, रूडा आनंद पामनारा, सुसाधु, तथा सुखसाध्य पदवीरूप गुणे करी विराजमान, ते पुरुष सर्वथा प्राणातिपात थकी निवृत्या, जावजीव सुधी यावत्. जे बीजा, तथा प्रकारनां पापकारी, सावद्यकर्म अबोधिना करनार बीजा प्राणीने परितापना करनार कार्य करियें, तेवा कार्य थकी पण निवृत्या छे. ॥ ६ए ॥

दीपिका—अथापरस्य द्वितीयस्थानस्य धर्मपक्षस्य विनंगः स्वरूपमेवमाख्यायते। यथा प्राच्यादिदिक्षु मध्येऽन्यतरस्यां दिशि संति विद्यंते केचिन्मनुष्यानवंति। तद्यथा अनारंनाअपरिग्रहाधार्मिकाधर्मानुगाधार्मिष्ठाधर्मेणैव वृत्तिं कल्पयंतोविहरंति तथा सुशीलाः सुव्रताः सुप्रत्यानंदाः सुसाधवः सर्वस्मात्प्राणातिपाताद्विरतायावत्परिग्रहाद्विरताः। ये चान्ये तथाप्रकाराः सावद्याअबोधिकारिणः कर्मकाः कर्महेतवः परप्राणपरितापनकरा आरंनाक्रियंते ततोविरताः॥ ६ए ॥

॥ टीका—अथापरस्य द्वितीयस्य विनंगोविनागः स्वरूपमेवं वक्ष्यमाणनीत्या व्याख्या

यते । तद्यथा (इहखलुइत्यादि) प्राच्यादिषु मध्येऽन्यतरस्यां दिशि संति विद्यंते ते चै वंभूतान्नवंतीति । तद्यथा । न विद्यते सावद्यआरंन्नोयेषांते तथा अपरिग्रहानिष्किंचनाः धर्मेण चरंतीति धार्मिकायावद्धर्मेणैवात्मनोवृत्तिं परिकल्पयंति तथा सुशीलाः सुव्रताः सु प्रत्यानंदाः सुसाधवः सर्वस्मात्प्राणातिपाताद्विरताएवं यावत्परिग्रहाद्विरताइति । तथा ये चान्ये तथाप्रकाराः सावद्याआरंन्नायावदबोधिकारिणस्तेन्यः सर्वेन्योपि विरताइति ॥६९

से जहा णामए अणगारा न्नगवंतो इरियासमिया न्नासासमिया एसणासमिया आयाणन्नंममत्तणिरकेवणासमिया. उच्चारपासवणखेलसिंघाणजल्लपारिठावणियासमिया मणसमिया वयसमिया कायसमिया मणगुत्ता वयगुत्ता कायगुत्ता गुत्ता गुत्तिंदिया गुत्तबंन्नचारी अकोहा अमाणा अमाया अलोन्ना संता पसंता उवसंता परिणिवुमा अणासवा अग्गंथा छिन्नसोया निरुवलेवा कंसपाइ वमुक्कतोया संखइव णिरंजणा जीवइव अपडिहयगती गगणतलंपिव निरालंबणा वाउरिव अपडिवंधा सारदसलिलइव सुद्धहियया पुक्करपत्तंइव निरुवलेवा कुम्मोइव गुत्तिंदिया विहगइव विप्पमुक्का खग्गविसाणंव एगजाया न्नारंमपरकीव अप्पमत्ता कुंजरोइव सोंमीरा वसन्नोइव जातछिमा सीहोइवडुद्धरिसा मंदरोइवअप्पकंप्पा सागरोइवगंन्नीरा चंदोइवसोमलेसा सूरोइव दित्ततेया जच्च कंचणगंचइव जातरूवा वसुंधराइव सवफासविसहा सुहुयहुयासणोविव तेयसा जलंता णछिणं॥७०॥तेसिंन्नगवंताण कछविपडिबंधेन्नवइ से पडिबंधे चउविहे पसते तं जहा अंमएइवा पाठांतरेबोमजेइवा पोयएइवा उग्गहेइवा पग्गहेइवा जन्नंजन्नंदिसं इछंति तन्नं तन्नं दिसं अपडिबद्धा सुइन्नूया अप्पलहुन्नूया अप्पग्गंथा संजमेणं तवसा अप्पाणं न्नावेमाणे विहरंति॥७१॥तेसिणं न्नगवंताणं इमा एतारूवा जाया माया वित्ती होछा तंजहा चउछेन्नत्ते छछेन्नत्ते अछमेन्नत्ते दसमेन्नत्ते डुवालसमे न्नत्ते चउदसमे न्नत्ते अद्धमासिएन्नत्ते मासिएन्नत्ते दोमासिए तिमासिए चाउम्मासिए पंचमासिए छम्मासिए अडत्तरंचणं उरिकत्तचरया सिरिकत्तचरया उरिकत्तसिरिकत्तचरगा अंतचरगा पंतचरगा लूहचरगा. समुदाणचरगा. सं

सठचरगा असंसठचरगा तज्जातसंठचरगा दिठलाजिया अदिठला जिया पुठलाजिया अपुठलाजिया जिखुलाजिया अजिखुलाजिया अन्नायचरगा अन्नायलोगचरगा उवनिहिया संखादत्तिया परिमित पिंमवाइया सुद्धेसणिया अंताहारा पंताहारा अरसाहारा विरसाहारा लूहाहारा तुछाहारा अंतजीवी पंतजीवी आयंबिलिया पुरिमढिया विग इया अमऊमंसा ससिणो णोणियामरसजोइ ठाणाइया पडिमाठाणा इया उक्कडुआसणिया णेसज्जिया वीरासणिया दंमायतिया लगंमसाइ णो अप्पाउडाअगत्तया अकंमुया अणिठुहा धुतकेसमंसरोमनहा सवगा यपडिक्कम विप्पमुक्का चिठंति॥ उ२॥तेणं एतेणं विहारेणं विहरमाणा बहुइ वासाइं सामन्नपरियागं पाउणंति बहुवहु आबाहंसि उप्पन्नंसिवा अणु प्पन्नंसिवा बहुइंजत्ताइं पच्चरकाइ पच्चरकाइत्ता बहुइं वासाइं अणसणाइ ठेदिंति अणसणाइं ठेदित्ता जस्सठाएकीरति नग्गजावे मुंमजावे अ एहाणजावे अदत्तंवणगे अठत्तए अणोवाहणए जूमिसेज्जा फलगसेज्जा कठसेज्जा केसलोए बंजचेरवासे परघरपवेसे लद्धाअलद्ध माणाअमा णणाउ हीलणाउ निंदणाउ खिंसणाउ गरहणाउ तज्जणाउ तालणाउ उ च्चावयागामकंटगा बावीसंपरीसहो वसग्गअहियासिज्जंति तमठंआरा हंति तमठ आराहित्ता चरमेहिं उस्सासनिस्सासेहिं अणंत अणुतरं निवाघातं निरावरणं कसिणं पडिपुन्नं केवलवरणाणदंसणसमुप्पाडेंति समुप्पाडेंतित्ता ततोपछा सिज्झंतिबुज्झंति मुच्चंति परिणिवायंति सवायं ति सवडुखाणं अंतकरेंति ॥ ७३ ॥

अर्थ–वली बीजे प्रकारें साधुना गुण देखाडे ठे. ते यथा नाम एवी संजावनायें जे म कोइएक उत्तम संघयणवंत, महाबलें करी सहित अणागार जगवंत होय, ते केवा होय? तोके इर्या समितियें समिता, जाषासमितियें समिता, एटले सत्यनिरवद्य जा षाना बोलनार, एषणासमितियें समिता, एटले बेंतालीश दोषरहित, आहारनी गवेष णाना करनार, (आयाणजंमसत्तणिरकेवणासमितियेंसमिता) एटले माटीनुं जाजन, तथा मात्रा, अने वस्त्रादिक ने जयणायें पुंजी प्रमार्जीने मूकनारा, (उच्चारपासवणखेलसिंघाण

जल्लपारिठावणियासमितियें समिता) एटले वडीनीत, लघुनीत, थूंक नासीकानो सीं घाण, शरीरनो मल, तेने जयणा सहित परठवे. एमपांच समितियें समिता, मन समि तियें सहित, वचन समितियें सहित, काय समितियें सहित, मन ने असंयम थकी गो पवीने प्रवर्त्तावे, माटे मनगुप्तियें गुप्त, वचनने असंयमथी गोपवीने प्रवर्त्तावे, माटे वच न गुप्तियें गुप्त, कायाने असंयमथी गोपवीने प्रवर्त्तावे, माटे कायगुप्तियें गुप्त, एरीतें त्र ण गुप्तियें गुप्त, तथा गुप्तेंद्रिय एटले असंयम थकी इंद्रियोने गोपवी राखनार, नववा डविशुद्ध ब्रह्मचर्यना पालनार, क्रोध रहित, मान रहित, माया रहित, लोज रहित, संता एटले मध्यवर्त्तियें, अने पसंता, एटले बाह्य वृत्तियें उवसंता, एटले उपशांतते उनय थापि शांतवृत्तिवाला, परिनिवृत्ता एटले समस्त संताप वर्जीत, अनाश्रय एटले पाप क र्म बंध थकी रहित, अग्रंथा एटले हिरण्यादिक परिग्रह थकी रहित, छिन्नश्रोत एटले छेद्योछे संसारनो प्रवाह जेणे, तथा निरुवलेवा एटले निर्लेप कर्म मल थकी रहित, कं सपातीवमुक्ततोया एटले कांसाना पात्रनी पेठें पापरूप पाणी जेने लबतुं नथी; जेम कांसा ना पात्रने पाणी न लागे तेम, ते साधुने पापरूप पाणी लागे नहीं, तथा शंखनी पेठें निरंजन एटले रागादिक रंग रहित, जीवनी पेठें अप्रतिहत गतिवाला जाणवा, एटले जेम जीवनी गति अप्रतिहतछे स्खलाय नही, तेम साधुने पण देश नगरादिकने विषे वि हार करवाने विषे अप्रतिहत अस्खलित गतिछे. आकाशनी पेठें निरालंब एटले आका श जेम स्तंनादिकना आलंबने रहितछे तेम, साधु पण गाम, नगर, कुलना आलंबनथी रहितछे. वायुनी पेठें अप्रतिबंध थका ग्रामने विषे एक रात्र, अने नगरने विषे पांच रा त्र, विचरे. गामेएगराइयं णगरेपंचराइया इति वचनात् शारद एटले शीतकाल तेनुं स लील एटले पाणी तेनी पेठें अथवा आश्विन, अने कार्तिक मासना पाणीजेम निर्मलहो य, तेनी पेठें निर्मल हृदय वाला, (पुक्खरपत्तंइवनिरूवलेवा) एटले जेम कमलना पत्रने पाणी तथा कादव न लागे तेम, साधुने कर्म रूप लेप न लागे. काचबानी पेठें गुप्तेंद्रि य, जेम काचबो, चार पग अने पांचमी ग्रीवा गोपवीने प्रवर्त्ते तेम, साधु इंद्रियो गोप वीने प्रवर्त्ते. पक्षीनी पेठें विप्रमुक्त, अनियतवासी, एटले पक्षी जेम सर्व परिवार स्थान कनी ममता रहित होय, तेम साधुपण परिवारादिकनी ममताथी रहित होय. (खग्गवि साणंवएगजाया) एटले गेंडानुं शींगडुं जेम एक होय, तेम साधु, राग द्वेष रहित थको क होय. नारंडपक्षीनी पेठें अप्रमत्त होय, जेम नारंड पक्षी अप्रमादी होयछे, तेम सा धु प्रमाद रहित थको धर्म कार्यने विषे प्रवर्त्ते. कुंजरनी पेठें शूरवीर एटले जेम हस्ती शूरवीर होय, तेम साधु कषायादिक निवारवाने शूरवीर होय, परंतु कायर पणुं जणा वे नहीं, वृषजनी पेठें बलवंत जेम बेल नार उपाडे अंगीकार करे निर्वाह करे तेम सा

धु पण, व्रतनार निर्वाह करवाने सामर्थ्यवान् धर्मधुरंधर जाणवो, सिंहनी पेठें डुर्द्धर्ष एटले सिंह जेम बीजा मृगादिक जानवरोने डुर्द्धर्ष एटले तेनाथी पराजवाये नही, तेम साधु पण परीसह उपसर्गादिकें करी पराजवाये नहीं. मंदर एटले मेरुपर्वतनी पेठें अप्रकंप, जेम मेरुपर्वत कंपायमान न थाय, तेम साधु पण परीसह अने उपसर्गादिकें कंपायमान न थाय. समुड्नी पेठें गंनीर, एटले समुड् जेम गंनीर होयछे, तेम साधु हर्ष शोकादिक कारण रहित थका गंनीर होय. चंड्मानी पेठें सोम लेश्यावंत एटले चंड्मा जेम शीतल प्रकृतिवंत होय, तेम साधु सर्वकाल मननो उद्धार करनारो, महा शीतल प्रकृति सहित होय, सूर्यनी पेठें दीप्ततेज एटले सूर्य जेम तेजवंत होयछे, तेम साधुपण तपश्चर्यायें करी तेजवंत प्रतापवंत देखायछे. साचा सुवर्णनी पेठें जातिरूप सतेज, एटले सुवर्णने जेम मेल न लागे, तेम साधुने पण कर्म मेल नलागे. वसुंधरानी पेठें सर्व स्पर्श सहे एटले पृथ्वी जेम कांटा, कांकरी, अग्न्यादिकना सर्व स्पर्श सहन करे, तेम साधु पण क्षमागुणें सहित थको, टाढ तापादिकना स्पर्शने सहन करे. सुहुयहुतासणोविव तेयसाजलंता एटले रुडे इंधणें घृतादिक सींचतां जेम हुताशन जे अग्नि ते सदा ते यसा एटले तेजवंत देखायछे जाज्वल्यमान देखायछे तेम,साधु पण ज्ञान तेजें करी सर्वकाल तेजवंत देखायछे.॥ ७० ॥ (णब्रिणंतेसिंनगवंताणंके०) ते नगवंत महिमावंत साधुने नथी कब्रविपडिबंधेनवइ एटले क्यांहि पण प्रतिबंध नथी. सेपडिबंधे चउविहेपन्नत्ते एटले ते प्रतिबंध चार प्रकारनो कह्योछे, ते कहेछे. (अंमएइवा के०) जे अंम थकी उपजे एवा पक्षी कीडा मयूरादिक ते आश्री प्रतिबंध नथी, (पोयएइवा के०) पोत ते हस्त्यादिकना बालक ते आश्रित प्रतिबंध नथी, उग्गहेइवा के०) उग्रह एटले वस्ति पीठ फलगादिक तेनो पण प्रतिबंध नथी, (पग्गहेइवा के०) उंघीक उपग्रहिक उपकरण तेनिमित्त प्रतिबंध नथी, (जन्नंजन्नंदिसंइछंति के०) जे जे दिशायें विहार करवा वांछे, (तन्नंतन्नंदिसं अप्पडिबद्धा के०) ते ते दिशायें अप्रतिबंध पणे विचरे. (सुइनूया के०) शुचिर्नूत निर्मलांतर आत्मावंत (अप्पलहुनूया के०) अल्प लघुनूत एटले अल्प परिग्रही थका, (अप्पग्गंथाके०) अल्प ग्रंथवंत बहुश्रुत, (संजमेणंतवसा के०) संयम अने तपें करी (अप्पाणंनावेमाणे के०) पोताना आत्माने नावता थका, (विहरंति के०) विचरे.॥ ७१॥ (तेसिंणं नगवंताणं के०) ते नगवंत एटले साधुने, (इमाएतारूवा के०) एवा ए तद्रूप (जायामायावित्तिहोब्रा के०) संयमयात्रा एटले संयमनो निर्वाह, तेने अर्थें, मात्रावृत्ति प्रमाणोपेत नातपाणी लेवुं, ते तपें करी निर्मल थाय. (तंजहा के०) ते कहेछे. एक उपवास, बे उपवास, त्रण उपवास, चार उपवास, पांच उपवास, छ उपवास, सात उपवास, अर्द्धमासना उपवास, एक मास क्षमण, बे मास

क्षमण, त्रण मास क्षमण, चतुर्मासिक, पंच मासिक, छ मासिक, एवां तपना करनारा, (अडुत्तरंचरणं के०) अथवा एक साधु एवा अनिग्रहना करनाराछे, ते कहेछे. (उक्खि त्तचरया के०) उत्क्षिप्तचर्या एटले पोताने अर्थे हांमली मांहे थकी काढ्युं एवुं जे कु सार अन्न तेना लेनारा, (णिक्खित्तचरया के०) निक्षिप्तचर्या एटले पिरसवाने अर्थे हांमली मांहेथी काढी वली हांमली मांहे प्रक्षेप्यो, एवो जे आहार तेनी गवेषणा करनारा, (उक्खित्तणिक्खित्तचरगा के०) पूर्वोक्त बन्ने जातना आहारनी गवेषणा करनारा, (अं तचरगा के०) जे गाममांहे ससता मूल्यनो आहार मले, तेना लेनारा, (पंतचर गा के०) नीरस आहार जमता थका, तेमांथी जे वध्यो होय तेना लेनारा, (लूह चरगा के०) जावजीव सुधी लूखा आहारना लेनारा, (समुदाणचरगा के०) हर्ष सहित जे आहार आपे तेना लेनारा, (संसठ्ठचरगा के०) खरडे हाथे आहार आपे तेना ले नारा, (असंसठ्ठचरगा के०) अण खरडे हाथे आहार आपे तेना लेनारा, (तज्जात संसठ्ठचरगा के०) ते जे द्रव्यें हाथ अथवा कडछी खरडी होय तेवा हाथे करी, अथ वा तेवी कडछीये करी, तेज आहार आपे, तेवा आहारना लेनारा, (दिठ्ठलाभिया के०) दीठा आहारनाज लेनारा, तथा (अदिठ्ठलाभिया के०) अणदीठो आहार, तथा अणदीठो दातार, तेनी गवेषणा करनारा, (पुठ्ठलाभिया के०) तथा पुछीनेज आहारना लेनारा, (अपुठ्ठलाभिया के०) अणपुछ्या आहारना लेनारा, (भिस्कूलाभिया के०) थोडुं अन्न आपे अने हेलणा करे एवा तुछ आहारना लेनारा, (अभिस्कूलाभिया के०) अतुछ आहारना लेनारा, (अन्नायचरगा के०) ज्यां कोइ पण उलखे नहीं त्यां अज्ञात आहारना लेनारा, (अन्नायलोगचरगाके०) अाज्ञात लोकना कुत्सित अन्नना लेनारा, (उवनिहिया के०) जे आहार पोता थकी नजीक जाणे, तेना लेनारा, (संखादत्तिया के०) दात्तिनी संख्याना करनारा, (परिमित्तपिंमवाइयाके०) प्रमा णोपेत पिंमना लेनारा, (सुद्धेसणिया के०) शुद्धएषणिक दोष रहित एवा आहार ना गवेषण हार, (अंताहारा के०) अंताहारी एटले वाल, चणकादिकना आहारना गवेपनारा, (पंताहारा के०) तेज टाढुं उगलुं, एवा अन्नना लेनारा, (अरसा हारा के०) हिंग जीरादिकना वघारें रहित एवा अरस आहारना लेनारा (विरसाहा रा के०) जूना धान्य खांमलाना आहारना लेनारा, (लूहाहारा के०) लूक्ष आहारना लेनारा, (तुछाहाराके०) तुछआहारना लेनारा,(अंतजीवीके०) अंताहारें जीवे, (पंतजीवी के०) प्रांतआहारें जीवे, (आयंबिलिया के०) कूर, अडदना, बाकला लेइ, आयंबिल सदाय करे. (पुरमढिया के०) सर्व काल वे पहोर दिवस वित्या पछी आहार जमे, (णिव गइया के०) सर्वकाल निवी करे, विगय रहित अन्न जमे, (अमज्जमंसासिणो के०)

मद्य मांसना परित्यागी होय, (णोणियामरसन्नोइ के०) सर्व काल अत्यंत सरस आहार लीये नहीं, (ठाणाइया के०) सर्वकाल कायोत्सर्गनां करनारा, (पडिमठाइया के०) प्रतिमाना वहणनारा, (उक्कडआसणिया के०) एक स्थानकें केटलो एक काल निवृत्तियें रहे,(णिसज्जियाके०) निषेधआसनना बेसनारा एटले निषेध पदार्थयुक्तपृथवीपर बेसे, (वीरासणिया के०) वीरासने करी रहे, बाजोठ उपर बेशी, पग नीचामूके, पछी बाजोठ दूर करीने तेज आसने बेसे. (दंमायतिया के०) दंमनी पेठें लांबो थयो थको रहे. (लगंमसाइणो के०) वांका काष्ठनी पेठें शयन करें, मस्तक, पानी अने वासो, तेने जूमीलागे, परंतु बीजे नलागे (अप्पाउडाअगत्तया के०) वस्त्र रहित, वस्त्ररूप प्रावरण न राखे, (अकंडुयाके०) शरीरें खाजी नखणे, (अणिठुहाके०) मुखनुं थूंक परठवे नहीं, (धुतकेसमंसरोमनहाके०) माथाना केश, गुह्यस्थानकना केश, दाढीमुछना केश, काखली ना केश, शरीरनां रोम, तथा नख, समारे नही, (सव्वगायपडिक्कमविप्पमुक्का के०) सर्व गात्र एटले शरीरनी शुश्रूषा करवा थकी विप्रमुक्त, एटले मूकाणा थका, (चिठंतिके०) रहे. ॥७४॥ (तेणंएतेणंविहारेणंविहरमाणा के०) तेसाधु एवा उग्र विहारे करी विचरता थका (बहुइंवासाइं के०) घणाएक वर्ष (सामन्नपरियागंपाउणंति के०) चारित्र पर्याय पाले. एवो चारित्र पाली (बहुबहुआबाहंसि के०) रोगादिकनी आबाधा (उपन्नंसिवा के०) उपनी, तथा (अणुपन्नंसिवा के०) अणउपने बते (बहुइंजत्ताइंपच्चारकाइके०) घणाजात पाणी पच्चरके. (पच्चरकाइत्ता के०) ते पच्चरकीने (बहुइंवासाइंअणसणाइंछेदिंति के०) घणा काल सुधी अनशन पाले,(अणसणाइंछेदित्ता के०) ते अनशन पाली ने किंबहुना शुंजाशुंकहेवाथी? (जस्सठाएकीरतिके०) जे साधुधर्मने अर्थे आधर्म एवोके, लोहगोलकनी पेठें निरास्वाद खड्गधारानी पेठें डुःसाध्य,एवो चारित्र पाले. (नग्गनावेके०) नग्नपणानो जाव एटले प्रमाणोपेत वस्त्रपहेरें, (मुंमनावे के०) पांचइंडियो तथा चार कषायनो संवर करे, (अण्हाणनावे के०) अंघोल स्नान नो त्यागजाव करें, (अदंतवणगे के०) दातण करवानो परिहार करे, (अछत्तएके०) मस्तकें छत्र धरावे नही, (अणोवाहणए के०) पगरखानो त्याग करे, (जूमिसेज्जा के०) जूमिकाने विषे शयन करे, (फलगसेज्जा के०) पाट, पाटीया उपर शयन करें, (कठसेज्जा के०) काष्ठ, पाषाण उपर शयन करे (केसलोए के०) मस्तकें केशनो लोच करे, (बंनचेरवासे के०) ब्रह्मचर्यने विषे वास करे, अर्थात् ब्रह्मचर्यने पाले, (परघरपवेसे के०) निक्षाने अर्थें पारका घरने विषे भ्रमण करे, (लद्धाअलद्ध के०) त्यां परघर भ्रमण करतां कदाचित् निक्षानो प्राप्तिथाय, अथवा नथाय, तोपण समता जाव धरे, (माणाअमाणणाउ के०) मान, अथवा अपमान, देता थका पण समता जाव धरें. (हीलणा

उ के०) जन्मनां कर्मरूपकरणीने उघाडी, हेलना करतां पण समता नाव धरे. (निंदणाउ के०) कोइ निंदा करे. (खिंसणाउ के०) कोइ बीजा लोकोनी साखें हेलना करे, (गरहणाउ के०) कोइ तेना मुख आगलज हेलना करे, (तज्जणाउ के०) कोइ तर्जना करे, (तालणाउ के०) कोइ ताडना करे, (उच्चावयागामकंटगा के०) उंचा नीचा ग्रामकंटक एटले ग्रामीण लोकना वचन, पांच इंद्रियने कंटक समान, तेने सहन करे, (बावीसंपरीसहोवसग्ग के०) बावीश परिसह अने देवादिकना करेला उपसर्गादिक ए सर्वने (अहियासिज्जंति के०) मन वचन अने कायायें करी, अहियासे एटले सहन करे, (तमट्ठंआराहंति के०) साधु ते अर्थ जे सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्र रूप तेने आराधे, (तमट्ठंआराहित्ता के०) ते ज्ञान दर्शन चारित्ररूप अर्थ आराधिने, (चरमेहिंउस्सासनिस्सासेहिं के०) बेला उश्वास, निःश्वासें ज्ञान उपजे ते केवो ज्ञान उपजे, ते कहेछे. (अणतं के०) अंतरहित, (अणुत्तरं के०) प्रधान, (निव्वाघायं के०) निर्व्याघात, (निरावरणं के०) आवर्ण रहित, (कसिणं के०) कृत्स्नं संपूर्ण, (पडिपुन्नं के०) परिपूर्ण एवो, (केवलवरणाणदंसणसमुप्पाडेंति के०) प्रधान केवलज्ञान अने केवलदर्शन, पामे (समुप्पाडेतित्ताके०) ते केवल ज्ञान अने केवल दर्शन उपजावीने एटले पामिने; (ततोपच्छा के०) तेवार पछी (सिज्झंतिके०) सीजे एटले तेने सर्व अर्थनी सिद्धि थाय, (बुज्झंति के०) चउदराज लोकनुं स्वरूप बुझे, (मुच्चंति के०) सर्व दुःख थकी मूकाय, (परिनिव्वायंति के०) कर्मरूप दावनलने उपशमाववे करी शीतलीनूत थाय (सव्वदुक्खाणं अंतकरेंति के०) सर्व दुःखनो अंत करे, ॥ ७२ ॥

॥दीपिका—प्रकारांतरेण पुनः साधुगुणानाह । (सेजहत्ति) तद्यथानाम केचन नगवंतोऽनगारान्नवंति । ईर्यासमिताइत्यादि सुगमं । यावत्सुहुतहुताशनइव दीप्तवन्हिरिव तेजसाज्वलंतो दीप्यमानाः॥ ७०॥(णत्थिणंति)नास्ति तेषां कुतश्चित्प्रतिबंधः। प्रतिबंधश्चतुर्विधः। तद्यथा। अंमजोहंसादिः । अंडकंवा मयूरांडकादि क्रीडामयूरादिहेतुः स्यात्तेन तत्र निबंधः स्यात् । पोतजे हस्त्यादौ पोतके वा शिशुत्वात्प्रतिबंधः स्यात् । अथवा (अंमजोइवाबोंडजोइवाइतिपाठांतरं) अंडजं शणिकादिवस्त्रं बोंडजं कापीसं वस्त्रं तत्र प्रतिबंधः स्यात् (उग्गहेइवा) अवगृहीतं परिवेपणार्थमुत्पाटितं नक्तपानं प्रगृहीतं नोजनार्थमुत्पाटितं तदेव । अथवा अवग्रहिकं वसतिपीठफलकादि औपग्रहिकं वा दंडकाद्युपधिजातं प्रगृहीतंतु रजोहरणाद्यौघिकोपधिरूपं तत्र प्रतिबंधः स्यात् ।(जन्नंति) यां यां दिशमिच्छंति विहर्तुं तां तां दिशं विहरंति। किंनूताः। अप्रतिबद्धाः शुचिर्नूतानावशुद्धिमंतः श्रुतिनूतावा प्राप्तसिद्धांताः लघुता अल्पोपधयोऽगौरवाश्च अनल्पग्रंथावद्वागमाः न विद्यते आत्मनः संबधी ग्रंथोहिरण्यादिर्ये

षां तेऽनात्मग्रंथाइति वा॥ ७१ ॥तेषां साधूनां भगवतां (इमाए) तद्रूपायात्रामात्रा वृत्तिः संयम यात्राप्रमाणाजीविकाऽभवत्। तद्यथा। चतुर्थभक्तमेकोपवासः षष्ठभक्तं यावत्षण्मासिकं। अथच (उरिकत्तचरयत्ति) उत्क्षिप्तं स्वकार्याय पाकभाजनादुद्धृतं तदर्थमभिग्रहतश्चरंति तजवेषणाय गछंतीति उत्क्षिप्तचरकाः।। (निरिकत्तचरयत्ति) निक्षिप्तभाजनादनुद्धृतं तदर्थमभिग्रहतश्चरंति तजवेषणाय गछंतीति निक्षिप्तचरकाः। (उरिकत्तनिरकत्तचरयत्ति) पाकभाजनादुत्क्षिप्तं तत्रैवाऽन्यत्र वा स्थाने यदन्नं तदर्थमभिग्रहवंतश्चरंति। अंतेन प्रांतेन रूक्षेण भक्तादिना चरंति ये ते तथा समुदानेन भिक्षया चरंतीति (संसहेन) खरंटितेन हस्तादिना दीयमानं संसृष्टमुच्यते उक्तविपरीतमसंसृष्टं तेन चरंति (तज्जायत्ति) तज्जातेन देयद्रव्याविरोधिना यत्संसृष्टं हस्तादि तेन चरंति ते तथा। (दिहलाभियत्ति) दृष्टस्यैव भक्तादेर्लाभः अदृष्टस्यापकवरकादिमध्यान्निर्गतस्य श्रोत्रादिभिः कृतोपयोगस्य भक्तादेर्लाभस्तेन चरंति ये ते तथा। (पुठलाभियत्ति) पृष्टस्यैव हे साधो! किंते दीयते इत्यादिप्रश्नेन योलाभः सयेषामस्ति ते तथा। एवमपृष्टलाभिकाविपरीताः। भिक्षेव भिक्षा तुछमवज्ञातं वा तल्लाभोयेषामस्ति ते तथा अभिक्षालाभिका विपरीताः। अज्ञातचरकाअज्ञातगृहेषु चरंतीत्यभिग्रहवंतः अन्नं भोजनं वा ग्लायंति अन्नग्लायिकास्तेच अभिग्रहविशेषात्प्रातरेवान्नं गृह्णंति(उवणिहया) उपनिहितं यथाकथंचिदासन्नीभूतं तेन चरंति ये ते उपनिहितकाः संख्याप्रधानादत्तयोयेषां ते तथा। प्रातरेवग्रह्णंभक्तादि(परिमियत्ति) परिमितः पिंडपातः अर्धपोषादिलाभोयेषामस्ति ते तथा। (सुद्धेसणिया) शुद्धेषणाः शुद्धस्य वा निर्व्यंजनस्य क्रूरादेरेषणा येषामस्ति ते अंतप्रांतवल्लवणकादिः सआहारोयेषां ते तथा। विरसं नीरसं शीतलीभूतं रूक्षाहाराः (अंबिलिया) आचाम्लं उदनकुल्माषादि तेन चरंतीति। निर्विकृतिकाः घृतादिविकृतित्यागिनः अमद्यमांसाशिनः मद्यमांसं नाश्नंतीति। (नोनियागत्ति) ननित्यं रसभोजिनः (नेसज्जीया) निषद्यायुतायां भूमौ उपविशनं तथा चरंतीति नैषद्यकाः। वीरासनं सिंहासननिविष्टस्य भून्यस्तपादस्य सिंहासनापनोदे सति यादृशमवस्थानं तद्यस्यास्ति सवीरासनिकः (दंडायतिया) दंडस्येवायतमायामोयेषां ते दंडायतिकाः। लगंडं वक्रकाष्ठं तद्वत् शेरते ये ते लगंडशायिनः पार्श्विका शिरश्च पृष्ठमेव वा भूमौ लगति तथा शयनं कुर्वंति आतापकाआतापनाग्राहिणः (अप्पाउडा) अप्रावृताः प्रावरणवर्जकाः (अगंडुया) अकंडूयकाः (अनिठहा) अनिष्ठीवनाः (धुतमंससत्ति) धूतानि नीतिकर्मतया त्यक्तानि केशश्मश्रुरोमाणि शिरोजकूर्चकक्षादिलोमानि यैस्ते तथा सर्वशरीरपरिकर्मणा रहिताइत्यर्थः॥ ७२॥(तेणंति) ते साधवएवं विहृत्य बहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायमनुपाल्य (आबाहंसत्ति) रोगातंके उत्पन्नेऽनुत्पन्ने वा भक्तप्रत्याख्यानं कुर्वंति। किं बहुना यत्कृते क्रियते नग्नभावोमुंडभावश्च (अण्हाणगे) स्नानाभावः अदंतधावनं अछत्रकं शिरसि आतपे प

तत्यपि कंबलवस्त्रादिधारणाऌावः अनुपानत्कता पाडुकाद्यनावः नूमिशयनं फलकशयनं काष्ठशयनं केशलोचः ब्रह्मचर्यधारणं। निक्षार्थं परगृहप्रवेशः लब्धमानापमानानि हेलन हिंसागर्हातर्जनताडनानि उच्चावचग्रामकंटकाः शुनाशुनाइंद्रियविषयारागद्वेषरहिततया सोढव्याइत्यर्थः। द्वाविंशतिः परीषहाः। देवादिकृताउपसर्गाअध्यास्यंते यदर्थमेताडुष्कराः क्रियाः क्रियंते तमर्थं सम्यक् ज्ञानदर्शनचारित्राख्यमाराध्य चरमरुच्छ्वासनिःश्वासैः प्रांतसमयं यावदित्यर्थः। ततोऽनंतमनुत्तरं निव्याघातं प्रतिपूर्णं केवलवरज्ञानदर्शनमाप्नुवंति ततः सिध्यंति मोक्षमाप्नुवंतीति ॥ ७२ ॥

॥ टीका—पुनरन्येन प्रकारेण साधुगुणान् दर्शयितुमाह। (सेजहेत्यादि) तद्यथानाम केचनोत्तमसंहननधृतिबलोपेताअनगाराजगवंतोनवंतीति। ते पंचनिः समितिनिः समिताः। एवमित्युपदर्शने। औपपातिकमाचारांगसंबंधि प्रथममुपांगं। तत्र साधुगुणाः प्रबंधेन व्यावर्ण्यंते तदिहापि तेनैव क्रमेण द्रष्टव्यमित्यतिदेशः। यावद्भूतमपनीतं केशश्मश्रुलोम नखादिकं यैस्ते तथा सर्वगात्रपरिकर्मविप्रमुक्तानिष्प्रतिकर्मशरीरास्तिष्ठंतीति॥७०॥७१॥७२ तेचोग्रविहारिणः प्रव्रज्यामनुपाल्य, बाधारूपे रोगातंके समुत्पन्नेऽनुत्पन्ने वा नक्तप्रत्याख्यानं विदधति। किंबहुनोक्तेन यत्कृतेऽयमयोगोलकवन्निरास्वादः करवालधारामार्गवद्दुरध्यवसायः श्रमणनावोऽनुपाल्यते तमर्थं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राख्यमाराध्य व्याहतमनंतं मोक्षकारणं केवलज्ञानमाप्नुवंति केवलज्ञानावाप्तेरूर्ध्वं सर्वदुःखविमोक्षलक्षणं मोक्षमवाप्नुवंतीति ॥ ७३ ॥

एगच्चाए पुणएगे नयंतारो नवंति अवरेगंपुण पुव्वकम्मावसेसेणं कालमासे कालं किच्चा अन्नयरेसु देवलोएसु देवताए उववत्तारो नवंति तंजहा महड्डिएसु महजुत्तिएसु महापरिक्कमेसु महाजसेसु महाबलेसु महाणुनावेसु महासुखेसु तेणं तत्र देवा नवंति महड्डिया महजुत्तिया जाव महासुखा हारविराइयवच्छा कडगतुडियथंनियनुया अंगय कुंमल मह्वगंमयल कन्नपीढधारी विचित्तहत्थानरणा विचित्तमालामउलिमउडा कल्लाणगंधपवर वत्थपरिहिया कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणधरा नासुरबोंदीपलंबवणमाल धरा दिव्वेणं रूवेणं दिव्वेणं वन्नेणं दिव्वेणं गंधेणं दिव्वेणं फासेणं दिव्वेणं संघाएणं दिव्वेणं संठाणेणं दिव्वाए इड्डिए दिव्वाए जुत्तीए दिव्वाए पनाए दिव्वाए गयाए दिव्वाए अच्चाए दिव्वेणं तेयणं दिव्वाए लेसाए दसदिसाउ उज्जो

वेमाणा पभासेमाणा गइकल्लाणा ठिइकल्लाणा आगमेसिभद्दयावि भवंति एसठाणे आयरिए जाव सवदुक्खपहीणमग्गे एगंतसम्मे सुसाहू दोच्चस्स ठाणस्स धम्मपक्खस्स विभंगे एवमाहिए ॥ ७४ ॥

अर्थ-(एगच्चाए के०) एम कोइ एक पुरुष (पुणे के०) वली (एगे के०) एकज शरीरें एटले तेज एक भवमां (भयंतारोभवंति के०) सिद्धिगति गामि होय. (अवरेपुण के०) अपर एटले बीजा वली (पुवकम्मवसेसेणं के०) जेने पूर्वकृत कर्म अवशेष रह्यां होय तो तेवा पुरुष (कालमासेकालंकिच्चा के०) कालने अवसरें काल करीने (अन्नयरेसु के०) अन्यत्र (देवलोएसु के०) देवलोकने विषे (देवत्ताएउववत्तारो भवंति के०) देव पणे उपजनार थाय (तंजहा के०) ते देवलोक केवा होय तेकहेछे (महड्ढिएसु के०) महर्द्धिक महोटी ऋद्धिना धणी, (महज्जुत्तिएसु के०) महाद्युतिवान. (महापरिक्कमेसु के०) महोटा पराक्रम वाला, (महाजसेसु के०) महोटा यशना धणी, (महाबलेसु के०) महोटा बलवान, (महाणुभावेसु के०) महोटा अतिशयवान एवा महानुभाव वैक्रियादिक शक्तियें करी सहित होय. (महासुखेसु के०) महोटा सुखना धणी, एटला वाना जेस्थानकने विषेछे (तेणंतत्थदेवाभवंति के०) ते त्यां देवता पणे होय, ते देवता केवा होय. ते कहेछे. महोटी ऋद्धियादिक गुणें सहित यावत् महोटां सुख सहित (हारविराइयवत्था के०) हारें करी विराजित शोभायमानछे, हृदय कमल जेनां वली (कडगतुडियथंभियभूया अंगयं के०) कटक, केयूर, अंगदादिकें करी स्तंभितछे भुजा जेनी, वली देदीप्यमान (कुंमलमट्ठगंमयल के०) कुंमलें करी घसायेला एवा गालना तट जेणे शोभित कर्याछे (कन्नपीढधारी के०) कुंमलना आधार माटें कानछे माटे कर्णपीठ धारी कह्या अथवा कर्णपीठते काननुं आभरण विशेष जाणवुं. ते आभर्ण कुंमलछे, तेना धरनारा. (विचित्तहत्थाभरणा के०) विचित्रप्रकारना मुद्रादिक आभरण जेना हाथमां रहेलांछे तेणेकरीसहित (विचित्तमालामउलिमउडाके०) विचित्र प्रकारनी माला सहित मुकुटना धरनार, (कल्लाणगंधपवरवत्थपरिहिया के०) कल्याणकारी सुगंधित वस्त्रना पेरनार, तथा (कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणधरा के०) कल्याणकारी प्रवर माल्य विलेपनना धरनार, (भासुरबोंदीपलंबवणमालधरा के०) देदीप्यमान शरीर प्रलंब एवी लटकतिजे वनमाला रूप आभर्ण विशेष, तेना धरनारा, (दिव्वेणंरूवेणं के०) प्रधान रूपें करी सहित, (दिव्वेणंवन्नेणं के०) दिव्य वर्णेंकरी सहित, (दिव्वेणंगंधेणं के०) दिव्य गंधें करी सहित, (दिव्वेणंफासेणंके०) दिव्य स्पर्शें करी सहित, (दिव्वेणंसंघाएणं के०) दिव्य शरीरनो संघातन समुदाय तेणे करी सहित, (दिव्वेणं

संगाणेणं के०) दिव्य संस्थान समचतुरस्र रूप तेणे करी सहित, (दिव्वाएइड्ढीए के०) दिव्य वैमानादिकनी ऋद्धि, तेणे करी सहित, (दिव्वाएजुत्तीए के०) दिव्यद्युति एटले प्रधान अन्योन्य नक्तियें करी सहित, (दिव्वाएप्पन्नाए के०) दिव्य प्रन्ना एटले कांती तथाविध इव्य जोडवाने प्रनावे महात्में करी सहित, (दिव्वाएछायाए के०) दिव्य प्रतिबिंब एवा रूपें करी सहित, (दिव्वाएअच्चाए के०) दिव्य अर्चा, (दिव्वेणंतेयएणं के०) प्रधान एवी शरीर थकी निकलति जे तेजनी ज्वाला तेणे करी सहित, एटले दिव्यतेजें करी सहित, (दिव्वाएलेसाएके०) अन्यंतरना परिणामरूप शुक्लादिक लेश्यायें करी सहित थका, (दसदिसाउज्जोवेमाणा के०) प्रधान शरीर माहेली कांतियें करी दशेदिशाउने उज्वल करता, (पन्नासेमाणा के०) दशेदिशाउने अलंकारता प्रकासता, (गइकल्लाणा के०) देवता संबंधिनी गतियें करी प्रधान, (ठिइकल्लाणा के०) देवता संबंधिनी स्थितियें करी कल्याण एटले प्रधान, (आगमेसिन्नद्याविन्नवंति के०) आगमिक कालें नइक प्रधान मनुष्य नव रूप संपदा पामवा आश्री तथा रूडा धर्म प्रतिपत्ति सहित प्रत्यें पामवा आश्री आगमिक कालें नइक कहाले. ए स्थानक आर्य यावत् सर्व डुःख थकी रहित थवानो मार्ग एकांत सम्यक्, सत्य, सुसाधुनुं स्थानक ले, एटले बीजुं स्थानक धर्मपक्षनो विचार एम कह्यो. ॥ ७४ ॥

॥ दीपिका–(एगच्चाएत्ति) एके पुनरेकयार्चया एकेन शरीरेण एकनवात् मोक्षंगंतारः स्युः । एके पुनः पूर्वकर्मावशेषे सति कालं कृत्वाऽन्यतरेषु देवलोकेषु देवतयोत्पद्यंते । तद्यथा । महर्द्धिमहाद्युतिमहाशुक्लमहाबलमहानुनावमहासुखेषु देवलोकेषु । देवास्ते प्येवंनूताइत्याह । महर्द्धिकादयस्तथा हारविराजितवक्षसः कटकत्रुटितस्तंनितनुजाः अंगदकुंडलघृष्टगंडतलकर्णपीठधराविचित्रहस्तानरणाः विचित्रमालामुकुलितमुकुटाः परिहितकल्याणप्रवरवस्त्राः कल्याणप्रवरमाल्यानुलेपनधराः (नासुरबोंदी) नास्वरशरीराः प्रलंबवनमालाधराः (दिव्वेणंति) दिवि नवं दिव्यं तेन रूपेण यावद्दिव्यया इव्यलेश्यया युतादशदिशोविद्योतयंतः प्रनासयंतोगत्या देवलोकरूपया कल्याणाः शोननाः स्थित्या उत्कृष्टमध्यमया कल्याणाः (आगमेसित्ति) आगामिनि काले नइकाः शोननमनुष्यनवं प्राप्ताः सद्धर्मप्रतिपत्तारः स्युः । तदेतत्स्थानमार्यं साधु श्रेष्ठं । एतद्द्वितीयस्य स्थानस्य धर्मपाक्षिकस्य विनंगोविचारः समाख्यातः ॥ ७४ ॥

॥ टीका–एके पुनरेकयार्चयैकेन शरीरेणैकस्मात् नवात्सिद्धिगतिं गंतारोनवंति अथ ते पुनस्तथाविधपूर्वकर्मशेषे सति तत्कर्मवशगाः कालं कृत्वा वैमानिकेषु देवेषूत्पद्यंते तत्रे

डसामानिकत्रयस्त्रिंशल्लोकपालपार्षदात्मरक्षप्रकीर्णेषु नानाविधसमृद्धिषु नवंतीति नत्वा नियोगिककिल्बिषिकादिष्विति । तदेवाह । (तंजहेत्यादि) तद्यथा महर्ध्यादिषु देवलोके षूत्पद्यंते । देवास्त्वेवंनूतानवंतीति दर्शयति । (तेणंतञ्जदेवा इत्यादि) ते देवानानाविध तपश्चरणोपात्तशुनकर्माणोमहर्ध्यादिगुणोपेतानवंतीत्यादिकः सामान्यगुणवर्णकः । ततो हारविराजितवक्षसइत्यादिकश्चान्नरणवस्त्रपुष्पवर्णकः । पुनरतिशयापादनार्थं दिव्यरू पादिप्रतिपादनं चिकीर्षुराह । (दिव्वेणंरूवेणमित्यादि) दिविनवं दिव्यं तेन रूपेणोपात्ताया वद्दिव्यया इव्यलेश्ययोपेतादशापि दिशः समुद्योतयंतस्तथा प्रनासयंतोऽलंकुर्वंतोगत्या देव लोकरूपया कल्याणाः शोननागत्या वा शीघ्ररूपया प्रशस्तविहायोगतिरूपया वा कल्या णास्तथा स्थित्या उत्कृष्टमध्यमया कल्याणास्ते नवंति तथाऽऽगामिनि काले नद्रकाः शोन नमनुष्यनवरूपसंपडुपेतास्तथा सद्धर्मप्रतिपत्तारश्च नवंतीति । तदेतत्स्थानमार्यमेकांतेनैव सम्यग्नूतं सुसाध्विति । एतद्वितीयस्य स्थानस्य धर्मपाक्षिकस्य विनंगएवमाख्यातः॥ ७४॥

अहावरे तच्चस्स ठाणस्स मीसगस्स विनंगे एव माहिज्जइ इह खलु पाईणंवा संतेगतिया मणुस्सा नवंति तंजहा अप्पिञ्जा अप्पारंना अ प्पपरिग्गहा धम्मिया धम्माणुया जाव धम्मेणं चेव वित्तिकप्पेमाणा विहरं ति सुसीला सुव्वया सुपडियाणंदा साहू एगच्चाउ पाणाइवायाउ पडिविर ता जावजीवाए एगच्चाउ अप्पडिविरया जाव जेयावन्ने तहप्पगारा सावज्जा अबोहिया कम्मंता परपाणपरितावणकरा कज्जंति ततोवि एगच्चाउ अ प्पडिविरया ॥ ७५ ॥

अर्थ—अथ हवे अपर त्रीजुं स्थानक मिश्रपक्ष तेनो विचार कहियें बैयें; यद्यपि ए स्था नक धर्म अधर्में करीने मिश्रितबे, तथापि एमां धर्मनुं बाहुल्य पणुबे, तेमाटें ए धर्म पक्षज जाणवो. आ जगत् मांहे निश्चें पूर्वादिक दिशिने विषे कोइ एक मनुष्य एवा बे, ते कहेबे. अल्प इञावाला, अल्पारंनी एटले थोडेज आरंने व्यापारादिक साथें सं बंधबे जेने, अल्प परिग्रही एटले थोडोज परिग्रह संग्रह करवानी मूर्बा संबंधि बुद्धि बे जेनी, धर्मानुगामि एटले धर्मजे श्रुत चारित्ररूप तेनीकेडे चालनार, यावत् देश थकी चारित्रने अखंम पालवे करी श्रुतने आराधवे करी आजीविका करता थका विचरेबे. न लो बे आचार जेनो, नलां व्रतबे जेने, सुप्रत्यानंद, साधु एटले सुखसाध्यसाधु, तथा साधु ने विषेज आनंद हर्ष सहित वर्त्तेबे, तथा (एगच्चाउपाणाइवायाउ के०) एकेक प्राणी जे बे इंडियादिक त्रस जीवोबे, तेने हणवा थकी निवर्त्या एवा, तथा एकेक स्थूल

प्राणातिपात थकी, अत्यंत पणे विरम्याछे विरक्त थयाछे, जाव जीव सुधी एकेक प्राणी जे पृथिव्यादिक छार तेने हणवा थकीअत्यंत विरम्या नथी उपसत्या नथी, एटले एक सूक्ष्म प्राणातिपात थकी अविरता इत्यादिक सर्वपद, जेवां अविरतने आलावे कह्यांछे, तेवां आहीं पण जाणी लेवां, परंतु एटलुं विशेषछे जे; एक पक्षें विरति, अने एक पक्षें अविरति, (जावजेयावन्ने के०) यावत् जेकांइ अनेरा तथाप्रकारना पूर्वोक्त सावद्य अबोधिनां कारण एवा कर्म रूप व्यापार, बीजा जीवोने परितापना करनार नीपजावीयें, ते थकी पण एक पक्षें विरति, अने एक अपक्षें अविरति, ते विरताविरत कहियें. ॥७५॥

॥ दीपिका–अथापरस्य तृतीयस्थानकस्य मिश्रकाख्यस्य विभंगः स्वरूपमाख्यायते । (इहखलु इत्यादि) एतच्च यद्यपि मिश्रत्वाद्धर्माधर्माभ्यां युतं भवति तथापि धर्मेभूयिष्ठत्वाद्धार्मिकपक्षएवावतरति । यथा बहुषु गुणेषु मध्यपतितोऽल्पदोषोन स्वरूपं लभते कलंकइव चंद्रिकायां बहूदकमध्यपतितोमृत्खंडावयवोन जलं कलुषयितुमलं एवमधर्मोपि धर्मे, ततोयं मिश्रपक्षोधर्मपक्षएवेति स्थितं । इह जगति प्राच्यादिदिक्षु एके शुभकर्माणो मनुष्याः स्युः । तद्यथा अल्पेछाः अल्पारंभाधार्मिकवृत्तयः शीलाः सुव्रताः सुप्रत्यानंदाः साधवः स्युः । तेच एकस्मात् स्थूलात् संकल्पकृतात्प्राणातिपातान्निवृत्ताः । एकस्माच्च सूक्ष्मादारंभजादप्रतिविरताः । एवं शेषाण्यपि व्रतानि वाच्यानि । (जावजेयावन्नेत्ति) ये चान्ये सावद्याः कर्मारंभास्तेभ्यएकस्माद्यंत्रपीडानिर्लांछनकर्षीवलादेर्निवृत्ताः । एकस्माच्च क्रयविक्रयादेरनिवृत्ताः ॥ ७५ ॥

॥ टीका–अथापरस्य तृतीयस्य स्थानस्य मिश्रकाख्यस्य विभंगः समाख्यायते । (इहखलुइत्यादि) एतच्च यद्यपि मिश्रत्वाद्धर्माधर्माभ्यामुपेतं तथापि धर्मेभूयिष्ठत्वाद्धार्मिकपक्षएवावतरति । तद्यथा । बहुषु गुणेषु मध्यपतितोदोषोनात्मानं लभते कलंकइव चंद्रिकायास्तथा बहूदकमध्यपतितोमृच्छकलावयवोनोदकं कलुषयितुमलं एवमधर्मोपि धर्ममिति स्थितं । धार्मिकपक्षएवायं । इहास्मिन् जगति प्राच्यादिषु दिक्षु एके केचन शुभकर्माणोमनुष्याभवंतीति । अल्पाः स्तोकाः परिग्रहारंभेष्विछांतःकरणप्रवृत्तिर्येषां ते तथा एवंभूताधार्मिकवृत्तयः प्रायः सुशीलाः सुव्रताः सुप्रत्यानंदाः साधवोभवंतीति । तएकस्मात् स्थूलात्संकल्पकृतात् प्रतिनिवृत्ताएकस्माच्च सूक्ष्मादारंभजादप्रतिनिवृत्ताएवं शेषाण्यपि व्रतानि संयोज्यानि । एतस्मादपि सामान्येन निवृत्ताइत्यतिदिशन्नाह । (जेयावन्नेइत्यादि) । ये चान्ये सावद्यानरकादिगमनहेतवः कर्मसमारंभास्तेभ्यएकस्माद्यंत्रपीडननिर्लांछनकर्षीवलादेर्निवृत्ताएकस्माच्च क्रयविक्रयादेरनिवृत्ताइति ॥ ७५ ॥

से जहा णामएसमणोवासगा भवंति अभिगयजीवाजीवा उवलद्धपुण्णपावा आसवसंवरवेयणाणिज्जरा किरियाहिगरणबंधमोक्ककुसला असहेज्ज देवासुरनागसुवन्नजक्करक्कसकिंनरकिंपुरिसगरुलगंधव्वमहोरगा इएहिं देवगणेहिं निग्गंथाउ पावयणाउ अणइक्कमणिज्जा इणमे निग्गंथे पावयणे णिस्संकिया णिक्कंखिया निव्वितिगिच्छा लद्धठ्ठा गहीयठ्ठा पुछियठ्ठा विणिछियठ्ठा अभिगयठ्ठा अठ्ठिमिंजपेम्माणुरागरत्ता अयमाउसो निग्गंथे पावयणे अयं परमठ्ठे सेसे अणठ्ठे उसियफलिहा अवगुयडुवारा अचियत्तं तेउरपरघरपवेसा चाउद्दसठ्ठमुद्दिठ्ठपुन्निमासिणीसुपडिपुन्नं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणा समणे निग्गंथे फासुए सणिज्जेणं असणपाणखाइमसाइमेणं वछपडिग्गहकंबलपायपुंछणेणं उसहभेसज्जेणं पीठफलगसेज्जासंथारएणं पडिलाभेमाणा बहूहिं सीलव्वयगुणवेरमणपच्चक्काणपोसहोववासेहिं अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति ॥७६॥ तेणं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणा बहुइं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणंति पाउणंतित्ता आबाहंसि उप्पन्नंसिवा अणुप्पन्नंसिवा बहुइं भत्ताइं अणसणाए पच्चक्काए बहुइं भत्ताइं अणसणाए पच्चक्काएत्ता बहुइं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ बहुइं भत्ताइं अणसणाए छेदेइत्ता आलोइयपडिक्कंता समाहिपत्ता कालमासे कालं किच्चा अन्नयरेसु देवलोएसु देवताए उववतारोभवंति तंजहा महड्ढिएसु महज्जुइएसु जाव महासुखेसु सेसं तहेव जाव एसठाणे आयरिए जाव एगंतसम्मे साहू तच्चस्स ठाणस्स मिस्सगस्स विभंगेएवं आहिए ॥ ७७ ॥

अर्थ—वली विशेष कहियेछैयें. ते यथा दृष्टांते नाम एवी संभावनायें जेम कोइ एक उत्तम पुरुष, विशिष्ट उपदेश सांभलवाने अर्थें (समणोवासगाभवंति के०) श्रमणोपासकनो धर्म सेवन करे, ते श्रमणोपासक विशेषतः धर्मना करनार जाणवा, ते श्रमणोपासकना लक्षण कहेछे. (अभिगय के०) अभिगत एटले उलख्याछे जाण्याछे (जीवाजीवा के० जीव जे चेतन लक्षण रूप, अने अजीव जे चेतनरहित, एटले जीवाजीवना उलखनार, तथा (उवलद्धपुण्णपावा के०) शुभ प्रकृतिरूपजे पुण्य, अने अशु

न प्रकृतिरूपजे पाप, तेना स्वरूपने उपलब्ध एटले पाम्याछे, तथा (आसव के०) आश्रव ते शुनाशुनकर्मनुं आववुं, अने (संवर के०) संवर ते आवता कर्मनुं रोकवुं संवरवुं, तथा (वेयणा के०) वेदना ते साता असातारूप बे प्रकारनी, (णिज्जराके०) निर्जराते कर्मनुं खपाववुं, (किरियाहिगरण के०) क्रियाअधिकरण एटले घर, हाट, खक, कटारी, उखल, मुसल थकी कर्म बंधाय ते, (बंधके०) बंध चार प्रकारना तथा (मोरकके०) कर्म थकी मूकाववुं ते जाणवाने विषे (कुसला के०) माह्याछे, (असहेज्ज के०) कोइ कष्ट पड्या थकी देवादिकनी सहायतानी वांछा न करे सहायरहित धर्मना करनार होय. (देवासुरनागसुवन्नजरकररकसकिंन्नरकिंपुरिसगरुलगंधव्वमहोरगाइएहिंके०) तथा देव एटले वैमानिक देवो, असुर एटले असुर कुमार नवनवासी देवो, नाग कुमार, सुवर्ण कुमार, यक्ष, राक्षस, किंन्नर, किंपुरिस, अश्वमुख गरुड, गंधर्व, महोरगादिक, (देवगणेहिं के०) इत्यादिक देवताना समूह ते, (निग्गंथाउपावयणाउ के०) निग्रंथना एटले नगवंतना प्रवचन थकी तेने (अणइक्कमणिज्जा के०) चलावी नशके, मोलवी नशके. (इणमेनिग्गंथेपावयणेणिस्संकिया के०) तथा ए निग्रंथना प्रवचनने विषे निःशंकित एटले संदेहरहित होय, एटले जे श्रीवीतराग बोल्या तेज सत्य छे एम जाणे. (णिक्कंखियाके०) सूत्र छोडी बीजुं शास्त्र वांछे नही, (निवितिगिछा के०) धर्मना फलने विषे संदेहरहित होय, तथा सूत्रोक्त साधुना मार्गने विषे डुगछारहित होय, (लद्धठा के०) सूत्रसांजलवा थकी लाधाछे सूत्रना अर्थ जेने, (गहीयठा के०) धारणायें करी ग्रह्याछे अर्थ जेणे, (पुछियठा के०) संशय उत्पन्न थया थकी पूछीने खरा कर्याछे अर्थ जेणे, (विणिछियठा के०) वारंवार विशेषें पूछीने निश्चित कर्याछे अर्थ जेणे, (अनिगयठा के०) प्राप्त थयेला अर्थने पूछ्या पछी, निर्णय करी धार्याछे अर्थ जेणे, एटले प्रकारें तत्वार्थना जाण, (अठिमिंजपेम्माणुरागरत्ता के०) अस्थि अने हाड मांहेली मिंजा जे धातु विशेष ते नगवंतना सिद्धांतरूप कसुंबादिकने विषे प्रेमरूप रागें करी रंगाणाछे एटले रागरक्तछे, तथा पांच मांहे मल्या थका एवी धर्मनी कथा कहे के, (अयमाउसो के०) अहो आयुष्मंतो! (निग्गंथेपावयणेके०) निग्रंथ एटले साधु संबंधि जे प्रवचनसिद्धांत छे (अयंपरमठेके०) एज आत्माने अर्थें उत्कृष्ट मोक्ष साधन रूप मार्गछे. (सेसेअणठे के०) अने शेष बीजा कपिलादिकना ग्रंथ, तथा धनधान्यादिक पुत्रकलत्रादिक ए सहु अनर्थ कारीछे, ए सर्व असार एवोजे आ संसार तेनी वृद्धिनां कारण रूपछे. एवी कथा करे, एरीतें निग्रंथना प्रवचनने विषे रागीछे, (उसियफलिहा के०) निर्मल स्फाटिकना जेवुं चित्तछे जेनुं, (अवगुयडुवारा के०) जेना घरना बारणा नोगल रहित एटले सर्व काल उघाडां छे,

(अचियत्तंतेउरपरघरपवेसा के०) राजाना अंतःपुरनी पेठें लोकना घरने विषे प्रवेश करवानो जेणे त्याग कर्योछे, अथवा अप्रीतिकारि छे परदर्शनादिकना घरने विषे प्रवेश जेनो, एतावता परतीर्थिकने पर घर जाणीने, घणा मजबूत कारणो विना, तेमने घरे न जाय, तथा (चाउद्दसट्ठमुद्दिठ के०) चतुर्दशी, अष्टमी, अने उद्दिष्टा एटले महाकल्याणिक तिथि (पुण्णिमासिणीसु के०) पूर्णिमा चतुर्मासिक तिथि, एटला दिवसोने विषे (पडिपुन्नंपोसहंसम्मंअणुपालेमाणा के०) प्रतिपूर्ण पोसहने सम्यक् प्रकारें पालता थका विचरेछे. वली ते श्रावक कहेवाछे तोके, (समणेनिग्गंथे के०) श्रमण तपस्वी निग्रंथने (फासुएसणिज्जेणं के०) प्रासुक एटले निर्जीव एषणीक, एटले बहेंतालीश दोरहित एवो (असणपाणखाइमसाइमेणं के०) अशन, पान, खादिम, स्वादिम, (वछपडिग्गहकंबलपायपुंछणेणं के०) तथा वस्त्र, पात्र, कंबल, पायपुंछण, (उसहभेसज्जेणंके०) औषध, भैषज्य, (पीढफलगसेज्जासंथारएणंपडिलाभेमाणा के०) पीठ, फलक, शय्या, संथारो तेणेकरी प्रतिलाभता थका, (बहुहिंसीलव्वयगुणवेरमणपच्चरकाणपोसहोववासेहिं के०) घणां एक शीलव्रत तथा शीलते शुभाचार, तथा स्थूल प्राणातिपात, वेरमणादिक गुण व्रत ते देशव्रतादिक योग्य पणे लीधेला, तथा नवकारसी पोरसी प्रमुख पच्चरकाणना करनार, तथा पौषध सहित उपवासना करनार, (अहापरिग्गहिएहिं के०) तथा यथा परिग्रहित एटले पोतानी इछा माफक आदर्याछे जेणे; ते शुं आदर्याछे? तोके (तवोकम्मेहिं के०) तप कर्म, तेणे करी, (अप्पाणंभावेमाणाविहरंति के०) पोताना आत्मानें भावता थका विचरेछे. ॥७६॥ (तेणंएयारूवेणंविहारेणंविहरमाणा के०) ते एतद्रूप पणे एटले एवा पूर्वोक्त श्रावकने आचारें प्रवर्त्तता थका, (बहुइंवासाइं के०) घणा वर्ष सुधी (समणोवासगपरियागं के०) श्रमणोपासकना पर्यायने (पाउणंति के०) पाले, (पाउणंतित्ताके०) पालीने (आबाहंसिउप्पन्नंसिवा के०) रोगादिक आबाधा उपनी, (अणुप्पन्नंसिवा के०) अथवा अनुत्पन्न एटले नउपनी छते (बहुइंभत्ताइं के०) घणा भात पाणीनो (अणसणाएपच्चरकाए के०) अनशनपच्चरके (पच्चरकाएता के०) एम घणा भक्त पाननो अनशन पच्चक्खिने (बहुइंभत्ताइंअणसणाछेदइ के०) ते अनशनने विषे घणा भक्त पानने छेदे, एटले परिहरे. (छेदेइत्ता के०) छेदी एटले परिहरीने, घणा दिवस अनशन पालीने (आलोइयपडिक्कंता के०) आलोचे पडिकमे एटले जे पाप लागां होय, तें अरिहंतादिक आगल प्रकाशीने तेनां मिथ्या दुष्कृतादिक आपीने (समाहिपत्ता के०) ज्ञानादिकनी निर्व्याघात पणे समाधि पामिने एटले पडिकमीने समाधि प्राप्त थइने, मरणना अवसरें काल करीने एटले समाधि मरण करीने अनेरा देवलोकने विषे देवता पणे उपजनार थाय. ते कहेछे, महोटी ऋद्धिछे वैमानिकादिकनी तेने विषे, महो

न प्रकृतिरूपजे पाप, तेना स्वरूपने उपलब्ध एटले पाम्याछे, तथा (आसव के०) आश्रव ते शुनाशुनकर्मनुं आववुं, अने (संवर के०) संवर ते आवता कर्मनुं रोकवुं संवरवुं, तथा (वेयणा के०) वेदना ते साता असातारूप बे प्रकारनी, (णिज्जराके०) निर्जराते कर्मनुं खपाववुं, (किरियाहिगरण के०) क्रियाअधिकरण एटले घर, हाट, खड, कटारी, उखल, मुसल थकी कर्म बंधाय ते, (बंधके०) बंध चार प्रकारना तथा (मोरककके०) कर्म थकी मूकाववुं ते जाणवाने विषे (कुसला के०) माह्याछे, (असहेज्ज के०) कोइ कष्ट पडया थकी देवादिकनी सहायतानी वांछा न करे सहायरहित धर्मना करनार होय. (देवासुरनागसुवन्नजरकरकसकिंनरकिंपुरिसगरुलगंधवमहोरगाइएहिंके०) तथा देव एटले वैमानिक देवो, असुर एटले असुर कुमार नवनवासी देवो, नाग कुमार, सुवर्ण कुमार, यक्ष, राक्षस, किंन्नर, किंपुरिस, अश्वमुख गरुड, गंधर्व, महोरगादिक, (देवगणेहिं के०) इत्यादिक देवताना समूह ते, (निग्गंथाउपावयणाउ के०) निग्रंथना एटले नगवंतना प्रवचन थकी तेने (अणइक्कमणिज्जा के०) चलावी नशके, मोलवी नशके. (इणमेनिग्गंथेपावयणेणिस्संकिया के०) तथा ए निग्रंथना प्रवचनने विषे निःशंकित एटले संदेहरहित होय, एटले जे श्रीवीतराग बोल्या तेज सत्य छे एम जाणे. (णिक्कंखियाके०) सूत्र छोडी बीजुं शास्त्र वांछे नही, (निवितिगिछा के०) धर्मना फलने विषे संदेहरहित होय, तथा सूत्रोक्त साधुना मार्गने विषे डुगछारहित होय, (लद्धठा के०) सूत्रसांनलवा थकी लाधाछे सूत्रना अर्थ जेने, (गहीयठा के०) धारणायें करी ग्रह्याछे अर्थ जेणे, (पुछियठा के०) संशय उत्पन्न थया थकी पूछीने खरा कर्याछे अर्थ जेणे, (विणिछियठा के०) वारंवार विशेषें पूछीने निश्चित कर्याछे अर्थ जेणे, (अनिगयठा के०) प्राप्त थयेला अर्थने पूछ्या पछी, निर्णय करी धार्याछे अर्थ जेणे, एटले प्रकारें तत्वार्थना जाण, (अठिमिंजपेम्माणुरागरत्ता के०) अस्थि अने हाड मांहेली मिंजा जे धातु विशेष ते नगवंतना सिद्धांतरूप कसुंबादिकने विषे प्रेमरूप रागें करी रंगाणाछे एटले रागरक्तछे, तथा पांच मांहे मल्या थका एवी धर्मनी कथा कहे के, (अयमाउसो के०) अहो आयुष्मंतो! (निग्गंथेपावयणेके०) निग्रंथ एटले साधु संबंधि जे प्रवचनसिद्धांत छे (अयंपरमठेके०) एज आत्माने अर्थें उत्कृष्ट मोक्ष साधन रूप मार्गछे. (सेसेअणठे के०) अने शेष बीजा कपिलादिकना ग्रंथ, तथा धनधान्यादिक पुत्रकलत्रादिक ए सहु अनर्थ कारीछे, ए सर्व असार एवोजे आ संसार तेनी वृद्धिनां कारणरूपछे. एवी कथा करे, एरीतें निग्रंथना प्रवचनने विषे रागीछे, (उसियफलिहा के०) निर्मल स्फटिकना जेवुं चित्तछे जेनुं, (अवगुयदुवारा के०) जेना घरना बारणा नोगल रहित एटले सर्व काल उघाडां छे,

(अचियत्तंतेउरपरघरपवेसा के०) राजाना अंतःपुरनी पेरें लोकना घरने विषे प्रवेश करवानो जेणे त्याग कस्योछे, अथवा अप्रीतिकारि छे परदर्शनादिकना घरने विषे प्रवेश जेनो, एतावता परतीर्थिकने पर घर जाणीने, घणा मजबूत कारणो विना, तेमने घरे न जाय, तथा (चाउद्दसहमुद्दिह के०) चतुर्दशी, अष्टमी, अने उद्दिष्टा एटले महाकल्याणिक तिथि (पुस्मिमासिणीसु के०) पूर्णिमा चतुर्मासिक तिथि, एटला दिवसोने विषे (पडिपुन्नंपोसहंसम्मंअणुपालेमाणा के०) प्रतिपूर्ण पोसहने सम्यक् प्रकारें पालता थका विचरेछे. वली ते श्रावक कहेवाछे तोके, (समणेनिग्गंथे के०) श्रमण तपस्वी निर्ग्रंथने (फासुएसणिज्जेणं के०) प्राशुक एटले निर्जीव एषणीक, एटले बहेंतालीश दोरहित एवो (असणपाणखाइमसाइमेणं के०) अशन, पान, खादिम, स्वादिम, (वत्थपडिग्गहकंबलपायपुंछणेणं के०) तथा वस्त्र, पात्र, कंबल, पायपुंछण, (उंसहनेसज्जेणंके०) औषध, नैषज्य, (पीढफलगसेज्जासंथारएणंपडिलाभेमाणा के०) पीठ, फलक, शय्या, संथारो तेणेकरी प्रतिलाभता थका, (बहुहिंसीलव्वयगुणवेरमणपच्चरकाणपोसहोववासेहिं के०) घणां एक शीलव्रत तथा शीलते शुनाचार, तथा स्थूल प्राणातिपात, वेरमणादिक गुण व्रत ते देशव्रतादिक योग्य पणे लीधेला, तथा नवकारसी पोरसी प्रमुख पच्चरकाणना करनार, तथा पौषध सहित उपवासना करनार, (अहापरिग्गहिएहिं के०) तथा यथा परिग्रहित एटले पोतानी इछा माफक आदस्याछे जेणे; ते शुं आदस्याछे? तोके (तवोकम्मेहिं के०) तप कर्म, तेणे करी, (अप्पाणंनावेमाणाविहरंति के०) पोताना आत्मानें नावता थका विचरेछे. ॥७६॥ (तेणंएयारूवेणंविहारेणंविहरमाणा के०) ते एतद्रूप पणे एटले एवा पूर्वोक्त श्रावकने आचारें प्रवर्त्तता थका, (बहुईवासाई के०) घणा वर्ष सुधी (समणोवासगपरियागं के०) श्रमणोपासकना पर्यायने (पाउणंति के०) पाले, (पाउणंतित्ताके०) पालीने (आबाहंसिउप्पन्नंसिवा के०) रोगादिक आबाधा उपनी, (अणुप्पन्नंसिवा के०) अथवा अनुत्पन्न एटले नउपनी छते (बहुईनत्ताई के०) घणा नात पाणीनो (अणसणाएपच्चरकाए के०) अनशनपच्चरके (पच्चरकाएता के०) एम घणा नक्त पाननो अनशन पच्चरकिने (बहुईनत्ताईअणसणाछेदइ के०) ते अनशनने विषे घणा नक्त पानने छेदे, एटले परिहरे. (छेदेइत्ता के०) छेदी एटले परिहरीने, घणादिवस अनशन पालीने (आलोइयपडिक्कंता के०) आलोचे पडिकमे एटले जे पाप लागां होय, तें अरिहंतादिक आगल प्रकाशीने तेनां मिथ्या डुष्कृतादिक आपीने (समाहिपत्ता के०) ज्ञानादिकनी निर्व्याघात पणे समाधि पामिने एटले पडिकमीने समाधि प्राप्त थइने, मरणना अवसरें काल करीने एटले समाधि मरण करीने अनेरा देवलोकने विषे देवता पणे उपजनार थाय. ते कहेछे, महोटी ऋद्धिछे वैमानिकादिकनी तेने विषे, महो

टा द्युतिने विषे, यावत् घणा सुख तेने विषे, इत्यादिक शेष बोल पूर्ववत् एटले तेमज जाणवा. ज्यांसुधी एवुं स्थानक आर्य एटले धर्मपक्ष साधुनुं कह्युं. यावत् एकांत सम्यक्त्व मार्ग साधु त्यांसुधीनो आलावो बधो केवो. ए त्रीजुं स्थानक जे मिश्रपक्ष तेनुं विचार स्वरूप कह्युं. एटले धर्म पक्ष, अधर्मपक्ष, अने मिश्रपक्ष, ए त्रणे पक्ष कह्या.॥ १७ ॥

॥ दीपिका–तान् विशेषतआह । (सेजहत्ति) तद्यथा श्रमणोपासकाअधिगतजीवाजीवाउपलब्धपुण्यपापाः । इह प्रायः सूत्रादर्शेषु नानाविधानि सूत्राणि दृश्यंते । टीकानुगतं सूत्रं तु प्रायोन दृश्यते । परं इममेवादर्शमंगीकृत्य मया विवरणं क्रियते इति सूत्रांतरविसंवाददर्शनान्न व्यामोहोविधेयइति । तेच श्रावकाआश्रवसंवरवेदनानिर्जराक्रियाधिकरणबंधमोक्षकुशलाः (असहेज्जत्ति) असहायाअपि देवासुरादिभिर्नैर्ग्रंथात्प्रवचनमतादनतिक्रमणीयाअकंपनीयाः (इणमेत्ति) अस्मिन्नेव नैर्ग्रंथे प्रवचने निःशंकितानिःकांक्षानिर्विचिकित्सालब्धार्थागृहीतार्थाविनिश्चितार्थाअधिगतार्था (अस्थिमिंजा) अस्थिमध्यं यावत्प्रेमानुरागरक्ताः दर्शनेत्यंतं जावितमतयइत्यर्थः । अत्रार्थे कथानकं । राजगृहे कश्चित्परिव्राजकोविद्यासिद्धोयांयां स्त्रियं रम्यां पश्यति तांतामपहरति ततोलोकैर्नृपाय विज्ञप्तं राज्ञोक्तं गछत स्वस्थानं यूयं सुखं तिष्ठत अहं तं दुरात्मानं यदि पंचभिर्दिनैर्नलभे तदा वन्हौ प्रविशामि । गतानागरिकाः स्थानं राज्ञा आरक्षकास्तदन्वेषणाय नियुक्ताः स्वयं च खड्गपाणिर्भ्रमति नृपः। नचोपलभ्यते चौरस्ततः पंचमदिने तांबूलपुष्पादि गृह्णन् रात्रौ नृपेण दृष्टः परिव्राट् तत्पृष्ठगामिना राज्ञा नगरोद्यानवृक्षकोटरप्रवेशेन गुहाभ्यंतरे प्रविश्य हतः सः । ततः समर्पितं यद्धनं यस्य सत्कं स्त्रियोपि। तत्रैका कामिनी अत्यंतमोषधैर्भावितानेछति स्वपतिमपि ततः प्राज्ञैरुक्तं अस्याश्चौरास्थीनि दुग्धेन सह संघृष्य यदि दीयंते तदासौ तदाग्रहं मुंचति ततः स्वजनैरेवं कृतं । यथायथा चासौ तदस्थीनि भक्षयति तथा स्नेहोयाति सर्वास्थिपाने च गतः सर्वोपि चौरस्नेहः अनुरक्ताभून्निजे भर्तरि। तदेवं यथा सात्यंतं भाविता नेछत्यपरं तथा श्रावकाअपि नितरां भाविताः शासने नशक्यंतेऽन्यथाकर्तुं अत्यंतं सम्यक्त्वौषधभावितत्वादिति । श्रावकाः किंभूताः । (अयमाउसोत्ति) इदमायुष्मन् जैनं शासनं अर्थस्तत्त्वभूतं अयमेव परमार्थः शेषोऽनर्थइति चिंतयंतः । तथा चतुर्दश्यष्टम्यादिषु प्रतिपूर्णं पोषधं सम्यक्त्वमनुपालयंतः (उसियफलिहत्ति) उछ्रितानि स्फाटिकानि चित्तानि येषांते तथा वर्धमानपरिणामाइत्यर्थः । (अवगुयदुवारत्ति) अप्रावृतानि द्वाराणि येषांते तथा सन्मार्गलाभान्नकुतोपि भयं कुर्वंतीत्युद्घाटितद्वाराः (अचियत्तत्ति) अचियत्तोऽनभिमतोंऽतःपुरप्रवेशवत्परगृहप्रवेशोयेषांते तथा श्रमणान्निर्ग्रंथान् प्रासुकेनैषणीयेन अशनादिना वस्त्रप्रतिग्रहकंबलपादपुंछनेन औषधभेषजे

न पीठफलकशय्यासंस्तारकेण प्रतिलानयंतोबहूनि । शीलव्रतगुणविरमणप्रत्याख्यानपौष धोपवासैर्यथा परिगृहीतैस्तपःकर्मनिरात्मानं नावयंतस्तिष्ठंति ॥७६॥ (तेणंति) ते श्रमणोपा सकाएतद्रूपेण विहारेण विहरमाणाबहूनि वर्षाणि श्रमणोपासकं पर्यायं प्रपाल्य रोगातं के समुत्पन्नेऽनुत्पन्ने वा नक्तं प्रत्याख्याय स्वायुःक्षये देवेषूत्पद्यंते ततोपि च्युताः सुमानुष नवं प्राप्य तेनैव नवेनोत्कृष्टतः सप्तसु अष्टसु वा नवेषु सिध्यंति । तदेवं स्थानमार्यं तृ तीयस्य स्थानस्यार्य विनंगोविचारआख्यातः ॥ ७७ ॥

॥ टीका—तांश्च विशेषतोदर्शयितुमाह (सेजहेत्यादि) विशिष्टोपदेशार्थं श्रमणानुपास ते सेवंतइति श्रमणोपासकास्तेच श्रमणोपासनतोऽनिगतजीवाजीवस्वनावास्तथोपलब्धपु एयपापाः । इह च प्रायः सूत्रादर्शेषु नानाविधानि सूत्राणि दृश्यंते न टीकासंवादेकोप्यस्मा निरादर्शः समुपलब्धोतएकमादर्शमंगीकृत्यास्मानिर्विवरणं क्रियते इत्येतदवगम्य सूत्रवि संवाददर्शनाच्चित्तव्यामोहोविधेयइति । ते श्रावकाः परिज्ञातबंधमोक्षस्वरूपाः संतोन धर्मा च्याव्यंते मेरुरिव निष्प्रकंपाहढमार्हते दर्शनेऽनुरक्ताः । अत्र चार्थे सुखप्रतिपत्त्यर्थं दृष्टांत नूतं कथानकं । तच्चेदं । तद्यथा राजगृहे नगरे कश्चिदेकः परिव्राट् विद्यामंत्रौषधिलब्ध सामर्थ्यः परिवसति सच विद्यादिबलेन पत्तने पर्यटन् यां यामनिरूपतरामंगनां पश्यति तां तामपहरति ततः सर्वैर्नागरैराज्ञे निवेदितं । यथा देव! प्रत्यहं पत्तनं मुष्यते केनापि नीयते सर्वसारमंगनाजनोपि यस्तस्यानिमतः सोऽत्र केवलमास्ते । तदेवं क्रियतां प्रसादस्तदन्वे षणेनेति । राज्ञानिहितं गच्छत यूयं विश्रब्धानवतावश्यमहं तं दुरात्मानं लप्स्ये । किंचय दि पंचपैरहोनिर्न लने चौरं विमर्षयुक्तोपि च त्वहयाम्यात्मानमहं ज्वालामालाकुले वन्हौ तदेवं कृतप्रतिज्ञं राजानं प्रणम्य निर्गतानागरिकाः । राज्ञा च सविशेषं नियुक्ताआरक्षकाः । आत्मनाप्येकाकी खड्गखेटकसमेतोन्वेष्टुमारब्धोन चोपलन्यते चौरस्ततोराज्ञा निपुणतरम न्वेषता पंचमेऽहनि नोजनतांबूलगंधमाल्यादिकं गृएहन् रात्रौ स्वतोनिर्गतेनोपलब्धः सपरिव्राट् तत्पृष्ठगामिना नगरोद्यानवृक्षकोटरप्रवेशेन गुहाभ्यंतरं प्रविश्य व्यापादितस्त दनंतरं समर्पितं यद्यस्य सत्कमंगनाजनोपीति । तत्र चैका सीमंतिनी अत्यंतमौषधिना विता नेच्छत्यात्मीयमपि नर्तारं ततस्तच्छिरनिहितं यथाऽस्याः परिव्राट्सक्तान्यस्थीनि दुग्धेन सह संघृष्य यदि दीयते तदेयं तदाग्रहं मुंचति ततस्तत्स्वजनैरेवमेव कृतं यथा यथा चासौ तदस्थ्यन्यवहारं विधत्ते तथातथा तत्स्नेहानुबंधोऽपैति सर्वास्थिपाने चापगतः प्रेमानुबंधस्तदनुरक्ता निजे नर्तरि । तदेवं यासावत्यंतं तेन परिव्राजा नेच्छत्यपरमेवं श्रावक जनोपीति नितरां नावितात्मा मौनींद्रशासने न शक्यते अन्यथाकर्तुमत्यंतं सम्यक्त्वौषधे न वासितत्वाद्धिति । पुनरपि श्रावकान् विशिनष्टि (जावच्चसियफलिहाइत्यादि) उच्छ्रिता

नि स्फाटिकानीव स्फाटिकानि अंतःकरणानि येषांते तथा । एतदुक्तं नवति । मौनींद्रद र्शनावाप्तौ सत्यां परितुष्टमानसाइति । तथा अप्रावृतानि द्वाराणि यैस्ते तथा उद्घाटित गृह द्वारास्तिष्ठंति सद्दर्शनलाजेन न कस्यचिद्बिन्यति शोजनमार्गपरिग्रहे नोद्घाटितशिरसो विश्रब्धं तिष्ठंतीति अचिंतयन्तोऽनजिमतोऽतःपुरप्रवेशवत्परगृह द्वारप्रवेशोऽन्यतीर्थिकप्र वेशोयेषां ते तथा अनवरतं श्रमणानुद्युक्तविहारिणोनिर्ग्रंथान् प्रासुकेनैषणीयेनाशनादिना तथा पीठफलकशय्यासंस्तारकादिनाच प्रतिलानयंतस्तथा बहूनि वर्षाणि शीलव्रतगुणव्रत प्रत्याख्यानपोषधोपवासैरात्मानं नावयंतस्तिष्ठंति ॥ ७६ ॥ तदेवं ते परमश्रावकाः प्रनूतकाल मणुव्रतशिक्षाव्रतानुष्ठायिनः साधूनामौषधवस्त्रपात्रादिनोपकारिणः संतोयथोक्तं यथाशक्ति सदनुष्ठानं विधायोत्पन्ने वा कारणेऽनुत्पन्नेवा नक्तं प्रत्याख्यायालोचितप्रतिक्रांताः समाधि प्राप्ताः संतः कालमासे कालं कृत्वाऽन्यतरेषु देवेषूत्पद्यंतइति । एतानि चानिगतजीवाजी वादिकानि पदानि हेतुहेतुमद्भावेन नेतव्यानि । तद्यथा यस्मादनिगतजीवास्तस्मादुपल ब्धपुण्यपापाः । यस्मादुपलब्धपुण्यपापास्तस्माडुब्रितमनसः । एवमुत्तरत्रापि एकैकं पदंत्य जन्निरेकैकं चोत्तरं गृह्णद्भिर्वाच्यं । तेच परेण पृष्टाअपृष्टावाएतदूचुः । तद्यथाऽयमेव मौ नींद्रोक्तोमार्गः सदर्थः । शेषस्त्वनर्थोयस्मादेवं प्रतिपद्यंते तस्मात्ते समुब्रितमनसः संतः साधुधर्मं श्रावकधर्मं च प्रकाशयंतोविशेषेणैकादशोपासकप्रतिमाः स्पृशंतोविहरंतोऽष्टमी च तुर्दश्यादिषु पोषधोपवासादौ साधून् प्रासुकेन प्रतिलानयंति पाश्चात्ये च कालेसंलिखि तकायाः संस्तारकश्रमणनावं प्रतिपद्य नक्तं प्रत्याख्यायायुषः क्षये देवेषूत्पद्यंते । ततोपि च्युताः सुमानुषनावं प्रतिपद्य तेनैव नवेनोत्कृष्टतः सप्तसप्तसु नवेषु सित्स्यंतीति । तदे तत्स्थानं कल्याणपरंपरया सुखविपाकमिति कृत्वाऽर्थमिति । अयं विनंगस्तृतीयस्य स्थानस्य मिश्रकाख्यस्याख्यातइति. ॥ ७७ ॥

अविरइं पडुच्च बाले आहिज्जइ विरइं पडुच्च पंमिए आहिज्जइ विरया विरइं पडुच्च बालं पंमिए आहिज्जइ तत्रणं जासा सव्वतो अविरइ एसठा णे आरंनठाणे अणारिए जाव असव्वडःखप्पहीणमग्गे एगंतमिब्छे अ साहू तत्रणं जासा सव्वताविरइ एसठाणे अणारंनठाणे आरिए जा व सव्वडुक्खप्पहीणमग्गे एगंतसम्मे साहू तत्रणं जासा सव्वत विरया वि रई एसठाणे आरंनणोरंनठाणे एसठाणे आरिए जाव सव्वडुक्खप्पही णमग्गे एगंतसम्मे साहू ॥ ७८ ॥

अर्थ—हवे ए त्रणे स्थानकनें संक्षेपें करी सविशेष कहेछे. (अविरइंपडुच्च के०)

अविरति एटले असंयम ते आहीं सम्यक्त्वने अभावें जोपण मिथ्यादृष्टिनी विरतिछे, तोप ण तेने अविरतिज कहेवाय; ते अविरति आश्री तेने (बालेआहिज्जइ के०) बाल कहि यें, (विरईपडुच्चपंमिएआहिज्जइ के०) अने विरति एटले सावद्य परित्यागरूप ते आश्री तेने पंमित परमार्थनो जाण कहियें, (विरयाविरईपडुच्चबालपंमिएआहिज्जइ के०) त था विरताविरत एटले कांइक संयम कांइक असंयम ते आश्री तेने बाल पंमित कहियें, (तत्थणंजासासव्वतोअविरइ के०) त्यां पूर्वोक्त त्रण स्थानकने विषे जे सर्व थकी अविरति स्थानकछे एटले जेमां सर्वथा विरति परिणामनो अभावछे. (एसठाणे के०) ए स्थानक ते (आरंभठाणे के०) आरंभनुं स्थानक, (अणारिए के०) अनार्य, (जावअसव्वदुरकप्प हीणमग्गे के०) यावत् सर्व दुःख थकी मूकाववानो मार्ग नथी. (एगंतमिछेअसाहु के०) एकांत मिथ्यात्व मार्ग असाधु एटले ए सारो मार्ग नहीं. हवे बीजुं धर्मपक्षनुं स्थानक कहेछे. (तत्थणंजासासव्वताविरइ के०) त्यां जे सर्व थकी विरति सम्यक् पूर्वक आरंभ परित्यागरूप (एसठाणे के०) ए स्थानक (अणारंभठाणे के०) अनारंभनुं स्थानक (आरिए के०) आर्य, (जावसव्वदुरकप्पहीणमग्गे के०) यावत् सर्व दुःख थकी मुका ववानो मार्ग, (एगंतसम्मेसाहु के०) एकांत सम्यक्त्व साधु मार्ग जाणवो. हवे त्रीजुं मिश्रपक्षनुं स्थानक कहेछे. (तत्थणंजासासव्वउविरयाविरइएसठाणेआरंभणोरंभठाणे के०) त्यां जे सर्व थकी विरताविरत एटले संयमासंयमरूप स्थानक ते आरंभ अने अनारंभ रूप स्थानक जाणवुं. (एसठाणे के०) ए स्थानक (आरिए के०) आर्य यावत् सर्व दुःख थकी मूकाववानो मार्ग एकांत सम्यक् भलो मार्ग जाणवो. ॥ ७८ ॥

॥ दीपिका—अथेदं पक्षत्रयमुपसंहरन् संक्षेपतोवक्ति। अविरतिं प्रतीत्याश्रित्य बालआ धीयते स्थाप्यते विरतिमाश्रित्य बालपंडितइत्युच्यते । तत्र वा अविरतिः। एतत् स्थानं यावन्नार्यं सर्वदुःखक्षयमार्गः किंतु? एकांतमिथ्यात्वमार्गोऽसाधुः । तत्र या सर्वविरतिः एतत्स्थानमनारंभस्थानं आर्यं यावदयं सर्वदुःखक्षयमार्गः साधुः शोभनः । या सर्वतो विरताविरतिः । इदं स्थानमारंभानारंभस्थानं । इदमपि स्थानमार्यं परंपरया सर्वदुःख क्षयमार्गः एकांतः सम्यक् साधुः ॥७८॥

॥ टीका—उक्ता धार्मिकाअधार्मिकास्तदुभयरूपाश्चाभिहिताः।सांप्रतमेतदेव स्थानत्रिकमु पसंहारद्वारेण संक्षेपतोबिभणिषुराह । (अविरइइत्यादि) येयमविरतिरसंयमरूपा स म्यक्त्वाभावान्मिथ्यादृष्टेर्द्रव्यतोविरतिरप्यविरतिरेव तां प्रतीत्याश्रित्य बालवद्बालोऽज्ञः सद सद्विवेकविकलत्वात् इत्येवमाधीयते व्यवस्थाप्यते आख्यायते वा तया विरतिं चाश्रित्य

प्रतीत्य पापाड्डीनः पंडितः परमार्थज्ञोवेत्येवमाधीयते व्याख्यायते तथा विरताविरतिं चा श्रित्य बालपंडितइत्येतत्प्राग्वदायोज्यमिति । किमित्यविरतिंविरत्याश्रयेण बालपांडित्या पत्तिरित्याशंक्याह । तत्थणमित्यादि । तत्र पूर्वोक्तेषु येयं सर्वात्मना सर्वस्मात् अविरति र्विरतिपरिणामाभावः। एतत्स्थानं सावद्यारंभस्थानमाश्रयस्तदाश्रित्य सर्वाण्यपि कार्याणि क्रियंते । यतएवमतएतदनार्यस्थानं निःशूकतया यत्किंचनकारित्वाद्यावदसर्वदुःखप्रहीण मार्गोयं तथैकांतमिथ्यारूपोसाधुरिति । तत्र चेयं विरतिः सम्यक्त्वापूर्विका सावद्यारंभा न्निवृत्तिः सावद्यानुष्ठानरहितत्वात्संयमस्थानं तत्र चैतत्स्थानमार्यस्थानं । आराद्यातं स र्वहेयधर्मेभ्यइत्यार्यं तथा सर्वदुःखप्रहीणमार्गोऽशेषकर्मक्षयपथस्तथैकांतः सम्यग्भूतः । एतदेवाह । साधुरिति । साधुभूतानुष्ठानात्साधुरिति । तत्रच येयं विरताविरतिरभिधीयते सैव मिश्रस्थानभूता तदेव तदारंभरूपस्थानमेतदपि कथंचिदार्यमेवं पारंपर्येण सर्वदुःख प्रहीणमार्गस्तथैकांतसम्यग्भूतः साधुश्चेति तदेवमनेकविधोयमधर्मपक्षोधर्मपक्षस्तथा मि श्रपक्षश्चेति संक्षेपेणाभिहितपक्षत्रयसमाश्रयणेन ॥१८॥

एवमेव समणुगम्ममाणा इमेहिं चेव दोहिं ठाणेहिं समोअवतरंति तंज हा धम्मेचेव अधम्मेचेव उवसंतेचेव अणुवसंतेचेव तत्थणं जे से पढमठा णस्स अधम्मपरकस्स विभंगे एवमाहिए तस्सणं इमाइं तिन्नि तेवठाइं पावाडुयसयाइं भवंतीति मरकाइं तंजहा किरियावाईणं अकिरियावाई णं अन्नाणियवाईणं वेणइयवाईणं तेवि निवाणमाहंसु तेवि परिमोरक माहंसु तेवि लवंति सावगा तेवि लवंति सावइत्तारो ॥ १९ ॥

अर्थ—(एवमेव के०) एप्रकारें (समणुगम्ममाणा के०) अन्य बीजा जे मार्ग, अ नेक उन्मार्गछे ते सर्व, (इमेहिंचेवदोहिंठाणेहिंसमोअवतरंति के०) ते निश्चें थकी ए बे स्थानकने विषे अवतरेछे समायछे. (तंजहा के०) ते बे स्थानकनां नाम कहेछे. (धम्मेचेवअधम्मेचेव के०) एक धर्म स्थानक, बीजुं अधर्म स्थानक, (उवसंतेचेवअणु वसंतेचेवके०) एक ज्यां कषायादिक उपशम्याछे ते उपशांत स्थानक जाणवुं, अने बीजुं ज्यां कषायादिक उपशम्या नथी ते अनुपशांत स्थानक जाणवुं. (तत्थणंजेसेपढमठाणस्स अधम्मपरकस्सविभंगेएवमाहिए के०) त्यां ए बेहु स्थानक मांहे प्रथम स्थानक, ते अधर्म पक्षछे, तेनुं स्वरूप विचार एम कहियें. (तस्सणं के०) ते अधर्मपक्ष स्थानक मांहे (इमाइं के०) ए (तिन्नितेवठाइंपावाडुयसयाइंभवंतीतिमरकाइ के०) त्रणशेंने त्रेशठ प्रावाडुक एटले पांखमीना भेद अवतरेछे, एम भगवंतें कह्युंछे. (तंजहा के०)

ते कहेछे. (किरियावाईणं के०) एक क्रियावादी, तेना एकसोने एंशी नेदछे. (अकिरियावाईणं के०) बीजा अक्रियावादी तेना चोराशी नेदछे. (अन्नाणियवाईणं के०) त्रीजा अज्ञानवादी, तेना सडसठ नेदछे (वेणइयवाईणं के०) चोथो विनयवादी, तेना बत्रीश नेदछे. एम सर्वे मली त्रणशेंने त्रेसठ नेदोछे. (तेवि निव्वाणमाहंसु के०) ते पण सर्वे पोत पोताना मतने अनुरागें निर्वाण एटले मोक्षनो मार्ग कहेछे. (तेवि परिमोस्कमाहंसु के०) तेपण कर्म थकी मूकाववानो उपाय कहेछे. (तेविलवंतिसावगा के०) तेपण कहेछेके अहो श्रावको ! अमे जे धर्म प्ररूपीयें छैयें ते धर्म तमे आदरो (तेविलवंतिसावश्त्तारो के०) तेपण कहेछे के, अमे धर्मना संनलावनारा छैयें.॥७ए॥

॥ दीपिका—मिश्रपक्षोपि धर्माधर्मयोरेवांतर्नवतीत्याह। एवमेव संक्षेपेण समनुगम्यमानाव्याख्यायमानाः सम्यगनुगृह्यमाणाअनयोरेव धर्माधर्मपक्षयोरनुपतंति । उपशांतं स्थानं धर्मपक्षः अनुपशांतस्थानमधर्मस्थानं (तछणंति) तत्रच यत्प्रथमस्थानस्याधर्मपक्षस्य स्थानं तत्रामूनि त्रीणि त्रिषष्ट्यधिकानि प्रावाडुकशतान्यंतर्नवंतीत्येवमाख्यातं पूर्वाचार्यैः । तद्यथा । क्रियावादिनः अक्रियावादिनः अज्ञानिकवादिनवैनयिकवादिनः। अत्र षष्ठीबहुवचनेनेदमाह । क्रियावादिनामशीत्युत्तरंशतं १७० अक्रियावादिनां चतुरशीतिः ७४ अज्ञानिकानां सप्तषष्टिः ६७ वैनयिकानां द्वात्रिंशत् ३२ सर्वे मिलिताः ३६३ मौलनेदाः। नेदानयने प्रकारश्चायं । जीवाजीवाश्रवसंवरनिर्जरापुण्यपापबंधमोक्षरूपान् नव पदार्थान् विन्यस्य जीवपदार्थस्याधः स्वपरनेदौ स्थाप्यौ । तयोरधोनित्यानित्यनेदौ तयोरप्यधः काले १ श्वरा २ त्म ३ नियति ४ स्वनाव ५. नेदाः पंच स्थाप्याः। ततएवं नेदाः कार्याः । अस्ति जीवः स्वतोनित्यः कालतः १ अस्तिजीवः स्वतोनित्यईश्वरतः २ एवमात्मनियतिस्वनावैरपि । एवं पंच नेदानित्यपदेन लब्धाः । अनित्यपदेनापि पंच। एते दश विकल्पाः स्वतःपदेन लब्धाः। एवं दश विकल्पाः परतः पदेनापि । जाता विंशतिर्जीवपदेन । एवमजीवाद्यष्टपदैरपि विंशतिर्विंशतिः स्युः । नवभिर्विंशतिन्निश्चाशीत्यधिकं शतं । एते क्रियावादिनेदाः। न कस्यचित्पदार्थस्य क्रिया संनवति । उत्पत्त्यनंतरमेव विनाशात् । क्षणिकाः सर्वसंस्काराः अस्थिराणां कुतः क्रिया इत्यादि ये वदंति तेऽक्रियावादिनः। तेषां नेदाः ७४। यथा। पुण्यपापवर्जितजीवाजीवादिपदार्थसप्तकस्य न्यासः । तस्याधः प्रत्येकं स्वपरनेदौ असत्वादात्मनोनित्यानित्यविकल्पौ नस्तः । कालादीनां पंचानामधस्तात्षष्ठी यदृछा स्थाप्या । इह यदृछावादिनः सर्वेप्यक्रियावादिनएव । ततः प्राक् यदृछा नोक्ता । ततएवं नेदाः कार्याः । नास्ति जीवः स्वतः कालतः १ नास्तिजीवः स्वतईश्वरतः २ एवमात्मादिनिरपि। एवं षड्नेदाः स्वतः प

देन । परतः पदेनापि षट् जाताः १२ एवमजीवादिपदार्थेषु प्रत्येकं १२ ततो द्वादश स प्तनिर्गुणिताजाताः ८४ एते क्रियावादिभेदाः । अज्ञानिकभेदाः ६७ । यथा । जीवाजीवाद्यानव पदार्थाः स्थाप्यंते । उत्पत्तिश्च दशमी नवपदार्थानामधः प्रत्येकं सप्त सत्वादयः स्थाप्याः । तद्यथा । सत्वं असत्वं सदसत्वं अवाच्यत्वं सदवाच्यत्वं असदवाच्यत्वं सदसदवाच्यत्वं चेति । नवसप्तनिर्गुणिताजाताः ६३ । उत्पत्तेश्चत्वारएवाद्याविकल्पाः । तद्यथा । सत्वं सदसत्वं अवाच्यत्वं चेति । शेषविकल्पत्रयं तु उत्पत्तेरनंतरं पदार्थावयवापेक्षं अतउत्पत्तौ न संभवतीति चत्वारएव भेदास्त्रिषष्टिमध्ये क्षिप्ताजाताः ६७ । एषामर्थलेशोयथा । कोजानाति जीवः सन्नित्येकोभेदः १ कश्चिदपि नजानाति तद्ग्राहकप्रमाणाभावादित्यर्थः । ज्ञातेन वा किं तेन प्रयोजनं । ज्ञातस्य कदाग्रहतया परलोकप्रतिपंथित्वात् । एवमसदादयोपि भंगाभाव्याः । उत्पत्तिरपि किंसतोऽसतः सदसतोवाच्यस्य वेति कोजानाति । ज्ञातेनवा नकिंचिदपि प्रयोजनं । इत्यज्ञानिकभेदाः । वैनयिकाः ३२ । यथा । सुरनृपतियतिज्ञातिस्थविराधममातृपितृरूपेषु अष्टसु स्थानेषु कायेन मनसा वाचा दानेनच देशकालोपपन्नेन विनयः कार्यइति चत्वारः कायादयः स्थाप्याः । चत्वारश्चाष्टभिर्गुणिताजाताः ३२ । एवं सर्वेपि मीलिताजाताः ३६३ परवादिभेदाः । एषां विशेषव्याख्या प्रथमांगतोज्ञेया । ते सर्वे प्रावाडकाजैनाइव निर्वाणं मोक्षमाहुः । तेपि लपंति वदंति धर्मदेशनां यथा हेश्रावकाः ! शृण्वंतीति श्रावकाः। एवं गृहीत यूयं यथाहं देशयामीति। तथा तेपि धर्मश्रावयितारः संतएवं लपंति तदनेनोपायेन स्वर्गमोक्षप्राप्तिरिति ॥ ७९ ॥

॥ टीका—सांप्रतमसावपि मिश्रपक्षोधर्माधर्मसमाश्रयणेनानयोरंतर्वर्ती भवतीति दर्शयति । (एवमेवेत्यादि) एवमेव संक्षेपेण सम्यगनुगम्यमानाव्याख्यायमानाः सम्यगनुगृह्यमाणाअनयोरेव धर्माधर्मस्थानयोरनुपतंति । किमिति । यतोयडुपशांतस्थानं तद्धर्मपक्षस्थानमनुपशांतस्थानमधर्मपक्षस्थानमिति । तत्रच यदधर्मपाक्षिकं प्रथमं स्थानं तत्रामूनि त्रीणि षष्ट्यधिकानि प्रावाडकशतान्यंतर्भवंतीति । एवमाख्यातं पूर्वाचार्यै रिति । एतानि वा सामान्येन दर्शयितुमाह । (तंजहेत्यादि) तद्यथेत्युपदर्शनार्थः । क्रियां ज्ञानादिरहितामेकामेव स्वर्गापवर्गसाधनत्वेन वदितुं शीलं येषां ते क्रियावादिनस्ते च दीक्षातएव मोक्षं वदंतीत्येवमादयोद्रष्टव्याइति । तेषांच बहवोभेदास्तथा क्रियां परलोकसाधनत्वेन वदितुं शीलं येषां ते तथा तेषामिति अज्ञानमेव श्रेयइत्येवं वदितुं शीलं येषां ते भवंत्यज्ञानवादिनस्तेषां तथा विनयएव परलोकसाधने प्रधानं कारणं येषांते तथा तथा तेषामिति । अत्रच सर्वत्र षष्ठीबहुवचनेनेदमाह । तद्यथा क्रियावादिनामशीत्युत्तरशतं अक्रियावादिनां चतुरशीतिरज्ञानिकानां सप्तषष्टिर्वैनयिकानां द्वात्रिंशदिति । तत्र सर्वे

प्येते मौलास्तच्छिष्याश्च प्रवदनशीलत्वात्प्रावाडुकास्तेषां च नेदसंख्या परिज्ञानोपायश्चा चारएवानिहितइति नेह प्रतन्यते । तें सर्वेप्यार्हताइव परिनिर्वाणमशेष द्वंद्वोपरमरूपव र्णगंधरसस्पर्शस्वनावमनुपचरितपरमार्थस्थानं ब्रह्मपदाख्यमबाधात्मकं परमानंदसुखस्व रूपमाहुरुक्तवंतस्तथा तेपि प्रावाडुकाः संसारबंधनान्मोचनात्मकं मोक्षमाहुः । पूर्वेण नि रुपाधिकं कार्यमेव निर्वाणाख्यमुक्तमनेन तु तदेव कारणोपाधिकमित्ययं विशेषः । तत्र येषामप्यात्मा नास्ति ज्ञानसंततिवादिनां तेषामपि कर्मसंततेः संसारनिबंधननूतायाविछे दान्मोक्षनावाविरोधः । तेषां चोपादानक्षयादनागतानुत्पत्तेः संततिछेदएव मोक्षः प्रदी पस्येव तैलवर्त्यनावे निर्वाणमिति । तथाचाहुः । न तस्य किंचिद्भवति न नवत्येव केव लमिति । एतच्च तेषां महामोहविजृंनितं । यतः । कर्म चास्ति फलं चास्ति कर्ता नैवास्ति कर्मणां ॥ संसारमोक्षवादित्वमहोह्यांध्यविजृंनितमिति ॥ येषां चात्मास्ति सांख्यादीनां तेषां प्रकृतिविकारवियोगोमोक्षः क्षेत्रज्ञस्य पंचविंशतितत्त्वपरिज्ञानादेव विद्यमानैःप्रधानवि कारैर्विमोचनं मोक्षइति । तेषामप्येकांतनित्यवादितया मोक्षानावः । एवमन्येपि नैया यिकवैशेषिकादयः संसारानावमिछंतोपि न मुच्यंते सम्यग्दर्शनादिकस्योपायस्यानावादि त्यन्यूह्याह । यदि न तेषां मोक्षः कथं ते लोकस्योपास्यानवंतीत्याशंक्याह । तेपि तीर्थि कालपंति ब्रुवते मोक्षं प्रति धर्मदेशनां विदधति । शृएवंतीति श्रावकाः हेश्रावका! एवं गृएही त यूयं यथाहं देशयामि तथा तेऽपि धर्मश्रावयितारः संतएवं लपंति नाषंते यथाऽनेनोपा येन स्वर्गमोक्षावाप्तिरिति तद्वचनं मिथ्यात्वोपहतबुद्धयोवितथमेव गृएहंति कूटपएयदायि नां विपर्यस्तमतयएवेति । तदेवमादितीर्थिकास्तच्छिष्याश्च पारंपर्येण मिथ्यादर्शनानुनावा त्परान्प्रतारयंति तेपिच तेषां प्रतारयंति आहुः कथमेते प्रवाडुकामिथ्यावादिनोनवंति । अ त्रोच्यते । यतस्तेप्यहिंसां प्रतिपादयंति नच तां प्रधानमोक्षांगनूतां सम्यगनुतिष्ठंति । कथं सांख्यानां तावज्ज्ञानादेव धर्मोन तेषामहिंसाप्राधान्येन व्यवस्थितः किंतु पंचयमाइत्यादि कोविशेषइति । तथा शाक्यानामपि दश- कुशलाधर्मपथाअहिंसापि तत्रोक्ता नतु सैव ग रीयसी धर्मसाधनत्वेन तैराश्रिता । वैशेषिकाणामपि अनिसेवनोपवासब्रह्मचर्यगुरुकुल वासप्रस्थादानयज्ञादिनक्षत्रमंत्रकालनियमादृष्टास्तेषु चानिषेचनादिषु पर्यालोच्यमानेषु हिंसैव संपद्यते वैदिकानां हिंसैव गरीयसी धर्मसाधनं यज्ञोपदेशात् तस्य च तयाविनाना वादित्यनिप्रायः । उक्तंच । ध्रुवः प्राणिवधोयज्ञे ॥ ७९ ॥

ते सवे पावाउया आदिकरा धम्माणं णाणापन्ना णाणाछंदा णाणासीला णाणादिट्ठी णाणारुई णाणारंना णाणाश्रवसाणसंजुत्ता एगंमहं मंम लिबंधं किच्चा सवे एगयाउ चिठंति ॥ ८० ॥

अर्थ—(तेसव्वेपावाउयाआदिकराधम्माणं के०) ते सर्वे प्रावाडुक एटले पाखंमी पोताने ढंदे धर्मना आदिना करनार कहियें, परंतु ते (णाणापन्ना के०) नाना प्रकारनी बुद्धि वाला, (णाणाछंदा के०) नाना प्रकारना अभिप्राय वाला, (णाणासीला के०) नानाप्रकारना आचारवाला, (णाणादिट्ठी के०) नाना प्रकारनी दृष्टि वाला, (णाणारुई के०) नाना प्रकारनी रुची वाला, (णाणारंजा के०) नाना प्रकारना आरंजना करनारा, (णाणाज्ञवसायसंजुत्ता के०) नाना प्रकारना अध्यवसाय तेणे करीने सहित एवा थका, पोतपोतानुं (एगंमहंमंमलिबंधंकिच्चा के०) एक महोटुं मंमल बांधि करीने, एटले पंक्ति करीने, (सव्वेएगयाउचिठंति के०) ते सर्वे एकज प्रदेशें तिष्ठंति एटले बेगले. ॥ ७० ॥

॥ दीपिका—ते सर्वे प्रावाडुकाआदिकराः स्वधर्माणां। नानाप्रज्ञानानाछंदानानाभिप्रायाना नाविधादृष्टिर्दर्शनं येषां ते तथा नानाविधा रुचिर्येषां ते तथा नानाविधारंजानानाविधाध्यवसायसंयुक्ताएकं महांतमंडलिबंधं कृत्वा तिष्ठंति ॥७०॥

॥ टीका—तदेवं सर्वप्रावाडुकामोक्षांगनूतामहिंसां न प्राधान्ये न प्रतिपद्यंतइति दर्शयितुमाह। (तेसव्वेइत्यादि) प्रवदनशीलाः प्रावाडुकाः सर्वेपि त्रिषष्ठ्युत्तरत्रिशतपरिमाणाअपि आदिकरायथा स्वं धर्माणां। येपिच तच्छिष्यास्तेपि सर्वे नानाभिन्ना प्रज्ञा ज्ञानं येषांते नानाप्रज्ञाः। आदिकराइत्यनेनेदमाह। स्वरुचिविरचितास्ते नत्वनादिप्रवाहायाताः। ननु चार्हतानामपि आदित्वविशेषणमस्त्येव सत्यमस्ति किंतु अनादिर्हेतुपरंपरेत्यनादित्वमेव तेषांच सर्वज्ञप्रणीतागमानाश्रयणान्निबंधनाजावस्तदजावाच्च निन्नपरिज्ञानमतएव नानाछंदाः। छंदोऽनिप्रायः। निन्नानिप्रायाइत्यर्थः।तथाहि। उत्पादव्ययध्रौव्यात्मके वस्तुनि सांख्यैरेकांतेनाविर्जावतिरोजावाश्रयणादन्वयिनमेव पदार्थं सत्यत्वेनाश्रित्य नित्यपक्षं समाश्रितास्तथा शाक्याअत्यंतक्षणिकेषु पूर्वोत्तरनिन्नेषु पदार्थेषु सत्सु सएवायमिति प्रत्यनिज्ञा प्रत्ययः सदृशापरापरोत्पत्तिर्वितथानां जवतीत्येतत्पक्षसमाश्रयणादनित्यपक्षं समाश्रिताइति। तथा नैयायिकवैशेषिकाः केषांचिदाकाशपरमाएवादीनामेकांतेन नित्यत्वमेवकार्यद्रव्याणांच घटपटादीनामेकांतेनानित्यत्वमेवाश्रिताः। एवमनया दिशाऽन्येपि मीमांसकतापसादयोऽन्यूह्याइति। तथा ते तीर्थिकानानाशीलं येषां ते तथा शीलं व्रतविशेषः सच निन्नस्तेषामनुजवसिद्धएव। तथा नाना दृष्टिर्दर्शनं येषांते तथा नानारुचिरेषां ते नानारुचयस्तथा नानारूपमध्यवसानमंतःकरणप्रवृत्तिर्येषां ते तथा इदमुक्तं जवति। अहिंसा परमं धर्मांगं। साच तेषां नानानिप्रायत्वादविकलत्वेन व्यवस्थिता। तस्याएव सूत्रकारः प्राधान्यं दर्शयितुमाह। ते सर्वेपि प्रावाडुकायथास्वपक्षमाश्रिताएकत्र प्रदेशे संयुतामंमलिबंधमाधाय तिष्ठंति ॥७०॥

पुरिसेयं सागणियाणं इंगालाणं पाइं बहुपडिपुन्नं गहाय अउमएणं संमासएणं गहाय ते सव्वे पावाउए आइगरा धम्माणं णाणापन्ना जाव णाणाअवसाणसंजुत्ते एवं वयासीहंनो पावाउया आइगरा धम्माणं णाणापन्ना जाव णाणाअवसाणसंजुत्ता इमं ताव तुम्ह सागणिया णं इंगालाणं पाइं बहुपडिपुन्नं गहाय मुहुत्तयं पाणिणा धरेह णोबहु संमासगं संसारियं कुज्जा णो बहुअग्गिथंनणियं कुज्जा णोबहु साह म्मियवेयावडियं कुज्जा णोबहुपरधम्मियवेयावडियं कुज्जा उज्जयाणिया गपडिवन्ना अमायं कुव्वमाणा पाणिं पसारेह इति वुच्चा से पुरिसे तेसिं पावाडुयाणं तं सागणियाणं इंगालाणं पाइं बहुपडिपुन्नं अउमएणं संमासएणं गहाय पाणिंसु णिसिरिंति तएणं तेपावाडुया आइगरा ध म्माणं णाणापन्ना जाव णाणाअवसाणसंजुत्ता पाणिंपडिसाहरंति तए णं से पुरिसे ते सव्वे पावाउए आदिगरे धम्माणं जाव णाणाअवसाणसं जुत्ता एवं वयासी हंनो पावाडुया आइगरा धम्माणं णाणापन्ना जाव णाणाअवसाणसंजुत्ता कम्हाणं तुप्ने पाणिं पडिसाहरह पाणिं नोमहि ज्जा दड्डे किं नविस्सइ डुक्कंति मन्नमाणा पडिसाहरह एसतुला एस प्पमाणे एस समोसरणे पत्तेयंतुला पत्तेयं पमाणे पत्तेयं समोसरणे तब्बणं जेते समणा माहणा एवमातिक्खंति जाव परुवेंति सव्वे पाणाजाव सत्ता हंतव्वा अज्जावेयव्वा परिघेतव्वा परितावेयव्वा किलामेतव्वा उद्दवेतव्वा तेआगंतुछेयाए तेआगंतुनेयाए जाव ते आगंतु जाइजरामरणजोणि जम्मणसंसारपुणन्नवगप्नवासनवपवंच कलंकलीनागिणो नविस्संति ॥

अर्थ–तेवारें कोई एक (पुरिसेयं के०) पुरुष जैन मार्गनो जाण ते तेमने अहिंसा दिकने विषे पाडवाने अर्थे (सागणियाणंइंगालाणं के०) अग्नियें बलता अंगारा तेणे करी एक लोढानुं (पाइंके०) पात्र एटले नाजन नरीने (बहुपडिपुन्नं के०) घणो प्र तिपूर्ण नरीने (अउमएणं के०) लोहना (संमासएणंगहाय के०) संमासी सहित ग्र हण करीने (तेसव्वेपावाउए के०) ते सर्व प्रावाडुक एटले परदर्शनी (आइगराधम्माणं के०) पोतपोताना धर्मनी आदिना करनार, (णाणापन्नाजावणाणाअवसाणंसंजुत्तेके०)

न्हाना प्रकारनी प्रज्ञावाला, यावत् नाना प्रकारना जे अध्यवसाय तेणे करी संयुक्त ए वा परदर्शनी ते आगल आवीने, (एवंवयासी के०) एवुं कहेछे के (हंनोपावाउया के०) अहो प्रावाडुको! (आइगराधम्माणं के०) तमे धर्मनी आदिना करनारछो; (णाणाप न्नाजावणाणाअ्झवसाणसंजुत्ता के०) तमे न्हाना प्रकारनी बुद्धिवाला, तथा न्हाना प्रकारना जे अध्यवसाय तेणें करी संयुक्तछो ते माटे, (इमंतावतुम्हेसागणियाणंइंगालाणंके०) ए तुमे अग्नियें बलता अंगारा तेणे करी सहित एवोआ एक लोहनुं (पाइंके०) भाजन (बहुपडिपुन्नं के०) घणुं प्रतिपूर्ण तेने (गहायमुहुत्तयं के०) ग्रहण करीने, एक मुहूर्त मात्र (पाणिणाधरेह के०) हाथ मांहे धरी राखो, (णोबहुसंमासगंसंसारियंकुज्जा के०) घणी संमासानो सहाय मकरो. (णोबहुअग्गिथंभणियंकुज्जाके०) घणो अग्निने स्तंभनी एटले स्थंभि राखे तेवी विद्यानुं सहाय मकरो (णोबहुसाहम्मियवेयावडियंकुज्जाके०) घणो मांहो मांहे साधर्मिकनुं वैयावच्च नो करवो, एटले अग्नि दीधानो उपशमाववुं मकरो. (णोबहुपरध म्मियंवेयावडियंकुज्जा के०) घणो परधर्मिकनो माहो मांहे वैयावच्चनो करवो एटले अग्नि दीधानो उपशमाववुं मकरो. मात्र (उज्जुयाके०) सरल थका (णियागपडिवन्नाके०) मोक्ष मार्गे प्रतिपन्न थका, (अमायंकुव्वमाणापाणिपसारेह के०) माया रहित पणु करता थका हाथ पसारो. (इतिवच्चाके०) एम कहीने, (सेपुरिसेके०) ते पुरुष (तंसागणियाणंइंगा लाणंपाइंबहुपडिपुन्नं के०) ते अग्नि बलता अंगरानुं भाजन घणु प्रतिपूर्ण भरीने (अ उमएणंसंमासएणंगहाय के०) लोहना संमासा सहित ग्रहीने (तेसिंपावाउयाणंके०) ते प्रावाडुकना (पाणिंसु के०) हाथनी उपरें (णिसिरिंति के०) मूके. (तएणंके०) तेवारें (तेपावाडुयाआइगराधम्माणं के०) ते प्रावाडुक धर्मनी आदिना करनार (णा णापन्नाजावणाणाअ्झवसाणसंजुत्ता के०) नाना प्रकारनी प्रज्ञा वाला यावत् नाना प्र कारना अध्यवसाय तेणे करी सहित एवा छता ते प्रावाडुकने हाथमां अग्नि आपे छते (पाणिंपडिसाहरंति के०) पोताना हाथ पाछा खेंचे एम पाछा हाथ करता देखीने (तएणं के०) तेवारें (सेपुरिसे के०) ते पुरुष ते सर्वे प्रावाडुक धर्मना अदिना करना र नाना प्रकारनी प्रज्ञावाला यावत् नाना प्रकारना अध्यवसाय तेणे करी सहित ते प्रत्यें (एवंवयासी के०) एम कहेके (हंनोपावाडुया के०) हे प्रावाडुको! पोताना छंदे ध र्मनी आदिना करनाराउ! नाना प्रकारनी प्रज्ञा वाला यावत् नाना प्रकारना अध्यवसाय तेणे करी सहित (कम्हाणंतुब्भेपाणिंपडिसाहरह के०) शाकारणे तमे हाथ पाछा खें चोछो. तेवारें ते बोल्या (पाणिंनोडहिज्जाके०) अमारा हाथ नथी बलताशुं? अमारा हाथ बलेछे दाजेछे ते कारण माटे हाथ पाछा खेची लीधाछे तेवारे ते पुरुष फरी बोल्यो के (दड्ढेकिंभविस्सइ के०) तमारो हाथ दाझवाथी शुं थवानुंछे एवुं सांजली फरी ते

प्रावादुक पाखंभी दर्शनीउ बोल्या के, अमने दुःख उपजेछे, तेवारें फरी ते पुरुष बोल्यो के, (दुक्खंतिमन्नमाणा के०) जो तमे दुःख जाणता अग्निनी दाऊ थकी बीहिता थका हाथ ने (पडिसाहरहके०) पाछा करोछो ? तो जेम तमे दुःख थकी बीक राखोछो, तेम सर्व जीवने (एसतुल्लाके०) ए तुल्य एटले बराबर छे; (एसप्पमाणेके०) एप्रमाणे जाणवुं. (एससमोसरणे के०) ए समोसरण) पत्तेयंतुल्ला के०) प्रत्येक प्रत्येकने सरखुं, अने (पत्तेयंप्पमाणे के०) प्रत्येक प्रत्येकने प्रमाण, एवुं (पत्तेयंसमोसरणेके०) प्रत्येक प्रत्येकने समोसरण जाणवुं. (तब्बणंजेतेसमणामाहणाएवमातिक्खंति के०) त्यां जे श्रमण ब्राह्मण एम कहेछे (जावपरूवेंतिके०) यावत् एम प्ररूपे छे के, (सव्वेपाणाजावसत्ताहंतवा के०) सर्वे प्राणी, यावत् सर्व सत्वने हणवा, (अज्ञावेयव्वाके०) दंम काशादिकें करी ताडवा, (परिघेतव्वा के०) बलात्कारें करी दासनी पेठें परिग्रहवा. (परितावेयव्वा के०) शारीरिक मानसीक पीडा उपजाववी, (किलामेतव्वा के०) किलामण उपजाववी. (उद्दवेतव्वा के०) उपद्रववा, तथा जीव, काया थकी रहित करवा. एवां वचनना बोलनारा, (ते आगंतुछेयाए के०) ते आगमिक कालें वारंवार पोताना शरीरनुं छेदन पामशे. (तेआगंतुभेयाए के०) ते आगमिक कालें भालादिकें करी पोताना शरीरनुं भेदन पामशे, (जावतेआगंतुं के०) यावत् ते जीव आगमिक कालें (जाइजरामरण जोणिजम्मणं के०) जाति, जरा, मरण, तथा नवी नवी योनी मांहे उपजवुं, तथा जन्मना दुःख (संसारके०) एरीतें संसार मांहे परिभ्रमण करतां (पुणब्भव के०) वली वली नव नवा भवनुं करवुं, (गब्भवास के०) वली वली गर्भवास मांहे वसवुं, एरीतें (भवपवंच के०) संसारनो प्रपंच एटले संसारनो विस्तार, (कलंकलि के०) कलकलाट एटले दुःखें करी व्याकुल पणुं, तेना (भागिणोभविस्संति के०) विभागी थशे. ॥ ८१ ॥

॥ दीपिका–(पुरिसेयत्ति) एकः कश्चित्पुरुषः साग्निकानां ज्वलतामंगाराणां प्रतिपूर्णां (पाइं) पात्रीं अयोमयेन लोहमयेन संदंशकेन गृहीत्वा तेषां ढौकितवान् उवाच । भोः प्रावादुकाः ! इदमंगारभृतं भाजनं एकैकं मुहूर्तं प्रत्येकं बिभृत यूयं? । नचेदं संदंशकं सांसारिकं नापि चाग्निस्तंभनं विदध्युः । नापिच साधर्मिकानामग्निदाहोपशमादिना उपकारं कुर्युरिति । ऋजवोमायामकुर्वाणाः पाणिं प्रसारयत तेपि तथैव कुर्युः ततोसौ नरस्तद्भाजनं तत्पाणौ समर्पयति । तेपि च दाहभयाध्दस्तं संकोचयंति । ततोसौ पुरुषस्तान् प्राह किमिति पाणिं संहरत यूयं? । ते प्राहुर्दाहभयात् । नरः प्राह । दग्धेन हस्तेन किंभावि? । दुःखमिति चेदेवं यूयं दाहोत्पन्नदुःखभीरवः सुखलिप्सवः । एवं सति सर्वेपि जंतवः संसारवर्तिनएवंविधाएवेति आत्मतुलया आत्मतुल्यत्वेन यथा मम दुःखं

न संमतं तथा सर्वजीवानामित्येतत्प्रमाणं । एषा युक्तिः तदेतत्समवसरणं एषधर्मे विचारः । आत्मवत्सर्वभूतानि यः पश्यति सपश्यतीति ' प्रत्येकं तुलासाम्यमित्यादि (तन्नणंति) तत्र एवं सति ये श्रमणब्राह्मणादयएवमाख्यांति । सर्वे प्राणाहंतव्या दंडादिभिः परितापयितव्याधर्मार्थैमरघट्टादिवहनादिभिः परिग्राह्याः श्राद्धादौ मत्स्याइव अपद्रावयितव्यायागादौ मेषाइव । एवं ये भाषंते ते आगामिनि काले स्वशरीरस्य छेदाय भेदायच भाषंते । तथाऽगामिनि काले जातिजरामरणानि बहूनि प्राप्नुवंति योन्यां जन्म योनिजन्म तद्बहुशोगर्भजावस्थायां लभंते संसारप्रपंचांतर्गतास्तेजोवायुषु उच्चैर्गोत्रो ह लनेन कलंकलीभावभाजोदुःखव्याकुलाः स्युः ॥ ८१ ॥

॥ टीका–तेषां चैवं व्यवस्थितानामेकः कश्चित्पुरुषस्तेषां संविदर्थं ज्वलतामंगाराणां प्रतिपूर्णां पात्रीमयोमयं भाजनमयोमयेनैव संदंशकेन गृहीत्वा तेषां ढौकितवानुवाच तान् । यथा भो प्रावादुकाः! सर्वोक्तविशेषणविशिष्टाइदमंगारभृतं भाजनमेकैकं मुहूर्तं प्रत्येकं सांसारिकाणामिवाऽग्निस्तंभनं विधत्ते नापिच साधर्मिकाऽन्यधार्मिकाणामग्निदाहोपशमादिनोपकारं कुरुतइति ऋजवोमायामकुर्वाणाः पाणिं प्रसारयत ? तेपिच तथैव कुर्युस्ततोऽसौ पुरुषः तद्भाजनं पाणौ समर्पयति तेपिच दाहशंकया हस्तं संकोचयेयुरिति । ततोसौ तानुवाच । किमिति पाणिं प्रतिसंहरत? यूयं एवमभिहितास्ते ऊचुर्दाहभयादिति । एतडुक्तं भवति । अवश्यमग्निदाहभयान्न कश्चिदग्न्यभिमुखं पाणिं ददातीत्येतत्परोयं दृष्टांतः । पाणिना दग्धेनापि किंभवतां भविष्यतीति दुःखमिति चेद्यद्येवं भवंतोदाहापादित दुःखभीरवः सुखलिप्सवस्तदेवंसति सर्वेपि जंतवः संसारोदरविवरवर्तिनएवंभूताएवेत्येव मात्मतुलयाऽत्मौपम्येन यथा मम नाभिमतं दुःखमित्येवं सर्वजंतूनामित्यवगम्याहिंसैव प्राधान्येनाश्रयणीया तदेतत्प्रमाणं एषा युक्तिः । आत्मवत्सर्वभूतानि यःपश्यति सपश्यति । तदेव समवसरणं सएषधर्मविचारोयत्राहिंसा संपूर्णा ॥ तत्रैव परमार्थतोधर्म इत्येवं व्यवस्थिते तत्र ये केचनाविदितपरमार्थाः श्रमणब्राह्मणादयएवं वक्ष्यमाणमाचक्षते परेषामात्मदार्ढ्योत्पादनायैवं भाषंते तथैवमेवं धर्मं प्रज्ञापयंति व्यवस्थापयंति तथान्येन प्राण्युपतापकारिणा प्रकारेण परेषां धर्मं प्ररूपयंति व्याचक्षते । तद्यथा । सर्वे प्राणाइत्यादि यावद्धंतव्यादंडादिभिः परितापयितव्याधर्मार्थैमरघट्टादिवहनादिभिः परिग्राह्याविशिष्टकाले श्राद्धादौ रोहितमत्स्याइव तथाऽपद्रावयितव्यादेवतायागादिनिमित्तं बस्तादयइवेत्येवं ये श्रमणादयः प्राणिनामुपतापकारिणीं भाषां भाषंते आगामिनि काले ऽनेकशोबहुशः स्वशरीरछेदायच भाषंते तथा ते सावद्यभाषिणोभविष्यंति काले जातिजरामरणानि बहूनि प्राप्नुवंति । योन्यां जन्म योनिजन्म तदनेकशोबहुशोगर्भेष्व

त्क्रांतजावस्थायां प्राप्नुवंति. तथा संसारप्रपंचांतर्गतास्तेजोवायुपूच्चैर्गोत्रो ध्वजनेन कलं कलीनावनाजोनवंति बहुशोन्नविष्यंति च ॥ ८१ ॥

ते बहुणं दंमणाणं बहूणं मुंमणाणं तज्जणाणं तालणाणं अडुबंधणाणं जाव घोलणाणं माइमरणाणं पितामरणाणं नाइमरणाणं नगिणीमरणाणं नज्जापुत्तधूत्तसुण्हामरणाणं दारिद्दाणं दोहग्गाणं अप्पियसंवासाणं पियविप्पन्नगाणं बहुणं डुक्कदोमणस्साणं आनागिणो नविस्संति अणादियंचणं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारं नुज्जोनुज्जो अणुपरियट्टिस्संति ते णोसिज्झिस्संति णोबुज्झिस्संति जाव णोसवडुक्काणं अंतं करिस्संति एस तुल्ला एस पमाणे एस समोसरणे पत्तेयं तुल्ला पत्तेयं पमाणे पत्तेयं समोसरणे ॥ ८२ ॥

अर्थ–(तेबहूणंदंमणाणं के०) ते जीव घणा दंमाशे, (बहूणंमुंमणाणं के०) ते जीव घणा शरीरादिकें मुंमाशे, (तज्जणाणं के०) अंगुलीयादिकनी तर्जना पामशे, (तालणाणं के०) दंमादिकें ताडना पामशे, (अडुबंधणाणं के०) बंधीखानानां बंधन पामशे. (जावघोलणाणं के०) यावत् आंबानी पेठें घोलाशे, (माइमरणाणं के०) ते जीव मातानां मरणनां डुःखने पामशे, (पितामरणाणं के०) पितानां मरण, (नाइमरणाणंके०) नाइनां मरण, (नगिणीमरणाणंके०) बेहेननां मरण, (नज्जापुत्तधूतसुण्हामरणाणंके०) नार्यानां मरण, पुत्रनां मरण, दीकरीनां मरण, पुत्रनीवहुनां मरण थशे, तेने देखीनें डुःख पामशे, डुःखी थशे, ते पुरुष, (दारिद्दाणंके०) दरिद्री थशे, (दोहग्गाणं के०) दौर्नागी थशे, (अप्पियसंवासाणंके०) अप्रियकारीयो साथें तेनो संवास थशे, (पियविप्पउगाणं के०) ते प्राणी प्रियकारी वस्तुनो विप्रयोग एटले वियोग पामशे, (बहूणंडुक्कदोमणस्साणं के०) घणां डुःख अने दौर्मनस्य पणानो (आनागिणोनविस्संति के०) विनागी थशे, तेपुरुष, (अणादियंचणं के०) आदि रहित, (अणवयग्गं के०) अंत रहित, (दीहमद्धं के०) दीर्घकालपर्यंत एटले घणाकालसुधी (चाउरंतसंसारकंतारं के०) चारगतिरूप अंत अवयवठे जेने विषे तेने चाउरंत कहियें एवी संसार रूप अटवी तेने विषे, (नुज्जोनुज्जो के०) वली वली (अणुपरियट्टिस्संति के०) परिभ्रमण परावर्त्तन करशे, (तेणोसिज्झिस्संति के०) ते पांचमी जीव सीजशे नही, एटले पोताना कार्यनी सिद्धि करशे नही, (णोबुज्झिस्संति के०) लोकालोकना स्वरूपने बुजशे नही, (जावणोसवडुक्काणंअंतंकरिस्संति के०) यावत् ते प्राणी सर्वडुःखनो अंत क

रशें नहीं. एवी रीतें स्वदर्शनी पण, जे पूर्वोक्त नाषा बोलशें ते सीजसे नही एम निश्चें जाणवुं. हवे जे उत्तम पुरुषने एवी तुल्यता राखवी जे सर्व जीव प्रत्येक तुल्य, प्रत्येक प्रमाण, एप्रमाणे प्रत्येक समोसरण पण ठे ॥ ८१ ॥

॥ दीपिका–ते नराबहूनां दंडनादीनां शरीरदुःखानां नाजनं नवंति तथा मातृमरणादीनां मानसदुःखानां तथाऽन्येषामप्रियसंयोगार्थनाशादिनिर्दुःखनागिनोनविष्यंति । किं बहुना । (अणादियंति) अनादिकं नविद्यतेऽवदग्रोंऽतोयस्य सोऽनवदग्रोऽनंतः तं दीर्घाध्वानं चतुर्गतिमार्गं चातुरंतं संसारकांतारमनुपरिवर्तिष्यंते अरहट्टघटीवद्भ्रमिष्यंति न बोधं प्राप्स्यंति न सेत्स्यंति सर्वदुःखानामंतं न करिष्यंति एपतुला एतत्साम्यं यत्सावद्याचारान सिध्यंति कुमतिनः स्वमतेपि औद्देशिकादिनोजिनस्तथैव एतत्प्रमाणं प्रत्यक्षादिकं प्रत्यक्षेण चौराद्याबाध्यमानादृश्यंते । एवमन्येपि एतत्समवसरणं आगमविचारः प्रत्येकं प्रतिजीवमिदं साम्यं डष्टव्यं ॥ ८१ ॥

॥ टीका–तथा ते बहूनां दंडादीनां शारीराणां डुःखानामात्मानं नाजनं कुर्वंति तथा ते निर्विवेकामातृवधादीनां मानुषाणां डुःखानां तथान्येषामप्रियसंयोगार्थनाशादिनिर्दुःखदौर्मनस्यानामानागिनोनविष्यंतीति । किंबहुनोक्तेनोपसंहारव्याजेन । गुरुतरमर्थसंबंधं दर्शयितुमाह । (अणादियं इत्यादि) नास्यादिरस्तीत्यनादिः संसारः। तदनेनेदमुक्तंनवति । यत्कैश्चिदनिहितं यथायमंमकादिक्रमेणोत्पादितइत्येतदपास्तं । नविद्यतेऽवदग्रं पर्यंतो यस्य सोयमनवदग्रोऽपर्यंतइत्यर्थः । तदनेनेदमुक्तं नवति । यडुक्तं कैश्चिद्यथा प्रलयकालेऽशेषसागरजलप्लावनं द्वादशादित्योद्गमेन चात्यंतदाहइत्यादिकं सर्वं मिथ्येति दीर्घमित्यनंतपुजलपरावर्तरूपं कालावस्थानं तथा चत्वारोंतागतयोयस्य सतथा चातुर्गतिकइत्यर्थः। तत्संसारएव कांतारः संसारकांतारोनिर्जलः सनयस्त्राणरहितोऽरण्यप्रदेशः कांतारइति । तदेवंनूतं नूयोनूयः पौनःपुन्येनानुपरिवर्तिष्यंते अरहट्टघटीन्यायेन तत्रैव भ्रमंतः स्थास्यंतीत्यतएवाह । यतस्ते प्राणिनां हंतारः कुतएतदिति चेत्सावद्योपदेशादेतदपि कथमिति चेदतऔद्देशिकादिपरिनोगानुज्ञयेत्येवमवगंतव्यमित्यतस्ते कुप्रावचनिकानैव सेत्स्यंति नैव ते लोकाग्रस्थानमाक्रमिष्यंति तथा न ते सर्वपदार्थान् केवलज्ञानावाप्त्या नोत्स्यंते । अनेन ज्ञानातिशयनावमाह । तथा न तेऽष्टप्रकारेण कर्मणा मोक्ष्यंते । अनेनाप्यसिद्धेरकैवल्यावाप्तेश्च कारणमाह । तथा परिनिर्वृतिः परिनिर्वाणमानंदसुखावाप्तिस्तांते नैव प्राप्स्यंते तेनापि सुखातिशयानावः प्रदर्शितोनवतीति । तथा नैते शारीरमानसानां डुःखानामात्यंतिकमंतं करिष्यंतीत्यनेनाप्यपायातिशयानावः प्रदर्शितोनवति । एषातु

ला तदेतडुपमानं यथा सावद्यानुष्ठानपरायणाः सावद्यनाषिणश्च कुप्रावचनिकान सिध्यंत्ये वं स्वयूथ्या अप्यौद्देशिकादिपरिनोगिनोन सिध्यंतीति। तदेतत्प्रमाणं प्रत्यक्षानुमानादिकं। तथाहि। प्रत्यक्षेणैव जीवपीडाकारि चौर्यादिर्बंधनान्न मुच्यते। एवमन्येपीत्यनुमानादि कमप्यायोज्यं। तथा तदेतत्समवसरणमागमविचाररूपमिति प्रत्येकंच प्रतिप्राणि प्रतिप्रा वाडुकमेतत्तुजादिकं इष्टव्यमिति ॥ ८२ ॥

तबणं जे ते समणा माहणा एवमाइक्खंति जाव परूवेंति सवे पाणा स वेभूया सवेजीवा सवेसत्ता णहंतवा णअज्ञावेयवा णपरिघेतवा णउद्दवेय वा तेणो आगंतुछेयाए तेणोआगंतुभेयाए जाव जाइजरामरणजोणि जम्मण संसारपुणप्नवगप्नवासन्नवएवं कलंकलीनागिणो नविस्संति तेणोबहूणं दंमणाणं जाव णोबहूणं मुंमणाणं जाव बहूणं डुक्कदोमण स्साणं णोन्नागिणो नविस्संति अणादियंचणं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंत संसारकंतारे भुज्जोभुज्जो णोअणुपरियट्टिस्संति तेसिं स्सिज्झंति जाव सवडुक्खाणं अंतं करिस्संति ॥ ८३ ॥

अर्थ—त्यांजे श्रमण ब्राह्मण, सर्व जीवने पोताना आत्मा समान लेखवीने एवो धर्म कहेशे, यावत् प्ररूपशे, के सर्व प्राणी, सर्वनूत, सर्व जीव, सर्व सत्वने हणवा नही, एकांतदया पालवी, यावत् सर्व सत्वने उपद्रववा नही, ते पुरुषो, आगमिक कालें पोताना शरीरनुं छेदन नहीं पामशे, ते आगमिक कालें नेदन नहीं पामशे, ते पुरुष यावत् जाति, जरा, मरण, वली वली योनीमांहे उपजवुं, जन्मनुं डुःख, संसारमांहे परिभ्रमण करवुं, वली वली गर्नवास मांहें वसवुं, संसारनो विस्तार प्रपंच, तथा कलकलाट तेनो विनागी नहीं थशे. ते पुरुष, घणो दंमाशे नहीं, यावत् डुःख दौर्मनस्य पणानो विनागी नहीं थशे, आदिरहित अंतरहित दीर्घ पंथछे, एटले दीर्घ काल पर्यंत चारगति रूप संसार, तद्रूप अटवीने विषे वली वली परिभ्रमण परावर्त्त नही करशे. ए रीतें दया धर्मना प्ररूपनार पुरुषो सीजशे कार्यसिद्धि करशे, यावत् सर्व डुःखनो अंत करशे. ॥ ८३ ॥

॥ दीपिका—अथैतद्विपरीतानाह। (तबणंति) तत्र ये ज्ञातव्याः श्रमणमाहनास्ते वमाख्यांतीत्यादि सर्वं पूर्वसूत्रविपरीतं वाच्यं ॥ ८३ ॥

॥ टीका—ये पुनर्विदिततत्वाआत्मौपम्येनात्मतुलया सर्वजीवेष्वहिंसां चक्षते। तद्यथा सर्वेपि जीवाडुःखद्विषः सुखलिप्सवस्ते न हंतव्याइत्यादि। तदेवं पूर्वो दंडनादिकं सप्रतिषेधं नणनीयं यावत्संसारकांतारमचिरेणैव ते व्यतिक्रमिष्यंतीति ॥ ८३

इच्चेतेहिं बारसहिं किरियाठाणेहिं वट्टमाणा जीवा णोसिज्झिसु णोबुज्झि
सु णोमुच्चिंसु णोपरिणिवाइंसु जाव णोसव्व दुक्खाणं अंतंकरेसुवा णो
करेंतिवा णोकरिस्संतिवा ॥ ७४ ॥

अर्थ–ए पूर्वोक्त बार क्रियाना स्थानकने विषे वर्त्तता एवाजे जीव, ते कोइ अतीत कालें सिधा नथी, बुज्या नथी, कर्म थकी मूकाणा नथी, निवृत्या नथी, यावत् सर्वदुःखनो अंत पण कोइयें अतीत कालें कर्यो नथी, वर्त्तमान कालें करता नथी, आगमिक कालें पण करशे नही. कारणके, ए बार क्रियाना स्थानक जे छे, ते अधर्मपक्षने भजताज छे. ॥ ७४ ॥

॥ दीपिका–अथोपसंहरति । (इच्चेतेहिंति) इत्येतेषु द्वादशसु क्रियास्थानेषु अधर्मे पक्षोऽवतार्यते । ततएतेषुवर्त्तमानाजीवान सिद्धान सिध्यंति न सेत्स्यंति न मुक्तान मुच्यंते मोक्ष्यंते न बुद्धान बुध्यंते न भोत्स्यंते न सर्वदुःखानामंतं चक्रुर्न कुर्वंति न करिष्यंति ॥७४॥

॥ टीका–भणितानि क्रियास्थानाति सांप्रतमुपसंजिघृक्षुरेतदेव पूर्वोक्तं समासेन विभणिषुराह (इच्चेतेहिंइत्यादि) इत्येतेषु द्वादशसु क्रियास्थानेष्वधर्मपक्षोऽनुपशमरूपः समवतार्यते न एतेषु वर्तमानाजीवाअतीते काले सिद्धान वर्तमाने सिध्यंति न भविष्यंति सेत्स्यंति तथा न बुबुधिरे न बुध्यंते नच भोत्स्यंते तथा न मुमुचुर्न मुंचंति नच मोक्ष्यंते तथा न निवृत्ता न निर्वर्त्यंते नचनिर्वास्यंति तथा न दुःखानामंतं ययुर्न पुनर्यांति नच यास्यंतीति॥७४

एयंसि चेव तेरसमे किरियाठाणे वट्टमाणा जीवा सिज्झिंसु बुज्झिंसु मुच्चिं
सु परिणिवाइंसु जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेसुवा करंति करिस्संतिवा
एवं से भिक्खु आयट्ठी आयहिते आयगुत्ते आयजोगे आयपरक्कमे
आयरक्खिए आयाणुकंपए आयनिप्फेडए आयाणमेवपडिसा हरेज्जा
सि त्तबेमि ॥७५॥ इति बीयसुयखंधस्सकिरियाठाणंनामबीयमज्झयणंसम्मत्तं॥

अर्थ–ए पूर्वें कह्युंजे निश्चें तेरमुं क्रिया स्थानक तेने विषे वर्त्तता एवा जे जीव, ते जीव अतीत कालें सिधा तत्वमार्गने बुज्या, आठ कर्म थकी मूकाणा. परिनिवृत्त शीतलीभूत थया, यावत् सर्व दुःखनो अतीत कालें अंत कीधो, वर्त्तमान कालें अंत करे छे, अने आगमिक कालें अंत करशे, एम ते साधु चारित्रिउ बार क्रिया स्थानकनो वर्जनार मोक्षार्थी, आत्मार्थी, आत्मानुं हित चिंतवनार, आत्मानो गोपवनार, मनादिक

योगने स्ववश करनार, ते आत्मयोगी कहेवाय. आत्माना सुखनें अर्थे पराक्रमनो करनार, आत्मानो रक्षक, आत्माने अनुकंपानो करनार, आत्मानो संसार थकी निस्तार करनार, आत्माने ए बार क्रियाना स्थानक थकी निवृत्तावे, तेने महा पुरुष जाणियें. त्तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो. ए श्री सूयगडांगसूत्रना बीजा श्रुतस्कंधने विषे क्रिया स्थानक नामे बीजा अध्ययननो संक्षेपार्थ बालावबोध समाप्त थयो. ॥ ७५ ॥

॥ दीपिका—तथा एतस्मिन् त्रयोदशे क्रियास्थाने धर्मपक्षावतारः । ततोत्र वर्तमाना जीवाः सिद्धाः सिध्यंति सेत्स्यंतीत्यादि । तदेवं सनिक्षुर्द्वादशक्रियास्थानवर्जकोऽधर्मपक्षत्यागी धर्मपक्षस्थस्त्रयोदशक्रियास्थानवर्ती आत्मनोर्थः आत्मार्थः सविद्यते यस्य स आत्मार्थी आत्महितः आत्मा गुप्तोयस्य सतथा आत्मयोगः कुशलमनःप्रवृत्तिरूपः सय स्यास्ति सआत्मयोगी आत्मपराक्रमः स्वयं संयमानुष्ठानप्रवृत्तः । आत्मा रक्षितोडुर्गतिपाताद्येन सआत्मरक्षितः आत्मानमनर्थपरिहारेणानुकंपते इत्यात्मानुकंपकः (आयनिप्फेडएत्ति) आत्मानं संयमेन संसारचारकान्निष्कासयतीति आत्मानं द्वादशक्रियास्थानेभ्यः प्रतिसंहरेत्समहापुरुषः । इतिसमाप्तौ । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ७५ ॥ इति तपागच्छाधिपतिश्रीहेमविमलसूरीश्वरशिष्यहर्षकुलपंडितप्रणीतायां श्रीसूत्रकृतांगदीपिकायां द्वितीय श्रुतस्कंधस्य क्रियास्थानाख्यं द्वितीयमध्ययनं समाप्तं ॥ ॥ ॥

॥ टीका—सांप्रतं त्रयोदशं क्रियास्थानं दर्शयितुमाह । (एवमित्यादि) एतस्मिंस्त्रयोदशे क्रियास्थाने वर्तमानाजीवाः सिद्धाः सिध्यंति सेत्स्यंतीति यावत्सर्वडुःखानामंतं करिष्यंतीति स्थितं । तदेवं सनिक्षुर्यः पौंडरीकाध्ययनेऽनिहितो द्वादशक्रियास्थानवर्जकः अधर्मपक्षानुपशमपरित्यागी धर्मपक्षे स्थितउपशांतआत्मनोवार्थः आत्मार्थः सविद्यते यस्य सतथा योह्यन्यमपायेन्योरक्षति स आत्माध्यात्मिवानित्युच्यते । हिताचाराश्चौरादयोनात्मवंतोऽयंत्वात्महितएेहिकामुष्मिकापायनीरुत्वात्तथात्मागुप्तोयस्य तथा । एतडुक्तं नवति । स्वयमेवासौ संयमानुष्ठाने पराक्रमते तथात्मयोगी आत्मनोयोगः कुशलमनःप्रवृत्तिरूपआत्मयोगः सयस्यास्ति । सदाधर्मध्यानावस्थितइत्यर्थः । तथात्मा पापेन्योडुर्गतिगमनादिन्योरक्षितोयेन सतथा डुर्गतिगमनहेतुनिबंधनस्य सावद्यानुष्ठानस्य निवृत्तत्वादितिनावः । तथात्मानमेवानर्थपरिहारद्वारेणानुकंपते शुनानुष्ठानेन सजतिगामिनं विधत्तइति । तथात्मानं सम्यग्दर्शनादिकेनानुष्ठानेन संसारचारकान्निःसारयतीति । तथात्मानमनर्थनूतेन्योद्वादशेन्यः क्रियास्थानेन्यः प्रतिसंहरेत् । यदि वोपदेशआत्मानं सर्वपापेन्यः प्रतिसंह्रियात् सर्वानर्थेन्योनिवर्तयेदित्येतस्मिन्महापुरुषे संनाव्यतइति । इतिः परि

इच्चेतेहिं बारसहिं किरियाठाणेहिं वट्टमाणा जीवा णोसिज्झिंसु णोबुज्झिंसु णोमुच्चिंसु णोपरिणिवाइंसु जाव णोसव्व दुक्खाणं अंतंकरेसुवा णो करेंतिवा णोकरिस्संतिवा ॥ ७४ ॥

अर्थ—ए पूर्वोक्त बार क्रियाना स्थानकने विषे वर्त्तता एवाजे जीव, ते कोइ अतीत कालें सिधा नथी, बुज्या नथी, कर्म थकी मूकाणा नथी, निवृत्या नथी, यावत् सर्वदुःखनो अंत पण कोइयें अतीत कालें कर्यो नथी, वर्त्तमान कालें करता नथी, आगमिक कालें पण करशे नही. कारणके, ए बार क्रियाना स्थानक जे छे, ते अधर्मपक्षने मळताज छे. ॥ ७४ ॥

॥ दीपिका—अथोपसंहरति । (इच्चेतेहिंति) इत्येतेषु द्वादशसु क्रियास्थानेषु अधर्मे पक्षोऽवतार्यते । ततएतेषुवर्त्तमानाजीवान सिद्धान सिध्यंति न सेत्स्यंति न मुक्तान मुच्यंते मोक्ष्यंते न बुद्धान बुध्यंते न भोत्स्यंते न सर्वदुःखानामंतं चक्रुर्न कुर्वंति न करिष्यंति ॥७४॥

॥ टीका—भणितानि क्रियास्थानानि सांप्रतमुपसंजिघृक्षुरेतदेव पूर्वोक्तं समासेन विभणिषुराह (इच्चेतेहिंइत्यादि) इत्येतेषु द्वादशसु क्रियास्थानेष्वधर्मपक्षोऽनुपशमरूपः समवतार्यते न एतेषु वर्तमानाजीवाअतीते काले सिद्धान वर्तमाने सिध्यंति न भविष्यंति सेत्स्यंति तथा न बुबुधिरे न बुध्यंते नच भोत्स्यंते तथा न मुमुचुर्न मुंचंति नच मोक्ष्यंते तथा न निवृत्ता न निर्वर्त्यंते नचनिर्वास्यंति तथा न दुःखानामंतं ययुर्न पुनर्यांति नच यास्यंतीति॥७४

एयंसि चेव तेरसमे किरियाठाणे वट्टमाणा जीवा सिज्झिंसु बुज्झिंसु मुच्चिंसु परिणिवाइंसु जाव सवदुक्खाणं अंतं करेसुवा करंति करिस्संतिवा एवं से भिक्खु आयट्ठी आयहिते आयगुत्ते आयजोगे आयपरक्कमे आयरक्खिए आयाणुकंपए आयनिप्फेडए आयाणमेवपडिसा हरेज्जासि त्तवेमि ॥७५॥ इति बीयसुयखंधस्सकिरियाठाणंनामबीयमज्झयणंसम्मत्तं॥

अर्थ—ए पूर्वें कह्युंजें निश्चें तेरमुं क्रिया स्थानक तेने विषे वर्त्तता एवा जे जीव, ते जीव अतीत कालें सिधा तत्वमार्गने बुज्या, आठ कर्म थकी मूकाणा. परिनिवृत्त शीतलीभूत थया, यावत् सर्व दुःखनो अतीत कालें अंत कीधो, वर्त्तमान कालें अंत करे छे, अने आगमिक कालें अंत करशे, एम ते साधु चारित्रिउ बार क्रिया स्थानकनो वर्जनार मोक्षार्थी, आत्मार्थी, आत्मानुं हित चिंतवनार, आत्मानो गोपवनार, मनादिक

योगने स्ववश करनार, ते आत्मयोगी कहेवाय. आत्माना सुखनें अर्थे पराक्रमनो करनार, आत्मानो रक्षक, आत्माने अनुकंपानो करनार, आत्मानो संसार थकी निस्तार करनार, आत्माने ए बार क्रियाना स्थानक थकी निवृत्तावे, तेने महा पुरुष जाणियें. त्तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो. ए श्री सूयगडांगसूत्रना बीजा श्रुतस्कंधने विषे क्रिया स्थानक नामे बीजा अध्ययननो संक्षेपार्थ बालावबोध समाप्त थयो. ॥ ७५ ॥

॥ दीपिका–तथा एतस्मिन् त्रयोदशे क्रियास्थाने धर्मपक्षावतारः । ततोत्र वर्तमाना जीवाः सिद्धाः सिध्यंति सेत्स्यंतीत्यादि । तदेवं सन्निकुर्वद्वादशक्रियास्थानवर्जकोऽधर्मपक्षत्यागी धर्मपक्षस्थस्त्रयोदशक्रियास्थानवर्ती आत्मनोर्थः आत्मार्थः सविद्यते यस्य स आत्मार्थी आत्महितः आत्मा गुप्तोयस्य सतथा आत्मयोगः कुशलमनःप्रवृत्तिरूपः सयस्यास्ति सआत्मयोगी आत्मपराक्रमः स्वयं संयमानुष्ठानप्रवृत्तः । आत्मा रक्षितोडुर्गतिपाताद्येन सआत्मरक्षितः आत्मानमनर्थपरिहारेणानुकंपते इत्यात्मानुकंपकः (आयनिप्फेडएत्ति) आत्मानं संयमेन संसारचारकान्निष्कासयतीति आत्मानं द्वादशक्रियास्थानेन्यः प्रतिसंहरेत्समहापुरुषः । इतिसमाप्तौ । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ७५ ॥ इति तपागछाधिपतिश्रीहेमविमलसूरीश्वरशिष्यहर्षकुलपंडितप्रणीतायां श्रीसूत्रकृतांगदीपिकायां द्वितीय श्रुतस्कंधस्य क्रियास्थानाख्यं द्वितीयमध्ययनं समाप्तं ॥ ॥ ॥

॥ टीका–सांप्रतं त्रयोदशं क्रियास्थानं दर्शयितुमाह । (एवमित्यादि) एतस्मिंस्त्रयोदशे क्रियास्थाने वर्तमानाजीवाः सिद्धाः सिध्यंति सेत्स्यंतीति यावत्सर्वडुःखानामंतं करिष्यंतीति स्थितं । तदेवं सन्निकुर्यः पौंडरीकाध्ययनेऽभिहितो द्वादशक्रियास्थानवर्जकः अधर्मपक्षानुपशमपरित्यागी धर्मपक्षे स्थितउपशांतआत्मनोवार्थः आत्मार्थः सविद्यते यस्य सतथा योह्यन्यमपायेन्योरक्षति स आत्माप्यात्मवानित्युच्यते । हिताचाराश्चचौरादयोनात्मवंतोऽर्थत्वात्महितएहिकामुष्मिकापायनीरुत्वात्तथात्मागुप्तोयस्य तथा । एतडुक्तं नवति । स्वयमेवासौ संयमानुष्ठाने पराक्रमते तथात्मयोगी आत्मनोयोगः कुशलमनःप्रवृत्तिरूपआत्मयोगः सयस्यास्ति । सदाधर्मध्यानावस्थितइत्यर्थः । तथात्मा पापेन्योडुर्गतिगमनादिन्योरक्षितोयेन सतथा डुर्गतिगमनहेतुनिबंधनस्य सावद्यानुष्ठानस्य निवृत्तत्वादितिनावः । तथात्मानमेवानर्थपरिहारद्वारेणानुकंपते शुनानुष्ठानेन सङ्गतिगामिनं विधत्तइति । तथात्मानं सम्यग्दर्शनादिकेनानुष्ठानेन संसारचारकान्निःसारयतीति । तथात्मानमनर्थनूतेन्योद्वादशेन्यः क्रियास्थानेन्यः प्रतिसंहरेत् । यदि वोपदेशआत्मानं सर्वपापेन्यः प्रतिसंह्रियात् सर्वानर्थेन्योनिवर्तयेदित्येतस्मिन्महापुरुषे संनाव्यतइति । इतिः परि

समाप्त्यर्थं । ब्रवीमीति पूर्ववत् । नयाः पूर्ववद्व्याख्येयाः ॥ समाप्तं क्रियास्थानाख्यं द्वितीयमध्ययनमिति ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ अथ द्वितीयश्रुतस्कंधे तृतीयाध्ययनप्रारंभः ॥

हवे बार क्रिया स्थानकने वर्जनार एवा चारित्रवान पुरुषें शुद्धाहार लेवो, ते कारण माटे हवे आहार परिज्ञा नामे त्रीजुं अध्ययन प्रारंभियें बैयें.

सुयंमे आउसं तेणं भगवया एव मक्खायं इह खलु आहारपरिन्नाणाम ज्झयणे तस्सणं अयमट्ठे इह खलु पाईणंवा सव्वतो सव्वावंतिचणं लो गंसि चत्तारि बीयकाया एव माहिज्जंति तंजहा अग्गबीया मूलबीया पोरबीया खंधबीया तेसिंचणं अहा बीएणं अहावगासेणं इहेगतिया सत्ता पुढवीजोणिया पुढविसंभवा पुढवीवुक्कमये तज्जोणिया तस्सं भवा तडवक्कमा कम्मोवगा कम्मणियाणेणं तत्थवुक्कमा णाणाविह जोणियासु पुढवीसु रुक्खत्ताए विउट्टंति तेजीवा तेसिं णाणाविहजो णियाणं पुढवीणं सिणेह माहारेंति ॥१॥ ते जीवा आहारेंति पुढवीसरीरं आउसरीरं तेउसरीरं वाउसरीरं वणस्सइसरीरं णाणाविहाणतसथा वराणं पाणाणं सरीरं अचित्तं कुवंति परिविद्धत्थं तं सरीरं पुव्वाहारियं तयाहारियं विपरिणयं सारूवियकडं संतं अवरेवियणं तेसिं पुढविजो णियाणं रुक्खाणं सरीरा णाणावन्ना णाणागंधा णाणारसा णाणाफा सा णाणासंठाणसंठिया णाणाविहसरीरपुग्गलविउव्वित्ता तेजीवा क म्मोववन्नगा भवंति तिमक्खायं ॥ २ ॥

अर्थ—(सुयंमेआउसंतेणं के०) श्रीसुधर्मस्वामी जंबू प्रत्यें कहेछे के, में एवुं सांभल्युं छे जे, आयुष्यमंत (भगवयाएवमक्खायं के०) भगवंत श्रीमहावीर देवें एम कह्युंछे (इहखलु के०) निश्चें आ जिनशासनने विषे (आहारपरिन्नाणामज्झयणे के०) आ हारपरिज्ञा एवे नामे अध्ययन कह्युं. (तस्सणंअयमट्ठे के०) तेनो ए अर्थ आगल क हेछे. (इहखलु के०) निश्चें आ जगत् मांहे (पाईणंवा के०) पूर्वादिक चारदिशिने विषे तथा विदिशिने विषे (सव्वतोसव्वावंतिचणंलोगंसि के०) सर्व थकी सर्व, एतावता सर्व लोकने विषे (चत्तारिबीयकाया के०) चार, बीज कायना प्रकार एटले उत्पत्तिना

भेद होय. (एवमाहिज्जंइ के०) ते आ प्रकारें तीर्थंकरें कह्या. (तंजहा के०) ते कहेछे. (अग्गबीया के०) जेने अग्रें बीज उपजे ते अग्र बीज कहेवाय ते तिल, ताल, सह कारादिक अथवा शाल्यादिक जाणवा, तथा जे अग्र तेने विषे उत्पत्तिना कारणने पामे तेपण, अग्र बीज कहेवाय, ते कोरंटकादिक जाणवा; एटले ए प्रथम भेद जाणवो. तथा (मूलबीयाके०) आर्द्रकादिक ए बीजो भेद जाणवो; (पोरबीयाके०) पर्व बीज ते सेलडी प्रमुख, ए त्रीजो भेद जाणवो. (स्कंधबीयाके०) स्कंधबीज ते सालरा नाग र्जुन प्रमुख, ए चोथो भेद जाणवो. (तेसिंचणंके०) ते चार प्रकारना वनस्पतिकाय (अ हाबीएणंके०) यथा जे जेनुं बीज उत्पत्ति कारण, ते यथा बीज एटले ते तेनुं बीज जाणवुं. जेम शालीना अंकुरनुं शाली बीज उत्पत्ति कारणछे, एम अन्यत्र स्थानकें पण जाणी लेवुं. (अहावगासेणं के०) तथा जे जेनो अवकाश एटले उत्पत्ति स्थानक पृथवी, पाणी, काल, आकाश, बीज, संयोग, एने यथावकाश कहियें. एम यथा बीजें तथा यथावकाशें करीने, (इहेगतियासत्ता के०) आ जगत्मांहे कोइ एक सत्व, तथाविध कर्मना उदय थकी, वनस्पतिने विषे उपजनार छतो उपजे, ते वनस्पतिने विषे उपजतां (पुढवीजोणि याके०) पृथवीयोनिक थाय. यद्यपि तेनुं वनस्पतिज बीज कारणछे परंतु, आधार विना उत्पत्तिनो अभावछे, ते कारण माटें पृथवीयोनिक कह्या. जेम शेवालादिक कर्दमना आ धारेंछे, पण पृथ्वी विना थाय नही. एम आहीं पण जाणी लेवुं. (पुढविसंभवाके०) पृथ वीने विषे वनस्पतिकायनो संभवछे (पुढवीवुक्कमाके०) तथा पृथवीने विषे विविध एटले नाना प्रकारें प्रबल पणे संक्रमणछे जेनुं ते पृथवीवुक्कमा कहियें एटले एम कह्युंजे पृथवीने विषे ते वनस्पतिकायनी उपर उपर वृद्धिछे (तज्जोणिया के०) ते पृथवीयोनिक होय. (तस्संभवाके०) ते पृथवीने विषे वनस्पतिकायनो संभवछे,(तडवक्कमाके०)ते पृथवीने विषे नाना प्रकारें प्रबल पणे संक्रमणछे,(कम्मोवगाके०)ते जीव तथाविध वनस्पतिकाय संभवि कर्में प्रेर्यमान छता त्यां वनस्पतिने विषे उपशमीप पृथवीने विषे जाय; ते कारणे एने कम्मो वगा कहियें, एटले ते जीव कर्मना वशंगत वनस्पतिकाय थकी आवीने वली तेज वनस्प तिकायने विषे उपजे,पण अन्यत्रथी आव्या अन्यत्र नउपजे. जेम कुसम पुरियें वाव्यां एवां बीजोना मधुरायें अंकुरो नमले, ज्यां जेहनुं बीज, त्यांज तेना अंकुरोनी उत्पत्ति जाणवी. (कम्मणियाणेणंके०) तथा ते जीव कर्मने कारणे आकर्षित (तछवुक्कमाके०) त्यां पृथ विने विषे तथा वनस्पतिने विषे, वुक्कमा एटले आव्यां छता (णाणाविहजोणितासुपुढ वीसु के०) नाना प्रकारयोनी पृथवीने विषे (रुरकत्ताए के०) रूंख पणे (विउट्टंतिके०) उपजे, (तेजीवातेसिंणाणाविहजोणियाणंपुढवीणं के०) ते जीव ते नाना प्रकार योनी पृथवीनो (सिणेहमाहारेंति के०) स्नेह आहारे तेहीज तेनो आहार. ते पृथवीना

शरीरने आहारतां पृथवीने पीडा उपजावे नहीं. ॥ १ ॥ पछी (तेजीवा के०) ते जीव, (आहारेंतिपुढवीसरीरं के०) पृथवीनु शरीर आहारे, एमज (आउसरीरं के०) अपकायनुं शरीर, (तेउसरीरं के०) तेज कायनुं शरीर, (वाउसरीरं के०) वायुकायनुं शरीर, (वणस्सइसरीरं के०) वनस्पतिकायनुं शरीर, (णाणाविहाणतसथावराणं पाणाणंसरीरं के०) तथा नाना प्रकारनां त्रस अने स्थावर प्राणीउनां शरीर आहारे, परंतु तेमने पीडा नउपजावे. तेनुं कारण कहेछे, जेम अंमजादिक जीव गर्नस्थ छतां माताना उदरनो आहार करे, परंतु माताने पीडा उपजावे नहीं, तेम अंहीं पण जाणी लेवुं. तथा उपन्या पछी वृद्धि प्राप्त अनेक वर्ण रसादिक गुण सहित थाय, तेवारें पण कांइ पीडा उपजावे एरीतें ते जीव पृथवीकाय प्रमुख जीवोनुं (सरीरंअचित्तंकुवंति के०) शरीर अचित्त करे. (परिविद्धत्थं के०) परिविध्वंस करे. (तंके०) ते वनस्पतिना जीव तेणे (सरीरंपुवाहारियं के०) पृथवी कायादिकनुं जे शरीर पूर्वें आहार्युं, ते अधुना हमणा वनस्पतिना जीव उत्पद्यमान उपजता, अथवा उपना (तयाहारियं के०) त्वचाने स्पर्शें करी आहारीने, (विपरिणयं के०) परिणमावीने (सारूवियकडंसंतं के०) पोतानी काया सरखां रूप करे, (अवरेवियणं के०) अपर एटले अन्य बीजां शरीर मूल, शाखा, प्रतिशाखा, पत्र, पुष्प, फलादिक, एवां रूप करे. तथा (तेसिं पुढवीजोणियाणं के०) ते पृथवीयोनिक (रुक्खाणं के०) वृक्ष, तेनां (सरीरा के०) शरीर, ते (णाणावन्नाणं के०) नाना प्रकारना वर्ण, (णाणागंधा के०) नाना प्रकारना गंध, (णाणारसा के०) नाना प्रकारना रस, (णाणाफासा के०) नाना प्रकारना स्पर्श, (णाणासंठाणसंठिता के०) नाना प्रकारना संस्थानें करी संस्थित, (णाणाविहसरीरपुग्गलविउव्विता के०) तथा नाना प्रकारना शरीरना पुल लें करी विकूर्व्यां थका होय, एरीतें (तेजीवा के०) तेजीव (कम्मोववन्नगाभवंति तिमरकायं के०) वनस्पतिने विषे तथाविध कर्मने उदये उपना होय. परंतु आंहीं काल, ईश्वरादिक कारण कोइ समजवो नही. एम नगवंत श्रीतीर्थंकर देवें कह्युं छे. एटले पृथवीयोनिक वृक्ष कह्या ॥ २ ॥

॥ दीपिका—अथाहारपरिज्ञाख्यं तृतीयमध्ययनमारभ्यते । तस्येदमादिसूत्रं । (सुयं मे इत्यादि) श्रुतं मयाऽऽयुष्मन्नगवतेदमाख्यातं आहारपरिज्ञानाख्यमध्ययनं । तस्य चा यमर्थः । प्राच्यादिदिक्षु सर्वतः (सवावंतित्ति) सर्वस्मिन् लोके चत्वारोबीजकायाबीजप्र कारानवंति । तद्यथा । अग्रे बीजं येषामुत्पद्यते तेऽग्रबीजास्तालसहकारादयः । अथवाऽ ग्र एवोत्पत्तौ कारणं येषां तेऽग्रबीजाः कोरंटादयः । मूलबीजाआर्द्रकादयः पर्वबीजा

इक्षुप्रमुखाः स्कंधबीजाः सल्लक्यादयः । नागार्जुनीयास्तु पठंति । वणस्सइकायाइयाणं पंचविहा बीजवक्कंति ॥ एवंमाहिज्जइ तं अग्गमूलपोर खंधबीयरुहा ॥ बद्दाविएगंतियासं मुछिमाबीयाजायंते । यथा दवदग्धभूमौ हरितानि विविधानि उत्पद्यंते (तेसिंचणंति) तेषां चतुर्विधानामपि वनस्पतिकायानां यद्यस्य बीजं तद्यथा बीजं तेन यथाबीजेन ।को र्थः ? । शाल्यंकुरस्य शालिबीजमुत्पत्तिकारण एवमन्यदपि ज्ञेयं । योयस्यावकाशोयद्यस्यो त्पत्तिस्थानं तद्यथावकाशं तेन इह जगति एके केचन जीवावनस्पतौ उत्पद्यमानाअपि पृथिवीयोनिकाः पृथिवीसंभवाः। कोर्थः ? । बीजाडुत्पद्यमानोवनस्पतिकायः पृथिव्याधारे समुत्पद्यते । यथा शैवलकर्दमादयोजलाधारे जायंते तथा वनस्पतयोभूमौ जायंते इत्य र्थः । तथा पृथिव्यां व्युत्क्रमोवृद्धिर्येषां ते तथा एवं ते तद्योनिकास्तत्संभवास्त द्युत्क्रमाः कर्मोपगाः कर्मप्रेर्यमाणाः कर्मनिदानेन तत्र पृथिव्यां वनस्पतौ वा व्युत्क्रांताआगताः सं तोनानाविधयोनिकासु पृथिवीषु षमुां कायानां उत्पत्तिस्थानभूतासु सचित्ताचित्तमिश्रा सु वृक्षतया विवर्तंते जायंते । तेच तत्रोत्पन्नास्तासां पृथिवीनां स्नेहं स्निग्धभावमाहारंति गृह्णंति ॥१॥ तेच तत्रोत्पन्नाआहारंति पृथिवीशरीरं । एवमप्कायतेजोवायुवनस्पतिशरीर मपि । नानाविधानां त्रसस्थावराणां प्राणिनां यच्छरीरं . तत्स्वकायेनाश्रित्याचित्तं कुर्वंति । यदिवा परिविध्वस्तं पृथिव्यादिशरीरं पूर्वाहारितमिति पूर्वमुत्पत्तिसमये पृथिव्यादिभिरेव आहारितमासीत् । तदधुना वनस्पतिजीवस्तत्रोत्पद्यमानउत्पन्नोवा त्वचा स्पर्शेनाहारय ति आहार्यंच स्वकायत्वेन विपरिणामितं स्वकायेन सह (सारूविति) स्वरूपतः नीतं तन्मयं स्यात् (अवरेवियत्ति) अपराण्यपि पृथिवीकानां वृक्षाणां शरीराणि नानाव र्णादीनि यथा स्कंधस्यान्योवर्णादिर्मूलस्यान्यएव एवं यावन्नानाविधशरीरपुजलविकुर्वितांः स्युः । तथाहि । नानारसवीर्यविपाकानानापुजलोपचयात्सुरूपसंस्थानादृढाल्पसंहनना श्च स्युरिति । ते जीवावनस्पतिकायाः कर्मोत्पन्नाएव न पुनः कालेश्वरादिना तत्रोत्पद्यंत इत्याख्यातमर्हदादिभिः ॥ २ ॥

॥ टीका—द्वितीयाध्ययनानंतरं तृतीयमारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंधः । कर्मक्षपणा र्थमुद्यतेन भिक्षुणा द्वादशक्रियास्थानरहितेनांत्यक्रियास्थानसेविना सदाहारगुप्तेन भवि तव्यं । धर्माधारभूतस्य शरीरस्याधारोभवत्याहारः । सच मुमुक्षुणोद्देशकादिरहितोग्राह्यः। तेनच प्रायः प्रतिदिनं कार्यमित्यनेन संबंधेनाहारपरिज्ञाध्ययनमायातं । अस्य चत्वार्यनु योग द्वाराण्युपक्रमादीनि भवंति । तत्रेदमध्ययनं पूर्वानुपूर्व्या तृतीयं पश्चानुपूर्व्या पंचम मानुपूर्व्यात्वनियतमित्यर्थाधिकारः । पुनरत्राहारः शुद्धाशुद्धभेदेन निरूप्यते । निक्षेपस्त्रि विधउघादिस्तत्रौघनिष्पन्ने निक्षेपेऽध्ययनं । नामनिष्पन्ने तु आहारपरिज्ञेति द्विपदंनाम।

तत्राहारपदनिक्षेपार्थमाह निर्युक्तिकारः ॥ "नामंठवणादविए, खेत्ते भावेय होंति बोधव्वो ॥ एसो खलु आहारे, निक्खेवो होइ पंचविहो" ॥ १ ॥ (नामंठवणेत्यादि) नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रभावरूपः पंचप्रकारोभवति निक्षेपआहारपदाश्रयइति । तत्र नामस्थापनेऽनादृत्य द्रव्याहारं प्रतिपादयितुमाह । "दव्वेसच्चित्तादी. खेत्ते नगरस्स जणवउ होइ ॥ भावाहारो तिविहो, उए लोमेयपक्खेवे" ॥ २ ॥ (दव्वइत्यादि) द्रव्याहारे चिंत्यमाने सचित्तादिराहारस्त्रिविधोभवति । तद्यथा । सचित्तोऽचित्तोमिश्रश्च । तत्रापि सचित्तः षड्विधः. पृथिवीकायादिकः । तत्र सचित्तस्य पृथिवीकायस्य लवणादिरूपापन्नस्याहारोद्रष्टव्यः । तथाप्कायादेरपीति । एवंमिश्रोऽचित्तश्चायोज्यः नवरमग्निकायमचित्तं प्रायशोमनुष्याआहारयंति ओदनादेस्तद्रूपत्वादिति । क्षेत्राहारस्तु यस्मिन्क्षेत्रे आहारः क्रियते उत्पद्यते व्याख्यायते । यदिवा नगरस्य योदेशोधान्यधनादिनोपभोग्यः सक्षेत्राहारः । तद्यथा । मथुरायाः समासन्नोदेशः परिभोग्योमथुराहारो माठरकाहारः खेडाहारइत्यादि । भावाहारस्त्वयं । क्षुधोदयाद्भक्षपर्यायोपपन्नं वस्तु यदाहारयति सभावाहारइति । तत्रापि प्रायशआहारस्य जिव्हेंद्रियविषयत्वात्तिक्तकटुककषायाम्ललवणमधुररसागृह्यंते । तथाचोक्तं । राईभत्ते भावउ तित्तेवाजावमधुरेत्यादि । अन्यदपि प्रसंगेन गृह्यते । तद्यथा खरविशदमभ्यवहार्यं भक्ष्यं । तत्रापि पुष्पाढ्यओदनः प्रशस्यते न शीतः । उदकंतु शीतमेव । तथाचोक्तं शैत्यमपां प्रधानोगुणः । एवं तावदभ्यवहार्यं द्रव्यमाश्रित्य भावाहारः प्रतिपादितः । सांप्रतमाहारकमाश्रित्य भावाहारं निर्युक्तिकृदाह । भावाहारस्त्रिविधस्त्रिप्रकारोभवति । आहारकस्य जंतोस्त्रिभिः प्रकारैराहारोपादानादिति । प्रकारानाह । (उहेत्ति) तैजसेन शरीरेण तत्सहचरितेनच कर्मणा कार्मणेनाभ्यां द्वाभ्यामप्याहारयति यावदपरमौदारिकं शरीरं न निष्पद्यते । तथाचोक्तं । तेएण कम्मएणं आहारेइ अणंतरं जीवो ॥ तेण परं मिस्सेणं, जाव शरीरस्स निप्पत्ती ॥ १ ॥ तथा । उआहाराजीवा, सव्वे आहारगाअपज्जत्ता ॥ लोमाहारस्तु शरीरपर्याप्त्युत्तरकालं बाह्यया त्वचा लोमभिराहारोलोमाहारस्तथा प्रक्षेपेण कवलादेराहारः प्रक्षेपाहारः सच वेदनीयोदयेन चतुर्भिः स्थानैराहारसद्भावाद्भवति । तथाचोक्तं । चउहिं ठाणेहिं आहारसण्णासमुप्पज्जइ तंजहा उमोठयाए छुहावेयणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं मई एतयठोवउगेणंति । सांप्रतमेतेषां त्रयाणामप्येकयैव गाथया व्याख्यानं कर्तुमाह । "सरीरेणोयाहारो, तयाय फासेण लोमआहारो ॥ पक्खेवाहारो पुण, कावलितो होइनायव्वो" ॥ ३ (सरीरेणेत्यादि) तैजसेन कार्मणेनच शरीरेणौदारिकादिशरीरानिष्पत्तेर्मिश्रेणच यआहारः ससर्वे.प्योजाहारइति केचिद्व्याचक्षते । औदारिकादिशरीरपर्याप्त्या पर्याप्तकोपींद्रियानापानभाषामनःपर्याप्तिभिरपर्याप्तकः शरीरेणाहारयन् उजाहारइति गृह्यते । तदुत्तरकालं त्वचा स्पर्शेंद्रियेण आहारः सलोमाहारइति । प्रक्षेपाहारस्तु कावलिकः कवलप्रक्षेपनिष्पा

दितइति ज्ञातव्योनवति। पुनरप्येषामेव स्वामिविशेषेणविशेषमाविर्नावयन्नाह।"उयाहारा जीवा, सव्वेअपजत्तगामुणेयव्वा ॥ पज्जत्तगायलोमे,परकेवेहोइंनायव्वा " ॥४॥ (उयाहारइ त्यादि) यः प्रागुक्तः शरीरेणौजसाहारस्तेनाहारेणाहारकाजीवाः सर्वेप्यपर्याप्तकाज्ञात व्याः । सर्वाजिः पर्याप्तिजिरपर्याप्तास्ते वेदितव्याः । तत्र प्रथमोत्पत्तौ जीवः पूर्वशरीरप रित्यागे विग्रहेणाविग्रहेण चोत्पत्तिदेशे तैजसेन कार्मणेन शरीरेण तप्तस्नेहपतितसंपानकव त्तत्प्रदेशस्थानात्पुजलानादत्ते तडुत्तरकालमपि यावदपर्याप्तकावस्था तावदोजआहारइति। पर्याप्तकास्त्विंडियादिजिः पर्याप्तिजिः पर्याप्ताः केषांचिन्मतेन शरीरपर्याप्तकावा गृह्यंते । तदेवं ते लोमाहाराजवंति । तत्र स्पर्शेंडियेणोष्मादिना तप्तच्छायया शीतवायुनोदकेन प्री यते प्राणी गर्जस्थोपि पर्याह्युत्तरकालं लोमाहारएवेति । प्रक्षेपाहारे तु जजनीया यदेव प्रक्षेपं कुर्वंति तदेव प्रक्षेपाहारानान्यदा लोमाहारता तु वाय्वादिस्पर्शात्सर्वदैवेति ! सच लोमाहारश्चक्षुष्मतामवाग्दृष्टिमतां न दृष्टिपथमवतरत्यतोऽसौ प्रतिसमयवर्ती प्रायशः । प्रक्षेपाहारस्तूपलज्यते प्रायः सच नियतकालीयः। तद्यथा । देवकुरूत्तरकुरुजवाअष्टमज काहाराः संख्येयवर्षायुषामनियतकालीयः प्रक्षेपाहारइति । सांप्रतं प्रक्षेपाहारं स्वामि विजागेन दर्शयितुमाह । "एगिंदियदेवाणं,नेरइयाणंच नत्थि परकेवो ॥ सेसाणं परकेवो, संसारत्थाणजीवाणं " ॥ ५ ॥ (एगिंदियइत्यादि) एकमेव स्पर्शेंडियं येषां जवंत्येकें डियाः पृथिवीकायादयस्तेषां देवनारकाणांच नास्ति प्रक्षेपस्तेहि पर्याह्युत्तरकालं स्पर्शेंडि येणैवाहारयंतीति कृत्वा लोमाहाराः। तत्र देवानां मनसा परिकल्पिताः शुजाःपुजलाः सर्वे णैव कायेन परिणमंति नारकाणां त्वशुजाइति । शेषास्त्वौदारिकशरीराद्वींडियादयस्तिर्यङ् मनुष्यास्तेषां प्रक्षेपाहारइति। तेषां संसारस्थितानां कायस्थितेरेवाजावात्प्रक्षेपमंतरेण का वलिकआहारोजिव्हेंडियसन्नावादिति । अन्येत्वाचार्याअन्यथा व्याचक्षते । तत्र यो जिव्हेंडियेण स्थूलः शरीरे प्रक्षिप्यते सप्रक्षेपाहारः । यस्तु घ्राणदर्शनश्रवणैरुपलज्यते धातुजावेन परिणमति सउजाहारः । यःपुनः स्पर्शेंडियेणैवोपलज्यते धातुजावेन प्रयाति स लोमाहारइति । सांप्रतं कालविशेषमधिकृत्याऽनाहाकानजिधित्सुराह । " एक्कंच दोव समए, तिन्निव समए मुहुत्तमर्द्धवा ॥ सादीयमनिहणंपुण, कालमणाहारगाजीवा ॥ ६ ॥ (एक्कंचेत्यादि) तत्र । विग्गहगइमावन्ना, केवलिणो समुहया अयोगीया ॥ सि द्धाय अणा हारा, सेसा आहारगाजीवा । अस्यालेशतोयमर्थः । उत्पत्तिकाले विग्रहग तौ वक्रगतिमापन्नाः केवलिनोलोकपूरणकाले समुद्घातावस्थिताअयोगिनः शैलेश्य वस्थाः सिद्धाश्चानाहारकाः शेषास्तु जीवाहारकाइत्यवगंतव्यं । तत्र जवाज्जवांतरं यदा समश्रेण्या याति । तदा नाहारकोन लज्यते । यदापि विश्रेण्यामेकेन वक्रेणोत्पद्यते त दापि प्रथमसमये पूर्वशरीरस्थेनाहारितं द्वितीयेत्ववक्रसमये समाश्रितशरीरस्थेनेति ।

वक्रद्वयेतु त्रिसमयोत्पत्तौ मध्यसमयेनाहारकइति इतरयोस्त्वाहारकइति । वक्रत्रये तु चतुःसमयोत्पत्तिके मध्यवर्तिनोः समययोरनाहारकश्चतुःसमयोत्पत्तिश्चैवं नवति । त्रस नाड्या बहिरुपरिष्टादधोधस्ताद्वा पर्युत्पद्यमानो दिशोविदिशि विदिशोवादिशि यदोत्पद्यतेत दा लन्यते । तत्रैकेन समयेन त्रसनाडीप्रवेशोद्वितीयेनोपर्यधोवा गमनं तृतीयेनच बहिर्निः सरणं चतुर्थेन तु विदिकूत्पत्तिदेशप्राप्तिरिति । पंचसमयास्तु त्रसनाड्यावहिरेव विदिशो विदिगुत्पत्तौ लन्यते । तत्रच मध्यवर्तिषु अनाहारकइत्यवगंतव्यं । आद्यंतसमययोस्त्वा हारकइति । केवलिसमुद्घातेपि कार्मणशरीरवर्तित्वात् तृतीयचतुःपंचसमयेष्वनाहार कोद्रष्टव्यः । शेषेषु तुत्वौदरिकत मिश्रवर्तित्वा तृतीयचतुः पंचम समयेष्वना हारको द्रष्टव्यः शेषेषुतु त्वौदारिकतन्मिश्रवर्तित्वादाहारकइति । (मुहुत्तमद्धंचत्ति) अंतर्मुहूर्तं गृह्यते । तच्च केवली स्वायुषःक्षये सर्वयोगनिरोधे सति ऱ्हस्वपंचाक्षरोच्चिरणमात्रकालं यावदनाहारकइत्येवमवगंतव्यं । सिद्धजीवास्तु शैलेश्यवस्थायाआदिसमयादारन्यानंत मपि कालमनाहारकाइति । सांप्रतमेतदेव स्वामिविशेषविशेषिततरमाह । " एकंच दोव समए, केवलिपरिवज्जिया अणाहारा ॥ पंचमि दोण्णि लोए, यपूरिए तिन्नि समयाउ ॥७॥ (एकंचेत्यादि) केवलपरिवर्जिताः संसारस्थाजीवाएकं द्वौवा अनाहारकानवंति । तेच द्विविग्रहत्रिविग्रहोत्पत्तौ त्रिचतुःसामयिकायां द्रष्टव्याः । चतुर्विग्रहपंचसमयो त्पत्तिस्तु स्वल्पसत्वाश्रितेति न साक्षादुपात्ता । तथा चान्यत्राप्यनिहितं । एकं द्वौवा नाहारकः । वाशब्दात् त्रीन् वा आनुपूर्व्या अन्युदग्रत्कृष्टतोविग्रहगतौ चतुरः समया नागमेऽनिहिताः । तेच पंचसमयोत्पत्तौ लन्यंते नान्यत्रेति । नवस्थकेवलिनस्तु समुद् घाते मंथे तत्करणोपसंहारावसरे तृतीयपंचसमयौ द्वौ लोकपूरणाच्चतुर्थसमयेन सहि तास्त्रयः समयानवंतीति । पुनरपि निर्युक्तिकारः सादिकमपर्यवसानं कालमनाहारकत्वं दर्शयितुमाह । " अंतोमुहुत्तमद्धं, सेलेसीए नवे अणाहारा ॥ सादीयमनिहणंपुण, सिद्धायणाहारगाहोंति " ॥ ८ ॥ (अंतोमुहुत्तमित्यादि) शैलेश्यवस्थायाआरन्य सर्वथानाहारकः सिद्धावस्थाप्राप्तावनंतमपि कालं यावदिति । पूर्वंतु कावलिकाख्यव्य तिरेकेण प्रतिसमयमनाहारकः कावलिकेनतु कादाचित्कइति । ननु केवलिनोघाति कर्मक्षयेनंतवीर्यत्वान्न नवत्येवकावलिकआहारकः । तथाहि । आहारादाने यानि वेद नीयादीनि षट्कारणान्यनिहितानि तेषां मध्ये एकमपि नविद्यते केवलिनि तत्कथमसा वाहारं बहुदोषदुष्टं गृण्हीयात् ? । तत्र न तावत्तस्यवेदनोत्पद्यते तद्वेदनीयस्य दग्धरज्जु स्थानिकत्वात्सत्यामपि न तस्य तत्कृता पीडा अनंतवीर्यत्वात् । वैयावृत्यकरणंतु नगव ति सुरासुरनराधिपतिसंवेन संनाव्यतएवेति । ईर्यापथः पुनः केवलज्ञानावरणपरिक्षया त्सम्यगवलोकयत्येवासौ । संयमस्तु तस्य यथाख्यातचारित्रिणोनिष्ठितार्थत्वादनंतवीर्य

त्वान्नाहारग्रहणाय कारणीनवति । प्राणवृत्तिस्तु तस्यानुपवर्तित्वात् आयुषोऽनंतवीर्यत्वा ञ्चान्यथा सिद्धेव धर्मचिंतावसरस्त्वपगतोनिष्ठितार्थत्वात् । तदेवं केवलिनः कावलिका काहारोबन्धपायत्वान्न कथंचिद्घटतइति स्थितं। अत्रोच्यते। तत्र तावद्यडुक्तं घातिकर्मक्षये केवलज्ञानोत्पत्तावनंतवीर्यत्वान्न केवलिनोजुक्तिरिति । तदागमानजिज्ञस्य तत्वविचाररहित स्य युक्तिहृदयमजानतोवचनं । तथाहि यदाहारनिमित्तं वेदनीयं कर्म तत्तस्य तथैवास्ते । किमिति? । सा शारीरी स्थितिः प्राक्तनी ननवति प्रमाणंच अस्ति केवलिनोजुक्तिः समग्र सामग्रीकत्वात्पूर्वजुक्तिवत् । सामग्रीचेयं प्रक्षेपाहारस्य तद्यथापर्याप्तत्वं वेदनीयोदयः आहारपक्तिनिमित्तं तैजसशरीरं दीर्घायुष्कत्वंचेति । तानिच समस्तान्यपि केवलिनि सं ति । यदपि दग्धरज्जुसंस्थानिकत्वमुच्यते वेदनीयस्य। तदप्यनागमिकमयुक्तिसंगतंच आग मेह्यत्यंतोदया सा तस्य केवलिन्यनिधीयते जुक्तिरपि । यदि घातिकर्मक्षयाज्ज्ञानादयस्त स्याजूवन् वेदनीयोद्भवायाः क्षुधः किमायातं येनासौ न नवति । नतयोश्छायातपयोरिव सहानवस्थानलक्षणानामपि नावानावयोरिव परस्परपरिहारलक्षणः कश्चिद्विरोधोस्ती ति। सातासातयोश्चांतर्मुहूर्तपरिवर्तमानतया यथा सातोदयएवमसातोदयोऽपीत्यनंतवीर्य त्वे सत्यपि शरीरबलापचयः क्षुद्वेदनीयोद्भवा च पीडा नवत्येव । नचाहारग्रहणे तस्य किं चित्क्षीयते केवलमाहोपुरुषिकामात्रमेवेति । यदप्युच्यते वेदनीयस्योदीरणायाअनावा त्प्रजूततरपुजलोदयानावाच्चात्यंतं वेदनीयपीडानावइति वाङ्मात्रं । तथाह्यविरतसम्यग्द्द ष्ट्यादिष्वेकादशसु स्थानेषु वेदनीयगुणश्रेणीसद्भावात्प्रजूतपुजलोदयसद्भावः किंतेषु प्राक्त नेन्योऽधिकपीडासद्भावइति । अपिच योजिने सातोदयस्तीव्रः किमसौ प्रचुरपुजलोदये नेति अतोयत्किंचिदेतदिति । तदेवं सातोदयवदसातोदयोपि. केवलिन्यवतारितइति तयोरं तर्मुहूर्तकालेन परिवर्तमानत्वात् । यद्यपि क्वचित्कैश्चिदंनिधीयते विपच्यमानतीर्थंकरनाम्नो देवस्य च्यवनकाले षण्मासकालं यावदत्यंतं सातोदयएवेत्यसावपि यदिस्यान्न ततोबाधायै केवलिनां जुक्तेरनिवारितत्वात् । यदप्युच्यते आहारविषयाकांक्षारूपा क्षुद्भवति अनिकां क्षावाऽहारपरिग्रहबुद्धिः साच मोहनीयविकारस्तस्य चापगतत्वात्केवलिनोन जुक्तिरिति । एतदप्यसमीचीनं । यतोमोहनीयविकारात्क्षुन्न नवति तद्विपाकस्य प्रतिपक्षनावनया प्र तिसंख्यानेन निवर्त्यमानत्वात् । तथाहि । कषायाः प्रतिकूलनावनया निवर्त्यंते । तथा चोक्तं । उपसमेण हणे कोहं माणं मद्दवयाजिणे॥मायं वज्जवनावेन लोनं संतुछिए जिणे। मिथ्यात्वसम्यक्त्वयोश्च परस्परनिवृत्तिर्नावना कृता प्रतीतैव । वेदोदयोपि विपरीतनावन या निवर्तते । तडुक्तं । काम जाना मिते मूलं, संकल्पात्किल जायसे ॥ ततस्तं नकरिष्या मि, ततोमे न नविष्यसि ॥ १ ॥ हास्यादिषट्कमपि चेतोविकारूपतया प्रतिसंख्यानेन निवर्तते क्षुद्वेदनीयंतु रोगशीतोष्मादिवज्जीवपुजलविपाकितया न प्रतीपवासनामात्रेण नि

वर्ततेऽतोन मोहविपाकस्वभावा क्षुदिति । तदेवं व्यवस्थिते यत्कैश्चिदाग्रहगृहीतैरभि धीयते यथा प्रवर्त्यंते कृतार्थं नायुर्ज्ञानादयोन हीयंते जगदुपकृतावनंतं वीर्यं किं गततृषो भुक्तिस्तदेतत् प्लवते यतश्छद्मस्थावस्थायामप्येतदस्तीति तत्रापि किमिति भुंक्ते तत्र सम स्तवीर्यांतरायक्षयाभावान्मुक्तिसद्भावइतिचेत्तदयुक्तं । यतः किं तत्रायुषोपवर्तनं स्यात् किंवा चतुर्णां ज्ञानानां काचिद्धानिःस्याद्येन न भुक्तिरिति । तस्माद्यथा दीर्घकालस्थितेरायुष्कं कारणमेवमाहारोपि । यथा सिद्धिगतेर्व्युपरतक्रियस्य ध्यानस्य चरमक्षणः कारणमेवं सम्य क्त्वादिकमपीति । अनंतवीर्यतापि तस्याहारग्रहणे सति न विरुध्यते । यथा तस्य देवछंदा दीनि विश्रामकारणानि गमनविषीदनानिच भवंत्येवमाहारक्रियापि विरोधाभावान्नह्यत्र बलवत्तरवीर्यवतोऽल्पीयसी क्षुदिति । एवंच स्थिते यत्किंचिदेतत् । अपि चैकादशपरीषहावे दनीयकृता जिने प्राडुःष्यंति । अपरेतु एकादशज्ञानावरणीयादिकृतास्तत्क्षयेऽपगता इती यमप्युपपत्तिः केवलिनि भुक्तिं साधयति । तथाहि । क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यादिरि ति स्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोशवधयाञ्चालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञानदर्शना नीत्येते द्वाविंशतिर्मुमुक्षुणा परिसोढव्याः परिषहास्तेषांच मध्ये ज्ञानावरणीयोद्भौ प्रज्ञा ज्ञानाख्यौ दर्शनीयमोहनीयसंभवोदर्शनीयपरिषहोंतरायोद्भोलाभपरिषहोस्ति । चारित्र हनीयसंभूतास्त्वमी नाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्यायाञ्चासत्कारपुरस्काराः । एते चैकादशापि जिने केवलिनि न संभवंति तत्कारणानामपगतत्वात् । नहिकारणाभावे क्वचित्कार्योपपत्तिः । शेपास्त्वेकादश जिने संभवंति तत्कारणस्य वेदनीयस्य विद्यमानत्वात् । तेचामी क्षुत्पि पासाशीतोष्णदंशकचर्याशय्यावधरोगतृणस्पर्शमलाख्याः । एतेच वेदनीयप्रभवास्तत्र केव लिनि विद्यंते । नच निदानानुच्छेदे निदानिनउच्छेदः संभाव्यते अतःकेवलिनि क्षुद्वेदनी यादिपीडा संभाव्यते । केवलमसावनंतवीर्यत्वान्न विव्हलीभवति । नचासौ निष्ठितार्थो निःप्रयोजनमेव पीडामधिसहते । नच शक्यते वक्तुमेवंभूतमेव तस्य भगवतः शारीरं यदुत क्षुत्पीडा न बाधते आहारमंतरेण वर्तते यथास्वभावेनैव प्रस्वेदादिरहितमेव प्रक्षेपाहार रहितं इत्येतच्चाप्रमाणकत्वादपकर्णनीयं । अपिच केवलोत्पत्तेः प्राग्भुक्तेरभ्युपगमात्केव लोत्पत्तावपि तदेवौदारिकं शरीरमाहाराद्युपसंस्कार्यमथान्यथाभावः कैश्चिदुच्यते असाव पि युक्तिरहितत्वादभ्युपगममात्रकएवेति । तदेवं देशोन पूर्वकोटिकालस्य केवलस्थितेः सं भवादौ दरिकशरीरस्थितेश्च यथायुष्कं कारणमेवं प्रक्षेपाहारोपि । तथाहि । तैजसशरीरेण मृडकृतस्यान्यवत्कृतस्य द्रव्यस्य स्वपर्यायस्था परिणामितस्योत्तरोतरपरिणामक्रमेणौदारिक शरीरिणामनेन प्रकारेण क्षुद्भवो भवति वेदनीयोदये सतीयं च सामग्री सर्वापि भगवति केवलिनि संभवति तत्किमर्थमसौ न भुंक्ते नच घातिचतुष्टयस्य सहकारिकारणभावोस्ति येन तदभावात्तदभावइत्युच्यते । तदेवं संसारस्थाजीवाविग्रहगतौ जघन्येनैकं समयं उत्कृ

ष्टतः समयत्रयं नवस्थकेवली च समुद्घातावस्थः समयत्रयमनाहारकः शैलेश्यवस्थायां त्वंतर्मुहूर्तं। सिद्धास्तु सादिकमपर्यंतं कालमनाहारकाइति स्थितं। सांप्रतं प्रथमाहारग्रहणं येन शरीरेण करोति तद्दर्शयति । जोएण कम्मएणं, आहारेइ अणंतरं जीवा॥ तेण परं मीसेणं, जीवसरीरस्स पज्जत्ती „ ॥ ए ॥ (जोएणेत्यादि) ज्योतिस्तेजस्तदेव तत्र वा नवं तैजसं कार्मणेन चाहारयति। तैजसकार्मणे हि शरीरे आसंसारनाविनी ताभ्यामेवोत्पत्तिदेशं गताजीवाः प्रथममाहारं कुर्वंति ततः परमौदारिकमिश्रेण वैक्रियमिश्रणेन वा यावच्छरीरं निष्पद्यते तावदाहारयंति । शरीरनिष्पत्तौ त्वौदारिकेण वैक्रियेण वाऽहारयंतीति स्थितं। सांप्रतं परिज्ञानिक्षेपार्थमाह।” णामं ठवणपरिन्ना, दव्वनावेय होइ नायव्वा॥ दव्वपरिन्ना तिविहा, नावपरिन्ना नवे डुविहा,, ॥१०॥ (णाममित्यादि) तत्र नामस्थापना ड्व्यनाववनेदात्परिज्ञा चतुर्धा । तत्रापि नामस्थापने क्षुसुत्वादनादृत्य ड्व्यपरिज्ञां प्रतिपादयन् गाथापरार्द्धमाह । ड्व्यपरिज्ञेति । ड्व्यस्य ड्व्येण वा परिज्ञा सा च परिच्छेद्यड्व्यप्रधान्यात्तस्यच सचित्ताचित्तमिश्रनेदेन त्रैविध्यात्रिविधेति । नावपरिज्ञापि ज्ञपरिज्ञाप्रत्याख्यानन्नेदेन द्विविधेति । शेषास्त्वागमनोआगमज्ञशरीरव्यतिरिक्तादिकोविचारः शस्त्रपरिज्ञावद्रष्टव्यः। गतानिक्षेपनिर्युक्तिरधुना सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चेदं । (सुयंमे आउसंतेणमित्यादि) सुधर्मस्वामी जंबूस्वामिनमुद्दिश्येदमाह । तद्यथा । श्रुतं मयाऽऽयुष्मता तु नगवतेदमाख्यातं । तद्यथा । आहारपरिज्ञेदमध्ययनं तस्य चायमर्थः। प्राच्यादिषु दिक्षु सर्वतइत्यूर्ध्वाधोविदिक्षु च (सव्वावंतिंत्ति) सर्वस्मिन्नपि लोके क्षेत्रे प्रज्ञापकनावदिगाधारनूतेऽस्मिन् चत्वारोबीजकायाबीजमेव कायोयेषां ते तथा । बीजं वक्ष्यमाणं । चत्वारोबीजप्रकाराः समुत्पत्तिनेदान्नवंति । तद्यथा । अग्रे बीजं येषामुत्पद्यते ते तलताली सहकारादयः शाल्यादयोवा । यदिवाऽग्राण्येवोत्पत्तौ कारणतां प्रतिपद्यंते येषां कोरंटादीनां ते अग्रबीजास्तथा मूलबीजाआर्द्रकादयः पर्वबीजास्त्विक्ष्वादयः स्कंधबीजाः सल्लक्यादयः। नागार्जुनीयास्तु पठंति । वणस्सइकाइयाण पंचविहा बीजवक्कंती॥ एवमाहिज्जइ तंजहा अग्गमूलपोरुस्कंधबीयरुहाछठाविएगेंदियासमुच्छिमाबीया जायंते। यथा दग्धवनस्थलीषु नानाविधानि हारितान्युद्भवंति पद्मिन्योवाऽभिनवतडागादाविति । तेषां च चतुर्विधानामपि वनस्पतिकायानां यद्यस्य बीजमुत्पत्तिकारणं तद्यथाबीजं तेन यथा बीजेनेति । इदमुक्तं नवति । शाल्यंकुरस्य शालिबीजमुत्पत्तिकारणं । एवमन्यदपि ड्रष्टव्यं । यथावकाशेति । योयस्यावकाशः यद्यस्योत्पत्तिस्थानमथवा नूम्यंबुकालाकाशबीजसंयोगाययथावकाशे गृह्यंते तेनेति । तदेवं यथाबीजं यथावकाशेन चेहास्मिन् जगत्येके केचन सत्वाये तथाविधकर्मोदया द्वनस्पतिषूत्पित्सवस्तेहि वनस्पतावुत्पद्यमानाअपि पृथिवीयोनिका नवंति यथा तेषां वनस्पतिबीजं कारणमेवमाधारमंतरेणोत्पत्तेरनावात्पृथिव्यपि

शैवालजंबालादेरुदकवदिति। तथा पृथिव्यां संभवः सदा भवनं येषां वनस्पतीनां तथा। इ दमुक्तं भवति न केवलं ते तद्योनिकायस्थितिकाश्चेति। तथा पृथिव्यामेव विविधमुत्प्राबल्येन क्रमः क्रमणं येषां ते पृथिव्युत्क्रमाः। इदमुक्तं भवति। पृथिव्यामेव तेषामूर्ध्वं क्रमणलक्षणावृ द्धिर्भवति। एवंच ते तद्योनिकास्तत्संभवास्त व्युत्क्रमाइत्येतदनूद्याप्यपरं विधातुकामश्चाह। (कम्मोवगाइत्यादि) तेहि तथाविधेन वनस्पतिकायसंभवेन कर्मणा प्रेर्यमाणास्तेष्वेव वन स्पतिरूपसामीप्येन तस्यामेव च पृथिव्यां गछंतीति कर्मोपगाभण्यंते। तेहि कर्मवशगावन स्पतिकायादागत्य तेष्वेव पुनरपि वनस्पतिपूत्पद्यंते न चान्यत्रोप्ताश्चन्यत्र भविष्यंतीति। उक्तंच। कुसुमपुरोप्ते बीजे, मथुरायां नांकुरः समुद्भवति॥ यत्रैव तस्य बीजं तत्रैवोत्प द्यते प्रसवः। तथा ते जीवाः कर्मनिदानेन कारणेन समाकृष्यमाणास्तत्र वनस्पतिका ये वा व्युत्क्रमाः समागताः संतोनानाविधयोनिकासु पृथिवीष्वित्यन्येषामपि षण्णां का यानांमुत्पत्तिस्थानभूतासु सचित्ताऽचित्तमिश्रासु वा श्वेतकृष्णादिवर्णतिक्तादिरससुरभ्यादि गंधमृदुकर्कशादिस्पर्शादिकैर्विकल्पैर्बहुप्रकारासु भूमिषु वृक्षतया विविधं वर्तंते तेच तत्रो त्पन्नास्तासां पृथिवीनां स्नेहं स्निग्धभावमाददते सएवच तेषामाहारइति। नच ते पृथि वीशरीरमाहारयंतः पृथिव्याः पीडामुत्पादयंति॥१॥ एवमप्कायतेजोवायुवनस्पतीनामा योज्यं। अत्रच पीडानुत्पादनेऽयं दृष्टांतः। तद्यथा। अंडोद्भवाद्याजीवामातुरूष्मणा वि वर्धमानागर्भस्थाएवोदरगतमाहारयंतोनातीव पीडामुत्पादयंत्येवमसावपि वनस्पतिका यिकः पृथिवीस्नेहमाहारयन्नातीव तस्याः पीडामुत्पादयति उत्पद्यमानः समुत्पन्नश्च वृद्धि मुपगतोऽसदृशवर्णरसाद्युपेतत्वात् बाधां विदध्यादपीति। एवमप्कायस्य भौमस्यांतरि क्षस्य वा शरीरमाहारयंति तथा तेजसोभस्मादिकं शरीरमाददति। एवं वाय्वादेरपीति द्रष्टव्यं। किंबहुनोक्तेन नानाविधानां त्रसस्थावराणां प्राणिनां यच्छरीरं तत्ते समुत्पद्यमा नाश्चचित्तमपि स्वकायेनावष्टभ्य प्रासुकीकुर्वंति। यदिवा परिविध्वस्तं पृथिवीकायादिश रीरं किंचित्परितापितं कुर्वंति ते वनस्पतिजीवाएतेषां पृथिवीकायादीनां तच्छरीरं पूर्वमा हारितमिति तैरेव पृथिवीकायादिभिरुत्पत्तिसमये आहारितमासीत् स्वकायत्वेन परिणा मितमासीत्। तदधुना वनस्पतिजीवस्तत्रोत्पद्यमानउत्पन्नोवा त्वचा स्पर्शेनाहारयत्याहा र्य च स्वकायत्वेन विपरिणामयति विपरिणामितं च तच्छरीरं स्वकायेन सह स्वरूपतां नी तं सत्तन्मयतां प्रतिपद्यते। अपराण्यपि मूलशाखाप्रतिशाखापत्रपुष्पफलादीनि तेषां पृ थिवीकायिकानां वृक्षाणां नानावर्णानि। तथाहि। स्कंधस्यान्यथाभूतोवर्णोमूलस्य चान्या दृशइति। एवं यावन्नानाविधशरीरेषु पुद्गलविकुर्वितास्ते भवंतीति। तथाहि। नानारस वीर्यविपाकानानाविधपुद्गलोपचयात्सुरूपकुरूपसंस्थानास्ते भवंतीति। तथा दृढाल्पसंहन नाः कृशस्थूलस्कंधाश्च भवंत्येवमादिकानानाविधस्वरूपाणि विकुर्वंतीति स्थितं। केषां

चिडाक्यादीनां वनस्पत्याद्याः स्थावरजीवाएव न भवंतीति अतस्तत्प्रतिषेधार्थमाह । (ते जीवाइत्यादि) ते वनस्पतिपूत्पन्नाजीवाउपयोगलक्षणत्वाज्जीवानां । तेषामप्याश्रयोत्स र्पणादिकया क्रिययोपयोगोलक्ष्यते । तथा विशिष्टाहारोपचयाऽपचयाभ्यां शरीरोपचयाप चयसद्भावादनेकजीवाः स्थावरास्तथा छिन्नप्ररोहणात्स्वापात्सर्वत्वगपहरणे मरणादित्येव मादयोहेतवोऽत्र द्रष्टव्याः। यदत्र कैश्चित्स्पष्टेपि वनस्पतीनां चैतन्ये सिद्धानैकांतिकत्वादिक मुक्तं स्वदर्शनानुरागात्तदपकर्णनीयं। नहि सम्यगार्हतमताभिज्ञोसिद्ध विरुद्धानैकांतिकोपन्या सेन व्यामोह्यते सर्वस्य कथंचिदभ्युपगतत्वात्प्रतिषिद्धत्वाच्चेति ते जीवास्तत्र वनस्पतिषुतथा विधेन कर्मणा उपपन्नगाः। तच्चेदं एकेंद्रियजातिस्थावरनामवनस्पतियोग्यायुष्कादिकमिति तत्कर्मोदयेन तत्रोत्पन्नाउच्यंते न पुनः कालेश्वरादिना तत्रोत्पाद्यंते इत्येवमाख्यातं तीर्थ करादिभिरिति । एवंतावत्पृथिवीयोनिकावृक्षाअभिहिताः ॥ २ ॥

अहावरं पुरस्कायं इहेगतिया सत्ता रुस्कजोणिया रुस्कसंभवा रुस्कवु क्कमा तज्जोणिया तस्संभवा तडवक्कमा कम्मोवगा कम्मनियाणेणं तब वुक्कमा पुढवीजोणिएहिं रुस्केहिं रुस्कत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं पुढवी जोणियाणं रुस्काणं सिणेहमाहारेंति तेजीवा आहारेंति पुढवीसरीरं आ उतेउवाउवणस्सइसरीरं णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सरीरं अचि त्तं कुव्वंति परिविद्धत्थं तं सरीरं पुव्वाहारियं तयाहारियं विप्परिणामियं सा रुविकडं संतं अवरेवि यणं तेसिं रुस्कजोणियाणं रुस्काणं सरीरा णाणाव न्ना णाणागंधा णाणारसा णाणाफासा णाणासंठाणसंठिया णाणाविह सरीरपुग्गलविउव्विया ते जीवा कम्मोववन्नगा भवंतीतिमस्कायं ॥ ३ ॥

अर्थ—हवे तद्योनिक वनस्पतिने विषे अन्य बीजा जीव उपजे, ए देखाडेछे, श्री सु धर्मस्वामी श्री जंबूस्वामि प्रत्यें कहेछे के, वली वनस्पतिनो (अहावरंपुरस्कायं के०) अ पर एटले बीजो प्रकार, पूर्वे श्री तीर्थंकर देवें कह्योछे, ते हवे कहेछे. (इहेगतिया के०) कोइ एक (सत्ता के०) जीव प्राणी, (रुस्कजोणिया के०) वृक्षज जेनी योनि एटले उत्पत्तिस्थानकछे, ते पृथ्वीयोनिक वृक्षने विषे वृक्ष पणेज उपजे. (रुस्कसंभवा के०) ते पृथ्वीयोनिक वृक्षने विषे वनस्पतिकायनो संभवछे. (रुस्कवुक्कमा के०) तथा वृ क्षने विषे नाना प्रकारें प्रबल पणे संक्रमण छे जेनो, एटले वृद्धिछे. (तज्जोणिया के०) तद्योनिकछे, (तस्संभवा के०) तत्संभवछे, (तडवक्कमा के०) तेना सरखोछे उ

पक्रमजेनो (कम्मोवगाके०) कर्मना वशं गत वनस्पतिकायथी आवी वली तेहीज वन स्पतिकायने विषे (कम्मनियाणेणं के०) कर्मना कारण थकी आकर्षिता (तत्थवुक्कमा के०) त्यां आव्या बता (पुढवीजोणिएहिंरुक्खेहिं के०) पृथ्वीयोनिक वृक्षनी पेठें (रु क्खत्ताएविउट्टंतिके०) वृक्ष पणे उपजे. ते जीव तेहीज पृथ्वीयोनिक वृक्षनो स्नेह आहा र आहारे, तेणे करी उपचय पामे. हवे ते जीवो शुं आहारे? तोके पृथ्वी, अप, तेज, वायु अने वनस्पतिना शरीर, तथा नाना प्रकारना, त्रस स्थावर जीवोनां शरीर, अचित्त करे ; परंतु तेने पीडा न उपजावे, परिविध्वंस करे. ते शरीरने पूर्वें आहारखुं ते, अथवा हम णा उपजतां आहारेबे, अथवा उपना पबी आहारेबे, त्वचाने स्पर्शें करी आहारीने प रिणमावीने, पोतानी काया सरखां रूप करे. इत्यादिक बीजुं सर्वे पूर्ववत् जाणवुं ॥ ३ ॥

॥ दीपिका–पूर्वं पृथिव्यां ये वृक्षाउत्पद्यंते ते उक्ताः। अत्र तु वृक्षेष्वेव ये वृक्षाजा यंते तान् वक्ति (अहावरंति) अथापरमेतदाख्यातं पुरार्हता। इहैके सत्वावृक्षएव योनिरु त्पत्तिस्थानमाश्रयोयेषां ते वृक्षयोनिकावृक्षाः । इह च पूर्वं पृथिवीयोनिकेषु वृक्षेषु कथि तं यत्तदेवात्र व्याख्येयं पूर्ववत् ॥ ३ ॥

॥ टीका–सांप्रतं तद्योनिकेष्वेव वनस्पतिषु अपरे समुत्पद्यंतइत्येतद्दर्शयितुमाह । (अहावरमित्यादि) सुधर्मस्वामी शिष्योद्देशेनेदमाह । अथापरमेतदाख्यातं पुरा तीर्थंक रेण । यदिवा तस्यैव वनस्पतेः पुनरपरं वक्ष्यमाणमाख्यातं । तद्यथेहास्मिन् जगत्येके केचन तथाविधकर्मोदयवर्तिनः सत्वाः प्राणिनोवृक्षाएव योनिरुत्पत्तिस्थानमाश्रयोयेषां ते वृक्षयोनिकाः । इह च यत्पृथिवीयोनिकेषु वृक्षेष्वभिहितं तदेतेष्वपि वृक्षयोनिकेषु व नस्पतिषु तदुपचयकर्तृ सर्वमायोज्यं यावदाख्यातमिति ॥ ३ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता रुक्खजोणिया रुक्खसंभवा रुक्ख वुक्कमा तज्जोणिया तस्संभवा तडवक्कमा कम्मोवगा कम्मणियाणेणं तत्थ वुक्कमा रुक्खजोणिएसु रुक्खत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं रुक्खजोणिया णं रुक्खाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढवीसरीरं आउते उवाउवणस्सइसरीरं तसथावराणं पाणाणं सरीरं अचित्तं कुवंति परि विद्धत्थं तं सरीरं पुवाहारियं तयाहारियं विपरिणामियं सारूविकडं संतं अवरेवि यणं तेसिं रुक्खजोणियाणं रुक्खाणं सरीरा णाणावन्ना जाव ते जीवा कम्मोववन्नगा भवंतीति मक्खायं ॥ ४ ॥

अर्थ–हवे वनस्पतिना अवयवोनो अधिकार कहेछे. (अहावरंपुरस्कायं के०) अथ हवे अपर स्थानक तीर्थंकरें कह्युंछे, ते कहेछे. आ जगत् मांहे कोइ एक जीव, वृक्ष ज जेनी योनि एटले उत्पत्तिस्थानकछे, वृक्षने विषेज जेनो संजवछे, एटले वृद्धिछे वृक्षने विपेज जेनुं नाना प्रकारें संक्रमणछे, ते योनिक ते संजवछे कर्मना वशंगत वनस्पतिकाय थकी आवी वली तेज वनस्पतिने विषे कर्मने कारणें आकर्षिता त्यां आव्या छता, वृक्षयोनिक वृक्षने विषे वृक्ष पणे उपजे. ते जीव तेहज वृक्षयोनिक वृक्षनो स्नेह आहारे,ते जीव आहारे पृथ्वी, अप, तेज, वायु, अने वनस्पति कायनां शरीर, त्रस अने स्थावर प्राणीनां शरीर अचित्त करे परिविध्वंस करे ते वनस्पतिना जीव पृथ्वी कायादिकनुं जे शरीर पूर्वे आहार्युं, तथा हमणां उपजतां अथवा उपनां पछी जे आहारेछे, ते त्वचाने स्पर्शें करी आहारीने परणमावीने पोतानी काया सरखां रूप करे, ते अवयवरूप रूप करे, ते कहेछे. एक मूल, बीजुं कंद, त्रीजी त्वचा, चोथी शाखा, पांचमां प्रवाल एटले नवांकुर, छहा पुष्प, सातमां पत्र, आठमां फल, नवमां बीज, दशमो स्कंधजूत, ते वृक्षनां ए दश स्थानकने विपे जीव उपजे छे. ते वृक्ष योनिक, ते वृक्षना शरीर नाना प्रकारना वर्ण वाला यावत् ते वनस्पतिना जीव कर्मना उदयें उपना होय. एरीतें जगवंत श्री तीर्थंकर देवें कह्या, परंतु काल ईश्वरादिक कारण कोइ नथी. ॥४॥

॥ दीपिका–अथापरमेतदाख्यातं । इदं वनस्पत्यवयवसूत्रं । यथा इहैके जीवावृक्षयोनिकाः स्युस्तदवयवाश्रिताश्चान्ये वनस्पतिरूपाएव जीवाः स्युः । तथाहि । योहि एकोवनस्पतिजीवः सर्ववृक्षावयवव्यापी स्यात् तस्य चापरे तदवयवेषु मूल १ कंद २ त्वक् ३ शाखा ४ प्रवाल ५ पुष्प ६ पत्र ७ फल ८ बीज ९ स्कंध, १० जूतेषु दशस्थानेषु जीवाः समुत्पद्यंते तेच तत्रोत्पद्यमानावृक्षयोनिकावृक्षोद्भवावृक्षव्युत्क्रमाश्चोत्पद्यंते इति शेषं पूर्ववत् । इह चत्वारि सूत्राणि यथापूर्वमुक्तानि । यथा वनस्पतयः पृथिव्याश्रिता जवंतीत्येकं १ तच्छरीरमप्कायादिशरीरं चाहारयंति २ वृक्षास्तदाहारितं शरीरमचित्तं विध्वस्तंच कृत्वात्मसात्कुर्वंति ३ अन्यान्यपि तेषां पृथिवीयोनिकानां वनस्पतीनां शरीराणि मूलकंदादीनि नानापर्णानि जवंति ४ एवमत्रापि चत्वारि सूत्राणि ज्ञेयानि ॥ ४ ॥

॥ टीका–सांप्रतं वनस्पत्यवयवानधिकृत्याऽऽह । (अहावरमित्यादि) अथापरमेतदाख्यातं तद्दर्शयति । इहास्मिन् जगत्येके न सर्वे तथाविधकर्मोदयवर्तिनोवृक्षयोनिकाः सत्वाजवंति तदवयवाश्रिताश्च परे वनस्पतिरूपाएव प्राणिनोजवंति । तथा योह्येकोवनस्पतिजीवः सर्ववृक्षावयवव्यापी जवति तस्य चापरे तदवयवेषु मूलकंदस्कंधत्वक्शाखाप्रवा

लपत्रपुष्पफलबीजभूतेषु दशसु स्थानेषु जीवाः समुत्पद्यंते तेच तत्रोत्पद्यमानावृक्षयो निकावृक्षव्युत्क्रमाश्चोच्यंते इति । शेषंपूर्ववत् । इहच प्राक्चतुर्विधार्थप्रतिपादकानि सू त्राण्यभिहितानि । तद्यथा । वनस्पतयः पृथिव्याश्रिताभवंतीत्येकं तच्छरीरं १ अप्काया दिशरीरं वाऽऽहारयंतीति द्वितीयं २ तथा विवृद्धास्तदाहारितं शरीरमचित्तं विध्वस्तंच कृ त्वात्मसात्कुर्वंतीति तृतीयं ३ अन्यान्यपि तेषां पृथिवीयोनिकानां वनस्पतीनां शरीराणि मूलस्कंधकंदादीनि नानावर्णानि भवंतीति चतुर्थं ४ एवमत्रापि वनस्पतियोनिकानां वन स्पतीनामेवंविधार्थप्रतिपादकानि चतुःप्रकाराणि सूत्राणि द्रष्टव्यानीति यावत्ते जीवावन स्पत्यवयवमूलस्कंधादिरूपाः कर्मोपपन्नगाभवंत्येवमाख्यातं ॥ ४ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगइया सत्ता रुक्खजोणिया रुक्खसंभवा रुक्खवुक्क मा तज्जोणिया तस्संभवा तडुवक्कमा कम्मोवगा कम्मनियाणेणं त व वुक्कमा रुक्खजोणिएसु रुक्खेसु मूलत्ताए कंदत्ताए खंधत्ताए तयत्ता ए सालत्ताए पवालत्ताए पत्तत्ताए पुप्फत्ताए फलत्ताए बीयत्ताए विउ ट्टंति ते जीवा तेसिं रुक्खजोणियाणं रुक्खाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आ हारेंति पुढवीसरीरं आउतेउवाउवणस्सइ णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सरीरं अचित्तं कुवंति परिविद्धत्थं तं सरीरगं जाव सारूविकडं संतं अवरेवियणं तेसिं रुक्खजोणियाणं मूलाणं कंदाणं खंधाणं तयाणं सालाणं पवालाणं जाव बीयाणं सरीरा णाणावसा णाणागंधा जाव णा णाविहसरीरं पुग्गल विउविता ते जीवा कम्मोववन्नगा भवंतीति मक्खायं॥५॥

अर्थ—अथ हवे अन्य स्थानक पूर्वे तीर्थंकरें कह्युंछे. आ जगत् मांहे कोइ एक वृक्ष योनिक तथा अन्य तेना अवयवरूप प्राणी उपजे तथा जे एक वनस्पतिनो जीव सर्व वृक्षना अवयव व्यापारें, अन्य जीव वली तेना अवयव व्यापारें, ते वृक्षने विषे मूल पणे, कंद पणे, स्कंध पणे, त्वचा पणे, शाखा पणे, पत्र पणे, फूल पणे, फल पणे अने बीज पणे, प्रवाल एटले अंकुरपणे, एटला स्थानकें उपजे. ते जीव त्यां उपजता वृक्ष योनिक वृक्षनो स्नेह आहारे. इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं. यावत् ते जीव मूल कंदादि क वनस्पतिना अवयवरूप कर्म तेने वशें त्यां उपजे. एम श्रीतीर्थंकरें कह्युंछे. ॥ ५ ॥

॥ दीपिका—अथवृक्षोपर्युत्पन्नान् वृक्षानाश्रित्याह । (अहावरमिति) अथापरमेतदा ख्यातं । इहैके सत्वावृक्षयोनिकाः स्युः । तस्यैकस्य वनस्पतेर्मूलारंभस्य उपचयकारिण

स्ते वृक्षयोनिकाउच्यंते । यदिवा मूलस्कंधादिकाः पूर्वोक्तदशस्थानवर्तिनस्ते एवमुच्यंते। अत्रापि सूत्रचतुष्टयं प्राग्वत् ॥ ५ ॥

॥ टीका–सांप्रतं वृक्षोपर्युत्पन्नान् वृक्षानाभित्याह । (अथावरमिति) अथापरमेतत्पुरा ऽऽख्यातं य हक्ष्यमाणमिहैके सत्वावृक्षयोनिकाभवंति । तत्र ये ते पृथिवीयोनिकावृक्षास्ते ष्वेव प्रतिप्रदेशतया येपरे समुत्पद्यंते तस्यैकस्य वनस्पतेर्मूलारंभकस्योपचयकारिणस्ते वृ क्षयोनिकाइत्यभिधीयंते । यदिवा ये ते मूलकंदस्कंधशाखादिकाः पूर्वोक्तदशस्थानवर्तिन स्तएवमभिधीयंते तेषुच वृक्षयोनिकेषु वृक्षेषु कर्मोपादननिष्पादितेषु उपर्युपरि अध्यारोहं तीत्यध्यारुहावृक्षोपरिजातावृक्षाभिधानाः कामवृक्षाभिधानावा इष्टव्यास्तदभावेऽवापरे व नस्पतिकायाः समुत्पद्यंते वृक्षयोनिकेषु वनस्पतिष्विति । इहापि प्राग्वच्चत्वारि सूत्रा णि इष्टव्यानि ॥ ५ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता रुरकजोणिया रुरकसंभवा रुरकवु क्कमा तज्जोणिया तस्संभवा तडुवक्कमा कम्मोववन्नगा कम्मनियाणेणं तब्वुक्कमा रुरकजोणिएहिं रुरकेहिं अज्झारोहत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं रुरकजोणियाणं रुरकाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढवीसरीरं जाव सारूविकडं संतं अवरेवि यण तेसिं रुरकजोणियाणं अज्झारुहाणं सरीरा णाणावन्ना जावमरकायं ॥ ६ ॥

अर्थ–हवे वृक्ष उपरना वृक्ष आश्री कहेछे. अथ हवे अन्य स्थानक श्री तीर्थंकरें क ह्युंछे. आजगत्मांहे कोइ एक वृक्षयोनिक सत्व एटले जीव होयछे त्यां जे पृथ्वीयोनिक वृक्ष, ते वृक्षने विषेज बीजा मूलादिक वृद्धिना करनार, ते वृक्षयोनिक वृक्षने विषे अव यवरूपे उपजे, तेनी उपर उपर जे आरूढे ते वल्ली वृक्षादिक अथवा पींपलादिक वड वृक्षनी उपर उपजे, ते कामवृक्षादिक जाणवा. ते कारणे एने अध्यारोह वृक्ष कहियें, ते अध्यारोह, वृक्षनोज स्नेह आहारे. इत्यादिक सर्व पूर्ववत् जाणी लेवुं ते यावत् पो ताना कर्मने वशें उपजे. एटले अध्यारोहनुं प्रथम सूत्र कह्युं ॥ ६ ॥

॥ दीपिका–वृक्षयोनिकेषु एके अध्यारोहाजायंते वृक्षोपरिजातावृक्षाअध्यारोहाइत्यु च्यंते । तेच वल्लीवृक्षाभिधानाः । शेषं प्राग्वत् । इदं प्रथमसूत्रं ॥ ६ ॥

॥ टीका–तद्यथा योनिकेषु वृक्षेष्वपरेऽध्यारुहाः समुत्पद्यंते तेच तत्रोत्पन्नाः स्वयोनिभू

तं वनस्पतिशरीरमाहारयंति तथा पृथिव्यप्तेजोवाय्वादीनां शरीरकमाहारयंति तथा तच्छरीरमाहारितं सदचित्तं विध्वस्तं परिणामितमात्मसात्कृतं स्वकायावयवतया व्यवस्थापयंत्यपराणिच तेषामध्यारुहाणां नानाविधरूपरसगंधस्पर्शोपेतानि नानासंस्थानानि शरीराणि नवंति ते जीवास्तत्र स्वकृतकर्मोपपन्ना नवंतीत्येतदाख्यातमिति प्रथमं सूत्रं ॥ ६ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता अज्झारोहजोणिया अज्झारोहसंनवा जाव कम्मनियाणेणं तत्र वुक्कमा रुक्खजोणिएसु अज्झारोहेसु अज्झारोहत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं अज्झारोहजोणियाणं अज्झारोहाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति ते जीवा पुढवीसरीरं जाव सारूविकडं संतं अवरेवि यणं तेसिं अज्झारोहजोणियाणं अज्झारोहाणं सरीरा णाणावन्ना जावमक्खायं ॥ ७ ॥

अर्थ—हवे अन्य स्थानक श्री तीर्थंकरें कह्युंछे, ते कहेछे. जे प्रथम वृक्षयोनिक वृक्षने विषे अध्यारोह कह्या,तेनेज विषे वली बीजा प्रदेश वृद्धिना करनार एवा अध्यारोह वनस्पति पणे उपजे ; ते जीव अध्यारोह प्रदेशने विषे उपना ते वृक्षयोनिक अध्यारोहनो स्नेह आहारे. इत्यादिक सर्व पूर्ववत् जाणवुं. एटले अध्यारोहनुं बीजुं सूत्र कह्युं. ॥७॥

॥ दीपिका—प्राग्वृक्षयोनिकेषु वृक्षेष्वध्यारोहाउक्ताः । अत्र तेष्वेवान्ये प्रतिप्रदेशोपचयकर्तारोऽध्यारोहवनस्पतित्वेन जायंते । तेच जीवाअध्यारोहप्रदेशेषूत्पन्नाअध्यारोहजीवास्तेषां स्वयोनिनूतानि शरीराणि आहारयंति तत्र पराण्यपि पृथिव्यादिनि शरीराण्याहारयंति अपराणि वाऽध्यारोहसंनवानामध्यारुहजीवानां नानावर्णकादिकानि शरीराणि नवंत्येवमाख्यातमिति द्वितीयं सूत्रं ॥ ७ ॥

॥ टीका—द्वितीयं त्विदमथापरं पुराख्यातं । ये ते प्राग्वृक्षयोनिषु वृक्षेषु अध्यारुहाः प्रतिपादितास्तेष्वेवोपरि प्रतिप्रदेशोपचयकर्तारोऽध्यारुहवनस्पतित्वेनोपपद्यंते । तेच जीवाअध्यारुहप्रदेशेषूत्पन्नाअध्यारुहजीवास्तेषां स्वयोनिनूतानि शरीराण्याहारयंति । तथाऽपराण्यपि पृथिव्यादीनि शरीराणि आहारयंति अपराणि चाध्यारुहसंनवानामध्यारुहजीवानां नानाविधवर्णकादिकानि. शरीराणि नवंतीत्येवमाख्यात. ॥ ७ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता अज्झारोहजोणिया अज्झारोहसंनवा जाव कम्मनियाणेणं तत्र वुक्कमा अज्झारोहजोणिएसु अज्झारोह

त्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं अज्झारोहजोणियाणं अज्झारोहाणं सिणेह माहारेंति ते जीवा आहारंति पुढविसरीरा आउसरीरा जाव सारूविक डं संतं अवरेवि यणं तेसिं अज्झारोहजोणियाणं अज्झारोहाणं सरीरा णाणावन्ना जावमक्खायं ॥ ८ ॥

अर्थ-अथ हवे अन्य स्थानक तीर्थंकरें कह्युंछे. आजगत् मांहे कोइ एक जीव, अध्यारोहयोनियाछे, ते अध्यारोह योनिया तेने विषे वळी अध्यारोह पणे उपजे, ते अध्यारोहयोनिक अध्यारोहनां शरीर आहारे. इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं. आहीं पूर्वें बीजा सूत्रमां वृक्षयोनिक अध्यारोहनां शरीर बीजा अध्यारोह जीव अहारें, अने आ त्रीजा सूत्रमां अध्यारोहयोनिक अध्यारोह जीवनां शरीर अहारे, एटलुं विशेषछे. ए अध्यारोहनुं त्रीजुं सूत्र कह्युं. ॥ ८ ॥

॥ दीपिका-एके सत्वाअध्यारोहसंभवेषु अध्यारोहेषु अध्यारोहत्वेन जायंते। येच एवं जायंते तेऽध्यारोहयोनिकानाध्यारोहाणां यानि शरीराणि तान्याहारयंति। द्वितीयसूत्रे वृक्ष योनिकानामध्यारोहाणां यानि शरीराणि तान्यपरेऽध्यारोहाजीवाआहारयंति। अत्रतु अध्यारोहयोनिकानां अध्यारोहजीवानां शरीराणीति विशेषः। इदं तृतीयसूत्रं ॥ ८ ॥

॥टीका-तृतीयं त्विदं (अहावरमित्यादि) अथापरं पुराख्यातं। तद्यथा। इहैके सत्वा अध्यारुहसंभवेष्वध्यारुहत्वेनोपपद्यंते। ये चैवमुत्पद्यंते तेऽध्यारुहजीवाआहारयंति। तृतीये त्वध्यारुहयोनिकानामध्यारुहजीवानां शरीराणि द्रष्टव्यानीति विशेषः ॥ ८ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता अज्झारोहजोणिया अज्झारोह संभवा जाव कम्मनियाणेणं तत्थ वुक्कमा अज्झारोहजोणिएसु अज्झारोहेसु मूलत्ताए जाव बीयत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं अज्झारोहजोणियाणं अज्झारोहाणं सिणेहमाहारेंति जाव अवरेवि यणं तेसिं अज्झारोहजोणियाणं मूलाणं जाव बीयाणं सरीरा णाणावन्ना जावमक्खायं ॥ ए ॥

अर्थ-हवे अध्यारोहनुं चोथुं सूत्र श्री तीर्थंकरें कह्युंछे, ते कहेछे. आ जगत् मांहे कोइ एक जीव, अध्यारोहयोनिक ते अध्यारोहने विषे मूळ कंदादिक अवयव थइने उपजे, ते त्यां उपना थका तेनां शरीर आहारे, इत्यादिक अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ए॥

॥ दीपिका-अथापरमिदमाख्यातं इहैके सत्वाअध्यारुहयोनिकेष्वध्यारोहेषु मूलकंद

स्कंधत्वक्शाखाप्रवालपत्रपुष्पफलबीजत्वेन जायंते ते तथा, कर्मोपगाभवंतीत्याख्यात मिति चतुर्थं सूत्रं ॥ ए ॥

॥ टीका—इदंतु चतुर्थकं । तद्यथा (अहावरमित्यादि) अथापरमिदमाख्यातं । तद्यथा इहैके सत्वाअध्यारुहयोनिकेष्वध्यारुहेषु मूलकंदस्कंधत्वक्शाखाप्रवालपत्रपुष्पफलबीज भावेनोत्पद्यंते तेच तथाविधकर्मोपगाभवंतीत्येतदाख्यातमिति शेषं तदेवेति ॥ ए ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता पुढविजोणिया पुढविसंभवा जाव णाणाविहजोणियासु पुढवीसु तणत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं णाणावि हजोणियाणं पुढवीणं सिणेहमाहारेंति जाव ते जीवा कम्मोववन्ना भवंती तिमक्खायं॥१०॥एवं पुढविजोणिएसु तणेसु तणत्ताए विउट्टंति जावमक्खा यं ॥ ११ ॥ एवं तणजोणिएसु तणेसु तणत्ताए विउट्टंति तणजोणियं त णसरीरं च अहारेंति जावमक्खायं॥१२॥ एवं तणजोणिएसु तणेसु मूल त्ताए जाव बीयत्ताए विउट्टंति तेजीवा जावएव मक्खायं ॥१३॥ एवं उस हीणवि चत्तारि आलावगा॥१४॥ एवं हरियाणवि चत्तारि आलावगा॥१५॥

अर्थ—हवे वली वृक्ष वर्जीने बीजा वनस्पतिकायना विशेष आश्री कहेछे. हवे बीजुं स्थानक पूर्वे तीर्थंकरें कह्युंछे. आ जगत् मांहे कोइ एक पृथ्वीकाय योनिक पृथ्वीनेविषे वनस्पतिकायनो संभवछे, पृथ्वीव्युत्क्रमछे, यावत् नाना प्रकारें योनिक, पृथ्वीने विषे तृण पणे उपजे, ते पृथ्वीनो आहार आहारे. इत्यादिक जेम वृक्षनो पहेलो आलावो क ह्यो हतो, तेमज जाणवो. एमज चार आलावा जेम वृक्षना कह्याछे, तेम तृणना पण जाणवा ॥ १० ॥ बीजे आलावे पृथ्वीयोनिक तृणनेविषे उपजे. आगलनुं सर्वे पूर्ववत् जाणवुं, ॥ ११ ॥ त्रीजे आलावे तृणयोनिक तृणनेविषे तृणपणे उपजे. शेषं पूर्ववत् जाणवुं ॥ १२ ॥ चोथे आलावे तृणयोनिक तृणने विषे मूलकंदादिकने भावें उपजे. शेषं पूर्ववत् जाणवुं, ॥ १३ ॥ (एवंउसहीणविचत्तारिआलावगा के०) एज रीतें उषधि एटले धान्यनी जाति तेना पण चार आलावा जाणवा ॥ १४ ॥ (एवंहरियाणविचत्ता रिआलावगा के०) एवं हरितकाय आश्री पण चार आलावा जाणवा. ए सर्वे मली ने वीश आलावा थया. ॥ १५ ॥

॥ दीपिका—अथ वृक्षवर्जितं शेषवनस्पतिमाश्रित्याह । अथापरमिदमाख्यातं । इहै

के सत्वाः पृथिवीयोनिकाः पृथिवीसंनवाइत्यादयोयथावृक्षेषु चत्वारि सूत्राणि एवं तृणा न्यप्याश्रित्य ज्ञेयाः । ते चामी नानाविधासु पृथिवीयोनिषु तृणत्वेनोत्पद्यंते पृथिवीशरीरं चाहारयंतीत्येकं, ॥१०॥ पृथिवीयोनिकेषु तृणेषूत्पद्यंते तृणशरीरं चाहारयंतीति द्वितीयं ॥११॥ तृणयोनिकेषु तृणेषूत्पद्यंते तृणयोनिकतृणशरीरं चाहारयंतीति तृतीयं ॥ १२ ॥ तृणयोनिकेषु तृणावयवेषु मूलादिषु दशस्थानेषूत्पद्यंते तृणशरीरं चाहारयंतीति चतुर्थं सूत्रं ॥ १३ ॥ (एवंउसहीणं) इत्यादि सुगमं ॥ १४ ॥ १५ ॥

॥ टीका—सांप्रतवृक्षव्यतिरिक्तं शेषवनस्पतिकायमाश्रित्याह । (अथावरमित्यादि) अ थापरमिदमाख्यातं यडुत्तरत्र वक्ष्यते । तद्यथा । इहैके सत्वाः पृथिवीयोनिकाः पृथिवी संनवाः पृथिवीव्युत्क्रमाइत्यादयोयथावृक्षेषु चत्वारआलापकाएवं तृणान्यप्याश्रित्य डृष्ट व्याः । ते चामी नानाविधासु पृथिवीयोनिषु तृणत्वेनोपपद्यंते पृथिवीशरीरं चाहारयंति ॥१०॥ द्वितीयंतु पृथवीयोनिकेषु तृणेषूत्पद्यंते तृणशरीरं चाहारयंतीति ॥ ११ ॥ तृतीयं तु तृणयोनिकेषु तृणेषूत्पद्यंते तृणयोनिकशरीरं चाहारयंतीति ॥१२॥ चतुर्थं तृणयोनिकेषु तृणावयवेषु मूलादिषु दशप्रकारेषूत्पद्यंते तृणशरीरं चाहारयंत्येवं यावदाख्यातमिति ॥१३॥ एवमौषध्याश्रयाश्चत्वारआलापकानणनीयाः ॥१४॥ नवरमोषधिग्रहणं कर्तव्यमेवं हरिताश्रयाश्चत्वारआलापकानणनीयाः । कुहणेषु त्वेकएवालापकोऽष्टव्यस्तद्योनिकानाम परेषामन्नावादिति नावः ॥ १५ ॥

अहावरं पुरक्कायं इहेगतिया सत्ता पुढविजोणिया पुढविसंनवा जाव कम्म नियाणेणं तब वुक्कमा णाणाविहजोणियासु पुढवीसु आयत्ताए वायत्ताए कायत्ताए कूहणत्ताए कंडुकत्ताए उवेहणियत्ताए निवेहणियत्ताए सबत्ताए बत्तगत्ताए वासाणियत्ताए कूरत्ताए विनंदंति ते जीवा तेसिं णाणाविहजो णियाणं पुढवीणं सिणेहमाहारेंति तेवि जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जा व संतं अवरेवियणं तेसिं पुढविजोणियाणं आयत्ताणं जाव कूराणं सरी रा णाणावणा जावमरकायं एगोचेव आलावगो सेसा तिन्नि णत्नि ॥ १६ ॥

अर्थ—अथ हवे अन्य स्थानक पूर्वें तीर्थंकर देवें कह्युंबे. आ जगत् मांहे कोइ एक सत्व, पृथ्वीयोनिक पृथ्वीने विषे संनवबे. यावत् कर्मने कारणे आकर्षिता त्यां उप ना बता नाना प्रकारनी योनीने विषे, पृथ्वीने विषे, आर्यनामा वनस्पति पणे, वाय नामा वनस्पति पणे, कायनामा वनस्पति पणे कुहणत्ताए एटले तोईकोडी नामा

वनस्पतिपणे, कंडुकनामा वनस्पतिपणे, उवहिणिकानामा वनस्पतिपणे, निव्वेहणीय नामा वनस्पतिपणे, सछत्रपणे, छत्तगत्ताए पणे, वासाणितापणे, कुरुनामा वनस्पति पणे, उपजे. ते जीव तेहीज नानाविध योनिक पृथ्वीनो स्नेह आहारे ते जीव पृथिव्या दिकनां शरीर आहारीने, यावत् पोतानी काया सरखां रूप करे. बीजा पण तेवा पृथ्वीयोनिक आयनामा वनस्पतिः यावत् कुरनामा वनस्पतिनां शरीर जेवां रूप करे ते शरीर नाना प्रकारना वर्णवालां होय. इत्यादिक यावत् पूर्ववत् जगवंते कह्युं ए कुहण नामा वनस्पतिनो विशेष ते आश्री एकज आलावो जाणवो. कारण के, ते योनिक बीजा नथी, तेथी एना शेष त्रण आलावा नथी. एनुं विशेष श्रीपन्नवणा थकी जाणवुं. एवं सर्व मली एकवीश आलावा पृथ्वीयोनिक वनस्पतिना कह्या. ॥ १६ ॥

॥ दीपिका—आर्यादयोवनस्पतिविशेषालोकतोज्ञेयाः । कुहणेषु तु एकएवालापकोवाच्यः । शेषास्त्रयोन संति तद्योनिकानामन्येषामजावादिति ॥ १६ ॥

॥ टीका—इह चामी वनस्पतिविशेषालोकव्यवहारतोऽनुगंतव्याः प्रज्ञापनातोवावसेया इति । अत्रार्थे सर्वेषामेव पृथिवीयोनिकत्वात्पृथिवीसमाश्रयत्वेनाजिहिताः। इह च स्थावराणां वनस्पतेरेव प्रस्पष्टचैतन्यलक्षणत्वात्तस्यैव प्राक्प्रदर्शितं चैतन्यं ॥ १६ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता उदगजोणिया उदगसंजवा जाव कम्मनियाणेणं तञ वुक्कमा णाणाविहजोणिएसु उदएसु रुक्खत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं णाणाजोणियाणं उदगाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं उदगजोणियाणं रुक्खाणं सरीरा णाणावन्ना जावमरकायं जहा पुढविजोणियाणं चत्तारि गमा अज्ञारुहाणवि तहेव तणाण उसहीणं हरियाणं चत्तारि आलावगा जणियव्वाएक्केक्के तहा उदगजोणियाणं रुक्खाणं इक्कके ॥ १७ ॥

अर्थ—हवे अप्काययोनिक वनस्पतिनुं विशेष देखाडेछे. ते अनेरुं स्थानक पूर्वे श्री तीर्थंकर देवें कह्युंछे, ते कहेछे. आ जगत् मांहे कोइ एक जीव उदकयोनिक उदक संजव शैवलादिक वनस्पति ते जीव, यावत् कर्मने उदयें नानाविध योनिक पाणीने विषे वृक्षपणे उपजे. त्यां उपना छता नानाविध योनिक उदकनो स्नेह आहारे. पृथ्वीकायादिकनुं शरीर आहारे. इत्यादिक यावत् बीजुं सर्व पूर्वनी पेठें जाणवुं. ए जेम पूर्वे पृथ्वीयोनिकवृक्षना चार आलावा कह्या, तेम आहीं पण अप्काययोनिक वृक्षना चार आला

वा जाणवा. ए सर्व मली पच्चीश आलावा थया ॥ १५ ॥ तेमज अध्यारोहना पण उदक योनि आश्री चार आलावा कहेवा तेमज तृणना पण चार आलावा उदकयोनी आश्री कहेवा. ॥ ३२ ॥ तथा उंषधिना पण चार आलावा कहेवा ॥ ३७ ॥ एम हरितकायना पण चार आलावा आहिं उदकयोनिकने विषें जाणवा. एम एकेकना चार चार आलावा करतां बधा मलीने वीश आलावा उदक योनिक वनस्पतिना थया; तथा एकवीश आलावा पूर्वें पृथ्वीयोनिक वनस्पतिना कह्याछे, ए बधा मलीने एकतालीश आलावा वनस्पतिना थया ॥ १७ ॥

॥ दीपिका—अथाप्काययोनिकस्य वनस्पतेः स्वरूपमाह । अथापरमाख्यातं । इहैके सत्वाउदकं योनिरुत्पत्तिस्थानं येषां ते तथा तेच कर्मवशगानानाविधयोनिकेषु जलेषु वृक्षत्वेन पनकशैवलादित्वेन जायंते तेच जलशरीरमाहारयंति न केवलं तदेवान्यदपि पृथिव्यादिशरीरमाहारयंति। यथा पृथ्वीयोनिकानां वृक्षाणां चत्वारआलापकास्तथा जलयोनिकानां वृक्षाणां न स्युः। तत्रोत्पन्नानामन्यविकल्पानावात् किंतर्हि? एकएवाऽऽलापकः स्यात्॥ १७॥

॥ टीका—सांप्रतमप्काययोनिकस्य वनस्पतेः स्वरूपं दर्शयितुमाह । (अथावरमित्यादि) अथानंतरमेतद्वक्ष्यमाणमाख्यातं । तद्यथा । इहैके सत्वास्तथाविधकर्मोपचयाडुदकं योनिरुत्पत्तिस्थानं येषां ते तथा तथोदके संनवोयेषां ते तथा यावत्कर्मनिदानेन संदानितास्तडपक्रमाज्नवंतीति । तेच तत्कर्मवशगानानाविधयोनिषूदकेषु वृक्षत्वेन व्युत्क्रामंत्युत्पद्यंते । येच जीवाउदकयोनिकावृक्षत्वेनोत्पन्नास्ते तच्छरीरमुदकं शरीरमाहारयंति न केवलं तदेवान्यदपि पृथिवीकायादिशरीरमाहारयंतीति । शेषं पूर्ववत् । यथा पृथिवीयोनिकानां वृक्षाणां चत्वारआलापकाएवमुदकयोनिकानामपि वृक्षाणां ज्नवंतीत्येवं इष्टव्यं । अपरस्य प्रागुक्तस्य विकल्पानावादिति किंतर्हि? एकएवालापकोज्नवति ॥ १७ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता उदगजोणिया उदगसंभवा जाव कम्मणियाणेणं तब्ब वुक्कमा णाणाविहजोणिएसु उदएसु उदगत्ताए अवगत्ताए पणगत्ताए सेवालत्ताए कलंबुगत्ताए हडत्ताए कसेरुगत्ताए कच्छनाणियत्ताए उप्पलत्ताए पउमत्ताए कुमुयत्ताए नलिणत्ताए सुभगत्ताए सोगंधियत्ताए पोंमरियमहापोंमरियत्ताए सयपत्ताए सहस्सपत्ताए एवं कह्लारकोकणयत्ताए अरविंदत्ताए तामरसत्ताए भिसभिसमुणालपुक्खलत्ताए पुक्खलच्छिभगत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं णाणाविह

जोणियाणं उदगाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढवीसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं उदगजोणियाणं उदगाणं जाव पुरकल ल्लिनगाणं सरीरा णाणावस्रा जावमरकायं एगोचेव आलावगो ॥१८॥

अर्थ-हवे अनेरुं स्थानक पूर्वे तीर्थंकरे कह्युंछे. आ जगत् मांहें कोइ एक जीव उदकयोनिक उदकने विषे वनस्पतिकायनो संभव, यावत् कर्मने कारणे आकर्षिता त्यां आव्या थता नानाविध योनिक उदकने विषे उदक पणे, अवनक पणे, पणग एटले पन्य पणे, सेवाल पणे, कलंबुक पणे, आहडपणे, कसेरुग पणे, कच्छनाण पणे, उत्पलनामा कमलनी जाति पणे, लाल वर्णें सूर्यविकाशी कमलनी जाति पणे, चंद्रविकासी कमलनी जाति पणे, नलिन कमलनी जाति पणे, सुभग कमल पणे, सुगंध कमलनी जाति पणे, पुंमरीक एटले धवलश्वेत कमलनी जाति पणे, महापुंमरीक एटले अत्यंत धवलश्वेत कमलनी जाति पणे,सो पांखडीछे जेनी एवा कमलनी जाति पणे पुष्कर जे थकी पान निकले ते पणे उपजे; हजार पांखडी छे जेनी एवा कमलनी जाति पणे, एम कह्लारनी जाति पणे, कोकणा पणे, अरविंद कमल पणे, तामरस कमल पणे, बीस मृणाल पणे, पुष्कर पणे, उपजे; एटले एवा एवा भावें उपजे, ते जीव नाना विध योनिक उदकनो स्नेह आहारे. इत्यादिक सर्व पूर्ववत् कहेवुं. एनो एकज आलावोछे, पण बीजा आलावा नथी. ए उदक योनिक वनस्पतिनाएकवीश आलावा, एम बधामली वनस्पतिकायना बेहेंतालीश आलावा थया ॥ १८ ॥

॥ दीपिका-एतेषामुदकाकृतीनामवकपनकादीनामन्यस्य प्रागुक्तविकल्पस्याभावादेक एवालापकः स्यात् । एते जलाश्रिताः कलंबकाहडादिवनस्पतयोलोकतोज्ञेयाः ॥ १८ ॥

॥ टीका-एतेषां हि उदकाकृतीनां वनस्पतिकायानां तथावयवपनकशैवलादीनामपरस्य प्रागुक्तस्य विकल्पस्याभावादिति । एते च उदकाश्रयावनस्पतिविशेषाः कलंबुकाहडादयोलोकव्यवहारतोवसेयाइति ॥ १८ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता तेसिं चेव पुढवीजोणिएहिं रुक्खेहिं रुक्खजोणिएहिं रुक्खेहिं रुक्खजोणिएहिं मूलेहिं जाव बीएहिं रुक्खजोणिएहिं अज्झारोहेहिं अज्झारोहजोणिएहिं अज्झारुहेहिं अज्झारोहजोणिएहिं मूलेहिं जाव बीएहिं पुढविजोणिएहिं तणेहिं तणजोणिएहिं तणेहिं तणजोणिएहिं मूलेहिं जाव बीएहिं एवं उसहीहिं वि तिन्नि आलावगा एवं हरिएहिं वि तिन्नि आ

लावगा पुढविजोणिएहिंवि आएहिं काएहिं जाव कूरोहिं उदगजोणिएहिं रुक्खेहिं रुक्खजोणिएहिं रुक्खेहिं रुक्खजोणियेहिं मूलेहिं जाव बीएहिं एवं अज्झारुहेहिंवि तिन्नि तणेहिंवि तिन्नि आलावगा उसहीहिंवि तिन्निहरिएहिंवि तिन्नि उदगजोणिएहिं उदएहिं अवएहिं जाव पुक्खलछिन्न एहिं तसपाणत्ताएविउट्टंति ॥ १९ ॥ तेजीवा तेसिं पुढवीजोणियाणं उदगजोणियाणं रुक्खजोणियाणं अज्झारोहजोणियाणं तणजोणियाणं उसहीजोणियाणं हरियजोणियाणं रुक्खाणं अज्झारुहाणं तणाणं उसहीणं हरियाणं मूलाणं जाव बीयाणं आयाणं कायाणं जावं करवाणं उदगाणं अवगाणं जाव पुक्खलछिन्नगाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढवीसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं रुक्खजोणियाणं अज्झारोहजोणियाणं तणजोणियाणं उसहिजोणियाणं हरियजोणियाणं मूलजोणियाणं कंदजोणियाणं जाव बीयजोणियाणं आयजोणियाणं कायजोणियाणं जाव कूरजोणियाणं उदगजोणियाणं अवगजोणियाणं जाव पुक्खलछिन्नगजोणियाणं तसपाणाणं सरीरा णाणावन्ना जाव मक्खायं ॥ २० ॥

अर्थ–हवे अन्यत्र प्रकारें वनस्पतिनुं स्वरूप कहेछे. हवे अनेरुं स्थानक पूर्वें श्री तीर्थंकरदेवें कह्युं. आजगत् मांहें कोइ एक जीव ते पृथ्वीयोनिक वृक्षें करी, तथा वृक्षयोनिक वृक्षें करी, तथा वृक्ष योनिक मूलें करी, यावत् बीजें करी, तथा वृक्षयोनिक अध्यारोहें करी, तथा अध्यारोहयोनिक अध्यारोहें करी, तथा अध्यारोहयोनिक मूलें करी, यावत् बीजें करी, पृथ्वीयोनिक तृणें करी, तृणयोनिक तृणें करी, तृणयोनिक मूलेंकरी, यावत् बीजें करी, ए प्रकारें ए त्रणना त्रण त्रण आलावा जाणवा. ए रीतेंज वली उषधियें करीपण, त्रण, त्रण, आलावा जाणवा. एमज हरितकायना पण त्रण आलावा जाणवा. पृथ्वीयोनिक, आयनामा वनस्पति, कायनामा वनस्पति, यावत् कुंरवादनामा वनस्पति, उदकयोनिकना वृक्षें करी, वृक्षयोनिकना वृक्षें करी, वृक्षयोनिकना मूलें करी, यावत् बीजें करी, एमज अध्यारोहना पण त्रण आलावा जाणवा. तृणना पण त्रण आलावा जाणवा. उषधियें करी पण, त्रण आलावा जाणवा, हरितें करी पण त्रण आलावा जाणवा, उदकयोनिक उदक अवकपनक यावत् पुक्खलछि जे थकी पान निकले तेने विषे, त्रस प्राणि पणे उपजे. ए सर्व, बत्रीश आलावा थया. अने आंगलना

बेहेंतालीश बधामली चमोतेर आलावा थया.॥१९॥ ते जीव ते वनस्पतिने विषे उपना थका पृथ्वीयोनिक,उदकयोनिक. वृक्षयोनिक अध्यारोहयोनिक,तृणयोनिक,उषधियोनिक, हरितयोनिक, वृक्षनो, अध्यारोहनो, तृणनो, उषधिनो, हरितनो,मूलनो, यावत् बीजनो, आयनो, कायनो,यावत् कुरवंदनो, उदकनो, अवगाहिनो,यावत् पुस्कलछि एटले जे थकी पान निकलें तेनो, स्नेह आहारे ते जीव पृथ्व्यादिकनां शरीर आहारीनें यावत् आप णां सरखां रूप करे. इत्यादिक अर्थ पूर्ववत् जाणवो. ते जीव वृक्षयोनिक, अध्यारोह योनिक तृणयोनिक, यावत् पुस्कलवि योनिक, त्रसप्राणिनां, शरीरना नाना प्रकारना वर्ण, गंध, रस, स्पर्शवाला होय.ते पोताना कर्मने वश जाणवा. यावत् एम श्री तीर्थंकर गणधरादिकें कह्युं. त्यां सुधीनो आलावो जाणवो. एटले वनस्पतिकायनुं स्वरूप कह्युं, अनें पृथ्वीकायादिक चार जातिनां एकेंद्रियनां स्वरूप आगल कहेशे ॥ २० ॥

॥ दीपिका—अथ प्रकारांतरेण वनस्पत्यालापकत्रयमाह । पृथिवीयोनिकैर्वृक्षैर्वृक्षयोनिकै र्मूलादिभिरिति । एवं वृक्षयोनिकैरध्यारुहैः अध्यारुहयोनिकैरध्यारुहैः अध्यारुहयोनिकै र्मूलादिभिरिति । एवमन्येष्वपि तृणादयोज्ञेयाः । एवमुदकयोनिष्वपि वृक्षेषु योज्यं।१९।ते व नस्पतिषूत्पन्नाजीवाः पृथिवीयोनिकानां तथा उदकानां वृक्षाध्यारोहतृणौषधिहरितयोनि कानां वृक्षाणां यावत् स्नेहमाहारयंतीत्येतदाख्यातं । तत्र त्रसानां शरीरमाहारयंतीत्यंते ज्ञे यं । इति वनस्पतीनां स्वरूपमुक्तं । शेषाः पृथिवीकायादयश्चत्वारएकेंद्रियाअग्रे वक्ष्यंते॥२०॥

॥ टीका—सांप्रतमन्येन प्रकारेण वनस्पत्याश्रयमालापकत्रयं दर्शयितुमाह । तद्य था। पृथिवीयोनिकैर्वृक्षैर्वृक्षयोनिकैर्वृक्षैस्तथा वृक्षयोनिकैर्मूलादिभिरिति । एवं वृक्षयोनिकै रध्यारुहैस्तथाध्यारुहयोनिकैर्मूलादिभिरिति । एवमन्येपि तृणादयोऽष्टव्याः । एवमुद कयोनिकेष्वपि वृक्षेषु योजनीयं ॥१९॥ तदेवं पृथिवीयोनिकवनस्पतेरुदकयोनिकवनस्प तेश्च भेदानुपदर्श्याऽधुना तदनुवादेनोपसंजिघृक्षुराह । (तेजीवाइत्यादि) ते वनस्पति षूत्पन्नाजीवाः पृथिवीयोनिकानां तथोदकवृक्षाध्यारुहतृणौषधिहरितयोनिकानां वृक्षाणां यावत्स्नेहमाहारयंतीत्येतदाख्यातमिति। तथा त्रसानां प्राणिनां शरीरमाहारयंत्येतदवसा ने इष्टव्यमिति । तदेवं वनस्पतिकायिकानां सुप्रतिपाद्यचैतन्यानां स्वरूपमभिहितं । शे षाः पृथ्वीकायादयश्चत्वारएकेंद्रियाउत्तरत्र प्रतिपादयिष्यंते ॥ २० ॥

अहावरं पुरकायं णाणाविहाणं मणुस्साणं तंजहा कम्मभूमगाणं अकम्म भूमगाणं अंतरदीवगाणं आरियाणं मिलुक्खयाणं तेसिंचणं अहाबीएणं अहावकासेणं इत्थीए पुरिस्ससयं कम्मकडाए जोणिए एछणं मेहुणवत्ति

याएव णामं संजोगे समुप्पज्जइ ते डुहर्ज्जुवि सिणेहं संचिणंति तछणं जीवा इत्थित्ताए पुरिसत्ताए णपुंसगत्ताए विउट्टंति ते जीवा माउउयं पिउसुक्कं तं तडुन्नयं संसठं कलुसं किव्विसं तं पढमत्ताए आहारमाहारेंति ततो पछा जं से माया णाणाविहाउ रसविईउ आहारमाहारेंति ततो एगदेसेणं उय माहारेंति आणुपुवेण वुड्ढा पलिपागमणुविन्ना ततोकायातो अन्निनिवट्ट माणा इत्थिं वेगया जणयंति पुरिसं वेगया जणयंति णपुंसगं वेगया जणयं ति ते जीवा म्हरा समाणा माउक्खीरं सप्पिं आहारेंति आणुपुवेणं वुड्ढा उ यणं कुम्मासं तसथावरेय पाणे ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव सा रूवि कडं संतं अवरेवियणं तेसिं णाणाविहाणं मणुस्सगाणं कम्मन्नूम गाणं अकम्मन्नूमगाणं अंतरद्दीवगाणं आरियाणं मिलक्खूणं स रीरा णाणावण्णा न्नवंतीतिमक्खायं ॥ ७१ ॥

अर्थ–हवे त्रसकायनो अवसर छे. ते त्रसकाय तो एक नारकी, बीजा तिर्यंच, त्रीजा मनुष्य, अने चोथा देवता, ए चार प्रकारे छे. तेमांहें नारकी अप्रत्यक्ष पणे अनुमान ग्राह्य जाणवा. अथवा डुष्कृत कर्मनां जे फल तेना न्नोगवनार छे, तेने आहार पण, एकांते अशुन्न पुज्ञल थकी नीपनो उज थकीछे, पण प्रक्षेप थकी नथी, अने देवता पण हमणां प्रायः अनुमानगम्यछे, तेनो आहार एकांत शुन्नछे, तेनो पण उजाहारछे. परंतु प्रक्षेपकृत नथी. देवतानो आहार बे प्रकारेछे. एक आन्नोगिक बीजो अनान्नोगिक, तेमां जे अनान्नोगिक ते समय समयपर छे अने आन्नोगिक ते, जघन्यथीतो चतुर्थ न्नक्तें आहार, अने उत्कृष्ट तेत्रीश हजार वर्षें आहारछे. हवे तिर्यंच अने मनुष्य मांहें प्रथम मनुष्यनुं स्वरूप कहेछे. अथ हवे बीजुं अन्य स्थानक श्री तीर्थंकर देवें प रापूर्वें कह्युंछे. आ जगत् मांहें नाना प्रकारनां मनुष्यछे, एक आर्य, एक अनार्य, एक पन्नर कर्म न्नूमीनां उपनां, एक त्रीश अकर्म न्नूमीनां उपना, एक अंतर द्दीपनां उप नां, एक आर्य, एक म्लेछ छे. (तेसिंचणंअहाबीएणं के०) तेनें यथा बीजें करी एटले स्त्री पुरुष नपुंसकने न्नेदें करी, जे जेनुं बीज ते यथा बीज, तेणें करी, तथा यथावकाशें एटले मातानी कुक्षादिक जेम वाम कुक्षें स्त्री उपजें, दक्षिण कुक्षें पुरुष उपजे, अने वाम दक्षिणाश्रित नपुंसक उपजे, इत्यादिक यथावकाशें करी, (इछीएपुरिसस्सयंके०) स्त्री पुरुषना वेदनो उदय छते (कम्मकडाएजोणिएणं के०) पूर्वकर्म निर्मित योनिने विषे (एछणंमेहुण वत्तियाएवणामंके०) आहीं मैथुन प्रत्ययिक नाम अरणी अने काष्ठनी पेरें(संजोगेसमुप्पज्जइ

बेहेंतालीश बधामली चमोतेर आलावा थया.॥१९॥ ते जीव ते वनस्पतिने विषे उपना थका पृथ्वीयोनिक,उदकयोनिक. वृक्षयोनिक अध्यारोहयोनिक,तृणयोनिक,उषधियोनिक, हरितयोनिक, वृक्षनो, अध्यारोहनो, तृणनो,उषधिनो, हरितनो,मूलनो, यावत् बीजनो, आयनो, कायनो,यावत् कुरवंदनो, उदकनो, अवगाहिनो,यावत् पुस्कलन्नि एटले जे थकी पान निकलें तेनो, स्नेह आहारे ते जीव पृथ्व्यादिकनां शरीर आहारीनें यावत् आप णां सरखां रूप करे. इत्यादिक अर्थ पूर्ववत् जाणवो. ते जीव वृक्षयोनिक, अध्यारोह योनिक तृणयोनिक, यावत् पुस्कलवि योनिक, त्रसप्राणिनां, शरीरना नाना प्रकारना वर्ण, गंध, रस, स्पर्शवाला होय. ते पोताना कर्मने वश जाणवा. यावत् एम श्री तीर्थंकर गणधरादिकें कह्युं. त्यां सुधीनो आलावो जाणवो. एटले वनस्पतिकायनुं स्वरूप कह्युं, अनें पृथ्वीकायादिक चार जातिनां एकेंद्रियनां स्वरूप आगल कहेशे ॥ २० ॥

॥ दीपिका–अथ प्रकारांतरेण वनस्पत्यालापकत्रयमाह । पृथिवीयोनिकैर्वृक्षैर्वृक्षयोनिकै र्मूलादिभिरिति । एवं वृक्षयोनिकैरध्यारुहैः अध्यारुहयोनिकैरध्यारुहैः अध्यारुहयोनिकै र्मूलादिभिरिति । एवमन्येष्वपि तृणादयोज्ञेयाः । एवमुदकयोनिष्वपि वृक्षेषु योज्यं।१९।ते व नस्पतिषूत्पन्नाजीवाः पृथिवीयोनिकानां तथा उदकानां वृक्षाध्यारोहतृणौषधिहरितयोनि कानां वृक्षाणां यावत् स्नेहमाहारयंतीत्येतदाख्यातं । तत्र त्रसानां शरीरमाहारयंतीत्यंते ज्ञे यं । इति वनस्पतीनां स्वरूपमुक्तं । शेषाः पृथिवीकायादयश्चत्वारएकेंद्रियाअग्रे वक्ष्यंते॥२०॥

॥ टीका–सांप्रतमन्येन प्रकारेण वनस्पत्याश्रयमालापकत्रयं दर्शयितुमाह । तद्य था। पृथिवीयोनिकैर्वृक्षैर्वृक्षयोनिकैर्वृक्षैस्तथा वृक्षयोनिकैर्मूलादिभिरिति । एवं वृक्षयोनिकै रध्यारुहैस्तथाध्यारुहयोनिकैर्मूलादिभिरिति । एवमन्येपि तृणादयोऽद्रष्टव्याः । एवमुद कयोनिकेष्वपि वृक्षेषु योजनीयं ॥१९॥ तदेवं पृथिवीयोनिकवनस्पतेरुदकयोनिकवनस्प तेश्च भेदानुपदर्श्याऽधुना तदनुवादेनोपसंजिघृक्षुराह । (तेजीवाइत्यादि) ते वनस्पति पूत्पन्नाजीवाः पृथिवीयोनिकानां तथोदकवृक्षाध्यारुहतृणौषधिहरितयोनिकानां वृक्षाणां यावत्स्नेहमाहारयंतीत्येतदाख्यातमिति। तथा त्रसानां प्राणिनां शरीरमाहारयंत्येतदवसा ने द्रष्टव्यमिति । तदेवं वनस्पतिकायिकानां सुप्रतिपाद्यचैतन्यानां स्वरूपमभिहितं । शे षाः पृथ्वीकायादयश्चत्वारएकेंद्रियावक्तरत्र प्रतिपादयिष्यंते ॥ २० ॥

अहावरं पुरक्खायं णाणाविहाणं मणुस्साणं तंजहा कम्मभूमगाणं अकम्म भूमगाणं अंतरदीवगाणं आरियाणं मिलुक्खयाणं तेसिंचणं अहाबीएणं अहावकासेणं इत्थीए पुरिस्ससयं कम्मकडाए जोणिए एत्थणं मेहुणवत्ति

याएव णामं संजोगे समुप्पज्जइ ते डुहन्नवि सिणेहं संचिणंति तबणं जीवा इत्थित्ताए पुरिसत्ताए णपुंसगत्ताए विनुटंति ते जीवा माउनयं पिउसुक्कं तं तडुनयं संसट्ठं कलुसं किव्विसं तं पढमत्ताए आहारमाहारेंति ततो पग जं से माया णाणाविहाउ रसविईउ आहारमाहारेंति ततो एगदेसेणं उय माहारेंति आणुपुव्वेण वुड्ढा पलिपागमणुविन्ना ततोकायातो अन्निनिवट्ट माणा इत्थिं वेगया जणयंति पुरिसं वेगया जणयंति णपुंसगं वेगया जणयं ति ते जीवा म्हरा समाणा माउक्खीरं सप्पिं आहारेंति आणुपुव्वेणं वुड्ढा उ यणं कुम्मासं तसथावरेय पाणे ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव सा रूवि कडं संतं अवरेवियणं तेसिं णाणाविहाणं मणुस्सगाणं कम्मनूम गाणं अकम्मनूमगाणं अंतरद्दीवगाणं आरियाणं मिलक्खूणं स रीरा णाणावण्णा नवंतीतिमक्खायं ॥ ११ ॥

अर्थ–हवे त्रसकायनो अवसर बे. ते त्रसकाय तो एक नारकी, बीजा तिर्यंच, त्रीजा मनुष्य, अने चोथा देवता, ए चार प्रकारे बे. तेमांहें नारकी अप्रत्यक्ष पणे अनुमान ग्राह्य जाणवा. अथवा डुष्कृत कर्मनां जे फल तेना नोगवनार बे, तेने आहार पण, एकांते अशुन पुजल थकी नीपनो उज थकीबे, पण प्रक्षेप थकी नथी, अने देवता पण हमणां प्रायः अनुमानगम्यबे, तेनो आहार एकांत शुनबे, तेनो पण उजाहारबे. परंतु प्रक्षेपकृत नथी. देवतानो आहार बे प्रकारेबे. एक आनोगिक बीजो अनानोगि क, तेमां जे अनानोगिक ते समय समयपर बे अने आनोगिक ते, जघन्यथीतो चतुर्थ नक्तें आहार, अने उत्कृष्ट तेत्रीश हजार वर्षें आहारबे. हवे तिर्यंच अने मनुष्य मांहें प्रथम मनुष्यनुं स्वरूप कहेबे. अथ हवें बीजुं अन्य स्थानक श्री तीर्थंकर देवें प रापूर्वें कह्युंबे. आ जगत् मांहें नाना प्रकारनां मनुष्यबे, एक आर्य, एक अनार्य, एक पन्नर कर्म नूमीनां उपनां, एक त्रीश अकर्म नूमीनां उपना, एक अंतर द्वीपनां उप नां, एक आर्य, एक म्लेब बे. (तेसिंचणंअहाबीएणं के०) तेनें यथा बीजें करी एटले स्त्री पुरुष नपुंसकने नेदें करी, जे जेनुं बीज ते यथा बीज, तेणें करी, तथा यथावकाशें एटले मातानी कुक्ष्यादिक जेम वाम कुक्षें स्त्री उपजे, दक्षिण कुक्षें पुरुष उपजे, अने वाम दक्षिणाश्रित नपुंसक उपजे,इत्यादिक यथावकाशें करी,(इत्थीएपुरिसस्सयंके०) स्त्री पुरुषना वेदनो उदय बते (कम्मकडाएजोणिएणं के०) पूर्वकर्म निर्मित योनिने विषे (एबणंमेहुण वत्तियाएवणामंके०) आहीं मैथुन प्रत्ययिक नाम अरणी अने काष्ठनी पेठें(संजोगेसमुपज्जइ

के०) संयोग उपजे. ते संयोग उपने छते त्यां जीव. तैजस कार्मण शरीरें करी उपजे. (तेदुह उविसिणेहंसंचिणंतिके०) ते जीव उपजतां छतां प्रथम समयें बेहुनो स्नेह संचिणे एट ले आहारे, ते आहारीने, (तछणंजीवा के०) त्यां ते जीव (इछित्ताएपुरिसत्ताएणपुंसग त्ताएविउट्टंति के०) स्त्री, पुरुष अथवा नपुंसक पणे उपजे. (तेजीवामाउउयंपिउसुक्कंतं के०) तेजीव माता संबंधि रक्त, अने पिता संबंधि शुक्र, ते (तदुभयंसंसहं के०) बेहु मिश्रित एकठुं मलेलुं डुगछनिक (कलुसंकिब्बिसंके०) कलुष मलीन बीभत्स (तंपढमत्ताए के०) तेनो, प्रथम समयने विषे (आहारमाहारेंति के०) आहार आहारे. (ततोप छा के०) त्यार पछी, (जंसेमाया के०) जे तेनी माता (णाणाविहाउरसविईउ आहारमाहारेंति के०) नाना प्रकारना रसवाला आहार आहारे, (ततोएगदेसेणंउय माहारेंतिके०) तेवार पछी तेनो एक देशे उज आहार आहारे. (आणुपुव्वेणवुड्ढापलिपा गमणुविन्नाके०) ते स्नेहें करी ते जीवनी अनुक्रमें निष्पति उपजे. एवा अनुक्रमें वृद्धियें पहोंते छते (ततोकायातोअभिनिवट्टमाणाके०) तेवार पछी तेनी काया थकी एटले तेनी योनि थकी निकले (इछिवेगयाजणयंतिके०) ते एक स्त्री थइ निकले, (पुरिसंवेगयाज णयंति के०) एक पुरुष थइ निकले, (णपुंसगंवेगयाजणयंति के०) एक नपुंसक थइ निकले, (तेजीवाडहरासमाणाके०) ते जीव बालक थका (माउक्खीरंसप्पिआहारेंतिके०) माताना स्तननुं दुग्ध आहारे तथा मोटो थाय त्यारे घृत आहारे. तेवार पछी (आणुपुव्वे णंवुड्ढाके०) अनुक्रमें वधता थका (उयणंकुम्मासंतसथावरेयपाणेतेजीवाआहारेंति के०) उदन चावलादिक अडदादिक तथा त्रस अने स्थावर प्राणी पण आहारे. (पुढविसरीरं के०)पृथ्वीनुं शरीर जे लवणादिक ते आहारे.ते आहार्यो छतो (जावसारूविकडंसंतंके०) पोताना शरीर सरखो करे, एटले पोतानी काया रूप करे, एटले ते आहार धातु पणे परिणमावे. (अवरेवियणंतेसिं के०) तथा बीजा पण तेने (णाणाविहाणं के०) नाना प्रकारना (मणुस्सगाणं के०) कर्मनूमीने विषे उपना एवा मनुष्यनां, अकर्मनूमी ना मनुष्यनां, अंतरद्वीपना मनुष्यनां, आर्य मनुष्यना, म्लेछ मनुष्यनां, शरीर, नाना प्रकारना वर्ण गंध रस स्पर्शे करी सहित थकां, एवां पोताना कर्मने वशें उपजे. इत्या दिक पूर्ववत् यावत् श्रीतीर्थंकर गणधरें कह्युं ॥ २१ ॥

॥ दीपिका—अथ त्रसकायेषु पूर्वं मनुष्यानाह । अथापरमाख्यातं । नानाविधानां म नुष्याणां स्वरूपमुक्तमित्यर्थः । तद्यथा । कर्मनूमिजाइत्यादिमनुष्याणां (यथाबीजेनेति) यद्यस्य बीजं तत्र शुक्राधिकं नरस्य शोणिताधिकं स्त्रियाः उनयसमता नपुंसकस्य कारणमि ति । यथावकाशेनेति । योयस्यावकाशोमातुरुदरकुक्षिप्रमुखस्तत्र वामा कुक्षिः स्त्रियाः, द

क्षिणा नरस्य, उभयाश्रिता षंढस्येति। तत्र चाविध्वस्ता योनिरविध्वस्तं बीजं१ विध्वस्ता यो निर्विध्वस्तं बीजं२ विध्वस्ता योनिरविध्वस्तं बीजं ३ अविध्वस्ता योनिर्विध्वस्तं बीजं। चतुर्षु भंगेषु आद्यभंगएव उत्पत्तेरवकाशोन शेषेषु त्रिषु। अत्रच स्त्रीपुंसयोर्वेदोदये सति पूर्वकर्मकृतायां योनौ मैथुनप्रत्ययिकोरताभिलाषोदयजनितोऽग्निकारणयोररणिकाष्ठयोरिव संयोगोजायते तत्संयोगेच तच्छुक्रशोणिते तैजसकार्मणाभ्यां गृहीत्वा तत्रोत्पद्यंते जीवाः। (तेडुहत्तंति) ते जीवाः प्रथममुभयोरपि स्नेहमाचिन्वंति अविध्वस्तयोनौ। विध्वस्यते तु योनिः। पंचपंचाशिका नारी सप्तसप्ततिकः पुमानिति। द्वादशमुहूर्तान् यावद्बीजमविध्वस्तं स्यात् ततऊर्ध्वं ध्वंसयंति तत्र जीवाः कर्मवशतः स्त्रीपुंनपुंसकत्वेन (विउट्टंति) जायंते ते जीवामातुः ऋतुं शोणितं पितुः शुक्रं तत्तडुभयसंसृष्टं कलुषं किल्बिषं बीभत्सं तत्प्रथमतयाऽऽहारमाहारयंति ततः पश्चात्सेतस्य माता यन्नानाविधरसवंतमाहारमाहारयति तत्स्नेहेन तेषां जंतूनां वृद्धिः स्यात् ततस्तदेकदेशेन त्वगेकदेशेनवा मातुराहारमोजसा मिश्रेण वा लोमभिर्वाऽऽहारयति आनुपूर्व्येण यथाक्रमं पुष्टावृद्धिं प्राप्ताजीवागर्भपरिपाकं गर्भनिष्पत्तिमनुप्रपन्नास्ततोमातुः कायादभिनिवर्तमानाः पृथग्भवंतोनिर्गच्छंति। कर्मवशादात्मनः स्त्रीभावमेके जनयंति एके पुंभावं नपुंसकभावं वा तेच डहराबालाः संतोमातुः क्षीरं स्तन्यमाहारयंति वृद्धाःसंतः सर्पिर्घृतं धान्यमोदनं कुल्माषान् भुंजते नानाविधान् त्रसस्थावरान् प्राणिनोजीवान् आहारयंति। नानायोनिकजंतुशरीराण्याहारयंतीत्यर्थः। नानामनुष्याणां शरीराणि केचित्तद्योनिकत्वादाहारयंति इत्याख्यातं ॥२१॥

॥ टीका–सांप्रतं त्रसकायस्यावसरः सच नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवभेदभिन्नः। तत्र नारकाअप्रत्यक्षत्वेनानुमानग्राह्याडुष्कृतकर्मफलभुजः केचन संतीत्येवं ते ग्राह्याः। तदाहारोप्येकांतेनाशुभपुजलनिर्वर्तितउजसा प्रक्षेपेणेति। देवाअप्यधुना बाहुल्येनानुमानगम्याएव तेषामप्याहारः शुभएकांतेनोजोनिवर्तितोन प्रक्षेपकृतइति। सचाऽभोगनिवर्तितोनाभोगकृतश्च। तत्र नाभोगकृतः प्रतिसमयभावी आभोगकृतश्च जघन्येन चतुर्भक्तकृतउत्कृष्टतस्तु त्रयस्त्रिंशद्वर्षसहस्रनिष्पादितइति। शेषास्तु तिर्यङ्मनुष्यास्तेषांच मध्ये मनुष्याणामभ्यर्हितत्वात्तानेव प्राग्दर्शयितुमाह। (अथावरं पुरस्कायमित्यादि) अथानंतरमेव तु पुरा पूर्वमाख्यातं। तद्यथा। आर्याणामनार्याणां च कर्मभूमिजाऽकर्मभूमिजादीनां मनुष्याणां नानाविधयोनिकानां स्वरूपं वक्ष्यमाणनीत्या समाख्यातं। तेषांच स्त्रीनपुंसकभेदभिन्नानां यथा बीजेनेति। यद्यस्य बीजं तत्र स्त्रियाः संबंधि शोणितं पुरुषस्य शुक्रं एतडुभयमप्यविध्वस्तं शुक्राधिकं सन्मनुष्यस्य, शोणिताधिकं स्त्रियास्तत्समता नपुंसकस्य कारणतां प्रतिपद्यते तथा यथावकाशेनेति। योयस्यावकाशोमातुरुदरकुक्ष्यादिकस्तत्रापि

किल वामा स्त्रियोदक्षिणा कुक्षिः पुरुषस्योनयाश्रितः षंढइति। अत्र चाविध्वस्ता योनिरविध्वस्तं बीजमिति चत्वारोनंगाः। तत्राप्याद्यएव नंगकउत्पत्तेरवकाशोन शेषेषु त्रिष्विति। अत्रच स्त्रीपुंसयोर्वेदोदये सति पूर्वकर्मनिर्वर्तितायां योनौ मैथुनप्रत्यायिकोरतानिलाषोदयजनितोऽग्निकारणयोररणिकाष्ठयोरिव संयोगः समुत्पद्यते तत्संयोगेच तच्छुक्रशोणिते समुपादाय तत्रोत्पित्सवोजंतवस्तैजसकार्मणाभ्यां शरीराभ्यां कर्मरज्जुसंदानितास्तत्रोत्पद्यंते। तेच प्रथममुनयोरपि स्नेहमाचिन्वंत्यविध्वस्तायां योनौ सत्यामिति। विध्वस्यते तु योनिः पंचपंचाशिका नारी सप्तसप्ततिः पुरुषइति। तथा द्वादशमुहूर्तानि यावच्छुक्रशोणिते अविध्वस्तयोनिके नवतस्ततऊर्ध्वं ध्वंसमुपगच्छतइति। तत्र जीवाउनयोरपि स्नेहमाहार्य स्वकर्मविपाकेन यथास्वं स्त्रीपुन्नपुंसकनावेन (विउट्टंतित्ति) वर्तंते समुत्पद्यंतइति यावत्। तडत्तरकालं च स्त्रीकुक्षौ प्रक्षिप्ताः संतः स्त्रियाऽऽहारितस्याहारस्य निर्यासं स्नेहमाददति तत्स्नेहेनच तेषां जंतूनां क्रमोपचयादानेन क्रमेण निष्पत्तिरुपजायते। सत्ताहं कललं होइ सत्ताहं होइ बुब्बुयं इत्यादि। तदेवमनेन क्रमेण तदेकदेशेनवा मातुराहारमोजसा मिश्रेणवा लोमभिर्वाऽऽनुपूर्व्येणाहारयंति यथाक्रममानुपूर्व्येण वृद्धिमुपागताः संतोगर्नपरिपाकं गर्ननिष्पत्तिमनुप्रपन्नास्ततोमातुः कायादभिनिवर्तमानाः पृथग्नवंतः संतस्तद्योनेर्निर्गच्छंति। तेच तथाविधकर्मोदयादात्मनः स्त्रीनावमप्येकदा जनयंत्युत्पादयंत्यपरे केचन पुंनावं नपुंसकनावंच। इदमुक्तं नवति। स्त्रीपुंनपुंसकनावः प्राणिनां स्वकृतकर्मनिर्वर्तितो नवति न पुनर्योयादृगिहनवे सोमुष्मिन्नेव तादृगेवेति। तेच तदहर्जातबालकाः संतः पूर्वनवाभ्यासादाहारानिलाषिणोनवंति मातुः स्तन्यमाहारयंति तदाहारेण चानुपूर्व्येण च वृद्धास्तडत्तरकालं नवनीतदध्योदनादिकं यावत्कुल्माषान् नुंजंते तथाहारत्वेनोपगतास्त्रसास्थावरांश्च प्राणिनस्ते जीवाआहारयंति तथा नानाविधंपृथिवीशरीरं लवणादिकं सचेतनंवाऽऽहारयंति तच्चाहारितमात्मसात्कृतं सारूप्यमापादितं सत् रसासृङ्मांसमेदोस्थिमज्जाशुक्राणि धातवइति सप्तधा व्यवस्थापयंत्यपराण्यपि तेषां नानाविधमनुष्याणां शरीराणि नानावर्णान्याविर्नवंति। तेच तद्योनिकत्वात्तदाधारनूतानि नानावर्णानि शरीराण्याहारयंतीत्येवमाख्यातमिति ॥ २१ ॥

अहावरं पुरक्खायं णाणाविहाणं जलचराणं पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं तंजहा मच्छाणं जाव सुसमाराणं तेसिंचणं अहाबीएणं आहावगासेणं इच्छीए पुरिसस्सयकम्मकडा तहेव जाव ततो एगदेसेणं उयमाहारेंति आणुपुवेणं. वुड्ढा पलिपागमणुविन्ना ततोकायाउ अन्निनिवट्टमाणा अंडं वेगया जणयंति पोयं वेगया जणयंति से अंडे उप्रिज्जमाणे इच्छिं वेगया

जणयंति पुरिसं वेगया जणयंति नपुंसगं वेगया जणयंति ते जीवा मदरा समाणा आउसिणेहमाहारेंति आणुपुवेणं वुड्ढा वणस्सतिकायं तसथा वरेयपाणे ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं ते सिं णाणाविहाणं जलचरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं मच्छाणं सुसुमा राणं सरीरा णाणावण्णा जावमक्खायं ॥ २२ ॥

अर्थ—हवे अनेरुं स्थानक परापूर्वें तीर्थंकरें कह्युंछे. आ जगत् मांहें नाना प्रकारना जलचारी पंचेंद्रिय तिर्यंच योनिक जीवछे, ते कहेछे. माछलां,कच्छप, मगरमच्छ, नक्र, चक्र, पाठीन. पीठ, ग्राह्क, सुसुमारादिक, तेने यथाबीजें करी स्त्रियादिकना नेदें करी, यथावकाश एटले मातानी कुक्षादिक जेम वाम कुक्षें स्त्री उपजे, इत्यादिक यथावकाशें करी स्त्री पुरुषादिक वेदने उदयें कर्म निवर्त्तित पूर्वयोनिने विषे, अहीं मैथुन प्रकृतिय नाम अरणीय काष्टनी पेरें संयोगें उपजे. (तहेव के०) तेमज यावत् ते जीव माता नी कुक्षियें उपना पछी एक देशें उज आहारे, अनुक्रमें वृद्धिये पोहोतो छतो तेवार पछी ते काया थकी एटले योनिथकी कालें करी निकले, निकलता थका त्यां एक जण अंम रूप, एक पोत रूप, त्यां अंमथकी उद्भिद्यमान ते स्त्री पुरुष नपुंसक पणे उपजे; ते जीव बालक छतां अप्कायनो स्नेह आहारे. पछी अनुक्रमें वर्द्धमान थका एटले वृद्धि पाम्या थका वनस्पतिकायनुं शरीर तथा त्रस अने स्थावर प्राणीने आहारे. ते जीव पृथ्वीनुं शरीर आहारे यावत् पोतानी काया सरखां रूप करे. अन्य पण ते नाना प्रकारें जलचर पंचेंद्रिय तिर्यंच योनिक यावत् सुसुमारना सरखा रूप करे ते कर्मने वशें उपजे, ते नाना प्रकारना वर्ण गंध रस स्पर्शवान् थाय. एम श्री तीर्थंकरें कह्युं ॥ २२ ॥

॥ दीपिका—गर्नजमनुष्याउक्ताः संमूर्छनजाश्चाग्रे वक्ष्यंते सांप्रतं तिर्यग्योनिकास्तत्रापि पूर्वं जलचरानाह । अथापरं तिर्यग्योनिकानां जलजरपंचेंद्रियाणां स्वरूपमाख्यातं प्रथमं मत्स्यकच्छपमकरग्राहसुशुमारादीनां यस्य यद्बीजं यस्योदराद्यवकाशोयस्तेन स्त्रियाः पुरुपस्य च कर्मकृतायां योनौ जायंते । तेच तत्र मातुराहारेण वृद्धाः स्त्रीपुंनपुंसकानामन्यतमत्वेन जायंते गर्नेनिर्गताबालाः संतो ऽपांस्नेहमप्कायमेवाहारयंति । वृद्धास्तु वनस्पतिकायं अन्यान् त्रसस्थावरांश्च यावत्पंचेंद्रियानपि आहारयंति । यदुक्तं । अस्ति मत्स्यस्तिमिर्नाम अस्तिमत्स्यस्तिमिंगिलः । तिमिंगिलगिलोप्यस्ति तद्गिलोप्यस्ति राघव ! । तथा ते जीवाः पृथ्वीशरीरं कर्दमस्वरूपमाहारयंति तच्चाऽऽहारितं सत्समानरूपीकृतं आत्मसात्परिणामियंति । शेषं सुगमं ॥ २२ ॥

॥ टीका—एवं तावज्जर्नव्युत्क्रांतजमनुष्याः प्रतिपादितास्तदनंतरं संमूर्छनजानामवसरस्तांश्चोत्तरत्र प्रतिपादयिष्यामि सांप्रतं तिर्यग्योनिकास्तत्रापि जलचरानुद्दिश्याह । (अहावरमित्यादि) अथानंतरमेतद्वक्ष्यमाणं पूर्वमाख्यातं । तद्यथा । नानाविधजलचरपंचेंद्रियतिर्यग्योनिकानां संबंधिनः कांश्चित्स्वनामग्राहमाह । तद्यथा । (मह्लाणंजावसुसुमाराणमित्यादि) तेषां मत्स्यकछपमकरग्राहसुषुमारादीनां यस्य यथा यद्बीजं तेन तथा यथावकाशेन योयस्योदरादावकाशस्तेन स्त्रियाः पुरुषस्यच स्वकर्मनिवर्तितायां योनावुत्पद्यंते । तेच तत्राभिव्यक्तामातुराहारेण वृद्धिमुपगताः स्त्रीपुंनपुंसकानामन्यतमेनोत्पद्यंते तेच जीवा जलचरागर्भाद्व्युत्क्रांताः संतस्तदनंतरं यावद्भहरंतिलघवस्तावदप्स्नेहमप्कायमेवाहारयंति । आनुपूर्व्येणच वृद्धाः संतोवनस्पतिकायं तथापरांश्च त्रसांस्थावरांश्चाहारयंति यावत्पंचेंद्रियानप्याहारयंति । तथा चोक्तं । अस्ति मत्स्यस्तिमिर्नाम शतयोजनविस्तरः॥तिमिंगिलगिलोप्यस्ति, तग्लिलोप्यस्ति राघव!॥१॥ तथा ते जीवाः पृथिवीशरीरं कर्दमस्वरूपं क्रमेण वृद्धिमुपगताः संतआहारयंति तच्चाऽऽहारितं सत्समानरूपीकृतमात्मसात्परिणामयंति शेषं सुगमं । यावत्कर्मोपगतानवंतीत्येवमाख्यातं ॥ २२ ॥

अहावरं पुरक्खायं णाणाविहाणं चउप्पयथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं एगखुराणं डुखुराणं गंमीपदाणं सणप्पयाणं तेसिंचणं अहाबीएणं अहावगासेणं इत्थिपुरिसस्सयकम्मजाव मेहुणवत्तिए णामं संजोगे समुपज्जइ ते डुहउ सिणेहं संचिणंति तत्थणं जीवा इत्थित्ताए पुरिसत्ताए जाव विउट्टंति ते जीवा माउउयं पिउसुक्कं एवं जहा मणुस्साणं इत्थिंवि वेगया जणयंति पुरिसंपि नपुंसगंपि तेजीवा मृहरा समाणा माउक्खीरं सप्पिं आहारेंति आणुपुव्वेणं वुड्ढा वणस्सइकायं तसथावरेयपाणे ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं णाणाविहाणं चउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं एगखुराणं जाव सणप्पयाणं सरीरा णाणावण्णा जावमक्खायं ॥२३॥

अर्थ—हवे अन्य स्थानक तीर्थकरें कह्युंछे. आ जगत् मांहे नाना प्रकारना चतुष्पद स्थलचर पंचेंद्रिय तिर्यंच योनिया जीवछे, ते कहेछे. एक खुर ते अश्वादिक, द्विखुर ते गो महिष वृषभादिक , गंमीपद ते हस्त्यादिक, तथा षट्पद ते सिंह व्याघ्रादिक, ते यथा बीजें यथावकाशें इत्यादिक पूर्वनी पेठें ते जीवोनी उत्पत्ति जाणवी. ते जीव उप

जतां मातानुं रक्त अने पितानुं शुक्र इत्यादिक आहारे. एम मनुष्यनी पेठें एक स्त्री, एक पुरुष, एक नपुंसक थाय. ते जीव बालक छतां मातानुं दुग्धादिक आहारे, पछी अनुक्रमे वधता वनस्पतिकाय अने त्रस स्थावर प्राणिनो आहार करे. इत्यादिक ते स्थलचारि चतुष्पदनां शरीर नाना प्रकारना वर्ण गंध रस स्पर्शवान् कर्मने वशें थाय इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं. ॥ २३ ॥

॥ दीपिका–अथस्थलचरानाह । अथापरमाख्यातं नानाविधानां चतुष्पदानां स्वरूपं । तद्यथा । एकखुराणामश्वखरादीनां द्विखुराणां गोमहिष्यादीनां गंमीपदानां हस्तिगंडकादीनां सनखपदानां सिंहव्याघ्रादीनां यथाबीजेन यथावकाशेन सर्वपर्याप्तिमवाप्य उत्पद्यंते उत्पन्नाश्च मातुः स्तन्यमाहारयंति वृद्धिं प्राप्ताः परेषां शरीरमप्याहारयंति । शेषं सुगमं ॥ २३ ॥

॥ टीका–सांप्रतं स्थलचरानुद्दिश्याह । (अहावरमित्यादि) अथापरमेतदाख्यातं नानाविधानां चतुष्पदानां तद्यथा एकखुराणामित्यश्वखरादीनां तथा द्विखुराणां गोमहिष्यादीनां तथा गंमीपदानां हस्तिगंमकादीनां तथा सनखानां सिंहव्याघ्रादीनां यथाबीजेन यथावकाशेन सकलपर्याप्तिमवाप्योत्पद्यंते तथोत्पन्नाः संतस्तदनंतरं मातुः स्तन्यमाहारयंतीति । क्रमेणच वृद्धिमुपगताः संतोपरेषामपि शरीरमाहारयंति शेषं सुगमं । यावत्कर्मोपगताभवंतीति ॥ २३ ॥

अहावरं पुरकायं णाणाविहाणं उरपरिसप्पथलयरपांचेंदियतिरिरकजोणियाणं तंजहा अहीणं अयगराणं असालियाणं महोरगाणं तेसिंचणं अहाबीएणं अहावगासेणं इडीए पुरिस जावएडणं मेहुणे एवं तं चेव नाणत्तं अंमं वेगइया जणयंति पोयं वेगइया जणयंति से अंमे उप्भिज्जमाणे इडिं वेगइया जणयंति पुरिसंपि णपुंसगंपि ते जीवा मह रा समाणा वाउकायमाहारेंति आणुपुवेणं वुड्ढा वणस्सइकायं तसथावरपाणे ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं णाणाविहाणं उरपरिसप्पाथलयरतिरिरकापांचिंदियअहीणं जाव महोरगाणं सरीरा णाणावणा णाणागंधा जावमरकायं ॥ २४ ॥

अर्थ–हवे अनेरुं स्थानक परापूर्वें तीर्थंकरें कह्युंछे. आ जगत्मांहें नाना प्रकारे उरपरिसर्प स्थलचर पंचेंद्रिय तिर्यंच योनियाछे. ते कहेछे. अही सर्प, अजगर सर्प, अ

सालिया सर्प्प, महोरग तथा हजार योजन प्रमाण शरीर वाला, इत्यादिक जीव छे. तेने यथा बीजें यथावकाशें इत्यादिक पूर्ववत् ते जीवनी उत्पत्ति जाणवी. एक अंमरूप निपजे, एक पोतरूप नीपजे, ते ते अंमथकी उद्भिद्यमान पुरुष, स्त्री, अने नपुंसक थाय. ते जीव बालक थका वायुकाय आहारे. पछी अनुक्रमें वधता थका वनस्पति काय तथा त्रस स्थावर प्राणी आहारे. इत्यादिक सर्वे पूर्ववत् जाणवुं ॥ २४ ॥

॥ दीपिका—अथ उरःपरिसर्प्पानाह । उरःपरिसर्प्पाअहिप्रमुखाअंमजत्वेन पोतजत्वे नवा गर्नान्निर्गछंति तेच निर्गतामातुरूष्माणं वायुं चाहारयंति तेषां च जातिविशेषात्तेनैवाहारेण वृद्धिर्जायते । शेषं सुगमं ॥ २४ ॥

॥ टीका—सांप्रतमुरःपरिसर्पानुद्दिश्याह । (अहावरमित्यादि) नानाविधानां बहुप्रकाराणामुरसा ये प्रसर्प्पंति तेषां । तद्यथा अहीनामजगराणामाशालिकानां महोरगाणां यथावकाशेन यथाबीजत्वेन चोत्पत्त्यांमजत्वेन पोतजत्वेनवा गर्नान्निर्गछंतीति । तेच निर्गता मातुरूष्माणं वायुं चाहारयंति तेषां जातिप्रत्ययेन तेनैवाहारेण क्षीरादिनैव वृद्धिरुपजायते । शेषं सुगमं यावदाख्यातमिति ॥ २४ ॥

अहावरं पुरक्कायं णाणाविहाणं नुयपरिसप्पथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं तंजहा गोहाणं नउलाणं सिहाणं सरडाणं सल्लाणं सरघाणं खाराणं घरकोइलियाणं विस्संन्नराणं मुसगाणं मंगुसाणं पयलाइयाणं बिरालियाणं जोहाणं चउप्पाइयाणं तेसिंचणं अहाबीएणं अहावगासेणं इछिए पुरिसस्सय जहा उरपरिसप्पाणं तहान्नाणियवं जाव सारूवि कडं संतं अवरेवियणं तेसिं णाणाविहाणं नुयपरिसप्पपंचिंदियथलयरतिरिक्खाणं तं गाहाणं जावमक्खायं ॥ २५ ॥

अर्थ—हवे अनेरुं स्थानक परापूर्वें श्रीतीर्थंकरें कह्युंछे. आ जगत् मांहें नाना प्रकारे नुजपरि सर्प्प स्थलचर पंचेंद्रिय तिर्यंच योनिक छे ते कहेछे. गोहजाति, नोलिउ, सिहल, सरड किरकाटीया प्रमुख, सल्लगा, सरवा, खारा, जीवविशेष घरकोइला, एटले गिलोइ, विसंन्नरा एटले उपका, मुसक एटले उंदर, खसकला पयालि, विरालि एवीरीतें चतुष्पद नुजपरिसर्प्प जीवविशेष छे ते जीवोनी उत्पत्ति यथा बीजें करी यथावकाशें करी

इत्यादिक जेम पूर्वे उरःपरिसर्पनो विचार कह्यो तेम जाणवो. ते जीव अनुक्रमे वधता थका पृथ्व्यादिकनो आहार करे. इत्यादिक सर्व अर्थ पूर्ववत् जाणवो. ॥ २५ ॥

॥ दीपिका—भुजपरिसर्प्पानाह। भुजपरिसर्प्पाणां गोधानकुलादीनां यथाबीजेन यथावकाशेनोत्पत्तिः स्यात्। तेच अंडजत्वेन पोतजत्वेन वा उत्पन्नामातुरूष्मणा वायुना चाऽऽहारितेन वृद्धिं यांति। शेषं सुगमं ॥ २५ ॥

॥ टीका—सांप्रतं भुजपरिसर्पानुद्दिश्याह (अहावरमित्यादि) नानाविधाभ्यां भुजाभ्यां ये परिसर्प्पंति तेषां। तद्यथा। गोधानकुलादीनां स्वकर्मोपात्तेन यथाबीजेन यथावकाशेन चोत्पत्तिर्भवति। ते चांडजत्वेन पोतजत्वेन चोत्पन्नास्तदनंतरं मातुरूष्मणा वायुना वा हारितेन वृद्धिमुपयांति। शेषं सुगमं यावदाख्यातमिति ॥ २५ ॥

अहावरं पुरक्खायं णाणाविहाणं खहचरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं तंजहा चम्मपक्खीणं लोमपक्खीणं समुग्गपक्खीणं विततपक्खीणं ते सिंचणं अहाबीएणं अहावगासेणं इत्थीए जहा उरपरिसप्पाणं नाणत्तं ते जीवा डहरा समाणा माउगात्त सिणेह माहारेंति आणुपुवेणं वुड्ढा वणस्सतिकायं तसथावरेय पाणे ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं णाणाविहाणं खहचरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं चम्मपक्खीणं जावमक्खायं ॥ २६ ॥

अर्थ—हवे अनेरुं स्थानक श्री तीर्थंकरें कह्युं छे. आ जगत् मांहे नाना प्रकारें खेचर पंचेंद्रिय तिर्यंचछे, ते कहेछे. चर्मपक्षी ते वल्गुली प्रमुख, लोमपक्षी ते सारस राजहंसादिक, तथा समुद्गपक्षी अने विततपक्षी ए बे जाति, मनुष्य क्षेत्र थकी बाहेर जाणवी. ते खेचर जातिने यथाबीजें यथावकाशें जेम उरःपरिसर्प्पनी पूर्वें उत्पत्ति कही, तेमज ए जीवनी पण उत्पत्ति जाणवी. ते जीव बालक छता मातानो स्नेह आहारे. इत्यादिक आलावो सर्व पूर्ववत् जाणवो. ॥ २६ ॥

॥ दीपिका—अथ खेचरानाह। खेचराणामुत्पत्तिरेवं ज्ञेया। तद्यथा। चर्मपक्षिणां चर्मकीटवल्गुलीचर्मचटकादीनां लोमपक्षिणां सारसराजहंसकाकबकादीनां समुद्गपक्षिणोविततपक्षिणश्च बहिर्द्वीपवार्तिनस्तेषां यथाबीजेन यथावकाशेन चोत्पन्नानामेवमाहारः स्यात्। सा पक्षिणी तदंडकं स्वपक्षाभ्यामावृत्य तावत्तिष्ठति यावत्तदंडकं तद्रू

ष्मणाऽऽहारितेन वृद्धिं प्राप्तं सत् कललावस्थां त्यक्त्वा चंचूप्रमुखान् अवयवान्निष्पाद्य भेदं याति (माउगात्तसिणंति) मातृगात्रोष्माणमित्यर्थः । ततः पश्चादपि जननीसमानीतेनाहारेण वृद्धिं प्राप्नोति । शेषं प्राग्वत् ॥ २६ ॥

॥ टीका–सांप्रतं खेचरानुद्दिश्याह । अहावरमित्यादि) नानाविधानां खेचराणामुत्पत्तिरेवं द्रष्टव्या । यथा चर्मपक्षिणां चर्मकीटवल्गुलीप्रभृतीनां तथा लोमपक्षिणां सारसराजहंसकाकबकादीनां समुद्गपक्षिविततपक्षिणां बहिर्द्वीपवर्तिनामेतेषां यथाबीजेन यथावकाशेन चोत्पन्नानामाहारक्रियैवमुपजायते । तद्यथा । सा पक्षिणी तदंडकं पक्षाभ्यामावृत्य तावत्तिष्ठति यावत्तदंडकं तदूष्मणाहारितेन वृद्धिमुपगतं सत् कललावस्थां परित्यज्य चंच्वादिकानवयवान् परिसमापय्य भेदमुपयाति तदुत्तरकालमपि मात्रोपनीतेनाहारेण वृद्धिमुपयाति । शेषं प्राग्वत् ॥ २६ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता णाणाविहजोणिया णाणाविहसंभवा णाणाविहवुक्कमा तज्जोणिया तस्संभवा तदुवुक्कमा कम्मोवगा कम्मणियाणेणं तत्र वुक्कमा णाणाविहाणं तसथावराणं पोग्गलाणं सरीरेसुवा सचित्तेसुवा अचित्तेसुवा अणुसूयत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सिणेहमाहारेंति तेजीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं तसथावरजोणियाणं अणुसूयगाणं सरीरा णाणावण्णा जावमक्खायं ॥ २७ ॥

अर्थ–हवे पूर्वे कह्यो जे मनुष्य तथा तिर्यंचनो अधिकार तेथकी अपर एटले बीजुं स्थानक तीर्थंकरें कह्युं छे. आ जगत् मांहे कोइ एक जीव कर्मने उदयें वर्त्तता नानाविध योनिया पोताना करेलां कर्मने विशेषें नानाविध संभवछे. नानाविधना आव्या छता ते जोणिया ते संभव तदुपक्रम कर्मना वशंगत कर्मने कारणे आकर्षिता त्यां आव्या छता, नाना प्रकारना त्रस अने स्थावर जीवोना पुद्गलने विषे,शरीरने विषे, सचित्तने विषे,अचित्तने विषे,अपर शरीरनी निश्रायें उपजे.ते विकलेंद्रिय जीव जाणवा अहीं सचित्त ते मनुष्यादिकना शरीरने विषे जू लीख,इत्यादिक नावें उपजे.तथा अचित्त ते मनुष्यने परिभुज्यमाण एवा मंचादिकने विषे मांकडादिकने नावें उपजे.ते जीव उपना थका ते नाना प्रकारना त्रस अने स्थावर प्राणीना स्नेह आहारे. ते जीव पृथ्वीनुं शरीर आहारीने, यावत् पोतानी काया सरखां रूप करे. अनेरा पण ते त्रस अने स्थावर योनिक अपर शरीरनी

निश्रायें विकलेंड्रियने जावें उपजे. तेनां शरीर नाना प्राकारना वर्ण गंध रस अने स्प र्श वालां जाणवां. एम यावत् तीर्थंकरें कह्युं ॥ २७ ॥

॥ दीपिका—उक्ताः पंचेंड्रियामनुष्यास्तिर्यंचश्च । अथ विकलेंड्रियानाह । अथापरमा ख्यातं । इहैके सत्वाः कर्मणा तत्रोत्पत्तिस्थाने उपक्रम्य आगत्य नानाविधत्रसस्थावराणां शरीरेषु सचित्तेषु अचित्तेषुवा (अणुसूयत्ताएत्ति) अन्यशरीराश्रिततया परनिश्रयाविवर्तंते उत्पद्यंतइत्यर्थ. । तेच विकलेंड्रियाः सचित्तेषु मनुष्यादिशरीरेषु यूकालिक्षादिकत्वेन जायंते नरभुज्यमानेषु मंचकादिषु अचित्तेषु मत्कुणत्वेनोत्पद्यंते तथा नरशरीरेषु विकलेंड्रियश रीरेषु वा सचित्ताचित्तेषु ते जीवा (अणुसूयत्ताएत्ति) अनुस्यूतत्वेन परिनिश्रयाकृम्यादित्वेन जायंते । केचित्सचित्तेऽग्नौ मूषिकादितया यत्र चाग्निस्तत्र वायुरिति ते वायूद्भवाअपि ज्ञेयाः। पृथिवीमाश्रित्य कुंथुपिपीलिकादयोवर्षादौ ऊष्मणा संस्वेदजाजायंते उदके पूतरकाडो ध्नणकाभ्रमरिकादयः । वनस्पतिकाये पनकभ्रमरादयः एवं ते जीवास्तानि स्वयोनिशरीरा णि आहारयंतीत्याख्यातं ॥ २७ ॥

॥ टीका—व्याख्याताः पंचेंड्रियामनुष्यास्तिर्यंचश्च तेषां चाहारो द्वेधा । आभोगनिवर्ति ताऽनाभोगनिवर्तितश्च । तत्रानाभोगनिवर्तितः प्रतिक्षणभाव्यभोगनिवर्तितस्तु यथास्वं क्षु द्वेदनीयोदयभावीति । सांप्रतं विकलेंड्रियानुद्दिश्याह । (अहावरमित्यादि) अथानंतरमेतदा ख्यातमिहास्मिन् संसारे एके केचन तथाविधकर्मोदयवर्तिनः सत्वाः प्राणिनोनानाविधयो निकाः कर्मनिदानेन स्वकृतकर्मणोपादानभूतेन तत्रोत्पत्तिस्थाने उपक्रम्यागत्य नानाविधत्र सस्थावराणां शरीरेषु अचित्तेषु सचित्तेषुवा (अणुसुयत्ताएत्ति) अपरशरीराश्रिततया प रनिश्रयाविवर्तंते समुत्पद्यंते इति यावत् (तेच जीवाविकलेंड्रियाः सचित्तेषु मनुष्यादिश रीरेषु यूकालिक्षादिकत्वेनोत्पद्यंते तथा तत्परिभुज्यमानेषु मंचकादिष्वचित्तेषु मत्कुणत्वेना विर्भवंति तथाऽचित्तीभूतेषु मनुष्यादिशरीरकेषु विकलेंड्रियशरीरेषुवा ते जीवाअनुस्यूतत्वे न परनिश्रयाकृम्यादित्वेनोत्पद्यंते । अपरेतु सचित्ते तेजःकायादौ मूषिकादित्वेनोत्पद्यं ते । यत्र चाग्निस्तत्र वायुरित्यतस्तद्भवाअपि द्रष्टव्याः । तथा पृथिवीमनुश्रित्य कुंथुपिपी लिकादयोवर्षादावूष्मणा संस्वेदजाजायंते तथोदके पूतरकाडोध्नणकभ्रमरिकाछेदनकाद यः समुत्पद्यंते तथा वनस्पतिकाये पनकभ्रमरादयोजायंते । तदेवं ते जीवास्तानि स्वयो निशरीराण्याहारयंति इत्येवमाख्यातमिति ॥ २७ ॥

एवं डुरूवसंभवत्ताए ॥ २८ ॥

अर्थ—हवे पंचेंड्रियनां मल सूत्र मांहें उपजता एवा, जीव आश्री कहेछे. (एवंके०)

ए जेम सचित्ताचित्त शरीरनी निश्रायें विकलेंद्रिय जीव उपजेछे तेम, तेना मल, मूत्र, वमनादिकने विषे (डुरूव के०) विरूपरूप एटले कृम्यादिकने नावें उपजे, ते जीव तेणे विष्ठादिकने विषे उपना बता तेहिज आहार लीये. इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं ॥ २८ ॥

॥ दीपिका—अथ पंचेंद्रियमूत्रपुरीषोद्भवान् जीवानाह । (एवमित्यादि) एवं पूर्वोक्त प्रकारेण सचित्ताचित्तशरीरनिश्रयायथा विकलेंद्रियाजायंते । तथा तत्संनवेषु मूत्रपुरीष वांतादिषु परे जंतवोडुष्टं विरूपं रूपं येषां ते डुरूपास्तत्संनवत्वेन तद्भावेन जायंते। तेच विष्ठादौ शरीरान्निर्गते अनिर्गतेवा उत्पन्नास्तदेव विष्ठादिकमाहारयंतीति। शेषं प्राग्वत्॥ २८॥

॥ टीका—सांप्रतं पंचेंद्रियमूत्रपुरीषोद्भवानसुमतः प्रतिपादयितुमाह । (एवमित्यादि) एवमिति पूर्वोक्तपरामर्शः । यथा सचित्ताचित्तशरीरनिश्रयाविकलेंद्रियाः समुत्पद्यंते तथा तत्संनवेषु मूत्रपुरीषवांतादिषु अपरे जंतवोडुष्टं विरूपं रूपं येषां कृम्यादीनां ते डुरूपा स्तत्संनवत्वेन तद्भावेनोत्पद्यंते । तेच तत्र विष्ठादौ देहान्निर्गतेऽनिर्गतेवा समुत्पद्यमाना उत्पन्नाश्च तदेव विष्ठादिकं स्वयोनिभूतमाहारयंति । शेषं प्राग्वत् ॥ २८ ॥

एवं खुरडुगत्ताए ॥ २९ ॥

अर्थ—हवे सचित्त शरीरनी निश्रायें जे जीव उपजे ते आश्री कहेछे. (एवं के०) जेम मलमूत्रादिकने विषे जीवनी उत्पत्ति थायछे. तेम तिर्यंचना शरीरने विषे खुर एटले चर्मने विषे कीटकने नावें उपजे एटले गाय, नेंश प्रमुखना चर्म मांहे प्राणियो संमूर्छे, ते तेनुं चर्म मांस नक्षण करे, चर्में विवर करे, ते थकी जे अशुद्ध पुजल निकले तेज आहारे ; तथा अचित्त गवादिक शरीरने विषे पण जीव उपजे तथा सचित्ताचित्त वनस्पति शरीरने विषे पण घूण कीटकादिक संमूर्छे. ते उपजतां तेनुंज शरीर आहारे. इत्यादिक जाणवुं ॥ २९ ॥

॥ दीपिका—अथ सचित्तदेहाश्रयान् जंतूनाह । (एवंखुरुडुगत्ताएत्ति) यथा मूत्रविष्ठादावुत्पादस्तथा तिर्यग्देहेषु (खुरडुगत्तेत्ति) चर्मकीटत्वेन जायंते । तथाहि ।जीवतामेव गोमहिष्यादीनां चर्मणोंऽतःप्राणिनः संमूर्छंते । तेच तन्मांसचर्मणी नक्षयंति नक्षयंतश्च तच्चर्मणोविवराणि कुर्वंति । गलच्छोणितेषु विवरेषुच तेषु तिष्ठंतस्तदेव शोणितं नक्षयंति तथाऽचित्तगवादिदेहेपि तथा सचित्ताचित्तवनस्पतिशरीरेपि घुणकीटकाः संमूर्छंते तदेहमेव नक्षयंतीति ॥ २९ ॥

॥ टीका–सांप्रतं सचित्तशरीराश्रयान् जंतून् प्रतिपादयितुमाह । (एवंखुरडगुत्ताएइ त्यादि) एवमिति यथा मूत्रपुरीषादावुत्पादस्तथा तिर्यक्शरीरेषु (खुरडगुत्ताएत्ति) चर्म कीटतया समुत्पद्यंते । इदमुक्तं भवति जीवतामेव गोमहिष्यादीनां चर्मणोंतः प्राणिनः संमूर्छंते तेच तन्मांसचर्मणी भक्षयंति भक्षयंतश्चर्मणोविवराणि विदधति गलच्छोणिते षु विवरेषु तिष्ठंतस्तदेव शोणितमाहारयंति तथा अचित्तगवादिशरीरेपि तथा सचित्ताचित्त वनस्पतिशरीरेपि घुणकीटकाः संमूर्छंते तेच तत्र संमूर्छतस्तच्छरीरमाहारयंतीति ॥ २ए ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता णाणाविहजोणिया जाव कम्मणिया णेणं तब्बुक्कमा णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सरीरेसु सचित्तेसु वा अचित्तेसुवा तं सरीरगं वायसं सिद्धंवा वायसंगहियंवा वायं परिग हियं उट्टवाएसु उट्टभागी भवति अहेवाएसु अहेभागी भवति तिरियं वाएसु तिरियंभागी भवति तंजहा उसा हिमए महिया करए हरत णुए सुद्धोदए तेजीवा तेसिं णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सिणे हमाहारेंति तेजीवा अहारेंति पुढविसरीरं जावसंतं अवरेवियणं तेसिं तसथावरजोणियाणं उसाणं जावसुद्धोदगाणं सरीरा णाणावण्णा जावमक्खायं ॥ ३० ॥

अर्थ–हवे अप्कायनुं प्रतिपादन करे छे. हवे बीजुं स्थानक छे. श्री तीर्थंकरें कह्युंछे आ जगत् मांहे कोइ एक जीव तथाविध कर्मने उदयें नानाविध योनिक छता यावत् कर्मने कारणे आकर्षिता त्यां आव्या छता नाना प्रकारें त्रस ते दर्दुरादिक अने स्थावर ते हरिकाय लवणादिक प्राणीनां सचित्त अचित्त शरीरने विषे ते अप्कायनुं शरीर वायुयें करी निपजाव्युं तथा (वायसंगहियंवा के०) वायरे करी सम्यक् प्रकारें ग्रह्युं तथा (वायंपरिहियं के०) वायरे करी अन्योन्य परिगत एटले माहोमांहें मेलव्युं तथा (उट्टवाएसुउट्टभागीभवति के०) ऊर्ध्वगत वायराने विषे ऊर्ध्वगत भागी थाय एटले ऊर्ध्व वायु थके पाणी पण उपहरो रहे. (अहेवाएसुअहेभागीभवतिके०) तथा निचे निचे वायरे निचो होय, (तिरियंवाएसुतिरियंभागीभवति के०) तिर्छे वायरे ति र्छो थाय, जे जे परिणामे वायु वर्त्ते, तेम तेम पाणी पण परिणमे (तंजहा के०) हवे तेना नाम कहेछे. (उसा के०) उसपडे ते (हिमएके०) हिम (महिया के०) धू यरी (करए के०) करगडा (हरतणुए के०) तृणने अग्रें स्थित एवा पाणीना बिंदु आ (सुद्धोदए के०) शुद्धोदक ते स्वच्छ पाणी इत्यादिक पाणी जाति मांहें जीव उपजे.

ते जीव त्यां उपना थता ते नाना प्रकारना त्रस अने स्थावर प्राणियोनो स्नेह आहा रे. इत्यादिक शेषं सुगमं ॥ एटले वात योनिक अप्काय देखाड्यो. ॥ ३० ॥

॥ दीपिका—अथाप्कायं वक्तुकामस्तत्कायकारणभूतवायुकथनपूर्वमाह । (अहावर मित्यादि) अथैतदाख्यातं । इहैके सत्वाः कर्मोदयात्तत्र वायुयोनिकेऽप्काये व्युत्क्रम्यागम्य नानाविधानां त्रसानां दर्दुरादीनां प्राणिनां स्थावराणां च हरितलवणादीनां सचित्ताचित्त देहेषु तदप्कायशरीरं वायुयोनिकत्वादप्कायस्य वायुना उपादानहेतुभूतेन निष्पादितं तथा वातेन संगृहीतं अभ्रपटलांतर्निर्वृत्तं तथा वातपरिगतं वायुनाऽन्योन्यानुगतं ऊर्ध्वंगते वाते उर्ध्वभाग्भवति । गगनगतवायुवशाज्जलं व्योम्नि संमूर्छते । अधोगते वाते जलमप्यधः स्यात् तिर्यग्गतेच तिर्यक् वातयोनिकत्वाज्जलस्य यत्र यत्र वायुः परिणमति तत्र तत्र तत्कार्यभूतं जलमपि संमूर्छते । जलभेदान् वक्ति । (उसत्ति) अ वश्यायः हिमं महिकाधूमरीकरकाः (हरतणुत्ति) तृणाग्रप्राप्ताजलबिंदवः शुद्धोदकं प्रतीतं । इहैके जीवाः शुद्धजले जातानानाविधत्रसस्थावराणां उत्पत्त्याऽऽधारभूतानां स्नेहं भक्षयंति । शेषं सुगमं ॥ ३० ॥

॥ टीका—सांप्रतमप्कायं प्रतिपादयिषुस्तत्कारणभूतवातप्रतिपादनपूर्वकं प्रतिपाद यतीत्याह । (अहावरमित्यादि) अथानंतरमेतद्वक्ष्यमाणं पुरा पूर्वमाख्यातं । इहास्मि न् जगत्येके सत्वास्तथाविधकर्मोदयानानाविधयोनिकाः संतोयावत्कर्मनिदानेन तत्र तस्मिन्वातयोनिकेऽप्काये व्युत्क्रम्यागत्य नानाविधानां बहुप्रकाराणां त्रसानां दर्दुरप्रभृ तीनां स्थावराणांच हरितलवणादीनां प्राणिनां सचित्ताचित्तभेदभिन्नेषु शरीरेषु तदप्का यशरीरं वातयोनिकत्वादप्कायस्य वायुनोपादानकारणभूतेन सम्यक् संसिद्धं निष्पा दितं । तथा वातेनैव सम्यग्गृहीतमभ्रपटलांतर्निर्वृत्तं तथा वातेनान्योन्यानुगतत्वा त्परिगतं तथोर्ध्वगतेषु वातेषूर्ध्वभागी भवत्यप्कायोगगनगतवातवशाद्दिवि संमूर्छते जलं तथाऽधस्ताजतेषु तद्वशाद्भवत्यधोभागीत्यप्कायएवं तिर्यग्गतेषु तिर्यग्भागी भवत्यप्कायः। इदमुक्तं भवति । वातयोनिकत्वादप्कायस्य यत्र यत्रासौ तथाविधपरिणामपरिणतोभव ति तत्र तत्र तत्कार्यभूतं जलमपि संमूर्छते । तस्य चाभिधानपूर्वकं भेदं दर्शयितुमा ह । तद्यथा । (उसत्ति) अवश्यायः (हिमयेत्ति) शिशिरादौवातेरिताहिमकणामिहि काः धूमिकाः करकाः प्रतीताः (हरतणुयत्ति) तृणाग्रव्यवस्थिताजलबिंदवः शुद्धोदकं प्रतीतमिति । इहास्मिन्नुदकप्रस्तावे एके सत्वास्तत्रोत्पद्यंते स्वकर्मवशगास्तत्रोत्पन्नास्ते जीवास्तेषां नानाविधानां त्रसस्थावराणां स्वोत्पत्त्याधारभूतानां स्नेहमाहारयंति ते जीवा स्तच्छरीरमाहारयंति अनाहारकान भवंतीत्यर्थः।शेषं सुगमं यावदेतदाख्यातमिति ॥३०॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतियासत्ता उदगजोणिया उदगसंभवा जाव कम्मणियाणेणं तब वुक्कमा तसथावरजोणिएसु उदएसु उदगत्ताए विउट्टंति तेजीवा तेसिं तसथावरजोणियाणं उदगाणं सिणेहमाहारेंति तेजीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तोसिं तसथावर जोणियाणं उदगाणं सरीरा णाणावन्ना जावमक्खायं ॥ ३१ ॥

अर्थ—हवे अप्काय योनिक अप्काय देखाडेछे. अथ हवे अपर स्थानक श्री तीर्थंकरें कह्युंछे. आ जगत् मांहें कोइ एक जीव उदकयोनिक उदकने विषे संभवछे, यावत् कर्मने कारणे करी एटले तथाविध कर्मने उदयें वातवशें उपना एवा त्रस अने स्थावर जीव, तेना शरीरने अधार भूत एवुं उदक जे पाणी ते उदकें उपना त्रस स्थावर योनिक उदक तेने विषे उदक पणे उपजे, ते जीव त्यां उपना थका ते उदकनो स्नेह आहारे. इत्यादिकं शेषं सुगमम् ॥ ३१ ॥

॥ दीपिका—वातयोनिकं जलमुक्त्वा जलसंभवं जलमाह । (अहावरमित्यादि) इहैके सत्वावातवशोत्पन्नत्रसस्थावरदेहाधारभूतमुदकं योनिरुत्पत्तिस्थानं येषां ते तथा उदकसंभवास्त्रसस्थावरयोनिकेषु उदकेषु अपरोदकतया उत्पद्यंते । तेच जलसत्वास्तेषां त्रसस्थावरयोनिकानां जलानां स्नेहं पराण्यपि पृथिव्यादिशरीराणि चाहारयंति । तच्च पृथिव्यादिशरीरं भक्तिं सत्सारूप्यमानीयात्मसात्कुर्वंति । अन्यान्यपि तत्र त्रसस्थावरशरीराणि वर्तंते तेषां च नीरयोनिकानां नीराणां नानाविधानि शरीराणि वर्तंते एतदाख्यातं ॥ ३१ ॥

॥टीका—तदेवं वातयोनिकमप्कायं प्रदर्श्याधुनाप्कायसंभवमेवाप्कायं दर्शयितुमाह । (अहावरमित्यादि) अथापरमाख्यातमिहास्मिन् जगति उदकाधिकारे वा एके सत्वास्तथाविधकर्मोदया द्वातवशोत्पन्नत्रसस्थावरशरीराधारमुदकं योनिरुत्पत्तिस्थानं येषां ते तथा तथोदकसंभवा यावत्कर्मनिदानेन तत्रोत्पित्सवस्त्रसस्थावरयोनिकेषूदकेष्वपरोदकतया विवर्तंते समुत्पद्यंते ते चोदकजीवास्तेषां त्रसस्थावरयोनिकानामुदकानां स्नेहमाहारयंत्यन्यान्यपि पृथिव्यादिशरीराण्याहारयंति । तच्च पृथिव्यादिशरीरमाहारितं सत् सारूप्यमानीयात्मसात्प्रकुर्वंत्यपराण्यपि तत्र त्रसस्थावरशरीराणि विवर्तंते तेषां चोदकयोनिकानामुदकानां नानाविधानि शरीराणि विवर्तंते इत्येतदाख्यातं ॥ ३१ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता उदगजोणियाणं जाव कम्मनियाणेणं तब वुक्कमा उदगजोणिएसु उदएसु उदगत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं

उदगजोणियाणं जीवाण उदगाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जावसंतं अवरेवियणं जीवाणं उदगजोणियाणं उदगाणं सरीरा णाणावन्ना जावमरकायं ॥ ३१ ॥

अर्थ—हवे अन्य स्थानक श्री तीर्थंकरें कह्युं छे. आ जगत् मांहे कोइ एक जीव तथाविध कर्मना उदय थकी उदक योनिक उदकने विषे उपजे. त्यां उपना थका उदक जीवनो स्नेह आहारे, शेषं सुगमं ॥ ३१ ॥

॥ दीपिका—तदेवं त्रसस्थावरदेहसंभवं जलयोनित्वेन प्रदर्श्याऽधुना निर्विशेषणज लसंभवमेव जलं दर्शयति । (अहावरमिति) इह एके सत्वाउदकयोनिकेषु उदकेषूत्पद्यंते तेच तेषां जलसंभवानां आत्माधारभूतानां शरीरं भक्षयंति । शेषं प्राग्वत् ॥ ३१ ॥

॥ टीका—तदेवं त्रसस्थावरसंभवमुदकयोनित्वेन प्रदर्श्याऽधुना निर्विशेषणमप्काय संभवमेवाप्कायं दर्शयितुमाह । (अहावरमित्यादि) अथापरमाख्यातमिहास्मिन् जगत्यु दकाधिकारे वा एके सत्वाः स्वकृतकर्मोदयाडुदकयोनिषूदकेषूत्पद्यंते तेच तेषामुदक संभ वानामुदकजीवानामात्माधारभूतानां शरीरमाहारयंति । शेषं सुगमं । यावदाख्यातमिति ३१

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता उदगजोणियाणं जावकम्मनियाणे णं तच वुक्कमा उदगजोणिएसु उदएसु तसपाणत्ताए विउट्टंति तेजी वा तेसिं उदगजोणियाणं उदगाणं सिणेहमाहारेंति तेजीवा आहारेंति पुढविसरीरं जावसंतं अवरेवियणं तेसिं उदगजोणियाणं तसपाणाणं सरीरा णाणावन्ना जावमरकायं ॥ ३३ ॥

अर्थ—हवे अन्य स्थानक श्री तीर्थंकर देवें कह्युं. आ जगत् मांहे कोइ एक जीव कर्मै प्रेर्या थका उदक योनिक उदकने विषे पूयरादिक त्रस प्राण पणे उपजे. ते उपना थका तेनुं शरीर आहारे. इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं ॥ ३३ ॥

॥ दीपिका—अथ जलाधारभूतान् त्रसानाह । इहैके सत्वाउदकयोनिकेषूदकेषु त्रसप्रा णितया पूतरकादित्वेन उत्पद्यंते । तेच उत्पद्यमानाउत्पन्नाश्च तेषां जलयोनिकानां ज लानां स्नेहमाहारयंति । शेषं प्राग्वत् ॥ ३३ ॥

॥ टीका—सांप्रतमुदकाधारानपरान् पूतरकादिकांस्त्रसान्दर्शयितुमाह । (अहावरमि

त्यादि) अथापरमेतदाख्यातमिहैके सत्वाउदकयोनिषु चोदकेषु त्रसप्राणितया पूतरक दित्वेन विवर्तंते समुत्पद्यंते ते चोत्पद्यमानाः समुत्पन्नाश्च तेषामुदकयोनिनामुदकानां स्नेहमाहारयंति । शेषं सुगमं यावदाख्यातमिति ॥ ३३ ॥

अहावरं पुरक्कायं इहेगतिया सत्ता णाणाविहजोणिया जाव कम्मनिया णेणं तब वुक्कमा णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सरीरेसु सचित्तेसुवा अचित्तेसुवा अगणिकायत्ताए विउट्टंति ते जीवा तेसिं णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं तसथावरजोणियाणं अगणीणं सरीरा णाणावण्णा जाव मक्कायं सेसा तिन्नि आलावगा उदगाणं ॥३४॥ अहावरं पुरक्कायं इहेगतिया सत्ता णाणाविहजोणियाणं जाव कम्मनियाणेणं तब वुक्कमा णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सरीरेसु सचित्तेसुवा अचित्तेसुवा वाउकायत्ताए विउट्टंति जहा अगणीणं तहा नाणियव्वा चत्तारि गमा ॥ ३५ ॥

अर्थ—हवे अग्निकाय जीव आश्री कहेछे. अथ हवे अनेरुं स्थानक श्री तीर्थंकर देवें कह्युं. आ जगत् मांहें कोइ एक जीव नाना प्रकारना योनि वाला, ते एवा प्रकारनुं कर्मोपार्जन करीने, नानाविध त्रस अने स्थावर प्राणिना शरीरने विषे सचित्तने विषे, अचित्तने विषे, अग्निकाय पणे उपजे. त्यां उपजता बता, ते त्रस अने स्थावर प्राणीनो स्नेह आहारे. इत्यादिकं शेषं सुगमं ॥ अहीं अग्निकायने विषे शेष त्रण आलावा उदकना आलावानी पेरें जाणी लेवा. ॥३४॥ हवें वायुकाय जीव आश्री कहेछे. हवे अनेरुं स्थानक श्री तीर्थंकरें कह्युं. आ जगत् मांहे कोइ एक जीव नानाविध योनिक कर्मने वशवर्त्ति थका नाना प्रकारना त्रस अने स्थावर जीवोनां शरीर सचित्त अने अचित्तने विषे वायुकाय पणे उपजे. इत्यादिक जेम अग्निकायना चार आलावा कह्या. तेम ए वायुकायना पण चार आलावा केहेवा. ॥ ३५ ॥

॥ दीपिका—अथ तेजःकायमाह । एके सत्वाः कर्मोदयान्नानाविधानां त्रसस्थावराणां देहेषु सचित्तेष्वचित्तेषु वाऽग्नित्वेन विवर्तंते प्रादुर्भवंति । तथाहि । पंचेंद्रियतिरश्चां दंतिमहिषादीनां परस्परं युद्धावसरे दंतशृंगयोगेऽग्निरुत्पद्यते । एवमचित्तेष्वपि तदस्थिघर्षणादग्निरुत्पत्तिः । विकलेंद्रियशरीरेष्वपि यथासंभवं योज्यं । स्थावरेषु वनस्पति

पाषाणादिषु सचित्ताचित्तेषु अग्निजीवाः समुत्पद्यंते । तेच तत्रोत्पन्नास्तेषां त्रसस्थावराणां स्नेहमाहारयंति । शेषं सुगमं । अन्ये त्रयोप्यालापकाउदकवद्द्रष्टव्याः ॥ ३४ ॥ अथ वायुकायमाह । इदमग्निकायवद्व्याख्येयं ॥ ३५ ॥

॥ टीका–सांप्रतं तेजःकायमुद्दिश्याह । (अहावरमित्यादि) अथैतदपरमाख्यातं । इहास्मिन् संसारे एके केचन सत्वाः प्राणिनस्तथाविधकर्मोदयवर्त्तिनोनानाविधयोनयः प्राक् संतः पूर्वजन्मनि तथाविधं कर्मोपादाय तत्कर्मनिदानेन नानाविधानां त्रसस्थावराणां प्राणिनां सचित्तेष्वचित्तेषु शरीरेषु चाग्नित्वेन विवर्त्तते प्राडुर्नवंति । तथाहि । पंचेंद्रियतिरश्चां दंतिमहिषादीनां परस्परं युद्धावसरे विषाणसंघर्षे सति अग्निरुत्तिष्ठते एवमचित्तेष्वपि तदस्थिसंघर्षादग्नेरुद्भवनं तथा द्वींद्रियादिशरीरेष्वपि यथासंनवमायोजनीयं । तथा स्थावरेष्वपि वनस्पत्युपलादिषु सचित्ताचित्तेष्वग्निजीवाः समुत्पद्यंते ते चाग्निजीवास्तत्रोत्पन्नास्तेषां नानाविधानां त्रसस्थावराणां स्नेहमाहारयंति । शेषं सुगमं यावन्नवंतीत्येवमाख्यातं ।अपरे त्रयोप्यालापकाः प्राग्वद्द्रष्टव्याइति ॥ ३४ ॥ सांप्रतं वायुकायमुद्दिश्याह । (अहावरमित्यादि) अथापरमेतदाख्यातमित्याद्यग्निकायागमेन व्याख्येयं ॥ ३५ ॥

अहावरं पुरक्खायं इहेगतिया सत्ता णाणाविहजोणियाणं जाव कम्मनियाणेणं तब वुक्कम्मा णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सरीरेसु सचित्तेसुवा अचित्तेसुवा पुढवित्ताए सक्करत्ताए वालुयत्ताए इमाउ गाहाउ अणुगंतवाउ " पुढवीय सक्करा वा,लुयाय उवले सिलाय लोणूसे ॥ अयत उय तंब सीसग, रुप्प सुवणेय वइरेय ॥ १ ॥ हरियाले हिंगुलए, मणोसिला सासगंजणपवाले ॥ अप्रपडलप्रवालुय, बायरकाए मणिविहाणा ॥२॥ गोमेज्जएय रूयए, अंकेफलिहिय लोहियक्खेय ॥ मरगयमसारगल्ले, नूयमोयग इंदणीलेय ॥ ३ ॥ चंदण गेरुय हंसगप्रे, पुलए सोगंधिएय बोद्धवे ॥ चंदप्पन्न वेरुलिए, जलकंते सूरकंतेय ॥४॥ एयाउ एएसु न्नाणियवाएउ गाहाउ जाव सूरकंताएवि वुट्टंति तेजीवा तेसिं णाणाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सिणेहमाहारेंति तेजीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव संतं अवरेवियणं तेसिं तसथावरजोणियाणं पुढवीणं जाव सूरकंताणं सरीरा णाणावण्णा जावमक्खायं सेसं तिसिन्नआलवगा जहा उदगाणं ॥ ३६ ॥

अर्थ—हवे पृथ्वीकाय जीव आश्री कहेछे. हवे अन्य स्थानक पूर्वें श्री तीर्थंकरें कह्युंछे. आ जगत् मांहे कोइ एक जीव, नाना प्रकार योनिक, यावत् कर्माधीन थका त्यां उपजे. नाना प्रकारना त्रस स्थावर प्राणीनां शरीरने विषे, सचित्तने विषे, अचित्तने विषे, शर्करा एटले कांकरा पणे, वेलु एटले रेति पणे, इत्यादिक (इमाउगाहाउ के०) ए आगलनी चार गाथायें करी पृथ्वीकायना भेद कहेशे ते प्रमाणे (अणुगंतवाउ के०) सर्व जाणी लेवा. (पुढवीय के०) पृथ्वी पणे (सक्करा के०) कांकरा पणे, (वालुयाय के०) वेलू ते रेती पणे, (उवले के०) उपल एटले पाषाणना कटका पणे, (सिलाय के०) माटी अने पाशाणनी शिलापणे, (लोणूसेके०) समुद्रादिकना लूण ते पणे, उसे एटले उस पणे, ते खारी धूल पणे, (अयत के०) लोह पणे, (उय के०) जसत तरुआ पणे, (तंब के०) त्रांबा पणे, (सिसगं के०) शींसा पणे, (रुप्प के०) रूपा पणे, (सुवस्रेय के०) सुवर्ण पणे, (वइरेय के०) वज्र, ते हीरा पणे, (हरियाले के०) हरिताल पणे, (हिंगुलएके०) हिंगलो पणे, (मणोसिलाके०) मणसील पणे, (सासगंजणेके०) सासग एटले रत्ननीजाति, अंजन एटले सुरमो ते पणे, (पवालेके०) परवालां, (अन्नपमलप्नवालुय के०) अभ्रपडल अने अभ्रवालुक एटले आकाशना जलउस तथा अकाशना जलउस सहित धूल, ए (बायरकाय के०) बादरकाय, पृथ्वीना भेद कह्या. हवे (मणिविहाणा के०) मणिना भेद कहेछे. (गोमेज्जएय के०) गोमेद्य रत्न, (रूयए के०) रजत रत्न, (अंके के०) अंक रत्न, (फलिहिय के०) स्फाटिक रत्न, (लोहियस्केय के०) लोहिताक्ष रत्न, (मरगय के०) मरकत रत्न, (मसारगल्ले के०) मसारगल्ल रत्न, (भूयमोयग के०) भूजमोचक रत्न, (इंदणीलेय के०) इंद्रनील रत्न, (चंदण के०) चंदन रत्न, (गेरुय के०) गेरुक रत्न, (हंसगप्रे के०) हंसगर्भ रत्न, (पुलए के०) पुलाक रत्न, (सोगंधिएय के०) सुगंधिक रत्न, (बोधवे के०) जाणवां. (चंदप्पन्न के०) चंद्रप्रभ रत्न, (वेरुलिए के०) वैडूर्य रत्न, (जलकंते के०) जलकंत रत्न, (सूरकंतेय के०) सूर्यकांति रत्न, सुवर्णकांत रत्न पण एनुं नाम छे. ए चार गाथाने विषे, पृथ्वीकायना नाम कह्यांछे. यावत् सूर्यकांत पणे एटले एटला दूर लगे पृथ्वीकायने भावें जीव उपजे. ते जीव त्यां उपजता छता ते नाना प्रकारना त्रस अने स्थावर प्राणीना स्नेह आहारे ; इत्यादिक शेष सुगमछे. ए पृथिवीकायना शेष त्रण आलावा जेम उदकना कह्या तेनी पेंठे जाणी लेवा. ॥ ३६ ॥

॥ दीपिका—अथ पृथिवीकायमाह । इहैके सत्वाः कर्मवशगानानाविधत्रसस्थावराणां देहेषु सचित्तेषु अचित्तेषुवा पृथिवीत्वेनोत्पद्यंते । तद्यथा । सर्प्पशिरस्सु मणयः करिदं

तेषु मौक्तिकानि स्थावरेष्वपि वंशादिषु तान्येव। एवमचित्तेषूषरादिषु लवणत्वेन जायंते तदेवं पृथ्वीकायिकानानाविधासु पृथ्वीषु शर्करावालुकोपलशिलालवणादिजावेन तथा गोमेदकादिरत्नजावेन बादरमणिविधानतया समुत्पद्यंते ॥ (एयाउगाहाउत्ति) एतागाथा अनुगंतव्याः। एतज्ञाथानुगमेन पदानि वाच्यानि। (पुढवीयसक्करावालुयायइत्यादि) अत्र पदोच्चारोयथा पुढविताए। सक्करत्ताए वालुयत्ताए इत्यादि। एवं गाथानुसारेण पदानि वाच्यानि। यावत्सूरकंतत्ताएत्ति। शेषं सुगमं। एवं चत्वारोप्यालापकाउदकागमेन ज्ञेयाः ॥३६॥

॥ टीका–सांप्रतमशेषजीवाधारं पृथिवीकायमधिकृत्याह। (अहावरमित्यादि) अथापरमेतत्पूर्वमाख्यातं। इहैके सत्वाः पूर्वं नानाविधयोनिकाः स्वकृतकर्मवशानानाविध त्रसस्थावराणां शरीरेषु पृथिवीत्वेनोत्पद्यंते। तद्यथा। सर्प्पशिरःसु मणयः करिदंतेषु मौक्तिकानि स्थावरेष्वपि वेण्वादिषु तान्येवेति। एवमचित्तेषूपलादिषु लवणजावेनोत्पद्यंते। तदेवं पृथिवीकायिकानानाविधासु पृथिवीषु शर्करावालुकोपलसितालवणादिजावेन तथा गोमेदकादिरत्नजावेनच बादरमणिविधानतया समुत्पद्यंते। शेषं सुगमं। यावच्चत्वारोप्यालापकाउदकागमेन नेतव्याइति ॥ ३६ ॥

अहावरं पुरस्कायं सवेपाणा सवेनूता सवेजीवा सवेसत्ता णाणाविहजोणिया णाणाविहसंजवा णाणाविहवुक्कमा सरीरजोणिया सरीरसंजवा सरीरवुक्कमा सरीराहारा कम्मोवगा कम्मनियाणा कम्मगतीया कम्मछिइया कम्मणाचेव विप्परियासमुवेंति ॥ ३७ ॥

अर्थ–हवे समस्त जीव आश्री कहेछे. हवे अनेरुं स्थानक पूर्वें श्री तीर्थंकरें कह्युं. आ जगत् मांहे सर्वप्राण, सर्वनूत, सर्वजीव, सर्वसत्व, नाना प्रकार योनिक नाना प्रकारनी योनिने विषे संजव एटले उत्पत्तिछे जेनी, नाना प्रकारें आव्या बता, शरीरयोनिक शरीरने विषे उपजे. शरीरने विषे आव्या बता त्यां उपजे एटले नरकादिक चार गतिने विषे शरीर पणे उपजे. त्यां त्यां यथायोग्य शरीरनो आहार करे. कर्मने वशें उपजे कर्मने कारणे करीने कर्मे करी कर्मने अनुसारें गति पामे. कर्मे करी जघन्य मध्यम अने उत्कृष्ट स्थिति पामे. एटले जे जीव आ नवमां जेवोछे तेवोज आगले नवें न थाय. ए कारणे जीव, कर्मने वशें सुख वांबतो पण विपर्यास डुःख पामे. ॥३७॥

॥ दीपिका–अथ सर्वजीवानाश्रित्याह। अथापरमिदमाख्यातं। सर्वे जीवानानाविधयोनिकानानाविधयोनिषूत्पद्यंते यत्रच उत्पद्यंते तत्र तद्देहाऽऽहारिणः स्युः। तेनाहारेण चागुप्ताः कर्मवशगाश्चतुर्गतिषु ज्रमंति ॥ ॥ ३७ ॥

॥ टीका–सांप्रतं सर्वोपसंहारद्वारेण सर्वजीवान् सामान्यतोबिभणिषुराह । (अहा वरमित्यादि) अथापरमेतदाख्यातं । तद्यथा । सर्वे प्राणाः प्राणिनोऽत्रच प्राणिभूतजीवन त्वशब्दाः पर्यायत्वेन द्रष्टव्याः कथंचिद्भेदं चाश्रित्य व्याख्येयाः । तेच नानाविधयोनिकातो नाविधासु योनिषूत्पद्यंते नारकतिर्यङ्नरामराणां परस्परगमनसंभवात्तेच यत्र यत्रोत्पद्यंते ते तच्छरीराण्याहारयंति तदाहारवंतश्च तत्रागुप्ताश्रवद्वारतया कर्मवशगानारकतिर्यङ्नरा मरगतिषु जघन्यमध्यमोत्कृष्टस्थितयोभवंति।अनेनेदमुक्तं भवति । योयादृगिह भवे स ता दृगेवामुत्रापि भवतीत्येतन्निरस्तं भवत्यपितु कर्मोपगाः कर्मनिदानाः कर्मायत्तगतयोभवंति तथा तेनैव कर्मणा सुखलिप्सवोपि तद्विपर्यासं दुःखमुपगछंतीति ॥ ३७ ॥

से एवमायाणह से एवमायाणित्ता आहारगुत्ते सहिए समिए सयाजए त्तिबेमि॥ बियसुयक्खंधस्स आहारपरिणा णाम तईयमज्झयणं सम्मत्तं ॥३८॥

अर्थ–हवे गुरु, शिष्य प्रत्यें कहेछे के, (सेएव के०) ते एम (मायाणह के०) त मे जाणो जे, में आदि थकी सर्वजीव आश्री आहारनुं विशेष संसार परिभ्रमण क ह्युंछे. (सेएवमायाणित्ता के०) एवुं जाणीने जे विवेकी जन होय ते, (आहारगुत्ते के०) आहारने विषे गुप्त थाय. एतावता शुद्ध निर्दोष एषणीक आहारनुं खप करे,अ ने (सहिए के०) ज्ञान दर्शन अने चारित्रें करी सहित थको (समिए के०) पांच समि तियें समितो, (सयाजए के०) सदा सर्वकाल एटले जावजीव सुधी संयमने विषे यत्न करे. त्तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ ए श्री सूयगडांगसूत्रना बीजा श्रुतस्कंधने विषे, आहारपरिज्ञा नाम त्रीजा अध्ययननो संक्षेपार्थ बालावबोध समाप्त थयो. ॥ ३८ ॥

॥दीपिका–(सेएवमायाणहत्ति) तदेवं जानीत यूयं! यत्पूर्वोक्तं सर्वं।एवं ज्ञात्वा चाहारगुप्त एव समितियुतः समितः सहितोवा ज्ञानादिभिः सदा यतेत संयमे प्रयत्नवान् भवेदिति। ब्रवीमीति पूर्ववत्॥३८॥ इतिद्वितीयश्रुतस्कंधे आहारपरिज्ञाख्यं तृतीयमध्ययनं समाप्तम्॥

॥ टीका–सांप्रतमध्ययनार्थमुपसंजिघृक्षुराह । (सेएवमायाणहेत्यादि) यदेतन्मया ऽऽदितः प्रभृत्युक्तं।तद्यथा। योयत्रोत्पद्यते स तच्छरीराहारकोभवत्याहारगुप्तश्च कर्मादत्ते क र्मणाच नानाविधासु योनिषु अरहट्टघटीन्यायेन पौनःपुन्येन पर्यटतीत्येवमाजानीत यूयं! एतद्विपर्यासं दुःखमुपगछंतीति । एतत्परिज्ञायच सदसद्विवेक्याहारगुप्तः पंचभिः समिति भिः समितोयदिवा सम्यक् ज्ञानादिके मार्गे इतोगतः समितस्तथा सह हितेन वर्तते सहितः सन्सदा सर्वकालं यावदुछ्वासं तावद्यतेत तत्संयमानुष्ठाने प्रयत्नवान् भवेदिति । इति परि समाप्त्यर्थे।ब्रवीमीति पूर्ववत्।गतोऽनुगमः।सांप्रतं नयास्ते च प्राग्वद्द्रष्टव्याः ॥३८॥ समा प्तमाहारपरिज्ञाख्यं तृतीयमध्ययनम ॥ ३ ॥ ॥ ॥

तेषु मौक्तिकानि स्थावरेष्वपि वंशादिषु तान्येव। एवमचित्तेपूषरादिषु लवणत्वेन जायंते तदेवं पृथ्वीकायिकानानाविधासु पृथ्वीषु शर्करावालुकोपलशिलालवणादिनावेन तथा गोमेदकादिरत्ननावेन बादरमणिविधानतया समुत्पद्यंते ॥ (एयाउंगाहाउत्ति) एतागाथा अनुगंतव्याः। एतजाथानुगमेन पदानि वाच्यानि। (पुढवीयसक्करावालुयायइत्यादि) अत्र पदोच्चारोयथा पुढवित्ताए। सक्करत्ताए वालुयत्ताए इत्यादि। एवं गाथानुसारेण पदानि वाच्यानि। यावत्सूरकंतत्ताएत्ति। शेषं सुगमं। एवं चत्वारोप्यालापकाउदकागमेन ज्ञेयाः ॥ ३६ ॥

॥ टीका–सांप्रतमशेषजीवाधारं पृथिवीकायमधिकृत्याह। (अहावरमित्यादि) अथापरमेतत्पूर्वमाख्यातं। इहैके सत्वाः पूर्वं नानाविधयोनिकाः स्वकृतकर्मवशानानाविध त्रसस्थावराणां शरीरेषु पृथिवीत्वेनोत्पद्यंते। तद्यथा। सर्प्पशिरःसु मणयः करिदंतेषु मौक्तिकानि स्थावरेष्वपि वेल्यादिषु तान्येवेति। एवमचित्तेषूपलादिषु लवणनावेनोत्पद्यंते। तदेवं पृथिवीकायिकानानाविधासु पृथिवीषु शर्करावालुकोपलसितालवणादिनावेन तथा गोमेदकादिरत्ननावेनच बादरमणिविधानतया समुत्पद्यंते। शेषं सुगमं। यावच्चत्वारोप्यालापकाउदकागमेन नेतव्याइति ॥ ३६ ॥

अहावरं पुरक्खायं सवेपाणा सवेनूता सवेजीवा सवेसत्ता णाणाविहजोणिया णाणाविहसंनवा णाणाविहवुक्कमा सरीरजोणिया सरीरसंनवा सरीरवुक्कमा सरीराहारा कम्मोवगा कम्मनियाणा कम्मगतीया कम्मठिइया कम्मणाचेव विप्परियासमुवेंति ॥ ३७ ॥

अर्थ–हवे समस्त जीव आश्री कहेछे. हवे अनेरुं स्थानक पूर्वें श्री तीर्थंकरें कह्युं. आ जगत् मांहे सर्वप्राण, सर्वनूत, सर्वजीव, सर्वसत्व, नाना प्रकार योनिक नाना प्रकारनी योनिने विषे संनव एटले उत्पत्तिछे जेनी, नाना प्रकारें आव्या छता, शरीरयोनिक शरीरने विषे उपजे. शरीरने विषे आव्या छता त्यां उपजे एटले नरकादिक चार गतिने विषे शरीर पणे उपजे. त्यां त्यां यथायोग्य शरीरनो आहार करे. कर्मने वशें उपजे कर्मने कारणे करीने कर्में करी कर्मने अनुसारें गति पामे. कर्में करी जघन्य मध्यम अने उत्कृष्ट स्थिति पामे. एटले जे जीव आ नवमां जेवोछे तेवोज आगले नवें न थाय. ए कारणे जीव, कर्मने वशें सुख वांछतो पण विपर्यास डुःख पामे. ॥ ३७ ॥

॥ दीपिका–अथ सर्वजीवानाश्रित्याह। अथापरमिदमाख्यातं। सर्वे जीवानानाविधयोनिकानानाविधयोनिषूत्पद्यंते यत्रच उत्पद्यंते तत्र तद्देहाऽऽहारिणः स्युः। तेनाहारेण चायुताः कर्मवशगाश्चतुर्गतिषु त्रमंति ॥ ॥ ३७ ॥

॥ टीका—सांप्रतं सर्वोपसंहारद्वारेण सर्वजीवान् सामान्यतोबिनणिषुराह । (अहावरमित्यादि) अथापरमेतदाख्यातं । तद्यथा । सर्वे प्राणाः प्राणिनोऽत्रच प्राणिनूतजीवनत्वशब्दाः पर्यायत्वेन इष्टव्याः कथंचिन्नेदं चाश्रित्य व्याख्येयाः । तेच नानाविधयोनिकातो नाविधासु योनिषूत्पद्यंते नारकतिर्यङ्नरामराणां परस्परगमनसंनवात्तेच यत्र यत्रोत्पद्यंते ते तत्तच्छरीराण्याहारयंति तदाहारवंतश्च तत्रागुप्ताश्रवद्वारतया कर्मवशगानारकतिर्यङ्नरामरगतिषु जघन्यमध्यमोत्कृष्टस्थितयोनवंति।अनेनेदमुक्तं नवति । योयादृगिह नवे स तादृगेवामुत्रापि नवतीत्येतन्निरस्तं नवत्यपितु कर्मोपगाः कर्मनिदानाः कर्मायत्तगतयोनवंति तथा तेनैव कर्मणा सुखलिप्सवोपि तद्विपर्यासं डुःखमुपगछंतीति ॥ ३७ ॥

से एवमायाणह से एवमायाणित्ता आहारगुत्ते सहिए समिए सयाजए त्तिबेमि ॥ बियसुयक्खंधस्स आहारपरिन्ना णाम तईयमज्झयणं सम्मत्तं ॥३८॥

अर्थ—हवे गुरु, शिष्य प्रत्यें कहेछे के, (सेएव के०) ते एम (मायाणह के०) तमे जाणो जे, में आदि थकी सर्वजीव आश्री आहारनुं विशेष संसार परिन्रमण कह्युंछे. (सेएवमायाणित्ता के०) एवुं जाणीने जे विवेकी जन होय ते, (आहारगुत्ते के०) आहारने विषे गुप्त थाय. एतावता शुद्ध निर्दोष एषणीक आहारनुं खप करे,अने (सहिए के०) ज्ञान दर्शन अने चारित्रें करी सहित थको (समिए के०) पांच समितियें समितो, (सयाजए के०) सदा सर्वकाल एटले जावजीव सुधी संयमने विषे यत्न करे. त्तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ ए श्री सूयगडांगसूत्रना बीजा श्रुतस्कंधने विषे, आहारपरिज्ञा नाम त्रीजा अध्ययननो संक्षेपार्थ बालावबोध समाप्त थयो. ॥ ३८ ॥

॥दीपिका—(सेएवमायाणहत्ति) तदेवं जानीत यूयं! यत्पूर्वोक्तं सर्वं।एवं ज्ञात्वा चाहारगुप्त एव समितियुतः समितः सहितोवा ज्ञानादिनिः सदा यतेत संयमे प्रयत्नवान् नवेदिति। ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥३८॥ इतिद्वितीयश्रुतस्कंधे आहारपरिज्ञाख्यं तृतीयमध्ययनं समाप्तम्॥

॥ टीका—सांप्रतमध्ययनार्थमुपसंजिघृक्षुराह । (सेएवमायाणहेत्यादि) यदेतन्मया ऽऽदितः प्रनृत्युक्तं।तद्यथा । योयत्रोत्पद्यते स तच्छरीराहारकोनवत्याहारगुप्तश्च कर्मादत्ते कर्मणाच नानाविधासु योनिषु अरहट्टघटीन्यायेन पौनःपुन्येन पर्यटतीत्येवमाजानीत यूयं! एतद्विपर्यासं डुःखमुपगछंतीति । एतत्परिज्ञायच सदसद्विवेक्याहारगुप्तः पंचनिः समितिनिः समितोयदिवा सम्यक् ज्ञानादिके मार्गे इतोगतः समितस्तथा सह हितेन वर्तते सहितः सन्सदा सर्वकालं यावडुछ्वासं तावद्यतेत तत्संयमानुष्ठाने प्रयत्नवान् नवेदिति । इति परिसमाप्त्यर्थे।ब्रवीमीति पूर्ववत् । गतोऽनुगमः। सांप्रतं नयास्ते च प्राग्वद्रष्टव्याः ॥३८॥ समाप्तमाहारपरिज्ञाख्यं तृतीयमध्ययनम् ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयश्रुतस्कंधे चतुर्थाध्ययनप्रारंभः

हवे चोथुं प्रत्याख्यान क्रियानामा अध्ययन प्रारंभियें छैयें. त्रीजा अध्ययनमां आहार आश्री कर्मबंध थाय. एम कह्यो ते कर्मबंध पच्चरकाण करवाथी टली जायछे, ते कारण माटे चोथुं अध्ययन प्रत्याख्यान क्रिया नामें कहियें छैयें.

सुयंमे आउसंतेणं भगवया एवमरकायं इह खलु पच्चरकाणकिरियाणा मज्झयणे तस्सणं अयमठे पसत्ते आया अपच्चरकाणीयावि भवति ॥ आया अकिरिया कुसलेयावि भवति आया मिछा संठियावि भवति आया एगंतदंमेयावि भवति आया एगंतबालेयावि भवति आया एगंतसुत्तेयावि भवति आया अवियारमणवयणकायवक्केयावि भवति आया अप्पडिहयअपच्चरकायपावकम्मेयावि भवति एस खलु भगवता अरकाए असंजते अविरते अप्पडिहयपच्चरकायपावकम्मे सकिरिए असंवुमे एगंतदंमे एगंतबाले एगंतसुत्ते सेबाले अवियारमणवयणकायवक्के सुविणमवि ण पस्सति पावेयसे कम्मे कज्जइ ॥ १ ॥

अर्थ—सुधर्म स्वामी जंबूस्वामि प्रत्यें कहेछे के, (सुयंमे के०) में एम सांभल्युंछे. (आउसंतेणं के०) आयुष्मन् (भगवयाएवमरकायं के०) भगवंत श्री महावीरदेव तीर्थंकर तेणें एम कह्युंछे. (इहखलुपच्चरकाणकिरियाणामज्झयणे के०) ए प्रवचनने विषे खलु ए वाक्यालंकारे प्रत्याख्यानक्रिया नामें अध्ययन, (तस्सणंअयमठेपसत्ते के०) तेनो ए अर्थ जे आगल कहेशे, ते कहेछे, (आयाअपच्चरकाणियाविभवति के०) ए आत्मा जीव मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, अने योग सहित स्वभावें रह्यो थको, अप्रत्याख्यानी होय. अपि शब्द थकी तेहीज आत्मा, कोइ एक रूडां कारण थकी पच्चरकाणी पण होय. (आयाअकिरियाकुसलेयाविभवति के०) ए आत्मा रूडा अनुष्ठानें रहित पण होय. अपि शब्द थकी रूडा अनुष्ठानें सहित पण होय, तथा (आयामिछासंठियाविभवति के०) ए आत्मा मिथ्यात्वें संस्थित पण होय, अने अपि शब्द थकी मिथ्यात्व थकी रहित पण होय, (आयाएगंतदंमेयाविभवति के०) ए आत्मा एकांते प्राणीउने दंमनो करनार पण होय, तथा (आयाएगंतबालेयाविभवति के०) ए आत्मा एकांत बाल पण होय, (आयाएगंतसुत्तेयाविभवति के०) तथा

ए आत्मा एकांत सुतो एटले शयन करनार पण होय, (आयाएगंतअवियारमणवयण कायवक्केयाविन्नवति के०) तथा ए आत्मा एकांत अविचार्युं कोइ कार्य करे, एवा मन वचन अने कायायें करी सहित पण होय, (आयाअपडिहयअपच्चरकायपावकम्मेया विन्नवति के०) तथा ए आत्मा, अप्रतिहत एटले विरतें करी नथी हण्यां तथा नथी पच्चख्या पाप कर्म जेणे एवो पण होय, (एसखलुनगवताअरकाए के०) एवो जीव श्री नगवंते कह्योछे वली केवो कह्यो तो के? (असंजते के०) असंयत (अविरते के०) अविरति (अपडिहयपच्चायपावकम्मे के०) अप्रतिहत एटलें नथी हण्यां पच्चरकाणें करीने पाप कर्म जेणे, (सकिरिए के०) क्रिया सहित, (असंवुडे के०) संवर रहित (एगंतदंडे के०) एकांतें दंड, (एगंतबाले के०) एकांते बाल, (एगंत सुत्ते के०) एकांतें सुतो एटले शयन करनार, एवो कह्यो. (सेबालेअवियारमणवयणकायवक्केके०) ते बाल, अविचारवान् एवो मन वचन अने कायायें करी रहित छतो, जे पाप कर्मने (सुविणमविणपस्संति के०) स्वप्नांतरें पण देखे नही. (पावेयसेकम्मेकज्जइ के०) तो पण तेने तेवां पापकर्मनो बंध थायछे. ॥ १ ॥

॥ दीपिका—अथ प्रत्याख्यानक्रियाख्यं चतुर्थमध्ययनमारन्यते । तस्येदमादिसूत्रं । (सुयंमेइत्यादि) श्रुतं मयाऽऽयुष्मता नगवतेदमाख्यातं । इहांगे प्रत्याख्यानक्रियानामाध्ययनं तस्यायमर्थः । आत्मा स्वनावतएवाऽप्रत्याख्यानी नवति । अपिशब्दात्सकदाचित्प्रत्याख्यान्यपि नवति । आत्मा क्रियाकुशलः सदाचारः स्यादक्रियाकुशलोपि । आत्मा मिथ्यात्वसंस्थितः आत्मा एकांतदंडोहिंसकः स्यात् आत्मा बालः सुप्तोनावसुप्तश्च । अविचाराणि अशोननानि मनोवचःकायवाक्यानि यस्य स तथा । वाग्ग्रहणेनैव वाक्यस्य गतार्थत्वात्पुनर्वाक्यग्रहणं वाग्व्यापारस्य प्राचुर्यज्ञापनार्थं । तथाऽप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा अप्रतिहतं अनिवारितं प्रत्याख्यातेन विरत्या पापकर्म येन स तथा एवमेषआत्मा असंयतोऽविरतोऽ प्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा सक्रियोऽसंवृतः एकांतदंडः एकांतबालः एकांतसुप्तः स बालोऽविचारमनोवचःकायवाक्यः स एवंनूतः पटुविज्ञानरचितः स्वप्नमपि न पश्यति तेनाप्येवंनूतेनाव्यक्तज्ञानेनापि पापं कर्म बध्यते ॥ १ ॥

॥ टीका—तृतीयाध्ययनानंतरं चतुर्थमारन्यते। अस्य चायमनिसंबंधः । इहानंतराध्ययने आहारगुप्तस्य कर्मबंधोऽ निहितोऽत्र तत्प्रत्याख्यानं प्रतिपाद्यते । यदि वोत्तरगुणसंपादनार्थं शुद्धेतराहारपरिज्ञोक्ता। सा चोत्तरगुणरूपा प्रत्याख्यानक्रियासमन्वितस्य नवतीत्यतआहारपरिज्ञानंतरं प्रत्याख्यानक्रियाध्ययनमारन्यते इत्यनेन संबंधेनायातस्याऽध्यय

नस्योपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोग द्वाराणि जवंति । तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोयम् । तद्यथे ह कर्मोपादानजूतस्याशुजस्य प्रख्यानं प्रतिपाद्यतइति । सांप्रतं निक्षेपस्तत्राप्योघनिष्पन्नेऽध्ययनं नामनिष्पन्ने प्रत्याख्यानक्रियेति द्विपदं नाम । तत्र प्रत्याख्यानपदनिक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह ।'' णामं ठवणादविए, अइन्न पडिसेह एय जावेय ॥ एसोपच्चरकाण,स्स छव्विहो होइनिरकेवो ,, ॥ १ ॥ (णामंठवणेत्यादि) नामस्थापना द्रव्यादित्साप्रतिषेधजावरूपः । प्रत्याख्यानस्यायं षोढा निक्षेपः । तत्रापि नामस्थापने सुगमे । द्रव्यप्रत्याख्यानं द्रव्यस्य द्रव्येण द्रव्याद्द्रव्ये द्रव्यजूतस्य वा प्रत्याख्यानं । तत्र सचित्ताचित्तजेदमिश्रस्य प्रत्याख्यानं द्रव्यनिमित्तं वा प्रत्याख्यानं यथा धम्मिल्लस्य । एवमपराण्यपि कारकाणि स्वधिया योजनीयानि। तत्र दातुमिच्छा दित्सा न दित्सा अदित्सा तया प्रत्याख्यानमदित्साप्रत्याख्यानं । सत्यपि देये सतिच संप्रदानकारके केवलं दातुर्दातुमिच्छा नास्तीत्यतोऽदित्साप्रत्याख्यानं तथा प्रतिषेधप्रत्याख्यानमिदं । तद्यथा । विवक्षितद्रव्याजावाद्विशिष्टसंप्रदानकारकाजावाद्वा सत्यामपि दित्सायां यः प्रतिषेधस्तत्प्रत्याख्यानं। जावप्रत्याख्यानं तु द्विधांऽतः करणशुद्धस्य साधोः श्रावकस्य वा मूलगुणप्रत्याख्यानमुत्तरगुणप्रत्याख्यानं चेति । च शब्दाद्विविधमपि नोआगमतोजावप्रत्याख्यानं द्रष्टव्यं नान्यदिति । सांप्रतं क्रियापदं निक्षेप्तव्यं । तच्च क्रियास्थानाध्ययने निक्षिप्तमिति । न पुनर्निक्षिप्यते । इह पुनर्जावप्रत्याख्याने नाधिकारइति दर्शयितुमाह । '' मूलगुणे सुयपगयं, पच्चरकाणे इहं अधीगारो ॥ होऊ हुतप्पच्चइया, अप्पच्चरकाणकिरियाउ ,, ॥ २ ॥ (मूलगुणेसुयइत्यादि) मूलगुणाः प्राणातिपातविरमणास्तेषु प्रकृतमधिकारः प्राणातिपातादेः प्रत्याख्यानं कर्तव्यमिति यावत् । इह प्रत्याख्यानक्रियाध्ययने नार्थाधिकारोयदि मूलगुणप्रत्याख्यानं न क्रियते तत्रोपायं दर्शयितुमाह । प्रत्याख्यानाजावेऽनियतत्वाद्यत्किंचनकारितया तत्प्रत्ययिका तन्निमित्ताजावाडुत्पद्यते प्रत्याख्यानक्रिया सावद्यानुष्ठानक्रिया तत्प्रत्ययिकश्च कर्मबंधस्तन्निमित्तश्च संसारइत्यतः प्रत्याख्यानक्रिया मुमुक्षुणा विधेयेति । गतोनामनिष्पन्नोनिक्षेपोऽधुना सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चेदं (सुयंमेआउसंतेणमित्यादि) अस्य चानंतरपरंपरसूत्रैः सह संबंधोवक्तव्यः । सचायमिहानंतराध्ययनपरिसमाप्ताविदं सूत्रमाहारगुप्तः समितः सहितः सदा यतेतेत्येतन्मया श्रुतमायुष्मता जगवतेदमाख्यातमेवमनया दिशा परंपरसूत्रैरपि संबंधोऽज्यूह्यः । इहास्मिन् प्रवचने सूत्रकृतांगेवा । खल्विति वाक्यालंकारे । प्रत्याख्यानक्रियानामाध्ययनं तस्यायमर्थोवक्ष्यमाणलक्षणः । अततीत्यात्मा जीवः प्राणी संचानादिमिथ्यात्वाविरतिप्रमादयोगानुगततया स्वजावतएव प्रत्याख्यान्यपि. जवत्यपिशब्दात्सएव कुतश्चिन्निमित्तात्प्रत्याख्यान्यपि । तत्रात्मग्रहणमपरदर्शनव्युदासार्थं । तथाहि । सांख्यानामप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वजावआत्मा । सच तृणकु

व्जीकरणेप्यसमर्थतया किंचित्करत्वान्न प्रत्याख्यानक्रियायां नवितुमर्हति। बौद्धानामप्या त्मनोनावात् ज्ञानस्य च क्षणिकतया स्थितेरनावात् कुतः प्रत्याख्यानक्रियेति एवमन्य त्रापि प्रत्याख्यानक्रियायाअनावोवाच्यः । तथा सदनुष्ठानं क्रिया तस्यां कुशलः क्रि याकुशलस्तत्प्रतिषेधादक्रियाकुशलोप्यात्मा नवति । तथात्मा मिथ्यात्वोदयसंस्थितो नवति तथैकांतेन नापरान् प्राणिनोदंनयतीति दंनस्तदेवंनूतश्चात्मा नवति तथाऽसा रतापादनाद्राग द्वेषाकुलितत्वाद्वालवद्वालश्चात्मा नवति तथा सुप्तवत्सुप्तः । यथाहि इव्यसुप्तः शब्दादीन् विषयान् न जानाति हिताहितप्राप्तिपरिहारविकलश्च तथा नाव सुप्तोप्यात्मैवंनूतएव नवतीत्येवमविचारणीयान्यशोननतया निरूपणीयान्यपर्यालोच नीयानि मनोवाक्कायवाक्यानि यस्य स तथा। तत्र मनोंतःकरणं वाग्वाणी कायोदेहो ऽर्थप्रतिपादकं पदसमूहात्मकं वाक्यमेकं तिङंतं सुबंतंवा। तत्र वा ग्ग्रहणेनैव वाक्यार्थ स्य गतार्थत्वाद्यत्पुनर्वाक्यग्रहणं करोति तदेवं ज्ञापयतीह वाग्व्यापारस्य प्रचुरतया प्रा धान्यं प्रायशस्तत्प्रवृत्त्यैव प्रतिषेधविधानेन तयोरन्येषां प्रवर्त्तनं नवति । तदेवम प्रत्याख्यानक्रियः सन् आत्माऽविचारितमनोवाक्कायवाक्यश्चापि नवतीति। तथा प्रतिहतं प्रतिस्खलितं प्रत्याख्यातं विरतिप्रतिपत्त्या पापकर्माऽसदनुष्ठानं येन सः प्रतिहतप्रत्याख्या तपापकर्मा तत्प्रतिषेधादसनुष्ठानपरश्चात्मा नवति । तदेवमेषपूर्वोक्ताऽसंयतोऽविरतो ऽप्रतिहतप्रख्यातपापकर्मा सक्रियः सावद्यानुष्ठानस्तथानूतश्चासंवृतोमनोवाक्कायैरगुप्तो गुप्तत्वाच्चात्मनः परेषां च दंडहेतुत्वादंडस्तदेवंनूतश्च सन् एकांतेन बालवद्वालः सुप्तवदेकां तेन सुप्तस्तदेवंनूतश्च बालसुप्ततयाऽविचाराण्यविचारितरमणीयानि परमार्थविचारगुणया युक्त्या वा विघटमानानि मनोकायवाक्यानि यस्य स तथा। यदिवा परसंबंध्यविचारितम नोवाक्कायवाक्यः सत्क्रियासु प्रवर्त्तते तदेवंनूतोनिर्विवेकतया पटुविज्ञानरहितः स्वप्नम पि न पश्यति तस्य चाव्यक्तविज्ञानस्य स्वप्नमप्यपश्यतः पापं कर्म बध्यते तेनैवंनूतेनाव्य क्तविज्ञानेनापि पापं कर्म क्रियतइति नावः ॥ १ ॥

तब चोयए पन्नवगं एवं वयासि असंतएणं मणेणं पावयणं असंतिया ए वतीयाए पावियाए असंतएणं काएणं पावएणं अहणंतस्स अमण स्कस्स अ वियारमणवयकायवक्कस्स सुविणमवि अप्पस्सउ पावक म्मे णो कज्जइ कस्सणं तंहेउं चोयए एवं बवीति अन्नयरेणं मणेणं पाव एणं १ णवत्तिए पावे कम्मे कज्जइ अन्नयरीए वत्तिए पावियाए वत्तिवत्तिए पावे कम्म कज्जइ अन्नयरेणं काएणं पावएणं कायवत्तिए पावे कम्मे कज्ज

इ हणंतस्स समणक्कस्स सवियारमणवयकायवक्कस्स सुविणमवि पासउ एवं गुणजातीयस्स पावे कम्मे कज्जइ पुणरवि चोयए एवं ववीति तत्रणं जेते एवमाहंसु असंतएणं मणेणं पावएणं असंतीयाए वत्तिए पावियाए असंतएणं काएणं पावएणं अहणं तस्सअमणक्कस्स अवियारमणवयणकायवक्कस्स सुविणमवि अपस्सउ पावे कम्मे कज्जइ तत्रणं जेते एवमाहंसु मिछा ते एवमाहंसु ॥ २ ॥

अर्थ–ए प्रकारें कहे थके, (तत्रचोयएपन्नवगंएवंवयासि. के०) त्यां शिष्य प्रज्ञापक एटले गुरु प्रत्यें एवुं बोल्यो के, हे नगवन्! (असंतएणं के०) अछते अप्रवर्ते (मणेणं के०) मने (पावयणं के०) पापकर्मने विषे, तथा (असंतियाएवत्तिएपावियाए के०) अछते अप्रवर्त्ते वचनें पापकर्मनें विषे, (असंतएणंकाएणंपावएणं के०) अछते अप्रवर्त्तें कायायें पापकर्मने विषे, (अहणंतस्स के०) अणहणताने विषे, (अमणक्कस्स के०) पापकर्म उपर मनना परिणाम रहित, (अवियारमणवयकायवक्कस्स के०) अविचारवंत मन वचन काया एवा रहे, एटले पापकर्मना विचार विनाना रहे, (सुविणमविअप्पसउपावकम्मेणोकज्जइ के०) स्वप्नांतरें पण पापकर्मने अण देखता, एटले जे पापकर्म स्वप्नांतरें पण देखे नहीं, तो तेने पापकर्म सर्वथाऽपि लागे नहीं, (कस्सणंतंहेउं के०) तो शा कारणे ते पाप कर्म तेने लागे, ? अहीं अव्यक्तपणा थकी पापकर्म लागे, तेने कांइ बंधनुं कारण जाणवुं नहीं. (चोयएएवंववीति के०) तेहिज वली नोदक शिष्य, पोताना अनिप्रायें करी पापकर्मना बंधनुं कारण आवी रीतें कहेछे. (अन्नयरेणंमणेणंपावएणं के०) अन्य कोइ एक प्राणातिपातादिक पापकर्मने विषे मनें करी प्रवर्त्तें, (मणवत्तिएपावेकम्मेकज्जइ के०) ते मन निमित्तें पापकर्म करे बांधे, (अन्नयरीएवत्तिएपावियाए के०) अन्य कोइ एक प्राणातिपातादिक पापकर्मने विषे वचनें करी प्रवर्त्तें, (वत्तिवत्तिएपावेकम्मेकज्जइ के०) ते वचन निमित्तें पापकर्मने करे बांधे, (अन्नयरेणंकाएणंपावएणं के०) अन्य कोइ एक प्राणातिपातादिक पापने विषे कायाने प्रवर्त्तावे. (कायवत्तिएपावेकम्मेकज्जइ के०) ते कायनिमित्तें पाप कर्म करे, बांधे. (हणंतस्ससमणक्कस्ससवियारमणवयकायवक्कस्स के०) हणताने विषे पापकर्म उपर मन परिणाम सहितने विषे सविचार मनें करी, वचनें करी, अने कायायें करी सहित, (सुविणमविपासउ के०) स्वप्नांतरने विषे पण पापकर्म देखे छे (एवंगुणजातीयस्सपावेकम्मेकज्जइ के०) एम गुण

जातिने यथायोग्यें पापकर्म लागे, बंधाय. (पुणरविचोयएएवंबवीति के०) वली पण नोदक शिष्य, आचार्य प्रत्यें एम कहेछे. (तन्नणंजेतेएवमाहंसु के०) त्यां जे, ते एम कहेछे के, (असंतएणंमणेणंपावएणं के०) पापकर्मने विपे अछते मनें, (असंतीयाएवत्तिएपावियाए के०) पापकर्मनें विषे अछते वचने, (असंतएणंकाएणंपाव एणं के०) पापकर्मने विषे अछते कायायें करी, एटलें पापकर्मने विषे मन, वचन, अने कायाने अणप्रवर्त्तावतो. तथा (अहणंतस्सअमणरकस्सअवियारमणवयणकायवक्क स्सके०) अण हणतानें पाप उपर मन परिणाम रहित अणविचार्या मन वचन अने कायानें विषे, तेणें करी सहित. (सुविणमविअपस्सउपावेकम्मेकज्जइ के०) स्वप्नांत रें पण पापकर्म करवाने विपे, बांधवाने विषे, अणदेखतो एवो जे होय ते पण पापक र्म बांधे, (तन्नणंजेते के०) त्यां जे ते (एवमाहंसु के०) एम कहेछे. (मिछातेएव माहंसु के०) ते मिथ्या एटले जुठूं कहेछे. ॥ २ ॥

॥ दीपिका–एवं स्थिते शिष्यः प्रज्ञापकमाचार्यमेवमवादीत् अथवा आचार्याभिप्रायं शिष्योऽनूद्य निपेधति । (असंतएणमित्यादि) असता अविद्यमानेन मनसाऽप्रवृत्तेनाऽशोभनेन तथा वाचा कायेनच पापेनाऽसता तथा सत्वान् घ्नतः अमनस्कस्याविचारमनोवाक्कायवाक्यस्य स्वप्नमप्यपश्यतः स्वप्नांतिकं च कर्म नोपचयं यातीत्येवं अव्यक्तविज्ञानस्यापि पापं कर्म न बध्यते । कस्य हेतोः केन कारणेन तत्पापं कर्म बध्यते? । नात्र कश्चिद्व्यक्तविज्ञानत्वात्पापं कर्म बंधहेतुरित्यर्थः । तदेवं शिष्यएव स्वाभिप्रायेण पापकर्मबंधहेतुमाह । (अन्नयरेणंति) कर्माश्रवद्वारभूतेन मनोवाक्कायानामन्यतरेण क्लिष्टेन तत्प्रत्ययिकं कर्म बध्यते तथा घ्नतः सत्वान् समनस्कस्य सविचारमनोवाक्कायवाक्यस्य स्वप्नमपि पश्यतः स्पष्टविज्ञानस्य एवं गुणजातीयस्य पापं कर्म बध्यते न पुनरेकेंद्रियविकलेंद्रियादेः पापकर्मसंभवइति । तेषां घातकस्य मनोवाक्कायव्यापारस्याभावात् । तस्मान्नैव स्वप्नांतिकमविज्ञोपचितं कर्म विद्यतइति । एवं सति ये ते एवमुक्तवंतस्तद्यथा । विद्यमानैरेवाशुभैर्योगैः पापं कर्म क्रियते मिथ्या ते एवमुक्तवंतइति ॥ २ ॥

॥ टीका–तत्र चैवं व्यवस्थिते चोदकः प्रज्ञापकमेवमवादीत् । अत्र चाचार्याभिप्रायं चोदकोऽनूद्य निषेधयति । (असंतएणमित्यादि) अविद्यमानेनाऽसताऽमनसाऽसत्प्रवृत्तेनाऽशोभनेन तथा वाचा कायेनच पापेनाऽसता तथा सत्वान् घ्नतस्तथा मनस्कस्याविचारमनोवाक्कायवाक्यस्य स्वप्नमप्यपश्यतः स्वप्नांतिकंच कर्म नोपचयं यातीत्येवमव्यक्तविज्ञानस्यापि पापं कर्म न बध्यते एवंभूतविज्ञानेन पापं न क्रियतइति यावत् । कस्य हेतोः केन हेतुना केन

कारणेन तत्पापं कर्म बध्यते।? नात्र कश्चिदव्यक्तविज्ञानत्वात्पापं कर्म बंधहेतुरिति भावः। तदेवं चोदकएव स्वाभिप्रायेण पापकर्मबंधहेतुमाह।(अन्नयरेणमित्यादि) कर्माश्रव द्वारभूतैर्मनोवाक्कायकर्मभिः कर्म बध्यत इति दर्शयति। अन्यतरेण क्लिष्टेन प्राणातिपातादिप्रवृत्त्या मनसा वाचा कायेनच तत्प्रत्ययिकं कर्म बध्यतइति।इदमेव स्पष्टतरमाह। भ्रतस्सत्वान्समनस्कस्य समनोवाक्कायवाक्यस्य स्वप्नमपि पश्यतः प्रस्पष्टविज्ञानस्यैतद्गुणजातीयस्य पापं कर्म बध्यते न पुनरेकेंद्रियविकलेंद्रियादेः पापकर्मसंभवइति तेषां घातकस्य मनोवाक्कायव्यापारस्याभावात्। अथैतद्व्यापारमंतरेणापि कर्मबंधइष्यते एवंच सति मुक्तानामपि कर्मबंधः स्यात्। न चैतदिष्यते। तस्मान्नैव स्वप्नांतिकमविज्ञोपचितं कर्म बध्यतइति। तत्र यदेवंभूतैरेव मनोवाक्कायव्यापारैः कर्मबंधोऽभ्युपगम्यते तदेवं व्यवस्थिते सति ये ते एवमुक्तवंतस्तद्यथा विद्यमानैरेवा शुभैर्योगैः पापं कर्म क्रियते मिथ्या तएवमुक्तवंतइति स्थितं॥२॥

तत्थ पन्नवए चोयगं एवं वयासी तं सम्मं जं मए पुव्वेवुत्तं असंतएणं मणेणं पावएणं असंतियाए वत्तिए पावियाए असंतएणं काएणं पावएणं अहणं तस्स अमणस्कस्स अवियारमणवयकायवक्कस्स सुविणमवि अपस्सओ पावे कम्मे कज्जति तं सम्मं कस्सणं तं हेउं आचार्यो आह तत्थ खलुभग वया छजीवणिकायहेऊपसत्ता तं जहा पुढविकाइया जाव तसकाइया इच्चे एहिं छहिं जीवणिकाएहिं आया अपडिहयपच्चखायपावकम्मे निच्चं पसढविउवातचित्तदंमे तं जहा पाणातिवाए जाव परिग्गहे कोहे जाव मिच्छादंसणसल्ले ॥ ३ ॥

अर्थ–एवुं शिष्यें आचार्यना पक्षने दूषण आप्युं, (तत्थ के०) तेवारें (पन्नवएचोयगं के०) आचार्य पोताना शिष्यप्रत्यें (एवंवयासी के०) एवुं बोल्या के, अहो शिष्य ! (तंसम्मं जंमएपुव्वेवुंतके०) जे में पूर्वें वचन कह्युंके जे मन, वचन, अने कायानी प्रवर्त्ति विना पण पाप कर्म लागे ते सत्यछे. इत्यादि पाठनो अर्थ सुलभ छे माटें नथी लख्यो. (तं सम्मं के०) ते सत्य जाणजे, युक्तिसहित जाणजे. एवुं आचार्यनुं वचन सांभली, फरी शिष्य बोल्यो के, (कस्सणंतंहेवं के०) शे कारणे तमारुं वचन सत्य छे ते कहो. ? हवे (आचार्योआह के०) आचार्य कहेछे. (तत्थखलुभगवया के०) त्यां खलु ए वाक्यालंकारे भगवान् श्रीवर्द्धमान स्वामी तेणें (छजीवणिकायंहेऊपसुत्ता के०) छ जीव निकाय कर्मबंधनां कारण कह्यांछे, (तंजहा के०) ते कहेछे. (पुढविकाईया के०) पृथिवीकाय थकी मांमीने (जावंतसकाइया के०) यावत् त्रसकाय पर्यंत, (इच्चेएहिंछहिंजीवणिकाएहिं के०)

ए ब जीव निकायने विषे, (आयाअपडिहयपच्चरकायपावकम्मे के०) आत्मा सर्वे काल अप्रतिहत एटले हण्यां नथी पच्चरकाणें करी पापकर्म जेणे एवो, तथा (निच्चंपसढविउ वातचित्तदंमे के०) नित्य शठ एटले जड जेवो, एनो परमार्थ जाणे नहीं, प्राणघातने विषे चित्तबे जेनुं ते कारणे प्राणीउंने दंमनो करनार जाणवो. (तंजहा के०) ते कहेबे (पाणातिवाए के०) प्राणातिपात आदें देइने, (जावपरिग्गहे के०) मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, यावत् परिग्रह, अने (कोहे के०) क्रोध थी मांमीने, (जावमिछादंसणसल्ले के०) यावत् मिथ्यात्व दर्शन शल्य ए अढार पापस्थानकने विषे अनिवृत्ति बे एटले अढार पापस्थानक थकी निवृत्या नथी, ते कारण मार्टे एकेंड्रियादिक जीवोने पण अपच्चरकाणी क्रियानो बंध लागे बे. ॥ ३ ॥

॥ दीपिका—एवमाचार्यपक्षं दूषयित्वा नोदकेन स्वपक्षे स्थापिते आचार्य आह । तत्र पन्नवएति) आचार्यः स्वमतमनूद्य युक्त्या साधयति (तंसम्मंति) तत्सम्यक् यन्मयोक्तं अव्यक्तयोगानामपि कर्म बध्यतइति तद्युक्तं । एवमुक्ते शिष्यआह । कस्य हेतोः केन कारणेन तत्सम्यक् गिति चेदाह । (तत्रखलु इत्यादि) तत्र नगवता षड्जीवनिकायाः कर्मबंध हेतुत्वेन स्थापिताः । तद्यथा । पृथिवीकायिकाइत्यादि । इत्येतैः षड्जीवनिकायैरात्मा प्रतिहतं विघ्नितं प्रत्याख्यातं नियमितं पापं कर्म येन स तथा जीवेषु विरतः एवंनूतोन स अप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा नित्यं प्रकर्षेण शठः प्रशठः व्यतिपाते हिंसायां चित्तं यस्य स व्यतिपातचित्तः स्वपरदंमहेतुत्वाद्दंमः प्रशठश्चासौ व्यतिपातचित्तदंमश्चेति । तद्यथा प्राणातिपाते विधेये प्रशठव्यतिपातचित्तदंमः । एवं मृषावादादिष्वपि वाच्यं यावन्मिथ्यादर्शनशल्यं । तदेवमेकेंद्रियविकलेंद्रियाअपि हिंसादिदोषवत्तया मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगाश्रितत्वेन अस्वप्नाद्यवस्थायामपि कर्मबंधइति तन्निरस्तं ज्ञेयम् ॥ ३ ॥

॥ टीका—तदेवं चोदकेनाचार्यपक्षं दूषयित्वा स्वपक्षव्यवस्थापिते सत्याचार्य आह (तत्रपन्नव इत्यादि) तत्राचार्यः स्वमतमनूद्य तस्योपपत्तिकं साधयितुमाह । (तंसम्ममित्यादि) यदेतन्मयोक्तं प्राग् यथा स्पष्टाव्यक्तयोगानामपि कर्म बध्यते तत्सम्यक् शोननं युक्तिसंगतमित्येवमुक्ते परआह । कस्य हेतोः केन कारणेन तत्सम्यगिति चेदाह (तत्रखलु इत्यादि) तत्रेति वाक्योपन्यासार्थे । खलुशब्दोवाक्यालंकारे । नगवता वीरवर्द्धमानस्वामिना षड्जीवनिकायाः कर्मबंधहेतुत्वेनोपन्यस्ताः । तद्यथा पृथिवीकायिकाइत्यादि यावत्रसकायिकाइति । कथमेते षड्जीवनिकायाः कर्मबंधस्य कारणमित्याह (इच्चेएहिंमित्यादि) इत्येतेषु पृथिव्यादिषु षड्जीवनिकायेषु प्रतिहतं विघ्नितं प्रत्याख्यातं नियमितं

पापं कर्म येन सतथा पुनर्नञ्समासेनाऽप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा यथात्मा जंतुस्तथा तद्भवत्वादेव नित्यं सर्वकालं प्रकर्षेण शठस्तथा व्यतिपाते प्राणव्यपरोपणे चित्तं यस्य स व्यतिपातचित्तः स्वपरदंडहेतुत्वाद्दंडः प्रशठश्चासौ व्यतिपातचित्तदंडश्चेति कर्मधारयः । इत्येतदेव प्रत्येकं दर्शयितुमाह (तंजहेत्यादि) तद्यथा प्राणातिपाते विधेये प्रशठचित्तदंडएवं मृषावाददत्तादानमैथुनपरिग्रहेष्वपि वाच्यं यावन्मिथ्यादर्शनशल्यमिति । तेषामिहैकेंद्रियविकलेंद्रियादीनामनिवृत्तत्वान्मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगानुगतत्वं द्रष्टव्यं । तद्भावाच्च ते कथं प्राणातिपातादिदोषवत्तया व्यक्तविज्ञानाश्चपि स्वप्नाद्यवस्थायामिति ते कर्मबंधकाएव । तदेवं व्यवस्थिते यत्प्रागुक्तं परेण यथा नाव्यक्तविज्ञानानामघ्नताममनस्कानां कर्मबंधइत्येतत् प्लवते ॥ ३ ॥

आचार्यआह तत्र खलु भगवया वहए दिठ्ठंते पसत्ते से जहा णामए वहए सिया गाहावइस्सवा गाहावइपुत्तस्सवा रस्रोवा रायपुरिसस्सवा खणं निद्दाए पविसिस्सामि खणंलद्धूणं वहिस्सामि पहारेमाणे से किंतु हुनाम से वहए तस्स गाहावइस्सवा गाहावइपुतस्सवा रस्रोवा रायपुरिसस्सवा खणं निद्दाए पविसिस्सामि खणं लद्धूणं वहिस्सामि पहारेमाणे दियावा राउवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमित्तभुत्ते मिछासंठित्ते निच्चं पसढविउवायचित्तदंडे भवति एवं वियागरेमाणे समियाए वियागरे चोयए हंता भवति ॥ ४ ॥

अर्थ—हवे आचार्य एनी उपर दृष्टांत कहेछे. (तत्रखलुभगवया के०) त्यां निश्चें भगवंत श्री महावीर देवें (वहएदिठ्ठंते के०) वधकनो दृष्टांत (पसत्ते के०) कह्यो छे. (सेजहाणामए के०) ते जेम नाम एवी संभावनायें कोइ एक पुरुष, (वहएसिया के०) वधक होय ते कोइ एक कारणें कोप्यो थको, (गाहावइस्सवा के०) गृहपति उपर, तथा (गाहावइपुत्तस्सवा के०) गृहपतिना पुत्र उपर. अथवा (रस्रोवा के०) राजा उपर, (रायपुरिसस्सवा के०) अथवा राजानो पुरुष, तेओनो विनाश करवा वांछतो, एवी चिंतवना करे के, (खणंनिद्दाए के०) अवसर पामिने, एना घरमां (पविसिस्सामि के०) प्रवेश करीश (खणंलद्धूणंवहिस्सामि के०) छिद्रादिक पामिनें अथवा देखीने एने हणीश. (पहारेमाणे के०) ते पुरुष एम चिंतवतो, (सेकिंतुहुनामसेवहए के०) ते केवो जाणवो? तु अवधारणे छे नाम संभावनायें छे. तो के, ते वधक कहियें. हवे ते वधक गृहपतिनो, अथवा गृहपतिना पुत्रनो, अथवा राजानो, अथवा राजपुरुषनो, वध

चिंतवतो अवसर पामिने, तेना घर मांहें प्रवेश करीश, अवसर देखीने तेने हणीश, एम चिंतवतो, दिवसें अथवा रात्रीयें सुतो, अथवा जागतो, अमित्रनूत मिथ्यामित्र पणामां संस्थित एटले मागा कार्यने विषे रह्यो, (निच्चंपसढ के०) नित्यज प्रशठ एट ले एनो परमार्थ जाणे नहीं. (विऊवायचित्त के०) प्राणिघात तेने विषे जेनुं चित्तछे ते कारणे, (दंमेनवति के०) प्राणीउने दंमनो करना होय, ते पुरुष जीवनो विनाश न करतो थको पण वधक कहेवाय, किंवा न कहेवाय? (एवंवियागरेमाणे के०) एरीतें आचार्यें कहे उते, (समियाएवियागरेंचोयएहंताजनवति के०) शिष्य बोल्यो के, हे नग वन्! ए तमें सत्य बोल्या. ते वधक कहेवाय ॥ ४ ॥

॥ दीपिका—अथाचार्यः स्वमतसिद्ध्ये दृष्टांतमाह । (तत्रखलुइत्यादि) तत्र खलु नगवता वधकदृष्टांतः प्रज्ञप्तः । तद्यथानाम कश्चिद्वधकः स्यात् गृहपतेर्गृहपतिपुत्रस्य वा राज्ञोराजपुरुषस्य वा उपरि कुतश्चिन्निमित्तात्कुपितः सन् क्षणमवसरं निदाय प्राप्य गृहे पुरे वा घाताय प्रवेक्ष्यामि क्षणमवसरं छिद्रादिकं लब्ध्वा वध्यं हनिष्यामीति संप्रधा रयन् दिवा रात्रौ वा सुप्तोवा जाग्रद्वा मित्रनूतोमिथ्यासंस्थितोनित्यं प्रशठव्यतिपातचित्त दंमोहिंसाध्यवसायी नवति । अयमर्थः । कोऽपि कस्यापि गृहपत्यादेरुपरि कुपितस्तं हं तुकामोपि यावदवसरं छिद्रं न लनते तावत्कार्यांतरे प्रवृत्तोपि हिंसामकुर्वन्नपि वध्यस्य हिंसावसरापेक्षी नित्यं रागद्वेषाकुलः स्यात् । एवमेकेंद्रियविकलेंद्रियाअपि विरतेरना वात्तद्योग्यतया हिंसामकुर्वंतोपि तत्प्रत्ययिकेन कर्मणा बध्यंतएवेत्यर्थः ॥ ४ ॥

॥ टीका—सांप्रतमाचार्यः स्वपक्षसिद्ध्ये दृष्टांतमाह । (तत्रखलुनगवयाइत्यादि) त त्रेति वाक्योपन्यासार्थः । खलु शब्दोवाक्यालंकारे । नगवतैश्वर्यादिगुणोपेतेन चतुस्त्रिंश दतिसमयसमन्वितेन तीर्थकृता वधकदृष्टांतः प्रज्ञप्तः प्ररूपितस्तद्यथा नाम वधकः कश्चि त्स्यादिति कुतश्चिन्निमित्तात्कुपितः सन् कस्यचिद्वधपरिणतः कश्चित्पुरुषोनवति । य स्यासौ वधकस्तं विशेषेण दर्शयितुमाह । (गाहावइस्सवेत्यादि) गृहस्य पतिर्गृहपति स्तत्पुत्रोवाऽनेन सामान्यतः प्राकृतपुरुषोऽनिहितस्तस्योपरि कुतश्चिन्निमित्ताद्वधकः कश्चि त्संवृत्तः सच वधपरिणामपरिणतोपि कस्मिंश्चित्क्षणे पापकारिणमेनं घातयिष्यामीति । तथा राज्ञस्तत्पुत्रस्योपरि कुपितएतत्कुर्यादित्याह । (खणंनिदायइत्यादि) क्षणमवसरं (णिद्दायत्ति) प्राप्य तथाविधस्य पुरे गृहे वा प्रवेक्ष्यामीत्येतदध्यवसायी नवति तथा क्ष णमवसरं छिद्रादिकं वध्यस्य लब्ध्वा तडुत्तरकालं तं वध्यं हनिष्यामीत्येवं संप्रधारयति। एतडुक्तं नवति । गृहपतेः सामान्यपुरुषस्य राज्ञोवा विशिष्टतमस्य कस्यचिद्वधपरिणतो

प्यात्मनो ऽवसरं लब्ध्वाऽपरकार्यक्षणे सति तथा वध्यस्यच छिद्रमपेक्षमाणस्तदवसरा पेक्षी किंचित्कालमुदास्ते सच तत्रौदासीन्यं कुर्वाणोऽपरकार्यं प्रति व्यग्रचेताः संस्तस्मि न्नवसरे वधं प्रत्यस्पष्टविज्ञानोजवति । सचैवंजूतोपि तथा तं वध्यं प्रति नित्यमेव प्रशठ व्यतिपातचित्तदंमोजवत्येवमविद्यमानैरपि प्रव्यक्तैरशुनैर्योगैरेकेंड्रियविकलेंड्रियादयोऽस्पष्ट विज्ञानाश्रपि मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगानुगतत्वात्प्राणातिपातादिदोषवंतोजवंति । नच तेऽवसरमपेक्षमाणाउदासीनाश्रप्यवैरिणोन जवंतीति । अत्रच वध्यवधकयोः क्ष णापेक्षया चत्वारोजंगाः । तद्यथा । वध्यस्याऽनवसरोवधकस्य च जनयोर्वाऽनवसरो द्व योरप्यवसरइति । नागार्जुनीयास्तु पठंति । अप्पणो अरकाणया एतस्सवा पुरिसस्स छिदं अलजमाणे णोवहे इतं जयामेरकणो जविस्सइ तस्स पुरिसस्स छिदं लजिस्सामि तया मेस पुरिसे अवस्सं वहयव्वे जविस्सइ एवं मणोपहारे माणेत्ति सूत्रं निगदसिद्धं ॥ ४ ॥

आचार्यआह जहासे वहए तस्स गाहावइस्सवा तस्स गाहावइपुत्त स्सवा रस्रोवा रायपुरिसस्स खणं निहाए पविसिस्सामि खणं लद्धूणं वहिस्सामित्ति पहारेमाणे दियावा राउवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमि त्तजूए मिछासंठित्ते निच्चं पसढविउवायचित्तदंमे एवमेव बालेवि सव्वेसिं पाणाणं जाव सव्वेसिं सत्ताणं दियावा राउवा सुत्तेवा जागरे माणेवा अमित्तजूए मिछासठिते निच्चं पसढविउवायचित्तदंमे तं पाणाति वाए जाव मिछादंसणसल्ले एवंखलु जगवया अरकाए असंजए अवि रए अप्पडिहयपच्चरकायपावकम्मे सकिरिए असंवुमे एगंतदंमे एगंतबाले एगंतसुत्तेयावि जवइ से बाल अवियारमणवयणकायवक्के सुविणम विणपस्सइ पावेय से कम्मे कज्जइ ॥ ५ ॥

अर्थ—तेवारें अचार्य बोल्या के, अहो शिष्य ! जेम ते वधक पुरुष, ते गृहपति, तथा गृहपतिना पुत्र, अथवा राजा, तथा राज पुरुष उपर विनाशनो जाव चिंतवतो प डो, तेमना विनाशनी क्रिया कस्या विना पण ते वधक कहेवाय; बीजा पदोनो अर्थ सु गम छे माटें आहीं लख्यो नथी. (एवमेव के०) एम ते, (बालेवि के०) बाल जीव पण, सर्व प्राणीने विषे यावत् सर्व सत्व, तेनो दिवसें अथवा रात्रियें सुतां अथवा जागतां, अमित्रजूत एटले शत्रुजूत मिथ्यात्वसंस्थित निरंतर शठ,प्राणिघातने विषे चित्त छे जेनुं, प्राणीयोने दंम कारक, (तं के०) ते कहेछे. प्राणातिपात मृषावादथी मांमी

ने यावत् मिथ्यात्व दर्शन शल्य, एवा अढारे पापस्थानकने विषे अनिवृत्त बतो होय. एम निश्चें नगवंतें कह्युंबे, तेम असंयति अविरति अप्रतिहत एटले पच्चरकाणें करीने पाप कर्म जेणें हण्यां नथी, क्रिया सहित संवर रहित एकांत दंमनो आपनार, एकांत बाल, एकांत शयन करनार होय. ते बाल, अविचारवालां, एवां मन वचन अने काया तेणें करी सहित बतो जे पाप स्वप्नांतरमां पण देखे नहीं. एवां पापकर्मनुं बंधन करे. एम अविरतिपणायें करी तेने पापकर्म लागे ॥ ५ ॥

॥ दीपिका—अथाचार्यएव स्वानिमतार्थं परप्रश्नपूर्वमाह । (सेकिंतुइत्यादि) आचार्यः स्वयं निर्णीतार्थोपि ईर्ष्यया परं पृच्छति किमसौ वधकपुरुषोहननावसरापेक्षी नित्यं हिंसानुगतचित्तः स्यात्किंवा न? इति पृष्टे परः समतया मध्यस्थः सन् यथास्थितमेव व्यागृणीयात् कथयेत् । तद्यथा हंताचार्यनवत्यसौ अमित्रनूतइति ॥ अथ दार्ष्टांतिकं दर्शयति । (जहासत्ति) यथासौ वधकइत्यादिना दृष्टांतमनूद्य दार्ष्टांतिकं दर्शयति । (एवमेवेत्यादि) यथासौ वधकोऽवसरापेक्षी वध्यस्य हिंसामकुर्वाणोपि अमित्रनूतोनवति एवमसावपि बालो ऽस्पष्टविज्ञानोनिवृत्तेरनावाद्योग्यतया सर्वेषां प्राणिनां हंता स्यात् यावन्मिथ्यादर्शनशल्योपेतः स्यात् । कोर्थः । यद्यपि विनयादिकं कुतश्चित्कारणादसौ विधत्ते तथापि उदायिनृपमारकवदंतर्डुष्टएव नित्यं हिंसानुगतचित्तश्च । यथा परशुरामः कृतवीर्यं हत्वापि ततः सप्तवारं निःक्षत्रां पृथिवीं चकार । यडुक्तं । " अपकारसमेन कर्मणा, न नरस्तुष्टिमुपैति शक्तिमान् ॥ अधिकां कुरुतेऽरियातनां विषतां मूलमशेषमुद्धरेत् " ॥ १ ॥ एवमसावपि अमित्रनूतः स्यादिति । अथ पूर्वोक्तार्थमनुवदन्नुपसंहरति । (एवंखलुन्नगवयाइत्यादि) यथा वधकोऽनिवृत्तत्वाडुष्टएवमेकेंड्रियादिकोऽस्पष्टविज्ञानोपि अविरतत्वाडुष्टएवेति । शेषं सुगमं । यावत्पापं कर्म क्रियतइति ॥ ५ ॥

॥ टीका—सांप्रतमाचार्यएव स्वानिप्रेतमर्थं परप्रयत्नपूर्वकमाविर्नावयन्नाह । (सेकिंतु डुइत्यादि) आचार्यः स्वतोहि निर्णीतार्थोऽसूयया परं पृच्छति । किमिति परप्रश्ने । तुरिति वितर्के । डुशब्दोवाक्यालंकारे । किमसौ वधकपुरुषावसरापेक्षी बिड्रमवसरं प्रधारयन् पर्यालोचयन्नहर्निशं सुप्तोजाग्रदवस्थोवा तस्य गृहपतेराज्ञोवा वध्यस्यामित्रनूतोमिथ्यासंस्थितोनित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमोनवत्याहोस्विन्नेत्येवं पृष्टः परः समतया माध्यस्थ्यमवलंब्यमानोयथावस्थितमेव व्यागृणीयात् । तद्यथा हंताचार्य नवत्यसावमित्रनूतइतीत्यादि ॥ तदेवं दृष्टांतं प्रदर्श्य दार्ष्टांतिकं दर्शयितुमाह(जहासेवहएइत्यादि) यथासौ वधकइत्यादिना दृष्टांतमनूद्य दार्ष्टांतिकमर्थं दर्शयितुमाह ।

(एवमेवेत्यादि) एवमेवेति यथासौ वधकोऽवसरापेक्षितया वध्यस्य व्यापत्तिमकुर्वाणोऽप्यमित्रभूतोभवत्येवमेवासावपि बालवद्बालोऽस्पष्टविज्ञानोभवत्येव निवृत्तेरभावाद्योग्यतया सर्वेषां प्राणिनां व्यापादकोभवति यावन्मिथ्यादर्शनशल्योपेतोभवति । इदमुक्तं भवति । यद्यप्युत्थानादिकं विनयं कुतश्चिन्निमित्तादसौ विधत्ते तथाप्युदायिनृपव्यापादकवदंतर्दुष्टएवेति नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंडश्च यथा परशुरामः कृतवीर्यं व्यापाद्यापि तदुत्तरकालं सप्तवारं निःक्षत्रां पृथिवीं चकार (आहत्ति) "अपकारसमेन कर्मणा, न नरस्तुष्टिमुपैति शक्तिमान् ॥ अधिकां कुरुतेऽरियातनां, द्विषतां मूलमशेषमुद्धरेत् ॥ १ ॥ इत्येवमसावमित्रभूतोमिथ्याविनीतश्च भवतीति । सांप्रतमुपसंहरन् प्राक् प्रतिपादितमर्थमनुवदन्नाह । (एवंखलुभगवयाइत्यादि) यथासौ वधकः स्वपरावसरापेक्षी सन्न तावद्घातयत्यथवा निवृत्तत्वाद्दोषदुष्टएव एवमसावप्येकेंद्रियादिकोऽस्पष्टविज्ञानोपि तथाभूतएवाविरताप्रतिहतप्रत्याख्यातसत्क्रियादिदोषदुष्टइति । शेषं सुगमं । यावत्पापं कर्म क्रियतइति॥५॥

जहा से वहए तस्सवा गाहावइस्स जाव तस्सवा रायपुरिसस्स पत्तेयं पत्तेयं चित्तसमादाए दियावा राउवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमित्तभूत्ते मिछासंठिते निच्चं पसढविउवायचित्तदंमे भवइ एवमेव बाले सव्वेसिं पाणाणं जाव सव्वेसिं सत्ताणं पत्तेयं पत्तेयं चित्तसमादाए दियावा राउवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमित्तभूते मिछासंठिते निच्चं पसढविउवायचित्तदंमे भवइ ॥ ६ ॥

अर्थ-(जहासेवहए के०) जेम ते वधक पुरुष, ते गृहपत्यादिक उपर प्रत्येक प्रत्येक चित्ते करी विनाश चिंतवतो, दिवसें रात्रियें सुतो, जागतो थको अमित्रभूत एटले शत्रु समान मिथ्यात्व संस्थित निरंतर शठ प्राणघातने विषे चित्तछे जेनूं माटें, प्राणीयोने दंमनो करनार होय. तेने पापकर्म बंधाय. (एवमेव के०) एमज ए बाल जे एकेंद्रियादिक जीवो छे ते पण सर्व प्राणी, सर्वभूत, सर्वजीव, सर्वसत्व, तेने विषे अविरति पणाने भावें ते सर्वने विषे प्रत्येक प्रत्येक चित्तें करी विनाश चिंतवतो, दिवसने विषे, रात्रिने विपे, सुतो, जागतो, अमित्र भूत मिथ्यात्व संस्थित, निरंतर शठ, प्राणिघातने विषे चित्तछे जेनूं, प्राणीयोने दंमनो करनार होय, एम बोलाय. ते कारणें तेने पापकर्म बंधाय॥६॥

॥ दीपिका—तदेवं पूर्वोक्तार्थनिगमनं कृत्वाऽधुना स सर्वप्राणिनां दुष्टात्मा स्यादिति दर्शयति । यथासो वधकोगृहपत्यादेः प्रत्येकं सर्वेषु वध्येषु घातकचित्तं समादाय प्राप्तावसरोऽहमेनं हनिष्यामीति कृत्वा दिवा रात्रौवा सुप्तोजाग्रद्वा सर्वावस्थासु सर्वप्राणि

नां प्रत्येकममित्रनूतोघ्नन्नपि मिथ्यासंस्थितोनित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमोनवति । एवं बालकएकेंड्रियादिरपि सर्वप्राणिनां विरतेरनावात्प्रत्येकं घांतकचित्तं समादाय नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमः स्यात्तत्प्रत्ययिकेन कर्मणा बध्यतइति ॥ ६ ॥

॥ टीका—तदेवं दृष्टांतदार्ष्टांतिकप्रदर्शनेन पूर्वप्रतिपादितार्थस्य निगमनं कृत्वाऽधुना सर्वेषामेव प्रत्येकं प्राणिनां डुष्टात्मा नवति इत्येतत्प्रतिपादितुकामआह । (जहासेवहएइत्यादि) यथाऽसौ वधकः परात्मनोरवसरापेक्षी तथास्य गृहपतेस्तत्पुत्रस्य वाऽन्यहितस्य वा राजादेस्तत्पुत्रस्य चैकमेकं पृथक् पृथक् सर्वेष्वपि वध्येषु घातकचित्तं समादाय प्राप्तावसरोऽहमेनं वैरिणं मदाधिविधायिनं पातयिष्यामीत्येवं प्रतिज्ञाय दिवा रात्रौ वा सुप्तोवा जाग्रद्वा सर्वाप्यवस्थासु सर्वेषामेव वध्यानां प्रत्येकममित्रनूतोऽवसरापेक्षितया घ्नन्नपि मिथ्यासंस्थितोनित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमोनवति इति रागद्वेषाकुलितोबालवद्बालोज्ञानावृतएकेंड्रियादिरिति । सर्वेषामेव प्राणिनां विरतेरनावात्तद्योग्यतया प्रत्येकं वध्येषु घातकचित्तं समादाय नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमोनवतीति । इदमुक्तं नवति । यथासौ तस्माद्गृहपतीराजानुघाताडुपशांतवैरः कालावसरापेक्षितया वधमकुर्वाणोप्यविरतिसद्भावाद्वैरान्न निवर्त्तते तत्प्रत्ययिकेनच कर्मणा बध्यते । एवं मृषावादादत्तादानमैथुनपरिग्रहेष्वपि प्रतिज्ञाहेतुदृष्टांतोपनयनिगमनार्थविधानेन पंचावयवत्वं वाच्यमिति । इहैव पंचावयवस्य सूत्राणां विनागोडृष्टव्यः । तद्यथा । आया अपच्चरकाणीयावि नवतीत्यतआरज्य यावत्पावेयसे कम्मे कद्धइत्ति इतीयं प्रतिज्ञा । तत्र परः प्रतिज्ञामात्रेणोक्तमनुक्तसममिति कृत्वा चोदयति । तद्यथा । तब चोयए पस्नवगं एवं वयासीत्यतआरज्य यावद्भंते एवमाहिंसुमिच्छंते एवमाहिंसुत्ति । तत्र प्रज्ञापकश्चोदकं प्रत्येवं वदेत् । तद्यथा । यन्मया पूर्वं प्रतिज्ञातं तत्सम्यक् कस्य हेतोः केन हेतुनेतिचेत् तत्र हेतुमाह । तब खलु नगवया बजीवनिकायाहेऊपस्नत्ताइत्यतआरज्य यावमिच्छादंसणसल्लेइत्ययं हेतुः । तदस्य हेतोरनैकांतिकत्वव्युदासार्थं स्वपक्षे सिद्धिं दर्शयितुं दृष्टांतमाह । तद्यथा । खलु नगवया वहए दिढंते पस्नत्ते इत्येतदारज्य यावत्तस्याखणं लद्धूणं वहिस्सामीति पहारमाणेत्ति । तदेवं दृष्टांतं प्रदर्श्य तत्र च हेतोः सत्तां स्वानिप्रेतां परेण नणयितुमाह । से किंतुडुणाम से वहए इत्यादेरारज्य यावद्धंता नवति । तदेवं हेतोर्दृष्टांते सत्वं प्रसाध्य हेतोः पक्षधर्मत्वं दर्शयितुमुपनयार्थं दृष्टांतधर्मिणि हेतोः सत्तां परेणाज्युपगतामनुवदति । जहासे वहए इत्यतआरज्य यावस्निच्चं पसढविउवायचित्तदंमेत्ति । सांप्रतं हेतोः पक्षधर्मत्वमाह । एवमेव बालेअवीत्यादीत्यतआरज्य यावत्पावेयसे कम्मे किज्जइत्ति । तदेवं प्रतिज्ञाहेतुदृष्टांतोपन

यनप्रतिपादकानि यथाविधिसूत्राणि विनागतः प्रदर्श्याधुना प्रतिज्ञाहेत्वोः पुनर्वचनं निगमनमित्येतत्प्रतिपादयितुमाह । जहा से वहए तस्सवागाहावइस्स इत्यादि यावन्निच्चं पसढविउवायचित्तदंमेत्ति) एतानि प्रतिज्ञाहेतुदृष्टांतोपनयनिगमान्यर्थतः सूत्रैः प्रदर्शितानि । प्रयोगस्त्वेवं द्रष्टव्यः । तत्राप्रतिहतप्रत्याख्यातक्रियआत्मा पापानुबंधीति प्रतिज्ञा सदा षड्जीवनिकायेषु प्रशठव्यतिपातचित्तदंमत्वादिति हेतुः स्वपरावसरापेक्षितया कदाचिदव्यापादयन्नपि राजादिवधकवदिति दृष्टांतः । यथासौ वधपरिणामादनिवृत्तत्वा द्वध्यस्यामित्रनूतस्तथाऽत्माऽपि विरतेरनावात्सर्वेष्वपि सत्वेषु नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमइत्युपनयः । यतएवं तस्मात्पापानुबंधीति निगमनम् । एवं मृषावादादिष्वपि पंचावयवत्वं योजनीयमिति । केवलं मृषावादादिशब्दोच्चारणं विधेयं तच्चानेन विधिना नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमत्वात्तथा नित्यं प्रशठादत्तादानचित्तदंमत्वादिति ॥ ६ ॥

णो इणठे समठे चोदक इह खलु बहवे पाणा जे इमेणं सरीरसमणुस्सएणं णो दिठावा सुयावा नाजिमयावा विन्नायावा जेसिं णो पत्तेयं पत्तेयं चित्तसमायाए दियावा राउवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमित्तनूते मिछासंठिते निच्चं पसढविउवायचित्तदंमे तं पाणातिवाए जाव मिछादंसणसल्ले ॥ ७ ॥

अर्थ—एम गुरुयें कहे थके, हवे (चोदक के०) शिष्य बोल्योके, हे नगवन् ! तमे जे अर्थ कह्यो, ते योग्य नथी (णोइणठेसमठे के०) ते अर्थ समर्थ नथी, तेनूं कारण कहेठे. (इहखलु के०) आ चउदरज्ज्वात्मक लोकमांहें (बहवेपाणा के०) अनंता प्राणीठे (जेइमेणंसरीरसमणुस्सएणं के०) जे आ शरीरें करी, समुणस्सए एटले पुजलें करी, जीवें दृष्टियें करी कदाचित् कोइवारें पण (णोदिठावा के०) दीठा नथी, (सुयावा के०) कानें सांजल्या नथी, (नाजिमयावा के०) उलख्या पण नथी, अथवा (विन्नायावा के०) विशेषें करी, जाण्या पण नथी, (जेसिंणोपत्तेयंपत्तेयंचित्तसमायाए के०) जेणे ए कारणे प्रत्येक प्रत्येक चित्तें करीने ए जीवोनो विनाश चिंतव्यो नथी तो दिवसने विषे, रात्रीने विषे, सुतां, जागतां, अमित्रनूत मिथ्यासंस्थित निरंतर शठ प्राणिना घातनेविषे चित्तठे जेनूं प्राणीने दंमकारक ते केम केहेवाय ? अने प्राणातिपात थकी मांमीने यावत् मिथ्यात्व दर्शन शल्य सुधी अढारे पापस्थानकने अण करवाथी तेने कर्मनुं बंधन केम लागे ? एतावता तेनें नज लागे. ॥ ७ ॥

॥ दीपिका—एवं षड्जीवनिकायेषु प्रत्येकं अमित्रनूततया पापानुबंधित्वे दर्शिते

परोव्यनिचारं दर्शयति । (णोइणठेइति) नायमर्थः समर्थोयत्सर्वेऽपि प्राणिनः सर्वे षां जीवानाममित्रनूताइति । तत्र परः स्वपक्षसिद्धये युक्तिमाह । इह बहवोऽनंताः प्राणिनः संति येऽमुना शरीरसमुच्छ्रयेणानेन शरीरेण न कदाचिद्दृष्टाश्चक्षुषा न श्रुताः कर्णान्यां नानिमतानेष्टाः । नच विज्ञाताज्ञानेनेति कथं तद्विषयस्तेषु अमित्रनावः स्यात्! । तेषां जीवानां कदाचिदपि विषयमप्राप्तानां कथं वधं प्रति चित्तसमादानं स्यात्!। न चासौ तान् प्रति प्रशठव्यतिपातचित्तदंमः स्यात्। शेषं सुगमम् ॥ ७ ॥

॥ टीका—तदेवं सर्वात्मना षट्स्वपि जीवनिकायेषु प्रत्येकममित्रनूततया पापानुबंधित्वे प्रतिपादिते व्यनिचारं दर्शयन्नाह । (णोइणठेसमठेइत्यादि) नायमर्थः समर्थ इति प्रतिपत्तुं योग्यः । तद्यथा । सर्वे प्राणिनः सर्वेषामेव सत्वानां प्रत्येकममित्रनूता इति । तत्रापरः स्वपक्षसिद्धये सर्वेषां प्रत्येकं मित्राजावं दर्शयितुं कारणमाह । इहास्मिंश्चतुर्दशरज्ज्वात्मके लोके बहवोऽनंताःप्राणिनः सूक्ष्मबादरनेदनिन्नाः संति । यद्येवं ततः किमित्याह । तेच देशकालस्वनावविप्रकृष्टास्तथानूताबहवः संति । ये प्राणिनः सूक्ष्मादिविप्रकृष्टाद्यवस्था अमुना शरीरसमुच्छ्रयेणेत्यनेनेदमाह । प्रत्यक्षासन्नवाचित्वादिदमनेनावार्ग्दर्शिज्ञानसमन्वितसमुच्छ्रयेण न कदाचिद्दृष्टाश्चक्षुषा न श्रुताः श्रवणेंद्रियेण विशेषतोनानिमताइष्टानच विज्ञाता प्रतिनेदज्ञानेन स्वयमेवेत्यतः कथंचित्तद्विपर्ययस्तस्य मित्रनावः स्यात् अतस्तेषां कदाचिदविज्ञातानां कथं प्रत्येकं वधं प्रतिचित्तसमादानं न नवति । न चासौ तान् प्रति नित्यं प्रशठव्यतिपातच्चित्तदंमोनवतीति शेषं सुगमम् ॥ ७ ॥

आचार्यआह तब खलु नगवया डुवेदिठंता पणत्ता तं सन्निदिठंतेय असन्निदिठंतेय से किंतं सन्निदिठंते जे इमे सन्निपंचिंदिया पज्जत्तगा ए तेसिणं बजीवनिकाए पडुच्चं तं पुढवीकायं जाव तसकायं से एगइत्त पुढवी काएणं किच्चं करेइवि कारावेइवि तस्सणं एवं नवइ एवं खलु अहं पुढवी काएणं किच्चं करेमिवि कारवेमिवि णो चेवणं से एवं नवइ इमेणवा इमे णवा से एतेणं पुढवीकाएणं किच्चं करेइवि कारावेइवि सेणं ताताो पुढवी कायाउ असंजय अविरय अप्पडिहयपच्चक्खाणपावकम्मेयावि नवइ एवं जाव तसकाएत्ति नाणियवं से एगइत्त बजीवनिकाएहिं किच्चं करेइवि कारावेइवि तस्सणं एवं नवइ एवं खलु अहं बजीवनिकाएहिं किच्चं करेमिवि कारवेमिवि णो चेवणं से एवं नवइ इमेहिंवा से यतेहिं ब

जीवनिकाएहिं जाव कारवेइवि से यतेहिं छहिं जीवनिकाएहिं असंज यं अविरयं अप्पडिहयंपच्चक्खायपावकम्मेहिं तं पाणातिवाए ते जावमि छादंसणसल्ले एस खलु जगवया अरकाए असंजए अविरए अपडि हयपच्चक्खायपावकम्मे सुविणमवि अपस्साउ पावेयसे कम्मे कज्ज इ से तं सन्निदिठंतेणं ॥ ८ ॥

अर्थ—हवे एम शिष्यें कह्यानंतर आचार्य कहेछे. (तछखलुजगवयाडुवेदिठंतापसू त्ता. के०) त्यां निश्चें जगवंतें ए अर्थ उपर बे दृष्टांत कह्याछे. ते जेमछे, तेम कहेछे. (तंसन्निदिठंतेय के०) एक संज्ञिदृष्टांत, अने (असन्निदिठंतेय के०) बीजो असंज्ञिदृ ष्टांत (सेकितंसंन्निदिठंते के०) त्यां संज्ञिदृष्टांत, कयो ? ते कहेछे (जेइमेसन्निपंचिंदि यापज्जत्तगा के०) जे ए प्रत्यक्ष लक्षण संज्ञी पंचेंद्रिय पर्याप्ता जीवछे (एतेसिणं के०) तेमांहे कोइ एक (छजीवनिकाएपडुच्चं के०) छ जीवनिकाय आश्री एवी प्रतिज्ञा करे, (तं के०) ते छकायनां नाम कहेछे. (पुढवीकायंजावतसकायं के०) पृथिवी काय यावत् त्रसकाय पर्यंत (सेएगइउ के०) ते कोइ एक पुरुष एवी प्रतिज्ञा करे के, (पुढवीकाएणंकिच्चंकरेइवि के०) पृथिवीकायें करीनेज कार्य करीश (करावेइविके०) अने पृथिवीकायें करीज कार्य करावीश, एवो जेने नियमछे (तस्सणंएवंजवइ के०) तेने एम होय ते कहेछे (एवंखलुअहंपुढवीकाएणं के०) एम निश्चें हुं पृथिवीकायें करी (किच्चंकरेमिविकारवेमिवि के०) कार्य करीश, अने बीजानी पासे पण करा वीश परंतु (णोचेवणंसेएवंजवइ के०) तेनें निश्चें एवो अजिप्राय नथी के (इमे णवाइमेणवा के०) अमुक अमुक दिशिना, तथा हुं, अमुक अमुक कोइक कालें, अथ वा धोले, नीले, पीले, राते, पृथिवीकायें कार्य करीश अथवा अनेक जेद पृथिवीकायना छे तेमांहेथी अमुक कोइ एक जेदेंज कार्य करीश, ज्यां सुधी एवो अजिप्राय नथी त्यां सुधी तेने सर्व पृथिवीकायनूं कर्म लागेछे (सेएतेणंपुढवीकाएणंकिच्चंकरेइवि कारावेइवि के०) ते पुरुष ते पृथिवीकायें करी पोतें कार्य करे, बीजा पासें कार्य करावे, (सेणंतातोपुढवीकायाउ के०) ते पुरुष ते पृथिवीकायथकी, (असंजय के०) असंयति अनिवृत्त (अविरय के०) अविरति, (अपडिहयपच्चरकाणपाव कम्मेयाविजवइ के०) तथा नथी हण्यां पच्चरकाणें करीने पापकर्म जेणे एवो छे, (एवंजावतस्सकाएत्तिजाणियव्वे के०) एम यावत् त्रस काय सुधी एटले छए काय आश्री जाणी लेवुं जेने जें कायनी अविरति होय तेने ते कायनुं कर्म लागे. ए रीतें को

६ एक पुरुष बजीव निकायें करीने कार्य पोतें करें, बीजा पासें करावे, ते पुरुष बजीव निकायने विषे अविरति असंयति केहेवाय. ए आलावानों बीजो अर्थ पूर्वना आलावा मां लखाइ गयोबे, माटें आंहीं लख्यो नथी. ए रीतें जे प्राणी प्राणातिपातथी मांमीने यावत् मिथ्यात्व दर्शन शल्य पर्यंत अढारे पापस्थानकने विषे असंयति अविरति तथा पच्चरकाणें करीने जेणे पापकर्म हण्यां नथी एम अविरतिने नावें होय, तेने स्वप्नां तरें अणदीतुं पण पापकर्म बंधाय, लागे. एम निश्चे श्री नगवंतें कह्युंबे, एटले सन्नीयानो दृष्टांत कह्यो ॥ ८ ॥

॥ दीपिका—एवं सति न सर्वविषयं प्रत्याख्यानं युज्यते । ये जीवाहिंसादिविषयप्राप्ताः स्युस्तेषामेव प्रत्याख्यानं क्रियते इति परेणोक्ते आचार्यआह । (तन्नखल्वित्यादि) यद्य पि सर्वजीवेषु हिंसापरिणामोनोत्पद्यते तथाप्यविरतिसद्भावात्तद्विषयः कर्मबंधोनव त्येव । अत्र दृष्टांत द्वयमाह । संज्ञिदृष्टांतोऽसंज्ञिदृष्टांतश्च । कोयं संज्ञिदृष्टांतः?। ये इमे सं ज्ञिपंचेंद्रियास्तेषां मध्ये कश्चिदेकः षड्जीवनिकायान् प्रतीत्याश्रित्य एवं प्रतिज्ञां कुर्यात् । अहं पृथिवीकायेनैव एकेन कृत्यं करोमि कारयामि । सच एवं कृतप्रतिज्ञस्तेन तस्मात् त स्मिन् तंच करोति कारयतिच शेषकायेन्योनिवृत्तस्तस्य चैवंनूतोऽनिप्रायः । तद्यथा । अहं पृथिवीकायेन कृत्यं करोमि कारयामि एवं प्रतिज्ञायां कृतायां विशेषानिप्रायोन स्यात् यत् श्वेतेन कृष्णेनवा पृथिवीकायेन कृत्यं करोमि कारयामिच स तस्मात्पृथिवीकायादनिवृ त्तोऽप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा नवति । एवमप्तेजोवायुवनस्पतिष्वपि वाच्यं । य था कश्चिदप्कायादनिवृत्तः कश्चित्तेजस्कायादिति । शेषकायैस्तु व्यापारं करोति कश्चित् ष ट्स्वपि जीवनिकायेषु अनिवृत्तोऽसंयतत्वात्तैः कार्यं करोति कारयति न पुनस्तद्विशेषप्रति ज्ञा एवं मृषावादेऽपि वाच्यं । यथा इदं मया वक्तव्यमनृतं इदं न वक्तव्यं सच तस्मान्मृषावा दादनिवृत्तत्वादसंयतः स्यात् तथा इदमदत्तं मया ग्राह्यं इदंतु न ग्राह्यं । एवं मैथुनपरिग्र हेष्वपि वाच्यं । तथा क्रोधमानमायालोनेष्वपि स्वयं विचार्यं वाच्यं । तदेवमसौ हिंसादी न्यकुर्वन्नपि अविरतत्वात्तत्प्रत्ययिकं कर्म बध्नाति । ततोदेशकालस्वनावविप्रकृष्टेष्वपि जीवेषु अमित्रनूतोऽसौ स्यात् । यथा कश्चिद्ग्रामघातादौ प्रवृत्तः । यद्यपि तेन केचि न्नरान दृष्टास्तथापि तद्घातनिवृत्तेरनावाद्योग्यतया तद्घातकइत्युच्यते । एवं अविरतेः कर्मबंधोज्ञेयः ॥ ८ ॥

॥ टीका—एवं व्यवस्थिते न सर्व विषयं प्रत्याख्यानं युज्यते इत्येवं प्रतिपादिते परेण सत्याचार्यआह. । (तन्नखलुनगवयाइत्यादि) यद्यपि सर्वेष्वपि देशकालस्वनावविप्र

कृष्टेषु वधकचित्तं नोत्पद्यते तथाप्यसावविरतिप्रत्ययत्वात्तेष्वमुक्तवैरएव नवत्यस्य चार्थ स्य सुखप्रतिपत्तये नगवता तीर्थकृता द्वौ दृष्टांतौ प्रज्ञप्तौ प्ररूपितौ । तद्यथा । संज्ञिदृष्टांतोऽसंज्ञिदृष्टांतश्च । अथ कोयं संज्ञिदृष्टांतो ये केचन इमे प्रत्यक्षासन्नाः षड्निरपि पर्याप्तिनिः पर्याप्ताऊहापोहविमर्शरूपाः संज्ञा विद्यंते येषां ते संज्ञिनः पंचेंद्रियाणि येषां ते पंचेंद्रियाः करणपर्याप्त्या पर्याप्तकाएषां च मध्ये कश्चिदेकः षड्जीवनिकायान् प्रतीत्यैवंनूतां प्रतिज्ञां नियमं कुर्यात् । तद्यथा । षट्सु जीवनिकायेषु मध्ये पृथिवीकायेनैवैकेन वालुकाशिलोपललवणादिस्वरूपेण कृत्यं कार्यं कुर्यां । सचैवं कृतप्रतिज्ञस्तेन तस्मिन् तस्मात्तं वा करोति कारयतिच शेषकायेन्योऽहं विनिवृत्तस्तस्यच कृतनियमस्यैवंनूतोनवत्यध्यवसायः । तद्यथैवं खल्वहं पृथिवीकायेन कृत्यं करोमि कारयामिच तस्यच सामान्यकृतप्रतिज्ञस्य विशेषानिसंधिनैव नवति । तद्यथा । अमुना कृष्णेनामुना श्वेतेन पृथिवीकायेन कार्यं करोति कारयतिच सतस्मात्पृथिवीकायादनिवृत्तोऽप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा नवति । तत्र खननस्थाननिषीदनत्वग्वर्तनोच्चारप्रश्रवणादिकरणक्रियासद्भावादेवमप्तेजोवायुवनस्पतिष्वपि वाच्यं । तत्राप्कायेन स्नानपानावगाहनजांमोपकरणधावनादिषु प्रयोगस्तेजःकायेनापि पचनपाचनप्रकाशनादिषु वायुनापि व्यंजनतालवृंतेत्यादिव्यापारादिषु प्रयोजनं वनस्पतिनापि कंदमूलपुष्पफलपत्रत्वक्शाखाद्युपयोगएवं विकलेंद्रियपंचेंद्रियेष्वप्यायोज्यमिति । तथैकः कश्चित् षट्स्वपि जीवनिकायेषु अविरतोसंयतत्वाच्च तैरसौ कार्यं सावद्यानुष्ठानं स्वयं करोति कारयतिच परैस्तस्यच क्वचिदपि निवृत्तेरनावादेवंनूतोध्यवसायोनवति । तद्यथैवं खल्वहं षड्निरपि जीवनिकायैः सामान्येन कृत्यं करोमि न पुनस्तद्विशेषप्रतिज्ञेति । सच तेषु षड्स्वपि जीवनिकायेष्वसंयतोऽप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा नवत्येवं मृषावादेपि वाच्यं । तद्यथेदं मया वक्तव्यमीदृग्नूतं तु न वक्तव्यं सच तस्मान्मृषावादादनिवृत्तत्वादसंयतोनवति । तथा दत्तादानमप्याश्रित्य वक्तव्यं । तद्यथेदं मया दत्तादानं ग्राह्यमिदंतु न ग्राह्यमित्येवं मैथुनपरिग्रहेष्वपीति । तथा क्रोधमानमायालोनेष्वपि स्वयमन्यूह्य वाच्यं । तदेवमसौ हिंसादीन्यकुर्वन्नप्यविरतत्वात्तत्प्रत्ययिकं कर्म चिनोतीत्येवं देशकालस्वनावविप्रकृष्टेष्वपि जंतुष्वमित्रनूतोसौ नवति तन्प्रत्ययिकं च कर्म चिनोतीति सोयं संज्ञिदृष्टांतोऽनिहितः । सच कदाचिदेकमेव पृथिवीकायं व्यापादयति शेषेषु निवृत्तः कदाचिद्द्वावेवं त्रिकादिकाः संयोगानणनीयायावत्सर्वानपि व्यापादयतीति । सचैवं सर्वेषां व्यापादकत्वे न व्यवस्थाप्यते सर्वविषयारंनप्रवृत्तेस्तत्प्रवृत्तिरपि तदनिवृत्तेः । यथा कश्चिद्ग्रामघातादौ प्रवृत्तोयद्यपिच न तेन विवक्षितकाले केचन पुरुषा [illegible] प्रवृत्तिनिवृत्तेरनावात्तद्योग्यतया तद्घातकइत्युच्यते इत्येवं दार्ष्टांति

से किंतं असन्निदिहंते जेइमे असन्निणो पाणा तं पुढवीकाइया जाव वणस्स इकाइया छ्ठावेगइया तसा पाणा जेसिं णो तक्काइंवा सन्नातिवा पन्नातिवा मणातिवा वईवा सयंवा करणाए अन्नेहिंवा कारावंतए करंतंवा समणुजाणित्तए तेविणं बाले सव्वेसिं पाणाणं जाव सव्वेसिं सत्ताणं दियावा राउवा सुत्तेवा जागरमाणेवा अमित्तभूतमिछासंठिया निच्चं पसढविउवातचित्तदंमा तं पाणाइवा ते जाव मिछादंसणसल्ले इच्चेव जाव णो चेवमणो णो चेववई पाणाणं जाव सत्ताणं दुक्खणत्ताए सोयणत्ताए जूरणत्ताए तिप्पणत्ताए पिट्टणत्ताए परितप्पणत्ताए ते दुक्खणसोयणजावपरितप्पणवहबंधणपरिकिलेसाउ अप्पडिविरया भवंति ॥ ए ॥

अर्थ-(सेकिंतंअसन्निदिहंते के०) हवे असंज्ञियानो दृष्टांत कयो ? ते कहेछे. (जेइमेअसन्निणोपाणा के०) जे ए असंज्ञी प्राणीउछे (तं के०) ते कहेछे. (पुढवीकाइया के०) पृथिवीकायिक, (जाववणस्सइकाइया के०) यावत् वनस्पतिकाय पर्यंत, ए पांच स्थावर जाणवा. (छ्ठावेगइयातसापाणा के०) तथा छट्टा, कोइ एक त्रस प्राणीउ पण असंज्ञी छे (जेसिंणोतक्काइवा के०) जेने तर्क नथी तर्क एटले ए स्तंभछे के, पुरुषछे ए आगल शुंछे ! एवो भाव जेने न उपजे, एटले सारुं करवुं देखीने कहेके, आ रुडूं करेछे एवो भाव जेने नथी, (सन्नातिवा के०) तथा संज्ञा ते जे पूर्वेदृष्टनुं उलखवुं ते जेनें नथी (पन्नातिवा के०) तथा जेनें प्रज्ञा एटले बुद्धि नथी, (मणातिवा के०) तथा जेनें मन नथी, (वईवा के०) तथा जेनें वचन नथी, (सयंवाकरणाए के०) तथा जेने पोतें कार्य करवुं नथी, अथवा (अन्नेहिंवाकारावंतए के०) बीजा पासें कार्य कराववुं नथी, (करंतंवासमणुजाणित्तए के०) तथा बीजो कोइ कार्य करतो होय तेने देखीने कहेके, ए रुडूं करेछे. एम कहीने तेने अनुमोदन आपवुं एवो भाव जेनें नथी, (तेविणंबाले के०) ते असंज्ञी बाल अज्ञानी जीव, (सव्वेसिंपाणाणं के०) सर्व प्राणीनो (जावसव्वेसिंसत्ताणंके०) यावत् सर्वसत्वनो (दियावाराउवासुत्तेवाजागरमाणेवा के०) दिवसें रात्रे, सुता, जागता, (अमित्तभूत के०) जीवोनो अमित्रभूत शत्रुसमान बोलियें. कारणके, तेनें तेनुं विरति पणुं नथी. (मिछासंठिया के०) ते मिथ्यात्व संस्थित (निच्चंपसढविउवातचित्तदंमा के०) निरंतर शठ एटले परमार्थ नथी जाणता, तथा प्राणघातने विषे जेनुं चित्तछे, तथा प्राणीउने दंमना करनार, (तं के०) ते कहेछे. (पाणाइवातेजावमिछादंसणसल्ले के०) प्राणातिपात मृषावादादिकथी यावत् मिथ्यादर्शन शल्य पर्यंत ए अढार पा

पस्थानकने नथी करता, तो पण तेने विषे अविरतिपणा थकी ते असंज्ञी जीवोने कर्म लागेछे (इच्चेवजावणोचेवमणी के०)तथा यद्यपि ते असंज्ञीया जीव मनना व्यापार रहित छे, (णोचेववई के०) तथा वचनना व्यापार रहितछे, तथापि (पाणाणंजावसत्ताणं के०) सर्वप्राणीने यावत् सर्व सत्वने (डुक्कणत्ताए के०) डुःखने उपजाववे करी, (सोयणत्ताए के०) शोकने उपजाववे करी, (जूरणत्ताए के०) वयनी हानीने करवे करी, (तिप्पणत्ताए के०) मन वचन अने काया ए त्रणेथी पीडवे करी, (पिट्टणत्ताए के०) यष्टि मुष्टिने प्रहारें करी, (परितप्पणत्ताए के०) बाहेर तथा अन्यंतरने पीडवे करी, एवा एवा प्रकारें यद्यपि ते असंज्ञीया जीव समस्त जीवोने डुःख नथी उपजावता, तथापि ते विरतिपणाने अन्नावें सर्व जीवोने डुःखनुं उपजाववुं, शोक,जूरण, तिप्पण, पिट्टण, यावत् बाह्य तथा अन्यंतरनुं पीडवुं वध बंधननुं करवुं इत्यादिक क्लेशथकी विशेषें करी अनिवृत्त्याछे अविरति कहेवायछे ते विरतिपणाने अन्नावें ते जीवो तत्प्रत्ययिक कर्मेकरी बंधायछे॥ए॥

॥ दीपिका–अथाऽसंज्ञिदृष्टांतमाह । (सेकिंतमिति) ये इमेऽसंज्ञिनस्तद्यथा पृथिवीकायायावद्वनस्पतिकायास्तथा षष्ठाअप्येके त्रसाः यावत्संमूर्छिमपंचेंड्रियास्ते सर्वेप्यसंज्ञिनो येषां न तर्कोविचारः न संज्ञा दीर्घकालसंबंधिनी न प्रज्ञा स्वबुद्धिकृता न मनोवग्रहादिमतिः न वाक् स्पष्टवर्णा तथा स्वयं करोमि अन्यैः कारयामि कुर्वंतमनुजानामि इत्यनिप्रायोनास्तीति । तेऽसंज्ञिनोबालाः सर्वेषां जीवानां घातनिवृत्तेरन्नावाद्योग्यतया घातकाएव असत्यन्नाषकाअपि अविरतत्वात् अदत्तग्राहिणोपि दध्यादिनक्षणात् तीव्रनपुंसकवेदोदयान्मैथुननिवृत्तेरन्नावाच्च मैथुनप्रवृत्ताः परिग्रहवंतोपि अशनादेः स्थापनात् । एवं क्रोधमानमायालोनायावन्मिथ्यादर्शनसशल्यसद्भावश्च तेषां ज्ञेयः । ततश्च ते कर्मबंधकाः स्युः । तथा यद्यपि ते विशिष्टमनोवाग्व्यापाररहितास्तथापि सर्वजंतूनां (डुःखणत्ताएत्ति) डुःखोत्पादनतया शोचनतया शोकोत्पादनत्वेन जूरणं वयोहानिस्तत्कारणतया त्रिन्योमनोवाक्कायेन्यः पातनं त्रिपातनं तद्भावस्तया (पिट्टणयाए) मुष्टिलोष्टादिनिः कुट्टनेन परितापनया बहिरंतश्च पीडया तेऽसंज्ञिनोयद्यपि दूरस्थानां विषयगतानां जीवानां डुःखं नोत्पादयंति तथाप्यविरतत्वाद्दुःखशोचनादेरविरताः स्युस्ततश्च कर्मणा बध्यंते ॥ ए ॥

॥ टीका–संज्ञिदृष्टांतानंतरमसंज्ञिदृष्टांतः प्रागुपन्यस्तः सोऽधुना प्रतिपाद्यते । (सेकिंतं असन्निदिठंतेइत्यादि) संज्ञानं संज्ञा सा विद्यते येषां ते संज्ञिनस्तत्प्रतिषेधादसंज्ञिनोमनसोऽव्यतया अन्नावात्तीव्राऽतीव्राध्यवसायविशेषरहिताः प्रसुप्तमत्तमूर्छितादिवदिति । ये इमे संज्ञिनस्तद्यथा पृथिवीकायिकायावद्वनस्पतिकायिकास्तथा षष्ठाअप्येके त्रसाः प्राणिनो विकलेंड्रियायावत्संमूर्छिनः पंचेंड्रियास्ते सर्वेप्यसंज्ञिनोयेषां न तत्कार्यविचारोमीमांसावि

शिष्टविमर्शोविद्यते यथा कस्यचित्संज्ञिनोमंदमंदप्रकाशे स्थाणुपुरुषोचिते देशे किमयं स्थाणुरुत पुरुषइत्येवमात्मककहस्तर्कः संनवति नैवं तेषामसंज्ञिनां तर्काः संनवंतीति । तथा संज्ञानं संज्ञा पूर्वोपलब्धार्थेतडुत्तरकालपर्यालोचना तथा प्रज्ञानं प्रज्ञा स्वबुध्योत्प्रेक्षणं.सएवायमित्येवंनूतं प्रज्ञानंच तथा मननं मनोमतिरित्यर्थः। सा चावग्रहादिरूपा तथा प्रस्पष्टवर्णा वाक्।साच न विद्यते तेषामिति। यद्यपिच द्वींद्रियादीनां जिव्हेंद्रियगलबिवरादिकमस्ति तथापि न तेषां प्रस्पष्टवर्णत्वं ।तथा न चैषां पापं हिंसादिकं करोमि कारयामीत्येवंनूताध्यवसायपूर्विकामतिस्तथा स्वयं करोम्यन्यैर्वा कारयामीत्येवंनूतोध्यवसायो न विद्यते तेषां। तदेवं तेप्यसंज्ञिनोबालवद्बालाः सर्वेषां प्राणिनां घातनिवृत्तेरनावात्तद्योग्यतया घातकाव्यापादकाः। तथाहि । द्वींद्रियादयः परोपघाते प्रवर्तंते एव तन्नक्षणादिना अनृतनाषणमपि विद्यते तेषामविरतत्वात् केवलं कर्मपरतंत्राणां वागनावस्तथाऽदत्तादानमपि तेषामस्त्येव दध्यादिनक्षणात्तथेदमस्मदीयमिदंच पारक्यमित्येवंनूतविचारानावाच्चेति । तथा तीव्रनपुंसकवेदोदयान्मैथुनाविरतेश्च मैथुनसद्भावोपि तथाशनादेः स्थापनात्परिग्रहसद्भावोपीत्येवं क्रोधमानमायालोनायावन्मिथ्यादर्शनशल्यसद्भावश्च तेषामवगंतव्यस्तद्भावाच्च ते दिवा रात्रौवा सुप्ताजाग्रदवस्थावा नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमानवंति । तदेव दर्शयितुमाह । (तंजहाइत्यादि) तेह्यसंज्ञिनः क्वचिदपि निवृत्तेरनावात्तत्प्रत्ययिककर्मबंधोपेतानवंति । तद्यथा । प्राणातिपातयावन्मिथ्यादर्शनशल्यवंतो नवंति । तद्वत्तयाच्च यद्यपि वैशिष्ट्यमनोवाग्व्यापाररहितास्तथापि सर्वेषां प्राणिनां डुःखोत्पादनतया तथा शोचनतया शोकोत्पादनत्वेन तथा जूरणतया जूरणं वयोहानिरूपं तत्करणशीलतया तथा त्रिन्योमनोवाक्कायेन्यः पातनं त्रिपातनं तद्भावस्तथा यदिवा (तिप्पणयाएत्ति) परिवेदनतया तथा (पिट्टणया) मुष्टिलोष्टप्रहारेण परितापनतया बहिरंतश्च पीडया ते चासंज्ञिनोपि यद्यपि देशकाले स्वनावविप्रकृष्टानां न सर्वेषां डुःखं समुत्पादयंति तथापि विरतेरनावात्तद्योग्यतया डुःखपरितापक्लेशादेरप्रतिविरता नवंति तत्सद्भावाच्च तत्प्रत्ययिकेन कर्मणा बध्यंते ॥ ए ॥

इति खलु से असन्निणोवि सत्ता अहोनिसिं पाणातिवाए उवरकाइज्जंति जाव अहोनिसिं परिग्गह उवरकाइज्जंति जाव मिच्छादंसणसल्ले उवरकाइज्जंति एवंनूतवादी सबजोणियावि खलु सत्ता सन्निणो हुच्चा असन्निणो होंति असन्निणो हुच्चा सन्निणो होंति होच्चा सन्नी अडुवा असन्नी तब से अविविचित्ता अविधूणिता असंमुच्छित्ता अणणुतावित्ता असन्निकायाउवा सन्नि

कायं संकमंति सन्निकायाउवा असन्निकायं संकमंति सन्निकायाउवा सन्निकायं संकमंति असन्निकायाउवा असन्निकायं संकमंति जे एए सन्निवा असन्निवा सवे ते मिछायारा निच्चं पसढविउवायचित्तदंमा तं पाणातिवाए जाव मिछादंसणसल्ले एवं खलु नगवया अरकाए असंजए अविरए अपडिहयपच्चरकायपावकम्मे सकिरिए असंवुमे एगंतदंमे एगंतबाले एगंतसुत्ते से बाले अवियारमणवयकायवक्के सुविणमवि ण पसइ पावेयसे कम्मे कज्जइ ॥ १० ॥

अर्थ—(इतिखलुसेअसन्निणोविसत्ता के०) एणी परें निश्चें ते पृथिवीकायादिक असंज्ञी जीव उता पण (अहोनिसिंपाणातिवाए के०) रात्री दिवस प्राणातिपातने विषे, (उवरकाइज्जंति के०) कहियें, एटले तेने प्राणातिपातनुं कर्म लागे, एम बोलियें. (जावअहोनिसिंपरिग्गहेउवरकाइज्जंति के०) यावत् रात्री दिवस परिग्रहने विषे प्रवर्त्तता बोलियें, कहियें (जावमिछादंसणसल्लेउवरकाइज्जंति के०) यावत् मिथ्यादर्शन शल्यने विषे प्रवर्त्तता कहियें, माटें असंज्ञियाने पण पापकर्मनो उपारव्यान विरतिने अनावें कहियें. हवे शिष्य पूछे छे के, एवंनूतएटले वेदांतवादी एम कहे छे के,जे पुरुषछे ते पुरुष पणुंज पामे, अने जे पशु होय ते पशु पणुंज पामे;तेम आंहीं जैनशासनने विषे पण जे संज्ञिया ते संज्ञी पणुंज पामे अने जे असंज्ञीया ते असंज्ञी पणुंज पामे छे. किंवा बीजी कोइ रीतें छे? ते कहो. एम पूछे उते शिष्य प्रत्यें आचार्य कहेछे. (सवजोणियाविखलुसत्तासन्निणोहुज्जा के०) निश्चें सर्वयोनिक सत्व एटले जीव संज्ञिया पणे होइने (असन्निणोहोंति के०) असंज्ञिया पण होय, (असन्निणोहुज्जासन्निणो होंति के०)असंज्ञिया होइने संज्ञिया होय (होच्चासन्नीअउवाअसन्नी के०) एम संज्ञी अथवा असंज्ञी होय एटले वेदांतवादिनो पक्ष निराधार थयो, तथा कोइ एक संज्ञी पण तेज नवमां मूर्छादिकनी अवस्थायेंअसंज्ञी थाय एम एकज नवमांहें संज्ञीया मांहेथी असंज्ञीउ थाय, मूर्छाने अनावें ते वली संज्ञीउ पण थाय, जो एकज नवमां एमछे तो जन्मांतरनुं केवुंज शुं ! जेम कोइ एक जागतो मनुष्य निड्रानां उदय थकी सुतो थको वली निड्राने अनावें जागतोज कहेवाय. ए दृष्टांत संज्ञी असंज्ञी उपर जाणवो. (तछसेअविविचित्ता के०) त्यां ते जीवें पूर्वेनुं कर्म जे बांध्युंछे. अथवा उदय आव्युंछे तेने पृथक् अणकीधे, तथा (अविधूणित्ता के०) अण खपावे, तथा (असंमुछित्ताके०) अणछेदे, (अणणुतावित्ता के०) अण तपावे, थके (असन्निकायाउवासंन्निकायंसंकमंति के०) पहेलो नंग, असंज्ञिकाय थकी संज्ञिकायें संक्रमे. (स

न्निकायाउवाअसन्निकायंसंकमंतिके०) बीजो भंग, संज्ञिकाय थकी असंज्ञिकायें संक्रमे, (सन्निकायाउवासन्निकायंसंकमंति के०) त्रीजो भंग, संज्ञिकाय थकी संज्ञिकायें संक्रमे. (असन्निकायाउवाअसन्निकायंसंकमंति के०) चोथो भंग, असंज्ञिकाय थकी असंज्ञिकायें संक्रमे, एवं चतुर्भंग जाणवा. (जेएएसन्निवाअसन्निवा के०) जे ए संज्ञिया अथवा असंज्ञीया छे (सव्वेतेमिच्छायारा के०) ए सर्वे अपच्चरकाणीने भावें मिथ्याचार वाला जाणवा. ते सर्वे जीवने विषे नित्य अत्यंत शठ एटले मूर्ख पणु छता प्राणीघातने विषे जेनु चित्तछे तथा प्राणिउने दंमना करनार केवाय. यावत् मिथ्यादर्शन शल्य पर्यंत अढारें पापस्थानकना करनार ते केवाय. ए रीतें भगवंत श्री महावीरदेवें कह्युंके जे असंयति अविरति अप्रतिहत प्रत्याख्यान पापकर्म वाला, तथा सक्रिय असंवर एकांत दंमना करनारा, एकांत बाल, एकांत सुता कह्या. ते बाल अविचारित मन वचन अने कायाना परिणाम वाला छतां जे पापकर्म स्वप्नांतरें पण न देखे, तेनुं पण कर्म तेने लागे ॥१०॥

॥ दीपिका—इति अमुना प्रकारेण । खलु वाक्यालंकारे । ते पृथ्वीकायादयोऽसंज्ञिनः संतोऽहर्निशं प्राणातिपाते कर्तव्ये तद्योग्यतया तदसंप्राप्तावपि ग्रामघातकवदुपाख्यायंते यावन्मिथ्यादर्शनशल्ये उपाख्यायंते।तेच कर्मवशात्सर्वयोनिकाअपि जीवाः पर्याप्त्यपेक्षया यावन्मनःपर्याप्तिर्न निष्पद्यते तावत्करणतोऽसंज्ञिनः संतः पश्चात्संज्ञिनोभवंत्येकस्मिन्नेव जन्मनि । अन्यजन्मनितु एकेंद्रियादयोपि मनुष्यादयः स्युः।परं भव्याभव्यत्ववन्न नियमः । भव्याभव्यत्वेहि न कर्मायत्ते अतोन ताभ्यां व्यभिचारः । ये पुनः कर्मवशगास्ते पुनः संज्ञिनोभूत्वाऽन्यत्रासंज्ञिनः स्युः असंज्ञिनश्च भूत्वा संज्ञिनइति । तत्र यत्कर्म बद्धमस्ति तस्मिन् सत्येव तदविविच्याऽपृथक् कृत्वाऽविधूयाऽसमुच्छिद्याऽननुताप्याएते चत्वारोपि शब्दाएकार्थिकाः। तदेवमत्यक्तकर्माणोऽसंज्ञिकायात्संज्ञिकायं संक्रामंति संज्ञिकायादसंज्ञिकायंच संज्ञिकायात्संज्ञिकायं असंज्ञिकायादसंज्ञिकायंच । एवं चत्वारोभंगाः। उपसंहरन्नाह । (जेएतेजीवत्ति) ये एते पर्याप्ताअपर्याप्ताः संज्ञिनोऽसंज्ञिनोवा सर्वे ते मिथ्याचाराअविरतत्वात् तथा सर्वधर्मेषु नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमाः स्युरेवंभूताश्च प्राणातिपातादिषु सर्वेष्वप्याश्रवद्वारेषु वर्ततइति (एवंखलुत्ति) एवमुक्तनीत्या खलु निश्चितं भगवता आख्यातमित्यादिना पूर्वोक्तमनुवदति । यावत्पापं कर्म क्रियतइति ॥ १० ॥

॥ टीका—तदेवं विप्रकृष्टविषयमपि कर्मबंधं प्रदर्श्योपसंजिहीर्षुराह । (इतिखलुतेइत्यादि) इति रूपप्रदर्शने।खलुशब्दोवाक्यालंकारे विशेषणे वा। किं विशिनष्टि । ये इमे पृथिवीकायादयोऽसंज्ञिनः प्राणिनस्तेषां नतर्को,नसंज्ञा, नमनो, नवाक्, नस्वयं कर्तुं नान्येन

कारयितुं न कुर्वंतमनुमंतुं वा प्रवृत्तिरस्ति। ते चाऽहर्निशममित्रनूतामिथ्यासंस्थितानित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंमाडुःखोत्पादनतया यावत्परितापनपरिक्लेशादेरप्रतिविरताश्चसंज्ञिनोपि संतोऽहर्निशं सर्वकालमेव प्राणातिपाते कर्तव्ये तद्योग्यतया तदसंप्राप्तावपि ग्रामघातकवडुपाख्यायंते यावन्मिथ्यादर्शनशल्यउपाख्यायंतइति । उपाख्यानं वा संज्ञिनोपि । योग्यतया पापकर्मानिवृत्तेरित्यनिप्रायः । तदेवं दर्शिते दृष्टांतद्वये तत्प्रतिबद्धमेवार्थशेषं प्रतिपादयितुं चोद्यं क्रियते ।तद्यथा। किमेते सत्वाः संज्ञिनश्च नव्यानव्यत्ववन्नियतरूपा एवाहोस्वित्संज्ञिनोनूत्वाऽसंज्ञित्वं प्रतिपद्यंते ।असंज्ञिनोपि संज्ञित्वमित्येवं चोदिते सत्याहाचार्यः (सवजोणियाविखलुइत्यादि) यदिवा संत्येवंनूतावेदांतवादिनोयएवं प्रतिपादयंति पुरुषः पुरुषत्वमश्नुते पशुरपि पशुत्वमिति। तदत्रापि संज्ञिनः संज्ञिनएव नविष्यंत्यसंज्ञिनोप्यसंज्ञिनइति । तन्मतव्यवछेदार्थमाह ।(सवजोणियावीत्यादि) यदिवा किं संज्ञिनोऽसंज्ञिकर्मबंधं प्राक्तने सत्येव कर्मणि कुर्वंति किंवा नेत्येवमसंज्ञिनोपि संज्ञिकर्मबंधं प्राक्तने सत्येव कुर्वंत्याहोस्विन्नेत्येतदाशंक्याह । (सवजोणियावीत्यादि) सर्वायोनयोयेषां ते सर्वयोनयः संवृतविवृतोनयशीतोष्णनयसचित्ताऽचित्तोनयरूपायोनयइत्यर्थः । तेच नारकतिर्यङ्नरामराश्चपिशब्दाद्विशिष्टैकयोनयोपि । खल्विति विशेषणे । एतद्विशिनष्टि। तज्जन्मापेक्षया सर्वयोनयोपि सत्वाः पर्याप्त्यपेक्षया यावन्मनःपर्याप्तिर्न निष्पद्यते तावदसंज्ञिनः करणतः संतः पश्चात्संज्ञिनोनवंत्येकस्मिन्नेव जन्मन्यन्यजन्मापेक्षयात्वेकेंद्रियादयोपि संतः पश्चान्मनुष्यादयोनवंतीति । तथानूतकर्मपरिणामात् पुनर्नव्यानव्यत्ववन्न व्यवस्थानियमोनव्यानव्यत्वे हि न कर्मायत्ते अतोनानयोर्व्यनिचारः।ये पुनः कर्मवशगास्ते संज्ञिनोनूत्वाऽसंज्ञिनोनवंत्यसंज्ञिनश्च नूत्वा संज्ञिनइति वेदांतवादिमतस्य प्रत्यक्षेणैव व्यनिचारः समुपलन्यते । तद्यथा । संज्ञ्यपि कश्चिन्मूर्छाद्यवस्थायामसंज्ञित्वं प्रतिपद्यते तदपगमेतु पुनः संज्ञित्वमिति जन्मांतरे तु सुतरां व्यनिचारइति । तदेवं संज्ञ्यसंज्ञिनोः कर्मपरतंत्रत्वादन्योन्यानुगतिरविरुद्धा । यथा प्रतिबुद्धोनिद्रोदयात्स्वपिति सुप्तश्च प्रतिबुध्यते इत्येवं स्वापप्रतिबोधयोरन्योन्यानुगमनमेवमिहापीति । तत्र प्राक्तनं कर्म यडुदीर्णं यच्च बद्धमास्ते तस्मिन् सत्येव तदविविच्यापृथक्कृत्य तथाऽविधूयाऽसमुछिद्याऽननुताप्यैते चाविविच्यादयश्चत्वारोप्येकार्थिकाश्चवस्थाविशेषं चाश्रित्य नेदेन व्याख्यातव्याः । तदेवमपरित्यक्तप्राक्तनकर्मणोऽसंज्ञिकायात्संज्ञिकायं संक्रामंति तथा संज्ञिकायादसंज्ञिकायमिति । तथा नारकाः सावशेषकर्माणएव नरकाडुद्धृत्य प्रतनुवेदनेषु तिर्यक्षूत्पद्यंते एवं देवाश्चपि प्रायशस्तत्कर्मशेषतया शुनस्थानेषूत्पद्यंते इत्यवगंतव्यं ।अत्र चतुर्नंगकसंनवं सूत्रेणैव दर्शयति । सांप्रतमध्ययनार्थमुपसंजिघृक्षुः प्राक् प्रतिपन्नमर्थं निगमयन्नाह । (जेए तेसेत्यादि) ये एते सर्वानिरपि पर्याप्तिनिः पर्याप्ताः लब्ध्या करणेन च द्विकलाश्चापर्या

सका: अन्योन्यसंक्रमभावः संज्ञिनोऽसंज्ञिनोवा सर्वेप्येते मिथ्याचाराश्चप्रत्याख्यानित्वादि त्यभिप्रायः। तथा सर्वजीवेष्वपि नित्यं प्रशठव्यतिपातचित्तदंडाभवंतीत्येवंभूताश्च प्राणा तिपाताद्येषु सर्वेष्वप्याश्रवद्वारेषु वर्ततइति ॥ तदेवं व्यवस्थिते यत्तडुक्तं चोदकेन तद्य थेहाविद्यमानाऽशुभयोगसंभवे कथं पापं कर्म बध्यतइत्येतन्निराकृत्य विरतेरभावात्तद्योग्य तया पापकर्मसद्भावं दर्शयति। (एवं खलुइत्यादि) एवमुक्तनीत्या। खल्ववधारणे ऽलं कारे वा। भगवता तीर्थकृतेत्यादिना यत्प्राक् प्रतिज्ञातं तदनुवदति । यावत्पापं च कर्म क्रियतइति ॥ १० ॥

चोदक से किंकुवं किंकारवं कहं संजयविरयप्पडिहयपच्चरकायपावकम्मे भवइ आचार्यआह तब खलु भगवया बजीवणिकायहेउ पणत्ता तं जहा पुढवीकाइया जाव तसकाइया से जहा णामए मम अस्सातं दंडेणवा अहीणवा मुहीणवा लेलूणवा कवालेणवा आतोडिज्जमाण स्सवा जाव उद्दविज्जमाणस्सवा जाव लोमुरकणणमायमविहिंसाकारं डुरकं भयं पडिसंवेदेमि इच्चेवं जाणं सवे पाणा जाव सवे सत्ता दंडेणवा जाव कवालेणवा आतोडिज्जमाणेवा हम्ममाणेवा तज्जिज्जमाणेवा ता लिज्जमाणेवा जाव उद्दविज्जमाणेवा जाव लोमुरकणणमायमविहिंसा कारं डुरकं भयं पडिसंवेदेति एवं णच्चा सवे पाणा जाव सवे सत्ता न हंतवा जाव ण उद्दवेयवा एस धम्मे धुवे णिइए सासए समिच्चलोगं खेयन्नेहिं पवेदिए एवं से भिरकू विरते पाणाइवायातो जाव मिच्छादंसणसल्लाउ से भिरकू णो दंतपरकालेणं दंतेपरकालेज्जा णो अंजणं णो वमणं णो धूव णं तंपि न आदते से भिरकू अकिरिए अलूसए अकोहे जाव अलोभे उवसंते परिनिवुडे एस खलु भगवया अरकाए संजयविरयपडिहय पच्चरकायपावकम्मे अकिरिए संवुडे एगंतपंडिएयावि भवइ त्तिबेमि ॥ इति बीयसुयरकंधस्स पच्चरकाण किरियाणाम चउबं मज्झयणं सम्मत्तं॥ ११॥

अर्थ--(चोदक के०) हवे वली शिष्य पूछेछे के हे भगवन्! (सेकिंकुवंकिंकारवंकहंसंजय के०)ते जीव केवां अनुष्ठान करतो, केवां अनुष्ठान करावतो, केवा प्रकारें संयत (विरय के०) विरति (प्पडिहयपच्चरकायपावकम्मेभवइ के०) प्रतिहत प्रत्याख्यान पापकर्मी होय, ते कहो? एवुं सांभलीने (आचार्याह के०) आचार्य बोल्या. (तबखलुभगवयाबज्जी

वणिकायहेउंपसत्ता के०) त्यां संयत पणाने नावें नगवत् श्री वीतराग देवें ब जीवनिकाय कारण कह्याछे (तंजहा के०) ते कहेछे. (पुढवीकाइयाजावतसकाइया के०) पृथिवीकायथी मांमीने यावत् त्रसकाय पर्यंत छे (सेजहाणामए के०) तेने जेम नाम एवो संनाव नायें (ममअस्सातं के०) मुजने अशाता उपजे छे ते प्रमाणें दंमें करी हणतां थकां अस्थियें करी, मुष्टियें करी, पाषाणें करी, कपाल एटले ठींकरीयें करी ताडता थका. यावत् उद्वेग करता थका, एटले जीव काया थकी रहित करता थका, एक रोम उखेड वा मात्रें करी पण हिंसाकारक फुःख तथा नय हुं वेडुं. ए रीते जाणवुं के, सर्व प्राणी यावत् सर्व सत्वने महारी पेठें दंमना प्रहारें करी, कपाल एटले ठींकरीयें करी आक्रोश करावता ताडता थका, अथवा हणता थका, तर्जनाकरता थका, यावत् उद्वेग करता थका, एक रोम मात्र उखेडवुं एवुं पण हिंसाकारी, कारण ते थकी ते जीवो पण फुःख अने नय एवुंज वेदे (एवंणच्चा के०)एम जाणीने सर्वप्राणी यावत् सर्व सत्वने हणवा नहीं, यावत् उपड्रववा नहीं, ए प्राणीनो दया लक्षण धर्म, ते ध्रौव, नित्य, शाश्वतो, एवो चउद रज्ज्वात्मक लोक जाणीने आलोचीने षट्जीवनिकायरूप फुःख समुड्मां पड्यो ते पर जीवना फुःखना जाण, एवा खेदज्ञ श्रीनगवंत तीर्थंकर देव तेणें नांख्यो छे. (एवंसेनिरकू के०) एवुं जाणीने ते साधु प्राणातिपात मृषावादादिक यावत् मिथ्यात्व दर्शन शल्य ए अढार पापस्थानक थकी निवृत्त्यो, तथा ते निक्षु दंत धावनें करी दंत प्रक्षाले नहीं एमज अंजन वमन विरेचनादिकक्रिया न करे, धूपन एटले वस्त्रादिकनुं धूपन न करे (तंपिनआदते के०) एटलांवानां पोतें आदरें नहिं ते निक्षु चारित्रिउक्रिया रहित बजीवनिकायनो अहिंसक तथा क्रोध रहित यावत् मान, माया, लोन रहित उपशांत एटले समाधिवंत परिनिवृत्त एवो बतो होय तेनें निश्चें संयत विरति प्रतिहत पापकर्मी एटले पच्चरकाणें करी पापकर्मने हणनार, क्रिया रहित संवृत्त, एकांत पंमित एम नगवंतें कह्योछे त्तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो ॥ ११ ॥ ए श्री सुयगडांग सूत्रना बीजा श्रुतस्कंधनें विषे प्रत्याख्यान क्रियानामा चोथा अध्ययननो संक्षेपार्थ बालावबोध समाप्त थयो ॥ ११ ॥

॥ दीपिका–अथ संजातवैराग्यः शिष्यः प्रश्नं करोति (सेकिंकुवमित्यादि) अथ किं कुर्वन् किंवा कारयन् कथं वा संयतविरतप्रतिहतप्रत्याख्यानपापकर्मा जंतुः स्यात् ?। आचार्यआह । (तबखलुत्ति । तत्र संयतत्वसन्नावे । नगवता षड्जीवनिकायाहेतवः प्रज्ञप्ताः ।. तद्यथा । पृथिवीकायाः यावत्त्रसकायाः । यथाऽविरतस्य षड्जीवनिकाया नरकादिगतिहेतुत्वेनोक्तास्तथा विरतस्य तएव मोक्षहेतवोनवंति । यडुक्तं । " जेजत्ति

यायहेऊ, नवस्सते चेव वत्तिया मोरके ॥ गणणाईया लोया, दोसहवि पुस्सा नवे तुल्लाइति (सेजहत्ति) तद्यथा नाम ममासातं डुःखं दंमादिना नोद्यमानस्य पीड्यमानस्य नवति रोमोत्खननमात्रमपि डुःखमहं प्रतिसंवेदयामि अनुनवामि ततइत्येवं जानीहि त्वं सर्वे पि जीवादंमादिना ताम्यमानाडुःखिनः स्युः रोमोत्खननमात्रमपि डुःखमनुनवंति । एवं ज्ञात्वा सर्वे प्राणान हंतव्याः (एसधम्मेत्ति) एषधर्मोध्रुवोनित्यः परिणामानित्यतायामपि सत्यां स्वरूपाच्यवनात्तथा सूर्योजतिरिव शश्वन्नवनात् शाश्वतः समेत्यावगम्य लोकं चतुर्दशरज्जुमितं खेदज्ञैः सर्वज्ञैः प्रवेदितः । तदेवं स निक्कुर्निवृत्तः सर्वाश्रवेन्योदंतप्रक्षालनं न कुर्यात् न नेत्रांजनं न वमनविरेचनादि वस्त्रधूपनंच न आदत्ते स निक्कुः क्रोधादिरहितोऽलूशकोऽहिंसकोयावदेकांतेन पंमितोनवतीति । ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ ११ ॥ इति सूत्रकृतांगदीपिकायां द्वितीयश्रुतस्कंधस्य चतुर्थाध्ययनं समाप्तम् ॥ ४ ॥

॥ टीका—तदेवमप्रत्याख्यानिनः कर्मसंन्नवात्तत्संन्नवाच्च नारकतिर्यङ्नरामरगतिलक्षणं संसारमवगम्य संजातवैराग्यश्चोदकआचार्यं प्रति प्रवणचेताः प्रश्नयितुमाह । (सेकिंकुव्वमित्यादि) अथ किमनुष्ठानं स्वतः कुर्वन् किंवा परं कारयन् कथंवा केन प्रकारेण संयतविरतप्रतिहतपापकर्मा जंतुर्नवति। संयतस्य हि विरतिसद्भावात्सावद्यक्रियानिवृत्तिस्तन्निवृत्तेश्च कृतकर्मसंचयान्नावस्तदन्नावान्नरकादिगत्यन्नावइत्येवं पृष्टे सत्याचार्यआह । (तत्रखलु इत्यादि) तत्र संयमसद्भावे षड्जीवनिकायान्नगवता हेतुत्वेनोपन्यस्ताः । यथा प्रत्याख्यानरहितस्य षड्जीवनिकायाः संसारगतिनिबंधनत्वेनोपन्यस्ताएवं तएव प्रत्याख्यानिनोमोक्षाय नवंतीति । तथा चोक्तं । “जेजेत्तियायहेऊ, नवस्सते चेव वत्तिया मोरके॥ गणणाईया लोगा, दोसहवि पुसहा नवे तुल्लाइत्यादि” । इदमुक्तं नवति । यथात्मनोदंमाद्युपघाते डुःखमुत्पद्यते एवं सर्वेषामपि प्राणिनामित्यात्मोपमया तडुपघातान्निवर्तते एषधर्मः सर्वापायत्राणलक्षणोध्रुवोऽप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरस्वन्नावोनित्यइति परिणामानित्यतायामपि सत्यांरूपाद्यच्यवनात् तथा आदित्योजतिरिव शश्वन्नवनाच्छाश्वतः परैः क्वचिदप्यस्खलितोयुक्तिसंगतत्वादित्यन्निप्रायोयमेवंन्नूतश्च धर्मः समेत्यावगम्य लोकं चतुर्दशरज्ज्वात्मकं खेदज्ञैः सर्वज्ञैः प्रवेदितस्तदेवं स निक्कुर्निवृत्तश्च सर्वाश्रवद्वारेन्योदंतप्रक्षालनादिकाः क्रियाः कुर्वन् सावद्यक्रियायाअन्नावादक्रियोऽक्रियत्वाच्च प्राणिनामलूषकोऽव्यापादकोयावदेकांतेनैवासौ पंमितोनवति । इतिः परिसमाप्त्यर्थे । ब्रवीमीति पूर्ववत् नयाः प्राग्वद्व्याख्येयाः ॥११॥ समाप्तं प्रत्याख्यानाख्यं चतुर्थमध्ययनमिति ॥ ४ ॥

अथ पंचमाध्ययनप्रारंभः

हवे चोथा अध्ययननें विषे प्रत्याख्यान क्रिया कही, तेवा आचार वालानें सम्यक् कहेवाय, ते कारणमाटें अनाचारनो त्याग करवो अने आचार अंगीकार करवो; माटें आचार श्रुत, अथवा अनाचार श्रुत, एवे नामें पांचमुं अध्ययन कहियें बैयें. ॥

आदाय बंनचेरं च, आसुपन्ने इमं वइं ॥ अस्सिं धम्मे अणायारं, नायरेज्ज कयाइवि ॥ १ ॥

अर्थ-(आदायबंनचेरंच के०) ब्रह्मचर्य ग्रहण करीनें, (आसुपन्नेइमंवइं के०) आशुप्रज्ञ एटले विवेकी पुरुष, ए जे आगल कहेशे तेवी वाणी एटले वचन एम न कहे के, आ जगत् शाश्वत छे. इत्यादिक नकहे (अस्सिंधम्मेअणायारं के०) ए धर्मने विषे प्रवर्त्ततो, अनाचार जे सावद्यानुष्ठानरूप, (नायरेज्जकयाइवि के०) तेनें क्यारे पण आचरे नहीं॥१॥

॥ दीपिका-अथ पंचमाध्ययनमारभ्यते तस्यानाचारवर्जनकथनादनाचारश्रुतमिति नाम । अथवा आचारप्रतिपादकत्वादाचरश्रुतमिति नाम । तस्येदं सूत्रं आदाय बंनचेरमिति ब्रह्म सत्यानुष्ठानं चर्यते सेव्यते यस्मिन् तद्ब्रह्मचर्यं जैनेंद्रशासनं आदाय गृहीत्वा आशुप्रज्ञः पंमितः इमां वक्ष्यमाणां वाचं इदं जगत् शाश्वतमेवेत्यादिकां नाचरेन्न वदेत् तथास्मिन् धर्मे स्थितोऽनाचारं नाचरेत्कदाचिदपि ॥ १ ॥

॥ टीका-सांप्रतं पंचममारभ्यते । अस्य चायमभिसंबंधः । इहानंतराध्ययने प्रत्याख्यानक्रियोक्ता । सा चाचारसंव्यवस्थितस्य सतोभवतीत्यतस्तदनंतरमाचारश्रुताध्ययनमभिधीयते । यदिवा नाचारपरिवर्जनेन सम्यक् प्रत्याख्यानमस्खलितं भवतीत्यतोनाचारश्रुताध्यनमभिधीयते । यदिवा प्रत्याख्यानयुक्तः सन्नाचारवान् भवतीत्यतः प्रत्याख्यानक्रियानंतरमाचारश्रुताध्ययनं तत्प्रतिपक्षभूतमनाचारश्रुताध्ययनंवा प्रतिपाद्यतइत्यनेन संबंधेनाऽऽयातस्यास्याध्ययनस्योपक्रमादीनि चत्वार्यनुयोग द्वाराणि भवंति । तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोयं । तद्यथा । अनाचारं प्रतिषिध्य साधूनामाचारः प्रतिपाद्यते । नाम निष्पन्नेतु निक्षेपे आचारश्रुतमिति द्विपदं नाम । तदनयोर्निक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह । " णामं ठवणादविए दवे भावेय होंति नायवा ॥ एमेवय सुत्तस्सा, निरकेवो चउविहो होंति,, ॥ १ ॥ (णामंठवणेत्यादि) तत्राचारोनाम स्थापना द्रव्यभावभेदभिन्नश्चतुर्धा द्रष्टव्यः । एवं श्रुतमपीति । तत्राचारश्रुतयोरन्यत्राभिहितयोर्लाघवार्थमतिदेशं कुर्वन्नाह । "आयारसुयं भणियं,

वज्जेयव्वा सया अणायारा ॥ अबहुसुयस्स होज्जा, विरहेणाइत्र जइयव्वे,,॥१॥(आचारसुयमि त्यादि) आचारश्च श्रुतं च आचारश्रुतं। दंदैकवद्भावस्तदुनयमपि नणितमुक्तं। तत्राचारः क्षुल्लिकाचारकथायामनिहितः श्रुतं तु विनयश्रुते। नावार्थस्तु वर्जयितव्याः परिहार्याः सदा सर्वकालं यावज्जीवं साधुरनाचारास्तांश्चाबहुश्रुतोऽगीतार्थोन सम्यक् जानातीत्यतस्तस्य विराधना नवेत्। बहुशब्दोऽवधारणे। बहुश्रुतस्यैव विराधना न गीतार्थस्येत्यतोत्र सदाचारे तत्परिज्ञानेच यतितव्यं।तथाहि। मार्गज्ञः पथिकः कुमार्गवर्जनेन नापथगामी न वति न चोन्मार्गदोषैर्युज्यते एवमनाचारं वर्जयन्नाचारवान्नवति न चानाचारदोषैर्युज्य तइत्यतस्तत्प्रतिषेधार्थमाह। एयस्स पडिसेहो, इहमक्षयणं मिहेति नायव्वा॥ तोअणगार सुयं इयि, होई नामंतु एयस्स ॥ २ ॥ (एयस्सइत्यादि) एतस्यानाचारस्य सर्वदोषास्पदस्य दुर्गतिगमनैकहेतोः प्रतिषेधोनिराकरणं सदाचारप्रतिपत्त्यर्थमिहाध्ययने ज्ञातव्यः। सच परमार्थतोऽनगारकारणमिति। ततः। केषांचिन्मतेनैतस्याध्ययनस्याऽनगारश्रुतमित्येतन्नाम नवतीति। गतोनामनिष्पन्नो निक्षेपस्तदनंतरं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं। तच्चेदं। (आदायबंनचेरमित्यादिश्लोकः) अस्य चानंतरपरंपरसूत्रैः संबंधोवाच्यस्तत्रानंतरसूत्रेण सहायमेकांतपक्षितोनवति। कथमादाय ब्रह्मचर्यमिति। परंपरसूत्रसंबंधस्त्वयं बुध्येत। तथा त्रोटयेद्बंधनं। किंकृत्वेत्याह। आदाय ब्रह्मचर्यमित्येवमन्यैरपि सूत्रैः संबधोवाच्योर्थस्त्वयं। आदाय गृहीत्वा किं तद्ब्रह्मचर्यं सत्यतपोनूतदयेंद्रियनिरोधलक्षणं तच्चर्यतेऽनुष्ठीयते यस्मिन् तन्मौनींद्रप्रवचनं ब्रह्मचर्यमित्युच्यते। तदादायाऽऽशुप्रज्ञः पटुप्रज्ञः सदसद्विवेकज्ञश्च। क्त्वाप्रत्ययस्योत्तरक्रियासव्यपेक्षित्वात्तामाह। इमां समस्ताध्ययनेनापि धीयमानां प्रत्यक्षासन्ननूतां वाचं इदं शाश्वतमेवेत्यादिकां कदाचिदपि नाचरेन्नानिदध्यात् तथाऽस्मिन्धर्मे सर्वज्ञप्रणीते व्यवस्थितः सन्नानाचारं सावद्यानुष्ठानरूपं न समाचरेन्न विदध्यादिति संबंधः। यदिवाऽऽशुप्रज्ञः सर्वज्ञः प्रतिसमयं केवलज्ञानदर्शनोपयोगित्वात्तत्संबंधिनि धर्मे व्यवस्थितइमां वक्ष्यमाणां वाचमनाचारं च कदाचिदपि नाचरेदितिश्लोकार्थः॥१॥

अणादीयं परिन्नाय, अणवदग्गेति वा पुणो ॥ सासयमसासए वा, इति दिट्ठि न धारए ॥ २ ॥

अर्थ—हवे आचार अने अनाचार देखाडवानी इच्छायें यथावस्थित लोकस्वरूप प्रकटन पूर्वक कहेछे. (अणादीयंपरिन्नाय के०) ए चौद रज्ज्वात्मक लोक ते अनादि एटले नथी जेनी आदि एटले आदि रहितछे, एवुं जाणीनें (अणवदग्गेतिवापुणो के०) वली जेनो अंत नथी, एवुं जाणीनें, (सासयमसासएवा के०) एकांत शाश्वत, अथ

वा एकांत अशाश्वत, (इतिदिठिंनधारए के०) एवी दृष्टि धरे नहीं, एटले पंमित जन एवो पक्ष आदरे नहीं ॥ १ ॥

॥ दीपिका—(अणादीयमिति) अनादिकं जगत्प्रमाणैः सांख्याभिप्रायेण परिज्ञाय अनवदग्रमनंतं च तन्मतएव ज्ञात्वा सर्वमिदं शाश्वतं बौद्धाभिप्रायेणवाऽशाश्वतं इति दृष्टिं न धारयेत् एनं पक्षं नाश्रयेत् ॥ १ ॥

॥ टीका—तत्रानाचारं नाचरेदित्युक्तं । अनाचारश्च मौनींद्रप्रवचनादपरोभिधीयते मौनींद्रप्रवचनं तु मोक्षमार्गहेतुतया सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकं । सम्यग्दर्शनंतु तत्त्वार्थ श्रद्धानरूपं । तत्त्वं तु जीवाजीवपुण्यपापाश्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षात्मकं तथा धर्मा धर्माकाशपुजलजीवकालात्मकं द्रव्यं नित्यानित्यस्वभावं सामान्यविशेषात्मकोऽनाद्यप र्यवसानश्चतुर्दशरज्ज्वात्मकोलोकस्तत्त्वमिति । ज्ञानंतु मतिश्रुतावधिमनः पर्यायकेव लस्वरूपं पंचधा । चरित्रं, सामायिकं, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धिय, सूक्ष्मसंपराय, यथाख्यातरूपं पंचधैव मूलोत्तरगुणभेदतोवा नैकधेत्येवं व्यवस्थिते मौनींद्रप्रवचनेन कदाचिदनीदृशं जगदिति कृत्वाऽनाद्यपर्यवसाने लोके सति दर्शनाचारप्रतिपक्षभूतमना चारं दर्शयितुकामआचार्योयथावस्थितलोकस्वरूपोद्घट्टनपूर्वकमाह (अणादीयमित्यादि) नास्य चतुर्दशरज्ज्वात्मकस्य लोकस्य धर्माधर्मादिकस्यवा द्रव्यस्यादिः प्रथमोत्पत्तिर्विद्य तइत्यनादिकस्तमेवंभूतं परिज्ञाय प्रमाणतः परिछिद्य तथानवदग्रमपर्यवसानंच परिज्ञा यानयात्मकव्युदासेनैकनयदृष्ट्यावधारणात्मकं प्रत्ययमनाचारं दर्शयति शश्वद्भवतीति शाश्वतं नित्यं सांख्याभिप्रायेणाप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावं स्वदर्शनेचानुयायिनं सामा न्यांशमवलंब्य धर्माधर्माकाशादिष्वनादित्वमपर्यवसानत्वं चोपलभ्य सर्वमिदं शाश्वत मित्येवंभूतां दृष्टिं नावधारयेदिति एवं पक्षं न समाश्रयेत् । तथा विशेषपक्षमाश्रित्य वर्त्तमाननारकान् समुत्सेत्स्यंतीत्येतच्च सूत्रमंगीकृत्य यत्सत्तत्सर्वमनित्यमित्येवंभूतबौद्ध दर्शनाभिप्रायेण च सर्वत्र शाश्वतमनित्यमित्येवंभूतांच दृष्टिं न धारयेदिति ॥ १ ॥

एएहिं दोहिं ठाणेहिं, ववहारो ण विज्जई ॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं, अणा यारं तु जाणए ॥ ३ ॥

अर्थ—हवे एनुं कारण कहेछे. सर्वलोक नित्यज छे अथवा अनित्यज छे, (एएहिंदो हिंठाणेहिं के०) ए बे स्थानकें करीनें (ववहाराणविज्जई के०) लोकनो व्यवहार न प्रवर्त्ते एटले आ लोक, तथा परलोक संबंधि कार्य जे प्रवृत्ति निवृत्ति लक्षण, एवो व्यव

हार प्रवर्त्ते नहीं. (एएहिंदोहिंगणेहिंअणायारंतुजाणए के०) तथा ए बेहु स्थानकें अं नाचार जाणवो, ए कारणें एकांत पक्ष आदरवो नहीं ॥ ३ ॥

॥ दीपिका–(एएहिंति) एताभ्यां एकांतं नित्यं, एकांतमनित्यंचेति द्वाभ्यां स्थानाभ्यां व्यवहारोन विद्यते । एकांतनित्ये एकांतानित्येच वस्तुनि व्यवहारोव्यवस्था न घटतइत्यर्थः । तस्मादेताभ्यां स्थानाभ्यां स्वीकृताभ्यामनाचारं जानीयात् ॥ ३ ॥

॥ टीका–किमित्येकांतेन शाश्वतमशाश्वतं वाऽस्त्वित्येवंभूतां दृष्टिं न धारयेदित्याह । (एएहिंदोहिमित्यादि) सर्वं नित्यमेवानित्यमेव चैताभ्यां द्वाभ्यां स्थानाभ्यामभ्युपगम्य मानाभ्यामनयोर्वा पक्षयोर्व्यवहरणं व्यवहारोलोकस्यैहिकामुष्मिकयोः कार्ययोः प्रवृत्ति निवृत्तिलक्षणोन विद्यते । तथाह्यप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावं सर्वं नित्यमित्येवं न व्य वह्रीयते प्रत्यक्षेणैव नवपुराणादिभावेन प्रध्वंसाभावेन वा दर्शनात्तथैवच लोकस्य प्रवृत्तेरा मुष्मिकेपि नित्यत्वान्मनोबंधमोक्षाद्यभावेन दीक्षायमनियमादिकमनर्थकमिति न व्यवह्री यते । तथैकांतानित्यत्वेनापि न लोकोधनधान्यघटपटादिकमनागतभोगार्थं संगृह्णीयात् तथामुष्मिकेपि क्षणिकत्वादात्मनः प्रवृत्तिर्न स्यात् । तथाच दीक्षाविहारादिकमनर्थकं त स्मान्नित्यानित्यात्मकस्याद्वादे सर्वव्यवहारप्रवृत्तिरतएव तयोर्नित्यानित्ययोः स्थानयोरेकां तत्वेन समाश्रीयमाणयोरैहिकामुष्मिककार्यविध्वंसरूपमनाचारं मौनींद्रागमबाह्यरूपं विजानीयात् । तुशब्दोविशेषणार्थः । कथंचिन्नित्यानित्ये वस्तुनि व्यवहारोयुज्यतइत्येत द्दिशिनष्टि । तथाहि सामान्यसमन्वयिनमंशमाश्रित्य स्यान्नित्यमिति भवति तथा विशेषांशं प्रतिक्षणमन्यथाच नवपुराणादिदर्शनतः स्यादनित्यइति भवति । तथोत्पादव्ययध्रौव्याणि चार्हदर्शनाश्रितानि व्यवहाराणि भवंति । तथा चोक्तं "घटमौलिसुवर्णार्थी, नाशोत्पादस्थि तिः स्वयं ॥ शोकप्रमोदमाध्यस्थ्यं, जनोयाति सहेतुकं" मित्यादि । तदेवं नित्यानित्य पक्षयोर्व्यवहारोन विद्यते तथानयोरेवानाचारं विजानीयादिति स्थितं ॥ ३ ॥

समुच्छिहिंति सत्थारो, सवे पाणा अणेलिसा ॥ गंठिगावा भ
विस्संति, सासयंतिव णो वए ॥४॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं, वव
हारो ण विज्जइ ॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं, अणायारं तु जाणए ॥५॥

अर्थ–वली पण अनाचार, निषेधवानें कहतो बतो कहेबे. (समुच्छिहिंति के०) सर्वथापि उच्छेद पामशे एटले क्षय थइ जाशे, अथवा सर्व सिद्धिने विषे जशे ते कोण जशे तोके (सत्थारो के०.) तीर्थंकर सर्वज्ञ, तथा जे तेना शासनमां प्रवर्त्तेबे ते सर्वे

सिद्धिनें योग्य एवा सर्वभव्यजीव सिद्धिनें विषे जशे एम करतां सर्व भव्यजीवनो विछेद थशे. एवुं वचन विवेकी पुरुष न बोले, तथा (सव्वेपाणाअणेलिसा के०) सर्व प्राणी एटले सर्व जीव ते अणेलिसा एटले सरखा नथी तथा सरखाछे तथा विलक्षणछे एवुं वचन पण विवेकी जन एकांतें न बोले, तथा (गंठिगाएभविस्संति के०) तथा सर्व प्राणी कर्म ग्रंथि सहित थशे, एटले कर्मनी गांठ सहितज रहेशे, एवुं पण एकांतें वचन न बोले, (सासयंतिवणोवए के०) तथा सर्वज्ञ शाश्वताज सर्वकालें होशे, पण कदापि कालें विछे द नहींज पामे. एवुं वचन पण एकांतें बोले नहीं ॥४॥ (एएहिंदोहिंगणेहिं के०) ए बे स्थानक जे तीर्थंकर विछेद पामशे, अथवा शाश्वताज रहेशे, अथवा सर्व भव्य जीव सिद्धिने पामशे, अथवा सर्व भव्य जीव कर्म सहितज रहेशे, ए बे स्थानक बे प्रकारना थयां एम कहेवुं, ते. (ववहारोणविज्जती के०) व्यवहार नथी एवुं जाणे. (एएहिंदोहिं गणेहिं के०) ए बेहु स्थानकें करी, (अणायारंतुजाणई के०) अनाचार जाणे, एटले दर्शनाचार आश्री अनाचार कह्यो. ॥ ५ ॥

॥ दीपिका-(समुछिहिंति) समुछेत्स्यंति उछेदं यास्यंति शास्तारोभव्याः सर्वभव्या नां मुक्तिगमनेन भव्यशून्योलोकः स्यादित्येवं नो वदेत् । तथा सर्वे प्राणाअनीदृशाविस दृशाविलक्षणाएव न कथंचित्तेषां सादृश्यमस्तीत्यपि नो वदेत् । ग्रंथिकाः कर्मग्रंथोपेता एवं भविष्यंति सर्वे जीवाइत्यपि नो वदेत् । कोर्थः ? । सर्वे प्राणिनः सेत्स्यंत्येव कर्मावृ त्तावा भविष्यंतीत्येकमपि पक्षमेकांतेन न वदेत्तथा शाश्वतास्तीर्थकृतइत्यपि न वदेत् ॥४॥ (एएहिंति) शास्तारः क्षयं यास्यंति शाश्वतावा भविष्यंतीति । यदिवा सर्वे प्राणाविल क्षणाः सदृशावा तथा ग्रंथिकसत्वाएव तद्रहितं वा जगदिति वा एवमनयोः स्थानयो र्व्यवहारोन विद्यते । इदं पक्षद्वयमपि न घटतइत्यर्थः । यतोऽनागतकालस्येव भव्याना मनंतत्वान्निरंतरं मुक्तिगमनेपि न भव्यशून्यं जगदिति । केचिद्भव्याद्यपि सामग्र्यभावान्न सेत्स्यंति यथा प्रतिमायोग्यमपि दलिकं सामग्रीं विना प्रतिमारूपं न स्यादिति सर्वे जीवाअपि विचित्रकर्मसद्भावाद्विसदृशाः कथंचित् उपयोगामूर्तत्वासंख्यप्रदेशत्वादिधर्मैः सदृशाअपि । तथा सर्वेऽर्हतः प्रवाहापेक्षया शाश्वताः एकैकापेक्षया अशाश्वताअपीति एताभ्यां द्वाभ्यामेकांतस्थानाभ्यामनाचारं जानीयात् ॥ ५ ॥

॥ टीका-तथान्यमप्यनाचारं प्रतिषेद्धुकामआह । (समुछिहिंतीत्यादि) सम्यक् निर्विशेषतयोत्सेत्स्यंत्युछेदं यास्यंति क्षयं प्राप्स्यंति सामस्त्येनोत्प्राबल्येन सेत्स्यंति वा सिद्धिं यास्यंति । के? ते शास्तारस्तीर्थकृतः सर्वज्ञास्तछासनप्रतिपन्नावा सर्वे निरवशेषाः

सिद्धिगमनयोग्याभव्यास्ततश्चोच्छिन्नभव्यं जगत्स्यादिति शुष्कतर्काभिमानग्रहगृहीतां युक्तिं चाभिदधति जीवसद्भावे सत्यप्यपूर्वोत्पादाभावाद्भव्यस्य च सिद्धिगमनासंभवात्कालस्य वाऽनंत्यादनारतसिद्धिगमनसंभवेन तद्यथोपपत्तेरपूर्वायाभावाद्भव्योच्छेदइत्येवं नो वदेत्त था सर्वेपि प्राणिनोजंतवोऽनीदृशाविसदृशाः सदा परस्परविलक्षणाएव न कथंचित्तेषां सादृश्यमस्तीत्येवमप्येकांतेन नो वदेत् । यदिवा सर्वेषां भव्यानां सिद्धिसद्भावे विशिष्टाः संसारेऽनीदृशाश्चभव्याएव भवेयुरित्येवं च नो वदेत् । युक्तिं चोत्तरत्र वक्ष्यति । तथा कर्मात्मकोग्रंथोयेषां विद्यते ते ग्रंथिकाः सर्वेपि प्राणिनः कर्मग्रंथोपेताएव भविष्यंतीत्येवमपि नो वदेत् । इदमुक्तं भवति । सर्वेपि प्राणिनः सेत्स्यंत्येव कर्मावृतावा सर्वे भविष्यंतीत्येवमेकमपि पक्षमेकांतिकं नो वदेत् । यदिवा ग्रंथिकाइति ग्रंथिकसत्वाभविष्यंतीति ग्रंथिभेदं कर्तुमसमर्थाभविष्यंतीत्येवं च नो वदेत्तथा शाश्वताइति शास्तारः सदा सर्वकालं स्थायिनस्तीर्थंकरान भविष्यंति न समुत्सेत्स्यंति नोच्छेदं यास्यंतीत्येवं नो वदेदिति ॥ ४ ॥ तदेवं दर्शनाचारनिषेधं वाङ्मात्रेण प्रदर्श्याऽधुना युक्तिं दर्शयितुकामआह । (एएहिं इत्यादि) एतयोरनंतरोक्तयोर्द्वयोः स्थानयोः । तद्यथा । शास्तारः क्षयं यास्यंतीति शाश्वतावा भविष्यंतीति । यदिवा सर्वे शास्तारस्तद्दर्शनप्रतिपन्नावा सेत्स्यंति शाश्वतावा भविष्यंति । यदिवा सर्वे प्राणिनोह्यनीदृशाः विसदृशासदृशावा तथा ग्रंथिकसत्वास्तद्रहितावा भविष्यंतीत्येवमनयोः स्थानयोर्व्यवहरणं व्यवहारस्तदास्तित्वे युक्तेरभावान्न विद्यते । तथाहि । यत्तावदुक्तं सर्वेशास्तारः क्षयं यास्यंतीत्येतदयुक्तं । क्षयनिबंधनस्य कर्मणोभावात्सिद्धानां क्षयाभावोन भवस्थकेवल्यपेक्षयेदमभिधीयते तदप्यनुपपन्नं यतोनाद्यनंतानां केवलिनां सद्भावात्प्रवाहापेक्षया तदभावाभावः । यदप्युक्तमपूर्वायाभावे सिद्धिगमनसद्भावेन च व्ययसद्भावाद्भव्यशून्यं जगत् स्यादित्येतदपि सिद्धांतपरमार्थावेदिनो वचनं । यतोभव्यराशेराद्धांते भविष्यत्कालस्यवानंत्यमुक्तं तच्चैवमुपपद्यते । यदि क्षयोन भवति सतिच तस्मिन्नात्यंतं न स्यान्नापि चावश्यं सर्वस्यापि भव्यस्य सिद्धिगमनेन भाव्यमित्यानंत्याद्भव्यानतत् सामग्र्यभावाद्योग्यदलिकप्रतिमावत्तदनुपपत्तिरिति । तथा नापि शाश्वताएव भवस्थकेवलिनां शास्तॄणां सिद्धिगमनसद्भावात्प्रवाहापेक्षया शाश्वतत्वमेवातः कथंचिच्छाश्वताः कथंचिदशाश्वताइति। तथा सर्वे पि प्राणिनोविचित्रकर्मसद्भावान्नानागतिजातिशरीरांगोपांगादिसमन्वितत्वादनीदृशा विसदृशास्तथोपयोगासंख्येयप्रदेशत्वामूर्तत्वादिभिर्धर्मैः कथंचित्सदृशास्तथोल्लसितसद्वीर्यतया केचिद्भिन्नग्रंथयोपरेच तथाविधपरिणामाभावाद्ग्रंथिकसत्वाएव भवंतीत्येवं व्यवस्थितेनैकाते नैकांतपक्षोभवतीति प्रतिषिद्धस्तदेवमेतयोरेव द्वयोः स्थानयोरुक्तनीत्या ज्ञानाचारं विजानीयादिति स्थितं । अपिचागमेअनंतानंतास्वप्युत्सर्पिण्यवसर्पिणीषु भव्यानामनंतभागएव सिद्ध्यतीत्ययमर्थः प्रतिपाद्यते ।यदा चैवंभूतं तदानं

र्थं तत्कथं तेषां क्वयः शुक्तिरप्यत्र संबधिशब्दावेतो । मुक्तिः संसारं विना न ज्ञवति संसारोपि न मुक्तिमंतरेण । ततश्च ज्ञव्योछेदे संसारस्याप्यज्ञावः स्यांदतोऽनिर्धीयते नाऽनयोर्व्यवहारोयुज्यतइति ॥ ५ ॥

जे केइ खुद्दगा पाणा, अदुवा संति महालया ॥ सरिसंतेहिंति वेरं ति असरिसंतीय णो वदे ॥६॥ एएहिं दोहिं गणेहिं, ववहारो ण विज्जई ॥ एएहिं दोहिं गणेहिं, अणायारंतु जाणए ॥ ७ ॥

अर्थ–हवे चारित्राचार आश्री कहेछे. (जेकेइखुद्दगापाणा के०) जे कोइ आ जगत् मां लघुप्राणी एटले सूक्ष्मजीवछे. एटले पृथविकायथी मांमीने पंचेंड्रियपर्यंत सूक्ष्म जीवछे, (अदुवासंतिमहालया के०) अथवा जे जीव महाकाय एटले महोटी कायावाळाछे, अंहीं न्हानाजीव ते कुंथुआदिक, अने महोटा जीव ते हस्त्यादिक जाणवा. (सरिसंतेहिंतिवेरं के०) ए बेहुनो विनाश करवा थकी सरखुंज वैर होय, एवुं एकांते वचन न बोले (असरिसंतीयणोवदे के०) अथवा असरीखुं होय एटले सरखुं वैर न होय. एवुं वचन पण एकांतें न बोले कारणके, कर्मबंधनें विषे न्हाना मोटानुं कांइ विशेष नथी किंतु ? अध्यवसाय विशेष कर्म बंधछे एवुं जाणे, अने बोले ॥६॥ ए बेहु स्थानक बोलतां व्यवरहार प्रवर्त्ते नहीं, एवुं जाणे, तथा एवुं एकांतें बोलतां अनाचारछे एम जाणे.॥७॥

॥ दीपिका–(जेकेइत्यादि) ये केचित् क्षुद्राः प्राणिनएकेंड्रियद्वींड्रियादयोऽल्पकायावा पंचेंड्रियाः । अथवा महालयामहाकायाः संति तेषां क्षुद्राणां कुंथ्वादीनां महतां हस्त्यादीनां च हनने सदृशं वैरं कर्मबंधस्तुल्यइत्येकांतेन नो वदेत् असदृशं वातद्घाते वैरं कर्मबंधइंड्रियज्ञानकायानां विचित्रत्वादित्यपि नो वदेत् ।नहि वध्यवशात्कर्मबंधः किंतु? अध्यवसायवशात् तीव्राध्यवसायादल्पमपि सत्वं घ्नतोमहान् कर्मबंधः अकामस्यतु महाकायप्राणिहननेपि स्वल्पबंधइत्यर्थः ॥६॥ (एएहिंइति) एताज्यां तुल्यातुल्यविरूपाज्यां स्थानाज्यां व्यवहारोन विद्यते अध्यवसायस्यैव बंधाबंधहेतुत्वात् । एताज्यां द्वाज्यां स्थानाज्यां प्रवृत्तस्यानाचारं जानीयात् । तथाहि । नहि जीववधे हिंसा स्यात्तस्य नित्यत्वात् । यडुक्तं "पंचेंड्रियाणि त्रिविधं बलंच, उछ्वासनिश्वासमथान्यदायुः ॥ प्राणादशैते ज्ञगवद्भिरुक्तास्तेषां वियोजीकरणं तु हिंसा" इति । किंच ज्ञावापेक्षएव कर्मबंधोयथा वैद्यस्य सम्यक् क्रियां कुर्वतोयद्यपि रोगी म्रियते तथापि न वैद्यस्य कर्मबंधोडुष्टाध्यवसायाज्ञावात् अन्यस्यतु सर्पबुध्या रज्जुमपि घ्नतोज्ञावदोषात्कर्मबंधः । यदागमः । उच्चालियं मियाए, इरियासमि

यस्स संकमणाए ॥ वावज्झिज्झकुलिंगी, । मरिज्जतज्जोगमासज्ज ॥ १ ॥ नयतस्स तन्निमि त्तो, बंधेसुहमोविदेसिउ समए ॥ अणवज्जाउपउगेण, सव्वनावेणसोजह्मा ॥२॥ इत्यादि॥७॥

॥टीका–अधुना चारित्राचारमंगीकृत्याह॥(जेकेइइत्यादि)ये केचन क्षुद्रकाः सत्वाः प्राणिन एकेंद्रिय द्वींद्रियादयोऽल्पकायावा पंचेंद्रियाअथवा महालयामहाकायाः संति विद्यंते तेषां क्षुद्रकाणामल्पकायानां कुंथ्वादीनां महानालयः शरीरं येषां ते महालयाहस्त्यादयस्तेषां च व्यापादने सदृशं वैरमिति वज्रकर्म विरोधलक्षणं वा वैरं सदृशं समानं तुल्यप्रदेशत्वात्सर्व जंतूनामित्येवमेकांतेन नो वदेत्तथा विसदृशमसदृशं तद्व्यापत्तौ वैरं कर्मबंधोवा इंद्रियवि ज्ञानकायानां विसदृशत्वात् सत्यपि प्रदेशतुल्यत्वे न सदृशं वैरमित्येवमपि नो वदेत् । यदि हि वध्यापेक्षएवकर्मबंधः स्यात्तत्तद्वशात्कर्मणोपि सादृश्यमसादृश्यंवा वक्तुं युज्यते । नच तद्वशादेव वधोपि त्वध्यवसायवशादपि ततश्च तीव्राध्यवसायिनोऽल्पकायसत्वव्यापादने पि महद्वैरमकामस्यतु महाकायसत्वव्यापादनेपि स्वल्पमिति ॥ ६ ॥ एतदेवसूत्रेणैव द र्शयितुमाह ॥ (एएहिमित्यादि) आन्यामनंतरोक्तान्यां स्थानान्यामनयोर्वा स्थानयोरल्पका यसत्वमहाकायव्यापादनापादितकर्मबंधसदृशत्वासदृशत्वयोर्व्यवहरणं व्यवहारोनिर्युक्ति कत्वान्न युज्यते ।तथाहि। न वध्यस्य सदृशत्वमसदृशत्वं चैकमेव कर्मबंधस्य कारणमपितु वधकस्य तीव्रनावोमंदनावोज्ञाननावोऽज्ञाननावोमहावीर्यत्वमल्पवीर्यत्वं चेत्येतदपि । तदेवं वध्यवधकयोर्विशेषात्कर्मबंधविशेषइत्येवं व्यवस्थिते वध्यमेवाश्रित्य सदृशत्वासदृश त्वव्यवहारोन विद्यतइति तथा तयोरेव स्थानयोः प्रवृत्तस्यानाचारं विजानीयादिति । तथा हि । यज्जीवसाम्यात्कर्मबंधसदृशत्वमुच्यते तदयुक्तं । यतोन हि जीवव्यापत्त्या हिंसोच्यते ।त स्य शाश्वतत्वेन व्यापादयितुमशक्यत्वादपि त्विंद्रियादिव्यापत्त्या ।तथाचोक्तं।"पंचेंद्रियाणि त्रिविधं बलं च, उच्छ्वासनिःश्वासमथान्यदायुः॥ प्राणादशैते नगवद्भिरुक्तास्तेषां वियोजीकर णं तु हिंसा"॥१॥ इत्यादि । अपिच नावसव्यपेक्षस्यैव कर्मबंधोन्युपेतुं युक्तः । तथाहि । वैद्य स्यागमसव्यपेक्षस्य क्रियां कुर्वतोयद्यप्यातुरविपत्तिर्नवति तथापि न वैरानुषंगोनवेद्दोषा नावादपरस्यतु सर्पबुद्ध्या रज्जुमपि घ्नतोनावदोषात्कर्मबंधस्तद्रहितस्यतु न बंधइत्युक्तं चागमे । उच्चालियंमियाएइत्यादि । तंमुलमत्स्याख्यानकं तु सुप्रसिद्धमेव । तदेवंविधव ध्यवधकनावापेक्षया स्यात् सदृशत्वं स्यादसदृशत्वमित्यन्यथाऽनाचारइति ॥ ७ ॥

अहाकम्माणि नुंजंति, अस्समसे सकम्मुणा॥ उवलित्तेति जाणि ज्जा, अणुवलित्तेति वा पुणो ॥८॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं, ववहा रो ण विज्जई, एएहिं दोहिं ठाणेहिं, अणायारं तु जाणए ॥ ९॥

अर्थ—हवे आहार आश्री आचार अनाचार कहेछे.(अहाकम्माणिभुंजंति के०) जे साधु आश्री छए कायनुं मर्दन करी,वस्तु जे भोजन उपाश्रयादिक कीधां होय, एटलानो जे उपभोग करे ते, (अस्मुमस्सेसकम्मुणा के०) परस्पर मांहोमांहे पोतानें कर्में, (उवलित्तेति जाणिज्जा के०) उपलिप्त जाणवा. एवुं पण वचन एकांतें न बोले, (अणुवलित्तेतिवापुणो के०)अथवा पोतानां कर्में करी अनुपलिप्त,एटले उपलिप्त न जाणवा,एवुं पण वचन कांतेतें न बोले,कारणके, जे आधाकर्मिक आहार होय, तेनें पण श्रुतना उपदेशनें अर्थें शुद्ध एवो करीनें जमे तो ते कर्में करी लेपाय नहीं. अथवा सुजतो आहार होय,परंतु ते आहारनें आहारगृद्धपणे जमे तो, ते कर्में करी बंधायछे. एवुं जाणीनें, अनेकांत वचन बोले, पण एकांत वचन न बोले ॥८॥ ए बेहु स्थानकें करी व्यवहार न जाणे, अनें ए बेहु स्थानकें करी अनाचार जाणे ॥ ए ॥

॥ दीपिका—(अहाकम्माणित्ति) आधाकर्माणि ये भुंजतेऽन्योन्यं परस्परं तान्स्वकीये न कर्मणा उपलिप्तान्वा नो वदेत् अनुपलिप्तान्वा न वदेत् । आधाकर्मापि श्रुतोपदेशेन शुद्धमिति कृत्वा भुंजानस्य न बंधः श्रुतोपदेशं विनाऽहारगृध्याऽधाकर्म भुंजानस्यापितु बंधस्तस्मादाधाकर्मभोगे कर्मबंधः स्यान्न स्याद्वा इति वदेत् ॥ ८ ॥ (एएहिंदोहिमिति) आधाकर्मभोगे कर्मबंधःस्यादेव न स्यादेवेति द्वाभ्यां स्थानाभ्यां व्यवहारो न विद्यते द्वाभ्यां स्थानाभ्यां स्वीकृताभ्यामनाचारं जानीयात् ॥ ए ॥

॥ टीका—पुनश्चारित्रमधिकृत्याहारविषयानाचाराचारौ प्रतिपादयितुकामआह । (अहाकम्माणीत्यादि) साधु प्रधानकारणमादायाश्रित्य कर्माण्याधाकर्माणि ।तानितु वस्त्रभोजनवसत्यादीन्युच्यंते । एतान्याधाकर्माणि ये भुजंते एतैरुपभोगं ये कुर्वंत्यन्योन्यं परस्परं तान्स्वकीयेन कर्मणोपलिप्तान् विजानीयादित्येवं नो वदेत्तथाऽनुपलिप्तानितिवा नो वदेत् । एतदुक्तं भवति । आधाकर्मापि श्रुतोपदेशेन शुद्धमिति कृत्वा भुंजानः कर्मणा नोपलिप्यते तदाधाकर्मोपभोगेनावश्यतया कर्मबंधोभवतीत्येवं नो वदेत्तथा श्रुतोपदेशमंतरेणाहारगृध्याऽधाकर्म भुंजानस्य तन्निमित्तकर्मबंधसदृशत्वासदृशत्वयोर्व्यवहरणं व्यवहारोनिर्युक्तिकत्वान्न युज्यते । तथाहि । न वध्यस्य सदृशासदृशत्वयोर्व्यवहरणं व्यवहारो निर्युक्तिकत्वान्न युक्तसदृशत्वमतोनुलिप्तानपि नो वदेद्यथावस्थितमौनीन्द्रागमज्ञस्य त्वेवं युज्यते वक्तुमाधाकर्मोपभोगे न स्यात्कर्मबंधः स्यान्नेति । यतउक्तं । "किंचिच्छुद्धं कल्पमकल्पंवा स्यादकल्पमपि कल्पं ॥ पिंडः शय्या वस्त्रं पात्रं वा भेषजाद्यं वा" ॥१॥ तथान्यैरप्यभिहितं । उत्पद्येतहि सावस्था देशकालामयान्प्रति॥ यस्यामकार्यं कार्यं स्यात्कर्म कार्यंच

वर्ज्जयेदित्यादि ॥ ८॥ किमित्येवं स्याद्वादः प्रतिपाद्यत इत्याह।(एएहिंदोहिमित्यादि) आभ्यां द्वाभ्यां स्थानाभ्यामाश्रिताभ्यामनयोर्व्यवस्थानयोराधाकर्मोपभोगेन कर्मबंधाभावाभावभूत योर्व्यवहारोन विद्यते।तथाहि। यद्यवश्यमाधाकर्मोपभोगेनैकांतेन कर्मबंधोऽभ्युपगम्येत। एवं चाहाराभावेनापि क्वचित्सुतरामनर्थोदयः स्यात्। तथाहि। क्षुत्प्रपीडितोन सम्यगीर्यापथं शोधयेत्ततश्च व्रजन् प्राण्युपमर्द्दमपि कुर्यात् मूर्बादिसद्भावतया देहपाते सत्यव श्यंभावी त्रसादिव्याघातोऽकालमरणे चाविरतिरंगीकृता भवत्यार्तध्यानापत्तौच तिर्यग्गति रित्यागमश्च। सव्वड संजमं संजमाउ अप्पाणमेव रक्केज्जाइत्यादिनापि तडपभोगे कर्मबंधाभावइति। तथाहि। आधाकर्मण्यपि निष्पाद्यमाने षड्जीवनिकायवधस्तद्वधेच प्रतीतः कर्मबंधइत्यतोऽनयोःस्थानयोरेकांतेनाश्रीयमाणयोर्व्यवहरणं व्यवहारोन युज्यते तथाभ्यामेव स्थानाभ्यां समाश्रिताभ्यां सर्वमनाचारं विजानीयादिति स्थितं ॥ ए ॥

जमिदं उरालमाहारं, कम्मगं च तहेवय ॥ सव्वड वीरियं अत्थि,
णत्थि सव्वड वीरियं ॥ १० ॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं, ववहारो ण
विज्जई ॥ एएहिं दोहिं ठाणेहिं, अणायारं तु जाणए ॥ ११ ॥

अर्थ–हवे बीजी रीतें परदर्शनी आश्री बोलवानो अनाचार कहेछे. (जमिदंउरालमाहारं कम्मगंचतहेवय के०) जे ए शरीर सर्वलोक प्रसिद्ध औदारिक, ते तिर्यंच अने मनुष्यनुं शरीर जाणवुं, तथा जे चौदपूर्वधर मुनिराज होय, ते कोइ एक संशय उपने छते शरीर करीनें केवली पासें पूछवाने अर्थे मोकले, ते आहारक शरीर जाणवुं. एना ग्रहणथी वैक्रिय शरीर पण ग्रहण करवुं, तथा कार्मण शरीर कर्मपुजलनिबद्ध जाणवुं. तेमज एनुं सहचारी ते तैजस शरीर जाणवुं, ए पांच शरीर जाणवां. हवे कोइ एकनें ए पांच शरीरछे तेमांहेथी औदारिक वैक्रियादिकने विषे एकज शरीरनी आशंका उपजे एटले ते एम कहे के, जे औदारिक शरीर, तेहिज तैजस, कार्मण शरीरछे, अनें तैजस कार्मण शरीर तेहिज औदारिक, वैक्रिय, अनें आहारक शरीरछे. परंतु एवी संज्ञा न करवी, तथा ए पांचे शरीर अत्यंत मांहो मांहे जुदां जुदांछे एवी पण संज्ञा न करवी. त्यारें केवी संज्ञा करवी? तोके, ए जीव आश्री पांचे शरीर अभिन्नछे अने नामनें भेदें, पर्यायनें भेदें, भिन्न पणछे. एम कहेवुं. हवे सर्वद्रव्यनो भेदाभेद देखाडवामाटें कहेछे. (सव्वडवीरियंअत्थि के०) सघलुं द्रव्य, सर्वद्रव्यनें विषेछे एवो सांख्यमतनो अभिप्राय जाणवो. ते सांख्य मत एम कहेछे के, सत्व, रज, तमरूपें जे प्रधाननामा तत्व ते सर्वद्रव्यनुं कारणछे, ए कारणें सर्वद्रव्य सर्वात्मक एवी व्यवस्था एटले सर्वत्र घट पटादिकद्रव्यनें विषे अन्यद्रव्यनुं

वीर्यछे, एवी संज्ञा पण करवी नहीं. (नछिसवछवीरियं के०) वली सर्वपदार्थनें विषे सर्वद्रव्यनुं वीर्य नथी, एवी संज्ञा पण करवी नहीं. अहीं एकांतनो निषेध करीनें स्याद्वाद बोलवो. इत्यर्थः ॥ १० ॥ अगीआरमी गाथानो अर्थ, पूर्ववत् जाणवो ॥ ११ ॥

॥ दीपिका—(जमिदमिति) यदिदमौदारिकं शरीरं आहारकंवा एतद्ग्रहणाद्वैक्रियमपि ग्राह्यं कार्मणं तथा तैजसमपि। एतेषां शरीराणामैक्यमेव तैजसकार्मणयोरभिन्नत्वात्। ततस्त्रयाणामेकत्वमेवेति नो वदेत् इत्यग्रेतनश्लोके संबंधः। तथा शरीराणां सर्वेषां सर्वथा भेदएवेत्यपि नो वदेत् कथंचिदेकत्वस्याप्यंगीक्रियमाणत्वात् तथा। (सव्वछ्अ छित्ति) सर्वं सर्वत्रास्तीति सांख्याभिप्रायेण सत्वरजस्तमोरूपायाः प्रकृतेरेकत्वात्तस्याएव हि सर्वस्य कारणत्वात्सर्वं सर्वात्मकमेवं सति सर्वत्र घटपटादौ अन्यस्य व्यक्तस्य वीर्यं शक्तिरस्ति सर्वस्य व्यक्तस्य प्रकृतिकार्यत्वात्कार्यकारणयोश्चैकत्वात्सर्वं सर्वत्र सर्वस्य वीर्यमस्तीति संज्ञां न कुर्यात्। तथा सर्वे भावाः स्वस्वशक्तियुक्ताइति न सर्वस्य सर्वत्र शक्तिरित्यपि संज्ञां न कुर्यात् भेदाभेदस्वरूपत्वात्सर्वभावानामिति ॥१०॥ (एएहिंदोहिंगणेहिंति) द्वाभ्यामेताभ्यां सर्वत्र शक्तिरस्ति नास्तिवेति अथवा शरीराणां सर्वेषां भेदोऽभेदोवेति द्वाभ्यां स्थानाभ्यां व्यवहारोन विद्यते युक्तयोन संगछंतीत्यर्थः। एतयोः स्थानयोः प्रवृत्तस्याऽनाचारं जानीयात् ॥११॥

॥ टीका—पुनरप्यन्यथादर्शनं प्रति चागमानाचारं दर्शयितुमाह। (जमिदंउरालमित्यादि) यदि वा योयमनंतरमाहारः प्रदर्शितः स सति शरीरे भवति। शरीरं च पंचधा। तस्य चौदारिकादेः शरीरस्य भेदाभेदं प्रतिपादयितुकामः पूर्वपक्षद्वारेणाह। (जमिदमित्यादि) यदिदं सर्वजनप्रत्यक्षमुदारैः पुजलैर्निर्वृत्तमौदारिकमेतदेवोरालं निस्सारत्वादेतच्च तिर्यङ्मनुष्याणां भवति। तथा चतुर्दशपूर्वविदा क्वचित्संशयादावाह्रियतइत्याहारकमेतद्ग्रहणाच्च वैक्रियोपादानमपि द्रष्टव्यं। तथा कर्मणा निर्वृत्तं कार्मणमेतत् सहचरितं तैजसमपि ग्राह्यं। औदारिकवैक्रियाहारकाणां प्रत्येकं तैजसकार्मणाभ्यां सह युगपडुपलब्धेः कस्यचिदेकत्वाऽशंका स्यादतस्तदपनोदार्थं तदभिप्रायमाह। तदेव तद्यदेवौदारिकं शरीरं तएव तैजसकार्मणे शरीरे। एवं वैक्रियाहारकयोरपि वाच्यं। तदेवंभूतां संज्ञां नो निवेशयेदित्युत्तरश्लोके क्रिया। तथैतेषामात्यंतिकोभेदइत्येवंभूतामपि संज्ञां नो निवेशयेत्। युक्तिश्चात्र यद्येकांतेनाभेदएव। ततइदमौदारिकमुदारपुजलनिष्पन्नं तथैतत्कर्मणा निर्वर्त्तितं कार्मणं सर्वस्यैतस्य संसारचक्रवालस्य भ्रमणस्य कारणभूतं तेजोद्रव्यैर्निष्पन्नं तेजएव तैजसं आहारपक्तिनिमित्तं तैजसलब्धिनिमित्तं चेत्येवं भेदेन संज्ञा निरुक्तार्थंच न स्यात्। अथात्यंतिकोभेदएव ततोघटवद्भिन्नयोर्देशकालयोरप्युपलब्धिः स्यात्।

न नियता युगपडुपलब्धिरित्येवं च व्यवस्थिते कथंचिदेवोपलब्धेर्जेदः कथंचिच्च संज्ञा जेदाज्ञेदइति स्थितं । तदेवमौदारिकादीनां शरीराणां जेदाजेदौ प्रदर्श्याधुना सर्वस्यैव ड्व्यस्य जेदाजेदौ प्रदर्शयितुकामः पूर्वपक्षं श्लोकपश्चार्द्धेन दर्शयितुमाह । (सवत्ववीरिय मित्यादि) सर्वं सर्वत्र विद्यतइतिकृत्वा सांख्याजिप्रायेण सत्वरजस्तमोरूपस्य प्रधानस्यैकत्वात्तस्यच सर्वस्यैव कारणत्वात् अतः सर्वं सर्वात्मकमित्येवं व्यवस्थिते घटपटाद्यवयवस्य व्यक्तस्य वीर्यं शक्तिर्विद्यते सर्वस्यैव हि व्यक्तस्य प्रधानकार्यत्वात्कार्यकारणयोश्चैकत्वादतः सर्वस्य सर्वत्र वीर्यमस्तीत्येवं संज्ञा नो निवेशयेत्तथा सर्वं जावाः स्वजावेन स्वस्वजावव्यवस्थिताइति प्रतिनियतशक्तित्वान्न सर्वत्र सर्वस्य वीर्यं शक्तिरित्येवमपि संज्ञां नो निवेशयेत् ।युक्तिश्चात्र यत्तावडुच्यते सांख्याजिप्रायेण सर्वं सर्वात्मकं देशकालाकारप्रतिबंधात्तु न समानकालोपलब्धिरिति तदयुक्तं। यतोजेदेन सुखडुःखजीवितमरणादूरासन्नसूक्ष्मबादरसुरूपकुरूपादिकं संसारवैचित्र्यमध्यक्षेणाऽनुजूयते ।नच दृष्टेऽनुपपन्नं नाम।नच सर्वं मिथ्येत्यप्युपपन्नं युज्यते । यतोऽदृष्टहानिरदृष्टकल्पनाच पापीयसी। किंच सर्वथैक्येऽज्युपगम्यमाने संसारमोक्षाजावतया कृतनाशोकृताज्यागमश्च बलादापतति। यच्चैतत्सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रधानमित्येतत्सर्वस्य जगतः कारणं तन्निरंतराः सुहृदः प्रत्येष्यंति निर्युक्तिकत्वादपिच सर्वथा सर्वस्य वस्तुनएकत्वेऽज्युपगम्यमाने सत्वरजस्तमसामप्येकत्वं स्यात् तद्भेदे च सर्वस्य जेदइति। तथा यदप्युच्यते सत्वस्य व्यक्तस्य प्रधानकार्यत्वात्सत्कार्यवादत्वाच्च मयूरांमकरणे चंचुपिच्छादीनां सतामेवोत्पादाज्युपगमादसडुत्पादे चाम्रफलादीनामप्युत्पत्तिप्रसंगादित्येतद्वाङ्मात्रं । तथाहि । यदि सर्वथा कारणे कार्यमस्ति न तर्ह्युत्पादोनिष्पन्नघटस्येवापिच मृत्पिंमावस्थायामेव घटगताः कर्मगुणव्यपदेशाजवेयुर्नच जवंति ततोनास्ति कारणे कार्यमथाऽनजिव्यक्तमस्तीति चेन्न । तर्हि सर्वात्मना विद्यते नाप्येकांतेनासत्कार्यवाद एव । तद्भावेहि व्योमारविंदानामप्येकांतेनासतोमृत्पिंमादेर्घटादेरिवोत्पत्तिः स्यान्न चैतद्दृष्टमिष्टं वा।अपिचैवं सर्वस्य सर्वस्माडुत्पत्तेः कार्यकारणजावान्नियमः स्यादेवंच न शाल्यंकुरार्थीशालीबीजमेवादद्यापितु यत्किंचिदेवेति नियमेनच प्रेक्षापूर्वकारिणामुपादानकारणादो प्रवृत्तिरतोनासत्कार्यवादइति।तदेवं सर्वपदार्थानां सर्वज्ञेयत्वप्रमेयत्वादिजिर्धर्मैः कथंचिदेकत्वं तथा प्रतिनियतार्थकार्यतया यदेवार्थक्रियाकारि तदेव परमार्थतः सदितिकृत्वा कथंचिद्भेदइति सामान्यविशेषात्मकं वस्त्ववति स्थितं।अनेनच स्यादस्ति स्यान्नास्तीति जंगकद्वयेन शेषजंगकाअपि इष्टव्याः। ततश्च सर्ववस्तु सप्तजंगीस्वजावं। ते चामी स्वड्व्यक्षेत्रकालजावापेक्षया स्यादस्ति परड्व्यापेक्षया स्यान्नास्ति अनयोरेव धर्मयोर्यौगपद्येनाजिधातुमशक्यत्वात्स्यादवक्तव्यं तथा कस्यचिदंशस्य स्वड्व्याद्यपेक्षया विवक्षितत्वात्कस्यचिच्चांशस्य परड्व्याद्यपेक्षया स्याद्वा नास्तिवा वक्तव्यं चेति । तथैकस्यांशस्य स्वड्व्याद्यपेक्षया परस्य तु

सामस्त्येन स्वद्रव्याद्यपेक्षया विवक्षितत्वात्स्यादस्तिचावक्तव्यं चेति।तथैकांशस्य परद्रव्याद्यपेक्षया स्यान्नास्ति चावक्तव्यं चेति तथैकस्यांशस्य स्वद्रव्याद्यपेक्षया परस्य तु परद्रव्याद्यपेक्षयाऽन्यस्य तु योगपद्येन स्वपरद्रव्याद्यपेक्षया विवक्षितत्वात्स्यादस्तिच नास्तिचाऽवक्तव्यं इयं च सप्तभंगी यथायोगमुत्तरत्रापि योजनीयेति ॥ १० ॥ ११ ॥

णत्थि लोए अलोएवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि लोए अलोएवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ १२ ॥ णत्थि जीवा अजीवावा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि जीवा अजीवावा, एवं सन्नं निवेसए ॥ १३ ॥ णत्थि धम्मे अधम्मेवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि धम्मे अधम्मेवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ १४ ॥

अर्थ—हवे सर्वशून्यवादीना मतनुं निराकरण करवानें अर्थें,लोक अनें अलोकनुं अस्तिपणुं देखाडेछे, (णत्थिलोएअलोएवा के०) चतुर्दशरज्ज्वात्मक एवो जे लोक,अथवा पंचास्तिकायरूप एवो जे लोक, ते नथी,एवी संज्ञा न करवी,तथा आकाशास्तिकाय रूप एवो जे अलोक,ते पण नथी,ते एवी संज्ञा पण न करवी. केमके,ए नास्तिकवादीनो मतछे. हवे केवी संज्ञा करवी? ते कहेछे.पंचास्तिकायरूप लोक ते पण छे,तथा आकाशास्तिकाय रूप अलोक ते पणछे, एवी संज्ञा करवी. ए केवलीनो मतछे॥१२॥हवे लोकालोकनुं अस्तिपणुं देखाडीनें तेना विशेषभूत जीव अनें अजीव तेनो अस्तिभाव देखाडेछे. जीव ते, उपयोग लक्षण संसारीक, अथवा मुक्तिगत,ए पण नथी. तथा अजीव ते धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल, अनें कालात्मक ए पण नथी.एवी संज्ञा पण न करवी केमके,ए नास्तिकवादीनो मतछे त्यारें केवी संज्ञा करवी? तोके, जीव पणछे,अनें अजीव पणछे,एवी संज्ञा करवी.ए केवली भगवंतनो मतछे ॥१३॥ हवे एवा जीवनो अस्तिभाव देखाडीनें तेनें सदसत्क्रिया अनुष्ठाननें विषे धर्म, अनें अधर्म कारणछे,ते माटें हवे तेनो अस्तिभाव कहेछे. श्रुतचारित्ररूप जे धर्म, ते कर्मक्षयनो कारणरूपछे. ते पण नथी, तथा मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, अने योगरूप जे अधर्मछे, ते कर्मबंधनो कारणरूपछे, ते पण नथी, एवी संज्ञा पण न करवी. परंतु धर्म पणछे, अनें अधर्म पणछे, एवी संज्ञा करवी ॥ १४ ॥

॥ दीपिका—(णत्थिलोएइत्यादि) शून्यवादिमताभिप्रायेण नास्ति लोकः अलोकोपि नास्तीति संज्ञां नो निवेशयेन्न स्थापयेत् अस्ति लोकः पंचास्तिकायात्मकः अस्ति वाऽलो

कश्चाकाशास्तिकायमात्रइति संज्ञां निवेशयेत् ॥ १२ ॥ (णत्थिजीवाइति) न संति जीवाश्च जीवावा इति संज्ञां नो निवेशयेत् संति जीवाश्चजीवाश्चेति संज्ञां कुर्यात् ॥ १३ ॥ (णत्थि धम्मइति) नास्ति धर्मः श्रुतचारित्रात्मकः नास्ति वाऽधर्मोमिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोग रूपः एवं संज्ञां न कर्यात् अस्ति धर्मोऽधर्मोवा एवं संज्ञां कुर्यात् ॥ १४ ॥

॥ टीका—तदेवं सामान्येन सर्वस्यैव वस्तुनोभेदाभेदौ प्रतिपाद्याधुना सर्वशून्यवादिम तनिरासेन लोकालोकयोः प्रविभागेनास्तित्वं प्रतिपादयितुकामआह । (णत्थिलोए अलोएवाइत्यादि) यदि वा सर्वत्र वीर्यमस्ति नास्ति सर्वत्र वीर्यमित्यनेन सामान्येन वस्त्व स्तित्वमुक्तं । तथाहि । सर्वत्र वस्तुनोवीर्यं शक्तिरर्थक्रियासामर्थ्यं मनसः स्वविषयज्ञानोत्पा दनं तच्चैकांतेनात्यंताभावाच्छविषाणादेरप्यस्तीत्येवं संज्ञां न निवेशयेत्सर्वत्र वीर्यं ना स्तीति नो एवं संज्ञां निवेशयेदिति । अनेनावशिष्टं वस्त्वस्तित्वं प्रसाधितमिदानीं तस्यैव वस्तुनईषद्विशेषितत्वेन लोकालोकरूपतयास्तित्वं प्रसाधयन्नाह । (णत्थिलोएअलोएइत्या दि) लोकश्चतुर्दशरज्ज्वात्मकोधर्माधर्माकाशादिपंचास्तिकायात्मकोवा स नास्तीत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत् । तथाऽऽकाशास्तिकायात्मकस्त्वेकः सच न विद्यते एवेत्येवं सज्ञां नो निवेश येत् । तदभावप्रतिपत्तिनिबंधनं त्विदं । तद्यथा प्रतिभासमानं वस्त्ववयवद्वारेणवा प्रति भासेतावयविद्वारेणवा तत्र न तावदवयवद्वारेण प्रतिभासनमुत्पद्यते निरंशपरमाणूनां प्र तिभासमानासंभवात्सर्वारातीयभागस्य परमाण्वात्मकत्वात्तेषांच छद्मस्थविज्ञानेन द्रष्टुमश क्यत्वात् । तथाचोक्तं "यावद्दृश्यं परस्तावद्भागः सच न दृश्यते ॥ निरंशस्यच भागस्य नास्तिछ द्मस्थ दर्शन" मित्यादि।नाप्यवयविद्वारेण विकल्प्यमानस्यावयविनएवाभावात्।तथा ह्यसौ स्वावयवेषु प्रत्येकं सामस्त्येनवा वर्त्तेताऽशांशिभावेनवा सामस्त्येनावयविबहुत्वप्रसंगान्नाप्यं शेन पूर्वविकल्पानतिक्रमेणानवस्थाप्रसंगात्तस्माद्विचार्यमाणं न कथंचिद्वस्त्वात्मकं भावं लभते ततस्तत्सर्वमेवैतन्मायास्वप्नेंद्रजालमरुमरीचिकाविज्ञानसदृशं । तथाचोक्तं । "यथा य थार्थाश्चिंत्यंते विविच्यंते तथा तथा ॥ यद्येते स्वयमर्थेभ्योरोचंते तत्र के वय" मित्यादि । तदेव वस्त्वभावे तद्विशेषलोकालोकाभावः सिद्धएवेत्येवं नो संज्ञां निवेशयेत् । किंत्वस्ति लोकऊर्ध्वाधस्तिर्यग्रूपोवैशाखस्थानस्थितकटिन्यस्तकरयुग्मपुरुषसदृशः पंचास्तिकायात्म कोवा तद्व्यतिरिक्तश्चालोकोप्यस्ति ।संबधिशब्दत्वाल्लोकव्यवस्थाऽनुपपत्तेरिति भावः । युक्ति श्चात्र यदि सर्वं नास्ति ततः सर्वांतःपातित्वात्प्रतिषेधकोपि नास्तीत्यतस्तदभावात्प्रतिषे धाभावोपि च सति परमार्थभूते वस्तुनि माया स्वप्नेंद्रजालादिव्यवस्थान्यथा किमाश्रित्य कोवा मायादिकं व्यवस्थापयेदिति । अपिच "सर्वाभावोयथाभीष्टोयुक्त्यभावेन सिध्यति । सास्ति चेत्सैव नस्तत्वं तत्सिद्धौ सर्ववस्तुस" दित्यादि । यदप्यवयवावयविविभागकल्पनया

दूषणमभिधीयते तदप्यार्हतमताभिज्ञेन । तन्मतं चैवंभूतं ।तद्यथा नैकांतोनावयवाएव नाप्यवयव्येव चेत्यतः स्याद्वादाश्रयणात्पूर्वोक्तविकल्पदोषानुपपत्तिरित्यतः कथंचिल्लोको स्त्येवमलोकोपीति स्थितं ॥१२॥ तदेवं लोकालोकास्तित्वं प्रतिपाद्याधुना तद्विशेषभूत योर्जीवाजीवयोरस्तित्वप्रतिपादनायाह । (णत्थिजीवाअजीवेत्यादि) जीवाउपयोग लक्षणाः संसारिणोमुक्तावा ते न विद्यंते तथा अजीवाश्च धर्माधर्माकाशपुद्गलकाला त्मकागतिस्थित्यवगाहदानछायातपोद्योतादिवर्त्तनालक्षणान विद्यंतइत्येवं संज्ञां परि ज्ञानं नो निवेशयेन्नास्तित्वनिबंधनं त्विदं प्रत्यक्षेणानुपलभ्यमानत्वाज्जीवान विद्यंते कायाकारपरिणतानि भूतान्येव धावनवल्गनादिकां क्रियां कुर्वंतीति । तथात्मा द्वैत वादमताभिप्रायेण पुरुषएवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यमित्यागमात्तथा अजीवान विद्यंते सर्वस्यैव चेतनाचेतनस्यात्ममात्रनिर्वर्त्तित्वान्नो एवं संज्ञां निवेशयेत् किंत्वस्ति जीवः सर्वस्यास्य सुखदुःखादेर्निबंधनभूतः स्वसंवित्तिसिद्धोऽहं प्रत्ययग्राह्यस्तथा तद्व्यतिरि क्ताधर्माधर्माकाशपुद्गलादयश्च विद्यंते । सकलप्रमाणज्येष्ठेन प्रत्यक्षेणानुभूयमानत्वा त्तथाणानां भूतचैतन्यवादीव वाच्यः । किं तानि भवदभिप्रेतानि भूतानि नित्यान्युताऽनि त्यानि।यदि नित्यानि ततोऽप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावत्वान्न कायाकारपरिणतेभ्युपगमः नापि प्रागविद्यमानस्य चैतन्यमुत्पद्यते आहोस्विद्विद्यमानं तावदविद्यमानमतिप्रसंगाद भ्युपेतागमलोपाच्च ऽथविद्यमानमेव सिद्धं तर्हि जीवत्वं तथाऽत्मा द्वैतवाद्यपि वाच्यः। यदि पुरुषमात्रमेवेदं सर्वं कथं घटपटादिषु चैतन्यं नोपलभ्यते तथा तदैक्यभेदनिबंधनानां पक्ष हेतुदृष्टांतानामभावात्साध्यसाधनाभावस्तस्मान्नैकांतेन जीवाजीवयोरभावोपितु सर्वपदा र्थानां स्याद्वादाश्रयणाज्जीवः स्यादजीवः अजीवोपिच स्यादजीवः स्याज्जीवइत्येतच्च स्या द्वादाश्रयणं जीवपुद्गलयोरन्योन्यानुगतयोः शरीरस्य प्रत्यक्षतयाऽध्यक्षेणैवोपलंभाद्द्रष्ट व्यमिति ॥१३॥ जीवास्तित्वेच सिद्धे तन्निबंधनयोः सदसत्क्रिया द्वारायातयोर्धर्माधर्मयोर स्तित्वप्रतिपादनायाह । (णत्थिधम्मेअधम्मेवेत्यादि) धर्मः श्रुतचरित्राख्यात्मकोजीवस्या त्मपरिणामः कर्मक्षयकारणमात्मपरिणामएवमधर्मोपि मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययो गरूपः कर्मबंधकारणमात्मपरिणामएव।तावेवंभूतो धर्माऽधर्मौ कालस्वभावनियतीश्वरादि मतेन न विद्येते इत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत्। कालादयएवास्य सर्वस्य जगद्वैचित्र्यस्य धर्मा धर्माव्यतिरेकेणैकांततः कारणमित्येवमभिप्रायं कुर्याद्यतः तएवैककाः न कारणमपितु समु दिताएवेति। तथाचोक्तं । " नहि कालादी हिंतो, केवले हिंतो जायए किंचि ॥ इहमुग्गरं धणा इवि, तासवे समुदिया हेऊ " इत्यादि । यतोधर्माधर्ममंतरेण संसारवैचित्र्यं न घटामियर्त्यतोऽस्ति धर्मः सम्यग्दर्शनादिकोऽधर्मश्च मिथ्यात्वादिकइत्येवं संज्ञां नो निवे शयेदिति ॥ १४॥

णत्थि बंधेव मोरकेवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि बंधेव मोरकेवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ १५ ॥ णत्थि पुस्रेव पावेवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि पुस्रेव पावेवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ १६ ॥

अर्थ—हवे धर्माधर्मनें अस्तिनावें, बंध अनें मोक्षनो सन्नाव देखाडेछे. प्रकृति, स्थिति, अनुनाग, अनें प्रदेशरूप, एवो जे चार प्रकारनो बंध, ते पण नथी, तथा मोक्ष पण नथी, एवी संज्ञा पण न करवी, परंतु ए बंध पणछे अनें मोक्ष पणछे एवी संज्ञा करवी ॥ १५ ॥ हवे बंधना सन्नावें अवश्य पुण्य अनें पापनो पण सन्नावछे. ते कहेछे. पुण्य जे शुन्न प्रकृतिलक्षण ते पण नथी, तथा पाप जे अशुन्नप्रकृतिलक्षण ते पण नथी, एवी संज्ञा न करवी, परंतु पुण्य पणछे अनें पाप पणछे. एवी संज्ञा करवी ॥ १६ ॥

॥ दीपिका—(णत्थिबंधेइति) नास्ति बंधोमोक्षोवेति संज्ञां न कुर्यात् बंधमोक्षसन्नावमंगीकुर्यात् ॥ १५ ॥ (णत्थिपुस्रमिति) नास्ति पुण्यं सत्कर्म, नास्ति पापमसत्कर्म इति नांगीकार्यं तयोरस्तित्वं मंतव्यं ॥ १६ ॥

॥ टीका—सतोश्च धर्माधर्मयोर्बंधमोक्षसन्नावइत्येतद्दर्शयितुमाह । (णत्थिबंधेवमोरकेवाइत्यादि) बंधः प्रकृतिस्थित्यनुनावप्रदेशात्मकतया कर्मपुजलानां जीवेन स्वव्यापारतः स्वीकरणं । सचामूर्तस्यात्मनोगगनस्येव न विद्यतइत्येवं नो संज्ञां निवेशयेत् । तथा तदन्नावाच्च मोक्षस्याप्यन्नावइत्येवमपि संज्ञां नो निवेशयेत् । कथंतर्हि संज्ञां निवेशयेदित्युत्तरार्द्धेन दर्शयति । अस्ति बंधः कर्मपुजलैर्जीवस्येत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति । यत्तूच्यते मूर्तस्यामूर्तिमता संबंधोन युज्यतइति तदयुक्तं । आकाशस्य सर्वव्यापितया पुजलैः संबंधोडुर्निवार्यः । तदन्नावे तद्व्यापित्वमेव न स्यादन्यच्चास्य विज्ञानस्य हृत्पूरमदिरादिना विकारः समुपलन्यते । नचासौ संबंधमृतेऽतोयत्किंचिदेतत् । अपिच संसारिणामसुमतां सदा तैजसकार्मणशरीरसन्नावादात्यंतिकममूर्तत्वं न नवतीति । तथा तत्प्रतिपक्षनूतोमोक्षोप्यस्ति तन्नावे बंधस्याप्यन्नावः स्यादित्यतोऽशेषबंधनापगमस्वनावोमोक्षोस्तीत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति ॥ १५ ॥ बंधसन्नावे चावश्यं नावी पुण्यपापसन्नावइत्यतस्तन्नावं निषेधद्वारेणाह । (णत्थिपुस्रइत्यादि) नास्ति न विद्यते पुण्यं शुन्नकर्मप्रकृतिलक्षणं तथा पापं तद्विपर्ययलक्षणं नास्ति न विद्यते इत्येवं नो संज्ञां निवेशयेत् । तदन्नावप्रतिपत्तिनिबंधनं त्विदं । तत्र केषांचिन्नास्ति पुण्यपापमेव ह्युत्कर्षावस्थं सत्सुखडुःखनिबंधनं तथा परेषां पापं नास्ति पुण्यमेव ह्युपचीयमानं पापं कार्यं कुर्यादित्यन्येषां तून्नयमपि नास्ति । संसारवैचित्र्यं तु नियतिस्वनावादिकृतं तदेतदयुक्तं । यतः पुण्यपापशब्दौ संबंधिशब्दौ । संबंधिशब्दानामेकस्य

सत्तापरसत्तानांतरीयकतोनेतरस्य सत्तेति नाप्युनयानावः शक्यते वक्तुं निबंधनस्य जगद्वैचित्र्यस्यानावात् । नहि कारणमंतरेण क्वचित्कार्यस्योत्पत्तिर्दृष्टा । नियतिस्वनावादिवादस्तु नष्टोत्तराणां पादप्रसारिकायां पादप्रसारिका प्रायोपि च तद्वादेन्युपगम्यमाने सकलक्रियावैयर्थ्यं ततएव सकलकार्योत्पत्तिरित्यतोस्ति पुण्यं पापं चेत्येवं संज्ञां निवेशयेत् । पुण्यपापे चैवं रूपे । तद्यथा ॥ "पुजलकर्म शुनं य,त्तत्पुण्यमिति जिनशासने दृष्टम् ॥ यदशुनमथ तत्पाप,मिति नवति सर्वज्ञनिर्दिष्ट"मिति ॥ १६ ॥

णत्थि आसवे संवरेवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि आसवे संवरेवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ १७ ॥ णत्थि वेयणा णिज्जरावा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि वेयणा णिज्जरावा, एवं सन्नं निवेसए ॥ १८ ॥

अर्थ–हवे कारण विना कार्यनी उत्पत्ति नथी,माटें पुण्य अनें पाप ए बेनुं कारण आश्रव अनें संवरछे, तेथी हवे आश्रव अनें संवर देखाडेछे. प्राणातिपातादि रूप जे कर्म ग्रहण करवानां कारणछे ते आश्रव जाणवां. अनें जेणें करी आवता कर्मनें रोकी राखीयें तेनें संवर कहियें, माटें ए आश्रव अनें संवर बन्ने नथी, एवी संज्ञा करवी नहीं, परंतु आश्रव पणछे, अने संवर पणछे, एम कहेवुं ॥ १७ ॥ हवे आश्रव अनें संवरनें सद्भावें वेदना अनें निर्जरानो सद्भाव देखाडेछे. वेदना एटले कर्मनुं अनुनववुं, अनें निर्जरा एटले कर्म पुजलनुं साडवुं, ए बेहु नथी. एवी संज्ञा न करवी; परंतु वेदना पणछे अनें निर्जरा पणछे. एवी संज्ञा गीतार्थ साधु करे ॥ १८ ॥

॥ दीपिका–(णत्थिआसवेति) आश्रवसंवरसद्भावोंगीकार्यइति ॥ १७ ॥ (णत्थिवेयणेति) वेदना कर्मानुनवरूपा निर्जरा कर्मपुजलशाटरूपा एते द्वे अपि न स्तः-। यतः पल्योपमसागरोपममसातवेद्यं कर्म अंतर्मुहूर्तेनैव क्षयं याति । यदुक्तं । "जं अन्नाणी कम्मं, खवेइ बहुयाहि वासकोडीहिं ॥ तन्नाणी तिहि गुत्तो, खवेइ ऊसास मित्तेणमित्यादि । तथा क्षपकश्रेण्यां शीघ्रमेव कर्मणः क्षयात् यथाक्रमबद्धस्यानुनवानावे वेदनायाअनावस्तदनावेच निर्जरायाअप्यनावइत्येवं नांगीकुर्यात् । यतः कस्यचिदेव कर्मणएवमुक्तनीत्या क्षयः अन्यस्य तु प्रदेशानुनवेन नोगसद्भावादस्तिवेदना । यदुक्तं । "पुव्विंडच्चिन्नाणं डुप्पडिकंताणकम्माणं॥वेइत्ता मोरको नत्थि अवेइत्ताइत्यादि । वेदनासद्भावेच निर्जराप्यस्तीति स्वीकुर्यात्॥१८॥

॥ टीका–न कारणमंतरेण कार्यस्योत्पत्तिरतः पुण्यपापयोः प्रागुक्तयोः कारणनूतावा

श्रवसंवरौ तत्प्रतिषेधद्वारेण दर्शयितुकामआह। (णत्थिआसवेसंवरेवेत्यादि) आश्रवति प्रविशति कर्म येन सप्राणातिपातादिरूपआश्रवः कर्मोपादानकारणं तथा तन्निरोधः संवरः एतौ द्वावपि न स्तइत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत्तदनावप्रतिपत्त्या शंकाकारणंत्विदं कायवाङ्मनःकर्मयोगः स आश्रवइति यथेदमुक्तं तथेदमप्युक्तमेव । (उच्चालियंमिपाएइत्यादि) ततश्च कायादिव्यापारेण कर्मबंधो न नवतीति युक्तिरपि । किमयमाश्रवआत्मनोन्निन्नउताऽनिन्नः । यदि निन्नोनामासावाश्रवोघटादिवदन्नेदेपि नाश्रवत्वं सिद्धात्मनामपि आश्रवप्रसंगात्तदनावेच तन्निरोधलक्षणस्य संवरस्याप्यनावः सिद्धएवेत्येवमात्मकमध्यवसायं न कुर्यात् । यतोयत्तदनैकांतिकत्वं कायव्यापारस्योच्चालयंमि पाए इत्यादिनोक्तं तदस्माकमपि संमतमेव । यतोयमस्मान्निरप्युपयुक्तकर्मबंधोन्युपगम्यते निरुपयुक्तस्य कर्मबंधस्तथा नेदान्नेदोनयपक्षसमाश्रयणात्तदेकपक्षाश्रितदोषानावइत्यस्त्याश्रवसद्भावस्तन्निरोधश्च संवरइति । उक्तंच। "योगः शुद्धः पुण्या,श्रवस्तु पापस्य तद्विपर्यासः ॥ वाक्कायमनोगुप्ति,निराश्रवः संवरस्तूक्त" इत्यतोस्त्याश्रवस्तथा संवरश्चेत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति ॥ १७ ॥ आश्रवसंवरसद्भावे चावश्यं नावी वेदनानिर्जरासद्भावइत्यतस्तं प्रतिषेधनिषेधद्वारेणाह । (णत्थिवेयणेत्यादि) वेदना कर्मानुनवलक्षणा तथा निर्जरा कर्मपुजलशाटनलक्षणा । एते द्वे अपि न विद्येते इत्येवं नो संज्ञां निवेशयेत् । तदनावं प्रत्याशंकाकारणमिदं । तद्यथा । पल्योपमसागरोपमशतानुनवनीयं कर्मांतर्मुहूर्तेनैव क्षयमुपयातीत्यन्युपगमात् । तडुक्तं । "जं अन्नाणी कम्मं, खवेइ बहुयाइं वासकोडीहिं ॥ तन्नाणी तिहि गुत्तोखवेइ ऊसासमित्तेणं"इत्यादि । तथा क्षपकश्रेण्यां च जटित्येव कर्मणोनस्मीकरणाद्यथाक्रमबद्धस्य चानुनवनानावे वेदनायाअनावस्तदनावाच्च निर्जरायाअपीत्येवं नो संज्ञां निवेशयेत् । किमिति । यतः कस्यचिदेव कर्मणएवमनंतरोक्तया नीत्या क्षपणात्तपसा प्रदेशानुनवेन चापरस्य तूदयोदीरणान्यामनुनवनमित्यतोस्ति वेदना । यतआगमोप्येवंनूतएव । तद्यथा । "पुव्विंडच्चिन्नाणं, डुप्पडिकंताणकम्माणं ॥ वेइत्ता मोस्को णत्थि अवेइत्ताइत्यादिवेदना सिद्धौ च निर्जरापि सिद्धेवेत्यतोस्ति वेदना निर्जरावेत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति ॥ १८ ॥

णत्थि किरिया अकिरियावा, णेवं सन्नं निवेसए॥ अत्थि किरिया अकिरियावा, एवं सन्नं निवेसए॥ १९ ॥ णत्थि कोहेवमाणेवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि कोहेव माणेवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ २० ॥

अर्थ—हवे वेदना, अनें निर्जरा, ए बन्ने क्रिया अनें अक्रियाना आयतछे. माटें तेनो सद्भाव देखाडेछे. क्रिया एटले करवुं,अनें जे ते थकी विपरीत ते अक्रिया,ए बन्ने नथी.एवी

संज्ञा न करवी, परंतु क्रिया पणछे, अनें अक्रिया पणछे. एवी संज्ञा करवी ॥१९॥ हवे क्रियानें सद्भावें क्रोधादिकनो सद्भाव देखाडेछे. जे पोतानें अनें परनें अप्रीतिनुं कारण ते क्रोध जाणवो, तथा जे गर्वलक्षण ते मान जाणवुं, ए बेहु नथी, एवी संज्ञा पण न करवी, परंतु क्रोध अनें मान ए बेहुछे एवी संज्ञा करवी ॥ २० ॥

॥ दीपिका–(णत्थिकिरियेत्यादि) सांख्यादीनां सर्वव्यापकत्वादात्मनोऽव्योम्नइव परिस्पंदात्मिका क्रिया न विद्यते बौद्धानांतु क्षणिकत्वात्सर्वेनावानां प्रतिक्षणमुत्पत्तिरेव नान्या काचित्क्रिया तथा सर्वपदार्थानां प्रतिक्षणमवस्थांतरगमनात्सक्रियत्वमेव अतोऽक्रिया न विद्यते एवं संज्ञां न कुर्यात् किंतु ? अस्ति क्रियाऽक्रियाचेति संज्ञां कुर्यात् । यतः क्रियाजावे व्योम्नइव बंधे मोक्षाजावः प्रसज्येत । बौद्धानामपि प्रतिक्षणोत्पत्तिक्रियैव ततोऽस्ति क्रिया तद्भावेच तद्विपक्षनूताऽक्रियाप्यस्तीति ॥१९॥ (णत्थिकोहेवेति) नास्ति क्रोधः सद्भिमानांशएव क्षपकश्रेण्यांच नेदेन क्षपणानंगीकारात् । तथा क्रोधः किं ? आत्मनोधर्मः किंवा कर्मणउतान्यस्य । तत्रात्मधर्मत्वे सिद्धानामपि क्रोधोदयप्रसंगः । अथ कर्मणस्ततस्तदन्यकषायोदयेपि तदुदयसंगात् अन्यधर्मत्वेऽकिंचित्करत्वमतोनास्ति क्रोधः । एवं मानाजावोऽपि वाच्यइत्येवं नांगीकुर्यात् । यतः क्रोधाध्मातः पुरुषः प्रत्यक्षेणैवोपलन्यते नायं मानांशोनिमित्तनेदात् । तथा जीवकर्मणोर्द्वयोरप्ययं धर्मस्ततः पूर्वोक्तः प्रत्येकदोषासंजवस्ततः क्रोधोमानश्चास्तीति संज्ञां निवेशयेत् ॥ २० ॥

॥ टीका–वेदनानिर्जरेच क्रियाक्रियत्वे ततस्तद्भावप्रतिषेधनिषेधपूर्वकं दर्शयितुमाह । (णत्थिकिरियाअकिरियावाइत्यादि) क्रिया परिस्पंदलक्षणा तद्विपर्यस्तात्वक्रिया । ते द्वे अपि न स्तोन विद्येते । तथाहि । सांख्यानां सर्वव्यापित्वादात्मनआकाशस्येव परिनिस्पंदिका क्रिया न विद्यते । शाक्यानांतु क्षणिकत्वात्सर्वपदार्थानां प्रतिसमयमन्यथा वान्यथोत्पत्तेः । पदार्थसत्तैव न तद्व्यतिरिक्ता काचित्क्रियास्ति ॥ तथा चोक्तं । नूतिर्येषां क्रिया सैव कारकस्यैव चोच्यतइत्यादि । तथा सर्वपदार्थानां प्रतिक्षणमवस्थांतरगमनात्सक्रियात्वमतोन क्रिया विद्यते इत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत् किंतर्ह्यस्ति क्रिया अक्रिया वेत्येवं संज्ञां निवेशयेत् । तथाहि ।शरीरात्मनोर्देशादेशांतरावाप्तिनिमित्ता परिस्पंदात्मिका क्रिया प्रत्यक्षेणैवोपलन्यते ।सर्वथा निष्क्रियत्वे चात्मनोऽन्युपगम्यमाने गगनस्येव बंधमोक्षाद्यनावः सच दृष्टेष्टबाधितः । तथा शाक्यानामपि प्रत्यक्षेणोत्पत्तिरेव क्रियेत्यतः कथं क्रियायाअनावोपि .चैकांतेन क्रियाजावे संसारमोक्षाजावः स्यादित्यतोऽस्ति क्रिया तद्विपक्षनूताचाक्रियेत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति ॥ १९ ॥ तदेवं सक्रियात्मनि सति क्रोधादिसद्भावइ

त्येतद्दर्शयितुमाह । (णत्थिकोहेवमाणेवेत्यादि) स्वपरात्मनोरप्रीतिलक्षणः क्रोधः ॥ सचानंतानुबंध्यप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनभेदेन चतुर्धाऽऽगमे पठ्यते । तथैतावद्भेदएव मानोगर्वः । एतौ द्वावपि न स्तोन विद्येते । तथाहि । क्रोधः केषांचिन्मतेन मानांशएवाभिमानग्रहगृहीतस्य तत्कृतावत्यंतक्रोधोदयदर्शनात् क्षपकश्रेण्यां च भेदेन क्षपणानभ्युपगमात्। तथा किमयमात्मधर्मआहोस्वित्कर्मणश्वतान्यस्येति । तत्रात्मधर्मत्वे सिद्धानामपि क्रोधोदयप्रसंगोऽथ कर्मणस्ततस्तदन्यकषायोदयेपि तदुदयप्रसंगान्मूर्तत्वाच्च कर्मणोहि घटस्येव तदाकारोपलब्धिः स्यादन्यधर्मत्वे त्वकिंचित्करत्वमतोनास्ति क्रोधइत्येवं मानाभावोपि वाच्य इत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत् । यतः कषायः कर्मोदयवर्ती दृष्टेष्ठ कृतभ्रुकुटीभंगोरक्तवदनोगलत्स्वेदबिंदुसमाकुलः क्रोधाध्मातः समुपलभ्यते न चासौ मानांशस्तत्कार्याकरणात्तथा परनिमित्तोद्भावितत्वाच्चेति तथा जीवधर्मकर्मणोरुभयोरप्ययं धर्मस्तत्धर्मत्वेनच प्रत्येकविकल्पदोषानुपपत्तिरनभ्युपगमात्संसार्यात्मनां कर्मणा सार्द्धं पृथग्भवनाभावात्तदुभयस्यच न नरसिंहवद्वस्त्वंतरत्वादित्यतोऽस्ति क्रोधोमानश्चेत्येवं संज्ञां निवेशयेत् ॥ २० ॥

णत्थि माया व लोभेवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि माया व लोभेवा, एवं सन्नं निवेसए॥ २१ ॥ णत्थि पेज्जेव दोसेवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि पेज्जेव दोसेवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ २२ ॥

अर्थ—हवे माया अनें लोभनो सद्भाव देखाडेछे, जे परवंचनरूप ते माया, अनें जे सन्निधि संचयरूप ते लोभ, ए बेहु नथी, एवी संज्ञा न करवी, परंतु माया पणछे, अनें लोभ पणछे एवी संज्ञा करवी ॥ २१ ॥ हवे क्रोधादिक जेछे, तेनो संक्षेप थकी सद्भाव कहेछे. प्रेम एटले प्रीतिलक्षण पुत्र, कलत्र, धन, धान्यादिक, विषेरागता ते राग, तथा अप्रीतिलक्षण ते द्वेष, ए बेहु नथी. एवी संज्ञा न करवी, परंतु राग पणछे, अनें द्वेष पणछे, एवी संज्ञा करवी ॥ २२ ॥

॥ दीपिका (णत्थिमायेवेति) मायालोभौ न स्तः इति सञ्ज्ञां न निवेशयेत् मायालोभयोर्निबंधः पूर्ववत् । प्रत्यक्षदृश्यत्वान्मायालोभौ स्तइति सञ्ज्ञां निवेशयेत् ॥ २१ ॥ (णत्थिपेज्जेवेति) प्रीतिः प्रेम पुत्रकलत्रधनादिषु रागस्तद्विपरीतोद्वेषस्तौ न स्तः । यतोमाया लोभावेव रागः क्रोधमानावेव द्वेषस्ताभ्यां रागद्वेषौ न स्तः अस्ति प्रेमद्वेषोप्यस्तीति संज्ञां कुर्यात यस्माद्रागोवयवी मायालोभौ अवयवो तथा द्वेषोऽवयवी क्रोधमानौ अवयवौ अवयवीच अवयवेभ्यः कथंचिद्भिन्नोऽभिन्नश्च तस्मान्मायालोभश्च प्रेमद्वेषश्च कथंचिदस्ति

ति स्वीकार्यं ॥ २१ ॥ (णत्थिरागदोसाविति) रागद्वेषौ न स्तइति न स्वीकार्यं तौ वि द्येते इति मतिः कार्या युक्तिः । पूर्वोक्ता ॥ २२ ॥

॥ टीका सांप्रतं मायालोभयोरस्तित्वं दर्शयितुमाह (णत्थिमायावलोभेत्यादि) अत्रा पि प्राग्वन्मायालोभयोरभाववादीनां निराकृत्यास्तित्वं प्रतिपादनीयमिति ॥ २१॥ सांप्रतं तेषांच क्रोधादीनां समासेनास्तित्वं प्रतिपादयन्नाह । (णत्थिपेज्जेवेत्यादि) प्रीतिलक्षणं प्रेम पुत्रकलत्रधनधान्याद्यात्मीयेषु रागस्तद्विपरीतस्त्वात्मीयोपघातकारिणि द्वेषस्तावेतौ द्वावपि न विद्येते । तथाहि । केषांचिदभिप्रायोयद्युत मायालोभावेवावयवौ विद्येते न तत्समुदायरूपोऽवयव्यस्ति । तथा क्रोधमानावेव स्तः न तत्समुदायरूपोऽवयवी द्वेष इति । तथा ह्यवयवेभ्योयद्यभिन्नोवयवी तर्हि तद्भेदात्तएव । नासावथ भिन्नः पृथ गुपलंभः स्याद्घटपटवदितित्येवमसिद्धिकल्पमूढतया नो संज्ञां निवेशयेत् । यतोऽवयवा वयविनोः कथंचिद्भेदइत्येवं भेदाभेदाख्यतृतीयपक्षसमाश्रयणात्प्रत्येकपक्षाश्रितदोषानु पपत्तिरित्येवं चास्ति प्रीतिलक्षणं प्रेमाप्रीतिलक्षणश्च द्वेषइत्येवं संज्ञां निवेशयेत् ॥२२॥

णत्थि चाउरंते संसारे, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि चाउरंते संसारे, एवं सन्नं निवेसए ॥ २३ ॥ णत्थि देवोव देवीवा, णे वं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि देवोव देवीवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ २४ ॥

अर्थ—हवे पूर्वें कह्या जे क्रोधादिक चार कषाय ते कषायनें सद्भावें, संसारनो सद्भा व देखाडेछे. नरक, तिर्यंच, मनुष्य अनें देवता, ए चतुर्गतिलक्षण संसार नथी. एवी संज्ञा न करे, परंतु ए चतुर्गतिलक्षण संसारछे एवी संज्ञा करे ॥ २३ ॥ हवे वली पण एज संसारनो सद्भाव देखाडेछे. भुवनपति, व्यंतर, ज्योतिषी, अनें वैमानिक, ए चार जा तना देव, तथा एनी स्त्रियो ते देवित ए बेहु नथी. एवी संज्ञा न करे, परंतु ए देव प णछे अनें देवीत पणछे; एवी संज्ञा करे. एवी संभावनायें मनुष्य, नारकी, अनें तिर्यंच नो पण सद्भाव जाणवो ॥ २४ ॥

॥ दीपिका (णत्थिचाउरंतइति) नास्ति चातुरंतः चत्वारोऽतागतिभेदायत्र ससंसार. श्चतुरंतश्चतुर्विधः संसारोनास्ति देवनारकयोरनुपलभ्यमानत्वात् इति संज्ञां न निवेशयेत् अस्ति चतुर्विधः संसारः यतः संति सुरनारकाःप्रकृष्टपुण्यपापफलभोगस्यान्यथानुपपत्तेः एवं संज्ञां निवेशयेत् ॥ २४ ॥ (णत्थिदेवेति) नास्ति देवोदेवी वा इति मतिं न कुर्यात् अस्ति देवोवा देवी इति संज्ञां कुर्यात् अत्र प्रकृष्टपुण्यफलभोगएव हेतुः ॥ २५ ॥

॥ टीका सांप्रतं कषायसद्भावे सिद्धे सति तत्कार्यभूतोऽवश्यं जावी संसारसद्भाव इत्येतत्प्रतिषेधनिषेध द्वारेण प्रतिपादयितुमाह । (णत्थिचाउरंते इत्यादि) चत्वारोंऽतागति नेदानरकतिर्यङ्नरामरलक्षणायस्य संसारस्यासौ चतुरंतः संसारएव कांतारोजयैकहेतुं त्वात् । सच चतुर्विधोपि न विद्यते अपितु सर्वेषां संसृतिरूपत्वात्कर्मबंधात्मकतया च डुःखैकहेतुत्वादथवा नारकदेवयोरनुपलन्यमानत्वात्तिर्यङ्मनुष्ययोरेव सुखडुःखोत्क र्षतया तद्व्यवस्थानाद्विविधः संसारः पर्यायनयाश्रयणात्त्वनेकविधोऽतश्चातुर्विध्यं न क थंचिद्घटतइत्येवं संज्ञां नो निवेशयेदपितु अस्ति चतुरंतः संसारइत्येवं संज्ञां निवेशयेत् । यत्तूक्तमेकविधः संसारस्तन्नोपपद्यते यतोऽध्यक्षेण तिर्यङ्मनुष्ययोर्नेदः समुपलन्यते न चा सावेकविधत्वे संसारस्य घटते । तथा संजवानुमानेन नारकदेवानामप्यस्तित्वान्युपगमा द्वैविध्यमपि न विद्यते । संजवानुमानंतु पुण्यपापयोः प्रकृष्टफलजुजस्तन्मध्यफलजु जां तिर्यङ्मनुष्याणां दर्शनादतः संजाव्यते प्रकृष्टफलजुजोर्ज्योतिषां च प्रत्यक्षेणैव दर्शनाद स्य तद्विमानानामुपलंजएवमपि तदधिष्ठातृभिः कैश्चिद्भवितव्यमित्यनुमानेन गम्यते । ग्रहगृ हीतवरप्रदानादिना च तदस्तित्वानुमानमिति तदस्तित्वेतु प्रकृष्टपुण्यफलजुजइव प्रकृष्टपा पफलजुग्भिरपि जाव्यमित्यतोऽस्ति चातुर्विध्यं । संसारस्य पर्यायनयाश्रयणेतु यदनेकवि धत्वमुच्यते तदयुक्तं । यतः सप्तपृथिव्याश्रिताअपि नारकाः समानजातीयाश्रयणादेकप्र काराएव तथा तिर्यंचोपि पृथिव्यादयः स्थावरास्तथा द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियाश्च द्विषष्टियोनिल क्षप्रमाणाः सर्वेप्येकविधाएव । तथा मनुष्याअपि कर्मभूमिजाऽकर्मभूमिजांतरद्वीपक संमूर्छनजात्मकभेदमनादृत्यैकविधत्वेनैवाश्रितास्तथा देवाअपि जवनपतिव्यंतरज्योतिष्क वैमानिकभेदेन भिन्नाएकविधत्वेनैव गृहीतास्तदेवं सामान्यविशेषाश्रयणाच्चातुर्विध्यं संसा रस्य व्यवस्थितं नैकविधत्वं संसारवैचित्र्यदर्शनान्नाप्यनेकविधत्वं सर्वेषां नारकादीनां स्व जात्यनतिक्रमादिति ॥ २३ ॥ २४ ॥

णत्थि सिद्धी असिद्धीवा, णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि सिद्धी अ
सिद्धीवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ २५ ॥ णत्थि सिद्धी नियं गणं, णे
वं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि सिद्धी नियं गणं, एवं सन्नं निवेसए ॥ २६ ॥

अर्थ—हवे संसारनें सद्भावें सिद्धिनो सद्भाव देखाडेछे. समस्तकर्मक्षयनुं स्थानक सिद्धि जाणवी. अने तेथकी विपरीत ते असिद्धि जाणवी, ए बेहु नथी, एवी संज्ञा न करे, परंतु सिद्धि पणछे, अने असिद्धि पणछे, एवी संज्ञा पोताना चित्तनें विषे स्थापन करे ॥२५॥हवे सिद्धिना स्थानकनो सद्भाव कहेछे. समस्तकर्मक्षयलक्षण जे सिद्धि तेनुं, (नियं

गाणं के०) पोतानुं स्थानक "इसीवप्भार" एवे नामेंछे ते नथी, एवी संज्ञा न करे परंतु सिद्धि एवुं निज पोतानुं स्थानकछे, एवी संज्ञा चित्तने विषे स्थापन करे ॥ २६ ॥

॥ दीपिका-(णत्थिसिद्धीइति) नास्ति सिद्धिः कर्मक्षयरूपा असिद्धिः संसाररूपा सापि नास्तीति संज्ञां न निवेशयेत् । संसारचातुर्विध्यं पूर्वमेवोक्तं । कियतः कर्मक्षयस्यच पीडोपशमादिना प्रत्यक्षेण दर्शनात्कस्यचिदात्यंतिककर्मक्षयोपि स्यात् तस्मादस्ति सिद्धिरसिद्धिरप्यस्तीति संज्ञां कुर्यात् ॥ २६ ॥ (णत्थिसेहाइति) सिद्धेः सर्वकर्मक्षयरूपाया निजं स्थानं सिद्धिशिलोपरियोजनचतुर्थक्रोशोपरितनषड्भागः स नास्तीति संज्ञां न कुर्यात् अस्ति सिद्धिर्निजं स्थानमिति संज्ञां च कुर्यात् आगमप्रमाणसिद्धत्वात् ॥ २७ ॥

॥ टीका-सर्वभावानां सप्रतिपक्षत्वात्संसारसद्भावे सति अवश्यं तद्विमुक्तिलक्षणया सिद्ध्यापि भवितव्यमित्यतोऽधुना सप्रतिपक्षां सिद्धिं दर्शयितुमाह । (णत्थिसिद्धीत्यादि) सिद्धिरशेषकर्मच्युतिलक्षणा तद्विपर्यस्ताचासिद्धिर्नास्तीत्येवं नो संज्ञां निवेशयेदपि त्वसिद्धेः संसारविलक्षणायाश्चातुर्विध्येनानंतरमेव प्रसाधितायाअविगाने नास्तित्वं प्रसिद्धं तद्विपर्ययेण सिद्धेरप्यस्तित्वमनिवारितमित्यतोस्ति सिद्धिरसिद्धिर्वेत्येवं संज्ञां निवेशयेदिति स्थितं । इदमुक्तं भवति । सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकस्य मोक्षमार्गस्य सदावाक्कर्मक्षयस्य च पीडोपशमादिनाऽध्यक्षेण दर्शनादतः कस्यचिदात्यंतिककर्महानिसिद्धेरस्ति सिद्धिरिति । तथा चोक्तं । "दोषावरणयोर्हानिर्निःशेषास्त्यतिशायिनी ॥ क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्योबहिरंतर्मलक्षय"इत्यादि। सर्वज्ञसद्भावोपि संभवानुमानाद्द्रष्टव्यस्तथात्यभ्यस्यमानायाः प्रज्ञायाव्याकरणादिना शास्त्रसंस्कारेणोत्तरोत्तरवृद्ध्या प्रज्ञातिशयोद्दृष्टव्यः। तत्र कस्यचिदत्यंतातिशयप्राप्तेः सर्वज्ञत्वं स्यादिति संभवानुमानेन चैतदाशंकनीयं । तद्यथा । ताप्यमानमुदकमत्यंतोष्णतामियान्नाग्निसाद्भवेत् तथा दशहस्तांतरं व्योम्नि योनामोत्प्लुत्य गछति। न योजनमसौ गंतुं शक्तोभ्यासशतैरपीति दृष्टांतदार्ष्टांतिकयोरसाम्यात् । तथाहि । ताप्यमानं जलं प्रतिक्षणं क्षयं गछेत्प्रज्ञा तु विवर्द्धते । यदिवा प्लोषोपलब्धेरव्याहतमग्नित्वं तथा प्लवनविषयेपि पूर्वमर्यादायाअनतिक्रमाद्योजनोत्प्लवनाभावस्तत्परित्यागे चोत्तरोत्तरं वृद्ध्या प्रज्ञाप्रकर्षगमनवद्योजनशतमपि गछेदित्यतोदृष्टांतदार्ष्टांतिकयोरसाम्यात्तदेवं नाशंकनीयमिति स्थितं । प्रज्ञावृद्धेश्च बाधकप्रमाणाभावादस्ति सर्वज्ञत्वप्राप्तिरिति । यदिवांजनभृतसमुद्गकदृष्टांतेन जीवाकुलत्वाज्जगतोहिंसायाऽनिवार्यत्वात्सिद्ध्यभावः । तथा चोक्तं । "जले जीवाः स्थले जीवाआकाशे जीवमालिनि ॥ जीवमालाकुले लोके कथं भिक्षुरहिंसक"इत्यादि । तदेवं सर्वस्यैव हिंसकत्वात्सिद्ध्यभावइति । तदेतदयुक्तं । तथाहि । सदोषयुक्तस्य पिहि

ताश्रव द्वारस्य पंचसमितिसमितस्य त्रिगुप्तिगुप्तस्य सर्वथा निरवद्यानुष्ठायिनो द्विचत्वारिंश द्दोषरहितनिक्षान्नुजईर्यासमितस्य कदाचिद्द्रव्यतः प्राणिव्यपरोपणेपि तत्कृतबंधानावः सर्वथा तस्यानवद्यत्वात्। तथाचोक्तं। उच्चालियंमिपाए, इत्यपि प्रतीतं तदेवं कर्मबंधानावात्सिद्धेः सन्नावोव्याहतः सामग्र्यनावादसिद्धिसन्नावोपीति ॥ २५॥ सांप्रतं सिद्धानां स्थाननिरूपणायाह। (णत्थिसिद्धीत्यादि) सिद्धेरशेषकर्मच्युतिलक्षणायानिजं स्थानमीषत्प्राग्नाराख्यं व्यवहारतोनिश्चयतस्तु तडुपरि योजनक्रोशषड्नागस्तत्प्रतिपादकप्रमाणानावात्स नास्तीत्येवं संज्ञां नो निवेशयेत्। यतोबाधकप्रमाणानावात्साधकस्य चागमस्य सन्नावात्तत्सत्ता डुर्निवारेति। अपिचापगताशेषकल्मषाणां सिद्धानां केनचिद्विशिष्टेन स्थानेन नाव्यं तच्चतुर्दशरज्ज्वात्मकस्य लोकस्याग्रनूतं डृष्टव्यं। नच शक्यते वक्तुमाकाशवत्सर्वव्यापिनः सिद्धाइति यतोलोकालोकव्याप्याकाशं। न चालोके परडव्यस्याकाशमात्ररूपत्वात् लोकमात्रव्यापित्वमपि नास्ति विकल्पानुपपत्तेः। तथाहि। सिद्धावस्थायां तेषां व्यापित्वमन्युपगतमुतप्रागपि न तावत्सिद्धावस्थायां तद्व्यापित्वनवने निमित्तानावान्नापि प्रागवस्थायां तन्नावे सर्वसंसारिणां प्रतिनियतसुखडुःखानुनवोन स्यान्नच शरीराद्बहिरवस्थितमवस्थानमस्ति। तत्सत्तानिबंधनप्रमाणस्यानावादतः सर्वव्यापित्वं विचार्यमाणं न कथंचिद्घटते तदनावे च लोकाग्रमेव सिद्धानां स्थानं तजतिश्च कर्मविमुक्तस्योर्ध्वं गतिरिति। तथाचोक्तं। "लाउ एरंडफले,अग्गीधूमे उसूधणुविमुक्के ॥ गइ पुवपउगेणं,एवं सिद्धाणविग ईउ" इत्यादि। तदेवमस्ति सिद्धिस्तस्याश्च निजं स्थानमित्येवं संज्ञां निवेशयेदिति॥ २६॥

णत्थि साहू असाहूवा,णेवं सन्नं निवेसए ॥ अत्थि साहू असाहू
वा, एवं सन्नं निवेसए ॥ २७ ॥ णत्थि कल्लाण पावेवा, णेवं सन्नं
निवेसए ॥ अत्थि कल्लाण पावेवा, एवं सन्नं निवेसए ॥ २८ ॥

अर्थ—हवे सिद्धिना साधनारा साधुओछे. तेनो सन्नाव कहेछे. ज्ञान, दर्शन, अनें चारित्ररूप रत्नत्रयनें साधे,ते साधु जाणवा, ते पण नथी, तथा ए थकी विपरीत ते असाधु जाणवा, ते पण नथी. एवी संज्ञा न करवी, परंतु साधु पणछे, अनें असाधु पणछे, एवी संज्ञा करवी ॥ २७ ॥ हवे सामान्य प्रकारें कल्याण अनें पापनो सन्नाव देखाडेछे. मनोवांछित अर्थनी प्राप्तिनुं करनारुं एवुं कल्याण, ते पण नथी. तथा ते थकी विपरीत जे पाप, ते पण नथी. एवी संज्ञा न करे, किंतु? कल्याण पणछे, अनें पाप पणछे. एवी संज्ञा करे ॥ २८॥

॥ दीपिका—(णत्थिसाहू इति) नास्ति साधुर्मुनिः संपूर्णचारित्रगुणानावात् तदनावे त

द्विपरीतोऽसाधुरपि नास्ति एकस्याप्यनावे द्वितीयस्याप्यनावः द्वयोः परस्परापेक्षत्वात् । एवं संज्ञां न निवेशयेत् । किंतु ? अस्ति साधुः संपूर्णगुणसद्भावात् । तथाहि । सम्यग्दृष्टेरर क्तद्विष्टस्य सत्संयमवतः श्रुतानुसारेणाऽऽहारादिकं शुद्धबुद्ध्या गृह्णतः क्वचिदज्ञानादशुद्ध ग्रहणसंनवेप्युपयुक्तस्य संपूर्णमेव रत्नत्रयानुष्ठानमिति । तदेवं मुक्तिकृते प्रवर्त्तमानस्य साधुत्वं इतरस्यासाधुत्वं मंतव्यं ॥ २८ ॥ (णत्थिकल्लाणमिति) वांछितार्थप्राप्तिः कल्या णं । कल्याणवांश्च कश्चिन्नास्ति सर्वपदार्थानामसारत्वाद्विनश्वरत्वाच्च । पापं पापवान् वा कश्चिन्नास्ति अद्वैतवादिमतेनाऽऽत्मानं विना सर्वस्यानावात् एवं संज्ञां न कुर्यात् एको तेन सर्वनावानामसारत्वविनश्वरत्वानावादस्ति कल्याणं तद्वांश्च अद्वैतमतस्य मिथ्या त्वात् पापं पापवांश्च विद्यते । अद्वैते हि सुखी दुःखी सुरूपः कुरूपो धनी दरिद्र इत्यादि विश्ववैचित्र्यं न स्यादिति ॥ २९ ॥

॥ टीका—सांप्रतं सिद्धेः साधकानां साधूनां तत्प्रतिपक्षनूतानामसाधूनां चास्तित्वं प्र तिपिपादयिषुः पूर्वपक्षमाह । (णत्थिसाहूअसाहूवाइत्यादि) नास्ति न विद्यते ज्ञानदर्श नचारित्रक्रियोपेतोमोक्षमार्गेव्यवस्थितः साधुः संपूर्णस्य रत्नत्रयानुष्ठानस्यानावात्तदना वाच्च तत्प्रतिपक्षनूतस्यासाधोरप्यनावः परस्परापेक्षित्वादेतद्व्यवस्थानस्यैकतरानावे द्वि तीयस्याप्यनावइत्येवं संज्ञां नो निवेशयेदपित्वस्ति साधुः सिद्धेः प्राक्साधितत्वात् । सि द्धिसत्ता च न साधुमंतरेण अतः साधुसिद्धिस्तत्प्रतिपक्षनूतस्य वाऽसाधोरिति । यश्च सं पूर्णरत्नत्रयानुष्ठानानावः प्रागाशंकितः स सिद्धांतानिप्रायमबुध्वैव । तथाहि । सम्यग्दृष्टे रुपयुक्तस्यारक्तद्विष्टस्य सत्संयमवतः श्रुतानुसारेणाऽऽहारादिकं शुद्धबुद्ध्या गृह्णतः क्व चिदज्ञानादनेषणीयग्रहणसंनवेपि सततोपयुक्ततया संपूर्णमेव रत्नत्रयानुष्ठानमिति । य श्च नक्ष्यमिदं चानक्ष्यं गम्यमिदं वाऽगम्यं प्रासुकमेषणीयमिदमिदंच विपरीतमित्येवं रा गद्वेषसंनवेन समनावरूपस्य सामायिकस्यानावः कैश्चिच्चोद्यते तत्तेषां चोदनमज्ञानविजृं नणात् । तथाहि । न तेषां सामायिकवतां साधूनां रागद्वेषतया नक्ष्यानक्ष्यादिविवेको ऽपितु प्रधानमोक्षांगस्य सच्चारित्रस्य साधनार्थमपि चोपकारापकारयोः समनावतया सा मायिकं न पुनर्नक्ष्यानक्ष्ययोः समनाववृत्त्येति ॥ २८ ॥ तदेवं मुक्तिमार्गप्रवृत्तस्य सा धुत्वमितरस्य चासाधुत्वं प्रदर्श्याधुना च सामान्येन कल्याणपापवतोः सद्भावं प्रतिषेधनि षेधद्वारेणाह । (णत्थिकल्लाणपावेवाइत्यादि) यथेष्टार्थफलसंप्राप्तिः कल्याणं तन्न विद्य ते सर्वाऽशुचितया निरात्मकत्वात् सर्वपदार्थानां बौद्धानिप्रायेण तथा तदनावे कल्याणवां श्च न कश्चिद्विद्यते तथात्मा नूतवाद्यनिप्रायेण पुरुषएवेदं सर्वमितिकृत्वा पापं पापवा न्वा न कश्चिद्विद्यते तदेवमुनयोरप्यनावः । तथा चोक्तं । “विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि

हस्तिनि ॥ शुनि चैव श्वपाके च पंमिताः समदर्शिन”इत्येवमेव कल्याणपापकानावरू पां संज्ञां नो निवेशयेदपि त्वस्ति कल्याणं कल्याणवांश्च विद्यते तद्विपर्यस्तं पापं तद्वांश्च विद्यते इत्येवं संज्ञां निवेशयेत् । तथाहि । नैकांतेन कल्याणनावोयोबौद्धैरनिहितः सर्वपदार्थानामशुचित्वासंनवात्सर्वाऽशुचित्वेच बुद्धस्याप्यशुचित्वप्राप्तेर्नापि निरात्मनः स्वद्रव्यक्षेत्रकालनावापेक्षया सर्वपदार्थानां विद्यमानत्वात्परद्रव्यादिनिस्तु न विद्यंते सदसदात्मकत्वा द्वस्तुनः तडुक्तं स्वपरसत्ताव्युदासोपादानोत्पाद्यं हि वस्तुनोवस्तुत्वमिति । तथात्मा द्वैतनावानावात्पापानावोपि नास्त्यद्वैतनावे हि सुखी डुःखी सरोगोनीरोगोसुरूपः कुरूपोडुर्नगः सुनगोऽर्थवान् दरिद्रस्तथायमंतिकोऽयं तु दवीयान् इत्येवमादिकोजगद्वैचित्र्यनावोऽध्यक्षसिद्धोपि न स्यात् ।यच्च समदर्शित्वमुच्यते ब्राह्मणचांमालादिषु तदपि समानपीडोत्पादनतो डष्टव्यं । न पुनः कर्मोपादितवैचित्र्यनावोपि तेषां ब्राह्मणचांमालादीनामस्तीति।तदेवं कथंचित्कल्याणमस्ति तद्विपर्यस्तं तु पापकमिति । नचैकांतेन कल्याणमेव यतः केवलिनां प्रक्षीणघनघातिकर्मचतुष्टयानां सातासातोदयसन्नावात्तथा नारकाणामपि पंचेंद्रियत्वविशिष्टज्ञानादिसन्नावान्नैकांतेन तेऽपि पापवंतइति तस्मात्कथंचित्कल्याणं कथंचित्पापमिति स्थितं ॥ २७ ॥

कल्लाणे पावए वावि, ववहारो ण विज्जइ॥जं वेरं तं न जाणंति, समणा वालपंमिया ॥२९॥ असेसं अक्खयं वावि, सवडुक्खेति वा पुणो ॥ वश्का पाणा न वश्कंति, इति वायं न नीसरे ॥ ३० ॥ दीसंति समियाचारा, निक्खुणा साहुजीविणो ॥ एए मिछोवजीवंति, इति दिठिं न धारए ॥ ३१ ॥

अर्थ—हवे अनेकांत मार्ग देखाडीनें, एकांत मार्गनें, दूषवेछे. ए पुरुष एकांतें कल्याणवंतज छे, अथवा ए पुरुष एकांतें पापवंतज छे, एवो व्यवहार नथी, कारणके, आ जगत् माहें एकांत कांहीज नथी. ते माटें जे पुरुष पुण्यवंत देखातो होय,परंतु ते अंत्यावस्थामां परिणामविशेषें डुर्गतियें जाय. अथवा जे पापी पुरुष देखातो होय, ते परिणामविशेषें सजतिगामी थाय. ए कारण माटें एकांत न बोले (जेवेरंतंनजाणंति के०) तथा जे वैर, ते कर्मनुं कारणछे एम न जाणे, ते कोण न जाणे ? तोके श्रमण, बाल, एटले मूर्ख, अनें पंमित एटले पंमितपणाना अनिमानी होय ते न जाणे. ते शाथकी न जाणे ? तोके जे कारणमाटें ते बाल, मूर्ख, परमार्थनूत, अहिंसालक्षण जे धर्म, तेनो तेनें आश्रय नथी ते कारणें ते निरतो वैरनुं कारण जाणे नहीं. इत्यर्थः ॥ २९ ॥ हवे

अन्य वचन आश्रि संयम कहेछे. (असेसंअरकयंवावि के०) आ जगत् मांहे समस्त वस्तु जे घटपटादिकछे ते एकांतें नित्य,शाश्वतछे. एवुं वचन न बोले, (सवडुरकेतिवापुणो के०) तथा वली सर्वे जगत् दुःखात्मकज छे, एवुं वचन पण न बोले,जे कारण माटें आ जगत् मांहे एकेक जीवनें तो महा सुखछे, एम बोलायछे यतः " तणसंथारनिसन्नो, विमुणि वरो नट्ठरागमयमोहो ॥ जं पावइ मुत्तिसुहं, कत्तोतं चक्कवट्टिवि" ॥ १ ॥ इति वचनात् । माटें सर्व जगत् दुःखीजछे, एवुं वचन पण न बोले, (वज्झापाणाअवज्झंति के०) तथा ए चोर छे, ए परदारानो सेवनारछे, माटें ए वध करवा योग्य छे एवुं वचन न बोले, अथवा ए अमुक पुरुष अवध्य एटले वध करवा योग्य नथी (इतिवायंननीसरे के०) एवुं वचन पण न बोले, कारणके, एम बोलतां तेना कर्मनी अनुमोदना लागे. ए रीतें सिंह, व्याघ्र, मार्जारादिक हिंसक जीव देखीनें, चारित्रिउ मध्य स्थ पणुं अवलंबन करे. इत्यर्थः ॥ ३० ॥ हवे वली बीजो, वचननो प्रकार, मनसुधी आश्रि देखाडियें छैयें. (दीसंतिसमयाचारा के०) आ जगत् मांहे कोइ एक चारि त्रिया एवा देखायछे. के, समयाचारा एटले सिद्धांतोक्त आचारनें विषे प्रवर्त्तमा न, तथा (निरकुणासाहुजीविणो के०) निरकुणा एटले दोपरहित एवा आहा रना गवेषण हार, तथा साधुजीवि एटले पोताना आचार पालवा सारु जीवे छे, तथा क्षांत, जितेंद्रिय, जितक्रोध, दृढव्रतवान्, जुसर प्रमाण दृष्टियें मार्गना शोधनार, प्रा सुक उदकना पान करनार, मौनी,छजीवनिकायना रक्षण करनार, किं बहुना. सराग छे, तो पण वीतरागनी पेरें रहेछे, एवा साधु देखीनें (एएमिछ्वोवजीवंति के०) ए मिथ्यात्वो पजीवि बाह्य वृत्तियें करी लोकोनें वंचेछे (इतिदिठिंनधारए के०) एवी दृष्टि धरे नहीं, एतावता एवो नाव मनमांहे चिंतवे नहीं, वचनथकी कहे नहीं, किं बहुना. स्वतीर्थि क परतीर्थिकनें एवुं वचन कहे नहीं ॥ ३१ ॥

॥ दीपिका-(कल्लाणेपावेति) सर्वथाऽयंकल्याणवानयं सर्वथा पापवान् एवमेकांते व्यवहारो न विद्यते । एकांतपक्षाश्रयणेन यद्वैरं कर्मबधस्तत् श्रमणाः शाक्यादयोबालाः पंमितमानिनः शुष्कतर्कदर्पोन्मत्तान जानंति ॥ ३० ॥ (असेसमिति) अशेषं सर्वं व स्तु सांख्याभिप्रायेणाक्तं नित्यं इति न ब्रूयात् । अपिशब्दादनित्यमपि न वदेत् । तथा सर्वं जगद्दुःखात्मकमित्यपि न वदेत् चारित्रादिपरिणतेः सुखस्यापि दर्शनात् । यडुक्तं । " तणसंथारनिसन्नो, विमुणिवरोनट्ठरागमयमोहो ॥ जं पावइ मुत्तिसुहं, कत्तोतं चक्कवट्टी वि" ॥ १ ॥ चोरपारदारिकादयोवध्याअवध्यावा इति न वदेत् । तथा चोक्तं । " मार्जार व्याघ्रसिंहादीन् सत्वव्यापादनोद्यतान् ॥ दृष्ट्वा स्वार्थपरः साधुर्माध्यस्थ्यमवलंबत"इति॥१॥

एवमन्योपि वाक्संयमोऽक्षेयः । यथाऽसौ कुतीर्थिकोबालः किमपि न वेत्ति इत्यादिकां पर स्याप्रीतिकारिणीं नाषां न विसृजेत् ॥ यडुक्तं । "अप्पत्तियं जेण सिया, आसु कुप्पिज्जवाप रो ॥ सवसो तं ण नासिज्जा, नासं अहियगामिणीं" इति ॥३१॥ (दीसंतित्ति) दृश्यंते स मिताचाराः शास्त्रोक्ताचारपरानिक्कवोनिक्कामात्रवृत्तयः साधुना विधिना जीवंतीति साधु जीविनः। तथाहि । क्षांतादांताजितेंड्रियाजितकषायास्तायिनस्तानेवंनूतान् मत्वापि एते मिथ्योपजीविनइति दृष्टिं न धारयेत् नैवमनिप्रायं कुर्यात् नाप्येवं वदेत् यथा मिथ्योप चारप्रवृत्तमायाविनएते इति । बद्मस्थेन हि एवंनूतनिश्चयस्य कर्तुमशक्यत्वादिति नावः। तेच स्वयूथ्यावा नवेयुस्तीर्थांतरीयावा उन्नावपि न वक्तव्यौ साधुना । यडुक्तं ।"यावत्प रगुणपरदो,पकीर्तने व्याप्टतं मनोनवति । तावद्वरं विशुद्धे,ध्याने व्यग्रं मनः कर्तुं॥१॥३२॥

॥ टीका—तदेवं कल्याणपापयोरनेकांतरूपत्वं प्रसाध्यैकांतं दूषयितुमाह (कल्लाणेपा वएइत्यादि) कल्यं सुखमारोग्यं शोननत्वं वा तदणतीति कल्याणं तदस्यास्तीति कल्याणो मत्वर्थी याच्प्रत्ययांतोऽर्शआदिन्योजित्यनेन । कल्याणवानिति यावत् । पापकशब्दोपि मत्व र्थी याच्प्रत्ययांतोड्रष्टव्यः । तदेवं सर्वथा कल्याणवानेवायं तथा पापवानेवायमित्येवंनूतो व्यवहारोन विद्यते तदैकांतनूतस्यार्थस्यैवानावात्तदनावस्यच सर्ववस्तूनामनेकांताश्रयणेन प्राक्प्रसाधितत्वादिति । एतच्च व्यवहारानावाश्रयणं सर्वत्र प्रागपि योजनीयं । तद्यथा । सर्वत्र वीर्यमस्ति नास्तिवा सर्वत्र वीर्यमित्येवंनूतएकांतिकोव्यवहारोन विद्यते। तथा नास्ति लोकोऽलोकोवा तथा संति जीवाअजीवाइति वेत्येवंनूतोव्यवहारोन विद्यतइति सर्वत्र संबंधनीयं । तथा वैरं वज्रं तद्वत्कर्म वैरं विरोधोवा वैरं तद्येन परोपतापादिनैकांतपक्ष्स माश्रयणेन वा नवति।तत्ते श्रमणास्तीर्थिकाबालाइव बालारागद्वेषकलिताः पंमिताः पंमि तान्निमानिनः शुष्कतर्कदर्प्पाध्मातान जानंति परमार्थनूतस्याहिंसालक्षणस्य धर्मस्याने कांतपक्षस्यवा नाश्रयणादिति । यदिवा यद्वैरं तत्ते श्रमणाबालाः पंमितावान जानंतीत्ये वं वाचं न निसृजेदित्युत्तरेण संबंधः । किमिति न निसृजेद्यतस्ते किंचिज्ज्ञानंत्येवापिच ते षां तन्निमित्तकोपोत्पत्तेः । यच्चैवंनूतं वचस्तन्न वाच्यं । यतउक्तं । "अप्पत्तियं जेण सिया, आसु कुप्पिज्जवा परो ॥ सवसो तंण नासेज्जा नासं अहियगामिणि"मित्यादि ॥ ३ए ॥ अपरमपि वाक्संयममधिकृत्याह । (असेसमित्यादि) अशेषं कृत्स्नं तत्सांख्यानिप्राये ण कृतं नित्यमित्येवं न ब्रूयात् । प्रत्यर्थं प्रतिसमयं चान्यथान्यथा नावदर्शनात्सएवा यमित्येवंनूतस्यैकत्वसाधकस्य प्रत्यनिज्ञानस्य लूनं पुनर्जातेषु केशनखादिष्वपि प्रदर्शी नात्तथापि शब्दादेकांतेन क्षणिकमित्येवमपि वाचं न निसृजेत्सर्वथा क्षणिकत्वे पूर्वस्य सर्वथा विनष्टत्वाडुत्तरस्य निर्हेतुकउत्पादः स्यात्तथाच सति नित्यं सत्वमसत्वंवा हे

तोरन्यानपेक्षणादिति । तथा सर्वं जगद्दुःखात्मकमित्येवमपि न ब्रूयात्सुखात्मकस्यापि सम्यग्दर्शनादिभावेन दर्शनात् । तथा चोक्तं । "तणसंथारनिसम्मो, विमुणिवरो नट्टरा गमयमोहो ॥ जं पावइ मुत्तिसुहं, कत्तोतं चक्कवट्टीवि" ॥१॥ तथा वध्याश्चौरपारदारिकादयोऽवध्यावा तत्कर्मानुमतिप्रसंगादित्येवंभूतां वाचं स्वानुष्ठानपरायणः साधुः परव्यापारनिरपेक्षोन विसृजेत् । तथाहि । सिंहव्याघ्रमार्जारादीन्परसत्वव्यापादनपरायणान् दृष्ट्वा माध्यस्थ्यमवलंबयेत् । तथा चोक्तं । मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यादीनि सत्वगुणाधिक क्लिश्यमानविनयेष्विति । एवमन्योपि वाक्संयमोऽङ्ष्टव्यः । तद्यथा । अमी गवादयोवाह्या न वाह्यास्तथामी वृक्षादयश्छेद्यान छेद्यावेत्यादिकं वचोन वाच्यं साधुनेति ॥३०॥ अयम परोवाक्संयमप्रकारोंऽतःकरणशुद्धिसमाश्रितः प्रदर्श्यते । (दीसंतीत्यादि) दृश्यंते समुप लभ्यंते स्वशास्त्रोक्तेन विधिना निभृतः संयतआत्मा येषां ते निभृतात्मानः । क्वचित्पाठः (समियाचारंत्ति) सम्यक् स्वशास्त्रविहितानुष्ठानादविपरीतआचारोऽनुष्ठानं येषां ते सम्यगाचाराः सम्यग्वा इतोव्यवस्थितआचारोयेषां ते समिताचाराः । के ते ? । भिक्षण शीलाभिक्षवोभिक्षामात्रवृत्तयः । तथा साधुना विधिना जीवितुं शीलं येषां ते साधु जीविनः । तथाहि । ते न कस्यचिदुपरोधविधानेन जीवंति तथा क्षांतादांताजितक्रोधाः सत्यसंधादृढव्रतायुगांतरमात्रदृष्टयः परिपूतोदकपायिनोमौनिनस्सदा तायिनोविविक्तैकांतध्यानाध्यासिनोकौकुच्यास्तानेवंभूतानवधार्यअपि सरागाअपि वीतरागाइव चेष्टंते इति मत्वैते मिथ्यात्वोपजीविनइत्येवं दृष्टिं न धारयेन्नैवंभूतमध्यवसायं कुर्यान्नाप्येवं भूतां वाचं निसृजेद्यथैते मिथ्योपचारप्रवृत्तामायाविनइति । छद्मस्थेन ह्यर्वाग्दर्शिनैवंभूतस्य निश्चयस्य कर्तुमशक्यत्वादित्यभिप्रायः । तेच स्वयूथ्यावा भवेयुस्तीर्थांतरीयावा तावुभावपि न वक्तव्यौ साधुना । यतउक्तं । "यावत्परगुणपरदो,षकीर्तने व्यापृतं मनोभवति ॥ ताव दरं विशुद्धे, ध्याने व्यग्रं मनः कर्तु"मित्यादि ॥ ३१ ॥

दक्खिणाए पडिलंभो, अत्थिवा णत्थिवा पुणो ॥ ण वियागरेज्ज मेहावी, संतिमग्गं च बूहए ॥३२॥ इच्चेएहिं ठाणेहिं, जिणदिट्ठेहिं संजए ॥ धारयंतेउ अप्पाणं, आमोक्खाए परिवएज्जा सित्तिबेमि॥३३॥ इति बीयसुयक्खंधस्स अणायारणाम पंचमज्झयणं सम्मत्तं ॥

अर्थ—वली आचार देखाडेछे. (दक्खिणा के०) दान तेनो प्रतिलंभ एटले गृहस्थें दान देवुं, लेनारें दान लेवुं. एवो व्यापार प्रवर्त्तमान देखी, अस्ति, अथवा नास्ति, एटले गुण, अथवा दूषण' कांइ पण कहे नहीं. (पुणो के०).असंयमनी अनुमोदन अनें दूषण केतां

थकां वृत्तिछेद थाय. ए कारण माटें, (मेहावी के०) जे पंमित होय, ते अस्ति, नास्ति, न कहे, तेवारें साधु केम बोले ? ते कहेछे. (संतिमग्गंचवूहए के०) शांतिमार्ग एटले मोक्षमार्ग ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूपनी वृध्धि थाय; एवुं वचन बोले. एटले जे वचन बोलवा थकी असंयम सावद्य न थाय, तेवुं वचन बोले. इत्यर्थः ॥ ३ ३॥ हवे अध्ययन परिसमाप्तिनें अर्थें कहेछे. (इच्चेएहिंठाणेहिं के०) एम ए पूर्वोक्तस्थानकें (जिणदिठेहिंसंजए के०) जिन एटले वीतरागजाषित वचनें युक्त, एवा संयत एटलें जे चारित्रिया (धारयंतेउ अप्पाणं के०) ते पोताना आत्मानें धारे, क्यां लगें धारे? तोके (आमोरकाएपरिवएज्जासि के०) ज्यां सुधी मोक्ष प्राप्ति थाय,त्यां सुधी धारे. हवे एवो उपदेश शिष्यनी प्रत्यें गुरु कहे. के,अहो शिष्य ! तुं आवा आचारें प्रवर्त्तजे.त्तिबेमिनो अर्थ पूर्ववत् जाणवो. ॥ ३ ३ ॥ ए बीजा श्रुतस्कंधनें विषे अनाचार नामें पांचमाअध्ययननो संक्षेपार्थ बालावबोध समाप्तथयो.

॥ दीपिका-(दक्खिणाएत्ति) दानं दक्षिणा तस्याः प्रतिलंजः प्राप्तिदानलाजः सोस्माद्गृहस्थादेः सकाशादस्तिवा नास्तिवा इति न व्यागृणीयान्न वदेन्मेधावी किंतु ? शांतिमार्गं मोक्षमार्गं वृंहयेद्वृद्धिं प्रापयेत् यथा मोक्षमार्गवृद्धिर्जवति तथा वदेदित्यर्थः ॥ ३ ३ ॥ इत्येतैरनेकांतविधायिजिः स्थानैर्जिनो द्दिष्टैः संयतआत्मानं धारयन् आत्मानं प्रवर्तयन् आमोक्षाय कर्मक्षयार्थं परिव्रजेत्संयमे प्रवर्त्तेत ॥इति परिसमाप्तौ। ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥३४ इति सूत्रकृतांगदीपिकायां द्वितीयश्रुतस्कंधेऽनाचारश्रुताख्यं पंचमाध्ययनं समाप्तम् ॥

॥ टीका-किंचान्यत् । (दक्खिणाएइत्यादि) दानं दक्षिणा तस्याः प्रतिलंजः प्राप्तिः स दानलाजोऽस्माद्गृहस्थादेः सकाशादस्ति नास्ति वेत्येवं न व्यागृणीयान्मेधावी मर्यादाव्यवस्थितः। यदिवा स्वयूथस्य तीर्थांतरीयस्य वा दानं ग्रहणंवा प्रतिलाजः सएकांते नास्ति संजवति नास्ति वेत्येवं न ब्रूयादेकांतेन तद्दानग्रहणनिषेधे दोषोत्पत्तिसंजवात् । तथाहि। तद्दाननिषेधेंऽतरायसंजवस्तद्वैचित्र्यंच तद्दानानुमतावप्यधिकरणोद्भवइत्यतोऽस्ति दानं न वेत्येवमेकांतेन न ब्रूयात् । कथं तर्हि ब्रूयादिति ? दर्शयति । शांतिर्मोक्षस्तस्य मार्गः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकस्तमुपवृंहये द्वर्धयेत् । यथा मोक्षमार्गाजिवृद्धिर्जवति तथा ब्रूयादित्यर्थः । एतडुक्तं जवति । पृष्टः केनचिद्विधिप्रतिषेधमंतरेण देयप्रतिग्राहकविषयं निरवद्यमेवं ब्रूयादित्येवमादिकमन्यदपि ॥ ३ ३ ॥ सांप्रतमध्ययनार्थमुपसंजिघृक्षुराह (इच्चेएहिंमित्यादि) इत्येतैरेकांतनिषेधद्वारेणानेकांतविधायिजिः स्थानैर्वाक्संयमप्रधानैः समस्ताध्ययनोक्तैरागद्वेषरहितैर्जिनैर्दृष्टैरुपलब्धैर्न स्वमतिविकल्पोत्थापितैः संयतः सन् संयमवानात्मानं धारयन्नेजिर्विविधधर्मदेशनावरसरे वाच्यं । तथा चोक्तं । "सावज्जणवज्जा

एं वयणाणं जो नयाणइविसेसमित्यादिस्थानैरात्मानं वर्तयान्नामोक्षायाशेषकर्मक्षया र्थं मोक्षं यावत्परिसमंतात्संयमानुष्ठाने व्रजेद्भवेस्त्वमिति विधेयस्योपदेशः । इति परिस माप्त्यर्थं । ब्रवीमीति पूर्ववत् । नयाअभिहिताअभिधास्यमानलक्षणाश्चेति ॥ ३३ ॥ समाप्तमनाचारश्रुताख्यं पंचममध्ययनमिति ॥

॥ हवे बहुं अध्ययन प्रारंभियें बैयें ॥

पांचमा अध्ययननें विषे आचारनी आचरणा करवी, अनें अनाचारनी परिहरणा ए टले अनाचारनो त्याग करवो. एम कह्युं.हवे ते प्रमाणें जे महाभाग्यवान् पुरुषथी करा यछे, ते आर्द्रकुमारना दृष्टांतनी पेठें देखाडेछे. जेम आर्द्रकुमारनो गोशालक साथें वाद थयो, ते रीतेंज आ बहा अध्ययनमां कहेछे. प्रत्येक बुद्ध आर्द्रकुमार, एकदा प्रस्तावें श्री महावीरदेवनी पासें आवतां अंतरालें गोशालकें बोलाव्यो. ते कथा कहेछे.—

पुराकडं अद्द इमं सुणेह,मेगंतयारी समणे पुरासी ॥ से भिरकु णो उवणेत्ता अणेगे, आइरकतिसिंह पुढोविछरेणं ॥ १ ॥ साजी वियापछविता थिरेणं, सभागत गणउ भिरकुमज्झे ॥ आइरक माणो बहुजन्नमहं, नसंधयाती अवरेण पुवं ॥ २ ॥

अर्थ—हवे आर्द्रकुमारनें गोशालक बोलावीने कहेछे के, (अद्दइमंसुणेह के०) नो आर्द्रकुमार ! जे हुं कहुंछुं ते तुं सांभल. (पुराकडं के०) परापूर्वें जे जे आ ताहारे ती र्थकरें कर्युंछे, ते हुं कहुंछुं ते सांभल. ते शुं कर्युंछे? तोके, (मेगंतयारीसमणेपुरासी के०) ए श्रमण भगवंत महावीर पूर्वें प्रथम एकांतचारी विहार करता हता. एटले एकांतें लोक रहित एवा प्रदेशें विचरता हता, अनें अनेक प्रकारनां उग्रतप करता हता, ते हमणां उग्रतप आचरवा थकी भंग थया थका सुजनें बोडीनें एटले महारो परित्याग करीनें, (सेभिरकुणोउवणेत्ताअणेगे के०) ते साधु शिष्यो एकठा करीनें अनेक देव, दे वी, मनुष्य, अनें स्त्रीना वृंद मांहे बेठा थका धर्म कहेछे. (आइरकतिसिंहपुढोविछरेणं के०) तथा घणा शिष्य एकठा करी, तमारा जेवा मुग्ध जननें विप्रतारवा माटें पृथक् पृथक् जुदा जुदा विस्तारें करी धर्म कहेछे ॥ १ ॥ वली गोशालक कहेछे के, (साजीवि यापछविताथिरेणं के०) अहो आर्द्रकुमार! ताहारे गुरुयें घणा लोक मांहे बेशी धर्म देशनानें मिशें आजीविका मांमीछे, केमके, एकाकी विचरतां लोक पराभव करेछे, एवुं

जाणीनें, पंक्ति निमित्तें, घणो महोटो परिवार कर्योछे, वळी ए तमारो गुरु केवोछे, तो के, अस्थिर एटले प्रथम माहारी साथें एकलो अंत प्रांत.आहारी शून्य एवा देवकुला दिक स्थानकोनें विषे रहेतो हतो, अनें तेवो उग्रआचार वेळूना कवलनी पेठें निःस्वाद जाव जीवसुधी करवानें अशक्तछे, ते कारणे महारो समागम मुकीनें घणा शिष्योनें वि प्रतारी एवे घटाटोपें विचरेछे, ते कारणे अस्थिरछे. ते अस्थिर पणुं देखाडेछे. (सजाग उं के०) सजा जे देव अनें मनुष्यनी परषदा मांहे बेठो (गणउंनिरकुमज्झे के०) अने क भिक्षुना समुदाय मांहे रहेतो थको (आइरकमाणोबहुजन्नमत्थं के०) घणालोकनें हितनो कारक, एवो अर्थ कहेतो देखायछे. ते कारणे (नसंधयातीअवरिणपुव्वं के०) मांहोमांहे आचार तेनो संधि मलतो नथी, एटले प्रथमना आचारमां अनें हमणाना आचारमां मांहोमांहे विरोध देखायछे, ते ए प्रकारे के, सिंहासन,अशोक वृक्ष,भामंमल, छत्र, चामरादिक संभाण जो मोक्षनुं अंग होय तो, प्रथम जे उग्रक्रिया एणे कीधी तेतो निःकेवल क्लेश भणीज कीधी, अथवा जो ते क्रिया कर्म निर्जरवानुं कारण हती, तो हमणानी क्रिया पण बीजानें विप्रतारवानें अर्थें,पाखंमरूप जाणीयें छैयें. वळी प्रथमतो मौनपणुं रुडुं जाणीनें अंगीकार कर्युं हतुं, त्यारें हमणा धर्मदेशना आपवानुं शुं कामछे? जो धर्मदेशना देवी, ए रुडुंछे तो पहेलां मौनपणुं आदर्युं हतुं ते अत्यंत अयोग्यछे॥१॥

दीपिका—अथ षष्ठाध्ययनमारभ्यते । तच्चार्द्रककुमारकथासंबद्धत्वादार्द्रकीयाभिधानं । तत्कथाचेयं । मगधदेशे वसंतपुरे सामायिकोनाम कुटुंबी वसति । स वैराग्यतः श्रीधर्मघो षाचार्यपार्श्वे पत्नीयुतः प्रव्रज्यां गृहीत्वा साधुभिः सह विहरति । सोऽन्यदा स्वपत्नीं साध्वीं भिक्षामटंतीं दृष्ट्वा रागी जातः। स्वाभिप्रायः परस्य साधोस्तेन निवेदितः । तेनापि तत्प्रवर्ति न्यास्तयापि तस्याः साध्व्याः । ततः स्वपतिमनुरक्तं ज्ञात्वा साध्व्या भक्तप्रत्याख्यानपूर्वमा त्मोद्बंधनमकारि । मृत्वा स्वर्गमगात् । तदाकर्ण्य तत्पतिः साधुरपि गुरुमनापृछ्य भक्तं प्र त्याख्याय दिवं गतः । ततश्च्युत्वा आर्द्रकपुरे नगरे आर्द्रकसुतआर्द्रकाभिधोजातः । साऽपि तत्पत्नी स्वर्गच्युता वसंतपुरे श्रेष्ठिपुत्री जाता। आर्द्रकोपि युवा परमसुभगः संपन्नः। अन्यदार्द्रकपित्रा जनहस्ते राजगृहे श्रेणिकराज्ञः प्राभृतं प्रेषितं । आर्द्रककुमारेण श्रेणि कसुतायाऽभयकुमाराय स्नेहकरणार्थं प्राभृतं तस्यैव हस्तेन प्रेषितं। जनोराजगृहे गत्वा श्रेणिकराज्ञः प्राभृतानि निवेदितवान् संमानितश्च राज्ञा। आर्द्रकप्रहितानि प्राभृतानि चाऽ भयकुमाराय दत्तवान् । कथितानि स्नेहोत्पादकानि वचनानि । अभयेनाचिंति । नूनम सौ भव्यः स्यादासन्नसिद्धिकोयोमया सार्द्धं प्रीतिमिछतीति। ततोऽभयेन प्रथमजिनप्रतिमा बहुप्राभृतयुतार्द्रकुमाराय प्रहिता। इदं प्राभृतमेकांते निरूपणीयमित्युक्तं जनस्य । सोऽप्या र्द्रकपुरं गत्वा यथोक्तं कथयित्वा प्राभृतमार्पयत् । प्रतिमां निरूपयतः कुमारस्य जातिस्म

रणमुत्पन्नं धर्मे प्रतिबुद्धं मनः अजयं स्मरन् वैराग्यात्कामभोगेष्वनासक्तस्तिष्ठति । पित्रा ज्ञातं मा क्वचिदसौ यायादिति पंचशतसुभटैर्नित्यं रक्ष्यते । आर्द्रककुमारोप्यश्ववाहनिकायां निर्गतः प्रधानाश्वेन दूरं गत्वा पलायितः । ततः प्रव्रज्यां गृह्णन् देवतया निषिद्धोपि प्रव्रज्यान्यतरप्रतिमाप्रतिपन्नोवसंतपुरे कायोत्सर्गस्थोदेवलोकच्युतया तया श्रेष्ठिपुत्र्याऽन्यबालिकाभिः सह क्रीडंत्याऽयं मम भर्त्तेत्युक्ते सन्निहितदेवतया सार्द्धत्रयोदशकोटिमिता सुवर्णवृष्टिः कृता । राजा तत्सुवर्णं गृह्णन् देवतया वारितः । इदं स्वर्णमस्याबालिकायाएवेत्युक्तं च ततस्तत्पित्रा गृहीतं स्वर्णं । अनुकूलोपसर्गं मत्वार्द्रमुनिरन्यत्र गतः। पुत्रीवरणार्थं वराः समायांति पुत्र्या कथितं पितुः एते वराः स्वस्थानं यांतु अहं तस्मै दत्ता त्वया यत्संबंधि हिरण्यं भवता जगृहे। पित्रोक्तं त्वं तं जानीषे कथं ? तयोक्तं । तच्चरणगतातिज्ञानदर्शनाज्जानामि । ततः सा दानशालायां स्थिता भिक्षार्थिभ्यआहारं दत्ते । ततो द्वादशवर्षैर्गतैः कदाचिच्चासौ भवितव्यवशात्तत्रैव विहरन् समागतः पादचिन्हदर्शनादुपलक्षितश्च तया । ततः सा बाला सपरिवारा तत्पृष्ठतोगता । आर्द्रककुमारोपि देवतावचनं स्मरन् कर्मोदयात्प्रतिभग्नस्तया सार्द्धं भुनक्ति भोगान् पुत्रोजातः । आर्द्रकेणोक्तं सांप्रतं ते पुत्रोद्वितीयोभून्निर्वाहकः । अहं स्वकार्यमाचरामि तया सुतज्ञापनार्थं कार्पासककर्त्तनमारब्धं । पृष्टं च पुत्रेण किंमातरिदमारब्धं भवत्या? सा प्राह । वत्स ! तव पिता प्रव्रज्यां ग्रहीतुकामः त्वं तु शिशुरद्यापि द्रव्यार्जनेऽसमर्थस्ततोहमनघा निंद्यवृत्त्याऽनया जीवनमिच्छामीति । तेन बालेन तत्कालोत्पन्नबुद्ध्या तत्कर्त्तितसूत्रेण कार्यं मया बद्धोयास्यतीति मन्मनभाषिणोपविष्टएव पिता वेष्टितः । पित्रा चिंतितं यावंतोमी वेष्टनसूत्रतंतवस्तावंति वर्षाणि मया स्थातव्यं । तंतवश्च द्वादश । ततोसौ द्वादशवर्षाणि गृहे तस्थौ । ततः प्रव्रजितः सूत्रार्थनिपुणएकाकी विहरन् राजगृहं प्रतिप्रस्थितस्तदंतराले तद्रक्षणार्थं यानि प्राक् पित्रा पंचराजपुत्रशतानि मुक्तानि तानि कुमारे नष्टे राजभयात्तत्राटव्यां चौर्येण जीवंति । तैश्चार्द्रकमुनिर्दृष्टउपलक्षितश्च । तेन पृष्टास्ते किमिदमनार्यं कर्मारब्धं भवद्भिः? तैश्च राजभयादि कथितं । मुनिवचनात्संबुद्धास्ते प्रव्रजिताः । तथा राजगृहनगरप्रवेशे गोशालकोहस्तितापसाब्राह्मणाश्च वादे पराजिताः । तथार्द्रकुमारदर्शनादेव हस्ती बंधनाद्विमुक्तः । तेच हस्तितापसादयआर्द्रमुनिधर्मकथाक्षिप्ताः श्री वीरपार्श्वे निष्क्रांताः । राज्ञा ज्ञातस्वरूपेण पृष्टं । भगवन्! कथं त्वद्दर्शनतः करी बंधनान्मुक्तइत्युक्ते मुनिराह । "न दुक्करं वारणपासमोयणं गयस्स मत्तस्स वणंमि रायं॥ एयंतु मज्झं पडिहाइ दुक्करं बद्धस्स तक्कावलिएण तंतुणा" ॥१॥ दुष्करमेतन्नरपाशैर्बद्धस्य गजस्य मत्तस्य विमोचनं वने राजन्! एतत्तु मे प्रतिभाति दुष्करं यत्तर्कुकावलितेन तंतुना बद्धस्य मम प्रतिमोचनमिति । स्नेहतंतवोहि जंतूनां दुर्भेदाभवंतीति भावः ॥ आर्द्रकमुनिकथा समाप्ता ॥

सांप्रतं सूत्रं व्याख्यायते तच्चेदं।(पुराकडमिति)यथा गोशालकेन सार्द्धं वादोनूदार्द्रककुमारस्य तथास्मिन्नध्ययने कथ्यते तं चार्द्रमुनिं प्रत्येकबुद्धं श्रीवीरांतिकमागच्छंतं गोशालोब्रवीद्यथा नोआर्द्रक! यदहं वदामि तच्छृणु। पुरा पूर्वं नवत्तीर्थंकृता यत्कृतं तद्दर्शयति।एकांते जनरहितस्थाने चरतीत्येकांतचारी श्रमणः पुरासीत्तपश्चरणोद्यतः।सांप्रतं तु तपश्चारित्रनिर्भर्त्सितो मां विहाय देवादिमध्यगतोधर्ममाख्याति। तथा बहून् शिष्यान् उपनीय बहुशिष्यपरिवारं कृत्वा, नवाद्दशमुग्धानां इदानीं पृथग्विस्तारेण धर्ममाख्याति॥१॥या नवकरुणा देशना क्रियते सा जीविका प्रकर्षेण स्थापिता एकाकी विहरन् लोकैः परिभूयतइति। यडुक्तं।"छत्रं गात्रं पात्रं,वस्त्रं यष्टिं च चर्चयति भिक्षुः॥ वेषेण परिकरेण च,कियतापि विना न भिक्षापि"॥१॥ इति कृत्वा तेन परिवारः कृतः। तदनेन दंनप्रधानेन जीविकार्थमिदमारब्धं। किंनूतेन अस्थिरेण पूर्वं मया सार्द्धमेकाकी अंतप्रांताहारेण शून्यवनादौ वृत्तिं कृतवान्। नच तादृशं डुष्करमनुष्ठानं यावज्जीवं कर्तुमलं। ततो मां त्यक्त्वा बहून् शिष्यान् विधायाडंबरेण चरति ततोऽस्थिरश्चपलः पूर्वाचारत्यागात् तथा सन्नागतोऽयं गणशोऽनेकशोभिक्षुमध्यस्थितआचक्षाणोबहुजनेन्योहितं बहुजन्यमर्थं कथयन् विहरति एतच्चास्यानुष्ठानं पूर्वापरेण न संधत्ते। तथाहि। यदि सांप्रतीयं वृत्तं प्राकारत्रयसिंहासनाशोकवृक्षनामंमलचामरादिकं मोक्षांगमनविष्यत्ततोया प्राक्तन्येकचर्या क्लेशबहुलानेन कृतेनाक्लेशाय केवलमस्येत्यथ सा कर्मनिर्जरणहेतुका परमार्थनूता ततः सांप्रतावस्था परप्रतारकत्वाद्दंनकल्पेत्यतः पूर्वोत्तरयोरनुष्ठानयोर्मौनव्रतिकधर्मदेशनारूपयोः परस्परतोविरोधइति। अतएवास्य चरित्रं पूर्वापरेण न संदधाति पूर्वापरविरोधीत्यर्थः॥ २॥

॥टीका—उक्तं पंचममध्ययनं।सांप्रतं षष्ठमारन्यते। अस्य चायमनिसंबंधः। इहानंतराध्ययने आचारः प्रतिपादितोऽनाचारपरिहारश्च सच येनाचीर्णः परिहृतश्चासावधुना प्रतिपाद्यते। यदिवाऽनंतराध्ययने स्वरूपमाचारानाचारयोः प्रतिपादितं तच्चाशंक्यानुष्ठानं न नवत्यतस्तदा सेवकोदृष्टांतनूतआर्द्रकः प्रतिपाद्यतइत्यथवाऽनाचारफलं ज्ञात्वा सदाचारे प्रयत्नः कार्योयथार्द्रककुमारेण कृतइत्येतदर्शनार्थमिदमध्ययनं।अस्य चत्वार्यनुयोग द्वाराण्युपक्रमादीनि वाच्यानि। तत्रोपक्रमांतर्गतोर्थाधिकारोयं।तद्यथा आर्द्रककुमारवक्तव्यता यथा सावनयकुमारप्रतिमाव्यतिकरात्प्रतिबुद्धस्तथात्र सर्वं प्रतिपाद्यतइति।निक्षेपस्त्रिधा। तत्रौघनिष्पन्ने निक्षेपेऽध्ययनं नाम निष्पन्ने निक्षेपेत्वार्द्रकीयं। तत्रार्द्रपद निक्षेपार्थं निर्युक्तिकृदाह।
"नामं ठवणा अद्दं,दव्वद्दं चेव होइ नावद्दं॥ एसो खलु अद्दस्सउ निक्खेवो चउविहो होइ"॥१॥ (नामंठवणाअद्दमित्यादि) नामस्थापनाद्रव्यनावनेदाच्चतुर्धार्द्रकस्य निक्षेपोद्रष्टव्यः। तत्र नामस्थापनेऽनादृत्य द्रव्यार्द्रप्रतिपादनार्थमाह।"उदगद्दं सारद्दं,छवियद्दं खलु तहासि

णेहद्दं ॥ एयं दव्वद्दं खलु,नावेणं होइ रागद्दं " ॥२॥ (उदगद्दमित्यादि) तत्र द्रव्यार्द्रं द्विधा आगमतोनो आगमतश्च। आगमतोज्ञाता तत्र चानुपयुक्तोऽनुपयोगो द्रव्यमितिकृत्वा नो आगमस्तु ज्ञशरीरजव्यशरीरव्यतिरिक्तं यदुदकेन मृत्तिकादिकं द्रव्यमार्द्रीकृतं तदुदकार्द्रं । सारार्द्रंतु यद्बहिः शुष्कार्द्रमप्यंतर्मध्ये सार्द्रमास्ते यथा श्रीपर्णसौवर्चलादिकं। छविअद्दंतु यत् स्निग्धत्वग्द्रव्यं मुक्ताफलरक्ताशोकादिकं तदनिधीयते वसयोपलिप्तं वासार्द्रं तथा श्लेष्मार्द्रं यत्क्लेपाद्युपलिप्तं स्तंजकुड्यादिकं यद्द्रव्यं तत्स्निग्धाकारतया श्लेष्मार्द्रमिनिधीयते। एतत्सर्वमप्युदकार्द्रादिकं द्रव्यार्द्रमेवाजिधीयते। खलुशब्दस्यैवकारार्थत्वात् । जावार्द्रं तु पुनः रागः स्नेहाजिष्वंगस्तेनार्द्रं यज्जीवद्रव्यं तद्भावार्द्रमित्यजिधीयते ! सांप्रतमार्द्रककुमारमधिकृत्यान्यथा द्रव्यार्द्रं प्रतिपादयितुमाह ।"एगजवियबद्धाउ,या अनिमुहउ नामगोएय॥ एते तिन्ना देसा,दव्वंमि अद्दगेहोंति"॥३॥ (एगजवियइत्यादि) एकेन जवेन योजीवः स्वर्गादेरागत्यार्द्रककुमारत्वेनोत्पत्स्यते तथा ततोप्यासन्नतरोबद्धायुष्कस्तथा ततोप्यासन्नतमोजिमुखनामगोत्रोयोनंतरसमयमेवार्द्रकत्वेन समुत्पत्स्यते। एते त्रयोपि प्रकाराद्रव्यार्द्रके इष्टव्याइति । सांप्रतं जावार्द्रकमधिकृत्याह । "अद्दपुरा अद्दसुतो,नामेण अद्द गोय अणगारो॥ तत्तो समुट्ठियमिणं,अज्झयणं अद्दइज्जंति"॥४॥(अद्दपुराइत्यादि) आर्द्रकायुष्कनामगोत्राण्यनुजवन् जावार्द्रो जवति। यद्यपि शृंगवेरादीनामप्यार्द्रकसंज्ञाव्यवहारोस्ति तथापि नेदमध्ययनं तेन्यः समुत्थितमतोन तैरिहाधिकारः किंत्वार्द्रककुमाराजिधानगारात्समुत्थितमतस्तेनैवेहाधिकारइतिकृत्वा तद्वक्तव्यताऽनिधीयते । एतदेव निर्युक्तिकृदाह । (अद्दपुराइत्यादि) अस्याः समासेनायमर्थः । आर्द्रकपुरे नगरे आर्द्रकोनाम राजा तत्सुतोप्यार्द्रकाजिधानः कुमारस्तद्वंशजाः किल सर्वेप्यार्द्रकाजिधानाएव जवंतीतिकृत्वा सचानगारः संवृत्तस्तस्य च श्रीमन्महावीरवर्द्धमानस्वामिसमवसरणे गोशालकेन सार्द्धं हस्तितापसैश्च वादोजूत्तेनच ते एतदध्ययनार्थोपन्यासेन पराजिताअतइदमजिधीयते । ततस्तस्मादार्द्रकात्समुत्थितमिदमध्ययनमार्द्रकीयमिति गाथासमासार्थः। व्यासार्थं तु स्वतएव निर्युक्तिकृदार्द्रकपूर्वजवोपन्यासेनोत्तरत्र कथयिष्यतीति । ननुच शाश्वतमिदं द्वादशांगमपि गणिपिटकमार्द्रककथानकं तु श्रीवर्द्धमानतीर्थावसरे तत्कथमस्य शाश्वतत्वमित्याशंक्याह ।" कामं दुवालसंगं,जिणवयणं सासयं महाजागं। सव्वज्झयणाई तहा,सव्वक्करसन्निवाताय " ॥५॥ (काममित्यादि) काममित्येतदभ्युपगमे इष्टमेवेतदस्माकं ।तद्यथा। द्वादशांगमपि जिनवचनं नित्यं शाश्वतं महाजागं महानुजावमामर्षौषध्यादिऋद्धिसमन्वितत्वान्न केवलमिदं सर्वाण्यप्यध्ययनान्येवंजूतानि तथा सर्वाक्षरसन्निपाताश्च मेलापकाद्रव्यार्थादेशानित्याएवेति । ननुच मतानुज्ञानामनिग्रहस्थानं जवतइत्याशंक्याह। "तहवियकोईअत्थो,अप्पज्जतितम्मि समयंमि॥ पुव्व जणिउ अणुमतो इति इसिजासिए य जहा " ॥६॥ (तहवियइत्यादि) यद्यपि सर्वमपीदं द्रव्यार्थतः शाश्वतं तथा

पि कोप्यर्थस्तस्मिन्समये तथा क्षेत्रेच कुतश्चिदार्द्रकादेः सकाशादाविर्नावमास्कंदति सते न व्यपदिश्यते । तथा पूर्वमप्यसावर्थोऽन्यमुद्दिश्योक्तोऽनुमतश्च नवति ऋषिनाषितेषूत्तराध्ययनादिषु यथेति । सांप्रतं विशिष्टतरमध्ययनोत्थानमाह । " अज्ञदएणगोसा,लनिरकुबंनवतीति दंडीणं ॥ जह हत्थितावसाणं,कहियं इणमो तहावुत्तं" ॥७॥ (अज्ञदएणेत्यादि) आर्यार्द्रकेण समवसरणाभिमुखमुच्चलितेन गोशालकभिक्षोस्तथा ब्रह्मव्रतिनां त्रिदंडिनां यथा हस्तितापसानां च कथितमिदमध्ययनार्थं जातं तथा वक्ष्ये सूत्रेणेति । सांप्रतं स पूर्वनवमार्द्रककथानकं गाथाभिरेव निर्युक्तिकृदाह । "गामे वसंतपुरये,सामइतोधरणिसहितोनिरकंतो ॥ निरकायरियादिहा,उहासिय नत्तवेहासं" ॥८॥ संवेगसमावन्नो,माईनत्तं च इत्तुदिय लोए ॥ चउऊणं अद्दपुरे, अद्दसुउ अद्दउ जाउ ॥ए॥ पीतीयदोसहदूउ पुत्तणमनयस्स पत्रवे सोउ ॥ तेणावि सम्मद्दिहित्ति होज्ज, पडिमारहंमि गया ॥ १० ॥ दहुं संबुद्धो रकिउ य, आसाणवाहणपलातो ॥ पवावंतो धरितो, रज्जं न करेति कोअन्नो ॥ ११ ॥ अगणिंतो निरकंतो, विहरइ पडिमाइदारिगाचरिईउ ॥ सुवरणवसुहाराउ, रन्नो कहणं च देवीए ॥ १२ ॥ तं नइ पिता तीसे, पुत्रणकहणं च वरणदोवारे ॥ जाणाइ पायबिंबं,आगमणं कहणनिग्गमणं ॥ १३ ॥ पडिमागतीसमीवे,सपरीवाराभिरकपडिवयणं ॥ नोगमुतापुत्रणसु,त्तबंधपुन्नेयनिग्गमणं ॥१४॥ रायगिहागमचोरा,रायनया कहणतेसि दिरकाया ॥ गोसालभिरकुबंभी,तिदंडियातावसेहिं सहवादो ॥१५॥ वादे पराइयत्तो,सवे विय सरणमप्नुवगतातो ॥ अद्दगसहिया सबे, जिणवीरसासिनिरकंता ॥१६॥ (गामेइत्यादिगाथाष्टकं) आसां चार्थः कथानकादवसेयस्तच्चेदं । मगधजनपदे वसंतपुरे ग्रामे तत्र सामायिकोनाम कुटुंबी प्रतिवसति । सच संसारनयोद्विग्नोधर्मघोषाचार्यांतिके धर्मं श्रुत्वा सपत्नीकः प्रव्रजितः सच सदाचारतः संविग्नैः साधुनिः सार्द्धं विहरतीतरानिः साध्वीनिः । सहेति । कदाचिच्चासावेकस्मिन्नगरे निक्षार्थमटंतीं दृष्ट्वा तामसौ तथाविधकर्मोदयात्पूर्वरतानुस्मरणेन तस्यामध्युपपन्नस्तेन चात्मीयोऽनिप्रायोद्वितीयस्य साधोर्निवेदितस्तेनापि चैतत्प्रवर्तिन्यास्तयापि चानिहितं न मम देशांतरे एकाकिन्या गमनं युज्यते न चासौ तत्राप्यनुबंधं त्यक्ष्यतीत्यतो ममास्मिन्नवसरे नक्तप्रत्याख्यानमेव श्रेयोन पुनर्व्रतविलोपनमित्यतस्तया नक्तप्रत्याख्यानपूर्वकमात्मोद्बंधनमकारि मृता सागाच्च देवलोकं । श्रुत्वा चैनं व्यतिकरमसौ संवेगमुपगतश्चिंतितं च तेन । तथा व्रतनंगनयादिदमनुष्ठितं ममत्वसौ संजातएवेत्यतोहमपि नक्तप्रत्याख्यानं करोमीत्याचार्यस्यानिवेद्यैवासौ मायाव्ययच परमसंवेगापन्नोऽसावपि नक्तं प्रत्याख्याय दिवंगतस्ततोपि च प्रत्यागत्यार्द्रपुरे नगरे आर्द्रकसुतआर्द्रकाभिधानोजातः । सापिच देवलोकाच्च्युता वसंतपुरे नगरे श्रेष्ठिकुले दारिका जाता इतरोपिच परमरूपसंपन्नोयौवनस्थः संवृत्तोन्यदासावार्द्रकपिता राजगृहन

गरे श्रेणिकस्य राज्ञः स्नेहाविष्करणार्थं परमप्राभृतोपेतं महत्तमं प्रेषयत्यार्द्रककुमारेणासौ दृष्टोयथा कस्यैतानि महार्हाण्यत्युग्राणि प्राभृतानि मत्पित्रा प्रेषितानि यास्यंतीत्यसावक थयद्यथार्यदेशे तव पितुः परममित्रश्रेणिकोमहाराजा तस्यैतानीत्यार्द्रककुमारेणाप्य भाणि किं तस्यास्ति कश्चिद्योग्यः पुत्रोस्तीत्याह। यद्येवं मत्प्रहितानि प्राभृतानि भवता त स्य समर्पणीयानीति भणित्वा महार्हाणि प्राभृतानि समर्प्याभिहितं वक्तव्योसौ मद्वच नाद्यथार्द्रककुमारस्त्वयि स्निह्यतीति सच महत्तमोगृहीतोभयप्राभृतोराजगृहमगाद्गत्वा च राजद्वारपालनिवेदितोराजकुलं प्रविष्टो दृष्टश्च श्रेणिकः प्रणामपूर्वं निवेदितानि प्राभृतानि कथितं च यथासंदिष्टं। तेनाप्यासनाशनतांबूलादिना यथार्हप्रतिपत्त्या सन्मानितोद्वितीये चान्ह्यार्द्रककुमारसत्कानि प्राभृतान्यभयकुमारस्य समर्पितानि कथिता निच तत्प्रीत्युत्पादकानि तत्संदिष्टवचनान्यभयकुमारेणापि परिणामिक्यबुद्ध्या परिणामि तं नूनमसौ भव्यः समासन्नमुक्तिगमनश्च तेन मया सार्द्धं प्रीतिमिच्छतीति। तदिदमत्र प्रा प्तकालं यदादितीर्थंकरप्रतिकरप्रतिमासंदर्शनेन तस्यानुग्रहः क्रियतइतिमत्वा तथैव कृ तं महार्हाणिच प्रेषितानि प्राभृतानीति। उक्तश्च। महत्तमोयथा मत्प्रहितप्राभृतमेतदेकां ते निरूपणीयं तेनापि तथैव प्रतिपन्नं गतश्चासावार्द्रकपुरं समर्पितं च प्राभृतं राज्ञोद्वि तीये चान्ह्यार्द्रककुमारस्येति कथितंच यथासंदिष्टं तेनाप्येकांते स्थित्वा निरूपिता प्रतिमा तांच निरूपयतऊहापोहविमर्शनेन समुत्पन्नं जातिस्मरणं चिंतितंच तेन यथा ममाभ यकुमारेण महानुपकारोऽकारि सद्धर्मप्रतिबोधतइति। ततोसावार्द्रकः संजातजातिस्मरणो चिंतयद्यस्य मम देवलोकभोगैर्यथेप्सितं संपद्यमानैस्तृप्तिर्नाभूत्तस्यामीभिस्तुच्छैर्मानुषैः स्व ल्पकालीनैः कामभोगैस्तृप्तिर्भविष्यतीति कुतस्त्यमित्येतत्परिगणय्य निर्विण्णकामभोगो यथोचितभोगमकुर्वन् राज्ञा संजातभयेन मा क्वचिद्यायात्यतः पंचभिः शतैराजपुत्राणां र क्षयितुमारेभे। आर्द्रककुमारोऽप्यश्ववाहनिकया विनिर्गतः प्रधानाश्वेन प्रपलायितः तत श्च प्रव्रज्यां गृण्हन् देवतया सोपसर्गं भवतोद्यापि भणित्वा निवारितोप्यसावार्द्रकोराज्यं तावन्न करोति कोन्योमां विहाय प्रव्रज्यां ग्रहीष्यतीत्यभिसंधाय तां देवतामवगणय्य प्रव्रजितोविहरन्नन्यदान्यतरप्रतिमाप्रतिपन्नः कायोत्सर्गव्यवस्थितोवसंतपुरे तया देवलो काच्च्युतया श्रेष्ठिदुहित्रा परदारिकामध्यगतया रमत्येषमम भर्तेत्येवमुक्ते सत्यनंतरमे व तत्सन्निहितदेवतयार्द्धत्रयोदशकोटिपरिमाणा शोभनं वृतमनयेति भणित्वा हिरण्य वृष्टिर्मुक्ता तांच हिरण्यवृष्टिं राजा गृण्हन् देवतया सर्पाद्युत्थानतोविधृतोऽभिहितं च तया यथैतद्धिरण्यं जातमस्यादारिकायाः नान्यस्य कस्यचिदित्यतस्तत्पित्रा सर्वं संगो पितमार्द्रककुमारोप्यनुकूलोपसर्गइतिमत्वाऽश्वेनान्यत्र गतोगच्छतिच। काले दारिकाया वरकाः समागच्छंति पृष्टौच पितरौ तया किमेषामागमनप्रयोजनं? कथितंच ताभ्यां यथैते

तव वरकाऽस्ति । ततस्तयोक्तं तात ! सकृत्कन्याः प्रदीयंते नानेकशोदत्ता चाहं तस्मै यत्सं बंधं हिरण्यजातं नवद्भिर्गृहीतं ततः सा पित्राऽनाणि । किं त्वं तं जानीषे ? तयोक्तं तत्पादग तानिज्ञानदर्शनतोजानामीति । तदेवमसौ तत्परिज्ञानार्थं सर्वस्य निक्षार्थिनो निक्षां दापयितुं निरूपिता ततोद्वादशनिर्वर्षैर्गतैः कदाचिच्चासौ नवितव्यतानियोगेन तत्रैव वि हरन्समायातः प्रत्यनिज्ञातश्च तया तत्पादचिन्हदर्शनतस्ततोसौ दारिका सपरिवारा तत्पृ ष्ठतोजगामार्द्रककुमारोपि देवतावचनं स्मरंस्तथाविधकर्मोदयादवश्यं नवितव्यतानियो गेन च प्रतिनग्नस्तया सार्द्धं नुनक्ति नोगान् पुत्रश्चोत्पन्नः पुनरार्द्रककुमारेणासावनिहिता सांप्रतं ते पुत्रोद्वितीयोहं स्वकार्यमनुतिष्ठामि तया सुतव्युत्पादनार्थं कार्पासकर्त्तनमारब्धं पृष्टा चासौ बालकेन किमंबैतन्नवत्या प्रारब्धमितरजनाचरितं ततोसाऽवबोचद्यथा तव पि ता प्रव्रजितुंकामस्त्वं चाद्यापि शिशुरसमर्थोर्थार्जिनेततोहमनाथा स्त्रीजनोचितेनानिंद्ये न विधिनाऽऽत्मानं नवंतं च किल पालयिष्यामीत्येतदालोच्येदमारब्धमिति । तेनापि बा लकेनोत्पन्नप्रनूतया तत्कर्त्तितसूत्रेणैव क्वायं मद्वद्धोयास्यतीति मन्मनोनाषिणोपविष्टए वासौ पिता परिवेष्टितस्तेनापि चिंतितं यावंतोमी बालककृतवेष्टनतंतवस्तावंत्येव वर्षाणि मया गृहेस्थातव्यमिति निरूपिताश्च तंतवोयावद्द्वादश तावंत्येव वर्षाण्यसौ गृहवासे व्य वस्थितः पूर्णेषु द्वादशसु संवत्सरेषु गृहान्निर्गतः प्रव्रजितश्चेति । ततोसौ सूत्रार्थनिष्पन्न एकाकिविहारेण विहरन् राजगृहाभिमुखं प्रस्थितस्तदंतराले च तद्रक्षणार्थं या नि प्राक् पित्रा निरूपितानि पंचराजपुत्रशतानि तस्मिन्नश्वे नष्टे राजनयाद्वैलक्ष्याच्च न रा जांतिकं जग्मुस्तत्राटवीदुर्गेण चौर्येण वृत्तिं कल्पितवंतस्तैश्चासौ दृष्टः प्रत्यनिज्ञातश्च ते च तेन पृष्टाः किमिति नवद्भिरेवंनूतं कर्माश्रितं ? तैश्च सर्वं राजनयादिकं कथितमार्द्रककु मारवचनाच्च संबुद्धाः प्रव्रजिताश्च । तथा राजगृहनगरप्रवेशे गोशालकोहस्तितापसाः ब्रा ह्मणाश्च वादे पराजिताः । तथार्द्रककुमारदर्शनादेव हस्ती बंधनाद्विमुक्तस्तेच हस्तिताप सादयश्चार्द्रककुमारधर्मकथाक्षिप्ताजिनवीरसमवसरणे निष्क्रांताः। राज्ञा च विदितवृत्तांत त्वेन महाकुतूहलापूरितहृदयेन पृष्टोनगवान् कथं त्वद्दर्शनतोहस्ती निरर्गलः संवृत्तइति महान् नगवतः प्रनावइत्येवमनिहितः सन्नार्द्रककुमारोब्रवीन्नवमगाथयोत्तरं ॥" ण डुक्करं वारणपासमोयणं,गयस्स मत्तस्स वणंमिरायं ॥ जहा उवत्ता वलिएण तंतुणा, सुडुक्करंमे प डिहाइमोयणं ॥१७॥ (णडुक्करमित्यादि) न डुष्करमेतन्नरपाशैर्बद्धमत्तवारणस्य विमोचनं वनेराजन्नेतत्तु मे प्रतिनाति डुष्करं यच्च तत्रावलितेन तंतुना बद्धस्य मम प्रतिमोचनमिति। स्नेहतंतवोहि जंतूनां डुरुच्छेदानवंतीति नावः । गतमार्द्रककथानकं ॥

नामनिष्पन्ननिक्षेपश्च । तदनंतरं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं । तच्चे दं।(पुराकडमित्यादि)यथा च गोशालकेन सार्द्धं वादोनूदार्द्रककुमारस्य तथानेनाध्ययनेनोप

दिश्यते तंच राजपुत्रकमार्द्रककुमारं प्रत्येकबुद्धं नगवत्समीपमागच्छंतं गोशालकोऽब्रवीद्यथा हे आर्द्रक! यदहं ब्रवीमि तच्छृणु। पुरा पूर्वं यदनेन नगवत्तीर्थकृता कृतं तच्चेदमिति दर्शयति। एकांते जनरहिते प्रदेशे चरितुं शीलमस्येत्येकांतचारी तथा श्राम्यतीति श्रमणः पुरासीत्तप श्चरणोद्युक्तः सांप्रतं तूग्रैस्तपश्चरणविशेषैर्निर्नर्त्सितोमां विहाय देवादिमध्यगतोसौ धर्मं किल कथयति तथा निक्षून् बहूनुपनीय प्रनूतशिष्यपरिकरं कृत्वा नवद्विधानां मुग्धजनानामिदा नीं पृथक् पृथग्विस्तरेणाचष्टे धर्ममिति शेषः ॥१॥ पुनरपि गोशालकएव (साजीविए) इ त्याद्याह येयं बहुजनमध्यगतेन धर्मदेशना युष्मद्गुरुणारब्धा सा जीविका प्रकर्षेण स्थापि ता प्रस्थापिता एकाकी विहरंल्लौकिकैः परिनूयतइतिमत्वा लोकपंक्तिनिमित्तं महान् परिकरःकृतः। तथाचोच्यते। "बत्रं, बात्रं, पात्रं, वस्त्रं यष्टिं च चर्चयति निक्षुः॥ वेषेण प रिकरेणच, कियतापि विना न निक्षापि" ॥ तदनेन दंनप्रदानेन जीविकार्थमिदमारब्धं। किंनूतेनास्थिरेण पूर्वं ह्ययं मया सार्द्धमेकाक्यंतप्रांताशनेन शून्यारामदेवकुलादौ वृ त्तिं कल्पितवान्न च तथानूतमनुष्ठानं सिकताकवलवन्निरास्वादं यावज्जीवं कर्तुमल मतोमां विहायायं बहून् शिष्यान् प्रतार्यैवंनूतेन स्फुटाटोपेन विहरतीत्यतः कर्तव्ये स्थिरश्चपलः पूर्वचर्यापरित्यागेनापरकल्पसमाश्रयात् । एतदेव दर्शयति। सन्नायां ग तः सदेवमनुजपर्षदि व्यवस्थितो (गणउत्ति) गणशोबहुशोऽनेकशइति यावत् नि क्षूणां मध्ये गतोव्यवस्थितआचक्षाणोबहुजनेन्योहितोबहुजन्योर्थस्तमर्थं बहुजनहितं कथयन् विहरति एतच्चास्यानुष्ठानं पूर्वापरेण न संधत्ते। तथाहि। यदि सांप्रतीयं वृत्तं प्राकारत्रयं सिंहासनाशोकवृक्षनामंमलचामरादिकं मोक्षांगमनविष्यत्ततोया प्रा क्तन्येकचर्या क्लेशबहुला तेन कृता सा क्लेशाय केवलमस्येत्यथ कर्मनिर्जरणहेतुका पर मार्थनूता ततः सांप्रतावस्था परप्रतारकत्वादंनकल्पेत्यतः पूर्वोत्तरयोरनुष्ठानयोर्मौ नव्रतिकधर्मदेशनारूपयोः परस्परतोविरोधइति ॥ २ ॥

एगंतमेवं अडुवा विइण्हिं, दोवग्गमन्नं न समेति जम्हा ॥ पु
विं च इण्हिं च अणागतं वा, एगंतमेवं पडिसंधयाति ॥ ३ ॥ स
मिच्च लोगं तसथावराणं, खेमंकरे समणे माहणे वा ॥ आइ
क्खमाणोवि सहस्समज्झे, एगंतयं सारयति तहच्चे ॥ ४ ॥

अर्थ—वली गोशालक कहेले. के, अहो आर्द्रकुमार! (एगंतमेवं के०) जो एकांत विचरवुंज रूडुंले, एवुं जाणीनें ताहरे गुरुयें आदर्युं हतुं, तो सदैव तेनोज अंगीका र करवो हतो, (अडुवाविइण्हिं के०) अथवा हमणां अनेक साधुना परिवारें परव

थयो थको जो साधुपदनुं मानछे तो, प्रथम थकीज ए आचार केम न आदर्यो ? माटें (दोवग्गमन्नंनसमेतिजम्हा के०) ए बेहु आचार, गंयानी अनें तडकानी पेठें मांहो मां हे मलता नथी, तथा जो मौनपणानें विषे धर्मछे तो ए, धर्मदेशना शा माटें आपे छे ? अथवा जो धर्मदेशनानें विषेज धर्मछे, तो मौनव्रत आदरवानुं शुं कारण हतुं? ते कारण माटें ताहरो गुरु अत्यंत विरुद्धाचारी देखायछे.एवां वचन गोशालकनां सांभली नें हवे गाथाना उत्तरार्द्धवडे आर्द्रकुमार, ते गोशालकनें उत्तर आपेछे. (पुव्विंचइण्हिंव अणागतंवा के०) पूर्व कालें जे मौनपणुं अनें एकचर्या, श्री महावीरदेवें आदरी हती ते छद्मस्थ पणाथकी घातियां चार कर्मनो क्षय करवानें अर्थें जाणवी; अनें हमणां जे अनेक लोक आगल धर्मनुं प्रकाशवुं करेछे, ते वली अघातियां चार कर्मनी शुभ प्र कृति खपाववानें अर्थें जाणवुं. ए कारणें प्रथम तथा हमणां तथा अनागत एटले आ गमिककालें राग द्वेषनें अभावें, एकत्वपणुंज संभावियें छैयें. (एगंतमेवंपडिसंधयाति के०) तेथी एना प्रथमना अनें पाछलना आचारनो कांइ भेद नथी, माटें जे ताहरा मनथी पूर्वापर आचारनो विरोध जणायछे ते खोटो जाणवो, तुं जोतो खरो ! के, एना धर्मोपदेशें करी केटला एक प्राणीउनें उपकार थायछे के,नथी थतो? ॥३॥ तेहिज क हेछे (समिच्चलोगंतसथावराणं के०) लोक जे षट् द्रव्यात्मक, तेनें समिच्च एटले केवल ज्ञानें करी जाणीनें, त्रस अनें स्थावर जे प्राणीउछे, एतावता चोराशी लक्ष जीवा योनि छे तेनें, (खेमंकरे के०) क्षेमना करनार, तथा (समणे के०) श्रमण एटले बार भेदें तपना करनार, तथा (माहणेवा के०)कोइ जीवनें म हणो एवो जेनो उद्देशछे ते माहण अथवा ब्राह्मण एवा जे श्री महावीर देव, ते प्राणीउना हितनें अर्थें (आइक्कमाणोवि सहस्समज्झे के०) रागद्वेषरहित धर्म, मनुष्यना सहस्रमध्यें प्रकाशता छता (एगंतयंसा रयतितहच्चे के०) तेमज पूर्वनी पेठें एकांत पणुंज साधेछे. एनी पूर्वनी अवस्थामां अनें हमणांनी अवस्थामां कांइ पण अंतर नथी,तथा अर्च्चा एटले शुक्ल ध्यानरूप जे लेश्या, ते छे जेनें एवा, तथा अशोकादि अष्ट महाप्रातिहार्य तेणें युक्तछे तो पण, अहंकार नथी, तथा शरीर संस्कारभणी यत्न पण करता नथी. ए कारण माटें ते भगवंत अनेक लोकें परवस्या थका पण, राग द्वेषना अभावथकी एकाकीज जाणवा इत्यर्थः ॥ ४ ॥

॥ दीपिका-(एगंतमेवमित्यादि) यद्येकांतचारित्रमेव शोभनं पूर्वमाश्रितत्वात्ततः सर्वदा निरपेक्षैस्तदेव कर्तव्यं अथ चेदं सांप्रतं परिकरबहुत्वं श्रेयस्तदा पूर्वं तदेव कार्यं द्वे अप्येते छायातपवदत्यंतं विरोधिनी वृत्ते नैकत्र समवायं गछतस्तथा यदि मौनेन धर्मस्त तः किमियं महता प्रबंधेन धर्मदेशनाऽथानयैव धर्मस्ततः किमिति पूर्वं मौनव्रतमने

नालजाप यस्मादेवं तस्मात्पूर्वापरविरोधः। एवं गोशालकेनोक्ते आर्द्रककुमारः श्लोकपश्चार्द्धेनोत्तरदानायाह। पूर्वं यदेकत्वं मौनव्रतिकत्वं च नगवतः तच्छद्मस्थत्वाद् घातिकर्मचतुष्टयक्षयार्थं सांप्रतं बहुपरिवारस्य यद्धर्मदेशकत्वं तच्छेपकर्मक्षयाय तीर्थकृन्नाम कर्म वेदनार्थंच ततः पूर्वमिदानीमनागतेच काले रागद्वेषरहितत्वादेकत्वनावनया एकत्वमेव धर्मं कथयन् प्रतिसंदधाति न तस्य पूर्वापरविरोधोस्ति आशंसारहितत्वात् ॥ ३ ॥ लानार्थं देशनां करोतीत्याह। समेत्य लोकं यथावस्थितं ज्ञात्वा त्रसस्थावराणां क्षेमंकरोरक्षकः श्रमणो द्वादशधा तपःप्रवृत्तः माहणत्ति प्रवृत्तिर्यस्य स माहनोब्राह्मणोवा समतया धर्ममाचक्षाणोपि मौनी च वाक्संयतएव तथा सहस्राणां मध्ये स्थितोपि एकांतमेव सारयति साधयति तस्मात्तथार्चः तथैव प्राग्वदर्चा लेश्या यस्य स तथार्चः। यदिवार्चा शरीरं तच्च प्राग्वद्यस्य स तथार्चस्तथाह्यशोकाद्यष्टप्रातिहार्योपेतोपि नोत्सेकं याति नापि शरीरसंस्काराय यत्नं विदधाति सहि नगवानात्यंतिकप्रहाणादेकाकी जनपरिवृतोप्येकाकी न तस्य तयोरवस्थयोः कश्चिद्विशेषोस्ति रागद्वेषमुक्तत्वात्पूर्वं पश्चाच्च तुल्याशयइत्यर्थः। यदुक्तं। "रागद्वेषौ विनिर्जित्य, किमरण्ये करिष्यसि ॥ अथ नो निर्जितावेतौ, किमरण्ये करिष्यसी"ति ॥ ४ ॥

॥ टीका—अपिच (एगंतमित्यादि) यद्येकांतचारित्रमेव शोननं पूर्वमाश्रितत्वात्ततः सर्वदान्यनिरपेक्षैस्तदेव कर्तव्यमथचेदं सांप्रतं महापरिवारवृतं साधु मन्यसे ततस्तदेवादावप्याचरणीयमासीदपिच द्वे अप्येते छायातपवदत्यंतविरोधिनी वृत्ते नैकत्र समवायं गच्छतस्तथा यदि मौनेन धर्मस्ततः किमियं महता प्रबंधेन धर्मदेशनाऽथानयैव धर्मस्ततः किमिति पूर्वं मौनव्रतमालजाप यस्मादेवं तस्मात्पूर्वोत्तरव्याहतिः। तदेवं गोशालकेन पर्यनुयुक्तआर्द्रककुमारः श्लोकपश्चार्द्धेनोत्तरदानायाह। पूर्वं पूर्वस्मिन्काले यन्मौनव्रतिकत्वं या चैकचर्या तच्छद्मस्थत्वाद् घातिकर्मचतुष्टयक्षयार्थं। सांप्रतं यन्महाजनपरिवृतस्य धर्मदेशनाविधानं तत्प्राग्बद्धनवोपग्राहिकर्मचतुष्टयक्षपणोद्यतस्य विशेषतस्तीर्थकरनाम्नोवेदनार्थमपरासां चोच्चैर्गोत्रशुनायुर्नामादीनां शुनप्रकृतीनामिति। यदिवा पूर्वं सांप्रतमनागते च काले रागद्वेषरहितत्वादेकत्वनावनानतिक्रमणाच्चैकत्वमेवानुपचरितं नगवानशेषजनहितं धर्मं कथयन् प्रतिसंदधाति न तस्य पूर्वोत्तरयोरवस्थयोराशंसारहितत्वाद्भेदोऽस्त्यतोयदुच्यते नवता पूर्वोत्तरयोरवस्थयोरसांगत्यं तत् प्लवतइति ॥ ३ ॥ एतद्धर्मदेशनया प्राणिनां कश्चिदुपकारोनवत्युत नेति? नवतीत्याह। (समिच्चलोयमित्यादि) सम्यग्यथावस्थितं लोकं षड्द्रव्यात्मकं मत्वावगम्य केवलालोकेन, परिच्छिद्य त्रस्यंतीति त्रसास्त्रसनामकर्मोदयाद्वींद्रियादयस्तथा तिष्ठंतीति स्थावराः स्थावरनामकर्मोदयात्स्थावराः पृथिव्यादयस्तेषामुनयेषामपि जंतूनां क्षेमं शांतिः रक्षा तत्करणशीलः क्षेमंक

रः श्राम्यतीति श्रमणो द्वादशप्रकारतपोनिष्टप्तदेहस्तथा माहणत्ति प्रवृत्तिर्यस्यासौ माहनो ब्राह्मणोवा स एवंभूतोनिर्ममोरागद्वेषरहितः प्राणिहितार्थं न लाभपूजाख्यात्यर्थं धर्ममा चक्षाणोपि प्राग्वत् छद्मस्थावस्थायां मौनव्रतिकइव वाक्संयतः। उत्पन्नदिव्यज्ञानत्वाद्भाषा गुणदोषविवेकज्ञतया भाषणेनैव गुणावाप्तेरनुत्पन्नदिव्यज्ञानस्य तु मौनव्रतिकत्वेनेति तथा देवासुरनरतिर्यक्सहस्रमध्येऽपि व्यवस्थितः पंकाधारपंकजवत्तद्दोषव्यासंगाभावान्ममत्व विरहादाशंसादोषविकलत्वादेकांतमेवासौ सारयति प्रख्यातिं नयति साधयतीति याव त्। ननु चैकाकिपरिकरोपेतावस्थयोरस्ति विशेषः प्रत्येकमेवोपलभ्यमानत्वात्तत्स्य मस्ति विशेषोबाह्यतोन त्वांतरतोपि दर्शयति । तथा प्राग्वदर्चा लेश्या शुक्लध्याना ख्या यस्य स तथार्चः । यदिवार्चा शरीरं तच्च प्राग्वद्यस्य सतथार्चस्तथाह्यसावशोका द्यष्टप्रातिहार्योपेतोपि नोत्सेकं याति नापि शरीरं संस्कारायत्तं विदधाति सहि भगवाना त्यंतिकरागद्वेषप्रहाणादेकाक्यपि जनपरिवृतोप्येकाकी न तस्य तयोरवस्थयोः कश्चि द्विशेषोस्ति । तथाचोक्तं। "रागद्वेषौ विनिर्जित्य,किमरण्ये करिष्यसि । अथ नो निर्जितावे तौ, किमरण्ये करिष्यसि" ॥ इत्यतोबाह्यतनं गमनांतरमेव कषायजयादिकं प्रधानं कार णमिति स्थितं ॥ ४ ॥

धम्मं कहं तस्सउ णत्थि दोसो, खंतस्स दंतस्स जितिंदिय
स्स ॥ भासायदोसेय विवज्जगस्स, गुणेयभासाय णिसेवगस्स
॥ ५ ॥ महव्वए पंच अणुव्वएय, तहेव पंचासव संवरेय ॥ विरतिं
इह सामणियंमि पन्ने, लवावसक्की समणे त्तिबेमि ॥ ६ ॥

अर्थ—हवे राग द्वेष विना धर्म कहेतां थकां कोइ प्रकारनो दोष नथी, एवो भाव दे खाडेछे. (धम्मंकहंतस्सउणत्थिदोसो के०) ते भगवंत, समस्त लोकनो उद्धार करवानें प्रवर्त्तमान छता, धर्मदेशना करेछे, तेथी तेनें दोष नथी, ते भगवंत केवाछे तो के, (खं तस्सदंतस्सजितिंदियस्स के०) क्षमावंत, दमितेंद्रिय, एटले इंद्रियना दमनहार,वली जि तेंद्रिय, (भासायदोसेयविवज्जगस्स के०) तथा भाषाना दोष टालनार, अनें (गुणेयभा सायणिसेवगस्स के०) भाषाना गुणना सेवनार, एवा भगवंतें बोलतां थकां, पण तेउनुं मौनव्रत पणुंज जाणवुं ॥ ५ ॥ हवे श्री महावीर भगवंत, केवो धर्म कहे, ते कहेछे. (महव्वएपंचअणुव्वएय के०) पांच महाव्रत जे प्राणातिपातविरमणादिक साधुनो धर्म छे, ते कहे, तथा श्रावक उद्देशीनें स्थूलप्राणातिपात विरमणादिक, पांच अणुव्रत कहे. (तहेव के०), तेमज (पंचासव के०), पांच आश्रव ते कर्मनें आववानां स्थानकछे,ते (तहेव के०). तेमज

कहे, तथा (संवरेय के०) पांच संवर ते सत्तरभेद युक्त संवर ते कहे, (विरतिंइह के०) पडी विरतिनो उपदेश ते संवरना थरनारने कहे, वली इह एटले आं प्रवचनने विषे (सामणियं मिपन्ने के०) संपूर्ण संयमने विषे मूलगुण,ते पांच महाव्रतरूप तथा उत्तरगुण,ते संवर विरतिरूप, ते प्रज्ञावंत एवा, स्वामी कहे. वली ते केवाछे, तोके, (लवावसक्की के०) कर्मना टालनार, तथा (समणेत्तिबेमि के०) श्रमण एटले तपस्वी, एवा श्री महावीर देव ते लोकना हितने अर्थे धर्म कहेता थका आचारवंतज जाणवा. हुं एम कहुंछुं.॥६॥

॥ दीपिका—क्षांतस्याक्रोधस्य दांतस्य मानरहितस्य जितेंद्रियस्य निर्लोभस्य लोभत्यागान्निर्मायस्येत्यपि द्रष्टव्यं । भाषादोषाअसत्यसत्यामृपाकर्कशाऽसभ्यशब्दोच्चारणादयः तद्वर्जकस्य भाषागुणाहितमितदेशकालासंदिग्धभाषणादयः तन्निषेधकस्य सतोधर्मं कथयतोपि नास्ति दोषः । छद्मस्य हि प्रायोमौनमेव श्रेयः । केवलिनस्तु भाषणमपि गुणायेति ॥५॥ कीदृशं धर्मं वक्तीत्याह । पंचमहाव्रतानि साधूनां पंचगुणव्रतानि श्राद्धानां प्रज्ञापितवान् तथैव पंचाश्रवान् प्राणातिपातादिरूपान् तत्संवरं च सप्तदशप्रकारं संयमं विरतिं च कथितवान् इह शासने श्रामण्यं संपूर्णसंयमस्तस्मिन्कर्तव्ये पूर्णकृत्स्ने मूलोत्तरगुणान् पूर्वोक्तान् कथितवान् । किंभूतोऽसौ लवं कर्म तस्मा(दवसक्कइति)अवसर्प्पणशीलोऽवसर्प्पी श्रमणइति । अथ गोशालकोवक्ति (बेमित्ति) यदहं ब्रवीमि हे आर्द्रक ! तत्त्वं शृणु॥६॥

॥ टीका—अपगतरागद्वेषस्य प्रभाषमाणस्यापि दोषाभावं दर्शयितुमाह । (धम्मंकहंतस्से त्यादि) तस्य भगवतोपगतघनघातिकलंकस्योत्पन्नसकलपदार्थाविर्भाविज्ञानस्य जगदभ्युद्धरणप्रवृत्तस्यैकांतपरहितप्रवृत्तस्य स्वकार्यनिरपेक्षस्य धर्मं कथयतोपि तुशब्दस्यापिशब्दार्थत्वान्नास्ति कश्चिद्दोषः। किंभूतस्येत्याह। क्षांतिसंपन्नस्यानेन क्रोधनिरासमाह । तथा दांतस्योपशांतस्यानेन मानव्युदासं। तथा जितानि स्वविषयप्रवृत्तिनिषेधनेंद्रियाणि येन स जितेंद्रियोऽनेन तु लोभनिरासमाचष्टे मायायास्तु लोभनिरासादेव निरासोद्रष्टव्यस्तन्मूलत्वात्तस्य भाषादोषाअसत्यसत्यामृषकर्कशासभ्यशब्दोच्चारणादयस्तद्विवर्जकस्य तत्परिहर्तुस्तथा भाषायाये गुणाहितमितदेशकालासंदिग्धभाषणादयस्तन्निषेधकस्य सतोब्रुवतोपि नास्ति दोषः छद्मस्थस्य हि बाहुल्येन मौनव्रतमेव श्रेयः समुत्पन्नकेवलस्य तु भाषणमपि गुणाय्येति ॥ ५ ॥ किंभूतं धर्ममसौ कथयतीत्याह । (महव्वएपंचेत्यादि) महांति च तानि व्रतानि प्राणातिपातविरमणादीनि तानि च साधूनां प्रज्ञापितवान् पंचापि तदपेक्षायाणूनि लघूनि व्रतानि पंचैव तानि श्रावकानुद्दिश्य प्रज्ञापितवांस्तथैव पंचाश्रवान् प्राणातिपातादिरूपान् कर्मणः प्रवेशद्वारभूतांस्तत्संवरं च सप्तदशप्रकारं संयमं प्रतिपादितवान् संवरवतो

हि विरतिर्नैवतीत्यतोविरतिं च प्रतिपादितवांश्चशब्दात्तत्फलजूतौ निर्जरामोक्षौ च इहास्मिन्प्रवचने लोके वा श्रमणनावः श्रामण्यं संपूर्णः संयमस्तस्मिन् वा विधेये मूलगुणान् महाव्रताणुव्रतरूपांस्तथोत्तरगुणान् महाव्रताणुव्रतरूपान् कृत्स्ने संयमे विधातव्ये प्राज्ञइति क्वचित्पाठः। प्रज्ञाने तत्प्रतिपादितवानिति । किंजूतोऽसौ लवं कर्म तस्मा(दवसक्कइति) अवसर्प्पणशीलोऽवसर्प्पी श्रम्यतीति श्रमणः तपश्चरणयुक्तइत्येतदहं ब्रवीमि स्वयमेव च जगवान्पंचमहाव्रतोपपन्नइंद्रियनोइंद्रियगुप्तोविरतश्चासौ लवावसर्प्पीसन् स्वतोन्येषामपि तथाजूतमुपदेशं दत्तवा नित्येतद् ब्रवीमीति। यदि वार्द्रककुमारवचनमाकर्ण्यांऽसौ गोशालकस्तत्प्रतिपक्षजूतं वक्तुकामइदमाह । इत्येतद्वक्ष्यमाणं यदहं ब्रवीमि तच्छृणु! त्वमिति ॥ ६ ॥

सीउदगं सेवउ बीयकायं, आहायकम्मं तह इत्थियाउ ॥ एगंत
चारिस्सिह अम्हधम्मे, तवस्सिणो णाभिसमेति पावं ॥ ७ ॥
सीतोदगं वा तह बीयकायं, आहायकम्मं तह इत्थियाउ॥एयाइं
जाणं पडिसेवमाणा, अगारिणो अस्समणा नवंति ॥ ८ ॥

अर्थ—हवे एवुं आर्द्रकुमारनुं पूर्वोक्त वचन सांजलीनें,फरी गोशालक कहेछे के,अहो आर्द्रकुमार! तें एम कह्युं जे ए परहित नणी प्रवर्त्तिनें धर्म कहेवाथकी दोष नथी, तथा लोक परिवारनो पण दोष नथी,तो हुं कहुं बुं ते पण सांजल. के,जे अमारा सिद्धांतमां कह्युंछे तेनो पण दोष नथी. ते शुं कह्युंछे ! ते कहेछे. (सीउदगंसेवउबीयकायं के०) सचितपाणी तेनें सेवो, एटले पान करो,तथा बीजकायनो उपनोग करो,(आहायकम्मं के०) तथा आधाकर्मी आहार ल्यो, (तह के०) तेमज(इत्थियाउ के०) स्त्रीनो प्रसंग पण करो,एटले पोताना अनें परना उपकारनु कारण, अनें धर्मनुं आधार एवुं जे शरीर तेनें अर्थें जे कांइ करियें,तेमां दोष नथी केमके,(एगंतचारिस्सिहअम्हधम्मे के०) अमारा धर्मनें विषे प्रवर्त्तमान तथा आराम उद्यानादिकनें विषे एकाकी विचरतो एवो, (तवस्सिणोणाभिसमेतिपावं के०) कोइ एक तपस्वी तेनें पाप लागे नहीं. जे कारण माटें यद्यपि शीतोदकादिक कांइक कर्मबंधनुं कारणछे तथापि तेनो, उपनोग, धर्माधारजूत एवुं जे शरीर तेनें कारणें करतां थकां कांइ पण दोष नथी. इति नावः॥ ७ ॥ हवे वली आर्द्रकुमार कहेछे के, अहो गोशालक! शीतोदक अनें बीजकायनो उपनोग करवो, तथा आधाकर्मी आहार लेवो, अनें स्त्रीयादिकनो प्रसंग करवो, इत्यादिक बोल जे तें पूर्वें कह्या, तेना पडिसेवनारा तो आगारी एटले गृहस्थज कहेवाय, परंतु एवा श्रमण एटले साधु न होय. ॥ ८॥

॥दीपिका—त्वयेदमुक्तं यत्परार्थं प्रवृत्तस्याशोकादिप्रातिहार्यपरिग्रहः शिष्यादिपरिकरो धर्मदेशना च न दोषायेति यथा तथास्माकमप्येतन्न दोषाय यच्छीतोदकं सचितोदकं तत्सेवनं करोतु । बीजकायोपजोगमाधाकर्माश्रयणं स्त्रीप्रसंगं च करोतु। अनेन स्वपरोपकारः स्यादित्याह (एगंतत्ति) अस्मद्धर्मे प्रवृत्तस्यैकांतचारिणः एकाकिविहारोद्यतस्य तपस्विनोनाजिसमेति न संबध्यते पापं। यद्यपि शीतोदकादीनि ईषत्कर्मबंधाय तथापि धर्माधारस्य शरीरस्य रक्षणाय क्रियमाणानि एकांतचारितपस्विनः कर्मबंधाय न जवंती त्यर्थः ॥ ७ ॥ अस्योत्तरमाह मुनिः। शीतोदकादीनि प्रतिसेवमानाअगारिणोगृहस्थास्ते जवंत्यश्रमणाश्चेति त्वं जानीहि । एतद्भोगे यदि श्रमणत्वं स्यात्तदा गृहस्थत्वं केन स्यादित्यर्थः ॥ ८ ॥

॥टीका—यथाप्रतिज्ञातमेवाह गोशालकः । (सीउदगमित्यादि) जगवतेद मुद्ग्राहितं परार्थं प्रवृत्तस्याशोकादिप्रातिहार्यपरिग्रहस्तथा शिक्षादिपरिकरोधर्मदेशनाच न दोषायेति । यथा तथास्माकमपि सिद्धांते यदेतद्वक्ष्यमाणं तन्न दोषायेति। शीतं च तदुदकं च शीतोदकमप्राशुकोदकं तत्सेवनं परिजोगं करोतु। तथा बीजकायोपजोगमाधाकर्माश्रयणं स्त्रीप्रसंगं च निदधात्वनेन च स्वपरोपकारः कृतोजवतीत्यस्मदीये धर्मे प्रवृत्तस्य एकांतचारिणआरामोद्यानादिष्वेकाकिविहारोद्यतस्य तपस्विनोनाजिसमेति न संबंधमुपयाति पापमशुजकर्मेति। इदमुक्तं जवत्येतानि शीतोदकादीनि यद्यपीषत्कर्मबंधाय तथापि धर्माधारं शरीरं प्रतिपालयतएकांतचारिणस्तपस्विनोबंधाय न जवंतीति ॥ ७ ॥ एतत्परिहर्तुकामआह । (सीतोदगमित्यादि) एतानि प्रागुपन्यस्तानि अप्राशुकोदकपरिजोगादीनि प्रतिसेवंतोऽगारिणोगृहस्थास्ते जवंत्यश्रमणाश्चाप्रव्रजिताश्चैवं जानीहि ॥ यतः अहिंसासत्यमस्तेयं, ब्रह्मचर्यमलुब्धता ॥ इत्येतच्छ्रमणलक्षणं चैषां शीतोदकबीजाधाकर्मस्त्रीपरिजोगवतां नास्तीत्यतस्ते नामाकाराभ्यां श्रमणान परमार्थानुष्ठानतइति ॥ ८ ॥

सियाय बीउदग इब्बियाउ, पडिसेवमाणा समणा जवंतु ॥
अगारिणोवि समणा जवंतु, सेवंतिउ तेवि तहप्पगारं ॥९॥ जे
यावि बीउदगजोत्ति जिरकू, जिरकं विहंजायति जीवियछी ॥
ते णातिसंजोगमविप्पहाय, कायोवगाणंतकरा जवंति॥ १० ॥

अर्थ—वली आर्द्रकुमार कहेबे के, अहो गोशालक! ताहारो मत एवोबे जे एकांतचारी, क्षुधा तृषादिकना सहन करनार,तपस्वी न होय ते केम न होय? तेहनो प्रत्युत्तर सांजल. (सियायबीउदगइब्बियाउ के०) ते जो कदाचित् सचित बीज, सचित पाणी, अनें स्त्री

यादिकनो प्रसंग तेना, (पडिसेवमाणासमणाभवंतु के०) परिभोगना करनार श्रमण होय तो, (अगारिणोविसमणाभवंतु के०) आगारी जे गृहस्थछे ते पण श्रमण थाय. केमके, (सेवंतिउतेवितहप्पगारं के०) आगारी पण सचित बीज उदकादिना सेवनारछे, वली धन नें अर्थें देशांतरनें विषे विचरे छे, वली एकला पण परदेशनें विषे घणा काल पर्यंतर रहेछे, तथा धनार्थी थका, क्षुधातृषादिकनां कष्ट पण सहन करेछे, मार्टे ए रीतें ते पण तथा प्रकारनां एटले श्रमण जेवां कष्ट सहन करेछे, ए कारणें ते गृहस्थनें पण तपस्वीज गणवा ॥ ए ॥ वली पण आर्द्रकुमार कहेछे के, (जेयाविबीउदगभोत्तिभिरकू के०) जे भिक्षुक बतां, बीज उदकना भोगवनार, इव्यब्रह्मचारी एवा, (भिरकंविहंजायतिजीवियही के०) आजीविका चलाववानें अर्थें भिक्षा मागे, (तेणातिसंजोगमविप्पहाय के०) ते ज्ञातिसंयोग डांमीनें (कायोवगाणंतकराभवंति के०) ब कायनामर्दन करनार एवा, पोतानी कायाना राखनार एवा, अनें कर्मना करनार ते, आगमिककालें अनंत संसारी थशे ॥ १० ॥

॥ दीपिका—आर्द्रकएव पुनराह । यदि बीजादिभोजिनः श्रमणाः स्युस्तदागारिणोपि श्रमणाः स्युः तेपि गृहस्थाअपि सेवंते तथाप्रकारमेकत्वविहारादिकं । गृहस्थानामपि पथिकत्वावस्थायामाशंसावतामपि निष्किंचनतयैकाकिविहारित्वं क्षुत्पिपासादिपीडनं भवत्येवेति ॥ए॥ ये चापिभिक्षवोबीजोदकभोजिनः संतोभिक्षां च यावंतोजीवितार्थिनस्ते ज्ञातिसंयोगं स्वजनसंबंधं प्रविहाय त्यक्त्वा कायात्कायेषु च उपगछंतीति कायोप भोगास्तडुपमर्दारंभप्रवृत्ताः संसारस्यानंतकराः स्युः संसारस्य अंतकरान भवंतीत्यर्थः ॥१०॥

॥ टीका—पुनरप्यार्द्रकएवैतद्दूषणायाह । (सियायेत्यादि) स्यादेतद्भवदीयं मतं यथा ते एकांतचारिणः क्षुत्पिपासादिप्रधानतपश्चरणपीडिताश्च तत्कथं ते न तपस्विनइत्येतदाशंक्यार्द्रक आह। यदि बीजाद्युपभोगिनोपि श्रमणाइत्येवं भवताभ्युपगम्यते एव तर्ह्यगारिणोपि गृहस्थाः श्रमणाभवंतु तेषामपि देशिकावस्थायामाशंसावतामपि निष्किंचनतयैकाकिविहारित्वं क्षुत्पिपासादिपीडनंच संभाव्यते। अतआह (सेवंतिउ) तुरवधारणे सेवंत्येव तेऽपिगृहस्थास्तथाप्रकारमेकाकिविहारादिकमिति ॥ ए ॥ पुनरप्यार्द्रकोबीजोदकादिभोजिनां दोषानिधित्सयाह । (जेयावीत्यादि) ये चापि भिक्षवः प्रव्रजिताबीजोदकभोजिनः संतोऽइव्यतोब्रह्मचारिणोपि भिक्षां वाऽटंति जीवितार्थिनस्ते तथाभूताज्ञातिसंयोगं स्वजनसंबंधं विप्रहाय त्यक्त्वा कायात्कायेषु चोपगछंतीति कायोपभोगास्तडुपमर्दकारंभाप्रवृत्तत्वात्संसारस्यानंतकराभवंतीति। इदमुक्तं। भवति केवलं स्त्रीपरिभोगएव तैः परित्यक्तो

ऽसावपि द्रव्यतः शेषेण तु बीजोदकाद्युपभोगेन गृहस्थकल्पाएव ते। यत्तु भिक्षाटनादिक मुपन्यस्तं तेषां तद्गृहस्थानामपि केषांचित्संभाव्यते नैतावता श्रमणभावइति ॥ १० ॥

इमं वयंतं तुमपाउ कुवं, पावाइणो गरिहसि सवएव ॥ पावाइ
णो पुढो किट्टयंता, सयंसयं दिठ्ठिकरेंति पाउ ॥११॥ ते अन्नम
न्नस्स विगरहमाणा, अक्खंतिउ समणामाहणाय ॥ सतोय अ
त्थी असतोय णत्थी, गरहामोदिठ्ठिं ण गरहामोकिंचि ॥ १२॥

अर्थ—हवे आर्द्रकुमारनां ए पूर्वोक्त वचन सांभलीनें गोशालक बीजो उत्तर आपवानें असमर्थ बतो, अन्य तीर्थिकोनें पोतानां सहायकारी करीनें सोल्लंठ एटले असार वचन बोलेछे के, अहो आर्द्रकुमार! (इमंवयंतंतुमपाउकुवं के०) तुं एवां पूर्वोक्त वचन कहेतो बतो (पावाइणोगरिहसिसवएव के०) सर्वे प्रावाडुक एटले अन्यदर्शनीउनें निंदेछेज, कारणके आ जगत् मांहे सर्वे दर्शनीउ बीज उदकादिकनुं सेवन करता थका, संसार उच्छेदवानें अर्थें प्रवर्त्तेछे,तो तेनें मानियें नहीं. एवुं वचन सांभलीनें आर्द्रकुमार ते गोशालकनें उत्तर आपवानें अर्थें बोल्यो, ते गाथाना उत्तरार्द्ध वडे कहेछे. के, अहो गोशालक! (पावाइणोपुढोकिट्टयंतासयंसयंदिठ्ठिकरेंतिपाउ के०) सर्वे प्रावाडुक एटले सर्वे दर्शनी पोत पोतानी जुदी जुदी दृष्टीयें जुदी जुदी मतियें पोतपोतानुं दर्शन प्रगट करेछे. जेम ते पोतपोताना दर्शननी स्थापना करेछे, तेम हुं पण अमारा दर्शननी प्रभावना करुछुं के, सचितपाणी,बीजादिकना परिभोगथकी निःकेवल कर्मनुं बंधनछे,पण एथकी संसारनो उच्छेद कांइ पण नथी. एवो अमारा दर्शननो मतछे, तो अंही निंदा पण शानी? अनें उत्कर्षपण शानो?॥११॥वली आर्द्रकुमार कहेछे. (तेअन्नमन्नस्सविगरहमाणा के०) ए समस्त परवादी परस्पर मांहोमांहे पारका दर्शननें निंदेछे, अनें पोताना दर्शनना गुण बोलेछे, (अक्खंतिउसमणामाहणाय के०) ते श्रमण ब्राह्मण सर्वे पोतपोताना पक्षनें समर्थेछे अनें परना पक्षनें दूषण आपेछे.तेज गाथाना उत्तरार्द्ध वडे देखाडेछे. (सतोयअत्थीअसतोयणत्थी के०) अमारा पक्षनें अंगीकार करवा थकी पुण्यछे, अनें स्वर्गापवर्गादिकनां सुख प्राप्त थायछे, अनें परना पक्षनें अंगीकार करवा थकी पुण्य नथी अनें पुण्यनें अभावें स्वर्गापवर्गादिकनी प्राप्ति पण नथी. ए रीतें सर्वे तीर्थिक मांहोमांहें व्याघातें प्रवर्त्तेछे. तेम अमे पण यथावस्थित तत्त्वनुं कथन करनारा बैयें तेणें करी, (गरहामोदिठ्ठिंणगरहामोकिंचि के०) एकांतवादीनें अमें कांइ गर्हता नथी, निंदता नथी, केमके, सत्य कहेतां थकां कांइ प्रवाद नथी. इत्यर्थः ॥ १२ ॥

॥ दीपिका—अथ गोशालोन्यतीर्थिकान्सहायान्कृत्वा सोल्लुंठमसारं प्राह। इमां पूर्वोक्तां वाचं त्वं प्राडुष्कुर्वन्सर्वान् प्रावाडुकान् गर्हसि ?। यतः सर्वेपि तीर्थिकाः बीजोदकादिभोजिनोपि भवोछेदाय प्रवर्त्तंते ते तुऽप्रावाडुकाः पृथक् पृथक् स्वीयां दृष्टिं प्रत्येकं स्वदर्शनं प्राडुष्कुर्वंति प्रकाशयंति। अथवा श्लोकपश्चार्द्ध आर्द्रमुनिराह। सर्वेपि प्रावाडुकाः स्वमतं प्रकाशयंति तथा वयमपि स्वदर्शनं प्राडुष्कुर्मोयद्बीजोदकादिभोगिनः कर्मबंधोन भवोछेदइति स्थिते कात्र परनिंदा कोवा आत्मोत्कर्षइति ॥ ११ ॥ ते प्रावाडुकाअन्योन्यस्य परदर्शनं गर्हमाणाः स्वदर्शनगुणानाख्यांति यथा स्वतइति स्वकीये पक्षे स्वमतेस्ति पुण्यं अस्वतः परमते नास्ति पुण्यमित्येवं तीर्थिकाः परस्परव्याघातेन प्रवृत्ताः वयं तु तत्वप्ररूपणादेकांतदृष्टिं गर्हामि नहि एकांतपक्षोयुक्तिसंगतइति वदंतो वयं न किंचिजर्हामः। काणांधादिवस्तुस्वरूपकथनेन परापवादः। तथाचोक्तं। "नेत्रैर्निरीक्ष्य बिलकंटककीटसर्प्यान्, सम्यग्यथा व्रजत तान्परिहृत्य सर्वान् ॥ कुज्ञानकुश्रुतिकुमार्गकुदृष्टिदोषान्, सम्यग्विचारयत कोत्र परापवाद"इति ॥ १२ ॥

॥ टीका—अधुनैतदाकर्ण्य गोशालकोपरमुत्तरं दातुमसमर्थोऽन्यतीर्थिकान्सहायान् विधाय सोल्लुंठमसारं वक्तुकामआह (इमंवयंत्वित्यादि) इमां पूर्वोक्तां वाचं। तुशब्दोविशेषणार्थः। त्वं प्राडुष्कुर्वन्प्रकाशयन्सर्वानपि प्रावाडुकान् गर्हसि जुगुप्ससे यस्मात्सर्वेऽपि तीर्थिकाबीजोदकादिभोजिनोपि संसारोछित्तये प्रवर्त्तंते तेतु भवता नाभ्युपगम्यंते तेतु प्रावाडुकाः पृथक् पृथक् स्वीयां स्वीयां दृष्टिं प्रत्येकं स्वदर्शनं कीर्तयंतः प्राडुष्कुर्वंति प्रकाशयंति। यदिवा श्लोकपश्चार्द्धमार्द्रककुमारआह। सर्वे प्रावाडुकायथावस्थितं स्वदर्शनं प्राडुष्कुर्वंति तत्प्रामाण्याच्च वयमपि स्वदर्शनाविर्भावनं कुर्मस्तद्यथा ह्यप्राशुकेन बीजोदकादिपरिभोगिनः कर्मबंधएव केवलं न संसारोछेदइतीदमस्मदीयं दर्शनमेवं व्यवस्थिते कात्र परनिंदा कोवात्मोत्कर्षइति ॥ ११ ॥ किंच। (तेअन्नमन्नस्सेत्यादि) तेप्रावाडुकाअन्योन्यस्य परस्परेणतु स्वदर्शनप्रतिष्ठाशया परदर्शनं गर्हमाणाः स्वदर्शनगुणानाचक्षते तुशब्दात्परस्परतोव्याहतमनुष्ठानं चानुतिष्ठंति ते च श्रमणानिर्ग्रंथादयो ब्राह्मणाद्विजातयः सर्वेप्येते स्वकं पक्षं समर्थयंति परकीयं च दूषयंति। तदेव पश्चार्द्धेन दर्शयति। स्वतइति। स्वकीये पक्षे स्वाभ्युपगमेस्ति पुण्यं तत्कार्यंच स्वर्गापवर्गादिकमस्त्यतः स्वपराभ्युपगमाच्च नास्ति पुण्यादिकमित्येवं सर्वेपि तीर्थिकाः परस्परव्याघातेन प्रवृत्ताअतोवयमपि यथावस्थिततत्वप्ररूपणतोयुक्तिविकलत्वादेकांतदृष्टिं गर्हामोजुगुप्सामोन ह्यसावेकांतोयथावस्थिततत्वाविर्भावकोभवतीत्येवं व्यवस्थिते तत्वस्वरूपं वयमाचक्षाणा न किंचिजर्हाम, काणकुंठोद्घट्टनादिप्रकारेण केवलं स्वपरस्वरूपाविर्भावनं कुर्मोन च व

स्तु स्वरूपाविर्भावने परापवादः। तथाचोक्तं। "नेत्रैर्निरीक्ष्य बिलकंटककीटसर्पान्, सम्यक् यथा व्रजत तान्परिह्त्य सर्वान् ॥ कुज्ञानकुश्रुतिकुमार्गकुदृष्टिदोषा,न्सम्यग्विचारयति कोत्र परापवाद"इत्यादि। यदिचैकांतवादिनामेवास्त्येव नास्त्येवाभ्युपगमवतामयं परस्प रगर्हारव्योदोषोनास्माकमनेकवादिनां सर्वस्यापि सदादेः कथंचिदभ्युपगमात्। एतदेव श्लो कपश्चार्द्धेन दर्शयति (स्वतइति) स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैरस्ति तथा (परतइति) परद्रव्या दिभिर्नास्तीत्येवं पराभ्युपगमं दूषयंतोगर्हामोऽन्यानेकांतवादिनस्तत्स्वरूपनिरूपणतस्तु रा गद्वेषविरहान्न किंचिद्गर्हामइति स्थितं ॥ १२ ॥

ण किंचि रूवेण निधारयामो, सदिद्विमग्गं तु करेमि पाउं ॥ म
ग्गे इमे किट्टिए आरिएहिं, अणुत्तरे सप्पुरिसेहिं अंजू
॥१३॥ उड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु,तसाय जे थावरजेयपाणा॥
भूयाहि संकाभि डुगुंबमा णा, णो गरहती बुसिमं किंचि लोए ॥१४॥

अर्थ–वली आर्द्रकुमार कहेछे के, अहो गोशालक ! अमें (णकिंचिरूवेणनिधारया मो के०) कोइ पण श्रमण ब्राह्मणनें रूवेण एटले डुगंछनिक एवा अंगोपांगनें उघाड वे, अथवा जातिना दोषनें अभिधारयामो एटले प्रगट करीनें निंदता नथी, किंतु ? (सदिद्विमग्गंतुकरेमिपाउं के०) स्वदृष्टिमार्ग एटले पोतानुं शासन प्रगट करियें छैयें, अथवा तेउना मार्गनुं स्वरूप कहियें छैयें. वली जे विधियें ते पोताना मार्गनी स्थिति कहेछे के, " ब्रह्मा लूनशिराः " इत्यादिक ते अमें पण सांजलियें छैयें, परंतु अमें कोइ नो अपवाद बोलता नथी. हवे आर्द्रकुमार, गाथाना उत्तरार्द्धवडे पोताना दर्शननुं स्व रूप कहेछे. (मग्गेइमेकिट्टिएआरिएहिं के०) ए मार्ग जे सम्यक् दर्शनादिकछे, ते आर्य एवा जे श्री सर्वज्ञदेव तेणें कह्यो.ते मार्ग केवोछे तोके,(अणुत्तरेसप्पुरिसेहिंअंजू के०) ए मार्ग अनुत्तर एटले एना सरखो बीजो कोइ पण मार्ग जगत् मांहे नथी, वली ते सर्वज्ञ के वाछे तोके सत्पुरुष चोत्रीश अतिशयें करी बिराजमान, एवाप्रधान पुरुष जगत् मांहे बीजा कोइ नथी, ते कारणें सत्पुरुष केवायछे, वली ए मार्ग केवोछे तोके, अंजू एटले सरल अकुटिल छे ॥१३॥ वली पण धर्मनुंज स्वरूप कहेछे.(उड्ढंअहेयंतिरियंदिसासु के०) ऊर्ध्व अधो अनें तिर्यक् ए समस्त दिशाउनें विषे एतावता चौदरज्ज्वात्मक लोक मांहे, (तसायजेथावरजेयपाणा के०) जे त्रस अनें स्थावर प्राणीउछे तेना पालनार, तथा (भूयाहिसंकाभिडुगुंबमाणा के०) प्राणघातनी शंकायें सावद्यानुष्ठाननेंडुगं छता, (णो गरहतीवुसिमंकिंचिलोए के०) एवा संयमवंत पुरुषो लोक मांहे जे छे, ते कोइनें गर्हे

एटले निंदे नहीं. माटें रागद्वेषरहित पणे यथातथ्य वस्तुनुं स्वरूप केहेतां थकां कांइ निंदा नथी. जो कदापि यथातथ्य वस्तुनुं स्वरूप केहेतां थकां निंदा होय तो, अग्नि उष्णछे, अनें उदक शीतलछे, विष खाधा थकी मरण नीपजे,इत्यादिक खरुं बोलवुं ते पण युक्त नथी! परंतु ए रीतें सत्य कहेवामां कांइ दोष नथी ॥ १४ ॥

॥ दीपिका—न किंचन श्रमणं ब्राह्मणं वा स्वरूपेणाभिधारयामोगर्हणबुध्धयाउद्घट्ट यामः । केवलं स्वदृष्टिमार्गं तदंगीकृतं दर्शनं प्राडुष्कुर्मः । तद्यथा । "ब्रह्मा लूनशिराह रिर्दृशि सरुग्व्यालुप्तशिश्नोहरः, सूर्योप्युल्लिखितोऽनलोप्यखिलभुक्सोमः कलंकांकितः ॥ स्वर्नाथोपि विसंस्थुलः खलु वपुःसंस्थैरुपस्थैः कृतः, सन्मार्गस्खलनाद्भवंति विपदः प्राय: प्रभूणामपि" । एतच्च तैरेव स्वागमे पठ्यते वयंतु श्रोतारः केवलमिति । मग्गेइमेत्ति । अयं मार्गः सम्यग्दर्शनादिकः कीर्त्तितआ यैः सर्वज्ञैः। किंभूतोमार्गोऽनुत्तरः प्रधानः । आ यैः किंभूतैः सत्पुरुषैः । मार्गः किंभूतोंजू प्रकटं ऋजुर्वा ॥१३॥ ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्च ये त्रसा येच स्थावराश्च प्राणिनस्तेषु भूताभिशंकया प्राणिविनाशशंकया सावद्यक्रियां जुगुप्स मानोगर्हन् नैवान्यं लोकं कंचन गर्हते निंदति (बुसिमं) संयमवान् । तदेवं रागद्वेषमुक्तस्य वस्तुस्वरूपकथने न काचिन्निंदा यथा उष्णोऽग्निः शीतलं जलं विषं मारणात्मकं भयंकरः सर्प्पः व्यथकः कंटकइत्यादि ॥ १४ ॥

॥टीका—एतदेव स्पष्टतरमाह । (नाकिंचिरूवेणेत्यादि) न कंचन श्रमणं ब्राह्मणं वा स्वरूपेण जुगुप्सितांगावयवोद्घट्टनेन जात्या तल्लिंगग्रहणोद्घट्टनेन वाऽभिधारयामोगर्ह णाबुध्ध्योद्घट्टयामः केवलं स्वदृष्टिमार्गं तदभ्युपगतं दर्शनं प्राडुष्कुर्मः प्रकाशयामः । तद्य था । "ब्रह्मा लूनशिराहरिर्दृशिसरुग्व्यालुप्तशिश्नोहरः, सूर्योप्युल्लिखितोऽनलोप्यखिलभु क्सोमः कलंकांकितः ॥ स्वर्नाथोपि विसंस्थुलः खलु वपुःसंस्थैरुपस्थैः कृतः, सन्मा र्गस्खलनाद्भवंति विपदः प्रायः प्रभूणामपी"त्यादि । एतच्च तैरेव स्वागमे पठ्यते । वयंतु श्रोतारः केवलमिति । आर्द्रककुमारएव परपक्षं दूषयित्वा स्वपक्षसाधनार्थं श्लोकपश्चा र्द्धेनाह । अयं मार्गः पंथाः सम्यग्दर्शनादिकः किर्त्तितोव्यावर्णितः । कैरा यैः सर्वज्ञैरस्त्या ज्यधर्मदूरवर्तिभिः । किंभूतोधर्मोनास्माडुत्तरः प्रधानोविद्यतइत्यनुत्तरः पूर्वापराव्याहतत्वा द्यथावस्थितजीवादिपदार्थस्वरूपनिरूपणाच्च । किंभूतैरा यैः संतश्च ते पुरुषाश्च सत्पुरुषास्तै श्चतुस्त्रिंशदतिशयोपेतैराविर्भूतः समस्तपदार्थाविर्भावकदिव्यज्ञानैः । किंभूतोमार्गोंऽजू व्यक्तः निर्दोषत्वात्प्रकटः ऋजुर्वा वक्रैकांतपरित्यागादकुटिलइति ॥१३॥ पुनरपि स्वसद्धर्म स्वरूपनिरूपणायाह । (उड्ढंअहेयमित्यादि) ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्ष्वेवं सर्वास्वपि दिक्षु प्रकारापे

ङ्या न्नावदिगपेक्ष्या वा तासु ये त्रसाये च स्थावराःप्राणिनः। चशब्दौ स्वगतानेकन्नेदसंसूच कौ। नूतं सङ्गूतं तथ्यं तत्रानिशंकया तथ्यनिर्णयेन प्राणातिपातादिकं पातकं जुगुप्समा नोगर्हमाणोयदिवा नूतानिशंकया सर्वसावद्यमनुष्ठानं जुगुप्समानोनैवापरलोकं कंचन गर्हति निंदति (बुसिमंति) संयमवानिति। तदेवं रागद्वेषवियुक्तस्य वस्तुस्वरूपाविर्नाव ने न कश्चिद्गर्हत्यथ तत्रापि गर्हा नवति नह्युष्णोग्निः शीतमुदकं विषं मारणात्मकमित्येव मादि किंचि वस्तुस्वरूपमाविर्नावनीयमिति ॥१४ ॥

आगंतगारे आरामगारे,समणेउ नीते ण उवेति वासं ॥ दरका
दुसंते बहवे मणुस्सा, ऊणातिरित्ताय लवालवाय ॥ १५ ॥
मेहाविणो सिक्खिय बुद्धिमंता, सुत्तेहिं अत्थेहिय णिच्छयन्ना ॥ पु
छिसुमाणे अणगार अन्ने, इति संकमाणो ण उवेति तत्र ॥१६॥

अर्थ–हवे गोशालकमतानुसारी त्रैराशिक बीजा प्रकारें करी फरी आर्द्रकुमार प्र त्यें कहेछे. के, अहो आर्द्रकुमार! ताहरो तीर्थंकर राग, द्वेष, अनें नय, तेणें करी सहित छे, ए कारण माटें ते बीहितो थको (आगंतगारे के०) शून्यघर धर्मशालादिक तथा (आरामगारे के०) उद्यानादिकनें विषे (समणेउनीते के०) श्रमण अनें माहण थ की बीहितो थको (णउवेतिवासं के०) वास करतो नथी, वली शा थकी बीहितो थको वास करतो नथी? ते कहेछे. (दरकादुसंते के०) दक्ष एटले माह्या, घणां शास्त्र ना जाणनार, पंमित, (बहवेमणुस्सा के०) एवा घणा पुरुषो ते पूर्वोक्त शून्य घरादिक स्थानकनें विषे आवे, माटें तेवा पुरुषोथकी बीहितो थको, तेवां स्थानकनें विषे ताह रो त्यां गुरु आवतो नथी पण, ते पुरुषो केवाछे तोके, (ऊणातिरित्ताय के०) तमारा तीर्थंकरथकी कोइ एक जात्यादिक गुणें करी ऊणाछे न्यूनछे,तथा कोइ एक अधिकछे, तो तेवानी साथें बोलतां कदाचित् हारी जाय तो मानम्लान थाय, ते कारणमाटें एवां स्थानक छांमीनें त्यागीनें देवादिकनी परषदामांहे एकांतें बेसेछे. वली ते पुरुषो केवाछे तोके, (लवालवाय के०) एकतो लव एटले अनेक विचित्र तर्कना बोलनार. तथा ए क अलव एटले मौनव्रती, अथवा मंत्रवादी छे के, जेनी आगल बोलतां वादीना मुख मांहेथी वचन पण निकले नही, ते कारण माटें तेनी बीकथकी ताहरा तीर्थंकरें आरा म उद्यानादिक मांहे निवास करवानो त्याग कस्योछे ॥ १५॥ वली गोशालक कहेछे के, (मेहाविणोसिक्खियबुद्धिमंता के०) मेधावी जे पंमितछे ते ग्रहण करवा, धारण करवानें सामर्थ्यवान् तथा आचार्यादिकनी पासेंथी शिखेला एवा उत्पातादिक चार प्रकारनी

बुद्धियें करी सहित, (सुत्तेहिंअत्थेहिंयणिच्छयन्ना के०) वली सूत्र अनें अर्थना निश्चयना करनार, (अणगारअन्ने के०) एवा कोइ एक अन्य अणगार होय ते (पुछिंसुमा णे के०) मुजनें कांइ सूत्रार्थ पूछे तेनो उत्तर महाराथकी अपाशे नहीं, तेथी महारुं मान भंग थशे, (इतिसंकमाणोणउवेतितत्थ के०) एवी वातोथी शंका पामतो थको ताहारो गुरु तेवा पूर्वोक्त स्थानकोनें विषे वास करतो नथी, ते कारण माटें तमारो मार्ग रुजु नथी ॥ १६ ॥

॥ दीपिका—एवं गोशालकमतानुसारी त्रैराशिकोनिराकृतोपि पुनराह। योभवतस्तीर्थक रः सरागद्वेषभययुक्तः। तथाहि। आगंतुकानां कार्पटिकादीनां अगारं आगंतागारं आरामेऽ गारं आरामागारं तत्रासौ श्रमणोभीतः सर्वं न वासमुपैति। किं तत्र भयमित्याह। दक्षाः पंडिताहुर्यस्माद्बहवः संति मनुष्याः। तद्भीतोसौ तत्र न याति। ऊनाः स्वतोहीनाअतिरि क्तावा जात्यादिना संति केचित् तैः पराजितस्य महान् कलाभ्रंशः स्यात्। ते नराः किंभूताः लपावाचालाघोषिततर्कदंभकाः तथाऽलपामौनव्रतिकागुटिकादिविद्यायुक्ताः यद्वशा द्वागे व न निस्सरति मुखात् यद्भयात्तेषु गृहेष्वसौ न यातीति ॥ १५ ॥ मेधाविनोग्रहणधा रणसमर्थाबुद्धिमंतः शिक्षिताः सूत्रेर्थेच निश्चयज्ञास्ते ईदृशाः सूत्रार्थविषयं प्रश्नमाका र्षुरनगाराएके इत्यसौ शंकमानोबिभ्यन्न तत्र तेषां मध्ये उपैति याति तथानार्यदेशे न धर्मं कथितवान् आर्येतु देशनां करोति तत्रापि न सर्वत्र किंतु? कुत्रचिदेवेति ततोसौ राग द्वेषाकुलोवीरः ॥ १६ ॥

॥ टीका—सएवं गोशालकमतानुसारी त्रैराशिकोनिराकृतोपि पुनरन्येन प्रकारेणाह। (आगंतागारेइत्यादि) सविप्रतिपन्नः सन्नार्द्रकमेवाह। योसौ भवत्संबधी तीर्थकरः सरा गद्वेषभययुक्तस्तथाह्यसावागंतुकानां कार्पटिकादीनामगारमागंतागारं तथाऽरामेऽगारमा रामागारं तत्रासौ श्रमणोभवत्तीर्थकरः। तुशब्दएवकारार्थे। भीतएवासौ तपध्वंसनभयात्त त्रागंतागारादौ न वासमुपैति न तत्रासनस्थानशयनादिकाः क्रियाः कुरुते। किं तत्र भयकार णमितिचेत्तदाह। दक्षाः निपुणाः प्रभूतशास्त्रविशारदाः। हुशब्दोयस्मादर्थे। यस्माद्बहवः संति मनुष्यास्तस्मादसौ तद्भीतोन वासं तत्र समुपैति न तत्र समातिष्ठते। किंभूताः न्यू नाः स्वतोऽवमाहीनाजात्याद्यतिरिक्तावा ताभ्यां पराजितस्य महांश्छायाभ्रंशइति। तानेव विशिनष्टि। लपंतीति लपावाचालाः घोषितानेकतर्कविचित्रदंभकास्तथा न लपामौनव्र तिकानिष्ठितयोगाः गुटिकादियुक्तावा यद्वशादभिधेयविषयावागेव न प्रवर्तते ततस्तद्भयेना सौ युष्मत्तीर्थकदागंतागाराद्यदौ नैव व्रजतीति ॥१५॥ पुनरपि गोशालकएवाह। (मेहावि

णोइत्यादि) मेधा विद्यते येषां ते मेधाविनोग्रहणधारणसमर्थास्तथाऽऽचार्यादेः समीपे शिक्षां ग्राहिताः शिक्षितास्तथोत्पत्तिक्यादिचतुर्विधबुद्ध्युपेताबुद्धिमंतस्तथासूत्रेपि सूत्रविषये विनिश्चयज्ञायथावस्थितसूत्रार्थवेदिनइत्यर्थः। ते चैवंभूताः सूत्रार्थविषयं मा प्रश्नमकार्षुरन्येऽनगाराएके केचनेत्येवमसौ शंकमानास्तेषां बिभ्यन्न तत्र तन्मध्ये उपैत्युपगच्छतीति ततश्च न ऋजुर्मार्गइति नययुक्तत्वात्तस्य तथा म्लेच्छविषयं गत्वा न कदाचिद्धर्मदेशनां च करोत्यार्यदेशेपि न सर्वत्रापितु कुत्रचिदेवेत्यतोविषमदृष्टित्वाद्रागद्वेषवत्यसाविति ॥ १६ ॥

णो कामकिच्चा णय बालकिच्चा, रायाभिउगेण कुउ भएणं ॥ वियागरेज्जा पसिणं नवावि, सकाम किच्चं णिहआरियाणं ॥ १७ ॥ गंता च तत्था अदुवा अगंता, वियागरेज्जा समिया सुपन्ने ॥ अणारिया दंसणाउ परित्ता, इति संकमाणा ण उवेति तत्थ ॥ १८ ॥

अर्थ—एम गोशालकें कहे थके, हवे आर्द्रकुमार गोशालक प्रत्यें कहेछे. के,(णोकामकिच्चा के०) अहो गोशालक! ते भगवंत कामकृत्य नथी. एनो अर्थ कहेछे. के, जे अविमास्यानो करनार होय ते पोतानें तथा परनें, निरर्थक कार्य करे. परंतु श्री भगवंत तो सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, परना हितना करनार, ते पोतानें तथा परनें निरुपकारी केम थाय? ते कारण माटें स्वामी निरर्थक कामना करनार नथी, (णयबालकिच्चा के०) तथा स्वामी बालकृत्य नथी, एटले बालकनी पेरें अणविचार्युं कार्य न करे, (रायाभिउगेण के०) तथा राजाभियोगें करी धर्मदेशनादिकनें विषे प्रवर्त्ते नहीं, (कुउभएणंवियागरेज्जा के०) तथा कोइना भयथकी प्रश्न वागरे एटले कहे नहीं, (पसिणंनवावि के०) उपकार न होय तो कहे नहीं, एटले प्रश्न वागरे नहीं. किं बहुना उपकार विना कोइनें कांइ न कहे. अनुत्तरविमानवासी देवतानें पण, मन थकीज पूछेला प्रश्ननो निर्णय करे.हवे जे ए श्री वीतरागनो धार्मिक थाय ते केवां कार्यो करे? एवी आशंका लावी तेनो प्रत्युत्तर चोथे पदें कहेछे (सकामकिच्चंणिहआरियाणं के०) पोताना कामनें अर्थें एतावता तीर्थंकरनामकर्म खपाववा भणी आर्य क्षेत्रमां आर्य लोकनें प्रतिबोधवा वास्ते धर्म देशना करे, परंतु बीजुं कोइ आत्मप्रशंसादिक कार्य न करे. ॥ १७ ॥ वली आर्द्रकुमार कहेछे के,(गंताचतत्था अडुवाअगंता के०) ते भगवंत परहितनें अर्थें त्यां जइनें, अथवा त्यां न जइनें, किंतु जेम जेम भव्य जीवोनो उपकार थाय, तेम तेम (वियागरेज्जा के०) धर्मदेशना आपे. जो उपकार थशे, एम जाणे तो त्यां जइनें पण धर्म देशना आपे अथवा ते उ

पकार न देखे तो पासें आवेलानें पण धर्म न कहे ए कारणमाटें तेनें रागद्वेषनी संभावना नथी, तथा (आसुंपन्न के०) सर्वज्ञ (समिया के०) समदृष्टि पणें एटले कोइ चक्रवर्त्ति आवी पूछे अथवा कोइ रांक आवी पूछे, अथवा अणपूछे थके पण, धर्म कहे. तथा स्वामी जे अनार्य देशनें विषे जता नथी तेनुं कारण हुं तुनें कहुं बु ते तुं सांभल. (अणारियादंसणाउपरित्ता के०) अनार्य लोक अनाचारी बता दर्शनथकी पण भ्रष्टछे (इतिसंकमाणाणउवेतितब के०) ए माटें शंकामान थका त्यां जता नथी, ते जीव श्री वीतरागनें देखी अवहेलनादिक कर्मोपार्जनकरी पोतानें अनंत संसारनीवृद्धि करशें, एवुं जाणीनें स्वामी त्यां पधारता नथी, परंतु तेमनी साथें परमेश्वरने द्वेषभाव कांइ पण नथी तेमाटें राग, द्वेष, अनें भय, तेमनें कांइ नथी. तथा अहो गोशालक! जे तुं एम कहेछे के, अनेक शास्त्रज्ञ पुरुषना प्रश्नथकी बीहितो थको तेनी सभामांहे रहेतो नथी. ए पण ताहारुं वचन बाल प्रलाप प्राय जाणीयें बैयें, केमके, जे कारण माटें ए महारा गुरु सर्वज्ञ भगवंत केवलीछे तो तेनुं समस्त परवादिउ मुख, पण जोई न शके, तो पछी वादनुं केवुंज शुं ? माटें महारा स्वामीनें परवादीनो पराभव कांइ नथी ए भगवंत केवलज्ञानें करी पोतानो परनो उपकार देखे त्यां जइनें धर्मोपदेश करें. इत्यर्थः ॥ १७ ॥

दीपिका—इति गोशालकेनोक्ते आर्द्रककुमारआह । सभगवानकामकृत्योन स्यात् अनिछाकारी न भवतीत्यर्थः । यः प्रेक्षापूर्वकारी न स्यात्सोनिष्टमपि स्वपरयोर्निरर्थकमपि कृत्यं कुर्वीत । भगवांस्तु सर्वज्ञः प्रेक्षापूर्वकारी कथं स्वपरयोर्निरुपकारकमेव कुर्यात् बालस्येव कृत्यं यस्य सबालकृत्योनासौ बालवदनालोचितकारी न राजाभियोगेनासौ देशनां करोति ततः कुतस्तस्य भयेन प्रवृत्तिः स्यादेवं सति केनचित्कृतं प्रश्नं व्यागृणीयाद्वदेद्यदि तस्योपकारः स्याडुपकारं विना नवा नैव वदेत् । अथवानुत्तरसुराणां मनःपर्यायज्ञानिनां च ड्व्यमनसैव तन्निर्णयादतोन वदेत् स्वकामकृत्येन स्वेछाकारितया तीर्थकृन्नामकर्मणः क्षपणाय न यथाकथंचिदतोसौ इहार्यक्षेत्रे आर्याणामुपकारसंभवे धर्मं वदेत् ॥ १७॥ गंताचत्ति) सभगवान् गत्वापि शिष्यसमीपं अथवा तत्राऽगत्वा यथा सत्वोपकारः स्यात्तथा व्यागृणीयात् देशनां कुर्यात् उपकारे सति गत्वापि कथयति असतितु स्थितोपि न वदति ततोन तेषां रागद्वेषसंभवः केवलमाशुप्रज्ञः सर्वज्ञः समतया वदेत् । "जहा पुसस्स कहइ तहा तुछस्स कहइ" इतिवचनाच्चक्रवर्तिद्रमकादिषु पृष्ठोपृष्टोवा तुल्यं व्यागृणीयादित्यर्थः । कथमनार्येषु सन यातीत्याह । (अणारियात्ति) अनार्यादर्शनतः सम्यक्त्वात्परीताभ्रष्टाइति । शंकमानोविचारयन् भगवान्न तत्रोपैति । तेहि वर्त्तमानसुखमेव

मन्यते न परलोकसुखमिति तान्नादर्शनात्तत्र न याति नगवान्नतु द्वेषबुद्ध्या। यदप्युक्तं। पंडितनरगुटिकादिविद्यासिद्धभयान्न तेषां स्थाने यातीत्येतत्प्रलापप्रायं। यतः। स वैरपि तीर्थिकैः सर्वज्ञस्य नगवतोमुखमप्यवलोकयितुं न शक्यते वादस्तु दूरापास्तएवेति॥१८॥

॥ टीका–एतद्गोशालकमतं परिहर्तुकामआर्द्रकआह। (णोकामकिच्चाइत्यादि) सहि नगवान्प्रेक्षापूर्वकारितया नाकामकृत्योनवति कमनं कामइच्छा न कामोऽकामस्तेन कृत्यं कर्तव्यं यस्यासावकामकृत्यः सएवंनूतोन नवत्यनिच्छाकारी न नवतीत्यर्थः। योह्युत्प्रेक्षा पूर्वकारितया वर्तते सोऽनिष्टमपि स्वपरात्मनोनिरर्थकमपि कृत्यं कुर्वीत नगवांस्तु सर्वज्ञः सर्वदर्शी परहितैकरतः कथं स्वपरात्मनोर्निरुपकारकमेवं कुर्यात्तथाच बालस्येव कृत्यं यस्य सबालकृत्योन चासौ बालवदनालोचितकारी न परानुरोधान्नापि गौरवाद्धर्मदेशादिकं विधत्तेऽपितु यदि कस्यचिद्भव्यसत्वस्योपकाराय तद्भाषितं नवति ततः प्रवृत्तिर्नवति नान्यथा तथा न राजानियोगेनासौ धर्मदेशनादौ कथंचित्प्रवर्तते ततः कुतस्तस्य नयेन प्रवृत्तिः स्यादित्येवं व्यवस्थिते केनचित्कचित्संशयकृतं प्रश्नं व्यागृणीयाद्यदि तस्योपकारोनवत्युपकारमंतरेण नच नैव व्यागृणीयाद्यदिवाऽनुत्तरसुराणां मनःपर्यायज्ञानिनांच द्रव्यमनसैव तन्निर्णयसंनवादतोन व्यागृणीयादित्युच्यते। यद्यप्युच्यते नवता यदि वीतरागोऽसौ किमिति धर्मकथां करोतीति चेदित्याशंक्याह। स्वकामकृत्ये न स्वेच्छाचारिकारितयाऽसावपि तीर्थकृन्नामकर्मणः क्षपणाय न यथाकथंचिदतोऽसावग्लानइहास्मिन्संसारे आर्यक्षेत्रे चोपकारयोग्यआर्याणां हि सर्वहेयधर्मदूरवर्तिनां तदुपकाराधर्मदेशनां व्यागृणीयादसाविति॥१७॥ किंचान्यत्। (गंतेत्यादि) सहि नगवान्परहितैकरतोगत्वापि विनेयासन्नमथवाप्यगत्वा यथानव्यसत्वोपकारोनवति तथातथा नगवंतोर्हतोधर्मदेशनां विदधत्युपकारे सति गत्वापि कथयंत्यसतितु स्थिताअपि न कथयंतीत्यतोन तेषां रागद्वेषसंनवइति केवलमाशुप्रज्ञः सर्वज्ञः समतया समदृष्टितया चक्रवर्तिद्रमकादिषु पृष्टोवा धर्मं व्यागृणीयात्। जहा पुणस्स कत्थइ तहा तुच्छस्स कत्थइ इति वचनादित्यतोन रागद्वेषसद्भावस्तस्येति। यत्पुनरनार्यदेशमसौ न व्रजति तत्रेदमाह। अनार्याः क्षेत्रनापाकर्मनिर्वहिष्कृतादर्शनतोपि परिसमंतादितागताः प्रभ्रष्टाइति यावत्। तदेवमसौ नगवानित्येतत्तेषु सम्यग्दर्शनमात्रमपि कथंचिन्न नवतीत्याशंकमानस्तत्र न व्रजतीति। यदिवा विपरीतदर्शनिनोन नवंत्यनार्याः शकयवनादयस्तेहि वर्तमानसुखमेवैकमंगीकृत्य प्रवर्तते न पारलौकिकमंगीकुर्वंत्यतः सद्धर्मपराङ्मुखेषु तेषु नगवान्न याति न पुनस्तद्वेषादिबुद्ध्येति। यदप्युच्यते त्वया यथानेकशास्त्रविशारदगुटिकासिद्धविद्यासिद्धादितीर्थिकपराननयेन न तत्समाजे गच्छतीत्येतदपि बालप्रलपितप्रायं। यतः सर्वज्ञस्य नगव

तः समस्तैरपि प्रावाडुकैर्मुखमप्यवलोकयितुं न शक्यते वादस्तु दूरोत्सादितएवेत्यतः कुतस्तस्य पराजवः। जगवांस्तु केवलालोकेन यत्रैव स्वपरोपकारं पश्यति तत्रैव गत्वा पि धर्मदेशनां विधत्तइति ॥ १८ ॥

पन्नं जहा वणिए उदयछी, आयस्स हेउं पगरेति संगं ॥ तऊवमे समणे नायपुत्ते, इच्चेव मे होति मती वियक्को ॥१९॥ नवं न कुज्जा विहुणे पुराणं, चिच्चा मई ताइयमाह एवं ॥ पन्नावया बंजवतित्ति वुत्ता तस्सोदयछी समणे त्तिबेमि ॥ २० ॥

अर्थ—वली बीजा प्रकारें गोशालक कहेछे के,अहो आर्द्रकुमार! (पन्नंजहावणिए उदयछी के०) जेम कोइ वाणियो उदयार्थी एटले लाजार्थी छतो व्यवहार योग्यकरियाणुं एटले कर्पूर, अगर, कस्तूरी, अनें वस्त्रादिक, ते देशांतरथकी लेइ आवे (आयस्सहेउंपगरेतिसंगं के०) पोताना लाजनें अर्थें महाजननो संग करे, (तऊवमेसमणेनायपुत्ते के०) तेम तमारो तीर्थंकर श्रमण, ज्ञातपुत्र पण ते वाणियासमान जाणवो. केमके, कोइ एक लाजनें अर्थें अनेक महाजनना वृंद मांहे बेसेछे, (इच्चेवमेहोतिमतीवियक्को के०) माटें ए प्रकारें महारी मतिछे, अनें एवो माहारो वितर्कछे, एटले विचारणा छे, इत्यर्थः ॥१९॥ हवे गोशालक प्रत्यें आर्द्रकुमार कहेछे के, अहो गोशालक! जे, तें ए वाणियानो दृष्टांत देखाड्यो, ते सर्वथकी सरखो, किंवा देशथकी सरखो? माटें जो ते दृष्टांत देशथकी सरखोछे, ए रीतें तें जो वाणियानो दृष्टांत देखाड्यो होय तो, ए वांतें अमनें अलाज कांइ नथी. कारण के, वाणियो ज्यां ज्यां लाज देखे, त्यां त्यां क्रय विक्रयादिक व्यापार करे. ए प्रकारें ए तहारो दृष्टांत देश पणाथी सरखोछे. अथवा जो सर्वथकी सरखोछे? एम तुं कहीश तो, ए वात, घटेज नहीं,कारणके,जगवंत श्री महावीरदेव,सावद्यानुष्ठान रहित,(नवंनकुज्जाविहुणेपुराणं के०) तथा ते नवुं कर्म कोइ पण करे नहीं,अनें पुरातन कर्मनें खपावे एवाछे.तथा (चिच्चामई के०) चिच्चा एटले विशेषें त्याग करीछे अमइ एटले डुर्मतिनें जेणे, (ताइयमाहएवं के०) त्रायी एटले छ जीवनिकायनो रक्त पाल, एवं एटले एवा जे श्री महावीर स्वामी ते (पन्नावयाबंजवतित्तिवुत्ता के०) एम कहे के, जेम डुर्गतिनें परित्यागी जीव मुक्तिगामी थाय, एवुं बोलें, स्वामीनुं वचन ते ब्रह्मव्रत छे एटले ब्रह्म शब्दें मोक्ष व्रत कह्युं. एवुं ब्रह्मव्रत रूप जे स्वामिनुं वचन तेनें मान्य करी, अनेक लोक मुक्तियें जाय. एटले डुर्मतिनें परित्यागें जीव मुक्तिगामी थाय. (तस्सोदयछीसमणेत्तिबेमि के०) तेना लाजना अर्थी श्रमण श्री महावीरदेवज जाणवा,

हुं एम कहुं बुं, ए कारणें सर्व प्रकारथकी वाणियानी ते स्वामीनें उपमा न संजवे, परंतु देशथकी ज्यां ज्यां स्वामी लाभ देखे, त्यां त्यां विचरे. ए उपमा सत्यठे. इत्यर्थः ॥२०॥

॥ दीपिका—अथ गोशालः प्राह । यथा वणिक् उदयार्थी लाजार्थी पण्यक्रयाणकं देशांतरे गत्वा विक्रीणाति आयस्य लाजस्य हेतोर्महाजनसंगं प्रकरोति तडुपमया श्रमणोज्ञातपुत्रइत्येवं मे मम मतिः स्यात् वितर्कोविचारणा च ॥ १ए ॥ आर्ड्रकमुनिराह । जगवान् सावद्यानुष्ठानरहितोनवं कर्म न कुर्यात् पुरातनं च विधूनाति अपनयति त्यक्त्वा अमतिं विमतिं त्रायी सन्जगवान् परेज्योप्येवमाह । यथा विमतित्यागेन मोक्षगामी स्यादिति । एतावता ग्रंथेन ब्रह्मणोमोक्षस्य व्रतमित्युक्तं तस्य मोक्षानुष्ठानस्य उदयार्थी लाजार्थी श्रमणोजगवान् । ततोवणिग्दृष्टांतः सर्वसाधर्म्येण न प्रवर्त्तते जगवतः सावद्यानुष्ठानरहितत्वात् देशसाधर्म्यंतु युक्तमेव यथा वणिग्यत्र लाजं पश्यति तत्र क्रियां व्यापारयति तथा जगवानपीति एतदहं ब्रवीमीत्यार्ड्रकमुनिराह ॥ २० ॥

॥टीका—पुनरन्येन प्रकारेण गोशालकआह ॥ (पन्नंजहेत्यादि) यथा वणिक् कश्चिडुदयार्थी पण्यं व्यवहारयोग्यं जांमं कर्पूरागरुकस्तूरिकांबरादिकं देशांतरं गत्वा विक्रीणाति तथा आयस्य लाजस्य हेतोः कारणान्महाजनसंगं विधत्ते तडुपमोयमपि जवत्तीर्थकरः श्रमणोज्ञातपुत्रइत्येवं मे मम मतिर्जवति वितर्कोमीमांसावेति ॥ १ए ॥ एवमुक्तोगोशालकेनार्ड्रकआह ।(नवंनकुङाइत्यादि) योयं जवता दृष्टांतः प्रदर्शितः सकिं सर्वसाधर्म्येणोत देशतः? । यदि देशतस्ततोन नः क्षतिमावहति । यतोवणिग्वत् यत्रैवोपचयं पश्यति तत्रैव क्रियां व्यापारयति न यथाकथंचिदित्येतावता साधर्म्यमस्त्येव । अथ सर्वसाधर्म्येणेति तन्न युज्यते । यतोजगवान् विदितवेद्यतया सावद्यानुष्ठानरहितोनवं प्रत्यग्रं कर्म न कुर्यात् तथा विधूनयत्यपनयति पुरातनं यन्नवोपग्राहि कर्मबन्धं तथा त्यक्त्वा अमतिं विमतिं त्रायी जगवान् सर्वस्य परित्राणशीलोविमतिपरित्यागेन चैवंजूतएव जवतीति जावः । त्रायी वा मोक्षं प्रति। अयवयमयपयचयतयणयगताविस्यस्य रूपं । सएव जगवानेवाह । यथा विमतिपरित्यागेन चैवंजूतएव जवतीत्येतावता च संदर्भेण ब्रह्मणोमोक्षस्य व्रतं ब्रह्मव्रतमित्येतडुक्तं । तस्मिन् चोक्ते तदर्थं वाऽनुष्ठाने क्रियमाणे तस्योदयार्थी श्रमणइति ब्रवीम्यहमिति ॥ २० ॥

समारजंते वणिया जूयगामं, परिग्गहं चेव ममायमाणा॥ ते णातिसंजोगमविप्पहाय, आयस्स हेउं पगरंति संगं ॥२१ ॥ वित्ते

सिणो मेहुणसंपगाढा, ते भोयणठ्ठा वणिया वयंति ॥ वयंतु का
मेसु अज्झोववन्ना, अणारिया पेमरसेसु गिद्धे ॥ २२ ॥

अर्थ–वली आर्द्रकुमार कहेछे के, (समारभंतेवणियाभूयगामं के०) ते वाणियो चतुर्दश प्रकार पणे, भूतग्राम एटले जीवनो समूह समारंभे, एतावता छकायनी हणनार एवी क्रियानें विषे प्रवर्त्ते, एटले क्रयविक्रयनें अर्थें शकट, उंट, घोडा, तथा बलदनें पीडा उपजावे, (परिग्गहंचेवममायमाणा के०) तथा परिग्रह, चतुंष्पदादिक तेनें विषे ममत्व करे. वली (तेणातिसंजोगमविप्पहायआयस्सहेउंपगरंतिसंगं के०) ते वाणिया ज्ञाति स्वजनादिकनो संयोग छांमयाविना, लाभनें कारणे अन्य बीजा साथें संबंध करे, अनें श्री वीतराग तो केवा छे ? तो के, छजीवनिकायना रक्षपाल, निःपरिग्रही, ज्ञातिस्वजननो संग त्यागीनें, सर्वत्र अप्रतिबंध निःकेवल धर्मनोज लाभ गवेषता धर्म देशना आपेछे. ए कारणमाटें भगवंत अनें वाणियानें सर्वथकी सरखा पणुं नथी ॥ २१ ॥ वली आर्द्रकुमारज कहेछे के, हे गोशालक ! (वित्तेसिणो के०) वली वाणिया वित्त एटले धनना गवेषण हार होय, तथा (मेहुणसंपगाढा के०) मैथुननें विषे आसक्त होय, (तेभोयणठ्ठावणियावयंति के०) तथा भोजननें अर्थें ज्यां त्यां परिभ्रमण करे, माटें अमें ते वाणियानें एवा कहियें छैयें. (वयंतुकामेसुअज्झोववना के०) वली जो. ते वाणीया कामभोगनें विषे गृद्ध, तथा (अणारियापेमरसेसुगिद्धे के०) अनार्य कर्मना करनार, तथा प्रेमरसनें विषे गृद्ध एटले मूर्छित छे, अनें भगवंत श्री अरिहंत देव एवा नथी. तो ते वाणियानी साथें सरखा पणुं भगवंतनें केम कहियें ? ॥ २२ ॥

॥ दीपिका–वणिजोभूतग्रामं समारभंते हिंसंति परिग्रहं स्वीकुर्वंति ममायमाणाममेदमिति व्यवस्थापयंतः ते वणिजोज्ञातिसंयोगमविप्रहायात्यक्त्वा यस्य लाभस्य हेतोरपरेण सह संगं संबंधं कुर्वंति ॥ २१ ॥ वणिजोवित्तैषिणोधनार्थिनः मैथुने संप्रगाढाः प्रसक्ताः तथा ते भोजनार्थमहारार्थमितश्चेतश्च व्रजंति । वयंतु एवं ब्रूमोयथा ते वणिजः कामेष्वध्युपपन्नागृद्धाअनार्याः प्रेमरसेषु गृद्धाः अतोभगवतः सर्वसाधर्म्यं नास्ति ॥ २२ ॥

॥ टीका–नचैवंभूतावणिजइत्येतदार्द्रककुमारोदर्शयितुमाह । (समारभंतइत्यादि) ते हि वणिजश्चतुर्दशप्रकारमपि भूतग्रामं जंतुसमूहं समारभंते तदुपमर्दिकाः क्रियाः प्रवर्त्तयंति क्रयविक्रयार्थं शकटयानवाहनोष्ट्रमंमलिकादिभिरनुष्ठानैरिति तथा परिग्रहं द्विपदचतुष्पदधनधान्यादिकं ममीकुर्वंति ममेदमित्येवं व्यवस्थापयंति ते हि वणिजोज्ञातिभिः स्वजनैः सह यः संयोगस्तमविप्रहायापरित्याज्य यस्य लाभस्य हेतोर्निमित्तादपरेण सार्द्धं

संगं संबंधं कुर्वंति । भगवांस्तु षड्जीवरक्षापरोपरिग्रहस्त्यक्तस्वजनपक्षः सर्वत्राप्रतिबद्धो धर्मार्थमन्वेषयन् गत्वापि धर्मदेशनां विधत्ते अतोभगवतोवणिग्भिः सार्द्धं न सर्वसाधर्म्य मस्तीति ॥ २१ ॥ पुनरपि वणिजां दोषमुद्भावयन्नाह । (वित्तेसिणोइत्यादि) वित्तं द्रव्यं तदन्वेष्टुं शीलं येषां ते वित्तैषिणस्तथा मैथुने स्त्रीसंपर्के संप्रगाढाअध्यूपपन्नास्तथा ते भो जनार्थमाहारार्थं वणिजइतश्चेतश्च व्रजंति वदंति वा तांस्तु वणिजोवयमेवं ब्रूमोयथैते का मेष्वध्युपपन्नागृद्धाअनार्यकर्मकारित्वादनार्यारसेषुच सातागौरवादिषु गृद्धामूर्छितानन्वे वंभूतान्भगवंतोर्हतः कथं तेषां तैः सह साधर्म्यमिति ? । दूरतएव निरस्तैषा कथेति ॥ २२ ॥

आरंभगं चेव परिग्गहं च, अविउस्सिया णिस्सिय आयदंमा ॥
तेसिं च से उदए जं वयासी, चउरंतणंताय दुहायणेह ॥२३॥ णेगं
त णच्चंतिय उदएवं, वयंति ते दोवि गुणोदयंमि ॥ से उदए साति
मणंतपत्ते, तमुदयं साहयइ ताइ णाइ ॥ २४ ॥

अर्थ—वली आर्द्रकुमारज कहेछे. (आरंभगंचेवपरिग्गहंच के०) आरंभ जे सावद्या नुष्ठान रूप, तथा परिग्रह ते धनधन्यादिक, नव प्रकारें तेनी ममत्वनें (अविउस्सियाणि स्सिय के०) न छांमीनें, तेहिज आरंभ परिग्रहनें विषे निश्चें थकी बंधाणा एवा वाणिया होय. वली केवा होय? तोके, (आयदंमा के०) पोताना आत्मानें दंमनार, (तेसिंच सेउदएजंवयासी के०) वली हे गोशालक ! तुं कहेछे के, ते वाणिया लाभना अर्थीछे. माटें ते लाभ तो एवो वाणियानो जाणवो के, (चउरंतणंतायदुहायणेह के०) ते वाणि यानें जे लाभछे ते लाभ चतुर्गतिक संसारनें,तथा तेना दुःखनें अर्थे थाय, अनें ते वा णियानो लाभ एकांतिक एटले एकांत पण न होय ॥२३॥ वली तेहिज देखाडेछे. (णे गंतणच्चंतियउदएवं के०) वली अहो गोशालक ! ते वाणियानो लाभ पण एकांतिक नथी, कोई वारें लाभ वांछतां अलाभ पण थाय. तथा आत्यंतिक एटले सर्वकालभावी लाभ पण नथी, कोइ वारें होय, अनें कोइ वारें न पण होय. (वयंतितेदोविगुणोदयं मि के०)ते व्यापारना जाण एम कहेछे के, नफो पण थाय, अथवा टोटो पण थाय, ए बे भाव होय,माटें ते बे भाव विगतगुणोदय जाणवा. तो ते लाभथकी शुं, जे एकां तिक अनें आत्यंतिक नहीं, अनें वली ते लाभ अनर्थ भणी प्रवर्त्ते? (सेउदएसातिमणंत पत्ते के०) अनें ते जे श्री भगवंतनो केवलज्ञान प्राप्ति लक्षण, तथा निर्ज्जरानुं कारण, एवो जे लाभ, ते सादि अनंत जाणवो. (तमुदयंसाहयइताइणाइ के०) एवा लाभ सहित पोतें भगवंत छे, अनें बीजानें पण एवो लाभ आपेछे. ते भगवंत कहेवाछे ! तो

के, त्रायी एटले आसन्न नव्यनें डुःखथकी राखनार डे, तथा ज्ञानी एटले जाणेली व स्तुडे विद्यमान जेनें एवा नगवंतनें वाणियानी उपमा केम देवाय ? ॥ २४ ॥

॥ दीपिका—सारंनपरिग्रहं वाऽव्युत्सृज्याऽत्यक्त्वा तत्रैव निःसृताबद्धाआत्मैव दंनोहि सकोयेषां ते तथा तेषां च वणिजामुदयोलानोयदर्थं ते प्रवृत्ताः यं च त्वं लानं वदसि स तेषां चतुरंतश्चतुर्गतिकोयः संसारोऽनंतस्तस्मै तदर्थं नवति तथा डुःखाय नवति नच स लानोऽपि तस्यैकांतिकः ॥ २३ ॥ एतदेवाह । एकांतिकः आत्यंतिकश्च तेषां वणिजामुद योलानोन विद्यते । लानार्थं प्रवृत्तस्य हानेरपि दर्शनात् । एवं वदंति तद्विदः तौ च द्वावपि नावौ विगतगुणोदयौ ।कोर्थः।योनैकांतिकः१ अनात्यंतिकश्च २ किं तेन लाने नेति यः सेतस्य नगवतउदयोलानोधर्मदेशनादिः सच सादिरनंतश्च एवंनूतमुदयं प्राप्तो ऽन्येषामपि तादृशं साधयति कथयति । त्रायी ज्ञाती च ज्ञातं वस्तु विद्यते यस्य सज्ञा ती ज्ञातसर्वज्ञेयः एवंनूतेन नगवता तेषां पूर्वोक्तानां वणिजां कथं सर्वसाम्यमिति ॥२४॥

॥ टीका—किंचान्यत् । (आरंनगंचेवइत्यादि) आरंनं सावद्यानुष्ठानं च तथा परिग्रहं वाऽ व्युत्सृज्यापरित्यज्य तस्मिन्नेवारंने क्रयविक्रयपचनपाचनादिके तथा परिग्रहेच धनधान्यहिर ण्यसुवर्णद्विपदचतुष्पदादिके निश्चयेन श्रिताबद्धानिःश्रितावणिजोनवंति तथात्मैव दंनोदंन यतीति दंनोयेषां ते नवंत्यात्मदंनाअसदाचारप्रवृत्तेरिति।नावोपि चैषां वणिजां परिग्रहारंन वतां सउदयोलानोयदर्थं ते प्रवृत्तायं च त्वं लानं वदसि सतेषां चतुरंतश्चतुर्गतिकोयः संसा रोऽनंतस्तस्मै तदर्थं नवतीति न चेहासावेकांतेन तत्प्रवृत्तस्यापि नवतीति ॥२३॥ एतदेव दर्शयितुमाह । (णेगंतिणचंतिइत्यादि) एकांतेन नवतीत्येकांतिकस्तथा तल्लानार्थं प्रवृ त्तस्य विपर्ययस्यापि दर्शनात्तथा नाप्यात्यंतिकः सर्वकालनावी तत्क्षयदर्शनात्सतेषां उदयोलानोनैकांतिकोनात्यंतिकश्चेत्येवं तद्विदोवदंति । तौच द्वावपि नावौ विगतगुणो दयौ नवतः । एतडुक्तं नवति । किं तेनोदयेन लानरूपेण योनैकांतिकोनात्यंतिकश्च प श्चादर्थायेति । यश्च नगवतः सेतस्य दिव्यज्ञानप्राप्तिलक्षणउदयोलानोयोवा धर्मदेशनावाप्त निर्जरालक्षणः सच सादिरनंतश्च तमेवंनूतमुदयं प्राप्तोनगवानन्येषामपि तथानूतमेवोदयं साधयति कथयति श्लाघते वा । किंनूतोनगवांस्त्रायी। अयवयमयपयचयतयणयगताविल्य स्य दंमकधातोर्णिनिप्रत्यये रूपं । मोक्षं प्रति गमनशीलइत्यर्थः । त्रायी वासन्ननव्यानां त्राण करणात्तथा ज्ञाती ज्ञाता क्षत्रियाज्ञातं वा वस्तुजातं विद्यते यस्य सज्ञाती विदितसमस्तवेद्य इत्यर्थः । तदेवंनूतेन नगवता तेषां वणिजां निर्विवेकिनां कथं सर्वसाधर्म्यमिति ॥ २४ ॥

अहिंसयं सवपयाणुकंपी, धम्मे ठियं कम्मविवेगहेउं॥ तमाय दंमेहिं समायरंता, अबोहीए ते पडिरूवमेयं ॥२५॥ पिन्नागपिंमी मवि विद्धु सूले, केई पएज्जा पुरिसे इमेत्ति॥ अलाउयं वावि कुमारएत्ति, स लिप्पती पाणिवहेण अम्हं ॥ २६ ॥

अर्थ–हवे वली कहेछे के, देवोनां करेलां समवसरण, सोनानुं कमल, देवछंदो, सिंहासन. इत्यादिक पदार्थोनो परिभोग करतो थको ते,कर्मों थकी शी रीतें न लेपाय? एवुं गोशालकनुं वचन आशंकीनें,आर्द्रकुमार कहेछे के,(अहिंसयं के०) ए भगवंत श्री महावीर देव सर्वजीवनें अहिंसता एटले अणहणता थका,समवसरणादिकनो उपभोग करेछे,परं तु ते समवसरणादिक उपर, श्री वीतरागदेवनो लगारमात्र पण प्रतिबंध नथी, ए कारण माटें एमनें कर्म न लागे. वली स्वामी कहेवाछे? तो के,(सवपयाणुकंपी के०) सर्व प्रजा एटले सर्वजीव तेनी अनुकंपाना करनार,(धम्मेठियंकम्मविवेगहेउं के०) एवा श्री भगवंत धर्मनें विषे प्रवर्त्तता कर्म विवेकना कारण भूत,एवा तेउनें (तमायदंमेहिंसमायरंता के०) आत्मदंम एटले अनेक असमंजस वचनें करी तारा सरखा, आत्मदंमनें आचारता थका वणिक्नो दृष्टांत देछे, माटें (अबोहीएतेपडिरूवमेयं के०) ते अबोधी एटले अज्ञानी प्रतिरूप जाणवा, एयं एटले ए एक तेनुं अज्ञान पणुंज जाणवुं, केमके एक तो पोतें अज्ञान पणे प्रवर्त्ते,ए पेहेलुं अज्ञान पणुं. वली त्रिजगत् पूज्य, सर्व अतिशयना निधान, एवा अरिहंतनें वैश्यादिकनी उपमा आपे, ते बीजुं अज्ञान पणुं.माटें ते जीव एम करता थका पोताना बोध बीजनो नाश करेछे. इत्यर्थः ॥ २५ ॥ हवे इत्यादिक पूर्वोक्त गोशालकनां वचनोनुं निराकरण करीनें आर्द्रकुमार मुनि आगल चाल्या, तेवारें वच्चें शाक्यपुत्रियदर्शी नी एटले बौद्ध मल्या. तेणें एम कह्युं के,हे आर्द्रकुमार! तें गोशालक प्रत्यें वाणियानो दृष्टांत दूषव्यो ते युक्तज कर्युं, कारण के, बाह्य अनुष्ठान, प्रायः शून्यछे, अंतरंग अनु ष्ठाननेंज मोक्षांग प्रधान जाणवुं, ए कारण माटें अमारा सिद्धांतमांहे ते अंतरंगानुष्ठाननुं साधवुं कह्युंछे. ते अमें कहियें छैयें माटें तुं सावधान थको सांभल.? (पिन्नागपिंमीमवि विद्धुसूले के०) पिन्नाग पिंमी एटले खलपिंमी ते अचेतनजछे अनें ते कोइ एक स्थानकें छे तेनीपर कोइ एक पुरुषें वस्त्र नाख्युं, पछी ते खलपिंमनें शूलीयें प्रोइनें, (केइपएज्जा पुरिसेइमेत्ति के०) कोइ एक म्लेछें पुरुषनी बुद्धियें लइनें अग्नि उपर पचाव्यो, तथा वली (अलाउयंवाविकुमारएत्ति के०) तुंबडुं देखीनें ए कुमारछे एवी बुद्धियें एक पुरुषें तेनें अग्नि उपर पचाव्यो, (सलिप्पतीपाणिवहेणअम्हं के०) तो हवे ए बेहुजण, पुरुष अने कुमारहत्यानें पापें लेपाय. अमारा सिद्धांतमांहे ए भावछे. शुभाशुभ बंधनुं मूल, मन परि

णामज जाणवुं, चित्तमांहे जो जीवघातनो परिणामछे तो अणकर्युं थकुं पण, प्राणघा तनुं पाप लागेछे ॥ २६ ॥

॥ दीपिका—असौ नगवान्समवसरणाद्युपनोगं कुर्वन्नप्यहिंसन्। कोर्थः। नहि तत्रार्हतः कोप्याशंसाप्रतिबंधोवास्ति साम्यरसलीनत्वात्। सर्वेषां प्रजाजंतवस्तेषामनुकंपी एवंविधं धर्मे स्थितं तं नवादृशाआत्मदंमैः समाचरंतोवणिगादितुल्यं कुर्वंति एतच्चाबोधेरज्ञातस्य प्रतिरूपं अज्ञानविलसितमित्यर्थः। एवं गोशाले निराकृते बौद्धाः प्राहुस्त्वया वणिग्दृष्टां तदूषणेन बाह्यानुष्ठानदूषितं तद्वरं कृतं यतोऽस्मत्सिद्धांतेप्यांतरमेवानुष्ठानं नवमोक्षयोः प्रधानांगमिति। तत्त्वं शृणु ॥२५॥ पिण्याकः खलस्तस्य पिंमी शकलमचेतनमपि कदाचि न्म्लेछादिविषये संभ्रमे केनचिन्नश्यता खलोपरि वस्त्रं क्षिप्तं तच्च म्लेछेन पुरुषोयमिति बुद्ध्या गृहीतं ततोसौ म्लेछोवस्त्रवेष्टितां खलपिंमीं पुरुषबुद्ध्या शूले प्रोतां पावके पचेत् तथाऽलाबुकं तुंबकं कुमारोयमिति मत्वाऽग्नौ पचेत् अस्माकं मते सप्राणिवधेन लिप्यते चित्तस्य डुष्टत्वात् ॥ २६ ॥

॥ टीका—सांप्रतं कृतदेवसमवसरणपद्मावलीदेवछंदकसिंहासनाद्युपनोगं कुर्वन्नप्याधाकर्म कृतवसतिनिषेधकसाधुवत्कथं तदनुमतिकृतेन कर्मणाऽसौ न लिप्यतइत्येतद्गोशालकमत माशंक्याह। (अहिंसयमित्यादि) असौ नगवान् समवसरणाद्युपनोगं कुर्वन्नप्यहिंसकः स न्नुपनोगं करोति। एतडुक्तं नवति नहि तत्र नगवतोमनागप्याशंसाप्रतिबंधोवा विद्यते स मतृणमणिमुक्तालोष्टकांचनतया तडुपनोगं प्रति प्रवृत्तेर्देवानामपि प्रवचनोद्भिनाविषूणां क थंनु नाम नव्यानां धर्मानिमुखं प्रवृत्तिर्यथा स्यादित्येवमर्थमात्मलानार्थं च प्रवर्त्तनादतोन्न गवानहिंसकस्तथा सर्वेषां प्रजायंतइति प्रजाजंतवस्तदनुकंपी च तान्संसारे पर्यटतोनुकंपयते तच्छीलश्च तमेवंरूपं धर्मपरमार्थरूपे व्यवस्थितं कर्मविवेकहेतुनूतं नवद्विधाआत्मदंमैः समा चरंतआत्मकल्पं कुर्वंति। वणिगादिनिरुदाहरणैरेतच्चाबोधेरज्ञानस्य प्रतिरूपं वर्तते एकं ता वदिदमज्ञानं यत्स्वतः कुमार्गेप्रवर्तनं। द्वितीयं चैतत्प्रतिरूपमज्ञानं यन्नगवतामपि जगद्वं द्यानां सर्वातिशयनिधाननूतानामितरैः समत्वापादनमिति ॥२५॥ सांप्रतमार्द्रककुमारम पहस्तितगोशालकं ततोन्नगवदनिमुखं गछंतं दृष्ट्वाथांतराले शाक्यपुत्रीयानिक्षवइदमूचुर्य देतद्वणिग्दृष्टांतदूषणेन बाह्यमनुष्ठानं दूषितं तछोननं कृतं नवता यतोऽतिफल्गुप्रायं बाह्य मनुष्ठानं आंतरमेव त्वनुष्ठानं संसारमोक्षयोः प्रधानांगमस्मत्सिद्धांते चैतदेव व्यावर्ण्यते। इ त्येतदार्द्रककुमार नो राजपुत्र! त्वमवहितः शृणु श्रुत्वाचावधारयेति नणित्वा ते निक्षुका आंतरानुष्ठानसमर्थकमात्मीयसिद्धांताविर्नावनायेदमाहुः। (पिन्नागेत्यादि) पिण्याकः

खलस्तस्य पिंडिर्निश्चेतकं तदचेतनमपि सत् कस्मिंश्चित्संभ्रमे म्लेछादिविषये केनचिन्नश्यता प्रावरणं खलोपरि क्षिप्तं तच्च म्लेछेनान्वेष्टुं प्रवृत्तेन पुरुषोयमिति मत्वा खलपिंडया सह गृहीतं ततोसौ म्लेछोवस्त्रवेष्टितां तां खलपिंडीं पुरुषबुद्ध्या शूले प्रोतां पावके पचेत् तथाऽलाबुकं तुंबकं कुमारोयमिति मत्वाऽग्नावेव पपाच सचैवंचित्तस्य दुष्टत्वात्प्राणिवधजनितेन पातकेन युज्यते। अस्मत्सिद्धांते चित्तमूललाबुनाद्युनबंधस्येत्येवं तावदकुशलचित्तप्रामाण्यादकुर्वन्नपि प्राणातिपातप्रतिघातफलेन युज्यते ॥ २६ ॥

अहवावि विद्धूण मिलक्खु सूले, पिन्नागबुद्धीइ नरं पएज्जा ॥
कुमारगं वावि अलाबुयंति, न लिप्पइ पाणिवहेण अम्हं ॥२७॥
पुरिसं च विद्धूण कुमारगं वा, सूलंमि केई पएज्जायतेए ॥ पिन्नाय
पिंडि सति मारुहेत्ता, बुद्धाण तं कप्पति पारणाए ॥ २८ ॥

अर्थ—वली एहिज दृष्टांत विपरीत पणें करीनें कहेछे. (अहवावि कें०) अथवा कोइ एक सत्यपुरुषने (पिन्नागबुद्धिइ के०) खलपिंडीनी बुद्धियें करी कोइ एक (मिलक्खु के०) म्लेछ, (सूले के०) शूलियें करी (विद्धूण के०) विंधीनें प्रोइनें (नरं के०) मनुष्यनें, (पएज्जा के०) अग्नियें करी पचावे, अनें (कुमारगंवाविअलाबुयंति के०) तथा कुमार बालकनें देखीनें तेनें तुंबडानी बुद्धि लावीनें, अग्निमां पचावे, ए बेहुजणनें मनपरिणाम विशेष एवुं (नलिप्पइपाणिवहेणअम्हं के०) प्राणवधनुं पाप लागे नहीं, ए अमारा शास्त्रनुं रहस्य जाणवुं ॥२७॥ वली पण तेहिज दृष्टांत कहेछे (पुरिसंचविद्धूण कुमारगंवा के०) पुरुष अथवा कुमारनें (सूलंमि के०) शूलीयें (विद्धूण के०) वींधीनें प्रोइनें (केइपएज्जायतेएके०) कोइएक पुरुष अग्निनें विषे पचावे (पिन्नायपींडिसतिमारुहेत्ता के०) अनें मनमांहे एवो जाव आणे के ए खलपिंडीछे (बुद्धाणतंकप्पतिपारणाए के०) तेनी बुद्धदर्शीजननें पण पारणा जणी कल्पेतो, अन्य बीजानुं शुं कहेवुं? एतावता मनसाथें असंकल्पितछे माटें कर्म न लागे एवो. अमारो मतछे ॥ २८ ॥

॥दीपिका—अथवा सत्यं पुरुषं खलबुद्ध्या कश्चिन्म्लेछः शूले प्रोतमग्नौ पचेत् कुमारकं बालं वाऽलाबुबुद्ध्या पचेन्नासौ प्राणिवधेन लिप्यतेस्माकमिति प्राणिवधाभिप्रायाभावात् ॥ २७ ॥ पुरुषं कुमारकंवा शूले विध्वा कश्चिज्जाततेजसि वन्हौ आरुह्य पचेत् खलपिंडीयमिति मत्वा सतीं शोभनां तदेतद्बुद्धानां शाक्यानां कल्पते पारणाय भोजनाय। एवमसंकल्पितं कर्मचयं न यात्यस्मन्मते ॥ २८ ॥

॥ टीका–अमुमेव दृष्टांतं वैपरीत्येनाह । (अहवावीत्यादि) अथवापि सत्पुरुषं खलबुद्ध्या कश्चिन्म्लेच्छः शूलप्रोतमग्नौ पचेत्तथा कुमारकं बालं तुंबकबुद्ध्याग्नावेव पचेन्नै वमेवासौ प्राणिवधजनितेन पातकेन लिप्यतेऽस्माकमिति ॥ २७ ॥ किंचान्यत् । (पुरिस मित्यादि) पुरुषं वा कुमारं वा विध्वा शूले कश्चित्पचेज्जाततेजस्यग्नावारुह्य खलपिंमीयमि ति मत्वा सतीं शोजनां तदेतद्बुद्धानामपि पारणाय जोजनाय कल्पते योग्यं जवति कि मुतापरेषामेवं सर्वास्ववस्थास्वचिंतितं मनसा संकल्पितं कर्मचयं नागछत्यस्मत्सिद्धांते । त दुक्तं अविज्ञानोपचितं परिज्ञानोपचितमीर्यापथिकं स्वप्नांतिकं चेति कर्मोपचयं न याति ॥ २७

सिणायगाणं तु डुवे सहस्से, जे जोयए णितिए निरकुयाणं॥ ते पुन्नखंधं सुमहं जिणित्ता, जवंति आरोप्प महंतसत्ता॥ २ए॥ अ जोगरूवं इह संजयाणं, पावं तु पाणा णयसंञ्जकाउं॥ अबोहि ए दोएहवि तं असाहु, वयंति जेया विपडिस्सुणंति ॥ ३० ॥

अर्थ–हवे वली शाक्यदर्शनीउ दानफलनो अधिकार कहेबे. (सिणायगाणंतुडुवेसह स्से के०) स्नातक एटले बौद्धमत प्रधान दर्शनी, तेना जे बे सहस्र तेनें (जेजोयएणि तिएनिरकुयाणं के०) जे कोइ पोताना शाक्यपुत्रीय धर्में प्रवर्त्ततो एवो उपासक, प चनादिक क्रिया करीनें निक्षुनें निरंतर जमाडे, (तेपुन्नखंधंसुमहंजिणित्ता के०) ते पुरुष महान् पुण्यस्कंध उपार्जीनें, (जवंतिआरोप्पमहंतसत्ता के०) महोटा सत्ववालो एटले श्रद्धावंत थको आरोप्य एवे नामें सर्वोत्तम देवता थाय. इत्यर्थः॥ २ए ॥ ए रीतें बौद्धदर्शी नी पोताना धर्मनुं रहस्य, आर्डकुमार प्रत्यें देखाडीनें तेनें कहेवा लागा के, अहो आर्डकुमार.! तुं अमारो धर्म मान्य कर ! . एवुं कहे थके, हवे आर्डकुमार तेमनें क हेबे के, अहो शाक्यदर्शनीउ ! (अजोगरूवंइहसंजयाणं के०) अंही तमारा दर्शी ननें विषे जे पूर्वें जोजन आश्री वचन कह्युं ते, संयतपणानें अयोग्य बे कारणके, अहिं सानें अर्थें प्रवर्त्तमान, समिति अनें गुप्तियें करी सहित, एवा साधु होय, तेनें जावशु द्धि फलदायिनी थाय ए वात खरीबे, परंतु तमारी वक्तव्यतायें, खल अनें पुरुषनी व्यक्ति पण जे न जाणे; तेनेंज जावशुद्धि कही. ए कारणेज बौद्धमतिउ खल पिंमीनी बुद्धियें पुरुषनो विनाश करीनें, तेना गुरुनें मांस जक्षण करावे. ते अत्यं त अयुक्तबे, तेज कहेबे. (पावंतुपाणाणयसंञ्जकाउं के०) प्राणी एटले जीव, तेना विनाशरूप पाप करीनें, प्रकर्षें रसगृद्ध थका वली तेनेंज पुण्य बोले माटें,(अबोहिए दोएहवितंअसाहु के०) ए पाप, अबोधीनुं कारणबे तेथी ते बेहुनें असाधु जाणवा, ते बे

हु कोण ? ते कहेछे. (वयंतिजेयाविपडिस्सुणंति कें०) एक तो जें खलपिंमीनी बुद्धियें पु रुपनें पचावे, अनें तेमांहे पाप नथी एम कहे, अनें बीजो जे तेमनुं एवुं वचन अंगी कार करे, ए बेहुनें नलूं नथी. एवी नावशुद्धियें मोक्ष नथी, माटें हुं एवो मा र्गें केम आदरुं? ॥ ३० ॥

॥ दीपिका—स्नातकाबौद्धशिष्यास्तेषां भिक्षुकाणां सहस्रद्वयं निजे बौद्धधर्मे कश्चि डुपासकः पचनाद्यारंनं कृत्वापि नोजयेत् ते बह्वोपि श्रद्धालवः पुण्यस्कंधं महांतं स मावर्ज्यारोप्याख्यादेवान्नवंति महासत्वाः ॥ २९ ॥ बौद्धैरित्युक्ते आर्द्रकः प्राह । यत्त व मते कथितं तत्संयतानामयोग्यरूपमघटमानमिदं यत्प्राणानामिंद्रियादीनां घातेन पा पं कृत्वा तदनावं वदंति खलबुद्ध्या पुरुषं घ्नतोपि न पापमिति पुरुषबुद्ध्या खलघाती पा पवानिति वचनं तेषां अबोध्ये अबोधिलानार्थं तयोर्द्वयोरपि स्यात् । कौ द्वौ? ये एवं पू र्वोक्तं वदंति येच तेन्यः शृण्वंति तयोर्द्वयोरपि असाध्वेतत् अज्ञानावृतमूढजननावशु द्ध्या शुद्धिर्न स्यादित्यर्थः ॥ ३० ॥

॥ टीका—पुनरपि शाक्यएव दानफलमधिकृत्याह । (सिणायगाणमित्यादि) स्नात काबोधिसत्वाः। तुशब्दात्पंचशिक्षापदिकादिपरिग्रहः।तेषां भिक्षुकाणां सहस्रद्वयं निजे शाक्य पुत्रिये धर्मे व्यवस्थितः कश्चिडुपासकः पचनपाचनाद्यपि कृत्वा नोजयेत्समांसगुडदाडिमे नेष्टेन नोजनेन ते पुरुषामहासत्वाः श्रद्धालवः पुण्यस्कंधं महांतं समावर्ज्य तेनच पुण्य स्कंधेनारोप्याख्यादेवान्नवंत्याकाशोपगाः सर्वोत्तमां देवगतिं गछंतीत्यर्थः ॥ २९ ॥ तदेवं बुद्धेन दानमूलः शीलमूलश्च धर्मः प्रवेदितस्तदेह्यागछ बौद्धसिद्धांतं प्रतिपद्यस्वेत्येवं भि क्षुकैरभिहितः सन्नार्द्रकोऽनाकुलया दृष्ट्या तान्वीक्ष्योवाचेदं वक्ष्यमाणमित्याह । (अ जोगरूवमित्यादि) इहास्मिन्नवदीये शाक्यमते संयतानां भिक्षूणां यडुक्तं प्राक् दत्यंते नायोग्यरूपमघटमानकं तथा ह्यहिंसार्थमुद्यितस्य त्रिगुप्तिगुप्तस्य पंचसमितिसमितस्य स तः प्रव्रजितस्य सम्यक् ज्ञानपूर्विकां क्रियां कुर्वतोनावशुद्धिः फलवती नवति तद्विपर्य स्तमतेस्त्वज्ञानावृतस्य महामोहाकुलीकृतांतरात्मतया खलपुरुषयोर्विवेकमजानतः कुत स्त्यानावशुद्धिरत्यंतमसांप्रतमेतद्बुद्धमतानुसारिणां यत्खलबुद्ध्या पुरुषस्य शूले प्रोतनपच नादिकं तथा बुद्धस्येवान्नबुद्ध्यापिशितनक्षणानुमत्यादिकमिति । एतदेव दर्शयति । प्राणा नामिंद्रियाणामपगमेन तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात्पापमेव कृत्वा रससातागौरवादिगृद्धास्तदना वं व्यावर्णयंत्येतच्च तेषां पापानावव्यावर्णनमबोध्यै अबोधिलानार्थं तयो द्वयोरपि संपद्यते ऽतोसाध्वेतत्। कयो द्वयोरित्याह । ये वदंति पिण्याकबुद्ध्या पुरुषपाकेपि पातकानावं येच

तेभ्यः शृण्वंत्यतयोर्द्वयोरपि वर्गयोरसाध्वेतदिति। अपिच नाज्ञानावृतमूढजनभावशुद्ध्या शुद्धिर्भवति। यदिच स्यात्संसारमोचकादीनामपि तर्हि कर्मविमोक्षः स्यात्तथा भावशुद्धिमेव केवलामभ्युपगच्छतां भवतां शिरस्तुंडमुंडनपिंडपातादिकं चैत्यकर्मादिकं चानुष्ठानमनर्थक मापद्यते तस्मान्नैवंविधया भावशुद्ध्या शुद्धिरुपजायतइति स्थितं ॥३०॥

उद्धुं अहेयं तिरियं दिसासु, विन्नाय लिंगं तसथावराणं ॥ नूया
भिसंकाइ डुगंछमाणा, वदे करेज्जाव कुत्त विहत्थि ॥३१॥ पुरिसे
त्ति विन्नत्ति न एवमत्थि, अणारिए से पुरिसे तहा हु ॥ कोसंभवो
पिन्नगपिंडियाए, वायावि एसा बुइया असच्चा ॥ ३२ ॥

अर्थ–हवे आर्द्रकुमार, जैनमार्गना गुण कहेछे. (उड्ढंअहेयंतिरियंदिसासु के०) ऊंची, नीची, अनें तिर्छि जे दिशिउछे,ते दिशिउनें विषे (तसथावराणं के०) त्रस अनें स्थावर जीवोनी (लिंगं के०) अहिनाण, चलन, स्पंदन, अंकुरोद्भवादिक, उत्पत्तिनें (विन्नाय के०) जाणीनें, (नूयाभिसंकाइडुगंछमाणा के०) नूत जे जीव तेनी अभिशंकायें के, रखे कोइ जीवनो घात उपजे! एवा भावें पापना भयथकी, सर्व सावद्यानुष्ठाननें डुगंछता जीवनां मर्द्दननें परिहरता थका, (वदे के०) वदे एटले धर्मोपदेश आपे. (करेज्जाव के०) तथा यावत् क्रिया अनुष्ठान पण करे,(कुत्तविहत्थि के०) तो हवे एवी रीतें अनुष्ठान करतां, तथा बोलतां अमारा पक्षनें विषे तमारो उपजावेलो दोष कोइ नथी॥३१॥ हवे खलपिंडीनें विषे पुरुषनी बुद्धिनो असंभव देखाडेछे. (पुरिसेत्तिविन्नतिनएवमत्थि के०) खलपिंडीनें विषे ए पुरुषजछे एवी बुद्धि तो जे अत्यंत मूर्ख होय तेनें पण न उपजे? ते कारणें (अणारिएसेपुरिसेतहाहु के०) जे एवी बुद्धि करे, अनें एम कहे के एनें हणवामां दोप नथी, ते निश्चें थकी अनाचारी पुरुष जाणवो,(कोसंभवोपिन्नगपिंडियाए के०) खलपिंडिकानें विषे जे पुरुषनी बुद्धि करवी, ते वातज केम संभवें! माटें (वायाविएसाबुइयाअसच्चा के०) एवी वाणी बोलवी ते पण असत्य कहीछे, माटें एवी भाषानो बोलनार निर्विवेकी, कर्म बंधनें करी बंधाय. अनें अनंतो संसार वधारे. इत्यर्थः ॥३२॥

॥ दीपिका–ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्च सर्वदिक्षु त्रसस्थावराणां लिंगं जीवत्वचिन्हं विज्ञाय भूताभिशंकया जीवघातोत्र भावीति बुद्ध्या सर्वमनुष्ठानं जुगुप्समानस्तद्घातं परिहरन्वदेत्कुर्यादपीति कुतोस्तीह त्वदुक्तोदोपः । न कश्चितत्रास्मन्मते दोषोस्तीत्यर्थः ॥ ३१ ॥ तस्यां पिण्याकपिंड्यां पुरुषोयमिति विज्ञप्तिमेतिर्नास्ति जडस्यापि तस्माद्यएवं वक्ति सपुरुषो

ऽनार्यएव। कः संभवः पिण्याकपिंम्यां पुरुषबुद्धेः? अतोवागप्येषाऽसत्या कथिता तस्मात्पि ण्याककाष्ठादावपि प्रवर्त्तमानेन जीवोपमर्द्दभीरुणा साशंकेनैव प्रवर्त्तितव्यं ॥ ३२ ॥

॥ टीका–परपक्षं दूषयित्वाईकः स्वपक्षाविर्भावनायाह । (उड्ढमहेयमित्यादि) ऊर्ध्व मधस्तिर्यक्षु यादिशः प्रज्ञापनादिकास्तासु सर्वास्वपि दिक्षु त्रसानां स्थावराणां च जंतूनां यत्त्रसस्थावरत्वेन जीवलिंगं चलनस्पंदनांकुरोद्भवछेदम्लानादिकं तद्विज्ञायते भूतानिशं कया जीवोपमर्दोत्र भविष्यतीत्येवंबुद्ध्या सर्वमनुष्ठानं जुगुप्समानस्तदुपमर्द्दं परिहरन् व देत् कुतोप्यतः कुतोस्तीहास्मिन्नेवंभूतेऽनुष्ठाने क्रियमाणे प्रोच्यमाने वास्मत्पक्षे युष्मदा पादितोदोषइति ॥ ३१ ॥ अधुना पिण्याके पुरुषबुद्ध्याऽसंभवमेव दर्शयितुमाह । (पु रिसेत्यादि) तस्यां पिण्याकबुद्ध्यां पुरुषोयमित्येवमत्यंतजडस्यापि विज्ञप्तिरेव नास्ति त स्माद्यएवं वक्ति सोऽत्यंतोपुरुषस्तथाभ्युपगमेन हुशब्दस्यैवकारार्थत्वेऽनार्यएवासौ यः पुरु षमेव खलोयमिति मत्वा हतेपि नास्ति दोषइत्येवं वदेत् । तथाहि । कः संभवः पिंम्यां पुरुषबुद्धेरित्यतोवागपीयमीदृगसत्येति सत्वोपघातकत्वात्ततश्च निःशंकप्रहार्यनालोचको निर्विवेकतया बध्यते तस्मात्पिण्याककाष्ठादावपि प्रवर्त्तमानेन जीवोपमर्द्दभीरुणा सा शंकेन प्रवर्त्तितव्यमिति ॥ ३२

वायाभियोगेण जमावहेज्जा, णो तारिसं वायमुदाहरिज्जा ॥ अ
ठाणमेयं वयणं गुणाणं, णो दिक्खिए बूयसुरालमेयं ॥३३॥ लद्धे
अठे अहो एव तुझे, जिवाणुभागे सुविचिंतिएव ॥ पुव्वं समुद्दं अ
वरं च पुठे, उलोइए पाणितले ठिएवा ॥ ३४ ॥

अर्थ–वली पण आर्द्रकुमार कहेछे के, (वायाभियोगेण के०) वचननें अभियोग पणें एटले (जमावहज्जा के०) वचन मात्र बोलता थकां पण जें पाप लागे, (णोता रिसंवायमुदाहरिज्जा के०) तादृश तेवुं वचन विवेकी पुरुष न बोले. (अठाणमेयंवय णंगुणाणंणोदिक्खिएबूयसुरालमेयं के०) गुणनुं अस्थानरूप एवुं असार वचन, तेनें जे दीक्षित माह्यो पुरुष होय ते न बोले, के जे खलपिंमनें पुरुष, अनें पुरुषनें खलपिंम, तथा तुंबडानें बालक, अनें बालकनें तुंबडुं, इत्यादिक वचन उत्तम पुरुष न बोले. इत्य र्थः ॥३३॥ वली पण आर्द्रकुमारज कहेछे के, (लद्धेअठेअहोएवतुझे के०) अहो शाक्य दर्शनीर्उ! तमने एवे ज्ञाता पणे करीनें जाणियें छैयें, जे तमोनें विज्ञान ते यथावस्थित तत्व, लाध्युं. एटले तमे तत्व पाम्या. (जिवाणुभागेसुविचिंतिएव के०) तथा तमें जीवनो अनु भाग जे कर्मविपाक, ते रुडीरीतें चिंतव्यो, (पुव्वंसमुद्दंअवरंचपुठे के०) तथा एवा वि

ज्ञानें करी तमारो यश पूर्व अनें पश्चिम समुद्र सुधी पहोतो, विस्तार पाम्यो, (उलोइए पाणितलेठिएवा के०) तथा तमोयें एवे विज्ञानें करी, अवलोकन करवे करी, ए लोकनें पाणितलस्थितनी पेठें अवलोक्यो, तो अहो ! अमें तमारा विज्ञानना अतिशयनुं वर्णन शुं करियें? एवुं तमारा सरखुं ज्ञातापणुं क्यांही पण देखातुं नथी,जे खलपिंम अनें पुरुष, तथा तुंबडुं, अनें बालकनो अंतर कांइ पण जणाय नहीं, तो वली हवे जाण पणामां बाकी पण शुं रह्युं? ॥ ३४ ॥

॥ दीपिका—वाचानियोगोवागनियोगस्तेन यदावहेत्कुर्यात् पापं कर्म तादृशीं वाचं नोदाहरेन्न वदेत् एतद्वचनं गुणानामस्थानं दीक्षितोन ब्रूयात् उदारं सुष्ठु निःसारमिति यत्खलेपि पुरुषः पुरुषोपि खलः अलाबुकं बालकः बालकोवाऽलाबुकमिति निःसारत्वमि त्यर्थः॥ ३३ ॥ अहो ! एवमंगीकृते सति युष्माभिरथानंतरमर्थस्तत्वं लब्धं जीवानामनु कर्मविपाकः भागः सुविचिंतितः एवंभूतेन ज्ञानेन भवतां यशः पूर्वं समुद्रमपरं च पृष्ठं गतमित्यर्थः । भवद्भिरवलोकितएवायं लोकः पाणितलस्थितइवेति ॥ ३४ ॥

॥ टीका—किंचान्यत् । (वायाभियोगेणमित्यादि) वाचाभियोगोवागभियोगस्तेना पि यद्यस्मादावहेत्पापं कर्म ततोविवेकी भाषागुणदोषज्ञोन तादृशीं भाषामुदाहरेन्नाभि दध्यादतएवं ततोऽस्थानमेतद्वचनं गुणानां नहि प्रव्रजितोयथावस्थितोर्थाभिधाय्येत दुदारं सुष्ठु परिस्थूरं निःसारं निरुपपत्तिकं वचनं न ब्रूयात् तद्यथा पिण्याकोपि पुरुषः पुरु षोपि पिण्याकस्तथाऽलाबुकमेव बालकोबालकएवाऽलाबुकमिति ॥३३ ॥ सांप्रतमार्द्रकक्कु मारएव तं भिक्षुकं युक्तिपराजितं संतं सोल्लुंठं बिभणिषुराह । (लद्धेत्यादि) अहो युष्मा भिरथानंतर्यं एवंभूताभ्युपगमे सति लब्धार्थोविज्ञानं यथावस्थितं तत्वमिति तथावगतः सुचिंतितोभवद्भिर्जीवानामनुभागः कर्मविपाकस्तत्पीडेति तथैवंभूतेन विज्ञानेन भवतां यशः पूर्वसमुद्रमपरंच पृष्ठं गतमित्यर्थः । तथा भवद्भिरेवंविधविज्ञानावलोकनेनावलो कितः पाणितलस्थइवायं लोकइति अहो! भवतां विज्ञानातिशयोयद्गुत भवंतः पि ण्याक पुरुषयोर्बालालाबुकयोर्वा विशेषानभिज्ञया पापस्य कर्मणोयथैतद्भावाभावं प्रा क्कल्पितवंतइति ॥ ३४ ॥

जीवाणुभागं सुविचिंतयंता, आहारिया अन्नविहायसोहिं ॥ न
वियागरे छन्नपउपजीवि, एसोणुधम्मोइह संजयाणं ॥ ३५ ॥
सिणायगाणं तु दुवे सहस्से, जे भोयए निइए भिक्खुयाणं ॥ अ
संजए लोहियपाणि सेऊ, णियच्छत गरिहंमिहेव लोए ॥ ३६ ॥

अर्थ—हवे आर्द्रकुमार जैनमतनी स्थापना करेछे. (जीवाणुनागंसुविचिंतयंता के०) जिनशासननें विषे प्रतिपन्न जे पुरुष ते, जीवनो अणुनाग अवस्थाविशेष, तेनुं मर्दन जे पीडानी उत्पत्तिरूप दुःख तेनें रुडी रीतें चिंतवता थका, (आहारियाअन्नविहायसोहिं के०) आहारिया एटले अन्नपाणीनें विषे विशुद्धता आदरेछे. एटले बहेंतालीश दोष रहित एवो विशुद्ध आहार लियेछे, परंतु तमारी पेठें मांसादिक पण, पात्रें पड्यो दोष नणी न थाय, तेम तेनें नथी ? अनें तमे तो केवाछो, तो के (नवियागरेछन्नपउपजीवि कें०) छिन्नपदोपजीवि एटले हिंसानें स्थानकें करी उपजीवन करोछो, पण इत्यादिक वचन प्रसिन्नपणे न बोलो. तेवा जैनमतना धारक पुरुष न होय ? (एसोणुधम्मोइहसंजयाणं के०) ए पूर्वोक्त निर्दोष आहारनें लेवे करी, छ कायनें पालवे करी, तीर्थंकरनें अनुयायि, होय. ते संयत एटले साधुनो धर्म जाणवो ॥३५॥ वली आर्द्रकुमार कहेछे, शुं कहेछे? तो के, (सिणायगाणंतुडवेसहस्से के०)स्नातक जे बौद्धमति दर्शन धारक तेना बे हजार भिक्षुक एटले शाक्यपुत्रीयधर्मं प्रवर्त्तता भिक्षुक तेनें (जेनोयएनिइएनिरकुयाणं कें०) जे पचन पाचनादिक क्रिया करीनें नित्य जमाडे, तेनें लान्न थायछे, पुण्य थायछे, एवुं तमे कहोछो परंतु, (असंजए लोहियपाणिसेक के०) ते असंयत लोहितपाणि एटले जेना हाथ सदा काल लोहियें करी खरडयाछे तेवो ते अनार्य पुरुष, (णियछतीगरिहमिहेवलोए के०) प्रथमतो आ लोकमांहेज गर्हा पामे, अनें परलोकें परनवे दुर्गतिमां जाय. केमके एवा सावद्यानुष्टानना करनार, अनक्ष्य अनें अपेयनुं जे दान, तेना अनुमोदनार एवा कुपात्रनें जे दान देवुं. ते कर्म बंधनुं कारणछे ॥ ३६ ॥

॥ दीपिका—सोपहासमुक्त्वार्द्रकमुनिः स्वपक्षमाह जिनमतप्रतिपन्नाः जीवानुनागं सुष्ठु विचिंतयंतोऽन्नविधौ शुद्धिमाहृतवंतः स्वीकृतवंतः । नवतां तु मांसाद्यपि पात्रपतितं न दोषाय तथा छन्नपदं मातृस्थानं तेनोपजीवी सन्न व्यागृणीयात् मायया न वदेदित्यर्थः। एषपश्चाद्धर्मोऽनुधर्मइह जैनमते संयतानां साधूनां अर्हदनुष्ठानानंतरं स्यादित्यनुधर्मः ॥३५॥ स्नातकानां बौद्धानां भिक्षूणां नित्यं यः सहस्रद्वयं नोजयेदित्युक्तं प्राक् तद्दूषयति । असंयतः सन् रुधिरक्लिन्नपाणिरिहैव लोके सगर्हां नियछति निश्चयेन गछति॥३६॥

॥ टीका—तदेवं परपक्षं दूषयित्वा स्वपक्षस्थापनायाह । (जीवाणुनागमित्यादि) मौनींऽद्रशासनप्रतिपन्नाः सर्वज्ञोक्तमार्गानुसारिणोजीवानामनुनागमवस्थाविशेषं तदुपमर्दनपीडां वा सुष्टु विचिंतयंतः पर्यालोचयंतोन्नविधौ शुद्धिमाहृतवंतः स्वीकृतवंतोद्विचत्वारिंशद्दोषरहितेनाशुद्धेनाहारेणाहारं कृतवंतोनतु यथा नवतां पिशिताद्यपि पात्रपतितं न दो

पायेति । तथा ब्नपदोपजीवी मातृस्थानोपजीवी सन् न व्यागृणीयादेषोनंतरोक्तोऽनुपश्चाद्धर्मोनुधर्मस्तीर्थंकरानुष्ठानादनंतरं जवतीत्यमुना विशिष्यते। इहास्मिन् जगति प्रवचने वा सम्यग्यतानां सत्साधूनां नतु पुनरेवंविधोनिक्षूणामिति।यच्च जवद्भिरोदनादेरपि प्राण्यंगसमानतया हेतुजूततया मांसादिसादृश्यं चोत्पद्यते तदविज्ञाय लोकतीर्थांतरीयमतं। तथाहि। प्राण्यंगत्वे तुल्येपि किंचिन्मांसं किंचिच्चामांसमित्येवं व्यवह्रियते।तद्यथा गोक्षीररुधिरादेर्नक्ष्याजक्ष्यव्यवस्थितिस्तथा समानेपि स्त्रीत्वे जायाश्वश्र्वादौ गम्यागम्यव्यवस्थितिरिति। तथा शुष्कतर्कदृष्ट्या योयं प्राण्यंगत्वादिति हेतुर्जवतोपन्यस्यते। तद्यथा "जक्षणीयं जवेन्मांसं, प्राणयंगत्वेन हेतुना ॥ श्रोदनादिवदित्येवं, कश्चिदाहेति तार्किकः" ॥१॥ सोसिद्धानैकांतिकविरुद्धदोषडुष्टत्वादपकर्णनीयः । तथाहि । निरंशत्वाद्वस्तुनस्तदेव मांसं तदेव च प्राण्यंगमिति प्रतिज्ञार्थैकदेशादसिद्धः । तद्यथा नित्यः शब्दोनित्यत्वादथ जिन्नं प्राण्यंगं ततः सुतरामसिद्धोव्यधिकरणत्वाद्यथा देवदत्तस्य गृहं काकस्य कार्ष्ण्यात्तथानैकांतिकोपि श्वादिमांसस्याजक्ष्यत्वादथ तदपि क्वचित्कथंचित्केषांचिद्भक्ष्यमिति चेदेवं च सत्यश्वादेर्नक्ष्यत्वादनैकांतिकत्वं। तथा विरुद्धाव्यजिचार्यपि यथार्थहेतुर्मांसस्य जक्ष्यत्वं साधयत्येवं बुद्धांस्त्वामपूजात्वमपि। तथा लोकविरोधिनी चेयं प्रतिज्ञा। मांसोदनयोरसाम्याद्दृष्टांतविरोधश्चेत्येवं व्यवस्थिते यडुक्तं प्राग्यथाबुद्धानामपि पारणाय कल्पतएतदिति तदसाध्विति इति स्थितं ॥ ३५ ॥ अन्यदपि जिक्षुकोक्तमार्द्रकुमारोऽनूद्य दूषयितुमाह। (सिणायगाणंतुइत्यादि) स्नातकानां बोधिसत्वकल्पानां जिक्षूणां नित्यं यः सहस्रद्वयं जोजयेदित्युक्तं प्राक् तद्दूषयत्यसंयतः सन् रुधिरक्लिन्नपाणिरनार्यइव गर्हां निंदां जुगुप्सापदवीं साधुजनानामिह लोकएव निश्चयेन गछति परलोके वाऽनार्यगम्यां गतिं यातीति॥३६॥

थूलं उरप्नं इह मारियाणं, उद्दिठ्नत्तं च पगप्पएत्ता ॥ तं लोणते
ल्लेण उवक्खडेत्ता, सपिप्पलीयं पगरंति मंसं ॥ ३७ ॥ तं जुंजमा
णा पिसितं पजूतं, ण उवलिप्पामो वयं रएणं ॥ इच्चेव माहंसु अ
णजधम्मं, अणारिया बाल रसेसु गिद्धा ॥ ३८ ॥

अर्थ—वली पण आर्द्रकुमार ते कुमतिना मतनी वात कहेढे. के,(थूलं के०) महोटी कायायें उपचित मांस शोणित युक्त एवो, (उरप्नं के०) उरणो तेनें (इह के०) आ शाक्यना शासननें विषे संघनी जक्तिनें अर्थें (मारियाणं के०) विनाशीनें मारीनें (उद्दिठ्नत्तंचपगप्पएत्ता के०) उद्दिष्ट जोजन कल्पीनें (तंलोणतेल्लेणउवक्खडेत्ता के०) ते मांसनें लूण, अनें तेल साथें पचावीनें, (सपिप्पलीयंपगरंतिमंसं के०) पिंप्पली स

हित मांस करे ॥ ३७ ॥ एवुं मांस करीनें पछी शुं करे, ? ते कहेछे के, (तंभुंजमाणा पिसितंपभूतं के०) ते मांस, प्रभूत एटले घणुं जमतां थकां भोगवतां थका एम कहेछे के, (णउवलिप्पामोवयंरएणं के०) अमें एनी पापरूप रजें करी लेपाता नथी. (इच्चेवमाहंसुअणज्जधम्मं के०) एवुं वचन कहे, ते अनार्यधर्मी जाणवा, कारण के, ते धृष्ट पणुं आदरेछे. (अणारियाबालरसेसुगिध्दा के०) ते अनाचारी बाल, एटले अज्ञानी रसगृद्धी थका एवां वचन कहेछे ॥ ३८ ॥

॥ दीपिका–आर्द्रकएव तन्मतमाह । स्थूलमुरभ्रं इह बौद्धमते हत्वा उद्दिष्टभक्तंच प्रकल्प्य, तन्मांसं लवणतैलाभ्यां संस्कृत्य सपिप्पलीकं कुर्वंति ॥ ३७ ॥ तत्पिशितं मांसं प्रभूतं भुंजानाअपि वयं रजसा नोपलिप्यामहे । एवमनार्यधर्मा दुष्टस्वभावाअनार्याइवाऽनार्याबाला रसेषु मांसादिषु गृद्धाः ॥ ३८ ॥

॥ टीका–एवं तावत्सावद्यानुष्ठानानुमंतॄणामपात्रभूतानां यद्दानं तत्कर्मबंधायेत्युक्तं । किंचान्यत् । (थूलंउरब्भमित्यादि) आर्द्रकुमारएव तन्मतमाविष्कुर्वन्निदमाह स्थूलं बृहत्कायमुपचितं मांसशोणितमुरभ्रमूरणकमिह शाक्यशासने भिक्षुकसंघोद्देशेन व्यापाद्य घातयित्वा तथोद्दिष्टभक्तंच प्रकल्पयित्वा तमुरभ्रं तन्मांसंच लवणतैलाभ्यामुपसंस्कृत्य पाचयित्वा सपिप्पलीकमपरद्रव्यसमन्वितं प्रकर्षेण भक्षणयोग्यं मांसं कुर्वंतीति ॥ ३७ ॥ संस्कृत्यच यत्कुर्वंति तद्दर्शयितुमाह (तंभुंजमाणाइत्यादि) तत्पिशितं शुक्रशोणितसंभूतमनार्याइव भुंजानाअपि प्रभूतं तद्रजसा पापेन कर्मणा न वयमुपलिप्यामहइत्येवं धार्ष्ट्योपेताः प्रोचुरनार्याणामिव धर्मः स्वभावोयेषां ते तथानार्यकर्मकारित्वादनार्याबाला इव बालाविवेकरहितत्वाद्रसेषुच मांसादिकेषु गृद्धाअध्युपपन्नाः ॥ ३८ ॥

जे यावि भुंजंति तहप्पगारं, सेवंति ते पावमजाणमाणा ॥ मणं
न एयं कुसला करेंती,वायावि एसा बुइयाउ मिच्छा ॥३९॥ सव्वेसिं
जीवाणदयठ्याए, सावज्जदोसं परिवज्जयंता ॥ तस्संकिणो इ
सिणो नायपुत्ता, उद्दिठ्भत्तं परिवज्जयंति ॥ ४० ॥

अर्थ–हवे ते मांसाशीनें एनो विपाक कहेछे. (जेयाविभुजंतितहप्पगारं के०)जे रसगृद्धथता तथा प्रकारें मांसनें जमे, (सेवंतितेपावमजाणमाणा के०) ते अज्ञानी पुरुषो निःकेवल पापनुं सेवन करेछे.(मणंनएयंकुसलाकरेंति के०)जे कुशल एटले पंमित होय ते मांसभक्षण करीयें, एवुं मन पण न करे. तथा (वायाविएसाबुइयाउमिच्छा के०) मांसभक्षणथी दोष

नथी एवी असत्य वाणी पण बोले नहिं. किंबहुना: वधारे शुं कहियें ॥ ३ए॥ हवे मांसादिक तो अनदय कहेवाय, त्यारें बीजो आहार साधुनें अनदय होय के नहीं ? त्यां कहेछे के, बीजो पण सदोष आहार, साधुनें परिहरवो (सवेसिंजीवाणदयघयाए के०) सर्व जीव एकेंद्रियादिक तेनी दयानें अर्थें, दयानें निमत्तें (सावज्जदोसंपरिवज्जयंता के०) सावद्य जे आरंनादिक, तेनें महा दोषरूप जाणी, परिहरतां थकां (तस्संकिणोइसिणोनायपुत्ता के०) ते सावद्यना दोष थकी शंकाता एटले बीहिता एवा महाकृषीश्वर ज्ञात पुत्र श्रीमहावीर देव तेमना शिष्यो होय. ते (उद्दिठ्ठनत्तंपरिवज्जयंति के०) उद्दिष्टनक्त एटले जे साधुनें देवानें अर्थेंज कल्पेलो एवो आहार होय, तेनें परिहरे वर्जे. ए साधुनो आचार जाणवो ॥ ४० ॥

॥ दीपिका—ये बौद्धाअपि तथाप्रकारं मांसं ञुंजते ते पापमजानंतोनिर्विवेकिनः संतः सेवंते । यडुक्तं । " हिंसामूलममेध्यमास्पदमलं ध्यानस्य रौड्स्य य,बीनत्सं रुधिराबिलं कृमिगृहं डुर्गंधिपूयादिकं ॥ शुक्रासृक्प्रनवं नितांतमलिनं सद्भिः सदा निंदितं, कोञुंक्ते नरकाय राक्षससमोमांसं तदात्मडुहः ॥ १ ॥ तथा । मां स नक्षयिताऽमुत्र यस्य मांसमिहाद्यहं ॥ एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदंति मनीषिणः ॥ २ ॥ योऽत्ति यस्य च तन्मांसमुनयोः पश्यतांतरं ॥ एकस्य क्षणिका तृप्तिरन्यः प्राणैर्वियुज्यते" ॥३॥ तदेवं दोषं मत्वा कुशला मांसानिलाषे मनोन कुर्वंति वागप्येषा न मांसनक्षणे दोषइत्यादिका उक्ता सती मिथ्या निवृत्तिस्तु महागुणाय । यडुक्तं । "श्रुत्वा डुःखपरंपरामतिघृणां मांसाशिनां डुर्गतिं, ये कुर्वंति शुनोदयेन विरतिं मांसादनस्यादरात् ॥ तद्दीर्घायुरदूषितं तदरुजासंनाव्य यास्यंति ते, मर्त्येषूद्भटनोगधर्ममतिषु स्वर्गापवर्गेषु वा" इति ॥ ३ए ॥ सर्वेषां जीवानां दयार्थाय सावद्यदोषं परिवर्जयंतः तद्दंकिनोदोषशंकिनः कृषयोज्ञातपुत्रीयाः श्री वीरशिष्याउद्दिष्टनक्तं परिवर्जयंति ॥ ४० ॥

॥ टीका—इत्येतच्च तेषां महतेऽनर्थायेति दर्शयति (जेयावीत्यादि) येचापि रसगौरवगृद्धाः शाक्योपदेशवर्त्तिनस्तथाप्रकारं स्थूलोरभ्रंसंस्कृतं घृतलवणमरिचादिसंस्कृतं पिशितं ञुंजतेऽश्नंति तेऽनार्याः पापं कल्मषमजानानिर्विवेकिनः सेवंते आददते । तथा चोक्तं । "हिंसामूलममेध्यमास्पदमलं ध्यानस्य रौड्स्य य,बीनत्सं रुधिराबिलं कृमिगृहं डुर्गंधिपूयादिकं ॥ शुक्रासृक्प्रनवं नितांतमलिनं सद्भिः सदा निंदितं, कोञुंक्ते नरकाय राक्षससमोमांसं तदात्मडुहः ॥ १ ॥ अपिच । मां स नक्षयिताऽमुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहं । एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदंति मनीषिणः ॥ २ ॥ तथा । योऽत्ति यस्य च तन्मांसमुनयोः

पश्यतांतरं । एकस्य क्षणिका तृप्तिरन्यः प्राणैर्वियुज्यते" ॥ ३ ॥ तदेवं महादोषं मांसादन मिति मत्वा यद्विधेयं तद्दर्शयति । एतदेवंभूतं मांसादनाभिलाषरूपं मनोंतःकरणं कुश लानिपुणामांसाशित्वविपाकवेदिनस्तन्निवृत्तिगुणाभिज्ञाश्च न कुर्वंति तदभिलाषादात्म नोनिवर्त्तयंतीत्यर्थः । आस्तां तावद्भक्षणं वागप्येषा यथा मांसभक्षणेऽदोषइत्यादिका नास्त्य भिहितोक्ता मिथ्या । तुशब्दान्मनोपि तदनुमत्यादौ न विधेयमिति तन्निवृत्तौ चेहैवानुपमा श्लाघाऽमुत्र च स्वर्गापवर्गगमनमिति । तथाचोक्तं । "श्रुत्वा दुःखपरंपरामतिघृणां मां साशिनां दुर्गतिं, ये कुर्वंति शुभोदयेन विरतिं मांसादनस्यादरात् । तद्दीर्घायुरदूषितं गदरुजा संभाव्य यास्यंति ते, मर्त्येषूद्भटभोगधर्ममतिषु स्वर्गापवर्गेषु चेत्यादि" ॥ ३९ ॥ न केवलं मां सादनमेव परिहार्यमन्यदपि मुमुक्षूणां परिहर्तव्यमिति दर्शयितुमाह । (सवेसिमित्यादि) सर्वेषां जीवानां प्राणार्थिनां न केवलं पंचेंद्रियाणामेवेति सर्वग्रहणं दयार्थतया दयानिमि त्तं सावद्यमारंभं महानयं दोषइत्येवं मत्वा तत्परिवर्जयंतः साधवस्तच्छंकिनोदोषशंकिन ऋषयोमहामुनयोज्ञातपुत्रीयाः श्रीमन्महावीरवर्द्धमानशिष्याः उद्दिष्टं दानाय परिकल्पि तं यद्भक्तपानादिकं तत्परिवर्जयंति ॥ ४० ॥

भूयाभिसंकाए डुगंछमाणा, सवेसिपाणाण निहाय दंमं ॥ तम्हा
ण भुंजंति तहप्पगारं, एसोणुधम्मो इह संजयाणं ॥ ४१ ॥ निग्गं
थधम्मंमि इमं समाहिं, अस्सिंस सुठिच्चा अणिहे चरेज्जा ॥ बुद्धे
मुणी सीलगुणोववेए, अच्चतं पाउणती सिलोगं ॥ ४२ ॥

अर्थ—वली पण साधुनो आचार कहेछे. (भूयाभिसंकाएडुगंछमाणा के०) भूत जे प्राणी तेना मर्दननी शंकायें सावद्यानुष्ठाननें डुगंछता निंदता, तथा (सवेसिपाणाण निहायदंमं के०) सर्व प्राणीनो दंम एटले विनाश, तेनें निहाय एटले छांमीनें त्याग करी नें सम्यक् आचारें प्रवर्त्तता एवा साधु (तम्हाणभुंजंतितहप्पगारं के०) ते कारणें त था प्रकारना एटले आधाकर्मादिक दोषें दूषित एवा ते आहारनें ण भुंजंति एटले न ज मे, न भोगवे. (एसोणुधम्मोइहसंजयाणं के०) आ जगत्मांहे यतिनो धर्म, ते अ णुधर्म, एटले श्री तीर्थंकरनी पछवाडे जाणवो. जेम श्री तीर्थंकरें निर्दोष आहार ग्रह णादिक धर्म आचस्यो, तेम तेनें अनुसारें साधु पण, एहिज धर्म आचरे. इत्यर्थः ॥ ४१ ॥ व ली पण साधुनो आचार कहेछे. (निग्गंथधम्मंमिइमंसमाहिं के०) नथी जेनें विषे बा ह्य अनें अभ्यंतर ग्रंथि एवो जे धर्म, तेने विषे ए पुर्वोक्त जे समाधि एटले सुजता अहारनुं ले वुं, (अस्सिंसुठिच्चाअणिहेचरेज्जा के०) इत्यादिकनें पामीनें सम्यक् अनुष्ठानरूप समाधिनें

विषे स्थित एटले प्रवर्त्तमान एवो साधु अणिहे एटले मायारहित थको अथवा, स्नेहरहित थको, संयमानुष्ठाननें आंचरे, एटले पाले. (बुद्धेमुणीसीलगुणोववेए के०) बुद्ध एटले तत्त्वनो जाण, मुणी एटले त्रिकालवेदी, त्रण कालनो जाण, सील एटले आचार ते उपशमादिक तथा गुण, एटले मूलोत्तर गुणरूप तेणें करी उपपेत एटले सहित, एवो साधु, (अच्चत्तेपाउणतीसिलोगं के०) अत्यर्थ एटले सर्वगुणसंपन्न ते, लोक एटले आ लोकनें विषे, अनें लोकोत्तरनें विषे, संतोषकारक श्लाघानें पाउणत्ती एटले पामे॥ ४२॥

॥ दीपिका—नूतानां प्राणिनां हिंसाभिशंकया सावद्यव्यापारं जुगुप्समानः परिहरन् सर्वेषां प्राणिनां दंमं निहाय त्यक्त्वा साधवस्तथाप्रकारमशुद्धाहारं न भुंजते तस्मादेषो नुधर्मः संयतानामिह जैनमते तीर्थकराचरणादनुपश्चाच्चर्यतइत्यनुधर्मइति ॥ ४१ ॥ निर्ग्रंथधर्मे साधुमार्गे स्थितइमंपूर्वोक्तं समाधिं प्राप्तोऽस्मिन्समाधौ सुष्टु स्थित्वाऽनिहोनि र्मायः सन् चरेत्संयमे बुद्धोज्ञाततत्वोमुनिः शीलेन क्रोधोपमेन गुणैश्च मूलोत्तरनूतैरुपेतो युक्तोत्यर्थं तां सर्वातिशायिनीं श्लाघां प्राप्नोति । यदुक्तं । " राजानं तृणतुल्यमेव मनुते श क्रेपि नैवादरो, वित्तोपार्जनरक्षणव्ययकृताः प्राप्नोति नो वेदनाः ॥ संसारांतरवर्त्यपीह ल नते शं मुक्तवन्निर्नयः, संतोषात्पुरुषोमृतत्वमचिराद्यायात्सुरेंद्रार्चित " इति ॥ ४२ ॥

॥ टीका—किंच । (नूयाभिसंकाएइत्यादि) नूतानां जीवानां उपमर्दशंकया सावद्यम नुष्ठानं जुगुप्समानापरिहरंतस्तथा सर्वेषां प्राणिनां दंमयतीति दंमः समुपतापस्तं निहाय परित्यज्य सम्यगुब्भिताः सत्साधवोयतस्ततोन भुंजते तथाप्रकारमाहारमशुद्धजातीयमे षोनुधर्मइहास्मिन् प्रवचने संयतानां यतीनां तीर्थकराचरणादनुपश्चाच्चर्यतइत्यनुना वि शेष्यते । यदि चाणुरिति स्तोकेनाप्यतिचारेण वा बाध्यते शिरीषपुष्पमिव सुकुमारइत्यतो ऽणुता विशेष्यतइति ॥ ४१ ॥ किंचान्यत् ॥ (णिग्गंथधम्ममित्यादि) नास्मिन्मौनींइ धर्मे बाह्याभ्यंतररूपोग्रंथोस्यास्तीति निर्ग्रंथः सचासौ धर्मश्च निर्ग्रंथधर्मः सच श्रुतचारित्रा ख्यः क्षांत्यादिकोवा सर्वज्ञोक्तस्तस्मिन्नेवंनूते धर्मे व्यवस्थितइमं पूर्वोक्तसमाधिमनुप्राप्तो ऽस्मिंश्चाशुद्धाहारपरिहाररूपे समाधौ सुष्टु अतिशयेन स्थित्वाऽनिहोऽमायोऽथवा निहन्यत इति निहोन निहोऽनिहः परीषहैरपीडितो यदिवा स्निहबंधने स्निहइति स्नेहरूपबंधनर हितः संयममनुष्ठानं चरेत् तथा बुद्धोऽवगततत्वोमुनिः कालत्रयवेदी शीलेन क्रोधाद्युपशम रूपेण गुणैश्च मूलोत्तरगुणनूतैरुपेतोयुक्तइत्येवं गुणकलितोऽत्यर्थतां सर्वगुणातिशायिनीं सर्व दंद्वोपरमरूपां संतोषात्मिकां श्लाघां प्रशंसां लोके लोकोत्तरेवाऽऽप्नोति। तथा चोक्तं। "राजा नं तृणतुल्यमेव मनुते शक्रेपि नैवादरो, वित्तोपार्जनरक्षणव्ययकृताः प्राप्नोति नो वेदनाः॥

संसारांतरवर्त्यपीह जनते शं मुक्तवन्निर्नयः, संतोषात्पुरुषोमृतत्वमचिराद्यायात्सुरेंद्रा र्चित " इत्यादि ॥ ४२ ॥

सिणायगाणं तु डुवे सहस्से, जे नोयए णितिए माहणाणं ॥ ते पुन्नखंधे सुमहज्जणित्ता, नवंति देवा इति वेयवाउ ॥४३॥ सिणा यगाणं तु डुवे सहस्से, जे नोयए णितिए कुलालयाणं॥ से गब्र ति लोलुवसंपगाढे, तिवान्नितावी णरगान्निसेवी ॥ ४४ ॥

अर्थ—ए रीतें आर्द्रकुमार गोशालक तथा बौधमतिउनें परास्त करीनें आगल चाल्यो तेवा रें, वच्चें ब्राह्मण मल्या, ते ब्राह्मण बोल्या के,अहो आर्द्रकुमार! तें रूडुं कर्युं के, जे ए पूर्वो क्त बेडु मत वेदबाह्य हता, तेनुं तें निराकरण कर्युं, तो हवे ए जैनमत पण वेद बाह्यछे. एवुं जाणीनें, तमारा सरखानें आश्रय करवा योग्य नथी केमके,तुं क्षत्री बो अनें क्षत्रीनें सर्व वर्णोत्तम एवा ब्रह्मणनेंज सेववा योग्यछे, परंतु शूद्र सेववा नहीं. ए कारण माटें वेदोक्त विधियें यज्ञादिकमार्गेनी तमारे सेवा करवी. इत्यादिक ते ब्राह्मणो पोतानो मार्ग देखाडेछे.(सिणायगाणंतुडुवेसहस्से के०)स्नातक एटले षट्कर्मने विषे निरत, अनें वेदना जणनार, पोताना आचारनें विषे तत्पर,नित्य स्नातक, ब्रह्मचारी, एवा बेसहस्र(माहणाणं के०) ब्राह्मणनें(जेनोयएणितिए के०)जे पुरुष नित्य जमाडे, एटले तेनें मनोवांछित आहा र आपे, (तेपुन्नखंधेसुमहज्जणित्ता के०) ते पुरुष घणो महोटो पुण्यनो स्कंध उपार्ज न करीनें, (नवंतिदेवाइतिवेयवाउ के०) देवता थाय. एवुं अमारा वेदनुं वाक्यछे, एम जाणीनें ए वेदोक्त मार्ग आदरवो ॥४३॥ हवे आर्द्रकुमार उत्तर कहेछे के, अहो ब्राह्म णो! (सिणायगाणंतुडुवेसहस्से के०) स्नातकनां बे सहस्रनें (जेनोयएणितिएकुलालया णं के०) जे दातार नित्य जमाडे. ते स्नातक केवाछे तोके, कुलालग एटले मार्जार ते सर खा ब्राह्मण पण जाणवा,कारण के, ए पण सावद्याहार वांछता, सर्वकाल घर घरनें विषे न्रमण करे एवा, एक निंद्य आजीविकाना करनार, ते कुपात्रनें दान देवाथी,(सेगछति लोलुवसंपगाढे के०)ते लोलपी ब्राह्मण सहित एवो दातापण गछति एटले डुर्गतियें जाय, डुर्गतिमां कया स्थानकें जाय ? तोके, (तिवान्नितावीणरगान्निसेवी के०) तीव्रवेद नाना सहन करनार, एतावता तेत्रीश सागरोपम पर्यंत पूर्ण आयुष्यें ते बेडु जण नर कना स्थानकनें विषे नारकी थाय ॥ ४४ ॥

॥ दीपिका—एवं गोशालकमते बौद्धमते च निरस्ते द्विजातयः प्राहुः नो आर्द्रकुमार! शो भनं कृतं यदेते वेदबाह्ये द्वे अपि मते क्षिप्ते अथ जैनमतमपि वेदबाह्यं ततोनादरणयोग्यं

तस्माद्ब्राह्मणसेवैव युक्तेत्याह। स्नातकानां षट्कर्मरतानां विप्राणां सहस्रद्वयं ये नोजयंति नित्यं ते पुण्यसंबंधं सुमहांतमुर्ज्य देवाः स्युरिति वेदवादः ॥ ४३ ॥ आर्द्रकमुनिरेत दूषयन्नाह। (सिणायेति)। स्नातकानां सहस्रद्वयं ये नोजयंति। किंनूतानां कुलानि गृहाणि मांसार्थिनोयेऽटंति ते कुलाटामार्जाराः कुलाटाइव कुलाटास्तेषां सताहग्ब्राह्मण नोजनकोबहुवेदनासु गतिषु याति। किंनूतः लोलुपैरामिषगृद्धैः संप्रगाढोव्याप्तः तीव्रोऽसह्योनितापोयस्य एवंनूतः सन्नरकाभिसेवी स्यात् ॥ ४४ ॥

॥ टीका—तदेवमार्द्रककुमारं निराकृतगोशालकाजीवकबौद्धमतमनिसमीक्ष्य सांप्रतं द्विजातयः प्रोचुः। तद्यथा नो आर्द्रककुमार! शोननमकारि नवता यदेते वेदबाह्ये द्वे अपि मते निरस्ते तत्सांप्रतमप्यार्हतं वेदबाह्यमेवातस्तदपि नाश्रयणार्हं नवद्विधानां तथाहि नवान् क्षत्रियवरः क्षत्रियाणां च सर्ववर्णोत्तमाब्राह्मणाएवोपास्यान शूद्राद्यतोयागादि विधिना ब्राह्मणसेवैव युक्तिमतीत्येतत्प्रतिपादनायाह। (सिणायगाणंतुइत्यादि) तुशब्दो विशेषणार्थः। षट्कर्मानिरतावेदाध्यापकाः शौचाचारपरतया नित्यं स्नायिनोब्रह्मचारिणः स्नातकास्तेषां सहस्रद्वयं नित्यं ये नोजयेयुः कामिकाहारेण ते समुपार्जितपुण्यस्कंधाः संतोदेवाः स्वर्गनिवासिनोनवंतीत्येवंनूतोवेदवादइति ॥ ४३ ॥ अधुनार्द्रककुमारएतद्दूषयितुमाह। (सिणायगाणंतुइत्यादि) स्नातकानां सहस्रद्वयमपि नित्यं येनोजयंति। किंनूतानां कुलानि गृहाण्यामिषान्वेषणार्थिनोनित्यं येऽटंति तेकुलाटामार्जाराः कुलाटाइव कुलाटाब्राह्मणाः। यदिवा कुलानि क्षत्रियादिगृहाणि तानि नित्यं पिंमपातान्वेषिणां परतर्कुकाणामालयोयेषां ते कुलालयास्ते निंद्यजीविकोपगतानामेवंनूतानां योसहस्रद्वयं नोजयेत्सः सत्पात्रनिक्षिप्तदानोगछति बहुवेदनासु गतिषु। किंनूतः सन् लोलुपैरामिषपरैः गृद्धैरससातागौरवाद्युपपन्नैः जिव्हेंद्रियवशगैः संप्रगाढोव्याप्तोयदिवा किंनूते नरके याति लोलुपैरामिषगृध्नुनिरसुमद्भिर्व्याप्तोयोनरकस्तस्मिन्निति। किंनूतश्चासौ दाता नरकाभिसेवी नवति तद्दर्शयति। तीव्रोऽसह्योयोऽनितापः क्रकचपाटनकुंनीपाकतप्तत्रपुपानशाल्मल्यालिंगनादिरूपः सविद्यते यस्यासौ तीव्रानितापीत्येवंनूतवेदनानितप्तस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमानि यावदप्रतिष्ठाननरकाधिवासी नवतीति ॥ ४४ ॥

दयावरं धम्मडुगंबमाणा, वहावहं धम्मपसंसमाणा ॥ एगं
पि जे नोययती असीलं, णियोणिसं जाति कुउ सुरेहिं ॥ ४५ ॥
डुहउवि धम्मं मिसमुछियामो, अस्सिं सुठिच्चा तह एसकालं ॥
आयारसीले बुइए हनाणी, ए संपरायंमि विसेसमहि ॥ ४६ ॥

अर्थ—वली आर्द्रकुमार कहेछे के, (दयावरंधम्मडुगंछमाणा के०) जेमां दया प्रधा नछे एवा धर्मनें निंदता, (वहावहंधम्मपसंसमाणा के०) तथा हिंसारूप धर्मनी प्रशं सा करता, (असीलं के०) आचार रहित एवा, (एगंपि के०) एकनें पण (जेन्नो ययती के०) जे कोइ नृप राजा अथवा बीजो कोइ मूढमति धार्मिक पुरुष, पात्रनी बुद्धियें करी जमाडे, तो (णीयोणिसंजातिकुंउंसुरेहिं के०) ते नृप राजा, अथवा बीजो कोइ मूढमति पुरुष होय, ते निशा एटले सदैव कृष्णांधकार रात्रीसमान काल वर्त्तेछे जेमां एवी नरकनूमिनेंविषे नरकमांहे जाय. ए वचन सत्य करी जाणवुं. अनें तमें कह्युं जे देवता थाय, ते वात मृषाछे तेवा पुरुषनें असुरनें विषे पण गति न जा णवी, तो वैमानिक देवता क्यांथी थाय ! ॥ ४५ ॥ हवे आर्द्रकुमार ब्राह्मणोनो मत परास्त करीनें आगल चाल्यो, एटले एक दंभिया सांख्य मति मल्या, ते एम कहेछे के, अ हो आर्द्रकुमार ! तें रूडूं कीधुं के, जे एं ब्राह्मणो सर्व आरंजनें विषे प्रवर्त्तता गृहस्थ ब ता, पोतामां गुरुपणुं मानता, एवा ए राक्षस सरखा ब्राह्मणनुं निराकारण कर्युं? सांप्रत अमारा सिद्धांतसाथें तमारासिद्धांतनो कांइ जेद नथी, अमारो सिद्धांत पंचविंशति तत्व रूपछे. हवे ते पण कहुंबुं सांजल, हैयानेविषे धारण कर. (डुहउविधम्मंमिसमुट्ठियामो के०)जे अमारो धर्म, अने तमारो धर्म, ए बेहु सरखाज जाणियें बैयें. कारण के, तमारे पण जीवनें अस्तिनावें पुण्य, पाप, बंध, अनें मोक्षनो सद्भावछे,अनें अमारे पण एमज छे. तमारे पण पांच महा व्रतछे, अनें अमारे पण अहिंसादिक पांच यमछे,तथा इंड्रिय अनें नोइंड्रियना नियमो तो आपण बेहुनें सरखाजछे तेमाटें बेहुधर्मनें विषे अमनें अने तमने प्रवर्त्ततां सम्यक् प्रकारज जाणवो. अनें(अस्सिंसुट्ठिच्चा के०) एहिज धर्मनें विषे रहिनें, (तहएसकालं के०) तथा अतीतकालें, वर्त्तमानकालें, अनें आगमिक कालें, जे पूर्वो क्त अंगीकार करेला धर्मना प्रतिपालनहार आपणे बैयें. तेवा बीजा कोइ नथी.(आया रसीलेबुइएहनाणी के०) तथा आपणो आचार जे यम नियमलक्षण, ते प्रधान शील कह्योछे, परंतु आजीविकानुं कारण आपणनें कोइ पण नथी? तथा वली आपण बेहुनें ज्ञान, मोक्षनुं अंग कह्युंछे. (णसंपरायंमिविसेसमत्थि के०)तथा कर्मे करीनें न्रमण करेछे प्राणी जेमां ते संपराय कहियें, एवो संपराय जे, संसार, ते जेम तमारे नित्यछे, तेम अमारे पण नित्यजछे. तेमाटें ए सिद्धांतमां अमारे तमारे विशेष कांइ नथी ॥ ४६ ॥

॥ दीपिका—दयया वरं प्रधानं धर्मं जुगुप्समानोनिंदन् वधावहं हिंसाकरं धर्मं प्रशं सन्नेकमपि अशीलं निर्व्रतं षड्जीवोपमर्दनं योन्नोजयेत्किं पुनर्बहून् नृपोराजाऽन्योवा यः क श्चिन्मूढः संवराको निशेव नित्यांधकारत्वान्निशा नरकनूमिस्तां याति कुतस्तस्यासुरेष्वधम

देवेष्वपि प्राप्तिरिति । अथार्द्रकं मुनिमेकदंमिनः सांख्याः प्राहुः नो आर्द्रक! वरं कृतं यदेते सर्वारंनप्रवृत्तामांसाशिनोधिग्जातयोनिरस्ताः । इदानीमस्मत्सिद्धांतं शृणु ॥ ४५ ॥ यो यमस्मद्धर्मः यश्च त्वदीयोजैनः सउनयरूपोपि कथंचित्तुल्यः । पंचयमाअस्माकं नवतां तएव महाव्रतानि पुण्यपापबंधमोक्षसद्भावोस्माकं नवतां च तदेवमुनयस्मिन्नपि धर्मे समुत्थितायूयं वयंच पूर्वस्मिन्काले वर्त्तमाने एष्येच गृहीतप्रतिज्ञानिर्वाहकाः आचारप्रधानं शीलमुदितं कथितं अथ ज्ञानं मोक्षांगमुक्तं द्वाभ्यां आवयोः संपराये संसारे च न विशेषोस्ति ॥ ४६ ॥

॥ टीका–(दयावरमित्यादि) दया प्राणिषु कृपा तया वरः प्रधानोयोधर्मस्तमेवं धर्मं जुगुप्समानोनिंदंस्तथा वधं प्राण्युपमर्द्दमावहतीति वधावहस्तं तथानूतं धर्मं प्रशंसन्स्तुवन् एकमप्यशीलं निर्व्रतं षड्जीवकायोपमर्द्देन योनोजयेत् किं पुनः प्रनूतान् नृपोराजन्योवा यः कश्चिन्मूढमतिर्धार्मिकं आत्मानं मन्यमानः सवराकोनिशेव नित्यांधकारत्वान्निशारकनूमिस्तां याति कुतस्तस्यासुरेष्वप्यधमदेवेष्वपि प्राप्तिरिति । तथा कर्मवशादसुमतां विचित्रजातिगमनाज्जातेरशाश्वतत्वमतोन जातिमदोविधेयइति । यदपि कैश्चिदुच्यते यथा ब्राह्मणाब्रह्मणोमुखाद्विनिर्गताबाहुन्यां क्षत्रियाऊरुन्यां वैश्याः पद्भ्यांशूद्राइत्येतदप्यप्रमाणत्वादति फल्गुप्रायं तदन्युपगमे च न विशेषोवर्णानां स्यादेकस्मात्प्रसूतेर्बुध्नशाखाप्रतिशाखाग्रनूतपनसोडुंबरादिफलवद्ब्रह्मणोवा मुखादेरवयवानां चातुर्वर्ण्यावाप्तिः स्यान्नचैतदिष्यते नवद्भिस्तथा यदि ब्राह्मणादीनां ब्रह्मणोमुखादेरुद्भवः सांप्रतं किं न जायते ? अथ युगादावेतदित्येवं सति दृष्टहानिरदृष्टकल्पना स्यादिति । तथा यदि कैश्चिदन्यधायि सर्वज्ञनिक्षेपावसरे तद्यथा सर्वज्ञरहितोतीतः कालः कालत्वाद्वर्त्तमानकालवदेवंच सत्येतदपि शक्यते वक्तुं यथा नातीतः कालोब्रह्ममुखादिविनिर्गतचातुर्वर्ण्यसमन्वितः कालत्वाद्वर्त्तमानकालवद्भवति च विशेषे पक्षीकृते सामान्यहेतुरित्यतः प्रतिज्ञार्थैकदेशा सिद्धता-नाशंकनीयेति । जातेश्चानित्यत्वं युष्मत्सिद्धांतएवाभिहितं । तद्यथा शृगालोवा एषजायते यः सपुरीषोदह्यतइत्यादिना । तथा सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ॥ त्र्यहेन शूद्रीनवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयीत्यादि लोके चावश्यंनावी जातिपातः । यतउक्तं । "कायिकैः कर्मणां दोषैर्याति स्थावरतां नरः ॥ वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरंत्यजातितां" ॥१॥ इत्यादिगुणैर्दोषैर्न ब्राह्मणत्वं युज्यते । तद्यथा । "षट्शतानि नियुज्यंते पशूनां मध्यमेहनि । अश्वमेधस्य वचनान्न्यूनानि पशुनिस्त्रिनिरित्यादि वेदोक्तत्वान्नायं दोषइति चेन्नन्विदमभिहितमेव न हिंस्यात्सर्वनूतानीत्यतः पूर्वोत्तरविरोधस्तथा ।" आततायिनमायांतमपि वेदांतगं रणे । जिघांसंतं जिघांसीयान्न तेन ब्रह्महा नवेत् ॥ तथा शूद्रं हत्वा प्राणायामं जपेत्

अपहसितं वा कुर्यात् यत्किंचिद्वा दद्यात् तथा नास्थिजंतूनां शकटजरं मारयित्वा ब्राह्म णं जोजयेदित्येवमादिका देशना विद्धज्जनमनांसि न रंजयतीत्यतोऽत्यर्थमसमंजसमिव ल क्ष्यते युष्मद्दर्शनमिति । तदेवमार्द्रककुमारं निराकृतब्राह्मणविवादं जगवदंतिकं गच्छंतं दृष्ट्वा एकदंमिनांतराले एवोचुस्तद्यथा जो आर्द्रककुमार! शोजनं कृतं जवता यदेते सर्वारं जप्रवृत्तागृहस्थाः शब्दादिविषयपरायणाः पिशिताशनेन राक्षसकल्पाद्विजातयोनिराकृता स्तत्सांप्रतमस्मत्सिद्धांतं शृणु श्रुत्वाचावधारय । तद्यथा सत्वरजस्तमसां साम्यावस्थाप्रकृ तिः प्रकृतेर्महांस्ततोऽहंकारस्तस्माज्गणश्च षोडशकस्तस्मादपि षोडशकात्पंच तन्मात्राणि ते ज्यः पंच जूतानि तथा चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपमित्येतत्त्वार्हतैरप्याश्रितमतः पंचविंशतित त्वपरिज्ञानादेव मोक्षावाप्तिरित्यतोऽस्मत्सिद्धांतएव श्रेयान्नापरइति ॥ ४५ ॥ तथा न युष्मत्सिद्धांतोतिदूरेण जिद्यतइत्येतद्दर्शयितुमाह । (उहउवीत्यादि) योयस्माद्धर्मोजव दीयश्चार्हतः सउजयरूपोपि कथंचित्समानस्तथाहि युष्माकमपि जीवास्तित्वे सति पुण्य पापबंधमोक्षसद्भावोन लोकायतिकानामिव तदजावे प्रवृत्तिर्नापि बौद्धानामिव सर्वाधा रजूतस्यांतरात्मनएवाजावस्तथास्माकमपि पंच यमाअहिंसादयोजवतां च तएव पंचमहा व्रतरूपास्तथेंद्रियनोइंद्रिय नियमोप्यावयोस्तुल्यएव तदेवमुजयस्मिन्नपि धर्मे बहुसमाने सम्यगुड़ानोछितायूयं वयंच तस्माद्धर्मे सुष्ठु स्थिताः पूर्वस्मिन् काले वर्तमाने एष्येच यथा गृहीतप्रतिज्ञानिर्वोढारोन पुनरन्ये यथाव्रतेश्वरयागविधानेन प्रव्रज्यां मुक्तवंतो मुंचंति मो क्षंति चेति तथाचारप्रधानं शीलमुक्तं यमनियमलक्षणं न फल्गुवल्ककुहकाजीवनरूपमथा नंतरं ज्ञानंच मोक्षांगतयाभिहितं तच्च श्रुतज्ञानं केवलाख्यंच यथा स्वमावयोदर्शने प्रसिद्धं तथा संपर्य्यते स्वकर्मभिर्भ्राम्यंते प्राणिनोयस्मिन्ससंपरायः संसारस्तस्मिंश्चावयोर्न विशे षोस्ति । तथाहि । यथा जवतां कारणे कार्यं नैकांतेनासदुत्पद्यते अस्माकमपि तथैव इव्यात्मतया नित्यत्वं जवद्भिरप्याश्रितमेव तथोत्पादविनाशावपि युष्मदभिप्रेतावाविर्जा वतिरोजावाश्रयादस्माकमपीति ॥ ४६ ॥

अवत्तरूवं पुरिसं महंतं, सणातणं अक्कयमव्वयं च ॥ सव्वे
सु जूतेसु विसव्वतोसे, चंदोवताराहिं समत्तरूवे ॥ ४७ ॥ एवं
ण मिज्जंति ण संसरंती, ण माहणाखत्तिय वेसयस्सा ॥ कीडाय
पक्कीय सरीसिवाय नराय सव्वे तह देवलोए ॥ ४८ ॥

अर्थ—वली एक दंमिज कहेछे. (पुरिसं के०) पुरुष शब्दें जीव तेनें जे रीतें तमें जाणोगे, ते रीतें अमें पण जाणियें छैयें. (अवत्तरूवं के०) आत्मा अव्यक्तरूपछे, कर चरणादिक जे अवयव तेणें करी लख्योनजाय ते कारण माटें अव्यक्तरूपछे

तथा (महंतं के०) महांत एटले समस्तलोकमां व्यापी रह्योछे, तथा (सणातणं के०) सनातन एटले शाश्वतो छे, यद्यपि नाना प्रकारनी गति करेछे तथापि, चैतन्य लक्षण जे आत्मस्वरूपछे ते क्यांहिं पण जतुं नथी, तथा (अरकय के०) अक्षय एटले कोइ पण प्रदेशनो खंम करी न शकीयें तथा (मव्वयंच के०) अव्यय एटले अनंतकालें कोइ एक प्रदेशनो पण व्यय न थाय एटले विछेद न थाय. किंबहुना. (सव्वेसुभूतेसुविसव्वतोसे के०) सर्वभूतनें विषे, शरीर शरीरप्रत्यें ए आत्मा एकज व्यापी रह्योछे,ते उपर दृष्टांत देखाडेछे. (चंदोवताराहिंसमत्तरूवे के०) जेम चंद्मा अश्विन्यादिक नक्षत्रें करी, समस्तरूप थको संबंध पामे, तेम ए आत्मा, शरीर शरीर प्रत्यें संपूर्ण संबंध पामे. यडुक्तं ".एकएव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः ॥ एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचंद्रवत्" इत्यादि ॥ ४७ ॥ हवे तेप्रत्यें आर्द्रकुमार कहेछे. (एवंणमिक्कंतिणसंसरंती के०) ए रीतें जेम तमारे दर्शनें एकांतवादें आत्मा एक; नित्य, अविकारी, एम जे कहियें, ते संभवे नहीं, एम कहियें तो सर्व पदार्थ नित्य ठरेछे, तेम छतां तो बंध मोक्षनो पण सद्भाव क्यांथी थाय? अनें बंधनें अभावें चतुर्गतिक संसारनो पण अभाव, अनें मोक्षनो पण अभाव थाय. अनें मोक्षनें अभावें त... यम नियमादिक व्रतनुं ग्रहण कह्यो छो ते पण निरर्थक थशे, ए कारण माटें आत्मा सर्व व्यापी एकजछे. ए जे तमारुं बोलवुंछे ते अयुक्तछे, एम कहेतां तो नरक, तिर्यंच, मनुष्य, अनें देवता, तथा बाल, कुमार, सुभग, डुर्भग, धनाढ्य,दरिद्री, इत्यादिक भेदें जूदा जूदा पदार्थो न जाणियें ? तथा पोताना करेला कर्मं करी प्रेस्या जीव, नाना प्रकारनी गतिनें विषे परिभ्रमण पण न करे ? (नमाहणाखत्तियवेसयस्साकीडायपस्कीयसरीसिवायनरायसव्वेतहदेवलोए के०)तथा आत्मानें सर्वव्यापक पणुंज कहेवा थकी एकत्व भावेंज आत्मा थयो, तेवारें ब्राह्मण, क्षत्रिय, तथा वैश्य, अनें शूद्र, तथा कीटक, पक्षी, तथा सरीसिव एटले सर्प्प, तथा नर एटले मनुष्य, तथा सर्व देवलोक इत्यादिक, नाना प्रकारनी गतिना गामी जीव न होय ? ए कारण माटें आत्मा सर्व व्यापक नथी, तथा आत्मा एक पण नथी, ते माटें तमारो आगम, सर्वज्ञभाषित नथी, अनें सर्वज्ञभाषित विना याथातथ्य न होय ॥ ४८ ॥

॥दीपिका–भवंतः पुरुषजीवं स्वीकृतवंतस्तथा वयमपि। किंभूतं? अव्यक्तरूपं महांतं व्यापकं सनातनं नित्यं अक्षतं प्रदेशानां खंमशः कर्तुमशक्यत्वात् अव्ययं अनंतकालेनापि एकप्रदेशस्यापि व्ययाभावात्। तथा सर्वेषु भूतेषु शरीरवत्सु प्रतिशरीरं सर्वतः सामस्त्यादसावात्मा भवति। यथा चंद्रस्ताराभिः संपूर्णः समस्तरूपः संबध्यते एवं जीवोपि शरीरैः संपूर्णः संबध्यते अयमेव श्लोकोऽद्वैतवादिवेदांतिमते व्याख्येयः। न वरं सर्वभूतेषु सर्वतः सर्वा

त्मतयाऽसौ स्थितः यथा तारास्वेकएव चंद्रः तथात्मापि सर्वत्र संबध्यतइति ॥४७॥ अ र्थाईकमुनिराह । आत्मनोऽविकारित्वे आत्माऽद्वैते वा स्वीकृते डुर्नगसुन्नगादिन्नेदेन जीवा न मीयेरन्न ज्ञायंते स्वकर्मप्रेरितानरकादिगतिषु न संसरंति सर्वव्यापित्वादेकत्वाद्दा तथा न ब्राह्मणान क्षत्रियान वैश्यान प्रेष्यान शूद्रानापि कीटपक्षिसरीसृपाश्च नवंति नरा श्च सर्वेपि देवलोकाश्चेत्येवं गतिन्नेदोन स्यात् ? ॥ ४८ ॥

॥ टीका—पुनरपि तथैवैकदंमिनः संसारिकजीवपदार्थसाम्यापादनायाहुः । (अवत्तरूव मित्यादि) पुरि शयनात्पुरुषोजीवस्तं यथा नवंतोन्युपगतवंतस्तथा वयमपि तमेव विशि नष्टि । अमूर्त्तत्वादव्यक्तं रूपमस्यासावव्यक्तरूपस्तथा करचरणशिरोग्रीवाद्यवयवतया स्वतो वस्थानात्तथा महांतं लोकव्यापिनं तथा सनातनं शाश्वतं डव्यार्थतया नित्यं नानाविधग तिसंन्नवेपि चैतन्यलक्षणात्मस्वरूपस्याप्रच्युतेस्तथा क्षयं केनचित्प्रदेशानां खंमशः कर्तुमश क्यत्वात्तथाऽव्ययमनंतेनापि कालेनैकस्यापि तत्प्रदेशस्य व्ययान्नावात्तथा सर्वेष्वपि नूतेषु कायाकारपरिणतेषु प्रतिशरीरं सर्वतः सामस्त्यान्निरंशत्वादसावात्मा नवति कइव ? चं इव शशीव तारानिरश्विन्यादिनिर्नक्षत्रैर्यथा समस्तरूपः संपूर्णः संबंधमुपयात्येवम सावपि आत्मा प्रत्येकं शरीरैः सह संपूर्णः संबंधमुपयाति तदेवमेकदंमिनिर्दर्शन साम्यापादनेन सामवादपूर्वकं स्वदर्शनारोपणार्थमार्डककुमारोन्निहितोयत्रैतानि संपूर्णा नि निरुपचरितानि पूर्वोक्तानि विशेषणानि धर्मसंसारयोर्विद्यंते सएव पक्षः सश्रुतिकेन स माश्रयितव्योनवति । एतानि चास्मदीयएव दर्शने यथोक्तानि संति नार्हतेऽतोनवताप्य स्मदर्शनमेवान्युपगंतव्यमिति ॥ ४७ ॥ तदेवमन्निहितः सन्नार्डकुमारस्तडुत्तरदानायाह । (एवमित्यादि) यदिवा प्राक्तनश्लोकः (अवत्तरूवमित्यादि) कोवेदांतवाद्यात्माद्वैतमते न व्याख्यातव्यस्तथाहि ते एकमेवाव्यक्तं पुरुषमात्मानं महांतमाकाशमिव सर्वव्यापिनं स नातनमनंतमक्षयमव्ययं सर्वेष्वपि नूतेषु चेतनाचेतनेषु सर्वतः सर्वात्मतया सौव्यव स्थितइत्येवन्युपगतवंतोयथा सर्वास्वपि तारास्वेकएव चंद्रः संबंधमुपयात्येव चासा वपीत्यस्य चोत्तरदानायाह । (एवमित्यादि) एवमिति तथा नवतां दर्शने एकांते नैव नित्योविकार्यात्मान्युपगम्यते इत्येवं पदार्थाः सर्वेपि नित्यास्तथाचसति कुतोबंध मोक्षसन्नावोबंधान्नावाच्च न नारकतिर्यङ्नरामरलक्षणश्चतुर्गतिकः संसारोमोक्षान्नावा च्च निरर्थकं व्रतग्रहणं नवतां पंचरात्रोपदिष्टयमनियमप्रतिपत्तिश्चेत्येवं च यडुच्यते न वता यथाऽऽवयोस्तुल्योधर्मइति तदयुक्तमुक्तं । तथा संसारांतर्गतानांच पदार्थानां न सा म्यं तथाहि नवतां डव्यैकत्ववादिनां सर्वस्य प्रधानादनिन्नत्वात्कारणमेवास्ति कार्यंच कार णानिन्नत्वात्सर्वात्मना न विद्यते अस्माकंच डव्यपर्यायोन्नयवादिनां कारणे कार्यं डव्या

त्मतया विद्यते न पर्यायात्मकतया अपिचास्माकमुत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तमेव सदित्युच्यते नवतांतु ध्रौव्यं युक्तमेव सदिति । यावप्याविर्नावतिरोनावौ नवतोऽप्येते तावपि नोत्पाद विनाशावंतरेण नवितुमुत्सहेते तदेवमैहिकामुष्मिकचिंतायामांवयोर्न कथंचित्साम्यं किं च? सर्वव्यापित्वे सर्वात्मनामविकारित्वे चात्मा द्वैते चान्युपगम्यमाने नारकतिर्यङ्नरा मरनेदेन बालकुमारकसुनगडर्नगाढ्यदरिड्डादिनेदेनवा न मीयेरन्न परिछेद्येरन् नापि स्व कर्मचोदितानानागतिषु संसरंति सर्वव्यापित्वादेकत्वाद्दा तथा न ब्राह्मणान क्षत्रियान वै श्यान प्रेष्यान शूड्डा नापि कीटपक्षिसरीसृपाश्च नवेयुस्तथा नराश्च सर्वेपि देवलोकाश्चेत्ये वं नानागतिनेदेनोनिद्येरन्नतोन सर्वव्यापी आत्मा नाप्यात्मा द्वैतवादोप्यायात्यतः प्रत्ये कं सुखडुःखानुनवः समुपलन्यते तथा शरीरत्वक्पर्यंतमात्रएवात्मा तत्रैव तद्गुणविज्ञा नोपलब्धेरिति स्थितं ॥ ४ए ॥

लोयं अयाणित्ति ह केवलेणं, कहंति जे धम्ममजाणमाणा॥णा
संति अप्पाणपरं च णघा, संसारघोरं मिअणोरपारे ॥ ४ए ॥
लोयं विजाणंति ह केवलेणं, पुन्नेण नाणेण समाहिजुत्ता॥धम्मं
समत्तं च कहंति जेउ, तारंति अप्पाणपरं च तिन्ना ॥ ५० ॥

अर्थ- वली आर्डकुमार कहेछे के, (लोयं के०) ए लोक जे चौदरज्ज्वावात्मक, तेनें (अयाणित्तिहकेवलेणं के०) केवलज्ञानें करीनें न जाणे, एवा आ जगत् मांहें (कहं तीजेधम्ममजाणमाणा के०) जे दर्शनीउ अजाणता थका धर्म कहेछे. (णासंति अप्पाणपरंचणघा के०) ते पोताना आत्मानें त्रष्ट करता थका बीजानें पण त्रष्ट क रेछे. किंबहुना. (संसारघोरंमिअणोरपारे के०) ते घोर एटले रौड्, अपारावार, एवो जे संसार ते मांहे पोतें पण पडे, अनें बीजानें पण पाडे ॥ ४ए ॥ हवे आर्डकुमार, सम्यक्ज्ञानवंत धर्मना कहेनार, एवा पुरुषोना गुण कहेछे. (लोयंविजाणंतिहकेवलेणं के०) चौद रज्ज्वात्मक लोक, तेनें केवलज्ञानें करी केवली, नानाप्रकारें जाणे. (पुन्ने णनाणेणसमाहिजुत्ता के०) तथा संपूर्ण ज्ञानें करी, समाधिसहित थका, (धम्मंसम त्तंचकहंतिजेउ के०) संपूर्ण श्रुतचारित्ररूप धर्म, परना हितनें अर्थें जे कहे. (तारं तिअप्पाणपरंचतिन्ना के०) ते पोतें पण संसार समुड् थकी तरे, अनें बीजानें पण तारे. एवो जे जिनेंड् मार्ग, केवलीनाषित, ते सत्य जाणवो ॥ ५० ॥

॥ दीपिका—लोकं चराचरमज्ञात्वा केवलेन दिव्यज्ञानेन इह जगति ये कथयंति । ध र्ममजानानाः ते स्वयं नष्टाः आत्मना परं च नाशयंति क? घोरे संसारे अणोरपारे अवी

ग्नागपरन्नागरहितेऽनाद्यनंतइत्यर्थः ॥४९॥ पूर्णेन ज्ञानेन केवलेन समाधियुक्तालोकं चतुर्दशरज्जुमितं ज्ञात्वा इह शासने समस्तं धर्मं श्रुतचारित्ररूपं कथयंति ते आत्मना तीर्णाः संसारसागरं तारयंति च परं सडुपदेशादिति ॥ ५० ॥

॥ टीका–तदेवं व्यवस्थिते युष्मदागमोयथार्थाभिधायी न नवत्यसर्वज्ञप्रणीतत्वादसर्वज्ञप्रणीतत्वं चैकांतपक्षसमाश्रयणादित्येवमसर्वज्ञस्य मार्गोद्भावनं दोषमाविर्नावयन्नाह । (लोयमित्यादि) लोकं चतुर्दशरज्ज्वात्मकं चराचरं वा लोकमज्ञात्वा केवलेन दिव्यज्ञानावनासेनेहास्मिन् जगति ये तीर्थिकाअजानानाअविद्वांसोधर्मं दुर्गतिगमनमार्गस्यार्गलानूतं कथयंति प्रतिपादयंति ते स्वतोनष्टा अपरानपि नो त्रायंति क्व? घोरे नयानके संसारसागरे (अणोपारेत्ति) अर्वाग्नागपरनागवर्जितेनाद्यनंतइत्येवंनूते संसारार्णवे आत्मानं प्रक्षिपंतीति यावत् ॥ ४९ ॥ सांप्रतं सम्यक्ज्ञानवतामुपदेष्टृणां गुणानाविर्नावयन्नाह । (लोयमित्यादि) लोकं चतुर्दशरज्ज्वात्मकं केवला लोकं न केवलिनोविविधमनेकप्रकारं जानंति विदंतीहास्मिन् जगति प्रकर्षेण जानाति प्रज्ञः पुण्यहेतुत्वात् पुण्यं तेन तथानूतेन ज्ञानेन समाधिना च युक्ताः समस्तं धर्मं श्रुतचारित्ररूपं येतु परहितैषिणः कथयंति प्रतिपादयंति ते महापुरुषास्ततः संसारसागरं तीर्णाः परंच तारयंति सडुपदेशदानत इति केवलिनोलोकं जानंतीत्युक्ते यत्पुनर्ज्ञानेनेत्युक्तं तद्बौद्धमतोच्छेदेन ज्ञानाधारआत्मा अस्तीति प्रतिपादनार्थमिति । एतडुक्तं नवति यथाऽऽदेशिकः सम्यक्मार्गज्ञआत्मानं परं च तडुपदेशवर्तिनं महाकांताराद्विवक्षितदेशप्रापणेन निस्तारयत्येवं केवलिनोप्यात्मानं परं च संसारकांताराग्निस्तारयंतीति ॥५०॥

जे गरहियं ठाणमिहावसंति, जेयावि लोए चरणोववेया ॥ उदाहडं तं तु समं मईए, अहाउसो विप्परियासमेव ॥ ५१ ॥ संवत्तरेणाविय एगमेगं, बाणेण मारेउ महागयं तु ॥ सेसाणजीवाणदयठयाए, वासं वयं वित्ति पकप्पयामो ॥ ५२ ॥

अर्थ– हवे वली मिथ्यावादीनी केवी प्ररूपणा होय ! ते आर्द्रकुमार कहेछे. (जे के०) जे कोइ संसारमांहे वर्तता अशुन कर्मना करनार, (गरहियं के०) गर्हित एटले निंदित, निर्विवेकीयें आचरण करेलुं (ठाणमिहावसंति के०) एवुं क्रिया अनुष्ठानरूप जे स्थानक, तेनुं इह एटले आ जगत् मांहे सेवन करे, आजीविकानें कारणे तेनो आश्रय करे, (जेयाविलोएचरणोववेया के०) तथा जे वली रूडा उपदेशना देनारा, लोक मांहे विरति परिणामरूप चारित्रें करी सहितछे. (उदाहडंतंतुसमंमईए के०)

ए वेदुनो अनुष्ठान तमारी मतियें सरखो कहेवो. (अहाउसोविप्परियासमेव के०)अहो आयुष्यमन् एक दंमियाउं! तेथी तेवुं कहेनाराने विपर्यास एटले विपरीत मतिवाला जाणवा.अनें ए प्रमाणे कहेनारनुं वचन उन्मत्त प्रलाप समान जाणियें बैयें. साचुं, अनें जूठुं ए बे धर्म,सरखाज केम होय?॥५१॥ ए रीतें एकदंमियाना मतनुं निराकरण करीनें जेटले स्वामीना समवसरण नणी आर्द्रकुमार चाल्या,एटले अंतरालें हस्तितापस आवीनें बोल्या के, अहो आर्द्रकुमार! सश्रुतिक पुरुषनें अल्पबहुत्व आलोचवो जोइयें. शामाटें? तेनुं कारण कहुं ते तुं सांजल. के जे बीजा तापस, कंद, मूल, फलना नक्षण करनार,ते घणा एक स्थावर जीवोनो विनाश करे, तथा ते स्थावरनें आश्रित जे जंगम जीव होय, तेनो पण विनाश करे,तथा जे निक्षा मागीनें पोतानी आजीविका करेबे ते पण,आशंसादोषें करी दूषितबे,कारण के जिहां तिहां परिज्रमण करतां कीडी,मंकोडी प्रमुख अनेक जीवनें उद्दवेबे अनें अमेंतो,(संवञ्चरेणावियएगमेगं के०) वर्ष वर्ष दिवसें,तथा अपिशब्दें करी ब मासें एकज, (बाणेणमारेउमहागयंतु के०) महाकाय एटले महोटी कायावालो एवो जे हस्ती तेनें बाणनें प्रहारें विनाशीनें, (सेसाणजीवाणदयठयाए के०) शेष बीजा जीवोनी दयानें अर्थें, मात्र ते एकज हस्तीना मांसें करीनें, (वासंवयंवित्तिपकप्पयामो के०) वर्ष दिवस सुधी अमें अमारी आजीविका चलावियें बैयें. ए रीतें थोडा जीवनो उपघात करी, घणा जीवोनी अमें रक्षा करियें बैयें. ए माटें विशेषें करी, अमारो मार्ग बीजा सर्वमार्गथकी श्रेष्ठज जाणवो ॥ ५२ ॥

॥दीपिका—ये गर्हितं निंद्यनिर्विवेकिजनाचरितं स्थानं इह जगत्याश्रयंति ये चापि लोके चरणोपेतं संयमरूपं स्थानं सेवंते तद्द्वयमपि यैरसर्वज्ञैः समं तुल्यमेवोदाहृतं कथितं स्वमत्या स्वाभिप्रायेण। अथायुष्मन् हे सांख्य! विपर्यासइति तन्मत्तोन्मत्तप्रलापवदिति एवमेकदंमिनोनिरस्यार्द्रमुनिर्भगवत्समीपे याति । तावता हस्तितापसास्तमेवं प्रोचुः ॥५१ ॥ नो आर्द्रक! ये तापसाः कंदमूलफलाशिनस्ते बहूनां स्थावराणां तदाश्रितत्रसानांच घातकाः ये च निक्षां सेवंते तेप्याशंसादोषदूषिताः च्रमंतश्च पिपीलिकादिजंतुघातकाः वयं तु संवत्सरेणाप्येकं महागजं बाणेन व्यापाद्य शेषाणां जीवानां दयार्थं आत्मनोवृत्तिं जीविकां तन्मांसेन वर्षं यावत्कल्पयामः कुर्मः ततोवयं बहुजीवरक्षकाः ॥ ५२ ॥

॥ टीका—पुनरप्यार्द्रककुमारएवाह । (जेगरहियमित्यादि) असर्वज्ञप्ररूपणमेवंनूतं नवति । तद्यथा ये केचित्संसारांतर्वर्तिनोऽशुनकर्मणोपेताः समन्वितास्तद्विपाकसहायागर्हितं निंदितं जुगुप्सितं निर्विवेकिजनाचरितं स्थानं पदं कर्मानुष्ठानरूपमिहास्मिन् जग

त्यासेवंति जीविकाहेतुमाश्रयंति तथाच ये सडुपदेशवर्त्तिनोलोकेस्मिन् चरणेन विरतिप रिणामरूपेणोपेताः समन्वितास्तेषामुत्तमयेषामपि यदनुष्ठानं शोजनाशोजनस्वरूपमपि स तू तदसर्वज्ञैरर्वाग्दर्शिनिः समं सदृशं तुल्यमुदाहृतं उपन्यस्तं स्वमत्या स्वाजिप्रायेण न पुन र्यथावस्थितपदार्थनिरूपणेनाथवाऽऽयुष्मन् हे एकदंडिन्! विपर्यासमेव विपर्ययमेवो दाहरेदसर्वज्ञोयदशोजनं तच्छोजनत्वेनेतरत्त्वितरथेति यदिवा विपर्यासइति मत्तोन्मत्तप्र लापवदित्युक्तं जवतीति ॥ ५१ ॥ तदेवमेकदंडिनोनिराकृत्याऽर्द्रककुमारोयावद्भगवदंतिकं व्रजति तावद्धस्तितापसाः परिवृत्य तस्थुरिदं च प्रोचुरित्याह। (संवच्छरेणइत्यादि) ह स्तिनं व्यापाद्यात्मनोवृत्तिं कल्पयंतीति हस्तितापसास्तेषां मध्ये कश्चिद्वृद्धतमएतडुवाच तद्यथा जो आर्द्रककुमार! सश्रुतिकेन सदाल्पबहुत्वमालोचनीयं तत्र ये अमी तापसाः कंदमूलफलाशिनस्ते बहूनां सत्त्वानां स्थावराणां तदाश्रितानां वोडुंबरादिषु जंगमानामु पघाते वर्त्तंते येपि च नैक्ष्येणात्मानं वर्तयंति तेप्याशंसादोषदूषिताइतश्चेतश्चाटयमानाः पि पीलिकादिजंतूनां उपघाते वर्त्तंते वयंतु संवत्सरेणावि अपिशब्दात् षण्मासेन चैकैकं हस्ति नं महाकायं बाणप्रहारेण व्यापाद्य शेषसत्वानां दयार्थमात्मनोवृत्तिं वर्त्तनं तदामिषेण वर्षमेकं यावत्कल्पयामस्तदेवं वयमल्पसत्वोपघातेन प्रजूततरसत्वानां रक्षां कुर्मइति॥५२॥

संवच्छरेणाविय एगमेगं, पाणं हणंता अणियत्तदोसा॥ सेसा
णजीवाणवहेलणाय, सियाय थोवं गिहिणोवि तम्हा ॥ ५३ ॥
संवच्छरेणाविय एगमेगं, पाणं हणंता समणे वएसु ॥ आया
हिए तं पुरिसे अणज्जे, ण तारिसे केवलिणो जवंति ॥५४॥ बुद्ध
स्स आणाए इमं समाहिं, अस्सिं सुठिच्चा तिविहेण ताई ॥तरिउं
समुद्दं च महाजवोघं, आयाणवंतं समुदाहरेज्जा त्तिबेमि ॥५५॥
इति अद्दइज्जणाम छठमज्जयणं सम्मत्तं ॥

अर्थ—हवे आर्द्रकुमार कहेछे के, अहो हस्तितापसो! तमें (संवच्छरेणावियएगमेगंपा णंहणंताअणियत्तदोसा के०) वर्ष वर्ष प्रत्यें, तथा छ मासप्रत्यें तमे एकेक महोटो जीव हणता थका दोषथकी, निवर्त्या एम कहेवातछ नहीं. (सेसाणजीवाणवहेलणाय के०). कारणके, घणा जीवनें न हणता अनें वर्षमां,तथा छमासमां एकजीवनें हणता एवा तमो नें पंचेंद्रियमहाकाय जीवना वधनो आशंसा दोष पण लागेछे.अनें साधु तो, सूर्य किरणे प्रकाशित मार्गनेंविषे जूसर मात्र दृष्टि शोधता, इर्यासमितें समितावंत छता, बेंतालीश दोष रहित आहारनी गवेषणा करता,आहारना लाजें, अथवा अलाजें,समवृत्ति वाला

होय; तेनें कयो आशंसा दोष ? अनें पिपीलिकानो घात पण केम थाय? अनें तमो एवा म होटा जीवनो उपघात करीनें पण पोतानें निर्दोष मानोगे, ते जो एवी रीतें निर्दोष पणुं थतुं होय तो, आपणी आजीविकानें निमित्तें आरंननें विषे प्रवर्त्तता (सियायथोवंगिहि णोवितम्हा के०) कदाचित् पोतानुं क्षेत्र टाली अन्य जीवोनो उपघात अण करतां गृहस्थ पण तमारी पेठें थोडा जीव हणतां,घणा जीव पालता थकां तमारा सरखा निर्दोषज जाणवा. एम वखुं ॥५३॥ वली आर्द्रकुमार कहेठेके,(संवछरेणावियएगमेगंपाणंहणंता समणेव्वएसु के०) अहो हस्तितापसो! जे तमारा दर्शनी, श्रमणना व्रतनें विषे प्रवर्त्तता ठता संवत्सर संवत्सर प्रत्यें तथा ठमास प्रत्यें एकेक जीव हणे,अनें वली एहिज धर्मनो उपदेश आपे, (आयाहिएतंपुरिसेअणज्जे के०) ते अनार्य अनाचारी पोतानें तथा परनें अहितना करनार जाणवा केम के,(णतारिसेकेवलिणोनवंति के०)ते पुरुष सादृशकेवली न होय? ते अशुद्धमार्गना प्रवर्त्तक अनें सत्यमार्गना द्वेषी जाणवा जे कारणे ते वर्षवर्ष प्रत्यें एकेक जीवनो विनाश करे, तेनुं मांस वर्ष वर्ष दिवस सुधी राखे तेमांहे अनेक असंख्यात बीजा त्रस जीव उपजे, तेथी तेनें पचावतां ते जीवोनो विनाश थाय. ए कारण माटें घणा जीवोनो विनाश करतां पण एम कहे के, अमें थोडा जीवोनो विनाश करियें ठैयें, ते माटें तेमिथ्यावादी जाणवा. तेनुं वचन अमें प्रमाण नथी करता. इत्यादिक वचन कही अन्य दर्शनीनें प्रतिबोधि, श्री महावीर देवनें समवसरणें जइ, तीर्थंकरने वांदीनें, आर्द्रकुमार, आज्ञानो आराधक थयो ॥ ५४ ॥ हवे अध्ययन परिसमाप्ति नणी कहेठे. (बुद्धस्सआणाएइमंसमाहिं के०) बुद्ध एटले तत्वना जाण, एवा श्री महावीर देव, तेनी आज्ञायें आ समाधि, धर्मप्राप्ति लक्षण लहीने, (अस्सिंसुठिच्चातिविहेणताई के०) ए समाधिने विषे प्रवर्त्ततो त्रिविध त्रिविध प्रकारें ठ कायनो रक्षपाल एवो साधु, (तरिउंसमुद्दंचमहानवोघं के०) नयंकर संसार समुद्र तरीनें (आयाणवंतंसमुदाहरेज्जा के०) आदानवंत एटले सम्यक् ज्ञान, दर्शन, अने चारित्र सहित थको, एम आर्द्रकुमारनी पेरें यथावस्थित प्ररूपणायें करी परदर्शनीनो निराकरण करीनें मोक्षनो मार्ग प्रगट करे, ते साधु जाणवो. त्तिबेमिनी व्याख्या, पूर्ववत् जाणवी ॥ ५५ ॥ ए अद्दइज्जनामें ठठा अध्ययननो संक्षेपार्थ बालावबोध समाप्त थयो ॥ ६ ॥

॥ दीपिका—अथार्द्रकुमारः प्राह ॥ संवत्सरेणाप्येकैकं प्राणिनं घ्नंत प्राणातिपातादनिवृत्त्वान्निवृत्तदोषास्ते स्युः साधूनां तु सूर्यप्रकाशिते मार्गे युगमात्रदृष्ट्या इर्यासमित्या गठतां निर्दोषाहारान्वेषिणां समचित्तानां क्व आशंसादोषः? क्व कीटिकादिघातोवेत्यर्थः। स्तोकजीवघाते च दोषानावस्तदा,गृहस्थाअपि स्वारंनदेशस्थान् जीवान् घ्नंति,शेषाणां च जीवानां

वधे न लग्नाः तस्मात्स्यादेवं स्तोकं स्वल्पं यस्माद्घ्नंति ततस्तेपि निर्दोषाः॥५३॥ श्रमणव्रतेषु स्थिताअपि संवत्सरेणाप्येकैकं जंतुं येघ्नंति येच उपदिशंति तेऽनार्या आत्महिताः पुरुषाः न तादृशाः केवलिनोभवंति॥५४॥ एवं हस्तितापसान्निरस्याऽर्द्रककुमारं भगवदंतिकं व्रजंतं दृष्ट्वाऽभिनवगृहीतो वनहस्ती चिंतयतिस्म। यद्यहं बंधनमुक्तः स्यां तदार्द्रककुमारं प्रतिबुद्धं तस्करपंचशतोपेतं तथा प्रतिबोधितानेकवादिगणसमन्वितं गत्वा वंदेया वदेवं हस्तिना चिंतितं तावता तस्य बंधनानि त्रुटितानि आर्द्रमुनिसंमुखं त्वरया चलितः करी ततोलोकैः पूत्कृतं हा हतोयं मुनिरिति हस्ती च ससंभ्रमं मुनिपार्श्वमागत्य त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य दंताग्रस्पृष्टभूमिः साधुं नत्वा वनं ययौ ततः श्रेणिकनृपः सपौरलोकस्तं मुनिं सप्रभावं नत्वा प्रोवाच।भगवन्नाश्चर्यमिदं यदयं करी बंधनान्मुक्तः ततोमुनिराह। हे नृप! नैतदाश्चर्यं यत्करी मुक्तोबंधनात्। यत्तु स्नेहपाशमोचनं तद्दुष्करं तच्च प्रागुक्तं निर्युक्तिकृता। यथा। "न डुक्करं वारणपासमोयणं,गयस्स मत्तस्स वणंमि रायं॥ जहाउच तावलिएण तंतुणा, तं डुक्करं मेपडिहाइ मोयणं॥१॥ अस्यार्थः प्रागध्ययनप्रारंभे प्रोक्तः। एवमार्द्रकुमारोनृपं प्रतिबोध्य श्रीवीरांतिकं गत्वा भगवंतं भक्तिभृतआसीनः। भगवानपि तानि पंचापि शतानि प्रव्राज्य तव शिष्यत्वेन ददौ॥ अथाध्ययनोपसंहारमाह। (बुद्धस्सइत्यादि) बुद्धस्य तत्वज्ञस्य श्रीवीरस्याज्ञया इमां समाधिं धर्मावाप्तिं प्राप्यास्मिन्समाधौ सुष्ठुस्थित्वा मनोवाक्कायैस्त्रायी रक्षकस्तीर्त्वाऽतिक्रम्य समुद्रमिव महाभवौघं। आदानं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूपं विद्यते यस्य सआदानवान् धर्मं परहितैषी उदाहरेत्कथयेत्। इति ब्रवीमीति पूर्ववत्॥ ५५॥ इत्यार्द्रकीयाध्ययनमिदं षष्ठं समाप्तम्॥

॥ टीका—सांप्रतमेतदेवार्द्रककुमारोहस्तितापसमतं दूषयितुमाह। (संवच्छरेणइत्यादि) संवत्सरेणैकैकं प्राणिनं घ्नतोपि प्राणातिपातादनिवृत्तदोषास्ते भवंत्याशंसादोषश्च भवतां पंचेंद्रियमहाकायसत्ववधपरायणानामतिदुष्टोभवति साधूनां तु सूर्यरश्मिप्रकाशितवीथिषु युगमात्रदृष्ट्या गच्छतामीर्यासमितिसमितानां द्विचत्वारिंशद्दोषरहितमाहारमन्वेषयतां लाभालाभसमवृत्तीनां कुतस्त्यआशंसादोषः पिपीलिकादिसत्वोपघातोवेत्यर्थः स्तोकसत्वोपघातेनैवंभूतेन दोषाभावोभवताभ्युपगम्यते तथाच सति गृहस्थाअपि स्वारंभदेशवर्तिनएव प्राणिनोघ्नंतीति शेषाणांच जंतूनां क्षेत्रकालव्यवहितानां भवदभिप्रायेण वधेन प्रवृत्तायतएवं तस्मात्कारणात्स्यादेवं स्तोकमिति स्वल्पं यस्मात् घ्नंति ततस्तेपि दोषरहिताइति॥ ५३॥ सांप्रतमार्द्रककुमारोहस्तितापसान्दूषयित्वा तदुपदेष्टारं दूषयितुमाह। (संवच्छरेणेत्यादि) श्रमणानां यतीनां व्रतानि श्रमणव्रतानि तेष्वपि व्यवस्थिताः संतएकैकं संवत्सरेणापि ये घ्नंति ये चोपदिशंति तेऽनार्या असत्कर्मानुष्ठायित्वात्तथा आ

त्मानं परेषां चाहितास्ते पुरुषाः। बहुवचनमार्षत्वात्। तादृशाः केवलिनोभवंति तथा ह्येक स्य प्राणिनः संवत्सरेणापि घाते येन्ये पिशिताश्रितास्तत्संस्कारेच क्रियमाणे स्थावरजं गमाविनाशमुपयांति ते तैः प्राणिवधोपदेष्टृभिर्न दृष्टाः। नच तैर्निरवद्योपायोमाधुकर्या वृ त्त्या योभवति सदृष्टोतस्तेन केवलमकेवलिनोविशिष्टविवेकरहिताश्चेति। तदेवं हस्तिताप सान्निराकृत्य भगवदंतिकं गबंतमार्द्रककुमारं महता कलकलेन लोकेनाभिष्टूयमानं तं समुप लभ्य अभिनवं गृहीतः संपूर्णलक्षणसंपूर्णोहस्ती समुत्पन्नस्तथाविधविवेकोचितं यत् य थार्द्रकुमारोयमपकृताशेषतीर्थिकोनिष्प्रत्यूहं सर्वज्ञपादपद्मांतिकं वंदनाय व्रजति तथाहम पियद्यप्यपगताशेषबंधनः स्यां ततएनं महापुरुषमार्द्रककुमारं प्रतिबुद्धतस्करपंचशतोपेतं त था प्रतिबोधितानेकवादिगणसमन्वितं परमया भक्त्यैतदंतिकं गत्वा वंदामीत्येवं यावद सौ हस्ती कृत्यसंकल्पस्तावत्रटत्रटदिति त्रुटितसमस्तबंधनः सन्नार्द्रककुमाराभिमुखं प्रदत्त कर्णतालस्तथोर्ध्वप्रसारितदीर्घकरः प्रधावितस्तदनंतरं लोकेन कृतहाहारवगर्भकलकलेन पूत्कृतं यथा धिक् कष्टं हतोयमार्द्रककुमारोमहर्षिर्महापुरुषस्तदेवं प्रलपंतोलोकाइतश्चेत श्च प्रपलायमानाः। असावपि वनहस्ती समागत्यार्द्रककुमारसमीपं भक्तिसंभ्रमावनताग्रभा गोत्तमांगोनिर्वृतकर्णतालस्त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य निहितधरणीतलदंताग्रभागः स्पृष्टकराग्रतच्च रणयुगलः सुप्रणिहितमनाः प्रणिपत्य महर्षिवनाभिमुखं ययाविति। तदेवमार्द्रककुमार तपोनुभावाद्बंधनोन्मुक्तं महागजमुपलभ्य सपौरजनपदः श्रेणिकराजस्तमार्द्रककुमारं म हर्षिं तत्तपःप्रभावं चाभिनंद्याभिवंद्य च प्रोवाच भगवन्नाश्चर्यमिदं यदसौ वनहस्ती तादृ ग्विधाद्बस्त्रोच्छेद्याद्बृंखलाबंधनाद्युष्मत्तपःप्रभावान्मुक्तइत्येतदतिडुष्करमित्येवमभिहिते आ र्द्रकुमारः प्रत्याह। भो श्रेणिक महाराज! नैतडुष्करं यदसौ वनहस्ती बंधनान्मुक्तोपि त्वेत डुष्करं यत्स्नेहपाशमोचनं एतच्च प्राङ्निर्युक्तिगाथया प्रदर्शितं। साचेयं। "ण डुक्करं वारणपा समोयणं, गयस्स मत्तस्स वणंमि रायं॥जहा उवत्तावलिएण तंतुणा,सुडुक्करंमे पडिहाइ मो यणं॥ १॥ एवमार्द्रककुमारेण राजानं प्रतिबोध्य तीर्थकरांतिकं गत्वाऽभिवंद्य च भगवंतं भक्तिभरनिर्भरआसांचक्रे भगवानपि तानि पंचापि शतानि प्रव्राज्य तच्छिष्यत्वेनोपनिन्य इति॥ ५४॥ सांप्रतं समस्ताध्ययनार्थोपसंहारार्थाह। (बुद्धस्सेत्यादि) बुद्धोऽवगत तत्वः सर्वज्ञोवीरवर्द्धनस्वामी तस्याज्ञया तदागमेन इमं समाधिं सद्धर्मावाप्तिलक्षणं अ वाप्यास्मिंश्च समाधौ सुष्टु स्थित्वा मनोवाक्कायैश्च प्रणिहितेंद्रियोन मिथ्यादृष्टिमनुमन्यते केवलं तदावरणजुगुप्सां त्रिविधेनापि करणेन न विधत्ते सएवंभूतआत्मनः परेषांच त्राण शीलस्तायी वा गमनशीलोमोक्षं प्रति सएवंभूतस्तरीतुमतिलंघ्य समुद्रमिव डुस्तरं महाभवौ घं मोक्षार्थमादीयतइत्यादानं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूपं तद्विद्यते यस्यासावादानवान् साधुः सच सम्यग्दर्शनेन सता परतीर्थिकृतपःसमृद्ध्यादिदर्शनेन मौनींद्रदर्शनान्न प्रच्यव

ते सम्यक्ज्ञानेनतु यथावस्थितवस्तुप्ररूपणतः समस्तप्रावाडुकवादिनिराकरणेनापरेषां यथावस्थितमोक्षमार्गमाविर्नावयतीति सम्यक्चारित्रेणतु समस्तनूतग्रामहितैषया निरुद्धा श्रवद्वारः सन् तपोविशेषाच्चानेकनवोपार्जितं कर्म निर्जरयति स्वतोन्येषां चैवं प्रकारमेवं धर्ममुपाहरे द्व्याग्रणीयादित्यर्थः । इति परिसमाप्त्यर्थे। ब्रवीमीति नयाश्च प्राग्वदेव वाच्या वक्ष्यंते चोत्तरत्र ॥ ५५ ॥ समाप्तं चेदमार्द्रकीयाख्यं षष्ठमध्ययनमिति ॥ ६ ॥

॥ अथ सप्तमाध्ययन प्रारंनः ॥

बठा अध्ययनमां स्वसमय, परसमय, प्ररूपणायें करी, प्रायः समस्त सुयगडांग सूत्रनें विषे साधुना आचारनी प्ररूपणा करी, हवे आ सातमा अध्ययनमां श्रावकनो आचार कहे बे,अथवा बठा अध्ययनमां परतीर्थिकना वादनुं निराकरण कह्युं, अने हवे आ सातमा अध्ययनमां स्वतीर्थिक साथें वाद कहेशे, ए संबंधें आव्युं जे सातमुं अध्ययन तेने कहेबे.

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे होबा रिद्धि
त्फीत समिद्धे वसुउ जाव पडिरूवे तस्सणं रायगिहस्स नयर
स्स बहिया उत्तरपुरछिमे दिसीनाए एबणं नालंदानामं बाहि
रिया होबा अणेगनवणसयसन्निविद्या जाव पडिरूवा ॥ १ ॥

अर्थ-(तेणंकालेणं के०) ते कालनें विषे (तेणंसमएणं के०) ते समयनें विषे, (रायगिहेनामंनयरेहोबा के०) राजगृह नामा नगर हतुं, ते राजगृहनामा नगर केहेवुं हतुं? तोके, (रिद्धि के०) नवनादिकें करी सहित, (त्फीत के०) स्फित निश्चल नय रहित, (समिद्धे के०) धन धान्यादिकें करी समृद्धिमान् एटले सहित, (वसुउजावपडिरूवे के०) यावत् प्रतिरूप एटले स्वर्गनुं प्रतिरूप एनुं वर्णन उववाइ उपांगनी पेठें जाणवुं. यद्यपि ते राजगृह नगर, हमणां पण वर्त्तेबे, तथा आगमिक कालें पण हशे, परंतु सूत्रमांहे अतीत कालेंज वखाण्युं तेनुं कारण शुं? तोके, जेवुं विशिष्ट लक्षणोपेत अतीतकालें हतुं, तेवुं वर्त्तमान कालें अनें आगमिक कालें नथी. ए कारण जाणवुं. (तस्सणंरायगिहस्सनयरस्सबहिया के०) त्यां ते राजगृह नगरना बाहिरना प्रदेशें, (उत्तरपुरछिमेदिसीनाए के०) ईशानकोणनें विषे (एबणं के०) अंहीयां (नालंदानामंबाहिरियाहोबा के०) नालंदा एवे नामें.बाहिरिया एटले पाडोविशेष हतो. ते

पाडो केवोछे? तोकें, (अणेगभवणसयसन्निविठा के०) अनेक घरना शेंकडायें करी स हितछे. इत्यादिक (जावपडिरूवा के०) यावत् प्रतिरूप ए वर्णन जाणवुं ॥ १ ॥

॥ दीपिका–अथ सप्तमाध्ययनमारभ्यते । अस्य च नालंदीयमिति नाम । तस्यायमर्थः । नालंदा राजगृहनगरे बाहिरिका तस्यां भवं नालंदीयमिति । पूर्वं सकलेन सूत्रकृतांगेन साध्वाचारः प्ररूपितः । अत्र तु श्रावकविधिरुच्यते । तस्येदं सूत्रं । तस्मिन् काले तस्मिन् समयेऽवसरे राजगृहं नाम नगरमभवत् । ऋद्धिस्फीतं समृद्धं वर्णकोवाच्यः यावत्प्रतिरूपमनन्यसदृशं तस्य नगरस्य बहिरुत्तरपूर्वस्यां दिशि नालंदानाम बाहिरिकासीत्साचानेकभवनशतसन्निविष्टाऽनेकगृहसंकीर्णेत्यर्थः ॥ १ ॥

॥ टीका–व्याख्यातं षष्ठमध्ययनमधुना सप्तममारभ्यते । अस्यायमभिसंबंधः । इह प्राग्व्याख्यातेनाखिलेनापि सूत्रकृतांगेन स्वसमयपरसमयप्ररूपणाद्वारेण प्रायः साधूनामाचारोऽभिहितोऽनेन तु श्रावकगतोविधिरुच्यते । यदिवानंतराध्ययने परवादनिराकरणं कृत्वा साध्वाचारस्य यउपदेष्टा सउदाहरणद्वारेण प्रदर्शितः । इहतु श्रावकधर्मस्य यउपदेष्टा सउदाहरणद्वारेणैव प्रदर्श्यते । यदिवाऽनंतराध्ययने परतीर्थिकैः सह वादइह तु स्वयूथ्यैरित्यनेन संबंधेनायातस्याध्ययनस्य चत्वार्यनुयोगद्वाराण्यपवार्णितव्यानि उपक्रमादीनि तत्रापि नामनिष्पन्ने निक्षेपे नालंदीयाभिधानमिदमध्ययनमिदं चैवं व्युत्पाद्यते । प्रतिषेधवाचिनोनकारस्य तदर्थस्यैवालंशब्दस्य डुदाञ् दाने इत्येतस्य धातोर्मीलनेन नालं ददातीति नालंदा । इदमुक्तं भवति । प्रतिषेधप्रतिषेधेन धात्वर्थस्यैव प्राकृतस्य गमनात्सदार्थिभ्योयथाऽभिलषितं ददातीति नालंदा राजगृहनगरबाहिरिका तस्यां भवं नालंदीयमिदमध्ययनंअनेन चाभिधानेन समस्तोप्युपोद्घातउपक्रमरूपआवेदितोभवति तत्स्वरूपंच पर्यंते स्वतएव निर्युक्तिकारः पासावच्चे इत्यादिगाथया निवेदयिष्यतीति । सांप्रतं संभविनमलंशब्दस्य निक्षेपं नादौ परित्यज्य कर्तुमाह । "णाम अलं ठवणअलं, दव्वअलं चेव होइ भावअलं ॥ एसो अलसद्दम्मि, निरकेवो चउविहो होइ ,, ॥ १ ॥ (णामअलमिति) तत्रामानोनाः प्रतिषेधवाचकाः । तद्यथा । अगौरघटइत्याद्याकारः प्रायोद्रव्यस्यैव प्रतिषेधवाचीत्यलंदानेन सहास्यप्रयोगाभावमकारस्त्वनागतक्रियायाःनिषेधं विधत्ते । तद्यथा नो घटोघटैकदेशनिषेधेन तथा हास्यादयोनो कषायाः कषायमोहनीयैकदेशभूताः । नकारस्तु समस्तद्रव्यक्रियाप्रतिषेधाभिधायी । तद्यथा न द्रव्यं न कर्म न गुणोभावस्तथा नाकार्षं न करोमि न करिष्यामीत्यादि । तथाऽन्यैरप्युक्तं । न याति नच तत्रासीदस्ति पश्चान्नवांशकान्जहाति पूर्वं नाधारमहो व्यसनसंततिः । किंचान्यत् । "गतं न गम्यते तावदगतं नैव गम्यते । गतागतविनिर्मुक्तं गम्यमानंतु गम्यत" इत्यादि । तदेवमत्र नकारः प्रतिषेधविधायकोप्युपात्तः । अलंशब्दोपि यद्यप्यलं पर्याप्ति

वारणभूषणेष्वपीति त्रिष्वर्थेषु पठ्यते तथापीह प्रतिषेधवाचकेन नञा साहचर्यात्प्रतिषेधार्थएव गृह्यते तत्र चालंशब्दः। नामस्थापना द्रव्यभावभेदाच्चतुर्विधोनिक्षेपोभवति। तत्र नामालं यस्य चेतनस्य वालमिति नाम क्रियते। स्थापनालंतु यत्र क्वचिच्चित्रपुस्तकादौ पाप निषेधं कुर्वन्साधुः स्थाप्यते द्रव्यनिषेधस्तु नो आगमतोज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तोद्रव्यस्य चौराद्यात्हतस्यैहिकपापभीरुणा योनिषेधः क्रियते सद्रव्यनिषेधः। एवं द्रव्येण द्रव्याद्द्रव्ये वा निषेधः। भावनिषेधंतु स्वतएव निर्युक्तिकारोलंशब्दस्य संभविनमर्थं दर्शयन्विभणिषुराह। "पज्जत्ती भावे खलु, पढमो बीउ भवेअलंकारे॥ ततितो उपडिसेहे, अलसद्दो होई नायव्वो,,॥ १॥ (पज्जतीभावइत्यादि) पर्याप्तभावः सामर्थ्यं तत्रालंशब्दोवर्तते। अलं मल्लोमल्लाय समर्थइत्यर्थः। लोकोत्तरोपि विनालं तेताणाएवासरणाएवा। अन्यैरप्युक्तं। "द्रव्यास्तिकरथारूढः पर्यायोद्यतकार्मुकः॥ युक्तिसन्नाहवान्वादी कुवादिभ्योभवत्यलं"॥१॥ अयं प्रथमोलंशब्दार्थोभवति। खलुशब्दोवाक्यालंकारे द्वितीयस्त्वर्थोलंकारविषये भवेत्संभावनायां लिङ्। तद्यथालंकृतदेवदत्तेन स्वकुलं जगच्च नाभिसूनुनेत्यादि। तृतीयस्त्वलंशब्दार्थः प्रतिषेधे ज्ञातव्योभवति। तद्यथालं मे गृहवासेन तथालं पापेन कर्मणा। उक्तंच। "अलं कुतीर्थैरिह पर्युपासितै,रलं वितर्काकुलकाहलैर्मतैः॥ अलंच मे कामगुणैर्निषेवितै, र्भयंकरायेहि परत्र चेहच" ॥१॥ तदिह प्रतिषेधवाचिनालंशब्देनाधिकारइत्येतद्दर्शयितुमाह। "पडिसेहणगारस्स इच्छिसद्देण चेव अलसद्दो॥रायगिहे नयरंमि नालंदा होइ बाहिरिया" ॥२॥ (पडिसेहणेत्यादि) सत्यप्यलंशब्दस्यार्थत्रये नकारस्य सान्निध्यात्प्रतिषेधविधानादप्येवेह गृह्यते ततश्च निरुक्तविधानादयमर्थः। नालं ददातीति नालंदा बाहिरिकायाः स्त्रियोद्देशकत्वेनच नालशब्दस्य स्त्रीलिंगता साच सदैहिकामुष्मिकसुखहेतुत्वेन सुखप्रदा राजगृहनगरबाहिरिका धनकनकसमृद्धत्वेन सत्साध्वाश्रयत्वेनच सर्वकामप्रदेति। सांप्रतं प्रत्ययार्थं दर्शयितुकामआह "नालंदाए समिवे,मणोरहे भासि इंदभूइणा॥ अज्झयणं उदगस्सउ, एयं नालंदइज्जं तु"॥४॥(नालिंदाएइत्यादि) नालंदायाः समीपे मनोरथाख्ये उद्याने इंद्रभूमिना गणधरेणोदकाख्यनिर्ग्रंथपृष्टेन तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात्तस्यैव भाषितमिदमध्ययनं। नालंदायां भवं नालंदीयं नालंदासमीपोद्यानकथनेन वा निवृत्तं नालंदीयं। यथाचेदमध्ययनं नालंदायां संवृत्तं तथा "पासावच्चिज्जोपुच्छियाइउ अज्जगोयमं उदगो॥ सावगपुच्छाधम्मं सोउं कहियंमि उवसंता,, ॥५॥ अनायापासावच्चिज्जेत्यादिकया सूत्रस्पर्शिकगाथयाविष्करिष्यते। सांप्रतं सूत्रानुगमेऽस्खलितादिगुणोपेतं सूत्रमुच्चारयितव्यं। तच्चेदं। (तेणंकालेणमित्यादि) अस्य चानंतरपरंपरसूत्रैः सह संबंधोवाच्यस्तत्रानंतराध्ययनपर्यंते सूत्रमिदमादानवान् धर्ममुदाहरेत्। धर्मश्च साधुश्रावकभेदेन द्विधा। तत्र पूर्वोक्तेनांगद्वयेन प्रायः साधुगतोविधिरभिहितोनेनतु श्रावकगतोविधिरुच्यते। परंपरसूत्रसंबंधस्त्वयं बुध्येतेत्येतदादिसूत्रं। किं तत्र

बुध्येत यदेत छद्यतइति। सूत्रार्थस्त्वयं। सप्तम्यर्थे तृतीया। यस्मिन्काले यस्मिंश्चावसरे राजगृहं नगरं यथोक्तविशेषणविशिष्टमासीत्तस्मिन् काले तस्मिंश्च समये इदमभिधीयते। राजगृहमेवविशिनष्टि। प्रासादाः संजातायस्मिंस्तत्प्रासादितमाभोगवद्वा अतएव दर्शनीयं दर्शनयोग्यं दृष्टिसुखहेतुत्वात्तथाभिमुख्येन रूपं यस्य तदभिरूपं तथा प्रतिरूपमनन्यसदृशं प्रतिरूपं वा प्रतिबिंबं वा स्वर्गनिवेशस्य तदेवंभूतं राजगृहंनाम नगरं (होब्बात्ति) आसीत्। यद्यपि तत्कालत्रयेपि सत्तां बिभर्त्ति तथाप्यतीताख्यानसमाश्रयणादासीदित्युक्तं। तस्य च राजगृहस्य बहिरुत्तरपूर्वस्यां दिशि नालंदानाम बाहिरिका आसीत् साचानेकभवनशतसन्निविष्टा अनेकभवनशतसंकीर्णेत्यर्थः ॥ १ ॥

तत्थणं नालंदाए बाहिरियाए लेवे नामं गाहावई होब्बा अड्डे दित्ते वित्ते विच्छणविपुलभवणसयणासणजाणवाहणाइस्से बहुधणबहुजायरूवरजते आउगपउगसंपउत्ते विछड्डियपउरभत्तपाणे बहु दासी, दास, गोमहिस, गवेलगप्पभूए बहुजणस्स अपरिभूएयावि होब्बा ॥ २ ॥

अर्थ-(तत्थणंनालंदाएबाहिरियाए के०) ते नालंदा नामें बाहिरिया एटले पाडाने विषे (लेवेनामंगाहावईहोब्बा के०) लेप एवे नामें गृहपति कुटुंबी हतो. ते केवो हतो? तोके. (अड्डे के०) धनवंत, (दित्ते के०) दीप्त तेजस्वी, (वित्ते के०) सर्वजनमां विख्यात, (विछण के०) विस्तीर्ण, (विपुल के०) घणा एवां (भवण के०) भुवन, (सयणासण के०) शय्यासनादिक, तथा (जाणवाहणाइस्से के०) यान एटले रथ वेहेलादिक, वाहन एटले अश्वादिक, तेणें करी इस्से एटले आकीर्ण व्याप्त, (बहुधण के०) घणुं धन, (बहुजायरूवरजते के०) घणुं जात एटले सुवर्ण,तथा रूपुं, तेणे करी सहित, (आउग के०) धननो उपाय एटले यानपात्रादिकनो संग्रह. तथा (पउग के०) प्रयोग एटले व्यापारादिक प्रयोजन तेणे करी (संपउत्ते के०) संप्रयुक्त एटले सहित (वि के०) विशेषें करी (छडिय के०) ज्यां त्यां नाख्योछे (पउर के०) घणो एवो (भत्तपाणे के०) भातनें पाणी जेणे, एटले जेनें घरे निरंतर लोक जमेछे. विशेषें करी देवरावेछे. (बहुदासीदास के०) घणां दासी, तथा दास, (गोमहिस्स के०) गाय, अनें भेंष, (गवेलग के०) गाडर छाली, तेणें करी (प्पभूए के०) परिवृत्त तेमाटें (बहुजणस्सअपरिभूएआविहोब्बा के०) घणा लोकोयें पण पराभव करी न शकाय एवो हतो. एटला वर्णनें करी एनी द्रव्यसंपदा कहीछे. ॥ २ ॥

॥ दीपिका-(तएणं) तस्यां नालंदायां लेपोनाम गृहपतिः कुटुंबिकश्चासीत् सच आ ढ्योदीप्तस्तेजस्वी वित्तोविख्यातोविस्तीर्णविपुलभवनशयनासनयानवाहनाकीर्णोबहुधनो बहुजातरूपरजतः आयोगाअर्थोपायाः प्रयोगः प्रयोजनानि तैः संप्रयुक्तः संयुतः इतश्चे तश्च विछिप्तप्रचुरभक्तपानोबहुदास्यादिपरिवृतोबहुजनस्यापरिभूतश्चासीत् ॥ २ ॥

॥ टीका-तस्यांचलेपोनाम गृहपतिः कुटुंबिकश्चासीत्सचाढ्योदीप्तस्तेजस्वी वित्तः सर्वज नविख्यातोविस्तीर्णविपुलभवनशयनासनयानवाहनाकीर्णोबहुधनबहुजातरूपरजतः आ योगः अर्थोपाया यानपात्रोष्ट्रमंमलिकादयस्तथा प्रयोजनमयोगः प्रायोगिकत्वं तैरायोगप्र योगैः संप्रयुक्तः समन्वितस्तथेतश्चेतश्च विछिप्तप्रचुरभक्तपानोबहुदास्यादिपरिवृतोबहुजन स्यापरिभूतश्चासीत्तदियता विशेषणकदंबकेनैहिकगुणाविष्करणेन द्रव्यसंपदभिहिता ॥ २॥

सेणं लेवे नामं गाहावई समणोवासएयावि होत्ता अभिगयजी वाजीवे जाव विहरइ निग्गंथे पावयणे निस्संकिए निक्कंखि ए निव्वितिगिछे लद्धठे गहियठे पुछियठे विणिछियठे अभिगहि यठे अठिमिंजा पेमाणुरागरत्ते अयमाउसो निग्गंथे पावयणे अयं अठे अयं परमठे सेसे अणठे उसियफलिहे अप्पावय डुवारे वियत्तंतेउरप्पवेसे चाउद्दसठमुद्दिठपुण्णमासिणीसु पडि पुन्नं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणे समणे निग्गंथे तहाविहेणं एसणिज्जेणं असणपाणं खाइमसाइमेणं पडिलाभेमाणे बहुहिं सीलव्वयगुणविरमणपच्चक्खाणपोसहोववासेहिं अप्पाणं भावे माणे एवंचणं विहरइ ॥ ३ ॥

अर्थ-हवे एनी भाव संपदा कहियें बैयें. (सेणं के०) ते (लेवेनामंगाहावईसमणो वासएयाविहोत्ता के०) लेपनामा गृहपति श्रमणोपासक हतो, श्रमण एटले साधु, तेनी जे निरंतर सेवा करे, तेनें श्रमणोपासक कहियें. (अभिगयजीवाजीवेजावविहर इ के०) अभिगत एटले जाण्याछे जीव अनें अजीवना भाव जेणें एवो हतो, यावत् विचरेछे. हवे तेनुं रूडा प्रकारें सम्यक् ज्ञानपणुं कहियें बैयें. (निग्गंथेपावयणेनिस्सं किए के०) जिनशासन प्रवचननें विषे शंकारहित एवो, तथा (निक्कंखिए के०) अन्य दर्शननें विषे निराकांक्ष एटले आकांक्षारहित एवो, तथा (निव्वितिगिछे के०) विद्वा न जे ज्ञानी पुरुषो तेनी निंदा एटले जुगुप्सा तेणे करी रहीत ते कारण माटेज (लद्धठे

के०) प्राप्त थयाछे सिद्धांतना अर्थ जेने (गहियट्ठे के०) ग्रहण कस्याछे मोक्षमार्गरूप अर्थ जेणे, तथा (पुछियट्ठे के०) विशेषें करी पुछ्युंछे मोक्षस्वरूप जेणे, तथा (विणिछियट्ठे के०) निश्चय कस्योछे सिद्धांतनो अर्थ जेणे, तथा (अनिगहियट्ठे के०) प्रतीत थयोछे अर्थ जेनें, तथा (अठिमिंजापेमाणुरागरत्ते के०) प्रेमें करीनें रंगित छे अस्थिमिंजा जेनां, एटले अत्यंतछे हृदयनें विषे प्रेम जेनें, तथा (अयमाउसो के०) कोइ एकें स्वधर्मि पुछे थके, तेनें ए प्रकारें उत्तर आपे के, हे आयुष्मन्! (निग्गंथेपावयणे के०) आ जिनप्रवचन निस्संशयछे, तथा सत्यछे. वली (अयमट्ठेअयं परमट्ठे के०) आ जैन शासनरूप अर्थ ए परमार्थरूप छे, तथा (सेसेअणट्ठे के०) अन्य लौकिक सर्व दर्शन ते पुरुषोनां कल्पना करेलांछे. वली तेना गुणो कहेछे. (उसियफलिहे के०) स्फाटिक सरखुं उज्ज्वलछे यश जेनुं, एटले प्रख्यातछे यश जेनुं, एवो, तथा (अप्पावयडुवारे के०) अप्रावृत एटले निरंतर उघाडुं रहेछे द्वार जेनुं, अनें (वियत्तंतेउरप्पवेसे के०) कोइ एक परतीर्थिक पोताना घरमां आवीने जो स्वधर्म कहे! तो तेनो प्रतिबंध अनुचरो पण करी न शके, तथा (चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुस्समासिणीसु के०) चउदश, आठमं, पुन्यम एटले चोमासानी त्रण पुन्यम वगेरे पुण्यतिथीयोनें विषे, (पडिपुन्नंपोसहंसम्मंअणुपालेमाणे के०) परिपूर्ण रूडा प्रकारें पोषधनें पालतो एवो, (समणेनिग्गंथेतहाविहेणंएसणिज्जेणंअसणपाणंखाइमसाइमेणंपडिलाभेमाणे के०) ते प्रकारना धर्मनें पालता एवा जे श्रमण ब्राह्मण, तेनें शुद्ध आहार जलें करी संतोष पमाडतो एवो,तथा (बहुहिंसीलव्वयगुणविरमणपच्चखाणपोसहोववासेहिं के०) शील, व्रत, गुण, विरमण, पच्चखाण, पोषहादिक उपवास, तेणें करीने (अप्पाणंभावेमाणे के०) पोताना आत्मानें भावना करतो एवो छतो (एवंचणंविहरइ के०) ए प्रकारें धर्म आचरण करतो थको विचरेछे. ॥ २ ॥

॥ दीपिका–सल्लेपोनाम गृहपतिः श्रमणोपासकोभिगतजीवाजीवइत्यादि । (निग्गंथेत्ति) आर्हते प्रवचने निःशंकितोनिःकांक्षितोऽन्यतमोनिराकांक्षः विचिकित्साचित्तविप्लुतिर्विद्वज्जुगुप्सा वा तद्रहितोनिर्विचिकित्सः लब्धार्थोज्ञाततत्वः गृहीतार्थः स्वीकृतमोक्षमार्गः पृष्टार्थत्वादविनिश्चितार्थः अभिगतः प्रतीतोर्थोयेन सतथा अस्थिमिंजास्थिमध्यं यावद्धर्मे प्रेमानुरागेण रक्तोऽत्यंतं सम्यक्त्ववासितचित्तइत्यर्थः । केनचिद्धर्मं पृष्टः प्राह । अयमायुष्मन्! जैनधर्मोर्थः सत्यः परमार्थरूपश्शेषः सर्वोप्यनर्थः । (उसियफलिहेत्ति) उछ्रितं प्रख्यातं स्फटिकवन्निर्मलं यशोयस्य अप्रावृतं अस्थगितं द्वारं गृहस्य येन सोऽप्रावृतद्वारः परतीर्थिकोपि गृहं प्रविश्य धर्मं यदि वदेत् तदनु न तस्य परिजनोपि सम्य

कलाद्वालयितुं शक्यते तद्भीत्या न द्वारप्रदानमित्यर्थः । प्रातिहारी राजांतःपुरेपि प्रवेशोय स्य सतथा कोर्थः? पुरेहि कोपि न प्रवेश्यः तत्राप्यसौ प्रतीतगुणत्वे प्रवेशयोग्यइत्यर्थः । तथा चतुर्दश्यष्टम्यादिषु तिथिषु उपदिष्टासु महाकल्याणकसंबंधितया पुण्यतिथित्वेन प्रसिद्धासु तथा पौर्णमासीसु च तिसृष्वपि चतुर्मासकतिथिषु एवंभूतेषु धर्मदिवसेषु सुष्टु अतिशयेन प्रतिपूर्णं संपूर्णमाहारशरीरसत्कारब्रह्मचर्याव्यापाररूपं पौषधमनुपालयन् तथाविधान् सद्गुणान् श्रमणान् एषणीयेन शुद्धेनाशनादिना प्रतिलाभयन् (बहुहिं) बहुभिः शीलव्रतगुणविरमणप्रत्याख्यानपोषधोपवासैरात्मानं भावयन् एवं पूर्वोक्तप्रकारेण । च समुच्चये णं वाक्यालंकारे । विहरति आस्ते ॥ २ ॥

॥ टीका–अधुनाऽमुष्मिकगुणाविर्भावेन भावसंपदभिधीयते । (सेणंलेवेंइत्यादि) णमिति वाक्यालंकारे। सलेपाख्योगृहपतिः श्रमणान् साधूनुपास्ते प्रत्यहं सेवतइति श्रमणोपासकस्तदनेन विशेषणेन तस्य जीवादिपदार्थाविभावकश्रुतज्ञानसंपदा वेदिता भवत्येतदेव दर्शयत्यभिगतजीवाजीवेत्यादिना ग्रंथेन।यावदसहायोपि देवासुरादिभिर्देवगणैरनतिक्रमणीयोऽनतिलंघनीयोधर्मादप्रच्यावनीयइति यावत् । तदियता विशेषणकलापेन तस्य सम्यक्ज्ञानित्वमावेदितं भवति । सांप्रतं तत्तस्य विशिष्टसम्यग्दर्शनित्वमापादयितुमाह । (निग्गंथेत्यादि) निर्ग्रंथे आर्हते प्रवचने निर्गता शंका देशसर्वरूपा यस्य सः निःशंकः तदेव सत्यं निःशंकं यज्जिनैः प्रवेदितमित्येवं कृताध्यवसायस्तथा निर्गता कांक्षान्यान्यदर्शनग्रहणरूपा यस्यासौ निराकांक्षस्तथा निर्गता विचिकित्सा चित्तविप्लुतिर्विद्वज्जुगुप्सा यस्यासौ निर्विचिकित्सोयतएवमतोलब्धउपलब्धोर्थः परमार्थरूपोयेन सः लब्धार्थो ज्ञाततत्वइत्यर्थः।तथा गृहीतः स्वीकृतोर्थोमोक्षमार्गरूपोयेन सगृहीतार्थस्तथा विशेषतः पृष्टोर्थोयेन सः पृष्टार्थोयतएवमतोविनिश्चितार्थस्ततोभिगतः पृष्टनिर्वचनतः प्रतीतोर्थो येन सोभिगतार्थस्तथाऽस्थिमिंजाऽस्थिमध्यं यावत्सधर्मे प्रेमानुरागेण रक्तोत्यंतसम्यक्त्ववासितांतश्चेताइति यावत् । एतदेवाविर्भावयन्नाह । (अयमाउसोइत्यादि) केनचिद्धर्मसर्वस्वं पृष्टः सन्नेतदाचष्टे । तद्यथा भो आयुष्मन्निदं निर्ग्रंथमौनींद्रप्रवचनमर्थः सद्भूतार्थस्तथा प्ररूपणतया तथेदमेवाह । अयमेव परमार्थः कषतापच्छेदैरस्यैव शुद्धत्वेन निर्घटितत्वात् ।शेषस्तु सर्वोपि लौकिकतीर्थिकपरिकल्पितोऽनर्थस्तदनेन विशेषणकदंबकेन सम्यक्त्वगुणाविष्करणं कृतं भवति । सांप्रतं तस्यैव सम्यग्दर्शनज्ञानाभ्यां कृतोयोगुणस्तदाविष्करणायाह । (उसियइत्यादि) उच्छृतं प्रख्यातं स्फटिकवन्निर्मलं यशोयस्यासावुच्छ्रितस्फटिकः प्रख्यातनिर्मलयशाइत्यर्थः । तथाऽप्रावृतमस्थगितं द्वारं गृहमुखं यस्य सोप्रावृतद्वारः । इदमुक्तं भवति । गृहं प्रविश्य परतीर्थिकोपि यद्यत्कथयति तदसौ कथयतु

न तस्य परिजनोप्यन्यथा नावयितुं सम्यक्त्वाच्च्यावयितुं शक्यतइति यावत्। तथा राज्ञां वह्न नांतःपुर द्वारेषु प्रवेष्टुं शीलं यस्य सतथा। इदमुक्तं नवति प्रतिषिद्धान्यजनप्रदेशान्यपि यानि स्थानानि नांमागारांतःपुरादीनि तेष्वप्यसौ प्रख्यातः श्रावकाख्यगुणत्वेनास्खलित प्रवेशस्तथा चतुर्दश्यष्टम्यादिषु तिथिषूपदिष्टासु तथा पौर्णमासीसुच तिसृष्वपि चतुर्मासकतिथिष्वित्यर्थः। एवंनूतेषु धर्मदिवसेषु सुष्ठुतिशयेन प्रतिपूर्णोयः पौषधो व्रतानिग्रहविशेषस्तं प्रतिपूर्णमाहारशरीरसंस्कारब्रह्मचर्याव्यापाररूपं पौषधमनुपालयन् संपूर्णं श्रावकधर्ममनुचरति तदनेन विशेषणकलापेन विशिष्टं देशचारित्रमावेदितं नवति। सांप्रतं तस्यैवोत्तरगुणाख्यापनेन दानधर्ममधिकृत्याह। (समणेणंनिग्गंथइत्यादि) सुगमं (यावत्पडिलान्नेमाणेत्ति) सांप्रतं तस्यैव शीलतपोनावनात्मकं धर्ममावेदयन्नाह (बहूहिमित्यादि) बहुनिः शीलव्रतगुणविरमणप्रत्याख्यानपौषधोपवासैस्तथा यथा परिगृहीतैश्च तपःकर्मन्निरात्मानं नावयन्नेवं चानंतरोक्तया रीत्या विहरति धर्ममाचरंस्तिष्ठति। च समुच्चये। णमिति वाक्यालंकारे ॥ ३ ॥

तस्सणं लेवस्स गाहावइस्स नालंदाए बाहिरियाए उत्तरपुरच्छिमे दिसिन्नाए एच्छणं सेसदविया नामं उदगसाला होच्छा अणेगखंनसयसन्निविठ्ठा पासादीया जावपडिरूवा तिस्सेणं सेसदवियाए उदगसालाए उत्तरपुरच्छिमे दिसिन्नाए एच्छणं हच्छिजामे नामं वणसंमे होच्छा किण्हे वणउ वणसंमस्स॥ ४ ॥

अर्थ–(तस्सणं के०) ते लेप नामा गृहपतिनें नालिंदा नामा पाडा थकी, उत्तर अनें पूर्वदिशानें वच्चें, एटले ईशान कोणे (एच्छणंसेसदवियानामंउदगसालाहोच्छा के०) जिहां तिहां घर करावतां जे कांइ पाट पीठिकादिक उपकरण उगर्यां होय, वधेलां होय एवां उपकरणें करीने निपजावेली एटले करावेली एवी सेसदविया नामें उदकशाला हती वली ते उदकशाला केवी हती? तोके, (अणेगखंनसयसन्निविठ्ठा के०) अनेक स्तंनना शेंकडा तेना उपर रहेली, तथा तेणें करी सहित, (पासादीयाजावपडिरूवा के०) प्रासादवंत, दर्शनीय यावत् प्रतिरूप, (तिस्सेणंसेसदवियाएउदगसालाएउत्तरपुरच्छिमेदिसिन्नाए के०) ते सेसदविया नामा उदकशाला थकी ईशान कोणनी दिशायें (एच्छणंहच्छिजामेनामंवणसंमेहोच्छा के०) हस्तियाम नामें वनखंम हतो, (किण्हेवसउवणसंमस्स के०) ते वनखंम, काले वर्णें हतो, एनुं विशेष वर्णन जेम, श्री उववाई उपांगमां कह्युंछे तेम जाणवुं.

॥ दीपिका–तस्य लेपस्य गृहपतेः संबंधिनी नालंदायाः पूर्वोत्तरस्यां दिशि शेषद

व्यानाम गृहोपयुक्तशेषद्रव्येण कृता उदकशालासीदनेकस्तंभशतसन्निविष्टा प्रासादीया यावत्प्रतिरूपा तस्याश्चोत्तरपूर्वे दिग्भागे हस्तियामाख्योवनखंडश्चासीत्कृष्णइत्यादिवर्णकोवनखंडस्य वाच्यः ॥ ४ ॥

॥ टीका–तस्य चैवंभूतस्य लेपोपासकस्य गृहपतेः संबंधिनी नालंदायाः पूर्वोत्तरस्य दिशि शेषद्रव्याभिधाना गृहोपयुक्तशेषद्रव्येण कृता शेषद्रव्ये तदेवाभिधानमस्याउदकशालायाः सैवंभूतासीदनेकस्तंभशतसन्निविष्टा प्रासादीया दर्शनीयाभिरूपाप्रतिरूपेति तस्याश्चोत्तरपूर्वेदिग्विभागे हस्तियामाख्योवनखंडश्चासीत्कृष्णावभासइत्यादिवर्णकः ॥ ४ ॥

तस्सिंचणं गिहपदेसंमि भगवं गोयमे विहरइ भगवंचणं अहे आरामंसि अहेणं उदए पेढालपुत्ते भगवं पासावच्चिज्जे नियंठे मेयज्जे गोत्तेणं जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छइत्ता भगवं गोयमं एवं वयासी आउसंतो गोयमा अत्थि खलु से केइ पदे से पुच्छियव्वे तंचमे आउसो अहासुयं अहादरिसियंमे वियागरेहि सवायं भगवं गोयमे उदय पेढालपुत्तं एवं वयासी अवियाइ आउसो सोच्चा निसम्म जाणिस्सामो सवायं उदए पेढालपुत्ते भगवं गोयमं एवं वयासी ॥ ५ ॥

अर्थ–हवे (तस्सिंचणंगिहपदेसंमिभगवंगोयमेविहरइ के०) ते वनखंड गृहप्रदेशनें विषे भगवंत श्री गौतमस्वामी विचरेछे. (भगवंचणंअहेआरामंसि के०) भगवंत श्रीगौतमस्वामी साधुना परिवार सहित आराम हेठल रह्या. (अहेणं के०) अथ हवे ण ए वे वाक्यालंकारें. (उदएपेढालपुत्ते के०) उदकनामें निर्ग्रंथ, पेढालनो पुत्र, अनें (भगवंपासावच्चिज्जेनियंठे के०) श्री पार्श्वनाथना शिष्यनो शिष्य, (मेयज्जेगोत्तेणं के०) गोत्रें करी मेदार्यछे. ते उदकनिर्ग्रंथ, (जेणेवभगवंगोयमेतेणेवउवागच्छइ के०) ज्यां भगवंत श्रीगौतमस्वामी छे, त्यां आव्यो. (उवागच्छइत्ता के०) त्यां आवीनें (भगवंगोयमंएवंयासी के०) भगवंत श्रीगौतमस्वामी प्रत्यें एवुं बोल्या के, (आउसंतोगोयमा के०) अहो आयुष्यमन् गौतम ! मुजनें तमारा समीपें (अत्थिखलुसेकेइपदेसेपुच्छियव्वे के०) निश्चें ते कोइ एक प्रदेश एटले प्रश्न पुछवोछे. (तंचमेआउसो के०) ते प्रश्न मुजनें, अहो आयुष्यमन् ! (आहासुयं के०) यथाश्रुतं एटले जेम तमे श्रीमहावीर स्वामी पासेंथी सांभल्युं, (अहादरिसियंमेवियागरेहि के०) जेम तमें अवधार्युं होय, तेम मु

जनें कह्यो. (सवायंनगवंगोयमेउदयपेढालपुत्तंएवंवयासी के०) हवे नगवंत श्री गौतमस्वामी वादसहित उदकपेढालपुत्र प्रत्यें एवुं बोल्या के. (अवियाइआउसोसोच्चानिसम्मजाणिस्सामो के०) अपि संनावनार्थे अहो आयुष्यमन् उदक ? तमारो प्रश्न सांनलीनें गुणदोषनी विचारणायें हैयामां सम्यक् रीतें धारण करीनें हुं जाणीश, तेवी रीतनो प्रश्न यथायोग्य पूबो. (सवायंउदएपेढालपुत्तेनगवंगोयमंएवंवयासी के०) ते वारें ते उदकपेढालपुत्र, वादसहित आ प्रकारें नगवंत श्रीगौतमस्वामी प्रत्यें बोल्या. ॥५॥

॥ दीपिका—तस्मिन् वनखंमगृहप्रदेशे नगवान् गौतमोविहरति तस्मिन्नारामे स्थितः। अथ उदकाख्योनिर्ग्रंथः पेढालपुत्रः पार्श्वापत्यस्य पार्श्वशिष्यस्यापत्यं शिष्यः सच मेदार्यगोत्रेण (जेणेवत्ति) यस्यां दिशि गौतमस्तत्रागत्येदं प्राह। आयुष्मन् नो गौतम! अस्ति मम कश्चित्प्रदेशः प्रष्टव्यः तं प्रदेशं मम यथाश्रुतं त्वया यथा दर्शितं श्रीवीरेण तथा व्यागृणीहि कथय सचायं नगवान् यदिवा सह वादेन सवादं पृष्टस्तमुदकं पेढालपुत्रमेवमवादीत्। अपिचायुष्मन्नुदक! श्रुत्वा त्वदीयं प्रश्नं निशम्य चावधार्य गुणदोषविचारेण सम्यक् ज्ञास्येहं तडच्यतां विश्रब्धं त्वया स्वाभिप्रायः सचायं ससद्वाचंवा उदकः पेढालपुत्रोगौतममेवमवादीत् ॥ ५ ॥

॥ टीका—तस्मिंश्च वनखंमप्रदेशे नगवान् गौतमस्वामी श्रीवर्धमानस्वामिगणधरोविहरति। अथानंतरं नगवान् गौतमस्वामी तस्मिन्नारामे सह साधुभिर्व्यवस्थितोऽथानंतरं णमिति वाक्यालंकारे उदकाख्योनिर्ग्रंथः पेढालपुत्रः पार्श्वापत्यस्य पार्श्वस्वामिशिष्यस्यापत्यं शिष्यः पार्श्वापत्यीयः सच मेदार्यगोत्रेण। येनैवेति सप्तम्यर्थे तृतीया। यस्यां दिशि यस्मिन्वा प्रदेशे नगवान् श्रीगौतमस्वामी तस्यां दिशि तस्मिन्वा प्रदेशे समागत्येदं वक्ष्यमाणं प्रोवाचेति। अत्र निर्युक्तिकारोऽध्ययनोबानं तात्पर्यंच गाथया दर्शयितुमाह। "पासावच्चिज्जो पुच्छियाइउ अज्जगोयमं उदगो ॥ सावगपुच्छा धम्मं सोउ कहियंमि उवसंता" ॥ १ ॥ (पासावच्चेत्यादि) पार्श्वनाथशिष्यउदकाभिधानआर्यगौतमं पृष्टवान् किं तच्छ्रावकगतं श्रावकविषयं प्रश्नं तद्यथा नो इंद्रनूते साधो! श्रावकाणुव्रतदाने सति स्थूलप्राणातिपातादिविषये तदन्येषां सूक्ष्मबादराणां प्राणिनामुपघाते सत्यारंभजनिते तदनुमतिप्रत्ययजनितः कर्मबंधः कस्मान्न नवति? तथा स्थूलप्राणातिपातादिविषये व्रतिनस्तमेव पर्यायांतरगतं व्यापादयतोनागरिकवधनिवृत्तस्य तमेवं बहिस्थं व्यापादयतइव तद्व्रतभंगजनितः कर्मबंधः कस्मान्न नवतीत्येतत्प्रश्नस्योत्तरं गृहपतिचौरग्रहणविमोक्षणोपमया दत्तवांस्तच्च श्रावकप्रश्नस्यौपम्यं गौतमस्वामिना कथितं श्रुत्वोदकाख्योनिर्ग्रंथउपशांतोपगतसं

देहः संवृत्तइति। सांप्रतं सूत्रमनुश्रियते सउदकोगौतस्वामिसमीपं समागत्य जगवंतमिद मवादीत्तद्यथा आयुष्मन्गौतम! अस्ति मम विद्यते कश्चित्प्रदेशः प्रष्टव्यस्तत्र संदेहात्तंच प्रदेशं यथाश्रुतं जगवता यथाच जगवता संदर्शितं तथैव मम व्यागृणीहि प्रतिपादय। ए वं पृष्टः सचायं जगवान् यदिवा सद् वादेन सवादं पृष्टः सद्वादं वा शोजनजारतीं वा प्रश्नं पृष्टस्तमुदकं पेढालपुत्रमेवमवादीत्तद्यथाऽपिचायुष्मन्नुदक! श्रुत्वा जवदीयं प्रश्नं निशम्य चा वधार्यच गुणदोषविचारणतः सम्यगहं ज्ञास्ये तडच्यतां विश्रब्धं जवता स्वाजिप्रायं.स द्वा चं चोदकः पेढालपुत्रोजगवंतं गौतममेवमवादीत् ॥ ५ ॥

आजसो गोयमा अत्थि खलु कुमारपुत्तिया नाम समणा निग्गं था तुम्हाणं पवयणं पवयमाणा गाहावइं समणोवासगं उवसंपन्नं एवं पच्चक्खावेंति णस्सत्थ अजिउंएणं गाहावइचोरग्गहणविमो क्खणयाए तसेहिं पाणेहिं णिहाय दंमं एवंण्हं पच्चक्खंताणं डुप्प च्चक्खायं जवइ एवंण्हं पच्चक्खावेमाणाणं डुपच्चक्खावियवं जवइ एवं ते परं पच्चक्खावेमाणा अतियरंति सयं पत्तिणं कस्सणं तं हेउं सां सारिया खलु पाणा थावराविं पाणा तसत्ताए पच्चायंति तसावि पाणा थावरत्ताए पच्चायंति थावरकायाउ विप्पमुच्चमाणा तसका यंसि उववज्जंति तसकायाउ विप्पमुच्चमाणा थावरकायंसि उववज्जं ति तेसिंचणं थावरकायंसि उववन्नाणं ठाणमेयं घत्तं ॥ ६ ॥

अर्थ-(आजसोगोयमा के०) अहो आयुष्मन् गौतम! (अत्थिखलुकुमारपुत्तियाना मंसमणानिग्गंथा के०) निश्चें कुमारपुत्र एवे नामें, श्रमण निर्ग्रंथछे. (तुम्हाणंपवयणंपव यमाणा के०) ते तमारुं प्रवचन बोलतां प्ररूपतां, (गाहावइंसमणोवासगंउवसंपन्नंए वंपच्चक्खावेंति के०) गृहपति श्रमणोपासकनियमोद्युक्तनें आवी रीतें पच्चक्खाण करावेछे ते कहेछे के, जेमां त्रसप्राणीयोनो दंम, एटले विनाश, तेनो त्याग करे, ए रीतें प्राणाति पातनी विरति करावेछे. (णस्सत्थअजिउंएणं के०) तथा राजादिकनें अजियोगें जे प्रा णीउनो उपघात थाय, ते टालीनें अन्यनी विरति करावेछे. तो ए रीतें स्थूलप्राणातिपात नी विरति कहेतां थकां, अन्य जीवनें उपघातनी अनुमतिनो दोष लागेछे? ए रीतें शं का जाणीने कहेछे. (गाहावइचोरग्गहणविमोक्खणयाए के०) गृहपति ग्रहण मोक्ष ने अर्थे, एटले मूकाववानें अर्थें, एनो विशेष अर्थ आगल कहेशे. एतावता श्री वीरना शासननें विषे श्रावकनें अधिकारें (तसेहिंपाणेहिंणिहायदंमं के०) त्रसप्राणी

ना दंमनो निषेध कह्यो तेनें उदक पोताना अभिप्रायें करी दूषवेछे. (एवंएहंपच्च क्खंताणंडुपच्चक्खायंभवइ के०) अहो गौतम ! ए एवे वाक्यालंकारे ए रीतें त्रसप्रा णीना दंमनो निषेध करीनें पच्चक्खाण करतां डुष्ट प्रत्याख्यान थाय (एवंएहंप च्चक्खावेमाणाणंडुपच्चक्खावियव्वंभवइ के०) एम पच्चक्खाण करावनारनें पण, डुष्ट प्र त्याख्यान कराव्युं, एम थाय. ते कहेछे. (एवंतेपरंपच्चक्खावेमाणा के०) ए रीतें ते पच्चक्खाण करनार श्रावक, अनें पच्चक्खाण करावनार साधु बेहु, (सयंपत्तिणं के०) पोतानी प्रतिज्ञानें (अतियरंति के०) उल्लंघन करेछे, एतावता व्रतभंग करेछे. (क स्सणंतंहेउं के०) ते केवा हेतु थकी प्रतिज्ञा भंग थाय? ते प्रतिज्ञा भंगनुं कारण कहेछे (सांसारियाखलुपाणा के०) निश्चें संसारी जीव, (थावराविपाणा के०) जे पृथ्वी, अप्, तेउ, वायु, अनें वनस्पति रूप स्थावर जीव ते पण (तसत्ताएपच्चायंति के०) तेवा कर्मना उदयथकी त्रस पणे उपजे, (तसाविपाणाथावरत्ताएपच्चायंति के०) तथा त्रस जे बेइंद्रि यादिक जीवोछे ते पण स्थावर पणे उपजे, (थावरकायाउविप्पमुच्चमाणातसकायंसिउवव ज्जंति के०) स्थावरनी कायथकी मूकाणा त्रसकायनें विषे उपजे. (तसकायाउविप्पमुच्च माणाथावरकायंसिउववज्जंति के०) त्रसकाय थकी मूकाणा थका स्थावरकायने विषे उप जे ए कारणमाटें (तेसिंचणंथावरकायंसिउववन्नाणं के०) त्रसजीव स्थावरकाय मांहे जे वारे उपना, तेवारें (ठाणमेयंघत्तं के०) ते स्थानक त्रसकायनुं हणाणुं ए कारण मा टें प्रतिज्ञाभंग थाय. जेम कोइ एके एवी प्रतिज्ञा करी जे म्हारे नागरीक पुरुष हणवो नहीं. अने पछी तेज नागरीक पुरुष कोइ आरामादिकने विषे बेठो होय, त्यां तेने हणे तो तेथी शुं तेनी प्रतिज्ञाभंग न थाय ? अपितु थायज. तेम अंहीं पण त्रसजीवना घातनी निवृत्ति करी, अनें स्थावर जीवना घातनी निवृत्ति नथी करी तो, जे वारें त्रसजीव स्थावर मांहे आवी उपजे तेवारे तेणे ते त्रसजीवज विणाश्या, एम करतां प्रतिज्ञानो भंग थयो ॥ ६ ॥

॥ दीपिका—भो गौतम ! अछि संति कुमारपुत्रानाम निर्ग्रंथा युष्मदीयं प्रवचनं प्रवदंतः। तथाहि गृहपतिं श्रमणोपासकं उपसंपन्नं नियमग्रहणोद्यतं प्रत्याख्यापयंति प्रत्याख्यानं कारयंति तद्यथा । त्रसेषु दंमं हिंसां निहाय त्यक्त्वा प्राणातिपातनिवृत्तिं कुर्वंति (णस्रुछे ति) नान्यत्र स्वमतेरन्यत्र राजाद्यभियोगेन यः प्राणिघातोन तत्र निवृत्तिरिति तत्र स्थूल प्राणिविशेषणात्तदन्येषां जीवानां हिंसातु मतिदोषः स्यादित्याशंकावान् प्राह । (गाहा वइचोरत्ति) अस्यार्थोऽग्रे भावयिष्यते (एवंएहति) उदकएवाह । एहमिति वाक्यालं कारे। एवं प्रत्याख्यानं कुर्वतां श्राद्धानां डुःखप्रत्याख्यातं भवति अप्रत्याख्यानभंगसद्भावा

तथा एवं प्रत्याख्यापयतां प्रत्याख्यानं कारयतां साधूनां डुष्टं प्रत्याख्यानदानं नवति एवं प्रत्याख्यानं कुर्वंतः कारयंतश्च स्वां प्रतिज्ञामतिचरंत्यतिलंघयंति (कस्सणंतंहेउं) कस्मा द्धेतोरित्यर्थः । प्रतिज्ञानंगकारणमाह । (संसारियाइत्यादि) सांसारिकाः खलु प्राणिनः स्था वराअपि प्राणिनस्त्रसतया प्रत्यायांति त्रसाश्च स्थावरत्वेनेति । एवंसति प्रतिज्ञालोपः स्यात् यथा नागरिकोन हंतव्यइति प्रतिज्ञा येन कृता सयदि उद्यानस्थं नागरिकं हन्यात्तदा त स्य किं प्रतिज्ञालोपोन स्यात् ? एवमत्रापि येन त्रसवधनिवृत्तिः कृता स यदि तमेव त्रसं स्था वरकायस्थितं हंति तदा तस्य किं न नवेत्प्रतिज्ञालोपः? नवत्येवेत्यर्थः। त्रसकायान्मुच्यमा नाः स्थावरकाये उत्पद्यंते स्थावरकायान्मुच्यमानाश्च त्रसकाये नच किंचिल्लिंगमस्ति येन ज्ञायतेऽयं त्रसोऽनूत्पूर्वं स्थावरोवेति (तेसिंचणं) तेषां त्रसानां स्थावरकाये उत्पन्नानां श्राद्धस्यारंनवतः स्थानमिदं स्थावराख्यं घात्यं स्यात् ॥ ६ ॥

॥ टीका–तद्यथा नो गौतम ! अस्तीत्ययं विनक्तिप्रतिरूपकोनिपातइति बव्हर्थवृत्तिर्गृही तस्ततश्चायमर्थः । संति विद्यंते कुमारपुत्रानाम निर्ग्रंथायुष्मदीयं प्रवचनं वदंतस्तद्यथा गृह पतिं श्रमणोपासकमुपसंपन्नं नियमायोत्थितमेव प्रत्याख्यापयंति प्रत्याख्यानं कारयंति । त द्यथा स्थूलेषु प्राणिषु दंमयतीतिदंमः प्राण्युपमर्दस्तं निहाय परित्यज्य प्राणातिपातनिवृ त्तिं कुर्वंति।तामेवापवदति।नान्यत्रेति।स्वमनीषिकायाअन्यत्र राजाद्यभियोगेन यः प्राण्युप घातोन तत्र निवृत्तिरिति । तत्र किल स्थूलप्राणिविशेषणात्तदन्येषामनुमतिप्रत्ययदोषः स्यादित्याशंकावानाह । (गाहावइइत्यादि) अस्य चार्थमुत्तरत्राविर्नावयिष्यामः । येनानिप्रा येणोदकश्चोदितवांस्तमाविष्कुर्वन्नाह (एवंएहमित्यादि) एहमिति वाक्यालंकारे अवधार णेवा। एवमेव त्रसप्राणिविशेषत्वेनापरसूत्रसंनूतविशेषणरहितत्वेन प्रत्याख्यानं गृण्हता श्रावकाणां डुष्प्रत्याख्यानं नवति प्रत्याख्यानंनंगसद्भावात्तथैवमेव प्रत्याख्यापयतामपि साधूनां डुष्टं प्रत्याख्यानदानं नवति । किमित्यतआह । एवं ते श्रावकाः प्रत्याख्यानं गृ ह्णंतः साधवश्च परं प्रत्याख्यापयंतः स्वां प्रतिज्ञामतिचरंत्यतिलंघयंति (कस्सणंहेउंति) प्राकृतशैल्या कस्माद्धेतोरित्यर्थः। तत्र प्रतिज्ञानंगकारणमाह । (सांसारियाइत्यादि) संसा रोविद्यते येषां ते सांसारिकाः। खलुरलंकारे।प्राणिनोजंतवः स्थावराः प्राणिनः पृथिव्यप्ते जोवायुवनस्पतयः संतोपि तथाविधकर्मोदयात्त्रसतया त्रसत्वेन द्वींद्रियादिनावे प्रत्यायां त्युत्पद्यंते तथा त्रसाअपि स्थावरतयेत्येवं च परस्परगमने व्यवस्थितेत्यवश्यं नावी प्रतिज्ञाविलोपः।तथाहि । नागरिकोमया न हंतव्यइत्येवंनूता येन प्रतिज्ञा गृहीता सयदा बहिरारामादौ व्यवस्थितं नागरिकं व्यापादयेत्किमेतावता तस्य न नवेत्प्रतिज्ञाविलोपः ? एवमत्रापि येन त्रसवधनिवृत्तिः कृता सयदातमेव त्रसं प्राणिनं स्थावरकायस्थितं व्या

पादयेत्किं तस्य न नवेत्प्रतिज्ञाविलोपः? नवेदेवेत्यर्थः । एवमपि त्रसस्थावरकाये समुत्पन्नानां त्रसानां यदि तथानूतं किंचिदसाधारणंलिंगं स्यात्ततस्ते त्रसाः स्थावरत्वेनाप्युत्पन्नाः शक्यंते परिहर्तुं नच तदस्तीत्येतद्दर्शयितुमाह । (थावरकायाउइत्यादि) स्थावरकायात्सकाशाद्विविधमनेकैः प्रकारैः प्रकर्षेण मुच्यमानाः स्थावरकायायुषा तद्योग्यैश्चापरैः कर्मनिः सर्वात्मना त्रसकाये समुत्पद्यंते तथा त्रसकायादपि सर्वात्मना विमुच्यमानास्तत्कर्मनिः स्थावरकाये समुत्पद्यंते तत्र चोत्पन्नानां तथानूतत्रसलिंगानावात्प्रतिज्ञालोप इत्येतत्सूत्रेणैव दर्शयितुमाह । (तेसिंचणमित्यादि) तेषां त्रसानां स्थावरकाये समुत्पन्नानां गृहीतत्रसप्राणातिपातविरतेः श्रावकस्याप्यारंनप्रवृत्तत्वेनैतत्स्थावराख्यं घात्यं स्थानं नवति तस्मादनिवृत्तत्वात्तस्येति ॥ ६ ॥

एवंण्हं पच्चरकंताणं सुपच्चरकायं नवइ एवंण्हं पच्चरकावेमाणा णं सुपच्चरकावियं नवइ एवं ते परं पच्चरकावेमाणा णातियरंति सयं पइसं णसन्न अनिनुगेणं गाहावइचोरग्गहणविमोरकणया तसन्नूएहिं पाणेहिं णिहाय दंमं एवमेव सइ नासाए परक्कमे विज्जमाणे जे ते कोहावा लोहावा परं पच्चरकावेंति अयंपि णो उवएसे णो णेआउए नवइ अवियाइं आउसो गोयमा तुप्नंपि एवं रोयइ ॥ ७ ॥

अर्थ–हवे उदक पोताना अनिप्रायें जेम प्रतिज्ञा नंग न होय, तेम कहेछे. (एवंणहंपच्चरकंताणं के०) के जेम हुं कहुंछुं तेम पच्चखाण करतां (सुपच्चरकायंनवइ के०) रूडुं पच्चरकाण थाय (एवंणहंपच्चरकावेमाणाणं के०) एम पच्चरकाण करावतां थकां (सुपच्चरकावियंनवइ के०) रूडुं पच्चरकाण कराव्युं एम थाय (एवंतेपरंपच्चरकावेमाणाके०) ए रीतें ते श्रावक पच्चरकाण करता थकां अनें साधुए पच्चरकाण करावतां थकां (णातियरंतिसयंपइसं के०) पोतानी प्रतिज्ञानुं उल्लंघन न करे केवी रीतें उल्लंघन न करे? ते कहेछे. (णसन्नअनिउगेणंगाहावइचोरग्गहणविमोरकणया के०) जे गृहपति एवी रीतें पच्चरकाण करे के राजादिकना अनियोग थकी अन्य चोरग्रहण चोरीकरी ग्रह्यो ते मोकणनें न्यायें ए पण युक्त परंतु,(तसन्नूएहिंपाणेहिंणिहायदंमं के०) त्रस नूत प्राणीनो विनाश नहीं करुं, एटले एनो शुं अर्थ? तो के, नूत शब्दनुं विशेषण अधिक कहियें तो पच्चरकाण न नांगे ज्यां सुधी ते त्रसजीव त्रसनें रूपेछे, त्यां सुधी न हणवो, जेम कोइ एकनें डुधनी विगयनो पच्चरकाणछे तेनें दधिनें जमवे करी दो

ष नथी, तेम त्रसनूत सत्व, हणवा नही एवी प्रतिज्ञाना करनारनें स्थावरनें हणवा थकी, पच्चरकाणनो नंग न थाय. (एवमेवसइनासाएपरक्कम्मे के०) तो जूओ ? के; एनें एवुं नाषानुं पराक्रम (विक्कमाणे के०) विद्यमान बते त्रसनें स्थानकें त्रसनूत ए वी नाषानें बोलतां (जेते के०) जे कोइ साधु (कोहावालोहावापरंपच्चरकावेंति के०) क्रोध थकी, अथवा लोन थकी, परनें एटले बीजानें नूत शब्द टाली त्रस जीवनो प च्चरकाण करावे, तो तेनें मृषावाद लागे, ने एवा पच्चरकाणना लेनारनें अवश्य निश्चें व्रतनंग थाय (अयंपिणोउवएसेकिंणोणेआउएनवइ के०) ए रीतें जोतां, ए उपदेश नलो नथी, ए न्याय मार्गे नथी, हुं एम जाणुवुं. माटें (अवियाइंआउसोगोयमा के०) अपिसंनावनायें अहो आयुष्यमन् गौतम ! (तुप्नंपिएवंरोयइ के०) तमनें पण हुं कहुं बुं ए वात रूचे एवीबे. ए वात वखाणवा योग्यबे ॥ ७ ॥

॥ दीपिका–एवं नागरिकदृष्टांतेन त्रसमेव घ्नतः प्रतिज्ञालोपः स्यात् । उदकः पुनः स्वानिप्रायमाह । एवं प्रत्याख्यानं कुर्वतां सुप्रत्याख्यातं नवति एवं प्रत्याख्यापयतांच त देव । एवं प्रत्याख्यानं कुर्वतां कारयतांच न स्वप्रतिज्ञालोपः । यथा (णसुबेत्यादि) एवं गृ हस्थः प्रत्याख्याति त्रसनूतेषु वर्तमानकाले त्रसत्वेनोत्पन्नेषु प्राणिषु दंमं वधं निहाय त्यक्का प्रत्याख्यानं करोति । तदिह नूतत्वविशेषणात् स्थावरपर्यायप्राप्तस्य वधेपि न प्र तिज्ञालोपः नान्यत्रानियोगेन राजाद्यनियोगादन्यत्र प्रत्याख्यानं गृहपतिचौरविमोक्षण तयेति सम्यगुक्तं । तस्मान्नूतत्वाविशेषणांगीकारे यथा क्षीरविकृतिप्रत्याख्यायिनोदधिन क्षणेपि न प्रतिज्ञानंगः तथा त्रसनूतान हंतव्याइति प्रतिज्ञावतः स्थावरहिंसायामपि न प्रत्याख्यानातिचारः । एवं विद्यमाने सति नाषायाः प्रत्याख्यानवाचः पराक्रमे नूताविशेष णाद्दोषपरिहारसामर्थ्ये । एवं दोषपरिहारोपाये सति केचन क्रोधाद्वा लोनाद्वा श्रावकं नि र्विशेषणमेव प्रत्याख्यापयंति तेषां मृषावादः स्यात् गृह्णतांच व्रतलोपः । तदेवमयमपि नोस्मदीयोऽगीकारः किं नवतां नो नैयायिकोन्यायोपपन्नोनवति अपिवायुष्मन्गौतम ! एषपक्षस्तुन्यमपि रोचते ॥ ७ ॥

॥ टीका–तदेवं व्यवस्थिते नागरिकदृष्टांतेन त्रसमेव स्थावरत्वेनायातं व्यापादयंतोऽवं श्यंनावी प्रतिज्ञाविलोपोयतस्ततएवं मडुक्तया वक्ष्यमाणनीत्या प्रत्याख्यानं कुर्वता सुप्र त्याख्यातं नवत्येवंच ते प्रत्याख्यापयंतोनातिचरंति स्वीयां प्रतिज्ञामित्येतद्दर्शयितुमाह । (णणबेत्यादि) तत्र गृहपतिः प्रत्याख्यानमेवं गृण्हाति तद्यथा त्रसनूतेषु वर्तमानका ले त्रसत्वेनोत्पन्नेषु प्राणिषु दंमयतीतिदंमः प्राण्युपमर्दस्तं विहाय परित्यज्य प्रत्याख्यानं

करोति तदिह भूतत्वविशेषणात्स्थावरपर्यायापन्नवधेपि न प्रतिज्ञाविलोपः । तथा त्रसभूताः सत्वान हंतव्याइत्येवं प्रतिज्ञावंतः स्थावरहिंसायामपि तत्प्रत्याख्यानातिचारः । तदेवं विद्यमाने सति भाषायाः प्रत्याख्यानवाचः पराक्रमे भूतविशेषणाद्दोषपरिहारसामर्थ्ये एवं पूर्वोक्तया नीत्या सति दोषपरिहरणोपाये ते केचन क्रोधाद्वा लोभाद्वा परं श्रावकादिकं निर्विशेषणमेव प्रत्याख्यापयंति तेषां प्रत्याख्यानं ददतां मृषावादोभवति गृह्णतां चावश्यंभावी व्रतविलोपइति। तदेवमयमपि नोऽस्मदीयोपदेशोभ्युपगमोभूतत्वविशेषणविशिष्टः पक्षः किं भवतां नो नैव नैयायिकोन्यायोपपन्नोभवतीदमुक्तं भवति भूतत्वविशेषणेन हि त्रसान् स्थावरोत्पन्नान् हिंसतोपि न प्रतिज्ञातिचारइत्यपि चैतदायुष्मन् गौतम ! । तुभ्यमपि रोचते ॥ ७ ॥

सवायं भगवं गोयमे उदयं पेढालपुत्तं एवं वयासी आउसंतो उदगा नो खलु अम्हे एवं रोयइ जे ते समणावा माहणावा एवमाइस्कंति जाव परूवेंति णो खलु ते समणा वा णिग्गंथावा भासं भासंति अणुतावियं खलु ते भासं भासंति अप्नाइस्कंति खलु ते समणे समणोवासएवा जेहिंवि अन्नेहिं जीवेहिं पाणेहिं भूएहिं सत्तेहिं संजमयंति ताणवि ते अप्नाइस्कंति कस्सणं तं हेउं सांसारिया खलु पाणा तसावि पाणा थावरत्ताए पच्चायंति थावरावि पाणा तसत्ताए पच्चायंति तसकायाउ विप्पमुच्चमाणा थावरकायंसि उववज्जंति थावरकायाउ विप्पमुच्चमाणा तसकायंसि उववज्जंति तेसिंचणं तसकायंसि उववन्नाणं ठाणमेयं अघत्तं ॥ ८ ॥

अर्थ–ए प्रकारें कहे उते, (सवायंभगवंगोयमेउदयंपेढालपुत्तंएवंवयासी के०) वादें सहित भगवान् श्री गौतम, आ प्रकारें उदक पेढालपुत्र प्रत्यें बोल्या के, (आउसंतोउदगानोखलुअम्हेएवंरोयइ के०) अहो आयुष्मन् उदक ! ए जे तें वचन कह्यांछे ते निश्चेंथी अमनें रुचतां नथी, (जेतेसमणावामाहणावाएवमाइस्कंति के०) जे ते श्रमण, ब्राह्मण, भूत शब्द घालीनें त्रसजीवनो पच्चस्काण करियें एम कहे, (जावपरूवेंति के०) यावत् प्ररूपे, (णोखलुतेसमणावाणिग्गंथावा के०) निश्चें ते श्रमण निर्ग्रंथ न होय कारण के, (भासंभासंति के०) ते एवी निरति भाषा बोलेछे (अणुतावियंखलुतेभासंभासंति के०) जे अन्यनुं अन्य प्ररूपतां एटले एकनुं बीजुं प्ररूपतां सांजलनारनें केवल अ

नुताप उपजे, ते कारणे निश्चें ते अनुतापित नाषा बोलेबे. (अप्नाइरकंतिख लुतेसमणेसमणोवासएवा के०) निश्चें ते श्रमण ब्राह्मण, साधुनें, तथा श्रमणोपा कनें, अन्याख्यान आपे, एटले जूगे कलंक आपे, (जेहिंविअन्नेहिं के०) तथा जे बी जा पण, (जीवेहिंपाणेहिंनूएहिंसत्तेहिंसंजमयंति के०) जीव, प्राण, नूत, अनें सत्वनें विषे जे संयम पाले, (ताणवि के०) ते पण (तेअप्नाइरकंति के०) तेने अन्याख्यान जा णवुं (कस्सणंतंहेउं के०) तेनो हेतु शुं ? ते कहेबे. (सांसारियाखलुपाणा के०) जे कारण माटें निश्चें संसारी जीव जेबे ते परस्पर जाति माहो मांहे संक्रमे, त्रस जीव विणशीने स्थावर पणे उपजे, अनें स्थावर प्राणी विणशीनें, त्रसपणे उपजे, तथा त्रसकाय सर्वथा त्रसनुं आयुष्य त्यागीनें स्थावरकाय मांहे उपजे, अनें स्थावरजीव सर्वथापि स्थावरनुं आयुष्कर्म त्यागीनें त्रसकायने विषे उपजे, ते त्रसकायनें विषे उप ना त्रसकायनुं स्थानक ए अघात्य एटले घातवानुं कर्म लागे नहीं. जे कारण माटें ते श्रावकें त्रसजीव उद्देशीनें स्थूलप्राणातिपातनो विरमण कर्योबे अनें स्थावरकायने वि षे अविरतिबे ए कारण माटें व्रतनंग न कहेवाय परंतु जे, तमारे अनिप्रायें जुदा जु दा जीव उद्देशीनें प्राणातिपातनी निवृत्ति कीधी, ते कीधे बते अन्य पर्यायें पहोता एवा जीवनी विराधना करतां व्रतनंग थाय, तो कोइनें पण सम्यक् व्रतनुं पालवुं देखातुं न थी. ए कारणें तमे अन्याख्यान नाषा बोलोबो, तथा अहीं नूतशब्दनुं ग्रहण करोबो, ते पण निःकेवल व्यामोहनें अर्थेंजबे. जे कारण माटें नूतशब्द उपमायें प्रवर्त्तेबे, जेम देवलोकनूत नगर, परं नतु देवलोकः तेम अहींयां तमे पण वक्तव्यतायें त्रसनूत केतां त्रस सरखा जीव जाणवा परंनतु त्रस, अथवा जे नूतशब्द तदर्थवाची वर्त्तेबे जेम शी तनूत उदक केतां शीतलजलज जाणवुं. तेम त्रसनूत केतां त्रसज केवाय. अहींयां नू तशब्द केतां पुनरोक्ति दोषबे. एम श्री गौतमस्वामियें नूतशब्दनुं निराकरण कर्युं ॥ ८ ॥

॥ दीपिका—सवादं नगवान् गौतमस्तं उदकं पेढालपुत्रमेवमवादीत् । आयुष्मन्नुदक ! नो खलु अस्मन्यमेतद्रोचते यदिदं त्रसकायविरतौ नूतत्वविशेषणं तदस्मन्यं न रोचतइत्य र्थः। एवंसति ये श्रमणावा ब्राह्मणावा एवमाख्यांति ते यथार्थां नाषां न नाषंते किंतु? अनुतापिनीनाषां नाषंते अन्यथा नाषणेहि परस्यानुतापोनवति तेऽन्याख्यांति श्रमणो पासकान सद्भूतदोषप्रकटनेनान्याख्यानं ददते (जेहिंति) येष्वपि अन्येषु जीवेषु ये सं यमयंति संयमं कुर्वंति तथा ब्राह्मणामया न हंतव्याइत्युक्ते सयदा वर्णांतरे तिर्यक्षु वा स्थितस्तद्वधे ब्राह्मणवधआपद्यते नूतशब्दविशेषणानावात् । एवं सूकरादिर्न हंतव्यइ त्यादिविशेषव्रतानि तेऽन्याख्यांति दूषयंति कस्माद्धेतोः? यस्मात्सांसारिकाः प्राणास्त्रसाः

स्थावरत्वेन स्थावरास्त्रसत्वेन प्रत्यायांति त्रसकायात्तदायुष्केन मुच्यमानाः स्थावरकाये स्थावरकायाच्च तद्योग्यकर्मणा मुच्यमानास्त्रसकाये उत्पद्यंते तेषां त्रसकाये समुत्पन्नानां स्थानमेतत्त्रसकायाख्यमघात्यं अघातार्हं भवति स्थूलप्राणिघातान्निवृत्तः श्राद्धः तन्निवृत्त्याच त्रसस्थानमघात्यं स्यात् तस्य तीव्राध्यवसायोत्पादकत्वाल्लोकगर्हितत्वाच्च स्थावर कायाच्चानिवृत्तइति तत्स्थानमस्य घात्यमित्युदकआह ॥ ८ ॥

॥ टीका–एवमेतद्यथा मया व्याख्यातमभिहितोगौतमः सद्वाचं सवादं वा तमुदकं पेढालपुत्रमेवं वक्ष्यमाणमवादीत् तद्यथा । नो खल्वायुष्मन्नुदकास्मभ्यमेतदेवं तद्यथा त्वयोच्यते तद्रोचतइति । इदमुक्तं भवति यदिदं त्रसकायविरतौ भूतत्वविशेषणं क्रियते तन्निरर्थकतयास्मभ्यं न रोचतइति । तदेवं व्यवस्थिते भो उदक ! एते श्रमणाब्राह्मणावा एवं भूतशब्दविशेषणत्वेन प्रत्याख्यानमाचक्षते । तद्यथा । परैः पृष्टास्तथैवं भाषंते प्रत्याख्यानं स्वतः कुर्वंतः कारयंतश्चैवमिति सविशेषणं प्रत्याख्यानं भाषंते तथैवमेव सविशेषणप्रत्याख्यानरूपणावसरे सामान्येन प्ररूपयंतं एवंच प्ररूपतोन खलु ते श्रमणावा निर्ग्रंथावा यथीं भाषां भाषंतेऽपित्वनुतापयतीत्यनुतापिका तां तथाभूतां च खलु ते भाषां भाषंते अन्यथा भाषणे ह्यपरेण जानता बोधितस्य सतोनुतापोभवतीत्यतोनुतापिकेत्युच्यतइति । पुनरपि तेषां सविशेषणप्रत्याख्यानवतामुल्बणदोषोद्भिभावयिषयाह । (अब्भाइरकंतीत्यादि) ते हि सविशेषणप्रत्याख्यानवादिनोयथावस्थितं प्रत्याख्यानं ददतः साधून् गृण्हतश्च श्रमणोपासकानभ्याख्यांत्यभूतदोषोद्भावनतोऽभ्याख्यानं ददति । किंचान्यत् । (जेहिंवीत्यादि) येष्वप्यन्येषु प्राणिभूतेषु जीवेषु सत्वेषु विषयभूतेषु विशिष्य ये संयमं कुर्वंति संयमयंति। तद्यथा ब्राह्मणोन मया हंतव्यइत्युक्ते सयदा वर्णांतरे तिर्यक्षुवा व्यवस्थितोभवति तद्वधे ब्राह्मणवधआपद्यते भूतशब्दविशेषणात्तदेवं तान्यपि विशेषव्रतानि स्तूकरोमया न हंतव्यइत्येवमादीनि विशेषणवादिनोऽभ्याख्यांति दूषयंति । किमित्यतआह। (कस्सणमित्यादि) कस्माद्धेतोस्तदसद्भूतं दूषणं भवतीति यस्मात्सांसारिकाः खलु प्राणाः परस्परजातिसंक्रमणभाजोयतस्ततस्त्रसाः प्राणिनः स्थावरत्वेन प्रत्यायांति स्थावराश्च त्रसत्वेनेति । त्रसकायाच्च सर्वात्मना त्रसायुष्कं परित्यज्य स्थावरकाये तद्योग्यकर्मोपादानादुत्पद्यते तथा स्थावरकायाच्च तदायुष्कादिना कर्मणा विमुच्यमानास्त्रसकाये समुत्पद्यंते तेषांच त्रसकाये समुत्पन्नानां स्थानमेतत्त्रसकायाख्यमघात्यमघातार्हं भवति । तस्मात्तेन श्रावकेण त्रसानुद्दिश्य स्थूलप्राणातिपातविरमणं कृतं तस्य तीव्राध्यवसायोत्पादकत्वाल्लोकगर्हितत्वाच्चेति । तत्रासौ स्थूलप्राणातिपातान्निवृत्तस्तन्निवृत्त्याच त्रसस्थानमघात्यं वर्तते स्थावरकायाच्चानिवृत्तइति तद्योग्यतया तत्स्थानं घात्यमिति । तदेवं राजवदभिप्रायेण विशिष्टसत्वोद्देशे

नापि प्राणातिपातनिवृत्तौ कृतायामपरपर्यायापन्नं प्राणिनं व्यापादयतोव्रतनंगोनवति त तश्च न कस्यचिदपि सम्यग्व्रतपालनं स्यादित्येवमाख्यातमनूतदोषोद्भावनं नवंतोददति। यदपि नवद्भिर्वर्तमानकालं विशेषणत्वेन किलार्यं नूतशब्दउपादीयतेऽसावपि व्यामोहाय केवलमुपतिष्ठते । तथाहि । नूतशब्दोयमुपमाने वर्तते । तद्यथा देवलोकनूतं नगरमिदं न देवलोकएव तथापि त्रसनूतानां त्रससदृशानामेव प्राणातिपातनिवृत्तिः कृता स्यान्न तु त्रसानामित्यय तादर्थ्ये नूतशब्दोयं यथा शीतीनूतमुदकं शीतमित्यर्थः । एवं त्रसनूतास्त्रसत्वं प्राप्तास्तथा च सति त्रसशब्देनैव गतार्थत्वात्पौनरुक्त्यं स्यादथैवमपि स्थिते नूत शब्दोपादानं क्रियते तथा च सत्यतिप्रसंगः स्यात्। तथाहि । क्षीरनूतविकृतेः प्रत्याख्यानं करोम्येवं घृतनूतं मे ददस्वैवं घटनूतः पटनूतइत्येवमादावप्यायोज्यमिति ॥ ७ ॥

सवायं उदए पेढालपुत्ते नगवं गोयमं एवं वयासी कयरे खलु ते आउसंतो गोयमा तुप्ने वयह तसपाणा तसा आउ अन्नहा सवायं नगवं गोयमे उदयं पेढालपुत्तं एवं वयासी आउसंतो उदगा जे तुप्ने वयह तसनूता पाणा तसा ते वयं वयामो तसा पाणा जे वयं वयामो तसा पाणा ते तुप्ने वयह तसनूया पाणा एए संति डवेठाणा तुल्ला एगठा किमाउसो इमे ने सुप्पणीयतराए नवइ तसनूया पाणा तसा इमे ने डप्पणीयतराए नवइ तसा पाणा तसा ततोएगमाउसो पडिकोसह एक्कं अनिणंदह अयंपि नेदो से णो णेआउए नवइ ॥ ए ॥

अर्थ—हवे वाद सहित उदकपेढाल पुत्र, नगवंत श्री गौतमस्वामि प्रत्यें बोल्यो के, अहो आयुष्मन् गौतम! (तुप्ने के०) तमे (कयरे के०) प्राणीनें केवा (वयह के०) कहोबो? एटले (तसपाणातसा के०) त्रसप्राणीज जे होय तेनेंज त्रस कहोबो. (आउ के०) अथवा (अन्नहा के०) कोइ बीजे प्रकारें कहोबो? एम पुढ्या थका नगवंत श्री गौतमस्वामी वादसहित उदयपेढाल पुत्र प्रत्यें बोल्या के, अहो आयुष्मन् उदक! जे तमें कहोबो के, त्रसनूत प्राणी त्रस एटले अतीत अनें अनागतनो निषेध करी, तमें वर्त्तमान कालज लीधो, ए कारणमाटें जेनें तमें त्रसनूतप्राणी त्रस कहोबो, तेनें अमे त्रसप्राणी त्रस कहियें बैयें, (एएसंतिडवेठाणातुल्ला के०) ए बे स्थानक अमारी तमारी वक्तव्यतायें परमार्थेंतो, (एगठा के०) एकार्थ एटले सरखांजबे, एमां अर्थ नेद कांही नथी (किमाउसोइमेनेसुप्पणीयतराएनवइ के०) तो केवी रीतें अहो आयुष्मन्! ए तमारो

पक्ष सुप्रणीत एटले रूडोबे एम अमे केम जाणियें ? त्रसनूतप्राणी त्रस, ए तमारो पक्ष बे, अनें त्रसप्राणी त्रस ए अमारो पक्षबे, तो ते अमारो पक्ष केवी रीतें डुःप्रणीत एटले माठो थाय ? त्रसप्राणी त्रस, एम एकार्थ वर्त्तमान ए शब्दनो तमनें केवो व्यामोह उपनो ? जे, (ततोएगमाउसोपडिकोसह के०) तेमां तमे एक पक्षनी प्रशंसा करोबो. एटले स्थापन करोबो (एक्कंअनिणंदह के०) एक पक्षनी निंदा करोबो (अयंपिन्नेदो के०) ए तमारो नेद पणबे, (सेणोणेआउएनवइ के०) ते न्यायोपपन्न न होय, ए न्यायमार्ग नथी. ॥ ए ॥

॥ दीपिका—उदकआह । उदकोगौतममवादीत् हे आयुष्मन् गौतम ! कतरान्प्राणिनो यूयं वदथ त्रसप्राणिनइति । अथ स द्वाचं गौतमउदकमवादीत् आयुष्मन्नुदक ! यान्प्राणिनोयूयं वदथ त्रसनूतास्त्रसत्वेन वर्तमानानप्येष्यास्तानेव वयं वदामस्त्रसाइति । ये यान् वयं वदामस्त्रसांस्तान्यूयं वदथ त्रसनूतान् एते द्वे स्थाने तुल्ये एकार्थे एव नात्र कश्चिदर्थनेदः। एवं सत्ययं युष्मदीयः पक्षः किं सूपनीततरोयुक्तियुक्तः त्रसनूताः प्राणाइत्ययंतु पक्षोडुःप्रणीततरोऽयुक्तः प्रतिनासते कोयं व्यामोहोनवतां येन शब्दनेदादिकं पक्षमाक्रोशथ द्वितीयं त्वनिनंदथ । इत्ययमेवांगीकारोनवतां नो नैयायिकोन न्यायोपपन्नः उनयोरपि पक्षयोस्तुल्यत्वात् ॥ ए ॥

॥ टीका—तदेवं निरस्ते नूतशब्दे सत्युदकआह । (सवायंउदएइत्यादि) स द्वाचं सवादं चोदकः पेढालपुत्रोनगवंतं गौतममेवमवादीत् । तद्यथा । हे आयुष्मन् गौतम ! कतरान्प्राणिनोयूयं वदथ त्रसनूतास्त्रसत्वेनाविर्नूताः प्राणिनस्तएव त्रसाः प्राणाइत्युतान्यथेत्येवं पृष्टोनगवान् गौतमस्तमुदकं स द्वाचं पेढालपुत्रमेवमवादीत् । तद्यथा । आयुष्मन्नुदक ! यान्प्राणिनोयूयं वदथ त्रसनूतास्त्रसत्वेनाविर्नूताः प्राणिनोनातीतानाप्येष्याः किंतु ? वर्तमानकालएव त्रसाः प्राणाइति तानेव वयं वदामस्त्रसास्त्रसत्वं प्राप्तास्तत्कालवर्तिनएव त्रसाः प्राणाइति । एतदेव व्यत्ययेन बिनणिषुराह । (जेवयमित्यादि) यान्वयं वदामस्त्रसाएवप्राणास्त्रसाः प्राणास्तानेव यूयमेवं वदथ त्रसनूताएवप्राणास्त्रसाः प्राणाः एवंच व्यवस्थिते एते अनंतरोक्ते द्वे अपि स्थाने एकार्थे तुल्ये नवतोनह्यत्रार्थनेदः कश्चिदस्त्यन्यशब्दनेदादित्येवं व्यवस्थिते किमायुष्मन् ! युष्माकमयं पक्षः सुष्ठु प्रणीततरोयुक्तियुक्तः प्रतिनासते । तद्यथा । त्रसनूताएव प्राणास्त्रसनूताः प्राणाइत्ययं पक्षोडुःप्रणीततरोनवति प्रतिनासते नवतां । तद्यथा । त्रसाएव प्राणास्त्रसाः प्राणाः संति चैकार्थत्वेन नवतां कोयं व्यामोहोयेन शब्दनेदमाश्रित्यातएकं पक्षमाक्रोशथ द्वितीयं त्वनिनंदथ इति । तद

यमपि तुल्येप्यर्थे सत्येकपक्षस्याक्रोशनमपरस्य विशेषणपक्षस्याभिनंदनमित्येषदोषाभ्युपगमोभवतां नो नैयायिकोन न्यायोपपन्नोभवत्युभयोरपि पक्षयोः समानत्वात्केवलं सविशेषणपक्षे भूतशब्दोपादानं मोहमावहतीति ॥ ए ॥

भगवंचणं उदाहु संतेगइआ मणुस्सा भवंति तेसिंचणं एवं वुत्तं पुव्वं भवइ णो खलु वयं संवाएमो मुंमा भवित्ता आगाराउ अणगारियं पव्वइत्तए पावय एहं अणुपुव्वेणं गुत्तस्स लिसिस्सामो ते एवं संखेवेंति ते एवं संखं ठवयंति ते एवं संखं ठवयंति नन्नत्थ अभिजोएणं गाहावइचोरग्गहणविमोक्खणयाए तसेहिं पाणेहिं निहाय दंमं तंपि तेसिं कुसलमेव भवइ ॥ १० ॥

अर्थ—हवे एज अर्थनें दीपाववा माटें (भगवंचणंउदाहु के०) भगवंत श्री गौतम स्वामी कहेछे. (संतेगइयामणुस्साभवंति के०) कोइ एक हलवां कर्म वाला मनुष्य होय, अनें ते प्रवर्ज्या पालवानें असमर्थ होय, (तेसिंचणंएवंवुत्तंपुव्वंभवइ के०) तेणें पूर्वें एम कह्युं होय, शुं कह्युं होय? ते कहेछे. (णोखलुवयंसंवाएमोमुंमाभवित्ता के०) निश्चें अमे मुंमित होवानें समर्थ नथी,(आगाराउअणगारियंपव्वइत्तए के०)गृहस्थावास त्यागिनें अणगारपणुं अंगीकार करी शकता नथी. (पावयएहंअणुपुव्वेणं के०) अमें घर थकी निकलीने प्रवर्ज्या लेइने अनुक्रमें, (गुत्तस्सलिसिस्सामो के०) साधुपणुं पालशुं, एटले शुं कह्युं ? तोके, प्रथमतो देशविरतिरूप, श्रावकनो धर्म पालशुं, अनें अनुक्रमें पछी श्रमणनो धर्म पालशुं. (तेएवंसंखेवेंति के०) ते एवी व्यवस्था संभलावे (तेएवंसंखंठवयंति के०) ते पुरुष, एवी व्यवस्था स्थापन करे एटले एवी रीतें पच्चखाण करे, (तेएवंसंखंठवयंति के०) नें पछी तेज प्रमाणे मनमां रुडा प्रकारे स्थापन करे. ते कहेछे के, (नन्नत्थअभिजोएणं के०) राजादिकना अभियोगें करी त्रसप्राणीनी घातथी अमारो व्रतभंग नथी. इत्यादिक पच्चखाण, साधुनो उपदेश सांभली करे. तेनी उपर (गाहावइचोरग्गहणविमोक्खणयाए के०) गृहपति जे चोर तेनुं ग्रहण तथा विमोक्ष एछे जेमां, एवो गृहपति तथा राजानो दृष्टांत कहेछे.

रत्नपुरनामा नगरनें विषे रत्नशेखर राजा हतो. तेणे एकदा एवो विचार कर्यो के, आपणे कौमुदीमहोत्सव करवो. पछी रत्नमाला प्रमुख पोतानी स्त्रीयोनें आ वातनी विज्ञापना करावी जे, स्वतंत्रक्रीडा, चंद्रनी चांदनीमां आपणे करवी. वली पोताना नगरमां पण उद्घोषणा देवरावी जे, कोइ मनुष्यें आज रात्रें नगरमां न रहेवुं, अनें

बाहेर उद्यानमां सायंकालें जवुं. अने कोइ नगरमां रहेशे तेना शरीरनो निग्रह राजा करशे ते प्रमाणें राजानी उद्घोषणाथी सर्व मनुष्य सायंकालें नगर बाहेर गयां, तथा राजा पण सपत्नीक गयो. हवे ते पछी, कोइ एक वैश्यना छ पुत्र हता. ते क्रयविक्रय व्यापारना व्यग्रपणाथी नगरमांज रहि गया, एटलामां सूर्यास्त थयो तेवारें नगर बाहेर निकलवा लाग्या परंतु गोपुर जे नगरना दरवाजा, ते बंध थइ गया दीठा तेवारें भ्रांत छता नगरमांहेंज कोइ स्थले पोतें गुप्त रह्या पछी कौमुदी महोत्सव संपूर्ण थया नंतर राजायें आरक्षकनें तेडावी कह्युं के, अहो आरक्षको! तमें रूडी रीतें कोइ पुरुष, नगरमां रहेलो होयतो तेनें जुवो? तेवार पछी नगरमां जोतां श्रेष्ठीना छ पुत्रो दीठा. तेनें देखीनें, आरक्षकोयें राजाने विनव्यो के, स्वामी! कोइ एक श्रेष्ठीना छ पुत्र नगरमां रह्याछे. तेवारें राजायें ते छए पुत्रनो विनाश करवानें आदेश आप्यो. एवुं सांभली श्रेष्ठी, पुत्रशोकें व्याकुल छतो राजापासें आवीनें एम कहेवा लाग्यो के, हे स्वामी! अमारा कुलनो क्षय म करो. अनें जे कांइ अमारा घरमां कुलक्रमागत धन छे ते सर्व लेइनें अमारा छए पुत्रनें जीवता मूको? ए प्रमाणें श्रेष्ठियें कहे थके, राजा अत्यंत क्रोधें व्याप्त थयो थको, श्रेष्ठि प्रत्यें कहेवा लाग्यो के, अरे पापिष्ठ! राजानी आज्ञा ते राजाना प्राणसमान! जेणें राजानी आज्ञा न मानी, तेणें राजानां प्राण हर्यां माटें तहारा पुत्रनें जीवता मूकुं नहिं. एवो राजानो घणो आग्रह जाणीनें फरी श्रेष्ठीयें पांच पुत्रनें जीवता मूकवानी विनति राजानें करी, तोपण राजायें मान्युं नहीं. तेवारें चार पुत्र मुकावनी विनती करी ते पण मानी नहीं, तेवारें त्रण पुत्र मुकाववानें अर्थें विनति करी तेपण राजायें मानी नहीं, तेवारें बे पुत्र मुकाववानी विनति करी, ते पण राजायें न मानी. एवो राजानो आग्रह जाणी श्रेष्ठीयें नगरमांहेला महोटा महोटा लोकोनें एकठा करी, ते बधानें राजापासें लइ जइने राजाने विनव्यो के, हेस्वामी! तमें प्रजाना पिता छो तो सर्वथा प्रकारें अमारा कुलनो क्षय करवा शुं मामछोछे? अहिंयां आवेला अमोनें तमेंज शरण छो एटले अमारे तमारोज आश्रय छे. तमने भावे तो मारो? अने भावेतो जीवाडो? एम कहि श्रेष्ठी राजानें पगे लागो ते वारें राजायें अनुकंपा करीनें छ पुत्रमांहेथी एक महोटा पुत्रनें जीवतो मूक्यो. ए द्रव्य थकी दृष्टांत कह्यो, हवे दृष्टांतनी योजना करेछे के, जेम श्रेष्ठी तेम आहिं श्रावक जाणवो, जेम त्यां छ पुत्र तेम आहिं छकाय जाणवा. जेम श्रेष्ठीयें विलाप करवाथकी राजायें छ पुत्र मांहेंथी एक पुत्र जीवतो मूक्यो, तेवारें श्रेष्ठी पोतानें कृतार्थ मानतो, एटले बीजा पांच पुत्रनी उपर श्रेष्ठीनें विनाश करवानो भाव नथी, परंतु शुं करे! जे राजा कोइ रीतें मूके नहिं? तेम अहीं पण साधुजे श्रावकनें संरक्षण

करवानें उपदेश आपेछे. परंतु श्रावक पोतें अशक्तपणानें लीधे एक त्रसकाय राखी शके छे. ते वारें साधु पण जे कांइ श्रावक राखे ते श्रावकनें कृतार्थी पोतें जाणे, परंतु बीजा पांच काय श्रावक विराधे छे. तेनी अनुमति साधुनें नथी, ए कारणें तेनुं कर्म कांइ लागे नही. ए न्याय उपर " गाहावइचोरग्गहणविमोरकणयाए " ए पदनो अर्थ समाप्त थयो. हवे सूत्रथकी आगलनो संबंध देखाडेछे. (तसेहिंपाणेहिंनिहायदंमं के०) त्रस बे इंद्रियादिक प्राण, तेहनो वध छांमिनें श्रावक जे विरति करे. (तंपि के०) ते विरति पण (तेसिंकुसलमेवनवइ के०) ते श्रावकनें पुण्यरूप होय. एम जाणवुं॥१०॥

॥ दीपिका—कुमतनिषेधमाह। नगवंचणं उदाहु रिति। नगवान् गौतमः पुनराह। संति एके केचन मनुष्याः येषां साधोर्धर्मकथकस्य पुरइदमुक्तं नवति यथा न खलु वयं मुंमान्न वितुं प्रव्रज्यां ग्रहीतुं शक्नुमः अगारादनगारितां प्रव्रजितुं वयमानुपूर्व्येण क्रमेण गोत्रं साधुत्वमनुश्लेषयिष्यामः। कोऽर्थः? वयं देशविरतिं पालयामः ततः क्रमेण चारित्रं ततएवं ते संख्यां व्यवस्थां श्रावयंति प्रत्याख्यानं कुर्वंतः प्रकाशयंति ते एवं व्यवस्थां स्थापयंति स्व परस्थापयंतिच नान्यत्रानियोगेन। अनियोगोराजानियोगादिः। तेन त्रसं घ्नतोपि न व्रतनंगः तथा गृहपतिचोरविमोक्षणतयेति । अस्यार्थः कथागम्यः । सा चेयं । रत्नपुरे रत्नशेखरराज्ञा स्वांतःपुरादिस्त्रीणां स्वैरक्रीडारूपः कौमुदीमहोत्सवोऽनुज्ञातः पुरुषेण केनापि नगरमध्ये न स्थेयमित्याघोषणा कारिता नृपादयः पुरुषाः सर्वेपि उद्याने सायं जग्मुः । एकस्य वणिजः षट् पुत्राः क्रयविक्रयादिव्यग्राः पुरमध्यएव तस्थुः । स्थगितानि गोपुराणि ततस्ते निष्क्रांते महे राज्ञा रक्षकाणामुक्तं पश्यत नगरे कोपि नरोस्ति नवेति? तैर्विलोकयद्भिः षट् पुत्रास्ते दृष्टाः राज्ञोनिवेदिताः राज्ञा कुपितेन षण्णामपि वधः समादिष्टः । ततस्तत्पिता शोकाकुलोराजानं विज्ञापयतिस्म। देव! मा कृथाः कुलक्षयमस्माकं। सर्वधनं गृह्यतां मुच्यंतां पुत्राः। एवमुक्तेपि राजा कथमपि न मुंचति पुत्रान् ततः पिता सर्वपुत्रघातप्रवृत्तं राजानं ज्ञात्वा पंचानां मोचनं याचितवान् राजा पंचानपि न मुंचति ततश्चत्वारोयाचिताः तथापि न मन्यते नृपः । ततस्त्रयोयाचितास्तेपि न मुक्ताः । ततो द्वौ मार्गितौ तावपि अमुंच नृपएकं पुत्रं याचितः समग्रपौरजनविज्ञप्तोनृपः पुत्रमेकं ज्येष्ठं मुक्तवान् । अत्रेयं दृष्टांतयोजना । सम्यक्त्ववान् श्राद्धः सर्वप्राणातिपातविरतिं कर्तुमशक्तोनृपस्थानीयः षट्कायपितृतुल्येन साधुना प्रेरितोपि सर्वविरतिं नांगीकुरुते षमपि जीवकायान्मोचयति साधुः ।श्राद्धस्तु षण्णां मोचनेऽशक्तोज्येष्ठमेकं त्रसकायं मुंचति पालयतीत्यर्थः । साधुरेकमोचनेनापि कृतार्थमात्मानं मन्यते । यथाच तस्य वणिजोन शेषपंचपुत्रवधानुज्ञा एवं साधोरपि न शेषप्राणिवधानुमतिः किंतु? यदेव व्रतं गृहीत्वा यानेव स्थू

त्रसत्वात् संकल्पवधनिवृत्तोरक्षति श्राद्धः। तन्निमित्तं कुशलानुबंधएवेत्याह। (तसेहिं) त्रसेन्योदंम् हिंसां त्यक्त्वा यावद्विरमति तावत्तस्य कुशलं पुण्यमेवेति ॥ १० ॥

॥ टीका–यच्च नवतास्माकं प्राग्दोषोद्भावनमकारि तद्यथा त्रसानां वधनिवृत्तौ तदन्येषां वधानुमतिः स्यात् साधोस्तथानूतशब्दानुपादानेनांतरमेव त्रसं स्थावरपर्यायापन्नं व्यापादयतोव्रतनंगइत्येतत्कुचोद्यजातं परिहर्तुकामआह। (नगवंचणमित्यादि) णमिति वाक्यालंकारे। नगवान्गौतमस्वामी चशब्दः पुनः शब्दार्थे। पुनराह। तद्यथा। संति विद्यंते एके केचन लघुकर्माणोमनुष्याः प्रव्रज्यां कर्तुमसमर्थास्तद्व्यतिरेकेणैव धर्मं चिकीर्षवस्तेषां चैवमध्यवसायिनां साधोर्धर्मोपदेशप्रवणस्याग्रतइदमुक्तपूर्वं नवति। तद्यथा। नो साधो! न खलु वयं शक्नुमोमुंमानवितुं प्रव्रज्यां ग्रहीतुमगाराद्गृहादनागारतां साधुनावं प्रतिपत्तुं वयं त्वानुपूर्व्येण क्रमशोगोत्रस्येति गां त्रायइति गोत्रं साधुत्वं तस्य साधुनावस्य पर्यायेण परिपाल्यात्मानमनुश्लेषयिष्यामः।इदमुक्तं नवति। पूर्वं देशविरतिरूपतया श्रावकधर्मं गृहस्थयोग्यमनिंद्यमनुपालयामस्ततोनुक्रमेण पश्चाच्छ्रमणधर्ममिति। ततएवं ते संख्यां व्यवस्थां श्रावयंति प्रत्याख्यानं कुर्वंतः प्रकाशयंति। तद्यथा। नान्यत्रानियोगेन। सचाभियोगोगणाभियोगोबलाभियोगोदेवताभियोगोगुरुनिग्रहश्चेत्येवमादिनाभियोगेन व्यापादयतोपि त्रसं न व्रतनंगः। तथा गृहपतिचोरविमोक्षणतयेत्यस्यायमर्थः। कस्यचिद्गृहपतेः षट् पुत्रास्तैश्च सत्यपि पितृपितामहक्रमायाते महति वित्ते तथाविधकर्मोदयाद्राजकुलनांमागारे चौर्यमकारि राजपुरुषैश्च नवितव्यतानियोगेन गृहीतास्ते इत्येके। परे त्वन्यथा व्याचक्षते। तद्यथा। रत्नपुरे नगरे रत्नशेखरोनाम राजा तेन च परितुष्टेन रत्नमालाग्रमहिषीप्रमुखांतःपुरस्य कौमुदीप्रचारोऽनुज्ञातस्तदवगम्य नागरलोकेनापि राजानुमत्या स्वकीयस्य स्त्रीजनस्य तथैव क्रीडनमनुमतं राज्ञाच नगरे सडिंडिमशब्दमाघोषितं। तद्यथास्तमनोपरि कौमुदीमहोत्सवे प्रवृत्ते यः कश्चित्पुरुषः समुपलभ्यते नगरमध्ये तस्याविज्ञप्तिकः शरीरनिग्रहः क्रियतइत्येवं च व्यवस्थिते सत्येकस्य वणिजः षट् पुत्रास्ते च कौमुदीदिने क्रयविक्रयसंव्यवहारव्यग्रतया तावत्स्थितायावत्सवितास्तमुपगतः। तदंतरमेव स्थगितानि च नगरद्वाराणि तेषांच तत्कालात्ययान्न निर्गमनमनूत्ततस्ते नयसंभ्रांतानगरमध्यएवात्मानं गोपयित्वा स्थितास्ततोनिष्क्रांते कौमुदीप्रचारे राज्ञा रक्षिकाः समाहूयादिष्टायथा सम्यक् निरूपयत यूयं नात्र नगरे कौमुदीचारे कश्चित्पुरुषोव्यवस्थित? इति। तैरप्यारक्षिकैः सम्यक् निरूपयद्भिरुपलभ्य षड्वणिक्पुत्रवृत्तांतोयथावस्थितएव राज्ञे निवेदितः। राज्ञाप्याज्ञानंगकुपितेन तेषां षमामपि वधः समादिष्टस्ततस्तत्पिता पुत्रवधसमाकर्णनगुरुशोकविव्हलोऽकांमापतितकुलक्षयोद्भ्रांतलोचनः किं कर्तव्यतामूढतया गणि

तविधेयाविधेयविशेषोराजानमुपस्थितोऽवादीच्च गद्गदया गिरा यथा मा कृथादेवास्माकं कुलक्षयं गृह्यतामिदमस्मदीयं कुलक्रमायातं स्वभुजोपार्जितं प्रभूतं द्रविणजातं मुच्यतां मुच्यताममी षट् पुत्राः क्रियतामयमस्माकमनुग्रहइति । एवमभिहितोराजा तद्वचनमाकर्ण्य पुनरपि सविशेषमादिदेश असावपि वणिक्सर्वेषांशंकी सर्वमोचनानभिप्रायं राजानमवेत्य पंचानां मोचनं याचितवान् तानप्यसौ राजा नमोक्तुमनाइत्येवमभिगम्य चतुर्मोचनकृते सादरं विज्ञप्तवांस्तं तथापि राजा तमनादृत्य कुपितवदनएव स्थितस्ततस्त्रयाणां विमोचने कृतादरस्तत्पिताऽभूत् तानप्यमुंचंतं राजानं ज्ञात्वा गणितस्वापराधो द्वयोर्मोचनं प्रार्थितवांस्तथाप्यवज्ञाप्रधानं नृपतिमवगम्य ततः पौरमहत्तमसमेतोराजानमेवं विज्ञप्तवांस्तद्यथा देवाऽकांडएवास्माकं कुलक्षयः समुपस्थितः तस्माच्च भवंतएव त्राणायालमतः क्रियतामेकमत्पुत्रविमोचनेन प्रसादइति भणित्वा पादयोः सपौरमहत्तमः पतितोराज्ञापि संजातानुकंपेन मुक्तस्तदेकोज्येष्ठपुत्रइति । तदेवमस्य दृष्टांतस्य दार्ष्टांतिकयोजनेयं । तद्यथा साधुनाभ्युपगतसम्यग्दर्शनमवगम्य श्रावकमखिलप्राणातिपातविरतिग्रहणं प्रतिचोदितोप्यशक्ततया यदा न सर्वप्राणातिपातविरतिं प्रतिपद्यते यथाऽसौ राजा वणिजोत्यर्थं विलपितोपि न षडपि पुत्रान् मुमुक्षति नापि पंचचतुस्त्रिद्विःसंख्यान् पुत्रानिति । ततएकविमोक्षणेनात्मानं कृतार्थमिव मन्यमानः स्थितोसावेवं साधोरपि श्रावकस्य यथाशक्तिव्रतं गृह्णतस्तदनुरूपमेवाणुव्रतदानमविरुद्धमिति यथाच तस्य वणिजोन शेषपुत्रवधानुमितिलेश्योप्यस्त्येवं साधोरपि न शेषप्राणिवधानुमिति प्रत्ययजनितःकर्मबंधोभवति किं तर्हि? यदेव व्रतं गृहीत्वा यानेव सत्वान् बादरान् संकल्पजप्राणिवधनिवृत्त्या रक्षति तन्निमित्तः कुशलानुबंधएवेत्येतत्सूत्रेणैव दर्शयितुमाह । (तसेहिमित्यादि) त्रस्यंतीति त्रसाद्वींद्रियादयस्तेभ्यः सकाशान्निधाय निहाय वा परित्यज्येति यावत् दंडयतीति दंडस्तं परित्यज्य त्रसेषु प्राणातिपातविरतिं गृहीत्वेत्यर्थस्तदपि च त्रसप्राणातिपातविरमणव्रतं तेषां देशविरतानां कुशलहेतुत्वात्कुशलमेव भवति ॥ १० ॥

तसावि वुच्चंति तसा तससंभारकडेणं कम्मुणा णामंचणं अब्भुवगयं भवइ तसाउयंचणं पलिक्खीणं भवइ तसकायट्ठिइया ते तउ आउयं विप्पजहंति ते तउ आउयं विप्पजहित्ता थावरत्ताए पच्चायंति थावरावि वुच्चंति थावरा थावरसंभारकडेणं कम्मुणा णामंचणं अब्भुवगयं भवइ थावरा आउयंचणं पलिक्खीणं भवइ थावरकायट्ठिइया तउ आउयं विप्पजहंति तउ आ

उयं विप्पजहित्ता नुज्जो परलोइयत्ताए पच्चायंति ते पाणावि वुच्चं
ति ते तसावि वुच्चंति ते महाकायाए ते चिरहिइया ॥ ११ ॥

अर्थ—हवे जे उदयपेढालपुत्रनो अनिप्राय पूर्वे कह्यो ते एवे जे,त्रस जीव,स्थावर मांहे उपनो तेनो, आराम केतां अरण्यमांहे बेठे विनाश करतां, नागरिक पुरुषनी पेठें अवश्य व्रत नंग थाय. ए बोल टालवा माटें कहेठे. (तसाविवुच्चंति के०) त्रस एटले बे इंडियादिक एम पण कहियें, (तसातससंनारकडेणंकम्मुणाणामंचणंअप्नुवगयंनवइ के०) ते त्रस, पूर्वेबंध त्रसनाम कर्मनें उदयें त्रसनुं नाम पामे, पढी (तसाउयंचणंपलिरकीणंनवइ के०) णं एवे वाक्यालंकारें जेवारें ते त्रसकायनुं आयुष्य परिक्षीण थाय. ते त्रसकायनी स्थिति क्यां सुधी होय ? ते कहेठे (तसकायहिइयाते के०) ते त्रसकायस्थिति, जघन्यथकी अंतरमुहूर्त्त अनें उत्कृष्टसाधिक बे हजार सागरोपम प्रमाणे होय. (ततोआउयंविप्पजहंति के०) ते वार पढी ते त्रसपणुं ठांमे. (विप्पजहित्ता के०) ते त्रसपणुं ठांमीने (थावरत्ताएपच्चायंति के०) स्थावर पणे उपजे, (थावराविवुच्चंति के०) तेवारें तेने स्थावर पण कहियें. (थावराथावरसंनारकडेणंकम्मुणाणामंचणंअप्नुवगयंनवइ के०) ते स्थावर, पूर्वे बंध कर्युं जे स्थावरनाम कर्म, तेना उदयथी स्थावर एवुं नाम पामे, एटले स्थावर होय, (थावराआउयंचणंपलिरकीणंनवइ के०) वली ते जेटले ते स्थावरनुं आयुःकर्म परिक्षीण थाय. (थावरकायहिइया के०) हवे स्थावरकायनी स्थिति केवी होय ? तो के, जघन्य अंतर मुहूर्त्त अने उत्कृष्ट थकी अनंतो काल असंख्यात पुजलपरावर्त्त पर्यंत, एवी स्थिति होय. पढी एटली स्थिति खपावीने, (तउआउयंविप्पजहंति के०) तेवार पढी स्थावर पणुं ठांमे, (तउआउयंविप्पजहित्ता के०) ते स्थावर स्थिति ठांमीनें (नुज्जोपरलोइयत्ताए पच्चायंति के०) वली परलोक पणे उपजे. एतावता त्रसपणुं पामे. (तेपाणाविवुच्चंतितेत साविवुच्चंति के०) ते प्राण पण कहियें,ते त्रसनामकर्मनें उदयें,त्रसनाम पणे उपनाठे,मा टें त्रसप्राण एवे नामे कहियें, तथा त्रस पण कहिये. (तेमहाकायाए के०) ते महो टी काया एटले लक्ष योजन प्रमाण वैक्रिय शरीर वाला एवा महाकाय कहियें. तथा (तेचिरहिइयाए के०) ते चिरस्थितिक, नवस्थितिनी अपेक्षायें तेत्रीश सागरोपम प्रमाण स्थिति जाणवी. तो अहींयां श्रावकें त्रसनुंज पच्चरकाण कीधुंठे परंतु स्थावरकायपणें उपना ते जीवोनुं पच्चरकाण नथी कर्युं. ते कारणें कयो व्रत नंग थयो ? तथा तमे जे नागरीकनो दृष्टांत देखाडयो ते दृष्टांत पण अहीं संजवे नहीं. ते दृष्टांत देवाथी अमे एम जाणीयें बैयें जे, तमे गुरुना मुख थकी सूत्रार्थ लीधो नथी केमके, नगरनें धर्मे सहित ते नागरिक कहियें ते नागरिक पुरुष महारे हणवो नहीं, एवी प्रतिज्ञा ग्रहण करीनें प

डी ते नागरिक बाहिर आरामनें विषे बेठेलाने विणाशतां व्रतभंग थाय? ए दृष्टांत अंहीं त्रस, अनें स्थावरनें नेदें मलतो नथी केमके, ते नागरिक पुरुष जो बाहेर आरामादिकने विषे स्थित होय तो पण, तेनुं नागरिक पणु शुं जतुं रह्युं? त्यां पण ते नागरिक तेज आकारेंछे. तेहिज वर्णछे, तेहिज परिणामेछे, ए दृष्टांत पर्यायें त्रसनें मले नही, एवुं जाणी, तमे अयुक्त बोलोछो ॥ ११ ॥

॥ दीपिका—त्रसाअपि द्वींद्रियादयोपि त्रसाउच्यंते त्रसास्त्रससंनारकृतेन कर्मणा स्युः । संनारोनाम कर्मणोऽवश्यं विपाकानुनवेन वेदनं । तच्च त्रसनाम प्रत्येकनाम इत्यादिकं त्रसत्वेन संबद्धं यदायुष्कं उदयप्राप्तं स्यात्तदा त्रसनामादिकर्मणा त्रसाउच्यंते । त्रसायुर्यदा क्षीणं स्यात्त्रसकायस्थितिश्च क्षीणा स्यात् साच जघन्येनांतर्मुहूर्तं उत्कृष्टतः सातिरेकसहस्रद्वयसागरमानास्ततस्ते त्रसायुस्त्यजंति अन्यान्यपि तत्सहचरकर्माणि त्यक्त्वा स्थावरत्वेन प्रत्यायांति । स्थावराअपि तथैव कर्मणा स्थावरत्वेनोत्पद्यंते एवंसति स्थावरकायं घ्नतः श्राद्धस्य कथं स्थूलप्राणातिपातनिवृत्तिव्रतनंगइति । किंच (थावराआउंति) यदा स्थावरायुष्कमपि क्षीणं स्यात्तथा स्थावरकायस्थितिश्च सा जघन्येनांतर्मुहूर्तं उत्कृष्टतोनंतकालमसंख्येयाः पुज्जलपरावर्ताः । ततस्ते स्वायुः परित्यज्य नूयः पुनरपि परलोकतया स्थावरकायस्थितेरनावात्सामर्थ्यात्त्रसत्वेन प्रत्यायांति ते त्रसाः प्राणाअप्युच्यंते त्रसाअप्युच्यंते । महाकायास्ते योजनलक्षप्रमाणशरीरविकुर्वणात् चिरस्थितिकास्ते नवस्थित्यपेक्षया त्रयस्त्रिंशत्सागरायुष्कनावात् । ततस्त्रसनिवृत्तिरेव श्राद्धेन कृता न तु स्थावराणां । नागरिकदृष्टांतोप्ययुक्तः । नागरिकोन हंतव्यइति प्रतिज्ञां कृत्वा बहिःस्थितं तमेव पर्यायापन्नं घ्नतोव्रतनंगइति त्वत्पक्षः । सचायुक्तोयोहि नगरधर्मैरुपेतः स बहिःस्थोपि नागरिकएवातः पर्यायापन्नइति विशेषणमयुक्तं । सर्वथा नगरधर्मत्यागेतु तमेवेति नोपद्यते । सचान्यएवेति तथा त्रसत्वत्यागाद्यदा स्थावरत्वं प्राप्तस्तदान्यएवायमिति तं घ्नतोन व्रतनंगः ॥ ११ ॥

॥ टीका—यच्च प्रागनिहितं तद्यथा तमेव त्रसं स्थावरपर्यायापन्नं नागरिकमिव बहिःस्थं व्यापादयतोऽवश्यंनावी व्रतनंगइत्येतत् परिहर्तुकामआह । (तसावीत्यादि) त्रसाअपि द्वींद्रियादयोपि स्वसंनारकृतेन कर्मणा नवंति । संनारोनामावश्यतया कर्मणोविपाकानुनवने वेदनं । तच्चेह त्रसनाम प्रत्येकनामेत्यादिकं नामकर्माभ्युपगतं नवति त्रसत्वेन यत्परिबद्धमायुष्कं तद्यदोदयप्राप्तं नवति तदा त्रससंनारकृतेन कर्मणा त्रसाइति व्यपदिश्यंते न तदा कथंचित्स्थावरत्वव्यपदेशोयदाच तद्वायुः परिक्षीणं नवति । एगिनि वाक्य

लंकारे । त्रसकायस्थितिकं च कर्म यदा परिक्षीणं नवति तच्च जघन्यतोंतर्मुहूर्तमुत्कृष्टतः सातिरेकसहस्रद्वयसागरोपमपरिमाणं तदा ततस्त्रसकायस्थितेरनावात्तदायुष्कं ते परित्यजंत्यपराण्यपि तत्सहचरितानि कर्माणि परित्यज्य स्थावरत्वेनोदयं यांति । इत्येवंच व्यवस्थिते कथं स्थावरकायं व्यापादयतोगृहीतत्रसकायप्राणातिपातनिवृत्तः श्रावकस्य व्रत नंगइति? । किंचान्यत् (थावराउत्र्यंचणमित्यादि) यदा तदपि स्थावरायुष्कं परिक्षीणं नवति तथा स्थावरकायस्थितिश्च सा जघन्यतोंतर्मुहूर्तमुत्कृष्टतोऽनंतकालमसंख्येयाः पुजलपरावर्ताइति ततस्तत्कायस्थितेरनावात्तदायुष्कं परित्यज्य नूयः पुनरपि पारलौकिकत्वेन स्थावरकायस्थितेरनावात् त्रसत्वेन सामर्थ्यात्प्रत्यायांति । तेषांच त्रसानामन्वर्थितान्यनिधानान्यनिधातुमाह । (तेपाणावीत्यादि) ते त्रससंनारकृतेन कर्मणा समुत्पन्नाः संतः सामान्यसंज्ञया प्राणाअप्युच्यंते । तथा विशेषतस्त्रसनयचलनयोरिति धात्वर्थानुगमाद्भयच लनान्यामुपेतास्त्रसाअप्युच्यंते तथा महान् कायोयेषां ते महाकायाः योजनलक्षप्रमाणशरीरविकुर्वणात्तथा चिरस्थितिकाअप्युच्यंते । नवस्थित्यपेक्षया त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुष्कसद्भावात्ततस्त्रसपर्यायव्यवस्थितानामेव प्रत्याख्यानं तेन गृहीतं नतु स्थावरकायत्वेन व्यवस्थितानामपीति । यस्तु नागरिकदृष्टांतोनवतोपन्यस्तोऽसावपि दृष्टांतदार्ष्टांतिकयोरसाम्यात्केवलं नवतोनुपासितगुरुकुलवासित्वमाविष्करोति । तथाहि । नगरधर्मैरुपयुक्तो नागरिकः सच मया न हंतव्यइति प्रतिज्ञां गृहीत्वा यदा तमेव व्यापादयति बहिः स्थितं पर्यायापन्नं तदा तस्य किल व्रतनंगइति नवतः पक्षइति । सच न घटते । यतोयोहि नगरधर्मैरुपेतः सबहिस्थोपि नागरिकएवातः पर्यायापन्नइत्येतद्विशेषणं नोपपद्यते अथ सामस्त्येन परित्यज्य नगरधर्मं नासौ वर्तते अतस्तमेवेत्येतद्विशेषणं नोपपद्यते तदेवमत्र त्रसः सर्वात्मना त्रसत्वं परित्यज्य यदा स्थावरः समुत्पद्यते तदा पूर्वपर्यायपरित्यागादपरपर्यायापन्नत्वाच्च सएवासौ न नवति तद्यथा नागरिकः पद्भ्यां प्रविष्टस्तद्धर्मापेतत्वात्पूर्वधर्मपरित्यागाच्च नागरिकएवासौ न नवतीति ॥ ११ ॥

सवायं उदए पेढालपुत्ते नयवं गोयमं एवं वयासी आउसंतो गोयमा णत्थिणं से केइ परियाए जण्णं समणोवासगस्स एगपाणातिवायविरएवि दंमे निक्खित्ते कस्सणं तं हेउं सांसारिया खलु पाणा थावरावि पाणा तसत्ताए पच्चायंति तसावि पाणा थावरत्ताए पच्चायंति थावरकायाउ विप्पमुच्चमाणा सवे तसकायंसि उववज्जंति तसकायाउ विप्पमुच्चमाणा सवे थावरकायंसि उववज्जंति तेसिंचणं थावरकायंसि उववन्नाणं ठाणमेयं घत्तं ॥ १२ ॥

अर्थ—हवे वादसहित उदयपेढालपुत्र, भगवंत श्रीगौतम प्रत्यें बोल्या के, अहो आयुष्यमन् गौतम! ते कोइ पर्याय नथी के, जेणें करी श्रमणोपासक श्रावकनें एक प्राणातिपातविरति विषयिक दंभनो त्याग कर्यो जाय. ते केवा हेतुथी? ए कारण देखाडे छे. संसारी प्राणी परस्पर मांहो मांहे गतिना करनारछे. स्थावरप्राणी त्रस पण उपजे, अने त्रसप्राणी पण स्थावर पणे उपजे. हवे वली विशेषें कहेछे. स्थावर काय थकी मूकाता थका एतावता स्थावरकायनुं आयुष्य त्यागी सर्व त्रसकाय पणे उपजे, पाछल कोइ स्थावर रहे नहीं, तथा वली त्रसकाय थकी मूकाता एतावता त्रसकायनुं आयुष्य त्यागीनें सर्व, स्थावरकाय मांहे उपजे, पाछल कोइ त्रस रहे नहीं, तेवारें ते श्रावकनें स्थावर मांहे उत्पन्न त्रसनुं स्थानक हणाणुं, ए व्रतभंग थयो ॥१२॥

॥ दीपिका—पुनरुदकः प्राह । सवादमुदकोगौतममवादीत् । हे गौतम ! नास्ति सकश्चित्पर्यायः यस्मिन्नेकप्राणातिपातविरमणेपि श्रमणोपासकस्य दंभोवधोनिक्षिप्तः परित्यक्तः स्यात् । कोर्थः । श्राद्धेन त्रसमुद्दिश्य प्रत्याख्यानं कृतं । संसारिणा वान्योन्यगमनसंभवात्त्रसाः सर्वेपि स्थावरत्वं प्राप्तास्तदा त्रसानामभावान्निर्विषयं प्रत्याख्यानमित्यर्थः। (कस्सणंति) केन हेतुना इदमुच्यते सांसारिकाः खलु प्राणाः स्थावरास्त्रसतया त्रसाअपि स्थावरतया प्रत्यायांति स्थावरकायाद्विप्रमुच्यमानाः स्वायुषा सर्वे निरवशेषकास्त्रसकाये समुत्पद्यंते त्रसकायादपि तदायुषा मुच्यमानाः सर्वे स्थावरकाये समुत्पद्यंते तेषां त्रसानां स्थावरकायोत्पन्नानां स्थानमेतद्घात्यं । यथा केनचित्प्रतिज्ञातं मया नगरनिवासी न हंतव्यः तच्च उद्वसितं नगरं ततोनिर्विषयं प्रत्याख्यानं । एवमत्रापि त्रसानामभावान्निर्विषयत्वमिति ॥ १२ ॥

॥ टीका—पुनरप्यन्यथोदकः पूर्वपक्षमारचयितुमाह । (सवायंउदएइत्यादि) स वाचं सवादं वोदकः पेढालपुत्रोभगवंतं गौतममेवमवादीत् । तद्यथाऽयुष्मन् गौतम! नास्त्यसौ कश्चित्पर्यायोयस्मिन्नेकप्राणातिपातविरमणेपि श्रमणोपासकस्य विशिष्टविषयामेव प्राणातिपातनिवृत्तिं कुर्वतोदंभः प्राण्युपमर्दनरूपोनिक्षिप्तपूर्वः परित्यक्तपूर्वोभवति । इदमुक्तं भवति। श्रावकेण त्रसपर्यायमेकमुद्दिश्य प्राणातिपातविरतिव्रतं गृहीतं संसारिणां च परस्परगमनसंभवात्तेच त्रसाः सर्वेपि किल स्थावरत्वमुपगतास्ततश्च त्रसाभावान्निर्विषयं यत्प्रत्याख्यानमिति।एतदेव प्रश्नपूर्वकं संदर्शयितुमाह।(कस्सणंतंहेउमित्यादि) णमिति वाक्यालंकारे।कस्य हेतोरिदमभिधीयते केन हेतुनेत्यर्थः। सांसारिकाः प्राणाः परस्परसंसरणशीलायतस्ततः स्थावराः सामान्येन त्रसतया प्रत्यायांति त्रसाअपि स्थावरतया प्रत्या

याति । तदेवं संसारिणां परस्परगमनं प्रदर्श्याधुना यत्परेण विवक्षितं तदाविष्कुर्वन्नाह । (थावरकायाउइत्यादि) स्थावरकायाद्विप्रमुच्यमानाः स्वायुषा तत्सहचरितैश्च कर्मभिः सर्वे निरवशेषास्त्रसकाये समुत्पद्यंते ते त्रसकायादपि तदायुषा विप्रमुच्यमानाः सर्वे स्थावरकाये समुत्पद्यंते तेषांच त्रसानां सर्वेषां स्थावरकायसमुत्पन्नानां स्थानमेतद्घात्यं वर्तते तेन श्रावकेण स्थावरकायवधनिवृत्तेरकारणादतः सर्वस्य त्रसकायस्य स्थावरकायत्वेनोत्पत्तेर्निर्विषयं तस्य त्रसवधनिवृत्तिरूपं प्रत्याख्यानं प्राप्नोति । तद्यथा केनचिद्वृतमेवंभूतं गृहीतं यथा मया नगरनिवासी न हंतव्यस्तच्चोद्वसितं नगरमतोनिर्विषयं तत्तस्य प्रत्याख्यानमेवमत्रापि सर्वेषां त्रसानामभावान्निर्विषयत्वमिति ॥ १२ ॥

सवायं भगवं गोयमे उदयं पेढालपुत्तं एवं वयासी णो खलु आउसो अस्साकं वत्तवएणं तुम्हंचेव अणुप्पवादेणं अह्निणं से परियाए जेणं समणोवासगस्स सवपाणेहिं सवभूएहिं सवजीवेहिं सवसत्तेहिं दंमे निक्खित्ते भवइ कस्सणं तं हेउं सांसारिया खलु पाणा तसावि पाणा थावरत्ताए पच्चायंति थावरावि पाणा तसत्ताए पच्चायंति तसकायाउ विप्पमुच्चमाणा सवे थावरकायंसि उववज्जंति थावरकायाउ विप्पमुच्चमाणा सवे तसकायंसि उववज्जंति तेसिंचणं तसकायंसि उववन्नाणं ठाणमेयं अघत्तं ते पाणावि वुच्चंति ते तसावि वुच्चंति ते महाकाया ते चिरठिइया ते बहुयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवति ते अप्पयरागा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अपच्चक्खायं भवइ से महया तसकायाउ उवसंतस्स उवठियस्स पडिविरयस्स जन्नं तुम्हेवा अन्नोवा एवं वदह णत्थिणं से समणो केइ परियाए जं से समणोवासगस्स एगपाणा पविरएवि दंमे णिक्खित्ते अयंपि भेदे से णो णेयाउए भवइ ॥ १३ ॥

अर्थ—हवे एम कहे छते वादसहित भगवंत श्रीगौतम स्वामी, उदयपेढाल पुत्र प्रत्यें एम बोल्या के, निश्चें अहो आयुष्मन् उदक ! (अस्साकंवत्तवएणं के०) अमारी वक्तव्यतायें जे तुं वचन कहेछे, तेम थयुं पण नथी, अनें थशे पण नहीं, ते केमके, समस्त स्थावरजीव, त्रस पणें उपजे एम तमे कहोगे तो, जगत् मांहे त्रस जीवतो असंख्याताछे, अनें स्थावर अनंताछे तो, अनंता असंख्याता मांहे शी रीतें समाय? तथा वली

समस्त त्रस जीव पण स्थावर पणुं न पामे. केम के कोइ वारें पण त्रसशून्य संसार न थाय, तेमज स्थावरशून्य पण संसार न थाय, ए अमारो मतछे. हवे तमारो पक्ष तमारेज अभिप्रायें करी निराकरण करियें छैयें. ते सानलो. (तुप्नंचेवअणुप्पवादेणं के०) तमाराज केवा प्रमाणे (अछिणंसेपरियाए के०) ते पर्यायछे के जे पर्यायें करी श्रमणोपासकनें सर्व प्राण, सर्व भूत, सर्वजीव, सर्वसत्व, तेनो घात छंमायछे एटले त्याग थायछे केमके, तमारी वक्तव्यतायें जे वारें सर्व स्थावरजीव त्रसपणे उपना तेवारें सर्व प्राण विषे पच्चरकाण श्रावकनो थयो, ते कारण माटें श्रावक, त्रसनो घात न करे. ए विशेष सूत्रें करी देखाडेछे (कस्सणंतंहेउं के०) तेनो हेतु कयो? ते देखाडेछे निश्चें सांसारिक प्राणी, त्रस प्राणी पण स्थावर पणे उपजे, अनें स्थावर प्राणी त्रस पणे उपजे, त्रसकाय थकी मूकाता सर्व स्थावर पणे उपजे, अनें स्थावर कायथकी मूकाता सर्व त्रस पणे उपजे तेवारें (तेसिंचणंतसकायंसिउववन्नाणंठाणमेयंअघत्तं के०) जो स्थावरकाय पणुं त्यागीनें त्रस पणे उपजे, तेवारे श्रावकनें त्रसना स्थानक नणी अघत्त एटले विराधनानुं कांहिं कारण नथी, जे कारणें (तेपाणाविवुच्चंति के०) ते त्रसप्राण पण कहियें, अने तेने त्रस पण कहियें, ते महाकाय, ते चिरस्थितिक, ए अर्थ पूर्ववत् जाणवो. (तेबहुयरगापाणा के०) ते घणा त्रसप्राणीयो जेणें करी श्रमणोपासकनें रूडो पच्चरकाण थाय (तेअप्पयरागापाणा के०) ते प्राण, आहीं अल्प शब्द सर्वथा अनावने अर्थेंछे जे कारणे सर्व स्थावर फीटी त्रस थाय, तेवारें स्थावर जीवनो अनाव थयो. एम तमारी वक्तव्यतायेंज श्रावकने घणुं रूडुं पच्चरकाण थाय. अने जे तमे कहोछो के श्रावकने अपच्चरकाण थाय, ते तो उलटुं रूडुं पच्चरकाण थाय ते श्रावक महोटी त्रसकायना आरंनथी उपशम्या सावधान थया विशेषेंथी निवर्त्त्या, तेने रूडुं पच्चरकाण थाय (जन्नं के०) जे कारण माटें तमे अथवा बीजा (एवंवदह के०) एम कहे के जे एवुं कोइ पर्याय नथी, के जे पर्यायें श्रावकने प्राणातिपातनो पच्चरकाण थाय. ए तमारुं केहेवुं ते न्यायमार्गेनुं नथी ॥ १३ ॥

॥ दीपिका—अथ गौतमः प्राह सद्वाचं गौतम उदकमवादीत् । अस्माकमिति मगध देशे सर्वजनप्रसिद्धं संस्कृतमेवोच्चार्यते तथैवात्र पठितं । तदेवमस्माकं संबंधिना वक्तव्येन नैतदर्शनं किं तर्हि? युष्माकमेवानुप्रवादेन एतदर्शनमिति । अस्म द्वक्तव्येनास्य चोद्यस्यानुत्थानमेव । तथाहि । नैतद्भूतं न नवति नापिच नविष्यति यत्सर्वेपि स्थावरास्त्रसत्वं प्रतिपद्यंते स्थावराणामानंत्यात्त्रसानां वाऽसंख्येयत्वेन तदाधारत्वं न युक्तं । त्रसाअपि स्थावरत्वं न प्रतिपन्नानच प्रतिपद्यंते नापि प्रतिपत्स्यंते । नच कदाचित्त्रसशून्यः संसारः स्यादिति नवदाक्षेपोवृथैव । अस्त्ययं पर्यायोयच्छ्रमणोपासकस्य सर्वप्राणिनिस्त्रसत्वेन

भूतैरुत्पन्नैर्दंमोनिक्षिप्तोवधस्त्यक्तः । केन हेतुनेत्याह । सांसारियाइत्यादि पूर्ववत् । याव त्रसकाये उत्पन्नानां स्थानमेतदघात्यं स्यात् । तेच त्रसःप्राणाउच्यंते त्रसाअप्यु ंते । ते महाकायाश्चिरस्थितिकाः । ते त्रसाबहवोयैः श्राद्धस्य तु प्रत्याख्यातं भवति । भवदभिप्रायेण सर्वस्थावराणां त्रसत्वेनोत्पत्तेः । तेऽल्पतरकाः यैः श्राद्धस्याप्रत्याख्यानं भवति । अल्पशब्दोभाववाचकः । न संत्येव त्वदभिप्रायेण ते जीवाः येषु अप्रत्याख्यानमिति । एवं सेतस्य श्राद्धस्य महतस्त्रसकायाडुपशांतस्य विरतस्य सुप्रत्याख्यानं स्यादिति । एवंसति यूयं वदथान्योवा वदति यन्नास्त्यसौ पर्यायइत्यादि सुगमं यावन्नोणेयाउएभवइत्ति ॥ १३ ॥

॥ टीका–एवमुदकेनाभिहिते सति तदभ्युपगमेनैव गौतमस्वामी दूषयितुमाह । (सवायमित्यादि) सद्वाचं वादं वा तमुदकं पेढालपुत्रं गौतमस्वाम्येवमवादीत् । तद्यथा भो खल्वायुष्मन्नुदकास्माकमित्येतन्मगधदेशे आगोपालांगनादि प्रसिद्धं संस्कृतमेवोच्चार्यते तदिहापि तथैवोच्चारितमिति । तदेवमस्माकं संबंधिना वक्तव्येन नैतदशोभनं किं तर्हि युष्माकमेवानुप्रवादेनैतदशोभनं । इदमुक्तं भवत्यस्मद्वक्तव्येनास्य चोद्यस्यानुत्थानमेव । तथाहि । नैतद्भूतं न च भवति नापि कदाचिद्भविष्यति यडुत सर्वेपि स्थावरानिर्लेपतया त्रसत्वं प्रतिपद्यंते स्थावराणामानंत्यात्त्रसानां चासंख्येयत्वेन तदाधारत्वानुपपत्तेरित्यभिप्रायः । तथा त्रसाअपि सर्वे न स्थावरत्वं प्रतिपन्नान प्रतिपत्स्यंते । इदमुक्तं भवति । यद्यपि विवक्षितकालवर्तिनस्त्रसाः कालपर्यायेण स्थावरकायत्वेन यास्यंति तथा च परंपरापरत्रसोत्पत्त्या त्रसजात्यनुच्छेदान्न कदाचिदपि त्रसकायशून्यः संसारोभवतीति । तदेवमस्मन्मतेन चोद्यानुत्थानमेवाभ्युपगम्यच भवदीयं पक्षं युष्मदभ्युपगमेनैव परिह्रियते तदेव पराभिप्रायेण परिहरतस्तस्यासौ पर्यायः । सचायं भवदभिप्रायेण यदा सर्वेपि स्थावरास्त्रसत्वं प्रतिपद्यंते यस्मिन्पर्यायेऽवस्थाविशेषे श्रमणोपासकस्य कृतप्राणातिपातनिवृत्तेः सतः त्रसत्वेन च भवदभ्युपगमेन सर्वप्राणिनामुत्पत्तेः । तैश्च सर्वप्राणिभिस्त्रसत्वेन भूतैरुत्पन्नैः करणभूतैस्तेषु वा विषयभूतेषु दंमोनिक्षिप्तः परित्यक्तः । इदमुक्तं भवति । यदा सर्वेपि स्थावराः भवदभिप्रायेण त्रसत्वेनोत्पद्यंते तदा सर्वप्राणिविषयं प्रत्याख्यानं श्रमणोपासकस्य भवतीति । एतदेव प्रश्नपूर्वकं दर्शयितुमाह । (कस्सणंहेउमित्यादि) सुगमं । यावत्त्रसकाये समुत्पन्नानां स्थानमेतदघात्यमघातार्हं तत्र विरतिसद्भावादित्यभिप्रायः । तेच त्रसानारकतिर्यङ्नरामरभाजः सामान्यसंज्ञया प्राणिनोप्यभिधीयंते तथा विशेषसंज्ञया भयचलनोपेतत्वात्त्रसाअप्युच्यंते । तथा महान् कायः शरीरं येषां ते महाकायाः वैक्रियशरीरस्य योजनलक्षप्रमाणत्वादिति । तथा चिरस्थितिकायाः त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमपरिमाणत्वाद्भवस्थितेस्तथा ते प्राणिनस्त्रसाबहुतमाभूयिष्ठायैः श्रमणोपास

कस्य सुप्रत्याख्यानं भवति। त्रसानुद्दिश्य तेन प्रत्याख्यानस्य ग्रहणत्वादभ्युपगमेनच सर्वे स्थावराणां त्रसत्वेनोत्पत्तेरतस्तेऽल्पतरकाः प्राणिनोयैः कारणभूतैः श्रावकस्याप्रत्याख्यानं भवति । इदमुक्तं भवति । अल्पशब्दस्याभाववाचित्वान्न संत्येव ते येष्वप्रत्याख्यानमित्येवं पूर्वोक्तया नीत्या सेतस्य श्रमणोपासकस्य महतस्त्रसकायाडुपशांतस्योपरतस्य प्रतिविरतस्य सतः सुप्रत्याख्यानं भवतीति संबंधस्तदेवं व्यवस्थिते । णमिति वाक्यालंकारे । यद्यूयं वदथान्योवा कश्चित्तद्यथा नास्त्यसावित्यादि सुगमं यावस्रोणेयाउएभवइत्ति ॥ १३ ॥

भगवंचणं उदाहु नियंठा खलु पुच्छियवा आउसंतो नियंठा इह खलु संतेगइया मणुस्सा भवंति तेसिंचणं एवं वुत्तं पुवं भवइ जे इमे मुंडे भवित्ता आगाराउ आणगारियं पवइत्ता एएसिंचणं आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते जे इमे आगारमावसंति एएसिणं आमरणंताए दंडे णो णिक्खित्ते केइ तंचणं समणा जाव वासाइं चउपंचमाइं छद्दसमाइं अप्पयरोवा भुज्जयरोवा देसं दूईज्जित्ता आगारमावसेज्जा हंता वसेज्जा तस्सणं तं गारउं वहमाणस्स से पच्चक्खाणे भंगे भवइ णेतिणठे समठे एवमेव समणोवासगस्सवि तसेहिं पाणेहिं दंडे णिक्खित्ते थावरेहिं पाणेहिं दंडे णो णिक्खित्ते तस्सणं तं थावरकायं वहमाणस्स से पच्चक्खाणे णो भंगे भवइ से एवं मायाणह णियंठाए से एवं मायाणियवं ॥ १४ ॥

अर्थ—हवे श्रीगौतमस्वामिज स्थावर पर्यायें पहोता एवा त्रस जीवोनें विनाशवा थकी, व्रतभंग न थाय! एवा अर्थनी प्रसिद्धिनें अर्थें त्रण दृष्टांत देखाडेछे. (भगवंचणं उदाहु के०) भगवंत श्रीगौतमस्वामी पोतानुं उद्धत पणुं टालवा माटें बीजा स्थविरनें साक्षी करी बोलेछे, एटले पोतानी पासें कोइ एक स्थविर बेठाछे तेनें उद्देशी कहेछे के, अहो उदक! जे अर्थ हुं कहुं छुं तेना साक्षी (नियंठाखलुपुच्छियवा के०) निश्चें आ निर्ग्रंथोने पूछवुं. एम कही निर्ग्रंथ प्रत्यें कहेछे के, (आउसंतोनियंठा के०) अहो आयुष्मंत निर्ग्रंथो! जे हुं आगल कहीश, ते वचन तमारे मनमां मान्य थाय छे किंवा नथी थतुं? ते वचन हुं कहुंछुं, तमे सांभलो. (इहखलु के०) आ जगत् मांहे निश्चें (संतेगइयामणुस्साभवंति के०) कोइ एक मनुष्य शांतिप्रधान एवा होय, (तेसिंचणंएवंवुत्तंपुवंभवइ

के०) तेणें पोतानुं एवुं व्रतविशेष पूर्वें कह्युंछे, ते केवुं कह्युंछे ? ते कहेछे. (भवित्ता के०) जे तें हुं मुंम थइश. (आगाराओअणगारियंपवइत्ता के०) छांमीने अणगार पणुं प्रव्रजीश (एएसिंचणंआमरणंताएदंमेणिक्खित्ते के०) एने मरणांतिक एटले मरणांतसुधी में दंम छांमयो, एतावता ए प्रव्रजीतने एटले यतिपणाने मेलोने विणाशवो नही. (जेइमेआगारमावसंति के०) जे गृहस्थावास विषें वसतो ष, (एएसिणंआमरणंताएदंमेणोणिक्खित्ते के०) तेनुं मरणना अंतसुधी, दंम एटले हणवुं निषेध्युं नथी. एवुं तेनुं व्रत विशेषछे, (केइतंचणंसमणाजाववासाइंचजपंचमाइंछछदस माइं के०) तेवारें कोइ एक श्रमण, प्रवज्यी पर्याय पाली यावत् चार, पांच, छ, तथा दश वर्ष, इत्यादिक (अप्पयरोवाजुक्कियरोवा के०) अल्पकाल, अथवा घणा काल सुधी. (दे संदूइज्जित्ता के०) चारित्रनें विषे विचरी, तथाविध कर्मनें उदयें वली, (आगारमावसे ज्जा के०) गृहस्थावास सेवन करे, ए भाव संभवे किंवा न संभवे? तेवारें आगल बेठेला निर्ग्रंथी बोल्या के, (हंतावसेज्जा के०) हा, चारित्रिया थकी गृहस्थ थाय. जे कारण माटें कर्मनी गति विचित्रछे. हवे वली गौतम स्वामी कहेछे. (तस्सणंतंगारछंवहमाणस्स के०) हवे ते पुरुष के, जेनें चारित्रियापणे विनाशवानो नियमछे अनें गृहस्थपणे विनाश वानो नियम नथी, तेवारें ते चारित्रियो फीटी गृहस्थ थयो छे तेवानें विनाशता तेनुं, (सेपच्च क्खाणेभंगेभवइ के०) ते पच्चखाण भांजे, किंवा न भांजे ? ते कहो. तेवारें ते बोल्या. (णोतिणछेसमठे के०) ए अर्थ समर्थ न थाय, अर्थात् तेनुं व्रत न भांजे. (एवमे वसमणोवासगस्सवि के०) एणी परें श्रमणोपासकने पण (तसेहिंपाणेहिंदंमेणिक्खित्ते के०) त्रस प्राणिनें विषे घात करवानो नियमछे परंतु (थावरेहिंपाणेहिंदंमेणोणिक्खित्ते के०) अनें स्थावर प्राणिनें घात करवानो नियम नथी, ते कारण माटें जे त्रस फीटी नें स्थावर थयो, (तस्सणं के०) तेनो, (तंथावरकायं के०) ते स्थावरकायनी, (वहमा णस्स के०) विराधना करनार श्रावकनुं (सेपच्चखाणे के०) ते पच्चखाण (णोभंगे भवइ के०) भंग न थाय. (सेएवंमायाणह के०) तें एम जाणो (णियंठाए के०) अहो निर्ग्रंथो ! (सेएवंमायाणियवं के०) ते बीजुं पण एमज जाणवुं ॥ १४ ॥

॥ दीपिका—अथ त्रसानां स्थावरत्वं प्राप्तानां वधेपि न व्रतभंगः स्यादित्यत्र दृष्टांतत्रयमा ह। भगवान् । गौतमउदाह उक्तवान् निर्ग्रंथाः प्रष्टव्याः । निर्ग्रंथानां सर्वेषामप्येतत्संम तमिति ज्ञापनाय निर्ग्रंथप्रश्नः। किमुक्तवानित्याह । शांतिप्रधानाइह केचिन्मनुष्याः स्युस्ते षामेतडुक्तपूर्वं भवति । अयं व्रतग्रहणविशेषः स्यात् यइमे मुंमाभूत्वाऽगाराभ्निर्गत्यानगा रितां प्रतिपन्नाएषामुपरि मया मरणांतोदंमोनिक्षिप्तोवधस्त्यक्तः । कोर्थः ? केनापि यती

नाश्रित्य व्रतं गृहीतं। यथा यावज्जीवं मया यतयोन हंतव्याइति। येच इमेऽगारं गृहमा
वसंति तेषां दंमोन त्यक्तः। गृहस्थानां हिंसा न प्रत्याख्याताइत्यर्थः। तत्र केचिद्ब्रमणाः
कियंतमपि कालं प्रव्रज्यां प्रतिपाल्य। कालमानमाह। वासाइत्ति। वर्षाणि पंच च ष
ड्दशवा। अस्योपलक्षणादन्योपि कालविशेषोज्ञेयस्तमेवाह। अल्पतरं प्रनूततरं च
कालं। तथा देसंदूइज्ज विहृत्य कर्मोदयाद्गृहमावसेयुर्गृहस्थानवेयुः एवंनूतः पर्यायः
किं संनाव्यते उत नेति? पृष्टानिर्ग्रंथाः प्रत्यूचुः हंत गृहवासं व्रजेयुः। तस्य च यतिंवधगृ
हीतव्रतस्य तं गृहस्थं घ्नतः किं व्रतनंगोनवेत्? उतनेति ते आहुर्नेति। एवं श्राद्धस्य त्र
सवधनिवृत्तस्य स्थावरस्य प्राप्तं त्रसं घ्नतोन स्याद्व्रतनंगः॥ १४॥

॥ टीका—सांप्रतं त्रसानां स्थावरपर्यायापन्नानां व्यापादनेनापि न व्रतनंगोनवतीत्यर्थ
स्य प्रसिद्धये दृष्टांतमाह। (नगवंचणमित्यादि) णमिति वाक्यालंकारे। चशब्दः पुनःशब्दा
र्थे। पुनरपि नगवान् गौतमस्वाम्येवाह। स्वौद्धत्यपरिहरणार्थमपरानपि स्थविरान् साद्दि
णः कर्तुमिदमाह। ते निर्ग्रंथायुष्मत्स्थविराः खलु प्रष्टव्यास्तद्यथा आयुष्मंतोनिर्ग्रंथायु
ष्माकमप्येतद्वक्ष्यमाणमनिमतमाहोस्विन्नेत्यवष्टंनेन चेदमाह। युष्माकमप्येतदनिप्रेतं
यदहं वच्मि। तद्यथा। शांतिरुपशमस्तत्प्रधानाएके केचन मनुष्यानवंति न नारकतिर्यग्दे
वाः किं तर्हि मनुष्यास्तेपि नाकर्मनूमिजानापि म्लेछाअनार्यावा तेषां चार्यदेशोत्पन्ना
नामुपशमप्रधानानामेतदुक्तपूर्वं नवति अयं व्रतग्रहणविशेषोनवति। तद्यथा। यइमे मुंमा
नूत्वाऽगाराद्गृहान्निर्गत्यानगारतां प्रतिपन्नाः प्रव्रजिताइत्यर्थः। एतेषां चोपचर्यामरणांतं
मया दंमोनिक्षिप्तः परित्यक्तोनवति। इदमुक्तं नवति कश्चित्तथाविधोमनुष्योयतीनुद्दि
श्य व्रतं गृह्णाति तद्यथा न मया यावज्जीवं यतयोहंतव्यास्तथा ये चेमेऽगारं गृहवा
समावसंति तेषां दंमोनिक्षिप्तइत्येवं केषांचिद्व्रतग्रहणविशेषे सति व्यवस्थिते इदमपदि
श्यते तत्र केचन श्रमणाः प्रव्रजिताः कियंतमपि कालं प्रव्रज्यापर्यायं प्रतिपाल्य तमेव काल
विशेषं दर्शयति। यावद्वर्षाणि चत्वारि पंच वा षड् दश वास्य चोपलक्षणत्वादन्योपि काल
विशेषोद्रष्टव्यः। तमेवाह। अल्पतरं प्रनूततरं वा कालं तथा देशंच दूइज्जइत्ति। विहृत्य
कुतश्चित्कर्मोदयात्तथाविधपरिणतेरगारं गृहवासं वसेयुर्गृहस्थानवेयुरित्येवंनूतः पर्याय
किं संनाव्यते? उत नेत्येवं पृष्टानिर्ग्रंथाः प्रत्यूचुः हंत गृहवासं व्रजेयुस्तस्य च यतिवधगृहीत
स्य तं गृहस्थं व्यापादयतः किं व्रतनंगोनवेदुत नेति? आहुर्नेति। एवमेव श्रमणोपासक
स्यापि त्रसेषु दंमोनिक्षिप्तोन स्थावरेष्विति अतस्त्रसं स्थावरपर्यायापन्नं व्यापादयतस्तत्प्र
त्याख्याननंगोन नवतीति॥ १५॥

भगवंचणं उदाहु नियंठा खलु पुछियवा आउसंतो नियंठा इह खलु गाहावइ गहावइपुत्तोवा तहप्पगारेहिं कुलेहिं आगम्मा धम्मं सवणवत्तियं उवसंकमेज्जा हंता उवसंकमेज्जा तेसिंचणं तहप्पगाराणं धम्मं आइक्खियवे हंता आइक्खियवे किं ते तहप्पगारं धम्मं सोच्चा णिसम्म एवं वएज्जा इणमेव निग्गंथं पावयणं सच्चं अणुत्तरं केवलियं पडिपुण्णं संसुद्धं णेयाउयं सल्लकत्तणं सिद्धिमग्गं मुत्तिमग्गं निज्जाणमग्गं निवाणमग्गं अवितहमसंदिद्धं सवदुक्खपहीणमग्गं एत्थंठिया जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिवायंति सवदुक्खाणमंतं करेंति तं माणाए तहा गच्छामो तहा चिठामो तहा णिसियामो तहा सुयट्टामो तहा भुंजामो तहा भासामो तहा अप्भुठामो तहा उठाए उठेमोत्ति पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं संजमेणं संजमामोत्ति वएज्जा हंता वएज्जा किं ते तहप्पगारा कप्पंति पवावित्तए हंता कप्पंति किं ते तहप्पगारा कप्पंति मुंडावित्तए हंता कप्पंति किं ते तहप्पगारा कप्पंति सिक्खावित्तए हंता कप्पंति किं ते तहप्पगारा कप्पंति उवठावित्तए हंता कप्पंति तेसिंचणं तहप्पगाराणं सवपाणेहिं जाव सवसत्तेहिं दंडे णिक्खित्ते हंता णिक्खित्ते सेणं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणा जाव वासाइं चउपंचमाइं छठ्ठदसमाइंवा अप्पयरोवा भुज्जयरोवा देसं दूइज्जेत्ता आगारं वएज्जा हंता वएज्जा तस्सणं सवपाणेहिं जाव सवसत्तेहिं दंडे णो णिक्खित्ते से जे से जीवे जस्स परेणं सवपाणेहिं जाव सवसत्तेहिं दंडेणो णिक्खित्ते से जे से जीवे जस्स आरेणं सवपाणेहिं जाव सत्तेहिं दंडे णिक्खित्ते से जे से जीवे जस्स इयाणिं सवपाणेहिं जाव सत्तेहिं दंडे णो णिक्खिते भवइ परेणं असंजए आरेणं संजए इयाणिं असंजए असंजयस्स णं सवपाणेहिं जावसत्तेहिं दंडे णो णिक्खित्ते भवइ सएव मायाणह णियंठा से एव मायाणियवं ॥ १५ ॥

अर्थ—जगवंत श्रीगौतम स्वामी,वली बीजो दृष्टांत देखाडता बता बोल्या के,आ दृष्टां तमां निर्ग्रंथोनें निश्चें पूबवुं. अहो आयुष्यमंत निर्ग्रंथो ! आ जगतमांहे गृहपति,अथवा गृहपतिना पुत्र, ते तथाप्रकारनां रूडा कुलनें विषे (आगम्मा के०) आवीनें (धम्मंस्स वणवत्तियं के०) धर्म सांजलवानें (उवसंकमेज्जा के०) उद्यम करे ? एवुं पुबयुं ते वारें निर्ग्रंथ बोल्या, (हंताउवसंकमेज्जा के०) हा रूडा कुलना उपना होय, ते धर्मने विषे उद्यम करे. तेवारें फरी श्रीगौतमस्वामी बोल्या (तेसिंचणंतहप्पगाराणंधम्मंआइरिक यव्वे के०) तेवा गृहस्थने तथा प्रकारनो धर्म कहेवो ? तेवारें निर्ग्रंथ बोल्या (हंताआइरिक यव्वे के०) हा ते ग्रहस्थने धर्म कहेवो. फरी श्री गौतमस्वामी बोल्या के, (किंतेतहप्पगारंध म्मंसोच्चा के०) केम के ते गृहस्थ, तेवा तथा प्रकारनो धर्म सांजलीनें (णिसम्म के०) हृदयनें विषे अवधारीनें (एवंवएज्जा के०) एवुं वचन बोले. शुं बोले ? तोके (इणमेव निग्गंथंपावयणंसच्चं के०) ए तीर्थंकरजाषित निर्ग्रंथनुं प्रवचन, ते सत्यबे. समस्त जी वनें हितकारीबे, अनुत्तर अन्यशास्त्रमां प्रधान, केवलिजाषित, उत्तम मनोहर एवो बी जो कोइ मार्ग नथी. (पडिपुण्णंसंसुद्धंणेयाउयं के०) मोक्षमार्गना गुणे करी प्र तिपूर्ण, संशुद्ध एटले अत्यंत शुद्ध मोक्षार्थीजीवनें न्यायसंपन्न (सल्लकत्तणं के०) स म्यक्प्रकारें मायादिक शल्यनो कापनार सिद्धिनो मार्ग, मुक्तिनो मार्ग, एटले निर्लोन्न पणानो मार्ग, निर्वाण एटले सिद्धनो मार्ग, अर्थात् समस्तकर्मक्षय करवानो मार्ग, ते निर्वाणमार्ग (अवितहं के०) अवितथ्य सत्य, (असंदिद्धं के०) असंदिग्ध एटले सं देह रहित मार्ग, सर्वडुःख प्रक्षीण करवानो मार्ग, (एबंठियाजीवा के०) ए मार्गनें विषे स्थित एटले रहेला जीव, सीज्ऊंति एटले कार्य सिद्धि करे, लोकालोकनुं स्वरूप बूजे, सर्वडुःखथकी मूकाय, (परिणिव्वायंति के०) कर्म रूपदावानलनें उपशमाववे करी, शीतलीनूत थाय, एटले सर्व समाधि पामे, सर्व डुःखनो अंत करे, ए मार्गनें अमे पण आदरीनें (तंमाणाए के०) तमारी आज्ञायें (तहागच्छामो के०) तेम चालियें (त हाचिट्ठामो के०) तेम जनारहियें (तहाणिसियामो के०) तेम बेशियें (तहासुयट्टामो के०) तेम सुयें, एटले निद्रा करियें, (तहाभुंजामो के०) तेम जमियें (तहाजासा मो के०) तेम बोलियें (तहाअब्जुट्ठामो के०) तेम सावधान पणे प्रवर्त्तियें (तहाउ ट्ठाए के०) तेम उठवे करी उठियें (उट्ठेमोत्ति के०) उठीनें जेम सर्व प्राण, जूत, जीव, सत्व, तेनी विराधना न थाय (संजमेणं के०) एवा आचारें करी, (संजमामो त्तिवएज्जा के०) संयम पालि ते गृहपति एम कहे. ए प्रकारें गौतम प्रजुयें कह्युं, तेवारें निर्ग्रंथ बोल्या. (हंतावएज्जा के०) हा ते गृहस्थ,जेम तमे बोल्या, तेमज कहे. वली गौत म स्वामी कहेबे. (किंतेतहप्पगाराकप्पंतिपव्वावित्तए के०) केम ते गृहीने तथा प्रकारनुं

प्रव्रज्या व्रत कल्पे, एटले दीक्षा आपवी कल्पे ? तेवारें निर्ग्रंथ बोल्या (हंताकप्पंति के०) हा कल्पे. तेवारें श्री गौतम बोल्या. केम तेवा गृहीनें मुंम करवा कल्पे ? निर्ग्रंथ बोल्याके, हा कल्पे. गौतम बोल्या तेवा गृहीनें शीखाववुं कल्पे ? निर्ग्रंथ बोल्या हा कल्पे. तेवा गृहीनें धर्मने विषे उगाववो कल्पे ? निर्ग्रंथ बोल्या के, हा कल्पे. तेवा गृहीनें चारित्र लीधा अनंतर सर्वप्राण, नूत, जीव, सत्व, तेनें विषे घात करवानो त्याग एटले बांमवा पणुं कल्पे ? तेवारें निर्ग्रंथ बोल्या के,हा कल्पे. (सेणं के०) ते, ण ए वे वाक्यालंकारें एतडूपेण एटले एवे विहारें विचरता यावत् चार, तथा पांच, ब, तथा दश वर्ष, अथवा अल्पकाल, अथवा घणा काल पर्यंत देशमांहे, अथवा संयममांहे विचरी तथाविध चारित्रावरणीय कर्मने उदयें वली गृहवास सेवे ? तेवारें निर्ग्रंथ बोल्या हा सेवे. जे कारण माटें कर्मनी गति वैचित्र्यबे तेथी जेणें चारित्र मूकीने गृहवास आदस्योबे तेनें सर्वप्राण, नूत, जीव, अनें सत्वनें विषे घात मूकाणो ? अर्थात् नहीं मूकाणो, तो हवे जुउ के (सेजेसेजीवे के०) ते जीव, जे प्रथम गृहस्थ हतो. तेवार पबी ते जीव चारित्रियो थयो. तेवारें पण तेज जीव हतो,तेवार पबी वली गृहस्थ थयो तेवारें पण तेहिज जीव बे.(जस्सपरेणं के०) जेने प्रथम, सर्व प्राण,नूत,जीव,सत्वना वधनो दंम नथी बंमाणो तेज जीव,अनें जेनें आरेण एटले वच्चें बंमाणो अने जेने इयाणिं एटले हमणा वर्त्तमानें वली नथी बंमाणो,ए रीतें तेनी त्रण अवस्था थइ.प्रथम असंयत हतो,वच्चें संयत थयो, तेवार पबी वली असंयत थयो तेवारे तेने सर्व प्राण, यावत् सर्व सत्वना वधनो दंम, बंमाणो न होय, ए जीव कांइ सर्वकाल असंयत न कहेवाय! परंतु जेवारें जेवो होय. तेवारें तेवो कहेवाय. तो अहो निर्ग्रंथो त्रस! अने स्थावरने विषे पण एम जाणवुं माटें जेवारें त्रस तेवारें त्रस, अनें जेवारें स्थावर. तेवारे स्थावर. ए बीजो दृष्टांत कह्यो ते एम जाणें अने बिजु पण एप्रमाणे मानवुं ॥ १५ ॥

॥ दीपिका—अथ द्वितीयदृष्टांतं प्रत्याख्यातृविषयगतं दर्शयन्नाह । नगवान् गौतमः प्राह । निर्ग्रंथाः प्रष्टव्याः इह खलु गृहपतिर्वा गृहपतिपुत्रोवा तथाप्रकारेषु श्रेष्ठकुलेषु उत्पद्य धर्मश्रवणार्थमागच्छेयुः तेषां धर्मआख्यातव्यइति पृष्टे श्रमणाआहुः । हंत आख्यातव्यः किं ते तथाप्रकारं शुद्धं धर्मं श्रुत्वा एवं वदेयुः । इदमेव निर्ग्रंथसंबंधि प्रवचनं सत्यं यावत् सर्वदुःखप्रहीणमार्गं इच्छंति । अत्र स्थिताजीवाः सिध्यंति । यावत्सर्वदुःखानामंतं कुर्वंति तदाज्ञया तथा गच्छामः तथा वेष्टामहे यावत् तथा उच्छया प्रयत्नेन प्राणिनां संयमेन हिंसानिवृत्त्या संयमामोसंयमं कुर्मोयथा जिनाज्ञा एवं ते वदेयुः इति पृष्टे श्रमणाआहुः हंत वदेयुः । पुनः श्रमणान् पृच्छति । किं ते तादृशायोग्याः कल्पंते प्रव्राजयितुं । श्रमणाआहुर्हंत कल्पंते इत्यादि । तेसिंचणं तैस्तथाविधैः सर्वजीवेभ्योदंमस्त्य

क्तः एवंविधास्ते विहरंतोवर्षाणि चत्वारि पंच वा षट् दश वा अल्पतरं बहुतरं वा कालं देशग्रामादावुद्यतविहारेण विहृत्य पश्चात्पतितपरिणामाः संतोगारं व्रजेयुर्गृहस्थान्नवेयुरि त्यर्थः। निर्ग्रंथाः प्रष्टोत्तरमाहुः। हंत व्रजेयुः तेषां सर्वप्राणिन्योदंमोनो निक्षिप्तः। तेषा मवस्थात्रयमाह। पूर्वं गृहस्थत्वे सर्वजंतुवधोन त्यक्तः अथ यः ससाधुत्वे सर्वजंतुवध स्तेन त्यक्तः। पुनः साधुत्वं मुक्त्वेदानीं गृहस्थे जाते सर्वजंतुवधोन त्यक्तः। पूर्वमसंयतः१ आरतः संयतः२ इदानीमसंयतः३ असंयतस्य सर्वजंतुवधोन त्यक्तः। तदेवं जानीत निर्ग्रं थास्तदेवमाज्ञातव्यं। एवं यथावस्थात्रयेप्यन्यथात्वं स्यादेवं त्रसस्थावरयोरपि ज्ञेयं॥१५॥

॥ टीका—सांप्रतं पुनरपि पर्यायापन्नस्यान्यथात्वं दर्शयितुं द्वितीयं दृष्टांतं प्रत्याख्यातृ विषयगतं दर्शयितुमाह (नगवंचणमित्यादि) नगवानेव गौतमस्वाम्याह। तद्यथा गृह स्थाः यतीनामंतिके समागत्य धर्मं श्रुत्वा सम्यक्त्वं प्रतिपद्य तदुत्तरकालं संजातवैराग्याः प्रव्रज्यां गृहीत्वा पुनस्तथाविधकर्मोदयात्तामेव त्यजंति तेच पूर्वं गृहस्थाः सर्वारंनप्रवृत्ता स्तदा रताः प्रव्रजिताः संतोजीवोपमर्दपरित्यक्तदंमाः पुनः प्रव्रज्यापरित्यागे सति नो परित्य क्तदंमाः। तदेवं तेषां प्रत्याख्यातॄणां यथावस्थात्रयेप्यन्यथात्वं नवत्येवं त्रसस्थावरयोर पि इष्टव्यमेतच्च नगवंचणमुदाहुरित्यादेर्ग्रंथस्य सेएवमायाणियव्वं इत्येतत्पर्यवसानस्य तात्पर्यं। अक्षरघटना तु सुगमेति स्वबुध्या कार्या॥ १५॥

नगवंचणं उदाहु णियंठा खलु पुछियव्वा आउसंतो नियंठा इह ख लु परिवाइयवा परिवाइआउवा अन्नयरेहिंतो तित्थायतणेहिंतो आगम्मधम्मं सवणवत्तियं उवसंकमेज्जा हंताउवसंकमेज्जा किं ते सिं तहप्पगारेणं धम्मे आइक्खियव्वे हंता आइक्खियव्वे तंचेव उवठा वित्तिए जाव कप्पंति हंता कप्पंति किं ते तहप्पगारा कप्पंति संनुंजि त्तए हंता कप्पंति तत्तेणं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणा तंचेव जा व आगारं वएज्जा हंता वएज्जा तेणं तहप्पगारा कप्पंति संनुंजित्तए णो इणठे समठे से जे से जीवे जे परेणं तो कप्पंति संनुंजित्तए से जे से जीवे आरेणं कप्पंति संनुंजित्तए से जे से जीवे जे इयाणीं णो कप्पंति संनुंजित्तए परेणं अस्समणे आरेणं समणे इयाणिं अस्स मणे अस्समणेणं सिद्धिं णो कप्पंति संमणेणं निग्गंथाणं संनुंजि त्तए से एव मायाणह णियंठा सेएव मायाणियव्वं॥ १६॥

अर्थ—हवे नगवंत श्री गौतमस्वामी त्रीजो दृष्टांत कहेछे के, आ दृष्टांतनें विषे पण, निश्चें निर्ग्रंथोनें पूछवुं. ए कारण माटें निर्ग्रंथ उद्देशीनें पूछे छे के, अहो आयुष्यमंत निर्ग्रंथो! निश्चें आ जगत् मांहे परिव्राजक संन्यासी, परिव्राजिका संन्यासिणी, तथा (अन्नयरेहिंतोतित्थायतणेहिंतो के०) अन्य तीर्थायतनथकी आवीनें (आगम्मधम्मंसवणवत्तियं के०) आगम धर्म सांजलवानें साधु पासें आवी ते(उवसंकमेज्जा के०) उद्यम करे ?, (हंताउवसंकमेज्जा के०) हा आवीने उद्यम करे, तो केम तथाप्रकारना परिव्राजक, तथा परिव्राजिकाने धर्म कहेवो ? हा धर्म कहेवो. (तंचेवउवठ्ठावित्तिए के०) तेम कहेवो के, ज्यांसुधि तेनें उठ्ठाववुं कल्पे. ? हा, कल्पे. ते वली परिव्राजक थका चारित्रिया थयाछे, तेनें मंमलें बेसाडवा कल्पे? हा, बेसाडवा कल्पे. तथा आहार पाणी लेवो कल्पे ? हा, कल्पे. एवा विहारें विचरता ते वली ज्यां सुधी तथाविधकर्मनें उदयें करी गृहस्थावास सेवे ? हा, सेवे. तेवारें तेनें तथाप्रकारें आहारपाणी करवा, मंमलीमां बेसाडवा कल्पे? तेवारें निर्ग्रंथबोल्या, के, (णोइणट्ठेसमट्ठे के०) ए अर्थ समर्थ नथी. एतावता तेनें मंमलीमां बेसाडवुं न कल्पे. तो हवे जुउ ! के तेनो तेज जीव, तेनी सार्थे प्रथम आहार पाणी करवो न कल्पे, वच्चें वली आहारपाणी करवो कल्पे, अनें वली ते[illegible] जीव सार्थे हमणां आहार पाणी करवो न कल्पे. एम तेनी त्रण अवस्था थइ. [illegible] अश्रमण, पछी वच्चें श्रमण, नें हमणां वली अश्रमण. ते अश्रमणपणायें सहित एवा ते श्रमण निर्ग्रंथनें मंमलीमां पोतानी सार्थे बेसारी जमाडवो न कल्पे. अहो निर्ग्रंथो ! ए दृष्टांतनी पेठें त्रस स्थावरनें विषे पण जाणवुं. जेवारें त्रस तेवारें त्रसज, अनें जेवारें स्थावर, तेवारें स्थावरज, जाणवा. ए रीतें मानो, अनें एवी रीतें जाणवुं. एप्रमाणे निर्ग्रंथनी साक्षियें शविरति प्रमाण करी ॥ १६ ॥

॥ दीपिका—अथ तृतीयं दृष्टांतं परतीर्थिकानुद्दिश्याह । सुगमार्थमिदं सूत्रं । तात्पर्यार्थस्त्वयं पूर्वं परिव्राजकादयः संतोऽसंनोग्याः साधूनां गृहीतश्रामण्याश्च साधूनां संनोग्याः पुनः श्रामण्यत्यागेऽसंनोग्याः एवं पर्यायान्यथात्वं त्रसस्थावराणामपि योज्यं ॥ १६ ॥

॥ टीका—तदेवं द्वितीयं दृष्टांतं प्रदर्श्याधुना तृतीयं दृष्टांतं परतीर्थिकोद्देशेन दर्शयितुमाह । (नगवंचणमुदाहुरित्यादि जावसेएवमायाणियव्वंत्ति) उत्तानार्थं । तात्पर्यार्थस्त्वयं पूर्वं परिव्राजकादयः संतोऽसंनोग्याः साधूनां गृहीतश्रामण्याच्च साधूनां संनोग्याः संवृत्ताः पुनस्तदन्नावे त्वसंनोग्याइत्येव पर्यायाऽन्यथात्वं त्रसस्थावराणामप्यायोजनीयमिति॥ १६॥

नगवंचणं उदाहु संतेगइया समणोवासगा नवंति तेसिंचणं एवं वुत्तं पुव्वं नवइ णो खलु वयं संचाएमो मुंमा नवित्ता आ

गाराउ अणगारियं पवइत्ताए वयं णं चाउद्दसठमुद्दिठपुसि मासिणीसु पडिपुन्नं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणा विहरि स्सामो थूलगं पाणाइवायं पच्चक्खाइस्सामो एवं थूलगं मुसा वायं थूलगं अदिन्नादाणं थूलगं मेहुणं थूलगं परिग्गहं प च्चक्खाइस्सामो इच्चापरिमाणं करिस्सामो डुविहं तिविहेणं मा खलु मम घाए किंचि करेहवा करावेहवा तब विपच्चक्खाइस्सा मो ते णं अन्नोच्चा अपिच्चा असिणाइत्ता आसंदीपेढियाउ प च्चारुहित्ता ते तहा कालगया किं वत्तवंसिया सम्मं कालग तावि वत्तवंसिया ते पाणावि वुच्चंति ते तसावि वुच्चंति ते महा काया ते चिरहिइया ते बहुतरगा पाणा जेहिं समणोवासग स्स सुपच्चक्खायं नवइ ते अप्पयरागा पाणा जेहिं समणोवास गस्स अपच्चक्खायं नवइ इति से महयाउ जन्नं तुप्ने वयह तं चेव जाव अयंपि नेदे से णो णेयाउए नवइ ॥ १७ ॥

अर्थ—वली उदक प्रत्यें नगवंत श्री गौतमस्वामी बोल्या के, निश्चें आ जगत् मां हे कोइ एक श्रमणोपासक होय, तेणे एवुं व्रत विशेष पूर्वे उच्चार कर्युं होय के, निश्चें अमे मुंम थई गृहस्थावास थकी, अणगार पणुं आदरी शकवाने समर्थ नथी तेथी, अमें चतुर्दशी, अष्टमी, चोमासानी त्रण पूर्णिमा, तथा उद्दिष्टतिथि ते महा कल्याणिक तिथि, एटले दिवसें प्रतिपूर्ण सम्यक् प्रकारें पौषध पालता विचरिशुं, तथा वली स्थूल प्राणातिपात पच्चखीशुं. एणी पेरें स्थूल मृषावाद, स्थूल अदत्तान, स्थूल मैथुन, स्थूल परिग्रह, पच्चखीशुं. इच्चा प्रमाणे करीशुं, “डुविहंतिविहेणं” इत्यादिक नांगायें करी पच्चखीशुं. (मारवलुममघाए के०) निश्चें महारे अर्थे पौषध मांहे कांहिं पचन पाचनादिक म करवुं. बीजा पासें म करावबुं, त्यां पण एवुं पूर्वोक्त अमें पच्चखाण करीशुं (तेणं के०) ते एवा व्रतना उच्चार करनार श्रावक, (अन्नोच्चा के०) अणजम्या, (अपिच्चा के०) पाणी पीधा विनाना, (असिणाइत्ता के०) अने स्नान कर्या विना, पोसहव्रत करे. पोसहव्रतमां एटला वानां न करे. (आसंदी के०) मंचक, (पेढियाउ के०) पीढी, मांची इत्यादिक, ते थकी (पच्चारुहित्ता के०) उत्तरीनें सम्यक् प्रकारें पौषध लीये. (तेतहाकालगयाकिंवत्तवंसिया

के०) तेणें तथा प्रकारे काल कीधो, तो तेनें केवा कहियें, ते रूडी पेरें मरण पाम्या कहियें किंवा नहीं? तेवारें निर्ग्रंथ बोल्या के, (सम्मंकालगयाविवत्तवंसिया के०) ते सम्यक् प्रकारें रूडी रीतें कालगत थया एम कहियें, तेवारें श्रीगौतम बोल्या के, ए रीतें जेणें काल कीधो, तेनें अवश्य देवलोकनें विषे उत्पत्ति जाणीयें बैयें केमके, रूडे परिणामें जे मरण पामे ते देव थाय. (तेपाणाविवुच्चंति के०) त्यां थका तेने प्राण पण कहियें, (तेतसाविवुच्चंति के०) तेने त्रस पण कहियें, ते महाकाय कहीयें, तेनें चिरस्थितिक कहियें, तो ए कारणे (तेबहुतरगापाणा के०) ते घणा जीव के, (जेहिंसमणोवासगस्ससुपच्चखायंनवइ के०) जेने विषे श्रावकने रूडुं पच्चरकाण होय. अने ते थोडा जीव, के जेने विषे श्रावकनें पच्चरकाण नथी. एम ते श्रावकनें महोटी त्रसकाय थकी उपशमछे ते पच्चखाण राखवानो उद्यमछे तेने विराधवानी विरतिछे. एवा श्रावकनें तमे कहोछो के, एवो कोइ पर्याय नथी के, जेणें करी श्रावकनें एक पण प्राणातिपातनुं पच्चरकाण थाय! ते तमारुं वचन न्यायमार्गेनुं नथी ॥ १७ ॥

॥ दीपिका—एवं दृष्टांतत्रयेण निर्दोषां देशविरतिं प्रसाध्य पुनरपि तज्जतमेव विचारमाह । भगवान् गौतमउदकं प्रत्याह । शांतिप्रधानाएके श्रमणोपासकाभवंति तेषां च इदमुक्तपूर्वं भवति । यथा न खलु वयं शक्नुमः प्रव्रज्यां ग्रहीतुं किंतु? वयं चतुर्दश्यष्टम्यादिषु तिथिषु संपूर्णं पौषधं सम्यगनुपालयंतोविहरिष्यामः तथा स्थूलप्राणातिपातमृषावादादत्तादानमैथुनपरिग्रहं प्रत्याख्यास्यामः। द्विविधं कृतकारितभेदात् श्राद्धस्यानुमतेरनिषिद्धत्वात्त्रिविधं मनोवचनकायैः मा निषेधे पौषधस्थस्य मम कृते किंचित्पचनपाचनादिकं मा कार्ष्ट परेण मा कारयत सर्वथाऽसंभविनोवस्तुनोऽनुमतेरपि निषेधः तत्रापि प्रत्याख्यास्यामः ते श्रावकाअभुक्त्वाऽपीत्वाऽस्नात्वा च पौषधयुतत्वादासंदीपीठिकातः प्रत्यारुह्याऽवतीर्य सम्यक् पौषधं कृत्वा कालं कृतवंतः ते किं सम्यक्कृतकालाउतासम्यक्? एवं पृष्टैर्निर्ग्रंथैरवश्यमेवं वक्तव्यं ते सम्यक्कालगता । एवं कालगतानामवश्यंभावी देवलोकोत्पादः तत्रोत्पन्नाश्च ते त्रसाएव ततश्च कथं निर्विषयता प्रत्याख्यानस्येति ॥ १७ ॥

॥ टीका—तदेवं दृष्टांते प्रत्याख्यातृविषयगतोगृहस्थयतिपुनर्गृहस्थभेदेन पर्यायभेदः प्रदर्शितः। तृतीयेतु दृष्टांते परतीर्थिकसाधुभावोनिष्क्रमणभेदेन संभोग द्वारेण पर्यायभेद व्यवस्थापितइति । तदेवं दृष्टांतप्राचुर्येण निर्दोषां देशविरतिं प्रसाध्य पुनरपि तज्जतमेव विचारं कर्तुकामआह । (भगवंचणमुदाहुरित्यादि) पुनरपि गौतमस्वाम्युदकं प्रतीदमाह । तद्यथा बहुभिः प्रकारैस्त्रससद्भावः संभाव्यते ततश्चाशून्यस्तैः संसारस्तदशून्यत्वे

तन्निर्विषयं श्रावकस्य त्रसवधनिवृत्तिरूपप्रत्याख्यानं । तदधुना बहुप्रकारत्रससंभूत्याऽशून्य तां संसारस्य दर्शयति । भगवानाह । संति विद्यंते शांतिप्रधानावा एके केचन श्रमणो पासकाभवंति तेषां चेदमुक्तपूर्वं भवति संभाव्यते च श्रावकाणामेवंभूतस्य वचसः संभव इति । तद्यथा । न खलु वयं शक्नुमः प्रव्रज्यां ग्रहीतुं किंतु ? वयं । एमिति वाक्यालंकारे । चतुर्दश्यष्टमीपौर्णमासीषु संपूर्णं पौषधमाहारशरीरसत्कारब्रह्मचर्याव्यापाररूपं पौषधं सम्यगनुपालयंतोविहरिष्यामः तथा स्थूलप्राणातिपातमृषावादादत्तादानमैथुनपरिग्र हं प्रत्याख्यास्यामोद्विविधमिति कृतकारितप्रकारद्वयेनानुमतेः श्रावकस्याप्रतिषिद्धत्वात्तथा त्रिविधेनेति मनसा वाचा कायेन च तथा मा इति निषेधे खलु इति वाक्यालंकारे मदर्थं पचनपाचनादिकं पौषधस्य मम कृते मा कार्ष्ट तथा परेण मा कारयत तत्राप्यनुमतावपि सर्वथा यदसंभवति तत्प्रत्याख्यास्यामः ते एवंभूतकृतप्रतिज्ञाः संतः श्रावकाः अभुक्त्वाऽ पीत्वाऽस्नात्वा च पौषधोपेतत्वादासंदीपीठिकातः प्रत्यारुह्यावतीर्य सम्यक् पौषधं गृही त्वा कालं कृतवंतस्ते तथाप्रकारेण कृतकालाः संतः किं सम्यक्कृतकालाउतासम्यगिति ? कथं वक्तव्यं स्यादित्येवं पृष्टैर्निर्ग्रंथैरवश्यमेवं वक्तव्यं स्यात् सम्यक्कालगताइत्येवं कालग तानामवश्यंभावी तेषां देवलोकेषूत्पादस्तदुत्पन्नश्च त्रसएव ततश्च कथं निर्विषयता प्रत्याख्यानस्योपासकस्येति ॥ १७ ॥

भगवंचणं उदाहु संतेगइया समणोवासगा भवंति तेसिंचणं ए वं वुत्तं पुव्वं भवइ णो खलु वयं संचाएमो मुंमा भवित्ता आगा राउ जाव पवइत्तए णो खलु वयं संचाएमो चाउद्दसट्ठमुदिट्ठपुण्ण मासिणीसु जाव अणुपालेमाणा विहरित्तए वयं णं अपच्छिम मारणंतियं संलेहणा जूसणा जूसिए भत्तपाणं पडियाइक्खिया जाव कालं अणवकंखमाणा विहरिस्सामो सव्वं पाणाइवायं पच्च क्खाइस्सामो जाव सव्वं परिग्गहं पच्चक्खाइस्सामो तिविहं तिविहे णं मा खलु ममट्ठाए किंचिवि जाव आसंदीपेढियाउ पच्चारुहित्ता एते तहा कालगयाइ किं वत्तव्वंसिया सम्मं कालगयाइ वत्तव्वं सिया ते पाणावि वुच्चंति जाव अयंपि भेदे से णो णेयाउए भवइ ॥ १८ ॥

अर्थ—वली गौतम स्वामी कहेछे. कोइ एक श्रमणोपासक एवा होय, तेणे एवुं पूर्वे व्रत उच्चारतां वचन कह्युं होय के, निश्चे अमे मुंम थइने गृहस्थावास थका यावत् अ

एगार पणुं आदरी शकवाने समर्थ नथी. चतुर्दशी, अष्टमी, त्रण चोमासानी पू र्णिमा, तथा महाकल्याणिक तिथिने विषे पौषध लइ न शकियें अमारे छेल्ले काले मर णने अंते शरीर पातलुं पाडवा संलेषणाने विषे जूसणा एटले आत्मा स्थापवो, स्था पीने ज्ञात, एटले अन्न पाणी निषेधिने यावत् मरणकाल अण वांछता मरणा निलाषा अ ण करता विचरीशुं यावत् सर्व प्राणातिपात, सर्व मृषावाद, सर्व अदत्तादान, सर्व मैथुन, सर्व परिग्रह, त्रिविध त्रिविध प्रकारें पच्चरकीशुं, तथा अमारे अर्थें कांइ पण पचन पाचनादिक म करो,म करावो,एवुं पण पच्चरकाण करीशुं. ते श्रावको ए रीतें अण जमते,पाणी अणपी ते, स्नानादिक अण करते, मंचक, मांची इत्यादिक थकी उतरीने ते प्रकारें काल करे. तो तेने केवा कहियें, रूडा मरणना करनार कहियें के, माठा मरणना करनार कहियें? ते वारें निर्ग्रंथ बोल्या, ते रुडी पेरें कालगत थया कहेवाय, तेपाणाविवुच्चंति इत्यादिक शब्दोनो अर्थ, पूर्ववत् जाणवो. यावत् तमारुं एवुं बोलवुं, ते न्याय मार्गेनुं नथी. त्यां सुधी जाणवुं. ॥ १७ ॥

॥ दीपिका–पुनः श्राद्धोद्देशेन प्रत्याख्यानविषयं दर्शयति । गौतमः प्राह । संति वि द्यंते एके केचन श्रमणोपासकास्तेषामेतडुक्तपूर्वं नवति । यथा न शक्नुमोवयं प्रव्रज्यां ग्रहीतुं नापि चतुर्दश्यादिषु सम्यक् पौषधं पालयितुं वयं चापश्चिमया संलेखनक्षपणया क्षपितकायाः । यद्दिवा संलेखनाजोषणया सेवनया जोषिताः सेविताउत्तमार्थगुणैरेवं नूताः संतोजक्तपानं प्रत्याख्याय कालं दीर्घकालमनवकांक्षमाणाविहरिष्यामः । कोर्थः ? न खलु वयं दीर्घकालं व्रतं पालयितुं समर्थाः किंतु वयं सर्वमपि प्राणातिपातादिकं प्र त्याख्याय संलेखनया संलिखितकायाश्चतुर्विधाहारत्यागेन जीवितं त्यक्तुं समर्थाः । इति सूत्रेणैवाह.। (सव्वंपाणाइवायमित्यादि) यावत्ते तथा कालगताः किं वक्तव्यमेतत्स्यात् सम्यक् ते कालगताइति पृष्ठानिर्ग्रंथाआहुर्यथा ते सन्मनसः शोजनचित्ताः कालगता इति । ते कालं कृत्वा सुरलोकेषूत्पद्यंते तत्र चोत्पन्नायद्यपि हंतुं न शक्यंते तथापि त्रस त्वात्ते श्राद्धस्य त्रसवधनिवृत्तिप्रत्याख्यानस्य विषयाः स्युः ॥ १७ ॥

॥ टीका–पुनरन्यथा श्रावकोद्देशेनैव प्रत्याख्यानस्य विषयं प्रदर्शयितुमाह । (नगवं चणमित्यादि) गौतमस्वाम्येवाह । तद्यथा संति विद्यंते एके केचन श्रमणोपासकास्तेषां चैतडुक्तपूर्वं नवति । तद्यथा । खलु न शक्नुमोवयं प्रव्रज्यां ग्रहीतुं नापि चतुर्दश्यादिषु स म्यक् पौषधं पालयितुं वयं चापश्चिमया संलेखनक्षपणया क्षपितकाययदिवा संलेखना जोषणया सेवनया जोषिताः सेविताउत्तमार्थगुणैरित्येवंनूताः संतोजक्तपानं प्रत्याख्या

थ कालं दीर्घमनवकांक्षमाणा विहरिष्यामः । इदमुक्तं नवति । न वयं दीर्घकालं पौषधादिकं व्रतं पालयितुं समर्थाः किंतु? वयं सर्वमपि प्राणाति पातादिकं प्रत्याख्याय संलेखनया संलिखितकायाश्चतुर्विधाहारपरित्यागेन जीवितं परित्य क्ष्यामिति । एतत्सूत्रेणैव दर्शयति (सवपाणाइवायमित्यादि) सुगमं । यावत्ते तथा कालगताः किं वक्तव्यमेतत्स्यात्सम्यक् ते कालगताइत्येवं पृष्टानिर्ग्रंथाएतदूचुर्यथा ते सन्मनसः शोजनमनसस्ते कालगताइति तेच सम्यक् संलेखनया यदा कालं कुर्वंति तदाऽवश्यमन्यतमेषु देवलोकेषूत्पद्यंते· तत्र चोत्पन्नायद्यपि ते व्यापादयितुं न शक्यंते तथापि त्रसत्वात्ते श्रावकस्य त्रसवधनिवृत्तस्य विषयतां प्रतिपद्यंते ॥ १ ७ ॥

नगवंचणं उदाहु संतेगइया मणुस्सा नवंति तंजहा महइछा महारंना महापरिग्गहा अहम्मिया जाव डुप्पडियाणंदा जाव सवाउ परिग्गहाउ अप्पडिविरया जाव जीवाए जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंमे णिखित्ते ते ततो आउगं विप्पजहंति ततो नुक्को सगमादाए डुग्गइगामिणो नवंति ते पाणावि वुच्चंति ते तसावि वुच्चंति ते महाकाया ते चिरहिइया ते बहुयरगा आयाणसोइति से महयाउ णं जत्रं तुप्ने वदह तंचेव अयंपि नेदे से णो णेयाउए नवइ ॥ १ए ॥

अर्थ–वली गौतम स्वामी कहेछे· आ जगत् मांहे कोइ एक एवा होय, ते कहेछे. (महइछा के०) महोटी इछावाला एटले महालोनी, महाआरंनी, महापरिग्रही, अधार्मिक यावत् डुष्प्रत्यानंदी, एटले कोइनुं नुंमुं थाय तो पोतें आनंद पामे, यावत् सर्व परिग्रह थकी अविरति एटले निवर्त्या नथी. जाव जीव लगें जेनें विषे श्रमणोपासकने (आयाणसो के०) प्रथम व्रत ग्रहण प्रारंनीने मरणांत सुधी त्रस पणाने लीधे तेनो घात ढंमाणोछे. हवें ते सर्वथा अविरति मनुष्यनो ते नवसंबंधी आयुष्यनो क्षय थये थके ते आयुष्य त्यागीनें (नुक्कोसगमादाए के०) वली पोताना उपार्जन करेलां कर्मो लेइनें (डुग्गइगामिणोनवंति के०) दौर्गतिगामि थाय, एटले शुं कह्युं ? तोके, जे महारंनी, महापरिग्रही होय, ते नरकादिक डुर्गतियें जाय. त्यां उतां तेने प्राण पण बोलियें, अने त्रस पण बोलियें, ते महाकायवाला कहियें, तेनें घणी स्थिति होय, एम पण कहियें, ते घणा जीवनी त्रस जाति पणानें पामे. माटें तेनो विनाश करवाने विषे श्रावकने रूडुं पच्चरकाण होय. इत्यादिक पूर्ववत् जाणवुं. ए कारणे तमारुं बोलवुं न्याय मार्गेनुं नथी ॥ १ए ॥

॥ दीपिका–पुनः प्रत्याख्यानविषयमाह । न प्रथमव्रतग्रहणं ततआरज्य मरणांतं या वद्दंमोनिक्षिप्तस्त्यक्तः । तेच तस्माद्भवात्स्वायुषं जहंति त्यक्त्वा त्रसजीवितं स्वकं पाप मादाय गृहीत्वा डुर्गतिगामिनः स्युः । महारंनपरिग्रहत्वात्ते मृतानरके नारकत्रसत्वेनोत्प न्नाः सामान्येन प्राणिनउच्यंते विशेषतस्तु त्रसामहाकायाइत्यादि पूर्ववत् ॥ १ए ॥

॥ टीका–पुनरन्यथा प्रत्याख्यानस्य विषयमुपदर्शयितुमाह । (नगवंचणंउदाहुरित्यादि) नगवानाह । एके केचन मनुष्याएवंनूतानवंति । तद्यथा महेच्छामहारंनामहापरिग्रहा इत्यादि सुगमं । यावद्येषु वा श्रमणोपासकस्यादीयतइत्यादानं प्रथमव्रतग्रहणं ततआ रज्याऽऽमरणांताद्दंमोनिक्षिप्तः परित्यक्तोनवति। तेच तादृग्विधास्तस्माद्भवात्कालात्स्वा युषं विजहंति त्यक्त्वा त्रसजीवितं ते नूयः पुनः स्वकर्म स्वकृतकिल्बिषमादाय गृही त्वा डुर्गतिगामिनोनवंति एतडुक्तं नवति । महारंनपरिग्रहत्वात्ते मृताः पुनरन्यतरपृथिव्यां नारकत्रसत्वेनोत्पद्यंते तेच सामान्यसंज्ञया प्राणिनोविशेषसंज्ञया त्रसामहाकायाः चिर स्थितिकाइत्यादिपूर्ववद्यावत् (णोणेयाउएत्ति) ॥ १ए ॥

नगवंचणं उदाहु संतेगइया मणुस्सा नवंति तंजहा अणारंना अ परिग्गहा धम्मिया धम्माणुया जाव सवाउ परिग्गहाउ पडिवि रया जाव जीवाए जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आम रणंताए दंमे णिक्खित्ते ते तउ आउगं विप्पजहंति ते तउ नुङ्गो सग मादाए सग्गइगामिणो नवंति ते पाणावि वुच्चंति जाव णो णेयाउ ए नवइ ॥ २० ॥

अर्थ–वली एहिज अर्थ दीपाववा नणी, गौतम स्वामी कहेछे के, आ जगत् मांहे को इ एक मनुष्य, एवा होय के, निरारंनी, निःपरिग्रही, धार्मिक धर्मनीज अनुमोदना क रनार, इत्यादिक त्यां सुधी कहेवुं, ज्यां सुधी सर्वपरिग्रह थकी विरति एटले निवृत्याछे सर्व विरतिना पालनार, जावजीव सुधी, जेने विषे श्रमणोपासकनें प्रथम व्रतग्रहण का ल प्रारंनी मरणांतसुधी घातनो निषेध कर्योछे. ते तेवा सर्वविरति वाला मनुष्य, नव सं बधीनुं आयुष्य बांधीनें पोतानां पूर्वोपार्जित शुन कर्म लेइनें सजतिगामि थाय. ते त्यां उता प्राण पण कहेवाय. इत्यादिक बीजो पाठ, सर्व पूर्ववत् जाणवो. ए कारणें ए तमारुं वचन रूडूं न्याय मार्गेनुं नथी. ॥ २० ॥

॥ दीपिका–पुनः प्रत्याख्यानविषयं दर्शयति । पूर्वोक्तेन्योमहारंनादिन्योविपरीताः

सुशीलाः साधवः एते च सामान्यश्रावकास्तेपि त्रसेष्वेव देवेषूत्पद्यंते ततोपि न निर्विषयं प्रत्याख्यानं ॥ २० ॥

॥ टीका–पुनरन्येन प्रकारेण प्रत्याख्यानस्य विषयं दर्शयितुमाह । (जगवंचणंउदाहुरित्यादि) पूर्वोक्तेन्योमहारंजपरिग्रहवदादिन्योविपर्यस्ताः सुशीलाः सुप्रत्यानंदाः साधवइत्यादि सुगमं । यावत् (णोणेयाउएजवइत्ति) । एते च सामान्यश्रावकास्तेपि त्रसेष्वेवान्यतरेषु देवेषूत्पद्यंते ततोपि न निर्विषयं प्रत्याख्यानमिति ॥ २० ॥

जगवंचणं उदाहु संतेगइया मणुस्सा जवंति तं जहा अप्पेछा अप्पारंजा अप्पपरिग्गहा धम्मिया धम्माणुया जाव एगच्चाउ परिग्गहाउ अप्पडिविरया जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंमे णिक्खित्ते ते तउ आउगं विप्पजहंति ततो जुज्जो सगमादाए सग्गइगामिणो जवंति ते पाणावि वुच्चंति जाव णो णेयाउए जवइ ॥ २१ ॥

अर्थ–वली गौतम स्वामी कहेछे. निश्चें आ जगत् मांहे कोइ एक मनुष्य, एवा होय, ते कहेछे. अल्पइछा एटले अल्पजोजी, अल्पारंजी, अल्पपरिग्रही, धार्मिक धर्मानुंग, प्राणातिपातादिक थकी एकपक्षें विरति, अनें एकपक्षें अविरति, ए कारण माटें ते विरताविरत कहेवाय. जेनें विषे श्रमणोपासकनें व्रतग्रहणकाल प्रारंजी मरणांतसुधी जीवघातरूप दंमनो निषेधछे. ते विरताविरत पुरुष, ते जव संबंधी आयुष्य छांमीनें, पछी पोतानां पूर्वोपार्जित शुज कर्म लेइने, सजतियें जाय. ते त्यां छतां प्राण पण कहेवाय, त्रस पण कहेवाय, इत्यादिक पाठ सर्व, पूर्ववत् जाणवो. ज्यां सुधी तमारुं बोलवुं न्यायमार्गेनुं नथी. ॥ २१ ॥

॥ दीपिका–किंच । सुगममिदं सूत्रं एते चाल्पेछादिविशेषणाअवश्यं प्रकृतिजइतया सजतिगामित्वेन त्रसेषूत्पद्यंते ॥ २१ ॥

॥ टीका–किंचान्यत् । (जगवंचणंउदाहुरित्यादि) सुगमं यावण्णोणेयाउएत्ति । एते चाल्पेछादिविशेषणविशिष्टाअवश्यं प्रकृतिजइतया सजतिगामित्वेन त्रसकायेषूत्पद्यंतइति जावः ॥ २१ ॥

भगवंचणं उदाहु संतेगइया मणुस्सा भवंति तं जहा आरणिया आवसहिया गामणियंतिया कण्हुई रहस्सिया जेहिं समणोवा सगस्स आयाणसो आमरणंताए दंडे णिक्खित्ते भवइ णो बहु संजया णो बहुपडिविरया पाण भूय जीव सत्तेहिं ते सतो अप्पणा सच्चा मोसाइं एवं विप्पडिवेदेंति अहं ण हंतवो अन्ने हंतवा जाव कालमासे कालं किच्चा अन्नयराइं आसुरियाइं किब्बिसियाइं जाव उववत्तारो भवति तउ विप्पमुच्चमाणा भुज्जो एलमुयत्ताए तमोरुवत्ताए पच्चायंति ते पाणावि वुच्चंति जाव णो णेयाउए भवइ ॥२२॥

अर्थ—वली गौतम स्वामी कहेछेके,आ जगत्मांहे कोइएक मनुष्य एवा होय के,आरणिक एवुं तीर्थविशेष तेनें विषे रहेनार ते आरण्यवासी,तथा कंदमूलफलाहारी,वृक्षनें मूलें वसनार एवा पुरुष,तापस विशेष जाणवा. (आवसहिया के०) वली कोइएक पानडानी पर्णकूटी करी रहेनारा, ग्राम निमंत्रिक एटले आजीविका निमित्तें ग्राम समीपें वसनारा,(कण्हुईरहस्सिया के०) कोइएक कार्यनें विषे रहस्यना करनार,इत्यादि तापस विशेष, जेनें विषे श्रमणोपासकनें व्रतग्रहण प्रारंभीने मरणांत सुधी हिंसानो निषेधछे. हवे ते तीर्थिक केवाछे ? तोके घणा संयत नथी,कारणके तेमांहे सम्यक् ज्ञान नथी; ते माटें ते पूर्ण संयमनें जाणता नथी,तथा प्राण,भूत,जीव,अने सत्वनें विषे जेने घणुं व्रतिपणु नथी. ते पोतें पोता थकी एवी सत्यामृषा भाषा प्रयुंजीनें लोक आगल आवी रीते बोले.ते कहेछे.मनें ब्राह्मण पणाने लीधे दंभादिकें करी हणवो नहीं. बीजा क्षुद्रादिकोने हणवा. इत्यादिक ...अध्ययननें विषे कह्युंछे,ते सर्व अंहीं जाणी लेवुं. एवा मनुष्य,कालमासें काल करीनें ...र्मनें योगें अनेरा आसुरिय किल्विषीयादिकनी गतिने विषे जाय. जे कारण माटें ...उपदेशना देनार,भोगाभिलाषी, तापसो, नित्यांधकार सहित एवी नरकादि ...वली बालतपनें योगें तेनें प्रथमतो पूर्वोक्त नीचगति प्राप्त थाय, ...त्रीयादिक गतिथकी आयुष्यने क्षयें चवीनें वली वली बेहेरा ...थाय. एवा छता तेनें त्रस कहियें, तेंने प्राण कहियें ...मारुं वचन न्यायमार्गनुं नथी ॥ २२ ।

तेच नो बहुसंयताः क्रियासु नो बहुप्रतिविरताः सर्वजंतुवधान्न निवृत्ताः सत्यामृषाणि वाक्यानि परेषु एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण प्रयुंजंति (एवंविप्पडिवेदेंति) क्वचित्पाठः एवं विविधप्रकारेण प्रतिवेदयंति ज्ञापयंति । यथा । अहं न हंतव्योऽन्ये हंतव्याः ।अहं नाज्ञापयितव्योन्येऽज्ञापयितव्याइत्यादीन्युपदेशवाक्यानि ददति ।एवंभूतास्ते कामासक्ताः किंचिदज्ञानतपःपराः कालं कृत्वाऽन्यतरेष्वासुरीयेषु स्थानेषु किल्बिषिकेषु असुरदेवाधमेषूत्पद्यंते अथवा प्राण्युपघातकोपदेशदातारोभोगमूर्छिताअसूर्येषु नित्यांधकारेषु किल्बिषप्रधानेषु नरकस्थानेषु समुत्पद्यंते ते च देवानारकास्त्रसत्वं न व्यभिचरंति तेषुच यद्यपि द्रव्यप्राणातिपातो न संभवति तथापि भावप्राणातिपातस्य विरतेर्विषयतां प्रतिपद्यंते ततोदेवलोकाच्च्युतानरकाद्धृतावा क्लिष्टपंचेंद्रियतिर्यक्षु हीनमनुष्येषुवा एडमूकतया तमोरूपतया अंधबधिरतया प्रत्यायांति ते चावस्थाद्वयेपि त्रसत्वं न व्यभिचरंति ततोन निर्विषयं प्रत्याख्यानं एषु च द्रव्यप्राणातिपातोपि संभवति ॥ २२ ॥

॥ टीका—किंचान्यत् । (भगवंचणंउदाहुरित्यादि) गौतमस्वाम्येव प्रत्याख्यानस्य विषयं दर्शयितुमाह । एके केचन मनुष्याएवंभूताभवंति तद्यथा अरण्ये भवाआरण्यकास्तीर्थिकविशेषास्तथा आवसथिकास्तीर्थिकविशेषाएव तथा ग्रामनिमंत्रिकास्तथा (कण्हुईरहस्सियात्ति) क्वचित्कार्ये रहस्यकाः क्वचिद्रहस्यकाएते सर्वेपि तीर्थिकविशेषास्तेच नो बहुसंयताहस्तपादादिक्रियासु तथा ज्ञानावरणीयावृतत्वान्न बहुविरताः सर्वप्राणभूतजीवसत्वेभ्यस्तत्स्वरूपापरिज्ञानात्त द्वधादविरताइत्यर्थः । ते तीर्थिकविशेषाबह्वसंयताः स्वतोविरताआत्मना सत्यामृषाणि वाक्यान्येवमिंति वक्ष्यमाणरीत्या वियुंजंति । (एवं विप्पडिवेदेंति) क्वचित्पाठोस्यायमर्थः। एवं विविधप्रकारेण परेषां प्रतिवेदयंति तानि पुनरेवंभूतानि वाक्यानि दर्शयति । तद्यथा । अहं न हंतव्योऽन्ये पुनर्हंतव्याः तथाहं नाज्ञापयितव्योऽन्ये पुनराज्ञापयितव्या इत्युदीरितान्युपदेशवाक्यानि ददति । ते चैवमेवो...
...स्त्रीकामेषु मूर्छितागृद्धाअध्युपपन्नायावद्वर्षाणि चतुःपंचानिवा षड्द...
...ऽप्यल्पतरं वा प्रभूततरंवा कालं भुक्त्वोत्कटान्भोगभोगास्तांस्ते तथाभूत...
...कारिणः कालमासे कालं कृत्वाऽन्यतरेष्वासुरीयेषु स्थानेषु किल्बिष...
...नेषूपपत्तारोभवंति यदि प्राण्युपमर्दोपदेशदायिनोऽन्ये...
...षु किल्बिषप्रधानेषु नरकस्थानेषु ते समुत्पद्यं...
...ति तेषु च यद्यपि द्रव्यप्राणातिपातोन...
...विरतेर्विषयतां प्रतिपद्यंते ततोपि देव...
...यानिधमनुष्येषु चैडमूकतया ...

ते चोनयोरप्यवस्थायास्त्रसत्वं न व्यभिचरंति । इत्यतो न निर्विषयं प्रत्याख्यानमेतेषु च इत्यतोपि प्राणातिपातः संजवतीति ॥ २२ ॥

जगवंचणं उदाहु संतेगइया पाणा दीहाउया जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए जाव दंमे णिक्खित्ते जवइ ते पुव्वामेव कालं करेंति करेंतित्ता पारलोइयत्ताए पच्चायंति ते पाणावि वुच्चंति ते तसावि वुच्चंति ते महाकाया ते चिरठिइया ते दीहाउया ते बहुयरगा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं जवइ जाव णो णेयाउए जवइ ॥ २३ ॥

अर्थ—वली जगवंत श्रीगौतम स्वामी बोल्या के,आ जगतमांहे एकेक प्राणी एवाछेके, जे श्रावक पच्चखाण करेछे, ते थकी ते प्राणी दीर्घायुवालाछे,ते देवता, नारकी, तिर्यंच, अने मनुष्यपणे परलोकमांहे उपजे,तेने प्राण पण कहियें, तेने त्रस पण कहियें, तेने मोहोटी काया ना धणी पण कहिये,तेने घणी स्थिति कहिये. तेने घणा प्रकारना जीव कहियें, जेने विषे श्रमणोपासकने व्रतग्रहण प्रारंजीने मरणांतसुधि विनाशवानो निषेधछे, अने ते श्रावक तो, तेनी पूर्वेज काल करे. ते कारण माटें ते श्रमणोपासकने, तेने विनाशवानो निषेधछे, परंतु ते दीर्घायुत्रसने विषे प्राणातिपात विरमणव्रत शामाटें पले नही? तमे जे कहोछे के, एवो पर्याय कोइ नथी के, जेणे करी श्रावक पच्चखाण करे. ते तमारुं वचन न्यायमार्गेनुं नथी. ॥ २३ ॥

॥ दीपिका—अथ प्रकटमेव विरतिविषयमाह । जगवानाह । योहि प्रत्याख्यानं गृह्णाति तस्माद्दीर्घायुष्काः प्राणिनस्ते च नारकमनुष्यदेवाद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियतिर्यंचश्च संजूतः कथं निर्विषयं प्रत्याख्यानमिति ? शेषं सुगमम् ॥ २३

टीका—सांप्रतं प्रत्यक्षसिद्धएव विरतेर्निर्विषयं दर्शयितुमाह । (जगवंचणंउदाहुरि

वि वुच्चंति तसावि वुच्चंति ते महाकाया ते समाउया ते बहुयरगा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चरकायं नवइ जाव णो णेयाउए नवइ ॥ २४ ॥

अर्थ–वली श्रीगौतमस्वामी कहेछे के, जे श्रावक पच्चरकाण करेछे, तेथकी आ जगत् मांहे कोइ एक प्राणी (समाउया के०) समायुष्य एटले सरखा आयुष्य वाला छे, जेनें विषे श्रमणोपासकनें प्रथम व्रत ग्रहण प्रारंनी मरणांत सुधी हिंसानो नियमछे, ते वार पछी ते समकालें काल करे, सरखा काल करीनें परलोकें उपजे तेनें प्राण पण कहियें, तेने त्रस पण कहियें, तेनें महोटी कायाना धणी कहियें, तेने घणा प्रकारें जीव कहियें, जेनें विषे श्रमणोपासकनें निषेधवानो नियमछे. एकारणें श्रावकनें पच्चरकाण केम न होय ? ते माटें ए तमारुं बोलवुं नलुं नथी ॥ २४ ॥

॥ दीपिका–इदं समायुष्कसूत्रं पूर्ववत् ॥ २४ ॥

॥ टीका–एवमुत्तरसूत्रमपि तुल्यायुष्कविषयं समानयोगक्षेमत्वाद्व्यारव्येयं ॥ २४ ॥

नगवंचणं उदाहु संतेगइया पाणा अप्पाउया जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए जाव दंमे णिक्खित्ते नवइ ते पुवामेव कालं करेंति करेंतित्ता पारलोइत्ताए पच्चायंति ते पाणा वि वुच्चंति ते तसावि वुच्चंति ते महाकाया ते अप्पाउया ते बहुयरगा पाणा जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चरकायं नवइ जाव णो णेयाउए नवइ ॥ २५ ॥

अर्थ–वली नगवंत श्री गौतम स्वामी बोल्या के, आ जगत् मांहे एके[illegible]
[illegible] के, ते श्रावक थकी अल्प एटले थोडा आयुष्य वालाछे, जेनें आ[illegible]
[illegible] रूडुं पच्चरकाणछे एतावता घणा प्राणने विषे पच्चरकाणछे अने [illegible]
[illegible]पच्चरकाणछे. एतावता जाव जीव सुधी जे जीव ते [illegible]
[illegible]पायुष्यवालाछे ते ज्यां सुधी मरण न पामे, [illegible]
[illegible]काणछे, ते कदापि मरण पामीनें फरी ते[illegible] पडदे)
[illegible]गल पण पले. ए कारणें निर्विषय प[illegible] इतया
[illegible]छे. अहीं बीजा रही गयेला पद्दोनो [illegible]

॥ दीपिका—इदमल्पायुष्कसूत्रमपि स्पष्टं नवरं यावत्ते न म्रियंते तावत्प्रत्याख्यानस्य विषयः त्रसेषु वा समुत्पन्नाः संतोविषयतां प्रतिपद्यंते ॥ २५ ॥

॥ टीका—तथाल्पायुष्कसूत्रसिद्धमेव । इयांस्तु विशेषोयावत्ते न म्रियंते तावत्प्रत्याख्यानस्य विषयस्त्रसेषु वा समुत्पन्नाः संतोविषयतां प्रतिपद्यंतइति ॥ २५ ॥

भगवंचणं उदाहु संतेगइया समणोवासगा भवंति तेसिंचणं एवं वुत्तं पुवं भवइ णो खलु वयं संचाएमो मुंमे भवित्ता जाव पवइत्तए णो खलु वयं संचाएमो चाउद्दसठमुद्दिठपुसमासिणीसु पडिपुसं पोसहं अणुपालित्तए णो खलु वयं संचाएमो अपच्छिमं जाव विहरित्तए वयंचणं सामाइयं देसावगासियं पुरबा पाईणं पडिणंवा दाहिणं उदीणं एतावता जाव सवपाणेहिं जाव सवसत्तेहिं दंमेहिं णिक्खिते सवपाणभूयजीवसत्तेहिं खेमं करेहि अहमंसि तब आरेणं जे तसा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंमे णिक्खित्ते तउ आउं विप्पजहंति विप्पजहित्ता तब आरेणं चेव जे तसा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो जाव ते सुपच्चायंति जेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ ते पाणावि जाव अयंपि भेदे से ॥ २६ ॥

अर्थ—वली गौतम स्वामी बोल्या के,आ जगत् मांहे एकेक श्रमणोपासक एवा होयछे तेनें पूर्वे एवा व्रतनो उच्चार होयछे के,निश्चें अमें मुंम थइ आगारवास छांमीनें चारित्र [illegible] नथी निश्चें अमे चतुर्दशी अष्टमी उद्दिष्ट एटले कल्याणिक तिथि,अने पर्णमा

नी नूमिमांहे जेटला प्राणीडंबे यावत् सर्व सत्वबे तेनें घात करवानो त्याग करीशुं. एटले ते उपरांत सर्व प्राण, नूत,जीव, अनें सत्वबे,अर्थात् जे कांइ त्रस, अनें स्थावर प्राणीयोबे तेनें (खेमंकरे के०) तेनी दया पालीशुं.(अदमंसित बआरेणंजेतसापाणा के०)ते नूमिमांहे पण वली जे त्रस प्राणीयोबे तेनें आश्री ते श्रमणोपासकें मरणांत सुधी तेनो दंम निषेध्योबे ते त्रस जीव त्यांथी पोतानुं आयुष्य त्यागीने वली तेहिज नूमिने विषे त्रसप्राणमांहे आवी उपजे एटले जेनें विषे श्रमणोपासकनें पच्चरकाण होय.जे कारण माटें त्यां जेटला त्रस जीवबे तेनें विषे ते श्रावकनें मरणांत सुधी दंमनो निषेध बे ते कारणें ते श्रावकने रूडुं पच्चरकाण कहियें. ते माटें ए तमारुं वचन रूडुं नथी. ए प्रथमनंग थयो. ए रीतें वली, बीजा आठ नंग आगल कहेबे. ॥ २६ ॥

॥दीपिका–पुनः श्रावकाणां दिग्व्रताश्रयेण प्रत्याख्यानविषयं दर्शयति । सुगमं नवरं (देसावगासियंत्ति) पूर्वगृहीतस्य दिग्व्रतस्य योजनशतादिकस्य यत्प्रतिदिनं संक्षिप्तयोजनगतादियानं करोति तद्देशावकाशिकउच्यते । तथाहि । पुरब्बापायीणमिति । (पुरब्बात्ति) प्रातरेव प्रत्याख्यानावसरे दिगाश्रितमेवंनूतं प्रत्याख्यानं करोति यथा प्राचीनं पूर्वाभिमुखं पूर्वदिशि एतावन्मयाऽद्य गंतव्यं प्रतीचीनं पश्चिमायां दिशि दक्षिणस्यामुदीच्यामुत्तरस्यां एतावद्गंतव्यं एवं प्रत्यहं प्रत्याख्यानं करोति तेन च व्रतेन गृहीतपरिमाणे देशे ये आरेण त्रसाः येषु श्रावकस्यादानतः प्रथमव्रतादारन्यामरणांतं दंमं त्यक्तं ते त्रसाः स्वायुष्कं परित्यज्य तत्रैव गृहीतमानदेशएव त्रसत्वेन प्रत्यायांति गृहीतपरिमाणदेशे त्रसायुष्कं परित्यज्य त्रसेष्वेवोत्पद्यंते तेषु श्राद्धस्य सुप्रत्याख्यानं स्याडन्यथापि त्रसत्वसद्भावादिति । शेषं सुगमम् ॥ २६ ॥

॥ टीका–पुनरपि श्रावकाणामेव दिग्व्रतसमाश्रयणतः प्रत्याख्यानस्य विषयं... तुमाह. । (नगवंचणमित्यादि) सुगमं यावत् वयंणंसामाइयं देशावकासि... काशोदेशावकाशः तत्र नवं देशावकाशिकं । इदमुक्तं नवति । पूर्वगृ... योजनशतादिकस्य यत्प्रतिदिनं संक्षिप्ततरं योजनगव्यूतिपत्तन... णं विधत्ते तद्देशावकाशिकमित्युच्यते । तदेव दर्शयति । ... त्ति प्रातरेव प्रत्याख्यानावसरे दिगाश्रितमेवं नूतं... वाभिमुखं प्राच्यां दिश्येतावन्मयाऽद्य गंतव्यं... दक्षिणाभिमुखं दक्षिणस्यामेवोदीच्यां दि... इतय। ...वा गंतव्यमित्येवंनूतं सप्रतिदिनं प्रत्या...

केन सर्वप्राणिन्योगृहीतपरिमाणात्परेण दंमोनिक्षिप्तः परित्यक्तोभवति ततश्चासौ श्रावकः सर्वप्राणभूतजीवसत्वेषु क्षेमंकरोहमस्मिन्नित्येवमध्यवसायी भवति तत्र गृहीतपरिमाणे देशे ये आरेण त्रसाः प्राणायेषु श्रमणोपासकस्य दानतइत्यादेरारन्यामरणांतो दंमोनिक्षिप्तः परित्यक्तोभवति तेच त्रसाः प्राणाः स्वायुष्कं परित्यज्य तत्रैव गृहीतपरिमाणदेशएव योजनादिदेशाभ्यंतरएव त्रसाः प्राणास्तेषु प्रत्यायांति। इदमुक्तं भवति। गृहीतपरिमाणदेशत्रसाग्रुष्कं परित्यज्य त्रसेष्वेवोत्पद्यंते ततश्च तेषु श्रमणोपासकस्य सुप्रत्याख्यानं भवत्युभयथापि त्रसत्वसद्भावात्। शेषं सुगमं यावत् णो णेयाउए भवतित्ति॥ २६॥

तच आरेणं जे तसा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए दंमे णिक्खित्ते ते तउ आउं विप्पजहंति विप्पजहंतित्ता तच आरेणं चेव जाव थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अघाए दंमे अणिक्खित्ते अणघाए दंमे णिक्खत्ते तेसु पच्चायंति तेहिं समणोवासगस्स अघाए दंमे अणिक्खित्ते अणघाए दंमे णिक्खित्ते ते पाणावि वुच्चंति ते तसा ते चिरठिइया जाव अयंपि भेदे से॥ २७॥ तच जे आरेणं तसा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए तउ आउं विप्पजहंति विप्पजहंतित्ता तच परेणं जे तसा थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए तेसु पच्चायंति तेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं भवइ ते पाणावि जाव अयंपि भेदे से॥ २८॥ तच जे आरेणं थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अघाए दंमे अणिक्खित्ते अणघाए णिक्खित्ते ते तउ आउं विप्पजहंति विप्पजहंतित्ता तच आरेणं चेव जे तसा पाणा जेहिं [illegible] सगस्स आयाणसो आमरणंताए ते सुपच्चायंति तेसु [illegible] सुपच्चक्खायं भवइ ते पाणावि जाव अयंपि भे

ए णिक्खित्ते ते सुपच्चायंति तेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए अण ट्ठाए ते पाणावि जाव अयंपि नेदे से णो ॥३०॥ तत्र जे ते आरे णं थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए दंडे अणिक्खि त्ते अणट्ठाए णिक्खित्ते तउ आउं विप्पजहंति विप्पजहंतित्ता तत्र परेणं जे तसथावरापाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए ते सुपच्चायंति तेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं नवइ ते पाणावि जाव अयंपि नेदे से णो णेयाउए नवइ ॥३१॥ तत्र जे ते परेणं तसथावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आया णसो आमरणंताए ते तउ आउं विप्पजहंति विप्पजहंतित्ता तत्र आरेणं जे तसा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आ मरणंताए ते सुपच्चायंति तेहिं समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं नव इ ते पाणावि जाव अयंपि नेदे से णो णेयाउए नवइ॥ ३२ ॥ तत्र जे ते परेणं तसथावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आया णसो आमरणंताए ते तउ आउं विप्पजहंति विप्पजहंतित्ता तत्र आरेणं जे थावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स अट्ठाए दंडे अ णिक्खित्ते अणट्ठाए णिक्खित्ते ते सुपच्चायंति जेहिं समणोवास गस्स अट्ठाए अणिक्खित्ते अणट्ठाए णिक्खित्ते जाव ते पाणावि जाव अयंपि नेदे से णो ॥३३॥ तत्र जे ते परेणं तसथावरा पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणंताए ते तउ आउं विप्पजहंति विप्पजहंतित्ता ते तत्र परेणं चेव जे तसथा[...] पाणा जेहिं समणोवासगस्स आयाणसो आमरणं[...] सुपच्चायंति ते समणोवासगस्स सुपच्चक्खायं नवइ[...] जाव अयंपि नेदे से णो ॥ ३४ ॥

अर्थ—ते आठ नंग मांहे प्रथम नंग क[...]हे जे त्रस जीवोछे ते त्रस, तेहिज नूमिक[...]रतया छे. ए प्रथम नंगछे. ते नवना अर्थ[...]

अविरतिछे ते थकी उरे एटले आगल, (जेतसापाणा के०) जे त्रस प्राणीछे (जेहिंसम णोवासगस्स के०) जेनें विषे श्रमणोपासकें (आयाणसो के०) व्रत ग्रहण प्रारंनीनें (आ मरणंताए के०) मरणांत सुधी (दंमेणिक्खित्ते के०) घात करवानो निषेध्योछे, (तउ आउंविप्पजहंति के०) पछी ते जीव त्यां थकी आयुष्य पूर्ण करे. (विप्पजहंतित्ता के०) त्यांथी आयुष्य पूर्ण करीने (तडआरेणंचेव के०) फरी त्यां मर्यादा वाली नूमियेंज निश्रें (जावथावरापाणा के०) यावत् जे स्थावर प्राणीछे (जेहिंसमणोवासगस्स के०) जे स्थाव रप्राणीने विषे श्रमणोपासकने (अठ्ठाएदंमेअणिक्खित्ते के०) अर्थदंम एटले अर्थें हणवा नो निषेध नथी, अने (अणठ्ठाएदंमेणिक्खिते के०) अनर्थदंम एटले, अनर्थें विनाश करवा नो निषेधछे (तेसुपच्चायंति के०) तेवा स्थावर जीवोनें विषे ते पूर्वोक्त त्रस जीव आवी उप जे. (तेहिंसमणोवासगस्स के०) तेनेविषे श्रमणोपासकने (अठ्ठाएदंमेअणिक्खित्ते के०)अ र्थदंम छांमयो नथी(अणठ्ठाएदंमेणिक्खित्ते के०)अने अनर्थ दंम छांमयोछे (तेपाणाविवुच्चंति के०) तेनें प्राण पण कहियें, तेने त्रस पण कहियें,तेनें चिरस्थितिक पण कहियें,(जावअयं पिन्नेदे के०) यावत् ए न्नेदवालुं पण (से के०) ते तमारुं वचन, न्याय मार्गनुं नथी. ए प्र थम नंग कह्यो ॥२७॥हवे बीजो नंग कहेछे. जेटली नूमिकानी अविरतिछे ते नूमिका मांहे लाज त्रस जीव होय ते मरण पामिने फरी नियम करेली नूमिका मांहे जे त्रस अने स्थावर जीवोछे तेमांहे आवी उपजे. ए बीजो नंग ॥२८॥ हवे त्रीजो नंग कहेछे. जेटली नूमिकानी अविरतिछे ते मांहेला स्थावर जीव,ते मरण पामीनें फरी तेहिज प्रत्याख्यान करेली नूमि का मांहे जे त्रस जीवोछे तेमांहे आवी उपजे ॥२९॥ हवे चोथो नंग कहेछे. जेटली नू मिकानी अविरतिछे ते मांहेला स्थावर जीव, मरण पामीने फरी तेहिज नूमि मांहेला [illegible] जेटली नूमिकानी अविरति

त्रस जीव कह्याछे तेनो सर्वथा प्रकारें श्रावकने आमरणांत सुधी पच्चरकाणछे अनें ज्यां ज्यां स्थावर बोल्याछे त्यां त्यां श्रावकें अनर्थें पच्चरकाण कर्युंछे. तेथी तेमांहे ते जीव, उपना जणी, ए पण पच्चरकाण थाय. एटले नवे नंग मांहे श्रावकनें पच्चरकाण होय. ए रीतें जाणवुं. एवी रीतें घणा दृष्टांतें करी श्रावकना पच्चरकाणनो विषय देखाड्यो.॥३४॥

॥ दीपिका—अत्र आराद्देशवर्तिनस्त्रसाआराद्देशवर्तिषु स्थावरेषूत्पद्यंते ॥ २७ ॥ अत्र आराद्देशवर्तिनस्त्रसागृहीतपरिमाणोद्देशाद्बहिर्येत्रसाः स्थावराश्च तेषूत्पद्यंते ॥ २७ ॥ आराद्देशवर्तिनोये स्थावरास्ते आराद्देशवर्तिनोये त्रसास्तेषूत्पद्यंते ॥ २९ ॥ आराद्देश वर्तिनोये स्थावरास्तेषु तद्देशवर्तिष्वेव स्थावरेषूत्पद्यंते ॥ ३० ॥ आराद्देशवर्तिनोये स्थावरास्ते परदेशवर्तिषु त्रसस्थावरेषूत्पद्यंते ॥३१॥ परदेशवर्तिनोये त्रसाः स्थावरास्ते आराद्देशवर्तिषु त्रसेषूत्पद्यंते ॥ ३२ ॥ परदेशवर्तिनोये त्रसाः स्थावरास्ते आराद्देशव र्तिषु स्थावरेषूत्पद्यंते ॥ ३३ ॥ परदेशवर्तिनोये त्रसास्थावरास्ते परदेशवर्तिष्वेव त्रस स्थावरेषूत्पद्यंते । एवं नवापि सूत्राणि नणितानि तत्र, यत्र यत्र त्रसास्तत्रादानशः प्रथम व्रतग्रहणादारन्य श्रावकेणामरणांतोदंमः परित्यक्तइति योज्यं । यत्र तु स्थावरास्तत्रार्था य दंमोन निक्षिप्तोन त्यक्तः अनर्थाय च दंमः परित्यक्तइति । शेषं सुगमम् ॥ ३४ ॥

॥ टीका—एवमन्यान्यप्यष्ट सूत्राणि इष्टव्यानि सर्वाण्यपि नवरं तत्र प्रथमे सूत्रे तदेवं यद्व्याख्यातं तच्चैवं नूतं तद्यथा गृहीतपरिमाणे देशे ये त्रसास्ते गृहीतपरिमाणदेशास्तेष्वें व । तथा द्वितीयं सूत्रं त्वाराद्देशवर्तिनस्त्रसाः आराद्देशवर्तिषु स्थावरेपूत्पद्यंते ॥ २७ ॥ तृतीये त्वाराद्देशवर्तिनस्त्रसागृहीतपरिमाणादेशाद्बहिर्ये त्रसाः स्थावरास्तेपूत्पद्यंते॥२७॥ तथा चतुर्थसूत्रे त्वाराद्देशवर्तिनोये स्थावरास्ते तद्देशवर्तिष्वेव त्रसेषूत्पद्यंते ॥ २९ ॥ प चमं सूत्रं तु आराद्देशवर्तिनोये स्थावरास्तेषु तद्देशवर्तिष्वेव स्थावरेषूत्पद्यंते
षष्ठं सूत्रं तु दूरदेशवर्तिनो ये स्थावरास्ते गृहीतपरिमाणास्तेषुत्रसस्थावरे
सप्तमसूत्रंत्विदं परदेशवर्तिनोये त्रसाः स्थावरास्ते आराद्देशवर्तिषु त्र
अष्टमसूत्रं तु परदेशवर्तिनोये त्रसाः स्थावरास्ते आरा
॥ ३३ ॥ नवमसूत्रं तु परदेशवर्तिनोये त्रसाः स्था
रेषूत्पद्यंते । एवमनया प्रक्रियया नवापि सूत्र
दानशआदेरारन्य श्रमणोपासकेनामरण
स्तत्रार्थाय दंमो न निक्षिप्तोन परि
तु स्वबुद्ध्या विधेयेति ॥ ३४ ॥

भगवंचणं उदाहु ण एतं भूयं ण एतं भव्वं ण एतं भविस्संति जण्णं तसा पाणा वोछिज्जिहिंति थावरा पाणा भविस्संति थाव रा पाणावि वोछिज्जिहिंति तसा पाणा भविस्संति अवोछिन्नेहिं तसथावरेहिं पाणेहिं जण्णं तुम्नेवा अन्नोवा एवं वदह णछिणं से केइ परियाए जाव णो णेयाउए भवइ ॥ ३५ ॥

अर्थ–हवे वली उदक पेढालपुत्र प्रत्यें, भगवंत श्री गौतमस्वामी कहेछे के,अहो उ दक ! (णएतंभूयं के०) भूतकालने विषे ए वात थइ नथी, (णएतंभव्वं के०) वर्त्तमा नकालें ए वात थाय नही, (णएतंभविस्संति के०) आगमिक कालें ए वात थशे न हीं (जण्णंतसापाणावोछिज्जिहिंति के०) जे त्रसप्राणी सर्वथापि विछेद थशे (थावरा पाणाभविस्संति के०) अने जगत् मांहे स्थावर प्राणीज हशे, अथवा स्थावरप्राणी स र्वथा विछेद पामशे, अनें जगत् मांहे त्रस प्राणीज रहेशे. यद्यपि तेनें परस्पर मांहो मांहे गतिछे जे स्थावर फीटी त्रस थाय, अनें त्रस फीटी, स्थावर थाय, परंतु समस्त पणे एकनो बीजा मांहे सद्भाव न थाय. तथा एवीपण संभावना नथी जे, एक पच्च रकाणना करनार टाली अन्य नारकी, बेइंद्रियादिक, तिर्यंच, मनुष्य, देवता,ए समस्तनो अ भाव होय? जो एमज होय तो त्रसनुं पच्चरकाण निर्विषय थाय.परंतु ए वात संभवे नहीं! (अवोछिन्नेहिंतसथावरेहिंपाणेहिं के०) एम त्रस अनें स्थावर प्राणीनो अविछेद होय. (जण्णंतुम्नेवाअन्नोवाएवंवदह के०) माटें जे तमे अथवा बीजो कोइ, एम कहेके (णछिणं सेकेइपरियाए के०) ते कोइ पर्याय नथी के जे पर्यायें करी श्रावकनें प्राणातिपातनुं

॥ टीका—तदेवं बहुनिर्दृष्टांतैः स्वस्वविषयतां श्रावकप्रत्याख्यानस्य प्रसाध्याधुनात्यंता बंधतां चोद्यस्य सूत्रेणैव दर्शयितुमाह । (नगवंचणंउदाहुरित्यादि) नगवान् गौतमस्वा म्युदकं प्रत्येतदाह । तद्यथा नैतद्भूतमनादिके काले प्रागतिक्रांते नाप्येतदप्यऽनंते काले नाव्यं नाप्येत द्वर्तमानकाले नवति । ये त्रसाः प्राणाः सर्वथा निर्लेपतया स्वजात्युछेद तोछेत्स्यंति स्थावराननविष्यंतीति तथा स्थावराश्च प्राणिनः कालत्रयेपि नैव समुछेत्स्यं ति त्रसानविष्यंति यद्यपिच तेषां परस्परसंक्रमेण गमनमस्ति तथापि न सामस्त्येनान्य तरेषामितरत्र सद्भावस्तथाहि न ह्येवंनूतः संनवोस्ति यडुत प्रत्याख्यानिनमेकं विहाय परे षां नारकाणां द्वींद्रियादीनां तिरश्चां मनुष्यदेवानां च सर्वदाप्यनावः एवंच त्रसविषयं प्र त्याख्यानं निर्विषयं नवति यदि तस्य प्रत्याख्यानिनोजीवतएव सर्वेपि नारकादयस्त्रसा समुछिद्यंते न चास्य प्रकारस्य संनवोस्त्युक्तन्यायेनेति स्थावराणां चानंतानामनंतत्वादेव नासंख्येयेषु त्रसेषूत्पादइति सुप्रतीतमिदं तदेव नव्यवछिन्नैस्त्रसैः स्थावरैश्च प्राणिनिर्य द्व दत यूयमन्योवा कश्चिद्वदति तद्यथा नास्त्यसौ पर्यायोयत्र श्रमणोपासकस्यैकत्रसविष योपि दंमपरित्यागइति तदेतडुक्तनीत्या सर्वमशोननमिति ॥ ३५ ॥

नगवंचणं उदाहु आउसंतो उदगा जे खलु समणं वा माहणं वा परि नासेइ मिति मन्नंति आगमित्ताणाणं आगमित्तादंसणं आगमित्ताच रित्तं पावाणं कम्माणं अकरणयाए से खलु परलोगपलिमंथत्ताए चिछइ जे खलु समणं वा माहणं वा णो परिन्नासइ मिति मन्नंति आ गमित्ताणाणं आगमित्तादंसणं आगमित्ताचरित्तं पावाणं कम्माणं अ करणयाए से खलु परलोगविसुद्धीए चिछइ तएणं से उदय पेढालपु त्ते नगवं गोयमं अणाढायमाणा जामेव दिसिं पाउन्नूते तामेव दिसिं पहारेछगमणाए ॥ ३६ ॥

अर्थ—वली गौतम स्वामी कहेछे, के, अहो आयुष्यमन् उदक ! ...
रूप यथोक्त क्रियानुष्ठाननो करनार एवो श्रमण होय, ...
॥ पालनार एवो ब्राह्मण होय तेनें (परिन्नासेइ के०) ...
रेपण नाव मानतो उतो (आगमित्ताणाणं केआदि)
...नें, (आगमित्तादंसणं के०) सम्यक् ...इतया
...) सम्यक् चारित्र पोताने विषे ...
... सम्यक् चारित्रनो पालनार पण

कर्मनें श्रण करवा नणी' उठ्यो. एटले सावधान थयो. (सेखलुपरलोगंपलिमंथत्ताए चिठइ के०) ते पण निश्चें परलोकना विघात नणी तिष्टे, एटले रहे, एटले शुं कह्युं? तोके, चारित्रिउ पुरुष घणोज गुणवान् होय परंतु यथोक्त श्रमण ब्राह्मणनी निंदा करे, ते परलोकनो, तथा संयमनो विराधक कहेवाय. हवें जे गुणवंतना गुण ग्रहण करे, ते नां फल देखाडेले. जे महासत्ववंत पुरुष रत्नाकरनी पेरें गंनीर, श्रमण ब्राह्मणने निंदे नहीं, ते सहित थको तेनी साथें मैत्री नाव पोषण करे, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, श्रने सम्यक् चारित्रनें यथोक्त पालतो उतो, पापकर्मने श्रण करवा नणी उठ्यो एटले सावधान थयो. ते निश्चें थकी परलोकनो तथा संयमनो आराधक थाय. ए कारण माटें श्रमण ब्रह्मणनी निंदा न करे! ते पुरुष रूडो जाणवो. एवुं जाणीने ए निंदा परिहरवी. श्रने सूधो संयम पालवो. (तएणंसे के०) तेवार पढी ते उदक पेढाल पुत्र, नगवन् श्री गौतम समीपें एवा अर्थो सांनलीनें, श्री गौतम स्वामीनें आदर दीधा विना पूछ्या विना जे दिशा थकी आव्यो हतो, तेहिज दिशा तरफ फरी गमन चिंतवन करतो हवो॥३६॥

॥ दीपिका–अथोपसंहारमाह । गौतमस्वाम्याह । आयुष्मन्नुदक! यः खलु श्रमणं य थोक्तक्रियाकारिणं माहनं वा सद्ब्रह्मचर्योपेतं परिनाषते मैत्रीं मन्यमानोपि निंदति स म्यक् ज्ञानदर्शनं चारित्रं च आगम्य प्राप्य पापकर्मणामकरणायोत्थितः खलु तुच्छप्रकृतिः पंडितंमन्यः परलोकस्य सजतेः पलिमंथाय विघाताय तिष्ठति यः पुनर्महासत्वः सागर वज्जंनीरः श्रमणादीन्न परिनाषते न निंदति तेषुच परमां मैत्रीं मन्यते सम्यक् ज्ञानादीन्य नुगम्य पापकर्मणामकरणायोत्थितः सखलु परलोकविशुद्ध्या तिष्ठति अनेन वाक्येन पर निंदावर्जनाद्यथावस्थितार्थकथनेन श्रीगौतमः स्वौद्धत्यं परिहरतिस्म एवं श्रीगौतमे न यथास्थितार्थज्ञापितोऽप्युदकोयदा गौतममनाद्रियमाणोयस्याएव दिशः प्रादुर्भूतस्ता

परिहृतं जवति तदेवं यथावस्थितमर्थं गौतमस्वामिनावगतोप्युदकः पेढालपुत्रोयदा जगवं तं गौतममनाड्रियमाणोयस्याएव दिशः प्राडुर्भूतस्तामेव दिशं गमनाय संप्रधारितवान्॥३६

जगवंचणं उदाहु आउसंतो उदगा जे खलु तहाजूतस्स समणस्सवा माहणस्सवा अंतिए एगमवि आरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा निसम्म अप्पणो चेव सुहुम्माए पडिलेहीए अणुत्तरं जोगखेमपयं लंजिएसमाणे सोवित्तावतं आढाइ परिजाणेंति वंदंति नमंसंति सक्कारेइ समाणेइ जाव कल्याणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासंति ॥ ३७ ॥

अर्थ—जगवंत श्रीगौतम स्वामी बोल्या के, अहो आयुष्यमन् उदक ! खलु इति निश्चें जे कोइ तथाजूत श्रमण ब्राह्मणने समीपें एक पण आर्य धर्म संबंधिक रूडुं वचन सांजलीने सम्यक् प्रकारें संयमने विषे धारीनें (अप्पणोचेवसुहुम्माए के०) पोता थकी सूक्ष्म कुशाग्र वत् बुद्धियें करी (पडिलेहीए के०) आलोचीनें विचारीनें जाणे के, आ रूडा वचनें करी हुं (अणुत्तरं के०) प्रधान, (जोगखेमपयंलंनिएसमाणे के०) योगक्षेमपद एटले रूडुं मुक्ति साधवा योग्य पद, तेने विषे पहोंचो एतावता ए थकी में रूडुं एक पद लाध्युं. (सोवित्तावतं के०) ते पुरुष, ते उपदेशना देनार पुरुषनें (आढाइ के०) आदर करे, तथा (परिजाणेंति के०) ए पुज्यछे एवुं करी जाणे, तथा तेने वांदे, ते आगल अंजली करे (नमंसंति के०) मस्तक नमावे, (सक्कारेइके०) सत्कार करे, वस्त्रादिकें करी प्रतिलाजे. (समाणेइ के०) अन्युत्थानादिक करे, तथा यावत् कल्याणमंगल देवता चैत्य एनी उपमा मानि स्तुति करे, तथा, (पज्जुवासंति के०) पर्युपासना करे, यद्यपि ते उपदेशनो दातार कांइ वंदनादिक वांछे नही तो पि ते सांजलनारें ते परमार्थ उपकारी जणी यथाशक्तियें विनयादिक समाचर

॥ दीपिका—तदा । जगवान् गौतमआह । हे आयुष्मन्नुदक ! [illegible]
तस्य श्रमणस्य ब्राह्मणस्य वांतिके समीपे एकमप्यर्थं [illegible]
॥म्यावधार्यात्मनएव तदनुत्तरं योगक्षेमपदमित्य [illegible]
रेषेहमनेन योगक्षेमपदमनुत्तरं लंजितः प्रापि[illegible]दि)
दातारमाड्रियते पूज्योयमिति जानाति क[illegible]इतया र
[illegible]जनोपि चेद्धितोपदेशदातारं पूजय[illegible]
[illegible]जनस्येति ! जावः ॥

॥ टीका—तं चैवमनिप्रायमुदकं दृष्ट्वा जगवान्गौतमस्वाम्याह। तद्यथा। आयुष्मन्नुदक! यः खलु तथाजूतस्य श्रमणस्य ब्राह्मणस्य वांतिके समीपे एकमपि योगक्षेमाय पद्यते गम्यते येनार्थस्तत्पदं योगक्षेमपदं किंजूतमार्यमार्यानुष्ठानहेतुत्वादार्यं तथा धार्मिकं शोजनवचनं सुवचनं सजतिहेतुत्वात्तदेवंजूतं पदं श्रुत्वा निशम्यावगम्याचात्मनएव तदनुत्तरं योगक्षेमपदमित्येवमवगम्य सूक्ष्मया कुशाग्रीयया बुद्ध्या प्रत्यपेक्ष्यपर्यालोच्य तद्यथाहमनेनैवंजूतमर्थपदं लंजितः प्रापितः सन्नसावपि तावल्लौकिकस्तमुपदेशदातारमाद्रियते पूज्योयमित्येवं जानाति तथा कल्याणं मंगलं देवतामिव स्तौति पर्युपास्ते च यदप्यसौ पूजनीयः किमपि नेछति तथापि तेन तस्य परमार्थोपकारिणोयथाशक्ति विधेयम्॥ ३७॥

तएणं से उदए पेढालपुत्ते जगवं गोयमं एवं वयासी एतेसिणं जंते पदाणं पुव्विं अन्नाणयाए असवणयाए अबोहिए अणजिगमेणं अदिघाणं असुयाणं अमुयाणं अविन्नायाणं अवोगडाणं अणिगूढाणं अविछिन्नाणं अणिसिघाणं अणिवूढाणं अणुवहारियाणं एयमठं णो सद्दहियं णो पत्तियं णो रोइयं एतेसिणं जंते पदाणं एण्हिं जाणयाए सवणत्ताए बोहए जाव उवहारणयाए एयमठं सद्दहामि पत्तियामि रोएमि एवमेव से जहेयं तुप्रे वदह॥ ३८॥

अर्थ—तेवार पछी ते उदकपेढालपुत्र, जगवंत श्रीगौतम स्वामी प्रत्यें एम बोल्या के, (एतेसिणंजंतेपदाणं के०) हेजगवन! तमे एटलां पद कह्यां, ते में (पुव्विंअन्नाणया ए के०) पूर्वे न जाण्यां, (असवणयाए के०) पूर्वे न सांजल्यां, (अबोहिए के०)

रोयियं के०) प्रत्याख्यानमां रुचिपण न करी ते अर्थ रुच्यो नहीं (एतेसिणंनंतेपदाणं के०) एटलां पद, हे जगवन्! (एसिंह के०) हमणा (जाणयाए के०) जाण्यां, सांजल्यां, बोध थयो, यावत् हृदयने विषे अवधार्यां. ते कारण माटें ए पदनो अर्थ, सद्दहुंबुं, प्रतितमां आणुंबुं, तथा रुचेडे. किं बहुना (सेजहेयंतुप्नेवदह के०) ते जेम तमे कहोगो (एवमेव के०) एमजडे ॥ ३७ ॥

॥ दीपिका–उदकोगौतमस्वामिनमाह । यथा एतेषां पदानां पूर्वमज्ञाततयाऽश्रवणतयाऽनाकर्णनेन अबोध्याश्रवणेप्यनवबोधात् अनजिगमेन बोधेपि सम्यगप्रतिपत्त्याऽदृष्टानामविज्ञातानामश्रुतानामविसृष्टानां गुरुणाऽदत्तानामनिर्गूढानां स्थिरतया स्थापितानामनुपधारितानामनवधारितानां चानिर्णीतानां न श्रद्धानं कृतवान् न प्रत्याख्यानरुचिं च कृतवान्। इदानीं तु युष्मदंतिके श्रुत्वा ज्ञात्वावदृष्टादि विशिष्टानां पदानामेनमर्थं श्रद्दधेहं प्रत्ययरुचिं च करोमि एवमेतद्यथा यूयं वदथ ॥ ३७ ॥

॥ टीका–तदेवं गौतमस्वामिनाजिहितउदकइदमाह । एतद्यथैतेषां पदानां पूर्वमज्ञातया श्रवणतया बोध्याचेत्यादिना विशेषणकदंबकेन श्रद्धानं कृतवान् सांप्रतं तु युष्मदंतिके विज्ञायैनमर्थं श्रद्दधेहं ॥ ३७ ॥

तएणं जगवं गोयम उदयं पेढालपुत्ते एवं वयासी सद्दहाहिणं अज्जो पत्तियाहिणं अज्जो रोहिणं अज्जो एवमेयं जहाणं अम्हे वयामो तएणं से उदए पेढालपुत्ते जगवं गोयमं एवं वयासी इछामि णं जंते तुम्नं अंतिए चाउज्जामो उ धम्माउ पंचमहव्वयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए ॥३८॥

॥ अर्थ–तेवारें जगवंत श्रीगौतमस्वामी उदयपेढाल पुत्र प्रत्यें एम ब[illegible] आर्य उदक! ए अर्थनी सद्दहणा कर. केम के, श्री वीतरागनो जांखेलो [illegible] हो आर्य! तथा (पत्तियाहिणं के०)ए वचननी प्रतीत आण[illegible] ॥ अर्थ एमज जेम हुं कहुं बुं ते जगवंतनो जांखेलो [illegible] [illegible] ते उदक पेढालपुत्र, जगवंत श्री गौतम [illegible]हे) [illegible] बुं हे जगवन्! हुं तमारा (अंतिए के०) [illegible] [illegible], तथा पडिक्कमणा सहित धर्मने. ([illegible] [illegible]) विचरवाने वांबुं बुं. ॥ ३८ ॥

॥ दीपिका—ततः श्रीगौतम उदकमेवमवादीद्यथा । अस्मिन्नर्थे श्रद्धानं कुरु हे आर्य ! प्रत्ययं रुचिं च कुरु । एवमेतद्यथा वयं वदामः तथा त्वं प्रत्येहि । ततः स उदकः श्रीगौतममेवमवादीत् । इच्छाम्यहं नवदंते युष्मत्समीपे चातुर्मासिकाच्चतुर्व्रतरूपाद्धर्मात्पंचयामिकं पंच महाव्रतरूपं सप्रतिक्रमणं धर्ममुपसंपद्य स्वीकृत्य विहर्तुमिति ॥ ३ए ॥

॥ टीका—एवमवगम्य गौतमस्वाम्युदकमेवाह । यथास्मिन्नर्थे श्रद्धानं कुरु नान्यथा सर्वज्ञोक्तं नवतीति मत्वा पुनरप्युदकएवमाह । इष्टमेवैतन्मे किंत्वमुष्माच्चातुर्यामिकाद्धर्मात्पंचयामिकं धर्मं संप्रति सप्रतिक्रमणमुपसंपद्य विहर्तुमिच्छामि ॥ ३ए ॥

तएणं से नगवं गोयमे उदयं पेढालपुत्तं गहाय जेणेव समणे नगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छइत्ता तएणं से उदए पेढालपुत्ते समणं नगवं महावीरं तिरकुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ तिरकुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करित्ता वंदइ नमंसति नमंसंतित्ता एवं वयासी इच्छामि णं नंते तुप्नं अंतिये चाउज्जामाउ धम्माउ पंच महव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विह[illegible]तए तएणं समणे नगवं महावीरे उदयं एवं वयासी अहासुहं देवाणुप्पिया मा पडिबंधं करेहि तएणं से उदए पेढालपुत्ते समणस्स नगवउ महावीरस्स अंतिए चाउज्जामाउ धम्माउ पंच महव्वइयं [illegible]डिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ त्तिबेमि॥इति नालंदइज्जं सत्तमं अज्झयणं सम्मत्तं ॥ इति सूयगडांगबीयसुयरकंधोसम्मत्तो ॥४०॥ ग्रंथाग्र ॥ २१०० ॥

अर्थ—ते वार पछी एवुं वचन सांनलीनें नगवंत श्री गौतमस्वामी, ते उदक पेढाल पुत्र संघातें लइने ज्यां श्रमण नगवंत श्रीमहावीर देवछे, त्यां आव्या. तेवार पछी ते उदकपे[illegible], श्रमण नगवंत श्रीमहावीर देवने (तिरकुत्तो के०) त्रणवार प्रदक्षिणा पूर्वक नमस्कार करे, त्रण वार प्रदक्षिणा पूर्वक नमस्कार करीनें एवी रीतें बोल्या [illegible]च्छामिणंनंते के०) हे नगवन् ! तमारा समीपें हुं इछुं छुं. शुं इछुं छुं? तोके चातुर्यामिक [illegible]की रहित थइनें पंच महाव्रत, तथा सप्पडिक्कमण धर्म, अंगीकार करी विचरवाने वां[illegible] तेवारें श्रमण नगवान् श्रीमहावीर देव बोल्या के, (अहासुहंदेवाणुप्पिया के०) हे [illegible]प्रिय! जेम तमारे सुख उपजे, तेम करो! (मापडिबंधंकरेह के०) धर्मने विषे विलं[illegible] [illegible]. तेवार पछी ते उदक पेढालपुत्र एवुं सांनलीने, श्रमण नगवंत श्रीमहावीरके

समीपें चातुर्यामिक धर्मथकी पंचमहाव्रत सप्रतिक्रमण धर्म आदरीने विचरेछे, सर्वज्ञ प्रणितधर्म पालेछे. (त्तिबेमि के०) श्री सुधर्मस्वामी पोताना शिष्यो प्रत्यें कहेछे. के, में जेवुं भगवंत श्री महावीरदेव पासेंथी सांभल्युंछे, तेवुं तमने कहुं छुं. इत्यादिक अर्थ, पूर्ववत् जाणवो॥४०॥एरीतें "नालंदइज्जं" नामा सातमा अध्ययननो अल्पार्थबालावबोध समाप्त थयो॥ ए बीजा श्री सूयगडांगना बीजा श्रुतस्कंधनो संक्षेपार्थ बालावबोध समाप्त थयो.॥ सम्मत्तं सूयगडांगं आदितः ॥ सर्वाणि अध्ययनानि त्रयोविंशतिकानि संपूर्णानि ॥ श्री साधुरत्नष्येण पाशचंद्रेण वृत्तितः कृतबालावबोधार्थं द्वितीयांगस्य वार्तिकं समाप्तम् ॥७॥

॥ दीपिका—ततोभगवान् गौतमस्तं प्राक् प्रतिपन्नश्रीपार्श्वशासनव्रतमुदकं गृहीत्वा यत्र श्रीवीरोभगवांस्तत्रैवोपागच्छति । ततः सउदकः श्रमणं भगवंतं त्रिःकृत्वः आदक्षिणं प्रदक्षिणं करोति तिस्रः प्रदक्षिणाः करोतीति कृत्वा च वंदते नमस्यति वंदित्वा नमस्यित्वा च एवमवादीत् इच्छामि भवदंते युष्मदंतिके चातुर्यामात्पंच महाव्रतिकं धर्ममुपसंपद्य विहर्तुमिति । ततः श्रीवीरस्तमुदकमेवमवादीद्यथा सुखं देवानुप्रिय! मा प्रतिबंधं धर्मांतरायं कार्षीरिति । ततः सउदकः श्रीवीरांतिके पंच महाव्रतिकग्रहणायोद्यतः भगवतापि तस्य सप्रतिक्रमणः पंचमहाव्रतिकोधर्मोनुज्ञातः सच तं धर्ममुपसंपद्य स्वीकृत्य विहरतीति । इतिः परिसमाप्त्यर्थे ।ब्रवीमीति पूर्ववत् । सुधर्मस्वामी स्वशिष्यानिदमाह । तद्यथा सोहं ब्रवीमि येन मया भगवदंतिके श्रुतमिति ॥४०॥ नालंदीयाख्यमिदं सप्तममध्ययनं समाप्तं । तत्समाप्तौ च समाप्तोयं द्वितीयः श्रुतस्कंधस्तत्संपूर्त्तौ च पूर्णेयं श्रीसूत्रकृतांग दीपिका ॥ ग्रंथसंख्या ॥ सुमारें ॥ (७०००)

॥ अथ प्रशस्तिः ॥ आर्या वृत्तम् ॥

निस्तंद्रचंद्रचारुणि,चंद्रकुले चरणचातुरीभाजः।विख्याततपेत्याख्या,जगति जगच्चंद्रसूरयोऽभूवन् ॥ १ ॥ तेषां दोषांशमुषां, संताने सुकृतसंचयविताने ॥ श्रीसोमसुंदरगुरू,त्तमाक्षमासंगमाअभवन् ॥ २॥ तत्पट्टस्फुटकमला,भाले काश्मेयतिलकसंकाशः॥श्रीमुनिसुंदरगुरवः,कारितसंपत्तिसुरतरवः ॥३॥ बाल्येपि भारतीभि,रुद्रपादि वादिवर्गे यैः ॥ श्रीजयचंद्रमुनींद्रा-परगजेषु सिंहसदृशाः॥४॥ तत्पदविशदस्थाने,स्थाने शृंगारसारतां भेजुः॥श्रीरत्नशेखरा,जगति यतः ख्यातिमापुस्ते॥५॥तेषामनर्घपट्टे,गुणसंघट्टे प्रभावकघपट्टे॥प्राप्ताधिकनिष्ठा श्रीलक्ष्मीसागराःशिष्टाः॥६॥ भर्त्सितकलिकालुष्या,शिष्याभाषायथार्थनामानः ॥ श्रीतया साधुगुरवो, लक्ष्मीसुरभीकारसायशोगुरवः ॥ ७ ॥ तत्पट्टे प्रवादेप्सित, पूरणचिंतामणीनाम् ॥ लब्धाधिकमानानां, सुहेमविमलाभिधानानाम् ॥८॥ सुरीपगच्छनायक, देवीतिष्ठानाम् ॥ शिष्याणुर्गुणशासन,जननीतिथिसंमिते (१५८२) वर्षे ॥९॥ विबुध

मकशिष्यः स्वस्य स्मृतये,परोपकृतये च ॥सूत्रकृतांगस्यैतां हर्षकुलोदीपिकामलिखत् ॥ १०॥ काश्चित्प्रमाणयुक्ती,रप्रथयन्नात्र सुगमनाहेतोः ॥ ततएव नैव विहितो,लक्षणसंधिस्तथा क्वापि ॥ ११ ॥ सूत्रासंगतमत्रा,वादि कथंचिन्मया यदज्ञतया॥तद्बोधयंतु सुधियः,कृपया मात्सर्य मुत्सार्य॥ १२॥ग्रंथमितिरनुमिताऽत्र च,सप्तसहस्राणि किंचिदूनानि॥ विबुधजनवाच्यमानो, ग्रंथोयं जगति जयतु चिरम् ॥ १३॥ ॥ इति श्रीसूत्रकृतांगदीपिकायाः प्रशस्तिः संपूर्णा ॥

॥ टीका—ततोसौ गौतमस्वामी तं गृहीत्वा तीर्थंकरांतिकं जगाम । उदकश्च नगवंतं वंदित्वा पंचयामिकधर्मग्रहणायोत्थितोन्नगवतापि तस्य सप्रतिक्रमणः पंचयामोधर्मोनुज्ञातः सच तं तथानूतं धर्ममुपसंपद्य विहरतीति । इति परिसमाप्त्यर्थे ब्रवीमीति सुधर्मस्वामी स्वशिष्यमिदमाह । तद्यथा सोहं ब्रवीमि येन मया नगवदंतिके श्रुतमिति गतोनुगमः । सांप्रतं नयास्ते चामी । नैगम,२संग्रह,३ व्यवहार,४ ऋजुसूत्र, ५ शब्द, समनिरूढै, ६ वंनूत्त,, ७रव्याः सप्तैव । तेषां च मध्ये नैगमाद्याश्चत्वारोप्यर्थनयाः । अर्थमेव प्राधान्येन शब्दोपसर्जनमिच्छति शब्दाद्यास्तु त्रयः शब्दनयाः शब्दप्राधान्येनार्थमिच्छंति । तत्र नैगमस्येदं स्वरूपं तद्यथा सामान्यविशेषात्मकस्य वस्तुनोनैकेन प्रकारेणावगमः परिच्छेदोनिगमस्तत्र नवोनैगमोमहासामान्यावांतरालसामान्यविशेषाणां परिच्छेदकस्तत्र महासामान्यं सर्वपदार्थानुयायिनी सत्तावांतरालसामान्यं द्रव्यत्वजीवत्वाजीवत्वादिकं विशेषाः परमाण्वादयस्त्वक्षतावा शुक्लादयोगुणास्तदेवं तत्रितयमप्यसाविच्छतीति निलयनप्रस्थकादिदृष्टांतैरनुयोगद्वारप्रसिद्धैस्तत्स्वरूपमवसेयमयं च नैगमः सामान्यविशेषात्मवस्तुसमाश्रयणेपि न सम्यग्दृष्टिर्निर्देनैव सामान्यविशेषयोराश्रयणात्तन्मताश्रितनैयायिकवैशेषिकवत् । तथा संग्रहोप्येवं स्वरूपस्तद्यथा सम्यक् पदार्थानां सामान्याकारतया ग्रहणं सद्ग्रहस्तथा ह्यप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वनावमेव सत्तारूपं वस्त्वसावन्युपगच्छति सत्तातोव्यतिरिक्तस्यावस्तुत्वं खरविषाणस्येव सच संग्रहः सामान्यविशेषात्मकस्य वस्तुनः सामान्यांशस्यैवाश्रयणान्मिथ्यादृष्टिस्तन्मताश्रितसांख्यवत् । व्यवहारनयस्य तु स्वरूपमिदं तद्यथा यथा लोकग्राह्यमेव वस्तु यथा च शुष्कतार्किकैः स्वाभिप्रायकृतलक्षणानुगतं तथानूतं वस्तु न नवत्येव नहि प्रतिलक्षणमर्थानामात्मन्नेदोन्नवति किं तर्हि यथा यथा लोके न विशिष्टनूयिष्ठतयार्थक्रियाकारि वस्तु व्यवन्हियते तथैव तद्स्त्वित्याबालगोपालांगनादिप्रसिद्ध्वा द्वस्तुस्वरूपस्येत्ययमप्युत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तस्य वस्तुनोनान्युपगमात् मिथ्यादृष्टिस्तथा विधरथ्यापुरुषवदिति । ऋजुसूत्रमतं त्विदं ऋजुप्रगुणं तत्वविनष्टानुत्पन्नतयातीतानागतचक्रपरित्यागेन वर्त्तमानकाललक्षणनावि य द्वस्तु तत्सूत्रयति प्रतिपादयत्याश्रयतीति ऋजुसूत्रस्तस्यैवार्थक्रियाकारितया वस्तुत्वलक्षणयोगादित्ययमपि सामान्यविशेषोन्नयात्मकस्य वस्तुनः सामा

न्यांशपरित्यागेन विशेषांशस्यैव समाश्रयणाद्बौद्धोदनिवन्न सम्यग्दृष्टिः कारणभूतद्रव्या नन्युपगमेन तदाश्रितविशेषस्यैव भावादिति । शब्दनयस्वरूपंत्विदं तद्यथा शब्दद्वारेणैवा स्यार्थप्रतीत्यान्युपगमाल्लिंगवचनसाधनोपग्रहकालभेदाभिहितं वस्तु भिन्नमेवेच्छति तत्र लिं गभेदाभिहितं वस्त्वन्यदेव भवति तद्यथा पुष्यस्तारकानक्षत्रमेवं संख्याभिन्नं जलमयोवर्षा ऋतुः साधनभेदस्त्वयं एहिमन्ये रथेन यास्यसि यातस्ते पिता अस्यायमर्थः । एवं त्वं म न्यसे यथाहं रथेन यास्यामीत्यत्र मध्यमपुरुषयोर्व्यत्ययः उपग्रहस्तु परस्मैपदात्मनेपद योर्व्यत्ययस्तद्यथा तिष्ठति प्रतिष्ठते रमते उपरमतीत्यादि कालभेदस्त्वग्निष्टोमयाजी पुत्रो स्य भविता अस्यायमर्थोऽग्निष्टोमयाजी अग्निष्टोमेनेष्टवान् भूते णिनिर्भवितेति भविष्यद नद्यतने लुट् तत्रायमर्थः णिनिप्रत्ययोभवितेत्यस्य संबधाद्भूतकालतां परित्यज्य भविष्य त्कालतां प्रतिपद्यते तेनेदमुक्तं भवत्येवंभूतोऽस्य पुत्रोभविष्यति योऽग्निष्टोमेन यक्ष्यति तदे वंभूतं व्यवहारनयशब्दनयोनेच्छति लिंगाद्यभिन्नास्तु पर्यायाः अनेकविषयत्वेनेच्छति तद्यथा घटः कुंभः इंद्रः शक्रः पुरंदरइत्यादि । अयमर्थोव्यंजनपर्यायोनयरूपस्य वस्तुनोव्यंजनपर्या यस्यैव समाश्रयणान्मिथ्यादृष्टिरिति । तथा पर्यायाणां नानार्थतया समभिरोहणात्सम भिरूढोन ह्ययं घटादिपर्यायाणामेकार्थतामिच्छति तथाहि घटनाद्घटः कुट्टनात्कुट्टः कौ भा तीति कुंभोनहि घटनं कुट्टनं भवति तथेंदनादिंद्रः पुर्दारणात्पुरंदरइत्यादेरपि शब्दप्रवृत्ति निमित्तस्य न परस्परानुगतिरिति तदयमपि मिथ्यादृष्टिः पर्यायाभिहितधर्मेव वस्तुनोनाश्र यणादग्रहीतप्रत्येकावयवांधहस्तिज्ञानवदिति । एवंभूताभिप्रायस्त्वयं यदैव शब्दप्रवृत्तिनि मित्तं चेष्टादिकं तस्मिन्घटादिके वस्तुनि तदेवासौ युवतिमस्तकारूढउदकाद्याहरणक्रियाप्र वृत्तोघटोभवति न निर्व्यापारएव एवंभूतः तस्यार्थस्य समाश्रयणादेवंभूतोभिधानोनयोभव ति । तदयमप्यनंतधर्माध्यासितस्य वस्तुनोनाश्रयणान्मिथ्यादृष्टिः । रत्नावल्यवयवे प द्मरागादौ कृतरत्नावलीव्यपदेशपुरुषवदिति । तदेवं सर्वे नयाः प्रत्येकं मिथ्यादृष्टयोऽन्यो न्यसव्यपेक्षास्तु सम्यक्त्वं भजंति अत्र च ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षइतिकृत्वा ज्ञानक्रियानययोः सर्वेप्येते स्वधिया समवतारणीयाः तत्रापि ज्ञाननयऐहिकामुष्मिकयोर्ज्ञानमेव फलसा धकत्वेनेच्छति न क्रियां । क्रियानयस्तु क्रियामेव न ज्ञानं परमार्थस्तूभयमपि समुदितमन्यो न्यसव्यपेक्षं पंग्वंधवदभिप्रेतफलसिद्धयेऽलमिति एतदुभययुक्तएव साधुरभिप्रेतमर्थं साधय त्युक्तं च । सव्वेसिं पिणयाणं, बहुविहवत्तव्वयं णिसामेत्ता ॥ तं सव्वणय विसुद्धं, जं चरण गुणट्ठिउ साहू ॥ १ ॥ ४० ॥ समाप्तमिदं नालंदाख्यं सप्तममध्ययनम् ॥ इति समाप्तेयं सूत्रकृतद्वितीयांगस्य टीका । कृता चेयं शीलाचार्येण वाहरिगणिसहायेन ॥ श्लोकः ॥ यदवाप्त मत्र पुण्यं, टीकाकरणे मया समाधिभृता ॥ तेनापेततमस्को,भव्यः कल्याण भाग् भवतात् ॥ १ ॥ ग्रंथाग्रं (१२८५०) ॥